श्री वरदराजकृता

मध्यसिद्धान्तकौमुदी

प्राभाकरीटीकायुता

[प्रथमो भागः]

संज्ञा सन्धि सुबन्ताव्ययान्त भ्वादि

टीकाकारः— डा० प्रभाकरमिश्र एम. ए. व्याकरणाचार्यः

विद्यावारिधिः [पी. एच. डी.] व्याकरणविभागाध्यक्षः

श्रीरामानुजसंस्कृतमहाविद्यालय, मिश्रपोखरा

वाराणसी

प्रकाशकौ—अरविन्दमकरन्दमिश्रौ

अरविन्दमकरन्दप्रकाशन

बी ३७/४५ ए-२ विरदोपुर बैजनत्था मन्दिर

वाराणसी–१०

[गुरु पूर्णिमा

१९८८ ईस्वीये]

[प्रथमसंस्करणम]

श्रीवरदराजकृता

मध्यसिद्धान्तकौमुदी

प्राभाकरीटीकायुता

(सम्पूर्ण)

टीकाकारः- डा० प्रभाकरमिश्र एम. ए. व्याकरणाचार्य

विद्यावारिधिः [पी. एच. डी.] व्याकरणविभागाध्यक्षः

श्रीरामानुजसंस्कृतमहाविद्यालय, मिश्रपोखरा

वाराणसी

प्रकाशकौ अरबिन्दमकरन्दमिश्रौ

अरबिन्दमकरन्दप्रकाशन

बी ३७/४५ ए-२ विरदोपुर बैजनत्था मन्दिर के पीछे

वाराणसी-१०

[मकर संक्राति

१६८९ ईस्वीये]

[प्रथमसंसकरणम्]

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

भारतीय विद्याप्रकाशन- यू० पी० बैंग्लो रोड, जवाहर नगर
दिल्ली १०००७
भारतीय विद्याप्रकाशन कचौड़ी गली वाराणसी
चौखम्भा समुदाय " "
गिरिजाप्रकाशन डी० २१/१३ राणामहल [बंगाली टोला]
वाराणसेय संस्थान वाराणसी

छूट—समर्थः पदविधिः पद सम्बन्धी समर्थाश्रितो बोध्यः पृष्ठ ।

(प्रथम संस्करण)

पता—
प० श्रीप्रभाकरमिश्र
अरबिन्दमकरन्दप्रकाशन
बी ३७/४५ ए-२ विरदोपुर [बैंजनत्था मन्दिरके पीछे]
वाराणसी

पुनर्मुद्रणाधिकारः प्रकाशकाभ्यां स्वायत्तीकृतः ।

मूल्य ६० रुपये

मुद्रणस्थानम्—
शुभकरण प्रेस, विरदोपुर, वाराणसी

विदुषां शुभाशंसनम्

परम्परागतलब्धवैदुष्येण "श्री रामानुजसंस्कृतमहाविद्यालयोपमिश्रशेखरं वाराणसेयस्य व्याकरणविभागाध्यक्षेण वैयाकरणभूषणसारस्य प्राभाकरी टीकाकारेण च डा० श्रीप्रभाकरमिश्रमहोदयेन या निर्मिता हिन्दीसंस्कृतव्याख्यासहित 'वैयासिद्धान्तकौमुदी सा मया भर्दशि। सा चाधुनिकानां प्राचीनानां संस्कृतज्ञानां कृते अतीवोपयोगिनी। साम्बं श्रीविश्वनाथम्प्रार्थये यदस्याः प्रचारः प्रसारश्चाधिकाधिक रूपेण जायताम्। साम्प्रतमेतादृशस्य ग्रन्थस्य महत्यावश्यकता वर्तते।

विदुषां वशम्वदः मङ्गलाप्रसाद-पाठकः
व्याकरणविभागाध्यक्षः, कर्णघण्टा, वाराणसी

आचार्यप्रवर विद्वन्मूर्धन्य वैयाकरणकेशरी पं० श्री शशिधर मिश्र के निर्देशन में यह सम्पूर्ण ग्रन्थ अनुसन्धानका विषय बना। विद्वद्वरेण्य ने सम्पूर्ण संशोधन स्थलमें प्रेरणा भी प्रदान किया है। इस उपकारके लिए जन्मजन्मान्तर तक ऋणी रहूंगा आचार्यप्रवर श्री शशिधरजी मिश्रकी प्रेरणा अमर रहेगी। आचार्यप्रवर विद्वन्मूर्धन्य मम, गुरुः श्री रामप्रसादत्रिपाठी, श्रीकालिकाप्रसाद शुक्लः, गुरुकल्पः श्रीदैवेस्वरूप मिश्रः एवं श्री रामरत्न शुक्लः आदि महामनीषियोंकी प्रेरणा आशीर्वाद साथ हैं।

तथा–श्रीमन्निखिलगुणगणनिलय अकारणकरुणकरुणावरुणालयपरिपूर्णतम-परात्परपरमात्मा भगवान् श्रीराघवेन्द्ररामव्रजूके निःश्वासभूत वेद अपौरुषेय है। इस तथ्यमें मनागपि सन्देह नहीं। समस्तप्राच्यप्रतीच्य विद्वान् इन्हीं को अपनी जिज्ञासा पिपासा तथा गवेषणाका एकमात्र केन्द्र मानकर इन्हींके परमपावन ज्ञान परिसरमें सतत अपनी मनीषाको परिष्कृत करते रहते हैं। इन वेदोंके एकमात्र प्रतिपाद्य भगवान (शब्दब्रह्म) है। इस दुर्बोध वेदराशिके याथार्थ्य निरूपणके लिए (प्रभु प्रेरणासे ही तपःपूत) भारवर्षके महर्षियोंके अन्तःकरणमें शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द व्याकरण इन ६ अङ्गभूत शास्त्रोंकी समीरणा हुई। इनके विना वेदार्थका सम्यक्ज्ञान नहीं हो पाता। शिक्षासे उच्चारण विधिका ज्ञान, कल्पसे मन्त्रप्रयोगका बोध, निरुक्तसे गूढ़शब्दोंकी अनुकूलार्थ बोधकव्युत्पत्तियोंका निर्णय। छन्द-वैदिक छन्दोंकी वर्णमात्रा, परस्पर यतियोंका निश्चय तथा ज्योतिषसे वैदिक अनुष्ठानोंके लिए उपयोगी मुहूर्तका निर्धारण है। पर ये पांचों शास्त्र भगवान वेदके वहिरङ्ग अर्थ बोधमें विश्रान्त हो जाते हैं। वेदका अन्तरङ्ग अर्थ ज्ञान=प्रकृति प्रत्यय, वचन संख्या लिङ्ग स्वर व्यवस्था आदि बोधके बिना कथमपि सम्भव नहीं। अतः ये ही वेद भगवानके प्रमुख अङ्ग है। अभियुक्त व्याकरणको वेद भगवानका मुख मानते हैं। मुखं व्याकरणं प्रोक्तम्। भगवान् भाष्यकारने व्याकरण के अध्ययनके उन्हीं पांच मुख्य प्रयोजकोंका उल्लेख किया है जो वैदिक वाङ्मयके बोधमें मुख्य कारण है। व्याकरणज्ञानविना शब्दिक अर्थके अभावमें वेदकी रक्षा सम्भवत नहीं। व्याकरणशून्यव्यक्ति मन्त्रनिर्दिष्ट विभक्तियों के यथासमय

विपरिणाममें सफल नहीं हो सकता। बिना व्याकरणके लघु उपायसे शब्दराशिका अवगम नहीं कर सकता। एवं व्याकरण व्युत्पत्तिके बिना आगम कथमपि शक्य नहीं। तथा स्थूलपृषती—आदि स्थलोंमें असन्दिग्ध अर्थ निर्धारण कैसे कर सकेगा। अतः वेदोंके अतरङ्ग अर्थ बोधके लिए व्याकरणकी अनिवार्य आवश्यकता है। किसीने यहां तक कहा कि—यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र ? व्याकरणम्। स्वजनः श्वजनो माभूत् सकलं-शकलं सकृच्छकृत्। व्याकरण ज्ञान बिना दन्त्य तालव्य (श, स,) में संकेत न समझने के कारण। स्वजन (अपनेजन) तथा श्वजन (कुत्ते लोग) आदिमें अन्तर न जान पाओगे। कहीं सकल (सम्पूर्ण) को तालव्यसे शकल (खण्ड) न समझ लें। सकृत (एक बार) को शकृत् (मल) न समझें। अर्थात् व्याकरणके बिना लोकयात्राभी निर्विघ्न रूपसे नहीं चल सकती।

यद्यपि प्राचीन कालमें सेन्द्र चान्द्रादि नव व्याकरणोंका प्रचलन था (सोऽयं नव व्याकरणस्य वेत्ता) (वा०) उ० सर्ग ३६ श्लो० ९। उनका (कालक्रमसे लोप होनेके कारण सम्प्रति नाम ही शेष है। अर्वाचीन हेमचन्द्र, सारस्वत, शाकटायन, मुग्धबोध आदि प्रयोग विस्तारके कारण एवं वैदिक प्रयोगोंकी कोई व्यवस्था न दे पानेके कारण, वैदिक धर्मावलम्बियोंकी दृष्टमे समादरके पात्र न बन सके। सांप्रतिक परम्परामें पाणिनिव्याकरण ही मुख्य तन्त्र है। जो लौकिक वैदिक शब्दोंके साधुत्वरूपिणी गङ्गा, अर्थबोधरूपिणी यमुना तथा शब्दार्थ सम्बन्ध प्रतिपादन प्रक्रियारूपिणी सरस्वती का सुमधुर समन्वय प्रस्तुत होकर इस शब्दार्थ सम्बन्धिनी त्रिवेणीसे प्राच्यप्रतीच्य विद्वानोंके अनन्त मानसमरुस्थलको अक्षुण्णगतिसे सरस बनाता प्रयोगका गौरव प्रदान करता हुआ परिलक्षित हो रहा है। महामनीषी भगवान् पाणिनिने लगभग ४००० सूत्रोंमें समस्त शब्दराशिको समुपनिबद्ध करके गागरमें सागर भर दिया। इनके सूत्रोंकी (भाष्यके आधार पर) अनेक आचार्योंसे वृत्तियां लिखी गयी है। जिनमें भट्टोजीदीक्षितकृत वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी यवृत्ति अत्यन्त उपयोगिनी है। कारण कि इसमें दीक्षितजी ने प्राचीन आचार्योंके सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन कराकर त्रिमुनिसम्मत सिद्धान्तोंका प्रतिपादन अपूर्व कौशलसे किया। दीक्षितजीने प्रकरणानुसार प्रयोग अष्टाध्यायीके सूत्रों एवं उनके सहकारी कात्यायन वार्तिकोंका क्रम उन्हीके साथ जोड़कर कहीं भाष्यवचन भी उद्धृत करके जिस संशोधित शब्दसाधनिकाकी पद्धति उपन्यस्तकी है। उससे व्याकरण विद्यार्थियोंकी व्याकरणाध्ययनमें अपूर्व रोचकता पूर्ण सरलता बढ़ गयी है। संज्ञासे लेकर लिङ्गनुशासनपर्यन्त इस ग्रन्थमें वर्णित सिद्धान्त दिग्भ्रान्त वैयाकरण को एक परिष्कृतमार्गका प्रदर्शन कराते है। इसी पद्धतिको नव-व्याकरण की परम्परा कहते हैं। इस ग्रन्थकी सुस्पष्टताके लिए स्वयं दीक्षित जीने प्रौढमनोरमा, श्रीहरि दीक्षितने मनोरमाशब्दरत्न तथा श्रीनागेशभट्टने शब्देन्दु शेखरादि ग्रन्थ लिखकर इसका और भी गौरव बढ़ाया। कौमुदी यदि कण्ठस्था, वृथा भाष्ये परिश्रमम्। कौमुदी यद्यकण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमम्। इसी वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीका

संक्षिप्तरूप लघुसिद्धान्तकौमुदी है जो भट्टोजिदीक्षितके शिष्य वरदराजाचार्यसे लिखी गयी है। पाणिनि व्याकरणशास्त्रमें प्रविष्ट होनेवाले छात्रोंके लिए परम उपयोगी है कि इसमें प्रारम्भिक छात्रोंकी सुकुमार मनःस्थितिके अनुकूल ही अपूर्व मनोवैज्ञानिकरूपमें वैयाकरणसिद्धान्तोंका सुबोध प्रतिपादन हुआ है। इस ग्रन्थकी अनेक विद्वानोंने संस्कृत टीकाकी हैं। हिन्दीके विद्वानोंने भी यथामति हिन्दी व्याख्या प्रस्तुतकी है।

छात्रकृपावशम्वद मेरे चिरन्तन सखा आचार्य पं० श्रीप्रभाकरमिश्रजीने भी इस ग्रन्थपर प्राभाकारी हिन्दी टीका लिखकर बड़ा ही स्तुत्य तथा सफल प्रयास किया है। श्री मिश्रजी पाणिनीयव्याकरणके गम्भीर पाण्डित्यके साथ-साथ सुबोध शैलीमें विषय प्रतिपादनकी अपूर्व क्षमता रखते हैं जो इस टीकामें सर्वथा परिलक्षित है। मैंने श्री मिश्रजी की लघु सि० कौमुदीकी प्राभाकरीटीकाके अनेक स्थलको गम्भीरता एवं रुचिसे सुना है। आपकी भाषा भावाभिव्यक्ति समर्थ सरल तथा परिष्कृत है, टीकाकार विद्वान्ने विषयोंको निगमन शैलीमें समझानेका बड़ा ललित प्रयत्न किया है। हिन्दी भाषामें सरलतासे प्रत्येक सूत्रोंका अर्थ प्रस्तुतकर वृत्तिके अर्थको भी सरल शब्दोंमें समझाकर विषयोंको रोचक बनाया है कि सामान्य विद्यार्थी भी इस टीकाको स्वयं पढ़कर प्राभाकरी नौकापर आरूढ़ हो पाणिनी सागरको पारकर सकता है। प्रयोगोंके अर्थको हिन्दीमें समझाकर तत्समकक्ष दूसरे बहुतसे प्रयोगोंको लिखकर मिश्रजीने छात्रोंकी व्युत्पत्ति क्षमता बढ़ानेकी एक नवीनतम दिशा दी हैं। मैंने अपने अभिन्नमित्र श्री प्रभाकरजी मिश्रके इस शुभ कार्यके लिए सहस्रशः साधुवाद वितरित करता हूं। इस टीकाके अनुदिन प्रचारार्थ और प्रसारार्थ अपनी कोटि-कोटि शुभकामना अर्पित करता हूं- एवं इनके इस प्रयासमें नित्य नूतन प्रेरणाके लिए श्रीजानकीवल्लभ श्रीराघवेन्द्र भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजूके चारुचरणकमलोंमें अभ्यर्थना करता हूं (श्रीरामश्शन्तनोतु)

गिरिधरमिश्रः

अध्यापन शैली—छात्रोको सातों विभक्तियों का अर्थ ठीक समझाकर कर्ता कर्म करण आदि कारकोंको सही तरीकेसे जोड़ना वाक्य योजना सिखाकर कुछ अनुवाद की प्रवृत्ति जगायें। सूत्रों के शब्द के अर्थ, प्रयोगों की साधनिका को अर्थ खुलनेके अनुकूल समझाकर अनुवादवाक्य में शब्दों का प्रयोग करना, बतलायें-यथा धात्रंशः धाता ब्रह्मा अंशोयस्य विष्णुः, ब्रह्मा अंश है विष्णु अंशी। अंशअंशी सम्बन्ध यणसे खुलता है। अन्यथा प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्देऽपि न प्रवर्तते। बिना उद्देश्य के यण क्यों होगा। **राम**। रमधातु (घञ्) अ प्रत्यय, रमका रमण आनन्दनानुभूति (अ प्रत्यय) का आधार अर्थ, जगतकी आनन्दानुभूतिका आधार रूप अर्थवत् शब्द स्वरूप रमको प्रातिपदिकसंज्ञा,सुका कर्ता अर्थ प्रातिपदिकार्थ है। क्योंकि सम्यग्ज्ञात

सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च महीयते। शब्द अर्थ सम्बन्ध समझाकर वाक्य (व्यवहार) में प्रयोग पुण्य का कारण है। सम्यज्ञाता स्वर्ग में, सुप्रयोक्ता लोक में महनीय (सुप्रतिष्टित) होता है (स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यं) स्वाध्याय कालेन, प्रवचन कालेन, व्यवहारकालेन, विद्या सफला भवति। अध्ययन मनन चिन्तन व्यवहार में प्रयोग से उपयोगिता, पुण्यजनकता सफलता समृद्ध होती है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक शब्दों का अर्थ प्रकृत्यर्थं प्रत्ययार्थ सन्ध्यर्थं विभक्तियों का अर्थ तिङन्त कृदन्त तद्धित समास आदि के अर्थ यथामति समझाये गये हैं। अनुवाद निबन्ध प्रवचन के माध्यम से प्रतिपाद्य विषय समझाये जांय। किसी प्रकरण के प्रतिपाद्य विषय को प्रवचन के माध्यम से समझाना ग्रन्थ की विशेषता है। व्याकरण वाक्यस्फोटरूपशब्दब्रह्म को कहता है। **स्फुटत्यर्थो यस्मात्** जिस शब्द से अर्थ कमल की तरह खिल जाय ऐसा कर्म व्याकरण है। वर्णपदवाक्यका अर्थनिर्णय मुख्य विषय है। शब्द अर्थ समझाने के लिए शब्द साधनिका है उसी का समुदाय वाक्य है वही शब्दब्रह्म है वाक्यमें शब्दोंका अर्थ ज्ञानपुरःसर प्रयोग-पुण्य प्रतिष्ठा शब्दब्रह्ममें तल्लीनता का कारण है। अतः सुप्रयोग ही शिक्षा का मूल उद्देश्य सफल हो। अनुवाद प्रवचन निबन्ध द्वारा शब्दज्ञानका मुख्यसाधन व्याकरण है। छात्रों से साधे हुए प्रयोगों को अनुवादमें ढालना नित्य देखना, शैलीं समझना विधि है। किसी प्रकरण पर निबन्ध लिखना, लिखाना। हम क्यों पढ़ें ? इसका समाधान मिले, कुछ हाथ लगे, पल्ले पड़े, विवेक बढ़े, समाज का कुशल धार्मिक नेतृत्व आवे, जड़ता दूर हो। वह लक्ष्य मानव को महान बनाता है।

प्रभाकरी लघुकौमुदी का उद्देश्य

"एकः शब्दः सम्यक्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च महीयते" शब्द अर्थ सम्बन्ध पुरस्सर ज्ञान ही सम्यक् (पूर्ण) ज्ञान है, जिससे स्वर्ग सुख, लोक परलोक लब्ध हो। (समाज) में प्रायोगिक ज्ञान से (इस लोक में) अभ्युदय हो तभी 'महीयते' प्रतिष्ठा होगी। सम्यक् ज्ञान का माध्यम प्राभाकरी (युक्ता) मध्यकौमुदी है। सुप्रयोग का माध्यम अनुवाद, निबन्ध, प्रवचन होंगे जिनका सफलप्रयास यथाशक्ति किया गया है। यदि सम्यक् (पूर्णज्ञान) भोजन है, सुप्रयोग पाचशक्ति-भोजन पचे तब स्वास्थ्य बढ़े, लाखों शब्दों का पूर्णज्ञान हो, सूर्य को देखकर कमल खिलने की तरह वैयाकरण को देखकर सभी शब्द अपना प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ सम्बद्धार्थ पदार्थ खोल दें, खिलखिलाकर हंस पड़े, सफलता के साथ व्यवहार में उतर पड़ें अतः स्वाध्याय-कालेन, प्रवचनकालेन व्यवहारकालेन विद्या परिपक्व होती है। गुरुमुख से आयी विद्याको स्वयं चिन्तनं विषयस्य आत्मसात्करं प्रवचनयोग्यभवनं स्वाध्यायः तादृशः कालः तेन। किसी प्रकरण के विषय को प्रवचन के योग्य बनानेके लिए शब्द, अर्थ, सम्बन्ध का निर्णयात्मक ज्ञान अनिवार्य है। अतः प्रत्येक शब्दों का संस्कार (साधने की प्रक्रिया) अर्थ ज्ञान के लिये हो, उपयोग की क्षमता बढ़े। शब्द ब्रह्म है, उसकी

व्यापकता, सत्यता, लोकप्रियता फलीभूत हो, संकीर्णता कूपमण्डूकता दूर हो। प्रत्येक प्रकरणों के पढ़ने का प्रयोजन अवगत हो, पढ़नेके-बाद कुछ हाथ लगे, विकास हो, लाभ जान पड़े उपयोग हो सके। कोरा शब्दानुशासन सुप्रयोगका विषय नहीं बन सकता। अर्थ ही शब्द का रस-आह्लाद का आधार है। प्रत्येक शब्दों के अर्थ के साथ उपयोगिता पर पूर्ण प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

सन्धिका अर्थ संहितासंज्ञा के शब्दार्थसे प्रमाणित है। यत्र-यत्र सन्धिः तत्र-तत्र परस्परं सम्बन्धः। कहीं-कहीं शब्द का शब्द से, प्रकृत्यर्थ का प्रत्ययार्थ से, उपसर्गका धातु से सभी सन्धि सम्बन्धित हैं। षड्लिङ्गमें प्रत्येक विभक्तियोंके अर्थ का ज्ञान अनिवार्य हैं। राम शब्दके साधुत्वसे विभक्त्यर्थं की अनुभूति में विशेषता मिलेगी। तिङन्त प्रकरण में सभी धातुओं और लकारों का अर्थ व्यावहारिक शैली में समझाने का प्रयास है सुप्रयोग का अनुसन्धान भी। सनाद्यन्त धात्वर्थं में वृत्यर्थ भी स्पष्ट है। कृदन्त शब्द में प्रत्येक कारकों के बोधक प्रत्यय जो कालानुगामी हैं उनका भी अभ्युदय दर्शनीय है। समास के प्रत्येक प्रकरण में समासार्थ ज्ञान आवश्यक है। शब्द सिद्धि के साथ समासार्थं भी खोला गया है। अन्यथा अध्ययन अनुपयोगी होगा। समासवृत्ति-एकार्थीभावका व्यावहारिक ज्ञान एवं तद्धितार्थ सभी प्रत्ययार्थं के शब्दों का सम्यक् ज्ञान सुप्रयोग (बहुजन हिताय बहुजन सुखाय) के अनुकूल सुझाव प्रस्तुत किया गया है।

समीक्षा

सन्धि का शक्य (वाच्य) अर्थ न हो। किन्तु द्योत्य व्यङ्ग्य, प्रकाश्य अर्थ अवश्य है। उसका ध्यान सन्धि काल में अवश्य रक्खें। सुबन्त में प्रातिपदिक का अर्थ सातों कारकों की विभक्तियों के अर्थं ज्ञान सहित सावधानीं से प्रयोग साधे। धातुओं के अर्थं (क्रिया) का ब्रह्माण्डव्यापक अनुभव के साथ (क्रियन्ते जन्यन्ते फलानि यया सा) क्रियाके फल का भी पूर्णज्ञान करें। प्रत्येक लकार के अर्थों का अनुसन्धानपूर्वक प्रयोग के योग्य साधनिका साधें। सनाद्यन्त, कृदन्त, समास तद्धित एकशेष प्रसङ्ग में वृत्ति (दो अर्थं मिलकर एक अर्थ होना) एकार्थीभाव का विलक्षण ज्ञान करें (परार्थाभिधानं वृत्तिः) दो अर्थं मिलकर एक अर्थं होना समुदायार्थ ही परार्थ। उसका अभिधान कथन प्रवचन जिससे हो वही वृत्ति (शब्दार्थयोः व्यवहारकारणं वृत्तिः)। पृथगर्थानामेकोपस्थितिः एकार्थीभावः। यथा पठितुमिच्छति पिपठिषति यहां पठितुं का पठन, उच्चारण ज्ञान के अनुकूल क्रिया अर्थः, इच्छति का ईच्छा (कामना) के अनुकूल क्रिया अर्थः दो अर्थवाली दो क्रियाओं को मिलाकर एक अर्थवाली (पठनजनक व्यापारानुकूलेच्छानुकूला क्रिया) पढ़नेके अनुकूल इच्छा ही सन्नन्तवृत्ति है। माता बालकं खादयति, बालकः खादति खाद धातु का अर्थं (खाना) क्रिया बालक में, प्रेरणा (णिच् का अर्थं खिलाना) क्रिया माता में, दोनों पृथक-पृथक् अर्थवाली क्रियाओं का मिलकर एक अर्थवाली

क्रिया भक्षणानुकूलव्यापारानुकूलव्यापारः (खाना खिलाना के अनुकूल क्रि खादयति का अर्थ। यह ण्यन्तवृत्ति है। नायकः प्रापण (पहुंचना) अर्थ में नी+अकः (कर्ता=आश्रय दोनों का मिलित अर्थ प्रापणाश्रय है, लेजाने वाला कृदन्तवृत्ति। समानरूप वालों में एकशेष रहे तो (यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी) भवति। एकराम अनेकराम को बोले, तब एकार्थ एकशेषवृत्तिः। शङ्कुलया खण्डः (सरौताहे किया गया टुकड़ा) शंकुलाकरणकशकलाश्रयः इति समासवृत्तिः।

गोर्विकारः गव्यम् तद्धितवृत्ति, रामः कृदन्तवृत्तिः।

लेखक की जीवनी

जौनपुर जिले के पत्रालय शाहपुर ग्रा० मुकुन्दीपुर निवासी सांकृत्यगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण वंशावतंश का १५ मई १९३६ में जन्म हुआ। काशी के सुप्रसिद्ध व्याकरण न्यायवेदान्त के प्रौढविद्वान् पं० श्री शुभकरणमिश्र के पौत्रः (शौभकरणिः) स्वजनपदसेवासमर्पितशरीरःवेदवेदान्तज्योतिषकर्मकाण्डकर्मकुशलः पं० श्रीहरिप्रसाद मिश्र के पुत्र श्रीप्रभाकरमिश्र हैं। जिनमें समाजसेवा की जन्मजात रुचि है। कुल परम्परा ही शास्त्रसेवा, समाजसेवा सनातनमधर्मसंरक्षण प्रचार, प्रसार में सदा संलग्न रहा। श्री मिश्रजी की प्रवृत्ति शास्त्र को समाजप्रिय बनाने की रही। क्योंकि परम्परा की शैली, भाषा, बड़ी कठिन, दुर्बोध प्रभावहीन तथा शास्त्र का ह्रास देखकर आपका हृदय क्षुब्ध हो उठा। चिन्तित विद्वान ने सुबोध अध्यापन, सुगमशैली, सत्यता की श्रोताओं तक पहुंच, शास्त्रमें रुचि कैसे बढ़े? इस चिन्तन में निरन्तर प्रगाढ़ गोता लगाते रहे। अपनी सूझ-बूझ से अच्छा अनुसन्धान कर यथार्थ का प्रकाशन किया है करते रहेंगे। निरन्तर अध्ययन, अध्यापन अनुसन्धान में तल्लीन विद्वान शुभ लक्षणलक्षित होते हैं। आपका अध्ययन काशी के कई विद्यालयों में (गोयन्दका, राजकीय संस्कृत कालेज आदि) प्रथम पूज्य महाशयजी (रामयश त्रिपाठी) के प्रिय शिष्य पण्डित श्री रामकरण जी पाण्डेय से पढ़े। सन् १०५२ मे काशी पधारे दाऊजी संस्कृत महाविद्यालय में पण्डित श्री ब्रह्मदत्त शुक्ल से मध्यमा तक स्वध्याय किये। पश्चात् अनेक विद्यालयों में पढ़े परन्तु मनस्तुष्टि नहीं होती थी। क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य सम्यग्ज्ञान, सुप्रयोग स्वाध्याय, प्रवचन आचरण में उतारना, समाज का सुधार सत्य, धर्म, चरित्र का प्रचार—प्रसार हो। विद्याभारः क्रियां बिना। विद्या विनु विवेक उपजाये। शास्त्र के प्रति लोकरुचिका घट जाना क्षोभ का कारण बना था। चिन्ता में बड़ा समय व्यर्थ बीता। संयोग से काशीके विद्वन्मूर्धन्य विद्वानों शास्त्रार्थ महारथियों आधुनिक पाणिनिसम्भावनासे सुविभूषित पंण्डित प्रवरो गुरुवरेण्यों के चरन कमल का मधुकर बना, सम्पूर्ण शास्त्रका अध्ययन किया। काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान्‌द्गुरु देवनायकाचार्य जी महाराज की असीम अनुकम्पा थी। १९५५ में आपने श्री रामानुजसंस्कृतमहाविद्यालय में अध्यापन के लिए प्रेरित किया। सन्

१९६२ में व्याकरण विभागध्यक्ष चुन लिए गये। व्यवहार कुशलतासे छात्र अध्यापक सभी मुग्ध थे। क्योंकि अध्यापन शैली इतनी मधुर हृदयाकर्षक थी की सभी आनन्द-मग्न थे। फिर भी चित्त में शान्ति नहीं रहती; कि (वेदानां रक्षार्थमध्येयं व्याकरणं) जो वैयाकरण वेद का परिचय भी नहीं दे सकते वे वेद की रक्षा क्या कर सकेंगे।

अर्थ ज्ञान के लिए व्याकरण पढना चाहिए। स्वरों के अर्थज्ञान न होने स (वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रु: स्वरतोऽपराधात्) स्वर और वैदिक प्रकरणों के अर्थ का ज्ञान न कराया जाना कितना बड़ा अपराध है। तद्धितार्थ, समासार्थ, कृदन्तार्थ का सम्यग्ज्ञान सुप्रयोग न कराना भारी भूल है। सिद्धान्त से दूर रहकर प्रयोग साधना अर्थ न समझाना (शब्दबोध एवं स्फोटार्थ का अज्ञान) अक्षम्य है। इत्यादि चिन्तायें व्याप्त हुई। संयोग से गुरु वरेण्य पण्डित प्रवर श्री डा० रामप्रसादत्रिपाठी जी महाराज व्याकरणशस्त्रे प्रमेय समीक्षा विषय पर शोधप्रबन्ध लिखने के लिए

प्रेरित किये, मैं दो वर्ष तक कि कर्तव्य विमूढ़ रहा। पश्चात् सरस्वती भगवती की महती अनुकम्पा हुई। बुद्धि खुली महाभाष्य, वाक्यपदीय, का मन्थन हुआ। बहुत ही विलक्षण निबन्ध बने। सम्पूर्णसिद्धान्त कौमुदी के प्रकरणों का मन्थन कर प्रत्येक प्रकरण पर निबन्ध बनाने की इच्छा जागृत हुई। पर उत्साहवर्धक सहयोग विद्वानों से न मिलने के कारण प्रथम-वैयाकरणभूषणसार की प्राभाकरी हिन्दी संस्कृत-टीका लिखी गयी। जो संस्कृत अकादमी उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत हुई। विद्वानों की प्रिया बनी। प्राभाकरी लघुसिद्धान्त कौमुदी टीका बहुत ही उपयोगिनी है। सम्पूर्ण सिद्धान्तकौमुदी की टीका लिखी है। सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्र के सभी ग्रन्थों की टीकाओं का सुबोध भाषा उपयोगी शैली में परिवर्धन का प्रयास निरन्तर चलता रहे। इति कामयते—

शिवशङ्कर दूबे

विषय-सूची

प्रकरणम्	पृ० सं०	प्रकरणम्	पृ० सं०	प्रकरणम्	पृ० सं०
संज्ञा प्र०	१	चुरादि	इ	बहुव्रीहि	१०३
अच्सन्धि	१४	ण्यन्त	न	द्वन्द्व	१०६
हलसन्धि	३६	सन्नन्त	की	समासान्त	
विसर्ग सन्धि	५१	यङन्त	सं	अव्ययादि	११९
अजन्त पु०	५८	यङ्लुगन्त	ख्या	साधारण प्रत्ययाः	११४
अजन्त स्त्री०	६५	नामधातु		रक्ताद्यर्थ प्र०	१७३
अजन्त नपु०	१०२	कण्ड्वादि	अ	चातुर्थिक	१८४
हलन्त पु०	१०६	आत्मनेपद	न्त	शैषिक	१८६
हलन्त स्त्री	१४२	परस्मैपद	में	विकारार्थं	१२८
हलन्त नपु०	१४५	भावकर्म	दे	ठगादि प्र०	२११
अव्यय	१४६	कर्मकर्तृ	खें	प्राग्वितीय	२१७
भ्वादि	१५३	लकारार्थ		आर्हीये क्षया०	२२०
अदादि	२४१	कृत्य प्र०		आर्हीये ठगा०	२२३
जुहोत्यादि	२८२	पूर्व कृदन्त		भावकर्माद्यर्थ	२२८
दिवादि	२९४	उणादि		पाञ्चमिक प्र०	२३६
स्वादि	सं	उत्तर कृदन्त		मत्वर्थी प्र०	२५७
तुदादि	ख्या	कारक	१	प्राग्दिशीय प्र०	२५८
रुधादि	अ	केवल समास	४६	प्रागिवीय प्र०	२६६
तनादि	न्त	अव्ययीभाव	५२	स्वार्थिक प्र०	२७७
क्र्यादि	में	तत्पुरुष समास	६०	स्त्रीप्रत्यय	२९७

लिङ्गानुशासन (पाणिनि शिक्षा) सूत्रसूची

पृष्ठ संख्या भूलसे गैप हो गयी है, कृपया पेज संख्या पर ध्यान न दें कई प्रेसमें छपनेसे विवशता वश असावधानीसे हो गयी है।

व्याकरणस्य अष्टौ लक्षानि

परीक्षण हेतु प्रस्तुत—कृपया विद्वान अपनी सम्मति दें

१—**व्याक्रियन्ते**—व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन साधनेन। वि आङ्पूर्वक कृ धातु का व्युत्पादन—वि उत् पूर्वक पद गतौ धातु का निर्णायक शब्दार्थ सम्बन्ध ज्ञानजनक क्रिया अर्थः। प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ सम्बद्धार्थ पदार्थ ज्ञानानुकूल व्यापार अर्थः, करणे क्तिन्प्रत्यय का साधन अर्थः। शब्दार्थ सम्बन्ध खुलने खिलने अनुशासित होने के अनुकूल साधन (सूत्र) का नाम व्याकरण। (रामः शिवं स्तौति भजति) वाक्य है, इसके व्युत्पादन का साधन सुनिये? भजति, स्तु—भज धातु का प्रीति=प्रसन्न होने के अनुकूल क्रिया अर्थः, ति प्रत्ययका कर्ता, वर्तमानकाल, एकवचन, प्रथमपुरुष, इतना अर्थ। रामः में सुप्रत्ययसे कर्ता (भजन क्रिया का आश्रय) सूचित है, स्तु धातुका फल (प्रीति कीर्तनका) आधार (फलाश्रय) शिव है। भजन क्रिया से उत्पन्न प्रीतिरूप फलका आश्रयभी शिव है इस प्रकार प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ परस्पर सम्बद्ध अर्थ का खुलना-खिलना विकसित होना लक्ष्य है, उसका लक्षण साधन व्याकरण (लक्ष्य लक्षणं व्याकरणम्) लक्ष्यः शब्दार्थसम्बन्धाः लक्षणं सूत्रं मिलित्वा व्याकरणम्। लः कर्मणि सूत्र लकार का कर्ता कर्म भाव तीन अर्थ कहता है वर्तमाने लट आदि लकार विधायक सूत्र काल अर्थ (भूत भविष्य वर्तमान) कहता हैं विभक्तियां प्रातिपदिकका अर्थ कारक आदि को कहतीं हैं वास्तविक-सत्य अर्थ, तन्मय ज्ञान ही मोक्ष है।

हंसा मोक्षमाणानामजिह्मा राजपद्धतिः।

२—**व्याक्रियन्ते शाब्दबोधविषयिणः** भवन्ति शब्दाः अनेन साधनेन तद् व्याकरणम्। वि आङ्पूर्वक कृ धातु का शाब्दबोध विषय (शब्द अर्थ सम्बन्ध) ज्ञान के अनुकूल क्रिया अर्थ। उसका साधक प्रत्यय(करणे)ल्युट् का साधन अर्थ। शब्द सुनने से उत्पन्न ज्ञानका-शाब्दबोध शब्दात् जातः शाब्दः अर्थः, श्रवणजन्यं ज्ञानं, तस्य बोधः शाब्दबोधः शब्द सुनने से अर्थानुभव का साधन व्याकरण है। यथा (गोर्विकारः) गोः में षष्ठी विभक्ति का सम्बन्ध अर्थ, यत्प्रत्यय का विकार अर्थ। जब गोः विकारः शब्द सुनने से उत्पन्न ज्ञान गायसम्बन्धी विकार (पञ्चगव्य गो दूध दही घी मत्र गोबर) अर्थ में यत्। शब्द सुनते ही खुलकर अर्थ खिलता है। प्रकृति प्रत्यय दोनोंके एकार्थीभाव सम्बन्धका प्रकाशक वान्तोयि प्रत्यये से अव् आदेश है। अन्यथा प्रयोजनमनुद्दिश्यमन्दोऽपि न प्रवर्तते। शब्द अर्थ सम्बन्ध फल चारों के अनुशासन से सफल शाब्दबोध (अर्थ ज्ञान) होता है, उसींका साधन व्याकरण प्रमाण हैं अतः (शाब्दबोधसाधनं व्याकरणम्) मुक्तावली शब्दखण्डे (पद ज्ञानं तु करणं, द्वारं तत्र पदार्थधीः। शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी) लौकिक वैदिक किसीं भी शब्द को सुनने

पर झटिति अर्थबोध साधनं व्याकरण है। शब्द साधें, शब्दबोध हो अर्थात्मना श्रवणेन्द्रिय प्रत्यक्ष हो, तभी वैयाकरण वेद शास्त्र (ज्ञानराशि) की रक्षा में समर्थ होगे। विना अर्थ के अनुशासन उदास हैं।

३—**शब्दब्रह्मरसास्वादकत्वं व्याकरणत्वम्**—शब्द ही पूरे ब्रह्माण्ड में (आकाशवाणी प्रमाणसे) व्यापक, (टेप प्रमाणसे) अनुकरणवाणी (नित्य शाश्वत् स्थायी) अविनाशी हैं। यदि अनुकृतशब्द (टेप) अनित्य होता, पुनः कैसे बजता? पुनः पुनः उच्चारणभवनं प्रमाणं भवति ध्वनिः नित्यः इति। कार्यं सत् इति सत्यम्। उसका अर्थ रस है रस्यते आस्वाद्यते (आनन्दानुभवविषय) अर्थ एव रसः उसका आस्वादन (सुखानुभवका) विषय बनानें वाला साधन व्याकरण है। यथा रमते जगत् अस्मिन् इति रामः अधिकरणे घञ्। रम धातु—जिसका-रमण आनन्दानुभवके अनुकूल क्रिया स्फोटार्थ है) अधिकरणे घञ् का आधार अर्थ, आधारोऽधिकरणं प्रमाण से। जगत के आनन्दानुभूति का आधार (आश्रय अधिष्ठान) राम हैं एता-दृश अर्थवत्शब्दस्वरूप जानकर रामशब्दको प्रातिपदिकसंज्ञा, कर्तामें (तिङ् समानाधिकरणे प्रथमा) सु प्रत्यय। कारक भी प्रातिपदिकार्थ है। एवं सभी शब्दब्रह्मके रसास्वादन में व्याकरण मूलसाधन हैं। शब्दब्रह्म प्रति-पाद्य है, प्रतिपादक सभी साधनभूत धातु सूत्र आदि हैं। इससे शब्द अर्थ सम्बन्ध तीनों का अनुशासन सिद्धः। अर्थानुशासन के बिना शब्दानुशासन मूकवत् जडवत् अनुपयोगी है, सुप्रयोगके अयोग्य है, शब्द रसास्वादन कुशल वैयाकरण ही पूरे वाङ्मय में गति रखते है।

४—**शक्तिग्राहकत्वं व्याकरणत्वं**—प्रमाण—शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान कोशाप्तवाक्यात् व्यवहारतश्च। लौकिक वैदिक शब्दों की शक्तिका वाक्य पदवर्ण रूप शब्दार्थ सम्बन्धका ग्रह-ज्ञान साधन व्याकरण हैं। शक्ति क्या है अस्मात् शब्दात् अयम् अर्थः बोद्धव्यः बोध करें, इदं पदं अमुम् अर्थं बोधयतु अमुकवर्णपदवाक्यरूप शब्दसे, अमुकअर्थका बोधकरें रामशब्दने (दशरथपुत्र) जगत के रमण=आनन्दानुभूति का आधार अर्थ का अनुभव करें, शक्ति ज्ञान करके रामशब्द की शक्ति समझें। राम में जाति धर्म व्यक्ति लिङ्ग संख्या कारक अर्थ की शक्ति का ज्ञान कराने वाली (सुप्) विभक्तियां होती है उसका ग्रह=ज्ञानका साधन व्याकरण है। जैसे सुध्युपास्यः शब्द है, सुन्दर ध्यान कर्ता अर्थ की शक्ति सुधी में हैं। उपासना विषय (भगवत्समीपता अर्थ की शक्ति उपास्यः में, उपासक उपास्य, प्राप्य प्रापक, अर्च्य अर्चक सम्बन्ध। सुष्टुध्यायति इति (सुधीः) शब्दमें सुन्दर ध्यान करनेकी शक्ति हैं। उपासितु योग्यः उपास्यः पूजा (समीप में उपस्थित होने या) अर्चा विषय की शक्ति उपास्य में, जिसका ग्राहक उप पूर्वक आस धातु से ऋहलोः

से ण्यत् है उपास्य उपासक सम्बन्ध, एकार्थीभाव होने से है। उसका ग्राहक (इकोयणचिसे) यण है, यदि यण् न होता एकार्थभाव न खुलता, सुधी— उपास्यःका अर्थ अलगर रहता, अन्यथा प्रयोजनमनुदिश्य मन्दोऽपि न प्रवतते वेमतलब के मूर्ख भी काय में नही लगते। यण् का उद्देश्य सम्बन्ध का ज्ञान कराना है (चरमवर्ण व्यञ्जचोऽर्थः) सुधी के ई में सुन्दर ध्यान कर्ता की शक्ति, आदेश य में भीं है। स्थान्यर्थाभिधान समर्थ स्यैव आदेशता। सन्धिस्थल में शब्द गत शक्ति सन्धि से ही प्रकाशित होती है।

५— व्याक्रियन्ते—स्फुटयन्ते, विकसिताः भवन्ति, शब्देषु अर्थाः सम्बन्धाश्च अनेन साधनेन अर्थात् स्फोटार्थज्ञानसाधनं व्याकरणं, स्फुट विकसने स्फुटन्ति विकसन्ति कमलवत्खिलन्ति, खिल-खिल इव आचरन्ति शब्दाः (लौकिकाः वैदिकाः वा) अनेन साधनेन तत्साधनं व्याकरणं, लौकिक वैदिक शब्द अपनी-अपनी प्रकृति का अर्थ, प्रत्यय का अर्थ परस्पर सम्बन्धित अर्थ, कमल की पंखुड़ी की तरह खोंलकर खिले, उसका साधन व्याकरण। यथा (मा गृधः कस्यचिद्धनं) शब्द है उसमें गृध अभिकांक्षायां गृध धातु का स्फोटार्थ स्फुटित विकसित अर्थ, अत्यन्त लोभ, लालच, तृष्णा, आसक्ति, असन्तोष है। सिप प्रत्यय का स्फोटार्थ प्रवृत्ति प्रेरणा आदि अर्थ, उनका सम्बद्ध मिलित अर्थ— किसी के धन को देखकर आसक्त लोभीं लोलुप या असन्तोषी मत बनो। गृद्ध दृष्टि न डालो। अथवा गृध से कर्ता में क प्रत्यय (इगुपधज्ञाप्रीकिरःकः) लोभ कीं क्रिया का आश्रय कर्ता क प्रत्यय का अर्थ। कस्यचिद्धनं दृष्टा आसक्तलोभानुकूलव्यापारवान् मा भव, गृधः का स्फोटार्थ है। इस तरह प्रयोग साधते समय सभीं शब्द साधनिका से अर्थ खुले वाक्य में प्रयोग की क्षमता बढ़े। वेद की रक्षा हों सूर्यं दृष्टवा कमलानि खिलखिलायन्ते तथैव व्याकरणं दृष्टवा शब्दाः अपि खिलखिलायन्तां स्फुटन्तु, प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ वाक्यार्थ हंस पड़े। अर्थ बोध में शब्दकरण हैं। अर्थ प्रवृत्ति तत्वानां शब्दाः एवं निबन्धनं। तत्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते।

६— सर्वशास्त्रोपकारकत्वं व्याकरणत्वं, तत्र प्रमाणं—(पाणिनीयं कणादं च सर्वशास्त्रोपकारकं) सभीं शास्त्र अथवा सम्पूर्ण वाङ्मय का मूलाधार अधिष्टान भूत) शब्दब्रह्म है सभी शास्त्रों के लक्ष्य उद्देश्य है, अर्थ प्रयोजन है, प्रतिपाद्य विषय है, उनको सुनना सुनाना समझने समझाने आदि पूरे व्यवहार का भी आधार शब्द ही है जिसका वास्तविक अर्थ (वाङ्मलानां चिकित्सकं) व्याकरण ही खोलता है। अर्थ प्रवृत्तितत्वानां शब्दा एवं निबन्धनं, तत्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते। सभी अर्थोंकी प्रवृत्ति में शब्द करण है व्याकरण के बिना तत्व-शब्द का रहस्यबोध होता ही

नहीं। अवगुण्ठनवती तरुणी (युवती) को सभी देखते है, (वस्तुतः पश्यन्नपि न पश्यति, कश्चित्)देखता हुआ भी कोई नहीं देखता, पर्दा घूंघट पड़े रहने से। ऐसे ही प्रकृति (तरुणी) पर प्रत्यय का पर्दा पडे रहने से शब्द का रहस्य नहीं खुलता, तरुणी का वास्तविक दर्शन उसका अधिकारी पति ही कर सकता है। ऐसे ही (वाणी) प्रकृति-धातु प्रातिपदिक से प्रत्यय का पर्दा उठाकर अपोद्धार-अलगकरके दर्शनमें कुशल वैयाकरण ही अधिकारी है तभी प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ सम्बद्धार्थ खुलेंगे खिलेंगे दर्शन होगा वेद वेदान्त ज्योतिष न्याय साहित्य समस्तवाङ्मय के शब्दों का रहस्य खोलकर सुगम बोध का साधन व्याकरण सभी शोंके सभीं शब्द सुबन्त तिङन्त कृदन्त समास तद्धित आदि से सम्बन्धित हैं उनका सुबन्तार्थ तिङन्तार्थ समासार्थ तद्धितार्थ आदि खोलने की प्रक्रिया से उन शास्त्रों के प्रतिपाद्य विषय सुगम हो जाते है। व्याकरण वेत्ता निर्भीक रहता है व्याकरण बिना पग पग पर भयभीतभीति एवं संशय दुर्बलता बनी रहती है।

७—वेदरक्षकत्व व्याकरणत्वं--(विद् ज्ञाने) समस्त ज्ञानराशि= वैदिक लौकिक संस्कृत में है। वेदपदं ज्ञानमात्रोपलक्षणं वेद शब्द के भी प्रकृति अर्थ, प्रत्यय अर्थ स्वरों का अर्थ, निर्भ्रान्ति ज्ञात हों, पदार्थ खुलें, तभी विषयका सत्य ज्ञान होता है। स्वर (अर्थ का) प्रकाशक है, स्वर वर्ण की अशुद्धिसे सत्यता खो जाती है। दुष्ट शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह। स्वर या अक्षर की त्रुटि से सत्य अर्थ नहीं खुलता, ऐसा शब्द बज्र बनकर यजमान का सिर तोड़ता है। स वाग्वज्रः यजमानं हिनस्ति,यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोऽपराधात्। इन्द्रस्य शत्रुः इन्द्रशत्रुः इन्द्र का शातयिता मारने वाला बढ़े, उत्तरपदार्थ (शत्रु अर्थ) प्रधान षष्ठी तत्पुरुषसमासार्थ का सूचक समासान्त स्वर का पढ़ना जाना उचित था। इसमें वृत्रासुर हन्ता, इन्द्र बध्य है ऐसा अर्थ है। परन्तु वृत्रासुर के पुरोहित ने पूर्वपद प्रकृतिस्वर पढ़कर जप किया, परिणाम यह निकला कि इन्द्रः शत्रुः यस्य (इन्द्र है शातयिका मारकः जिसको) इन्द्र मारें वृत्रासुर मरे, अर्थ का सूचक पूर्वपदप्रकृति स्वर है, जिसका जाप हुआ जो मन्त्र स्वर दोष से वज्र बनकर यजमान वृत्रासुर को ही मार डाला, स्वरो से अर्थ निर्णय में व्याकरण का बहुत महत्व पूर्ण(उपयोग) है वैदिक शब्दों के सत्य शाब्दबोध में सक्षम होना व्याकरणाधीन है। यः स्वर-वर्ण-अर्थ संयुतं वेदम् अधीते स स्वर्गे लोके च महीयते,अनर्थज्ञोऽल्प कण्डश्च षडेते पाठकाऽधमाः इससे सिद्ध है। अर्थ ज्ञान विहीन वैयाकरण अधम है।

८--शब्दानुशासनंव्याकरणम्--शब्दानाम् अनुशासनं अनुशिष्यन्ते= शब्दार्थसम्बन्धानुकूलशासनविषया भवन्ति शब्दाः अनेन (कर्मणिप्रत्ययः)

अनुशासन क्रिया का कर्म शब्द है (कर्मणि षष्ठी) जैसे शब्द अनुशासन का कर्म है वैसे अर्थ भी कर्म है अभेद होने से, तब दोनों का सम्बन्ध भी कर्म होगा। तीनों का परिणाम फल भी कर्म सिद्ध हैं। शब्दानुशासन अर्थ सम्बन्ध फलानुशासन का साधन व्याकरण है। शब्दानुशासन प्रसिद्ध है। लौकिक वैदिक शब्दों का अर्थानुशासन प्रचलित नहीं, सूखे शब्द साधे जाते है। अर्थ ही शब्दको सरस बनाता है, प्रकृति दो है। १-धातु-जिसका अर्थ (फल क्रिया है प्रमाणं कर्त्रभिप्राये क्रियाफले। भूवादयो धातवः क्रिया अर्थ मानकर धातुसंज्ञा। या या क्रिया सा सा फलवती, फलव्यापारयोः धातुः। दूसरी प्रकृति २-प्रातिपदिक हैं उनमें जाति व्यक्ति लिङ्ग संख्या कारक नियत पांच अर्थ भरे पूरे है। इनसे जितने प्रत्यय होंगे प्रत्याययति बोधयति (अर्थमें ति) प्रत्यय, सभी अर्थवान् है, दोनों मिलकर पदार्थ बनते हैं। अर्थानुशासन-सम्यक् ज्ञान सुप्रयोग में सहायक है अतः एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुप्रयुक्त स्वर्गे लोके च कामधुक् भवति। पूर्णज्ञानसे सुप्रयोग सुगम होता है लोके अर्थविषयकबोधजनकत्वम् अर्थवत्वँम् इत्थं लौकिक शब्दानां दिङ्मात्रमिह दर्शित. केषां शब्दानाम् अनुशासनं ? लौकिकाःवैदिकानां च। इन प्रमाणोंसे व्याकरण लौकिक-लोकप्रिय विद्या है सभी उदाहरण समाजिक है तथापि अविवेकी अलौकिक बन जाते हैं।

मध्यसिद्धान्तकौमुदी

प्राभाकरी टीका

नत्वा मुनित्रयं शभुं, वितनोति प्रभाकरः।
मध्यसिद्धान्त - कौमुद्याष्टीकाँ प्राभाकरीं शुभाम् ॥१॥
भगवती भवती सुमहस्वती, बुधसरोरुहकाननभास्वती।
विमलबोधविवेकविभास्वती, विजयते सरसीव सरस्वती ॥२॥
नवतमालरुचिं रुचिरस्मितं स्मर मनोहरवाणधनुर्धरम्।
जनकजासहितं महित सुरैस्तमिह राममहं हृदि भावये ॥३॥

शब्दार्थ-मध्य लघु तथा सिद्धान्तकौमुदीके बीचका सिद्धान्त=सिद्धानाम् अन्तः। शब्द अर्थ, सम्बन्ध ही सिद्ध है "सिद्धे शब्दार्थ—सम्बन्धे" इस भाष्यवचन प्रमाणसे। उन (सिद्धों) का अन्तः निर्णय सत्यज्ञान, सूत्र संस्कार विशेष से निर्णय पुण्यवर्धक परिणाम प्रक्रिया (साधनिका) फलकी कौमुदी=प्रकाशिका। जिस विधि से शब्द अर्थ सम्बन्धका निर्णयात्मक ज्ञान हो, उसकी बोधिका। शब्द का अर्थ और दोनों के सम्बन्ध का ज्ञान अत्यन्त उपयोगी है। कभी-कभी शब्द (नाम) का ज्ञान है, अर्थ (व्यक्ति या वस्तु) भी प्रत्यक्ष है फिर भी जिज्ञासा जागृत होती है कि "किमिदम्" यह क्या है? जब दोनोंके सम्बन्धका ज्ञान हुआ कि "अस्य

शब्दस्य अयमेव अर्थोऽस्ति" इस शब्दका यही अर्थ वाच्यवाचक सम्बन्ध है । तब अर्थानुभवसे शब्दब्रह्मका रसास्वादन होता है । यह ज्ञान व्याकरण शास्त्रका प्रमुख प्रयोजन (प्रधान विषय) प्रतिपाद्य है ।

प्राचीनास्तु—लघुसिद्धान्त सिद्धान्तयो मध्य भूतानां समासमें उत्तरपदार्थ (कौमुदी) प्रधान अर्थ है । लघ्वी चासौ सिद्धान्तकौमुदी च लघुसिद्धान्तकौमुदी । इस समास में लघु शब्दका कौमुदी (प्रकाश) में अन्वय पूर्ण उचित नहीं है । सूत्रका प्रकाश, व्यापक (दूरगामी) है लघु नहीं । कोई "कौमुदीव कौमुदी" कहकर ग्रन्थ में अन्वय करते हैं ।

नवीनास्तु--लघूनां शास्त्रे गतिशीलानां (रचितविगतपर्याः) अल्पसंख्याकानां किन्तु व्यापकानां सिद्धान्तानां==सिद्धः, निष्पन्नः, अनुशिष्टः, माङ्गलिकः (सिधू शास्त्रे माङ्गल्येच) बोधजनक पुण्यप्रदः अन्तः (वादिप्रतिवादिभ्यां विवादेन आक्षेपरहितः) शब्दार्थसम्बन्धनिर्णयः साधुःसंस्कारो येषां वर्णपदवाक्यनां ते सिद्धान्तास्तेषां कौमुदी=कौं=पृथिव्यां जनान् मोदयति, शीतलतां प्रापयति, क्लेशं दूरी करोतीति कुमुचन्द्रः, तस्य इयं ज्योत्स्ना-प्रकाशिकाशक्तिः कौमुदी । तद्वत् इयं कौमुदी शब्दशक्ति (अर्थं सम्बन्ध) प्रकाशेन जनान् मोदयति, ज्ञानानन्ददानेन सुखं बोधयति, वाक्यार्थ पदार्थ, वर्णार्थ (प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ) प्रकाशेन जाड्यरूपं क्लेशं दूरी करोति । शब्दब्रह्मणः रसमास्वादयति ।

कुछ सूत्रों के संक्षिप्त किन्तु व्यापक सारभरे अनुशासितनिर्णयोंकी प्रकाशिका लघुसिद्धान्त कौमुदी है । यह वर्ण, पद, वाक्य, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, व्युत्पत्ति, विग्रह, समास, सनाद्यन्तधातु, संस्कार, क्रिया-फल, कृदन्त, तद्धित, एकशेष, जाति, व्यक्ति, लिङ्ग, संख्या, कारक आदि शब्द की विशेषताओं पर पूर्ण अनुशासन कर शब्द के साथ अर्थ और सम्बन्ध का स्पष्ट ज्ञान कराती है । शब्द ब्रह्म पर अधिकार का प्रयोजन शब्दमूलक समस्त वेद, वेदान्त, पुराण इतिहास धर्मशास्त्र, साहित्य आदि सभी वाङ्मय के शब्दों का सत्य अर्थ समझ सकें, समष्टि, व्यष्टि की सेवा कर सकें ।

अथ संज्ञाप्रकरणम्

सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में उपयोगी तथा व्यापक संज्ञाओं का संग्रह ही संज्ञा-प्रकरण है । जैसे--चौदह सूत्रों के आधार पर अल्, हल्, अच् अण् आदि संज्ञायें तथा इत्संज्ञा सवर्ण, अनुनासिक, संहिता, संयोगपद आदि संज्ञायें—सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में व्याप्त हैं अधिकदेशवृत्तिव्यापकम् कहते हैं । अन्य संज्ञायें अल्प क्षेत्र में अधिकार द्वारा नियन्त्रित होने से व्याप्य है । (न्यूनदेश वृत्ति व्याप्यम्) जो थोड़े क्षेत्र में फैले । अचों का धर्म—ह्रस्वदीर्घप्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक और वर्णों के गुण समानजाति समझानेवाली सवर्णसंज्ञा, स्थान प्रयत्न इत्यादि संज्ञा प्रकरण के प्रतिपाद्य विषय हैं सन्धि आदि प्रकरणों में उपयोगी है ।

श्रीवरदराजकृत—

मध्यसिद्धान्तकौमुदी

अथमङ्गलाचरणम्—

नत्वा वरदराजः श्रीगुरून् भट्टोजिदीक्षितान् ।
करोति पाणिनीयानां मध्यसिद्धान्तकौमुदीम् ॥

प्राभाकरी–संस्कृत–हिन्दीटीका

मङ्गलाचरण क्यों ? ग्रन्थनिर्विघ्न समाप्तिके लिए । 'मङ्गं विघ्नविनाशं लातीति मङ्गलम् । मनमें ही मङ्गल करते उच्चारित क्यों ? शिष्यशिक्षार्थं यत् मम गुरवः मङ्गलमाचरितवन्तः अस्माभिरपि आचरणीयमिति सनातनपरम्परा विलुप्ता मा भवतु एतदर्थं मङ्गलमाचर्यते ।

अथमङ्गलाचरणं—वरदराजः=वरं ददन्ति वरदाः तेषां राजा वरदराजः, मध्यसिद्धान्तकौमुदीकर्ता । कौमुद्याः निर्माणं कृत्वा वरं ददन्ति कामयन्ते च यत्सर्वे पाणिनिशास्त्रसिद्धान्तज्ञानकर्तारो भवन्तु इति । ईदृशः वरदराजाचार्यः । नास्ति तत्वं गुरोः परं ज्ञानदातुः अधिकम् ईश्वरोऽपि नास्ति । उक्तञ्च—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म सर्वशक्तिमयो गुरुः ॥

इत्थं ज्ञानं कृत्वा श्रीगुरून्–गुः, अज्ञानं रावयन्तीति गुरवः य दृष्ट्वा अविद्या अविवेकः, अज्ञानानि च रुदन्ति रुदित्वा पलायन्ते च, गुः अन्धकारः रु-निरोधकः । (श्रियः शब्दार्थसम्बन्धाः) तैः युक्तान् श्रीगुरून् भट्टोजिदीक्षितान्–षट्शास्त्राणि अभारिषुः ये ते भट्टाः । षट्शास्त्रप्रवक्तारः, तान् ऊः=वितर्केण जेतुं पराजयितुं शीलं स्वभावो अस्य भट्टोजिः, शास्त्रार्थद्वारा सर्वजयनशीलः । दीक्षणं दीक्षा प्रवचनकुशलता सा संजाता येषां ते दीक्षिताः, भट्टोजिश्च दीक्षिताश्च तान् भट्टोजिदीक्षितान् सकलशास्त्रज्ञानेन शक्तिसम्पन्नान् स्वकीयान् गुरून् नत्वा= सम्पुटीकृतकरशिरःसंयोगः नमनं, अल्पगुणवान् अहं बहुगुणसम्पन्नान् गुरून् तोषयित्वा=प्रसन्नं कृत्वा ग्रन्थरचनाशक्तिसम्प्राप्तये नमस्कारात्मकं मङ्गलं, सिद्धान्त शब्देन वस्तुनिर्देशात्मकं मङ्गलं फलं, पाणिनीयानां–पाणिनिना प्रोक्तम् उच्चारितं लिखितं वा सूत्ररूपं व्याकरणं धातुरूपं च, तत् अधीते उच्चारणपूर्वकं ज्ञानं कुर्वन्ति, विदन्ति=प्रतिपाद्यविषयस्य अर्थनिर्णयात्मकमन्थनेन बोधं कुर्वन्ति कारयन्ति च ये ते पाणिनीयाः । तेषां सिद्धान्तानां या मध्यमा स्थितिः, तादृशीं मध्यसिद्धान्तकौमुदीं करोति । लघुसिद्धान्तसम्पूर्णसिद्धान्तयोर्मध्यभूताः सिद्धान्ताःतेषां कौमुदी । समस्त भूमण्डले चन्द्रिकाइव सर्वान् आह्लादयति करोति रचयति गुणान्स्थापयति। कृ धातोः उत्पत्त्यनुकूला क्रिया । शब्दस्य अर्थस्य सम्बन्धस्य फलस्य च उत्पत्ति व्युत्पत्ति पूर्ण ज्ञानञ्च कारयित्वा पाण्डित्यमुत्पादयति। तत्र वरदराजाभिन्नैककर्तृकः मध्यसिद्धान्त कौमुदीकर्मकः शब्दार्थसम्बन्धफलविषयकःउत्पत्त्यनुकूलव्यापारः इत्यर्थबोधः ।

अथसंज्ञाप्रकरणम्

अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । ञमङणनम् । झभञ् । घढधष् । जबगडदश् । खफछठथचटतव् । कपय् । शषसर् । हल् 1
इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि एषामन्त्या इतः ।

अर्थ—श्री वरदराजाचार्य अपने ज्ञानदाता भट्टोजिदीक्षितको नमस्कार करके पाणिनिव्याकरणशास्त्रमें प्रवेशपाने के लिए मध्यसिद्धान्तकौमुदी को प्रकट करते हैं ।

सम्पूर्ण अष्टाध्यायीमें उपयोगी तथा व्यापकसंज्ञाओंका संग्रह ही संज्ञाप्रकरण है । जैसे—चौदह सूत्रोंके आधार पर अल्- हल्, अच्, अण् अक् आदि सज्ञायें तथा इत्सज्ञा सवर्ण, अनुनासिक, संहिता, संयोग, पद आदि संज्ञायें सम्पूर्ण अष्टाध्यायीमें जो अधिक क्षेत्रमें व्याप्त हो, उसे अधिकदेशवृत्तिव्यापकम् कहते हैं । अन्य संज्ञायें अल्पक्षेत्रमें अधिकारसे नियन्त्रित (व्याप्य) है । (न्यूनदेशवृत्तिव्याप्यम्) जो थोड़े क्षेत्रमें फैले वह व्याप्य है । अचोंका धर्म–ह्रस्वदीर्घप्लुत, उदात्त,अनुदात्त,स्वरित, अनुनासिक और वर्णों के धर्म समानजाति समझानेवाली सवर्णसंज्ञा स्थान प्रयत्न इत्यादि संज्ञाप्रकरण के प्रतिपाद्य विषय है सन्धि आदि प्रकरणोंमें उपयोगी हैं ।

अ इ उ ण् आदि चौदह सूत्र पाणिनिजी के सभी ३९९६ सूत्रोंका मूलाधार हैं । प्रत्याहारद्वारा सूत्रोंके वाक्यार्थ बोधमें कारण है । इनकी उपयोगिता प्रत्याहार के अर्थ तथा शक्तिज्ञान करानेमें है । जिससे सूत्रोंका अर्थ सुगम–सरलतया बोधके विषय हो । **अ इ उके बीच सन्धि क्यों नहीं** ? अविवक्षासे (वाक्यमें सन्धि, वक्ता की इच्छा पर है । अ इ उ पद हैं पदसमुदायो वाक्यम् । परस्परसम्बन्ध न होनेसे । सुद्ध्युपास्यःमें उपास्यउपासक है, नायकःमें क्रियाकारकसम्बन्धसे सन्धि । बोध भ्रमभयसे, प्रथम १४ सूत्र बादमें पाणिनिसूत्र होंने से, अपौरुषेयमें पौरुषेय कार्य न होने से, ईश्वर महर्षिमें अन्तरसे, आकांक्षा परस्पर योग्यताके अभावसे, न सन्धि । वर्णात्कारः क्यों नहीं ? बाहुलकात्से, बहून् अर्थान् लातीति बहुलम् । शब्द अर्थके अभेदसे प्रातिपदिकसंज्ञा नहीं । न स्वादिः ।

इति कोऽर्थः—इमानि उपरि–उच्चारितानि चतुर्दशसूत्राणि माहेश्वराणि= महेश्वरः शंकरः तस्मात् आगतानि माहेश्वराणि (तत् आगतः इत्यण्) महेश्वरवर प्रसादात् पाणिनिना लब्धानि नतु पाणिनिकृतानि । अन्यथा वेदत्वं हीयेत ।

ये चौदह सूत्र शङ्कर भगवान्‌के वरदान (प्रसाद रूपमें) पाणिनिको मिले है । ये रचित नहीं है । नही तो अपौरुषेय वेदका सादृश्य नहीं घटेगा । इमानि सूत्राणि किमर्थानि ? व्याकरणशास्त्रके चौदह सूत्रोंका क्या उपयोग है–

अणादिसंज्ञार्थानि–अण् आदिर्येषान्ताः अणादयः=अण् अक् अच् अल् हल् आदि प्रत्याहाराः, ता एव संज्ञा अणादिसंज्ञा ता एव अर्थाः प्रयोजनानि येषां सूत्राणां तानि १४ णादिसंज्ञार्थ सूत्रार्थानि । पाणिनि सूत्रोंके अर्थप्रकाशनमें इन सूत्रोंका क्या प्रयोजन है । अण् इत्यादि प्रत्याहारोंका ज्ञान होना प्रयोजन है । यथा [illegible]

एचोऽयवायाव: हल् अन्त्यम् । प्रत्याहारोंकी शक्तिज्ञान कराने से सभी संज्ञासूत्र है । शक्तिकबोधत्वं संज्ञात्वम् ।

भावार्थ:—ये चौदह सूत्र भगवान् चन्द्रमौलिकी कृपासे तपस्वी पाणिनिजी को मिले हैं । जो उपवर्षाच र्यके प्रि शिष्य थे। उन्हींके शिष्य कात्यायनजीके प्रखरप्रतिभा से परा नयजन्य तीव्र ग्लानिसे परास्त रहते थे, सहाध्यायीके निरन्तर विरोधके कारण प्रयागमें अक्षयवटकी छायामें (ज्ञान शङ्करादिच्छेत्के)आधारपर शिवप्रसन्नार्थं घोर तपस्यामें लीन हो गये । जब कठिन तपस्या पूर्ण हो रही थी, तब सर्वंकालीन सनकादिगणकी उपस्थितीमें आशुतोष भगवान् शिवजीसे आनन्द विभोर हो ताण्डवनृत्यकालमें (डमरुध्वनिके अनुरूप ध्वनिवाला) १४ सूत्र ब्रह्मराशि प्रकट हुए । नन्दिकेश्वरकृत काशिका का प्रमाण यथा—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् ।
उद्धर्तुकाम: सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥

अ इ उ ण् आदि सूत्रोंके अन्त्यअक्षर अनुबन्ध है । उनको शिवजीने पश्चात् जोड़कर पाणिनिजीको दिया (अनुबन्धा: महेश्वरकृता:)अन्तिम अक्षर शिवजीसे जुड़े, पाणिनिको मिले है । नृत्तके समय हाव-भाव प्रदर्शनमें कुशल नटसम्राट्ने ढक्कां= डमरूको नवपञ्चवारं अर्थात् नव और पांच=चौदह बार (ननाद) बजाया । सनकसनन्दनसनातनसनत्कुमारादि सिद्धोंके उद्धार तथा मोक्षकी कामनासे अक्षर समाम्नाय शब्दब्रह्मराशिवेद प्रकटकिया, एतद्विमर्शे=उन्हीं शिवसूत्रोंके जाल=समुदाय पर विमर्श=विवेकपूर्ण विचारसे पाणिनिजीने व्याकरण शास्त्रके सूत्रोंका जाल बिछा दिया यथा— **येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।**
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नम: ॥

येन—१४ सूत्रोंको शिवजीसे सुनकर व्याकरण बोलनेवाले पाणिनिको प्रणाम १४ सूत्रोंका प्रयोजन प्रत्याहार सिद्धि हैं । **'प्रत्याह्रियन्ते संक्षिप्यन्ते वर्णा: यत्र'** जहां अल्प=थोड़े वर्णसे अधिकवर्णज्ञानकी शक्ति समझो जाय । जैसे-अ इ उ से-ऐ औच् तकके वर्ण अच् समझे गये । जैसे सुप्से इक्कीस विभक्तियां, तिङ्से १८ विभक्तियां समझी जाती है । अण् अच् अल् हल् आदि प्रत्याहारोंकी सिद्धिके आधार क्या है ? **-एषामन्त्या**=इन चौदह सूत्रोंके (अन्त्ये भवा: अन्त्या:) अन्तमें जुड़े वर्ण ण् क् ङ् च इत्यादि इत्संज्ञक है । प्रयोगमें उपयोगका विषय नहीं है । **इत्संज्ञकत्वम् इत्संज्ञायोग्यत्वं वा अनुबन्धत्वम् । अनुपश्चात् बध्यते युज्यते इति ।** जो बादमें जोड़े जांय वे अनुबन्ध इत्संज्ञासदृश है । **हकारादि**=हयवर आदि वर्णोंमे अकारका उच्चारण ही अर्थ=प्रयोजन है अन्य नहीं । हल् वर्णोंके उच्चारण सुगम हों, क्योंकि " न पुनरन्तरेणाचं व्यञ्जनस्योच्चारणमपि सम्भवति । अच् के बिना व्यञ्जनका उच्चारण दुर्बोध दुर्गम है अन्यथा अच् रहित हल्का उच्चारण क्लिष्ट परन्तु लण् सूत्रका अकार अनुनासिक है।(अनुनासिक प्रतिज्ञासे)उच्चारणार्थक

हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः । लणमध्ये त्वित्संज्ञकः ॥ हकारो द्विरुपात्तोयमटि शल्यपि वाञ्छता । अर्हेणाधुक्षदित्यत्र द्वयं सिद्धं भविष्यति ।(१) हलन्त्यम् ।१।३।३। उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात् । उपदेश आद्योच्चारणम् । सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र ।। (२) अदर्शनं लोपः ।१।१।६०।)

नहीं । उसका फल'र' प्रत्याहार सिद्धि र(रलका ज्ञान) उरण् रपरःमें लपरके लिए तवल्कारःके लिए । **हकारो द्विरुपात्तः**=दो सूत्र (हयवरट्, हल्) में दोबार हकार क्यों पढ़ा ? **अटि शलि अपि**=अण् हश् इण् वल् रल् झल्में भी हका उपयोग हो । अट्में ह का प्रयोजन अर्हेण–अट् व्यवधानमें णत्व । शल्में हका फल अघुक्षत, शल इगुपधात्से क्सिको क्स । देवा हसन्ति । रुको य अशपरे हो । हश्में हका फल देवो—हसतिमें हशि च लगे । इण्में ह का फल लिलिहिध्वे । विभाषेटःसे इट् ।

इत्संज्ञाविधायक सूत्र–१ **हल् प्रथमान्तम्**, अन्त्यं–प्रथमान्तं पदद्वयं सूत्रम् । उपदेशे (पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलिके प्रथम उच्चारण) में **अन्त्यम्**=अन्त्य हल्वर्ण इत्संज्ञक हो । उपदेश कहांसे आया ? उपदेशेऽजनुनासिक इत् से । क्या अर्थ है ? उपका आदि देशका उच्चारण, मिलकर आद्योच्चारण अर्थ है । मुनियोंका प्रथम उच्चारण दशा सूत्र वार्तिक भाष्य है, यद्यपि प्रथम उच्चारण ही उपदेश है तथापि धातु सूत्रगण उणादि वाक्य लिङ्गानुशासन आगम प्रत्यय आदेश उपदेश है । उनके अन्त हल् इत् हो । यथा पुञ् पुक् अञ् अण् तिप् मिप् आदि उपदेश हैं अन्तहल् इत् हो । अनुवृत्तिका नियम क्या है । **सूत्रेषु अदृष्टं**=सूत्रोंमें न देखा गया पद (अन्यं सूत्रं सूत्रान्तरं तस्मात्) **सूत्रान्तरात्** दुसरे सूत्रोंसे अनुवृत्ति आगमन कर लें सर्वत्र । यथा—उपदेशेऽजनुनासिक सूत्रसे उपदेशपद की अनुवृत्ति हलन्त्यम्में की गयी ।

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम् ॥

सूत्रके छः भेद है । १–शक्तिज्ञानकारक संज्ञासूत्र (अदेङ्गुणः)२ अनियमे नियम कर्ता परिभाषासूत्र (स्थानेऽन्तरतमः) । (स्थानेयोगाः) ३ अपूर्वबोधक विधिसूत्र । वृद्धिरादैच् । ४–विधिसुत्रपर नियन्त्रक नियमसूत्र(पतिः समास)एव ५–धर्मका आरोपक अतिदेश सूत्र, जो वत्से जुड़ा है । जैसे स्थानिवत् । ६–अग्रे गामि अधिकारसूत्र । सत्रलक्षण—सूत्रयति अल्पाक्षरेण बहु–अर्थान्=वेष्टयतीति सूत्रम् । अल्पाक्षरमसदिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम् । अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रंसूत्रविदोविदुः ॥

थोड़ा अक्षर अर्थ अधिक हो, सन्देहात्मा न हो, तत्व (भाव) पूर्ण हो, चारोंओर सकुशल सफल हो, हृदयमें क्षोभ न करे, निर्दोष हो वह सूत्र है । (२) **अदर्शनं** दर्शन का आभाव ही लोप है । न दर्शनम् अदर्शनं कहनेसे दृश धातुका सामान्यज्ञान अर्थ । अतः शास्त्रतोऽर्थतश्च प्राप्तोच्चारणस्य निषेधः उच्चारण न हो इससे शब्दकी नित्यता निरस्त नहीं होती । प्रसक्तस्य=विद्यमान का अदर्शन=श्रवणाभाव, अनुपस्थिति, विनाशकी लोपसंज्ञा हो सुनाई न पड़े । अदर्शन तथा लोप अभिन्न है (३)तस्य=इत्

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ॥ (३) तस्य लोपः ।१।३।९। तस्येतो लोपः स्यात् । णादयोऽणाद्यर्थाः ॥(४)आदिरन्त्येन सहेता ।१।१।७१॥ अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् । यथा अणिति अइउवर्णानां

संज्ञकवर्णस्य लोपः=समाप्तिः । उस इत्संज्ञक वर्णका लोप-अदर्शन श्रवणाभाव हो । एति=गच्छति इत् जो चला जाय उसीका बोधक लोप है । णादयः=१४ सूत्रोंके अन्तिमवर्ण ण्‌क्‌ङ्‌च् आदि अनुबन्धका उपयोग अणाद्यर्थाः=अण् अच् अल् आदि प्रत्याहारकी सिद्धि ही फल है । प्रत्याहारसिद्धिका सूत्र-(४) आदिः—अन्त्येन अन्तिमेन इता इत्संज्ञासदृशेन वर्णेन सह उच्चार्यमाण आदिः आरम्भ वर्णः बोधको भवति । अन्ते भवः अन्त्यः । अन्तका उच्चारित वर्ण इत्संज्ञक हो उसके सहित आदिवर्ण मिलकर मध्यगानां=मध्ये गच्छन्ति वर्तन्ते इति मध्यगाः तेषां मध्यमें स्थित वर्णोंका तथा स्वस्य च=अपना (अ) भी बोधक है । यस्मात्पूर्वो नास्ति स आदिः,यस्मात्परो नास्ति सोऽन्त्यः, यथा-अच् प्रत्याहारके अन्तमें इत्संज्ञक च् है । इसके साथ आदिवर्ण अ है । 'अ'से 'च'तक अच् संज्ञा हुई । वह मध्यवर्ण इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ का ज्ञान कराता है । जो बोध्य= (अचसे ज्ञानका विषय) है । वह अपना भी बोध कराता हैं । स्वं रूपंसे आया स्वशब्दः प्रधानपरामर्शकः । सूत्रमें प्रथमान्त आदिशब्द प्रधान अको कहेगा । अन्त्य शब्दके सह युक्तेऽप्रधाने तृतीया होने से अन्त शब्दसे ग्राह्य च अप्रधान तथा प्रयोगके अयोग्य है । स्व प्रधान है । प्रधानका परामर्श ही प्रयोगमें उपयोगी है । स्वशब्देन संज्ञाकोटिप्रविष्टः आदिरेव परामृश्यते अच्की तरह सभी संज्ञा है । यथा-अण् कहनेसे अ इ उ इन तीन वर्णोंका बोध है । इसीप्रकार अच, अल्.हल् इत्यादि संज्ञाओंको समझें । प्रत्याहारबोधकचक्रम्-

१. अक्—अ इ उ ऌ ऋ(अकः सवर्णे) २. अच्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ (योऽचि)।३. अट्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह् य् व् र्।(अट् कुप्वाङ्) ४. अण्—अ इ उ (केऽणः) । ५. अण्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य् व् र् ल् । अणुदित्सवर्णस्य । ६. अम्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न (छत्वममिति वाच्यम्)। ७. अश्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द (अपूर्वस्य योऽशि) ८. अल्-आदि अ उसके सहित अन्त्य ल मध्यके वर्ण इ उ ऋ ऌ एओऐ औ हयवर ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ चट त क प ष श स ह (अलोऽन्त्यस्य)। ९. इक्—इ उ ऋ ऌ । इकोऽसवर्णे । १०. इच् इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ । 'नादिचि' । ११ इण्—इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल। (इण्कुभ्याम्) १२. उक्—उ ऋ ऌ । उगितश्च । १३ एङ्—ए ओ 'एङिपररूपम'। १४. एच्—ए ओ ऐ औ। 'एचोऽयवायावः'। १५. ऐच्—ऐ औ । 'वृद्धिरादैच्'। १६. हश्—ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द। (हशि च)। १७ हल्

संज्ञा । एवमच्, हल्, अल्, इत्यादयः ॥ (५) ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः । १।२।२७। उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः । वां क ल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद्ध्रस्व-
—आदि ह्, अन्त्य ल् बीच के वर्ण-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह। (हलन्त्यम्) ।

१८ यण्—य व र ल। यणो मयो द्वे। १९ यम—य व र ल ञ म ङ ण न। 'हलो यमां यमि लोपः'। २० यञ्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ। (अतो दीर्घो यञि)। २१ यय्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प। (अनुस्वारस्य ययि)। २२ यर्—मध्यके अक्षर य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स। (यरोऽनुना सके)। २३ वश्—व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द। (वशोभष्) २४ वल्—बीचके वर्ण व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह। वलादेः। 'लोपो व्योर्वलि'। २५ रल्—र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह (रलो व्युपधाद्धलादेः)

२६ मय्—म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प। (मयो द्वे वाच्यः)। २७ ङम्—ङ ण न। (ङमो ह्रस्वादचि)

२८ झष्—झ भ घ ढ ध। (झषन्तस्य स्ध्वोः) २९ झश्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द। 'झलां जश् झशि'। ३० झय—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प। 'झयो होऽन्यतरस्याम'। ३१ झर्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स। 'झरो झरि'।

३२ झल्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह। झलो झलि। ३३ भष्—भ घ ढ ध। एकाचो बशो भष्। ३४ जश् ज ब ग ड द। झलां जशोऽन्ते। ३५ बश्—ब ग ड द। यथा—वशो भष्।

३६ खय्—ख फ छ ठ थ च ट त क प। शर्पूर्वाः खयः। ३७ खर्—ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स। खरि च। ३८ छव्...छ ठ थ च ट त। नश्छव्यप्रशान्। ३९ चय—च ट त क प। 'चयो द्वितीया शरि'। ४० चर—च ट त क प श ष स। 'अभ्यासे चर् च'। ४१ शर् श ष स। (शर्व्यवायेऽपि)

४२ शल्—श ष स ह। 'शल् इगुपधात्'। 'प्रत्याहारेष्वितां ग्रहणम्'।

१४ सूत्रोंको वर्णसमाम्नाय (वेद) कहते हैं। उसमें अच्-स्वर, हल् (व्यञ्जन) वर्ण पढ़े गये। अच्के गुणों धर्मोका निर्णय अवसर संगत है। ह्रस्व दीर्घ प्लुत उदात्त अनुदात्त स्वरित तथा अनुनासिक आदि अच् अक्षरके धर्म अर्थ निर्णयमें उपयोगी हैं उनका परिचय क्रमसे देते है। (५) ऊकाल=उकारके उच्चारणकालके सदृश्य=समान उच्चारणकाल है जिस अच्का, उसको ह्रस्व दीर्घ प्लुतसंज्ञा क्रमसे हो। ह्रस्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्च एतेषां समाहारः, सौत्रं पुस्त्वम्। अ इ उ में पहले अकार पढ़ा उसका

दीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा। (६) उच्चैरुदात्तः। १।२।२९। ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञः स्यात् (७) नीचैरनुदात्तः। १।२।३०। ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेष्वधो भागे निष्पन्नोऽजनुदात्तसंज्ञः स्यात्॥ (८) समाहारः स्वरितः। १।२।३१। उदात्तत्वानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते यस्मिन् सोऽच् स्वरितसंज्ञःस्यात्। स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा॥ (९) मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः

धर्म न कहकर उकार तक धावन कैसे ? कुक्कुट (मुर्गी) की ध्वनिमें उकारके तीनों मात्रा ब्राह्ममुहूर्तमें सुने जानेसे। शक्तिग्राहकशिरोमणि व्यवहारसे। जैसे—कुक्कुट कु १ कु (मुर्गाकी ध्वनि) हू—२ कूँ—३ में एक मात्रिक ह्रस्व उ, दो मात्रिक 'दीर्घ' ऊ, ३ तीनमात्रिक प्लुतः प्रसिद्ध है। एकमात्रिक उकार उच्चारणकालके सदृश्य उच्चारण हो वह अच् ह्रस्वसंज्ञक हो, द्विमात्रा ऊके सदृश अच् आ ई आदि दीर्घसंज्ञक। त्रिमात्रिक ऊ ३के समान अच् आ ई प्लुत हो। **एकमात्रिको भवेद्ध्रस्वो, द्विमात्रो दीर्घउच्यते। त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम्।** इसीप्रकार सभी अचोंमें एकमात्रा ह्रस्व, २दीर्घ, ३ मात्रा प्लुत क्रमसे समझें। इसीलिए समास किया। उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः तीन उकारमें ऊत्व जातिका समानरूप मानकर एकशेष। जस् विभक्तिमें 'वः' तेषां कालो वांकालः। स=वह (ह्रस्व दीर्घ प्लुत) प्रत्येकं=एक-एक को उदात्त अनुदात्त स्वरित भेदसे त्रिधा=तीन तीन भेद वाले हों। त्रिभिः प्रकारैः त्रिधा। उदात्त अनुदात्त नाद धर्म है। ९भेद। अब उदात्त अनुदात्तादि भेदसे परिचित होना अवसर संगत हुआ। आकांक्षापूर्तिके लिए बोले। उच्चैः—अव्ययपदम् उदात्तः प्रथमान्तम्। वर्णोंके उच्चारणका कारण कण्ठतालु मूर्धादन्तओष्ठ नासिका स्थानोंके उर्ध्वभाग=कुछ ऊपरी अंशसे उच्चारित वर्ण उदात्त है। सभी स्थानके तीन भाग है, उच्चभाग नीचभाग, तथा मध्यभाग। (७) नीचैः=निचलाभागसे उच्चरित अच् अनुदात्तसंज्ञक हो। कण्ठतालु आदि वर्णव्यञ्जक स्थानोंके निचले सूक्ष्म भागसे निष्पन्न (सिद्ध) अच् अनुदात्त गुणवाला हो, ऊंचा नीचा अर्थ नहीं। उपांशु (मौन उच्चारण) में अव्याप्तिसे। हाँ उच्चैः शब्द उर्ध्वभाग अर्थमें है। नीचैः शब्दका नीचलेभागसे उच्चारितअर्थ (८) समाहारः=समाहरणं=मिलित्वा घृततैलवत्दुग्ध जलवत् एकीभवनं समाहारः, अथवा समः (तुल्यः) एकहोकर, उदात्त अनुदात्त मिलकर अर्धनारीश्वरकी तरह आहरणं-होना समाहार हैं, वही स्वरित है। तालु आदिस्थान के उच्चभाग निच्चभागके मध्य सम्मिलत भाग जहां उदात्त तथा अनुदात्तगुण, वर्ण के धर्म समाहृत=सम्मिलित होते है उस वर्णकी स्वरितसंज्ञा हो। इस प्रकार ह्रस्वके तीन, दीर्घ तथा प्लुतके भी तीन तीन भेद। **उदात्तत्वानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते सोऽच् स्वरितः।** अर्थनिर्णयमें स्वर ज्ञान आवश्यक है।

स=वह (अच्) नवविधोऽपि=नव प्रकारका होकर भी, प्रत्येक=एक-एकको अनुनासिक अननुनासिक भेदसे दो दोभेद हों। अथ अनुनासिकपरिचयस्य स्वभाविकी

१।१।८॥ मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् । तदित्थम्—अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः । ऌवर्णस्य द्वादश । तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाभावात् ।(१०) **तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** ।१।१।९। ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन

जज्ञासा जागर्ति । लक्षण-(९) **मुखम्**=आस्यं, **नासिका**=घ्राणेन्द्रियः, वचन उच्चार्यमाणो वर्णः। मुखं द्वितीया नासिका मुखनासिका, उच्यते असौ वचन।कर्मणि ल्युट्, मुखनासिकया वचनः **अनुनासिकः**=नासिकाम् अनुगतो गुणः, मुखसहित नासिका से उच्चरित वर्ण अनुनासिकसंज्ञक हो, यथा—ञमङणन इनके उच्चारणमें मुख तथा नासिका दोनोंका साहित्य सहयोग अनुनासिक सिद्ध करता है । दधीं अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः । **तदित्थं**— क्या अठारहभेद सभीके

अ इ उ ऋ आदिके अठारह भेद—

अक्षराणि	अ इ उ ऋ ऌ	अ इ उ ऋ ए ओ ऐ औ	अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ
भेदाः	ह्रस्वोदात्तानुनासिकः	दीर्घोदात्तानुनासिकः	प्लुतोदात्तानुनासिकः
	ह्रस्वोदात्ताननुनासिकः	दीर्घोदात्ताननुनासिकः	प्लुतोदात्ताननुनासिकः
	ह्रस्वानुदात्तानुनासिकः	दीर्घानुदात्तानुनासिकः	प्लुतानुदात्तानुनासिकः:
	ह्रस्वानुदात्ताननुनासिकः	दीर्घानुदात्ताननुनासिकः	प्लुतानुदात्ताननुनासिक
	ह्रस्वस्वरितानुनासिकः	दीर्घस्वरितानुनासिकः	प्लुतस्वरितानुनासिकः
	ह्रस्वस्वरिताननुनासिकः	दीर्घस्वरिताननुनासिकः	प्लुतस्वरिताननुनासिकः

[१८] भेद इस प्रकार है, कि अ इ उ ऋ इन वर्णोंके एक एकके १८ भेद है । जो सवर्णी समानजाति समझे जाते है । अत्वजाति अष्टादश अकारमें, एवं इत्व उत्व भी इकार उकारमें । यथा (अस्य च्वौ) सूत्रमें असे १८अको ईत्व, तभी गङ्गीस्यात् । तभी इको यणचिसे इ उके १८ भेदको यण् । **ऌवर्णस्य**=ऌ अक्षरके बारह भेद है । उसमें दीर्घ अंश नहीं होता । ऌके सवर्णदीर्घ प्रसङ्गमें होतॄकारः उदाहरण दीर्घ न होनेमें प्रमाण है,-छःभेद हट गये । एचामपि=एच्=ए ओ ऐ औ के भी बारह-२ भेद है । उनमें ह्रस्व अंश नहीं होते । ए ओ ऐ औच् के दीर्घ पढ़े जाने से ह्रस्व का न होना प्रमाणित । ह्रस्व के छः भेद हट गये । इस जिज्ञासा की व्यवस्थामें पाणिनि शिक्षाका वचन अर्थतः स्वीकार । इति अचः-गुणाः धर्माश्च ।

अच् अक्षरों के सभी गुणों का ज्ञान करानेके पश्चात् कुछ वर्णोके आपसमें एकता, जातीयता, समानता सिद्धहै । उसका ज्ञान कराने के लिए सवर्णसंज्ञा । समानयोः वर्णयोः एकजातीयस्य संज्ञा बोधकःका प्रसङ्ग प्रस्तुत करते हैं । (१०)**तुल्य**=समान, एकधर्म, एकगुण एकता । आस्ये=मुखमें (वर्ण) उच्चारणके कारणीभूत तालु आदि स्थान । **प्रयत्न**=चेष्टा, क्रिया वर्णव्यञ्जक वायुका स्थानों में टकराव । **शब्दार्थ तुल्यश्चतुल्यश्च तुल्यौ,आस्यञ्च प्रयत्नश्च आस्यप्रयत्नौ तुल्यौ आस्यप्रयत्नौययोः वर्णयोः तत्तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णं**= समानजातीयकम् । आस्ये= मुखे भवम् उत्पन्नम्-प्रास्यं-

तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात् । (ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्) अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः । इचुयशानां तालु । ऋटुरषाणां मूर्धा लृतुलसानां दन्ताः उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । ञमङणनानां नासिका च । एदैतोः कण्ठतालु ।

कण्ठतालुमूर्धादन्तोष्ठनासिकास्थानम्, प्रकृष्टः–वर्णोच्चारणरूपःविशेषफलजनकः यत्नः, चेष्टा क्रिया, संयोग, वायु का कण्ठादिस्थानों से टकराव स्पर्श । जिस क्रियासे वर्ण उच्चारित हो उसे प्रयत्न कहते है,यदा विवक्षया मनोयुङ्क्ते तदा वायुः मूर्धानमाहत्य वक्त्रमापद्य वर्णान् जनयते ; प्रयत्नलक्षणं । ताल्वादि=तालु न आदिः=तालुके आदिमें जो हो उसे ताल्वादि (कण्ठ) कहते है (देहली दीपकवत्) पूर्व (कण्ठ)परकाभी स्मारक है । कण्ठतालुमूर्धा दन्तोष्ठ तथा नासिकास्थानवाले हो और आभ्यान्तर प्रयत्नश्च मुखके भीतरके स्थानोंमें वायुसे उच्चारित वर्णोका आभ्यन्तर प्रयत्न होता है अर्थ –जिन वर्णोका ताल्वादिस्थान और आभ्यन्तरप्रयत्न एतद्वयं–येदोनों जिस वर्णके साथ मिलते हों, तन्मिथः=उनके बीच सवर्णसंज्ञा (एकजाति)हो । समानवर्ण होना सवर्णका स्वभाव है,जोव्यवहारमें अनुभूत है । स्थानभेदके कारण सवर्णसंज्ञाप्राप्त नहीं अतः वार्तिक पढ़ा, ऋलृ–ऋ और लृ अक्षरोंके आपसमें सावर्ण्य=समानवर्ण–एकजाति का ज्ञान हो । अकः सवर्णे दीर्घः,झरो झरि सवर्णे(लोपः) **किन किन वर्णोका कौन कौन स्थान है** ? निर्णयके लिए बोले–अकुह=अकार कु=कवर्ग कखगघङ तथा =विसर्जने अन्ते भवः विसर्जनीयः, इनका कण्ठ स्थान है कण्ठाज्जातं कण्ठचम् । इचु=इकारचवर्ग चछजझञ, य तथा श इनका तालुस्थान है तालोर्जातं तालव्यम् । काकुदं तालु काकुर्जिह्वा, सा उद्यते अस्मिन् जहां जीभ उठे स्पर्श करे । ऋटु=ऋकार टवर्गटठडढण र और षका मूर्धास्थान है मूर्ध्नि जातं मूर्धन्यम् । आच तुश्च लश्च सश्च लृतुलसाः लृका एकवचन आ अलो अलः, दन्तशब्देन दन्तमूलप्रदेश (मसगुर) वक्ताको इष्ट । भग्नदन्तस्य अनुच्चरणात् । लृतु=लृकार तवर्ग, तथदधन, ल और स इनका दन्त स्थान है । दन्तेभ्यः ततं दन्त्यम् । उपु=उकार पवर्ग पफबभम उपध्मानीय इनका ओष्ठ स्थान । ञमङणनका नासिका स्थान । नासिकायाः जातं नासिक्यम् । च पदसे अपने वर्गके अनुकूल तालु ओष्ठ कण्ठमूर्धा दन्त स्थान भी है । एदैतोः=

ताल्वादिस्थानकवर्णबोधकचक्र

स्थान								
कंठ	अ	क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	ह्	ः
तालु	इ	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	य्	श्
मूर्धा	ऋ	ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्	र्	ष्
दन्त	लृ	त्	थ्	द्	ध्	न्	ल्	स्
ओष्ठ	उ	प्	फ्	ब्	भ्	म्	⌒प्	⌒फ्
नासिका–	ञ्	म्	ङ्	ण्	न्			

एच्च ऐच्च एदैतौ तयोः, तपर असन्देहार्थं है । ए, ऐका कण्ठतालु स्थान है । क्योंकि

ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । वकारस्य दन्तोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् । नासिकाऽनुस्वारस्य । इति स्थानानि । यत्नो द्विधा । आभ्यन्तरो वाह्यश्च । आद्यः पञ्चधा । स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात् । तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम् । ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम् । ईषद्विवृतमूष्मणाम् । विवृतं स्वराणां

ये संयुक्त अक्षर है । कण्ठतालुस्थानवाले अ इ के स्थानमें गुण या वृद्धि होनेसे बने है । **ओदौतोः**—ओच्च औच्च ओदौतौ: तयोः=ओकार औकारका कण्ठ और ओष्ठ स्थान हैं । ये भी संयुक्त अक्षर है । कण्ठ ओष्ठ स्थानी 'अ उ' से संयुक्त होकर साम्यक्षर हो गये है । **वकार** का दन्त और ओष्ठ स्थान हैं । **जिह्वामूलीय**=जिह्वा के मूलभागसे उत्पन्न वर्णका जिह्वामूल स्थान है । यथा क । अनुस्वारका केवल नासिका स्थान है । यहां तक वर्णोच्चारणके स्थान चर्चित हुए ।

किन वर्णोका कौन प्रयत्न है निर्णायक—

सवर्णसंज्ञामें उपयोगी आभ्यन्तर प्रयत्नका परिचय प्रस्तुत करते है कि **यत्नो-द्विधा**=यत्न (चेष्टा, क्रिया, वायु स्पर्श, संयोग) दो प्रकारके है । **आभ्यन्तर और बाह्य** मुखके भीतर कण्ठतालु आदि स्थानोंमें वायुके स्पर्श संयोग टकरावसे वर्ण उत्पत्तिकी क्रियाको **आभ्यन्तरप्रयत्न** कहते है । दूसरा बाह्यप्रयत्न है, जो **काकलक**= कण्ठके नीचे वायुके द्वारा गलछिद्रका संकोच विकासरूप चेष्टा (क्रिया) है । जैसे— विवार श्वास घोष, अघोष इत्यादि काकलक=कण्ठके नीचे गलछिद्रकी क्रिया है । **आद्यः**=आभ्यन्तरप्रयत्न पांच प्रकारका है। **स्पृष्टप्रयत्न**=वायुका स्थानोंसे स्पर्श करके वर्णोच्चारणकी क्रिया **ईषत्पृष्ट**=थोड़ा स्पर्श । **ईषद्विवृत**=थोड़ा खुला, विकसित'बाया हुआ । **विवृत**=विकसित खुला, **सम्वृत**=ढका हुआ । **तत्र**=किन वर्णोका कौन सा' प्रयत्न है इसका निर्देश करते है । कखसे भम तक स्पर्शसंज्ञक वर्णोका स्पृष्टप्रयत्न है । ईषत्=अन्तस्थ (यण्) संज्ञक वर्णोका ईषत्स्पृष्ट (थोड़ा स्पर्श) प्रयत्न चेष्टा हैं । ऊष्मासंज्ञक वर्णोका ईषद्विवृत=थोड़ा विकसित प्रयत्न=चेष्टा है । स्वरसंज्ञक वर्णोका विवृतप्रयत्न है । ह्रस्व अकारके प्रयोगमें संवृत प्रयत्न है । या ह्रस्व अकारको ही संवृत कहते है । **प्रक्रियादशायां**=प्रयोग साधनेकी स्थितिमें वह संवृत=ह्रस्व अकार विवृत होता है । शास्त्रीय कार्य गुण दीर्घ आदि दशामें विवृत होता हैं । जैसे दण्डा-ढकम् । दोनोंमें अन्तर जहां अकारसे अट्ठारह भेदका बोध हो, वह विवृत अ हैं ।

१ आभ्यन्तरप्रयत्नबोधकचक्रम्

स्पष्टम्	ई. स्पृ.	विवृतम्	ई. वि.	संवृतः
क च ट त प	य	अ ए	श	ह्रस्वः 'अ' प्रयोगे
ख छ ठ थ फ	र	इ ओ	ष	
ग ज ड द ब	ल	उ ऐ	स	
घ झ ढ ध भ	व	ऋ औ	ह	
ङ ञ ण न म		लृ		

ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम् । प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव । बाह्यप्रयत्न-स्त्वेकादशधा । विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तःस्वरितश्चेति । खरो विवाराःश्वासा अघोषाश्च । हश संवारा नादा घोषाश्च । वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः । वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः । कादयो मावसानाः स्पर्शाः । यणोऽन्तःस्थाः ।

जहां केवल ह्रस्व अ हो वहां संवृत समझें । क्योंकि विवृत अकारको संवृतसंज्ञक अकार बनानेवाला अ अ सूत्र सम्पूर्ण अष्टाध्यायीके प्रति असिद्ध है । राम कृष्णका अ प्रयोग दशामें संवृत, साधनिका दशामें विवृत ।

कण्ठके नीचे (गलमध्ये) वायुकी वर्णोच्चारणानुकूल क्रियाओंको बाह्यप्रयत्न कहते है । वह एकादशधा=११ प्रकारका है । जैसे विवरणं गलछिद्रविकसनं **विवार** विकसित, गलछिद्र, पूर्णविकसित गलेकी क्रिया । संवरणं गलविलसंकोचः संवारः श्वसनं **श्वासः** प्राणवायुः,नादः व्यक्तध्वनि । घोष=स्पष्ट ध्वनि । **अघोष**=मूक ध्वनि । **अल्पप्राण**=शिथिलवायु, **महाप्राण** (अधिक वायु) **उदात्त**–तालु आदिके उर्ध्वभागसे उच्चरित वर्ण धर्म,–अधोभागसे उच्चरित वर्णधर्म अनुदात्त । स्वरित=मध्यभागसे व्यक्त मिलित वर्णधर्म । ये ११ प्रयत्न मुखके बाह्यभागमें कण्ठके भीतर, होनेसे बाह्य प्रयत्न समझे गये । किन वर्णोका कौन सा बाह्य प्रयत्न है निर्णय लेते है कि **खरो**=खर प्रत्याहारके अक्षर (ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स) का विवार श्वास अघोष प्रयत्न है । **हश्**='ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ़ ध ज ब ग ड द' इन वर्णोका संवार, नाद, घोष प्रयत्न है । **वर्गाणां**=कवर्ग चवर्ग इत्यादि वर्गके प्रथम तृतीय पञ्चम वर्ण (क च ट त प प्रथमवर्ण (ग ज ट द व तृतीय (ङ ञ ण न म) ये पञ्चम वर्ण है । । **यण्**–य व र ल । चकारसे उदात्त अनुदात्त स्वरितस्वरों का संग्रह । इन सबका **अल्पप्राण**–ईषत् स्पृष्ट प्राणवायुका शिथिलस्पर्श प्रयत्न है । वर्गोके द्वितीय=ख छ ठ थ फ, चतुर्थ=घ झ ढ ध भ, और शल् (श ष स ह) इनका महाप्राण प्रयत्न है । चकारः समुच्चयबोधकः । अधिक प्राणवायुका स्पर्श ।

१ बाह्यप्रयत्न वेधक चक्रम्

विवारः, श्वासः, अघोषः	संवारः, नादः, घोषः	अल्पप्राणः	महाप्राणः	उदात्तः, अनुदात्तः स्वरितः
क ख श	ग घ ङ य	क ग ङ य	ख घ श	अ ए
च छ ष	ज झ ञ व	च ज ञ व	छ झ ष	इ ओ
ट ठ स	ड ढ ण र	ट ड ण र	ठ ढ स	उ ऐ
त थ	द ध न ल	त द न ल	थ ध ह	ऋ औ
प फ	ब भ म	प ब म	फ भ	लृ

किन वर्णोका क्या नाम है । निर्देश देते है । **कादयः**=क आदौ येषा ते लोकमें प्रसिद्ध क ख ग इत्यादिसे लेकर **मावसानाः**=म अन्ते येषां ते बभम **अवसान**=

शषसहा ऊष्माणः। अचःस्वराः। ⌣क⌣ख इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः। ⌣प⌣फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः। अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ॥ (११) **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः** ।१।१। ६९।अविधीयमानोऽण् उदिच्च सवर्णस्यसंज्ञा स्यात्। अत्रैवाण् परेण णकारेण कुचुटुतुपु एते उदितः। तदेवम् अ इत्यष्टादशानां संज्ञा । तथेकारोकारौ। ॠकारस्त्रिंशतः। एवं लृकारोऽपि। एचो द्वादशानाम्। अनुनासिकाननुनासि

अन्त तकके २५ वर्णोंकी स्पर्शसंज्ञा है । जो स्पृष्टप्रयत्न है । **यण्**=य र ल व इनका (अन्तः आभ्यन्तरे तिष्ठति) **अन्तस्थः** नाम है तथा ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न है । **शल्** (श ष स ह) का उष्मा नाम उच्चारणके समय गरमवायु होनेसे ईषद्विवृतप्रयत्न स्वरसंज्ञक (अच्के अक्षर) है । ⌣क⌣क ख के पहले आधे विसर्गके सदृशवर्णका जिह्वामूलीय नाम है। जो जीभके मूल भागसे उत्पन्न है। जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानां चत्वारो भागाः ⌣प⌣फके पहले आधे विसर्गके समानवर्ण उपध्मानीय है अं अः= अच्के ऊपर बिन्दु अंको अनुस्वार हैं। परे (दोबिन्दु) को विसर्ग कहते है।

(११) **अणुदित्** सूत्रमें दो अंश है। **अण्** प्रत्याहारके वर्ण (उद्देश्यभूत) और उदित ये (उद्देश्य विधेय) दोनों अपने सवर्णी स्वजाति वालों (जिनके आपसमें सवर्णसंज्ञा हो) के बोधक परिचायक ज्ञापक हो। यह विधि अंश है।

'**अप्रत्ययः**'= यह निषेध अंश हैं। न प्रत्ययो अप्रत्ययः प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः । जिसका विधान हो वह प्रत्यय है। जिसके स्थानमें विधान हो वह अप्रत्यय है। जैसे इक् को यण् हुआ जो विधेय है इक् उद्देश्य, अविधीयमान है। अविधीय मान अण् (अ इ उ ऋ) हो सवर्णियोंका ग्राहक बोधक होगा। विधीयमान अण नहीं जैसे–'**त्यदादीनामः**'से विधान हुआ अ सवर्णीका बोधक नहीं होगा। किन्तु यह नियम केवल अण्के लिए है। उदितके लिये नहीं। वहां विधीयमान भी उदितसंज्ञक सवर्णी (स्वजातियोंके) ग्राहक होंगे। यथा चोःकुः=कु चु टु तु पु इनकी उदितसंज्ञा है कु विधीयमान है चु अविधीयमान,दोनोंके सवर्णीका ज्ञान एवं कुहोश्चुःकु=कखगघङ चु=चछजझञ, **अत्रैवाण्**=इसी सूत्रमें अण् प्रत्याहार परणकार (लण् सूत्रके ण) तक मान्य है। अन्य स्थलोंमें अण् पूर्व ण तक स्वीकृत है। यथा–

पूर्वेणैवाण्ग्रहाः सर्वे परेणैवेण्ग्रहाः मता ।
ऋते अणुदित्सवर्णस्य, अत्रैवाण् परेण तु ॥

तदेवम्= सर्वणियों के ग्राहकवर्ण इस प्रकार है। अकार अपने अट्ठारह अन्य जातिवालों का बोधक है। इकार उकार भी इत्व उत्व जातिवाले अट्ठारहों का संग्राहक है। इसका भाव-जहां छोटा इ उ लियाजाय वहां बड़ा ई ऊ भी मान्य । ऋकार ३० प्रकारका है अट्ठारह ऋ, १२ लृ दोनोंकी सवर्णसंज्ञाके आधार पर तीसका ग्राहक है। इसी प्रकार लृ भी तीस सवर्णीका ग्राहक है। एच्=ए ओ ऐ औ ये १२-१२ भेदके ग्राहक है, इनके ह्रस्व नहीं होते। अनुनासिक अननुनासिक भेदसे 'य व ल' दो दो के ग्राहक है।

कर्मभेदेन यवला द्विधा। तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा(१२) परः संनिकर्षः संहिता १।४।१०१। वर्णानामतिशयितः संनिधिः संहितासंज्ञः स्यात्(१३) हलोऽनन्तराः संयोगः।१।१।७। अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः ॥ (१४) सुप्तिङन्तं पदम्।१।४।१४। सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्।

इति सन्ध्युपयोगि संज्ञाप्रकरणम् ॥१॥

---

(१२) शब्दार्थ—परः=अन्यः समीपस्थः तस्य सन्निकर्षः=साक्षात्कारः सन्निधि अव्यधानेन उपस्थितिः, पूर्वेण सह समीपता, संहिता=अर्धमात्राकालिकव्यवधान। एक वर्णके उच्चारण पर दूसरे वर्णके बीच आधीमात्राका स्वाभाविक अन्तर संहिता है। वर्णका अन्तर न होना। अर्थ-वर्णोंकी अतिशय=अत्यधिक शब्दार्थसम्बन्धात्मक सन्निधि बिना व्यवधान उपस्थितकी संहितासंज्ञा हो। यह संज्ञा वहीं होगी जहां वर्णों अथवा पदोंके आपसमें आकाङ्क्षा=परस्पर सम्बन्ध, जुड़नेकी अपेक्षा। योग्यता=बोध करानेकी स्वाभाविक शक्ति हो (जैसे इन्द्रियोंमें विषय ग्रहणकी स्वाभाविक शक्ति है) सन्निधि=अव्यवधान और तात्पर्य भी निकलता हो तो। यह अर्थ वृत्तिमें अतिशय-सन्निधिके अतिशय विशेषणसे निकलता है। क्योंकि सन्निपूर्वक 'धा' धातुका अव्यवहित उपस्थितिके अनुकूल क्रिया अर्थ (उपसर्गे घोः)कि प्रत्ययका कर्ता अर्थ है। प्रश्न अव्यवहित उपस्थिति भी सन्निधि शब्दका ही अर्थ है अतिशय विशेषण क्यों? अर्थ सम्बन्धसहित शब्दों वर्णोके परस्पर आकांक्षा योग्यता, सन्निधि तात्पर्य सहित हो। यह भट्टोजीदीक्षितके अतिशय विशेषणका अभिप्राय है। संहितासंज्ञाके 'महतीसंज्ञा'से जहां संहिता शब्दार्थ घटेगा वहीं सन्धिका विषय है। सन्धीयन्ते सम्बद्धयन्ते, संयुज्यन्ते वर्णाः पदानि वा यत्र सा 'संहिता' कर्मणि क्त। सम्पूर्वक धाधातुका सब प्रकारसे जोड़ना पदवाक्यगतशक्तिको प्रकाशित करना अर्थ है। यह संज्ञा, अर्थ सम्बन्ध को प्रकाशित करती है। उनका विषय भी बनाती है। अतः संहिता' सन्धि, सन्निधि सन्निकर्ष, जोड़, संयोग मेल, एकार्थीभाव, अतिसमीप, ये शब्द यथाशक्ति समानार्थक है। बहुतसे सूत्र बिना अर्थके सन्धि नहीं करते जैसे—क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे, एवे चानियोगे। सन्धि नहीं भी है। अतः उनके मतमें पूर्ववर्णोंकी उत्तरवर्णके साथ अतिशय सन्निधि, अतिसमीप, बिना अन्तरका, एकवर्णके बाद दूसरे वर्णके उच्चारण में, आधीमात्राका स्वभाविक व्यवधान हो, किन्तु किसी वर्णका या अर्धमात्र से अधिककालका अन्तर न हो तब संहितासंज्ञा हो।

(१३) हलौच हलश्च हल्, न अन्तरमिति अनन्तरा व्यवधानशून्याः हलः। अज्भिः =अच् प्रत्याहारके अक्षरोंसे (अव्यवहिताः) रहित खाली हल्की संयोगसंज्ञा हो। दो हल् या अनेक हल् होना चाहिए। एक हल्की संयोगसंज्ञा नहीं होती (१४) सुप् च तिङ् च सुप्तिङौ तौ अन्ते यस्य तत् सुप्तिङन्तं पदं प्रथमान्तं, सुप विभक्ति अन्तमें हो यथा—रामः। तिङ् अन्तमें हो यथा—पठति दोनोंकी पदसंज्ञा हो। व्यापकसंज्ञाओं का प्रकरण समाप्त। इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकरीटीकायां संज्ञाप्रकरणम्

अथ अच्सन्धिप्रकरम्

(१५) इको यणचि ।६।१।७७। इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये

सन्धि—व्यञ्जनाशक्ति या योग्यता शक्ति है। उससे व्यङ्ग्य या प्रभावित अर्थ ही सन्ध्यर्थ है। जैसे निपात और स्वर प्रभावित शब्दके अर्थबोधक, द्योतक (प्रकाशक) है। किसीके मतमें वाचक भी है। एवं सन्धिभी पदवाक्यकी शक्तिका प्रकाशक है, वाचक भी, यथा–क्षय्यम्, क्रय्यम्, पुत्रादिनी, प्रोढ़वान्, आदि उदाहरण से सिद्ध है। इसलिए संदधाति–सामीप्यसम्बन्धेन वर्णौं, शब्दार्थौं वा संयोजयति शब्दशक्ति वा प्रकाशयति इति सन्धिः। अचाम् अक्षु वा सन्धि अच्सन्धि। दो अचों को जोड़ें, पदवाक्यकी शक्तिको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे प्रकाशित करे, उसे सन्धि कहते है। अचोंके स्थानमें अच् परे रहते संयोजनाशक्ति ही अच्सन्धि है। संज्ञा प्रकरणके पश्चात् स्वरव्यञ्जन भेदसे प्रथम अच् प्रत्याहारकें अक्षरोंकी सन्धि अवसर सङ्गत है। यह शक्ति शब्दार्थके परस्पर अर्थ सम्बन्धका प्रकाशन करती है इसके बिना सन्धि सम्भव नहीं है। किन्तु संहिताका विषय अवश्य होना चाहिये। अर्धमात्राकालके व्यवधान (अन्तर) को संहिता कहते है। एक मात्रा या अक्षरका अन्तर असह्य है। वह निरर्थकमें असम्भव, साधुत्व सार्थकमें ही है। सन्धि भी साधुत्वका कारण है। व्याकरण पदवाक्यके अर्थसम्बन्धका निर्णायक है। साधुत्वका द्योतक। 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' शब्द अर्थ सम्बन्ध तीनोंका संस्कार विशेष व्युत्पत्तिका साधन व्याकरण हैं। आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि ये तीनों सन्धि में कारण है, तभी शब्दब्रह्मका रसास्वान ज्ञान होगा।

(१५) इको=यह यण् सन्धिका विधिसूत्र है। **इकः**=इ, उ, ऋ, लृके स्थानमें क्रम से **यण्**=य व र ल हो, अच् प्रत्याहारके अक्षर परे तथा **संहितायां विषये**=अर्ध-मात्राकालके स्वभाविक व्यवधान (अन्तर) का विषय हो। अथवा विषयसप्तमीसे शब्द अर्थ सम्बन्ध तीनों संहिताके विषय हैं, अर्थानुशासनमें प्रमाण–**संहितैकपदे नित्या** नित्या धातूपसर्गयोः नित्या समासे, वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते समासपदमें, एकपदमें धातु उपसर्गके विषयमें तो नित्य सन्धि हो। क्योंकि इनमें अर्थका साक्षात् सम्बन्ध है वाक्यमें परम्परया है। आकांक्षा, योग्यता, सन्निधिके मिलकर अर्थ कहने क शक्तिकी सूचिका संहितासंज्ञा हुई हो। (असति बाधके प्रथमायाः विधेय विभक्तित्वम्) महती संज्ञाओंका स्फोटार्थ घटना आवश्यक। षष्ठी स्थाने योगाःसे आया स्थानका प्रसङ्ग अर्थ। इ उ ऋ लृके उच्चारण प्रसङ्गमें य व र ल का उच्चारण करें।

समासे संहितानित्या। **सुध्युपास्यः**—ध्यै चिन्तायां चिन्तन मननकी क्रियावाचक ध्यैसे क्विप्–पूर्णलोप। सम्प्रसारण यको इ, पूर्वरूप, हलश्च दीर्घ भी धीः ध्यानकर्ता। शोभना धीर्येषान्ते सुधियः तैः उपास्यः सुध्युपास्यः। सुधी+उपास्यः। परः सन्निकर्षः संहितासंज्ञा इको यणचि सूत्रसे सुधीवकार उत्तरवर्ती ईकारके स्थानमें 'य' यण् हुआ, अच् परे उपास्यःका उ। सुधय् इति जाते, न कहिये इ, तो तीन है, सुमें 'उ' धीमें 'ई' उपास्यःका 'उ'। क्या सबको यण्

ये। सुधी उपास्य इतिस्थिते ॥ (१६) तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य ।१।१।६६। सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णातरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य ज्ञेयम् (१७) स्थानेऽन्तरतमः १।१।५०। प्रसंङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात्। सुध्य् उपास्य इति जाते।(१८) अनचि च।८।४।४७।अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। इति धस्य द्वित्वम् ॥ (१९) झलां जशझशि ।८।४।५३। झलां जश् स्यात् झशि परे। इति पूर्वधस्य दः। (२०) संयोगान्तस्य लोपः ।८।२।२३।

हो ? तब निर्णायक परिभाषा सूत्र बोले— (१६) तस्मिन्—यह सप्तमीविभक्त्यन्तका सूचक शब्द है। निर्दिष्टे=निर्निरन्तर विना व्यवधानके, दिष्टे=उच्चारण होनेपर (पूर्वस्य=पूर्वके स्थानमें कार्य हो। सप्तमीविभक्ति उच्चारित पदसे अच् बोध्य वर्ण परे रहते) विधीयमान=विधान किया गया यणादि कार्य वर्णान्तरेण=अन्यवर्णके (अव्यवहितस्य) बिना व्यवधानके पूर्वके स्थानमें हो। जैसे—इको यणचि सूत्रके अचिपदमें सप्तमी उच्चारण करके विधीयमान कार्य यण् है। अच्, उपास्यः का उ, उससे अव्यवहित पूर्वमें ई स्थानी है, उसीको यण् हुआ। अन्यमें व्यवधान है, यण् नहीं हुआ। अच् परे कहनेपर यणादि व्यवधानमें और अव्यवधान प्राप्तिपर नियम कियाकि अव्यवहित एव इति नियमः। न कहिए ईके स्थानमें (य्) ही यण् क्यों हो 'व, र, ल' क्यों न हो। तब निर्णायकपरिभाषासूत्र बोले—

(१७) स्थाने=स्थानदर्शने, अन्तरतमः=अतिशयः अत्यधिको अन्तरः सदृशः एक जातीयः निकटस्थः। विधिसूत्र प्राप्ति दशामें अतिनिकट स्थानवाला हो,प्रसङ्गे=प्राप्यमाण शत्रुवत् व्यवहार प्राप्त होनेपर, सदृशतमः=अतिसमीपस्थ आदेश हो। इससे यणादि अतिसदृश आदेश इचुयशानां के आधारपर तालुस्थानी ई स्थाने यण्।

यद्यपि—सादृश्यं चतुर्विधं स्थानार्थगुणप्रमाणकृतम्। सादृश्य, समानता तुल्यता एकजातीयता चारप्रकारसे परखी जाती है। दोनोंके स्थानकी एकता,अर्थकी तुल्यता गुणकी योग्यता, प्रमाण=मात्राका सादृश्य कौन प्रमाण माना जाय। तब (यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्यं बलीयः) जहां सादृश्यके अनेक भेद। वहां स्थान कृत सादृश्य लिया जाय। स्थानकृत समानताका निर्णायक 'इचुयशानां तालु' इ तथा यकी समानताका उपस्थापक तालु स्थान है। अन्य 'वरल' भिन्न स्थानक है, सुध्य्+उपास्य इति जाते। (१८) अनचि=पर्युदास है अच् परे नेत्यर्थः। अच् भिन्न अच्सदृश, प्रत्याहार सम्बन्धसे हल्परे चसे अच्,यर,द्वे वा इति अनुवर्तन्ते। अच्से परे यर—हवभरसे श ष स रके अक्षरको द्वित्व हो विकल्पसे। यह विधि अंश है। नत्वचि =अच् परे न हो तो। इति निषेधांशः। सुधय्के सुका 'उ' अच है। उससे परे यर् 'ध'को द्वित्व=दो उच्चारण हुआ, अच्परे नहीं है। किन्तु उससे परे हल्(य्)है। सुध्य् बना। (१९) झलां=झभञ्से हल् तक वर्णोको जश्=जब गडदश् हों। झशि=झभञ्से गडदश् तक अक्षर परे। इस सूत्रसे प्रथम धको जश् द हुआ, दन्तस्थानकृत समानता मानकर। (२०) संयोगसंज्ञकः वर्णः=अन्ते यस्य स संयोगान्तः द्ध्य्को हलोऽनन्तराः

संयोगान्तं यत्पदं तस्य लोपः स्यात् । (२१) अलोऽन्त्यस्य ।१।१।५२।। षष्ठी-निर्दिष्टस्यान्त्यस्याल आदेशः स्यात् । इति यलोपे प्राप्ते । (यणः प्रतिषेधो-वाच्यः) । सुद्ध्युपास्यः । मद्ध्वरिः । धात्त्रंशः । लाकृतिः ।। (२२) एचोऽय-

स संयोगसंज्ञा है । संयोगान्तपद सुद्ध्य् पूरका लोप (सुनाई न पड़ना) प्राप्त ।

(२१)अलो=अन्ते विद्यमानस्य अलः=अल् वर्णकात्,अनिर्धारित सम्बन्धवाली षष्ठी विभक्तिसे निर्दिष्ट=निरन्तर उच्चारित सुद्ध्य्का अन्त्य अल्=[अईउण्से हल् तक वर्ण] के स्थानमें लोप आदेश हो। संयोगान्तस्यमें षष्ठी विभक्ति है, संयोगसंज्ञक द्ध्य्का अन्त्य अल् केवल 'य' का लोप प्राप्त हुआ । निषेधवार्तिक (वा०) यण्के लोपका प्रतिषेध-निषेध कहें । यलोपका निषेध हुआ । (अज्झीनं परेण संयोज्यं वाच्यम्) अच् से हीन (रहित) वर्ण द्ध्य् परके साथ जुड़ जांय जुड़ गया, सुद्ध्यु-पास्यः सुध्युपास्यः । सुधिभिः=विद्वानोंसे, उपास्य=पूज्य । इस समासशक्ति-उपास्य उपासक सम्बन्धका प्रकाशन ही सन्ध्यर्थ है । अर्च्यं अर्चकभावका सन्धि पोषक है एवं देवी+उवाच देव्युवाच । पार्वती+अम्बा पार्वत्यम्बा । दधि+आनय दध्यानय । इति+अनेन इत्यनेन । यदि+अपि यद्यपि ।

मध्वरिः—मधुः दैत्यः, तस्य अरिः (शत्रुः) विष्णुः बध्यबधक सम्बन्ध बोधके लिए सन्धि मधु+अरिः,संहितासंज्ञा 'इको यणचि' सूत्रसे(स्थानेऽन्तरतमःकी सहायता धकारोत्तरवर्ती ओष्ठस्थानी उ स्थाने दन्तोष्ठस्थानी व यण् । यद्यपि वका दन्तोष्ठ स्थान है, 'उ' का केवल ओष्ठ, तथापि यत्किंचित्स्थानसमानता भी ग्राह्य हुआ । मध्व्अरिः अनचि चसे द्वित्व,झलांजशिसे जश्त्व द्ध्व् अच्से हीनवर्ण है परसेजुड़े यण्से मधुके साथ शत्रुता स्पष्ट है मध्वरिः। गुरु+अस्ति गुर्वस्ति । मधु+आनय मध्वानय । वधू+आगमः वध्वागमः । पशू+अलंकरोति पश्वलंकरोति ।

धात्त्रंशः—धातुः ब्रह्मणोऽशः नारदादिः । धातृ+अंशः संहितासंज्ञा । 'इको यण्'-सूत्रसे तकार उत्तरवर्ती ऋके स्थानमें (ऋटुरषाणां मूर्धास्थान समानतासे) 'र' यण् हुआ । धातर्+अंशः । अनचि च अचि परे नहीं है । तको द्वित्व विकल्प अच् रहित अक्षर परके साथ जुड़ गये । धात्त्रंशः धात्रंशः विष्णुः । धाता ब्रह्मा अंशो यस्य । भ्रातृ-अंशः ऋ-र यण् भ्रात्त्रंशः । पितृ-आ पित्रा । ब्रह्माका अंश समा सार्थकी व्यञ्जना ही सन्ध्यर्थः । जन्यजनकभाव सम्बन्धः ।

लाकृतिः लृचासौ आकृतिश्च=टेढ़ी आकृतिः अर्थमें लृ-आकृतिः इकोऽणचि सूत्रसे यहाँ इक्—लृको यण् 'ल' हुआ । लृतुलसानां दन्ताः लृ तथा लका स्थानतुल्य होनेसे । अथवा लृकार देवजातिकी माता है उसकी आकृति लाकृति है ।

सन्धि से शब्दशक्ति प्रकाशित होती है । यहां यण् से सुधी=सुन्दर ध्यान, चिन्तन, मनन, कर्ताओं से उपास्य=पूजाका विषय विष्णु भगवान् प्रभु कैसे हैं ? कि मध्वरि" मधुनामकस्य दैतस्य अरिः शत्रुः । धात्यघातकसम्बन्धविशिष्ट भगवान् कैसे हैं ? धाता (ब्रह्मा) अंशो यस्य स धात्रंशः, नाभिकमलसे उत्पन्न ब्रह्मा, भगवान् के अंश हैं, पुनः कैसे हैं ? लाकृतिः लृ-वक्राः आकृतिः त्रिभङ्गीलाल

वायावः ।६।१।७८। एचः क्रमात् अय् अव्, आय्, आव्, एते स्युरचि ।। (२३) **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** ।१।३।१०। समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात् । हरये । विष्णवे । नायकः । पावकः ।। (२४) **वान्तो यि प्रत्यये** ।६।१।७६।

नटवरवपुः भगवान् हैं ।

(२२) एच्-, ए ओ, ऐ, औ-४ के स्थान में क्रम से अय् अव आय् आव् ये ४ आदेश हों। परन्तु किसके स्थानमें कौन आदेश हो, विपरीत क्यों नहीं। चार स्थानी तथा चार आदेश के प्रसङ्ग में क्रमसंख्यानियामक परिभाषासूत्र। (२३) यथासंख्येति । समानां=तुल्यानां समसंख्यावताम् अनुदेशः (आदेशः) विधिः कार्यम्वा यथासंख्यं=संख्यामनतिक्रम्य=अनुल्लङ्घ्य गणनाक्रमेण भवति । **समसम्बन्धी विधिः**=समानसंख्यावाला स्थानी आदेश क्रमसंख्या=गणना के अनुसार हो । प्रथम='ए' के स्थानमें अय् । 'ओ'को अव् । 'ऐ' को आय् । 'औ'को आव् हो ।

हरये-हरे-ए(हरिके लिए उद्देश्यसे एकपदे संहिता नित्या)यहां **एच्-ए, ओ, ऐ, औ** इस क्रमसे हरे में 'ए' प्रथम स्थानी है । वहां प्रथम आदेश, 'अय्' हुआ, अच् परे 'ए' है । वर्णसम्मेलने **हरये** (नमः) हरि उद्देश्यमे नमस्कार विधान । **मुने—ए मुनये । शे-अयनं शयनम्** । विष्णु के लिये अर्थमें, **विष्णवे**-विष्णो-ए इति दशायां एचोऽयवायावःसे एच् का द्वितीय स्थानी 'ओ'के स्थानमें द्वितीयादेश 'अव'यथासंख्य=गणनाक्रम से हुआ, अच् परे ए है । वर्णसम्मेलने **विष्णवे**, (नम इति) । **भो—अनं भवनम्** । **नायकः नै—अकः**=एच् दल का तृतीय स्थानी 'नै' में 'ऐ' के स्थान में आदेश दल का तृतीय आदेश आय् संख्याक्रम के अनुरोध से हुआ, अच् परे अकः का 'अ' है । न् आय् अकः । वर्णसम्मेलने—(नयति नाययति वा) **नायकः** नेता, सञ्चालकः, अभ्युदयकी ओर ले जानेवाला समाजसेवी प्रकृति प्रत्ययका मिलित अर्थ (प्रापणकर्ता) सन्ध्यर्थ है । क्रियाकारक भाव । **शै—अकः शायकः गै—अकः गायकः पौ—अकः पावकः** । यहां एच् प्रत्याहारका चतुर्थ स्थानी पकारोत्तरवर्ती औके स्थानमें चतुर्थ आदेश 'आव्' हुआ, गणना क्रमके बलसे । प् आव्—अकः वर्णसम्मेलने **पावकः** अग्निः, विष्णुश्च क्रियाकारकसम्बन्ध । स्वस्मिन् पतितानि द्रव्याणि जीवान्वा पुनाति स्वस्वरूपेण प्रवर्तयति । पवित्रकर्ता । **विशेषार्थः-हरये**=पापहारकाय नमः । कथं भूताय, **विष्णवे-ब्रह्माण्डव्यापकाय** पुनः कथं भूतः सः नायकः=ब्रह्माण्डसंचालन कर्त्ता । अनुग्रहेण जगतः पावकश्च= स्वस्मिन् पतितान् जीवान् स्वस्वरूपेण प्रवर्तकः । पावको भगवान् पापहारकः, ब्रह्माण्डव्यापकः, सन् जगन्नियन्ता । अपने शरणागत को अपने स्वरूप में ढाल देते हैं । अग्निवत् । लोहालाल **लो—अनः लवणः गो—अनं गवनम्** ।

(२४) वान्तो । हल्परे अव् आव् का सूत्र—अन्त एव आन्तः, व् आन्तः= अन्तावयवो यस्य 'असौ' वान्तः । 'व्' है अन्त अवयव जिसका वह (अव्-आव) वान्त है । यि=सप्तम्यन्तम् । यकारादिप्रत्यय परे । **यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे**, इति-परिभाषया-जिस अल् (एक वर्ण) प्रत्यय (य्)में सप्तमी विभक्ति हो, वहां तदादि= (यकारादि) की उपस्थिति हो । अर्थः—यकार हो आदिमें ऐसे प्रत्ययके परे स्थानी= ओ, औके स्थानमे गणना क्रम से अव् आव् ये दोनों वान्त आदेश हों । यथा गो -

यादौ प्रत्यये परे ओदौतोरवावौ स्तः । गव्यम् नाव्यम् । (अध्वपरिमाणे च) गव्यूतिः (२५) **धातोस्तन्निमित्तस्यैव** ।६।१।८०। यादौ प्रत्यये परे धातोरेचश्चेद्वान्तादेशस्तर्हि तन्निमित्तस्यैव नान्यस्य । लव्यम् । अवश्यलाव्यम् । तन्नि

यम्-अत्र यकारादि प्रत्यय यम् । यकारपरे गकार उत्तरवर्ती ओके स्थानमें वान्त'अव् आदेश हुआ, वर्णसम्मेलने । **गव्यम्** (गोर्विकारः) प्रकृति गोः=गायका, य प्रत्यय का विकार=दूध-दही, घी, गोबर, मूत्र मिलाकर गव्य अर्थ है । गोसम्बन्धिनः पञ्चविकाराः' इस एकार्थीभाव (तद्धितवृत्ति) का प्रकाशक अव् सन्धि है । अन्यथा प्रयोजनमनुदिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते । बिना मतलब के मूर्ख भी क्रियाशील नहीं होता । साधुत्वमगतिगतिः । गवे हितं गव्यम् घास भूसा आदि । **भो—यं भव्यं, नव्यं नो—यम्** । नद्यां जलं **नाव्यं** पानीयमस्ति अथवा नावा=नौकया तार्यं—तर्तु (पूर्वतटात्परतटं गन्तुं) योग्यं, जलम् । **नौ–यम्** अत्र औ स्थाने 'वान्तो यि प्रत्यये इति आव् आदेशे । नौकासे पार होने योग्य जल, अर्थ आव् से प्रभावित है । **भो–यं भाव्यं पौयं पाव्यम्** श्रौ=यं श्राव्यम् । (वा) अध्वनः=मार्गस्य परिमाणं=(मात्रा) गम्यमाने सति, च-पदेन ओकारस्थाने अवादेशो भवतीति लभ्यते, यूतिशब्दे परे । दो कोस परिमाण अर्थवाचक **गो—यूतिः** इतिदशामे यूतिशब्द परे गोगत ओस्थाने अवादेशे । वर्णसम्मेलने **गव्यूतिः** (स्त्रीक्रोशयुगम्) स्त्रीलिङ्ग तथा दो कोसका मापदण्ड गव्यूति है । मम ग्रामः गव्यूतिरस्ति ।

ननु यकारादिप्रत्ययपरे ओ औ स्थाने अव् आव् आदेशौ क्रियेते तर्हि ओयते, औयत इत्यादौ अपि यकारादिप्रत्ययपरे ओ औस्थाने अव् आव् च भविष्यतः(जो नही होना चाहिये) अतो नियन्त्रकं नियमसूत्रं—

(२५) धातोः एच् । वान्तो यि प्रत्यये, की अनुवृत्ति । यकारादिप्रत्ययपरे धातुके एच (ओ औ) को वान्त (अव् आव्) आदेश हो तो तन्निमित्तस्यैव–तत् (य) यकारादिप्रत्ययः निमित्तं (कारणभूतं) यस्य ओकारस्य औकारस्य च तन्निमित्तकधातुः (जहां यकारादिप्रत्ययको कारण मानकर गुणवृद्धि ओ औ धातु को हुआ हो वही वान्त अव् आदेश हो)नान्यस्य-धातुके अन्यनिमित्तक एचको वान्त नहो,एवकारःनियमसूत्रस्यसूचक इष्टतोऽवधारणार्थः(इष्ट अर्थका निश्चायकहै) यथा लव्यं,त्वं क्षेत्रान् लुनीहि इति त्वया लवितुं योग्यं **लव्यं** क्षेत्रं, लूञ् छेदने । कर्म अर्थमे यत्परे 'लू' ऊकारस्य सार्वधातुकार्धधातुकयोः (ओ) गुण (यत्को आर्धधातुक मानकर गुण) ओकार धातुका एच् बना, लव्यं क्षेत्रं कदलीफलं वा । अवश्यं लवितुं योग्यं अवश्यलाव्यम्(कण्टकवृक्षःशत्रुश्च) अवश्यं (अव्यय) के उपपद रहते । ओरावश्यके इति कर्मणि ण्यत् । अचोञ्णिति 'लू' औकारस्य वृद्धिः । मयूरव्यंसकादिसमासे लुम्पेदवश्यमः यलोपे । अत्र यो वृद्धिः औकारः स धातोः अवश्य यकारादिप्रत्ययजन्यः तस्य स्थाने आवादेशे । अवश्यलाव्यं तृणम् । वान्त (अव्) आदेशः । पूर्वसूत्रेण सिद्धः । इदं सूत्रं किमर्थं ? पूर्वेण सिद्धे आरभ्यमाणो विधिः नियमाय कल्प्यते (वह नियम (विधि)की जिज्ञासासे) पृच्छति—तन्निमित्तस्यैव इति किं ? नियमस्य किं फलं, तत्र फलं दीयते । ओयते–तन्तुसन्तानार्थकवेञ्धातोः कर्मणिलट् आत्मनेपदे यक्प्रत्यये । वाचिस्वपि इति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घे आ— ऊयते, आ ऊस्थाने गुण - एकादशे ओयते ।

मित्तस्य किं ? ओयते । औयत ।। (२६) **क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे** । ६।१।८१।। यान्तादेशनिपातनार्थमिदम् । क्षय्यम् । जय्यम् । शक्यार्थे किं ? क्षेतुं जेतुं योग्यं क्षेयं पापं जेयं मनः ।(२७) **क्रय्यस्तदर्थे** ।३।१।८२।। तस्मै प्रकृत्यर्थायेदं तदर्थम् । क्रेतारः क्रीणीयुरिति बुद्धया अपणे प्रसारितं द्रव्यं क्रय्यम् । क्रेयम

अत्र यकारादिप्रत्ययपरे ओस्थाने अव् प्राप्यते, नियमेन निषेधः क्रियते । (क्योंकि यहां का ओकर यकारादिप्रत्यय निमित्तक नही है । किन्तु आद्गुणःसे है) न च वर्णद्वयापेक्ष्यो बहिरङ्गः अव् आव् आदेशे कर्तव्ये गुणो असिद्धःस्यात् । ओकारो न मिलिष्यति अवादेशप्राप्तिरेव नास्ति ।अतो ब्रूते औयत भूतकालिकतन्तुसन्तानानुकूला क्रिया । वेञ् धातोः कर्मणि लङ् त, आट् आटश्चेतिवृद्धिः (औकारमें अन्तादिवच्चसे परपदके आदि भाव से धातु का अवयव ओ है । परन्तु प्रत्ययनिमित्तक ओकार होनेसे वान्त (अव्) न होना नियमका फल है) अत्र वृद्धिर्न बहिरङ्गा । अस्मिन्नियमसूत्रे एवकारग्रहणस्य फलं, तु विपरीतनियमस्य निवृत्तिरिति । यदि एवकारो न स्यात्तदा यकारादिप्रत्ययनिमित्तं मत्वा एचः स्थाने वान्तादेशः स्यात्तर्हि धातोरेव इति । दोषस्तु न, बभ्रोरपत्यं बाभ्रव्यः । बभ्रू य ओर्गुणः ओकारस्य अव् भवति । अत्र धातु सम्बन्धी एच् नास्ति । अतः अभीष्टार्थनियमावधारणार्थ एवकारः ।

(२६)क्षय्य-इति शक्त्या उपस्थितो अर्थः शक्यः। बोधकताशक्तिसे उपस्थित अर्थ समर्थ है । उसका वाचकशब्द क्षय्य, जय्य है । सूत्रमें विधेय कार्य क्या है ? अतः बोले यान्तादेश (अय) के लिये यह सूत्र है । बिना विधायकसूत्रके सिद्ध शब्दस्वरूपको निपातन कहते है । **शक्यार्थ**—**शब्दशक्तिसे यकारादिप्रत्ययपरे** क्षयार्थक–क्षि,—जयार्थक जि–धातुके एच्को अय् आदेश हो । यह अयादेश समर्थ अर्थका प्रकाशक है । क्षेतुं ध्वंसं, नाशं कर्तुं शक्यं समर्थविषयः **क्षय्यम्** । क्षिधातोः कर्मणि यत् । गुणे **क्षेयम्** नाशमें समर्थ अर्थप्रकाशक अयादेश सूत्रसे । मेरे सामर्थ्यसे क्षय होने योग्य रोग रिपुभी । जेतुं स्ववशीकर्तुं शक्यं समर्थजयं (आलस्य हमारी शक्ति से जीतने योग्य) **जय्यम्** जे—परिजिति-दशायां **विजयसामर्थ्यप्रकाशकः** क्षय्यजय्यौ सूत्रेण अय् आदेशः। सूत्रे शक्यार्थं (सम्भव अर्थ) कहने का क्या फल है तब बोले क्षेतुं योग्यं, (क्षयं कर्तुमर्हं) क्षेयं पाप क्षय के लायक है) परन्तु शक्य सामर्थ्यके बाहर है । अतः न अयादेशः । एवं जेतुं वशीकर्तुं योग्यमर्हं जेयं मनः जीतने लायक । परन्तु शक्तिके बाहर है । (अय् नही हुआ) अर्हेकृत्यतृचश्च इति कर्मणि यत् ।

२७ **क्रय्यः**=इदं सूत्रं यान्त (अय्] आदेशनिपातनं कुत्र करोति ? अतः ब्रूते तदर्थे=तस्मै **प्रकृत्यर्थाय**=क्रय्यं शब्दे प्रकृतिः क्रीधातुः । यस्य द्रव्यविनिमयो [खरीदना बेचना] अर्थः वे लोग खरीदे इस [शक्य] अर्थमें यत्प्रत्ययकी प्रकृति तत् शब्दसे ग्राह्य है । तस्मै इदं तदर्थं क्रय्यार्थं वस्तु अर्थमें अयादेश निपातनसे हो । यहां क्रयण [खरीदना] अर्थ फलोपधायक=तुरन्त फलदायक इष्ट है । अतः बोले क्रेतारः क्रीणीयुः [खरीददार खरीदें] इति बुद्धया [इस ख्यालसे] आपणे हाटके [बाजारमें] प्रसारितं द्रव्यं [फैलाई हुई वस्तु] **क्रय्यं** है । क्रे-यम् इतिदशायां तदर्थका प्रकाशक अयादेश । यत्रैव तत्रैवम् । अन्यत्र=जहां उक्त अर्थ नही है । वहां

न्यत् क्रयणार्हमित्यर्थः ।(२८) अदेङ्गुणः ।१।१।२। अदेङ् च गुसंज्ञः स्यात् । (२९) तपरस्तत्कालस्य १।१।७०। तःपरो यस्मात् तात्परो वा उच्चार्यमाणो वर्णः समकालस्यैव संज्ञा स्यात् ॥ (३०) आद्गुणः ।६।१।८७। अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुणादेशः स्यात् । उपेन्द्रः । रमेशः । गङ्गोदकम् ॥ (३१) उपदेशेऽजनुनासिक इत् ।१।३।२। उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात् । प्रतिज्ञा

क्रेयम्, गृहादौ अन्नसंग्रहालये भोजनाद्यर्थं एकत्रीकृत धान्यान्यादिकम् ।

(२८) अदेङ् अत्=ह्रस्व अकार एङ्=ए, ओ, च पदसे विशिष्टगुण (अर् अल्) भी गुणसंज्ञक हैं । अर्थात् ह्रस्व अकार एकार ओकारकी गुणसंज्ञा हो । यहां अकार ह्रस्व ही क्यों लिया जाय, इसका निर्णायक नियमसूत्र बोले—(२९) तपर इति—'त' हो परे जिससे बहुव्रीहि और तात्परः=(तत्पुरुष) तकार से परे उच्चारित वर्ण अपने समकालस्य=समानमात्राकाल का ही बोधक हों । तकार एक मात्रा या दो के साथ उच्चरित हो तो कार्य भी उसी मात्रा का बोधक होगा । ह्रस्व के साथ ह्रस्व का, दीर्घ के साथ दीर्घ का, प्लुत के प्लुत का बोधक है । यथा—'अदेङ्गुणः' सूत्र में अत् का तकार 'अ' से परे है । यहां अकार का समकाल एकमात्रा है, वही अकार गुण होगा । आ नही तथा 'त'से परे एङ्=ए ओ दोनों दो मात्रा काल वाले हैं उनकी दो मात्रा ही, संज्ञा होगी । एक या तीन मात्रा नहीं यह तपर का प्रभाव हैं। उससे अधिक या न्यून काल (मात्रा) का बोध नहीं । वृद्धि आत् ऐच् । आत् को दो मात्रा आ (तसे परे ऐ औको) दो मात्राकी वृद्धि ।

(३०) आत् पञ्चम्यन्तं गुणः=प्रथमान्तम् । अवर्णान्त्=अवर्णसे अच् प्रत्याहार के अक्षर परे रहते पूर्वपरयोः=पूर्ववर्ण तथा परवर्ण के मिलित=स्थानमें एक ही गुण आदेश हो । जिसका निर्णायक स्थानकृतसादृश्य है । यथा—उप—इन्द्रः दशामें अवर्ण 'उप'=पकारोत्तरवर्ती अकार, अच् परे इन्द्रः का 'इ' । पूर्व 'अ', पर 'इ' के स्थान में एक ही गुण आदेश हो । परन्तु गुण (अदेङ्गुणः) अ, ए, ओ ३ है, कौन गुण हो, जहां अनेक आदेश हो वहां स्थानदर्शननिर्णायक होगा । 'अ' का कण्ठ, 'इ' का तालु स्थान है कण्ठतालु स्थानी अ इ के आदेशमें (एदैतोः) कण्ठतालुस्थानक एकार गुण हुआ । उपेन्द्रः (इन्द्रस्य=अवरजो वामनः) वलि वसुधा याचते वामन-भगवान् (इन्द्र का छोटा भाई) अर्थकी शक्ति गुणसन्धिसे व्यक्त है । एवं नरेन्द्रः मृग—इन्द्रः=मृगेन्द्रः रमा—ईशः रमेशः गण—ईशः=गणेशः । गङ्गायाः उदकम् देवनद्याः जलम् अर्थः गङ्गा—उदकम् यहां अवर्ण आ से अचि परे 'उ' है, पूर्वमे 'आ' पर में उ कण्ठोष्ठस्थानी (आ उ ' के स्थान में कण्ठोष्ठस्थानी ओकार गुण हुआ । प्रातः गङ्गोदकं पेयम् । गङ्गासम्बन्धी पानी अर्थ का प्रकाशक गुणसन्धि । प्र—उढवान् प्रोढ़वान् । भाग्य-उदयः भाग्योदयः, चन्द्रोदय । स्व—उन्नतिः स्वोन्नतिः (३१) उपदेश=पाणिनिकात्यायनपतञ्जलिके प्रथमोच्चारणदशामें अनुनासिक अच् इत् हो । उपदेश=आद्य उच्चारण धातु प्रत्यय आगम आदेश आदि अवस्थाका अच् कार्यके अनुरोधसे प्रतिज्ञानुसार अनुनासिक मान्य हो या नासिकाके सहारे मुखोच्चारित अच् हो,किन्तु उपदेश हो उसकी इत्संज्ञा अप्रयोग ही । नासिका मनुगतः मुखसहित नासिकयोच्चारितोऽच् (स्वर) इत्=गच्छति चला जाय । यद्यपि

नुनासिक्याः पाणिनीयाः । लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञाः (३२) उरण् रपरः ।१।१।५१। ऋ इति त्रिंशतः संज्ञे त्युक्त, तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते । कृष्णर्द्धिः । तवल्कारः ॥ (३३) लोपः शाकल-

सभी अच् अनुनासिक नहीं है, तथापि कौन अच् कहां कैसे अनुनासिक समझा जाय निर्णायकवचन बोले—'प्रतिज्ञा, इति । पाणिनीयाः=पाणिनिकात्यायनपतञ्जलि से प्रोक्त उच्चारित वर्ण तात्पर्यावृत्ति से पाणिनीयाः हैं । वे प्रतिज्ञा से अनुनासिक समझे जाते हैं (प्रतिज्ञा कुत्र तिष्ठति कथं ज्ञायते ? तत्र सूत्रनिर्देशः प्रमाणम्,) यथा प्रयोग की सिद्धि के अनुरोध से अच् में अनुनासिक की प्रतिज्ञा समझे । यथा 'र' प्रत्याहार सिद्धि के अनुरोध से लण् सूत्रका अकार अनुनासिक माना गया (ताकि र से र्–ल का बोध हो) ल का अ इत् हुआ, यथा–अन्त्य इत् 'अ' तत्सहित आदि 'र, वह मध्यवर्ण 'ल' तथा अपना भी बोधक हुआ । इसी आशय से बोले "लण्सूत्रे तिष्ठतीति लण्सूत्रस्थः–इति=लण् सूत्रमें स्थित अकारके साथ उच्चारण किया गया रेफ र् ल् का बोधक हो । इत् से 'अ' के हल् में मान्यकी नहीं । तवल्कारः मुख्य फल है । (३२) उरण उः षष्ठयन्तम् (ऋस्थाने) अण् रपर, ऋ तीस प्रकार का संज्ञा प्रकरण में कहा गया । तत्स्थाने=ऋ के स्थानमें जायमान (हुआ) अण् रपरः सन्नेव=होकरही प्रवृत्त हो । रेफ शिरस्कौ अर्-आरौ गुणवृद्धी स्तः । यहां 'र' प्रत्याहार मान्य है । ताकि 'र' से ल का भी बोध हो । ऋ का लृ के स्थान में जायमान अण् क्रम से रपर् तथा लपर हो । यथा–कृष्णस्य ऋद्धिः=कृष्णसम्बन्धी सम्पत्ति, ऐश्वर्य, अर्थका प्रकाशक कृष्ण–ऋद्धिः । पूर्वमें णकार उत्तरवर्ती अ तथा पर में ऋ दोनों के (पूर्व पर) स्थान में एक ही गुण आदेश अ हुआ । यद्यपि अ और ऋ के स्थान दर्शन में एकता, स्थानकृत समानता नहीं मिलती, कण्ठस्थानी अकार का मूर्धास्थानी ऋ के साथ स्थान समान नहीं है, एवं मूर्धा स्थानी ऋ का अ के साथ सादृश्य नहीं तथापि 'नष्टाश्वरथन्यायेन' जंगलमें एक का रथ टूटा घोड़ा है । दूसरे का घोड़ा मरा रथ है । घोड़ा रथ दोनों के संयोजन से ही यात्रा माङ्गलिक सम्भव है । दोनों में अभावकी बराबरी—तुल्यता है । ऐसे ही 'अ' का कण्ठ स्थान है तो मूर्धा नहीं । ऋ का मूर्धा है कण्ठ नहीं । अभाव का सादृश्य है जैसे—अवसर संगति के अनुसार रथ घोड़े का सामञ्जस्य जुड़ा । वैसे ही अ तथा ऋ अवसरवाही प्रवृत्ति से जुड़ गये । तो दोनों कण्ठमूर्धा बन गये । (अराराविति वाच्यम) के अनुसार अर् गुण हुआ । रेफ का उर्ध्वगमन जैसे—तुम्बिकातृणकाष्ठञ्च तैलं जलं समागमे । उर्ध्वस्थाने सम्प्रयान्ति रेफाणामीदृशगतिः । जल में तैल, तृण काष्ट, जैसे ऊपर हो जाते हैं । एवं आधा रेफ सिर पर सवार होता है, वर्ण सम्मेलने

कृष्णर्द्धिः । स्वरं दृष्ट्वा अधो याति, हल उपरि गच्छति ।
खर्यवसाने विसर्गः स्यात् त्रिधा रेफस्य वै गतिः ॥

देव–ऋषि देवर्षिः । बसन्त–ऋतुः बसन्तर्तुः । राजर्षिः । तवल्कारः तव–लृकारः (तुम्हारी टेढ़मेढ़ कूबड़) समासार्थमें "आद्गुणः," पूर्वमें वकारोत्तरवर्ती अकार और परमें लृकार, दोनोंके स्थानमें उरणरपरः सूत्र सहयोगसे लपर अल् गुण, हुआ ।

यस्य ।८।३।१९। अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्वा लोपोऽशि परे । (३४) पूर्वत्रासिद्धम् ।८।२।१। अधिकारोऽयम् । तेन सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् । हर इह हरयिह। विष्ण इह। विष्णविह । (३५) वृद्धिरादैच् ।१।१।१ आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् । (३६)

तल्लकारः । तुम्हारी लृ की तरह वक्र आकृति मल्कारः क्षत्रल्कारः । मम–लृकारः

(३३) लोपः=अदर्शनं, शाकल्यस्य=शाकल्यनामक आचार्यके मतमें । अवर्णपूर्वमें हो ऐसे पदान्त यकार वकारका लोप हो अश् अक्षर परे । अन्य आचार्यके मत में लोप नहीं होता । इससे विकल्प सिद्ध है । (३४) पूर्वस्मिन्निति पूर्वत्र, पूर्वं से परका आक्षेप, दोनों शब्द दिशा-वाची हैं, पूर्व की दृष्टिमें पर असिद्धं= जहां दिशावाची शब्द हो, वहां अवधिबोधक पर या पूर्वपदका अध्याहार अपेक्षित है । पूर्वशास्त्र की कर्तव्यता में परशास्त्र असिद्ध हो । ८अध्याय ।२ पाद १ सूत्र 'पूर्वत्रासिद्धम्' है , उसके पूर्व सवासात अध्याय-जिसका वाचक सपादसप्ताध्यायी शब्द है शेष तीन पादका वाचक त्रिपादी । अतः सपादसप्ताध्यायीके प्रति त्रिपादी-शास्त्र असिद्ध हो । इस विधानसे विधिसूत्र हुआ । अधिकारसूत्र भी है उत्तरोत्तर सभी त्रिपादीसूत्रोंमें जाकर पूर्वके प्रति परको असिद्ध करता है, इसलिए कहा कि-'त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्' । पादेन सहिता सपादा, सप्तानाम् अध्यायानां समाहारः सप्ताध्यायी (त्रिलोकी इव) सपादा चासौ सप्ताध्यायी च सपादसप्ताध्यायी तां प्रति । त्रयाणां पादानां समाहारः त्रिपादी (त्रिलोकी) असिद्धा असिद्धवद्भवतीत्यर्थः । त्रिपादीमें भी पूर्वके प्रति पर सूत्र असिद्ध हो । हर इह । यथा हे हरे–इह आगच्छ । रकारोत्तरवर्ती एकारस्थाने एचोऽयवायावः इति अय् आदेशे अचिपरे इह हरय् इह । पदान्त यका लोपःशाकल्यस्य सूत्रसे, शाकल्याचार्यमत में लोप, अशिपरे 'इह'।हर इह । रमें अ-इ स्थानमें गुण प्राप्त, जो सपादसप्ताध्यायी है । उसकी दृष्टि मे त्रिपादी (लोप के) असिद्ध होने से गुण नहीं हुआ । हर इह । अन्यके मतमें यलोप नहीं होता वर्णसम्मेलन हरयिह बना । हे हरे इह= संसारे मां पातु=रक्षतु । भजते–इति भजत इति । मुख इति । विष्ण इह विष्णो–इह णकारोत्तर ओकारस्थाने एचोऽयवायावःसे अव् आदेशे, अच्परे इ । शाकल्याचार्यमते पदान्त वलोपे,विष्ण इह अत्रगुणो, न प्राप्नोति, गुणं दृष्टया यलोपस्य असिद्धत्वात् । अन्यमते वकारस्य लोपो न भवति हे विष्णविह मह्य धनं ज्ञानञ्च देहि । ये–इह य इह, ययिह । ते आगच्छतः तआगच्छतः विधो उदिते विधा उदिते । वन ।

ऋषयः । (३५) वृद्धि आत्, ऐच् त्रिपद सूत्रम् । आत्=अकारः, ऐच्=ऐ, औ । चकारात्=आर् आल्को भी ' वृद्धिसंज्ञा हो । आत्का तपर अपने पूर्व आ तथा पर (ऐ, औ) के समान मात्राकाल का बोधक है । यह वृद्धि द्विमात्रिक ही है । प्रथम विधेय पीछे उद्देश्य क्यों ? वृद्धिके माङ्गलिक होने से । वृद्धिशब्दो मङ्गलार्थकः मङ्गलादीनि शास्त्राणि प्रथन्ते ।(३६) वृद्धिरेचि=वृद्धिः एचि द्विपद सूत्रम् । ऊपरसे आत् आया । अवर्ण (१८ प्रकार) से एचि=(ए ऐ, ओ औ) परे, पूर्व तथा पर के स्थान में एक ही वृद्धि आदेश हो । यह वृद्धि गुण का अपवाद–बाधक है । 'निरवकाशो विधिरपवादः' । अपवदति=दूरीकरोति प्रतिपक्षिणम् । अपोद्यत इति (जो

वृद्धिरेचि ।६।१।८८। आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः । गुणापवादः कृष्णैकत्वम् गङ्गौघः। देवैश्वर्यम् । कृष्णौत्कण्ठ्यम् (३७) एत्येधत्यूठ्सु ।६।१।८९। अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । पररूपगुणापवादः ।

निरवकाश है कहीं प्रवृत्ति नहीं वही अपवाद, यन्नैवं तन्नैवम् है(अनुवाद्यमनुक्त्वैव न विधेयमुदीरयेत्) आ ऐ औ कहे विना वृद्धि क्यों कहा ? शुभकामना की सद्भावना से । समास में सन्धि नित्य है कृष्णस्य एकत्वं षष्ठीतत्पुरुषः **कृष्णैकत्वं** यथा कृष्ण–एकत्वं दशामें 'वृद्धिरेचि' से कृष्ण णकारोत्तरवर्ती अकार तथा पर में 'ए', दोनोंके स्थानमें प्राप्त गुणको बाध कर वृद्धि एकादेश हुआ, एच्परे एकारः । यद्यपि वृद्धि (आ ऐ, औ) तीन हैं तथापि स्थान दर्शनसे **अन्तरतमः**=अतिसन्निकट अतिसदृश आदेश हो । कण्ठतालुस्थानी अ—ए के स्थान में कण्ठतालु स्थानी 'ऐ' वृद्धि हुई। **कृष्णैकत्वम्** । कृष्णकी एकता अखण्डता (ब्रह्म-शक्ति) समासार्थका ज्ञान करानेवाली वृद्धि हैं । **गंगा+ओघः** सं-सं अवर्ण गङ्गाका आ । एचिपरे ओकार पूर्वपर आ ओ स्थाने आद्गुणः से प्राप्तगुणको बाधकर 'वृद्धिः एकादेश । **गंगौघः** । कण्ठोष्ठस्थानी औकारः। स्थानसमानता अस्ति। अस्मिन्वर्षे महान् गङ्गौघः । (बाढ़) समागतः। (गङ्गाकी तेज धारा) संयुक्तार्थकी प्रकाशिका वृद्धि । **ओघो वृन्दे पयोवेगे यत्रनृत्योपदेशयोः । देवैश्वर्यम्** सकलगुणविशेषता च ऐश्वर्यम् । देवानामैश्वर्यम् ईश्वरभावः (सर्वस्वम्) समासे संहिता नित्या । देव+ऐश्वर्यम् । यहां भी पूर्वमें अकार परे ऐकार कण्ठतालुस्थानी अ ऐ के स्थान में प्राप्त गुण बांधकर वृद्धिरेचिसे कण्ठतालुस्थानी ऐकारवृद्धि हुई । **देवैश्वर्यम्** । उत्कण्ठायाः=उत्सुकतायाः भावः **औत्कण्ठ्यम्** कृष्णस्य **औत्कण्ठ्यम्** । राधादर्शनके प्रति उत्सुकता अर्थमें कृष्ण+औत्कठ्यम् । यहां पूर्व अकार परमें औकारके साथ मिलितस्थानमें वृद्धिरेचिसे कण्ठोष्ठस्थानी औ वृद्धि हुई, ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । कृष्ण भगवान्की एकता संगठन, या अखण्डशक्ति राधाजी गङ्गाकी धाराके तुल्य हैं और देवताओं का ऐश्वर्य(सर्वस्व) है उन्हींके विषयमें कृष्णकी उत्कण्ठा,लालसा चाह अभिलाषा अधिक है । जनानामेकता **जनैकता** जन+एकता । **पञ्चैतानि** पञ्च–एतानि मकरन्द एव सुख+औपयिकम् (उपाय एव) सुखौपयिकम् । अर्जुन+औत्सुक्यम् अर्जुनौत्सुक्यं, भीमौदार्यम् ।(३७) **एत्ये**–एतिश्च एधतिश्च ऊठ् च इति एत्येधत्यूठः तेषु । इस सूत्रमें एचि आत् आते है । एच्का अन्वय एति एधति के साथ है । ऊठ् के साथ नहीं । क्योंकि एजादि ऊठ् कहीं नहीं मिलता । सम्भवव्यभिचाराभ्यां स्याद्विशेषणमर्थवत् । न शीतेन न चोष्णेन वह्निः क्वऽपि विशेष्यते । गरम चाय क्यों कहते हैं वह ठण्डी भी होती है । गरम आग दो क्यों नहीं कहते, वह ठण्डी होती नही । गरम सम्भव है व्यभिचार नहीं । चायमें गरम ठण्ड दोनों है विशेषण लगेगा । अतः वृत्तिमें–

अवर्ण से एजादि एति, एधति परे हो या अवर्ण से ऊठ् परे हो पूर्व परके स्थान में एक ही वृद्धि आदेश हो । यह वृद्धि पररूप (एङिपररूपं) तथा गुण (आद्गुणः) दोनों का अपवाद=बाधक है समीप जाता है । **उप+एति** । यहां अवर्ण उप 'प'

उपैति। उपैधते प्रष्ठौहः। एजाद्योः किम् ? उपेतः। मा भवान्प्रेदिधत्। (स्वादीरेरिणोः) स्वैरम्। स्वैरी। स्वैरिणी। (अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्)। अक्षौहिणी सेना। (प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु) प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः।

उत्तरवर्ती अ, एजादि परे 'एति' अ ए के स्थान में प्राप्त गुण बाधकर 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि प्राप्त है, तं प्रबाध्य पररूपं प्राप्नोति। पररूप को बाधकर उक्तसूत्र से विशेषवृद्धि हुई। **उपैति**। शिष्यः गुरुमुपैति भार्या वा। **उपैधते**-उप समीपे, एधते-वर्धते अर्थ में उप+एधते। यहां भी अकार एकार के स्थान में प्राप्त गुण, वृद्धि, पररूप का क्रमशः बाधन होता हुआ। उक्तसूत्र से वृद्धि एकादेश हुआ। दिलीपः लताप्रवानमुपैधते। **प्रष्ठ—ऊह** इति दशायाम् अकारोकारयोः स्थाने एत्येधत्यूट्—सूत्रेण वृद्धिकादेशे **प्रष्ठौहः** प्रष्ठ (जूआ)। प्रष्ठवाट् युगपार्श्वयोः।

ऊहः=नद्धः नाधा गया 'पाटा' क्षेत्र समीकरणकाष्ठ जोता खेत को समतल करनेवाला। **एजाद्योः किं ?** सूत्रमें एति, एधति, का विशेषण एजादि क्यों माना ? इसलिये कि उपेतः उप-इतःमें वृद्धि न हो। (समीपं प्राप्नोति) यह सत्य अर्थ वृद्धि होनेपर न होता। शब्दका स्वारस्य (निजीअर्थ) नष्ट हो जाता। गुणसे शक्तिसुरक्षित अतः एजादि पढ़ा। एवं मा भवान् प्र-ईदिधत् आप न बढ़ें, इस अर्थमें गुणसन्धि ही समर्थ है। वृद्धि होने पर उक्त सन्दर्थ न होता। इसी लाभ के लिये एजादि विशेषण दिया। अप-एति **अपैति, सवैधते। अवैधते। अवैति।**

(वा) स्वादी=स्वशब्दके अंश अवयव अकारसे ईर और ईरिन् शब्दका अंश अच्परे पूर्वपर (अ ई) स्थाने ऐ वृद्धिः। ईर् गतौ ईरणं गमनं प्रापणं ज्ञानं मोक्षः ईरः स्वेन स्वच्छन्देन ईरः (गतिः) कर्तृकरणे कृता सह समासे। स्वतंत्रगमनरूप समासार्थप्रकाशिका स्व—ईरः इति दशायां प्राप्तं गुणं बाधित्वा स्वादि० वार्तिकेन वृद्धि **(स्वैरः)** स्वानां आत्मीयानां ईरः (मोक्षः) स्वस्य आत्मनो ज्ञानं, स्वस्य धनस्य ईरः प्राप्तिः। सभी समासके अर्थका प्रकाशकवृद्धिः। स्वच्छन्दगमनं स्वेन स्वेच्छया ईरितुं भ्रमितुं संचरितुं शीलं स्वभावो अस्य ताच्छीलिके कर्तरि णिनिः स्वतन्त्रविचरणं शीलं स्वभाववान्। **स्व—ईरी** गुणे प्राप्ते स्वादी० वार्तिकेन **स्वैरी** वृद्धिः। या स्त्री **स्वेच्छाचारिणी। सद्यनप्राप्तकर्त्री** तत्र लिङ्गबोधकप्रत्ययङीप्सहितस्य ग्रहणं, प्रत्ययग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्य ग्रहणात्। ततो वृद्धिः। **स्वैरिणी।**

सूत्रकारस्य न्यूनतां दृष्ट्वा वार्तिककारः, प्रपूरयेत्। केवल एति, एधति ऊठ्परे ही नहीं अपितु अन्यत्रापि गुणापवाद वृद्धि आवश्यक। अतः बोले—**अक्षादिति** अक्षशब्दका अवयव अकारसे, उहनी शब्दका अवयव अच् परे पूर्व परके स्थान में वृद्धि हो। सेनाका परिणाम विशेष **अक्षौहिणी**। **अक्ष-ऊहिनी** यहां अवर्णसे उकारपरे प्राप्तगुणको बाधकर (वा०) से वृद्धि हुई। 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' से णत्व अक्षौहिणी। **अयुतञ्च नागा त्रिगुणीरथानां लक्षैकयोधा दशलक्षवाजिनाम्। पदातिसंख्या षट्कोटित्रिशतः अक्षौहिणी तां मुनयो वदन्ति।**

प्रादु इति=प्रशब्दावयव अकारसे ऊहः ऊढः ऊढिः एषः एष्यः इन शब्दोंका

प्रैष्यः। (ऋते च तृतीयासमासे)। सुखेन ऋतः सुखार्तः। तृतीयेति किं? परमर्तः। (प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे)। प्रार्णमित्यादि। (३८) उपसर्गाः क्रियायोगे।१।४।५६। प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः। प्र परा

अवयव अच् परे रहते पूर्वपर वर्णोंके स्थानमें वृद्धि (एकादेश) हो। प्रौहः-ऊहः वितर्के प्रकर्षः ऊहः। श्रेष्ठतर्क अर्थमें प्र—ऊहः प्राप्तगुण बाधकर वार्तिकसे वृद्धि हुई प्रौहः निपुणस्तर्के स्यात्। प्रकर्षस्तार्किको वाक्कीलः आगच्छति। प्रकर्ष भार-मुह्यते अधिकभारवहनशक्तिशाली अर्थका प्रकाशक प्र-ऊढःमें प्रका अवयव असे ऊढ का अवयव ऊ परे कण्ठोष्ठस्थानी अ ऊ के स्थान में गुणापवाद कण्ठोष्ठस्थानी औ वृद्धि, वार्तिक से हुई। भारी बोझवाहक प्रौढः। अयं विद्वान् धनवान् वा प्रौढो वर्तते। अधिक शक्ति (मजबूत) अर्थ। प्रौढिः प्र-उढिः में पूर्व पर अ उ के स्थान में वार्तिकसे गुणापवाद वृद्धि सन्धि हुई। तव प्रौढिः अतुलनीयाः। प्रेरणा अर्थका प्रकाशक प्र-एषः इस पद विच्छेद में अ-ए, के स्थान में प्राप्त गुण, वृद्धिः आद्गुण एङि, पर एक दूसरे को बाधते हुए अन्त में प्रादु-वार्तिक से वृद्धि हुई। ईश्वरस्य प्रैषः (प्रेरणा) प्रचलति सर्वत्र। प्रेषयितुं योग्यः प्रैष्यः (ण्यत्) (सेवकः) प्र-एष्यः में पूर्ववत् वृद्धि। (वा०) ऋते-अवर्णसे ऋत् शब्दका अवयव अच् परे पूर्वपर क स्थान में वृद्धि हो। तृतीयासमासार्थ हो तो। सुख हेतु से ऋतः (प्राप्तः युक्त) सुख से पूर्ण, सुखी अर्थ तृतीया समासार्थ है सुखार्तः सुखेन ऋतः सुख-ऋत दशाने गुणको बांधकर ऋतके साथ तृतीयासमास देखकर वार्तिकसे आर्वृद्धि। उरण् रपरःकी सहायतासे, सुखार्तः। तृतीयेति किं? तृतीया ग्रहण न होता तो किसी भी समास का अर्थ रहते ऋत् के साथ वृद्धि होती। परमश्चासौ ऋतश्च इस कर्मधारय समास के "श्रेष्ठसुखप्राप्ति अर्थ रहने पर वृद्धि हो जाती। वह न हो, यही तृतीया पद देने का फल है। जैसे परमा (अत्यधिका) लक्ष्मी यस्य असौ परमः। स चासौ ऋतश्च परमर्तः। लक्ष्मीवान् धनवान्, नम्रः अर्थ खोलने की शक्ति गुण में है। परम-ऋतः गुरुः। (वा०) प्रवत्सतर कम्बल वसन (वस्त्र) दशन ऋण शब्दोंका अवयव अकारसे ऋण शब्दावयव अच् परे पूर्वपरके स्थान में वृद्धि हो। प्रकर्षम् (अधिकं) ऋणम् बहुत अधिक (कर्जा उधार) अर्थ का बोधक प्र—ऋण यहां वार्तिक से प्र, का अ और ऋण का 'ऋ' मिलकर आर् वृद्धि। प्रार्णम्=बहुत ऋण। वत्सतराय ऋणं, बछड़े के लिए उधार अर्थ का वाचक वत्सर-ऋण, पूर्व अ, पर ऋ तयोः स्थाने आर वृद्धौ, वर्णसम्मेलने वत्सतरार्णम्। एवं कम्बलाय ऋणं, वसनाय ऋणम्, ऋणाय ऋणम् [अर्थमें कम्बल-ऋणम। पूर्व पर अ, ऋ के स्थानमें वृद्धि। कम्बलार्णम्। वसनार्णम्। ऋणार्णम्=एकऋण उतारनेके लिए दूसरा ऋण लेना ही ऋणार्ण है। दशभ्यो ऋणं दशार्णम्। दशव्यक्तिके लिए ऋण।

(३८) उपसर्गाः धात्वर्थफल जनिकायाः क्रियायाः योगे सम्बन्धे (उप=समीपे सज्यन्ते, समीपस्थशब्दस्य विशेषार्थाः प्रकाश्यन्ते यैस्ते) उपसर्गाः। प्रादयः=प्रपरा

अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप एते प्रादयः । (३९) **भूवादयो धातवः ।१।३।१।** क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः । (४० **उपसर्गादृति धातौ ।६।१।९१।** अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । प्रार्च्छति । (४१) **वा सुप्यापिशलेः ।६।१।९२।** आदुपसर्गादृकारादौ सुब्धातौ परे वृद्धिर्वा । आपिशलिग्रहणं पूजार्थम् । (४२) **अचो रहाभ्यां द्वे ।८।४।४६।** अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः

अप सम् इत्यादि क्रिया से जुड़े हों तो उपसर्ग संज्ञक हो । समीपस्थपद के विशेष अर्थ प्रकाशित करते है । यथा=हरणार्थक हृधातु से हार बनता है । जिसका हरण-क्रिया अर्थ है । प्र के जुड़जाने से प्रहार (कठिन चोट) विशेषार्थ हुआ । वि उपसर्ग से विहार, संहार परिहार, ये विशेषार्थ उपसर्ग से प्रकाशित होते हैं । मूल में सभी प्रादि परिगणित है । प्रभवति अनुभवति सम्भवति, पराभवति प्रक्रियते संस्क्रियते उपस्क्रियते । जिस क्रियाके योगमें आदि उपसर्ग होते है उस क्रियाका ज्ञापक सूत्र—(३९) **भूवादयः—भूश्च वाश्च भूवौ,** आदिश्च आदिश्च आदी, एक आदिका प्रभृति—इत्यादि अर्थ है दूसरे आदि का प्रकार सदृश (समान तुल्य) अर्थ है । भूवौआदी-येषां ते भ्वादयः भू० इत्यादि धातु 'वा' धातु के सदृश्य (तुल्य) हो तो धातुसंज्ञा हो । सादृश्यं क्रिया वाचकत्वेन गृह्यते । प्रमाण —एकक्रियाप्रधानमाख्यातम् एकतिङ्वाक्यं है । क्रियाप्रधान है । वा (गतिगन्धनयोः) धातुके गमन- गन्ध अर्थसे क्रियावाची अर्थ स्पष्ट है । उसी की समानता (सादृश्य) क्रियावाची 'भू' से है । अतः वृत्ति में "क्रियावाची भ्वादिकी धातुसंज्ञा हो" ऐसा कहा । भूर्भुवः का भू अव्यय वा अमान्य, क्रियावाची न होनेसे । प्रकरण क्रिया प्रधान है (४०) **उपसर्गात्=** उपसर्गसंज्ञक(समीपस्थपदके अर्थबोधक)प्रपरा आदि शब्द **ऋति**=ऋकारादि अवर्णान्त उपसर्गसे 'ऋ' अक्षर आदि में हो ऐसे धातुपरे रहते पूर्व पर स्थाने वृद्धि एकादेश हो । यथा **प्र—ऋच्छति** यहां ऋच्छतिका इन्द्रियमूर्तिभाव प्रलय क्रिया अर्थ है अतः धातुसंज्ञा हुई । उसके योगमें प्रकर्ष गमनादि अर्थके लिए प्र को उपसर्गसंज्ञा हुई । अवर्णान्त उपसर्ग 'प्र' में 'अ' ऋकारादि धातु ऋच्छति । पूर्व अ, पर ऋ के स्थानमें गुणापवाद आर्वृद्धि हुई । **प्रार्छति** (शीघ्रं गच्छति) इन्द्रियो को वश में करना । मूर्तिभाव । पररूप विधायक सूत्र परार्च्छति दूसरे के पास जाता है । (ऋ गतौ) अप—ऋणोति **अपार्णोति** अलग होता है ।

(४१) **वा सुपि,** आत् उपसर्ग, ऋतिधातुका आगमन । **अवर्णान्तात्**=अकार अन्तमें हो, ऐसे **उपसर्गात्**=प्र, उप, अप, अव आदि उपसर्गसे (क्रियायोगके) परे **ऋकारादौ**=ऋ अक्षर आदिमें हो, ऐसे सुब्धातौ [सुबन्तः प्रकृतिर्यस्य स सुबन्त-प्रकृतिको धातुः नामधातु] परे वृद्धिविकल्प हो । यद्यपि जो सुबन्त है वह धातु असम्भव है । इसलिए सुबन्तसे क्यच्, क्यङ्क्यप् विच्-क्विप् होकर नाम ही सुबन्त-धातु है । ऋच्छ आदिका गति आदि अर्थमें क्विप्से भी सुबन्तधातुत्व स्वीकृत है । सूत्रे वाशब्दस्य विकल्पो अर्थो अस्ति । सूत्रे आपिशलिग्रहणं किमर्थं ? प्रयोजनं प्रकट-

इति प्राप्ते। (४३) शरोऽचि ।८।४।४९। द्वे न। प्रार्षभीयति प्रर्षभीयति । (४४) एङि पररूपम् ।६।१।९४। आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः। प्रेजते। उपोषति। (४५) अचोऽन्त्यादि टि।१।१।६४। अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात्।(शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) तच्च टेः। शकन्धुः। कर्कन्धुः। कुलटा। सीमन्तः केशवेशे। सीमान्तोऽन्य। मनोषा। हलीषा। लाङ्गलीषा। पतञ्जलिः। सारङ्गः पशुपक्षिणोः। सारङ्गो-

---

यति—आपिशलि ग्रहणं पूजार्थं सम्मानार्थम्। अयम् अर्थः-आपिशलिआचार्यसम्मतः इतिभाव-लाभार्थं नामधातुपरकस्य आकारान्तस्य वृद्धिविकल्पः। यथा आत्मनः [स्वस्य] ऋषभं ऋषभदेव इति भवितुं कामयते अथवा ऋषभ इव आचरति ऋषभीयति, विष्णूयति प्रकर्षेण तल्लीनतया प्र—ऋषभीयति अ-ऋस्थाने आर वृद्धिः प्रार्षभीयति पक्षे गुणः। अच से परे रेफसे परे षको द्वित्व प्राप्त उनका शरोऽचि से निषेध(४४) एङि=ऐ ओ,परे पररूपं=पूर्ववर्णका परवर्णके रूपमें होना। अकारान्त उपसर्गसे परे, एङ्प्रत्याहारके अक्षर धातुके आदिमें हो उनके परे रहते अकार परके रूप में एकही आदेश हो। यह परत्व उपसर्ग और धातु के सम्बन्ध का प्रकाशक है यथा प्र—एजते अवर्णान्त उपसर्ग (प्रकर्षं कम्पन अर्थ प्रकाशक)'प्र'का अ, एङादि धातु एजते। कम्पन अर्थ एजृ कम्पने, पररूप अकार एकारका रूप पा गया, प्रेजते। समीप में चलने या जलने अर्थमें उप-ओषति यहां पूर्व उपका अवयव 'अ' ओषतिके ओकार में मिलकर पररूप एकादेश हुआ। उपोषति उष दाहें। पास में चलता या जलता है या उपवास करता है। प्रेषयति। प्र-ए० प्रेरणा करना। एक कर्तामें वर्तमानकालिक भेजनाक्रिया। एक—ए समेजते समान कम्पन। समेषणीयम् एकसमान प्रेरणा या भेजना (एजृ कम्पने) समेजते समानकम्पन।

(४५) अचः—अचो का, अन्ते- भवः अन्त्यः। आदि =इत्यादि अचो के मध्य मे जो अन्तिम अच् है वह अच् आदि मे हो जिस समुदाय के तट्टिसंज्ञा= उसकी टिसंज्ञा हो। शकन्ध्वादिगणमें जो पढ़े गये है उसको पररूप हो। शकन्ध्वादि गण पठितशब्दस्वरूपको तत्सिद्ध्यनुगुण पररूप कहे वह पररूप किसको हो, तब बोले 'तच्चटे' तत्पररूपं टेर्भवति। वह पररुप टि संज्ञक को हो। यथा=शक देशविशेष का अन्धुः=कूपः। इस शब्दशक्तिका प्रकाशक पररूप शक—अन्धुः शकन्ध्वादिगणमें पाठ से पररूप हो, वह पररूप टिको हो टि क्या है ? तब बोले-अचोऽन्त्यादि अचो(श)में अ, (क में) अ के मध्य अन्त्य अच् क का अ। वह किसके आदिमे है व्यपदेशिवद्भावेन व्यवहारभावसे—अपने ही आदिमे हैं, उसी अ को टिसंज्ञा और परका रूप मिला। शकन्धु। मुकुन्दस्य एक एव पुत्रः, सैव जेष्ठः सैव कनिष्ठः। एवञ्च।

पुंसि एवान्धुः प्रहिःकूपः। कर्काणां राजविशेषाणां अन्धुः कूपः। ऐसे ही कर्क-अन्धुः टिसंज्ञा पररूप पूर्ववत्। मनसः ईषा मनका प्रेरयिता बुद्धि अर्थमे मनस्—ईषा यहां शकन्ध्वादिषु से पररूप का विषय, अचोऽन्त्यादिटि से टिसंज्ञक अस् है। उसी को ईषाके ई रूपमें होना पड़ा। मनीषा आकृति दृष्ट्वास्वरूपं परिचाय्य गणोऽनुसन्धेयः, यथा—मृत—अण्डः (मिट्टी का पिण्ड) अर्थ बोधक पररूप समझे। मृतण्डः

ऽन्यः । आकृतिगणोऽयम् । (एवे चानियोगे) । क्वेव भोक्ष्यसे । अनियोगे किं तवैव । (ओत्वोष्ठयोः समासे वा) । स्थूलोतु । स्थूलौतुः । बिम्बोष्ठः । बिम्बौष्ठः । समासे किं ? तवौष्ठः । (४६) ओमाङोश्च ।६।१।९५। ओमि

तस्मादागतः मार्तण्डः । मृतेरागत. मार्त–अण्डः मार्तण्डः । पररूप हुआ ।

असती पतिव्रतधर्मरहिता कुलटा इत्वरी । हलस्य ईषा (लाङ्गल दण्डः । हर्ष या मुठिया)हलीषा लाङ्गल=ईषा लम्बादण्ड, पतन–अञ्जलिः पतञ्जलिः गणसमुदाय एक ही ढङ्गके संन्धि हुये हों ऐसे शब्दमे कार्यदर्शनसे गण्यते हो । शकन्ध्वादिमें मार्तण्डः नही आता, पररूप कार्य दर्शन से गणमें मान्य ऋच्छतीति अर्थः । सम अर्थ समर्थ पररूप देखकर गणमान्य । सीमन्तः केशवेश या चोर अर्थ ज्ञानवास्ते पररूप । सीमान्त दीर्घका अन्य अर्थ ।

(वा०) ऐवे=एवशब्द यदि अनियोग अनवधारण अनिश्चय अव्यवस्थित अर्थ में हो , तब अकारसे परे एवको पूर्व परस्थाने पररूप एकादेश हो । एव शब्दके दो अर्थ है निश्चय और अनिश्चय । निश्चय, नियत, नियोग अवधारण अर्थ रहनेपर वृद्धि हो । भिन्न अर्थ होने पर पररूप हो । उक्तञ्च—**अनवक्लृप्तौ** (अनिश्चये) **यदा दृष्टः एवशब्दः** पररूपस्य गोचरः । **निश्चयेऽयमेव वृद्धेर्विषयो भवतु** । यथा **क्वेव** भोक्ष्यसे न निश्चिनुमः कहां खाओगे । स्थानसङ्कीर्णतासे भोजन अनिश्चित है । अत्र अनिश्चयार्थवाचक एवशब्दः । **क्व—एव** इति दशायां अकारात्परः **अनिश्चयार्थ-प्रकाशक एव अकारस्य** एकाररूपे(**एवेऽचानियोगेऽति वार्तिकेन**) **पररूपं** भवति । यत्र पररूपं तत्र अनिश्चयो अर्थः । यदि नियोग का नियोजनक्रिया अर्थ लेगे । **ममैव** जन्मान्तरपातकानां, तपस्तपःकर्मकस्यैव । अनियोगग्रहण न करते तब जहां नियोग (निश्चित) अर्थसम्बन्ध है वहांभी पररूप होता है । तवैव (तुम्हारा ही है)यहां निश्चय अर्थक एवशब्द केवल वृद्धिका भागी बना ।

(वा०) ओतुश्च ओष्ठश्च तयोः । ओतु शब्दपरे, ओष्ठशब्दपरे अकारस्य पूर्वपरयोः स्थाने समासदशायां विकल्पेन **पररूपं** कथनीयम् ।

स्थूलोतुः—ओतुःविडालः इत्यमरः । थूलश्च ओतुःमोटा बिलार विशेषणविशेष्य-समासदशायां स्थूल —**ओतुः** अत्र प्राप्तां वृद्धि बाधित्वा वार्तिकेन पररूपे । यदा न पररूपं तदा वृद्धिः । स्थूलौतुः उभयत्र शक्तिः । बिम्बा–कुनुरुफलमिव रक्तवर्णौ ओष्ठौ यस्य स लाल रंग ओठ **बिम्बा—ओष्ठः** अत्रापि वृद्धिरेचि प्राप्तां वृद्धि तिरस्कृत्य वार्तिकेन पररूपं बिम्बोष्ठः । यदा न पररूपं तदा वृद्धिः बिम्बौष्ठः । एवं कण्ठोष्ठम् समासे किं ? वार्तिके समासग्रहणस्य फलं वदति समासदशायां पररूपं भवतु । यत्र समासो नास्ति तत्र पररूपं मा भवतु । यथा तव—ओष्ठः अत्र समासो नास्ति न । पररूपं किन्तु वृद्धि तवौष्ठः तुम्हारा ओठ सरस । एवं वृषलसुतौष्ठव्रणस्ते हे शूद्रपुत्र तुम्हारे ओठमें घाव है ।(४६) **ओमाङोश्च** ओम् च आमाङौ तयोः ओमाङौः । च= अत् पररूप अनुवृत्त । ओम् और आङ्परे अवर्णसे पररूप अगलेका रूप एकादश हो । यथा शिवाय –ओम् ओम्परे य के अ को ओके पररुपमें होना पड़ा । उक्तसूत्र से ।

शिवायों नमः । अपनेमें न्यूनता शिवमे माङ्गलिक गुणविशेषताका अनुभव नमस्कार अर्थ हैं । **शिवेहि शिव**—आ –इह । व में अ तथा आ के साथ सवर्ण दीर्घ प्राप्त

आङि चात्परे पररूपमेकादेशः स्यात् । शिवायोनमः । शिव आ इहि इति स्थिते । शिव एहि । शिवेहि । (४७) अकः सवर्णे दीर्घः ।६।१।१०१। अकः सवर्णेऽचि परे दीर्घः एकादेशः स्यात् । दैत्यारिः । श्रीशः । विष्णूदयः ।

हैं, जो बहिरङ्ग है । आ–इह के स्थान पर मिलकर गुण प्राप्त अन्तरङ्ग है, । क्यों कि धातुपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम् । तद्भिन्नं बहिरङ्गम् धातु और उपसर्ग आ–इह में गुण कार्य अन्तरङ्ग (खास) बलवान है, अतः गुण हुआ । **शिव-एहि** दशामे-ओमाङोश्चसे प्राप्त पररूप किसको हो, यहां आङ् नहीं है । तब निर्णायक नियमसूत्र बोले (४१) अन्तश्च, आदिश्च अन्तादीं ताभ्यां तुल्यम् **अन्तादिवत्** । जो यह दो मिलकर (गुण) एकादेश है वह पूर्व पदका अन्तवत्=अन्तवर्ण के सदृश समझा जाय, परपद का आदि माना जाय । एहि में आ इ को गुण ए है वह पूर्वपद (आ) का अन्त समझा गया । इह का आदि जाना गया । इससे उसी मे आ का धर्म झलकने लगा तब पररूप हो गया । दोनो दल के **प्रातिपदिक या धातुधर्म सुबन्त या निपात धर्म** का आरोप एकादेश में होता है । अप आ-इह । **गुणे** एहिके ए में **निपात आ का आरोप कर ओमाङोश्चसे आङपरें मानकर पररूप राम–आ–इह । रामेहि सम आ इह समेहि शिवेहि** । हें शिवेहि मम कष्टं निवारय । हे शिव आइये दुःख दूर करिये ।

(४७) अकः (दो मिलकर दीर्घ (बढ़ा संगठित होने) का सूत्र) अ ई ऊ ऋ लृ से सवर्ण—जिनकी आपस-में सवर्णसंज्ञा हो ऐसा अच् परे दीर्घ (द्विमात्रिक) आदेश हो । अकसे सवर्णी (ताल्वादि स्थान और आभ्यान्तर प्रयत्न जिनके मिलते हो ऐसे) अच परे रहते पूर्वपरके स्थानमें दीर्घ एकादेश हो । यथा **दैत्यारिः** दैत्याना दैत्यधर्मसम्बन्धिनाम् अरिः=शत्रुः विनाशकः अर्थ का प्रकाशक दीर्घ सन्धि । दैत्य-अरिः । अक् दैत्यका अ, सवर्णी अच् अरि का अ । कण्ठस्थान विवृत प्रत्यत्नसे

दोनों 'अ'के परस्पर सवर्णसंज्ञा सिद्ध है, तब पूर्वपर अकारोंके स्थान अकः सवर्णे दीर्घ (द्विमात्रिक) एक आदेश आ हुआ । दैत्यारिः विष्णुः धर्मात्मा । श्रियः=लक्ष्म्याः ईशः=स्वामी **श्रीशः** लक्ष्मी का अधिकृतपति अर्थ में श्री–ईशः । पूर्व ई, का पर ई के साथ सवर्णसंज्ञा से (प्राप्तयण् को बाधकर) अकः सवर्णदीर्घ- एकादेशे ई । श्रीशः लक्ष्मीपतिः भगवान् । **विष्णूदयः** विष्णोः विष्णुसम्बन्धिनः उदयः सर्वेषां भक्तानाञ्च उन्नतिः विकाशःव्यापकत्वं,विष्णु-उदयः दोनोंदलोंके सवर्णसंज्ञक उकारों के स्थान में अकः सवर्णीदीर्घ एकादेशः ऊ । होतृ–ऋकारः यहांभी ऋकारयोः स्थाने सवर्णदीर्घे । होतॄकारः होतुः हवनकर्तुः =हवनकर्ताका ऋकार–चिह्न परिचय । इस दीर्घविधिमें लृकारका उदाहरण न होना उचित ही है क्योंकि लृ को दीर्घ नहीं होता भवति–इति भवतीति । विद्या–आलयः विद्यालयः। सती-ईशः सतीशः गिरीशः प्रभु—उदयः प्रभूदयः, कर्तृ=ऋद्धिः

विकार कार्यविषये दीर्घविकल्पं प्रस्तावयति वार्तिकारः ऋति=अक्से सवर्णो ऋपरे पूर्वपर स्थाने ऋत एकादेशो भवति । होतुः ऋकारः हवनकर्तुः विकारःवक्रता धर्मः परिचयो, वा **होतृ—ऋकार** इति दशायां ऋति सवर्णे ऋवा इति वार्तिकेन सवर्णसंज्ञकयोः स्थाने विलक्षणः कश्चिन्नरसिंहवत् रेफद्वयवान् ऋकार आदेशः । दो

(ऋति सवर्णे ॠ वा)। होतॄकारः। होतृ॰कारः। (४८) **एङः पदान्तादति** ।६।१।१०६। पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। हरेऽव। विष्णोऽव। (४९) **सर्वत्र विभाषा गोः** ।६।१।१२२। लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते। गो अग्रम्। गोऽग्रम्। एङन्तस्य किं ? चित्रग्वग्रम्। पदान्ते किं ? गोः। (५०) **अनेकाल्शित्सर्वस्य** ।१।१।५५। इति प्राप्ते (५१) **ङिच्च** ।१।१।५३। ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्॥ (५२) **अवङ् स्फोटा-**

लक्षणवाले नरसिंह भगवान की तरह अचसे घिरा हुआ दो रेफवाला ॠ आदेश हुआ यदा तादृश आदेशो न तदा अकः सवर्णे दीर्घः होतृ॰कारः।

(४८) एङ–ए ओ, पदस्यान्तः पदान्तः तस्मात्, अति–ह्रस्व अकार परे। पदान्त ऐङ् से अकार परे रहते उसी अकार को (पूर्ववर्णके रूपमें) पूर्वरूप एकादेश हो। यथा **हरेऽव** (हे हरे मां अव रक्ष) इस वाक्यार्थमें **हरे–अव**। यहां प्राप्त एचोऽय वायावः अय् आदेशको बाधकर पदान्त एङ् हरे में ए उससे परे अव्के अ को पूर्ववर्ण ए के रूप में एकार एकादेश हुआ। उसे पूर्वरूप एकादेश कहते हैं। एवं **विष्णो–अव** अत्रापि एङ् (ओ)से परे अकार देखकर एङः पदान्तादतिसे पूर्वरूप हुआ विष्णोऽव। हे विष्णो त्वं सर्वत्र रक्ष। गृहे–अत्र गृहेऽत्र। जने–अपि जनेऽपि। कोऽणः कोऽपि चैत्रोऽसौ मुर्खोऽव्रवत्(४९)**सर्वस्मिन्निति** सर्वत्र=सब जगह विभाषा=विकल्पसे लोक और वेद में एङन्त (ए ओ हो अन्तमें) ऐसे गोशब्दको अति–ह्रस्व अकार परे रहते प्रकृतिभाव हो पदान्तमें। यहां प्रकृतिभाव प्रकृतेःस्वरूपस्य भाव। स्थितिका अपनास्वरूप रह जाना अर्थ है। अन्यसन्धि (विकार) न होना। गवाम् अग्रम् (गाय का अग्रभाग) अर्थका संयोजनशक्तिप्रकाशक प्रकृतिभाव। पाणिनि पतञ्जलिने (लोके प्रयुक्ता) लोकभाषा, (वेदे प्रयुक्ता) वेदभाषाका उपयोग भाषापदसे किया। जैसे प्रत्यये भाषायां नित्यम्। **गो–अग्रम्**–यहां एङः पदादति से प्राप्त पूर्वरूप को बाधकर लोक और वेद में प्रसिद्ध एङन्त गोशब्द को पदान्त समझकर अकार परे रहते प्रकृतिभाव (अपने स्वरूप में स्थिर) कर दिया। सन्धिकार्य का अभाव ही प्रकृतिभाव है। पक्ष में पूर्वरूप होकर **गोऽग्रं** सिद्ध एङन्तस्य किं ? सूत्रनें एङन्त गोशब्द न कहते, तब चित्रा गावो यस्य पुरुषस्य सः चित्रगुः तस्य अग्रंके अग्रम् आदिकों प्रकृतिभाव होता तब विचित्रगाय वाला (स्वामी) अर्थ न होता। यण् सन्धि करने पर वह अर्थ सुतरां सिद्ध है। पदान्ते किं ? गोशब्द न कहते तब गो+अस् (गाय सम्बन्धी) यहां षष्ठी का एकवचन ग्–अव्–अग्रं पदान्त अस् के अकार परे गोके ओको प्रकृतिभाव हो जाता। गो-अस् गाय सम्बन्धित अर्थ न सिद्ध होता। पदान्तशब्द रहते केवल गो, न सुबन्त है, न पदान्त है, न प्रकृतिभाव होगा।

(५०)**अनेकाल्**–न एको अल्=अइउण् से हल् तक वर्ण अल् है वे अनेक हों एक न हों तब अनेकाल् है। अनेकवर्णवाला आदेश और (श् इत्, यस्य स शित्)श इत्संज्ञक को शित् कहते है। सर्वस्य–ये दोनों आदेश सम्पूर्णके स्थानमें हो, सर्वादेश भी है। (५१) ङिच्च ङ् इत् यस्य स ङित्, (च से अनेकाल् भी) दोनों आदेश अन्त्यअल् (अक्षर)के स्थानमें ही हो (५२) स्फोटायनस्य=स्फुटति=प्रकाशते अर्थोऽनेन स्फोटः

यनस्य । ६।१।१२३। पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वा स्यादचि । गवाग्रम् । पदान्ते किं ? गवि । (५३) **इन्द्रे च** ।६।१।१२४। गोरवङिन्द्रे । गवेन्द्रः । व्यवस्थितविभाषया । गवाक्षः । (५४) **दूराद्धूते च** ।८।२।८४। दूरात्सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा । अथप्रकृतिभावः । (५५) **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** ।६।१।१२५। एतेऽचि प्रकृत्या स्युः ।आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति (५६) **ह्रस्वं लघु** ।१।४।१०। **संयोगे गुरु** ।१।४।११। संयोगे परे ह्रस्वं गुरु-

---

स आयनं गृहं (आधारो) यस्य सः स्फोटायनः । स्फोटके प्रवर्तक आचार्य स्फोटायन के मतमें पदान्तमें एङन्तगो शब्दके अन्त्य अल्के स्थानमें 'अवङ्' आदेश विकल्पसे हो, अचि परे । यथा–**गो–अग्रम्** यहां 'गो' में ओ को अवङ् आदेश प्राप्त हुआ । क्योंकि अनेक अल् (वर्ण वाला) आदेश सम्पूर्ण के स्थान में होने का नियम है । किन्तु अवङ् के ङित् होनेसे ङिच्च सूत्रसे अन्त्य अल् ओ के स्थानमें अवङ् आदेश हुआ–अकः सवर्णे दीर्घः **गवाग्रम्** । अवङ् अभाव पक्ष में पूर्वरूप । गोऽग्रम् । पदान्ते किं ? यह अवङ् पदान्तगो में ओ को होता है । गवि गो पदान्त नहीं है प्रातिपदिक है, सुबन्त नहीं, अवङ न हो जाय अतः पदान्त पढ़ा । अय् आदेश हुआ । गवि (गायमें) गव्यमस्तु ।

(५३) इन्द्रे गवाम इन्द्र =गायों का स्वामी, श्रीकृष्णः वृषभो (साड़) वा । गो शब्दको अवङ् आदेश हो, इन्द्रपरे । गो–इन्द्र यहां इन्द्रे च सूत्र से अवङ अनुबन्धलोप तथा आद्गुणः से गवेन्द्रः । तगड़ा अनडवान् (बैल) । (५४) दूरात् हूते=विप्रकृष्टात् =दूर से सम्बोधन आवाहन, ध्यानाकर्षण, अर्थ वाच्य हो तो वाक्य के टि की प्लुतसंज्ञा हो विकल्प से ।

(५५) प्लुत—प्रगृह्यसंज्ञक अचि परे नित्यम्=अविकल्प । प्लुत और प्रगृह्यको अच्परे रहते नित्य ही प्रकृतिभाव हो, सन्धि न हो । हे कृष्ण–अत्र आगच्छ गौश्चरति । यहां सम्बोधनपद श्री कृष्ण है, दूरसे उन्हींको बुलाने अर्थक वाक्यके टि णमें अ है उसकी प्लुतसंज्ञा हुई । वहां प्राप्त सवर्णदीर्घ को बाधकर प्रकृतिभाव हो गया । दीर्घसंन्धि नहीं हुई । अन्यथा उक्त अर्थका बोध न होता ।

आगच्छ लक्ष्मण अत्र अपहृता सीता । प्रकृतिभावसे गुणनिषेध । आगच्छ बालक अत्र खेलामः न दीर्घ । हे विष्णो अत्र तिष्ठ, न अवादेशः ।

५८ गुरोः दूराहूते=इससे (सम्बोधन) बुलाने अर्थवाचक पदका जो वाक्य, उसमें सम्बोधन अर्थकपद, उसका अवयव अनृतः=ऋकारभिन्नः, नअन्त्य इति अनन्त्यः, तस्य गुरोः=अन्तको छोड़कर आदि या मध्यमें गुरु (दो मात्रा) की प्लुतसंज्ञा हो । अन्त्यमें गुरु हो या अगुरु दो मात्रा हो या न हो । अपि=उसके भी टिको प्लुत हो । ऐकैकस्य=एक–एक गुरुवर्णको । यथा दे३वद३त्त३ इह आगच्छ । एकतिङ्वाक्यं तत्र सम्बोधन (बुलाने) योग्यं पदं देवदत्त इति । तस्य अन्त्य आदिः दे३ प्लुतः (३मात्रा) उक्त सूत्रेण । त संयुक्ताक्षरपरे पूर्व ह्रस्वो दः, तस्य गुरुसंज्ञा । मध्येऽस्ति उक्तसूत्रेण प्लुतः । अन्तिमो वर्णः गुरुः लघुर्वा टेः प्लुतः । गुरो किं=सूत्रमें गुरुसंज्ञक

संज्ञं स्यात्। (५७) **दीर्घं च** ।१।४।१२। गुरुः स्यात्।(५८) **गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम्** ।८।२।८६ प्लुतो वा। दे३वदत्त ३ । गुरोः किं ? वकारादकारस्य मा भूत्। अनृतः किं ? कृष्ण३। एकैकग्रहणं पर्यायार्थम्। (५९) **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** ।१।१।११। ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यं स्यात्। हरी एतौ। विष्णू इमौ। गङ्गे अमू। मणीवोष्ट्रस्येति तु इवार्थे वशब्दो वा बोध्यः। (६०) **अदसो मात** ।१।१।१२। अस्मात्पराविदूतौ प्रग्रह्यौ स्तः। अमी ईशाः। रामकृष्णामू आसाते। मात्किम् ? अमुकेऽत्र। असति माद्ग्रहणे

वर्णको प्लुत क्यों ? इसलिए कि वक ह्रस्व अको प्लुत न हो। देवमें वको प्लुत नहीं हुआ। अनृतः किं ? सूत्रमें ऋसे भिन्न गुरुसंज्ञक ऐसा क्यों ? इसलिए कि कृष्ण पाहि मां (यहां अनन्त्य कृमें ऋ है संयोग गुरु भी है) तस्य प्लुतो मा भवेत्, किन्तु अन्त टि प्लुतः। सूत्रमें ऐकैक (एक-एकका) ग्रहणं **पर्यायार्थं**=क्रमसे हो। यदि ऐसा नहीं कहेंगे तो सभी गुरु अक्षरोंका **युगपत्** (एक साथ) प्लुत होगा। इह=इस सूत्रका प्राचां यह अंश विभज्यते (अलग करते है) तत्र केवलं प्लुत आयाति। यस्य फलं प्राचीनमते प्लुतोऽस्तु। अन्यमते मास्तु।(इससे सभी)प्लुतो विकल्प्यते विकल्पसे हो। ५९ ईदूदेद् इदन्त ऊदन्त एदन्त ई ऊ ए अन्त में हो ऐसे द्विवचन को प्रगृह्यसंज्ञा हो। यथा-(हरिः)हरी एतौ(येदोनों हरि या सिंह है)इस अर्थमें समर्थ वाक्य है यणप्राप्त था। यदि यण होता तो उक्त अर्थ दब जाता। अतः व्यपदेशिवद्भाव से या परादिवद्भाव से हरी को द्विवचनान्त ईदन्त मानकर प्रगृह्यसंज्ञा तथा प्लुतप्रगृह्या से प्रकृतिभाव= जैसा था, वही रहा समर्थ। ये दोनों विष्णु है, इस अर्थका बोधक। **विष्णू इमौ** यहां प्राप्त यण का निवारण प्रगृह्यसंज्ञा तथा प्रकृतिभाव से किये। यण होता तो उक्त अर्थ की शक्ति न रहती। ये दोनों गङ्गा है इस वाक्यार्थमें समर्थ, **गंगे--अमू** यहाँ भी ए के स्थान में प्राप्त अय आदेश को रोकने के लिये प्रगृह्यसंज्ञा प्रकृतिभाव यदि अय् होता, उक्त अर्थ अस्पष्ट रहता। **मुनी इमे** न दीर्घ। **पाणी उत्थाप्य** न यण वटू आयातः बालिके उच्छलतः, न अय आदेश, प्रकृतिभाव होनेसे। अमी अधीयाते,न यण। **अमी एधते** दोनों बढ़ते है। अमी अश्नन्ति खाते है। अमू आगच्छतः काश्याम् अमू उत्तिष्ठतः। न यण प्रकृतिभावसे। (६०) **अदसो** अदस् शब्द सम्बन्धि (**मात्**)= मकार से परे ईदूतौ=ईकार और ऊकार को प्रगृह्यसंज्ञा हो। यथा ये सभी स्वामीं है। यह अर्थबोधक वाक्य **अमी—ईशाः**। यहां प्राप्तसवर्णदीर्घको बाधकर अदस् सम्बन्धिमकार अमी का म, उससे परे ईकार को प्रगृह्यसंज्ञा हुई, जिसका फल प्रकृतिभाव है। एवम् अमू आसाते। ऊकारको प्राप्त यण् बाधकर ऊकारान्त प्रगृह्य संज्ञा। द्विवचन जानकर जिस कारण प्रकृतिभाव हुआ। बलराम, श्रीकृष्ण बैठे है। यह अर्थ प्रकृतिभाव से असन्दिग्ध है यण से सन्दिग्ध। मात्किं ? यदि अदस् शब्दका मकार ऐसा अर्थ न होता, तो**एकारोऽप्यनुवर्तेत एकार** की भी अनुवृत्ति हो जाती तब **अमुके-अत्र** यहां एदन्त मानकर प्रगृह्यसंज्ञा, प्रकृतिभावसे पूर्वरूप सन्धि न हो पाती। वे यहां है यह अर्थ स्पष्ट न होता। अतः यहां मात् पढा। (५८) **चादयः**

एकारोप्यनुवर्तेत (६१) **चादयोऽसत्वे ।१।४।५७।** अद्रव्यार्थाश्चादयो निपात संज्ञाः स्युः । (६२) **प्रादयः ।१।४।५८।** एतेऽपि तथा । वस्तूपलक्षणं यत्र सर्व-नाम प्रयुज्यते । द्रव्यमित्युच्यते सोऽर्थो भेद्यत्वेन विवक्षितः । लिङ्गसंख्यान्व-ययोग्यं द्रव्यम् । (६३) । **निपात एकाजनाङ् ।१। १।१४।** एकोऽज् निपात आङ्वर्जं प्रगृह्यसंज्ञः स्यात् । इ इन्द्रः । उ उमेशः । ईषदर्थे क्रियायोगे मर्या-दाऽभिविधौ च यः । एत मातं ङितं विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित् । आ एवं नु मन्यसे । आ एवं किल तत् । आ एव सर्ववेदार्थः । आ एवं सद्वचो हरेः ।

(च वा ह इत्यादः असत्वे=सत्वं द्रव्यं लिङ्ग-संख्यान्वयि तद्भिन्नमसत्वम् लिङ्गसंख्या-न्वयरहितम् अद्रव्यार्थक=लिङ्ग संख्यासे शून्य चादि-च वा ह अपि आदि निपातसंज्ञक होते है । निपतन्ति अनेकेषु अर्थेषु ये ते निपाताः । जो जिस प्रसंग में रहे उसके अनुकूल अर्थ कहनेको विवश हो वे निपात हैं । यथा सम्भवति अनुभवति पराभवति सम उपसर्गसे सम्भव अर्थ । अनुसे अनुभव परासे पराजय अर्थके लिये भवति विवश । (६२) प्रादयः=प्रपरा अपसम आदि ये भी निपातसंज्ञक अनेक विभिन्न समीपस्थशब्द के विशेष अर्थका प्रकाशक उप आदि है ।

द्रव्यका पारिभाषिक लक्षण—वस्तूपलक्षणम् किसी वस्तुका ज्ञान करानेके लिए उपलक्षण उस बोधके लिए सर्वनाम शब्द सः अयम् इदं आदिका प्रयोग हो वह द्रव्य है । भेद्यविशेष्य जिसके विशेषण हो वह प्रधानवस्तु द्रव्य है । लिङ्गसंख्यान्वयि दव्यं प्रसिद्ध है । असत्वे अद्रव्ये समझें । (६३) निपात-एक अच् अनाङ् निपातः । एक अच् रूपवाला (चाहे चादि हो या प्रादि) आङ् रूप निपात को छोड़कर प्रगृह्य संज्ञक हों । **इ—इन्द्रः** यहां इ को चादिगण जानकर निपातसंज्ञक माना । दूसरे इकार के साथ प्राप्त सवर्णदीर्घ वारण के लिये एक अच् (आङ् वर्जित) निपात इ है, उसे प्रगृह्यसंज्ञा प्रकृतिभाव भी हो गया । 'आश्चर्य है कि ये इन्द्र है' । इ विस्मये एवम् उ उमेशःको समझे । उ=वितर्के मेरा तर्क हैकि निश्चित उमा=पार्वतीके ईश= स्वामी महादेव है । इस वाक्यार्थ में उको प्रगृह्यसंज्ञा प्रकृतिभाव सिद्ध है । कहां ङित्, कहां ङित् नहीं निर्णायक वार्तिक-थोड़ा अर्थमें, क्रियाके साथमें मर्यादा(असीम) अभिविधि (ससीम) अर्थमें आहित हो, तब आङ् शब्द वाक्य और स्मरण अर्थ में ङित् नहीं होता । अन्यस्थलमें ङित् होता है । यथा—

ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः ।
एतमातं ङितं विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित् ॥

अन्य स्थल में ङित् नहो ङित् स्थल में अनाङ् निषेध लगता है ।

वाक्यका उदाहरण—**आ एवं नु मन्यसे** । ठीक तुम ऐसा मानते हो । निपात आ 'ए' के स्थान में गुणबोधक वृद्धि बाधन के लिये प्रगृह्यसंज्ञा, प्रकृतिभाव हुआ । स्मरणका- **आ एवं किल् तत्** (हां भाई निश्चित ऐसा ही था) यह स्मरण हुआ ।

पूर्वं नैवंमंस्था इदानीन्त्वेवं मन्यसे इत्यर्थः। अन्यत्र ङित्। ईषदुष्णम् ओष्णम्। (६४) **ओत्** ।१।१।१५। ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात्। अहो ईषाः (६५) **सबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे** ।१।१।१६। संबुद्धिनिमित्तक ओकरो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे। विष्णो इति विष्ण इति विष्णविति। अनार्षे इति किं ब्रह्मबन्धवित्यत्र वीत्। (६६) **मय उञो वो वा** ।८।३।३३। मयः परस्य उञो वो वा स्यादचि। किमु उक्तम्। किम्वुक्तम्। (६७) **इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य**

यहां भी आ ए के बीच प्राप्त वृद्धि बाधक प्रगृह्यसंज्ञादिकार्य निपात मानकर हुआ। अन्यत्र ङित। ईषदुष्णम् थोड़ा गरम (चाय) अर्थमें आ—उष्णम् आ को ङित् मानकर प्रगृह्यसंज्ञा नहीं हुई किन्तु गुण हो गया। आ—अम्बुधेः राज्यं समुद्र, तक राज्य मर्यादा हैं आ-ईशात् राम भक्तिः। जनसे लेकर महादेव तक भक्ति असीम है तेन विना मर्यादा, सीमा न होना। ६४ **ओत**—ओकारान्त निपातकी प्रगृह्यसंज्ञा हो, यथा **अहो-इति**। अहो ओकारान्त निपात है उसे प्रगृह्यसंज्ञा होनेपर प्रकृतिभाव से अव् आदेश नहीं हुआ। आश्चर्य है, समर्थ है। **अहो-आयातः मित्रे**। न स अस्ति आश्चर्य है। **अहो इदम् अहोअपि,** न अव्। प्रकृतिभावसे ६५ **सम्बुद्धौ** शाकल्यस्य इति अनार्षे ऋषिः=वेदः मन्त्रद्रष्टा च। तस्मात् जातः आर्षःन आर्षो अनार्षः अवैदिकः। सम्बुद्धिसंज्ञक सम्बोधननिमित्त कारण मानकर यदि गुण ओकार हुआ हो। उसे प्रगृह्यसंज्ञा हो, अवैदिकः लोकप्रसिद्ध इति शब्द परे। अनार्ष शब्दका अवैदिक अर्थ है। यथा हे **विष्णो इति** शाकल्य आचार्यके मतमें संम्बुद्धिको कारण मानकर हुआ ओकार विष्णोमें 'ओ' लौकिकशब्द इति है। यहां प्राप्त एचोऽयवायावःसे अवादेशको बाधकर सम्बुद्धौ-सूत्रसे प्रगृह्यसंज्ञा तथा प्लुतप्रगृह्याःसे प्रकृतिभाव हुआ। हे **विष्णो इति**। प्रगृह्यसंज्ञा अभावपक्षमें अव् आदेशके वका (लोप शाकल्यस्य) से लोप विष्ण इति। लोपके आभावमें **विष्णविति**। **पार्वति-आह** ह्रस्वसे न यण्। पक्षमें यणभी पार्वत्याह। **देवी उवाच देव्युवाच**। **धनि—उतिष्ठति**। **धन्युतिष्ठति**। **बली बलि उवाच**। **नदी-अवतरति, नद्यवतरति** समास है एक अर्थ होनेसे वा प्रकृतिभाव। अनार्षे किं? वेद प्रसिद्ध इति परे न हो ऐसा क्यों? ब्रह्मबन्धो—इति में ओकारको प्रगृह्यसंज्ञा होकर प्रकृतिभाव न हो। अतः अनार्ष पढ़ा। यहांका इति आर्ष ऋषिणाप्रोक्त है। अव् आदेशका निषेध नहीं हुआ।

(६६) **मय्** प्रत्याहारके अक्षरसे परे उञ् हो तो उसके स्थानमें 'व' विकल्पसे हो, अच्परे। **किमुक्तम्**। यहां मय् प्रत्याहारका अक्षर 'म' है उससे परे, उको 'व' आ अचि परे उक्तका 'उ' किम्वुक्तम्। 'व' के अभावमें किमुक्तम्। क्या कहा, इस अर्थमें दोनों समर्थ है। (६७) इकः=इक् प्रत्याहार वर्ण असवर्ण-इक् प्रत्याहारवर्णका सवर्णी न हो एकजाति रहित हो। ह्रस्व=एकमात्रिक। पदके अन्तमें इक्=इ उ ऋ लृ हो तो उसे ह्रस्व हो। असवर्ण अच्परे रहते। यहां इत्त्वावच्छिन्न इक् जातिसे भिन्न

ह्रस्वश्च ।६।१।१२७।पदान्त इको ह्रस्वः प्रकृत्या च वा स्युरसवर्णेऽचि। ह्रस्व विधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः । चक्रि अत्र चक्र्यत्र। पदान्ताः किम्? (६७) **अचोरहाभ्यां द्वे** ।८।४।४६। अच परा भ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। गौर्य्यौ (न समासे) वाप्यश्वः ।(६८) **ऋत्यकः** ।६।१।१२८। ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वत्। ब्रह्म ऋषिः। ब्रह्मर्षिः। पदान्ताः किम्? आच्र्छत्।

॥ इति स्वरसन्धिः ।

सवर्णका अभाव लेते है। सामान्याभाव समझे। इक प्रत्याहारनिष्ठसवर्णत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताका अभाव है। या **कार्यमनुभवन् कार्यो निमित्ततया** नाश्रीयते। इक् प्रत्याहारस्थानी है ह्रस्वरूप कार्यका अनुभवकर रहा है। वह निमित्त इक्परे ह्रस्व का निमित्त नहीं बनेगा। इक्के अतिरिक्त वर्ण ही निमित्त बन सकते है। अतः'देवी उवाच' में ह्रस्व नहीं हुआ, उकार इक्में आता है वह निमित्त नहीं, इक् परे इक् को ह्रस्व नहीं। इक्का'असवर्णी' अच अकार तथा एच् ही होगा। च पढ़नेसे प्रगृह्य संज्ञाप्रकृतिभाव भी सूचित है। परन्तु ह्रस्व कहना ही पर्याप्त है क्योंकि ह्रस्व-विधानके सामर्थ्यसे स्वरसन्धि (यणादि) नहीं होंगे। चक्री (चक्रधारी) अत्र यहां है इस वाक्यार्थमें समर्थ चक्री—अत्र पदान्त इक् 'ई' है उसको ह्रस्व हुआ (प्रकृति भाव) यण्की निवृत्ति हुई। शाकल्याचार्यके मतमें, अन्यमतमें यण् हुआ चक्र्यत्र। पदान्ता किं? सूत्रमें पदान्त इक् क्यों कहा, इसीलिए कि गौरी—औ। दो गौरी अर्थमें समर्थ पदमें ईकारको ह्रस्व न हो किन्तु यण् हो। गौर्यौ गौरीका ईकार पदान्त नहीं है। औके साथ सुबन्त पदान्त है। केवल गौरी नहीं।

(६७) अचो=अच्से परे रेफ तथा हकार हो उससे परे यर=यवरसे शष्सर, तक अक्षरको द्वित्व विकल्पसे हो। वहां अच् गौका औ उससे परे 'र' उससे परे यर्= यको द्वित्वं **गौर्य्यौ** । पदान्तग्रहण न होता तब गौर्यौ न हो **गौरि औ** होता (वा) **समासे**=समासार्थदशामें पदान्त इक्को ह्रस्व सहित प्रकृतिभाव न हो। यथा— वाप्याम् अश्वः। यहां सप्तमीसमासार्थ (बावलीमें विद्यमान घोड़ा) में **वापी-अश्वः**। पदान्त 'इक् वापीमें 'ई' उसको प्राप्त ह्रस्वसहित प्रकृतिभावका (न समासे)वार्तिकसे निषेध हुआ,यण्। **वाप्यश्वः गौर्य्या उदयः गौर्य्युदयः देव्यात्मजः** समास है निषेधसूत्रसे न प्रकृतिभावः यण कार्य धार्य हार्य यको द्वित्वभी गौर्य्यनुभवः। अच के स्थान में और अच् परे सन्धि की प्रक्रिया परिपूर्ण (६१) **ऋत्यकः** ऋति=ऋकारः परे पदान्त अक्को ह्रस्व सहितप्रकृतिभाव हो। यथा—**ब्रह्मा—ऋषिः**— यहां ऋ परे ब्रह्मा के आ को ह्रस्व सहितप्रकृतिभाव से गुण नहीं हुआ। पक्षे गुणः **ब्रह्मर्षिः** वशिष्ठादिः। सूत्रमें पदान्त न होना तो आ—ऋच्छत् यहां भी ह्रस्वसहित प्रकृतिभाव हो जाता। पदान्त कहनेसे आ पदान्त नहीं है आट् है। आटश्चेति वृद्धिः आर्च्छत्। अनद्यतनभूतकालिकागम।, निरिभ वके अनुकूल क्रिया। इत्यच्सन्धि (अल्पा-च्तरमिति निर्देशात् समास न कृतम्।

अथ हल्सन्धिप्रकरणम् ॥

(६९) **स्तोः श्चुना श्चुः** ।८।४।४०। सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः । हरिश्शेते । रामश्चिनोति । सच्चित् । शार्ङ्गिञ्जय । (७०) **शात्** ।८।४।४४। शात्परस्योक्तं न स्यात् । विश्नः । प्रश्नः । (७१) **ष्टुना ष्टुः** ।८।४।४१ स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात् । रामष्षष्ठः । रामष्टीकते

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकरीटीकायां सन्धिप्रकरणे अच्सन्धिः समाप्तः ॥

अथ हल्सन्धिः

अच्सन्धिके पश्चात् हलोंकी सन्धि अवसरङ्गत है । हलां हल्सु वा सन्धिः हलोके स्थानमें हल्परे सन्धि । (संयोजनाशक्ति) ही हल्सन्धि है । जो पदवाक्यका शक्ति-प्रकाशन करती है । इस प्रकरणमें सभी सन्धियां हलवर्णसे सम्बन्ध रखती हैं । जिनका कहीं क्रियाकारकभाव विशेषणविशेष्य, अभेद आदि सम्बन्ध अर्थ है । वाक्य में बिना सन्धिके भी शक्ति प्रकट है (६२)स च तुश्च अनयोः समाहारस्तु तस्य **स्तोः** सकार और तवर्ग-त थ, द ध न के स्थानमें श्चुना=शकार और चवर्ग =च छ ज झ ञ के योग (सम्बन्ध) में श्चुः=शकार चवर्ग हो । यहां स्थानी स और तवर्ग को क्रमसे श और चवर्ग आदेश हो । इसमें यथासंख्य(गणना क्रमसे समझें "श्चुनाका योग पूर्व से हो या परसे । दोनों दशामें —शकार चवर्ग हो यथा—रामस्—शेते सकार हैं 'हरिस्' का स, शेतेके शके योग (सम्बन्धमें) दन्त सको तालव्य 'श' हुआ हरिश्शेते । हरिसोंते है । हरिकर्तृक वर्तमानकालिकशयन अर्थ तथा क्रियाकारक सम्बन्ध हैं । वाक्यमें विवक्षाधी होनेसे सन्धि न भी रहे । रामकर्तृक पुष्पचयनक्रिया अर्थका वाचक वाक्य रामस्—चिनोति (पुष्पम्)।

'स्तोः श्चुना श्चुःसे वहां भी सको 'च'के योगमें श् हो गया । **रामश्चिनोति** । रामपुष्प चुनते हैं । क्रियाकारकसम्बन्ध हैं । **सच्चित्**=सदाविद्यमानं चित्—ज्ञानस्वरूपं चैतन्यं ब्रह्म अर्थ का प्रकाशक **सत्—चित्** (चेतन सम्बन्धिनःसत्ता)दशा में स्तो श्चना—सूत्रेण सतके तके स्थाने अव्यवहित चके योगे च हुआ **सच्चित्** इति । सदा विद्यमानं नित्यचेतनं ज्ञानस्वरूपं ब्रह्मका नित्यसम्बन्ध ही सन्ध्यर्थं हैं । विशेषणविशेष्यभावसम्बन्ध । हे शार्ङ्गिन् शार्ङ्गधनुर्धारिन् तव जयोऽस्तु इत्यर्थक शार्ङ्गिन्-जयः। अत्र तवर्गः=नके स्थाने चवर्गः ञ हुआ चवर्ग ज योगे परे हैं । बालक शेते । छात्रास्-चिनवन्ति छात्राश्चिन्वन्ति, त्वत्—चरित्रं **त्वच्चरित्रं केचित्जनाः विपज्जालं याच—ना याच्ञा** ६३ शात्- शकारसे परे तवर्गको श्चुत्व न हो विश्-नः इस अस्थामें श के योग (सम्बन्धमें) नकारपरे प्राप्त श्चुत्वको शात् सूत्रसे निषेध, क्योंकि शसे परे न हैं । **विश्नः**=भाषण, वीप्सा वा दो बार बोलना । तथैव प्रश्—नः । अत्रापि प्राप्तस्य न स्थाने श्चुत्वस्य शात् सूत्रेण निषेधः प्रश्नः । पृच्छा (पूछनेकी इच्छा) श्चुत्व होनेपर शब्दकी नित्यता और उक्तार्थकी शक्ति न होती ।

पेष्टा। तट्टीका। चक्रिण्ढौकसे। (७२) न पदान्ताट्टोरनाम् ।८।४।४२। अनामिति लुप्तषष्ठीकम्पदम्। पदान्ताट्टवर्गात्परस्याऽनामः स्तोः ष्टुर्न स्यात्। षट् सन्तः षट् ते। पदान्तात्किम्? ईट्टे। टोः किं? सर्पिष्टमम्।

---

६४ ष च टुश्च अनयोः समाहारः ष्टु तेन—ष्टुना—स्तोः की अनुवृत्तिः। अर्थ पूर्ववत्। स्तोः—सकार तवर्गके स्थानमें, ष्टुना—षकारटवर्ग (पूर्व या पर)के योगमें क्रमसे ष्टुः=षकार टवर्ग टठडढण हो, सको ष तवर्गको टवर्ग। षण्णां पूरणः षष्ठः। छठी संख्याका पूरक राम हैं इत्यर्थक। रामस्—षष्ठ सकारके स्थानमें ष्टुना ष्टुःसे सको ष्टुत्व ष हुआ, षका योग है ही। रामष्षष्ठः यहां रामका संख्याके साथ अभेद सम्बन्ध हैं छठां राम। रामका टीका करना या गमन अर्थमें रामस्—टीकते। यहां स को टके योगमें ष्टुत्वसे ष हुआ रामष्टीकते। क्रियाकारकसम्बन्धः। सन्धिका विषय हैं। पिष्लृ पेषणे पेष्टा=पेषणकर्ता पीसनेवाला पेष्—ता। अत्र 'ता' के तको षके योगमें ष्टुत्व ट हुआ पेष्टा=पिंषति। चुर्णकरोति चूर्णकारकः। चक्रिन् ढौकसे। यहां नको ष्टुत्वेन ण हुआ। हे चक्रधरिन हरे दुष्टान दमयितुं गच्छसि। कृष्णषष्ठः। प्रष्=ता प्रष्टा पूछनेवाला त्वट्टीका, पञ्चमण्णष्ठश्च, मुखा-ष्षट् छः मुख। दृढ ध दृढः प्रतिष्थाता, शिक्षकात् प्रतिष्ठाता।

६५'न' इति निषेधकः पदान्तात्—पदके अन्तमें अनामः-नामशब्दको छोड़कर-स्तोःष्टुःकी अनुवृत्ति पूर्वसूत्रसे पदान्त टवर्गसे परे सकार तवर्गके स्थानमे ष्टु—षकार टवर्ग न हो अनाम्—नामपरे ष्टुत्वका निषेध न हो। अर्थात् ष्टुत्व हो जाय। षट्-सन्तः यहां पदान्त टवर्ग 'षट्के टके योगमें सन्तःके 'स' को ष्टुना ष्टुःसे प्राप्तष्टुत्व का न पदान्तात्से निषेध हुआ। छ महात्मा अर्थकी शक्ति है। यदि ष्टुत्व होता, षट् षन्त ऐसा अनिष्ट, अशक्त रूप होता। वे छः है। इस अर्थका बोधकवाक्य षट्ते। यहां भी प्राप्त ष्टुत्वका निषेध उक्तसूत्रसे हुआ। अन्यथा षट्टे बननेपर उक्त अर्थकी शक्ति न रहती। पदान्तात्किं? सूत्रमें पदान्त टवर्ग ऐसा न कहते तो अपदान्त टवर्ग को भी ष्टुत्वनिषेध होने लगता। यथा ईट्—तेमें ष्टुत्वनिषेधसे ईट्टेकी सिद्धि न होती। ईड् स्तुतौ स्तुतिकी क्रिया अर्थकी शक्ति न होती। यहां ईटका ट पदान्त नही हैं अतः निषेध नही, ष्टुत्व ईट्टे=स्तुतिं करोतीत्यर्थः टोः किं? सूत्रमे टवर्गसे परे अर्थ क्यो किया। यदि वैसा न करते तो पदान्तसेपरे सभीको ष्टुत्व-षकारऽवर्गका निषेध होने लगता, औंर पदान्तसे परे ष्टुत्व न हो, ऐसा अर्थ होता। तब अतिशयेन—अत्यधिकेन सर्पिः—घृतं घीकी अधिकता अर्थमें तमप् सर्पिष—तमम् यहां षकारसे परे तमम्के तको ष्टुत्व का निषेध ही होता। तब सर्पिष, तमम् शब्द के अर्थ की बोधकता शक्ति नष्ट होती (उद्यानात् षट्पदा आयान्ति) अकाशात् षट् गुणाः मिलन्ति अतः 'टोः' ग्रहण आवश्यक है। पदान्त टवर्गसे परे ही ष्टुत्वका निषेध उचित हैं। ष्टुत्वे सर्पिऽष्टमम्। यदि पूर्वसूत्रसे टु की अनुवृत्ति

अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् । षण्णाम् । षण्णवतिः । षण्णगर्यः ।(७३) **तोः षि** ।८।४।४३। तवर्गस्य षकारे परे न ष्टुत्वम् । सन्षष्ठः । (७४) **झलां जशोऽन्ते** ।८।२।३९। पदान्ते झलां जशः स्युः । वागीशः । चिद्रूपम् । (७५) **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** ।८।४।४५। यरः पदान्तस्याऽनुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् । एतन्मुरारिः । स्थानप्रयत्नाभ्यामन्तरतमे स्पर्शे चरिता-

---

तथा पञ्चम्यन्त विपरिणाम करके उक्त अर्थ का लाभ करेगे तब एकयोग (सूत्र) निर्दिष्टानां सहैव प्रवृत्तिः सहैव निवृत्तिश्च । टुके साथ षकी अनुवृत्ति आती पदान्त षकारसे परे ष्टुत्वका निषेध होता दोष क्या होता 'सूत्रकारस्य न्यूनतां दृष्ट्वा वार्तिककारः प्रपूरयेत् —सूत्रकारकी न्यूनतां उक्तसूत्रके **अनाम्** अंशमें देखकर वार्तिककार वार्तिक द्वारा पूरा करते हैं कि वा अनाम्=नामके साथ नवति नगरीको भी जोड़ना चाहिये, जिससे उसमें भी ष्टुत्वका निषेध न हो । **षण्णां** गृहम् छः पुरुषों का घर अर्थमे **षष्—णाम्** यहां ष्के योग में नामके न को ष्टुत्वके निषेधका निषेध वार्तिकसे होता हैं । फलतः ष्टुत्व हुआ । षष्—णाम । झलांजशो-ऽन्ते,से षष् के 'ष' को जश् 'ड' उसको यरोऽनुनासिके–सूत्र से परसवर्ण अनुनासिके ण् **षण्णाम्** । छ संख्याका, अभेदसम्बन्ध सन्ध्यर्थ । एवं षडधिका **नवतिः** ९६ संख्या अर्थका प्रकाशक षष्–नवतिः ष्टुत्व सन्धि हुई । न पदान्तातके निषेधका निषेध वार्तिकसे हुआ । एवं षडधिका नगर्य्यःकी भी सिद्धि समझें अनुनासिक अभाव पक्षमें षड्णां षड्णवतिः षड्णगर्यःभी होता हैं ।

७३ **तोः** =तवर्ग को षि =षकार परे ष्टुत्व नही होता । ६ संख्याका पूरक **छठां** सज्जन हैं अर्थवाचक सन्–षष्ठः यहां तवर्ग न् को प्राप्त ष्टुत्वका षकार परे जान कर तोःषि सूत्रसे निषेध हुआ । ७४ झलां-झल् प्रत्याहारस्थवर्णानां जश्–जबगडद श अन्त्ये–अन्तावयवे पदान्तमें झल् प्रत्याहार के अक्षरों को जश् हो । **वागीशः** वाचां—वाणीनाम् ईशः—वृहस्पतिः स्वामी, अर्थ **वाक्–ईशः** । पदान्त झल् 'क'को 'झलांजशोऽन्ते' सूत्रसे जश् ग, वर्णसम्मेलन **वागीशः**। अधिकृतवक्ता, सरस्वतिस्वामी चिद्रूपं चिदां चेतनानां रूपमर्थः । **चित – रूपं** तत्स्याने झलां जशोऽन्ते जश्त्वं दः । **चिद्रूपम्** । जगत्–ईशः जगदीशः, **चित –आनन्द** चिदानन्दः । **मधुलिट् उत्पतति** मधुलिड् भौंरा उड़ता है । षड्नां षण्णां, मन्नीषा मन्नीतिः, धिग् मुर्ख धिङ्मूर्ख । **वाक्मनसी** वाङ्मनसी, **सन्मार्गः**

(७५) यरः=यर् प्रत्याहारके वर्ण अनुनासिके—नासिकाके सहित मुखसे उच्चारितवर्ण पदान्तका अवयव 'यर्' प्रत्याहारके अक्षरको अनुनासिक परे रहते परसवर्णअनुनासिक विकल्प से हो । यथा**एतद्—मुरारिः**, पदान्त यर् 'द' अनुनासिक परे मुरारिःका 'म' द्को अनुनासिक (मका सवर्णी समानजातिवाला) 'न' हुआ नासिका स्थान सम्बन्धसे **एतन्मरारिः** । यह मुर नामक दैत्यका हन्ता=भग-

र्थो विधिरयं रेफे न प्रवर्तते । चतुर्मुखः । प्रत्यये भाषायां नित्यम् । तन्मात्रं चिन्मयम् । (७६) **तोर्लि** ।८।४।६०। तवर्गस्थ लकारे परे परसवर्णः स्यात् तल्लयः । विद्वांल्लिखति । नस्याऽनुनासिको लः (७७) **उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य** ।८।४।६१। उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः स्यात् । (७८) **तस्मादित्युत्तरस्य** ।१।१।६७ पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् । (७९) **आदेः परस्य** ।१।१।५४। परस्य यद्विहितं तत्तस्या-

---

वान् हैं । अनुनासिक के अभावपक्षमें **एतद्मुरारिः** दोनो पक्ष समान अर्थ वाले हैं । **स्थान** इति । **अयं विधिः**=यह अनुनासिकविधि एतन्मुरारीमें स्थान और प्रयत्नके अन्तरतमे=अतिशयेन अन्तरः सदृशः अन्तरतमः । तत्र स्थानप्रयत्नकी समानतामें स्पर्शें स्पर्शसंज्ञकवर्णमें चरितार्थः=लब्धप्रयोजनः फलीभूतः सफल है तब केवलं रेफे रके विषयमें न प्रवर्तते-नहीं लगेगा । क्योंकि केवल स्थान मात्रका आन्तर्य समानता सादृश्य सह्य नहीं है । यतोहि यूनि लब्धे तु युवति जठरे रमते कथम् । स्थानरूप सौन्दर्य प्रयत्नरूप सामर्थ्येन सशक्तो मिलेत् तदा वृद्धे रमणं न करोति तस्मिन्सामर्थ्याभावात् इति पंक्तेः आशय । एवं चत्वारि मुखानि यस्य सः चतुर्मुखो ब्रह्मा । चार मुखवाले । बहुव्रीहिसमासे नित्यसन्धिः इति नियमेन रेफस्थाने यरोऽनुनासिके-सूत्रेण अनुनासिको णकारः प्राप्तः, परन्तु रेफणकारयोर्मध्ये स्थानप्रयत्नसमानता नास्ति ऋटुरषाणां मूर्धा इति स्थानसमानता वर्तमानेऽपि, स्पृष्ट प्रयत्नभेदे सति चतुर्मुखः इत्यत्र रेफस्य सवर्णी अनुनासिको नास्ति । अतो अनुनासिकणकारो नास्ति । रेफोष्मणां सवर्णाः न सन्ति । र, शषसह, इनके सवर्णी अक्षर होते ही नहीं । अतएव चतुर्मुखः इत्यत्र रेफस्थाने सवर्णानुनासिको न ।

(वा) **प्रत्यये**=यदि पदान्त 'यर' से परे अनुनासिक गुण, प्रत्यय परे मिलता हो तो भाषायां(लोक व्यवहारमें) नित्य अनुनासिक हो । यथा—तत्परिमाणम् अस्य तन्मात्रं —तत् —मात्रम् (उतनी मात्रा) यहां मात्रच्-परिमाण अर्थका बोधक प्रत्यय है । **प्रत्यये भाषायां** पदान्त दके स्थानमें यरोऽनुनासिकपरे नित्य अनुनासिक नकार वार्तिकसे हुआ । एवम् अधिकचेतना (ज्ञानरूप) अर्थमें **चित्-मयम्** पदान्त 'यर्'तके स्थानमें यरोऽनुनासिक सूत्रेण न् हुआ । नित्य का भाव यह है कि सवर्णी अनुनासिक उक्त अर्थबोधमें समर्थ है । (नित्या समासे) अनुनासिकका अभाव असामर्थ्य है । षड्णां षण्णां, तन्मयं चिन्मात्रम् । मृड्मयं मृण्मयम् ।

६९ तोः=तवर्गके स्थानमें, (लकार परे रहते) परसवर्ण हो । परमें जो वर्ण है उसके समानवर्ण(जाति)होंना परसवर्ण है । यथा-**तल्लयः** तद्=लयः तवर्ग दको ल परे तोर्लिः सूत्रसे परसवर्ण लकार हुआ तल्लयः । तस्य=जगतः,लयः विनाशः या तस्मिन् ब्रह्मणि लयः लीनः संसारः । **विद्वान्-लिखति** । यहां तोर्लि सूत्रसे नको ल परे रहते परसवर्ण अनुनासिक लकार हुआ । क्योंकि यव्ल् तीनों अनुनासिक अननुनासिकभेद

ऽऽदेर्बौघ्यम् । अत्राऽघोषस्य महाप्राणस्य विवारस्य श्वासस्य सस्य तादृश एव थः, इति सस्य थः (८०) **झरो झरि सवर्णे** ।८।४।६५। हलः परस्य झरो लोपो वा स्यात्सवर्णे झरि (८१) **खरि च** ।८।४।५५। खरि परे झलां चरः

वाले है । विद्वांल्लिखति न मूर्खः । अनुनासिक अननुनासिकभेदेन यवलाः द्विधा (इति संज्ञाप्रकरणे) **विद्वान** लाति विद्वांल्लाति । कुशांल्लाति गुरुन् लिखति गुरुचित्र बनाताहै । ७७ **स्था च** स्तम्भश्च स्थास्तम्भौ तयोः । उद् से परे स्था और स्तम्भ को पूर्वसवर्ण =पूर्व वर्ण के समान जातिवाला वर्ण हो । ७८ तस्मात्=अत्र पञ्चमीविभक्तिका उच्चारण है । इति=यह उत्तरस्यपरभागस्य । सूत्रमें पञ्चमी निर्देशेन उच्चारण करके क्रियमाण किया जानेवालाकार्य, वर्णान्तरेण पूर्ववर्णसे बिना व्यवधान के परसवर्ण के स्थानमें जानना चाहिये । ७९ आदेः परस्य=परे स्थितस्य आदेः=आदिवर्णस्य स्थाने । परदलको जो पूर्वसवर्ण आदिकार्य विहित विधान किया गया, तत्तस्य=वह कार्य परके आदि वर्ण के स्थानमें हो ।

अत्राघोषस्य=अस्मिन्प्रकरणे विवारश्वासअघोष प्रयत्न वाले खरप्रत्याहारवर्ण है । उसमें ख फ छ ठ थ च ट त व कपय्—शषसरमें सका साथी थ और त मिले । क्योंकि 'ध द न' नहीं होगे । अल्पप्राणप्रयत्नात् चतुर्थ ध भी नहीं होगा । क्योंकि संवारनादघोष प्रयत्नवाला हैं । द्वितीय अक्षर थका अघोषविवारश्वासमहा-प्राण यत्न । चतुष्टयेन प्रयत्नवान् सकारः भी चार प्रयत्नवाला है प्रयत्नचतुष्टस्य समानतावर्तमाने सति स स्थाने 'थ' आदेशो भवति ।

झरो हल से परे झर् प्रत्याहारके वर्णका लोप हो सवर्णसंज्ञक झर् परे विकल्पसे । ७४ **खरि**=खर् प्रत्याहार के वर्ण परे हो तो झल् अक्षरोंको चर् अक्षर हो । यथा **उद् —स्थानम्** 'उदः स्था' आदि सूत्रसे पूर्वसवर्ण । प्रश्न ? क्या पूरे स्थान के स्थानमें हो । तब निर्णायक सूत्र तस्मादित्युत्तरस्य पञ्चमी निर्देश करके उदःमें पञ्चमीका उच्चारण है विधान किया गया कार्य पूर्वका सवर्णी हो । पूर्व उद्से अव्यवहित पर 'स्था के स्थान में हो । क्या पूरे स्था को पूर्वसवर्ण हो, तब व्यवस्थापिका परिभाषा सूत्र बोले कि–आदेः परस्य । परके स्थानमें कहा गया कार्य पर (स्था) के आदि अक्षर स् के स्थान में पूर्व सवर्णी थ हुआ । परन्तु द का सवर्णी ५ है । (तथदधन) थ ही क्यो ? सत्य निर्णयके लिये स्थान देखते है तो (लृतुलसानां दन्ता) यहां भी स का स्थानी पांचो है । आभ्यन्तरप्रयत्नमें भेद है । स का ईषद्विवृतप्रयत्न, तवर्गका स्पृष्ट प्रयत्न है । अतः निर्णय के लिये वाह्यप्रयत्न ही एक मात्र शरण है । विवार श्वास अघोष प्रयत्नवाला 'खर' प्रत्याहार में स का साथी त थ दो निर्णीत हुये । वर्ग का द्वितीय चतुर्थ शल् स् ष् श् ह् अक्षरो का महाप्राण प्रयत्न दर्शन में द्वितीय अक्षर थ ही स के स्थान में हुआ । अन्यवर्ण निवत्त हो गये । **उद्-स्थानम्** इति जाते ।

स्युः। इत्युदो दस्य तः। उत्थानम् उत्तम्भनम्। (८२) **झयो होऽन्यतरस्याम्** ।८।४।६२। झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः स्यात्। नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थ एवादेशः। वाग्घरिः। वाग्हरिः। (८३) **शश्छोऽटि** ।८।४।६३। पदान्ताज्झयः परस्य शस्य छो वा स्याद-

---

७३ **झरो**—हल्सेपरे झर्का लोप हो, सवर्णी झरि परे। यहां हल्, उद्का द उससे परे थ का लोप हुआ सवर्णी झरि थानं का थ्। खरि च–खरि परे 'थानम् का थ है उद्के दको चर्त्वं 'त' हुआ, **उत्थानम्**। लोप के अभावमें द और थ दोनों को चर्त्वेन त्त **उत्थानम्**=उत्थितिः उन्नतिर्वा। दोनों पदों का मिलित सन्ध्यर्थः। एवम्–उद्—**स्तम्भनम्**। पूर्व प्रक्रिया के अनुसार सटीक समझें। 'ऊपर उठाना' संयुक्तार्थः। अवरोधः, सन्ध्यर्थः। सन्धि के बिना उक्तार्थ सम्भव ही नहीं। क्योंकि उपसर्ग समीपस्थ शब्दके विशेष अर्थ का प्रकाशक हैं स्वतन्त्र अर्थ दायक नहीं। **उद्–स्थापकः उत्थापकः** उठानेवाला उद्–स्तम्भः उभारना उत्तम्भः।

८२ झयः=झय् प्रत्याहार के अक्षर से, हः=ह के स्थान में **अन्यतरस्याम्**=अन्य के मतमें (वि० से)। झय् प्रत्याहारके अक्षरों से परे ह के स्थानमें विकल्पसे –**पूर्ववर्ण** का सवर्णी समानजाति वाला अक्षर हो। नाद, घोष, संवार प्रयत्न वाला हश् प्रत्याहार तथा महाप्राण प्रयत्न दर्शनसे हके स्थान में तादृशः=पूर्ववर्ण का सवर्णी वर्ण=कवर्ग टवर्ग चवर्ग तवर्ग पवर्गका चतुर्थ वर्ण हो। यथा–वाचां वाक्सु वा (हरिः सिंहः बोलने में सिंह है)। इस अर्थ का प्रकाशक वाक् –हरिः इति स्थितौ। झलां जशोऽन्ते सूत्रसे 'क्' स्थाने ग् यहां झय् ग उससे परे हरिःके ह को पूर्ववर्ण ग का सवर्णी=एकजाति वाला होना चाहिये। परन्तु स्थान देखने पर (अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) ह का सजातीय पूरा कवर्ग है। आभ्यन्तरप्रयत्नभी भिन्न है। अतः अगत्या वाह्यप्रयत्न का शरण लेना पड़ा। संवार, नाद, घोष प्रयत्नवाला हश् प्रत्याहारमें ह के साथ ग, घ दो वर्ण उपस्थित हुये। महाप्राणप्रयत्न-वाला द्वितीय, चतुर्थ ख घ, उपस्थित हुये। परन्तु घ ने सब जगह साथ दिया। हके स्थानमें घ ही हुआ, **वाग्घरिः**। पूर्वसवर्णके अभावमें कको जश्। वाग्हरिः। सन्धिके अभावमें उक्त अर्थ स्पष्ट न होता। एवं अज्झीनम् अच्से हीन, **षड्ढलानि** छ हल। तद्धविः, उसका हविः। इक ह्रस्व इग्घ्रस्व। नाच् हलौ **नाज्झलौ**। **उद्—हरति उद्धरति** ककुब्—हस्ती ककुब्भस्ती। [दिग्गज]

(८३) शः='श' स्थाने, छः, झय् प्रत्याहारवर्णसे परे 'श' के स्थानमें 'छ' हो, विकल्पसे, अटिपरे। यथा–**तद्—शिवः**, यहां 'द'के स्थानमें श्चुत्वेन ज होने पर 'खरि च' सूत्रसे ज के स्थानमें चर्त्व=च, तथा शिवः के श को 'शश्छोऽटि' से 'छ' हुआ। क्योंकि वह झय्से परे है। उससे परे अट् 'इ' है। तच्छिवः। छत्वके विकल्पसे तच्शिवः। स चासौ शिवः। वह शिव हैं। (वा) छत्व–झय्से परे 'श'को

टि। तच्छिवः तच्शिवः । पदान्तात्कि ? विरप्शम् । छत्वममीति वाच्यं तच्छ्लोकेन । अमि किं ? वाक्श्चोतति । (८४) **मोऽनुस्वारः** ।८।३।२३। मान्तस्य पदस्याऽनुस्वारः स्याद्धलि । हरिं वन्दे । पदस्य किं ? गम्यते । (८५) **नश्चाऽपदान्तस्य झलि** ।८।३।२४। नस्य मस्य चाऽपदान्तस्य झल्यनुस्वारः स्यात् । यशांसि । आक्रंस्यते । झलि किं ? मन्यसे । (८६) **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** ।८।४।५८। अङ्कितः । अञ्चितः । शान्तः । गुम्फितः ।

छ हो अम्परे रहते । यथा **तस्य श्लोकेन** (कीर्त्या उसकी कीर्तिसे)इस अर्थका प्रकाशक **तद्– श्लोकेन** यहां भी जश चर्त्व । वार्तिकसे छत्व होकर **तच्छलोकेन** त्रिश्वः पाल्यते । मत्–शिवः मच्छिवः, त्वत–शासनं=त्वच्छासनं, महत्–शान्तिः महच्छान्तिः।

अमि किं ? वार्तिकमें अम्परे क्यों पढ़ा, इसलिए कि वाक् श्च्योतति सरस्वती को निचोड़ता है यहां च अम्प्रत्याहारसे बाहर है । शको छ न हो जाय, अतः अमि पढ़ा । **जगच्छान्तिः** । वाक्—शूरः वाक्छूरः बोलनेमें वीर मच्छ्वशुरः यावच्छक्य शक्तिभर ।

पदस्येति किं ? सूत्रमें पद क्यों पढ़ा ? इसलिए कि गम्यतेमें पदका म नहीं हैं उसे अनुस्वार न हो । गम् धातोः कर्मअर्थवाचकलकारे रूपम् ।

७७ । मः=मकारस्य स्थाने अनुस्वारः । मान्तपदको अनुस्वार हो हल परे । हरिको वन्दे, प्रसन्नताके अनुकूल दण्डवत् प्रणामादि क्रिया **हरिम्—वन्दे** । मान्तपद 'हरिम्' यहां अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा सूत्रसे अन्त्य अल् म स्थाने अनुस्वार हुआ । **हरिं वन्दे** । **देवम्–नमति देवंनमति,गुरुम्–सेवते गुरुंसेवते** । पितरं भजति,शत्रुं जयति पाठशालां गच्छति ।७८। **नश्च अपदान्तस्य**=पदान्तभिन्न, न स्थाने, चसे मस्थाने अपदान्त नकार और मकारके स्थानमें अनुस्वार हो, झलि झभष्से हल् तकके अक्षर परे । यथा–'बहुतसे यश' अर्थवाला (एकपदे नित्या) यशान्–सि इति दशायाम् अपदान्त न को 'नश्चा—सूत्रसे अनुस्वार हुआ । यशांसि । संहिता एकपद है । एवं आक्रमण करेगा—**आक्रम्–स्यते** । भविष्यकालिक आक्रमण क्रिया । यहां भी 'म्' पदान्त नही उसका नश्चापदान्तस्यसे अनुस्वार हुआ । **आक्रंस्यते** । झलि किं ? झलि परे अनुस्वार हो ऐसा अर्थ क्यों ? तुम मानते हो, इस अर्थमें समर्थ–मन यसे यहां न को अनुस्वार न हो । अन्यथा उक्तार्थमें शक्ति न होगी । झलि परे कहने पर अनुस्वार प्राप्त नही । **धनून्–षि धनूंषि**, पयान्—सि पयांसि । अयम्सीत् अयंसीत् यशांसि । मुन्–चति मुञ्चति । गुं–जति गुञ्जति ।

।७९। **अनुस्वारस्य**=अपदान्त अनुस्वारके स्थानमें ययि=यवरट्से कपय् तक के अक्षर परे हो तो नित्यपरसवर्ण हो । शान्तपुरुष अर्थमें समर्थ शाम्—तः नश्चा सूत्रसे अपदान्त शाम्के म को अनुस्वार उससे यय्–त परसवर्ण (त का सवर्णी) न हुआ । यदि परसवर्ण न होता तो उक्तार्थमें शब्दशक्ति न होती । **शान्तःमें**

(८७) **वा पदान्तस्य** ।८।४।५९। पदान्तस्याऽनुस्वारस्य ययि(परे)परसवर्णो वा स्यात् । त्वङ्करोषि । त्वं करोषि । त्वन्तनोषि । त्वं तनोषि । सँव्वत्सरः संवत्सरः । यँल्लोकम् । यंलोकम् । अनुस्वारस्य पक्षे अनुनासिका यवलाः । (८८) **मो राजिसमः क्वौ** ।८।३।२५। क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात् । (८९) **हे मपरे वा** ।८।३।२६। मपरे हकारे मस्य मो वा स्यात् । किम् ह्मलयति । किं ह्मलयति । यवलपरे यवला वेति वक्तव्यम् । कियँ ह्यः

बोधकता शक्ति है अं —चितः अञ्चितः गं-फितः गुंथा हुआ ।

अंकाः संजाताः अस्येति अङ्कितः (अङ्कपदे लक्षणे च) पद अर्थ और लक्षण चिह्न अर्थः । कर्मणि क्तः अं—कितः । ययि परे क, तस्य सवर्णी कवर्गः 'क ख ग घ ङ' परन्तु नासिका स्थानसमानतादर्शनात् ङ एव भवति । अङ्कितःलक्षणयुक्तः **अञ्चितः** एवं गति पूजनार्थक अञ्चधातोः अञ्चेह् पूजायाम् अन्–चितः अत्र नश्चापदान्तस्य इति अनुस्वारे तस्य ययि परे परसवर्णे । पूजितो गतो देवः । कुठि प्रतिघाते क्तः इट् नुम् । **कुण्ठितः** अवरुद्धः पादः, कुठारश्च । भा कुठारु कुण्ठित नृपधातो ।

। ८० । **वा** पदके अन्तमें विद्यमान अनुस्वारको विकल्पसे परसवर्ण हो । 'तुम करते हो' अर्थमें–त्वम् –करोषि । 'म्' को अनुस्वार । अनुस्वारस्य ययि परे परसवर्ण ङ् हुआ । **त्वङ्करोषि** । पक्षमें त्वं करोषि । दोनों समर्थ हैं । क्रियाकारकभाव ।

संव्वत्सरः इति दशायां अनुस्वारस्थाने परसवर्णो वकारः । संव्वत्सरः । दोनों प्रयोगमें वर्ष अर्थ कहनेकी क्षमता है । यं लोकं पुण्यात्मा गच्छति । अत्र अनुस्वार परे स्थानेसवर्णी अनुनासिको लकार एवं तल्लोकं यवलाः अनुनासिकाः भवन्ति । संवत्सरः सम्वत्सरः मधुरं गायति । मधुरङ्गायति । क्षेत्रं खनति, जलम्पिबति जलंपिबति, शङ्खन्ध्वनति । लुं–चति लुञ्चति ८१। क्विबन्ते क्विप् प्रत्ययान्त राज्शब्दपरे सम्के 'म्' को 'म' ही रहे । तभी वह साधु मान्य है । सम्यक् राजते शोभते इति अर्थे सम् –राट् क्विप्प्रत्ययान्त राट् है, समके मकारको मोऽनुस्वारःसे प्राप्त अनुस्वार बाधकर 'म' ही रहा । **सम्राट्**—चक्रवर्ती नरेन्द्र सम्राज्भ्यां ।८२। हे—हकारे परे मपरक हकार परे रहते मके स्थानमें अनुस्वारको बाधकर म ही रहे वि० से । क्या चलता है ? अर्थमें **किम् –ह्मलयति** । यहां प्राप्त अनुस्वारको बाधकर विकल्प से म के स्थानमें 'म' का विधान किया गया । पक्षे अनुस्वारः **किं ह्मलयति** । दोनों साधु हैं– (वा०) यवलपरक हकार हो तो 'म्' के स्थानमें अनुनासिक 'यवल' क्रमसे वि० से हो । यथा (कल क्या था) अर्थक किम् ह्यः यहां हकार परे रहते म् के स्थानमें हेमपरे वा सूत्रसे अनुनासिक 'य' हुआ । क्योंकि यहां 'य' परक हकार है कियं ह्यः । पक्षे अनुस्वारः । **किंह्यः** । क्या गाता है ? इस अर्थका वाचक **किम् –ह्वलयति**, यहां म को सानुनासिक वं हुआ, वकार परक ह है । पक्षमें

किं ह्यः। किवँ ह्वलयति। किं ह्वलयति। किलँ ह्लादयति। किं ह्लादयति। (९०) **नपरे नः** ।८।३।२७। नपरे हकारे मस्य नो वा। किन् ह्नुते किं ह्नुते। (९१) **डः सि धुट्** ।८।३।२९। डात्परस्य सस्य धुड् वा। (९२) **आद्यन्तौ टकितौ** ।१।१।४६। टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमाद्याद्यन्ताऽवयवौ स्तः। षट्त्सन्तः। षट्सन्तः। (९३) **ङ्णोः कुक् टुक् शरि** ।८।३।२८। ङकारणकारयोः कुक्टुकावागमौ वा स्तः शरि। कुक्टुकोरसिद्धत्वान्न जश्त्वम्। चयो द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्। प्राङ्ख्षष्ठः प्राङ्क्षष्ठः प्राङ्षंष्ठः। सुगण्ठ्षष्ठः सुगण्ट्षष्ठः सुगण्षष्ठः। (९४) **नश्च** ।८।३।

अनुस्वार ही रह गया। क्या पसन्द करता है, अर्थमें किन्-ह्लादयति। यहां न परक हकार परे 'म' को अनुनासिक लं कार हुआ। पक्षमें अनुस्वार भी।

।८३। न परक हकारपरे रहते मको न विकल्पसे हो। (क्या छिपाता या हटाता है) अर्थमें किन्-ह्नुते यहां उक्त सूत्रसे म को न हुआ। पक्षमें अनुस्वारः। किन्ह्नुते ॥ ८४। डः डकारसे परे सि=सकारको धुट्, (उट् इत्संज्ञक) 'ध्' शेष। विकल्पसे हो।

।८५। आदिश्च अन्तश्च आद्यन्तौ, टश्च कश्च टकौत्कौ इतौ ययोस्तौ टकितौ। जहां ट् इत्, वह टित् है। जहां क् इत् हो कित् है। ये दोनों जिसको कहे गये हो, वे क्रमसे आदि अन्तके अवयव (अङ्ग) हो। टित् आदि अवयव, कित् अन्त अवयव। यथा—छ (महात्मा) हैं षड्—सन्तः डः 'सि'—से 'ड'से परे सन्तके 'स'को धुट्=ध् हुआ। टित् होनेसे 'स' के आदिमें हुआ 'खरि च' से 'ध' को चर्त्वेन त् और 'ड्' को 'ट्' षट्त्सन्तः। पक्षमें केवल 'ड' को ट् षट् सन्तः। धुड्स् धुट्त्सु धुट्सु। लिट्त्सु। ट्साहसी षड्त्साहसी। तुराषाट्त्संसरति।

।८६। ङ तथा ण् को क्रमसे कुक् (क्) टुक (ट्) आगम हो शरि श, ष, स परे विकल्पसे पौष्कर्साचार्य के मतमें। पाणिनिमतमें नहीं। इससे विकल्प सिद्ध पुष्करसदः अपत्यं पुमान्। (वा) चय् प्रत्याहारके वर्ण द्वितीय अक्षर हों शरि परे हो तो। यथा—प्रकर्षेण अञ्चति=सुप्रतिष्ठतो भवति इति प्राङ्। प्राङ्क्षु=प्रतिष्ठतेषु षष्ठः (षण्णां पूरणः) (माननीयोंमें छठां) अर्थका प्रकाशक प्राङ्—षष्ठः इति दशामें 'ङ्' को कुक्क् हुआ, पौष्कर्साचार्यके मतमें कित् अन्तमें होता है। उस 'क' के स्थानमें चयो द्वितीयासे द्वितीय अक्षर ख हुआ। तो प्राङ्ख्षष्ठः। चयो द्वितीयासे जब द्वितीय अक्षर नहीं तब क षसंयोगे क्ष प्राङ्क्षष्ठः। कुक् नहीं हुआ, प्राङ्षष्ठः। सुष्ठु=सुन्दरं सुस्पष्टम् असन्दिग्धं, गणयन्तीति सुगणः तेषु षष्ठः। बहुत अच्छे गणितज्ञों (गणको) में छठां। सुगण्—षष्ठः यहां ण् को टुक् ट्। उसके स्थानमें विकल्पसे द्वितीय अक्षर ठ, सुगण्ठ्षष्ठः पक्षमें 'ट' सुगण्ट्षष्ठः। टुक् अभावमें सुगण्षष्ठः।

३०। नान्तात्परस्य सस्य धुड् वा। सन्त्सः। सन्सः। (६५) शि तुक्।८।३।
३१। पदान्तस्य नस्य शे परे तुग् वा। सञ्च्छम्भुः सञ्छम्भुः सञ्चशम्भुः
सञ्शम्भुः। ञछौ ञचछा ञचशा ञशाविति चतुष्टयम्। रूपाणामिह तुक्छ-
त्वलोपानांच विकल्पनात् (६६) ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्णिन्नत्यम्।८।३।३२।
ह्रस्वात्परो योः ङम्, तदन्तं यत्पदं,तस्मात्परस्याऽचो नित्यंङमुडागमः स्यात्
प्रत्यङ्ङात्मा सुगण्णीशः। सन्नच्युतः। (६७) समः सुटि।८।३।५। समो रुः

।९४। नश्च—न अन्त हो उससे परे स का अवयव धुट्=ध वि० से, हो।
सन्—सः - नान्तः 'सन्' उससे परे 'स' को धुट्=ध् (टित्) आदिमें हुआ।
उसको चर्त्व 'त्' सन्त्सः। पक्षेसन्सः। वह सत्पुरुष है। राजन् संसरति राजान्त्सं-
सरति गुणवान्त्सहते विद्वान्त्सवदते। गोमान्त्स्वपिति। ९५ शि=शकार परे हो तो
पदान्त न् को तुक्=त् हो विकल्पसे। शम्भु भगवान् सत् सदा विद्यमान ब्रह्म अर्थ
बोधक सन्—शम्भुः पदान्त 'न' को तुक् त् (कित्) होनेसे अन्ते हुआ। सकार परे है
सन्त्शम्भुः 'श को छ' (शश्छोऽसि) न=त' को श्चुत्वेन च, सञ्छछम्भुः। छत्व
अभावमें सञ्चशम्भुः। झरोझरिसे चकार लोपे सञ्शम्भुः। तुक् अभाव में 'न' को
श्चुत्वे, शको छ सञ्छम्भुः। ञछौ, ञचछा, ञचशा, ञशाविति चतुष्टयम्। रूपाणा
मिह तुक् छत्व लोंपानाञ्च विकल्पनात्। बालाञ्छाययति। राजन् शोभते राज-
ञ्छोभते। विद्वाञ्चछोभते-शोभते।

।९६। ङमो—ङम् प्रत्याहारात्, ह्रस्वात् अचि ङमुट् (ङुट्, णुट्, नुट्) ह्रस्व
से परे जो 'ङम्' (तदन्त) ङमन्त जो पद, उससे परे अच् को नित्यङ मुट् हो यथा—
संज्ञया कृतं टित्वं संज्ञाभिः सह सम्बध्यते। तेन ङुट्, णुट्, नुट् इति त्रयः आगमाः।
जीवात्मा अन्तरात्मा या अन्तर्यामी वाचक प्रत्यङ्—आत्मा। ह्रस्व से परे ङम्
ङ, तदन्तपद 'प्रत्यङ्' उससे परे अच् 'आ' उसको नित्य ङुट् ङ्। वर्णसम्मेलने
प्रत्यङ्ङात्मा। सन्धि न होती तो उक्त (संयुक्त) अर्थ भी न होता। यह नित्य
सन्धिका प्रभाव है। सुष्ठु गणयन्तीति सुगणः तेषामीशः=अधिपतिः। अच्छेगणकोंका
स्वामीवाचक सुगण्—ईशः, ह्रस्वसे परे ङम् तदन्तपद सुगण्, अचि परे 'ई', उसे
नित्य णुट्। टित्वात् आदिमें हुआ। सुगण्णीशः। सत्यस्वरूप अच्युत (विष्णु)
अर्थप्रकाशक सन्— अच्युतः। यहां भी पूर्ववत् नुट् समझे सन्नच्युतः। उपस्थितो
अच्युतः (भगवान्)। सन्—अन्त सन्नन्त। जानन्नपि, गच्छन्नपतत् हसन्—
अस्ति हसन्नस्ति, ङमो ह्रस्वात् सूत्रमें नित्य शब्दका अधिकतर प्रायः बहुधा विशेष
कर अर्थ है। अधिकतर णुट् होता है। कहीं नहीं भी जैसे सनादिः सन्—आदिः
तिङन्त तिङ्—अन्त। यणचि यण्—अचि स्थलोंमें ङमुट् नहीं देखा गया।

।९७। समः समके मकारको 'रु' हो (प्रशंसा, अलंकरण, भूषण बोधक) सुट्
स् परे रहते।।९८। अत्रा—अस्मिन् रु प्रकारणमें पूर्वस्य=रुके पूर्ववर्णको अनुनासिक

स्यात्सुटि (९८) **अत्रानुनासिकः पुर्वस्य तु वा** ।८३।२। अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा स्यात् (९९) **अनुनासिकात्परोऽनुस्वरः** ।८।३।४। अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः स्यात् । (१००) **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** ।८।३।१५। खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः स्यात् इति प्राप्ते । संपुंकानां सो वक्तव्यः । **सँस्स्कर्ता** । **संस्स्कर्ता** । (१०१) **पुमः खय्यम्परे** ।८।३।६। अम्परे खयि पुमो रुः स्यात् । पुँस्कोकिलः । पुंस्कोकिलः । पुँस्पुत्रः । पुंस्पुत्रः । अम्परे किं ? पुंक्षीरम् । खयि किं ? पुँदासः । पुंसः संयोगान्तलोपेऽवशिष्टभागस्येदमनुकरणम् । ख्याञादेशे न । पुंख्यानम् ।

विकल्पसे हो । ।९२। **अनुनासिकात्**=अनुनासिकपक्षं त्यक्त्वा परपक्षे अनुस्वारः । अनुनासिक पक्षको छोड़कर 'रु' के पूर्ववर्णको अनुस्वार हो । ।९३। **खर् च** अवसानं च खरवसाने, तयोः खरवसानयोः, विसर्जनीयः=विसर्गः । खर्प्रत्याहारके वर्ण परे हों, या अवसान संज्ञा हो, तो पदान्त रेफको विसर्ग हो (वा) **सम्पुम्**–सम्, पुम्, कान्, सम्बन्धी विसर्गको स कहें । यथा सम्यक् अलंकरण भूषणसे सुशोभित कर्ता अर्थका प्रकाशक **सम्—स्कर्ता** इति दशायां सम्-मको रु, अलंकरणार्थक सुट्परे अस्त्येव । सके पूर्वमें सके अको अनुनासिक पक्षमें अनुस्वार उक्त सूत्रसे हुआ । उ की इत्संज्ञा लोप **संर् स्कर्ता** । खरवसानयोः-खर परे रहते पदान्त रेफ रको विसर्ग हुआ । उस विसर्गको सम् सम्बन्धी होनेसे सम्पुंकानां० से 'स' हो गया । **संस्स्कर्ता, संस्स्कर्ता** । सब प्रकारसे अलंकर्ता । **सम् स्करोति संस्स्करोति संस्स्करोति पुसम् स्कृतं संस्स्कृतं संस्स्कृतम्** । छौंका, संस्कार किया, सजाने अर्थमें सुट् समझें

९४। **पुमः** अम् परे खञि=अम् प्रत्याहारवर्ण परक खञ् परे रहते पुम्के म को रु हो । नर कोकिल अर्थमें **पुम्—कोकिलः** । अम् परक खञि कोकिल परे म् मः खय्यम्परे से यहां भी पूर्ववत् अनुनासिक । परे अनुस्वारसे विकल्प अनुस्वार विसर्ग, पुम्के विसर्गको सम्पुङ्कानांसे सत्व करके विधि पूरी करें । पुँस्कोकिलः, पुंस्कोकिलः । **पुंसः चरित्रम् पुश्चरित्रम्** । म को रु, सको स्तोश्चुनाश्चुः **पुँसः खननं पुँस्खननं** । अनुस्वार भी, पुरुषका खनना ।

शब्दअर्थसम्बन्धसंस्कार प्रकृत्यर्थप्रयार्थ-'प्रक्रिया' वोधानुकूला क्रियाविशेषा व्युपत्तिः । जिस विग्रहसे प्रक्रियाका अर्थ, प्रत्ययका अर्थ, स्पष्ट झलके वह व्युत्पत्ति है । उणादि प्रत्ययेमें भी पूर्वत्र सवासात अध्यायकी दृष्टिमें त्रिपादी असिद्ध हो । इस असिद्ध काण्डमें रषाभ्यां सूत्रसे णत्वविधानके बाद (शस्य यो वा) शको य विकल्पसे हो ऐसा पढ़ा गया है । यह य विधान त्रिपादी होनेसे सपादी पुमःकी दृष्टिमें य सिद्ध होगा । अम्परक खय् नहीं मिलेगा । रुत्व भी नहीं होगा वार्तिकं व्यर्थम् । अनुस्वारस्थाने । वा पदान्तस्य परसवर्णविकल्पे । पुङ्ख्यानम् ।

। ९५ । **नः**=नके स्थानमें छवि=छव्, छ, ठ, थ, च, ट, त, परे । प्रशान् शब्दं

(१०२) **न श्छव्यप्रशान्** ।८।३।७। अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः । (१०३) **विसर्जनीयस्य सः** ।८।३।३४। खरि परे विसर्जनीयस्य सः स्यात् । चक्रिँस्त्रायस्व । चक्रिंस्त्रायस्व । अप्रशान् किं ? प्रशान्तनोति । पदस्य किं ? हन्ति । अम्परे किं ? सन्त्सरुः खड्गमुष्टिः । (१०४) **नॄन्पे** ।८।३।१०। नॄन् नित्यस्य रुर्वा पे । (१०५) **कुप्वोः ≍क≍पौ च** ।८।३।३७ कवर्गे, पवर्गे च परे विसर्गस्य ≍क ≍पौ स्तः चाद्विसर्गः । नॄँ≍पाहि । नॄं≍पाहि । नॄँः पाहि । नॄंः पाहि । नॄन्पाहि । (१०६) **सोऽपदादौ** ।८।३।३८। विसर्गस्त सः स्यादपदाद्योः कुप्वोः

वर्जयित्वा । अम परक छव् प्रत्याहार वर्ण परे नान्तपदके नकारको रु हो । प्रशान्, शब्दके नकारको रु न हो । ।९६। **खरिपरे विसर्जनीयः**=विसर्गके स्थानमें स हो । 'हे चक्रधारी भगवान् रक्षा करो' वाक्यार्थबोधक **चक्रिन्—त्रायस्व** । नश्छव्य-प्रशान् अम्परक 'छव्' परे नान्तपद चक्रिन्के नको रु हुआ । तब अनुनासिक अनुस्वार विसर्गपूर्ववत् । विसर्जनीयस्य सः सूत्रसे विसर्गको स् हुआ खर् परे,है **चक्रिँस्त्रायस्व**, **चक्रिंस्त्रायस्व अप्रशान् किं** ? सूत्रमें अप्रशान् क्यों पढ़ा ? प्रशान्के नको रु न हो जाय इसलिए । यदि रु होता तों प्रशान्तं पुरुषं तनोति=विस्तारयति अर्थका प्रतिपादक प्रशान्तनोति न बनता । पदान्तग्रहण क्यों ? हन्तिका नकार पदान्त नहीं रु न हो । अतः पदान्त पढ़ा । **पुत्रान्—चालयति पुत्रांश्चालयति** लड़कों को चलाता है । **कस्मिन्—चित् कस्मिँश्चित** किसीमें । कुशाग्राँश्छात्रान् ।

अम्परे किं ? सूत्रमें अम्परक छव् परे ऐसा क्यों ? इसलिए कि केवल छव् परे नान्तपदके न को रु न हो । यथा सन्–त्सरुः (तलवार मूठी) खड्गमुष्टिः । यहां सन् नान्तपद है और छव्–त है । यहां रु न हो ।

९७ **नॄन्** के नकार को रु हो, विकल्पसे प परे । । ९६ । **कुश्च** पुश्च कुपू, तयोः कुप्वोः । कवर्ग और पवर्ग परे रहते विसर्गके स्थानमें क्रमसे ≍क ≍प आदेश हो । चकारसे विसर्ग भी । नॄन्=नरान् पाहि=रक्ष, अर्थमें **नॄन्–पाहि** । नकार को पकार परे रु हुआ । उ इत 'र्'को विसर्ग । उसको यहां पवर्गपरे ≍प (उपध्मानीय ≍पाहि हुआ,पक्षमें विसर्ग रह गया । दोनोंपक्षमें अनुनासिक तथा अनुस्वार रु होने पर समझें । रु नही हुआ तब नॄन् पाहि । अर्थ समान है ।

९८ **सो**-कुप्वोःका आगमन, अपदादौ विशेषण । विसर्गको सकार हो **अपदाद्याः** जिसको पदसंज्ञा न हुई हो, उसके आदिमें कवर्ग पवर्ग परे हो तो । क्या सभी अपदादि कवर्गपवर्गके परे विसर्गको 'स' होगा तो नहीं । नियन्त्रण वार्तिक पाशकल्प, क, काम्यच्परे रहते विसर्गको स हो । यथा कुत्सितं पयः (दुग्धं जलं) **पयस्पाशं** पयस्शब्दात् याप्ये (निन्दिते) अर्थे पाशप् प्रत्यय पद नहीं है । उसके आदिमें पवर्ग'प' परे सोऽपदादौ-सूत्रेण विसर्गस्य सकारे, **यशस्कल्पं** ईषदसमाप्तौ थोड़ा और असमास अर्थमें यशःसे कल्पप्प्रत्यय अपद है । उसके आदिमें क परे विसर्गको स। अज्ञातं कुत्सितं

पयस्पाशं पयस्कल्पम्। यशस्कं यशस्काम्यति। अनव्ययस्येति वाच्यं। प्रातःकल्पम्। काम्येरोरेवेति वाच्यम्। नेह—गोः काम्यति। (१०७) **इणः षः** ।८।३।३९। इणः परस्य विसर्गस्य षः स्यात् पूर्वविषये। सर्पिष्कल्पं। सर्पिष्पाशं सर्पिष्कम्। सर्पिष्काम्यति। (१०८) **कस्कादिषु च** ।८।३।४८। एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षः स्यादन्यस्य तु सः। कस्कः कौतस्कुतः।

यशः **यशस्कं, यशः-कम्**। अत्र अपदादि कवर्गपरे विसर्गस्य सकारे। आत्मनो यश इच्छति **यशस्काम्यति** यशःकर्मके इच्छाऽर्थे काम्यच्। यशः कर्मिका इच्छानुकूलक्रिया विसर्गस्य सकारे (वा०) **अनव्ययस्य**=न अव्ययमनव्ययं सोऽपदादौसे सकारका विधान, अव्ययभिन्न विसर्गके स्थानमें सत्वं वक्तव्यं (बोलना चाहिए) इषद् थोड़ा असमाप्तः कालः। प्रातःकल्पम्। (असमाप्त प्रभात) यहां का विसर्ग अव्ययका है। वार्तिकसे निषेध। सत्व नहीं हुआ। यद्यपि प्रातः शब्दोऽधिकरणप्रधानः तथापि वृत्ति विषये शक्तिमतः प्रधानत्वं न विरुध्यते। दोषाभूतमहः। दिवाभूतारात्रिरितवत्। (वा०) **काम्ये**=काम्यच्प्रत्ययपरे रु होकर हुए विसर्गको स हो। सोऽपदादौ=सूत्र कहता है। इसलिए **नेह**==इह प्रयोगे न सकारः। गीः **काम्यति**। आत्मनः स्वस्य गिरं वाणीमिच्छति, अर्थे काम्यच्। निगरणार्थक गॄधातो इत्रे रपरे रेफस्य विसर्गे। यह विसर्ग रपरके स्थानमें होनेसे सत्व नहीं हुआ। वाणी विषयिणी इच्छानुकूला क्रिया ।९९। **इणः** में पञ्चमी। इण्=इ उ से लण् सूत्र तक के अक्षरसे परे विसर्ग के स्थानमें ष हो, **पूर्वविषये**=इस सूत्रके पहले अपदादि कवर्ग पवर्गपरे और अनव्ययस्य काम्ये रोरेव। विसर्गके विषय पढ़े गये है। उन्हींके विषयमें सूत्र लगे। उच्चैः कल्पं (थोड़ा या असमाप्त ऊंचाई) अत्र अव्ययस्य विसर्गस्य षत्वं न। इण्-इ उ से परे विसर्गको षत्व नहीं। दोः पाशम् (भुजाका बन्धन) अपदादिःपवर्गो नास्ति इण् दो में ओ, उससे परे विसर्गको षत्व नहीं। **गीः काम्यति**। यहांका विसर्ग 'रु' का नहीं है। न षत्वम्। निन्दितं कुत्सितं सर्पिः घृतं (अशुद्ध घी) **सर्पिः-पाशमिति** दशायां इणः षः सूत्रेण इण् ईकारः ततः परस्य विसर्गस्य षत्वे रूपं, थोड़ा असमाप्त घी **सर्पिष्कल्पम्** इषदसमाप्तो कल्पप्। सर्पिः—कल्पमित्यवस्थायां इणः परस्य विसर्गस्य षत्वे रुपम्। अज्ञातं कुत्सितं सर्पिः **सर्पिष्कं** सर्पिः-कम्। सर्पि. आत्मनः इच्छति सर्पिष्काम्यति स्वसम्बन्धिघृतकर्मिका इच्छाविषयिणी क्रिया (चाहता है)

(१००) **कस्कादिषु**—(विषयसप्तमी) इण, विसर्जनीयस्यका आगमन। कस्कादिगणमें पठित शब्दोंके इणः=इण्से परे विसर्गको ष हो। **अन्यत्र**=जहां इण न हो वहां विसर्गका स हो। तब पुस्कोकिलःमें विसर्गको ष न हो। अतः वार्तिकमें पुम् पढ़ें। कान् और सम्को न पढ़ें, ष और सके विधानसे वाक्यभेद। यह कुप्वोः सूत्र से ≍क≍प और विसर्गका बाधक है। इणः षः सोऽपदादौसे (किन-किन लोगोंको अर्थमें) द्वितीया बहुवचन कान् शब्दकी वीप्सा दोहरानेकी इच्छा अर्थमें द्वित्व।

सर्पिष्कुण्डिका। धनुष्कपालमित्यादि। आकृतिगणोऽयम्। (६) **इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य** ।८।३।४१। इकारोकारोपधस्याऽप्रत्ययस्य विसर्गस्य षः स्यात्कुप्वोः परयोः। निष्प्रत्यूहं। आविष्कृतं। दुष्कृतम्। अप्रत्ययस्य किम्? अग्निः

कान्—कान् इति दशायां कानाम्रेडिते सूत्रेण कान्शब्दस्य अन्त्यालः नकारस्य स्थाने रुः आम्रेडित परे अस्ति। रु प्रकरणे अनुनासिके अनुस्वारे च रेफस्य विसर्गे, संपुकानां वार्तिकेन विसर्गस्थाने सकारे। रूपद्वयं साधितं मूले। कस्कः (कौन-कौन) कस्कादि उदाहरण कः-कः शब्दको दुहराने इच्छामें द्वित्व। प्रथम कके अ से परे विसर्गको स (सन्धिकी विवक्षामें) कः कोऽत्र भोः! यहां विसर्गको स नहीं हुआ, संहितासंज्ञाके अभावसे। **कौतस्कुतः** कहां-कहांसे आये हो। कुतः-२ आगतः वीप्सा=आवृत्तिकी इच्छा। कुतः शब्दात् आगतेऽर्थे अण्=अ! अव्ययानां भमात्रे टिलोपः। अव्ययसंज्ञकमें यत्र-यत्र टिलोपः, अण्परे तकारे अकारलोप, निपातनात् विसर्गस्थाने स। **सर्पिषः** घृतस्य कुण्डिका(घीकी कटोरी)**सर्पिष्कुण्डिका** दशायां कस्कादिषु च से परे विसर्गको ष इण् धनुषसम्बन्धीकपाल सांचा, ठटरी पात्र। धनुः कपाल उ से परे विसर्गको ष चतुर्षु कपालेषु संस्कृताः चारहौंद या कसोरामें पकाया पुरोडास, हवनकी वस्तु चतुष्क पालः। अत्रापि विसर्गस्य षत्वम्। ननु कस्कादिगणे कांस्कान् शब्दस्य पाठो नास्ति विसर्गस्य सः कथं? तदा वदति आकृतिगणोऽयं (स्वरूप देखकरगणका अनुमान कर लें। **आकृत्या**=विसर्गस्थाने सकारदर्शनेन गण्यते अनुमीयते अस्मिन् आकृतिगणः काँस्कान् आदिः।

६ **इदुदुपधस्य**=विसर्जनीयमें विशेषण। इच्च उच्च इदुतौ उपधे यस्य बहुव्रीहिः। कुप्वोःकी अनुवृत्ति। इकार उकार हो उपधा अन्त्यऽल् (अच् हो या हल्) का पूर्व वर्ण हो जिस समुदायमें, उसका अवयव विसर्गको ष हो, कवर्ग पवर्गपरे। वैयधिकरण्येन अप्रत्ययस्य=प्रत्ययका अवयव विसर्गको ष न हो। अर्थात् अप्रत्ययो यो विसर्गः तस्य षत्वं, सम्भवति समानाधिकरणे वैयधिकरण्यस्य अन्याय्यत्वात्। जहां अभेदसम्बन्ध सम्भव हो वहां भेद सम्बन्ध अनुचित है। प्रत्ययभिन्नो विसर्गः न कथयिष्यते, तदा कविभिः कृतमित्यत्र षत्वं सम्भविष्यति। यतः भिस्प्रत्ययोऽस्ति। केवलं विसर्गः प्रत्ययो नास्ति। इकारोकाराभ्यां परस्य विसर्गस्य षत्वं सिद्धम्। उपधा ग्रहण न करे (उपधाग्रहणं न करिष्यते इति भाष्यं) हयवरट् सूत्रे' इदितोमें तपर ह्रस्व इ का फल (गीः करोति) गीत बनाता है दीर्घ इकारसे परे विसर्गको षत्व नहीं। एवं उत्में तपर उका फल (पूः करोति) अत्र विसर्गस्य षत्वं न प्रत्यूहानां विघ्ननामभावः राहित्यं **निष्प्रत्यूहम्**। अर्थाभावे अव्ययीभावः। विघ्नका अभाव अर्थ प्रकाशक निः-प्रत्यूहमित्यवस्थायां इदुदपधस्य चाप्रत्ययः सूत्रेण अन्त्योऽल् विसर्गः, तस्य पूर्वो वर्ण ईकारः तस्य अवयव विसर्गस्थाने षः। प्रत्ययस्य अवयवो विसर्गो नास्ति। आविः प्रकाशः प्रादुर्भावः अकारि इति आविष्कृतम्। प्रकट किया प्रकाशमें लाया, आविष्कार किया कार्यकारण सम्बन्ध **आविः-कृतम्**। अस्यां स्थितौ

करोति। एकादेशशास्त्रनिमित्तकस्य न षत्वं,कस्कादिषु भ्रातुष्पुत्रशब्दपाठात् तेनेह न–मातुःकृपा। (१००) तस्य परमाम्रेडितम् ।८।१।२। द्विरुक्तस्य पर माम्रेडितं स्यात् (१) कानाम्रेडिते ८।३।२। कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते। काँस्कान्। कांस्कान्। (२) छे च ।६।१।७३। ह्रस्वस्य छे तुक्। स्वच्छाया।

इकारोपधस्य प्रत्ययभिन्नविसर्गस्य उक्तसूत्रेण षत्वे। दुःखेन अकारि इति दुष्कृतम् दुःखसे किया। दुस्दुर दोनों प्रादिमें पढ़े है प्रथममें स अन्त रुत्व विसर्ग करके रुत्वसे षत्व निर्विवादः। परन्तु रेफको विसर्ग होनेपर षत्व हुआ। इदुदुपधस्य सकारस्य विसर्जनीय इति भाष्यसम्मतिपक्षे षत्वं न भवति। रेफस्य विसर्गः सकारस्थानिको नास्ति। अप्रत्ययस्य किं? सूत्रे प्रत्ययभिन्नो विसर्ग इति किमर्थमपठत्? अग्निः करोति अत्र सुप्रत्ययस्य विसर्गः तस्य षत्वं मा भवतु एतदर्थम्।

ननु प्रत्ययभिन्नविसर्गस्य षत्वकथनेन मातुः कृपा इत्यादौ—प्रत्ययभिन्नः विसर्गो अस्ति। इदुदुपधस्य इति षत्वं प्राप्नोति, यतोहि पञ्चम्याः एकवचने ङस् मातृ अस् ऋत् उत्–ऋ अ द्वयोः मिलितस्थाने उकारे एकादेशे रपरे। रात्सस्य सलोपे, रेफस्य विसर्गे, अत्र रपरस्य विसर्गः नतु प्रत्ययस्य, षत्वं कथं भवति? अत्र समाधानं किं! अतः कथितं मूले **एकादेशशास्त्रनिमित्तकस्य** नष त्वम्। यत्र द्वयोः स्थाने एकादेशोऽस्तु, स भवतु निमित्तकारणं यस्य उकारस्य, तस्मात् परस्य विसर्गस्य न षत्वम्, मातुः कृपामें ऋत उत्से एकादेश उकार है। उससे परे विसर्गको षत्व नहीं होगा। अस्यां युक्तौ प्रमाणं प्रस्तौति–कस्कादिगणे भ्रातुष्पुत्रशब्दस्य पाठः किमर्थः यदि षत्वं कर्तुं पाठः तर्हि इदुदुपधस्य सूत्रेण षत्वसिद्धिः। **भ्रातुष्पुत्रशब्दस्य गणे पाठो व्यर्थः**। व्यर्थीभूय ज्ञापनं करोति। यत्र एकादेशशास्त्रनिमित्तको विसर्गः तस्य न षत्वं, ज्ञापनं तदेव वरं–स्वांशे चरितार्थता वचनसिद्धिः, फलमन्यत्र, भ्रातुष्पुत्र शब्दका पाठ कस्कादिगणमें चरितार्थ नियमकी सिद्धिः। फलं मातुः कृपामें विसर्गको ष न हो।१०० **तस्य**=दो बार उक्तका परम=आगेका भाग आम्रेडितं–आम्रेडितसंज्ञक हो,

१०१ **कान्**-के नकारको रु हो आम्रेडित परे। यथा—कौन-२ का वाचक= कान्—कान्। दो होनेसे द्विरुक्त हुआ। तस्य परमाम्रेडितम्से कान्को आम्रेडित संज्ञा। उसके परे पूर्व कान्के नकारको 'रु',के प्रसङ्गमें अनुस्वार, अनुनासिक, खरि परे र को विसर्ग। सम्पुकानाम्से विसर्गको स, **काँस्कान् कांस्कान्**।२ **छे**=छकारे परे च=ह्रस्वस्य, तुगागमः भवति। दीर्घसे तुक्=त आगम हो छपरे। स्वस्य आत्मनः छाया चित्रं अपनी फोटो-आकृति अर्थ **स्व—छाया**। संहितासंज्ञायां, (छे च) सूत्रेण छपरे ह्रस्वाकारस्य अन्त्यो अवयवः तुक् त स्वत्छाया। स्तोः श्चुना श्चुः सूत्रेण तस्य श्चुत्वं (च) **स्वच्छाया**।

शिवस्य छाया **शिव छाया**। यहां छ परे ह्रस्व 'व' का अ, उसको नित्य तक्=त उसको श्चुत्व हो गया। **शिवच्छाया तच्छाया स्वच्छाया स्वच्छात्रः**।

शिवच्छाया। (३) आङ्माङोश्च ।६।१।७४। तुक् छे। आच्छादयति। माच्छिदत्। (४) दीर्घात् ।६।१।७५। तुक् छे। म्लेच्छति। (५) पदान्ताद्वा ।६।१।७६। दीर्घात्पदान्ताच्छे तुग्वा स्यात्। लक्ष्मीच्छाया। लक्ष्मीछाया।

॥ इति हल्सधिः ॥

अथ विसर्गसन्धिः

(६) **विसर्जनीयस्य सः** ८।३।३४। खरि परे विसर्जनीयस्य सः। विष्णुस्त्राता (७) **शर्परे विसर्जनीयः** ।८।३।३५। शर्परे खरि विसर्गस्य विसर्गो, न त्व-

---

३। आङ च माङ च आङ्माङौ तयोः। च=छे, तुकका आगमन। आङ् और माङ्के अन्त्यऽल् (अन्तिमवर्ण) को तुक् त हो छपरे। **आच्छादयति** पूर्ण ढंकता है। आ—छादयति इति दशायां आङ्माङोश्च सूत्रेण छपरे आ इत्यस्य अन्त्यो अवयवः तुक् त श्चुत्वम्। माच्छिदत् अत्रापि तुक् श्चुत्वम्। माङ्योगे। अट् न (अनद्यतन भूतकालिकछेदनक्रियाका निषेध)।

४ **दीर्घात्**=पदान्तदीर्घसे छकार परे तुक्=त बिकल्पसे हो। म्ले–छति तुक् त श्चु च म्लेच्छति। ५ **पदान्ताद** पदान्त दीर्घ 'ई' छपरे तुक् त, श्चुत्व च लक्ष्मीकी छाया। **लक्ष्मी-छाया, लक्ष्मीच्छाया सुराच्छाया।**

इति प्रभाकरमिश्र कृतायां प्रभाकरीटीकायां हल्सन्धिप्रकरणम्।

अथ विसर्गसन्धिः

विसर्गाणां विसर्ग निमित्तानां वा सन्धिः (जोड़) विसर्गसन्धिः। जहां विसर्गकी प्रक्रिया ही वाक्यकी शक्तिको प्रकाशित करे। प्रत्येकसन्धि शब्दशक्तिको प्रभावित करता है। तस्य प्रकरणम्=अध्यायः।

हल्सन्धिसमाप्तेः अनन्तर रेफस्थाने विसर्गसम्बन्धिनः कार्यस्य (जोड़नेकी शक्ति का) प्रकरणं प्रारभते। यस्मिन्सर्वत्र विसर्जनीयपदस्य अनुवृत्तिःदृश्यते। **विसर्जनीयस्य** विसर्जनेऽन्ते भवः विसर्गको स, हो खर् (खफछ षसर) अक्षरपरे।

(६) **विसर्जनीयस्य**-खर् प्रत्याहारका वर्ण परे हो तो विसर्गके स्थान में स हो। यथा विष्णु भगवान रक्षक है। इस वाक्यार्थका वाचक **विष्णुः-त्राताः** खरि परं 'त्र' को देख कर विसर्गके स्थाने 'स' हो गया। रक्ष्यरक्षकसम्बन्ध ही सन्ध्यर्थ है। गुरुस्तत्र, **हरिस्त्राता। चैत्रस् तिष्ठति चैत्रस्तिष्ठति। गौश्च-रति, प्रयत्नश्चलति। कृष्णः करोति। रामः पठति।**

७ **शर्परे**, खर, विसर्जनीयका, आगमन। शर्=शषसह परो यस्मात् (परे हो जिससे) खर् विशेष्य, शर विशेषण। शर् अक्षरपरमें हो उसके पूर्व खर् अक्षर हो शर्परकखर्परे विसर्गको विसर्ग ही रहे, न तु अन्यत्=अन्तकार्य (स, ᳵक, ᳵप) आदि न हो। ननु परे विसर्गको स नहीं कह देते विसर्गको विसर्गका विधान

न्यत्। कः त्सरुः। 'घनाघनः क्षोभणः'। (८) **वा शरि** ।८।३।३६। शरि परे विसर्गस्य विसर्गो वा स्यात्। हरिःशेते हरिश्शेते। (१९) **खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः**। हरि स्फुरति। हरिः स्फुरति। **इति विसर्गसन्धि**।

अथ स्वादिसन्धिः

(१२०) **ससजुषो रुः** ।८।२।६६। पदान्तस्य सस्य, सजुष्शब्दस्य च रुः स्यात्। (१) **अतो रोरप्लुतादप्लुते** ।६।१।११३। अप्लुतादतः परस्य रोरुः

क्यों? इसलिए कि विसर्गके स्थानमें, सभी कार्य शर्परे रुक जांय। ≍क≍प आदेश न हो। यथा **कः त्सरुः** खड्गमुष्टिः। अत्र विसर्गस्थाने विसर्जनीयस्य सः सूत्रेण प्राप्तस्य सकारस्य बाधनं कृत्वा, उक्तसूत्रेण विसर्गविधानम्। यथा सत्वनिवारणार्थ, **घनाघनः-क्षोभणः** अधिकाधिकप्रेमविकलकर्ता चन्द्रः कृष्णश्च, चर्षणीनां नक्षत्राणां गोपीनां वा।

८ **शर्**=श, ष, स परे रहते विसर्गको विसर्ग विकल्पसे हो। **यथा-हरि**-कर्तृकशयनानुकूला क्रिया अर्थमें **हरिः शेते**। यहां विसर्गके स्थानमें प्राप्त सकार विकल्पसे हुआ। शरि परे शेतेका श है। **हरिः** शेते। पक्षमें सुको श्चुत्व 'श' **हरिश्शेते** बना। क्रियाकारक सम्बन्ध है। **शशिः-शेते शशिश्शेते। पुत्राः षट् पुत्राष्षट् सन्तः-सन्ति सन्तस्सन्ति।**

(१९) **खर्परे**- (ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स) ये अक्षर परमें हों। उसके पूर्व शर् श स ष शर्परक विसर्गका लोप विकल्प हो। बोले खर्परो यस्मात् लोपके अभावमें (वा शरि) यथा रामकर्तामें अद्यभिन्नभविष्यकालिकगतिनिवृत्ति रुकने के अनुकूलक्रियावाचक। हरिः (वानरः) स्फुरति संचलति हरिकर्तामें स्फुरणके अनुकूलक्रिया। अत्रापि लोप, विसर्ग सकारभेदसे तीनरूप।

अथ स्वादिसन्धिः

२० **स च**, सजुश्च ससजुषोः। पदान्त स तथा सजुष् शब्द सके स्थानमें रु हो, १ **अतो**=अकारसे **अप्लुतात्** जिस अच्की प्लुतसंज्ञा 'न' हुई हो, अप्लुत कहते है। अप्लुतेः=प्लुतभिन्नस्य अप्लुत अकारसे परे रुके स्थानमें 'उ' हो, अप्लुत अकार परे। यथा शिवकर्मिका अर्चना पूजाविषय अर्थमे **शिव-अर्च्यः**। यहां पदान्त सुको 'ससजुषोः' सूत्रसे रु हुआ। शिव रु अर्च्य तब अप्लुत अकारसे परे 'अ' उससे रु के स्थानमें उ हुआ। अप्लुत अकार परे, अर्च्यः का अ। **शिव उ अर्च्यः**। गुणे, एङः पदान्तादति खण्डाकार पूर्वरूप **शिवोऽर्च्यः**। शुद्धोऽयं छात्रोऽयम्। शिष्योऽयम्।

नृपो- अस्ति नृपोऽस्ति बालकस्-अयम् बालकोऽयम्। सस्-अपि सोऽपि। रामो अवदत्।

अतो रोः=सूत्रे तपरपठनं किमर्थं? ह्रस्व अकारात्परस्य रुस्थाने उ अस्तु दीर्घा

स्यादप्लुतेऽशि । शिवोऽर्च्यः । अतः किं ? देवा अत्र । अति किं? श्व आगन्ता । अप्लुतात्किम् ? एहि सुस्रोत ३अत्र स्नाहि । प्लुतस्याऽसिद्धत्वादतःपरोयऽम् । अप्लुतादिति विशेषणे तु तत्सामर्थ्यान्नाऽसिद्धत्वम् । तपरकरणस्य तु न साम र्थ्यं,दीर्घनिवृत्त्या चरितार्थत्वात् । अप्लुते इति किं ? तिष्ठतु पय आग्निदत्त ।

(२२) **हशि च** ।६।१।११४। अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्याद्धशि । शिवो वन्द्यः

(२३) **भोभगोअघो अपूर्वस्य योऽशि** ।८।३।१७। एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशः स्या-

---

त्परस्य नास्तु । अतः **देवास्-अत्र** सस्थाने रु । दीर्घसे परे रु है उत्व न हो किन्तु भो भगोसे यः, उसका लोप हो। सूत्रके अतिमें तपर क्यों ? इसलिए कि ह्रस्व अकार परे रुको उ हो। जिसका फल है कि **श्व-आगन्ता** (कल आनेवाला है) अत्र सस्थाने रुः परे ह्रस्वो नास्ति किन्तु आ अस्ति । उत्वं मा भवतु, यलोपः, एतदर्थं तपरः कृतः । **अप्लुतात् किं** ? सूत्रमें प्लुतसंज्ञारहित अकारपरे रुको उ न हो । यथा **एहि सुस्रोत अत्र स्नाहि** (सुन्दर स्रोतवाले यहां आवो स्नान करो) आधाराधेयसम्बन्धः । सान्तः सान्तदीर्घ, गुरोरनृतोः से प्लुत । सको रु, रुको उ न हो अतः अप्लुत पढ़ा । न कहिये कि अ से परे रु नहीं । अप्लुतो व्यर्थः तन्न, प्लुत असिद्ध होगा अकारसे परे रु मिलेगा उत्व प्राप्तः वह न हो, अप्लुत पढ़ा । यद्यपि अप्लुत पढ़ने पर भी रुको 'उ' विधान रुक नहीं सकता, उत्वकी दृष्टिमें प्लुत असिद्धः । अतः मूलमें कहा अप्लुतात्=जो अमें विशेषण है । अर्थात् अप्लुत अकारसे परे रुको उ हो । विशेषण व्यर्थ न हो, उसी सामर्थ्यसे (विशेषण शक्तिसे) प्लुत असिद्ध नहीं होगा । न कहिये कि अप्लुदतःमें तपर पढ़नेसे ह्रस्व अकारसे परे रुको उ होगा, प्लुतसे परे नहीं, अप्लुतो व्यर्थः तन्न, तपरः प्लुतनिवृत्तिं न करिष्यति । उसकी पूरीशक्ति दीर्घकी निवृत्तिमें क्षीण हो चुकी हैं । ननु अतो रोरप्लुतादप्लुते इतिसूत्रे अप्लुतग्रहणं विनापि शिवोऽर्च्यः इत्यादिसिद्धौ अप्लुतग्रहणं व्यर्थं, तन्न, **सुस्रोतस्—अत्र** इति दशायां सकारस्य रुत्वं उत्वं च भविष्यति यदनिष्टं मन्ये, उत्वदृष्टचा प्लुतो असिद्धो भवति, अकार परे अस्ति, उत्वं प्राप्नोति तन्मा भवतु, एतदर्थमप्लुतग्रहणम् । न च अप्लुत-अकारकथनेन (विशेषणदानेन) प्लुतो असिद्धो न भविष्यति । इति कल्पनेन न दोषः तपरस्य शक्तिः दीर्घनिवृत्तौ क्षीणा । प्लुतनिवृत्तौ नास्ति सामर्थ्यमत उत्ववरणाय अप्लुतग्रहणम् । सूत्रमें अप्लुत अकारपरे क्यों ? इसलिए कि प्लुतअकारपरे रुको उत्व न हो । यथा तिष्ठतु पय—**आ ३ग्निदत्त** (हे अग्निदत्तके पुत्र दूध रहने दो) यहां 'आ' प्लुत है । पयस्के सको रु उसको उ न हो, अतः अप्लुते पढ़ा ।

२ **हशि च**, च=अप्लुत अकारसे परे रु को 'उ' हो हश्का वर्णपरे । यथा—शिवकर्मक वन्दनाविषय अर्थबोधक **शिवस्—वन्द्यः** । यहां भी पदान्त 'स्' को रु तत्स्थाने हशि चसे उ तथा गुणे । **शिवोवन्द्यः** । **रामस् वन्द्यः रामोवन्द्यः** । **मृगो धावति, नृपोहसति** । (३) **भो भगो** अघो तथा अ यदि पूर्वमें हो तो रु के स्थानमें य आदेश हो, अशि परे । यथा **देवास्—इह** । यहां पदान्त सको रु तथा

दशि। देवा इह देवायिह। 'भोस्' 'भगोस्' 'अघोस्' इति सान्ता निपाताः तेषां रुत्वे, यत्वे च कृते= (४) व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य।८।३।१८। पदान्तयोर्यकारवकारयोर्लघूच्चारणौ वयौ वा स्तोऽशि परे। यस्योच्चारणे जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानां शैथिल्यं जायते स लघूच्चारणः। (५) ओतो गार्ग्यस्य।८।३।२०। ओकारात्परस्य पदान्तस्याऽलघुप्रयत्नस्य यस्य नित्यं लोपः स्यात्। गार्ग्यग्रहणम्पूजार्थम्। भो अच्युत। लघुप्रयत्नपक्षे—भोयच्युत। पदान्तस्य किं? तोयम्। (६) हलि सर्वेषाम्।८।३।२२। भोभगोअघोअपूर्वस्य लध्वलघूच्चारणस्य यस्य नित्यं लोपः स्याद्धलि भो देवाः। भगो नमस्ते।

भो भगो सूत्रसे अ पूर्वक रुके स्थानमें अशि—इहपरे य आदेश हुआ। लोपः शाकल्यस्यसे यका विकल्पलोप, **देवा इह**। पक्षमें **देवायिह**। ये दोनों देवताओंकी उपस्थिति अर्थमें साधु है। भोस, भगोस्, अघोस् इन तीनों शब्दोंको सकारान्तनिपात माना गया है। **तेषां**=उनके सकारोंको रु। भो भगो आदि सूत्रसे रु के स्थानमें य करने पर। **छात्रस्—आगताः रु—यलोप छात्रा आगताः छात्रायागताः। मैत्रस—एति मैत्रयेति। शिष्यआयाति शिष्यायाति।**

४ **व्योः—व च य च,** व्यौ तयोः। पदका अधिकार, यमें विशेषण तदन्तविधिः पदान्त,=पदके अन्तमें य व हो, उनको लघूच्चारण व य माना जाय अश्परे। भोभगोअघोपूर्वक (वय) लें। **यस्योच्चारण**=जिस वर्णके उच्चारणमें जीभका अग्र अगला उपाग्र (समीप) मध्य (बीच) मूल जीभकी जड़ तक शिथिलता ढिलाई आये वह **लघूच्चारण** हैं। ५ **ओतो**=ओकारसे परे पदान्त हो लघुप्रयत्न न हो। बहुत धीमा उच्चारण अतिशयेन लघु (हल्का) प्रयत्न चेष्टा क्रिया। लघुप्रयत्नतर है। ऐसे यका नित्यलोप हो। गार्ग्य आचार्यका नाम लेनेसे नित्य लोप कैसे? तब बोले गर्गाचार्यका नाम पूजार्थ (सम्मानार्थ) लिया गया। **भोस्—अच्युत** (हे भगवान) सस्थाने रुः, रुस्थाने भगोसूत्रेण य आदेशे। तस्य स्थाने व्योर्लघु, सूत्रेण लघूच्चारणसंज्ञकः विकल्पेन य आदेशे वर्णसम्मेलने। भोयच्युत। यस्मिन्पक्षे लघूच्चारणसंज्ञा न भवति तस्मिन्पक्षे ओतो गार्ग्यस्य सूत्रेण यकारस्य नित्यं लोपे। भो अच्युतः। वकारस्य उदाहरणन्तु असावदित्यः इति काशिकायाम्। सूत्रमें पदान्त य क्यों? इसलिए कि जो पदान्त नहीं है उसका लोप न हो। यथा तोयं जलम् यहांका य पदान्त नहीं, लोप नहीं।

६ **हलि सर्वेषाम्**=भो, भगो, अघो, अ, पूर्वक यकारका लोप हो। सम्बोधनात्मक देवता अर्थमें **भोस्—देवा**। यहां सको रु, रुको य्। य का हलिसर्वेषां से लोप **भो देवाः**। हे देवतागण तथा हें नमस्ते। दूरं गच्छेत्यर्थः। **भगोस्—नमस्ते** भगवन्, पापपरायण यहा भी पूर्ववत् रुत्व यत्व, यलोप, **भगो नमस्ते**। अघोस्—याहि यहां भी पूर्ववत् देवास्—यान्ति। सस्थाने रु–य यलोपे। ७ रोः सुपि **अहन्**

अधो याहि। देवा यान्ति। (७) रोऽसुपि।८।२।६९। अह्नो रेफादेशो, न तु सुपि। अहरहः अहर्गणः। असुपि किम्? अहोभ्याम्। अत्र अहन्' इति रुत्वं। (रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्)। अहो रूपं गतमहो त्रिरेषा। एकदेशविकृतन्यायेन—अहोरात्रः अहो रथन्तरम्। (अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः) विसर्गापवादः अहर्पतिः गीर्पतिः धूर्पतिः अहःपतिः

के नको र हो, सुप् विभक्ति परे न हो तो। अहन्-अहः। प्रतिदिन अथवाचक वाक्यमें सूत्रसे अहन्के 'न' को रेफ हो गया। अहरहः। अह्नां=दिनानां गणः=समुदायः (संवत्सरः) अर्थमें अहन्–गणः अत्रापि न स्थाने र आदेशे। अहर्गणः रुत्वके अभावसे यत्व नहीं होता। भोस् अघोस् भगोस् व्यापक आदरार्थ, अघोस् अनादरार्थ सम्बोधन है। भवत् भगवत् अघवत्से बने है। बालकास् हसन्ति रु–यलोप। बालकाः हसन्ति। नृपा याति। भक्ता भजन्ति। पण्डिता गच्छन्ति। रुके स्थानमें य होता हैं। स्वाभाविक रके स्थानमें नहीं। प्रातरत्र यहां रको य नहीं हुआ। अहन् भवति अहर्भवति। सूत्रमें असुप् (सुपपरे न हो) ऐसा क्यों पढ़ा। इसलिए कि सुप्परे न स्थाने र न हों। यथा अहन्–भ्याम् अत्र भ्यां परे नस्थाने र आदेशो न भवति। किन्तु–अहन् सूत्रेण रु. हशि चेति उ आद्गुणे अहोभ्यां (दो दिनोंसे,के लिए) (वा०) रूपरात्रिरथन्तरशब्दपरे अहन्के नको रुः कहें। रोऽसुपिके रको बाधकर। अह्नो दिवस्य रूपं प्रकाशः अहन्—रूपम्। अत्र र आदेशं बाधित्वा वार्तिकेन रूपशब्दपरे न स्थाने रु। हशिचेति उ आद्गुणे अहोरूपम्। यदा र आदेशः, तदा उत्वं न। अहो एषां रात्रिः गता (जागते रात बीत गयी) अहन्–रात्रिः न स्थाने रु, उ, गुणः। यदा र तदा यत्वं न। एकदेश=किसी एकअङ्गके विकृति (खराबी)से अन्य नहीं होता

न अन्योऽनन्यः तस्य भावः अनन्यत्वं तस्मात्।

कुत्तेकी पूंछ कट जाय तो वह कुत्ता ही रहता है, घोड़ा या गधा नहीं होता। तथा रात्रिः (दिनस्य अभावः) उसका एकदेश (इ) दृष्ट, रात्रशब्द भी उसी अर्थको कहेगा। अहश्च रात्रिश्च समासे। यस्येति इकारलोपे अहन्–रात्रः। अत्र एकदेशविकारेऽपि नकारस्य रु, उ, गुणे। अहोरात्रः। अहश्च रथन्तरञ्च (सामविशेषः) अहन्–रथन्तरं रुत्वे यत्वे गुणे रूपम्। सूत्रकारस्य अल्पोक्ति दृष्ट्वा वार्तिककारः प्रपूरयेत्। अहरादीनाम्=अहन् इत्यादिके अन्त्य अल् नको पत्यादिषु=पतिशब्द या सदृशशब्दपरे रहते रेफ आदेश विकल्पसे हों। रस्थाने र आदेशस्य फलं ब्रूते—विसर्गापवादः—रके स्थानमें विसर्गको बाधनेके लिए। अह्नां दिवसां पतिः सूर्यः, अहन्–पतिः रोऽसुपि इति न स्थाने र आदेशे। तस्य विसर्गे प्राप्ते, वार्तिकेन रस्थाने र आदेशे, कस्मै प्रयोजनाय? विसर्गबाधनाय। अहर्पतिः (दिनका स्वामी) एवं गिरां वाचां, पतिः वाग्मी। गीर्–पतिः रस्थाने रेफादेशस्य फलं विसर्गबाधनमस्ति। धुरां पतिः, अत्रापि तथा। र्वोरुपधायाः इति दीर्घे। पक्षे–यदा आदेशो न भवति, तदा रस्थाने

अह ⌒ पतिः । पक्षे-वि सर्गोपध्मानीयौ ॥(८) **रो रि** ॥८।३।१४। रेफस्य रेफे परे लोपः स्यात् । (९) **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** ।६।३।१११। ढरेफयोर्लोप निमित्तयोः पूर्वस्याऽणो दीर्घः स्यात् । पुना रमते । हरी रम्यः शम्भू राजते । (१३०) **ढो ढे लोपः** ।८।३।१३। लीढः । अणः किं ? तृढः वृढः । 'मनस्' रथ' इत्यत्र रुत्वेकृते, 'हशि चे'त्युत्वे 'रोरि'ति लोपे च प्राप्ते । (१) **विप्रतिषेधेपरं कार्यम्** ।१।४।२। तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात् । इति लोपे प्राप्ते

विसर्ग । कुप्वोः सूत्रेण उपध्मानीय ⌒ प आदेशे । बालका हसन्ति, छात्रा गच्छन्ति । सेवका सेवन्ते, हया ह्येषन्ति (घोड़े हिनहिनाते है)। नृपा भाग्यवन्तः पण्डिता ददति ज्ञानम् ।

(८) **रो**=(रेफस्थाने **रि**=रेफ परे) रका र परे लोप हो। (९) **ढ्रलोपे**—ढश्च रश्च ढ्रौ तयोर्लोपः, ढ्रलोपः, तस्मिन् । ढलोप रेफ लोपका निमित्त (कारण) 'ढ रेफ परे, पूर्व अण्को दीर्घ हो । यथा अनेक बार रमण करने वाला, अर्थमें **पुनर्—रमते** यहां पहले 'र'का दूसरे र परे रहते 'रो रिसे लोप हुआ । रेफ लोपके पूर्वमें विद्यमान स्थानी अण्= अकारको ढ्रलोपेसे दीर्घ हुआ । 'र' लोप निमित्तक र परे है । **पुना-रमते** । **हरिर्—रम्यः** पूर्वरेफका पर रेफ परे रोरिसे लोप होनेपर लुप्तरेफके पूर्व अण् इको ढ्रलोपेसे दीर्घ हुआ । **हरी रम्यः** । हरिकर्मकरमणाश्रयः । शिवभग वान् शोभते है । **शम्भुर्-राजते** । यहांभी रेफ परे पूर्वरेफका लोप, उसके पूर्व अण् को दीर्घ **शम्भराजते** । शम्भुभगवान प्रकाशमान है । अन्ता राज्य । **निर्+रस नीरस** । **पतिर्+रक्षति पती रक्षति** । (१३०) **लिढ्+ढ लीढः** । **अणः किं** ? 'ढ्रलोपः' सूत्रमें अण् पढनेका फल है कि **अण्** अ इ उको ही दीर्घ हो, अन्यको नहीं । हिंसार्थक हिंसितः अर्थमें (तृहू हिंसायाम्) तृढः उद्यत अर्थमें (वृहू उद्यमन) वृढः । **तृढ+ढः** । दशामें ढोढे लोपःसे ढलोप होनेपर, यहां पूर्व वर्ण ऋ हैं उसे दीर्घ न हो । यहीं अण् पढ़नेका फल है । सभी अण् पूर्व णकार तक मान्य है । ऋ उसमें नहीं आता । अत पूर्वेणैवाण् ग्रहाःसर्वं अत्रैवाण् परेण तु । कहा है, इच्छा, आकांक्षा, स्पृहा, ईहा, पृच्छा, वाञ्छा लिप्सा, **मनोरथ** इन अर्थोवाला, **मनस्—रथः** 'ससजुषो सूत्रसे सको रु (पदान्त सकार मानकर) किया उ इत् **मनर्+रथः** । तब सूत्र लगा 'रो रि' । रथः का 'र' परे पूर्व रको रोरिसे लोप प्राप्त, हशि चसे उत्व भी । तब निर्णायक सूत्र बोले—

(१) **विप्रतिषेधे**=तुल्यबलविरोधे=समान बलवाले सूत्रोंके विरोधमें परम् अष्टाध्यायी क्रममें जो पर अगला हैं उसीका कार्य हो । अन्यत्र-अन्यत्र लब्धावकाशयोः शास्त्रयोः एकत्रसमावेशः तुल्यबलविरोधः । हरी रम्यःमें 'रोरि' कृतार्थ हैं । शिवो वन्द्यःमें 'हशि च' सफल है । **मनर्—रथमें** दोनों उपस्थित है, तब निर्णय हुआ कि **विप्रतिषेधे परं कार्यं** हो । पर होनेसे परत्वात् रोरिका लोप कार्य हो । इससे रेफका

'पूर्वत्रासिद्धमिति 'रो री'त्यस्याऽसिद्धत्वादुत्वमेव-मनोरथः । (२) **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ।६।१।१३२।** अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि, नतु नञ्समासे । एष विष्णुः स शम्भुः। अको किम् ? एषको रुद्रः । अनञ्समासे किम् ? असः शिवः । हलि किम् ? एषोऽत्र (३) **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ।६।१।१३४।** 'स' इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि, पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत । सेमामविड्ढि प्रभृतिम्' । 'सैष दाशरथी रामः' ।

॥ इति स्वादिसन्धिः ॥

लोप प्राप्त हुआ जो अनिष्ट हैं । तब पूर्वत्रासिद्धम् सूत्रसे पूर्व हशि चसे पर (रोरि) असिद्ध हुआ । सपादसप्ताध्यायी (हशि च) की दृष्टिमें त्रिपादी 'रोरि' की असिद्धि । हशि चसे उत्व ही हुआ । अ उके स्थानमें आद्गुणः **मनोरथः**। वस्तुतःयहां तुल्यबलविरोध भी स्वीकृत नहीं विप्रतिषेधे सूत्रके सपाद सप्ताध्यायीमें ही लगनेसे । त्रिपादीको देख नहीं सकता । (२) **एतत्तदोः**-एतद् तथा तद् शब्दके अकोः=ककार रहित, अनञ् नञ्समासभिन्ने । अककारयोः=जिसको ककार (अकच्) न हुआ हो, ऐसा एतद् और तद्से सिद्ध शब्द, उसके सु सका लोप हो, हलि परे । नञ् समास न हो तो । **एषस्-विष्णुः** । एतत्तदोः सूत्रण हलि परे एषस् के सु=सका लोप हुआ । ससजुषोःके रुत्वको बाधकर । एष विष्णुः। स शम्भुः सस्—शम्भुः । यहां तद की अत्व पररूप सत्व करके बना 'स' उससे परे सुके सका ' एतत्तदोः 'सूत्रसे लोप हुआ, हलि परे है। **स शम्भुः** । अकोः किं ? ककार रहित एतद् तद् शब्द, ऐसा क्यों ? **एषकस्—रुद्रः** । यहां एतद्में क (अकच) हुआ है । उसके सुका लोप न होकर, उत्व गुण हो, इसलिये अकः पढ़ा । अनञ् समास न कहते तो, असः **शिवः** । न सः इति असः । यहां नञ् समासमें तद्से परे सुका लोप हो जाता (वह शिव नही है) हल् परे न कहते तो **एषस्—अत्र** यहां अच् परे सुका लोप होने लगता । सको रुत्व उत्व तथा पूर्वरूपसे एषोऽत्र सिद्ध होता हैं । ३ **सोऽचि**=तत् शब्दके 'सु' का लोप हो अचि परे रहते । लोपे चेत्पादपूरणम्=लोप होनेपर यदि पाद (चरण) की पूर्ति हो तो । यदि पादकी पूर्ति न हो तब लोप न हो ।

यथा-सोऽहमाजन्मशुद्धानाम्, यहां सुलोप नहीं पाद चरणकी पूर्ति न होनेसे । किन्तु यथा-**सस्+इमामविड्ढि** प्रभृतिम् । यहां सुलोप इसलिए हुआ कि, तभी पादपूर्ति सम्भव है । सेमाम्, **स व्रजति । एषस् चलति एष चलति । एष हसति स व्रजति ।**

सैष दाशरथीरामः, सैष राजायुधिष्ठिरः ।
सैष कर्णो महादानी, सैष भीमो महाबलः ॥

सस—एष हैं । यहां सुका लोप होनेपर ही पाद पूर्ति सम्भव है । अतः सुका लोप तथा वृद्धि हुई महाराजा दशरथपुत्र राम है । यह वही महाराज युधिष्ठिर है । महादानी कर्ण, महाबली भीम है । इति विसर्गसन्धि ।

[पञ्चसन्धिका निर्णय]

पञ्चजातीयानां **वर्णानां** सन्धिरित्येव प्रसिद्धम् । तत्र अक् (अच्त्व) हल्, (हलत्व) विसर्गत्व सन्धयः सुस्पष्टाः स्वादिसन्धिश्चतुर्थः । यद्यपि शिवोऽर्च्यः, शिवो वन्द्यः इत्यादि हल्सन्धिके अन्तर्गत स्पष्ट जान पड़ते है । तथापि **स्वादिमें विभक्तित्व** जाति अधिक होनेसे स्वादिसन्धि भी माना । प्रकृतिभावमें इसीप्रकारका सन्धान, संयोजन, मेलापक न होनेसे उसे **सन्ध्यभावरूपमें** भी सन्धिके साथ जुड़नेसे वह भी सन्धि है । यथा अभाव भी पदार्थ माना गया । अथवा अनुस्वारके स्थानमें, परसवर्ण सन्धि ही पञ्चमसन्धि है । अच् हल्से विलक्षण म न आदि हल् वर्णोंके स्थानमें अनुस्वार होने पर या अनुनासिक परसवर्ण भी देखा है । **वर्णान्तर सन्धान** 'पञ्चमी' सन्धि सुस्पष्ट हैं । इति सन्धिप्रकरणम् ।

अथाऽजन्तपुलिङ्गप्रकरणम्

प्रश्न— लिङ्ग क्या है, षड्लिङ्ग किसे कहते है, प्रथम अजन्त नाम क्यों ? मुख्य विषय क्या है । पञ्चसन्धि वाक्यसंस्कारपक्षप्रधान रहा । वाक्य पदका समुदाय है । सुबन्ततिङन्त भेदसे पद दो है । 'सुप्तिङन्तं पदम्' से स्पष्ट है । सुबन्तपद छःप्रकारके है, अजन्त शब्दके तीन भेद, पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग, हलन्तपदमें भी पुं, स्त्री, नप् । ये मिलकर षड्लिङ्ग है (लीनं शरीरे व्याप्तम् अर्थतत्वं गमयति बोधयति) इति लिङ्गम् । सत्व गुण, मूंछ, देहव्यापी रोम पुरुष चिह्नका प्राधान्य पुलिङ्ग है । रजोगुण, स्तन, केश, (भग) प्रधानलक्षण स्त्रीलिङ्ग । दोनों गुणोंकी समदशा नपुंसक । अ इ उ ण आदि **वर्णसमाम्नायमें** प्रथम अच् पश्चात् हल वर्ण पढ़े है । अतः अच् हल् वर्ण क्रमानुसार अजन्त हलन्तमें=अजन्तपदकी साधनिकाका आरम्भ अक्षर क्रमसे करते है । दोनोंमें प्रातिपदिकसंज्ञाका महत्व हैं । अतः प्रातिपदिकसंज्ञाविधायक सूत्र से प्रकरण आरम्भः ।

४ **अर्थवदिति**-प्रातिपदिकके प्रत्येकपदमें रहनेवाला अर्थ पांच है जाति, व्यक्ति लिङ्ग संख्या कारक ये प्रत्येक शब्दमें किसी न किसी सम्बन्धसे स्थित है । सत्वगुण प्रधान पुलिङ्गलक्षण शास्त्रीय है । लौकिक लिङ्ग स्तनकेशवतींनारी लोमशः पुरुषः स्मृतः । ये अर्थ प्रातिपदिकसंज्ञामें कारण है उसके लिए सूत्रका अवतरण अर्थवदिति–

१८ **शब्दार्थ**-अर्थोअस्यास्तीति अर्थवत् (नित्य सम्बन्धे मतुप्) जिन शब्दों में जाति व्यक्ति लिङ्ग संख्याकारकरूप अर्थ भरा हों वे अर्थवान् है । शब्द स्वरूप है । षड्लिङ्गमें कहीं सम्पूर्ण कहीं आंशिक रूपसे अर्थ मिलेंगे । निरर्थक को संज्ञाका निवारक अर्थवत्पद है । अतः राम शब्दके र, आ, म, अ, प्रत्येक अक्षर की प्रासंज्ञा नहीं 'सु' भी नहीं । अर्थवान् शब्दस्वरूपको ही प्रातिपदिकसंज्ञा हो । परन्तु वह शब्दस्वरूप धातु, प्रत्यय, प्रत्ययान्तरूप न हो । दधाति क्रियारूपम् अर्थ-

यन्तं च वर्जयित्वाऽर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्(५)कृत्तद्धितसमासाश्च ।१।२।४६। कृत्तद्धितान्तौ, समासाश्च तथा स्युः।(६)स्वौजसमौट्छष्टा-

मिति धातुः । न धातुः अधातुः धातुरूप अर्थवान् न हो । यथा—अहन् । प्रत्याययति बोधयति अर्थमिति प्रत्ययः । जो किसी अर्थका ज्ञान करावे । न प्रत्ययः अप्रत्ययः । प्रत्ययरूप अर्थवान् न हो, यथा—सु । जो प्रकृतिके अर्थका बोधक है । प्रत्ययान्तरूप भी न हो । यथा रामेषु ।

अर्थः—अर्थवान् शब्दस्वरूपको प्रातिपदिकसंज्ञा हो । किन्तु धातु, प्रत्यय, प्रत्ययान्ततदादि अर्थवान् शब्दस्वरूपको प्रातिपदिकसंज्ञा न हो । पदं पदं प्रतिपदं, प्रतिपदे भवं (जातो अर्थः) प्रातिपदिकम् यह शब्दार्थ भी घटते । प्रत्येकपदमें अर्थवान्को संज्ञा । छः पदवाला सूत्र मन्त्र रूप है । षट्पदी भौंरीका विष झाड़नेमें उपयोग । इति केचित् । सुभाषितेनापि सम्बद्धम् । **विद्वान् कीदृग्वचो ब्रूते, को रोगी कश्च नास्तिकः** । कीदृक् चन्द्रं न पश्यन्ति, तत् सूत्रं पाणिनेर्वद । समाधान—विद्वान् अर्थवान् वचन बोलते है । रोगी कौन ? जो अधातु=शुक्र, रक्त, मज्जा मास अस्थि आदिसे क्षीण हो निष्क्रिय हो । नास्तिक कौन ! अप्रत्ययः=विश्वास रहितः । प्रतिपत्तिथिमें जन चन्द्र नहीं देखते । एतादृशं सूत्रम् ।

५ कृत्=कृदन्त, तद्धित=तद्धितान्त, समास, च=निपात, इन अर्थवान् शब्दस्वरूपको प्रातिपदिकसंज्ञा हो । (प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्) कृत् तद्धित प्रत्यय है । अर्थवत्सूत्रसे प्रत्ययान्तको प्रा०संज्ञाके निषेधसे यहां कृततद्धितग्रहण सफल हैं । अन्यथा कृदन्त तद्धितको भी अर्थवान् मानकर प्रा०संज्ञा हो जाती । परन्तु समासमें 'अर्थवत्' सूत्रसे प्रातिपदिकसंज्ञा सिद्ध है निषेधके लिए अवसर नहीं । राजन् ङस् पुरुष सु समुदाय अर्थवान् है ही । समासग्रहण किमर्थं । 'पूर्वसूत्रेण सिद्धे आरभ्यमाणो विधिः नियमाय कल्प्यते । समास व्यर्थ होकर नियमार्थक बना । जहां अर्थवान् शब्द समुदायके पूर्वभागमें पद हो और उत्तरभागमें भी, स्वातन्त्र्येण प्रयोगार्हं (प्रयोग करने योग्य) पद हो, वहाँ प्रातिपदिकसंज्ञा हो तो समास होने पर ही हो । इसलिए वाक्यकी प्रातिपदिकसंज्ञा नहीं होती । यहां प्रातिपदिकसंज्ञाविधायक दो सूत्र है । अतः आचार्यपाणिनिने अर्थवान् शब्दोंमे दो पक्ष माना कि एक व्युत्पन्नपक्षः दूसरा अव्युत्पन्नपक्ष । जहां प्रकृति प्रत्ययका अर्थ खुलकर मिलकर एक अर्थ हो जाय वह व्युत्पन्नपक्ष है (प्रकृतप्रत्ययार्थयुक्तत्वं व्युत्पन्नत्वम्) । तद्भिन्नमव्युत्पन्नम् । प्रकृति प्रत्ययसे युक्त कृदन्ततद्धितान्त है । व्युत्पन्नपक्षमें कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्रसे प्रा०संज्ञा समझें । जहां प्रकृतिप्रत्ययका अर्थ विभागपूर्वक न होता हो न जमता हो वह अव्युत्पन्न पक्ष है । जैसे मणि नूपुरादि । वहां अर्थवत्से प्रा० संज्ञा । सुबन्तपदसिद्धिके लिए प्रातिपदिकसंज्ञा होनेपर खले कपोतन्यायेन, खलिहानमें दाना देखकर कबूतर की तरह इक्कीस विभक्तियां, (जो सुसे प् पर्यन्त सुप् प्रत्याहार अर्थमें प्रसिद्ध हैं) उपस्थित होतीं है । उन विभक्तियोंमें तीन—२ त्रिक निश्चित किये गये है । विशेषेण

भ्याम्भिस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्यांभ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् ।४।१।२। सु औ जस् इति प्रथमा। अम् औट् शस् -द्वितीया। टा भ्यां भिस्-तृतीया। ङे भ्यां भ्यस्=चतुर्थी। ङसि भ्यां भ्यस्-पञ्चमी। ङस् ओस आम=षष्ठीं। ङि ओस् सुप् सप्तमी। (३७)प्रत्ययः ।३।१।१। आ पञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽम। (३८) पर-

भजन्तीति (प्रातिपदिकार्थं प्रकाशयन्ति) विभक्तयः उनका क्रमवचन निर्णायक—

६ स्वौ=सूत्रको सात त्रिकोंमें प्रथमा द्वितीया आदि क्रमसे विभक्त करते है। (सम्बोधनको लेकर आठ कारक भी है) तन्मध्यपतितस्तद् ग्रहणेन गृह्यते। वह त्रिक ६ कारकोंमें तथा सम्बन्धबोधक षष्ठीमें भी है कारकके रूपमें तथा कारक रूप अर्थ बोधकके रूपमें भी प्रसिद्ध है। जिनकी स्पष्ट गणना सु औ जस् इति प्रथमा। अम् औट शस् इति द्वितीया, इत्यादिके रूप में की गयी है

विवेकार्थनिर्णयः—जहां प्रातिपदिकका अर्थ जातिव्यक्ति आदि यथा योग्य प्रधान होंगे, वहां सभी विभक्ति प्रथमा (कर्ता) कारक। जिस क्रियासे युक्त हों। ने चिह्न। किसी क्रियाका कोई न कोई फल होगा। जैसे पढ़नाका उच्चारण या ज्ञान फल है। भोजनका फल तृप्ति, सेवाका स्वामिप्रसन्नता। भजनका हरि अनुग्रह। नेतृत्व समाज कल्याण या या क्रिया सा सा फलवती,फल जिसमें उत्पन्न होगा उसकी कर्मसंज्ञा होगी। वही द्वितीया विभक्ति का अर्थ है यथा—हरिंभजति। भजन क्रिया का फल प्रीति (प्रसन्नता) हरिमें है वह हरि कर्म है। जहां प्रा०संज्ञक शब्दमें फलाश्रय कर्म और संख्याकी प्रतीति हो वहां (**अम्औट्शस्**) द्वितीयाकारक जाने। (को चिह्न)। **टाभ्यांभिस्**। तृतीयाकारकका करण (क्रियाकी सफलतामें साक्षात् सहायक) साधन तथा संख्या अर्थ है (ने, से द्वारा चिह्न)। **ङेभ्यांभ्यस्**। चतुर्थी का उद्देश्य अर्थ है। क्रियाके फलका आश्रय (कर्म) का (उद्देश्य) लाभ जिसको हो उसका चिह्न है 'के लिए'। **ङसिभ्यांभ्यस्**। इस पञ्चमी विभक्तिका जहांसे क्रिया का आरम्भ होता है वह सीमा) अवधि अर्थ है। वृक्षात्पर्ण पतति,। पतनक्रिया वृक्ष से आरम्भ होती है। इसलिए कूपात्जलमानयति—वृक्ष कूप ही अवधि पञ्चमीका अर्थ है। ङस्-ओस्आम्। ये षष्ठी विभक्तियां है। जिनका सम्बन्ध अर्थ है। (का के की चिह्न) कारकसंज्ञा पक्षमें ये भी कारक है। क्रियामें अन्वयीकारक नहीं। ङि ओस् सुप्। ये सप्तमी अधिकरण कारक, इसका चिह्न आधार वाचकमें पै पर है। क्रियाका संचालक स्वतन्त्रः कर्ता प्रधान कारक है। अन्यकारक कर्ताके आधीन है, स्वतन्त्र नहीं।

इन इक्कीस विभक्तियोंकी उपस्थिति कहांपर हो तवनिर्णायक अधिकारसूत्र बोले।

(७) **प्रत्ययः**—प्रवृत्ति होनेवाले सभी प्रत्ययसंज्ञक हों। वे पूर्वमें हों या पर में, तब कहा—८। **परश्च**=सभी प्रत्यय परमें हों। ये तीनों अधिकार सूत्र है। स्वादि विधानके निर्णायक भी। स्वादिप्रत्यय विधेय है, उनका विधान किससे हो ऐसी जिज्ञासामें (ङी आप्में तदन्तविधि करके) बोले कि ङ्यन्त आबन्त स्त्रीलिङ्ग

श्र ।३।१।२। अयमपि तथा। (३९) **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** ।४।१।१। ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः (४०) **सुपः** ।१।४।१०६। सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकशः एकवचन-द्विवचन-बहुवचनसंज्ञानि स्युः। (४१) **द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने** ।१।४।२२। द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः। (४२) **विरामोऽवसानम्** ।१।४।११०। वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात्। रुत्व-विसर्गौ। रामः। (अयोगवाहानामकारस्योपरि, शर्षु चेति वाच्यम्)।

बोधक ङीप् आप् अन्तमें हो, तथा प्रातिपदिकसंज्ञावाले शब्द से परे सु औ जस्-आदि प्रत्यय हों। ९ **ङ्याप्**=ङीप् ङीष् ङीन्का ई आप्=ङ्यन्त=आप्, डाप् चाप्का आवन्त रमा आदिसे और प्रातिपदिकात्=जिसको प्रातिपदिकसंज्ञा हो, राम गौरी आदिसे उनके स्वादि प्रत्यय हों।

१४० **सुपः**—सभी विभक्तियोंमें तीन-तीन त्रिक बनाये गये है। उनमें प्रत्येक त्रिकोंका नाम करण हैं जो कारक रूप है। सुपः=सुसे लेकर प् पर्यन्त तीन-तीन त्रिकों (सु और जस् इत्यादि) में तीन वचन है। क्रमसे सु, औ, जस्को एकवचन द्विवचन बहुवचन नाम है। एका संख्या यत्र उच्यते, तत्र एकवचनं, द्वेसंख्ये यत्रोच्येते तत्र द्विवचनं, बहु (अधिक) संख्याः यत्र उच्यन्ते तत्र बहुवचनं ज्ञेयम्। एक, दो, या अधिकसंख्याकी विवक्षामें एकवचन द्विवचन बहुवचन हो। यथा सु इत्येकवचनम् औ इति द्विवचनं। जस् इति बहुवचनं, सर्वत्र एवं ज्ञेयम्। ये तीनों वचन कहां हों निर्णायकसूत्र बोले-

१ **द्विश्च**—एकश्चेति द्वेको, तयोः **द्वेकयोः**=विवक्षायां क्रमेण द्विवचनम् एकवचनञ्च भवतः। द्वित्वैकत्वयोः—जहां =दो संख्या कहनी हो वहां द्विवचन, जहां एक ही अपेक्षित हो वहां एकवचन हों। २। **विरामः**=विगतः अदृष्टः रामः—वर्णसत्ता यत्र। जहां अक्षरका रमण (उपस्थिति) न हो वह विराम हैं। वर्णोंके अभावको अवसानसंज्ञा हो। जिस अन्तिमवर्ण उच्चारणके अव्यवहित पश्चात् किसी वर्णका उच्चारण न हो तो अन्तिम वर्ण ही अवसानसंज्ञक है। **अवसीयन्ते**=समाप्यन्ते वर्णाः, यत्र तत्, अवसानम्। विरमणं वर्णानां रमणाभावो विरामः।

रामः। रमन्ते आनन्दमनुभवन्ति योगिनः यस्मिन् सच्चिदानन्दे भगवति स रामः अधिकरणे (आधार अर्थमें) घञ् अच्छे योगी जिसमें रमण करे, जिस भगवानमें ध्यानी, ज्ञानी, आनन्दानुभव करें वे राम है रमते जगदस्मिन्निति यह व्युत्पन्न पक्ष है। तथा, 'कृत्तद्धित, सूत्रसे कृदन्त मानकर प्रा०संज्ञा। जिसमे दशरथ पुत्र आनन्दका आधार परमात्मा राम अर्थ भरा है। अव्युत्पन्नपक्ष जिसमें न तो रम् धातु न घञ् ही प्रतीत हो, उसमें शशकः सलभो रामः। यहां शशक सलभ आदि अर्थवान् रामशब्द-(धातु, प्रत्यय, प्रत्यान्त भिन्न है) स्वरूपको अर्थवत्सूत्रसे प्रा० संज्ञा हुई। खलेकपोतन्यायेन खलिहानमें विकीर्ण अन्न आदि अर्थको देखकर जैसे कबूतर मंडराते हुए कूद पड़ते है। ऐसे ही अर्थवान् शब्द राम

यमाऽनुस्वार-विसर्ग-जिह्वामूलीयो-पध्मानीया अयोगवाहाः । तेनेह विसर्गस्य यत्वादनचि चेति द्वित्वपक्षेरामः । (४३) **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** ।१।२।६४। एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते, अन्ये तु लुप्यन्ते । यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाऽभिधायी । (४४) **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** ६।१।१०२ अकः प्रथमाद्वितीययोरचि परे पूर्वसवर्णदीर्घः एकादेशः स्यात् । इति प्राप्ते । (४५) **नादिचि** ।६।१।१०४। आदिचि न पूर्वसवर्ण-

---

को प्रा०संज्ञक समझकर सु,से'प्'तक इक्कीसविभक्तियां उपस्थित हुई । ये रामके पूर्व पर, नीचे ऊपर कहां हो ? तब अधिकार "सूत्र प्रत्ययः"की परश्च कृपासे सभी विभक्तियां प्रा० संज्ञक रामसे परे (आगे) हुई । कर्ता कारककी विवक्षामें प्रथमा के एकवचन सुविभक्ति उपस्थित हुई । राम सु । उपदेश (प्रथम उच्चारण अवस्था का अनुनासिक अच् सुमें उ (उपदेशेऽजनुनासिक) इत्संज्ञक हुआ । एति=गच्छति जो चला जाय वह इत् है । वह लोप अदर्शन श्रवणाभाव हैं । रामस्को सुबन्त देख सुप्तिङन्तंसे पदसंज्ञा, पदान्त सकार को ससजुषोः से रु हो गया । पुनः उ इत् । शेष बचा । र से परे वर्णका अभावकी अवसानसंज्ञा हुई । अवसान परे रहते खरवसानयोः विसर्जनीयःसे रको विसर्ग हुआ । **रामः** । यहां जगत्के रमणका आधार दशरथ पुत्र अर्थ (उक्त=व्यक्त) प्रधान होनेसे उक्ते प्रथमा हुई । जहां प्रातिपदिकका अर्थ प्रत्यय द्वारा प्रधान रूपसे प्रकाशित हो रहा हो, वहीं प्रथमा विभक्ति होती है

रामौ जिस अर्थवान् शब्दमें दो संख्या कहनी हो, वहां राम राम की प्रा० संज्ञासे द्विवचन औ । राम राम औ ततः ।

३ । **सरूपाणां**–समानं, तुल्यं एकसदृशं, रूपं येषां शब्दानां तानि सरूपाणि तेषां तेषु वा एकः (शिष्यते इति एकशेषः) निर्धारण षष्ठी एकविभक्तौ=समानविभक्तौ (एकोऽन्यार्थे समानेऽल्पे) यथा–उक्त राम राम शब्द समानरूप है तुल्य है । उनकी सभी । छ **विभक्तियों** में समानरूपता है । अतः समानविभक्तिमें **यानि सरूपाणि** =जिनके समान ही रूप देखे गये है, उनमें एक ही शिष्यते=शेष रहे अन्यका लोप हो । **यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी भवति** । जो शेष रहता है लोप हुए के अर्थको भी कहता है । शिष्यते इति शेषः एकश्चासौ शेषश्च एकशेषः सजातीय विभक्तियोंका एकरूपसे देखाजाना । एक राम शेष रह गये अन्य लुप्त हुए । **राम औ** ततः । ४ । **प्रथमा** च, प्रथमा च प्रथमे, तयोः **प्रथमयोः**=प्रथमा द्वितीययोः । एक प्रथमा सु, औ जस्को कहती है । दूसरी प्रथमा अम् औट् शस् इति द्वितीया की स्मारिका है । इस लिए प्रथमयोःमें द्विवचन दिया । **पूर्वसवर्णः**–पूर्वमें विद्यमानवर्ण के समानवर्णवाला । अकः=अ इ उ, ऋ लृ से प्रथमा या द्वितीया सम्बन्धी अच्परे हो उसको पूर्ववर्ण के समानवर्ण वाला पूर्वसवर्णदीर्घ एकादश हो । इससे औ विभक्तिके पूर्वमें रामके अ का सवर्णी आ दीर्घप्राप्त हुआ । ५ । **न आत्** इचि । अवर्णसे इच्

दीर्घः । वृद्धिरेचि । रामौ । (४६) **बहुषु बहुवचनम्** ।१।४।२१ बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात् । (४७) **चुटू** ।१।३।७। प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः । (४८) **विभक्तिश्च** ।१।४।१०४। । सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः (४९) **न विभक्तौ तुस्माः** ।१।३।४। विभक्तिस्थास्तुस्मा नेतः । इति सस्य नेत्वम् । रामाः । (५०) **एकवचनं सम्बुद्धिः** ।२।३।४९। सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं 'सम्बुद्धि'संज्ञं स्यात् [५१] **यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्**। १।४।१३ यः प्रत्ययो यस्मात्क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन्प्रत्यये परेऽङ्गसञ्ज्ञं स्यात् । (५२) **एङ्ह्रस्वात्सम्बद्धेः** ।६।१।६९। एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चा-

---

इ उ से ऐऔ तक वर्ण परे रहते पूर्वका सवर्णी दीर्घ न हो। तब वृद्धिरेचिसे अ औ के स्थानमें औ वृद्धिः **रामौ** इति सिद्धम् ।

६। **बहुषु** अनेक संख्याकी इच्छामें बहुवचनंबहुसंख्या बोधकविभक्तिकथनम् । बहुत संख्याकी विवक्षामें बहुवचनविभक्ति हो।७ **चुटू**=चवर्ग च, छ, ज, झ, ञ, टु टवर्ग ट, ठ, ड, ढ, ण,ये अक्षर यदि **प्रत्यादौ**=प्रत्ययके आदिमें हो तो इत्संज्ञक हो। (८)। **विभक्तिश्च**=सुप्तिङ सुप् और तिङ् प्रत्याहारके अक्षरोंको विभक्ति संज्ञा हो। ९ **न विभक्तौ** जिनकी विभक्तिसंज्ञा हुई उनमें रहने वाले तुस्माः=तवर्ग, सकार,मकार, इत्संज्ञक नहीं होते। इससे सकी हलन्त्यम्से इत्संज्ञा नहीं हुई, **रामाः** रामान्, रामम् इत्यादि उदाहरण स्पष्ट है।

रामाः। रामश्च, रामश्च, रामश्च, इस विग्रहमें देखे गये राम राम राम समान शब्दके बीच सरूपाणामेकशेष एकरामका एकशेष हो गया। शेष बचा हुआ राम शब्दमें सभी रामके अर्थकी शक्ति आ गयी। अतः बहुवचनकी विवक्षा स्वाभाविक होनेसे अर्थवत्स्वरूप (अर्थवत्सूत्रेण प्रा० संज्ञक) रामशब्दसे बहुवचन जस् विभक्ति हुई। जस् प्रत्यय है, बहुवचनसंख्याका बोधक होनेसे। उसके आदिमें चवर्ग 'ज' की चुटूसे इत्संज्ञा। अस्के सको 'हलन्त्यम् से इत्संज्ञा प्राप्त हैं, तब अस्की विभक्ति संज्ञा हुई, जिसका फल विभक्तिमें विद्यमान स की इत्का निषेध होना। राम अस प्रथमयोःसे पूर्वसवर्णदीर्घे रुत्वविसर्गौ च **रामाः**। क्रियामें अन्वयी अनेक राम।१५० **एकवचनम्**=एकसंख्या उच्यते यत्र। सा सम्बुद्धिः=हृदयावर्जकबुद्धिः, ध्यानाकर्षण सम्बोधन आवाहन 'हे' के प्रयोगमें प्रथमा एकवचनको सु की सम्बुद्धिसंज्ञा हो।

१ **यस्मात्** जिस प्रकृति (प्रातिपदिक)से प्रत्ययविधि=प्रत्यय स आदिका विधान हो सा प्रकृतिः आदिर्यस्य स तदादिः प्रकृति या प्रकृति सहित समुदायः। जो प्रत्यय जिस प्रकृतिसे विधान किया जाय तदादि शब्द स्वरूपको तस्मिन्=उसी प्रत्यय परे रहते अङ्गसंज्ञा हो। उसका फल।२ **एङः** ह्रस्वात् एङ्च ह्रस्वश्च अनयोः समाहारः एङ्ह्रस्वं तस्मात्। सम्बुद्धेः=सम्बुद्धिसंज्ञकका। एङन्त अङ्ग हो या ह्रस्वान्त अङ्ग उससे परे हल्(स्)लुप्त हो, वह हल् सम्बुद्धिसंज्ञक हो तो। यथा—**हे राम**, यहां प्रा०संज्ञक

ऽङ्गाद्धल्लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत्। हे राम हे रामौ हे रामाः। (५३) **अमि पूर्वः** ।६।१।१०७। अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। रामं रामौ। (५४) **लशक्वतद्धिते** ।१।३।८। तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः। (५५) **तस्माच्छसो नः पुंसि** ।३।१।१०३। पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात्पुंसि। (५६) **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** ।८।४।२। अट्-कवर्ग-पवर्ग-आङ्-नुम्-एतैर्व्य-स्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात्। समानपदे। इति प्राप्ते (५७) **पदान्तस्य** ।८।४।३७।

राम शब्दसे सु, उसको (एकवचनं सम्बुद्धिःसे) सम्बुद्धिसंज्ञा। रामको सु प्रत्यय परे रहते 'यस्मात्प्रत्यय-सूत्रसे अङ्गसंज्ञा। तथा ह्रस्वान्त-अङ्ग रामसे परे सम्बुद्धि हल् 'स' का लोप हुआ। हे राम। इसी तरह अबे **रावण**, रे मूर्ख ? धिक् मूर्ख ? यथा 'रे रे रावण दीयतां जनकजा', है। हे यशोदे तव बालकोऽसौ' यह सम्बोधन चिह्न कहीं अन्तमें भी दृष्ट है यथा– राम हे प्रसीदत्वं राम हे त्वां भजाम्यहम्।

३ **अमिपूर्वः**–अक्=अ, इ, उ, ऋ, लृसे परे 'अम्' विभक्तिका अवयव (सम्बन्धी) अच्परे हों तो पूर्वरूप (उस अकारको पूर्ववर्णके रूपमें) **एकादेशः**–एक होकर आदेश हो। यथा **रामम्** प्रा० संज्ञक रामशब्दसे कर्म (क्रियारूप फलका आधार) अर्थवाचक अम् विभक्ति आई। यहां प्राप्त पूर्वसवर्णदीर्घको बाधकर अमिपूर्वः, अक् है राममें अ, उससे परे अम् सम्बन्धी अकारको पूर्ववर्णके रूपमें पूर्वरूप हो गया। **रामम्**। क्रियाके फलका 'आश्रय निषादः रामं स्तौति' स्तुति क्रियाका फल रामगुण कथनका आश्रय राम कर्म है। एवं प्रा० संज्ञक राम शब्दसे फलका आश्रयवाचक द्विवचन औ रामौ पूर्ववत्। ४। **लशकु**=लकार सकार कवर्ग अतद्धिते **तद्धितवर्ज्य**=तद्धित प्रत्ययको त्यागकर अन्य प्रत्ययोंके आदिमें ल श कवर्ग, कखगघङ इत्संज्ञक हो।

५। **तस्मात्**=पूर्वसवर्णदीर्घात् शसः=शस्विभक्तिका सकार। पूर्वसवर्णसे परे शस् विभक्तिके सको नकार हो पुलिङ्गमें। ६।**अट्**=प्रत्याहार अ इ उ ण्से हयवरट् तक वर्ण, कु=क ख ग घ ङ पु=पवर्ग प फ ब भ म आङ्=आ, नुम् (न) का अनुस्वार। **एतैः**=ये सभी वर्ण व्यस्तैः=अस्त व्यस्त क्रमसे या बिना क्रमके यथा सम्भव एक, दो, या तीन आदि जितनेका व्यवधान, मिलितैः मिलें थोड़ा बहुत भी उक्त वर्णोंका व्यवधान रहने पर र, ष से परे 'न' को ण (णत्व) हो। समान पदे=एकपद (अखण्डपद) में जहां पद खण्डमें प्रतीत हो वहां णत्व नही होता। यथा रघुनाथ रमानाथ इत्यादि। ६। **पदान्तस्य**–पदके अन्तमें न को णत्व न हो। यथा बहुसंख्यक दशरथ पुत्र या अन्यार्थवाची एकशेष, सम्पन्न अर्थवान रामको प्रातिपदिक संज्ञा कर्मसंख्या अर्थबोधक बहुवचन शस् विभक्ति। प्रत्ययके आदिमें होनेसे श्की लशक्व तद्धिते इत्संज्ञा प्रथमयोः से पूर्वसवर्णदीर्घ। उससे परे अस्के सकारको तस्माच्छसो नः से न हुआ पुलिङ्ग समझकर। **रामान्**। यहां रसे परे 'आमा' के

नस्य णो नः रामान् । (५८) **टाङसिङसामिनात्स्याः** ।७।१।१२। अदन्तट्टा-दीनामिनादयः क्रमात्स्युः । णत्वम् । रामेण । (५९) **सुपि च** ।७।३।१०२। यञादौ सुप्यतोऽङ्गस्य दीर्घः स्यात् । रामाभ्याम् । (६०) **अतो भिस ऐस्** ।७।१।९। अतोऽङ्गात्परस्य भिस ऐस् स्यात् । 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' । रामैः । (६१) **ङेर्यः** ।७।१।१३। अतोऽङ्गात्परस्य ङेर्यादेशः स्यात् (६२) **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** ।१।१।५६। आदेशः स्थानिवत्स्यान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ वर्णमाश्रितो विधिरल्विधिः । आदेशोऽल्लाश्रयविधौ तु स्यादेव । इति स्था-

---

व्यवधानमें नकी णत्व प्राप्तिका निषेध 'पदान्तस्यसे हुआ, अम् औट् शस् विभक्तियाँ वहां होती है जहां कि क्रियाके फलका आश्रय हो । यथा–**रामः** रामेश्वरं भजते । भजतिका प्रसन्न करना अर्थ है । प्रसन्नतारूप फलका आश्रय रामेश्वरके होनेसे उससे द्वितीया ।

(१४०) **टा ङसि** अदन्तात्=ह्रस्व अकारान्त अङ्गसे टादीनां=टाङसिङस्के स्थानमें इनादयः=क्रमसे इन, आत्, स्य आदेश हो यथा प्रा०संज्ञक अदन्त रामशब्दसे एकवचनकी विवक्षामें साधन अर्थमें तृतीया एकवचन टाविभक्ति राम टा के स्थानमें उक्त सूत्रसें इन हुआ । **राम+इन** आदगुण णत्व **रामेण** । पदान्तमें अ है न नहीं, णत्व निषेध नहीं ।१ । **सुपि** च सुप् प्रत्याहारपरे । च=से यञादि अङ्ग । यञ् प्रत्याहारके अक्षर आदिमें हो ऐसा सुप् वर्ण परे अकारान्त अङ्गको दीर्घ हो । यथा **राम—भ्यां**, यञादि सुप् भ्यां,परे अङ्गसंज्ञक रामके अको दीर्घ **रामाभ्याम्** ।

२ । **अतो** अदन्त अङ्गसे परे भिस्के स्थानमें ऐस् हो । अनेकाल् आदेश सम्पूर्णके स्थानमें होते है । रामशब्दसे प्रा०सज्ञाके अनन्तर तृतीयाका वहुवचन भिस् । उसके पूरे स्थानमें 'अतोभिस्' ऐस्से ऐस् आदेश हुआ । एचि परे वृद्धिः तथा रु, वि **रामैः** । टा भ्यां भिस् तृतीया विभक्तिका 'करण' साधन अर्थ है । यथा–वायुयानेन विदेशं गच्छति । यानके परदेश गमन का साधन होनेसे तृतीया ।

३ । **ङेः**–ङिस्थाने अदन्त अङ्गसे परे ङे विभक्तिके स्थानमें य आदेश हो ।

।४ । **स्थानिना** तुल्यं **स्थानिवत्** स्थानी (ङे) के सुप् धर्मके तुल्य समान धर्म वाला आदेश हो अतिदेश अंश । **अनल्विधौ**=न अलां विधिः, तस्मिन्अनल्विधौ । अल् । एकवर्णके स्थानमें विधान हुआ हो । तब अल्विधौ न स्थानिवत् । अइउण्से लेकर हल्के ल् पर्यन्त वर्ण अल् हैं । उसको आधार या निमित्त मानकर हुआ विधान अल्विधि है । केवल एक वर्ण (वह चाहे अच् हो या हल्) यहां अल् स्थानी ङेका अवयव 'ए' लिया जायेगा । स्थानीके सुप् धर्मको आदेश ए में आरोपित करना ही स्थानिवद्भाव है । अतः आदेश स्थानीके तुल्य हो, न तु **स्थान्यलाश्रयविधौ**= जब स्थानीके अल्को आश्रय मानकर विधान हो तब स्थानिवद्भाव न हो । यथा– प्रा० संज्ञक रामशब्दसे चतुर्थीका एकवचन ङे, उसके स्थानमें 'ङेर्यः' से य आदेश । ङे सुप् हैं । उसका धर्म सुप्त्व (उद्देश्यत्व) है । उसको स्थानिवद्भावसे 'य' में

निवत्त्वात्सुपि चेति दीर्घः। रामाय रामाभ्याम्। (६३) **बहुवचने झल्येत्** ।७।३।१०३। झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः। रामेभ्यः। सुपि किं ? पचध्वम्।(६४) **वाऽवसाने** ८।४।५६। अवसाने झलां चरो वा स्युः। रामात् रामाद् रामाभ्यां। रामेभ्यः। रामस्य। (६५) **ओसि च** ।७।३।१०४। अतोऽङ्गस्यैकारः स्यात्। रामयोः। (६६) **ह्रस्वनद्यापो नुट्** ।७।१।५४। ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात्परस्याऽऽमो नुडागमः (६७) **नामि** ।६।४।३ नामि परे अजन्ताङ्गस्य दीर्घः। रामाणाम्। रामे रामयोः। सुपि एत्वे

आरोपित कर यञादि सुपिपरे अदन्त अङ्गको दीर्घ हुआ। **रामाय रामाभ्यां** पूर्ववत्।३। **बहुवचने** झलादौ=झल् प्रत्याहारवर्ण आदिमें हो ऐसा बहुवचन परे हो तो अदन्तअङ्गको एत्व हो। यथा **राम+भ्यस** इस दशामें झलादि बहुवचन सुप् (भ्यस्) हैं। अकारान्त अङ्ग रामके अको एकार हुआ। **रामेभ्यः**। सुपि किं ? यदि सूत्रमें सुप् न कहते, तब झलादि तिङ्परे भी एत्व हो जाता। तब पञ्चध्वम्में भी एत्व होता, ध्वके झलादिसे। ङे भ्यां भ्यस् चतुर्थीका अर्थ है उद्देश्य। क्रियाके फलका आश्रय कर्म जिसको प्राप्त हो। यथा—वानराय फलं रोचते, यहां रुचधातुका स्वाद अनेक रामके लिए फल जनक क्रिया अर्थ है। स्वाद फलमें हैं वह बानरको प्राप्त हो रहा है। अतः वानरायमें चतुर्थी।

(४) **अवसानें**—अन्तम वर्णका अभाव हो, झलां—झल्के स्थानमें चर्, हो वा विकल्पसे। रामशब्दस्य प्रा० संज्ञायाम्, अवधि (सीमा जहांसे क्रिया शुरू हो) वाचक पञ्चमीकी ङसिविभक्ति। राम ङस्। उसके स्थानमें टाङसिसे आत् हुआ। तको जश्त्वेन 'द्' दको वाऽवसाने विकल्पसे चर्त्वं त। **रामात्, रामद्**। ङसि भ्यां भ्यस् इति पञ्चमींका अर्थ अवधि, सीमा, जहांसे क्रिया अलग हो यथा—अध्यापका-दधीते। अध्ययन क्रियाका फल ज्ञान, विवेक है श्रोतामें उनकी उपलब्धि अध्यापकसे होती है। जो ज्ञानकी अवधि है अतः पञ्चमी। षष्ठी विभक्तिका सम्बन्ध अर्थ है। इसका सूचक का, के, की, है। **रामस्य** प्रातिपदिक रामशब्दसे सम्बन्ध अर्थका सूचक षष्ठी एकवचन ङस् तत्स्थाने 'टाङसि' सूत्रेण 'स्य' आदेशे रामस्य (राम व्यक्ति सम्बन्धी) शत्रुः रावणः।

५। **ओसि** विभक्ति परे रहते ह्रस्व अकारान्त अङ्गको एकार हो। यथा— **राम+ओस**, यहां षष्ठीका द्विवचन ओस् परे देखकर राममें अको एकार ओसि च एचोऽयवायावः से अय् आदेश हुआ, रुवि **रामयोः**। ६ **ह्रस्व**=एकमात्रिक, नदी= नदीसंज्ञक, आप्=स्त्रीलिङ्गका बोधक आकारान्त। ह्रस्वान्त नद्यन्त आबन्तअङ्गसे परे आम्को नुट्—न आगम हो। उट् इत्। (७) **नाम्** परे हो तो अजन्त अङ्गको दीर्घ हो। यथा रामाणाम् रामशब्दसे सम्बन्ध अर्थमें षष्ठीका बहुवचन आम्। ह्रस्वान्त अङ्गसे परे आम्को नुट् हुआ। **राम-नाम्** यहां, नामिसे दीर्घ अट्कुप्वाङ् णत्वे **रामाणाम्**।

कृते । (६८) अपदान्तस्य मूर्धन्यः ।८।३।५५। आ पादपरिसमाप्तेरधिकारोऽयम् । (६९) इण्कोः ।८।३।५७। इत्यधिकृत्य । (७०) आदेशप्रत्यययोः ।८।३।५९। इण्कुभ्यां परस्याऽपदान्तस्याऽऽदेशःप्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशः । ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः । रामेषु । एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ताः । (७१) सर्वादीनि सर्वनामानि ।१।१।२७। सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनाम-

---

सप्तमीविभक्ति आधार अर्थमें होती है । उसका सांकेतिक चिह्न (में, पै पर) कर्ता कर्मके द्वारा क्रियाके आधार अर्थकी स्थितमें, प्रातिपदिकसंज्ञक राम शब्दसे ङि अनुबन्धलोपे, राम इ । गुणे **रामे रामयोः** पूर्ववत् **रामेषु** । आधारभूत अनेक राम शब्दको प्रा० सं० सुप । झलादि बहुवचन परे एत्व हुआ । रामेसु ततः ।

(८) **अपदान्तस्य**=पदान्तका 'स' न हो । ऐसे सको मूर्धन्य ष हो केवल ष कहते, मूर्धन्य ऋटुरषाणां मूर्धा आदेश क्यों कहा ? इणः षीध्वंसे चकृढ्वेमें ढत्वके लिए । आपाद=पाद जब तक समाप्त न हो अधिकार चलता रहें । ९ **इण्च** कुश्च अनयोः समाहारः (पुलिङ्ग ऋषिणा प्रोक्तः आर्षः) इतरेतर–योगमें एकवचन भी । इण् परणकार तक, कु कवर्ग इनके अधिकारमें ।

७० । आदेशश्च प्रत्ययश्च आदेशप्रत्ययौ तयोः । इण्प्रत्याहार वर्ण कु=कवर्गसे परे अपदान्त=पदान्तभिन्न आदेशरूप सकार तथा प्रत्ययका अवयवभूतसकार उसके स्थानमें मूर्धन्य मूर्धस्थानी (ष) ऋटुरषाणां मूर्धा आदेश हो । यद्यपि 'स' तथा ष का स्थान भिन्न है । तथापि दोनोंके ऊष्मा संज्ञकवर्ण होनेसे 'शल् उष्माणः', उष्मणामीषद्विवृतप्रयत्नं, श, स और षका ईषद्विवृत्त प्रयत्न एक होनेसे तादृशएव षः स के स्थानमें ईषद्विवृत्त प्रयत्नवाला ष हुआ । **रामेषु** यथा—

रामोराजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे ।
रामेणभिहता निशाचरचमू, रामाय तस्मै नमः ॥
रामान्नास्ति परायणं परतरं, रामस्य दासोऽस्म्यहम् ।
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे हे राम मा पालय ॥

इस वाक्यमें सभी विभक्तियां अपना अर्थ बोल रही है । अनुभूयतां । राम व्यक्ति राजाओंका मणि होना (व्यक्तित्व) ही प्रातिपदिकार्थ है । रामके कर्ता एक संख्याका सूचक सु । उनके व्यक्तित्वका सदा ही उत्कर्ष हो । रमेशं रामं भजे । उसी प्रकार जितने अकारान्त पुलिङ्गशब्द है, सबका रूप रामकी तरह समझें । कृष्ण घट गोप, क्षत्रिय आदि, यथा–कृष्णः कृष्णौ कृष्णाः घटं । घटौ घटान् । गोपेन गोपाभ्यां गोपैः । कृष्णाय कृष्णाभ्यां कृष्णेभ्यः । नरस्य नरयोः नराणाम् ।

१ । **सर्व**=सर्वशब्दः आदिः (पूर्व) येषां=सर्वादिगण पठितशब्दानां तानि सर्वादीनि, सर्वनामानि=सर्वस्य सर्वेषां वा नाम सर्वनाम (प्रधान परामर्शकः) पूर्व या बुद्धिका परामर्शक बोधक । यथवा सर्वेषु वस्तुषु [illegible] । सर्वशब्द हो आदिमें, ऐसे गणपठितको सर्वनामसंज्ञा हो । वे सर्वादिशब्द कौन है ?

संज्ञानि स्युः। सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम रन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम। पूर्वपराऽवरदक्षिणोत्तराऽपराऽधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। अनन्तरंबहिर्योगोपसंव्यानयोः। त्यद् तद् यत् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद्। अस्मद् भवतु। किम्। ३५। एते पञ्चत्रिंशच्छब्दाः सर्वादयः। (७२) **जशः शी** ।७।१।१७। अदन्तात्सर्वनाम्नी जसः शी स्यात्। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः

उनका परिचय देते हैं। सर्व=सभी विश्व (सारा जगत्) सम्पूर्ण। **उभ** दो संख्या, **उभय**=दो का समुदाय। डतर, दोमें एक निश्चायक प्रत्यय। डतम (अनेकमें एक, का निश्चायक) अन्य भिन्न, अन्यतर=अनेकमें एक, इतर भिन्न, त्वत्त्व=अन्यार्थक, नेम आधा, सम=सर्ववाची, सिम सम्पूर्ण, पूर्व प्रथम पर अन्य अवर—छोटा अधर, **दक्षिणा** दक्षिण दिशा। उत्तरा उत्तरदिशा। अपर ऊपर, भिन्न, अधर नीचे। व्यवस्थायाम्। स्व आत्मा, **स्वयम्**=आत्मीय (अपने लोग अर्थवाला स्वशब्द सर्वादि गणमें है) जातिधन, अर्थवाला स्वशब्द गणसे वहिर्भूत है। अन्तर शब्द वहिर्योग (बाहरीभाग) तथा उपसंव्यानं (परिधान) अर्थवाला गणपठित है। त्यद् स्यः तद् (वह) यद् (जो) एतद्=एषः, इदम् अदस् (यह) अर्थ होगा। एक, द्वि=संख्यावाची, **युष्मद्**=त्वं युवां यूयम्। अस्मद्=अहम्, आवां वयं। भवतु=आप, श्रीमान्। किम्=प्रश्नवाचक क्या। यद्यपि संज्ञामात्र का बोध कराती हैं तथापि अनेकवर्णकी बड़ी संज्ञामें अन्वर्थ=अर्थके अनुकूल होती है। जो सभी वस्तुओंमें प्रयुक्त हो सभी नाम में उपयोगी हो सर्वेषान्नाम सर्वनाम है। उक्त ३५ शब्द सभी अर्थमें प्रयोगके योग्य होनेसे सर्वनाम कहलाये यदि यही सर्वनाम किसी वस्तुमें सीमित हो जाय। तब वे सर्वनामसंज्ञक नहीं हो सकते। यथा—सर्वोनाम कश्चित् तस्मै सर्वाय यहां सर्वशब्द किसी नाम विशेषमें रूढ़ है। अतः सर्वनामसंज्ञा फल भूतकार्य जशः शी, ङे स्मै स्मात्स्मिन्, सुट् आदि नहीं हुए। इसी प्रकारसे (सर्वमतिक्रान्तोऽतिसर्वः) जो सबका अतिक्रमण करे वह व्यक्ति 'अतिसर्व' हुआ। वहां भी वैसे ही समझें। क्योंकि संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः) जो संज्ञा नाम उपसर्जन विशेषण हो गये हों, वे सर्वादिमें मान्य नहीं होंगे। **सर्व २ जसः**=जस् स्थाने शी-आदेशः। ह्रस्व अकारान्त सर्वनामसंज्ञकसे परे जस्के स्थानमें शी हो। **सर्वः सर्वौ, सर्वे** सम्पूर्ण अर्थसे अर्थवान् सर्व शब्दको प्रातिपदिकसंज्ञा। प्रातिपदिकके अर्थमें प्रथमाका बहुवचन जस् विभक्ति हुई। सर्व—जस् सर्वको सर्वनामसंज्ञा हुई, सर्वादिगण पठित होनेसे। फल यह हुआ कि अकारान्त सर्वनाम सर्व, उससे परे जशः शी से जस्के स्थानमें शी। इस शीमें श और ई दो अल्वर्ण है। अनेकाल्, सम्पूर्णस्थानी (जस्) के स्थानमें शी आदेश हुआ। यदि शित्वात्=सर्वादेश कहें तो सम्भव ही नहीं। आदेश हुए बिना शीमें प्रत्यय धर्म नहीं आयेगा। प्रत्ययके आदिकी इत्संज्ञा होती है। स्थानिवद्भावसे ही सम्भव हैं अतः कहा अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः। अनुबन्धलोपे, गुणे कृते, सर्वे। यह सर्व

सर्वे। (७३) **सर्वनाम्नः स्मै** ।७।१।१४। अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै। सर्वस्मै। (७४) **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ** ।७।१।१५। अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्तः। सर्वस्मात् सर्वस्माद्। (७५) **आमि सर्वनाम्नः सुट्** ।७।१।५२। अवर्णान्तात्परस्य, सर्वनाम्नो विहितस्याऽऽमः सुडागमः स्यात्। एत्वषत्वे। सर्वेषाम्। सर्वस्मिन्। शेषं रामवत्। एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः।

उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः। उभौ २। उभाभ्याम् ३ उभयोः २। तस्येह पाठोऽकजर्थः। डतरडतमौ—प्रत्ययौ। 'प्रत्ययग्रहणे

शब्द अकारान्त तथा पुलिङ्ग है। रामशब्दकी तरह सभी विभक्तियों को जोड़ें। केवल जस् ङें ङसि ङस् ङि तथा आम् विभक्तिमें अन्तर पड़ता है। यथा–

३ **अतः**–सर्वनाम ह्रस्व अकारान्त सर्वनामसंज्ञकसे परे 'ङे'के स्थानमें स्मै हो। जहां अकारान्त सर्वनाम होगा वहा ङे को स्मै। ङसिको स्मात्। ङिको स्मिन्। यथा उद्देश्य अर्थमें सर्वशब्दसे विभक्तिः ङे, तस्य स्थाने स्मै **सर्वस्मै** (सबके लिए)

४। **ङसि**–अकारान्त सर्वनामसे ङसि तथा ङिके स्थानमें क्रमसे स्मात्, स्मिन्, आदेश हों। यथा अवधिकी विवक्षामें सर्वशब्दसे अवधि अर्थमें पञ्चमीका एक वचन ङसि। तस्य स्थाने ङसिङ्योःसे स्मात्। **सर्वस्मात्**। ५ **सर्वेषाम्**। **आमि**= आम् विभक्त परे। अवर्णान्त अङ्गसे परे सर्वनामसंज्ञकसे विधान किये गये आम्को सुट् स आगम हो। जो मित्रवत् (मिलकर) रहे। सम्बन्धकी विवक्षामें प्रा०संज्ञक तथा सर्वनामसंज्ञक सर्वशब्दसे आम्। अवर्णान्त सर्वनामसे विधान किये गये आम्को सुट् स हुआ। बहुवचने झलि एत्व तथा आदेशप्रत्यययोःसे षत्व **सर्वेषाम्**। आधार अर्थकी विवक्षामें सर्वशब्दसे आधार अर्थ बोधक ङि विभक्ति। तत्स्थाने ङसिङ्योः सूत्रमें स्मिन्नादेशे, सर्वस्मिन् शेषं रामवत्। एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः= सर्वशब्दकी तरह विश्वादयः=विश्व, उभ, उभय, सभी अकारान्तको समझें। विश्व शब्दको सर्वनामसंज्ञाका फल शी,स्मै, स्मात्, स्मिन् तथा सुट्पूर्ववत्। अन्य शब्दोंका अर्थ स्पष्ट करते है। दो संख्यावाचक शब्द उभशब्द सदाद्विवचनान्त है। अतः द्विवचनका रूपमूलमें दिया है। उन्हे सर्वशब्दके द्विवचनान्तकी तरह जानें। उभशब्द का गणमें पाठ व्यर्थ है। क्योंकि द्विवचनमें सर्वनामसंज्ञाका कोई फल नहीं है। एकवचन स्मै, स्मात्, स्मिन् होना फल है। बहुवचनमें जशः शी तथा सुट् फल है। द्विवचनमें कोई फल नहीं। अतः बोले—तस्येह–उभशब्दका इह=सर्वादिगणमें पाठः पढ़ा जाना अकच् प्रत्ययके लिए है। 'अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक्टेः अव्यय तथा सर्वनामको टिके पहले उभ शब्दको अकच् हो। उभकौ बने। इस हेतु उभको सर्वनाम संज्ञा आवश्यक, गणमें पाठ सार्थक। उभयशब्दके द्विवचन नहीं होता इतिकैयटः। अस्तीतिहरदत्तः। क्योंकि उभयः अवयवो यस्य सः उभयः दो संख्याका समुदाय। यहां भी उभयः उभयौ, उभये। उभयस्मै, उभयेषामित्यादि, विशेष फल। डतर, डतम ये दोनों प्रत्यय हैं। अनेकमें एकका निश्चायक है जैसे–**अनयोः अन्यः अन्य-**

तदन्तग्रहण'मिति तदन्ता ग्राह्याः। नेम-इत्यर्धे। समः सर्व पर्यायः। तुल्यपर्यायस्तु नेह—'यथासङ्ख्यमनुदेशः 'समानामिति' ज्ञापकात्। (७६) **पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्** ।१।१।३४। एषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणपाठात्सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात्। पूर्वे पूर्वाः। स्वाभिधेयाऽपेक्षाऽवधिनियमो व्यवस्था। व्यवस्थायां किम् ?

तरः। नेतृषु अन्यतमा इन्दिरा, ये भी सर्वनामसञ्ज्ञक है। स्वतन्त्र प्रत्ययका प्रयोग निषिद्ध हैं। **न केवला: प्रकृतिः प्रयोक्तव्याः नाऽपि केवलप्रत्ययः।** अतः बोले प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्। जहां प्रत्यय (डतरादि) पढ़े हों वहां तदन्त (डतरन्त डतमन्तका) ग्रहण हो। यथा—अनयोः एषु वा व्यक्तिषु कः ? इति कतरः कतमः। ययोः येषु वा अन्यः यतरः यतमः। तयोः तेषु वा अन्यः ततरः, ततमः। अन्ययोः अन्येषु वा एकः एकतरः एकतमः, इत्यादि प्रयोग है। अर्ध अर्थमें नेमशब्द सर्वनाम संज्ञक है। **नेमे वाणाः शिखाण्डिनः** आधे बाण शिखण्डीके है।

समशब्द यदि सर्वशब्दका अर्थ बोलता हो तभी गणमें ग्राह्य है। यदि तुल्य समान अर्थका पर्याय हो तो गणमें ग्राह्य नहीं। प्रमाण—यथासंख्यमनुदेशः—सूत्रमें समानां पढ़ा वहां सम शब्दका तुल्य समान अर्थ होनेसे न सर्वनामसंज्ञा हुई, न सुट् हुआ, न **समेषाम्** बना। इसी ज्ञापन=प्रमाणसे सिद्ध है कि सर्वपर्यायवाची सम शब्द ही सर्वनामसंज्ञाका फललाभ करें।(६) **पूर्व पर**, अवर, अधर, दक्षिणा, उत्तर अपर, ये शब्द व्यवस्थायाम्=व्यवस्था अर्थमें हो, तथा असंज्ञा किसी नामके रूपमें न हो। तब गणसूत्रात्=सर्वादीनि सूत्रसे प्राप्त सर्वनामसंज्ञा जस् विभक्ति परे विकल्पसे हो। अन्य विभक्तिमें नित्यसज्ञा है। यथा—**पूर्वः पूर्वो पूर्वे पूर्वाः**। यहां व्यवस्थावाची प्रा०संज्ञक पूर्वशब्दसे प्रथमा बहुवचनः जस् विभक्ति आई। तब दिशा, देश, या काल अर्थमें प्रयुक्त पूर्व शब्दको सर्वनामसंज्ञा तथा जस् स्थाने शी, अनुबन्धलोपे, गुणे कृते पूर्वे। पक्षमे रामाः की तरह पूर्वाः। सज्ञायां किम् ? उक्त सात शब्द किसी की संज्ञा (नाम) न हों तभी सर्वनामसंज्ञा हो ऐसा क्यों ? उत्तराः कुरवः, शब्दसे उत्तर शब्द कुरुवंशियोंकी संज्ञा हैं। अतः उसे न सर्वनामसंज्ञा, न जशः शी हुआ। व्यवस्थाका अर्थ तथा लक्षण—स्वाभिधेय, स्वानां=पूर्वादिशब्दानां यः अभिधेयः=वाच्योऽर्थः दिग्देशकालरूपः तं दिग्देशकालमपेक्ष्यते यस्मात् देशात् कालात् तदेव अवधिः एतादृशो नियमः व्यवस्था। स्वशब्दसे पूर्व, पर, अवर, आदि सात शब्दोंका अभिधेय वाच्यार्थको दिशा या देश ग्राम या काल=भूत, भविष्य, वर्तमान रूप अर्थ उससे अपेक्ष्यमाण=निर्धारणकी गयी अवधि=सीमा कि किसदेश, ग्राम, नगर या समयके पूर्व,पर, किससे पूर्व, किससे पर, किसी सीमाका नियमन (निश्चित विभाजन)को व्यवस्था कहते है। सभी उक्त सातको सर्वनामसंज्ञा जसादि विभक्तिमें विकल्पसे सम्भावित है। पाटलिपुत्रतः पूर्वे नैययिकाः। जहां पूर्वादि शब्द दिशा, स्थान, समय, का पूर्व या पर निश्चायक न हो। वहां सर्वनामसंज्ञा नहीं होगी। व्यवस्थायां कि ?

दक्षिणा गाथकाः। कुशला इत्यर्थः। असंज्ञायां किम् ? उत्तराः कुरवः। (७७) **स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्** ।१।१३५। ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा। स्वे स्वाः। आत्मीयाः, आत्मान इति वा। ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः। ज्ञातयोऽर्थाः वा। (७८) **अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः** ।१।१।३६। बाह्ये पारिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा। अन्तरे अन्तरा वा गृहाः। बाह्या इत्यर्थः। अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः। परिधानीया इत्यर्थः। (७९) **पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा** ।७।१।१६। एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः: पूर्वस्मात्पूर्वात्। पूर्वस्मिन्पूर्वे। एवं परादो-

---

दक्षिणाः गाथकाः, यहां दक्षिण शब्दका सरल, उदार, चतुर अर्थ है कि सभी गायक कुशल सरल दक्ष होते है। यहा दक्षिणशब्द किसी दिशा 'स्थान' कालकी आकांक्षा नहीं रखता है। इसलिए सर्वनामसंज्ञा जसः शी आदि नहीं हुए। (दक्षिणा सरलोदारपरच्छन्दानुवर्तिषु) एवं अधरे ताम्बूलरागः। उत्तरे प्रत्युत्तरे शक्तः। अधरो दन्तवसने अनूर्ध्वे हीने अधरो अन्यवत्। उत्तरं प्रतिवाक्ये च उर्ध्वौदीच्योत्तरेऽन्यवत्। यहां अधर या उत्तरशब्द किसी दिशा, देशकालकी अवधिसे आकांक्षित नहीं है। अतः सर्वनामसंज्ञा न होनेसे [illegible]ो (स्मिन्) नहीं हुआ।

(७) **स्वमज्ञाति**—स्वशब्दस्य चत्वारोऽर्थाः आत्मा=स्वयं आत्मीय अपने लोग धन सम्पत्ति, जाति। इनमेंसे आत्मा तथा आत्मीय अर्थवाचक स्व शब्दको सर्वनाम संज्ञा जस् परे विकल्पसे हो। जाति तथा धनवाची स्वशब्दको न हो। अतः वृत्तिमें ज्ञाति, धनसे अर्थवाची स्वशब्द कहा (स्वमज्ञातावात्मधनयोरात्मीये च प्रवक्षते इति विश्वः) अपना या अपने लोग अर्थमें प्रा०संज्ञा। स्वशब्दसे जस् विभक्ति परे पाक्षिक सर्वनामसंज्ञा तथा जसः शी=ई गुणे **स्वे**। पक्षे **स्वाः**। रामाःकी तरह। जिसका आत्मा, आत्मीय अर्थ है। जाति धन अर्थका वाचक केवल स्वाः हैं सर्वनाम नहीं।

(८) **अन्तरं**=अन्तरशब्द, बहिर्योग=बाहरका सम्बन्ध उपसंव्यानं=वस्त्रादि परिधान। बाह्य-बाहर तथा परिधानीय-साड़ी वगैरह पहिनने अर्थकों बोलनेवाला अन्तर शब्दको प्राप्त सर्वनामसंज्ञा जश् परे विकल्पसे हो। यथा—अन्तरे अन्तराः वा गृहाः। यहां गृहके बाहर अर्थमें प्रयुक्त अन्तरशब्द जस् परे उक्त संज्ञा प्राप्त किया। अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः 'यहां परिधान वस्त्रादि अर्थमें अन्तरशब्दको सर्वनामसंज्ञकसे जसः शी, गुणका लाभ। (९) **पूर्वादिभ्यः**—पूर्वपर के आदि सात तथा स्व और अन्तर मिलकर ९ शब्दोंसे परे पञ्चमी ङसि ङि विभक्तियोंको क्रम से स्मात् स्मिन् विकल्पसे हो। इस सूत्रका विकल्प प्राप्त विभाषा है। जहां पूर्वसूत्र से प्राप्तसंज्ञा या कार्यका विकल्प विधान हो, वह प्राप्त विभाषा है। प्रसङ्गमें नित्य संज्ञा विकल्प हुई। अतः पञ्चमीमें पूर्वशब्दके **पूर्वात् पूर्वस्मात्** तथा सप्तमी ङि में **पूर्वस्मिन् पूर्वे** दोनों रूप होगा। पूर्वादि शब्दकी तरह पर, अवर, आदिको

नामापि। शेषं सर्ववत्। एकशब्दः संख्यायां नित्यैकवचनान्तः। संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः। सर्वो नाम कश्चित्तस्मै सर्वाय देहि। अतिक्रान्तः सर्वमतिसर्वस्तस्मै-अतिसर्वाय। तदन्तस्यापीयं सञ्ज्ञा, 'द्वन्द्वे चे'ति ज्ञापकात् ,अन्तरं बहिर्योगे'ति गणसूत्रे-अपुरीति वक्तव्यम्। अन्तरायां पुरि। (८०) **तृतीयासमासे** ।१।१।३०। अत्र सर्वनामता न। मासपूर्वाय। तृतीयासमासार्थवाक्येऽपि न-मासेनपूर्वाय। (८१) **द्वन्द्वे च** ।१।१।३१। द्वन्द्वे उक्ता संज्ञा न

भी समझें। यथा—परे पराः परस्मात्, परात् परस्मिन् परे इत्यादि। अवशिष्ट शब्द सर्ववत् समझे।

एकशब्द संख्या अर्थमें नित्य एकवचन अन्य अर्थोमें एकवचन भी। यथा एके एकेषाम् आठ अर्थ। एकोऽन्यार्थे प्रधाने च केवले प्रथमे तथा। साधारणे समानेऽल्पे संख्यायां च प्रयुज्यते इति कोशः। एकशब्दः अन्य (भिन्न) प्रधान (मुख्य) प्रथम (पहला) केवल (मात्र) साधारण (व्यापक) समान तुल्य अल्प (हल्का) संख्या।

सर्वादि वही होंगे जो उपसर्जन विशेषण बनकर अन्य अर्थ बोधक न हो (टि घु भ) संज्ञाकी तरह इसकी लघुसंज्ञा न कर महासंज्ञा शब्दार्थ घटनेसे सम्बद्ध है। सर्वेषां नामानि—सभी वस्तुमें प्रयुक्त हो तस्य सर्वादिगणे पाठः तदनुगुणानां=शब्दार्थ के अनुकूलगुणवाले शब्दोंका गणमें प्रवेश हैं।

सर्वोनाम कश्चित् किसीका संज्ञा (नाम सर्व है व्यक्तिविशेषका बोधक है सर्वेषां नाम सम्पूर्ण अर्थ नहीं रहा, तस्मै सर्वाय देहि संज्ञा (किसीका नाम होनेसे स्मै नहीं किन्तु ङेर्यः हुआ। सर्वाय चरणामृतं देहि—संज्ञायाः उदाहरणं ददौ। उपसर्जन-उदाहरणंदीयते। अतिक्रान्तः सर्वं (जो सब पर हावी हो गया) अतिसर्वः (सबका शिरोमणि) यहां सर्वशब्द अतिक्रमण करने वाले व्यक्तिमें विशेषण है। तस्मै=चतुर्थीमें ङेको स्मै न, किन्तु ङेर्य हुआ। अतिसर्वाय शिवकुमारशास्त्रिणे देहि। सर्वनामसंज्ञक कार्य नहीं हुए।

(८०) **तृतीया** हेतु तृतीया विभक्तिके साथ समर्थका समास (एकार्थीभाव) हुआ हो। सर्वनामसंज्ञा नहीं होती। यथा मासेन पूर्वः आगतः मासिकः वेतन पहले आया। मासात्पूर्वभावी (महीनों पहले होनेवाला) समासार्थ मासपूर्वः तस्मै= चतुर्थी स्थाने स्मै प्राप्तः (तृतीयासमासे) सूत्रं तं निषेधति। ङेर्यः मासपूर्वाय। तृतीया समासे—सूत्रे विभाषाद्विक्समासे सूत्रात्समासः अनुवर्तिष्यते। पुनः सूत्रे समास ग्रहणफलं कथयति। तृतीयासमाससम्भावनायां लौकिक विग्रहे मासेन पूर्वाय इति वाक्ये अपि सर्वनामसंज्ञा मा भवतु। गौणसमासमें संज्ञा न हो। मासेन पूर्वायमें संज्ञा न होनेसे स्मै नहीं हुआ। ९ **द्वन्द्वे** सर्वपदार्थप्रधाने उक्ता—कही गयी सर्वनाम संज्ञा न हो द्वन्द्व समासमें। वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्मानशेषतः, याज्ञवल्क्यस्मृतिः वर्णाश्च (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) आश्रमाश्च गृहस्थ—ब्रह्मचर्य—वानप्रस्थ सन्यास

। वर्णाश्रमेतराणाम् (८२) विभाषा जसि ।१।१।३२। जसाधारं शीभावाख्यं यत्कार्यं तत्र कर्त्तव्ये द्वन्द्वे उक्ता सञ्ज्ञा वा स्यात् वर्णाश्रमेतरे-वर्णाश्रमेतराः। (८३) प्रथमचरमतयाऽल्पार्धकतिपयनेमाश्च ।१।१।३३। एते जस्युक्तसंज्ञा वा स्युः। प्रथमे प्रथमाः। तयः प्रत्ययः। द्वितये द्वितयाः। शेषं रामवत्। नेमे नेमाः। शेषं सर्ववत्। (तीयस्य ङित्सु वा वाच्या।)तीय-

---

इतर=वर्णआश्रमसे भिन्न अन्त्यजको अशेषतः धर्मान् सम्पूर्ण धर्मोको ब्रूहि समझाओ। वर्णाश्रमेतराः।

अन्तरशब्द बहिर्योग बारह सम्बन्ध, उपसंव्यान (परिधान) साड़ी आदि। सूत्रमें (अपुरि) ऐसा पढ़ें इसलिए कि भीतर अर्थमें अन्तरा शब्दको सर्वनामसंज्ञा न हो। यद्यपि गणे अन्तरशब्दः पठितः न तु अन्तरा तथापि लिङ्गविशिष्टपरिभाषासे प्रातिपदिक ग्रहणमें लिङ्गसहितका ग्रहण हो टाप्सहित अन्तरा को संज्ञा हो। अथवा टापके साथ एकादेशमें पूर्वके अन्तवद्भावसे संज्ञा सम्भवा। सूत्रमें बाह्य पढ़ा है। अन्तराशब्दसे भीतर अर्थः। यद्यपि विभाषा जसि प्रसङ्गमें अपुरीति वक्तव्यं वार्तिकपाठो भाष्ये दृश्यते, तथापि अन्तरं बहिः=अन्दर बाहर अर्थ का सम्बन्ध देखकर गणसूत्र का शेष वार्तिक है। विभाषा जसिका नहीं। सिमशब्दस्तु सिमः कृत्स्ने च शक्तौ च स्यात् मर्यादाऽववद्धयोः सम्पूर्णसमर्थमर्यादाः सुबद्ध सिम

(२) विभाषा सर्वनाम, द्वन्द्व, जसिमें विभक्तिनिर्देश नहीं किन्तु जसः इः जसिः इ शब्द इवर्णको कहता है इके स्थानमें गुण आदिकार्य जसको आधार मानकर शी भावसे हुये है। जस आधारो यस्य तं जसाधारं जस्स्थानक जसको आधार मानकर शीभाव्याख्यं=शी कार्य हुआ है। तत्र कर्तव्ये=द्वन्द्वसमासमें उक्ता=कथिता सर्वनाम संज्ञा विकल्पसे हो। यथा—वर्णाश्रमेतरशब्दात् जस्। तस्य स्थाने (ई) विभाषा जसि सूत्रेण संज्ञा विकल्पे। तदा जसः शी गुणे वर्णाश्रमेतरे। यदा न सर्वनामसंज्ञा तदा पूर्वसवर्णदीर्घ आदिः।

३ प्रथम, चरम (अन्तिम) तय् प्रत्ययान्त। अल्प=थोड़ा, अर्द्ध=आधा, कतिपय=कुछ संख्यावाले। तथा नेम=आधा, ये शब्द जस् विभक्तिपरे सर्वनामसंज्ञाके विकल्प होनेसे जसः 'शी'। प्रथमे प्रथमाः एवं चरमे चरमाः यहां तय शब्द तय प्रत्ययका सूचक है। कोई भी प्रत्यय अपनी प्रकृतिके बिना उपयोगी नहीं होता तयप्का समुदाय अर्थ है। दो का समुदाय द्वितीयः। तीनका तृतीयः। चारका चतुष्टय। पञ्चतय, षट्तय आदि। क्योंकि प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणका नियम है। केवल प्रत्ययको सर्वनाम कार्य विफल है। अतः दो समुदाय अर्थ वाला द्वितीय शब्द को जस् परे सर्वनामसंज्ञा, जसः शी, आदि हुए। एवंअल्पे अल्पाः अर्धे अर्धाः कतिपये कतिपयाः। नेमे नेमाः। आदि शेषरूप सर्ववत् समझें। सर्वनामसंज्ञा तथा तत्फलभूतकार्यका स्मरण करें। तीयस्य—तीयप्रत्यान्तको सर्वनामसंज्ञा हो ङित् प्रत्ययके परे विकल्पसे। यथा द्वेस्तीयः, द्वितीयः तृतीयः यहां ङित्सु=ङे ङस् ङसि,

प्रत्ययान्तस्य ङिद्वचनेषु सर्वनामसंज्ञा वा स्यात्। द्वितीयस्मै-द्वितीयायेत्यादि एवं तृतीयः। निर्जरः। (८४) जराया जरसन्यतरस्याम्।७।२ १११। जराया जरस् वा स्यादजादौ विभक्तौ। पदाङ्गाधिकारे तस्य च, तदन्तस्य च। निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशे प्राप्ते। एकदेशविकृत-स्याऽनन्यत्वाज्जरशब्दस्य जरस्। निर्जरसौ। निर्जरौ,। निर्जरसः-इत्यादि। उपजीव्यविरोधान्न जरस्। निर्जरैः-इत्यादि।पक्षे हलादौ च रामवत्। (८५)

ङि परे वैकल्पिक सर्वनामसंज्ञा तथा स्मै आदि। फल द्वितीयस्मै द्वितीयाय सिद्ध हुए इसी तरह ङित् विभक्तिमें सर्वनामसंज्ञा होनेसे तृतीयस्मै तृतीयाय आदि।

निर्गतो जरायाः। (वृद्धावस्थासे जो बच जाय उसे निर्जर कहते है) अमराः निर्जराः देवाः इत्यमरः। रामशब्दकी तरह देवअर्थसे अर्थवान् निर्जरशब्द प्रातिपदिकसंज्ञक रामकी तरह स्वादिकार्य। इस सूत्रमें वा शब्द उभयत्र विभाषा है। अर्थात् प्रथम चरम अल्पअर्द्धशब्दोंमें किसी सूत्रसे संज्ञा प्राप्त नहीं है। यह अप्राप्त विभाषा है। नेम शब्दको संज्ञा प्राप्त है। उसको विकल्प विधान प्राप्त विभषा है।

(४) **जरायाः**—जरा शब्दके स्थानमें जरस् आदेश हो अजादि विभक्ति औ जस् शस् टा ङे अस् आम् ओस ङि परे अन्यतरस्याम् अन्य के मतमें। अर्थात् विकल्पसे निर्जरसे दो देवता कर्तामें निर्जरश्च २ एकशेष, औ विभक्ति **निर्जर** —**औ** इस स्थितिमें जरायाः, जरस् सूत्रसे अजादि विभक्ति औ परे जरा को जरस् हुआ। निर्जरस् औ यहां तो निर्जरशब्द है जरा नहीं, जरस् कैसे ? अतः बोले पद के अधिकारमें या अङ्गके अधिकारमें जिसको आदेश (विधान) किया जाय, तस्य= उसके स्थानमेंतदन्तस्य वह हो अन्तमें उसके स्थानमें जरस् हो। जैसे जराशब्द निर्जर के अन्तमें ह्रस्व होकर पढ़ा है। अङ्गका अधिकार है। अतः अङ्गाधिकारी कार्य जरस् हुआ। क्या सम्पूर्ण निर्जरसे स्थानमें जरस् हो! तब बोले निर्दिश्यमानस्येति विधिसूत्र में निर्दिश्यमान=उच्चारण किया गया है उसीको आदेश हो। अथवा षष्ठी विभक्तिकी प्रथम उपस्थिती ही निर्दिश्यमान (है। षष्ठी प्रकृतिजन्य प्राथमिकोपास्थितिविषयत्वम्) जरायाःमें षष्ठी, जरासे उपस्थित। उसको जरस् हो। परन्तु जरा शब्द नहीं निर्जर हैं जरस् कैसे। तब बोले यदा तदन्तपदेन जरा शब्दान्तसम्पूर्णस्य निर्जर शब्दस्य स्थाने अनेकाल्त्वात् सर्वादेशे (अनेकालः सम्पूर्ण स्थाने भवन्ति) इति प्राप्ते। एकदेशविकृतमिति। एकअंशमें यदि विकार आ जाय तो वह न अन्यवत् अनन्यवत्=अन्य नहीं होता, किन्तु वह वही रहता है। **नहि छिन्ने पुच्छे अश्वः गर्दभो भवति** घोड़ेकी पूंछ कट गयी। एकअंशका विकार हुआ तो वह गदहा नहीं होता। अतः जराशब्दका ह्रस्व विकार होनेपर भी जरको जरा शब्द मानकर जरस् हुआ। वर्णसम्मेलने निर्जरसौ, पक्षमें निर्जरौ। एवं निर्जर—जस् अनुबन्धलोपे, जरस आदेश। पक्षमें तथा हलादि विभक्तिमें रामकी तरह रूप रहेगा। अम् औट् शस् टा ङे ङस् ङसि ङि ओस आम्में दो दो रूप है।

पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ।६।१।६३। पाद दन्त नासिका मास हृदय निशा असृज् यूष दोष यकृत् शकृत् उदक आस्यएषां पदादय आदेशाः स्युः शसादौ वा । यत्तु 'आसनशब्दस्यासन्नादेश इति काशिकायामुक्तं तत्प्रामादिकमेव । पादः पादौ पादाः । पादम् पादौ पदः पादान् । पादा=पादेन । इत्यादि । विश्वपाः । (८६) **दीर्घाज्जसि च** ।६।१।१०५। दीर्घाज्जसि, इचि च न पूर्वसवर्णदीर्घः । वृद्धिः । विश्वपौ विश्वपाः । हे विश्वपाः हे विश्वपौ हे विश्वपाः । (८७) **सुडनपुंसकस्य** ।१।१।४३। स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य । सुडिति

---

(५) **पादः पादौ पादाः पादं पादौ पादः पादान्**, शस इत्यादि विभक्तिपरे विशेषता प्रदर्शक सूत्र पद्दन्नो० समाहारद्वन्द्वः । सूत्रमें आदेश पढ़े गये, उनके अनुकूल स्थानीकी कल्पना । स्थानी आदेशश्च सहैव दीयते । पादस्थाने पद्, दन्त–दत्, नासिका–नस् मांस–मास्, हृदय–हृद् निशा निश्, असृज–आसन्, यूष–यूषन्, दोष दोषन्, यकृत्–यकन्, उदक–उदन्, आस्य–आसन, इत्यादि आदेश क्रमसे हो । **शसादौ**=शस् टा आदि विभक्तिपरे विकल्पसे । **यत्तु**= (कोई विद्वान्) आसनशब्दके स्थानमें आसन् आदेश काशिका ग्रंथमें कहा, **तत्प्रामादिकम्** (उनका कहना भ्रम मूलक है) क्योंकि हव्या जुह्वान आसनि । मुखमें हवनीय वस्तुका हवन करे । आसन्य आसने मुखे भवं प्राणमूचुः (आसन्नो मुखात् वृकस्य वर्तिकाम् । मन्त्रसे मुख अर्थः । इन प्रमाणोंसे आस्य स्थाने आसन् आदेश प्रमाणित । अनेक चरण अर्थेन अर्थवतः **पादशब्दात्** कर्मसंज्ञया अर्थप्रकाशकबहुवचने शस्. अनुबन्धलोपे । पादअस् दशायां पद्दन्नो० सूत्रेण पादस्थाने पदादेशे । वर्ण सम्मेलने रुवि० । **पदः** । पदा पदादेशो न तदा रामान् इव पादान् । तृतीयायाः एकवचने चरणार्थेन अर्थवतः पाद शब्दात्करणे अर्थे टा पदादेशे **पदा** पक्षे पादेन पादाभ्यां पद्भ्यां पद्भिः पादैः । पदे पादाय, पदः पादात् । पदः पादस्य, पदोः पादयोः, पदां पदानाम् । पदि पादे, पत्सु पादेषु ।

विश्वपाः । विश्वं सकललोकं पाति रक्षति अर्थमें कर्तरि क्विप् उसका पूर्णलोप होकर विश्वपालक अर्थसे अर्थवान् विश्वपाशब्दकी प्रा०संज्ञा स रुवि विश्वपाः सिद्ध ।

(६) **दीर्घात्**=दीर्घसे जस् विभक्तिपरे और इच् प्रत्याहार वर्ण परे हो तो पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं होता । जहां विश्वके पालक दो हों वहां **विश्वपा—औ** । यहां विभक्ति 'औ' को 'पा' में आके रूपमें पूर्वसवर्णदीर्घकी सम्भावनासे निषेध सूत्र यहां दीर्घ आ से इच्–औ परे देखकर पूर्वसवर्णदीर्घका निषेध हुआ । वृद्धिः विश्वपौ विश्वपालककर्ता अनेक हों **विश्वपा—जस् ज् इत्** । पूर्वसवर्णदीर्घे रुवि विश्वपाः । हे विश्वपाःमें स्‌का रुवि । **विश्वपां विश्वपौ विश्वपः** विश्वपालनकर्ता (क्रियाफल का आधार) अर्थसे अर्थवान् प्रासंज्ञक विश्वपा शब्दसे बहुवचन शस् ।

(७) **सुट्**=सुसे औट् तक प्रत्याहार । सु और जस अम् औ इन स्वादि पांच

प्रत्याहारः। (८८) **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** ।१।४।१७। कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु परतः पूर्वं पदं स्यात् (८९) **यचि भम्** ।१।४।१८। यादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भं स्यात्। (९०)**आ कडारादेका संज्ञा** ।१।४।१। इत ऊर्ध्वं 'कडाराः कर्मधारये' ।२।२। ३८। इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया। या पराऽनवकाशा च तेन शसादावचि भसंज्ञैव, न पदत्वम् (९१) **आतो धातोः** ।६।४।१४०। अकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः स्यात्। अलोऽन्त्यस्य। विश्वपः विश्वपा।

वचनोंको सर्वनाम स्थान संज्ञा हो। अक्लीबस्य नपुंसक न हो। (८) **असर्वनामस्थाने**=सर्वनामस्थान सु, औ, जस्, अम्, औट्को छोड़कर अन्य। स्वादिषु शस्प्रत्ययसे लेकर चोथा तथा पंचम अध्यायोंमें पढ़ें गये प्रत्यय कप्प्रत्ययावधिषु=उरः प्रभृतिभ्यः कपः सूत्र पर्यन्तप्रत्ययकी अन्तिम अवधिसीमा तकके प्रत्ययपरे रहते पूर्वको पदसंज्ञा हो। (९) **यचि**—यकारादि तथा अजादिप्रत्यय। सर्वनामस्थानसंज्ञक से शसादि स्वादिमें प्रत्ययसे लेकर कप्प्रत्यय पर्यन्त यकारादि तथा अजादिप्रत्यय परे हों तो पूर्वकी भसंज्ञा हो। यकारादि अजादि प्रत्ययपरे भसंज्ञा उससे भिन्नकी पदसंज्ञा। कहीं अजादिमें भी (सिति च) से पदसंज्ञा होती है।

नपुंसक लिङ्गमें प्रथमा द्वितीयाके द्विवचनमें भी भसंज्ञा हो। अतएव सुपथीमें टिलोप है। तथा सपुंसीमें असुङ् आदेश नहीं।

(९०) **आकडारात्**=कडाराकर्मधारय पर्यन्त। इत् उर्ध्वं=पहले अध्यायसे लेकर 'कडाराकर्मधारय' सूत्रतक एकस्य=एकके स्थानमें एकैव=एक ही संज्ञा हो। परन्तु बहुत पालनकर्ता प्रातिपदिकार्थं कर्म हो गये हों द्वितीया बहुवचन विश्वपा शस् (अस्) यह लक्ष्य स्वादि मानकर पद० अजादि परे मानकर भसंज्ञाका भी विषय बना। दोनों संज्ञाओंमें एक हीं संज्ञाका नियम भी है। परन्तु भ तथा पद दोनों संज्ञाओंका विषय होनेसे भसंज्ञा क्यों हो? पदसंज्ञा क्यों नहीं। इस शङ्का पर बोले—" या पराऽनवकाशा च" पर शब्दसे विप्रतिषेध सूत्र स्मृत है। अन्यत्र–२ लब्धावकाशयोः विरुद्धसंज्ञायोः यत्र तुल्यबलविरोधः तत्रै विप्रतिषेधः। परन्तु दोनों संज्ञाओंके मध्यमें जो निरवकाश हो, वही शास्त्र प्रबल हो। निरवकाशत्व उत्सर्गाप्राप्ति स्थले चारितार्थ्यभावरूपम्। उत्सर्गश्च=असतिप्रतिबन्धके वर्तमानः। उत्सृज्यते बाधकसद्भावे त्यज्यते। सामान्यसूत्रकी प्राप्तिस्थलसे भिन्न न हो। प्रसङ्गमें भसंज्ञा पर हैं। निरवकाश भी। अतः वही होगा। अजादिपदसंज्ञा शेष हलादिमें पद संज्ञा। शस् इत्यादि अजातिविभक्ति परे भसंज्ञा ही हो, न पदत्व=पदसंज्ञा न हो।

(९१) **आतो**=आकारान्त जो (पा) धातु, तदन्तस्य=वह हो अन्तमें विश्वपा ऐसे भसंज्ञक अङ्गके अन्त्य अल् आका लोप हो। विश्वपाको पदसंज्ञा बाधकर भसंज्ञा पर तथा अनवकाश होनेसे हुई। क्विबन्त विडन्त विजन्त शब्द धातुत्वका त्याग नहीं करते क्विबन्तसे धातुत्व रहता है। विश्वं पातीति विश्वपा क्विबन्त है भसंज्ञक अंग

विश्वपाभ्यामित्यादि। एवं शङ्खध्मादयः। धातोः किम्? हाहान्। 'आत' इति योगविभागादधातोरप्याकारलोपः क्वचित्। क्त्वः श्नः। हरिः हरी

(९२) **जसि च** ।७।३।१०९। ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः स्याज्जसि परे। हरयः।

है। पाका आ, अन्त्य अल् होनेसे लुप्त हुआ। विभक्तिके सकारको रुत्व विसर्ग। विश्वपः विश्वपालन साधनकी विवक्षामें विश्वपाशब्द से टा विभक्तिपरे, भसंज्ञा आतो धातोः आलोप, विश्वपा विश्वपाभ्यां विश्वपाभिः विश्वपे विश्वपाभ्यां विश्वपाभ्यः। विश्वपः विश्वपाभ्यः अजादि विभक्ति ङसि,ङस्, ङि, ओस् आम् आदिमें आ का लोप होगा। विश्वपः विश्वपः विश्वपोः विश्वपामिति शङ्खध्मां शङ्खध्मौ शङ्खध्मः माभ्यां माभिः शङ्खध्मे। शङ्खध्मः शङ्खध्मोः नां शङ्खध्मि मोः मासु षष्ठी। विश्वपि, विश्वपोः विश्वपासु। एवं शङ्खं में ध्मायते, ध्वनयति इति शङ्खध्मा (शंख वादकका रूपभी विश्वपावत् चलेगा। धातोःकिं? सूत्रमें धातु न होतातो प्रातिपदिक के भसंज्ञक आका लोप हो जाता। 'हा हा हूहूश्चैवमाद्याः गन्धर्वास्त्रिदिवौकसाम्' यहां हाहा शब्दधातु नहीं है उसके आका लोप नहीं हुआ। **हाहाः हाहौ हाहाः** शस् विभक्तिमें पूर्वसवर्णदीर्घ तथा शस् के सकारको तस्मात् शसो नः पुंसि से नत्व हाहान्। हाहा से टाके आ को सवर्णदीर्घ हुआ। **हाहाभ्यां हाहाभिः**। हाहैमें ङे के एको वृद्धिः। हाहै। हहौः ओसविभक्तिपरे भी वृद्धि हाहौः। आमिपरे सवर्णदीर्घे हाहाम्। ङिमें गुण। **हाहे** हाहासु।

क्त्वः श्नः। क्त्वा श्नासे शस् आदि अजादिविभक्तिपरे आलोपसे रूप बने, परन्तु धातु नहीं है आलोप कैसे? तब बोले आत इति। आतो धातोः सूत्रसे आत को अलग करेंगे जिसका आकारान्त भसंज्ञक अङ्गके अन्त्य अल् (आ) का लोप हो। इससे आकारलोप होकर शसि विभक्तिमें क्त्वः श्नः रूप बनेंगे। इस योगविभागसे अधातोः=धातुके विनाभी आकारका लोप कहीं होता है। दूसरा योग 'धातोः' ऐसा होगा। जिसका अर्थ आकारान्त धातु, हो अन्तमें ऐसे भसंज्ञक अंग का लोप हो। इससे आबन्त रमा हाहा आदि सुरक्षित हुए। योगविभाग सब स्थलके लिये नहीं।

'हरति पापानि' इति हरिः पापहरणकर्ता अर्थसे अर्थवान् शब्दस्वरूप हरिकी प्रा०संज्ञा, प्रातिपदिकार्थकर्तरि सु रुवि **हरिः**। पाप हरण क्रियामें स्वतन्त्र। द्विवचन दो कर्ता स्वतन्त्र हो हरि—औ। औ को पूर्वसवर्णदीर्घ **हरी हरयः**।

(८) **जसि**=जस् विभक्ति परे च=ह्रस्वान्त अङ्गके अन्त्य अल्के स्थानमें गुण हो। हरिशब्दके चौदह अर्थ है। यम अनिल इन्द्र चन्द्र अर्क विष्णु अंशु बाजि शुक् अहि (सर्प) कपि, भेक (मेढक) ना, कपिल, इन अर्थोके किसी भी अर्थसे अर्थवान् हरिशब्द प्रासंज्ञक होता है - बहुवचने हरि—जस्। ज इत्। ह्रस्वान्त अंगका अन्त अल् (इ) को जसि च सूत्रसे गुण। हरे अस्। अय्, आदेश रुवि **हरयः**।

(९) **ह्रस्वस्य** सम्बुद्धि (आवाहन, ध्यानाकर्षण सूचक हे, अरे, अबे) संज्ञक

(६३) **ह्रस्वस्य गुणः** ।७।३।१०८। ह्रस्वस्य गुणः स्यात् । सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिं हरी हरीन् । (६४) **शेषो घ्यसखि** ।१।४।७। 'शेष' इति स्पष्टार्थम् । अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञं स्यात् (६५) **आङो नाऽस्त्रियाम्** ।७।३।१२०। घेः परस्याऽऽङो ना स्यादस्त्रियाम् । 'आ'ङिति टा-संज्ञा प्राचाम् । हरिणा हरिभ्याम्३ हरिभिः । (६६) **घेर्ङिति** ।७।३।१११। घिसंज्ञस्य ङिति सुपि गुणः स्यात् । हरये । हरिभ्यः २ । गुणे कृते । (६७) **ङसिङसोश्च** ।६।१।११०। एङो ङसिङसोरति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरेः २ । हर्योः २। हरीणाम् । (६८) **अच्च घेः** ।७।३।११६। इदुद्भ्यामुत्त-

---

सु परे हो तो ह्रस्व अङ्गके अन्त्य अल्को गुण हो । इ—स्थाने गुण हुआ । **हे हरे !** क्रियाके फलका आश्रय (कर्म) की विवक्षामें हरिशब्दकी प्रा०संज्ञा द्वितीयैक-वचन हरि अम् । अमिपूर्व । अम्सम्बन्धी अच्को पूर्वरूप होनेसे **हरिम्** । औको पूर्ण-सवर्णदीर्घ **हरी** । हरिशब्दसे अनेक हरिकर्मकी विवक्षामें बहुवचने शस् अ इत् पूर्व-सवर्णीदीर्घ हरीस्, तस्माच्छसो नः से सको नत्व, **हरीन्** । (१७०) **शेषो**=उक्तादन्यः ईकार उकार नदीसंज्ञादिमें उक्त है, उससे अन्य=भिन्न ह्रस्व इ उ शेष है । अर्थ स्पष्ट है, अनदीसंज्ञौ=जिसकी नदीसंज्ञा न हुई हो ऐसे ह्रस्व इ उ और तदन्त इकारान्त उकारान्तकी घिसंज्ञा हो, असखि सखिशब्दको छोड़कर । यद्यपि सखिशब्दभी अनदी संज्ञक ह्रस्व इकारान्त है । तथापि नदीसंज्ञा घिसंज्ञाको बाधती है । अतः ह्रस्व इ उ ही शेष है, उन्हीं को घिसंज्ञाका विशेष विधान है ।

(१) **अङो ना** घिसंज्ञकशब्दसे परे आङ् टाको 'ना' हो अस्त्रियां स्त्रीलिङ्गमें नहीं । पापहारक साधन,कारक प्रासंजक हरिशब्दसे टा । ह्रस्व इकारान्तकी घिसंज्ञा टाको आङो ना आदेशः । णत्व **हरिणा** । यदि दो कारक क्रियाका साधन हो द्वि-वचने **हरिभ्यां हरिभिः** । (२) **घेः**=घिसंज्ञकके स्थानमें ङिति, ङे, ङसि, ङस ङि परे गुण हो । क्रियाफलका आश्रय कर्म जिसके लिए हो उस उद्देश्य अर्थसे अर्थवान् हरिशब्दको प्रा०संज्ञा । (के लिए) अर्थको चतुर्थी एकवचन ङे विभक्ति । ङ् इत् । घिसंज्ञा । ङित् ए परे घिसंज्ञक इको गुण अयादेश । **हरये हरिभ्यां हरिभ्यः**के लिए (पूजा) यह गुण अन्त्य अल्के स्थानमें जानें । हरिशब्दसे सीमा अवधि जससे क्रियाका आरम्भ अर्थमें पञ्चमीका एकवचन ङसि । ङ् इत् हरि अस् शेषोघ्यसखि घिसंज्ञा घेर्ङिति गुण । **हरे—अस्** ।(३) **ङसि—ङ** ओ से ङसि ङस् सम्बन्धी ह्रस्व अकार परे दोनोंके स्थानमें पूर्वरूप एकादेश हो । अस्का अ—ए के रूपमें विलीन हुआ । स को रुवि । **हरेः** । षष्ठी द्विवचने हरि—ओस् इति दशायां यणि रुवि हर्योः । पाप हरणार्थक प्रासंजक हरिशब्दात् सम्बन्धेऽर्थे बहु० आम् । **हरि—आम्** ह्रस्वनद्यापो ह्रस्वान्त हरिसे नुट् उट् इत् न् । नामिपरे अजन्ताङ्गस्य दीर्घे अट्कुप्वाङ् णत्व **हरीणाम्** । (४) **अच्च** ह्रस्व इ उ से उत्तरस्य=परे ङिविभक्तिके स्थानमें औत् दो मात्रिक औ, । घेः अ । घिसंज्ञक हरिके अन्त्य अल् इको एकमात्रिक अ हो ।

रस्य ङेरौत् घेरत्स्यात् हरौ हर्य्योः हरिषु। एवं कव्यादयः (१९) अनङ्सौ ।७।१।९३। सख्युरङ्गस्याऽनङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ। (२००) अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा ।१।१:६५। अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात्। (१) सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ ।६।४।८। नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। (२) अपृक्त एकाल् प्रत्ययः ।१।२।४१। एकाल्प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात्। (३) हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ।६।१।६८। हलन्तात्परं, दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं—सुतिसी'त्येतदपृक्तं हल्लुप्यते (४) प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ।१।१।६२। प्रत्यये लुप्तेऽपि तदाश्रितं कार्यं स्यात्। (२०५) न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ।८।२।७। प्रातिपदिकसंज्ञं

आधार अर्थमें **हरि–ङि**, ङ्इत् शेषोऽघ–घिसंज्ञा इकारसे परे ङिके स्थानमें औत्। यथा घिसंज्ञक 'इ'को अ। औ, वृद्धिः **हरौ**। **हरि–सु** आदेशप्रत्यययोःसे सस्थाने ईषद्वि वृत सम्बन्धवाला मूर्धन्य ष हुआ। **हरिषु**। एवं=हरिशब्दकी तरह कव्यादयः—अग्नि गिरि, रवि, निधि, कवि आदि ह्रस्व इकारान्त पुलिङ्गका रूप सति सम्भवे असति सम्भवे भिन्नरूप भी। जैसे सखि, पति, कति, आदि। कविः कवी कवयः। गिरिं, गिरी गिरीन्। निधिना निधिभ्यां निधिभिः। अग्नये अग्निभ्यां अग्निभ्यः। रवेः रविभ्यां रविभ्यः। कवेः कव्योः कवीनां। निधौ निध्योः निधिषु,हे रवे।

(१७५) **अनङ्**=सख्युरङ्गस्य=सखिशब्दके अंगके अन्त्य (अल्) अक्षरको अनङ् आदेश हो सम्बुद्धिसञ्ज्ञक सु परे न हो तब।

(६) **अलो** अन्त्यादि अन्तिम वर्ण (चाहे अच् हो या हल्) रूप अल्के पूर्वमें विद्यमानवर्णकी उपधासञ्ज्ञा हो। (७) **सर्वनाम** स्थाने नान्त शब्दकी उपधा अन्त्य अक्षरके पूर्ववर्णके स्थानमें दीर्घ हो सम्बुद्धि सुको छोड़कर। सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक सु, औ, जस्, अम् औ, परे रहते।

(८) **अपृक्त** एकाल्=एक ही अल् (वर्ण) रूप प्रत्ययकी अपृक्तसञ्ज्ञा हो।

(९) **हल्ङ्याब्भ्यः** हल् च ङीप् च, आप् च. हल्ङ्यापः तेभ्यः हल्याभ्यः। हलन्तसे परे तथा दीर्घ ङ्यन्त ङीप् आबन्त टाप्से परे सु ति सि की अपृक्तसञ्ज्ञकहल्=स, त् स का लोप हो। (हलन्तका उदाहरण सखान् स। अहन् त्, अहन् स्) ङीबन्त दण्डिनी गौरी। आबन्त–रमा, कृष्णा।

(१८) **पातिपदिकान्तस्य**=प्रासञ्ज्ञकपदके अन्त्य नकारका लोप हो। साथी अर्थक सखिशब्दकी प्रासञ्ज्ञा सुविभक्तिः यस्मात्प्रत्ययविधिः तदादि अंगकके सखिशब्द के इ को अनङ्सौसे अनङ् आदेशः, असम्बुद्धौ–परमें सम्बुद्धि सु नहीं है। **सखन्—स्** दशामें अन्त्य अल् सखन्का न, उसके पूर्ववर्ण खके अ को उपधासञ्ज्ञा उसी नान्त उपधा अको दीर्घ। उससे परे एक अल् रूप प्रत्यय सु का स, उसको अपृक्तसञ्ज्ञा। हलन्तशब्दसे परे अपृक्त सका हल्ङ्यादिलोप। प्रातिपदिकके अन्तमें न का भी लोपः (न लोपः प्रातिपदिकान्तस्यसे) **सखा सखायौ**। (१) **सख्युः** साथ देना अर्थक

यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः स्यात्। सखा। (६) **सख्युरसम्बुद्धौ** ।७।१।६। २। सख्युरङ्गात्परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात् (२०७) **अचोऽञ्णिति** ।७।२।११५। अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्ञिति णिति च ।सखायौ। सखायः। हे सखे। सखाय॑ सखायौ सखीन्। सख्या सखिभ्यां सखिभिः। सख्ये (८) **ख्यत्यात्परस्य** ।६।१।११२। खितिशब्दाभ्यां, खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उः। सख्युः २। (२०६) **औत्** ७।३।११८। इतः परस्यङेरौत्। सख्यौ। शेषं हरिवत् (२१०) **पतिः समास एव** ।१।४।८।

अंगक सखि शब्दसे परे सम्बुद्धिको छोड़कर सभी सर्वनामसञ्ज्ञा (सु औ जस अम् औ) को **णिद्वत्**=ण् इत्की तरह वृद्धि आदि कार्य हो। अजन्त अंगके स्थानमें वृद्धि

(२) **अचो** =अजन्त अङ्गके स्थानमें वृद्धि हो ञित् या णित्परे। यथा—सखिशब्दसे प्रातिपदिकार्थ सख्यर्थक द्विवचन **सखि—औ**। औको सख्युर सम्बुद्धौसे णिद्वद् वह णित् माना गया। जिसका फल अजन्त अंगके अन्त्य अल् इके स्थानमें अचोञ्णितिसे वृद्धि ऐ। ऐस्थाने अयादेशे वर्णसम्मेलने **सखायौ**। एवं प्रथमायाः बहुवचने सखि–जस ज इत्। णिद्वत् वृद्धिः अयादेशादि **सखायः**। सम्बुद्धि में ह्रस्वस्य गुणः सूत्रसे इको गुण **ए**। **हे सखे**। सखिशब्दात् क्रियाफल–आधारकर्म विवक्षामें अम्। उसको णिद्वद् भाव, 'ऐ' वृद्धि आय् आदेश। सखायं **सखायौ**। सखि शस। श इत्। पूर्वसवर्णदीर्घे पुंसि सकारस्य नकारे **सखीन्**। सखिका साधन विवक्षामें टा **सखि—आ** यण्। **सख्या सखिभ्यां सखिभ्यः**। **सख्ये सखिभ्यां सखिभ्यः**। सख्युः।

(३) **ख्यत्यात्**=खिखी च तिती च एतेषां समाहारः, ख्यत्यं तस्मात् ख्यत्यात् खितिशब्दसे तथा खीतीशब्दसे (यदि वे कृतयणादेश=ई के स्थानमें य यण् हो चुका हो) परे ङसि ङस् सम्बन्धी अको उ हो। यथा अवधि की विवक्षामें प्रा० संज्ञकात् सखिशब्दात् पञ्चमीविभक्तिविवक्षायां सखि+ङस् अनुबन्धलोप इ स्थाने य् यणिकृते **सख्यस्**। ख्यत्यात्परस्यसे (यण् किया हुआ) खितीसे परे ङस्के अको उ हो गया। स एवि **सख्युः** पठामि, मित्रसे पढ़ता हूं। **सख्योः** सखीनां यज्ञोपवीतानि सन्ति। ओस् परे यणि। आम् परे नुट् दीर्घ इति विशेषः।

(४) **औत्** ह्रस्व इकार या उकारसे परे ङिविभक्तिके स्थानमें औत्, दो मात्रिक औ हो। यथा—सखिशब्द प्रातिपदिकसे आधार अर्थमें ङि **सखि+ङि** (औत्) ङिको औ। यण् **सख्यौ, सख्योः सखिषु**। **हे सखे हे सखायौ हे सखायः**। अवशिष्ट रूप हरिकी तरह जाने। दीर्घ उदाहरण सुखी=सुख्युः। सुती सुत्युः समझें। पूर्वेण सिद्धे आरभ्यमाणो विधिः नियमाय कल्पते। पतिशब्दको पूर्वसूत्र शेषोघ्यसखि से घिसंज्ञा सिद्ध थी ही, पुनः घिसंज्ञाका विधान नियमार्थक होगा कि–

(५) **पतिशब्द** को यदि घिसंज्ञा हो तो किसीके साथ समास होने पर ही

पतिः समास एव घिसंज्ञः । पत्ये । पत्युः २ । पत्यौ । शेषं हरिवत् । समासे भूपतये । कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । (११) बहुगणवतुडति संख्या ।१।१। ३। एते सङ्ख्यासञ्ज्ञाः स्युः । (१२) डति च । १।१।२५। डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात् । (१३) षड्भ्यो लुक् ।७।१।२२। जश्शसोः । प्रत्ययलोपे 'जसि चे'ति गुणे प्राप्ते । (१४) प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः ।१।१।६७। लुक्श्लुलुप्शब्दैः कृतं प्रत्ययाऽदर्शनं क्रमात्तत्तत्संज्ञं स्यात् । (२१५)न लुमताङ्गस्य ।१।१।६३। लुक् श्लु लुप् एते लुमन्तः । लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात्

हो । नियमसूत्र पाति=रक्षति पुष्यति इति पतिः पती पतय पतिं पती पतीन । प्रातिपदिकके समासविवक्षामें हो पति टा आ शेषोऽस्य सखि प्राप्त घिसंज्ञा उक्त नियम से बाधित हो गई क्योंकि समास नहीं है । अतः यण् पत्या पतिभ्यां पतिभ्यः । के लिए अर्थमें पत्ये (शेते) पति+ङसि अवधि या सम्बन्ध अर्थमें ङस्, अनुबन्ध लोपे । यण् पत्यस् । ख्यात्यात्परस्य अको उ, सको रुवि पत्युः पत्योः पतीनाम् । आधार विवक्षामें पति+ङि तत्स्थाने औत् सूत्रसे औ, यणि पत्यौ पत्योः पतिषु । शिष्ट हरिवत् । नियम सूत्रमें समास ग्रहण क्यों ? फल देते है कि भुवः पतिः भूपतिः, तस्मै भूपतये । यहां समाससे घिसंज्ञा घेर्ङिति गुण, अय् आदेश सम्भव हुआ ।

किं शब्दसे संख्या अर्थमें डति प्रत्ययसे बना, कतिशब्द नित्य बहुवचनान्त है । उसके एकवचन, द्विवचन नहीं हैं असंख्य अर्थ होनेसे । (६) बहुशब्द, गणशब्द, वतुप्रत्यय जिसके अन्तमें हो तथा डतिप्रत्ययान्तको संख्यासंज्ञा हो । बहु-अधिक गण (समूह) वतु-यावत् तावत् । डतिप्रत्ययान्त कतिशब्द (कितना अर्थकी अर्थवत्तासे अर्थवान् प्रासंज्ञक कतिसे प्रथमा बहुवचन जस् बहुगणवतुसे संख्यसंज्ञाका फल है कि-

(७) डतिच । च-षान्त नान्तकी तरह डति अति प्रत्ययान्त सङ्ख्यावाची कति शब्दको षट्संज्ञा हो । जिसका फल है (८) षड्भ्यो लुक्=षट्सञ्ज्ञक (कति) शब्दसे परे जस् तथा शस्का लुक् हो । बहुगण आदिशब्द लोक प्रसिद्ध सङ्ख्यावाची नहीं है अतः सङ्ख्या संज्ञाका विधान किया । न च(९) प्रत्ययस्य लुक् श्लु तथा लुप्शब्दसे कृतं=किया गया प्रत्ययका अदर्शन (लोप) अश्रवण उसको क्रम से लुक् श्लु लुप् संज्ञा हो । (१९०) प्रत्यय है लक्षण कारण जिस कार्यका उसको प्रत्ययलक्षण कहते है । प्रत्ययलोपे=जहां प्रत्ययका लोप हुआ हो वहां तदाश्रित= प्रत्ययको निमित्त मानकर कार्य हों । लुप्त हुआ जस् को प्रत्ययमानकर जसि च सूत्रसे कतिमें इको गुण प्राप्त हुआ । प्रत्ययलक्षणका निषेधसूत्र—

(१) लु—अस्ति अस्य इति लुमान् । तेन लुमता (लुक् श्लु, लुप्) तीनोंके शब्दको निमित्त (कारण) मानकर अङ्गकार्य नहीं होते । प्रसङ्गमें कति शब्दसे लुप्त जस् मानकर प्राप्त अंग कार्य गुण नहीं हुआ । कति=कितनोंको । कतिभिः कितनोंके द्वारा । कतिभ्यः=कितनेके लिए या कितनी अवधि । कतीनां कितनों सङ्ख्याका । कतिषु=कितनोंमें ।

कतिभिः कतिभ्यः कतिभ्यः कतीनाम् कतिषु । युष्मदस्मत्षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः । त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । त्रयः त्रीन् त्रिभिः त्रिभ्यः (६) त्रेस्त्रयः ।७।१।५३। आमि। त्रयाणाम् त्रिषु। गौणत्वेऽपि-प्रियत्रयाणाम् । द्विशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः। (७) त्यदादीनामः ।७।२।१०२। एषामकारो विभक्तौ। (द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः) द्वौ २ द्वाभ्याम् ३। द्वयोः

तीनों लिङ्गमें एकरस रहनेवाले शब्दकी सूचना । **युष्मद्**, अस्मद् तथा षट्संज्ञा वाले शब्द त्रिषु=तीनों लिङ्गमें सरुपाः (समान रुपं येषान्ते) समानरूपवाले है। यथा—त्वं स्त्री अहं स्त्री, **कति पुरुषाः कति स्त्रियः कति फलानि**। तीनों लिंगमें कतिशब्द एकरूप है ऐसे ही **त्वं युवां यूयम् । अहम् आवां वयम्**। ये तीनोंलिंगोंमें एक रस रहते है । **त्रिशब्द** का तीन सङ्ख्या अर्थ है, अतः नित्य बहुवचनान्त माना गया। यथा—त्रिशब्दस्य प्रासञ्ज्ञा जस् (ज इत्) ह्रस्वस्यगुणे अयादेशे सस्य रुत्वादिः **त्रयः** (पुरुषाः)। त्रि—शस् श् इत् पूर्वसवर्णदीर्घं। सस्थाने (तस्माच्छसोः नः) नकारे। **त्रीन्** अन्वितक्रियाके फलका आश्रय कर्म है। यदि साधन अर्थमें त्रिशब्द हो तो, उससे भिस् आदि कार्य हुए। **त्रिभिः**। उद्देश्य या अवधि अर्थमें त्रिशब्दात् भ्यस् **त्रिभ्यः त्रयाणां** त्रिशब्दसे सम्बन्ध अर्थमें आम्। (२) **त्रेः**—त्रि स्थानमें त्रेस्त्रयः से त्रय आदेशे आम् परे। **त्रय+आम्** ह्रस्वनद्यापो नुट् दीर्घे त्रयाणां। त्रिषु। आधारभूतकारक अर्थक त्रिशब्दकी प्रा०सञ्ज्ञा सुप्। षत्वादि कार्ये। **गौणत्वेऽपि**=विशेषणत्वेऽपि। यदि त्रिशब्द विशेषण, गौण अप्रधानभी हो त्रय आदेश होगा। जैसे—प्रियः त्रयो (प्रियास्तिस्रः) यस्य स **प्रियत्रिः** (तीन व्यक्ति प्रिय हो जिसे) यहां त्रिशब्द उपसर्जन (विशेषण) गौण है। अन्य पुरुषको कहता है, यहां आम् विभक्ति परे त्रिशब्दको त्रय आदेश हुआ। **नुट्** दीर्घ रूप हरिवत्।

त्यद् तद्, यद्, इदम्, अदस् एक, द्वि इतने सर्वनामको अत्व=अकारान्त हो द्विशब्द की विशेषता कि वह नित्यः है (सर्वस्मिन्देशकाले च द्विसङ्ख्यायां नियतः व्यापकः अस्ति। अतो द्विवचनान्तः अविधानका सूत्र— (३) **त्यदादीनां** त्यद् तद् यद् इदम् अदस एक द्वित्व इत्यादि है। एषां=इन सबोंको अकार अन्तमें हो। विभक्तिपरे। अलोऽन्त्यस्यसे अन्त्यअल्को अ हुआ। अतोगुणे परका रूप इससे अदन्त मानकर अंग सञ्ज्ञा हुई। यह अकार विधान क्या सम्पूर्ण त्यदादिको है ? तब बोले **द्विपर्यन्तानां**—त्यद् से लेकर एकद्वि तक ही अकार विधान **इष्टिः**—उपयोगी है। यथा इकारान्त प्रसङ्गानुकूल उदाहरण द्विशब्द—द्विवचने औ। त्यदादि द्वि है। उसका अन्त्यअल् **'इ'** उसको **अ** हुआ। वृद्धौ **द्वौ**। द्वि भ्याम् अत्वदीर्घौ **द्वाभ्यां** रूपं सर्ववत्। सभी विभक्तियोंका कारकके अनुकूल अर्थ जानें। **द्वयोः**। ह्रस्व इकारान्त शासन पूर्ण। द्विशब्द तक अत्वका विधान क्यों ? क्योंकि युष्मद् अस्मद् शब्दमें आत्व यत्वय लोपकी बाधासे अत्व नहीं होगा। किम्के स्थानमें क आदेश विधानसे

२। द्विपर्यन्तानां किं? भवान् भवन्तौ। पाति लोकमिति पापीः-सूर्यः पप्यौ पप्यः हे पपी। पपीम् पप्यौ पपीन्। पप्या पपीभ्याम् ३। पपीभिः पप्ये पपीभ्यः २। पप्यः। पप्योः २। पप्याम्। ङौ च पपी। पपीषु एवं वातप्रम्यादयः। बह्वयः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी दीर्घङ्यन्तत्वाद्ध-ल्ङ्याबिति सुलोपः। (८) **यू स्त्र्याख्यौ नदी**।१।४।३। ईदूदन्तौ नित्यस्त्री

अत्वका दोष नहीं इति प्रश्नः,आप श्रीमान् अर्थवाचकात् भवन् शब्दात्सु नुम्। हलन्त सुलोप संयोगान्तलोपे, अत्वसन्तस्य दीर्घ। भवान् यदि अत्वको द्विशब्दतक सीमित न किया जाता भवत्को भीअत्व होने लगता। दीर्घ आदिसे 'भवा' बनता भवान् नहीं। भवन्तौ की जगह भवानौ हो जाता।

पाति=रक्षति लोकं जगत्, संसारपालकः **पपीः**। रक्षणार्थक पा धातुसे यापाः कित् द्वे च से ई प्रत्यय। पाको द्वित्व कित् का फल आ का लोप। **पपी**ः लोक रक्षक सूर्य अर्थसे अर्थवान् पपीको प्रासञ्ज्ञा सु रुवि। उक्ते=प्रातिपदिकार्थे प्रथमा भवति। पपी **औ**=यहां प्राप्त पूर्वसवर्णदीर्घ का दीर्घाज्जसि च से दीर्घ ईसे परे इच् (औ) देखकर निषेध हुआ, यण् **पप्यौ** सूर्यौ। जस्, अस्, यण् **पप्यः** रक्षकाः। सम्बोधन आवाहन ध्यानाकर्षण अर्थमें **हे पपी पपी+अम्** अकारका पूर्वरूप। **पपी** नमस्कुरु। **पपी+शस्**, (अस्) पूर्वसवर्णदीर्घ सको नत्व। **पपीन्**। रक्षक अनेक कर्म जिस क्रियामें अन्वित हो, उस क्रियाके फलका आधार सभी कर्मसञ्ज्ञक है। साधन अर्थवाला पपीशब्द प्रासञ्ज्ञकसे टा आ। यण्, **पप्या**। **पपीभ्यां पपीभिः**। उद्येश्य, पा अवधिभूत सूर्य। पपी ए यण् **पप्ये पपिभ्यां पपीभ्यः पपि+ङस्** अस्, यण् **पप्यः**। **पपि+ओस्** यणि रुवि **पप्योः**। पपीशब्दसे षष्ठी बहुवचन आमि। यहां दीर्घसे परे आम् को नुट् नहीं हुआ। आत्वसे ही नुट् होता है। दीर्घत्वान्न नुट्। पुंलिगत्वात् न नदीसञ्ज्ञा। यण् **पप्याम्**। ङिविभक्तिमें सवर्णदीर्घ। **पपि-ङि** इ **पपी पप्योः पपीषु**-सप्तमी बहुवचन षत्व रक्षकोंमें। एवं पपीशब्दकी तरह वातं प्रमिमीते, वायुं तोलयति, जो तेज हवाको तौले बराबरी करे, या तेज चले, उसे वातप्रमी (मृग कहते है क्विप्) को भी समझें। यथा—**वातप्रमीः, वातप्रम्यौ वातप्रम्यः**। षष्ठी-**वातप्रम्यः वातप्रम्योः वातप्रम्याम्, वातप्रमी। वातप्रम्योः वातप्रमीषु**।

बह्वयः=बहुसंख्याकाः, श्रेयस्यः=कल्याण्यः स्त्रियः यस्य (पुरुषस्य) स (पुरुषः) बहुश्रेयसी। अधिक भाग्यशालिनी स्त्रीवाला पुरुष अर्थसे अर्थवान् प्रा०सञ्ज्ञकबहु-श्रेयसीशब्दात् प्रातिपदिकार्थे कर्तरि प्रथमायाः सु। 'सु' का हल्ङ्यादिलोप। **बहुश्रेयस्यौ, बहुश्रेयस्यः** पुण्यात्मा पुरुषः। सम्बोधन सूचक हे शब्द प्रयोगे हे बहुश्रेयसी 'सु' इस दशामें (८) **यू**=ईश्च ऊश्च इति यू ईकार-उकारौ। स्त्री आख्या प्रसिद्धिः ययोस्तौ स्त्र्याख्यौ (इकारोकारौ) अथवा स्त्रियमाचक्षाते=स्त्रित्वं प्रकाश-

लिङ्गौ नदीसंज्ञौ स्तः। (प्रथमलिङ्ग ग्रहणं च) पूर्वस्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः (९) **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** ।७।३।१०७। अम्बार्थानां, नद्यन्तानां च ह्रस्वः स्यात्सम्बुद्धौ। हे बहुश्रेयसि। (२२०) **आण्नद्याः** ।७। ३।११२। नद्यन्तात्परेषां ङितामाडागमः (१) **आटश्च** ।६।१।९०। अटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। बहुश्रेयस्यै। बहुश्रेयस्याः २। बहुश्रेयसीनाम्। (२२) **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** ।७।३।११६। नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च परस्य ङेराम् स्यात्। इह परत्वादाटा नुट् बाध्यते। 'सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बा-

---

यतः इति स्त्याख्यौ=स्त्रीलिङ्गबोधकौ ईकारोकारौ। ईकारान्त उकारान्तशब्द यदि नित्यस्त्रीलिङ्गबोधक हों तो नदीसंज्ञक हों। शङ्का बहुश्रेयसीशब्द, ईकारान्त है, पर नित्य या वैकल्पिक स्त्रीलिङ्गका बोधक नहीं है, नदीसञ्ज्ञा कैसे? तब बोले— प्रथमलिंगग्रहञ्च प्रथम=समासकी पूर्वदशामें जो लिङ्ग रहता है। उसको नित्य मानकर भी नदीसञ्ज्ञा निर्विघ्न हो। उक्त शब्दः समासात्पूर्वं स्त्रीलिङ्गमाह— समासे कृते उपसर्जनदशायां लिंगव्यत्ययेऽपि, नदीसञ्ज्ञा भवतीत्यर्थः। अत आह पूर्वमिति=पूर्वकालमें स्त्रीलिंगकी प्रसिद्धि या प्रधानताके उपसर्जनत्वेऽपि=गौड़ (अप्रधान विशेषण) होनेपर भी नदीसञ्ज्ञा मान्य है। नित्यस्त्रीलिंग उसे कहते हैं जो लिंगान्त (अन्यलिंग) का स्पर्श न करे। (९) **अम्बायाः** अर्थः अम्बार्थः स च नदी च अम्बार्थनद्यौ तयो.। माता—अर्थवाचक नदीसञ्ज्ञक अंगको **ह्रस्व** हो सम्बुद्धि परे। सम्बुद्धिसूचक—हे पूर्वक बहुश्रेयसीसे 'सु' प्रथमलिंगग्रहणंकी सहायतासे यू स्त्राख्यौसे नदीसञ्ज्ञा। तन्निमित्तक अम्बार्थनद्योः **ह्रस्वे**। **ह्रस्वसे** सम्बुद्धि स का लोप। हे बहुश्रेयसि। (२२०) **आण्नद्याः**=नद्यन्त नदीसञ्ज्ञकशब्द अन्तमें हो, उससे परे ङितां=ङे ङसि, ङस् ङिको आट् हो। (१) **आटः**=आट् आगम आ से (च) अचि परे रहते पूर्वपरके स्थानमें वृद्धि एकादेश हो। यथा—बहुश्रेयसीशब्दात् उद्देश्य अर्थमें चतुर्थ्येकवचन ङे (ङ इत्) 'ए' ईदन्त है (प्रथमलिंग ग्रहणञ्चेति) सहकारेण नदीसञ्ज्ञा नद्यन्तस्य आट्। बहुश्रेयसी आ ए 'आटश्चेति' वृद्धौ यणि **बहुश्रेयस्यै** इति। **बहुश्रेयसीभ्यां बहुश्रेयसीभ्यः**। बहुश्रेयसी ङस् अस् नदी-सञ्ज्ञा, आट् आटश्च वृद्धिः, यण् रुवि **बहुश्रेयस्याः बहुश्रेयसीभ्यां बहुश्रेयसी-भ्यः**। बहुश्रेयसीशब्दात् बहुवचने आमि, नदीसञ्ज्ञा, नद्यन्तसे नुट् (न) **बहुश्रेयसी-नाम्**। (२) **ङेः** स्थानमें आम् नदी, आम् नीशब्देभ्यः। नद्यन्त हो या आबन्त या नी शब्दसे परे ङिविभक्तिको आम् हो। **बहुश्रेयसी—ङि**। नदीसंज्ञा 'ङेरामि' यणि **बहुश्रेयस्यां बहुश्रेयस्योः बहुश्रेयसीषु**। बहुकल्याणीस्त्रीवालोंमें। शेष=नदीसंज्ञा तथा उसके कार्यसे सिद्धशब्द समझाये गये। अब अवशिष्ट विभक्तियोंके रूप 'पपी' शब्दकी तरह समझें।

लक्ष्मीमतिक्रान्तः अतिलक्ष्मीः पुरुषः। लक्ष्मीको भी अतिक्रमण करनेवाला।

धितं तद्वाधितमेव'। बहुश्रेयस्याम्। शेषं पपीवत्। अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः अतिलक्ष्मीः। शेषं बहुश्रेयसीवत्॥ प्रधीः॥ (३) **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** ।६।४।७७। श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्येतस्य चाङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे। इति प्राप्ते। (४) **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** ।६।४।८२। धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो

लक्ष्येमुट्ई च, लक्षः=सिद्धिः अस्ति अस्यां अर्थमें लक्षशब्दसे मुट् म् तथा ई प्रत्यय होता है। सुविभक्तिका (स्त्रीलिङ्गबोधक ङीप्, ङीष्, ङीन्का ई नहीं है। ङ्यन्त न होनेसे लोप नहीं हुआ। अङ्यन्तत्वात् न सुलोपः। रुवि अतिलक्ष्मीः। अन्य सभी रूप बहुश्रेयसीवत् चलेंगे। क्योंकि 'लक्ष्मीमतिक्रान्तः इस दशामें लक्ष्मीशब्द स्त्रीलिंग है। उससे बना अतिलक्ष्मीशब्दमें प्रथमलिंग नित्यस्त्रीलिंग मानकर नदीसंज्ञा निश्चित है। उसके कार्य ह्रस्व, आट् ङेराम् नुट्, ये अवश्य होंगे। अतिलक्ष्म्यौ, अतिलक्ष्म्यः **अतिलक्ष्मीम् अतिलक्ष्मीन्। अतिलक्ष्म्या अतिलक्ष्मीभ्याम् मीभिः। अतिलक्ष्म्याम् अतिलक्ष्म्योः अतिलक्ष्मीषु।**

प्रकर्षेण ध्यायति, पूर्णरूपेण चिन्तनं करोति। ध्यैचिन्तायां चिन्तन मनन कर्ता अर्थसे अर्थवान् प्रधीशब्दको प्रा०संज्ञा सु रुवि। **प्रधीः** चिन्तकः सूक्ष्म ध्यान कर्ता। **नाऽयं स्त्रीलिङ्गः।** यदि प्रकृष्टाधीः बुद्धिर्यस्य अर्थ करें तो प्रथमलिंग धीशब्दके नित्य स्त्रीलिंग होनेसे नदीसंज्ञा उसके कार्य होंगे। परन्तु यहां तथा न। ङ्यन्त न होने से सुलोप नहीं। यद्यपि कुछ शब्दोंमें सुलोप नहीं होता यथा—

अवीतन्त्रीतरीलक्ष्मी धीह्रीश्रीणामुणादितः
अपिस्त्रीलिङ्गवृत्तीनां सोर्लोपो न कदाचनः॥

उणादिसे सिद्ध 'ई' प्रत्ययान्तसे सुलोप नहीं होता। **प्रधी+औ** दशामें—

(३) **अचि**=अच् परे, श्नुप्रत्यय अन्तमें हो ऐसे इकारान्त उकारान्त धातुके, भ्रूशब्दके अंगके स्थानमें युवोः=इकारोकारयोः स्थाने क्रमसे इयङ् उवङ् हो अजादि प्रत्ययपरे। इवर्णान्तधातु 'धी' का अंगभूत ई को इयङ् प्राप्त हुआ। यद्यपि प्रथमप्राप्त यण् को बाधकर प्राप्त पूर्वसवर्णदीर्घका 'दीर्घाज्जसि च' से निषेध है। पुनः यण् को बाधकर इयङ्की प्राप्ति है। यण् विधायक प्रबल सूत्र—

(४) **एः**=धातुका अवयव संयुक्त अक्षर पूर्वमें न हो ऐसा इवर्ण हो अन्तमें ऐसा धातु तदन्त=वह धातु हो अन्तमें ऐसे अनेकाच् अंगके स्थानमें यण् हो अजादि प्रत्यय परे। प्रसङ्गमें धातु इवर्णान्त धी है, उसके पूर्वमें संयुक्तवर्ण नहीं है। वह अन्तमे प्रधीके है वही अनेकाच् अंग भी है। 'अलोऽन्त्य' सूत्रसे अन्त्य अल् (ई) को यण् हुआ **प्रध्यौ,** तन्मयध्यानकर्तारौ। तथैव कर्मकी विवक्षामें **प्रधी—अम्** अत्रापि इयङ् प्रबाध्य यण्, पूर्ववत् बोध्यः। **प्रध्यं प्रध्यौ प्रध्यः। प्रध्या प्रधीभ्यां प्रधीभिः। प्रध्ये प्रधीभ्यां प्रधीभ्यः। प्रध्यः प्रध्योः प्रध्याम्। ङौ, यणि, प्रध्यि।** शेषं पपीवत्। एवं प्रधीशब्दकी तरह ग्रामं नयतीति **ग्रामणीः।** गांवका नेता, मुखिया ग्रामप्रधान व्यक्ति

धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादजादौ प्रत्यये परे। प्रध्यौ प्रध्यः। प्रध्यम् प्रध्यौ प्रध्यः। प्रध्यि। शेषं पपीवत्॥ एवं—ग्रामणीः। ङौ तु—ग्रामण्याम्॥ (५) **गतिश्च**।१।४।६०। प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः। गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण्नेष्यते। शुद्धधियौ शुद्धधियः। (६) **न भूसुधियोः** ।६।४।८५। एतयोरचि सुपि यण्न। सुधीः सुधियौ सुधियः। इत्यादि॥ सुखमिच्छतीति सुखीः सुतीः सुख्युः २। सुत्युः२। शेषं प्रधीवत्। शम्भुर्हं-

अर्थमें प्रातिपदिकसञ्ज्ञा 'सु' रुत्वे विसर्गे, णत्वे। **ग्रामणीः**। केवल सप्तमी विभक्ति में ङेराम्नद्याम्नीभ्यः,से 'ङे' को आम् यण् होकर **ग्रामण्यां** ग्रामप्रधानमें। शेषं= प्रधीवत् रूप जाने। **अनेकाचः किं ?** सूत्रमें अनेकाच अंगको यण्का विधान क्यों ? इसलिए कि एकाच् अंगके इको यण् न हो। यथा—नयतीति नीः नयन सञ्चालन या प्रापणकर्ता नेता अर्थमें प्रा०संज्ञा स्वादिकार्य। **नी—औ,** यहां एकाच् अंग होने से यण् बाधक नहीं बना। इयङ् हुआ। **नियौ नियः**। **नी—अम्** इस दशामें अमि परे पूर्वरूप प्राप्त परत्वात् इयङ्। **नियं नियौ नियः**। पूर्वसवर्णदीर्घ बाधकर इयङादेश **नियः नियोः नियाम्**। ङिस्थाने आम् इयङ्, **नियां नियोः नीषु**। **असंयोगपूर्वस्य किं ?** सूत्रमे संयुक्त (हल्) वर्णधातुके पूर्वमें न हो तभी यणका विधान क्यों ? इसलिए कि शोभनं श्रयति सेवते इति **सुश्रीः** सुसेवक अर्थक प्रा०संज्ञक 'सुश्री' शब्दसे स्वादिकार्य हो, यण् न हो। यदि शोभना श्री सुश्रीः कहे तर्हिनित्यस्त्रीलिङ्ग होनेसे नदीसंज्ञा तदनुकूल कार्य होने लगेगा। **सुश्री औ**। यहां धातुसंयोगपूर्वक है। अतः यण् न होकर इयङ् हुआ **सुश्रीयौ**। इसीप्रकार **यवं क्रिणातीति यवक्रीः** जौ खरीदने वाला, **यवक्रियम् यवक्रियौ**, **यवक्रियः**। **यवक्रिये यवक्रीभ्यां यवक्रीभ्यः**। **यवक्रियि यवक्रियोः यवक्रीषु**।

(५) **गतिश्च** प्रादयः=प्र, परा, अप, सम, आदि क्रियायोगे=क्रियासे जुड़े हो तो गतिसंज्ञा भी हो। गतिसंज्ञक तथा कारक इन दोनोंमें से कोई एक पूर्वपद हो, तत्र यण् नहीं होता। यह नियम है। शुद्धं=दोषरहितं निर्विकारं ध्यायति साक्षात् करोति इति शुद्धधीः। सफल चिन्तक अर्थ प्रासञ्ज्ञा स्वादिः। शुद्धधी, औ, यहां शुद्धशब्द कर्मकारक उपपद रहनेपर धीमें ईको एरनेकवचः सूत्रसे यण् प्राप्त। उसका निषेध (कारक पूर्वपद होनेसे) यण् नेष्यते से हुआ। तब इयङ् सुद्धधियौ।

(६) **भू और सुधी** शब्दको अचिसुपि=अजादि सुप् विभक्तिपरे यण् न हो। सुष्ठु ध्यायति सुधीः **सुधी+औ**। यहां प्राप्त एरनेकाच् यणका न भूसुधियःसे निषेध तब इयङ्। **सुधियौ**। सुखमिच्छति **सुखीः**। सुखकी इच्छा करनेवाला अर्थमें सुखी शब्दको प्रातिपदिक आदि कार्य हुए। इसी प्रकार सुतं=पुत्रमिच्छति अर्थमें। सुतीःभी प्रसिद्ध है। दोनोंमें अजादि विभक्तिपरे रहते यण् हुआ। सुख्यौ, सुत्यौ, ङसि ङस् विभक्तिमें भी यण् तथा **'ख्यत्यात्परस्य'** उत्वविधान कर सुख्युः सुत्युः **सुखीभ्यः**। **सुत्युः** सुत्योः, सुत्याम्। शेष प्रधीवत्। इकारान्त पुलिङ्गशब्द हरिशब्दकी **तरह होते**

रिवत् । एवं भान्वादयः ॥ २७ **तृज्वत्क्रोष्टुः** ।७।१।२५। असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने 'क्रोष्टु' इत्यस्य स्थाने 'क्रोष्टृ' प्रयोक्तव्यमित्यर्थः । (८) **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** ।७।३।११०। ऋतोऽङ्गस्य गुणः स्याङौ, सर्वनामस्थाने च । इति प्राप्ते । २९ **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च** ।७।१।९४। ऋदन्तानामुशनादीनां चाऽनङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ । २३० **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणां** ।६।४।११। अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । क्रोष्टा क्रोष्टारौ क्रोष्टारः । क्रोष्टारम् क्रोष्टारौ । क्रोष्टून् । (१) **विभाषा तृतीयादिष्वचि** ।७।१।९७। तृतीयादिष्वजादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत् ।

है । यथा—शम्भुः शम्भू शम्भवः । शम्भु शम्भू शम्भून् । शम्भुना शम्भुभ्यां शम्भुभिः शम्भवे शम्भुभ्यां शम्भुभ्यः । शम्भोः शम्भुभ्यां शम्भुभ्यः । शम्भोः शम्भ्वोः शम्भूनाम्, शम्भौ शम्भ्वोः शम्भुषु । हे शम्भो इत्यादि । एवं उकारान्त पुलिङ्ग भानु आदि को समझें ।

शृगाल, वंचक, क्रोष्टु फेरु जम्बुका (गीदड़) ऋषि, अर्थसे अर्थवान् शब्द स्वरूप क्रोष्टु शब्दकी प्रा० सञ्ज्ञा सु । (७) **तृज्वत् सम्बुद्धिसञ्ज्ञक** से भिन्न सर्वनामस्थान (सु औ जस्, अम्, औ विभक्ति) परे हों तो क्रोष्टु शब्दके स्थानमें तृज्वत्=तृच् प्रत्ययेन तुल्यं क्रोष्टृ आदेश हो । ऋकारान्त क्रोष्टृशब्दका प्रयोग करें । केवल सर्वनामस्थानमें क्रो सुष्टृ । (८) **ऋतो**=ऋकारान्त अङ्गके स्थानमें गुण हो ङि तथा सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक परे । इससे ऋदन्त अंगको गुण प्राप्त हुआ ।

(९) **ऋत्**-ऋदन्त **उशनस्** शुक्राचार्य पुरुदंसी माजरी (बिल्ली) अनेहस् (समय) शब्दको अनङ्आदेश हो च=सम्बुद्धिभिन्न सु परे । ऋदन्तअंग क्रोष्टृके ऋको अनङ् अन् हुआ, सम्बुद्धिभिन्न सु परे समझकर । क्रोष्टन् सु । (२३०) **अप्**-जल तृन्-तृच् प्रत्ययान्त स्वसृ=बहन नप्तृ= पुत्रिपुत्रः नाती नेष्टृ=दाता, त्वष्टृ असुर पुरोधा क्षतृ द्वारपाल, रक्षक सञ्चालक होतृ=होता पोतृ=पवित्रकर्ता, प्रशास्तृ= प्रशासनकर्ता शासक, ये सभी अबादि है । उनके उपधाको दीर्घ हो, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे । क्रोष्टन्में अन्त्य अल् 'न' के पूर्ववर्ण 'अ' को उपधासञ्ज्ञा, उसी को दीर्घ हुआ । एकदेशविकृतन्यायसे क्रोष्टन्को तृजन्त मानकर दीर्घ । क्रोष्टान् सु हल्ङ्यादिलोप, प्रातिपदिकान्त नलोपे । **क्रोष्टा** (शृंगालः, ऋषिर्वा कश्चित्) क्रोष्टु-औ । प्रासञ्ज्ञा विभक्तिकी उत्पत्ति पूर्ववत् समझें, तृज्वद्भाव भी । ऋदन्त अंग मानकर गुण अर् उसके उपधा (पूर्ववर्ण)को दीर्घ वर्णसम्मेलने । **क्रोष्टारौ** अनेक शृंगाल-बोधक बहुवचनमें क्रोष्टु=जस् । तृज्वत्, गुणे रपरे उपधादीर्घ, रुवि० **क्रोष्टारः** । अम् विभक्तिपरे भी वही प्रक्रिया शस् विभक्तिमें तृज्वत् नहीं होता । सर्वनाम परे न होने से । क्रोष्टु अस् में पूर्वसवर्ण दीर्घ । शस् के सकारको पुंसि नकार । हे क्रोष्टो । शम्भुवत् । हे क्रोष्टारौ हे क्रोष्टारः । सु से भिन्न सम्बोधनमें तृज्वद् ।

(१) **विभाषा**—अजादिविभक्ति हो तथा **तृतीयादिषु**=तृतीया चतुर्थी

क्रोष्ट्रा- क्रोष्टुना। क्रोष्ट्रे-क्रोष्टवे॥ ३२ **ऋत उत्** ।६।१।१११। ऋतो ङ-सोरति परे पूर्वपरयोरुदेकादेशः स्यात् रपरः॥ ३३ **रात्सस्य** ।८।२।१४ रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य। रस्य विसर्गः। क्रोष्टुः २। क्रोष्टोः २। क्रोष्ट्रोः क्रोष्टवोः। नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन क्रोष्टूनाम्। क्रोष्टरि। पक्षें हलादौ च शम्भुवत्॥ हूहूः। हूह्वौ। हूहूम् हूहून् इत्यादि॥ अतिचमू—शब्दे तु नदीकार्यविशेषः। हे अतिचमु। अतिचम्वै।

आदि। (टा ङे, ङसि, ओस्, आम्, ङि) ये अजादि विभक्ति है। इनके परे रहते क्रोष्टु शब्द विकल्पसे तृज्वत्=क्रोष्टृरूप धारण करे। क्रोष्टुशब्दस्य तृतीयैकवचने साधने अर्थे टा। आको अजादिविभक्ति मानकर क्रोष्टृभाव तथा ऋको यण् क्रोष्ट्रा, पक्षमें क्रोष्टुना आङोना, टा को ना। **क्रोष्टुभ्यां क्रोष्टुभिः**। ङे=ए विभक्तिमें त्रिज्वद् भाव यण् क्रोष्ट्रे, पक्षे घिसञ्ज्ञा गुणावादेशे। **क्रोष्टवे क्रोष्टुभ्यां क्रोष्टुभ्यः**। सम्बन्धित अर्थकी विवक्षायां क्रोष्टु ङस् अस् विकल्पेन तृज्वद्भावे क्रोष्टृ अस्।

(२) **ऋतः**=ऋकारान्तशब्दके ङसि ङस् सम्बन्धी अकारपरे पूर्वरूपपरे (ऋ तथा अ) के स्थानमें उत्=उ एकादेश हो। यहां तपर तत्कालका बोधक हैं। ऋ के स्थानमें उ विधानसे रपर हुआ। **क्रोष्टुर स्**।

(३) **रात्** रेफसे परे यदि संयोगान्तवर्णका लोप हो तो सस्यैव=सकारका ही लोप हो, अन्यवर्णका नहीं। यह नियमसूत्र है। स का संयोगान्तलोप। रेफको विसर्गः। **क्रोष्टुः**। पक्षे **क्रोष्टोः** भानोः जैसा। ओस विभक्तिमेंभी **क्रोष्टवोः क्रोष्ट्रोः**। **क्रोष्टृ+आम्**। यहां इकोऽचि विभक्तौसे प्राप्त नुम् अचिरऋतःसे रभावः तृज्वत्क्रोष्टुःसे तृजन्तभाव। इन तीनोंको पूर्वविप्रतिषेधसे बाधकर ह्रस्वान्त मानकर नुट् हुआ। नामिसे दीर्घः क्रोष्टूनां। तुल्यबलका विरोध होनेपर व्यवस्थापक 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' में पर शब्दका इष्टं कार्यम् अर्थ है। पूर्वसूत्र इष्ट हो या परसूत्र, प्रयोगसिद्धिके अनुकूल समझें, यहां नुट् अभीष्ट है। इसी लिए पूर्वकार्य मान्य। सप्तमी विभक्तिमें विभाषासे तृज्भावः तृज्वत् ऋतोङिसे गुण।

क्रोष्टरि क्रोष्टौ क्रोष्टवोः क्रोष्टृषु। हलादि विभक्तिमे शम्भुवत् रूप। गन्धर्व अर्थसे अर्थवान् हूहू शब्दको प्रासे स्वादिकार्य। हूहूः। हूहू और यण् हूह्वौ। सवर्ण-दीर्घका 'दीर्घाज्जसिच' से निषेध हुआ। शस् विभक्तिमे पूर्वसवर्णदीर्घ 'स' को 'न्' हूहून्। चमूशब्द स्त्रीलिङ्ग है। चमू=सेनामतिक्रान्तोऽतिचमूशब्द अर्थवान् हैं। जो (जत्था) दल पार्टी सेनाको मात कर दे। प्रथम स्थितिका नित्यस्त्रीलिंग मानकर नदीसंज्ञा तथा उसका कार्य=ह्रस्व आट ङेराम् आदि विशेष होते है। अतः हे अतिचमू—सु नदीसञ्ज्ञा अम्बार्थनद्योः ह्रस्वः इति ह्रस्वे सुलोपे। अतिचमुम् अतिचमू अतिचमून्। ङे विभक्तिमे आट् नदीकार्य, वृद्धि, यण्, अतिचम्वै अतिचमूभ्यां अतिचमूभ्यः। ङसि और ङस् विभक्तिमे नदीसञ्ज्ञा, आट्, वृद्धि, यण्। आम् परे नदीसञ्ज्ञा नुट् अतिचमू—ङि इ यू स्त्र्याख्यौ सूत्रसे नदीसञ्ज्ञा (ङेराम्) 'ङि'

अतिचम्वाः २ । अतिचमूनाम् । अतिचम्वाम् । खलपूः ।२४ ओः सुपि ।६।४ धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि। खलप्वौ खलप्वः। एवं सुल्वादयः ॥ स्वयम्भूः। स्वयम्भुवौ। स्वयम्भुवः एवं स्वभूः। वर्षाभूः ॥ २३५ वर्षाभ्वश्च ।६।४।८४। अस्य यण स्यादचि सुपि। वर्षाभ्वावित्यादि। दृन्भूः ॥ दृन्क-

---

को आम्, यण् अतिचम्वाम् अतिचम्वोः अतिचमूषु। सेनाको भी मात करनेवाली जनता। खलं (खलिहान) पुनाति मार्ष्टि, मृजू शुद्धौ खलिहान शुद्धकर्ता स्वच्छं करोति अर्थमे खलपूशब्दसे स्वादिकार्य खलपूः।

(४) ओः–धातुका अवयव (अङ्ग)संयुक्तवर्ण पूर्वमे न हो ऐसा उकार, वह हो अन्तमें, ऐसा धातु अन्तमें हो ऐसे अनेकाच् अंगको यण् हो, अजादिसुप् परे खलपूमें पूधातुका पूर्ववर्ण संयुक्त नहीं है। वह उकारान्त है, वह (पू) खलपूके अन्तमें भी हैं। अनेकाच् अंग होनेसे अन्त्य अल् पूके उ को यण् हुआ। खलप्वौ। (खलिहान) पवित्रकर्तारौ। एवं खल्प्वः। अजादिविभक्तियोंमें यण् होगा। हलादिमें साधारण रहेगा। गृहं पुनाति गृहपूः। राष्ट्रपूः, समाजपूः, वस्त्रपूः क्षेत्रपूः। एवं सुष्ठु (स्वच्छं शोभनं) लूनातीति सुलूः। अच्छा छेदन् लवनकर्ता अर्थमे उकारान्त शब्दोंकी तरह समझें। खल्प्वा खलपूभ्यां खलपूभिः। गृहप्वे गृहपूभ्यां गृहपूभ्यः। क्षेत्रप्वः क्षेत्रप्वोः क्षेत्रपूनाम्।

स्वभूः—स्वेन आत्मना भवति उत्पद्यते इति स्वभूः ब्रह्मा स्वयं प्रकट होते है। (स्वभूर्ना ब्रह्मणि हरौ इति मेदिनी) अर्थसे अर्थवान् स्वभूशब्दकी प्रा०संज्ञा सु रुत्वे विसर्ग स्वभूः। स्वयं पैदा होनेवाले जीव। प्रातिपदिकार्थ विवक्षामें स्वभू–औ अच्परे उके स्थानमें अचिनु–उवङ्। स्वभुवौ स्वभुवः। विशेषः–प्रथम यण् प्राप्तिः, उसे बाधकर पूर्वसवर्णदीर्घ, उसका निषेध 'दीर्घाज्जसिच्' से। पुनः प्राप्तयण्को बाधकर उवङ् समझें। यदि एरनेकाच् यण् प्राप्त हो तो 'नभूसुधियोः'से उसका निषेध जाने। स्वभुवं स्वभुवौ स्वभुवः। स्वभुवे स्वभूभ्यां स्वभूभ्यः। स्वभुवः स्वभुवोः स्वभुवाम्। हे स्वभूः हे स्वभुवौ हे स्वभुवः। वर्षासु=वृष्टिकालेषु भवति उत्पद्यते इति वर्षाभूः। मेढक, केचुआ, कीड़े, वर्षाकालके जन्तु आदि। (भेक्यां पुनर्नवायां स्त्री वर्षाभूः दर्दुरे पुमान् इत्यमरः। इस अर्थसे अर्थवान्को प्रासंज्ञा सु रुवि। वर्षाभूः (मेढ़क) वर्षाभू—औ। द्विवचनकी विवक्षामें औ परे प्राप्त यण् सु बाधकर पूर्वसवर्णदीर्घ। उसका निषेध पुनः यण् बाधकर उवङ्। उसे बाधकर एरनेकाच् यण्, उसका 'न भूसुधियोः' से निषेध।

(५) वर्षाभू–शब्दके अंगके उकारको यण् हो अजादिविभक्तिपरे। 'औ अजादि है। अतः उकारको यण्। वर्षाभ्वौ। अन्यरूप स्वभूवत्।

दृन् (सर्पः वज्रम्वा) भवतीति दृन्भूः। जो सांप वज्र, नृप, या सूर्य बन जाय,

रपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः। दृन्भ्वौ। दृन्भ्वः। खलपूवत्। एवं—करभूः पुनर्भूः। दृन्भू करभूशब्दौ स्वयम्भूवत्॥ धाता। हे धातः। धातारौ धातारः ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्। धातृणाम्॥ एवं नप्त्रादयः। 'अप्तृन्निति सूत्रे नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम्। तेनेह न-पिता पितरौ पितरः।

इस अर्थमें (दृन्भूः पन्नगवज्रयोः इति विश्वः) स्वादिकार्य दृन्भू-औ, यहां बाध्य-बाधकभाव पूर्ववत्। (वा) दृन्कर तथा पुनः शब्द पूर्वमें हो, भूशब्दको यण् कहें। दृन्भ्वः। पुनर्भूः केश नख, भूख पुनः पुनः होते है। 'पुनर्भूदीधिषू रूढाः' इस कोशः से पुनर्भूशब्दकों स्त्रीलिंगके अधिकारमें पढ़ना उचित था। इसलिए कहा कि पुनर्भूशब्द (योगात्=सूत्रात् सिद्धः यौगिकः। पुंसि पुलिंगे ज्ञेयः क्रियानिमित्तक-पुनर्भूशब्द पुलिंग भी हैं। पुनः उत्पन्न अर्थेन अर्थवतः पुनर्भूशब्दात् औ। दृन्कर पुनः वार्तिकेन यण्। दृशो भवति, (आंखसे हो) दृग्भूः क्रोधः कामः।

कराद्भवतीति करभूः=हस्तकलाकी वस्तु। पूर्ववत् औविभक्तिमें 'दृन्कर', वार्तिकसे करपूर्वक भूको यण् हुआ। दधाति धारयति पुष्यति वा लोकान् धाता जगतका धारणपोषणकर्ता अर्थसे अर्थवान् धातृशब्दको प्रासंज्ञा। प्रथमैकवचन 'सु'। ऋस्थाने ऋदुशनस् से अनङ् अन् उपधाः दीर्घ, सुलोप नलोप धाता। धातृ—औ ऋस्थानमें ऋतोङि–अर्गुणे उपधा दीर्घे, धातारौ एवं धातारः। हे धातः=धातृ–सु ऋतोङि सूत्रेण अर्गुणे सम्बुद्धिलोपे रेफस्य विसर्गे। धातरं धातारौ धातृन्। पूर्व-सवर्णदीर्घ नत्व विशेषः। धात्रा धातृभ्यां धातृभिः। धात्रे=धातृ—ए यण्, धातुः धातृभ्यां धातृभ्यः। धातुः धात्रोः धातृणाम्। धातरि धात्रोः, धातृषु। (वा) ऋवर्णसे परे न को णत्व हो। ऋशब्द अट्प्रत्याहारमें नहीं आता। इसलिए अलग णत्व विधायक वार्तिक पढ़ा।

नप्त्रादिग्रहणमिति—अप्तृन् तृच्-सूत्रमें तृच्के ग्रहणसे नप्तृ नेष्टृ आदिशब्द गृहीत होते, उपधादीर्घके भागी बनते ही तब नप्त्रादिको अलगसे क्यों पढ़ा? अतः सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय कल्प्यते। तृन् तृच् प्रत्ययान्तानां संज्ञाशब्दानां मुपधादीर्घश्चेत् तर्हि नप्त्रादीनामेव। उणादिप्रकरणके विषयमें दो पक्ष है अव्युत्पन्न तथा व्युत्पन्न। जिसमें प्रकृति प्रत्यय अर्थका विभाग न हो उसे अव्युत्पन्न कहते है। व्युत्पत्तिपक्षमें प्रकृति प्रत्ययका अर्थ विभाग होनेसे नप्तृ–नेष्टृ–होतृ-पोतृ आदिको तृन्अन्त तथा तृजन्त मानकर दीर्घ सिद्ध है। नियम—उणादिसे सिद्ध तृन्–तृच् प्रत्ययान्त तथा सञ्ज्ञा शब्दकी उपधाको दीर्घ हो तो नप्तृ, नेष्टृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ शब्दोंको ही हो। इसलिए पितृ, मातृशब्दको तृन्नन्त होते हुए दीर्घ नहीं होते उणादि से निष्पन्न न होनेसे उक्त नियमसे मुक्त है। अतः पितरौ, पितरः। मातरः मातरौमें उपधादीर्घ नहीं हुआ। अव्युत्पत्ति पक्षमें प्रकृति प्रत्यय विभाग न होनेसे सूत्रमें पढ़े शब्द ही दीर्घके भागी होंगे। इससे भी त्रिपादीमें न दीर्घ। पितरं, पितरौ, पितृन् पित्रा पितृभ्यां पितृभिः। पित्रे। पितुः पितृभ्यां पितृभ्यः। पितुः पित्रोः पितृणां।

पितरम् । शेषं धातृवत् । एवं जामात्रादयः । ना नरौ नरः ॥ ३६ नृ च ६।४।६। अस्य नामि वा दीर्घः । नृणां-नृणाम् ॥ ३७ गोतो णित् ।७।१।९० ओकाराद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत् । ओतो णिदिति वाच्यम् । गौः गावौ गावः ॥ ३८ औतोऽम्शसोः ।६।१।९३। 'आ-ओत' इतिच्छेदः । औतोऽम्शसोरचि आकार एकादेशः । गाम् गावौ गाः । गवा गवे । गो २ ॥ ३९ रायो हलि ।७।२।८५। रैशब्दस्याऽऽकारादेशो हलि विभक्तौ । राः रायौ रायः । राभ्यामित्यादि ॥ ग्लौः ग्लावौ । ग्लावः । ग्लौभयामित्यादि ॥

इत्यजन्ताः पुंल्लिगा ः ॥

पितरि पित्रोः पितृषु । हे पितः जामाता जामातारौ जामातारः । जामातारं-जामातॄन् जामात्रा जामात्रे जामातुः जामातृभ्यां जामातृभ्यः । जामातॄणां, जामातरि जामात्रोः हे जामातः । ना=मनुष्य अर्थसे अर्थवान् 'नृ' शब्दकी प्रासञ्ज्ञा सु । ऋको अनङ्, नान्त उपधा दीर्घ, सुलोपनलोप । ना । नृ—औ, दशायां ऋकारान्त अङ्ग नृके अन्त्य अल्के स्थानमें ऋतो ङि सर्वनामस्थान परे से अर् गुण । नरौ नरः । नरं नरौ नॄन्, ना नृभ्यां २ नृभ्यः २ । नुः२ न्रोः नृणां नृणां । अत्र । (३६) सूत्रसे नामिपरे नृ को विकल्पसे दीर्घ हुआ । नामिसे प्राप्त दीर्घको बाधकर । नरि न्रोः नृषु । हे नः ।

(३७) गोतः ओकारसे विधान किया गया सर्वनाम स्थानसञ्ज्ञक (सु औ जस्, अम्, औट्) को **णिद्वत** णित् मानकर कार्य हो । यथा-गच्छतीति गौः (गमेर्डोसि) गाय अर्थमें योगरूढ शब्द प्रसिद्ध है । **ओतो णिदिति वाच्यम्** । इस वार्तिकके अनुरोधसे सूत्रकी वृत्तिमें ओकार पढ़ा गया । गो—सु, ओकारसे विधान किया गया सुको णित् हुआ । जिसके कारण अचोञ्णिति से ओ के स्थानमें औ वृद्धि हुई, गौः । गो—औ, णिद्वत्, वृद्धि आव् । गावौ, गावः । गो—अम् ।

(३८) **औतो**=आ, ओत् इति पदच्छेदः । ओकारसे अम् शस् सम्बन्धी अच् परे पूर्वके स्थानमें आ एकादेश हो । ओ अ मिलकर आ । गां, गावौ, गाः । गो—अस् पूर्वपर ओ तथा अ मिलकर आ आदेश रुत्वविसर्गौ । गो—टा=आ, अव् आदेश गवा, गोभ्यां गोभिः । गवे गोभ्यः गोः गवोः, गवाम् । गवि गवोः गोषु । हे गौः हे गावौ हे गावः । धनवाची प्रासञ्ज्ञक रै शब्दसे सु ।

(३९) **रैशब्द** को आ अन्तादेश हो हलादि विभक्ति परे । रैशब्दको रा हो गया रुवि । राः रायौ रायः । रायं रायौ रायः । राया रैभ्यां में रायो हलिसे हलि परे रैशब्दको आत्व । राभ्यां राभिः राये, राभ्यः । रायः रायोः रायां । रायि रायोः रासु । आसज्यते ग्लायति कृष्णपक्षे क्षिणीभवति इति ग्लौः=चन्द्रमा सु रुवि । ग्लावौ ग्लावः । ग्लाव ग्लावौ ग्लावः । ग्लावा ग्लौभ्यां ग्लौभ्यः । ग्लावः ग्लावोः ग्लावाम् । ग्लावि ग्लावोः ग्लौषु ।

रमाः । २४० औङ आप ।७।१।१८। आबन्तादंगात्परस्यौडः शी स्यात् । 'औङ्'इत्यौकारविभक्तेः संज्ञा । रमे । रमाः ४१ सम्बुद्धौ च ७।३।१०६। आप

इस प्रकरणमें अ, इ, उ ऋ ए ओ ऐ औ वर्णसमाम्नायकेक्रमसे रूपविधि बतलाई गई है । यथा—अ राम, इ हरिः, उ भानु, ए=शे, ओ=गौः, ऐ=रै औ ग्लौः ।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकरीटीकायां अजन्तपुलिङ्गाः ।

अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

रजोगुणप्रधान धर्म स्त्रीलिङ्ग है वह शब्दमें लीन हो तथा **अजन्त**=अच् प्रत्याहारके अक्षर अन्तमें हो, ऐसे शब्दका कारकानुसार प्रकरण अजन्तस्त्रीलिङ्ग है। स्त्रीधर्मका उद्बोधक (प्रकाशक) ङीप् टाप् आदि प्रत्यय है । टाप् आ (रमा) ङीप् ई, (गौरी) ऊङ् (कमण्डलूः) इत्यादि । प्रकरणका प्रारम्भिक उदाहरण—रमा रमते विष्णुना साकं या, सा । जो विष्णुके साथ रमण करे या रमते जगत् यस्यां सा (रमा)। सारा संसार जिससे आनन्दानुभव धर्म अर्थ काम मोक्षका लाभ कर मगन हो । (रम् क्रीडायां) धातुसे कर्ता अर्थमें अच् प्रत्यय, प्रासंज्ञा, स्त्रीलिङ्ग टाप्=आ । आकारान्तस्त्रीलिङ्ग, एक लक्ष्मीरूप कर्तृ अर्थसे अर्थवान् रमा शब्दसे ङ्याप्प्रातिपदिकात् सूत्रसे आबन्त मानकर प्रथमाका एकवचन 'सु' । उ इत् रमा स्) सुकी अपृक्तसंज्ञा उसीका हल्ङ्यादिसे लोप **रमा**। सत्य यह है कि **प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्**। जहां प्रातिपदिकसंज्ञासे जो कार्य हो वहां स्त्रीलिङ्ग परिचायक टाप् आदि प्रत्ययसे विशिष्ट (युक्त) का भी ग्रहण हो । ङीप् आप् ग्रहणका फल आर्यिका आदि । परिभाषा द्वारा प्रातिपदिक जानकर सु आया । प्रत्ययलोप होनेपर प्रत्ययलक्षणसे पदसंज्ञा भी जाने ।

दो लक्ष्मीरूप अर्थसे अर्थवान् **रमा** रमा को एकशेष करके एक रमाशब्दमें दो रमाकी शक्ति उसका बोधक द्वितीयाका द्विवचन औ । **रमा—औ**।

(२४०) **औङ्** औविभक्तिके स्थानमें आपः-आकारान्त अङ्गसे । आबन्तादङ्गात् आबन्त अङ्ग (रमा) से परे औ विभक्तिके स्थानमें शी—ई आदेश हो । सूत्रमें औङ् शब्द औ विभक्तिका नाम है । शीमें श की लशक्वतद्धितेसे इत् । स्थानिवद्भावेन लकारको प्रत्यय मानकर उनका आदि अक्षर श इत् लोप । औ का प्रत्यय धर्म स्थानिवद्भावसे शीमें लायेंगे । रमा—ई । आ ई मिलकर गुण एकादेशे । रमे । सुबन्त बननेका प्रयोजन पदसंज्ञा द्विवचनका बोध । अन्तादिवद्भाव । इस गुण एकादेश ए के पूर्वभाग, (रमा) का अन्त आ पर औ का आदि मानकर पदसंज्ञा सिद्ध । बहुत लक्ष्मी की विवक्षामें रमा—जस अस् । प्राप्त पूर्वसवर्णदीर्घ दीर्घाज्जसिसे निषेध तब **सवर्णदीर्घ** रुवि रमाः ।

(१) **सम्बुद्धौ** सम्बोधन ध्यानाकर्षणका विषय होनेपर च–अकारान्त अङ्ग

एकारः स्यात्सम्बुद्धौ। हे रमे हे रमे हे रमाः। रमाम् रमे रमाः। ४२ आङि चाऽऽपः।७।३।१०५। आङि, ओसि चाऽऽप एकारः। रमया। रमाभ्याम्। रमाभिः॥ ४३ याडापः।७।३।११३। आपः परस्य ङिद्वचनस्य याडा

को इकार हो। सम्बुद्धिका विषय होनेपर। एङन्त ह्रस्वान्त अङ्गसे परे सम्बुद्धिके सका लोप हो, स्त्रीलिंग बोधक रमा शब्दको सन्मुख करने (आह्वान=बुलाने) अर्थ का सूचक 'हे' शब्द पूर्वक या परक रमाको अकारान्त स्त्रीलिंग मानकर सम्बोधन अर्थमे सु विभक्ति, उसको सम्बुद्धिसंज्ञा परे मानकर रमामें अलोऽन्त्य परिभाषासे अन्त्य अल् आ को एकार हुआ। ङ् ह्रस्वात् एङन्तसे परे सु के स का लोप। हे रमे एवं हे रमा शब्दसे द्विवचन विवक्षासे औविभक्ति (औङ आः) अकारान्त अङ्गसे परे औ विभक्तिको शी आदेश। प्रत्ययत्वधर्मका स्थानिवद्भाव करके शीके शको इत् (अदर्शन) हुआ। आ और इके स्थानमें गुण हे **रमे**। एवं हे **रमाः** पूर्ववत्। **रमाम्** क्रियासे उत्पन्न फलका आधार जो हो वह कर्मकारक है। जिसका वाचक अम् विभक्ति है। जब रमाशब्द फलका आश्रय बना, तब **रमा—अम्** अकि परे हो तो पूर्वपर दोनोंको पूर्वरूप हुआ। रमे रमाः शस् विभक्ति परे श इत् पूर्वसवर्ण दीर्घ रुत्वादि हो। पुंलिग नहीं हैं सको न नहीं हुआ।

जहां दो (रमा) या अनेक (रमा) सम्बन्धित क्रिया जन्य फलका आधार बनेंगे यथा-**रमां** पाठयति, यहां उच्चारण या ज्ञानकी उत्पत्ति फल है उसका आश्रय रमा है। जहां प्रातिपदिकार्थ (व्यक्ति) साधन हो उसे तृतीया कारक कहते हैं। साधने अर्थे प्रयुक्त 'रमा' शब्दसे तृतीया का एकवचन टा, ट् का लोप आ।

(२) **आङि** आ विभक्ति परे च ओसि परे आपः अकारान्त अंगको एकार हो, इस सूत्रसे आको ए। रमे आ, अयादेशे **रमया**। यहां दो रमाशब्द क्रियामें (उत्कृष्ट उपकारक) सहायक हों, वहां द्विवचन 'भ्याम्' **रमाभ्यां**। अनेकाः रमाः यत्र क्रियायाः सहाय्यं कुर्वन्ति तत्र भिस् **रमाभिः**।

(३) **याट** आदेश हैं। आपः स्त्रीलिंगबोधक आकारान्त अंगसे परे ङित्=ङे, ङसि ङस् ङिको याट् हो। टित् होनेसे ङित् विभक्तिके आदिमें हो। क्रिया फलके आश्रय (कर्म) जिसको समर्पण किया जाय वह चतुर्थी कारक है। उद्देश्य अर्थमें रमाशब्दकी प्रासंज्ञा। आबन्त मानकर ङे ङ इत्। **रमा—ए** अकारान्त रमासे ङिद् वचन ए। उसे याडापःसे याट् आगम होनेपर **आ-ए** स्थाने वृद्धि एकादेश **रमायै**, एवं द्विवचन या बहुवचन विवक्षामें फलाश्रय (कर्म) की उपलब्धि वाले शब्दसे भ्यां भ्यस् विभक्ति। **रमाभ्यां रमाभ्यः**। जहांसे क्रियाकी शुरुआत् हो उस अवधिसीमा अपादान (पञ्चमी कारक) कहते है। अवधि अर्थमें वर्तमान रमाशब्दसे ङसि, अनुबन्ध लोप ङस् इति ङितं मत्वा याटि। सवर्णदीर्घे रुत्व विसर्गौ **रमायाः**। जहां दो या अनेक रमासे क्रियाका आरम्भ हो, तत्र भ्यां भ्यस्। **रमाभ्यां रमाभ्यः**। तत्र सम्बन्ध रिस्ता नाता मात्र अर्थ व्यक्त हो, तव षष्ठीकारक संज्ञा मात्र है। तन्मध्य-

गमः। वृद्धरेंचि। रमायै। रमाभ्याम्। रमाभ्यः। रमयाः २ रमयोः २रमाणाम्। रमायाम् रमासु। एवं दुर्गादयः।४ सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ।७।३। ११४॥आवन्तात्सर्वनाम्नो ङितः स्याड, आपश्च ह्रस्वः याटोपवादः। सर्वस्यै सर्वस्याः२। प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणादामि सर्वनाम्न इति

पतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते। कारकोंके बीच पड़ी षष्ठी कारकवद्भावसे रमाशब्दको किसीके सम्बन्ध मात्र अर्थमें प्रयोग हो तो एकवचनकी विवक्षामें ङस् रमा—अस्, याट् सवर्णदीर्घे रुत्वादिः **रमायाः**। द्विवचनकी विवक्षामें रमा—ओस्। (आङि चापः) सूत्रसे आ को एकार, उसको अय् आदेश। रुत्वे विसर्ग च **रमयोः**। अनेक रमाका सम्बन्ध हो तो आम् आबन्त मानकर नुट्, णत्व **रमाणाम्**। कर्ताकर्म द्वारा क्रियाके आधार अधिकरणकारक हैं। कर्ता या कर्मके माध्यमसे क्रिया का आधार कोई बनता ही हैं। आधार अर्थमें प्रयुक्त रमाशब्दसे ङि विभक्तिः। ङेराम्—से आबन्त, नद्यन्त या नी शब्दसे परे ङि विभक्तिको आम् आदेश होता ही है। आबन्त मानकर ङिको आम् स्थानिवद्भावसे आम्में ङिद्धर्म लाकर याट् आगम अनुबन्धलोप सवर्णदीर्घे। **रामायां रमयोः रमासु**। एवं=रमाशब्दकी तरह दुर्गा अम्बिका, अवस्था अंगना, उमा कथा व्यथा दशा नर्मदा आदि के अर्थानुकूलरूप समझें। दुर्गा दुर्गे दुर्गाः। अम्बिकां अम्बिके अम्बिकाः। अवस्थया अवस्थाभ्यां अवस्थाभिः। उमायाः उमाभ्यां उमाभ्यः। कथायाः कथयोः कथानां। व्यथायां व्यथयोः व्यथासु। हे नर्मदे हे नर्मदे हे नर्मदाः।

(४) **सर्वनाम्नः**=सर्वनाम संज्ञकशब्दसे स्त्रीलिंग बोधक (टाप्) प्रत्यय सहित सर्वा आदि शब्दसे स्याट् हो ह्रस्वश्च आप् के आ को ह्रस्व हो आकारान्त सर्वनाम से परे ङित् विभक्तिको स्याट् हो। टित् होनेसे विभक्तिके आदिमें हुआ। सम्पूर्ण अर्थका वाचक स्त्रीधर्मका प्रकाशक प्रत्यय टाप्=आ से विशिष्ट सर्वाशब्दका रमावत् रूप। सर्वा सर्वे सर्वाः। सर्वा सर्वे सर्वाः। सर्वया सर्वाभ्यां सर्वाभिः। सर्वस्यै सर्वा—ङे। चतुर्थीका अर्थ पूर्ववत् जाने। आबन्तसर्वनाम सर्वाशब्दसे परे प्राप्त याडापःके याट्को बाधकर 'सर्वनाम्नः' सूत्रसे स्याट्। आकारको ह्रस्व भी। सर्वस्या—ऐ वृद्धिः सर्वस्यै। ङसि तथा ङस् दोनों विभक्तियोंमें याट् को बाधकर स्याट् आगम। आपश्च-अकारस्य ह्रस्वे सवर्णदीर्घ रु वि च। सर्वस्याः। सम्बन्ध व्यक्त करने अर्थमें षष्ठीका द्विवचन ओस् परे आङि चापःसे एत्व अय्, आदेशे। सर्वयोः। बहुवचने सर्वा—आम्। सर्वनामसे आमिपरे सुट् अनुबन्धलोप **सर्वासाम्**। **सर्वस्यां** सर्वाशब्दात् आधार अर्थ विवक्षायां (सप्तमी) एकवचने ङि तत्स्थाने ङेराम्नद्याम्नीभ्यः आम् आदेश स्याडागम। आको ह्रस्व सर्वस्यां सर्वयोः सर्वासु। एवं अपरा अधरा अवरा उत्तरा दक्षिणा। अपरा अपरे अपराः। अधरान् अधरे अधराः। अवरया अवराभ्यां अवराभिः। उत्तरस्याः उत्तरयोः

सुट् । सर्वासाम् सर्वस्याम् शेषं रमावत् । एवं विश्वादय आबन्ताः ॥ २४५ **विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ** ।१।१।२८। अत्र सर्वनामता वा । उत्तरपूर्वस्यै उत्तरपूर्वायै इत्यादि । 'दिङ्नामान्यन्तराले' इति प्रतिपदोक्तस्यैव समासस्य ग्रहणान्नेह—योत्तरा सा पूर्वा यस्या उन्मुग्धायास्तस्यै उत्तरपूर्वायै । बहुव्री-

---

उत्तराणां दक्षिणस्यां दक्षिणयोः दक्षिणासु ।

इसी प्रकार विश्वपा आदि आकारान्त शब्दोंका भी रूप समझें । (५) विभाषा भेददर्शिका, पक्ष पातिनी भाषा विकल्प अर्थ । दिक्समासे दिशावाची शब्दके साथ उत्तरपूर्वा की बहुव्रीहिसमासमें सर्वनामसंज्ञा विकल्पसे हो । यथा—उत्तरस्याः पूर्वस्याः चान्तरालं दिक् सा । उत्तरपूर्वयोः अन्तरालं दिक् । उत्तरपूर्व दिश के मध्यकी दिशा (ईशानकोण) उत्तरपूर्वा है । उससे आगत ङे विभक्ति परे बहुव्रीहि समासमें उत्तरपूर्वा की सर्वनामसंज्ञा हुई । जिसका फल स्याट् आगम, आबन्तको ह्रस्व, वृद्धिः उत्तरपूर्वस्यै । सञ्ज्ञाके अभाव पक्षमें केवल याट् तथा वृद्धिः । उत्तरपूर्वायै ।

अतः कहा कि दिङ् नामानि अन्तराले सूत्रसे प्रतिपदोक्त, साक्षात् दिशा शब्द का उच्चारण करके बहुव्रीहि विधान हो वहीं सर्वनामसञ्ज्ञा विकल्प । जहां अनेक मन्यपदार्थसे समास, वहाँ लक्षणप्रतिपदोक्त परिभाषा नहीं लगती । वह नित्यसंज्ञा है अतो नेह-या उत्तरा दिक्सा पूर्वा यस्या उन्मुग्धायाः (मतवाली) तस्यै उत्तर-पूर्वायै नित्यसंज्ञा याट्वृद्धिः । यद्यपि साक्षात् उच्चरित दिङ्नामानि सूत्रसे बहुव्रीहि सिद्ध है । बहुव्रीहिग्रहण स्पष्ट ज्ञानार्थ है । बहिर्योग उपसंव्यानार्थे अन्तरशब्दः (इस प्रमाणसे बाहर और परिधान अर्थमें हो)तब सर्वनामसंज्ञा, अन्य अर्थमें न संज्ञा । स्त्री अर्थ उद्बोधक टाप, अन्तरा अन्तरे अन्तराः । अन्तरया । अन्तरस्यै शालायै (बाहरी भवनके लिए) इष्टकं चूर्णकेन, अन्तरस्याः, अन्तरासाम् । शाटी अर्थमें ऐसा ही रूप, अन्यार्थमें न संज्ञा । यथा—अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धि भेदतादर्थे । छिद्रात्मीय विनाबनिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि इति कोशात् । अन्तरशब्दस्य सर्वनामसंज्ञाप्रसङ्गे 'अपुरि' वक्तव्यम् जो पुरी नगरी न हो उसीको स० संज्ञा हो । यदि नगरी अर्थे अन्तराशब्दः तदा न स्यात् । किन्तु याट् वृद्धिः अन्तरायै ।

तीयप्रत्ययान्त शब्दकी भी सर्वनामसंज्ञा विकल्पसे हो । यह स्त्रीलिंग प्रधान प्रकरण है । यथा द्वयोः पूरणी द्वितीयः । दूसरी सङ्ख्या पूरी करने वाली स्त्रीलिंगमें द्वितीया शब्दसे उद्देश्य अर्थमें ङे विभक्तिः । यहां तीयप्रत्यान्तको सर्वनामसञ्ज्ञा हो ङिद् विभक्ति परे । सञ्ज्ञाका फल स्याडागम आको ह्रस्व । द्वितीयस्यै । सञ्ज्ञायाः अभावपक्षे याडागमः । वृद्धिश्च, द्वितीयायै । एवं तृतीया । त्रयाणां पूरणी तृतीया । तीनसङ्ख्याकी पूरणी तृतीया । सर्वनामसञ्ज्ञा, स्याट् आदि । तृतीयस्यै तृतीयायै

हिग्रहणं स्पष्टार्थम् । अन्तरस्यै शालायै बाह्यायै इत्यर्थः । अपुरीरयुक्तेनेह— अन्तरायै नगर्यै । तीयस्येति ङित्सु वा द्वितीयस्यै द्वितीयायै एवं तृतीया । अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः । हे अम्ब हे अक्क हे अल्ल । असंयुक्ता ये डलकास्तद्वतां ह्रस्वो न । अम्बाडे हे अम्बाले हे अम्बिके जरा । जरसौ—जरे इत्यादि । पक्षे, हलादौ च रमावत् । गोपा —विश्वपावत मतीः मत्या ॥ ४६ ङिति ह्रस्वश्च १।४।६। इयङुवङ्स्थानौस्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिंगावीदूतौ, ह्रस्वौ

तीयस्य=विभाषा प्रकरणे तीयप्रत्यान्तस्य द्वितीय तृतीय इत्यादौ ङित्सु (ङे ङसि ङस् ङि) उपसंख्यानात्=सर्वसंज्ञाका विधान होनेसे । तीयस्य ङित्सु वार्तिक का त्याग न कहे, वह पुंनपुंसकके लिए आवश्यक है । द्वयोःपूरणीसंख्या द्वितीया, अर्थवत्वात्सम्प्रदानेऽर्थे ङे । विकल्प स०संज्ञा स्यात् । पक्षे याट्, वृद्धिः । द्वितीयस्यै द्वितीयं पुरस्कारं देहि । एवं ङसि विभक्तौ स० संज्ञा स्यात् याट् द्वितीयायाः द्वितीययोः द्वितीयानाम् । द्वितीयस्याम् आधारेऽर्थे ङि परे सर्वनामसंज्ञा स्यात्, ङेराम्, शेषं अवशिष्टं रूपं रमासदृशं संचाल्यम् । **अम्बा अक्का, अल्ला** को मातृवाचक होनेसे सम्बुद्धिके विषयमें ह्रस्व हों । यथा—अम्बयति लोकान् जीवयति पालयति वा अम्बा सम्बोधन अर्थमें हे अम्बा सु । माता अर्थमें अम्बा शब्दको अम्बार्थनद्योःसे ह्रस्व हुआ । ह्रस्वान्त मानकर 'सु का एङ्ह्रस्वात् से लोप । **हे अम्ब** ! अक्कयति प्राणिनः प्रबोधयति अक्का (सरस्वती) अत्र सम्बोधने ह्रस्वः **हे अक्क** ! सुलोपश्च पूर्ववत् । अल्लयति लोकान् प्रलयं गमयति इति अल्ला सम्बोधने ह्रस्वादिकार्ये । **हे अल्ल** । शेषरूप रमावत् बोध्य ।

जीर्यते इति जरः=वृद्धः । तज्जातीया स्त्री जरा (वृद्धा) । आबन्तात् आया सु का लोप । अजादिविभक्ति परे जराशब्दसे द्विवचन औ विभक्तिः । 'जरायाः जरसन्यतरस्याम्' से अजादि विभक्ति औ परे जराके स्थानमें जरस् आदेश हो गया । इसप्रकार सभी अजादिविभक्तिमें जरस्के विधान से हलादि विभक्तिपरे रमावत् रुप समझें । यथा—जरा जरसौ, जरे जरसः जराः । तृतीयामें । जरसा जरया जराभ्यां जराभिः जरसे जरायै । जरसः जरायाः । जरसोः जरयोः जरसां जराणां । जरसि जरायां जरसोः (जरयोः) जरासु । गां पालयतीति गोपा । स्त्री अर्थका बोधक विच् प्रत्ययान्त है । जिसका पूर्ण अपहरण है । यहां गोप जातिकी स्त्री । परन्तु विश्वपाकी तरह रुप चलता हैं । बुद्धि अर्थमें मतिशब्दको साधारणतः हरिकी तरह रूप जानें । मतिः मती मतयः । मतिं मती मतीः । द्वितीया बहुवचने शस् मति—अस् पूर्णसवर्णी दीर्घे हवि । पूर्णसवर्णदीर्घसे परे शस्के स को न नहीं हुआ पुलिङ्ग न होनेसे । मति—टा । यण् मत्या मतिभ्यां मतिभिः । स्त्रीलिङ्ग प्रधान इकारान्त मति शब्द है । टाको ना नहीं होगा । चतुर्थी के एकवचन ङे । (६) **ङिति** ङित् विभक्ति परे, ह्रस्व=एकमात्रिक । च=इ उ । यदि इ उ इयङ् उवङ् आदेशोंका स्थानी (विषय या आधार) हो और वे नित्य

च इउवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति। मत्यै—मतये मत्याः२ मतेः२ नदीत्वपक्षे परत्वात् 'औत्' इति ङेरौत्त्वे प्राप्ते। ४७ **इदुद्भ्याम्** ७।३।११७ नदीसंज्ञकाभ्यामिदुद्भ्यां परस्य ङेराम् स्यात्। पक्षे अच्च घेः। मत्याम् मतौ शेषं हरिवत् एवं बुद्ध्यादयः। ४८ **त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ** ।७।२ स्त्रीलिंगयोरेतयोरेतौ स्तो विभक्तौ ४९ **अचि र ऋतः** ७।२।१०० तिसचतस्रोः

स्त्रीलिङ्ग बोधक प्रत्यय हो किन्तु स्त्रीशब्दसे भिन्न हो ऐसा इकार उकार हो और ह्रस्व इकार उकार हो तब स्त्रीलिंग विवक्षामें नदीसंज्ञा विकल्पसे हो। ङ इत् विभक्ति ङे ङसि ङस् ङि परे रहते। मति—ए अत्र अजादि प्रत्यय ए परे रहते मति का इ, इयङ्का स्थानी नित्य स्त्रीलिंग है। किन्तु स्त्रीं रुप नहीं है। अतः ङिति ह्रस्वश्च से नदीसंज्ञा हुई। जिसका फल आण्नद्याः आडागम, आटश्च वृद्धिः। यण् मत्यै। नदीसंज्ञायाः अभावपक्षे घिसंज्ञा घेङिति गुण अयादेश मतये मतिभ्यां, मतिभ्यः। एवं बुद्धि पर्यायभूत मतिशब्दसे अवधि अर्थबोधक पञ्चम्येकवचने ङसि मति अस्। अत्र यदा नदीसंज्ञा तदा आण्नद्याः आडागमः वृद्धिश्च यणि रुवि मत्याः। पक्षे घिसंज्ञा गुणे, ङसिङसोश्चेति पूर्वरूपे। सकारस्य रुवि। मतेः मत्योः मतीनाम्। नदी संज्ञा पक्षे ङेराम् प्राप्ते तं बाधित्वा औत्–ङे स्थाने औ प्राप्ते।

(७) **इदुद्** नदीसंज्ञक ह्रस्व इकार उकारसे परे ङि विभक्तिको आम् हो आधार अर्थमें, मति ङि नदीसंज्ञा तस्याः फलम्, ङिस्थाने आम्। मति—आम् यण् मत्याम्। नदीसंज्ञायाः अभावपक्षे घिसंज्ञा 'अच्चघेः' सूत्रेण ङिस्थाने औ आदेशे इ—अकार। वृद्धिः। मतौ मत्योः मतिषु। एवं यानि कतिपयानि रूपाणि न पठितानि तानि नदीसंज्ञायाः अभावपक्षे हरिशब्दवत् ज्ञेयानि। इसीप्रकार श्रुतिः, स्मृतिः, गतिः, वृद्धिः, कान्तिः धृतिः आदि शब्दका रूप समझे। श्रुतिः श्रुती श्रुतयः स्मृति स्मृती स्मृतीः, मत्या मतीभ्यां मतिभ्यः।

(८) **त्रि** तीन संख्या, चतुर चार संख्या, यदि स्त्रियां=स्त्रीलिंग अर्थ प्रधान हो। तब एतयोः त्रि और चतुरके स्थानमें एतौ=तिसृ चतसृ आदेश क्रमसे हो, विभक्तिपरे। (९) **अचि** ऋतः तिसृ चतसृ शब्दके ऋकारके स्थानमें र=रेफ आदेश हो, अच् प्रत्याहारके अक्षरपरे। ऋतोङिसे प्राप्तगुणका प्रथमयोः पूर्णसवर्णःसे प्राप्त दीर्घ ङसि ङस विभक्तिमें ऋत् उत् से प्राप्त उत्वका बाधक यह रेफादेश है। एवं यण्का भी बाधक है। त्रिचतुरशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। तीन व्यक्तिका समुदाय अर्थसे या तीनसंख्या अर्थसे अर्थवान् त्रिशब्दको प्रासञ्ज्ञा बहुवचनमें जस् विभक्ति ज इत्। स्त्रीलिंगमें विद्यमान त्रिशब्दस्थाने तिसृ आदेशे तिसृ अस्। सर्वनाम परे ऋतो ङिसे प्राप्त गुण, पूर्वसवर्ण दीर्घ, ऋत् से प्राप्त उत्व, (सर्व बाधित्वा) अच् परे ऋ स्थाने 'र' आदेशे। सकारस्य रुवि तिस्रः। एवं क्रियासिद्धौ साधनदशायाम् त्रिशब्दस्य प्रा० सञ्ज्ञा भिस्। तिस्रादेशे रुत्वे विसर्गे च त्रिभिः। एवं उद्देश्य अर्थ

ऋतो राबेशोऽचि । गुणदीर्घोत्वानामपवादः । तिस्रः तिसृभिः तिसृभ्यः । आमि नुट् । ५० न तिसृचतसृ ।६।४।४। एतयोर्नामि दीर्घो न । तिसृणाम् । तिसृषु । द्वेरत्वे सत्याप् । द्वे२ द्वाभ्यां द्वयोःगौरीं गौर्यौ गौर्यः। हे गौरि गौर्यै

में (के लिए) भ्यस् आदिकार्ये । तिसृभ्यः । सम्बन्धमात्रबोधदशायां त्रिशब्दात्प्रातिपदिकात् आमि । तिसृ आदेशे । तिसृ—आम् । ऋस्थाने रेफादेशः परत्वात्प्राप्तं नमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट्पूर्वविप्रतिषेधेन इति वचनेन,नुट् प्रबलो जातः । ततः र भावो न भवति यतः अजादिपरे नास्ति ।

(२५०) तिसृ तथा चतसृ शब्दोंको नामिपरे दीर्घ नहीं होता । अतः इस निषेधसे नामिसूत्रसे न दीर्घं । ऋवर्णान्नस्य णत्ववं वाच्यम् । इति न स्थाने ण तिसृणां एवम् आधारविवक्षामें त्रिशब्दकी तरह चतुरशब्दसे सप्तमी बहुवचने सुप् । तिसृ आदेशे, अवयवसकारस्य । आदेशप्रत्यययोः सूत्रेण षकारे तिसृषु । त्रिशब्द की तरह चतुर शब्दकीभी साधनिका समझें । चतस्रः२ चतसृभिः चतसृभ्यः चतसृणां चतसृषु । दो संख्याका समुदाय अर्थेन अर्थवतः द्विशब्दस्य प्रा०सञ्ज्ञायां, (दो संख्याका अनुबादक) औविभक्तिः । द्वि—औ दशायां त्यदादिगणमें द्विशब्दके पढ़े जानसे अत्व=इ को अ हो गया । द्व—औ स्त्रीलिङ्गकी इच्छामें टाप् आ सवर्णदीर्घे द्वा—औ आकारान्तसे परे औके स्थानमें 'औङ आपः'से शी आदेशे । श इत् गुणादिकार्ये । द्वे । दो सञ्ख्या वालोंका विशेषण । एक दो व्यक्ति या वस्तु यदि कर्म (क्रिया फलका आधार बने तब द्वितीयाके द्विवचनमें भी (द्वे) पूर्ववत् समझें । यदि द्विशब्दः क्रियाकी सिद्धिमें साधन हो,तब भ्यां त्यदादि ज्ञत्वा अत्वे टापि सवर्णदीर्घे द्वाभ्यां । द्वि—ओस् । अत्र अत्वे टाप् सवर्णदीर्घे आ स्थाने आङि चापः एत्वे अय् आदेशे रुत्वे विसर्गे द्वयो. । गृणाति पृथवीं धारयति गौरः (गौरवर्णः हिमालयः) तस्यापत्यं स्त्री गौरी (पार्वती) शब्दात् ङयन्तात् प्रथमायाः एकवचने सु उ इत् । सकी अपृक्तसञ्ज्ञा, हल्ङ्यादिलोप । गौरी । एवं गौरी—औ अत्र पूर्णसवर्णदीर्घः प्राप्तःस दीर्घाज्जसिच सूत्रेण अर्धचन्दीकृतः । ततो यणि अचो रहाभ्यां द्वित्वे गौर्य्यौ । बहुवचने जस् । गौरी—अस् । साधनिका पूर्ववत् । सन्मुख अर्थमें हे गौरी–सु नित्य स्त्रीलिंग होनेसे नदीसञ्ज्ञा जिसका फल अम्बार्थनद्योः से ह्रस्व । ह्रस्वान्तसे सम्बुद्धि सका लोप हे गौरि । गौरीं गौर्य्यौ गौरीः । गौर्या गौरीभ्यां गौरीभिः । गौरी—ए । अत्र नदीसञ्ज्ञा आडागमः आटश्चेति वृद्धिः यण् गौर्य्यै गौरीभ्यां गौरीभ्यः ।

गौर्य्याः गौर्योः गौरीणाम् । गौर्य्यामित्यादि । एवं इसीप्रकार नद्यादयः—नदी, नारी, कुमारी, ब्राह्मणी, सरस्वती इत्यादि । दीर्घ ईकारान्त नित्यस्त्रीलिंग शब्दोंके रुप चलाये । नदी नद्यौ नद्यः । नारीं नार्यौ नारीः । कुमार्या कुमारीभ्यां कुमारीभिः ब्राह्मण्यै ब्राह्मणीभ्यां ब्राह्मणीभ्यः । सारंगया: सारंगाभ्यां सारंगाभ्यः ।

इत्यादि । शेषं बहुश्रेयसीवत् एवं नद्यादयः लक्ष्मीः शेषं गौरीवत् तरीतन्त्र्या-दय। स्त्री हे स्त्रि ॥ ५१ स्त्रियाः ।६।४।७९। अस्येयङजादौ प्रत्यये स्त्रियौ । स्त्रियः ५२ वाऽम्शसोः ।६।४।८०। अमि, शसि च स्त्रियाः इयङ् वा । स्त्रियं स्त्रीं स्त्रियः स्त्रीः । स्त्रिया स्त्रिये स्त्रियाः२ स्त्रियोः । परत्वान्नुट्—स्त्री-

---

सरस्वत्याः सरस्वत्योः सरस्वतीनां । पर्वत्यां पार्वत्योः पार्वतीषु । हे नदि हे नद्यौ हे नद्यः । लक्ष्मी लक्षयति पुरुषार्थचतुष्टयम् (धर्मार्थकाममोक्षान्) साधयति लक्ष्मीः लक्षेर्मुट्च यह दीर्घ ईकारान्त नित्यस्त्रीलिंग है । मनोरथपूरक अर्थसे अर्थवान् लक्ष्मी को प्रातिपदिकसञ्ज्ञा सु रुत्वे वि० । लक्ष्मीः । यहां ङीप् अन्त न होनेसे सुलोप नहीं लक्ष्मीका अन्य सभी रुप शेष है । उनकी सिद्धि गौरीवत् गम्य हैं । एवं यथा लक्ष्मी शब्द ङीबन्त नहीं हैं, नित्यस्त्रीलिंग हैं । इसीप्रकार अजन्त स्त्रीलिंगका उदाहरण तरी नौकायां तरणिस्तरीः । (जलयानं) तन्त्रीः (वीणा) धीः अवीःको जाने इनमें सु का लोप नहीं, विसर्ग ही होता है । लक्ष्मी लक्ष्म्यौ लक्ष्म्यः । तन्त्री तन्त्र्यौ तन्त्र्यः । धिया धिभ्यां धिभिः । धिये धीभ्यां धीभिः । लक्ष्म्याः लक्ष्मीः लक्ष्मीनां । तन्त्र्यां तन्त्र्योः तन्त्रीषु ।

स्त्री स्त्यायति रजो धर्मं फलं प्रदर्शयति इत्यर्थेन अर्थवान् स्त्रीशब्दः प्रातिपदिक सञ्ज्ञकः । तत्फलम् अर्थबोधिकायाः प्रथमायाः एकवचनं सु । उ इत् सकारस्य अपृक्तसंज्ञा । ङ्यन्तात् सुलोपः स्त्री । सन्मुखीकरण अर्थमें हे स्त्री—सु । यूस्त्र्याख्यौ नदीसंज्ञा, नद्यन्तस्य ह्रस्वः ह्रस्वान्तअंगसे सम्बुद्धि सका लोपः हें स्त्रि । (गृहीणी) अर्थेन अर्थवतः स्त्रीशब्दात् द्विवचने औविभक्तिः । (१) **स्त्रीशब्दके** अन्त्यवर्ण ई को इयङ् इय आदेश हो, अच् अक्षर आदि प्रत्यय परे । अत्र अजादिः 'औ' विभक्तिः तां दृष्ट्वा ई स्थाने इयङ् इय् जातः । वर्णसम्मेलने स्त्रियौ । प्रथमाबहुवचन जस् स्त्री—अस् इयङ् रुवि० स्त्रियः । (२) **वाम्शसोः** अम् च शश्च अम्शसौ तयोः । अम् परे तथा शस् परे हो ऐसे स्त्रींशब्दको इयङ् विकल्पसे (पाक्षिक) हो । स्त्री—अम् अत्र अम् विभक्ति परे ईस्थाने प्राप्तं नित्यम् इयङादेशं बाधित्वा वाऽम्शसोः इति पाक्षिक इयङादेशे स्त्रियम् । पक्षे अमिपूर्वरूपं स्त्रीम् स्त्रियौ । शसि विभक्तौ तु सवर्ण दीर्घं नित्यमियङादेशं च बाधित्वा विकल्पेन इयङ् आदिकार्ये स्त्रियः । पक्षे पूर्व-सवर्णदीर्घे रुत्वे विसर्गे स्त्रीः । तृतीया एकवचने स्त्री—आ दशायाम् इयङादेशे वर्णसम्मेलने । स्त्रियाः स्त्रीभ्यां स्त्रीभिः । चतुर्थी एकवचने ङ स्त्री—ए । अत्र नित्य स्त्रीलिंगत्वात् नदीसंज्ञा आडागमः आटश्चेति वृद्धिः स्त्रियाः इयङादेशः । स्त्रियै स्त्रीभ्यां स्त्रीभ्यः । स्त्रियाः स्त्रियोः स्त्रीणां स्त्री—आम् । अत्र इयङादेशं परत्वा (विप्रतिषेधे तुल्यवल्यविरोधे परम् यत् इष्टं तत्कार्यं) नुट् (अट्कुप्वाङ् णत्वे रूपं) स्त्रीणाम् । स्त्रियां स्त्रियोः स्त्रीषु ।

श्रयति शरणं गच्छति गमयति वा हरिं पत्नीत्वेन सेवते इति श्रीः (लक्ष्मीः)

णां स्त्रियां स्त्रीषु। श्रीः श्रियौ श्रियः। श्रियम् श्रियौ श्रियः। श्रिया श्रीभ्यां श्रीभिः॥ ५३ **नेयङुवङ्स्थानावस्त्री** ।१।४।४। इयङुवङोः स्थिति र्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न ङितो, न तु स्त्री हे श्रीः इति ह्रस्वश्चेति वा नदीत्वम्। श्रियै–श्रिये श्रियाः-श्रियः२। ५४ **वाऽमि** १।४।५। इयङुवङस्थान स्त्रयाख्यौ यू आमि वा नदीसंज्ञौ नतु स्त्री। श्रीणां—श्रियाम्। ङौ— श्रियां श्रियि। धेनुर्मतिवत्। (२५५) **स्त्रियाञ्च** ७।१।९६। स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूप लभते। (६) **ऋन्नेभ्यो** ऋदन्तेभ्यो, नान्तेभ्यश्च

सेवते लोकान् वा श्रीः। हरिका शरणागत या विश्वसेविका ही श्रीः है। यह क्विप् प्रत्ययान्त जिसका सर्वापहारी लोप है। तथा दीर्घ ई होनेपर भी ङीबन्त नहीं है। अतः हल्ङ्यादि लोप न होकर सुके स्को रुवि। श्रीः। औविभक्तिमें। आचिश्नु सूत्र इयङादेशः श्रियौ। जस् विभक्तिमें श्री इयङ् आदि कार्य होते हैं। श्रियः।

३ नेयङुवङ् स्थानौ इयङ् उवङ्की स्थिति हो ऐसे ईकारान्त ऊकारान्त शब्दको नदी संज्ञा नहीं होती। अस्त्री स्त्रीशब्दको छोड़कर। लक्ष्मीवाचक श्रीशब्दका सम्बोधन दशा हो तब प्रातिपदिकसंज्ञक से सु विभक्ति परे, श्री को प्राप्त नदीसंज्ञा नेयङुवङ स्थानौ सूत्रसे निषेध हुआ। ह्रस्वादि नहीं हुए। सम्बुद्धिलोप भी नहीं रुवि० हे श्रीः। श्रियं श्रियौ श्रियः। श्रिया श्रीभ्यां श्रीभिः। चतुर्थी कारकके एक वचन ङे, ङ इत्। श्री ए ङितिह्रश्च सूत्रेण पक्षे नदीसंज्ञा यस्याः फलम् आडागमः वृद्धिः। ततः अचिश्नु सूत्रेण इयङ् श्रियै। नदीसंज्ञाया अभावपक्षे केवलम् इयङ् आदेशः। श्रिये श्रीभ्यां श्रीभ्यः एवं ङसि ङस् विभक्तौ। पक्षे नदीसंज्ञा आट् आदिः श्रियां पक्षे इयङ् आदेशे रुवि। श्रियः श्रीभ्यां श्रीभ्यः। नेयङुवङ्से नदीसंज्ञाका निषेध हे श्रीः में चरितार्थ है। अतः ङितिह्रश्वश्च का बाध नहीं हुआ।

(५४) **वाऽमि** इयङ् उवङ् आदेशकी स्थिति सिद्ध हो या स्त्रीलिङ्ग प्रधान हो। तथा नित्य हो ऐसे यू=ईकार ऊकारको आमि परे नदीसंज्ञा विकल्पसे हो, स्त्रीशब्द को छोड़कर। यथा—षष्ठ्याः बहुवचने श्री–आम् दशायाम् इयङ् आदेशस्य स्थिति वर्तते। आम् विभक्तिपरे विकल्पेन नदीसञ्ज्ञा जाता यस्याः फलं ह्रस्वनद्यापो नुट् अनुबन्धलोपे णत्वे। श्रीणाम् पक्षे अचिश्नुधातुभ्रुवां सूत्रेण इयङ् आदेशे श्रियामिति। सप्तम्याः एकवचने ङि। श्री=इ अस्यां स्थितौ नदीसंज्ञायाः फलं ङेराम्नद्यामनीभ्यः इत्यनेन ङिस्थाने आम् आदेशः आडागमे वृद्धौ च श्रियाम्। पक्षे इयङ् आदेशमात्रं श्रियि श्रियोः श्रीषुः। धेनुशब्दस्य मतिशब्दसदृशं रुपं ज्ञेयम्। उकारान्तस्त्रीलिङ्ग शब्दः। धेनुः धेनू धेनवः। हे धेनो! धेनुम् धेनू धेनूः। धेन्वा धेनुभ्यां धेनुभिः। धेन्वै धेनवे धेनुभ्यां धेनुभ्यः। धन्वाः धेन्वोः धेनूनाम्। धेन्वाम् धेनौ धेन्वोः धेनुषु।

(५५) **स्त्रियां**– स्त्रीलिङ्गवाची क्रोष्टुशब्द को च–तृजन्तवत्=तृच् अन्तमें हो, ऐसा क्रोष्टाशब्दकी तरह रुप हो। (५६) **ऋन्नेभ्यः**— ऋ अन्तमें हो या

स्त्रियां ङीप् । क्रोष्ट्री गौरिवत् । वधूः । शेषं नदीवत् । भ्रूः श्रीवत् । स्वयम्भूः पुंवत् ।७ङीप् ४।१।५॥ (७) षट्स्वस्त्रादिभ्यः ४।१।१०। एभ्यो ङीप् टापौ न स्तः ।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा ।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ॥ १ ॥

स्वसा स्वसारौ स्वसारः । माता पितृवत् । शसि मातृः । द्यौर्गौवत । राः पुंवत् । नौग्लौवत् । इत्यजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

नान्तेभ्यः=न अन्तमें हो, किन्तु स्त्रीलिङ्ग शब्द अवश्य हो तब ङीप् हो । शृगाल या ऋषिवाचक स्त्रीलिङ्गअर्थसे अर्थवान क्रोष्टुशब्दको प्रातिपदिकसंज्ञा । ततः सु । अत्र स्त्रीलिङ्गे वर्तमानक्रोष्टुशब्दः स्त्रियामिति' सूत्रेण तृच् । क्रोष्टृ–सु इति लभते । ततः ऋदन्तं मत्वा ऋन्नेभ्यो स्त्रियां ङीप् । अनुबन्धलोपे यणि सुलोपे । क्रोष्टृशब्दः गौरी शब्दस्य समानं रुपं लभते । अत्र ङीप् अन्ते सन् गौरी दृष्टान्तः एवं वधूः करभोरूः आदिशब्दाः 'सु' भिन्न विभक्तौ गौरीवत् ज्ञेयाः । पत्नी धर्मं वहति या सा वधूः । वहोः धश्च । वह धातुसे 'ऊ', ह को ध । यहां उवर्ण धातुका अवयव नहीं, उवङ नहीं किन्तु यण् । वध्वौ वध्वः । गौरी तुल्यरूप वध्वा वधूभ्यां । वध्वै वध्वाः वधूनां वध्वां वध्वोः वधूषु । नेत्रयोः ऊर्ध्वरोमराजिः (भौंह) अर्थ वाचक भ्रूशब्दके श्रीवत्=श्री शब्दके समान रूप होते हैं । यहां भी इयङ्आदेश नदीसंज्ञाका निषेध ङित् विभक्तिमें विकल्पसे समझें । भ्रूः भ्रुवौ भ्रुवः हे भ्रूः । भ्रुवं भ्रुवौ भ्रुवः । भ्रुवा भ्रूभ्यां भ्रूभिः । भ्रुवै भ्रुवे भ्रूभ्यां भ्रूभ्यः । भ्रुवाः भ्रुवः भ्रुवोः भ्रुवां भ्रूणाम् । भ्रुवां भ्रुवि भ्रूषु । स्वयं भवतीति स्वयम्भूः (मूलप्रकृतिः) जो स्वयं प्रकट हो । इसी अर्थ से अर्थवान् मानकर स्वादिकार्य । स्वयंभूशब्दको पुलिङ्गकी तरह जानें । नित्यस्त्रीलिङ्ग न होनेसे नदीसंज्ञा तत्सम्बन्धी कार्य विधि निषेध विकल्प आदि नहीं होते ।

(७) न षट् (ष्णान्ताः षट्) से षट्संज्ञक जैसे षष् तथा पञ्चन् आदिशब्द तथा स्वस्रादि इनको नान्त या ऋकारान्त मानकर ऋन्नेभ्यो ङीप्से ङीष् नहीं होता तथा अजन्त मानकर टाप् भी नहीं । कार्यकारणमें स्वस्रादिकी स्पष्ट गणना कर रहे हैं । स्वसा भागिनी तिसृ=तीन स्त्रियां, चतसृ=चार नारियां, ननान्दा पतिकी बहन । ननद (पत्युर्भगनी) दुहितृ=पुत्री । याता=पतिकी पत्नी उसकी कनिष्ठ भातृ पत्नी आपसमें याता है । माताके सात शब्द हैं, जिनको ङीप् टाप् नहीं होते । भगिनी अर्थेन अर्थवतः प्रातिपदिकात्प्रथमायाः एकवचने सु । स्वसृ–स । ऋदुशनस्पुरुदंशोऽनेहसां सर्वनामस्थाने च सम्बद्धौ से अनङ् सूत्रेण उपधाया अकारस्य दीर्घं हल्ङ्याादिना अपृक्तसञ्ज्ञक सकार लोपे । प्रातिपदिकान्त नकारस्य च लोपे स्वसृ औविभक्तिपरे । ऋतोः ङिसर्वनामस्थानयोः इति गुणे उपधादीर्घं स्वसारौ स्वसारः । हे स्वसः । स्वसारं स्वसारौ स्वसॄः । स्वस्रा स्वसृभ्यां स्वसृभिः इत्यादि । पालन अर्थमें सिद्ध माता शब्दका पिताशब्दकी तरह रुप चलायें । केवल शस् विभक्तिमें

॥ अथाऽजन्तनपुंसकलिंगाः ॥

(८) **अतोऽम्** ७।१।२४। अतोऽअंगात्क्लीबात् स्वमोरम्। ज्ञानम्। एङ्ह्रस्वाद् इति सम्बुद्धिलोपः हे ज्ञान। (९) **नपुंसकाच्च** ७।१।१९। क्लीबादौङः शी स्यात्। भसज्ञायाम्। (१०) **यस्येति च** ६।४।१४८। ईकारें, तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः। इत्यकारलोपे प्राप्ते। (औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः) ज्ञाने (१) **जश्शसोः शिः** ७।१।२०। क्लीबात्परयोर्ज-

---

मातृः बनेगा। क्योंकि पुलिंगमें ही शस् के सको न होता है। ननान्द्रवत्=दुहिता आदि शब्दोंके रुप भी जानें। केवल पितृ मातृ शब्दके उपधाको दीर्घ नहीं होते। आकाशवाची द्यौः शब्दकी तरह रुप होता है। यथा द्यौ–सु (ओतो णिदिति वाच्यं) से णिद्, अचोञ्णितिसे वृद्धि, रुबि द्यौः। धनवाची राशब्दः पुलिंगवत् जानें। नौकावाची नौशब्दको ग्लौः ग्लावौ ग्लावः की तरह समझें।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकर्याम् अजन्तस्त्रीलिङ्गाः ॥

॥ अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

सत्त्वरजस्तमासां साम्यावस्था (सत्वतमरजोगुण जब समदशा समान अवस्थामें रहे वह) नपुंसकलिंगं। यह अजन्तनपुंसकशब्दरुपसाधनिकाका प्रकरण है।

(८) **अतो–**ह्रस्व अकारान्त हो नपुंसकलिङ्गमें वर्तमान हो, तथा अंगसञ्ज्ञक शब्दसे परे सु, अम् विभक्तिको अम् आदेश हो, क्लीबात् नपुंसकलिङ्गसे। विशुद्ध नपुंसक–कारक अर्थसे अर्थवान् ज्ञानशब्दः। तस्य प्रातिपदिकसञ्ज्ञा। तस्मात् 'सु' विभक्तिः। ततः अतोअम्सूत्रेण अकारान्तात् अंगात् ज्ञानशब्दात् सु तस्य स्थाने अम् आदेशे। अमि परे पूर्वरुपे। ज्ञानम्। सम्बोधन अर्थमें हे ज्ञान–सु तस्य अमादेशे : अत्र एङ् ह्रस्वात् सूत्रेण ह्रस्वान्त ज्ञानशब्दात् परस्य सम्बुद्धि सुस्थाने अम्, मलोपे। हे ज्ञान। (९) **नपुंसकात** क्लीबात्। नपुंसकलिंगमें वर्तमान प्रातिपदिकसे पर औ विभक्तिके स्थानमे शीआदेश हो। जिसको भसञ्ज्ञा, सुडनपुंसकस्य सूत्रसे सु औ जस् अम् औट् इन पांच, विभक्तिकी ही सर्वनामसञ्ज्ञा होती है। अनपुंसकस्य=नपुंसक लिङ्गमें उक्तसञ्ज्ञाका निषेध है। अतएव नपुंसकमें भसञ्ज्ञा सिद्ध हुई। स्थानिवद्भावसे प्रत्यय धर्ममानकर लशक्वतद्धितेसे श इत्। ज्ञान–ई। इति स्थितौ।

(२६०) **यस्येति** इश्च अश्च अनयोः समाहारः यम्। ईकार या तद्धित प्रत्यय परे हो तो भसञ्ज्ञक इकार या अकारका लोप हो। सूत्रमें इति=ईकारपरे, च=तद्धित प्रत्यय परे अर्थ है। इति सूत्रेण अलोपे (अकारस्य अदर्शने) प्राप्ते निषेध वार्तिकम्। वा औके स्थानमें आदेश 'शी' यदि हुआ हो तो उसके परे रहते अकारलोपका निषेध होता है। अनेन अलोपस्य निषेधे पूर्वपरयोः गुण एकादेशे। ज्ञाने। (१) **जशस्सोः** क्लीबात्=नपुंसक अर्थमें वर्तमान प्रातिपदिकसे परे जस् तथा शस् को शि हो। ज्ञानशब्दात्प्रातिपदिकात्प्रथमायाः बहुवचने जस

श्शसोः शिः स्यात्। (२) शि सर्वनामस्थानम् १।१।४२। शि इत्येतत्सर्वनाम स्थानसंज्ञं स्यात्। (३) नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२॥ झलन्तस्याअजन्तस्य च क्लीबस्य नुमागमः स्यात्सर्वनामस्थाने। (४) मिदचोऽन्त्यात्परः १।१।४७॥ अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित् स्यात्। उपधादीर्घः। ज्ञानानि। पुनस्तद्वत् शेषं पुंवत्। एवं धन वन फलादयः। (५) अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ७।१।२५॥ एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्डादेशः स्यात्। (६) टेः ६।४।१४३। डिति परे भस्य टेर्लोपः। कतत् कतरद् कतरे कतराणि। हे कतरत्। शेषं पुंवत्। एवं कतमत् इतरत्।

तस्य स्थाने जश्शसोः शि आदेशे 'श' इत्संज्ञा–इ इति दशायाम्। (२) शि ह उक्तसञ्ज्ञं=सर्वनामस्थानसंज्ञक हो। अनेन 'शि' इत्यस्य सर्वनामस्थानसञ्ज्ञा सिद्धा।

(३) नपुंसक–झलचः झल् प्रत्याहारके वर्ण तथा अजन्तस्य=अच् प्रत्याहारके अक्षर अन्तमें हो तब नपुंसक अर्थमें वर्तमानशब्दको नुम्–न् हो। सर्वनामस्थान परे 'इ' को सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक परे मानकर अजन्तनपुंसकलिङ्ग ज्ञानशब्दको नुम् (न्) हुआ। वह (न्) कहां हो, किसका अङ्ग बने? तब निर्णायक परिभाषा सूत्र बोले—

(४) मिद् अन्त्यात अचः परो मित् म इत्। अचोंके मध्यमें जो अन्त्य अच् है। उससे परे उसी समुदायको नुम्का विधान हो। उसी का ही अन्त अवयव मित् हो। अत्र ज्ञानशब्दस्य अन्त्यस्य अवयवस्य अकारस्य अङ्गभूतो नकारः तस्य नुम्=न् ज्ञानन् इ, नान्तस्य उपधायाः दीर्घे। ज्ञानानि। पुनस्तद्वत्=द्वितीया विभक्तिमें भी उसी प्रकार ज्ञानम्, ज्ञाने, ज्ञानानिका ज्ञान करे। अवशिष्ट सभीरूप पुलिङ्गवत्, संचालन करे। एवं=ज्ञानशब्दकी तरह नपुंसक अर्थमें वर्तमान(धन वन फल मूल पत्र पुष्प अन्न जल) आदि शब्दोंका रूप संचालन करे। धनं धने धनानि, फलेन फलाभ्यां फलैः। मूलाय मूलाभ्यां मूलेभ्यः। पत्रात् पत्राभ्यां पत्रेभ्यः। पुष्पस्य पुष्पयोः पुष्पाणां। जले जलयोः जलेषु। (५) डतरादि=कतर, कतम अन्य, अन्यतर एषु अन्यतमेभ्यः पञ्चभ्यः=इन पांचोंके क्लीवे–नपुंसकलिङ्गमें विद्यमान होनेपर, इनसे परे सु तथा अम्के स्थानमें अदड् आदेश हो। (६) ड इत् हो तो उसीके डित्व सामर्थ्यसे 'भ' संज्ञक अङ्गकी टि का लोप हो। 'दोनोंमें कौन हो' (अनयोः कः कतरः) इस अर्थ में प्रयुक्त प्रासंज्ञक डतर प्रत्ययान्त कतर शब्दसे सु तथा अम् दोनों को अद्ड् आदेश हुआ। अन्त्य हल् ड् की इत्संज्ञा तथा अदर्शन। भसंज्ञा, उसके टिसञ्ज्ञक अकार का लोप। 'वाऽवसाने' से विकल्पेन चर्त्वं तकारे कृते कतरत्। पक्षे कतरद् इति दकारः तिष्ठति। द्विवचनमें औ, तत्स्थाने नपुंसकात् च, इति शी आदेशे औङः श्याम् वार्तिक से अकारलोप प्रतिषेधे। गुणे कतरे (खादतः)। बहुवचने जस् तत्स्थाने 'शि' तस्य (शि सर्वनाम) से सर्वनामस्थानसंज्ञा, नुमागम उपधादीर्घे, णत्वे च कृते कतराणि (पठन्ति) हे कतरत् पूर्ववत्। अत्र विशेषः सम्बुद्धिहलः तकारस्य लोपो न भवति,

अन्यत् अन्यतरत् अन्यतम शब्दस्य तु अन्यतममित्येव। (एकतरात्प्रतिषेधो वाच्यः) एकतरम्।(७) **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** १।२।४७। अजन्तस्येत्येव। श्रीपं ज्ञानवत्। (८) **स्वमोर्नपुंसकात्** ७।१।२३। क्लीबादंगात्स्वमोर्लुक् स्यात्। वारि (९) **इकोऽचि विभक्तौ** ७।१।७३॥ इगन्तस्य क्लीबस्य नुमचि विभक्तौ वारिणी वारीणि।'न लुमते' त्यस्याऽनित्यत्वात्पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः। हे वारे, हे वारि। घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते (वृद्धयौत्त्वतृज्व-

---

यतोहि जो'अङ्ग है, वह ह्रस्वान्त नहीं जो ह्रस्वान्त है वह अङ्ग नहीं। अदड्के मिल जाने से रूप बना। शेषं पुंवत्=अनुच्चारित रूप पुलिङ्गकी तरह जानें। एवं=कतर शब्दकी तरह कतमः एषु कि कतमत्। एतस्मात् इति इतरत्। युवयोः अन्यः अन्यतरत्। इन शब्दोंसे परे सु, अम् के स्थानमें अदड् आदेशका विधान होता है। इन पांचोंके अतिरिक्त उक्त विधान नही होता। अतः बोले कि अन्यतमस्य=अन्यतम शब्दके स्थानमें अन्यतमम् यही रूप बनता है। अदड् नहीं होता। क्योंकि यह अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है। अनयोः एकः=प्रधान इति, एकतरम्। यहां भी डतरप्रत्ययान्त जानकर अदड् प्राप्त है, परन्तु निषेध वार्तिक एकतर शब्दसे अदड्का प्रतिषेध कहता है। रूपं ज्ञानवत्।

(७) **ह्रस्वो** नपुंसके=नपुंसक अर्थमें वर्तमान अजन्तस्य=अच् अक्षर अन्तमें हो ऐसे प्रातिपदिक को ह्रस्व (एकमात्रिक) हो। यथा—श्रियम्पाति (लक्ष्मीं ज्ञानं वा रक्षति) इति श्रीपा। लक्ष्मीरक्षक अर्थसे अर्थवतः श्रीपाशब्दस्य प्रासंज्ञा सु। अजन्तंनपुंसकलिंगे वर्तमानं प्रातिपदिकं 'श्रीपा' इति दृष्ट्वा, अन्त्य अल् अकार स्थाने ह्रस्वे। 'अतोऽम्' सूत्रेण सु स्थाने अम् आदेशे। श्रीपं श्रीपे श्रीपाणि। अत्र णत्वं विशेषः। अत्र समानपदस्य अभावात्, अट्कुप्वाङ् सूत्रेण णत्वं न भवति। किन्तु एकाजुत्तरपदे ण इति णत्वम्। अस्मिन्प्रकरणे (दीर्घः) आकारो न तिष्ठति। एवं (ए ओ ऐ औ) एतेऽपि एकशः (एक एक करके) ह्रस्वो भूत्वा तिष्ठेयुः।

(८) **स्वमोः** नपुंसकात्=नपुंसक प्रधान अर्थमें वर्तमानशब्दसे परे सु तथा अम् का लुक् अदर्शन हो। यथा—वृणुते प्राणिनं जीवयति, इति वारि=जलम्। प्राण दान अर्थसे अर्थवान् प्रासञ्ज्ञक वारि शब्दसे सु। नपुंसकसे परे स्वमोर्नपुंसकात्से सु का लोपः। वारि। द्विवचनस्य इच्छायाम् वारि—औ नपुंसकाच्च, औ स्थाने शी श इत। (९) **इको**=इक् अक्षर अन्तमे हो ऐसे शब्दसे नुम् न् आगम हो। अजादि विभक्ति परे। मित् होनेसे न् अन्त्य अच्का अवयव होगा। अट्कुप्वाङ् णत्वे वारिणी बहुवचने जस्, शस् स्थाने जश्शसोः शि आदेशे, शि सर्वनामस्थानम्। अङ्गस्य नुमागमः, नान्तस्य उपधादीर्घे। १३८ से णत्वे वारीणि। हे वारे, हे वारि—सु इति दशायां स्वमोर्नपुंसकात् से सु का लुक्। उस लोप (सु) को प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षण से ह्रस्वस्य गुणः। हे वारे। न च नलुमताङ्गस्य लुमतः (लुक्) शब्दसे जिसका

द्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन) वारिणे वारिणः २ वारिणोः २। नुम्-चिरेति नुट्। वारीणां वारिणि। हलादौ हरिवत्। (१) तृतीयादिषु

अदर्शन हुआ हो, वहां प्रत्ययलक्षण कार्य नहीं होता। तब गुण नहीं होगा, हे वारि। नलुमताङ्गस्य सूत्रके अनित्य पक्षमें सम्बुद्धिको निमित्त मानकर गुण अनित्यतामें प्रमाण, इकोऽचि नुम् विभक्तौ सूत्रे अचि ग्रहणं किमर्थम् ? उत्तर—हलादिविभक्ति परे नुम् 'मा' भवतु एतदर्थम्। न च हलादिविभक्ति परे नुम् यदि अभविष्यत् तदा न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य इति नकारलोपो अजनिष्यत्। इस प्रकार हलादि पक्ष अपि नुम् होनेपर भी न दोषः। तदा अच् ग्रहणं व्यर्थीभूय बोधयति, यत् न लुमताङ्गस्य इति निषेधो अनित्यः, पाक्षिक इत्यर्थः।

जलवाचकवारिशब्दात् साधने अर्थे टा। अत्र टा स्थाने आङो 'ना' अस्त्रियाम् इति नादेशे, णत्वे। वारिणा (जलेन) जीवनदानार्थक जलवाचक वारिशब्दसे चतुर्थीके एकवचन (के लिए) उद्देश्य अर्थमें ङे। वारि–ए दशायां (घेर्ङिति) सूत्र ङिति सुप्–ए परे घिसञ्ज्ञक वारि इ को गुण प्राप्त, इकोऽचिसे इगन्तके नुम् आगम प्राप्त तत्र निर्णायकं वार्तिकं। वृद्धिः औत्व, तृज्वद्भाव, तथा गुण इनकी अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेधसे नुम् प्रबल होता है। विप्रतिषेध=तुल्यबल विरोध होनेपर परम् इष्टं कार्यम्। पूर्वं इष्ट हो या पर। अत्र नुमेव इष्टः। वह नकार वारिका अङ्ग है। वारिन्—ए (न इकारान्त रहा न घिसञ्ज्ञा हुई) णत्वे। वारिणे वारिभ्यां वारिभ्यः। एवं वृद्धिका उदाहरण— प्रियः सखा यस्य कुलस्य तत्कुलम्। प्रियसखि। जिस कुलमें मित्र प्यारा हो। अत्र प्राप्त णिद्वत् भाव तथा वृद्धिको बाधकर नुम्। सखीनि। औत्वका उदाहरण—वारिणि। सप्तमी एकवचने ङौ विभक्तौ (अच्च घेः) इति प्राप्तं औत्वं बाधित्वा नुम्। तृज्वद्भावस्य उदाहरणं–प्रियः क्रोष्टा यस्मिन्कुले अत्रापि तृज्वद्भावं बाधित्वा नुम् भवति। एवं प्रियक्रोष्टूनि। वारिणः वारिणोः इत्यादावपि पूर्वविप्रतिषेधेन नुम् प्रबलः। वारीणाम्। वारि–आम् षष्ठी बहुवचने ह्रस्वनद्यापो नुट् इति नुट् प्राप्ते इकोऽचि इति नुम् प्राप्ते तत्र नुम् अचिरतृज्वद्भावेभ्यो पूर्वविप्रतिषेधेन नुम् भवति। ततः नामि सूत्रेण दीर्घं णत्वे च। यद्यपि नुं कृते अपि नकारः तिष्ठति तथाऽपि नुट् कृते नामि इति दीर्घो न भविष्यति। नकारस्य अङ्गावयवे सति अजन्तत्वं न स्यात्। ह्रस्वान्तत्वं क्षीयेत। अतो नुमेव श्रेयान्। वारिशब्दसे हलादि (भ्यामादि) विभक्तिमें हरिशब्दवत् रूप सुलभ।

(१) तृतीयादिषु—टा, ङे, ङस् इत्यादि विभक्ति परे भाषितपुस्कं=भाषितः पुमान्—पुंलिंगलक्षणं यस्य शब्दस्य तत्। जिस स्त्रीशब्दमें पुलिङ्गधर्म प्रतीत हो उसे पुंवद्=पुलिङ्गके सदृशकार्य हों गालवस्य=गालव नामक आचार्यके मतमें। पाणिनिमते पुम्वद न हो इससे दो पक्ष सिद्ध है। प्रवृत्तिनिमित्तंक्ये=शब्दकी प्रवृत्ति प्रयोगमें निमित्त कारण (हेतु) एक ही अर्थ (जाति) हैं। वस्तु या व्यक्तिमें जाति

भाषितपुंस्कं पुँवद्गालवस्य ७।१।७४। प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद्वा, टादावचि। अनादये अनादिने इत्यादि। शेषं वारिवत्॥

यन्निमित्तमुपादाय पुंसि शब्दः प्रवर्तते।
क्लीबवृत्ति तदेव स्यादुक्तपुंस्कं तदुच्यते ॥१॥
पीलुर्वृक्षः, फलं पीलु, पीलुने न तु पीलवे।
वृक्षे निमित्तं पीलुत्व, तज्जत्वं तत्फले पुनः ॥२॥

पीलुर्वृक्षः, तत्फलं पीलु तस्मै पीलुने। अत्र न पुंवत्। प्रवृत्तिनिमित्तभेदात् (१) **अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ७।१।७५॥** टादावचि। (२) **अल्लोपोऽनः ६।४।१३४।** अंगावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिप्रत्ययपरो योऽन्

गुण क्रिया को प्रवृत्ति निमित्त कहते है। शब्दः अर्थस्य कारणं स ।ह तेनोपजन्यते। शब्दके प्रयोगमें अर्थ हीं कारण है। नपुंसकमें समान अर्थ हो वह भाषितपुंस्क हैं।

भाषितः प्रतीतःपुमान् यस्मिस्तत् पुम् जातिधर्म एकजान पड़े जिस नपुंसक भाषितपुंसक, (इकोऽचि, नपुंसकस्य आये) जातिधर्म पुलिङ्ग नपुंसकमें समान हो। भाषितपुस्क पुलिङ्ग प्रतीत हो ऐसा क्लीब नपुंसक पुंवत् पुलिङ्गके समान हो। टाप् आदि विभक्ति परे गालवाचार्यके मतमें (अन्यमते न पुंवत्) अजादिपरे। पुलिगहोनेका फल ह्रस्व नुं न होना। अनादित्वधर्म तीनों लिंगमें एक होनेसे भाषितपुस्क हैं। पुंलिगभावे घिसञ्ज्ञा गुणे अय्। अनादये यदा न पुं तदा नुम्। अनादिने पूजां कुरु। टादौ क्यों कहां? दधिनीको पुंलिग न हो जाय। इत्यादि अनादय अनादिनः अनाद्योः अनादिनोः। आम् परे अनादीनां। अनादौ अनादिनि।

यन्निमित्तमुपादाय पुंसि शब्दः प्रवर्तते।
क्लीबवृत्तौ तदेव स्यात् भाषितपुंस्कस्तदुच्यते।
पीलुर्वृक्षः फलं पीलु पीलुने न तु पीलवे।
वृक्षे निमित्तं पीलुत्वं, तज्जत्वं तत्फले पुनः॥

जहां धर्मभेद हो, वहां सूत्र न लगे। यथा पीलु नामक एक वृक्ष है। इसका अर्थ पीलुत्व पीलु शब्दमें, उसीं वृक्षका फल पीलु नपुंसक है। फले लुक्से अण्का लुक्। पीलुफल अर्थमें नपुंसक, वृक्ष अर्थमें पुम्। एकमें वृक्षत्व धर्म, दूसरेमें फलत्व, धर्मभेद से प्रवृत्तिनिमित्त भेद है ' यहां पुल्लिङ्गभाव नहीं होगा : पीलुवृक्षः फल पीलु पीलुने न तु पीलवे। वृक्षेनिमित्त पीलुत्वं तज्जत्वं तत्फाले पुनः :

(२) **अस्थि**=हड्डी, दधि=दही, सक्थि—(उरु जंघा शकटावयव=गाड़ीकी धुरा, अक्षि=नेत्र। इन शब्दोंके अन्त्य अल्के स्थानमें अनङ् आदेश हो। स च उदात्त हो। टादौ अचि—टा, ङे, ङसि, ङस्, आदि अजादि विभक्ति परे। (३) **अल्लोप** अन=अङ्गका अवयव अंश हो, तथा सर्वनामस्थानसञ्ज्ञा न हुई हो ऐसा यजादि=य च अच् तस्मिन्यचि यकारादि या अजादि प्रत्यय और स्वादि—सु, औ जस् आदि परे हो ऐसे अन्के अका लोप हो। दधिशब्दः—प्रथमा सम्बोधने द्वितीयाविभक्तौ च

तस्याकारस्य लोपः। दध्ना दध्ने दध्नः२ दध्नोः२। (३) **विभाषा ङिश्योः** ६।४।१३६॥ अंगावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिप्रत्ययपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा, ङिश्योः। दध्नि दधनि। शेषं वारिवत्। एवमस्थिसक्थ्यक्षि। सुधि सुधिनी सुधीनि। हे सुधे, हे सुधि। सुधिया सुधिना। सुधिये-

---

वारिशब्दसदृशं रूपं लभते। किन्तु टादौ अचि अनङ् विशेषः। यथा–दधि–टा इति दशायां (अस्थिदधि) सूत्रेण, अन्त्य अल् दधिगत इ—अनङ् आदेशे। सर्वनाम स्थानभिन्न यजादि स्वादि प्रत्ययः टा। आ परे अङ्गावयव अनः अकारस्य लोपे, वर्ण सम्मेलने दध्ना। एवं चतुर्थ्यैकवचने पूर्वप्रक्रियावत् रूपं। तथैव अन्यत्राऽपि। अर्थवाचकात् प्रातिपदिकात् दधिशब्दात अधिकरणे अर्थे सप्तम्यैकवचने ङि। दधि—इ इति स्थिते। अस्थिदधि–सूत्रेण अनङ्, अनुबन्धलोपे। अत्र अल्लोपोऽनः नित्यं अकारलोपे प्राप्ते। (३) **विभाषा**–पक्षपातिनी भाषा, अंग (जिससे प्रत्यय हुआ हो) का अवयव अंश सर्वनामस्थानसे भिन्न विभक्ति परे रहते अंगका अवयव अन् उसके अकारका लोप विकल्पसे हो, ङि और शीपरे। अत्र ङित्परे अनः अकारस्य लोपे कृते, दध्नि। लोप अभावपक्षे दधनि। शेषं मनुच्चारितं रूपं वारिवत्। वारिशब्दसदृशरूपं लभताम्। एवं दधिशब्दकी तरह अस्थि, सक्थि अक्षि शब्दोंको समझें। यथा–अक्षि, अक्षिणी, अक्षीणि। हे अक्षि हे अक्षे। अक्ष्णा, अक्षिभ्यां अक्षिभिः। अक्ष्णे अक्षिभ्यां अक्षिभ्यः। अक्ष्णः अक्ष्णोः अक्ष्णाम्। अक्ष्णि अक्षणि अक्ष्णोः अक्षिषु। अस्थि अस्थिनी अस्थीनि अस्थना अस्थिभ्यां अस्थिभिः अस्थिने, इति इकारान्तः।

जिस नपुंसक शब्दमें पुंलिगकी स्वच्छप्रतीति हो, ऐसे इकारान्त नपुंसकको पुंवद्भाव हो, टादि विभक्ति परे। यथा सुष्ठुध्यायति इति सुधीः। सुन्दर ध्यानकर्ता अर्थसे अर्थवान् प्रासंज्ञक सुधीशब्दसे प्रथमाका एकवचन सु ह्रस्वो नपुंसके से ह्रस्व, स्वमोर्नपुंसकात्से सुलोपः। सुधि सुधिनी सुधीनिपुनस्तद्वत्। तृतीया एकवचने सुधी–टा नपुंसक ह्रस्वे सुधि—आ। गालवाचार्यमते तु, सुन्दर ध्यानकर्ता अर्थः। पुलिङ्गे स्त्रीलिङ्गे नपुंसके च तिष्ठति। अतः सुधीशब्दः भाषितपुंस्कः। तेन तस्य (सुधी शब्दस्य) पुंवद्भावो अभवत्। यस्य फलम् (अचिश्नु) इति इयङ् आदिः। सुधिया पाणिनिमते इकोचि नुम् न् सुधिना सुधिने, सुधिये सुधिभ्यां सुधिभ्यः सुधियः सुधिनः सुधियोः सुधिनोः सुधीनाम्। सुधियि सुधिनि सुधिषु। एवं प्रधीशब्दः नपुंसके बोध्यः प्रधि प्रधिनी प्रधीनि। प्रधिया प्रधिना। प्रधिये प्रधिने। नपुंसकलिङ्गमें सभी ईकारान्त उकारान्त शब्द ह्रस्वान्त हो जाते है। मधुशब्दका रूप भी तथैव मधु मधुनी मधूनि। शेष रुप भानु सदृश समझें। सुष्ठु लुनाति इति सुन्दर छेदन या लवनकर्ता अर्थसे अर्थवान् प्रासञ्ज्ञक सुलू—सु। नपुंसक ह्रस्वे सोर्लुक्। सुलु सुलुनी ह्रस्वे औ के स्थानमें शी नुन्। अत्राऽपि सुलु—टा इति दशायां।

अच्छा छेदनकर्ता अर्थ पुंलिगमें प्रतीत हैं नपुंसकमें भी। अतः भाषितपुंस्क

सुधिने इत्यादि । मधु मधुनी मधूनि । मधुना हे मधो हे मधु। एवमम्ब्वादयः । सुलु सुलुनी सुलूनि । सुल्वा सुलुना इत्यादि । धातृ धातृणी धातॄणि हे धातः हे धातृ । धात्रा धातृणा धातॄणाम् । एवं ज्ञातृकर्त्रादयः ।(४) **एच इग्घ्रस्वादेशे १।१।४८॥** आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु मध्ये एच इगेव स्यात् । प्रद्यु प्रद्युनी प्रद्यूनि । प्रद्युना इत्यादि । प्ररि प्ररिणी प्ररीणि । प्ररिणा । **एकदेशविकृत-**

होनेसे पुम्वद्भाव, पुलिङ्गवत् रूप । 'ओः सुपि' से यण् । सुल्वा । यण् अभावपक्षमें सुलुना इत्यादि । चतुर्थीमें सुल्वे सुलुने । सुल्वः सुलुनः । सुल्वोः सुलुनोः इत्यादि । दधाति=धारयति पोषयति लोकान् । जो जगतका धारण या पोषण करे वह धाता है। धारणकर्तृत्व या पोषणकर्तृत्व सभी लिङ्गमे हैं। धातृ—सु, नपुंसके सुलोपः । धातृ धातृणी (ओ स्थाने शी नुं) धातॄणि । जश्शसोः शि नुं दीर्घः । हे धातृ सु, तस्य नपुंसक लुक् । ह्रस्वस्य गुणः (अर्) रेफस्य विसर्गे । हे धातः । पक्षे हे धातृ । टादि विभक्तिमें धारण या पोषण अर्थ दोनों लिंगमें होने से भाषितपुंस्के पुम्वद्भावे यणि । धात्रा । पक्षे नुमि णत्वे धातृणा । धातृ—आम् । अत्र नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुम् को बाधकर नुट् दीर्घ णत्व । धात्रे धातृणे धातृभ्यां धातृभ्यः । धातुः धातृणः । धात्रोः धातृणोः इत्यादि । एवं ज्ञातृ, कर्तृ, हन्तृ इत्यादि । जो भाषितपुंस्क है' उन्हे समझें । ज्ञातृ ज्ञातृणी ज्ञातॄणि । कर्त्रा कर्तृभ्यां कर्तृभिः । हन्त्रे हन्तृभ्यां हन्तृभिः । कर्तुः कर्तृणः । हन्त्रोः हन्तृणोः ।

(४) **एच्** =ए ओ ऐ औ । इक्=इ उ ह्रस्वादेशे ह्रस्व आदेश होनेपर । आदिश्यमानेषु=आदेश होनेवाले ह्रस्वोंके मध्यमें एच्के स्थानमें इक् ही आदेश हो । प्रकृष्टा द्यौः यस्मिन्दिने=स्वच्छ आकर्षक प्रकाशमान आकाश हों जिस दिन, वह प्रद्यु है । प्रद्यो शब्दसे प्रा०संज्ञासे 'सु' विभक्ति नपुंसक लिङ्गमें वर्तमान प्रातिपदिक प्रद्योको हो । परञ्च कौन सा ह्रस्व हो, तब निर्णायक सूत्र—ऐच् इक् ह्रस्वादेशे एच्के स्थानमें ह्रस्व आदेश इक् हीं हो। अकार नहीं। ए ऐ के स्थानमें इ हो। ओ औ के स्थानमें ह्रस्व उ हो । इसका रूप मधुशब्दकी तरह संचालित करें। स्वमोर्लुक् । प्रद्यु प्रद्युनी । **प्रद्यो+औ** अत्र नपुंसक शी आदेशे, नुमागमे । प्रद्यूनि । अत्र ह्रस्वे, जश्शसोः शि नान्त उपधा दीर्घः । प्रद्युना प्रद्यवा तृतीया एकवचने टा नुम् । अत्र पुम्वद्भाव न इति केचित् । निर्मल दिन अर्थ प्रवृत्ति निमित्त, दोनों लिङ्गोमें एक होनेसे यद्यपि भाषितपुंस्क है । जो इगन्त होनेपर पुम्वद्भाव करता हैं । परन्तु 'प्रद्योः' शब्दः भाषितपुंस्कः स इगन्तः नास्ति, य इगन्तः प्रद्युशब्दः स भाषितपुंस्क इति नास्ति अतो न पुम्वद्भावः । भाषितः पुमान् येन । तथापि एकदेशविकृतन्यायेन प्रद्यो या प्रद्युमें कोई अन्तर नहीं है । हे प्रद्यु हे प्रद्यो । प्रद्युना, प्रद्यवा प्रद्युभ्यां प्रद्युभिः । प्रद्युने प्रद्यवे प्रद्युभ्यां प्रद्युभ्यः । प्रद्युनः प्रद्यवः प्रद्युनोः प्रद्यवोः प्रद्यूनाम् । प्रद्युनि प्रद्यवि इत्यादि । प्रकृष्टाः रायः धनं यस्य तत्कुलं

मनस्यान्यवत्। प्रराभ्यां प्ररीणाम्। सुनु सुनुनी सुनूनि सुनुना इत्यादि।

इत्यजन्ताः नपुंसकलिङ्गाः।

॥ अथ हलन्तपुलिङ्गप्रकरणम् ॥

(५) होढः ८।२।३१। हस्य ढः स्याज्झलि पदान्ते च। हल्ङ्याबिति सु

प्ररि। प्ररै शब्दस्य प्रासंज्ञायां सु नपुंसके वर्तमानस्य प्रातिपदिकस्य एच् स्थाने इ भवति। सुलोपे प्ररि। प्ररै—औ। ह्रस्वे इ औ स्थाने शीभावे नुम् णत्वे दीर्घे। प्ररिणी प्ररौणि अत्रापि ह्रस्वे। प्ररै जस् जश्शसोः 'शि' नुम् णत्वे अत्रापि प्रद्यु इव रूपं पुंवद्भावश्च बोध्यः। हे प्ररे प्ररि। **एकदेशविकृतम्** प्रराभ्यां। किसी एक अंश में विकार या त्रुटि आ जानेसे **अनन्यवत्**=अन्य अर्थवाला नहीं होता। जैसे—छिन्ने पुच्छे श्वा गर्दभो न भवति। कुत्तेकी पूंछ कटी तो वह गदहा नहीं होता। वैसे प्ररि—भ्याम्। यहां रै के स्थानमें रि होंने पर भी जो अर्थ प्ररै का था, वही अर्थ प्ररिमें भी है। अतः रायोहलिसूत्रसे आकारान्त होकर सिद्ध। हलादि विभक्ति परे सर्वत्र आत्व। शोभना—दर्शनीया नौः (तरिणिः) यस्य तत् कुलम्। सुनु। सुनौ–सु, अत्र औ स्थाने उ ह्रस्वादेशे, स्वमोर्लुकि सुनु सुनुनी इत्यादि। मधुशब्दवत् रूपं संचालनीयम्।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकरीटीकायामजन्तनपुंसकलिङ्गाः।

अथ हलन्तपुलिङ्गप्रकरणम्

अजन्तपुलिङ्ग समाप्तिके अनन्तर हलन्तशब्दोंमें सत्वगुण प्रधानशब्द (पुलिङ्ग) का कारण प्रस्तुत करते है। जिस प्रकार अजन्तमें अच् प्रत्याहारके वर्ण अ इ उ आदि क्रमानुसारीशब्द उपस्थित किये गये। इसी प्रकार हल् प्रत्याहारके वर्णोंका शब्दविन्यास हलन्तप्रकरणमें हलवर्ण हयवरट् आदि क्रमानुरोधसे प्रस्तुत करते है। यकारान्त शब्द हलन्त नहीं होते, अतः हकारान्त शब्दसे प्रकरणका प्रारम्भ।

(५) हः=हके स्थानमें ढः हो, झलि। झलप्रत्याहारके अक्षर परे हो या पदान्तमें हो। पदान्तत्वात्=पदस्य अन्ते हकार इति ज्ञात्वा हस्थाने ढ लिढः। प्रत्ययलक्षणेन सुलोपं स्वीकृत्य, झलि परे ज्ञात्वा, झलां जशोऽन्ते इति ढस्थाने जश्त्वं डः। वाऽवसाने चर्त्वं टः।

यथा—**लेढि**=आस्वादयति इति लिट् (चाटनेवाला) आस्वादग्रहणकर्ता अर्थसे अर्थवान् प्रासंज्ञक लिहशब्दात् आस्वादनकर्ता अर्थे सु उ इत्। सको अपृक्तसंज्ञा, हल्ङ्यादिलोप प्रथम होंता है सपादसप्ताध्यायिस्थकार्यं होनेसे। ततः होढः ह स्थाने ढ़ः कृते। लिढ-झलां जश इति जश अवसानसंज्ञा वाऽवसाने इति चर्त्वं विकल्प, लिट्

लोपः । पदान्तत्वाद्धस्य ढः । जश्त्वेचर्त्वे । लिट् लिड् लिहौ २ लिहः । लिड्भ्यां । लिटत्सु, लिट्सु । (६) दादेर्धातोर्घः ८।२।३२। झलि पदान्ते चोपदशे दादेर्धातोर्हस्य घः । (७) एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८।२।३७। धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य वशो भष्, से ध्वे पदान्ते च । इह व्यपदेशिवद्भावेन धात्ववयवत्वाद्भष्भावः । जश्त्वचर्त्वे । धुक् धुग् । दुहौ दुहः दुहा । धुग्भ्यां । धुक्षु (८) वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ८।२।३३। एषां हस्य वा घो

लिड् । स्वादकः । दो आस्वादकर्ता अर्थ रहने पर द्विवचन लिह्–औ । वर्णसम्मेलने लिहौ लिहः । यह रूप जस्, ङसि ङस्में समान होगा । लिहा लिड्भ्यां लिड्भिः । ह् स्थाने ढः जश सर्वत्र समान । लिहे लिड्भ्यां लिड्भ्यः । लिहः लिहोः लिहाम् । लिहि लिहोः । सप्तमी बहुवचने लिह्–सु इति दशावां होढः इति ह स्थाने ढकृते, ढकारस्य जश ड कृते लिट्सु ङः सि धुट् ध आगमे अनुबन्धलोपे । खरि च धस्थाने त्, डस्थाने ट् कृते लिट्त्सु । धुटः अभावे चर्त्वे लिट्सु । इस प्रकरणमें अजादिविभक्ति परे विशेष कार्य नहीं होता । हलादिमें सामान्य विशेष दोनों कार्य यथा योग्य होते है । लिहके समान ही प्रायः सभी हकारान्त होंगे ।

(६) दादेः=द अक्षर आदिमें हो वह दादि है । उपदेशे=मुनियोंके प्रथम उच्चारणमें दादिधातुके ह् को घ हो । झलिप्रत्याहारके अक्षर परे हो या पदान्तमें हो । यहां दादिपद उपदेश अवस्थाका होना अनिवार्य है ।

(७) एकाचः एकोऽच् यस्मिन् एक अच् हो, जिस धातुमें या धातुका अवयव एक अच् हो, झषन्तस्य झ भघ ढ ध ये अक्षर अन्तमें हों तब टाप् (ब, ग, ड, द) के स्थानमें भष् (भ ध ढ घ) हो, से–सकारे परे, ध्वे=ध्वं प्रत्ययपरे पदान्ते—पदके अन्तमें हो । यपदेशिवद्भावेन=विशिष्टः उपदेशो व्यपदेशः मुख्यव्यवहारः स अस्ति अस्य व्यपदेशी—मुख्यव्यवहारवान् तेन तुल्यभावेन (धातुका अवयव) मानकर भष्भाव धातुमें । यथा—दोग्धि इति धुक् (दूहनेवाला) अर्थमें अर्थवान् प्रासंज्ञकः दुहशब्दः तस्मात् सु स, तस्य अपृक्तसंज्ञा, हल्ङ्यादिलोप । दकारादि धातुः दुह इति । तस्य हस्थाने दादेर्धातोर्घः कृते दुघ् । अयं घकारान्तः दादिधातुश्च । व्यपदेशिवद्भावेन (अमुख्ये मुख्यव्यवहारेण) व्यवहारभावसे एकाचोऽपि=इस धातुके जश् द, भष् ध हुआ । बाह्यप्रयत्नके परीक्षणसे । यहां झल् को जश ग, वावसाने चर्क धुक् धुग् दुहौ दुहः । दुहं दुहौ दुहः । दुहा दुह–भ्याम् । अत्रापि षत्वे भष्भावेन द स्थाने ध जश ग । धुग्भ्यां । दुहः दुहोः दुहां । सप्तमी बहुवचने दुह–सु इत्यवस्थायां दादेर्धातोर्घः भष्भावेन ध । जश ग चर्त्वं क धुक्—सु । आदेशप्रत्यययोः षत्वे । क ष संयोगे क्ष कृते धुक्षु । यहां झषन्त सिद्धिके लिए भष्भाव प्रथम होता है ।

(८) द्रुह—(द्रोह करना) मुह मुग्ध चित्तविकल, स्नुह (वमनकर्ता) स्णिह (स्नेहकर्ता) इन शब्दोंके ह को विकल्पसे घ हो, झलिपरे, या पदान्तमें । ईर्ष्या द्वेष

झलि पदान्ते च। ध्रुक् ध्रुग् ध्रुट् ध्रुड् द्रुहौ द्रुहः। ध्रुग्भ्यां ध्रुड्भ्यां। ध्रुक्षु, ध्रुट्त्सु ध्रुट्सु। एवं मुहः।(२८०) **धात्वादेः षः सः** ६।१।६४। उपदेशेऽधातोरादेः षस्य सः स्यात्। स्नुक् स्नुग् स्नुट् स्नुड्। एव ष्णिह। (८१) **इग्यणः संप्रसारणम्** १।१।४५। यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात्। (२) **वाह ऊठ्** ६।४।१३२। भस्य वाहः सम्प्रसारणमूठ्। (३) **संप्रसारणाच्च** ६।१।१०८। सम्प्रसारणादचि परे पूर्वरूपमेकादेशः। वृद्धि

द्रोह करने अर्थमें प्रसिद्धः द्रुहशब्दः प्रासंज्ञकः तस्मात् सु तस्य हल्ङ्यादिलोपः। अत्र होढः ढ प्राप्तः तं प्रबाध्य, दादिमत्वा घत्वे प्राप्ते,तं प्रबाध्य वाद्रुह सूत्रेण पाक्षिक घ, भष्भावे, जश चर् ध्रुक् ध्रुग् पक्षे ढत्वे, जश चर्। द्रुह्यति, ध्रुट् ध्रुड्, द्रुहो द्रुहः। विकल्प घत्व तथा ढत्व, जश्त्व, चर्त्वसे ध्रुग्भ्यां ध्रुड्भ्यां। सप्तमी वहुवचने द्रुह्–सु। घत्व पक्षे भष्भावे चर्त्वं क क ष संयोगे ध्रुक्षु। पक्षे ढत्वे भष्भावे जश्त्वे, धुडागमे चर्त्वे ध्रुट्त्सु। धुड्भावे, ध्रुट्सु। द्रुहा ध्रुग्भ्यां ध्रुड्भ्यां ध्रुड्भिः ध्रुग्भिः। विभक्तिका अर्थ पहले ही समझाया गया है। एवं इसी प्रकार मोह अज्ञानमें पड़ा व्यक्ति अर्थवत् प्रा० संज्ञा करके मुह शब्दसे भी रूप बनेंगे। मुह्यति, मुक् मुग्, मुट्, मुड् मुग्भ्यां मुड्भ्याम्।

(२८०) **धातुके** आदि षको स हो। स्नुह्यति=वमनकर्ता अर्थमें विद्यमान ष्णुह को प्रातिपदिकसंज्ञा 'सु'। धातुके आदि षको स हुआ। अत्र णत्वस्य निमित्तं षकार (निमित्ताऽपाये नैमित्तकस्यापि अपायः। निमित्त=कारण (ष) के हट जाने से (कार्य णत्व भी हट गया। स्नुह–सु वाद्रुह सूत्रेण हस्थाने विकल्प घकृते सुका प्रथम ही हल्ङ्यादिलोप–होगा। जश्चर् स्नुक् स्नुग्। पक्षे ढ जश ड विकल्पेन चर्त्वं। स्नट् स्नुड्: इसी प्रकार ष्णिह (प्रेम करनेवाला) स्नेही अर्थसे अर्थवान्को धात्वादेः षः सः कारणभावे कार्याभावः, स्निहशब्दस्य प्रासंज्ञा स्वादिः सुलोपः घ ढ जश्त्व चर्त्वेषु स्निक् स्निग्। पक्षे ढ जश चर्त्वं। स्निट् स्निड्। स्निक्षु, स्निट्सु स्निट्त्सु।

(१) **इ** यणः य व र ल के स्थानमें प्रयुज्यमानः=प्रयोग किया गया इक् सम्प्रसारणसंज्ञक हो। (२) **वाह** भसंज्ञक वाहशब्दके आदि व को सम्प्रसारण ऊठ् ऊ हो। (३) **सम्प्रसारणात्**=जिसको सम्प्रसारणसंज्ञा हुई हो। उससे परे अच् को पूर्वरूप एकादश हो। यथा विश्वं वहति इति विश्ववाट्–ब्रह्माण्डका नेता। विश्वका पालनपोषणरूप भारवोंढा परमात्मा। विश्वाह सु यहां भी ढत्व जश्त्व चर्त्वं विश्ववाट्, विश्ववाड्, विश्ववाहौ विश्ववाहः। विश्वाहं विश्ववाहौ विश्वौहः। विश्ववाह शब्दसे कर्मकारकके बहुवचने शस्=अस्। भसंज्ञा अत्र इग्यणः सम्प्रसारणं, यण् वाह इत्यत्र वकारः तस्य स्थाने प्रयुज्यमान इक् सम्प्रसारणसंज्ञक ऊठ् ऊकारः विश्व ऊहा सम्प्रसारणाच्च पूर्वरूपे। ऊ ठिपरे पूर्वपरस्थाने वृद्धौ रुपम्। विश्वौहा विश्ववाड्भ्यां विश्वौहे विश्वौहः विश्वौहोः विश्वौहाम्, एव भारं वहतीति भारवाट्

विश्वौहः । इत्यादि । (४) **चतुरनडुहोरामुदात्तः** ७।१।९८। सर्वनामस्थाने । (५) **सावनडुहः** ७।१।८२। अस्य नुम् स्यात्सौ परे। आच्छीनद्योरिति सूत्रादादित्यधिकारादवर्णात्परोऽयं नुम्। अतो विशेषविहितेनाऽपि नुमा आम् न बाध्यते। आमा च नुम्न बाध्यते। सुलोपः संयोगान्तस्य लोपः। नुम्विधिसामर्थ्याद्वसुस्त्रंस्विति दत्वं न। संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वान्नलोपो न। अनड्वान्। (६) **अम्सम्बुद्धौ** ७।१।९९। चतुरनडुहोः अम्स्यात्सम्बुद्धौ परतः। हे अनड्वन् अनड्वाहौ अनड्वाहः। अनडुहः। (७) **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** ८।२।७२। सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात्पदान्ते। अनडुद्भ्यामित्यादि। सान्तेति किं? विद्वान्। पदान्ते किं? स्रस्तं ध्वस्तम्।

भारवाहौ भारवाहः। शसादौ भारौहः भारवाड्भ्यां भारवाड्भिः। भारौहे भारवाड्भ्यां भारवाड्भ्यः। भारौहः भारौहोः भारौहां, भारौहि भारवाट्सु भारवाट्त्सु।

(४) **अनयोः** चतुर्शब्द तथा अनडुह शब्द, इन दोनोंको आम् हो, सर्वनाम स्थानसंज्ञकपरे। (५) **अनडुहः** अनडुहशब्दको नुम्का आगम हो, सुपरे।

आत्=आच्छीसे आत् आया। उसके अधिकारमें अकारसे परे नुम् हो। इस प्रकार विशेषविहितेन=विशेषनियमसे नुम्का विधान हुआ। अतः नुम्से आम् नहीं बाधा जायगा। अवर्णसे नुम्के प्रति आम्का बाध्य बाधकभाव नहीं। इस प्रकार अम्के साथ भी नुं का परस्पर विरोध नहीं। अम् होनेपर नुं होगा। उसका उपजीवक नुं हैं। सुलोपानन्तरं हकारस्य संयोगान्तलोपे सति नकारः पदान्तो भवति। वसुस्रंसु इति न स्थाने द कुतो न ? अतः कथितं मूले नुम्बिधानसामर्थ्यात्=नुमागम करनेकी शक्तिसे, यदि नको द होता नुं पढ़ना व्यर्थ होता। अतः नको द नहीं।

यथा—गाड़ी खींचनेवाला, तगड़ा एक बैल अर्थमें अनडुह—सु। अत्र अनडुहोः आम् आगामे सर्वनामस्थानपरे सु अस्ति। अनड आह—उकारस्य यण्। अनड्वाह—स सावनडुहः इति सु परे नुं न। अनड्वानः स। ततः सुलोपः संयोगान्तः लोपश्च तस्य संयोगान्तलोपस्य असिद्धिसम्भवात् नलोपो न। दत्वमपि न, नुं विधानात् अनड्वान्।

(६) **सम्बुद्धौ**—सम्बुद्धिसंज्ञक सु परे आम्को बाधकर अम् हो जाय। हे अनडुह सु। आम्का बाधक अम्। सावनडुह इति नुं अनडुनह। यण् सुलोपादिः हे अनड्वन्। अत्र एङः पदान्तात् इति पूर्वरुपो न भवति। हे है प्रयोगे हैंहयोः इति प्रगृह्यसंज्ञा प्रकृतिभावात्। हे अनडुह—औ, अत्र आम् यण। अनडुहः। अनडुहा—अत्र किमपि कार्यं न भवति। अनडुद्भ्याम्। (७) **वसु** अन्ते यस्य स वस्वन्तः वस् अन्त में हो, सान्तः—स अन्तमें हों और स्रंसादेः=स्रंसु, ध्वंसु तथा अनुडुह इनके अन्त्य अल् वर्णको द हो पदान्तमें। अनडुह—भ्याम्। अत्र ह स्थाने वसुस्रंसु सूत्रेण द कृते अनडुद्भ्यां मित्यादि। सूत्रमें वस्वन्तशब्द सान्त ही हो ऐसा क्यों ? इसलिए कि विद्वान्शब्द वस्वन्त है सान्त नहीं वहां नको द न हो इसलिए सान्त कहा। साम्प्रतं नायं सान्तः।

(८) सहेः साडः ,सः ८।३।५६। साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात्। तुराषाट्, तुरासाड् तुरासाहौ। तुराषाड्भ्यामित्यादि। (९) दिव औत् ७।१।८४। दिविति प्रातिपदिकस्यौत्स्यात्सौ। सुद्यौः सुदिवौ। (१०) दिव उत् ६।१। १३१॥ दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात्पदान्ते। सुद्युभ्यामित्यादि। चत्वारः चतुरः चतुर्भिः चतुर्भ्यः। १ षट्चतुर्भ्यश्च ७।१।५५॥ एभ्य आमो नुडागमः स्यात्। (२) रषाभ्यां नो णः समानपदे ८।४।१। चतुर्णाम्। (३) रोः सुपि ८।३।१६। रोरेव विसर्जनीयः सुपि, नान्यरेफस्य। चतुर्षु। (४) मो नो धातोः ८।२।६४। पदान्ते। प्रशान् प्रशामौ। (५) किमः कः

सूत्रे पदान्तग्रहणं किमर्थं। स्रस्तं खिसका हुआ। ध्वस्तं नष्टभ्रष्ट हुआ। यहां सको द न हो इसलिए पदान्त पढ़ा। द होता तो शब्दशक्ति नष्ट होती।

(८) **सहे साडः**=सहशब्द यदि साड् रूपमें हो गया हो तो उसके सको मूर्धन्य ष हो। तुरां बज्रं साहयति प्रहरति इति तुराषाडिन्द्रः अर्थसे अर्थवान् तुरासाह–सु होढः ढत्वे। सहे साडः मूर्धन्यादेशे षकारे। तुरासाहौ, तुरासाहः तुराषाड्भ्यां। अत्र ढ जश्च र(९]दिव्शब्दः यदि प्रातिपदिक हो तो उसके अन्त्य अल् वके स्थानमें औत् औ हो, सुपरे। शोभनाद्यौः सुन्दरस्वच्छ आकाश अर्थमें सुदिव्—सु। यहां दिव् प्रातिपदिकका अन्त्य अल् व है। उसको औ हुआ। दिमें इको यण् रुत्वे विसर्ग सुद्यौः सुदिव्–औ=सुदिवौ सुदिवः। सुदिवा, सुद्रिव–भ्याम्। स्वादिसर्वनामिति पदसंज्ञा। (१०)**दिव्शब्दके** अन्त्य अल् (व)के स्थानमें उ हो पदके अन्तमें। यहां व को उ, इ को यण। सुद्युभ्यामित्यादि। सुदिवः, सुदिवोः। सुदिवि, सुदिवोः सुद्युसु। चतुर्–जस्। चतुरनडुहोः,से आम्अनुबन्धलोपः यण् रुवि, चत्वारः चतुरः शसिविभक्तौआम् न सर्वनामस्थानाभावात् भिस्। चतुर्भिः चतुर्णाम्।(१) **षट्संज्ञकशब्द** तथा चतुर शब्दसे परे आम् को नुट् आगम हो। चतुरशब्दात् सम्बन्धेअर्थेआम् दशायां चतुर शब्दात् परःआम्। उक्तसूत्रेण नुट् न सञ्जातः चतुर्–नाम्। (२) र तथा षसे परे न को ण हो समानपदे–एकपदमें। अचोरहाभ्यां द्वे इति विकल्पेन द्वित्वे चतुर्ण्णाम्। चतुर्णाम्।(३)रोः सप्तमीबहुवचन सुप्परे रहते रुके रको ही विसर्ग हों। अन्य रको नहीं, चतुर्शब्दात्प्रातिपदिकात् सुप्। रेफः इण् प्रत्याहारे अस्ति आदेशप्रत्ययोः इति षत्वम्। चतुर्षु अत्र रेफस्य विसर्गं प्राप्ते तत्र नियमसूत्रम् रोः सुपि। रोरेव रुके ही रको विसर्गः। न तु अन्यस्य। रुका र नहीं, न विसर्गः। (४) **धातुके** मको 'न' हो पदान्तमें प्रकर्षेण शाम्यति प्रशान् (शान्तपुरुष) प्रशाम् शब्दात् सु तस्य हल्ङ्यादि लोपे। धातोः मस्थाने न कृते सति प्रशान् प्रशामौ प्रशामः। प्रशामा प्रशांभ्यां प्रशांभिः। प्रशामे। प्रशामः प्रशामोः प्रशामाम्। प्रशामि। अत्र नलोपो न, नकारस्य असिद्धत्वात्। सप्तमीबहुवचने प्रशान्सु। नश्च इति विकल्पेन धुट् प्रशान्त्सु इत्यपि रूपं भविष्यति। (५) **किमः**=किम्के स्थानमें क आदेश हो, विभक्तिपरे प्रश्नवाचक सर्वनाम किं शब्दको प्रासंज्ञा सु। किमः क आदेशे रुत्वे विसर्गे। कः कौ (कि–औ

७।२।१०३॥ विभक्तौ । कः कौ के इत्यादि । (६) **इदमो मः** ७।२।१०८। इदमो मस्य मः स्यात् सौ परे। त्यदाद्यत्वापवादः। (७) **इदोऽय् पुंसि** ७।२।१११। इदं इदोऽय् सौ पुंसि। अयम् त्यादद्यत्वे। (८) **अतो गुणे** ६।१।९७ अपदान्तो गुणे पररूपमेकादेशः स्यात्। (९) ७।२।१०९॥ इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ। इमौ इमे। त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः। (३००) **अनाप्यकः** ७।२।११२। अककारस्य इदम् इदोऽन्, आपि विभक्तौं। आविति प्रत्याहारः। अनेन। (१) **हलि लोपः** ७।२।११३। अककार स्यो

क... श वृद्धिश्च) बहुवचने किन्-जस् सर्वादिगणपठितः किम्शब्दः सर्वनामसंज्ञकः तस्य स्थाने किमः क आदेशे तस्य स्थानिवद्भावेन, जसः शी आदि सर्वनामकार्याणि भवन्ति क आदेशः क इ गुणेके, कम्कौ कान्। केन काभ्यां कैः। कस्मै काभ्यां केभ्यः कस्मात् कस्य कयोः केषाम्। कस्मिन् कयोः केषु किन लोगोंमें।

(६) **इदमः** इदम्शब्दके अन्त्य अल् मको म ही रहें सुपरे। त्यदाद्यत्वा-त्यदादीनामःसे प्राप्त अको बाधकर। अतः अत्व न होकर (म) ही रहा। (७) **इद** इदमशब्दके इद्भागको अय् हो, पुंसि पुलिङ्गमें कु परे। निश्चय (जहां अंगुलि निर्देश सम्भव हो उस) अर्थसे अर्थवान्। सर्वनाम प्रासंज्ञक इदं शब्दात् सु। अत्र म स्थाने त्यदादीनामः इति अत्वं प्राप्तः, तं बाधित्वा इदमो मः विधानम्। इदोऽयपुंसि इद् भागस्य अय्आदेशे सुलोपः अयम्। द्विवचने इदम्-औ इति स्थितौ त्यदादीनामः सूत्रेण मस्य अत्वे। ८ अतः=पदान्तभिन्न ह्रस्व अकारस्य गुणे=अ ए ओ से परे हो तो पररुप एकादेश हो। इद—औ। (९) **इदम्शब्दके** दको म हो विभक्तिपरे। इम-औ। वृद्धिरेचि इति वृद्धिः। इमौ इनदोनोंमें। पूर्वसवर्णदीर्घका नादिचिसे निषेध। बहुवचने जसि विभक्तौ इदम्-अस्। अत्र अत्वं पररुपं दश्चेति दस्य म। अदन्त सर्वनाम्न जशः शी आदेशे, श इत्। गुणे च इमे। (ये सब) त्यद्यद् इत्यादि सर्वनामको सम्बोधन नहीं होते इत्युत्सर्गः=यह सामान्य नियम हैं। इमम् इमौ इमान्।

(३००) **अन्** अपि अकः=ककार रहित इदं शब्दके इद्भागको अन् आदेश हो। आपिपरे। अत्र आप् इति प्रत्याहारः टासे लेकर सुप्के प तक। अनेन इदम्—टा त्यदादिनामः अत्वे, अतो गुणे पररुपे दश्चेति दस्य म प्राप्ते, तं बाधित्वा टा परे इद्भागस्य अन् आदेशे। डाङसि सूत्रेण इन् आदेशे गुणे रुपम्। इदं-भ्यां अत्वे, पररुपत्वे, दश्चेति मकारः प्राप्तः तं बाधित्वा इद्भागस्य अन् आदेशः प्राप्तः, तं बाधित्वा

(१) **हलि** ककाररहित इदं शब्दके इद्भागका लोप हो आपि=टासे सुप् तक विभक्तिपरे। किन्तु हलादि विभक्तिपरे अवश्य हो (पू०) अभ्यास तथा विकारको छोड़कर। अनर्थके=अर्थ रहितमें अलोन्त्यविधिः=अलोन्त्यस्य सूत्रकी प्रवृत्ति नहीं होती। अर्थात् अर्थवान् स्थलमें आलोन्त्यस्य सूत्र लगता हैं निरर्थकमें नहीं। किन्तु पिपर्ति आदिमें अभ्यासके स्थानमें जहां विकार (गुण आदि) होना है वहां निरर्थकमें में भी परिभाषा लगती है तभी अन्त्य ऋको अर् हुआ। इदं-भ्यां दशायां हलिपरे

इदम् इदो लोप आदि हलादौ । **नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे** ॥ (२) **आद्यन्तवदेकस्मिन्** १।१।२१। एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव स्यात् । सुपि चेति दीर्घः । आभ्याम् । (३) **नेदमदसोरकोः** ७।१।११। अककारयोरिदमदसोर्भिस् ऐस् न स्यात् । एभिः अस्मै एभ्यः ३ । अस्मात अस्य अनयोः एषाम । अस्मिन् एषु । (४) **द्वितीयाटौस्स्वेनः** २।४।३४॥ द्वितीयायां टौसोश्च परत इदमेतदोरेनादेशः स्यादन्वादेशे । किंचित्

इद्भागस्य लोपे । इदम् अर्थवान् है इसलिए अलोन्त्यविधि अन्त्य अल्के स्थानमें विधि हुई । अ-भ्यां यहां सुपि चसे दीर्घ कैसे हो ? क्योंकि अदन्तः (अकरः अन्त्ये यस्य) ऐसा अङ्ग नहीं है । अतः आद्यन्तवत् । (६) **एकस्मिन्**—असहाये जहां एक ही वर्ण हो उसमें क्रीयमाणदीर्घ आदि कार्य एक ही में आदि तथा अन्त आदिश्च अन्तश्च अद्यन्तौ तौ इव आद्यान्तवद् (आद्यन्तभावसे) ताभ्यां तुल्यं कार्य हो । यह व्यपदेशिवद्भाव है । एकमें अनेकका व्यवहार लोकप्रसिद्ध हैं । यथा-देवदत्तस्य एकएव पुत्रः स एव जेष्ठः कनिष्ठः मध्यमश्च । यद्यपि अनेकके बिना एकमें ज्येष्ठ कनिष्ठ मध्यम व्यवहार लौकिक है तथापि आरोपित व्यवहार बनता है । जैसे गर्दभे मातुलव्यवहारवत् । अमुख्यमें मुख्यका व्यवहार । इस न्यायसे असहाय अकारमें सहायका आरोप करके अदन्त मानकर सुपिचेति दीर्घः । आभ्यां इदम्-भिस् अत्रापि अत्वें, पररूपे, हलादि भिस्परे इद्भागस्य लोपे, अकारस्य व्यपदेशिवद्भावेन अदन्तं मत्वा अतोभिस् ऐस् प्राप्ते, निषेधसूत्रम् ।

(३) **नेदम** अककारयोः (ककारसे रहित) इदम् और अदस् शब्दसे परे भिस्को ऐस न हो । इति निषेधे । बहुवचने झलि एत्वे रुत्वे विसर्गे । एभिः । इदम् शब्दात् चतुर्थ्याः एकवचने ङे, इदम्-ए, त्यदाद्यत्वें पररूपे सर्वनाम्नः स्मै इति ङे स्थाने स्मै (स्थानिवद्भावसे ङेका विभक्तिधर्म स्मैमें लाकर) हलिलोपः इति इद्भागस्य लोपे । अस्मै । (देहि) आभ्यां एभ्यः । इदम्-भ्यस् अत्वें पररूपे, इद्भागस्य लोपे । व्यपदेशिवद्भावेन एत्वे, रुवि **एभ्यः** । अस्मात् । अत्रापि पूर्ववत्कार्यं, ङसिस्थाने स्मात् इति विशेषः । **अस्य** । अत्रापि ङस् स्थाने स्य । अनयोः । इदम्-ओस् अत्र अत्वे पररूपे, अनाप्यकः इति अन् आदेशें ओसि च इति अकारस्य एकारे, अयादेशे । **एषाम्** । अत्वे पररूपे इद्-आम् । सर्वनाम्नः सुट् आगमे । इद्भागस्य लोपे, अनुबन्धलोपे च । बहुवचने झलि एत्वें षत्वें । सप्तम्यां ङि स्थाने स्मिन् आदेशें अस्मिन् अनयोः एषु । हलादि विभक्ति परे इद्भागस्यलोपो निश्चितः ।

(१) **द्वितीया** (अम् औट् शस्) टा ओस विभक्ति परे इदम् तथा अदस शब्दके स्थानमें एन आदेश हो अन्वादेशकी स्थितिमें । किसी कार्यको विधातुं करनेके लिए । उपात्तस्य स्वीकार किये गये का कार्यान्तिर=अन्य कार्य करनेके लिए पुनपारुदान पुनः स्वीकारकरना ही अन्वादेश है । यथा-व्याकरण पढ़ लिया या पुनः

कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानम् अन्वादेशः। यथा अनेन व्याकरणमधीतम्,एनं छन्दोऽध्यापयेति। अनयोः पवित्रं कुलम्, एनयोः प्रभूतं स्वमिति। एनम् एनौ एनान्। एनेन एनयोः। राजा। (५) **न ङिसम्बुद्ध्योः** ८।२।८। नस्य लोपो न स्यात् ङौ सम्बुद्धौ च। हे राजन्। ङावुत्तरपदे प्रतिषेधः। ङौ तुच्छन्दस्युदाहरणम्। परमे व्योमन् सर्वा भूतानि ब्रह्मनिष्ठः। राजानौ राजानः राजानं राजानौ। जञोर्ज्ञः। अल्लोपोऽनः। चुत्वं। राज्ञः। (६) **नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति** ८।२।२। सुब्विधौ

पढ़ने चले। तब कहा इसने व्याकरण पढ़ लिया, इसको वेद पढ़ाइये, प्रथम व्याकरण पढ़नेका विधान हो। पुनः वेद पढ़ने पढ़ानेका विधान किया जाय। इस स्थिति में अम् विभक्तिपरे अदत् स्थाने एन आदेशे। एनम् अनयोः पवित्रं कुलं। यहां कुल की पवित्रताके प्रसंगमें धनकी प्रचुरताका पुनः उपादानकी स्थितिमें एन आदेशः। राजते—शोभते यः सः राजा–राजन् शब्दात् प्रातिपदिकार्थे सु उ–त्, अलोन्त्यात्पूर्वको अपृक्तसंज्ञा, तस्य हल्ङ्यादिलोपे, नान्तस्य उपधायाः दीर्घे। प्रातिपदिकान्त नकारस्य लोपे राजा। हे राजन् शब्दात्सम्बोधने अर्थे सु तस्य हल्ङ्यादि लोपे। नकारस्य लोपे प्राप्ते।

(५) **न ङि** नकारका लोप न हो ङिपरे तथा सम्बुद्धिपरे। प्रत्ययलक्षणेन सु मानकर प्राप्त नलोपका उक्तसूत्रसे निषेध हुआ। (वा०) ङौउत्तर यदि उत्तरभागमें कोई पद हो तो ङिपरे नलोपका निषेध नही होता। अर्थात् न लोप हो (वार्तिक में उत्तरपद समासके अन्तिम पदमें रुढ़ हैं। समासचरमावयवे रुढः। ङीपरे छन्द=वेदमें ही उपयोग है परन्तु वेदमें भी भसंज्ञासे पदका बाध नकारलोपो न। जन्दमें पदमें व्योमन् ङिका लुक्से लोपस्मा है निषेधसामर्थ्यात्प्रत्ययलक्षण लगेगा। नलोप प्राप्त होगा। उत्तरपदे यथा ब्रह्मणि निष्ठा यस्य स ब्रह्मनिष्ठः। भगवानमें अटूट श्रद्धावाला। यहां समासका अवयव उत्तरपद निष्ठा है, उसके परे ब्रह्मन्का न लोप होता है। परन्तु प्रत्ययलक्षणसे विभक्ति परे। नलोपके निषेधका निषेध वार्तिकसे हुआ। ब्रह्मनिष्ठः राजानौ राजन्–औ नान्त उपधायाः दीर्घ एवं राजानः जसि विभक्तौ तथा। राजानं राजानौ राज्ञः प्रातिपदिकात् राजन्शब्दात् कर्मबोधके द्वितीयायाः बहुवचने शस् राजन्–अस् अल्लोपोऽनः अकारस्यलोपे नकारस्य श्चु ञः कृते जञोः स्थाने ज्ञ कृते रुवि० राज्ञः। प्रातिपदिकात् राजन्शब्दात् भ्यां स्वादिषु इति पदसंज्ञायां प्रातिपदिकान्त नकारलोपे। राजभ्यां अत्र सुपि च इति दीर्घे प्राप्ते।

(६) **नलोपः** सुपविधिमें स्वरविधि, संज्ञाविधि, कृदन्तमें तुक्विधिके विषयमें नलोप असिद्ध हो सुपि चसे दीर्घ सुप्विधि है अतः नकार असिद्ध होने से दीर्घ नहीं हुआ। नान्यत्र=अन्यस्थलमे नकार असिद्ध नहीं होता। यद्यपि पूर्वत्रासिद्धंसे नलोप असिद्ध हो जाता तथापि यह सूत्र पढ़नेका प्रयोजन यह है कि (पूर्वेण सिद्धे सति आरभ्यमाणोविधिः नियमाय कल्पते) यदि किसी पूर्वसूत्रसे कार्य सिद्ध होता हो उसी

स्वरविधौं, कृति तुग्विधौं च नलोपोऽसिद्धी, तान्यत्र राजाश्व इत्यादौं। इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वं च न। राजभ्यां राजभिः राजभ्यः। राज्ञि, राजनि। यज्वा यज्वानौं यज्वानः। (७) **न संयोगाद्वमन्तात्** ६।४।१३७। वमन्तसंयोगादनोऽकारस्य लोपो न। यज्वनः। यज्वना यज्वभ्यां। ब्रह्मणः ब्रह्मणा। (८) **इन्हन्पूषार्यम्णां शौ** ६।४।१२। एषां शावेवोपधाया दीर्घः। (९) **सौ च** ६।४।१३। इन्नादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सौं। वृत्रहा।

कार्यके लिए बना दूसरा सूत्र व्यर्थ होकर नियम बनाता है कि नलोपो यदि असिद्धा भवेत् तर्हि सुपिस्वरसंज्ञाकृतितुग्विधिषु एव नलोपो असिद्धः। अन्यस्थले न असिद्धः भवति। (यथा राज्ञः अश्वो राजाश्वः। राजन्-अश्व, नकारलोपे सति अकः सवर्णे दीर्घो भवति। तत्र नकारलोपोऽसिद्धो न भवति। यह दीर्घ सुपि आदि परें रहते कोई विधान नहीं करता। इत्यसिद्धत्वात्=इस सूत्रसे नलोपके असिद्ध होनेसे सुपिच से आत्व, बहुवचने झल्येत्, अतो भिस्ऐस् नहीं लगते। यह सुप्निमित्तक दीर्घमें नलोप असिद्ध करता है। राजभ्यां राजभिः। राज्ञे, राजाभ्यां राजाभ्यः। राज्ञः राज्ञोः राज्ञां। राज्ञि राजन्-ङि। विभाषाङिश्योः इति विकल्पेन अकारलोपे, श्चु जञोर्ज्ञः राज्ञि, लोपस्य अभावपक्षे राजनि।

यज्वा (विधिना इष्टवान्) विधिपूर्वक यज्ञ कर चुका यजमान। इत्यर्थेन अर्थ वत. यज्वन्शब्दात्प्रातिपदिकार्थे सु कर्तरि नान्त उपधायाः दीर्घे सुलोपनलोपौ। यज्वानौ यज्वानः। राजन् शब्दवत् सर्वं रुपम्। केवलम् अनः अकारस्य लोपो न भवति। यतोहि निषेधसूत्र। (७) **नसंयोगा**-'व' या 'म' अन्तमें हो तथा संयुक्त हो उससे परे अन्के अकारका लोप न हो। अतः यज्वनः यज्वना यज्वने आदि। रुप बनते है। यह 'व' अन्तका उदाहरण था। म अन्तका उदाहरण सृष्टिकर्ता अर्थमें प्रसिद्ध ब्रह्मन् शब्दको भी यज्वन्की तरह जाने। ब्रह्मा ब्रह्माणौ ब्रह्माणः। ब्रह्माणं ब्रह्माणौ ब्रह्मणः। शसि विभक्तौ प्राप्त अन् अकारलोपका निषेध इति विशेषः। ब्रह्मणा ब्रह्माभ्यां ब्रह्मभिः। ब्रह्मणे ब्रह्मभ्यां ब्रह्मभ्यः। ब्रह्मणि।

वृत्रं-वृत्रासुर हतवान् इति वृत्रहा इन्द्रः। वासवो वृत्रहा वृषा, इत्यमरः। प्रातिपदिकात् वृत्रहन् शब्दात् वृत्रकर्मकहननकर्ता अर्थे एकवचने सु। सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ इति नान्त उपधायाः दीर्घे प्राप्ते, तं बाधित्वा। (८) **इन्**-इन् प्रत्ययान्तशब्द, दण्डिन्, हन् अन्तमें हो यथा वृत्रहन्, पूषन् सूर्यः, अर्यमन् शब्दोंके उपधाको दीर्घ हो तो 'शि' परे ही हो। अन्यत्र दीर्घ न हो, इति दीर्घस्य निषेधे प्राप्ते। क्योंकि यहां सु परे है शि परे नहीं है। (९) **सौ** इन्नादीनां=इन् हन् पूषन् अर्यमन्, शब्दके उपधा=अन्त्य अल्के पूर्ववर्णको दीर्घ हो तो सम्बुद्धि भिन्न सु परे। इति दीर्घे। सुलोपनपौ वृत्रहा। यद्यपि शिको सर्वनामसंज्ञा कर 'सर्वनामस्थाने उपधादीर्घ सिद्ध हैं। अतः सूत्रने नियम कियाकि, शिके अतिरिक्त स्थलमें कहीं भी दीर्घ न हो,

हे वृत्रहन्। (३१०) **एकाजुत्तरपदे णः** ८।४।१२। एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन् समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य प्रातिपदिकान्तनुम् विभक्तिस्थस्य नस्य णत्वं स्यात्। वृत्रहणौ वृत्रहणः। (१) **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** ७।३।५४। ञिति, णिति प्रत्यये, ने च परे हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात्। (२) **हन्तेः** ७।४।२२। उपसर्गस्थान्निमित्ताद्धन्तेर्नस्य णः। प्रहण्यात्। (३) **अत्पूर्वस्य** ७।४।२२। हन्तेरत्पूर्वस्यैव नस्य णो नान्यस्य। प्रघ्नन्ति। योगविभागसामर्थ्यादनन्तरस्य विधिर्वा भवति, प्रतिषेधो वेति न्यायं बाधित्वा 'कुमति चे'ति णोऽपि

इसलिए वृत्रहणौ वृत्रहणः इत्यादौ न दीर्घः। हे वृत्रहन्। यहां सम्बुद्धि सु है। अतः दीर्घ नही हुआ। न लोप भी प्राप्त है उसका निषेध न ङि सम्बुद्धयोः से। वृत्रहन्–औ दशायां प्रथमायाः द्विवचने उपधायाः दीर्घनिषेधे। णत्वविधायकं सूत्रम्।

(३१०) **एकाच्**—जिस समासमें एक अच् वाला उत्तरपद हो उस समासमें पूर्वपदमें स्थिति णत्वका निमित्त रेफ या षकार उससे परे प्रातिपदिकके अन्त नकारको (नुम्का या विभक्तिका नकार हो) ण हो। प्रसङ्गमें एकाच् उत्तर पद हन् है उसके साथ समासमें पूर्वपद वृत्रमें र णत्वका निमित्त रूप है। अतः प्रातिपदिक वृत्रहन्के अन्त्य नकारको ण हुआ। वृत्रहणौ। (श्रीपाणिमें नुम्के नकारको णत्व, शेषेणका ण विभक्तिस्थ नकारस्थानक है) वृत्रहणं, वृत्रहणौ, वृत्रघ्नः। वृत्रासुरवध किया अर्थेन अर्थवतः प्रासंङ्गक वृत्रहन्शब्दात् द्वितीयाबहुवचने शस्। अनुबन्धलोपे वृत्रहन् अस्। अतः अकारस्य लोपे। (१) हो हन्ते=हन् धातुके हके स्थान में कुत्व =कवर्ग हो ञित् प्रत्ययपरे हो या नकार परे हो।

२ हन्तेः। रषाभ्यां नो णः, उपसर्गादसमासे,से उपसर्गात्। उपसर्गस्थात्=णत्व का कारण (र) उपसर्गमे हो, उससे परे हन्के नको णत्व हो। नान्यस्य=दूसरेके नको णत्व न हो। यथा प्रहण्यात् भिन्नपद है। समानपद नहीं। प्रमें रको निमित्त मान कर णत्व। प्रसङ्गमे उपयोगी सूत्र (३) दूसरा विभाजन अत्पूर्वस्य हन्तेः रषाभ्यां नो णः, हनधातुः अत्पूर्वस्य=अकार पूर्वमें हो तभी नको ण हो। पूर्वेण सिद्धे सति आरम्भविधिः नियमाय भवति। नान्यस्य=जहां अकारपूर्वमें न हो, वहां णत्व न हो। यथा प्रघ्नन्ति! बहुसंख्यक तीव्र हननक्रिया, हो हन्तेःसे कुत्व। हन्तेःसे णत्व प्राप्त था। अत्पूर्वस्य नियमसे निषेध। यद्यपि प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च, एकाजुत्तरपदे णः, कुमति च हन्तेरत्पूर्वस्य, इसी क्रमसे सूत्र पढ़ा गया है। परन्तु विधि या प्रतिषेध अव्यवहितको होता है। अत्पूर्वस्य अपनेसे पूर्व कुमति च के णत्वका निषेध करेगा। उसके पूर्व दोनोका निषेध नहीं, उनसे प्रघ्नन्तिमें णत्व हो जाय, तब बोले योगविभाग इति। हन्तेरत्पूर्वस्य सूत्रके विभाजन शक्तिसे परिभाषा और सभी णत्व विधायकसूत्र बांधे जायेंगे। यही अर्थ योगविभागं निवर्तयति पंक्तिका है।

इससे हस्थाने क, ख, ग, घ, ङ एते प्राप्ताः। परन्तु नाद, अघोष तथा महा–

निवर्त्यंते। वृत्रघ्नः इत्यादि। एवं शार्ङ्गिन्। यशस्विन्। अर्यमन्। पूषन्। (४) मघवा बहुलम् ६।४।१२८। मघवन् शब्दस्य वा 'तृ' इत्यन्तादेशः। ऋ इत्। (५) उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७।१।७०। अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात्सर्वनामस्थाने। मघवान्। इह उपधादीर्घे कर्तव्ये संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वं न भवति, बहुलग्रहणात्। मघवन्तौ मघवन्तः। मघवन्तं मघवन्तौ मघवतः। मघवता। मघवद्भ्यां। तृत्वाभावे सुटि राजवत्। (६) श्वयुवमघोनामतद्धिते ६।४।१३३॥ अन्नन्तानां भानामे-

प्राणप्रयत्नके संशोधनसे घ ही हुआ। रुवि। वृत्रघ्नः। वृत्रघ्ना वृत्रहभ्यां वृत्रहभिः। वृत्रघ्ने वृत्रहभ्यां वृत्रहायः। वृत्रघ्नोः वृत्रघ्ना वृत्रहसु। एवं वृत्रहन् शब्दकी तरह शार्ङ्गिन् (विष्णुः) यशस्विन् अर्यमन् पूषन्, आदि शब्दोंके भी रूप बनेंगे। यशस्वी यशस्विनौ यशस्विनः (शार्ङ्गी शार्ङ्गिणौ शार्ङ्गिणः, अर्यमा अर्यमणौ अर्यमणः।

(४) **मघवन्** शब्दके अन्त्य अल् नके स्थानमें तृ आदेश बहुलं=विकल्पसे हो। ऋ इत्। तृमें ऋके रहनेसे वह अनेकाल् नहीं होता। (नानुबन्धकृतमनेकालत्वम्) अनुबन्धको लेकर अनेकाल् होने का नियम नहीं है। (५) **उगिद** उक्=उ ऋ लृ इति एषान्त उगितः। ते च अच्च उगिदचः-धातुसे भिन्न उगित् तथा च नलोपिनो नकारका लोप हुआ हो ऐसे अञ्च धातुको नुं हो सर्वनामस्थानपरे। महः धनं तेजः, ऐश्वर्य वा अस्ति अस्य इति मघवान् धन, तेज शक्तिसे परिपूर्ण मघवन् शब्दस्य प्रासंज्ञायां सु। 'मघवा बहुलम्' सूत्रेण अन्त नकारस्य तृ आदेशे। ऋ इत् उगित् होनेसे उगिदचां सूत्रेण नुंम्। अनुबन्धलोपे सकारस्य अपृक्तसंज्ञा हल्ङ्यादिलोपे। ततः संयोगसंज्ञा अन्त्यनकारलोपे। नान्तस्य उपधायाः दीर्घे। दीर्घकी कर्तव्यतामें संयोगान्त तलोप असिद्धः। नान्त नहीं दीर्घ कैसे? उत्तर—बहुलग्रहणात्। बहून् अर्थान् लातीति बहुलं अनेक अर्थ प्रकट करे। मघवा मघवन्तौ मघवन्तः। मघवन्तं मघवन्तौ मघवतः। मघवता मघवद्भ्यां मघवद्भिः। मघवतः मघवतोः मघवतां। मघवति मघवत्सु। बहुलग्रहणात् तृत्वाभावे=तृ मघवानौ मघवानः। सुटि सु और जस्, अम् औ, विभक्तियोंमें राजाकी तरह।

(६) **श्वन्** (कुत्ता) युवन् (युवा) मघवन् (इन्द्रः) इन शब्दोंके अन्तमें अन् हो, ऐसे भानाम्=भसंज्ञक अङ्गको सम्प्रसारण वको उ हो, अतद्धिते=तद्धितभिन्न प्रत्यय परे। (इन्द्र कुत्ता तथा युवकको साथमें जोड़नेका उद्देश्य लोभ पदलोलुपता है) इस सम्बन्धमें एक रोचक सूक्ति प्रसिद्ध हैं। यथा काचं मणिं माञ्चनमेक सूत्रे ग्रथ्नासि बाले किमिदं विचित्रं। विचारवान् पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानम हुः। हे बाले शीशामणि सोनाको एकसूत्रमें क्यों गूथ रही हो। वह बोली, विवेकी पाणिनि ने तीनोंको जैसे गूथा है। मघोनः प्रातिपदिकात् मघवन् शब्दात् द्वितीया बहुवचने शस् भसंज्ञायां मघवन् अस्। श्वयुव सूत्रेण व स्थाने उ—सम्प्रसारणे। सम्प्र-

षामतद्धिते परे सम्प्रसारणं स्यात् । मघोनः । मघवभ्यामित्यादि । एवं श्वन् युवन् । (७) **न संप्रसारणे संप्रसारणम्** ६।१।३७। सम्प्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः सम्प्रसारणं न स्यात्। इति यकारस्य न सम्प्रसारणं। यूनः। युवभ्यामित्यादि । अर्वा हे अर्वन् । (८) **अर्वणस्त्रसावनञः** ६।४।१२७। नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्य तृ इत्यन्तादेशो न तु सौ । अर्वन्तौ अर्वन्तः अर्वतः। अर्वद्भ्यां । (९) **पथिमथ्यृभुक्षामात्** ७।१।८५। एषामकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ परे (१०) **इतोऽत् सर्वनामस्थाने** ७।१।८६। पथ्यादेरिकारस्याकारः स्यात्सर्वनामस्थाने । (१) **थो न्थः** ७।१।८७। पथिमथोस्थस्य न्थादेशः सर्वनामस्थाने । पन्थाः हे पन्थाः पन्थानौ पन्थानः । (२) **भस्य टेर्लोपः** ७।१।

सारणाच्चेति पूर्वरूपे गुणे रुवि । मघोना मघवभ्यां मघवभिः । मघोने मघवभ्यां मघवभ्यः । मघोनः मघोनोः मघोनाम् । एवं=मघवन् शब्दकी तरह श्वा श्वानौ श्वानः । श्वानं श्वानौ शूनः । शुना शुने इत्यादि । युवन्शब्दात् प्रातिपदिकात् द्वितीया बहुवचने शसि, युवन्—अस् श्वयुवमघोनां सूत्रेण वस्थाने उ सम्प्रसारणे उ सम्प्रसारणे सवर्णदीर्घे रुत्वे वि० यूनः । न च व की तरह यको सम्प्रसारण क्यों नहीं होता अतः निषेधसूत्र । (७) **सम्प्रसारणपरे** हो तब पूर्व यण्को सम्प्रसारण नहीं होता । इस सूत्रसे निषेध होनेपर वके स्थानमें इ सम्प्रसारण नहीं हुआ । पहले य को ही सम्प्रसारण क्यों नही होता ? इसलिए कि न सम्प्रसारणे सूत्र व्यर्थ होगा । इसकी प्रवृत्तिका कोई स्थल नहीं रहेगा । वह ज्ञापन करता है कि पूर्वयण्को सम्प्रसारण नहीं होता । या अन्त्य यण्को सम्प्रसारण प्रथम हो । अतएव सूत्र चरितार्थ यूना=टा सम्प्रसारणे सवर्णदीर्घे । यूने यूनः, यूनामित्यादि ।

अर्वा अर्वन् (घोड़ा) शब्दात्सु । नान्त उपधादीर्घे सुलोपे अर्वन्—औ ।

(८) **अर्वणः** तृ असौ । अर्वा—नञ् से रहित, अङ्गसंज्ञक अर्वन् शब्दके अन्त्य अल् नको तृ अन्त्यादेश हो, सु परे न हो तो । ऋ इत्से उगित् है **अर्वत—औ** उगिदचां सूत्रेण नुम्=न आगमे, वर्णसम्मेलने अनुस्वारपरसवर्णे च अर्वन्तौ । (पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिस्थलकी तरह जलमें भी बादल बरसते है) **अर्वन्तम् अर्वन्तौ अर्वतः । अर्वद्भिः । अर्वते अर्वद्भ्यां अर्वद्भ्यः । अर्वतः अर्वतोः अर्वताम् । अर्वति अर्वतोः अर्वत्सु ।** (९) **पथि** (रास्ता) मथिन् (मथानी) ऋभुक्षिन् (इन्द्रः आखण्डलः सहस्राक्षः ऋभुक्षा इत्यमरः) इन शब्दोंको आकार अन्तादेश सु परे हो, पथिन्—सु । न स्थाने आकारे । तकार उच्चरणार्थः । पथि—आ । (२२०) **पथ्यादेः** पथिन्, मथिन् ऋभुक्षिन् शब्दके इतः इकारके स्थानमें अत् अ हो, सर्वनामस्थाने सु औ जस् अम् औट् परे रहते । इति इकारस्य अ पथ आ स् (१) **पथि** तथा मथि शब्दके थको न्थ आदेश हो । सर्वनामस्थानपरे । पन्थ आ स् । सवर्णदीर्घेरुत्वे वि० पन्था । औ परे पन्थानौ पन्थानः । पन्थानं पन्थानौ पथः । भसंज्ञकात् पथिन्शब्दात्

८८। भस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात्। पथः पथिभ्यां पथिभ्यः। एवं मन्थाः। ऋभुक्षः। (३) ष्णान्ताः षट् १।१।२४। षान्ता, नान्ता च संख्या षट्-संज्ञा स्यात्। पञ्च पञ्चभिः पञ्चभ्यः २ षट्चतुर्भ्यश्चेति। नुट्। (४) नोपधायाः ६।४।७। नान्तस्योपधाया दीर्घो नामि। पञ्चनां पञ्चसु। (५) अष्टन आ विभक्तौ ७।२।८४। अष्टन् शब्दस्याऽऽत्वं वा हलादौ। (६) अष्टाभ्य औश् ७।२।२१। कृताऽऽकारादष्टनो जश्शसोरौश्। अष्टभ्य इति वक्तव्ये कृताऽऽत्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति। वैकल्पिकञ्चेदमष्टन आत्वम् अष्टनो दीर्घादिति ज्ञापकात्। अष्टौ २। अष्टाभिः अष्टाभ्यः

द्वितीया बहुवचने शसि। भसंज्ञायाम्। (२) भसंज्ञक पथ्यादिके टिका लोप हो। अचोऽन्त्यादिटिसे इन् को टिसंज्ञा तस्य पररूपे कृते वि० पथः। एवं पथा पथियां। पथः पथोः पथां, पथि पथोः पथिषु इत्यादि। पथिन्की तरह ऋभुक्षिन् भी है थोन्थः नहीं लगेगा। ऋभुक्षा ऋभुक्षाणौ। ऋभुक्षाणम् ऋभुक्षाणौ ऋभुक्षः इत्यादि, मथा मथिभ्यां मथिभिः। मथे मथिभ्यां मथिभ्यः। मथः मथोः मथाम्। मथि मथोः मथिषु। (३) ष्णान्ता=ष अन्तमें या न अन्तमें हो ऐसे संख्यावाचीशब्दको षट्संज्ञा हो। पञ्चनशब्द बहुत्वसंख्याका वाचक होनेसे नित्य बहुवचन है। नान्तपञ्चन् शब्दात् जस् या शस्। ष्णान्ताः षट्संज्ञा। षड्भ्यो परयोः जश्शसोर्लुक् न लोपः। पञ्च केवलं स्वादिषु पदसंज्ञायां प्रातिपदिकान्त नकारलोपे पञ्चभिः पञ्चभ्यः। षष्ठी बहुवचने पञ्चन्-आम् दशायां षट्संज्ञा, षट्चतुर्भ्यश्च इति नुट्। अनुबन्धलोपे। पद-संज्ञा नलोपे। (४) नकारान्तशब्दके दीर्घ हो नाम्परे। इतिदीर्घे पञ्चानाम्।

(५) रायो हलिसूत्रसे हलिपदकी अनुवृत्ति करके अष्टन् शब्दके अङ्गके अन्त्य अल्को आ हो। हकादि विभक्तिपरे हो तो विकल्पसे। प्रमाण अष्टनो दीर्घात् सूत्र में दीर्घ ग्रहण हैं। (६) कृताकारात्=किया गया है आकार जिसमें, ऐसे अष्टन् शब्दसे परे जस् तथा शस्के स्थानमें औश् आदेश हो। श इत्का प्रयोजन शित् मानकर सर्वादेश। अनेकाल् और शित सम्पूर्णको आदेश हो। जश् शस्के ज शकी इत्संज्ञालोप होनेपर हलादिपरे न हो रहा, आत्व नहीं होगा कृताकारात किया हुआ आकार ऐसा अष्टन् शब्द दुर्लभ है। औश् आदेश कैसे? तव अष्टाभ्यः औश् सूत्र व्यर्थ होकर नियम बनाता हैं कि अष्टभ्यः इति वक्तव्ये सूत्रमें अष्टाभ्यः न कह कर अष्टभ्यः यही कहना था, किन्तु वह किया हुआ आत्वनिर्देश आ उच्चारण ज्ञापन करता है। इस नियमसे आत्वका नियम स्पष्ट हैं।

इदं भाविज्ञापनं वैकल्पिकमात्वमिति कथिष्यते। अष्टन आ विभक्तौ विकल्पसे आत्व हो। पर्यायवाचिनां लाघवगौरवचर्चा नाद्रियते। विकल्पे प्रमाणं दीयते अष्टनो दीर्घादिति सूत्रं स्वरप्रकरणे अस्ति दीर्घात्तु। अष्टन् शब्दात् जसि आत्वे सवर्णदीर्घे अस् स्थाने औशादेशे। वृद्धौ अष्टौ २ अष्टाभिः अष्टाभ्यः। अष्टन् आ

अष्टानाम् अष्टासु आत्वाभावे अष्ट। पञ्चवत्। (७) **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ३।२।५९।** एभ्यः क्विन्। अञ्चेः सुप्युपपदे। युजिक्रुञ्चोः केवलयोः क्रुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते। कनावितौ। (८) **कृदतिङ् ३।१।९३।** अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात्। (९) **वेरपृक्तस्य ६।१।६७।** लोपः। ३३० **क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८।२।६२।** क्विन् प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः स्यात् पदान्ते। ऋत्विक्, ऋत्विग्, ऋत्विजौ। ऋत्विग्भ्याम् १ **युजेरसमासे ७।१।७१।** युजेः सर्वनामस्थाने नुम्

विभक्तौ आत्वे दीर्घे च अष्टानां। एवम् अष्टन् शब्दात् आमि। ष्णान्ताः षडिति षट्संज्ञा षट्चतुर्भ्यश्चेति नुट् आगम आत्व। आत्वाभावे अष्ट २ अष्टभिः, अष्टानाम् अष्टसु। ये नकारान्तशब्द समाप्त हुए।

(७) **ऋत्विग्**, दधृक, स्रग्, दृग्, उष्णिग, अञ्च, युचि कुञ्च इन धातुओं से क्विन् प्रत्यय हो, अञ्चधातुसे सुबन्तपद उपपद रहनेपर क्विन् हो। युज क्रुञ्चसे बिना उपपदके क्विन् हो। क्रुञ्चशब्दके नकारलोपका अभाव भी निपातनसे हों। (सूत्रमें उच्चारण आधार पर जो कार्य हो उसे निपातन कहते है) यहां नकारलोपका निषेध बिनाविधायक सूत्रके होनेसे कनावितौ—क्विन् प्रत्ययके क न, लशक्वतद्धितेसे, न का हलन्त्यम्से इत्। (८) **कृत्** यहां धातुके अधिकारमें अतिङ्-तिङ्भिन्न प्रत्यय कृत्संज्ञक हो जिसका फल कृदन्त मानकर प्रासंज्ञा होना है।

(९) **वेर**—क इ न इत् केवल व शेष। वह एक अल्रूप प्रत्यय होनेसे अपृक्त संज्ञक है। उस अपृक्त व का लोप वेरपृक्तस्य से हुआ। क्विन्प्रत्ययका सर्वापहारलोप समझें। विट आदिकी तरह। (३३०) **क्विन** प्रत्यय जिससे हुआ हो ऐसे धातुके अन्त्य अल्के स्थानमें कवर्ग अन्त्यादेश हो पदान्तमें। अस्यासिद्धत्वात्। क्विन प्रत्यस्य कुः सूत्रके असिद्ध होनेसे 'चोः कुः' केवल चवर्गको ही कवर्ग करता है। दूसरा क्विन्परे सभीके स्थानमें कुत्व करता है। ऋतुषु यजते इति ऋत्विक्। ऋतुके अनुकूल यज्ञ करनेवाला। ऋत्विज शब्दात् ऋत्विग्दधृक आदि सूत्रेण क्विन्। 'क, न इ' लोपे, वेरपृक्तस्य वलोप। कृदतिङ् कृत्संज्ञा। ततः प्रासंज्ञा सुविभक्तिः सुलोपे। पदान्ते 'क्विन् प्रत्यय' इति कुत्वे प्राप्ते तस्य त्रिपादीत्वेन असिद्धत्वात् चोः कुः कुत्वे, वावसाने चर्त्वे। ऋत्विग्, ऋत्विजौ, ऋत्विजा, ऋत्विग्भ्यां। अत्र स्वादिषु पदसंज्ञाः ततः कुत्वम् ऋत्विजि ऋत्विजोः ऋत्विक्षु।

(१) **युजेः** (युजिरयोगे) जोड़ने अर्थमें प्रसिद्ध युजधातुको नुम् हो सर्वनाम स्थानसंज्ञक विभक्तिपरे असमासे=समास नहुआ हो तो। दो हल्वर्णको संयोगसंज्ञा कही गयी है। उसके अन्तका लोप, संयोगान्त लोप है। कुत्व होकर नको ङ हुआ। युनक्ति आत्मानं परमात्मनि जो आत्माको परमात्मामें जोड़ दे वह युङ् (योगी) है। या किसी समाज या वस्तुके मेल करानेवाला युङ् है। युजधातुसे ऋत्विग्दधृक्

सुलापः । संयोगान्तस्य लोपः कुत्वेन नस्य ङः युङ् युञ्जौ युञ्जः युग्भ्याम् ३ असमासे किं ? २ **चोः कुः** ८।२।३०।। चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि, पदान्ते च । सुयुक् सुयुज् । सुयुजौ सुयुजः । सुयुजा सुयुग्भ्यां । खन् खञ्जौ खञ्जः । खन्भ्याम् । (३) **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** ८।२।३६। व्रश्चादीनां सप्तानां, छशान्तयोश्च षः स्यात् झलि, पदान्ते च । जश्त्वचर्त्वे राट् राड् राजौ राजः। राड्भ्यां एवं विभ्राट् । देवेट् विश्वसृट् । परिभृट् ।

सूत्रसे क्विन्, तस्य सर्वापहारलोपे प्रा०संज्ञा । प्रथमायाः एकवचने सु सर्वनाम स्थानसंज्ञा, 'युजेरसमासे' इति नुम् अनुबन्धलोपे, मित्वात् अचां मध्ये अन्त्य अच् (व्यवहारभावेन) युज्का उ । तस्मात्=उससे परे उसीका अवयव नुम् । युनज्–स अपृक्तसंज्ञा सकारस्य हल्ङ्यादिलोप । जकारस्य संयोगान्तलोपे क्विन् प्रत्ययस्य कुः इति कुत्वे नस्य ङ युङ् । अत्र नलोपो न भवति । संयोगान्तलोपस्य असिद्धत्वात् । युञ्जौ=युज् धातोः क्विन्, सर्वापहारि लोपे प्रासंज्ञा औ । सर्वनामस्थानसंज्ञायां नुमि युनज् औ । नश्चापदान्तस्य इत्यनुस्वारे परसवर्णे युञ्जौ । अत्र श्चुत्वं न भवति । अनुस्वारे कर्तव्ये श्चुत्वस्य असिद्धत्वात् । युञ्जः । हे युङ् । युञ्जं युञ्जौ युजः । युजा युग्भ्यां युग्भिः । 'चोः कुः' इति कुत्वम् । युजे युग्भ्यां युग्भ्यः । युजः युजोः युजाम् । युजि युजोः युक्षु ।

(२) **चोः** चवर्ग स्थानमें कु कवर्ग हो, झलिपरे पदान्तविषयमें । सुष्टु युनक्ति संयोजयति । जो ठीकसे जोड़े वह सुयुक् है । प्रातिपदिकात् सुयुजशब्दात् सु अनुबन्धलोपे अपृक्तसंज्ञा हल्ङ्यादिलोपे (समास होनेसे) युजेरसमासे नुं न भवति । पदान्त जस्य (चोः कुः) इति ग कृते अवसाने विकल्पेन चर्त्वे । सुयुक् सुयुग् सुयुजौ सुयुजः । सुयुजि सुयुजोः सुयुक्षु । पङ्गू (लङ्ड़ा) अर्थमें प्रसिद्ध खञ्जशब्दात् सु विभक्तिः । सुलोप जस्य संयोगान्तलोपे सति । नकारो न तिष्ठति, कारणस्य अभावे कार्यस्य अभावात् । खन्, खञ्जौ खञ्जः । खञ्जा खन्भ्यां खन्भिः । खञ्जः खञ्जोः खञ्जाम् खञ्जि खञ्जोः खन्सु । अत्र 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' इति, पदसंज्ञा ततः संयोगान्तलोपः ।

(३) **व्रश्च**=छेदना काटना भ्रस्ज्=पाके भूजना, सृज सृष्टि करना मृज=शुद्धि यज (संगति पूजा दान) राज प्रकाशार्थक । भ्राज्=दीप्त्यर्थकः इन् धातुओंके अन्त्य अल् का, छान्त और शान्त धातुका अन्त्यअल् को भी ष अन्त आदेश हो झल्प्रत्याहार परे या पदान्तमें । जश्त्व तथा चर्त्व होनेपर राट् राड, राजते शोभते क्विपः सर्वापहारिलोपे कृदन्त प्रा० संज्ञकात् राजशब्दात् सु=स अपृक्तसंज्ञा हल्ङ्यादि लोपे व्रश्चभ्रस्ज इति जस्थाने षकृते । राष् तस्य झलां जश् कृते मूर्धस्थानसादृश्येन ड । विकल्पेन च ट राट् राड् । अजादि विभक्तौ केवलं वर्णसम्मेलनं । राजौ राजः, राजा राड्भ्यां राड्भिः राड्भिः । राजे राड्भ्यां राड्भ्यः । राजः राजोः राजां ।

(परौ व्रजेः षः पदान्ते) परावुपपदे व्रजेः क्विप् दीर्घश्च, पदान्ते षत्वमपि, परित्यज्य सर्वं व्रजतीति परिव्राट। परिव्राजौ। (४) **विश्वस्य वसुराटोः** ६।३।१२८। विश्वस्य दीर्घः स्याद्वसौ राट् शब्द च परे। राडिति पदान्तोपलक्षणार्थम्। विश्वाराट् विश्वराजौ। विश्वाराड्भ्यां। (५) **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** ८।२।२९। पदान्ते झलि च परे यः संयोगस्तदाद्योः सकारककारयोर्लोपः। भृट भृड्। सस्य श्चुत्वेन शः। झलां जश् झशीति शस्य जः। भृज्जौ भृज्जः। भृड्भ्यां। त्यदाद्यत्वं पररूपत्वं। (६) **तदोः सः सावनन्त्ययोः** ७।२।१०६। त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात्सौ। स्यः

राटत्सु राट्सु। एवं राज शब्दकी तरह विशेषण भ्राजते (प्रकाशते, शोभते वा) विभ्राट् (सूर्य) देवान् यजति देवयाजकः देवेट् क्विप्। देवपूर्वक यज शब्दाद्वचिस्वपियजादीनां कित् सम्प्रसारणे देव इज स्थितः कर्मणि षष्ठी। उपपदमतिङ् समासे गुणे। सलोपे देवट्। षत्वं जत्व चर्त्वं सृट् ब्रह्मा। संसारका स्रष्टा विश्वं सृजति विश्वसृट् परमात्मा। विश्वसृजौ विश्वसृजः विश्वसृजा विश्वसृड्भ्यां विश्वसृजि विश्वसृजोः विश्वसृट्सु टत्सु।

(वा०) **परि** उपसर्गक व्रज धातुसे क्विप्। उपधाके अकारको दीर्घ। पदान्तमें ष अन्तादेश भी हो। सर्वपरित्यज्य परिव्रजति (सर्वत्र विचरति) परिव्राट्, विरक्त सन्यासी परिपूर्वक व्रज धातुसे वार्तिक द्वारा क्विप् सर्वापहारि लोपे। कृदन्तत्वात्प्रा० संज्ञा सु इत्यादि। दीर्घे षत्वे जश्त्वे चर्त्वे। परिव्राजा परिवाड्भ्यां। परिव्राजि परिव्राट्सु। (४) **विश्व** शब्दके दीर्घ अन्तादेश हो वसु या राट्शब्दपरे। विश्वानि सम्पूर्णानि वसूनि धनानि यस्य सः विश्व है सबधन जिसके विश्वस्मिन् राजते (संसारं व्याप्य तिष्ठति) इति विश्वाराट् ब्रह्म, परमात्मा। विश्वराज–स, सुलोपे व्रश्चेति जस्थाने षः, विश्वस्य वसु राटोः इति दीर्घे, षकारस्य ज। अजादि विभक्ति परे न दीर्घः। विश्वाराजौ विश्वाराजः विश्वाराड्भ्यां। विश्वराजि विश्वराजोः विश्वाराजाम्। विश्वाराट्सु, राटत्सु।

(५) **स्कोः** (संयोगाद्योः=संयोगसंज्ञक आदिमें हो) स कका तत्र लोप हो। पदान्तमें या झलिपरे। भृज्जति पाक करोति इति भृट=भड़भूजा। भ्रस्ज=सु दशायां अपृक्त सकारस्य हल्ङ्यादिलोपे संयोगान्त पदस्य अन्त्यजकारस्य लोपे प्राप्ते, त बाधित्वा स्कोरिति संयोगादिसकारस्य लोपे। जस्थाने व्रश्चेति ष जश चर्त्वे ग्रहिज्येति सम्प्रसारणे भृड्। भ्रस्ज—औ इति दशायां ग्रहिज्येति सम्प्रसारणे सस्थाने श्चुत्वेन शः, तस्य स्थाने जश ज (तालु स्थानदर्शनेन) भृज्जौ भृज्जः। भृज्जं भृज्जौ भृज्जः। भृज्जे भृड्भ्यां। भृज्जः भृज्जोः, भृज्जाम् भृज्जि भृज्जोः भृट्त्सु।

त्यद्यत्व त्यदादीनामः सूत्रसे अकार। अतोगुणेसे पररूप। (६) **तदोः** अनन्त्योः आदिमध्यके त, द' के स्थानमें स हो, सुपरे। त्यद्, तद्, यद्, एतद् ये त्यदादि है।

त्यौ त्ये। सः तौ ते। यः यौ ये। एषः एतौ एते। एनम् एनौ एनान्। एनेन एनयोः २। (७) **ङे प्रथमयोरम्** ७।१।२८। युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोरामादेशः। (८) **मपर्यन्तस्य** ७।२।९१। इत्यधिकृत्य। (९) **त्वाहौ सौ** ७।२।९४। अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहौ स्तः सौ। (३४०) **शेषे लोपः** ७।२।९०। आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तौ परतोऽनयोष्टिलोपः। त्वम् अहम्। (१) **युवावौ द्विवचने** ७।२।९२। द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तौ विभक्तौ। (२) **प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्** ७।२।८८॥

इनके त या दको स होता है। त्यद्-सु अत्वे पूर्वरूपे यथा— स्यः तद्-सु। त्यदादीनामः से दस्थाने अ, अतो गुणे पूर्वरूपे, तद् तकारस्य तदोः सः सूत्रेण स। रुवि सः। तद् औ अत्वे, वृद्धौ च। तौ ते। तद्-जस् तस्य शि आदेशे अत्वे गुणे। तम् तौ तान्। तेन ताभ्यां तैः। तस्मै ताभ्यां तेभ्यः। तस्य तयोः तेषाम्। तस्मिन् तयोः तेषु। त्यदादिके सम्बोधन नहीं होते। एतद् शब्दसे सु विभक्ति परे अत्वे पररूपे च अनन्त्य तकारस्य स्थाने स रुवि। एषः एतौ एते इत्यादि। यत्र अन्वादेशः तत्र द्वितीया टा ओस् परे एन आदेशो भवति। एनं एनौ एनान्, एनेन एनयोः।

युष्मद् (तुम) अस्मद् (मैं) शब्दकी सभी प्रयोगोंकी सिद्धि करते है। इसमें सर्वनामसंज्ञाका फल प्रायः नहीं है। अन्य कार्य स्पष्ट दिये जाते है। केवल अकच् ही सर्वनामसंज्ञाका फल है। इनके तीनों लिङ्गोमें समानरूप होता है। युष्मदस्मदादेशाः त्रिषु लिंगेषु सरूपाः। (७) ङे-युष्मद् अस्मद्से परे ङे के स्थानमें तथा प्रथमयोः प्रथमा-सु औ जस् द्वितीया-अम् औट् शस्के स्थानमें अम् आदेश हो। प्रासंगक युष्मद् शब्दात् सु एवम् अस्मद्—सु ङे प्रथमयोरम् इति सु स्थाने अम् आदेशे। युष्मद् अस्मद्के मपर्यन्त (अदको छोड़कर) कार्य हो। ८ इसका अधिकार कार्य कहेगे, कार्याणि वक्ष्यन्ते।

(९) **त्वाहौ** अनयोः युष्मद् अस्मद् शब्दके मपर्यन्तस्य युष्म अस्म भागको क्रमसे 'त्व' तथा 'अह' आदेश सु परे हो। इत्यनेन युष्मभागस्य त्व आदेशे, स्मऽभागस्य अह आदेशे। त्व अद् अम्, अह अद अम् इतिदशायां अतो गुणे पररूपे।

(३४०) **शेषे**—एतयोः युष्मद् अस्मदके शेषे अवशिष्टभाग त्व तथा अह आदेश से परे बचा हुआ अद्को टि मानकर शेषे लोप हुआ। यह टिलोप आत्व यत्व आदि स्थलमें नहीं होगा। तीनों लिङ्गोमें प्रयोग समान है। यथा-त्वं पुमान् त्वं स्त्री, त्वं दैवतम्। अहं पुमान् अहं स्त्री अहं दैवतम्।

(१) **युवावौ** द्विवचने युष्मद् अस्मद् शब्द जब द्विवचनको कहें, या द्वित्व संख्या अर्थ हो द्वयोः=द्विवचनस्य कथने अनयोः=युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य=युष्मके स्थानमें 'युव' अस्मके स्थानमें आव आदेश हो, विभक्तिपरे। सर्वत्रद्विवचने एतौ आदेशौ भवतः। औ, भ्यामि, ओसि विभक्तिषु, युव-आवौ भवतः। (२) **प्रथमा**

औङ्चेतयोरात्वं लोके। युवाम् आवाम्। (३) **यूयवयौ जसि** ७।२।९३। अनयोर्मपर्यन्तस्य यूयवयौ स्तो, जसि। यूयं वयम्। (४) **त्वमावेकवचने** ७।२।९७। एकस्योक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ। (५) **द्वितीयायां च** ७।२।८७ अनयोरात स्यात्। त्वां माम्। (६) **शसो नः** ७।१।२९। आभ्यां शसोः न स्यात्। अमोऽपवादः। आदेः परस्य। संयोगान्तस्य लोपः। युष्मान् अस्मान्। (७) **योऽचि** ७।२।८९। अनयोर्यादेशोऽजादौ विभक्तौ। त्वया मया। **युष्मदस्मदोरनादेशे** ७।२।८६अनयोरात्स्यादनादेशे विभक्तौ

विभक्तिके द्विवचत औङि=औ परे रहते, एतयोः=युष्मद् अस्मद् शब्दके अन्त्यवर्णको आकार हो। भाषायां संस्कृत भाषाके लोकव्यवहारमें। युवाम्–आवाम् युष्मद् औ, अस्मद् औ इति दशायां द्विवचने युष्मभागस्य युव आदेशे अस्म भागस्य आव आदेशे, ङेप्रथमयोः इति औकारस्य अम् आदेशे। प्रथमायाश्च द्विवचने अन्त्यदकारस्य आत्वे दीर्घ च आत्वनिमित्ते सति न टिलोपः। प्रथमायाः बहुवचने जसि। युष्मद् अस् अस्मद् अस्। (३) **अनयोः**=इनके मपर्यन्तभाग युष्मके स्थानमें यूय' तथा अस्म के स्थानमें वय आदेशे कृते यूय अद् अस् अतोगुणे पररूपे ङे प्रथमयोः ङस् स्थाने अम् आदेशे। शेषे टिलोपः। यूयं वयम्।

प्रासंज्ञकयुष्मद्शब्दात् द्वितीयैकवचने अम् युष्मद्—अम्। अस्मद्—अम् दशायाम्। (४) **एकवचने**=एकसंख्याके उक्तौ=कहनेपर अनयोः=युष्मद् अस्मद्शब्दयोः मपर्यन्तस्य=युष्मस्थाने त्व अस्मस्थाने म (त्वमौ) आदेशौ भवतः विभक्तिपरे। ततः टिलोपे प्राप्ते, तं बाधित्वा। (७) **द्वितीया** (अम् औट् शस्) विभक्तिपरे अनयोः=युष्मद् अस्मद् शब्दको आत्=आकारअन्तादेश हो। सवर्णदीर्घे। त्वां माम्।

(५) **शसोः** नः युष्मद् अस्मद् शब्दसे परे शस्विभक्तिके स्थानमें नकार आदेश हो 'ङें प्रथमयोरम्' से प्राप्त अम् आदेशको बाधकर। यह सूत्र परके स्थान में नकार विधान किया। 'अत आदेः' परस्य=पर (शस्) के स्थानमें विधान किया गया कार्य परके आदिके स्थानमें हो। संयोगसंज्ञकके अन्तका लोप। युष्मद् अस्मद् शब्दात् शसि शस्के स्थानमें शसोः नः से न कहां हो आदेः परस्य आदिको अको हुआ। युष्मद् नस्। द्वितीयायाञ्च सूत्रेण आ अन्त्यादेशे। सकारस्य संयोगान्तलोपे युष्मान् अस्मान्। (६) **योऽचि** अनादेशे=यदि कोई आदेश न हुआ ऐसे अचि अजादि विभक्तिपरे य हो। तृतीयैकवचने युष्मद्—आ, अस्मद्–आ, इत्यवस्थायां त्वमौ एकवचने इति त्व–म आदेशे 'अतोगुणे' पररूपे 'योऽचि' यकारादेशे त्वया मया।

(७) युष्मद् अस्मदोः=युष्मद् और अस्मद् शब्दके अङ्गके अन्त्यअल्के स्थान में आत्व हो। अनादेश=जिसको कोई आदेश न हुआ हो ऐसी हलादिविभक्तिपरे। तृतीया द्विवचने भ्यामि मपर्यन्तभागस्य 'युव आव' आदेशे पररूपे, युष्मदस्मदोः इति आत्वे सवर्णदीर्घे युवाभ्याम्। एवं बहुवचने भिस्, हलादिविभक्ति परे युष्मदस्मदोः

युवाभ्यां आवाभ्यां । युष्माभिः अस्माभिः । (९)**तुभ्यमह्यौ ङयि** ७।२।९५। अनयोर्मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यौं स्तो ङयि । टिलोपः । तुभ्यम् मह्यम् । (३५०) **भ्यसोऽभ्यम्** ७।१।३०आभ्यां परस्यभ्यसोऽभ्यम् स्यात्। युष्मभ्यम अस्मभ्यम् (१) **एकवचनस्य च** ७।२।३२। आभ्यां पञ्चम्येकवचनस्याऽत्स्यात् । त्वत् मत् । (२) **पञ्चम्या अत्** ७।१।३१। आभ्यां पञ्चभ्यां भ्यसोऽत् । युष्मत् अस्मत । (३) **तवममौ ङसि** ७।२।९६। अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौं स्तो ङसि (४) **युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्** ७।१।२७। तव मम । युवयोः । आवयोः (५) **साम आकम्** ७।१।३३। आभ्यां परस्य साम आकं स्यात् । युष्माकं

आत्वे सवर्णदीर्घे रुवि० युष्माभिः । चतुर्थीविभक्तौ एकवचने । युष्मद्–ङे, अस्मद्–ङे । ङेप्रथमयोः अम्आदेशे । (९) **तुभ्य** युष्मके स्थानमें तुभ्य, अस्मको मह्यआदेश टिलोपे तुभ्यं मह्यम् (३५०) **आभ्यां** युष्मद् अस्मद्से परे भ्यस्को अभ्यम् आदेशे अतोगुणे पररूपे । शेषेलोप इति टिलोपे अत्र मकारस्य लोपो न भवति । न विभक्तौ इति निषेधात् । (१) **एकवचन**=युष्मद् अस्मद शब्दसे परे पञ्चमीके एकवचन ङस्विभक्तिको अत हो । त्वत् मत् । पञ्चम्येकवचने युष्मद्—ङसि अस्मद्—ङसि इति दशायां एकवचने मपर्यन्तस्य 'त्व' म आदेशे अतोगुणे पररूपे एकवचनस्य च ङसिस्थाने अत् टिलोपे, अत्र योऽचि इति यकार आदेशो न अनादेशाभावात् । त्वत्, मत् । (२)**युष्मद्** अस्मद्शब्दसे परे पञ्चमीके भ्यस् विभक्तिके स्थानमें अत् आदेश हो । युष्मत् अस्मत् । पञ्चमी बहुवचने युष्मद् भ्यस् । अत्र पञ्चम्याः अत । टिलोपे । अत्र अनादेश विभक्तिर्नास्ति अतो न यत्वम् ।

(३) **तव** युष्मद तथा अस्मद् इन दोनोंके मपर्यन्त युष्मके स्थानमें 'तव' अस्मके स्थानमें 'मम' आदेश हो ङस् परे । (४) **युष्मद अस्मद् शब्दसे परे ङस्** विभक्तिके स्थानमें अश आदेश हो । तव मम । षष्ठ्याः एकवचने ङस्विभक्तौ,युष्म-भागस्य तव, अस्मभागस्य च मम आदेशे कृते युष्मदस्मदभ्यां ङस् स्थाने अश अ कृते टिलोपे । षष्ठी द्विवचने ओस् विभक्ति परे युवावौ द्विवचने सूत्रेण युव आव आदेशे अतोगुणे पररूपे, अनादेशविभक्ति परे योऽचि इति यकारादेशे रुत्वे विसर्गे युवयोः आवयोः । (५) **साम**—आभ्यां परस्य=युष्मद् अस्मद् शब्दसे परे साम के स्थानमें आकम् आदेश हो । यद्यपि षष्ठीबहुवचने आम् विभक्तिके आने पर युष्मद्=आम् अस्मद्—आम् में सुट्सहित आम् न होने से आकम् कैसे ? साम पढ़ना व्यर्थ है । वही सुट्सहित सामशब्द व्यर्थ होकर कहता हैं कि—शेषेलोपः सूत्रसे अन्त्यलोप भी होता है । इस पक्षमें अकारान्त अङ्गसे सुट्सम्भव है । उसकी निवृत्तिके लिए साम शब्द पढ़ा । भाविनः सुटोनिवृत्यर्थं ससुट्क निर्देशः । अत्र आमस्थाने साम बुद्धि कृत्वा साम आकम् सूत्रेण आकमादेशे । टिलोपपक्षे रूपम् । अन्त्य लोपपक्षे सवर्ण-दीर्घे युष्माकम् अस्माकम् त्वयि मयि । सप्तम्येकवचने ङिविभक्तौ युष्मद—ङि ।

अस्माकं । त्वयि मयि । युष्मासु अस्मासु । (६) **युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ** ८।१।२०। पदात्परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वान्नौ इत्यादेशौ स्तस्तौ चानुदात्तौ । (७) **बहुवचनस्य वस्नसौ** ८।१।२१ उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादि बहुवचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः । वांनावोरपवादः । (८) **तेमयावेकवचनस्य** ८।१।२२। उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्यैकवचनान्तयोस्ते-मे एतौ स्तः । (९] **त्वामौ द्वितीयायाः** ८।१।२३।। उक्तविधयोरनयोर्द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वामा एतौ स्तः ।

श्रीशस्त्वाऽवतु 'मा'ऽपीह, दत्तात् 'ते' मेऽपि शर्म सः ।
स्वामी'ते' 'मे'ऽपि स हरिः, पातु 'वाम'पि 'नौ' विभुः ।। १।।

अस्मद्–ङि एकवचने त्व म आदेशे अतो गुणे पररूपे, योऽचि इति यकारे । सु त्वयि मयि युष्मासुअस्मासु । अत्र केवलं युष्मदस्मदोरनादेशे इत्यात्वम् ।

(६) युष्मद पदात्परयोः=किसी पदसे परे हो, अपादादौ=किसी पाद (चरण) के आदिमें न हो ऐसे षष्ठी चतुर्थी द्वितीयाके किसी भी विभक्तिसे जुड़े हुए युष्मद अस्मद शब्दके स्थानमें क्रमसे वां नौ आदेश हो । युष्मदको वां, अस्मदको नौ । यह नियम सामान्य है । तीनों विभक्तियोंमें लगता हैं । इसको बाधकर अन्य कार्य वस् नस् आदि भी होते है । (७) **बहुवचन** उक्तविधयोः पदसे परे हो किसी पाद (चरण) मन्त्र श्लोकके आदिमें स्थित न हो । षष्ठ्यादि=षष्ठी, चतुर्थी द्वितीयाके बहुवचनान्तमें अनयोः युष्मद तथा अस्मद्के स्थानमें वस् तथा नस् आदेश हो । ये वां नौ के बाधक है । (८) **तेमयौ** ते मे एकवचनस्य । उक्तविधयोः पदसे परे अपादादिस्थ हो, षष्ठी चतुर्थी के एकवचन विशिष्ट युष्मद् अस्मद् शब्द के स्थानमें क्रमसे ते में आदेश हो ।

(९) **त्वामौ**=द्वितीया विभक्तिके एकवचनसे विशिष्ट युष्मदको त्वा अस्मदको मा आदेश हो प्रत्येकका क्रमशः श्लोकबद्ध उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । यथा-श्रीश इति । इह संसारे श्रीशः लक्ष्मीपतिः भगवान् विष्णुः त्वा (त्वां) तुम्हारी अवतु रक्षा करें । मां=माऽपि मेरी भी रक्षतु (रक्षा करें) यहां द्वितीया विभक्ति विशिष्ट त्वां माम्के स्थानमें त्वा मा आदेश हुआ । वां नौ को बाधकर । श्रीशः विष्णुः, ते=तुभ्यं मे=मह्यं शर्म=सुखं, दत्तात् (भगवान् तेरे मेरे लिए सुख दें) अत्र चतुर्थीः एकवचनस्य तुभ्यं मह्यं स्थाने क्रमशः ते मे आदेश होते है । स हरिः ते (तव) मे (मम) अपि स्वामी अस्ति । भगवान् तुम्हारे और मेरे भी स्वामी है । यहां षष्ठी विभक्तिके एकवचन तव ममके स्थानमें ते मे आदेश क्रमसे हुए । द्विवचनका उदाहरण—विभुः=समर्थः सर्वशक्तिमान भगवान् वां युवाम्, नौ आवां पातु=रक्षतु, (ईश्वर तुम दोनोंकी, हम दोनोंकी भी रक्षा करें) अत्र द्वितीया द्विवचने युवां स्थाने वाम्, आवां स्थाने नौ आदेशे । चतुर्थी द्विवचने ईशः (हरिः) वां=युवाभ्यां नौ

सुखं वां नौ ददात्वीशः, पतिर्वामपि नौ हरिः ।
सोऽव्याद् वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः ॥२॥

एकवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः । एकतिङ् वाक्यम् । तेनेह न–ओदनं पच, तव भविष्यति । इह तु स्यादेव–शालीनां ते ओदनं दास्यामि । एते वांनावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः । अन्वादेशे तु नित्यं स्युः । धाता ते भक्तोऽस्ति, तव भक्तोस्तीति वा । तस्मै ते नम इत्येव । (३६०) न चवाहाहैवयुक्ते ८।१।२४। चादिपञ्चकयोगे नैते आदे-

---

आवाभ्याम्, सुखम्=आनन्दं ददातु । षष्ठीद्विचनस्य उदाहरणम्–हरिः भगवान् वाम् युवयोः नौ आवयोः पतिः स्वामी अस्ति । अत्र युवयोः आवयोः स्थाने क्रमेण वः नौ आदेशौ भवतः । स हरिः वः युष्मान् नः (अस्मान्) अव्यात्=पायात् (भगवान् तुम लोगों, हम लोगों की रक्षा करें ।) बहुवचन उदाहरण में युष्मान् अस्मान् को क्रम से वस् नस् आदेश हुए । एवं अस्मभ्यं युष्मभ्म् इति चतुर्थी बहुवचनस्थाने वस् नस् आदेशे । एवं युष्माकं स्थाने वः अस्माकं स्थाने 'नः, आदेशे । भगवान् तुम सबके लिए हम सबके लिए भी कल्याण करें । वही हम लोगों के तुम लोगों के भी सेव्य=सेवा योग्य हैं ।

(वा०) **एकवाक्ये**=युष्मद् शब्द के स्थान में जो आदेश कहे गये हैं वे एक ही वाक्य में सम्भव हैं । यदि दो वाक्य हो तो नहीं होते । जिसमें एकतिङ् हो उसे वाक्य कहते हैं । तिङन्तपद आवश्यक है । तेनेह=उक्त नियम से यहां नहीं हुआ । ओदनं=भात को, पच=पकाओ । (वह) तव (तुम्हारा) भविष्यति होगा । यहां दो तिङन्तपद अलग-अलग वाक्य में होने से एक वाक्य नहीं रहा । अतः तव के स्थान में 'ते' आदेश नहीं हुआ । पश्य मृगो धावति' यहां दो क्रिया होने पर भी एक वाक्य है । इह तु=जहां एक वाक्य है । वहां तो स्यादेव=होता ही है । यथा—शालीनां तण्डुलानाम् ओदन भक्तं ते तुभ्यं दास्यामि—तुझे चावल का भात दूंगा । यहां एक वाक्य है । एकतिङन्त पद होने से । शालीनां पद से परे तुभ्यं के स्थान में 'ते' आदेश हो गया । (वा०) एते इति ये (वां नौ) इत्यादि आदेश अनन्वादेशे—अन्वादेश के अभाव स्थल में विकल्प से हों । जहां अन्वादेश है, वहां उक्त आदेश नित्य होते हैं । अनन्वादेश का उदाहरण–धाता ते भक्तोऽस्ति । ब्रह्मा तुम्हारे भक्त हैं । यहां तव के स्थान में विकल्प से 'ते' आदेश हुआ । इसलिए धाता 'तव भक्तोऽस्ति' यह भी बनता है । अन्वादेश का उदाहरण—कार्यान्तर-विधान ही अन्वादेश है । वहां नित्य आदेश होने से (तस्मै ते नमः) इस वाक्य में तुभ्यं के स्थान में 'ते' आदेश नित्य है । अत्र 'तस्मै तुभ्यं नमः' इति कथनम् अशुद्धं भविष्यति ।

(३६०) न च अव्यय समुच्चय वा विकल्प, हा अद्भुत, अह—खेदे, एव–अव-

शाः स्युः। 'हरिस्त्वां मां च रक्षतु।' कथं त्वां मां वा न रक्षेदित्यादि। (१) पश्यार्थैश्चानालोचने ८।१।२५। अचाक्षुषज्ञानार्थैर्धातुभिर्योगे नैते आदेशाः स्युः। चेतसा त्वां समीक्षते। आलोचने तु भक्तस्त्वा पश्यति चक्षुषा। (२) सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा ८।१।२६। विद्यमानपूर्वात् प्रथमान्तादन्वादेशेऽप्येते आदेशा वा स्युः। 'भक्तस्त्वमप्यहं तेन हरिस्त्वां त्राते स माम्'। त्वा, मेति वा। (३) साममन्त्रितम् २।३।४८। सम्बोधने

धारण निश्चय द्वन्द्व युक्तः। जोड़ने अर्थमें युज (भावे क्त) इन पांचों के योग सम्बन्धमें ते=वां नौ ते मे आदि आदेश नहीं होते। यथा हरिः (भगवान्) तुम्हारी हमारी रक्षा करें। चके योग में त्वा मा आदेश नहीं। कथं=तुम्हारी हमारी रक्ष क्यों नहीं करे। वा का योग है।

(१) पश्यार्थे—पश्यः दर्शनार्थक दृशधातोः भावे 'श' प्रत्यये श इत्—अ शेष। पाघ्रा=आदि सूत्रेण दृशस्थाने पश्य-आदेशे दर्शनं अर्थो येषान्ते पश्यार्थाः= इन्द्रियों का अपने अर्थ (विषय) के साथ साक्षात्सम्बन्ध तैः। न आलोचनम् अनालोचनं चाक्षुषज्ञानभिन्नस्थाने एते वां नौ ते मे आदि आदेश अचाक्षुषज्ञानार्थक धातु के योगमें न हो। यथा हे देव चेतसा मनसा त्वां चिन्तयामि। मनसे आपका साक्षात्कार करता हूं। यहां चाक्षुष ज्ञान नहीं है किन्तु मानसिक चिन्तन साक्षात्कार है। आदेशनिषेध।

अनालोचनका फल जहां आंख से देखनेवाली धातु का सम्बन्ध हो वहां आदेश होता ही है। अतः बोले आलोचने तु=आदेश होता ही है। भक्त तुमको आँखसे देखता है।

(२) **सपूर्वायाः**। विद्यमान हो पूर्व में ऐसा प्रथमान्त=प्रथमाविभक्ति-वाला शब्द, उससे परे युष्मद् अस्मद (विभक्तिसहितको) अन्तादेश में भी वां नौ, ते मे आदि आदेश हों न भी हों, विकल्प। अनन्वादेशमें विकल्प (ते में) आदि आदेश उक्त है। किन्तु अन्वादेशमें भी कहीं विकल्प हो। इसलिए सूत्र पढ़ा। इसके पहले अनन्वादेशमें विकल्प कहा गया। जैसे—सलोमकः का अर्थ विद्यमान रोमवालामें सहशब्दः विद्यमानं पूर्वं यस्याः तस्याः सपूर्वायाः तुल्ययोगे समासः। प्रथमा का प्रथमान्त अर्थः। यथा भक्त हो तुम, मै भी तेन=इस कारणसे भगवान तुम्हारी भी हमारी भी रक्षा करेगे। येन कारणेन त्वं भक्तः तेन कारणेन अहमपि। अतःत्रायते पालयति। पूर्ववाक्यमें—त्वमप्यहमपि भक्तः प्रथमा विधान है। उससे परे युष्मद-स्मदका अर्थ त्वम् अहंका पुनः उपादान द्वितीयवाक्य में किया गया। यही अन्वादेश है। पूर्ववाक्यमें विद्यमानपद उससे परे द्वितीय वाक्यमें विद्यमान प्रथमान्तहरि, उससे परे त्वां मां को त्वा मा आदेश हुआ। त्रायते के पूर्व में पद है परमें प्रथमान्त स है। आदेश विकल्प मध्यमणिन्यायेन उभयत्र सम्बध्यते। कार्यकारण समान-वाक्यमें रहे। प्रथमान्तका पूर्व में विद्यमान रहना आवश्यक।

या प्रथमा तदन्तमामन्त्रितसंज्ञं स्यात्। (४) **आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्** ८।१।७२। अग्ने तव। देवाऽस्मान्पाहि। (५) **नाऽऽमन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्** ८।१।७३। विशेष्यं समानाधिकरणे विशेषणे आमन्त्रिते परे नाऽविद्यमानवत्। हरे दयालो नः पाहि। सुपात्। सुपाद्। सुपादौ। (६) **पादः पत्** ६।४।१३० पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः। सुपदः। सुपदा। सुपाद्भ्याम्। अग्निमत् अग्निमद्,

---

(३) **सामंत्रित** सम्बोधन अर्थ में प्रथमा हो, तदन्त=वह हो अन्तमें उसको आमन्त्रितसंज्ञा हो। यथा–हे राम पूरेको संज्ञा, प्रत्ययग्रहण में तदन्त लिया जाता है। आमन्त्रितसंज्ञाके महासंज्ञा होनेसे सज्ञाविधिमें भी तदन्त का विधान है। आमन्त्रित–आवाहन–सम्बोधन–ध्यनाकर्षण, अर्थसूचक हे, है, अरे, अबे, धिङ्, मूर्ख आदिको आमन्त्रितसंज्ञा। आमन्त्रित (सम्बोधनशब्द) पूर्व–पहले रहे। वह—

(४) **अविद्यमानवत्**=उपस्थिति न रहने के तुल्य माना जाय। जैसे–अग्ने तव नयः अग्ने सम्बोधनमस्ति। आमन्त्रितसंज्ञा तस्य अविद्यमानद्भावे। अग्ने विद्यमान नहीं रहा। पदसे परे न होनेसे तवको ते आदेश भी नहीं। हे देव हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। आमन्त्रितसंज्ञक देवशब्दस्य अविद्यमानवद्भावे अनुपस्थितदशायां पदसे परे न मिलने से अस्मान्स्थाने वस् नस् नहीं हुये।

(५)नामन्त्रिते–आमन्त्रितमविद्यमानवत् अनु० समानाधिकरण=समानं तुल्यमधिकरणं, समानविभक्ति, समानधर्म, एकत्व, समानवचन, विशिष्टबुद्धिमें विशेषणका ज्ञान। **अर्थः**–विशेष्य=मुख्य प्रधान शब्दके समानाधिकरण=समानविभक्ति, समान धर्म अभेद सम्बन्धवाला विशेषण आमन्त्रित (सम्बोधन) परे हो तब अविद्यमान अनुपस्थितभाव नहीं होता। यथा सम्बोधने हें दयालो नः पाहि का समानविभक्ति समानधर्मवाला विशेषणपरे हरिशब्द अविद्यमान नहीं हुआ। दयालोंकी अपिवद्यमानता पर ही हरि पदसे परे नस् आदेश।

शोभनौ पादौ यस्य स, सुपात्। सुन्दर पैरोंवाला अर्थसे अर्थवान सुपाद्शब्दात् प्रथमायाः एकवचने सु स्। अपृक्तसकारस्य हल्ङ्यादिलोपः। अवसाने परे दकारस्य विकल्पेन चर्वे सुपात् सुपाद्। औविभक्तौ वर्णसम्मेलने सुपादौ सुपादः। सुपादं सुपादौ सुपदः। (६) पाच्छब्दातं=पाद्शब्द ही अन्तमें हो ऐसा भसंज्ञकअङ्ग उसके अवयव पाद शब्दको पद् आदेश हो। प्रातिपदिकात् सुपाद्शब्दात् द्वितीया बहुवचने शसि अनुबन्धलोपे। अजादिविभक्तिपरे भसंज्ञा। भसंज्ञको अङ्गः। पादः पत् सूत्रेण पद् आदेशे। सस्य रुत्वेवि०। सुपदः एवं सुपदा। अजादिविभक्तिपरे ही पद् आदेश होता है। अन्यत्र नहीं। सुपाद्भ्यां सुपाद्भिः। सुपदे सुपाद्भ्यां सुपाद्भ्यः। सुपदः सुपदोः सुपदाम्। सुपदि सुपदोः सुपात्सु। अग्निं मथ्नाति (शमी आदिकाष्ठघर्षणेन वह्निमुत्पादयति स अग्निमत्। जो मन्थनसे अग्नि पैदा करे वह अग्निमद् है। अत्र

अग्निमथौ अग्निमथः। अग्निमद्भ्याम्। (७) **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** ६।४।२४। हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः किति, ङिति च। 'उगिदचा' मिति नुम्। संयोगान्तस्य लोपः। नस्य कुत्वेनः ङः। प्राङ् प्राञ्चौ। प्राञ्चः। (८) **अचः** ६।४।१३८। लुप्तनकारस्याऽञ्चतेर्भस्याऽकारस्य लोपः। (९) **चौ** ६।३।१३८ लुप्ताऽकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याऽणो दीर्घः। प्राचः प्राचा। प्राग्भ्यां। प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ प्रत्यञ्चः।

सु विभक्तिः तस्य लोपे। अवसाने थकारस्य वा चर्त्वे रुपद्वयम्। अजादिविभक्तिपरे जश्चर्विशेषः, अग्निमथः अग्निमथोः अग्निमथाम्, अग्निमथि अग्निमथोः अग्निमत्सु।

(७) **अनिदितां हलन्तानां**=हलन्तशब्द हो, अनिदितां=इकारइत् न हुआ हो, ऐसे अङ्गसंज्ञकशब्दकी उपधा (अन्त्यवर्णके पूर्वके न) का लोप हो किति ङिति परे नुम्=उगिदचां सर्वनाम स्थानेऽधातोः इति नुम्। संयोगके अन्तका लोप हो। न स्थाने कुत्वं 'ङ्'। प्राङ्=प्रकर्षेण अञ्चति (पूजयति) प्रशस्तो भवति। पूर्वदिशा, देश, काल, प्रशस्त है। प्रपूर्वअञ्च्धातोः 'ऋत्विग्'-सूत्रेण क्विन्। सर्वापहारिलोपे कृदन्तं मत्वा प्रातिपदिकसंज्ञा, सुविभक्तिः अनिदितामिति' नलोपे। प्र अच्+स् उगिदचामिति नुम्=न् आगमे कृते, प्र अ-आ दीर्घे। प्रान् च स् इति स्थिते। सस्य हल्ङ्यादिलोपे चकारस्य संयोगान्तलोपे नकारस्य क्विन्प्रत्ययस्येति कुत्वे, प्राङ्। प्राञ्चौ प्राञ्चः। प्राञ्चं प्राञ्चौ प्राचः।(८) अचः=लुप्तनकारस्य प्लुत हो नकार जिसका ऐसे भसंज्ञक अञ्चके अका लोप हो। (९) **चौ**: लुप्त हो अकार और नकार ऐसे अञ्चके परे रहते पूर्व अण्को दीर्घ हो। प्राचः=प्रपूर्वक अञ्चधातोः क्विन् सर्वापहारिलोपे प्रा० सं० शस्। अङ्गसंज्ञा भसंज्ञा च। अनिदितमिति नलोपे भसंज्ञकस्य अकारस्य 'अचः' इति सूत्रेण लोपे, 'चौ' इतिपूर्व-अणः दीर्घे रुवि० प्राचा प्राग्भ्यां। अत्र नकारलोपे सवर्णदीर्घ इति विशेषः **प्राग्भिः**। प्राचे प्राग्भ्यां प्राग्भ्यः। प्राचः प्राचो प्राचाम्। प्राचि प्राचोः प्राक्षु। दिग्देशकाले पूर्वादौ प्रागुदक्प्रत्यङ्ङादयः। प्राञ्च शब्द पूर्वदिशा देश या काल अर्थमें प्रयुक्त हैं। प्राङ् प्राचीनश्च। एवं पश्चिम दिग्देश काले भवः। प्रत्यक्प्रतीचीनश्च, प्रत्यक् तथा पराक्शब्द क्रमसे अन्दर और वाहरके वाचक है। पश्चिमदिशा, देशकाल, अर्थमें प्रसिद्ध प्रतिपूर्वक अञ्चधातोः 'ऋत्विग्' से क्विन् सर्वापहारिलोपे। प्रा०संज्ञा सु 'अनदितां' न लोपे उगिदचाम् इति नुम् न। सस्य हल्ङ्यादिलोपे, चकारस्य संयोगान्तलोपे क्विन्प्रत्यये नकारस्य कुत्वङ् यणि, प्रत्यङ्। प्रतीच=प्रति अञ्चधातोः क्विन् सर्वापहारिलोपे 'भसंज्ञायां अचः' इति अकारलोपे, ततो नलोपे, चौ इतिदीर्घे। अकृतव्यूहपरिभाषया यण् न भवति। प्रत्यग्भ्यां। अत्र भसंज्ञा भवति, अतो अकारस्य लोपो न। चकारस्य जश् च। उत्तरदिशा देशकाल अर्थमें उदङ् उदीचीनश्च। प्राङ्की तरह, उदङ्उदञ्चौ उदञ्चः। उदञ्चम् उदञ्चौ उदीचः। उद्पूर्वक अञ्चधातोः क्विन्, सर्वापहारिलोपे। अनिदिता-

प्रतीचः । प्रत्यग्भ्याम् । उदङ् उदञ्चौ उदञ्चः । (३७०) **उद ईत** ६।४।१३९। उच्छब्दात्परस्य लुप्ताऽकारस्याऽञ्चतेभस्याकारस्य ईत् । उदीचः । उदीचा उग्दभ्याम् । (१) **समः समि** ६।३।९३। वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे समः सम्यादेशः स्यात् । सम्यङ् सम्यञ्चौ समीचः । सम्यग्भ्याम् । (२) **सहस्य सध्रि** ६।३।९५। तथा सध्र्यङ् । सध्र्यञ्चौ । सध्रीचः सध्र्यग्भ्याम् । (३) **तिरसस्तिर्यलोपे** ६।३।९४। अलुप्ताऽकारेञ्चतौ वप्रत्ययान्ते तिरसस्तिर्यादेशः । तिर्यङ् तिरश्चौ तिरश्चः । तिरश्चा तिर्यग्भ्याम् । (४) **नाऽञ्चेः**

मिति नकारलोपे भसंज्ञायाम् । (३७०) **उद** शब्दसे परे लुप्त नकारक भसंज्ञक अङ्ग अञ्चके अकारको ईत्व हो । इत्यनेन इकारस्य ईकारे रुवि० । भसंज्ञास्थलमें ईत्व अवश्य होता हैं । उदीचा उदग्भ्याम् उदग्भिः । नलोप जश विशेषः । उदीचः उदीचोः उदीचाम् । उदीचि उदीचोः उदक्षु ।

(१) **समः** व (क्विन्) प्रत्यय हो अन्तमें ऐसे अञ्चपरे समशब्दको समिआदेश हो । समपूर्वक अञ्चसे क्विन् आदि नलोपे, नुमि सुलोप, संयोगान्तलोपे । समस्थाने समि आदेशे यणि कुत्वे । सम्यङ् सम्यञ्चौ सम्यञ्चः । सम अञ्चशब्दाद् द्वितीया बहुबचने शसि=अस् न लोपे ईत्वे, समः समि आदेशे दीर्घे समीचः । अचः ।

(२) **सहस्य**-व प्रत्यान्त अच् परे सहशब्दके स्थानमें सध्रि आदेश हो । सह अञ्चति गच्छति इति सध्र्यङ्—सहगामी । सहपूर्वक अञ्चधातोः क्विन् सम्पूर्ण लोपे प्रासंज्ञा सु । सहस्य सध्रि आदेशे, यणि, नकारलोपे, नुमिकृते संयोगान्तलोपे रूपम् । सध्र्यञ्चौ, सध्र्याञ्चः । सध्रीचः । सध्रीचा, सध्र्यग्भ्यां सध्र्यग्भिः । सध्रीचः, सध्रीचोः सध्रीचाम् । ३ **तिरसः** तिरि, अलोपे । अलुप्त=न लुप्त हुआ हो अकार ऐसे क्विनप्रत्ययान्त अञ्चधातु परे रहते (वप्रत्ययान्ते-व चासौ प्रत्ययश्च विवप्रत्ययः अन्ते यस्य स तस्मिन्परे) तिरस् शब्दके स्थानमें तिरि आदेश हो । तिर्यङ् तिरोऽञ्चति कुटिलं गच्छति । सर्प, पक्षी, पशुर्वा । तिरस्पूर्वक अञ्चसे क्विन्, सर्वापहारिलोपे, तिरसः स्थाने तिरि-आदेशे, यणि अत्र सर्वनामस्थानपरे भसंज्ञा न भवति, अतः अकारलोपोऽपि न । हलादिविभक्तावपि अकारलोपो न भवति । सकारस्य हल्ङ्याादिलोपे, वकारस्य संयोगान्तलोपे च । कुत्वेन ङ् तिर्यङ् तिर्यञ्चौ तिर्यञ्चः । हे तिर्यङ् । तिर्यञ्चं तिर्यञ्चौ तिरश्चः=तिरस्पूर्वक अञ्चधातोः क्विन्प्रत्यये सम्पूर्णलोपे, प्रातिपदिकसंज्ञायां शस्, श इत् । अनिदितामिति नलोपे भसंज्ञायां 'अच' इति अकार लोपे, सस्य श्चुत्वेन शः, विभक्तिसकारस्य रू०वि० । तिरश्चा तिर्यग्भ्याम्=अत्र तिरस्स्थाने तिरि आदेशे । 'अनिदितां' नलोपे, हलादिविभक्तौ भसंज्ञा न भवति । अतः अकारलोपोऽपि न भवति । यणि कुत्वे जश्त्वे । तिर्यग्भिः । तिरश्चे, तिर्यग्भ्यां तिर्यग्भ्यः । तिरश्चः तिरश्चोः तिरश्चाम् । तिरश्चि तिरश्चोः तिर्यक्षु । अत्र तिरि आदेशे सकारलोपे कुत्वे षत्वे क-ष संयोगे क्षकृते यणि ।

पूजायाम् ६।४।३०। पूजार्थस्याञ्चेतेरुपधाया नस्य लोपो न। प्राङ् प्राञ्चौ नलोपाऽभावादलोपो न। प्राञ्चः प्राङ्भ्यां। प्राङ्खषु प्राङ्क्षु। एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः। क्रुङ् क्रुञ्चौ क्रुञ्चः। क्रुङ्भ्यां। पयोमुक्। पयोमुग्पयोमुचौ

---

(४) **नाञ्चे**: पूजायां न। पूजा अर्थमें अञ्च् धातुके उपधा नकारका लोप नहीं होता। अञ्चधातुके दो अर्थ हैं गति (अर्थ) पूजा अर्थ। गति अर्थमें नलोप होता है, पूजा अर्थमें नहीं। प्रकर्षेण अञ्चति (पूजयति) इति प्राङ् (विधिसे पूजा करने वाला) प्रपूर्वक अञ्चधातोः 'ऋत्विग्' आदि सूत्रेण क्विन् सर्वापहारिलोपे। अनिदितां सूत्रेण नस्य लोपे प्राप्ते, नाञ्चेः पूजायां न नलोप (अञ्चेः पूजायां न) दीर्घे। प्राञ्च्शब्दात् प्रातिपदिकात् सु स्। तस्य हल्ङ्यादिलोपे, पदसंज्ञायां चकारस्य संयोगान्तलोपे। कार्यस्य अभावे कारणस्य अभावः। चकारस्यलोपे अनुस्वारपरसवर्णौ निवर्तेते। नकारो दृश्यते। क्विन् प्रत्ययस्य सूत्रेण नस्य कुत्वं ङ। प्राङ् प्राञ्चौ प्राञ्चः अत्र नलोपस्य अभावात्=नाञ्चेः पूजायाम् इति नकारलोपं निषेधति। अच इति सूत्रेण अलोपो न भवति। प्राञ्चं प्राञ्चौ प्राञ्चः। प्राञ्चा प्राङ्भ्याम्=अत्र हलादि विभक्ति 'भ्यां' परे स्वादिष्वसर्वनामस्थाने इति पदसंज्ञा, चकारस्य संयोगान्तलोपे। नकारस्य कुत्वेन ङकारे प्राङ्भिः। प्राञ्चे प्राङ्भ्याम् प्राङ्भ्यः। प्राञ्चः प्राञ्चोः प्राञ्चाम्। प्राञ्चि प्राङ्खषु प्राङ्क्षु प्राङ्षु। प्राञ्च=शब्दात् प्रातिपदिकात् सप्तमी बहुवचने सुप्। पदसंज्ञायां चकारस्य संयोगान्तलोपे, ङकारस्य कुत्वेन ङकारे, ततः ङणोकुक्टुक् शरि इति कुक्=क आगमें, विकल्पेन। कस्थाने चयो द्वितीया इति वार्तिकेन द्वितीयो अक्षरः ख कृते, एकरूपम्। क स्थिते द्वितीयं। कुक् अभावे तृतीयं, एवम्=अनेनप्रकारेण प्रत्यङ्ङादयः=पूजार्थ में प्रत्यञ्च, उदञ्च, सम्यञ्च, सध्र्यञ्च, तिर्यञ्च आदिके रूप भी पूजार्थक प्राङ्की तरह चलेगा। अर्थमें अन्तर होगा। प्रत्यङ्का सर्वपूजकः। उर्ध्वं गमनाय अञ्चति उदङ्। सन्निध्यञ्चति इति सम्यङ्। साथमें मिलकर पूजक सध्र्यङ्। वक्रपूजकः तिर्यङ्। वकजातीय पक्षीविशेष। क्रुङ् (क्रौंच पक्षी) क्रुञ्चधातोः 'ऋत्विग् आदि सूत्रेण क्विन्प्रत्यान्तः निपात्यते। नकारलोपस्य अभावेऽपि निपात्यते। कृदन्तं मत्वा प्रासंज्ञा सुविभक्तिः सोर्लोपे, पद संज्ञायां संयोगान्तलोपे कुत्वेन ङकारे रूपम्। क्रुङ् क्रुञ्चौ क्रुञ्चः। क्रुञ्चा क्रुङ्भ्यां क्रुङ्भिः। क्रुञ्चे क्रुङ्भ्यां क्रुङ्भ्यः क्रुञ्चः क्रुञ्चोः क्रुञ्चाम् क्रुञ्चि क्रुञ्चोः क्रुङ्खषु क्रुङ्क्षु क्रुङ्षु। पयांसि मुञ्चति इति पयोमुक् (जल वर्षानेवाला बादल) क्विन्प्रत्यान्तात् पयोमुच्शब्दात् सुस्तस्य हल्ङ्यादिलोपे, चकारस्य जश कृते, 'चोः कुः' कुत्वे, 'वाऽवसाने' विकल्प चर्त्वे। पयोमुक् पयोमुग् पयोमुचौ पयोमुचः। अजादिविभक्तौ वर्णसम्मेलने पयोमुचं पयोमुचः। पयोमुचा पयोमुग्भ्यां हलादिविभक्तौ जश कुत्व, पयोमुग्भिः। पयोमुचः पयोमुचोः पयोमुचां पयोमुक्षु।

महत्शब्दकी विशेषता बोलने हेतु वर्तमाने—उणादि सूत्र है। वर्तमानकाल अर्थ

पयोमुचः। पयोमुग्भ्याम्। मह पूजायाम्। वर्तमाने पृषन्महद्बृहज्जगच्छतृवच्च। एते निपात्यन्ते, शतृवच्चैषां कार्यं स्यात्। उगित्वान्नुम्। (५) **सान्तमहतः संयोगस्य ६।४।१०।** सान्तसंयोगस्य, महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। महान् महान्तौ महान्तः। हे महन्। महतः महद्भ्याम्। (६) **अत्वसन्तस्य चाऽधातोः ६।४।१४।** अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो, धातुभिन्नस्यतस्य चासम्बुद्धौ सौ। धीमान् धीमन्तौ धीमन्तः हे धीमन्। शसादौ महद्वत्। भातेर्डवतुः। डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः।

में पृषत् (पृषु सेचने सेचनक्रिया वर्तमाने) बृहत् (बृह वृद्धौ वर्धनक्रिया वर्तमाने इन दोनोंमें गुणका अभाव। मह पूजायां,से कर्म अर्थमें अत् प्रत्यय। गम्स्थाने जग आदेश निपातनसे। सूत्रमें स्वीकारानुरोधसिद्धि मान्य। शतृवच्च शतृवद्भावसे जगत् मानकर नुम् लाभ, सान्तमहतसे दीर्घ।

उगित्वात्=उक् उऋ लुके इत् होनेसे उगित् अचां सर्वनामस्थाने सूत्रसे नुम् न।

(५) **सान्त** (लुप्तषष्ठीक हैं) संयोगस्य=सकार हो अन्तमें ऐसा संयोग विद्वस् इत्यादि, महतश्च महत् शब्दका जो नकार, तस्योपाधायाः उसकी उपधा अन्त्य अक्षरके पूर्ववर्णको दीर्घ हों। सम्बुद्धिभिन्नसर्वनामस्थानविभक्ति परे। महान्=दिव्य या श्रेष्ठ, अर्थसे अर्थवान् प्रासंज्ञक महत् शब्दसे सु। यहाँ उगित् मानकर उगिदचां से नुम्=न शतृवद्भावसे उगिद्धर्म महत् शब्दमें आया। प्रमाण–वर्तमाने, त्रिंशत्, महत्, बृहत्, जगत् शतृवच्च। सान्तमहत्संयोगस्य इति नकारस्य उपधायाः दीर्घ, सुलोप, संयोन्तलोप च महान् महान्तौ=अत्र नुम् उपधादीर्घश्च अनुस्वारपरसवर्णौ तथैव महान्तः हे महन्। अत्र न सम्बुद्धिपरे दीर्घः। महान्तम् महान्तौ महतः। महता महद्भ्यां महद्भिः। महति महतोः महत्सु।

(६) **अत्वन्तस्य**=अतुप्रत्यय अन्तमें हो, उसके उपधाको दीर्घ हो। असन्तस्य धातुसे भिन्न जो असन्त उसके अन्त उपधाको भी दीर्घ हो, सम्बुद्धिभिन्न सुपरे। उत्सृष्टानुबन्धग्रहणे। यहां अतु सानुबन्धग्रहण मतुप्, मत्, आदि प्रत्यय जाने। यथा–धीः=(प्रशस्ता बुद्धिः) अस्तिअस्य। प्रशंसामें मतुप् धीमत्शब्दात् प्रातिपदिकात् सु उगित्वात् उगिद्चां सूत्रेण नुम्, अनुबन्धलोप, अपृक्तसंज्ञकसलोप। संयोगान्तलोप च। प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणेन अत्वसन्तस्य इति उपधायाः दीर्घ। धीमान्, धीमन्तौ धीमन्तः। हे धीमन् शसादौ=शस् टा इत्यादि विभक्तियोंमें महद्वत् 'महत्' शब्दकी तरह रूप समझें। भातेर्डवतुः=दीप्ति, प्रकाश अर्थमें भा धातुसे डवतु। डकारस्य चुटू सूत्रेण, उकारस्य उपदेशे अजनुनासिक इत्संज्ञा लोपश्च। भा अवत्। यहां भसंज्ञा यचिभम् से नहीं होती क्योंकि उसकी सीमा चतुर्थ पञ्चम अध्यायके कप् प्रत्यय तक हैं तब टिलोप कैसे हो? डित्वसामर्थ्यात्। ड पढ़ने के सामर्थ्यसे अभस्यापि=बिना भसंज्ञाके भी —

टिका लोप होता है। अन्यथा डित्करण व्यर्थ होगा। भा में आका लोप हुआ।

भवान् भवन्तौ। शत्रन्तस्य तु भवन्।(७) **उभे अभ्यस्तम्** ६।१।५। षाष्ठ-द्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः। (८) **नाभ्य-स्ताच्छतुः** ७।१।७८। अभ्यस्तात्परस्य शतुर्नुम् न। ददत् ददतौ। (९) **जक्षित्यादयः षट्** ६।१।६। षड् धातवोऽन्ये, जक्षितिश्च सप्तमः एतेऽभ्यस्तसंज्ञा स्युः। जक्षत् जक्षतौ जक्षतः। एवं जाग्रत्। दरिद्रत्। शासत्। चकासत्। दीधीङ् दीप्ति देवनयोः। वेवीङ् वेतिना तुल्ये। एतौ छान्दसौ। दीध्यत। वेव्यत्।

जक्षिजागृ दरिद्रा शास् दीधीङ् वेवीङ् चकास्तथा।
अभ्यस्तसंज्ञा विज्ञेया धातवो मुनिभाषिताः॥ १॥

भवत्शब्दात् प्रथमायाः एकवचने सु नुम्। सुलोपे संयोगान्तलोपे। अत्वसन्तस्य इति उपधायाः दीर्घे। भवान् भवन्तौ भवन्तः। भवन्तं भवन्तौ। भवतः भवता भवद्भ्यां भवद्भिः। भवति भवतोः भवत्सु। शत्रन्तस्य=शतृप्रत्यय अन्तमें हो ऐसे भवत्शब्दको नुम् आदि करके भवन्रूप बनता है। अतु अन्तमें न होने से दीर्घ नहीं होता। संयोगान्तलोप असिद्धिके भयसे नान्त उपधाको दीर्घ नहीं हुआ।

(७) **उभे-षाष्ट** अष्टाध्यायीमें एकाचो द्वे प्रथमस्य–छठे अध्यायके इस सूत्रसे किये गये द्वित्व प्रसंङ्गमें जो दो कहे गये हैं, वे समुदिते=दोनों मिलकर अभ्यस्त संज्ञक हो। अलग अलग नहीं। (८) **अभ्यस्तात्**=अभ्यस्तसंज्ञकसे परे शतृ अत्को नुम् न हो। निरन्तर दान करता हुआ अर्थमें ददत् (शतृप्रत्ययान्त प्रासंज्ञक) से सु उगिदचां से प्राप्तनुम्का निषेध हुआ। क्योंकि अभ्यस्यसंज्ञकसे नुम् प्राप्त था। अभ्यस्तसंज्ञा उभेऽभ्यस्तम्से हुई। हल्ङ्यादिलोपे। ददता ददद्भ्यां ददद्भिः। ददतः ददतोः ददताम्। ददति ददतोः ददत्सु।

(९) **जक्षित्यादयः**=जक्षि, जागृ, दरिद्रा, शास्, देधीङ्, वेवीङ् चकास्, अभ्य-स्तसंज्ञा विज्ञेयं (मुन्युक्तं धातुशप्तकम्) छ धातु, अन्य जक्ष मिलकर सात धातुकी अभ्यस्तसंज्ञा है। यक्ष धातु भक्षण और हंसने अर्थमें है, उसकी निरन्तर क्रियासे जक्षत्को अभ्यस्तसंज्ञा 'नाभ्यस्तात् से नुम्का निषेध। रूप साधारण है। इसीप्रकार जागरणं कुर्वन्। जागरणकी निरन्तर क्रिया अर्थमें जाग्रत् शब्दको अभ्यस्तसंज्ञा, नुम् निषेध। दुर्गति दयनीयं वा प्राप्नुवन् दरिद्रत्=दुर्गतिकी निरन्तर क्रिया। शासनं कुर्वन्। शासत् भगवान्, चकासत्=निरन्तर प्रकाशनकी क्रिया। इन सभीको अभ्यस्तसंज्ञा नुम्निषेध।

दीधीङ् वेवीङ् दोनों ङित् आत्मनेपदी, शानच् होगा, शतृ कैसे ? तब बोलेकी दोनों ङित् है। छन्दः–वेदके ही विषय है। बहुलं छन्दसि सूत्रसे परस्मैपदी भी जिनसे शतृसम्भव। दीध्यत् दीधीसे लट् अत्। शप् लुक् यण् अभ्यस्तसंज्ञा नुम्निषेध। एवं वेव्यत्।

गोपायति इति गुप् (रक्षकः)प्रथमायाः एकवचने सु स् अपृक्तसलोपे, जश्त्वे विकल्पे

गुप गुब् गुपौ गुपः। गुब्भ्याम्। (३८०) **त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च** ३।२।६०। त्यदादिषूपपदेषु अज्ञानार्थात् दृशेर्धातोः कञ् स्यात्, चात्क्विन्। (१) **आसर्वनाम्नः** ३।३।९१। सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्यात् दृग्दृश्वतुषु। तादृक् तादृग् तादृशौ तादृशः। तादृग्भ्याम्। व्रश्चेति षः जश्त्वचर्त्वे। विट विड् विशौ विशः विड्भ्यां। (२) **नशेर्वा** ८।२।६३। नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा पदान्ते। नक् नग् नट् नड्। नशौ नशः। नग्भ्याम्। नड्भ्यां। (३) **स्पृशोऽनुदके क्विन्** ३।२।५८। अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः। क्विन्। घृतस्पृक् घृतस्पृग् घृतस्पृशौ घृतस्पृशः। दधृक् दधृग् दधृषौ दधृषः। दधृग्भ्यां। रत्नमुट् रत्नमुड् रत्नमुषौ रत्नमुषः। रत्नमुड्भ्यां। षट् षड्

चर्त्वे गुप् गुब् इति भ्यामादिहलादिविभक्तौ पदान्ते झलां जश्वे गुब्भ्याम् इयादि।

(३८०) **त्यदादिषु**=त्यद्, तद्,यद्, ये उपपद हों तो अनालोचने चाक्षुषज्ञानभिन्ने अज्ञानार्थात्=चाक्षुष ज्ञान अर्थ से रहित दृश् धातुसे कञ् तथा क्विन् प्रत्यय हो।

(१) **आसर्वनाम्नः**-सर्वनामशब्द के अन्त्य अल्वर्ण को आ हो। दृग्, दृश्, वतु शब्द परे रहते। तद्पूर्वक दृशधातुसे सर्वापहारि लोपः। आसर्वनाम्नः इति दकारस्य आकारे। दीर्घे। प्रातिपदिकत्वात्=सु स् तस्य लोपे 'व्रश्चेति' शकारस्य षत्वे षस्थाने झलांजशोऽन्ते इति ड कृते। क्विन् प्रत्ययस्य कुत्वेन गकारे। विकल्पेन चर्त्वे। तादृक्। स इव पश्यति ज्ञानविषयो भवति। अचाक्षुष ज्ञानवाला (वैसा) तादृग्। इस प्रसङ्गमें ष, ड, ग, क की प्रक्रिया श के स्थानमें समझें। तादृशा, तादृग्भ्याम्। अयम् इव पश्यति ईदृक्, या इव पश्यति यादृक्। तादृग्भिः, तादृशि तादृशो. तादृक्षु। वैश्य अर्थमें प्रसिद्ध विशशब्दात् सु=स्। तस्यलोपे 'व्रश्चभ्रस्ज' सूत्रेण शस्थाने षे कृते, तस्य जश चर्त्वे विकल्पे। विट् विड् विशौ विशः। विश विड्भ्यां विड्भिः। विशे विड्भ्यां विड्भ्यः विशि, विशोः विट्त्सु-विट्सु।

(२) **नश** धातुके कवर्ग अन्तादेश विकल्पसे हो, पदान्तमें। नश्यतीति नग् नक् नश्वर अर्थमें नश् शब्दसे सु, स् लोपे। नशेर्वा सूत्रसे शके स्थानमें ग हुआ। विकल्प चर्त्वे नक्, नग्। पक्षमें व्रश्चेति षः तस्य जश्त्वे चर्त्वे विकल्पे। नट्, नड् नशौ नशः। नशा नग्भ्यां नड्भ्यां नग्भिः नड्भिः। नशि नशोः नक्षु नट्त्सु नट्सु।

(३) **अनुदके**=उदक-जल अर्थ न हो, ऐसे सुबन्तशब्द उपपद रहते स्पृश्धातुसे क्विन् प्रत्यय हो। घृतं स्पृशति घृतस्पृक्=घीका स्पर्शकरनेवाला। यहां घृत उदक् नहीं। अतः स्पृशसे क्विन् सर्वापहारिलोपे। प्रातिपदिक आदि कार्ये। शस्थाने ष, ड, ग, क कृते घृतस्पृक् घृतस्पृग्। घृतस्पृशा: घृतस्पृग्भ्यां घृतस्पृग्भिः। घृतस्पृशः। घृतस्पृशोः, घृतस्पृशाम्। घृतस्पृक्षु। तिरस्कर्ता अर्थमें प्रसिद्ध दधिष्, ऋत्विग्दधृष् इति क्विन्, सर्वापहारिलोपे निपातनात् द्वित्वादिः प्रथमायाः एकवचने 'सु' पूर्वं षस्थाने जश ड् तस्य कुत्वे चर्त्वविकल्पे। दधृक् ग रत्नं मुष्णाति रत्नमुट् रत्न चुराने

षड्भिः षड्भ्यः २ षण्णाम् षट्त्सु षट्सु। यत्तु प्राचा षण्णां षड्णामित्युदाहृतं, तत्प्रामादिकमेव, प्रत्यये नित्यवचनात्। रुत्वं प्रति षत्वस्यासिद्धत्वात्स सजुषोरिति रुत्वम्। (४) **र्वोरुपधाया दीर्घः इकः** ८।२।७६। रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः पदान्ते। पिपठीः। पिपठिषौ पिपठिषः पिपठीर्भ्याम्। (५) **नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि** ८।३।५८। एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपिण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात्। ष्टुत्वेन पूर्वस्य षः। पिपठीष्षु। वा शरि। पिपठीःषु। चिकीः चिकीर्षौ चिकीर्षः। चीकीर्षु

वाला। यहां षको जश चर्त्वविकल्प रत्नमुषि, रत्नमुषोः रत्नमुट्सु, रत्नमुट्त्सु। क्विप्प्रत्ययान्त शब्द है क्विन् नहीं अतः कुत्व नही हुआ। षट् शब्द नित्य बहुवचनान्त है। छः संख्या अर्थवाचकात् षष् शब्दात् जसि शसि च। 'ष्णान्ताः षट्' इति षट्संज्ञा। षड्भ्यः परयोः जश्शसोलुक् कृते षकारस्य जश चर्त्वविकल्पे षट् षड्। भिस् भ्यस् विभक्ति में जश्त्वेन डकारे। षड्भिः षड्भ्यः। आमि विभक्त षट्चतुर्भ्यश्च इति नुट् (न्) षष्—नाम षस्थाने झलां जश्त्वे नुट् नकारस्य ष्टुत्वेन णकारे षड्णाम। **प्रत्ययेभाषायां नित्यम्** नित्यम् अनुनासिके परसवर्णे। षण्णां। षट्सु षट्त्सु। ङःसि धुट्।

पिपठीः — पठितुम् इच्छति पिपठिषति इति पिपठीः। पिपठिष् शब्द से सु= स हल्ङ्यादिलोपे। यहां दन्त्य स नही है। रु० वि० कैसे ? तब बोले 'रुत्वं प्रति ससजुषोरुः रुत्वकी दृष्टिमें आदेश प्रत्ययोःसे कृतः षकारः असिद्धः। इसलिए बोले कि षत्वस्यासिद्धत्वाद्=षत्वके असिद्ध होनेपर स दिखाई पड़ा, इसलिए रुत्व हुआ तब —**र्वो**=रेफ तथा व अन्तमें हो उसकी उपधाके इक्को दीर्घ हो पदान्तमें। इति दीर्घे खरवसानयोः विसर्जनीयः इति विसर्गे। पिपठीः, पिपठिषौ पिपठिषः। पिपठिषा पिपठीर्भ्याम् पिपठीर्भिः। पिपठिषः पिपठिषोः पिपठिषाम्। पिपठिषि पिपठिषोः पिपठीःषु। अत्र पिपठिष् शब्दात् सप्तमी बहुवचने सुपि अनुबन्धलोपे। स्वादिष्वसर्वनामस्थाने पदसंज्ञा 'पूर्वत्रासिद्धम्' इति षत्वस्य असिद्धत्वात् सकारस्य ससजुषोरुः, इति रुत्वे र्वोरुपधायाः दीर्घे। 'रोऽसुपि' इति रोरेव विसर्गः इति नियमेन रेफस्य विसर्गे। 'वाशरि' इति विकल्प सकारादेशः पिपठीःसु।

नुम्, विसर्ग, शर्=शषसर्, व्यवायेऽपि=इनके व्यवधानमें भी। इण् कवर्गसे परे सको 'ष' मूर्धन्यादेश हो। पूर्व सको ष्टुत्व होनेसे ष हुआ। पिपठिष्षु। चिकीः कर्तुमिच्छति चिकीर्षति। चिकीर्षशब्दात् सु स् लोपादिकार्ये। अत्र न संयोगान्तलोपः। रेफात् परस्य सकारस्यैव लोपनियमात् इति सकारस्य संयोगान्तलोपे, रेफस्य विसर्गे। चिकीः चिकीर्षौ चिकीर्षः। चिकीर्षम् भ्याम् षत्वस्य असिद्धत्वात् सकारस्य संयोगान्तलोपे रेफस्य विसर्गे प्राप्ते रोःऽसुपि इति नियमात् निषेधे। चिकीर्षु। अवशिष्टाः शब्दाः पूर्ववत्। ज्ञानार्जनकी निरन्तर क्रियाका कर्ता विद्वान् विद्वातुसे

विद्वान् विद्वांसौ हे विद्वन्। (६) वसोः सम्प्रसारणम् ६।४।१३१। वस्व-न्तस्य भस्य सम्प्रसारणम्। विदुषः। बहुत्वं स्विति दत्वम्। विद्वद्भ्यां। (७) पुंसोऽसुङ् ७।१।८९। पुंसोऽसुङ् स्यात् सर्वनामस्थाने। पुमान्। हे पुमन् पुमांसौ पुंसः पुंभ्याम् पुंसु। ऋदुशनेत्यनङ्। उशना उशनसौ। अस्य सम्बुद्धौ वाऽनङ्, नलोपश्च वा वाच्यः। हे उशन। हे उसनन्। हे उशनः

शतृ। उसके स्थानमें वसु। विद्वस्=शब्दात् प्रातिपदिकात् सु हल्ङ्यादिलोपे 'उगि दचाम् नुमि 'सान्तमहतः' इति दीर्घे। सकारस्य संयोगान्तलोपे। विद्वान्। अत्र संयोगान्त लोपस्य असिद्धत्वात् नान्तस्य उपधायाः दीर्घो न भवति। इस प्रकार औ विभक्ति परे नुम् नश्चापदान्तस्य झलि इति अनुस्वारे। विद्वांसौ विद्वांसः। हे विद्वन् अत्र सान्तमहत् इति दीर्घो न। विद्वांसम्, विद्वांसौ विदुषः। **वसोः** वस् प्रत्ययान्त ऐसे भसंज्ञकको सम्प्रसारण हो। शसि विभक्तिसे लेकर अजादि विभक्तिपरे। यत्र भसंज्ञा तत्रैव सम्प्रसारणम्। विद्वस् शब्दात् प्रातिपदिकात् द्वितीया बहुवचने शस् अस्, भसंज्ञायां वशोः सम्प्रसारणे वस्थाने उकृते पररूपे। विदुस् अस् सकारस्य रुवि०। आदेशप्रत्यययोः इति षत्वे विदुषः। विदुषा विद्वस्—भ्याम्, वसुस्रंसु इति सस्थाने दकृते। विद्वद्भ्यां विद्वद्भ्यः। विदुषः विदुषोः विदुषाम्। विदुषि विदुषोः विद्वत्सु। (७३) **पुंसः** सर्वनाम स्थानकी विवक्षामें पुंसशब्दके अन्त्य अल् सको असुङ् हो। ङित्वात् अन्त्यस्य अलः सस्य स्थाने आदेशः पुरुषः। पुरुष अर्थवाचक पुंस शब्दात् सु पुंसोऽसुङ् सूत्रेण सस्थाने असुङ् अनुबन्धलोपे निमित्तापाये नैमित्तिक-स्याप्यपायः। कारणके हट जानेसे कार्य भी हट जाता है। सके हटनेसे अनुस्वार हट गया मके रूपमें हो गया। पुमस् स उगिदचाम् नुं अपृक्त सकारस्यलोपे, सान्त महत् इति दीर्घे। पुमान् पुमांसो पुमांसः। हे पुमन् अत्र सम्बुद्धि परे दीर्घनिषेधः। शसि विभक्तो पुंसः पुंसा पुम्भ्यां संयोगान्तलोपमात्रम्। मकारस्य पुनः अनुस्वारे परसवर्णे च पुंसु (सुप विभक्तिपरे) सकारस्य संयोगान्तलोपे मकारस्य अनुस्वारे। (शुक्राचार्य अर्थमें प्रसिद्ध) उसनस् शब्दात् सु 'ऋदुशनस् पुरुदंश अनेहसाञ्च सूत्र से अनङ् आदेशके ङित् होने से ङिच्च सूत्रसे अन्त्य सके स्थानमे हुआ। अनुबन्ध लोपे। नान्त उपधायाः दीर्घे, हल्ङ्यादिलोपे, प्रातिपदिकान्त नकारस्य लोपे। **उशना** (भार्गवः कविः) उशनस् औ उशनसौ, उशनसः। सम्बोधनमें तीन रूप (वा) **अस्य**=उशनस् शब्दके सम्बुद्धिपरे अनङ् आदेश विकल्पसे हो। नकारका लोप भी विकल्पसे। हे उशनस् सु अत्रसम्बुद्धिसंज्ञा, वार्तिकसे अनङ् होनेसे उशनन्। न लोप विकल्पसे। हे उशन। अनङ् नहीं हुआ सकारस्य रुवि०। हे उशनः। उशन-सम् उशनसौ उशनसः। उशनसा उशनोभ्यां उशनोभिः उशनसः उशनसोः उशन-साम्। उशनसि उशनसोः उशनः सु उशनस्सु। काल (समय) अर्थमें अनेहस् शब्दात् सु ऋदुशनस् इति अनङ् अनुबन्धलोपे। नान्त उपधायाः दीर्घे पुनः सवर्ण-

उशनोभ्यां। अनेहा अनेहसौ अनेहसः। हे अनेहः वेधाः वेधसौ वेधसः। (८) **अदस औ सुलोपश्च** ७।२।१०७। अदस औंकारोऽन्तादेशः स्यात् सौं परे सुलोपश्च। 'तदो' रिति सः। असौ। औत्वप्रतिषेधः साकच्कस्य वा वक्तव्यः। प्रतिषेधपक्षे—सादुत्वं च असकौ असुकः। त्यदाद्यत्वं पररूपत्वम्। वृद्धिः। (९) **अदसोऽसेर्दादुदो मः** ८।२।८०। अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ स्तो, दस्य मश्च आन्तरतम्याद् ह्रस्वस्य उः। दीर्घस्य ऊः। अमू। जसः शी। (१०) **एत ईद् बहुवचने** ८।२।८१। अदसोऽसान्तस्य दात् परस्यैत् ईत्, दस्य च मो, बह्वर्थोक्तौ। अमी पूर्वत्रासिद्धिमिति विभक्तिकार्यं

दीर्घे। सुलोपे नलोपे च कृते। अनेहाः अनेहसौ पूर्ववत्। ब्रह्मा अर्थमें वेधस् शब्दात् सु। यह धातु भिन्न असन्त है, अतः अत्वसन्तस्य चा धातोः इति दीर्घे, सकारस्य हल्ङ्यादिलोपे रुवि० वेधाः। सम्बुद्धिमें दीर्घ न होने से। हे वेधः वेधसौ वेधसः। वेधसा वेधोभ्यां, वेधोभिः। वेधसे वेधोभ्यां वेधोभ्यः। वेधसः वेधसों वेधसाम्, वेधसि वेधसोः। वेधस्सु। इसी प्रकार दिवौकस् (बन्दर) चन्द्रमस् सुमनस् आदि शब्द का रूप समझें।

(७४) **अदस्** शब्दके अन्त्य अल् (वर्ण) के स्थानमें औ हो। सु पर, और सु का लोप भी। तदोः सः सावनन्त्योः से दको स होता है असौ। अदस् शब्दस्य प्रासंज्ञायां ततः सुविभक्तिः। सकारस्य त्यदादीनामः अकारे प्राप्ते तं बाधित्वा अदस औ सुलोपश्च सूत्रेण सकारस्य औ। सुलोपे च कृते, वृद्धिरेचि सूत्रेण अ औ स्थाने औ वृद्धिः तदोः सः सूत्रेण अनन्त्यदकारस्य सकारे। असौ।

(वा०) औत्वको विकल्पसे निषेध हो। साकच्कस्य=अकच्सहितस्य विकल्पेन प्रतिषेधः तदो सः दस्थाने स। सात् उत्वञ्च=सकारसे परे अको उ विकल्पसे हो। औत्व पक्षे असकौ सादुत्वं (उत्व) पक्षे असुकः।

अदस्—औ इति दशायां त्यदादीनामः सकारस्य अत्वे (इसीको त्यदाद्यत्वम् कहा) पररूपत्वम्, अतो गुणे इति पररूपे, अद—औ 'वृद्धिरेचि' इति प्राप्तां वृद्धिं बाधित्वा प्रथमयोः पूर्वसवर्णः प्राप्तः, तस्य नादिचि निषेधे पुनः वृद्धिः अदौ इति स्थिते। (५) **असेः** असन्तस्य अदसः अदसशब्द यदि सान्त न हो तो द से परे अ आ ओ कोई भी वर्ण हो ह्रस्वके स्थानमें उ हो तथा दको म हो जाय। आन्तरतम्यात्=वाह्यप्रयत्न देखने पर ह्रस्व स्थानमें उ, दीर्घके स्थानमें ऊ होता है। प्रसङ्ग में दको म, औ को बड़ा ऊ, इसी सूत्रसे हुआ। अमू-प्रासंज्ञक अदस्शब्दात् बहुवचने जस् तस्य स्थाने शी अनुबन्धलोपे, गुणे, अदे इति स्थितम्।

(६) **एत्** अदस्शब्दके द से परे एत् एके स्थानमें ई हो। द स्थाने म बहुवचनमें एत ईद् इत्यनेन अदे इत्यत्र एकारस्य ईकारे। दकारस्य च मकारे अमी, एवं अन्यत्रापि एत्वे कृते उकारमकारौ भवतः। पूर्वत्रासिद्धं सूत्रत्रिपादी (उत्वमत्व)

प्राक्, पश्चादुत्वमत्वे। अमुम् अमू अमून्। मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभावः। (१) न मुने ८।२।३। 'ना' भावे कर्तव्ये, कृते च मुभावो नाऽसिद्धः। अमुना अमूभ्यां अमीभिः। अमुष्मै अमीभ्यः। अमुष्मात्। अमुष्य अमुयोः। अमीषाम् अमुष्मिन् अमुयोः अमीषु। इति हलन्ताः पुल्लिङ्गाः।

को असिद्ध करके पहले विभक्ति कार्य पश्चात् उत्व मत्व कार्य हो। अदस् अम् अत्वे पररूपे अद् अम्। अत्र उत्वे मत्वे च प्राप्ते पूर्वत्रासिद्धं कृत्वा विभक्तिकार्यं अमि पूर्वरूपं कृत्वा ततः उत्वमत्वे क्रियेते। अमुम् अमू अमून् यहा प्रथम पूर्वसवर्ण दीर्घ नत्व, पश्चात् उत्वमत्व। तृतीया एकवचने अदस्—टा अत्वे पररूपे उत्वे मत्वे च कृते अमु—आ। शेषोऽध्यसखि घिसंज्ञा आङो ना इति न आदेशे अमुना। न च ना आदेशः सपादसप्ताध्यायी, तद्दृष्ट्या त्रिपादी उत्वमत्वे असिद्धे भवतः। कथं घि संज्ञा, कथं ना आदेशः। इति शङ्कानिवारणाय।

(१) **नमुने** जहां ना आदेश कर्तव्ये=करना हो, कृते च=या ना आदेश हो गया हो, मुभावः=उत्व मत्व असिद्ध नहीं होता इति निषेधें। अमूभ्यां=अदस्—भ्याम् अत्वे पररूप सुपिचेति दीर्घे। ततः उत्वे मत्वे दीर्घस्थाने दीर्घे रुवि०। अमीभिः= अदस्—भिस् अत्वे पररूपे अङ्गसंज्ञायां बहुवचने झलि एकारे, एत ईद्बहुवचने इति ईत्वे द स्थाने म। रुवि०। अमीभिः। अत्र अतोभिस् ऐस न भवति नेदमदसोरकोः इति निषेधात्। अमुष्मै=अदस्—ङे अत्वे पररूपे अङ्गसंज्ञा सर्वनाम्नः ङे स्थाने स्मै आदेशे अदसोः इति प्रत्ययसकारस्य आदेशप्रत्ययोः इति षत्वे। अमूभ्यां अमीभ्यः। अमुष्मात् ङसि स्थाने स्मात् आदेश विशेषः। अन्यत् सर्वं पूर्ववत्। अमुष्य अदस् ङस् अत्वे पररूपे अङ्गसंज्ञायां टाङसि सूत्रेण ङस् स्थाने स्य आदेशे मुत्वे। प्रत्यय सकारस्य षत्वे। अमुयोः=अद्—ओस् इति स्थिते ओसचि इति एकारे तस्य स्थाने अय् आदेशे उत्वे मत्वे। अमीषाम् अदस—आम् अत्वे पररूपे अङ्गसंज्ञायां आमि सर्वनाम्नः सुट् अनुबन्धलोपे, बहुवचने झलि, एकारे। अदेसाम् ततः एत ईद्-बहुवचने ईत्वें मत्वे च, षत्वे रुपम्। अमुष्मिन् अत्र ङिस्थाने स्मिन् इति विशेषः। अन्यत् सर्वपुर्ववत्। अमीषु=अत्वादि कार्यम् पूर्ववत्। अदेसु इति जाते एत ईद्-बहुवचने ईत्वेमत्वे मूर्धन्यादेशे च।

युष्मद् शब्दके रूप—त्वं युवां यूयम्। त्वां (त्वा) युवां (वां), युष्मान् (वः) त्वया युवाभ्यां युष्माभिः। तुभ्यं (ते) युवाभ्यां (वां), युष्मभ्यं (वः)। त्वत् युवाभ्यां युष्मत्। तव (ते) युवयोः (वां) युष्माकं (वः) त्वयि युवयोः युष्मासु।

अस्मद् शब्दके रूप—अहम् आवां वयम्। मां (मा), आवाम् (नौ), अस्मान् (नः)। मया, आवाभ्याम्, अस्माभिः। मह्यम् (मे), आवाभ्याम् (नौ), अस्मभ्यम् (नः)। मत्, आवाभ्याम्, अस्मत्। मम (मे), आवयोः (नौ), अस्माकम् (नः)। मयि, आवयोः, अस्मासु।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकरीटीकायां हलन्तपुलिङ्गाः।

॥ अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ॥

(२) **नहो धः** ८।२।३४॥ नहो हस्य धः स्यात् झलि, पदान्ते च। (३) **नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ** ६।३।११६। क्विबन्तेष्वेषु पूर्वपदस्य दीर्घः। उपानत् उपानद् उपानहौं। उपानहः। उपानद्भ्याम्। उपानत्सु। निपातनाद्यलोपषत्वं। क्विवन्तत्वात्कुत्वेन हस्य घः। जश्त्व-चर्त्वे उष्णिक्। उष्णिग्। उष्णिहौ। उष्णिग्भ्याम्। द्यौः दिवौ दिवः। द्युभ्यां गीः गिरौ गिरः। एवं पूः। चतस्रः २ चतसृभिः चतसृभ्यः २ चतसृणाम्।

अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

(२) **नहधातु** के ह को ध हो झलि परे या पदान्तमें। (३) **नहवृत**, वष, व्यध, रुच, सह, तथा तनधातु क्विप् प्रत्ययान्त हो इनके पूर्वपदको दीर्घ हो। उप समीपे चरणयोः नह्यति=धत्ते वध्यते इति उपानत् चरणत्राणकर्त्री। उपपूर्वक नह धातोः क्विप् तस्य सर्वापहारलोपे। नहिवृत्ति पूर्वपदस्य दीर्घे नहो धः हकारस्य धकारे, धकारस्य जश्त्वेन दकारे तस्य अवसान संज्ञायां, विकल्पेन चर्त्वे। उपानद् उपानद, उपानहौ, उपानहः। उपानहि उपानहोः उपनत्सु। अन्य उदाहरण भी वृत् नीवृत् (देश, प्रान्त, ग्राम) प्रवृट (वर्षाऋतु) मर्मावित् (हृदयविदारक) नीरुक (निस्तेज)। अभिरुक (चतुर्दिक) प्रकाशक दुःखासह कष्ट सहनेवाला। परीतत्=फैलनेबाला। उष्णिह (वेदमें उपलब्ध छन्द विशेष का नाम। उ उपसर्गक स्निहधातुः। ऋत्विक् सूत्रसे क्विन् सर्वापहारलोपे। क्विन् प्रत्ययस्य इति कुत्वेन घकारे (महाप्राण सम्वारादिप्रयत्नदर्शनात्) चर्त्वे प्रासंज्ञा सु=स तस्य हल्ङ्यादि-लोपे उष्णिक् ग उष्णिहौ उष्णिहः। अजादि विभक्ति परे साधारणं। हलादि-विभक्तौ उष्णिह–भ्याम् हकारस्य कुत्वेन घकारे कृते तस्य जश्त्वेन गकारे। उष्णिग्भ्याम्। उष्णिहि, उष्णिहोः उष्णिक्षु। विभक्तिसकारस्य षत्वे कष संयोगे क्ष कृते द्यौः=(आकाशः) दिवशब्दस्य प्रासंज्ञा सु=स दिवः औत् इति सूत्रेण व स्थाने औ अन्तादेशे यणि रुवि०। औ जस् विभक्तौ सरलं रूपम्। दिवौ दिवः। दिव—भ्याम् दिवउत् व स्थाने उ आदेशे यणि द्युभ्याम्। अन्यत् सर्वं पुल्लिङ्गवत्। गिर् (वाणी) शब्दस्य प्रासंज्ञा सु=स र्वोरुपधायाः दीर्घं हल्ङ्यादिलोपे रेफस्य विसर्गे। गीः गिरौ गिरः। गिरं गिरो गिरः। गिरा गीर्भ्यां गीर्भिः। गिरः गिरोः गिराम्। गिरि गिरोः गीर्षु। इसी प्रकार पूः पुरौ पुरः पूर्भ्याम्। ग्राम, नगर अर्थ है। त्रि-चतुरशब्दयोः त्रिचरोः स्त्रियां तिसृ चतसृ आदेशे। जसि शसि विभक्तिपरे। अचिर-ऋतः इति रेफादेशे रुत्वविसर्गौ : चतसृभिः, चतसृभ्यः, चतसृणाम्। अत्र नामि इति दीर्घो न भवति न तिसृचतिसृ इति निषेधात्। प्रश्नवाचक किं शब्दात् सु किमः

चतसृषु का के काः । सर्वावत् (४) यः सौ ७।२।११० । इदमो दस्यः यः स्यात्सौ । इदमो मः । इयम् । त्यदाद्यत्वम् टाप् । दश्चेति मः । इमे इमाः । इमाम् इमे इमाः । अनया । हलिलोपः । आभ्यां आभिः । अस्यै । अस्याः २ अनयोः २ आसाम् । अस्याम् आसु । अन्वादेशे तु एनाम् । एने एनाः । एनया । एनयोः २ । 'ऋत्विगा'दिना सृजेः क्विन्, अमागमश्च निपात्यते

क अजाद्यतः टापकृते सवर्णदीर्घे हल्ङ्यादिलोपे । का के=किम्-औ किमः कः टाप् औङ आपः शी आदेशे गुणे । काः कां, के काः । कया काभ्यां काभिः । कस्यै काभ्यां काभ्यः । कस्याः काभ्यां काभ्यः । कस्याः कयोः कासाम् । कस्यां, कयोः कासु ।

(४) यः सौ इदम् शब्दके दको य हो, स्त्रीलिङ्गमें सु परे । इयम्=प्रा-संज्ञकात इदम् शब्दात् सु । अत्र अत्वे प्राप्ते । इदमो मः इति निषेधे । यःसौ दस्थाने य आदेशे इयम् । इदम् औ अत्र त्यदादीनामः अकारे । अकारस्य पूर्वेण सह पररूपे । दश्च द स्थाने म कृते स्त्रीलक्षण टाप अनुबन्धलोपे, सवर्णदीर्घे औ स्थाने शी आदेशे गुणे । इमे इमाः । इदम्-जस अत्वे पररुपे दकारस्य मकारे टाप् पूर्ववत् प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घे रुवि० । इमाम् इमे इमाः । इदा-टा अनाप्यकः । इद्भागस्य अन् आदेशे, आङिचापः इति एकारे अय् आदेशे । अनया । हलादिविभक्तौ भ्याम् आदौ हलिलोपः इति इद्भागस्यलोपे । आभ्यां आभिः । अस्यै इदा-ङे सर्वनाम्नः स्याट् आगमे आकारस्य ह्रस्वे वृद्धौ । आभ्यां आभ्यः । अस्याः=अत्र स्याट् आगम इति विशेषः । अनयोः इदा औस् अन आदेशः एत्वे अयादेशे विशेषः । आसाम् इदा आम् आमि सर्वनाम्नः सुट्कृते हलिलोपः इद्भागस्य लोपे । इदा-ङि । ङेराम्नद्याम्नीभ्यः इति ङिस्थाने आम् आदेशे । स्याट् आगमे इद्भागस्यलोपे अकारस्य ह्रस्वे । अस्याम्, अनयोः आसु । त्यद्-सु दकारस्य अत्वे पररुपे । स्त्री धर्मं विवक्षायां टापि, दीर्घे तदो सः इति तस्थाने स आदेशे सुलोपे ।

अन्वादेशे स्वीकृतकार्यस्य समाप्तेः पश्चात् अन्यकार्यं स्वीकारो अन्वादेशः । द्वितीया टा ओस्परे एन आदेशे टाप् । रमासदृश रुप । अथ जान्ताः । स्रजशब्दं व्युत्पादयति । सृज विसर्गे त्यागानुकूलक्रियावाचक सृज धातोः ऋत्विग्दधृक् सूत्रेण क्विन्, ऋसे परे अम् आगम निपातनसे । न इत् । ऋको यण् र स्रजशब्दः स्त्रीलिङ्गः माल्यं मालास्रजौ मूर्ध्नि । सुलोपे क्विन्प्रत्ययस्य कुत्वं ग चर्त्वं क स्रक्, स्रजं स्रजौ स्रजः । स्रजा स्रग्भ्यां स्रग्भिः । ज स्थाने कुत्वं ग । स्रजि स्रजोः स्रक्षु-स्रज सु ज स्थाने कुत्वं ग चर् क, ष, कष स्थाने क्ष ।

स्या । औस्थाने शी आदेशे, गुणे । त्ये, त्याः । एवम् अनेन प्रकारेण तद् शब्दात् विभक्तिपरे त्यदादि-अकारः पररुपं । टापि दीर्घे तदोः सकृते, सुलोपे च सा । तद्-औ (शी) ते ताः । तां ते ताः । तया ताभ्यां ताभिः । तस्यै, ताभ्यां ताभ्यः । तस्या तयोः तासाम् तस्यां तयोः तासु । एवम् । एषा एते, एताः । इत्यादि । वाणी

सृक् सृजौ सृजः सृग्भ्यां। त्यदाद्यत्वे टाप्। स्या त्ये त्याः। एवं तद्। यद् एतद्। वाक् वाग् वाचौ वाच। वाग्भ्यां ३ अप्शब्दोयित्यं बहुवचनान्तः नान्तः। अप्तृन्निति दीर्घः। आपः अपः। (५) अपो भि ७।४।४८। अपस्तकारो भादौ प्रत्यये। अद्भिः। अद्भ्यः २। अपाम् अप्सु। दिक् दिग् दिशौ दिशः। दिग्भ्यां। त्यदादिष्विति दृशेः क्विन्विधानादन्यत्रापि कुत्वम्। दृक् दृशौ दृशः। दृग्भ्याम्। त्विट् त्विषौ त्विषः। त्विड्भ्यां। त्विटत्सु त्विट्सु। ससजुषोरिति। रुत्वम्। सजूः सजुषौ मजूर्भ्याम् आशीः अशिषौ

अर्थवाचक वाच्–सु तस्य हल्ङ्यादिलोपे पदान्त चकारस्य कुत्वे, जश ग। वाऽवसाने इति विकल्पचर्त्वे वाक् वाग् वाचौ वाचः। वाचा वाग्भ्यां अत्र कुत्वं जश्त्वमिति विशेषः। हलादि विभक्तौ सर्वत्र तथैव वाग्भिः। वाचः वाचौ वाचान्। वाचि वाचोः वाक्षु। वाच्–सु खरि चेति चत्वेंन ककारे आदेश प्रत्ययोः इति षत्वे क ष संयोगे क्षकृते रुपम्। (आपः स्त्री, भूम्नि वार् वारि सलिलं कमलं जलं) इति अमरकोषात्। जलवाचक अपशब्दः सदा बहुवचनान्तः अप–जस् अपतृन्तृच् इत्यादि सूत्रेण उपधायाः अकारस्य दीर्घे सकारस्य रुवि० आपः। अपः=अत्रदीर्घो न भवति परे सर्वनामस्थानस्य अभावात्।

(५) अप्शब्दस्य तकार अन्तादेश हो। अप्–शस्। अत्र पकारस्य अकार आदेशे भादिप्रत्ययः भिस् जश। अद्भिः। उद्भ्यः। अपाम् अप्सु। अत्र चयो इति द्वितीयाक्षरो न प्रवर्तते पकारस्य जश्त्वे कृते तस्य चर्त्वेन पकारः तस्य असिद्धत्वात्, नेत्रवाचक दिश् शब्दात ऋत्विग् दधृक् सूत्रेण क्विन् प्रत्यये सर्वापहारलोपे। ततः सु=स तस्य लोपे। व्रश्चे षः जश्त्वे क्विन्प्रत्ययस्य कुत्वे। अवसाने। पक्षे चर्त्वे दिक् दिग् (शब्द, नेत्रपर्याय) दिक् शब्दस्तु दिशावाच्यादि अर्थे रुढः। दिक् दिग् दिशौ दिशः। दिशा दिग्भ्यां सर्वत्र षत्वं जश्त्वं कुत्वं भवति। आजादि विभक्तौ किमपि-कार्य न भवति। त्यदादिषु त्यद् तद् आदिके पूर्व रहते दृश् धातु (तादृश्) से क्विन् तथा कञ् विधान हो। अन्यत्रापि=त्यद् आदिके उपपद न रहने पर भी कुत्व हो। क्विन् प्रत्ययो यस्माद् दृष्टः तस्यापि कुत्वम्। यह अर्थ स्वीकार किया गया है। तादृकमें क्विन्प्रत्यय दृष्ट हैं, तब केवल दृशसे भी क्विन् तथा कुत्व प्रत्यय ग्रहण सामर्थ्यसे दृक दृग् अजादिमें कोई कार्य नहीं। दृशौं दृशः। दृशं दृशौ दृशः। हलादिमें ष ड ग अवश्य होगा। दृग्भ्यां दृग्भिः। दृशः दृशोः दृशाम्। दृशि दृशोः दृक्षु। कान्ति चमक अर्थमें त्विष्–सु सकारस्य जश ड सुलोपे। अवसाने चर्त्वे ट विकल्पः। त्विट् त्विड् त्विषौ त्विषः। रत्नमुष् शब्दवत् रुपं ज्ञेयम्। समानं जुषते सेवते इति सजूःमित्रम्, साथी अर्थवाचक मजुष–सु हल्यङ्याविलोपे ससजुषोः रुत्वे अनुबन्धलोपे र्वोरुपधायाः। इति दीर्घे रेफस्य विवर्गे सजूः। सजुषौ सजुषः। सजूषा सजूर्भ्याम्=अत्र रुत्वमुपधादीर्घश्च सजुषः सजुषो, सजुषाम्। सजुषि सजुषोः सजुष्षु

त्विट्सु । ससजुषोरिति रुत्वम् । सजूः सजुषौ सजूर्भ्याम् । आशीः आशिषौ आशीर्भ्याम् । असौ । त्यदाद्यत्वं टाप् । औङः शी । उत्वमत्वे । अमू अमूः अमुया । अमूभ्याम् अमूभिः । अमुष्यै अमूभ्यः । अमुष्याः २ । अमुयोः २ । अमूषाम् । अमुष्याम् । अमूषु । इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

॥ अथहलन्तनपुंसकलिंगाः ॥

स्वमोर्लुक् दत्वं स्वनडुत् स्वनडुही । चतुरनडुहोरित्याम् । स्वनड्वाहि, पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । वाः वारी वारि । वारा वार्भ्याम् । चत्वारि

सजुष—सुप् रुत्वे उपधायाः दीर्घे विसर्गे विसर्जनीयस्य सः इति विसर्गस्य सकारे प्राप्ते, वा शरि वैकल्पिक सकारे । सकारपक्षे (नुम् विसर्जनीय) इति षत्वे, ष्टुत्वेन रूपद्वयं सिद्धम् । आशीर्वादार्थक आशिष्—सु षकारस्य असिद्धत्वात् ससजुषोः इति रुत्वादिकार्ये उपधायाः दीर्घे आशीः आशिषौ आशिषः । आशिषम् । आशिषा आशीर्भ्याम् अत्र रुत्वे उपधायाः दीर्घे । आशीर्भिः । आशिषे, आशीभ्याम् आशीर्भ्यः आशिषः, आशिषोः आशिषाम् । आशिषि आशिषोः आशीःषु–ष्षु । असौ अदस–सु पुलिङ्गवद्रूप अदस् औ सुलोपश्च तदो सः इति एकारस्य सकारे वृद्धिः । अदा पूर्ववत् औ विभक्तिपरे वृद्धौ उत्वे मत्वे अमू । अदस् जस् अदा इति कृते पूर्वसवर्णदार्घे रुवि० अदाः । उत्वमत्वे । अमूः । अमुम् अमू अस् । अदा–टा आङिचापः इति आकारस्य एकारे तत्स्थाने अय् आदेशे ह्रस्वश्च कृते वृद्धिः उत्वे मत्वे षत्वे । अमूभ्याम् अमूभिः अमुष्यै=अदा—ए सर्वनाम्नः स्याट् ह्रस्व सवर्णदीर्घे मुत्वे षत्वे च रुपम् । अमूयोः–अदा—ओस् आङिचापः इति एकारे अय आदेशे मुत्वो । अमूषाम् अदा–आम् आमि सर्वनाम्नः सुट् आगमे मुत्वो षत्वो अमूषाम् अमुष्याम् अमुयोः अमूषु । इति प्रभाकरमिश्र कृतायां प्राभाकर्यां हलन्तस्त्रीलिङ्गाः ।

अनः (शकटं) वहतीति अनड्वान् । शोभनाः अनड्वाहः यस्मिन् कुले तत् स्वनडुद्=सुन्दरगाड़ीबैलवाला कुल । स्वनडुद्—सु स्वमोर्नपुंसकात् सूत्रेण सुलोपे वसु स्रंसु इति, हकारस्य दकारे, अवसाने चर्त्वविकल्पे । स्वनडुत् स्वनडुद् । स्वनडुह— औ नपुंसकाच्च इति औ स्थाने शी आदेशे । स्वनडुही स्वनड्वांहि । स्वनडुह–जस् या शस् तयोः स्थाने शि आदेशे । शिसर्वनामस्थानसंज्ञायां चतुरनडुहोः इति अन्त्य अचः उकारस्य आम्, म् इत्, यण्कृते नपुंसकस्य झलचः इति नुमि=न् नश्चापदान्तस्य झलि इति अनुस्वारे । पुनस्तद्वत्=प्रथमाकी तरह द्वितीया विभक्तिका रूप जानें । शेषं पुम्वत्=अवशिष्टरूप पुलिङ्गके समान समझें । जलवाचक वार्–सु स्वमोर्लुक् रेफस्य विसर्गे । वाः वारी अत्र औस्थाने शी आदेशे । जस् स्थाने शि वारि । वारा वार्भ्यां वार्भिः । वारे वारः वारि वारोः वार्षु । चत्वारि=चतुर् शब्दात् जश्शसोः स्थाने शि आदेशे इ चतुरनडुहोः आम् उकारस्य यणि चत्वारि । शेषं पुलिङ्गवत् । किम् शब्दात् सु तस्य अम् स्वमोर्लुक् । किम् अत्र किमः कः इति न भवति, विभक्तेः अभावात् प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणं च न भवति । न लुमताङ्गस्य इति निषेधात् । किम्–औ किमः क आदेशे औस्थाने शी, गुणे । के कानि । जस् शस् विभक्तिस्थाने शि आदेशे किमः क आदेशे कृते, नुमि उपधायाः दीर्घे, शेषं पुलिङ्गवत् रुपम् ।

किम् के कानि। इदम् इमे इमानि। (अन्वादेशे नपुंसके एन द्वक्तव्यः। एनत् एने एनानि। एनेन एनयोः २। व्योम व्योम्नी व्योमनी व्योमानि ब्रह्म। (संबुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः) हे ब्रह्म हे ब्रह्मन्। ब्रह्मणी ब्रह्माणि। रोऽसुपि। अहः। विभाषा ङिश्योः। अह्नी-अहनी। अहानि। (६) अहन् ८।२।६८। अहन्नित्यस्य रुः पदान्ते। अहोभ्यां। दण्डि दण्डिनी दण्डीनि। सुपथि। टिलोपः सुपथी। सुपन्थानि। ऊर्क् ऊर्जी ऊर्ञ्जि। नरजानां संयोगः। त्यद् त्ये त्यानि। तत् ते तानि। यत् ये यानि। एतत्

इदम्-सु नपुंसक सोर्लुक्। त्यदादीनामः अकारो न भवति। विभक्तिपरे नास्ति। न लुमता निषेधेन प्रत्ययलक्षणमपि न भवति। इदम्-औ, अत्वे पररूपे शी आदेशे गुणे दश्चेति मकारे इमें इमानि=अत्रापि अत्वंपररुपं जश्शसोः शि सर्वनामस्थान संज्ञा, उपधादीर्घे दकारस्य मकारे शेषं पुलिङ्गवत्। (वा) अन्वादेशके प्रसङ्गमें इदम और एतद् शब्दको एनद् आदेश हो एनद् इति नपुंसकैकवचने। अन्यत्र एन आदेश हो। अहन् शब्दसे सु तस्य लुक् 'रो असुपि' नस्य रेफ आदेशे तस्य विसर्गे।

वेदब्रह्मवाचक ब्रह्मन् नपुंसकं, वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रप्रजापतिः। सुलोप-नलोपौ। सम्बुद्धिमें नपुंसकोंके नलोपको विकल्पसे बोलें, नलोपे। हे ब्रह्म ब्रह्मणी औ शी ई, णः। विभाषा ङिश्योः अकारलोपेन संयोगाद्वमन्ताल्लोपनिषेधात्। जसः शि नान्तोपधादीर्घ। अहः। अहन्+औ तस्य शीं आदेशे विभाषाङिश्योः सूत्रेण अन् अकारस्य लोपविकल्पे अह्नी अहनी। जसि शसिविभक्तौ शि आदेशे नान्तस्य उपधायाः दीर्घे अहानि। अहन्-टा अल्लोपऽनः अकारस्य लोपे। अह्ना अहोभिः (६) अहन्के नकारको रु हो। पदान्तमें। अहन्-भ्याम्। स्वादिषु असर्व-नाम इति पदसंज्ञा अहन् नकारस्य रुः, हशि च उः। अ उ स्थाने गुणैकादेशे, एवं सर्वत्र हलादि विभक्तौ बोध्यम्। अह्ने अहोभ्यां अहोभ्यः। अह्नः अह्नोः अह्नां। अह्नि अहनि- अह्नोः, अहस्सुः। दण्डो अस्ति अस्मिन् कुले इति दण्डि (कुलं) दण्डिन् -सु सोर्लुक् न लोपे (वा) सम्बुद्धिमें नपुंसक लिङ्ग शब्दोंके न का लोप हो विकल्प से। हे दण्डिन्—सु का लोप विकल्पसे नकारलोप। हे दण्डि। औ विभक्तिको शी आदेश। दण्डिनी दण्डीनि। जश्शसोः शि, पन्थाः मार्ग अस्ति अस्य। सुपथि नगरं वनम्। सुपथिन् सु, सोर्लुक् नकारलोपे सुपथि सुपिथिन्-औ शी आदेशे भसंज्ञा टेः (इन् भागस्य) लोपे। सुपथी सुपन्थानि जश्शसोः स्थाने शि सर्वनामसंज्ञा इतोऽत् सर्वनाम स्थाने इकारस्य अकारें। अतो गुणे पररूपे थोन्थः आदेशें उपधादीर्घे सम्बुद्धौ नलोपविकल्पे। हे सुपथि हे सुपथिन्। अत्वादिकं न भवति सोर्लुक्त्वात्। तेज और बलवान् अर्थमें प्रसिद्ध उर्ज सु, सोर्लुक्, चोः कुः इति कुत्वम् ग, चर्त्व-विकल्पे उर्क उर्ग ऊर्जी, उर्न्जि। उर्ज जस् या शस् तयोः स्थाने शि आदेशे नपुंसकस्य झलचः नुम् न आगमे। उकारात् परो नुम् (अत्र न र ज इति) क्रमेण संयोगः। अतः तवर्गस्य अकारेण सह संयोगो नास्ति। श्चु न भवति। रेफव्यवधानात्। ऊर्जा उर्कभ्याम् ऊर्गभिः इत्यादि। तत् यत् एतत् इन शब्दोंसे स्वमोर्लुक् हो। द्विवचने ते ये एते। औ परे त्यदादीनामः अकारे पररूपे, शी आदेशे। गुणे च कृते सिध्यन्ति, बहुवचने जश्शसोः शि सर्वनामस्थानम्। अत्वं, पररुपम् नुम् उपधादीर्घश्च, तानि,

एते एतानि ॥ अवङ् स्फोटायनस्येति अवङ्। गवाक्शब्दस्य रूपाणि
क्लीबेऽर्चागतिभेदतः। असन्ध्यवङ्पूर्वरूपैर्नवाधिकशतं मतम् ।१।
स्वम्सुप्सु नव, षडभादौ षट्के स्युस्त्रीणि जश्शसोः।
चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय ॥ २॥ गवाक्
गवाग् गोञ्ची गवाञ्चि। पुनस्तद्वत। गोचा गवाग्भ्याम् यकृत् शकृत्
शकृती शकृन्ति शकृद्भ्याम्। ददत् ददती। (७) वा नपुंसकस्य ७।१।७९।

यान्ति. एतानि च सिध्यन्ति। शेषरूपाणि पुलिङ्गवत् बोध्यानि।

किसी राजसभामें प्राचीन पण्डितने प्रश्न किया ? जायन्ते नव सौ, तथामि च
नव, भ्यांमिस्भ्यसां सङ्गमे। षटसङ्ख्यानि नवैव सुप्यथ जसि त्रीण्येव तदिच्छति।
चत्वार्यन्यवचःसु कस्य विबुधाः शब्दस्य रुपाणि, तज्जानन्तु प्रतिभास्ति चेन्नि-
गदितुं षाण्मासिकोऽत्रावधिः। सु और अमि परे नौ नौरुपभ्यां भिस् भ्यस्में ६ संख्या
सुपपरे नव, जस शस में तीन तीन, शेष बचे विभक्तिमें चार चार रुप। ऐ विद्वनो.
किस शब्दके रुपमें है। बोलनेकी प्रतिभा हो तो बोलो, ६ महीने का समय हैं।
इसी प्रश्नका उत्तर दो श्लोकोंमें गवाक् शब्दके रुप है। नपुंसकलिङ्गमें अर्चागति
भेदतः=अञ्चू गतिपूजनयोः, अर्चा पूजा और गतिगमन अर्थभेदसे असन्धि, अवङ्
पूर्वरुपसे नवाधिकशतम्, १०९ रूप। सु आम् सुप्में ९-९ भेद २७। भादि छके
६-६ भेद ३६। जस् शस् के ३-३=६ कुल ६९। शेष जो दश विभक्ति है। उनके
४-४ रूप ४० यही १०९ रूप समझें। तथाहि-

गोपूर्वक अञ्च धातुका गति पूजा अर्थभेदसे रूप बहुत होते है। गत्यर्थक रूप
दिये जाते है। क्विन्प्रत्ययान्त, गोअञ्च-सु अनदितां हलः सूत्रेंण नकारलोपे, सोर्लुक्
अवङ्स्फोटायनस्येति ओकारस्थाने अवङ् आदेशे। सवर्णदीर्घे गवाच् इति स्थिते
(झलांजश् झसि) चकारस्य जकारे, क्विन् प्रत्ययस्य कुत्वे, अवसाने चर्त्वविकल्पे
गवाक् गवाग् अवङ् विकल्पे सर्वत्रविभाषा गोः प्रकृतिभाव विकल्पे गोअक, गोअग्,
पक्षे एङः पदान्तादति पूर्वरूपे गोऽक् गोऽङ् ५२७ रुप सब मिलकर होते है। गो
अञ्च-औ तत्स्थाने शी आदेशे भसंज्ञा अचः इति अकारलोपे गोचि गवाञ्चि।
जश्शसोः शि सर्वनामस्थानम्, ओकारस्य अवङ् सवर्णदीर्घे अनदितां नलोपे झलन्त
लक्षण नुम्, नकारस्य अनुस्वारे परसवर्णे पुनस्तद्वत्। द्वितीया कारकमें भी वैसा ही
रुप। टाविभक्तौ भसंज्ञा अनिदितामिति नलोपे। अचः इति अकारलोपे गोंचा,
गवाभ्यां, भ्यामादिहलादि विभक्तौ भसंज्ञा न भवति। अतः स्वादिषु इति पदसंज्ञा।
अवङ् आदेशे, सवर्णदीर्घे, कुत्वं जश्त्वं गवाग्भिः। अजादि विभक्तौ नुम् लोपें अकार
लोपे च कृते। गोचे, गवाग्भ्यां गवाग्भ्यः। गोचः गोचोः गोचाम्। गोचि गोचोः
गवाक्षु। गोअच्-सु नलोपे कुत्वे चर्त्वें, सकारस्य षत्वे, क ष संयोगे क्षे गवाक्षु।
भाति याति=भात् सूर्यः (भादीप्तौ) स्वमोर्लुक् जश्चर, आच्छीनद्योः नुम्, विकल्प
शीपरे। भाता भाद्भ्यां भाद्भिः पचतीति पचत् पाचकः अग्निः। पच् लट् शप्
शतृ अतो गुणे सुलुक आदि। औ शी पचत् ई।

शकृत्=पुरीषपर्यायः, मल इत्यर्थः। शकृत्-सु तस्य लुक् जश्त्वे, चर्त्वविकल्पे,
औस्थाने शी शकृती। शकृन्ति। जस् शस स्थाने शि सर्वनामस्थाने झलन्तलक्षण-
नुम् न, अनुस्वार परसवर्णे द्वितीया का रूप प्रथमाके तुल्य। शकृता अकृद्भ्यां।
शकृद्भिः। दानकी निरन्तर क्रिया कर्ता अर्थमें ददत्-सु स्वमोर्लुक् औस्थाने शी

अभ्यस्तात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य क्लीबस्य नुम्वा स्यात्सर्वनामस्थाने। ददन्ति ददति। तुदत्। (८) **आच्छीनद्योर्नुम्** ७।१।८०। **अवर्णान्तादङ्गा-**त्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य क्लीबस्य नुम्वा, शीनद्योः। तुदन्ती तुदती तुदन्ति। भात् भाती भान्ति। पचत्। (९) **शप्श्यनोर्नित्यम्** ७।१।८१। शप्श्यनोरात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम्, शीनद्योः। पचन्ती पचन्ति। दीव्यत्। दीव्यन्ती दीव्यन्ति। धनुः धनुषी सान्तेति। दीर्घः। नुम्विसर्ज-नीयेति षः। धनूंषि धनुषा धनूर्भ्याम्। एवं चक्षुर्हविरादयः। पयः पयसी पयांसि। पयोभ्याम्। सुपुम् सुपुंसी सुपुमांसि। अदः विभक्तिकार्यम्। उत्व-

आदेशे। ददती। (७) **अभ्यस्तसंज्ञकशब्द**से परे जो शतृ अत्प्रत्यय वह हो अन्तमें ऐसे नपुंसकलिंग शब्दको नुम् विकल्प हो सर्वनामस्थान परे। **ददत्** जस् तत्स्थाने **शि** 'वा नपुंसकस्य विकल्प नुम ददन्ति, ददति। ददता, ददद्भ्यां इत्यादि। निरन्तर पीड़ाअर्थमें तुदत् सोर्लुक्। **अवर्णान्त** अङ्गसे शतृ प्रत्ययका अवयव अत् तदन्तशब्द, अङ्गसंज्ञक को नुम् विकल्पसे हो, शी और नदीसंज्ञकपरे। आत्, शी, नद्योः, नुम्। तुदत्–औ नपुंसकात् च औ स्थाने शी आच्छिन्नेद्योर्नुम्, अवर्णान्त अङ्ग तुद् इति, तस्मात् परः शतृ अवयवः तकारः, शीपरे नुम्विकल्पः। तुदन्ती पक्षे तुदती, तुदन्ति। जश्शसो शि झलन्तलक्षण नुम्। तुदता तुदद्भ्यां तुदद्भिः। तुदति, तुदतोः, तुदत्सु।

(९) **शप** तथा **श्यन्**के आत्=अकारसे परे शतुरवयवः=शतृ प्रत्ययका अंश तकार हो अन्तमें उसे नित्य नुम् हो। निरन्तर पाकक्रियावाला अर्थ पचत् **पचन्ती** पचत्—औ तत् स्थाने शी। शपो अकारः (पच इत्यत्र) अ, तस्मात् परः **शतृप्रत्यस्य** अवयव पचत् इत्यस्य नित्यं नुम् पचन्ती पचन्ति। तुदन्तिवत् रूपम्। विजयकी इच्छा क्रीडा, स्तुति। हर्ष, तेज, गतिकी निरन्तर क्रियावाला दीव्यत्। दिव्यत् औ तत्स्थाने शी शप्श्यनोः नित्यं नुम्। दीव्यती दीव्यन्ति। नपुंसकस्य झलचः इति नुम् (धनुष सु) स्वमोर्लुक् रुत्वं प्रति षत्वस्य असिद्धत्वात् सकारस्य रुत्वे विसर्ग **धनुः** धनुषी। औ स्थाने शी आदेशः। धनष्—जस् शि शिसर्वनामस्थानम् झलन्तलक्षण नुम् सान्तमहत् संयोगस्य इति उपधादीर्घे। नुम् विसर्जनीय शर्व्यवायेऽपि इति **नुम्स्था-**निक **अनुस्वारस्य** व्यवधानेऽपि मूर्धन्यादेशः, धनूंषि। धनुर्भ्याम् अत्र षकारस्य असिद्धत्वात् सकारस्य रुत्वे हलादिविभक्तौ एवमेव रुत्वं बोध्यम्। धनुषि **धनुषोः** धनुःषु। इसी प्रकार नेत्र अर्थमें चक्षुः चक्षुषी चक्षूंषि। चक्षुषा चक्षूर्भ्याम् इत्यादि घृत या हवनीय अर्थमें। हविः हवींषि। हविषा हविर्भ्याम्। जन्म अर्थमें जनुः जनुषी जनूंषि। दुग्ध या जल **अर्थमें** पयस्—सु तस्य **लुक्** सकारस्य रुत्वे **विसर्गे**। पयः। औस्थाने **शी**। पयसी पयांसि जश्शसोः शि सर्वनामस्थाने नपुंसकस्य **झलचः** इति नुम्, सान्तमहतः इति दीर्घे नश्चापदान्तस्य झलि इत्यनुस्वारे। पयोभ्यां इत्यत्र भ्यांपरे पूर्वस्य पदसंज्ञापदान्तसकारस्य रुत्वे उत्वे गुणे च। पयोभिः पयसः **पयसोः** पयसाम्, पयसि पयसोः पयःसु। सकारस्य विसर्ग वाशरि इति विकल्पेन विसर्गस्य सकारे **पयस्सु**। इसीप्रकार **वयस**, तेजस् यशस् मनस् ओजस् औकस्, आदि **शब्दोंको** समझें। सुपूज्याः पुमांसो यस्य कुलस्य, वा तत्कुलं। सुपुम् सुपुंसु—**सु** सोर्लुकि सकारस्य संयोगान्तलोपे। अनुस्वारो असिद्धः। सुपुम्। औ स्थाने **शी**।

मत्वे । अमू अमूनि शेषं पुंवत् ॥ इति हलन्तनपुंसकलिङ्गाः ।

(४००) **स्वरादिनिपातमव्ययम्** १।१।३७॥ स्वरादयो, निपाताश्चा-व्ययसंज्ञाः स्युः । स्वर अन्तर् प्रातर् पुनर् । सुनुतर् उच्चैस् नीचैस् शनैस् ऋधक् ऋते युगपत् आरात् पृथक् ह्यस् श्वस् । दिवा रात्रौ सायम् । चिरं मनाक् । ईषत् जोषम् । तूष्णीं वहिस् अवस । समया निकषा । स्वयम् वृथा । नक्तम् नञ् हेतौ इद्धा अद्धा । सामि । २वत् ब्राह्मणवत । क्षत्रियवत् सना सनत सनात तिरस । उपधा अन्तरा अन्तरेण ज्योक कम् शम् सहसा विना नाना । स्वस्ति । स्वाहा । स्वधा ६अलं वषट श्रौंषट वौषट । अन्यम

सुपुंसी सुपुमांसि सुपुंस्–जस् जश्शसोः शि आदिकार्ये । सुपुंसा, सुपुंभ्याम् । अदस्सु स्वमोर्लुक् सकारस्य रुत्वे वि० अदः । विभक्तिपरे अभावात् न त्यदाद्यत्वम् । विभक्तिकार्यं=विभक्तिको मानकर प्राप्तकार्य पहले होता है । पश्चात् उत्व मत्व भी अदस्–औ शी आदेशों, अत्वे पररूपे, गुणे । अदे इति दशायाम् उत्वे मत्वे अम् अमू ममूनि=जश्शसोः अत्व पररूप अजन्तलक्षणनुम् । उपधादीर्घे, उत्वे मत्वे च शेषरूप पुलिङ्गकी तरह सिद्ध होते है । इति हलन्तनपुंसकलिङ्गाः ।

अन्नव्येति तदव्ययम् व्यय=विकार ह्रासवृद्धि जिसमें न हो उसे अव्यय कहते है। जिस शब्द पर तीनों लिङ्ग, सभी वचन सभी कारक का कोई प्रभावरूप विकार (वृद्धि या ह्रास) का असर न पड़े उसको प्रातिपदिकसंज्ञक अव्यय कहते हैं। लिंगसंख्याकारकानन्वयित्वे सति प्रातिपदिकसंज्ञकत्वमव्ययत्वम् ॥ इसको पद संज्ञा भी होती है । विकारीपद पूर्वमें दरशाये गये । जहां सुपका और लिंगबोधक टाप् ङीप् आदि का लोप हो, लिङ्ग, संख्या, कारक स्पष्ट प्रायः न हो उसे अव्यय कहते है ।(४००) **स्वरादि**–स्वरशब्दसे माङ्शब्द तक, निपात और (चवा) से आकृतिगणतक, सभीशब्द अव्ययसंज्ञक हो । जिसका फल अव्ययसंज्ञक शब्दसे आप और सुपका लोप होना, स्वरादिके सभी शब्दोंकी गणना करते है, जिनका क्रमशः अर्थ दिया जा रहा हैं । १ स्वर्ग परलोके वा स्वरशब्दः प्रसिद्धः । २ मध्य या भीतर ३ प्रत्यूषः=प्रातः काल । ४ अप्रथम विशेष, बार बार द्वितीयवारप्रवृत्ति । ५ अन्त-र्ध्यान=छिपजाना ६ ऊंचाविशाल ७ अल्प या नीचा ८ दीर्घसूत्री=मन्दता, धीरे । ९ शम । १० वर्जनम्=बिना ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः । ऋतके योगमें पञ्चमी विभक्ति देखी जाती है । १ एकसाथ, एककालमें २ आरात् दूरसमीयोः ३ विच्छेद भिन्न, अलग । ४ अतीते अह्नि अतीताह्नि । कल बीता हुआ ५ आगामीकाल द्वितीय दिन । ६ दिने ७ निशि रात्रिमें ८ निशामुखम् । सूर्यास्तकाल । ९ बहुकालविलम्ब १० १ अल्पे=थोड़ा । २ चुप चाप=जोषम्सुखे, मौने च । ३ मौन । ४ बाह्य बाहर ५ आत्मना=अपने आप । ६ व्यर्थे ७ रात्रौ, निषेधे । ८ कारणम्, हेतौ, निमित्ते च । ९ प्राकश्य स्पष्ट । १० स्फुट अवधारण । १ सामि अर्धे जुगुप्सिते च आधा या घृणाअर्थ । २ वत्प्रत्यय तद्धित है तुल्य अर्थमें प्रसिद्ध है, जैसे ब्राह्मणवत क्षत्रियवत् ब्राह्मणके तुल्य, क्षत्रियके तुल्य २ नित्यपर्यायः । ३ भेदे ४ छिपना=अन्तर्धिः तिर्यक् परिभव तिरस्कार । ५ नित्यपर्यायः । ६ मध्य बिना अर्थ । ७ वर्जने बिना । ८ अनेक तथा विना । ९ कालाधिक्ये, प्रश्ने शीघ्रे सम्प्रत्यये प्रश्न, सीखना, अल

अस्ति। उपांशु २ क्षमा विहायसा। दोषा मृषा ५ मिथ्या मुधा पुरा मिथो मिथस प्रायस६ मुहुस। प्रवाहुकं। प्रवाहिका १ आर्यहलं। अभीक्ष्णं साकं सार्धं नमस्। हिरुक् धिक्। अथ अम् आम्। प्रता प्रशां प्रतान्।१ मा माङ। आकृतिगणोऽयं। च वा ह अह एव। एवं नूनं। शश्वत युगपत्। भूयस कूपत सूपत्। कुवित नेत चेत चण यत्र कच्चित्। नह हन्त माकिः माकिम्। नकिः नकिम्। आकीम् माङ नञ्। यावत त्वै न्वै द्वै। रै। श्रौषट वौषट स्वाहा। स्वधा। अलं वषट तुम तथाहि। खलु किल अथ। सुष्ठ स्म। आदह। उपसर्गविभक्तिस्वर निरूकाश्च। अवदत्तम्। अहंयुः।

समय, या अधिक समय। १० वारिमूर्धनिन्दामुखेषु सुख, निन्दा, जल, मूर्धा १ मुखे २ अकस्मात् विचार, आकस्मिक विमर्शयोः। ३ वर्जने बिना ४ अनेक तथा बिना। ५ मंगल, कल्याण। ६ पितृदान ७ निषेध भूषण, पर्याप्त, शक्यवारण ८ हविर्दाने, देवता उद्देश्यक दान ९ अन्यार्थ। १० है. सत्ता, उपस्थिति १ एक उच्चारण रहस्य २ क्षमा, क्षान्ति ३ आकाश अर्थे। ४ रात ५ मिथ्या, वितथ, झूठ व्यर्थे। ६ प्रथम. चिरातीते प्राचीनकाले भविष्य, आसन्ने। ७ परस्पर, मिलकर, सहअर्थ, आपसमें। ८ बहुधा, बाहुल्यम्, अक्सर। ९ पुनः अर्थं बारम्बार १० समान काल, बिल्कुल, उर्ध्व अर्थ। १ बलात्कार अर्थ प्रतिबन्ध २ पुनः पुनः प्रवृत्ति, निरन्तर ३ सहार्थे=साथ–साथ ४ नमस्कार=नतिः। ५ वर्जन बिना ६ धिक्कार निन्दा भर्त्सन ७ अथ, आरम्भ, अनन्तर, मंगल, प्रश्न, अधिकार, प्रतिज्ञा, सम्पूर्ण। ८ स्वीकृति, शीघ्रता, अल्प, हां, अंगीकार। ९ ग्लानि १० समान अर्थ, समान विस्तार १ निषेध, आशङ्का, ऐश्वरादिः आकृति गण है। आकृति=स्वरूपको पहचानकर गण का अनुमान करे। इसलिए अन्य भी स्वरादिगणमें जानें जांय। यथा–कामम्, स्वच्छन्दता, यथेच्छ, प्रकामम्, अतिशय, अधिक। भूयः पुनः फिर साम्प्रतम्, न्याय, उचित इस समय, परम किन्तु परन्तु, साक्षात्, समक्ष, प्रत्यक्ष दर्शन, साचि, तिर्यक अर्थ सत्यं अर्धस्वीकृत। मक्षु, आशु, शीघ्र, सम्वत, वर्ष, अवश्यं, निश्चय, ओम स्वीकार, ब्रह्म, भूः पृथ्वी भुवः, अन्तरिक्ष, झटिति, झंगिति, तरषा। ये शीघ्र अर्थमें प्रसिद्ध है। सुष्ठु, शोभन, प्रशंसा, दुष्ठु, निकृष्ठ, सु पूजा उ कुत्सित, निन्दित, इषद् अर्थ. अञ्जसा, सत्य ज्ञान शीघ्र अर्थ, मिथुन दो, अस्तम् विनाश, अदर्शन (स्थाने युक्ते) वरं श्रेष्ठः इषत, उत्कर्षः सुदि शुक्लपक्ष वदि कृष्णपक्ष। च आदि निपातोंका निर्देश है, जिनकी अव्ययसंज्ञा कही हैं।

१ च शब्दका समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतर योग, समाहार अर्थ है २ विकल्प, उपमा इव, समुच्चय अर्थहै। ४ प्रसिद्ध ५ पूजायां ६ ही, अवधारण अनवक्लृप्ति, निश्चय ७ उक्त परामर्श (कही बातों पर विचार) ८ निश्चय तथ्य तर्क। ९ निरन्तर पुनः पुनः नित्य सहार्थ। १० एककालमें १ पुनः अर्थ आधिक्य। २ प्रश्न, प्रशंसा, भूरि अर्थ। ३ शंका, प्रतिषेध, विचार, समुच्चय, अन्यथा=नहो तो ४ यदि ५ चेत अर्थ यदि कदाचित् इष्ट प्रश्न। ६ अनवक्लृप्ति। अमर्ष गर्हा आश्चर्य ७ अभीष्ट प्रश्न ८ निषेध पूर्वक आरम्भ ९ हर्ष विषाद, अनुकम्पा वाक्य आरम्भ। १० वर्जन १ निषेध २ जितना ३ उतना, शाकल्प अवधिमान, अवधारण। ४ विशेष वितर्क

अस्तिक्षीरा। अ आ इ ई उ ऊ ए ऐं ओ औ। पशु शुकं यथा कथाच पाट, प्याट। अङ्ग। है हें भोः अये। द्य विपु। एकपदे ऊत। आतः। चादिरप्याकृतिगणः। (१) तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः १।१।३८। यस्मात्सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽप्यव्ययं स्यात्। परिगणनं कर्तव्यं। तसिलादयः प्राक पाशपः शस्प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः। अम् आम। कृत्वोऽर्थाः। तसिवती। ननाञौ इति। एतदन्तमप्यव्ययम्। अत इत्यादि। (२) कृन्मेजन्तः १।१।३९। कृद्यो मान्त, एजन्तश्च तदन्तमप्यव्यम। स्मारं स्मारम्। जीवसे।

---

५ तक ६ दा अनादर ७ देवतादान। ८ पितृदान ९ तुम तुङ्कार गुरु हुंकृत्य तुकृत्य १० निदर्शन, तो नी १ निषेधवाक्यालङ्कार, निश्चय २ प्रसिद्ध, वार्ता, अलीक। ३ मङ्गल, अनन्तर, आरम्भ सम्पूर्ण, अधिकार, प्रतिज्ञा, समुच्चय ४ प्रशंसा ५ भूतकाल, पादपूर्ति। ६ उपक्रम, हिंसा, कुत्सन, निन्दा, (ग० सू०) उपसर्ग यदि सुबन्त तिङन्तके सदृश हों या स्वरोंके सदृश हों, वे भी चादिगणके अन्तर्गत होकर निपातसंज्ञक तथा अव्ययसंज्ञक होते है। इसके तीन उदाहरण—अवदत्तम्। यहां अवशब्दका उपसर्गके समान अकार होनेपर भी वह साक्षात् उपसर्ग नही है। किन्तु उपसर्गका प्रतिरूपक समान रूपवाला है। उसकी अव्ययसंज्ञा हुई। यदि साक्षात् उपसर्ग होता तब अच् उपसर्गात् से तकार हो जाता। अवत्तम् बनता। तथा चोक्तं अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि। सुदत्तमनुदत्तं च निदित्तमिति चेष्यते। ७ अहं शब्द युष्मद् शब्दसे बना। प्रथमाके एकवचन (अहम्) यह विभक्तिके सदृश अहंङ्कार अर्थमें प्रसिद्ध है। अहं शुभमोर्युस्से युस् हो अहंयुः (अहंकारी)। ८ अस्ति, यह तिङन्त पदके सदृश शब्द है। इसे चादिमानकर निपातसंज्ञा अव्ययसंज्ञा हुई। यह इसका फल है। अस्तिका क्षीरके साथ समास। स्वर प्रतिरूपक (सदृश) उदाहरण। ९ अ—सम्बोधन, तिरस्कार निषेध अर्थ हैं। १० वाक्य तथा स्मरण अर्थ में अङित् होनेपर निपातसंज्ञा होती है। १ सम्बोधन जुगुप्सा आश्चर्य। इ, उ, ए, ऐ, ओ, औ का सम्बोधन है। २ सम्यक् ३ शीघ्र ४ तिरस्कार=येनकेन प्रकारेण। ५ सम्बोधन ६ हिंसा प्रतिकूलपादपूर्ति ७ नाना=विविध ८ अकस्मात्, युगपत् ९ कुत्सा घृणा। १० इतोऽपि=इसलिए। ये चादिगण भी आकृतिगण है। स्वरूपसे गणका अनुमान यथा यत् तद् हेतौ, अहोस्वित् विकल्प व समानता, सीमा, सर्वतोभावे। शुक, अतिशय, अनुक् वितर्क, । शक्त=अन्तःकरण, अभिमुख, च पादपूर्ति इव, अर्थ दृष्ट्वा आनन्द, पुण्य, चटु चाटु, प्रियवाक्य चापलूसी। हुं भर्त्सन। इव समानता, अद्यत्वे इदीनाम् आजकल असकृत् बारम्बार सकृत एकबारम्, अमुत्र परलोक, सत्वरं शीघ्र अहो आश्चर्ये उताहो, विकल्पे, किमुत प्रसह्य, हठात् बलात् किं च इतोऽधिकम् इति। (३) असर्वविभक्तिः तद्धित=जिससे सभी विभक्तियां नहीं उत्पन्न होती वह तद्धितान्त, अव्ययसंज्ञक हो। ऐसे तद्धितान्त शब्दोंकी गणना=परिसंख्या करनी चाहिए। तसिलादयः=पञ्चम्यास्तसिल सूत्रसे लेकर याप्ये पाशप् सूत्र तक। शस् प्रभृतयः बह्वल्पार्थाच्छस् सूत्रसे लेकर समासान्ताः सूत्र तक कहे गये सभी प्रत्यय जिसके अन्तमें हो उसकी अव्ययसंज्ञा हो। तथा अम्=अमुच्छन्दस। आम्= किमेत्तिङ से विहित आम् प्रत्यय। कृत्वोऽर्थाः=क्रियाकी अभ्यावृत्ति। पुनः पुनः गणना अर्थमें

पिबध्यै । (३) क्त्वातोसुन्कसुनः १।१।४०। एयदन्तमप्यव्ययम् । कृत्वा उदेतोः । विसृपः । (४) अव्ययीभावश्च १।१।४१। अव्ययं स्यात् । अधिहरि (५) अव्ययादाप्सुपः २।४।८२। अव्ययाद्विहितस्याऽऽपः, सुपश्च लुक् । तत्र शालायां । अथ विहितविशेषणान्नेह अत्युच्चकैसौ । अव्ययसंज्ञायां यद्यपि तदन्त विधिरस्ति तथापि न गौणे । आबग्रहणं व्यर्थं, अव्ययस्याऽलिंगत्वात् । तथा च श्रुतिः सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥ १ ॥वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः

आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा । २ ।

अवगाहः । वगाहः । अपिधानम् । पिधानम् ॥ इत्यव्ययानि ।

कृत्वसुच् आदि प्रत्यय, तसिवती=तसिश्चसूत्रस तस् प्रत्यय, तेन तुल्य क्रिया चेद्वति तत्र तस्येव सूत्र से कृत वतिप्रत्यय, तथा नानार्थतद्धितप्रत्यय जिनके अन्तमें हो वे शब्द अव्ययसंज्ञक होते हैं । जैसे—इत्थम्, अत्र, क्व, अल्पशः, पचतितराम् पञ्चकृत्वः इत्यादि अव्ययसंज्ञक माने जाते है । (४) कृदन्त के प्रत्ययोंमें जो मान्त तथा एजन्त, एकारान्त प्रत्यय हो । स्मारं स्मारम् । यह मकारान्त कृदन्त होने से अव्ययसंज्ञक । बार-बार स्मरणकर्ता । एजन्तका जीवसे, जीवधातुसे शेप्रत्यय तथा पा धातु से शध्यै प्रत्यय पिबध्यै दोनोंको एजन्त मानकर अव्ययसंज्ञा । ये वैदिक प्रयोग है । (५) क्त्वाप्रत्यय तोसुन् तथा कसुन् प्रत्यय जिनके अन्तमें हो, उनकी अव्ययसंज्ञा । वे प्रत्यय कृत ही होने चाहिये । क्त्वाका उदाहरण—कृत्वा, सित्वा भुक्त्वा इत्यादि है । ईश्वरः तोसुन्कसुनौ सूत्र से । तोसुन् उदेतोः । कसुन् होनेपर विसृपः । जिसका उदेतुम्=उदय होना । विसर्पितुम् फैलना अर्थ है ।

(५) अव्ययीभाव समास भी अव्ययसंज्ञक हो । अधिहरिमें अव्ययीभाव समास होनेसे अव्ययसंज्ञा हुई (हरिमें अर्थ है) प्रतिदिन, अनुरूप यथाशक्ति, आदि अनेक उदाहरण है (६) अव्ययसंज्ञक से विधान किया गया, लिङ्गबोधक टाप् प्रत्यय और संख्या तथा कारकका बोधक सुप्प्रत्ययका लोप हो । यथा— (तत्र-शालायां) यहां सप्तमी अर्थमें त्रल् प्रत्यय करके, तत्र बना उसकी तद्धिाश्चासर्व विभक्तिः इति अव्ययसंज्ञा, शालायाम्के योगमें टाप् तत्रा । उस टापका लोप हो गया । सदृशं त्रिषुलिंगेषु—तीनों लिङ्गोंमें सदृश समान हो । सभी विभक्तियोंमें एकरूप हो, सभी वचनोंमें समानरूप रहे । यन्नव्येति जिसमें विकार न हो, बदले नहीं, जैसाका तैसा रहे, उसे अव्यय कहते है । यथानाम तथागुणः ।

अव्ययके प्रसङ्गमें भागुरि आचार्यका मत है कि वे अवाप्योः=अव, अपि, उपसर्गयोः उपसर्गका अल्लोपम् अकारलोप वष्टि चाहते है । तथा हलन्त शब्दोंसे आपम् स्त्रीलिङ्गबोधक टाप्प्रत्यय भी चाहते हैं । जैसे वाचा, निशा, दिशा । यहां वाच् निश् दिश् हलन्त शब्द है । पाणिनिशास्त्रमें हलन्त शब्दोंसे टाप् विधानका नियम नहीं है । किन्तु भागुरिमतसे टाप् होता है । वगाहः—यह स्नानार्थक शब्द है, गोता लगाना । पिधान=ढकना । अका लोप न होनेपर, अवगाहः, अपिधानं भी बनता है । इत्यव्ययप्रकरणम् ।

॥ अथ तिङन्ते भ्वादयः ॥

(६) धतोः ३।१।९१। अधिकारोऽयम्। वक्ष्यमाणाः प्रत्यया धातोर्ज्ञेयाः लट लिट लुट् लृट लेट लोट लङ लिङ् लुङ् लृङ। एषु पञ्चमो लकारश्छन्दो-

प्रसंगसंगतिः—पूर्वप्रकरणसे परप्रकरणका सम्बन्ध क्या है ? साकांक्ष पदका समुदायही वाक्य है। पद क्या हैं ? इस पर सुप्तिङन्तंपदं सूत्र याद आया। सुबन्तपद (जिसमें प्रातिपदिकका अर्थ, स्वादिप्रत्ययका अर्थ तथा मिलित अर्थ प्रधान रहता हैं वे सब) कारक है। उसका प्रवचन हो गया। कारककी सफलता क्रियामें अन्वय (सम्बन्ध) से है, **क्रियान्वयि कारकम्**। अतः क्रियाबोधक तिङन्त प्रकरणका प्रारम्भ अवसरसङ्गत है। कर्म प्रधान विश्व करि राखा। सारा संसार क्रियाप्रधान है। यथा पश्यन् शृण्वन्, स्पृशन्, जिघ्रन्, गच्छन्, स्वपन्, श्वसन्, प्रलपन्, विसृजन्, गृह्णन्, उन्मिषन्, निमिषन्नपि। ये क्रियारूप तिङन्त है। एकतिङ्प्रधानवाक्यम् सिद्धान्तानुसार क्रिया प्रधानवाक्य होना आवश्यक है। क्रियाबोधक तिङन्तपदका ज्ञान क्रम प्राप्त है। तिङन्तपद भवति पचति आदिमें भू, पचधातु प्रकृति है। दधाति क्रियारूपम् अर्थम् इति धातुः। क्रियाका वाचक (अर्थ कहनेवाला) धातु है क्रिया वाचिनो भ्वादयः धातुसंज्ञकाः। उससे तिङ्प्रत्यय हो। जो कर्ता, कर्म, संख्या, काल चार अर्थ कहता है, जिसका उपदेश (व्याख्यान) आगे करेंगे। भू आदि धातुओंका क्रिया अर्थ हैं। या-या क्रिया, सा-सा फलवती भवति। जो जो क्रियाएं है, वे सौभाग्यवती इव फलवती है। जैसे पठन क्रियाका स्पष्ट उच्चारण फल हैं पच् धातुका पाक (ओदन) विक्लित्ति भात फल है। भोजन गलविलाधः संयोग (तृप्ति) फल। यज् धातुका सत्संग, पूजा, दान, स्वर्गप्राप्ति फल हैं, एधन कियाका वृद्धिफल इत्यादि। ऐसे (फलजनक) क्रियावाचक धातु से तिङ्प्रत्यय होते है।

तिङ्आदेश हैं उसका आदेशी (स्थानी) कोई है। कौन हो तब बोले लट् लिट् इत्यादि ये १० लकार स्थानी है इनके स्थानमें तिप्तसझि आदि आदेश होते है। इन दसों लकारोंका क्रमिक उच्चारण अच् (अ, इ, उ, ऌ, ए, ओ) के क्रमानुरोध से है। इसी क्रमसे अन्तिम चार ङित् लकारों को जाने। एषु पञ्चमः= इन लकारोंमें पांचवां लेट्लकार केवल छन्दोमात्रगोचरः=वेदमें ही उपयोगी है लोकमें नहीं। लकार क्यों कहते है। ल अक्षरका सबमें प्राधान्य होने से। इन लकारोंसे क्रिया, काल (वर्तमाने लट्) कर्ता कर्म संख्या, अर्थका मुख्य गौण रूपसे या विशेष्य विशेषण सम्बन्धसे ज्ञान होता है। सभी लकार यथायोग्य वर्तमान काल भूत परोक्ष अनद्यतन, (बीते हुए अर्धरात्रिसे पूर्वकाल) आगामी अर्धरात्रिसे परे भविष्यकाल। सामान्यभविष्य जो अनद्यतन या अनद्यतन भविष्यके

मात्रगोचरः । (७) लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः ३।४६९। लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि, कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे, कर्तरि च (८) वर्तमाने

बन्धनसे मुक्त हो । आज्ञा, प्रेरणा, आशीर्वाद अनद्यतनभूतकाल, आज्ञा आशीर्वाद सामान्यभूत क्रियाका कार्यकारण भाव इत्यादि क्रमसे लकारोंके अर्थ है । जिनका विशेष विवरण कर्ता, कर्म, भाव अर्थ समझानेमें विधिसूत्र—

लः कर्मणि लकाराः सभी लकार, सकर्मकेभ्यः=सकर्मकधातुओंसे कर्म अर्थमें या कर्ता अर्थमें हो । अकर्मकेभ्यः=अकर्मकधातुओंसे भाव (क्रिया) तथा कर्ता अर्थमें हो । अपेक्षितशब्दार्थ—क्रिया अर्थवाचक धातु दो है। सकर्मक और अकर्मक । साधारण रूपसे धातुका अर्थ फल है उसका आधार कर्म से अलग क्रियाके आधारकी अपेक्षा हो वह सकर्मक हैं । जैसे भक्तः हनुमन्तं पश्यति दर्शन फलके अनुकूल क्रिया दर्शन फल पश्यका–दृश धातुका अर्थ है । उस (दर्शनफल) का आश्रय हनुमान है । कं पश्यति ? हनुमन्तं । यहां हनुमान कर्म है । जो क्रियाका आधार कर्ता (भक्त) से अलग है । धातुका अर्थ फल व्यापार अलग आधारमें होना आवश्यक है । जहां कि आश्रय कर्तासे अलग कर्म न हो, क्रियाफल दोनों का आधार एक हो वह अकर्मक है । **पृथक्कर्म सहितः सकर्मको धातुः धात्वर्थफलक्रिययोः एकाधारोऽकर्मकः** यत्र फलाश्रयो भिन्नः, व्यापाराश्रयो भिन्न तत्र सकर्मको धातुः । पृथक्कर्म रहितोऽकर्मकः:, या फल और क्रिया अर्थ सभी धातुके है । फल क्रिया अलग अलग आधार में सकर्मक । जैसे रोहिणी बलरामं लालयते । लालन क्रिया रोहिणीमें, प्यार फल बलराममें क्रिया और फल दोनों का आधार पृथक् पृथक् है । फल और क्रिया दोनों एक ही जगह हों, वह अकर्मक है । यथा रामश्शेते वर्धते । यहां शयन फल है । उसकी जननी क्रिया दोनों का एक ही आधार राम हैं । कर्तृगामि क्रियाफलेऽकर्मकः

कर्ताकर्मका लक्षण=धातुसे उपस्थित क्रियाके आधारको कर्ता कहते हैं और धातुसे उपस्थित फलके आधारको कर्म कहते है । (देवदत्तः तण्डुलं पचति) पच पाक (क्रियाका फल) विक्लित्ति भात–चावलका मुलायमपन, कठोरताका ढीला होना परिपाक यह फल तण्डुलमें होनेसे फलाश्रयः कर्म तण्डुलं हुआ । पकानेके अनुकूल क्रिया देवदत्तमें है । उस क्रियाका स्वतन्त्र आधार देवदत्त (व्यापाराश्रयः) कर्ता बना । **भाव**–धातुसे उपस्थित फलजनक क्रियाको भाव कहते हैं । इससे सिद्ध है कि लकार के कर्ता कर्म भाव तीन अर्थ है । लकार वाचक है, वे तीनों वाच्यः है वक्तुं योग्यः, वाच्यः (अर्थः) ही समझने योग्य हैं । जहां लकार कर्ता अर्थको प्रधान रूपसे कहे । वह कर्तृवाच्य है । यथा–रामः रावणं हन्ति । यहां ति कर्ता अर्थमें हुआ है, इसलिए कर्तृवाच्य वाक्य हुआ । जहां तिङ्का कर्म अर्थ वाच्य (प्रधान) रूपसे कहा जाय, वह कर्मवाच्य है । यथा—रामेण रावणः हन्यते । यहां लकार कर्म अर्थमें हुआ है । यह वाक्य कर्मवाच्य हुआ । जिस अर्थमें प्रत्यय हो वही अर्थ उक्त (प्रतिपादित

लट् ३।२।१२३। वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् अटावितौ। उच्चारण-सामर्थ्यान्नलस्येत्वम्। भू सत्तायां। कर्तृविवक्षायां भू ल इति स्थिते।

प्रधान) माना जाता है। उसीमें प्रथमा विभक्ति होती है। यहां कर्म रावण है। कर्म अर्थमें लकार, रावणको मुख्यरूपसे कह रहा है। मुख्ये (उक्ते) प्रथमा विभक्तिः यस्मिन्प्रत्ययः स उक्तः। जिस अर्थमें प्रत्यय हो वह उक्त प्रधान मुख्य हैं—जहां क्रिया तिङ्से वाच्य हो उसे **भाववाच्य** कहते है, जिसका वाचक लकार है, परन्तु यह भाववाच्य अकर्मक धातु तक सीमित है। यथा महाभारतं भूयते, त्वया उच्यते मया शय्यते। तीनोंका स्पष्ट ज्ञान। प्रथमान्तो यदा कर्ता, द्वितीया कर्मणस्तदा। यदाकर्ता तृतीयान्तः, प्रथमा कर्मणस्तदा।

(३) **वर्तमानकालकी क्रिया**—प्रचलित क्रिया जो फल उत्पन्न होने तक चल रही हो, उस क्रिया वृत्तेः= (वाचकत्वं षष्ठयर्थः) वाचक धातुसे लट्लकार हो। क्रिया ही काल है' (कालं क्रियात्मकमाहुः) क्रिया एव आत्मा यस्य स, क्रिया ही जिसका स्वरूप हो। सब कालमें क्रिया चलती रहती है, काल ही चलता रहता हैं। संसरतीति संसारः। इसे कालके तीन भेद है (वर्तमान, भूत, भविष्यत्)। यद्यपि काल एक हैं, अखण्ड है, उसमें खण्ड भेद कैसे? प्रचलित क्रियाको वर्तमान काल—रामः अपूपं खादति। तृप्तिफल पर्यन्त खादन क्रिया चलनेसे। समाप्त क्रियाको भूतकाल कृष्णः नवनीतम् अखादीत्। नन्दनन्दन मक्खन खा गये। तृप्ति फल पूरा होनेपर खादन क्रियासमाप्तिका आधार भूतकाल है। होने वाली क्रियाका भविष्यत् काल है। हनूमान् राक्षसान् हनिष्यति। दुष्टहनन क्रिया करेंगे भविष्यकाल है। ये ही काल भेदके कारण है। लट्लकार (फलकी उत्पत्तिपर्यन्त प्रचलितक्रियात्मक काल) का विधान वर्तमान क्रियावाचक धातुसे किया जाता है। क्रिया तथा धातुका वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध हैं।

अटावितौ—लट्में उपदेशे अनुनासिक अच्से अ की इत्संज्ञा। ट् की हलन्त्यम्से, तस्यलोपः। ल की इत्संज्ञा लशक्वतद्धिते से क्यों नहीं होती? तब बोले—**उच्चारण** इति=लकारका उच्चारण व्यर्थ न हो। या उच्चारणके सामर्थ्यसे ल्की इत्संज्ञा नहीं होती। ल प्रधान है, वही शेष रहता है। तिप् आदि आदेश लादेशके लिए। भू धातु का सत्ता अस्तित्व, उत्पत्ति, आत्मधारण, रूपप्रकट होने की क्रिया अर्थ है अकर्मक। जिसका परिचायक वाक्य—

लज्जा सत्ता स्थिति जागरणं, वृद्धि-क्षयभय-जीवितमरणं।
शयन, क्रीडा, रुचि दीप्त्यर्थकधातुगणं तमकर्मकमाहुः ॥

उत्पत्ति सत्ता या आत्मधारणफल क्रिया का आधार एक ही व्यक्ति है। जैसे देवदत्तो भवति। यहां देवदत्त ही भवन—उत्पत्ति=रूप धारण फल जनक क्रिया का आधार है। अतः भू धातुः अकर्मकः। सकर्मक अकर्मकका विवेकपूर्णनिर्णय—

(६) लस्य ३।४।७७। इत्यधिकृत्य। (४१०) तिप्तस् झि सिप्थस्थमिब्व स्मस्तातांझथासाथांध्वमिडवाहिमहिङ् ३।४।७८। एतेऽष्टादश आदेशाः स्युः।
(१) लः परस्मैपदम् १।४।९९। लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः। (२)

क्रियापदं कर्तृपदेन युक्तं, व्यपेक्षते यत्र किमित्यपेक्षम्।
सकर्मकं तं सुधियो वदन्ति, शेषस्ततो धातुरकर्मकः स्यात्॥

कर्ताके साथ क्रियापदमें जहां किं ? प्रश्न उठे, वह धातु सकर्मक है। यथा—खादति पठति—किं खादति किं पठति इति जिज्ञासा। अतः खाद पठधातु सकर्मक हुए। शेते एधतेमें किं प्रश्न उठता ही नहीं अतः अकर्मकः। बिना धातुसंज्ञा हुए भू को धातु कहना सङ्गत कैसे है ? समाधान भाविनीसंज्ञा मानकर।

यथाकुलालस्य गृहेषु दोहिनी सा वैं कथं दोहनिकेति संज्ञा।
तथैव सर्वे पठिताः हि धातवः संज्ञां बिना धातुगणेषु पाठः॥

कुम्हारके घर (दूधहाड़ी) नाम कैसे ? जब कि उसमें दूध दुहा ही नहीं गया। उत्तर—भाविनी संज्ञा। अस्य सूत्रस्य शाटकं वय-इस सूत्रसे साड़ी बुनोः। अभी सूत्र हैं तो साड़ी कैसे कहा ? उत्तर—भाविनीसंज्ञा मानकर। भवनक्रियावाचक-

भू धातु को भूवादयो धातवःसे धातुसञ्ज्ञा (भवनक्रियाका आधार कर्ता होनेपर) लः कर्मणि सूत्रसे कर्तृवाच्य (कर्ताको मुख्यरूपसे कहनेवाला) लकार हो, क्यों कि लकारके चार अर्थ है कर्ता, कर्म भाव काल। इनमें कर्ता अर्थ को ही लकार कहेंगा। यह लकार किस कालमें हो ? क्रियासे कर्ताका सम्बन्ध है। जहां क्रिया है वहां काल भी हैं। इसका बोधकसूत्र **वर्तमाने लट्** भवन (उत्पत्ति) क्रिया हो रही हो, उसका काल वर्तमानकाल हैं। धातुसे परे वर्तमानकालशक्ति बोधक लकार हुआ। तब (भू ल्) ऐसी स्थिति हुई। लस्थाने आदेशविधायकसूत्र—

लस्य—अधिकार सूत्र है। धातुके अधिकारमें लके स्थानमें आदेश हो। स्थानी लसे आदेशकी कल्पना, स्थान षष्ठी। लकी इत्संज्ञा नहीं, उच्चारके सामर्थ्य से, ल इत् होता उच्चारण क्यों करते। लित्स्वर फल नहीं। णल्के लकारके लित्स्वराभाव ज्ञापनसे।

(४) **तिप् तस् झि**। सिप् थस् थ। मिप् वस् मस्। त आताम्, झ। थास्, आथाम्, ध्वम्। इट्, वहि महि। ये १८ आदेश खले कपोतन्यायेन ल्के स्थानमें प्राप्त हुए। ति से ङ तक के सभी आदेश तिङ् प्रत्याहार है। इन अठारह भेदोंमें प्रथम ९ (नौ) आदेशोंकी परस्मैपदसंज्ञा का परिचायक। (५) ल के स्थानमें सभी आदेशकी परस्मैपदसंज्ञा हो। परन्तु अन्तिम (नव) ९ आदेश, त आताम्से महिङ् तक तङ् प्रत्याहार है। यद्यपि ल एक है आदेश १८ की संगति कैसे होगी। (प्रतिप्रधानं गुणावृत्तिरिति न्यायेन) आदेश प्रधान होते है। उनके अनुरोधसे एक ही ल अनेक प्रकारके होंगे। इसमें भी उच्चारण सामर्थ्य कारण है।

तङानावात्मनेपदम् १।४।१००। तङ्प्रत्याहारः शानच्कानचौं चैतत्संज्ञा स्युः। पूर्वसंज्ञाऽपवादः (३) **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** १।३।१२। अनुदात्तेत उपदेशे यो ङित्तदन्ताच्च धातोर्लस्य स्थाने आत्मनेपदं स्यात्।(४) **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफल** १।३।७२। स्वरितेतो, ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले।(५) **शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्** १।३।७८। आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि लस्य परस्मैपदं स्यात्। (६) तिङ-

---

(६) **तङ्** प्रत्याहार आनौ–शानच् तथा कानच् प्रत्ययोंकी आत्मनेपदसञ्ज्ञा हो पूर्वसञ्ज्ञा लः परस्मैपदम् को अपवादः बाधकर है। शानच् कानच् प्रत्यय कृदन्त में मिलेंगे। (७) **अनुदात्तश्च** ङश्च अनुदात्तङौ तौ इतौ यस्य। अनुदात्त और ङ् इत्सञ्ज्ञक धातुसे आत्मनेपद हो। जैसे एध वृद्धौ, शीङ् स्वप्ने,यहां ध–में अ अनुदात्त है। अनुनासिक अच् होनेसे इत्सञ्ज्ञक भी। तथा ङकी इत्सञ्ज्ञासे आत्मनेपद हुआ। अनुदात्तेत् धातुकी गणना आगे की जायेगी।

(८) **स्वरितश्च** ञ च स्वरितञौ तौ इतौ यस्य स, स्वरितञित् तस्मात्। स्वरितेतो=उदात्त अनुदात्त मिलकर स्वरित होते है। ऐसे अच् तथा ञ् इत्सञ्ज्ञक धातुसे आत्मनेपद हो। जब क्रियाफले=धातुका अर्थ क्रिया उस का फल, कर्त्रभिप्राये=कर्ताके लाभके लिए हो। अर्थात् क्रियाका फल कर्ताको मिले। जैसे पच्, भज्, यज्, श्रि, इत्यादि धातुकी क्रियाका फल कर्ताको लब्ध हो तो आत्मनेपद हो। वह फल दूसरे को मिले तब परस्मैपद हो। श्रयते शब्दसे सेवाका फल कर्तृगामी सिद्ध है। श्रयति से सेवाका फल परगामी प्रसिद्ध है। प्रायः स्वरितेत् धातु उभयपदी होते है। जिसका भेद क्रियाफलके कर्तृगामी या परिगामी होनेसे स्पष्ट है। सन्ध्यावन्दनमें या समस्त संकल्पमें क्रिया फलके कर्तृगामी होने से आत्मनेपद ही पढ़ा जाता है। यथा नवग्रह पूजनमहं करिष्ये। प्रातः संध्यामहं करिष्ये पाणिग्रहणं करिष्ये। जनकत्वं क्रियात्वम्। जिससे फल पैदा हो वह क्रिया है। यज्ञ क्रिया का स्वर्ग फल हैं। जिस अभिलाषासे कर्ममें रुचि बढ़ें, वह फल है। बिना फलज्ञानके क्रियामें रुचि नहीं होती। अतः नारद जी बोले (किं फलं किं विधानं च कृतं केनैव तद्व्रतम्) शौनक जी (व्रतेन तपसा वा किं प्राप्यते वाञ्छितं फलम्) इस फलकी जननी धात्वर्थक्रिया हैं, वृक्षादि नहीं। आम्र अमरूद फलभी नहीं।

(९) **शेषात्** उक्तादन्यः शेषः। आत्मनेपद होने के कारण उक्त है। जैसे तङ् प्रत्याहार, शानच कानच् अनुदात्तेत् ञित् (स्वरितेत् ङित् धातु कर्तृगामी क्रिया फल हो तो) इन कारणोंसे आत्मनेपद होते हैं, ये ही उसके निमित्त है। उनसे हीनात्=रहितधातु को शेष कहते है। उन धातुओंसे केवल कर्तामें ही परस्मैपद कहा गया है। अर्थात् परस्मैपद कर्तृवाच्यःमें ही चलता है आत्मनेपद कर्तृवाच्य, कर्म वाच्य, भाववाच्य, तीनोंमें है। प्रसङ्गमें भू धातुसे परस्मैपद हुआ क्यों कि आत्मने-

स्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१०१। तिङः उभयोः पदयोस्त्रस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः। (७) **तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः** १।४। १०२। लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि वचनानि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः। (८) **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः** १।४।१०५। तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मद्यप्रयुज्यमाने च मध्यमः। (९) **अस्मद्युत्तमः** १।४।१०७ तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः। (४२०) **शेषे प्रथमः** १।४। १०८। मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात्। भू—ति इति जाते। (१)

पदका कोई निमित्त (लक्षण) नहीं मिलता। (४१०) **तिङ्** तिङ् प्रत्याहारमें उभयोः पदयोः दोनों पद (आत्मनेपद, परस्मैपद) त्रयस्त्रिकाः तीन–तीनके त्रिक समुदायको क्रमसे एतत्संज्ञा–प्रथमपुरुष मध्यमपुरुष उत्तमपुरुष नाम पड़ता हैं। यथा परस्मैपद तिप् तस् झि। प्रथमपुरुष। सिप् थस् थ। मध्यमपु०। मिप् वस् मस् उ० पु०। आत्मनेपद=त,आताम् झ, प्र० पु०। थास्, आथाम्, ध्वम्, मध्यमपुरुष, इट् वहि, महि उत्तमपुरुष। (१) **तानि** लब्ध है प्रथम मध्यम उत्तम पु० सञ्ज्ञा जिनको ऐसे तीन—तीनके समुदाय त्रिकों को एकशः= एक—एक को क्रम से एक वचन द्वि व० बहुव० की सञ्ज्ञा हो। एकसंख्या यत्र उच्यते तत्र एकवनम्। द्वे संख्ये यत्र उच्येते, तत्र द्विवचनम्। बहुसख्याः यत्रोच्यन्ते तत्र बहुवचनम्।

(२) **युष्मद्यु** समानाधिकरणे–समान एक अधिकरण (आधार) हो समानम् एकम् अधिकरणं ययोस्तत्। तिङ्वाच्य कारकवाचिनः=तिङ् प्रत्ययका वाच्य (अर्थ) कारक हो एसा युष्मद् (त्वं युवां यूयम्) उपपद विशेषण हो, तब स्थानिनः अप्रयुज्यमाने अपि, प्रयुज्यमाने वा त्वं भवसि, यहां त्व शब्द तिङ्के कर्ता अर्थ में कहा गया है। भवति क्रियामें अन्वय होनेसे त्वं शब्द कारक भी है। इस प्रकार तिङ् वाच्य (अर्थ) कर्ताका आधार त्वम् है, कारक भी। दोनोंका समानाधिकरण अभेद सम्बन्ध होने से मध्यमपुरुष हुआ। केवल भवसि–मे त्वं प्रयोगके बिना भी मध्यमपु० हुआ। स्थानिनिका अप्रयुज्यमाने अर्थ कैसे ? आदेशके आ जाने पर स्थानी अप्रयुज्य मान होता है या स्थानीके अपहृत होनेसे वह अप्रयुज्यमान हुआ।

(३) **अस्मद्यु तथाभूते** तिङ्वाच्य कर्ता अर्थ का तथा क्रिया में अन्वयीकारक का एक हीं आधार (अस्मद) (अहम् आवां वयम्) हो तो उसके उपपदे प्रयुज्य माने, अहं का प्रयोग हुआ हो, या अप्रयुज्यमाने–प्रयोग न हुआ हो, वहां उत्तम पु० हो। यथा अहं भवामि। या केवल भवामि दोनों दशामें उ०पु०। मिप् वस् मस् आदि होते है। (४) **शेषे**—जो शेष अवशिष्ट (बचा हुआ) रहता है। उसके विषयमें प्रथमपु० तिप् तस् झि होते है। मध्यमोत्तमयोः। मध्यं पुरुष तथा उत्तम पु० का अविषय–विषय न हो। कर्ताकारकका समानाधिकरण (अभेद) युष्मद् असमद् हो दोनोंसे भिन्न हो प्रथम पु० हो। **भ—ल इति स्थिते** अत्र मध्यमोत्तम

तिङ्शित्सार्वधातुकम् ३।४।११३। तिङः, शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्सज्ञाः स्युः। (२) **कर्तरि शप्** ३।१।६८। कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् स्यात्। (३) **सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः** ७।३।८४। अनयोः परयोरिगन्ताअङ्गस्य गुणः स्यात्। एचोऽयवायाव इति अवादेशः। भवति। भवतः। (४) **झोऽन्तः**७।१।३। प्रत्ययावयवरूप झस्य अन्तादेश स्यात्। अतो गुणे। भवन्ति भवसि भवथः भवथ। (५) **अतो दीर्घो यञि** ७।३।१०१। अतोऽङ्गस्य दीर्घो

के विषयकी विवक्षा नहीं है। अतः प्रथमपु० एकवचनकी इच्छामें ल् स्थाने परस्मैपदसञ्ज्ञक तिप् हुआ, हलन्त्यम् से प इत्, तस्यलोपः। **भू+ति**।

(५) **तिङ् शित्** धात्वाधिकारोक्ता धातुके अधिकारमें कहे गये तिङ्प्रत्यय तथा शित् प्रत्ययकी, एतत्सञ्ज्ञा (सर्वधातौ भवं) सार्वधातुकसञ्ज्ञा हो। इससे तिको सार्वधातुकसञ्ज्ञा जिसका फल शप् उसका विधायक सूत्र—

(६) **कर्तरि** कर्ता अर्थमें (सार्वधातुकसञ्ज्ञकप्रत्यय परे रहते) धातुसे शप् विकरण हो। शप् विकरण है (प्रकृतिप्रत्यययोर्मध्ये यः तिष्ठति स विकरणः) प्रकृति (भू) प्रत्यय (ति) दोनोके मध्यमें श इत्सञ्ज्ञक अ हुआ। (भू अ ति) **इति जाते**। यस्मात्प्रत्ययविधिः सूत्रसे शप् परे भू को अङ्गसञ्ज्ञा। इगन्ताङ्ग भू इति

(७) **सार्वधातुकञ्च** आर्धधातुकञ्च तयोः परयोः सार्वधातुकसञ्ज्ञक या आर्धधातुकसञ्ज्ञक परे इगन्ताङ्गस्य—इक् इ उ ऋ लृ तथा इनके सवर्णी हो अन्तमें ऐसे अङ्गसञ्ज्ञक (भू स्थाने गुण हो। अलोन्तस्य अन्त्य अल्को गुण ओ—अव् आदेशे, **भवति**। एककर्तृक उत्पत्तिफलजनकव्यापारः। सम्भवति अनुभवति उद्भवति अन्तर्भवति विभवति पराभवति उपसर्गके प्रभावसे अनेकार्थ सिद्ध है। कृष्णौ **भवतः** भु उत्पत्त्यनुकूलक्रियावाचकधातुसञ्ज्ञक कर्ता वर्तमानकाल अर्थमें लट् द्विवचन विवक्षा में तस् सार्वधातुकसञ्ज्ञा, कर्तरि शप् अ। अङ्गसञ्ज्ञा सार्वधातुकगुणे, अवादेश रुत्वं। स्वरूपधारण फलके अनुकूल क्रियाजनक चेष्टावान्तःकृष्णःबलरामाश्च **भवन्ति** भवनार्थ भू धातुसे कर्तामें ल् प्रथमपुरुष बहुवचन झि प्रत्यये। सा० स० कर्तरि शप् गुण अव् आदि पूर्ववत्। भव्—झि। (८) **झोऽन्तः** प्रत्ययका अवयव (अंश) एक भाग झके स्थानमें अन्त आदेश हो, (अतो गुणे) अकार का पररूप। भवन्ति रामाः स्वरूपं धारयन्ति। भवसि। भव बनानेकी विधि पूर्ववत् मध्यमपुरुष एकवचन सिप्। भवसि द्विवचने थस्। भवथः। बहुवचने थ। भवथ।

(९) **अतो**—अकारान्त अङ्गको दीर्घ हो यञादौ—यञ् प्रत्याहारके अक्षर आदि में हो ऐसा सार्वधातुक प्रत्ययपरे।

भवामि—मेरी उत्पत्तिक्रिया। मदभिन्नैककर्तृकं वर्तमानकालिकं भवनम् उत्पन्न होनेकी क्रियावाचक अतएव धातुसञ्ज्ञक भूसे वर्तमानकालिक भवनक्रियाके कर्ता अर्थमें ल्। उत्तमपुरुष एकवचने मिप्, कर्तामें शप्, अनुबन्ध लोप गुण अव् भवा मि अकारान्त अङ्ग। (यहां मिप् परे शप् सहित भवको अङ्गसञ्ज्ञा होगी। शप् तिङ्

यञादौ सार्वधातुके परे। भवामि भवावः भवामः। स भवति। तौ भवतः। ते भवन्ति। त्वं भवसि। युवां भवथः। यूयं भवथ। अहं भवामि। आवां भवावः। वयं भवामः। (६) शेषे विभाषाऽकखादावषान्त उपदेशे ८।४। १८। उपदेशे कादिखादिषान्तवर्जे गदनदादेरन्यस्मिन्धातौ परे उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्णत्वं वा स्यात्। प्रणिभवति। प्रनिभवति। (७) परोक्षे लिट् ३।२।११५। भूताऽनद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्। लस्य तिबादयः

प्रत्यय निमित्तक है। भवके अन्त्य अको दीर्घ हुआ, यञादि सार्वधातुक परे मिप है: इसी प्रकार द्विवचन वस् परे बहुवचने मस् परे शप् गुणे पररुपे दीर्घे रुवि।(भवावः) (भवामः) वस् का सलोप नहीं, न विभक्तौ तुस्माके निषेधसे। लट्लकारके रुपों का वाक्यमें प्रयोग। स भवति वह उत्पन्न होता है। वे दोनों रुप धारण करते है। वे होते है। तुम प्रकट होते हो। मैं रुप धारण करता हूं। हम दोनों पैदा होते है। हम सब उपस्थित हैं। जहां दो या तीन कर्ता हों वहां अन्तिम कर्ताके अनुसार पुरुष वचन होते है। सः त्वम् (वाक्यमें दो कर्ता है वहां) भवथः। मध्यमपुरुष द्विवचनान्त क्रिया होगी। जहां स त्वं अहं (तीन कर्ता है वहां) भवामः। उ० पु० बहुवचक्रिया होगी। एवं त्वं अहं भवावः क्रिया होगी,। जिस पर अन्तिम कर्ता होता है। उसीके अनुसार वचन भी होगा। क्वचित विपरीत भी दृष्ट है अहं त्वं सः यहां भी भवन्ति का ही प्रयोग होगा।

शेषे विभाषा अकखादौ, अषान्त, उक्तादन्यः शेषः। नेर्गदनदपतपद आदि सूत्र उक्त है, उनसे अन्य धातु शेष। उन धातुओंके परे रहते उपदेशे प्रथम उच्चारण अवस्थाकी धातु (क आदि ख आदि ष अन्तसे वर्जित हो) उपसर्गमें स्थित र ष से परे नको ण हो, विकल्पसे। प्रानिभवति दशामें उपसर्ग प्रमें रसे परे नको ण। प्रणिभवति। न कादिः न खादिः न षान्त। प्रनिचकार प्रनिचखादमें णत्वके लिए उपदेश पढ़ा। प्रतिपिनष्टिके लिए अषान्त पढ़ा।

(१) परोक्षे = जहां क्रियासहित कर्ता साक्षात्कार (प्रत्यक्ष) का विषय न हो वह परोक्षाकाल है। भविष्य का परोक्ष न लिया जाय, इसलिए—

भूत काल (समाप्त) क्रिया का विशेषण दिया, किन्तु अनद्यतन न अद्यतन आजका भूतकाल नहीं। बीते अर्ध रात्रिके पहले का भूतकाल हो। यहां क्रियाकाल रुप ही है। वह भूतकालिक क्रिया परोक्ष हो, प्रयोगकर्ता को उस क्रिया का या क्रियासे विशिष्ट कर्ता का दर्शन न हुआ हो, ऐसे अर्थवृत्तेः = अर्थवाचक धातु से लिट् लकार हो। प्रयोक्ता उस क्रिया को न देखा हो, तभी परोक्षे लिट् माना जायेगा (साक्षात्करोमि एतादृश-ज्ञानाभावः परोक्षत्वम्)। भू धातुका रूपधारण सत्ता, या उत्पति पैदा होने के अनुकूल, भवनक्रिया अर्थ हैं प्रयोगकर्ता उस क्रियाको न देखा हो। आजके भूतसे भिन्न भूतकल हो। भवनक्रिया समाप्त हो, इस अर्थ का बोधक (लिट्), इटौ इत्संज्ञकौ। ल, स्थानमें प्रथमपुरुस्य एकवचने तिप्, तस्य

परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ।३।४।८२। लिटस्तिवादीनां णलादयः स्युः । भू अ इति स्थिते । भुवो वुग्लुङ्लिटोः ।६।४।८८। भुवो वुगागमः स्यात् लुङ्लिटोरचि । एकाचो द्वे प्रथमस्य ।६।१।१। अजादेर्द्वितीयस्य ।६।१।२ इत्यधिकृत्य लिटि धातोरनभ्यासस्य ।६।१।८। लिटि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः, आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य ।

परस्मैपदानाम्=लिट्के स्थान में **परस्मैपदसंज्ञक** तिप् तस् झि । सिप्, थस्, थ । मिप वस्, मस् । इन नौ विभक्तियों के स्थान के क्रम से णल्, अतुस् उस् । थल्, अथुस् अ । णल्, व, म, । ये (नौ) आदेश होते हैं । तिप्=णल 'चुटु' सूत्र से ण् की, 'हलन्त्यम्से 'ल्' की इत्संज्ञा, तयोर्लोपः । भू + अ इति दशायाम् (३) **भूवो वुक्** आगम हो, लुङ् लिट् सबम्बन्धी अच् परे । आगम **मित्रवत्** होता है । वुक् में उक् इत्संज्ञक है । कित् होने से आद्यान्तौ (टकितौ) भूका अन्त अवयव व हुआ । **भूव् अ - एक अच्**—धातु के प्रथम एकाच्को द्वत्वका अधिकार । **अजादेः**—अच् आदिमें हो तो यथासम्भव द्वितीय एकाच्को द्वित्वका अधिकार । ये दोनों छठें अध्यायके आरम्भमें अधिकार सूत्र है, विधि नहीं । ष्यङः सम्प्रसारणं तक अधिकृत है । (४) **लिटि**–लिट् लकारपरे रहते, **अनभ्यासधातु = न अभ्यासः इति अनभ्यासः** । अभ्याससंज्ञा न हुई हो ऐसे धातु अवयव के प्रथम एकाचको **द्वित्व हो, आदिभूतादचः** = धातु के आदि अच् से परे (दितीय) एकाच् संभव हो उसीको द्वित्व हो । **हलादिधातु** में प्रथम एकाच् को द्वित्व हो । आजादि में एकाच् को । यदि संभव न को तब प्रथम एकाचको दित्व **हो,** लिट्परे स्थानिवद् भाव से अ है । अभ्याससंज्ञारहित धातु भू है, उसको वुक् हुआ । **यदागमास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते** । जिसको आगम हुआ हो, उसके ग्रहण से आगमसहितका ग्रहण होता है । वुक्-व् आगम है, भूको हुआ है । यहाँ भूके ग्रहणसे भुव् का ग्रहण होगा । परन्तु भूव् में चार एकाच् हैं । भू भूव, ऊव् तथा ऊ । किस एकाच को दित्व हो **वृक्षप्रचलनन्यायेन** । जैसे–जड़ हिलाने से सम्पूर्णवृक्ष हिलता है । **एकाच् द्विर्वचनन्यायेन** । यहाँ एकाच् समुदाय ही लिया जायगा, अवयवों के साथ समुदायको द्वित्व हुआ । **भूव् भूव् + अ** (२९५) **पूर्वो–इसप्रकरण में जो दो बार किये गये हैं । तयोः** उनमें पूर्व को **अभ्याससंज्ञा हो । अनेन** प्रथम भूव् शब्दस्य अभ्याससंज्ञा (६) **हलादिः**—अभ्याससंज्ञक शब्दके आदि (**हल्**) **शिष्यते** आदि अक्षर शेष रहता **है** । चाहे अजादि धातु हो या हलादि) आदि के अच् या हल् से अतिरिक्त वर्णों में हल् का हसे ल् तक के वर्ण शेष रहते हैं । **अन्य** हल् का लोप होता है । यहाँ हल् शब्द उपलक्षण होने से अच् का भी स्मारक है, अभ्याससंज्ञक धातु का

भूव् भूव् अ इति स्थिते। पूर्वोऽभ्यासः ६।१।४ अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात्। हलादिः शेषः ।७।४।६०। अभ्यासस्याऽऽदिर्हल् शिष्यतेऽन्ये हलो लुप्यन्ते। इति वलोपः। ह्रस्वः ७।४।५९। अभ्यासस्याऽचो ह्रस्वः स्यात्। भवतेरः ।७।४।७३। भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्याल्लिटि। अभ्यासे चर्च ।८।४।५४। अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च। 'झशां जशः, खयां चर' इति विवेकः। बभूव बभूवतुः बभूवुः। लिट् च ३।४।११५ लिडादेश-

---

आदि अच् भी शेष रहता है। अन्य हल् का लोप होता है। अथवा 'अहल्' तथा आदिशेषः' ऐसा योगविभाग करेंगे, अभ्यास हल् रहित हो, यदि आदि में हल् हो तो वह शेष रहे। प्रथम योगार्थ से अत्, अर्च, आदिधातु अभ्यांससंज्ञक हल् रिहित होंगे। तब 'अ' बचेगा, त - चका लोप होगा। सभी आजादि धातु की ऐसी ही स्थिति होगी। यदि आलादिशेषः कहेंगे तो भूमें उ (अच्) का लोप होगा। प्रसङ्ग में अभ्याससंज्ञक भूव्का भू शेप रहा 'व्' लुप्त हो गया। यत्र अभ्यासे आदिः हल, तत्र हल् एव शिष्यते। यत्र आदि हल न सम्भवेत् तत्र अन्य हलो निवृत्तिः। आदिशब्दः अन्त्यशब्दमाकांक्षते अन्यव्यावृत्तिः, स्वस्य उपस्थितिः शेषः। इति व् लोपे (भू भूव् अ) दशायाम् (७) ह्रस्वः अभ्यासंज्ञक शब्द के अच् (अ इ उ एऐ औच्) तक के अक्षर ह्रस्व (एकमात्रिक) हों। अनेन ऊकारस्य ह्रस्वे उ (८) भवतेः=भूधातुके अभ्याससंज्ञक उ को अ हो, लिट्परे। अनेन उस्थाने अ कृते सति भभूव् + अ इति जाते (९) अभ्याससंज्ञक झल् के स्थानमें चर् हो। जशश्च=जश् भी। यहाँ झल् - झभञ् से हल् तक। इसके तीन खण्ड हैं। झश्, खय् शल्। झश्=झ भ घ ढ ध ज व ग ड द इसके स्थानमें जश्=जबगडद प्रयोगसिद्ध के अनुसार हो। २—खण्ड। खय्=ख फ छ से कपय् तकके स्थानमें प्रयोगसिद्धिके अनुसार चर्= च, ट, त, क, प, श, ष स होते हैं। ३–खण्ड शल्-श, ष, स, ह के स्थान में वही आदेश होंगे। च क ट आदिके स्थानमें भी वही होगे। इसी आशय से प्रकृतिजशां प्रकृतिजशः प्रकृतिचरां प्रकृतिचरः इति विवेकः—कहा गया। वर्गके द्वितीयवर्णको थमवर्ण। चतुर्थवर्णको तृतीयवर्ण। प्रसंङ्ग में झल् के भ को ब हुआ। तब बभव। कर्त्तामें विद्यमान पूर्वदिनकी परोक्ष भूतकालिक क्रिया अर्थ है। जहाँ दो कर्त्तामें परोक्ष भूतकालिकभवन क्रिया अर्थ होगा, वहाँ तस् प्रत्यय, तस्य स्थाने अतुस्, बभूव बनाने की प्रक्रिया पूर्ववत् होगी। सकारस्य रुत्वे वि०। बभूवतुः। बहुबचने झि,। तस्य स्थाने परस्मैपदानां सूत्रेण उस् सकारस्य रु० बभूवुः। पूर्वदिन परोक्षभूतकाल की सत्तातक्रिया जहाँ अनेक कर्ता हो। बभूविथ।

(४००) लिट् के स्थानमें आदेशरूप तिङ् को आर्धधातुकसंज्ञा हो जो

स्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात्। आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः ।७।२।३५ः वलादेरा-
र्धधातुकस्येडागमः स्यात्। बभूविथ बभूवथुः बभूव। बभूव बभूविव बभूविम
अनद्यतने लुट् ।३।३।१५। भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट्। स्यतासी ऌलुटोः
।३।१।३३। धातोरेतौ स्तो, ऌलुटोः परतः। शवाद्यपवादः। 'ऌ' इति
ऌङ्ऌटोर्ग्रहणम्॥ आर्द्धधातुकं शेषः ।३।४।११४। तिङ्शिद्भ्योऽन्यो

आधे या न्यून अंशमें उपयोगी संज्ञा अर्धधातौ भवम् आर्धधातुकम्।
सर्वेषु लकारेषु प्रवृत्ता :संज्ञाः सर्वधातुकसंज्ञा। सर्वधातौ भवम् सार्व-
धातुकम्। जहाँ त्वम् कर्ता हो पूर्वदिनके परोक्ष भूतकालिकक्रिया की इच्छा
हो। तब धातुसंज्ञक भूशब्दात् मध्यमपुरुषस्य एकवचने सिप् तस्य लिट्च
सूत्रेण आर्धधातुकसंज्ञा (क्योंकि लिट् स्थाने तिङ् है) तस्य स्थाने (परस्मैपदानाम्)
सूत्रेण थलि आदेशे (१) आर्धधातु-बलादे=वरट् से हल्तक वर्ण आदिमें हो, ऐसे
आर्धधातकसंज्ञकवालेको इट्का आगम हो। यहाँ आर्धधातुकसंज्ञक लिङ् के
स्थान में स्थानिवद्भाव से थ आर्धधातुक है। अब लिट् सम्बन्धी अचरे इथ
मानकर भूवो वुक् हुआ, अनुबन्धलोपे द्वित्वे हलादिशेषे ह्रस्वे 'भवतेर' इति अ,
आदेशे। जश्त्वे बभूविथ - त्वदभिन्नैककर्तृक-रनद्यतनपरोक्षभूतकालिकी
क्रिया इत्यर्थः। इस प्रसङ्ग में इट् होने पर ही वुक् होता है। दो कर्ता हों तब
द्विवनन थस्के स्थानमें अथुस् बभूवथुः। यूयं कर्ता हो तब बहुवचन थस् के स्थान
में अ बभूव। अहम् कर्ता हो उक्त क्रियाकी विवक्षा में लिट् तस्य स्थाने
मिप् तस्य स्थाने उत्तम पु० एकवचने णल्=अ बभूव। 'आवाम्' कर्ता हो परोक्ष
अनद्यतनभूतकालिकक्रियाकी विवक्षामें उत्तम पु० द्विवचने वस्, तत्स्थाने 'व'
आदेशे, आर्धधातुकसंज्ञा, इट् आगमे वुक् द्वित्वादिकार्य पूर्ववत् बभूविव। क्या
हम दोनों पैदा हूए थे, यूयम् इतिकर्ता स्यात्तदा उ० पु० 'ब० बभूविम कदा वयं
हमलोग उत्पन्न हुए थे।

(२) अनद्यतने=होनेवाली भवनक्रिया (कल, परसों) अनद्यतन काल
का बन्धन छोड़कर सामान्यविषय भविष्य अर्थवाचक धातुसे हो। कालस्तु
व्यापारे विशेषणम्। जब अनद्यतनभविष्यकालकी क्रियामें अन्वय हो, जैसे—कल
होऊँगा, परसों, नरसों प्रकट होऊँगा। वह क्रिया आजकी न होकर आगामी कल,
परसों की किसी कालके शब्दका निर्देश अभीष्ट हो तभी लुट्का प्रयोग तब
धातुसंज्ञकसे श्वः परश्वः अर्थे लुट्, उद्=इत्, भू ल् इति स्थिते। (३) स्यतासी=
किसी धातु से स्य, तथा तास् प्रत्यय क्रम से हो। ऌट्=(ऌट् ऌङ्) तथा लुट्
परे होतो। यहाँ लुट् परे है, इसलिए तास् हुआ। शवाद्यपवादः शप्को बाधकर।
आदिपद से अन्यविकरण श्यन्, शः, श्ना, इत्यादिका भी बाधक है। स्यविकरण

'धातो'रिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात् । इट् । लुटः प्रथमस्य डारौरसः ।२।४।८५। एते क्रमादादेशाः स्युः । डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः । भविता । तासस्त्योर्लोपः ७।४।५० सादौ प्रत्यये परे । रि च ७।४।५१ रादौ प्रत्यये तथा । भवितारौ भवितारः । भवितासि भवितास्थः भवितास्थ ।

लङ् तथा लृट् दो लकार में होता है। अतः लृशब्द से लृङ् लृट् दोनों का ग्रहण जाने। क्योंकि **निरनुबन्धकग्रहणे सामान्यग्रहणम्।** अनुबन्धरहितका ग्रहण जहाँ हो वहाँ व्यापक का ग्रहण होता है। अतः लृङ् लृट् दोनों ग्राह्य हैं। (४) **आर्धधातुकं**=उक्तादन्यः, शेषः किम् उक्तः ? **तिङ् शित्** उक्त हैं, उनसे **अन्यः**=भिन्नः किन्तु धातु से **विहितः**=विधान किया गया प्रत्यय एतत्संज्ञः (अर्धधातौ भवः) आर्धधातुसंज्ञक हों। ये धातुके कुछ अंशमें होते हैं। यहाँ तास्प्रत्यय न तिङ् है, न शित् किन्तु धातु से विधान हुआ है। उसको आर्धधातुकसंज्ञा हुई। जिसका **इट्** विधान है। बलादि आर्धधातुकसंज्ञक **तास्** को इडागम अनुबन्धलोप **'भू इ तास् ति; सार्वधातुकार्धधातुकयोः** इति गुणे अव्आदेशे (भवि' तास् ति) दशायाम्।

(५) लुट् के स्थानमें **प्रथम पु० तिप्, तस् झि।** उनके स्थानमें क्रमसे **डा, रौ, रस्** हों। ति के डा, तस्=रौ झि का रस् हो अनेन ति स्थाने डा आदेशे, स्थानिवद्भावेन प्रत्यय मानकर **'चुटू'** से ड् इत् तस्य लोपः। 'आस्' डित् हो गया। यहाँ कप्रत्यय पर्यन्त के अन्दर स्वादिविभक्ति के न रहने से भ संज्ञा नहीं होगी टिसंज्ञक तास् में आस् का लोप कैसे ? कथमस्य टेर्लोपः, तब बोले **'डित्वसामर्थ्यात्'**—डा में 'ड' क्यों पढ़ा, उसकी इत्संज्ञा क्यों हुई ? इससे यह सिद्ध है जहाँ डित् हो वहाँ विना भसंज्ञाके भी टिका लोप होता है। अन्यथा डित् व्यर्थ होगा। इत्यनेन आस्भागस्य लोपे। वर्णसम्मेलने **भविता।** जहाँ दो कर्त्ता अनद्यतनभविष्यकालिक क्रिया करने वाले हो धातुसंज्ञक भू से लुट् तत्स्थाने प्रथमपुरुषस्य द्विवचनं तस् **'स्यतासी' तास्** प्रत्ययः तस्य आर्धधातुकंशेषः इति आर्धधातुकसंज्ञायाम् **इट्, गुणः** अव् आदेशश्च। तस् स्थाने रौ आदेशे। **भवितास् + रौ** दशायाम्। (६) **तास्** का तथा अस् का लोप हो **सादि** प्रत्यय परे रहते। इन दोनोंका उदाहरण **भवितासि** तथा **असि** हैं। यहाँ सादिप्रत्यय परे नहीं हैं, किन्तु रादि हैं अतः। (७) **रि**-रकारादि प्रत्यय परे तास् और अस् का लोप हो। यह लोप अन्त्य अल् स के स्थानमें होगा। रादि परे रहते तास् का अन्त्य अल् स् का लोप हुआ। **भवितारौ।** अनेक कर्ता होनेवाली क्रिया का आधार हो तब बहुवचन झि तस्य स्थाने रस्, अन्य कार्य पूर्ववत् **भवितारः।** त्वं कर्ता यदि कल, परसों (श्व, परश्वः) होनेवाली क्रिया का आधार हो, तब म० पु० एकवचन सिप् **भू + सि** तास्, इट् आदि पूर्ववत्। **'तासस्त्यो'** इति सादि (सिप्) प्रत्यय परे तास्

भवितास्मि भवितास्वः भवितास्मः ॥ लृट् शेषे च ।३।३।१३। भविष्यदर्था-द्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायामसत्यां, सत्यां च । स्यः । इट् । भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति । भविष्यसि भविष्यथः भविष्यथ । भविष्यामि भवि-ष्यावः भविष्यामः ॥ लोट् च ।३।३।१६२। विध्यादिष्वर्थेषु धातोर्लोट् ।

सकारस्य लोपे । **भवितासि** । यत्र युवामिति कर्ता तत्र द्विवचने थस् रूपं, **भवितास्थः** । यत्र यूयमिति कर्ता तत्र बहुवचने थ **भवितास्थ** । यत्र अहं कर्ता, तत्र **भवितास्मि** आवां **भवितास्वः**, वयं **भवितास्मः** । अनेककर्तृक अनद्यतन भविष्यकालिक उत्पत्तिजनकव्यापारः । लृट्शेषे शेषपद की आवृत्ति करके प्रथम शेष का **उक्तादन्यः** शेष के अनुरोधसे अद्यतनभविष्य संगृहीत होता है । तथा द्वियीय शेषपदार्थ च से अनुवृत्त तुमुन्ण्वुलौ, से क्रियार्था क्रियाके अध्याहार से असत्यां का अर्थ आया ।

(८) लृट् = सामान्य भविष्य हो अनद्यतन कल परसों श्वः, परश्वः के बन्धन से मुक्त (आज का भविष्य हो या कल का) उस क्रियारूप अर्थ का वाचक (धातुसंज्ञक भू से लृट् हो । च शब्द से क्रियार्था क्रिया की अनुवृत्ति हो या न हो । किसी क्रिया से दूसरी क्रिया जुड़ी हो, या किसी क्रिया की सिद्धि के लिए दूसरी क्रिया करनी पड़े, या न पड़े । यथा—**पठितुं गमिष्यति**, यहाँ अध्ययन क्रिया की सिद्धि के लिए **गमनक्रिया**, क्रियार्था कहीं गयी । यही क्रिया **सत्याम्**-हो, या **असत्याम्** न हो तो भी लृट । **पठिष्यति गमिष्यति** इत्यादि भी होगा । कर्ता में सामान्यभविष्यकालिकी उत्पत्तिजनकभवनक्रिया को कहना हो तब धातुसंज्ञक **भू धातोः 'लृट् शेषे च' इति लृट् । अनुबन्धलोपे, ल् स्थाने प्रथमपुरुषस्य एकवचनं तिप्, 'स्यतासी' सूत्रेण स्यप्रत्यये तस्य आर्ध** धातुकं शेषः इति आर्धधातुकसंज्ञायां तस्य वलादिः आर्धधातुकः इट् आगमे आर्धधातुकनिमित्तके गुणे अव् आदेशे । **भविष्यति** । जहाँ दो कर्ता सामान्य भविष्यकालिक होना क्रिया (रूप धारण) के आधार हों, वहाँ धातुसंज्ञक भू धातोः द्विवचने **तस्, स्य, इट्** गुणादिः, पूर्ववत् । सकारस्य रुत्वे वि, **भविष्यतः** । अनेककर्ता उक्तक्रिया फल का आधार हो, तब बहुवचनं झिप्रत्ययः 'झोऽन्तः' **भविष्यन्ति** त्वं युवां यूमम् । उक्तक्रिया (फल) के आधार हों तब क्रम से म० पु० का सिप्, थस्, थ प्रत्यय होकर, **भविष्यसि, भविष्यथः भविष्यथ** । यदि अहम्, आवां, वयम् कर्ता सामान्यभविष्यकालिक भवनक्रिया के आधार हों, तब उत्तम पु० मिप्, वस्, मस् क्रम से होकर **भविष्यामि भविष्यावः भविष्यामः** । यथा—**रामो भविष्यति** । यदि क्रिया में श्वः विशेषण लगा होगा तब लृट् का प्रयोग अशुद्ध, लुट् का प्रयोग शुद्ध । यदि अद्य विशेषण रहे तब लृट्

आशिषि लिङ्लोटो ।३।३।१७३। एरुः ३।४।८६। लोट इकारस्य उः । भवतु । तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ।७।१।३५। आशिषि तुह्योस्तातङ् वा । परत्वात्सर्वादेशः । ननु 'ङिच्चे'त्यस्य क्वावकाश इति चेच्छृणु, अनन्यार्थङ्कारयुक्ताऽनङादिष्विति गृहाण । भवतात् । लोटो लङ्वत् ।३।४।८५।

शुद्ध होगा, यथा—अद्य पठिष्यामि सामान्यभविष्य में लृट् अनद्यतनभविष्य में लुट् का ध्यान आवश्यक है ।

(९) लोट् च विध्यादि अर्थेषु=विधिः प्रेरणा, आज्ञादेना, सेवकों (निकृष्ट) छोटे लोगों को कार्य के लिए प्रेरित करना । निमन्त्रण श्राद्ध भोजन आदि में प्रवृत्तकराना । आमन्त्रण = इच्छानुसार आज्ञादेना अधीष्ट = स्वागतसत्कार इत्यादि अर्थ कहना हो तब उसी अर्थ वाचक धातु से लोट् लकार हो ।

(४१०) आशिषि=आशीर्वाद अर्थ कहना हो, तब लिङ् लोट् दोनों लकारों का प्रयोग हो । आशीः (अप्राप्तस्य प्राप्तुम् इच्छा) शुभकामना, प्रदान यथा—ते पुत्रं भवतु भूयात् वा । जिसे पुत्र न हो, वहां अप्राप्तपुत्र प्राप्तिकी शुभकामना, यही आशीर्वाद है । हे हनुमन् 'त्वयि भक्तिर्भवतु' इति सीतायाः शुभकामना । अलब्ध का लाभ हो ऐसी शुभकामना अर्थवाचक भू धातु से आशीर्वाद या आज्ञा अर्थ में लोट् तत्स्थाने तिप् सार्वधातुकसंज्ञा कर्तरि शप् । पुनः सार्वधातुकसंज्ञा-सार्वधातुकार्धधातुकयोः इतिगुणे, अव् आदेशे भवति (लटलकारकी तरह) ततः (१)-एः उः लोट्लकार सम्बन्धी 'इ' के स्थानमें 'उ' हो । लोटके स्थानमें तिके इको 'उ' हुआ, भवतु । यहाँ भू प्रकृति है, उसका अर्थ भवनक्रिया है, तु-प्रत्यय है । उसका अर्थ प्रेरणा, आज्ञा, स्वागत, सत्कार, आशीर्वाद है । अन्य प्रक्रियायें इन्हीं अर्थों की पोषिका हैं । प्रायः आशीर्वाद अर्थमें लोट् । प्र० पु० म० पु० के एक-वचनमें विशेषविधिसूत्र जो आशीर्वाद अर्थमात्रका विधान करता है ।

(२) तुह्योः 'तु' तथा 'हि' के स्थानमें 'तातङ्' आदेश विकल्पसे हो आशिषि शुभकामना प्रदान, अर्थमें अन्यतरस्याम्=अनयो अन्या अन्यतरा तस्याम् अन्य किसी आचार्यके मतमें । यहाँ तातङ् आदेश ही विशेषरूपसे आशीर्वाद अर्थ में प्रयुक्त है । विकल्प पक्षमें तु शब्द पूर्वोक्त सभी अर्थको कहेगा यथा—प्रीत्यै भूयात्) वरश्चिरञ्जीवी भवतात्, कन्या सावित्री भूयात् । तुके स्थानमें तातङ्=तात् होनेसे भवतात् । परत्वात्=तातङ् में ङ के इत् होने से ङित आदेश । 'तातङ' अन्त्य अल् तु में उ को प्राप्त हुआ, अनेकाल् शित् सर्वस्य । तातङ् अनेकाल् आदेश है सम्पूर्ण के स्थान में प्राप्त हुआ, तब विप्रतिषेधे=तुल्यबलविरोधे परम् इष्टं कार्यम् । सम्पूर्ण को आदेश हुआ, पर होने से । यद्यपि निरवकाश विधि अपवाद बनाता है, अनङ आदि स्थल में चरितार्थ ङित अपवाद नहीं है ।

लोटस्तामादयः, सलोपश्च । तस्थस्थमिपां तान्तन्ताऽमः ।३।४।१०१। ङित-श्चतुर्णां तसादीनां तामादयः स्युः । भवताम् भवन्तु । सेर्ह्यपिच्च ३।४।८७ लोटः सेर्हिः, सोऽपिच ॥ अतो हेः ।६।४।१०५। लुक् । भव भवतात् भवतम् भवत ॥ मेर्निः ।३।४।८९। लोटः ॥ आडुत्तमस्य पिच्च ।३।४।९२। लोडु-त्तमस्याऽऽट् स पिच्च । हिन्योरुत्वं न इकारोच्चारणसामर्थ्यात् । भवानि ।

---

(३) **लोट्** लङः तुल्यं **लङ्वत्** स्थानषष्ठ्यन्ताद्वति । **लस्थानिक**कार्यस्य आदेशः न तु लङ् निमित्तकस्य कार्यस्य, लोट् के स्थान में **लङ्वत्** लकार की तरह **तामादयः** = तस् थस् थ मिप् के स्थानमें ताम्, तम्, त, अम्, क्रम से हों । स लोपश्च, सकारका लोप भी हो । सलोपसूत्र तामादि विधायकसूत्र आगे दिये गये है । यथा—(४) **तस्थस्थ** ङित् लकार के चार आदेश **तस् थस्** थ मिप् के स्थान में ताम् तम्, त, अम्, आदेश क्रम से हों । तस् को ताम् । थस को (तम्) । थ त, मिप् (अम्) । भवनार्थक भूधातु से आज्ञा प्रेरणा, सत्कार आदि अर्थ में तथा द्विवचन की विवक्षा में **लोट्** । तस्य स्थाने तस्, लोटो-लङ् की तरह कार्य हों, **लङ्वद्भावे 'तस्थस्थ'** सूत्रेण तस् स्थाने 'ताम्' आदेशे । शप्, गुणावादेशौ पूर्ववत् **भवताम्** । बहुवचने 'झि' झोऽन्त आदेशे एरु' इकारस्य उकारे **भवन्तु** = प्रेरणा, आज्ञा सत्कारविषयिणः सन्तु । यत्र त्वं कर्ताको प्रेरणा, आज्ञा, सत्कार, आशीर्वादजनकक्रिया का आधार बनाना हो, वहाँ भवनार्थक (क्रियावाचक) भूधातु से **लोट्**, अनुबन्धलोपे लस्थाने म० पुरुषस्य एकवचने सिप् पलोपे शप् गुणावादेशाः पूर्ववत् । **भव सि** दशायाम् ।

(४१५) **सेः** = लोट् स्थाने यः **सि तत्स्थाने 'हि'** भवति । **सोऽपिच्च** = वह आदेश अपित् हो । जिसका फल क्ङितिच से गुणनिषेध । यथा—स्तुहि । प्रसङ्ग में अपित् का फल नहीं है । सिके स्थान में 'हि' को तातङ् आदेश सम्पूर्ण के स्थान में हुआ । तातङ् के अभावपक्ष में हि का लुक्, निम्न सूत्र से (६) **अतः** अदन्त अङ्ग से परे 'हि' का लुक् हो । यत्र अदन्तम् अङ्ग भविष्यति तत्र हि इत्यस्य लुक् भविष्यति । अन्य स्थलमें हि रहता है, यथा—**देहि जहि** । यहाँ अदन्त होने पर भी **असिद्धवदत्राभात्** ज असिद्ध है । विरोध नहीं, प्रसङ्ग में हि का लुक् भव । **तातङ् पक्षे भवतात्** । मध्यम पु० द्विव० थस् तत्स्थाने **तम्** आदेशे **भवतम्** । बहुवचने **थ** स्थाने त आदेशे **भवत** । यत्र अहम् इति कर्ता तत्र सत्तार्थक या आत्मधारणार्थक भू धातोः आज्ञा, सत्कार, आशीर्वादार्थे लोट् तत्स्थाने उत्तमपुरुषस्य एकवचनं मिप् । पलोपे गुणावादेशादि होने पर **भवामि** ।

(७) **मेः** = लोट् स्थानक **मि** के स्थान में **नि** आदेश हो । इति **नि** आदेशे कृते (८) **आडुत्तमस्य** = लोट् के स्थान में उत्तम पु० के प्रत्ययको **आट्** हो **पिच्च** =

ते प्राग्धातोः ।१।४।८०। ते=गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः। **आनि लोट्** ।८।४।१६। उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य 'लोडादेशस्या' ऽऽनी'त्यस्य नस्य णः स्यात्। प्रभवाणि। (दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः)। दुःस्थितिः। दुर्भवानि। (अन्तःशब्दस्याऽङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वंवाच्यम्)। अन्तर्भवाणि। **नित्यं ङितः** ।३।४।९९। सकारान्तस्य ङिदु-

---

वह आट् पित् हो। ट् से टित् प्रत्यय का आदि अवयव होता है। पित् का फल है, गुण का निषेध न होना। सवर्णदीर्घे **भवानि** इति। **हिन्योः** इति हि आदेश तथा नि आदेश के इकार को 'एरुः' से उत्व नहीं होता, **इकार** के उच्चारण सामर्थ्य से। यदि उत्व करना होता तो **हि, नि** उच्चारण न करते, **इकारोच्चारण** व्यर्थ होकर नियम बनाता है। **हि नि** को उत्व नहीं होता। यदि **प्र** का प्रयोग किया जाय वह **भवानिके** किधर ठहरे, तब बोले। (९) **ते**= गतिसंज्ञावाले उपसर्गसंज्ञावाले **प्रपरा** इत्यादि धातुके **प्रागेव**= पहले ही **प्रयोक्तव्याः** संयोग करना चाहिए। **प्रभवानि** इति दशायाम्।

(४२०) **अनि लोट्** उपसर्गस्थात्=उपसर्गे तिष्ठतीति उपसर्गस्थः उपसर्गमें रहनेवाले णत्वके **निमित्त**कारण र, ष, उससे परे लोट्के स्थानमें हुए आदेश **'आनि'** के **न-ण** हो। इतिणत्वं **प्रभवाणि**। क्योंकि णत्व का निमित्तकारण र, प्र में है। अतः णत्व हुआ। यद्यपि अट्कुप्वाङ्-सूत्र से णत्व की संभावना हो सकती है, परन्तु अखण्डपद (समानपद) न होने से यह सूत्र पढ़ना पड़ा। अर्थ—जिसमें निमित्त हो निमित्तिमान पद न हो वह अखण्ड पद है जैसे रामेण में निमित्त र है निमित्तिमान् पद स्थायी नहीं है वह अखण्ड है। रामनाम र निमित्त है पर नाम निमित्तिमान् पद से घटित है।

(वा) **दुर्शब्द को** षत्व 'या' णत्व के विषयमें उपसर्गसंज्ञाका प्रतिषेध= निषेध कहें। 'दुर्' सदा क्रिया योग में उपसर्ग हो। जब षत्वणत्व का प्रश्न उठे तब उपसर्ग न रहे। जैसे—**'दुः स्थितिः'** यहाँ दुर् उपसर्ग से परे स्था के सकार को **'उपसर्गात्सुनोति'** सुवतिस्यति इत्यादिसूत्र से षत्व प्राप्त है। परन्तु उपसर्गत्वके निषेधसे षत्व नहीं हुआ। **दुर्भवानि** यहाँ दुर् उपसर्ग में रको निमित्त मानकर **'आनि' लोट्** सूत्रेण णत्वे प्राप्ते तब उपसर्गत्वके निषेधसे णत्वं नहीं (वा) **अन्तः** शब्द को **अङ्विधान किविधान** तथा **णत्वविधान** हो रहा हो, **उपसर्गसंज्ञा** कहें। क्योंकि अन्तःशब्द प्रादिगणमें नहीं आता। क्रिया योगमें उसकी उपसर्गसंज्ञा असम्भव है। **अन्तर्धामें** अन्तरशब्दको उपसर्ग होने पर ही धा धातु से अङ्प्रत्यय होता है। **अन्तर्धिः** में उपसर्गसंज्ञा होने पर ही **उपसर्गे धोः किः** सूत्र से किविधान होता है। प्रसङ्गमें अन्तरशब्द को उपसर्गसंज्ञा का फल अन्तर्भवाणि में आनि

त्तमस्य नित्यं लोपः स्यात्। 'अलोऽन्त्यस्ये'ति सलोपः। भवाव भवाम। अनद्यतने लङ् ।३।२।१११। अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ्। लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ।६।४।७१। एष्वङ्गस्याऽट्। इतश्च ।३।४।१००। ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तस्य लो-:। अभवत् अभवताम् अभवन्। अभवः अभवतम् अभवत। अभवम् अभवाव अभवाम ।। विधिनिमन्त्रणाऽऽमन्त्रणाऽधीष्ट-

---

लोट् से णत्व होना है। (१) **नित्यं ङितः**-ङित् लकार, लङ् लिङ्, लुङ् लृङ् के **उत्तमस्य**=उत्तम पु० के **सकारान्तस्य**=सकार अन्त में हो ऐसे प्रत्यय के स् का नित्यलोप हो। लोटो लङ्वत् के अतिदेश से लोट् में भी प्रवृत्ति होगी। **अन्त्यस्य अलः**=प्रत्यय के अन्त्य अल् वर्ण का लोप हो इससे स्लोप हुआ। **भवाव, भवाम।** भू लोट् यस् मस् शप्, गुण, अव्, आट् आगम, सवर्णदीर्घ, सलोपे।

(२) **न अद्यतन** इति अनद्यतनः (आज का नहीं) स चासौ भूतश्च। अनद्यतन जो भूतः समाप्तक्रिया, तदेव अर्थः। भूतकालिकी क्रियावाचकात् **धातोर्लङ् अद्यतन**=पहले दिनकी बीती क्रिया (भूतकाल) अर्थमें धातु से लङ् हो। इसका सूचक (ह्यः) पद है वही अनद्यतनभूतकाल प्रगट करता है। ऐसी स्थिति में ही लङ्का प्रयोग शुद्ध है।

(३) लुङ् लङ् लृङ् परे अङ्गसंज्ञकको **अट्** आगम हो उदात्त हो। **टित्** होनेसे अङ्गसंज्ञाके आदिमें **आद्यन्तौटकितौ** के नियम से हो। ल दशा में अटि, जब ल रहे तभीं अट् हो। तिप् आने पर नहीं। (४) ङित् लकारके परस्मैपदके अन्त इ का लोप हो। **अभवत्**=पूर्वदिन तक की समाप्तक्रिया भूतकाल कर्त्ता में निश्चित हो तब भवनार्थकधातुसंज्ञक भू से अनद्यतने भूतार्थ लङ्। अट् आगमः। टित् होने से भूके आदिमें अ हुआ। लङ् स्थाने प्र० पु० एकवचन तिप्। अनुबन्धलोपे शप् गुण अव्। इतश्च ङित् लकार परस्मैपद ति के अन्त इका लोप। **अभवताम्**=यत्र द्वौ कर्तारौ तत्र द्विवचने तस् तस्य ताम् आदेशे अट् शप् गुणादिकार्यंपूर्ववत्। अनेककर्ता में अनद्यतन भूतकालिक क्रिया अर्थ कहना हो भू धातु से लङ् अट् झि, शप् गुण अव। **अभवन्ति** इतश्च इ लोपे, तस्य संयोगान्तलोपे, **अभवन्।** यथा आजदिनके पहले होना क्रिया समाप्त हो। त्वं युवां यूयं कर्ता हो, वहाँ भू से मध्यम पु० सिप् थस्, थ, क्रम से होते हैं। अन्य कार्य पहलेकी तरह जानें। सिके इ का लोप, स् को रु वि। थस् थ के स्थानमें क्रम से तम् त आदेशे होते हैं। जहाँअहम् आवां वयं कर्ता हो, वहाँ उ० पु० मिप् तत्स्थाने 'अम्' **अभवम्।** वस, मस् परे नित्यं ङितः से सलोपः। **अभवाव अभवाम।** हम लोग कलपरसों उपस्थित थे।

संप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ।३।३।१६१। एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् । यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ।३।४।१०३। लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो, ङिच्च । ङित्वोक्तेर्ज्ञायते-'क्वचिदनुबन्धकार्येऽप्यनल्विधाविति प्रतिषेध' इति,

(४२५) **विधिः** - विपूर्वक धा धातुका प्रेरणा, सेवकोंको आदेश देना भृत्य (नौकर) मजदूर आदि निष्कृष्ट छोटों को कार्य में प्रवृत्त कराना, यथा--**इह भुञ्जीत** । ओचनं **पच** या **पचेतम्** । यहाँ चावल पकाओ भोजन करो । **अहरहः सन्ध्याम् उपासीत** । प्रतिदिन सन्ध्याकरो । गुरु सुश्रूषां कुर्यात् । अन्यथा पापं भवेत् इत्यादि विधि के उदाहरण हैं । **निमन्त्रण** आग्रहपूर्वकं नियोगपूर्वकं कार्ये प्रवर्तनम् । भाई बन्धुओं श्रेष्ठ लोगों को, सम्मानपूर्वक प्रेरणा करना कार्यमें लगाना अर्थ है । इसलिए **आवश्यक श्राद्ध भोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्** । श्राद्ध हो, भोजन हो दुहिता (लड़की) के लड़के को, पुरोहित जी को, विवाहादि मङ्गल कार्य में सभी श्रेष्ठजनो को आग्रहपूर्वक निमन्त्रण देना जैसे—**भो ! भानिनेय** (भाञ्जे) **भो आचार्य** (गुरु) **भो पुरोहित** मम श्वः परश्वः परतश्वो (कल) **भाविनि** (उत्सवे) त्वम् आगच्छ, भवान् आगच्छतु । कल मेरे व्रत उत्सवमें अवश्य पधारें । **आमान्त्रण** = काम चारानुज्ञा, इस प्रेरणा में प्रेर्यमाण व्यक्तिको स्वतन्त्रा रहती है । निमन्त्रण की अपेक्षा इस प्रेरणा में हलकापन है, कम दबाव-इच्छाधीन प्रेरणा, इसलिए आमन्त्रणको **कामचार** - यथेच्छ विचारकी **अनुज्ञा**=आज्ञा पालन प्रेरणा, स्वीकार प्रेर्यव्यक्ति उस आमन को माने या न माने उसकी इच्छा पर निर्भर । यथा **इह आसीत् भवान्**, आप यहाँ ठहरें, **मम विवाह महोत्सवे प्रीतिभोजने** भवान् आगच्छतु, **आगच्छेत्** वा । मेरे प्रतिभोज में आप पधारें, इस प्रेरणा में आग्रह नहीं अपितु **अनुरोध** है । **अधीष्टः**-अधिपूर्वक इष् धातुका सत्कारपूर्वक व्यापार (व्यवहार) यह प्रेरणा, पूज्य लोगोंके प्रति होती है । इसे **सत्कारपूर्वको व्यापारः** । सम्मान पूर्वक किसी कार्य में प्रेरित करना । मम पुत्रम् अध्यापयेद् भवान् । यहाँ पुज्यगुरुजनको भवान्, श्रीमान्, कहकर कि 'मेरे पुत्र को पढ़ाये' इस सत्कारपूर्विका अध्यापना में लिङ् का प्रयोग है ।

सारांश (१) अपने से छोटे या न्यून, सामर्थ्य वालोंको प्रेरणा **विधि** है । (२) विशेष आग्रह (अवश्य बुलाने) की प्रेरणा **निपन्त्रण** है । (३) उससे कम बल वाली प्रेरणा जिसमें इच्छा का अनुरोध हो वह **आमन्त्रण** है । (४) जिस प्रेरणामें स्वागत सत्कार की **चेष्टा हावभाव** समादर प्रदर्शित किया जाय उसे **अधीष्ट** कहते हैं । (५) **सम्प्रश्न**=सम्प्रधारण उचित अनुचित निर्णय के लिये प्रेरणा या परामर्श लेना यथा--भो ! वेदमधीयीय उतर्तकम् । मैं वेद पढ़ूँ यान्यायशास्त्र । इस निश्चयके लिए परामर्श सलाह की प्रेरणा है । **प्रार्थना** - याचना भी पुस्तकं लभेयं भोजनं च पुस्तक प्राप्त करें और भोजन भी ।

ते न 'वक्ष्यमाणे'त्यत्र टित्त्वादुगित्त्वाच्च ङीप् । लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ।७।२।७९। सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः। इति प्राप्ते। **अतो येयः** ।७।२।८०। अतः **परस्य सार्वधातुकावयवस्य 'यास्' इत्यस्य इय्।** गुणः। 'लोपो व्योर्वलि'। भवेत् भवेताम्। **झेर्जुस्** ।३।४।१०८। लिङो

ये छ प्रेरणायें क्रियायें मानी जाती हैं। ये अर्थ यदि कर्तामें लक्षित हों तब धातु से लिङ् का विधान है।

(६) **परस्मैपदेषु** लिङ् के स्थानमें परस्मैपदसंज्ञक प्रत्ययको यासुट् आगम हो, वह उदात्त हो। **ङिच्च** ङित् भी माना जाय। ङित् का फल गुणनिषेध, टित् का फल है यासुट् के यास का आदि अवयव होना। यद्यपि लिङ्के ङित्को स्थानिद्भाव करके गुणका निषेध सम्भव था, तथापि यासुटै ङित् ग्रहणव्यर्थीभूय ज्ञापयति, **क्वचित् अनुबन्धकार्येऽपि अनल्विधौ इति निषेधः प्रवर्तते।** कहीं अनुबन्ध कार्य होना हो वहाँ भी अनल्विधौ से स्थानिवद्भाव का निषेध हो। उसका फल वक्षमाणा में ङीप् का न होना।

घूमास्थागापा—हलि ङित् परे ईत्व करता है। उनका **न ल्यपिसे** निषेध हो वहाँ भी स्थानिवद्भावका निषेध होने से ङित् नहीं रहेगा। इत्व प्राप्ति नहीं, न ल्यपि निषेध व्यर्थः। वही ज्ञापन किया कि **अनुबन्धकार्य में अनल्विधौ निषेध नहीं लगता।** यहाँ भी निषेध नहीं करेगा। ङित् आयेगा, पुनः ङित् पाठ व्यर्थ होकर रास्ता निकाला कि **क्वचित् अनुबन्धकार्येऽपि**—कहीं अनुबन्धके कारण कार्य होता हो अनल्विधौसे निषेध होता है। स्थानिवद्भावका निषेध हुआ। लिङ्का ङित् नहीं आयेगा, ङित्का पाठ सफल। न च उक्तज्ञापन (यासुट्का ङित्) नहीं कर सकता, वह तिप् सिप् मिप्के साथ यासुट्के ङित् के लिए आवश्यक है व्यर्थ नहीं ज्ञापक कैसे ? लिङ् स्थाने आदेश होनेपर भी स्थानिवद्भावसे तिप् सिप् मिप् ङित् नहीं हो सकता, क्योंकि वे पित् है। **पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्न** भाष्य प्रमाणसे जो पित् है ङित् नहीं अतः उसके लिए ङित् पाठ सफल है। तब कहा—**श्नादेशस्य**—**वधानकी** सिद्धिके लिए **हलः श्नः शानच्** पढ़ा। श्ना-श इत् शित् है। उसके स्थानमें आदेश शानच्का शित् क्यों पढ़ा ? स्थानीका धर्म आदेशमें आता ही। वह व्यर्थ होवर बोला—**क्वचित् अनुबन्धकार्येऽपि अनल्विधौ निषेधति।** ज्ञापन फलं तु वक्ष्यमाणामें ङीप्का अभाव।

कर्तामें जब आज्ञा (जोर देकर प्रेरणा) या इच्छानुसारी प्रेरणा आदर सत्कार, निश्चय निवेदन की प्रेरणा क्रिया में अनुभूत हों। **भवेत्।** तब धातुसंज्ञक भू से प्रेरणा अर्थमें लिङ्, तस्य स्थाने तिप् शप् अनुबन्धलोपे, 'गुणे अवादेशे। **भव + ति** 'इतश्च' इकार लोपे, अत्र परस्मैपदसंज्ञक त् इति। तस्य यासुट् आगमे स्थानिवद्भाव,

झेर्जुस् । उस्यपदान्तात् ।६।१।९६। अपदान्तादवर्णादुसिपरे पररूपमेकादेशः स्यात् । इति प्राप्ते । परत्वान्नित्यत्वाच्चाऽतो येय इति प्राञ्चः । यद्यप्यन्तरङ्गत्वात्पररूपं न्याय्यं, तथापि 'यास्' इत्यस्य 'इय्' इति व्याख्येयम् । एवञ्च सलोपस्याऽपवाद इय् । 'अतो येय' इत्यत्र तु सन्धिरार्षः भवेयुः । भवेः भवेतं भवेत । भवेयं भवेव भवेम ।। लिङाशिषि ।३।४।११६। आशिषि लिङस्तिङार्द्धधातुकसंज्ञः स्यात् । किदाशिषि ।३।४।१०४। आशिषि लिङो

लिङ्स्थाने ति, (तिप् आदि को यासुट् आगम) । यत् आगमः-जिसको आगम हुआ है, तद्गुणीभूताः=उसी के गुणमें लीन हो जाता है, उसके ग्रहण से उसका भी ग्रहण होता है तद्ग्रहणेन गृह्यते । त् को यासुट् हुआ है त् का धर्म परस्मैपद तथा ङित् से ओत-प्रोत हो गया । त् के ग्रहण से यासुट् का भी ग्रहण होगा । अतः 'यास्त्' इतना लिङ् हो गया—

(६) लिङः—सार्वकातुकलिङ्के (अनन्त्यस्य अन्त में न हो) किन्तु मध्य या आदि में हों ऐसे स् का लोप हो । इस सूत्र से यास् के स् का लोप प्राप्त हुआ । तं बाधित्वा । (८) अतो=अदन्त अङ्गसे परे सार्वधातुक लकार का अवयव यास् के स्थानमें इय् हो । प्रसङ्गमें यास् भी 'यदागम' परिभाषा से सार्वधातुकका अङ्ग हो गया । (भव इय् त्) दशायाम् 'आद्गुणः' गुणे एकादेशे । लोपो=वल् प्रत्याहारके अक्षर परे हो तब व्योः व या य का लोप हो । यहाँ वल् प्रत्याहारमें त् को देखकर यका लोप भवेत् भवेताम् । जहाँ दो कर्तामें सम्भाविनी प्रेरणा समझ में आवे, वहाँ लिङ् के स्थान में तस्, तस्थस्थमिपाम् सको ताम् आदेश शेषकार्यं पूर्ववत् । बहुवचने झि प्रत्यये शप् गुणे, अवादेशे, यासुट्, इय, आदेशे भवेय + झि । (४३०) लिङ् के स्थान में हुए झिको जुस् हो इति झिस्थाने जुस्

उसि अपदन्तात्–पदान्त न हो, ऐसे अवर्णसे उसिपरे पूर्वपरके स्थानमें पररूप एकादश हो । एकः पूर्वपरयोः का अधिकार । आदुणः से आत्, एङिसे पररूप आये, अच्परे है (इको यण्से अचि आया) इससे पररूप प्राप्त । आ–उस्के बीच आदुणःको बाधकर । यदि पररूप होगा तब ('या उस्) ऐसा भेद नहीं रहेगा, इय आदेश नहीं होगा । तब बोले परत्वात्—पररूपसे इय आदेश पर है, नित्यभी । अकृते कृते च प्रवृत्तः । पररूप हो या न हो अतो येयःमें इय आदेश होकर रहेगा, एकदेशविकृतन्यायसे । अथवा एकादेशमें पूर्वान्तिवद्भावसे इय अवश्य होगा । पररूप बाधकर इय आदेश गुण । भवेयुः । ऐसा प्राचीन मानते है । नवीन कहते है पररूप अङ्गाधिकारी नहीं । अङ्गापेक्षम् अन्तरङ्ग है । और इय आदेश बहिरङ्ग है । अङ्गको प्रकृतिप्रत्ययकी अपेक्षा । पर-नित्यसे भी अन्तरङ्गाशास्त्र (पररूप) बलवान् है क्यों नहीं होता । समाधान—तथापि अतो येयः सूत्रका "अतः यास् इयः' ऐसा पद भेद करेंगे । यास्में लुप्त षष्ठी । अदन्त अङ्गसे परे

यासुट् कित्स्यात् । 'स्को'रिति सलोपः । ग्क्ङिति च ।१।१।५। गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः । भूयात् भूयास्तां भूयासुः । भूयाः भूयास्तं

यास्के स्थानमें इय हो ऐसी व्याख्या करेंगे । न कहियेकि **अन्त्य**=सके लोपसे इय आदेश वाधित होगा । तब कहा **एवञ्च** सकारान्त यास्को इय विधानकी शक्तिसे सकार लोपको भी बाधकर इय आदेश होगा । जब अन्तरङ्ग रहेगा तब पररूपकी दाल नहीं गलेगी । येयःमें सन्धि आर्ष है । ऋषिणा–पाणिनिना प्रोक्तः आर्षः । यास् इय दशामें स को रु, रुको य, यका लोप, या–इय । तब गुण करेंगे । यलोप असिद्ध होगा गुण कैसे ? आर्ष होनेसे **भवेः** ।

उस्, सको रु० वि० **भवेयुः** । भू धातु से प्रेरणा आदि अर्थवाचक लिङ् । त्वं युवां यूयं कर्ता हो, तब सिप् इलोप । सकारस्य रु० वि० **भवेः** थस् स्थाने तम् त, आदेशे **भवेतं भवेत** । एवम् उत्तमपुरुष = मिप् स्थाने अम् । वस् मस् **नित्यंडितः** इति सलोपे । **भवेयम्, भवेव, भवेम** ।

लिङा—(१) आशीर्वाद अर्थ में लिङ् के स्थानमें तिङ् आदेश को आर्धधातुकसंज्ञा हो । (२) **किदा**—आशीर्वाद अर्थमें लिङ् को हुआ यासुट् कित् हो । **स्को**ः=संयोगके आदिमें स् और क का लोप हो । (६) ग क् ङ् इत् हों उसे **ग्क्ङित्** कहते हैं । गित् कित् ङित् प्रत्यय को निमित्ति मानकर इग्लक्षण इक् को (उद्देश्य) या स्थानी मानकर गुण तथा वृद्धि नहीं होती । **इको गुणवृद्धी** परिभाषा सूत्रसे जहाँ इक् को गुण वृद्धि प्राप्त हो उसीको निषेध करता है । यदि कित् ङित् गित् परे हो तो । प्रायः सार्वधातुकार्धधातुकयोः, पुगन्तलघूपधस्य च, सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु । मिदेर्गुणः इत्यादिस्थल है । अन्यगुणवृद्धि को जहाँ इक् का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं हैं, निषेध नहीं होता । भवनार्थकभूधातोः आशीर्वादार्थे लिङ्, प्रथमपुरुषैकवचने **'ति'** प्रत्ययः । यासुट् आगमे, इतश्च इकारलोपे अनुबन्धलोपे (भूया स्त्) **'स्को' संयोगाद्योरन्ते च** संयोगके आदि स का लोप । अत्र 'लिङाशिषि' सूत्रेण तिपः आर्धातुक संज्ञायाम् । तस्य फलं लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' इति सलोपो न । तेन कर्ता अर्थे शप् न भवति । इगन्ताङ्गस्य भू इत्यस्य गुणे प्राप्ते यासुट् **'किदाशिषि'** सूत्रेण कित् **'क्ङिति च'** इति गुणनिषेधे **भूयात्** । एककर्तृक आशीर्वादानुकूलव्यापारः । ते शुभं भूयात् । **द्विवचने** तस्, तस्य स्थाने ताम् आदेशे, आर्धधातुकसंज्ञायां शप् न भवति । सलोपोऽपि न, **भूयास्ताम्** । अत्र **'स्कोः'** इति सलोपो न, पदान्तं न मिलति । भूयात् में स पदान्त था । यहाँ 'त' में अ होने से पदान्त नहीं है । बहुवचन **भूयास् झि** । झि स्थाने जुस्, रुत्वे विसर्गे **भूयासुः** । सिप् प्रत्यये अनुबन्धलोपे । जहाँ आशीर्वाद की भवनक्रिया का आधार त्वम् युवां

भूयास्त। भूयासं भूयास्व भूयास्म। लुङ् ।३।२।११०। भूतार्थे धातोर्लुङ्। माङि लुङ् ।३।३।१७५। माङ्युपपदे धातोर्लुङ् स्यात्। सर्वलकाराऽपवादः। स्मोत्तरे लङ् च ।३।३।१७६। स्मोत्तरे माङि लङ् स्याल्लुङ् च। च्लि लुङि ।३।१।४३। शवाद्यपवादः। च्लेः सिच् ।३।१।४४। इचावितौ। गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ।२।४।७७। एभ्यः परस्य सिचो लुक् स्यात्

यूयम् हो, वहाँ म० पु० सिप् 'इतश्च' इकारलोपे यासः सस्य संयोगादिलोपे द्वितीयसकारस्य रुवि भूयाः। थस्, थ स्थाने तम् त आदेशे भूयास्तम्, भूयास्त। जहाँ आशीर्वादजनकक्रिया का आधार, अहम् आवां वयम् हो, वहाँ उत्तम पु० एकव० मिप्, तस्य अम् आदेशे **भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म।** नित्यं ङितः। इति अन्त्यसकारस्य लोपः। ये कित् के उदाहरण हुए। ङित् का उदाहरण। इतः। गित् का उदाहरण। **जिष्णुः।**

(४) भूतकाल (क्रिया समाप्त) अर्थ में धातु से लुङ्लकार हो।
(४३५) **माङ्शब्द के योग** (सम्बन्ध में) लुङ् हो, सभी लकारों को बाध कर। सभी लकारोंके विषयमें लुङ् समझे। यथा—**क्लैब्यम् मास्मगमः** पार्थः नैतत्त्वयि उपपद्यते। हे अर्जुन नपुंसक निष्क्रिय निर्बल कायर डरपोक मत बनो। यहाँ भूतकाल नहीं है किन्तु मा के योग एवं 'शोकं वृथा मा कृथा'। व्यर्थ शोक मत करो। माङ्प्रयोगे सर्वलकाराणां स्थाने लुङ् एव जायते। मा वद मा बदेत्। यहाँ यद्यपि लुङ् नहीं है यतोहि माङ् शब्द से भिन्न मा शब्द अव्यय है वह माङ् नहीं है, अतः लुङ् न। (६) **स्मशब्द** माङ् शब्द के उत्तर में हो। तब लङ् और लुङ् भी हो।

(७) **लुङ्परे** रहते शप् श्यन् आदि विकरण को बाधकर च्लि हो। (८) च्लि के स्थान में सिच्=इच् इ स् शेषः। (९) गा धातु, स्था, घुसंज्ञक, पा भू धातु से परे सिच् का लुक् हो परस्मैपदपरे रहते। इस सूत्र में गा, पा धातु कौन लिए जाँय, तब बोले—'इणादेशपिबती' इण्गतौ के स्थान में गा आदेश हुआ हो, उससे सिच् का लुक् समझे। जिस पा को पिब आदेश हो उसी का ग्रहण जाने। पा पाने (न तु पा रक्षणे)। (४४०) भू और सु धातु को सार्वधातुक तिङ्परे रहते गुण नहीं होता। **अभूत्।** सत्तार्थक भूधातोः 'समाप्त भवन क्रिया' अर्थे कर्तरि लुङ्, च्लि लुङि इति सूत्रेण शपं बाधित्वा च्लिप्रत्यये च्लिस्थाने 'च्लेः **सिच्**' इति सिचि अनुबन्धलोपे। लुङ्स्थाने तिप् 'इतश्च' इकारलोपे 'गतिस्था' इति सिच्प्रत्ययस्य लुकिकृते अभूत्। भूतकाल (उत्पत्तिक्रिया समाप्त) हो तब अभूत्का प्रयोग। **अभूताम्**—होना क्रिया अर्थ में दो व्यक्ति रूपधारण कर चुके हो तव भूधातोः भूतकाले अर्थे लुङ् शपं बाधित्वा च्लि, च्लेः सिच् तस्य

परस्मैपदेषु । गापौङहेणादेशपिवती गृह्यते । भूसुवोस्तिङि ।७।३।८८। 'भू' 'सू' एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न । **अभूत् अभूताम् अभूवन् । अभूः अभूतम् अभूत अभूवम् । अभूव अभूम । न माङ्योगे ६।४।७४ माङ्योगे अडाटौ न स्तः । मा भवान्भूत् । मा स्म भवत् । मा स्म भूत् ॥ लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३।३।१३९** हेतुहेतुमद्भावादिः लिङ्निमित्तं, तत्र भविष्यदर्थाद्धातोर्लृङ्, क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । अभविष्यत् अभविष्यताम् अभविष्यन् । अभविष्यः अभविष्यतम् अभविष्यत । अभविष्यम् अभ-

---

लुक् लुङ् स्थाने द्विवचने तस् ताम् आदेशे । अनेककर्ता सत्तानुकूलसमाप्त क्रिया के आधार हों तब भू धातोः लुङ् अट् च्लि सिच् तस्य लुक्, लुङ्स्थाने झि, झस्य अन्त आदेशे, लुङ्सम्बन्धी अच्परे 'भुवोवुक्' आगमे अनुबन्धलोपे । इकारलोपे तकारस्य संयोगान्तलोपे **अभूवन्** । अनेककर्तृक समाप्तभवनक्रियाका कर्ता त्वम्, यूवां, यूयम् हो वहाँ क्रम से म० पु० का 'सिप् थस्, थ इ लोप' सस्य रुवि, च्लि आदि । **अभूवम्** समाप्तभवन क्रिया का आधार यदि अहम् आवां वयं हो । तब उत्तम पु० का मिप्, तस्य अम् आदेशे वुक् आगमे । वस् मस् परे सस्य लोपे (नित्यंङितः इति सूत्रेण) रूप फलमें लकाराणां प्रयोगः । **धर्मात् सुखं भवति** । यथा—भक्तध्रुवस्य सुखं **बभूव** । तथैव श्वः तवापि सुखं **भविता** । सदा सुखं **भविष्यति** । धर्मे अनुरागो **भवतु** । शरणागतस्य सुखम् **अभवत्** । त्वयि सुखं **भवेत्** । भगवन् सदा सुखन्ते **भूयात्** । पुण्येन सुखं **अभूत्** । यदा अध्ययनम् **अभविष्यत्** तदा परीक्षा, उत्तीर्णा **अभवष्यत्** ।

(१) माङ्योगे धातु से माङ्शब्दका सम्बन्ध हो, तब अट् और आट् नहीं होते । यथा **मां भवान् भूत्** यहाँ मा शब्दका भूधातुके साथ सम्बन्ध है । इसलिये भुत् में अट् नहीं हुआ । एवं स्म भवत् । अत्र शब्दस्य उत्तरभागे स्म शब्दो वर्तते । उसके योग में अट् आगम का निषेध स्मोत्तरे लङ्च से हुआ । इसी प्रकार **मा भूत्** में भी अट् नहीं ।

(२) **लिङ् निमित्ते**-हेतुहेतुमद्भाव जहाँ फललाभ के लिए क्रिया में कार्यकारणभाव लिङ् का निमित्त (बीज) हो तथा उसमें भविष्यकालिकक्रिया होना हो तब धातु से (हेतुहेतुमतोर्लिङ्) सूत्र से हेतु (कारण) हेतुमद (कार्य) अर्थ प्रगट हो, तब लृङ् हो । यथा—**कृष्णं नमेत् चेत्**, सुखं **यायात्** यदि कृष्ण को नमस्कार करे, तब सुख लाभ हो, यहाँ भगवान् को नमस्कार सुख लाभ मे कारण है । अतः कार्य को हेतुमद् कहते हैं । परन्तु **क्रियायाः**= क्रिया की **अनिष्पत्ती**=असिद्धिः **गम्यमानायाम्**=ज्ञान हो तो । यथा—सुभिक्षं तदा अभविष्यत् जब अच्छी वर्षा होगी । तब सुभिक्ष धन्यधान्य सम्पन्नता

विष्याव अभविष्याम। 'सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत्' इत्यादि ज्ञेयम्। 'प्रणिभवति' इत्यादौ उपसर्गाणामसमस्तत्वेऽपि संहिता नित्या। तदुक्तम्— 'संहितैकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे, वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥ १ ॥
धात्वर्थं बाधते कश्चित्कश्चित्तमनुवर्त्तते।
विशिनष्टि तमेवार्थमुपसर्गगतिस्त्रिधा ॥ २ ॥ इति

होगी। यहाँ धनधान्य सम्पन्नतामें अच्छी वृष्टि **कारण** है और सुभिक्ष **कार्य** हैं। यहाँ क्रिया भविष्य कालकी है। कार्यकारण दोनों अर्थ की क्रिया कहने वाला लङ् लकार है। इस अर्थ में भू धातोः लङ्। भू इत्यस्य, अङ्ग संज्ञा अट्। ल्स्थाने तिप् 'इतश्च' इति इकारलोपे। शपं बाधित्वा 'स्यतासी' सूत्रेण स्यप्रत्यये, आर्धधातुक संज्ञायाम्, वलादेः अर्धधातुकस्य इडागमे गुणे अव् आदेशे। प्रत्यय-अवयव-सकारस्य षत्वे। **अभविष्यत्**। द्विवचने तस् तस्य ताम् आदेशे, अट् स्य इट् गुण अवादेश षत्वम् पूर्ववत्। बहुवचने झि इकारलोप, अन्त आदेश तस्य संयोगान्त-लोप। मध्यम पुरुषस्य सिप् थस् थ। उत्तम पुरुषस्य मिप् स्थाने अम् आदेशे द्विवचने, बहुवचने च अतो दीर्घो यञि इति दीर्घे, नित्यंङितः' इति सलोपे।

प्रश्नः—णत्वको संहिताधिकारमें पढ़ा जो विवक्षाधीन है अविवक्षामें न णत्व। विभाषा क्यों पढ़ा? अतः बोले **इह**–यहाँ पर उपसर्गो के साथ संहिता (सन्धि संयोजन जोड़) नित्य है विकल्पके लिए पढ़ा। नित्यतामें प्रमाण—भर्तृहरि कारिका—**संहिता**–सन्धीयतेयुज्येते वर्णौ अर्थौ च यथा सा संहिता। संपूर्वक धाधातुसे कर्मणि क्त। दधातेर्हि एकपद–अखण्डपदमें नित्य सन्धि। धातु उपसर्ग के बीच नित्य, समासमें नित्य सन्धि। वाक्यमें इच्छाधीन सन्धि। जहाँ उच्चारण माधुर्य बढ़े वहाँ सन्धि करें। अर्थदबोंच उठे वहाँ न करें। प्रसङ्गमें प्र उपसर्ग और भू धातुका सम्बन्ध जोड़ नित्य होनेसे विकल्प णत्व आवश्यक है।

विशेषः—धातुके अलक्षित अनन्त अर्थ है प्रसिद्ध एक या दो। धातुसेउ पसर्ग जुड़ते हैं वे अलख अर्थ को लक्षित कराते हैं। यदि एवं–भू का सत्ता अर्थ, हृ का हरण, एवं एध का वृद्धि अर्थ कैसे? **उत्तर**—मूलमें कहा **अर्थनिर्देशश्च**—अर्थ अभियुक्त-प्रामाणिकों से खुला क्रिया अर्थ खोलनेके लिए फल (अर्थ सत्ता हरण आदि) पढ़े। अर्थनिर्देशक भीमसेनकों भी सम्मत—**कुर्द गुर्द गुद क्रीडायामेव**। ये धातु खेल अर्थ में ही हो। एव पाठ से अन्य अर्थ का होना पुष्ट। सिध गत्यांभी प्रमाण। लक्षणायाः समीपम् **उपलक्षणम्** प्रदर्शनमात्रम्। यदि ऐसा अर्थान्तर-परिसंख्या (अन्य अर्थकी गणना) क्यों न माने, तब कहा **यागात्स्वर्गो भवति** यज्ञ से स्वर्ग होता है इत्यादिमें भवति का पैदा होना अर्थ पुष्ट है। उत्पत्तिमें लक्षणा क्यों नहीं, प्रयोग की बहुलता से। यतोहि पाणिनि कुछ धातु अर्थसहित

अत सातत्यगमने । अतति अततः अतन्ति । अतसि अतथः

सत्ताद्यर्थनिर्देशश्चोपलक्षणं, 'यागात्स्गो भवती'त्यादौ 'उत्पद्यते' इत्याद्यर्थात् । उपसर्गास्त्वर्थविशेषस्य द्योतकाः । प्रभवति पराभवति सम्भवति अनुभवति । अभिभवति उद्भवति । परिभवति इत्यादौ विलक्षणार्थावगतेः ।

उक्तञ्च-- उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराऽऽहारसंहार-विहार-परिहारवत् ॥ १ ॥ इति ।

पढ़े हैं । अतिव्यप्तिदोष न हो अतः **अनेकार्था:अपिधातवो भवन्ति** भाष्यप्रमाण है । धातुषु अर्थनिर्देश आधुनिकः । सेधतेर्गतौ एकधातु ही धातुसंज्ञक होगी । अर्थः खल्वपि आचार्यश्चित्रयति क्वचिदेकं, क्वचित् न । **ननु भू धातुका** पैदा होना, हारना अपमानित होना आदि अर्थ है तब **उद्भवति परिभवति** आदिमें उद् परि आदि उपसर्ग व्यर्थ है तब बोले **उपसर्गाः=उप-उपसमीपे सृज्यन्ते अप्रसिद्धार्थबोधनाय प्रवर्तन्ते ते उपसर्गाः विशेषार्थस्य द्योतकाः ।** उपसर्ग जिससे जुड़ते हैं उसका गुप्तार्थ खोलते हैं । अनुभव अर्थ में सकर्मकविशेष अर्थ अनु खोलता है । अनुभवति । उपसर्गका निजी अर्थ नहीं । **उपसर्गाः द्योतकाः नतु वाचकाः ।** प्रमाण–यथा–**प्रभवति** । समर्थ होता है, प्रकाश उत्पत्ति शक्तिवृद्धि होना अर्थ । जब परा जुड़ा, **पराभवति** तब पराजय अपमान तिरस्कार हार हीनेकी क्रिया अर्थ । सम्भवति सम्भव काम है । असम्भव नहीं, ठीकसे होगा । **अनुभवति–** उपभोग करना, रस लेना, अनुभव हैं । **अभिभवति** हिंसा, कष्ट, प्राणवियोगकी क्रिया । **परिभवति** तिरस्कार, अर्थ परौ भुवोऽवज्ञाने प्रमाणसे । प्रादुर्भवति प्रकट होता है । **आविर्भवति** प्रकाशमें आता है । उद्भवति उगता है विकास, उत्पत्तिकी क्रिया इत्यादि प्रमाणसे धातुमें विलक्षणा २ अर्थ भरे पड़े है । जिनके प्रकाशक उपसर्ग है । भास्वान्भर्तृहरिने पुष्ट किया कि **उपसर्गेण**=उपसर्गसे धातुका अर्थ बलात् सामर्थ्यसे अन्यः प्रतीयते=बदल जाता है । यथा प्रहारः कोड़ेकी मार कशादि–आघातः । हृका हरण अर्थ है आङ् उपसर्गसे बलपूर्वक अर्थ बदला । आहार=भोजन हुआ । जब संहार तब वध विनाश निर्मूल । वि उपसर्ग धातुका आनन्द विहार क्रीडा । परि उपसर्गसे परित्याग । हरण अर्थ दब गया । अमरकोषमें **स्यादाभाषणमालापः प्रलापो अनर्थकं वचः । अनुलापो मुहुर्भाषा विलापः परिदेवनम् । विप्रलापो विरोधोक्तिः संल्लापो भाषणं मिथः । सुप्रलापः सुवचनम् अपलापस् निह्नवः । इति भूधातुप्रक्रियापरिपूर्णा ।**

अत्धातु निरन्तर गमन अर्थ में प्रसिद्ध । अत के त का अकार उदात्त एवं इत् संज्ञक है । उसका फल परस्मैपद । यत्र-यत्र उदात्तो अकार इत् तत्र-तत्र परस्मैपदम् । यत्र अनुदात्तो अकारः तत्र-तत्र आत्मनेपदम् । अत्र प्रमाणम् = अनुदात्तङित आत्मनेपदम् इति । यथा—एधते । जहाँ स्वरित आकार है वहाँ

अतथ । अतामि अतावः अतामः । अत आदेः ।७।४।७०। अभ्यासस्याऽऽदेरतो दीर्घः स्यात् । **पररूपाऽपवादः ।** आत आततुः आतुः । आतिथ आतथुः आत्त । आत आतिव आतिम । अतिता अतिष्यति । अततु । आडजादीनाम् ।६।४।७२। अजादेरङ्गस्याऽऽट् लुङ्-लङ् लृङ्क्षु । आतत् अतेत् । अत्यात् अत्यास्ताम् । लुङि सिचि इडागमे कृते । अस्तिसिचोऽपृक्ते: ७।३।

दोनों पद, यजति यजते । अतधातु में उदात्त अकार इत् होने से परस्मैपद सिद्ध है । निरन्तरगमनार्थक **अतधातोः** वर्तमानकाले कर्तरि लट् तत्स्थाने प्रथमपुरुषस्य एकवचनं 'ति' कर्तरि शप् अनुबन्धलोपे अतति । 'एक कर्ता में निरन्तर गमन क्रिया हो । गङ्गा सदा बहती है । अततः = दो कर्ता में निरन्तर गमन क्रिया । अतन्ति = अनेककर्तामें वर्तमानकालिकनिरन्तर उत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापारः । वर्तमानकालिकनिरन्तरगमन क्रिया का आधार त्वम्, अहम्, आदि हो तब अतसि **अतथः अतथ** । वह निरन्तरगमन क्रिया उ० पु० के कर्तामें हो अतामि अतावः अतामः । (३) **अत-अभ्याससंज्ञक** 'आदेः अत' = आदि अकारको दीर्घ हो । निरन्तर गमनक्रिया अर्थ बोधक अत्धातुसे परोक्ष समाप्तगमन क्रियाकाले अर्थे लिट् । तस्य स्थाने परस्मैपदे प्र० पु० तिप् तस्य स्थाने णल् अत् + अ इति स्थिते । **अत्** इत्यस्य द्वित्वे, प्रथम अत् को अभ्याससंज्ञा ।'पूर्वोऽभ्यासः' अजादिधातुके अभ्याससंज्ञकका आदिशेष रहे । अन्य हल्का लोप हो । हलादिशेषः इति लोपे, **अ अत् अ,** अतो गुणे इति अकारस्य पररुपे प्राप्ते, तं बाधित्वा 'अत आदेः' इति अभ्यासस्य आदि-अकारस्य दीर्घे । ततः सवर्णदीर्घे **आत आततुः** प्रयोग साधनेकी शैली वही **है,** केवल द्विवचन तस्, तस्य अतुस्, झिस्थाने उस् इति विशेषः । **आतिथ**=अत्र सिप् स्थाने थल् आर्धधातुकसंज्ञा इट् आगम इति विशेषः । यहाँ निरन्तरगमनक्रिया परोक्ष भूतकाल है: णल्, व म उत्तम पु० में होते हैं । **अतिता**=निरन्तर गमन= क्रिया अर्थवाचक अत् धातु से आगामी भविष्यकाल अर्थ में लुट तिप् (डा=आ) तास् डित्वात् आसलोपः आर्धधातुकसंज्ञा इट् आगम **अतितारौं**–कल दो व्यक्ति निरन्तर गमन करेंगे । **अतितारः**–अनेकव्यक्तिका निरन्तरगमनक्रिया, **अतितासि, अतितास्थः अतितास्थ** । अतितास्मि अतितास्वः अतितास्मः । सामान्यभविष्य निरन्तरगमनकाल अर्थमें लट् ति, स्य, इट् इत्यादि अतिष्यति । भविष्यति की तरह रूप चलेगा । जहाँ विधि, आज्ञा, प्रेरणा प्रवर्तना, निर्णय, सत्कार, आशीर्वाद, आदि अर्थ गमन क्रिया से प्रगट होते हों तब लोट् लकार हो । **अततु** = अत्, लट्, तिप् श, एरुः=ति के इ को उः । तु को विकल्प से तातङ्-तात् । **अततात्** अतताम् अतन्तु । अत, अततात् अततम्, अतत । **अतानि अताव अताम ।**

(४) अजादीनाम्=अच् प्रत्याहार के अक्षर आदि में हो ऐसे अङ्गसंज्ञक

९६ विद्यमानात्सिचोऽस्तेश्च परस्याऽपृक्तस्य हल ईडागमः। इट ईटि ८।२।२।८। इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि। (सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः) आतीत् आतिष्टाम्। सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ।३।३।१०९। सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस्। आतिषुः। आतीः आतिष्ठम् आतिष्ट। आतिषम् आतिष्म। आतिष्यत्।

धातु को आट् आ आगम हो, लुङ् लङ्-लृङ् लकार परे। यह अट् आगम का बाधक है अजादि धातु को आट् तथा हलादि धातु को अट् आगम का नियम निश्चित जाने। लङ्–सर्वदा गमन अर्थवाचक धातुसंज्ञक **अत धातोः** पूर्वदिनकी समाप्त निरन्तरगमनक्रिया (काल) अर्थमें 'अनद्यतने लङ्' तस्य स्थाने तिप् लावस्थायाम् अजादीनां धातूनाम् आट्आगम आटश्चेति वृद्धिः। सार्वधातुकसंज्ञा शप् अनुबन्धलोपे **आतत्**। एककर्तृक अनद्यनभूतकालिक (समाप्त) निरन्तर-गमनकक्रिया इति अर्थः। द्विवचने तस तस्य 'ताम्' आदेशे आतताम्। आत झि, तस्य स्थाने अन्ति, इ त अनयोः लोपे। अनेककर्ता में पूर्वदिन की समाप्त गमन क्रिया। यही अर्थ प्रत्येकरूप में होगा। म० पु० सिप्, थस् = तम् थ त त्वम्, युवां, यूयम्, कर्ता में समाप्तगमनकक्रिया का रूप। **आतः आततम् आतत**। उ० पु० में **आतम्, आताव आताम**। **अतेत्**=निरन्तरगमनार्थक अत् धातु से आशीर्वाद आज्ञा प्रेरणा निश्चय प्रार्थना, अर्थमें लिङ् तिप् शप् यासुट् इय् गुण यलोप इकारलोप। **अतेताम्, अतेयुः। अतेः अतेतम् अतेत। अतेयम् अतेव अतेम**। गमनाय शुद्धआशीर्वाद अर्थमें अत धातु से आशीर्लिङ्, तिप् यास्, इकारलोप, **अत्यात्**। एकवचने, 'स्कोःसंयोगाद्योः' इति सलोपः 'लिङः सलोप' इति सलोपो = न, आशीर्लिङ् इति आर्धधातुकत्वात्। **अत्यात्, अत्या-स्ताम्, अत्यासुः। अत्याः अत्यास्तम् अत्यास्त। अत्यासम्, अत्यास्व, अत्यास्म।** यदा गमनार्थक अत्–धातोः सामान्यभूत (समाप्त क्रिया) काले अर्थे लुङ् च्लि तस्य सिच्। लुङ् स्थाने तिप् अनुबन्धलोपे। सिच् सकारस्य आर्धधातुक शेषः संज्ञा, वलादिः अस्ति एव। 'वलादेः 'आर्धधातुकस्य' सकारस्य इट आगमे। आत् इस्त् दशायां त् अपृक्तः अस्ति।

(४४५) अस्ति–विद्यमानवाचक अव्यय है, सिच्व और अस्च। उपस्थितसिच् तथा अस् धातुसे परे अपृक्तसंज्ञक हल् त् को ईट् आगम् हुआ लावस्था में ही आट्, ट् इत् आटश्चेति वृद्धिः। **आत् इस्ईत्** दशायाम्।

(६) इट्से परे स का लोप हो, ईटि परे। इति सिचः लोपे सवर्णदीर्घे। न च सवर्णदीर्घस्य अपेक्षया इट ईटि सूत्रेण सलोपः त्रिपादी, सो असिद्धः स्यात्, कथं दीर्घ इति। (वा) **सिच्लोप** होने पर एकदेशे = दीर्घ एकादेश सिद्ध ही रहता है। **आतीत्**। द्विवचने आट्, तस् ताम्, सिच् आर्धधातुकसंज्ञा, इट्, षत्व ष्टुत्व, **आतिष्टाम्**। अनेककर्ता सदागमनक्रिया समाप्त कर चुके हों तब बहुवचने

अव रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसाऽऽदानभागवृद्धिषु । अवतीत्यादि ।
षिध गत्याम् । पुगन्तलघूपधस्य च ।७।३।८६। पुगन्तस्य, लघूपधस्य चाऽङ्गस्येको गुणः, सार्वधातुकार्धधातुकयोः । 'धात्वादे'रिति सः । सेधति । षत्वम् । सिषेध ।।

आतिस्झि । (६) सिच्, अभ्यस्तसंज्ञक (जागृ आदि) तथा विद् धातु से परे ङित् सम्बन्धी झि के स्थानमें जुस् आदेश हो । प्रसङ्गे सिचः परः लुङ् लकार एव मिलति । झि स्थाने जुस्, अकारलोपे रुत्वे विसर्गे **आतिषुः । आतीः** = अत्र सिपः इकारलोपे सस्य रु, **आतिष्टम्** थस् स्थाने तम् षत्वे, **आतिष्ट ।** थ स्थाने त । मिप् स्थाने अम् **आतिषम्** । निरन्तरगमन क्रिया का कार्यकारणभाव देखा जाय, तब लृङ् अत् से लृङ् आट् स्य, इट्, इकारलोप । आतिष्यताम् आतिष्यन् ।
अर्थ—आतिष्याव आतिष्याम ।

अवधातुका एकोनविंशति–१९ अर्थ है रक्षागमन क्रान्ति चमक कृति तृप्ति ज्ञान प्रवेश सुनना स्वाम्यर्थ ईश्वरभाव मांगना क्रिया इच्छा दीप्ति प्राप्ति आलिङ्गन हिंसा प्राण वियोग आदान ग्रहण (भागे वृद्धौ ग्रहें वधे) वोपदेवने गणना किया । इन क्रियाओंके वर्तमानकालिक कर्त्तामें लट् आदि । अवति अवतः अवन्ति । अवसि अवथः अवथ । अवामि अवाव अवाम । रक्षा करता है । गमन श्रवण करता है । स्वामी बनता है । इच्छा आलिङ्गन ग्रहण करता है । बीतेभूतकालमें क्रियाएं देखी गयी न हो, कर्तामें लिट आदि । अव अव (अत आदेः) आ अव । आव आवतुः आवुः । आविथ आविता अविष्यति । रक्षा करेगा । तृप्त होगा, अवतु आलिङ्गन स्वीकार करो । अवानि अवाव अवाम । आवत् आवताम् आवन् । सुना, स्वामी बना, इच्छा किया । आवेत् आयें प्रवेश करें । अव्यात्—प्रसन्न रहो, स्वीकार करो आवीत् आविष्टाम् आविषुः । आवीः अविष्टम् अविष्टम्, आविषम् आविष्व आविष्म । आविष्यत् ।

सिध् धातु का गमन करना या सिद्ध होना या सीझना अर्थ है, क्योंकि गच्छति अर्थ में अनुभूत नहीं है । (८) **ह्रस्वं**=एकमात्राकी लघुसंज्ञा, सिध् का इ एक मात्रिक है उसका लघुनाम पड़ा । धातु के आदि के ष को स हो जाता है । (९) **संयोगे**=संयुक्त अक्षर परे हो तो पूर्ववर्ण ह्रस्व को भी गुरुसंज्ञा हो । जो दो मात्रा है । (४५०) दीर्घ दो मात्रिक अक्षर को भी गुरुसंज्ञा हो । (१) पुगन्त=पुक् प् आगम हो जिसके अन्त में तथा लघूपधस्य=लघुसंज्ञक अक्षर हो उपधा (अन्त्य अल् का पूर्ववर्ण) ऐसे अङ्गसंज्ञक के इक्=इ ऊ ऋ लृ को गुण हो, अव्यवधान में सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो । पुगन्तके गुणका उदाहरण अन्यप्रकरणके (पुङ्णौ)के प्रसङ्गमें मिलेगा । अर्पयति ह्लेपयति । लघूपध का उदाहरण गमनार्थक षिध् धातुः धात्वादेः षः सः । षोपदेश का फल णत्वं अग्रे वक्ष्यते । वर्तमानकाले कर्तरि तिप् शप् अनुबन्ध लोप, इकारस्य लघुसंज्ञा,

असंयोगाल्लिट् कित् ।१।२। असंयोगात्परोऽपिल्लिट्कित्स्यात् । सिषिधतुः । सिषिधुः सिषेधिथ सिषिधथुः । सिषिध सिषेध सिषिधिव सिषिधिम, सेधिता सेधिष्यति । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । असेधीत् । असेधिष्यत् ।

उपधासंज्ञा च, (ह्रस्वं लघु, अलोन्त्यात् पूर्वोवर्णः उपधा)। लघूपधस्य इकारस्य गुणे (सेधति) सेधतः सेधन्ति । इत्यादि गमनार्थक सिधधातोः परोक्ष भूतकालिक गमनक्रिया अर्थं लिट् तस्य स्थाने प्र० पु० एकवचनम् तिप् तस्य स्थाने परस्मैपदानां णलतुसुस्थल' सूत्रेण णल् आदेशे अनुबन्धलोपे । सिध् धातोः द्वित्वे सिध् सिध् अ । प्रथमस्य अभ्याससंज्ञा हलादिशेषे, द्वितीयशब्दस्द इकारस्य उपधासंज्ञा, लघुसंज्ञा । लघूपधगुणे । अभ्यास इकार को इण् मानकर उससे परे उत्तरभाग में आदेश का सकार होने से (आदेशप्रत्यययोः इति षत्वे **सिषेध** । सीझने की क्रिया पूर्वदिनमें समाप्त हो चुकी हो । दो कर्ता हो, तब द्विवचन, **सिसिध अतुस्** । अत्र लघूपधगुणे प्राप्ते ।

(३५१) असंयोगात्=संयोगसंज्ञा न हुई हो उससे परे अपित्=पित् भिन्न लिट् कित् हो । तिप् सिप् मिप् ये पित् हैं, इनके स्थान में णल्, थल् णल् ये तीनों भी पित् हैं । अन्य सभी आदेश अपित् होने से कित् हैं । जिसका फल 'क्ङिति च' से गुणनिषेध है । **सषिधतुः**, इसी प्रकार सिषिधुः । थल् वस मस में इट् (वलादित्वात्) प्रायः अत् धातुके समान रुप ।

सेधिता, आगामी दिन की गमन, (सिद्धि) क्रिया अर्थं में लुट्, तिप् 'तास्, डा, इट् लघूपधगुणे, शेषरूप भविता की तरह । सामान्य भविष्यकालिक गमन क्रिया काल अर्थ में । **सेधिता । सेधिष्यतः सेधिष्यन्ति ।** गमनसम्बधी आज्ञा प्रेरणा प्रार्थना आदि अर्थ बोधक लोट् लकार में । सेधतु सेधतात् सेधतां सेधन्तु । **सेध सेधतात् सेधतं सेधत । सेधानि सेधाव सेधाम ।** अनद्यतन गमन या सिद्ध होने की क्रिया समाप्त हो चुकी हो । तब लङ्, अट् तिप् इ का लोप शप् गुण **असेधत् । असेधताम् असेधन् । असेधः असेधतम् असेधत । असेधम् असेधाव असेधाम ।** विधि निमन्त्रण आमन्त्रण आदि गमनक्रिया से सम्बन्ध रखते हों, **सेधेत् सेधेतां सेधेयुः । सेधेः सेधेतं सेधेत । सेधेयं सेधेव सेधेम** शुद्धअशीर्वाद अर्थवाचक लिङ् **सिध्यात् सिध्यास्तां सिध्यासुः** । गमन क्रिया समाप्तकाल अर्थं में सिध + लुङ् अट् पिप् इ लोप च्लि, सिच् वलादि इट ई सलोप दीर्घ, **असेधीत् असेधिष्टाम् असेधिषुः । असेधीः असेधिष्टम् असेधिष्ट । असेधिषम् असेधिष्व असेधिष्म ।** क्रिया के भविष्यकालिक कार्यकारण भाव अर्थमें लृङ्-असेधिष्यत् असेधिष्यताम् असेधिष्यन् इत्यादि । उपसर्ग से अर्थ बदलाता है विप्रतिषेधे शब्द में प्रतिउपसर्ग से सिधधातु का तुल्यवलविरोध अर्थं हुआ । प्रतिषेधति निषेधति मना करता है निषेध करता है ।

सेक्सृप्सृस्तृसृजस्तृस्त्याऽन्ये दन्त्याऽजन्तसादयः ।
एकाचः षोपदेशाः ष्वष्कस्विद्स्वद्स्वञ्जस्वप्स्मिङः ॥१॥

दन्त्यः केवलदन्त्यो, न तु दन्त्योष्ठजोऽपि, ष्वष्कादीनां पृथग्ग्रहणात् । सात्पदाद्योः ८।३।१११। सातेः, पदादेस्सकारस्य न । इति निषेधे प्राप्ते ।

ननु धातु पाठमें कितने धातु षादि है कितने सादि । पाणिनिकृत पाठ लुप्त हो चुका । उनकी परम्परा से प्राप्त पाठ सेक्=दन्त्य हैं **अजन्तसादयः एकाचः षोपदेशाः स्युः ।** दन्त्यश्च अच्च दन्त्याचौ तौ अन्तौ यस्य दन्त्याजन्तः ष आदिर्यस्य, येषान्ते । दन्त्य परे अच्च परे और ष आदिमें ही, ऐसे एकाच धातु षोपदेश जान पड़ते हैं । अच् तदन्तपराः षादयः षोपदेशाः इति भाष्ये । **षूद क्षरणे ।** अजन्ता षादि है । ष्टा गतिनिवृत्तौ । दन्त्यपरक षोपदेश है । उनका फल-स्कुदि आप्रवणे । चुस्कुन्दे । यहां स से परे, न दन्त्य है, न अच् । एक अच् क्यों ? सोसूत्र्यते अतिशयेन संवेष्टयति अधिकभावभरा हुआ, सूत्र वेष्टने 'सोसूत्रयते चुरादि अनेकाच् है । राध साध संसिद्धौ सकारादि है तथापि षोपदेश मान्य, उपलक्षण रोकनेके लिए सेकृ गतौ, 'सृप्लृ सृ गतौ, सृज गतौ—विसर्गे ये चार अच्परक सादि है । स्तृञ् आच्छादने श्नम् । स्तृञ् आच्छादने 'श्ना' विकरण । स्त्यै शब्दसंघातयोः । ये ३ दन्त्यपरक सादि है । इन सातोंकी भी षोपदेशकी शङ्का होगी तब ष्वष्क गतौ । ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे । ष्वद अभिवादने, ष्वञ्ज परिष्वङ्गे, ञिष्वप् शये, स्मिङ् इषद्धसने । इन धातुओंमें सकार न दन्त्य परक हैं, न अच्परक । षोपदेश नहीं अतः उनको भी स्वीकार किया । जिसका सूचक अपि शब्द है । ननु स्वृ शब्दोपतापयोः इत्यादि धातु भी दन्त्य परक है षोपदेश क्यों नहीं ? तब कहा—दन्त्यः केवल दन्त्यस्थान वाला मान्य । दन्त्यष्ठज (व) नहीं । स्वष्क् स्विद आदिके अलग पढ़नेके प्रमाणसे । अन्यथा दन्त्यपरक लक्षण से षोपदेश सिद्ध होता ष्वष्क आदि व्यर्थ होते । यद्यपि भाष्यमें अदृष्ट है तथापि सुब्धातुष्ठिवुष्वष्कतीनांषत्व प्रतिषेधके बलसे उनका लाभ ।

सात्पदाद्योः=पदके आदि सको षका निषेध प्राप्त ।

उपसर्ग का उपसर्गस्थमें लक्षणा । उपसर्गमें स्थित निमित्त (इण् रूप इ उ) से परे एषाम्=इनके सको ष हो । सुनोति सुवतिमें स्तिप् निर्देश यङ् लुक्में षत्व रोकनेके लिये । अभिसुवति । स्थादिषु एव अभ्यासस्य षत्वं न तु सुनोत्यादिषु । नियमसे षत्व प्राप्त नहीं । उपसर्गसे परे स्यति स्तौति । स्थाके सको ष हो । सेनया अभियाति **अभिषेणयति** । णिजन्त नामधातु है सेधति । शष् संकेतसे षत्व होगा । सिद्ध्यतिको नहीं प्रतिसिद्ध्यति । निःषुणोति निःषेधति निःषिञ्जति ।

उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् । ।८।३।६५। उपसर्गस्थान्निमित्तादेषां सस्य षः । सदिरप्रतेः ८।३।६६। प्रति-भिन्नादुपसर्गात्सदेः सस्यः षः । स्तन्भेः ८।३।६७। स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः । अवाच्चलाम्बनाविदूर्ययोः ८।३।६८। अवात्स्तन्भेरेतयोरर्थयोः सस्य षः । वेश्चस्वनो भोजने ।८।३।६९ व्यवाभ्यां स्वनतेः सस्य षो, भोजने । परि-

---

नुम्विसर्जनीय शरके व्यवधान में भी षत्व । षत्वकी स्थिति में दुर्को उपसर्गका निषेध है । सहें साङःसे स आया । षष्ठी बना । अपदान्तस्य मूर्धन्यः प्राक्सितात्सूत्र तक । क्रमशः षत्व विधायक सूत्र । ७१ **सदिः** अप्रतेः । प्रतिसे भिन्न उपसर्गमें स्थित इण्से परे सदके सको ष हो । सदिः की प्रथमा षष्ठी अर्थमें । **निषीदति** उपसर्ग-नि-के इ-से परे सको षत्व । अप्रतेः क्यों ? प्रतिसीदति । (७२) **स्तम्भे** उपधामें नकार निर्देशसे सूत्रमें पढ़े धातुके सको ष हो, स्तन्मु स्तुम्भुके सको ष होगा प्रति-पदोक्त होने से । (७३) **अवाच्च**—आलम्बनञ्च द्वन्द्वसे सप्तमी । आलम्बन (आश्रयण–छड़ीका सहारा । यष्टिमवष्टभ्य तिष्ठति अर्थमें) अविदुर्यं= (अव-ष्टब्धाः गौः निरुद्धा सति समीपे आस्ते) रोकी गयी पासमें खड़ी है । अवसे परे स्तम्भके सको ष हुआ । आधार और समीप अर्थका सूचक षत्व । एतयोः किम् ? अवस्तब्धो वृषलः शीतेन, शूद्र ठण्डसे जकड़ उठा । कोई अविदूर शब्दसे स्वार्थमें ष्यञ् कहते हैं उसका अनतिदूरं इषद्दूरं अर्थ । (७४) **वेश्च** । चसे अव् आया, वि अव्से परे स्वनतिके सको ष हो, भोजन अर्थ खुलने पर । **विस्वनति** विशेष-ध्वनि । विसे परे प णत्व । अवष्वणति दहाड़कर खाता है व्यष्वणत । विषष्वाण । स्थादिषु अभ्यास-से षत्व । भोजन क्यों कहा ? विष्वनति वीणा बजाती हैं ।

परिनिविसे परे सेव आदि धातुओंके स को ष हो । सेवका अ उच्चारणार्थ सेवृ सेवायाम् । **परिषेवते** निषेवते विषेवते सको ष हुआ विशेष सेवा क्रिया का कर्ता । षिञ् बन्धने । सितः विषितः । विसे परे सको ष । वन्धनमें पड़ा । जब सिसे एरच् या पचादि अच् । सि अ । इको गुण । अय, सयः–बन्धनकर्ता । विशेषेण सयः **विषयः** बन्धनं । **षिवु तन्तुसन्तानें** सूतसे सीना परिषीव्यति । सब प्रकारकी सिलाई करता है षत्व हुआ । षह मर्षणे क्षमा, सहन अर्थमें परिसहते । परिसे परे सको ष आगम । सुट्के सको ष । **परिष्करोति**–मनमोहक भाव भरता है, **विष्करोति** । स्तु, स्वञ्ज धातुको उपसर्गात्सुनोतिसे षत्व सिद्ध था तथापि परिनिविसे परे इन दोनोंको सिवादीनांके विकल्पको बाधनेके लिये पढ़ा । निषेधक षत्व हुआ ।

प्राक् सितात्—सेवसित सूत्रके सित् शब्दसे पहले जितने सुनोति सुवति स्यति आदि १५ धातु है उनके सको षत्व अट्के व्यवधानमें भी हो । यथा

निविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम् ।8। ३।७०। परिनिविभ्यः परेषामेषां सस्य षः स्यात् । निषेधति । प्राक् सितादड्व्यवायेऽपि ।८।३।६३ 'शित्'–शब्दात्प्राग् सुनोत्यादयस्तेषामड्व्यवायेऽपि सस्य षः स्यात् । न्यषेधत् । न्यषेधीत् । न्यषेधिष्यत् । स्थादिष्वभ्यासेन चाऽभ्यासस्य । ८।३।६४ प्राक्सितात्स्थादिष्वभ्यासेन व्यवायेऽपि षत्वं स्यात्, एषामेव चाऽभ्यासस्य न तु सुनोत्यादीनाम् । निषिषेध । निषिषिधतुः । सेधतेर्गतौ ८।३।११३ गत्यर्थस्य सेधतेः सस्य षो न । गङ्गां विसेधति ॥ एवम्–चिती संज्ञाने ।४। शुच शोके । ५ । गद व्यक्तायां वाचि । ६ ।

न्यषेधत् नि + अषेधत् । अट्के व्यवधानमें इण्से परे नहीं मिला, षत्व प्राप्त नहीं अतः सूत्र पढ़ा । यण्, षत्व हुआ । एवं नि + अषेधीत् आदि ।

स्थादिषु = प्राक् सितात् आया । उपसर्गात्सुनोति सूत्रके स्था नय षेधसे लेकर षेध सित तक स्वीकृत १० धातुके व्यवधानमें भी षत्व हो, **निषिषेध** । अभ्यासका पहला सि उससे परे दूसरे सको षत्व हुआ । अभ्यासके व्यवधानमें भी, जिस कारण अप्राप्त था अतः सूत्र पढ़ा । यह कार्य उपसर्गात्सुनोतिसे भी सिद्ध था । अभ्यास व्यर्थ होकर ज्ञापन दिया कि अभ्यासमें स्थित स को यदि ष हो तो केवल स्थादि दश धातुओंको ही । सुनोतीत्यादिके अभ्यास को न हो । षू प्रेरणे अभिसुसूषति अभ्यासको षत्व नहीं हुआ । अभ्यासात्परस्य सस्य स्तौतिण्योरेव नियमात् न भवति । अभिषिषासति अभ्यासके सको ष हुआ । (७८) सेधतेर्गतौ गति अर्थमें षेधधातुके सको ष नहीं होता, जो उपसर्गात्सुनोतिसे प्राप्त था । किन्तु आदेश-प्रत्ययोंसे होता हैं । गङ्गां विषेधति गच्छतिगमन अर्थ है षत्व निषेध हुआ ।

(४) **चित्** धातु संज्ञान यथार्थज्ञान, सम्यक्ज्ञान, चेतना, होश में आना । ई इत् का फल श्वीदितो निष्ठायां सूत्र की प्राप्ति । सिध धातु की तरह सम्यक् ज्ञान अर्थ से धातु का रूप सभी लकारों में होगा । यथार्थ ज्ञान या चेतना होने की क्रिया वर्तमान रहने पर । **चेतति** । परोक्ष भूतकाल होने पर । **चितेत** । भविष्त काल की चेतना, या यथार्थ ज्ञान का विषय हो । तब **चेतिता** । सामान्य-सत्य भावी हो तब **चेतिष्यति** । प्रेरणा में **चेततु** । पूर्व दिन की यथार्थ ज्ञान की समाप्नि क्रिया अर्थ में । **अचेतत्** **चेतेत्** आशीर्वाद अर्थ में तुम्हें चेतना हो **चित्यात्** । सम्यक्ज्ञान होने की क्रिया कभी भी पूरी हो चुकी हो तब **अचेतीत्** **अचेतिष्टाम्** अचेतिषुः अचेतीः अचेतिष्टम् अचेतष्ट । **अचेतिष्यत्** ।

(५) इसी प्रकार **शुच्** शोके=चिन्ता के अनुकूल क्रिया चिन्ता, दुख ग्लानि, सोच, होने अर्थ में शुच धातु प्रसिद्ध है । शोक चिन्ता पैदा होने के अनुकूल क्रिया चलती रहे तब लट् शोचति । **पूर्वदिनों** में शोक चिन्ता की परोक्षकालिक

गदति । ३ ।   नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति हन्ति-याति-वातिद्राति-
प्साति-वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्धिषु च ८।४।१७। उपसर्ग-
स्थान्निमितात् परस्य नेर्नस्यणो गदादिषु परेषु। प्रणिगदति। कुहोश्चुः
७।४।६२। अभ्यासकवर्ग-हकारयोश्चवर्गादेशः।

४५५ अत उपधायाः ७।२।११६। उपधायाः अतो वृद्धिः स्यात्
ञिति णिति च प्रत्यये परे। जगाद। जगदतुः। जगदुः। जगदिथ। जगदथुः

समाप्ति क्रियाकाल अर्थ में लिट्। **शुशोच शुशुचतुः शुशुचुः**। श्वः (कल) परश्वः
(परसों) अपरश्वः (नरसों) शोकचिन्ता भावी हो तब लुट् **शोचिता**। किसी
समय भावी हो, तब **शोचिष्यति**। जहाँ शाप हो, दुःख के लिए आशीर्वाद हो तुम्हें
अपार दुख हो, अर्थ में **शोचतु शोचतात् शोचतां शोचन्तु**। अनद्यतन भूतकाल में
शोकहोने की समाप्ति क्रिया अर्थमें **अशोचत्**। शोक की सम्भावना या प्रेरणा के
लिए **शोचेत् शोचेतां शोचेयुः** शोक होने के लिए आशीर्वाद की सम्भावना हो तो
शुच्यात्। किसी समय शोक हो चुका हों भूतकाल में **अशोचीत्**। शोक क्रिया के
कार्यकारण भाव में **अशोचिष्यत्**। (६) गद्धातु का व्यक्त बोलना स्पष्ट उच्चा-
रण के अनुकूल क्रिया अर्थ है। कर्ता में असंदिग्ध वर्ण का उच्चारण चल रहा हो
तब लट् तिप् शप् इत्यादि। **गदति गदतः गदन्ति**। यदि प्रनि उपसर्ग लग जाय
तब बलात् अर्थ बदल जाता है। **प्रनिगदति** (३) **ऊपसर्गस्था** उपसर्ग (प्रप्रा)
आदि में स्थित निमित्त(णत्वके कारण) र ष उससे परे नि के नको ण हो, गद् आदि
धातु परे। गद स्पष्ट बोलने की क्रिया, नद मूकध्वनि, पत्=पतन (गिरना),
पदगतौ-चलने अर्थ में घूसंज्ञक, दाधा आदि, मा (माप तौल, नापना) षो
अन्तकर्मणि, नाश करना। हन्–हिंसा, या प्रापणे, वा-हवाका बहाना। प्सा-भक्षण
वप=बोना, वह=ढोना, शम=शान्त होना, चि=चुनना, दिह=उपचय (लीपना
वृद्धि) इति सूत्रेण णत्वे। **प्रणिगदति**। यहाँ समानपदत्व या अखण्डपद न होने
से अट्कुप्वाङ् से णत्व नहीं सम्भव था। यहाँ उपसर्गस्थ-प्र में णत्वका निमित्त र
है प्रणिगदति की तरह **प्रणिनदति। प्रणिददाति, प्रणिचिनोति** आदि को
समझे। वर्ण के स्पष्ट उच्चारण यदि बीते दिनके परोक्षकाल समाप्त क्रिया हो, तब
गद् धातु से लिट्, तस्य स्थाने प्रथमपुरुषस्य तिप् णल्, लिट् धातो' इति द्वित्वे,
अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष इति दकारलोपे, ग गद् अ।

(४) **कुहोश्चुः**—कुश्च हुश्च कुहू, तयोः कवर्गहकारयोः अभ्याससंज्ञक कवर्ग
क, ख, ग, घ, घ्, तथा हकारके स्थान में चवर्ग, च, छ, ज, झ, ञ् आदेश हो,
कवर्ग को क्रम से चवर्ग हो। ह के स्थान में आन्तरतम्य (वाह्यप्रयत्न) देखकर
झकार होकर, जश्त्व चर्त्व आदि हो। यहाँ अभ्याससंज्ञक कवर्ग 'ग' है उसको

जगद । ६ णलुत्तमो वा ७ । १ । ९१ । उत्तमो णल् वा णित्स्नात् । जगाद, जगद । जगदिव । जगदिम । गदिता । गदिष्यति गदतु । अगदत् । गदेत् । गद्यात् । ७ अतो हलादेर्लघोः ७।२।७ । हलादेर्लघोरकारस्य वृद्धिर्वेडादौ परस्मैपदे सिचि । अगादीत्, अगदीत् । अगदिष्यत् । णद अव्यक्ते शब्दे । ७ । ८ णो नः ६ । १ ६५ । धात्वादेर्णस्य नः । णोऽदेशास्त्वनर्द-

---

चवर्ग 'ज' हुआ । अथवा अभ्यासे चर्चः चर् (क) उसको जश्ज । जगद् अ इतिस्थिते अतो उपधा (अन्त्य अक्षर का पूर्ववर्ण अ को वृद्धि (आ) हो, ञिति णिति प्रत्यय परे रहते । अन्त्य वर्ण 'द' उससे पूर्व ग में अ, उसकी वृद्धि हुई । णित् प्रत्यय ञ है । **जगाद** । दो कर्ता स्पष्ट वर्ण उच्चारणपरोक्षकाल में कर चुके हो । गदधातोः द्विवचने तस तस्य अतुस् । गदको द्वित्वादिः गद् गद् जगद् । अतुस् रु वि **जगदतुः** । अनेककर्ता परोक्षकाल में स्पष्ट वर्णोच्चारण कर चुके हों तब **जगदुः** । म० पु० के कर्ता हों तब म० पु० सिप् तस्य स्थाने थस् । बलादि आर्धधातुक इट् **जगदिथ** । जगदश जगद उत्तम पु० मिप् त स्थाने णल् अ आदेशे । (६) उ० पु० का णल् विकल्प से णित् हो । णित् पक्षे वृद्धिः **जगाद** । अभाव पक्षे न वृद्धिः **जगद** । वस् मस् परे नास्ति । बलादि-आर्धधातुक इट् **जगदिव** । श्वः-आगामिदिने वर्णोच्चारण होनेवाला हो, तब कर्ता में स्यतासी से तास् ति, डा आस्लोप, इट् **गदिता** गदितारौ गदितारः । सामान्यभविष्य में स्पष्ट उच्चारण करनेवाला कर्ता हो तब गदिष्यति । आशीर्वाद आज्ञा, स्पष्ट उच्चारणके लिए हो, तब **गदतु गदतात् गदतां** गदन्तु पूर्वदिन की बीती हुई स्पष्ट उच्चारण क्रिया का का कर्ता हो, तब **अगदत् अगदताम् अगदन्** । स्पष्ट उच्चारण की सम्भावना प्रेरणा प्रार्थना निश्चय हो, तब **गदेत् गदेताम् गदेयुः** गदेः गदेतं गदेत । गदेयं गदेव गदेम । उच्चारण के लिए शुद्ध आशीर्वाद देना हो तब **गद्यात् गद्यास्तां गद्यासुः** गद्याः गद्यास्तं गद्यास्त गद्यासं । (७) हलादेः-हलादिधातु के लघु आकार को वृद्धि विकल्प से हो इडादौ-इट् आदि में हो, ऐसे परस्मैपदका सिच् परे । अगादीत् । स्पष्ट वर्णोच्चारण अर्थवाला धातुसंज्ञक गद् से भूतकाल (समाप्त उच्चारण क्रिया) कर्ता अर्थ में लुङ् अद् ति इ लोपे । च्लि-सिच् तस्य बलादि आर्धधातुक इट्, अस्तिसिचोः इति सिचः सस्य अपृक्तस्य ईट् आगमे अनुबन्धलोपे, **अगद इस् ईत्** दशायाम् हलादिधातुः गद्, तस्य लघु-अकारस्य आ वृद्धिः । इडादि-सिच् परे अस्ति । इट ईटि स लोपे अगादीत् । यदा न वृद्धि तदा **अगदीत् अगादिष्टाम् अगदिष्टाम् अगादिषुः अगदिषुः अगादीः अगदीः अगादिष्टम् अगदिष्टम् अगादिष्ट अगदिष्ट । अगादिषम् अगदिषम् अगादिष्व, अगदिष्व अगादिष्म अगदिष्म** । क्रिया के हेतुहेतुमद् भाव अर्थ में अगदिष्यत् । **(६)** णद् धातु अव्यक्त (अस्फुट, अस्पष्ट) शब्द-उच्चारण अर्थ में है । नदी, बादल,

नादि-नाय-नाध-नन्द-नक्कनृ-नृतः ।   उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८ । ४ । १४ । उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः । प्रणदति । नदति । **ननाद** ।

सिंह, नगाड़ा आदि के आवाजमें स्पष्ट वर्ण नहीं होते ।

(८) धात्वादेः = धातुके आदि में ण को न हो । इस प्रकार धातुके

आदि में सभी ण 'न' बन जाते हैं । क्या यह स्थिति सभी णकारादि धातु की होगी ? तब बोले **णोपदेशाः**—आठ धातु को छोड़ कर सभी णोपदेश हैं । जिसका फल अग्रिम सूत्र में बोलेंगे । नर्दशब्दे, अस्फुट ध्वनि । नट् अवस्कन्दे=शरीर हिला-कर नाचना, नाधृ याञ्चा । उपताप ऐश्वर्ष । आशीर्वाद मानना । क्लेश सहना प्रभुता आदि । नाधृ याञ्चा । टुनदि सम्बद्धौ) सम्यक् वृद्धिः अधिक धन शक्ति होना । प्रसन्न करना । नक्क नाशने (विनाश) नक नकाना । नृ नये, ले जाना । नृती, गात्रविक्षेपे शरीर से भाव दिखाना, नाचना । ये णोपदेश नहीं है (९) **उपसर्गात्**-उपसर्ग प्रपरा आदि में स्थित णत्वका निमित्त रेफसे परे णोपदेशस्य-उच्चारण दशा में ण हो, ऐसे धातुके नको ण हो । असमासेऽपि–समास न होने पर भी । क्योंकि समास में एकार्थीभाव होने से अखण्डपद मानकर णत्व पूर्वसूत्र से ही सिद्ध है । प्र उपसर्ग का नदति के साथ समास न होने पर भी उपसर्ग में स्थित र से परे णत्व हुआ । प्रणदति प्रकर्ष ध्वनिकर्ता । एवं प्रनिनदति में समास नहीं है । णत्व हुआ प्रणिनदति । निरन्तर तेज ध्वनि, बलीवर्द जैसा । नेर्गद इति णत्वम् नदति वर्तमानकालिक ध्वनिकर्ता नद् लट् तिप् शप् नददि । परोक्षकालिक अस्पष्ट ध्वनिकर्ता अर्थ में नद् लिट् तिप् णल् द्वित्वे न ·द् अभ्यासकार्ये हलादिशेषे, अत उपधायाः इति वृद्धिः । ननाद ।

(४६०) अत एक अनादेशादे—न आदेश, अनादेशः आदिः इत्यादिः । लिट् लकार को निमित्त मानकर कोई आदेशादि कार्य (जैसे—कुहोश्चुः अभ्यासे चर्चः आदि) न हुए हों ऐसा जो अङ्ग उसका अवयव असंयुक्त–संयोग रहित हल्मध्यस्थ–मध्यमें रहने वाला ह्रस्व अ को ए हो अभ्यास लोप भी कित् लिट् परे । यह सूत्र ह्रस्व अकार को एकार करता है । यदि संयोग न हो । तथा अङ्ग के आदिवर्णको लिट् निमित्तक आदेशादि कार्य न हुआ हो, कित् लिट् परे हो । अव्यक्त उच्चारण की क्रिया परोक्ष अनद्यतनभूतकाल से समास हो उस अर्थ में नद् धातोः लिट् प्रथम पुरुषस्य द्विवचने तस् स्थाने अतुस् द्वित्वे हलादिशेषे **ननद् अतुस्** । नद् इत्यत्र ह्रस्व अकारो अस्ति, संयोगो नास्ति, लिट् परे कश्चन आदेशोऽपि नास्ति । कित् लिट् अतुस् परे अस्ति, अभ्यास नकारस्य लोपः, द्वितीय नकारस्य यो अकारः तस्य एकारे रुत्वे विसर्गे, नेदतुः । बहुवचने उसि नेदुः

एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ।६।४।१२०। लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं, तदवयवस्याऽसंयुक्तहल्मध्यस्थस्याऽत एत्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि। नेदतुः। नेदुः। थलि च सेटि ६।४।१२१। इड्वति थलि च प्रागुक्तं स्यात्। नेदित नेदथुः नेद। ननाद ननद नेदिव नेदिम। नदिता। नदिष्यति। नदतु। अनदत्। नदेत् नद्यात्। अनादीत् अनदीत् अनदिष्यत् श्च्युतिर क्षरणे। (इर इत्संज्ञा वाच्या)। श्च्योतति। शर्पूर्वाः खयः

मध्यमपुरुषस्य एकवचने नद् लिट् सिप् थल् सिप् होने से पित् हुआ। जो पित् है वह कित् नहीं। पूर्वसूत्रसे एत्व प्राप्त नहीं हैं। **ननद थ** दशायाम् बलादि आर्धधातुक इट् कृते।

(१) **सेटि थलि**=इट् के साथ थल् परे हो तो, पूर्वोक्तदशा में एत्व तथा अभ्यास लोप हो। प्राग्-उक्तम् पहले कहा गया। **नेदिथ**। अथुस् परे। **नेदथुः** नेद। म० पु० का कर्ता परोक्षकालिकसमाप्त अव्यक्त उच्चारण क्रिया हो। उत्तम पु० का कर्ता णल् वस् मस्। अहं कदाचित् **ननद**। आवां कदाचित् **नेदिव** वयं नेदिम। णलुत्वमो वा। उ० पुरुषस्य णल् विकल्पेन णित् भवति। आगामी दिनका अस्फुट उच्चारण क्रिया हो। **नदिता**। सामान्य भविष्य-कालिक अस्पष्ट उच्चारण कर्ता अर्थ में। **नदिष्यति**। आज्ञा आशीर्वाद अर्थ में। **नदतु**। बीते दिनों गर्जना किया हो। **अनदत्**। बीर पुरुष की गर्जनाके लिए प्रेरणा प्रार्थना। **नदेत् नद्यात्**। मेघः **अनादीत्**। सामान्य नदनसमाप्तक्रिया अर्थ में नद् लुङ् अट् तिप् सिच् बलादि इट अपृक्त ईट्, सिच् लोपः दीर्घः इट ईटि सलोपः। अतो हलादेर्लघोः। इति विकलावृद्धिः **अनादीत्** यदा न वृद्धिः तदा अनदीत् अनदिष्यत् (८) टुनदि-टु, इ, इत् संज्ञक नद् धातु का सम्वृद्धिः अधिक धनधान्य वृद्धिः आनन्द होना अर्थ है।

४० च्युतिर धातुका आसेचन=आर्द्रीकरणं गीला करना चूना (थोड़ा या अधिक) क्योंकि आसेचने शब्दमें आङ्का ईषत् थोड़ा गीला या अभिव्याप्ति पूर्णरूपसे भीगा होनेकी क्रिया और रेफ की इत्संज्ञा से इदिति धातु मानकर नुम् प्राप्तका बाधक वा० ईर् समुदायकी इत्संज्ञा बोलें इससे इर इत् हुआ, इदित् नहीं, न नुम्। थोड़ा या अधिक गीला करना क्रियावाचक च्युत्से वर्तमानकालिक कर्तामें लट् तिप् शप्। लघूपध गुण **च्योतति** एककर्तृक वर्तमानकालिक आर्द्रीकरणानुकूलव्यापारः त्वं च्योतसि तुम गीला करते हो। अहं च्योतामि पूर्णरूपसे फींचता हूँ। यह गीला करण क्रिया परोक्ष अनद्यतनकालमें हो, लिट् तिप् णल् द्वित्व आदि। पित् कित् नहीं होता, न गुणनिषेधः। चुच्युततुः—तस्का अतुस् कित् है। गुण निषेध हुआ। **च्योतिता**-अद्यभिन्नभविष्यकालिक इषत् या पूर्णरूपेण सिञ्चन

७।४।६१। शिष्यन्तेऽभ्यासस्य। हलादिः शेषापवादः। चुश्च्योत। इरितो वा।३।१।५७। इरितो धातोश्च्लेरङ् वा, परस्मैपदे। अश्च्युतत्। अश्च्योतीत्। यकाररहितोऽप्ययम्। श्चोतति। चुश्चोत। अश्चुतात्। च्युतिर आसेचने। च्योतति। टुनदि समृद्धौ। आदिर्ञिटुडवः १।३।५। उपदेशे

क्रिया। च्योतिष्यति। च्योततु। आसेचनक्रिया प्रेरणाका विषय होनेपर लोट्। एककर्तामें आर्द्रीकरण — क्रियाविषयक प्रेरणानुकूलव्यापारः **अच्योतत्**। च्योतेत्। च्युतात्। अच्युतत् चुत्धातुसे भूतकालिक थोड़ा या अधिक सेचन क्रियाके कर्तामें लुङ् तिप् च्लेः सिच् प्राप्तको बाधकर—

इरितो वा–इर् इत् हो ऐसे धातुसे च्लिको अङ् विकल्पसे हो, परस्मैपद परे (धातोरेकाचःसे) धातोः (अस्यति वक्तिसे) अङ् पुषादिसे परस्मैपद आये। सिच् को बाधकर च्लिको अङ् जो ङित् है, न गुणः। अट् अच्युतत् अच्युतताम् अच्युतन्, अच्युतः अच्युततम् अच्युतत। अच्युतम् अच्युताव अच्युताम। यदा न अङ् तदा सिच्। इट ईटि सलोपः आदि। **अच्योतीत्** अच्योतिष्टाम् अच्योतिषु। ४१ श्च्युतका क्षरण–झरना, चूना पसीझना क्रिया वर्तमानमें श्च्योतति परोक्ष भूतकालमें चुश्च्योत द्वित्व दशामें शपूर्वाः खयःसे अभ्यासका 'च' शेष। क्षरण पसीझना क्रिया समाप्त हो, कर्ता वर्तमान हो, या न हो; लुङ्–ति इ लोप। इरितो वा से च्लिको अङ् विकल्प पक्षमें सिच् इट् आदि। यसे रहित भी धातु है। प्रमाण मधुनश्चुतं घृतमिव सुपूतम् है। अश्चुतत् अश्चोतीत्। श्चोतिता श्चोतिष्यति!

(२) **आदिञि** प्रथमा उच्चारण दशा में धातु के आदिभूत ञि, टु, डु, की इत्संज्ञा हो। आदिशब्द में एकवचन है। उसका सुविभक्ति बहुवचन अर्थका प्रकाशक है। यतः ञिटुडवः के बहुवचनमें से मिलाने के लिए विभक्तियाँ द्योतिका वाचिका भी होती है। (३) इदितः–इ इत् हो वह इदित् हैं। उसको नुम् का आगम हो। उम् इत् से मित् है। वह अन्त्य अच् के आगे हो। बिना किसी निमत्त के नुम् होनेसे अन्तरङ्ग कार्य हुआ। जो सबसे पहले होगा, नदि में इत् से नुम् होकर नन्द धातु बना, धन सम्पत्ति आनन्दवर्धकक्रियावाचक नन्द धातु से प्रचलितसमृद्धि क्रियायाः वर्तमानकाले कर्ता अर्थे लट्, तिप् शबादि **नन्दति** नन्दं कृष्णः। नन्दतः नन्दन्ति नन्दथः नन्दथ नन्दामि नन्दावः नन्दामः। यदि वह सम्वृद्धि, आनन्दजनक क्रिया पूर्वदिन में अदृष्ट तथा समाप्ति क्रिया का काल हो तब नन्द लिट्, तिप्, णल्, द्वित्व, अभ्यासादिकार्य। **ननन्द ननन्दतुस्तौ। ननन्दुः।** यूयं **ननन्द।** अहं **ननन्द आवां ननन्दिव। वयं कदा** ननन्दिम। उपधा में आकर न होने से वृद्धि नहीं होती। श्वः नन्दिता नन्दितारौ नन्दितारः नन्दितास्थ नन्दितास्मि तास्म–म (कल आनन्दित होंगे। सदा नन्दिष्यति। हमेशा खुश रहेगा। सम्वृद्धि के विष में प्रेरणा लोट् विधि आज्ञा अर्थ में नन्दतु। नन्दतां, नन्देयुः नन्देः

धातोराद्या एते इतः स्युः। इदितो नुम् धातोः। ७।१।५८। नन्दकी। ननन्द। नन्दिता नन्दिष्यति नन्दतु अनन्दत्। नन्देत्। **इदित्वान्नलोपो न।** नन्द्यात्। अनन्दीत्। अनन्दिष्यत्। **एवं कुथि पुथि लुथि मथि हिंसाक्लेशनयोः विदि अवयवे।** विदन्ति। 'भिदी'ति पाठान्तरम्। भिदन्ति। गडि बदनैकदेशे। गण्डति। सदि आह्लादने। चन्दति। त्रदि चेष्टायाम्। त्रन्ददि। कदि कदि क्लदि आह्वाने रोदते च क्लिदि परिदेवने। तकि कृच्छजीवने। युगि जुगि वुगि वर्जने। मधि मण्डने। शिघि आघ्राणे। **मन्थ विलोडने।** मन्थति। ममन्थ। **कित्वान्नलोपो।** अर्च पूजायाम्।

नन्देतं नन्देत नन्देयं नन्देव-म। आनन्दके लिए आशीर्वाद-नद्यात्। समृद्धि की क्रिया सामान्य रूप से समाप्त हो चुकी हो तब कर्ता में लुङ्। अनन्दीत् नन्द ति इ लोप च्लि सिच् :इट ईटि' सलोपे सवर्णदीर्घे **अनन्दीत्।** सम्मृद्धिक्रियामें कार्यकारणभाव हो तब तदा अनन्दिष्यत् यदा रसगोलिकाम् अखादिष्यत् अनन्दिष्टाम् अनन्दिषुः। अनन्दीः अनन्दिष्ट–ट। अनदिषम् अनन्दिष्व–म।

मन्थधातुका विलोडन आस्फालन प्रतीघात घुमाकर मथनेकी क्रिया। तिप् शप् **मन्थति** एक कर्तामें वर्तमानकालिक मन्थन क्रिया। त्वं मन्थसि दुग्धम् अहं दधि मन्थामि। ह्यः कदा **ममन्थ।** परोक्ष अनद्यतन भूतकालिकमन्थन क्रियाका चेष्टावान् चैत्रः। ममन्थतुः देवाः समुद्रं ममन्थुः। मन्थनक्रियाके लिए प्रयत्नवाले देवता। **मन्थिता** मन्थितासि मन्थितास्मि। मन्थिष्येते मन्थिष्येये। मन्थिष्यावहे। मन्थन्त मन्थतं, मन्थामहे। हमलोग मन्थन करें। अमन्थत् अमन्थताम् अमन्थन्। अमन्थः अमन्थम्। मन्थेत् मन्थन क्रिया करें। आशीर्लिङ्में यासुट् कित् हैं, किदाशिषि सूत्रसे उसका फल अनिदितां हल उपधायाःसे नलोप। **मथ्यात्।** उसमें मन्थन क्रिया की शक्ति आये। मथ्यास्तां मथ्यासुः। **अमन्थीत्** अमन्थिष्टां अमन्थिषुः त्वं अमन्थीः, अहं अमन्थिषम्। ३३ इ–इत् **कुथलुथ** मथ इतने धातु हिंसा–प्राण वियोग कष्ट देनेकी क्रिया अर्थ कुन्थति चुकुन्थ लुन्थिता मन्थिष्यति हिंसा करेगा, कष्ट देगा।

(९) अर्च धातु पूजा, आह्वान, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पाञ्जलि आदि अनेक अर्थ एकक्रियामें मिलते हैं (पचतिमें अनेक अर्थ समुदायवत्) पूजार्थक अर्चधातोः वर्तमानकाल प्रचलितपूजनक्रिया अर्थमें कर्ता लट् जो लः कर्मणिसे कर्ता वर्तमान लट् काल दोनों का स्मारक है। ति शप् अः **अर्चति, अर्चतः अर्चन्ति** अर्चसि।अर्चथ अर्चामि।

(४) तस्मात् हलः दो हल् या अनेक हल् हों जिस धातुमें उसके दीर्घीभूतात् अतआदेः दीर्घ हुए आकारसे परे नुट् हो, पूजार्थक अर्चधातोः पूर्वदिनकी समाप्तपूजन के परोक्ष क्रियाकारक अर्थ में लिट् ति णल् द्वित्व अभ्यासहलादिशेषः। अ अच् अ

अर्चति। तस्मान्नुड् द्विहलः ।७।४।७१। द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतादकारात् परस्य नुट्। अनार्च आनर्चतुः आनर्चुः। अर्चिता। अर्चिष्यति। अर्चतु। आर्चत्। अर्चेत् अर्च्यात्। आर्चीत्। आर्चिष्यत्। एवम्-अर्द गतौ याचने च। अति अदि बन्धने। वन षण सम्भक्तौ। वनति। ववान। न शसद-दवादिगुणानाम् ।६।४।१२६। शसेर्ददेर्वकारादीनां, गुणशब्देन भावितो योऽत्, तस्य च एत्वाभ्यासलोपौ न स्तः। ववनतुः ववनुः। सनति। ससान

दशायाम् अतआदेः सूत्रेण अभ्यास अकारस्य 'दीर्घ' आ अर्च' अ, अयं धातु द्विहल् इति च युक्तः। दीर्घीभूतः अभ्यासस्य आ तस्मात् परस्य अर्च अकारस्य नुट् मित्वात् अर्च अकारस्य आदौ भवति। **'आनर्च'** द्विवचने अतुस् सर्वा क्रियाः पूर्ववत्। **आनर्चतुः आनर्चुः। आनर्चिथ आनर्चथुः आनर्च।** अहम्, आनर्च आनर्चिव वयं आनर्चिम। श्वः अर्चिता। सदा शिवम् अर्चिष्यति। त्वं पितरम् अर्चतु अर्चतात् अर्चताम् अर्चन्तु अर्च अर्चतम् अर्चत अर्चानि अर्चाव-म। रावणः शिवम् **आर्चत्** आर्चताम् आर्चन् आर्चः। यदि गुरुम् अर्चेत् अर्चेताम् अर्चेयुः अर्च्यात्। ब्राह्ममूहर्ते देवं आर्चीत् अर्चिष्टाम् अर्चिषुः अर्चीः आर्चिष्टम् ष्ट, आर्चिषम् ष्व शिवश्चेत् आर्चिष्यत्। जगत् आर्चिष्यत्।

झपः पञ्चमी तश्च थश्च। धः प्रथमा। झभञ्से बढ्धष् तक के अक्षरसे परे त, थको ध हो। अधः-धा-धातुको छोड़कर।

अर्द् धातुका गमन मांगनेकी क्रिया अर्दति उपधायां—सूत्रमें इक आता है। उसीको दीर्घ। अ को नहीं। जब परोक्षागमन या याचना क्रिया का भूतकालिक कर्ता हो—लिट् तिप् णल् द्वित्व हलादिशेषः। अ अर्द्। अत आदेःसे अभ्यास अको दीर्घ। आ अर्द् दशामें।

अति अदि धातुका बन्धन क्रिया अर्थ। इ—इत्से नुम्, लट् तिप् शप् अन्तति अन्ततः अन्तन्ति। आनन्त द्वित्व अभ्यास अको अत आदेःसे दीर्घ। तस्मान्नड् द्विहलःसे नुट्। आनन्द भूतकालिक बन्धन क्रिया आन्दीत्।

बिदिका अवयव करना अलग-अलग या भेदकी क्रिया अर्थ। 'ब' आदिमें बिन्दति बिखेरता है विभाजनकी क्रिया **अबिन्दीत्** अबिन्दिष्टाम् अबिन्दिषुः अबिन्दीः अबिन्दिष्टम् अबिन्दिष्ट अबिन्दिषम् अबिन्दिष्व अबिन्दिष्म। भिदि भी पाठ है। गडि मुखके एकदेश गलगण्ड या फोड़ा फुन्सीकी क्रिया वर्तमान हो गण्डति अगण्डत् अगण्डीत्।

चदि का आह्लाद मस्ती प्रसन्नता। **चन्दसि** मस्त हो रहा है। परोक्षे लिट् में चचन्द। त्रन्द धातुका चेष्टाकी क्रिया अर्थ। त्रन्दति प्रयत्न करता है। वह क्रिया परोक्षके भूतकालमें हो, तत्रन्द। ७० इ इत्से इदितो नुम् धातोः सफल। क्रन्दति

सेनतुः सेनुः। ये विभाषा ।६।४।४३। जनसनखनामात्वं वा स्यात् यादौ क्ङिति। सायात्। सन्यात्। वज व्रज गतौ। व्रजति। वव्राज। व्रजिता। व्रजिष्यति। व्रजतु। अव्रजत्। व्रजेत् व्रज्यात्। वदव्रजहलन्तस्याचः ।७।२।३। एषामचो वृद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि। अव्राजीत्। अव्रजिष्यत् कटे वर्षाऽऽवरणयोः। कटति चकाट। कटिता कटिष्यति। कटतु अकटत्।

कन्दति क्लन्दति का चिल्लाकर पुकारना चीखकर रोनेकी क्रिया अर्थ। वर्तमानकाल वह तीव्र रूदन, तेज पुकार परोक्षमें हो चुकी हो लिट्। लुङ् लृङ् में आट् आगम आटश्चेति वृद्धि इतिविशेष (१०) व्रज धातु का गति गमनजनकक्रिया अर्थ। वह वर्तमान रहे तब कर्ता में व्रज् से लट् ति श **व्रजति**। यदि प्र या परि उपसर्ग लग जाय तब सन्यास लेना अर्थ होता है। परिव्रजति प्रव्रजति सन्यास ग्रहणकरता है। अनु उपसर्ग से पीछे चलना अर्थ हैं। अनुव्रजति। अवव्रजति, नीचे गिरता है। वही व्रजन (गमन) आजदिन के पहले अदृष्ट क्रियासमाप्त हो, तब लि ति णल् द्वित्व द्वित्व अभ्यास—हलादि शेष, उपधा दीर्घ। **वव्राज वव्रधतुः वव्रजुः वव्रजिथ ववधुः वव्रथु। वव्राज वव्रज, वव्रजिव वव्रजिम**। व्रज के संयुक्त हल् होने से एत्व अभ्यासलोप नहीं होता। व्रजन् क्रिया आगामी दिनोंमें सम्भव हो तब लुट्। **प्रव्रजिता**। कल परसों का ही भविष्य न हो। तब सामान्य भविष्यत् काल में लृट् **प्रव्रजिष्यति**। व्रजनक्रिया आज्ञा, प्रेरणा में, **व्रजतु** व्रजतां व्रजन्तु। अनद्यतन भूतकालिक गमन क्रिया, अव्रजत् अव्रजताम् अव्रजन् जाने की सम्भावना स्वागत, सत्कार आदि में **व्रजेत्**। **व्रजेतां व्रजेयुः** आशीर्लिङ् व्रज्यात् व्रज्यास्तां व्रज्यासुः व्रज्याः व्रज्यासम्।

(४६५) **वद् व्रज** तथा हलन्त धातुओं के अच् की वृद्धि हो सिच् परक परस्मैपद परे हो। हलन्तधातु में व्रज् वद्, यद्यपि आता हैं, तथापि वद् व्रज को 'अतो हलादेर्लघोः' से प्राप्त वृद्धि का निषेध नेटि सूत्र से होगा इसलिए सूत्र में विशेष रूप से पढ़ा। गमनार्थक व्रजधातोः समाप्तगमन क्रियार्थकतामे लुङ्, ति, अट्, च्लेः सिच्, इट ईदि, सलोप। वदव्रज हलन्तस्याचः वृद्धिः। **अव्राजीत्**। क्रिया के के कार्यकारणभाव में लृङ् भवान् अव्रजिष्यत् तदा अहम् अगमिष्यम्। आप जायें तब मैं जाऊँ। (११) ए इत् कट् धातु का वर्षा, वृष्टिः (बरसना) तथा आवरण —आच्छादन ढँकना। वर्षा या आवरण की क्रिया वर्तमान रहे तब **कटति** बरसना या ढँकता है। लिट् में कट-कट ककट कुहोश्चुः वृद्धौ **चकाट**। अद्यतनके पहले समाप्तवर्षण या आच्छादन की अप्रत्यक्ष क्रिया अभ्यासमें चवर्ग आदेश होने से एत्वअभ्यासलोप न होता। **चकटतुः** कित् होनेसे न दीर्घः। श्वः परश्वो वा।

कटेत् कटचात्। ह्ययन्तक्षणश्वसजागृणिश्वेदिताम्। ७।२।५। ह्ययान्त स्य, क्षणादेर्ण्यन्तस्य, श्वयतरेदितश्च वृद्धिर्नेडादौ सिचि। अकटीत् अकटिष्यत्। गुपू रक्षणे गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः।३।१।२८। एभ्य 'आय' प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे।'अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ती'ति न्यायात्।

कटिता मेघः कटिष्यति। स दुग्धं कटतु। वह दूध को ढ़क दे। ह्यः अकटत् कल वर्षा हुई थी। कटेत् वर्षा होनी चाहिए। यदि आवरण करे। स ज्ञानं कटचात्। वह ज्ञान की वर्षा करे।

हम्य् अन्त में हो, क्षण्, स्वस्, जागृ, ये धातु ण्यन्तश्वि तथा ए इत्, धातुओं के इड् आदि सिच् परे हो, तो वृद्धि न हो। ह अन्त–अमहीत्। मह पूजायां। क्रम पादविक्षेपे। पग बढ़ाना अक्रमीत् हयगतौ अहयीत्। क्षण हिंसायाँ अक्षणीत्। श्वस प्राणने अश्वसीत्। जागृनिद्राक्षये अजागरीत्। यद्यपि ण्यन्त से परे सिच् नहीं मिलता, उसे चङ् होता है। अतः वेद में ण्यन्त के निषेध का महत्व है। ए इत् का उदाहरणः—वर्षा या आवरणार्थक कट से समाप्त क्रिया के कर्ता में लुङ् ति, इट ईटि सलोप, दीर्घ आदि। अकटीत्। बदव्रगहलन्त' सूत्रेण प्राप्तवृद्धेः निषेधः। यदि मेघः अकटिष्यत्। तदा ग्रीष्मशान्तिः अभविष्यत्। १२ ऊ इत् गुपधातु, सुरक्षा के अनुकूल क्रिया अर्थः (७) गुपू रक्षणे धूप (तप्त करना) विच्छ गमन। पण् पन, व्यवहारे तथा स्तुति इन धातुओं से आय प्रत्यय स्वार्थ में हो, स्वं प्रकृतिः (गुप्) तस्य अर्थः (रक्षारुपः) स्वार्थः तत्र भवः स्वार्थिकः। जो प्रकृति (गुप) का अर्थ है, वही अर्थ आय प्रत्यय का भी जाने। क्योंकि अनिर्दिष्टार्थाः स्वार्थे भवन्ति। जिस प्रत्ययका अर्थ स्पष्ट न हो, वह स्वार्थिक है। जो निमित्तक होने से सर्वप्रथम होगा। वह आर्धधातुकं शेषः से आर्धधातुकसंज्ञक आयपरे गुप के इक् (उकार) अङ्गको गुण ओ **गोपाय**। अकारान्त, के इक् (उकार) अङ्ग को गुण ओ, **गोपाय**। अकारान्त, जिसकी (८) सनाद्यन्तं-सन् क्यच् इत्यादि हो। कम आदि धातु से (सन् से णिङ् प्रत्ययपर्यन्त) जितने प्रत्यय है वे अन्त में हो उनकी धातुसंज्ञा होती है। धातुत्वात्-धातुसंज्ञाका फल लट् आदि की उपस्थिति है। इति सूत्रेण धातुसंज्ञा। लट् ति शप् अतो गुणे पररूप-एकादेशे गोपायति गोपायतः गोपायन्ति। गोपायसि गोपायथः गोपायथ। गोपायामि गोपायावः। वर्तमानकालिका एककर्तृका अनेककर्तृका वा रक्षणकक्रिया।

(९) आयादयः आर्धधातुके=आर्धधातुकसंज्ञकप्रत्यय की विवक्षा (वक्ता की इच्छा) हो, तब आयादिप्रत्यय विकल्प से हों। सनादि १२ हैं। सन् क्यच् काम्यच्, क्यङ् क्यषोऽथाचारक्विप् वणिज्यङौ तथा यगाय इयङ्णिङ् चेति द्वादशामी

सनाद्यन्ता धातवः ।३।१।३२। सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञाः स्युः ।

सन् क्यच् काम्यच् क्यङ्-क्यषोऽथाऽऽचारक्विव् णिक्यङौ तथा ।
यगाय ईयङ्-णिङ् चेति द्वादशामी सनादयः ॥ १ ॥

'सनाद्यन्ता धातव' इत्यस्यानन्तरं 'भूवादय' इत्येव सूत्रयितुं युक्तम् । धातुत्वाल्लडादयः । गोपायति । आयादय आर्द्धधातुके वा ।३।१।३१।

सनादयः । (वा) कास् तथा अनेकाच् धातुओं से आम्प्रत्यय कहें । आस् तथा कास धातु से आम शब्द में अकार विधान से म की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा नहीं होगी । अन्यथा म का विधान व्यर्थ होगा । रक्षणार्थक गुप्धातो आयादयः आर्ध-धातुके वा इति सूत्रेण आर्धधातुकाविवक्षायां विकल्पेन आय । लिट्च सूत्रेण आर्ध-धातुकसंज्ञा सार्वधातुकाधातुकयोः गुणे । गोपाय । सनाद्यन्ता धातवः धातुसंज्ञा । अयं धातुः अनेकाच् । अतः आम वक्तव्यः । ततः समाप्तरक्षणक्रिया कर्ता अर्थे लिट् । गोपाय आम् लिट् । आम् प्रत्ययः तिङ् शिद् भिन्नः, धातोः विधानं कृतः आर्ध-धातुकं शेषः इति आर्धधातुकसंज्ञा, ततः । (४७०) **अतो** आर्धधातुकसंज्ञाके **उपदेश** उच्चारणकालमें **अदन्तम्**=अदन्त अङ्ग अवयव अ का लोप हो आर्धधातुकपरे । गोपायके यका (अ) लुप्त हो गया । य् आम् में मिला । क्योंकि आर्धधातुकसंज्ञा काल में गोपाय अदन्त है । (१) **आम्** से परे लिट्का लुक् (अदर्शन हो) । इति आमः परस्य लिटो लुक् । गोपायाम् इति स्थिते । (२) कृञ् इति प्रत्याहारः । उसमें कृ, भू, अस् तीन धातु आते हैं । यदि आमन्तात्=आम् प्रत्यय अन्त में हो उससे लिट्परक (कृ भू अस्) ये अनुप्रयुज्यन्ते अनुप्रयोग हुआ । तेषां=अनुप्रयोग किये गये कृञ् आदिको द्वित्व अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष, चर्त्व से चवर्ग किये जाते हैं । प्रथम कृ का उदाहरण **गोपायाम् कृ लिट्** तिप्, णल् अनुबन्धलोपे कृ इत्यस्य द्वित्वे प्रथमस्य अभ्याससंज्ञा ततः ।

(३) **उरत् अभ्याससंज्ञकके** ऋको अत् ह्रस्वअकार हो । इति प्रथम कृ इत्यस्य ऋस्थाने 'अ' उरण्रपरे, **गोपायाम् कर कृ अ ।** ततो 'हलादिशेषः' इति रलोपः । पुगन्तलघूपधस्य च उत्तरखण्ड-ऋकारस्य गुणे, अतउपधायाः इति वृद्धि आर । कुहोश्चु अभ्यास क स्थाने च आदेशे । मकारस्य नश्चापदान्तस्य झलि इति अनुस्वारे अनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णे ञ । **गोपायाञ्चकार** । आजसे भिन्नभूत-कालकी अदृष्टरक्षण क्रिया । गोपायां लिट् बनानेकी शैली पूर्ववत् । द्विवचनमें तस्स्थाने अतुस् आदेशे कृते सति द्वित्वात्=कृके स्थानमें प्राप्त द्वित्वको बाधकर परत्वात् विप्रतिषेधे तुल्यवल विरोधमें परंकार्यके बलपर यण् प्राप्त हुआ । जैसे द्वित्व और यण् दोनों के सपादसाध्यायी होने से तुल्यवल विरोध हुआ । परमें होनेसे

आर्द्धधातुकविवक्षायामायादयो वा स्युः। (कास्यनेकाच आम्वक्तव्यो लिटि) कास आम्विधानान्मस्य नेत्वम्। अतो लोपः।६।४।४८। आर्द्ध धातुकोपदेशे यददन्तं तस्यातो लोप आर्द्धधातुके। आमः।२।४।८१। आमः परस्य लुक्। कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि।३।१।४०। आमन्ताल्लिट्परा कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते। तेषां द्वित्वादि। उरत्।७।४।६६। अभ्यासस्य ऋतोऽत्स्यात्प्रत्यये। प्रत्यये किं–वव्रश्च। वृद्धिः। गोपायाञ्चकार। द्वित्वात्परत्वाद्यणि प्राप्ते। द्विर्वचनेऽचि।१।१।५९। द्वि-त्वनिमित्तेऽचि परे

यण् प्रबल पड़ा। ततः। ४० द्विर्दचने-दोबार उच्चारण ही द्विर्वचन है यदि दो बार उच्चारणका कारण अच्परे हो, तब अच्के स्थानमें कोई आदेश नहीं होता द्वित्वकी कर्तव्यता हो। तब प्रसंगमें लिट्परे द्वित्वका निमित्त अजादिप्रत्यय अतुस् है। लिट् का धर्म स्थानिवद्भावसे अतुस्में आयेगा। उसके परे रहते कृके ऋमें कोई अच् आदेश यण् वगैरह नहीं होगा। यदि यण् हो जाता; तब एकाच् न रह जाता। अच्का अभाव होने से, तब द्वित्व सम्भव भी न होता। अभ्यासादिकार्य पूर्ववत्। रुत्वे विसर्गे। **गोपायाञ्चक्रतुः** झि (उस्) गोपायाञ्चक्रुः। अनेककर्तृ–कपरोक्षभूतकालिक रक्षणक्रिया अर्थ।

४७५ **एकाच उपदेशे**=प्रथम उच्चारणकालमें जो धातु एकाच्=एक अच् वाला तथा अनुदात्तसंज्ञक अकारलोप हुआ हो उससे परे आर्धधातुकको इट्का आगम न हो। अजन्तधातुओं में अनुदात्तकी गणना क्यों? धातुपाठमें उदात्त तथा अनुदात्तकी पहचान (संकेतचिन्ह) नहीं मिलता। इसलिए परिगणनकी आवश्यकता पड़ी ऊदन्तैः-ऊकारान्त धातु (भू, यू,) ऋदन्त पृ=पालने पूरणेच। रु क्ष्णु, तेजने। शीङ् स्वप्ने स्नुप्रस्रवणे णु स्तुतौ टुक्षुशब्दे श्वी गतिवृद्धयोः श्रि सेवायां, ङ् विहायसा गतौ वृ वर्णे ये १२ धातुको छोड़कर अन्य अजन्त धातु एकाच् है ये धातुबिना एकाच्के अजन्तेषु=अजन्ताधातुओंमें निहता अनुदात्तरूपमें स्मृत हैं। हलन्तधातुओंके एक अच् तथा अनुदात्त धातुओंका संग्रह। पूर्वमें उक्तधातु अनिट् है। कार्यकारणमें शेष है। हलन्तोंमें प्रथम कान्तशक्लृ सामर्थ्ये एक धातु है। च अन्त ६ धातु हैं। पच् पाके पकाना। मुच्मोक्षणे मुक्तकरना। रिच्विरेचने पेचिस पड़ना, वच् परिभाषणे अपवाद फैलाना। विच् पृथग्भावे, अलग होना। सिच् छरणे पसीझना। छान्तेषु छ अन्त पृच्छ ज्ञीप्सायाम् पूछना। ज अन्त १५ धातु के त्यज हानौ नुकसान होना। निजिर् शौच पोषणयोः, शुद्ध होना, बढ़ाना। भज्सेवायां। भञ्जआमर्दने, भञ्जन करना, तोड़ना। भुज पालने अभ्यवहारे। पालन भोजन अर्थ। भ्रस्जपाके, भूंजना। मस्ज—शुद्धौ शुद्ध होना, गोता लगाना। यज् देवपूजा सङ्गतिकरण-दान। युज्-योगे सम्बन्ध करना। रुज्भङ्गे, भञ्जन करना रोगी

अच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्तव्ये। गोपायाञ्चक्रतुः। गोपायाञ्चक्रुः।
एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ।७।२।१०। उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च, ततः परस्य वलादेरार्द्धधातुकस्येण्न।

ऊदृदन्तैर्यौति-रु-क्ष्णु-शीङ्-स्नु-नु-क्षु-श्वि-डीङ्-श्रिभिः।
वृङ्-वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥ १ ॥

कान्तेषु-शक्लेकः। चान्तेषु-पच् मुच्-रिच्-वच्-विच्-सिचः षट्। छान्तेषु-प्रच्छयेकः। जान्तेषु-त्यज् निजिर्-भज्-भञ्ज्-भुज्-भ्रस्ज्-मस्ज्-यज्-युज्-रुज्-रञ्ज्-विजिर्-सञ्ज्-स्वञ्ज-सृजः पञ्चदशः। दान्तेषु-अद्-

---

होना। रञ्ज रागे, रङ्ग चढ़ाना। आशक्त होना। बिजिर पृथग्भावे। सञ्ज आलिङ्गने हृदयसे लगाना। सञ्ज सङ्गे मिलना, सृज विसर्गे, त्यागना। **दान्तेषु** दकारान्त धातु १६ हैं अद्भक्षणे खाना क्षुद् सम्पेषणे, अच्छी तरह पीसना कूटना। खिद्दैन्ये दुखी होना। छिद्—द्वैधीभावे दो भाग या अनेक टुकड़े करना तुद व्यथने, दुःखहोना, नुद् प्रेरणे—प्रवृत्त करना, पद्य गतौ, गमन करना। छिदिर्विदारणे—फाड़ना, विद् सत्तायाम्=अस्तित्वके अनुकूल क्रिया। विन्द विचारणे। विदि लाभे, सद् सातने, नाथ करना। सद् विसरणगत्यवसादनेषु=बिखरना नष्ट होना, गमन करना, स्विद् गात्रप्रक्षरणे-पसीना पसीझना। स्कन्द गतिशोषयोः गमन करना सुखाना। हृद् पुरीषोत्सर्गे, मलत्याग। **धान्तेषु**=क्रुद्ध, क्रोधे क्रोधकरना। क्षुध बुभुक्षाय। भूख लगाना। बुध अवगमने ज्ञान होना। बन्ध बन्धने, बाधना। **युध** सम्प्रहारे भयंकर प्रहार करना। रुध आवरणे घेरना रोकना। राध, संसिद्धौ सिद्ध करना। **व्यध ताड़ने** बेधना प्रहार करना। शुद्ध शौचे, पवित्र होना। राधसाध-संसिद्धौ सिद्ध करना। सिद्ध संराद्धौ। **नान्तेषु** मन्य। ज्ञाने मानना जानना। हन् हिंसागत्योः। **पान्तेषु** आप व्याप्तौ, प्राप्त करना। क्षुप् स्पर्शकरना। क्षिप् प्रेरणे दूर फेंकना। तप् संतापे तपस्या। तिप् क्षरणार्थे, टपकना चूना। तृप्य, प्रीणने। तृप्त प्रसन्न होना। दृप्तौ घमण्ड करना या गर्व। लिप् लीपकरना, छिन्न-भिन्न करना। वप् बीज संताने, बोना। शप् उपालम्भे—शाप देना कसमखाना। स्वप् शये सोना। सृप्गतौ, सरकना, चलना। **भान्त** यभ्मैथुने सङ्गम करना। रभ राभस्ये भीड़ करना। लभ प्राप्तौ। **मान्तेषु**—गम्गतौ। नम् प्रह्वत्वे शब्दे च नम्रहोना नमस्कार ध्वनि लगाना। यम् उपरसे बैराग्य होना। शान्त रहना। रम् क्रीडायाम्, रमण करना। खेलना। **शान्तेषु**—क्रुशआक्रोशे रोष प्रगट करना चिल्लाना। दश्दंशने डँसना, एकाएक चुभोगा, दिश् अतिसर्जने त्याग करना। दृश्, प्रेक्षणे, दर्शनकरना। मृश् आमर्शने, स्पर्शज्ञान करना। रिश्रुश् हिंसायाम् असहनीयकष्ट देना। लिश अल्पीभावे सिकुड़ना। दिश् प्रवेशने, प्रवेश करना। स्पृश् संस्पर्शे १० हैं। षान्तेषु ११ हैं। कृषविलेखने हल्कर्षणे खींचना।

क्षुद्-खिद्-छिद्-तुद्-नुद्-पद्य भिद् विद्य-विनद्-विन्द् शद्-सद्-स्विद्य-स्कन्द-हदः षोडशः। धान्तेषु–क्रुध्-क्षुध्-बुध् बन्ध्-युध्-रुध्-राध्-व्यध्-शुध्-साध् सिध्या एकादश। नान्तेषु–मन्य-हनौ द्वौ। पान्तेषु–आप्-क्षिप्-छुप्-तप्-तिप्-तृप्य दृप्य-लिप्-लिप्-लुप्-वप्-शप्-स्वप्सृपस्त्रयोदश। भान्तेषु–यभ्-रभ्-लभस्त्रयः। मान्तेषु–गम्-नम्-रम्-यमश्चत्वारः। शान्तेषु–क्रुश्-दंश्-दिश्-दृश्-मृश्-रिश्-रुश्-लिश्-विश्-स्पृशो दश। षान्तेषु–कृष्-त्विष्-तुष्-द्विष्-दुष्-पुष्य-पिष्-विष्-शिष्-शुष्-श्लिष्या एकादश। सान्तेषु–घस-वसती द्वौ। हान्तेषु–दह्-दुह्-दिह्-नह्-मिह्-रुह्-लिह् वहोऽष्टौ।

त्विष्कान्तौ चमकना। तुष्तृप्तौ, द्विष्अप्रीतौ, दुश्मनी करना। दुष्, वैकृत्ये, विकृत दोष होना। पुष्पुष्टौ, मजबूत होना। पिष् चूर्णने चूर्णकरना, पसीना बिष्सेचने विष्विप्रयोगे पृथक् होना। वियोग। व्याप्त होना। शिष् असर्वोपयोगे, किसीके उपयोगका नहोना। शुष्शोषणे सूखना। श्लिष् आलिङ्गने आलिङ्गन-करना। **सान्तेषु** घस् अदने भोजने। वस् निवासे। **हान्तेषु**—ह् अन्तमें हों ऐसे ८ धातु दुह् प्रपूरणे दोहनी भरना। नह् बन्धने बाधना। मिह्सेचने, यह् बीज प्रादुर्भावे, बीजका अंकुरित होना उगना। लिह् आस्वादने स्वाद लेना, चाटना वह् प्रापणे ले जाना। **हलन्तेषु** हलन्त धातुओंमें अनुदात्तधातु त्र्यधिकम् = ३ अधिक सौ १०३ हैं। ये अनुदात्त होनेपर इट् नहीं होते। **गोपायाञ्चकर्थ।** यहाँ थल्को प्राप्त बलादि आर्धधातुक, इट्का निषेध होगा। यह अनुदात्त है, एकाच् उपदेशे = उपदेश अवस्थामें तथा अनुदात्त होनेसे इट्को निषेध होगा गुण। द्विवचनविवक्षामें **गोपायाञ्चक्** + अथुस, असंयोग लिट् की कित्संज्ञा, गुणनिषेधः यणि। उ०पु० एकवचने णल् णलुत्तमोवा विकल्पेन कित्णित् पक्षेवृद्धिः। पक्षे गुणः। वस् मस् प्रत्ययपरे इट्निषेधः। लिटः कित् गुणनिषेध इति विशेषः। पूर्वदिने अदृष्टरक्षणक्रिया सभीकर्तामें हो उसके अनुकूलरूप का प्रयोग करें। **गोपायाम्बभूव।** गुप् आय् आम् लिट् लुक्, यहाँ कृञ्चानुप्रयुज्यते लिट् सूत्रसे भू लिट्का अनुप्रयोग बभूव बनानेकी प्रक्रिया पहलेकी तरह। गोपायामास, यहाँ अस् लिट्का अनुप्रयोग, द्वित्व अस् अस् हलादिशेष, णल्, उपधावृद्धिः, **गोपायामासिथ गोपायामासिम।** ये सभी रूप आयप्रत्ययसे बने। आर्धधातुकमें विकल्प होनेसे आयके अभावपक्षमें **जुगोप** रक्षणार्थकधातुसंज्ञक गुप्धातोः अनद्यतना दृष्टरक्षणक्रिया कालार्थे लिट् तिप् णल् अनुबन्धलोपे। द्वित्वे गुप्—गुप् अभ्यास-हलादिशेष। जुगुप् 'लघूपधगुणे' जुगोप। अतुस् उस् प्रत्ययपरे संयोगो नास्ति। असंयोगात् लिट् कित् कृते, गुणनिषेधे **जुगुपतुः जगुपुः।**

(६) **स्वरति** स्वृ शब्दोपतापयोः (आवाज करना, उपताप दुखदेना) सृति

अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम् ॥

गोपायाञ्चकर्थ गोपायाञ्चक्रथुः। गोपायाञ्चक्र। गोपायाञ्चकार गोपायाञ्चकर। गोपायाञ्चकृव। गोपायाञ्चकृम गोपायाम्बभूव गोपायामास। जुगोप जुगुपतुः जुगुपुः। स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्दितो वा ।७।२।४४। स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्द्धधातुकस्ये वा स्यात्। जुगोपिथ जुगोप्थ। गोपायिता गोपिता गोप्ता। गोपायिष्यति गोपिष्यति गोप्स्यति। गोपायतु। अगोपायत् गोपायेत्। गोपाय्यात् गुप्यात्। अगोपायीत्। नेटि

षू, प्राणिगर्भविमोचने। जीव को गर्भ से त्याग, पैदा करना। **सूयति** षू धातु भी प्राणी (जीव) के प्रसव अर्थ में। धूञ् कम्पने=काँपना, हिलाना। ऊदित् ऊ इत् हो। उन्हीं को स्वरत्यादि और ऊदित् कहते हैं। इनसे परे बलादि-वल् अक्षर आदि आर्धधातुकोक्त इट् विकल्पसे हो। अप्रत्यक्ष रक्षणक्रियाका कर्ता त्वं यदा स्यात्, तदा म० पुरुषस्य एकवचने सिप्, थल, द्वित्वादिकार्ये। अयम् ऊदित् धातुः। अतः 'स्वरतिसूति' सूत्रेण विकल्पेन इट्, **जुगोपिथ**। इट् अभावे **जुगोप्थ**। वस् मस् प्रत्ययपरेऽपि इट् विकल्पः। जुगुपिव **जुगुपिम**। जुगुप्व, जुगुप्म। **गोपायिता** रक्षणार्थक गुप् इत्यस्य धातुसंज्ञा (आयः आर्धधातुके वा) आय, लघूपधगुणे गोपाय इति अनेकाच्धातुः इट् अधिकारीति। अगामिदिने रक्षणक्रिया-वाचकात् लुट् 'स्यतासीलृटोः' इति तास् डा, अनुबन्धलोपे, टिलोपे विकल्प इट्। अतो लोपः आय प्रत्ययस्य अन्त्य अकार लोपे **गोपयिता**। यदा आय् प्रत्ययो न भवति, तदा सामान्य इट्। एकाजुपदेशे सूत्रेण निषेधे। तदा स्वरतिसूति सूत्रेण इट्। **गोपिता**। इट् अभावे **गोप्ता**। रक्षणक्रिया सामान्यरूप से भावी हो तब आय इत्। इन दोनोंके विकल्पसे तीन-तीन रूप आर्धधातुकलाकारों में बनेंगे। आय इट् होने पर गोपायिष्यति (आय् अभावे) **गोपिष्यति** (इट् अभावे, **गोप्स्यति**। **गोपायतु** सार्वधातुकलकारों में नित्य आय होने से एक ही रूप है। रक्षण अर्थ के विषयमें आज्ञा, प्रेरणा, आशीर्वाद होनेवाला हो तब लोट्। यदि रक्षा करने की क्रिया समाप्त हो चुकी हो। अद्यतन न हो। तब गुप् आय लङ्, अट्, ति शप, इकार लोप, अतोलोपे। सुदर्शनः अम्बरीषम् **अगोपायत्**। रक्षणक्रियाकी सम्भावना प्रकट हो या प्रवृत्ति कराना हो। तब बिधिलिङ्। **अगोपायेत्**। प्रत्येक शब्दों में प्रकृति अर्थ प्रत्यय अर्थ की सही परख हो। रक्षणविषयक आशीर्वाद अर्थकी शक्ति आय सहित **गोपाय्यात्**। रहित **गुप्यात्** में अनुभूत है। अत्र यासुडागमः। अतो न वलादिनिमित्तक इट्। आय पक्षे अतो लोपः इति आकार लोपे। द्वितीय पक्षे आशीर्लिङ् इति यासुट् कित् तेन गुणनिषेधः। सामान्य भूत-काले (समाप्त क्रिया) अर्थ में प्रसिद्ध लुङ् लकार रक्षणक्रियाके विषयमें तीन

।७।२।४। इडादौ सिचि हलन्तलक्षणा वृद्धिर्न स्यात्। अगोपीत् अगौप्सीत्। झलो झलि ८।२।२६। झलः परस्य सस्य लोपः स्याज्झलि परे। अगौप्ताम् अगौप्सुः। अगौप्सीः अगौप्तं अगौप्त। अगौप्सम् अगौप्स्व अगौप्स्म। अगोपायिष्यत् अगोपिष्यत् अगोप्स्यत्। क्षि क्षये। क्षयति। चिक्षाय चिक्षियतुः चिक्षियुः। 'एकाच' इति निषेधे प्राप्ते। कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि

प्रकारसे अनुभूत हैं (१) अगोपायीत्। गुप् आय लुङ् अट् तिप् इकार लोप सिच् इट ईट् सलोप अकार लोप (२) आय के अभाव पक्ष में सिच् को विकल्पइट्। हलन्त मानकर, गुण एवं उकार को वृद्धिप्राप्त है। तब (७) नेटि=इट् आदिमें हो ऐसे सिच् परे हलन्त मानकर वृद्धि नहीं होती। लघूपधगुणे अगोपीत् अगोपिष्टाम् अगोपिषुः। अगोपीः अगोपिष्ट। अगोपिषम् अगोपिष्म। सभी कर्ता समास रक्षण क्रियाकाल वाले होंगे। (३) अगौप्सीत्। यदा इट् न भवति तदा अगुप स ई त् इति स्थिते अत्र इटः ईटि इति न प्राप्नोति इटो अभावात्। नेटि इति वृद्धेः निषेधोऽपि न भवति। इडादिसिचो अभावात्। अगुप्सतां दशायां हलन्तलक्षणवृद्धिः। सिच्सकारस्य। (८) झलः=झल् प्रत्यहार से परे स् का लोप हो झलि परे। इति सलोपे। अगौप्ताम् अगौप्सुः। अत्र सिच्अभ्यस्त-विदिभ्यश्च इति झिस्थाने जुस् आदेशे कृते रूपं बनति। अगौप्सीः सिप् इकारलोपे। सकारस्य रु० वि०। एवम् थस् तम्, थ त सिज्लोप। मिप् स्थाने अम् कृते। अहम् अगौप्सम्-मैंने रक्षणकिया। वयम् अगौप्स्म। क्रियाके कार्यकारणभाव अर्थ का वाचक, लृङ् तीन रूप में अनुभूत हे। दिलीपः यदि कामधेनुं अगोपायिष्यत् तदा सन्ततिम् अलप्स्यत्।। आय नहीं अगोपिष्यात्। इट् नही अगोप्स्यात्)

(१३) क्षि धातु का अर्थ, क्षय=क्षीण नष्ट होना। यह अकर्मक धातु है, क्योंकि नाश फल उसके अनुकूलक्रिया धातु का अर्थ है। नाश् और क्रिया दोनों एकमें है जैसे—पाण्डुः क्षयति पाण्डुराजा क्षीण होते हैं। यहाँ क्रिया फल, दोनों का आधार पाण्डु है। गुप् धातु सकर्मक है। जुगोप गोरुपधरामिवोर्वीम् दिलीपः गोरुपधराम् उर्वीम् इव गां जुगोप ताँ ररक्ष। यहाँ रक्षारूपफल पृथ्वीके सदृश नन्दनी में है उसके अनुकूल क्रिया दिलीप में है। फल और क्रिया का आधार अलग-अलग होने से सकर्मक सिद्ध है। क्षयति। क्षि धातुसे क्षीणताके अनुकूल क्रिया के वर्तमान रहने पर कर्ता अर्थ में लट् ति सार्वधातुकसंज्ञा कर्तरि शप् शप्का कर्ता अर्थ सर्वत्र है। इकारस्य एकारगुणे, तस्य अयादेशे। द्विवचने यत्र द्वौ कर्तारौ तत्र तस्। क्षयतः क्षयन्ति त्वं क्षयसि,। यूवां क्षयथः यूयं क्षयथ। तुम सबका ह्रास (क्षय) होता है। अहं कुसङ्गात् क्षयामि। अवाम् अधिक घृतपानात् क्षयावः। वयं दुश्चरितत्रात् क्षयामः। क्षीण होनेकी क्रिया जब अनद्यतन अदृष्ठ-

७।२।१३। क्रादिभ्य एव लिट इण्न स्यात् अन्यस्मादनिटोऽपि स्यात्। अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ।७।२।६१। उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततः परस्य थल इण्न स्यात्। उपदेशेऽत्वतः ।७।१।६२। उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण्न। ऋतो भारद्वाजस्य ।७।२।६३। तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो नेट् भारद्वाजस्य मतेन। तेनान्यस्य स्यादेव। अयमत्र संग्रहः—

कालमें समाप्त हो चुकी हो तब क्षयार्थक क्षिधातोः समाप्त अदृष्ट नाश् क्रिया कर्ता अर्थे, लिट् ति णल् क्षि क्षि कि क्षि चिक्षि, द्वित्व, हलादिशेष, कुहोश्चुः, अभ्यासस्य उत्तरवर्तिन इकारस्य 'अचोऽञ्णिति' सूत्रेण वृद्धिः, आय् आदेशे **चिक्षाय चिक्षियतुः**। चिक्षि + अतुस् कित, तेन गुणनिषेधः। "अचि श्नुधातुभ्रुवाम्" इति इयङ् आदेशे। एवम् उसिपरे **चिक्षियुः**। चिक्षि थ इति दशायां बलादिलक्षण इट् प्राप्नोति। उसको एकाच् उपदेशे अनुदात्तात् से निषेध प्राप्त है।

(९) **कृ**=करना, सृ=गमन, भृ=मरण, वृ वरण, स्तु=प्रशंसा, द्रु=गतौ, स्नु=पसीझना, श्रु=श्रवण। क्रादिभ्य एव=केवल उक्तधातुओंसे पूरे लिट् को ही इट् न हो। यही नहीं, अपितु अन्यस्मात्=अन्य अनिट् धातुओं से भी इट् हो। सूत्र पठितधातुओं से इट् न हो। यद्यपि इट् निषेध एकाच उपदेशेसे सिद्ध है। सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिः नियमाय भवति। यह सूत्र नियम करता है कि क्रादिभ्यः एव लिट् इट् न स्यात्। कृ सृ भृ इत्यादि से ही लिट् को इट् न हो, अन्य धातु अनिट् भी हों, तो इट् हो जाय। क्षि धातु नियमके अनुसार क्रादि में न आने से अनिट् होने पर भी इट् हुआ। यह इट् विषयक नियम सूत्र है। (४८०) **अचः**=धातु उपदेशावस्थामें अजन्त हो तथा तास् प्रत्ययपरे नित्य अनिट्=इट् सम्भव न हो उस धातुसे परे थल् को इट् न हो। क्षि धातु उच्चारण काल में अजन्त है। तास् प्रत्यय (क्षेता) इत्यादि से अनिट् भी सिद्ध है। **यथा**—प्राप्त बलादिलक्षण इट्का अचस्तास्वत्थल्य से इट् निषेध। (१) **उपदेशे** धातुके प्रथम उच्चारण कालमें अत्वतः=अकारवतः अकारवान धातु हो और तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट् (इट् सम्भव न हो) उससे परे थल को इट् न हो। क्षि धातु उपदेश में अकारवान् नहीं है पच् लभ् आदि धातु उपदेशावस्थामें ही अकारवान् हैं। तास् में अनिट् भी है। अनुदात्त में गणना भी है, उपदेशावस्था का अकारवान् न कहते तो कृष आदि धातु गुणहोने पर कर्ष बनकर अकारवान् हो जाते हैं। उसकी निवृत्ति के लिए उपदेशका अकारवान् कहना आवश्यक है।

(२) **भारद्वाजमुनिका** अनुभव पाणिनी जी प्रगट करते हैं। भारद्वाज मुनि के मतमें तास् परे नित्य अनिट (कभी न इट्) होने वाला धातु केवल **ऋदन्तसे**

अजन्तोऽकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्॥ १॥

चिक्षयिथ चिक्षेथ। चिक्षियथुः। चिक्षिय। चिक्षाय चिक्षय। चिक्षियिव। चिक्षियिम। क्षेता क्षेष्यति। क्षयतु अक्षयत्। अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः

ही थल् को इट् न हो। तेन अन्यस्य स्यादेव=इससे सिद्ध है कि ऋषन्त से भिन्न जितने अकारवान् या अजन्त धातु है सबको इट् होता है। उक्त चारों का सारांश **अयमत्र संग्रहः** यहाँ संग्रह करते हैं अजन्त–इति। **अजन्त** धातु हो या अकारवान् जो तास् प्रत्यय परे अनिट् हो, तो थल् आदेशको विकल्प से इट् हो ऋदृङ्—इस प्रकार ऋदन्त=ऋकारान्त धातु हो, थलको नित्य इट् का निषेध हो। **क्राद्यन्यः** = कृ सृ आदि से भिन्न धातु लिट् परे थल, व म को इट् हो जाता है। साधारणतः थ व म को इट् प्रसिद्ध हैं। केवल थलके लिए भारद्वाजके मतसे विशेष नियम। ऋदन्त धातुको इट् का निषेध है। अन्य धातुओं को निषेध नहीं। पाणिनि मुनि के मत में अजन्त हलन्त अकारवान् सभी का निषेध, अनुदात्त होने पर करते हैं। इसलिए थल परे इट् विकल्प फलित है। अनेकाच् सदा सेट् हैं। किसी रूप में अनेकाच् हो, एकाच् धातुसंग्रह से निर्णय करें। प्रसङ्ग में क्षि धातु अजन्त है अनिट् भी। अतः भारद्वाजमते इट् हुआ। पाणिनिमते इट् नहीं हुआ। **चिक्षियिथ चिक्षेथ** क्षि इत्यस्य भूवादयो धातव। धातुसंज्ञा। लिट् सिप्, थल; द्वित्वे, अभ्यास, हलादिशेषे कुहोश्चुः। इट्विकल्पे, गुणः सिप् पित् अस्ति। अतो न कित्। न गुणनिषेधः। इट् पक्षे एकारस्य अयादेशे। इति विवेकः। द्विवचने अथुस् चि क्षि + अथुस्। अपित्लिट् किद्भवति। अतः गुणनिषेधः, इयङादेशे रु० वि०। **चिक्षियथुः**। यूयं **चिक्षिय**-तुम लोगोंका पहले ही अदृष्ट विनाश हुआ। वस् मस् में भी गुण नहीं किन्तु इयङ्। तत्र नित्य इट्। क्षेता क्षेतारौ क्षेतारः परश्वः परतरश्वः विनाशो भविता। एकाच उपदेशे इति इट् निषेधः, गुणे लुट् तिप्तास् पूर्ववत्। **क्षेष्यति** क्षेष्यसि क्षेष्यामि क्षेष्यामः कस्मिश्चित्काले नाशो भविष्यति। क्षयतु क्षयतात् क्षयतां क्षयन्तु। क्षय क्षयतं क्षयत। क्षयानि क्षयाव-म। (रक्षसनं नाशो भवतु) पापमक्षयत् ह्यः। यदि पुण्यं कुर्यात् तर्हि पापं क्षयेत्। संभावनायां लिङ्।

(३) **अकृत्**—अजन्त अङ्ग को दीर्घ हो यकारादि प्रत्ययपरे। वह यकारादि-कृत् प्रत्यय तथा सार्वधातुक प्रत्ययरूप न हो तो। **क्षीयात्** क्षयार्थक क्षिधातोः, आशीर्लिङ् तिपि यासुट् = यास् इति यकारादिप्रत्ययपरे अजन्ताङ्गस्य इकारस्य दीर्घे। इतश्च इकारलोपे क्षीयात् तव अज्ञानम्। **सञ्चित्य**। कृत् का उदाहरण है। सम् पूर्वक चिधातु से क्त्वा को ल्यप् होनेपर दीर्घ होता तो

।७।४।२५। अजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्याद् यादौ प्रत्यये, न तु कृत्सार्वधातुकयो। क्षीयात्। सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ।७।२।१ इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः परमैपदे। सिचि। अक्षैषीत्। अक्षेष्यत्। तप सन्तापे। तपति। ततापं तेपतुः तेपुः। तेपिथ ततप्थ। तप्ता तप्स्यति। तपतु। अतपत। तपेत् तप्यात्। अताप्सीत् अताप्ताम् अतप्स्यत्। **निरस्तपतावनासेवने** ।८।३।१०२। षः

ह्रस्वनिमित्तक तुक् न होपाता। अतो निषेध आवश्यकः। **चिनुयात्** में यासुट् यकारादि है। किन्तु सार्बधातुक होने से दीर्घ नहीं हुआ। (४) **सिचि** इक् हो अन्तमें ऐसे अङ्गको बृद्धि हो परस्मैपदसंज्ञक सिच् परे। इगन्ताङ्गस्य में षष्ठीविभक्ति देखकर अलोन्त्यपरिभाषा से अन्त्य अल् वर्ण इक्=इ उ, ऋ ऌ को वृद्धि हो। **अक्षैषीत्** क्षीणअर्थमें प्रसिद्ध क्षिधातोः भूतकाले (समाप्त क्षयक्रिया) कर्ता अर्थे लुङ् अट् तिप् सिच् 'अस्ति सिचोऽपृक्ते' इति ईट् इकारलोपे अक्षि-सत् अत्र 'क्षि' इत्यस्य अङ्गसंज्ञा, इगन्तो अङ्गः 'क्षि' इति, तस्य अन्त्य अल् इ' स्थाने वृद्धिः, परस्मैपदे सिच् परे अस्ति, षत्वे। द्विवचने तस ताम्। उक्षैष् ताम्। षत्वे ष्टुत्वे **अक्षैष्टाम् अक्षैषुः**। अत्र सिच् अभ्यस्तविदिभ्यश्च झि स्थाने जुस्। **अक्षैषीः अक्षैष्टम् अक्षैष्ट** क्षय क्रिया समाप्त हो, वह म० पु० के कर्ता में हो, **अक्षैषम् अक्षैष्व अक्षैष्म**। उ० पु० कर्ता में समाप्त क्षयानुकूल क्रिया। लृङ् यदि यक्ष्मा **अक्षेष्यत्** तदा स्वास्थ्बमअलप्स्यत्। (१४) **तप्** धातुका सन्ताप दुःख क्लेश कष्ट सहने के अनुकूल क्रिया अर्थ है। **तपति**-सन्ताप अर्थ वाला तप् धातु से तपन जलन क्लेश क्रिया चल रही हो तो वर्तमने कर्तरि लट् एकवचने ति शप् अनुबन्धलोपे तपतः तपन्ति तपसि, तपथः तपथ। तपामि तपावः तपामः **ततापं** सन्ताप, दुख कष्ट होनेकी क्रिया अनद्यतन अप्रत्यक्षरूपसे समाप्त हो तब लिट् प्रथमपुरुष एकवचने तिप्, णल्=अ एकाच तप् धातोः द्वित्वे, तप्-तप् अभ्यासादिकार्ये, ततप, उपधा वृद्धिः **ततापं तेपतुः** ततप्-अतुस्, पित्भिन्न लिट् कित् है। अतः एकहल्मध्ये अनादेशादेर्लिट् सूत्रसे आदेश रहति तप् के अ को एकार अभ्यास लोप् रु० बि० **तेपुः**। थल्परे 'थलि च सेटि' सूत्रेण इट् पक्षे एत्वाभ्यास-लोपौ भवतः **तेपिथ**। तप् धातुः नित्य अनिट है अकारवान् भी, थल् में इट् विकल्प, यदा न इट् तदा **ततप्थ**। **तप्ता** आगामिदिने दुःखसहनकर्त्ता। अत्र इट् न भवति एकाचउदेश इति निषेधात्। **तप्स्यति**। स दुःखसहनं करिष्यति। **तपतु** तपतां तपन्तां तप तपतं तपत, तपानि तपावः सन्ताप सहन करो। विधि प्रेरणा अर्थे लोट् अपतत् अपतान् अपतन् पहले दिन ही सन्ताप सहन समाप्त क्रिया काल **अतपः अतप्तम्** अतप्त **अत पम्** तपेत् तपेपां तपेयुः तपेः तपेतं तपेत-तपेयं तपेवम। दुखं सहेत्। प्रेरणा, निश्चय, संभावना, अर्थे लिङ्। **तप्यात्** तपस्याविषयके

स्यात्। आसेवनं = पौनःपुन्यं, ततोऽन्यास्मिन्विषये। निष्टपति। **कमु पादविक्षेपे।** वा भाशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः। ३।१।७०। एभ्यः श्यन्वा, कर्तरि सार्वधातुके। पक्षे शप्। **क्रमः परस्मैपदेषु** ।७।३।७६ क्रमे-दीर्घः, परस्मैपदे शिति। क्राम्यति क्रामति। चकाम। **स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते** ।७।२।३६। **अत्रैवेट्।** क्रमिता क्रमिष्यति। क्राम्यतु क्रामतु। अक्राम्यत् अक्रामत्। क्रामेत्। क्राम्यात्। अक्रमीत् अक्रमिष्यत्। **चमु छमु**

आशीर्वादे अर्थे लिङ्। पार्वती तप्यात् तदा शिवं प्राप्नुयात्। **अताप्सीत्** अताप्ताम् अताप्सुः अताप्सीः अताप्तम् अताप्त। अताप्सम् अताप्स्व अताप्स्म। सन्तानार्थक तप् धातोः समाप्तपन क्रिया कर्ता अर्थे लुङ् अट् तिप् च्लि सिच् ईट् आगमे। वदव्रज हलन्तस्याच इति अङ्ग अकारस्य वृद्धि। यदा अतप्यत् तदा फलम् अलप्स्यत अर्थ

१७४ (११) **क्रमु पादविक्षेपे** उकार इत्संज्ञकक्रमधातु-क्रम से पैर का आगे बढ़ाना अर्थ। पादविक्षेपार्थक क्रम्धातोः प्रचलित क्रिया कर्ता अर्थे वर्तमाने लट् तिप् शप् पक्षे श्यन तत्र सूत्र।

(४८५) वा विकल्प से, भ्रास प्रकाश, भ्लाश चमकना, भ्रम भ्रमण करना क्रम पैर बढ़ाना, क्लम खिन्न होना, त्रस-उद्विग्न होना, डरना। त्रुट् टूटना, लष् अभिलाषा करना, इन धातुओं से श्यन् शपभी हों कर्ता अर्थ में सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो। श्‌रे इत् यशेष (६) क्रमधातु के अच् को दीर्घ हो परस्मैपदका शिहो तो। इति क्रमः अकारस्य दीर्घ **क्राम्यति क्रामति** क्रामातः क्रमान्ति। क्रामामि क्रामाव-मः। क्राम्यति क्राम्यसि क्राम्यथः शप् श्यन् दोनों शित् हैं दोनों को दोर्घ हुआ। आत्मनेपदमें दीर्घ न हो, इसलिए परस्मैपद का अप्रत्यक्ष रुपसे समास-पादविक्षेप क्रिाया कर्ता अर्थ में लिट्। क्रमक्रम कुहोश्चुः दीर्घ। **चक्राम चक्रमतुः चक्रमुः।** चक्रमिथ **चक्रमथुः चक्रम चक्रामाव** धातु के बहुत अर्थ होते हैं उनमेंसे एक अर्थ प्रसिद्ध होता है। अन्य अर्थो का प्रकाशक उपसर्ग है शुरू करना, प्रारम्भ करना, अर्थ में प्र या उप उपसर्ग लगने से प्रक्रमते उपक्रमते में शक्ति आ जाती है। आ उपसर्ग-आक्रमण, सं संक्रमण, परा वीरता आदि अर्थ के प्रकाशक हैं स्वः **क्रमिता।** सदा क्रमिष्यति अग्रसरो भविष्यति। **क्राम्यतु-क्रामतु** धर्म की तरफ चलो। **अक्रामत्, अक्राम्यत्** अन्धकार से प्रकाश की तरफ चल। क्राम्येत् (गच्छेत्) या गमनं कुर्यात् **अक्रमीत्** (पादविक्षेपम् अकार्षीत्) अक्रमिष्टाम् अक्रमिषुः अक्रमीः क्रम इत्यत्र हलन्तलक्षण वृद्धिर्न 'ह्म्यन्तण' इति निषेधात्। **अक्रमिष्यत्** तदा विजयोऽभविष्यत्।

उ इत चम छम जम झम धातुका अदन भक्षण खाना पीना अर्थ। (२०) ष्ठिवुः निरसने आदि धातुओंके अच्को दीर्घ हो शित्–श श्यन् आदि परे रहते

जमु झमु अदने। ष्ठिवुक्लमुचमां शिति ।७।३।७५। एषामचो दीर्घः स्याच्छिति। (आङि चम इति वक्तव्यम्। आचामति। आङि किम्? चमति। विचमति। अचमीत्। स्खल संचलने। स्खलति चस्खाल। अतो ल्रान्तस्य ।७।२।२। अतः समीपौ यौ ल्रौ, दतन्तस्याङ्गस्यातो वृद्धिः,

---

(वा०) **चम** धातुको आङ् पूर्वक रहने पर ही दीर्घ हो। शमामष्टानांसे दीर्घ आया। जिसे सुनकर अचश्च नियमसे अच उपस्थित हुआ। **आचामति**–आङ् पूर्वक चमधातोः भोजनक्रिया वर्तमानकालके कर्तामें लट् ति शप्। उक्तसूत्रसे दीर्घ। आङि पूर्वमें हो ऐसा क्यों? चमति खाता, विचमति विशेष भोजनकी क्रिया। यहाँ दीर्घ न हो, आङ् के न होनेसे। अचम इस ईत्। इट ईटि सलोप, दीर्घ, हमय अन्त धातुको वृद्धि नहीं होती। जो अतो हलादेःसे प्राप्त थी। **अचमीत्** अचमिष्टाम् अचमिषुः अचमीः अचमिष्टम् अचमिष्ट, अचमिषं अचमिष्व अचमिष्म। छमति अछमीत्।

स्नु और क्रम धातुके आत्मनेपदका कारण न हो तभी वलादि आर्धधातुक इट् होता है। स्नु क्रम अनुदात्तोपदेशके भीतर नहीं है। इट् होगा। सिद्धे सति आरम्भविधिः नियमाय कल्प्यते। इस सूत्रने नियम किया—अत्रैव=कर्तरि प्रत्ययमें इट् हो। अर्थात् भाव कर्ममें लकार हो तो इट् नहीं होता।

स्खलति–लड़खड़ाके चलना। स्खल स्खल शर्पूर्वा खयः चस्खाल स्खलिष्यति स्खलतु अस्खलत् अस्खालीत् अस्खालिष्टाम् अस्खालिषुः। त्सरति कपट गति, कुटिल चाल छद्मना कपटेन गति-छद्मगतिः। परोक्ष बीता भूतकालमें कुटिल क्रिया हो चुकी हो कर्तामें लिट् आदि। तत्सार। अत्सरेत्। लुङ् ति सिच् अट् इट् ईट् इट ईटि सलोप दीर्घ। **अत्सारीत्** अत्सारिष्टां अत्सारिषुः।

ल्रान्त क्यों? मा भवान् अतीत् यहाँ वृद्धि न हो।

(१६) **पाधतु** का पाने रस जल दुग्ध आदि तरल पदार्थ पीने, गले नीचे उतरनेके अनुकूलक्रिया अर्थ है। (७) **पाघ्रा पदीनां**=पा, घ्रा इत्यादि को पिब जिघ्र इत्यादि आदेश क्रमसे हो। इत्संज्ञक शकारवाला प्रत्यय परे हो तो। जैसे शप् इत्यादि, पा को पिब, घ्रा-जिघ्रा, ध्मा-धम, स्था-तिष्ठ, म्ना को मन, दाण—यच्छ, दृश पश्य। ऋ-ऋच्छ, सृ- धौः, शद्-शीय, सद्-सीद् आदेश हो शित् परे। 'पा' के स्थान में आदेश पिब अदन्त–अकारान्त है। तेन= इसलिए न लूघूपधगुणः, पानार्थक धातुसंज्ञक पा धातोः वर्तमानकालिक पाना क्रियाकर्ता अर्थे लट् ति-सार्वधातुकसंज्ञा कर्तरि शप् अ परे पाघ्राध्मा आदि सूत्रेण पा स्थाने पिब आदेशे। अतो गुणेपररूपे **पिबति पिबतः पिबन्ति। पिबसि पिबथः पिबथ। पिबामि पिबावः पिबामः।** जहाँ शप् होगा वहाँ पिब के साथ अतोगुणे से पररूप एकादेश अवश्य होगा।

परस्मैपदपरे सिचि। अस्खालीत्। अस्खलिष्यत्। त्सर छद्मगतौ। अत्सरीत्। पा पाने। पा-घ्रा-ध्मा-स्था-म्ना-दाण्-दृश्य-र्ति-सर्ति-शद-सदां पिब-जिघ्र-धम-तिष्ठ मन-यच्छ-पश्य-च्छ-धौ-शीय-सीदाः ७।३।७८। पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये परे। पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः। पिबति। आत औ णलः ७।१।३४। आदन्ताद्धातोर्णल औकारदेशः स्यात्। पपौ। आतो लोप इटि च ।६।४।६४। अजाद्योरार्द्धधातुकयोः क्ङिदिटोः

(८) आत आकारान्तधातु से परे णल् के स्थानमें औ आदेश हो। पपौ = पीनेकी क्रिया आज अर्धरात्रिसे पहले की हो ऐसे परोक्षकाल कर्ता अर्थ में पा धातोः लिट् तिप् णल् अनुबन्धे लोपे, द्वित्वे=पा पा अभ्यास ह्रस्व 'पपा' 'आत् औ णलः' इति णल् स्थाने औ। पपा + औ ततः वृद्धिः एकादेश। (९) आतो आर्धधातुके अचि क्ङिति अनुवर्तते। अच् इति विशेषणं तदादिविधिः अजाद्योः= अजादि हों, आर्ध धातुकसंज्ञक हों, ऐसा कित् ङित् प्रत्यय और इट् भी परे हो, तब धातु का अवयव आ का लोप हो। पानार्थकपाधातोः द्विवचने लिट् तस्= अतुस्। लिट् च आर्धधातुकसंज्ञा, इट् आगमः मित्रवत् तिष्ठति) यदागमाः तद् ग्रहणेन गृह्यन्ते। इट् सहितः अर्धधातुकसंज्ञक का ग्रहण हुआ है। पपा + अतुस् यहाँ क लिट् तिप् सिप् मिप् से भिन्न है। अतः अपित् लिट् कित् हुआ। संयोगपरे न हो। अतुस् अजादिकित् आधधातुक है अतः पाधातोः आकारस्य लोप। रुवि पपतुः पपुः बहुवचने उस्। म० पु० के थल् को इट् इट्परे आलोप। अजन्त आकारवान् अनिट् होने से थलि परे इट्, इट् परे आलोपः पपिथ। यदा न इट् तदा नहि आलोपः पपाथ पपथः पप वस् मस, परेऽपि इट् आगमे आलोपे (पपौ निमेषालस पक्ष्मपङ्क्तिः) श्वः जलं पाता। सदा अमृतं पास्यति भवान् गङ्गोदकं पिवतु पिबतात् पिबतां पिबन्तु पिबानि पिवावम पान क्रियार्थक पाधातुः भूतकाल (समाप्तपानक्रिया) कर्ता अर्थे अनद्यतने लङ् अट् ति श पिब आदेशे, अतोगुणे पररुपे, अपिबत् अपिबताम् अपिबन् अपिवः अपिबतम् अपिव त अविबम् पान क्रिया के लिए सम्भावना, आज्ञा, प्रार्थना, सत्कार, आदि, अर्थ में लङ् 'पा पिब, शप्, यास् त् इय गुणे पिबेत् पिबेतां पिबेयुः। पिबेः पिवेतं पिबेत।

पिबेयं पिबेव।

एर्लिङ घूसंज्ञक दा धा धातु, मा, स्था, आदीनां गा पा हा सन्, इन धातुओं को एत्व हो आर्धधातुक कित् लिङ् परे। अन्त्य अल् के स्थान में (आलोन्त्यस्य) पेयात् पान क्रियाविषयकआर्शीर्वादार्थे लिङ् यास् त् किदाशिषि, इति कित्। आर्धधातुके इति लिङ् परे अलोन्त्यपरिभाषया पा आकारस्य एकारे। पानक्रिया किसी समयसमाप्त हो, इस अर्थ में लुङ् तिप् त् अट् अपास्त्। गातिस्थाघूपाभूभ्यः

परयोरातो लोपः। पपतुः पपुः। पपिथ पपाथ पपथुः पप। पपौ पपिव पपिम। पाता पास्यति। पिबतु अपिबत्। पिबेत्। एर्लिङि ।६।४।६७। घुसंज्ञानां मास्थागापिबतिजहातिस्यतीनां चाऽऽत एत्वमार्द्धधातुके किति लिङि। पेयात्। 'लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुवकरणस्यैव ग्रहणं' तेन 'पा-रक्षणे' इत्यस्य नैत्त्वम्। 'गातिस्थे'ति सिचो लुक्। अपात्। अपाताम्। आतः ।३।४।११०। सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस् उस्यपदान्तात् ।६।१।९६। ग्लायति आदेच उपदेशेऽशिति ।६।१।४५। उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्त्वं,

---

अपदान्ता दवर्णादुसि पररूपमेकादेशः। अपुः। प्रपास्यत्। ग्लै म्लै हर्षक्षये। सूत्र से सिच् का लुक्। आपात् अपाताम् अपुः। (१) आतः सिच् के लुक् होने पर ही अकारान्त धातु से झि को जुस् सिद्ध था। तथापि आरभ्यमाण० 'आतः' सूत्र नियम क्रिया कि आकारान्तभिन्न धातुओं से झि को जुस् हो। यद्यपि पूर्वसूत्र (सिच् अभ्यस्तविदिभ्यचसे झि को जुस् सिद्ध था। तथापि आरभ्यमाण० 'आतः' सूत्र नियम क्रिया कि अकारान्तभिन्न धातुओं से झि को जुस् न हो। अपा उस् दशायाम् (२) अस्य जो पदान्त न हो ऐसे अकार से 'उस्' परे पररूप एकादेश हो। इति पररूपे। अपुः। अपाः अपातम् अपात। अपाम् अपाव अपाम। अपास्यः अपास्यतम् अपास्यत अपास्यम् अपास्याम।

(१६) ग्लै धातुका हर्षक्षय धातु क्षय, प्रसन्नता नाश, ग्लानिकी क्रिया अर्थ है। (गरै ग्लानि कुटिल कैकेयी) यहाँ फल हर्ष नाश या ग्लानि को पैदा करने वाली क्रिया दोनोंके कर्त्तामें होने से अकर्मक ग्लै धातु से प्रसन्नता क्षय क्रिया वर्तमान हो तब कर्तामें लट् ति श अ आय् आदेशे ग्लायति ग्लायतः ग्लायानि ग्लायसि ग्लायामि ग्लायावः-म। दुःखे निमज्जति ग्लानि में डूबता है।"

(३) उपदेशे प्रथम उच्चारणदशा में एदन्तस्य=ए ओ ऐ औ अन्त में धातु को आव हो शित्प्रत्यय परे न हो किन्तु शित्का विषय हो, अन्त्य अल्को ही आत्व हो। जग्लौ। हर्ष प्रसन्तानाश के अनुकूल क्रियाथक ग्लैधातोः परोक्ष भूतकाले समाप्तनाश क्रिया कर्ता लिट् ति,णल्, अत्र शित्परे नास्ति। प्रथम-उच्चारण दे शायाम् एजन्तग्लै, अन्त्य अल् ऐ तस्य स्थाने आ। ग्ला अ द्वित्वे ग्ला ग ग्ला। कुहोश्चुः 'आत औ णल' इति णल्स्थाने 'औ' जग्ला औ एका-देशवृद्धिः जग्लतुः जग्लुः जग्लिथ जग्लथुः जग्ल जग्लौ जाग्लिव-म। यत्र शप् तत्र शित तत्र शिप् इति मिलति तत्र आत्वं न भवति। ग्लाता (श्वः परश्वः वा ग्लानिनिर्भविता) लुट् तिप् डा तास् आत्वम्। ग्लास्यति कष्टं दुखं सहिष्यति ग्लास्यतः ग्लास्यन्ति ग्लास्यसि ग्लास्यामि। ग्लानिजनकक्रिया किसी समय होगी। ग्लायतु=तस्य हर्षक्षयो भवतु। लोट् ति शप् अत्र शप् भवति

न तु शिति । जग्लौ । ग्लाता । ग्लास्यति । ग्लायतु । अग्लायत् । ग्लायेत् । वाऽन्यस्य संयोगादेः ।६।४।६८। घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वा, आर्द्धधातुके किति लिङि । ग्लेयात्-ग्लायात् । यमरमनमातां सक्च ।७।२।७३। एषां सक्स्यात्, एभ्यः सिच इट्, परस्मैपदेषु । अग्लासीत् । अग्लास्यत् एवं म्लायतीत्यादि । धेट् पाने । धयति । दधौ । धाता ।

शित् परे अस्ति । आत्वं न भवति । अग्लायत् = पूर्वदिने दुःखम् अकरोत् अग्लायताम् अग्लायन् । अद्यतनभिन्नसमाप्तग्लानि क्रिया भूतकाले अर्थे लङ् । ग्लायेत् = धातुक्षयर्थक ग्लैसे क्रिया की सम्भावना, विधि, प्रवर्तना निश्चय प्रार्थना की सम्भावना में लिङ् ति यास् इय् शप् अ य् आदेशे गुणे यलोपे । ग्लायेतां ग्लायेयुः ग्लायेः ग्लायेतं ग्लायेयम् ।

(४) वाऽन्यस्य = घू मा स्था इत्यादि धातुसे भिन्न संयोगादेः = संयोगके आदिवाला धातु के आतः आकारको एकार विकल्पसे हो, आर्धधातुककित् लिङ् परे हो तो। यथा ग्लेयात् पश्चातापं कुर्यात् । यहाँ ग्लै धातु घू मा स्था आदिसे भिन्न है तथा संयोगादि हैं, आशीर्वादार्थकलिङ् आर्धधातु कित् है विकल्पसे एत्व ग्लेयात् । यदा न एत्व तदा ग्लायात् अत्र न शप्, न शित् परे अस्ति । आत्वं न भवति । ग्लेयास्तां ग्लेयासुः । ग्लायाः ग्लायास्तंग्लयास्त ग्लायासं ग्लायास्व म ।

(४९५) यम (इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकना) रम रमणकरना क्रीडा, नम्=नमस्कार, नम्र होना और आताम् अकारान्त धातुको सक् (स) आगम हो । एभ्य - इनधातुओंसे परे सिच्को इट हो परस्मैपदके विषयमें सक्धातुको हो । इट् सिच् अम्लासीत् हर्षक्षयम् आकर्षीत् । प्रसन्नतानष्ट के अनुकूलक्रियावाचक ग्लैधातोः लुङ् तिप् त् 'आदेच उपदेशे' इति आत्वम्, अट्, च्लि, सिच्, 'अस्ति-सिचो' ईट यमरमनमाताम् इति सक् स, इट् इ अग्लास् इस्ईत् दशायाम् इट ईटिपरे सलोप, सवर्णदीर्घ अग्लासिष्टाम् अग्लासिषुः । अग्लासीः अग्लासिष्टम् अग्लासिष्ट । अग्लासिषम् अग्लासिष्व अग्लासिष्म । सबका स शेष है । अपृक्त हल् परे रहते ही ईट् तब इट ईटिसे सलोप । जहाँ अपृक्त हल् नहीं, वहाँ ईट् सिच् लोप नहीं । यदि अग्लाष्यत् पश्चात्तापम् अकरिष्यत् तदा अपराधक्षयोः

म्लायति–धातुक्षयसे मन मलिन, प्रसन्नताहीन हो, शप् आय म्लायतः म्लायन्ति । म्लायसि म्लायामि म्लायावः । मम्लौ मम्लतुः । मम्लुः मम्लिथ मम्लाथ मम्लिव मम्लिम । म्लाता म्लास्यति म्लायतु अम्लायत् । म्लायेत् अम्लासीत् । द्यैका तिरस्कार अपमान त्यागार्थं द्यायति–त्यागता है । दद्यौ अद्यासीत् । द्रायति सोता है । अद्रासीत् । घ्रायति तृप्त होता है । अध्रासीत् ध्यायति चिन्तन मनन ध्यान करता है । ध्यायतः ध्यायन्ति ध्यायसि ध्यायामि । दध्यौ ध्याता

धास्यति । धयतु । अधयत् । धियेत् । दाधा घ्वदाप् १।१।२०। दारूव, धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दाप्दैपौ विना । धेयात् । विभाषा धेट्श्व्योः ।३।१।४९। आभ्यां च्लेश्चङ् वा । चाङि । ६।१।११। अनभ्यासधात्ववयवस्य प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽनादेर्द्वितीयस्य । अदधत् अदधताम् अदधन् । विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ।२।४।७८। एभ्यः सिचो लुग्वा स्यात् परस्मैपदे । अधात् अधाताम् अधुः ।

धेट् धातुका पान-पीनेके अनुकूल क्रिया । पानजनकव्यापारः । टत् का फल स्तनन्धयीमें ङीप् होना । पानार्थक धेट धातुसे वर्तमानकालिक पीने क्रियाके कर्ता में लट् ति शप् । धे अति । अय आदेश । **धयति** जयतः धयन्ति धयसि धयथः धयथ धयामि । पानक्रियासहित कर्ताको न देखा हो किन्तु क्रिया हो चुकी हो । धे धातुसे परोक्षे लिट्-ति णल् । धे अ दधा औ वृद्धौ । दधौ दधतुः ।

धाता । पीने अर्थवाचक धातुसे लुट् ति तास् । आत्व आदि । एक कर्तामें अद्यभिन्नभविष्यकालिक पान किया । धातारौ धातारः । धातासि धातास्थः धातास्थ । धातास्मि धातास्म । धास्यति दुग्धं । पीयेगा । धयतु धयतात् धयतां धयन्तु । धय धयतात् धयतं धयत । धयानि धयाव धयाम । अधयत अधयाम । धयेत् धयेतां धयेयुः । अहं धयेयम् आशीर्लिङ्में धे को संज्ञाकार्यके लिए लिए संज्ञासूत्र । (दाधा) दारूप धातु चार है डुदाञ् दाने, दाण् दाने, दोऽवदाण्डने, देङ् रक्षणे, लाक्षणिक दा । धा से डुधाञ् धारणपोषणयोः धेट पाने, लाक्षणिकके भी ग्रहण । गामादाग्रहणेषु—अविशेषः दा से धा मान्य । दाश्च धौ च दाधा धेयात् । पानार्थक धे धातुसे पीनेकी शुभकामना अर्थमें लिङ् ति यास् । आदेच उपदेशे से आत्व । घुसंज्ञा एत्व धेयात् पानक्रिया विषय शुभकामनाके पात्र दो हो—धेयास्ताम् बहुत हो—धेयासुः ।

(२३७५) विभाषा—धेट और श्वि धातुसे परे च्लि को चङ् हो कर्ता अर्थक लुङ् परे । अधा अत् । चङि द्वित्व आदि । आलोप, **अदधत्** अदधताम् अदधन् । अदधः अदधतम् अदधत । अदधम् अदधाव अदधाम । जब न चङ् । सिच् । अधा सत् । सिच् लोपका सूत्र । ७६ । **विभाषा** ण्यक्षत्रियार्ष से लुक्, गातिस्था से सिच् और परस्मैपद आये । एभ्यः=घ्रा गन्धोपादाने धेट् पाने, शो तनूकरणे, छो छेदने, षो अन्तकर्मणि, इन धातुओंके आत्व होने पर सिचि का वा लुक् हो परस्मैपद परे । लुक् हुआ । अधात् जलं । वह पानी पी गया । पीनेवाले दो हो अधाताम् अधुः उस्यपदान्तात् पररूप । अधाः अधातम् अधात । अधाम् अधाव अधाम हमलोग पी गये । जब न सिचि लुकि तब । इडत्यर्ति-से इट् । इस सूत्रसे सक् इट् हुआ । अधा स् इ स् ईत् । इट ईटिसे सिच्का लोप । दीर्घ । अधासीत् । अधासीः अधासिषम् अधासिष्व अधासिष्म ।

पक्षे इटसको अध्यासीत् अध्यासिष्टाम् अध्यासिषु:। द्यै न्यक्करणे। द्यायति द्रै स्वप्ने। द्रायति। ध्रै तृप्तौ। ध्रायति। ध्यै चिन्तायाम् ध्यायति दध्यौ, रै शब्दे रायति। स्त्यै ष्ट्यै शब्दसङ्घातयो: स्त्यायति। षोपदेशस्यापि सत्वे कृते रूपं तुल्यं, षोपदेशफलं तु तिष्ठ्यासतीत्यादो भविष्यति, खै खदने। खायति। क्षै जै षै क्षये क्षायति। जायति सायति। घुमास्थेत्यत्र विभाषा घ्राधेट् इत्यत्र च स्यतेरेव ग्रहणं न त्वस्य, तेन एत्वसिज्लुकौ न, सायात। असासीत। कै गै शब्दे। शै श्रै पाके। पै ओवै शोषणे। पायात्, अपासीत्। घुमास्थेतीत्वं, तदपवाद एलिङीत्येत्वं, गातिस्थेति सिज्लुक् च न लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणमिति पायस्य लाक्षणिकत्वात ष्टै वेष्टने स्तायति। स्नै वेष्टने, शोभायां चेत्येके। स्नायति, दैप शोधने। दायति

षत्व आदि। ९१२ **खायति** भरता है। क्षायति चक्षौ अक्षासीत्। सबका क्षय ह्रास अर्थ। जायति नष्ठ होता है। जा जा जजा- आत औ णल:। जजौ सायति अस्त हो रहा। ससौ ससतुः ससुः अस्त हो गया। सास्यति क्षय होगा। सायतु असायत् सायेत्। सायात्। एवं सिच् लुक् नहीं होता। घुमासस्था सूत्र (षो अन्त कर्मणि श्यन) की धातुको एत्व करता है। विभाषा घ्राधेट् शाच्छास:में भी तथा। इस धातुका ग्रहण नहीं। असासीत् असासिष्टां असासिषुः क्षय क्रिया। कायति गायति गानेकी आवाज अर्थमें। गायतः गायन्ति। गायसि गायथः गायथ। गायामि गायावः गायाम' ककौ जगौ जगतुः जगुः वे गान किये। जगिथ जगाथ जगथुः जग जगिव जगिम गाता गास्यति। गायतु गाय। गायानि गायाव गायाम। अगायत गायेत् अगासीत्। (सक् इ स ई त्) अगासिष्टाम् अगासिषुः। अगासीः अगासिष्टं अगासिष्ट। अगासिषं। शायति श्रायति पकाता है। अश्रासीत् अशासीत्। ९२० **सायति** वायति शोषण करना पपौ ववौ। परोक्षकालमें शोषण किये। पाता वाता। पास्यति वास्यति। पायतु वायतु वानम् शुष्कं, क इत्का फल तको न। शुष्के वानमुञ्छे त्रिषु इत्यमरः पायात् पायास्तां पायासुः। अपासीत् वस्त्रं, कपड़ा सुखाया। आवासीत् कुसुमं। यह पा लाक्षणिक है। लक्षण—सूत्रसे आत्व हुआ है अत: घूमास्था गा पा से इत्व। का वाधक एलिङ् और गतिस्थासे सिच् लुक् नहीं होता। अतः कहा पा का रूप लक्षण प्रतिपदोक्तपरिभाषासे पा लिया जायगा। पैको आत्व करके नहीं, स्ते धातु आदिमें ष स। वेष्ठने लपेटना है। अस्तासीत्। स्नायति षोपदेश लपेठना शौच शुद्धि स्नान अर्थ मतभेदसे। स्नासीत्। दैपका शोधन शुद्ध होने की क्रिया, दायति संशोधन करता है। ददौ दाता दास्यति दायतु अदायत् दायात् : अघुत्वात्=घूसंज्ञाके निषेधसे एत्व नहीं। अदासीत्में सिच् लुक् नहीं होता। शोधन मंजनेन दन्तान् अदासीत्। स्वच्छ किया।

घ्राका सूंघना। गन्धग्रहक्रियावाचक अतएव धातुसंज्ञक घ्रा से वर्तमानकालिक कर्तामें लट् शप् घ्रा अ ति श त् का विषय है। पाघ्राध्मासे घ्राको जिघ्र आदेश। जिघ्रति एक कर्तामें वर्तमानगन्ध ग्रहणक्रिया। जिघ्रतः जिघ्रन्ति। जिघ्रसि जिघ्रथः जिघ्रथ। जिघ्रामि जिघ्रावः जिघ्रामः। यदि सूंघना क्रियासहितकर्ताको न देखा हो भूतकाले ति णल् और। घ्रा घ्रा धघ्रा। आलोप जघ्रौ जघ्रतु जघ्रुः। भारद्वाज नियमसे वा इठ। जघ्रिथ जघ्राथ जघ्रथुः जघ्र। जघ्रौ जघ्रिव जघ्रिम। क्रादि नियमसे नित्य इठ। परश्वः घ्राता परसो सूंघेगा घ्रातासि घ्रातास्मि। घ्रास्यति घ्रास्यसि घ्रास्यामि। जिघ्रतु गन्ध ग्रहण करो। अहं जिघ्राणि। अजिघ्रत् सूंघ

अघुत्वादेत्वसिज्लुकौ न। दायात् अदासीत्। घ्रा गन्धोपादाने। जिघ्रति। घ्रायात् घ्रेयात्। अघ्रसीत्। अघ्रास्यत्। ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः। धमति ध्मायात्। ष्ठा गतिनिवृत्तौ। तिष्ठति। स्थादिष्विति षत्वम्। अधितष्ठौ। उपसर्गादिति षत्वम् अधिष्ठाता। स्थेयात् षत्वे कृते प्रकृतिस्तवर्गः स्यात्। उक्तञ्च—
नकारजावनुस्वारपञ्चमौ झलि धातुषु,सकारजः शकारश्च षाट्टवर्गस्तवर्गजः

लिया। जिघ्रत् आप सूंघे पुष्पम्। आशीर्लिङ् तुम्हें भी गन्धग्रहण का अवसर मिले। घ्रायात्। वाऽन्यस्य संयोगादेः से वा एत्व घ्रेयात् जब सूंघ चुका हो कर्तामें लुङ्। अघ्रा स् इत्। विभाषाघ्राधेट सिच्का लुक् अघ्रात् जब न लुक्। यमरम नमातां सक्। इट ईटि सलोप दीर्घ।

(**अघ्रासीत्** अघ्रासिष्ठाम् अघ्रासिषुः अघ्रासीः) अघ्राताम् अघ्रुः। अघ्राम। ध्माका धौकना, शब्द होना अग्नि जलनेके लिए वायुका प्रयोग। शंखं धमति ध्वनि करता है। शब्द है। मृदङ्गं धमति नहीं होगा, वायु संयोग न होने से। अग्निसंयोग==सुवर्णं धमति (अग्निना संयुनक्ति) सोना तपाता है। शप् होनेपर ध्मा को धम आदेश पाघ्राध्मासे--। धमतः धमन्ति। धमसि धमथः धमथ धमामि धमावः धमामः। शंखं दध्मौ प्रतापवान्। ध्मा ध्मा णल को औ आ लोप। दध्मतुः दध्मुः दध्मिथ दध्माथ दध्मथुः दध्म, दध्मौ दध्मिव दध्मिम। श्वः ध्माता ध्मास्यति धमतु धम त्वम्। अहं ध्मानि मै धौकूं धमेत् धमेतां धमेयुः अधमत्, वाऽन्यस्य एत्व ध्मेयात् ध्मायात्। अध्मासीत् अध्मास्यत। षोपदेश षसः। (स्थाधातु) का गतिनिवृत्ति रुकनेकी क्रिया वर्तमानकाल हो लट् शप्। पाघ्राध्मासे स्थाको तिष्ठ आदेश। तिष्ठति तिष्ठतः तिष्ठन्ति। तिष्ठसि तिष्ठामि स्था=तस्था शर्पूर्वा खयः शिष्यते। आत औ णलः आदि तस्थौ अधि उपसर्ग लगा। इण् कवर्ग से परे नहीं, षत्व कैसे ? तब कहा— **स्थादिषु**=अभ्यासेन सूत्रेण षत्व अधितष्ठौ तस्थतुः तस्थुः। तस्थिथ तस्थाथ तस्तथुः तस्थ। तस्थौ तस्थिव तस्थिम। कब रुके पता नहीं। रुकना कार्य देखकर क्रियाका अनुमान। **स्थाता** भविष्यकालमें रुकेगा ठहरनेवाला। अधिष्ठाता षत्व का निषेध सात्पदाद्यो, करेगा तब उपसर्गात्से षत्व। ठहरेगा। तिष्ठतु ठहरो। त्वं तिष्ट अहं तिष्ठानि तिष्ठाव तिष्ठाम। अतिष्ठत् अतिष्ठताम् अतिष्ठन् अतिष्ठः अतिष्ठतम् अतिष्ठत। अतिष्ठम् अतिष्ठाव अतिष्ठाम। तिष्ठेत् तिष्ठेतां तिष्ठेयुः। स्थेयात् भगवान् आपको ठहरायें। संयोगादि है। किन्तु घुमस्यादि से एत्व का अभाव है। न विकल्प एत्व। किन्तु एलिङ् नित्य रुकगया। अस्था स त्। गातिस्थासे सिचो लुक्। सो अस्थात् वह ठहरा रुका। अस्थाताम् अस्थाः अस्थातम् अस्थात। अस्थाम् अस्थाव अस्थाम। **म्नाका** सम्यास मनन चिन्तन यादकी क्रिया वर्तमानकालिक कर्ता लट् शप्। पाघ्रासे (श इत् देखकर) मन आदेश, मनानि विद्याम् अभ्यासं करोति वार-वार पढ़ता है। त्वं मनसि अहं मनामि मैं मनन करता हूं म्नः—म्ना मम्ना णल=औ आलोप मम्नौ मम्नतुः कब अभ्यास किया। मम्निथ मम्नाथ। म्नाता म्नास्यति अभ्यास करेगा मनतु अमनत् मनेत् म्नायात् म्नेयात आम्नासीत्। मनन कर लिया।

(९३०) ण इत् दा का दानक्रिया। शप् होने पर दो को यच्छ आदेश (पाघ्राध्मासे) प्रणियच्छति आत्मविश्वास है नेगर्दनद से णत्व। यच्छतः यच्छन्ति। यच्छसि यच्छामि दा दा ददा णल् औ आलोप। ददौ ददतुः ददुः। परोक्षमें दिये। ददथि ददाथ ददथुः दद। ददौं ददिव ददिम। दाता दास्यति।

गातिस्थेति सिचो लुक् । अस्थात । म्ना अभ्यासे मनति । दाण दाने । प्रणियच्छति । ह्वृ कौटिल्ये । ह्वरति । ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ७।४।१०। ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणो, लिटि। उपधायाः वृद्धिः । जह्वार जह्वरतः जह्वरुः । जह्वर्थ जह्वरथु जह्वर। जह्वार - जह्वर जह्वरिव जह्वरिम। हर्ता । ऋद्धनोः स्ये। ७।२।७०। ऋतो हन्तेश्च स्यस्य इट। ह्वरिष्यति। ह्वरतु । अह्वरत् । ह्वरे । गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः ७।४।२९। अर्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणो यकि, यादावार्द्धधातुके लिङि च । ह्वर्यात् । अह्वार्षीत अह्वरिष्यत् ।। स्वृ शब्दोपतापयोः। स्वरति । 'स्वरतीति वेत । सस्वरिथ -सस्वर्थ । वमयोस्तु स्वरत्यादि - विकल्पं बाधित्वा पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यात् श्र्युकः किती'ति निषेधे प्राप्ते, क्रादिनियमान्नित्यमिट् । सस्वरि

यच्छतु यच्छानि, अयच्छत् यच्छः अच्छेयम् । आशी-लिङ में एर्लिङ् से एत्व देयात् देयास्तां देयासुः । लुङ् में गातिस्थासे सिच् को लुक् अदात् । अदाताम् अदुः अदाः अदातम् अदाम् अदाव अदाम ।

ह्वृ धातुका कौटिल्य कुटिलताके अनुकूलक्रिया अर्थ है । वक्रगति=अर्थवाचक धातोः कुटिलक्रियावर्तमाने सति कर्तरि लट् ति शअ सार्वधातुकपरे गुणः, अर् । ह्वरति ह्वरतः ह्वरन्ति । ह्वरसि ह्वरथः ह्वरथ । ह्वरामि ह्वरावः ह्वरामः । सभी कर्तामें कुटिलचालकी क्रिया वर्तमाने सति रूप । ऋतश्च-ह्रस्वऋकार हो अन्तमें संयोगादेः संयोगसंज्ञक (अच् रहित हल्) हो आदिमें उस धातुके अङ्गको गुण हो लिट् परे । अलोन्त्यस्यसे अन्त्य अल् ऋको गुण समझें । उपधाके स्थानमें वृद्धि हो । कुटिलता अनुकूलक्रिया वाचक ह्वधातुसे परोक्षभूतानद्यतनकाल अप्रत्यक्षसमाप्त कुटिल क्रियाकर्ता अर्थमें लिट् । ऋदन्तसंयोगादि धातु ह्वृ अन्त्य अल् ऋ, अर् गुणे । प्र० पु० एकवचने तिप्, णल्—अ द्वित्वादिकार्ये, अत्र णि परे अचोऽञ्णितीति वृद्धिः, प्राप्नोति तां बाधित्वा अर् गुणे । उपधा अकारस्य वृद्धिः (जह्वार) । यद्यपि वृद्धि करनेसे भी रूपसिद्धि सुलभ थी, तथापि पर्यन्यवल्लक्षण प्रवृत्तिः । बादलवृष्टि जलमें थलमें भी है । जह्वरतुः जह्वर्+अतुस । यहां तिप् भिन्नलिट् के कित् होनेसे आर्धधातुक गुणका निषेध होता है । अतः ऋतश्च संयोगादेर्गुणः । जह्वरुः । अनेककर्ताके वक्रगतिकी पूर्वकालिकअप्रत्यक्षसमाप्तक्रिया । जह्वर्थ ह्वृ सिप् थल् पित् कित् नहीं । आर्धधातुकसंज्ञा, गुण सत्वेऽपि ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ऋदन्तधातुके नित्य अनिट् होने से थल् को इट् न हो । अजन्तधातु होनेसे थलि परे नित्य अनिट् पाणिनिमते । भारद्वाजमते । ऋदन्तको इट् न । वस् मस्को व म परे कृसृभृ आदि नियमसे इट् होता है । यहां सभी कर्तामें वक्रचालकी अप्रत्यक्ष अनद्यतनक्रिया है । ह्वर्ता (कल या परसों धोखा देगा) लुट्तिप् डा तास् आदि । यह अजन्तधातु नित्य अनिट् होने से (क्योंकि अनुदात्त है) वलादि इट नहीं होता । आर्धधातुकगुणे ।

ऋत्-ह्रस्व ऋकारान्त तथा हन्धातुसे परे स्य को इट् हो । ह्रस्व ऋकारान्त तथा हन् दोनों अनिट है । इन दोनोंसे स्यको इटका विशेषविधान है । ह्वरिष्यति मायां करिष्यति, कुठिलं चलिष्यति । अत्र स्य इट । अदादिगणे हनिष्यति इति । ह्वरतु कुठिलं गच्छतु, वक्रं चलतु । अह्वरत् आजसे भिन्न वक्रचाल चलनेकी समाप्तक्रिया कर्ता । ह्वरेत्--वक्रं चलेत् कुटिलं गच्छेत् । ह्वरेतां ह्वरेयुः । गुणो अर्ति—ऋ (जाना) संयोगादि संयोगसंज्ञक आदिमें हो । ऋदन्तस्य ह्रस्व ऋकारान्तको गुण हो यक्परे यकारादि आर्धधातुकलिङ् परे हो । इस सूत्रका

सस्वरिम। परत्वादृद्धनोरिति नित्यमिट स्वरिष्यति। अस्वारीत्, अस्वार्षीत् स्मृ चिन्तायाम्। स्मरति। ह्वृ संवरणे ह्वरति॥ सृ गतौ। क्रादित्वान्नेट। ससार। ससर्थ। ससृव। ससृम रिङ्शयग्लिङक्षु। ७४। २८। शॅं, यकि यादा वार्द्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ्। रीङि, प्रकृते रिङ्विधिसामर्थ्यान्न दीर्घः। सियात्। असार्षीत्। असरिष्यत्। शीघ्र गतौ तु 'पाघ्रे'-ति शिति धौरादेशः। धावति। गृ घृ सेचने। गरति। घरति। ध्वृ हुर्च्छने। ध्वरति। दृशिर् प्रेक्षणे पश्यति। ददर्श ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन। ददृशतु. ददृशुः। विभषा सृजिदृशोः। ७। २।६। ४ आभ्यां थलि इड् वा। सृजिदृशोर्झल्यमकिति। ६। १। ४८। अनयोरमागमः स्याज्झलादावकिति। दद्रष्ठ-ददर्शिथ। द्रष्ठा। षढोः कः सि।८।२।४१।षस्य ढस्य

प्रयोजन आशीर्वाद अर्थमे लिङ्के ङित् होनेसे या यक्के कित् होनेसे गुणनिषेध है। अतः गुणोऽर्ति सूत्रसे गुण करते हैं अन्त्यअल् ऋ स्थाने। ह्वर्यात्— कपट चालके विषयमे आशीर्वाद अर्थ वाचक लिङ् तिप् उसीको यासुट दोनोंको एक साथ लिङाशिषिसे आर्धधातुकसंज्ञा। यकारादि आर्धधातुक-यासुपरे ऋदन्तह्वृ के अन्त्यअल् ऋको गुण आदि केवल ऋका उदाहरण। अह्वार्षीत् कुटिल माया के अनुकूलक्रियावाचक ह्वृधातोः भूतकाले (समाप्त क्रिया) अर्थे लुङ् अट ति इलोप। सिच् अपृक्त लकारको ईट धातुऋकारस्य सिचि वृद्धिः इति आर्वृद्धिः। इणःपरे सिच् प्रत्ययके अवयव सको ष आदेश प्रत्ययोःसे हो। यदि अह्वरिष्यत्==कपठम् अकरिष्यत् तर्हि यातना अभविष्यत। अत्र 'ऋद्धनोः' स्ये इट।

इर इत् दृश धातुका प्रेक्षण =आंखसे देखना, वर्तमानकालिककर्तामें ल्ँ। दृश अति। शिति परे पाघ्राध्मास्थासे दृशको पश्य आदेश। पश्यति पश्यतः पश्यन्ति-। पश्यसि पश्यथः पश्यथ। पश्यामि। देखना क्रियासहित कर्ता प्रत्यक्ष न हो लि द्वित्व आदि, दर दृश अ हलादिशेष। ददर्श ददृशथुः ददृशुः अतुस कित है न गुणः। किन्तु यण्। थल परे क्रादिनियमसे नित्य इट् प्राप्त। न अजन्त हैं न अकार वान नऋदन्त किसी नियमसे निषेध पाप्त नहीं। तबकहा-

विभाषा। सृज धातुसे परे थलको वाइट् हो। गमेरिट् से इट अचस तास्वतसे थल आया। इट, गुण। ददर्शिथ। जब न इट् अनुदात्तस्य चर्दूप-सूत्रसे विकल्प अम आगम प्राप्त है, नित्य अमका सूत्र (सृजदृश) को अम, आगम हो यदि झलादि=झभञ् से हल तक के अक्षर आदि में हो। कित परे न हो। ददृश थ, दृश में अम आगम ऋ को र यण दद्रशथ। व्रश्चभ्रस्जसे श को ष थ को ष्टुत्वं, ठ दद्रष्ठ ददृशथुः। आजसे भिन्न भविष्यकालिक देखनेके कर्तामें लुट। दृश ता। अम आगम यण् ण (ष) त (ट वर्ग) ट। द्रष्टाः द्रष्टारौ द्रष्टारः। दृश ति अम यण श (ष) षढो कः (द्रक स्य ति)। स को ष। कष—क्ष द्रक्ष्यति, द्रक्ष्यतः, द्रक्ष्यन्ति देखेगे। द्रक्ष्यामि शप् परे पश्य' आदेश पाघ्राध्मासे। पश्यतु पश्यतात्। पश्य, पश्यतं पश्यत। अहं पश्यानि, अपश्यत अपश्यताम्,अपश्यन्। अपश्यम अपश्याव पश्येत पश्येतां, पश्येयुः। पश्येः, पश्येतं, पश्येत। पश्येयं पश्येव पश्येम। दर्शन व्यापार को बढ़ानेकी शभकामना अशोर्लिङ। दृश्यात, दृश्यताम, दृश्यासुः दृश्याः दृश्यासम्। आखोंसे देखनेका व्यापार समाप्त हो वह क्रिया भूतकालिक विराजमान कर्तामें लुङ। अदृश अत। इरितो वा से च्लिक अङ। गुण निषेध प्राप्त। विधायक

च कः स्यात्सकारे परे द्रक्ष्यति । दृश्यात् इरित्त्वादङ् वा ऋदृशोऽङि गुणः ।७।४।१६। ऋवर्णान्तानां, दृशेश्च गुणः स्यादङि । अदर्शत् । अङ् भावे । न दृशः ।३।१।४७। दृशश्च्लेर्वक्ष्यमाणं क्सो न । अद्राक्षीत् । अद्रक्ष्यत् । श्रु श्रवणे । श्रुवः शृ च ३।१।७४। श्रुवः शृआदेशः श्नुप्रत्ययश्च, कर्तरि सार्वधातुके । शृणोति । सार्वधातुकमपित् ।१।२।४। अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत्स्यात् शृणुतः । हुश्नुवोः सार्वधातुके ।६।४।८७। जुहोतेः श्नुप्रत्ययान्तस्यानेकाचोऽङ्गस्यासंयोगपूर्वो वर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके । शृण्वन्ति शृणोषि शृणुथः । शृणुथ । शृणोमि । लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ।६।४।१०७। असंयो-

---

सूत्र ऋवर्णान्त धातु और दृशको गुण हो, अङि परे। अदर्शत्, अदर्शतां अदर्शन् । अदर्शः अदर्शतं अदर्शत । अदर्शम् अदर्शाव अदर्शाम । अङ अभाव पक्षमें सिच । यद्यपि शल इगुपधात्से च्लिको क्स प्राप्त उसका निषेध सूत्र (न दृशः) दृश धातुसे परे च्लि को क्स नहीं होता । च्लेः सिच से च्लि, शल इगुपधात सेक्स आया अदृश स ई त । अम आगम ऋ को र यण । वदव्रजमें वृद्धि श(ष) ष षढो कः स=र अद्राक्षीत् अद्राष्टां अद्राक्षुः । अद्राक्षीः, अद्राष्टं, अद्राष्ट । अद्राक्षम अद्राक्ष्म । अद्रक्ष्यत । जब देखेगा तब पकड़ेगा ।

श्रु –धातुका सुनने श्रवणेन्द्रियगोचर होनेके अनुकुलक्रिया अर्थ है । श्रुवःश्रुधातुके स्थानमे शृ आदेश हो श्नुप्रत्यय भी । शप्को बाधकर । श इत् शित् होनेसे सार्वधातुक है । शप्के विषयमें ही श्नु हो । शृणोति सुनना क्रिया चलती रहे (जबतक समाप्त न हो तब श्रुधातोः लट् तिप् शपं बाधित्वा 'श्रुवः शृ च' इति सूत्रेण श्नु, श्रुस्थाने शृ, शृनुति दशायां तिप्परे शृनु अङ्गसंज्ञा, इगन्त अङ्गके अन्त्य अल उको गुण, नको ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् । ऋवर्णसे परे नको ण हुआ। शृणोति । यहां अपित् सार्वधातुक श्नु है । उसे ङिद्वद्भावकरके शृको न गुणः ।

सार्वधातुक अपित्=तिप् सिप् मिप् ये पित् है, इन्हे छोडकर अपित् सार्वधातुको ङिद्वत् ङित् का कार्य हो(शृ नु तस्)को सार्वधातुक मानकर नुको गुण प्राप्त है। किन्तु अपित् ङिद्वत्तसार्वधातुक तस्को ङिद्वद्भाव जिसका फल क्ङिति चसे गुण निषेध। शृणुतः दो कर्ता में वर्तमान कालिक सुनने की क्रिया। एकवचने शृनुझि ,झोऽन्तः' झयो अन्त आदेश ।

हुश्नुवोः=हु धातु तथा श्नुप्रत्ययान्त अनेकाच्वाला अङ्ग संयोगसंज्ञक वर्ण पूर्वमे न हो, ऐसे उकार को यण् हो अजादिसार्वधातुक परे । इति उवङ् आदेशं बाधित्वा यण् शृण्वन्ति । एकशरीरमें श्रवणके अनुकूलवर्तमानक्रिया । श्रवणं कुर्वन्ति । आप्नुवन्तिमें नुके पूर्वमें संयोग होनेसे यण् न होकर उवङ् होता है । अपित् सार्वधातुक होने से अन्तिको ङिद्वद्भाव तथा गुणनिषेध । मध्यम पुरुषमें श्रवणक्रिया वर्तमान हो तब त्वं कर्तामें सिप् थस् थ । श्नु शृ आदेश । सिप्के पित्से ङित् नहीं गुण निषेध नहीं होगा शृणोसि । थस् थके ङित् से गुण निषेध है : यहां मिप् मकार परे लोपश्चास्यान्यतरस्यांसे उकारलोप प्राप्त उसे बाधकर परत्वात् गुण हुआ । वस् मस् परे श्नु तथा शृ आदेश, णत्व शृणुवः शृणुमः परन्तु । लोपश्च अस्य संयोग संज्ञक अक्षर पूर्वमें न हो ऐसे प्रत्ययके उकारका विकल्पसे लोप हो, म व परे । इति

गपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा, म्वोः परयोः। शृण्वः—शृणुवः। शृण्मः शृणुमः। शुश्राव शुश्रव शुश्रुव शुश्रुम। श्रोता। श्रोष्यति। शृणोतु शृणुतात्। शृणुताम्। शृण्वन्तु। **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ३।४।१०३।** असंयोगपूर्वात्प्रत्ययस्योतो हेर्लुक्। शृणु शृणुतात् शृणुतं शृणुत शृणवादेशौ शृणवानि। शृणवाव। शृणवाम। अशृणोत् अशृणुताम् अशृण्वन् अशृणोः। अशृणुतम्। अशृणुत। अशृणवम् अशृण्व अशृणुव। अशृण्म। अशृणुयात्। शृणुयाताम्। **उस्यपदान्तात् ६।१।९६।** अपदान्तादवर्णादुसि पररूपमेकादेशः स्यात्। शृणुयुः शृणुयाः श्रूयातं शृणुयात। शृणुयाम् शृणुयाव शृणुयाम।

वस् मस् परे उकारलोपे। पक्षमे शृण्वः शृण्मः। आप्नुमःमे संयोगपूर्व होनेसे उकार लोप नहीं। यह सकर्मक धातु है, सुनना फल उसकी जननी क्रिया (कर्ण इन्द्रियके साथ) शब्दका संयोग है देवदत्तः वेदं शृणोति। सुनना फल वेदमें है। उसके अनुकूल क्रिया देवदत्तमें है। शुश्राव श्रवणके अनुकूलक्रियावाचक परोक्षे कर्ता अर्थे लिट् ति णल् अ द्वित्व, श्रु श्रु अ, अभ्यासकार्ये वृद्धिः आवादेशे शुश्रु अतुस् उस्। यहां केवल उवङ् आदेशे शुश्रुवतुः। थल्के पित् होनेसे उसे आर्धधातुक मानकर गुण। कृ सृ भृ आदि पाठमें श्रुके न होनेसे इट् नहीं शुश्रोथ उ० पु० एकवचने णलुत्तमो वा वस् मसमें भी क्रादिनियमसे न इट्। परश्वः पुराणं श्रोता। सदा श्रुतिं (वेदं) श्रोष्यति श्रोष्यतः श्रोष्यन्ति श्रोष्यति थः थ। श्रोष्यामि व म। श्रवणं करिष्यति। शृणोतु— श्रवणार्थक श्रुधातोः सुनना क्रियाके विषयमें विधि आज्ञा प्रेरणा सत्कार निश्चय अर्थ की सम्भावना हो तथा आशीर्वाद अर्थं हो तब लोट् ति। यहां शप् प्राप्त है उस बाधकर श्नु शृ आदेशे उकारस्य गुणे। इकारस्य उ। तु स्थाने विकल्पेन तातङ् पक्षे गुणो न भवति क्ङिति च इति निषेधात्। शृणुतां तस् स्थाने ताम्, अपित् सार्वधातुकं ङिद्वत् तेन गुणनिषेधे। शृण्वन्तु=हुश्नुवोः इति यण्, मध्यमपुरुषस्य एकवचने शिप्। श्नुप्रत्यये शृआदेशे सि स्थाने हि आदेशे णत्वे। शृणुहि—

उतश्च—संयोगसंज्ञक पूर्वमें न हो ऐसे प्रत्ययके उकारसे परे हिका लुक् हो। इति हेर्लुकि शृणु यदा हिस्थाने तातङ् आदेशः तदा शृणुतात् शृणवानि मिस्थाने नि आदेशे, उत्तमस्य आट् आगमे नु, इति उकारस्य गुणे अवादेशे च। एवं वस् मस् आट गुणे अवादेशे। नित्यं ङितः सलोपे। ङित्से न गुण अशृणोत्। अत्र पूर्वदिने अनद्यतने समाप्त श्रवणक्रिया (भूतकाले) अर्थे लङ् शृ आदेशे शप् न गुणे णत्वे ह्यः श्रवणमकरोत्। द्विवचने न गुणनिषेधात् अशृणुताम् बहुवचने हुश्नुवोः इति यण् अशृण्वन्। अशृणोः सि इलोपे, सकारस्य रुवि०। अशृणुतम् अशृणुत। उ०पु०में मिप् को अम् अशृणवं वस मस परे लोपश्चास्यान्यतरस्यां विकल्पेन उकारलोपे। अशृण्व अशृणुव। अशृण्म, अशृणुम। श्रवण क्रियाके विषयमें प्रेरणा आमन्त्रणाके स्तु—लिङ् शृनुयासत् णत्वे उसि अपदान्त पदान्त न हो, ऐसे अवर्णसे उसि परें पूर्वपरके स्थान पररूप हो, सकारलोपे शृणुयात्। शृणुयाः शृणुयातं शृणुयां पररूप एकादेश हो। शृणुयाव लिङ् यासुट् इत्यादि। श्रूयात्। अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घ श्रवणं क्रियात् भूतकाले समाप्तश्रवणक्रिया कर्ता अर्थे लुङ् अट् तिप् सिचि वृद्धौ। अश्रौषीत् अश्रौष्टाम् अश्रौषुः। अश्रौषीः श्रौष्टम् अश्रौष्ट। अश्रौषम् अश्रौष्व अश्रौष्म। सनी

श्रूयात् । अश्रौषीत । अश्रोष्यत् । गम्लृ सृप्लृ गतौ इषुगमियमांछः।७।६।७७ शति गच्छति । जगाम । गमहनजनऊनघसांं लोपः क्ङित्यनङि ।३।४६।८। एषामुपधाया लोपः स्यादजादौ क्ङिति न त्वङि । जग्मतुः जग्मुः । जगमिथ जगन्थ । जग्मथुः जग्म । जगाम जगम । जग्मिव जग्मिम । गन्ता गमेरिट् परस्मैपदेषु ७।२।५८। गमेः परस्य सादेरार्द्धधातुकस्येट् परस्मैपदेषु । गमिष्यति, गच्छतु अगच्छत गच्छेत् । गम्यात् । पुषादिद्युताद्यलृदितः परस्मैपदेषु

कर्तामें श्रवणक्रिया समाप्त आवश्यक हैं । यदि कथामश्रोष्यत् तदा पारमगमिष्यत् । उपसर्गसे श्रु धातुके भी अर्थ बदलते है । यथा—संशृणोति (ठिक से सुनता है) प्रतिशृणोति । प्रतिज्ञां करोति । उपसर्गबलात् धातुका अर्थ बदलदेते है ।

लृकार इत् गम धातुका गति गमन ज्ञान प्राप्ति मोक्षजनक क्रिया अर्थ, सकर्मक है । परन्तु अनुदात्त अनिट् अकर्मक भी है । फल तथा क्रियाके आधार अलग अलग होनेसे सकर्मक है । इष्—इच्छा करना गम् गमन करना, यम्-निवृत्त होना इन धातुओंके अन्त्य अल् (वर्ण)को छ आदेश-हो शित् प्रत्यय परे । गम् धातुनें जहां शप् वहां छ आदेश । गच्छति गमनार्थक गम्धातोः वर्तमान गमनक्रिया अर्थेलट् ति शप् अनुबन्धलोपे गम्धातुके अन्त्य अल् मको छ हुआ । छे च छ परे तुक् त आगमे, तको श्चु । गच्छतः गच्छन्ति गच्छसि गच्छथः गच्छथ । गच्छामि गच्छावः गच्छामः । जगाम-भूतकालिक गमनक्रिया परोक्ष हो लिट् ति णल् द्वित्व, गम गम अ हलादिशेष अतोपधायाः वृद्धिः । कुहोश्चुः जगाम जग्मतुः जगम अतुस् ।

गमनार्थक गम्, हिंसार्थकहन्, प्रादुर्भावार्थक जन, खननार्थकखन् भोजनार्थक घस् इन धातुओं की उपाधा अका लोप हो, अजादिकिति ङिति परे । अङ् परे न हो । इति उपधाया अकारस्य लोपे । **जग्मतुः** जग्मुः । गम्धातु अकारवान् होते हुए तासि प्रत्ययमें नित्य अनिट् हैं । अनः थलि परे विकल्प इट् जगिमथ ! इट् अभाव -पक्षे मकारस्य अनुस्वारें परसवर्णे जगन्थ । वस् मस् परे इट् उपधालोपश्च । **गन्ता** —गमनक्रिया कल परसों भावी हो, कर्ता अर्थे लुट् तास् ति, डा आदि । अनुदात्त -धातु है । एकाच् उपदेशे सूत्रेण इट् निषेधः । गन्तारौ गन्तारः, अनुस्वार परसवर्ण गन्तासि गन्ताथः थ । गन्तास्मि गन्तास्वः मः । **गम् धातुसे परे सादेः**=स हो आदिमें ऐसे अर्धधातुक को इट् हो परस्मैपद परे । गमनक्रियाकाभविष्यकाल हो,तब **गमिष्यति** । गमिष्यतः गमिष्यामि गमिष्यामः स्यको आर्धधातुकसंज्ञा सका -रादि देखकर गमेरिट् इट् इण्से परे स्य के सकों ष हुआ । **गचछतु** गच्छतात् गच्छतां गच्छन्तु । गच्छ गच्छतं त । गच्छानि गच्छाव-म । श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्, बेदके पिछे जैसे शास्त्र चलता है । । गम्+लङ्, अट् ' ति,छ, तुक् आदि अगच्छताम् अगच्छति अगच्छः अगच्छतं, त अगच्छम् अगच्छाम गच्छेत् गच्छेतां गच्छेयुः गच्छे. गच्छेतं गच्छेत गच्छेयम् म

पुषादि जहां पुष्के स्थानमें श्यन् विकरण हो ऐसे पुषादि=पुष पुष्टौ आदि, द्युतादि द्युत दीप्तौ इत्यादि तथा लृदित् लृ इत, धातु इनसे परे च्लिके स्थानमें अङ् हो, परस्मैपद परे । यथा गम् धातोः समाप्त-उत्तरदेशसंयोग जनक क्रियाया कर्ता लुङ् ति, इत्लोपे च्लेः सिच् प्राप्ते, पुषादिद्युतादिसूत्रेण च्लिस्थाने अङ् अ' अडा-

३।१।५५। इयन्विकरणपुषा देद्युतादेलृदितश्च परस्य च्लेरङ्,परस्मैपदेषु,अगमत्, अगमिष्यत। सर्पति। अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ६।१।६५। उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याम्वा,झलादावकिति। स्रप्ता सर्प्ता,स्रप्स्यति सर्प्स्यति। असृपत्। ञिक्ष्विदा अव्यक्ते शब्दे क्ष्वेदति। यभ मैथुने। यभति। वेट्। येभिथ। झषस्तथोर्धोऽधः।८।२।४०। झषः परयोस्तथयोर्धः स्यान्न तु दधातेः। ययब्ध यब्धा। णम प्रह्वत्वे, शब्दे च। नेमिथ ननन्थ। नन्ता।

गमे। अगमत् अगमताम् अगमन्। अगमः अगमत् त अगमम् अगमाव म क्लैब्य मा स्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते। यदा विद्यालयम् अगमिष्यत् तदा ज्ञानम् अभविष्यत्। गम्के बहुतसे अप्रसिद्ध अर्थः जो उपसर्ग लगनेसे प्रसिद्ध होते है। जैसे—आगच्छति आ उपसर्गसे 'आना' अर्थ प्रकाशित है। उद्च्छति ऊपर उठता है। निर्गच्छति—निकलता है, अभिगच्छति

सर्प सर्पति सांप सरकता रेंगता है। उपधामें लघु ऋ को ओर्गुण। सर्पन्ति सर्पामि सर्पावः सर्पामः हमलोग खिसक चलें। सरक जांय। सरकनेकी क्रिया सहित कर्ता न देखा हो, कर्तामें लिट् द्वित्वादि ससर्प ससृपतुः ससृपुः ससर्पिथ। थल्परे क्रादि नियमसे नित्य इट (वा इट नहीं) न अजन्त न अकारवान् हैं। ससर्प ससृपिव ससृपिम अनुदात्तस्य-उपदेश दशामें अनुदात्त हो उपधामें ऋ हो उसको अम् आगम वा हो। झल् अक्षर आदिमें हो। कित्परे न हो। मित्से अन्त्य अच्के आगे अ। सृअप ता अमागम ऋको र यण्, स्रप्ता स्रप्तारौ स्रप्तारः कल सरकेगा। जब न अम् लघूपधगुण। सर्प्तासि सर्प्तास्थः सर्प्तास्मि आदेचसे उपदेश और सृजि दृशोःसे झलि अमि अकिति अनुवृत्त। उपदेश क्यों पढ़ा? स्रप्तुं, तुमुन् परे उदात्त है। नित् होनेसे। किन्तु उपदेशमें अनुदात्त है अम्भवत्येव। अकिति क्यों सृतः। क्त कित् है अम् न हो। सर्प्स्यति अम् ऋको र यण् होनेपर पक्ष में गुण खिसकना सरकना क्रिया आज्ञा प्रेरणाका विषय हो सर्पतु सर्पतां सर्पन्तु। सर्प सर्पतं सर्पत। सर्पानि सर्पाव सर्पाम। असर्पत् असर्पताम् असर्पन्। सरक गये सर्पेत सर्पेतां सर्पेयुः। सृप्यात् सृप्यास्तां सृप्यासुः लृदिति होनेसे च्लिको अङ्। ङित्से उ गुणः। असृपत् असृपताम् असृपन् असृपः असृपम्, अस्रप्स्यत् असर्प्स्यत्।

यभ धातुका मिथुनस्य भावः मैथुनं दो की सङ्गमक्रिया। सहवासानुकूल-व्यापारः यभति सङ्गम करता है। यभतः यभन्ति यभसि यभथः यभथ। यभामि यभावः। यभाम पर्दे की आड़में यभनक्रियाके कर्तामें लिट् आदि ययाभ येभतुः येभुः येभिथ—थल्परे द्वाज नियमसे इट्। थलि च सेटिसे एत्व आदि। जब इट् पित्से कित् नहीं, न एत्व। ययभ थ दशामें झषस्तथोर्धः थ को ध, भ को जश् 'ब'। ययब्ध येभतुः। येभ ययाभ ययभ। येभिव येभिम। आजसे भिन्नकालमें संगम भावी हो यस तास्। यभता-त को ध, भ को ब। यब्धा यब्धारौ यब्धारः यप्स्यति संसक्त होगा। स्य परे भ को चर् प। सङ्गम सहवास विषयमें आज्ञा प्रेरणा हो तब यभतु यभतां यभन्तु। यभ यभतं यभत। यभानि यभाव यभाम अयभत् अयभताम् अयभन्। यभेत् यभेतां यभेयुः। यभ्यात् यभ्यास्तां यभ्यासुः। भूतकालमें संगम हो चुका हो, यभस स ईत्, वदव्रजहलन्तस्याचः से वृद्धिः अयाप्सीत् अयाप्ताम् अयाप्सुः णम्—णोपदेश, अनिट्। नमति नमतः नमन्ति। नमस्कार नम्र मधुर बोल। कुछ दिन पहले नमन

नंस्यति। अनसीत् अनसिष्टाम्। त्यज हानौ। त्यजति। तत्याज तत्यजिथ तत्यक्थ। त्यक्ता। अत्याक्षीत् अत्याक्ताम् अत्यक्षत्। अक्षू व्याप्तौ। अक्षोऽन्यतरस्याम् ।३।१।७५। श्नुः स्यादा कर्तरि सार्वधातुके। पक्षे शप्। अक्ष्णोति अक्षति। आनक्ष आनक्षतुः आनक्षुः। आनक्षिथ आनष्ठ। अक्षिता-अष्टा। अक्षिष्यति। 'स्कोरिति कलोपः। षढोःकः सि ।८।२।४१। अक्ष्यति।

क्रिया सहित कर्ता न देखा हो। लिट् ननाम नेमतुः नेमुः। नमिथ ननन्थ। भारद्वाज पक्षमें इट्। थलि च सेट से एत्व अभ्यास लोप। पक्षमें कित् परें नहीं है: न एत्वादि। अनुस्वार परसवर्ण ननाम ननम नेमिव नेमिम, क्रादि—इट्। नमता। म को अनुस्वार परसवर्ण नन्ता नन्तारौ नन्तारः। नंस्यति नमस्कार करेगा। नम्र होगा। मीठा बोलेगा। नमतु, नम, नमानि। अनमत् अनमताम् अनमन्। नम्र हुआ। नमेत् नमेतां नमेयुः। नम्यात् नम्यास्तां नम्यासुः। अनंसीत्। यमरमनमातां लक् च इट्। अनसिष्टाम्। अनंसिषुः अनंसीः अनंसिष्टम् अनंसिष्टः अनसिषम् अनंसिष्व अनंसिष्म।

त्यज्का हानि त्याग धातुका अर्थ। हानिः उत्सर्गः त्यागः अनिट त्यजति त्यागता छोड़ता है। त्यजतः त्यजन्ति। तत्यजुतुः तत्यजुः। कब छोड़ दिये। कार्यसे क्रियाका अनुमान। मध्यमें संयुक्त हल् है न एत्व, न अभ्यासलोप। थलि परे द्वाज मतसे इट् तत्यजिथ तत्यक्थ। तुमने कब त्यागा। जब न इट् तब चोःकुःसे कवर्ग ग—क। तत्यजथुः तत्याज तत्यजिव। अनिट् है। कल परसों बाद वर्षमें त्यागेगा। त्यज ता। कुत्व चर्त्व त्यक्ता त्यक्तारौ त्यक्तारः त्यक्षि त्यक्ष्यतः त्याक्ष्यन्ति। त्यक्षानि त्यक्षावः त्यक्षामः, त्यजतु त्यजतात् त्यजतां त्यजन्तु। त्याग आज्ञा प्रेरणाका विषय हो लोट्। सब लोग त्याग दे अत्यजत् अत्यजाम् अत्यजन्। त्वं अत्यजः अहं अत्यजं, कल परसों त्यागा। त्यजेत् त्यजेतां त्यजेयुः। त्याग विराग बढ़नेकी कामना आशीर्लिङ–त्यज्यात् त्यज्यास्तां त्यज्यासुः त्यागका समाप्तकाल हो। अत्यज स इत्। जको चोः कुः। स को ष। क–ष क्ष वदव्रजहलन्तस्याचः हलन्त देखकर वृद्धि। अत्याक्षीत् अत्याक्तां अत्याक्षुः। अत्याक्षीः अत्याक्तम् अत्याक्त। अत्याक्षम् भूतकालिक त्याग क्रिया। सञ्ज षोपदेश,अनिट उपधामें नका उसका अनुस्वार परसवर्ण।

शल इक्—इ उ ऋ ऌ उपधा (अन्त्य अलके पूर्वमें) हो ऐसे अक्ष धातुका व्याप्ति व्यापक होना वाचक वर्तमाने लट्। अक्ष ति। शप् बाधकर अक्षः–पञ्चमी है स्वादिभ्यःसे श्नु, कर्तरि (शप्) सार्वधातुके (यक्) आदिकी अनुवृत्ति। अक्ष से श्नुप्रत्यय हो कर्तामें, आर्धधातुक परे। पक्षमें शप् भी। इससे श्नु हुआ। सार्वधातुक परे गुण जो पित् है ङित् नहीं। णत्व—अक्ष्णोति। तस ङित् से गुणनिषेध हुआ। अक्ष्णुवन्ति झिको अन्त, श्नु प्रत्ययान्त है अचपरे ऊवङ् हुआ। पक्षमें शप् अक्षति व्याप्त होता है। अक्ष्णोति अक्ष्णुथः। आक्ष्णुथ आक्ष्णोमि। लिट्मे द्वित्वादि। अत आदेः दीर्घ दो हल् जानकर नुम्। आनक्षिथ। ऊदित होनेसे वलादि आर्धधातुकको इट् हुआ। जब न इट् आनक्ष तस्कोः संयोगाद्योःसे कका लोप। थको ष्टुत्व ठ। आनष्ठ। अनद्यतन भविष्यकालिक व्याप्ति क्रियाके कर्तामें लुट् ति तास डा इट्। अक्षिता अक्षितारौ इट अभावसे स्कोःसे कका लोप। ताके तको ट अष्टा अष्टारौ अष्टारः अष्टासि अष्टास्मि। भविष्य अर्थे लिट्। इट् अभावपक्षमें अक्ष स्यति। स्कोःसे क लोप, कसे परे षको क हुआ स परे। सको षत्व। अक्षति व्याप्त होना। आज्ञा प्रेरणा का विषय बने तब

अक्ष्णोतु अक्ष्णुहि अक्षणवानि। आक्ष्णोत्। आक्षणवम्—अक्ष्णुयात् अक्ष्णुयाताम् अक्ष्णुयुः। अक्ष्यात्। आक्षीत् आक्षिष्टाम् आष्टाम आक्षिषुः। तक्षू त्वक्षू तनूकरणे तक्षः।३।१।७६। श्नुर्वा शब्विषये। तक्ष्णोति तक्षति वा काष्ठम्। ततक्ष। ततक्षिथ ततष्ठ। अतक्षीत अतक्षिष्टाम्। अताक्षीत् अताष्टाम्। तनूकरणे किं? वाग्भिः सन्तक्षति। भर्त्सयतीत्यर्थः॥ रक्ष पालने। रक्षति। णिक्ष चुम्बने। प्रणिक्षति वक्ष रोषे। संघाते इत्येके। वक्षति। मृक्ष संघाते मक्ष इत्येके। तक्ष त्वचने। त्वचनं—संवरणम् त्वचो

लोट् शपका विषय रहे। अक्षोऽन्यतरस्याम् इनु गुण आदि होगा। अक्ष्णुताम् अक्ष्णुवन्तु अक्ष्णुहि। सिको हि हुआ। परन्तु संयोग पूर्वमें है उतश्च प्रत्ययात्सूत्रसे उका लुक् नहीं। हि अपित् है ङित् हुआ (गुण न होना फल) अक्ष्णुतम् अक्ष्णवानि अक्षणु अ नि मेनि: आट पित् है, अङित् न गुण निषेध किन्तु गुणे अवादेशे, अक्ष्णवाव अक्ष्णवाम जब शप् होगा। अक्षतु अक्षन्तु अक्षानि। जब व्याप्त क्रिया अनद्यतन भूतकालमें होगी कर्तामें लुङ्श्नु आट् णत्व गुण। आक्ष्णोत्। आक्ष्णुताम् आक्ष्णुवन्। आक्ष्णोः आक्ष्णुतम् आक्ष्णुत, मिप्को अम् श्नुको गुणादि। आक्ष्णुव आक्ष्णुम। लिङमें श्नु यासुटके ङित्से गुण निषेध। झिको जुस् होने पर यासुके सका लोप। लिङःसलोपोऽनन्त्यस्य। उस्यपदान्तात्से पररूप अक्ष्णुयाः—यायं—यात। याम-याव। शप्पक्षमें अक्षेत् अक्ष्यात् आशीर्लिङ आर्धधातुक हैं। न श्नुः, न शप। लुङलकारमें ऊदित् विकल्प इट्। पक्षमें हलन्तलक्षणा वृद्धिका नेटिसे निषेध, माके योगमें अट आट नहीं होते। जहां न आट तहां मां का योग जब। ईट तब आक्षीत्—अक्ष इ स ईत् दशामें पक्षे वदव्रजहलन्तस्याचःसे वृद्धि। क का लोप। स्कोः संयोगाद्योः सूत्रसे। षको क षढो कः सि अक्षस ताम् दशामें हलन्त देखकर वृद्धि झलो झलि सका लोप स्कोःक लोप। त=ट आक्षोः आष्टम् आष्ट। आक्षम् आक्ष्व आक्ष्म। आक्षिष्यत आक्ष्यत् अकार इत् तक्षका तनूकरण=छील छाल कर पतला करना, स्थूलस्य काष्ठादेः कतिपयस्य अवयवस्य अपनयनेन क्षीणीकरणं।

तनूकरण अर्थमें तक्ष धातुसे श्नु हो, विकल्पसे, शप्के विषयमें। जब श्नु णत्व गुण, तक्ष्णोति तक्ष्णुतः जब शप् हुआ, तक्षति तक्षतः तक्षन्ति, पल्लाको छीलकर मेज बनाता है। तक्षा बढई लकड़ीका कलाकार, त्वं काष्ठं तक्षसि अहं शाखां तक्षामि, बीते भूतकालमें कुर्सी टेबुल तैयार हो परोक्षे लिट् ततक्ष ततक्षतुः ततक्षुः ततक्षिथ। थलपरे। इट विकल्प ऊदित जानकर तक्षिता। जब न इट क्षमें कका लोप, स्कोःसे ष्टुत्व। तष्टा तष्टारौ तष्टारः। तष्टास्मि। तक्षिष्यति तक्ष्यति, तक्ष्णोतु तक्षतु अतक्ष्णोत् अतक्षन् अतक्षीत् अताक्षीत्। इट विकल्प भेदक। छील छाल किया। सूत्रमें तनूकरण क्यों कहा, वाणीसे छीलता है यहां घबड़ाना अर्थ, शरीर पतला होना नहीं। संतक्षति का फटकार अर्थ इसी प्रकार त्वक्षति त्वक्षतः त्वक्षन्ति छीलता है। अत्वक्षीत् अत्वाक्षीत् सीचता है। इजादि मानकर आम् **रक्षति** पालन रक्षा। ररक्ष ररक्षतुः रक्षिता रक्षिष्यति। रक्षतु रक्षानि रक्षाव रक्षाम। अरक्षत्। अरक्षीत् निरक्षति चूमता है वक्ष धातुका रोष क्रोधकी क्रिया। वक्षति रुष्ठ होता है। वक्षिता अवक्षत् अवाक्षीत् मृक्षति एकत्रित होना। तक्षति छीलता है छाली उतारता है ततक्ष तक्षिष्यति अताक्षीत् अताष्ठाम् अताक्षुः बोकला छील चुका।

ग्रहणं च । पक्ष परिग्रहे इत्येके ।। सूर्क्ष आदरे । सूर्क्षति । सुसूर्क्ष ।। काक्षि वाक्षि माक्षि काङ्क्षायाम् । द्राक्षि ध्राक्षि ध्वाक्षि घोरवाशिते च । चूष पाने । तूष तुष्टौ, पूष वृद्धौ । मूष स्तेये । लूष रूष भूषायां शूष प्रसवे । यूष हिंसायाम् । जूष च । भूष अलङ्कारे । जि जये । जयति । सन्लिटोर्जेः ।७।३।५७। सन्लिण्निमित्तादभ्यासात्परस्य जेः कुत्वम् । जिगाय जिग्यतुः जिगयिथ जिगेथ । जीव प्राणधारणे । जीवति । पीव मीव तीव णीव स्थौल्ये । पीवति पिपीव ।। मुर्वी बन्धने उपधायां च ।८।२।७८। धातोरुप-

---

पक्षका भी संवरण स्वीकार पक्षपातके अनुकूल क्रिया पक्षति पपक्ष पक्ष लिया । पक्षतु अपाक्षीत् सूक्षति आदर करना है । अनादर अर्थमें पाठ अनुचित । अवज्ञा अवहेलनम् असूर्क्षणम् अमरकोषसे विरोध होगा । काङ्क्षा इच्छा काङ्क्षति वाङ्क्षति इच्छा करता है । चकाङ्क्ष अकाङ्क्षीत् अवाङ्क्षीत् इच्छा किया । द्राङ्क्षति ध्वाङ्-क्षति । ध्वाङ्क्षः काकः द्राक्षा--गुरोश्च हलःसे अप्रत्यय । घोरवासित—कठोर ध्वनि वासृ शब्दे काङ्क्षा—इच्छा अर्थ भी । अद्राङ्क्षीत् अध्वाङ्क्षीत् ।

जि धातुका विजयके अनुकूल क्रिया अर्थ है । इस धातुको अजन्त में पढ़ाना उचित था । अकर्मक है । उत्कर्ष प्राप्ति के अनुकूल क्रियावाचक जि धातुसे वर्तमान-कालिक जयनशील कर्ता अर्थमें लट्-तिप् शप् जयति जयतः जयन्ति । जयसि जयथः जयथ । जयामि जयावः जयामः हम सभी कर्तामें उत्कर्ष प्राप्तकी क्रिया । जिगाय विजय व्यापारवाचक जि धातुसे परोक्षभूतकालके कर्तामे तिप् णल् । जि अ । द्वित्व जि जि अ । अचो ञ्णित सूत्रसे णित्परे जिमें इको वृद्धि ऐ आयादेश जिजाय दशामें **सन्लिटो**: जि धातुसे परे सन् या लिट्के कारण हुआ अभ्यास उससे परे कुत्व हो । अभ्यासात् और (चजोःसे) कु आये । सन्लिटोकी: निमित्त सप्तमी अभ्याससे जुड़ी । लिट्के कारण द्वित्व होकर **अभ्याससंज्ञक** जिसे परे दूसरे जको कुत्व 'ग'। जिगाय । जिगि अतुस् । कित्से गुण नहीं यण् जिग्यतुः । परोक्ष भूतकालमें विजय क्रियाका प्रयत्नवान् कर्ता मध्यमपुरुष, एकवचन सिप् थल् । जि जि थ । यह अनिट् धातु है क्योंकि वलादि आर्धधातुक इट् प्राप्त था । एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्से निषेध किया । उस निषेधको बांधकर कृ सृ भृ आदि सूत्रनियमसे इट् प्राप्त—किन्तु (जेता) तास प्रत्ययमें इट् नहीं अतः भारद्वाजके नियमसे विकल्प इट । कुत्व जिगयिथ । यदा न इट् किन्तु गणे जिगेथ जिग्यथुः जिगाय जिगय । णलुत्तमो वा उत्तमपुरुषके विकल्प णित्का फल वृद्धि । वस मस परे क्रादिनियमसे इट् होगा । जिग्यिव जेता—आगामी भविष्यकालिक विजय कर्ता । जेष्यति जेष्यसि जेष्यामि । जयतु जयतात् जयतां जयन्तु । जयानि जयाव जयाम । अजयत् अजताम् अजयन् । बीते भूतकालमें उत्कर्ष प्राप्त किया । जीयात् । आशीर्लिङ्सि यास्परे अकृत्सार्वधातुकयोःसे दीर्घ । जीयात् जीयास्तां जीयासुः । जीयाः जीयास्तम् जीयास्त । जीयासम् जीयास्व जीया-स्म हम सब का उत्कर्ष विषयक आशीर्वादानुकूल व्यापार । भूतकालमें विजयकर्ता हो लुङ् ति, इतश्च इलोप । अट् सिच् । अजि सत् । अस्ति सिचो इट् । सिचि वृद्धी परस्मैपद है । अजैषीत् अजैष्टाम् अजैषुः । अजैषीः अजैष्टम् अजैष्ट । अजैष्व अजैष्म । जीवका प्राणधारण जीनेकी क्रिया वर्तमान हो । जीवति जीवतः जीवन्ति जीवामि । जीविता जीविष्यति जीवतु जीव । जीवानि जीवाव जीवाम । अजीवीत् अजीविष्टाम्

धाभूतयोः रेफवकारयोर्हल्परयोः परत इको दीर्घः स्यात् । मूर्वति । पर्व पर्व मर्व पूरणे । पूर्वति । पर्वति । मर्वति । चर्व अदने । चर्वति । कष खष शिष जष झष शष वष मष रुष रिष हिंसार्थाः रोषति शिशेष शेष्टा । **शल इगुपधादनिटः क्सः** ।३।१।४५। इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः । अशिक्षत् । **तीषसहलुभरुषरिषः** ।७।२।४८। इच्छत्यादे । परस्य तादेरार्द्धधातुकस्येड्वा । रोषिता रोष्टा । रेषिता रेष्टा । भष भर्त्सने । इह भर्त्सनं श्वरवः । पुष पुष्टौ । पोषिता । अनुदात्तेषु 'पुष्ये'ति श्यना निर्देशादयमुदात्तः । अङ्विधौ दैवादिकस्य । ग्रहणान्नाङ् । अपोषीत् ! श्रिषु श्लिषु प्रुषु प्लुषु दाहे श्रेषति श्लेषति प्रोषति प्लोषति ।

इति परस्मैपदप्रक्रिया ॥ अथात्मनेपदम्

एध वृद्धौ । **टित आत्मनेपदानां टेरे** ।३।४।७९। टितो लस्यात्मनेपदानां

अजीविषुः । पीवतु मीवतु जीवतु स्थौल्य—मोटा होनेकी क्रिया । अपीयत् मोटा हो गया । पीविता मीविष्यति । तीवतु नीवेत् । निनीव निनीवतुः ।

मर्वति बन्धनानकूल क्रियानुकूल कृतिमानकर्ता । मूर्विता मूर्वेत मूर्वेतां मूर्वेयुः वे बाधें मूर्वति पर्वति मर्वति पूरा करेगा, उत्साह भरना । पुपूर्व परोक्षकालमें भर चुका । पूर्विष्यति पर्वतु । पूर्ण करो अपूर्वत् पर्वेत् पूर्यात् अपर्वीत् अपर्विषम् अपर्विष्व अपर्विष्म । **चर्व धातुका** चबाकर खाना अर्थ चर्वति चणकं । चना खाता है । श्वः चर्विता गोधूमं, लाजा चर्विष्यति । म करायकं चर्वतु । अचर्वत् अचर्वताम् अचर्वन् चर्वाणि चर्वाव चर्वाम । पर्वाणि पर्वाव पर्वाम । हम सब पूरा करे, चबाये अचर्वीत् अचर्विषम् अचर्विष्व अचर्विष्म :

चूषति==लेमन चूसता है । चूषतः चूषन्ति । यदि चूस चुका हो परोक्ष लिट । चुचूष चुचूषतुः । चूषिता चूषिष्यति चूषतु अचूषीत् । तूषति सन्तुष्टि प्रसन्नता है । अतूषीत् । पूषति बढ़ना पुष्ठ होता है । पुपूष पूषिता अपूषत् पूषेत् । पूषति मूषकः चोरी करता । भूषिता अमूषत् । लूषति अलंकृत करता है । भूष अलंकारे चुरादिमें भी है । भूषति भूषन्तः भूषन्ति । बुभूष भूषिता अभूषत् अभूषीत् । यूषति हिंसा करता है । रोषति रोष करना हिंसा है । मनमें ग्लानिसे । रुरोष रुरुषतुः रुरुषु रुरोषिथ रुरुषिम थल् वस् मस् परे क्रादि नियमसे । इट् जब हिंसा कष्ट अनुभूति आगामी भविष्यकालमें हो । लुट् तास् ति डा आदि । गुण रोषता । इट विकल्पका सूत्र-**ति-ईष** सह लुभ रुष रिष धातुसेपरे तकारादि आर्धधातुक ताको इट विकल्प हो । इस सूत्रमें आर्धधातुकस्यसे इट, स्वरतिसूतिसे वा । ति सप्तमीसे तदादिविधि द्वन्द्वसे पञ्चमी । ईषु इच्छायां तुदादि । इष् गतौ, आभीक्ष्ण्ये दिवादिको छोड़कर शेषको इट् रोषिता । न इट् किन्तु ष्टुत्व रोष्ठा । रोषतु अरोषत् रोषेत् अरोषीत् । रेषति हिनस्ति, रिरेष । इट रेषिता(न इट्) रेष्टा अरेषीत् । भषति कुत्तेकी आवाज भूकना अभाषीत् । कुत्ता रोया । पोषति पुष्ट करता है पुपोष सेट् धातु है । पोषिता पुष्ट करेगा । पोषतु अपोषत ।

अथात्मनेपदिनः परस्मैपदीके बाद आत्मनेपदी धातुओंकी साधनि का सिद्धि प्रकार प्रारम्भ वृद्धयर्थक एध धातु करते हैं । तङ् शानच् कानच्, अनुदात्तेत, ङित,

टेरेत्वम् । ए ते । आतो ङितः ।७।२।८१। अतः परस्य ङितामात इय्स्यात् । एधेते । एधन्ते । थासः से ।३।४।८०। टितो लस्य थासः से स्यात् । एधसे । एधेथे एधध्वे । एधे एधावहे एधामहे । इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ।३।१।३६ इजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् लिटि । आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य ।१।३।६३। आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात्कृञोऽप्यात्मनेपदं

धातुसे आत्मनेपद होता है । एध धातुमें अनुदात्त तथा इत्संज्ञक होनेसे आत्मनेपद त, आतां झ आदि आदेश हो । टित लट् लिट् लृट् लेट् लोट् ये टिल्लकार हैं। इनके स्थानमें आत्मनेपद प्रत्ययके टिको एकार हो । एधते माङ्गलिक अर्थमें वृद्धिके अनकूलक्रियावाचक एधधातोः वर्तमानकालिकवर्धनक्रिया या कर्ता अर्थ ल तस्य स्थाने आत्मनेपद प्रथमपुरुष एकवचन त आदेशे, तिङ् शित् सार्वसातुको परति । कर्तरिशप=अ एधत 'अचोन्त्यादिति' अन्त्य अच् तकारस्य अकारः टिसंज्ञका ततः टित् आत्मनेपदानामटेरे सूत्रसे टिसंज्ञकस्य अ को ए एधते बढ़ता है उपैधते (समीप में पहुचता है) समेधते । वर्धनार्थक एध् धातोः द्विवचने आताम् शप्—अ एध-आताम् अपित्सार्वधातुकके ङिद्वत् का फलम् ।

आतो अदन्त अङ्गसे परे ङित्प्रत्यय (जिसको ङिद्वत्भाव हुआ हो) के आ को इय् हो इतिसूत्रेण आताम्आकारस्य 'इय्' आद्गुणः इति गुण एकादेशे । वलिपरे यलोपे, टिसंज्ञकस्य आमः स्थाने एकारे एधेते एधन्ते । अनेककर्तामें वृद्धिकी क्रिया वर्तमान हो, तब एध् धातोः वर्तमाने लट्, आत्मनेपदे बहुवचने झ तस्य झोऽन्तः अन्त आदेशे शप् टिसंज्ञकस्य एकारे शप अकारस्य अन्त्य अकारेण सह पररुप एकादेशे । यदा वर्धनक्रिया म० पु० त्वम् इत्यत्र तिष्ठति वर्तमाना भवति। तदा वर्तमाने लट् थास् आदेशे शप् । एधथास् अत्र टेरेत्वं प्राप्नोति तं वाधित्वा । **थासेः** टित् लकारके थास्के 'से' आदेश हो । इति थासः 'से' आदेशे । एधसे । म० पु० आथाम् परे शप्, ङित् आकारस्य इय् गुणे टेःआमः एकारे ऐधेथे । तुम दोनों बढ़ते हो । यूयं एधध्वे । टेः (अमः) एत्वे ः अहं प्रतिदिनम् एधे । एध् धातोः वर्धनक्रिया त्वम्' इत्यत्र वर्तमान स्यात् तदा उ० पु० एकवचन इट् इ टिको ए अतो गुणे, पररुप, एधे । आवां एधावहे । वयं एधामहे। हमबढ़ रहे हैं। अतो दीर्घो यञिदीर्घे एत्वे ।

इजादेः इच् इ उ लृ ऋ ए ओ ऐ औ ये अक्षर आदिमें हों तथा गुरुमान् (दीर्घश्च प्रत्यय हुआ हो जिस धातुसे, उस प्रकृतिभूत धातुके समान अनुप्रयोग क्रिया हुआ कृञ् धातुसे भी आत्मनेपद हो । आम्प्रत्ययवत् पदमें बहुव्रीहि समासका विचार करते हैं । वत् का इव सदृश अर्थ है, आम् प्रत्ययके सदृश कृञ्से (अर्थ नहीं वैठता) इसलिए बहुव्रीहि समास करते हैं कि आम्प्रत्ययो यस्मात् आम्प्रत्यय हुआ हो जिससे, वह धातु आम्प्रत्यय है उसके सदृश परस्मैपदी कृधातु भी अनुप्रयोग दशामें आत्मनेपदी हो । गोपायश्चकारकी तरह परस्मैपदीं न रहे । क्योंकि वहां गुप्धातुके परस्मैपदी होनेसे कृञभी परस्मैपदी है । परन्तु आत्मनेपदी एधके समान कृधातु भी हों । यहां बहुव्रीहि अतद्गुण है । आम् और प्रत्यय ये (गुण) विशेषण हैं । इनसे धातुका बोध होगा, आम् और प्रत्ययका नहीं । जैसे दृष्टसागरम् आनय । यहां सागर रहित सागरदृष्टव्यक्ति लाया जाता है दृष्टः सागरो येन विशेषणसे प्रधानका अन्वय क्रिया में है । तस्य प्रधानस्य अन्यपदार्थस्य गुणाः विशेषणानि संविज्ञायन्ते क्रियादर्शनेन

स्यात्। **लिटस्तझयोरेशिरेच्** ।३।४।८१। लिडादेशयोस्तझयोरेश् इरेच् एतौ स्तः। एकारोच्चारणं ज्ञापकं तङादेशानां टेरेत्वं नेति। तेन डारौरसां न। एधाञ्चक्रे एधाञ्चक्राते एधाञ्चक्रिरे। एधाञ्चकृषे एधाञ्चक्राथे। **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्** ।८।३।७८। इणन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः। एधाञ्चकृढ्वे। एधाञ्चक्रे एधाञ्चकृवहे एधाञ्चकृमहे। एधाम्बभूवे एधामासे। अनुप्रयोगसामर्थ्यादस्तेर्भूभावो न, अन्यथा हि 'कृञ्चानुप्रयुज्यते' इति, 'कृम्भ्वति' वा ब्रूयात्। एधिता एधितारौ एधितारः। एधितासाथे। **धि च** ८।२।२५। धादौ प्रत्यये सलोपः स्यात्। एधिताध्वे। **ह एति** ७।४।५२। तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे। एधिताहे एधितास्वहे एधि-

---

प्रतीयन्ते यत्र तद्गुणसम्विज्ञानम्। यहां विशेषण अन्य पदार्थमें देखे जाते हैं जैसे—लम्बोदरम् आनय लम्बं दीर्घं तुन्दिलम् उदरं यस्य तम् आनय। यहां लम्बीतोंद विशेषण सहित विशेष्यव्यक्ति आता है। एवं लम्बौ कर्णौ यस्य स लम्बकर्णः (खरगोश) पीतम् अम्बरं यस्य स पीताम्बरः विष्णुः। विशेषण सहित विशेष्य का ज्ञान होता है। आम्प्रकृत्या—आम्प्रत्ययकी प्रकृति (एधधातु) के तुल्य समान अनुप्रयोग किया गया 'कृ' से आत्मनेपद हों। आत्मनेपद होनेकी दशामें विशेषण (आम् तथा प्रत्यय) नहीं मिलते।

लिट्:—लिट्के स्थानमें आदेश हुए तझयोः==त तथा झ को क्रमसे एश् इरेच् त के स्थानमें शित्वात्सर्वादेश, झ के स्थानमें अनेकालत्वात् इरेच् भवति। एधाञ्चक्रे—बढ़नेकी समाप्तक्रिया परोक्षमें हुई हो। एध लिट् आम् इजादिः गुरुमान्धातु है। ततो लिट् लुक् आमः से। कृञ्चानुप्रयुज्यतेसे कृ लिट् अनुप्रयोग लिट् स्थाने त, द्वित्वादिकार्ये कृकृ करकृ ककृ चकृ त स्थाने लिटस्तझयोरेशिरेच एश् सर्वादेशे एधाम् चकृ ए मान्तको अव्ययसंज्ञासे पद, तब अनुस्वारपरसवर्ण। द्विवचने द्विवचने एधाञ्चकृ आताम् यण् त्व झस्थाने इरेच्। तुम परोक्षकालमें पहले कभी बढ़ चुके हो। थास्को 'से' षत्व। कृ सृ भृ आदिसे इट् निषेध। **इणः**—इण प्रत्याहार के अक्षर हों अन्तमें ऐसे अङ्गसे परे षीध्वं लुङ् लिट् सम्बन्धी ध को ढ़ हो। एधां कृ ध्वम्। कृ द्वित्वे उरत् इति अत्। हलादिशेषे श्चुत्वे यण्। मकारस्य अनुस्वार परसवर्णौ। टिस्थाने एत्वे इणः षीध्वं सूत्रेण लिट् सम्बन्धी ध्वमः धस्य ढः इणन्त अङ्ग कृ। एधाञ्चकृढ्वे अनेककर्तामें वृद्धिजनक क्रियाका समाप्त परोक्षकाल अहम् एधाञ्चक्रे। इट् प्रत्ययमें इ को टित् मानकर एत्वे। मैं न जाने कब बढ़ा। वहि महि परे क्रादि नियम से इट् निषेध। टि को एत्व। हमलोग कब बढ़े थे। एधाम्बभूवे। कृ की जगह भू लिट् का अनुप्रयोग होनेसे सिद्ध हुआ प्रक्रियापूर्ववत्। एधिता (कल बढ़ने वाले हैं) वृद्धयर्थक एध्धातुसे अनद्यतन आगामी भविष्यकालमें भविताकी तरह अनेककर्ता बढ़नेवाले हों तब एधितारः एधितासे। तुम कल बढ़ोगे। थासः से, तासः (स्त्योः) सकारस्य लोपः। ऐधितास्+आथाम्। टेः (आम्भागस्य) एत्वे एधितासाथे। एधितास् ध्वम्।

धि च धादौ धकार आदिमें हो ऐसा प्रत्ययपरे 'स' का लोप हों। तास्के सका लोप धकारादिप्रत्ययः ध्वम् आदौ अस्ति। एधिताध्वे (तुमसब बढ़ोगे) ह एति तास् और अस् के स को ह हो एकारपरे। इटको टित् एत्व करने पर तास् के सको

तास्महे। एधिष्यते एधिष्येते एधिष्यन्ते। एधिष्यसे एधिष्यध्वे। एधिष्ये एधिष्यावहे एधिष्यामहे। **आमेतः** ३।४।९०। लोट एत् आम् एधताम् एधेताम् एन्धतां **सवाभ्यां वामौ** ३।४।९१। सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमद्वाऽमौ स्तः। एधस्व एधेथाम् एधध्वम्। **एत ऐ** ।३।४।९३। लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात्। आमोऽपवादः। एधै एधावहै एधामहै। आटश्च। ऐधत ऐधेताम् ऐधन्त। ऐधथाः ऐधेथाम् ऐधध्वम्। ऐधे ऐधावहि ऐधामहि। **लिङः सीयुट्** ।३।४।१०२। (लिङः सलोपोऽनन्त्यस्येति) सलोपः। **लोपो व्योर्वलि** ।६।१।६६। एधेत। एधेयाताम्। **झस्य रन्** ३।४।१०५। लिङो झस्य रन्। एधेरन् एधेथाः एधेयाथाम्। एधेध्वम्॥ **इटोऽत्** ।३।४।१०६। लिङादेशस्य इटोऽत्स्यात्। एधेय एधेवहि एधेमहि। **सुट् तिथोः** ।३।४।१०७। लिङस्तथोः सुट स्यात्।

ह हुआ एधिताहे। वहिमहि परे स्य इट् एत्व षत्व सामान्य भविष्यकालव बढ़नेकी क्रियाका सूचक लृट् (वह बढ़ेगा) एधिष्यते एधिष्येते (वे दोनों बढ़ेगे) एधिष्यन्ते= वे सब बढ़ेंगे। इसी प्रकार अन्यकर्तामें भी भविष्यकालिक वर्धन क्रियाका प्रयोग समझें। **आम्** एत लोट् सम्बन्धी एकारको आम हो। वर्धन क्रियाकी प्रेरणा था आशीर्वाद को कहना ही एध लोट् त शप् एत्वे एधते आमेतः एकारस्य। आम् कृते, एधतां वह सदा बढ़े। आताम् इत्यस्य ङिद्भावे कृते आतो ङितः इति आस्थाने इय् आदेशे एकादेशगुणे एत्वे आम् आदेशे पितरौ एधेताम्। वे दोनों सदा बढ़ें। छात्रा एधन्ताम्। **सवाभ्याम्** सकार वकारसे परे लोट् सम्बन्धी एकारको क्रमसे 'व' 'अम्' हों आमेतः को बांधकर। थासः से। एध से यहां स से परे एको व। एधस्व एधध्वम्। अत्र ध्वम् को एत्व करने पर (व) से परे एको अम् आमेतः को बाधकर। उ० पु० में टिको एत्व होने पर उस एकारको **एत ऐ**। लोट लकारके उ० पु० के ए को ऐ हो। एधै एधावहै हम, सब सदा बढ़ें। आडुत्तमस्य पिच्च से आट् आगम शप्, एध आ इ गुणे एधए ररुपे एधे टितात्मनेपदीनाम् एत्वे (एकारको आमेतः से प्राप्त आम् को बाधकर) एतऐ से ऐ आदेशे। एधै वहै महै एत ऐ ऐधत—कल बढ़ा था। वृद्धि-जनक क्रियावाचक एध् धातोः समाप्तअनद्यतनवर्धन क्रियाया। कर्तारि लङ् अजादीनां एध् इत्यस्य आट् टित् आदिः। आटश्चेतिवृद्धिः। लङ्स्थाने आत्मने-पदे त शप्,ऐधत ऐधेतां रामलक्ष्मणौ। छात्राः ऐधन्त। बढ़नेकी समाप्त क्रियाका कर्ता म० पु०। उ० पु० ऐधे एध लङ् आट् आटश्च वृद्धिः इट् शप् गुणे। ऐधामहि अतो दीर्घो यञि। हम लोग बढ़े थे।

लिङ्के स्थान में आत्मनेपद संज्ञक प्रत्ययोंको सीयुट् आगम हो। उट् इत् सीय् शिष्यते। लिङः सलोपो अनन्त्यस्यसे सलोप वृद्धिक्रिया के विषय में जहां आज्ञा अनुरोध, निवेदन स्वागत, निश्चय, प्रार्थनाकी सम्भावना हो वहां लिङ् एध् लिङ् तस्य अस्थाने आत्मनेपदे त शप्, लिङः स्थाने आत्मनेपदं, तकारस्य सीयुट् आगमः सार्वधातुकसंज्ञा। यदागमपरिभाषया अनन्त्यसकारस्य लोपः। लोपोव्योर्वलि वल-परे यकारस्य लोपः। एध इत गुणें। एधेत। एधेयाताम्—एध अ सीय आताम्। सकारलोपे, गुणे, कृष्णराम बढ़े। बहुबचने (एध अ ईय् झ) झस्य लिङ् के स्थान में आदेश ज को रन् हो। गुणे यलोपे एधेरन् (धार्मिकस्य धनानि) अकर्मकधातुमें फल क्रिया दोनों का आधार एक ही है। धनमें ही वृद्धिरूप फल है बढ़ना क्रिया भी

यलोपः। एधिषीष्ट एधिषीयास्ताम् एधिषीरन्। एधिषीष्ठाः एधिषीयास्थाम् एधिषीध्वम्। एधिषीवहि एधिषीमहि। ऐधिष्ट ऐधिषाताम्। **आत्मनेपदेष्वनतः** ।७।१।५। अनकारात्परस्याऽऽत्मनेपदेषु झस्य अत्स्यात्। एधिष्यत एधिष्येताम् ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः ऐधिष्येथाम् ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये ऐधिष्यामहि। कमु कान्तौ। **कमेर्णिङ्** ।३।१।३०। स्वार्थे। कामयते। **अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु** ।६।४।५५। एषु णेरय् आदेशः। कामयाञ्चक्रे आया-

---

त्वम् एधेथाः युवाम् एधेथा। यूयं एधेध्वम्। तुम सब बढ़ो। उ० पु० एकव० एध अ इय् इ इटो लिङ्के स्थानमें हुए आदेश इट्को अत् अ हो। एधेय वर्णसम्मेलने हम बढ़ें। सुट् लिङके स्थानमें त या थ को सुट् हो, यलोप। आर्धधातुकसंज्ञा होनेसे लिङ् सलोप नहीं लगता। बढ़नेके लिए शुभकामना आशीर्वाद अर्थके अनुकूल क्रिया उ० पुं० का कर्ता हो, तब एध—इट्, सीयुट् सुट् (लिङ्) त अनुबन्ध लोपे। लिङ सीयुट् त् परे सुट् लिङाशिषि आर्धधातुकसंज्ञा वलादिइट्। सलोपो न। सार्वधातु न होनेसे। षत्वेष्टुत्वे एधिषीष्ट। द्विवचने आताम्, एधिषीयास्ताम्, तत्र तकारपरे सुट्। बहुवचने झस्यरन् यलोप। एधिषीरन्। वे लोग सदा उन्नति करें। थास् को सुट् ष ष्टु एधिषीष्ठाः तुम सदा उन्नति करो। तव लोकपरलोकाः एधिषीध्वम्। एधिषीध्वम् एध इ षीय्ध्वम्। यहां इट् सीयुट होनेसे इणन्त अङ्ग नहीं है। इसलिए इणः षीध्वम्से ध को ढ नहीं हुआ। उ० पु० में इट्को अत् 'अ' होने से एधिषीय। हम सदा बढ़ें। यहां वर्धन क्रिया पूर्णरूपसे किसी समय ममःस हुई हो उस भूतकाल कर्तामें लुङ् आत्मनेपदे त आट् वृद्धि। च्लि, सिच, इट्, षत्वष्टुत्वे। ऐधिष्ट रावण। इदानी देवतामुनी ऐधिषाताम् (४) आत्मने अनकारात् अकाररहित वर्णसे परे आत्मनेपद झको अत् आदेश हो झोन्तः को बाधकरके। एध् इट् सिच् झ अनुबन्ध लोपे 'आत्मनेपदेष्वनतः' अकार भिन्न एधिका इ, या सिच् का स् उससे परे झ स्थाने अत् (अ) आदेशे षत्वे ऐधिषत धार्मिकाः, थास् परे सिचसस्य षत्वे ष्टुत्वे ऐधिष्ठाः ऐधिढ्वम्, एध् लुङ् आट् वृद्धिः ध्वम् च्लि, सिच् इट्, सकारलोपे 'धिच' सूत्रेण। इणः षीध्वम् सूत्रेण ध्वं प्रत्यय परे इणन्त अङ्ग एधि इत्यतः परे धस्य ढ। क्योंकि सिच् प्रत्यय धातुसे होता है सिच्को इट्, इट् सहित सिच्को तदादि मानकर अङ्गसंज्ञा। वर्धनक्रियाके कार्यकारणभावमें लृङ्। यदा पिता ऐधिष्यत पितरौ ऐधिष्येताम् तदा पुत्राः ऐधिष्यन्त, यदा अहम् ऐधिष्ये (बढ़ेंगे) तदा वयम् ऐधिष्यामहि।

उ इत् कम् धातुका कान्ति इच्छानुकूलक्रिया अर्थ है। यहां कामनारूपफल अलग रहता है, उसके अनकूल किया अन्यत्र, होनेसे सकर्मक धातु है। **कम् धातुसे णिङ्** इ प्रत्यय हो स्वार्थ—उसी अर्थमें दोनों अभिन्न हैं। णिङ्में ण् 'इत्'का फल वृद्धि है। और ङ् इत्का फल भी, कम् इ इति दशायां णितिपरे अतोपधायाः उपधायाःअकारस्य वृद्धिः, कामि शब्दस्य सनाद्यन्ताः धातवः धातुसंज्ञा। ततः लकाराः उत्पद्यन्ते तङ् आत्मनेपदे त, शप, इकारस्य गुणे अय् टित् आत्मने टेरे एकारे कामयते। इच्छा करता है बालकौ मोदकं कामयेते कामयन्ते। कामयेथे, कामयध्वे। अहं पुस्तकं कामये, आवां कामयावहे, वयं कामयामहे।

अयामन्त अय अन्त आलु आय्यइत्नु, इष्णु, ये प्रत्यय एक भी परे हो तो णिको अय् आदेश हो भूतकालिक परोक्ष कामनाक्रिया कर्ता अर्थमें कम् धातुसे लिट्, स्वार्थ

दय' इति वा णिङ्। चकमें चकमाते चकमिरें चकमिषे चकमाथेचकमिध्वे चकमें। चकमिवहे। चकमिमहें। कामयिता कामिता। कामयिष्यते कमिष्यते। कामयताम् अकायमत। कामयेत कामयिषीष्ट। कमिषींष्ट। णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् ।३।१।४८। ण्यन्तात्, श्रयादिभ्यश्च च्लेश्चङ् कर्त्रर्थे लुङि। अ कामि अ त इति स्थिते—णेरनिटि।६।४।४१ अनिडादावार्द्ध

में णिङ् सनाद्यन्ता धातुसज्ञां, कासनेकाच् 'आम्' वक्तव्यः आम् परे णि स्थाने अय् आदेश, आम् अन्त आलु, सूत्रेण। कामयाम लिट आमः इति लिटः लुक्। कृ लिट् इति अनुप्रयोगे लिट् स्थाने 'त' तस्य एश् आदेशे। द्वित्वादिकार्ये कामयाञ्चक्रे कामयाञ्चक्राते कामयाञ्चक्रिरे। अत्र झ स्थाने इरेच् आदेशे लिटस्तझयोरेशिरेचि। कामयाञ्चकृषे कामयाञ्चक्राथे कामयाञ्चकृध्वे कामयाञ्चक्रे कामयञ्चकृवाह, कामयाञ्चकृमहे। आयादय आयादयः आर्धधातुकसेवा सूत्रसे वा का अधिकार आने पर णिङ् विकल्पसे होता है। आय् आदि गण पठित है। जब नणिङ् तब आय् नहीं होगा। तो कम् त एश्, द्वित्वादिकार्य कम–कम ककम् चकम् टित् लकारों में सर्वत्र टिको एत्व होता है। कदा चजमे कब इच्छा किया चकमाते–आतां विभक्तिपरे। चकमिरे—उन लोगों ने काम किया। त्वं चकमिषे। यूवां परीक्षां दातुं चकमाथें। चकमिढ्वे। चकमे, कामयिता—कामना, दीप्ति प्रकाश अर्थवाजक कम् धातोः आगामिदिनभविष्यकाले अर्थे लुट्। कर्णेणिङ् विकल्पसे होने पर, अय् तास्, झ, आदि। पक्षे कमिता। दोनों रूपोंमें भविष्यकालिक कामना क्रियाकी शक्ति है। उसका प्रकाशक विकल्प है। सामान्य भविष्यकालमें कामना, दीप्ति, प्रकाशके अनकूल क्रिया हो, तब कामिष्यते। उक्त अर्थ णिङ् के विना भी दृष्ट है कमिष्यते कमिष्येते कमिष्यन्ते। कमिष्यसे कमिष्येथे कमिष्यध्वे कमिष्ये कमिष्यवहे महे। कामना करेंगे। कामयता कामना, कान्ति इच्छाके अनुकूल क्रियामें प्रेरणा आज्ञा, आशीर्वाद आदि की विवक्षामें, लोट् ते, ए ध्वं आमेतः से एको आम्। आप कामना करें। कामयेतां कामयन्तां कामयस्व कामयेथां पठनाय कामयध्वम्। पढ़नेके लिए तुमलोग कामना करो। कामयै कामयावहै कामयामहै। हम सब अध्ययन करें। अकायमत अकामयेताम् अकायन्त अकामयथाः अकामयेथाम् अकामयध्वं अकामये अकामयावहि महि। पढ़नेकी इच्छा थीं। गुरुशुश्रुषां कामयेत् किम्। णिङ् (उपधा वृद्धिः) कामि सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञकाः इच्छाकी सम्भावना अर्थमें लिङ् तिप् सीयुट् शप् अनुबन्धलोपे गुणे आयादेशे। पुनः गुणे। कामयेत् कामयेयातां कामयेरन् कामयेथाः कामयेगाथां लामयेध्वम्। कामयेय, कामयेवहि। कामयिषीष्ट। कामना विषयक आशीर्वाद अर्थमें लिङ्=मेरा आशीर्वाद है कि तुम प्रगति करो।

कामि इट सीयुट ध्वम् अनुपबन्धलोपे। यहां इण् कामि इ है उससे परे इट है उससे भी परे सीध्वम् का ध उसको ढ़ हुआ। कामयिषीढम् ध्वम्—णिङ् के अभाव पक्षमें (कम् इट सीय स त) षत्वे ष्टुत्वे कमिषीष्ट कमिषीयास्तां कमिषीरन्। कमिषीष्ठाः कमिषीयास्थां कमिषीढ्वम्। कमिषीय कमिषीवहि कमिषीमहि।

धातुके परे णेर्लोपः। **णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः** ।७।४।१। चङ्परे णौ यदङ्गं, तस्योपधाया ह्रस्वः चङि। **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** ।७।४।९३। चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्य सनीव कार्यं स्याण्णावग्लोपेऽसति। **सन्यतः** ।७।४।७९। अभ्यासस्याऽत इत्सनि। **दीर्घो लघोः** ।७।४।९४। लघोरभ्यासस्य दीर्घः, सन्वद्भावविषये। अचीकमत। णिङभावपक्षे—(कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः) णेरभावान्न दीर्घसन्वदभावौ। अचकमत। अकामयिष्यत अकमिष्यत॥ भाभ क्रोधे भामते बभामे। क्षमष् सहने। क्षमते चक्षमे। चक्षमिषे चक्षंसे चक्षमाथे। चक्षमिवहे। **म्वोश्च** ।८।२।६४। मान्तस्य

इच्छार्थक कम्धातोः स्वार्थेणिङ् उपधावृद्धिः। भूतार्थ=समाप्तकामनाजनकक्रियायाः कर्ता अर्थं लुङ्। आत्मनेपदे त अट च्लि इट। अकाम इ च्लि, सिच् प्राप्ते तं बाधित्वा **णि**=ण्यन्तधातु, श्रि सेवा, द्रु गति, स्नु-प्रस्रवणे, इन धातुओंसे परे च्लि के स्थानमें चङ हो कर्त्रर्थे=कर्तृवाच्य लुङ् परे। यदि कर्मवाच्य लुङ् हो तब च्लि को चङ् नहीं। च् ङ् इत् 'अ' शेष। शिष्यते अकामि अत-इति दशायां चङ के अ को आर्धधातुकसंज्ञा **णेः**=णिस्थाने, अनिट न इट अनिडादौ=इट आदिमें न हुआ हो ऐसे आर्धधातुक परे णिलोप हो। अनिट आर्धधातुकङ् का अ है, उसके परे णका लोप। अकाम अत इति स्थिते।

णौ चङि, उपधाया चङ् परक णिपरे जो अङ्ग उसकी उपधाको ह्रस्व हो। अङ्गसंज्ञक काम् उसकी उपधा 'आ' को ह्रस्व। अकम् अत। (१) **चङ्** परे हो तब अनभ्यासस्य=जिसको अभ्याससंज्ञा न हुई हो, द्वित्व न हुआ हो, ऐसे धातुका अवयव प्रथम एकाच् को द्वित्व हो। अजादि धातु हो तो, द्वितीय एकाच् को द्वित्व हो, द्वित्वे,कम्–कम् ककम् चकम अत **सन्वल्लघुनि**–चङ्परे णौ यदङ्ग चङ् परक णिपरे जो अङ्ग, उसका अवयव लघुनि=लघुपरक, लघु हो परे जिसमें ऐसा अभ्याससंज्ञक उसको सन्वद् (सन इव कार्यं)। सन् परे रहते जो कार्य होना हो उसके समान कार्यं यहां भी हो। अनग्लोपे=अक् इ, उ, ऋ लृ का लोप न हुआ हो तो णि परें। प्रसङ्गमें स्थानिवद्भावसे चङ् परक णि अ है उसके परे अङ्गसंज्ञक अन्त कम है, उसका अवयव अभ्यास च है, च में अ लघु होनेसे। अकथयत्में णिच् होनेपर अकार लोप हुआ हो वहां सन्वद्भाव इत्व नहीं होता लघु पर भी है आगे कम् का 'क' भी लघुसंज्ञक है यहां सन्वद्भाव होनेसे आगेका कार्य होगा। यहां का अक् (अकारका) लोप णिपरे नहीं हुआ है। सन्वद्भावके दो फल–अभ्यासको इकार, उसीको दीर्घ।

सनि अतः। अभ्यासके अ को इ हो सनिपरें। इसमें अ को 'इ' हुआ। **दीर्घो** अभ्यासके लघुसंज्ञक को दीर्घ हो सन्वद्भावके विषयमें। चङ् के अ को सन्वद्भाव हुआ है अभ्यासका लघु चि में इ को दीर्घ अकीकमत्। अचीकमेताम् अचीकमन्त। अचीकमथाः अचीकमेथाम् अचीकमध्वम् अचीकमे अचीकमावहि अचीकमामहि। स्वार्थिक प्रत्यय णिङ के अभाव पक्षमें, सन्वद्भाव इत्व दीर्घ नहीं होते। तब च्लि को चङ् करनेके लिए वार्तिक ककमे मसे परे च्लि के स्थानमें चङ् बोल वह अचकमत द्वित्व दिकार्ये रुपम्। कान्तिः इच्छाजनक भूतकालिक क्रिया अर्थ सभी कर्तामें है यदा अकामयिष्यत् तदा प्रयत्नेन फलमभविष्यत्। णिङ् अभावे अकमिष्यत।

भाम क्रोधे । भामते बभामे । क्षमूष् सहने । क्षमते चक्षमे । चक्षमिषे — चक्षसे चक्षंमाथे । चक्षिमिवहे । म्वोश्च ।८।२।६५। मान्तस्य धातोर्मस्य न स्यात् म्वोः परयोः । चक्षण्वहे चक्षमिमहे चक्षण्महे गाधृ प्रतिष्ठालिप्स-

---

भामका क्रोधानुकूल क्रिया अर्थ । भामते क्रोध करता है बभामे परोक्ष बीते हुए कालमें क्रोध किया । भामिष्यते भामताम् अभामत अभामिष्ट । ऊष् इत् छम धातुका सहने की क्रियाके वर्तमानकालिककर्तामें लट् त शप् एत्व । क्षमते एककर्तामें वर्तमान सहन । क्षमेते क्षमन्ते क्षमसे क्षमेथे क्षमध्वे । क्षमे क्षमावहे क्षमामहे । षिद्भिदादिभ्यो अङ्के लिए षित् पढ़ा । चक्षमे—सहनवाचक क्षमसे परोक्षे लिट, त—एश् द्वित्वादि । चक्षमाते चक्षमिरे । चक्षमिषे । ऊदित् होनेसे स्वरतिसूति सूत्रसे इट् विकल्प, अभाव पक्षमें चक्षंसे । नश्चापदान्तस्य अनुस्वार । अनुनासिकस्य क्विझलोःसे उपधा दीर्घ नहीं, संज्ञापूर्वकविधिके अनित्य होनेसे । स्थितस्य गतिश्चिन्तनीया । वहि महि परे यदा न इट् तदा—

म्वोश्च—(मोनोः) धातुः अनुवर्तने । मान्त धातुके मको नकार आदेश हो, म व परे । अट्कुप्वाङ्से णत्व चक्षण्वहे—महें । वयमभिन्नैकर्तृकः वरोक्षानद्यतन भूतकालिकः सहनानुकूलव्यापारः । क्षमिता क्षन्ता क्षन्तारौ क्षन्तारः । क्षन्तासि क्षन्तास्मि सहन करूँगा । क्षमिष्यते । क्षमिष्यसे । क्षमिष्ये क्षँस्यते क्षस्येथे । क्षंस्यावहे । क्षमतां क्षमेतां क्षमन्तां क्षमस्व क्षमेथां क्षमध्वं । क्षमै क्षमावहै क्षमामहै । एत ऐ । क्षमेत क्षमेयातां क्षमेरन् । क्षमेथाः क्षमेयाथां क्षमेध्व, क्षमेय क्षमेवहि ।

शर्पूर्वाः (अलोपः) अभ्यासके शर् (शषस) पूर्वमें ही उसका लोप किन्तु खयः=ख फ छ ठ थ च ट त व क प य के अक्षर शेष रहते हैं । शिष्यन्ते इति शेषः कर्ममें घञ् । बहुवचन, शर्पूर्वो येभ्यः अतद्गुणबहुव्रीहि ।

४ गाधृ—ॠ इत्का फल नाग्लोपिसे अजगाधत आदिमें उपधा ह्रस्व । गाधधातुका प्रतिष्ठा=आधारमें स्थिति स्थापना, रखना स्थिर करनेकी क्रिया ।

वनति=आपसमें बनता है (मम तुभ्यं च संवननं) हमारे तुम्हारे बीच अच्छी मित्रता हो, ववान ववनतुः ववनुः । परोक्षकालमें परस्पर बनता था । वनिष्यति वनतु वनतां वनन्तु । उसी विशेष भक्ति प्रेम पैदा हो । वनानि वनाव वनाम । हम बनाये । सम्भक्तिपर आधारित । अवनत् वनेत् वनेतां वनेयुः । वनेः वनेतं वनेत । वनेयं वनेव वनेम । अवानीत् अवनीत् अवनिष्टाम् अवनिषुः अवनी अवनिष्टम् अवनिष्ट । अवनिषम् अवनिष्म, सनति घुलमिल, सन् रहा हैं । विशेष भक्तिकी वर्तमानकालिक क्रिया । सन सन ससन ससान । परोक्षमें मिल चुका । एत्व अभ्यास लोप सेनतुः । सनिता सनतु असनत् सन्यात् सायात् आत्व सूत्र—

(१९) ये विभाषा जन सन् खन् धातुके अन्त्य अल्को आ हो, य आदि प्रत्यय कित् ङित् परे । अनुदात्तोपदेशसे क्ङिद् विड्वतोःसे आत्की अनुवृत्ति । सम्भक्ति=विशेष प्रेम घनिष्ठता के अनुकूल सन धातुः आशीर्वादे कर्तरि अर्थे लिङ्

योर्ग्रन्थे च गाधते बाधृ लोडने। लोडनं प्रतिघातः। नाथृनाधृ याच्ञोपताप-ैश्वर्याऽऽशीःषु। (आशिषि नाथ इति वाच्यम्) अस्याऽऽशिष्येवात्मनेपदं

लिप्सा-लब्धुमिच्छा लोभकी क्रिया। ग्रन्थे-प्रथन रचना गूंथना संग्रह एकत्र स्थापनं सन्दर्भः ग्रन्थः इन अर्थोमें स्थापना लोभ एकत्रीकरण तीन फल है उसके अनुकूल क्रिया अर्थ। स्थापना लोभ ग्रथन फलक्रियावाचक गाधसे वर्तमानकालिक क्रियाका आधार कर्तामें लट्, **गाधते** गाधेते गाधन्ते। गाधसे गाधेथे गाधध्वे। गाधे गाधावहे गाधामहे। परोक्ष भूतकाल आजका न हो ऐसे प्रतिष्ठा लोभ रचना क्रियाके कर्तामें लिट्-त-एश, शप्। गाध्=द्वित्वादिः गगाध जगाधे। गाधिता गाधिष्यते। गाधतां गाधेतां गाधन्तां, गाधस्व गाधेथां गाधध्वं, गाधै गाधावहै गाधामहै। अगाधत। गाधेत। गाधिषीष्ट अगाधिष्ट। अगाधिष्यत।

५ वाध-ऋ इत् धातुका प्रतिघात प्रतिकूल आचरण, बाधा डालना पीड़ा पहुँचाना अर्थ, इस क्रियाके वर्तमान कालिककर्ता-बाधा क्रियाका आधार अर्थमें लट्, **वाधते**। वह क्रिया भूतकालमें प्रत्यक्ष न हुई हो लिडादि। **ववाधे** वाधिता वाधिष्यते वाधताम् अवाधत, वाधिषीष्ट। अवाधिषतां।

६–७ ऋ इत् **नाथ नाध** धातुका याच्ञा–मांगना, उपताप=ज्वरसे प्रचण्डपीड़ा, आशीः आशासनं, न प्राप्त वस्तुकी प्राप्तिकामना फल है ऐसी क्रिया धातुका अर्थ। वर्तमान कर्तामें लट्। **नाथते** नाधते मांगता है ज्वरसे पीड़ित है न मिली वस्तु मिलती हैं। नाथधातुके विषयमें विशेषता - (वा) **आशिषि** नाथ शब्दके केवल आशीर्वाद अर्थमें आत्मनेपद हों। अनुदात्त इत्से आत्मनेपद होता ही, वार्तिक नियमके लिए—आशीर्वाद अर्थमें ही नाथ धातुसे आत्मनेपद हो। नाथते आशास्ते। अन्यत्र=याच्ञा उपताप अर्थ हो शेषात्कर्तरि परस्मैपद ही हो। नाथते याचते पीडित है। ननाथे नाधिता नाधिष्यते।

नाधताम् अनाधत नाथेत नाथिषीष्ट अनाथिष्ट अनाधिष्ट अनाधिष्यत्। ८ **दध** धातुका वस्त्र आदि धारण क्रियाके कर्तामें लट्—त शप् टेः–ऐ **दधते** दधेते दधन्ते। दधसे दधेथे दधध्वे, जब धारण क्रियाको न देखा भूतकालकी क्रिया हो परोक्षे लिट्। लिटि परे दधको द्वित्व—दध दध ऐ।

स्कुन्द धातुका आप्रवण उत्प्लुत्य गमन उछलकर या कूद-कूदकर चलना उद्धारहोनेकी क्रिया। **श्विद** धातुका श्वेतस्य भावः श्वैत्यं, सफेदी धवलिमाकी क्रिया और फल एक आधारमें, अकर्मक। केशः **श्विन्दते** बाल सफेद हो रहे हैं। श्वेतगुण धातु अर्थमें विलीन होनेसे अकर्मक मानकर गतिबुद्धि - सूत्रसे। देवदत्तः भित्तिं श्विन्दति चूर्णकेन। दिवाल चूनेसे सफेद करता है, **श्वेतीभवनं** भवन्ति ते श्विन्दन्ते श्वेतीभवन्ति उजला हो रहे है। इकार इत् का फल नुम् अनुस्वार परसवर्ण। परोक्ष अनद्यतन भूतकालिक सफेद होने की क्रियाके कर्ता अर्थमें लिट्।

स्यात्। नाथते। अन्यत्र नाथति नाधते। दध धारणे। दधते स्कुदि आ-प्रवणे। आप्रवणम् उत्प्लवनामुद्धरणं च। स्कुन्दते चुस्कुन्दे श्विदि श्वैत्ये। श्विन्दते शिश्विन्दे॥ वदि अभिवादनस्तुत्योः। वन्दते ववन्दे॥ भदि कल्याणे

शिश्विन्दे शिश्विन्दिषे। त्वं कर्तामें परोक्षक्रिया, श्विन्दिता, श्विन्दिष्यते श्विन्दताम् अश्विन्दत, श्विन्देत श्विन्दिषीष्ट अश्विन्दिष्ट। ११ इ-इत् नुम्सहित वद्धातु अभिवादन=प्रणामके बाद आशीर्वाद शुभ कामनाका कारणभूत-क्रिया अभिवादन है। स्तुति=प्रशंसा गुण गान। **वन्दते** आशीर्वादके लिए प्रणाम करता है। एक कर्तामें वर्तमान प्रणाम और स्तुतिकी क्रिया जो सभी कर्तामें रहेगीं। लकारोंसे विशेष अर्थोंका अन्तर होगा, **ववन्दे** वन्दिष्यते। वन्दतां वन्देतां वन्दताम् वन्दस्व वन्देथां वन्दध्वम्। वन्दै वन्दावहै–महै। **अवन्दत** अवन्देतां अन्दन्त। अवन्दथाः अवन्देथाम् अवन्दध्वम्। अवन्दे अवन्दावहि अवन्दामहि। वन्देत वन्दिषीष्ट अवन्दिष्ट, अवन्दिष्यत। सभी लकारके कर्तामें अशीर्वाद पानेके और गुणगानकी क्रिया आदि प्रक्रिया मान लें। १२ इ-इत्से नुम्सहित भन्द धातुका कल्याणं शुभ—हित होने की क्रिया, सुखीभाव व्यापार अर्थं। **भन्दते** बभन्दे अभ्यासके भको जश् ब। भन्दिषीष्ट अभन्दिष्ट अभन्दिष्यत्। इदित्से नुम् सहित मन्द धातुका स्तुति (गुण प्रकाश) मोदः सन्तोशः प्रसन्नता मदः-गर्वः शक्तिपूर्ण शहंकार। शयन, इच्छा गति आदि फलकी जननी क्रिया अर्थ। भन्दते उत्तमपुरुषके कर्तामें वर्तमान-कालकी उक्त किया। **ममन्दे**। नुम् होनेपर मध्यमें हल् जुड़ गया, एत्व अभ्यास लोप नहीं।

१४ इ-इत् नुम् सहित स्पन्दधातुका किञ्चिचलना, कम्पन हिलनेकी क्रिया, स्पन्दसे-वर्तमानकालिक हिलना-डुलना क्रियाके कर्ता अर्थमें लट् त, टेः ए। स्पन्दते एक कर्तामें अद्य भिन्न भूतकालकी क्रियाके कर्तामें लिट्। द्वित्व अभ्याससे खय्-प शेष, पूर्वमें शर-सका लोप। **पस्पन्दे** पस्पन्दाते पस्पन्दिरे। पस्पन्दिषे पस्पन्दाथे पस्पन्दिध्वे। पस्पन्दे पस्पन्दिवहे=महे। स्पन्दिता, स्पन्दिष्यते, स्पन्दतां स्पन्दन्ताम्। स्पन्दस्व स्पन्देथां स्पन्दध्वं, स्पन्दावहै–महै अस्पन्दत्। स्पन्देत स्पन्दिषीष्ट अस्पन्दिष्ट अस्पन्दिषाताम् अस्पन्दिषत् अस्पन्दिष्यत।

उर्द धातुका माने—तौलने, माप करने क्रीडा खेल रमण क्रिया अर्थमें है। च–पढ़ने आस्वादन, रसका ग्रहण भी केचित्। इस अर्थके अनुकूल क्रियाका प्रयत्न कर्ता चैत्र।

उपधायां च धातुके उपधा संज्ञक (अन्तिम अल्का पूर्ववर्ण) धातुके रेफ व परक हल्परे इक्को दीर्घ हो रेफ परे। अल् उर्दमें। इक्-इ उ ऋ लुको दीर्घ। हलि च वोंरुपधायाःसे दीर्घ प्राप्त नहीं था। रेफ या व अन्त न होनेसे। धातोः न पढ़ते तब अधिकारसे धातुका उपधा न होकर पदका उपधा अर्थ होता—ऊर्दतेमें दीर्घ न

सुखे च। भन्दते बभन्दे मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु। मन्दते ममन्दे स्पदि किंचिच्चलने। स्पन्दते स्पन्देते। पस्पन्दे मुद हर्षे मोदते मुमुदे उर्द माने, क्रीडायां च। ऊर्दते ऊर्दाञ्चक्रे। कुर्द खुर्द गुर्द गुद क्रीडायामेव। कूर्दते खूर्दते गूर्दते गोदते। जुगुदे। षूद क्षरणे। सूदते सुषूदे।

हो पाता। रेफ व क्यों पड़ा? पुष्पति यहाँ र व नहीं है। हल्परे क्यों? चिरिणोति अच्परे है। इक् क्यों? नर्दति, अ है, इक् नहीं, दीर्घ न हो।

ऊर्दाञ्चक्रे इजादेश्च गुरुमतोः सूत्रसे इच् आदि मानकर आम्, कृञ्का अनुप्रयोग। दीर्घ। उर्द कृ लिट्। इत्यादि नापना तौलना क्रीड़ा खेलकी क्रिया मुख्य अर्थ। शेष काल वचन जोड़ लें। **ऊर्दिता**। ऊर्दताम्। और्दत। और्दिष्ट। २१ **कुर्द कुर्द** गुर्द और गुद ये धातु क्रीडा खेल आदि अर्थमें ही है। एवका अर्थ (सीमित करनेसे) सिद्ध है कि अन्य अर्थभी होते है। धातूनाम् अनेकार्थत्वात्। एक शब्दसे प्रमाणित, उपलक्षण भी। प्रसिद्धार्थ बोधकत्वे सति अप्रसिद्धार्थबोधकम् उपलक्षणम्। **कूर्दते** एककर्तामें उछल कूद खेलकी क्रिया। यदि परोक्षमें खेल चुके हों आजसे भिन्न भूतकाल हो तब कर्तामें लिट्। **चुकूर्दे**—द्वित्वादि होनेपर कुहोश्चुःसे कको च। कदा **चुकुर्दे** चुकूर्दाते चुकूर्दिरे। चुकूर्दिषे चुकूर्दिध्वे। चुकूर्दे चुकूर्दिवहे-महे, कूर्दिता कूर्दिष्यते। कूर्दतां कूर्देतां कूर्दन्तां। कूर्दस्व कूर्देथां। कूर्दै एत ऐ। अकूर्दत अकूर्देतां अकूर्दन्त। अनद्यतन भूतकाल, खेल, कूदकी क्रियाका चेष्टावान। कूर्देत कूर्देयातां कूर्देरन्। कूर्देथाः तुम सब कूदो, छलांग लगाओ। कूर्देयाथां कूर्देध्वं कूर्देयम् (इटो-अत्) कूर्देवहि कूर्देमहि। कूर्दिषीष्ट कूर्षिषीयास्तां कूर्दिषीरन्। **अकूर्दिष्ट** अकूर्दिषातां अकूर्दिषत,भूतकालमें कूदना क्रियाके लिए चेष्टावान्। अखूर्दिष्यत्। चुखूर्द गूर्दिता। गूर्दताम् गड्ढेमें छिपनेकी क्रिया। गूर्दते खेलकी क्रिया सभी धातुका अर्थ। गोदते। शप् लघूपध गुण, उपधायां च जुगुदे। असंयोगसे परे लिट् कित् है, गुण नहीं निषेधसे। २५ षूद क्षरणे-धातुके आदिषको स। सूद धातुका चूने पसीझने टपकने की क्रिया अर्थ। वर्तमानकाल के कर्ता में लट्-त एत्व। सूदते प्रस्त्रति। लघूपध नहीं, न गुण। सुषूदे सुषूदाते सुषूदिरे। **सूदिता**—कल झरेगी। सूदिष्यते भविष्यते भविष्यमें चू जायेगी। सूदताम् असूदत असूदेतां असूदेन्त्र। सूदेत सूदेयातां सूदेरन्। असूदिष्ट पानी चू गया।

ह्लादका अव्यक्तशब्द-अमनुष्यवाक् सिंह, हाथी, गर्दभके ध्वनिकी क्रिया। **ह्लादते**। वर्तमानकर्तामें क्रिया। जह्लादे परोक्षभूतकालमें जोरसे चिल्लाने हँकड़नेकी क्रिया, चेष्टावान् चैत्रः ह्लादी। ई-इत्का फल स्वीदितो निष्ठायांसे निष्ठामें इट् निषेध होना। प्रह्लन्नः प्रह्लन्नवान्। इट् नहीं हुआ, ह्लादो निष्ठायांसे उपधा ह्रस्व। अव्यक्त-शब्द बिना बोले—आनन्दानुभवकी क्रिया कर्तामें वर्तमान हो लट्। त, टेः ऐ। **ह्लादते** जह्लादे ह्लादिता ह्लादिष्यते ह्लदतां अह्लादत ह्लादेत ह्लादिषीष्ट

ह्लाद अव्यक्ते शब्दे । ह्लादते जह्लादे । ह्लादी सुखे च । चादव्यक्ते शब्दे । ह्लादते स्वाद आस्वादने । स्वादते । पर्द कुत्सिते शब्दे । गुदरवे इत्यर्थः । पर्दते पपर्दे ॥ यती प्रयत्ने । यतते येते । श्रथि शैथिल्ये । श्रन्यते ॥ ग्रथि कौटिल्ये । ग्रन्थते ।

अह्लादिष्ट अह्लादिषातां । अह्लादिषत । अह्लादिष्यत ।

२८ स्वाद धातुका आस्वादन रसना से रस लेनेकी क्रिया । केवल दन्त्य परक नहीं न षोपदेश । असस्वदत मे न षत्व प्रमाण है । स्वादते । रसलेता चाटता है । सस्वादे सस्वादाते सस्वादिरे । स्वादिता स्वादितारौ स्वादितारः । स्वादिष्यते स्वादिष्येते स्वादिष्यन्ते स्वादिष्यते स्वादिष्यसे स्वादिष्येथे स्वादिष्यध्वे । तुम लोग स्वाद ग्रहण करोगे । स्वादिष्ये स्वादिष्यामहे । स्वादतां स्वादेतां । स्वादेथां स्वादध्वं, स्वादै स्वादावहै स्वादामहै । एत ऐ । अस्वादत अस्वादेतां अस्वादन्त । स्वादेत स्वादेयातां स्वादेरन् । स्वादिषीयास्तां स्वादिषीरन्, अस्वादिष्ट अस्वादिषातां अस्वादिषत । अस्वादिष्ठाः अस्वादिषातां अस्वादिध्वम् । अस्वादिषि अस्वादिष्वहि-महि । वयं । बहुकर्तृक भूतकाल की स्वाद ग्रहण क्रिया । २९ पर्द धातुका कुत्सित शब्द (गुदरव दूषितवायु खुलनें) की क्रियाके वर्तमान कालिक कर्तामें त आदि । पर्दते पर्देते पर्दन्ते । पर्दसे । पपर्दे । पर्दिता पर्दिष्यते पर्दताम् । अपर्दत अपर्देताम् अपर्दन्त । अपर्दथाः अपर्देथाम् अपर्दध्वम् । अपर्दे अपर्दावहि अपर्दामहि । पर्देत पर्दिषीष्ट । अपर्दिष्ट अपर्दिषाताम् अपर्दिषत । अनेक कर्तामें दूषित वायु खुलनेकी भूतकालिक क्रिया । ३० यती ईकार इत्का फल निष्ठा इट् निषेध, प्रयत्न क्रियाकी सफलतामें चेष्टा यत्न । यतते, सफलतासे लिए कोशिश करता है । येते येताते येतिरे । यत् यत् द्वित्व होनेपर अत एकहल्मध्ये सूत्रमे एत्व अभ्यासलोप हुआ । यतिता यतिष्यते । यततां यतेतां यतन्ताम् । यतस्व यतेथां यतध्वं । यतै यतावहै यतामहै । अयतत । यतेत । अयतिष्ट—

३५ श्रथि इ—इत्से नुम् अनुस्वारपरसवर्ण । श्रन्थ धातुका शिथिलता स्रंसन—ढीला होना, सुस्त, हरारतकी क्रियाके वर्तमानकालिक कर्तामें लट् । श्रन्यते—एककर्तामें वर्तमानशिथिलता थकावट सुस्तीकी क्रिया । शश्रन्थे । श्रन्थिष्यते—थकेगा, शिथिल होगा । अश्रन्थत श्रन्थेत । ३६ इ-इत् नुम् सहित-ग्रन्थ धातुका कौटिल्यं शाठ्यं=वक्रीभवनं, हठ चपलताकी क्रिया । गूंथना ग्रन्थते-कर्तामें वर्तमान-कालिक गूंथना क्रिया, जग्रन्थे । द्वित्वादि कुहोश्चुः । बीते भूतकालमें गूंथनेंकी क्रिया । ३७ कत्थ धातुका श्लाघा आत्म प्रशंसा, अविद्यमान गुणको प्रकाशित करना । अपनें मुंह मिट्ठू बनना । कत्थते । चकत्थे, कत्थिता कत्थिष्यते । कत्थतां अकत्थत । कत्थेत । अकत्थिष्ट ।

कत्थ श्लाघायाम् । कत्थते चकत्थे । श्लोकृ सङ्घाते । सङ्घातो ग्रन्थः । स चेह ग्रथ्यमानस्य व्यापारो, ग्रन्थितुर्वा । आद्येऽकर्मको, द्वितीये सकर्मकः । श्लोकते । शुश्लोके । शकि शङ्कायां । शङ्कते शशङ्के । अकि लक्षणे । अङ्कते आनङ्के । ककि वकि श्वकि त्रकि ढौकृ त्रौकृ ष्वष्क वस्क मस्क टिकृ टेकृ तिकृ तीकृ रघि लघि गत्यर्थाः । कङ्कते वङ्कते श्वङ्कते त्रङ्कते ढौकते डुढौके त्रौकते तुत्रौके । (सुब्धातुष्ठिवुष्वष्कतीनां सत्वनिषेधः ।) ष्वष्कते षष्वष्के । वस्कते ववस्के । मस्कते ममस्के । टेकते टीकते । तेकते तीकते । रङ्घते

विलन्दका परिदेवन— पुर्ण वेदना, स्मरणकर, पूरा अङ्ग शिथिल विह्वल हो रो पड़ना । यह धातु अनुदात्तेत् में पढा है या पढना परस्मैपदार्थ । क्रिया फल कर्तृगामी होने पर भी परस्मैपदार्थ । विलन्दति चैत्रकी यादकार रो पड़ता है ।

श्लोकका संघात शब्दसन्नियोजन वाक्य रचना । ग्रन्थे यद्यपि क्रिया रूप नही है धातु अर्थ कैसे ? तब बोले— स चेह वह ग्रन्थ इस स्थलमें ग्रथनं संघीभावः संघीकरणं संघनिष्ठ समुदित ग्रन्थरूप अर्थ में अकर्मक । क्योंकि ग्रथ्यमान ग्रन्थकी क्रिया स्पष्ट है । ग्रन्थ श्लोकते युजबन्दी करता है । ग्रन्थितुः वा युजबन्दी करना क्रियाके कर्तामें संघीकरणने सकर्मक । श्लोकते संघीकरोति युज करता है अथवा काव्य बनाता है । शश्लोके श्लोकिता, श्लोकताम् श्लोकत श्लोकेत ।

शक धातुका शङ्काके अनुकूलव्यापार अर्थ । इदितो नम् । अनुस्वार परसवर्ण । शङ्कते—सन्देह करता है । शशङ्के—कब शङ्का कर चुका । शङ्किता शङ्किष्यते, शङ्कताम् अशङ्कत शङ्केत शङ्किषीष्ट, अशङ्किष्ट, अशङ्किष्यत ।८७ इदित् नुम् सहित अङ्क धातुके लक्षण (चिह्नित अङ्कित) मुद्रा ठप्पा, नम्बर लगाते की क्रियाके वर्तमानकालिक कर्ता में लट् । अङ्कते मोहर लगाने या नम्बर चढाने की क्रिया । यदि वह परोक्ष भूतकालमें हो लिट् त—एश् द्वित्वादिः । अङ्क ए । तस्मान्नुड् द्विहलः नट् आनङ्के । अङ्किता, अङ्कताम्, आङ्कत, आङ्केत, आङ्किष्ट ।

चार धातु इ—इत्से नुम्का विषय कङ्कल होना । कङ्कते टेढी खीर की क्रिया श्वङ्कते त्रङ्कते, ऋ—इत् ढौकते धौकनेकी गतिकी क्रिया । त्रौकते रक्षणकी वर्तमान कालिक क्रिया । ष्वष्कते खुस्क केवल दन्त्यपरक सादि नहीं न षोपदेशः । वस्कते मस्कते दाब लगाना । टेकते टीकते तेकते तीकते । इ-इत् रघ लघ इदितो नुम् । रङ्घते लङ्घते ये सभी धातु गति अर्थमें है । लोकमें अनुभूतिके आधार पर निर्णय लें । जैसे नीरस, व्यापक दबोच, टीका करना, लङ्घन आदि क्रियाओंमें गति अर्थ अनुभूत है । चकङ्के । ववङ्के त्रङ्किता डुढौके अभ्यासके धको जश् द । औ को ह्रस्व उ । ष्वष्ककी षोपदेशमें गणनासे षत्व प्राप्त था । उसका बाधक (वा०) सुप् धातु ष्ठिवु ष्वष्क-इनके आदि ष के सत्व निषेध कहे । ष्वष्कते । द्वित्व होने पर षष्वष्के सु धातु ।

लङ्घते श्लाघृ कत्थने । श्लाघते शश्लाघे पचि व्यक्तीकरणे । पञ्चते पपञ्चे ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु । अर्जते नुड्विधौ ऋकारैकदेशो रेफो हल्त्वेन गृह्यते, तेन द्विहल्वान्नुट् । आनृजे ऋजि भृजि भर्जने, ऋञ्जते ऋञ्जाञ्चक्रे

यथा—षट् दन्ता: अस्य षोडन (६ दांत वाला) तमाचष्टे षोडयति णिच्, टिलोप (६ दांत वालेको बुलाता है) एवं षण्डं करोति आयष्टे वा षण्डयति नपुंसक कहता है या बुलाता है धात्वादे ष: स: सूत्रमें उपदेशकी अनुवृत्तिकर वार्तिकका भाष्यकार ने प्रत्याख्यान किया । टीका टिप्पणीमें भी धातुका उपयोग तृतीय धातु किसीके मतमें दन्त्य से है ।

श्लाघका कत्थन स्तुति परगुण प्रकाशनकी क्रिया श्लाघते–प्रशंसा करता है । शश्लाघे श्लाघिता श्लाघतां श्लाघेत अश्लाघिष्ट ।

पचि विस्तारे पञ्चयति चुरादिमे, पञ्चमी है । पपञ्चे पपञ्चाते पपञ्चिरे पञ्चिता पञ्चिष्यते पञ्चिताहे । पञ्चतां पञ्चस्व पञ्चै । अपञ्चत अपञ्चताम् अपञ्चन् । पञ्चिषीष्ट अपञ्चिष्ट । ऋज धातुका गति–गमन धारण स्वीकार अर्जन सम्पादन पैदा करना, प्रसङ्गसे ऊपरी लाभ या सेवनकी क्रिया । वर्तमानकालका कर्ता हो लट् त आदि, ऋज त लघु-उपधा गुण, रपर, एत्व । अर्जते एककर्तामि गमन स्थिति धनार्जन । प्रसंगसे धन आनेकी क्रिया, नुड्विधौ—तस्मात् नुट् द्विहल नुट् होना हो, ऋमें अच् के भीतर र हल् बैठा है वही एकादेश के रेफ को हल् मानकर दो हल् हुआ । अत: नुट् । ऋजको द्वित्व असंयोगात् लिट् कित् है अत: न गुण । अभ्यासके ऋ को उरत्से अत् रपर हलादिशेष । अत आदे:, सूत्रसे दीर्घ तब नुट् आनृजे–एककर्तृकपरोक्षानद्यतनभूतकालिक अर्जनोपार्जनानुकूलव्यापार: । अर्जिता, अर्जताम् आर्जत । अनद्यतन भूतकालिकद्रव्योपार्जन, सेवानुकुला च क्रिया । ऋजि-षीष्ट-ऋज इ इत्, नुम् आदि । दूसरा भृज । ई इत् का फल श्वीदितो निष्ठयांसे इट् निषेध । ऋज्यते । भर्जते लघु उपधामें गुण रपर । भाड़में भूजना क्रिया । जलं विना तण्डुलादे: सन्तापविशेष: । बिना पानीके पकाना । वर्तमानकाल । प्र उपसर्ग जुड़ेगा तब उपसर्गादृति धातौसे वृद्धि प्राञ्जते । ऋञ्जाचक्रे, नुम्से संयोगे मानकर ईजादेश्च गुरुमत:से आम् । कृ लिट्का अनुप्रयोग । भूतकालकी अप्रत्यक्ष क्रिया । ऋञ्जिता ऋञ्जिष्यते ऋञ्जताम् प्राञ्जत । लङ्लकारमें तआदेश च्लि सिच् आट्वृद्धि षत्व ष्टुत्व आर्जिष्ट । भृज द्वित्व हलादिशेष बभृजे बभृजाते बभृजिरे भर्जिता एक कर्तामि कल परसों भविष्यकालिक क्रिया । भर्जितासे भर्जितासाथे भर्जिताध्वे । भर्जिताहे भर्जितास्वहे भर्जितास्महे । भर्जिष्यन्ते भर्जिष्यध्वे । भर्जिष्यामहे । भर्जतां भर्जेतां भर्जन्तां भर्जस्व : भर्जै । भर्जामहै । अभर्जत अभर्जेताम् अभर्जन्त । अभजथा: बीते भूतकालमें भूजनेकी क्रिया । वह क्रिया आज्ञा प्रेरणा का विषय हो कर्तामें लिङ् त, । सीयुट् आदि । भर्जेत भर्जेयातां भर्जेरन् । भर्जिषीष्ट भर्जिषी–

आर्न्जते भर्जते। एजृ भेजृ भ्राजृ दीप्तौ। एजते एजाञ्चक्रे,भ्रेजते बिभ्रेजे भ्राजते बभ्राते॥ वेष्ट वेष्टने। वेष्टते विवेष्टे॥ चेष्ट चेष्टयाम्। चेष्टते चिचेष्टे। स्फुट विकसने। स्फोटते पुस्फुटे, टुवेप्ट कम्पने वेपते। कपि चलने कम्पते, भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च। भिक्षते बिभिक्षे॥ दीक्ष मौण्ड्येज्यो-

यास्तां भर्जिषीरन्। भर्जिषीष्ठाः भर्जन क्रिया विषयक आशीर्वाद। यदि भूत वक्ता हो भूतकालका प्रेरक कर्तामें लुङ् त। सिच् अट् इट् गुण रपर षत्व, अभर्जिष्ट अभर्जिषाताम् अभर्जिषत अभर्जिष्यत। ऋ इत् एज भ्रेज भ्राज धातुका दीप्ति प्रकाश तेज चमकना अर्थ। उसके वर्तमान स्थितिके कर्तामें लट् आदि। एजते भ्राजते ऋ इत् का फल नाग्लोपिसे निषेध। भ्राजमें ऋ-इतका फल अनुदात्त लक्षण आत्मनेपद होना। एजांचक्रे। इजादिमानकर आम् इत्यादि। भ्राजिता भ्राजिष्यते। भ्राजताम्। अभ्राजत। अभ्राजिष्ट। अभ्राजिषाताम् अभ्राजिषत। ईज धातुका गमन और निन्दित होना अर्थ। ईजते लीचड़काम कर्ता। इजादि मानकर आम् कृ लिट आदि।

वेष्ट धातुका बेंठन लपेटने की क्रिया वेष्टते वेठन बाधता आदि। विवेष्टे वेष्टिता वेष्टताम् अवेष्टत। वेष्टेत। अवेष्टिष्ट वेठन बांध दिया, एवं चेष्टते प्रयास करता है। चिचेष्टे चिचेष्टाते चिचेष्टिरे। चेष्टा। प्रयास विषयक आज्ञा प्रेरणादि हो कर्तामें लोट्। चेष्टतां चेष्टेतां चेष्टतां–चेष्टस्व चेष्टेथां चेष्टध्वं, चेष्टै चेष्टामहै। स चेष्टेत अचेष्टिष्ट अचेष्टिषातां अचेष्टिषत। अचेष्टिठाः अचेष्टितम्। अचेष्टिध्वं–ढ्वं। अचेष्टिषम्।

स्फुट विकसने स्फोटते एककर्तृक वर्तमानकालिक विकासक्रिया, यह कुटादिमें भी। पुस्फुटे परोक्षकाल भूतकालमें विकसित हुआ। शर्पूर्वा खयः। स्फुटिता स्फुटिष्यते स्फोटताम्। अस्फोटत अस्फोटिष्ट।

कपि–का चलने उछलकूद कांपनेकी क्रिया अर्थ। कम्पते इदितो नुम्धातोः। कम्पिता कम्पिष्यते कम्पताम् अकम्पत कम्पेत, अकम्पिष्ट अकम्पिषातां अकम्पिषत।

लिङ्—इको झल् हलन्ताच्च सूत्र आये। असंयोगात्से कित् भी, इकमें समीप षष्ठी। इक्के समीपमें हल् हो उससे परे झलादि–झभञ्से हल् तक अक्षर आदिमें हो ऐसा लिङ् (आत्मनेपद) परे या सिच्परे कित् हो। कांपनेकी क्रिया वाचक वेष धातुसे वर्तमानकालिक कर्तामें लट। वेपते कांपता है। वेपसे वेपे वेपतां अवेपत एककर्तृक अनद्यतनभूतकालिक कम्पन क्रिया। अवेपिष्ट। केप गेप इनका भी कम्पन और गति अर्थ है।

भिक्ष धातुका भीख मांगनेकी क्रिया अर्थ लाभ हो या न हो या यांञ्जा, लाभ अलाभ तीन अर्थ। भिक्षते वामनः विभिक्षे भिक्षिता भिक्षताम्। अभिक्षत् भिक्षेत भिक्षिषीष्ट। अभिक्षिष्ट अभिक्षिषम् अहं। **दीक्ष** धातुके पाँच अर्थ मुण्डन यज्ञ,

पनयननियमव्रतादेशेषु । दीक्षते दिदीक्षे । भाष व्यक्तायां वाचि । भाषते बभाषे । वर्ष स्नेहने । वर्षते ववर्षे । ईह चेष्टयाम् । ईहते । ईहाञ्चक्रे गर्ह गल्ह कुत्सायाम् । गर्हते गल्हते काशृ दीप्तौ । काशते । ऊह वितर्के । ऊहते ऊहाञ्चक्रे । कथम् 'अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः' इति । अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम् अनुदात्तेतश्चक्षिङो ङित्करणाज्ज्ञापकात । तेन 'उदयति यदि भानुः'— 'स्फायन्निमांकसन्धिरित्यादि सिद्धमित्याहुः । अय गतौ । अयते उपसर्गस्यायतौ ।८।२।१९। अयतावुपसर्गरेफस्य लत्वम । प्लायते पलायते । दयायासश्च ।३।१।३७। एभ्य आम्लिटि । अयाञ्चक्रे । अयिता

यज्ञोपवीत नियमव्रत आदेशे पालन आदिके अनुकूल व्यापारवाचक धातुसे लट् त शप् आदि । दीक्षते मुण्डन संस्कार, यज्ञादि करता है । गुरुसमीप जानेके लिए यज्ञोपवीत पहनता है । नियम व्रत आज्ञाका पालन करता है । दीक्षते दीक्षन्ते । दीक्षसे दीक्षे दीक्षावहे । परोक्ष दशामें क्रिया हो चुकी हो तब द्वित्व ह्रस्व आदि दिदीक्षे । परश्वः दीक्षिता दीक्षितासे दीक्षिताहें । दीक्षतां दीक्षेतां दीक्षन्तां, दीक्षै दीक्षावहै,

भाषते—स्पष्ट भाषण करता है । बभाषे—कब भाषण किया । भाषिता कब भाषण करेगा । भाषाताम् अहम् भाषै मै बोलूं । अभाषत भाषिषीष्ट अभाषिष्ट वर्षते गीला ता चिक्कन होता है । नेषते अनुसंधान खोजके अनुकूल क्रिया । अग्लेषीष्ठ । एषते प्रेषते भोजनकी क्रिया । पिप्रेषे प्रेषिता प्रेषिष्यते प्रेषताम् । अप्रेषत । अप्रेषीष्ट । ईहते चेष्टा प्रयास क्रिया । ईहिष्यति प्रयत्न करेगा । गर्हति निन्दित भ्रष्ट होता है । जगर्हे परोक्षकाल । गर्हिता अगर्हिष्ट । वर्हते प्रज्ञान हो रहा है । अवर्हिष्ट । वर्ह आदिका परिभाषण उपहास हिंसा प्राण वियोग आच्छादन आवरण ।

काशते—प्रकाशानुकूलव्यापारः । काशिता काशिष्यते काशताम् । अहं काशै काशावहै । काशेत अकाशिष्ट । ऊह धातुका वितर्क (सयुक्तिकनिर्णयो वितर्कः) प्रमाणसे निर्णय करना अर्थ । ऊहते एककर्तामें वर्तमानकालिक तर्कसे अर्थ निर्णयकी क्रिया ऊहेते ऊहन्ते । अनुक्तमप्यूहति पडितो जनः में परस्मैपद कैसे ? अनुदात्तेत लक्षण आत्मनेपदकी अनित्यतासे । इजादि होनेसे आम् कृ लिट । ऊहिता औहिष्ट औहिषाताम् । गाहधातुका विडोलन मन्थन प्रतीघात क्रिया वाचक गाह धातुसे वर्तमाने कर्तरि लट त ।

३ अय् धातुका गति जाना, उत्तर देशसंयोग क्रिया अर्थ । गत्यर्थक अय् धातुसे गति क्रियाके वर्तमान रहनेपर अय लट् त शप् एत्व अयते । यदि प्र या परा उपसर्ग जोड़ाजाय (जोड़नेवाली सन्धि सवर्णदीर्घ) प्रायते परायते इति दशायाम

अयतिपरस्य अय् धातु परे उपसर्गके रेफको 'ल्' हो । र को ल होनेसे प्लायते पलायते प्राण बचाकर तेज भगा । अनद्यतन भूतकाल परोक्ष गत्यर्थक अय् धातोः लिट् । (६) दय, अय आस, इन धातुओसे आम् हो लिट् परे । इति आम् । दयाम्लिट् लुक, लिट परक कृ अनुप्रयोगे त=स्थाने लिटस्तझयोरेशिरेच इति,

अयिष्यते । अयताम् आयत । अयेत अयिषीष्ट ॥ **विभाषेटः** ।८।३।७९ इणः परो य इट्, ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य वा ढः । अयिषीढ्वम् अयिषीध्वम् । आयिष्ट आयिढ्वम् आयिध्वम् । आयिष्यत ॥ द्युत दीप्तौ । द्योतते । **द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्** ।७।४।६७। अभ्यासस्य । विद्युते । द्योतिता । द्योतिष्यते । द्योतताम् । अद्योतत । द्योतिषीष्ट । द्युद्भ्यो लुङि

क इत्यस्य द्वित्वादिकाये अनुस्वारपरसवर्णों । गतसम्वत्तरे स अयाञ्चक्रे अयाञ्चक्रिरे, अद्यभिन्न भविष्यकालिक क्रियावाच्ये लुट अयिता गन्ता । अयिष्यते (गमिष्यति) अयताम (व्रजतु) आयत (अव्रजत) अयेत् = गच्छेत् । अय् इट् सीयुट् त । अयिषीष्ट अय् इट् सीयुट् सुट् षत्व ष्टुत्व

(७)विभाषा इण् प्रत्याहार अक्षरसे परे जो इट् उससे परे जो सीध्वम और लुङ् लिट् सम्बन्धी 'ध' को ढ हो, विकल्पसे अयिषीयास्ताम् अयिषीरन् । अयिषीष्ठाः अयिषीयास्थाम् अयिषींध्वम् । अत्र विभाषेटः सूत्रेण ढत्वविकल्पे । यहाँ इण् य से परे इट् उससे भी परें इट उससे भीपरे षीध्वम्के ध को ढ हुआ । अयिषीढ्वम् गत्यर्थक क्रियासमाप्त हो भूतकालवाचक कर्तामे लुङ आट् आत्मनेपदे 'त' सिच् आर्धधातुकसंज्ञा, इट् वृद्धिः, ।

षत्वे ष्टुत्वे । आयिष्ट आयिषाताम् आयिषत । आयिष्ठाः, आयिषाथाम् आयिढ्वम् । आयिषि आयिष्वहि आयिष्महि । आयिष्यत आयिष्यन्त । आयिष्यथा आयिष्येथाम् आयिष्यध्व ढ्वम् । आयिष्ये आयिष्यावहि आयिष्यामहि ।

(४) **द्युत** धातुका दीप्ति—चमकना, प्रकाशकी क्रिया विशेषकर विद्युत् विद्योतते । (बिजली चमकने) अर्थमें है । यह चमकना विद्योतन क्रिया वर्तमान रहे तव वर्तमाने लट् द्युत्—लट् आत्मनेपदे प्र० पु० एकबचने त शप्—अ, लघूपधगुणे ओ । टेरे टि कों ए द्योतेते द्योतते द्योतन्ते, द्योतसे द्योतेथे द्योतध्वे । द्योते द्योतावहे महे । विद्योतनक्रिया (अनद्यतनपरोक्षकालमें) समाप्त हो उस अर्थमें लिट् आत्मनेपद 'त' तस्य स्थाने एश् (लिटस्तझयोरिति सूत्रेण) द्वित्वे द्युत् द्युत् हलादिशेषे द्युधुत् ए । (७ **द्युत** और स्वप् धातुके अभ्याससंज्ञकको सम्प्रसारण हो इति अभ्यास द्यु इत्यत्र यकारस्य सम्प्रसारण इ । सम्प्रसारणाच्च पूर्वरुपे । दिद्युते दिद्युताते दिद्युतिरे । दिद्युतिषे दिद्युताथे दिद्युतिध्वे । दिद्युते दिद्युतिवहे दिद्युतिमहे । सभी पुरुषके कर्तामें अनद्यतनभूतकालिक चमकना क्रिया रहेगी । द्योतिता श्वः विद्युत् प्रकाशयिता द्योतिष्यते प्रकाशं करिष्यति । द्योतताम् द्योतेतां द्योतन्तां द्योतस्व द्योतै । अद्योतेताम् अद्योतन्त (चाकचिक्यमे वर्तता) पहले ही दीप्तिक्रिया समाप्त हो । लङ् अद्योतत । चमकनेके अनुकूलक्रियाकी प्रेरणा हो विधिलिङ् द्योतेत द्योतेयातां द्योतेरन् । प्रकाशित हो । आशीर्वाद कहना हो तो तब द्योतिषीष्ट । (८) **द्युद्भ्यो**=द्युतादिगण पठित धातुओंसे परे लुङ्के स्थानमें परस्मैपद तिप् तस् झि आदि से हों ।

।१।३।९१। द्युतादिभ्यः परस्मैपदं वा स्याल्लुङि । 'पुषादि'त्यङ् । अद्युतत् अद्योतिष्ट । अद्योतिष्यत । एवं श्विता वर्णे त्रिमिदा स्नेहने । त्रिष्विदा स्नेहनमोचनयोः । मोहनयोरित्येके । त्रिक्ष्विदा चेत्येके । रुच दीप्तावभिप्रीतौ च घुट परिवर्तने शुभ दीप्तौ । क्षुभ सञ्चलने । णभ तुभ हिंसायाम् । स्रम्भु

बिजली चमकी इस अर्थमें लुङ् अट् त च्लि । अद्युत्, च्लित । लुङ् स्थाने विकल्पेन परस्मैपदप्रत्यये परे । पक्षमें पुषादि सूत्रसे च्लिके स्थानमें सिच्को बाधकर अङ् हुआ । ङित होनेसे क्ङिति च गुणनिषधे ।

अद्युतत् । परस्मैपदके अभावमें आत्मनेपद सिच् इट् गुण षत्वे ष्टु । अद्योतिष्ट अद्योतिषाताम् अद्योतिषत । अद्योतिष्ठाः अद्योतिषाथाम् अद्योतिध्वम् । अद्योतिषि अद्योतिष्वहि अद्योतिष्महि । द्युत धातुकी प्रक्रिया शैलीकी तरह(श्विता वर्णे) इत्यादि १४ धातुओं को समझें । यथा— आ इत्संज्ञक स्वित्, धातुका सफेद रङ्ग चढ़ाने की क्रिया श्वेतते । रागकरणं प्रासादम् (महल) श्वेतते=चूर्णादिभिः (चूना आदि से) श्वेतं करोति (सफेदी करता है) शिश्विते=न जाने कब रङ्ग दिया । श्वेतिता=कल या परसों रङ्ग करेगा । श्वेतिष्यते । (मैं भी मकानको साफ करूंगा) श्वेततां (व भी स्वच्छ करें)। त्वमपि श्वेतस्व । अश्वितत । वह कल ही सफेदी कर लिया । श्वेतेत् । यदि चूना छूते तो बहुत अच्छा होता । श्वेतिषीष्ट । तुम सदा सफाई करते रहो । अश्वेतिष्ट । वे स्वच्छता कर चुके । यदि गृहम् अश्वेतिष्यत् तदा आकर्षणम-भविष्यत् । (६) ञ इत् । मिद् धातुका स्नेहन, स्निग्धकरण, चिकना होनेके अनुकूल क्रिया अर्थ । मेदते उपानहो (जूता चिकनाता है) मिमिदे । पहले ही चिक्कन कर चुके । प्रत्येक लकारों में उपर्युक्त दृष्टि से अर्थ करना चाहिए । (७) स्विद् धातु का स्नेहन गीला पसीना मोचन त्यागः, अर्थ । स्वेदते गीला होता है या पसीजता है । शरीर पसीना छोड़ रहा है । शरीरं स्वेदं स्वेदते । सिस्विदे । पहले ही पसीना छोड़ चुका । स्वेदिता कल छोड़नेवाला है स्वेदतां (पसीजते रहो) अस्वेदत् (चू चुका) स्वेदेत् स्वेदिषीष्ट । अस्विदत् अस्वेदिष्ट । अस्वेदिष्यत् जब पसीना होगा तब आराम आवेगा । कोई कोई मोचनयो (मोहित होना अर्थ) कहते हैं । कोई विदृदका पाठ करते हैं ।

(८) रुच् धातुका दीप्ति, प्रकाश, चमकना, अभिप्रीति, इच्छा का विषय होना पसन्द आना, रोचते रोचेते रोचन्ते रोचे । बालकाय कन्दुकं, मोदकं वा (रुचि अर्थ में चतुर्थी) रुरुचे रुक गया चमका या पसन्द आया । श्वः उत्सवः रोचिता सदा स्वाध्याय मह्यं रोचिष्यते, तुभ्यमपि रोचताम् अरोचत । अरोचेताम् अरोचन्त अरोचथाः अ । रोचेतां रोचन्तां रोचेथां रोचै रोचावहै, रोचितारौ रोचितारः । यदि छात्राय रोचेत । तदा आशीर्वाद रोचिषीष्ट । अतएव अरुचत-अरोचिष्ट । यदि अरो-चिष्यत तदा कल्याणमभविष्यत् । घुट् परिवर्तने । घुट् धातुका परिवर्तन (एकस्यैव

विश्वासे। वृतु वर्तने। वर्तते। ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन : ववृते वर्त्तिता। **वृद्भ्यःस्यसनोः** ।१।३।९२। वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो व परस्मैपदं, स्ये, सनि च। न **वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः** ७।२।५०। वृतु वृधुशृधु स्यन्दूभ्य सादेरार्द्धधातुकस्येण्न स्यात्तङानयोरभावे। वर्त्स्यति वर्तिष्यते। वर्त्तताम् अवर्त्तत। वर्त्तेत वर्त्तिषीष्ट। अवृतत् अवर्त्तिष्ट। अवर्त्स्यत अवर्त्तिष्यत एव वृधु वृद्धौ। शृधु शब्दकुत्सायाम् स्यन्दू प्रस्रवणे। स्यन्दते मस्यन्दे।

वस्तुनः सर्वप्रकारेण घर्षणं (घोटना) घोटते भङ्गः। घोटेते घोटसे घोटेथे जुघुटे। अनद्यतनपरोक्षकालिकसमाप्तसंघर्षण क्रिया। स श्वः घोटिता सदा घोटिष्यते भङ्ग घोटताम् घोटेतां घोटन्तां यथा स अघोटत यथा ते घोटेरन् घोटिषीष्ट। अघुटत् अघोटिष्ट। **शुभ** धातुका भी दीप्ति प्रकाश अर्थ है। शोभते शुशुभे, शोभिष्यते अशोभत अशोभिष्ट,क्षुभ धातुका संचलन स्वभावात्ययेन वर्तनम्। विचलित, व्याकुल या क्षुब्ध होना। सभी लकारों का अर्थ अनुसन्धान कर धातुरुप समझें। णभ् धातु हिंसा प्राण वियोगकी क्रिया आत्माको कष्ट। नभते=भयानक भय पैदा करता है। नेभे (परोक्षहिंसा कर चुका) नभिष्यते। हिंसा करेगा अनभिष्यत्। तुभ् धातु का भी हिंसा, प्राण वियोग, कष्ट प्रदानजनक क्रिया अर्थः। तोभते (तोड़ाई करता है) हस्तपादम्। तोभिता=हांथ-पाँव तोड़ेगा। युद्धे अतोभत् हिंसा क्रिया समाप्त हो तो अतुभत् अतोभिष्ट, **स्रस्** स्रंस् भ्रंस् तथा ध्वंस् इन धातुओं का अवस्रंसन, स्खलन, लड़खड़ाना। खिसकना गिरना, नाश होना अर्थ, स्रंसते बभ्रंसे, दध्वंसे, ध्वसिता। स्रंसिषीष्ट अस्रसत अभ्रंसीष्ट अस्रंसीष्ट। एवं अध्वसत अध्वंसीष्ट।

(८) उ इत् स्रम्भ धातु का विश्वासानुकूल क्रिया अर्थः प्रायः वि उपसर्गक विश्वास होता है। स्रम्भते, सस्रम्भे=विश्वास क्रिया, स्रम्भिता=विश्वास करेगा। हस्रम्भत् विस्रम्भताम्। विस्रम्भेत् विस्रम्भिषीष्ट। अस्रभत अस्रम्भिष्ट। उ इत् वृत् धातु का वर्तन, सत्ता होना, उपस्थित रहना, विद्यमान, क्रिया अर्थः। इस धातु में फल और क्रिया इतने सूक्ष्म रुपसे रहते है कि उनको अलग-अलग समझना कठिन है। वर्तते त, शप्, गुण, टित् एत्वे,। यहां कर्ता से क्रिया, क्रिया से फल अनुमित है। वर्तेते वर्तन्ते। वर्तसे वर्तेथे वर्तध्वे। वर्ते वर्तावहे, ववृते अत्र न गुणः अपित् लट् कित् भवति गुणनिषेधे, परोक्षे वर्तनव्यवहारे अर्थे लिट् द्वित्वे वृत् वृत, वृवृत् 'उरत्' वर्वृत् ववृत् एश् ववृते=न जाने कब उपस्थितथे। वर्तिता। आगमी

शेष व्याख्या २२५ पृष्ठ पर।

वृध धातुका बढनेके अनुकूल क्रियाके वर्तमानकालिक कर्तामें लट् गुण आदि। वर्धते वर्धेसे वर्धन्ते वर्धसे वर्धेथे वर्धध्वे। अहं वर्धे वर्धावहे वर्धामहे। वर्धिता वर्धिष्यते। वर्धताम् अवर्धत। वृद्भ्यः स्य। से परस्मैपद पक्षमें इट्। निषेधसे वर्त्स्यति। अवृधत अवर्धिष्ट अवर्त्स्यत अवर्धिष्यत् शर्धति-गन्दा शब्द निकलता है।

सस्यन्दिध्वे सस्यन्ध्वे । स्यन्दिता स्यन्ता । 'वृद्भ्यः स्यसनोरि'ति परस्मैपदे कृते ऊदिल्लक्षणमन्तरङ्गमपि विकल्पं बाधित्वा चतुर्ग्रहणसामर्थ्यान्न वृद्भ्य इति निषधः स्यन्त्स्यति स्यन्दिष्यते स्यन्त्स्यते। स्यन्देत स्यन्दिषीष्ट स्यन्त्सीष्ट। 'द्युद्भ्यो लुङो'ति परस्मैपदपक्षेऽङ्। नलोपः। अस्यदत् अस्यन्दिष्ट अस्यन्त अस्यन्त्साताम् अस्यन्त्सत। अस्यन्त्थाः। अस्यन्द्ध्वम् अस्यन्त्सि अस्यन्त्स्यत् अस्यन्दिष्यत अस्यन्त्स्यत। **अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु** ।८।३।७२। एभ्यः परस्याप्राणिकर्तृकस्य स्यन्दते। सस्य षो वा। अनुस्यन्दते वा जलम्। अप्राणिषु किम्? अनुस्यन्दते

शशृधे शर्धिता शर्त्स्यं ति शर्धिष्यते। अशृधत अशर्धिष्ट। उइत् स्यन्द धातुका प्रस्रवण पसीझना, चूना रिसता। उपधामें नकार है अनुस्वार परसवर्ण। स्यन्दते एक कर्तामें वर्तमानेकालिक पसीझना क्रिया। धौत (वस्त्र) सस्यन्दे—कपड़ा कब निचुड़ा सस्यन्दाते सस्यन्दिरे। थास् होनेपर स्वर ति-सूति-सूत्रसे इटि विकल्प। षत्व जब न इट् दकी चर्त्व त। ध्वम् परे इट् आदि। जब न इट् खर परे नहीं न चर्त्व। सस्यसस्यन्दिषे वहे-महे आगामिभविष्यसीझना क्रिया हो लुट। तास् इट आदि। ब न इट्, दको चर्त्व त। स्यन्ता स्यन्द स्य ति (परस्मैपदसंज्ञासे) यद्यपि स्वर तिसूति सूत्रसे उदित लक्षण इट विकल्प। अन्तरङ्ग होते हुए भी चतुर्ग्रहणके सामर्थ्य से न वृद्भ्यः से इट निषेध होता है। यदि विकल्प होता चतुर्भ्यः पढ़ना व्यर्थ हो जाता उसकी सफलता इटनिषेध से ही है। स्य परे इट अभाव पक्षमें दको चर्त्व त स्यन्त्स्यते रिसेगा, पसीझेगा। आशीर्वाद अर्थमें सीयुट् सुट् इट विकल्प इट नहीं होगा। तङानयोरभावे पढ़ें जानेसे। जब रिसना क्रिया हो चुकी हो। लुङ्-द्युद्भ्यो: लुङि से परस्मैपद पक्षमें च्लिको अङ (पुषादि द्युतादिसे) अनिदितांसे नलोप। आत्मनेपदमें सिच् इट आदि। जब न इट अस्यन्द स त्। दशामें झलो झलि से सलोप, दको त। अस्यन्त, पसीझ चुका रिस गया। लृङ्में भी परस्मैपद इट् निषेध दको त। आत्मनेपदमें इट् षत्व, जब न इट दको त।

अनु वि परि, अभि, नि उपसर्गसे परे स्यन्दके सको ष हो। प्राणि—चेतनसे पसीझना क्रिया न हो तब। सहे: साडः से स आया, अपदान्तस्य मूर्धन्यःका अधिकार—अनुस्यदन्ते पानी रिस रहा है। जल कर्तृक प्रस्रवण है। अचेतन है षत्व हुआ। सूत्रमें अप्राणिषु-चेतन न हो, ऐसा क्यों पड़ा? मत्स्योदके अनुष्यन्देते षत्व कैसे? चेतन है। हाथी पसीझ रहा है यहां षत्व न हो, चेतन होनेसे। मत्स्योदके के समाधान वास्ते अप्राणिषूमें पर्युदास माना जिसका प्राणिभिन्न प्राणिसदृश अर्थ है। यदि जड़ चेतन (जल मछली दोनों) कर्ता हैं) वहां षत्व होता ही है। पर्युदास की कृपासे। यदि प्रसज्यप्रतिषेध (प्राणिषु न) ऐसा कहते तब षत्व न हो पाता।

उ इत् कृप धातुका सामर्थ्य कार्यक्षमीभवन कामकुशल निपुण समर्थ दक्षताके अनुकूल क्रियाके वर्तमान कर्तामें लट्। प्रथमपुरुष एकवचन त। टे: ऐ शपि उपधामें

हरती ॥ **कृपू** सामर्थ्ये **कृपो रो लः** ८।२।१८। कृपः उः रः लः इति च्छेदः। कृपे रेफस्य लः। कृपेऋकारस्यावयवो यो रः=रेफसदृशस्तस्य च लः=लकार-सदृशः स्यात्। कल्पते चक्लृपे। चक्लृपिषे चक्लृप्से। इत्यादि 'स्यन्दि' वत्। **लुटि च क्लृपः** १।३।९३। लुटि, स्यसनोश्च क्लृपेः परस्मैपदं वा। **तासि च**

लघुको अर् गुण। कर्पते इति दशायां।

कृपो कृप उ ऐसा भेद। गुण करके कृपो बना, रःषष्ठी अन्त कृपोर रः रोरि-से र लोप। ल प्रथमान्त है। कृपमें षष्ठी लुप्त। कृप उ रः लः तच्चावर्तते। कृप रः लः तीनों की अनुवृत्ति। कृपके र, को ल हो। कल्पते। कृप उः रः लः दूसरा वाक्य। अवयवषष्ठी। कृप धातुका अवयव ऋका जो रेफ उसको ल हो। रेफ के सदृश्य रेफ, ऋके अंशमें लक्षणा से र जानें। ल-का भी लके सदृश लृका अंश लक्षणासे। कल्पेथे कल्पन्ते कल्पथे कल्पेध्वे। कल्पे। लिटलकारमें परोक्ष अनद्यतन भूतकालिक कार्यकुशल सक्षम क्रियाके कर्तामें लिट द्वित्व। कृप् कृप् कर कृप चकृप। असंयोगात् लिट्के कित् होनेसे न गुणः। कृपोरोलः—सूत्रसे कृके एकदेश रेफके समान लकार सदृश आदेश चक्लृपाते चक्लृपिरे। जब थास्को होगा। उदित मानकर स्वरतिसूतिसे इट्। पक्षे न इट्। चक्लृप्से चक्लृपाथे चक्लृपिध्वे। चक्लृपिवहे चक्लृ-प्वहे-महे। हमसब कार्य समर्थ थे। स्यन्दके समान रूप। **लृट्लकार** स्य सन् परे कृपसे परस्मैपद विकल्पसे हो वृद्भचसे स्य सन् आया। शेषात्कर्तरिसे परस्मैपद। वाक्यथः से वा आया।

क्लृप्से परे और सकरादि आर्धधातुको इट् नहीं होता परस्मैपद में। तङ् शानच् कानच्के न रहने पर। चसे सकरादि आर्धधातुक स्त्रीकृति। से असिचि सूत्र से आर्धधातुकस्य भी ाया। न वृद्भ्यो से न। गमेरिट्से परस्मैपद आये। तासि च। इट् निषेध। गुण रपर कृपोरोलःसे रको लः। कल्प्तास्मि। पक्षमें आत्मनेपद। उदितो वा इट् विकल्पे। पक्षमें न इट्। कल्प्ताहे कल्प्तास्वहे-महे भविष्यकालिक कार्य क्षमा क्रिया हो, लट् परस्मैपदसंज्ञा ति, स्य। उदितो वा के विकल्प इट् की बाधकर निषेध (तासि च सूत्रसे) कल्प्स्यति। न परस्मैपद। विकल्प इट् होगा। कल्पतां कल्पेतां कल्पन्तां कल्पे कल्पावहै अकल्पत कल्पेत, आशीर्लिङ् में उदित् इट् जानकर सीयुट् सुट्, जब न इट् लिङ्। सिचावात्मनेपदेषु कित् न गुण। कार्य कुश लता का भूतकाल हो, कर्तामें लुङ् द्युद्भ्यो लुङ् से परस्मैपद संज्ञा। पुषादि द्युतादिसे च्लिको अङ्। ङित्से न गुण। अडादि अक्लृपत् आत्मनेपद पक्षमें इट् विकल्प। जब न इट् झलो झलिसे सिज्लोप। अक्लृप्त लृङमें परस्मैपद पक्षमें स्य। इट्का निषेध। आत्मनेपद पक्षमें विकल्प इट् वत्=समाप्त अर्थमें कर्तरि क्विप्। वृतः गत्यार्थाकर्मसे कर्ता मे क्त। जिसका विवरण सम्पूर्ण है। द्युतादिगण और वृतादिगण की साधनिका पूर्ण।

क्लृप ।७। ।६०। कल्पे। परस्य तासेः, सादेरार्द्धधातुकस्येण्न, तङानयोरभावे । कल्प्तासि कल्पितासे कल्प्तासे । कल्प्स्यति कल्पिष्यते । कल्प्स्यते । कल्पिषीष्ट । लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ।१।२।११। इक्समीपाद्धलः परौ झलादी लिङ् आत्मनेपदपरः चिच्चेत्येतौ कितौ स्तः । क्लृप्सीष्ट । अक्लृपत् अकल्पिष्ट अक्लृप्त । अकल्प्स्यत् अकल्पिष्यत अकल्प्स्यत । इति द्युतादयः ।

अधिकार होनेके अनुकुल क्रिया अर्थ है यह दानक्रिया वर्तमान रहे तब 'ददते' दिनों में व्यवहार कर्ता अर्थ लुट् (६) वृतादिभ्यः=वृतु वर्तने, वृधु, (वृद्धौ) शृधु (शब्द, कुत्सायाम्) अत्र कुत्सितशब्दः=अपानवायुः । स्यन्द प्रस्रवणे, कृप् सामर्थ्ये, इन पांच धातुओंसे परस्मैपद हो विकल्पसे । स्य या सन्का विषय हो । तब वर्त्स्यति वर्त्स्यः वर्त्स्यसि । इस अर्थ में "वृत् स्यति" गुणे, वृद्भ्यः स्यसनोः इस सूत्रसे स्यका विषय होने पर परस्मैपद 'ति' इट् प्राप्ते निषेध सूत्र ।

(५४०) वृत् वृत् वृध शृध स्यन्द इन धातुओंसे सकारादि आर्धधातुक 'स्य' या 'सन्' को इट् न हो तङ्-आत्मनेपदे आन शानच् कानच्के अभावमें इट् निषेध नहीं होता आत्मनेपदमें इट् हो जाता है । गुणे, वर्तिष्यते । वर्ताव करेगा अवर्तत्, अवर्तेताम् अवर्तन्त । कल वर्ताव किया । वर्तेत वर्तेयातां वर्तेरन् । वे रहें, व्यवहार करें । वर्तिषीष्ट वर्तिषीयास्तां वर्तिषीरद् । आप वर्ताव करें । सो अवर्तिष्ट, उसने व्यवहार किया । अवर्तिषाताम् अवर्तिषत । अवर्त्स्यत् । यहां स्य परे विकल्पसे परस्मैपद पक्षमें इट् निषेध । अवर्तिष्यत् । आत्मनेपद पक्ष में इट् निषेध नहीं होता यह धातु उपसर्गोंसे बहुत प्रभावित अनेक अर्थोंमें दृष्ट है । प्रवर्तते कार्य में प्रवृत्त होता है । परावर्तते=लौटना आवर्तते=दुहराना । प्रत्यावर्तते=लौटता है । परिवर्तते=बदलना । अनुवर्तते=अनुगच्छति । निवर्तते=लौटना, निवृत्त होना । निर्वर्तति=सिद्ध करना या समाप्त करना । विवर्तते=फैलता है । वृधु=वृद्धि में सिद्ध है वर्धते । ववृधे=न जाने कब बढ़ । परश्वः धनं वर्धिता परसों बढ़ेगा । वर्त्स्यति अत्र परस्मैपदम्, इट् निषेधश्च । वर्धिष्यते ज्ञान बढ़ेगा । वर्धतां तव गोत्रम् । यथा सूर्यवंशी अवर्धत बढ़े । तुम्हारी आयु (वर्धेत) बढ़े । तुम्हारे पुत्र वर्धिषीष्ट, यथा रामो अवर्धिष्ट । लवकुशौ अवर्धिषाताम् । यदि मनुष्य बढ़ेगे युद्ध भी बढ़ेगा । अवर्धिष्यत । शर्धते, शश्र्धे अपान कब त्यांगा । स्यन्दते चूतं, सस्यन्दे तुषारः । स्यन्दिता स्यन्ता मधु । स्यन्दताम्=पिघल जाइये । यथा सूर्यं दृष्ट्वा सूर्यकान्ता अस्यन्दत (पसीझी पिघली) कड़ी धूप हो तब बर्फ स्यन्देत (पिघले) । तुम्हारा हृदय स्यन्दिषीष्ट द्रवीभूत हो । स्यन्त्सीष्ट । पर्णकुटी अस्यन्दत् । परस्मैपदे इट् अभावः । अस्यन्दिष्ट आत्मनेपदे स्वरतिसूति इति विकल्पेन इट् । इट् अभावसे अस्यन्त ।

(२०) दद् धातुका दान-देयवस्तु पर अपना अधिकार समाप्त कर दूसरेका

अथात्मनेपदम् ।

दद दाने ददते ददते दददाते दददिरे । ददिता ददिष्यते । ददताम् । अददत ददेत । ददिषीष्ट अददिष्ट । अददिष्यत ॥ त्रपूष् लज्जायाम् त्रपते । तॄफलभजत्रपश्च ।६।४।१२२। एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च, किति लिटि, सेटि थलि च । त्रेपे त्रपिता त्रप्ता । त्रपिष्यते त्रप्स्यते । त्रपताम् अत्रपत । त्रपेत त्रपिषीष्ट । त्रप्सीष्ट अत्रपिष्ट अत्रप्त । अत्रपिष्यत अत्रप्स्यत ।

सुखम् फल अन्यमें रहे, क्रिया अन्यमें वह सकर्मक है, ददते ददन्ते । ददसे ददेथे दददे । तुम सब दान देते हो । ददे ददावहे ददामहे । हमलोग चार लड़कियोंको ज्ञान देते हैं । (१) हिंसार्थक शस् दानार्थक दद्, व आदि में हो ऐसे धातुओं को गुण शब्द से विधान किये गये अ को ए और अभ्यास लोप न हो । दददे=दानके अनुकूल क्रियावाचक दद् धातो, दानक्रिया अप्रत्यक्ष समाप्ति हो तब लिट् आत्मनेपद त एश् द्वित्व, दद् दद् ददद् ए, दशायाम् 'अत एक हल्मध्ये' सूत्रेण एत्व अभ्यास लोपे च प्राप्ते, 'न शसदद्' सूत्रेण निषेधो । आत्मनेपदके सभी प्रत्यय अपित् होनेसे कित् हैं । दददाते दददिरे । परोक्षभूतकालिक दान क्रिया । श्वः गां ददिता ददितारौ ददितारः ददितासे ददितासाथे ददिताध्वे ददिताहे ददितास्वहे नित्यं ज्ञानं ददिष्यते। यथा— कृष्ण गुरुवे पुस्तकं ददतां ददेतां ददन्तां ददस्व ददेथां ददध्वं ददै ददावहै । ददेथाः पुत्रम् अददत अददेताम् अददन्त अददथाः द्वारर ददेत ददेयातां ददेरन् । ददेयाथां ददेध्वं ददेवहि महि । गां दद्यात्, ददिषीष्ट । फलम् अददिष्ट अददिषम् =दान किया । यदि अन्नम् अददिष्यत् तदा परलोकम् अप्राप्स्यत् । (२१) त्रपूष ष ऊ इत् त्रप्धातुका लज्जाजनक क्रिया । ष् इत्का प्रयोजन षिद्भिदादिभ्यः अङ् से अङ् होना । ऊदितका फल इट् विकल्प अकर्मकधातुः लज्जा फल, उसकी क्रिया एक में रहने से । यथा—देवदत्तः त्रपते लज्जितो भवति । यहां अलग कर्म नहीं है । (२१) त्रिफल तरने अर्थ में तॄ, फलने अर्थमें फल, सेवार्थक भज् । लज्जार्थक त्रप्- धातुओंके अत् ह्रस्व अकारको एत्व और अभ्यासलोप कित् लिट् सेट् थलपरे हो । अनद्यतनपरोक्षभूतकालसमाप्तलज्जा क्रिया । तब त्रप् लिट् त एश्कृते द्वित्वादिकार्ये, तत्रप् अत्र त्रिफलभजत्रपश्च सूत्रेण अकारस्य एत्वे अभ्यासलोपे । असंयोगात लिट् कित् परे अस्ति । त्रेपे त्रेपाते त्रेपिरे । त्रेपिषे त्रेपाथे त्रेपिध्वे ढ्वे । त्रेपे त्रेपिवहे त्रेपिमहे । उदित् होने से स्वरति सूति-इति इट् विकल्पे । पक्षे त्रेप्वहे त्रेप्महे । श्वः न्यायालये त्रपिता । ऊदित् को इट् विकल्प त्रप्ता । त्रपिष्यते त्रपिष्येते त्रपिष्यन्ते त्रपिष्यसे त्रपिष्येथे त्रपिष्यध्वे त्रपिष्ये त्रपिष्ये । (लज्जित होंगे) त्रपताम् त्रपेतां त्रपन्तां त्रपस्व । त्रपै त्रपावहैं लज्जित हों अत्रपत् अत्रपताम् अत्रयन् अत्रपः अत्रपतम् अत्रपम् अत्र कल शर्मिन्दा हुआ. त्रपेत त्रपेयातां त्रपेरन् लज्जा आवे । त्रपिषीष्ट भगवान उसे लज्जित करें अत्रपिष्ट अत्रपिषाताम् अत्रपिषत अत्रपिष्ठाः अत्रपिषथां अत्रपिषि अत्रपिष्वहि ।

घट चेष्टायाम् । घटते जघटे, व्यथ भयसञ्चलनयोः । व्यथते । व्यथो लिटि ।७।४।६८। व्यथेरभ्यासस्य संप्रसारणं स्याल्लिटि परे । हलादिः शेषापवादः । विव्यथे । प्रथ प्रख्याने । प्रथते पप्रथे ।। प्रस विस्तारे । प्रसतें पप्रसे । म्रद मर्दने । म्रदतें । स्खद स्खदने । स्खदनं विद्रावणम् स्खदते, क्रप कृपायांगतौ च क्रपते । ञित्वरा संभ्रमे त्वरते । टुभ्राजृ टुभ्रश्टृ टुम्लाश्टृ दीप्तौ। भ्राजते फणां च सप्तानाम् ।६।४।१२५। फण्-राजृ-भ्राजृ भ्राश्टृ-म्लाश्टृ-स्यमृ स्वन

घटका चेष्टा प्रयत्न, शक्तिके अनुकूल क्रिया । घटते चेष्टते कर्तामें वर्तमानकालिक प्रयासकी क्रिया । घटेते घटन्ते । घटे घटावहै—महै । घटिता घटिष्यते । कर्मणि स घटतां घटेतां घटन्तां घटस्व । घटै । अघटत । घटेत घटिषीष्ट अघटिष्ट अघटिषाताम् अघटिषत । अघटिष्ठाः अघटिषम् ।

व्यथका भयभीत बहुत पीड़ित । संचलन पीड़ासे विकलता जननी क्रिया अर्थ । व्यथते व्यथसे व्यथे । एकाभिन्नैकर्तृक वर्तमानकालिक व्यथन । लिट् द्वित्व व्यथ व्यथ ए । हलादिशेष प्राप्त उसको बाधकर यको सम्प्रसारण इ होने का सूत्र—व्यथ धातुके अभ्यासके यको सम्प्रसारण इ हो लिटि परे । अत्र लोपःसे अभ्यास, द्युति-स्वाप्योःसे सम्प्रसारण आया । यको इ पूर्वरूप । विव्यथे । थकी पुनः हलादिशेषसे निवृत्ति । थके बाधमे प्रमाण नहीं । यलोपका बाधक सम्प्रसारण था । न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणंके निषेधसे वको सम्प्रसारण नहीं । व्यथिता व्यथिष्यते । व्यथतां व्यथै । अव्यथत व्यथेत अव्यथिष्ट भयभीति व्यग्रता हो गयी । प्रथका प्रख्याने प्रसिद्धि की क्रिया के वर्तमानकालिक कर्ता अर्थमें लट । प्रथते । प्रसिद्धि हो रहा है । प्रथेते प्रथन्ते । प्रथसे प्रथेथे प्रथध्वे । प्रथे प्रथावहे । पप्रथे विख्यात हो चका । प्रथिता प्रथिष्यते । प्रथतां प्रथेतां प्रथन्तां प्रथस्व । प्रथै । अप्रथत प्रथिषीष्ट अप्रथिष्ट । नामी हो गया । प्रस-का विस्तार पसरना फैलना और पसारना फैलाना अर्थमें सकर्मक अकर्मक । वस्त्रं पादौ च प्रसेते फैलता है । या फैलता है । पप्रसे प्रसिष्यते प्रसताम् । अप्रषीष्ट फेलाये । म्रद मृद का मर्दन सिझाना सिद्ध करना । म्रदते । यां मर्दते पिष्टान्नं । म्रदेते म्रदन्ते । ममृदे मर्दिस्यन्ते मर्दिस्यध्वे मर्दिष्यामहे । मर्दताम अमर्दत अमर्दिष्ट, विद्रावति विगाड़ता है । क्रपते दया कृपा करता जाता है । कर्पते कृपाकी क्रिया क्रपतां क्रपेताम् । अकर्पत क्रपिषीष्ट ञितःका फल आइत आदितश्च से इट् निषेधके लिये । त्वरते । घबड़ाकर शीघ्रता करता तत्वरे त्वरिष्येते त्वरिष्यन्ते । त्वरतां त्वरेतां त्वरन्तां, त्वरस्व त्वरेथां त्वरध्वं, त्वरै त्वरावहै । त्वरेत । अत्वरिष्ट अत्वरिषातां ।

फणादि सात धातुओंको एत्व हो, अभ्यासलोप भी, किति लिटि सेटि थल् परे जो अनुवृत्तिसे आये । ध्वसोःसे एत् गमहनसे कित्, वा जॄभ्रमु से वा । न की अनुवृत्ति नहीं होती ।

एषां वा एत्वाभ्यासलोपौ स्तः, किति लिटि, सेटि थलि च। भ्रेजे बभ्राजे। भ्राशे' ति श्यन्वा। भ्राश्यते। भ्राशते। भ्रेशे बभ्राशे। भ्लाश्यते भ्लाशते। भ्लेशे बभ्लाशे। रमु क्रीडायाम्। रमते रेमे रन्ता। जभी जृभी गात्र-विनामे। रधिजभोरचि ।७।१।६१। रधिजभोरचि नुम्। जम्भते जजम्भे। जृम्भते जजृम्भे इत्यात्मनेपदिनः।

अथोभयपदिनः

श्रिञ् सेवायाम्। श्रयति श्रयते। शिश्राय शिश्रिये। श्रयितासि श्रयि-

---

टू इत्का फल ट्वितो ऽथुच्। अनुदात्त इत्से आत्मनेपद भ्राजका पाठ प्रकाश (फणादिकार्थ) एत्व अभ्यासलोपके लिए। पहले पढ़े हुएको व्रश्चभ्रस्ज सूत्रसे षत्व का अभाव तत्र हि षत्वविधिमें राजके साथ पाठ से फणादिके भ्राजका ग्रहण। भ्राजते शुशोभित है। द्वित्व फणादिमें देखकर एत्व अभ्यासलोप भ्रेजे पक्षमें बभ्राजे। परोक्षकालमें चमक चुका। वा भ्राश सूत्रसे विकल्प श्यन् भ्राश्यते चमकाता है। भ्राश भ्लाश लिट् त एश्। अभ्यासलोप। भ्रेशे भ्रेशाते भ्रेशिरे बभ्रशिषे। भ्राशते चकभकती ज्वाला, एत्व अभ्यासलोपसे भ्लेशे भ्लेशाते भ्लेशिरे।

रमधातुका क्राड। खेल रमण आनन्दकी क्रिया। अनिट् है, केचित् उदित मानकर रमित्वा रन्त्वा इट करते है। माधव नही सहते। रन्ता एक रूप कहते हैं। रमते रेमेते रमन्ते महिषा इव। रेमे रेमाते रेमिरे। रेमिषे रेमाथे रेमिध्वे रेमे रेमिमहे। क्रादि नियमसे इट्। रन्ता रन्तारौ रन्तारः रन्तासे रन्ताहे। रमते इति रमा पचादि अद् टाप्! जब घञ् रामः। णि परे अमन्त मानकर ह्रस्व रमयति रंस्यते रंस्येते रंस्यन्ते। रमण करेगे ? खेलेंगे अरंस्त अरंसाताम् अरंसत। अरंष्ठाः। अरंषि। अहम् मैं खेला रमा। रमतां रमेतां रमन्तां, रमस्व, रमेथाः रमध्वं, रमैं रमावहै। अरमत अरमेताम् अरमन्त। अरमथाः अरमेथाम्, रमेत रमेयातां रमेरन्। रमेथाः रमेयाथां रमेध्वं। रमेय रमेवहि रमेमहि।

ई इत् नुम् सहित जृम्भधातु गात्रविनामे शरीरका टेढ़ापन वक्रभाग अगड़ाई जम्हाई लेनेकी वर्तमानकालिक क्रिया आदि। ई इत् है अतः लट् शप् होनेपर।

रध हिंसायाम्का संकेत। नुम् रन्धयति रध और जभ इन दो धातुओंको नुम् आगम हों अच्परे नुम् हुआ। नश्चापदान्तस्यसे अनुस्वार, ययि परे परसवर्ण। जम्भते जम्हाई लेता है जजृम्भे अगड़ाई ले चुका। अचि क्यों पढ़ा ? रद्धा जब्धा हिंसा करेगा अगड़ाई लेगा। जम्भिता जम्भितारौ जम्भितारः, जम्भितासे जम्भिता साथे जम्भिताध्वे जम्भिताहे जम्भितास्वहें–महे। जम्भिष्यते जम्भतां जम्भेतां। जम्भस्व। अजम्भेतां अजम्भन्त। अजम्भथाः अजम्भेथां अजम्भध्वम् अजम्भि।

अर्थ उभय पदिः—१ श्रिञ् ञ् इत् का सेवा की क्रिया अर्थः ञित् होने से स्वरितञित् कर्त्रभिप्राये क्रियाफले मूल का स्मरण क्रिया और फल कर्ता में हो, अतः

तासे। श्रयिष्यति श्रयिष्यते। श्रयतु श्रयताम्। अश्रयत् अश्रयत। श्रयेत् श्रयेत। श्रीयात् श्रयिषीष्ट। चङ् अशिश्रियत् अशिश्रियत। अश्रयिष्यत् अश्रयिष्यत भृञ् भरणे। भरति भरते। बभार बभ्रतुः बभ्रुः। बभर्थ बभृव आत्मनेपद, अकर्मकः। वह फल परगामी तब परस्मैपद सकर्मकः एवं उभयपदी धातुः। श्रयति श्रयतः श्रयन्ति। श्रयसि श्रयथः श्रयथ। श्रयामि श्रयावः सेवाक्रिया सभी कर्तामें वर्तमान समझें। सेवा-स्वामि प्रसन्नता फल दूसरे में है। श्रयते-सेवा फलं कर्ता में हो। शिश्राय। कर्ता परोक्ष काल में सेवा क्रिया का फल पूर्वदिनो मे, अन्य के लिए सिद्ध कर चुका हो। श्रि लिट्, परस्मैपदे 'ति' णल् द्वित्वे, अभ्यासहलादि शेषकार्ये णित्परे 'अचोञ्णिति' वृद्धिः। कर्ता में ही फल भी हो तब आत्मनेपदे त-एश् शिश्रिये शिश्रियाते। कपयः रामं शिश्रियिरे शिश्रियिषे शिश्रियाथे शिश्रियिध्वे। परस्मैपदमें। शिश्रियिथ। उदृदन्तं इति कारिकायां 'श्रि' इति उदात्तः। इट् निषेधो न भवति। सिप् स्थाने थल् पिदस्ति न कित्। तेन गुणअयादेशः। शिश्रियिव अत्र लिट् कित् गुण निषेधः। इयङ्। सेवा क्रिया पर दिनोंमें भावी हो। तब श्रयिता श्रयितारौ श्रयितारः। श्रयितासि श्रयितासे श्रयितासाथे श्रयिताध्वे श्रयिताहे श्रयितास्वहे श्रयितास्महे श्रयिष्यति=दूसरेके लाभ के लिए सेवा करेगा। श्रयिष्यते अपने लाभ के लिए। युधिष्ठिर इव श्रयतु, श्रयतां श्रयेतां श्रयन्तां श्रयस्व श्रयेथां श्रयध्वम् श्रयै श्रयावहै-महै स्वार्थ के लिए सेवा करो। यथा—दिलीपः अश्रयत् अश्रयताम् अश्रयन् अश्रयः अश्रयम्। अश्रयाम। श्रीयात् श्रीयास्तां श्रीयासुः श्रीयाः श्रीयास्तां श्रीयास्त श्रीयासम्। श्रीयास्व आशीर्वादार्थ लिङ् अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घः। श्रयिषीष्ट=सदा सेवा करें। सेवार्थक श्रिधातोः कर्तृगामि फलजनकभूते (समाप्तसेवाक्रिया) कर्ता अर्थे लुङ् आत्मनेपदे 'त' सेवाफलपरगामी स्यात् तदा परस्मैपदे 'ति' इलोपे अडागमे च्लिस्थाने णिश्रिद्रुकर्तरि चङ् कृते, अनुबन्धलोपे चङि द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये, इयङ् लुङि रुपम्। अशिश्रियत् अशिश्रियताम् अशिश्रियन् अश्रयिष्यत् तदा जीवनफलमवाप्स्यत्।

२ भृञ् व् भृधातुका भरणं-वस्त्रेण अन्नादिना साहाय्यकरणम्। पालनञ्च। अन्नवस्त्रादि सहायताके अनुकूल पालनक्रिया अर्थ है जिससे क्रिया फल (सहायता भरणपोषण) कर्ताको लब्ध हो। तब आत्मनेपद, अकर्मकः वह फल दूसरेको लब्ध हो परस्मैपद सकर्मक, पोषणार्थक भृ लट्, तिप् शप् भरति (धार्मिकः) भरतः भरन्ति भरसि भरथः भरथ भरामि भरावः भरते (अधार्मिकः) अद्य भिन्न पालन पोषणक्रिया अप्रत्यकालमें समाप्त हो। बभार। वस्त्रादिना पालनं चकार, भृ अतुस् भृ भृ द्वित्वे, भरभृ भभृ अभ्यासे चर्त्वः। बभृ अ उस् यणादिः। बभ्रतुः। थल् व म परे कृ सृ भृ वृ इति इट् निषेधः। भृ 'त' तस्य स्थाने एश्, द्वित्वे, उरत् हलादिशेषः अभ्यासचर्त्वं यण् बभ्रे बभ्राते, दीनान् बभ्रिरे। त्वम् आश्रितान् बभृषे। यूवां मित्राणि बभ्राथे। यूयं धर्मं बभृध्वे। तुम लोगोंने न जाने कब पालन किया। अहं बभ्रां अवा बभृवहें।

बभृम । वभ्रे बभृषे । भर्तासि भर्तासे । भारिष्यति भरिष्यतें । भरतु भर-
ताम् । अभरत् अभरत । भरेत् भरेत । भ्रियात् उश्च ।१।२।१२। ऋवर्णात्परौ
झलादी लिङ् आत्मनेपदपरः सिच्चेत्येतौ कितौ स्तः । भृषीष्ट भृषीयास्तां
अभार्षीत् । **ह्रस्वादङ्गात्** ८।२।२७। सिचो लोपो, झलि । अभृत अभरि-
ष्यत् अभरिष्यत । हृञ् हरणे । हर्रति हरते । जहार जहृतुः जहृः । जहर्थ

वयं धर्मान् बभृमहे । त्वं धर्मं श्वः भर्तासि । सदा 'तं' भरिष्यति भरिष्यतः भरिष्यन्ति
भरिष्यसि भरिष्यथः भरिष्थ भरिष्यामि-ष्यावः । भरतां भरेतां भरन्तां भरस्व भरेथां
भरध्वं, भरं भरोवहै महै । ऋद्धानोः स्ये इट् अन्न वस्त्रसे पालन करेंगे । स भरतु ।
वह गरीबोंका रक्षण करे । यथा—पूर्वजाः अभरन्त । स लोकाद् भरेत भरेयातां
भरेरन् (३) **शय शप्रत्यय**, परे यक् यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे ऋ को रिङ्
हो । रीङि प्रकृते=प्रकृतप्रसङ्ग प्राप्त रीङ् ऋत.' सूत्रसे रीङ् का आना संभव था,
पुनः ह्रस्व लिङ् विधान सामर्थ्यसे सिद्ध है कि ऐसे स्थलमें 'अकृत्सार्वधातुकयोः' से
दीर्घ नहीं होता । भ्रियात् भ्रियास्तां भ्रियासुः । यकरादि लिङ् 'यास्त' परे रिङ्
शयग्लिङक्षु' सूत्रेण ऋस्थाने रिङ् आदेश रुपम् । आप सदा पोषण करें । पालन
क्रियाका फल कर्ताको मिले तब आत्मनेपद भृक्षीष्ट भृ सीयुट् सुट् त अनुबन्धलोपे,
ष ष्टु, ऋको गुण प्राप्त । (४) उः ऋ से परे झलादि झल् प्रत्याहारके अक्षर आदिमें
हो ऐसे लिङ् सिच् कित् हो, तङि आत्मनेपद परे अनुदात्त धातुः अस्ति इट् न
भवति । झलादि लिङ् किदसिच । तस्य फलं गुण निषेधः । भृषीयास्तां । आपदोनों
सदा पालन करो । अभार्षीत् कर्तामें भरण पालन क्रियाका समाप्त काल अ भृ स् ई
त् । सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु आर् वृद्धिः । आत्मनेपदे अभृस् त दशायाम्, अनिट्
इट् न भवति । झलादि सिच्, उश्च सूत्रेण कित् । तेन न गुणः सिच्लोपरूप अभा-
र्ष्टाम् अभार्षुः अभार्षीः ।

(५४५) **ह्रस्वात्**—ह्रस्वान्त अङ्गसे परे सिच् का लोप हो झलि परे अत्र
ह्रस्वान्तअङ्ग अभृ । झल् परे सलोपः । अभृत । अभृषाताम अभृषत अभृथाः अभृ-
षायाम् अभृढ्वम् । अभृषि अभृष्वहि । भरणक्रिया के कार्यकारण भावमें लङ ।
अभरिष्यत् अत्रपि ऋद्धनोः स्येइति इट् । धातु अनेक अर्थ धारण करते है : जिसका
प्रकाशक (भेदक) उपसर्ग है जैसे=अनुहरति—बराबरी करता है । अभ्यवहरति
=खादति । अपहरति आहरति (लाता है) उपहरति (उपहार देता हे) उपसंह-
रति उपसंहार करता है । उद्धरति बेड़ापार करता है । संहरति नाश प्रहरति चोट
पहुचाता है । परिहरति =त्यागता । ये सब ञ इ संज्ञक हृ धातुकी विशेषता हैं ।
क्योंकि उसका भरण—पोषण, स्तेय, हरणकरना, पहुचाना, चोरी विनाश, स्वी-
कार आदि फल के अनुकूल क्रिया अर्थ हृञ्को भृञ्के समान समझे केवल कृ सृ भृसे
इट निषेध नहीं होता । जहार । हरणकालकी परोक्षक्रिया समाप्तजहृतुः जहृः ।

जह्विव जह्मि। जह्रे जह्रिषे। हर्ता हर्तासि हर्तासे। हरिष्यति हरिष्येते धृञ् धारणे धरति। णीञ् प्रापणे। नयति नयते निनाय। डुपचष् पाके। पचति पचते। पपाच पेचिथ पपक्थ। पेचे। पक्ता पक्ष्यति पक्ष्यते अपक्त।

जहर्थ तुमने कब चुराया जह्रथुः जह्र। जहार जहर जाह्रिव जह्रिम। जह्रे जह्राते जह्रिरे, अपने लिए हरण किया। हर्ता –कल हरेगा। हरिष्यति =आशीर्लिङ ह्रियात्। अत्र रिङ विधीयते। अहार्षीत् अहार्ष्टाम् अहार्षुः। अहार्षम् अहार्ष्व अहार्ष्म। (४) धृत धातुकाधारण की क्रिया। यह भी क्रिया फलके परगामी भेद से अकर्मकः, सकर्मक आत्मनेपद–धरते परस्मैपद-धरति। दधार, दध्रे। अनद्यतनपरोक्षसमाप्त धारणक्रिया। कर्ता (धारण कर्ता) धरिष्यति, धरिष्यते। धरतु, धरताम्। अधरत् अधरत। धरेत् धरेत। ध्रियात धृषीष्ट। अधार्षीत अधृत। अत्र ह्रस्वाङ्गात सिच् लोषः।

(५) नीञ् – ञ् इत् नी धातुका प्रापण (पहुचाना) या लेजाने क्रिया सकर्मक हैं प्रापणफल का आधार कर्तासे भिन्न है। अजन्त एकाच अनिट है, ग्रामम अजां नयति नयतः नयन्ति नयसि नयथः य। नयामि नयावः मः यहा गांवमें पहुचे (संयोग) फलका आश्रय ग्राम हैं क्रिया कर्ता में। पहले हो प्रापणक्रिया अप्रत्यक्ष हो तबलिट्। कृष्णनिनाय मथुरां निन्यतुः द्वारकां निन्युः। निनयिथ निनेथ निायथुः निन्य। निनाय निनय निन्वि। थलमें विकल्प इट्। वमको क्रादिनियमसे नित्य इट्। दिलीपः नन्दिनीं वनं निन्ये निन्याते निन्यिरे। त्वं प्रसादं निन्यिषे निन्याथे निन्यिध्वे। निन्ये निन्यिवहे निन्यिमहे। ध्वम् वही, महि, में क्रादिनियम से नित्यइट् नेता प्रापणकर्ता नेष्यति। नयनं करिष्यति। प्राण क्रियामें आज्ञा प्रेरण निश्चय प्रार्थना आशीर्वाद अर्थमें लोट् नयतु नयताम्। अनयत् अनयत। नयेत् नयेत। नीयात् नेषीष्ट अनैषीत अनेष्ट। अनेष्य त्अनेष्यत। इसके भी अनेक उपसर्ग, अनेक अर्थ के बोधक है। अनुनयति = दूर हट जाना। अवनयनि नीचा करना। ऊानयति प ले जाना। (समीपं प्रापयति)। प्रणयति प्रेम करना, परिणयति विवाह करना, एते धातवः उभयपदिनः स्वरितेत् धातवः।

(६) डुपचष् आदिर्जि टुडवः डु ष् इत् अकारस्वरित त्रित सूत्रेण उभयपदी। पच् लट ति श। पचति=पाकानुकूलक्रिया करोति। पचते पचेते पचन्ते पचसे पचेथे पचध्वे पचे पचावहे। कर्तृगामी क्रियाफल होनेसे आत्मनेपद। पच् धातुका विक्लित्ति (परिपक्वता) जनकक्रिया अर्थ। परोक्षकालिक पूर्वदिनसमाप्त पाकक्रियाअर्थे लिट्। पच्-पच् पपच। पपाच पेचतुः पेचुः। एत्व -अभ्यासलोपौ। पपचथ इति दशायाम् अजन्तः अकारवाश्च, अतः थल् परे विकल्पेन इट्। इटपक्षे थलिचसेट' इतिएत्वे अभ्यास लोपे च। पेचिथ। यदा,न इट तदा चोः कुः इति सूत्रेण च कुः। पपक्थ पेचथुः पेच। पपाच पपच पेचिव पेचिम। अनद्यतनभूतकालिक

अपक्षाताम् । भज सेवायाम् । भजति भजते भेजे । भक्ता भक्तासि । भक्तासे भक्ष्यति भक्ष्यते । भजतु भजताम् । अभाक्षीत् अभक्त । अभक्षाताम् अभक्ष्यत् अभक्ष्यत, यज्ञ देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु । यजति यजते । **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** ६।१।१७। वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्याल्लिटि । इयाज । **वचिस्वपियजादीनां किति** ६।१।१५। वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं, किति ।

समाप्त पाकानुकूल क्रिया में हो। (अपने लिए पहले ही पकाया) इसअर्थमें पेचे, पेचाते, पेचिरे । पेचिषे पेचाथे पेचिध्वे । पेचे, पेचिवहे, पेचिमहे । आगामिदिनपाचनक्रिया । पक्ता पक्तारौ । कल पकायेगा । पचस्यति च् स्थाने कु न, क, स्यसको ष कषसंयोगे (क्ष) पक्ष्यति । पकायेगा । पचतां पचेतां पचन्ताम् पचस्व पचेथां पचध्वम् । पचै पचावहै पचामहै । पाकक्रियाविषयक विधि, प्रेरण, प्रार्थना, आशीर्वाद अर्थे । अपचत । कलपकाया । पचेत=पाकानुकूलप्रेरण की संभावना पकाना चाहिए पच्यात=वह पकाने में कुशलः अपाक्षीत् अपाक्ताम् अपाक्षुः । अपाक्षीः अपक्तम् अपक्त अपक्षाताम् अपक्षत । अपक्था अपक्षाथाम् अपग्ध्वम् । अपक्षि अपक्ष्वहि अपक्ष्महि । जहा त था ध्वम् रहे वहाझपरे सिचसकारस्यलोपः । क ष यथायोग्य । अपक्ष्यत् । **भजधातु** का सेवायां सेवा प्रसन्नतानुकूलक्रियाअर्थ । प्रीतिजनक क्रियावाचक भज्धातोः वर्तमान क्रियार्थे लट् तिप् शप् भजति भजते । प्रीत्यनुकूलव्यापारः । बभाज भेजतुः भेजुः । भेजे भेजाते भेजिरे । श्वः भगवन्तं भक्ता । भक्ष्यति (सेवा करेंगे) भजतु अभजत् । अभक्त अभज स त जकारस्य कुत्वं ग चर्त्वं क झलोझसि सिचो लोपे अभक्षाताम् अभक्षत अभक्थाः अभज् सइत् कुत्वे चर्त्वे षत्वे अभाक्षीत् अभाक्षाताम् अभाक्षुः ।

यज् धातुका देवपूजा, सङ्गतिकरण, दानके अनुकूल) दान वस्तुमें स्वत्वका त्यागजनकक्रिया अर्थ । यजति परोपकाराय देवपूजा, अच्छी सङ्गति करता, दान देता है । **लिटि** अभ्यासस्य उभयेषाम् । वच स्वप् इत्यादि ग्रह्यादि=ग्रहिज्यावयिव्यधि आदि धातुओंके अभ्यासको सम्प्रसारण हो, लिट् परे इयाज—पूजा दान यज्ञ जनकक्रियावाचक यजते भूतकाले कर्ता अर्थ लिट्, ति णल् । यज् अ, द्वित्वे अभ्यास हलादि शेषे य यज् अ इति स्थिते, अभ्यासस्य यस्य सम्प्रसारणे । लिटि परे अ। सम्प्रसारणाच्च इति पूर्वरूपे । ए यज अ । उपधावृद्धिः इयाज । ईजतुः । यज् अतुस् दशायाम् । **वचि** (परिभाषणे बोलना) स्वप् शयने, और यज् आदि धातुओंको सम्प्रसारण हो कित्परे । यजादिधातुः यजिर्वपिर्वहिश्चैव वसिर्वेञ् व्येञ् इत्यपि । ह्वेञ्वदी श्वयतिश्चेति यजाद्याः स्युरिमे नव । यजादिगणपठित यज् धातुको प्राप्त द्वित्वं बाधित्वा वचिस्वपियजादीनां सूत्रेण यस्य सम्प्रसारणे । सम्प्रसारणाच्च पूर्वरूपे । क्यों कि सम्प्रसारण तदाश्रयञ्च । सम्प्रसारण तथा उसके आश्रितकार्य पूर्वरूप

'यजिर्वपिर्वहिश्चैव वसिर्वेञ् व्येञ इत्यपि ।
ह्वेञ्वदी श्वयतिश्चैव यजाद्याः स्युरिमे नव' ।१।

ईजतुः ईजुः । इयजिथ इयष्ठ ईजे । यष्टा । षढोः कः सि । यक्ष्यति । यक्ष्यते । यजतु यजताम् अयजत अयजत । यजेत् यजेत । इज्यात् यक्षीष्ट अयाक्षीत् अयष्ट । वह प्रापणे वहति वहते । उवाह ऊहतुः । ऊहुः उवहिथ ।

आदि बलवान् होते है। इज् अ। अत्र द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये सवर्णदीर्घे ईजतुः ईयुः । प्रथमं सम्प्रसारणं पश्चात् द्वित्वादिः । सभी आत्मनेपद कित् हों। इयजिथ इयष्ठ। तुमने पहले ही यज्ञ किया। (देवपूजा सत्सङ्ग दानके अनुकूल क्रिया अर्थ वाचक) यज्धातोः अप्रत्यक्ष समाप्त समाप्त क्रियाकाले कर्ता अर्थे लिट। यह धातु अनिट् तथा अकारवान् है। भारद्वाजमते इट्, द्वित्वे अभ्या सादिकार्ये (लिट्यास्यस्योभयेषाम्) अभ्यासस्य सम्प्रसारणे इयजिथ । यदा न इट तदा व्रश्चभस्ज सृज मृज यज आदि सूत्रेण ज स्थाने ष, थस्य ष्टु ठः इयष्ठ। इयथुः। इयाज इयज ईजिव ईजिम। अत्र क्रादिनियमात् नित्यम् इट। जहां क्रिया समाप्त हो उसका फल कर्तृगामी हो। आत्मनेपदमें सभी कित् है: अतः प्रथमं यजादिसम्प्रसारणं पश्चात् द्वित्वादिकार्यम् । ईजे ईजाते ईजिरे। त्वम् ईजिसे ईजाथे ईजिध्वे। ईजे ईजिवहे ईजिमहे। देव पूजार्थक यज्धातोः आगामिभविष्यकालिकके कर्तामें लुट् तास्, तिप् आदि। व्रश्चभ्रस्ज आदि सूत्रेण ग ष्टु यष्टा। यजकर्ता। यष्टारौ यष्टारः (दानकर्तारः) यज्ञ क्रियाका सामान्यभविष्यकालमें लृट् यज स्यति । व्रश्च इति षत्वे तत (८) षढोः=षश्च ढ़श्च षढौ तयोः षढोः ष या ढ के स्थान में 'क' हो सपरे। षस्थाने कः स्य सकारस्य षक ष संयोगे क्ष। यक्ष्यति परोपकार के लिए यज्ञ करेंगे । यक्ष्यते । भवान् यजतु, यजताम् यजेतां यजन्तां, यजस्व यजेथां यजध्वं यजै यजावहै महै यजानि यजाव । आप यज्ञ करें। अयजत्=कल कई सत्संग किये । यजेत् यजेतां यजेयुः यजेः यजेतं यजेत यजेयं यजेव–म। आप भी सत्संग करें। इज्यात् आप परोपकारी हैं दान करें । यक्षीष्ट=पूजा सत्सङ्ग विषयक आशीर्वाद, यक्षीयास्तां यक्षीरन्। अयाक्षीत् । यज् धातोः समाप्त यजनक्रिया अर्थे लुंङ् अट् तिप्, इलोपे, च्लि, सिच्, वद् व्रज् हलन्तस्याचः वृद्धिः, स लोपो, ईट् । ज स्थाने ष तस्य कः सिचः सस्य ष । अयाष्टाम् अयाक्षुः अयाक्षीः अयाष्टम् अयाष्ट । अयाक्षम् अयाक्ष्व अयाक्ष्म अयक्ष्यत।

(६) वह धातु प्रापण की क्रियाअर्थ, ढोना, पहुंचाना, प्राप्त करना, आदि। यह सकर्मक है। प्रापणफल का आधार गर्दभः भारं वहति में भार है । प्रापणका जनक व्यापार कर्तामें है । वहति वहतः वहन्ति वहसि वहथ । वहामि वहावः मः । बोझा ढोता है । वहते वहेते वहन्ते वहसे वहेथे वहध्वे वहे । स्वार्थ भारं नयति । नदी वहति । वह वह, ववह—अ लिट् परे अभ्यास वकारस्य सम्प्रसारणे,

हो 'ढः'। **झषस्तथोर्धोऽधः** ८।२।४०। झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधातेः। ष्टुना ष्टुः ढो **ढे लोपः** ८।३।१३। ढस्य लोपः स्याड्ढे परे। **सहिवहोरोदवर्णस्य** ६।३।११२। अनयोरवर्णस्य ओत्स्यात् ढ्लोपे। उवोढ ऊहे। वोढा। वक्ष्यति वक्ष्यते। वहतु वहताम्। अवहत् अवहत। वहेत् वहेत। उह्यात् वक्षीष्ट। अवाक्षीत् अवोढाम् अवाक्षुः। अवाक्षीः अवोढम् अवोढ। अवाक्षम् अवाक्ष्व अवाक्ष्म। अवोढ अवक्षाताम् अवक्षत। अवोढाः अवक्षाथाम् अव-

---

पूर्वरूपे, वृद्धि उवाह, ऊहतुः। पित् भिन्न लिट् किद् अतः (द्वित्वसे पहले) वचिष्वपियजादीनां प्रथम सम्प्रसारणे, ततो द्वित्वादिकार्य, णल्, थल् में कित् नहीं होता। उवहथ अनिट् अकारवान् धातुः, भारद्वाजमते इट् उवहिथ। तुमने भार कब ढोया? इट् अभावपक्षमें उवक्थ दशायाम्। (६) **झषः**, झष् प्रत्याहार के अक्षर से परे 'तथोः' तथ के स्थानमें 'ध' हो। अधः=जुहोत्यादिका धा धातु न हो।

(५०) **ढका** लोपहो ढपरे। (१) **सहि अनयोः**—सह वह धातु के अवर्णस्य अकारको ओत् ओकार हो, ढलोप होने पर। उवोढ वह थ द्वित्वादिकार्य। वह वह, ववह, अभ्यासस्य सम्प्ररणे होढः, हस्थाने ढः (झषस्तथोर्धोऽधः) झष् प्रत्याहारे ढकारः तस्मात् परः थस्य धः, उवढ ध ष्टुत्व ढः ढोढेलोपः ढकारेपरे ढलोपः, उवढ दशायां सहिवहोरोदवर्णस्य इति ओकारे। अतः ढलोपे पूर्वस्य अणः दीर्घो न भवति। उवोढ ऊहथुः ऊहः उवाह उवह ऊहिव ऊहिम। क्रादिनियम से नित्य इट्। परोक्ष भूतकालिक वहन क्रिया कर्ता ऊहे (ढोये, पहुंचाये वहन किये) ऊहाते ऊहिरे। वे सब न जाने कब ढोये। ऊहिषे ऊहाथे ऊहिध्वे। तुम लोगों ने कब विवाह किया। मुझे बताया भी नहीं। ऊहे ऊहिवहे ऊहिमहे। हम सबने विवाह किया उत्तरदायित्व ढोये। तुम लोगों ने देखा भी नहीं। वयम्, ऊहिमहे, यूयं न ददर्श। वोढा। परसाल विवाह करने वाला है। गृहस्थी का बोझा ढोया है। प्रापणार्थक वह धातु अनद्यतन भविष्य क्रियाअर्थे लुट् तास् तिप् डा। 'हो ढः' हस्थाने ढ, झषस्तथोर्धः तस्य ष्टु ढः, ढोढ़े लोप वह अकारस्य ओकारे वोढा वोढारौ पोढारः। भविष्यकाले प्रापणकर्ता (बोझा ढोना) विवाह आदि क्रिया के भविष्यकालविवक्षा में लृट् वक्ष्यति 'ते' वह स्यति इति स्थिते ढत्वे (षढो कः सि) कत्वे, प्रत्यय-अवयव सकारस्य षत्वे कष संयोगे क्ष। वह धातु से लोट्। वहतु वहतात् (कार्यभार सम्भालो) अवहत् अवहताम् अवहन् अवहत जैसे—रघु सम्भाले थे। वहेत् वहेत। वैसे आप भी जिम्मेदारी सभालें। वहनक्रिया विषय के आशीर्वाद अर्थ में लिङ् उह्यात् आप ढोयें। यासुट् के कित् होनेसे सम्प्रसारण हुआ। आत्मने पदमें वह सीयुट् सुट् ढत्व कत्व षत्व क्षत्व वक्षीष्ट। वर कन्या का भार ढोये। प्रापण क्रिया समाप्त हो चुकी हो। तब लुङ् अट् तिप् इ लोप्, सिच् ईट् उपधावृद्धि ढत्व कत्व षत्व क्षत्व अवाक्षीत् अवोढाम्। अवह् 'स' ताम् हो ढः तस्य झषस्तथोर्धः तस्य ष्टु सिचः 'झलोझलि'

ढ्वम् । अवक्षि अवक्ष्वहि अवक्ष्महि । अवक्ष्यत् अवक्ष्यत । डुवप् बीजसन्ताने बीजसन्तानं क्षेत्रेविकरणं, गर्भाधानं च। अयं छेदनेऽपि। केशान्वपति। वपते उवाप। ऊपे। वप्ता वप्स्यति। वप्स्यते उप्यात् वप्सीष्ट। प्रण्य-वाप्सीत् अवप्त। वेञ् तन्तुसन्ताने। वयति वयते। वेञो वयिः २।४।४१। स्यात्लिटि। इकार उच्चारणार्थः। उवाय। ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविच-

सूत्रेण लोपे अकारस्य ओकरे। अवाक्षुः झेर्जुस्। ढत्व कत्व क्षत्व हलन्तलक्षणवृद्धिः। अवाक्षीः अबोढम्। अबोढ। अवहस्त होढः स्य धः। ष्टु ढः, ढोढे लोपः, साहिवहो-रोद्, अवर्णस्य ओकारे। यहाँ तक शप् विकरण धातुः आकृतिगणः।

डु इत् – वप् धातु का बीज सन्तान—प्ररोहार्थ बीजानां क्षेत्रेषु प्रक्षेपणम् खेत मे बीज बोना छींटना गर्भ का आधान अर्थ में प्रमाण – अप्रमत्ता। रक्षत तन्तुमेतं भावः। परक्षेत्रेषुबीजानि अवाप्सुः। तुम्हारे क्षेत्र में पराये के बीज नबो उठें। वपिः प्रकिरणार्थः अर्थ =यह धातु छेदने—काटने अर्थ में भी हो। केशान्वपति बाल मुडता है या काटता है। वपत : वपन्ति। वपसे वपेथेवपध्वे। वपे वपावहे – वपामहे। बीज को बोते समय क्रिया न देखी हो। गर्भाधान केशकर्तन हो चुका हो। तिप् णल्। वप— वप ववप। लिटि — अभ्यासस्य सम्प्रसारणे अत उपधायाः दीर्घे। उवाप ऊपतुः। वप अतुस् दशामें वचि स्वपि सूत्र से सम्प्रसारणे व को उ तब द्वित्व, उप— उप उउप सवर्णदीर्घ। भारद्वाज इट्। ऊपिथ। न इट् उवप्थ। ऊपथु : ऊप। उवाप ऊपिव ऊपिम। आत्मनेपद में ऊपे ऊपाते ऊपिरे। ऊपिषे ऊपाथे ऊपिध्वे ऊपिमहे। आगामी काल में बीज बोना गर्भाधान, केशकर्तन हो। वप्ता वप्तारौ वप्तारः। वप्तासि वप्तासे। वप्तास्मि= वप्ताहे वप्तास्वहे वप्तास्महे। वप्स्यति वप्स्यत : वप्स्यन्ति। वप्स्येथा : वप्स्यध्वे बीजं वपतु वपतां वपन्तु। वपतां वपेतां वपन्तां वपस्व। वपानि। अवपत् अवपताम् अवपन्। वपेत्। वपेत वपेयातां वपेरन्। बोना गर्भाधान करना विषयक का आशीर्वाद। यासुट के कित् से वचिस्वपि सम्प्र०। उप्यात् उप्यास्ताम् उप्यासु वप्सीष्ट वप्सीयातां वप्सीरन्। अवाप्सीत् हलन्तस्यास्याच : विद्धि : नेगंद से णत्व अवाप्ताम् अवाप्सु : अवाप्सी :। आत्मनेपद में जब बोने की क्रिया समाप्त हो झलोझलि से लोप। अवप्त अवप्साताम् अवप्सत। अवप्था :, अवप्सि

वेञधातु का तन्तुसन्तान सूतविस्तार कपड़े बुनना। पट निर्माणार्थ तन्तूना निर्यक्प्रसारणविशेषः दोनों पद। क्रिया चल रही हो लट् शप् अय। वयति वयतः वयन्ति। वयसि वयथः वयथ। वयामि वयावः वयामः। वयते वयेते वयन्ते। वयसे वयेथे वयध्वे। वये वयावहे वयामहे। बुनना कर्म अनदेखा कालमें हो। लिट्

वेञो–वे धातुको वय आदेश हो लिट् परे विकल्पसे। इ उच्चा०। वय अ द्वित्व वय वय ववय। कित्संज्ञा न हुई हो ऐसा लिटि परे वको सम्प्रसारण। अतो-

तिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ६।१।१६। चात्किति संप्रसारणं। इति यकारस्य प्राप्ते–**लिटि वयो: य:** ६।१।३८। वयो यस्य सम्प्रसारणं न स्याल्लिटि। ऊयतु: ऊयु:। **वश्चास्यान्यतरस्यां किति** ६।१।३९। वयो यस्य वो वा स्यात्किति लिटि। ऊवतु: ऊवु: वयस्तासावभावात्थलि नित्यमिट्। उवयिथ। स्थानिवत्वेन ञित्वात्तङ्। ऊये ऊवे। वयादेशाभावे। **वेञ:** ६।१।४०। वेञ: सम्प्रसारणं न स्याल्लिटि। ववौ ववतु: ववु:। वविथ ववाथ ववे ववाते वविरे। वाता। ऊयात् वासीष्ट। इट्सकौ। अवासीत् अवासि-

---

पधाया वृद्धि:। उवाय ऊयतु:। वे के स्थानमें वय आदेश। वय अतुस्, ग्रह उपादाने ज्या अवस्थाहानि, वेञ् तन्तुसन्तान, व्यध ताडने, वश कान्तौ, षिच सेवने, वृश्च छेदने आदि धातुको सम्प्रसारण हो किति ङिति परे। इससे यको सम्प्रसारण प्राप्त

लिटिपरे वयके यको सम्प्रसारण नहीं होता। न सम्प्रसारण आया। इससे य को निषेध। किन्तु व को सम्प्रसारण, द्वित्व दीर्घ। ऊयतु: ऊयु:। अनेक कर्तामें परोक्ष भूतकालिक वस्त्रवयनक्रिया। **वयके** यको व हों, विकल्पसे। किति लिटि परे। इस सूत्रसे वयके यको व हुआ। पक्षमें वेञ् धातुके तास् प्रत्ययकी स्थितिमें इट् नहीं होता। इसलिए थलि परे नित्य इट्। ऊवयिथ तुमने कब बुना। कित् नहीं। यको व भी नहीं, अजन्त अकारवान्को थलिपरे विकल्प इट् प्राप्त, नित्य इट्का संकेत यस्तासौ अस्ति नित्यानिट् च। ऊयथु: ऊवथु:। ऊय ऊव। उवाय उवय ऊविव ऊयिम। वय धातु उभय पक्ष कैसे? स्थानिवद्भावसे वेञ्का ञित्वधर्म वयमें लायेंगे, ऊये ऊवे। आत्मनेपद परे वेञ्को वय आदेश। यको व वश्चास्यान्यसे विकल्प पक्षमें वयके यको सम्प्रसारण निषेध। वको वचिस्वपिसे सम्प्रसारण दीर्घ ऊव ऊव ए ऊवे, पक्षमें य। ऊयाते ऊविरे। जब वेञो वयि: सूत्रसे वय आदेश नहीं होगा, तब वेञ् दशामें लिटि अभ्यासस्य और वचिस्वपिसे सम्प्रसारण प्राप्त। निषेध सूत्र वेञ:–वे धातुको सम्प्रसारण न हों लिटि परे। न सम्प्रसारण और लिटि आये। इससे निषेध आदेच उपदेशे से आत्व। वा वा ववा अ, आत औ णल:। णल्को औ आदेश। वृद्धि: एच परे। ववौ ववतु:। ववा अतुस् अतोलोप:से आकारका लोप। ववु:। भारद्वाज नियमसे वा इट्, ववाइथ आलोप वविथ। न इट ववाथ ववथु: वव। ववौ वविव वविम। क्रादि–इट् आत्मनेपदमैं आत्व करनेपर। ववा अकार लोप। ववे ववाते वविरे। वविषे ववाथे वविढ्वे–ध्वे। ववे वविवहे वविमहे। लृट्लकारमें तास् परे आत्व। वाता वातारौ वातार:। बुनेगा वस्त्रं वास्यति वास्यते। वयतु वयताम्। अवयत् अवयत। वयेत् वयेत।

बुननेके प्रति शुभकामना अर्थमें ऊयात् वेयात्। आशीर्वादका यासुट् कित् है। जिसका फल वचिस्वपिसे सम्प्रसारण, पूर्वरूप। अकृत्सार्वधातुकयो:से दीर्घ। ऊयास्तां ऊयासु:। आत्मनेपदमें वे सी स त। आदेच उपदेशेसे आत्व। ष ट। वासीष्ट,

ष्टाम् अवासिषुः । अवास्त अवासाताम् । व्येञ् संवरणे । व्ययति व्ययते । न व्योलिटि ६।१।४६।। व्येञ आत्वं न स्याल्लिटि । परमपि हलादेः शेषं बाधित्वा यस्य सम्प्रसारणं, उभयेषां ग्रहणसामर्थ्यात् अन्यथा वाच्यादीनां ग्रह्यादीनां चानुवृत्त्यैव सिद्धे, किं तेन ? विव्याय विव्यतुः विव्युः । इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् ७।२।६६। अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् । विव्ययिथ वव्यथुः विव्य । विव्याय विव्यय विव्यिव । विव्यिम । विव्ये व्याता । व्यास्यति वीयात् व्यासीष्ट । अव्यासीत अव्यास्त । ह्वेञ स्पर्द्धायां,शब्दे च ।

वासीयास्तां वासीरन् वासीष्ठाः । बुनना क्रियाके समाप्तकालमें लुङ् इट् सक । अवास इस ईत् दशामें इट ईटि सलोप । अवात्सीत् अवात्ताम् । वस्त्रको तन्तुसंतानित किया । अवासीः अवास्यत् । वेञ् धातुका संवरण घेरना, ढकना, खर्च करना वश में करनेकी क्रिया । इत्से उभयपदी । अनिट् लट तिप शप् व्ययति व्ययतः व्ययन्ति, व्ययसे, व्ययेथे, व्ययध्वे । खर्च करके वशमें करना ऐसी क्रियासहित कर्ता प्रत्यक्ष न हो लिट् आदि । आत्व । व्या अ द्वित्व लिटि परे अभ्यासको सम्प्रसारण पूर्वरूप विव्या अ आतो लोप । विव्यौ विव्यतुः विव्युः ऐसा प्राप्त हुआ ।

न व्यो आलुप्त षष्ठी । आदेच उपदेशे से आत्व आया, णल् परे (अ) दशामें आत्वका निषेध हुआ । लिट् परे अचोञ्णिति से वृद्धि व्य अ । दशामें द्वित्व, अभ्यास के यको सम्प्रसारण पूर्वरूप । उत्तरखण्डको आय आदेश । विव्याय अत्र प्रश्नः— अभ्यासके सम्प्रसारणसे पहले यका हलादिशेषः पर है परं कार्यं होना चाहिए तथापि लिटि अभ्यासस्य सूत्रमें उभयेषां पढ़नेकी शक्तिसे सम्प्रसारण पहले होगा । इसका समर्थन अन्यथा शब्दसे करते है । वचिस्वपि और ग्रहिज्या वयि दोनों सूत्रोंकी स्वरित संकेतसे अनुवृत्ति लिट् अभ्यासस्य सूत्रमें जाती । उभयेषां क्यों पढ़ा ? वही प्रमाण बनता है कि प्रथम सम्प्रसारण हो । विव्यतुः विव्युः वे कब घेरेमें, वशमें हुए । वचिस्वपिसे सम्प्रसारण करनेके बाद द्वित्व यण् आदि । थलपरे भारद्वाज मतका विकल्प इट् प्राप्त हुआ अतः इडत्यर्तिव्यतीतनां सूत्रसे नित्य ईट तिप् सिप मिप पित् अभ्यासको सम्प्रसारण । अन्य विभक्तियां कित है । सम्प्रसारण होनेके बाद द्वित्व आदि कार्य । विव्ययुः विव्य विव्याय, विव्यिव विव्यिम । आत्मनेपद का त कित् है । पहले वचिस्वपिसे सम्प्रसारणादि तब वी द्वित्व यण् विव्ये विव्याते विव्यिरे : विव्यिसे, विव्ढिवे, विव्यिमहे । अनद्यतन भविष्यकालका संवरण क्रियाके कर्तामें लुट । तास् परे आत्व व्या ता, वय करके वशमें करेगा । व्यास्यति, व्यास्यसे : व्ययतु, व्ययतां, अव्ययत्, व्ययेत व्ययेतां व्ययेयुः । व्ययेत व्ययेतां, व्ययेरन् । वि यात् कित् होने से सम्प्रसारण पूर्वरूप । अकृत् से दीर्घ वीयास्तां वीयासुः । व्यय करने विकार के घेरने के विषय में शुभकामना लिङार्थ । व्यासीष्ट, सीयुट परे अत्व व्यासीयास्तां, व्यासीरन् ।

ह्वयति ह्वयते। **अभ्यस्तस्य च ६।१।३३।**अभ्यस्तीभविष्यतो ह्वेञः संप्रसारणं स्यात् जुहाव जुहवे। ह्वाता ह्वास्यति ह्वास्यते। **लिपिसिचिह्वश्च ३।१।५३।** च्लेरङ् । **आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ३।५।५४।** अह्वत् अह्वताम् अह्वन् अह्वत अह्वास्त। राजृ दीप्तौ। राजति राजते। रराज रेजतुः।

संवरण क्रिया समाप्तिकाल के कर्ता में लुङि सिच् अत्व ईट आदि अव्यासीत् अव्यासिष्टां, अव्यासिषुः। आत्मनेपद में। अव्य सत। दशा में संज्ञा होनी हो ह्व आत्व अव्यास्त, अव्यासातां, अव्यासत। अव्यास्यत। ह्वे धातु स्पर्धा एक दूसरेसे बढ़नेकी इच्छा और शब्द अकारण बुलाना आगच्छ अर्थमें है। भावमें यान्तोऽन्यतः प्लुतकृतस्वरमाशुदूरात् उद्बाहुना जुहुविरे मुहुरात्मवर्ग्याः। ऊंचे स्वरसे भुजा उठाकर आत्मीय लोग बुलाये गये। वर्तमानकालमें बुलाना या हरानेकी इच्छा। लट् शप् अय। ह्वयति ह्वयतः ह्वयन्ति। ह्वयसे, ह्वये। स्पर्धा या आह्वान जोंरसे बुलाने क्रियासहित कर्ता न देखा तब लिट् आदि। अकित् तिप सिप मिपमें। लिट् परे अभ्यासको ही सम्प्रसारण प्राप्त। उसका बाधक।

को सम्प्रसारण हो। ह्वः सम्प्रसारणम् आया। सम्प्रसरणच्च पूर्वरुप हुआ दशा में दित्व हु हु अ। उभे अभ्यस्तम् दोनोंको अभ्याससंज्ञा। विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव न्याय नहीं लगा। पुनः प्रसंज्ञविज्ञानसे। कुहोश्चु जुहु अ अचोञ्णिति वृद्धि आव

जुहाव जुहुवतुः जहुवुः। ह्वे अतुस। अभ्यस्तस्य से सम्प्रसारण पूर्वरूप। तब द्वित्व। जुहुअतुस्। उवङ् परोक्ष अनद्यतन भूतकालमें बुलाया हारने की इच्छा किया थल् परे वा इट्। जुहुविथ। न इट् गुण जुहोथ जुहुवथुः। जुहुविव। कादि— इट् आत्मनेपदमें लिटः त एश। उवङ जुहुवे जुहुवाते जुहुविरे जुहुविषे जुहुवाथे जुहुविढ्वे —ध्वे जुहुविमहे। कल परसों स्पर्धा आवाहन हो लुट् तास् आदि। ह्वाता ह्वातारौ ह्वातारः ह्वातासि। ह्वातासे। आदेच उपदेशे से अत्व। ह्वास्यति — बुलायेगा। हरायेगा। ह्वयतु ह्वयताम्। अह्वयत् अह्वयत। ह्वयेत् ह्वयेत। हुयात्। वचिस्वपि से सम्प्रसारणपूर्वरूप अकृत्सार्वसे दीर्घ। हूयात् हूयातां हूयासुः। हूयासम् हूयास्व हुयास्म। बुलाने या हरने के प्रति शुभ कामना आशीर्वाद है। ह्वासीत आत्व षत्व ष्टुत्व। ह्वासीयास्तां ह्वासीरन्। समाप्त किया हो ह्वसत् आत्व।

लिप् सिच् ह्वे धातुसे च्लिको अङ् हो, परस्मैपदपरे। **आत्मनेपद परे** हो विकल्पसे अङ्। अह्वा अत। आनो लोप इटि चसे आका लोप। अह्वत्। तस्को ताम् आत्मनेपदमें च्लिको अङ् हुआ। आलोप अह्वाताम् अह्वन्त। अह्वथाः। जब न अङ् तब च्लेः सिच अह्वास्त अह्वासाताम्। अह्वास्यत। लिप् उपदेहे अलिपत। लीप दिया। पिच्छरणे असिचत्।

राज आदि छ धातुको फणादि मानकर एत्व अभ्यास लोप। स्वरित में दो धर्म उदात्त और अनुदात्त। अतः दोनों पद राजति स्वयं प्रकाशित हो रहा कर्ता। राजते

रराजतुः रेजुः। रराजुः रेजे रराजे। हिक्क अव्यक्ते शब्दे। हिक्कति हिक्कते। अञ्च गतौ, याचने च। अञ्चति अञ्चते। अच इत्येके। अचि इत्यपरे। टुयाचृ याच्ञायां। याचति याचते। बुधिर् बोधने बोधति बोधते। इदित्वादङ् वा। अबुधत् अबोधीत अबोधिष्ट। खनु अवदारणे। खनति खनते। चखान चख्नतुः चख्नुः,चख्ने खायात् खन्यात् चीवृ आदानसंवरणयोः चीवति चीवते। चायृ पूजा-निशामनयोः। चायति चायते। व्यय गतौ। व्ययति व्ययते। विव्याय विव्यये। दाश्रृ दाने। दाशति दाशते। भेषृ भये।

लिट् में रराज रेजतुः रेजुः। रेजथुः रेज रेजे

हिक्कति हिचकता है हुचकी आने से, अशब्द स्पष्ट नहीं। क्रिया फल कर्तामें हो आत्मनेपद हिक्कते। अहिक्कीत् अञ्चति जाता है मांगता है (पर उद्देश्यसे) क्रियाका फल परगामी हो परस्मैपद। अपने उद्देश्यसे जाता है तब अञ्चते। आञ्च आञ्चतुः आञ्चुः। आञ्चे आञ्चाते आञ्चिरे अञ्चिता आञ्चत्। अच्यात् अनिदितां हलसे नलोप। जब अचि पढ़ेंगे एदित् होनेसे नलोप न हो, अञ्च्यात्। चतते चतति मांगता है। परोक्षमें मांगना हुआ हो। चेते चेताते चेतिरे। अचतीत् एकार इत्से वृद्धि निषेध (श्वेदितांसे) चदति चदते अचदीत् देशविशेषमें उपयोग मिलेगा, याचति याचते भिक्षां वामनः। ययाच येचे याचिता याचिष्यते मागेगा। पुस्तकं याचेतां याचन्तां याचस्व याचेथां याचै याचावहै याचामहै।

बोधति समझता है। एककर्तामें समझमें आनेकी वर्तमान क्रिया। बोधते बोधेते बोधन्ते। बोधसे बोधेथे बोधध्वे। बोधे बोधावहे: बोधतु बोधताम् अबोधत बोधेत। जब ज्ञान हो चुका हो बोध हो गया हो तब अबोध च्लि त्। इरितो वा से च्लिको अङ्। अबुधत पक्षमें सिच इट्। ईटि। अबोधीत्। समझ गया। अबोधिष्टां अबोधिषुः, अबोधीः अबोधिष्ट, अबोधिषं अबोधिष्व अबोधिष्ट अबोधिषातां अबोधिषत्। **खनति** खोदना, अवदारण ओदारता खनता है। वर्तमानकालिक कर्तामें विराजमान क्रिया। क्त्वामें इट विकल्पके लिए। उ इत्। खनित्वा खात्वा। खन खोदकर खातः (खना हुआ गड्ढा) खनने खोदनेकी क्रिया। खनिष्यति खनिष्यतः खनिष्यन्ति। खनिष्यसे खनिष्येथे खनिष्यध्वे। खनिष्ये खनिष्यावहे। खनतु खनतां खनेतां खनन्ता खनस्व खनेथं खनध्वं, खनै खनावहै खनामहैं खनानि खनाव खनाम, चखान चख्नतुः परोक्ष कालमें खोद चुका। खन खन खखन, चखन अतुस् स्थितिमें

चीवते चीवति आदान लेना, सम्वरण घेरने ढकनेकी क्रिया। इसी से र प्रत्यय कर चींवरं वस्त्रं, पीवरो मनुष्यः, मीवरः पशुः, निपातनसे चिचीव एककर्तृकपरोक्ष-भूतानद्यतनकालिक आदान, संवरण क्रिया। चीविता चीविष्यति ढंकेगा। चीवतु चीवतां अचेवीत् अचेविष्ट।

चायति चायते। पूजा स्वागत निशामनः चाहना अर्थं। चाय पिलाना

गतावित्येके । भेषति भेषते । अस गतिदीप्त्यादानेषु । असति असते । आस आसे । अयं षान्तोऽपि । स्पश बाधनस्पर्शनयोः । स्पर्शनं ग्रन्थनम् । स्पशति स्पशते । लष कान्तौ लष्यति लषति । लष्यते लषते । चष भक्षणे । चषति चषते । झष आदानसंवरणयोः । झषति झषते । दासृ दाने दासति दासते धाव गतिशुद्धयोः । धावति धावते । इति भ्वादिप्रकरणम् ।

भी स्वागत समादर है । चचाय चचाये । चायिता चायिष्यते चायतां चायिषीष्ट अचायीत् अचायिष्ट । व्ययति व्ययते खर्च होना पैसेकी गति=गमनक्रियाका वर्तमान काल । विव्याय व्ययिता व्ययतु व्ययतां व्ययेतां व्ययन्तां व्ययस्व व्ययेथां । भूतकाल में खर्च कर चुका हो कर्तरि लुङ् । सिच आदि । अव्ययीत्, ह्ययन्त जानकर न वृद्धि । अव्ययिष्टाम् अव्ययिषुः । अव्यायिष्ट । दाशते दान करता है दाशति । ददाशे ददाशाते ददाशिरे । आड़में दान कर चुके । दाशिष्यते दाशताम् अदाशत । दान क्रिया धातुका अर्थ अदाषीत् :

स्पश धातुका बाधन, विघ्न डालना स्पर्शन देना वर्तमानकाल कर्ता । पस्पाश । लषकी कान्ति इच्छा शोभा चमककी क्रिया श्यन् विकल्प । भ्राशभ्लाशभ्रमक्रमु श्यन इच्छा लालसा है । लेषे लेषाते लेषिरे । लषिता लषतु लषतां इच्छा होने की आज्ञा प्रेरणा का कर्ता हो लोट । अलषत — इच्छा क्रिया । अलाषीत् अलषिष्ट, चषका भक्षण गलविलाधः संयोग, चखने लीलने की क्रिया । चषति चषते चखना टेस्ट स्वाद लेना । चचाष चेषतुः चेषुः । चषिता चषिष्यते चखेगा, स्वाद परीक्षण करेगा चषतु चषतां स्वाद लो चखो । अहं चषै चषावहै चषामहै । अचाषीत् अचषिष्ट अच षिषतां अचषिषत अचषिष्ठाः। खाया चखा स्वादलिया कर्तामें भूतकालकी स्वादलेना क्रिया झष का आदान स्वीकार सम्वरण ढंकना झषति झषते ठगता है, लेना या धूल झोकना । जझाष । अझषत झषिष्यते अझाषीत् झष धूलझोंका अदन– खाना चबा कर लीलना क्रिया भक्षति भक्षते बभक्ष । भक्षिता भक्षिष्यते भक्षतु, भक्षतां भक्षेतां भक्षन्तां भक्षस्व भक्षेथां भक्षध्वं भक्षै भक्षावहै

दासते देता है दान क्रियाका वर्तमान कालिक कर्ता दासते दासिष्यते । दासताम् अदासत दासीष्ट अदासीत् अदासिष्यत

धावति धावतः धावन्ति । स्वरित– उकारके इत्से दोनों पद कर्तृगमी क्रिया फल हो । अपने लिये दौड़ता हो शुद्ध होता हो, तब आत्मनेपद । धावते धावेते धावन्ते । परोक्षमे दौड चुका हो लिट द्वित्वादि । धाव धाव, धधाव, दधाव तको लिटरत ऐश दधावे दधावाते दधाविरे । वे स्वार्थके लिए दौड़ पड़े । शुद्ध हुए । धाविता आगामि भविष्यकालिक क्रिया । धवितासि धावितासे धाविताहे धावितास्वहे धाविष्यते–ति । धावतु धावानि धावाव धावाम । धावै धावावहै— महै । अधावत् धावेत धावेयातां धावेरन् धावेथाः । धाविषीष्ट अधावीत् अधाविष्ट अधावि — षाताम् अधाविषत

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकरीटीकायां भ्वादय समाप्ताः ।

अथ अदादिप्रकरणम्

ऋतेरीयङ् ।३।१।२९। स्वार्थे । ऋतिः—सौत्रः । जुगुप्सायामिति बहवः । कृपायां चेत्येके । ऋतीयते । ऋतीयाञ्चक्रे 'आयादय' इति ईयङ्भावपक्षे शेषत्वात् परस्मैपदम् । द्वित्वेऽभ्यासलोपे च जाते, 'उरत्' । 'तस्मान्नुड्द्वी'ति नुट् । गुणः । आनर्त्त । अर्तिष्यतीत्यादि । अद भक्षणे । **अदिप्रभृतिभ्यः शपः** ।२।४।७२। लुक् स्यात् । अत्ति । अत्तः । अदन्ति अत्सि । अत्थः अत्थ अद्मि । अद्वः अद्मः । **लिट्यन्यतरस्याम्** ।२।४।४०। अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि ।

अथ अदादिप्रकरणम्——ऋतेः==सूत्रमे पढ़ा ऋत् धातुसे परे ईयङ् हो स्वार्थ-अपने अर्थमें । सनाद्यन्ता धातवः से धातुसंज्ञा हुइ (ऋतीयते च ह्रिणीया च घृणार्थकाः ।) जुगुप्सा करुणा घृणा दृष्टि इत्यमरकोषे । ऋतीयते स्वादघृणयोः । वञ्चि-लुञ्चिऋतश्च प्रमाण से त अन्त धातु है । इकारान्त नहीं । इ अन्त होता । इयङ् का इकार व्यर्थ हो जाता । (अकृत्सार्वधातुकयोःसे दीर्घ होता) जुगुप्सा=निन्दा घृणा अर्थ, बहुतों का मत । एके–अन्य के मत में कृपा+उदारता अर्थवाचक ऋत से वर्तमानकालिक कृपा या निन्दाक्रियाके कर्तामें लट्त शप् ईयङ् ए ऋतीयते ऋतीयते ऋतीये । ऋतीयांचक्रे । अनेकाच् होनेसे कास्प्रत्ययात् आम् । कृ लिट् अनुप्रयोग इत्यादि । परोक्ष में कृपा या निन्दा किया । ऋतीयिता ऋतीयिष्यते ऋतीयताम् । आर्तीयत । ऋतीयेत ऋतीयिषीष्ट । आर्तीयिष्ट आर्तीयिष्यत् । आर्धधातुककी इच्छामें आयादयः आर्धधातुके वा सूत्र से आय प्रत्यय होगा, तब शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् से परस्मैपद । आनर्त-ऋत् से लिट् तिप् णल् द्वित्व । ऋ=ऋत् अ । उरत् सूत्र से अ, रपर, शेष । अत आदेः अभ्यासको दीर्घ । गुण । आ अर्त अ । तस्मान्नुट्-दो हल देखकर । नुट् विधौ ऋकारैकदेशो रेफो हल्त्वेन गृह्यते । ऋ में र हल् छिपा है आनर्त आनृततुः आनृतुः । आनर्तिथ आनृतथुः आनृत । आनर्त आनृतिव आनृतिम । अर्तिता आर्तिष्यति ऋत्यात् । आर्तीत् इट इटि सलोप आट् आगम । आर्तिष्यत् । **अदभक्षणे** धातु आदि में हो वह समुदाय अदादिगण भ्वादि का अन्तर्गण है तभी भ्वादयो धातवः से धातुसंज्ञा होती है । भ्वादिका परिचायक शप् का लुक् होना भेदक धर्म है । अदादिके सभी धातु लुक्से निगृहीत है । धातुके दो अर्थ फल व्यापार, फल अर्थ दिया गया है । जैसे अद धातुका भक्षण फल हैं, फल जजनी त्रिया लीलना है । अद् धातुका भक्षण, गलबिलाधःसंयोग, 'खाने के' अनुकूलक्रिया चबाकर लीलना अर्थः । इसका प्रयोग अतिशीघ्र खाने गलेके बिलमें उतारनेवाले जीव, पशु, राक्षस कुत्ते आदि के लिए है । भक्षणार्थक अदधातोः प्रचलित भक्षणक्रिया कर्तरि अर्थ लट् तिप् शप् (अद् शप् ति) दशामे । **अदि**प्रभृ अद इत्यादि, अदादिगणके धातुओंसे परे शप्का लुक् हो । इति शपो लुक् । अद्ति 'खरि च' इति दस्य चर् 'त' अत्ति अत्तः । तस् परे, शपः लुक् चर्त्वं रुवि अदन्ति । झस्य अन्तादेशे : अत्सि । दको

जघास। उपधालोपः घस्य चर्त्वे। **शासिवसिघसीनां च** ।८।३।६०। इण्कुभ्यामेषां सस्य षः। जक्षतुः जक्षुः घसस्तासावभावात्थलि नित्यमिट् जघसिथ। आद आदतुः आदुः। 'इडत्यर्तिव्ययतीनामि'ति नित्यमिट्। आदिथ। अत्ता अत्स्यति। अत्तु अत्तात् अत्ताम् अदन्तु। **हुझल्भ्यो हेर्धिः** ।६।४।१०१। होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात्। अद्धि अत्तात् अत्तम् अत्त। अदानि अदाव अदाम। **अदः सर्वेषाम्** ।७।३।१००। अदः परस्यापृक्तसार्वधातुकस्य अट् स्यात्, सर्वमतेन। आदत् आत्ताम् आदन्। आदः आत्तम् आत्त। आदम्

चर। थस् थ परे भी दको त। मिप् वस्मस् परे द रहता हैं तिष्ठति। सभी कर्तामें भक्षणक्रिया का वर्तमानकालिक प्रयोग (३) **लिटि** अद्के स्थानमें घस्लृ-घस् आदेश विकल्पसे हो लिट् परे लृ अनुबन्ध है इत्संज्ञक भी। **जघास** भक्षणार्थक अद्धातोः अद्यभिन्न परोक्षे समाप्तभक्षणक्रिया कर्ता अर्थे लिट् अदस्थाने घस्लृ—घस् आदेशे, घस्लिट्। तिप णल् द्वित्वादिकार्ये, घस् घस् घघस् जघस्। उपधावृद्धिः। कदाफलं जघास, खादन क्रिया सहित कर्ता न देखा द्विवचने जघस् अतुस् हो 'गमहनखनघसाम्' इति उपधाके अका लोप, किंत्परे अतुस्। (४) **इण्कुभ्यां इण** और कवर्गसे परे अनुशासनार्थक शास् निवासार्थक वस् भक्षणार्थक घसधातुके अवयव सको ष हो। यद्यपि आदेशप्रत्यययोंः से षत्वसम्भव था परन्तु आदेशरूप सकार नहीं है, न प्रत्यय का अवयव ही है। घको चर्क, कष संयोग क्ष **जक्षतुः**। इसी प्रकार जक्षुः जघसिथ—जघस्थ दशामें नित्य **इट्**। क्योंकि लुङि लिट्मे ही घस् आदेश है, तास् में नहीं, क्रादिनियमसे नित्य इट्। एवं जक्षिव जक्षिम भी। यदा न घस्लृ आदेशः तदा अत-आदेः दीर्घः। आद आदतुः आदुः पहले ही परोक्षकालमें खाया। आदिथ, अद् अद् 'अअद्' अतआदेः दीर्घे, आअद थ इति उपदेशे अकारवान् धातु अस्ति। विकल्पेन इट् प्राप्तः।

ईट् भक्षणार्थक अद्, गमनार्थकऋ, और वेञ् धातुओंसे परे थल्को इट् हो इति इट् आदिथ, आदिम। अत्ता—अद्यभिन्नभविष्यकालिकभक्षणकर्ता। अत्स्यति। भक्षणं करिष्यति, अत्तु, अत्ताम् (वे भक्षण करें) अद शप्, लुक् दको चर् त, भोजनविषयक प्रेरणा आशीर्वाद अर्थमें तातङ् अत्तात्। त्वम् अद्धि (तुम खूब खाओ) अद् भक्षणार्थक धातोः लोट्, सिप् सेर्ह्यपिच्च इति सिस्थाने हि आदेशे। आदहि। (६) हवनभोजनार्थक **हुधातु** और **झलन्तेभ्यः**==झल् प्रत्याहारके अक्षर अन्तमें हो ऐसे धातुसे परे हि' के स्थानमें धि हो। हि को पक्षमें तातङ् अत्तात् अत्त यूयम् अत्त। अदानि-अद्मिप् मेर्निः आडुत्तमस्य पिच्च इति आड्। हमलोग भक्षण करें। (७) **अद्धातु**से परे अपृक्त एक (अल्) वर्णरूप प्रत्यय सार्वधातुकको अट् आगम हो, सबके मतमें। **आदत्** भक्षणार्थक अद्धातोः अद्यभिन्नसमाप्तक्रियाकाले कर्ता अर्थे लङ्, तस्थाने तिप्। आडजादीनामिति आट् शपो लुक्। अदः सर्वेषामिति सूत्रेण

आद्व आद्म। अद्यात् अद्याताम् अद्युः। अद्यात् अद्यास्ताम् अद्यासुः। **लुङ्सनोर्घस्लृ** ।२।४।३७। अदः लृदित्वात्-अङ्। अघसत्। आत्स्यत्॥ हन हिंसागत्योः। हन्ति। **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** ।६।४।३७। 'अनुनासिके'ति लुप्तषष्ठीकं, वनतीतरेषां विशेषणम्। अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याज्झलादौ क्ङिति परे। यमि रमि-नमि-गमि हनि मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः, तनु-षणु-क्षणु-क्षिणु ऋणु-तृणु-

---

सार्वधातुक अपृक्ततकारस्य अट् आगमे इत्यादि कल ही भक्षण कर लिया। आत्ताम्, तस (ताम्) दकारस्य चर। आदन्-वे लोग चर्वना चबाये। आदः-तुम कब निगल-गये। अद्यात्=भक्षणकी विधि, अनुरोध सम्भावना अर्थमें लिङ् (अद् यासुत्) लिङः सलोपो अनन्त्यस्य, इति यासुट् सकारस्य लोपे, शपः लुक्। अकारं बिना अतो येयः न प्रवर्तते। अद्याताम् अद्युः। झेर्जुस् उस्यपदान्तात् इति पररूपे। आपलोगों भक्षण करें। आशीर्लिङ् अद्यात् यासुके सकारको 'स्कोः संयोगाद्योः सूत्र से लोप द्विवचने आद्यास्ताम्। न सलोपः, न पदान्त है न झलपरे। अद्याः अद्यासम् अद्यास्व, अद्यास्म (८) **अद्के** स्थानमें घस्लृ—आदेश हो, लुङ् या सन् परे लृ इत् होनेसे पुषादिद्युतादि लृदितः से च्लि स्थाने सिच्को बांधकर अङ हो। अघसत् भक्षणार्थक अद्धातोः समासभक्षण क्रियाकाले अर्थे लुङ् घस्लृ आदेशे अट्तिप्। इतश्च इलोपे च्लि स्थाने अङ्। अघसत् अघसताम् अघसन्। अघसः अघसतम् अघसत अघसम् अघसाव-म। आत्स्यत् लङ् आट्तिप् इलोप दस्य चर्त्तः।

(२) **हन्धातुका** हिंसा और गति-गमनके अनुकूल क्रिया अर्थः। इस धातुका हिंसा, परपीडा अर्थ प्रसिद्ध—शब्दवाच्य है गति अर्थ अप्रसिद्ध सकर्मकः। लगुडेन श्वानं हन्ति। यहां फल पीडा है जिसका आधार कुत्ता, उसके अनुकूल क्रिया हन्तामें है। हिंसार्थक हन्धातोः हननक्रिया वर्तमाने कर्तरि लट् शप् 'अदिप्रभृतिभ्यः इतिशप- लुकि। हन्ति। अत्र अपदान्तनकारस्य अनुस्वारे तस्य यविपरे परसवर्णे नकारे, इत्यपि वक्तुं शक्यम्। हतः हन् शप् तस् शपोलुक् (९) **अनुदात्तोप**-उपदेश अवस्थामे अनुदात्त पढ़े गये हो। ऐसे वन, तन इत्यादि अनुनासिकान्त धातुका लोप हो झलादि कित् ङित्परे। अनुनासिकान्त पूरे हन्का लोप प्राप्त हुआ। अलोन्त्यस्यसे अन्त्य अल् न का लोप, हतः। उपदेश अवस्थामें अनुदात्त अनुनासिकान्त धातु ६ हैं। यम् उपरमें विरक्त होना। रम्क्रीडायाम् णम् प्रह्वत्वे—प्रणाम करना, गम्गतौ, हन् हिंसागत्योः मन्ज्ञाने। तनोत्यादि आठ हैं तनुविस्तारे क्षणहिंसायां। क्षिण्च, ऋण्गतौ तृणअदने, घृण्दीप्तौ, प्रकाश करना। मन अवबोधने (ज्ञान करना वनु याचने तस् प्रत्यय, अपित् सार्वधातुक होनेसे ङित् है। तब अनुदात्तोपदेशे-से नलोप हुआ। घ्नन्ति-हिंसार्थकहन्धातोः हननक्रिया कर्तरि वर्तमाने लट् प्रथम पु० बहुवचने झि

घृणु वनु-मनु-तनोत्यादयः। हतः घ्नन्ति। हंसि हथः हथ। हन्मि हन्वः हन्मः (**वमोर्वा** ।८।४।२३। उपसर्गस्थान्निमित्ताद्धन्तेर्नस्य णो वा स्याद्वमोः परयो प्रहण्मि प्रहन्मि। प्रहण्वः प्रहन्वः प्रहण्मः) प्रहन्मः जघान जघ्नतुः जघ्नुः। **अभ्यासाच्च** ।७।३।५५। अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात्। जघनिथ जघन्थ जघ्नथुः जघ्न। जघान जघन जघ्निव जघ्निम। हन्ता

(झान्तः) आदेशे, अपित्सार्वधातुकं ङित्, गमहनखनघसां लोपे इति उपधा अकारस्य लोपे, नकारपरे हकारस्य हो हन्तेर्ञिण्नेषु, इति कुत्वे, सादृश्य–आन्तरतम्यपरीक्षायां कवर्गे घकारे। हंसि नकारस्य नश्चापदान्तस्य झलि इति अनुस्वारे। हथः हथ। झलादिङित् प्रत्ययपरे अनुनासिकलोपः। अहं दुष्टं हन्मि। आवां हन्वः वयं हन्मः। **वमोर्वा**—उपसर्ग में स्थित णत्व का निमित (कारण) र ष उससे परे हन् के न को ण हो। व म परे रहते : इससे प्र में र निमित्त है। उपसर्गात् और रषाभ्यां नो णः, हन्ते की अनुवृत्ति प्रहण्वः। हिंसाक्रियासहित कर्ता न देखा हो, हन से परोक्षे लिटि आदि।

जघान—परपीडाजनक क्रियावाचकहन् धातोः अद्यभिन्न समाप्तपरोक्षहनन, क्रियाकाले अर्थे लिट्, शप्, णल्-द्वित्वादि कार्ये हहन्=अ, अभ्यासहकारस्य कुहोश्चुः इति चवर्गे, आन्तरतम्यपरीक्षायां झकारे 'अभ्यासे चर्चः' इति जश जकारे। जहन अ उपधायाः दीर्घे कु-घकारे, जघनः। बनानेकी शैलीपूर्ववत्। जघन अतुस् इति दशायां गमहनजन इति कित् अतुस्परे, उपधा अकार लोपे, अभ्यासहकारस्य कुत्वे जश्ज अभ्यासे चर्चः=अभ्यास–उत्तरखण्डस्य हकारस्य नकारपरे (हो हन्तेर्णि) इतिकुत्वे जश्त्वेन, तुम दोनोंने पापीका हनन् किया, जघ्नुः (देवाःदुष्टान्) **अभ्यासात्**=अभ्यास संज्ञकसे परे हन धातुके ह को कुत्व (कवर्ग) हो। बाह्यप्रयत्नमें ह के स्थानमें घ हो जघनिथ। जघन्थ। त्वं कर्तामें पूर्वकालिक अप्रत्यक्षहननक्रिया हो, तब हन् लिट् द्वित्वादिकार्ये म० पु० एकवचने सिप् तस्य स्थाने थल्, जहन्थ। भारद्वाजमते इट न अन्यमते इट। जहनिथ जहन्थ इति स्थिते 'अभ्यासच्च' सूत्रेण अभ्यासंज्ञक 'ज' से परे ह को कुत्वं घः। हो हन्तेः न कुत्वम् ञित् णित् परे नास्ति, जघ्नथुः पापानि युवां, यूयं अधर्मान् जघ्न। जघान जघन (अहं-कदा) जघ्निव। उपधालोपे नकार परे होहन्तेः कु 'क्रसृ' से नित्यम् इट। हिंसार्थक हन्। धातोः अनद्यतनभविष्यकालिक लुट तिप् तास् डा डित्वसामर्थ्यसे आस्लोप, वलादि आर्धधातुक इट प्राप्तः 'एकाच-उपदेशे' अनुदात्तात् निषेधे। नस्य अनुस्वारपरसवर्णो। देवी दैत्यान् हन्ता। दस्यून् हनिष्यति। ऋद्धनोःस्ये इतीट। हन्तु-हिंसा परपीडाके लिए प्रेरणा आज्ञा अर्थ में लोट। एरुः इकारस्य उः। नस्य अनुस्वारपरसवर्ण। आशीर्वादे अर्थे, तुस्थाने तातङ् (अनुदात्तोपदेशवनति) नलोपे। हतात्—हन् तस् ताम् नकारस्य अनुदात्तो-पदेश लोपे। रामकृष्णौ मुष्टिकचाणूरादीन् हताम्। पाण्डवाः कौरवान् घ्नन्तु हन

हनिष्यति । हन्तु हतात् हतां घ्नन्तु । **हन्तेर्जः** ।६।४।३६। हन्तेर्जः स्यात् हौ परे। **असिद्धवदत्राऽभात्** ।६।४।२२। इत ऊर्ध्वमापादपरिसमाप्तेराभीयम् । समानाश्रये तस्मिन्कर्तव्ये तदसिद्धं स्यात् इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक् । जहि हतात् हतम् हत । हनानि हनाव हनाम । अहन् अहताम् अघ्नन् । अहन् अहतम् अहता अहनम् अहन्व अहन्म । हन्यात् । **आर्द्धधातुके** ।२।४।३५। इत्यधिकृत्य । **हनो वध लिङि** ।२।४।४२। **लुङि च** ।२।४।४३। वधादेशोऽ-

---

झि उपधा (अकार) लोपे नकारपरे हकारस्य होहन्तेः इति कुत्वेन घकारे ।

झोऽन्तः । एः कृते । (१) **हन्** धातुके स्थानमें ज आदेश हो हि परे (२) **असिद्धवत्**—असिद्धेन तुल्यं । असिद्ध के समान, अत्र–यहां आभात प्रतीत होता है । इत ऊर्ध्वम्=इस सूत्रके बाद छठे अध्यायके चतुर्थपादके बाइसवें सूत्रके अनन्तर पादसमाप्तितक सभी कार्य अभीसंज्ञक हैं । आपादसमाप्तेः अभीयम् समानाश्रये= समान है, आश्रय निमित्तकारण या आधार जिनका उन्हें समानाश्रय कहते हैं । हन्' के स्थान में ज आदेश, हेर्लुक् दोनों आभीय कार्य है । समानाश्रयभी । 'हनके स्थानमें ज आदेश तथा अदन्तअङ्ग 'ज' उससे हि आदेशकार्य दोनोंके होनेपर प्रथम 'ज' आदेश, हेर्लुक्की दृष्ठिमें असिद्ध है । इति जस्य असिद्धत्वात्=इस नियमसे 'ज' के असिद्ध होनेपर 'हि' का लुक् नहीं हुआ । त्वं पापानि जहि हतात् । हन् शप् शिप् शपो लुक् सि–स्थाने हि, हन्तेर्जः आदेश, अदन्ताङ्गं मत्वा हेर्लुक् प्राप्ते, असिद्ध-वत् अत्र आभात्' इति जकारस्य असिद्धे हेर्लुक् न । यदा हिस्थाने तातङ् तदा अनुदात्तोपदेश इति नकारलोपे। हतं विघ्नान् यूयं हत, उ०पुरुषे आट आगमे, हनानि हनाव हनाम । हम सब वध करें । अहन् हिंसार्थक हन् धातोः अद्यभिन्नसमाप्त हनन् क्रियाकाले अर्थे लङ्ति इलोप । शपः लुक् अट आगमे अहन्त । हल्ङ्याभ्यो सूत्रेण अपृक्तहलः लोपे । कृष्णः कंसम् अहन् । बलरामौ, अहताम्––तस्ताम् हन् नकारलोपे, देवः निशुम्भान् अघ्नन् । अहन्—झि झोन्तः, अजादि ङित्प्रत्ययपरे गमहन इति उपधा (अकारस्य) लोपे, हो हन्तेः कुत्वे । त्वम् अहन् । सिप् इतश्च इलोपे सस्य हल्ङ्यादिलोपे । अहतं । अहनम्, अहन्व, अहन्म । हन्यात् हननसम्भावना कर्ता अर्थेलिङ् (आप मारें) हन् यास् ति शपोलुक् लिङि सलोपे । हन्यातां हन्युः । हन्याः हन्यातं हन्यां हन्याव हन्याम । (३) **आर्धधातुके**-यह अधिकार सूत्र हैं । इसमें सभी कार्य होंगे । अतः इसका विशेष अर्थ नहीं है । अर्धधातौ भवम् आर्धधा-तुकम् । अन्य सूत्रोंके साथ मिलकर सार्थक हो । (४) हन्के स्थानमें वध आदेश हो, (लिङ आर्धधातुक है ।) लिङका विषय होने पर ।

(५) **लुङ्के** विषयमें भी हन्को वध हो । जो अदन्त है । 'आर्धधातुके' (शब्द) में विषय सप्तमी हैं । विषये भवः वैषयिकः आधारः, आर्धधातुकका विषय रहे तभी वध आदेश हो आर्धधातुक प्रत्ययपरे अर्थ आवश्यक नहीं है । यदि विषयसप्तमी नहीं

दन्तः 'आर्द्धधातुके' इति विजयसप्तमी, तेनार्द्धधातुकोपदेशेऽकारान्तत्वाददतो लोपः। वध्यात् वध्यास्ताम्। अवधीत् अहनिष्यत ॥ यु मिश्रणामिश्रणयोः। **उतो वृद्धिर्लुकि हलि ।७।३।८९।** लुग्विषये उतो वृद्धिः स्यात्पिति हलदौ सार्वधातुके, न त्वभ्यस्तस्य। यौति युतः युवन्ति। यौषि युथः युथ। यौमि युवः युमः। युयाव युयुवतुः युयुवुः। युयविथ युयोथ युयुवथुः। युयुव युयाव। युयव युयुविव युयुविम। यविता यविष्यति। यौतु युतात्। अयौत्

होगी तो, पर सप्तमी हो जायेगी। आर्धधातुक परे भी वध आदेश होगा, अतोलोपः से अकारलोप नहीं। उपदेशका अभाव होनेसे। तेन=आर्धधातुकोपदेश=विषय सप्तमी स्वीकार करनेपर अर्धधातुक उपदेशकालमें अदन्त होनेसे अकारलोप होता है। **वध्यात्** हन् लिङ् वध् आदेश तिप्, यासुट् इकारलोपे 'अतो लोप' इति अकारलोपे वध्यास्ताम् वध्यासुः (अवधीत्) समाप्तहनन् क्रियाका कर्ता। अवध् इस् ईत्। हलन्त लक्षणावृद्धिः प्राप्तः। नेटि इति निषेधे। सिचः सकारलोपे, इटः ईटि दीर्घे अतोलोप अकारलोपे अकारलोपस्य स्थानिवद्भावेन अतोहलादेर्लघोः इति न विकल्पवृद्धिः। इदमेव अदन्तस्य फलम्। अवधिष्टाम् अवधिषुः। अवधीः अवधिष्टम् अवधिष्ट अवधिष्व अवधिष्म। अहनिष्यत्। (३) **यु धातुका मिश्रण**—मेलन मिलना। तद्विरुद्धम्, अमिश्रणम् अलग करना। (६) **उतो**-लुक्विषये, शप् लुक् होनेपर धातुके उकारको वृद्धि हो, पित् हलादिसार्वधातुकपरे अभ्याससंज्ञक न हो तो। यहां अभ्यस्तसंज्ञकधातुको वृद्धिनिषेधका फल जुहोत्यादिमें है क्योकि वहां अभ्यस्त होनेपर वृद्धि नही होती। यह वृद्धि तिप् सिप् मिप् विभक्तिमें ही होगी। अपित्सार्वधातुक में वृद्धि नहीं। ङित् होनेसे निषेध होगा। धानायां गुडं यौति—मिश्रयसि। धनियां में गुण मिलता है। मिश्रणार्थक यूधातोः लट् तिप् सिप्। अत्र लुक् विषयोऽस्ति। **लुङ् आकारान्तसे** लङ्के झिको विकल्पसे जुस् उस् हों शाकटायन आचार्यके मतमें अयुः–प्रापणार्थक याधातोः अद्यभिन्नसमाप्तक्रियाकर्त्ता अर्थे लङ् तस्य स्थाने झि तस्य 'लङः शाकटायनस्यैव इति जुस् उस् उस्यपदान्तात् इति पररूपे स रुवि अयुः उस् अभावे झोऽन्तः। इलोपे। तकारस्य संयोगान्तलोपे अयान् अयाः अयातम् अयात अयाम् अयाव अयाम। विधि प्रेरणा अर्थे यायात् वह जाय। यायाः। वे जांय। यायात्==आशीर्वादके अनुकूलगमनजननक्रिया। आयासीत् गृहम् अयास् त्। यमरमनमातां सक्च इति सूत्रेण इटसक्। झल्परे सिच्लोपे रुपम्। अयासिष्टाम् अयासिषुः। आयासीः अयासिष्टम् अयासिष्ट। अयासिषम् अयासिष्म) धातु उकारस्य वृद्धिः, पित् हलादिसार्वधातुक परे। तण्डुलेभ्यः कंकणं यौति पृथक्करोति। यह फल व्यापारका अलग आधार होनेसे सकर्मक हैं (युतः) अपित् होनेसे न वृद्धि, न गुणः युवन्ति। झोऽन्तः अपित्, न वृद्धिः। उवङ् आदेशः। यौसि= मिलाते हो अलग करते हो, युथः युथ। मिश्रणकी वर्तमानकालिक क्रिया। अत्र न वृद्धिः, पितो अभावात्।

अयुताम् अयुवन् । युयात् । इह वृद्धिर्न, भाष्ये पिच्च ङिन्न, ङिच्च, पिन्ने'ति व्याख्यानात् । विशेषविहितेन ङित्त्वेन पित्त्वस्य वाधात् । युयातां । युयुः । यूयात् यूयास्तां यूयासुः । अयावीत् । अयाविष्यत् । या प्रापणे । याति यातः यान्ति । ययौ । याता यास्यति । यातु अयात् अयाताम् । लङः शाकटायनस्यैव ।३।३।१११। आदन्ताल्लङो झर्जुस्वा । अयुः अयान् । यायात्

युवाव अत्र द्वित्वं णित्परे वृद्धिः, आव आदेशे । जहां मिश्रण या अमिश्रणकी समाप्त अनद्यतन क्रियाका परोक्षकालिक कर्ता युयाव, युयुवतुः युयुवुः युयविथ । उदृदन्तै यौति आदिके शेष कारिकामें पाठ होनेसे उदात्तोपदेश है । अतः थल् व् मसें इट् । युयुवथुः कित् अथुस्परे गुणनिषेधः । उवङ् युयुव । युयाव, युयव युयुविम । यविता=मिलाने का अलग करनेकी श्वः परश्वः परतश्वः क्रियाका कर्ता । यविष्यति मिश्रणं अभिश्रणंवा करिष्यति । महिषात् गौः यौतु । अत्र हलादिपित् सार्वधातुकमस्ति तत उकारस्य वद्धिः, तुस्थाने तातङ् ङित्पक्षे न-वृद्धिः न वा गुणः, युतात् युतां युवन्तु अच्परे उवङ् । युहि यतात् । हि पक्षे कित् नास्ति, न वृद्धिःङित् फलं नगुणः । युवानि युवाव, युवाम । आट्परे उवङ । अत्र न वृद्धिः, यतः हलादि परे नास्ति । अयौत् मिश्रण या अमिश्रणके अनुकूल क्रियावाचक युधातो अनद्यतन समाप्तमिश्रण या अमिश्रण क्रियाकर्ता अर्थ लङ् तिप् अट् अनुबन्धलोपे शप् लुक् उतो वृद्धिर्लकि हलि उस्थाने वृद्धिः । अयुताम्, अयुवन् अत्र अच् परे उवङ विशेषः एवं अयौः, अयुतम् अयुत । अनद्यतन भूतकालिक मिश्रणक्रियाका कर्ता । अयुवम् अयुव अयुम । हमलोगोंने बहुतोंको मिलाया । विधि आज्ञा प्रेरणा, यदि मिलानेके विषयमें हो तब युयात् इत्यत्र उतोवृद्धिर्लुकि हलि इह न वृद्धिः यतः यासुट् ङित् अस्ति यद्यपि तिप् अपि पित्, अस्ति वृद्धिः प्राप्नोति तथापि भाष्ये ङिच्च पिन्न=यः ङित् अस्ति, स पित् न, यः पित् अस्ति, स ङित् नभवति—इत्थं व्याख्यानं भाष्ये वर्तते । यासुटः ङिद्विशेषविधानेन पितं बाधते । तस्य फलं अहलादिपित् न वृद्धिः, (५५१) युयाताम् । वे दोनों अलग हों । युयुः—वे सब मिल जांय । मिलाने मिलने अलग करनेके प्रति शुभकामना आशीर्वाद अर्थमें यूयात् अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घः । युयास्तां युयासुः—ईश्वर तुम्हें मिलायें । भूतकाले समाप्त क्रिया कर्ता अर्थ लुङ् अट अयु इस् ईत् । इट ईटि सिच्लोपे । सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु वृद्धिः आव् आदेशे, दीर्घ अयावीत् अयाविष्टाम् अयाविषुः । अयावीः अयाविष्टम् अयाविष्ट । अयाविष अयाविष्व अयाविष्म । अयाविष्यत् ।

(४) **या धातु** प्रापणे—पहुंचना, जाना फलके अनुकूल क्रिया अर्थः । गम् धातुकी तरह सकर्मक है याति (जाता है) तिस्रः कन्यकाः यान्ति । प्रापण==जनक क्रियाका परोक्षभूतकाल कर्तामें ययौ—या या, यया, णल् स्थाने आत औ णलः सूत्रेण अजादिकित् अतुस्परे आलोपे । ययिथ ययाथ । अयं धातुः अनिट् । अजन्तस्य थल् परे विकल्पेन इट् । इट्परे आलोपः । इट् अभावेन आलोपो न । याता—श्वः

यायातां यायुः। यायात् यायास्तां यायासुः। अयासीत् अयासिष्टाम् अयास्यत्। एवं दा गतिगन्धनयोः। भा दीप्तौ। ष्णा शौचे। 'वाऽन्यस्य संयोगादे'रित्येत्वम्। स्नेयात् स्नायात्। श्रा पाके। द्रा कुत्सायां गतौ

गमनकर्ता, मन्दिरं यास्यति। स हाट्कं यातु। तथा स अयात्। अयातां (७)। उत्साहेन च, हिंसायाम्, सूचने चापि गन्धनम्। वाधातु गति-वायुचलने तथा गन्ध-प्रतीत होने, सूचित करने उत्साहहिंसा, अनुकूल क्रिया अर्थ। यह क्रिया वर्तमान रहे, तब वाति हवा चलती है गन्धलेकर (ववौ वायुः सुखस्पर्शः) या धातुकी तरह रूप होंगे। श्वः वाता, सदा वास्यति, स वातु। यथा प्रभञ्जन अवात् अवाताम् अवुः अवान्। लङ् शाकटायनस्यैव इति झेर्जुस् विकल्पेन। वायात् (वायु वहे) अर्थ आवासीत्। सूचित किया। अवास्यत् निर्यात निरउपसर्गसे वाधातु अर्थ 'बुझना' या शान्त होना है। भा का दीप्ति प्रकाश, चमक, जननक्रिया। सूर्यः भाति, चन्द्रः विभाति, तमः आभाति अर्थ बदलते हैं। प्रकाशका वर्तमानकालिक विधिनिषेध। बभौ रामः सभायाम्। राममें चमकनो क्रियाका समाप्तपरोक्षकाल है। परश्वः भाता भास्यति सदा हमेशा चमकेगा। स भातु यथा दिलीपः अभात् अभाताम् अभुः लङोर्झेर्जुस्। भायात् प्रकाशित हो। अभासीत् अभासिष्टम् अभासिषु अभासीः। प्रकाशित हुआ। अकर्मक धातुः स अभास्यत् यदा। भा प्रकाशे रतम् आसक्तं भारतम्।

(७) ष्णा--धात्वादेः षः सः। निमित्त षके अपाये=हटनेसे नैमित्तिक णका भी अपाय (हटना) होता है। स्नाधातुका शौच अर्थ है। यद्यपि शौचशब्द पवित्रता शुद्धि अर्थमें प्रसिद्ध है तथापि स्नान अर्थ ही वाच्य अभिप्रेत है। स्नानक्रिया वर्तमान रहे तब स्नाति रामः। नि उपसर्गसे परिपक्व होना अर्थ है निष्णाति प्रवीण होता है। स सञ्ज्ञायां सस्नौ==स्नान किया। दीर्घसूत्री श्वः स्नाता। गुरुः सदा स्नास्यति। चैत्रः स्नातु। यथा--मैत्रः अस्नात्। शिष्यः स्नायात्। आशीर्लिङ् 'वान्यस्य' इति एत्वविकल्पे। स्नेयात् स्नायात्। अस्नासीत्==स्नान किया। यदा अस्नास्यत् तदा निर्मलमभविष्यत्। (८) श्राधातु सीरा पकाने अर्थमें है। श्राति अश्रात् अश्रासीत् (९) द्राधातु कुत्सा निन्दित घृणित अर्थ द्राति==पतनपथ पर चलता है निद्रातां। निदद्रौ। खगः निद्रातु। निद्रायात् (१०) प्सा का भक्षण अर्थ है। प्साति, पप्सौ, अप्सात्=भोजन किया। अप्सासीत्=भक्षणकर चुका (११) रा का देना अर्थ राति अराशीत् (१२) ला धातुका आदान (ग्रहण) लेना। लाति=लेता है, ललौ=कभी ले चुका। लाता लास्यति (लेगा) लातु अलात्, अलासीत् अलासिष्टाम् अलासिषुः अलासीः अलासिष्टम् अलासिष्ट अलासिषम् अलास्यत् दाप्धातु छेदनकर्तन, काटने लवन करने अर्थमें दाति लवन करता है। दास्यति= लवनकरेगा, प्रेरणा अर्थ दातु (छेदनकरो। अदात्, लवन किया। अदासीत् (१४) पाति=रक्षति। पपौ=ररक्ष, पास्यति=रक्षिष्यति। पातु, रक्षतु अपात्। अपासीत्

प्सा भक्षणे। पा रक्षणे। रा दाने। ला आदाने। दाप् लवने। ख्या प्रकथने। अयं सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्यः। ख्याति। विद ज्ञाने। **विदो लटो वा** ।६।४।८३। वेत्तेर्लट परस्मैपदनां णलादयो वा स्युः। वेद विदतुः विदुः, वेत्थ विदथुः विद। वेद विद्व विद्म। पक्षे वेत्ति वित्तः विदन्ति। **उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्** ।३।१।३८। एभ्यो लिट्यां वा स्यात्। विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः। विदाञ्चकार। विवेद। वेदिता वेदिष्यति। **विदाङ्कुर्वन्त्वि-**

(रक्षण क्रिया) अपास्यत् (१५) **ख्या** धातुका प्रकथत कहना **अर्थ** है। ख्याति प्रसिद्ध होता है उपसर्गसे प्रख्यात् विख्यात्। व्याख्याति=व्याख्यानं करोति। इसधातुका प्रयोग केवल सार्वधातुकमें ही होता है। (१६) **विदाधातुका** ज्ञानानुकूलव्यापार। वह क्रिया वर्तमान रहे, वेत्ति ज्ञानार्थक विदधांतुसे परे लट्के स्थानमें परस्मैपद-प्रत्ययको णल् आदि विकल्पसे हो।

वेद—ज्ञानकी वर्तमानकालिक क्रिया (जनता है।) विद्लट् विदो लटो-वा' ति स्थाने णल्, शपो लुकि अनुबन्धलोपे, गुणे। अत्र द्वित्वं न भवति। लिट् लकारस्य अभवात्, विदतुः विदुः (जानते है) त्वं वेत्थ। तुम जानते हो। विद्व विद्म। हमलोग धर्म जानते हैं। यदा णल् न भवति तदा विद=ति चर्त्वे गुणे। वेत्ति। वित्तः विद्, तस्, चर्त्वे, अपित्सार्वधातुकं ङित्। अतएव न गुणः। (९) **उष्** दाहे—जलाना, ज्ञानार्थकविद्, जागरणर्थक जागृ, इन धातुओंसे आम् विकल्पसे लिट् परे रहते। विदेः विदधातुके अकारान्त प्रतिज्ञासे 'अतोलोपः' इति अकारलोप। तस्य स्थानिवद्भावेन उपधायां लघु न मिलति, अतः आमिपरे लघूपधगुणो न भवति। विदाञ्चकार—ज्ञानार्थक विद्वतोः अद्यभिन्नसमास परोक्षज्ञानक्रियाकाले कर्तरि लिट् 'उषविद्' सूत्रेण आम् लिटो लुक। कृलिट इति अनुप्रयोगः द्वित्वादिकार्यं, मान्तस्य पदसंज्ञायामनुस्वार परसवर्णं, विदः लुप्तस्य अकास्य स्थानिवद्भावेन लघूपधगुणेन विवेद वह पहले ही जाना था। विविदतुः विविदुः विवेदिथ, विविदथुः, विविद। विवेद विविदिव विविदिम। अयं धातुः सेट। य अनिट 'विद्सत्तायां' दिवादिः। परश्वः समाचारं वेदिता वेदितरौ वेदितारः वेदितासि वेदितास्थ वेदितास्थ वेदितास्मि वेदितास्वः वेदितास्मः। निरन्तरं धर्मं' वेदिष्यति वेदिष्यतः वेदिष्यन्ति वेदिष्यसि। वेदिष्यामि विदांकुर्वन्तु—विद्धातुसे लोटपरे आम् हो, आम् परे गुण न हो लोट् का लुक् हो। लोट् और कृ का अनुप्रयोग हो इतना कार्य विकल्पसे निपपित हों। इस कार्यमें किसी पुरुषवचने प्रथमपुरुष, बहुवचन को समझें, अपितु सभी वचनमें ये कार्य हो। (१) **तना**—दिगण पठित धातु तथा कृञ्से परे उप्रत्यय हो शप् को बाधकर। ज्ञानजनक क्रियाके विषयमें प्रेरणा, प्रार्थना प्रतीत हो तब विदांकरोतु=विद्लोट् लोट्परे विद्से आम्, गुणका अभाव, लोट्का लुक् कृलोट्का अनुप्रयोग, कृके आगे 'तनादि कृञ्भ्यः उः' से उप्रत्यय, विदांकृउति शपको बाधकर हुआ। उप्रत्ययं नशित्, न पित्, किन्तु धातो विहित आर्धधातुकसंज्ञकः तस्य फलम् ऋस्थाने

त्यन्यतरस्याम् ।३।१।४१। वेत्तेर्लोट्यां, गुणाभावो लोटो लुक्, लोडन्तः करोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते। पुरुषवचने न विवक्षिते, इतिशब्दात्। तनादिकृञ्भ्य उः ।३।१।७९ तनादेः, कृञश्च उप्रत्ययः स्यात्। शपोऽपवादः। विदाङ्करोतु। अत उत्सार्वधातुके ।६।४।११० उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत उत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति। विदाङ्कुरुतात् विदाङ्कुरुताम विदाङ्कुर्वन्तु। उतश्च ेति हेर्लुक्। आभीयत्वेन लुकोऽसिद्धत्वादुत्वम्। विदाङ्कुरु विदाङ्करवाणि। वेत्तु अवेत् अवित्ताम् अविदुः। दश्च ।८।२।७५। धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि रुर्वा। अवेः अवेत्। विद्यात् विद्याम् विद्युः। विद्यात् विद्यास्तां विद्यासुः।

गुणः। सार्वधातुकसंज्ञायाः फलम् उप्रत्ययस्य गुणः, एरुः मान्तस्य अनुस्वारे परसवर्णे 'तु' इत्यस्य तातङ् दशायां ङिति सति उकारस्य गुणनिषेधे। ऋकारस्य गुणे विदाङ्करउतात् ततःअत।

उप्रत्यय हो अन्तमें ऐसे कृञधातुके अको उहो, कित् ङित्सार्वधातुकपरे, विदाङ्कुरुतात्। ज्ञानके लिए आशीर्वाद। शिष्यौ विदांकुरुताम्। सर्वे धर्मं विदांकुर्वन्तु। त्व नीतिं विदांकुरु, उतश्च प्रत्यात् इति हि लोपः। अहरहः संध्यां विदाङ्करवाणि अत्र उ० पु० वचने आडुतमस्य पिच्च। इति आट् अकारस्य उकारो न, किन्तु उप्रत्ययस्य गुणः अवादेशः। विदांकरवाव विदाङ्करवाम। पक्षे आम् अभावे। वेत्तु, वित्तात् वित्तां विदन्तु। वित्तात् वित्तं वित्त। अहं मनोरमां विदानि। आवां कौमुदी विदाव,: वयं शेखरं विदाम। उत्तमपुरुषस्य आट पित् भवति। यस्य फलं पुगन्तलघूपधस्य च इति गुण, ज्ञानार्थक विद् धातोः अद्यभिन्न समाप्तज्ञानक्रियाकाले लङ् तिप् इलोपे। शपो लुक् अट्, गुणे हल्ङ्याादिलोपे। वावसाने इति दकारस्य चर्त्वविकल्पे अवेत्, अवेद्। (रहस्यम्) तौ उपनिषदम् अवित्ताम् अपित्सार्वधातुक परे न गुणः अविदुः। झिस्थाने सिच्अभ्यस्तविदिभ्यः च इति जुस्। (३) **दश्च**--धातु के पदान्त 'द' को रुहो सप्परे विकल्पसे। त्वं मन्त्रम् अवेः, अवेत्। अविद्सिप् इकारलोपे सकारस्य संयोगान्तलोपे। दश्च दकारस्य रुवि। अवेः यदा न रुः तदा चर्त्वविकल्पे अवेत् अवित्तम् अवित्त। अवेदम् अविद्व—अविद्म। शिष्य. विद्यात्। ज्ञानं प्राप्नुयात्। ज्ञानजनकक्रियासमाप्ते (भूतकाले) अर्थे कर्तरि लुङ्। अविद् इस् ईत्। गुणे सिच्लुकि दीर्घे। अवेदीत् अवेदिष्टाम् अवेदिषुः अवेदीः वेदिष्टम् अवेदिष्ट ज्ञानं। अवेदिषम् अवेदिष्व अवेदिष्म। मन्त्रं यदा ब्रह्म, अवेदिष्यत् तदा मोक्षो अभविष्यत्। (१७) **अस** धातुका भूकी तरह सत्तानुकूल क्रिया अर्थ है: फल सत्ता, उपस्थितिः, अस्तित्वका वर्तमानकर्ता। (४) **श्न**—श्नाप्रत्यय (विकरण) और अस् धातुके अका लोप हो कित् ङित्सार्वधातुकपरे। स्तः सत्ताअर्थवाचक अस्धातोः मध्यम पु० द्वि० तस् श्नसोरल्लोप इति अकारलोप। सभी अपित् सार्वधातुक ङित् है। उसके परे असके अका लोप। दोनों हैं। ते सन्ति। हैं। त्वम् असि

अवेदीत्। अवेदिष्यत्। अस् भुवि। अस्ति। श्नसोरल्लोपः ।६।४।१११। श्नस्यास्तेश्चातो लोपः, सार्वधातुके क्ङिति। स्तः सन्ति। 'तासस्त्योरि'ति सलोपः। असि स्थः स्थ, अस्मि स्वः स्मः। अस्तेर्भूः ।२।४।५२। अस्तेर्भूः आर्धधातुके। बभूव भविता भविष्यति। अस्तु अस्तात् स्तां सन्तु। घ्वसोरे-द्धावभ्यासलोपश्च ।६।४।११९। घोरस्तेश्चैत्त्वं हौ, अभ्यासलोपश्च। आभी

तासस्त्योर्लोपः इति अस् सकारस्य लोपे। स्थः तुम दोनों हो, अहं अस्मि, आवां स्वः। वयं स्मः। इस धातुमें सत्ता अस्तित्व विद्यमानतारूपफल मात्र जान पड़ता है, क्रियाकी प्रतीति नहीं होती। वह कर्तासे अनुमित अकर्मक धातु है।

उपसर्गका इण् और प्रादुस् अव्ययसे परे अस् धातुके स्को षहो। यकार और अच् परे। यथा—निष्यात् (सिद्ध हो) निः (उपसर्गक) स्यात्। यहां उपसर्ग नि'का इण् 'इ' है। उससे परे सको 'ष' हुआ, यकारपरे यासुटका या। प्रादुष्यात् (प्रकट हो) प्रनिषन्ति=प्रनिपूर्वक सन्ति यहां उपसर्ग इण् निमे 'इ' उससे परे सको ष हुआ। अच्परे सन्तिके स में अ है। प्रादुषन्ति। यहां भी प्रदुस् इस उस्से परे अस् के सको 'ष' हुआ। अस्परे समें अ हैं। यच् पर-किम्। यपरे या अचपरे स को ष हो ऐसा क्यों? अभिस्तः में अभिके इण्से परे असके सको ष न हो। वहां न य परे, न अस् है अतः (यच्) पढा। तुम दोनों चारों तरफ हो (६) अस्तेः—अस्धातुके स्थान में भू आदेश हो, आर्धधातुकके विषयमें। आर्धधातुकमे सर्वत्र भू आदेश निश्चित है। बभूव=परोक्षकालिक सत्ताजनक समाप्त किया। प्रयोग सिद्धिः पूर्ववत्। सत्ता, उत्पत्ति या उपस्थितिके विषयमें आज्ञा प्रेरणा आशीर्वाद कर्ता अर्थमें लोट्। अस्तु-अस् धातोः लोट् तिप् शप् लुक् एरुः अस्तु (तव कल्याणं) तुस्थाने तातङ्पक्षे ङित् अस्ति। यस्य फलं 'श्नसोः' अकारलोपः। स्तात्, स्तां, सन्तु में भी ङित्भाव, अलोप आयुषस्ते सन्तु। म० पु० एकवचने शिप् तस्य 'हुझल्भ्योहेर्धिः' इति हिस्थाने धि आदेशे प्राप्ते ततः। (७) घ्वसोः=घुसंज्ञक और अस्को एत्--एकार हो हो-हिपरे अभ्यासका लोप भी हो हिपरे। अलोन्त्य परिभाषासे अन्त्यवर्णको एत्व हो, अभ्यास लोप केवल दाधासे सम्बन्धित है। इति सूत्रेण अस् अकारस्य एत्वे, एत्वस्य असिद्धत्वात् एत्वके आभीय कार्यसे असिद्ध होनेपर झल्से परे हिको धि हुआ। 'श्नसोः' अलोपे। एधि। स्तात्, तातङ्पक्षे=हिके स्थानमें तातङ् आदेशके पहले 'घ्वसोरेद्' से एत्व नहीं होगा। क्योंकि तातङ्पर है, वह एत्वको बाध लेगा। हि के न मिलनेसे एत्व नहीं होगा। एधि इन्द्रवर्मन्। युवां स्तं=तुम दोनों बने रहो। यूयं स्त) अहं असानि, असाव असाम। अस्धातुसे आट्, आडुत्तमस्य पिच्चसे आट् पित् है। ङित् न मिलनेसे अलोप नहीं होगा। हमलोग सदा रहें। आसीत्। अद्यभिन्नभूतकालमें (थे) अस् लङ्अत्। आट्। अस्तिसिचो से स देखकर ईट् आगमे। आस्ताम्। श्नसोः अकारलोपे। आसन् आसीः आस्तम् आस्त। आसम् आस्व आस्म। हमलोग पहले थे। स्यात्-सत्ताकी सम्भावना अर्थमें

यत्वाद्धेधिः । एधि स्तात् स्तम् स्त । असानि असाव असाम । आसीत् । आस्ताम् आसन् । स्यात् स्यातां स्युः । भूयात् अभूत् । अभविष्यत् । **उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः** ।८।३।८७। उपसर्गेण, प्रादुषश्च परस्यास्तेः सस्य षो यकारेऽचि च परे । निष्यात् प्रादुःष्यात् । निःषन्ति प्रादुःषन्ति । यच्परे किम् ? अभिस्तः । रु शब्दे । **तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके** ।७।३।९५। एभ्यः परस्य सार्वधातुकस्य हलादेस्तिङ ईड् वा स्यात् । 'नाभ्यस्तस्ये' त्यतोऽनुवृत्तिसम्भवे पुनः 'सार्वधातुक' ग्रहणमपिदर्थम् । रवीति रौति रुवीतः रुतः । हलादेः किं ? रुवन्ति । तिङ किं ? शाम्यति । सार्वधातुके

लिङ् । अस् यास्त् । यास्के ङित्से अकारलोपे । जो ङित् है वह पित् नहीं होता । अन्यत्र भी । स्यातां, स्युः । स्याः स्यात । स्यां स्याव स्याम । आशीर्लिङ् लुङ् लृङ् इन लकारोंमे असको भू मानकर रूप समझें (१८) इण गमनार्थक इ धातोः गमन क्रिया कर्ता अर्थे लट् शपोलुक् सार्वधातुक गुणे (एति) उपसर्ग बलसे यह धातु अनेक अर्थ धारण करता है । जैसे उपैति=समीपं गच्छति । अपैति=(अलग) पृथग्भवति । ऐति--आगच्छति । अन्वेति==सम्बन्ध जोड़ता है या अनुगच्छति पीछे चलता है अभ्युपैति-स्वीकारं करोति । अभिप्रैति भाव रखता है । अभ्युदेति उन्नति करता है । समुदेति-प्रत्यक्ष होता है । व्येति-बदलता है । अवैति-जानाति । इतः में भी सभी उपसर्ग । इ तस् । रुत्व वि० इतः । अपित्के ङित् होनेसे गुण नहीं । रु धातुका शब्द=रोना कलरव करना वर्तमानकाल कर्ता लट् ति शप लुक् । रु ति ।

तुरुस्तु--शमि अम (समाहारद्वन्द्व पञ्चमी एकवचन) इन धातुओंसे परे हलादि सार्वधातुक तिङ्को ईट् विकल्पसे हो । उतो वृद्धिसे हलि आया । भूसुवोः से तिङि, ब्रुव ईट् यङो वा से वा अनुवर्तन्ते । शङ्का--नाभ्यस्तस्याचि सूत्रसे सार्वधातुक को बुला लेते पुनः सूत्रमें सार्वधातुक क्यों पढ़ा ? पिति की अनुवृत्ति रोकनेके लिए । क्योंकि एक योगनिर्दिष्टानां सहैव प्रवृत्तिः एक सूत्रमें पढ़े शब्दों का एक एक साथ आना एक साथ जाना भी होता है । अतः कहा सार्वधातुक ग्रहणम् अपिदर्थम् । इस सूत्रसे ईट् । गुण अव आदेश । रवीति एककर्तृकंवर्तमानकालिक रोना कलख करना क्रिया । ईट पक्षमें हलादि नहीं न वृद्धि । जब न ईट् तब हलादि है । उतो वृद्धिः रौति रुवीतः रुतः । इट पक्षमें उवङ् । न इट् रुतः अपित् है न वृद्धि । रुवन्ति-झि को अन्त आदेश करने पर हलादि नहीं रहा, न ईट् किन्तु उवङ् । हलादिग्रहणका फल यही है । तिङ् क्यों पढ़ा ? शाम्यति में श्यन् है तो तिङ् नहीं ईट न हो । सार्वधातुक क्यों ? आशीर्लिङ आर्धधातुक है ईट् न हो । अतः निःष्यात् अकृत्सार्वधातुकपरे दीर्घ हुआ । अम् अभ्यमीति । आपिशली आचार्य वैदिक सूत्र मानते हैं । विध्यादौ=आज्ञा निमन्त्रण आमन्त्रण सम्प्रश्न प्रार्थना का विषय आवाज करना हो रुयात् । हलादि पिति सार्वधातुक है विकल्प ईट् ।

किम् ? आशिषि—रूयात् । विध्यादौ तु-रुयात् रुवीयात् । अरावीत् अरविष्यत् । 'तु' इति सौत्रो धातुः गतिवृद्धिहिंसासु । तवीति तौति तुवीतः तुतः तुवन्ति । तुताव । तोता तोष्यति । णु स्तुतौ । नौति नुनाव । नविता टु क्षु शब्दे । क्षौति चुक्षाव । क्षविता । क्ष्णु तेजने । क्ष्णौति क्ष्णविता । अक्ष्णावीत् । ष्णु प्रस्रवणं । स्नौति सुष्णाव । स्नविता । षु प्रसवैश्वर्ययोः

रुवीयात् । अरावीत् । भूतकालिक रुदन क्रियाके कर्तामें लुङ ति । रु--ति इट आदि । अ रु इ स् ईत् । वृद्धिः औ—राव । इट ईटि सलोप । दीर्घ आदि । अराविष्टाम् अराविषुः । अरावीः अराविष्टम् अराविष्ट अराविषम् अराविष्म । हम सब शब्द, कोलाहल किये ।

ननु धातुपाठ में तु नहीं पढ़ा । तुको इट विधान कैसे ? तब कहा सूत्र में पढ़े जाने के सामर्थ्य से ईट विधान से धातु मान्य । किन अर्थों में ? गति गमन वृद्धि वर्धन, हिंसा कष्टदान अर्थ में (व्याख्यान से) ननु शप के व्यवधान में सार्वधातुक तिङ परे नहीं ईट् कैसे ? तब कहा अयञ्च—लुग्विकरण शप लुक् होने पर ईट् विधान होगा, विधान ही इट होने में बीज है । अतः (शमीध्वे) वेद में शप लुक हुआ । रुधातुवद् रूप । तु ति । ईट् गुण तवीति । जब न ईट उतो वृद्धिः तौति । गति वृद्धि हिंसा के वर्तमानकालिक दो कर्ता हों तस् ईट उवङ् तवीतः तुतः तुवन्ति । तवीसि तौसि तवीथः तौमि । अनिट् धातु है । तोता तोतारौ तोतारः वृद्धि हिंसा करेंगे तोष्यामि । अतावीत् अतविष्यत ॥ ३५ ॥ णु धातु का स्तुति-परगुणगान प्रशंसा । सेट् णोपदेश है । नौति नुतः नुवन्ति वं नमन-नमस्कार करते हैं । नमस्कारके अधिक गुणवान होने । नौसि नुथः नुथ नौमि नुवः नुमः । वयमभिन्न· वर्तमानकालिक नमनक्रिया । नुनाव नुनवतुः । नविता नवितासि नवितास्मि । नविष्यति नविष्यतः नविष्यन्ति । नमन करेंगे । नौतु । अनौत् अनुताम् अनुवन् । अनौः अनुतम् अनुत । अनवम् अनुव अनुम । नुयात् । नूयात् नूयास्तां । नमन क्रिया समाप्त हो कर्तामें लुङ । अनावीत् अनाविष्टां अनाविषुः । अनावी. अनाविष्टं अनाविष्ट । अनाविषम् अनाविष्व अनाविष्म । टु इत् क्षु शब्द करना । सेट् । यू धातुवत् रूप । क्षौति चुक्षाव क्षविष्यति अक्षावीत् । क्ष्णौति क्ष्णुतः क्ष्णुवन्ति । अक्ष्णावीत् । ष्णु (षोपदेश) धातु आदि ष स । निमित्तापाये नैमित्तिकस्यापि अपायः । कारण हटने पर कार्य समाप्त । स्नौति स्नुतः स्नुवन्ति पसीझता है । यह पसीझना क्रिया रहित कर्ता न देखा गया हो लिट् द्वित्व आदि सुष्णाव स्नविता स्नविष्यति स्नविष्यन्ति स्नविष्यतः स्नविष्यन्ति । अस्नावीत् । अनाविष्टां अस्नाविषुः । अस्नावीः अनाविष्टं अनाविष्ट अस्नाविषम् ।

षु धातु का प्रसव—परिचय पहचान ईश्वरभाव स्वामित्व अर्थ । षोपदेश अनिट् । यु धातु तुल्यरूप । सौति सुतः सुवन्ति । प्रसव करते हैं । स्वामी बनता

प्रसवोऽभ्यनुज्ञानम्। सौति सुतः सुषाव सोता। असौषीत्। कु शब्दे। कौति चुकाव कोता। इण् गतौ। एति इतः। **इणो यण्** ।६।४।८१। अजादौ प्रत्यय परे। इयङोऽपवादः। यन्ति। **अभ्यासस्यासवर्णे** ।६।४।७८। अभ्यासस्य इ-उवर्णयोरिङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि परे। इयाय। **दीर्घ इणः किति** ।७।४।६९। इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् किति लिटि परे। ईयतुः ईयुः। इययिथ इयेथ। एता एष्यति। एतु ऐत् ऐताम् आयन्। इयात् ईयात्। **एतेर्लिङि** ।७।४।२४। उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्वः स्यादार्द्धधातुके

है। सौषि सुथः सुथ। सौमि सुवः सुमः। सुषाव सषुवतुः। सुषुवुः। सुषविथ सोता सोतारौ सोतारः। सोष्यति सोष्यतः सोष्यन्ति प्रसव करेगा। ईश्वर बनेगा। सौतु सुतात् सुतां सुवन्तु। असौत् असुताम् असुवन्। असौः असुतम् असुत। असौम् असुव असुम सूयात्। असौषीत् असौष्टाम् असौषुः असौषीः असौष्टम् असौष्ट। असौषम्। कु शब्दका आवाज करना। कौति कु—कू करता है कुतः कुवन्ति। कौषि कुथः कुथ। कौमि कुव कुमः। चुकाव कोता कोष्यति। अकौषीत्।

(८) **इण्** को यण् हो इ उ ऋ लृ के स्थानमें क्रमसे य व र ल हो, अजादि प्रत्ययपरे। यन्ति—गमनानुकूलक्रियावाचक इधातोः प्रचलितक्रियाया कर्तरि लट्, बहुवचने, झि अन्त आदेशे। इ=अन्ति। 'अचिश्नुधातुभ्रुवां' सूत्रेण इयङ् प्राप्तः तं बाधित्वा 'इणो यण्', इस्थाने य यन्ति। एषि इथः इथ। एमि, इवः इमः। वर्तमान कालिकगमनक्रिया सभी कर्तामें है (९) **अभ्यासके** इ उ को इयङ् उवङ् हो, अपवर्णे सवर्णसंज्ञाभिन्न अच्परे यथा इयाय=गत्यर्थक इधातोः अद्यभिन्न समाप्त परोक्षगमनक्रियाकर्ता अर्थेलिट्। तिप् णल्। द्वित्वे इ इ अ। अचोऽञ्णिति इति इकारस्य वृद्धिः ए तस्य आयादेशे। असवर्णे अचिपरे आ इति अभ्यास इकारस्य इयङ् आदेशे। इयाय। द्विवचने। इ इ अतुस्, अजादि प्रत्ययपरे इ स्थाने य कृते।

(५८०) **दीर्घ** अभ्यास **इणः** इकारको दीर्घ हो कित् लिट् परे। एति अभ्यास इकारस्य दीर्घे। ईयतुः। (जग्मतुः) ईयुः (जग्मुः) इयविथ, इयेथ। म० पु० एकव० सिप् स्थाने थल्। गुणे। अय। इ ए ई थ अनिट अजन्तधातुको इट् विकल्प। अभ्यासस्य इकारस्य इयङ् इट्पक्षे एकारस्य अयादेशे। यदा न इट् तदा इणो यण् इय् एथ— इयेथ ईयथुः ईय। इयाय इयय ईयिव। एता (इवः गन्ता)। एष्यति (जास्यति) एतु, इतात् इतां यन्तु। एहि इतम् इत। यहां सेह्यपिच्च सार्वधातुकसिको, हिं। अपित् होनेसे ङित्परे गुण निषेधः। अयानि अयाव अयाम। अत्र आट् पित् अस्ति तेन सार्वधातुकगुण अयादेशश्च। ऐत् (अगच्छत्) अनद्यतनभूतकालकी गमनक्रिया। इ—लङ् ति इलोपे, शपोलुक् वृद्धि। ऐतांम—वे दोनो पहुंच गये। आयन् इ—झि इतश्च इलोपे 'झोऽन्तः' ल् अवस्थायाम् आट्। आ इ अन्। इणो यण् सूत्रेण इस्थाने य आयन्—अगच्छन्। ऐः, ऐतम्, ऐत। आयम्, ऐव, ऐम। इयात्—गच्छेत। इयाताम् इयुः। इयाः इयातम् इयात। इयाम् इयाव याम।

निरियात्। **अन्तादिवच्च** ।६।१।८५। योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत्पर-स्यादिवत्स्यात्। उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्। अभीयात्। अणः किं? समेयात्। 'समीया'दिति प्रयोगस्तु भौवादिकस्य। **इणो गा लुङि** ।२।४।४५। इणो गादेशः स्याल्लुङि। 'गातिस्थे'ति सिचो लुक्। आगात् आगाताम् अगुः। ऐष्यत्। इक् स्मरणे। अयमधिपूर्व एव, 'अधीगर्थदयेशां कर्मणी'ति लिङ्गात्। अन्यथा हीगर्थेत्येव ब्रूयात्। (इण्वदिक इति वक्तव्यम्) अधि-

---

आशिषि लिङ् लकारे अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घे। ईयात् वैकुण्ठम् (१) ऐतेः-इणः। उपसर्गसे परे इण्धातुके अण्को ह्रस्व हो, आर्धधातुक कित् लिङ परे। निरीयात्-निर्गमनअर्थ द्योतक निर्—ईयात्। यहां उपसर्ग निर्से परे इण् ईयात् का ई, उसे ह्रस्व हुआ आर्धधातुककिति लिङिपरे 'यात्' इति (१०) उभयत—दोनों (अन्तादिवत्भाव, पूर्ववद्भाव) के एकसाथ आश्रयण—संभावना हो तब नान्तादिवत्—अन्तादिवत्भाव नहीं होता। पूर्वका धर्म अन्तमें, अन्तका धर्म आदिमें नहीं माना जाता। अभीयात्में सवर्णदीर्घ हुआ है। वहां अन्तादिवच्च सूत्रसे अभीमें उपसर्ग अभिका धर्म परादिवद्भावसे इणमें (इयात् का) धर्म लाकर ह्रस्व करना चाहते थे। परन्तु परस्पर विरोधी धर्म एक साथ उपस्थित है। अतः अन्तादिवत्—एकादेशमें अन्त्यवत् आदि में निषिद्ध हुआ अतः ह्रस्वो न। अणः किम्? एतेर्लिङ सूत्रमें अण्को ह्रस्व न कहते, अब अन्य। (अण्से अतिरिक्त) को भी ह्रस्व होने लगता है। सम्-एयात्के ए-को ह्रस्व होने लगता।

(२) इणधातुको गा आदेश हो लुङ्के विषयमें, गा होने पर 'गतिस्था घुपाभूभ्यः' से सिच्लुक् गा आदेशका फल आट् न होना भी है। अट् अगात्। क्रियावाचक इ धातोः लुङि। इणो गाङ्लुङि इति इस्थाने गा आदेशे। च्लेः सिच्- तिप् इकारलोपे 'गातिस्था' इति सिचो लुक् आगत् अगाताम् अगुः। आतः सूत्रेण झेर्जुस् उस्यपदान्तात् पररुपे। अगमत् इत्यर्थः अगाः अगातम् अगात। अगाम् अगाव अगाम। ऐष्यत्—आट् आटश्चेति वृद्धिः। ऐष्यताम् ऐष्यन्। ऐष्यः ऐष्यतम् ऐष्यत, ऐष्यम् ऐष्याव ऐष्याम।

इक् स्मरणे। क इत् इधातु—ज्ञात व्यक्तिकी याद होना, स्मरण क्रिया अर्थ। यह धातु भी इङ्की तरह नित्य अधिपूर्वक है। प्रमाण—इङ् धातुपर भाष्यवचन है। नित्यमधिपूर्वमिति। तथैव अधीगर्थदयेषां सूत्रमें अधिपूर्वकइक् धातुको स्मरणार्थक माना। नित्यमधिपूर्वक एव स्मरणार्थकः। अन्यथाहि इगर्थ—यही पढ़ते। अधि पढना व्यर्थ होता। इण्वदिक् इणः तुल्यम्। इणको जो कार्य (इणो यण्) इत्यादि हों वे इक्को भी हों। अध्येति अधीतः अधियन्ति। अधि इ झि गुण, यण। अधि-इ अन्ति। इयङ्को बाधकर इण्वद्भावसे यण्। अध्येषि अधीथः अधीथ। अध्येमि अधीवः अधीमः हम सब कर्तामें स्मरण किया। वयमभिन्नबहुकर्तृकवर्तमानकालिकः स्मरणानुकूलव्यापारः अधीयाय अधि उपसर्ग है णल्परे इ को द्वित्व। दूसरे इ के

यन्ति अध्यगात् । केचित्त् आर्द्धधातुकाधिकारोक्तस्यैवातिदेशमाहुः। तन्मते यण्न। तथा च भट्टि='ससीतयोराघवयोरधीयन्नि'ति। वी गतिव्याप्तिप्रजननकान्त्यसनखादनेषु। प्रजनं गर्भग्रहणम् । असनंक्षेपणम्। वेति वीतः वियन्ति । वेषि वेमि बीहि । अवेत् अवीताम् अवियन् । अटि सत्यनेकाच्त्वाद्यणिति केचित् । अव्यन् अत्र ईकारोऽपि धात्वन्तरं प्रश्लि·

स्थानमें=वृद्धि ऐ-आय । पहले इ को इयङ् असवर्ण अच्परे है। अधीयतुः अधीयुः। अधि इ इ उस्। दशामें द्वितीय इ को इणो यण्। प्रथमइको इणःसे दीर्घ। सवर्णदीर्घ। अधीयिथ अधीयथुः अधीय अध्येतारौ अध्येतारः। अध्येतासि अध्येतास्मि। आगामी भविष्यमें स्मरण करूंगा। अध्येष्यति अध्येष्यतः अध्येष्यन्ति। स्मरण करेंगे। अध्येतु अधीतात् अधीताम् अधियन्तु अधीहि अधीतात् अधीतम् अधीत। अध्ययानि अध्ययाव अध्ययाम्। वह स्मरण करे, तुम स्मरण करो वयमभिन्नबहुकर्तृकस्मरणविषयकप्रवर्तनानुकूलव्यापारः। अनद्यतनभूतकालमें स्मरणकर चुका हो लुङ्। अध्यैत अध्यैताम् अध्यायन्। अध्यैः अध्यैतम् अध्यैत। अध्यायम् अध्यैव अध्यैम। बीते भूतकाल--समाप्त स्मरण क्रियाके कर्तामें लुङ् इण्वत्==इणके तुल्य कार्य आरोपसे इण्को गा आदेश। गातिस्था—से चित् लुक्। अतएव घुमास्थासे इत्व नहीं **अध्यगात** अध्यगाताम् अध्यगुः। अध्यगाः अध्यगातम् अध्यगात। अध्यगाम् अध्यगाव अध्यगाम। केचित् का मत देते हैं आर्धधातुकके अधिकारमें उक्तस्यैव-पढा गया कार्यका अतिदेश आरोप होता है। तमन्ते=इणो यण्से यण् नहीं होता। आर्धधातुकके अधिकार न होनेसे। उनके मतमें अधीयन्ति। इयङ् सवर्णदीर्घ होता है। भट्टिकाव्यमें कहा गया=सीता सहित राघव रामको स्मरण करता हुआ। अधीयन्–स्मरणंकुर्वन् लुक्। इयङ् दीर्घ। अधीयत्से सुप् विभक्तिमें रूप। राघवौ स्मरन्। राघवयोः में अधीगर्थदयेशासे षष्ठी।

वी=**गति**-गमन व्याप्ति-व्यापके होना, प्रजन-गर्भधारण, कान्ति इच्छा असन क्षेपण, खादन भोजनके अनुकूलक्रिया। अजेर्व्यघञपोः सूत्रके भाष्यमें आर्धधातुकसे रूप नही होता। वेति। वी धातुसे गमन व्याप्ति गर्भग्रहण, क्षेपण भोजन आदिके वर्तमान क्रियाके कर्तामें लट् वी ति गुण। वेति जाता है फेंकता है, खाता है। वियन्ति वी=झि=अन्ति एकाच् है यण् नहीं। इयङ्। वेषि तुम गर्भधारण या भोजनादि करते हो वीथः वीथ। वेमि वीवः वीमः। हम सब कर्तामें उक्त क्रिया। आर्धधातुक रूप नहीं उक्त क्रिया आदेशका विषय हो: वेतु वीतात् वीतां वियन्तु। वीहि। हि अपित् है ङित्से न गुण वीतात् वीतं वीत वयानि वयाव वयाम। हम लोग जांय खायं फेकें। वीता भूतकालके कर्तामें लङ् ति गुण। अवेत् अवियन् परत्वात् अट् आगमसे पहले इयङ तब अट। किसीके मतमें लावस्थायांमट पक्षमें इयङ्को बाधकर। अनेकाच् जानकर यण्। अत्र वी=ई सवर्णदीर्घसे। ईकारका

ष्यते । एति इतः इयन्ति । ईयात् ऐषीत् । वच परिभाषणे । वक्ति उक्तः । अयमन्तिपरो न प्रयुज्यते । बहुवचनपर इत्यन्ये । झिपर इत्यपरे । वक्तु । वग्धि । वच्यात् उच्यात् । **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्** ।३।१।५२। एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् । **वच उम्** ।७।४।२०। वच उमागमः स्यात् अङि । अवोचत् । अवक्ष्यत् । मृजू शुद्धौ । **मृजेर्वृद्धिः** ।७।२।११४। मृजेरिको वृद्धिः स्याद्धातुप्रत्यये । 'व्रश्चे'ति षः मार्ष्टि मृष्टः (क्ङित्याजादौ वेष्यते) मार्जन्ति मृजन्ति ।

चिपका होना दूसरीं धातु सिद्ध । इ=ति एति गच्छति व्याप्नोति, गर्भग्रहणं करोति, खादति । इतः इयन्ति । झि को अन्ति । इयङ् इथः इथ । एमि इवः इमः । विधिलिङ्में ईयात् ईयाताम् । ईयुः । आशिषि ईयास्ताम् इयासुः । ऐषीत् । ई स ईत् सिचि वृद्धि ।

वच धातु का परिभाषण । स्पष्ट बोलनेकी क्रिया अर्थ । अनिट् वच ति । च को कुत्व क, मिल गया । वक्ति उक्तः । तस् परे चको क । अयमन्ति–लट्लकार प्रथमपुरुष, बहु० रूप होता ही नहीं । इस पक्षमें तीनों पुरुषके बहुवचनका रूप न प्रयुज्यते । तीसरा पक्ष झि परे रूप नहीं होता । इस पक्षमें सभी लकारके प्रथमपुरुष में बहुवचनका रूप नहीं होता । वक्षि । उवाच–अकित् लिट् परे अभ्यासको सम्प्रसारण । ऊचतुः किति लिटि परे अभ्यासको वचिस्वपियजादिनांसे सम्प्रसारण करके द्वित्व दीर्घ । ऊचुः ऊवचिथ उवक्थ ऊचिव । वक्ता वक्तारौ वक्तारः । आगमि भविष्यमें बोलेगा । वक्ष्यति वक्ष्यतः वक्ष्यन्ति, वक्तु वक्तात् वक्तां । वग्धि वच सि=हि हुझल्भ्योः हेर्धिः । हि को धि वक्तात् वक्तं । वचानि वचाव वचाम । विधिलिङ् में वच्यात् वच्यातां वच्युः वच्याः । आशीर्लिङ् में कित् होनेसे वचिस्वपि=सूत्रसे सम्प्रसारण व को उ, उच्यात् उच्यास्ताम् उच्यासुः उच्याः उच्यास्तम् उच्यास्त । व्यापक भाषण कर चुका हो कर्तामें लुङ् । अवउच अत् । गुण अवोचत् अवोचतां अवोचन् । अवोचः अवोचतम् अवोचत । अवोचम् अवोचाव अवोचाम ।

वच उम् अङ् परे वचको उम आगम । मित–अन्त्य अचका अवयव होता है । आद्गुणः अवोचत् अवोचताम् अवोचन् । अवोचः अवोचतम् अवोचतः अवोचम् अवोचाव अवोचाम । आत्मनेपदमें अवोचत अवोचेतां अवोचन्तः अवोचथाः अवोचेथां अवोचध्वं अवोचावहे अवक्ष्यत्=त ।

मृजू का पाठ प्रशस्त है, षित् न करें । शुद्धि, मांजना सफाई करना, स्वच्छता की क्रियावाचक मृज् धातुसे वर्तमानकालिकशुद्धिक्रियाके कर्तामें लट्—ति मृजि=ति मृज्के अवयव इक्को वृद्धि हो, धातुप्रत्यय–धातुसे विधान हुआ प्रत्ययपरे । धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानम् । गुणको बांधकर (वा०) किति ङिति अजादि प्रत्यय परें हो, यह वृद्धि विकल्पसे हो जाय । इति वृद्धिः । मार्ज् ति ज को ष (व्रश्चभ्रस्ज सूत्रसे) त ट्त्व ट मार्ष्टि वह मांजता धोता, सफाई स्वच्छता करता है: । मृष्ट द्विकर्तृकवर्तमानकालिक शुद्धिकरणक्रिया । मृज तस् । अपित्सार्वधातुक

मार्क्षि ममार्ज । ममृजतुः ममार्जतुः । ममार्जिथ । ममार्ष्ट । मार्जिता मार्ष्टा मार्ष्टु । मृड्ढि । अमाट् अमार्ड् । अमार्जम् । अमार्जीत् । 'षढोः कः सि' अमार्क्षीत् । अमार्क्ष्यत् अमार्जिष्यत् । रुदिर् अश्रुविमोचने । **रुदादिभ्यः सार्वधातुके ।७।२।७६।** रुद् स्वप् श्वस् अन् जक्ष् एभ्यो वलादेः सार्वधातुक-

तस् ङित् है न वृद्धि, न गुण । ष, त–ट । मृष्ट मृजन्ति । मृज अन्ति दशामें अजादि प्रत्यय (धातुसे विहित झि को) अन्ति है । अजादि किति ङिति परे । मृजेर्वृद्धि विकल्पसे । मार्जन्ति पक्षमें न वृद्धि । मार्क्षि मृष्ठः मृष्ठ । मार्जिम मृज्व मृज्म । परोक्षकालमें मांजना धोना झाड़ू लगाना क्रिया हो चुकी हो, परोक्षे लिट् ति णल् । मृज् अ द्वित्वादि, मृज–मृज ममृज मृजेर्वृद्धिः । ममार्ज ममार्जुः ममृजुः अतुस् उस् परे अजादि होनेसे विकल्प वृद्धि । विशेष–थल्परे ऊदितो वा से इट्, वृद्धि । ममार्जिथ । न इट् । ज को व्रश्चसे ष थ–ठ ममार्ष्ठ ममार्जथुः ममृज ममार्ज । ममार्जिव ममृजिव, ममृज्व ममार्जिम ममृज्म । अनद्यतनभविष्यकालमें शुद्धिकरण क्रिया हो, श्वः मार्जिता मृज् ता । इट वृद्धि जब न इट् ज–ष त—ट । मार्ष्टा मार्जिता मार्जितारौ मार्जितारः : मार्ष्टासि मार्ष्टास्मि । मार्जिष्यति मार्जिष्यतः मार्जिष्यन्ति न इट् मार्क्ष्यति मार्क्ष्यामि । शुद्धिकरण क्रियाके लिए आदेश आवेदन हो लोट् । मार्ष्टु मृष्टात मृष्टां मार्जन्तु मृजन्तु । मृड्ढि तुम स्वच्छता करो, पोछा लगाओ, मध्यमपुरुष । एकवचन सि–हि । मृज्=हि जो पित् नहीं वह ङित् है । न वृद्धि ज को ष=जश् ड । हेर्धि मृड् धि । ध को ढ़ मृड्ढि मृष्टात् मृष्टं मृष्ट । मार्जानि मार्जाव मार्जाम । लङ्–अनद्यतन भूतकालमें स्वच्छता हो गयी हो, अमृज् ति, इकार लोप, वृद्धि रपर, अमार्ज त् । हलङ्यादिसे तलोप, व्रश्चसे ज को ष, जश् चर । अमार्ट अमृष्टाम् आमार्जन् अमृजन् । अजादि परे वा वृद्धि । अमार्ट् अमृष्टम् अमृष्ट । अमार्जम् अमृज्व अमृज्म । शुद्धिकरणकी सम्भावना, कार्यमें लगानेकी कामना । मृज्यात् मृज्यातां मृज्युः । मृज्याः मृज्यातं । आशीर्लिङ् में स्वच्छता बढ़ानेकी शुभकामना मृज्याः मृज्यास्तं मृज्यासम् । शुद्धिकरण क्रिया समाप्त हो कर्तामें लुङ् ति अट ऊदितो वा इट् । अमृज् इ स ईत् । इट ईटि सलोप । दीर्घ वृद्धि । अमार्जीत् । अमार्जिष्टाम् अमार्षिुः । आमार्जीः अमार्जिषम् । जब न इट् अमार्ज स इत् । ज-ष• क्ष । अमार्क्षीत् अमार्ष्टाम् अमार्क्षुः । अमार्क्षीः अमार्ष्टम् अमार्ष्टं । अमार्क्षम् । अमार्क्ष्व । अमार्जिष्यत् अमार्क्ष्यत् ।

६७ **रुधिर** रुदधातुका अश्रुविमोचन आसु चुवाना, रोनेकी क्रिया । इर् इत्का फल इरितो वा अङ् । अश्रुविमोचन व्यापारवाचक रुदधातुसे वर्तमान–कालिक रुदनकर्तामें लट् ति, शप् लुक् । लघूपधगुण । रोद ति । तिङ् शित्सार्वधातुकसंज्ञा, इटका विधिसूत्र ।(७४) **रुदादिभ्यः** इट्, वलादिकी अनुवृत्ति । रुद स्वप श्वस अन यक्ष । इन धातुओंसे परे वल् प्रत्याहारके अक्षर आदिमें हो, ऐसे सार्व-

स्येट् स्यात्। रोदिति रुदितः। हौ परत्वादिटि धित्वं न। रुदिहि। **रुदश्च पञ्चभ्यः** ७।३।९८: रुदादेः परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्यापृक्तस्य ईट् स्यात्। **अड् गार्ग्यगालवयोः** ।७।३।९९। अरोदीत् अरोदत्। अरुदिताम् अरुदन्। अरोदीः अरोदः। प्रकृतिप्रत्ययविशेषापेक्षाभ्यामडीड्भ्यामन्तरङ्गत्वाद्यासुट्। 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' इति परिभाषणात्। रुद्यात्। अरुदत् अरोदीत्। अरोदिष्यत्। ञिष्वप् शये। स्वपिति स्वपितः। सुष्वाप सुषु-

---

धातुकको इट् हो। ऐसा लक्षण ति, उसको इट। टित आदिमें हो। रोदिति रोता है आंसू गिरती है। रुदनकर्ता दो हों तस् वलादि सार्वधातुक है। इट। रुदितः ङित्से गुण नहीं। रुदन्ति वलादि नहीं, न इट्। बहुकर्तृक वर्तमानकालिक रुदन क्रिया। रोदिषि रुदिथः रुदिथ। रोदिमि रुदिवः रुदिमः, हम सब रोते हैं। रोना क्रिया अनुमानका विषय हो, तब कर्तामें परोक्षे लिट आदि। रुरोद रुरुदतुः रुरुदुः। रुरोदिथ रुरुदथुः रुरुद, रुरोद रुरुदिव। **रोदिता** रोदितारौ रोदितारः। रोदितासि रोदितास्थः रोदितास्मि। रोदिष्यति रोदिष्यन्ति रोदिष्यामः रोदिष्यामि। रोदितु-रुदितात् रुदितां रुदन्तु। रुदिहि परत्वात् इट् होनेसे हुझल्भ्यःसे हिको धि नहीं, हुआ। हि पित् नहीं ङित् है गुणनिषेधः। रुदितात् रुदितं रुदित। रुदानि रुदाव रुदाम। **रुदश्च**—उक्त पांच धातुओंसे परे हलादि हो पित् हो सार्वधातुक हो अपृक्त--(एक अल् वर्णरूप हो) को इट् हो। नाभ्यस्तस्यसे पित् सार्वधातुक, उतो वृद्धिसे हलि, गुणो (से) अपृक्ते। ब्रुवसे इट् अनुवृत्त। ७६ अट् होता है, गार्ग्यगालव दोनों आचार्यके मतमें। रुदादि पांचधातुसे हलादि पित्सार्वधातुक अपृक्तको अट् हो। **अरोदत्** अनद्यतन भूतकालमें रोया था। अरुदत् गुण। गार्ग्यगालव मते अट् अरोदत् अन्य मते। रुदश्च-से इट् सार्वधातुक परे है। अरोदीत् अरुदितम् अरुदित। पित् नहीं इट्। अरोदः अरोदिहि अरुदितम् अरुदित। अरोदम् अरुदिव अरुदिम। लिङ्लकार रुद त दशामे यासुट् को बाधकर अट् इट् दोनों प्राप्त हुए, तब कहा सक्रिय और प्रत्ययकी दोनोंकी विशेष अपेक्षा रखने वाले अट् ईटसे यासुट् अन्तरङ्ग है। अल्पापेक्षमन्तरङ्ग यासुट् हुआ। बह्वपेक्षं बहिरङ्ग हलादि पित् सार्वधातुक अपृक्त आदि बहुतोंकी अपेक्षासे अट् इट् बहिरङ्ग हुए। रुद्यास्तां रुद्यासुः अरुदत्। रोया, रो दिया, इरितो वासे च्लिको अङ्। जब न अङ् च्लिको सिच् आदि। अरोद इस ईत्। इट इट सलोप। अरोदीत् अरोदिष्टां अरोदिषुः। अरोदीः अरोदिष्टम् अरोदिष्ट। अरोदिषम् अरोदिष्व अरोदिष्म अरुदत् अरुदताम् अरुदन्।

स्वप् धातुका शयनक्रिया इन्द्रिय शिथिलता चक्षुनिमीलन आंख मूदनेकी विचित्र क्रिया। षोपदेश, आर्धधातुके, अनिट्। स्वप् ति दशामें रुदादिभ्यःसे इट। स्वपिति सोना क्रियाके दो कर्ता हो स्वपितः स्वपन्ति। स्वपिषि स्वपिथ। स्वपिमि स्वपिवः स्वपिमः। कब सोया था समझ में न आया हो लिट् आदि। द्वित्व अभ्यासके सम्प्र

पतुः सुष्वपिथ। सुष्वप्थ। **सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः ।८।३।८८।** एभ्यः सुप्यादेः सस्य षः स्यात्। 'पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते' किति लिटि परत्वात्सम्प्रसारणे, षत्वे च कृते द्वित्वम्। पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने। सुषुषुपतुः। सुषुषुपुः। अकिति तु=द्वित्वेऽभ्यासस्य सम्प्रसारणे। षत्वस्यासिद्धत्वात्ततः पूर्वं 'हलादिः शेषः' नित्यत्वाच्च। ततः सुपिरूपाभवावान्न षः। सुसुष्वाप।

सारण पूर्वरूप उपधावृद्धि। आदेश रूप सको ष। सुषुपतुः। स्वप् अतुस् दशामें कित्परे जानकर वचिस्वपियजदीनांसे सम्प्रसारण आदि करके। सुप—अतुसको द्वित्व आदि कार्य। एवं सुषुपुः। पहले सम्प्रसारण तब द्वित्व। थल् परे इट् सुष्वपिथ।

सु वि निर दुरसे परे सुपि सूति समके सको **ष हो** स्वप्को सम्प्रसारण सुपि सूति शब्द कृदन्त है। सम शब्द मान्य। मूर्धन्य कार्य। सहे साडः से सह आया। सुषुप्तिः सुषूतिः सुषमः। सुस्वप्नःमें स्वप् धातु है षत्व नहीं, कृतसम्प्रसारण न होनेसे (कृतसम्प्रसारणस्य स्वप् धातोः षत्वमिति भाष्ये) यदि ऐसा सुषुषुपतुः—सुपूर्वक स्वपधातुको षत्व कैसे? तब कहां पूर्वं (प्रयोग सिद्धिके अनुरोधसे) पहले धातु उपसर्गसे जुड़ता है (पश्चात साधनेन) बादमें कारकसे। अतः द्वित्वके पहले ही पर होनेसे जुड़ेगा। सुसुप्। तब दूसरे सको षत्व। पुनः प्रसङ्गविज्ञानात् परिभाषासे षत्व वाला सुप्को द्वित्व होगा। दोनों खण्डमें ष निर्बाध है। अतः भाष्य में सुपि भूतो द्विरुच्यते किति लिटि परे। पर होनेसे सम्प्रसारण तब द्वित्व होगा। संशय–जब षत्व करके द्वित्व करेंगे, द्वित्वकी दृष्टिमें षत्व असिद्ध होगा, तव कहा पूर्वत्रासिद्धीय—पूर्वस्मिन्निति पूर्वत्र=पूर्वशास्त्रकी अपेक्षा परशास्त्र बलवानसिद्ध है, जहां द्विर्वचन न हो। यहां द्वित्वका प्रसङ्ग है। असिद्ध नहीं होगा। यदि ऐसा सुसुस्वापके भी पूर्वखण्डमें ष सुनाई पड़े, तब लिखा, अपिति अकिति=जहां पिति यण् है वहां किति नहीं, इसलिए वचिस्वपियजादीनां नहीं लगेगा। कित्परे न होनेसे। अतः लिटि अभ्यासस्य पुर्वखण्डस्य सम्प्रसारणं भविष्यति सुसुप (स्वप अ दशामें सुविनिर्दुर्भ्यःके षत्वको असिद्ध कर हलादिशेष होगा पहले हलादिशेष जो नित्यत्वाच्च—नित्य शास्त्र भी है, षत्वको हो या न हो। हलादिशेष होगा ततः—हलादिशेषके बाद सुप्–ऐसा रूप न होनेसे न षः केवल ष् रहेगा। एकदेश विकृति से अनन्य होकर भी, अभ्यास अर्थवान् नहीं, न षः। सुस्वपिव सुस्वपिम। कल परसोंकी शयन किया हो। स्वप्ता स्वप्तारौ स्वप्तारः। स्वप्तासि स्वप्तास्थः स्वप्तास्थ। स्वप्तास्मि। स्वप्स्यति, स्वप्स्यन्ति। स्वप्स्यामि। शयनक्रिया प्रेरणा विषय हो, वह सोजाय, तुम सो जाओ, हम सब सो जांय। स्वपितु स्वपितात् स्वपितां स्वपन्तु। स्वपिहि स्वपितात् स्वपितं स्वपित। स्वपानि स्वपाव। बीते भूत=समाप्त शयनक्रियाका कर्ता हो लङ आदि अस्वप् त। रुदश्च पञ्चभ्यःसे इट्। गार्ग्य गालव मतमें इट् भेदसे अस्वपीत् अस्वपत्। अस्वपितां अस्वपन्। अस्वपीः अस्वपः अस्वपि-

सुस्वप्ता अस्वपीत्। अस्वपत् स्वप्यात् सुप्यात्। सुप्यास्तां सुषुप्यात्। अस्वाप्सीत् अस्वप्स्यत्। श्वस प्राणने। प्राणनं-जीवनं। श्वसिति श्वसितः शश्वास। श्वसिता श्वसिष्यति। श्वसितु अश्वसीत् अश्वसत् अश्वसिताम् अश्वसन्। श्वस्यात् श्वस्यातां श्वस्युः। श्वस्यात्। श्वस्यास्तां श्वस्यासुः। 'ह्ययन्तेति'ति न वृद्धिः। अश्वसिष्यत्। अन च। अनिति आन। अनिता अनिष्यति। आनीत् आनत्। अनितेः।८।४।१९। उपसर्गस्थान्नि-

---

तम् अस्वपित। अस्वपित अस्वपम् अस्वपिव अस्वपिम। विधिलिङ शयनक्रियाके विषयमें प्रवृत्ति करना हो स्वप् या त। स्वप्यात् स्वप्यातां स्वप्युः। लिङाशिषि कित है। तब किति परे वचिस्वपि—सूत्रसे सम्प्रसारण सुप्यात् सुप्यास्तां सुप्यासुः। सुप्याः सुप्यास्तं सुप्यास्त। सुप्यासं सुप्यास्व सुप्यास्म। सु उपसर्गसे परे णत्व, समास शयनक्रियाके कर्तामें लुङ् आदि। अ स्वप् स ईत्। अनिट् हैं। इट ईटिसे सलोप नहीं,वदव्रजहलन्तस्याचःसे वृद्धि। अस्वाप्सीत् अस्वाप्तां अस्वाप्सुः। अस्वाप्सीः अस्वाप्तम् अस्वाप्त। अस्वाप्सं अस्वाप्स्व।

श्वस् प्राणने प्राण=श्वास लेनेके अनुकूलक्रिया। वलादि आर्धधातुकमें सेट है। वलादि सार्वधातुक परे रुदादिभ्यःसे इट्। श्वसिति सांस लेना क्रिया वाचक स्वस्से वर्तमाने लट् इट्। श्वसितः श्वसन्ति श्वसिसि श्वसिथः श्वसिथ। श्वसिमि श्वसिवः श्वसिमः। शुश्वास शुश्वसतुः शुश्वसुः। श्वसिता श्वसितारौ श्वसितासि। अहं श्वसितात् श्वसितं श्वसित। श्वसानि श्वसाम। हम सब सांस लें। लङ्लकारे विशेषकार्य रूपञ्च-पञ्चभ्यः इट=गालव मते अट्। अश्वसीत् अनद्यतन भूतकालमें सांस लिया था। अश्वसत् अश्वसतां अश्वसन्। अश्वसः अश्वस्तम् अश्वस्त। अश्वसम् अश्वस्व। सांस लेनेके प्रति प्रेरणा हो या शुभकामना, आशीर्वाद दोनोंमें। श्वस या त। श्वस्यात् श्वस्यातां श्वस्युः श्वस्यास्तां श्वस्यासुः। सांस ले चुका। अश्वसीत् अश्वस्तां अश्वसुः॥ अश्वसीः अश्वस्तं अश्वस्त अश्वसम्।

अन् धातु भी प्राण ग्रहण करने सांस लेने अर्थमें है। वलादि सार्वधातुक परे इट्। अनिति प्राण लेता है अनितः अनन्ति। अनिसि अनिथः अनिथ। अनिमि अनिव अनिम। सांस लेना क्रिया सहित कर्ता न देखा गया हो लिट् आदि। अन अन अअन अआन आन आनतुः आनुः। आनिथ आनथुः आन। आनिव आनिम। परश्वः अनिता परसों फुरसतसे सांस लेगा। अनिष्यति लङ्लकारमें इट्, आनत्। आनीः आनः आनतं आनत, आनीम् आनम् आनिव आनिम। अन्यात् अन्यास्तां। लुङ्लकारमें आ अन इस् इत्। इत्यादि आनीत् आनिष्टां आनिषुः। आनीः आनिष्टं आनिष्ट। आनिषं आनिष्व आनिष्म, आनिष्यत् (७८) अनितेः इस सूत्रमें रषाभ्यां नो णः आया उपसर्गात् भी। उपसर्ग (प्र, परा, निर आदि) में स्थित णत्वका निमित्त रेफ, उससे परे अन धातुके नको ण हो। भिन्न पद है समानपद नहीं। णत्व प्राप्त नहीं था। प्राणितिमें णत्व हुआ। यक्ष धातुका भक्षण और हसने

मित्तात्परस्यानितेर्नस्य णः स्यात्। प्राणिति। जक्ष भक्षहसनयोः। जक्षिति जक्षितः। **अदभ्यस्तात्** ।७।१।४। अभ्यस्तात्परस्य झस्य अत्स्यात्। अन्तापवादः। जक्षति। अजक्षीत् अजक्षत् अजक्षताम्। 'सिजभ्यस्ते'ति झेर्जुस्। अजक्षुः। जागृ निद्राक्षये। जागर्ति जागृतः जाग्रति। 'उषविदे'त्वाम्बा। जागराञ्चकार, जजागार। **जागॊऽविचिण्णल्ङित्सु** ।७।३।८५। जागर्तेर्गुणः स्याद्विचिण्णल्ङिद्भ्योऽन्यस्मिन्वृद्धिविषये, प्रतिषेधविषये च। जजागरतुः

की क्रिया वर्तमाने लट् ति। वलादि सार्वधातुक है रुदादिभ्यःसे इट। जक्षिति। दो कर्ता हो, तस् जक्षितः जक्षति जक्षिसि। जक्षित्यादयः षटसे अभ्यस्तसंज्ञा होनेपर झकोअत् का सूत्र—

(७६) **अद् अभ्यस्त**-संज्ञकसे परे झको अत् हो। इससे अत् हुआ झोऽन्तःको बाधकर। जक्षिसि जक्षिथः जक्षिथ। जक्षिमि जक्षिव जक्षिम। वलादिसार्वधातुक परे इट्, जजक्ष जजक्षतुः जजक्षुः। जक्षिता जक्षिष्यति खायेगा हंसेगा। जक्षितु खाओ हंसो। जक्षितात् जक्षितां जक्षतु। जक्षिहि। जक्षानि जक्षाव। अनद्यतनभूत कालमें खाया हो कर्तामें लङ् इट् अट् का प्रसङ्ग भी जोड़ें। अजक्षीत् अजक्षत् अजक्षतां अजक्षुः। अजक्षीः अजक्षः सिच् अभ्यस्तसे परे झिको जुस् प्रसिद्ध है। अजक्षतं अजक्षत। अजक्षं अजक्षिव। अयं अन्तस्थात् यह धातु तालव्यान्त है ऐसा विचारकर उज्वदलदत्त आचार्य भ्रममें पड़ गये। क्योंकि जक्षन्क्रीडन्रममाणः। इस उपनिषदमें चवर्ग तृतीयान्त निर्विवाद है। धातु वृत्ति आदि न्यास ही पढ़ा है। जागृनिद्राक्षये जागना नींद टूटना, चक्षुः उन्मीलनके अनुकूल क्रियावाचक जागृ धातुसे वर्तमानकालिक जागना क्रिया कर्तामें लट्। जागृति शप् लुक्। सार्वधातुक परे गुण=रपर जागर्ति जागता है। एककर्तृकवर्तमानकालिक जागरणानुकूल व्यापारः। जागृतः ङित् है गुणनिषेध जाग्रति, झको अत अदभ्यस्तातने जक्षित्यादयः षट्से अभ्यस्तसंज्ञक जानकर। जागृ अति। अपित् ङित्से गुणनिषेध। ऋको यण् बहुकर्तृक चक्षुरुन्मीलन क्रिया जागर्षि जागृथः जागृथ। जागर्मि जागृवः जागृमः। कल गया ऐसा अनुमानका विषय हो तब कर्तामें परोक्षे लिट् कास अनेकाचसे नित्य आम् प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर उषविदजागृभ्यःसे विकल्प आम्। अरगुणे जागराम् लिट्। आमःसे लिटका लुक्। कृ लिटका अनुप्रयोग। जागरांचकार। जब आम् नहीं तब जजागार जागृ जागृ जजागृ अतुस् परे कित्से गुणनिषेध प्राप्त उसे बाधकर गुणविधायकसूत्र।

(२४८०) **जागृधातु** को गुण हो जो मिदेर्गुणः से आया। विचिणल् ङित् (द्वन्द्व समास) इनसे अन्यस्मिन् वृत्तिविषये प्रतिषेधविषयसे च गुण हो। विशब्दसे वादि-प्रत्यय, जजागृवान् इससे गुणवान् हुआ। जजागरतुः जजागरिथ—गथुः। जजागर जजागरिव-म। विच् णल् ङित् परे गुण नहीं होता, पर्युदाससे। जैसे जागृवि वि है गुण नहीं हुआ। अजागारि चिण् है। णल्—जजागर। ङित् जागृथः। वृद्धिके विषय

जजागरुः । जागरिता जागरिष्यति अजागः । अजागृताम् । अभ्यस्तत्वाज् जुस् । जुसि च ।७।३।८३। अजादौ जुसि इगन्ताङ्गस्य गुणः स्यात् । अजागरुः, अजादौ किं ? जागृयुः । आशिषि तु जागर्यात् जागर्यास्तां जागर्यासुः अजागरीत् । दरिद्रा दुर्गतौ । दरिद्राति । इद्दरिद्रस्य ।६।४।११३। दरिद्रा-

में णवुल् जागरकः घञ् जागरः । जागर्यात् । यहां कित् होनेपर भी गुण देखा गया । जागरिता जागरितारौ जागरितारः जागरितासि । जागरितास्मि । जागरिष्यति जागरिष्यन्ति जागरिष्यत जागरिष्यामः । जागर्तु जागृतात् जागृतां जाग्रतु । जागृहि जागृतात् जागृतं जागृत । जागराणि जागराम । अनद्यतनभूतकालमें जागरण क्रिया समाप्त हो कर्तामें लङ ति इकार लोट्, अजागृत् । अर्गुण, हलन्त त का लोप, रेफ विसर्ग अजागृतः तसको ताम् । अजागरुः । जागृ अभ्यस्तसंज्ञक है झि को अत प्राप्त था, अतः सिच अभ्यस्तविदिभ्यश्च झिको जुस् । जक्षित्यादयः से अभ्यस्त-संज्ञा । अजागृ उस् । इस स्थितिमें सार्वधातुकमपित्के ङित्से गुणनिषेध प्राप्त उसे बाधकर गुणविधायक सूत्र—

जुसि च अङ्ग का अधिकार मिदेर्गुणःसे गुण । इको गुणवृद्धिसे इक आया । जुसि च—अजादि जुस परे ही इगन्त अङ्ग को गुण हो । इगन्त अङ्ग जागृ है अन्त्य अल् ऋको अर्गुण । अजागरुः अजागः अजागृतम् अजागृत । अजागरं अजागृव अजागृम ।अजादि जुसि क्यों कहा ? जागृः । यहां गुण न हो । विधि लिङ् में यासुट् ङित् है गुणनिषेधः । जागृयात् जागृयातां जागृयुः । जगना क्रियाके प्रति जगते रहनेकी कामना आशीर्वाद है । जागृयात् जागृयास्तां जागृयासुः जुसि च अजादि परे गुण करता है । जागर्यात् । आशीर्वाद जगने प्रति शुभकामना किदा-शिषि सूत्रसे यासुट् कित् है निषेध होगा, गुण कैसे ? जाग्रो अविचिण्णल् विशेष सूत्रसे गुण, जागर्याः जागर्यास्तं जागर्यास्त, जागर्यासं जागर्यास्व-स्म । निद्रा चक्षु निमीलन समाप्त हो जागृधातुसे भूते लुङ ति सिच् अट्, अजागृ इ स ईत् दशामें यण प्राप्त, उस बाधकर, सार्वधातुक गुण प्राप्त को बाधकर, सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु प्राप्त वृद्धिको बांधकर जाग्रोऽविचिण्णल्-विशेष सूत्रसे गुण रपर । अजागर इत् दशामें अत्र कृते—गुण होने पर वदव्रज हलन्त्यस्याचः से वृद्धि प्राप्त उसका निषेध नेटि सूत्रसे (इडादौ सिचि न वृद्धिः) इस निषेधको बांधकर अतो हलादेः लघोः से वृद्धि प्राप्त अथवा ल्रान्तस्य सूत्रसे वृद्धि प्राप्त, उसका भी निषेध ह्म्यन्तक्षणश्वस-जागृसे । वृद्धि नहीं होने पायी,इसीभावको श्लोकमें सुनाते हैं । दरिद्राधातुका दुर्गति अर्थ धनहीनीभवनं, विना धनके कष्ट भोगना । दरिद्राति एक कर्तामें दरिद्रा=धन विना दुखी होना, शप् लुक् ।

इद् दरिद्रस्य (सौत्रः ह्रस्वः दरिद्राके आ को इ हो हलादि कित् ङित् सार्व-धातुक परे । दो दरिद्र हो रहे हो दरिद्रा तस् हलादि आ को इ दरिद्रितः । सूत्रमें गमहनसे क्ङिति, इहल्यघोःसे हलि, अत उत् से सार्वधातुक आया । दरिद्रति ।

तेरिकारः स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके । दरिद्रितः । श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२। श्नाभ्यस्तयोरातो लोपः स्यात् क्ङिति सार्वधातुके । दरिद्रति । अनेकाच्त्वादाम् । दरिद्राञ्चकार 'आत औ णलः' इत्यत्र 'ओ' इत्येव सिद्धे 'औ' विधानं दरिद्रातेरालोपे कृते श्रवणार्थम् । अत एव ज्ञापकादाम्नेत्येके । ददरिद्रौ । (दरिद्रातेरार्द्धधातुके विवक्षिते आलोपो वाच्यः । लुङि वा) (सनि, ण्वुलि, ल्युटि च न) दरिद्रिता । अदरिद्रात् । अदरिद्रिताम् अदरिद्रुः

दरिद्राझि जक्षित्यादिमें आनेसे दरिद्राको अभ्यस्तसंज्ञा जिसका फल अभ्यस्तात्से झको अत् आदेश होना । आकार लोपका सूत्र (८३) श्ना और अभ्यस्तसंज्ञकके अन्त्य अल् आ का लोप हो कित् ङित् सार्वधातुकपरे । इससे आकार लोप । दरि-द्रासि दरिद्रिथः दरिद्रिथ । दरिद्रामि दरिद्रिव दरिद्रिम । इद्दरिद्रस्यसे आ को इत्व। कास्प्रत्ययात् सूत्रके भाष्यमें अनेकाचसे भी लिट् परे आम् प्रत्यय कहा । दरिद्रा कृ लिट् । दरिद्राञ्चक्रतुः ।

आत औ णलः सूत्रमें (आत ओ) पढ़ते वृद्धिके साथ औ ययौ हो जाता, औ क्यों पढ़ा ? दरिद्राधातुके आ का(णलिपरे ददरिद्रौ रूपमें आकार लोप होनेपर भी) सुनाई पड़ने के लिए । अन्यथा ओकार सुनाई पड़ता । इसी औकार के श्रवणके लिए औकार विधानसे दरिद्राधातुको आम् नहीं, आम् होता तो णल न हो पाता । अतएव–इसलिए उसी ज्ञापनसे आम् प्रत्यय नहीं होता । किसीका मत । द्वित्व आदि ददरिद्रा औ, आकारलोप ददरिद्रतुः ददरिद्रुः । ददरिद्रिथ=थुः– । ददरिद्र औ, द्वित्व द्रिम । यत्तु—जिसका मत है णलि परे ददरिद्रौ यही बनता है कहना निर्मूल प्रमाण नहीं मिलता । कास प्रत्यय वस्वेकाचाद् सूत्रों पर भाष्य कैयटसे विरोध=भी है (वा०) दरिद्रा धातुके आर्धधातुककी इच्छामें आकारलोप कहें । लुङ् लकारमें विकल्पसे सन्, ण्वुल् ल्युट् परे न । आलोप नहीं होता । यद्यपि किति परे आतोलोप-से आलोप विधान है बिना किति परे भी आकार लोपके लिए सूत्र । आर्धधातुक होने के पहले ही हो, इसलिए दरिद्रातीति दरिद्रः । जो बिना धनके कष्ट भोगता हो । पचादि अच्की विवक्षामें पहले आलोप । यदि आर्धधातुक होने पर आलोप होता (स्याद्वधः आदन्त कारणवाला) ण प्रत्यय होता । आतोयुक् होकर दरिद्राय बनता है । आदन्त नहीं रहेगा पहले लोप होने से, तब ण प्रत्ययभी नहीं होगा । लुङि परे आलोप विकल्पसे हो । अद्यतन्यां वा इति वक्तव्यम् । अनद्यतन भूतार्थके विहित लुङ विभक्ति इष्ट है उसीका उदाहरण भाष्यमें दरिद्रायकःमें ण्वुल हुआ । आलोप नहीं, निषेधसे । दरिद्राणं दरिद्रासति सन् परे आलोप नहीं । अनन्तरस्य विधिर्भवति प्रतिषधो वा । इस न्यायसे वार्तिकसे प्राप्त आलोपका निषेध समझे । अन्यसे आलोप हो, न निषेध । दिदरिद्रासति । आतो लोपः से आकार लोपका निषेध नहीं हुआ । भाष्यमें भी न दरिद्रायके लोपो दरिद्राणे च नेष्यते । दरिद्रिता—तास आदि इट् होने पर तास् को आर्धधातुकसंज्ञाके पहले वार्तिकसे आलोप । प्रसङ्गवशात् दरिद्रिष्यति दरिद्रातु दरि-

दरिद्रियात् दरिद्रचात्। अदरिद्रीत्। पक्षे इट्सकौ। अदरिद्रासीत्। चकासृ दीप्तौ। चकास्ति चकास्तः चकासति : चकासाञ्चकार। चकासिता। चकास्तु। 'धि चे'ति सलोपः सिच एवेत्येके। तन्मते चकाद्धि। 'चकाधि' इत्येव तु भाष्यम्। **तिप्यनस्ते** ।८।२।७३। **पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि, न त्वस्तेः।** अचकात् अचकाद् अचकास्ताम् अचकासुः **सिपि धातो रुर्वा** ।८।२।७४। पदान्तस्य धातोः सस्य रुर्वा स्यात्सिपि। पक्षे दः। अचकाः अचकात्

दितात् दरिद्रितां दरिद्रतु। दरिद्राहि दरिद्रितं दरिद्रित। दरिद्राणि दरिद्राव-म। बीते कल परसोंमें दरिद्र हो चुका हो ति इलोप। अट् अदरिद्रात् अदरिद्रितां अदरिद्रुः जक्षित्यादयः षट् से अभ्यस्तसंज्ञा सिजभ्यस्तसे जुस्। अदरिद्राः अदरिद्रितं–त। अदरिद्राम् अदरिद्रिव–म। विधि–लिङ् सार्वधातुक होनेसे इद्दरिद्रस्य इत्व। दरिद्रियात् यास्तां यासुः। आशीर्लिङिमें कित्से आकार लोप दरिद्रचात्। लुङ्लकारमें आ दरिद्रा इस् ईत्। दशामें आलोप सलोप, दीर्घ अदरिद्रीत् अदरिद्रिष्टां अदरिद्रिषुः लुङ् लकारमें विकल्पसे आलोपका विधान, जब आलोप नहीं तब यमरमनमातां सक्च् से ईट्। स् इ सईत्। इट ईटि सिलोप दीर्घ अदरिद्रिष्टां अदरिद्रिषुः। द्रिष्टं ष्ट। अदरिद्रिष्यत्।

चकासृ दीप्तौ ऋ इत् सेट्: प्रकाश चमक क्रियावाचक चकास् धातुसे वर्तमान-कालिक प्रकाश क्रियाके कर्तामें लट् आदि, चकास्ति चकास्तः चकासति। झ स्थानमें अत् अदभ्यस्तात् से। जक्षित्यादिगणमें पढ़ें से षट्संज्ञा। चकास्मि चकास्थः चकास्थ चकास्मि चकास्वः—मः। हम सब कर्तामें वर्तमान चमकना क्रिया। अनेकाच्से आम् कृ लिट् आदि। चकासाञ्चकार। चकासिता चकासिष्यति। चकास्तु चकास्तात् चकास्तां चकासतु। चकाद्धि चकास=हि दशामे धि च से सलोप। चकाधि यही सिद्धान्त है भाष्यसम्मत। परन्तु एकके मतमें सिचके स का लोप धिच सूत्रसे होता है। लोटमें सलोप नहीं होगा धिसकारे सिचो लोपः चकाद्धीति प्रयोजनं वार्तिक से। इस पक्षमें स को जश् द। चकाद्धि। भाष्यमें वार्तिक उड़ा दिया गया। चकास्तात् चकास्तं चकास्त। चकासानि चकासाव चकासाम। अनद्यतन भूतकालमें प्रकाश हुआ हो अचकात। अ चकास त् दशामें।

तिपिपरे रहते पदान्त स को द हो, अनस्ते=न अस्ति अनस्ति तस्य। अस के स को द न हो। पदका अधिकार, झलाँ जशः से 'अन्ते' आया। अनस्ते क्यों पढ़ा? सलिलं सर्वमा इदम्, आ शब्द अस धातुके लङ्में तिपका रूप। बहुलं छन्दासिसे इट् का अभाव। प्रसङ्गमें चकासके स को द। ति का हल्ङ्यादिलोप वाऽवसाने द को त् अचकात्=द अचकास्तां अचकासुः। सिच अभ्यस्त–से झि को जुस् जक्षित्यादय से अभ्यस्तसंज्ञा अचकाः अचकास्त अचकास्त। अचकासम्। सिपि परे पदान्त-धातुके स को रु हो विकल्पसे। पक्षमें द, अचकासीत् अचकासिष्यत्।

शासु धातु उदित् सेट है। अनुशासनके अनुकूलक्रिया अर्थ। शब्दानुशासत

अचकाद् । शासु अनुशिष्टौ । शास्ति । **शास इदङ्हलोः** ।६।४।३४। शास उपधाया इत्स्यादङि, हलादौ । क्ङिति च । 'शासिवसी'ति षः । ष्टुत्वम् । शिष्टः शासति । शशास शशासतुः । शास्तु शिष्टात् शिष्टां शासतु । **शा हौ** ।६।४।३५। शास्तेः शादेशः स्याद्धौ परे । तस्याऽऽभीयत्वेनासिद्धत्वाद्धेर्धिः । शाधि अशात् । अशाद् अशिष्टाम् अशासुः । अशाः अशात् । शिष्यात् । **सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च** ।३।१।५६। एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्कर्त्रर्थे लुङि । अशिषत् अशासिष्यत् ॥ इति परस्मैपदप्रक्रिया ॥

अर्थानुशासन सम्बन्धानुशासन फलानुशासन । (शास्ति) अनुशासन क्रियावाचक शास्-धातोः वर्तमानशासनक्रिया कर्ता अर्थे लट ति । शपो लुक् । शिष्टः । (अङ्का उदाहरण अशिषत्) **शास** धातु के उपधा (अन्त्य अल्का पूर्ववर्ण) को इत् हो । अङि परे हलादि किति ङिति परे । अनिदितांसे उपधायांः क्ङिति अनुवृत्त । इससे इत्व । शसिवसिघसीनां च सूत्रसे स–ष, ष्टुत्व शिष्टः शिष्टवान् । शासति । जक्षादिमें पढ़ने से अभ्यस्तसंज्ञा जिसका फल झि को अत् । शास्सि शिष्ठः शिष्ठ । शास्मि शिष्व शिष्म । आशास्तेमें इत्व नहीं, अटके योग्य परस्मैपदी न होनेसे आङ्पूर्वक आत्मनेपद ही रहेगा । शशास शशासिथ शशासथुः । शासिता शासितारौ शासितारः । शासितासि शासितास्थ शाशितास्थ । शासितास्मि करानेका विषय हो कर्तामें लोट् एरुः । तु स्थाने तातङ् (आशीर्वाद अर्थे) शास तात् । शास इदं हलोः इत्व शासिवसि=षत्व ष्टुत्व । शिष्टात् शिष्टां तस—तां इत्व टुत्व (तुम अर्थानुशासन करो) त्वं कर्तामें शब्दानुशासन प्रेरणाविषयीभूत किया मध्यमपुरुष एकवचन सि–सेर्हि ।

शाहौ शास धातुके स्थानमें शा आदेश ही परे । इत्वको बाधकर । शाहि । जब शासको शा आदेश कहेंगे झलन्त नहीं मिलेगा होर्झलन्तेभ्यःसे हि को धि कैसे ? तस्य अभीयत्वेन=वह शा आदेश आभीयसंज्ञक है । असिद्ध होगा । झल मिलेगा हेर्धिः । यद्यपि धि चसे सलोपकी असिद्धिसे शास इदम्=इत्व हो जाता, वह न हो इसलिए शाहि सूत्र । अशात्--कल परसोंकी समाप्त शासनक्रियाके कर्तामें लङ् । अशास त् । त का हल्ङ्यादिलोप । तिपि अनस्तेःसे स को द, चर्त्वं त् अशात् अशाद् अशिष्टा-तसको तां, शास इदंसे इत्व । ष अशिष्टां अशासुः अभ्यस्तसंज्ञा, जुस हुआ । त्वम् अशाः त्वं कर्तामें अनद्यतनभूतकालिक शासनक्रिया । अभ्यास स्, सिपि परे धातुके स को रुत्व, सलोप पक्षमें द, अशाः अशात् अशिष्टम् अशिष्ट । अशासम् अशिष्व अशिष्म । लिङ्--शासनविषयक आमन्त्रण निमन्त्रण प्रार्थना आदेश, कर्तामें विधिलिङ् । शास यात् । शास इदंसे इत्व । शासिवसिघसीनाञ्च स को ष शिष्यात् शिष्यातां शिष्युः । शिष्यां शिष्यातं शिष्यात । शिष्यासं शिष्याव-म । अशिषत् अनुशासन समाप्तक्रिया । अशास् च्लि त् । सर्तिशास्ति सूत्रसे च्लिको अङ्, शासि इद हलोः से इत्व, षत्व अशिष्टां अशासुः अशिषः अशिष्टं अशिष्ट । अशिषम् अशिष्व अशिष्म । अशासिष्यत् । यदि शासन करेगा अवश्य सुधार होगा । अशासिष्यतां अशासिष्यन् अशासिष्यः ।

अथाऽऽत्मनेपदप्रक्रिया। शीङ् स्वप्ने। शीङः सार्वधातुके गुणः ।७।४।२१।
शीङो गुणः स्यात्सार्वधातुके। 'क्ङिति चे' त्यस्यापवादः। शेते शयाते।
शीङो रुट् ।७।१।६। शीङः परस्य झादेशस्यातो रुट्। शेरते। शेषे शयाथे
शेध्वे। शये शेवहे शेमहे। शिश्ये। शयिता शयिष्यते। शेताम। अशेत अशया-

(३) शीङः—शीङ्धातुको गुण हो सार्वधातुक प्रत्ययपरे। आत्मनेपदी। ङित्परे त आतां झ आदिके अपित् सार्वधातुक होनेसे ङित् है। (क्ङिति चसे) प्राप्तगुण निषेधका बाधक है। (१९) स्वप्न जनकव्यापारवाचक शीङ् धातुके ङित् होनेसे (अनुदात्तेत) आत्मनेपद। (शेते)—शयनके अनुकूल क्रिया-वाचक शीधातोः शयनक्रिया वर्तमाने कर्ता अर्थेलिट् तस्य स्थाने आत्मनेपदे, प्रथम-पुरुषस्य एकवचने 'त' टिसंज्ञा। टित् आत्मनेपदां टेः एकारे,शीते इति अवस्थायां सार्व धातुकसंज्ञक त प्रत्ययपरे, सार्वधातुकार्धधातुकयोः इति गुणस्य क्ङितिच इति निषेधे। नतोधस्य अपवादः (शीङः सार्वधातुके) गुणे कृते शेते। दो कर्तामें शयनक्रिया वर्तमान हो शीधातोः लट्। द्विवचने (आताम्) सार्वधातुके परे इकारस्य गुणे (एकारे) तस्य अयादेशे। टि (आम्) इति तस्य एत्वे शयाते। यत्र अनेककर्तारः शयनं कुर्वन्ति। तत्र शेरते शीङ–लट्झि (आत्मनेपदेषु) अनतः) झस्थाने अतादेशे अगुणे।

शीङ् धातुसे परे झके स्थानमें आदेश अत्को रुट्=र आगम हो। टेः एकारे शेरते। शेषे त्वम्। थासः से एत्वे गुणः शपो लुक् यूवां शयाथे यूयं शेध्वे। अहं शये, आवां शेवहे वयं शेमहे। शयनजननीक्रिया। वर्तमानकर्ता। शिश्ये। अनद्यतन-भूतकालिक अप्रत्यक्षशयनक्रिया। स्वप्नार्थक शीधातोः परोक्षेलिट् (तस्य स्थाने 'त') तस्य स्थाने लिटस्तझयोरेशिरेच् इति एश। 'शी' इत्यस्य द्वित्वे अभ्यासस्य ह्रस्वे। उत्तरखण्ड-इकारस्य यण्। शिश्ये। बालकौ शिश्याते। शिश्यिषे। शिश्यिध्वे। शिश्ये शिश्यिवहे शिश्यिमहे। अयं धातुः सेट् काशिकायां पठितः। अतः बलादि इट् भवति अकर्मको धातुः। देवदत्तः शेते। शयनरूपं फलं तस्य जनको व्यापारः, एकस्मिन् देवदत्ते तिष्ठति। विभाषेटः सूत्रेण ढत्वम्। शयिता-शयननार्थक शीधातोः अद्यभिन्न भविष्यशयनक्रियार्थेलुट तस्य स्थाने त-तास् तस्य आर्धधातुकसंज्ञा। वलादि आर्ध-धातु परे इट् आगमे। धातु इकारस्य गुणे अयादेशे 'त' स्थाने डा। डित्वसामर्थ्यात्-टि (आस्) लोपे रूपम्। एवं शयितारौ शयितारः। शयितासे शयितासाथे। शयि-ताध्वे। सामान्यभविष्य कालमें शयनजननी क्रियाके लिए शयिष्यते कदा देवदत्तः। आशीर्वादे अर्थे लोट्। बहुपरिश्रमः कृतः शेताम्-आमेतः इतिलोट्–एकारस्य आमि रूपम्। धार्मिकौ सुखेन-शयाताम्। श्रमिकाः शेरताम् शेष्व शयाथां शेध्वम्। आज्ञा चेत् अहं शयै। आवां शयावहैः वयं शयामहै। एतऐ सूत्रेण, एकारस्थाने ऐकारे। अनद्यतन समाप्त शयनकक्रिया अर्थे लङ् अट्, आत्मनेपदे 'त'। शपो लुक्। शीङः गुणे अशेत। तौ अशयाताम्। ते अशेरत। अशेथाः अशयाथाम्, अशेध्वम्। अहं ह्यः अशयि। अशेवहि अशेमहि। यत्र शयनक्रियायाः सम्भावना प्रेरणा वा, तत्र विधि

ताम् अशेरत । शयीत शयीयाताम् शयीरन् शयिषीष्ट । अशयिष्ट अशयिष्यत । इङ् अध्ययने । इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः । अधीते अधीयाते अधीयते । **गाङ् लिटि** ।२।४।४९। इङो गाङ् स्याल्लिटि । अधिजगे

लिङ् । स शयीत । वह थका होगा सोवे । अङ्गदहनुमन्तौ शयीयातां । कपयः शयीरन् । त्वं शयीथाः शयीयाथां शयीध्वम् । दिने अहं न शयीय । शयीवहि शयीमहि । शयनविषयक आशीवादार्थे ससुखं शयिषीष्ट । शीङ्—लिङ्त सीयुट्, सुट् इट् गुण-अयादेशे षत्वे ष्टुत्वे । शयिषीयास्ताम्, शयिषीरन् । वे सुख की नींद लें । त्वं सुखं शयिषीष्ठाः शयिषीयास्थां शयिषीध्वं शयिषीय शयिषीवहि, शयिषीमहि । अब वे सुख से शयन करें । आपके आशीर्वाद से । अशयिष्ट । समाप्त शयनक्रिया अर्थे लुङ् अट् आत्मनेपद त च्ले सिच् । अशीसत् इट् गुणे, अयादेशे, षत्वे ष्टुत्वे । अशयिषाताम्, अशयिषत । अशयिष्ठाः अशयिढ्वंध्वम् । अशयिषि, अशयिष्वहि, अशयिष्महि । यदा स अशयिष्यत् । तदा सुखम् अलप्स्यत् । यह भी अनेकार्थक है, उपसर्गसे बोध्य है । जैसे–अधिशेते, वैकुण्ठं हरिः । आराम करना । पापी अनुशेते—पश्चातापं करोति । कविः आशेते आशयं धारयति । नास्तिकः संशेते विशेते= विशेष सन्देह करता है ।

(२०) इङ् इत् इ धातु का अध्ययन—पढ़ना या बोधके अनुकूल क्रिया अर्थः । इङिकाविति=इङ् तथा इक् स्मरणार्थक धातु अधिउपसर्गको (न व्यभिचरतः) कमी त्यागते नहीं । अधिके योगमें ही प्रयोग अटल है । ङित् होने से आत्मनेपद । अधीते= अधिउपसर्गक अध्ययनार्थक इङ्धातोः ज्ञानजनकक्रियावर्तमाने लट् त टेः एत्वे, सार्वधातुकसंज्ञा शपो लुक् । इकारयोः सवर्णदीर्घे रूपम् । अधीयाते, आताम् टेः एत्वे, 'अचिश्नुधातु' इहि इयङ् सवर्णदीर्घे । बहुवचने झस्थाने, आत्मनेपदेष्वनतः इति अत् आदेशे । टेः एत्वे अधीयते । अपित् प्रत्ययः ङित् भवति । तेन गुणनिषेधः । त्वं वेदम् अधीषे । युवां शास्त्रमधीयाथे । यूयं तर्कम् अधीध्वे । अहं प्रथमायाम् अधीये । आवा नीतिम् अधीवहे । वयं धर्मम् अधीमहे ।

गाङ्—इङ् धातुको गाङ् आदेश हो लिट् परे । अधिजगे अधिपूर्वक स्वाध्याय जनक क्रियावाचक इङ् धातो परोक्षाध्ययन क्रियासमाप्ते अर्थे लिट् आत्मनेपदे 'त' तस्य स्थाने एश् । लावस्थायां 'गाङ्लिटि' इति 'गा' आदेशे तस्य द्वित्वे, अभ्यासस्य ह्रस्वे, कुत्वे च । ङित् तकारपरे 'आतोलोप' इट् च अकारलोपे रूपम् । अधिजगाते । पहले ही अध्ययन किये, आताम्परे आतो लोपः इति विशेषः । छात्राः कदा अधिजगिरे झ स्थाने इरेच् एत्वे आकारलोपे । त्वं कदा वेदम् अधिजगिषे । यूवां यदा अधिजगाथे, तदा यूयं कक्षायां अधिजगिध्वे । अहं भोजनकाले अधिजगे । आवां ब्राह्ममुहूर्ते । अधिजगीवहे । वयं दशघटिका अधिगीवहे । हलादिप्रत्ययपरे क्रादि नयमात् इट् भवति । तेन सर्वे आजादयः आकारलोपभाजो भवन्ति । आगामिदिने अध्येता । अधिइङ् धातोः अनद्यतनभविष्यकालिक अध्ययन क्रिया कर्ता अर्थे लुट्

अध्येता । अध्येष्यते । अधीताम् अधीष्व । अधीयाथाम् अधीध्वम् अध्ययै अध्ययावहै अध्यायमहै । अध्यैत अध्यैयाताम् अध्यैयत । अध्यैथाः अध्यैयाथाम् अध्यैध्वम । अध्यैयि अध्यैवहि अध्यैमहि । अधीयीत अधीयीयाताम् अधीयीरन् । अधीयीध्वम् । अध्येषीष्ट । **विभाषा लुङ्लृङो २।४।५०।** इणो गाङ् । **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् ।१।२।१।** गाङादेशात्कुटादिभ्यश्चाऽञ्णितः प्रत्यया ङितः स्युः । **घु-मा-स्था-गा-पा-जहाति-सां हलि ।६।३।६६।** एषामात

आदि अयम् अनिट् धातुः । अत इट् न भवति । इकारस्य गुणे यणि रूपम् । तुमलोग छुट्टीके बाद पढ़ोगे । हमलोग त्यौहार बीतने पर स्वाध्याय करेंगे । अध्येष्यते—वह सदा पढ़ेगा । अध्ययन जनकक्रियाके विषयमें बिधि, आज्ञा प्रेरणा सम्मान, अनुरोध निश्चय, प्रार्थना प्रतीत ो तब अधिपूर्वक इधातोः लोट् तस्य स्थाने 'त' एत्व 'आम् एतः' शपःलुक् सवर्णदीर्घ अधीताम्, अजादिविभक्ति परे सवर्णदीर्घे यूयम् अधीयताम् तुमलोग यशके लिए धर्मशास्त्र पढ़ो ।

अधीष्व=थासः से, सवाभ्यः वामौ इति एकारस्य 'व' आदेशे । हलादिपरे सवर्णदीर्घ, यूवां नीतिम् अधीयाथाम् धर्मवा, यूयं विज्ञानम् अधीध्वम् । अहं हितोपदेशम् अध्ययै ।=उत्तमपुरुषस्य एकवचने इट् आट् । अधि इ आइ । धातु=ईकारस्य गुणे अयादेशे, टेः एत्वे आटश्चेति वृद्धिः, यणि अध्ययै एवं सूक्तिम् अध्ययावहै । महाभारतं अध्ययामहै । अध्यैत अध्ययनक्रिया आजसे भिन्नभूतकालमें हुई हो तब लङ् आट् आत्मनेपदे 'त' । शपो लुक् । अधि आ इ त । 'आटश्च' वृद्धिः, उपसर्ग इकारस्य यण् । अध्यैयाताम्—वे दोनों परसो पढ़े थें । अध्यैयत जनाः रामायणं । यथा त्वं पुराणं अध्यैथाः । यूवां वेदम् अध्यैयाथाम् । अहं परश्वः पुस्तकम् अध्यैयि । वयं नास्तिकमर्ममध्यैमहि । अधीयीत । अध्ययनकी सम्भावना अर्थमें लिङ् 'त' सीयुट्, शप् लुक् अनुबन्धलोपे 'अचिश्नु' इति इयङादेशे । अपित्सार्वधातुकं ङित् भवति । तेन न गुणः सवणदीर्घ । कृष्णबलौ गुरुकुले अधीयीयाताम् । अत्र सीयुट्-यकारस्य न लोपः, क्या वे लोग तर्क पढ़ेंगे या धर्म अधीयीथा। अधीयीयाथाम् अधीयीध्वम् । अहं ज्यौतिषम् अधीयीय । आवां मुहुर्तचिन्तामणिम् । अधीयीवहि । अध्येषीष्ट, सीयुट् सुट्षत्व ष्टुत्व इति विशेषः, अध्ययनविषयक आशीर्वादजनकक्रिया अर्थः अध्येषीष्ठा । अध्येषीय (६) इङके स्थानमें गाङ् आदेश हो, विभाषा=विकल्प से लुङ् या लृङ् परे 'ल' अवस्थामें ही गाङ्से । ७ गाङादेशात्=इ के स्थानमें गा आदेशसे या कुटादिम्य—अदादिगणाठित कुट् इत्यादि धातुओंसे परे ञित् णित्से भिन्न प्रत्यय ङित् हो (८) घु—घुसंज्ञक (दा धा) मा=नापना स्था=गति निवृत्ति गा—गाना पानार्थक पा त्यागार्थक ओहाक् । नाशार्थक 'षो, इन धातुओंके आकार को ईकार हो, हलादिकित् ङित् आर्धधातुक परे । अध्यगीष्ठ अध्ययनार्थक अधिपूर्वक 'इ' धातो समास अध्ययनक्रियाकर्ता अर्थे लुङ् विभाषा 'लुङ् लृङोः, इति इ स्थाने 'गा' आदेशे लुङ् 'त' च्लेः सिच् । तस्य णित् भिन्न ङित् संज्ञा कृते । आर्धधातुक

ईत्स्याद्धलादौ विङत्यार्द्धधातुके। अध्यगीष्ट अध्यैष्ट अध्यगीष्यत अध्यैष्यत। ईर गतौ, कम्पने च। ईर्ते ईराञ्चक्रे। ईरिता ईरिष्यते। ईत्तांम् ईर्ष्व। ईर्ध्वम् ऐरिष्ट। कश गतिशासनयोः, कष्टे कशाते। ईड स्तुतौ। ईट्टे। ईशः से।७।२।७७ ईडजनोर्ध्वे च।७।२।७८। ईशीड्जनां सेध्वेशब्दयोः सार्वधातुकयोरिट् स्यात्। योगाविभागो वैचित्र्यार्थः। ईडिषे ईडिध्वे। एकदेशविकृत-

संज्ञायां मास्था इति 'गा' अकारस्य इत्वे, षत्वे, ष्टुत्वे, उपसर्ग–इकारस्य यणि गाङ् आदेशस्य अभावे-आडागमे। आटश्चेति वृद्धिः प्रथम आट् आगम इति विशेषः। अध्यैष्ट-अध्यैष्याताम्। अध्यैषत। अध्यैषाथाम् अध्यैढ्वम्। अध्यैषि, अध्यैष्वहि अध्यैष्महि। यदि परिश्रमेंण। परीक्षापुस्तकम् अध्यगीष्यत्, तदा उदतरिष्यत्। अध्यैष्यत अध्यैष्येताम् अध्यैष्यन्त। अध्यैष्ठाः अध्यैष्येथाम् अध्यैष्यध्वम्। अध्येष्ये अध्येष्यावहि अध्येष्यामहि। अत्र 'आताम्' परे आतोङितः इति प्रवर्तते।

ईर गतौ चलने—कांपना क्रिया अर्थ। स्वेन ईर्ते। चलति या सा स्वैरिणी। वर्तमान कम्पन या गमन क्रियाके कर्ता में आत्मनेपद त। ईराते ईरते। वे चलते हैं कापते हैं। इर्षे ईराथे ईर्ध्वे। ईरे ईर्वहे ईर्महे। ईजादि धातु है ईजादेश्च गुरुमतः से आम् ईराञ्चक्रे। अनदेखा काल में गया कंपाया कृ लिट् अनुप्रयोगादि। ईरिता ईरिष्यते। ईर्ताम् ईराताम् ईरताम्। इर्ष्व ईर्ध्वम्। ईरै ईरामहै। लङ् लकार में आट्। आटश्च वृद्धि ऐर्तं ऐराताम् ऐरत ऐर्थाः। ऐरि ऐर्वहि। ईरीत ईरिषीष्ट। ऐरिष्ट ऐरिषातां ऐरिषत। ऐरिष्ठाः ऐरिषातां ऐरिढ्वं। ईड स्तुतौ परगुणगान क्रिया वर्तमान हो कर्ता में लट् ईडते। षत्वं ष्टुत्व टट। ईट्टे ईराते ईरते, ईड—से सार्वधातुक को इट् नहीं होता अतः (ईश इड जन) से परे। सेध्वे शब्द परे सार्वधातुक हो इट् हो जाय। शङ्का—दोनों सूत्र एक साथ क्यों नहीं पढ़ा, तब कहा योगविभागः–सूत्रका अलगाव वैचित्र्यार्थ से–की अनुवृत्ति, उत्तर में हो, ध्वे का अपकर्षण पूर्वमें हो, इसी विचित्र बोध के लिए अलग पढ़ा। इट् हुआ। ईडिषे ईडे ईडिमहे। लिट् में आम् कृ आदि ईजादि होनेसे। ईडिता ईडिष्यते। परगुण गायेंगे। वह शान (आदेश) निवेदन का विषय हो कर्तामें लोट् आमेतः। ईट्टाम् ईडाताम् ईडताम् ईडिष्व ईडिध्वं। यहां इट् कैसे? शब्द परे नहीं है। तब कहा एकदेशविकृतस्य—एक अङ्ग की खराबी से जाति नहीं बदलती वह अनन्य है अन्य नहीं। यदि ऐसा ऐढ्वम् में ध्वे न रहकर ध्वं एकदेशविकृत है, इट क्यों नहीं? तब बोले—जहां विकृति ली जायगी वहां प्रकृति का ग्रहण नहीं, प्रकृति के एक अङ्ग में विकार हो वह मान्य किन्तु जहां विकृति आवश्यक है उस विकृति के एकदेश (अङ्गमें प्रकृति का ग्रहण नहीं होता। जैसे पुरुषमानय कहने पर अन्धोऽनन्धो वा पुरुष आनीयते। जब कहा जाय अन्धमानय अन्ध एवं आनीयते। न तु अनन्धः। जैसे ध्वं के टि को एत्व हुआ, ध्वे बना। प्रकृति में विकृति सहने लायक है। जब सवाम्यां वामौ से—ए-को अम् हुआ तब विकृति में विकृति आने से

स्यानन्यत्वात् ईडिष्व । ईडिध्वम् । विकृतिग्रहणेन प्रकृतेरग्रहणात् ऐड्ढ्वम् । ईश ऐश्वर्ये ईष्टे ईशिषे ईशिध्वे ॥ आस उपवेशने । आस्ते । दयायासश्च'-त्याम् । आसाञ्चक्रे । आस्स्व । आध्वम् आसिष्ट । आङः शासु इच्छायाम् ।

इट् नहीं हुआ । ईडे ईडामहै । ऐट्ट ऐडाताम् ऐडत । अनद्यतन भूतकाल में स्तुति किया, गुण गाया । ऐट्ठाः ऐडाथाम् ऐढ्वम् । ऐडि ऐडिवहि । ईडीत ईडिषीष्ट । ऐडिष्ट ऐडिषातां ऐडिषत । ऐडिष्ठाः ऐडिड्ढ्वम् ।

ईशधातु (ईश्वरस्य भावः ऐश्वर्यं) तेजस्वी सम्पत्तिशाली धर्मात्मा बनने की क्रिया वर्तमान कर्ता में ईशते । व्रश्चभ्रस्ज--सूत्रसे श को ष । ष्टुत्व, त-ट । ईष्टे ईश्वर स्वामी हो रहा है । ईशाते ईशते । ईशिषे ईषाथे ईशिध्वे इषे ईशिवहे ईशिमहे । हम सब ईश्वर हो रहे हैं । ईशाञ्चक्रे । ईशिता ईशिष्यते । ईष्टाम् ईशा-ताम् इशताम् इशिष्व । ऐशिष्ट ऐशिषाताम् ऐशिषत ऐशिष्ठाः । अस धातु का उप-वेशन-बैठने का व्यापार वर्तमान हो कर्ता में ल आदि । शप् लुक् । आस्ते आसाते आसते । आस्से आसाथे आध्वे । धि च सूत्रसे सलोप, यूयं कर्ता में वर्तमान बैठने का व्यापार । आसे आस्वहे आस्महे । हम सब बैठते है । भूतकाल में उपवेशन क्रिया सहित कर्ता प्रत्यक्ष न हुआ हो, तब लिट् अजादि नहीं । अतः दयायासश्च से आम् । कृ लिट् अनद्यतन भविष्यकाल में बैठना है, आसिता-लुट् तास ति डा आदि । आसितासे अहं आसिताहे । आसिष्यन्ते आसिष्यध्वे आसिष्यामहै । बैठने के विषय में आदेश निवेदन हो लोट त । एत्व । एतः आम् । आस्ताम् आसाताम् आसताम् । आस से । सवाभ्यां=सूत्र से ए को व । दो स का श्रवण । आस्स्व आसाथां आध्वं धि च सलोप । एत्व होने पर ए को आम् आमेतः से । आसै असावहै असामहै । हम लोग दैठे । अनद्यतन भूतकाल की उपवेशन किया है कर्ता में लङ् त आट् आदि शपलुक् । आस्त आसाताम् आसत । आस्थाः आसायां आध्वम् । तुम लोग बैठे थे । आसि आस्वहि (वह बैठे) स आसीत् आसीयास्ताम् आसीरन् आशीर्लिङ । ठहरने की कामना । आसिषीष्ट आसिषीयास्तां आसिषीरन् । भूतकाल में बैठ चुका हो षत्व ष्टुत्व । आसिष्ट आसिषातां आसिषत । आसिष्ठाः आशिषाथाँ आसिध्वं ढ्वम् । आसिष्यत । आङ्-शास् धातुका इच्छानुकूला क्रिया अर्थ, आशा करना । आशास्ते एककर्तृकवर्तमानकालिक इच्छानुकूलव्यापारः । आशासाते आशासते आशासे आशासाथे आशाध्वे । आशासे आशास्वहे आशास्महे । आशासाञ्चक्रे । आशासिता आशा करेगा । आशासिष्यते आशास्तां आशास्व । आशासै आशास्वहै-महै । आशासिष्ट आशासिषातां आशासिषत । आशासिष्ठाः । तुम आशा कर चुके त्वदभिन्नैकर्तृकः भूतकाचिकः उपवेशनव्यापारः । आङ् उपसर्ग होना (प्रायः भर्गं) प्रायिक==वहुधा बहुत अंश में आङ् के बिना भी रूप । नमो वाकं नमः शब्द का उच्चारण करते है नमः शब्दस्य वचनं कुर्महे । धातूनामनेकार्थत्वात् । वच-से घञ् च जोः कुः वाकः नमस्ते रुद्र मन्यवे इत्यादि नमो वचनम् । **वसधातु** का आच्छादन

आशास्ते आशासाते आशासे। वस आच्छादने। वस्ते वस्से वध्वे। वस्से। वसिता। णिसि चुम्बने। निस्ते। णिजि शुद्धौ। 'चोः कुः'। निङ्क्ते। निङ्क्षे। निनिञ्जे। निञ्जिता निञ्जिष्यते। वृजी वर्जने। वृक्ते वृजाते। इदिदित्यन्ये। वृङ्क्ते। पृची संपर्चने। पृक्ते पपृचे। षूङ् प्राणिगर्भविमोचने। सूते सुषुवे सुषुवाते सुषुविरे सुषुविषे। सोता सविता। 'भूसुवो'रिति गुणनिषेधः।

पहिरना परिधान चादर कुर्ता धोती धारण किया वर्तमान कर्तामें वस्ते वसाते वसते। थामःसे। तुम पहनते हो। चादर तानते हो। वस्से वसाथे वध्वे धिच सलोप। परोक्ष अनद्यतनकाल में धारण किया हो लिटस्थ एश। वस वस ववसे। न शसददवादिगुणानां—सूत्र के निषेध से एत्व आदि नहीं। ववसाते ववसिरे। पहनेगा वसिता। अनिट् कारिका में शप वाला वस मान्य। यहा इट् होगा। वसिष्यते। वस्तां वसातां वसताम्। अवस्त परिधान धारण किया। वसीत। वसिषीष्ठ अवसिष्ट अवसिषाताम् अवसिषत। अवसिष्ठाः अवसिषम्।

निस (इदितो नुम्) धातुका चुम्बनं (कपोले वक्त्रसंभोगः) वर्तमान हो निस्ते निसते। निंसे—प्यार से तुम चूमते हो। किसी के मत में दन्त्य उष्मान्त है। आभरणकार भ्रम से तालव्य उष्मान्तमें उलझ गये। नुम् विसर्जनीय सूत्र की वृत्ति में दन्त पढ़ा है। इदितो नुम्। णो नः। निञ्ज धातु का शुद्धि निचोड़ना। निञ्जते-दशा में ज को कुत्व ग। चर् क। न को अनुस्वार परसवर्ण ङ्। निङ्क्ते निञ्जाते निञ्जते निङ्क्षे निङ्ग्ध्वे। निञ्जे। लिटि में निनिञ्जे सयोग है न कित्। न नलोप। निञ्जिष्यते निङ्क्ता अनिङ्क्त। निञ्जीत। अनिञ्जिष्ट दन्तोष्ठ वृज का वर्जन रोकना निवारण करना वर्तमान कर्ता हो। वृज-ते ज-ग, चर क मिलाकर वृक्ते—वृजते=वे मना करते है। वृज-से। ज-ग-क ष-क्ष वृक्षे-तुम रोकते हो। ववृजे अनदेखा काल में रोका। वर्जिता वर्जिष्यते। वृक्तां वृजातां वृजतां वृक्ष्व ॥ ३० ॥ पृच का सम्पर्चन पक कर पीला होना। पपृचे। षू धातु का प्राणिगर्भ-जीव का प्रसव करना, गर्भ त्याग की क्रिया। सूते=गर्भत्याग क्रियावाचक षू धातुः (धात्वादेः षः सः) से वर्तमानकालिक प्रसवकर्ता अर्थ में लट् त। एत्व शपो लुक्। सुवाते सुवते। प्राणी प्रसव क्यों। सूषे सुवाथे सूध्वे। सूवे सूवहे सूमहे। अनदेखा काल में गर्भत्याग हो चुका हो। परोक्षे लिट् त एश्। द्वित्व सू सू ए ह्रस्व अचोऽञ्णिति वृद्धि आव्। षत्व सुषुवे सुषुवाते सुषुविरे। सुषुविषे सुषुवाथे सुषुविध्वे। सुषुविमहे। क्रादिनियम से नित्य इट्। यतः स्वरतिसूति के विकल्प इट् का बाधक श्रयुकः किति उसका भी बाधक नित्य इट्। आज के भविष्य से भिन्न भविष्य काल में प्रसव क्रिया हो कर्ता में लुट् त तास् डा आदि। स्वरतिसूतिसूत्र से पक्ष में इट्। गुण अवादेश। सविता न इट् सोता। प्रसव करेगी, न भुसुवोः से गुणनिषेध नहीं, सु तिङ के बीच तास् के व्यवधान से। सोतारौ सोतारः। सवितासे सवितासाथे सविताध्वे। इट् विकल्पसे भेद। प्रसव करेगी अर्थ में सोष्यते सविष्यते

सुवै सविषीष्ट सोषीष्ट। असविष्ट असोष्ट चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि। अयं दर्शनेऽपि। इकारोऽनुदात्तो युजर्थः नुम्तु न 'अन्त्येदित' इति व्याख्यानात्। ङकारस्तु अनुदात्तेत्वप्रयुक्तमात्मनेपदमनित्य'मिति ज्ञापनार्थः। तेन 'स्फायन्निर्मोकसन्धि'रित्यादिसिद्धिः। 'स्को'रिति कलोपः। चष्टे चक्षाते। 'आर्धधातुके'। चक्षिङः ख्याञ् ।२।४।५४। वा लिटि ।२।४।५५। अत्र भाष्ये 'ख्शा'

आज्ञा का विषय हो कि प्रसव करो। सूतां सुवातां सुवतां सूष्व सुवाथां सूध्वं। सुवै सुवावहै सुवामहै। उत्तमपुरुष का आट् पित् है गुण प्राप्त था, भूसुवोस्तिङ से गुण निषेध हुआ। एत ऐ। अनद्यतनभूतकाल में गर्भविमोचन हुआ हो कर्ता में लङ् त अट्। असूत असुवातां असुवत। असूथाः प्रेरणा का विषय हो विधिलिङ् सुवीत सुवीयातां सुवीरन्। आशीर्लिङ् सीयुट् सुट् इट् गुण आदि। सविषीष्ट सोषीष्ट सोषीयास्तां। समाप्त प्रसव क्रिया काल में लुङ् त अट् इट् सिच् असविष्ट असविषातां असविषत। असोष्ट असोष्ठाः असोषाथां असोढ्वं।

चक्षिङ् धातु व्यक्तबाणी (गूढ़ार्थस्य स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थे निर्णये) कठिनसे कठिन भाव समझने का विवरण (व्याख्यान-विषय साफ खोलनेकी विधि) अयं दर्शने— यह धातु देखने अर्थमें भी है। प्रमाण =(विश्वरुपा अभिचष्टे सचीभिः) किरणों से पूरे विश्वको देखते हैं सूर्य भगवान्। पूर्वापरं चरतो माययैतो शिशू क्रीडन्तौ पर्यातोऽवरं विश्वान्यन्यो भुवनानि चक्षे। पूरे विश्व को देखना सिद्ध। इ-उच्चारण का फल बोलें कि अनुदात्त इत् हो (युच्) प्रत्यय के लिए अनुदात्तेतश्च हलादे का ल्युट् बाधकर युच् करता है। विचक्षणः प्रथयन् मन्त्र है। वि पूर्वक चक्षधातु से युच् किया। ल्युट् होता लित्स्वर हो जाता है। यदि ऐसा इ इत् से इदितोनुम् क्यों नहीं, अतः कहा (नुम् तु न) क्यों नहीं, अन्तमें इ इत् नहीं। गो प्रदाने से अन्ते आता हैं। अन्तमें इदित् नहीं, न नुम्। ननु अनुदात्त इत् से आत्मनेपद प्राप्त था—ङित् उच्चारण क्यों? वह व्यर्थ होकर बोला कि अनुदातेत्को मानकर हुआ आत्मनेपद अनित्य है। जिसका फल परस्मैपद भी है। तेन—आत्मनेपद की अनित्यता से स्फायन् में (स्फायी वृद्धौ) अनुदात्त इत् होकर भी लट् के स्थान में परस्मैपद शतृ आदेश हुआ। आत्मनेपद शानच् नहीं। चष्टे—गूढ़ार्थ खोलना क्रियावाचक चक्ष धातु से वर्तमानकालिक समझाने के लिए कर्ता में लट् न, शपो लुक्। स्कोः संयोगाद्योरन्ते सूत्र से क्ष में क का लोप। ष शेष। ष्टुत्व चष्टे चक्षाते चक्षते। चक्षे थास को से। स्को से कलोप, षढोः कः। ष को क। षत्व चक्षाते चढ्वे। ध्वपरे कलोप, ष को जश् धत्व। चक्षे चक्ष्वहे।

आर्धधातुक की अनुवृत्ति आने पर चक्षिङ् के स्थान में ख्याञ् आदेश है, आर्धधातुकप्रत्यय परे। वह आदेश वा लिटि—परे विकल्पसे हो। अत्र भाष्ये=चक्षिङ ख्याञ् सूत्र के भाष्य में कहा कि यह आदेश ख्शा है। असिद्धकाण्डे—पूर्वत्रासिद्धम् सूत्रके अधिकारमें (ख्शाञः शस्य यो वा वक्तव्यः) पढा है ख्शा के श को य विधान से

देरयमादेशः। असिद्धकाण्डे शस्य यो वा' इति स्थितम्। ञित्वात्पदद्वयम्। चख्यौ चख्ये। चक्शौ चक्शे। चयो द्वितायांः शरि पौष्करसादेरिति तु न, चर्त्वस्यासिद्धत्वात्। चचक्ष ख्याता क्शाता। ख्यास्यति ख्यास्यते क्शास्यति क्शास्यते। चष्टाम् चष्ट। चक्षीत। ख्यायात्। ख्येयात् क्शायात् क्शेयात्। 'अस्यतिवक्ती'त्यङ्। अख्यत् अख्यत। 'यमरमे'तीट्-सकौं। अक्शासीत्।

पुख्यानं प्रयोग में पुमः खचम परे से रुत्व नहीं होता। य की असिद्धि से। ञित्वात् ख्या ञित् है, स्वरितप्रतिज्ञा। दोनों पद—परस्मैपद आत्मनेपद की। गूढार्थ खोलने क्रियावाचक चक्ष धातु से क्रिया सहित कर्त्ता परोक्षभूत हो लिट। विकल्पसे चक्ष को ख्या आदेश। ख्या ख्या द्वित्व आदि चख्या (आत औ णलः) णल को औ परे आ लोप। चख्यतुः चख्युः अनेक कर्ता में व्याख्यान की परोक्षक्रिया। द्वाजनियम से थलि परे वा इट्। चख्यिथ। न इट्। चख्याथ चख्यथुः चख्य। चख्यौ चख्यिव—क्रादि नियम से इट्। आत्मनेपद में ख्शा आदेश। श को य विधान पक्ष में त को एश्। चख्ये चख्याते चख्यिरे। चख्यिषे चख्याथे चख्यिध्वे-ढ्वे चख्यिमहे। जब श को य नहीं हुआ, तब ख्शा ख्शा चख्शा। औ चख्शौ चक्शतु चख्शुः। चख्शे चख्शाते चख्शिरे। जब श को चर्त्व क होगा, तब (चयो द्वितीया षरि) द्वितीय अक्षर ख क्यों नहीं है? उत्तर दिया कि चयो द्वितीया वार्तिक नहीं लगेगा, चर्त्व की असिद्धि से। जब ख्याञ् आदेश नहीं तब चचक्षे चचक्षिषे चचक्षिध्वे। चचक्षिवहे। ख्याता कल गूढार्थ खोलेंगा। ख्यातारौ ख्यातरः। ख्शातासे ख्यास्यसि ख्शास्यामि। त्वं क्शास्यसे अहं क्शास्ये मैं भाव खोलूंगा (अर्थ खोलना आज्ञा प्रेरणा का विषय हो चष्टां चक्षातां, चक्षतां चक्ष्व चक्षाथां चड्ढवम्। चक्षै चक्षावहैं चक्षामहै। लङ्—बीते भूतकालका कर्ता अचक्षत। शप लुक् स्कोः से क लोप। त=ट अचष्ट अचक्षाताम् अचक्षत। अचष्ठाः अचक्षाथाम् अचड्ढवम्। अचक्षि अचक्ष्वहि अचक्ष्महि। हमलोग व्याख्या किये, समझाये। पहले ही भाव खोलने के विषय में आज्ञा निवेदन प्रार्थना की सम्भावना में लिङ् चक्षीत क्षके क का लोप। स परे ष को क कष=क्ष चक्षीत चक्षीयातां चक्षीरन्। आशीर्लिङ् में आर्धधातुकसंज्ञा ख्या आदेश। परस्मैपद। वाऽन्यस्य संयोगादेः एत्व विकल्प। ख्येयात्। क्शासीष्ट। बढिया व्याख्यान विषयक शुभकामना। गूढार्थ खोलने की समाप्त क्रियाके कर्तामें लुङ्। चक्ष को ख्याञ् आदेश। असिद्ध काण्ड में (शस्य यो वा) ख्शा आदेश सिद्ध श को य वा। (अख्या च्लि त) अस्यति—अशू क्षेपणे, ब्रूवो वचि, वच परिभाषणे, ख्या प्रकथने धातुओं से च्लि को अङ् आदेश हो। ङित् होने से आलोप भी।

ञित से—दोनों पद आत्मने परस्मै भी। अख्यत् अख्यताम् अख्यन्। अख्यः अख्यतम् अख्यत। अख्यम् अख्याव अख्याम। क्शादेश पक्ष, परस्मैपद पक्षमें च्लि को सिच्। यमरमनमातां सक् च इट्। सलोप दीर्घ अक्शासीत् अक्शासिष्टाम् अक्शासिषुः आत्मनेपद में च्लि को सिच्। अक्शास्त क्शासातां क्शासत। अख्यास्यत्।

अचशास्त । (वर्जने ख्शात्र् नेष्ट:) समचक्षिष्टेत्यादि । इत्यात्मनेपदं ।

अथोभयपदप्रक्रिया ।

द्विष अप्रीतौं । द्वेष्टि द्विष्टे । दिद्वेष दिद्विषे । द्वेष्टा द्वेक्ष्यति । द्वेष्टु-द्विष्टात् द्विड्ढि । द्विक्ष्व द्वेषाणि द्वेषै । अद्वेट् । द्विषश्च ।३।४।११२। द्विषः परस्य लङो झेर्जुस् वा । अद्विषुः अद्विषन् । अद्विष्टम् । द्विषीत् द्विक्षीष्ट ।

अचशास्यत् । व्यक्ता वाणी—गूढ़ार्थं खोलनेकी समाप्त क्रिया लुङर्थं । वर्जने—चक्ष धातुका वर्जन करना, रोक देना अर्थ (उपसर्गके बलपर) हो तब क्शा आदेश नहीं होता । यथा समचक्षिष्ट—अवर्जयत्, लुङ् का रूप-रोक दिया, वर्जन क्रिया में ख्शा आदेश नहीं हुआ ।

द्विषधातु का अप्रीति–प्रेम विरोधी आचरण अर्थ । द्वेषक्रियावाची धातुसंज्ञक द्विष से प्रेम विरोधी आचरण के वर्तमान कर्ता में लट् । शपः लुक् । उपधामें लघु इकार को गुण । ष्टुत्व द्वेष्टि द्विष्टः द्विषन्ति । अनेककर्तामें वर्तमान प्रेम विरोधी आचरण । तिप सिप मिप पित हैं गुण होगा । अन्य विभक्ति ङित् हैं गुण निषेध होगा । द्वेक्षि=द्विष सि । षढ को क होता है । स परे सि है । ष को क स=ष कष—क्ष । द्वेक्षि द्विष्ठः द्विष्ठ । तुम सबमें वैर भाव की विराजमान क्रिया । द्वेष्मि द्विष्वः द्वेषका फल दुःख परगामी हो परस्मैपद । यदि प्रेम विरोधी क्रिया के कर्ता में दुःख फल जाये तब आत्मनेपद (कर्तृगामिनि क्रियाफले) त, टेः ए । ष्टुत्व द्विष्टे द्विषाते द्विषते द्विक्षे द्विषाथे द्विड्वे । द्विषे द्विष्वहे । पित् रहित सार्वधातुक ङित् है । क्ङिति च गुण निषेध । द्वेषका परोक्षकाल सम्भव नहीं, न परोक्षे लिट् । कल परसों दुश्मनी होनी हो कर्ता में अनद्यतने लुट् ति । तास् डा त्वादि । द्वेष्टा द्वेष्टारौ द्वेष्टारः । द्वेष्टासि द्वेष्टासे । द्वेष्टास्मि अहं द्वेष्टाहे । विरोध करूंगा । भविष्यकाल का प्रेम विरोधी कर्म का सूचक स्य–तास् । द्विष स्य सि । ष—ढ़ को क हों स परे । स–ष क–ष=क्ष । गुण द्वेक्ष्यति–ते द्वेक्ष्यामि द्वेक्षसे द्वेक्ष्यामहे । सद्भा-वना विरोधी आचरण आज्ञा प्रेरणा निवेदन का विषय हो लोट्, ति इ को उ एरुः । द्वेष्टु द्विष्टां द्विषन्तु । वे द्वेष करें । जेहाद छेड़ें । द्विष=सिप=हि, हि–धि ष को जश् ड । ध को ट् ढ । द्विड्ढि द्विष्टात् द्विष्टं द्विष्ट । आट पित् है न ङित । गुण हुआ, ष से परे न को ण । द्वेषाणि द्वेषाव द्वेषाम । द्विष्टां द्विषातां द्विषतां द्विक्ष्व द्विड्वम् अहं द्वेषै । वयं द्वेषामहै । हमलोग प्रीति विनाश करें । आजके भूतसे भिन्न भूतकालमें द्वेष क्रिया समाप्त हो लङ् । अद्वेषत गुण । इलोप हल्ङ्यादि सलोप । वाऽवसाने चर झलां जश ड । अद्वेट् अद्विष्टाम् अद्विषुः अद्विषन् ।

द्विषश्च झेर्जुस् । लङः शाकटायनस्य की अनुवृत्ति । लङ् के स्थानमें झिको जुस् हो । पक्षमें जुस हुआ । पक्ष में झके अन्त आदेश तका लोप, सिप् में हल्ङयादि लोप । अद्वेट् अद्विष्टं अद्विष्ट । तुम लोगों में परको परेशानकारक आचरण । अद्वेषम् अद्विष्व । विधिलिङ् प्रेरणा आज्ञाका विषय । द्विष्यात् द्विष्यातां द्विष्युः ।

'शल इगुपधे'ति क्सः। अद्विक्षत् अद्वेक्ष्यत्। दुह प्रपूरणे 'दादेर्धातोर्घः' इति हस्य घः। झषस्तथोर्धोऽधः' दोग्धि दुग्धः दुहन्ति। 'एकाचो बशो भष्'ति दकारस्य धकारः। धोक्षि दुग्धः दुग्ध। दोह्मि दुह्वः दुह्मः दुग्धे दुहाते दुहते धुक्षे दुहाथे धुग्ध्वे। दुहे दुह्वहे दुह्महे। दुदोह दुदुहे दोग्धा। धोक्ष्यति। धोक्ष्यते। दोग्धु दुग्धात् दुग्धां दुहन्तु। दुग्धि दुग्धात् दुग्धम् दुग्ध। दोहानि दुग्धां दुहातां दुहताम् धुक्ष्व दुहाथां धुग्ध्वम। दोहै दोहावहै दोहामहैं।

आत्मनेपद में द्विषीत द्विषायातां द्विषीरन्। आशीर्लिङ् आत्मनेपद सीयुट् सुट्। द्विक्षीष्ट लिङ् सिचौ आत्मनेपदेषु कित् है न गुणः। द्विक्षीयास्तां द्विक्षीरन्। समास दुश्मनी के कर्ता में लुङ् अद्विष् स् त्। शल इगुपधात्-च्लि को क्स। क ष=क्ष आदि। अद्विक्षत् अद्विक्षतां अद्विक्षन्। आत्मनेपद में अद्विक्षत अद्विक्षातां अद्विक्षन्त। अद्विक्षथाः अद्विक्षि। अद्वेक्ष्यत्। विरोध कार्य करेगा, सुख नहीं पायेगा।

(२१) दुहधातुका क्रियाफल यदि कर्तृगामी हो तब आत्मने-पद। यदा फलं परगामी तदा परस्मैपदम्। पूरणार्थक सकर्मक दुह्धातोः दोहनक्रिया वर्तमानकाले लट् तिप् शप लुक्। (दादेर्धातोर्घः) तस्य झलां जश् 'ग' झश् परे। झषस्तथोर्धोऽधः इति तकारस्य धः। गुणे दोग्धि=गोपौ पयांसि दुग्धः। अहिर गाय से दूध दुहते हैं। त्वम् धोक्षि दुह सिप् शपःलुक,दादेर्धातोर्धः। एकाचो बशो भष् इति भष् भावेन 'द' स्थाने ध कृते। जश्त्वे, चर्त्वे क कृते, सिपः सकारस्य षत्वे रुपम्। दुग्धः दोह्मि दुह्मः दुह्वः। हमलोग सभी भैंस दुहते हैं। यहां क्रियाफल परगामी है। कर्तृगामि दोहन क्रियाफले सति, दुग्धे दुहाते दुहते। त्वं धुक्षे दुहाथे दुग्ध्वे। दुहे दुह्वहे, दुदुहे, दुदोह (धरित्रीम्) दोग्धा गोपाल नन्दन। धोक्ष्यति रघु प्रजाके लिए उसीसे कररूपी दूध दुहेंगे। दोग्धु–तुम तीन गाय दुहो। दुग्धात्=सदा दुहते रहो। दुग्धाम्–तस् (ताम्) त स्थाने ध। हस्थाने ध जश्ग। दुहन्तु। त्वं सर्वाः गाः—दुग्धि। दुग्धः दुग्ध। दोहैं, दोहावहै दोहामहै। दुग्धां दुहातां दुहन्ताम्। धुक्ष्व=दुह थासःसे सवाभ्यां वामौ-एस्थाने व कृते। धत्वे, भषभावे, जश्त्वे चर्त्वे क्षत्वे। दुहाथां दुग्ध्वम्। (अधोक्) पूरणार्थके दुह धातोः अद्यभिन्नसमास दोहनक्रिया काले लङ् ति इकारलोपे, अट् तकारस्य संयोगान्तलोपे धत्वे भष्भावे गुणे, जश्च, अधोक् अदुग्धाम् दोनों कल दुहे थे, सर्वे अदुहन् अधोः अदुग्धाम्। अदुहम् अदुह्म।

(इदित् नुम्से मङ्घ धातुका मंडन शृंगारक्रिया) ममङ्घ ममङ्घतुः ममङ्घ सजावट करो। अमङ्घीत् शिघि—इकार इत् नुम् सहित शिङ्घका आघ्राण सूंघने, गन्ध ग्रहण क्रियो वर्तमाने मट शिङ्घति सुगन्धिम।

लिङ्सिचौ—इक्के समीप हलसे परे झलादि लिङ् या सिच्को कित् हों आत्मने परे। धुक्षीष्ट==प्रपूरणार्थकदुह धातोः दोहनविषयक–आशीर्वादार्थे लिङ् दुह सीस्त। अत्र लिङ्सिचोः आत्मनेपदेषु इतिझलादि लिङ्(सीयुट्सहित–आशीर्लिङ् अस्ति) इति तं कित करोति। तस्य फलं गुणनिषेधः। षत्वे ष्टुत्वे घत्वे भष्भावे

अधोक् अधोग् अदुग्धाम् अदुहन् । अदोहम् । अदुग्ध अदुहाताम् अदुहत । अदुग्धाः अदुहाथाम् अधुग्ध्वम् । दुह्यात् दुहीत । लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' । धुक्षीष्ट 'शल इगुपधे'ति क्सः । अधुक्षत् । लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ।७।३।७३। एषां क्सस्य लुग्वा, दन्त्ये तङि । अधुक्षत अदुग्ध । क्सस्याचि ।७।३।७२। अजादौ तङि क्सस्य लोपः स्यात् । अधुक्षाताम् अधुक्षन्त । अधुक्षथाः अदुग्धाः अधुक्षाथाम् । अधुक्षध्वम्-अधुग्ध्वम् । अधुक्षि अधुक्षावहि अदुह्वहि अधुक्षामहि । अधोक्ष्यत् । अधोक्ष्यत । एवं दिह उपचये, उपचयो-

---

ज चट्-क्ष । धुक्षीयास्तां धुक्षीरन् । धुक्षीष्ठाः धुक्षीयास्तां धुक्षीढ्वं, धुक्षीय धुक्षीवहि

शल—इक् हो उपधामें ऐसे शल श ष स ह अन्त धातुके अनिट् होनेपर च्लिको क्स आदेश हो । क्समें क अनुबन्ध है 'स' अवन्तः । अधुक्षत्=प्रपूरणार्थक दुह धातोः समाप्त दोहनक्रियार्थे कर्तरि लुङ् तिप् इतश्च लोपे, अट, च्लि, तस्य सिच प्राप्ते, तं बाधित्वा शलइगुपधात् सूत्रेण उपधायाः इक्=दुह उकारः एवं शलन्तधातुः दुह इति, अनिट् अपि अस्ति, अतः च्लिस्थाने क्स, ततो ढस्थाने भ भष् ध क ष-क्ष । गोपी श्यामां गां अधुक्षताम् अधुक्षन् अधुक्षः अधुक्षत पृथ्वीम् अधुक्षम् अहं अजाम् अधुक्षम् अधुक्षाव अधुक्षाम । लग्वेति वृद्धयार्थक दिह, प्रपूणार्थक दुह आस्वादने अर्थे लिह, तथा गुह धातुसे क्सका लुक् विकल्पसे हो । दन्त्यस्थानिक तङि त, थास, ध्वं ये दन्त्य आत्मनेपद हैं । इन्हीं क्सका लोप विकल्प हो । व का दन्त्य स्थान भी है वकारस्य दन्त्योष्ठम् । वहि परे भी लुक् । अदुह सत इति दशायां लुग्वादुहदिह आदि सूत्रेण क्सलोपपक्षे घ तथोर्धोऽधः धस्य जश । अदुग्ध । यदा लोपो न भवति तदा अधुक्षत । क्सस्या अचि—अजादिआत्मनेपद परे क्सका लोप हो, वह लोप अन्त्य अल् अके स्थानमें हो । अधुक्षाताम्=अदुह स आताम् । अत्र अजादिः आ आतां परे क्ससकारस्य आकारलोपे ध, भष ध ष क क्ष, यदि क्सके अका लोप न होता । आतोङितः से आताम्के आको इय् होने लगता। मेघमालाः मेघान् अधुक्षन्त अदुह स झ । झोऽन्तः आदेशे कृते क्सस्या—इति अकारस्य लोपे । तस्य फलम् आत्मनेपदेष्वनतः इयि अत आदेशो न इति । त्वम् अजाः अदुग्धाः अहं महिषीः अधुक्षि । हमलोग पशु दुहे । यदा पशवः अधोक्ष्यत् तदा दुग्धस्य मन्थने नवनीतमभविष्यत् । (२१) एवम् दिहधातुका उपचय=वृद्धि होनेकी क्रिया अर्थः । अकर्मकधातुः फल और फलजनकक्रिया दोनोंका आधार एक है । रूपं दुहवत् । देग्धि दिग्धे । दिदेह । दिदिहे । देग्धा धेक्ष्यति देग्धु अधेक् धिक्षीष्ट । दिहीत अधिक्षत् अदिग्ध । उपदेह सन्देह विदेह आदि शब्द इसी धातुसे बने हैं ।

(२२) लिहधातु आस्वादन–स्वाद (रस लेना) चाटने का व्यापारः स्वरितेत्, उभयपदी, सकर्मकः । क्योंकि स्वाद रूप फल उसका जनक व्यापारका आधार भिन्न भिन्न है । सलेहनं (चूसकर) लेढ़ि–आस्वादते–आस्वादनार्थक लिट् धातोः वर्तमान-आस्वादन क्रिया कर्ता अर्थे लट् ति होढः झ षस्तथोर्धोऽधः ष्टुत्वेन ढः, ढोढेलोपः

वृद्धिः। प्रणिदेग्धि देग्धु दिग्धि। लिह आस्वादने। 'हो ढः' 'ढो ढे लोपः'। लेढि लीढः लिहन्ति। लेक्षि लीढे। लिहाते लिहते। लिक्षे लिहाथे लीढ्वे। लेढु लीढात् लीढाम् लिहन्तु। लीढि लेहानि। लीढाम्। अलेट् अलेड्। अलीढाम्। अलिक्षत् अलिक्षत अलीढ। अलेक्ष्यत्-अलेक्ष्यत। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि। **ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः** ।३।४।८४। ब्रुवो लटस्तिवादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाऽऽहादेशः। अकार उच्चारणार्थः। आह आहतुः आहुः। **आहस्थ** ।८।२।३५। चर्त्वम्। आत्थ आहथुः। **ब्रुव ईट्**

गुणे लेढ़ि। एवं लीढः ढ़त्व धत्व ष्टुत्व ढ़ो ढ़े लोपः। अत्र गुणः प्राप्नोति। तं बाधित्वा ढलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः, इति दीर्घे। ते जम्बुफलानि लिहन्ति। त्वम् आम्रफलानि लेक्षि। अत्र सिप् परेढ़ क, षढो कः षि. अत्र, इणः परं सकारं दृष्टवा षकारो भवति, अनद्यतनभूतकालमे चाटना स्वाद लेना क्रिया। कष=क्ष,लिक्षे=थासः से ढ़ क ष क्ष एत्व। लिलेह, लिलिहे। आस्वादन क्रिया पहले ही समाप्त हो अदृष्ट हो। लेढु आस्वादनार्थक लिहधातोः स्वादविषयकप्रेणार्थक लोट् सिप्। शपोलुक् सिप् स्थाने अपित्हि आदेशे। हि स्थाने धि, धत्व ष्टुत्व ढलोप दीर्घ रुपम्। लेहानि अत्र आट् पित् अस्ति। तेन गुणो भवति। लीढां लिहातां लिहतां लिक्ष्व लिहाथां लीढ्वं ले है लेहावहै लेहामहै लीढ़े लिहते दशामें ह-ढ त-ध-ढ ढो ढे लोप दीर्घ। अलेट् ड् अलीढाम् अलिहन्। अलेट् अलीढ़म् अलीढ़। अलेहम् अलिह्व। लिह्यात् लिहीत लिहीयातां लिहीरन्। आशीर्लिङ्। अलिक्षत् अलिक्षताम् अलिक्षन्। अत्र शलइगुपधादनिट्क्स यदा दन्त्य तङ् प्रत्ययपरे मिलति यदा लुग्वा दुहदिह आदि सूत्रेण क्स। अकारस्य लुक् विकल्पे। अलीढ़ अलिक्षाताम् अलिक्षन्त। अलीढ़ा अलिक्षाथामित्यादि के कार्यकारण अर्थमें अलेक्ष्यत् अवलेह समलेह सम्यक कस्वादिनी। आदिशब्द लिह्धातुकी देन है। औषधमलेक्ष्यत्तदा रक्तशुद्धिः अभविष्यत् (२३) ब्रूधातु व्यक्तवाणी-स्पष्ट बोलनेकी क्रिया। ञ इत्से आत्मनेपद, स्पष्टवाणीके लिए प्रसिद्धः। मनुष्यमात्रमें उपयोगी है। उच्चारणजनकव्यापारका एक आधार होनेसे अकर्मक है।

(३) ब्रूवः-ब्रूधातुसे परे लट् स्थाने तिप् तस् झि सिप् थस् इन पांचों के स्थानमें णलादयः-णल् अतुस उस् थल् अथुस ये पांच आदेश क्रम से हो विकल्पसे साथ मे ब्रूको आह आदेश भी हो। आह-स्पष्ट अर्थवाचक ब्रुधातोः स्पष्ट उच्चारणे अर्थे वर्तमाने लट् तस्य स्थाने तिप् ततः (ब्रुवः पञ्चानामादित अहोब्रुवः) इति तिप् स्थाने णल् ब्रुस्थाने आह। आहतुः (दोनों स्पट बोले) ते आहुः (वे साफ बोले)। (४) आहके स्थानमें थ आदेश हो झल् संज्ञक अक्षर परे। अन्त्य अल ह के स्थान में थ हुआ। चरत्वम् आत्थ, तुम कर्तामें वर्तमान स्पष्ट बोलना। (५९५) ब्रूवः-ब्रूधातुसे परे हलादिपित् प्रत्ययको ईट् आगम हो। यदा लट् स्थानकतिप् स्थाने णलादयो न भवन्ति, तदा ब्रूति शपोःलुक् बुबः ईट् इति हलादिपित् प्रत्यय तिप्

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात्। ब्रवीति ब्रूतः ब्रुवन्ति। ब्रूते ब्रुवाते ब्रुवते। **ब्रुवो वचिः ।२।४।५३।** ब्रुवो वच्यादेशः स्यादार्द्धधातुके। उवाच ऊचतुः ऊचुः उवचिथ उवक्थ। ऊचे वक्ता वक्ष्यति वक्ष्यते। ब्रवीतु ब्रूतात् ब्रूताम् ब्रुवन्तु। ब्रूहि ब्रूतात् ब्रुतं ब्रूत ब्रवाणि ब्रवाव ब्रवाम। ब्रूतां ब्रवै।

शिप् मिप् परे ईट् सार्वधातुकपरे गुणः अव। श्लोक ब्रवीति महात्मानौ ब्रूतः। नेतारः सभायां ब्रूवन्ति, ब्रवीषि ब्रूथः, ब्रवीमि ब्रुवः ब्रूमः। ब्रुवन्ति इत्यत्र झोन्तः इति झ स्थाने अन्तादेशे कृते। गुण निषेधे सति अत्र श्नुधातु इति उवङादेशे। ब्रुवन्ति। सभी अजादि प्रत्ययमें उवङ् हो, ब्रूते। ब्रूषे ब्रूवाथे ब्रूध्वे। ब्रुवे ब्रूवहे ब्रूमहे। यत्र उवङ् तत्र ह्रस्व उकारः (६) ब्रुवः=ब्रूके स्थानमें वच् आदेश हो आर्धधातुक-परे। उवाच—स्पष्टभाषणार्थकब्रुधातोः अप्रत्यक्षसमासभाषणक्रिया अर्थे लिट् णप् णल् 'लिट्च' इति आर्धधातुकसंज्ञा, तस्मिन् परे 'ब्रुवो वचिः' इति ब्रूस्थाने वच् आदेशे। तस्य द्वित्वे, अभ्यास्य हलादिशेषे (ववच् अ) अभ्यास व स्थाने (लिटि अभ्यासस्योभयेषां) सूत्रेण सम्प्रसारण उकारे। उपधा दीर्घे रुपम्। ऊचतुः—प्रथमही बोले, (ब्रू अतुस्) वच् आदेशे असंयोगात् लिट् कित् भवति, तेन अतुस् कित् अस्ति। ततो द्वित्वं प्राप्नोति, सम्प्रसारणं प्राप्नोति। अत्र एष निर्णयो यत्सम्प्रसारणं तदाश्रयं कार्यं बलवत् इति परिभाषाबलेन वचिस्वपि यजादीनां किति सूत्रेण द्वित्वस्य अपे-क्षयां प्रथमं वस्थाने उ-सम्प्रसारणे। तदाश्रयकार्यं सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपम। तदनन्तरं द्वित्वादिकार्य भवति। ऊचतु सवर्ण दीर्घे। ऊचुः। ब्रूधातुः तासप्रत्यय परे अनिट् अकारवाच। तेन थलि इट् विकल्पः, उवचिथ यदा न इट् तदा चोः कुः इति कुत्वे उवक्थ ऊचथुः—उवाच ऊचिव-म। उचे=ब्रू 'लिट्' त, एश्, असंयोगात् लिट कित्परे प्रथमं सम्प्रसारणं पश्चात् द्वित्वादिकार्यम्। ऊचाते ऊचिरे। ऊचिषे ऊचाथे ऊचिध्वे, ऊचे, ऊचिवहे ऊचिमहे। वक्ता (कल स्पष्ट बोलेगा) वह सदा निष्पक्ष बोलेगा। वक्ष्यति— स्य परे वच् चकारस्य कुत्वं क। सस्य षः कष=क्ष, वक्ष्यति, वक्ष्यतः वक्ष्यन्ति ब्रवीतु ब्रूतात् ब्रूतां ब्रुवन्तु, ब्रूहि ब्रूतात् ब्रूतं। ब्रवानि ब्रवाव ब्रवाम। एवं ब्रूतां ब्रुवातां ब्रुवताम्। ब्रूष्व बुबाथां ब्रूध्वं ब्रवै ब्रवावहै ब्रवामहै। अब्रवीत् अद्य भिन्नभूतकाले समासस्पष्टोच्चारणकर्ता अर्थे ल ति इलोप अट। ब्रुवः ईट गुणे अवादेशे। अब्रूताम् अब्रुवन् अब्रवीः अब्रूतम् अबूत अब्रूवम् अब्रूव अब्रूम। अब्रूत अब्रूवाताम् अब्रूवन्त अब्रूथाः, ब्रूयात् स्पष्ठोच्चारण विषयक विधि, आज्ञा प्रेरणा प्रार्थना सम्भावनायां लिङ्। ब्रूयातां ब्रूयुः ब्रूयाः ब्रूयातां ब्रूयात ब्रूयाम्। ब्रुवीत। अत्र सीयुट विशेषः। ब्रुवीयाताम् ब्रूवीरन् ब्रूवीथाः।

आशीर्लिङ स्पष्ट उच्चारण विषयक आशीर्वाद अर्थमें (वच् यास्त) किदाशिषि इत्यनेन यासुट् कित्, तस्य फलं वचि स्वपियअदीनामिति सम्प्रसारणम्। उच्यात् उच्यास्ताम् उच्यासुः। उच्याः उच्यास्म। यदा आत्मनेपदं तदा न कित् न सम्प्र-सारणम्। अतो वच् सी स् त कुत्वे षत्वे ष्टुत्वे वक्षीष्ट।

अब्रवीत् अब्रूतां अब्रूत। ब्रूयात् ब्रुवीत। उच्यात् वक्षीष्ट। अवोचत् अवोचत अवक्ष्यत् (चर्करीतञ्च) 'चर्करीत'मिति यङ्लुगन्तं तदादौ ओबयम्। ६ऊर्णुञ् आच्छादने ऊर्णोतेर्विभाषा ।७।२।५। ऊर्णोतेर्वृद्धिर्वा स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके। उणौति उर्णोति ऊर्णुतः ऊर्णुवन्ति। ऊर्णुवाते ऊर्णुवते। (ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्) नन्द्राः संयोगादयः ।६।१।३। अचः परा संयोगादयो न-द-रा द्विर्न भवन्ति। 'नु' शब्दस्य द्वित्वम्। णत्वस्यासिद्धत्वात्। 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने' इति त्वनित्यम्, 'उभौ साभ्यासस्ये'ति लिङ्गात्। ऊर्णुनाव

(७) अस्यति प्रक्षेपणार्थक अस बोधनार्थक वच् प्रकथनार्थक ख्या, धातुसे परे। च्लिको अङ् आदेश हो। (८) वच्को 'उम्' आगम हो अङ् परे। अवोचत्—प्रवचनार्थक ब्रूधातोः समाप्तप्रवचनक्रियाकर्तरि लुङ् ति इलोपे अट् च्लेः—अङ् (अस्यतिवक्ति सूत्रेण) तस्य आर्धधातुकसंज्ञा ब्रूस्थाने वच् आदेशे अङ्परे वच उम्, आदेशे, मित्वात् अन्त्य अचः नकारस्य अकारः। तस्मात् परः उः (अव उच् अत्) दशायां गुणे। अवोचत् अवोचताम् अवोचन्। अवोचः अवोचतम् अवोचत। अवोचम् अवोचाव अवोचाम। अवोचत अवोचेताम् अवोचन्त। यदा सभायां साधु अवक्ष्यत्।

(म०सू०) चर्करीतम् यह यङ्लुङन्तका नाम है। यङ् लुङन्तसे बना हैं उसी का परिचय भी दे रहे हैं। च—उसको अदादिगण में समझें। जिसका फल शपका लुङ् यङ्लुङन्त से भी हो। २४ ञ इत् ऊर्णु—धातुका आच्छादन=आवरण, ढ़कना, परदा ऊनी कपड़ा धारणके अनुकूल किया अर्थः। स्वरितञित् धातु उभयपदी है। अनेक अच् सेट् तथा सकर्मकः यथा—सशरीरम् ऊर्णौति। आच्छादन फलका आश्रय (कर्म) शरीर है तदनुकूल क्रिया कर्तामें है, ऊर्णा (ऊन) इसी धातुसे बना है। जिसका प्रयोजन आच्छादन है। आच्छादन जनकक्रियावाचकऊर्णधातोः आवरण क्रियाकर्तरि वर्तमाने लट् तिप् शपोःलुक् ततः।

(९) ऊर्णुञ् ऊर्णोतेः=ऊर्णधातुको विकल्पसे वृद्धि हो हलादि (तिप् सिप् मिप्) सार्वधातुकपरे अलोन्त्यपरिभाषया अन्त्य-अल्-उ स्थाने वृद्धिर्भवति, ऊर्णौति यदा न वृद्धिः तदा सार्वधातुकगुणः। ऊर्णोति। पिद्भिन्नः ङिद्भवति, तस्य फलं गुणाभावः। ऊर्णुतः ऊर्णुवन्ति। शीतकालमें सभी शरीर ढकते हैं। अजादि विभक्ति परे उवङ्। ऊर्णौसि ऊर्णथः ऊर्णुथ। ऊर्णौमि ऊर्णोमि ऊर्णुव, ऊर्णुम। आच्छादन फल कर्तृगामी हो तब ऊर्णुते ऊर्णुवाते, अजादि विभक्ति परे उवङ्। ऊर्णुवते। ऊर्णुसे ऊर्णुवाथे, ऊर्णुध्वे। ऊर्णुवे ऊर्णवहे ऊर्णुमहे (वा) ऊर्णुधातुसे आम् नहीं कहें। इजादि या गुरुमान समझकर आम् प्राप्त था।

नन्द्रा अचः—अच्से परे संयोगादयः—संयोगसंज्ञकवर्ण आदिमें हों ऐसे नन्द्रा न् द् र् को द्वित्व न हो। नु शब्दको द्वित्व हो, यतः द्वित्वदृष्टया णत्वमसिद्धं भवति फलतः ततोऽभ्यासात परो न ण भवति। नकारलोप नुस्वारपञ्चमौञ्झलि धातुषु। सकारः शकारश्चेति षाट्टवर्गस्तवर्गजः। धातुका अवयव झलिपरे अनुस्वार कहीं

ऊर्णुनुवतुः ऊर्णुनुवुः। **विभाषोर्णोः** ।१।२।३। ऊर्णोतेः पर इडादिप्रत्ययो वा ङित् स्यात्। ऊर्णुनुविथ। ऊर्णुनविथ ऊर्णुविता-उर्णविता। ऊर्णौतु ऊर्णोतु। ऊर्णवानि ऊर्णवै। **गुणोऽपृक्ते** ।७।३।९१। ऊर्णोतेर्गुणः स्यादपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके। वृद्ध्यपवादः। और्णोत् और्णोः और्णुतम्। ऊर्णुयात् ऊर्णुयाताम् ऊर्णुयुः ऊर्णुयाः। इह वृद्धिर्न, 'ङिच्चपिन्ने' ति व्याख्यानात् ऊर्णुयात् ऊर्णुयास्ताम् ऊर्णुयासुः। ऊर्णुविशिष्ट ऊर्णविषीष्ट और्णुवीत्।

पञ्चमवर्ण ङकरादि देखे जाते हैं, वे नकार स्थानिक है। अनुस्वारः यथा—स्रंसु ध्वंसु भ्रंसु इति पञ्चम वर्णः। यथा अङ्क अञ्च लुण्ठ मन्थ तृम्फ चकार परे सकारः शकारं हो, यथा—ओ व्रश्च, रेफ षकारसे परे टवर्ग तवर्गज है। रेफसे परे तवर्ग न ऊर्णु है। षकारसे परे टवर्ग ष्टुना ष्टुः है। ऊर्णुनाव—कुहरेसे सूर्य ढके थे। आच्छादन जनक क्रियावाचक ऊर्णुधातोः अप्रत्यक्षसमाप्तक्रियाकाले लिट्। इजादि गुरुमान् धातुः। इति ज्ञात्वा आम् प्राप्नोति, ऊर्णोतेराम्नेतिवाच्यम्' । इति निषेधे अयम् अजादिधातुः। अतः द्वितीय—एकाचः द्वित्वं भवतु, एतेन रेफसहितस्य णूं इत्यस्य द्वित्वं प्राप्नोति अत्र अच्—ऊकारः, तस्मात् परः संयोगः रेफः, तस्य द्वित्वं प्राप्तं, नन्द्रा इति निषेधे, ततः नुशब्दस्य द्वित्वं, रेफात्परस्य अभ्यासनकारस्य पुनः णत्वं लिट्स्थाने तिप् णल् अनुबन्धलोपे, अभ्यासोत्तरखण्ड-नुघटक-उकारस्य अचो-ञ्णिति वृद्धिः अवादेशे रुपम्। ऊर्णुनुवतुः अत्र अपित् लिट् कित्, तस्य फलं गुण निषेधः। अजादि परे उवङ्।

विभाषा ऊर्णो—ऊर्णुधातुसे परे, इट् आदिमें हो ऐसा प्रत्यय ङित् विकल्पसे हो, सेट् धातुसे परे ङित पक्षे गुणनिषेध हो। तदा उवङ् यदा न ङित् तथा गुणो भवति। यथा—ऊर्णुन+इथ। अत्र विभाषाउर्णोः इतिसूत्रेण इडादिथल् ङित् भवति तदा गुण निषेधः। उवङ् आदेशश्च। यदा न ङित् तदा गुण अवादेशश्च। ऊर्णनविथ—तुमने चावलको कब ढका था। ऊर्णुनुवथुः ऊर्णुनव। ऊर्णुनाव ऊर्णु-नविव ऊर्णुनविम। ऊर्णुनुवे ऊर्णुनुवाते ऊर्णुनुविरे। थासः से ऊर्णुनुविषे ऊर्णु-नविषे ऊर्णुनुविढ्वे—ध्वे। यदा आवरणजनकक्रिया श्वः परश्वः कालिकी तदा ऊर्णुविता उर्णविता। विभाषोर्णोः इति ङित् विकल्पः। ऊर्णविता ऊर्णवितारौ ऊर्ण-तारः। आत्मनेपदे ऊर्णुवितासे ऊर्णुवितासाथे इत्यादि सामान्यभविष्यकालिक—आच्छादनक्रिया यत्र तत्र ऊर्णुविष्यति ऊर्णुविष्यतः ऊर्णुविष्यन्ति। यदा न ङित् न गुणनिषेधः। तदा ऊर्णविष्यति ऊर्णविष्यतः ऊर्णविष्यन्ति। ऊर्णुविष्यते ऊर्णविष्यते ऊर्णुविष्यसे ऊर्णविष्यसे ऊर्णुविष्ये ऊर्णविष्ये गरम वस्त्रके आच्छादन, आवरण, परि-धान विषयक आज्ञा, प्रेरणा आशीर्वाद, अर्थं हो तब लोट्। ऊर्णोतिविभाषा इति वृद्धिः। ऊर्णौतु यदा न वृद्धिः तदा गुणः ऊर्णोतु ऊर्णुतात् ऊर्णुताम् ऊर्णुवन्तु। शीत-कालमें ऊनका वस्त्र धारण करें। ऊर्णुहि ऊर्णुतात् ऊर्णुतम् ऊर्णुत ऊर्णवानि ऊर्णवाव ऊर्णवाम ऊर्णुताम् ऊर्णुवाताम् ऊर्णुवताम् ऊर्णुष्व ऊर्णवै।

और्णु विष्टाम् । ऊर्णोतेर्विभाषा ।७३।९०। ऊर्णोतेरिडादौ परस्मैपदपरे सिचि वा वृद्धिः स्यात् । पक्षे गुणः । और्णावीत् और्णाविष्टाम् । और्णवीत् और्णविष्टाम् ॥ इत्यदादिः

अथ जुहोत्यादि प्रकरणम्

हु दानाऽऽदनयोः जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ।२।४।७५। जुहोत्यादिभ्यः परस्य शपः श्लुः स्यात् श्लौ ।६।१।१०। धातोर्द्वे स्तः श्लौ । जुहोति जुहुतः । 'हुश्नु

---

(२) अपृक्ते—अपृक्तसंज्ञक हलादि पित्सार्वधातुक परे ऊर्णुधातुको गुण हो । वृद्धिको बाधकर । यह वृद्धि ऊर्णोतेर्विभाषा की है । और्णोत्—अनद्यतनसमास आच्छादन क्रियाकाले लङ् तिप इकारलोप, आट् वृद्धिः, ऊर्णोतेर्विभाषाइति उकारस्य वृद्धिः प्राप्नोति, तां बाधित्वा गुणोऽपृक्तेः इति गुणे,शपः लुकि रूपम् । और्णुताम् और्णुवन् । और्णोः और्णुतम् और्णुत । और्णवम् और्णुव और्णुम । और्णुत—और्णुवाताम् और्णुवत । आच्छादन क्रिया के सम्भावना अर्थमें लिङ् ऊर्णूयात् अकृतसार्वधातुकयोर्दीर्घः । ऊर्णुवीत ऊर्णुविषीष्ट, अत्र विभाषोर्णोः ऊर्णविषीष्ट ।

(३) ऊर्णोतेः—इडादि परस्मैपद सिच्परे ऊर्णुधातुको वृद्धि विकल्प हो । पक्षमें गुण हो । और्णावीत् । ऊर्णु लुङ तिप् च्लि सिच् ईट् आट् आटश्चेति वृद्धिः ऊर्णोतेर्विभाषा—इडादि परस्मैपद सिच्परे उकारस्य वृद्धिः आवदेशे । यदा न वृद्धि तदा विभाषोर्णोः इति ङित् । तस्य फलं गुणनिषेधः । ततः उवङ् आदेशः और्णुवीत् यदा न ङित् तदा गुण अवादेशश्च, और्णवीत् । आत्मनेपदमें और्णविष्ट अत्र ङित् विकल्पः उवङ् आदेशः, यदा न ङित् तदा न गुणः अवादेशश्च ।

इति प्रभाकरमिश्र कृतायां प्रभाकरी टीकायां तुदादयः पूर्णाः ।

हु-धातु हो आदिमें जिस समुदाय विशेषके वह जुहोत्यादि भ्वादिका अन्तर्गण है । इसका भेदक शपस्थाने श्लु आदेश है जो इस गणके धातुको द्वित्व का कारण है । यद्यपि ह्वादि पढ़ सकते थे, जैसे सिन्धु हिन्दुमें ह को स जैसा भ्रम न हो । (१) हु धातुका दान तथा अदन (भोजन) के अनुकूल क्रिया अर्थः । जुहोति शब्दका व्यावहारिक अनुभव हवन करने अर्थमें है, मन्त्रविधिसे आहुति डालना (हवन करना) यहां दान (देवता निमित्तक) स्वाहा है । अदन-भोजन अर्थमें है । (४) जुहोत्यादिगण पठित धातुओंसे शप्को श्लु हो । यह 'श्लु' लोप रूप है । यद्यपि लोप भी कह सकते थे, किन्तु आगे द्वित्व विधान 'श्लु' शब्दोच्चारणसे हुआ है । इसलिए श्लु पढ़ा ।

(९०५) श्लु—शप् लुक्के विषयमें धातुको द्वित्व हो, जुहोति=हवन करोति । देवता विषयक भोजनक्रियावाचक हुधातोः कर्तरि वर्तमाने लट् तिप् शप् 'जुहोत्यादिभ्यः' शप् स्थाने श्लुः (अदर्शन) श्लौ इति सूत्रेण द्वित्वे हुहुति, पूर्वस्य अभ्याससंज्ञा, तस्य फलं कुहोश्चुः चवर्ग झ, आन्तरतम्यात् । अभ्यासे चर्च इति झलां जश् जकारः । द्वितीयहुशब्दस्य सार्वधातुकगुणे रूपम् (जुहोति) वर्तमानकालिकहवन

वो'रिति यण्, जुह्वति ।**भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च** ।३।१।३९। एभ्यो लिट्याम्वा स्यादामि श्लाविव कार्यं च। जुहवाञ्चकार। जुहाव। होता होस्यति। जुहोतु जुहतात् जुहुतां जुह्वतु । हेर्धिः जुहुधि । आटि परत्वाद् गुणः । जुहवानि

दान भोजन क्रियावाचक हुधातोः द्विवचने तस् अयम् अपित् सार्वधातुकः ङिद्वत्, तस्य फलं गुण नि० । रुत्वविο जुहुतः। अनेककर्तृषुस्वाहा भोजनानुकूलक्रिया वर्तमाने सति हु धातोः ल–झि, शप्=श्लु श्लौ द्वित्वादिकार्ये। झोन्तः इति प्राप्ते अन्तादेशं बाधित्वा। उभे अभ्यस्तं सूत्रेण जुहोत्यादिगणे पठिताः धातवः अभ्यस्त-संज्ञका भवन्ति। षष्ठाध्यायप्रकरणे विहितानाँ षाष्ठं द्वित्वम् (६) **अदभ्यस्तात्–** अभ्यस्त संज्ञकधातुसे परे झको अत् आदेश हो। इति झ स्थाने अत। जुहु+अति, अत्र उवङ् प्राप्तः तं बाधित्वा 'हुश्नुवोः' सार्वधातुके इति यण् जुह्वति। जुहोषि जुहुथः जुहुथ। जुहोमि जुहुवः जुहुमः।

भीह्री भायार्थक भी, लज्जार्थक ह्री, पालनार्थक भृ, हु धातुओंसे आम प्रत्यय हो, लिट् परे, विकल्पसे। श्लुवच्च—आम्परे श्लुकी तरह द्वित्वादि कार्य भी हो। जुहवाञ्चकार-हवनदान अदनभक्षणक्रियावाचक हुधातोः समाप्त=अप्रत्यक्ष क्रियाकाले कर्ता अर्थे लिट् भीह्रीभृ आदिसूत्रेण आम् तस्य श्लुवद्भावे। यस्य फलं द्वित्वम् अभ्यासादिकार्यम्। आमः इतिलिट् लुक्। जुहवाम् दशायां कृञ्चानुप्रयुज्यते इति कृलिट्, भू लिट्, अस् लिट् इति अनुप्रयोगे। जुहवां कृलिट्। तिप्णल्। कृ इत्यस्य द्वित्वे कृ कृ (उरत्) कर कृ=हलादिशेषे, वृद्धि बाधित्वा गुणे उपधावृद्धिः। मान्तस्य पदसंज्ञा अनुस्वारपरसवर्णे। राजनौ जुह्वाञ्चक्रतुः। मुनयः जुह्वाञ्चक्रुः। जुह्वाञ्चकर्थ। यूयं जुह्वाञ्चक्र। अहं कदा जुह्वाञ्चकार इति न जाने, आवां जुहवाञ्चकृव। एवं जुह्वाम्बभूव जुह्वामास इत्यादि। यदा आम् न तदा हुशब्दस्य द्वित्वादिकार्ये। जुहाव जुहुवतुः जुहुवः। जुहविथ जुहोथ जुहुवथुः। जुहुव। जुहाव जुहव जुहुविम जुहुमिव। अद्यभिन्नभविष्यकाले अर्थे लुट् श्वः होता—तिप् तास् डा गुण। होतारौ होतारः। होतासि स सदा होष्यति हवनं करिष्यति। अयम् अनिट् धातुः। इट् न भवति। किन्तु आर्धधातुक गुणएव। यदा हवन, दान, भोजन स्वाहाविषये आज्ञा प्रेरणा, प्रार्थना, आशीर्वादः सम्भवति। तत्र जुहोतु शप् श्लु द्वित्वादिकार्य पूर्ववत्। एरुः लट् सम्बन्धि इकारस्य उः इति विशेषः। 'तु' स्थाने तातङ् जुहुतात् तस स्थाने तां जुहुताम् आप हवन करें। ग्रहबाधा हटेगी। अनेक कर्तामें हवन क्रिया— वर्तमान हो तब जहुझि जदभ्यस्तात् इति झ स्थाने 'अत्' एरुः इस्थाने उः। हुश्नुवोः इति यण् जुह्वतु। जुहुधि (तुम हवन दान करो) जुहुधि सिस्थाने हि। तस्य हुझल्भ्यो हेर्धिः इति 'धि' आदेशे। जुहुतं जुहुत। जुहवानि। अहम् आवां वयं कर्तामें हवनक्रिया की प्रेरणा सम्भावना हो तब उत्तम पु० मिप, मेर्निः आडुत्तमस्य पिच्च इति आट्, पित् अस्ति। तस्य फलं हुश्नुवोः यणं बाधित्वा गुणः, अवादेशश्च, एवं जुहवाव, जुहवाम। अजुहोत्––यदा गतदिने हवनादिजननीक्रिया समाप्ता, तदा भूतकाले लङ्। अजुहुति इकारलोपे गुणे। तौ ह्यः अजुहुताम्। ते गतसम्वत्सरे

अजुहोत् अजुहुताम्। परत्वाज्जुसि चेति गुणः अजुहवुः। जुहुयात् हूयात्। अहौषीत् अहोष्यत्। ञिभी भये बिभेति। **भियोऽन्यतरस्याम्** ।६।४।११५। भिय इद्वा स्याद्धलादौ सार्वधातुके क्ङिति। बिभितः बिभीतः। 'एरनेकाच' इति यण्। बिभ्यति। बिभयाञ्चकार बिभाय। भेता भेष्यति। बिभेतु बिभितात् बिभीतात् बिभितां बिभीतां। अबिभेत् बिभियात्। बिभीयात्।

अजुहवुः। अजुहुञ्झि दशायाँ सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च इति अभ्यस्तसंज्ञकपरस्य झि स्थाने जुस्। अपित् ङित् अस्ति तस्य फलं गुणनिषेधः। तेन उवङ् प्राप्नोति तं बाधित्वा, हुश्नुवोः यण्प्राप्तः। तं तिरस्कृत्य।

जुसि इक्—इ उ ऋ ऌ हो अन्तमें ऐसे अङ्गको गुण हो, अजादि जुस्=उस् परे। अडागमे रु० वि० रुपम्। अजुहोः अजुहुतम् अजुहुत। अजुहवम् अजुहुव। जुहुयात्—हु धातोः विधिनिमन्त्रण आमन्त्रणसाम्प्रश्नप्रार्थना अर्थे लिङ् तिप्यासु शपश्लु द्वित्वादिः, जुहुयाताम् जुहुवुः। आशीर्लिङि (तुम हवन करो) तुम्हे सुख मिलेगा। हूयात् अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घं हूयास्ताम् हूयासुः। अत्र यासुट् कृते सति अजादि जुस नास्ति। तेन जुसि च इति गुणो न। हवनक्रिया समाप्ता इति भूतकालः तस्मिन् अर्थे लुङ्। अ हु स् ईत्। अत्र सिचि वृद्धिः अनिट् धातुः इट् न भवति षत्वं अहौषीत् अहौष्टाम् अहौषुः। अहौषीः। यदा अहोष्यत्=हवनम् अकरिष्यत् तदा पुण्यं अलप्स्यत्।

(२) **ञिभी** आदिर्ञिटुडवः इति ञि इत् भी धातुका भयभीतभवनानुकूल व्यापार अर्थ है अनिट अकर्मकः। फलव्यापारसमानाधारात्। भयकी क्रिया कर्तामें वर्तमान रहे, तब बिभेति—बालकां भयार्थक भीधातोः वर्तमानभयजनक क्रियाकर्ता अर्थे लट्, ति, शप्, श्लु द्वित्वादिकार्यं। द्वितीयस्य इकारस्य गुणे रूपम्। चोरसे डरता है। बालक अन्धेरेमें भूतसे डरते हैं। (९) भियो—भीधातुको ह्रस्व इ हो अन्यतरस्यां=विकल्पसे। हलादि। कित्ङित् सार्वधातुकपरे। बालकौ बिभीतः। दो कर्ताकी विवक्षामें द्विवचने तस्। अपित्सार्वधातुक ङित् होनेसे भियोन्यतरस्या- मिति इकारस्य ह्रस्वविकल्पः बिभितः। अन्येषु—हलादिङित् सार्वधातुकपरे इस्थाने ह्रस्वविकल्प। चौराः बिभ्यति झस्थाने अत् अदभ्यस्तात्। यण्। बिभेषि बिभिथः बिभीथ बिभिथ, बिभीथ। बिभेमि बिभिवः बिभीव। बिभयाञ्चकार अनद्यतन परोक्षकालिक्भयजननीक्रिया समाप्तकाले लिट् भीह्री भृहुवां श्लुवच्च, इति आमि, द्वित्वादिकार्यें। कृलिट् अनुप्रयोगे। यदा न आम् तदा न अनुप्रयोगः। ततः लिट् स्थाने तिप्णल् द्वित्वादिः। वृद्धिः आय् आदि कार्यें। बिभाय बिभ्यतुः बिभ्युः। बिभयिथ बिभेथ बिभ्यथुः बिभ्य। बिभाय बिभय बिभ्यिव बिभ्यिम। भारद्वाजनिय- मेन इट् विकल्पः, थलि परे अन्यत्र क्रादिनियमात् नित्यम् इट्। भेता—कल डरेगा। भेष्यति=चोरसे सदा डरेगा, बिभेतु, भगवान् आपको सदा भय दें। वह गुरुसे डरे, तो सुधार हो, आशीर्वाद अर्थमें तु को तातङ् होनेपर बिभितात् हलादिङित् मानकर

भीयात् अभैषीत् अभेष्यत्। ह्री लज्जायां जिह्रेति। जिह्रीतः जिह्रियति। जिह्रयाञ्चकार जिह्राय। ह्रेता ह्रेष्यति। जिह्रेतु जिह्रीयात्। अजिह्रेत्

भियोऽन्यतरस्याम्से ह्रस्व विकल्प है। श्वानौ बिभीताम्। युवानः बिभ्यतु। बिभिहि बिभीहि बिभितात् बिभीतात्। तुम नरकसे सदा डरो। बिभितं बिभीत। अहं गुरोः बिभयानि, आवां बिभयाव। वयं बिभयामः। अट पिद्भवति तस्य फलं गुणः अयादेशश्च। यत्र हलादिः तत्रैव ह्रस्वविकल्पः। अद्यभिन्नसमाप्तभयक्रियाकाले लङ्, अट्, शप्, श्लु द्वित्वादिकार्य पूर्ववत्। अबिभेत् अबिभिताम् अबिभीताम् अबिभयुः अबिभेः अबिभीयम्। बिभियात् बिभीयात् भय क्रियाकी सम्भावना अर्थमें लिङ् यासुट्। इकारस्य ह्रस्वविकल्पे। भीयात् भीयास्तां भीयासुः। अभैषीत्। इगन्ताङ्गस्य वृद्धिरिति विशेषः अभैष्टाम् अभैषुः अभैषीः अभैष्टम् अभैष्ट। अभैषम् अभैष्व अभैष्म। यहां भूतकाल-भयकी समाप्त क्रिया है। स अध्यापकात् अभेष्यत् तदा अध्ययनमकरिष्यत्।

(३) ह्री धातुका लज्जाजनकक्रिया अर्थः। प्रायः अकर्मक तथा अनिट् इसका रूप भीधातुके सदृश समझें। कर्तामें लजाना क्रियावर्तमान रहे तब श्वसुरात् जिह्रेति दम्पती, शिष्याः जिह्रियति। अत्र झ स्थाने अत् कृते इयङ्। जिह्रियाञ्चकार लिट् परे (भी ह्री) आदिसूत्रेण आम् इत्यादि कार्य। स अधर्माकरणात् कदा जिह्राय इति न जाने। श्वः ह्रेष्यन्ति एवं मघवा जिह्रतु। यथा नारदः अजिह्रेत् एवं स जिह्रीयात्। अधर्म कृत्वा यथा सः अह्रैषीत् अह्रेष्टाम् अह्रेषुः अह्रेषीः अह्रेष्टम् अह्रेषम्। एवं भवानपि अह्रेष्यत्।

(४) पृ धातुका पालन, लानन और पूरण, पूर्ति करनेके अनुकूल क्रिया अर्थः। अयम् सेट् सकर्मकश्च। गोपः दुग्धपात्रे पयः पिपर्ति। यहां पूरणफल उसके अनुकूल क्रियाका आधार भिन्न=भिन्न है। माता वत्सं पिपर्ति। बछड़ेका पालन करती है। (६१०) अर्ति—ऋ, पिपर्ति=पृ धातुके अभ्यासको इकार अन्तादेश हो श्लुके विषय में। पालन, रक्षण, पूरण, आपूर्ति, जनकव्यापारवाचक पृधातोः क्रियावर्तमाने कर्तरि लट् तिप् (शपः श्लुः-अदर्शनम्) द्वित्वं पृ पृति इति दशायामभ्यास-ऋकारस्य 'अर्तिपिपर्त्योश्च' सूत्रेण इकारे रपरे। हलादिशेषे, द्वितीयऋकारस्य सार्वधातुक गुणे। दो कर्तामें पालनपूरणजनक क्रिया विद्यमान हों तब द्विवचने तस् श्लु आदि कार्ये इत्वे हलादि शेषे (पिपृतः) ततः। (१) ओष्ठ्यपूर्वस्य=अङ्गका अवयव ओष्ठ स्थान वाला वर्ण पूर्वमें हो ऐसा ऋ तदन्त अङ्ग को ल अन्तादेश हो। द्वितीय ऋकारस्य पूर्ववर्णः पकारः ओष्ठसंज्ञक, अङ्गस्य अवयवश्चास्ति। ऋकारस्य रपर सहित-उर् आदेशे। पिपुर् तस् ङित्। गुण निषेधे, हलि-रेफ या व अन्तमें हो ऐसे धातुके उपधाके इक्को दीर्घ हो, हल वर्ण परे। रेफान्त धातु पिपुर् है उसके उपधाको दीर्घ हुआ। पिपूर्तः पयःबालकौ। गावः वत्सानि पिपुरति। पृ+झि झ स्थाने 'अत्' द्वित्वे अभ्यास इत् ओष्ठ्यपूर्वस्य उर् पिपुरति। ङित् भावेन गुणो न भवति। पिपर्षि

जिह्रीयात् ह्रीयात् अह्रैषीत्। अह्रेष्यत्। पृ पालनपूरणयोः। **अर्तिपिपर्त्योश्च**।४।४।७७। अभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ। पिपर्त्ति। **उदोष्ठ्यपूर्वस्य**।७।१।१०२। अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ऋतदन्तस्याङ्गस्य उत्स्यात् हलि च।८।२।७७। रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि। पिपूर्त्तः पिपुरति। पपार **शृदृप्रां ह्रस्वो वा**।७।४।१२। शृदृप्रां ह्रस्वो वा स्यात् किति लिटि। पप्रतुः पप्रुः। **ऋच्छत्यृताम्**।७।४।११। तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोर्ऋतां च गुणो, लिटि। पपरतुः पपरुः। **वृतो वा**।७।२।३८। वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्चेटो दीर्घो

पिपूर्थः पिपूर्थ। पिपर्मि पिपूर्वः पिपूर्मः। पालनपूरणफलजनकक्रियावाचक पृधातोः परोक्षसमाप्त क्रियाकाले अर्थे लिट्, तिप्, णल् द्वित्वे अभ्यास–ऋकारस्य उरत् इति अत् हलादिशेषे गुणे उपधायाः वृद्धिः। पपार। पपृ अतुस् ततः। (३) हिंसार्थक शृ, विदारणार्थक दृ, पालनपूरणार्थक पृ धातुओंको कित् लिट् परे ह्रस्व विकल्प हो। ह्रस्वे कृते यण् पप्रतुः। यदा न ह्रस्वः तदा। (४) तुदादि गण पठित ऋच्छ धातु तथा ऋ धातु और ऋदन्त धातुको गुण हो लिट् परे। प्रसङ्गमें ऋदन्त धातु है, दीर्घ ऋको गुण। पपरतुः। पपरुः पपरिथ उदृदन्तैः नियमसे इट्। पप्रथुः पपरथुः। पप्र, पपर पपार पपर पपृव पपरिव।

वृतो निरनुबन्ध वृ से सामान्यका ग्रहण होता है। अतः वृङ् वृञ् और दीर्घ-ऋदन्तधातुओंसे परे इट्को विकल्पसे दीर्घ हो, लिट् परे न हो तो। आगामिभविष्य-कालिकपालनपूरणक्रियावाचक पृधातोः लुट् ति तास्, डा, आसलोप गुण, इट्। पर इता। दीर्घ=ऋकारान्तधातोः परे इटो दीर्घविकल्प, परीता परिता। परिष्यति। स्य इट् दीर्घे। यदा न दीर्घः तदा परिष्यति। आजसे गायका पालन करेंगे। स गां पिपर्तु। बोहिनी पिपूर्तात्, पिपूर्ता पिपुरतु। त्वं हस्तावलम्बनी फलैः पिपूर्हि, पिपूर्तात् पिपूर्त पिपूर्त। ङित् हलि परे गुणो न भवति किन्तु उदोष्ठ्यपूर्वस्य रपर उर् हलिच सूत्रेण दीर्घः। पिपराणि=उत्तमपुरुषे आट् मेर्निः आट् पित् भवति। तस्य फलं गुणः। पिपराव, पिपराम। अद्यभिन्नसमाप्तपालनपूरणक्रिया अर्थे लङ् ति अट् शप् श्लु द्वित्वादिः अर्तिपिपर्त्योश्च अभ्यासस्य इत्वे, गुणे अपिपूर्ता अपिपरुः। अपिपः सिप् इलोपे गुणे सलोपे रेफविसर्गे। अपिपूर्तम्, अपिपूर्त। अपिपरम्, अपिपूर्व, अपिपूर्म। हमलोग गड्ढेको भर चुके हैं। पालनपूरणक्रिया विषयक प्रेरणा, सम्भावना, अर्थे लिङ्। पिपूर्यात् यत्र पालन करण विषयक आशीर्वादः, तत्र पूर्यात्। अत्र यासुट् ङित् आस् तेन न गुणः। किन्तु ऋकारस्य उत्वे हलिचेति दीर्घे, पूर्यास्तां पूर्यासुः। पूर्याः पूर्यास्तं पूर्यास्त। पूर्यासं पूर्यास्व पूर्यास्म। आप भण्डार भरें। देवदत्तः कोषम् अपारीत्–पालनपूरणक्रियासमाप्तकाले अर्थे पृ धातोः लुङ् तिप् अट् च्लेः सिच् इट ईट् सिचि वृद्धिः। सलोपे दीर्घे अपारिष्टाम्—तस् ताम् षत्वे ष्टुत्वे वृतो वा इति दीर्घे प्राप्ते। सिचि परस्मैपदपरक सिच्परे वृङ् वृञ् ऋदन्तो इटो न दीर्घं। इति इटः दीर्घनिषेधे। अपारिषुः अपारीः अपारिष्टम्।

वा स्यान्न तु लिटि। परिता परीता। परिष्यति परीष्यति पिपर्त्तु पिपुरतु। पिपूर्हि अपिपः। अपिपूर्त्ताम् अपिपरुः पिपूर्यात् पिपूर्यातां पिपूर्युः। पूर्यात् अपारीत्। **सिचि च परस्मैपदेषु** ।७।२।४०। अत्र वृत इटौ न दीर्घः। अपरिष्टाम् अपरिष्यत्। अपरीष्यत्॥ ओहाक् त्यागे जहाति। **जहातेश्च** ।६।४। ११६। इत्स्याद्वा हलादौ क्ङिति सार्वधातुके। जहितः। **ई हल्यघोः** ।६।४। ११३। श्नाभ्यस्तयोरात ईत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति हलि। जहीतः जहति।

अपारिष्ट। अपारिषम् अपारिष्व अपारिष्म।

यदा वोहिनीम् अपरीष्यत् गाम् च अपरिष्यत् तदा कल्याणं कुलञ्च सुसंस्कृत मभविष्यत् (५) ओइत् हा—धातुका त्यागके अनुकूल क्रिया अर्थ। अनिट् तथा सकर्मकः। पापं जहाति। त्यागरूपफल पापमें है उसका जनकक्रिया कर्तामे। त्याग जनकक्रिया वाचक हा धातोः वर्तमानकाले कर्तरि लट्। तिप् शप् श्लु द्वित्वादिकार्ये जहाति, दो कर्तामें त्यागानुकूलव्यापार विद्यमान हो द्विवचनं तस् जहा-तस् ततः (७) जहाति हा धातुको इकार अन्तादेश हो बिकल्पसे हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे। तस् ङित् अस्ति एव। हलादिरपि। तेन आकारस्य इकारे जहितः यदा न इत्व तदा। (८) ई-श्ना प्रत्ययः अभ्यस्तसंज्ञक धातुके आ जो इ हो, सार्वधातुक कित् ङित् हलादिप्रत्यय परे, नतु घोः=घुसंज्ञक परे न हो। इति सूत्रेण हा-आ ईत्वे जहीतः जहति। त्यागानुकलाक्रियावाचक हाधातोः वर्तमाने लट् बहुवचने झि, द्वित्वादिकार्ये 'अदभ्यस्तात्' सूत्रेण झ स्थाने अत्। जहा अति ततः। (९) श्ना प्रत्यय अभ्यास-संज्ञकधातुके आ का लोप हो कित् ङित् सार्वधातुकपरे। इति ङित्सार्वधातुकं झि प्रत्ययं दृष्टवा आलोपेः। जहासि, जहिथः, जहीथः। जहामि जहिव जहीव। जहौ—पपौकी तरह। त्याग क्रिया की समाप्तिअप्रत्यक्ष रही हो, तब हाधातोः लिट् तिप् णल्। हा हा, ह हा, ज हा, 'आत् औ णलः' णल् स्थाने औ। आतोलोप इट् च, लोपे। जहतुः जहुः जहिथ जहाथ जहथुः जह। जहौ जहिव जहिम। हाता (त्याग कर्ता) हास्यति (त्यागं करिष्यति) जहातु त्यागं करोतु। तु स्थाने तातङ् कृते जहातेश्च वा इट् पक्षे इत् जहितात् जहीतात् जहितां जहीतां जहतु ते दोषान्। सिप् प्रत्यये। (६२०) हा धातुके हि परे आ हो, चात्—च कहनेसे, जहातेश्च, इहल्यघोः से इत् इत् भी हो। रूपत्रयं मूले। जहितं जहीतं जहित जहीत। जहानि जहाव जहाम। आट् पित् है, ङित् नहीं। अतः ङित्का फल नहीं होगा, अजहात्=भूतकाले त्यागानुकूल व्यापारसमाप्त हो, तब लङ् अट् तिप् द्वित्वादि कार्ये। अजहिताम् अजहीताम्, अजहुः। उसि अपदान्तात् इति पूर्वरूपे अजहाः अजहितम् अजहीतम्। मिप्० अजहाम् अजहिव अजहीम।

लोपो जहातेः==हाधातुके आका लोप हो, यकारादिसार्वधातुकपरे जह्यात्-जहा या त् अत्र यकारादिसार्वधातुक 'याति इति हा धातोः आकारस्य लोपे। जह्यातां जह्युः, जह्याः हे तात ? भवान् स्व दोषं हेयात्। 'आशीर्लिङ्' हायात्, अत्र 'एलिङ्'

जहौ। हाता हास्यति। जहातु जहितात् जहीतात्। **आ च हौ** ।६।३।११७। जहातेहौ परे आत्स्यातु। चादीदितौ। जहाहि जहिहि जहीहि। अजहात्। अजहुः। **लोपे यि** ।६।४।११८। जहातेरालोपो, यादौ सार्वधातुके। जह्यात्। 'एर्लिङि'। हेयात्। अहासीत् अहास्यत्। **ऋ** गतौ 'अर्त्तिपिपर्त्योश्च' (त्यभ्यासस्य इकारः) 'अभ्यासस्यासवर्णे'। इयर्त्ति इयृतः इयृति। आर आरतुः आरुः। 'इडत्त्यर्ती'ति नित्यमिट्। आरिथ अर्त्ता। आरिष्यति। इयर्त्तु। इयराणि। ऐयः ऐयताम् ऐयरुः। इयृतात गुणोऽर्त्ती'ति गुणः। अर्यात्। 'सर्त्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च'त्यङ्। आरत्। ऋद्धनोः स्ये'। आरिष्यत्। इति परस्मैपदिनः।

आकारस्य एकारे। हेयासुः। अहासीत्—त्यागकी क्रिया समाप्तरूपभूतकाल यमरम नमातां सक् इट्। अ हा स् इ स् ई त्। इट ईटि सलोपे, दीर्घे रूपम् अहासिष्टाम् अहासिषुः। अहासीः अहासिष्टम् अहासिष्ट। अहासिषम् अहासिष्व अहासिष्म। शिष्यों ने अविवेक छोड़ दिया। स अहास्यत्।

ऋ अनिट् है। गति प्राप्ति, ज्ञान अर्थ, ऋधातु यद्यपि छान्दस वेदमें उपयोगी है, परन्तु लोकके उपयोगमें भी प्रमाण देते है कि बहुलं छन्दसि सूत्रसे ऋ धातुको इत्व होता है। अर्तिपिपर्त्योश्च सूत्रमें अति पढ़नेसे श्लुविकरण प्रयोग प्रमाणित। इत्व विधानके सामर्थ्यसे भाषामें भी मान्य। ऋ+ति दशामें द्वित्व ऋ ऋति। पहले ऋ को उरत् से अत् प्राप्त उसे बाधकर अतिपिपर्योश्च अभ्यास ऋ को इत्व रपर। हलादिशेष। इ ऋ ति। दूसरे ऋ को गुण। इअर्ति असवर्ण अचि परे मिल गया अभ्यासके इ को इयङ् इयर्ति इयृतः तस ङित् है गुणनिषेध होता। अन्य क्रिया पूर्ववत् इयति अभ्यास से ऋ को अत्। ङित् में गुण नहीं। उत्तरखण्ड ऋ को यण इयर्षि इयर्मि। इयृव। लिट लकारमें आर, ऋ ऋ अर ऋ, वृद्धि आदि। आरतुः आरुः। इडत्यर्तिव्ययतीनां से नित्य इट् क्योंकि ऋतो भारद्वाजस्य नित्यनिषेध प्राप्त था, आरिथ आरथुः आर आरिव आरिम। ज्ञान प्राप्ति मोक्षकी परोक्ष क्रिया। अर्ता अर्तारौ अर्तारः। अनद्यतन भविष्यकालमें प्राप्ति या ज्ञानकी क्रिया अरिष्यति। रिद्धनोः से इट) अरिष्यतः अरिष्यन्ति। गमन करेंगे, जानेंगे, पायेंगे। वही प्राप्ति ज्ञान गमन यदि प्रेरणा प्रवृत्ति करानेका विषय ही इयतु इयृताम् इयृतां इयृतु इयराणि। आडुत्तमस्यपिच्च णित् होनेसे न निषेध किन्तु गुण। इयराव इयराम। लङ लकार बीते भूतकालकी गतिक्रिया हो। ऐयः—ऋ त् दशामे श्लौ द्वित्व अभ्यास ऋ को इर। हलादिशेष। इ को इयङ् उत्तरखण्ड ऋ को गुण हल्ङ्याादि तलोप, रविः। आट वृद्धि ऐयः तस को तां ऐयरुः ऐयः ऐयृतं ऐयरं ऐयृव। विधि लिङ्। ऋ या त्। यासुट् ङित् है क्ङिति च से गुणनिषेध इयृतां। आर्शीलिङ्में अर्यात् अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घ प्राप्त उसे बाधकर रिङ् प्राप्त, उसे बाधकर गुणोर्तिसंयोगाद्योः गुण। अर्यास्तां अर्यासुः। आरत। ऋ च्लि त। सर्ति शास्त्रि अर्तिसे च्लिको अङ् ऋदृशोऽङि, गुणः अङि परे। आट आदि आरत आरतां आरन् आरः आरतं आरत, आरिष्यत्।

माङ् माने, शब्दे च। भृञामित् ।७४।७६। भृञ्, माङ्, ओहाङ् एषामभ्यासस्येत्स्याच्छ्लौ। ई 'हल्यघोः'। मिमीते मिमाते। श्नाभ्यस्ते'ति आतो लोपः। मिमते ममे। माता मास्यते। मिमीताम् अमिमीत। मिमीत मासीष्ट। अमास्त अमास्यत। ओहाङ् गतौ। जिहीते जिहाते जिहते। जहे

(६) माङ् ङ् माधातुका माप—नापना, शब्दे च—मे मे ध्वनि के अनुकूलक्रिया अर्थ। यह अनिट्, आत्मनेपदी सकर्मकः। (२) भृञ् पालनार्थक भृ, मापार्थक मा, गमनार्थक ओहाङ् इन तीन धातुओं के अभ्यासको इ अन्तादेश हो, श्लुके विषय में। मिमीते—तोलनं ध्वनिं वा करोति। मापार्थक या ध्वन्यर्थक क्रियावाचक मा धातोः प्रचलित क्रियाकाले कर्तरि लट् ङित्वात् आत्मनेपदे 'त' टेरेत्व। शपः श्लुः द्वित्वादिकार्ये 'ममाते' दशायां भृञामित् सूत्रेण अभ्यास-अकारस्य इकारे, उत्तरखण्डस्य आकारस्य हल्यघोः इति ईत्वे, बालकौ मिमाते—आतां परे श्ना अभ्यस्तयोरात इति आलोपे, प्रजाः मिमते झि अत् कृते लोपः अभ्यासस्य। मिमीषे मिमाथे मिमीध्वे। मिमे मिमीवहे मिमीमहे। उपसर्गबलात् अनुमिमीते अनुवाद करना, उन्मिमीते—आंख खोलना, उपमिमीते—उपमा देना, निर्मिमीते निर्माण करना, अवमिमीते—अपमान करना। ममे, ममाते ममिरे। ममिषे ममाथे ममिध्वे। ममे ममिवहे ममिमहे। माता—माप कर्ता में में ध्वनि करना, तोलन क्रिया। सामान्य भविष्यमें विवक्षित हो तब। मास्यते। तुलां करिष्यति मेमे ध्वनि वा। मिमीतां तोलनं करोतु, मिमातां मिमतां। मिमीष्व मिमाथां मिमीध्वम्। अहं तव बलं मिमै, मिमावहै मिमामहै। तोलनक्रिया अद्यतनकालमें समाप्त हो तब लङ् (स शतद्रोणं व्रीहिम्) अमिमीत। तौ अमिमातां ते अमिमत। त्वम् अमिमीथाः अमिमाथाम् अमिमीध्वम्। अमिमे अमिमींवहि अमिमीवहि। मिमीत—आप चना, मटर, दिल्ली, तौलें, मीसीष्ट। अमास्त अमासाताम् अमासत। अमास्थाः आमासाथाम् अमाध्वम् अमासि अमास्वहि। बहुतकर्तामें तोलना जाय जोखने की समाप्त क्रिया। मिमीत, ध्वनि या तुलाजनकक्रियाकी सम्भावना प्रेरणा, प्रगट हो। मा धातोः लिङ् अभ्यासस्य भृञामित्, द्वितीयस्य ईहल्यघोः ईत्, वह धान तौले या चना। मिमीयातां मिमीरन्। त्वं गोधूमं मिमीथाः, यूवां काष्ठस्य वस्तु मिमीयाथां, यूय पटोलं मिमीध्वम् अहं किं मिमीय मिमीवहि मिमीमहि। स सर्वस्मिन्काले सुवर्णं मासीष्ट। पक्षिणः तडागम् अमास्त। यदि कृष्णम् अमास्यत् सत्या सत्यमत्राप्स्यत्।

(७) ओहाङ्—ओ ङ् इत् हाधातोः गमनमर्थः। अयं ङित् आत्मनेपदी, अनिट् सकर्मकश्च। स क्रीडास्थलं जहीते—जाता है। संयोग (फल) क्रीडास्थल है। तदनुकूलकर्ता भिन्न है। गमनार्थक हा धातोः वर्तमाने लट शपः श्लु भृञामित् अभ्यासस्य इकारे, आत्मनेपदे त,ङित्परे ई—हल्यघोःईकारे जिहीते। रामकृष्णौ मल्लस्थलं जिहाते, चाणूरादयः जिहते। अभ्यस्तात्परस्य झ स्थाने अतु, आलोपे। जिहीषे

हाता हास्यते। जिहीताम् अजिहीत। जिहीत हासीष्ट। अहास्त अहास्यत।

डुभृञ् धारणापोषणयोः। बिभर्त्ति बिभृतः बिभ्रति बिभृते। बिभ्राते बिभ्रते। बिभराञ्चकार। बभार बभर्थ। बभृव बभृम। बिभराञ्चक्रे बभ्रे। भर्त्ता भरिष्यति भरिष्यते। बिभर्तु बिभृहि विभराणि भिभृतां बिभृध्वं। अविभः अबिभृताम् अविभरुः। अभिभृत बिभृयात् विभ्रीत। 'रिङ्शये'ति

जिहाथे जिहिध्वे। अहं विद्यालयं जिहे, जिहीवहे, जिहीमहे। परोक्षकालिक वह कब गया मालूम नहीं। जहाते जहिरे जहिषे जहाथे जहिध्वे। जहे जहिवहे जहिमहे। क्रादिनियमात् इट्। हाता=गमनकर्ता। हास्यते=गमनं करिष्यते। सकुसंगति जीहीताम्। शिष्यौ जिहाताम्। भक्ताः तीर्थे पापं जिहताम्। त्वं सर्वत्र जिहीष्व जिहाथां जिहीध्वम्। जिहै जिहावहै जिहामहै। अत्र आट् आगमः पित् अस्ति। तस्य फलं आकारलोपो न। किन्तु सवर्दीर्घे, एत ऐ अजिहीत्—अद्यतनभूतकालिकगमनानुकूलव्यापारः, तौ परश्वः अजिहतां ते श्वः लक्ष्मणपुरं अजिहत, यथा—त्वं काशीम् अजिहीथाः। अजिहाथाम् अजिहीध्वम् अजिहीय अजहीवहि अजहीमहि। गमनविषयक विधि प्रेरणा कर्ता अर्थे लिङ् जिहीत (वह जाय) जिहीयाताम् जिहीरन्। हसीष्ट हासीयास्ताम्। अहास्त (वह बम्बई गया) व्यापारिणौ विदेशम् अहासाताम्, अहासत। अहास्थाः अहासाथाम् अहाध्वम्। अहासि अहास्वहि अहास्महि अहास्यत।

(८) डुभृञ्==डु ञ् इत् भृधातुका धारण पोषण पालन जनकक्रियाअर्थः। अनिट् उभयपदी, सकर्मकः सः पुत्रं बिभर्ति। धारणपोषणजनक क्रिया वर्तमाने लट् तिप् शपः श्लु विषये द्वित्वादिकार्ये भृञामित् इति अभ्यासस्य इ। पितरौ बिभृतः। भ्रातरः स्वान् बिभ्रति। यत्र भरणपोषणक्रियाजन्यं फलं कर्तृगामी वर्तते तत्र बिभृते, यत्र ङित्प्रत्ययः तत्र गुण निषेधो भवति। बिभ्राते बिभ्रते बिभृषे बिभ्राथे बिभृध्वे। बिभ्रे बिभृवहे बिभृमहे। परोक्षकालिकधारणपोषणफलजनकसमाप्तक्रिया अर्थे लिट् बिभ्राञ्चकार भीह्रीभृहुवाम् इति लिट् परे आम् द्वित्वादि अन्य कार्ये श्लुवच्च बिभ्राञ्चक्रे, यदा आम्न भवति तदा बभार बभ्रतुः बभ्रुः बभर्थ—कृ सृ भृ इति इट् निषेधः बभ्रे बभ्राते बभृरे। बभृसे अत्र इट् न भवति निषेधात् श्वः भर्ता भरणपोषणकर्ता। भरिष्यमि, ऋद्धनोः स्ये इति इट् परोपकाराय पालनं पोषणं च करिष्यति। भरिष्यते—अपना पोषण करेगा, किसी को पालन पोषण क्रियाके लिए प्रेरणा आज्ञा करनी हो तब लोट् बिभर्तु इगन्तगुणः बिभृतात् ङित्परे गुणनिषेधात्। विभृतां बिभ्रतु। बिभराणि आट् (पित्) गुणे मेर्निः बिभराव बिभराम बिभृताम्—अपना कल्याण करो, बिभ्रातां बिभ्रताम्। बिभृष्व बिभरै बिभरावहै। अबिभः धारण पोषणार्थक, भृ धातौ समाप्तपोषण क्रियार्थे लङ् ति इलोपे। अट् द्वित्वादि कार्ये, गुणे तकारस्य हल्ङ्यादिलोपे, रेफस्य विसर्गे। अविभृताम्। अविभरुः। अभ्यस्तसंज्ञकसे परें झिको जुस। जुसिचेति गुणः। अबिभः, अबिभृतम् अबिभृत। अबिभरम् अबिभृव अबिभृम। बिभृयात्—यातां, युः। बिभ्रीत। बिभ्रियातां बिभ्रीरन्।

रिङ्। भ्रियात्। ('उश्च') भृषीष्ट। अभार्षीत्। 'ह्रस्वादङ्गात्'। अभृत अभरिष्यत् अभरिष्यत। डुदाञ् दाने। प्रणिददाति दत्तः ददति दत्ते ददाते ददते। ददौ। ददे। दाता दास्यति दास्यते। ददातु। ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च'। देहि दत्ताम् अददात् अदत्ताम् अददुः। अदत्त। दद्यात् ददीत। 'एर्लिङि'। देयात् दासीष्ट। 'गतिस्थे' ति सिचो लुक्। अदात् अदाताम्

कर्तृगामी क्रियाफलके भूतकालमें अविभृत अविभ्राताम् अविभ्रत। अबिभृथाः बिधिलिङ्==भ्रियात् आशीर्लिङ् आर्धधातुकसंज्ञा रिङ् आदेशः भ्रियास्तां भ्रियासुः भृषीष्ट उश्च इति कित्, तस्य फलं गुणनिषेधः। भृषीयास्तां। भृषीरन्। अभार्षीत् अभार्ष्टां अभार्षुः। सिच् परे वृद्धिः अभार्षीः, अभार्ष्टम् अभार्ष्ट। अभृत=अभृषत ह्रस्वादङ्गात् इति सिचोलुक् अभृषाताम् अभृषत। अभृथाः अभृषि। भगवान् भक्तान् अभरिष्यत् तदा सुखम् अभविष्यत्।

(२) डु ञ् इत्संज्ञक दा धातोः दान (अर्पण) की क्रिया अर्थः। कोई स्वत्व (स्वाधिकार) निवृत्ति परस्वतत्व (अन्य अधिकार) की उपलब्धि जनकव्यापारः। उभयपक्षी सकर्मक, अनिट्, ददाति वस्त्रं रजकाय। दाधातु-दानजनक क्रियावचक है वर्तमानकाले कर्तरि अर्थे लट् तिप् शपः श्लु द्वित्वे अभ्यासह्रस्वे। दत्तः=-दान क्रियाके कर्ता दो हों, तब द्विवचने तस् श्लु आदि कार्ये अवित्सार्वधातुक ङित् तप्परें अभ्यस्तस्य आकारलोपे। दकारस्य चर्त्वेन 'त'रूत्वे विसर्गे, राजानः दुर्बलाय कम्बलान् ददति झिस्थाने अत्, अभ्यास आकारलोपः। ददासि दत्थः दत्थ। ददामि दद्वः दद्मः। आत्मकल्याण के लिए दयानुकूल क्रिया हो तब दत्ते ददाते ददते। दत्से ददाथे दद्ध्वे, ददे दद्वहे दद्महे। ददौ अत्र आकारपरः णल् औ ददा आकारलोपे ददौ ददतुः ददुः ददिथ ददाथ ददथुः दद ददौ। ददे ददाते ददिरे ददिषे। ददाथे ददिध्वे। ददे। दातासि त्व पुस्तकं दातसे, नारिकेलं मह्यम् दास्यति दास्यते शिवः वर ददातु दत्तात् ङित्परे 'आतोलोप इट् च इति आकारलोपे चर्त्वे दत्तां ददतु।

(३) दारुप और धारुप धातुकों घुसंज्ञा हो। दाप् दैप्से बने दा धा को घु संज्ञा न हो। दानार्थक वा, खण्डनार्थक दों, रक्षणार्थ देङ् इन्ही के दारुप को घुसंज्ञा हो-धा धारण पोषणार्थक धेट्का 'धा' लाक्षणिक लिया गया, घुसंज्ञाका प्रयोजन भूनास्था, ध्वसोरेत् एर्लिङ्, गतिस्था, आदिका कार्य होना। ध्वसोः इत्येत्वं देहि। वा तिप् शप् श्लु आदिकार्यं ददाहि (ध्वसोरेद्धाव अभ्यासलोपश्च) से आको एत्व अभ्यासलोपे ददानि ददाव ददाम। दत्तां ददातां ददनाम्। ददस्व ददातां ददं ददावहै ददामहै। यत्र ङित्प्रत्ययः, श्नाभ्यस्तयोरात इत्याकारलोपः दद्यात् ददीत, ददीयाताम् ददीरन्। ददीथाः देयात एर्लिङ् इति आकारस्य एकारः दासीष्ट दासीयास्ताम् दासीरन्। अदात्-दानजनकक्रियावाचकतदा धातोः दा धा घ्वदाप् इति घुसंज्ञा तस्मात् भूतकाले समाप्तदान क्रिया कर्ता अर्थे लुङ्। अटे तिप् सिच् गातिस्थाघुपा -सिच्लोपे। अदात् तौ दानमदाताम्। ऋषयः सहस्रवारं कपिलां गाम् अदुः। अत्र सिच्लोपे सति 'आतः,

अदुः। स्थाघ्वोरिच्च।१।२।१७। अनयोरिदन्तादेशः स्यात्, सिच्च कित्स्यादात्मनेपदेषु। अदित अदास्यत्। अदास्यत् अदास्यत। डुधाञ् धारण-पोषयोः दधाति। दधस्तथोश्च।८।२।३८ द्विरुक्तस्य झलन्तस्य धाञो बशो भष्, तथयोः स्ध्वोश्च परतः। धत्तः दधासि धत्थः। धत्ते दधाते। धत्से धद्ध्वे। घ्वसो'रेत्येत्वम्। धेहि अदधात् अधत्ताम् अदधुः। अदधाः। अधत्तम् अधत्त अदधाम् अदध्व अदध्म। अदत्त। अदधाताम् अदधत अधत्थाः अदधाथाम् अधद्ध्वम्। अदधि अदध्महि। दध्यात्। दधीत। दधीयाताम्। धेयात्। धासीष्ट अधात्। अधाताम्। अधित अधिषाताम्। अधास्यत् अधास्यत।

सूत्रेण झेर्जुस् उस्यपदान्तात् इति पररूपे। अदाः अदतम् अदात्। अहं ज्ञानम् अदाम् आवां धनम् अदाव। वयम् अदाम।

स्था और घुसंज्ञक अनयोः=इन दोनो के ईकार अन्तआदेश हो, सिच् कित् आत्मनेपदपरे। भूतकालिकदानानुकूल क्रिया अर्थ। अदित। अदासृत—दा इत्यस्य घुसंज्ञा, तस्य स्थाघ्वोरिच्च इति आकारस्य ईत् आदेशे। सिचः कित् कृते ह्रस्वादङ्गात् इति सलोपे ङित्भावे गुणनिषेधे। अदित अदिषाताम् अत्र आतां परे सिच् लोपो न भवति कित्वाभावात्, । ते कम्बलात् अदिषत, अदिथाः अदिषाथाम् अदिढ्वम्, अदिषि, अदिष्वहि, अदिष्महि। उपसर्गबलसे अनेकार्थक : आदत्ते विद्यां, संधत्ते सायकम्।

(१०) धा धातुका वस्त्रादिधारण, शरीरादिपोषणके अनुकूल क्रिया अर्थः अनिट् सकर्मक उभयपदी च। स मुद्रिकां दधा। धारण फल मुद्रिकामें उसकी क्रिया कर्ता में। यह क्रिया वर्तमान रहे धा ति श्लौ, द्वित्वे अभ्यास, धकारस्य अभ्यासे चर्चः इति दकारः (६२५) दधः द्विरुक्तस्य—जिसको द्वित्व किया गया हो, ऐसा झष् अन्तवाला धा धातुके बश्को भष् हो त थ स ध्व परे यह भष्भाव। लट् लोट् लङ् विधिलिङ् में हो। आकार लोप होनेपर धत्तः=द धा तस् श्नाभ्यस्तयोरातः इति आलोपे। ततः दधस्तथोश्च दकारस्य भष् धकारे, उत्तरधकारस्य चर्त्वे तकारे। ताः आभूषणानि दधति। त्वं किं दधासि यूवां धत्स्व, दधामि दध्व दध्म उपसर्गेण धात्वर्थः परिवर्त्तते यथा=अविदधाति विदधाति आदधाति=स्थापयति निदधाति परिदधाति—पहिनता है। प्राणिदधाति मन योजयति। अनुसन्दधातिः खोज करता है। श्रद्धधाति। सधदाति। घ्वसोः घु अस् को एत्व हो अभ्यासलोपश्च=अभ्यासका लोप हो धेधि दधाहि, अत्र अभ्यासस्यलोपे घुसंज्ञकस्य धा इत्यस्य एकारे। कौपीनम् अदधात आत्मनेपदमें कर्ता स्वयं धारण करता हो। तब अधत्त—धासे अनद्यन भूतकालके स्वयं धारण क्रियाके कर्तामें लङ् त अदाधात अभ्यस्तसे परे आलोप अधत्त अदधाताम् अदधत अदधथाः अदधाथाम् अदध्वम् अदधे सभी कर्ताने अनद्यतन-भूतकालिक धारण क्रिया। विपूर्वो धा करोत्यर्थे अभिपूर्वस्तु भाषणे, 'मेंलने चापि सम्पूर्वो निपूर्वः स्थापने मतः।

णिजिर् शौच—पोषणयोः। निजां त्रयाणां गुणः श्लौ ।७।४।७५। णिज् विज् विषायभ्यासस्य गुणः स्याच्छ्लौ। नेनेक्ति नेनिक्तः। नेनिजति। नेनिक्ते निनेज। निनिजे। नेक्ता २। नेक्ष्यति नेक्ष्यते। नेनेक्तु। नेनिग्धि। नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ।७।३।८७। अभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके लघूपधगुणो न। नेनिजानि। नेनिक्ताम्। अनेनेक् अनेनिक्ताम्। अनेनिजुः। अनेनिजम् अनेनिक्त। नेनिज्यात्। नेनिजीते निज्यात्। निक्षीष्ट। अनिजत्

(११) णिजिर् धातुका शौच्—प्रक्षालन, धोना, धोबी कपड़ा धोता है। तथा पोषणफलकी क्रिया अर्थः। (वा०) धातुमें इर्की इत् संज्ञा कहें। तस्य लोपः तस्य फलं इरितो 'वा' इति च्लेः अङ् आदेशै निनिज ति शामे(६)णिज् पृथक् भावार्थक विज्, व्याप्ति अर्थमें विष्, धातुओंके अभ्यासको गुण हो, श्लुका विषय हो तो। इति अभ्यासस्य गुणे, द्वितीयस्य सार्वधातुकगुणे। चोः कुः इति कुत्वेन 'ग' चर्त्वेन क। नेनेक्ति—वह पोषण करता है धोबी वस्त्र धोते समय नेनेक्ति कहते हैं। नेनिक्तः अत्र केवलं अभ्यासगुणो भवति। नेनिजति=अत्र अदभ्यस्तात् झि स्थाने अत्। नेनेक्षि, नेनिक्थः नेनिक्थ। नेनेज्मि नेनिज्व नेनिज्म। शौचपोषण फलानुकूल क्रिया जन्यफल कर्तृगामी हो तब—नेनिक्ते नेनिजाते नेनिजते नेनिक्षे। निनेज निनिजुः निनेजिथ। निनिजे निनिजाते निनिजिरे निनिजिषे, नेक्ता=प्रक्षालन कर्ता, पोषणकर्ता। नेक्ष्यति—रजकः वस्त्राणि,। त्वं भवनं नेनेक्तु। नेनिक्तात् नेनिक्तम्, नेनिजतु। नेनिग्धे। अत्र हि अपित् ङित् अस्ति। तस्य फलं सार्वधातुक गुणनिषेधः। हेर्धिः नेनिक्तं नेनिक्त। (७) अजादि पिति सार्वधातुकपरे अभ्यस्तस्य—अभ्याससंज्ञक-धातुको पुगन्तलघूपधस्य च गुण न हो। नेनिजानि, अत्र आट् पित् अस्ति लघूपध-गुणः प्राप्नोति, परन्तु अजादिपित् सार्वधातुकपरे दृष्ट्वा अभ्याससंज्ञक गुणनिषेधः। नेनिजाव नेनिजाम नेनिक्तां, नेनिजातां नेनिजतां नेनिक्ष्व नेनिजै। अनेनेक वस्त्र प्रक्षालन कर चुका। तो पशून् अनेनिताम् अनेनिजुः अनेनेक् अनेनिजम्। अत्र लघूपधगुणस्य नाभ्यस्तस्याचि इति निषेधे। शौचपोषण विषयक सम्भावनायां लिङ् नेनिज्यात्। नेनिज्यातां नेनिज्युः। नेनिजीत, अत्र सीयुट् सकारस्य लोपे, तेन अजादि पित् सार्वधातुकपरे गुणनिषेधः। अत्र लिङ् सिचावात्मपदेषु सूत्रेण सीयुट् कित् भवति। तस्य फलं गुणनिषेधः (८) इरितो इर अनिजत् भूतकालिक समास-शौचपोषणक्रिया अर्थे लुङ् अनिज् च्लि-त। ततः ईरितोवा इति च्लि स्थाने अङ्=अ कृते। अनिजम् अनिजाव अनिजाम। यदा सिच् भवति तदा व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः इति षत्वे हलन्तस्य-स्याचः इति वृद्धिः। अस्तिसिचोऽपृक्ते' इति ईट्। कुत्वे चर्त्वे षत्वे, क्षत्वे। अनैक्षीत् अनैक्ताम्, अनैक्षुः आत्मनेपदे झलो झलि इति सिचोःलोपः अनिक्त अनिक्षाताम् अनिक्षत। अनिक्थाः अनिक्षाथाम्।

इर् इत् विच धातु का पृथग्भाव—अलग होने की क्रिया। वेवेक्ति अलग होता है विविच ति। अभ्यासको निजां त्रयाणां से गुण, दूसरे की लघूपध चोः कुः (ग)

अनैक्षीत्। अनिक्त अनेक्ष्यत्। अनेक्ष्यत। एवं-विजिर पृथग्भावे विष्लृ व्याप्तौ। इति जुहोत्यादिः।

अथ दिवादिप्रकरणम्

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु। **दिवादिभ्यः श्यन्।३।१।६९।** दिवादिभ्यः श्यन्प्रत्ययः स्यात् कर्तरि सार्वधातुके। शपोऽपवादः। 'हलि चे'ति दीर्घः दीव्यति। दिदेव। देविता। देवि-

---

चर (क) वेविक्तः वेविजति, बहुत अलग होते है। लिट् में आत्मनेपद त एश वेविक्ते अलग होनेकी परोक्ष क्रिया विवेज विवेजिथ। अत्र=थल् परे इट् पक्षमें (विज इटसे) ङित् नहीं होता, गुण निषेध नहीं। जहां ओविजी भयचलनयोः धातु है वहीं ङित् गुण निषेध णिज और विज रुधादि में भी पढ़े हैं वेक्ता वेक्ष्यति। विवेक्तु अविजत अवेजीत् अवेक्षीत अविक्त।

लृ इत् विष का व्याप्ति व्यापक होगा क्रिया, उभयपद अनिट् णिज तुल्यरूप। वेवेष्ठि इति विष्णुः। ब्रह्माण्डमें व्यापक हो रहे हैं। विष ति द्वित्व आदि, निजां त्रयाणां नभ्यासकी गुण सार्वधातुक परे गुण, श के योगमें त को ट। वेवेष्टि वेविष्टः वेविषति। वेवेक्षि–सिपि परे षढो कः ष को क=ष क्ष। वेविष्टः वेविड्ढ। वेष्टा वेक्ष्यति व्यापक होगा। वेष्टासि वेष्टाहे।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकर्या जुहोत्यादिगणः सम्पूर्णः।

अथदिवादि—अथजुहोत्यादि (श्लुविकरणक) प्रकरणसमाप्तिके बाद दिव् आदिर्यस्य धातुसमुदायस्य स दिवादिः भ्वादिका अन्तर्गण शप् बांधकर श्यन् होनेसे प्रकृति प्रत्ययमध्ये यस्तिष्ठतिस विकरणः। श्यन्विकरणगणदिवाति है। (१) दिवु-धातुका क्रीडा द्यूत खेलनं, विजिगीषा विजयस्य इच्छा, क्रयविक्रय आदन प्रदानरुपः व्यवहारः। द्युतिः–प्रकाशः, (चमकना) स्तुतिः=परगुण प्रशंसा मोदः हर्षः=प्रसन्नता, । मद=नशा या गर्व। स्वप्नः–शयनं, कान्तिः इच्छा नतु प्रकाशः गतिः–गमन करना इन धात्वर्थ फलोंके अनुकूल क्रिया दिवधातुका अर्थ निर्देश।

(६) **दिवादिगणपठित**—धातुओंसे श्यन् यप्रत्यय हो कर्ता अर्थ में शप् को बाधकर श इत्का फल सार्वधातुकसंज्ञा। न–इत् का फल आद्युदात्त। दीव्यति दीव्यतः दींव्यन्ति। फलजनक क्रियावाचक अतएव धातुसंज्ञक दिवधातुसे वर्त्तमान कालिक क्रिया के कर्ता में लट, तस्य स्थाने तिप्। शप् बाधकर श्यन्=य। दिवयति हलि चसे दीर्घ। यहां गुण नही होता। श्यन्के अपित्सार्वधातुक ङिद्वत् होनेके कारण नषेध से। दीव्यति दीव्यतः दीव्यन्ति। दीव्यसि दीव्यथः दीव्यथ, दीव्यामि दीव्यावः दीव्यामः। एक या अनेक कर्तामें वर्तमान खेल विजय मस्ती लोकप्रियता चमक-दमक क्रिया। देवी देवता दिव्य आदि शब्द इसी धातु से बने हैं। पाण्डवाः अवदीव्यन्ति पराजितो भवन्ति, दिदेव=क्रिडा विजयेच्छा व्यवहार इत्यादि फलजनक क्रियावाचक

ष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् । एवांषिवु तन्तुसन्ताने । सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि ।८।३।७१। परिनिविभ्यः परेषामेषामड्व्यवायेऽपि वा सस्य षः । पर्यसीव्यत् । नृती गात्रविक्षेपे ।

दिव्धातु से अनद्यतन भूतकाल में विजयव्यवहार आदि परोक्ष क्रिया सहित कर्ता अर्थ में लिट्प्रथम पुरुष एकव० तिप् णल् (दिव् अ) लिटिधातोरनाभ्यासस्य से द्वित्व, दिवा दिव् दिदिव गुणे दिदेव । कृष्णदम्पती दिदिवतुः दिदिवुः त्वं दिदेविथ दिदिवथुः दिदि वथुः दिदेव दिदिविम । बलादि आर्धधातुक परे इट आगम हुआ । क्रीडा प्राप्ति की क्रिया सहित कर्ता परोक्ष (न देखा गया) हो लिट् का विषय देविता आगामिदिन में क्रीडाद्युतिस्तुतिकी क्रियाका कर्ता अर्थ लुट् तास् ति (लुटः प्रथमस्य डा०) इट् देविता देवितारौ देवितारः । देवितासि देवितास्थः देवितास्थ देवितास्मि देवितास्वः देविता स्मः । कल परसों माह वर्ष आदि के भविष्यकाल या व्यापार अनद्यतन काल के प्रति बन्धन से मुक्त सामान्य भविष्य काल में विजयेच्छा व्यवहारादि की किया हो, तब देविष्यति देविष्यतः । दीव्यतु–श्यन् प्रत्ययपरे हलिचेतिदीर्घः । धृतराष्ट बोले कि जूआ खेले । विधि, प्रेरणा, आज्ञा आशीर्वाद अर्थों में लोट्, दीव्यतात् दीव्यतां दीव्यन्तु । दीव्य-अत्र हलिचेति दीर्घ आशीर्वाद में तुहि को तातङ् अतोहेः से हिलोप दीव्यतात् दीव्यतं । दीव्यानि दीव्याव दीव्यामः अदीव्यत्=क्रीडा किया, विजय पाया प्रकाश स्तुति मोदमद आदि के अनुकूल अद्यभिन्न दिने समाप्त क्रियायाः कर्ता अर्थ । दीव्येत दीव्येतां दीव्येयुः । दीव्येः दीव्येतं दीव्येत दीव्येयं दीव्येव । कान्ति गति क्रिडा आदि का आशीर्वाद क्रिया हो दीव्यात् सर्वत्र हलि च से दीर्घ अदेवीत् अदेविष्टाम् अदेविषुः अदेवीः अदेविष्टम् अदेविष्ट अदेविष्व अदेविष्म । अदेविष्यत् ।

(२) **षिवु**=उकार इत् षिव् धातुका तन्तुसन्तान=तानाबाना विस्तार या सूत्र सन्तान, सीना=गूथने की क्रिया अर्थः । सीव्यति (कञ्चुकी कुर्ता सीती हैं) तौ ऊर्णावस्त्रं सीव्यतः । तन्तुसन्तानं कुरुतः यथा पूर्वजाः चतुष्वर दीं सिषिवुः । श्वः उपानहौ सेविता । वस्त्राणि सेविष्यति । स सीव्यतु यथा लाभं, यथा अन्ये असीव्यन् लाभं अलभन् । यदि निर्धनोपि सीव्येत् तर्हि बहुधनंसीव्यात् । असेवीत्=असिव् इस ईत् । इट ईटि सलोपः दीर्घे । उपधागुणे यदि स सर्वेषां वस्त्रम् असेविष्यत् तर्हि बहु लम् अलप्स्यत् । यह धातु ऊनी ,सुती आदि के सीने अर्थ में उपयोगी हैं । परिषीव्यति, निषीव्यति इत्यादि में षोपदेश निमित्तक परिनिविभ्यः इति षत्वम् ।

(३) **नृती**=ईकार इत नृत धातुका गात्रविच्छेद प्रत्यङ्ग हाव-भाव प्रदर्शित करना अङ्ग हिलाना, शरीरमें तरङ्ग आना, इसके अनुकूलक्रिया अर्थः । अयं सेट अकर्मकः श्यन् । सर्वत्र अपित्सार्वधातुक है । उसका फल ङित, गुणनिषेध । नृत्यति मयूरः । नृत्यतः नृत्यन्ति । त्वं नृत्यसि । अहंसभायां नृत्यानि । शिवः सुन्दरं ननर्त (नृ् नृत नृनृत ,उरत'नर् नृत, ननृत,गुणे रुपम्) बाराङ्गने ननृततुः । जनाःननृतुः यथा त्वं ननर्तिथ । युवां मञ्चे ननृतथुः । यूयं सभायां ननृत । तथैव अहंननर्तःभावी

नृत्यति। ननर्त्त। नर्त्तिता। **सेऽसिचि कृतचृतछृदतृदनृतः** ।७।२।५७। एभ्यः सिज्भिन्नस्य सादेरार्द्धधातुकस्येड् वा स्यात् नर्त्तिष्यति नर्त्स्यति। नृत्यात् अनर्त्तीत्। अनर्त्तिष्यत् अनर्त्स्यत्। त्रसी उद्वेगे। 'वा भ्राशे'ति श्यन्वा। त्रस्यति त्रसति। तत्रास। **वा जॄभ्रमुत्रसाम्** ।६।४।२४। एषां किति लिटि सेटि, 'थलि' च एत्वाभ्यासलोपौ वा स्तः। त्रेसतुः तत्रसतुः त्रेसिथ तत्रसिथ

ननृतिव। वयं ननृतिम। वलादि आर्धधातुकपरे इट् किद्भवति, अतः गुणनिषेध। गात्रविक्षेपकी क्रिया अद्यभिन्नभविष्यकालिक हो, लुट नर्तिता। इट् गुण आदिः। नर्तितारौ नर्तितारः नर्तितासि (वे कल नाचेंगे) नर्तितास्मि। सामान्य भविष्यकालिक नर्तन क्रिया हो लृट् स्य ति गुण। नर्तस्यति ततः—

(६३०) **सेऽसिचि** एभ्यः=छेदनार्थक कृत, अनावरणार्थक चृत्। दीप्ति=प्रकाशार्थक, छृद् हिंसार्थक, अनादरार्थक तृद् गात्रविक्षेपार्थक नृत, धातुओंसे भिन्न सकारादि आर्धधातुक प्रत्ययको इट् विकल्पसे हो। प्रसङ्गमें सकारादि स्य प्रत्यय, सेऽसिचि आदि सूत्रसे इट् नर्तिष्यति। यदा न इट् तदा नर्त्स्यति। बालिका नृत्यतु। यथा बालकः अनृत्यत्। यदि नर्तकाः नृत्येयु सर्वे प्रसन्नाः भवेयुः। स सुखं नृत्यात्। अनर्तीत् अनृत् इस् ईत्। इटः ईटि सलोपे गुणे दीर्घे गन्धर्वौ सभायां कदा अनर्तिष्टाम्। यदा तारिकाः अनर्तिषुः। यदा त्वम् अनर्तीः अनर्तिष्टम्। तदा अहम् अनर्तिषम्, अनिर्तिष्व अनर्तिष्म। लृङ्लकारे सकारादि आर्धधातुक स्यपरे इट् विकल्प यदा मेघाः अभूवन् तदा मयूराः अनर्तिष्यन् अनर्त्स्यन्।

(४) **त्रसी** ईकार इत् त्रस् धातुका उद्वेग—ऊबना, घबराना, उचाट होना डरने के अनुकूल क्रिया अर्थ। वह क्रिया वर्तमान रहे तब कर्तामें श्यन् य ति परन्तु नित्य श्यन्को बाधकर वाभ्राशम्लाशभ्रमुक्रमु आदि सूत्रसे श्यन् विकल्पः। त्रस्यति यदा न श्यन् तदा शप् एव तिष्ठति। अनुबन्धलोपे, त्रसति बालकः अन्धकारे। शून्य घरमें चोरोंसे डरता है। घबड़ाहटकी उद्वेगजनक क्रिया परोक्ष भूतकालमें हैं तब लिट् त्रस्–त्रस् तत्रस् उपधावृद्धिः णित् परे। परश्वः स्वप्ने तत्रास्, दम्पती त्रेसतुः। तत्रस् अतुस् दशामें। (१) **वा जॄ** एषां–जीर्णार्थक जॄ, भ्रमणार्थक भ्रम्, उद्वेगार्थक त्रस् इन धातुओंको कित् लिट् परे और सेट् थल परे, एत्वाभ्यासलोप हो विकल्पसे। (यह अप्राप्त विभाषा है। अत एकहल्मध्ये सूत्र प्राप्त नहीं हैं। क्योंकि जॄ त्रस के संयोग होने से) सूत्रसे एत्वे अभ्यासलोप भी त्रेसतुः। यदा एत्वाभ्यास लोपौ न भवतः तदा तत्रसतुः। जनक सभायां परशुरामं दृष्ट्वा सर्वे जनाः त्रेषुः त्रतसुः। थलि परे इट कृते सति एत्वे अभ्यासलोपे च त्रेसिथ, त्रतसिथ त्रेसथुः। तत्रसथुः त्रेस तत्रस। अहं तत्रास तत्रस त्रेसिव तत्रसिम, त्रेसिव तत्रसिम। स त्रसिता त्रसिष्यति त्रस्यतु त्रसता। अत्रस्यत अत्रसन् त्रस्येत त्रसेत्। त्रस्यात् अत्रासीत् अत्रसीत् अतोहलादेर्लघोः वृद्धिविकल्पः अत्रसिष्यत् तदा कुपथमत्यक्ष्यत।

(५) शो धातुका तनूकरण=कृश दुर्बल, पतला न्यून, करने की क्रिया

त्रसिता। शो तनूकरणे। ओतः श्यनि ।७।३।७१ ओतो लोपः स्यात् श्यनि। श्यति श्यतः श्यन्ति। 'आदेच उपदेशेऽशिति'। शशौ शशतुः शशुः। शाता शास्यति। श्यतु। अश्यत् श्येत् शायात्। 'विभाषा घ्राधेट्' इति सिचो वा लुक्। अशात् अशाताम्। लुगभावे 'यमरमे'ति इट्सकौ। अशासीत् अशासिष्टाम् अशास्यत्। छो छेदने। छ्यति चच्छौ चच्छतुः। षो अन्तकर्मणि।

अर्थः अनिट् अकर्मकः। तनू करणार्थक शो धातोः प्रचलित क्रिया के कर्ता में लट शप बाधकर श्यन् य। ततः (२) ओतः = ओकार का लोप हो श्यन् परे इति ओकर लोपे। श्यति शरीरं। तौ तपसा तनं श्यतः। तक्षकाः काष्ठानि श्यन्ति। त्वं तु अर्जितां विद्यां श्यसि श्यथः श्यथ। अहं तपसा गात्रं श्यामि। आवाम् आलस्यं श्यावः वय पापानि श्यामः। सर्वत्र श्यन् परे ओकारलोपो भवति, भगीरथः यथा शरीरं तपसा शशौ। तदा गङ्गा आजगम। शो + लिट् तिप णल 'अदेच उपदेशे' इति आत्वे। आत औ णलः इति औकारे द्वित्वादिः शशौ शशतुः शशुः। शाता ओ—आ न्यूनकर्ता स्वकीयान् अष्टगुणान् शास्यति, क्षीणकरणी या न्यूनीकरणविषयक आज्ञा,प्रेरणा की सम्भावनामें लोट श्यतु। तु स्थाने तातङ्। श्यतात् दुर्गुणानि। श्यतां श्यन्तु। श्य। (हेर्लुक्) पक्षे तातङ् श्यतात् श्यतं श्यत। श्यानि श्याव श्याम। तनूकरणकी क्रिया समाप्त हो लङ् अश्यत् अश्यताम् अश्यन् अश्यः, अश्यतम्, अश्यत। अश्यम् अश्याव अश्याम। श्येत् श्येतां श्येयुः। श्येः श्येतं श्येत श्येयं श्येव श्येम।

(६) **विभाषा एभ्यः**=सूँघने अर्थमें घ्रा, पानार्थक धेट्, तनूकरणार्थक शो, छेदनार्थक दो' नाशार्थक षो, इन धातुओंसे परे सिचका लोप विकल्पसे हों परस्मैपद परे। **अशात्**—तनूकरणानुकूल क्रियावाचक शोधातु से भूतकाल (समाप्त क्रिया अर्थे लुङ्) अट् तिप् सिच 'आदेच उपदेशे'से ओको आत्वे। विभाषा घ्राधेट आदि सूत्र से सिच लुक विकल्पः अशात् मूर्खौ 'अध्ययनम् अशाताम्। कृषकाः कीटान् अशुः। अत्र 'आतः' सूत्रेण झि स्थाने जुस आत्वे आकारस्य उस्यपदान्तात् इति पररुपे। यदा सिचः लुक् न तदा यमरमनमातां सक्च, सूत्रेण इटसकौ भवतः। अ शा स इ स ईत्। 'इट ईटि सलोपे दीर्घे। **आशासीत्** अशाशिष्टाम् अशाशिषुः। अशाशीः। अशास्यत।

(**छो धातुका छेदन** = काटने की क्रिया अर्थः सकर्मकः काष्ठं छ्यति ओ–इत् श्यन् परे (छिनत्ति) काटता हैं। चछौ शाकम्। वृक्षं छाता। पटोलं छास्यति। कुष्माण्डं छ्यतु यथा—कर्कटीम् अछ्यत्। नापितः केशान् छयेत्, छ्यात अछात्। अछासीत् विभाषा धेट्शाच्छासः (७) **षो=सोधातु काअन्तकर्म**= बिनाशकरण, समाप्तहोना, या अन्तिमसंसकारजनक—क्रिया अर्थः। सकर्मकः। यह क्रिया वर्तमान रहें तब लट। पितुः शवं स्यति। परन्तुउपसर्गके योग में अर्थ भिन्न हैं यथा—अवस्यति निर्धारणं करोति। व्यवस्यति=व्यवस्थानं करोति। भरतःदशरथस्य शरीरं शशौ। पपौ इव। साता, सास्यति। स्यतु (अन्तिम संस्कार

स्यति ससौ। अभिष्यति। अभिससौ। साता सास्यति स्यतु। अभ्यष्यत्। सेयात्। दो अवखण्डने। द्यति ददौ। प्रणिदाता दास्यति। देयात् अदात्। अदास्यत्। व्यध ताडने। 'ग्रहिज्येति सम्प्रसारम्। विध्यति विव्याध विविधिः। विव्यद्ध विव्यधिय। व्यद्धा व्यत्स्यति। विध्येत् विध्यात्। अव्यात्सीत्। पुष पुष्टौ। पुष्यति पुपोष पुपोषिथ। पोष्टा पोक्ष्यति। 'पुषादी'

करो) यथा—पूर्वजाः अस्यन्। स्येत् असात् असासीत्। सिच लुक विकल्पः। (८) दो धातु का अवखंडन=शकलीकरणम् टुकडा करने की क्रियाअर्थः सकर्मक। सर्वत्र श्यन् परे ओकार लोपः अन्यत्र औकारस्य आत्वम्। स काष्ठं द्यति, शकलीकरोति टुकडे करता है। यथा तक्षा ददौ। दाता, दास्यति, द्यतु अद्येत् अदात। अत्र गातिस्था' आदि सूत्रेण सिचो नित्यं लोपः देयात् इत्यत्र ऐलिङ।

(९) व्यधधातुका ताडन, बेधनं,बाणादिनां परपीडा-करणम्। पतले धारवाले शस्त्रप्रयोगमें इसधातुका उपयोग हें, सकर्मकः। व्याधाशब्द इसीधातुसे बना है ताडन या बेधन क्रिया वाचक व्यधधातुसे वर्तमाने कर्तरि लट् तिप् शपः श्यन्। ततः।

(४) ग्रहि=ग्रहण करना, वयोहानार्थक ज्या, तन्तु सन्तानार्थक व्येञ् ताडनार्थक व्यध, इच्छार्थक वश, ठगने अर्थमे व्यच छेदनार्थ व्रश्च विज्ञासार्थक पृच्छ, पाकार्थक भ्रस्ज, इन धातुओं को सम्प्रशारण हो कित् ङित् प्रत्यय परे। प्रसङ्गे श्यन् प्रत्ययः ङिद्वत अस्सार्वधातुकत्वात्। ङित परे। व्यधके यको सम्प्रसारण, व्याधः विडालं विध्यति। अर्जुन शिखण्डिनौ भीष्मं विध्यतः। सर्वान् विध्यन्ति विध्यसि ताडन क्रिया वाचक व्यधधातोः अद्यभिन्नसमाप्तताडन क्रियायाः कर्ता अर्थे लिट् तिप णल द्वित्वे। लिटचभ्यासस्योभयेषामिति, अभ्यासस्य सम्प्रसारणे। हलादिशेषे अतोपधायाः वृद्धिः। पित्स्थले एवं भवति। थलपरे भारद्वाजमते इट् विकल्पः। विव्यधिथ इट् अभाव पक्ष स्थाने विध्यसि विध्यामि। विव्याध विविधायुः व्यध् व्यध् अतुस् अभ्यासको तथा ग्रहिज्यासे सम्प्रसारण दोनों य को इ दो कर्ता परोक्षभूतकालिक ताडन। धः धातु ध को जश सवर्णेझरि लोपे विव्ध। अतुस् आदि कित्प्रत्यये तु सम्प्रसारणं (तदाश्रयं कार्यं) पररुपं बलवद्भवति। पश्चात् द्वित्वम्। अतो विविधतुः विविधुः। व्यधता दशायां झषस्तथोर्धोऽधः तस्थाने धः। धातु धको जश परश्व मत्स्यान् व्यद्धा। शबरः शुकान् व्यत्स्यति। मुनिः मदनं विध्यतु,यथा कामः शिवमविध्यत। मयि सर्वे जनाः किं परे विध्येयुःममाशीर्वादः, ते विध्यासुः आशीर्लिङ् यासुट किद्भवति। तस्य फलं सम्प्रसारणम्। यदा ताडनक्रिया समाप्ता भूतकाले अर्थे लुङ अव्यात्सति अव्याद्धाम् अव्यात्सुः। वद व्रज हलन्तलक्षणा वृद्धिः। धकारस्य चर्त्वेन तकारः। अव्यात्सीः अव्याद्धाम् अव्याद्ध, झलो झलि सलोपः। अव्यात्सम् अव्यात्स्व अव्यात्स्म (१०) पुषधातुका पुष्टि—पोषण=बढ़ना दृढ होनेकी किया अर्थ। अनिट भी, सज्जनः शरीरं पुष्यति पुष्टिजनकक्रियाके वर्तमाने लट मुखौ शरीरमेवपुष्यतः। सर्वे प्राणिन पितरौ गुरुञ्च पुष्यन्ति। यथा—त्वं उद्याने वनस्पति पुष्यसि एवमहम आत्मीयान् पुष्यामि। गुरुः ज्ञानेन शिष्यं पुपोष। त्वं पुपुषिथ नित्यं बलादि इट। पोष्टा ष्टुत्वे गुणेच। पोष्टारौ पोष्टासि। पोक्ष्यति। पष यति अत्र षढोकः सि धातु ष स्थाने क, स्यसका-

त्यङ्-आपरस्मैपदात् । अपुषत् । अपोक्ष्यत् शुष शोषणे । शुष्यति शुशोष । शोष्टा शोक्ष्यति । शुष्यतु अशुष्यत् । अशुषत् । अशोक्ष्यत् । णश अदर्शने । नश्यति । ननाश नेशतुः नेशुः । **रधादिभ्यश्च** ।७।२।४५। रध् नश् तृप् दृप् द्रुह मुह ष्णिह-एभ्यो वलाद्यार्द्धधातुकस्य वेट् स्यात् । नेशिथ । **मस्जिनशोर्झलि** ।७।१।६०। मज्जिनशोर्नुम् स्यात् झलि । ननंष्ठ । नेशिव-नेश्व । नेशिम नेश्म । नशिता । नंष्ट । नशिष्यति नङ्क्ष्यति । नश्यतु अनश्यत् । नश्येत् नश्यात् । अनशत् प्रणश्यति । **नशेः षान्तस्य** ।८।४।३६। षान्तस्य नशेर्णत्वं न स्यात् । प्रनंष्टा 'अन्त' ग्रहणं भूतपूर्वप्रतिपत्यर्थम् । प्रनङ्क्ष्यति ।

रस्य षत्वे, कष संयोगे क्ष । अपुषत् -पोषणार्थक पुषधातोः भूतकाले लुङ अट तिप पुषादि द्युतादि इति च्लि स्थाने अङ् ।

शुष्धातुका शोषण निरसीभवनं नीरस होना । सूखनेके अनुकूल व्यापारः, अनिट मदीयं वस्त्रं शुष्यति । यथा—गुरोः शुशोष । परश्वः सर्वेषां शोष्टा शोक्ष्यति च । तवापि शुष्यतु' यथा—मम अशुष्यत । एवं सर्वेषां शुष्येयुः अशुषत । अशुषताम् अशुषन् अशुषः । अशुषम् मदभिन्न एककर्तृक भूतकालिक शोषण क्रिया ।

(१२) णश अदर्शने (णोनः) धातुका (अदर्शन) लोप कमशः अप्रत्यक्ष आदि अर्थ है। घटी नश्यसि । नश्यसि नश्यामि । घटका अदर्शन । ननाश—लिट्लकारमे कित् अतुस् आदि परे । इट् पक्षे । अत एकहल्मध्ये, थलि च सेटि, एताभ्याम् एत्वम्, अभ्यासलोपश्च भवतः । नेशतुः-ननश अतुस् । एत्वे अभ्यासलोपे च । नेशुः (६३५) रधादिभ्यः—रध आदि धातुओंसे परे वलादि आर्धधातुकको विकल्प इट् हो । नेशिथ अदर्शनार्थक नश धातोः परोक्ष समाप्त नाश क्रियो अर्थे लिट् । मध्यमपुरुषस्य एकवचने थल्, तस्य आर्धधातुकसंज्ञा रधादिभ्यश्च इट् विकल्पः थलि च सेटि एत्वे, अभ्यास लोपे च । नेशिथ इट् अभाव पक्षे ननश थ दशायाम् (६) मस्ज् और नश् धातुको नुम् हो, झलादि प्रत्ययपरे । इति नुम् (न) तस्य अपदान्तस्य झलि परे अनुस्वारे, व्रश्चभ्रस्ज इति सकारस्य ष शकारस्य ष्टुत्वे ननंष्ठ । नेशिव नेश्व, नेशिम नेश्म, इट् विकल्पे । परिनेशिता रधादिभ्यश्च इट्, यदा न इट् तदा नंष्टा नुम् ष्टुत्वे, षत्वे एवं नशिष्यति । यदा न इट् तदा नश् स्यति । अत्र व्रश्चेति शकारस्य षत्वे, षढोः कः सि इति कत्वे, कष संयोगे क्ष, ततः मस्जिनशोर्झलि, इति नुम् । अनुस्वारपरसवर्णौ नङ्क्ष्यति । नश्यतु नश्यतात् नश्यतां नश्यन्तु नश्य, नश्यतं नश्यत नश्यानि नश्याव नश्याम । अनश्यताम् अनश्यत् नश्येत् नश्येतां नश्येषु नङ्क्षीत् अनशत् । पुषादिगणत्वात् च्लेः अङ् अनशाताम् अनशन् अनशः अनशतम् अनशत् । अनशम् अनशाम ।

प्रणश्यति में उपसर्गात् समासेऽपिसे णत्व । नशेः नश-धातु ष अन्त हो र से परे न को ण नहीं होता । न भाभूपू से न आया । रषाभ्यां से ण । प्रनंष्टा । सन्ति क्यों कहा ? प्रणश्यतिमें णत्व निषेध न हो । अन्त क्यों पढ़ा भूतपूर्व गतिसे षकार था इस समय आदेश होने पर सान्त नहीं रहा, णत्व निषेध के लिए । जैसे

रध हिंसासंराद्धयो: । रध्यति । रधिजभोरचि ।७।१।६२। रधिजभोरचि नुम् स्यात् । ररन्ध ररन्धतुः ररन्धिथ ररद्ध ररन्धथुः । ररन्धिव ररन्धिम । नेटचलिटि रधेः ।७।१।६२। लिड्वर्जे इटि रधेर्नुम्न स्यात् । रधिता रद्धा । रधिष्यति-रत्स्यति । अङि नुम् । 'अनिदिता'मिति नलोपः । अरधत् ॥ तृप प्रींणने । तृप्यति । ततर्प ततृपतुः ततृपुः । रधादित्वाद्वेट् । तत्रप्थ-ततर्पिथ-ततर्प्थ । तर्पिता तर्प्ता त्रप्ता । (स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्य)

प्रनङ्क्ष्यति श को ष पूर्वमें हुआ । षको क करने पर भूतपूर्व गतिसे षान्त मानकर णत्व नहीं होता ।

रध का हिंसा संसिद्धि=रीझना ठीक से पकना, सिद्ध होना । रध्यति कष्ट देता है या सिद्ध करता है । वह क्रिया परोक्षकाल की हो तब ररन्ध । (ररध अ) दशा में एत्व अभ्यासलोष को बांधकर पर होने से रधिजभोरचि सूत्रसे नुम् । संयोग पड़ा कित्परे नहीं न नलोप । **रधादि**—गण पढे रध नश तृप दृप द्रुह मुह स्नुह स्निह इन धातुओंसे परे वलादि आर्धधातुक को नुम विकल्पसे हो अतः थलि वलादि आर्धधातुक है, इट् । **ररन्धिथ** न इट् ररद्ध । अच्परे नहीं, न नुम् । वस परे भी आर्धधातुकस्येड्वलादेः से नित्य प्राप्त था । लुट् में रधता इटि रधिता । इट होने पर अच्परे जानकर रधिजभोरचि से नुम् प्राप्त का बाधक सूत्र । **नेटि** इदितो नुम्से नुम् आया लिट् को छोड़कर इट् परे रध धातुको नुम् नहीं होता । नहीं हुआ रधिता । न इटि रध्धा तथोर्धः जश । रध्यतु अरध्यत् । अरधत् अरधतां अरधन् । च्लिको अङ् होने पर अच्परे मिला, नुम् होगा, किन्तु अनिदितां हलि परे नलोप होगा ।

तृप धातु प्रीणन तृप्ति, सन्तुष्टि या तर्पण अर्थ । तृप्ति अकर्मक । नाग्निस्तृप्यति आग लकड़ी से तृप्त नहीं होती । तर्पण अर्थमें सकर्मक । पितृन् अताप्सींत्में कर्म दर्शनसे । तृप्यसि तृप्यथः तृप्यथ तृप्यामि । पितरों को पानी देता हूं, सन्तुष्ट होता हूं । यह क्रिया सहित कर्ता परोक्ष हो समाप्त तर्पण या प्रसन्नता क्रियाके कर्तामें लिटि ततर्प ततर्पतुः ततर्पुः । वलादि आर्धधातुक थल वस मस परे रधादिभ्यश्चसे विकल्प इटि । गुण ततर्पिथ अनुदात्तस्य चर्दुपधस्य से ऋ को अम् । तत्प्रथ ततृपिव ततृपिम, आगामी भविष्यकालमें तर्पण की क्रिया, (तर्पिता) रधादि गण मानकर इटि । जब न इटि त्रप्ता पक्ष में अम् । तर्पिष्यति त्रप्स्यति तप्स्यति तृप्यतु तृप्यतां तृप्यन्तु । तृप्य तृप्यतं तृप्यत तृप्येत् । लुङ्में चार रूप स्पृश मृश कृश च्ले सिच् करने पर इटि, अस्ति सिचो अपृक्ते ईटि । रधादिगण मानकर इटि विकल्प । इट ईटि इत्यादि । अतर्पीत् जब न इटि, तब वदव्रजहलन्तस्याचः से वृद्धि, जब अनुदात्तस्य ऋ को अम हुआ । अत्राप्सीत् । जब न सिच् पुषादिद्युतादि अङ् तब अतृपत् । ङित् होनेसे गुण नहीं । **दृप** धातुका हर्ष घमण्ड करना । स दृप्यति वह गर्व करता है । इसका रूप त्रप की तरह=अदार्प्सीत् अदृपत् । तृप और दृपको अनिट्कारिकामें क्यों पढ़ा ? जब कि रुधादिगण मानकर वा इट् होना है तब कहा ये दोनों धातु

अतर्पीत् अत्राप्सीत् अताप्सीत अतृपत्। दृप हर्षमोहनयोः। मोहनं गर्वः! दृप्यति इत्यादि। 'रधादित्वादिमौ वेट्कात्रमर्थमनुदात्तता'। द्रुह जिघांसायाम्। द्रुह्यति दुद्रोह दुद्रुहतुः दुद्रुहुः 'वा द्रुहे'ति वा घः। पक्षे ढः। 'पञ्चस्तथोर्धोऽधः' दुद्रोहिथ-दुद्रोग्ध-दुद्रोढ दुद्रुहथुः दुद्रुह। दुद्रोह दुद्रुहिव दुद्रुहिम। द्रोहिता द्रोग्धा द्रोढा। द्रोहिष्यति ध्रोक्ष्यति। ढत्वघत्वयोस्तुल्यं रूपम्। अद्रुहत्। अद्रोहिष्यत् अध्रोक्ष्यत्। मुह वैचित्ये। वैचित्यम् मोहिता अविवेकः मुह्यति। मुमोह मुमुहतुः मुमुहुः। मुमोहिथ मुमोग्ध मुमोढ। मोग्धा मोढा। मोहिष्यति मोक्ष्यति। मुह्यतु। अमुह्यत्। मुह्येत् मुह्यात्। अमुहत्। अमोहिष्यत् अमोक्ष्यत्। ष्णुह उद्गिरणे। स्नुह्यति सुष्णोह सुष्णुहतुः सुष्णुहुः। सुष्णोहिथ सुष्णोग्ध सुष्णोढ। सुष्णुहथुः सुष्णुह। सुष्णोह सुष्णुहिव सुष्णुह्व। सुष्णुहिम सुष्णुह्म। स्नोहिता स्नोग्धा स्नोढा। स्नेहिष्यति स्नोक्ष्यति। स्नुह्यतु। अस्नुहत् अस्नोहिष्यत् अस्नोक्ष्यत्। ष्णिह प्रीतौ। स्निह्यति। सिष्णेह सिष्णिहतुः सिष्णिहुः। सिष्णेहिथ सिष्णेग्ध सिष्णेढ। स्नेहिता स्नेग्धा स्नेढा। स्नेहिष्यति स्नेक्ष्यति। स्निह्यतु। अस्निहत्। अस्ने-

---

अम् के लिए हैं अनुदात्त के लिए भी। द्रुह का द्रोह हन्तुमिच्छा जिघांसा तस्यां मारनेकी कामनाकी क्रिया, अनुदात्त नहीं तथापि रधादि मानकर वा इटि। द्रुह्यति द्रुह्यसि द्रुह्यामि। किये हुये द्रोह वैमनस्य के काल का ज्ञान न हो कर्तामें लिटि द्रुह अ, दशा में द्वित्व को बांधकर (वा द्रुह मुह स्नुह स्निहां) वा घः। पक्षमें हो ढः से ढ। द्रुघ दुद्रोह थलपरे रधादि मानकर इटि दुद्रोहिथ। जब न इटि थ को घ को जश् ग। द्रुदोग्ध ढ। पक्ष में दूसरा पक्ष। लुटि में द्रुहता ह को घ। पक्षमें त को ग, गुण द्रोग्धा। ह को ढ़ पक्षमें धको ष्टु ढ ढोढे लोपे। द्रोढा द्रोहिष्यतः द्रोहिष्यन्ति द्रुह स्यति दशामें वा द्रुह मुह-से घ, भष्भावसे ढ को ध, घ को चर। क=ष क्ष। ढत्व पक्षमें भी ढो का समान रूप। पुषादिगण में च्लि को अङि अद्रुहत् अद्रुहताम् अद्रुहन्। अद्रुहः अद्रुहतम्।

मुह धातु का वैचित्य चित्त की विकलता सन्तुलित विवेक की स्थिति में न होना मोह ममता से घिर जाने की क्रिया। अनुदात्त नहीं, तथापि रधादि-वा इटि। मुह्यसि मुह्यामि। अहं कर्तामैं वर्तमानकालिक कि कर्तव्य विमूढ़ता, मोह में कब पड़ काल का ज्ञान न हो तब कर्ता में लिट्। मुमोह मुमुहतुः मुमुहुः थलि परे इटि, जब न ईटि। मुमोह ध दशा ये बा द्रुहमुह-से घ, थ को ध आदि। मुमोग्ध मुमुहतुः जब ढ मुमोढ। लुट में भी घ ढ भेद से तथोर्ध करके दो रूप इट पक्ष में मोहिता। भविष्य में विवेक शून्य होगा मोहिष्यति। घ ढ पक्ष में समानरूप। मुह्यतु अमुह्यत् मुह्येत्। अङ् अमुहत् अमुहतां अमुहन्। वह भूतकाल में मोह में फंसा। स्नुह धातु का उद्गिरण वमन उल्टी अर्थ षोपदेश। थल आदि के अनिट पक्ष में घत्व ढत्व होता है। स्निह धातु का स्नेह प्रेम बढ़ाना घनिष्ट प्रीति की क्रिया। स्नेहिष्यति अस्निहत् प्रेम कर लिया। वृत-गण समाप्तिका सूचक अर्थात् रधादिगण समाप्त।

हिष्यत् अस्नेक्ष्यत् । वृत् । रधादयः समाप्तां । तुष तुष्टौ । तुष्यति । तुतोष तोष्टा । तोक्ष्यति तुष्यतु । दुष वैकृत्ये । दुष्यति । दुदोष । दोष्टा । दोष्यति दुष्यतु । श्लिष आलिङ्गने । श्लिष्यति । **श्लिष आलिङ्गने ३।१।४६।** श्लिषश्च्लेः क्सः स्यादालिङ्गने । 'अश्लिक्षत् कन्यां देवदत्तः' । आलिङ्गने

तुष का सन्तुष्टि प्रसन्नता । तुष्यति तोष्टा तुष्यतु अतुषत् दुष का वैकृत्ये विकृत भान निराश दुखी दूषित होना । दुष्यति दोष्टा दोक्ष्यति दुष्यतु अदुष्यत् दुष्येत् दुष्यात् । अदुषत् । श्लिष धातु का आलिङ्गन हृदय से लगाना, चिपकाना वर्तमान काल हो लुटि आदि । परोक्षकाल क्रिया सहित कर्ता न देखा गया हो द्वित्व आदि श्लेष्टा अनद्यतन भविष्यकाल का आलिङ्गन या चिपकाना क्रिया का कर्ता । श्लिष्यतु अश्लिष्यत् श्लिष्येत् । लुङ्में श्लिष से परे च्लि को सिच्प्राप्त, उसे बाधकर 'क्स' विधायक सूत्र—श्लिषः धातु से परे च्लि के स्थान में क्स हो । शलइगुपधात् से अनिट, क्स च्लि की अनुवृत्ति, यद्यपि शल इगुपधादनिट सूत्रसे क्स होता श्लिषः सूत्र क्यों पढ़ा ? तब कहा (पुषाद्यङोपवादः)पुषादि द्युतादि लृदितः परस्मैपदेषु सूत्र से च्लि के स्थान में प्राप्त अङ् को बाधकर क्स, श्लिषः सूत्रसे किया । शल इगुपधात के क्सका बाधक अङ् है । अङ् की निवृत्ति के लिए पुनः क्स पढ़ा परन्तु यह अङ् चिण्भावकर्मणो के चिण् को नहीं बाधता यथा (उपाश्लेषि कन्या देवदत्तेन) देवदत्त द्वारा कन्या हृदय से आलिङ्गित हुई । कर्म में लुङ् क्लि को चिण न हो पाता इसलिये कहा, न तु चिणः चण का बाधक नहीं । क्यों नहीं पुरस्तात् पूर्व में पढ़े अपवाद अनन्तर—बिना व्यवधान की विधि को बाधते हैं । अन्तर (व्यवधान) उत्तरविधि को नहीं बाधते । शल इगुपधादनिटः, श्लिषः पुषादि द्युतादि, चिण्भाव कर्मणोः सूत्र क्रम है । श्लिषः सूत्र अनन्तर विधि, पुषादि अङ्ग को बाधेगा, अन्त विधि चिण को नहीं । नियमसूत्र—आलिङ्गाने । इसमें भी च्लि अनिट क्स की अनुवृत्ति । श्लिष की भी । आलिङ्गन अर्थ में विराजमान श्लिषः से परे च्लिको क्स हो । परन्तु यह क्स श्लिषः पूर्व सूत्रसे सिद्ध (पूर्वेण सिद्धेसति आरम्भ विधि नियमाय भवति) कः नियमः, श्लिष से परे आलिङ्गन एव क्सः नान्यत्र । जहां आलिङ्गन नहीं वहां श्लिषः सूत्र क्स करे, शङ्का=यह नियम(अनन्तरस्य विधिर्भवति प्रतिषेधो वा) न्याय से श्लिषः सूत्र पर नियम लगेगा, शल इगुपधादनिट पर नहीं । क्यों नहीं तब कहा **योगविभाग**=सूत्र से भेद अलगाव "श्लिषः आलिङ्गने" ऐसा एक सूत्र न पढ़कर अलग–अलन पढ़ना यह प्रमाणित करेगा कि शल इगुपधात् का क्स भी श्लिष धातु से आलिङ्गन अर्थ में ही है । इति नियमः । अश्लिक्षत् देवदत्त ने कन्या (एक वर्षीया) का आलिङ्गन किया (आश्लिष् क्स त) पुषादिके अङ्गको बाधकर क्स । मूर्धन्य ष को स परे रहते क । उसके योग में स-ष कष-क्ष ।

आलिङ्गन अर्थ क्यों ? इसलिये कि समश्लिषज्जतु लाक्षा (लाही) सा (काष्ठ लग्नमेवोत्पद्यते) जतु च काष्ठञ्च लाही लकड़ी में चिपकी है यहां च्लि को अङ् है,

किं? समश्लिषज्जतु काष्ठम्। प्रत्यासत्तावहि श्लिषिः। क्रुध क्रोधे। क्रुध्यति चुक्रोध क्रोद्धा क्रोत्स्यति क्रुध्यतु। क्षुध बुभुक्षायाम्। क्षुध्यति चुक्षोध। क्षोद्धा क्षोत्स्यति। शुध शौचे। शुध्यति शुशोध। शोद्धा शोत्स्यति। षिधु

क्स नहीं हुआ। शङ्का-श्लिष धातु अजादि नहीं आट् आगम कैसे? तब कहा आङ् उपसर्ग पहले है उसमें आट् का भ्रम न हो। यद्यपि चिपकना भी आलिङ्गन हीं है जतु लाक्षाका लकड़ीमें चिपकनाभी आलिङ्गन ही है क्स क्यों नहीं? तब कहा प्रत्या॰ सत्या-इह प्रसङ्ग में श्लिष धातु का अर्थ प्रत्यासक्ति संयोग चिपकना अर्थ है, आलिङ्गन नहीं। वह तो भुजा मिलाकर वक्षस्थल सटाकर तृप्ति के अनुकूल क्रिया अर्थ। वाह्वादिना संवलनात्मकसम्बन्धविशेष आलिङ्गनं। यदि आलिङ्गन अर्थ में च्लि को क्स होगा तब आलिङ्गन अर्थ में क्स नहीं हो पायेगा क्योंकि शल इगुप-धात्को बाधकर परत्वात् पुषादि अङ् ही प्राप्त होगा। तब कहा कर्मणि-जहां कर्म में लुङ् है वहां श्लिषः से परे च्लि को सिच् ही होता है, पुषादि अङ्ग नहीं। वह परस्मैपद का विषय है। कर्मणि प्रत्यय में आत्मनेपद का नियम है। अश्लिष च्लि त। भावकर्मणोः से आत्मनेपद कहा भी गया है नतु चिणः। चिण का बाधक नहीं उसका प्रयोजन बोले, एकवचने चिणका उदाहरण भी दिया। आश्लेषि आलिङ्गिता कन्या देवदत्तेन। चिण्भावकर्मणो चिणो लुक से त का लुक्। श्लिषः पुषादि अङ्गको ही बाधता है अतः चिण् निर्बाध। समाश्लिषज्जतुना काष्ठम् आलिङ्गन हो या अनालिङ्गन, कर्म में लुङि एकवचन त परे चिण् ही होगा। अनालिङ्गन अर्थ में श्लिषः से कर्मणि लुङि द्विवचन आतां परे च्लिको क्स नहीं, किन्तु सिचि। षढो कः स-ष। परन्तु क्सस्याचि के अकारलोप से उत्तम प्रयोग सिद्ध हो जाय, तब कहा अश्लिक्षत् (अश्लिष स त) दशामें सकों अन्त आदेश बाधकर आत्मनेपदेष्वनतः से झ को अत् ष-क स-ख यदि च्लि को क्स होता तो क्सस्याचि अकारलोप न होने से परत्वात अत् आदेश नहीं होता, तब कहा अश्लिष्ठाः क्स होता झलो झलिसे सलोप न हो पाता। ध्वं परे झलो झलि से सलोप। ष को ज, रङ् ध-ढ क्स होता अश्लिक्षध्वं बनता।

क्रुध का क्रोध की क्रिया, आंखें लाल करना, तसकना, बिगड़ना। क्रुद्धचति चुक्रोध, क्रुधता त को ध गुण जश्। क्रोद्धा क्रुद्धचतु अक्रुद्धचत् क्रुद्धयेत्। अक्रुधत् अक्रुधतां अक्रुधन्। क्षुधः धातु का बुभुक्षा भूख लगने की प्रबल इच्छा क्षुध्यति चुक्षोधः क्षोत्स्यति क्षुध्यतु अक्षुध्यत्। अक्षुधत अक्षुधः अक्षुधं। कथं क्षुधितः, अनिट् है इट कैसे? उत्तर क्षुध्यते इति क्षुत् (सम्पदादि क्विप् पूरा लोप) क्षुधः सञ्जातः अस्य क्षुधितः। तदस्य सञ्जातं तारकादि गण मानकर इतच् सत्य है कि-वसति क्षुधो सूत्र से इट् होगा क्त्वा और निष्ठा-क्त भक्तवतु परे क्षुध से इट होता है कृदन्त में कहेंगे, क्षुन्न क्षुन्न क्षोदितम्। अक्षुधत् अक्षुधताम् अक्षुधन्। अक्षुधं अक्षुधाव अक्षुधाम। शुध शौचे शुद्ध पवित्र आचार स्नान स्वच्छता की क्रिया।

संराद्धौं। सिध्यति सिषेध सेद्धा सेत्स्यति। असिधत् असेत्स्यत्। शमु उपशमे शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ।७।३।७४। शम् तम् दम् श्रम् भ्रम् क्षम् क्लम-मदामचो दीर्घः श्यनि। प्रणिशाम्यति शशाम शेमतुः शेमुः। शेमिथ। शमिता शमिष्यति। शाम्यतु अशमत्। अशमिष्यत्। तमु काङ्क्षायाम्।

बालकः शुध्यति लड़के में वर्तमानकालिक शुद्धता भाव क्रिया। यह शुद्धता सहित कर्ता न देखा हो। शुशोध शोद्धा शोत्स्यति शुद्ध होगा। शुध्यतु अशुद्धयत् शुद्धचेत्। अशुधत् अशुधः अशुधतां अशुधत। उ इत **सिध** धातु का संराध्ये निष्पत्तिः सीझना, सिद्ध होने की क्रिया। वर्तमान काल की हो **सिद्धयति** सेद्धा आगामी भविष्यकाल की सीझना, सिद्ध होना क्रिया। सिध्यतु असिध्यत। असिधत् असिधतां असिधन्।

शम—धातु का उपशम इच्छाओंका नाश इन्द्रिय निग्रह, मनका वशमें होना अर्थ। वैराग्य के अनुकूल क्रियावाचक शमधातुसे वर्तमान कालिक उपशमन व्यापार के कर्ता में लट् श्यन् ति। शमाम शम तम दम श्रम भ्रम क्षम क्लम मद इन आठ धातुओंको दीर्घ हो श्यन्परे। बहुवचन आठ का सूचक। शमस्तमुर्दमुरथ श्रामश्रामुर्भ्रं-मुरपि। क्षमुः क्लमुर्मदी चैतेऽष्टौ शमादयः। प्रनि उपसर्ग से विशेष शमन का वर्तमान क्रिया। प्रणिशाम्यति शाम्यतः शाम्यन्ति। शशाम वृष्टचापि विना दवाग्निः शेमतुः शेमुः शमिष्यति शाम्यतु अशाम्यत् शाम्येत् शाम्येतां शाम्येयुः। अशमः अशमत् अशमत। अशमम् अशमाव=ग। तम का आकांक्षा, तगड़ी इच्छा प्रबल आशक्ति प्रदर्शन की क्रिया। तमकि धर्राहि धनु मूढ़ नृप। ताम्यति शमामष्टानांसे ताव दीर्घ दिखता है। तमाम तमिष्यति ताम्यतु। अतमत् अतमतां अतमन्। दम धातु का भी उपशम इन्द्रियों का दमन अर्थ। शम दम एक साथ पढ़ते किन्तु शस धातुसे हेतुमति च से ण्यन्त करके घञ दशामें नोदात्तोपदेशस्यसे वृद्धि का अभाव हो, उपशम ही बना रहे। अन्तर क्या पड़ा, दाम्यतिका शमयति अर्थ से सकर्मक होगा। शम अक-र्मक है। ददाम देमतुः। दमिता दमिष्यति दाम्यतु अदाम्यत् दाम्येत् दम्यात्। अदमत् अदमताम् अदमन। अदमः अदमतम् अदमत्। अदमम् अदयाव=म।

श्रम धातु का तप करना खिन्न दुखी होना अर्थ। शमामष्टानां से दीर्घ श्राम्यति थकता कठिन तप करता हैं। श्रमिता श्रमिष्ति। श्राम्यतु अश्राम्यत्। अश्रमः अहं अश्रमं, भ्रम धातु का अनवस्थान, भ्रम होना, दिशा बदलना चित्त का अनिश्चित रहना। वाभ्राश भ्रम क्रमु आदि से श्यन् शमांसष्ठाना दीर्घः से दीर्घः भ्राम्यति लक्षहीन हो घूमता है। भ्रमिता। बभ्राम बभ्रमतुः बभ्रमुः। भ्रमिष्यति भ्राम्यतु अभ्राम्यत् पुषादि मानकर च्लिको अङ्। अभ्रमः अभ्रमतम् अभ्रमत आर्ध-धातुक में श्यन् विकल्प दशामें शप पक्षमें भ्वादि के तुल्य। रूप क्षुमधातुका सहना क्षमा व्यापार वाचक क्षम धातु से वर्तमान क्षमा क्रिया के कर्ता में लट् आदि।

प्रणिशाम्यति। शेमतुः शेमिथ शमिता। अशमत्। तमु काङ्क्षायाम्। ताम्यति तमिता अतमत्। दमु उपशने उपशम इति ण्यन्तस्य। तेन सकर्मकोऽयम्। न तु शमिवदकर्मकः। अदमत्। श्रमु तपसि खेदे च। श्राम्यति। अश्रमत्। भ्रमु अनवस्थाने। 'वा भ्राश इति श्यन्वा। तत्र कृते 'शमामष्टानामि ति दीर्घः। भ्राम्यति। लुङ्चङ् अभ्रमत्। शेषं भ्वादिवत्। क्षमू सहने। क्षाम्यति। चक्षमिथ–चक्षन्क्ष। चक्षमिव-चक्षण्व। चक्षमिम-चक्षण्म क्षमिता-

अशक्षायां अशक्ष्वम् अशक्षि अशक्ष्वहि अशक्ष्महि। यह धातु सेट् है ऐसा किसीका मत। अपने मतमें अनिट् है क्योंकि अनिट् कारिकामें शक्लृ सामर्थ्ये पढ़ा है। जो सेट कहते है उनके मतमें अनिट कारिकामें शक्लृ अमान्य है तब इट होगा, शकिता शकितारौ शकितारः। शकितासे शकितास्मि। (त) का आकांक्षा, तगड़ी इच्छा, प्रबल आशक्ति प्रदर्शनकी क्रिया। तमकि घर्हि धनु मूढ़ नृप। ताम्यति शमामष्टानां से दीर्घ। ताव दिखाता है। तताम तमिष्यति ताम्यतु। अतमत् अतमतां अतमन्। (दम) धातुका भी उपशम इन्द्रियोंका दमन अर्थ। शम दम एक साथ पढते किन्तु शम धातुको हेतुमति च से ण्यन्त करके घञ् दशामें नोदात्तोपदेशस्यसे वृद्धिका अभाव हो, उपशम ही बना रहे। अन्तर क्या पड़ा? दाम्यतिका शमयति अर्थसे सकर्मक होना। शम अकर्मक है। ददाम देमतुः। दमिता दमिष्यति दाम्यतु अदाम्यत् दाम्येत् दम्यात्। अदमत् अदमताम् अदमन्। अदमः अदमतम् अदमत। अदमम् अदमाव-म।

श्रम—धातुका तप करना खिन्न दुखी होना अर्थ। शमामष्टानांसे दीर्घ श्राम्यति थकता कठिन तप करता है। श्रमिता श्रमिष्यति। श्राम्यतु अश्राम्यत्। अश्रमः अहम् अश्रमं : भ्रम–धातुका अनवस्थान, भ्रम होना, दिशा बदलना चित्तका निश्चित न रहना। वा भ्राशभ्रमुक्रमु-आदिसे दीर्घ श्यन्, शमामष्टानां दीर्घः से दीर्घ। भ्राम्यति लक्षहीन हो घूमता है। भ्रमिता। बभ्राम बभ्रमतुः बभ्रमुः। भ्रमिष्यति भ्राम्यतु अभ्राम्यत् पुषादि मानकर च्लिको अङ्। अभ्रमः अभ्रमतम् अभ्रमत। आर्धधातुकमें श्यन् विकल्प दशामें, शप पक्षमें भ्वादिके तुल्य रूप। क्षम धातुका सहना क्षमा व्यापार वाचक क्षम धातुसे वर्तमान क्षमा क्रियाके कर्तामें लट् आदि। क्षाम्यति क्षाम्यसि क्षाम्यामि। क्षमा करता हूं। चक्षाम क्षमा किया। थल वस् मस् परे इट् विकल्प हो। ऊ इत्का फल न इटि। नश्चापदान्तस्य झलि अनुस्वारे परसवर्णे रूपम्। इसी भेदसे इट, अनिट परक दो रूप। क्षन्ता। आगामी भविष्यमें क्षमा करेगा। क्षन्तारौ क्षन्तारः। क्षमितासि यह धातु ष इत् नहीं। भ्वादिका क्षमूष् षित् है। दोनोंके भेदका प्रदर्शन दिवादिका अषित् है। उसका रूप क्षाम्यति क्तिन् क्षान्तिः-भ्वादिका शप क्षमते। क्षम धातुसे क्तिन्को बाधकर षिद्भिदादिभ्यःसे अङ् टाप्। क्षमा क्लमुका ग्लानि असहनीय कष्ट (गरंगलानि कुटिल कैकेयी।) क्लाम्यति थकता है, असहनीय दुःखसे पीड़ित है। वा भ्राशभ्लाश क्लमु-से श्यन् विकल्प। पक्षमें क्लामति क्लामतः क्लामन्ति। शमामष्टानांसे दीर्घ। जैसे शप्

क्षन्ता। अयमषित्। भ्वादिस्तु षित। 'अषितः क्षाम्यतेः क्षान्तिः क्षमूषः क्षमते क्षमा।' क्लमु ग्लानौ। क्लाम्यति क्लामति। शपीव श्यन्यपि। 'ष्ठिव-क्लम् इत्येव दीर्घे सिद्धे शमादिपाठो घिनुणर्थः अक्लमत्। मदी हर्षे। माद्यति। अमदत्। शमादयोऽष्टौ गताः।

असु क्षेपणे। अस्यति आस। असिता। **अस्यतेस्थुक्** ।७।४।१७। अङि परे। आस्थत्। 'अस्यतिवक्ति इति तङ-पर्यास्थत। यसु प्रयत्ने। यसोऽनुपसर्गात् ।३।१।७१। संयसश्च ।३।१।७२। श्यन्वा स्यात्। यस्यति-यसति। संयस्यति संयसति। अनुपसर्गात् किम् प्रयस्यति। जसु मोक्षणे। जस्यति। तसु उपक्षये। दसु च। तस्यति अतसत्। दस्यति अदसत्। वसु स्तम्भे। वस्यति ववास ववसतुः। 'न शसदद' इति निषेधः। वशादिरयमिति

होने पर ष्ठिवु क्लमुसे दीर्घ होता है। उसी तरह श्यन् होने पर भी दीर्घ सिद्ध था शमामि, गणमें क्लमुका पढ़ा जाना घिनुण् प्रत्ययके लिये है। शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्। चक्लाम क्लामिता क्लमिष्यति असहनीय कष्टसे होगा। क्लाम्यतु क्लामतु। अक्लाम्यत्। लुङिमें पुषादि मानकर च्लिको अङ्। **अक्लमत** अक्लमः अक्लमम् अक्लमाव। ई इत् **मद** धातुका **हर्ष** प्रसन्नताके अनुकूल क्रिया। **माद्यति** मस्त होता है। अमदत् अमदतां अमदन्। **शमादयः**=शमु उपशमेसे मदी हर्षे तक पूर्ण।

उ इत् **अस** धातुका क्षेपण फेंकना क्रिया (वाणम्) अस्यति अनेन अस्त्रं (परोक्ष में फेंकना हो अस अस अअस। आस आसतुः आसुः अस्त्राणि कदा, फेकने वाला हो असिता असितारौ असितारः असिष्यति क्षेपणं करिष्यति। अस्यतु डाल दो। आस्यत् फेंक दिया (आस्येत् आस्येतां आस्येयुः। लुङि आ अस् त। अङ् परे अस्यतेस्थुकि। अस धातुसे थ। क इत्से अन्त्यका अवयव। अकार उच्चारणार्थंक **आस्थत्** आस्थतां आस्थन् आस्थः आस्थतम् आस्थत। आस्थं मैं प्रक्षेपण किया। **यस**-धातुका प्रयत्न चेष्टा क्रिया। यसोऽनुपसर्गात्से यस धातुसे श्यन् विकल्प हो वाभ्राशभ्लाश सूत्रसे "श्यन् वा" की अनुवृत्ति। प्रथम सूत्रका अर्थ उपसर्ग रहित यससे श्यन् विकल्प हो। दूसरे सूत्रका अर्थ उपसर्गसे जुड़ा हो तब सम्पूर्वक यससे नित्य श्यन्। अतः यस्यति चेष्टा करता है, श्यन् अभावमें यसति। संयस्यति संयम बरतना। अनुपसर्ग क्यों? प्रयस्यतिमें विकल्प श्यन् न हो क्योंकि सोपसर्ग है नित्य हुआ। द्वितीय सूत्र भी विकल्पके लिये है। जस्यति मुक्त करना **अजसत्**। तस्यति नाश होता है। अतसत्। दस्यति दमन करना। दस्यु (डाकू चोर) इसी धातुका रूप है। **वस**-धातुका स्तम्भ, विवश करनेकी क्रिया। न शशददवादिगुणानांके निषेध से एत्वाभ्यास लोप नहीं। मतमें वादि नहीं बादि है। तब बबास। बेसतुः बेसुः।

व्युष—धातुका विभाग अलगावकी क्रिया अर्थ, **व्युषति** विभागं करोति। च्लि को अङ् होने पर अव्युषत् अव्युषतां अव्युषन्। व्युषदाहे जो पूर्वमें पढ़ा है वहां सिच एव। **अव्योषीत्** अव्योष्टां अव्योषुः। **विशका**

मते णु, बेसतुः बेसुः। व्युष विभागे। बिस प्रेरणे। विस्यति अविसत्। कुस संश्लेषणे। अकुसत्। बुस उत्सर्गे। मुस खण्डने। मसी परिणामे। परिणामो विकारः। समी इत्येके। लुठ विलोडने। उच समवाये। उच्यति। उवाच। ऊचतुः। मा भवानुचत्। भृशु भ्रंशु अधःपतने। बभर्श। अभृशत्। 'अनिदितामिति नलोपः। भ्रश्यति। अभ्रशत्। वृश वरणे वृश्यति। अवृशत्। कृश तनूकरणे। कृश्यति। ञि तृषा पिपासायाम्। हृष तुष्टौ। श्यन्नङौ भ्वादिकाद्विशेषः। रुष रिष हिंसायाम। 'तीषसह' इति वेट्। रोषिता-रोष्टा रेषिता-रेष्टा, डिप क्षेपे। कुप क्रोधे। गुप व्यकुलत्वे। लुभ गार्ध्ये। गार्ध्यमाकाङ्क्षा। 'तीषसह' इति वेट। लोभिता-लोब्धा। लोभिष्यति। लुभ्येत् लुभ्यात्। लुभत्। भ्वादेरदृत्कृतत्वाल्लोभतीत्यपीत्याहुः। क्षुभ सञ्चलने। क्षुभ्यति। णभ

प्रेरणा करना। अविसत प्रेरणा क्रिया। कुसका संश्लेष चिपकाना। कुष्यति चिपकता है अकुषत् भूतकालिक संश्लेषण क्रिया। बुस उत्सर्ग। बुस्यति त्यागता है अबुसत्। मुष्यति मूसना चोरी क्रिया। मुमोष मोषिता मोषिष्यति। मुष्यतु अमुष्यत्। अमुषत्। मस धातुका परिणाम–विकार लिखना, स्याहीसे कार्यके अनुकूल क्रिया। मस्यति स्याही लगाता है। मसिष्यति अमसत्। स्याही लगाया। मसी इसी से बना। समी सम्यति असमत्। लुटका विलोडन मन्थन लुट्यति। अलुटत् मन्थन किया लूट लिया। उच्यति समवाय, इकट्ठा होना, भृश्यति भ्रष्ट होना, स्खलन नष्ट होनेकी क्रिया भ्रशिता भ्रंशिष्यति। अङि होने पर अभृशत् अभृशतां अभृशन् अनिदितां हलि उपधायांसे नलोप। भ्रश्यति भ्रशिता भ्रशिष्यति। भ्रश्यतु अभ्रश्यत्। भ्रष्ट होनेकी सम्भावनामें भ्रश्येत्। लुङि च्लिको अङ्। अनिदितां नलोप अभ्रशत् अभ्रशतां अभ्रशन्। अभ्रशः अभ्रशतम् अभ्रशत। अभ्रशम् अभ्रशाव। वृश का वरण स्वीकार वृश्यति एककर्तृक वर्तमानकालिक स्वीकरण क्रिया। वह क्रिया समाप्तकाल में हो लुङि। कृशका तनूकरण, क्षीण होना छील छाल पतला करना। कृश्यति चकर्श। कर्शिष्यति कृश्यतु अकृश्यत् अकृशत्। तृष्यति प्यासा है पातुमिच्छा पिपासा ततर्ष तर्षिष्यति तृष्यतु। अतृषत् अतृषताम् अतृषन्। हृष्यति सन्तुष्ट प्रसन्न होता है। हृष्यतः हृष्यन्ति। जहर्ष हर्षिता हर्षिष्यति हृष्यतु अहृष्यत्। हृष्येत्। अहृषत्। श्यन् अङ्में विशेषता, अन्य रूप भ्वादि सदृश। रिस्यति हिंसा करता है अरिषत्। डिप्यति फेंकता है अडिप्त्। कुप्यतु क्रोध करना चुकोप कोपिता कोपिष्यति। कुप्यतु अकुप्यत्। अकुपत् कोप किया। गुप्यतु व्याकुलता। अगुपत् गुप्यति मोहमें बंधता है। लुप्यति लोप होना सेट धातु। अनिट कारिकामें लिपिके साथ तुतादिका ही ग्रहण।

लुभ—धातुका गार्ध्य लोभ आकांक्षा वस्तु पर आसक्तिकी क्रिया। लुभ्यति एककर्तृक वर्तमानकालिकलोभ क्रिया। लुभ्यतः लुभ्यन्ति। वस्तुपानेकी प्रबल इच्छा। तीषसहलुभरुषरिषः से वा इट्। लोभिता आगामी भविष्यकालमें आसक्ति की क्रिया। जब न इटि लुभ ता झषस्तथोर्धः भ-ब गुण लोब्धा लोब्धारौ लोब्धा-

तुभ हिंसायाम् क्लिद् आर्द्रीभावे क्लिद्यति चिक्लेदिथ-चिक्लेत्थ चिक्लिदिव-चिक्लिद्व। चिक्लिदिम-चिक्लिद्म। क्लेदिता-क्लेत्ता। ञिमिदा स्नेहने। 'मिदेर्गुणः' मेद्यति अमिदत्। ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयोः। ऋधु वृद्धौ। आनर्ध आर्धत्। गृधु अभिकाङ्क्षायाम्। अगृधत्। वृत-पुषादयो दिवायश्च वृत्ताः। षूङ् प्राणिप्रसवे। सूयते सुषुवे 'स्वरतिसूति' विकल्पं बाधित्वा 'श्र्युकः किति' निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट्। सुषुविषे। सुषुविवहे सोता सविता।

रक। लोप्स्यति लोप करेगा लूट लेगा। लुभ्यतु अलुभ्यत्। लुभ्येत् एककर्तृक सम्भावनाकालिक आकांक्षा। अलुभत् अलुभतां अलुभन्। बहुत लालच किये। भ्वादिका वृत समाप्ति नहीं, अतः लोभति भी बनेगा। प्रबल इच्छा। क्षुभ्यति सञ्चलने क्षुब्ध विचलित डगमगाता है। चुक्षोभ अक्षुभत्, नभ्यति हिंसा करता है अनभत् क्षुभ, नभ, तुभ द्युतादि एवं क्र्यादिगणमें पढ़ें जायेंगे। द्युतादि मानकर उनके अङ् सिद्ध है और क्र्यादि मानकर सिच् भी सिद्ध, यहां क्यों पढ़ा? श्यन्के लिये। क्लिद्यति आर्द्र गीला होना। चिक्लेद इटि विकल्प। थस वस मस परे ऊदित होनेसे इटि विकल्प। क्लिद्यतु अक्लिद्यत् क्लिद्येत् गीलापनके विषयमें कामना हो क्लिद्यात् अक्लिदत् वस्त्रं, गीला किया। मिदंका स्नेहन चिकना करना, यन्त्रमें तेल देना। मेद्यति मिदेर्गुणः। मेद्यतः मेद्यन्ति। मिमेद मेदिता मेद्यतु अमेद्यत्। अमिदत्। परस्मैद परे च्लिको अङ्। जहां आत्मनेपद है वहां अमेदिष्ट अङ् नहीं होता। पुषादिगणमें मिदका पाठ व्यर्थ हैं पुषादिके बाहर दिवादिमें पाठसे श्यन् सिद्ध था इस शङ्का पर कहा द्युतादिमें मिदके पाठसे दोनों रूप सिद्ध यहां क्यों पढ़ा? अमेदीत् रूप होनेके लिये (पुषादिमें पढ़ा) यद्यपि भ्वादिके भीतर द्युतादिमें पढ़ना व्यर्थ है। द्युतादिको बाहर आत्मनेपदमें पढ़ें। अतः कहा द्युतादिके बाहर आत्मने पद पढना उचित। ऋध् धातुकी वृद्धिकी क्रिया। ऋध्यति ऋध्यतः ऋध्यन्ति। बढ़ते हैं। धन वश वंशके विषयसे ऋध ऋध ऋऋध द्विहल मानकर नुट्। आनर्ध परोक्षकालमें बढ़ा अर्धिष्यति ऋध्यतु आर्ध्यत् ऋध्येत् वह बढ़े। आर्धत् आर्धतां आर्धन् वे बढ़ चुके, समृद्ध हुये (गृध) धातुका अभिकाक्षां अत्यन्त लोभ या असन्तोषकी क्रिया। गृध्यति जगर्ध गर्धिता। गृध्यतु अगृध्यत्। अगृधत् अगृधतां अगृधन्। पुषादि एवं दिवादिगण समाप्त हुये। किसीके मतमें पुषादिकी समाप्तिका सूचक वृत्त पढ़ा। दिवादिगण भी भ्वादिगणकी तरह आकृतिगण हैं, आकृत्या स्वरुपेण गण्यते परिचाय्यते श्यन्का रूप देखकर गण मान लें। प्रमाण देते हैं क्षीयते मृग्यति। दिवादिमें नहीं पढ़ा है श्यन् देखकर मान लिया। षूङ् (आदि ष स) धातुका प्रसव पैदा होना। सूयते सचराचरं, मृत्पिडो घटं सुयते। जड़ चेतनका प्रसववाचक षूधातोः वर्तमाने प्रसवकर्ता अर्थे लट् ति श्यन् आदि। सूयेते सूयन्ते। सूयसे सूयेथे सूयध्वे। सूये सूयावहे सूयामहे। परोक्षकालमें प्रसव या उत्पत्ति क्रिया हो चुकी हो। परोक्षे लिट् षु ए उवङ् सुसुवे सुसुवाते सुसुविरे। सभी पैदा हुए या प्रसवकी,(षुसुषुसे)दशायां स्वरतिसूति सूत्रेण(प्राप्तम् इटं बाधित्वा)श्र्युकः किति निषेध प्राप्त था उसे भी बाधकर क्रादिनियमसे नित्य इट् तब उवङ् पत्वे।

दूङ् परितापे, दीङ् क्षये, दीयते। दीङो युडचि क्ङिति ।६।४।६३। दीङः परस्याजादेः क्ङित आर्धधातुकस्य युट्स्यात्। 'वुग्युटावुवङ्यणौ सिद्धौ वक्तव्यौ दिदीये। मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ।६।१।५०। एषामात्वं स्याल्ल्यपि चकारादशित्येज्निमित्ते। दाता दास्यते अदास्त अदास्थाः। डीङ्

सुसुविषे सुसुवाथे सुसुविध्वे। वहि महि परे भी नित्य इट् पूर्ववत्। सोता सु धातुसे भविष्यकालिक प्रसवकर्ता अर्थे लुट् ति तास् डा। सु ता गुणे सोता सोतारौ सोतारः इट पक्षमें गुणे अवादेशे सविता सविताते सवितास्महे। सूयतां असूयत। सूयेत सुयेयातां सुयेरन् सविषीष्ट सविषीष्ठाः। असविष्ट असविषाताम् इट् अभाव पक्षमें असोष्ट असोषाथाम्। असोषत असोष्ठाः। दूङ् धातुका परिताप पीडन या पीड़ित होना क्रिया। पीड़नमें सकर्मक, पीड़ितमें अकर्मक। दूयते नेत्र दुखता है। या गरीब दुखी होता है। दोता दोष्यति अदोष्ट। दीङ् का क्षय नाश ह्रस्व होना। वर्तमानकालिक अर्थमें दीयते दीयेते दीयन्ते घट रहे या नष्ट हो रहे हैं। दींङो=दी धातुसे परे अजादि कित् ङित् आर्धधातुकको युट् हो, आर्धधातुकके अधिकारमें अच् विशेषण तदादिविधि। षष्ठी अर्थमें सप्तमी।

दिदीये ह्रस्व वा नाशार्थक दी धातोः अनद्यतन भूतकालिक नाशकर्ता अर्थ परोक्ष लिट्-त-एश द्वित्व(दिदी ए)दशायाम्। एरनेकाऽचः परत्वात् यण् प्राप्ते(कृताकृतप्रसङ्गो विधिर्नित्यः) नित्यत्वात् दीङो युडचि-ए परे युट। ट-इत उ उच्चा० टित् आदिः अवयवः दिदीये। ननु युडागमे कृतेऽपि तस्य असिद्धत्वात् यण् भवतु-तदा ब्रूते (वा०) वुक युट् दोनों उवङ् यण्की दृष्टिमें सिद्ध रहें। दिदीयाते। दिदीयिरे। दिदीयिषे दिदीयाथे। दाता क्षयकर्ता भविष्यकाल छोटा होना। क्षयार्थक अनद्यतन भविष्यकालिक क्रियायाः कर्ता अर्थे लुट् ति तास डा आदि। दी ता। मीना=हिंसायां, डुमिञ् प्रक्षेपणे प्रमाय उपदाय। प्रमातव्यम् उपदातव्यम् एच् निमित्ते विषयसप्तमी पहले आत्व पीछे घञ। (आतोयुक्) दीङ्-धातुको आत्व हो ल्यप् परे। चकारसे एच् अशिति परनिमित्तका संग्रह। एच् निमित्तक प्रत्यय शितिपरे न हो इति आत्वे, दाता दातारौ दातारः नाशकर्तारः। दास्यते भविष्यकालिक नाश क्रिया। दीयतां नाश करो, अदीयत छोटा किया। दीयेत (अदास्त) अदीसत मीनातिमीनोति सूत्रेण आत्वे। घुसंज्ञा सत्यपि स्थाघोरिच्च ईत्वं न भवति। दीङः प्रतिषेधवार्तिकात्। डीङ् धातुका विहायसा आकाशमार्गसे चलना अर्थ, उत् उपसर्ग डीयते आकाशसे चलता है। डिडीये। डयिता डयतां डयिषीष्ट अडयिष्ट अडयिषाथाम् अडयिष्यत। पीयते पीयेते पीयन्ते वर्तमानकालिक जलपान आदि क्रिया। पिपीये अनदेखाकालमें पी गया। पेता पेष्यते पीयतां पीयेतां पीयन्तां पीयस्व पीयेथां पीयध्वम्। पीयै। अपेष्ट अपेषाताम् अपेषत। मायते वर्तमानकालिक माप क्रिया-माता। मास्यते तौलेगा मायताम्। अमास्त अमासाताम् अमासत। ईयते गच्छति, लिट् परे ईजादि मानकर आम्। प्रीङ धातुका प्रीति तुष्टि प्रसन्नता

विहायसा गतौ, डीयते । पीङ् पाने, पीयते । माङ् माने । मायते ममे । ईङ गतौ । ईयते अयांचके, प्रीङ् प्रीतौ सकर्मकः । प्रीयते पिप्रिये । जनी प्रादुर्भावे । ज्ञाजनोर्जा ।७।३।७६। अनयोर्जादेश । जायते जज्ञे । जज्ञाते जज्ञिरे । जनिता जनिष्यते । दीपजन इति वा चिण् । जनिवध्योश्च । अनयो-रुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणिञ्णिति कृति च । अजनि अजनिष्ट ।

संतोषकों क्रिया । अत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः इत्यमरः । सकर्मक, स मा प्रीयते । वर्तमाने लट त श्य । अकर्मक भी पत्र पुष्प फल मूलादिना हरिः प्रीयते । प्रीतिः तर्पणम् ई इत जनधातुका प्रादुर्भाव प्रकट होना, प्रकाशमें आना, उपलब्धिकी क्रिया । ज्ञाजनोः:—ज्ञा अवबोधनें, जनी प्रादुर्भावे दोनों धातुके स्थानमें जा आदेश हो, शिति परे । श्यन श श्ना आदि श इत् हैं । ष्ठिवुक्लमु-से शिति आया । उत्पत्तिजनक क्रियावाचक धातुसंज्ञक जनधातोः वर्तमाने (कर्ता) अर्थे लट् । आत्मनेपदे प्रथम पुरुषस्य एकवचनं त । टि संज्ञा, टेरे ऐत्व । शप स्थाने श्यन्-य । ज्ञाजनोर्जा इति जन स्थाने जा आदेशे । जायते जायेते जायन्ते । ज्ञा धातु श्ना विकरण हैं, जानाति रूप दोनों स्थलमें जा आदेश पढ़ा । ज कहते अतो दीर्घोयञिसे दीर्घ होता, जा क्यों? वही ज्ञापन देता है कि—(अङ्गकार्ये कृते पुनर्नाङ्गकार्यम्) एक अङ्गाधिकारी कार्य हुआ हो दूसरा अङ्गाधिकारी कार्य न हो । जैसे पा धातुसे पित् आदेश होने पर गुण नहीं होता । अतः जा आदेश दीर्घ पढ़ा । जाये जायावहे जायामहे । यज्ञे प्रकटीभवन क्रियावाचक जनधातोः विगतभूतकालिक उत्पत्तिफलजनक क्रियायाः कर्ता अर्थे लिटि त एश् । जन् ए । लिटि धातोरनभ्यासस्य द्वित्वे शेषकार्ये । जनन ए । गमहन जन उपधाया अलोपे, न स्थाने श्चुः ञ । जजोर्ज्ञः । जज्ञाते यज्ञिरे जज्ञिषे । जज्ञे । अनद्यतन भविष्यकालकी प्रादुर्भाव क्रिया हो कर्तामें लुटि त तास डा आदि । इटि जनिता जनितारौ जनितारः । श्वः जनितासे आगतवर्षे जनिताहे, प्रकट होंगे । जनिष्यते । एककर्तामें भविष्यकालिक जननक्रिया । यदि आज्ञा प्रेरणा, क्रियामें प्रवृत्ति कराने या आशीर्वादका विषय हो लोट् । जायतां जायेतां जायन्तां, जायस्व जायेथां जायध्वं । जायै जयावहै, अजायत अजायेतां अजायन्त । एक कर्तृकभूतकालिक उत्पत्तिजनक क्रिया । पैदा होनेकी सम्भावना मात्र हो । जायेत जायेयातां जायेरन् । प्रकट होनेके लिए शुभकामना अर्थमें लिङि (जन इ सीय् स त) जनिषीष्ट । अजनि प्रादुर्भावार्थक, जनधातुः सामान्यभूतकालिक समाप्त क्रियाया कर्ता अर्थे लुङि त अट् । अजन त दशायां दीपजनबुधपूरितायिप्या-यिभ्योऽन्यतरस्यामिति च्लिस्थाने चिण् अनुबन्धलोपे (अजत इ त) स्थितौ णित्परे अतोपधायाः वृद्धि आ इति प्राप्तां, निषेध सूत्रं । जनिजऽयो—जन धातु और बध आदेशकी उपधाको वृद्धि न हो चिण ञ ण-इत् और कृति परे । अत उपधायाः (मृजे) वृद्धि नोदात्तोपदेशसे न, आतो युक्से चिण् (अजा) ञ्णति आया । इति निषेधे, चिणो नलोपे अजनि यदा न चिण् तदासिच् इट ष्टुः अजनिष्ट अजनिषातां अजनिषत । अजनिष्ठाः अजनिषाथां अजनिढ्वं । अजनिषि अजनिष्वहि । अजनिष्यत

अथैकादशानुदात्तेतः । पद गतौ । पद्यते पेदे पत्ता पद्येत । पत्सीष्ट । चिण् ते पदः ।३।१।६०। पदश्च्लेश्चिण् शब्दे परे । प्रण्यपादि । अपत्साताम् अपत्सत । खिद दैन्ये, खिद्यन्ते चिखिदे । खेत्ता अखित्त । विद सत्तायाम् । विद्यते वेत्ता । बुध अवगमने । बुध्यते बुबुधे । बोद्धा भोत्स्यते । भुत्सीष्ट अबोधि अबुद्ध । अभुत्साताम् । युध सम्प्रहारे, युध्यते युयुधे योद्धा । अयुद्ध ।

ञित, घञ् जनः में न वृद्धि । ण इत् जनकः में न वृद्धि । जनयति । यदि उपधावृद्धि होती जनीजॄषसे मित् । मितां ह्रस्व होता । श्वीदितो निष्ठायाँके लिए ई इत् है । पद–धातुका गति ज्ञान प्राप्ति मोक्ष अर्थ । अनिट पद्यते वर्तमानकालिक ज्ञानप्राप्ति क्रिया । पद्येते पद्यन्ते पद्यसे । वह क्रियासहित कर्ता न देखा गया हो लिट त एश । पद पद पपद ए, एत्व आदि । पेदे पेदाते पेदिरे । पद्ता पत्ता भविष्यकालिक ज्ञान मोक्षकी क्रिया । पत्स्यते पद्यतां ज्ञान करो । अपद्यत पद्येत (पद सीसत) ज्ञानके विषयमें शुभकामना । लुङ्में प्रण्यपादि-प्रनिपूर्वक विशेषज्ञान गमन मोक्ष क्रियावाचक पदधातोः भूतकाले समाप्त क्रिया अर्थे कर्तरि लुङ् त अट । अपद चिल स्थाने चिण् । चिणते—पद धातुसे परे च्लिस्थाने चिण् हो त शब्द परे, आत्मनेपद प्रथम पुरुष एकवचन परे । च्लेः (सिच) आया सूत्रेण चिण, अनुबन्धलोपे, उपधायाः वृद्धौ । अपादि त । चिणो लुकि तकारस्य लोपे । प्रनिपूर्व है तब णत्व नेर्गदनद-नस्य णत्वे प्रण्यपादि । अपत्थाः अपत्साथाम् अपध्वम्, अपत्सि अपत्स्वहि । भूतकालकी ज्ञानक्रिया ।

खिद—धातुका दीनता अत्यन्त दुखी, खिन्नताकी क्रिया । खिद्यते, खिद्यन्ते । दीन होते हैं, दीनता क्रियासहित कर्ता देखा न हो, परोक्ष लिट् आदि । चिखिदे चिखिदाते चिखिदिरे । खिद ता अनद्यतन भविष्यकालमें खिन्नता हो । खेत्ता खेत्तारौ खेत्तारः खेत्तासे । खेत्स्यते खिद्यताम् अखित्सत अखित्थाः अखित्साथां (विद) धातुका सत्ता-वर्तमान होनेकी क्रिया । विद्यते उपस्थित है विविदे वेत्ता वेत्तारौ वेत्तारः । वेत्स्यते अविद्यत । विद्येत वर्तमान रहे । अवित्त अवित्सातां अवित्सत अवेत्स्यत । बध धातुका अवगमन-बोध ज्ञान होना, समझनेकी क्रिया । बुद्धयते समझता है । बुबुधे कब समझा । बुध ता दशामें झषस्तथोः त को ध । पूर्व ध को जश् द । बोद्धा बोद्धारौ बोद्धारः । कल समझेंगे । (बुध स्यते) एकाचो बशो भष (स्थपरे) ब को भ गुण । ध को चर्त, बुध सी सत । भुत्सीष्ट । लिङ्सिचोःके कित्से गुण निषेध । अबोधि । बुध धातोः ज्ञानभवनक्रियायाः भूते कर्ता अर्थे लुङि त अट, दीपजनबुध-सूत्रेण चिण्-इ । चिणोलुक् सूत्रेण तलोपे अबोधि । यदा न चिण तदा सिच् । सकारस्य झलोझलि लोपे, त स्थाने ध जश आदि । अबुद्ध अभुत्सातां अभुत्सत, अबुद्धाः अभुत्साथां अबुद्ध्वम् । अभुत्सि अभुत्स्वहि–महि । युध धातुका सम्प्रहार कड़ी मारकी क्रिया । युध्यते प्रहार करता है । युध धातोः त श्य आदि । अनिट होनेसे युध ता योद्धा । आगतकालमें युद्ध करेगा । योत्स्यते युद्धयताम् अयुद्धयत

कथं 'युध्यति' इति। युधमिच्छतीति क्यच्। 'अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्' इति वा। सृज विसर्गे। अकर्मकः। 'संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः'। ससृजिषे। स्रष्टा। स्रक्ष्यते 'लिङ्सिचो इति कित्त्वान्न गुणो नाप्यम्। सृक्षीष्ट असृष्ट असृक्षाताम्। मीङ् हिंसायाम्। हिंसा अत्र प्राणवियोगः। मीयते। रीङ् श्रवणे रीयते। लीङ् श्लेषणे **विभाषा लीयतेः**।६।१।५१। लीयतेरिति यका निर्देशो न तु श्यना। लीली-

---

युध्येत लुङि अयुद्ध। झलो झलिसे सिच्लोप अयुत्सातां अयुत्सत। यह धातु आत्मनेपदी है युद्धयतिमे परस्मैपद कैसे ? समाधान-युध्यते इति युध् भावे किप् लड़नेकी क्रिया। युधमिच्छति लड़ना चाहता है। इच्छा अर्थे सुप आत्मनः क्यच्। युध्य इति नामधातोः परस्मैपदं युद्धयसि। अथवा अनुदात्त-इत् वाला आत्मनेपद अनित्य है। कहीं नहीं भी होता है। पर यह समाधान भाष्यमें न मिलनेसे अप्रामाणिक। व्यत्ययो बहुलंके भाष्यमें (प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यति)व्यत्ययसे परस्मैपद कहा, अनित्यतासे नहीं। सृजका विसर्ग त्याग, विकास, सृष्टिकी क्रिया अकर्मक। अरुणांशु-सूर्यकी किरणोंसे खिलते हैं। विसर्गः सम्बन्धः वि उपसर्गके बलसे कमलैः कमलिनी संसृज्यते सम्बध्नाति। कर्तामें लकारके प्रमाणसे उपसर्गसे सम्बन्ध जोड़ना अर्थ। अर्थान्तर हो तब सकर्मक ससृजे ससृजाते ससृजिरे। परोक्षमें सम्बन्ध जोड़े सृज सृज ससृज। थासः से। क्रादिनियमसे इटि ससृजाथे। स्रष्टा। सम्बन्धानुकूल क्रियावाचक सृजधातोः भविष्यकालिक सृजन कर्ता अर्थे लुटि आदि सृज ता। सृजिदृशोर्झलि अमकिति इति अम्। सृ अ ज। ऋ स्थाने यण्। व्रश्चभ्रस्ज जको ष ष्टु। स्रष्टारौ स्रष्टारः। स्रष्टासे, स्रक्ष्यते झलि परे अम् ज-ष षढोः क। स-ष। सृष्टि करेंगे। सृज्यताम् असृज्यत। (सृज सीसत) ज-ष-क सृक्षीष्ट। पुगन्तलघूपधस्यसे गुण प्राप्त था लिङ्सिचावात्मनेपदेषुसे कित्। जिसका फल गुणनिषेध। सृजिदृशोः से अम् भी नहीं, कित् होनेसे, अकिति अम्विधानम्। **असृष्ट** समाप्त विसर्ग क्रियाके कर्तामें लुङ्सिचौंसे सिच् कित हुआ गुण निषेधके लिये। अतएव न अम्। व्रश्चभ्रस्ज जको ष क। स-ष क्ष असृक्षातां असृक्षत। असृष्ठाः। **मीङ्** हिंसायां प्राणवियोग मृत्युके अनुकूल क्रिया। **मीयते** कर्तामें वर्तमानकालिक मरणक्रिया। मिमीये, माता मास्यते, अमास्त अमासाताम् अमाध्वम्। मीनाति मीनोतिसे आत्व। रीयते (शृणोति) अरयिष्ट। लीङ्का चिपकना लीन होना मिलजाना लीयते लीयेते लीयन्ते। सभीलीन होते हैं। लिल्ये लिल्यिषे लिलियध्वे-ढ्वे। लेता लाता श्लेषणार्थक लीधातो अनद्यतने लुट ति तास डा आदि।

विभाषा—लीयतेमें श्यन् नहीं है, यक् है। सार्वधातुके यक् वाला लीयते मान्य, श्ना विकरण वाला नहीं। ली और लीङ्को आत्व हो विकल्पसे, एच्के विषय में या ल्यप् परे, ल्यपि विलाय विलीय। मीनातिमीनोतिसे ल्यपि, आदेच् उपदेशेसे

ङोरात्वं वा स्यादेज्विषये ल्यपि च। लेता लाता। लेष्यते लास्यते। एज्विषये किं? लीयते लिल्ये। व्रीङ् वृणोत्यर्थे। व्रीयते विव्रिये। 'स्वादय ओदितः'। मृष तितिक्षायां। मृष्यति मृष्यते। ममर्ष ममृषे। णह बन्धने। नह्यति-नह्यते ननाह। नेहिथ ननद्ध। नेहे। नद्धा नत्स्यति अनात्सीत् रञ्ज रागे। रज्यति-रज्यते। शप आक्रोशे। शप्यति शप्यते। शक विभाषितो मर्षणे। विभाषित इत्युभय पदीत्यर्थः। शक्यति-शक्यते वा हरिं द्रष्टुं भक्तः। शशाक शेकिथ शशक्थ। शेके शक्ता शक्ष्यति शक्ष्यते। अशकत् अशक्त। सेट् कोऽयमित्येके। तन्मतेनानिट्कारिकासु लृदित्पठितः। शकिता शकिष्यति। इति तिङन्ते दिवादिप्रकरणम्।

धात् एच् भी अनुवृत्त। सूत्रेण आत्वे लाता पक्षे गुणे लेता। चिपकेगा मिलेगा लास्यते। एच्का विषय क्यों? लीयतेमें आत्व न हो जाय। अलास्त। व्रीङ् का स्वीकारना अर्थ। व्रीयते वर्तमानकालिक स्वीकार क्रिया।

मृष का तितिक्षा सहन शक्ति का व्यापार अर्थ, कर्तामें श्यन्। ति। मृष्यति क्षमा या सहन करता है वर्तमानकाले सहन क्रिया कर्ता। मृश्यते मृष्येते मृष्यन्ते। परोक्षभूतमें सहन क्रिया हो ममर्ष ममृषतुः ममृषुः। अमृष्ट।

नह–धातुका नाधना, बाधना, जोड़ना क्रिया (णो नः) उपदेशमें आदि ण को न हो। नह्यति नाधता जोड़ता है। बाधना या जोड़ना क्रिया परोक्षकालमें हो कर्ता सहितमें न देखी गयी हो, लिटि नह नह ननह ननाह। त्वं वृषभौ। ननद्ध नेहिथ भारद्वाज नियमसे इट होगा। थलि परे (थलि च सेट्) सूत्रसे एत्व अभ्यासलोप होगा जब इट् नहीं (न हो धः) से ह को ध। जश आत्मनेपदमें लिटि त एश्। ननह ए। एत्व अभ्यासलोप। नेहे नेहाते नेहिरे भविष्यकालमें नाधना जोड़ना हो। नधता। न हो धः ध को जश द। नद्धा। घोटकं अनात्सीत् अनाद्धां अनात्सुः अनात्सीः अनाद्ध। रञ्ज का राग रंगनेकी क्रिया वर्तमान हो रज्जति रंगता है। अनिदितां हल उपधायाः से न लोप। ररज्ज ररज्जतुः ररज्जुः। ररज्जिथः ररङ्क्थ ररञ्जिव नहीं होगा, अनिट होनेसे। रङ्क्ता अरञ्जिष्ट। शप आक्रोशे क्रोध उतारना शाप देना, शपति शशाप शेपे शप्ता शप्स्यते अशप्त। अशाप्सीत्। अशाप्ताम्

शक—धातुका मर्षण क्षमा सामर्थ्यके अनुकूल क्रिया अर्थ। विविधा भाषा वभाषा सा संजाता अस्य सञ्जतं इतच् विभाषितः। शक धातुकी दो भाषा परस्मैपद आत्मनेपद उभयपदी, यह विकल्प परस्मैपदका विषय है। दिवादिका नहीं। शक्यति समर्थो भवति किसी क्रियामें समर्थ होनेका विषय। भक्त भगवानको देखनेमें समर्थ है असमर्थ नहीं, एककर्तृकवर्तमानकालिक दर्शनक्रिया। वह क्रिया कर्ता सहित अनुभूत हो। किन्तु भूतकालकी हो। शशाक शेकतुः शेकुः। थल परे विकल्पसे एत्व अभ्यासलोप। शेकिथ। वह आत्मनेपदमें शक ए। शेके शेकाते शेकिरे। शक्ता

अथ तिङन्ते स्वादिप्रकरणम्

षुञ् अभिषवे। अभिषवः स्नपनं पीडनं स्नानं सुरासन्धानं च, तत्र स्नाने अकर्मकः। स्वादिभ्यः श्नुः ।३।१।७३। सुनोति सुनुतः। 'हुश्नुवोः' इति यण् सुन्वन्ति। सुन्वः सुनुवः। सुन्वहे-सुनुवहे। सुषाव सुषुवे। सोता।

अनिट है कल परसों निराल भविष्यकालमें समर्थ होगा। शक स्यति। स-ष क-ष क्ष। शक्यतु, शक्यताम् अशक्यत, शक्येत समर्थ होनेकी शुभकामना हो, आशीर्लिङ। पुषादि सूत्रसे च्लिको अङ्। अशकत् अशकताम् अशकन् भूतकालमें सामर्थ्य था। अशक सत। झलोझलि सलोप। अशक्त अशक्षाताम् अशक्षत। असक्थाः अशक्षायां अशक्ध्वम् अशक्षि अशक्षावहि अशक्षामहि। यह धातु सेट् है ऐसा किसीका मत। अपने मतमें अनिट है क्योंकि अनिट कारिकामें शक्लृ सामर्थ्ये पढ़ा है जो सेट कहते हैं उनके मतमें अनिट कारिकामें शक्लृ अमान्य है। तब इट होगा शकिता शकितारौ शकितारः। शकितासे शकितोस्मि। इति दिवादयः।

अथ स्वादयः श्यन्विकरण समाप्तिके बाद षुधातुः आदौ येषान्ते (ऐसा धातु समुदायः) स्वादयः, स्वादिका अन्तर्गण होनेसे धातुसंज्ञा धातुत्वात् लडादि। शपके स्थानमें श्नुविकरण होना प्रकरणका भेदक धर्म। सु धातुका अभिषव स्नपन लेपन पीडन निचोड़ना कष्ट देना, स्नान हर-हर महादेव, सुरासंन्धान-मदिरा बनाना इतने फलके अनुकूल क्रिया अर्थ। धातुके आदि ष को स। अनिट सकर्मक। यहांसे लेकर ञित् सभी धातु दोनों पदी है। प्रकरणका अन्तर करनेवाला विकरण **स्वादिभ्यः**—कर्त्रर्थे सार्वधातुक परे स्वादिभ्यः श्नुः स्यात्। स्वादिगणमें पढ़े धातुसे श्नु हो शपको बाधकर। **सुनोति**—सुरोत्पादन स्नान पीडा निचोड़ लेपनजनक क्रियावचक सु धातुसे वर्तमानकालिक उक्तक्रियाके कर्तामें लट् ति शपको बाधकर स्वादिभ्यः श्नुः श इत् नु शेष। सु नु ति। नु (शित्से) सार्वधातुक है। अपित् होनेसे ङित् हुआ जिसका फल धातुके सु को गुण न होना। नुको गुण होता है तिपको सार्वधातुक परे जानकर, जो पित् है यह ङित् नहीं होता। **सुनुतः**—तस ङित् है अतः नु को भी गुण नहीं। अनेककर्तामें लेपन, पीडन निचोड़ सुरोत्पादनकी क्रिया हो। तब झि सुनु अन्ति दशामें अचिश्नुधातुभ्रुवां-से उवङ् प्राप्त किन्तु हुश्नुवोः सार्वधातुकेसे यण्। **सुन्वन्ति**। सुनोषि सुनुथः सुनुथ। तुमलोग मद्यनिर्माण आदि कार्य करते हो। सुनोमि, वस मस परे (लोपश्च अन्यतरस्यां म्वोः)से उकारलोप विकल्प जानकर सुन्वः मस परे सुन्मः सुनुमः। आत्मनेपदमें सुनुते सुन्वाते सुन्वते। सुनुषे सुन्वाथे सुनुध्वे। सुन्वे वहि महे परे लोपश्चास्यान्तरस्यांसे उलोप विकल्प, सुन्महे सुनुमहे। **सुषाव**—लेपन स्नान सुरासन्धान क्रियावाचक सुधातोः परोक्ष भूतकालिक क्रियार्थे कर्तरि लिट ति णल् द्वित्वादि सु षु अ। अचोञ्णिति वृद्धिः औ आव् ष। सुषाव सुषुवतुः सुषुवुः। सुषविथ सुषोथ सुषुवथुः सुषुव। सुषाव सुषव सुषुविव सुषुविम आत्मनेपदमें तको एश्। सुषुवे सुसुवाते सुषुविरे। सुषुविषे। सुषुविढ्वे ध्वे। सुषुवे सुषुविवहे। इस धातुके अनिटका सूचक (सोता)। आगामी भविष्यकालमें लेपन पीडन

सुनु । सुनवानि । सुनवै । सुनुयात् । सूयात् । स्तुसुधूञ्भ्यः' इतीट्-असावीत् । असोष्ट । अभिषुणोति अभ्यषुणोत् अभिसुषाव । **सुनोतेः स्यसनोः** ।८।३।११७। स्ये सनि च परे सुञः षो न स्यात् । विसोष्यति । षिञ् बन्धने । सिनोति विसिनोति । सिषाय सिष्ये । सेता । चिञ् चयने । प्रणिचिनोति । **विभाषा चेः** ।७।३।५८। अभ्यासात्परस्य चिञः कुत्वं वा स्यात्सनि लिटि च । प्रणिचिकाय-चिचाय । चिक्ये चिच्ये । अचैषीत्

मद्य निर्माण । सोष्यति सोष्यते । सुनोतु सुनुतात् सुनुतां सुन्वन्तु । जब हि को हि होगा तब उतश्च प्रत्ययात्से हि का लुक् । सुनु सुनुतात् सुनुतं सुनुत । सुनवानि सुनवाव सुनवाम । आडुत्तमस्य पिच्चसे हुआ आट पित् है, ङित् नहीं, गुण अव् होगा । हुश्नुवोःके यण्को परत्वात् बाधकर । लोटमें जब सुरासन्धान लेपन स्नानादि आज्ञा प्रेरणाका विषय हो तब कर्तामें लोट्-सुनुता सुन्वातां सुन्वतां । सुनुष्व सुन्वाथां सुनुध्वं । सुनवै (एत ए) हुश्नुवोः के यणको बांधकर परत्वात् गुण अव् । आट् पित् हैं, ङित् नहीं । सुनवावहै सुनवामहै । असुनोत् असुनुतां असुन्वन् । असुनोः, असुनवं असुनव असुन्व । अनद्यतन भूतकालकी क्रियाके कर्तामें लङ् होता है । आत्मनेपदमें असुनुत असुन्वातां असुन्वत । असुनुथाः आदि समझें । आजके भूतकालके पहलेका भूतकाल अनद्यतन है उसमें स्नान अभिषेक आदिकी क्रिया । सुनुयात् सुनुयातां सुनुयुः । यासुट्के ङित्से नुको गुण नहीं आशीर्लिङ् । मद्यनिर्माण अभिषेक लेपनके प्रति शुभकामनामें लिङ् सूयात् । अकृत्सार्वधातुकयोः से दीर्घ । सूयास्तां सूयासुः आत्मनेपद सीयुट् सुट् विषयमें सोषीष्ट सोषीयास्तां सोषीरन् । समाप्तभूत (समाप्त क्रिया) कालमें लुङ् (असु षत्) सिचको वलादि मानकर इट् प्राप्त था एकाच उपदेशे— सूत्रसे निषेध प्राप्त, तब स्तुसुधूञ्भ्यःसे इटि । अस्तिसिचोः ईटि आदि । असावीत् असाविष्टां असाविषुः । आत्मनेपदमें असोष्ट असोषातां असोषत । असोष्ठाः असोषाथाम् असोड्वं असोषि । अभिषुणोति । उपसर्गात्सुनोति-से षत्व ततः णत्व । जहां अटका व्यवधान हो प्राक्सितादड्व्यवायेपिसे षत्व । अभिसुषावमें सुको षत्व नहीं । स्थादिषु-अभ्यासेन नियम प्रमाणसे । दूसरे सको आदेशप्रत्ययोःसे ष ।

सुनोते:-स्य सन्परे सु के सको ष नहीं होता। अपदान्तस्य मूर्धन्यःका अधिकार, न रपरः से न आया । विसोष्यति यहां उपसर्गात्सुनोतिसे षत्व प्राप्त था सुनोतेः से निषेध । अभिसुसुः । सन्नन्तसे क्विप् आदि । यहां भी षत्व निषेध, सन्परे होनेसे असोष्यत् । **षिञ्**का बन्धन (मोह या आसक्तिका) षोपदेश (सिनोति) बंधता है सिनुतः सिन्वन्ति । विसिनोतिमें सात्पदाद्योःसे षत्वनिषेध । सुनोत्यादिमें न आनेसे । परोक्षमें बन्धन हो (सिषाय) णलपरे दूसरे सिको वृद्धि आय । सिष्यतुः सिष्युः । एरनेकाचःसे यण् सिस्ये सिस्याते सिस्यिरे । लुङ्में असैषीत् असैष्टाम् असैषुः । असैषीः असैष्टम् असैष्ट । तुमलोग बन्धनमें पड़े । शिञ्धातुका निशान चिह्न पहचान क्रिया ।

चिञ्—धातुका चयन चुनना रचना बुनना संग्रह करना अनिट । सार्वधातुकमें सु धातुकी तरह रूप । प्रणिचिनोति नेर्गदनद-सूत्रसे णत्व । वर्तमानकालमें विशेष

अचेष्ट। स्तृञ् आच्छादने। स्तृणोति स्तृणुते। 'गुणोऽर्ति' इति गुणः। स्तर्यात्। ऋतश्च संयोगादेः ।७।२।४३। ऋदन्तात्संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचो· रिड् वा स्यात्तङि। स्तरिषीष्ट स्तृषीष्ट। अस्तरिष्ट-अस्तृत। धुञ कम्पने। धुनोति धुनुते। अधौषीत् अधोष्यत्। दीर्घान्तोऽप्ययम्। धूनोति धनुते। 'स्वरतिसूति' इति वेट्। दुधविथ-दुधोथ। क्किति लिटि तु 'श्र्युकः—' इति निषेधं बाधित्वा क्रादिनियमान्नित्यमिट्। दुधुविव 'स्तुसुधुञ्भ्यः—' इति

चयन किया। चिनुतः चिन्वन्ति। चिनोषि चिनुथः चिनुथ। चिनोमि।

विभाषा—इस सूत्रमें चजोः से कु। अभ्यासाच्चसे अभ्यासात्। एवं संल्लिटो की अनुवृत्ति। अभ्याससे परे चिको कुत्व कि विकल्पसे हो सन्परे, लिटि परे भी। चिकाय-चि अ। द्वित्व चि चि अचोञ्णिति वृद्धि आय्। विभाषा चेः द्वितीय चको क। पक्षमें चिचाय। चयनक्रिया परोक्ष भूतकालमें हुई। आत्मनेपदमें भी चि-चि ऐ। ण कुत्व। चेता चेष्यति। चिनोतु अचिनोत्। अचैषीत् अचैष्टां अचैषुः। अचैषीः अचैष्टम् अचैष्ट। आत्मनेपदमें अचेष्ट अचेषातामचेषत। स्तृञ्—का आच्छादन छाजन आवरण छान छप्पर छानेकी क्रिया। स्तृणोति भवनम्। अनिट् है तस्तार तस्तरतुः तस्तरुः ऋतश्च संयोगादेर्गुणः वृद्धि विषयमें भी परत्वात् गुण। ऋदन्त है थलपरे नित्य इटका निषेध, तस्तर्थ तस्तरिव। आत्मनेपदमें तस्तरे तस्तराते तस्तरिरे स्तर्ता स्तर्तारौ स्तर्तारः श्वः गृहान्। स्तरिष्यति ऋद्धनोंसे इटि आच्छादन करेगा। शुभकामनामें आशीर्लिङि स्तर्यात् यासुट कित् है, गुण निषेध प्राप्त था, गुणोर्ति-संयोगाद्योः से गुण। आत्मनेपदमें स्तृषीष्ट दशामें ऋतश्च—ऋदन्तसे परे हो संयोग आदिमें हो ऐसे लिङ सिच्को इट विकल्पसे होता है आत्मने परे। इस सूत्रमें लिङिसिचोः आत्मनेपदेषु आया। इट सनिमीमासे (इट वा) आया। इट् पक्षमें गुण परस्मैपद लुङि। सिचमें अस्तारीत् अस्तार्ष्टाम्। आत्मनेपदमें ऋतश्च संयोगादेः से विकल्प इट् पक्षमें गुण। जब न इट सिच्लुकि, ह्रस्वादङ्गात्।

धुञ् धातुका कम्पन क्रिया अनिट धुञ इव रुपाणि। धवकः तूलिकां धुनोति धुनुतः धुन्वन्ति। धुन्वाते धुन्वते। धुनुषे। दुधाव परोक्षकालमें धुना था। धोष्यति धई धुनेगा धुनोतु। त्वं धुनु यथा वृद्धः कर्पासमधुनोत् धुनुयात्। धुन चुका हो अधौषीत् अधौष्ट। अधौषुः। अधौषीः अधौष्टम् अधौष्ट। अधौषम् अधौष्व-म। किसीके मतमें दीर्घ है। इस पक्षमें स्वरितसूतिसूयति धू-से वा इटि वलादि आर्धधातुक परे। यदि कित् लिट् है तब उस इटका श्र्युकः किति से निषेध प्राप्त तं बाधित्वा क्रादिनियमात् नित्य इटि। अधावीत् आदिमें स्तुसुधूञ्भ्यः से नित्य इटि। आत्मनेपदमें लिङिसिचोसे वा इटि। अधोष्ट अधोषाताम् अधोषत। अधोष्ठाः।

कृञ्=धातुका हिंसा प्राण वियोग कृणोति (श्नु णत्व) कृणुतः कृण्वन्ति। प्राण खींच रहा है। कृणुते कृण्वाते कृण्वते हिंसा, क्रिया सहितकर्ता परोक्ष हो लिटि। थल परे भी (कृ सृ मृ वृ) इटका नित्य निषेध। चकर्थ चकृव आत्मनेपदमें चक्रे

नित्यमिट्। अधावीत् अधविष्ट अधोष्ट। कृञ् हिंसायाम्। कृणोति कृणुते। चकार चकर्थ। चक्रे क्रियात्। कृषीष्ट अकार्षीत् अकृत। वृञ् वरणे। बभूथा ततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे।७।२।६४। एषां वेदे इडभावो निपात्यते। तेन भाषायां थलीट्। ववरिथ ववृव ववृवहे वरीता वरिता। लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु।७।२।४२। वृङ्वृञ्भ्याम् ऋदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड् वा स्यातङि। न लिङि।७।२।३९। वॄतो लिङ इटो दीर्घो न स्यात्। वरिषीष्ट-वृषीष्ट। अवारीत् अवरिष्ट अवृत। टु दु उपतापे दुनोति। हि गतौ वृद्धौ च। हिनुमीना

चक्राते चक्रिरे। कृणोतु कृणुतां। क्रियात् आशीर्लिङि हिंसा बढ़नेके प्रति कामना हो, रिङ् शयग्लिङ्क्षु से रिङ्। आत्मनेपदमें उश्चके कित्से गुणनिषेध। कृषीयास्तां कृषीरन्। अकार्षीत् अकार्ष्टाम् अकार्षुः। सिच्परे वृद्धिः रपर। अकृत। भूतकालिक हिंसा क्रिया। ह्रस्वादङ्गात्से सिच्लोप। अकृषातां अकृषत वे हिंसा किये।

वृ धातोः वरण स्वीकारः अङ्गीकार अर्थः वृणोति वृणुतः वृण्वन्ति। वृणोसि वृणुथः वृणुथ। वृणोमि वृणुव वृण्व। वृणुते। बभूथाततन्थजगृभमववर्थ इनको वेदमें इट नहीं होते, निपातनसे। यद्यपि कृसृवृभृ सूत्रके निषेधसे थल परे इट नहीं होगा, प्रस्तुत सूत्रमें ववर्थ क्यों पढ़ा? सूत्रमें पढ़नेके सामर्थ्यसे वेदमें इटका अभाव निपातित है इससे भाषा लोकमें थल परे इट निश्चित। (ववरिथ) वेदमें ववर्थ। (त्वं हि होता प्रथमो बभूव येनान्तरिक्षमूर्वा ततन्थ।) भाषामें बभूविथ। तेनिथ इट् हुआ। जगृहिम-वेदमें ही इट निषेधके लिये ववर्थ पढ़ा। ववर्थ त्वं हि ज्योतिषां, वव्रे वव्राते वव्रिरे। वव्रिषे वव्राथे वव्रिध्वे। (वरिता) वरण स्वीकार क्रिया-वाचक वृधातोः भविष्यकालिक कर्ता अर्थे लुटि ति तास डा आदि। जब वॄतो वा से दीर्घ वरीता। वरीष्यति स्वीकार करेगा। वृणोतु अवृणोत् वृणुयात वरिषीष्ट। वरणार्थक वृधातोः वरणं प्रति शुभकामनायाः कर्तरि आशीर्लिङ सीयुटि सुटि। नित्य इटि प्राप्ते लिङ्सिचोः—वृङ् वृञ् और ऋदन्त धातुसे परे लिङ् और सिच्को इट विकल्पसे हो आत्मनेपदमें। तब गुण पक्षमें न इट, गुणनिषेधस्तु–न लिङि वॄ धातुसे लिङिके इट को दीर्घ न हो। वॄतो वा से वृत आया। लिङि षष्ठी अर्थे सप्तमी। आर्धधातुकस्येड्से आया इट षष्ठीमें बदला। ग्रहो अलिटिसे दीर्घ आया। वृ और ऋदन्तसे परे सिच लिङको इट हुआ होता तो न दीर्घः। जो वॄतो वा से प्राप्त था। जब न इट तब उश्चसे कित् गुण निषेध। अवारीत् अवृ इ स् ईत् सिचि वृद्धिः परस्मैपद परे आदि। अवारिष्टाम् अवारिषुः। अनेककर्तृक भूतकालिक स्वीकरण क्रिया। वॄतो वासे दीर्घ क्यों नहीं? सिचि च परस्मैपदेषु सूत्रके निषेधसे। आत्मनेपदे लुङि अवृ स त लिङ् सिचोरात्मनेपदेषुसे इट ततः गुणः अवरिष्ट, वॄतो वा से दीर्घ पक्षमें अवरीष्ट। जब न इट ह्रस्वादङ्गात्से सिच्लोप अवृत अवृषाताम् अवृषत। अवृथाः अवृषाथाम्।

।८।४।१५। उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य एतयोर्नस्य णः स्यात् । प्रहिणोति । हेरचङि ।७।४।५६। अभ्यासात्परस्य हिनोतेर्हस्य कुत्वं स्यान्न तु चङि । जिघाय । पृ प्रीतौ । पृणोति पर्ता । स्पृ प्रीतिपालनयोः । 'प्रीतिचलनयोः' इत्यन्ये । 'चलनं जीवनम्' इति स्वामी । स्पृणोति पस्पार । स्मृ इत्येके । स्मृणोति । पृणोत्यादयस्त्रयोऽपि छान्दसा इत्याहुः। आप्लृ व्याप्तौ । आप्नोति

अथ परस्मैपद—साधनिकाकी प्रक्रिया राध साध संसिद्धौ तक । ह्रस्वान्त धातु है आदिर्ञिटुडवः से टु इत् दु धातुका उपताप रोगी होनेकी क्रिया । दुनोति घबड़ाता रोगी होता है । दुदाव अदौषीत् । हि धातुका गति गमन वृद्धि बढ़ना उन्नति अर्थ, हिनोति बढ़ता चलता है, प्रहिणोति रषनिमित्त भिन्नपदमें, ण निमित्ती भिन्न पदमें है । समान पद नहीं णत्व प्राप्त नहीं अतः हिनुमीना–उपसर्गमें स्थित निमित्त र ष से परे हिनु और मीनके न को ण हो। प्रणिहोमि प्रस्थान करता हूं । विशेष बढ़ता है । रषाभ्यां नो णः की अनुवृत्ति उपसर्गात्का भी (जिघाय) गति वृद्धि क्रियावाचक हि धातोः परोक्षे लिटि (हि अ) द्वित्व आदि जिहि अ । णित्परे अचोञ्णिति वृद्धि ऐ आय् । जिहाय दशामें हेरचङि अभ्याससे परे हि धातुके ह को कुत्व कवर्ग (प्रयत्न दर्शनसे) घ हो, चङि परे न हो तब । चजोः से कु अभ्यासात् हो हन्तेः से हः की अनुवृत्ति । जिघाय जिघ्यतु जिघयिथ जिघेथ । अहैषीत् अहैष्टाम् अहैषुः । पृ पृणोति प्रसन्न करता है प्रीत्यनुकूलव्यापार (पपार) परिता परिष्यति प्रसन्न करेगा । अपार्षीत् । स्पृ धातुका प्रीति और पालन-पोषणकी क्रिया किसीके मतमें प्रेम और चलना अर्थ । स्पृणोति स्पार्षीत् । स्मृ का भी अर्थ-भयसे स्मरण । पृणोतिसे लेकर तीन धातु छान्दसः वैदिक है ।

लृ इत् आप धातुका व्याप्ति दूर तक फैलना, व्यापक होना क्रिया । आप्नोति व्याप्नोति व्यापक हो रहा है । आप्नोसि तुम व्यापक हो रहे हो, आप्नोमि आप्नुवः आप्नुमः । लिटिमें व्यापक होते समय परोक्ष रहा हो । आप-आप अ आप, आप आपतुः आपुः । आप्ता आप्तारौ आप्तारः । लुङिमें च्लिको अङ् (लृदितः परस्मैपदेषुसे) आपत् आपतां आपन् । आपः आपतम् आपत । आपम् आपाव: आपाम । भूतकालमें व्याप्त हुआ। जहां संयोगपूर्वक रहेगा वहां उतश्च प्रत्ययात् । लोपश्चास्यान्यतरस्यां नहीं लगेगा । (शक्नोति) शक्नुतः शक्नुवन्ति समर्थ होते हैं शशाक कब समर्थ हुआ । शेकतुः शेकुः । शशक्थ शेकिथ शेकिव । शक्ता शक्तारौ शक्तारः शक्तासि शक्ताहे । शक्ष्यति समर्थ बनेगा । शक्नोतु अशक्नोत् लृदित् धातुसे च्लिको अङ अशकत् अशकतां अशकन् । अशकः अशकतम् अशकत ।

राध-साध—धातुका संसिद्धि निष्पत्ति सिद्ध होना रीझना सिद्धि प्राप्त करना । श्नु आदि (साध्नोति) साधना करता है सिद्धि भी । साध्नुत साध्नुवन्ति । राध धातुके एत्व अभ्यासलोप । रराध रेधतुः रेधुः । (राधकी) हिंसा अर्थमें एत्व अभ्यासलोप हो, किति लिटि सेट थलि परे । साद्धा आगामी भविष्यकालमें सिद्ध करेगा । साद्धासि साद्धास्मि । सात्स्यति सिद्ध करेगा । साध्नोतु असाध्नोत् । असात्सीत् सिद्धि प्राप्त किया । असात्सीः असाद्धम् असाद्ध, असात्सम् असात्स्व-म ।

आप्नुतः आप्नुवन्ति। आप्नुमः। आप्ता। आप्नुहि लृदित्वादङ्। आपत् शक्लृ शक्तौ अशकत्। राध साध संसिद्धौ। राध्नोति राधो हिंसायाम् ।६।४।१२३। एत्वाभ्यासलोपौ स्तः किति लिटि सेटि थलि च। अपरेधतुः रेधुः। रेधिथ। राद्धा। साध्नोति साद्धा असात्सीत् असाद्धाम्। ञि धृषा। प्रागल्भ्ये धृष्णोति। दधर्ष धर्षिता। दम्भु दम्भुने। दम्भनं दम्भः। दम्नोति ददम्भ। श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनां लिटः कित्त्वं वा इति अनिदितामिति नलोपः। तस्याभीयत्वादसिद्धत्वे एत्वाभ्यास लोपयोरप्राप्तौ 'दम्भेश्च

अथ द्वौ धातू अनुदात्तेतौ स्तः। जिसका फल अनुदात्त ङित् आत्मनेपदं। अशू धातुका व्याप्ति व्यापक होना, संघात समुदाय इकट्ठा होनेकी क्रिया। ऊ इत्का फल विकल्प इट्। अश्नुते अश्नुवाते अश्नुवते। ऊवङ हुआ। हुश्नुवोः—से यण् नहीं, संयोगपूर्वक होनेसे। अश्नोतेः—दीर्घ (अभ्यासको) हो ऐसे अवर्णसे परे नुट हो। अत आदेः से दीर्घ होने पर। आनशे व्याप्ति वा समुदायवाचक अशधातोः परोक्ष-कालिक कर्तरि लिटि त एश्। अश-ए। द्वित्व अभ्यास दीर्घं आ अश ए। दशामें अश्नोतेश्च नुट्। आनशाते आनशिरे। आनशिषे। ऊदित् इटविकल्प, पक्षमें आनक्षे। आनशिवहे आनश्वहे। लुटिमें इट विकल्प। (अश ता) व्रश्चभ्रस्ज-से श को को ष, ष्टु। अष्टा अष्टारौ अष्टारः। अष्ठासे तुम कल व्याप्त या संघठित रहोगे। इट नहीं। अक्ष्यते अश स्यते। श-ष-क। स-ष-क्ष। इटि पक्षमें अश्नुवीत् अश्नुताम्। आशीर्लिङि अक्षीष्ट। लुङिमें इट होगा तब आशिष्ट। न इट। आष्ट आक्षाताम् आदिजि टुडवः। धृष धातुका प्रागल्भ्य-धृष्टता मर्यादाविरुद्ध क्रियावाचक धृषधातोः वर्तमानकालिक प्रौढ़िवाद क्रियाकर्ता अर्थे लटि ति। श्नु णत्व (धृष्णोसि) दुष्टता करते हुए कर्ता न देखा गया हो। भूतकाल दधर्ष दधर्षतुः दधर्षुः। अनेक कर्तृक परोक्षभूतकालिक धृष्टता। धर्षिष्यति ढिठाई करेगा। धृष्णोतु। अधर्षीत् अधर्षिष्टाम् अधर्षिषः। दम्भ का आडम्बरी क्रिया। मिथ्या अभिमान अर्थ। दम्नोति डींग हांकता है। कदा ददम्भ ददम्भतुः देभतुः ददम्भु अतुसि दशायां श्रान्थिग्रन्थिदम्भि आदि वार्तिकसे लिट् कित् हुआ, विकल्पसे।

स्वादिमें कहा है। कित्का फल अनिदितां हलः उपधायासे नलोप। यदि अत एकहल्मध्येऽनादेशादेः सूत्रसे एत्व हो जाता, परन्तु नकारलोप आभीयसंज्ञक है असिद्ध हो (असिद्धवत् अत्र आभात्) संयुक्त हल मिलेगा, आदेश भी रहेगा एत्व अभ्यासलोप प्राप्त नहीं, अतः (वा) दम्भेश्च-दम्भ धातुको एत्व अभ्यासलोप (हो) होवेसे देभतुः। ददम्भ ददम्भिथ यही रूप बनेगा। दम्भिता दम्भिष्यति दम्नोतु। अदम्नोत् दम्भके विषयमें सम्भावना हो दम्नुयात्। आशीर्लिङ दम्भविषये शुभकामना (दभ्यास्त) अनिदितांसे नलोप। अदम्भीत् अदम्भिष्टां अदम्भिषुः। ऋधका वृद्धि व्यापार। ऋध्नोति बढ़ता है। लिटिमें प्रथम गुण होकर अर्ध-अर्ध

एत्वाभ्यासलोपौ वक्तव्यौ' (वा) देभतुः। ददम्भतुः। ददम्भ, ददम्भिथ, ददम्भेत्येव। दम्यात्। तृप प्रीणने क्षुभ्नादित्वाण्णत्वं न। क्षुभ्नादिषु नस्य न णत्वम्। तृप्नोति। अशू व्याप्तौ संघाते च। अश्नुते। अश्नोतेश्च ।७।४।७२। दीर्घादभ्यासावर्णात्परस्य नुट् स्यात्। आनशे अशिता अष्टा। अशिष्यते अक्ष्यते। अश्नुवीत अक्षीष्ट-अशिषीष्ट। आशिष्ट आष्ट। आक्षाताम्। इति तिङन्ते स्वादिप्रकरणम्।

अथ तिङन्ते तुदादिप्रकरणम्

तुद व्यथने। इतः षट् स्वरितेतः। तुदादिभ्यः शः ।३।१।७७। तुदति तुदते तुतोद तुतोदिथ। तुतुदे तोत्ता। अतौत्सीत् अतुत्त। णुद प्रेरणे। नुदति

ह्रस्व आअर्ध ह्रिहल नुट्। आनृधुः धनेन विद्यया वा अवर्धत अर्धिता अर्धिष्यति। आर्धत् आर्धताम् आर्धन। आर्धः आर्धतम् आर्धत। पुण्य कर्मसे बढ़ा। तृपका प्रीणन प्रसन्न करना। क्षुभ्नादि गणमें पढ़ा है णत्व निषेधके लिये। तृप्नुतः तृप्नुवन्ति। इति प्राभाकर्यां स्वादयः।

अथतुदादयः—तुद धातु, आदौ येषान्ते: धातुसमुदाया तुदादयः। श विकरण ही प्रकरणका भेदक धर्म है। शप बाधकर। भ्वादिगणका अन्तर्गण होनेसे धातुसंज्ञा भ्वादयो धातवः। **तुद**=धातुका व्यथन असह्य पीडा सहनकी क्रिया। **इतः**-इस धातुसे ऋषीगतौ धातुके पहले तक स्वरितेत् हैं जिसमें उदात्त अनुदात्त धर्म मिले हैं दोनों पदके सूचक। **तुदादिभ्य**—कर्ता अर्थमें सार्वधातुक परे हो तुदादिगण पठित धातुओंसे स्वार्थमें श विकरण हो, शप बाधकर। **तुदादि** व्यथनार्थक तुद धातोः वर्तमानकालिक व्यथनक्रियाधारभूते कर्तरि लटि ति सार्वधातुकसंज्ञा। तुदति दशायां पुगन्तलघूपधस्य च सूत्रेण प्राप्तं गुणं बाधित्वा नित्यः तुदादिभ्यः श! इति शइत् अ, पित् नहीं किन्तु सार्वधातुकमपित्से ङित् जिसका फल गुणनिषेध। तुदतः तुदन्ति। तुतुदे तुतुदाते तुतुदिरे अनिट्का सूचक। तुद् ता गुण चर्त। तोत्ता तोत्तारौ तोत्तारः। तोत्तासि तोत्तासे। अहं तोत्तास्मि तोत्ताहे। तोत्स्यति। तुदतु तुदतां तुदेतां तुदन्तां तुदस्व। तुदै तुदावहै (कर्तामें व्यथन क्रिया परोक्षमें समाप्त हो तब तुतोद तुतुदतुः तुतोदिथ। तुद धातु न अजन्त है न अकारवान् क्रादिनियमसे लिट लकारके थलि परे नित्य इटि। तुतुदथुः तुतुदे तुतुदाते तुतुदिरे। लुङ्में पीडन क्रिया समाप्त हो। अतुद सईत् वदव्रजहलन्तस्याचः वृद्धि आदि। अतौत्सीत् अतौत्तां अतौत्सुः। अतौत्सीः आत्मनेपदमें अतुद सत। झलो झलि सलोप। अतुत्त अतुत्साताां अतुत्सत। अतुत्थाः अतुत्साथाम्।

णुद का प्रेरणा किसी कार्यमें प्रवृत्ति कराना अर्थ। णोपदेश अनिट (नुदति) नुदते नुदेते नुदन्ते। नोत्ता नोत्तासि नोत्तासे। अनौत्सीः अनुत्त। **दिश** धातु अतिसर्जन दानक्रिया अनिट। दिशति दिशते देता है स्वस्वत्वनिवृत्ति पूर्वक दान। दिदेश दिदिशे। देष्टा व्रश्चभ्रस्जसे श-ष टु। दिश स्यति सकारे परें षढ़ो कः। श-ष-

नुदते । नुनोद नुनुदे । नोत्ता । भ्रस्ज पाके 'ग्रहिज्या' इति सम्प्रसारणम् । सस्य श्चुत्वेन श । शस्य जश्त्वेन जः । भृज्जति भृज्जते । **भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्** ६।४।४७। भ्रस्जो रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके । मित्त्वादन्त्यादचः परः । स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः । बभर्ज बभर्जतुः बभर्जिथ बभर्ष्ठ । बभर्ज । रमभावे बभ्रज्ज बभ्र-

भ्रस्ज-धातु का पाक यहां पकाना भूंजना क्रिया है। भाड़ आदिमें भर्जन रूप पाक धात्वर्थः। ननु ओदनादेः पाकः। **भृज्जति** भ्राष्ट्रे। भर्जन क्रियावाचक भ्रस्ज धातोः क्रियासहितकर्तरि वर्तमाने लटि ति। तुदादिभ्यः शः। भ्रस्ज अ ति दशामें अपित्सार्वधातुक (अ) ङित् है ङिति रे ग्रहिज्यावयि व्यधि सूत्रसे र को सम्प्रसारण ऋ, पूर्वरूप। भृस्ज अ, स को श्चु श, उसको जश्, ज भृज्जति भृज्जतः भृज्जन्ति चणकान्। त्वं कलायकं भृज्जसि चना मटर भूंजते हो। एवं भृज्जते भृज्जेते भृज्जाते। आत्मनेपद (अपने लिये) भूंजा पाक। **बभर्ज** भ्राष्ट्रे भर्जनार्थकभ्रस्जधातोः समासपाकक्रिया परोक्षे लिटि आदि भ्रस्ज अ दशायां।

भ्रस्जो--भ्रस्ज धातुके रेफ और उपधा (र, स दोनों) के स्थानमें रम् आगम विकल्पसे हो, आर्धधातुक परे। आर्धधातुकका अधिकार। रश्च उपधा च तयोः रोपधयोः में स्थानषष्ठी। भ्रस्जमें अवयवषष्ठी। मित् होनेसे अन्त्य अच्से परे र होगा। र में अ उच्चारणार्थ। स के पहले र के बाद रेफ आगम। भ्र र स्ज अ। स्थितिमें शङ्का-रम् आगम है, आदेश नहीं रोपधयोः में स्थानषष्ठी कैसे? तब कहा स्थाने इति, स्थानं प्रसङ्गः-रेफ उपधाके उच्चारण प्रसङ्गमें अकारके ऊपर रेफ रहे, किन्तु भ के ऊपर र, ज के पहले स न रहे। रेफ और स का निवृत्त होना फल है। अतः कहा स्थानषष्ठी निर्देशसे रोपधायोः रेफसकारयोः निवृत्ति, र आगम ठहरेगा। भर्ज अ दशामें द्वित्व आदि भर्ज भर्ज बभर्ज बभर्जतुः बभर्जुः। असंयोगसे परे रहते संयोगसे परे कित् नहीं, वह तो असंयोगसे परे लिटको कित् करता है, तब सम्प्रसारण भी नहीं होगा। थलि परे भारद्वाजनियमसे वा इटि। अभाव पक्षमें बभर्ज थ। व्रश्चभ्रस्जसे ज-ष। थ को टवर्ग ठ, गुण बभर्ष्ठ बभर्जथुः बभर्ज बभर्जिव। अनदेखाकालमें भूजा था। आत्मनेपदमें तको एश्। शेष क्रिया पूर्ववत्। बभर्जे बभर्जाते बभर्जिरे। जब रम् आगम नहीं तब (भ्रस्ज अ) दशामें द्वित्व आदि। बभ्रस्ज अ। स को श्चु श, उसको जश् ज। बभ्रज्जतुः बभ्रज्जुः। बभ्रज्जिथ। भारद्वाज नियमसे थलि परे इटि। यदा न इटि बभ्रज्ज थ, दशायां स्कोः संयोगाद्योरन्ते चेति सलोपः, जको व्रश्चभ्रस्ज-ष टु-बभ्रष्ट। रम अभाव पक्षे लिटिमें आत्मनेपद बभ्रज्जे बभ्रज्जाते। बभ्रज्जिषे। बभ्रज्जिमहे। अनिटका सूचक **भ्रष्टा** भ्रस्जता कल भूंजेगा। रम् होनेसे रस की निवृत्ति। षत्व ष्टुत्व। रम् अभाव पक्षमें भर्ष्टा ष्टु-त को ट। ज-ष। इसी प्रकार भर्क्ष्यति भविष्यकालमें पकायेगा। षढो कः स परे ष की विशेषता। भृज्जतु भृज्जताम्। अभृज्जत भृज्जेत

उजतुः। बभ्रज्जिथ। 'स्कोः–' इति सलोपः। 'व्रश्च' इति षः। बभ्रष्ठ। बभ्रज्ज। भ्रष्टा-भर्ष्टा। भ्रक्ष्यति-भर्क्ष्यति। क्ङिति रमागमं वा। क्ङित्वा त्सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन (वा) भृज्यात्। भृज्ज्यास्ताम। भर्क्षीष्ट भ्रक्षीष्ट अभार्क्षीत अभ्राक्षीत्। अभर्ष्टं–अभ्रष्ट। अभर्क्ष्यत कृष विलेखने। कृषति कृषते। चकर्ष चकृषे 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्'। क्रष्टा कर्ष्टा। कृष्यात् कृक्षीष्ट। 'स्पृशमृशकृष्–' इति सिज्वा। पक्षे क्सः। सिचि अम्वा। अक्राक्षीत्-अकार्क्षीत्-अकृक्षत्। तङि 'लिङ्सिचौ इति कित्वादम्न। अकृष्ट अकृक्षाताम् अकृक्षत। क्सपक्षे अकृक्षत अकृक्षाताम् अकृक्षन्त।

भृज्जेयातां भृज्जेरन्। अथवा भृज्जेतां भृज्जेयु। भूंजना क्रियाके बढ़नेकी शुभ-कामना आशीर्लिङि भ्रस्ज या त्। दशामें यासुट् कित् है ग्रहिज्यासे सम्प्रसारण पूर्व रूप होगा। स को श्चु श, उसको जश ज, भृज्ज्यात्। परन्तु सम्प्रसारणको बाधकर परत्वात् भ्रस्जोरोपधायोरमन्यतरस्यांसे रम् आगम करके भर्ज्यात् क्यों नहीं बनता ? (वा) क्ङिति–ङिति परे रम् आगमको बाधकर सम्प्रसारण हो। पूर्वविप्रतिषेधके बल पर। विप्रतिषेधे परकार्यमें परंका इष्टं कार्यं अर्थं है। पूव इष्ट हो या पर भज्यासुः। भृज्याः आशिलिङि–पाक क्रियाके प्रति बढ़नेकी कामनाके प्रति आत्मनेपद सीयुटि, रमागम पक्षे भर्क्षीष्ट। जब रम् नहीं सम्प्रसारण भी नहीं, कित्परे न होनेसे। सामान्य भूतकालिक भूंजना क्रियाके कर्तामें लुङि सिचि रम् आदि अभार्क्षीत् अभार्ष्टाम् अभार्क्षुः। अभार्क्षीः अभार्ष्टम् अभ्राक्ष अभ्राक्ष्व अभ्राक्ष्म। आत्मनेपदमें सिच्परे रम विकल्प होगा, झलोझलिसे सिच्लोप भी। जब न रम तब अभ्रष्ट अभ्रक्षाताम् अभ्रक्षत, अभ्रष्ठाः।

कृष=धातुका विलेखन रेखा खींचना जोतना गोड़ना, पाटा चलाना, किसान सम्बन्धी क्रिया तुदादि शः। कृषति कृषतः कृषन्ति शकटं, सगड़ी खींचते हे। त्वं क्षेत्रं कृषसि, तुम खेत जोतते हो। अहं कृषामि मै गोड़ता हूं। कृषक खेती करनेवाला कृषसे कृषेथे कृषध्वे। कृषे कृषावहे कृषामहे। चकर्ष चकर्षिथ चकर्षिव चकर्षिम। चकृषे चकृषाते। आगामी भविष्यकालमें जोतना गोड़ना खींचना क्रिया हो कर्तामें लुटि ता। कृष ता। अनुदात्तस्य च ऋदुपधस्य अन्यतरस्यां नियमसे अम्। कृ अ ष। यण् क्रषता ष्टु क्रष्टा। जब न अम् तब गुण रपर, कर्ष्टा क्रष्टारौ क्रष्टारः। क्रष्टासि क्रष्टासे। क्रक्ष्यति कर्क्ष्यति। कृषतु कृषतां अकृषत् अकृषत। कृष्यात् आशीर्लिङि जोतने गोड़ने खींचने क्रियाके प्रति शुभकामना सद्भावना आशीर्वाद है कित् है। झलादि परे नहीं, अम् आगम गुण भी नहीं। आत्मनेपदमें कृक्षीष्ट षढो कः स-ष-क्ष। लिङ्सिचौ सूत्रके आत्मनेपदमें कित्से अमागम और गुण नहीं हुये। कर्षण क्रियाका समाप्तकाल, कर्ता लुङर्थं। अकृष स ईत् स्पृशमृशकृषसे सिच् अम् आगम (अनुदात्तस्य च ऋदुपधस्य) सूत्रसे अक्राक्षीत्। जब अम नहीं तब वृद्धिः (वदव्रजहलन्तस्याचः से) अकार्क्षीत् अकार्ष्टाम् अकार्क्षुः। अकार्क्षीः अक्राक्षी अकार्ष्टम् अकार्ष्टः।

अथ षट् स्वरितेतः। मिल सङ्गमे। मिल संश्लेषणे इति पठितस्य पुनः पाठः कर्त्रभिप्राये तङर्थः। मिलति मिलते मिमेल मिमिले। मुच्लृ मोक्षणे। **शे मुचादीनाम्** ।७।२।५९। नुम् स्यात्। मुञ्चति। मुञ्चते। मोक्ता मुच्यात् मुक्षीष्ट अमुचत्। अमुक्त अमुक्षाताम्। लुम्प छेदने। लुम्पति लुम्पते। अलुपत् अलुप्त। विद्लृ लाभे। विन्दति। विन्दते विवेद विविदे। व्याघ्रभूत्यादिमते सेट्कोऽयम्। वेदिता। भाष्यादिमतेऽनिट्कः। वेत्ता परिवेत्ता। परिवर्जने। ज्येष्ठं परित्यज्य दारानग्नीश्च लब्धवानित्यर्थः। तृन्तृचौ। लिप उपदेहे। उपदेहो वृद्धिः। लिम्पति लिम्पते। लेप्ता। 'लिपिसिचि इत्यङ्। तङि

अकार्ष सगड़ी खींचा, खेत जोता। जब न सिचि, तब शल इगुपधादनिटसे च्लिको क्स कित् का अमागम न होना फल, गुण न होना भी।

अकृक्षत आत्मनेपदमें लिङ्सिचौसे कित्काफल अम् आगम न होना। अकृक्षत दशा में झलोझलिसे सिच्लोप अकृष्ट अकृष्ठाः आयाम् अकृढ्वं। अकृक्षि अकृक्ष्वहि। जब क्स आदेश तब अकृक्षत। कित्से अम् और गुण नहीं। सिच्पक्षमें आत्मनेपदेष्वनतः से झस्थाने अत् आदेश, क्स आदेश पक्षमें अकृक्षत। कित्से अम आगम नहीं अकृक्षाताम् अकृक्षन्त। अकृक्षन्त झ-दशामें अच परे नहीं क्सस्याचि सूत्रसे अकारलोप नहीं, झको अत आदेश भी नहीं। अतः अन्तादेश (झोऽन्तसे) अकृथाः अकृक्षाथाम् अकृढ्वम्। अकृक्षि। अचि परे इटि है, क्सस्याचिसे अकारलोप हुआ।

अथ छ धातु स्वरितेत् उदात्त अनुदात्त मिलित अर्थ होनेसे दोनों पद होंगे। **मिलति** संगम मेल वर्तमान मिलना। यद्यपि मिल धातु इसी तुदादिगणके परस्मैपद में पढ़ा है पुनः मिल पढ़ना कर्तृगामी क्रिया फल होने पर भी परस्मैपदके लिये पूर्वमें पढ़ा, आत्मनेपदके लिये भी यहां। **मिमेल** कभी मिले, सभी मिल चुके मिमिलतुः मिमिलः मिमेलिथ मिमेल मिमिलिव मेलिता मेलिष्यते। मिलतु मिलताम्। अमेलीत् अमेलिष्ट अमेलिषाताम्। अमिलत। **मुच**—धातुका खोलना, मुक्त करना छुड़ाना, छोड़ना क्रिया वर्तमानकालके कर्तामें लुटि (मुच ति) तुदादिभ्यः शः, **शे मुचादीनां**--मुचादिगण पढ़े धातुको से नुम् हो। उम इत् 'न' शेष। अनुस्वार परसवर्ण। मुञ्चति मुञ्चतः मुञ्चन्ति। मुञ्चेते मुञ्चन्ते। मोक्षण क्रिया भावी हो (मुच ता) गुण कुत्व मोक्ता मोक्तारौ मोक्तारः। मोक्तासे मोक्तास्मि मोक्ष्यति मुक्त करेगा छोड़ेगा। मुञ्चतां, अमुञ्चत मुञ्चेत। आशीर्लिङि छोड़नेकी शुभकामना मुच्यास्तां मुच्यासुः। मुच सी सत। कुत्व आदि मुक्षीष्ट मुक्षीयास्तां मुक्षीरन् छोड़ दिया। लृदित होनेसे च्लिको अङि। अमुचत् अमुचतां अमुचन्। आत्मनेपदमें झलोझलिसे सिच्लोप। च को कुत्व क, **अमुक्त** अमुक्षातां अमुक्षन्त। अमुक्थाः अमुक्षायां अमुग्ध्वम् अमुक्षि।

लुम्पति—काटता हैं छेदन, विनाश, बर्तमानेलोप क्रिया। लोप्ता लोप्स्यति

तु वा । अलिपत् । अलिपत-अलिप्त । षिच क्षरणे । सिञ्चति सिञ्चते । असिचत् । असिचत-असिक्त । अभिसिञ्चति अभ्यषिञ्चत् अभिषिषेच । अथ त्रयः परस्मैपदिन । कृती छेदने । कृन्तति चकर्त कर्तिता । कर्तिष्यति-कर्त्स्यति । अकर्तीत् । खिद परिघाते । खिन्दति चिखेद । खेत्ता । अयं दैन्ये दिवादौ रुधादौ च । पिशि अवयवे । पिंशति । पेशिता ।

लुम्पतु अलुम्पत् लुप्यात् लुप्सीष्ट । च्लि-अङ् अलुपत् अलुपः अलुपम् । आत्मनेपदमें अलुप्त अलुप्सातां अलुप्सत । अलुप्थाः ।

विद धातुका लाभके अनुकूल क्रिया । **विन्दति** (मुचादिगण मानकर नुम्) लाभ पाता है । अचिन्तित दशामें प्राप्ति हुई हो । विविदाते विविदिरे । वे लोग लाभ लिये । व्याघ्रभूतिमतमें सेट् है । वेदिता वेदितारौ वेदितारः वेदितासे । वेदितास्मि । भाष्य मतमें अनिट् है । **परिवेत्ता** भविष्यमें लाभ करेगा । परिशब्द का वर्जन (छोड़कर) अर्थ। ज्येष्ठको छोड़करके दारा=पत्नी, अग्नि तेज प्राप्त किया । यहां तृनि तृचि है लुट नहीं । वेदिष्यते वेत्स्यति । विन्दतु विन्दतां लाभ लो, अवेदीत् अविदत् । अवित्त अवित्सातां अवित्सत । लिम्पति स्वच्छता बढ़ाता है वृद्धयर्थक (मुचादीनांसे नुम् सहित) लिम्प धातुसे कर्ताके वर्तमानकालमें लटि । **लिम्पति**—लीप-स्वच्छकर सुन्दरता बढ़ाता है । लेप्तारौ लेप्तारः लेप्स्यति । लिम्पतु लिम्पतां अलिम्पत् । लुङिमें **लिपिसिचि-सूत्रमें** अङि-अलिपत् अलिपताम् अलिपन् । आत्मनेपदमें अन्यतरस्यां विकल्पसे, अलिपत अलिपेताम् अलिपन्त । जब सिच झलोझलिसे से सलोप तब अलिप्त अलिप्सातां अलिप्सत अलिप्थाः लीपकर श्री शोभा बढ़ाया । **सिच**—का क्षरण सींचना झरना पानी छिड़कना रँगना । मुचादि मानकर नुम् । सिञ्चन्ति सिञ्चसि सिञ्चसे सिञ्चे, सिषेच सिषिचे सेक्ता सिञ्चतु असिञ्चत् असिचतां असिचन् । (लिपिसिचि) से अङि असिचत असिचेतां असिचन्त सिच्लोप पक्षमें असिक्त असिक्षातां असिक्षत । असिक्थाः तुमने सींचा । उपसर्गात्सुनोति से ष, अट् के व्यवधानमें प्राक्सितादड्व्यवायेऽपिसे षत्व अभ्याससंज्ञक हो स्थादिषु अभ्यासेनसे ष।

तीन धातुकी परस्मैपद साधनिका । ई इत् कृत धातुका छेदन कतरना क्रिया । मुचादि मानकर नुं **कृन्तति** कृन्ततः कृन्तन्ति वे कतरते हैं, छांटते भी । इट्का सूचक कर्तिता कर्तितारौ कर्तितारः कतरेंगे । **कृन्ततु** कतर दो अकृन्तत् । सेऽसिचि **कृति**—से स परे वा इटि । अकर्तीत् अकर्तिष्टाम् अकर्तिषुः । अकर्तीः । खिदका परिघात दुखी होनेकी क्रिया । खिदन्ति—**खिन्न** दुखी निराश उदास होता है खिदन्ति त्वं खिन्दसि वयं खिन्दामः । यह धातु दीनता अर्थमें पढ़ा जा चुका है । पिश का अवयव क्रिया । पिंशति पीसता है या अवयवको प्रकाशित करता है पिपेश पेशिता । दीपन प्रकाशन अर्थमें भी है । पेशिष्यति पिंशतु अपिंशत् अपिंशीत् । मुचादि धातु समाप्त हुये ।

अथ परस्मैपदिनः । ओ व्रश्चू छेदने । 'ग्रहिज्या-' वृश्चति वव्रश्च वव्रश्चतुः । वव्रश्चिथ-वव्रष्ठ । 'लिट्यभ्यासस्य' इति सम्प्रसारणम् रेफस्य ऋकारः । 'उरत्' तस्य च 'अचः परस्मिन्-' इति स्थानिवद्भावात् न सम्प्रसारणे इति वस्योत्वं न । व्रश्चिता-व्रष्टा व्रश्चिष्यति-व्रक्ष्यति वृश्च्यात् ।

परस्मैपदशैलीकी साधनिका । ओ इत् व्रश्च धातुका काटना, वर्छीसे छेदना बिच्छू डङ्कमारना । **वृश्चति** दंशन छेदनार्थक ब्रश्चधातोः छेदनक्रियायाः वर्तमाने कर्तरि ल ति । श ङित् है अपित्सार्वधातुक होनेसे । जिसका फल ग्रहिज्या वयिव्यधिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनांसे सम्प्रसारण वृश्चसि वृश्चामि वृश्चिक शब्द (बिच्छू) इसीका रूप । दंशन छेदन क्रिया सहित कर्ता परोक्ष हो भूतकालिक लिटि आदि । वव्रश्च । वव्रश्चतुः अतुसि परे कित् नहीं, संयुक्त होनेसे । अतः सम्प्रसारण भी नहीं । ऊदितो वा विकल्प इटि वलादि परे । त्वं वव्रश्चिथ । यदा न इटि तदा वव्रष्ठ । तुमने कब काटा, बर्छीसे छेदा या डङ्क मारा (वव्रश्च थ) धातुपाठमें छोटा स को श्चु श किया गया । श्चुत्व श को असिद्धकर स्कोः संयोगाद्योरन्ते च से सलोप । च को व्रश्चभ्रस्जसे ष । थ को टवर्ग ठ वव्रष्ठ । वव्रश्चथुः वव्रश्च । वव्रश्चिव-म । व्र-शङ्का-णल्परे थल्परे च कित् नास्ति । द्वित्वे कृते लिटि अभ्यासस्योभयेषां सूत्रेण अभ्यासवकारस्य उ सम्प्रसारणं निषिध्यते, वकारस्य सम्प्रसारणं मास्तु । परन्तु पूर्वं व स्थाने सम्प्रसारणं भवतु । यदि पहले अभ्यासको सम्प्रसारण होगा तब न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणं व्यर्थं होगा ज्ञापन करेगा कि पहले र को ऋ सम्प्रसारण है उस ऋको उरत् सूत्रसे अत हो जाय । तथापि ऋको अत् करने पर भी व को सम्प्रसारण क्यों नहीं, सम्प्रसारण परे न होनेसे, न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणंका निषेध नहीं लगेगा तथापि तस्य आकारस्य उरत्के अ को अचः परस्मिन्पूर्वविधौ सूत्रसे स्थानिवद्भाव करके सम्प्रसारण परे मिलेगा तब न सम्प्रसारणे निषेधसे वको उत्व नहीं ।

आपादपरिसमाप्तेरङ्गाधिकार—अङ्गसे आक्षिप्त प्रत्यय निमित्तक उरत् है वव्रश्चिव वव्रश्चिम । छेदन या काटनेवाला हो इट पक्षमें व्रश्चिता । जब न इटि व्रष्टा (व्रश्च ता) श को असिद्ध कर स्कोःसे सलोप । चको षत्व ष्टुत्व, भविष्यमें छेदन कर्तन, दंशन क्रिया हो इट् अभाव पक्षमें व्रश्च स्यति । सलोप, च--क, स-ष क्ष व्रक्ष्यति व्रक्ष्यतः व्रक्ष्यन्ति । वृश्चतु वृश्चतां वृश्चन्तु । वृश्चानि (मैं छेद कर दूं) वृश्चाव वृश्चाम । अवृश्चत काटा डंसा । वृश्चेत् यदि (छेद हो) सूची प्रविशेत् । आशीर्लिङ् छेदनविषयककामना । व्रश्च यात् । यास कित् है । सम्प्रसारण हुआ वृश्च्यास्तां वृश्च्यासुः । छेदनक्रिया समाप्त हो सामान्यकालमें कर्तरि लुङ् । अव्रश्च इस ईत् । इट ईटि सलोप आदिकार्य । ऊदितो वा से इट् । पक्षमें नेटि सूत्रसे वृद्धि निषेध होगा । जब न इट् तब हलन्तलक्षणावृद्धिः अव्राश्च-सीत्, श को असिद्ध कर स्कोः संयोगाद्योः से सलोप । व्रश्चभ्रस्जसे ष । षढोः क-स ष अव्राक्षीत् अव्राष्टाम् अव्राक्षुः । अव्रश्चिष्टाम् अव्रश्चिषुः । अव्राक्षी ।

अव्रश्चीत् अव्राक्षीत् । व्यच व्याजीकरणे । विचति विव्याच । विविचतुः व्यचिता । व्यचिष्यति विच्यात् अव्याचीत् अव्यचीत् । 'व्यचेः कुटादित्वमनसि' इति तु नेह प्रवर्तते 'अनसि' इति पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात् । उछि उञ्छे । उञ्छति । उछी विवासे । उच्छति । ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु । 'ऋच्छत्यॄताम्' इति गुणः । द्विहल्ग्रहणस्यानेकहलुपलक्षणत्वान्नुट् । आनर्च्छ । आनर्च्छतुः । ऋच्छिता । उज्झ उत्सर्गे । लुभ विमोहने । विमोहनमाकुलीकरणम् । लुभति लोभिता लोब्धा लोभिष्यति ।

व्यच=धातुका व्याजीकरण छल धोखा कपटकी क्रिया । **विचति** एककर्तृक वर्तमानकालिक छलकपटकरणानुकूलव्यापारः । विचतः विचन्ति । अनदेखा कालमें छलकपट हो चुका हो व्यच व्यच अ । अभ्यास य को सम्प्रसारण, पूर्वरूप विव्यच् अतोपधायाः दीर्घः । न सम्प्रसारणेके निषेधसे व को सम्प्र० नहीं । विविचतुः । ग्रहिज्यावयिव्यधिसे सम्प्रसारण करने पर द्वित्व आदि विविचुः । विव्यचिथ विविचथुः । विव्याच विविचिव व्यचिष्यति भविष्यकालमें धोखा छलकपट करेगा उस क्रियाके प्रति कामना आशीर्लिङ् **विच्यात्** कित् होनेसे सम्प्रसारण विच्यास्तां विच्यासुः । लुङिमें अतो हलादेर्लघोः से विकल्प वृद्धि होगी । अव्याचीत् अव्याचिष्टाम् अव्याचिषुः अव्याचीः अव्याचिष्टम् अव्यचिष्ट, अव्याचिषम् अव्याचिष्व, प्रश्नः व्यचिता व्यचिष्यति प्रयोगमें गाङ्कुटादिभ्यः से ङित् कर सम्प्रसारण हो जाय, तब कहा-(व्यचेः कुटादित्वं) वार्तिकमें अनसि पढ़ा गया, वह केवल कृदन्तके विषयमें लगेगा । नेह प्रवर्तते यहां प्रवृत्त नहीं होगा । इसलिये उद्विचिता उद्विचितुं में सम्प्रसारण होगा । व्यचिता आदि तिङ्के विषय हैं (अनसि) के प्रमाणसे । उञ्छति कण-कण चुननेकी क्रिया । उछी विवासे भ्वादिमें पढा है । यहां पढ़नेका फल श विकरण है । उच्छती उच्छन्तीमें आच्छीनद्योर्नुमसे नुम् विकल्पके लिये ।

ऋच्छ—धातुकी गति गमन ज्ञान प्राप्ति मोक्ष इन्द्रियप्रलय इन्द्रियोंका वशमें (नीरस) होना, मूर्तिभाव, जडवत् होनेकी क्रिया । छे च तुक् **ऋच्छति**-ज्ञान मोक्ष आदिकी क्रियाका वर्तमानकालिक रूप । ऋच्छतः ऋच्छन्ति । परोक्षकालमें गमन इन्द्रिय प्रलय आदि हुआ हो आनर्छ आ अर्छ दशामें तीन हल्परे है, दो हल् नहीं तस्मान्नुट् द्विहल से नुट कैसे ? तब कहा द्विहलग्रहण-अनेकहलका उपलक्षण है स्वबोधकत्वे सति अपरबोधकत्वं । दो हल्का अनेक हलमें तात्पर्य है । **ऋच्छति ऋतां** से गुण होने पर द्वित्वादि उरत् हलादिशेष । अत आदेः से दीर्घ आदि । ईजादेः गुरुमतः=सूत्रमें अनृच्छः पढ़ा । आम् आगम असम्भव । ऋच्छति ऋतांसे गुण नहीं होगा । ऋच्छति ऋतां सूत्रमें लिटि पढ़नेसे । ऋच्छतु आर्च्छीत् आर्च्छिष्टां । त्याग उज्झाञ्चकार उज्झिता । उज्झतु त्याग करो । औज्झीत् बालकः दुर्गुणान् ।

लुभ—धातुका विमोहन आकुल व्याकुल लालच लोभकी क्रिया । **लुभति** वस्तु पानेकी प्रबल आसक्ति, लुभतः लुभन्ति । लुभसि लुभामि, लुलोभ । तीषसहलुभरुष वा

तृप तृम्फ तृप्तौ। तृपति ततर्प। तर्पिता अतर्पीत्। तृम्फति। शस्य ङित्वात् 'अनिदिताम्' इति नलोपे 'शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः' आदिशब्दः प्रकारे। तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः। तृम्फन्ति। ततृम्फ। तृफ्यात्। मृड सुखने। मृडति मर्डिता। पृड च पृडति। (शुनगतौ) शुनति शुशोन इषु इच्छायाम्। 'इषुगमि' इति छः। इच्छति एषिता-एष्टा। एषिष्यति इष्यात्। ऐषीत। कुट कौटिल्ये। गाङ्कुटादिभ्यः इति ङित्वम्। चुकुटिथ अङ्णित् इति किं चुकोट कुटिता। पुट संश्लेषण। स्फुट विकसने। स्फुटति। पुस्फोट। स्फुर स्फुल सञ्चलने। स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ।८।३।७६।

आर्चीत्। उब्जति आर्जव मृदुल कोमलताकी क्रिया। औब्जीत्। उज्झति इटि। लोभिता। न इटि तथोर्धः, भ को जश ब, लोब्धा लोप्स्यति। लुभतु अलुभत्। लुभेत् अलोभीत् अलोभिष्टाम् अलोभिषुः। ऋफ धातुका आत्मप्रशंसा संघर्ष हिंसा आदि अर्थ। किसीके मतमें रिह धातु है प्रमाण देते हैं शिशुं न विप्राः—प्राह्मणाः शिशुमिव बालकमिव मतिभिः रिहन्ति हिंसन्ति न्यूनीकुर्वन्ति हिंसा अर्थ। तृपति तृप्त होता या करता है। इटका सूचक तर्पिता तर्पिष्यति तृप्त करेगा तृपेत् अतर्पीत्। एककर्तामें समाप्त तर्पण क्रिया। स्पृशमृशकृश-सूत्रसे सिचि विकल्प, पुषादिगण पढ़े तृपसे ही होता है अङ्का बाधक होनेसे। तेनात्र-इसलिये यहां नित्य सिचि। अतृप इ स ई त। लघूपधक गुण। इट ईटि आदि। अतर्पिष्टाम् अतर्पिषुः। अतर्पीः अतर्पिष्टम् अतर्पिष्ट। अतर्पिषम् अतर्पिष्व-म। तृम्फति का भी तृप्तिके अनुकूल वर्तमानकालिक क्रिया। श प्रत्यय ङित् है। अनिदितां हलउपधायाः से नलोप (वा) शे तृम्फ-आदि धातुओंको नुम् हो विकल्पसे, श परे। आदि शब्द प्रकार विशेषण अर्थमें है, इसलिये तृम्फादिमें पढ़े हो, नकार अनुषक्त न हो, वे तृम्फादि है ततृम्फ। जुजोड अजोडीत्। मृडति सुखी होता है। ममर्ड परोक्षकालमें सुखी हुआ। मर्डिष्यति। पृडतु अपृडत् मृड्यात् अमर्डीत्। पृणति प्रसन्न होता। पर्णिता अपर्णीत्।

वृहू—धातुका उद्यमन उद्योग प्रयत्न करना, वृहति ववर्ह ऊदितो वा से वा इटि। वर्हिता। न इटि वर्ढा। वृहतु उद्योग करो। लुङ्में इट पक्षमें अवर्हीत्। न इट होढः, ढ को सिचि परे क, ष क्ष। ऊ इत तृहू आदि धातुका हिंसा प्राणवियोगानुकूलव्यापार। ऊ इतसे ऊदितो वा इटि तर्हिता। न इटि तर्ढा। अन्य धातुओंमें वलादि परे इट् विकल्पका निषेध लें। ढ ध ष्टु ढलोप। तीसरी धातुमें अनुस्वार है स्तर्ढा तृण्ढा। अतर्हीत् अतार्क्षीत्। नुम् पक्षमें-अतृंहीत्। इट् अभाव पक्षमें वदव्रजहलन्तस्याचः वृद्धि। ह-ध ट, क ष अनुस्वार परसवर्ण न। तस को तां आदि।

कुटका कुटिल चाल कूटनीति (ऊपरसे मेल अन्दरसे दांवपेच) की वर्तमान कालिक क्रियाका कर्ता हो, कुटति कुटतः कुटन्ति। चुकोट चुकुटतुः। गांकुटादिभ्यः सूत्रसे ङित् उसका फल गुणनिषेध। तब चुकुटिथ बना। कुटिष्यति कुटिलता करेगा। कुटतु कुटेत् कुटचात् अकुटीत्। पुट पुटति जल छिड़कना, चिपकना या

षत्वं वा स्यात्। निस्फुरति निः (स्फुरति) णु स्तवने। 'परिणूतगुणोदयः'। नुवति नुनाव नुविता अनुवीत्। मस्जो शुद्धौ। मज्जति ममज्ज। मस्जिनशोर्झलि' इति नुम्। 'मस्जेरन्त्यापूर्वो नुम् वाच्यः' संयोगादिलोपः। ममङ्क्थ-ममज्जिथ। मङ्क्ता मङ्क्ष्यति। अमाङ्क्षीत् अमाङ्क्षुः। मङ्क्ष्यति। 'चोकुरि'ति कुत्वेन जस्य गः। तस्य 'खरि चे'ति कः। अनुस्वारस्य ययी'त्यनुस्वारस्य ङः। रुजो भङ्गे। रोक्ता रोक्ष्यति अरौक्षीत् अरौक्ताम्। भुजो कौटिल्ये। रुजिवत्। भुजति बुभोज विश प्रवेशने। विशति विवेश वेष्टा। अविक्षत् मृश आमर्शने। आमर्शनं स्पर्शः। मृशति ममर्श। म्रष्टा मर्ष्टा। म्रक्ष्यति मर्क्ष्यति। मृशतु अमृशत्। मृशेत् मृश्यात्। अनुदात्तस्य चर्दुपधस्येत्यम्। स्पृश-

स्फुट—धातुका विकसन खिलनेकी क्रिया। विकासानुकूलव्यापारः। स्फुटति पद्मं कमलदल खिलता विकसित होता है। कर्कट्यः स्फुटन्ति ककड़ी फूट हो रही है। पुस्फोट अनदेखा कालमें खिला विकसित हुआ। शर्पूर्वाखयः। स्फोटिता स्फोटिष्यति अस्फुटत् स्फुटेत् स्फुट्यात् अस्फोटीत। मुटति आक्षेप या मर्दन करता है। स्फरति स्फुलति पक्षः, पंख उभरना। स्फुरण होना, अंकुरण पुस्फोर स्फोलिष्यति। स्फुरतु अस्फोरीत्। स्फुरति और स्फुलतिके पहले निर् नि वि हो, स को ष विकल्पसे। नि से परे स को ष। अस्फोरीत् स्फुडतिका ढंकना संवरण अर्थ।

टु ओ इत् **मस्ज** धातुका शुद्धि मांजना धोना झाड़ू लगाना स्वच्छता क्रियावाचक धातुसे वर्तमान कर्तामें लटि। स (श्चु) श को जश ज। मज्जति मज्जतः मज्जन्ति मांजते हैं डूबना नहाना-धोना वर्तमानक्रिया। परोक्ष हो-ममज्ज ममज्जतुः ममस्जथ दशामें (स्कोः संयोगाद्योः) से सलोप। ममजथ, ज को कुत्व ग, झलपरे मस्जिनशोः से नुम्। अनुस्वार परसवर्ण ङ्। ग को चर्क ममङ्क्थ। अकारसे परे नुम् होकर भी सिद्ध था तथापि (वा) **मस्ज** धातुके अन्त्य अल्से पहले नुम् हो मग्नः में नलोप सफल। अन्यथा उपधामें न होनेसे नलोप न होता। इसी प्रकार मङ्क्ता को भी समझें। मङ्क्ष्यन्ति माजेंगे धोयेंगे शुद्ध करेंगे। भूतकालमें लुङि अमाङ्क्षीः अमाङ्क्तं अमाङ्क्त। मज्जतु अमज्जत् अमज्जताम् अमज्जन्। त्वं अमज्जः अमज्जतम् अमज्जत अहम् अमज्जम् अमज्म।

रुज—का भङ्ग देह तोड़ना, रोग होना रुजति-रोग बुखार हरारत होता है रुरोज रोगी हो गया। रोक्ष्यति रोगी बनेगा। रुग्ण हो चुका हो अरौक्षीत् अरौक्ताम् अरौक्षुः अरौक्षीः। **भुज**का कुटिलक्रिया **भुजति** अभौक्षीत् छुपति।

विश—धातुका प्रवेश क्रिया अर्थ। वर्तमानकालिक कर्तामें-विशति विशतः विशन्ति। विवेश विविशतुः वेष्टा वेक्ष्यति विशतु प्रविशत् अविक्षत् अविक्षतां अविक्षन्। शलन्त जानकर क्स। मृशति स्पर्श करता है ममर्श लुङिमें अनुदात्तस्य च ऋदुपधस्य से अम् यण् आदि होगा। पक्षमें वदव्रज-हलन्तस्याचःसे वृद्धि। जब स्पृश मृश कृशसे सिच नहीं, तब शलन्त मानकर क्स अमृक्षत्। **सद** धातुका विशरण

मृश'ति च्लेः सिज्वा। अम्राक्षीत्-अमार्क्षीत्, अमृक्षत्। षद्लृ-विशरणगत्यव-सादनेषु। विशरणं-दुःखम्। पाघ्राध्मे'ति सीदादेशः। सीदती-सीदन्ती। सदिरप्रतेः।८।३।६६। निषीदति। न्यषीदत्। सदेः परस्य लिटि।८।३।११८। सदेरभ्यासात्परस्य सस्य षत्वं न स्याल्लिटि। निषसाद। ससाद सेदतुः सेदुः। सेदिथ ससत्थ। सत्ता सत्स्यति। लृदित्त्वादङ्-असदत्। शद्लृ शातने शदेःशितः।१।३।६०। शिद्भाविनोऽस्मात्तङानौ स्तः। शीयते शीयताम् अशीयत। शीयेत शशाद शत्ता शत्स्यति। अशदत् अशत्स्यत्। कॄ विक्षेपे। ॠत इद्धातो।७।१।१००। ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात्। किरति। किरतः इत्तोत्त्वाभ्यां गुणवृद्धयौत्व विप्रतिषेधेन। चकार चकरतुः चकरुः। वृतोवा। करिता करीता। 'हलि चे'ति दीर्घः। कीर्यात् अकारीत्। किरतौ लवने

गमन अवसादन दुख कष्ट झेलना बैठना। तुदादि शः होने पर शित्परे सीद आदेश (पाघ्राध्मा आदिसे) यद्यपि भ्वादिमें पढ़ा है सीदति बन जाता। यहाँ पढ़नेकी विशेषता नुम् विकल्पके लिये। श होने पर शतृप्रत्यय परे आच्छीनद्योर्नुम् विकल्प से करता है। भ्वादिका पाठ रहता, शप्श्यनोर्नित्यं नुम् होता। अतः सीदन्ती भी बना। यदि ऐसा भ्वादिके भीतर ज्वलादिमें सद्का पढ़ना व्यर्थ होगा तब कहा ज्वलिति कसन्तेभ्यसे कर्तामें णप्रत्ययका होना प्रयोजन है। तभी सादः की सिद्धि। दोनो स्थलमें पढ़नेका फल कहा स्वर अर्थः प्रयोजनं स्वरार्थः शप होने पर अनुदात्तौ सुप्पितौ पित्स्वरके लिये। तुदादिभ्यः शः के उदात्त होनेके लिये। प्रत्ययः आदि उदात्तश्च। शद धातुका सताना अर्थ। यह धातु भी भ्वादि पाठसे सफल यहां क्यों पढ़ा ? स्वरार्थः। पित् अपित् भेदसे अनुदात्त उदात्त स्वर भेदके लिये। शतृ होने पर नुम् विकल्प और नित्य, जैसा ऊपर कहा गया तो शतृ होता ही नहीं, वह परस्मैपदमें होता है शदसे लटके स्थानमें शानचि ही होता है। क्योंकि शदेः शितः से आत्मनेपद सूचित है।

षू धातुका प्रेरणा कर्ममें प्रवृत्त कराना। आदि षः स (सु अति) उवङ, प्रेरित करता है काममें लगाता है। सुवसि सुवथः सुवथ सुवामि। सवितुर्वरेण्यं कर्मोमें प्रेरयिताका सर्वश्रेष्ठ तेज, सुषाव। सविता सवितारौ सवितारः सवितासि प्रेरणार्थक सु धातुसे परोक्षे लिटि आदि। सविष्यति काममें लगायेगा, सुवतु असुवत् सूयात् असावीत्। कृ धातुका विक्षेप गिरना बिखरना, छींटना अन्नं किरति। ॠत इद्धातोः ॠको इ रपर, किरतः किरन्ति। त्वं किरसि बीज बोना न देखा हो चकार चकरतुः चकरुः। सेट् धातु है इटको वॄतो वा से दीर्घ। किरतु अकिरत (अकृ ईस ईत्) अकारीत् अकारिष्टां अकारिषुः। अकारी. अकारिष्टं अकारिष्ट किरतौ उपात—उप उपसर्गसे परे कृ को सुट आगम् हो, लवने काटते छेदने अर्थमें। उपस्किरति यद्यपि विक्षेप बिखेरना अर्थ है किन्तु लवन काटने अर्थमें सुट्, टित् होनेसे क के पूर्व हुआ। किरतः किरन्ति। (अट् अभ्यास) अट और अभ्यासके

।६।१।१४७। उपात्किरतेः सुडागमः स्याच्छेदेऽर्थे । उपस्किरति । 'अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात्पूर्वं इति वक्तव्यम्' । उपास्किरत् । उपचस्कार । हिंसायां प्रतेश्च ।६।४।१४१। उपात्प्रतेश्च किरतेः सुट् स्याद्धिसायाम् । उपस्किरति प्रतिस्किरति । गॄ निगरणे । अचि विभाषा ।८।२।२१। गिरतेः रेफस्य लत्वं वा स्यादजादौ । गिरति-गिलति । जगार-जगाल । जगरिथ-जगलिथ । गरिता-गलिता । प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् । पृच्छति । पप्रच्छ । पप्रछतुः । पप्रच्छिथ-पप्रष्ठ । प्रष्टा । प्रक्ष्यति । अप्राक्षीत् दृङ आदरे । आद्रियते आद्रियेते आदद्रे आदद्रिषे । आदर्ता आदरिष्यते । आदृषीष्ट । आदृत आदृषाताम् । धृङ्

व्यवधान-उपस्थितिमें भी सुट् हो । वह क के पूर्वमें ही हो । लवन क्यों ? उपकिरति पासमें बिखेरता है । यहां सुट न हो । अकिरत् अकिरतां अकिरन् । उपके साथ अटके व्यवधानमें भी सुट् हुआ । हिंसायां-उप और प्रतिसे परे किरतिको सुट हो हिंसा अर्थमें ही । च उपका सूचक, उपस्किरति हिंसा करेति । सुट हुआ । गॄ धातु का निगरण भक्षण लीलनेकी क्रिया । गिरति श होने पर रिङ् श यग्—रिङ् रपर गिरति गिरतः गिरन्ति लीलते हैं । त्वं गिरसि । अचि-गिरति के र को ल हो विकल्पसे, अजादि परे । जब र को ल हुआ गिलति गिलतः गिलन्ति । गिलहरी— लीले हुयेको हरण करनेवाली । लीलना क्रिया समाप्त हो प्रत्यक्ष न हो । जगार जगरतुः जगरुः । जब र को ल (अचि विभाषा) से हुआ । जगाल जगलतुः जगलुः जगरिथ, इटि परे अचि जानकर र को ल । लुटमें रिङ् होने पर दीर्घ विकल्प, णत्व विकल्प गिरतु । अगिलत् गिलेत् (उरो विदारं प्रतिचस्करे नखैः) अगालीत् ।

अथ परस्मैपद प्रक्रियाकी साधनिकाका धातु । प्रच्छ—धातुका ज्ञीप्सा ज्ञातुमिच्छाके अनुकूल क्रिया अनिट् । पृच्छति जिज्ञासार्थक प्रच्छधातोः वर्तमानकालिक जिज्ञासा कर्तरि लटि ति । श विकरण ङित् है अतः ग्रहिज्यावयि व्यधि=पृच्छति सूत्रसे र को ऋ सम्प्रसारण पूर्वरूप । पृच्छतः पृछन्ति । कदा पप्रच्छ पूंछनेकी क्रिया काल परोक्ष है, कित् न होनेसे सम्प्रसारण नहीं । पप्रच्छतुः भारद्वाज नियमसे थल् परे वा इटि । जब न इटि व्रश्चभ्रस्जसे छको ष, थ को ठ पप्रष्ठ पप्रच्छथुः । पप्रच्छिव-म । पृच्छ ता भविष्यकालिक जिज्ञासा अर्थ । छ-ष, त-ट प्रष्टा प्रष्टारौ प्रष्टारः । प्रष्टासि प्रष्टास्मि तुक्सहित छको ष होता है । प्रच्छ स्यति छष, क-ष क्ष । प्रक्ष्यति प्रक्ष्यतः प्रक्ष्यन्ति, पृच्छतु अपृच्छत् पृच्छेत् पृच्छयाम् जिज्ञासा करें । पूछ चुका हो अप्राक्षीत् अप्राष्टां अप्राक्षुः । अप्राक्षीः अप्राष्टम् अप्राष्ट अप्राक्षं अप्राक्ष्व । णिजन्तसे ण्वुलि पृच्छकः । किरादिगण समाप्त हुये । किरश्च पञ्चभ्यः में पञ्च शब्द रुदादिभ्यः सार्वधातुकेमें अनुवृत्तिके लिये ।

दृ धातुका आदर सत्कार अर्थ । तथाद्रियन्ते न बुधा सुधामपि । इति श्रीहर्षः । आङ् उपसर्गसे विशिष्ट आदर सत्कार । स्वागतानुकूल क्रियावाचक दृ धातोः वर्तमाने कर्तरि लटि त टेः ए । तुदादिभ्यः श । आदृ अ ते । ऋ स्थाने रिङ्, इ इयङ्

अवस्थाने। ध्रियते। दध्रे मृङ् प्राणत्यागे। म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ।१।०।६१। लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृति-भूतान्मृङस्तङ् स्यान्नान्यत्र। ङित्त्वं स्वरार्थम्। म्रियते। ममार ममर्थ मम्रिव। मर्तासि मरिष्यति मृषीष्ट। अमृत। पृङ् व्यायामे। प्रायेण व्याङ्पूर्वः। रिङ्। इयङ्। व्याप्रियते व्यापप्रे। व्यापप्राते

आद्रियते आद्रियन्ते। आद्रियसे आद्रिये आद्रियावहे। आदर स्वागत सत्कार होते समय न देखा हो। आद दृ ए। यण् आदद्रे आदद्राते। थासको से इटि, अचपरे रिङ इयङ्। परश्वः आदर्ता एककर्तृक आगामिभविष्यकालिक समादरानुकूलव्यापारः। आदर्तारौ आदतारः आदर्तासि—हे। स्य परे ऋद्धनोः इटि आदरिष्यन्ते सत्कार करेंगे। आद्रियतांम् आद्रियन्ताम् आद्रियस्व आद्रियाथांम् आद्रियै आद्रियत। आद्रियेत आदृषीष्ट, आदर बढ़नेकी कामना आदृषीयास्तां आदृषीरन्, स्वागत सत्कारके समाप्त काल लुङि आदृ षत ह्रस्वादङ्गात् सलोप। आदृषातां अदृषत। आदृथाः आदृषाथाम् आदृढ्वम् आदृषि आदृष्महि। आदरिष्यत।

धृङ् धातुका अवस्थान स्थापना स्थिर करना अधृत अधृषाताम्। मृङ् का प्राणत्याग मृत्युकी क्रिया। म्रियते—लुङ लिङ शित प्रत्ययकी प्रकृति जिससे वे हुये हों उस (मृ) से आत्मनेपद हो, अन्यधातुसे न हो। च शब्दसे शित् का अनुकर्षण। शदेः शितः सूत्रसे अनिट्। मृङ् धातुसे वर्तमानकालिक प्राणवियोग क्रियाके कर्तामें लटि त, तुदादिभ्यः शः। मृ अ ते। रिङि इयङि। म्रियेते म्रियन्ते। म्रियसे म्रियेथे म्रियध्वे। अहं म्रिये मृवहे मृमहे। जब मृङ्के ङित्पाठसे आत्मनेपद सिद्ध है तब इस सूत्रका आरम्भ नियमार्थ है। मृङ्से ही तङ हो, अन्यसे न हो। यदि ऐसा धातुको ङित् क्यों पढ़ा? तब कहा स्वरार्थः-स्वर एव अर्थ प्रयोजनं यस्य। तासि अनुदात्तेत्से ङित् अनुदात्त होते हैं। मरनेकी क्रिया समाप्त हो क्रिया सहित कर्ता न देखा गया हो लिटि। ममार ममरतुः ममरुः ममर्थ ममरथुः। ऋदन्त हैं भारद्वाज मतमें भी इट निषेध थलपरे। वस् मस् परे क्रादिनियमसे नित्य इटि। ममार मम्रिव। जहाँ शित् हो वहां आत्मनेपद, यत्र न शित् तत्र न तङ्। मर्तासि परस्मैपदका सूचक अनद्यतन भविष्जकालमें तुम मरोगे मर्ता मर्तारौ मर्तारः। मर्तासि मर्तास्व मर्तास्म (ऋद्धनोः स्ये) स्य परे इटि मरिष्यति मरिष्यसि मरिष्यामि। म्रियतां म्रियेतां म्रियन्तां। म्रियस्व म्रियेथां मृयध्वम्। अम्रियत मरणके प्रति कामना हो आशीर्लिङ मृषीष्ट मृषीयास्तां मृषीरन्। मृषीष्ठाः। सामान्य भूतकालमें मृत्यु हो अमृत। एककर्तामें भूतकालिक मरणक्रिया। ह्रस्वान्त अङ्ग देख सिचलोप अमृषातां अमृषत, अमृथाः अमृषाथांम् अमृषि, अमरिष्यत।

पृङ धातुका व्यायाम प्रयत्न निरन्तर कोशिशकी क्रिया, ह्रस्वान्त अनिट है। प्रायः वि उपसर्गसे जुड़ा रहता है। रिङ इयङ् भी होते हैं। वि आङ पृ श-अ ते। रिङि प्रि इयङ् (अचि श्नुधातुसे) व्याप्रियते प्रियेते प्रियन्ते। शरीर सुदृढ़ सुसंगठित होनेके लिए अभ्यासके अनुकूल परोक्ष क्रिया, मल्लयुद्धार्थाभ्यासः। व्याप्रियतां

व्यापरिष्यते व्यापृत । व्यापृषाताम् जुषी प्रीतिसेवनयोः । आत्मनेपदिनश्च त्वारः । जुषते । ओ विजी भयचलनयोः । प्रायेणायमुत्पूर्वः । उद्विजते । विज इट् ।१।२।२। विजः पर इडादिः प्रत्ययो ङिद्वत् । उद्विजिता उद्विजिष्यते । ओ लजी ओलस्जी व्रीडायाम् लजते लेजे, लज्जते । ललज्जे । इति तुदादिः ।

अथ तिङन्ते रुधादिप्रकरणम्

रुधिर् आवरणे । नव स्वरितेतः इरितश्च । रुधादिभ्यः श्नम् ।३।१।७८। शपोऽपवादः । मित्वादन्त्यादचः परः नित्यत्वाद् गुणं बाधते (रुणद्धि) 'श्नसोर-

---

व्याप्रियत । व्यायाम सवर्धनके प्रति शुभकामना अर्थमें लिङ् त व्यापृषीष्ट । उश्च से कित् गुण निषेधार्थ, व्यायामार्थक व्यापृधातुसे समाप्त अभ्यासानुकूल क्रिया अर्थे लुङि त, सिच्लोपः ह्रस्वादङ्गात्से । व्यापृत व्यापृथाः व्यापृषाथां व्यापृढ्वं, व्यापृषि। जुष—धातुका प्रीति सेवा क्रिया जुषति जुषतः जुषन्ति । प्रेम सेवा करते हैं । जुषसि अहं जुषामि । मैं सेवा करता हूं । जुजोष, जोषिता सेवा करेगा । जुषतु । अजोषीत् अजोषिष्टाम् अजोषिषुः । समाप्त प्रीति सेवाकालका कर्ता ।

आत्मनेपद शैलीकी साधनिकाके चार धातु। **ओविजी** (ओ ई इत्) विज धातुका डरना चलना भी अर्थ । प्रायः उत् उपसर्ग जुड़ता है **उद्विजते**-भयसे ऊबना घबराना अवेजीत् । उद्विजिता उद्वेग होना उबेगा । लघूपध गुण विजको प्राप्त था निषेध सूत्र **विजइट्**-विजसे परे इडादिप्रत्यय ङिद्वत्-ङित् सदृश हो जिसका फल गुणनिषेध । उद्विजिष्ठ उद्विजिषीष्ट ऊब चुका । उद्विजिता उद्विजिष्यते । **लज**—धातुका व्रीडा लजानेकी क्रिया, शर्मिन्दा होना । लजते लजेते लजन्ते लजसे । आत्मनेपदमें लेजे लेजाते लेजिरे । लज्जते लस्ज धातुके श को जश् ज, लजिष्यते । लज्जताम् अलजत अलजिष्ट । लज्जिता लज्जिष्यते अलज्जिष्ट।

अथ रुधादय—रुध धातुः आदौ येषां ते भ्वादिका अन्तर्गण धातु है तभी धातु संज्ञा शप्को बांधकर, भेदक धर्म श्नं है । ऐसे विकरणक धातुओंकी साधनिका संचालित करते हैं । इर इत् **रुध**—धातुका आवरण अवरोध रुकावटकी क्रिया । यहांसे नव धातु स्वरित (उदात्त अनुदात्त मिलित) अच् इत् होनेसे दोनों पद । **रुधादि** गण पढ़े धातुओंसे श्नं (न) विकरण हो कर्ता अर्थमें सार्वधातुक परे स्वार्थे । शप बाधकर श म इत्, मितका फल बोले मित्वात्-मित् होनेसे अन्त्य अचसे परे आगे (न) बैठेगा प्रत्यय होकर ही श की इत्संज्ञा लशकु-सूत्रसे । श का उच्चारण क्यो श्नसोरल्लोपः श्नान्नलोपः में विशेषणके लिये श पढ़ा । सार्वधातुकसंज्ञाका का कोई फल नहीं । श्नं होनेके पहले यद्यपि परत्वात् लघूपधगुण हो जाय, पीछे श्नं हो रोणद्धि ऐसा बने तब कहा नित्यत्वात्=कृताकृत प्रसङ्गो विधिर्नित्यः । गुण हो या न हो श्नं तो, नित्य मानकर होगा ही तब गुण सम्भव नहीं । उपधामें लघु न मिलनेसे । **यथा रुणद्धि**—अवरोधनार्थक रुध धातोः अवरोधन कर्ता अर्थे वर्तमाने लटि रुधादिभ्यः श्नं रुन्धति दशायां झषस्तथोर्धःसे त को ध । पूर्व ध को जश्द णत्व । रुन्धः अवरोधनार्थक द्विवचने कर्तरि तस । रुन्ध् तस् दशामें प्रक्रिया प्रदर्शन मूलकार

ल्लोपः' णत्वस्यासिद्धत्वादनुस्वारः। परसवर्णः। तस्यासिद्धत्वाण्णत्वं न। 'न षान्त' इति सूत्रेणानुस्वारपरसवर्णयोरल्लोपो न स्थानिवत्। रुन्द्धः रुन्धन्ति। रुन्द्धे रोद्धा रोत्स्यति। रोत्स्यते। रुणद्धु रुन्धात। रुन्द्धि रुणधानि। रुणधै अरुणत् अरुन्धाम्। अरुणत-अरुणः। अरुणधम्। अरुधत् अरौत्सीत्। अरुद्ध। भिदिर् विदारणे। भिनत्ति भिन्ते भेत्ता भेत्स्यति। अभिनत्

करते हैं श्नसोरल्लोपः क्ङिति सार्वधातुक परे न के अ का लोप। रुन्धतस् न को ण होने पर कहा कि णत्वस्य--णत्वको असिद्ध करके, मोनुस्वारः यदि परे परसवर्ण होगा रुन्धः बनेगा। यदि पुनः णत्व होने चलेगा तब तस्य=परसवर्णको असिद्ध करके (अनुस्वार को) णत्व नहीं होता, परन्तु (अचः परस्मिन्पूर्वविधौ) सूत्रसे श्नंके अकारलोपको स्थानिवत्=स्थानीके धर्मका आरोप कर लेंगे तब अनुस्वार परसवर्ण कैसे ? उत्तर दिया कि नपदान्तद्विर्वचनवरेयलोप आदि सूत्रसे अनुस्वार परसवर्णकी दशामें अकारलोपका स्थानिवत् भाव नहीं होता नहीं भी हुआ। रुन्धन्ति रुणत्सि रुन्धः रुन्ध। रुणद्धि रुन्ध्वः रुन्ध्मः। आत्मनेपदमें अवरोध क्रियाके कर्तामें वर्तमाने लट्। रुन्धे रुन्धाते रुन्धते। रुन्त्से रुन्धाथे रुन्ध्वे। रुन्धे रुन्ध्वहे रुरोध रुरुधे। रुरोधिथ रुरोधिव। रोद्धारौ रोद्धारः रोद्धासे रोद्धास्मि। रोकूंगा। भविष्यकालिक अवरोध क्रिया। लोटमें अवरोधन क्रिया आज्ञा प्रेरणा अनुशासनका विषय हो रुणद्धु लटकी तरह रूप बनाकर एरुः, तु को तातङ्। अवरोधके प्रति आशीर्वाद अर्थमें। रुन्द्धां रुन्धन्तु रुन्धि रुन्धात् रुन्धं। रुणधानि रुणधाव रुणधाम। हम रोकें रुन्द्धाम आत्मनेपदमें उत्तमपुरुष रुणधावहै रुणधामहै।

अनद्यतन समाप्त अवरोध क्रियाका कर्ता हो लङि। अ रु न् ध त्। हल्ङ्यादि से तलोप। ध को चर्त्। अरुणत् अरुधन्। सिपि परे स, क। हलन्तलोप होने पर भी दश्चसे रुत्व विकल्प करके जब त् को रु, र को विसर्ग। अरुणः अरुणत् अरुन्ध्म्। उत्तम पुरुषमें अरुण्ध्व अरुण्ध्म। रुन्ध्येत् रुन्ध्यात्। रुन्धीत रुत्सीष्ट। समाप्त आवरण क्रियाके कर्तामें लुङि इरितो वा से च्लिको अङि। अरुधत् अरुधतां अरुधन् अरुधः अरुधतम् अरुधत। अरुधम् अरुधाव अरुधाम। आवरण रोकनेकी क्रियाका भूतकाल। जब अङि नहीं, च्लिको सिचि (अरुध सी त्) वदव्रजहलन्तस्याचःसे वृद्धि। ध को चर् त। अरौत्सीत् अरौत्तां अरौत्सुः। आत्मनेपदमें झलोझलिसे सिचः लोप। को ध जश्द अरुद्ध अरुत्साताम्, अरुत्सत। अरुद्धाः अरुत्साथाम्।

इर इत् भिद् धातुका विदारण फाड़ना क्रिया अर्थ। नृसिंह हिरण्यकश्यपु वक्षं भिनत्ति भिनद्ति द को चर्त, भिन्तः भिन्दन्ति। भिनत्सि भिन्त्थः भिन्त्थ। भिनद्मि भिन्द्वः भिन्द्मः। आत्मनेपदमें भी तथा। भिन्दाते भिन्दते। भिन्त्से भिन्दाथे भिन्द्ध्वे। भिन्दे भिन्द्महे। विदारण फाड़ना खरोंचना क्रिया कर्तासहित न देखी गयी हो, स वस्त्रं विभेद विभिदतुः विभिदुः। विभेदिथ विभिदिव। आत्मनेपद

अभिनः अभिनदम। अभिन्त। अभिदत् अभैत्सीत्। अभित्त। छिदिर् द्वैधी-करणे। अच्छिदत्–अच्छैत्सीत्। अच्छित्त। रिचिर् विरेचने। रिणक्ति रिङ्क्ते। रिरेच रिरिचे रेक्ता। अरिणक्। अरिचत् अरैक्षीत्। अरिक्त। विचिर् पृथग्भावे। विनक्ति विङ्क्ते। क्षुदिर् सम्पेषणे। क्षुणत्ति क्षुन्ते। क्षोत्ता। अक्षुदत् अक्षौत्सीत् अक्षुत्त युजिर् योगे। युनक्ति योक्ता। उच्छृदिर्

में विभिदे विभिदाते विभिदिरे। विभिदिषे तुमने भेदन किया। अनिट्का सूचक भिदता गुणादि भेत्ता भेत्तारौ भेत्तारः भेत्तासे भेतास्मि भेत्ताहे। स्य परे दको चर्त गुण। भिनत्तु भिन्तां। भेदनक्रिया समाप्त हो आजका भूतकाल न हो लङि अभि-नत् अभिन्तोम् अभिन्दन्। सिपिपरे दश्चसे द को रु अभिनः अभिन्त त्वदभिन्नैककर्तृक अनद्यतन भूतकालिक भेदनक्रिया अभिन्त। अभिनदम् अभिनदाव अभिनदाम। लुङि सामान्य भूतकाल अवरोध आवरण क्रियाके कर्तामें अभिदत् इरितो वा से च्लि को अङ। अभिदतां अभिदन्। जब न अङ् किन्तु सिचि तब वद्व्रजहलन्तस्याचः वृद्धि अभैत्सीत् अभैतां अभैत्सुः। आत्मनेपदमें अभिद्सत झलोझलिसे सलोप अभित्साताां अभित्सत। अभित्थाः अभित्साथाम् अभिध्वम् अभित्सि अभित्स्वहि अभित्स्महि।

छिदका द्वैधीकरण दो टुकड़े अनेक खण्ड करना छिनत्ति छिन्ते। चिच्छेद चिच्छिदे छेत्ता काटेगा। छेत्स्यति खण्ड करेगा। छिनत्तु। अच्छिन्त अच्छिदत् अच्छिनत् छिन्द्यात्। च्लि अङि, सिच अच्छैत्सीत् अच्छैद्धां अच्छैत्सुः। अच्छित्त अच्छित्साताम् अच्छित्सत। अच्छित्थाः अच्छित्साथां। तुम दोनोंने टुकड़े किये। रिच—धातुका विरेचन संचारकी क्रिया। रि न् च् ति, चको कु, नको ण रिणक्ति रिङ्क्तः रिञ्जन्ति। रिङ्क्ते रिञ्जाते रिञ्जते। यह रेचन संचारक्रिया बीते भूतकालकी हो कर्तामें रिरेच रिरिचतुः रिरिचुः। रिरेचिथ अथवा रिरिचे रिरिचाते अनिट्में प्रमाण रिच ता रेक्ता रेक्तारौ रेक्तारः। रेचन संचरण क्रिया होगी रेक्ष्यति। अरिणक् अरिङ्ताम रञ्जन्। कल रेचन हुआ। लुङि पूर्ववत् तीन रूप। अरिचताम् अरिचन् अरिक्त अरिक्षाताम् अरिक्षत, अरिक्थाः अरिक्षायाम् अरिध्वम् अरिक्षि। रेचन हुआ। विच का पृथक् करना तण्डुलात्कंङ्कड़ विनक्ति बीनता, अलग करता है विङ्क्तः विञ्जन्ति। अविचत् अवैक्षीत्। अविक्त बीनकर अलग किया।

क्षुद—धातुका सम्पेषण कूटकर चूर्ण करना क्षुणत्ति मुसलात् यवं। कूंटता है क्षु न् द् ति, दको चर्त णत्व क्षुणत्ति क्षुन्तः क्षुन्दन्ति। क्षुनत्सि ऊलूखले-औखलीमें कूटते हो। क्षुणद्मि। क्षुन्दाते क्षुन्दते। क्षुद्ता चर्त गुण, क्षोत्ता क्षोत्स्यति खूनेगा। क्षुणत्तु औषधम्। अक्षुणत अक्षुन्त। च्लि अङि अक्षुदत् अक्षुदताम् अक्षुदन्। अक्षौत्ताम् अक्षुत्त अक्षुत्साताम् अक्षुत्सत, कूटा मन्थन किया। युज—धातुका योग जोड़ना सम्बन्धस्थापित करना। कृषकः वृषभौ युनक्ति जुयेमें नाधता है। योत्स्यति जोतेगा। युनक्तु अयुजत्। अयौक्षींत्। छृणत्ति चमकना दुखी करना वर्तमान कर्ता सलादि आर्धधातुक परे (सेऽसिचि कृतृछृत) सूत्रसे वा इटि चछृत्से

दीप्तिदेवनयोः । छृणत्ति । चन्त्ते । चच्छर्द सेऽसिचि इति वेट् । चच्छृदिषे चच्छृत्से । छर्दिता । छर्दिष्यति-छर्त्स्यति । अच्छृदत् अच्छर्दीत् । अच्छर्दिष्ट उतृदिर् हिंसानादरयो । तृणत्तीत्यादि । कृती वेष्टने । परस्मैपदी । कृणत्ति तौदादिकवत् । तृह हिंसि हिंसायाम् । तृणह इम् ।७३।।९२। तृहः श्नमि कृते इमागमः स्याद्धलादौ पिति । तृणेढि तृण्ढः । ततर्ह तर्हिता अतृणट् । हिनस्ति जिहिंस हिंसिता। उन्दी क्लेदने । उनत्ति उन्तः उन्दन्ति। उन्दाञ्चकार औनत्।

तुम कब दुख दिये या चमके । इरितो वा से, वा चिलको अङ् । लुङ्में भूतकालिक चमकना या कष्ट देनेकी क्रिया । तृणत्ति—हिंसा, अनादर करता तृणवत् मानता है । तृन्ते ततर्द तृणवत् समझा । ततृदे ततृदिषे । यहां भी सेऽसिचिकृत चृततृद-त्से वा इटि तर्दिता तर्दिष्यति तर्त्स्यति । तृणत्तु तृणवत् समझो । अतृदत् अतर्दीत् तृणवत् समझा । कृणत्ति लपेटता चकर्त्त अकृतत् ।

तृह—धातुका हिंसा प्राणवियोगकी क्रिया । तृणेढि—हिंसा करता है तृणवत् तोड़ता है । जरासन्धको तृणवत् तोड़नेके कर्तामें लटि श्नं णत्व (तृणहति) दशामें तृणह्==धातुको श्नं करने पर इम् आगम हो, हलादि पिति सार्वधातुक परे । नाभ्यस्तस्य से पिति, उतोवृद्धिः से हलि प्राया । मित् अन्त्य अचसे परे होते हैं । सति सम्भवे बाधनं भवति अन्यथा ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्यन्याय तक्रेण दधि न बाध्येत् एवं श्नमा शप च न बाध्येत । देशभेदेन उभयसम्भवात् । तृण इह । गुणे, तृणेह ति । ह-को ढ, त को ध ढ; ढ़ोढे लोपः तृणेढि तृण्ढः । तृणह् तस्, पित् नहीं, इम आगम नहीं । श्नसोरल्लोपः अकारलोप ढ-ध-ढ ढलोप । तृहन्ति । तृणेक्षि तृण्ढः तृण्ढ । तृणेह्मि तृंह्वः तृंह्मः । जरासन्धं तृणतुल्य तोड़ने फाडनेकी क्रिया परोक्ष रही हो । ततृह-ततर्ह ततृहतुः ततृहुः ततर्हिथ ततृहथुः । ततर्ह ततृहिव-म । सेट् धातुः तर्हिष्यति हिंसा करेगा । तृण्ढात् तृण्ढां तृंहन्तु । तृण्ढि तृण्ढात् तृण्ढं । तृणहानि तृणहाव । अनद्यतन भूतकालकी हिंसा कर्तामें अतृणेट् अतृणह त् का हल्ङ्यादिलोप । ह को ढ जश्द, अतृण्ढाम् अतृंहन् । अतृणेट् अतृण्ढम् । अतृणहम् अतृंह्व, तृंह्यात् तृह्यात् अतर्हीत् अतर्हिष्टाम् अतर्हिषुः ।

हिनस्ति—श्नं परे इदित होनेसे नुमि । श्नान्नलोपः नुम्का लोप । हिंस्तः हिंसन्ति । हिनस्सि हिंस्थः हिंस्थ । हिनस्मि । जिहिंथ इदित् होनेसे नलोप नहीं, जिहिंसिथ । सेट धातु है हिंसिष्यति । हिनस्तु हिंस्तां हिंसन्तु त्वं हिन्धि तुम हिंसा करो, (हिनस हि) नुमि । श्नात् नलोप । श्नसोरल्लोपः से न में अ का लोप । धि च से सलोप हिंस्तात् हिंस्तं हिंस्त । हिनसानि अनद्यतन भूतकालकी हिंसा क्रियाके कर्तामें लङि अहिनत् अहिंस्तां अहिंसन् । सिप्को वा द अहिनः अहिनद अहिंस्तं । ६ हिनसम् अहिंस्व। हिंसाकी सम्भावना हो हिंस्यात् हिंस्यातां लुङि अहिंसीत् अहिंस्ता अहिंषिषु अहिंसीः । अहिंसम् अहिंसिष्यत् । नेटि सूत्रसे वृद्धिका निषेध । उन्द—धातुका क्लेदन गीला पानी या पसीनेसे भींजना । श्नम् (उनद्ति) छ को चर्त

औन्ताम् । औन्दन् औनः-औनत् औनदम् । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु । अनक्ति । अङ्क्तः अञ्जन्ति आनञ्ज आनञ्जिथ-आनङ्क्थ । अङ्क्ता-अञ्जिता । अङ्ग्धि अनजानि आनक् । अञ्जेः सिचि ।७।२।७१। अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात् । आञ्जीत् । तञ्चू सङ्कोचने । तनक्ति तङ्क्ता-तञ्चिता । ओविजी भयचलनयोः विनक्ति । विङ्क्तः । 'विज इट्' इति ङित्त्वम् । विविजिथ । विजिता । अविनक् अविजीत् । शिष्लृ विशेषणे । शिनष्टि शिंष्टः शिंषन्ति । शिशेषिथ । शेष्टा शेक्ष्यति । हेर्धिः । जश्त्वम् । ष्टुत्वम् । झरोझरि इति वा ढलोपः । अनुस्वार परसवर्णौ । शिण्ढि शिण्ड्ढि ।

उनत्ति उनत्सि उन्त्थः उन्थ । उनद्मि उन्द्वः इजादि होनेसे आम् कृ आदिका अनु-प्रयोग भी । भविष्यमें गीला होना हो उन्दिष्यति उन्दिष्यामि । गीला होना आज्ञा प्रवृत्ति करानेका विषय हो, उनत्तु उन्तात् उन्ताम् उन्दन्तु । उन्द्धि उनदानि अद्य-भिन्न भूतकाल हो (उनद् त) आडजादीनाम् अजादि धातु जानकर आट् । आटश्च वृद्धि आदि । औनत् औनः औनतम् औनत । औनदं औन्द्व । उद्यातम् उद्यात् औन्दीत् औन्दिष्टां औन्दिषुः ।

अञ्जू—धातुका व्यक्ति विवेचन करना, म्रक्षण-स्निग्धता चिकनाहट शोभा गमन आदि अर्थ । वर्तमान काल हो कर्तामें लट् अञ्जमें ञ को नकार स्थानिक अनुस्वार परसवर्ण जाने । ऊ इत् वा इटिके लिये । श्नम् अन्न् ज ति । परसवर्ण की असिद्धिसे श्नान्नलोपः नकारलोप। ज को ग, चर क, अनक्ति अङ्क्तः अञ्जन्ति । श्नं के न को अनुस्वार परसवर्ण। अनक्षि अङ्क्थः अनज्मि अञ्ज्वः । अनक्तु अङ्क्तात् अञ्जन्तु । विवेचन करने शोभा गमनके विषयमें प्रेरणाके कर्तामें लोट । अङ्ग्धि हि परे श्नं होने पर हि को धि, नकार अका लोप । ज-ग, न को पर-सवर्ण ङ् । अङ्क्तात् अङ्क्तम् अङ्क्त अनजनि, लिटि परे अञ्ज अञ्ज आनञ्ज । ता स्य परे ऊदितो वा से वा इटि । अञ्जिष्यति अनक्त् लङि आनक् आङ्क्तां आञ्जन् आनक् आङ्क्तम् आङ्क्त । आनजं । अज्यात् । **अञ्जेः**—अञ्ज धातुके सिचि परे नित्य इट हो । ऊदितो वा के विकल्पको बाधकर । (आ अञ्ज इ स ईत्) सिच्लोप दीर्घ आदि आञ्जीत् आञ्जिष्टां आञ्जिषुः आञ्जीः ।

तञ्चू—धातुका संकोचने-सिकुड़ने विस्तृत होनेकी क्रिया । **तनक्ति**-सिकुड़ता है। ततञ्च तञ्चिता ऊदितसे वा इट । तञ्चिष्यति, तनक्त् अतञ्चीत् अताङ्क्षीत् क्योंकि वद्व्रजहलन्तस्याचासे वृद्धि, इटि अभाव पक्षमें । ओ ई इत् **विज**—धातुका भयभीत होना चलना। **विनक्ति**=भयभीत होता है । विङ्क्तः विज इटसे ङित् फल गुण न।

अथपरस्मैपदकी साधनिकाकी क्रिया, लृ इत् **शिष**—धातुका विशेषण विशेषता बोलनेके अनुकूल क्रिया । **शिनष्टि**=विशेषता कहता है । शि न ष् ति ष्टुत्व । शिष्टः शिनष् तस, अपित्सार्वधातुक तस् ङित है । श्नसोरलोपः से अकारलोप । नको अनुस्वार (नश्चापदान्तस्यसे) शिनक्षि शिंष्टः शिनष्मि शिष्वः शिष्मः, शिशेष

शिनषाणि अशिनट् । लृदित्त्वादङ् अशिषत् । पिष्लृ सञ्चूर्णने । शिषिवत् । पिनष्टि । भञ्जो आमर्दने । भनक्ति बभञ्जिथ बभङ्क्थ । भङ्क्ता । भुज पालनाभ्यवहारयोः । भुनक्ति भोक्ता भोक्ष्यति । अभुनक् । भुजोऽनवने ।१।३। ६६। भुजोऽनवने तङानौ स्तः । ओदनं भुङ्क्ते । अनवने किम्? महीं भुनक्ति। ञिइन्धी दीप्तौ । श्नान्न लोपः ।६।४।२३। श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात् ।

शिशिषथुः शिशेषिथ । अजन्त अकारवान् नहीं अतः क्रादिनियमसे नित्य इट्, शिशिषथुः । अनिट का सूचक शिष ता शेष्टा शेष्टारौ शेष्टारः शेष्टासि । अनद्यतन भविष्यकालमें विशेषता बोलेगा । शिष स्यति, षढोः कः स-ष क्ष । शिनष्टु शिष्टात् शिष्टां शिषन्तु । शिण्ढि—शिनष हि दशामें नमें अ का लोप । हि को हेर्धिः । शिनष् धि दशामें (झलांजश् झशि) से ष को ड, धको ढ (झरोझरि सवर्णे) सवर्ण संज्ञक ढ परे देखकर ड का लोप । न का अनुस्वार परसवर्ण ण, शिण्ढि । पक्षमें ड भी रहा, तुम विशेषताओंको गुनो । शिष्टात् शिष्टम् । उत्तम पुरुषमें शिनषाणि आटि मनि: पित् है ङित् परे नहीं, अलोप भी नहीं। शिनषाव शिनषाम । अनद्यतन भूतकालमें विशेषता बोल चुका हो । (अशिनट्) लङि स्थाने ति । इतश्च इलोप । त का हल्ङ्याविलोप । ष को जश ड् अशिष्टाम् अशिषन् । अशिनट् अशिष्टम् अशिष्ट। अशिनषं अशिष्व अशिष्म । लृदितसे च्लिको अङि । अशिषत्—सामान्य भूतकालिक विशेषण कथनानुकूलव्यापार। विशेषता बोला । अशिषतां अशिषन् । अशिषः अशिषतम् अशिषत । अशिषाव अशिषाम । एवं पिनष्टि—चूर्णीकरोति पीसता है पिष्टः पिषन्ति । पिपेष पेष्टा पेक्ष्यति पीसेगा पाउडर करेगा । अपिनट् अपिशत् ।

भञ्ज--धातुका आमर्दन तोड़-मरोड़ करना वर्तमान हो । भ न न् ज ति । श्नान्नलोपः, ज कुत्व ग, चर्क, भनक्ति भञ्जन करता है रौंदना पूरा नाशकी क्रिया । भङ्क्तः भञ्जन्ति । भनक्षि भङ्क्थः भङ्क्थ । भनज्मि तब मुखम् । परोक्षमें भञ्जन क्रिया हो चुकी हो बभञ्ज-थलपरे भारद्वाज नियम लगेगा । वा इट् होगा । अनद्यतन भविष्यमें भञ्जन हो । भञ्जता ज को च, चको कुत्व क, न को अनुस्वार परसवण. भङ्क्ता अनिट । भङ्क्ष्यति भनक्तु तोड़ दे । भङ्क्तात् भङ्ग्धि सि हि धि । आशीर्लिङ्के कित् होनेसे नलोप होगा । भज्यात् अभाङ्क्षीत् अभङ्क्तां अभाङ्क्षुः ।

भुज--धातुका पालन, उपभोग भोजन आदिकी क्रिया भुनक्ति खाता पालन करता है । यदि भुजोऽनवनेसे तङि तब भुङ्क्ते । बुभोज बुभुजे भोक्तारौ भोक्तारः । खायेगे पालन करेंगे । भुनक्तु अभुनक् अभुङ्क्ताम्, अभुक्त अभुक्षातां अभुक्षत । अभुक्थाः ।

ई इत (इन्ध) धातुसे वर्तमानकालिक दीप्ति चमकना क्रियाके कर्तामें लटि आदि । इ न् न् ध ते । दशामें श्नान्नलोप श्नंसे परे नकारका लोप हो । इन् धत, श्नसोः अल्लोपः इति अकारलोपे । इन्धते झषस्तथोर्धः त स्थाने ध । पहले धको जश्द इन्द्धे इन्द्धात इन्धत इन्त्स तुम चमकते हो प्रकाशमें आते हो । इन्धिष्यते इन्धन इसी धातुका रूप । अग्निज्वालक इन्द्धाम् इन्द्धाताम् इन्धताम् । इन्त्स्व इन्धायाम् इन्द्ध्वम् । इनधै इनधावहै इनधामहै । उत्तम पुरुषमें इन् न् ध ऐ दशामें

'श्नसोरल्लोपः' इन्द्धे। इन्त्से। इन्धिता। इनधै ऐन्द्धा। खिद दैन्ये। खिन्ते खेत्ता। विद विचारणे। विन्ते वेत्ता। इति तुधादिः।

अथ तिङन्ते तनादिप्रकरणम्

अथ सप्त स्वरितेतः। तनु विस्तारे। 'तनादिकृञ्भ्य उः' तनोति। तन्वः-तनुवः। तनुते। ततान। तेने। तत। अतनीत्-अतानीत्। तनादिभ्यस्तथो

श्नान्लोपसे नकारलोपे। आट् पित् है ङित् नहीं श्नसोरल्लोपः अकारलोप नहीं करेगा। अतः इनधावहै इनधामहै। आटके पित्से अनिदितां हल उपधायाः से नलोप नहीं। इनधावहै। ऐन्धाः आट् आटश्च वृद्धि त को ध, थ को भी। ऐन्धिष्ट। खिन्ते खिन्दाते खिन्दते दीन असहाय होनेकी क्रिया खिन्न। चिखेद खेत्ता खेत्स्यति खिन्न होगा। खिदन्तु अखिन्दत् खिन्देत् खिद्यात्। खिन्नं प्रतिकामना। समाप्त हो अखित्त अखित्साताां अखित्सत, त्वम् अखित्थाः अखित्साथां अखिद्ध्वं अखित्सि। विद्—का विचार करनेके अनुकूलक्रिया (वर्तमान कालिक) कर्तामें लट् श्नं, विन्ते विन्दाते विन्दते। वे विचारकरते हैं। विन्त्से विन्दाथे। श्वः वेत्ता-विद ता एककर्तामें आगामी भविष्यकालकी विचार क्रिया। वेत्स्यति विन्त्तां विन्दातां विन्दतां। विन्त्स्व विन्दाथां विन्द्ध्वं विन्दिस। अवित्त अवित्साताम् अवित्सत। एक-कर्तृक भूतकालिक विचारकरणक्रिया। इति तुदादिः।

अथ तनादय—तन धातुः आदौ येषांते। प्रकरणभेदक धर्म (शप बाधकर) उ प्रधान है। धातु स्वरितेत् (दोनों पदका) सूचक। **तन्**—धातुका विस्तार तानना पसारना फैलावकी क्रिया। उइत् उदितो वा। **तनादिगण-पढ़े** धातु और कृञ् धातुसे उ प्रत्यय हो, स्वार्थमें शप बाधकर। कर्ता अर्थमें सार्वधातुकपरे-विस्तारके अनुकूल क्रियावाचक तन धातोः ति तिङ्गितकी सार्वधातुकसंज्ञा। तनादि उः। तन उ ति-उ को गुण तिपरे मानकर। **तनोति**। तस् पित् नहीं ङित् है न गुणः। तनुतः तन्वन्ति। झ को अन्त आदेश होनेपर उको (इको यण्) अचि। तनोषि तनुथः तनुथ। तनोमि तन्वः तनुवः। वस मस परे लोपश्च अन्यतरस्यां सूत्रसे उकारका विकल्पलोप तनुमः तन्मः। आत्मनेपदमें तनुते तन्वाते तन्वते। तनुषे तन्वाथे तनुध्वे। तन्वे तनुवहे तन्वहे। सभी कर्तामे वर्तमानकालिक विस्तार प्रसार फैलाव। विस्तार क्रिया सहित कर्ता प्रत्यक्ष न हो आजके भूतसे भिन्न भूतकाल हो, तन-तन ततन ततान तेनतुः तेनुः। तेनिथ तेनथुः तेन। ततान ततन तेनिव तेनिम। तेने तेनाते तेनिरे। तेनिषे तेनाथे तेनिध्वे। तेने तेनिवहे तेनिमहे। सभी कर्तामें अनद्यतनपरोक्ष भूतकालिक क्रिया वह आगामी भविष्यकालमें बिराजमान हो (तनिता) तनितारौ तनितारः। तनितासि तनितास्थ। तनितास्थ। तनिताहे तनितास्वहे। तनिष्यते तनिष्येते तनिष्यन्ते। भविष्यकालिक फैलाव। यह विस्तार विधि निमन्त्रण आमन्त्रणका विषय हो कर्तामें लोट् तनोतु तनुतात् तनुतां तन्वन्तु। सिको हि उसका लुकि (उतश्च प्रत्ययात्से) तनु तनुतं तनुत। तनवानि तनवाव-म। हमलोग विस्तार

।२।४।७९।तनादेः सिचो वा लुक्स्यात्तथासोः, 'अनुदात्तोपदेश-इत्यनुनासिक-लोपः। तङि अतत अतनिष्ट। अतथाः अतनिष्ठाः। षणु दाने। सनोति सनुते 'ये विभाषा' सायात् सन्यात्। जनसन इत्यात्त्वम्। असात-असनिष्ट। असाथा-असनिष्ठाः। क्षणु हिंसायाम्। क्षणोति। क्षणुते। ह्मयन्त इति न वृद्धिः। अक्षणोत्। अक्षत अक्षणिष्ट। अक्षथाः-अक्षणिष्ठाः। क्षिणु च।

करें। अनद्यतन भूतकालमें विस्तार फल हो चुका हो कर्तामें लङि अट। तन उत्। अतनोत् अतनुतां अतन्वन् अतनोः अतनुतम् अतनुत। अतनवम् अतन्व अतनुव। उकार लोप विकल्पसे। फैलावकी सम्भावना या प्रवृत्ति करानी हो कर्तामें विधि लिङि तनुयात् तनुयातां तनुयुः। आत्मनेपदमें तनु सी त। सलोप उको यण् तन्वीत तन्वीयातां तन्वीरन्। तनिषीष्ट। विस्तार क्रिया समाप्त हो कर्तामें लुङि। अतन इ स ईत्। अतो हलादेर्लघोः से वृद्धि आदि अतानीत् अतानिष्टां अतानिषुः। अतानीः यद्वा न वृद्धि अतनीत् अतनीः अतनिष्टम् अतनिष्ट अतनिषं अतनिष्व म। अतनिष्यत्। लुङिके प्रथमपुरुष मध्यमपुरुषके एकवचनकी विशेषता बोले--

तनादिभ्यः—तनादिगणक धातुसे परे सिच्का वा लुक् हो, त और थास् परे। गातिस्था-से सिच्, ण्यक्षत्रियार्षसे लुक्, ध्राघेटसे बिभाषाकी अनुवृत्ति। यद्यपि बहुवचनमें भी त मिलता है तथापि थास् एकवचन है उसके साहचर्य==साथमें जुड़े रहनेसे त शब्द भी एकवचन ही मान्य। तेन-इसलिये यहां नहीं हुआ अतनिष्ट। मध्यमपुरुष बहुवचन सिच्परे वृद्धि विकल्प। अतानिष्ट यहां तपरे सिचका लुक् हुआ तब अतनत्। नकारलोपकी सूचना अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनां सूत्रसे नलोप। **अतत** जब न सिच्लोप, न नलोप तब अतनिष्ट अतनिषातां अतनिषत थासः परे भी सिच्लोप, नलाप। पक्षमें अतथाः अतनिष्ठाः अतनिषाथाम् अतनिड्ढ्वम्। अतनि अतनिषि। अतनिष्यत् विस्तारार्थक क्रियाका सभी काल पूर्ण।

षण—धातुका दानके अनुकूल क्रिया। आदे षः स। तनु तुल्य रूप। सन् उ ति, गुण सनोति। सन्वाते सन्वते। सनुषे देते हो, यासुटि दशामें (ये विभाषा) आत्व विकल्प। सायात् सायास्तां, लुङिमें असन् स त्। दशामें तनादिभ्यस्तथासोः से सिच्लुकि। जब सनसन्को आत्व असात् पक्षे सिचः इट् आदि, थास परे भी।

क्षण--१। हिंसा, प्राण वियोग या उस कष्टके अनुकूलक्रिया वर्तमानकाल काल हो कर्तामें लट। क्षणोति क्षणुतः क्षणवन्ति। क्षण्वाते क्षण्वते (वज्रं अध्वर्युः क्षण्वीत् तैत्तिरीये) क्षणिता क्षणिष्यते क्षणोतु। लुङमें अक्षणीत् भूतकालमें हिंसा किया। ह्मयन्तक्षणश्वस–सूत्रसे वृद्धिनिषेध। आत्मनेपदमें त-थास परे सिच्लोप।

क्षिण--धातुका हिंसा अर्थ। **क्षिणोति** उ प्रत्ययको आर्धधातुकसंज्ञा करके क्योंकि तिङ् शित् न हो धातुसे हुआ हो वह आर्धधातुक संज्ञक है उसके परे इको गुणन्त लघूपधस्यसे गुण क्यों नहीं ? इसलिये कि संज्ञापूर्वक विधि कार्य अनित्य है। आर्धधातुक संज्ञा करके गुण विधान अनित्य होनेसे गुण नहीं होता। आत्रेयका मत

थप्रत्ययनिमित्तो लघूपधगुणः । क्षिणोति क्षेणोति क्षेणितासि क्षेणितासे अक्षे-
णीत्। अक्षित-अक्षेणिष्ट । तृणु अदने । तृणोति तर्णोति । तृणुते तर्णुते । घृणु
दीप्तौ । जघर्ण जघृणे । डु कृञ् करणे । करोति । 'अत
उत्सार्वधातुके' कुरुतः । यण्, न भकुर्छुराम्' इति न दीर्घः । कुर्वन्ति । नित्यं
करोते ।७।४।१०८। करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपः स्याद्वमयोः परयोः
कुर्वः कुर्मः । चकर्थ चकृव । कर्ता । करिष्यति । ये च ।६।४।१००। कृञ

है, अन्यमते गुण होता है इसलिये दोनों पक्ष क्षेणोति भी होगा । धातुका मूल अर्थ
हिंसा, कालभेदसे उपयोगमें अन्तर । तनादिगणमें पढ़े सभी धातुओंके लुङि में तप
परे सिच्लुक विकल्प । भेदका कारण ऋणोति गच्छति । आत्रेयमते गुण नहीं, अन्य
मते गुण । तस् परे गुणनिषेध अर्णुहि । संयोगपूर्वक होनेसे हि का लुक नहीं । लुङमें
आर्त । सिच्लुकि । तृणोति – खाता है घास तृण पल्लव पत्ते खानेकी क्रिया । जब
गुण तर्णोति तृणुतः तृणुवन्ति । तृण खाते हैं । ततर्ण ततृणे तर्णिता तर्णिष्यते ।
तृणोतु तृणुताम् । अतर्णीत् । अतर्णिष्ट अतर्णिषातां अतर्णिषत । अतर्थाः घृणोतिका
चमक अर्थ । दो धातुका अनुदात्त इत् शुद्ध आत्मनेपदी है ।

डु ञ् इत् कृ धातु का करण उत्पत्तिके अनुकूल क्रियावाचक कृ धातोः वर्तमान-
कालिक उत्पत्ति क्रियाके कर्तामें लटि ति (शपको बांधकर तनादि कृञ्भ्यः) उः । कृ
उ ति। गुण अर् आर्धधातुक परे ऋको । सार्वधातुक परे मानकर उको ओ गुण करोति
कुरुतः कृ उ तस दशायां ङित है उको गुण निषेध । (अत उत्सार्वधातुके) क में अको
उर कुरुतः । बहुवचने झि । क रु अन्ति । उत्-उको यण इकोयणचिसे । कुर्व अन्ति
दशामें हलि चसे दीर्घ प्राप्त उसका निषेध न भकुर्छुरासे हुआ । कुर्वन्ति । करोषि
कुरुथः कुरुथ । करोमि कुर्वः कुर्मः । लोपश्चास्यान्यतरस्यांसे विकल्प उकारलोप प्राप्त
था, नित्य—कृ धातुसे परे प्रत्यय उकारका नित्य लोप हो म व परे । इस सूत्रमें
उतश्च प्रत्ययात् आया । लोपश्चसे लोप । म व परे भी उत्पत्ति रूप फलकी क्रिया
परोक्षमें समाप्त हो । कर्तामें लिटि आदि । कृ अ । कृ कृ कर कृ क कृ चकृ अ ।
वृद्धि चकार चक्रतुः चक्रुः । कृसृभृवृ नियमसे न इटि । चकर्थ । यद्यपि अजन्त है
ऋदन्त होनेसे भारद्वाज मतमें भी न इटि । कर्तारौ कर्तारः । करिष्यन्ति करिष्यामि
करिष्यामः । उत्पत्तिरूप फलके लिये आज्ञा प्रेरणा क्रियामें लगानेकी स्थिति हो ।
करोतु कुरुतात् कुरुतां कुर्वन्तु । कुरु कुरुतात् कुरुतं कुरुत । करवाणि करवाव करवाम।
आत्मनेपदमें कुरुते कुर्वाते कुर्वते कुरुष कुर्वे । कुरुतां कुर्वातां कुर्वतां । कुरुष्व कुर्वाथां
कुरुध्वं। करवै करवावहै एत ऐं। अनद्यतन भूतकालमें लङि (अकरोत्) अकुरुतां अकुर्वन् ।
अकरोः आत्मनेपद अकुरुत अकुर्वाताम् अकुर्वन्त । अकुरुथाः उत्पत्तिरूप फलके लिये
क्रियामें लगानेकी सम्भावना हो कर्तामें विधि लिङि (कृ उ यात्) गुण रपर उतश्च
प्रत्ययात्से अ को उ । कुरुतात् । ये च कृञसे परे उकारका लोप हो यकरादि प्रत्यय
परे । नित्यं करोतेः से करोतेः । लोपश्चास्यान्यतरस्यांसे अस्य आया । अङ्गसे
आक्षिप्त प्रत्ययमें यकार विशेषण । तदादिविधि । कुर्यात् कुर्यातां कुर्युः । कुर्याः,

उलोपः स्याद्यादौ प्रत्यये परे। कुर्यात्। आशिषि क्रियात्। कृषीष्ट। अकार्षीत्। 'तनादिभ्य' इति लुकोऽभावे 'ह्रस्वादङ्गात्' इति सिचो लोपः। अकृत अकृथाः। **सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे** ।६।१।१३७। **समवाये च** ।६।१।१३८। सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्याद्भूषणे सङ्घाते चार्थे। संस्करोति। अलङ्करोतीत्यर्थः। संस्कुर्वन्ति सङ्घीभवन्तीत्यर्थः। सम्पूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट्। 'संस्कृतं भक्षाः' ज्ञापकात्। **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च** ।६।१।१३९। उपात्कृञः सुट् स्यादेष्वर्थेषु। चात्प्रागुक्तयोरर्थयोः। प्रतियत्नो गुणाधानम्। विकृतमेव वैकृतं विकारः, वाक्यस्याध्याहारः-आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम्। उपस्कृता। कन्या। अलङ्कृतेत्यर्थः। उपस्कृताः ब्राह्मणाः। समुदिता इत्यर्थः। एधोदकस्योपकुरुते। गुणाधानं करोतीत्यर्थः। उपस्कृतं

कुर्यात्—के प्रति बढ़नेकी शुभकामनामें आशीर्लिङ-कृ यात् रिङ्शयग्लिङ्क्षु-ऋ रिङ् क्रियात् क्रियास्तां क्रियासुः। क्रियाः क्रियास्तं क्रियास्त क्रियासं क्रियास्व। कृषीष्ट सीय सुट् (उश्च) से कित् का फल, न गुणः। उत्पत्तिकन जननी क्रियाका समाप्त काल हो कर्तामें लुङि त कृष ईत्, सिचि वृद्धिः रपरः आर। परस्व (अकार्षीत्) अकार्ष्टाम् अकार्षुः। अकार्षीः अकार्ष्टम् अकार्ष्ट अकार्षम् आत्मनेपदमें अकृ सत दशायां तनादिभ्यस्तथासोः सूत्रसे सिचि लुकि अकृत। जब ह्रस्वादङ्गात्से सिच्लुक्। अकृषाताम् अकृषत। अकृथाः दोनों दशामें सिचलुकि अकृषाथां अकृढ्वम् अकृषि अकृष्वहि।

संपरिभ्यां—सम् या परि पूर्वमें हो कृ धातुको सुट-स हो, भूषण-अलंकार शोभा वृद्धि और समवाय-समुदाय संघात अर्थमें। संस्करोति करोतिके पहले सुट् हुआ जिसका अर्थ अलंकृत सुशोभित करनेकी वर्तमान क्रिया है। सुट्कात्पूर्वःसे सुट आया। समुदाय अर्थका सूचक सुट्। यथा संस्कुर्वन्ति एकत्रीभवन्ति समुदायमें हो रहे हैं। सम्पूर्वक सुट कहीं-कही भूषण अर्थमें नहीं भी है। प्रमाण रूपमें संस्कृतं भक्षाः वहां स्वादिष्ट अर्थ है सजावट नहीं। परि उपसर्ग रहते भी सुट्-सको परिनिविभ्यः से ष। परिष्करोति अलंकृत करता है या समुदायमें होता है।

उपात्प्रतिपत्ने—उप उपसर्गक कृञ् धातुसे सुट्-स हो। एषु=इन अर्थोंमें प्रागुक्तयोः भूषण अर्थ, समवाय अर्थमें भी। प्रतियत्नका अर्थ गुणोंका आधान स्थापना रसगुल्लेमें सीराका स्वाद आना। सुगन्धित जलका गुण लकड़ी पर चढ़ना। विकृतविकारको प्राप्त होना, किसी वाक्य या पदमें आकांक्षावश एकदेशपूरणम् अक्षर या शब्दको जोड़ना अध्याहार है। उदाहरण—उपस्कृता कन्या भूषणसे अलंकृतकी गयी। उपस्कृताः ब्राह्मणाः इकट्ठे हुये, समुदाय अर्थमें सुटि। एध—लकड़ी दकस्य=जलका गुण ग्रहण करती है। अर्थमें सुटि। उपस्कुरुते गुणकी स्थापना, आधान स्वीकार उपस्कृतं भुङ्क्ते बासी सड़ा विकृत खाता अर्थमें सुट्। उपस्कृतं ब्रूते वाक्यको जोड़जोड़कर बोलना सुट्का अर्थ।

भुङ्क्ते । विकृतमित्यर्थः उपस्कृतं ब्रूते वाक्याध्याहारेण ब्रूते इत्यर्थः । वनु याचने, वनुते वनने । चान्द्रमते परस्मैपदी । वनोति । ववान । मनु अवबोधने । मनुते । मेने । इति तिङन्ते तनादिप्रकरणम्।

अथ तिङन्तेक्र्यादिप्रकरणम्

डु क्रीञ् द्रव्यविनिमये । क्र्यादिभ्यः श्ना ।३।१।८१। क्रीणाति 'ई हल्यघोः' क्रीणीतः । । ततः 'श्नाभ्यस्तयोः' इत्याल्लोप । क्रीणन्ति क्रीणीते क्रीणाते क्रीणते । चिक्राय चिक्रियतुः । चिक्रयिथ-चिक्रेथ । चिक्रियेवि चिक्रियिषे । क्रेता क्रेष्यति । क्रीयात् क्रेषीष्ट । अक्रैषीत् अक्रेष्ट । प्रीञ्

वनुते=याचता है अवनिष्ट । मनु धातुका अवबोधन समझना मानना अर्थ । मन उ त मिलकर मनुते--एककर्तृक वर्तमानकालिक मानना स्वीकारना क्रिया मन्वाते मन्वते मनुषे मन्वाथे मनुध्वे । मन्वे मनुवहे मन्वहे । परोक्षमें स्वीकार किया हो मेने मेनाते मेनिरे । मनितासे मनिताहे । मनिष्यते मानेगा । मनुतां मन्वातां मन्वतां । मनुष्व अमनुत मन्वीत् मनुषीट । अमानिष्ट अमनिषातां अमनिषत । मान लिया ।

अथ क्र्यादयः—डु ञ् इत् क्री धातुका द्रव्य विनिमय खरीदना-बेचना, पैसा-वस्तुका अदला-बदली, देन लेनकी क्रिया । क्र्यादिभ्य–क्री आदि गणपठित धातुओं से श्ना विकरण हो, शपको बाधकर । द्रव्यविनिमयार्थक आदानप्रदानार्थक क्री धातोः वर्तमानकाले कर्ता अर्थे लट ति । शप बाधकर श्ना । अनुबन्धलोप कर्ता अर्थ में सार्वधातुक परे ति है णत्व । क्रीणाति अपित्सार्वधातुक श्नाके ङित् होनेसे ईको गुण नहीं । हलादिकिति ङित्सार्वधातुक परे ईत्व होता है । यथा दो कर्तामें खरीदना आदान प्रदान क्रिया हो तस् । क्रीणीतः (ई हल्यघोः) से ईत्व । बहुवचन बहुत कर्ता खरीदते हो क्रीणन्ति । क्री णा झि दशामें ई हल्यघोः सूत्रसे ईत्व प्राप्त ईत्वके पहले झोऽन्तः से झिको अन्त आदेश, इसी प्रकार (आत्मनेपदेषु-अनतः) सूत्र से झिको अत आदेश भी पर है नित्य है, कृते अकृते च ईत्वे अन्तादेशः प्राप्नोति अन्तरङ्ग होनेसे भी, झिको अन्त आदेश या अत् आदेश ईत्वके पहले होते हैं । ततः अन्त आदेश या अत् आदेशके बाद श्ना और अभ्यस्तके आकारका लोप हुआ अजादि किति ङिति परे है । क्रीणासि क्रीणीथः । क्रीणामि क्रीणीव । आत्मनेपदमें भी क्रीणीषे क्रीणाथे क्रीणीध्वे । द्रव्यविनिमय आदान-प्रदानकी क्रिया अप्रत्यक्षमें हो चुकी हो, चिक्राय —चिक्री अ । णित्परे अचोञ्णिति वृद्धि आय् अतुसि परे इयङ् । थलपरे भारद्वाजनियमसे वा इटि इयङ् । चिक्रियिथ जब न इट, गुण चिक्रेथ । वस् मस् परे क्रादि नियमसे इटि इयङ् आत्मनेपदमें चिक्रिये । क्रेतासि क्रेतासे क्रेतास्मि क्रेताहे । अनद्यतन भविष्यकालका क्रयण खरीदना बेचना विषयक आज्ञा प्रेरणा (क्रियामें प्रवृत्ति कराने) का विषय हो क्रीणातु क्रीणीतां क्रीणन्तु । क्रीणीहि क्रीणीतात् क्रीणीतं क्रीणीत । क्रीणानि क्रीणीव क्रीणीम । क्रीणीतां क्रीणातां

तर्पणे कान्तौ च । कान्तिः कामना । प्रीणाति प्रीणीते । श्रीञ् पाके । मीञ् हिंसायाम्। 'हिनुमीना' णत्वं प्रमीणाति। प्रमीणीतः। 'मिनाति मिनोति' इत्येज्विषये आत्वम् । ममौ । मिम्यतुः ममिथ-ममाथ । मिम्ये माता मास्यति । मीयात् मासीष्ट । अमासीत् अमासिष्टाम् । अमास्त । षिञ् बन्धने । सिनाति सिनीते । सिषाय सिष्ये सेता । स्कुञ् आप्रवणे । स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ।३।१।८२। चात् श्ना । स्कुनोति स्कुनुते । स्कुनाति स्कुनीते। चुस्काव चुस्कुवे । स्कोता । अस्कौषीत् अस्कोष्ट । स्तम्भादयश्चत्वारः सौत्राः सर्वे रोधनार्था सर्वेपरस्मैपदिनः । 'जृस्तन्भु' इत्यङ् वा । व्यष्टभत् । व्यष्टम्भीत् । हलः श्नः शानज्झौ ।३।१।८३। हलः परस्य श्नः शानजादेशः

क्रीणताम् अक्रीणात् अक्रीणीत, अक्रीणन्। खरीद चुका हो अक्रैषीत् अक्रैष्टां अक्रैषुः । अक्रैषीः आत्मनेपदमें अक्रेष्ट अक्रेषाताम् अक्रेषत । क्रीणीयात क्रीणीत् ।

प्रीणाति तर्पण या कामना करता है। प्रीणीतः प्रीणन्ति प्रसन्न करते हैं । पिप्राय प्रेता प्रसन्न कर्ता तर्पण कर्ता । प्रेष्यति प्रीणातु अप्रीणात् अप्रीणीत् । प्रीणीयात् प्रीणीत अप्रैषीत् तर्पण किया, इच्छा किया । अप्रेष्ट । श्रीणाति शीरा पकाता है । श्रेष्यति श्रीणातु । अश्रैषीत् अश्रेष्ट भूतकालिक पकाना क्रिया।

मी—धातुका हिंसा अर्थ । प्रमीणाति **हिनुमीना**से णत्व । मीनीतः मीनन्ति । परोक्षे लिटिमें (मी अ) दशामें मीनातिमीनोतिदीङांसे एचके विषयमें आत्व णल्परे (मी में ईको ऐं वृद्धि प्राप्त था) एचका विषय है, आत्व होकर द्वित्व (ममा औ) आतो लोप ममौ । अतुस्परे एचका विषय या वृद्धि । गुणकी सम्भावना नहीं, न आत्व । मिमी अतुस् यण् मिम्युः । थल्परे गुण प्राप्त, एचका विषय है आत्व होकर द्वित्व । भारद्वाज मतमे इटि आलोप । **ममिथ**—तुमने हिंसा कब किया । मास्यति हिंसा करेगा । मीनातु हिंसा करें । अमासीत् अमासीः अमासिष्टम् अमासिष्ट । अमासिषं अमासिष्व । अमास्त अमासाताम् अमासत अमास्थाः । षिञ् का बन्धन बांधनेकी क्रिया । सिनाति सिनीतः सिनन्ति । सिनाते सिनते । परोक्षकालमें बाँध चुका हो । सिषाय सिषियतुः सिष्याते सिष्यिरे । भविष्यकालमें बांधना हो, सेता। सेष्यति । सिनातु सिनीतां सिनातां । सेष्यति असैषीत् असैष्टाम् असैषीः । असेष्ट बांध लिया । विपूर्वक सि धातुसे विषय बना है इन्द्रियोंके विषयमें बधनेसे ।

स्कु--धातुका आप्रवण उछलकूद कुशल तैराकी । **स्तन्भु**—आदि धातुओंसे श्नु हो, चसे श्ना भी । स्कुनोति श्कुनुको ति परे गुण । स्कुन्वन्ति। हुश्नुवोः सार्वधातुकेसे यण् । स्कुनुतां । स्कुनाति आत्मनेपदमें इत्व स्कुनीते । परोक्षकालमें उछलकूद या तैरना शान्त हो, चुस्काव । अनिट धातुसे इट नही । स्कोष्यति । स्तन्भु आदि चार धातु सूत्रमें पठित है गणमें नहीं, सभीका अर्थ रोधन अवरोध रुकावट स्तम्भित करना । माधवमते पहला तीसरा ही स्तम्भार्थक है दूसरा खोदने, चौथा धारण

स्याद्धौ परे। स्तभान। युञ् बन्धने। युनाति युनीते योता। क्नूञ् शब्दे। क्नूनाति क्नूनीते क्नविता। द्रूञ् हिंसायाम्। द्रूणाति द्रूणीते। पूञ् पवने। प्वादीनां ह्रस्वः।७।३।८०। शिति परे। पुनाति पुनीते पविता। लूञ् छेदने। लुनाति लुनीते। स्तृञ् आच्छादने। स्तृणाति स्तृणीते। तस्तार तस्तरतुः स्तरिता स्तरीता। स्तृणीयात् स्तृणीत। आशिषि-स्तीर्यात। लिङ्सिचोः इति वेट्। 'न लिङि' स्तरिष्ट। 'उश्च' इति कित्त्वम्। स्तीर्षीष्ट। 'सिचि च

अर्थमें। सभी परस्मैपदी है नलोप है अनिदितां हलउपधायाःसे। यहां स्तन्भेः, अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः स्थादिष्वभ्यासेन प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि सूत्रोंसे क्रमशः षत्व समझें। गोकर्णः सूर्यं व्यष्टभ्नत रोका। जॄ स्तन्भु आदि सूत्रसे च्लिको अङ् पक्षमें सिचि आदि। हलः श्नः=हलसे परे श्नाके स्थानमें शानच आदेश हो, हि परे। स्तम्भु शान हि। अनिदितां हल-से नलोप। अतो हेः हि का लुक्। स्कुभान हलसे परे सिको हि होगा, सर्वत्र श्नाको शानच् पक्षमें हि रहेगा स्कुभ्नुहि।

युञ्--धातुका बाधनके अनुकूल क्रिया अर्थं। युनाति बांधता है जुयेमें जोडता है। युनीतः युनन्ति। आत्मनेपदमें श्ना, ईहल्यघोः मैं ईत्व। युनीते युनाते युनते। युनीषे अनिटका सूचक योष्यति जूआमें नाधेंगा। युनातु बांध दो। अयुनात्। अयौषीत् अयौष्टाम् अयौषुः। अयोषीः आत्मनेपदमें अयोष्ट अयोषाताम् अयोषत। समाप्त बन्धन क्रिया भूतकाल। क्नू ञ्—धातु का शब्द कूं-कूंकी आवाज क्नविष्यति अक्नावीत् अक्नाविष्टां अक्नाविषु चूं,चूं की आवाज समाप्त हो भूतकाल। द्रूणाति हिंसा करता है दरदराता है जीवको फाड़ना-तोड़ना द्रूणीतः द्रूणन्ति। द्रविता हिंसा करेगा। अद्रूणात् अद्रौषीत् अद्रावीत् अद्राविष्टाम् अद्राविषुः। दरदराया भूतकाल।

पूञ्—धातुका पवन पवित्र करनेकी क्रिया। प्वादीनां-पू लू आदि धातुको ह्रस्व हो शिति परे। पुनाति-श्ना का श इत्परे प्वादीनां ह्रस्व हुआ। एककर्तामें वर्तमान पवित्र करनेकी क्रिया। पुनीतः पुनन्ति। पुनासि पुनीथः पुनामि पुनीव। कित् ङित् परे ईत्व होता है। पुपाव पुपुवे परोक्षमे पवित्र किया। पविष्यति शुद्ध करेगा। पुनातु पुनीहि पुनानि। अपुनात् अपुनीत। पुनीयात् पुनीत। अपावीत् अपाविष्टां अपाविषुः।

लुनाति--लवन कटिया करता है, काटना छेदन क्रिया। लुनीतः लुनन्ति लुनीसे लुनाथे लुनिध्वे। लुलाव लुलुवे। लविता लुनातु अलुनात् लविषीष्ट। अलावीत् अलाविष्टां अलाविषुः आत्मनेपदमें अलाविष्ट अलाविषातां अलाविषत। स्तॄ–धातुका आच्छादन आवरण ढांकना, छप्पर छाजन छाना। वर्तमानकालिक छाजन क्रियाके कर्तामें लटि श्ना आदि। स्तृणासि—क्योंकि प्वादिनां ह्रस्वसे श्ना परे ह्रस्व होगा स्तृणीत स्तृणन्ति तस्तरे तस्तराते तस्तरिरे। छाजन क्रिया प्रत्यक्ष न हुई हो तस्तार तस्तरतुः यद्यपि अतुस कित् है गुणनिषेध प्राप्त तथापि ऋच्छति ऋतां से गुण, णलका णित्परे वृद्धि आदि। जहाँ इट होगा वृतो वासे दीर्घ विकल्प होगा।

परस्मैपदेषु' इति न दीर्घः। अस्तारीत् अस्तारिष्टाम्। अस्तरिषुः अस्तरिष्ट अस्तीर्ष्ट। कॄञ् हिंसायाम्। कृणाति कृणीते। चकार चकरे। वॄञ् वरणे। वृणाति वृणीते। ववार ववरे वरिता वरीता। आशिषि 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' वूर्यात्! वरिषीष्ट वूर्षीष्ट। अवारीत् अवारिष्टाम्। अवरिष्ट अवरीष्ट अवूर्ष्ट। धूञ् कम्पने। धुनाति धुनीते दुधविथ-दुधोथ। दुधुविव। धविता धोता। 'स्तुसुधूञ्भ्यः' इतीट्। अधावीत् अधविष्ट-अधोष्ट। ग्रह उपादाने।

स्तरिष्यति विस्तार करेगा स्तृणातु अस्तृणात् ढाकनेकी सम्भावना हो तब यासुट परे ईत्व होगा। आशीर्लिङ् में यास् परे ऋको ऋत् इद्धातोः से रपर सहित इ्। हलिच से दीर्घ। स्तीर्यात् स्तीर्यास्तां स्तीर्यासुः। आवरण आच्छादनके विषयमें शुभकामना लिङर्थ है। आत्मनेपदमें (स्तृ. सी सूत) दशामें लिङ् सिचोरात्मनेपदेषु सूत्रेण वा इट, तस्य वृतो वा दीर्घ विकल्पः प्राप्तः निषेध सूत्र स्मारयति (न लिङि) लिङ परे वृतके इटको दीर्घ नहीं होता जब इट नहीं हुआ। स्तृ षीष्ट गुण क्यो नहीं हुआ, उश्च सूत्रसेके कित्से क्ङिति च ने निषेध किया। तब ऋत् इद्धातोः इत् दीर्घ स्तीर्षीष्ट। लुङ लकारमें इट को दीर्घ प्राप्त, निषेधका स्मरण कराया। सिचि परे परस्मैपदके इट को दीर्घ नहीं होता। अस्तारिषुः अस्तारीः। आत्मनेपदमें इटि सिचि गुण आदि। वृतो वासे इटको वा दीर्घ। अस्तरिष्ट अस्तरिषातां अस्तरिषत जब लिङ्सिचोः सूत्रसे इट नहीं तब ऋतको इत् रपर हलिच दीर्घ अस्तीर्ष्ट। कृणाति हिंसा करता है करिता करीता। चकरे ऋच्छति-ऋतांसे गुण।

वृञ्—धातुका वरण-स्वीकारकी क्रिया। वृणाति वर्तमानकालिक अङ्गीकरण। वृणीतः वृणन्ति वृणासि। वृणीथे वृणाथे वृणीध्वे वृणे। अनदेखा कालमें स्वीकार हो चुका। वृ वृ अ ववार ववरतुः ववरुः ववर्थ। आगामिभविष्यकालमें वरणके लिये स्वीकार। इट गुण दीर्घ। वरीता वरीतारौ वरीतारः। वरिष्यति वरीष्यामि वरिष्यामः। वृणातु वृणीतात् वृणीतां वृणन्तु व्रियात्, आशीर्लिङमें उदोष्ठ्यपूर्वस्यसे ऋको उर हलि च दीर्घ। आत्मनेपदमें इट गुण। वरिषीष्ट वरिषीयास्तां वरिषीरन्। जब लिङ्सिचोरात्मनेपदेषुसे इट नहीं, तब उश्चके कित्से न गुणः। उत् रपर दीर्घ। सिचि परे इटको दीर्घ नहीं होता, सिचि च परस्मैपदेषुके निषेधसे। अवारीः अवारिष्टम् अवारिष्ट। अवारिषम् अवारिष्व। आत्मनेपदमें लिङ्सिचोः से इट होगा। वृतो वा से दीर्घ भी। अवरीष्ट अवरिषाताम् अवरिषत अवरिष्ठाः। पक्षमें दीर्घ। सामान्य भूतकालिक वरणक्रिया। **धुनाति**—धुनता है, कंपाता है। दुधाव थल्परे स्वरतिसूतिधूञ्से वा इटि दुधविथ दुधुविथ दुधुविव। विकल्प इटिका फल धविता धवितारौ धवितारः। धोतासे धोतासाथे धोताध्वे। धुनातु स्तुसुधूञ्भ्यः से नित्य इट। अधावीत् अधाविष्टाम् अधाविषुः। रुई—धुने। कर्पासम् अधविष्ट अधविषाताम् अधविषत। अधोष्ट अधोषाताम् अधोषत।

ग्रह—धातुका उपादान ग्रहणके अनुकूल क्रिया अर्थ स्वरित ईत्से दोनों पद।

स्वरितेत। 'ग्रहिज्या' गृह्णाति गृह्णीते। **ग्रहोऽलिटि दीर्घः।७।२।३७।** एकाच ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घः स्यान्न तु लिटि। ग्रहीता लिटि तु जग्रहिथ। गृह्यात् ग्रहीषीष्ट। 'ह्म्यन्त' इति न वृद्धिः। अग्रहीत्। अग्रहीष्टाम्। अग्रहीष्ट अग्रहीषाताम्। अग्रहीषत। कुष निष्कर्षे। कुष्णाति। कोषिता। **निरः कुषः।७।२।४६।** निरः परात्कुषो वलादेरार्धधातुकस्य इड्वा स्यात्। निष्कोषिता निष्कोष्टा निरकोषीत् निरकुक्षत्। 'शल इगुपधा'दिति क्सः। अश भोजने। अश्नाति

उपधा अ में वर्तमानकाल (ग्रह नाति) सम्प्रसारणका स्मरण ग्रहिज्यावयिव्यधिसे र को ऋ सम्प्रसारण पूर्वरूप। गृह्णाति गृह्णीतः गृह्णन्ति। गृह्णासि गृह्णामि। परोक्ष भूतकालमें ग्रहण हुआ हो, णल (ग्रह अ) द्वित्वादि अग्रह लिटि अभ्यासस्यसे अभ्यासको सम्प्रसारण। गृ ग्रह उरत्से अत्र रपर हलादिशेष कुहोश्चुः अतोपधाया वृद्धि। जग्राह जगृहतु अतुस् आदि परे ग्रहिज्यासे सम्प्रसारण होने पर द्वित्व आदि। जग्रहिथ जगृहथुः जगृह जगृहिव। जगृहे जगृहाते जगृहिरे जगृहिषे जगृहिढ्वे-ध्वे। जगृहिवहे। **ग्रहो**-एक अच रूप ग्रहसे विधान किया गया इटको दीर्घ हो, लिट परे न हो तब। **ग्रह्**-दिग्योग पञ्चमी। आर्धधातुकस्यसे इटि एकाच (उपदेशे अनुदात्तात्) की अनुवृत्ति। एकाच क्यों कहा? अनेकाच यङ्लुकि जाग्रहितामें इटको दीर्घ न हो। विहितस्य कि ग्राहितम्। अलिटि क्यों? जग्रहिथमें दीर्घ न हो। उपादानार्थक ग्रह-धातोः अनद्यतन भविष्यकालिक ग्रहण कर्ता अर्थ लुटि तास आदि। इटि ग्रहोऽलिटि दीर्घः। ग्रहीता ग्रहीतारौ ग्रहीतारः। ग्रहीताहे ग्रहीतास्वहे। गृह्णातु गृह्णीतां गृह्णन्तु। गृहाण गृह्णीतं। गृह्णानि गृह्णीव। अगृह्णात् आशीर्लिङि यासुट् कित है सम्प्रसारण करके गृह्यात् गृह्यासुः। आत्मनेपदमें इटि दीर्घ भी है अग्रहीष्टां ग्रहो अलिटि दीर्घः। लुङ लकारमें (अग्रह इ स ईत् ह्म्यन्तक्षण-से हलन्तलक्षणा वृद्धिका निषेध। अग्रहीषुः अग्रहीः अग्रहिष्टम् अग्रहिष्ट। अग्रहिषं अग्रहिष्व। आत्मनेपद त षत्व ष्टुत्व। अग्रहीष्ठाः अग्रहीषाथां अग्रहीढ्वं अग्रहीषि अग्रहीष्वहि।

कुष—का निष्कर्ष निकालना निचोड़ना कुष्णीतः कुष्णन्ति अर्थका रहस्य खोलता है। **निरः कुषः**-निरसे परे कुष वलादि आर्धधातुकको इट विकल्पसे हो। निष्कोषिता इट् अभावमें निष्कोष्टा। निर् न पढ़ते कोषिता कोषितुं यहां भी इट विकल्प होता है। निर उपसर्ग रहते इट पक्षमें लुङमें (इट इटि) से सलोप। जब न इटि शलइगुपधादनिट्से क्स। षढ़ोकः ष क्षः।

क्लिश्नाति—विशेष बाधित है। कष्ट देना सहना चिक्लेष। क्लेशिष्यति कष्ट देगा। ऊदित्से वा इटि। विशेष बाधन क्रिया समाप्त हो लुङि अक्लेशीत्। यदा न इटि तदा क्स अक्लिक्षत्। **अश**-धातुका भोजन क्रिया अर्थ। **अश्नाति** खाता है अश्नीतः अश्नन्ति अश्नासि अश्नामि अश्नीवः। परोक्षकाले भोजन हो चुका हो अश अश आश आशतुः आशुः करा भोजन चक्रुः दो हल नहीं न नुट। अशिता अशिष्यति खायेगा। अश्नातु आश्नात् आश्नीताम्। आश्नन्। आशीत् आशिष्टां

आश । अशिता । अशिष्यति । अश्नातु । अशान । ज्ञा अवबोधने । 'ज्ञाजनोर्जा' जानाति । 'दीर्घनिर्देशसामर्थ्यान्न ह्रस्वः । जज्ञौ । 'वाऽन्यस्य'त्येत्वम् । ज्ञेयात् । ज्ञायात् । पॄ पालनपूरणयोः । पप्रतुः पपरतुः । आशिषि पूर्यात् । शॄ हिंसायाम् । 'शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा' इति ह्रस्वपक्षे । शश्रतुः शशरतुः । दॄ विदारणे । ददरतुः दद्रतुः । दद्रुः । जॄ वयोहानौ । मुष स्तेये । पुष पुष्टौ बन्ध बन्धने । बध्नाति । बबन्धिथ बबन्द्ध । बन्द्धा बन्द्धारौ भन्त्स्यति बधान ।

आशिषुः । आशीः आशिष्टम् । ज्ञा-अवबोधने ज्ञान होनेकी क्रिया वर्तमानमें हो कर्तामें लटि श्ना ज्ञा स्थाने ज्ञाजनोर्जा जा आदेशका स्मरण ज्ञा-और जन धातुके स्थानमें जा आदेश । जानाति-आकार उच्चारणके सामर्थ्यसे ह्रस्व नहीं हुआ । जानीतः जानन्ति । जानासि जानीथः जानीथ । जानामि जानीव जानीम । जज्ञौ जज्ञतुः जज्ञुः । परोक्षमें ज्ञान हुआ ज्ञाता ज्ञातारौ ज्ञातासि । ज्ञास्यामि ज्ञास्यावः ज्ञास्यामः । जानातु जानीतात् जानीतां जानन्तु । जानीहि जानीतं जानीत । जानानि जानाव जानाम । अजानात् अजानीतां अजानत । जानीयात ज्ञायात ज्ञेयात । वाऽन्यस्य संयोगादेः एत्व । अज्ञासीत् । अज्ञासिष्टाम् ।

इसके बाद बध्नाति धातु तक परस्मैपदकी साधनिका । शॄ—धातुका हिंसा असह्य कष्ट देनेकी क्रिया, सेट् । शृणाति-इति शर्मा पाप हिंसकः । परोक्षमें हिंसा हुई हो शशार शशरतुः (शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा) से ह्रस्व । पक्षमें गुणको बांधकर ह्रस्व होने पर ऋको यण् । जब न ह्रस्व तब गुण ऋच्छति ऋतां से शशरिथ । वस् मस् परे निषेध प्राप्त था उसका बाध क्रादिनियमसे इट हुआ । शशरिव । भविष्यकाल में शरिष्यति । शृणातु शृणन्तु । शृणीहि शृणानि अशारीत् हिंसा किया ।

पॄ--पालन पोषण पूरण पूर्ति करना भरना । पृणाति पृणीतः पृणन्ति । पालन पोषण करते हैं । पपार पपरतुः पपरुः । परिता परीष्यति । पृणातु अपृणात् अपारीत् अपारिष्टाम् अपारिषुः । दॄ दृणाति विदारयति फाड़ता, दरदराता । दृणीतः दृणन्ति । ददार ददरतुः शॄदॄप्रां से ह्रस्व पक्षमें यण् । दद्रतुः दरीष्यति । दृणातु अदृणात् । दीर्यात् ऋत इत रपर दीर्घ । दीर्यास्तां दीर्यासुः । अदारीत् ।

जॄ--का अवस्था ढलना, आयु क्षीण होना, वृद्धावस्थाकी क्रिया । जृणाति-श्ना परे प्वादीनां ह्रस्वः । जृणीतः जृणन्ति । बुड्ढे हो रहे हैं । जजार जजरतुः । अजारीत् अवस्था ढल गयी । जीर्यात् । नॄणाति-नीति बरतता है नृणीतः नृणन्ति ।

पुष—धातुका पुष्टि पोषण स्वास्थ्यके अनुकूल क्रिया । पुष्णाति-श्ना कित् है गुण निषेध । एककर्तृक वर्तमानकालिक पोषण क्रिया । पुष्णीतः पुष्णन्ति । पुष्णासि पुष्णीथः पुष्णामि । पुपोष । पोषिष्यति पुष्णातु अपुष्णात् । अनिट कारिकामें दिवादिका पुष है । पुषादिद्युतादिगणमें श्यन् त्रिकरण पुष धातु प्रसिद्ध है । अपोषीत् अपोषिष्टां अपोषिषुः, मुष्णाति चुराता है स्तेय कर्म, मुमोष मोषिष्यति चुरायेगा । मुष्णातु मुष्णीत् मुष्यात् । अमोषीत् अमोषिष्टाम् अमोषिषु चोरी क्रिया ।

अभान्त्सीत् । वृङ् सम्भक्तौ वृणाते वव्रे । ववृढ्वे वरिता वरीता । अवरिष्ट अवरीष्ट अवृत । क्लिशू विबाधने । 'शात्' इति श्चुत्वनिषेधः क्लिश्नाति । क्लेशिता-क्लेष्टा । अक्लेशीत् अक्लिक्षत् । इति तिङन्ते क्र्यादिप्रकरणम् ।

अथ तिङन्ते चुरादिप्रकरणम्

चुर स्तेये । सत्याप-पाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्ण-

---

बन्ध--धातुका बांधनेके अनुकूल क्रिया । अनिट । वर्तमान कालमें बांधता है। बध्नीत बध्नन्ति । बध्नासि बध्नीथः बध्नामि बध्नीव । अनिदितां हलसे नलोप । बबन्ध अनदेखा कालमें बांधा । थल्परे भारद्वाज नियमसे वा इट बबन्धिथ । कित नहीं, नलोप भी नहीं अनद्यतन भविष्यमें बांधना हो। झषस्तथोः से थ का ध तास् परे त को ध । झरोझरि सवर्णे धलोप । **बन्धा** बन्धारो बांधने वाला है । स्य परे एकाचो बशो भष-से ब को भ, ध को चर्त भन्त्स्यति बध्नातु बध्नीतात् बध्नीतां बध्नन्तु । बधान हलः श्नः शानच् हि परे । अनिदितांसे नलोप । अतो हेः से हि लुक् । लुङिमें (अबन्ध स इ त्) व ब्रजहलन्तस्याचः वृद्धि ब भष भ, ध चर्त अभान्त्सीत् **अबान्धां**–अबन्धतां दशामें सिच् परे भषभाव क्यों नहीं ? उत्तर-पूर्वत्रा सिद्ध सूत्रसे भषभावके पहले झलोझलिसे सिच्लोप होगा, तब एकाचोबशो भष नहीं लगेगा । यदि कहिये **प्रत्ययलोपे** प्रत्ययलक्षणसे सादि प्रत्यय समझकर भषभाव हो तन्न, प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणं लगने चलेगा तब सिच्लोप असिद्ध होगा प्रत्ययलक्षण नहीं लगेगा । अभान्त्सीः तुमने बांध दिया ।

वृङ्--धातुका संभक्ति विशेष प्रेम, सेवा, स्वीकारकी क्रिया **वृणीते**–वर्तमान-कालिक विशेष सेवा । वृणते वृणे वृणीवहे । ववृऐ उरत् हलादिशेष यण् । परोक्ष-कालिक विशेष सेवा स्वीकार, वव्रे वव्राते वव्रिरे । थासः से वव्रिषे वव्राथे ववृढ्वे । विशेषसभक्ति आगामी भविष्यकालकी हो वरिता । वृतो वा से दीर्घ वरिष्यति सेवा या स्वीकार करेगा । वृणीताम् अवृणीत । अवृणाताम् अवृणत । लुङिमें लिङ् सिचोरात्मनेपदेषु वा इटि (अ वृ इ ष त) गुण इटको दीर्घ, जब न इटि ह्रस्वादङ्गात् से सिच्लोप अवृत अवृषातां अवृषत (अवृथाः भूतकालमें विशेष सेवा स्वीकारकी समाप्त क्रिया द्विबद्धन्याय से ।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकर्यां क्र्यादयः ।

तिङन्ते चुरादय—स्वार्थ-चुरादि धातुके अर्थमें णिचि अन्त तिङन्त पदकी साधनिका प्रारम्भ । **चुर**--स्तेये धातु गोपनीय ढंग, चुपकेसे ग्रहणके अनुकूल चोरी करना क्रिया अर्थ । र-अ उच्चारणार्थ है इत्संज्ञक नहीं, प्रयोजन न होनेसे । पद व्यवस्थाके लिये णिचश्च कहेंगे । परस्मैपद आत्मनेपद । **सत्याप**–पाश रूप वीणा तूल श्लोक सेना लोमन त्वच् वर्मन् वर्ण चूर्ण, चुरादि गणमें पढ़े धातु (इनके बीच द्वन्द्व करके पञ्चमी)से णिच् हो, किस अर्थमें चूर्णान्तेभ्यः–सत्यापसे लेकर चूर्ण शब्द तक, (शब्दसे करोति आचष्टे अर्थमें णिच् हो परन्तु (प्रातिपदिकात्धात्वर्थ ध

चुरादिभ्यो णिच् ।३।१।२५। एभ्यो णिच् स्यात्। चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे। 'पुगन्त' इति गुणः। सनाद्यन्ताः इति धातुत्वम्। तिप्शबादिः गुणायादेशौ। चोरयति। **णिचश्च** ।१।३।७४। णिजन्तादात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले। चोरयति चोरयते। चोरयामास। चोरयिता। चोर्यात्। चोरयिषीष्ट। 'णिश्रि–' इति चङ्। 'णौ चङि' इति ह्रस्वः द्वित्वम्। 'हलादिः शेषः' 'दीर्घो लघोः' इत्यभ्यासदीर्घः। अचूचुरत् अचूचुरत। चिति स्मृत्याम्। चिन्तयति।

बहुलं) सूत्रसे करोति आचष्टे अर्थमें णिच सिद्ध है प्रसङ्गमें सत्यापशे चूर्णान्त तक शब्द व्यर्थ है, सार्थकता बोले कि **तेषामिह**–उनका यहाँ स्वीकार करना प्रपञ्चार्थं पचि विस्तारे विशेष विस्तारके लिये। न कहिये कि उनसे भी स्वार्थमें णिच् माना जाय तन्न, सत्यशब्दसे कृञ परे आपुक्का निपातन है जैसे सत्यं करोति सत्यतां प्रमाणयति इदं वस्तु आवेदनपत्रं वा सत्यमस्ति अर्थे णिचि (आपुक्च) करोति इस भाष्यसे विरोध न हो, अतः स्वार्थे णिच न कहें। नाम धातु प्रकरणमें सबके उदाहरण मूलमें ही स्पष्ट होंगे। **चुरादिभ्यस्तु**—चुरादिका अर्थ निर्देश न होनेसे स्वार्थे णिच मान्य। धातोरेकाचः से धातोः आदि आये। चुरादि धातुभ्यो णिचि धातुसे विहित णिचको आर्धधातुकसंज्ञा। यदि धातु विधान न होता, आर्धधातुकसंज्ञा भी न होती। (चुर इ) दशायां पुगन्तलघूपधस्य च गुणे (चोरि) गोपनीय रूपेण ग्रहणानुकूला क्रिया (चोरि इत्यस्य सनाद्यन्ताः धातवः इति धातुसंज्ञा, तस्य फलं तिप शप् भवनं ततः गुणे, अयं चोरयति चोरयतः चोरयन्ति। चोरयसि चोरयामि चोरयामः। **णिचश्च**। अनुदात्तङितः से आत्मनेपद, स्वरित ञितः से कर्त्रभिप्राये क्रियाफलेकी अनुवृत्ति। तदन्त, वृद्धि (णिजन्त धातुसे आत्मनेपद हो) धातुका अर्थ, क्रियाफल, कर्तामें एक आधार हो तब आत्मनेपद त एत्व, **चोरयते**–अपने लिये चुराता है चोरयसे। चोरये चोरयावहे। चोरी करते न देखा गया हो चोरयामास चोरयिष्यति ते। चोरयतु चोरयन्तु चोरय चोरयतं चोरयत चोरयामि। चोरयन्तां चोरयस्व चोरयै चोरयावहै। अनद्यतन भूतकालमें चुराया हो, अचोरयत् अचोरयतां अचोरयत अचोरयेतां अचोरयन्त। अचोरयथाः, विधिलिङि चोरीकी सम्भावना अर्थमें चोरयेत् चोरयेतां चोरयेयुः। चोरयेरन् चोरयेथाः चोरयेथां चोरयध्वं आशीर्लिङिके परस्मैपदमें चोर्यात्। णेरनिटिसे णिलोप। आत्मनेपदमें चोरयिषीयास्तां चोरयिषीरन् चोरयिषीष्ठाः।

लुङि **अचूचुरत्** स्तेयार्थक चुर धातोः णिचि गुणे **चोरि** इत्यस्य सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञा अट अचोरिर च्लि स्थाने णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङि कर्ता अर्थे। (अचोरि त) चङि उपधायाः ह्रस्वे णिलोपे। अचुर अत) चङि द्वित्वं हलादिशेषे (अ चुचुर अत) सन्वल्लघुनिसे सन्वद्भावका विषय समझकर दीर्घो लघोः सूत्रेण अभ्यासस्य दीर्घे। अचूचरताम् अचूचुरन् अचूचुरम् अचूचुराव।

चिति—धातुका संज्ञाने स्मरण अधीत ज्ञानकी याद करनेके अनुकूल क्रिया।

अचिचिन्तत्। चिन्त इति पठितव्ये इदित्करणं णिचः पक्षिकत्वे लिङ्गम्। तेन चिन्त्यात्, चिन्त्यत इत्यादौ नलोपो न। चिन्तति चिन्तेत्। यत्रि सकोचे। यन्त्रयति अययन्त्रत्। यन्त्र इति पठितुं शक्यम्। यत्त् इदित्करणाद्यन्त्रतीति माधवेनोक्तं तच्चिन्त्यम्। कुद्रि अनृतभाषणे। कुन्द्रयति। तत्रि कुटुम्बधारणे। मत्रि गुप्तपरिभाषणे। तन्त्रयते मन्त्रयते। स्फुडि परिहासे स्फुण्डयति। पीड अवगाहने। पीडयति। **भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम्** ।७।४।३। एषामुपधाया ह्रस्वो वा स्याच्चङ्परे णौ। अपीपिडत्-अपिपीडत्।

इदितोनुम् (धातोः) स्वार्थे णिचि चिन्ति इत्यस्य सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञा ल-ति शप् अ। गुण अय्। चिन्तयति चिन्तयतः चिन्तयन्ति चिन्तयामि चिन्तयामः। चिन्तयामास। चिन्तयिता चिन्तयिष्यति चिन्तयतु अचिन्तयत् चिन्तयेत्। अचिचिन्तत् अचिचिन्तताम् कर्ता अर्थे लुङि तङ्। स्मृत्यर्थक सनाद्यन्तधातुसंज्ञक, चिन्तिधातोः चिन्तन समाप्त। ति अटि चङि णिलोप द्वित्व आदि। प्रक्रियालाघवदर्शनेन स्मृत्यामिति पठनमुचितम्। इदित्वकरणं व्यर्थं, नलोपनिवृत्तिः फलं वक्तुं न शक्यते। चिन्तयति इत्यादौ णिच् कित् नास्ति नकारलोपस्य सम्भावनापि नास्ति। अत उक्तं मूले। **चिन्तेति** पठितव्ये इदित्पठनं प्रमाणयति यत् णिच्-पक्षे भवति, पक्षे न भवति। णिचं बिना चिन्त्यते आदिरूपं न सिद्धयति। तेन पाक्षिकभवनेन चिन्त्यात् इत्यादौ नकारलोपस्य प्राप्तिरेव नास्ति। चिन्तति चिन्ततः चिन्तन्ति स्मरण करते हैं। किसी वृद्ध अनुभवीका सम्मत वचन है कि यह ज्ञापन सामान्यापेक्ष है। सर्वेऽपि चुरादयः धातवः विकल्पेन णिचं लभन्ते।

यत्रि--संकोचे संकुचित करनेके अनुकूल क्रिया। इदितो नुम् यन्त्रयति वर्तमान कालिक संयमन क्रिया। वस्तुतः यन्त्र धातु पढ़ना उचित। नुमके लिये इदित् पाठ माधवमतमें चिन्त्य है। यन्त्रयामासे जकड़ा। यन्त्रयिष्यति संकुचित करेगा। अयन्त्रयत् अययन्त्रत् अययन्त्रताम्। संयोगान्त धातु गुरु है लघुपरक नहीं, सन्वद्भाव नहीं, दीर्घ भी नहीं। नलोपका अभाव फल नहीं कह सकते, उपधामें न होनेसे नलोप नहीं होगा। एवं कुडि अनृतभाषणे कुण्डयति झूठ बोलता है। तन्त्रयति कुटुम्बंधारयति। मन्त्रयति गुप्तं भाषते। चुरादिमें पढ़े हैं तथापि इदित् न भी करें। स्फुण्डयति परिहास मनोरञ्जन करना। इदित् पढ़ना णिचिका पक्षिक होना सिद्ध। कहीं स्फुण्टति स्फुण्टयति।

पीडयति **घोरकष्ट** देनेकी क्रिया। एककर्तामें वर्तमान पीडा क्रिया। णिच् गुण अय पीडयामास पीडयिता पीडयतु। अपीडयत् अपीपिडत् **भ्राज**—भाष. दीप जीव मील पीडा धातुओंकी उपधाको ह्रस्व हो विकल्पसे, चङ् परक णिपरे। णौ चङि उपधायाः से ह्रस्वकी अनुवृत्ति उसके नित्य ह्रस्व प्राप्तिको बाधकर अवगाहनार्थक पीडधातोः स्वार्थे णिचि। **पीड इ** दशायां सनाद्यन्ताः धातवः इति धातुसंज्ञायां धातुत्वात् अवगाहन समाप्त क्रियाया कर्ता अर्थे लुङि ति। इतश्च इलोप च्लि (पीडइ

प्रथ प्रख्याने प्राथयति। 'नान्ये मितोऽहेतौ' इति वक्ष्यमाणत्वान्नास्य मित्त्वम्। अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशाम् ।७।४।९५। एषामभ्यासस्याकारोऽन्तादेशः स्याच्चङ्परे णौ। इत्वापवादः अपप्रथत्। पृथ प्रक्षेपे। पर्थयति। उर्ऋत् ।७।४।७। उपधाया ऋवर्णस्य स्थाने ऋत्स्याद्वा चङ्परे णौ। इररारामपवादः। अपीपृथत् अपपर्थत्। लुण्ठ स्तेये। लुण्ठयति अलुलुण्ठत्। तड आघाते।

अत) चङ् परक णिपरे अस्ति, भ्राजभास-आदि सूत्रेण उपधायाः ह्रस्वे चङि इति द्वित्वे। सन्वद्भावे दीर्घो लघो। अभ्यासस्य दीर्घे। अपीपिडत्--यदा न ह्रस्वः तदा द्वित्वादिः अभ्यासह्रस्वे। भ्राजभास सूत्रेण यदा न ह्रस्वः तदा लघु परे नास्ति न सन्वद्भावः न अभ्यासदीर्घः। अपिपीडत् अभ्यास ह्रस्वः उत्तरखण्ड दीर्घ है अपिपीडः अपिपीडाव अपिपीडाम।

प्रथ—धातुका प्रख्यान प्रसिद्धि क्रिया, उसका वर्तमानकाल हो कर्तामें लट् (प्रथ इति) उपधा दीर्घ, गुण अय आदि **प्राथयति** (नामी भवति) प्राथयतः प्राथयन्ति। यद्यपि प्रथको घटादिगणमें मानकर मित्, मितां ह्रस्वः क्यों नहीं? तब कहा **नान्ये अहेतौ**=स्वार्थमें णिच् (चुरादि) हुआ हो तब मितो न। न मितां ह्रस्वा अपादिपञ्चं परित्यज्य यत्र हेतुमण्णिचि **प्रथयति** तत्र ह्रस्वः। चुरादौ मितः निषेध।

अत्स्मृ--दृत्वर प्रथ म्रद स्तृ स्पश इन धातुओंके अभ्यासके अन्तमें अत् हो। चङ् परक णिपरे। अत्र लोपोऽभ्यासस्यसे अभ्यास, सन्वल्लघुनिसे चङ्की अनुवृत्ति। चङ परो यस्मात् अन्यपदार्थ णि है। सन्यतः के इत्वको बांधकर अपप्रथत् ख्याति प्राप्ति क्रिया समाप्त हो कर्तरि लुङि इत्यादि (अप्रथ इ अ त) चङि सूत्रेण द्वित्वे। अत्स्मृदृत्वरआदि सूत्रेण अभ्यासस्य अकारे प्र (स्थाने) प इति अकारान्त विधानेन सन्यतः इत्वं न भवति। अकार विधानकी शक्तिसे, अनेक हल् रहने पर भी लघुपरक मान्य। अपप्रथताम् अपप्रथन्।

पृथ--धातुका प्रक्षेप पाथकर धरना रखना, प्रक्षेप है। गोपुरीषं **पर्थयति** सा, गोबर पाथती है। पर्थयिष्यति पाथकर मोटा भद्दा बनाकर रख देगी। पर्थयतु कण्डिका उपरी पाथो। यथा सा अपर्थयत् इष्टिकाम्। **ऋत**-ऋ के षष्ठीका रूप उः। उपधामें ऋके स्थानमें ऋत् हो। ऋको ऋ विधानका फल इर्को बाधना। यथा अचीकृतत्में उपधायाश्चसे इत्व प्राप्त, उसे बांधनेके लिए ऋ विधान। अमीमृजत में आर्वृद्धि का बाधक। अपीपृथत्में लघूपधसे गुण प्राप्तिका बाधक। प्रक्षेपणार्थक पृथधातोः **णिच् सनाद्यन्ताः** धातुसंज्ञा समाप्तपर्थन क्रियाया। कर्तरि लुङि त। च्लि चङि द्वित्व णिच्परे गुणः प्राप्तः तं बाधित्वा उर्ऋत इति ऋकारविधानं ततः द्वित्वे उरत् सूत्रेण अभ्यासस्य (अ) अर हलादिशेष अपपृत् सन्वद्भाव, सन्यतः से इत्व, दीर्घो लघोः से दीर्घ, जिघ्रतेर्वासे वा आया, विकल्प पक्षमें। द्विर्वचनेऽचि की कृपासे गुण से पहले द्वित्व अत्व शेष ततः गुण। लघुपरे नास्ति इत्वदीर्घौ न भवतः। अपपर्थत् अपपर्थताम् अपपर्थन्। एकके मतमें पथ है। पाथयति पाथयतः पाथयन्ति। गोबर पाथना, भद्दी रोटी बनना क्रिया। अपीपथत्।

ताडयति। मडि भूषायां हर्षे च। भडि कल्याणे। छर्द वमने। चुद सचोंदने। पाल रक्षणे। पालयति अपीपलत्। पूज पूजायाम् पूजयति अपूपुजत। कृत संशब्दने। उपधायाश्च।७।१।१०१। धातोरुपधाभूतस्य ऋत इत्स्यात्। रपरत्वम्। 'उपधायां च' इति दीर्घः। कीर्तयति। 'उर्ऋत्' अचीकृतत् अचिकीर्त।

लुण्ठयति चोरी लटनेकी क्रिया इसका लुण्ठसि रूप भ्वादिगणमें स्तेयार्थक कहा गया। अलुलुण्ठत् लुण्ठयतु। शाठयति असंस्कृतो भवति गच्छति संस्कारहीन।

ताडयति–आघात चोट मारकी वर्तमान क्रिया कर्तामें ताडयामास ताडयिष्यति ताडयतु दुष्टं, यथा अङ्गदः नरान्तकम् अताडयत्। हनूमान देवान्तकम् अतीतडत्।

मण्डयति शृङ्गार सजावट आभूषण धारण और प्रसन्नताकी वर्तमान क्रिया। **मण्डयामास** मण्डयिष्यति स मन्दिरं मण्डयतु, अनिलः अमण्डयत्। लुङिमें चिन चङ् अममण्डत् अममण्डतां अममण्डन्। भण्डयति कल्याण सुख होता है। छर्दयति वमन छरछराकर उल्टी करना। अचच्छर्दत्।

तुल––का उन्मान ऊपर उठाकर तालना अर्थमें णिच (तुलइ) तोलि सनाद्यन्ताः धातव संज्ञा ल ति शप गुण। तोलयति तोलयतः तोलयन्ति अलाबुं तोलयामि तोलयाम्बभूव। तोलयिता तोलयिष्यति तोलयतु तोलयेत् तुल्यात् अतूतुलत् अतूतुलतां अतूतुलन् तोल दिया। पुगन्तलघूपधस्य च के गुणका प्रसङ्ग है कथं तुलयति तुलना। ण्यासश्रन्थो युच्=यु-अन टाप् गुण क्यों नहीं, उत्तर-अतुलोपमाभ्यां सूत्रमें अतुल पढा है अतोल नहीं, इस निपातन सूत्रमें गुण अस्वीकार प्रमाणसे ही तुल धातुसे अङ् प्रत्यय अन्तमें हुआ। ङित्से गुण निषेध टाप्। आदन्त तुला शब्द, तुलां करोति या तुलामाचष्टे विग्रहमें तत्करोति तदाचष्टसे णिच। इष्ठवद्भावसे टिलोप (तुल इ) तुलयति। जब युच-अन तब तुलना। अकारलोपका अचः परस्मिन्सूत्रके स्थानिवद्भावसे गुण नहीं। दोलयति नीचे उपर हिलता है दोलयिता दोलयतु अदोलयत् अदूदुलत्। अदूदुलन्।

पूजयति—पूजा स्वागत सत्कार करना। पूजयतः पूजयन्ति पूजयिष्यति। पूजयतु पूजयानि। अपुपूजत् अपुपूजतां अपुपूजन्। अपुपूजः अपुपूजतं अपुपूजत। अपुपूजम् अपुपूजाव अपुपूजाम। **कृत्** संशब्दन बढ़ा चढ़ाकर प्रशंसा। णिचि कृते सति **उपधायश्च**—धातुके उपधा (अन्त्य अलका पूर्ववर्ण) ऋको इ हो। इति केचित्। जंसयति-जंसति। ईड स्तुतौ। जसु हिंसायाम्। पिडि सङ्घाते। रुष रपर, फिर् उपधायाश्च से दीर्घ **कीर्तयति** कीर्तयतः कीर्तयन्ति। ऋत इद्धातोः की अनुवृत्ति। एककर्तामें वर्तमान प्रशंशा क्रिया कीर्तयामास। कीर्तयिता अकीर्तयत् लुङिमें **अचीकृतत्**। संशब्दनार्थक कृतधातोः णिचि उर्ऋत् विकल्पसे ऋ को ऋ विधान किया। तब द्वित्व उरत्से अत्व कृत् कृत् ककृत चकृत इ। सनाद्यन्तधातु संज्ञा लुङि ति इतश्च। अट् अङ् पूर्व भविष्यतः लघु परः अस्ति सन्वद्, सन्यतः इत्वं, दीर्घो लघोः दीर्घे। यदा न ऋत् तदा अचिकीर्तत। ऋत इद्धातोः इत्वे रपरे

म्लेच्छ अव्यक्तायां वाचि । म्लेच्यति । अमिम्लेच्छत । ईड स्तुतौ । ईडयति । ऐडिडत् । पिडि सङ्घाते । पिण्डयति । रुष रोषे । रोषयति । अरुरुषत् । तुल उन्माने । तोलयति । अतूतुलत् । शुल्व माने । शुल्वयति । अशुशुल्वत् । घुषिर् विशब्दने । घोषयति ।घोषति । इरित्वादङ् वा । अघुषत्-अघोषीत । पट पुट लुट तुजि मिजि पिजि लुजि भजि लघि त्रसि पिसी कुसि दशि कुशि घट घिटि वृहि वर्ह बल्ह गुप धूप विच्छ चीव पुथ लोकृ लोचृ णद कुप तर्क वृतु वृधु भाषार्थाः । पाटयति । पोटयति । लोटयति । तुञ्जयति । तुञ्जति । एवं परेषाम् । घाटयति घण्टयति । नाग्लोपिशास्वृदिताम् ।७।४।२। णिच्यग्लोपिनः शास्तेः ऋदितां चोपधायाः ह्रस्वो न स्याच्चङ्परे णौ । अलुलोकत् । अलुलोचत् । वर्तयति वर्धयति । उदित्त्वात् वर्तति।

घोषयति-का विशब्दन शब्दसे भाव खोलना स्वाभिप्रायाविष्करण प्रतिज्ञानं घोषणा संकल्पकी क्रिया, घुषिर् अविशब्दने सूत्रमें घोषणा बार-बार रहना बोलना। अवि पढ़ा गया । अविशब्दनार्थक घुष धातुसे निष्ठामें इट नहीं होता । यथा घुष्टा रज्जुः प्रसारिता फैलाई गयी । अविशब्दन क्यों पढा, अघुषितं वाक्यं प्रतिज्ञातं कहने के लिये निश्चय विशब्दनार्थ है । इट निषेध नहीं । घोषिता यह णिचकी अनित्यता से घोषति घोषणा (शब्दसे विचार व्यक्त) करता है घोषयिष्यति । इरितो वा से च्लिको अङ अघुषत् अघुषतांम् अघुषन् जष न अङ् । अघोषीत् अघोषिष्टां अघोषिषुः । णिचपक्षमें चङि द्वित्व आदि ।

एक त्रिंशत्—३१ धातु पट् पुट् आदि भाषाशब्द=किसी प्रकारकी ध्वनि अर्थमें हैं । णिच् उपधावृद्धि या गण आदिसे पाटयति—पट-पटकी ध्वनि, पोटयति पुट-पुटकी आवाज । लोटयति लोटना बच्चे लेटकर भाव व्यक्त करते हैं । पिञ्जयति पिछड़ेकी भाषा, लुञ्जयति लुञ्ज पुञ्जकी भाषा, भञ्जयति तोड़नेकी भाषा, लङ्घयति लाघना पीसना कोसना डसनेकी भाषा । घट–धातु चेष्टा सङ्घात आदि अर्थमे पढ़ा गया यहां भाषा अर्थमें पढ़ा है । विलक्षण भावकी भाषा सूचनाके अनुकूल सभी धातुका अर्थ ।

नाग्लोपि--णिचि परे अक्=अ इ उ ऋलृका लोप हुआ हो, ऐसे शास धातु ऋदित धातुके उपधाको ह्रस्व न हो चङ् परक णि परे । लोकृमें ऋ इत्से अग्लोपि हुआ । (आलोक इ अत) दशामें णौचङि् उपधायाः को ह्रस्व प्राप्त उसका निषेध सूत्र नाग्लोपि से हुआ । इसी प्रकार अलुलोचत में भी ह्रस्वका निषेध । नादयति कोपयति तर्कयति वर्तयति वर्ताव करना, तर्ककी भाषा, क्षोप नाद ध्वनि वर्धयति बढ़ानेकी भाषा, अववर्धत । उदित से णिच् विकल्प ।

आधृषाद्वा धृष धातु तक यहाँसे लेकर विकल्प णिच् चलेगा । गणसूत्र आङ्का

'आ घृषाद्वा' इत ऊर्ध्वं विभाषितणिचो धृषधातुमभिव्याप्यः। युज पृच संयमने। योजयति योजति। अयौक्षीत्। पर्चयति पर्चति पर्चिता। अपर्चीत्। अर्च पूजायाम्। षह मर्षणे साहयति। 'स एवायं नागः सहति कलभेभ्यः परिभवम्'। वृञ् आवरणे। वारयति वरति वरते। वरिता वरीता। जॄ वयोहानौ। जारयति जरति। जरिता जरीता। शिष असर्वोपयोगे। शेषयति-शेषति। शेष्टा अशिक्षत् अयं विपूर्वोऽतिशये। तप दाहे। तापयति तपति तप्ता। तृप तृप्तौ। तर्पयति। तर्पति तर्पिता हिसि हिंसायाम्। हिंसयति-हिंसति। हिनस्ति इति श्नमि गतम्। अर्हं पूजायाम्। छद अपवारणे। छदति

अभिविधि अर्थं ससीम है। धृष धातु तक युज बन्धने योजयति, जब णिच नहीं योजति। अयूयुजत् जब न णिच् अयौक्षीत् अनिट है। अयौष्टां अयौक्षुः संयमन नियन्त्रण जोड़ना बाधना। पृच धातुसे भी संयमन अर्थमें णिच् पर्चिष्यति। पर्चयिति अपर्चयत् परच गया, सम्बन्ध जुड़ा अपपर्चीत णिच अभावमें अपर्चीत्। अर्चयति पूजा करना, अचर्यामास अर्चयिता अर्चयतु आर्चयत्। अर्चयेत् पूजाकी सम्भावनामें लिङि। आर्चिचत्। साहयति मर्षण क्षमा सहन करना। **स एवायं** यह वही नाग केशरी है जो कलभो=हाथीके बच्चोंसे पराजय सहा। साहयिष्यति साहयतु असीसहत् सहन क्रिया, भूतकालिक सहनानुकूलव्यापार। वृ धातुका आवरण पर्दा डालना अर्थ। वारयतु वरतु निवारण करे रोक दे। ञ इत्से आत्मनेपद भी **वरते** वृतो वासे इटको वा दीर्घ। व्रीयात् वृषीष्ट लिङ्सिचोसे वा इट्। जब न उश्चसे कित् गुण नहीं, न लिङिसे इट्को दीर्घ निषेध **अवीवरत्**। तृ धातोः णिच, गुण सनाद्यन्तधातुसंज्ञा लुङ ति च्लि अङ् द्वित्व ह्रस्व दीर्घ। आत्मनेपदमें अवृत ह्रस्वादङ्गात् सिच्लोप। जारयति अवस्थाकी हानि होना, कालः वृद्धत्वं प्रापयति इट पक्षमे वृतो वासे वा दीर्घ। **अजीजरत्** क्रोधित होना जलना अवस्थाक्षीण हो गया। जरयतिका भी अवस्था क्षीण अर्थ। **शिष्—** धातुका शेष रहना, बाकी बचना अर्थ। असर्वोपयोगे-जो सबके उपयोगमें न आवे वही शेष। अनिट णिच् होने पर। शेषति-बाकी बचता है। इट अभावका सूचक शेष्टा शेक्ष्यति शेष बचेगा। भविष्यकालिक असर्वोपयोगकी क्रिया, अशीशिषत् अशीशिषतां अशीशिषन्। णिच् अभावमें (अशिष स्‌त्) (शलइगुपधादनिट) से क्सः। अशिक्षत यह धातु वि उपसर्गसे जुड़ जाय अतिशय अर्थ, **विशिष्ट** बहुत अधिक अर्थ देता है। विशेषयति विशेषति। विशेषता बोलना। **तप—**धातुको दाह दहन तपने जलने गर्म होनेकी क्रिया। णिच् उपधावृद्धि आदि। **तापयति**—वर्तमानकालिक दहनक्रिया तपतिका अर्थ। तप्ता अनिटका सूचक। अनद्यतन भविष्यकालमें तपेगा।

तृप्—धातुका तृप्ति प्रसन्नता अघाना किसीके मनमें संदीपन=ज्वलित करना। तर्पयिष्यति तर्पिष्यति तृप्त होगा, तर्पयतु तर्पतु, अतर्पयत् अतर्पत् अतर्पीत्। हिंसका हिंसा, प्राणवियोग असह्य कष्ट की क्रिया। अजिहिंसत अहिंसीत्, अर्हयति पूजा करता है स्वागत सत्कार। अर्हयतु अर्हतेत् आर्जिहत् भूत-

धूञ् कम्पने । णावित्यधिकृत्य 'धूञ्प्रीञोर्नुग्वक्तव्यः' धूनयति धवति । धवते ।
केचित्तु 'धूञ्प्रीणोः–'इति पठित्वा प्रीणातिसाहचर्याद्धुनातेरेव नुकमाहुः ।
धावयति । अयं स्वादौ क्र्यादौ तुदादौ च भ्वादौ ह्रस्वश्च । तथा च कविरहस्ये
'धूनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोकं चूतं धुनाति धुवति स्फुटितातिमुक्तम् ।
वायुर्विधूनयति चम्पकपुष्परेणून् यत्कानने धवति चन्दनमञ्जरीश्च ॥'

प्रीञ् तर्पणे । प्रीणयति-ते । प्रयति प्रयते । वच परिभाषणे । वाचयति
वचति । वक्ता । अवाक्षीत् । मान पूजायाम् । मानयति-मानति । मानिता ।
भू प्राप्तावात्मनेपदी । भावयते-भवते । णिच् । सन्नियोगेनैवात्मनेपदमित्येके ।
भवति । मार्ग अन्वेषणे । धृष प्रहसने । धर्षयति धर्षति । इत्याधृषीयाः ।

धू—धातुका कम्पन धूनना हिलाना झकझोरना आदि । णि का अधिकार । (वा०) धू प्री को नुक् कहें णि परे । णिच् नुक् आदिसे धूनयति । णिच् नहीं न नुक् । धवति । ञ इत्से आत्मनेपद भी, प्रीके साहचर्यसे धुनातिको ही नुक् कहा । यह धातु पांच प्रकरणमें विकरण भेदसे अनेक रूप धारण करता है । चम्पक वन और अशोक वृक्षको हिला कपाकर नष्ट करता है । चम्पा फूलोंके रेणु परागको विधूनयति झाड़ता है । चन्दनकी मञ्जरी फूलोंको कंपा रहा है । प्रीणयति, तर्पण, तृप्ति, प्रसन्न करता है (धूञ्प्रीणोर्नुक्) श्रन्थयति ग्रन्थयति का वचका परिभाषण विस्तार वचन बोलनेकी क्रिया । वाचयति परिभाषणार्थक वच धातुसे णिच् उपधा वृद्धि, आदि, न णिच् वचति वचतः वचन्ति वाचयिता । णिच अभाव पक्षमें अनिट् वक्ता वक्तारौ वक्तारः । वाचयिष्यति वक्ष्यति वाचयतु अवचत् । वचेत् उच्यात् वचि स्वपिसे सम्प्रसारण । लुङमें स्पष्ट बोलनेकी क्रिया समाप्त हो, (अवीवचत्) णिच अभाव पक्षमें अवच स इत् । च को क वद्व्रजहलन्त वृद्धि अवाक्ताम् अवाक्षुः अवाक्षीः। मान—धातुका पूजा आदर सत्कारकी क्रिया । मानयति मानयतः मानयन्ति । मानिष्यति मानयतु अममानत् अमानीत् । विचार अर्थमें भ्वादिका सन्नन्त भी ।

भू-धातु प्राप्ति अर्थमें णिच् अचोञ्णिति वृद्धि, आव (भावि) की सनाद्यन्त धातु संज्ञा आदि । भवते प्राप्त करता है भवेते भवन्ते । भवेथे भवध्वे । भवे भवावहे । जब णिच जुड़ेगा तभी आत्मनेपद किसीका मत है । गर्हयति विनिन्दन घोर निन्दा कर्ता है । गर्हति । गर्हयिष्यति गर्हिष्यति । अजगर्हत अजगर्हतां अजगर्हन्। पक्षमें अगर्हीत् अगर्हिष्टाम् अगर्हिषुः मार्ग धातुका अन्वेषण खोजनेके अनुकूल क्रिया अर्थं मार्गयति खोज करता है भविष्यकालमें मार्गयिष्यति मार्गिष्यति मार्गतु अमार्गत् मार्गेत् अममार्गत् अमार्गीत् । धृष-धातुका प्रहसन घबड़ाहटके साथ, सहना अधीधृषत् । यहां तक आधृषीय धातु णिच् विकल्पके भागी बने ।

अथादन्ता—अब अकारान्त धातु वक्ष्यन्ते—कहे जायेंगे अन्तिम इत्संज्ञक है न हि उच्चारणार्थक । अदन्त-धातुके प्रकरणमें प्रथम कथ-धातु वाक्य प्रबन्ध-काव्य

अथादन्ताः कथ वाक्यप्रबन्धे । अल्लोपस्य स्थानि-वद्भावान्न वृद्धिः । **अचः परस्मिन्पूर्वविधौ** ।१।५।५७। कथयति । अग्लोपित्वान्न दीर्घसन्वद्भावौ । अचकथत् । गण संख्याने । गणयति । **ई च गणः** ।७।४।९७। गणेरभ्यासस्य ईत्स्याच्चङ्परे णौ चादत् । अजगणत् अजीगणत् । रच प्रतियत्ने । रचयति । कल गतौ सङ्ख्याने च । मह पूजायाम् महयति । सूच पैशुन्ये । सूचयति ।

रचना गद्य निर्माण, कथा कहनेकी क्रिया । वाक्य रचनार्थक कथ धातोः णिच्, अनुबन्धलोपे (अतो लोपः) अकारलोपे (कथ इ) दशायां सनाद्यन्तधातुसंज्ञा ल ति शप् । गुण अय **कथयति** कथयतः **कथयन्ति** । शङ्का-णिच्परे उपधावृद्धिः कथं न भवति । समाधानम्—अल्लोपस्य=अतोलोपः सूत्रेण अकारलोपस्य स्थानिवद्भावेन अकार दर्शनात्, न वृद्धिः (उपधामें थ मिलेगा, अ नहीं) केन सूत्रेण स्थानिवद्भावः अचः परस्मिन्पूर्वविधौ, कथयामास कथयिष्यति । कथय अकथयः कथ्यात् । लुङि लकारमें वाक्यप्रबन्ध रचना समाप्त हो अचकथत्—कथ धातोः कथाविषयक प्रेरणार्थे णिच् लुङि ति अट च्लि अङ (चङि) द्वित्व, कथ-कथ चकथ इति दशायां अत्र सन्वद्भावः सन्यतः इत्वं, दीर्घश्च कथं न भवति ? अकारलोपेन अग्लोपी अस्ति, तेन कारणेन अभ्यासदीर्घसन्वद्भावो न भवति । स्थानिनि सति यत्कार्यं तदेव स्थानिवत् इत्यनेन अतिदिश्यते, न तु आदेश प्रयुक्तं कार्यं वार्यते । अन्यथा नायकः पावक इत्यादिः न सिद्धयेत् । वृद्धि दुर्वारा स्यात् । अतः भावाभावयोः उभयोः अतिदेशः स्यात् । सभी अदन्त धातुओंको दीर्घ नहीं होता, अग्लोपि होनेसे

गण—धातुका संख्यान गणनाकी क्रिया । णिचि अतोलोपः अकारलोपे सनाद्यन्त धातुसंज्ञा, लट् ति शप् गुण अय गणयति गणयतः गणयन्ति । गणयिष्यति गणयतु अगणयत् गणयेत् गण्यात् अजीगणत्—संख्यानार्थक गणधातोः स्वार्थे णिचि, अतोलोपः अकारलोपे । गणि—इत्यस्य सनाद्यन्ता धातुसंज्ञा, तस्याः फलं भूतकालिकसमाप्तगणनक्रियाया कर्ता अर्थे लुङि अट् च्लि चङ् ति (अगण अ त्) चङि द्वित्वे गगण जगण । चङि परे अकारलोपस्य स्थानिवद्भावात् न दीर्घः न सन्वद्भावः अजगणत् इति मा भवतु अत आह (ई च गणः) गण धातुके अभ्यासको ई हो चङ् परक णि परे । च पढ़नेसे अत भी हो । सन्वल्लघुनिसे चङि परे, अत्र लोपोसे अभ्यासस्य, अत्स्मृदसे अत्‌की अनुवृत्ति । जब इत्व अजीगणत् जब अत् अजगणत् । अजगणतां अजगणन् । अजीगणः अजीगणतम् अजीगणत । अजीगणं अजीगणाव अजीगणाम । रच्-धातुका प्रतियत्न गुणाधान व्याकरणत्व काव्यत्व स्थापना, गद्यपद्य बनानेके अनुकूल क्रिया । रचयामास **रचयिता** रचयतु अरचयत् अररचत् अररचतां अररचन् । अररचम् अररचाम । **कलयति**—धीरे-धीरे चलता है । या सख्यान गणना संकलन टोटल वर्तमानकालिक क्रिया कलयिष्यति कलयसि कलयामि । अकलयत् अचकलत् संख्या किया । चहयति परिकल्वन दम्भ अहंकार मद शाठ्य शठस्य भावः दुष्टताकी वर्तमान क्रिया । अचचहत् । महयति पूजा सम्मान वर्तमानकर्ता महति भ्वादिमें पढ़ा है महयिता महयामि महयाव ।

अषोपदेशत्वान्न षः। असूसुचत्। कुमार क्रीडायाम्। अचुकुमारत्। ऊन परिहाणे। ऊनयति। 'ओः पुयण्जि-इति सूत्रे पययोः इति वक्तव्ये वर्गप्रत्याहारजकारग्रहो लिङ्गं 'णिचि अच आदेशो न स्याद्द्वित्वे कार्ये' इति। 'यत्र द्विरुक्तावभ्यासोत्तरखण्डस्याद्योऽच् प्रक्रियायां परिनिष्ठिते रूपे वाऽवर्णो

असमहत्। सूचयति चुगली पैशुन्य पिशुनः दुर्जनः निन्दकः तस्य भावः कर्म वा पैशुन्यं पिशुनता=परनिन्दा, फूट डालना सूचयाञ्चकार। परोक्ष भूतकालमें सूचनाक्रिया। सूचय असूचयः सूचयेः असूसुचत् अपुसूचत् असुसुचन् सूचित किया। चुगली निन्दा। कुमारयति क्रीडा करता है लुङ्में अचुकुमार इत् कुमारको द्वित्व आदि चङ परे।

ऊन—धातुका परिहाण घिसना न्यूनीभाव कम होना। घिसाई पिटाईकी क्रिया। णिच् अतोलोपः अकारलोप, सनाद्यन्तधातुसंज्ञा ल-ति शप् आदि। ऊनयति ऊनयतः ऊनयन्ति। हानि क्षीण घिसाई (कम) करते हैं। ऊनयसि ऊनयथः ऊनयथ तुमलोग शिक्षा दीक्षा को घटाते हो। अहं दुर्गुणान् ऊनयामि ऊनयावः ऊनयांबभूव ऊनयिष्यसि। ऊनयिष्यामः। ऊनय ऊनयतम् ऊनयत ऊनयानि। औननत् लुङमें परिहाण क्षीणता घिसाई कभी बढ़नेके अनुकूल समास क्रियावाचक ऊन धातोः णिचि, अतोलोपः अकारलोपे सनाद्यन्ताः धातवः, भूतकालिक न्यूनीभवनं क्रियाके कर्तामें लुङ् आट् चिल चङ् ति इलोप। द्वितीय एकाच् न-को द्वित्व। आटश्च वृद्धि औननत् इति शुद्धरूप। परञ्च चङि सूत्रके पहले अतोलोपः से अकारलोप होगा, पर और अन्तरङ्ग होनेसे। तब अजादि धातुका द्वितीय एकाच् (नि) को द्वित्वकर औनिनत् ऐसा अनिष्ट रूप बनेगा। अतोलोपः के अकारलोपको द्विर्वचनेऽचि रोक नहीं सकता, क्योंकि अकारलोपका निमित्त णिच् है। वह द्वित्व का निमित्त नहीं। अत आह-ओ पुयण्ज्य—यह सूत्र सम्पूर्ण नहीं किन्तु (पवर्ग यण यकार) व्यर्थ होकर प्रमाण बनते, ज्ञापन देते है कि णिचि अच् आदेशो न, जब द्वित्व करना हो तब णिच् परे अचः स्थाने आदेश अतोलोपः से अकारलोप नहीं होगा। तब (न न) द्वित्व औननत्। लिङ्ग=प्रमाणं (ज्ञापनका स्वरूप) स्पष्ट करते हैं। ओः पुयण्ज्यपरे=पवर्ग यण् (प्रत्याहार) अकार परे क्यों पढ़ा? सनि परे अङ्गके अवयव अभ्यासके उको ई हो अकार परे पवर्ग परे, यवरल, ज, परे उसका अर्थ है। वर्ग=पवर्ग पफ बभम, यण् यव रल, ज को सूत्रमें पढ़नेका फल अबीभवत् अमीमवत् अरीरवत् अलीलवत् अजीजवत। विभावयिष्यति मीमावयिष्यति लीलावयिष्यति इत्यादि रूपोंकी सिद्धि फल। वह फल पवर्ग यण यकार पढ़े बिना भी सुखसे सुलभ है। जब णिचारे पर और अन्तरङ्ग मानकर वृद्धि आव हो तब द्वित्व हो तब अभ्यासमें उकार नहीं मिलेगा, अकारको सन्यतः से ईत्व दीर्घ सुखसे सिद्ध। यथा पुपविषते। युयविषते ऐसा अनिष्ट न बनें, इसलिए अभ्यास उको इत्वके लिए पुयण्ज्यः पढ़ना आवश्यक, अन्यथा पिपविषते। यियविषति नहीं बनेगा।

लभ्यते तत्रैवायं निषेधः।' ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वात्। तेन अचिकीर्तत् इति सिद्धम्। प्रकृते तु न शब्दस्य द्वित्वम्। तत उत्तरखण्डेऽल्लोपः। औननत्। मा भवानूननत्। ध्वन शब्दे अदध्वनत्। सूत्र वेष्टने सूत्रयति असुसूत्रत्। मूत्र प्रस्रवणे। मूत्रयति मूत्रति। अदन्तत्वसामर्थ्याण्णिज्विकल्पः।

यदि द्वित्वकी कर्तव्यतामें णिच्परे अच आदेश (अतो लोप ऋत् इत् आदि आदेश) नहीं होंगे, तब औननत् सिद्ध हो जायेगा परन्तु अचिकीर्तत् नहीं बनेगा, संशब्दनार्थक कृत धातुसे णि (अकृत चङ त) चङि सूत्रसे (कृत) को द्वित्व प्राप्त उसकी कर्तव्यतामें उपधायाश्चसे ऋको इत्व रपर करके किर्त पहले नहीं बना रहेगा, केवल कृत दशामें द्वित्व होगा। उरत् रपर हलादिशेष कुहोश्चु। (अचकृत अत्) उत्तरखण्डके ऋको इत्व रपर उपधाको दीर्घ। अचकीर्तत्की आपत्ति आयेगी। उचित है कि अचिकीर्तत् बने। अतः द्वित्व दशामें णिच्परे अच्को आदेश न हो, इस नियमको सीमित नियन्त्रित करते हैं **यत्र द्विरुक्तौ**=जिस धातुको चङि सूत्रसे द्वित्व हो उसके बाद अभ्यासके उत्तरखण्ड दूसरे भाग का अन्त्य अच् अवर्ण हो, **प्रक्रियायां**=साधनिका दशामें या परिनिष्ठित=इतना सिद्ध हो कि कोई सूत्र न लगे उस दशामें अवर्णको (**तत्रैवायं** उसी स्थल) द्वित्वकी कर्तव्यतामें णि परे अचके स्थानमें अतोलोपः आदि कार्य नहीं होते। **औननत्**-में न को द्वित्व होने पर अभ्यासके उत्तरखण्डका आदि अच अवर्ण मिलता है, वहां नियम लगेगा। अचिकीर्तत् में उत्तरखण्ड-दूसरा भागका आदि अच अवर्ण नहीं, नियम नहीं लगेगा यही **वर्गप्रत्याहारज** का ज्ञापन है। वह सजातीयका अपेक्षी है क्योंकि युवज्य-सूत्रमें उत्तरखण्डः **अवर्णपराः भवन्तु** अतः तत्रैव ज्ञापक सजातीयापेक्ष फलम्। अचिकीर्तत् इत्यस्य सिद्धिः। पहले उपधायाश्चसे ऋको इत् पीछे द्वित्व।

प्रकृते तु—प्रसङ्गमें ऊन इ अ त्) दशामें पहले द्वितीय एकाच (न) को द्वित्व (न न अत) उत्तरखण्ड नके अका अतोलोपः से लोप। आट् आटश्च वृद्धि, औननत् मा भवान्के योगमें आट नहीं ऊननत्। अग्लोपि—होनेसे उपधाह्रस्व नहीं। न्यून कमी घिसाईका भूतकाल। औननतामौनन्।

ध्वनयति—आवाज उच्चारण ध्वनिकी क्रिया। णिच्परे अकारलोप। दुन्दुभिं ध्वनयांचकार ध्वनयिष्यति, घण्टां ध्वनयतु अदध्वनत्। चिलको चङ द्वित्व आदि। अदध्वनताम् अदध्वनन्। आर्गवात्—गर्व माने धातु तक आत्मनेपदके अनुकूल संस्कार साधुत्व चलेगा। पदयते—पैदल चलता है। पदयिष्यति अपपदः अपपदतम् अपपदत। अपपदम्।

गृह—धातुका ग्रहण स्वीकारके अनुकूलव्यापार अर्थ। स्वार्थे णिचि (गृह इ) अतोलोपः के स्थानिद्भावसे लघूपध गुण नहीं हुआ। गृह्यते स्वीकार करता है अजगृहत् चङ परे द्वित्व अग्लोपसे सन्वत्कार्य, मृग-धातुका अन्वेषण खोजके अनुकूल क्रिया। मृगयते मृगकी तरह तत्व खोजता है। मार्ग अन्वेषण पहले पढ़ा है। मार्गयति मार्गति रूप। मृगयतां मृगयस्व मृगयै मृगयावहै। अमृगयत् अममृजयत्। कुह-

आ गर्वादात्मनेपदिनः । पदगतौ । पदयते अपपदत । गृह ग्रहणे गृहयते । मृग अन्वेषणे । मृगयते । शूर वीर विक्रान्तौ । शूरयते । वीरयते । गर्व माने । गर्वयते । इति तिङन्ते चुरादिप्रकरणम् ।

अथ ण्यन्तप्रकरणम्

स्वतन्त्रः कर्ता ।१।४।५४। क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् । तत्प्रयोजको हेतुश्च ।१।४।५५। कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च

येतै विस्मापन् आश्चर्य चकित करना अचूकुहत् चकित किया । शूरयते विक्रान्ति विशेष क्रान्ति शूरता बल पुरुषार्थ प्रदर्शन शूरयिता । शूरयां शूरयेतां शूरयन्ताम् । वीरयस्व वरिरेथां वीरयै वीरयावहै, वीरयते वीरता पराक्रम प्रदर्शन करता है । भूतकालमें चङि परे द्वित्वादि अशुशूरत् अशुशूरम । अविवीरत अविवीरध्वम् । गर्वयते अभिमान करता है । गर्वयते गर्वयेते गर्वयन्ते गर्वयामासे गर्वयिष्यते । गर्वयतां गर्वयस्व गर्वयै । गर्वषीष्ट अजगर्वत् ।

सूत्रयति—सूत लपेटना अल्पशब्दसे अधिक भाव भरता है । एककर्तृक वर्तमान वेष्टन क्रिया संक्षेपमें कहना (थोड़ा शब्द अर्थ ढेर) विस्तारको संक्षेप करता है । सूत्रयिष्यति सूत्र रूपमें संक्षेपमें कहेगा । सूत्रय सूत्रयानि । असूत्रयत् । चङ् परे सूत्र को द्वित्व आदि असुसूत्रत् वे संक्षेप किये । मूत्रयति=मूतना प्रस्रवण चूना लघुशङ्का करना । मूत्रसि मूत्रामि । मूत्रयिता मूत्रतु मूत्राणि अमूत्रयत् मूत्रेत् मूत्रेतां मूत्रेयुः अमुमूत्रत् अमुमूत्रतां अमुमूत्रन् । अमुमूत्रः अमुमूत्रतम् अमुमूत्रत । इतिचुरादयः।

अथ ण्यन्तप्रक्रिया—णिचप्रत्ययः अन्ते यस्य स ण्यन्तः प्रक्रियन्ते उत्पाद्यन्ते फलानि साधुत्वं वा यया सा प्रक्रिया । ण्यन्तस्य प्रक्रिया साधनिका शैली । अथ–सुबन्त (कारक) को तिङन्त (क्रिया) की आवश्यकता है । सभी क्रियायें वर्तमान, भूत, भविष्य, अनद्यत अनद्यतनकाल, सामान्यकाल आज्ञा प्रार्थना निवेदन कार्य कारणभाव आदि अर्थमें कही गयी है, जैसे उठना सांध्यावन्दन करना, पढ़ना खाना क्रिया है उसका भी प्रेरक उठाना संध्या कराना, पढ़ाना लिखाना उसी क्रियाके विषयमें प्रेरणा-प्रवृत्ति कराना इच्छा कराना व्यावहारिक क्रियाका बोध कैसे हो ? उसी क्रियाका प्रकाशक या वाचक णिच है । वह अन्तमें हो ऐसी प्रक्रिया साधनिका शैली । खाते हुये कर्ताको प्रेरित करना खिलाना पढ़ते हुयेको पढ़ाना, चलते हुयेको चलाना आदि क्रियाके अनुकूल क्रिया होनेकी प्रेरणा यथा लिखनेके अनुकूल लिखाना णिचका अर्थ है । इस णिच्की विधिको हेतुमति च सूत्रसे कहें । क्रियामें (स्वतन्त्र) रूपसे जो अर्थ वक्ताको इष्ट हो उसकी कर्तृसंज्ञा हो । उसमें हेतुसंज्ञा क्या है, उसका साधक सूत्र तत्प्रयोजकः—इस सूत्रमें तत् शब्द स्वतन्त्रः कर्ताका सूचक परामर्शक है । तस्य कर्तुः प्रयोजकः प्रवर्तकः प्रेरकः क्रियाके अनुकूल क्रियाके कर्ताको हेतुसंज्ञा कर्तृसंज्ञा भी हो । चकारसे एकसंज्ञाका अधिकार बंधा रुका । हेतुसंज्ञाका फल भीस्म्योः हेतुभये, भियो हेतुभयेमें है । यहाँ

स्यात् । हेतुमति च ।३।१।२६। प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच्

हेतुशब्दसे प्रेरक (कर्ममे लगानेवाला) कर्तृसंज्ञा धातुसे लकार होते हैं। लकाराः कर्मणि कर्तरि च स्युः। यथा बालकः पठति, पिता तं प्रेरयति पढ़ना क्रियाका आधार कर्ता बालक, (तुम परिश्रमसे पढ़ो उच्चारण सीखो) इसके अनुकूल पढ़ना या प्रेरणा या उच्चारण पढ़ानेकी क्रिया। पढ़नेका आधार बालक, पढ़ाने क्रियाका आधार पिता। माता वैरी पिता शत्रुः, येन बालो न पाठितः। दशगणीका कर्ता प्रयोज्य प्रेर्य (क्रियामें लगाने योग्य) प्रथम कर्ता है। प्रयोजक कर्ता सिखाने पढ़ाने खिलाने वाला जो कर्ममें लगाता है। उत्साह बढ़ाता है। उसकी हेतुसंज्ञा हो।

हेतुमति—सत्याप-पाशरूपसे णिच् आया, हेतुः अस्ति अस्य हेतुमान्व्यापारः, हेतुसंज्ञा हुई हो उस (प्रयोजक क्रियामें लगानेवाला) कर्तामें विराजमान प्रेरणा आदि क्रियाका आधार अर्थ कहता हो उस धातुसे प्रेरणा कर्ता अर्थमें णिच् हो। धातोरेकाचोसे धातोः आया। प्रेरककी क्रियामें प्रेरणा, अनुमति, अध्येषणा, उपदेश आदि वाच्य (कहने योग्य) हो तब धातुसे णिच्। यहां प्रयोजक (कर्ममें लगाने वाला) चेतन हो या अचेतन, दोनों इष्ट है। देवदत्तः पाचयति चेतन है। पकवाता है भेजता है भिक्षा भिक्षुं वासयति, भिक्षुः वसति भिक्षा ठहराती है **सङ्ग्रामो वासयति** सेनां, सेना वसति संग्रामः तां प्रेरयति, कर्ता भिक्षा अचेतन है फलरूप है। वासका फल भिक्षा और संग्राम है। णिच्के वाच्य अर्थको साफ समझाते हैं। भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनं प्रेरणा आज्ञा क्रियामें प्रवृत्ति करना णिच्का वाच्य अर्थः। **अध्येषणा**==अपने समान या अपनेसे बड़े (आचार्य गुरु आदि) से निवेदन रूप अर्थ बोधक णिच्।

अनुमति--राजादेः बड़ोंकी सम्मति नगरपालिकाकी सम्मतिसे मकानका बनाना। अनुमति बिना यागादि क्रिया न निष्पद्यते, आचार्य अधिकारी आदि प्रयोजक अनुमतिदायकः की क्रिया णिजर्थः। अनुमति आदि शब्दसे **उपदेश**—अनुग्रह कृपा दया क्रूरता अर्थ भी णिजर्थ है। ज्वरितस्य कषायपाने (हितस्य अवबोधनेन) प्रवृत्तिः उपदेशः। ज्वर रोगीको कड़वी दवा पिओ हित है वैद्य आदि का उपदेश प्रयोजक है। हननात् भयभीत्या पलायमानस्य चौरस्य विरोधाचरणमपि अनुग्रहकरणमपि, अर्थे णिच् देवः। रौति इति रावणः देवं रावयति। सभी विशेषतायें णिच्से समझी जायेंगी। सर्वानुगतं प्रवर्तना सामान्यं णिचो अर्थः विशेषार्थस्तु प्रसङ्गे न गम्यते। कुलालो घटं करोति अर्थमें णिच् नहीं किया, प्रेरक न होने होनेसे। लोडर्थं णिजर्थमें अन्तर है। (द्रव्यमात्रस्य तु प्रैष्ये पृच्छादेर्लोट् इष्यते। सक्रियस्य प्रयोगस्तु यदा स विषयो णिचः) पच देवदत्त? यहां वक्ता ही प्रेरक है पाचयतिमें प्रेरक भिन्न है। चैत्रः कुशलो भवति शिक्षकः तं प्रेरयति (कुशलो भव इति) शिक्षकः चैत्रं कुशलं भावयति। भवन उत्पत्ति क्रियाका मुख्यकर्ता चैत्रके कुशलः चतुर- निपुणः होनेमें उत्साह वर्धक शिक्षक प्रयोजक प्रेरक उद्बोधक, उसमें

स्यात्। भवन्तं प्रेरयति भावयति। **ओः पुयण्ज्यपरे** ।७।३।८०। सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्येत्त्वं स्यात् पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परतः। अबीभवत्। अपीपवत्। मूङ् अमीमवत्। अयीयवत्। अरीरवत्। अलीलवत्।

स्थित प्रेरणा क्रियामें लगाने) अर्थमें भू से णिच् (भू इ) अचोञ्णितिसे आव आदेश **भावि**—णिजन्त धातु है इसका स्फोटार्थ उत्पन्न होनेके अनुकूल क्रियाके अनुकूल क्रिया (वाचक की) सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञा। भावि धातोः लिटि ति शप् गुण अय् **भावयति** होवाता है, भवन्त चैत्रं प्रेरयति त्वं भव इति फलितोर्थः। णिचश्च सूत्रेण (यदा फलं कर्तृगामि भवति तदा) आत्मनेपदं वक्ता प्रेरक ही लोडर्थः। प्रेरकप्रेर्य भावः णिजर्थः।

स बभूव कश्चन प्रेरयमास कश्चन तं **भावयाञ्चक्रे** भावयाम्बभूव। भावि धातुसे अनेकाच् मानकर आम् (भू लिट्का अनुप्रयोग) बभूव बनानेकी प्रक्रिया पूर्ववत्। जब कर्तामें क्रिया और फल दोनों हों तब अनुप्रयोगसे भी आत्मनेपद हो। **भावयिता**। बालः विद्वान्भविष्यति विद्वान्भविष्यन्तं तं गुरुः प्रेरयति इति गुरुः बालकं विद्वान् इति भावयिष्यति भावयतु भावयतां भावयन्तु, सः अभवत् तं अभावयत्, भावयेत् भाव्यात्। अबीभवत्।

ओः पुयण्ज्य—इस सूत्रमें उका षष्ठी ओः, पुश्च ज च समाहारद्वान्द्वसे, सप्तमी। अः परो यस्मात् अपरः तस्मिन्। सन्यतः से सनि आया। अङ्गस्य अधिकारः, अत्र लोपःसे अभ्यासस्य, भृञामित् से इत् अनुवर्तते **सनि परे**=सन्वद्भावसे परे जो अङ्ग उसका अवयव अभ्यास, उसके उकारको इत्व हो पवर्ग=प फ ब भ म, यण् यवर ल, ज परे और अवर्ण परे। चैत्रः गुणवान् भवति भवन्तं तं पिता प्रैरिरत् इति पिता चैत्रं गुणवान् इति **अबीभवत्** गुणवान् हुए चैत्रकी पिताने प्रेरणा किया था अर्थमें भू से णिच् सनाद्यन्तधातुसंज्ञा लुङ् ति च्लि चङ् परे द्वित्वं प्राप्नोति द्विर्वचनेऽचि निषेधात् द्वित्वे कर्तव्ये अच् आदेशः (वृद्धि इत्यादिः) न भवति। पूर्वं द्वित्वे (भू भू इ) द्वितीय भू स्थाने वृद्धिः आव् (भू भावि अत्) णौचङ् उपधाया ह्रस्वे, (अभ्यासमें अकार नहीं, सन्यतः से इत्व नहीं) सन्वद्भावः अस्ति। तस्य फलं ओः पुयण्ज्यपरे इति अकारस्य इत्वे, दीर्घे णिलोपे अबीभवत् अबीभवतां अबीभवन् अबीभवः तं त, अबीभवं अबीभवाव-म (अपरे क्यों? बूभूषति) भू सत्तायां उत्वके अभ्याससामर्थ्यसे न स्थानिवत्। पूङ् पवने **पावयति** छानता है अपवित्रः पुनाति तं मन्त्रः प्रेरयति (शुद्धो भव) पावयति। अपावीत् इति अपीपवत् (मूङ् बन्धने) वत्सं मावयति अमीमवत् बंधवाया मू धातुसे णिच् सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञा च्लि चङ् ति अट् द्वित्व आव् ह्रस्व सन्वद्भा से इत्व, दीर्घ पूर्ववत्। यही क्रिया सबमें होगी। यु मिश्रणामिश्रणयोः सेवक गुडधान्यं यौति मिश्रयति, तण्डुलात् कङ्कणान् अपसारयति। स्वामी तं प्रेरयति मिश्रणं कुरु, पृथक् कुरु इति स्वामी सेवकेन **यावयति** मिलवाता या अलग करवाता है। यावयिष्यते यावयतु अयीयवत्। सः अयौषीत् मिलाया या अलग किया।

अजीजवत्। **स्रवति-शृणोति-द्रवति-प्रवति-प्लवति-च्यवतीनां वा ।७।४।८१।** एषामभ्यासाकोरस्य इत्वं वा स्यात्सन्यवर्णपरे धात्वक्षरे परे। असिस्रवत्-असुस्रवत्। ण्यन्ताण्णिच्, पूर्वविप्रतिषेधादपवादत्वाद्वा वृद्धिं बाधित्वा णिलोपः, चोरयति। णौ चङि' इति ह्रस्वः, 'दीर्घो लघोः' न चाग्लोपित्वाद् द्वयोरव्य-

---

रुशब्दे रोना चिल्लाना ध्वनि करना (रौति) रुलाने अर्थमें णिच। रावणः लोकान् रावयति लोकाः रुवन्ति। रावयिता रुलायेगा, रावयतां रावयेत। सः अरौषीत् रोया चिल्लाया कश्चित्तं **अरीरवत्**। णिच् चङ् द्वित्व वृद्धि आव् उपधा ह्रस्व आदि। लूञ् छेदने, कृषकः क्षेत्रं लुनाति, अन्यः प्रेरयति इति तेन **लावयति**-लवाई कटाई करवाता है। लावयिष्यति लावयतु त्वं लुनीहि इति त्वया लाव्यं, नापितः केशं **अलावीत्** इति नापितेन केशान् **अलीलवत्**। जु गतौ धातु सूत्रमें पठित है, धातु पठित नहीं। जावयति उपधाह्रस्वको स्थानिवद्भाव नहीं, इत्वके आरम्भसे।

स्रवति शृणोति--इस सूत्रमें पढ़े धातुओंके आरम्भ उको इ हो विकल्पसे अवर्ण परे। पूर्वसूत्रसे अपरे आया, पू यण् नहीं। सुषूपतिमें इत्व न हो अतः अवर्णपरे पढ़ा। स्रु प्रस्रवणे स्रावयति चुवाता है। स्रवति चूता, रिसता है। लुङ लकारमें (स्रावि अत्) चङि द्वित्व आदि सुस्रुअत्। दो हल् हैं लघु परे नहीं, न सन्वद्। अतः स्रवतिशृणोतिसे अभ्यास उ को इ (अिसिस्रवत्) उपधा ह्रस्व। श्रोता उपदेशं शृणोति, वक्ता श्रावयति सुनाता है। श्रावयतु अश्रावयत् अशुश्रवत्। उ को इ, पक्षमें अशिश्रवत् अश्रौषीत् सुना सुनवाया। द्रु गतौ द्रवति द्रावयति, पिघलना पिघलाना। अद्रौषीत् पिघलाया। चङ् परे द्वित्व आदि अदुद्रवत् इत्व होने पर अदिद्रवत् पिघलाया। अदिद्रवताम् अदिद्रवन्। प्रु गतौ प्रावयति टपकता है, अपुप्रवत् अपिप्रवत्। प्लवति उफनता है। प्लावयति नदी। उफननेकी प्रेरणा, अपिप्लवत् च्यवति च्यावयति चूना चुवाना अचुच्यवत् अचि।

चोरयति--ण्यन्तसे णिच्, चुर स्तेये चुरानेकी क्रिया अर्थमें णिच् (स्वार्थे) गुण चोरिका भी स्तेयानुकूलव्यापार चोरी करना-अर्थकी प्रेरणा चोरी कराने अर्थ में णिच्। प्रथम णि का लोप (चोरि) ण्यन्त धातु है। चोरीके अनुकूल प्रेरणा ण्यन्तार्थ उससे वर्तमाने ल ति शप् गुण अय् चोरयति चोरयतः चोरयन्ति चोरी करावते हैं करते भी है। यदि प्रेरणणिच्परे है तो पूर्व णिलोपको बाधकर उसको वृद्धि आय क्यों नहीं होते ? पूर्वविप्रतिषेधसे णि (अल्लोप इयङ् यण् गुण वृद्धि दीर्घ को) बाधता है विप्रतिषेधे परं कार्यमें परंका इष्टं कार्य अर्थ, पूर्व इष्ट हो या पर वृद्धि बाधकर णिलोप होगा। अथवा **निरवकाशो विधिरपवादः** से भी णिलोप **चोरयामि** चुराता हूं। चोरी कराता हूं दोनों अर्थ। चोरयिष्यति चोरी करेगा या करायेगा। चोरयतु चोरी करे या कराये। राधा वेणुम् अचोरयत् चुराई या चुरवायी। **अचूचुरत्** चोरी किया था करवाया। चोरि ण्यन्त धातोः भूतकालिक चोरक्रिया कारयिता अर्थे लुङि चङि इत्यादि। अचोर इ अत्। दशायां णिपरक चङ्परे उपधायाः ह्रस्वे। ओः-(उ) चुर स्थाने चङि इति द्वित्वे, दीर्घो लघोः इति

सम्भवः, ण्याकृतिनिर्देशात्; अचूचुरत् । **णौ च संश्चङोः** ।६।१।३१। सन्परे चङ्परे च णौ श्वयतेः सम्प्रसारणं वा स्यात् । 'सम्प्रसारणं तदाश्रयञ्च कार्यं बलवत्' इति वचनात् सम्प्रसारणं, पूर्वरूपम्, अशूशवत् । अलवृत्वान्न दीर्घः, अशिश्वयत् । **स्तम्भु-सिवु-सहां चङि** ।८।३।११६। उपसर्गस्थान्निमित्तादेषां सस्य षो न स्याच्चङि । अवातस्तम्भत । पर्यसीषिवत् । न्यसीषहत् ।

दीर्घ, द्वित्वके बाद उपधा ह्रस्व, दूसरा ह्रस्व है । ननु उपधा ह्रस्वः अभ्यासदीर्घश्च चङ्परे णौ कुरुतां ? प्रत्ययलक्षणेन लुप्त णिचः व्यवधानेन न स्याताम् । णिलोपेन अग्लोपित्वात् । दो णिच्में प्रथम णिलोपको अग्लोप मानें ? उत्तर-ण्याकृतिनिर्देशात् णिमें जाति हैं दोनों णि एक जातिके एक हैं । चङ् परक मिलेगा ह्रस्व दीर्घ होगे अचूचुरत् अचूचुरतांम् अचुरन् अचूचुरः

णौचङ—सन्परे, चङ परे णि मिलता हो श्वि धातुको सम्प्रसारण विकल्पसे हो, विभाषा श्वेः और (ण्यङः) सम्प्रसारणमनुवर्तते । **सम्प्रसारणं** हुआ हो, और **तदाश्रयं** उसके आश्रित कार्य पूर्वरूप आदि, बलवान् होते हैं । गमन और वृद्धि अर्थ प्रसिद्ध श्वि-धातुसे णि, वृद्धि आय श्वायि ण्यन्तधातुः (गमन वर्धन क्रियाके अनुकूल क्रिया) सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञा ल, ति शप **श्वाययति** कुत्तेको दौड़ाता बढ़ाता है । लुङमें (श्वि इ) ण्यन्तकी धातुसंज्ञा लुङि च्लेः चङि अट ति आदि (अश्वि इ अ त्) दशायां णौ च संश्चङोः चङ्परक णिपरे वस्थाने उ सम्प्रसारणें पूर्वरूपे वृद्धि बाधित्वा शुशु द्वित्वे अभ्यासस्य दीर्घ, **अशूशवत्** बढ़वाया उत्तरखण्डे गुण अत्र आदेश णिलोप, यदा सम्प्रसारणं न भवति, तदा श्वि इत्यस्य द्वित्वं अभ्यासस्य, न दीर्घः संयोग परे अस्ति, न तु लघुः । अवीवदत् वीणां, देवदत्तः अशिश्वयत् ।

स्तम्भु—सौत्र धातु, षिवु तन्तु सन्ताने षह्मर्षणे धातुके स को ष न हो उपसर्गमें स्थित र ष से परे, चङ परे रहते । अवातस्तम्भत् गतिको रुकवाया जकड़ दिया (अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः) से षत्व प्राप्त उपसर्गनिमित्तक षत्व का निषेध कहें । न रपरः सृपिसे न आया । सहेः साडः से स भी । सा कन्चुकीं सीव्यति, मैत्रः प्रेरयति इति मैत्र तया कचुकी **सेवयति** सिलवाता है सेवयिष्यति सिलवायेगा, सेवयतु, लुङ लकारमें सा वस्त्रं असेवीत् तया वस्त्रं पर्यसीषिवत् चारो तरफ सिलवाया । षत्वके निषेधसे, परिनिविभ्यः सेवसितं-उपसर्ग निमित्तक षत्व नहीं हुआ । स सहते वह क्षमा, दया, सहन करता है इति तेन **साहयति** सहवाता क्षमा करवाता है साहयिष्यति लुङमें (नि षह अ त्) चङ्परक णिपरे द्वित्वे, ससह, अभ्यासको इत्व दीर्घ सत्व, उपसर्गके कारण षत्व, परिनिविभ्यसे नहीं होगा, अभ्यास निमित्त षत्व ही होता है ।

स्वापेश्चङि ।६।१।१८। ण्यन्तस्य स्वापेश्चङि सम्प्रसारणं स्यात् असूषुपत् । हनस्तोऽचिण्णलोः ।७।३।३२। हन्तेस्तकारोऽन्तादेशः स्याच्चिण्णल्वर्जे ञिति णिति अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग्णौ ।७।३।३६। इति पुक्, अर्पयति । ह्रेपयति । व्लेपयति रेपयति । क्नोपयति । क्ष्मापयति । स्थापयति । तिष्ठतेरित् ।७।४।५। उपधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे णौ । अतिष्ठिपत् ।

वधका अदृष्ट होना इस स्थितिमें (कंस अम् हन् इ) **हनस्तो** हन्के न को त हो। अलोऽन्त्य परिभाषासे, चिण् णल् परे न हो तब । त का अ उच्चारणार्थ और मित् णित् परे (जो अचोञ्णितिसे आया) इस सूत्रसे हन्के न को त हो हन्तेः से कुत्व हको घ, उपधावृद्धि । **घाति** को ण्यन्त देख सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञा, कंसं घातिष्यति घातयतु अघातयत् **कंसम् अजीघतत्** ।

स्वापे-च्यङः से सम्प्रसारण आया, णिअन्त स्वापिको सम्प्रसारण (वको उ) हो चङ्परे । सम्प्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं वलवत् प्रमाणसे पहले सम्प्रसारण पीछे द्वित्व, पूर्वरूप सन्वद् दीर्घ षत्व । बालकः स्वपिति माता स्वापयति सुलाती है स्वापयिष्यति स्वापयतु अस्वापयत् वत्सान् । अस्वपीत् सोया असूषुपत् सुलाया शयन कराया । स्वादिसे लुङ चङि आदि (अस्वापि अ त्) सम्प्रसारण उसका आश्रय पूर्वरूप कार्य बलवान् होनेसे स्वापेश्चङिसे सम्प्रसारण (सुप इ अत्) अब द्वित्व दीर्घ आदि असूषुपताम् असूसुपन् । असूषुपः असूषुपम् ।

अर्तिह्री--सूत्रसे पुक्का विधान क्रमसे उदाहरण प्रस्तुत । **अर्पयति** अर्पण-करवाता देता है । **ऋगतौ** गमन ज्ञान मोक्ष प्राप्ति चार अर्थ । बालकः मोदकं अर्ति प्राप्त करता है, प्राप्त करानेकी प्रेरणामें णिच् हुआ (ऋ ई) प्राप्त अचोञ्णितिकी वृद्धिको बाधकर नित्य बलसे पुक् (ह्री सूत्रसे) गुण (अर्प ई) प्राप्ति ज्ञान मोक्ष विषयक प्रेरणानुकूल क्रिया लडादि । अर्पयतः अर्पयन्ति । अर्पयसि अर्पयामि अर्पयामः । **ह्री** लज्जायां **चोरः** जिह्रेति तं द्रष्टा **प्रेरयति** लज्जितो भव इति **ह्रेपयति** लजवाता है अजिह्रेपत् लज्जित किया अह्रैषीत् लजा गया ।

व्ली—विशरण फूट जाना, व्लीयते पात्रं **व्लेपयति**—णिच् पुक् गुण लट आदि बिखरवाता है अविव्लेपत् । चङ परे द्वित्व आदि । रीयते क्षय कराना, री क्षये णिच पुक आदि रेपयति नाश करवाता । अरिरेपत् । क्नूयते कूं-कूं की आवाज वह शब्द कोई करवाता हो । क्नोपयति (क्नू य) से णिच् युक होगा । तब लोपो व्योर्वलिसे पुगन्त मानकर गुण । क्ष्मायते विधूनन कांपना णि पु यलोप आदि क्ष्मापयति कंपवाता है या धुनता है आकारान्तसे पुक्का प्रयोग । मूर्तिः तिष्ठति चैत्रः तां स्थापयति (ष्ठा गतिनिवृत्तौ) स्थिर होना रुक जाना अर्थ उसके निष्ठामें प्रेरणा हो कि ठहरो तब स्थापयति, स्थासे णिच पुक् लट आदि । स तिष्ठतु तं स्थापयतु गोधूमं अन्नालये अस्थापयत् । अन्यानि वस्तूनि स्थापयिष्यति स्थापना उसकी प्रेरणा

जिघ्रतेर्वा ।७।४।६। अजिघ्रिपत्-अजिघ्रपत्, शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् ।७।३।३७। णौ । पुकोऽपवादः । शाययति । अशीशयत् । ह्वाययति । ह्वः सम्प्रसारणम् ।६।१।३२। सन्परे चङ्परे च णौ ह्वः सम्प्रसारणं स्यात् । अजूहवत्-अजुहावत् । काण्यादीनां वेति वक्तव्यम् । यन्ताः कणरणभणश्रणलुषहेठाः

समास हो, लुङि (स्थापि अ त्) तिष्ठतेः—णौ चङि उपधायाः की अनुवृत्ति । स्था धातुकी उपधाको इ हो चङ्परक णिपरे । आ को इ स्थिप को द्वित्वादि तिस्थिप व ठ अतिष्ठिपत् अतिष्ठिपताम् अतिष्ठिपन् स्थापना करवाया ।

पुष्पं जिघ्रति इति पुष्पाणि घ्रापयति सूंघता है सुघवाता है घ्रापयतु घ्रापयेत् चेत्तेन । अघ्रासीत इति अजिघ्रपत् घ्रापि लुङ चङ पुक् आदि । जिघ्रते-घ्रा धातुके उपधाको इत् हो, चङ परक णिपरे । इत्व होकर घ्रिपको द्वित्व (अजिघ्रिप अत्) जब न इत्व तब घ्रप घ्रप द्वित्व सन्यतः अजिघ्रपत अजिघ्रपन् सुगन्धिम् ।

शाच्छास—शो तनूकरणे छील-छालकर पतला करना, दो छेदने बरङासे छेद करना, षो अन्तकर्मणि दाह संस्कार अन्तिम कर्म, ह्वेञ स्पर्धायां शब्दे च । वेञ संबरणे इन धातुओंको आत्व करके सूत्रमें पढ़ा है । वेञ् तन्तुसन्ताने, पापाने, इनका द्वन्द्व इनके युक् हो पुक्को बाधकर । क इत् (उ उच्चा०) अन्त आगमके लिये लुक् विकरण (पा रक्षणे) पाति है, अलुक् विकरण (पा पा) पिबति इस सूत्रमें मान्य है लुग्विकरणालुग्विकरणयोः अलुग्विकरणस्य ग्रहणं शाययति छील छालकर पतला करने अर्थं वाचक शो धातुसे णिच् (आदेच उपदेशे) आत्व (शा ई) शाच्छासाह्वावे पां ह्वा युक् य । पुक् बाधकर । शायि तक्षा स्यति काष्ठं, बड़ई लकड़ी काटता है। स्वामी तेन काष्ठं शाययति छीलवाता पतला करवाता है लट ति शप् यतः यन्ति । शाययसि शाययिता शाययतु अशाययत् पतला करवाया । अशीशयत् प्रेरणा सहित तनूकरणक्रियावाचक शायि धातोः लुङि चङि इत्यादि (अशायि अत्) शाशा द्वित्व णिलोप, ह्रस्व सन्यतः इत्व दीर्घो लधोः, शाच्छा ।

तक्षा काष्ठं छयति छेदकर्ता कश्चित्प्रेरयति तेन **छाययति** छेद करवाता । छो छेदने णिच् युक् आत्वसे छायि ल-ति आदि छाययन्ति । अहं छाययामि कुण्ठ कपाटं छाययतु, छेद करवाये, अहं छाययानि मैं छेद करवाऊं ? अचिच्छयत् एककर्तृक भूतकालिक छिद्र विषयक प्रेरणा (कर्मनें लगवाना) वाचक छायि छातुसे लुङि चङि आदि छा छा चछा णिलोप ह्रस्वादि, (साययति) सः स्यति कर्मसमास करता है या अन्तिम संस्कार । सो धातुसे णिच् आत्व युक् लट् आदि अन्तिमकर्म करवाता है । असीषयत् । **ह्वाययति** स्पर्धा एक दूसरेसे बढ़नेकी इच्छा करवाता या शोरगुल करवा चुका हो लुङिमें (अह्वायि अत । ह्वः सम्प्रसारण ह्वे को आत्वकर षष्ठीका रूप । णौच—संश्चङः अनुवृत्त । सन्परक या चङ परक णिपरे हो, ह्वा को सम्प्रसारण (व को उ) हु हो उसके आश्रित कार्यं पूर्वरूप बलवान् हुआ तब द्वित्वे, दूसरे हुको वृद्धि आव् । प्रथम हु को कुहोश्चुः, उपधा ह्रस्व, सम्प्रसारण

काण्यादयः षड् भाष्ये उक्ताः। ह्वायिवाणिलोटिलोपयश्चत्वारोऽधिका न्यासे। 'चाणिलोटि' इत्यप्यन्यत्र। इत्थं द्वादश। अचीकणत् अचकाणत् पाययति

लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य।७।४।४। पिबतेरुपधाया लोपः स्यात्, अभ्यासस्य ईदन्तादेशश्च चङ्परे णौ। अपीप्यत् पातेर्णौ लुग्वक्तव्यः पुकोऽप-

---

पूर्वरूप होनेसे युक् नहीं हुआ। वेति—स्वीकारता है व्याययति अवीव्यत् व्ये को सम्प्रसारण पूर्वरूप करके द्वित्व आदि (वाययति) तन्तु सन्तान सिलाई करवाता है कपड़ा बुनवाता। वाययतु बुनवानेकी क्रिया समाप्त अविवयत्

(वा०) **काणि**—आदि धातुओंको विकल्पसे उपधा ह्रस्व कहें। चङ्परक णिपरे। किन्तु ण्यन्त ही होने पर ह्रस्व। वे काण्यादि कौन है? **कण**-निमीलने एक आंख बन्द कर ताकना-कणति काणयति काणयिता अकाणयत्। एक नेत्र निमीलित कर देखा। **रण**-शब्दे पादौ रिणन्नुपुरौ। भण शब्दे स्पष्ट बोलना, श्राण दाने लुप छेदने हेठ विबाधायां छ धातु काण्यादि भाष्यमें पढ़े हैं। किन्तु ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च। आत्व युक् ह्वायि। वण शब्दे, लुट प्रतीघाते, लप व्यक्तायां वाचि न्यासकार इन चारोको अधिक मानते हैं। चाणि लोटि, चण दाने चणति चना देता है। लुट स्तेये लुटति लोटयति धातु भी कहीं मिलते हैं। चुरादिमें दण्डक पाठ में भाषार्थक भी हैं। ये दोनों भाष्य न्यासग्रन्थसे अन्यत्र किसी ग्रन्थमें पढ़े हैं इस प्रकार काण्यादि बारह हे। स नेत्रम् अकाणीत् एक आखें मूंदकर देखा। वह क्रिया प्रेरणाका विषय बनी हो। लुङि् चङ द्वित्व आदि **अचीकणत्**। जब उपधा ह्रस्व तब लघु परे मिला इत्व दीर्घ, जब न ह्रस्व तब न इत्व दीर्घ। **अचकाणत्**-एक नेत्र मूंदकर देखवाया। रणति मधुरं गायति रणयति मधुरध्वनि करवाया। रणतु रणयतु अरणत् अरणयत् बजाया बजवाया जब बजवा चुका हो, ध्वनि करवाया हो (अ राण इ अ त्) चङिसे द्वित्व काण्यादीनां वा ह्रस्व, इत्व दीर्घ अरीरणत् अरराणत्। सितार बजवाया। भणति आवाज, भाणयति बोलवाता है, अभाणीत् इत **अबीभणत्**। चङ परे द्वित्व अभ्यासको इत्व आदि। दान करवाया अर्थमें अशिश्रणत् अशश्राणत्। दान दिलाया। अलूलुपत अलुलोकत् लोप नाश छेदन करवाया अजीहिठत् अजिहेठत् अजूहवत् अजुहावत् स्पर्धा एक दूसरेसे बढ़नेकी इच्छा, प्रेरणा कर चुका। वणति वाणयति अवाणीत् इति अवीवणत् अववाणत् शब्द करवाया। लुठति लोठयति वह प्रेरित क्रिया जब समाप्त हो अलूलुठत् अलुलोठत् बदलेकी भावनासे लूट-पाट करवाया। लपते स्पष्ट बोलता है लापयति बोलवाता है। अलीलपत् अललापत् स्पष्ट कहलवाया। चण दाने चणति चणयति (अचाणीत्) अचीचणत् दिया दिलाया अचचाणत्। लुटति लूटता है लोटयति लूट करवाता है। अलोटीत् इति अलूलुटत्। स्तेय चोरी करवाया। प्रत्येकमें काण्यादीनांसे वा ह्रस्वी तब सन्यतःसे इत्व दीर्घ आदि।

लोप—सः जलं पिवति वाहीकः प्रेरयति जलं पिव इति। पानीयं पाययाति पान

वादः । पालयति । **वो विधूनने जुक्** ।७।३।३८। वातेर्जुक् स्याण्णौ कम्पेऽर्थे । वाजयति । 'कम्पे' किम् ? केशान् वापयति । **शदेरगतौ तः** ।७।३।४२। शदेर्णौ तोऽन्तादेश स्यान्न तु गतौ । शातयति । गतौ तु गाः शादयति गोविन्दः । गमयतीत्यर्थः । **रुहः पोऽन्यतरस्याम्** ।७।३।४३। णौ । रोपयति-रोहयति । **दोषो णौ** ।६।४।९०। दुष्यते रुपधाया ऊत् स्याण्णौ । दूषयति । **वा चित्तविरागे** ।६।४।९१। विरागोऽप्रीतता । चित्तं दूषयति-दोषयति वा कामः ।

पिलवाता है । लुङिमें विशेष बोले–पा धातुसे णि य पायि पिलाना अर्थवाचकसे लुङि चङि पा पा पपा णिलोप ह्रस्व (अपीप्य अत्) लोपः । **पिब**—पा धातुके उपधाका लोप हो, अभ्यासको इत अत् आदेश भी हो, चङ् परक णिपरे । जो अनुवृत्तिसे आये । पाय पाय द्वित्व दूसरे पा के आ का लोप, पहले पा के इत्व उपधा लोपसे अग्लोपि हुआ सन्वद्का निषेध, इत्व दीर्घ प्राप्त नहीं, अतः सूत्र पढ़ा ।

(वा) **पाते**—पा धातुसे लुक् हो णिपरे, पुकको बाधकर । पा रक्षणे पाति रक्षति रक्षा करवाने अर्थमें णिच् आदन्त देख पुक् प्राप्तको बाधकर लुक् ल । पालयति पालयतः पालयन्ति । यद्यपि पाल रक्षणेसे पालयति बनता, तथापि पुक् निवृत्त न होता अपीपलत् ।

वो विधूनने–वा धातुसे जुक् हो णिपरे, कम्पन अर्थमें । ओवै शोषणेको आत्व का षष्ठी रूप वो । अतिह्री से ही आया, **वाजयति** घोड़ाका दौड़ना । वयि से णिचि आत्व लुक् वाजपति । कम्पन अर्थ क्यों ? केशान् वापयति वा'गतिगन्धनयो सुगन्धि करोति सुगन्धि लगाना गन्ध वासे लुक् न हो अतः कम्पनार्थ कहा ।

शदेः·शद धातुको त अन्तादेश हो णिपरे गति अर्थ न हो तब। **शातयति,** वत्सः सीदति, वाहकः तं शातयति दुःख देता है शद इ उपधावृद्धि दको त, सताना अर्थ, गति अर्थमें त नहीं होता, गाः शादयति गायोंको हांककर ले जाने वाला गोविन्द हंकवाता है । **रुहः**–णिपरे रुह धातुके प अन्त आदेश हो विकल्पसे । **रोपयति** । बीजं रुहते रोहयति तं प्रेरयति धान्यं रोपयति रोपनी करवाना, णिपरे रुहके हको प । पक्षमें रोहयति पौधा उगाना । **दोषो**—दुष धातुकी उपधाको ऊत् हो णिपरे (दुषवैकृत्ये) विकृत होनेकी क्रिया घृतं दुष्यति श्वा तं दूषयति शुद्धका अशुद्ध होना विकृति है दोषपूर्ण दोष या दुषसे प्रेरणा अर्थमें णिच् (दोषो णौ) णि परे ऊत् लट आदि । दूषयतः दूषयन्ति दूषयसि दूषयथः दूषयामि दूषयामः । णिपरे क्यों ? दोषः में उत् न हो । वही विकार (दोष) चित्तमें हो तब विकल्पसे ऊत् हो (वा०) चित्त में विराग आ जाय तब वा ऊत् चिती संज्ञाने सम्यक्-पूर्णज्ञान (दोषो णौ)ऊदुपधाया की अनुवृत्ति, चित्तमें विराग अप्रीतता इच्छाका विरह, राग आसक्तिसे मन हटे, तब दुष्की उपधाको उत् हो णिपरे । दुष धातुके लघूपध गुणसे दोष बना । चित्त–दुष्यति मन बुद्धि चित्तमें विराग=अनासक्ति (लोभका अभाव) आ रहा है स्नान, सन्ध्यावन्दनादि नित्य कर्मसे विरक्त हो रहा है, तं कामः प्रेरयति यत्सत्कर्मंगा चित्तं

उभौ साभ्यासस्य ।८।४।२१। साभ्यासस्यानितेरुभौ नकारौ णत्वं प्राप्नुतो निमित्ते सति। प्राणिणत्। **णौ गमिरबोधने** ।२।४।४६। इणो गमिः स्याण्णौ। गमयति, बोधने तु प्रत्याययति। घट चेष्टायाम्। (ग०) घटादयो मितः। जनीजृष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च। एते मितः। (ग०) ज्वलह्वलह्मलनमामनुपसर्गाद्वा। अनुपसर्गादेषां मित्त्वं वा। ग्लास्नावनुवमां च। अनुपसर्गादेषां मित्त्वं वा। न कम्यमिचमाम्। अमन्तत्वात्प्राप्तं मित्त्वमेषां न। यमोऽपरिवेषणे। यच्छतेर्भोजनतोऽन्यत्र मित्त्वं न। स्खदिरवपरिभ्यां च। स्खदिरवपरिभ्यां परीभूतो मित् न। **मितां ह्रस्वः** ।६।४।९२। घटादीनां, ज्ञपादीनां च णावुपधायां ह्रस्वः। घटयति। अजीघटत्। ज्ञप ज्ञाने, ज्ञापने च। ज्ञपयति। अजिज्ञपत्। **रभेरशब्लिटोः** ।७।१।६३। रभेर्नुमचि, न तु शब्लिटोः। **लभेश्च** ।७।१।६४। लभेर्नुम् स्यादचि, न तु शब्लिटोः। अररम्भत्। अलल-

---

विरक्त भवतु। दोष धातुसे णिच चित्त विराग जानकर वा ऊर् हुआ। **दूषयति** न ऊत् **दोषयति** कामदेव मनः अदुदूषत दूषयिष्यति दूषयतु अदुदूषतां अदुदूषन्।

उभौ—अनितेः आया, अन प्राणने धातु है रषाभ्यांनोणः का अधिकार, उपसर्गात्की अनुवृत्ति, अभ्यासके सहित अनप्राणने धातुके उभौ=दोनों नकारको ण हो (णत्वका निमित्त) र परे रहते **उपसर्गस्थ** रहते। अनिति जीता है प्राण आ रहा हैं तं प्रेरयति आनयति जिलाता है। लुङिमें चङि। प्र अन इ अत दशामें अनितेः सूत्रसे णत्वको असिद्ध कर, निको द्वित्व णिलोप आदि। अभ्यास नकारके व्यवधानसे णत्व प्राप्त नहीं तो दोनों नकारको णत्व। (उभौ साभ्यासस्य सूत्रसे) **इणो गमि** (इणो गाङ् लुङिसे इण आया) इण धातुको गम आदेश हो णि परे बोध ज्ञान अर्थ होने पर, बालक एति तं दासी **गमयति** प्रापयति। णिपरे इण्को गम। यदि बोध-ज्ञान होनेकी प्रेरणा है, तब **गम** आदेश नहीं होता अतः कहा **बोधने तु**—प्रत्याययति बोधयति ज्ञान कराता है (प्रति इ अ ति) णिच्परे वृद्धि आय् यण्, लुङि में प्रत्यायियत् बोध करवाया इणो यण्को बाधकर वृद्धि (आयि अत्) यि को द्वित्व।

रभे—इदितोः से नुमि रधिजभोसे अचि आया। रभ धातुसे नुम् हो अच्परे शप लिट परे न हो। अररम्भत् स अरम्भीत् रभ रामस्ये भीड़की प्रेरणा अर्थमें णिच। भीड़ कराया चङ आदि रभेरशब्लिटोः से नुम्। तब द्वित्व आदि। ररम्भ संयोग परे है लघु नहीं, अ को न सन्वद्, न इत्व। अररम्भत् एवं लभते लाभ क्रिया प्रेरणा का विषय हो कि लाभ लो। अचि क्यों पढा? आरब्धम् अचि परे नहीं। अशप्, लिट क्यों? रभते रभे नुम न हो। **लभेश्च** लभ धातुसे भी नुम हो अचि परे, शप लिटके अभावमें। लभयति लभयिष्यति अललम्भत् (अलम्भ इ अत्) दशामें अच्परे नुम् चङि द्वित्व ललम्भ।

ईर्ष्यायां—ईर्ष्यसे णिच् लट ति आदि। ईर्ष्या करवाता है। लुङ्में (ईर्ष्य इ

ष्मत्। (ईर्ष्ययति)। ईर्ष्यतेस्तृतीयस्येति वक्तव्यम्। तृतीयव्यञ्जनस्य तृतीयैकाच इति वार्थः। आद्ये षकारस्य द्वित्वं वारयितुमिदम्। द्वितीये तु 'अजादेर्द्वितीयस्य' इत्यस्यापवादतया सन्नन्ते प्रवर्तते। ऐर्ष्यियत्-ऐर्षिष्यत्। द्वितीयव्याख्यायां णिजन्ताच्चङि षकार एवाभ्यासे श्रूयते, हलादिः शेषात्। द्वित्वं तु द्वितीयस्यैव तृतीयाभावेन प्रकृतवार्त्तिकाप्रवृत्तेः। णिच्प्रकरणम्।

अथ सन्नन्तप्रकरणम्

धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ।३।१।७। इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन्प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम्। धातोर्विहितत्वादिह सन

अजादे र्द्वितीयस्यसे ष्यिको द्वित्व, अभ्यासमें ष ही रहेगा। इकार सहित सुनाई देगा, य सहित नहीं, क्योंकि हलादिशेषः लगेगा, द्वित्व तो द्वितीय एकाचको ही होगा, तृतीय एकाच नहीं मिलेगा, प्रसङ्गका वार्तिक नहीं लगेगा, चङ परे तृतीय एकाच नहीं है वह तो सन्नन्तमें मिलता है। इति प्राभाकरीटीकायां ण्यन्तप्रक्रिया।

अथ सन्नन्तप्रक्रिया=सनका अर्थ इच्छा है सा किं विषया? वह किसके विषयमें हो? इच्छाका कर्म कौन हो? तिङके प्रकरणसे धातु ही इच्छाका कर्म है, पठितुमिच्छति गन्तुं भोक्तुं श्रोतुम् उत्थातुं स्थातुम् आदिधातु कर्म होंगे वे तुमुन् प्रत्ययसे सूचित हैं, इच्छा एक है व्यक्ति भेदसे अनेक, किन्तु उसका कर्मभूत धातु अनन्त हैं, व्यवहार निर्णायक है। विद्वान्भवितुमिच्छति बुभूषति। सन् अन्त धातु (परार्थाभिधानं) वृत्ति है। अनेक अर्थोंका एकअर्थ एकशक्ति एकधातु समुदायार्थ होना ही वृत्ति है। इच्छार्थक इषधातु उसका कर्म-पठ गम श्रु भुज आदिमें से शब्द सिद्धिके अनुसार किसी एकका इष धातुके साथ मिलित अर्थ, एक अर्थ समुदायार्थ एक धातु धात्वर्थ होता है पठितुमिच्छति पिपठिषति पिपठिष्-सनन्तधातु सनाद्यन्ता धातवः की धातुसंज्ञासे पठ (उच्चारणकी इच्छा) पठकर्मक या विषयक उच्चारण के अनुकूल क्रिया इच्छाका मिलित अर्थ एकार्थीभाव धात्वर्थ है इच्छाका कर्म जैसा होगा उसके अनुकूल धात्वर्थ भी बदलता रहेगा, इस प्रकारसे सनन्तधातुओंकी साधनिका निरूपण करते हैं। सनर्थका विधायक सूत्र—

धातोः—गुप्तिज्किद्भ्यः से सन् आया। **इषि कर्मणः**—इच्छा क्रियाका कर्म हो ऐसे धातुसे और ईषिणैककर्तृकात्—इच्छार्थक धातुके साथ एककर्ता हो, कर्म बना धातुका जो कर्ता, वही इच्छाक्रिया का भी हो तब सन्प्रत्यय हो इच्छा अर्थमें। सूत्रमें इच्छा शब्द श्रुत हैं उसीके प्रति कर्म स्वीकार करें। इच्छाका कर्ता भी कर्मीभूत क्रियाके कर्ताका एक होना इष्ट है। **समानाधिकरण**—एक समान आधारभूत कर्ता हो एकार्थीभाव हुये धातुओंका कर्ता एक हो, ऐसी क्रियावाचक धातुसे इच्छा अर्थमें सन्। समानकर्ता कहनेसे धातु अर्थ खुल जाता, क्योंकि धात्वर्थ व्यापाराश्रयः कर्ता प्रसिद्ध है तब कहा **धातोः**—धातुसे विधान किया गया सन् आर्धधातुकसंज्ञा हो धातुसे परे सन्को नहीं, अन्यथा जुगुप्सते यहां गुप्तिज्से सन् है वहां आर्धधातु

आर्धधातुकत्वम्, इट् सन्यङो ।६।१।६।सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथम स्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य 'सन्यतः' पठितुमिच्छति पिपठिषति। 'कर्मणः' किम् ? गमनेनेच्छतीति करणान्माभूत्। 'समानकर्तृकात्' किम् ? शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः। वाग्रहणात् पक्षे वाक्यमपि। शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः। सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ॥

मानकर लघूपध गुण होने लगेगा। इच्छार्थक सन्को आर्धधातुकसंज्ञाका फल कहा इट (जो वलादि आर्धधातुकको होता है। द्वित्व (संयङोः से) अभ्यासके इत्व होने का स्मरण सन्यतः। यथा–पठितुमिच्छति पढ़ना चाहता है पढ़ना क्रिया चाहना क्रियाका कर्ता एक है, समान है पठितु में तुमन्का अर्थ धात्वर्थ भाव क्रिया है। गन्तुंका गमन क्रिया अर्थ पठितु पठनक्रिया, इच्छाका कर्म है दोनों क्रियाका एककर्ता सन् प्रत्ययसे सूचित है स्वकर्तृकपठनमिच्छति।

पिपठिषति–पढ़ने, चाहनेका स्वयं कर्ता है। पठ धातोःसे एककर्ता पढ़नेकी इच्छा अर्थमें सन्, उसको आर्धधातुकसंज्ञा तिङ शित्से भिन्न है वलादि आर्धधातुक (स) को इट् (पठ इष) सन्यङोः सूत्रसे सन्परे देख पठको द्वित्व (पपठ इष्) सन्यतः सन्परे अभ्यास (प) को इत्व। पिपठिष्–सनाद्यन्तधातुः एककर्तामें पढ़नेकी इच्छानुकूल क्रिया अर्थ, समानकर्तृकपठनविषयक इच्छानुकूलव्यापारः पिपठिषका अर्थ। दो क्रियाएं मिलकर एकक्रिया होना एकार्थीभाव वृत्ति है पञ्चवृत्तिमें गणना भी है पिषठिषकी धातुसंज्ञा लट तिप शप पिपठिषति पिपठिषतः पिपठिषन्ति। पिपठिषसि पिपठिषम् अहं कर्तृकपठनकर्मक वर्तमानकालिकक्रिया। पिपठिष्यति, पिपठिषतु अहं पिपठिषानि लङमें पठितुमिच्छत् अपिपठिषत्। **कर्मणः किं** ? सूत्रमें इष धातुका कर्म क्यों कहा। जहां जो धातु इच्छाका कर्म हो उसी धातुसे सन् होनेके लिये। यदि कर्म नहीं रहेगा किसी भी कारक की स्थितिमें धातुसे सन् होने लगेगा। (गमनेन इच्छति) तृतीया करणसे धातु उपस्थित है तब जानेकी इच्छा अर्थमें सन् न हो अतः कर्म पढ़ा। पठनाय गच्छति आदिसे न सन्। समानकर्ता क्यों कहा ? समानका एक कर्ता अर्थ (एकोऽन्यार्थे समाने अल्पे पर्याय है) जहां दो कर्ता हों पठनका दूसरा इच्छाका दूसरा कर्ता हो वहां सन् न हो, शिष्य पढे गुरु इच्छा करते हैं पठन क्रिया का कर्ता शिष्य भिन्न है। सम्भावित इच्छाका कर्ता गुरु है सन् न हो। सूत्रमें विकल्पका सूचक (वा) पढ़ा, पक्षमें पठितुमिच्छति वाक्य भी साधु है शक्तिग्राहक है, शाब्दबोधका विषय है।

श्लोकवार्तिक—**शैषिकात्**–सन् विधायक सूत्र पर कहा–शैषिकात् सरूपः प्रयत्यो न, शेषे भवः शैषिकः, शैषाधिकारे पठितः प्रत्ययः, भव अर्थमें शेषसे अध्यात्मादिभ्यश्च ठ इक शैषिक, शेष अर्थमें हुए प्रत्ययके बाद उसीसे उसीके समान रूप वाला प्रत्यय नहीं होता। जैसे शालायां भवः **शालीयः** वत्सः भवनमें पैदा हुआ, शाला वृद्धसंज्ञक है। आदि अच् वृद्ध होनेसे वृद्धात् छ-ईय (शाला ईय) आलोप शालीयः। अब चाहे की शालीये भवः अर्थमें पुनः छ हो, नहीं होगा एकबार छ

तेन–पिपठिषितुमिच्छतीति वाक्यमेव । 'लुङ्सनोर्घस्लृ' 'एकाच उपदेशे' इति नेट्, सः स्यार्द्धधातुके ।७।४।४९। सस्य तः स्यात्सादावार्द्धधातुके । सस्य तत्त्वम् । अत्तुमिच्छति=जिघत्सति । 'ईर्ष्यतेस्तृती-यस्ये'ति यिसनोर्द्वित्वम् । ईर्ष्यियिषति । अज्झनगमां सनि ।६।४।१६। अजन्तानां हन्तेरजादेशग मेश्च

प्रत्यय हो चुकनेसे सरूप समान रूप होनेसे । यदि प्रत्यय विषम रूप हो जैसे छ-अण् ठक् आदि तब हो सकते हैं। एवं **मतुबर्थे**—भवः मतुबर्थीयः गहादिभ्यश्च छ-ईय मतुप् अर्थमें हुआ । छ प्रत्यय मतुबर्थीयसे पुनः छ नहीं होगा समानरूप होनेसे । क्योंकि मतुबर्थो अस्यास्ति (अत इनिठनौ) ठ-इक मतुबर्थिक प्रत्ययः न=सरूप प्रत्यय नहीं होते । इसी प्रकार सन्नन्त पिपठिष आदिसे सन्प्रत्यय नही होता, सरूप होनेसे नेष्टः । वार्तिकमें **सरूप क्यों पढ़ा** ? इसलिए कि समानरूप वाले प्रत्यय न हो, किन्तु विरूप हो । अहिच्छत्र देशमें पैदा हुआ । अर्थमें अण् आदिवृद्धि । आहिच्छत्रे भवः अर्थमें वृद्धात् छ प्रत्यय होगा (विरूप होनेसे) पुनः अण् नहीं होगा, सरूप होनेसे। अण् अन्तसे छ हुआ **आहिच्छत्रीयः**, तथा-इसी प्रकार मत्वर्थप्रत्ययसे समानरूप प्रत्यय नहीं होता। जैसे धनम् अस्ति अस्य धनवान् धनसे मतुप् हुआ उससे पुनः मतुप् नहीं होगा, धनवान् अस्ति अस्य पुनः मतुप् नहीं हुआ । विरूप= विपरीत रूपवाला प्रत्यय होगा (**विरुपस्तु स्यादेव**) होता ही है। जैसे दण्डमस्ति अस्य दण्डी इन् प्रत्यय हुआ, उससे मतुप् भी हो सकता है। विरूप होनेसे । दण्डिनः सन्ति अस्यां शालायां सा दण्डिमती ।

जिघत्सति—अत्तुमिच्छति खाना चाहता है भोजन क्रिया और चाहना दोनों का एककर्ता है अतः अद्भक्षणे धातुसे समानकर्ता, भोजनकी इच्छा अर्थमें सन् (अद स) अनिट् अकर्मक है, इस दशामें अदको घस्लृ आदेशका स्मारक (लुङ्सनोः) लुङ् परे सन्परे अद्को घस् हो (घस स) अब वलादि इट प्राप्त हुआ, एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्से इट निषेध । प्रथम उच्चारण दशामें अद् या घस् अनुदात्त है एकाच भी घस स दशामें सस्यार्धधातुके सूत्रसे सको त । घत्स-सन्यङोः सन्परे देख घत्को द्वित्व अभ्यासको जश चवर्ग ज, सन्यतः इत्व (जिघत्स) एककर्तामें खानेकी वर्तमान इच्छा एकनिष्ठा भक्षणगोचरा वर्तमाना इच्छा धात्वर्थ धातुसंज्ञा लट आदि जिघत्सन्ति । खाना चाहते हैं । अजिघत्सत् जिघत्सिष्यत् ।

ईर्ष्यते—ईर्ष्या=परस्पर द्वेष डाहकी इच्छा अर्थमें सन्, वलादि आर्धधातुक जानकर इट (ईर्ष्य इष) तृतीय व्यञ्जनको द्वित्व पक्षमें य को द्वित्व, षत्व इष्को मिला दो, यका रूप ईर्ष्यियिषत्। जब तृतीय एकाचको द्वित्व तब सको द्वित्व (स स). अभ्यासको इत्व दोनों, सको ष-ईर्ष्यिषिषति एकनिष्ठा ईर्ष्यागोचरा वर्तमानेच्छा ।

अच् हन्—गम हनके बीच द्वन्द्व । नोपधायाः से उपधा आया । अजन्तधातुको हनधातुको अजादेश (इणके स्थानमें आदेश) गम धातुको दीर्घ हो झलादि सन्परे,

दीर्घः स्याज्झलादौ सनि । इको झल् ।१।२।६। इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात् । कर्त्तुमिच्छति चिकीर्षति । जिघांसति । सनि च ।२।४।४७। इणो गमिः स्यात्सनि, न तु बोधने । जिगमिषति । बोधने प्रतीषिषति । इङश्च ।२।४।४८। इङो गमिः स्यात्सनि । अधिजिगांसते । रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः

इको—इगन्त अङ्ग से परे झलादि सन् कित् हो । धातुके छोटे ऋको इ हो । कर्तुमिच्छति बालः विग्रहमें उत्पत्ति क्रियावाचक कृधातुसे (समानकर्तामें) इच्छार्थक सन् । कृ-स आर्धधातुकसंज्ञा वलादि इट् प्राप्त (एकाच्) उपदेशेऽनु-सें निषेध । अत्र अज्झनगमां सनि सूत्रसे, कृ को दीर्घ । इको झल् सूत्रसे सन् कित् है । उसका फलं क्ङिति चेति गुणनिषेधः । कृ-स ऋत् इद्धातोः ऋको इ रपरे हलिचेति दीर्घ । कीर्स ततः सन्यङोः से द्वित्व अभ्यास आदिकार्य (सन्यतः) इत्व, सको ष 'चकीर्ष' इति सनाद्यन्तधातुः उत्पत्ति विषयक-इच्छा क्रिया, तस्याः वर्तमानकालिक ल ति शबादिः । चिकीर्षति चिकीर्षतः चिकीर्षन्ति चिकीर्षसि थःथ । चिकीर्षामि षावः मः । चिकीर्षिष्यति, चिकीर्षतु अचिकीर्षत् अचिकीर्षीत् । चिकीर्ष्यात् चिकीर्षेत् आदि । प्रेरणासे जुड़ गया हो काम कराना है । कारयितुमिच्छति चिकारयिषति । अचिकारयिषीत् अपिपाठयिषति । पक्तुमिच्छति पिपक्षति पाचयितुमिच्छति पिपाचयिषति अपिपाचयिषीत् तण्डुलः पिपाचयिष्ये ।

जिघांसति—हन्तुमिच्छति हिंसार्थक हन्से हिंसा क्रियाकी इच्छा और समान कर्ता अर्थमें सन्, जिसके परे अज्झनगमांसे हके अको दीर्घ । क्योंकि दीर्घ शब्द सुनकर अच उपतिष्ठते अचको ही दीर्घ (हान स) सन्यङोः द्वित्वादि जहान अभ्यासाच्चः से कुत्व, नश्चासे अनुस्वार (जिघांसति) । एककर्तामें वर्तमान हननेच्छा ।

सनि च—इणो गा से इण (णौ) गमिरबोधनेकी अनुवृत्ति । इणके स्थानमें गम आदेश हो, ज्ञान होना अर्थ न हो तब । जिगमिषति एतुं गन्तुमिच्छति जाना चाहता है गमनार्थक इ धातुसे इच्छार्थक सन्, सन्परे इको गम आदेश, द्वित्वादि (गमेरिट परस्मैपदेषु) गम-गम गगम जगम । सन्यतः इत्व, अजिगमिषत् जाना चाहा यदि प्रति एतुं बोधयितुमिच्छति विग्रह होगा तब ज्ञानार्थक होनेसे, गम आदेशः न । प्रति उपसर्ग इषको द्वित्व क्योंकि अजादेर्द्वितीयस्य सको द्वित्व, अभ्यास सको इत्व, सवर्णदीर्घ दोनों स ष हुये । प्रतीषिषति ।

इङश्च—अध्ययनार्थक इङ धातुके स्थानमें गम आदेश हो, सन्परे णौ । गमिरबोधनेसे गमि, सनि च से सनि आया। अधिजिगांसते अध्येतुमिच्छति पढ़ना चाहता है अधिपूर्वक इधातुसे अध्ययन क्रियाकी इच्छा दोनों क्रियाका एककर्ता अर्थमें सन् । इङश्च इको गम आदेश, गगम जगम अज्झनगमां सनिसे दीर्घ, पूर्ववत्सनः आत्मनेपद जिगांसते-सन्ते । अनेक कर्तामें अध्ययन विषयिणी इच्छा ।

रुद विद—(रोदन ज्ञान अर्थमें) मुष (स्तेये चोरी अर्थमें) ग्रह उपादाने ग्रहण अर्थ, स्वप शये, सोने अर्थमें, प्रच्छज्ञीप्सायां जिज्ञासा ज्ञानकी इच्छा अर्थमें इन

संश्च ।१।२।८। एभ्यः संश्च, क्त्वा च कितौ स्तः । रुरुदिषति विविदिषति । मुमुषिषति । सनि ग्रहगुहोश्च ।७।२।१२। ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण्न स्यात् । 'ग्रहिज्ये'ति सम्प्रसारणम् । सनः षत्वस्यासिद्धत्वाद्भष्भावः । जिघृक्षति । हलन्ताच्च ।१।२।१०। इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित्स्यात् ।

धातुओंसे परे सन् क्त्वा कित् हों । मुषको रलोव्युपधात्से विकल्प कित् प्राप्त था नित्य कित् रुदित्वा विदित्वा मुषित्वामें गुण अभावके लिये । गृहीत्वा सुप्त्वा पृष्ट्वा में सम्प्रसारण भी फल । असंयोगात्से कित् आया । रुदके साथ विद ज्ञाने धातु माध्य, अथवा सभी प्रिय । न क्त्वा सेटके निषेधको भी बांधनेके लिये । रोदितुमिच्छति (रुरुदिषति) एककर्तामें रोनेकी वर्तमानकालिक इच्छा—सन् इट् द्वित्व लट् आदि । रुरुदिषतः रुरुदिष्यन्ति अनेककर्तामें रोनेकी वर्तमान इच्छा । रुदविदमुष आदि सूत्रसे सन कित होनेका फल गुणनिषेधः जो पुगन्त लघूपधस्य च से प्राप्त था । वेत्तुमिच्छति विविदिषति जानना चाहता है यहाँ भी विदसे ज्ञानकी इच्छा और एककर्तामें सन इट द्वित्व इत्यादि । विविदिषिष्यति अविविदिषत् । मोषितुमिच्छति मुमुषिषति चुराना चाहता है स्तेयकर्मक इच्छानुकूलाक्रिया सनाद्यन्त धातुका अर्थः। सन् इट द्वित्व आदि मूषकाः मुमुषिषन्ति मुमुषिषसि वयं मुमुषिषामः अमुमुषिषत् ।

सनि ग्रह—उपादाने गुहूसंवरणे धातुसे और पुगन्त (उ ऋ लृ अन्त) धातुसे परे सन्को इट न हो । श्र्युकः से उक् आया, नेड्वशिसे नेट भी । ग्रह धातुसे नित्य इट, गुहको ऊदितो वा विकल्प इट प्राप्त था, गृहीतुमिच्छति (जिघृक्षति) पकड़ना चाहता है, एककर्तामें आदानकी इच्छा अर्थमें सन् (ग्रह स) दशामें नित्य इटको बाधकर सनिग्रहगुहोश्चसे सन् कित हुआ, जिसके परे ग्रहिज्यावयिव्यधि सूत्रसे र को सम्प्रसारण ऋ (गृह स) दशामें होढः से झलि परे हको ढः ढको षढोकः (गृकस) सको ष दशामें झषन्त नहीं भष्भाव कैसे ? तब कहा सन्का षत्व असिद्ध हो जानेसे झषन्त मिलेगा भष्भाव होगा । क्रम यह है कि परत्वात्षत्व हो जाता है उसे असिद्ध करके भष्भाव तब षत्व **जिघृक्षति** (ग्रहण करना चाहता है) राहुः सूर्यं एवम् उगन्तमें भवितुमिच्छति बुभूषति, लवितुमिच्छति लुलूषति स्वपितुमिच्छति सुषुप्सति एकनिष्ठा शयन गोचरा वर्तमानेच्छा । शयनार्थक स्वप् धातुसे एककर्तृक शयनक्रियाकी इच्छा अर्थमें सन् । रुदविद मुष आदि सूत्रसे सन्को कित्का दो फल, एक वचिस्वपिसे सम्प्रसारण, दूसरा लघूपधस्यके गुणका अभाव । द्वित्व आदि । सुषुप्स । समान कर्तृका शयनकर्मिका इच्छाक्रिया सनाद्यन्तधातुः का अर्थः ततः लडादिः ।

हलन्ताच्च—सूत्रमें हको झल् पूरा आया, रुदविद-से सन, असंयोगात्से कित्, अन्तका समीप अर्थ । इक्-इ उ ऋ लृके समीपमें हलसे परे झलादि सनको कित् हो (जुघुक्षति) गूहितुमिच्छति छिपाना स्वीकारना ढकना मिलाना चाहता है । गुह धातोः स्वीकारसम्बन्धी इच्छार्थे सन् इक्-उ उसके समीप हल ह, उससे परे सन कित हुआ । गुणनिषेध फल । सनिग्रहगुहोश्च ऊत् होने पर भी इट निषेधः द्वित्वादिः ।

१.हृ, जुघुक्षति सुषुप्सति। किरश्च पञ्चभ्यः ।७।२।७५। 'कॄ' 'गॄ' 'दृङ्' 'धृङ्' 'प्रच्छ्' एभ्यः सन इट् स्यात्। पिपृच्छिषति। चिकरिषति। जिगरिषति-जिगलिषति। अत्रेटो दीर्घो नेष्टः। पूर्ववत्सनः ।१।३।६२। सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात्। दिदरिषते दिधरिषते। बुभूषति सनीवन्तर्ध-भ्रस्ज-दम्भु-श्रि-स्वृ-यूर्णु-भर-ज्ञपि-सनाम् ।७।२।४९। इवन्तेभ्यः

किरश्च—किरादिभ्यः तुदादिमें कॄ विक्षेपे बिखेरना, गॄ निगरणे लीलना, दृङ् आदरणे स्वागत करना, धृङ अवस्थाने स्थापना, प्रच्छ ज्ञीप्सायां ज्ञानकी इच्छा, इन पांच धातुओंसे परे सन्को इट हो। कॄ गॄ धातुको इट सनि वा से विकल्प प्राप्त ग्रन्थको एकाच उपदेशे अनुदात्तातसे निषेध प्राप्त था इट विधान। प्रष्टुमिच्छति (पिपृच्छिषति) पूंछना चाहता है पूंछना और चाहना दोनों क्रियाका एककर्ता अर्थमें प्रच्छसे सन् कित् ग्रहिज्यासे सम्प्रसारण। पृच्छको द्वित्व सन्यङोः सूत्रसे, सन्यतः इत्व आदि। करितुमिच्छति चिकरिषति बिखेरना चाहता है। विक्षेपार्थक कृसे बिखेरनेकी इच्छा कर्ता अर्थमें सन् इट द्वित्व आदि, किरश्च पञ्चभ्यसे इट चिकरिषन्ति। अनेक लोग बिखेरना चाहते हैं। गरितुमिच्छति (जिगरिषति) लीलना चाहता है निगरणार्थक गॄ धातुसे लीलनेकी इच्छा कर्तामें सन इट द्वित्व आदि ग्रहाः जिगरिषन्ति जब अचि विभाषासे र को ल विकल्प होगा तब जिगलिषति। निगलनानुकूलेच्छानुकूलव्यापारः चिकरिषतिमें वृतो वासे दीर्घ प्राप्त, तब वार्तिक पढ़े कि अत्रेटो—यहां इटको दीर्घ होना इष्ट नहीं। आदर्तुमिच्छति आदिदरिषते आदर सम्मानकी इच्छा समानकर्ता अर्थमें द् स। किरश्च पञ्चभ्यः सन्को इट पूर्ववत्। सनः से आत्मनेपद धरितुमिच्छति दिधरिषते धरने स्थापना करनेकी इच्छा एककर्ता अर्थमें सन् इट आदि पूर्ववत्। उद्धर्तुमिच्छति (उद्दिधीर्षति) सनाशंस भिक्ष उः सनन्त धातु उद्धारकी इच्छाके अनुकूलक्रियाके कर्तामें उ प्रत्यय। यहां आत्मनेपद इट क्यों नहीं? किरादि मानकर। तब लिखा भौवादिकयोः—भ्वादिका धृङ् अवस्थाने धृञ धारणे धातुसे सन्। किरादिगणमें नहीं आता अज्झन-गमां सनि, ऋत् इत् रपर। हलि चसे दीर्घ षत्व उद्धर्तुमिच्छुः उद्दिधीर्षुः।

बुभूषति—भवितुमिच्छति होनेकी इच्छा भवनार्थक भूधातुसे होना सम्बन्धी चाहना क्रिया दोनोंका एककर्ता अर्थमें सन्। इगन्त भूसे परे सन् कित हुआ। जिसका फल गुणनिषेधः। सन्यङोः द्वित्व आदि।

सनीव—सन्परे इवन्त (दिव सिव आदि) धातु रिध गतौ, भ्रस्ज पाके, दम्भु दम्भने, श्रि सेवायां स्वृ शब्दोपतापयोः यु मिश्रणे अमिश्राणे ऊर्णु आच्छादने, भृ भरणे, ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने या मारणतोरणनिशामाने और सन् सम्भक्ति अर्थमें इनसे परे सन्को इट हो, इव अन्ते येषां ते इवन्ताः स्वरतिसूतिसे, इणिनष्ठायांसे इट आया। इटके अभावमें हलन्ताच्चसे कित् जिसका फल च्छ्वोः शूडनु-

ऋधादिभ्यश्च सन इड्वा स्यात। इडभावे 'हलन्ताच्च' इति कित्त्वम्, 'च्छ्वोः' इति वस्य ऊठ्, यण्, द्वित्वम्, दुद्यूषति–दिदेविषति। सुस्यूषति-सिसेविषति।

स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात ।८।३।६१। अभ्यासेणः परस्य स्तौतिण्यन्तयोरेव सस्य ष स्यात् षभूते सनि, नान्यत्र। तुष्टूषति। 'द्युतिस्वाप्योः' इत्युत्वम्, सुष्वापयिषति। सिषाधयिषति। 'स्तौतिण्योः' किम्? सिसिक्षति।

नासिके च वको ऊठ्। इवन्तका उदाहरण दिव क्रीडाविजगीषा, देवितुमिच्छति खेलना विजय व्यवहार स्तुति आदि करना चाहता है दुद्यूषति क्रीडा विजगीषा आदि फलजनक क्रियावाचक दिव धातुसे क्रीडा व्यवहार आदिकी इच्छा कर्तामें सन् (सनीवन्तर्धभ्रस्ज) सूत्र से वा इट्, झलादि नहीं रहा न कित्, ऊठ् भी नहीं, किन्तु गुण (दिदेविदेति) जब न इट तब हलन्ताच्च झलादि सन कित हुआ, जिसका फल गुण निषेधके साथ वको ऊठ्। दिमें इको यण् द्युको द्वित्व अभ्यासादि कार्य (दुद्यूषति) जब सनीवन्तर्ध–सूत्रसे इट् आदि। (दिदेविषति) झलादि सन् परे नहीं न कित् न ऊठ, किन्तु गुण। इव अन्त धातु, सिव तन्तुसन्ताने (सीव्यति) सीता है सेवितुमिच्छति सीना पूरना चाहता है। (सुष्यूषति) तन्तुसन्तान सीना क्रियावाचक सिव धातुसे सीनेकी इच्छा और समानकर्ता अर्थमें सन् हलन्ताच्चसे सन् कित् हुआ, जिसका फल च्छ्वोः शूडनुनासिके वसे वको ऊ, सि-ऊ यण स्यूष, सन्यङोः द्वित्व आदि सुष्यूषति सेवकः सीनेवाला दर्जी सीना चाहता है। द्वितीय सको ष हो। अभ्यास इणसे परे। इस नियमसे ष नहीं, जब इट हुआ तब द्वित्व आदि करके (सिसेविषति) तन्तु सन्तान सूत विस्तारकी क्रिया चाहता है।

स्तौति—स्तु धातु और ण्यन्त धातुके ही अभ्यासके इण्से परे सको ष हो, यदि सन्के सको ष हुआ हो तब। अपदान्तस्य मूर्धन्यः का अधिकार। सहेः साडः से स आया, षभूते—षकारं प्राप्ते सनि (नान्यत्र) अभ्यास इण्से परे सको ष हो। तो स्तु धातु और ण्यन्तसे हो आदेशप्रत्यययोः से षत्व हो जाता यह सूत्र नियमार्थ। जिसका सूचक एवं पद है। स्तुका उदाहरण-स्तोतुमिच्छति तुष्टूषति। स्तु धातुसे स्तुतिकी ईच्छा समानकर्ता अर्थमें सन्। अज्झनगमां सनिसे दीर्घ सन्यङोः से द्वित्व (तुष्टूष) दशामें स्तौतिण्योरेव नियमसे अभ्यास तु, उसका इण् उ, उसको ष सन् का स ष हो चुका है। तुष्टूषतः तुष्टूषन्ति। ण्यन्तका प्रयोग-द्युतिस्वाप्योः से सम्प्रसारण व को उ। ञिस्वप्शये। रामः शेते स्वपिति कौशल्या तं स्वापयति सुलानेकी ईच्छा समानकर्ता, जो सुलाता हो वही ईच्छा भी कर्ता हो तभी सन्। स्वापयितुमिच्छति (सुष्वापयिषति) सुलाने अर्थमें णिचि (स्वप् इ) उपधावृद्धि स्वापिसे सुलावे की इच्छामें सन्। द्युति स्वाप्योः से सम्प्रसारण वको उ पूर्वरूप। सुपको द्वित्व सुसुप वृद्धि गुण आदि, सन्को ष होनेपर, तब अभ्यास इण् परे सको ष। सिध गत्यां सेधति सिद्ध करता है। (साधयति) सिद्ध कराता है। सिद्धि सफलताकी प्राप्ति भी गति है। साधयितुमिच्छति साधना या सिद्ध कराना चाहना अर्थमें सन् इट् (साध

आप्ज्ञाप्यृधामीत् ।७।४।५५। एषामच ईत्स्यात् सादौ सनि । **अत्र लोपोऽभ्यासस्य ।७।४।५८।** 'सनि मीमा इत्यारम्भ यदुक्तं तत्राभ्यासस्य लोपः स्यात् । आप्तुमिच्छति, ईप्सति । अर्धितुमिच्छति, रपरत्वम्, चर्त्वम्, ईर्त्सति-अर्दिधिषति । बिभ्रज्जिषति-बिभर्जिषति=बिभ्रक्षति-बिभर्क्षति । **दम्भ इच्च ।७।४।५६।** दम्भेरच इत्स्यादीच्च सादौ सनि । अभ्यासलोपः, 'हलन्ताच्च'

इइष) द्वित्व सिसाध इष-दशामें स्तौतिण्योरेव नियमसे दूसरे सको ष (सिषाधयिषति) । स्तु ण्यन्तको ही षत्व क्यों ? अन्य धातुसे परे नियम न लगे, नहीं तो सिचिर क्षरणे सिञ्चति वाटिकां माली इच्छति च अर्थे सन्, सेक्तुमिच्छति सींचना चाहता है । सिच् धातुसे सन् हलान्ताच्च हलन्त देखकर कित् किया, लघूपधगुण निषेधके लिए । सिच् सिच सिसिच अभ्यास इण्से परे सको ष नहीं, चको कुत्व क, स-ष कष क्ष ।

इव अन्त धातुकी पूर्णताके पश्चात् ऋध धातुसे समृद्ध धनवान् होनेकी इच्छामें ईर्त्संति रूप बननेके लिए सूत्र। (आप्ज्ञप) ऋध् इन धातुओंके अच्को ई हो सादि=स आदि सन्परे, इट् आदि परे न हो। सनिमीमाघुसे सनि और अच् आया। सि आकर सन्में विशेषण, तदादि । **अत्र लोपो**—इस प्रसङ्गमें सनिमीमाघुरभलभ सूत्रसे लेकर जितने धातु कहे गये उनके अभ्यासका लोप भी हो । उक्त कार्य सनिमीमाघुरभ लभ, आप्ज्ञपि ऋधां, दम्भ इच्च, मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा, इन चारों सूत्रोंके कार्य इस, ईत्, गुण कार्य होने पर ही अभ्यासलोप हो । जैसे आप्तुमिच्छति सम्बन्ध जोड़ना चाहता है । ईप्सति (आप्लृव्याप्तौ) सम्बन्ध जोड़नेके अनुकूल क्रियावाचक आप् धातुसे जोड़नेकी इच्छाके एककर्तामें सन् जिसके परे आ को ई (ईप्स) अजादि धातु है । द्वितीय एकाच् प्सको द्वित्व अभ्यासलोप भी हुआ लट् आदि । एवं ऋद्ध बढ़ा चढ़ा होने क्रियावाचक ऋध्से इच्छा एककर्ता अर्थमें सन् इत्व रपर चर्त्व (ईर्त्स) दूसरे एकाच्को द्वित्व अत्रलोपः से अभ्यासलोप । जब इट् तब गुण । धि धि द्वित्व जश् । **अर्दिधिषति**—धिषको द्वित्व ।

भ्रस्ज—पाके भाड़में भूंजना चाहता है । भ्रज्जितुमिच्छति (विभ्रज्जिषति) भ्रस्ज सको ज परे श्चु श, उसे जश् ज, (भ्रस्ज स) कित् ङित न सम्प्रसारणं। सन्परे इट् भ्रस्जो रोपधायोः से रम् आगमके अभावमें रूप । जब रम होगा (भ्रस्ज इस) दशामें र स दोनोंके स्थानमें र होगा, रेफ स हट गये (भर्ज इष) दशामे द्वित्व हलादि शेष, अभ्यासको इ, जश् आदि । इस प्रकार इट् पक्ष, रम् पक्षके दो रूप । जब इट् नहीं रम नहीं, भ्रस्ज जको क-स-ष द्वित्व आदि बिभर्क्षति रम पक्षमें बिभ्रक्षति ।

दम्भ—धातुके अच्को इ हो ई भी । स आदि, सनसे परे । अत्रलोपः से अभ्यासलोप । दम्भितुमिच्छति धिप्सति घमण्ड करना चाहता है । दम्भसे सन्परे इच्च-अच्को इ । दिम्भ स । दशामें इक्के समीप अव्यवहित अनुस्वार न होनेसे, हलन्ताच्च सूत्रमें हल्को हल्त्वजाति वाला एक या अनेक परक कहनेके लिए जाति-

इत्यत्र हल्ग्रहणं जातिपरमित्युक्तम्, तेन सनः कित्वान्नलोपः धिप्सति-धीप्सति दिदम्भिषति। शिश्रीषति-शिश्रयिषति। 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' सुस्वूर्षति-सिस्वरिषति। युयूषति। यियविषति। ऊर्णुनूषति ऊर्णुनुविषति=ऊर्णुनविषति।

परक कहा उसका फल सन् कित् हुआ। नलोप भी, भष् सन्परे द्वित्व आदि पक्षमें, (धिप्सति) जब सनीवन्तर्ध भ्रस्जदम्भुसे इट् तब सन् झलादि नहीं, न कित् न नलोप (दिदम्भिषति) एककर्तामें दम्भ क्रियाके अनुकूल वर्तमान इच्छा (शिश्रीषति) श्रयितुमिच्छति सेवा चाहता है श्रिञ् सेवायां सेवार्थक श्रि धातुसे सेवाकी इच्छा समान कर्ता अर्थमें सन् अज्झन्गमां सनि परे दीर्घ। सन्के कितसे न गुणः। द्वित्व शिश्रीषन्ति। जब सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भु श्री-से इट पक्षमें झलादि सन् नहीं रहा, न कित् न दीर्घ, द्वित्व आदि। शिश्रीयंषति।

स्वृ—शब्द उपताप कोलाहल उपरो परेशानी चाहता है। अर्थमें सन् ऋको अज्झनगमांसे दीर्घ, तब उदोष्ठ्यपूर्वस्य ओष्ठ स्थान वाला अक्षर पूर्वमें हो (वकारस्य दन्तोष्ठम्) ऋको उ रपर, उपधायाश्च दीर्घ द्वित्व आदि। जब इट् तब स्वृको द्वित्व अभ्यासको उरत् शेष सन्यतःसे इत्व। (सिस्वरिषति) यु मिश्रण अमिश्रणे च मेलाप या अलगावकी इच्छामें युसे सन् कित् दीर्घ। ष द्वित्व, युयूषति मिलाना या अलग करना क्रियाकी वर्तमान इच्छा। जब सनीवन्तर्ध सूत्रसे इट् तब द्विर्वचनेऽचिसे गुणनिषेध युको, द्वित्व (यु यु इस) ओःपुयण्ज्यपरे सूत्रसे सन्यपरे अभ्यासको इत्व गुण अव (यियविषन्ति) मिलाना या अलग करना चाहते हैं।

ऊर्णोतुमिच्छति **ऊर्णुनूषति** ऊनसे ढंकना चाहता है। इच्छा अर्थमें सन् नुपको द्वित्व अजन्त जानकर दीर्घ, इको झलसे सन् कित्का फल गुण निषेधः। जब सनीवन्तर्ध सूत्रसे सन्को इट् नुको द्वित्व, विभाषोर्णोः सन् ङित् पक्षमें उवङ्। जब न ङित् तब गुण अव (ऊर्णुनविषति) दोनों पक्षमें नुको द्वित्व उत्तरखण्डमें एकको उवङ् दूसरेमें गुण अव।

बुभूर्षति—(भृ भरणे) भरण पोषण की इच्छामें सन्। (भृस्) सन्परे अज्झनगमां सूत्रसे दीर्घ, तत्र उदोष्ठ्य पूर्वस्यसे ऋको उर् द्वित्व भुर भुर बुभुर। हलिच दीर्घ बुभूर्ष सनाद्यन्तधातुः, एककर्तामें 'होने क्रियाकी वर्तमानकालिक इच्छा धात्वर्थः। जब सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुसे इट् (भृ इस) दशामें द्वित्व (उरत्) अभ्यासके ऋको अर, शेष सन्यतः से इत्व। उत्तरखण्डको गुण अर् (बिभरिषन्ति) भरणपोषण अबिभरिषत् पालन पोषणकी इच्छा। **ज्ञपिः पुगन्तः**=ज्ञप धातुका ग्रहण सनीवन्तर्ध ज्ञपिसनां सूत्रमें हुआ है। मारण तोषण निशामन अर्थमें ज्ञा धातु घटादि है। उससे प्रेरणा मारण तोषण क्रियामें प्रवृत्ति कराने अर्थमें णिच् पुक्। ज्ञाि मितां ह्रस्वः, ज्ञपि ण्यन्तधातुः। जो यकारान्त चुरादिगणमें पढ़ा है। पुगन्त नहीं ज्ञप मिच्च, मितां ह्रस्व, वह ज्ञप भी सूत्रमें स्वीकार। ज्ञपिका मारने प्रसन्न करनेकी प्रेरणाके अनुकूल क्रिया। उसकी इच्छा समानकर्ता अर्थमें सन् सनीवन्तर्धसे इट्

बुभूर्षति-बिभरिषति। ज्ञीप्सति-जिज्ञपयिषति। सिषासति सिसनिषति (तनि-पति-दरिद्रा-तिभ्यः सनो वा इड् वाच्यः) **तनोतेर्विभाषा।६।४।१७।** अस्योपधाया दीर्घो वा स्याज्झलादौ सनि। तितांसति-तितंसति-तितनिषति। आशङ्कयां सन् वक्तव्यः श्वा मुमूर्षति। कूलं पिपतिषति। सनि मी-मा-

---

ज्ञप्-ज्ञप् जज्ञप् सन्यतः इत्व जिज्ञाप् गुण अय जिज्ञपयिषति--मारण तोषण कराने के विषयमें इच्छाकर्ता। जब इट् नहीं तब (ज्ञपि स) दशामें इको झल्से कित् जिसका फल गुण निषेधः। अज्झनगमां सनिका दीर्घ णिलोप (णेरनिटि) से बाधा जायेगा। पर होनेसे आप्ज्ञप्यृधामीत् ज्ञा को ईत् (ज्ञी) को द्वित्व हलादिशेष अभ्यास लोप (ज्ञीप्सति) ज्ञान ज्ञापन मारण तोषण करानेके विषयमें इच्छा, ज्ञीप्सन्ति जो अमित् है मित्संज्ञा नहीं होती मारण तोषण निशामन आदि अर्थ नहीं, किन्तु घटादि में पढ़ा है (ज्ञा नियोगे) नियुक्त निश्चय क्रियाकी प्रेरणा चुरादि ण्यन्त ज्ञापि मित् नहीं, न ह्रस्व। उससे परे सन्को नित्य इट्, विकल्प प्राप्त नहीं (ज्ञाप इ इ स) द्वित्व आदि, गुण अय (जिज्ञापयिष्यति) ज्ञापन करानेकी इच्छा। ज्ञापयितुमिच्छन्ति जिज्ञापयिषन्ति। ज्ञापन कराना चाहते हैं। सिषासति (सन-सम्भक्तौ) गहरी प्रीति की क्रिया सनितुमिच्छति अर्थे सन् (स) दशामें जन-सन-खन-आदि सूत्रसे न को आत्व (सा स) सन्यङो। सासा ससा इत्व (सिषा स) षत्व। विशेष सम्भक्ति-दृढ़प्रीति विषयिणी इच्छा सनाद्यन्त धातुका अर्थ। वर्तमान एककर्तामें लट् आदि (सिषासति) गहरी प्रसन्नता विशेष प्रेम चाहता है। जब इट् होगा सन् झलादि नहीं रहेगा, तब आत्व भी नहीं, सन् सन् ससन् (सिषनिषति) यहां पर षत्व नहीं (स्तौतिण्योरेव) अभ्यास इण्से परे सको ष होनेका नियम नहीं है। सन्का स ष हो जाय, वही नियम लगेगा जैसे सिसनिषति सिषासति। यहां सनका ष नहीं नियम नहीं लगा। तनि पति-तनु विस्तारे, पत पतने, दरिद्रा दुर्गतौ इन धातुओंसे सन्परे इट् विकल्प हो। प्राप्तविभाषा। **तनोतेः**-तनु (धातुके उपधा-अन्त्य अल्का पूर्णवर्ण) अको दीर्घ हो विकल्पसे। शुद्ध सन्परे, नोपधायाःसे उपधा, ढ्लोपेसे दीर्घ, अज्झनगमांसे सनिकी अनुवृत्ति। तनितुं विस्तारयितुमिच्छति (तितांसति) फैलाना चाहता है। विस्तारार्थक तन्से विस्तारकी इच्छा समानकर्ता अर्थमें सन्। तन तन ततन तितन तनोतेः विभाषासे दीर्घ, नश्चापदान्तस्य अनुस्वार। न दीर्घ तितंसति (तनिपतिदरिद्राति) से इट् पक्षमें तितनिषति। वितानं चांदनी फैलाना चाहता है।

(वा०) **आशङ्कायाँ** शंसय विषय क्रिया अर्थमें वर्तमान धातुसे स्वार्थमें सन् हो अर्थात् शङ्का अर्थमें सन् समझे। मर्तुमाशङ्कते मरणार्थक मृ धातुसे मरणशङ्का अर्थमें सन्। अज्झनगमां सनिसे दीर्घ, तब ऋको उत् रपर (ओष्ठ्यपूर्वस्य) पवर्ग म का ओष्ठ स्थान है। इत्यादि (मुमूर्षति) एकश्वा विषया मरणशङ्का।

(कूलं पिपतिषति) पतितुमाशङ्कते तट् किनारेकी पतनशङ्का। तनि-पति दरिद्रासे इट् पक्षमें रूप। पतनार्थक पत धातुसे पतनकी शङ्का अर्थमें सन पत-

घ-रभ-लभ शक-पत पदामच इस् ।७।४।५४। एषामच इत् स्यात्सादौ सनि । अभ्यासलोपः 'स्कोः-' इति सलोपः। पित्सति। दिदरिद्रिषति-दिदरिद्रासति। **मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा** ।७।४।५७। सादौ सनि। अभ्यासलोपः, मोक्षते-मुमुक्षते वा वत्सः स्वयमेव। 'अकर्मकस्य' किम् ? मुमुक्षति वत्सं कृष्णः। **इट् सनि वा** ६।२।४१। वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्च सन इड् वा स्यात्। तितरिषति-तितरीषति-तितीर्षति। विवरिषति-विवरीषति-बुवूर्षति। वृङ्,-विवरिषते-बुवूर्षते दुध्वूर्षति। **स्मि-षूङ् रञ्ज्वशां सनि** ।७।२।७४। 'स्मिङ्'

पत पपत पिपत। जब न इट तब (पिपत स ति) इस विधानका सूत्र (सनिमीमाघु) स आदि शुद्ध सन्परे मिमा-मि प्रक्षेपणे स्वादिः। मीञ् हिंसायां माङ् माने (घु-दाधा) रभ राभस्ये लभ लाभे। शक् सामर्थ्ये, पत्लृ पतने पदगतौ इन धातुओंके अच् अ इउ आदिके स्थानमें 'इस्' हो सकारादि सन्परे, अभ्यासका लोप भी। अत्रलोपः से अभ्यासलोप होने पर अको इस (पिस् त स ति) संयोगाद्योरन्त्ये च संयोगके आदि सका लोप (पित्सति) पतितुमिच्छति ढहना गिरना चाहता है। यदि शङ्का हो तब आशङ्कायां सन्, यदि निश्चय हो तब इच्छामें सन्। दरिद्रातुमिच्छति आशङ्कते वा निर्धन बनाना चाहता है या गरीबीकी आशङ्का है। अर्थमें दरिद्रासे सन् आदि। जब तनिपति दरिद्रातिसे इट होगा, तब आतोलोप इट् च आकारलोप। जब न इट तब दिदरिद्रासति।

मुचो--मुच् धातु अकर्मक हो, ओ गुण हो, सकारादि सन्परे। हलन्ताच्च सूत्रके कित्से गुणनिषेध प्राप्त था अतः सूत्र पढ़ा। मोचनार्थक मुच्से इच्छा आशङ्का अर्थमें सन्। अभ्यासलोप उको गुण, च-क स-ष क्ष (मोक्षते) जब गुण नहीं मुमुक्षते, बछड़ा स्वयं छुड़ाना चाहता है। अकर्मक क्यों पढ़ा ? सकर्मकके उको गुण न हो। कृष्ण बछड़ेको मुमुक्षति खोलना चाहते है। (विवृत्सति) वर्तितुं व्यवहर्तुमिच्छति (न वृद्भ्यः) से परस्मैपद आत्मनेपदमें रूप। नर्तितुमिच्छति निनृत्सतिसे (असिचि) ईट अभावपक्षमें हलान्ताच्चसे कित् गुणनिषेध गात्रविक्षेपकी ईच्छा कर्ता।

इट् सनि-वृङ् वृञ् और ऋदन्त धातुसे परे सन्को ईट् हो। तरितुमिच्छति तितरिषति, सनिग्रहगुहोश्चको बाधकर ईट् पक्षमें तृ स, तर्तृ (तितृ ई स ति) गुण, वृतो वा इट्को दीर्घ विकल्प, जब न इट् तब तितीर्षति पार करना चाहता। ईको झलसे इट कित् गुण अभाव, ऋत् इत् हलि च दीर्घ। सम्वरणार्थक वृ धातुसे स्वीकार आवरणकी इच्छा समानकर्ता अर्थमें सन् (ईट् सनि वा) से इट द्वित्व आदि वा दीर्घ, जब न ईट् अज्झन्गमांते दीर्घ उदोष्ठ्यसे उत्वरपर हलि च दाघ (बुवूर्षते) स्वीकारना चाहता है। ङित्से आत्मनेपद। ध्वृ-कौटिल्ये कुटिलताकी कामना अर्थमें सन् उत्व रपर दीर्घ आदि पूर्ववत छल करता है।

स्मि—इषद् हंसने पु पवित्रतामें, रञ्ज रागे, वश कान्तौ, ईच्छा अर्थ इनसे

'पूङ्' 'ऋ' 'अञ्जू' 'अश' एभ्यः सन इट् स्यात् । सिस्मयिषते । पिपविषते । अरिरिषति अञ्जिजिषति । अशिशिषते । गुप गोपने । तिज निशाने । कित निवासे, रोगापनयने च । मान पूजायाम् । बध बन्धने । दान खण्डने । शान तेजने । गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ।३।१।५। मान्बधदान्शान्भ्योदीर्घश्चाभ्यासस्य सूत्रेणक्तेभ्यः सन् स्यात् मानादीनामभ्यासस्येकारस्य दीर्घश्च । गुपेर्निन्दायाम् । तिजेः क्षमायाम् । कितेर्व्याधिप्रतीकारे, निग्रहे अपनयने, नाशने, संशये च । मानेर्जिज्ञासायाम् । बधेश्चित्तविकारे दानेरार्जवे । शानेर्निशाने । गुपिप्रभृतयः किद्भिन्ना निन्दाद्यर्थका एवानुदात्तेतो, दानशानौ तु स्वरितेतौ । एश्वर्येषु एते नित्यसन्नन्ताः । अर्थान्तरे त्वननुबन्धकाश्चुरादयः । अनुबन्धस्य केवलेऽचरितार्थत्वात्सन्नन्तात्पदव्यवस्था । 'धातो' रित्यविहितत्वात्सनोऽत्र नार्द्धधातुकत्वम् । तेनेड्गुणौ न । जुगुप्सते तितिक्षते । चिकित्सति मीमांसते । बीभत्सते । बीदांसति दीदांसते । शीशांसति शीशांसते । णिचि तु-गोपयति । गोपयते इत्यादि । इति सन्नन्तप्रकरणम् ।

अथ यङन्तप्रकरणम्

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ।३।१।२२। पौनः पुन्यं भृशा-

परे सन्को इट् हो, स्मयितु वाञ्छति सिस्मयिषति, अभ्यास इण्से परे सको ष नहीं होता (पिपविषते) पवित्र करना चाहता है । पूको द्वित्व ओः पुयण्ज्यसे इत्व । अर्तुमिच्छति अरिरिषति मोक्ष गमन चाहता है । ऋसे सन् इट् अजादिको द्वितीय अच् रिष्को द्वित्व । यदि इसको द्वित्व करें तो सम्भव नहीं सन् अवयव है । वह द्वित्व कार्य अनुभव कर रहा है । अतः निमित्त नहीं बन सकता (कार्यी निमित्ततयानाश्रियते) निषेधसे यदि द्विर्वचनेऽचिके निषेधसे, गुण नहीं होगा, रिसको द्वित्व कैसे ? कार्यीके निमित्त न होनेसे (अञ्जिजिषति) अञ्जू व्यक्ति=विवेचन म्रक्षण कान्ति गति, अशूव्याप्तौ इन दो धातुको ऊदितो वा इट् प्राप्त, नित्य इट्के लिए सूत्र । अञ्जितुमिच्छति शुद्ध होना विवेक चमक इच्छा गमनकी इच्छा समानकर्ता अर्थमें सन् जिसको इट् । स्मिः पूङ् आदि सूत्रसे जिसके स्थानमें द्वित्व, नन्द्राःके निषेधसे नको द्वित्व, स्वच्छता चाहता । (अशिशिषते) व्याप्ति अर्थवाचक अश् धातुसे व्यापक होने की कामना एककर्ता अर्थमें सन् तभी इट् । शिषको द्वित्व आदि एककर्तृका व्यापक भवनविषयिणी वर्तमाना इच्छा । अश् भोजने अश्नाति खाता है । नित्य सेट है ही अशितुं भोक्तुं वाञ्छति भोजनं कर्तुं कामना अर्थे सन् । चेष्टन्ते अशिशिषन्ते ।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकरी टीकायां सन्नन्तः ।

अथयङन्ता--यङ् प्रत्ययः अन्ते येषां ते क्रियावाची भ्वादिके प्रसङ्गमें क्रियाके विषयमें जहां प्रेरणार्थक णिच है इच्छायक सन् है । इसी क्रियाका बार-बार होना पूर्णरूपसे बहुत अधिक अतिशय क्रियाका होना भी लोकमें प्रसिद्ध है । सेवाभक्ति

र्थश्च क्रियासमभिहारः' तस्मिन् द्योत्ये यङ् स्यात्। **गुणो यङ्लुकोः ।७।४।४२।** अभ्यासस्य गुणः स्याद्यङि यङ्लुकि च । 'सनाद्यन्ताः' इति धातुत्वाल्लडादयः । ङिदन्तत्वादात्मनेपदम् । पुनः पुनरतिशयेन वा भवति बोभूयते। बोभूयाञ्चक्रे । अबोभूयिष्ट । 'धातोः' किम् ? आर्धधातुकत्वं यथा स्यात् । 'ब्रुवो वचिः' इत्यादि । 'एकाचः' किम् ? पुनः पुनर्जागर्ति । 'हलादेः' किम् ?

पढ़ना सन्ध्या वन्दन घाम तूफान बोल व्यवहार आदि क्रियाओंमें भी कभी बार-बार बहुत अधिक पूर्णरूपसे होना अर्थ देखा गया, इन अर्थोंका सूचक यङ् प्रत्यय है उसके प्रधान प्रकरणका आरम्भ । अवतरण—यङ्विधायकसूत्र—**धातोरेकाचो**—धातु क्रियावाचक हो (एको अच् यस्मिन्) एकाच् हो, हलादि-हल् अक्षर आदिमें हो, ऐसे धातुकी क्रियाके समभिहार=बार-बार अतिशय बहुत अधिक होने अर्थमें 'यङ्' प्रत्यय हो । उस अर्थका पुनः पुनः भवः पौनःपुन्यं भृशार्थ=कार्त्स्न्यं पूर्ण अतिशय अर्थ है क्रियासमभिहार वृत्ति है । बार-बारकी क्रिया एव यङ्से द्योत्य व्यङ्ग्य रहते यङ् । वह यदि वाच्य होता, प्रत्यय अर्थ प्रधान हो जाता, सन्नन्तार्थ इच्छा की तरह प्रधान होता । **गुणो**—अभ्यासको गुण हो, यङ् परे या यङ् लुक् हुआ हो। यङ् च लुक् च द्वन्द्वसे पञ्चमी । अत्रलोपःसे अभ्यास आया ।

बोभूयते—पुनः पुन अतिशयेन वा भवति ज्वरः रोगः नखः केशः बोभूयते बार-बार बहुत तेज, घना, अधिक होता है । भवनार्थक भू धातोः पुनः पुनः अतिशय भवने अर्थे यङ् (भू य) सन्यङोः द्वित्वादिः । बुभूय—गुणो यङ्लुकोः सूत्रेण अभ्यासईकारस्य गुणे । यङ् ङित् है सामान्य गुणका निषेध । बोभूय—(बार-बार उत्पत्ति क्रिया)की सनाद्यन्ताः धातवः धातुसंज्ञा, लटि तिपि शपि पररूपे । ङित् होनेसे आत्मनेपद (क्रियासमभिहारे वाच्ये) से पुनः द्वित्व नहीं, लोट्का विषय होने से, क्रियासमभिहारे लोट् । मध्यमपुरुष एकवचनको द्वित्व करता है । बोभूयते बोभूयन्ते । बोभूयसे बोभूयेथे बोभूयध्वे । बोभूये । पुनः पुनः अतिशयेन वा बभूव, परोक्ष कालमें बार-बार विस्फोट हुआ । बोभूयांचक्रिरे । बोभविता । पुनः पुनः भविष्यति बोभविष्यते संघर्षः । केशः बोभूयताम्, अतिशयेन भवतु । अबोभूयत पुनः पुनः अभवत् बोभूयत इति । बोभूयिषीष्ट । पुनः पुनः अतिशयेन वा यज्ञः **अबोभूयिष्ट** भवनार्थक भूधातोः क्रियासमभिहारे बारं बारं भवनेऽर्थे यङ् । सन्यङोः द्वित्व आदि । (गुणो यङ्लुकोः) अभ्यासस्य गुणे बोभूयको सनाद्यन्ताः धातवः धातुसंज्ञा, समास भवन क्रियाके कर्तामें लुङ् त सिच् इट् अट् षत्व ष्टुत्व । अबोभूयिष्ट अबोभूयिषाताम् अबोभूयिषत । अबोभूयिष्ठाः षाथां-ध्वम् अबोभूयिषि अबोभूयिष्महि ।

धातो किं—धातुसे यङ् न कहते, आर्धधातुकसंज्ञा न होती, धातुसे विधान न होनेसे । तेन=धातुसे यङ् होने पर ही ब्रूवको वचि आदेश, वेञ्को वयि कार्य, होता है। वावच्यते वावय्यते बना, यही (फल है) वचि वयि होनेसे । एकाचः किं ?

भृशमीक्षते। **नित्यंकौटिल्ये गतौ** ।३।१।२३। गत्यर्थात्कौटिल्य एव यङ् स्यात् न तु क्रियासमभिहारे। कुटिलं व्रजति वाव्रज्यते। **दीर्घोऽकितः** ।७।४।८३। अकितोऽभ्यासस्य दीर्घः स्याद्यङि यङ्लुकि च। अटाट्यते। **यस्य हलः** ।६।४।४९। 'यस्य' इति सङ्घातग्रहणम्। हलः परस्य यशब्दस्य लोपः स्यादार्धधातुके। 'आदेः परस्य' 'अतो लोपः'। वाव्रजाञ्चक्रे। वाव्रजिता **रीङृतः** ।७।४।२७। अकृद्यकारे-असार्वधातुकयकारे, च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः। डुकृञ् करणे। चेक्रीयते। रीगृदुपधस्य च

सूत्रमें एकाच् धातुसे यङ् क्यों कहा ? अनेकाच्से न होनेके लिए। पुनः पुनः बहुत अधिक जाग्रति-जागृ धातु अनेकाच् है, यङ् न हो इसलिए। सूत्रमें हलादि क्यों पढ़ा ? अजादि धातुसे यङ् न हो, भृशमीक्षते बहुत देखता है। ईक्ष धातु अजादि है।

नित्यं—नित्यशब्द एव अन्ययोगव्यवच्छेदकः निर्धारण अर्थमें है, कुटिलस्य भावः चुगलखोरकी चालाकी अर्थमें **कौटिल्यं** के बाद एवको जोड़ दें। धातोरेकाचः से यण् आया। तदा गत्यर्थात्-गति अर्थवाचकसे कुटिल चाल अर्थ प्रकट करना हो तभी यङ्। एव या नित्यं पढ़नेसे दूसरे भावका भेद खुला कि नतु-क्रियाके समभिहार बार-बार होनेमें अर्थात् गति अर्थ हो कुटिलता अर्थमें यङ् माने। कुटिल चाल चलता है गत्यर्थक व्रज् धातुसे वक्र गति अर्थे यङ्, व्रज-व्रज वव्रज (वाव्रज्य) से लट् आदि, यहां यङ्का निन्दा अर्थ है बार-बार गमनक्रिया नहीं।

यस्य हलः—य् अ मिलकर य, सङ्घात=समुदायका ग्रहण। अतः य में अ उच्चारणार्थक नहीं। आर्धधातुके का अधिकार आतोलोपः से लोप आया। अर्थ-हलसे परे यका पूरा लोप हो आर्धधातुक परे। पुनः पुनः परिपूर्णम् अटति (अटाट्यते) बहुत घूमता है। गत्यर्थक अट्धातोः भ्रमणक्रियायाः पुनः पुनः भवने अर्थे यङ् (अटय) अजादि है टयको द्वित्व अटटय दशामें **दीर्घोऽकितः** कित् (कइत्) या कित्संज्ञा न हो, ऐसे अभ्यासको दीर्घ हो यङ् परे, यङ्लुक् परे भी। इससे टको दीर्घ। अत्र लोपः से अभ्यास, गुणो यङ्लुकोः से यङ्लुक् आया। अकित्का फल **यंयम्यते** रंरम्यते इत्यादिमें उपयोग कहेंगे अटाटयन्ते। त्वम् अटाट्यसे वृन्दावनम्। अहं गोकुलें अटाट्यें। चेक्रीयते गर्हितं करोति अनिष्ट फलदायक काम करता है। (कृ य) दशामें सन्यङोः से द्वित्वके पहले होनेसे ऋको रीङ आदेश क्री को द्वित्व।- चिक्री य अभ्यास गुण, लट आदि। **चेक्रीयते**। जब सम् परि उपसर्ग जुड़े तब संपरिभ्यां करोतौ भूषणे अलङ्करण सुन्दरता स्वाद शोभा बढ़ाने अर्थमें या (समवाये च) समुदाय अर्थमें सुट्।

रीक्—ऋ उपधामें हो ऐसे धातुके अभ्यासको रीक् आगम हो यङ और यङ् लुक्परे। अत्रलोपः से अभ्यास एवं (गुणो) से यङ् लुकोःकी अनुवृत्ति। (वरीवृत्यते) वृतुवर्तने पुनः पुनः भृशं वा वर्तते व्यवहारं करोति इति वरीवृत्यते। वर्तनार्थक वृत

।७।४।९०। **ऋदुपधस्य** धातोरभ्यासस्य रीगागमः स्याद्यङ्-यङ्लुकोः। वरीवृत्यते। क्षुभ्नादित्वान्न णः, नरीनृत्यते। जरीगृह्यते। उभयत्र लत्वम्, चक्लीलृप्यते। रीगृत्वत इति वक्तव्यम्। वरीवृश्च्यते। **लुप-सद-चर-जप-जभ-दह दश गॄभ्यो भावगर्हायाम्** ।३।१।२४। एभ्यो धात्वर्थ-गर्हायामेव यङ् स्यात्। गर्हितं लुम्पति लोलुप्यते। सासद्यते। **चरफलोश्च** ।७।४।८७। अनयोरभ्यासस्यातो नुक् स्याद्यङ्यङ्-लकोः। 'नुक्' इत्यनेनानुस्वारो

धातुसे व्यवहार क्रियाका समभिहार बार-बार होने अर्थमें यङि द्वित्व वृ वृ वर् वृ ववृत रीगृदुपधस्य चसे अभ्यासको री। (वरीवृत्यते) यङन्तधातुः। वर्तावक्रियाका पूर्ण व्यवहार। अभ्यावृत्तिका वर्तमानकाल। पौनः पुन्यं भृंश वा नृत्यति नरीनृत्यते गात्रविक्षेपार्थकनृतधातुसे नर्तन क्रियाकी अभ्यावृत्ति बहुत कमाल होना धातुका अर्थ लट आदि। जब णत्वकी शङ्का हुई तब कहा क्षुभ्नादिगणमें पढ़ा है निषेधसे नोणसे णत्व नही हुआ। पुनः-पुनः बहु अधिक गृह्णाति (जरीगृह्यते) बार-बार ग्रहण करने वर्तमान क्रिया। उपदानार्थक ग्रह धातुसे यङि सम्प्रसारणकार्य बलवान् होनेसे (ग्रहिज्यावयिव्यधि)से सम्प्रसारण (ग्रह य) दशामें द्वित्व आदि गगृह गगृह ज अभ्यास को रीक्। कृप सामर्थ्ये शक्तिके अनुकूल काम करनेकी क्रिया (कृप य) द्वित्व उरत् रपर, शेष रीक्, कृपो रोलः अभ्यासके रको ल दूसरे खण्डमें ऋका अवयव रेफ लकार सदृश हो दोनोंको लत्व, कृपा करनेकी बहुत बार बड़ी क्रिया (वा०) रीक् ऋत्वत्, ऋतुः, अस्य अस्ति ऋत्वत्। ऋत्से मतुप्-सम्बन्ध अर्थमें। तको जश नहीं तसौ मत्वर्थेसे भसंज्ञाके कारण पदके बाधसे। धातुसे सम्बद्ध ऋको रीक् हो जाय। अभ्यासको। ओ व्रश्चू छेदने बारम्बार भृशं वा वृश्चति छिनत्ति वृक्षं वरीवृश्च्यते) वृक्षको बार-बार काटना, वृश्चिकः दंशति व्रश्च-से यङ् सम्प्रसारण रीक् आदि।

लुप् सद—चर जप जभ दह दश गॄ इनके बीच द्वन्द्व, इन धातुओंकी क्रियासे निन्दा आक्षेप घृणाभाव गर्हापूर्ण धातुका अर्थ हो। उसी अर्थको खोलने प्रकाशमें लानेके लिये यङ् हो। नित्यंकी अनुवृत्ति एक अर्थके लिये। गर्हितं (लुम्पति कुलं) बुरे तरीके निन्दित चाल, वंशका लोप, सत्यानाश या विद्याका लोप विनाश करता है। लोलुप्यते—लुप् धातुसे क्रियाका गर्हा निन्दितभाव या विद्यालोप अर्थ खुल रहा है अर्थमें यङ्। लुलुप लोलुप्य यङन्त धातुसे लट् आदि। **चरफलोश्च**—इस सूत्रमें अत्रलोपः से अभ्यास, नुगतो अनुनासिकान्तस्यसे नुक्, गुणो···से यङ्लुकोः आया। [चर्] और फल् धातुओंके अभ्यासको ह्रस्व, अको नुक् हो यङ्लुक् परे। क इत् ऊ उच्चारणार्थं, (न) शेष। जिसे अनुस्वार माननीय है। लक्ष्यते=लक्षणासे अर्थ खुलता हो, क्योंकि नुगतो अनुनासिकान्तस्य सूत्रमें यंयम्यते रंरम्यते इत्यादिसे अनुस्वार श्रवणार्थं नुक् को अनुस्वारका उपलक्षण बोधक माने। यदि नकार रहेगा झल् प्रत्याहारमें नहीं आयेगा। नश्चापदान्तस्य झलि सूत्रसे अनुस्वार असम्भव होगा। नकार ही मिलेगा उससे आया नुक् या अनुवृत्त नुक अनुस्वारका बोधक है।

लक्ष्यते। स च पदान्तवद् वाच्यः। 'वा पदान्तस्य' इति यथा स्यात्। **उत्परस्यातः** ।७।४।८८। चरफलोरभ्यासात् परस्यात उत्स्याद्यङ्-यङ्लुकोः। 'हलि च' इति दीर्घः। चंचुर्यते-चञ्चूर्यते। फंफुल्यते-पम्फुल्यते। **जप-जभ-दह-दश-भञ्ज-पशां च** ।७।४।८६। एषामभ्यासस्य नुक् स्याद्यङि यङ्लुकोः। गर्हितं जपति जञ्जप्यते इत्यादि। **न कवतेर्यङि** ।७।४।६३। कवते-

(वा०) **स च** वह अनुस्वार पदान्तवत् वाऽपदान्तस्यकी तरह विकल्पसे परसवर्ण समझा जाय। **उत्परस्य**—चर और फल धातुके अभ्याससे परे ह्रस्व हो अको उ भी यङ् परे यङ्लुक्परे। हलिचसे उकारको दीर्घ, गर्हितं चरति (चञ्चूर्यते) चरगतिभक्षणयोः निन्दित चाल या भोजन क्रिया, भाव ग्रर्हा=चाल भोजनके दोष खोलने वास्ते यङ् चर चर चचर अभ्यास चके अको नुक् (अनुस्वार) चरफलोश्च सूत्रसे वाऽपदान्तस्य परसवर्ण ञ। दूसरे चःके अको उत्परस्यसे उत्व, हलि चसे दीर्घ। जब न परसवर्ण तब चंचूर्यते। गर्हितं निन्दितं घृणाजनकं फलति (पम्फुल्यते) फलने अर्थमें फल धातुसे विकारी फल अश्रद्धेय फल गर्हा निन्दाका विषय अर्थमें यङ्। चरफलोश्च अनुस्वारे परसवर्ण भी। उत्परस्यातः से दूसरे फके अको उ। पम्फुल्य-धातुसे लट् आदि परसवर्ण नहीं तब अनुस्वार ही रहा, इसमें यङ् धातु का गतभावगर्हा=क्रियाकी निन्दा अर्थ।

जप् जभ्—चरफलोश्च सूत्रमें जिनकी अनुवृत्ति है वे यहां भी आये। जप-जपने, जभ संगमे, दह भस्मीकरणे, दश दंशने, भञ्ज आमर्दने, पश बाधनस्पर्शनयोः। इन धातुओंके अभ्यासको नुक (न्) अनुस्वार हो यङ यङ्लुक्परे। गर्हितं जपति भ्रष्ट ढङ्गसे जपता या मारण प्रयोग करता है भावगर्हा विचारदोष, जपसे=क्रियागतनिन्दा घृणाभाव खुल रहा अर्थमें (जप यङ्) सन्यङोः द्वित्व जप-जप जजप य, जपजभदह—भाविसे अभ्यासको नुक् अनुस्वार (जञ्जप्य) यङन्त धातु घृणास्पद जपनानुकूला क्रिया, यहां क्रियाका बार-बार होना अर्थ नहीं भावगर्हाके अधिकारमें होनेसे। जब अनुस्वारको परसवर्ण वर्तमानकाल घृणित जपनाक्रिया कर्तामें लट आदि। जञ्जप्यते जञ्जप्यतां-मारणके लिये जप करो। अजञ्जप्यत्। अनिष्टके लिये जप किया। गर्हितं दहति निर्दोषको भस्म करता है। दहनक्रियागत गर्हा, अनिष्ट अर्थमें दह धातुसे यङ्। दह दह ददह। जप-जभ-दह-से अभ्यासको नुक् अनुस्वार परसवर्ण सबमें होगा (दन्दह्यन्ते) दन्दह्यतां अदन्दह्यत्। गर्हित दाहक्रिया अदन्दहिष्ट। गर्हितं दशति डंसकर प्राणलेता है। दशनक्रियागतगर्हा अनिष्ट फल, दंशसे यङ् ददश अभ्यासको नुक् दन्दश्यते दन्दश्यसे दन्दश्यतां अदन्दश्यत्। गर्हितं भञ्जते विनाशकारी तोड़फोड़ भञ्जन क्रिया अनिष्ट विनाश, क्रियागत निन्दा अर्थमें यङ्। अभ्यासको नुक् परसवर्ण। बम्भज्यते बम्भज्यतां अबम्भज्यत्।

पशधातुः गत्यर्थकः (सूत्रात् जातः) सौत्रः माधवमते। तालव्यान्तः काशिकामते स्पश बाधनस्पर्शनयोः गर्हितं स्पशति बाधा या स्पर्शक्रियाकी निन्दा अर्थमें यङ् (पम्पश्यते) गर्हित गति विघ्न बाधा स्पर्शकी क्रिया दूषित हो यङ् आदि। यङ्लुक्परे भी जञ्जपीति जञ्जभीति दन्दहीति दन्दशीति।

रभ्यासस्य चुत्वं न स्याद्यङि । कोकूयते । कौतिकुवत्योस्तु चोकूयते । ग्रो यङि ।८।२।२०। गिरते रेफस्य लत्वं स्याद्यङि। गर्हितं गिलति जेगिल्यते । सूचि सूत्रि-मूत्र्यट्यर्त्यशूर्णोतिभ्यो यङ् वाच्यः, सोसूच्यते सोसूत्र्यते । अटाट्यते मोमूत्र्यते । सोसूचाञ्चक्रे । सोसूचिता सोसूत्रिता । मोमूत्रिता यङि च ।७।४।३०। अर्तेः संयोगादेश्च ऋतो गुणः स्याद्यङि यङ्लुकि च । यकारपररेफस्य न द्वित्वनिषेधः, 'अरार्यते' इति भाष्योदाहरणात् । अरा-

---

न कवतेः अत्रलोपःसे अभ्यास, । कूङ् शब्दे-धातुके अभ्यासको चवर्ग न हो यङ् परे । गर्हितं कवति **कोकूयते** अभ्यासको कुहोश्चुः से चवर्ग प्राप्त था । उक्त सूत्रसे निषेध । कौति कुशब्द लु विकरण अदादिः । कूङ् शब्दे, श विकरणका ग्रहण नहीं होता, चवर्ग होता है । **चोकूयते** अनावश्यक आवाज करता है ।

ग्रो यङि—गॄ धातुके षष्ठी एकवचन ग्रः । कृपो रोलः से र ल आया । गर्हितं गिलति भ्रष्ट ढंगसे लीलता है, निगरणार्थक गॄ धातुसे लीलना क्रियागत निन्दा अनिष्ट अर्थमें यङ् । ऋत् इत रपर । ग्रो यङि र को ल । गिल-गिल गिगिल जिगिल (गुणो यङ्लुकोः) अभ्यासको गुण (जेगिल्येते) जेगिल्यन्ते, जेगिलिता जेगिलिष्यति जेगिल्यताम् अजेगिलिष्ट । भूतकालमें समाप्त गर्हित लीलना क्रिया ।

(वा०) **सूच** पैशून्ये, सूत्र वेष्टने, मूत्र प्रस्रवणे ये तीन धातु चुरादिके कथादिगणमें पढ़े अदन्त है तीनोंको अनेकाच् होनेसे यङ् प्राप्त नहीं था, यङ् होनेके लिए वार्तिक पढ़ा ? षोपदेश नहीं, न षत्व । अटगतौ ऋगतौ अश भोजने अशूव्याप्तौ ये धातु हलादि न, होनेसे यङ् प्राप्त नहीं था । ऊर्णु धातु न हलादि है न एकाच् अतः यङ् कहा । पुनः पुनः अतिशयेन वा सूचयति बार-बार या बहुत चुगुली निन्दा करता है अर्थमें पैशुन्यार्थक सूच् धातुके ण्यन्तसे निन्दा करवानेके बार-बार अर्थमें यङ् णिलोप णेरनिटि (सुसूच य) गुणो यङ्लुकोः अभ्यासमें इण् है । दूसरे सको ष क्यों नहीं? अनेकाच् है षोपदेश नहीं, धात्वादेः ष स नहीं लगा, आदेश सकार नहीं न षत्व बार-बार बहुत निन्दा करता है । सूत्र वेष्टने पुनः पुनः पर्याप्तं वेष्टयति (सोसूत्र्यते) भूयो भूयः लपेटना क्रिया समभिहार अभ्यावृत्ति अर्थका सूचक यङ् । (सूत्र य) अथवा ण्यन्तसे लपेटवाने बंधवाने अर्थमें यङ्, द्वित्व अभ्यास गुण आदि । बारंबारं मूत्रणक्रियायाः भवनम् । अतिशयेन मूत्रयति इन्द्रियजलं स्रावयति मूत्र प्रस्रवणे अर्थमें यङ् (मूत्र य) द्वित्व गुण आदि । मोमूत्र धातुः जिसका बार-बार बहुत मूतना अर्थ । उससे वर्तमानकाल कर्ता सङ्ख्याका सूचक लट् आदि ।

यङि च—संयोग-आदि धातुके ऋको गुण हो, यङ् परे गत्यर्थक ऋ धातुसे बार-बार गमन बन्धनमुक्ति क्रियामें यङ् (ऋ य) दशामें ऋको गुण (अर-य) स्थितमें रेफके निषेध होनेसे केवल यको द्वित्व, दीर्घोऽकितः अभ्यासको दीर्घ, तब कहा रेफमें परे य हो तब नन्द्राःसे निषेध नहीं होगा, अरार्यते इस भाष्यप्रमाणसे । अतः यंको

रिता। अशाशिता। ऊर्णोनूयते। **सिचो यङि** ।८।३।११२। सिचः सस्य षो न स्याद्यङि। निसेसिच्यते। **हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नीभावो वाच्यः।** जेघ्नीयते। 'हिंसायां किम्? **नुगतोऽनुनासिकान्तस्य** ।७।४।८५। अनुनासिकान्तस्याङ्गस्य योऽभ्यासोऽदन्तस्तस्य नुक् स्याद्। जङ्घन्यते। **अयङ् यि क्ङिति** ।७।४।२२। शीङोऽयङादेशः स्यात् यादौ क्ङिति परे। शाशय्यते।

द्वित्व आदि, अभ्यासदीर्घ (अरार्य) मुक्तिप्राप्तिक्रिया बार-बार आगामी भविष्यकालमें होनेवाली हो अरार्य-धातुसे लुट् आदि, यस्य हलः यलोप।

अश— भोजने (अशाश्यते) भोजनार्थक अश् धातुसे बहुत बार अशन् अर्थमें यङ्, श्यको द्वित्व अभ्यास शको दीर्घ। अशाश्य यङन्त धातुः। पुनः पुनः अतिशयेन वा भोजनानुकूलव्यापारः धात्वर्थः अशाश्य लुट ता परे यस्य हलः यलोपः अशाश्यता बार बार खूब खाओ अशाश्यता। अशाशिष्ट बार-कार खाया। पुन पुनः भृशं ऊर्णोति ऊन छाजन छप्परसे ढ़कता है। आच्छादन क्रियाके समभिहारमें **यङ्**। नुको द्वित्व आदि। अकृत्सार्वधातुकयोः से दीर्घ।

सिचो यङि। सहेः साडः से स, न रपरसृपिसे न अनुवृत्त। मूर्धन्यका अधिकार। सिच् धातुके सको ष न हो यङ् परे। गर्हितं सिञ्चति (निसेसिच्यते) सिञ्चन क्रियागत निन्दा, गलत जलदान अर्थमें, सिच्से यङ् सिसिच् सेसिच-नि उपसर्ग, उपसर्गात्सुनोति सुवति सूत्रसे नि उपसर्गसे परे सिच्के सको षका सिचो यङिसे निषेध। स्थादिषु अभ्यासेनके षत्वका भी निषेध करता है।

(वा०) **हन्तेः**–हन धातुके हिंस. अर्थमें घ्नी भाव हो यङ परे। पुनः पुनः अतिशयेन वा हिनस्ति बार-बार बहुत कष्ट देता है (जेघ्नीयते) हिंसार्थक हनधातोः यङि विषये विवक्षिते सति घ्नीभावः यङ्परे। इस घ्नी आदेशका हिंसा अर्थ, हिंसा में होनेसे (घ्नीय) यद्यपि द्वित्व पर है तथापि घ्नी आदेश पहले होगा, यङिमें विषय सप्तमी होनेसे, ततः द्वित्व आदि। जिघ्नीय लट आदि। हिंसा क्यों कहा? गच्छति जङ्घन्यते अनेकबार निन्दितगमनकी वर्तमान क्रिया। हिंसा प्राणघातक कष्ट नहीं, न घ्नी आदेश। हन-हन जहन। हको घ (हो हन्तेः सूत्रसे) नुक परसवर्ण।

नुगतो––अत्रलोप. से अभ्यास आया, यङ्लुकोः भी। अङ्गका अधिकार। अनुनासिक अन्तमें हो ऐसे अङ्गके अभ्यासके अदन्तको नुक् न आगम हो।
च्वौ में अनुवृत्यर्थ। अयङ यि-सप्तमी गकङ इतः यस्य क ङ इत् हो ऐसे यकारादि प्रत्यय परे शीधातुको अयङ् आदेश हो। शीङः सार्वधातुकेसे शीङ आया, अयङ्का ङ इत् अन्तादेश वास्ते। अ उच्चा०। पुनः-पुनः अतिशयेन वा शेते (शाशय्यते) बार-बार बहुत सोता है। शयनार्थक शी धातोः शयनक्रिया समभिहारे पुनः-पुनः भवने (शी य) अयङ यिसे ईको अय, शयको द्वित्व अकित अभ्यासको दीर्घ। **शाशय्य**—लट आदि एककर्तृक वर्तमान क्रिया अभ्यावृत्तिः। [शाशय्याञ्चक्रे] शाशयिता शाशयिष्यते। शाशय्यताम् अशाशयिष्ट। भूतकालमें बहुत बार शयनक्रिया

स्वपि-स्यमि-व्येञां यङि ।६।१।१९। सम्प्रसारणं स्याद्यङि। सोषुप्यते । सेसिम्यते । वेवीयते । न वशः ।६।१।२०। वावश्यते । चायः की ।६।१।२१। चेकीयते । ई घ्राध्मोः ।७।४।३१। जेघ्रीयते । देध्मीयते । नीग्वञ्चु-स्रंसु-ध्वंसु-भ्रंसु-कस-पत-पद-स्कन्दाम् ।७।४।८४। एषामभ्यासस्य नीगागमः स्याद्यङ्लुकोः । 'अकितः' इत्युक्तेर्न दीर्घः' नलोपः, वनीवच्यते । सनीस्रस्यते दनीध्वस्यते । वनीभ्रस्यते । चनीकस्यते । पनीपत्यते । पनीपद्यते । चनीस्कद्यते । इति तिङन्ते यङ्प्रकरणम् ।

स्वपि—स्यमि वेञ् धातुको सम्प्रसारण (यण्के स्थानमें) इक हो यङ् परे। शयनार्थक स्वप धातोः बहुत बार शयन क्रियाकी आवृत्ति अर्थमें यङि, वको उ सम्प्रसारण (स्वपिस्यमि) सूत्रसे । पूर्वरूप सुप-सुप सुसुप, गुणो यङ्लुकोः से गुण। उत्तरखण्डके सको ष (सोषुप्यते) कुम्भकर्णः । स्यमु उपशमे पुनः पुनः अतिशयेन स्यमते बार-बार संयम रखता है। स्यम से उपशमन संयम क्रियाके अनेक बार होने अर्थमें य। स्वपिस्यमि—सूत्रसे यको इ सम्प्रसारण पूर्वरूप द्वित्वादि। (वेवीयते) पुनः पुनः भृशं वेति, हलः से दीर्घः । **न वशः**—वश धातुसे यङ् परे सम्प्रसारण नहीं होता जो ग्रहिज्यासे प्राप्त था । वश धातु वेदमें उपयोगी है वश कान्तौ इच्छा अर्थ। बार-बार इच्छामें यङ, सम्प्रसारणका निषेध अवश दीर्घोऽकितः (वावश्यते) बहुत इच्छाकी वर्तमान स्थिति ।

चाय धातुको की आदेश हो यङ परे । चायृ पूजानिशामनयोः पूजा, धार तेज करना अर्थक चायसे क्रिया समभिहार (चायः की) द्वित्व की की चिकी (चेकीयते) पुनः-पुनः पूजा, तेज करता है। ई घ्राध्मा (द्वन्द्वसे षष्ठी) इन दोनोंको ई हो इयङ् परे। पुनः-पुनः बहुबारं जिघ्रति पुष्पं सुगन्धि=अति अधिक सूंघता है। जेघ्रीयते गन्ध ग्रहणक्रियावाचक क्रियासमभिहारे यङ्, एवं धौंकने अर्थमें ध्माधातुसे क्रिया आवृत्ति अति धौंकना अर्थमें यङ् (ई घ्राध्मो) सूत्रसे घ्रा ध्माको ईत्व, तब सन्यङोः से द्वित्व आदि अभ्यास गुण आदि (देध्मीयते) पुनः-पुनः अतिशयेन धमति अग्निम्। एककर्तामें बार-बार धौंकनेकी वर्तमानकालिक क्रिया। (जेघ्रीयते) एककर्तृक वर्तमानकालिक पुनः-पुनः गन्धग्रहणानुकूलव्यापारः। सूत्रमें छोटी इ पढते, दीर्घ अस्य होता है।

नीग्वञ्चु—स्रंस ध्वंस अवस्रंसने, भ्रंश, कसगतौ पत पद स्कन्द, धातुओंके अभ्यासको नीक आगम हो यङ् परे यङ् लुक्परे। क इत्से कित् हुआ। अभ्यासको दीर्घ नहीं होगा, नी शेष। गर्हितं वञ्चते गहरी धोखेबाजी दुःखदायक छल, वञ्चना क्रिया अर्थमें यङ् द्वित्व ववञ्च्य—दशामें नीग्वञ्चु सूत्रसे अभ्यासको नीक् आगम हो, दीर्घोऽकितः के दीर्घको बांधकर। कित् दीर्घका बाधक भी है। (कित्वं दीर्घप्रतिबन्धकम्) अनिन्दितां हल उपधायाः क्ङिति चसे नकारलोप निन्दित स्रंसते बुरी तरह खिसकता है। स्रंसन खिसकना क्रियाकी निन्दामें यङ् द्वित्व, नीक्, नलोप पूर्ववत्। (दनीध्वस्यते) अनिष्टं ध्वंसते दुःखदायक विध्वंस क्रियामें यङ् नीक्

अथ यङ्लुगन्तप्रकरणम्

यङोऽचि च ।२।७।७४। यङोऽच्प्रत्यये लुक् स्याच्चकारात्तं विनाऽपि बहुलं लुक्स्यात् । अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति । ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् द्वित्वम् । अभ्यासकार्यम् । धातुत्वाल्लाडादयः । शेषा-

आदि । अनिष्टं भ्रंसते (बनीभ्रस्यते) अवस्रंसन स्खलन लड़खड़ाना क्रियाकी निन्दा यङ् । कस गतौ गर्हितं कसति गच्छति । पनीपद्यते भ्रष्टं पतति गिरकर चकनाचूर क्रियाकी गर्हा । पद्गतौ यङ् अभ्यासको नीक् निन्दितपतन पनीपद्यते ।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकरीटीकायां यङन्तप्रक्रिया ।

यङ् लुगन्ता—यङ् लुक् अन्ते येषान्ते क्रियाकी अभ्यावृत्ति अनेकता अधिकता अर्थक यङ्का लुक् [अन्तमें] हुआ हो ऐसे धातुसे सिद्ध क्रियाशब्दकी साधनिकाका प्रकरण (यङोऽचि) यङ्प्रत्यय है साथमें अचि भी (साहचर्यसे)प्रत्ययः है, प्रत्याहार नहीं व्य क्षत्रियार्थसे लुक् आया । अच्प्रत्यय परे यङ्का लुक् हो, परन्तु चकार पढ़नेसे [तं बिना] अचप्रत्यय [के बिना] न रहने पर भी बहुलं लुक् । बहून् अर्थान् लाति। लुक् हो अलुक् हो, न लुकालुक् हो [बहुलं छन्दसि] से बहुलंका अनुकर्षण, अर्थात् अच्प्रत्यय परे हो या नहो, यङ् का बहुलं लुक् होगा ही । बहुलका प्रायः अर्थः, जैसे लोलूय--लो लूञ पुनः-पुनः लवन अर्थमें लू से य लोलूय यङन्त धातुसे अच् । जिसके परे यङोचि च से यङ्का लुक् [लोलू अ] उको उवङ् [लोलुवः] पुनः-पुनः लवनकर्ता । अच्परे लुकः उदाहरणं । अच्परे बिना, लुक्का उदाहरण—[बोभूयते] ।

बोभुवीति--बिना अचि परे यङ्लुकि जो अनैमित्तिकः-निमित्तेन कारणेन निर्वृत्तः सिद्धः बिना कारणके होता है, अतः अन्तरङ्गः [निमित्तानपेक्षत्वं] आदौ सबसे पहले होता है, जब लुक हो लेगा तब द्वित्व आदि कार्य। जब अचि परे यङ्लुक् होगा तब बहिरङ्ग [निमित्तसापेक्षत्वं बहिरङ्गत्वं] तब पर और नित्य होनेसे पहले द्वित्व, पीछे यङ्लुकि, अचप्रत्यय परे गुण प्राप्त होगा, [न धातुलोप आर्धधातुके] के निषेधसे नहीं होगा, यङ्लोपका निमित्त अच है तब प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणसे [यङ लोप होने पर भी] यङ मानकर सन्यङोःसे द्वित्व आदि । यद्यपि लुक्शब्दसे लोप है, न लुमताङ्गस्य निषेध करेगा तथापि अङ्गकार्यका निषेध करता है वह नहीं लगेगा यह अनङ्गकार्यहै, यङन्तको द्वित्व एकाचको विधीयमान द्वित्व यङ् लुक्में कैसे ? क्यों कि श्तिपा शपा अनुबन्धेन निर्दिष्टं अङ्गणेन च । यत्रैकाज्ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि । गुणो यङ्लुकोः अभ्यासको गुण करता है, बिना द्वित्वके अभ्यास बनेगा नहीं अभ्यास समर्थक सार्थकता वास्ते पहले द्वित्वका समर्थक ज्ञापक है ज्ञापन देगा कि [अभ्यास आदि कार्य] धातुसंज्ञा द्वित्व । प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणसे यङन्त जानकर धातुसंज्ञा लट आदि हों। न लुमन्ताङ्गस्य अङ्ग कार्यका निषेध करता है। यङ्के ङित्से [अनुदात्त ङित्] आत्मनेपद हो जाय, तब कहा शेषात्-यङ्लुकि होनेसे शेष रहा, आत्मनेपदके निमित्त-कारणोंसे हीन हो गया, निमित्त ङित् है उसका लुक् हो चुका, होने क्रियाके कर्तामें परस्मैपद होता है । चर्करीतं च का अर्थ यङ्लुन्त है अदादौ

ष्कर्तरि' इति परस्मैपदम् । 'चर्करीतं च' इत्यादौ पाठाच्छपो लुक् । यङो वा ।७।३।९४। यङन्तात्परस्यः हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड् वा स्यात् 'भूसुवोः' इति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न, 'बोभूतु तेतिक्ते' इति छन्दसि निपातनात् । बोभवीति-बोभोति बोभूतः बोभुवति । बोभवाञ्चकार । बोभविता । अबोभवीत्-अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभवुः । बोभूयात् बोभूयाताम् ।

बोध्यं, अदादिमें मान्यः शप लुकि होना फल ।

बोभवीति—पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति अर्थमें सत्तार्थक भूसे भवनक्रिया समभिहार=पुनः पुनः अतिशय होनेमें इयङ् (यङोऽचि च) यङ्का लुकि, सन्यङोः द्वित्वादि भूभू बुभू गुणोयङि (बोभू) धातुसे परे हलादि पित्सार्वधातुक तिप सिप मिपको ईट् हो । उतो वृद्धिः से हलि, नाभ्यस्तस्याचिसे पिति सार्वधातुके, ब्रुवः से ईटिकी अनुवृत्ति । प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणंके बल पर यङन्त टितसे तिप्के आदिमें ईत्व (बोभूईति) स्थितिमें उको गुण अव् (बोभवीति) शङ्का-भूसुवोस्तिङ् सूत्रसे गुणनिषेध क्यों नहीं ? यङलुक भाषा (लौकिकसंस्कृत) में गुण नहीं होता । क्या प्रमाण है ? दाधर्तिदर्धर्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्ते इत्यादि सूत्रमें यङ्लुगन्तसे गुण नहीं देखा गया । छन्दमें नहीं देखा जाता । यदि भूसुवोस्तिङ्से गुणनिषेध सिद्ध है गुणका अभाव निपातन क्यों किया ? नियमके लिये (यङलुकि छन्दसि एव, अयं गुणनिषेध, क्रियते नान्यत्र) वेदमें गुणनिषेध होगा (लोकमें नहीं) सिद्ध भूसुवोस्तिङके भाष्यमें बोभूतु । एतन्नियमार्थम् यङलुगन्तस्य गुणो न भवति ।

(बोभूतु) प्रमाणसे वेदमें गुणनिषेध नियमसे यङ्लुक् सिद्ध । जब ईट नहीं, तब **बोभोति**--बोभू धातुसे भवनक्रियाके भृश अर्थके दो कर्तामें लट् उसका सूचक तस् **बोभूतः** । पित नहीं न ईट्, ङित् नहीं न गुण । **बोभुवति** बोभू झि झको अदभ्यस्तात् से अत्, (बोभू अति) अचिश्नु—उवङ् । सिप परे ईट वा बोभवीषि बोभोषि । बोभूथः बोभूथ । बोभवीमि बोभोमि बोभूवः बोभूमः । बोभवाञ्चकार पुनः-पुनः प्रमाणसिद्धा या ज्ञापनसिद्धा नहीं । द्विः प्रयोगः-षष्ठाध्यायके एकाचो द्वे प्रथमस्य सूत्रमें प्रश्न हुआ (किमिदं द्विर्वचनं) द्विर्वचन क्या वस्तु है ? स्थानीकी अपेक्षा एकके स्थानमें दो होना अथवा एक स्थानी है वह दो हो जाय, इस सन्देह पर द्विः (प्रयोगोद्विर्वचनं) सिद्धान्त बना उसीके अधिकारमें (का) द्वित्व भी वैसा ही है अतिशयेन बभूव (कासनेकाच आम्वक्तव्यः) भृशं भविता बोभविता बोभविष्यति बार-बार पैदा होगा । बहुत बार उत्पत्तिके विषयमें आज्ञा प्रेरणा ही लोट् **बोभवीतु** बोभोतु बोभूतात् बोभूतां बोभूवतु । जब सिको हि होगा हिके अपित् होनेसे न ईट ङित्से न गुण [बोभूहि] बोभूतात् बोभूतं बोभूत आट पित है ङित् नहीं, गुण हुआ । बोभवानि बोभवाम सबलोग बहुत बार पैदा हों । लङिमें अट, इतश्च इलोप विशेष । यङो वासे जब न ईट [अबोभोत्] अबोभूतां तस्को ताम् आदि [सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च] से झिको जुस् । गुण अव् अनद्यतन भूतकालमें पैदा हुये थे ।

बोभूयास्ताम् । 'गातिस्था' इति सिचो लुक्, 'यङो वा' इतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद् वुक्, अबोभूवीत् अबोभूत् । अबोभूताम् अभ्यस्ताश्रयो जुस्, नित्यत्वाद् वुक्, अबोभूवुः । अबोभविष्यत् जङ्गमीति-जङ्गन्ति । अनुदात्तोपदेश' इत्यनुनासिकलोपः, जङ्गतः । जङ्गमति। 'म्वोश्च' जङ्गन्मि । जङ्गन्वः । 'श्तिपा, शपा-ऽनुबन्धेन निर्दिष्टं, यद्गणेन च । यत्रैकाज्ग्रहणं चैव, पञ्चैतानि न यङ्लुकि ॥ एकाज्ग्रहणेनोक्तत्वान्नेण्निषेधः, जङ्गमिता । अनुनासिकलोपस्य।भीयत्वेनासिद्धत्वान्न हेर्लुक्, जङ्गहि । 'मो नो धातोः' अजङ्गन् । अनुबन्धनिर्देशान्न च्लेरङ ह्मयन्त-' इति न वृद्धिः, अजङ्गमीत् ।

अबोभवीः अबोभोः अबोभूतम् अबोभूत अबोभवम् अबोभूव । विधिलिङि या आशीर्लिङि बोभूयात् बोभूयाताम् आशीर्लिङमें बोभूयुः बोभूयाः बोभूयात्, बोभूयास्तां, बोभूयास्व बोभूयास्म । बार-बार भवन क्रियाके भूतकालमें लुङि ति सिचि [बोभू यत्] गातस्थाघूपाभूभ्यसे सिचलुकि [यङो वा] ईट् दशामें गुण को बाधकर ईट आगम, सार्वधातुकार्धधातुकयोः इति गुणं परमपि बाधित्वा नित्यत्वात् भुवो वुक्लुङ्लिटोः इति वुक् । गुण हो या न हो वुक अवश्य होगा नित्य होनेसे । **अबोभूवीत्**–जब ईट नहीं, गुण हुआ अबोभोत् अबोभूतां अबोभूवुः । अभ्यस्त, आतः सूत्र पर [सिचका लुक होने से] अदन्तसे ही झिको जुस् कहा गया अभ्यस्तसे परे ही जुस् हुआ [अबोभू बस्] दशामें जुसि चसे गुण प्राप्त, परन्तु नित्यत्वात् वुक् । गुणसे वुक् नित्य है न गुणः । अबोभूवीः अबोभोः अबोभूतं-त अबोभुवं-भूव-म। अबोभविष्यतां अबोभविष्यन् बार-बार योग्य हो तब उत्तरपद मिले।

जङ्गमति–पुनः पुनः अतिशयेन गच्छति अर्थे यङ [गम य] कुहोश्चुः नुगतोऽनुनासिकान्तास्य अभ्यासको नुक् नश्चापदान्तस्य अनुस्वारपरसवर्णं । जङ्गमधातुका वर्तमानकाल एककर्ता बहुत आना जाना धात्वर्थः । लट् आदि ईट् । जब न ईट् तब मका लोप, अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनांसे, **जङ्गतः**—तस् परे भी मलोप जङ्गमति पुनः पुनः गमनक्रियाके अनेककर्तामें ल, झि झ-अत् गमहनजनखनघसां उपधा अलोप । जङ्गमीषि जङ्गसि जङ्गथः, जङ्गन्मि बार-बार जाता हूं । तिप् वस परे म व देख लोप । जङ्गमिता एकाच् उपदेशेसे इट निषेध नहीं, यङ्लुकिमें एकाचकार्यका निषेध है । पुनः पुनः अतिशयेन गन्ता । जङ्गमिष्यति । जङ्गतु जङ्गमीषि। जब न ईट जङ्गम सि-हि दशामें अनुनासिकलोप अदन्त देख अतो हेः सूत्रसे हिलुक् क्यों नहीं । आभीय होनेसे (असिद्धवत् अत्र आभात्) नलोपकी असिद्धिसे हि लुक् नहीं । जङ्गन्मि । लङ्में अजङ्गमीत् बनाकर जब ईट् नहीं हुआ, अजङ्गमत् । मोनो धातोः मको न, तका हल्ङ्यावि लोप अजङ्गन् अजङ्गताम् अजङ्गमुः । अजङ्गन् अजङ्गतम । अजङ्गमम् अजङ्गन्व । लुङि भूशगमन क्रिया समाप्त हो । अजङ्गमीत् पुषादि लृदित मानकर च्लिको अङ् नहीं, अनुबन्ध उच्चारणसे (पञ्चैतानि) न यङ्लुकि ह्मयन्तक्षणश्वससे वृद्धि निषेध, तस्तां सिचि इट् ।

अजङ्गमिष्टाम्। रुग्रिको च लुकि।७।४।९१। ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य 'रुक्' 'रिक' रीक् एते आगमाः स्युर्यङ् लुकि। ऋतश्च।७।४।९२। ऋदन्तधातोरपि तथा। वर्वृतीति वरिवृतीति-वरीवृतीति वर्वर्ति-वरिवर्ति-वरीवर्ति वर्वृतः। वर्वृतति। वर्वर्तामास। वर्वर्तिता। गणनिर्दिष्टत्वात् 'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः' इति न, वर्वर्तिष्यति। अवर्वृतीत्। अवर्वर्त्। सिपि-'दश्च' इति रुत्वपक्ष 'रो रि-' अवर्वाः। गणनिर्दिष्टत्वादङ् न अवर्वर्तीत्। चर्करीति चर्कर्ति-चरिकर्ति-चरीकर्ति। चर्कृतः चर्क्रति। चर्कराञ्चकार। चर्करिता अचर्करीत्। अचर्कः।

इसी प्रकार येऽपि=यङ्लुकिसे भले हों आत्मनेपद न हों, किन्तु स्पर्ध शीङ आदि धातु अनुदात्त ङित् है आत्मनेपद हो जाय, तब कहा तेभ्योपि न=उनसे भी आत्मनेपद नहीं होता, क्यों नहीं होता? अनुदात्त (अच) ङित् अनुबन्ध हैं। उससे विहितकार्य आत्मनेपद आदिका निषेध है। यथा—श्तिपा शपा अनुबन्धेन निर्दिष्ट यङ्गणेन च। यत्रैकाच ग्रहणंचैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि। श्तिप् शप् अनुबन्ध गण एकाचसे ग्रहण हों वे यङ्लुकिमें नहीं होते। अतएव श्तिपा शपा आदि श्लोक परिभाषाके निषेधसे श्यन् आदि नहीं होते। क्यों नहीं होते? दिवादिभ्यः रुधादिभ्यः श्नम् इत्यादिगणमें पढ़े होनेसे, उच्चारणसे, किन्तु शप होता है कर्तरि शप् गणमें नहीं आता। अतः अलग पढ़ा। रुकरिकौ-ऋ उपधामें हो, ऐसे धातुके अभ्यासको रुक-र रिक रीक्, आगम हो केवल उकार उच्चारणार्थं यङ्लुकिमें। ऋतश्च ऋदन्त धातुसे भी अभ्यासको रुक रिक रीक् आगम हो यङ् लुकमें। जैसे वृतु वर्तने बर्ताव व्यवहारकी क्रिया पुनः पुनः बहुत बार हो अर्थमें यङ् लुकि। वृत वृत्त ववृत। यङ् लुकि धातु है बार-बार वर्ताव व्यवहार अर्थ, उससे लट् ति इट् (ववृत इ ति) अभ्यासको क्रमसे रुक् र, वरवृतीति। रिक् रीक्से दूसरा तीसरा रूप। लघूपधगुण नहीं होता नाभ्यस्तस्याचिके निषेधसे। जब न इट् तब भी रुक रिक् आगम होंगे वरीवर्ति आदि। तस्परे झि-अत् परे भी तीनों आगम। लिट्में आस जोड़ लें प्रक्रियानुसार। ता परे वलादि इट्। तीनों आगम होंगे, पुनः पुनः वर्तावकी भविष्यकालिक क्रिया हो, वर्वर्तिष्यति इट् विकल्प नहीं होता, गणमें उच्चारण होनेसे। न वृद्भ्यः लोट् लकार बार-बार वर्ताव क्रिया। आज्ञा प्रेरणा निवेदन प्रार्थनाका विषय हो लोट् प्रक्रिया पूर्ववत्। एरुः तातङ् विशेष। वर्वर्तु वर्वृत्तां वर्वृततु सि-हि-धि जश्। वर्वर्तानि (ववृत्त) धातुसे अनद्यतन भूतकालिक क्रिया हो लङ् ति इट्में तीनों रूप। जब न इट् हल्ङ्याब्भ्यो तलोप। रुक् रिक् रीक् आगमकी कल्पना करें। रात्सस्यके नियमसे संयोगान्त लोप नहीं। रसे परे सका ही लोप हो। अन्यका नहीं, लङ् स्थाने सिप् (अवर्वर्त स) दशामें तको जश्द दश्चसे दको रु। अवर्वरर् स। रोरिसे, पूर्व रेफका लोप, ढ्लोपे दीर्घं पूर्व अण्को। सिप्का हल्ङ्याब्भ्यो लोप, रको विसर्ग अवर्वाः। लुङ् लकारमें च्लिको अङ् नहीं गण निर्दिष्ट उच्चारित होनेसे। पुषादिद्युतादिगण है। अस्तिसिचोऽपृक्ते: नित्य ईट।

चर्क्‌यात् । आशिषि रिङ् चक्रियात् अचर्कारीत् । 'ऋतश्च' इति तपरत्वान्नेह-कॄ विक्षेपे' । चार्कर्ति । तार्तर्ति तातीर्तः तातिरति। तातीर्हि, तातराणि अतातरीत्-अतातः अतातीर्ताम् अतातरुः अतातारीत् अतातरिष्टाम् ।

इति तिङन्ते यङ्लुवप्रकरणम् ।

अथ नामधातुप्रकरणम्

सुप आत्मनः क्यच् ।३।१।८। इषिकर्मणः एषितृसम्बन्धिनः सुबन्तादि-

चर्करीति—पुनः पुनः अतिशयेन करोति बहुत काम करता है । कृ धातुसे यङ्लुक् कर् कृ (चकृ) रुक रिक् रीक् तीनों आगम सुलझकर । चर्कृ चरिकृ चरीकृ धातु बना ईट् आदि । न ईट् गुणः चर्कर्ति तीनों रूप । तस् परे, झि अत् परे भी तीनों रूप चरीकर्ति । आम कृ लिट्का स्मरण करें । चर्करिष्यति बार-बार बहुत काम करेगा । लङ् अनद्यतन भूतकालिक क्रियाका स्मरण करें। इट् अभाव पक्षमें त का लुक् गुण र विसर्ग, आशीर्लिङ्में आर्धधातुक होनेसे रिङ्शयग्लिङ्क्षु। लुङ्में सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ऋतश्च सूत्रमें तपर पढ़ा है । जहां ह्रस्व ऋ रहेगा । वहीं रुक रिक् रीक् होंगे । दीर्घ ऋ रहने पर नही । यथा विक्षेपार्थक कॄ से बार-बार बिखेरनाका द्योतक यङ्लुक् । कॄ कॄ चाकॄ धातुसे इट् आदि, जब न इट् गुण चार्कर्ति चाकीर्तः चाकिरति । ङित्से गुण नहीं, ऋत् इद्धातोः इ रपर । इट् पक्षमें चाकरीति चाकराञ्चकार चाकरिष्यति चाकर्तु चाकिरतु चाकीर्हि । चाकिराणि अचाकरीत् अचाकः अचाकीर्ताम् अचाकरुः । यासुट ङित् है न गुण । चाकीर्याताम् इत्व दीर्घ, लुङ् अचाकरीति अचाकारिष्टाम् ।

पुनः पुनः अतिशीघ्रं तरति **तार्तर्ति**–बहुत शीघ्र तैरना पार करना है । तॄ प्लवनतरणयोः जल प्लवन=पारकरणार्थक तॄ धातोः पुनः पुनः शीघ्रं पारकरणे (यङ्) तर तॄ तातॄ धातुः यङ्लुक् है । लट ति ईट् (तातरीति) न इट् गुण तार्त्ति तस् परे इर् दीर्घ । झ-अत् इर । तार्तर्मि त्वं तार्तर्सि गङ्गां, तातरिष्यति संसारं, तातर्तु तातीर्ताम् तातीरतुः सि-हि-इर् दीर्घ हेर्धिः । आट् आदि तातराव । अनद्यतन भूतकालमें बहुत बार पार किया हो । अतातः तलोप तस्ताम् इर् दीर्घ । बीते भूतकालमें बार-बार तैरा पार किया था, लुङ् में तातॄ धातुसे ति ईट सिच वृद्धि आदि । अतातारिषुः अतातारीः । इति यङ्लुगन्ता ।

नामधातुका अवतरण—अथ-व्यापक क्रियाके अभियानमें भ्वादि सभीको धातुसंज्ञा कही गयी। सामान्यक्रिया नहाना नहलाना, पढ़ना पढ़ाना, खाना खिलाना विशेष क्रिया खिलाने खिलवानेकी प्रेरणा **णिजर्थः** । पढ़ने पढ़ाने पढ़वानेकी इच्छा एककर्ता सनका अर्थः । क्रियाका अनेक बार बहुत होना यङ अर्थ । धात्वर्थं फल जननी क्रियाका विविध स्वरूप समझानेके बाद प्रातिपदिक (या पद) भी क्रिया बने रूप धारण करे, व्यापक बने ऐसा नाम शब्द प्रातिपदिक या सुबन्त शब्द धातुबन

च्छायामर्थे क्यच् प्रत्ययो वा स्यात्। धात्ववयवत्वात्सुब्लुक् । क्यचि च ७।४।३३। अस्य ईत् स्यात् । आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति । मान्तप्रकृतिकसुबन्तादव्ययाच्च क्यच् न । किमिच्छति इदमिच्छति । स्वरिच्छति । अशनायोदन्य-धनाया बुभुक्षा पिपासा-गर्धेषु ।७।४।३४। क्यजन्ता निपात्यन्ते । अशनायति । उदन्यति । धनायति 'बुभुक्षादौ' किम् ? अशनीयति । उदकी-

---

कर क्रियावाचक बने, उसका जनककारक हो उस प्रक्रियाका प्रकरण-नाम एव धातुः क्रियावाचकः तस्य साधनिका दशा, प्रारभ्यते अस्मिन्प्रकरणे क्यच्प्रत्ययस्य स्वसम्बन्धि वस्तु पुत्र द्रव्य वस्त्र भवनादिप्राप्त्यनुकूलेच्छानुकूलव्यापारो अर्थः ।

सुप् आत्मनः—सुप् इति प्रत्यया, तत्र तदन्तविधि । पूर्वसूत्रतः कर्मणः इच्छायां वा अनुवर्तते । इषिकर्मणः-इच्छार्थक इष धातुके कर्मकारकसे **एषितृ**-इच्छाकर्ता सम्बन्धी सुबन्तकी इच्छा अर्थमें क्यच् विकल्पसे हो । इच्छाके सन्निधानसे इच्छाका कर्म होना इष्ट । पञ्चमी (आत्मनः शब्दमें) आत्मा स्वका पर्याय है। आत्मा (अपने) के लिए, सम्बन्धित अर्थ। स्व कौन लिया जाय, इच्छाके संसर्गसे (इच्छा कर्ता) वक्ता को इष्टः । स्वस्मै यदिष्यते कर्मकारकं तद्वाचकात्सुबन्तात् इच्छायां क्यच् वा । इच्छा कर्ता स्वार्थके लिए जिसको चाहता है । उसीके सुबन्तदशासे क्यच् हो जैसे-आत्मनः (पुत्रमिच्छति) अपने लिये अपनेसे सम्बन्धित पुत्र चाहता है । चाहना क्रियाका कर्म पुत्र इच्छाकर्तासे सम्बन्धित कर्म है उसकी सुबन्त दशा (पुत्र अम्)से इच्छा अर्थमें क्यच् । पुत्र अम् य । सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञा धातुका अवयव सुप् अम् है उसका सुपोधातुप्रातिपदिकयोः से लुक् (पुत्र य) दशायां **क्यचि च** अको ई हो क्यच्परे । अस्य च्वौसे अस्य, घ्राध्मोः से ई आया । त्रमें अको ई (पुत्रीय) सुबन्त प्रातिपदिकं ही नामधातुः तस्मात् लट् ति शप् । पुत्रीयति पुत्रीयतः पुत्रीयन्ति पुत्रीयसि पुत्रीयामि । सूत्रे आत्मनः इति किमर्थमपठत् । यत्र स्वस्य पुत्रः इच्छायाः विषयः तत्रैव क्यच् भवतु । यत्र परस्य पुत्रमिच्छति (राज्ञः पुत्रमिच्छति) तत्र क्यच् मा भवतु एतदर्थं आत्मन इति अपठत् । पुत्रीयिष्यति, पुत्रीयतु । अपुत्रीयत् अपुत्रीयीत् । अपुत्रीयिष्टाम् अपुत्रीयिष्यत् ।

मान्त अव्यय—से क्यचिका प्रतिषेध प्रमाणित है मान्ताव्ययेभ्यः प्रतिषेध पुत्रमात्मन इच्छति (पुत्रीयति) यहां क्यच नहीं होगा पुत्रके मान्त न होनेसे, पुत्रान् वा इच्छति विग्रहे क्यचि भविष्यति प्रतिषेधाभावात्, मान्तानि अव्ययानि तेभ्यः अर्थ होने पर स्वरिच्छति या स्वः इच्छति । यहां क्यचि निषेध नहीं होगा, मान्त न होनेसे, अतः इसी वार्तिकका विवरण बोले (वा०) मान्त होनेकी प्रकृति वाला सुबन्त और अव्ययसे क्यचि नहीं होता, अतः किं जिज्ञासाविषयक प्रश्नकी इच्छा मान्त है न क्यच । एवं इदंमंगुलिनिर्देशकमिच्छति न क्यचि, स्वः अव्यय है सवेरा अर्थ, न क्यच, स्वरिच्छति ।

अशनाय—उदन्य, धनायके बीच द्वन्द्व, ण्यन्त निपातनसे, सूत्रमें पढ़े होनेके

यति। धनीयति। **अश्व-क्षीर-वृष-लवणाऽनामात्मप्रीतौ क्यचि** ।७।१।५१।
एषां क्यचि असुगागमः स्यात्। अश्व-वृषयोर्मैथुनेच्छायाम्। अश्वस्यति
वडवा। वृषस्यति गौः। क्षीर-लवणयोर्लालसायाम्। क्षीरस्यति बालः।
लवणस्यत्युष्ट्रः। सर्वप्रातिपदिकानां क्यचि लालसायां सुगसुकौं। दधिस्यति-

अशनाय—उदन्य, धनायके बीच द्वन्द्व, क्यन्त निपातनसे, सूत्रमें पढ़े होनेके प्रमाणसे परन्तु क्रमसे भोक्तुमिच्छा बुभुक्षा भूख अर्थ हो पातुमिच्छा पिपासा प्यास, गृर्धः अभिकांक्षा लोभकी इच्छा अर्थमें क्यच मान्य। (अशनायति) अश्यते खाद्यते भुज्य यत्तत् अशनम् अन्नं, खाद्यवस्तु। तद्भोक्तुमिच्छति अशनशब्दसे भूख अर्थमें क्यचि (क्यचि च) से ईत्वका अभाव निपातनसे। अकृत-दीर्घ। भोजनेच्छानुकूला क्रिया (उदन्यति) उदकं पातुमिच्छति पानी पीना चाहता है निपातनसे उदक को उदन्, नलोप अभाव, उदन्य धातु जलपानेच्छायाः वर्तमानो व्यापारः उदकको उदन हुआ। अधिकं धनमिच्छति धनायति भोजनार्थं सत्यपि धने संग्रहार्थं अर्थे क्यचि निपातनेन न इत्वं धनायति। अधिक धन विषयक इच्छानुकूल वर्तमानो व्यापारः। सूत्रमें बुभुक्षा पिपासा लोभका प्रतिबन्ध क्यों लगाया? इसलिये कि जहां भूख न हो, वहां अशनीयति अन्नं संग्रहीतुमिच्छति भण्डारणके लिये। वैश्व देवादि कालान्तरोपयोगार्थमिच्छति नतु भोक्तुं, स्नानार्थं क्षेत्रसिञ्चनार्थं जलमिच्छति तत्र उदकीयति। दरिद्रः सन् जीवनाय पोषणाय धनमिच्छति धनीयति जीवनरक्षण पोषण धनके लिये धन हो तब क्यच ईत्व होते हैं।

अश्वक्षीर—दूध वृष-बैल लवण इनसे आत्मप्रीति निजी सुख अर्थमें क्यचि असुक् आगम भी क्यच्परे (आज्जसेरसुक्) से असुक आया। क इत, उ उच्चा। अस कित्से अन्त्य विशेषता (वा) अश्व वृष शब्दसे मैथुन आसक्ति संचयकी इच्छामें ही क्यचि असुकि हो, अन्य इच्छामें न हो। मैथुनार्थं संगमार्थं आत्मप्रीत्यर्थम् अश्वमिच्छति वडवा (घोड़ी) अश्वस्यति (अश्व अस य) सनाद्यन्तधातु मैथुनार्थं अश्वविषयक इच्छानुकूला वर्तमाना क्रिया। लडादिः वृषं वृषभम् (बैल) इच्छति (वृषस्यति) वृष शब्दसे संगमकी इच्छा अर्थमें क्यचि परे असुक्। मैथुनार्थं वृषममिच्छति। यदि मैथुनेच्छा अश्व वृषकी ही मान्यता हो, तब (वृषस्यन्तीतु कामुकी) कोश प्रमाणसे मैथुनेच्छामात्रमें लक्षणा अश्ववृषमें अभिधाशक्ति (वा) क्षीर लवण लालसा उत्कटेच्छा आशक्ति लोभ अर्थमें क्यचि असुक हो। यथा क्षीरमिच्छति क्षीरस्यति बालकः दुग्धके लिये लालयित। क्षीर प्रातिपदिकको धातु बननेके लिये उससे क्य अस लट् आदि। लवणमिच्छति लवणस्यति। ऊंट नमकके लिये लालायित बहुत उत्सुक अर्थमें य अस्। लवणस्य धातु बना। लवणविषयकलालसानुकूला वर्तमाना क्रिया।

सर्वप्राति—सभी प्रातिपदिकोंसे क्यचि हो लालसा अत्यन्त लोभकी प्रबल इच्छा अर्थमें, य परे सुक् असुक् भी हो। यथा—दधिइच्छति दधिष्यति। दधिकर्मक इच्छानुकूल व्यापार। जब असुक अनुबन्धलोप अस, तब यण् (दध्यस्यति) मधुइच्छति

दध्यस्यति । मधुस्यति-मध्वस्यति । नः क्ये ।१।४।१५। क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं स्यान्नान्यत् । नलोपः, राजीयति । 'हलि च' गीर्यति पूर्यति । 'धातोः' इत्येव । नेह-दिवमिच्छति दिव्यति । नान्तमेवेति किम् ? वाच्यति । समिध्यति । क्यस्य विभाषा ।६।४।५०। हलः परयोः क्यच्-क्यङोर्लोपो वा स्यादार्धधातुके । 'आदेः परस्य' 'अतो लोपः' तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो

(मधुस्यति) मधुशब्दात् लालसायां क्यचि, असु लट् आदि । यदा असु तदा यण् (मध्वस्यति) क्षीरलवणयोः इति वार्तिकं कात्यायनीयं सर्वप्रतिपदिकानां मतान्तरम् एतच्च भाष्ये (अपर आह) शब्देन ध्वनितं । (नः क्ये) क्यचि क्यङि परे नान्तशब्द ही पद मान्य, जो नान्त नहीं । प्रसङ्गमें क्यच् परे नान्त नहीं, न पद न नलोपः ।

राजानमिच्छति राजयीति राजकर्मिका इच्छानुकूलाक्रिया अर्थे क्यच् (राजन् य) दशायां नः क्ये नान्तमेवपद, नियमेन राजन् इत्यस्य पदसंज्ञा पदान्त नस्य लोपे राज य-क्यचि च अको ई राजीय=क्यजन्तधातुः राजविषयक इच्छानुकूलव्यापारो अर्थः । वर्तमानकालिक तादृशेच्छायाः कर्तरि लट ति आदि । एककर्तामें राजाकी इच्छा । क्यचि च सूत्रेण ईत्वे कर्तव्ये नलोपः नहि असिद्धः, नलोपसुप्स्वरसंज्ञा तुग्विधिकृति नियमसे सुप विधि स्वरविधि आदिमें नलोप असिद्ध, अन्यत्र न, आत्मनः गिरमिच्छति पुरमिच्छति मूकः शवरः गूंगा अपनी वाणी चाहता है । घर चाहता है । गिर या पुर शब्दसे क्यच् हलि चसे उपधादीर्घ, वर्तमाने लट् इच्छा कर्तामें ति आदि (गीर्यति पूर्यति)यथा अत्र हलि चेति न दीर्घः तथा शृणु दिवं स्वर्गं इच्छति कामयते दिव्यति, अत्र दीर्घो न भवति, अत आह धातोरित्येव हलि च सूत्रमें सिपि धातोःसे धातु आता है । उसीको दीर्घ हो दिवशब्द अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है । धातु नहीं न दीर्घ, स्वर्गकी इच्छाकर्ता अर्थ । वाचमिवाचरति सरस्वती वृहस्पतिके सदृश आचरण सरस विशुद्ध भाषणके सदृश अर्थमें क्यचि (वाच्यति) न क्ये सूत्रके नियमसे न पदसंज्ञा, न कुत्व लोप। कविरिव आचरति कवीयति। कवि शब्दात् आचरणे अर्थे क्यचि, य परे अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घः (कवीय) धातुः कविसदृश आचरणानुकलः वर्तमानो व्यापारः (अकवीयत्) समिधमिच्छति समिध्यति लकड़ीकी इच्छा । समिधसे इच्छा अर्थे क्यचि (नः क्ये) नियमसे न पद, न जश्द। लुट समिधिता (समिध्य इ ता) दशायां यस्य हलः नित्यं यलोपे प्राप्ते क्यस्यः—हलसे परे क्यचि क्यङिका लोप हो आर्धधातुक परे, यस्य हलः से हल आया, क्यष नहीं । लोहितडाज्भ्यः क्यष नियम से हलन्त नहीं आता। अन्त्यलोपकी शङ्का पर कहा (आदेः परस्य) परके आदि यका लोप (समिध अ इता) अतो लोप अलोप, पुगन्तलघूपधस्यसे गुणकी शङ्का पर कहा अकारलोपस्य-स्थानिवद्भाव होनेसे लघूपधगुण । नलोप, अभाव पक्षे य तिष्ठति । काम्य उक्तविषयेऽसुप् आत्मनः क्यच्

न, समिधिता-समिध्यिता। **काम्यच्च** ।३।१।९ उक्तविषये काम्यच् स्यात्। पुत्रमात्मनः इच्छति पुत्रकाम्यति पुत्रकाम्यिता। **उपमानादाचारे** ।३।१।१०। उपमानात् कर्मणः सुबन्तादाचारार्थे क्यच् स्यात्। पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम्। विष्णूयति द्विजम्। सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्य.। कृष्ण इवाचरति कृष्णति। 'अतोगुणे' इति शपा सह पररूपम्। अ इवाचरति,

---

काम्यच् भी हो जिसका अर्थ इच्छा कर्तासे सम्बन्धित और इच्छाका कर्म प्राप्तिकी क्रिया। आत्मनः पुत्रम् अपनेसे सम्बन्धित पुत्रकी कामना अर्थमें (पुत्र अम्)से काम्यचि क इत नहीं, फलके बिना। धातुसंज्ञा सुप लुक। लट आदि पुत्र-काम्यति पुत्रकाम्यन्ति पुत्रकाम्यामः। काम्याञ्चकार आत्मसम्बन्धी पुत्रकामनानु-कूलक्रियावाचक पुत्रकाम्य-धातोः अनद्यतन भविष्यकालिकक्रियायाः कर्ता अर्थे लुट् तास ति डा इट् आदि। पुत्रकाम्यिता। अत्र यस्य हलः सूत्रेण यलोपो न, अनर्थ-कत्वात्, काम्यच अर्थवान् अस्ति, केवलं यकारः नहि अर्थवान्।

उपमानात्—इस सूत्रमें (सुप आत्मनः) से सुप् आया। धातोः कर्मणः से कर्मणः भी, उपमान बना कर्मकारकमें विराजमान सुबन्तसे आचरण कर्ता अर्थमें क्यचि (वा०) की अनुवृत्ति, पुत्रमिव आचरति छात्रको पुत्रसदृश मानता है। पुत्र उपमान छात्र उपमेय। उपमानवाची कर्म सुबन्त (पुत्र अम्) शब्दसे पुत्र सदृश व्यवहार आत्मीयता पुत्रत्व अर्थमें क्यचि (पुत्र य) क्यचि परे पूर्व अको ई पुत्रीय पुत्र सदृश आचरणानुकलव्यापारः धात्वर्थः उससे वर्तमानकालिक क्रियाके कर्ता अर्थ में लट् आदि। पुत्रीयतः पुत्रीयन्ति। त्वं शिष्यं पुत्रीयसि। अहं वय भृत्यं पुत्रीयामः विष्णुः इव आचरति विष्णुत्वेन उपचरति द्विजम्, उपमानं विष्णुः, उपमेयः द्विजः श्रद्धलु ब्राह्मणको भगवानके समान मानता है। उपमान विष्णुसे सदृश आचरण अर्थमें य। दीर्घ अकृतघ-पित्रीयति स्वामिनम्

सर्वप्राति—सभी प्रातिपदिकोंसे आचार व्यवहार अर्थमें क्विप् विकल्पसे बोले। कृष्ण इति नामधातोः सदृशचरित्रानुकूलव्यापारः धात्वर्थः लडादिः शप्(कृष्ण अति) 'अतो गुणे' पररूपं **कृष्णति** णतः णन्ति। कृष्णसि कृष्णामः कृष्णाञ्चकार कृष्णिता कृष्णिष्यति कृष्णतु अकृष्णत् कृष्णेत् कृष्णायात् : अतोलोपः को बाधकर परत्वात् अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घ। अकृष्णासी।

अ इव—अकारो वासुदेव भगवान्, स इव आचरति चरित्रं करोति भक्तोपरि दया, राक्षसबधरूपम् अति अतः अन्ति विष्णु इत्यर्थवाचक अशब्दात सदृशचरित्र करणे सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विप्, पूर्णलोपे अ इति धातु। हरिसदृश आचरणानुकूल-व्यापारः अर्थः वर्तमानकाल क्रियाकर्ता अर्थे लट आदि। **असि** अथः अथ। तुमलोग विष्णुतुल्य आचरण करते हो। आमि आवः आमः। हमलोग भगवान समान आचरण करते हैं। हरिसदृश आचरणक्रियावाचक अ धातुसे बीते भूतकाल हरि सदृश आचरण क्रियाके कर्तामें लिट् क्विप्, प्रत्ययान्त मानकर कासनेकाचसे आम्

अति अतः अन्ति । औ, अतुः, उः । (अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ।६।४।१५। अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ च क्ङिति । इदमिवाचरति इदामति । राजेव राजानति 'इन्हन्' इति नियमान्नेहोपधाया दीर्घः-पन्था इव पथीनति । मथीनति । स्व इव स्वति । सस्वौ-सस्व । कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ।३।१।११। उपमानात् कर्तुः सुबन्तादाचारे क्यङ् वा स्यात्, सान्तस्य तु कर्तृवाचकस्य लोपो वा स्यात् । 'क्यङ् वा' इत्युक्तेः पक्षे

क्यों नहीं ? तब कहा प्रत्ययग्रहण को हटाकर केवल अ एकाच है आम् अनेकाच्से होता है, अ धातोः ल स्थाने णल द्वित्वं (लिटि धातोः)अतोलोपः अकारलोपो न, द्विर्वचनेऽचि द्वित्वे कर्तव्ये अच् (अ) स्थाने लोप आदेशो न, अ अ दशायां अतोलोपं बाधित्वा अतोगुणे पररूपे अत आदेः अकारस्य दीर्घ (आ अ) दशायां आत औ णलः णलस्थाने औ, आ औ इति दशायां वृद्धिः एचि परे (औ अतुः ऊः) अ अतुस्, अ उस दशायां पररूप दीर्घ आलोप प्रत्यय मात्र । शेष (इथ इथुः अ) थलि इटपरे आ, लोप (औ इव इम) इट होने पर आलोप ।

अनुनासिकस्य—नोपधायाः से उपधा, ढ्लोपेसे दीर्घ आया । अङ्गका अधिकार । अनुनासिक (ञमङणन) अन्तमें हो उसकी उपधाको दीर्घ हो क्वि परे, झलादि किति ङिति परे । शान्तोदान्तः । किति परेका उदाहरण-शंशात् दंदात् । ङिति परे यङ्लुकि । इदम् इव आचरति इसकी तरह आचरण करता हैं । (इदामति) इदम् से क्विप् पूर्णलोप अनुनासिक म की उपधाको दीर्घ । हलन्तेभ्यः आचारक्विप् नास्ति । ह्रस्वनद्यापः सूत्रे भाष्ये स्थितं । राजा इव आचरति राजानति राजन् प्रातिपदिकसे क्विप् आदि अनुनासिकान्तके अन्त्य अल्के पूर्वको दीर्घः । पन्था मार्गः इव आचरति नदी । पथीनति पथिन्से लट् आदि अनुनासिक न की उपधा इको दीर्घ माधवमत, अन्य मतमें (पथेनति) लघूपधगुण इन्हन्पूषार्यम्णां—नियमसे दीर्घ प्राप्त नहीं । मन्थाः—मन्थनदण्डः स इव आचरति मथीनति मेरुः, दीर्घादिः । प्रासाद उपमान अधिकरण आधार है । प्रसन्नता फल उपमान भूत आधार प्रासाद ङिसे महलसुखके अनुकूल आचरण प्रसन्नता अर्थमें (य ई ल-ति) आदि कुटियामें महलके समान सुखी भिक्षुः याचकः त्वं (प्रासादीयसि) वयं गृहे प्रासादीयामः । कुटीयति महलमें झोपड़ीके समान दुःखी कुट्यामिव प्रासादे अट्टालिकायां खिन्नः क्षत्रिय । कुटीसे (य ल-ति) ।

कर्तुः की आवृत्ति कर्तुः क्यङ्-एक वाक्य, पञ्चम्यन्त । उपमानादाचारेकी अनुवृत्ति । धातोः कर्मणः से वा की भी । उपमान बना कर्ता कारक यदि सुबन्त हो । उससे आचरण अर्थमें क्यङ् विकल्पसे हो । (कर्तुः सलोपश्च) द्वितीयं वाक्यं लुप्त षष्ठी सान्त-यदि स अन्तमें हो कर्तृवाचकके सका लोप भी हो, क्यङ् वा पढनेसे पक्षमें वाक्य ही रहता है । क्यङ् अभाव पक्षमें सलोपका भ्रम मिटाया, सान्तस्य तु पढ़कर, जब क्यङ रहेगा तभी सलोप होगा । सन्नियोगशिष्ट साथमें पढ़े जानेसे

वाक्यम्। सान्तस्य लोपस्तु क्यङ्सन्नियोगशिष्टः। स च व्यवस्थितः। ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया। कृष्ण इवाचरति कृष्णायते। ओजश्शब्दो वृत्तिविषये तद्वति-ओजायते। अप्सरायते। यशायते-यशस्यते। विद्वायते-विद्वस्यते। (आचारेऽवगल्भ-क्लीब-होडेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः। वाग्रहणात् वाक्यमपि। अवगल्भादयः पचाद्यजन्ताः। क्विप्सन्नियोगेनानु-

---

सहैव प्रवृत्तिः सहैव निवृत्ति) इति महाभाष्ये। क्या क्यङ् परे सलोप सर्वत्र है। तब कहा सच=वह सलोप व्यवस्थित है विविधा अवस्था व्यवस्था क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्ति क्वचिद्विभाषा ही विविध अवस्था है। सा सञ्जाता अस्येति व्यवस्थितः। कहीं लोप होगा कहीं नहीं कहीं विकल्पसे। इसका सूचक वार्तिक (वा०) **ओजस्** अप्सरससे क्यङ् परे नित्य सलोप, **इतरेषां**=विभाषया अन्य सकारान्त शब्दसे क्यङ् परे विकल्प सलोप हो, ओजः का ओजस्वीमें लक्षणा, ओजस्वी इव आचरति जोशीलाके सदृश चरित्र अर्थमें क्यङ् (ओजस य) वार्तिकसे नित्य सलोप अकृत्सार्वधातुकयोः से दीर्घ, ओजायते ओजायन्ते तेजस्वी इव आचरन्ति। कृष्ण इवाचरति बल्वलः। मुरली मोर मुकुट धारण कर कृष्ण च रित्र करता है। उपमान कृष्ण उपमेय बल्वल। उपमानवाची कृष्ण शब्दसे सदृश आचरण अर्थमें क्यङ् 'य' शेष। अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घ (कृष्णाय) सनाद्यन्तधातुः कृष्णसदृश आचारणानुकूलव्यापारः धात्वर्थः। कर्ता वर्तमानकाल (लट्) त आदि कृष्णायते कृष्णायाञ्चकार कृष्णायतां। कृष्ण सदृश आचरण करो, अकृष्णायत् अकृष्णायिष्ट। ओजस शब्दसे क्यङ्। जब सनाद्यन्ता धातवः से धातुसंज्ञा तब वृत्तिः-समुदायार्थं कथनम्। दो अर्थका मिलन एकीभवन वृत्ति है। ओजस्वी सदृश आचरण मिलकर एक अर्थ होना वृत्ति नामधातु है। अप्सरा इव आचरति शूद्री। उपमान अप्सरस् शब्दसे सदृश आचरण अर्थमें क्यङ्। सलोप दीर्घ लडादि। अप्सरायते अप्सरायिष्यते अप्सरायताम्। अप्सरा सदृश आचरण करें। अप्सरायते क्यङ् ङित् अतः आत्मनेपद।

इतरेषां—विभाषयाके उदाहरण–यशस्वी इव आचरति यशायते, नामी पुरुष सदृश आचरणकर्ता। यशस् शब्दसे तुल्य आचरण अर्थ य। आत्मनेपद सलोप अकृत्सार्वदीर्घ, जब स लोप नहीं तब यशस्यते यशस्यताम् अयशायत्। विद्वानिवाचरति **विद्वायते**—विद्वस् शब्दसे सदृश चरित्र अर्थमें क्यङ्। सलोप दीर्घ आदि। यदा न सलोपः तदा विद्वस्यते विद्वान् सदृश आचरणकर्ता वर्तमानकाल। विद्वायिष्यते विद्वायताम् अविद्वायत्। विद्वान् तुल्य आचरण किया।

(वा) **आचारे**—अव गल्भ बहुत धृष्ट क्लीब नपुंसक शिथिल होड़ मिती ये शब्द उपमान हो तुल्य चरित्र अर्थमें क्विप्। वा पढ़नेसे क्यङ् भी होता है। अवगल्भ (गल्भ धाष्टर्ये) क्लिब अधाष्टर्ये होड अनादरे इन धातुओंसे पचादि गण मानकर कर्तामें अच्। अवगल्भ इवाचरति बहुत धृष्ट शिखण्डी सदृश चरित्र करता है। अवगल्भते आत्मनेपद कैसे? कु क्विप्के सम्बन्धसे धातुके अन्त्य अ की अनुदात्त

दात्तत्वमनुनासिकत्वं चाच्प्रत्ययस्य प्रतिज्ञायते। तेन तङ्, अवगल्भते। क्लीबते। होडते। भूतपूर्वादप्यनेकाच आम् एतद्वार्तिकारम्भसामर्थ्यात्) अवगल्भाञ्चक्रे। क्लीबाञ्चक्रे। होडाञ्चक्रे। ('उपसर्गसमानाकारं पूर्वपदं धातुसंज्ञाप्रयोजके प्रत्यये चिकीर्षिते पृथक् क्रियते' इति। तेन गल्भ शब्दात्प्रागट्' ('अवागल्भत' 'अवागल्भिष्ट') (लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्।३।१।१३।

और अनुनासिक प्रतिज्ञासे इत्संज्ञा लोप है अनुदात्तेत् जानकर आत्मनेपद त आदि। शप् भी। (अवगल्भते) एककर्तामें धृष्टतानुकूल वर्तमान आचरण क्लीबसे नपुंसक सदृश आचरण अर्थमें क्विप् क्यङ् भी अनुनासिक प्रतिज्ञासे अनुदात्त अ इत्। अतः आत्मनेपद होडसे होडते अनादर अपमान सदृश वर्तमान चरित्र कर्तामें क्विप् आदि क्ली प्रश्नः-अवगल्थांचक्रे क्लीबाञ्चक्रे, होडाञ्चक्रे में आम्प्रत्यय कैसे? अके इत् लोपसे एकाच् रहा। अनेकाच् धातुसे आम् होता है। तब कहा भूतपूर्वगति लेकर अनेकाच् मानकर आम् होगा। अलोपके पहले अनेकाच् था। तब प्रमाण एतद् वार्तिकारम्भ इति। सर्वप्रतिपदिकेभ्यः से वा क्विप् होता, उक्त प्रयोग बनते, पुनः आचारेऽवगल्भ वार्तिकसे क्विप् विधान क्यों? उसके साथ अनुनासिक अनुदात्त प्रतिज्ञा क्यों? वह व्यर्थ हो प्रमाण बनता है कि भूतपूर्व गतिसे अनेकाच् माना जाय। परन्तु अनुनासिक अनुदात्तकी सिद्धिमें प्रतीज्ञाकी शक्ति क्षीण है वह ज्ञापन कैसे देगा। न च–न कहिये कि अवगल्भतेका सिद्ध होना ही उक्त प्रतिज्ञाका फल है तन्न, केवलानां अवगल्भादिधातूनां धातुपाठसिद्धानाम् अनुदात्त इतामिवाचरति अर्थे वृत्तिः अभिधानशक्तिः सम्भवति। बिना अच्के भी सदृश चरित्र अर्थमें शक्ति सम्भव है। वह वृत्ति कुतः केन प्रकारेण सम्भवः, धातवः अनेकार्थका भवन्ति। अतः क्विप् विधानं भूतपूर्वगत्याश्रयणे ज्ञापकम्। अतः अनेकाच्त्वादाम् भूतकालिक अप्रत्यक्ष धृष्टता सदृश क्रिया। वार्तिकमें अव इति उपसर्ग सहित पाठसे या केवल गल्भ शब्दसे या अन्य उपसर्ग प्र अनु आदि सहित प्रगल्भ अनुगल्भसे क्यङ् ही हो यह माधवमते क्विप् न हो। उसका बीज तङ। परन्तु सर्वप्रातिपदिकेभ्यः वार्तिकसे क्विप् निर्बाध है।

उपसर्गस्य धातुसंज्ञायां प्रवेशो न, इति निर्णय कथं मूले कृतः, युद्धे यः ग्रामशब्द उच्चारणे कृते सति ग्राम युद्ध इतना ही पढ़ना ठीक था। संग्रामका लाभ होता ही, विशिष्टसंग्रामका पाठ ज्ञापन देता है कि उपसर्गसमानाकारं-उपसर्गके समान आकार स्वरूप हो जिसका ऐसा पूर्वपद, युद्धवाची संग्रामका पूर्वपद सम् उपसर्ग नहीं, क्रिया सम्बन्ध न होनेसे। अतः समान आकार कहा। ऐसा पूर्वपद धातुसंज्ञा का प्रेरक साधक प्रत्यय क्विप् क्यङ् आदि। जब चिकीर्षति करनेकी इच्छा हो तब वह पूर्वपद पृथक हो है धातुसंज्ञामें घुसता नहीं, इससे क्या लाभ? तब कहा—उक्त उपसर्गकी पृथक्कृति नियमसे आचारे अवगल्भ क्लीबसे क्विप् विधि, अवको अलगकर गल्भसे पहले अट् अवागल्भत आदि उपसर्ग अलग करके अट्।

लोहितादिभ्यो डाजन्ताच्च भवत्यर्थे क्यष् स्यात्। वा क्यषः ।१।३।९०। क्यषन्तात् परस्मैपदं वा स्यात्। (लोहितायति लोहितायते)। (न चैवं काम्यच इव क्यषोऽपि ककारः श्रूयेत, उच्चारणसामर्थ्यादिति वाच्यम्, तस्यापि भाष्ये प्रत्याख्यानात् पटपटायति–पटपटायते) कष्टाय क्रमणे ।३।१। १४। चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दात् उत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात्, कष्टाय क्रमते कष्टायते। पापं कर्तुमुत्सहते इत्यर्थः। सत्र-कक्ष कष्ट-कृच्छ्र गहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायामिति वक्तव्यम्। कण्वं पापम्। (पापं 'चिकीर्षति') (सत्रायते कक्षायते)

लोहित—आदिगण पठित शब्दोंसे, डाच अन्त शब्दसे भवति अर्थमें क्यष् हो। भुविकी अनुवृत्ति। **वा क्यषः**–क्यष अन्त धातुसे विकल्प परस्मैपद हो। जो शेषात्कर्तरिसे आया। अलोहितः लोहितो भवति लोहितायति जो लाल नहीं था लाल हो गया। लोहितादि सूत्रमें अच्वेः की अनुवृत्ति। च्वि सदृश अर्थ। अभूत तद्भाव विषयका लाभ। जो लोहित शब्दका ही विशेषण है, डाचका नहीं, असंभावनासे। **न चैवं**·न कहिए कि काम्यच् क इव क्यष्का भी क सुनाई दे उच्चारणके सामर्थ्यसे तन्न, **तस्यापि**–आदि ग्रहणकी तरह ककारका भी भाष्यमें प्रत्याख्यान (अज्ञात प्रयोजन) है। **पट पटायति**—पटत् पटत् इव करोति पटत् शब्दसे डाचकी इच्छामें द्वे बहुलम् द्वित्व। नित्य आम्रेडितसंज्ञा। पटत् पटत् आ पूर्व खण्डका त, उत्तर खण्डका पके बीच पररूप प रहा। डित्से टिलोप। पटपटा, डाजन्त शब्दसे भवति अर्थमें क्यष् उससे लडादि, वा क्यषः से विकल्प आत्मनेपद। कृ भू अस्के सम्बन्ध बिना भी यहां डाच हुआ। प्रमाण देते हैं कि डाजन्तसे क्यष् विधानकी शक्तिसे भवति का अर्थ सत्ता मात्रसे।

कष्टाय–में चतुर्थीसे चतुर्थ्यन्त अर्थ निकला क्रमणेका अर्थ उत्साहे। चतुर्थ्यन्त से उत्साहके लिए तत्पर अर्थमें क्यङ्। न क्यष, अस्वरितत्वात्। क्रियार्थोपपदस्य सूत्रसे कष्टायमें चतुर्थी। क्रमते शब्दमें वृत्तिसर्गतायतनेषु क्रमः से आत्मनेपद। तब सर्गः उत्साहः, कष्टाय-पापं कर्तुं क्रमते-उत्सहते। पापार्थकात् कष्टशब्दात् पापकरणाय उत्साहे अर्थे क्यङि दीर्घः कष्टाय धातुः पापकर्मक उत्साहानुकूलाक्रिया अर्थः। सनाद्यन्तधातुसंज्ञा लडादिः। कष्टायन्ते अनेक कर्तृक पापकर्मक वर्तमानकालिक उत्साह क्रिया। कष्टायिष्यति कष्टायताम् अकष्टायत। एककर्तामें अनद्यतन भूतकालिक पापाय उत्साह क्रिया। कृच्छ्र कृच्छ्रगहनयोः कषः इट् अभाव। दुःखं दातुं उत्साहो न भवति किन्तु दुःखसाधनं कष्टं पापं, कर्तुमुत्साहो भवति, दुष्टानां हृदि। (वा) **सत्र**—कक्ष, कष्ट कृच्छ्र गहन ये सभी वृत्ति एकार्थीभाव (अनेक अर्थ मिलकर एक अर्थ होनेके) विषयमें पाप अर्थ वाले हैं कण्वं-पापं कर्तुमिच्छा कण्वचिकीर्षा तस्यां कण्व-पापपरक होनेसे पापका तात्पर्यग्राहक सत्र कक्ष आदि शब्दसे द्वितीयान्त दशा से क्यङ् हो पापकी इच्छा अर्थमें। चूंकि सत्रादि परार्थक है अतः सत्रका अस्वपद विग्रह पापं चीकीर्षति होगा। वृत्तिः परार्थः–समुदायार्थमें रहेगी। सत्रादि शब्द पापवाची है जहां स्वयं कष्ट शब्द है वहां स्वपद विग्रह होता ही है। सत्रशब्दात्

(कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः।३।१।१५। रोमन्थतपोभ्यां कर्मभ्यां क्रमणे वर्तनायां चरणे चार्थे क्यङ् स्यात्। रोमन्थं वर्तयति रोमन्थायते। हनुचलने इति वक्तव्यम्। चर्वितस्याकृष्य पुनश्चर्वणमित्यर्थः। नेह—कीटो रोमन्थं वर्तयति। तपसः परस्मैपदं च। तपश्चरति तपस्यति। बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने।३।१।१६। आभ्यां कर्मभ्यां क्यङ् स्यात्। बाष्पमुद्वमति बाष्पायते। ऊष्मा-

पार चिकीर्षा अर्थे क्यङ् (सत्रायधातुः) वर्तमाने लडादिः सत्रायते। एककर्तृक वर्तमान-कालिक पापकरणे इच्छानुकूलः व्यापारः पापं चिकीर्षति। कक्षायते-कक्षशब्दात् पापाय उत्साहे अर्थे य आदि, कृच्छ्रायते गहनायते असत्रायते कक्षायताद् अकष्टायिष्ट अकष्टायिषातां अकष्टायिषत।

कर्मणो—रोमन्थ और तप शब्दसे क्रमशः वर्ति और चर अर्थमें क्यङ् हो। वृत्तु वर्तने धातुके ण्यन्तसे धात्वर्थ निर्देशमें इक्। वर्ति का आवर्तन, अर्थ एक ही क्रियाका बार-बार होना। चरधातुसे सम्पदादिभ्यः से भाव अर्थमें क्विप्। आवर्तन क्रियाकी आवृत्ति। चरण आचरण, अर्थका लाभ। कर्मसे कर्मकारक। रोमन्थं वर्तयति उद्गीर्णस्य निगीर्णस्य वा मन्थः चर्वणम्। उगले हुएका या लीले हुए या निकले हुए ग्रासका चर्वणरूप मन्थन। उदरसे ऊपर कण्ठ द्वारा निकला हुआ अथवा निगीर्णस्य अपानद्वारा निर्गतस्य मन्थः रोमन्थः तं वर्तयति आवर्तयति अर्थे क्यङ्। (रोमन्थ य) सनाद्यन्तधातुसंज्ञा सुपो धातुप्रातिपदिकयोः सुपः लुकि दीर्घः रोमन्थ कर्मक वर्तमानकालिक आवर्तन। पुनः पुनः चर्वण क्रिया या पशुओंका पागुरि करना। रोमन्थायताम् अरोमन्थायत भूतकालिक पापकर्म क्रिया (वा) हनुचल— हनु-तालु संचलने सत्येव अयं विधिः। पशु दाढ़ी चला चलाकर चबाते हैं, पागुरि करते हैं। उद्गतं भक्षितं तृणोदकं द्रव्यं पुनः पुनराकृष्य तालुचलनेन पागुरि इति करणेन चर्वितस्य पुनःपुनः प्राशने अर्थे रोमन्थ शब्दात् क्यङ्। हनुचलन न हो, तब न क्यङ्। अर्थात् उदरमें प्रविष्ट वस्तु पुनः पुनः खींचकर भक्षण अर्थ होता हो। नेह=कीटः रोमन्थं वर्तयति कीड़ा अपान प्रदेश (गुदमार्ग)से निकली वस्तुको रोमन्थ कहते हैं। तदश्नाति इति कैयटमतं, वर्तुलं गोलाकार करना न्यासः हरदत्तमतं। हनु चलन नहीं है न क्यङ्। तपस—शब्द कर्म हो उससे चरण आचरण अर्थमें क्यङ्। ङितसे प्राप्त आत्मनेपद बाधकर परस्मैपद ही हो। तपश्चरति तपस्यति, तपका आचरण प्रातिपदिक तपससे क्यङि जिसके परे नान्त ही पद होता है (नः क्ये) नियमसे न पद सत्व। तपस्यधातुः तपःकर्मक आचरणक्रिया धात्वर्थ। लडादि। तपस्यतः तपस्यन्ति अतपस्यत् तपस्यतु, तपस्यिष्यति।

बाष्प—भाप या अश्रु उष्मा दोनों शब्दोंसे कर्मकी स्थितिमें उद्वमन् उगलने निकलने अर्थमें क्यङ्। कर्मणो रोमन्थसे कर्म आया। कर्मकारकमें विराजमान अर्थ बाष्पं अश्रुं भाप इति प्रवहति बाष्पायते, बाष्पंकर्मसे उगलने अर्थमें क्यङ्। नेत्रं

यते फेनाच्चेति वाच्यम् । फेनायते । **शब्द-वैर-कलहाभ्र-कण्वमेघेभ्यः करणे** ।३।१।१७। एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात् । शब्दं करोति शब्दायते । सुदिन-दुर्दिन-नीहारेभ्यश्च । सुदिनायते । दुर्दिनायते । नीहारायते । (प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च) प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात्, इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य--पुंवद्भावरभावटिलोपविन्मतुब्लोपयणादिलोपप्रस्थस्फाद्या—देशभसंज्ञास्तद्वण्णावपि स्युः । पटुमाचष्टे पटयति । परत्वाद् वृद्धौ सत्यां टिलोपः । अपीपटत् । **पुच्छ-भाण्ड-चीवराण्णिङ्** ।३।१।२०। पुच्छादुदसने व्यसने पर्यसने च । विविधं विरुद्धं वोत्क्षेपणं व्यसनम् । उत्पुच्छयते । विपुच्छयते परिपुच्छयते । भाण्डात् समाचयने संभाण्डयते । भाण्डानि समाचिनोति । राशीकरोतीत्यर्थः । समभाण्डत । चीवरादर्जने परिधाने च ।

जलं वा उष्माणं उद्वमति । स्थाली सूर्य कर्मसे उगलने अर्थमें उष्मायन्ते, ग्रीष्मदिनादि । फेन—शब्दसे भी क्यङ् कहें । (फेनमुद्वमति) फेनायते, समुद्रः मल नाशकः । शब्दवैर, कलह, अभ्र, कण्व, मेघ, ये शब्द कर्म हों इनसे करोति अर्थमें क्यङ् हो तत्करोति तदाचष्टे के णिच्को बाधकर । करणं क्रिया करोति अर्थ शब्दं करोति लौकिकविग्रह शब्दायते । शब्द कर्म है । करोति अर्थमें णिच् प्राप्त था बाधकर क्यङ् । लडादि एककर्तृक शब्दकर्मक वर्तमानकालिक क्रिया । पक्षमें तत्करोति तदाचष्टेसे णिच् भी इष्ट है न्यासमत । अतः परस्मैपद शब्दाययति ध्वनि कराना। न्यासशब्दसे अरुचि है कि भाष्य सम्मत नहीं । वैरं करोति वैरायते, कलहं करोति कलहायते अभ्रम् अभ्रायते आकाशः । कण्वं करोति कण्वायते पाप करता है मेघं करोति मेघायते इन्द्रः। सुदिन दुर्दिन नीहार कुहरा इनसे भी करोति अर्थ क्यङ् सुदिन करोति सुदिनायते मेघाच्छन्नं दुर्दिनं करोति दुर्दिनायते नीहारं करोति नीहारायते मेघः । क्यङ् परे पूर्वको अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घः लडादि सुदिन दुर्दिन कर्मक वर्तमानकालिक क्रिया ।

पुच्छ— भाण्ड चीवर (वस्त्र) इनसे स्व अर्थमें णिङ् हो । करणेकी अनुवृत्ति क्रियाका विशेष अर्थ जिसका प्रदर्शक वार्तिक—पुच्छ शब्दसे उदसन—ऊपर उठाना व्यसन—विविध प्रकारसे पूंछको फेंकना अर्थ णिङ (पुच्छ इ) लडादिः ङित्से आत्मनेपद । (विपुच्छयते) विरुद्धं पुच्छं करोति परितः समन्ततः पुच्छं करोति । (वा०) भाण्डशब्दसे समापयन संकलन इकट्ठा करने अर्थमें णिङ् । संभाण्ड इ लडादि (संभाण्डयते) पात्रोंकी राशि एकत्रीकरण करते हैं उपसर्गके समान पूर्वपद हो तब धातुसंज्ञाका प्रेरक प्रत्ययकी इच्छामें अलग होते हैं । संभाण्ड शब्दसे क्यङ् होने पर भी भाण्डके पहले अट, इसी तरह (उत वि परि) उपसर्गके समान आकार वाले हैं उनसे भी अलग करके अट (उदपुपुच्छत) । चीवर—शब्दसे अर्जन—प्राप्त करवे परिधान पहनने अर्थमें णिङ् हो चीवरं वस्त्रं करोति संगृह्णाति राशि करोति भिक्षुक वस्त्र मांगकर जुटाता है । अथवा परिधत्ते वस्त्र पहनता है ।

संञ्चीवरयते भिक्षुः। चीवराण्यर्जयति परिधत्ते वेत्यर्थः। मुण्ड-मिश्र-श्लक्ष्ण-लवण-व्रत-वस्त्र-हल-कल-कृत-तूस्तेभ्यो णिच् ।३।१।२१। कृञर्थे। मुण्डं करोति मुण्डयति। व्रताद्भोजन तन्निवृत्त्योः पयः शूद्रान्नं वा व्रतयति। वस्त्रात् समाच्छादने संवस्त्रयति। हल्यादिभ्यो ग्रहणे। हलिकल्योरदन्तत्वं च निपात्यते। हलिं कलिं वा गृह्णाति हलयति, कलयति। महद्धलं हलिः। कृतं गृह्णाति कृतयति। तूस्तानि विहन्ति वितूस्तयति। तूस्तं केशा इत्येके। जटीभूताः केशा इत्यन्ये। पापमित्यपरे सत्यस्यापुगर्थम्। सत्यं करोत्याचष्टे

मुण्ड मिश्र—श्लक्षण लवण व्रत वस्त्र कलह कृत तूस्त शब्दसे करोति अर्थ विशेष णिच हो, शब्दबैरकलह—से करण आया, मुण्डं करोति बेलमुण्डा बनाता है, मुण्डन अर्थमें णिच् (मुण्ड इ) लडादि मुण्डयन्ति ब्रह्मचारिणः पञ्चशिखां, मिश्रं करोति मिश्रयति गुडधान्यं। श्लक्षणं स्वच्छं करोति पावडर या साबुनसे धोता है चमकाता है श्लक्षाणयति। लवणं करोति लवणयति नमकीन बनाता है (वा०) **व्रत**—शब्दसे भोजन और भोजननिवृत्ति अर्थमें णिचि। पयः व्रतयति भुङ्क्ते पयोव्रत करता है। अथवा शूद्रान्नं वर्जयति खानेसे हिचकता है व्रतं करोति। (वा०) **वस्त्र**—से आच्छादन आवरण पूर्णरूपसे ढकनेकी क्रिया अर्थमें णिच, वस्त्रेणसम्यक् आवृणोति आच्छादयति (संवस्त्रयति) अथवा वस्त्रं परिधत्ते कपड़ा पहनने अर्थमें णिच, लडादि। **हलि**=आदि शब्दोंसे ग्रहण अर्थमें णिच हो। हलि कलि शब्द अदन्त भी हो जांय, हलि कलि इदन्त अदन्त भी रहें। जो इदन्त उनको अ निपातन। हलिं महद्हलं भारी हलको ग्रहण करे, णिच **हलयति** हलयतः हलयन्ति। यदि ण्यन्तसे लट आया इष्ठवद्भावसे टिलोप होगा। एव कलिं कलहं यन्त्रं वा गृह्णाति कलयति णिजादिः कलयतः कलयन्ति। एककर्तृकवर्तमानकालिक यन्त्र संग्रहः। कलयिष्यति कलयतु कृतं गृह्णाति उपकारं स्वीकरोति, कृतयति कृत शब्दसे उपकार स्वीकार अर्थमें णिच ल, दि शप् गुण, अय् कृतयन्ति। कृतयसि कृतयामि कृतयामः उपकारस्वीकार।

तूस्तानि केशान् विहन्ति उत्तरयन्ति कृन्तन्ति वितस्तयन्ति नापिताः वितूस्त शब्द से बाल बनाने अर्थमें णिच् आदि। किसीके मतमें पापानि विहन्ति। मुण्डमिश्र आदि शब्द सत्याप पाश् रूप वीणा आदिके साथ पढ़ना उचित था। एक सूत्रकरणे लाघवं। यद्यपि मुण्डमिश्र सूत्रका णिच् प्रातिपदिकात् धात्वर्थे वहुल मिष्ठवच्च सूत्र से ही णिच् सिद्ध था। तथापि केषांचित् किसीके मतमें मुण्डमिश्र इत्यादिका पढ़ा जाना सापेक्ष शब्दसे भी णिच् होनेके लिए है सापेक्षमसमर्थवत् जिस शब्दमें विशेषण की अपेक्षा हो उसमें वृत्ति सामर्थ्य शक्ति नहीं मानी जाती। स विशेषणानां वृत्ति निषेधात् पुनः सूत्रपाठसामर्थ्यात्। अपेक्षासहितेभ्यः मुण्डादिभ्यः णिच् सिद्धयति विधान सामर्थ्यसे, अन्यत्र रमणीयं, पटुमाचष्टे वाक्य ही रहेगा। पटयति सनाद्यन्त धातु, वृत्ति नहीं बनेगा।

सत्यापयति सत्याप पाश सूत्रमें सत्य क्यों पढ़ा। उक्तः—आपुक, आगम्

वा सत्यापयति अर्थवेदयोरप्यापुग्वक्तव्यः। अर्थापयति। वेदापयति। पाशं विमुञ्चति विपाशयति। रूपं पश्यति रूपयति। वीणयोपगायति उपवीणयति। तूलेनानुकुष्णात्यनुतूलयति। तृणाग्रं तूलेनानुघट्टयतीत्यर्थः। श्लोकैरुपस्तौति उपश्लोकयति। सेनयाऽभियाति अभिषेणयति। 'उपसर्गात्सुनोति' इति षः। अभिषिषेणयिषति। 'स्थादिष्वभ्यासेन च' इति षः; लोमान्यनुमाष्टि अनुलोमयति। 'त्वच संवरणे' त्वचं गृह्णाति त्वचयति। वर्मणा संनह्यति संवर्मयति। वर्णं गृह्णाति वर्णयति। चूर्णैरवध्वंसने अवचूर्णयति। इति

के लिए सत्यको पढ़ा। केषांचित् सीने पाश् रूप वीणा आदिका पढ़ा जाना। प्रपञ्चार्थं पचि विस्तारे विस्तारार्थं है सत्यं करोति सत्य प्रमाणित करता हो अर्थमें णिच्। आपुक् (सत्याप्) लडादिः सत्यापयति। इदं सत्यमिति वर्तमानकालिक प्रमाणानुकूलव्यापारः।

(वा) अर्थ—वेदसे भी आपुक कहें णिच् परे अर्थं करोति अर्थापयति, अर्थसे प्रातिपदिकात् धात्वर्थे णिच् परे आपुक ल ति प गुण अय् अर्थापयति-वेदमाचष्टे वेदापयति ज्ञान मात्रको कहता है। वेदसे आपुक् णिच् आदि। पाशं बन्धनं विमुञ्चति खोलति अर्थमें प्रातिपदिकात् धात्वर्थे णिच् टिलोप आदि। आकारं पश्यति दर्शनं करोति (रूपयति) रूपकर्मकदर्शनानुकूलाक्रिया। रूपसे णिच् आदि वीणया तस्या उपगायति गानानुसरणङ्करोति अर्थे णिच् आदि। उपवीणयति—वीणावादनानुकूलं गानं करोति। तूलेन-रूई (तूलयति) कपास लगाता है। श्लोकसे समीपमें स्तुति प्रशंसा गान श्लोकयति। णिच् आदि। सेनाके साथ व्यापक गमन या सन्मुख गमन करता है। अभिषेणिसे लडादि। उपसर्गात् सुनोति सुवतिसे ष लङ्में अट् होने पर प्राक्सितादड्व्यवायेपिसे सको ष। जब अभिषेण ण्यन्तसे सन् करेंगे तब अभिषिषेणयिषति अभ्यासके व्यवधानमें षत्वके लिए स्मरण-स्थादिषु। अनुलोमयति रोम बालको प्रक्षालन स्वच्छ करता है। मृज शुद्धौ साफ करनेकी क्रिया अर्थमें णिच् त्वच धातुका संवरण स्वीकार ग्रहण अर्थ। य प्रत्यय त्वचं चर्म गृह्णाति स्वीकरोति त्वचयति स्वीकार अर्थमें णिच्। त्वकर्मक ग्रहण क्रिया। वर्मणा कवचेन शरीरम् अच्छादयति संवर्मयति कवचकरणक शरीरकर्मक आवरणानुकूलव्यापार वर्णं रङ्गं स्वरूपं वा स्वीकरोति वर्णयति वस्त्रं रङ्ग चढ़ाता है चूर्णसे नष्ट होता है रोग। अवचूर्णयति चूर्णकरणक रोगविषयक ध्वंसानुकूला क्रिया। तत्करोति तदाचष्टेके णिचको इष्ठवद् भाव होता है इष्ठन् प्रत्ययपरे पुल्लिङ्ग भाव, रभाव टिलोप आदि होते हैं, ऐसे णिच परे भी पुंभाव रभाव टिलोप आदि हो जिसका फल देते हैं एनीमाचष्टे विचित्र हरिणीको कहता है एतयति एतत्वजातिविशिष्टास्त्री (एनी) तामाचष्टे अर्थमें णिच (एनी इ) भस्याढे सूत्रसे पुंभाव पुलिङ्गका आरोप, इष्ठन्परे होता है णि परे भी अतिदेश, पुं का आरोप होनेसे न को त, और ङीप जो स्त्रीलिङ्गका परिचायक था लौट गया। निवृत्त (एत इ ति) में अ (टि है) का लोप (एतयति) इनका वृत्तान्त कहता है, यदि टिलोपसे एनी इका लोप कहे, ङीप्के साथ

अथ कण्ड्वादिप्रकरणम्

कण्ड्वादिभ्यो यक् ।३।१।२७। एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक्स्यात्स्वार्थे। कण्डूञ् गात्रविघर्षणे। कण्डयति-कण्डूयते । इति तिङन्ते कण्ड्वादिप्रकरणम् ।

अथ आत्मनेपदप्रकरणम्

अनुबभूवे । **कर्तरि कर्मव्यतिहारे** ।१।३।१४। क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदं स्यात् । व्यतिलुनीते । अन्यस्य योग्यं लवनम् अन्यः करोतीत्यर्थः । न

तिङन्ते **कण्डवादि** प्रक्रियाः निरुप्यन्ते-कण्ड्वादिभ्यः-कण्डूञ् गात्रविघर्षणे शरीर खुजलाने अर्थ कधातु आदिमें हों जिन धातुओंके उनसे नित्य यक् हो, स्वार्थेस्वं-प्रकृतिः (धातु) तस्य अर्थः स्वार्थः धातुके अर्थमें । धातोरेकाचः से धातोः आया, वा रुक गया, भ्वादिमें पाठसे । यदि धातुसंज्ञा, वा० आता, कण्डवति भी बनता है । सूत्रमें धातु क्यों आया, इसलिए कि प्रातिपदिकसे यक् न हो जाय । क्योंकि द्वि प्रकारः द्विधा कण्ड्वादिः दो प्रकारके हैं । धातु और प्रातिपदिक । यक् धातुका सूचक । कण्डूका दीर्घ पाठ प्रातिपदिकका निर्णायक है । केवल धातु ही होता ह्रस्व पढ़ते, यकि परे अकृत्सार्वधातुकयोः से दीर्घ करके कण्डूयति बनता । द्विधा होनेसे धातुसे यक्का कित् गुण निषेधमें सार्थक । दीर्घ पाठ भी सार्थक । अतः भाष्ये धातु प्रकरणद्धातुः कस्य च ासञ्जवादपि, आह चायमिमं दीर्घं मन्ये धातुः विभाषितः । प्राचीनोंने कण्डू करोति **कण्डूयति** खर्जन करता है । उभयपदी धातुसे लट्में यक् ति त आदि । **कण्डूयते**—आत्मनेपद अपनी खुजलाहटकी वर्तमान क्रियाका सूचक। परस्मैपद अन्यकी । कण्डूयाञ्चकार कदा, यतः रक्तः स्रवति । कण्डूयिष्यते अकण्डूयत् अकण्डूयीत् । इति कण्डवादिः अथात्मनेपदम् ।

तिङन्तके प्रसङ्गमें आत्मनेपदका सामान्यार्थ कहा गया विशेषार्थ प्रयोगके लिए आत्मनेपदका निरुपण आरम्भ । यद्यपि आत्मनेपद परस्मैपद किस अर्थमें होते है इसका व्यवस्थापक सूत्र प्रथमाध्याय तृतीय पादमें पढे गये हैं उन्हीं व्याख्यात सूत्रों का स्मारण (अनुदात्त ङित्) इति । **सामान्य अर्थ**=कर्ता कर्म भावमें, आत्मनेपदका विधान है । अनुदात्तधातु ङित धातुसे आत्मनेपद प्रसिद्ध है । जबकि स्वरितधातु ञित् धातुसे (कर्तृगामी क्रियाफल होने अर्थमें) आत्मनेपद ही प्रसिद्ध है ।

कर्मणः उदाहरणम्-आनन्दंमनुबभूव रामः । इति रामेण आनन्दः अनुबभूवे रामकर्तृका आनन्दकर्मिका परोक्षकाले जाताऽनुभवक्रिया । इयं व्यवस्था सामान्या अस्ति, प्रसिद्धा वर्तते । विशेष अर्थमें आत्मनेपदविधायक सूत्र-कर्तरि-कर्म व्यतिहारे कर्मण-क्रियायाः व्यतिहारः विनिमयः परिवर्तनं (अर्थ) द्योत्य प्रकाशित होने या खुलनेका विषय हो तब कर्तामें आत्मनेपद, जो क्रियाके अदला बदली परस्परकरण परस्परग्रहण अर्थका प्रकाशक है । कर्मशब्दः क्रियापरः । व्यतिहार शब्दः विनिमयपरः स्ववस्तुदानपूर्वकं परवस्तुग्रहणं परिवर्तनं, विनिमयस्तु व्यापकार्थकः तस्मिन्नर्थे आत्मनेपदं, यथा **व्यतिलुनोते** । वि अतिपूर्वक लू धातोः परस्पर

गतिहिंसार्थेभ्यः ।१।३।१५। व्यतिगच्छन्ति व्यतिघ्नन्ति। (हरतेरप्रतिषेधः)सम्प्रहरन्ते राजानः । इतरेतरान्योऽन्योपपदाच्च ।१।३।१६। परस्परोपपदाच्चेति वक्तव्यम् । इतरेतरस्यान्योऽन्यस्य परस्परस्य वा व्यतिलुनन्ति । नेर्विशः ।१।३।१७। विविशते परिव्यवेभ्यः क्रियः ।१।३।१८। अकर्त्रभिप्रायार्थमिदम् ।

(क्रियाविनिमयपूर्वकं) लवनं (अर्थः) तस्यैव अर्थस्य क्रियापरिवर्तनस्य धर्मविनिमयस्य च प्रकाशनार्थं आत्मनेपदं (ते) श्ना इत्व, अन्यस्य शूद्रादियोग्यं सस्यादिलवनं ब्राह्मणः करोति । अशिक्षितस्य योग्यं धान्यलवनकर्म शिक्षितः करोति । (परस्पर सहायता करना) सहायकरणमपि व्यतिहारः । राजानः प्रहृन्ति परस्परं अन्येषामुपरि अन्ये प्रहारं कुर्वन्ति, परस्परयुद्धकरणमपि विनिमय इत्यस्ति । अयं व्यतिहारः कर्ता अर्थे, न तु भावकर्मणोः अर्थे विनिमयानुकूलः व्यापारः देवदत्तस्वामिकं धान्यं देवदत्तः स्वद्रव्यं दत्वा लवनेन कर्मकर स्वीकरोति अर्थे देवदत्तस्य धान्यं लुनाति इत्यादौ नहि आत्मनेपदम् । अत्र द्रव्यस्य विनिमयोऽस्ति नतु क्रियायाः ।

न गति । गति अर्थ और हिंसा अर्थमें विराजमान गमन हिंसा क्रियाका विनिमय अदला बदली हो, तब आत्मनेपद न हो । वि अति पूर्वक गम धातुसे लडादिः गमन क्रियाका विनिमय है । स्वस्वगमन मार्गस्य परस्परं परिवर्तन कुर्वन्ति अर्थे व्यतिगच्छन्ति । न गति हिंसार्थेभ्यः सूत्रेण आत्मनेपदका निषेध हुआ व्यतिघ्नन्ति एक दूसरे पर प्रहार करते है । क्रिया करण होते हुए भी आत्मनेपद निषेध हुआ किन्तु परस्मैपद । हरते—अप्रतिषेध-हृ धातुसे आत्मनेपदका निषेध नहीं होता, उपसर्गके साथ हिंसा अर्थ होनेसे । राजानः परस्परं सम्प्रहरन्ते आपसमें कड़ी मार करते हैं । एक दूसरेके प्रति हिंसाकरण अर्थं प्रकाशक आत्मनेपद है ।

इतरेतर—इतरक्रियामितरः करोति, अन्यक्रियामन्यः करोति, परस्परक्रियां परस्परं कुर्वन्ति । इसकी लवन क्रिया यह करता है अन्य दूसरेकी क्रिया दूसरा परस्पर आपसकी लवनक्रिया आपसमें ही कर लेते हैं सूत्र वार्तिक प्रभावसे व्यतिलुनन्ति में आत्मनेपदका निषेध हुआ । यद्यपि इतरेतर अन्योन्य परस्पर शब्दसे कर्म व्यतिहार क्रियाकी अदलाबदली प्रकाशित है । इसके लिए आत्मनेपद प्राप्त नहीं (पुनरुक्ति दोष है) निषेध क्यों ? लौकिके व्यवहारे लाघवस्य अनादरः अनुभूयते तेन कारणेन आत्मनेपदं मा भवतु अतः अयं निषेधः आरभ्यते । अतः व्यतिलुनीते इत्यादौ वि अति उपसर्गौ आत्मनेपदं च मिलित्वा क्रियां विनिमयन्ति

नेर्विश—नि पूर्वक विश्धातोः आत्मनेपदमस्तु निविशते–यदिशूकशिखापदे । निपूर्वक विश धातोः आत्मनेपदं समजनि । नि क्यों पढ़ा? प्र उपसर्गसे आत्मनेपद न होनेके लिए । प्रविशति । अर्थवत्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम् । उपसर्गस्य निशब्दस्य स्वीकृतिः । मधूनि विशन्ति भ्रमराः, मैथिली भर्तुरङ्कं निविशति भयात् इत्यत्र तु अङ्गानि विशन्ति इति पठनीयं, नवांबुदश्यामतनुर्न्यविक्षत इत्यत्र आत्मनेपदं न स्यात् अटा व्यवधानात् । तथापि (अड्व्यवाये-उपसङ्ख्यानं) वार्तिकात् तद् भवति

परिक्रीणीते विक्रीणीते अवक्रीणोते। विपराभ्यां जेः ।१।३।१९। विजयते पराजयते। क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च ।१।३।२१। चादाङः। अनुक्रीडते संक्रीडते परिक्रीडते आक्रीडते। (समोऽकूजने) संक्रीडते। कूजने तु संक्रीडति चक्रम्। आगमेः क्षमायाम्। ण्यन्तस्येदं ग्रहणम्। आगमयस्व तावत् मा त्वरिष्ठा इत्यर्थः। शिक्षेर्जिज्ञासायाम्। धनुषि शिक्षते। धनुर्विषये ज्ञाने शक्तो भवितुमिच्छतीत्यर्थः। वृत्ति-सर्ग तायनेषु क्रमः ।१।३।३८। आत्मनेपदं स्यात्। वृत्तिरप्रतिबन्धः। ऋचि क्रमते बुद्धिः। सर्ग उत्साहः।

परि—वि-अव उपसर्गसे परे क्री धातुसे आत्मनेपद हो। यद्यपि ञित धातुसे आत्मनेपद होता है किन्तु कर्तृगामिक्रियाफल होनेपर। यह सूत्र अकर्त्रभिप्राय-क्रियाफल कर्तामें न रहने पर भी आत्मनेपदके लिए है। यथा परिक्रीणीते—परिपूर्वक क्री धातुके आत्मनेपद (ते) हुआ। सब प्रकारसे खरीदनेके अनुकूल क्रिया) समाजसेवाके लिए जो धमार्थ है। खरीद फलके परगामी होनेका सूचक आत्मनेपद। विक्रीणीते बेचता है। धर्मके लिए समाज सेवाके लिए, फल परगामीका सूचक आत्मनेपद। विपूर्वक क्री धातुसे। अवक्रीणीते-अव क्री धातोः परिव्यवेभ्यः क्रियः इत्यात्मनेपदं, फलस्य परगामित्वात्। भाव गिराता है दूसरेकी हानिके लिये। फल कर्तृगामि नहीं। वि परा—उपसर्गसे परे जि धातुसे आत्मनेपद हों। विजयते-उत्कृष्टो भवति। उत्कर्ष यश लाभकी वर्तमान क्रिया। परापूर्वक जिधातोः (ते,। पराजयते—निकृष्टो भवति हताश होता है। पराजिधातोः आत्मनेपदम्।

क्रीडो—अनु सं परि उपसर्गसे परे क्रीड धातुसे आत्मनेपद हो। आङ परे भी तथा। अनुक्रीडते—अनु उपसर्गक क्रीडसे आत्मनेपद। सम् खेलता है। समपूर्वक क्रीडसे अच्छा खेलना। परिक्रीडते सब प्रकारसे खेलना। आक्रीडते खेलका मर्यादा रखता है। संक्रीड आक्रीडसे आत्मनेपद। समो-सम पूर्वक क्रीड धातुसे आत्मनेपद हो। अकूजने-कूं कूं या चर-चरकी आवाज हो, संक्रीडते खुलकर खेलता है। जहाँ कूजन आवाज हैं वहां पर परस्मैपद। चक्र यन्त्र चर्खी आवाज करते है। आगमे—आङ्पूर्वक गम धातुसे आत्मनेपद हो क्षमा अर्थ खुलने पर, ण्यन्त गमिका ग्रहण। आङ्पूर्वक गम धातुः क्षमायर्थे वर्तते (हन्त्यर्थाश्च) स्वार्थे णिच् चुरादिः आकृतिगणः आगमयस्व लोट मध्यमपुरुष एकवचन आत्मनेपद किञ्चित्कालं सहस्व त्वं मात्वरिष्ठाः शीघ्रं मा कुरु। शिक्ष–धातुसे जिज्ञासा अर्थ सुचक आत्मनेपद हो यहाँ शिक्ष विद्योपादाने धातु नहीं किन्तु शक्से सन्नन्त धातु (शक स) सनिमीमासे इत्व, अभ्यासलोप शिक स षत्व क ष क्ष शिक्ष-सिखनेकी इच्छा धातुका अर्थ धनुषके विषयमें शिक्षा ज्ञानमें सामर्थ्यवान शक्तिशाली होनेकी इच्छा करता है। धनुषिमें विषय सप्तमी विषये भवः वैषयिकः।

वृत्ति—अनवरोध, सर्ग-उत्साह तायन-वृद्धिः इन अर्थोंमें क्रमुपाद विक्षेपे धातुसे आत्मनेपद हो। वृत्तिः अप्रतिबन्धः गति न रुकना, ऋचि-मन्त्रमें गति, ज्ञानके न रुकने अर्थमें क्रम धातुसे आत्मनेपद (क्रमते) मंत्रमें बुद्धि अप्रतिहत-अवरुद्ध नहीं होती।

अध्ययनाय क्रमते। क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि-स्फोतानि भवन्तीत्यर्थः। वृत्त्यादिष्वाभ्यामेव क्रमेर्नतूपसर्गान्तरपूर्वात्। उपक्रमते नेह संक्रामति। **आङ उद्गमने** ।१।३।४०। आक्रमते सूर्यः-उदयते इत्यर्थः। ज्योतिरुद्गमने इति वाच्यम्। नेह-आक्रामन्ति धूमो हर्म्यतलात्। **वेः पादविहरणे** ।१।३।४१।साधु विक्रमतेबाजी। **प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्**।१।३।४२। समथौं तुल्याथौं। शकन्ध्वादित्वात् पररूपम्। प्रारम्भेऽनयोस्तुल्यार्थता। प्रक्रमते उपक्रमते। 'समर्थाभ्याम्' किम्? प्रक्रामति गच्छतीत्यर्थः। उपक्रामति आगच्छतीत्यर्थः। **अनुपसर्गाद्वा** ।१।३।४२। क्रामति-क्रमते। अप्राप्तविभाषेयम। वृत्यादौ तु नित्यमेव। **अपह्नवे ज्ञः** ।१।३।४४। शतमपजानीते अपलपती-

---

अर्थका वाचक आत्मनेपद। अध्ययनके लिए उत्साह भरा अर्थमें त, **क्रमते**-पढ़नेको लालायित रहता है। ताय् सन्तान पालनयोः शास्त्राणि अस्मिन्क्रमन्ते अमुक व्यक्तिमें शास्त्र बढ़ते है। स्फीतानि सम्वृद्धानि अर्थमें ज्ञ आदि। **आङः**-आङ्पूर्वक क्रम धातुसे आत्मनेपद हो उद्गमन उठने आकाश गमन अर्थमें आङ्पूर्वक क्रम धातुका उद्गमनानुकलव्यापार अर्थ। सूर्यः **आक्रमते**—उदयते उद्गच्छति। उपसर्ग बलात् अर्थ परिवर्तनं अन्यार्थः। वा० **ज्योतिः**-प्रकाशका उद्गम निकलना हो तब भीं आत्मनेपद। नेह=हर्म्यतलात्-महलसे धूम निकलकर फैल रहा है ज्योति नहीं, नहि आत्मनेपदं, धूम है प्रकाश नहीं।

वेः—पादविहरण पग बढ़ाना कदमसे चलना। पादविक्षेप अर्थ हो विपूर्वक क्रम धातुसे आत्मनेपद हो। बाजी घोटकः शोभनं **विक्रमते**—पदानि विक्षिपति ठीक दौड़ता कदम बढ़ाता है। पैरका विहार अर्थमें त। पादविहरण (चाल) क्यों? संधिः ग्रन्थिः विक्रामति खुलती है द्वि प्रकारो भवति, स्फुटति। पैरकी चाल नहीं, नहि आत्मनेपदं। **प्रोपाभ्यां**-प्र उपपूर्वक क्रम धातुसे आत्मनेपद हो समर्थ अर्थ होने पर समौ तुल्यौ अर्थौ ययोस्तौ समथौं तुल्याथौं सम+अर्थ, दशायां सवर्ण दीर्घो नहि भवति किन्तु शकन्ध्वादिगणपठितेषु पररूपं श्रेयः जातम। दोनों शब्द उकमते या उपक्रमते शब्दका समर्थं समान अर्थ, प्रारम्भ अर्थ है। दोनों शब्द समानार्थक आरम्भार्थक है। समर्थ क्यों पढ़ा? प्रक्रामतिका अर्थ गच्छति है उपक्रामतिका आगच्छति है समान अर्थ नहीं आत्मनेपद न हो। **अनुपसर्गात्**=उपसर्ग रहित क्रमधातुसे आत्मनेपद हो विकल्पसे। क्रामति परस्मैपद भी हुआ, पग बढ़ता है। किसी सूत्रसे आत्मनेपद प्राप्त नहीं था अतः अप्राप्त विभाषा अस्ति। विविधा पक्षपातिनी भाषा विभाषा। वृत्यादौ=वृत्ति-निरन्तरगति, सर्ग-उत्साह तायन-बढ़ना अर्थमें पूर्वविप्रतिषेधसे नित्य ही तङ हो। **अपह्नवः**—अपापः मिथ्याभाषण अर्थमें विराजमान ज्ञा धातुसे तङ् हो। शतम् अपजानीते सौ रुपया बड़गलाता है छिपाना हड़पना अर्थमें आत्मनेपद। अकर्मक-दशामें ज्ञा धातुसे तङ् हो सर्पिषो जानीते। घीके उपाय लोभसे प्रवर्तते काममें लगता है। अत्र ज्ञा धातु प्रवृत्तिभवनें

त्यर्थः। अकर्मकाच्च ।१।३।४५। सर्पिषो जानीते। सर्पिषोपायेन प्रवर्तते समवप्रविभ्यः स्थः ।१।३।२२। संतिष्ठते। अवतिष्ठते प्रतिष्ठते वितिष्ठते। आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम्। शब्दं नित्यमातिष्ठते। नित्यत्वेन प्रतिजानीते इत्यर्थः। प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च ।१।३।२३। गोपी कृष्णाय तिष्ठते। आशयं प्रकाशयतीत्यर्थः। 'संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः'। कर्णादीन्निर्णेतृत्वेनाश्रयतीत्यर्थः। उदोऽनूर्ध्वकर्मणि ।१।३।२४। मुक्तावुत्तिष्ठते। अनूर्ध्व इति किम्? पीठादुत्तिष्ठति। ईहायामेव। नेह ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति। उपान्मन्त्रकरणे ।१।३।२५। आग्नेय्या आग्नीध्रमुपतिष्ठते। मन्त्रकरणे' किम्?

वर्तते ज्ञोऽविदर्थस्य करणे तृतीयाके अर्थमें षष्ठी सर्पिषः। अनुपसर्गाज्ज्ञःसे सिद्ध था उपसर्ग सहितके लिये इदं सूत्रम्, सर्पिषो अनुजानीते घी लोभसे खाता है।

सम—अव प्रति इनसे परे स्था धातुसे आत्मनेपद हो। स्थाका पञ्चमी स्थः। **संतिष्ठते**-समाप्तो भवति उत्सवः। संपूर्वक स्था से त, शप, तिष्ठ आदेश आदि। स्था धातु घु संज्ञकके सिच्का लोप, आको इत्। संस्था स त। इत्व होकर **समस्थित** समाप्त हो गया। द्विवचनमें आर्था परे केवल इत्व। अवतिष्ठते नीचे लुढ़कता है। प्रतिष्ठते विख्यात हो रहा है (वा०) आङ्से परे स्था धातुसे आत्मनेपद प्रतिज्ञा अर्थमें कहें। आतिष्ठते प्रतिदिन प्रतिज्ञाका संकल्प लेता है।

प्रकाशन—स्वाभिप्राय आविष्करण, अपना भाव खोलना प्रकाशन है ज्ञापन देना। स्थेय-विवादपदनिर्णेतारः तिष्ठन्ते अस्मिन् विवादपदनिर्णयः। बाहुलके अधिकरणे अचो यत् ईत्वे गुणे। मेदिनीकार कहते हैं स्थेयो विवादस्थानस्य निर्णेतरि पुरोहिते। आख्या अभिधान प्रकाशन अर्थमें या स्थेय निर्णेता रूपमें प्रसिद्धि अर्थमें वर्तमान स्था धातुसे आत्मनेपद हो। प्रकाशन गोपी कृष्णके लिए अपना आशय भाव प्रकट करती है अर्थमें स्थासे आत्मनेपद **तिष्ठते** श्लाघ ह्नुङ्से सम्प्रदाने चतुर्थी। स्थेये तदाहरणकरणादिषु विषयसप्तमी। कर्ण आदि वीरोंके विषयमें सेनापति पदके लिए निर्णायक अर्थमें आत्मनेपद।

उदो—उत्पूर्वक स्था धातुसे आत्मनेपद हो उर्ध्व देशसंयोगाद्यनुकूलाक्रिया उर्ध्व कर्म, तद्भिन्नम् अनुर्ध्व ऊपर उठना क्रिया न हो तब, मुक्तिके लिए गुरुके पास जानेका प्रयत्न करता है। ऊपर उठना क्रिया नहीं है। अतः आत्मनेपद। अनूर्ध्व क्यों पढ़ा? पीढा परसे उठता है। उर्ध्व कर्म है आत्मनेपद न हो, ईहा-इच्छा पूर्विका चेष्टा, कायपरिष्पन्दः अर्थमें ही हो। ग्रामसे सौ रुपया उत्पद्यते लाभ करता है। इच्छापूर्वक प्रयत्न नहीं नियमतः होनेसे उत्तिष्ठति उत्पद्यते नात्मनेपदं उपात्-उपः उपसर्गसे परे स्था धातुसे आत्मनेपद हो मन्त्रकरण साधन हो जिस अर्थमें। आग्नेय्या ऋचा अग्नि देवताके मन्त्रसे अग्निविशेषं स्तौति मण्डपमें पहुंच-

भर्तारमुपतिष्ठति यौवनेन। उपाद् देवपूजा-संगतिकरण-मित्रकरण-पथिष्विति वाच्यम्। आदित्यमुपतिष्ठते। गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते। उपश्लिष्यतीत्यर्थः। रथिकानुपतिष्ठते मित्रीकरोति। पन्थाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते प्राप्नोतीत्यर्थः। वा लिप्सायामिति वक्तव्यम् भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते-उपतिष्ठति वा। लिप्सया उपगच्छतीत्यर्थः। उद्विभ्यांतपः।१।३।२७। 'अकर्मकात्' इत्येव। उत्तपते वितपते-दीप्यते। स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्। स्वमङ्गं स्वाङ्गं, न तु 'अद्रवम्' इति परिभाषितम्। उत्तपते, वितपते पाणिम्।

कर। यद्यपि स्था अकर्मक है। उप उपसर्गके बलसे सकर्मक। मन्त्रकरण (साधना) रहनेसे आत्मनेपद उपतिष्ठते (गुणवत्वेन सकीर्तनं स्तवः) श्लोकैः राजानमुपतिष्ठति मन्त्रसे स्तव नहीं नात्मनेपद। ऐन्द्रचा गार्हपत्यमुपतिष्ठते। वैदिक प्रयोग विषय सर्वसम्मत। मन्त्रकरण साधन क्यों कहा? भर्तारमुपतिष्ठति। युवा अवस्थासे प्रेरित पतिव्रता पोषण कर्ताके पास जाती है। उपस्थित होनेमें मन्त्र नहीं युवा अवस्था कारण नात्मनेपदं। (वा०) उपात्—उप् उपसर्गसे देवपूजा सङ्गतिकरण मित्रकरण पन्था अर्थमें स्था धातुसे आत्मनेपद हो मंत्र साधन न हो उसके लिए वार्तिक आदित्य मुपतिष्ठते सूर्यके सन्मुख स्थित होकर स्तुति आदिसे पूजता है। कथं तर्हि देवपूजा सम्भवे आत्मनेपदं, परन्तु सरस्वती अर्थ्याभिः भावपूर्णाभिः स्तुतिभिः स्तुत्यं रघुं उपतस्थे-पूजयमास रघुः नहि देवता अस्ति, तस्य स्तुतौ आत्मनेपदं कथं मिति प्रश्नः? देवतात्वस्य देवगुणस्य आरोपात्कल्पनात् रघुः देवता अस्ति इति कल्पनया आत्मनेपद। अथवा ना विष्णुः पृथ्वीपतिः राजा देवतायाः अंशो अस्ति विष्णु रूपोऽस्ति पालकत्वात्। गङ्गा यमुनां उपतिष्ठते—सङ्गता मिलिता उपश्लिष्टा वर्तते। सङ्गति अर्थ आत्मनेपदम्। एतेन यमुनैव प्राचीना गङ्गा तु पश्चात् यमुनया सह मिलिता। रथो अस्ति अस्य रथिकः रथ वालेसे उपतिष्ठते मित्रतां करोति। मित्रकरण अर्थे तङ्। पन्था अर्थेऽपि तथा। (वा०) लिप्सा लब्धुमिच्छा अर्थमें विराजमान स्था धातुसे आत्मनेपद हो। भिक्षुः याचकः अर्थी याचनार्थ द्रव्यवस्तुलोभार्थं प्रभुं राजानं समर्थमुपतिष्ठते लोभसे मांगने जाता है। अर्थे आत्मनेपदं वा। लोभसे पहुंचता है।

उत् वि—उपसर्गपूर्वक तप धातुसे अकर्मक स्थितिमें आत्मनेपद हो। उत्तपते—प्रकाशमानं भवति। उत्पूर्वकः तपधातुः अकर्मकः उपर प्रकाश विशिष्ट ताप (वा०) स्वाङ्ग=अपना (कर्ता का) अङ्ग कर्म हो, तब उत् वि पूर्वक तप धातुसे आत्मनेपद हो उद्विभ्यां तपः आया। चसे अकर्मक। स्वाङ्ग शब्द यौगिक है स्वम् अङ्ग स्वाङ्ग है। अद्रवन्मूर्तिमत् स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजं पारिभाषिक लक्षण नहीं। उत्तपते वितपते पाणि हाथ अपना अङ्ग है उलट-पलटकर सेंकना अर्थ सूचक आत्मनेपद। नेह इह अस्मिन्स्थले नहि आत्मनेपदं। स्वर्णकारः सुवर्णमुत्तपति अत्र उत्पूर्वक तप धातुः सकर्मकः न तु अकर्मकः। स्वस्य अङ्गमपि नास्ति, नहि आत्मनेपदं। पारिभषाषिक अङ्ग हैं इस-

नेह सुवर्णंमुत्तताति। **आङो यमहनः** ।१।३।२८। आयच्छते आहते। अकर्मकात् स्वाङ्गकर्मकादित्येव। नेह-परस्य शिर आहन्ति। **आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम** ।२।४।४४। हनो वधादेशो वा लुङि आत्मनेपदेषु परेषु। अवधिष्ट। आवधिषाताम्। **हनः सिच** ।१।२।१४। कित्स्यात्। अनुनासिकलोपः, आहत आहसाताम् आहसत। **यमो गन्धने** ।१।२।१५। सिच्कित् स्यात्। गन्धनं सूचनं-परदोषाविष्करणम्। उदायत। 'गन्धने' किम्? उदायंस्त पादम् आकृष्टवानित्यर्थः। **समो गम्यृच्छिभ्याम्** ।१।३।२९।

लिये कि सन्तापयति अच्छी तरह तपाता है विलापयति गलाता है। चैत्र मैत्रका हाथ सेंकता है। परायेका हाथ है अपना नहीं नहि आत्मनेपदम्।

आङो—आङ्पूर्वक यम् या हन् धातुसे आत्मनेपद हो अकर्मक स्थितिमें। स्वाङ्ग (कर्ताका अङ्ग) होने पर **आयच्छते**–रज्जुः सूत्रं वा दीर्घीभवति। रस्सी या सूत्रका अपना ही अङ्ग लम्बा हो रहा। पादं दीर्घीकरोति चैत्रका पैर अपना ही अङ्ग है फैलाने लम्बा करने विस्तार अर्थमें आत्मनेपद। **आहते**–मुखं उदरं वा अपना मुख या पेट पीटता है कर्ताका अङ्ग अर्थका सूचक आत्मनेपद। नेह-यहां नहीं हुआ परस्य-परायेके सिर पर ताडन करते हैं। यहां आहन्ति सकर्मक नहीं सिर कर्ताका अङ्ग नात्मनेपदं। यदि ऐसा भारविने विषमविलोचनस्य तीन आंख वाले शिवकी वक्षः छाती पर **आजघ्ने** ताडन किया। छाती पराया अङ्ग है आत्मनेपद कैसे? स्वाङ्ग नहीं अकर्मक भी नहीं। एवं भट्टिकाव्ये आदृध्वं इत्यत्रापि तथा। कथमात्मनेपदम्। वृत्तिकार उवाच-प्रमाद एवायम्। आलस्य अज्ञानवशात् आत्मनेपदं कृतं वर्तते। अथवा प्राप्य अध्याहारं कृत्वा विषमविलोचनस्य शंकरस्य प्राप्य-समीपमुपस्थितो भूत्वा ताडयांचक्रे, रघूत्तमं प्राप्य मा आदृध्वम्। एवं निर्बाधं आत्मनेपदम्।

आत्मनेपदेषु— हन्के स्थानमें वध आदेश हो विकल्पसे, आत्मनेपद लुङि परे रहते **अवधिष्ट**। आङ पूर्वक हन धातुः तीव्रताडनार्थकः। कर्तरि आत्मनेपदे त। च्लेः सिच्। आ हन स त। विकल्पेन हन स्थाने वध आदेश। इट् ष-ट **आवधिष्ट** स्वाङ्गकर्मक सामान्य भूतकालिक ताडन क्रिया। वधकर्तृका दो कर्तामें अपने अङ्ग पर होनेकी ताडन क्रिया। यदा न बधादेशः तदा **हनः सिच**–हनसे परे सिच कित हो। जो असंयोगात् लिटसे आया। जिसका फल कित्परे अनुनासिकलोप। अनुदात्तोपदेश वनतितनोत्यादीनांचे झलोझलि सलोप। आहत आतां परे सिच कित् नलोप एवं **आहषत** भूतकालिक हनन क्रिया।

यमो—गन्धन-सूचन दूसरेके दोषको खोलना अर्थ होता हो तब यमसे परे सिच् कित् हो जाय। **उदायत**–उत आ यम स त दशायां, यमः परः स कित तस्य फलं अनुदात्तोपदेश आदिना सूत्रेण नकारलोपः। दूसरेका दोष खोल चुका अर्थ है ही सूत्रमें गन्धनकः-दूसरेके दोषाविष्करण क्यों कहा? **उदायंस्तपाद**-पैर ऊपर उठाता है या ठीक कदम चलता है इससे गन्धन-पराया दोष अर्थ नहीं निकलता,

'अकर्मकाभ्याम्' इत्येव । सङ्गच्छते । वा गमः ।१।२।१३। गमः परौ झलादी लिङ्सिचौ वा कितौ स्तः । सङ्गसीष्ट-संगंसीष्ट । समगत-समगंस्त । समृच्छिष्यते । 'अकर्मकाभ्याम्' किम् ?' ग्रामं संगच्छति । (विदि-प्रच्छि-स्वरतीनामुपसङ्ख्यानम्) वेत्तोरेव ग्रहणम् । संवित्ते संविदाते । वेत्तेर्विभाषा ।७।१।७। वेत्तेः परस्य झादेशस्यातो रुडागमो वा स्यात् । संविद्रते-संविदते । संविद्रताम्-संविदताम् । समविद्रत-समविदत । सम्पृच्छते संस्वरते । अर्ति-श्रु-दृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् । अर्तीति द्वयोर्ग्रहणम् । अङ्विधौ त्वियर्तेरेवेत्युक्तम् । मा समृत, मा समृषाताम्, मा समृषत इति । समार्त, समार्षाताम्, समार्षत

यहांका सिच कित् नहीं नलोप नहीं, झलोझलिसे सलोप भी नहीं । उदायंस्त भूतकालिक पादकर्मक आकर्षण क्रिया पेर खींचा । समो—सम्पूर्वक गम ऋच्छ धातुसे अकर्मक दशामें आत्मनेपद हो स्वाङ्गकर्मक अर्थः । अमगत यथा सङ्गच्छते संगतं भवति घुलमिल रहा है । सम्पूर्वक गम धातु (अकर्मक) से आत्मनेपद । वा गमः गम धातुसे परे झलादि लिङ् सिच् विकल्पसे कित् हो (इको झल) लिङ सिचौ, असंयोगात् लिट्से कित् अनुवृत्ति संगसीष्ट–यहां लिङ्के विकल्प कित् होनेसे अनुनासिक मका लोप । जब न कित् तब लोप नहीं । लुङ्में समगत–समपूर्वक गमधातु का सम्मेलन, सङ्गमके अनुकूल क्रिया अर्थं । भूतकालिक हो लुङ त, सिच् । वा गमसे कित अनुदात्तोपदेश वनतितनोत्यादीनां अनुनासिक मलोप । ह्रस्वादङ्गात् से सिच्लुकि । कित् नहीं मलोप नहीं । समृच्छते सुस्त होता है । इन्द्रियोंको वश करता है, मूर्तिभाव जडवत् होता है । ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु । आत्मनेपदी लृटका रूप देनेका तात्पर्य कि सूत्रमें तुदादिका ही ऋच्छ मान्य है । ऋच्छमें आदेश नहीं, सूत्र अकमर्क किमर्थमपठत् सकर्मकदशायां आत्मनेपदं मा भवतु । गांव में साथ जाता है । ग्राम कर्मसे सकर्मक हुआ । नात्मनेपदं (वा०) विदि—सम्पूर्वक विद् प्रच्छ स्वृ धातुसे आत्मनेपद हो । वेत्तेः—लुक् विकरण विद ज्ञाने धातु मान्य है । क्योंकि विन्दतिको स्वरितेत्से लाभ विद् सत्तायां विद् विचारणे धातुको अनुदात्त इतसे आत्मनेपद लाभ संवित्ते ठीक समझता है । सम्पूर्वक विद् ज्ञाने है । ते हुआ आतां परे रूप संविदाते ।

वेत्तेर्विभाषा—विद् धातुसे परे झ स्थाने अत् आदेशको रुट् (र आगम) हो विकल्पसे । झोन्तः से झ, अदभ्यस्तात्से अत् । शीङो रुट्से रुट् अनुवृत्त । संविद्रते पूर्ण ज्ञानकरता है । संपूर्वक विद धातुसे अनेक कर्ता अर्थमें वर्तमाने लट् । बहुवचनें झ, अदभ्यस्तात झ स्थाने अत् । तस्य वेत्तेर्विभाषा रुट् । यदा न रुट् संविदतें संविदतां संविदातां । संपूर्वक पृच्छसे ते पूर्व रूपसे पूछता है । संवरते–ठीक स्वर पढ़ता है । (वा०) अर्ति–समपूर्वक ऋ धातु और श्रु दृश्से आत्मनेपद हो भ्वादि अदादि दोनोंका ऋ मान्य । जब सर्ति शास्त्यर्तिभ्यश्चसे च्लिको अङ् होना होता हो तब इयर्ति–को ही हो ऐसा कहा है । मा समृत–मा योगे अट् आट् नहीं होते ।

इति च म्वादेः । इयर्तेस्तु-मा समरत मा समरेताम्, मा समरन्त इति, समारत, समारेताम्, समारन्त इति च। संश्रृणुते सम्पश्यते। अथास्मिन्नकर्मकाधिकारे हनिगम्यादीनां कथमकर्मकतेति चेत् ? शृणु।

धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसङ्ग्रहात् ।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया ॥

वहति भारम्। नदी वहति स्यन्दते इत्यर्थः। जीवति। नृत्यति प्रसिद्धेर्यथा-मेघो वर्षति। कर्मणोऽविवक्षातो यथा-'हितान्न यः संश्रृणुते स

सम् ऋ सत। उश्चसे सिच् कित् उसका फल गुण निषेध। ह्रस्वादङ्गात्से सिच् लुकि। आता परे सको ष झि-अत्। सभी ज्ञान प्राप्त किये। माङ् के अभावमें म्वादि ऋ धातुका रूप समार्त-सब मिल गये। मुक्त हुए। आट्। सम् आ ऋ स त। उश्चसे कित्का फल गुणनिषेध ह्रस्वादङ्गात् सिच्लोप। आटश्च वृद्धिः आ रपरे समार्त। द्विवचन आतां सको ष। बहुवचन झिको अत् आदि। सभी समा गये। भ्वादिका रूप बना समार्त। इयर्तेस्तु-श्लु विकरण ऋ धातुसे मा सम् ऋ त च्लि के स्थानमें सर्तिशास्ति सूत्रसे अङ्। ऋ दृशोऽङ् गुणः अर समरत आदि। समारत मा योग नहीं तब आट् आटश्च वृद्धि समारेताम्। श्रु धातुसे (संपूर्वक देखकर) आत्मनेपद संश्रृणुते-सूक्ष्म शब्दको भी पूर्ण रूपसे सुनता है। दृशको पश्य आदेश। शित् परे एतानि कार्याणि अकर्मकधातोरेव भवन्ति। अतएव राक्षसोंकी नगरी हमलोग सुनते हैं। यह मुरारिका प्रयोग प्रमाद-असावधानी वश हो गया। सकर्मक है आत्मनेपद असम्भव। णुमहे कहना था नहीं कहे। अथवा अध्याहार करके काम चलायें। रक्षांसि इति कथयन्तूषः (पुराणि संश्रृणुमहे) राक्षस कर्म कथन क्रियासे जुड़ा आत्मनेपद निर्बाध। अथास्मिन्—इस सकर्मकके अधिकारमें हनि गमि आदि धातु अकर्मक कैसे होंगे। उपाय सुझाया कि धातोः—चार प्रकारसे क्रिया अकर्मक होती है ? धातोः अर्थान्तरे—कोई धातु अन्य अर्थमें बदल जाय, शक्ति धारण करे तब सकर्मक भी अकर्मक होता है। यथा भारं वहति प्रापयति। बोझा ढोता है सकर्मक है। यदि अर्थान्तरमें शक्ति हो अकर्मक, यथा नदी वहति स्यन्दते। धारामें चलना वहधातु प्रापणार्थक है। धारा वहने अर्थमें शक्तिसे अकर्मक हुआ। धातुके अर्थमें उपसंग्रह=समा जानेसे क्रिया अकर्मक। जीवति—जीवेः प्राणधारणमर्थः प्राणं दधाति जीव प्राण कर्म है। धातुके अर्थमें समा गया, अतः अकर्मक। नृत्यति नृत्यं करोति अङ्गका हिलाना नृति है धातुके अर्थमें कर्म समा गया अतः अकर्मक। सुप् आत्मनः क्यच्का भाष्य प्रमाण। प्रसिद्धिसे भी सकर्मक अकर्मक होते हैं। जैसे—मेघः वर्षति यद्यपि वर्ष धातुका कर्म जल है। वर्षासे जल वृष्टि प्रसिद्ध है अतः अकर्मक। कर्मकी अविवक्षासे भी धातु अकर्मक होते हैं। कर्मणोऽविवक्षा वक्ताको कर्म कहनेकी इच्छा न हो। तब भी सकर्मक धातु अकर्मक

किं प्रभुः'। **सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरण-ज्ञान-भृति-विगणन-व्ययेषु नियः** ।१।३।३६। तथा हि-शास्त्रे नयते शास्त्रस्थं सिद्धान्तं शिष्येभ्यः प्रापयतीत्यर्थः। तेन च शिष्यसम्माननं फलितम्। उत्सञ्जने-दण्डमुन्नयते। उत्क्षिपतीत्यर्थः। माणवकमुपनयते विधिना आत्मसमीपं प्रापयतीत्यर्थः। उपनयनपूर्वकेणाध्यापनेन हि उपनेतरि आचार्यत्वं क्रियते। ज्ञाने, तत्त्वं नयते। निश्चिनोतीत्यर्थः। कर्मकरानुपनयते। भृतिदानेन स्वसमीपं प्रापय-

हो जाता। यथा हितात्—हितोपदेशकथनात् पुरुषात् यः हितं न संशृणुते हितकरं वचनं श्रुत्वा स्वहितं न मन्यते न जानाति स कुत्सितः राजा कृपणः अस्ति। अत्र हितवचनं कर्म तस्य विवक्षा-हितकथनस्य इच्छा नास्ति। अतएव अकर्मकः श्रु धातुः। इस प्रकार अकर्मकके अधिकारमें हृन् गम आदि सकर्मक धातु भी कर्मकी अविवक्षासे अकर्मक है। लः कर्मणि सूत्रमें यह निर्णय उचित।

सम्मानन समादर, उत्सञ्जन ऊपर उठाना, आचार्यकरण–भृति वेतन भोग विगणन ऋण चुकाना व्यय ये अर्थ खुलते हों, णीञ् धातुसे आत्मनेपद हो परगामिनी फले। कर्तृगामी फल रहते स्वरित ञितिसे आत्मनेपद होता है। इस सूत्रमें उत्सञ्जन ज्ञानका विगणन व्यय अर्थका वाचक आत्मनेपद। नी धातुसे इतर सूत्र में शेष सम्मानन आचार्यकरण भृति अर्थ प्रयोगके वाच्य नहीं किन्तु आर्थिकार्थ है शब्द प्रयोगमें निमित्त शब्दप्रयोगे निमित्ताः आत्मनेपदद्योत्याः तदेव कथयितुं प्रतीजानीते खोलति भावं, तथाहि सम्माननं शास्त्रे नयते शास्त्रमें विराजमान सिद्धान्त (शब्द अर्थ सम्बन्ध फल) निर्णय अनुशासन पूर्ण ज्ञानको शिष्यों तक पहुंचाता है णी प्रापणार्थक है अध्याहृतं सिद्धान्तका अधिकरण आधार। शास्त्रमें सप्तमी तेन इस अर्थमें आत्मनेपद होनेसे शिष्योंका सिद्धान्त प्राप्तिसे सम्मान समादर अर्थतः फलित है उत्सञ्जन उत्क्षेप उठाना उन्नयते दण्डं दण्डके उन्नयन उठाने अर्थका वाचक आत्मनेपद धातवः अनेकार्थकाः अथवा उपसर्ग बलेन धात्वर्थः अन्यार्थोऽस्ति माणवकं यज्ञोपवीतधारकं बालकं उपनयते आचार्यः उपनीय दद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः इति स्मृतिः। उपनयनं बटुसंस्कारः परगामी फलसे परस्मैपद प्राप्त उसे बाधकर आचार्य करण अर्थमें आत्मनेपद उपपूर्वक णी का समीप प्रापण पहुंचना अर्थ नहि उपयनमात्रेण आचार्यत्वं सिद्ध्यति आर्थिक आचार्यकरणमुपनयित तं अध्यापयीत वेदाध्ययन उपनयनका आर्थिक अर्थ अर्थतः उपलब्ध अध्यापनात् आचार्यो भवति (उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विजः। सकल्पं स रहस्यञ्च तमाचार्यं प्रचक्षते। आचार्य होना अर्थतः प्रतीत मानसबोध विषय है वाच्यार्थ नहीं ज्ञाने तत्त्वं नयते ब्रह्म तत्वं निश्चिनोति (शब्द ही ब्रह्म है) का निश्चय करते हैं अर्थमें आत्मनेपदं भृतिः वेतनं तदर्थं कर्म करोति कर्मकरः भृतौ कर्मणि ट, भृति कर्म उपाद रहते कृसे ट, कर्ता अर्थमें। वेतन पर सेवा कार्यके लिए अपने पास भृत्यः कर्मकरः बुलाते हैं यह फलितार्थ है वाच्यार्थ नहीं। विगणन ऋण-टैक्स आदिका निर्यातन प्रत्यर्पण चुकाना आदि वाच्य अर्थ रहते आत्मनेपद। करं विनयते राज्ञे देयो भागः

तीत्यर्थः। विगणनमृणादेर्नियर्यातनम्। करं विनयते। राज्ञे देयं भागं परिशोधयति। शतं विनयते। धर्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः। उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वेति। बन्धं निरस्यति निरस्यते। समहति-समूहते। उपसर्गाद् ध्रस्व ऊहतेः।७।४। २३। यावौं विङति। ब्रह्म समुह्यात्। अग्नि समुह्य। नि-समुप-विभ्यो ह्वः ।१।३।३०। निह्वयते, स्पर्धायामाङः।१।३।३१ कृष्णश्चाणूरमाह्वयते। 'स्पर्धायाम्' किम् पुत्रमाह्वयेति। उदश्चरः सकर्मकात्।१।३।५३। धर्ममुच्चरते। उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः। समस्तृतीयायुक्तात् ।१।३।५४। रथेन सञ्चरते।

करः विपूर्वोनी धातुः परिशोधनार्थकः परिशोधयति दातुं गणयति देनेके लिये टक्स का पैसा गिनता है व्यय-शत विनयते धर्मके लिये सौ रुपया व्यय करता है अर्थमें आत्मनेपद, विपूर्वः णि धातुः व्ययार्थकः विनियोगानुकूलव्यापारः वितरण करता है।

उपसर्ग-से अस्

भुवि ऊह-वितर्के धातुसे आत्मनेपद विकल्पसे हो। अकर्मकका अधिकार रुक गया। बन्धं निरस्यति गांठ खोलता है। निर पूर्वक अस् धातुसे दोनों पद, दो रूप। संपूर्वक ऊहसे दोनों पद दो रूप मूलमें। समूहति सम्यग्विचारयति अर्थ। ठीक तर्क जब उचित तर्क सफल विचारके प्रति शुभकामना हो कर्तामें आशीलिङ् यासुट् (समूह या त्) उपसर्गात्-उपसर्गसे परे ऊहको ह्रस्व हो यकारादि किति ङिति परे। यास् यकारादि कित् है ऊको ह्रस्व। ब्रह्मके विषयमें तर्कपूर्ण विचार बढ़ता जाय समुह्य—परितः संमृह्य अग्निके चारों तरफ शुद्ध करके क्त्वाको ल्यप य कित् है ह्रस्व हुआ।

नि सम उप वि से परे ह्वेञ् धातुसे आत्मनेपद हो। ह्वे को आत्वकर ह्वः पञ्चम्यन्त। नि पूर्वक ह्वे से त, शप् अत्। एत्व निह्वयते—छिपता है। संह्वयते—संगम होता है। उपह्वयते पास बुलाना। विह्वयते अलग करना। ञित् धातुसे आत्मनेपद होता। परन्तु परगामी क्रिया फलके लिए आवश्यक आत्मनेपद। स्पर्धा—एक दूसरे से बढ़नेकी इच्छा अर्थ हो आङ्पूर्वक ह्वेञ्से आत्मनेपद। कृष्णश्चाणूरको ललकारते हैं स्पर्धा भावसे। आह्वयते—आत्मनेपद। स्पर्धा नहीं होगी तब परस्मैपद होगा पुत्रको बुलाता है आह्वयति। उदः—उत्पूर्वक चर धातुसे सकर्मक दशामें तङ् हो। धर्मका उल्लंघन करता है। कर्म धर्म है सकर्मक चर आत्मनेपद हुआ सकर्मक क्यों कहा अकर्मकसे न हो। वाष्पमुच्चरति आंसू निकलता है ऊपर टपकता है। समपूर्वक चर धातुसे आत्मनेपद हो तृतीयान्तके सम्बन्ध रथके संयोगसे संचरण विचरण करता है। तृतीयान्त रथके संयोगसे संचर धातुसे तङ् तृतीया युक्त क्यों कहा रथिकाः रथ सहायेन पुरुषाः संचरन्ति तृतीयान्तका श्रवण नहीं नात्मनेपद, एतदर्थ योग पढ़ा? अन्यथा तृतीयया पढ़ते सकर्मकसे भी तथा भेद न होनेसे उभौ लोक संचर सीमं चामुं च लोकं भाष्यम्।

दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे ।१।३।५५। सम्पूर्वाद् दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात् तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे। दास्या संयच्छते। **उपाद्यमः स्वकरणे ।१।३।५६।** स्वकरणं स्वीकारः। भार्यामुपयच्छते। **विभाषोपयमने ।१।२।१६।** यमः सिच्किद्वा स्याद्विवाहे। रामः सीतामुपायत-उपायंस्त वा। उदवोढेत्यर्थः **ज्ञा-स्मृ-श्रु-दृशां सनः ।१।३।५७।** सन्नन्तानामेषां प्राग्वत्। धर्मं जिज्ञासते।

दाण-सम्पूर्वक दाण दाने धातु तृतीयान्तसे जुड़ा हो आत्मनेपद हो जाय वह तृतीया चतुर्थी अर्थमें हो तब। दान धातु अशिष्ट व्यवहारमें (इष्टदानपूर्वकभोगः) अत्र दान धात्वर्थः। दास्या संयच्छते दासीं सेविकां शाटीं गत्वा भोगं करोति अशिष्टव्यवहार (दाण् प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीयावाच्या) अनुचित आचरणमें कुछ दान-कर सुख भोगकी इच्छामें चतुर्थीके अर्थमें तृतीया दास्या संपूर्वकदासे आत्मनेपद शप् यच्छ आदेश अशिष्ट उपभोगके लिए देता है यद्यपि रथेन समुदाचरतेसे पर्व सूत्रकी प्रवृत्ति नहीं आङ्के व्यवधानसे। तथापि दास्या सम्प्रयच्छते यहां भी प्र के व्यवधानसे आत्मनेपद कैसे? तब कहा पूर्वसूत्रमें समः में षष्ठी है उससे पूर्व पर व्यवहित अव्यवहित किसी भी सम्बन्धमें आत्मनेपद होगा। उपपूर्वक यम धातुसे आत्मनेपद हो। ननु वस्त्रमुत्पादयति अर्थमें वस्त्रमुपयच्छतिमें भी तङ् हो जाय, तब कहा 'स्वकरणं स्वीकारः' अस्वस्य सतः सत्वेन परिग्रहः जो अपनी नहीं थी उसे अपनी बनाना स्वकरण शब्दका अभीष्ट अर्थ है। (अभूततद्भाव) जो नहीं था वह हो गया जो पत्नी नहीं थी वह हो गयी। समर्थानां प्रथमाद्वाके विकल्पसे च्वि प्रत्यय नहीं हुआ। भार्यामुपयच्छते अन्यदीयां कन्यां भार्यात्वेन परिणयति स्वीकरोति। उपपूर्वक यमधातुः पाणिग्रहणानुकूलव्यापारवाचकः तस्मात् आत्मनेपदं शप् इषुगमियमां छः। एककर्तृक वर्तमानकालिक विवाह संस्कारानुकूला क्रिया।

विभाषा-यम धातुसे परे सिच् कित् हो विकल्पसे उपयमने विवाह अर्थमें यमो गन्धनेसे यम। हनः से सिचि, असंयोगात्से कित्की अनुवृत्ति। उपयम्शब्द विवाह अर्थमें रामने सीताके साथ विवाह किया भार्यात्वेन स्वीकृतवान् कर्ता अर्थ लुङ् उप् अयम् स-त। विभाषोपयमने सूत्रेण सिच् कित् पक्षे अनुदात्तोपदेश सूत्रेण मलोपे ह्रस्वादङ्गात् सिचो लोपः दीर्घ उदायत, जब न कित् तदा नहि मलोपः न ह्रस्वः न सिचिलोप उदवोढ़ भूतकालिक उत्तरदायित्ववहन क्रिया सीतारामयोः परस्परं गन्धनाङ्गे हिंसात्मक उपयम-विवाह हो। राक्षसविवाहे हिंसापूर्वके हत्वा भित्वा च शीर्षाणि। रुदतिं रुदतो हरेत् स राक्षसो विवाहः अर्थमें पूर्वविप्रतिषेध तुल्य बल विरोधमें इष्ट कार्य हो तब नित्य कित्व यमोगन्धने पूर्वसूत्रसे। **ज्ञा श्रु-** स्मृ दृश् धातुसे सन्नन्त दशामें आत्मनेपद हो यद्यपि अपह्नवे ज्ञः अकर्मकाच्च सम्प्रतिभ्यां अति श्रु दृश् आदि सूत्र वार्तिकसे आत्मनेपद करके पूर्ववत्सनः, तथापि अपह्नो-अकर्मक आदिके अभावमें भी आत्मनेपदके लिए यह सूत्र पढ़ा? यथा धर्मं जिज्ञासते ज्ञातुमिच्छति धर्मविषये जिज्ञासा सन्नन्त है तब श्रोतुमिच्छति धर्मं शुश्रूषते धर्म सुनना चाहता है। सन्परे अज्झन्गमांसे दीर्घ, इको झलसे सन् कित् हुआ श्युकः किति से इट् निषेध। रामं स्मर्तुमिच्छति सस्मूर्षते स्मृ धातो स्मरणेच्छार्थे

शुश्रूषते। सुस्मूर्षते। दिदृक्षते। नानोर्ज्ञः पुत्रमनुजिज्ञासति। प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु ।१।३।६४। प्रयुङ्क्ते, उपयुङ्क्ते स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम्। उद्युङ्क्ते नियुङ्क्ते। 'अयज्ञपात्रेषु' किम्? द्वन्द्वं न्यञ्चि पात्राणि प्रयुनक्ति। समः क्ष्णुवः ।१।३।६४। संक्ष्णुते शस्त्रम्। गन्धना-ऽवक्षेपण-सेवन-साहसिक्य-प्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु कृञः ।१।३।३२। गन्धनं हिंसा। उत्कुरुते। सूचयतीत्यर्थः। सूचनं हि प्राणवियोगानुकूलत्वाद्धिंसैव। अवक्षेपणं भर्त्सनम्। श्येनो वर्तिका मुदाकुरुते। भर्त्सयतीत्यर्थः। हरिमुपकुरुते, सेवते। परदारान् प्रकुरुते, तेषु सहसा प्रवर्तते। एधो दकस्योपस्कुरुते, गुणमाधत्ते। गाथाः प्रकुरुते, प्रकथयति। शतं प्रकुरुते, धर्मार्थं विनियुङ्क्ते। 'एषु' किम्? कटं करोति। इत्यात्मनेपदप्रकरणम्।

सनि द्वित्वादि, अज्झनसे दीर्घ उदोष्ठ्यपूर्वस्य ओष्ठ स्थानवाला म पूर्वमें है। ऋको उ रपर हलि च दीर्घ। बालकः द्रष्टुमिच्छति दिदृक्षते सन्नन्तसे तङ्।(नाऽनोः) अनु पूर्वमें हो ज्ञा धातुके सन्नन्तसे आत्मनेपद न हो।

प्रोपा—प्र उपपूर्वक युज धातुसे आत्मनेपद हो यज्ञका पात्र अर्थ न खुलने पर प्रयोग उपयोग करता है अर्थमें तङ प्रयुङ्क्ते (वा०) स्वरौ अचौ आद्यन्तौ यस्य स स्वराद्यन्त उसका आदि अच स्वर है उपका निका अन्त अच् स्वर है, ऐसा उपसर्ग उत, नीसे परे युजसे तङ, उद्योग नियुक्ति करता है। यज्ञ पात्रका नियोग न हो ऐसा क्यों? द्वन्द्वं न्यञ्चि दो-दो छिद्र वाले पात्रका प्रयोग करता है अत्र न तङ। समः— सम्पूर्वक क्ष्णु तेजने धातुसे आत्मनेपद हो, शस्त्रको तेज करता है तीक्ष्णीकरोति तङ।

पुत्रम् अनुज्ञातुमिच्छति अनुजिज्ञासति पुत्रको आदेश आज्ञा देना चाहता है साहसिक्य हिम्मती व्यक्तिका कर्म, प्रतियत्न-गुणग्रहण कथन चर्चा चालन उपयोग अर्थ रहने पर उपसर्गसे परे कृञ् धातुसे आत्मनेपद हो। गन्धनका हिंसा अर्थ। प्रमाण-गन्ध अर्दने, अर्द हिंसायां चुरादिगणमें पढ़े गये हैं। उत्कुरुते—(उत्पूर्वक कृसे तङ्) आदिका अर्थ सूचयति-परदोषं प्रकटीकरोति परन्तु पराये दोषके प्रकटीकरण में हिंसा नही जान पड़ती कथमस्य हिंसायां वृत्तिः तदाह सूचनंहि=प्राण (वियोग अलगाव) निकालनेकी अनुकूलतासे हिंसा ही गन्धन है भर्त्सन श्येन बाज वर्तिका (शकुनि विशेषः) बटेरको उदाकुरुते-घुड़कने अर्थमें आत्मनेपदं। दहलाना झिड़कना हरिकी सेवा ही उपकार है। अर्थे आत्मनेपदं। सहसा वर्तते (साहसिकः) ओजस्सहो अम्भसाः वर्ततेसे ठ-इक साहसिकस्य कर्म साहसिक्यम्। असमीक्ष्यकरणं परदारान् सहसा वशीकरोति साहसप्रवृत्ति विषयीकरोति अर्थे आत्मनेपदम्। अविवेक पूर्ण प्रवृत्ति परायी स्त्रियों पर। प्रतियत्न-गुण ग्रहण। एधः काष्ठ दकस्य जलके गुणोंको धारण करता है अर्थमें आत्मनेपदं। उपस्कुरुते—एध शब्द अदन्त निपातित है। अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः सूत्रसे। अथवा एधस् शब्द सकारान्त नपुंसक है। एधश्च दकञ्च। दकशब्दः उदकं जलवाचि प्रोक्तं प्राज्ञैर्भुवनमभृतं जीवनीयं दकञ्च

अथ परस्मैपदप्रकरणम्

'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' अत्ति। 'शेषात्कर्तरि परस्मैदम्'। 'श्वि'। श्वयति। **विभाषा श्वेः** ।६।१।३०। श्वयते संप्रसारणं वा स्याल्लिटि. यङि च। शुशाव। शुशुवतुः। (श्वयतेर्लिट्यभ्यासलक्षणप्रतिषेधः)। शिश्वाव शिश्वियतुः। शिश्वियुः। शूयात्।'जृस्तम्भ्व'त्यङ् वा। श्वयतेरः।७।४।१८। श्वयतेरिकारस्य अकारः स्यात्-अङि। अश्वत्। अश्वः। 'विभाषा धेट्श्व्योः'रिति चङ् वा। अशिश्वियत्। अश्वयीत्। अनुपराभ्यां कृञः।१।३।७६। कर्तृगेऽपि

इति हलायुधः। काष्ठं दारु इन्धनं तु एध इध्ममेधं समित्स्त्रियामित्यमरः। गुणका आधान ग्रहणके भावसे कहा गुणमाधत्ते। काष्ठमें शोषण क्रियासे (जलमें सुगन्ध द्रव्यसम्पर्कजनित) गुणग्रहण, गायन गाथा गाने, कथा कहने अर्थमें शतं प्रकुरुते- धर्मके लिए शतमुद्रा जमा करता है। एधु किम् उक्त अर्थमें आत्मनेपद क्यों कटं-करोति चटाई बनाता है। यहां आत्मनेपद न हो, उक्त अर्थ न होनेसे।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकर्यामात्मनेपदप्रक्रिया परिपूर्णा।

अथ परस्मैपदं-यद्यपि परस्मैपदकी व्यवस्थामें परगामी क्रियाफल शब्दतः प्रतीत है तथापि संज्ञापक्षमें सकर्मकसे परगामी फल, अकर्मकसे आत्मगामी फल हो। अनुदात्त ङित् आत्मनेपदं। स्वरितञितः आदि आत्मनेपदके निमित्त कहे गये उनके निमित्त कारणोंसे शेष-अवशिष्ट बचे हुए कारणोंसे परस्मैपदकी व्यवस्था प्रस्तुत करते हैं। इदं प्रकरणं विशेषेण परस्मैपदं कर्तृफलकमस्ति। बालकः अपूपं अत्ति। खादन चर्वण निगरण क्रियाका आधार बालक कर्ता है परस्मैपद अद् ति अत् अत्ति।

विभाषा—श्विधातुको सम्प्रसारण हो विकल्पसे लिटि और यङ् परे। लिट् अंशमें नित्य प्राप्त। णल् आदि परे अप्राप्त विभाषा। यङ् अंशमें अप्राप्त शोशूयते। जब न सम्प्रसारण। शेश्वियते। श्वि लिट् ति-णल्। विभाषाश्वेः से सम्प्रसारण। शुको द्वित्व शु शु अ। अचोञ्णिति आव। शुशाव शुशुवतुः। उभयत्र विभाषा। (वा) श्वि धातुके लिटि परे अभ्यासके कार्य (सम्प्रसारण आदि) का निषेध हो। देन==सम्प्रसारण न होनेसे इकार सुनाई पड़नेसे श्वि अ। णित् परे वृद्धि शिश्वाय। अतुस् परे इयङ् शिश्वियुः। श्वयिता बढ़ना चलना आगामी भविष्यका। श्वयिष्यति। श्वयेत् श्वयेतां श्वयेयुः, श्वयतु श्वयतां श्वयन्तु। आशीर्लिङ्का यासुट् कित् है। परे मानकर वचि स्वपियजादीनां सम्प्रसारण पूर्वरूप दीर्घ शूयास्तां शूयासुः। लुङ् लकारमें च्लिको अङ् विकल्पसे जृस्तम्भुसे हुआ। अश्विअतकी स्थितिमें इयङ् प्राप्तको बाधकर श्वयते अः-श्वि धातुका अन्त्य अल् इकारको अ हो, अङि परे (जो ऋदृशोसे आया) अश्व अत्। सवर्णदीर्घ प्राप्त था पररूपका संकेत अश्वत अश्वताम् अश्वन्। अश्वः अश्वतम् अश्वत। अश्वम् अश्वाव अश्वाम। जब अङ् नहीं तब विभाषा धेट् श्विसे परे च्लिको चङ् विकल्प हो जिसका फल चङिसे द्वित्व। अशिश्विअत्। इयङ् अशिश्वियत् जब चङ् नहीं तब सिच् अश्विइश्व सईत्। इट ईटि। दीर्घ गुण अय्। हलन्तके अच्को वृद्धि प्राप्त थी। उसका ह्यन्त-से निषेध।

फले गन्धनादौ च परस्मैपदार्थमिदम् । अनुकरोति पराकरोति । अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०। 'क्षिपप्रेरणे' स्वरितेत् । अभिक्षिपति । प्राद्वहः ।१।३।८१। प्रवहति । परेर्मृषः ।१।३।८२। परिमृष्यति । व्याङ्परिभ्यो रमः ।१।३।८३। विरमति । उपाच्च ।१।३।८४। यज्ञदत्तमुपरमति । उपरमयतीत्यर्थः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् । विभाषाऽकर्मकात् ।१।३।८५। उपाद्रमेरकर्मकात्

अनुपरापूर्वक कृञ् धातुसे आत्मनेपद हो । कर्तामें फल विराजमान हो गन्धन अवक्षेपण सेवन साहसिक्य प्रतियत्न प्रकथन उपयोग अर्थ रहने पर ही । अनुपरा उपसर्गकी विशेषतासे उक्त अर्थमें ति । स्वरित ञित् और शेषात् परस्मैपदको बाधकर । कर्तृगामी फलमें आत्मनेपद प्रसिद्ध हो हैं । छात्रः परीक्षायां **अनुकरोति**—नकल करता है । अनुकरण फल कर्तामें है । आत्मनेपद बांधकर अनुपूर्वक कृ धातोः परस्मैपदम् । अनुकरोति । शत्रून् पराकरोति पराजित धराशायी परास्त करता है : क्रिया फल परगामी हैं । शत्रुमें परास्त फल है इसीलिए कर्तृगेऽपि पढा, परगामी फलमें परस्मैपद होता ही है । वह कर्तामें ही हों नियम (अभि प्रति अति) पूर्वक क्षिप् प्रेरणे धातुसे परस्मैपद हो क्षिप्का (अ) स्वरित है, इत् होनेसे आत्मनेपद प्राप्त था उसे बांधकर कर्तामें फल होनेपर भी परस्मैपद हो । **अभिक्षिपति**—सन्मुख फेंकता है प्रतिक्षिपति विरुद्ध आक्षेप करता है । अतिक्षिपति बहुत अति करता है, सर्वत्र परस्मैपद ।

प्र—पूर्वक वह धातुसे परस्मैपद हो । वह प्रापणे स्वरितेत है नदी प्रवहति वहन क्रियाफल धारा कर्ता नदीमें है । प्राप्त आत्मनेपद बांधकर परस्मैपद प्रवहति तेज धारा । परिपूर्वक मृष तितिक्षायांसे परस्मैपद, दिवादिका स्वरितेतसे दोनों पद प्राप्त, नित्य परस्मैपद **परिमृष्यति**—सब प्रकारसे सहता है । चुरादिमें आधृषाद्वासे णिच् अभावपक्षमें परस्मैपद ही होता है । भ्वादिका मृष सहने सेचने च परस्मैपदी ही है । **परिमर्षति**—उसका इसमें ग्रहण नहीं । इह–अस्मिनन्प्रसङ्गे (परेः इति) एकं सूत्रं विभज्य पृथक्कृत्वा वहेरपि–परिपूर्वक वह धातोः परस्मैपदं परिवहति । मृष इति द्वितीयं सूत्रं परे अनुवर्तते । तस्मात् मृषः परस्मैपदमिति केचित् । अयं योगविभागः भाष्ये न दृश्यते । **वि आङ्**—परिपूर्वक रम् धातुसे परस्मैपद हो । जो अनुदात्तङितः से आत्मनेपद प्राप्त था । विरमति विरामं विश्रामम् अवसानं समाप्ति करोति, आरमति आरामं शान्ति लभते । परिरमति परितः सर्वतः रमति । क्रियाफल कर्तामें परस्मैपद सूचक। **उप**–पूर्वक रमसे भी ति कहें : यज्ञदत्तको उपरमति शान्त करता है । ति हुआ । ननु विराम सकर्मक कैसे ? खोलनेके लिए उपरमयति प्रमाण दिया । बिना णिच्के यह अर्थ कैसे ? तब **अन्तर्भावित**–भीतरी भागमें ण्यर्थकी प्रेरणा छिपी है । धातुके अनेकार्थ होनेसे । **विभाषा**–उपपूर्वक रम धातु अकर्मक हो तब परस्मैपद विकल्प हो । अनुवृत्ति । अतः उपरमते भी हुआ । निवृत्त उदास अलग होना अर्थ ।

परस्मैपदं वा। उपरमति-उपरमते वा निवर्तत इत्यर्थः। **बुध-युध-नश-जनेङ्-प्रु-द्रु-स्रुभ्यो णेः ।१।३।८६।** एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं स्यात्। 'णिचश्च' इत्यस्यापवादः। बोधयति पद्मम्। योधयति काष्ठानि। नाशयति दुःखम्। जनयति सुखम्। अध्यापयति प्रावयति प्रापयतीत्यर्थः। द्रावयति विलापयतीत्यर्थः। स्रावयति स्यन्दयतीत्यर्थः। **क्रीङ्जीनां णौ ।६।१।४८।** क्रीङ्जीनां णौ आत्वं स्यात्। अध्यापयति। **णौ च संश्चङोः ।२।४।५१।** सन्परे, चङ्परे च णौ इङो गाङ् वा स्यात्। अध्यजीगपत्। अध्यापिपत्। क्रापयति।

बुध–युध, नश, जन, इङ्, प्रु-द्रु-स्रु (द्वन्द्व) इन धातुओंके ण्यन्त दशासे परस्मैपद हो। णिचश्चके आत्मनेपदको बांधकर। सूर्यः पद्मं कमलं बोधयति विकासयति पद्मं विकसति, सूर्यः विकासयति। बुध विकसनार्थकः ण्यन्त बोधि धातोः ति शप गुण अय बोधयति पद्म चेतन कर्ता नहीं अणावकर्मकात् इति परस्मैपदं न करोति काष्ठानि युद्ध्यन्ते स्वयमेव तानि योधयन्ति लकड़ियां युद्ध करती हैं कराती भी हैं ण्यन्त योधिसे ति आदि। अण्यन्तदशामें चेतना कर्ता नहीं अणावकर्मकात्से प्राप्त नहीं, अतः सूत्र–चेतन कर्ता होता उदाहरण न बनता अत योधयति देवदत्तं नोदाहृतं पढ़ाते प्रेरणा अध्यापि दशातः ति, प्रु गतौ छात्रः प्रवते गुरुः तं प्रावयति चलना चलाना छानना छनाना अर्थ, प्रापयति पहुंचाता है गत्यर्थकका सूचक। स्वर्णं द्रवति पिघलता है स्वर्णकारः तत् द्रावयति। आज्यं घृतं द्रवयति तत् द्रावयति टेघराना गलाना अर्थ द्रवीभावार्थक जानकर विलापयति कहा। ण्यन्तद्रावि से परस्मैपद ति आदि, जलं स्रवति स्यन्दते पसीजता रिसता चूता है घटं सः छिद्रः—सन् स्रावयति स्रावि ण्यन्तात् ति आदि। प्रीति भक्तजनस्य यो जनयते में आत्मनेपद प्रमादवश अथवा भक्त जनः हरौ प्रीति जनयति इति हरिं जनयते ण्यन्तसे ण्यन्तका रूप है।

णौ परत एषां धातूनामाकारान्तादेशः स्यादित्यर्थः। (अध्यापयति)अधिपूर्वादिङः णौ 'क्रीङ्जीनां' इत्यात्वेपु० यणि 'अध्यापि' इति जाते 'बुधयुध' इति परस्मैपदे तिपि शपि गुणेऽयादेशे 'अध्यापयति' इति रूपम्। णौचेति। विकल्पेन गाङादेशं विधत्ते। अध्यजीगपत्। अधिपूर्वादिङः णौ लुङि तिपि 'इतश्च' इलोपे 'णौ च संश्चङोः' इङो विभाषया गाङादेशे आदन्तत्वात्पुगागमे 'अधि-गापि-त्' इति जाते च्लौ 'णिचश्च' इति चङि चङ्परे णौ उपधाया ह्रस्वत्वे 'अधि-ग-प्-इ-अ-त्' ततो द्वित्वे चर्त्वे 'सन्वतः' इतीत्वे 'दीर्घोकितः' इति दीर्घे जकारात्प्रागडागमे यणि 'णेरनिटि' इति णेर्लोपे 'अध्यजीगपत्' इति रूपम्। यदा गाङादेशो न स्यात्तदा 'अधि-इ-इ-अ-त्' इति स्थिते 'क्रीङ्जीनां णौ' इत्यादेः पुकि 'आडजादीनामित्यादि 'आटश्च' वृद्धौ यणि पिशब्दस्य द्वित्वे णेर्लोपे 'अध्यापिपत्' इति रूपम्। क्रापयति। डुक्रीञ् धातोर्णौ 'क्रीङ्जीनां' इत्यात्वे पुकि लटि तिपि शपि, गुणोऽयादेशे रूपम्। एवं क्रापयति। अत्रापि णौ आत्वमित्यर्थः।

निगरण लीलना खाना चबाना भक्षण अर्थक धातु और चलन कम्पन अर्थक

जापयति। **निगरण-चलनार्थेऽस्यश्च** ।१।३।८७। निगारयति। आशयति भोजयति। चलयति कम्पयति। (अदेः प्रतिषेधः) आदयते देवदत्तेन। **अणावकर्मकाच्चित्तवत् कर्तृकात्** ।१।३।८८। ण्यन्तात् परस्मैपदं स्यात्। शेते कृष्णः, तं गोपी शाययति। **न पादम्याङ्-यमाङ्-यसपरि-मुह रुचि-नृति वद-वसः** ।१।३।८९। एभ्यो ण्यतेभ्यः परस्मैपदं न। पाययते

धातुके ण्यन्तदशामें परस्मैपद हो, णिचश्चके आत्मनेपदको बाधकर। पूर्वसूत्रमें अकम्पनार्थक धातु मान्य। पानमपि निगलनं भक्षणमस्ति, अयोस्नाते इति श्रुतेः। अतएव (न पादमि) सूत्रे पादग्रहणं सार्थकं (नवीयतां नाम चकोर जिह्वया कथञ्चि दन्त, मुखचन्द्रचन्द्रिका) इमां किमाचामयते, न चक्षुषी चिरं चकोरस्य भवन्मुख-स्पृशी इस श्रीहर्ष श्लोकमें आचामय अलग पद है अर्थ (सम्बु) अः विष्णु, तस्य स्त्री ई-लक्ष्मी तया सहिता स ई=से एकारान्त सम्बोधन एङ्ह्रस्वात्से लुक्। वस्तुतः आचामीः आदरे लक्षणा लीलना नहीं है परस्मैपद नहीं। निगारयति गॄ निगरणे णिच निगारि ण्यन्तसे ति। बालकः अन्नम् अश्नाति माता बालकं आशयति खिलाती है अश भोजने ण्यन्तात् ति आदि। भुज भी खाने लीलने निगरण अर्थमें है ण्यन्तसे ति। चल कम्पने चक्रं चलति यन्त्रज्ञः चलयति, शाखा कम्पते, वायुः कम्पयति ण्यन्तात् आत्मनेपदम्। अदेः-ण्यन्त अद धातुसे निगरण अर्थमें प्राप्त परस्मैपदका प्रतिषेध कहें आदयते देवदत्तेन अद धातु प्रत्यवसानार्थक भक्षणार्थक है देवदत्तको कर्मसंज्ञा क्यों नहीं, गतिबुद्धि सूत्रके कर्मसंज्ञाका आदिखादिधातुसे निषेध कहा गया है।

अणाव—अण्यन्त [शेते] दशामें धातु अकर्मक हो चेतन कर्ता हो ण्यन्तसे परस्मैपद, क्रियाफल कर्तामें जानेसे आत्मनेपद प्राप्त था। चेतन कर्ता क्यों कहा व्रीहयः शुष्यन्ति तान् वसन्तः शोषयते। अकर्मक क्यों कहा ? यः कटं करोति तं प्रयुङ्क्ते कटं कारयते परस्मैपद न हो। अणौ क्यों आरोह्यमाणं प्रयुङ्क्ते आरोहयते। कृष्णः शेते चक्षु निमीलनादिके अनुकल क्रिया स्वीकारता है गोपी यशोदा कृष्णं शाययति सुलाती है अण्यन्त शेते है उसका कर्ता कृष्ण चेतन हैं शयनानुकूल क्रिया-नुकूल अर्थक शायि ण्यन्तसे अणावकर्मकात् सूत्रेण परस्मैपद तिबादिः। परस्मैपदका (हतं चेतन मानकर चित्तवत्कर्तृकात् इत्येव-दुःटं नश्यति हरिः औषधं वा पीडां हास-यति नाशयति औषध कर्ता उचित उदाहरण-हरि चेतन है अन्यसे ति सम्भव णिचश्च के आत्मनेपदको बाधकर, सुखं जायते हरिः कामो वा सुखं जनयति जनिः ण्यन्तः तस्मात् परस्मैपदं, विधिमधीते वेदं हरिः विधिमध्यापयति ब्रह्माको पढ़ते हैं भगवान) निषेध सूत्र। **न पादमि** आमि आयस परिमुह रुचि रनृति वद वस (समाहार द्वन्द्व) इन धातुओंके ण्यन्त दशासे परस्मैपद न हो। विवृतिः पा पाने पीने आदि लीलने अर्थमें (निगरण चलन) सूत्रसे प्राप्त था इतरे अन्य धातु दमि यम आदि अण्यन्त दशा चेतन कर्ता और अकर्मक रहने पर अणावकर्मकात्से प्राप्त परस्मैपदका निषेध नृति धातु भी चलनार्थक चेतन कर्तृक अकर्मक है सूत्रद्वयेन उक्तः दोनों सूत्रसे प्राप्त

दमयते । आयासयते । परिमोहयते रोचयते । नर्तयते वादयते । वासयते । धेट उपसङ्ख्यानम् । 'धापयेते शिशुमेकं समीची' । अकर्त्रभिप्राये 'शेषात्–' इति परस्मैपदं स्यादेव । वत्सान् पाययति पयः । इति परस्मैपदम् ।

का निषेध, वत्सः दुग्धं पिबति दुग्धः पीयते माता तं पाययते निगरण अर्थे प्राप्त परस्मै (न पादमि) सूत्रेण न क्रियते, पा धातुसे णिच शाच्छासाह्वासे युक् हुआ युक् बाधकर णिचश्च आत्मनेपद दमनार्थक दमि धातुः दिवादौ सकर्मक अस्ति अकर्मकात् निषेधो भवति अतः निषेधसमर्थ्यात् अकर्मकोऽस्ति इति न विरोधः जनिजृषके मित्से ह्रस्व, वत्सः दम्यते वशीभवति कृषकः तं दमयते चलनार्थक परस्मैपद प्राप्तका निषेध साधुः । इन्द्रियं आयमते, इन्द्रियाणि आयमन्ते वशीभवन्ति साधुः प्रेरयति (यूयं वशी भव)इति आयामयते साधुः । अणावकर्मकात्के परस्मैपदका निषेधः अनेन सूत्रेण । यमोऽपरिवेषणे अर्थे मित्वनिषेधात् न ह्रस्वः, भृत्यः आयासते प्रयत्नं करोति स्वामी तं आयासयते कोशिश करवाता है । वृद्धः मुह्यति कालः इच्छति इति कालः तं परिमोहयते–काल प्रभावसे चारो तरफसे व्याकुल बुड्ढा । शास्त्रं रोचते छात्राय । गुरुः तेभ्यः रोचयते, श्रद्धा पैदा करते है । वानरी नृत्यति नटः प्रेरयति इति नर्तयते । नट मर्कट इव सबहि नचावत । राम खगेस वेद अस गावत । रामः सर्वान् नर्तयते, मृदङ्गः वदति वादकः तं वादयते । सर्वत्र ण्यन्तसे प्राप्त परस्मैपदका निषेध णिचश्च आत्मनेपद । भिक्षुः वसति ग्रामणीः तं वासयते गरीब बसता है ग्रामप्रधान उसको बसाते हैं । स्वादिका वश निवासे अकर्मक मान्य। वस आच्छादने अमान्य, अतः स धातुः सकर्मकः अस्ति । तत्र न प्राप्तिः अलुग्विकरणस्यैव ग्रहणात् । (वा) धेट्—पाने धातुसे भी परस्मैपद निषेध कहें । समीची दो धेविकाये एकबच्चेको पिलाती है । एकः शिशुः धयति तं धेविके धापयेते अणावकर्मकात्से परस्मैपद प्राप्तिका निषेध । अकर्त्र–क्रियाफल परगामी हो । कर्तामें न रहे तभी निषेध । न पादमि-आदि सूत्र निगरणचलनार्थेभ्यश्च, अणावकर्मकात् दो सूत्रका निषेध । विधि निषेध अव्यवहितका होता है । शेषात्कर्तरि परस्मैपद होता ही है । वत्साः जलं पिबन्ति । पायकः पयः पाययति वत्सान् । इति परस्मैपदम् ।

अथभावकर्मप्रक्रिया । अथ—अनन्तरं (कर्ता अर्थमें आत्मनेपद परस्मैपदकी तिङन्त पदव्यवस्था समाप्तिके पश्चात्) भावे प्रत्ययस्य प्रकरणं साधनिका च प्रारभ्यते । लः कर्मणि चाभावे चाकर्मकेभ्यः इति सूत्रेण कर्तरि कर्मणि भावे च अर्थे लकाराः प्रस्ताविताः । कर्तरि लकाराणां साधनिका परिपूर्णाः इदानीं भावे अर्थे कर्मणि अर्थे च लकाराः कथ्यन्ते । भाव–पदार्थ क्या है धातुका अर्थ क्रिया ही भाव है (धात्वर्थः केवलः शुद्धो भाव इत्यभिधीयते) अथवा घञादि प्रत्ययका अर्थ भाव भी है । तस्य भावस्त्वतलौ । ब्राह्मणस्य भावः ब्राह्मणत्वं त्व प्रत्ययकी प्रकृति ब्राह्मण शब्दमें जितने अर्थ विशेषण बने बैठे हैं जैसे जाति गुण क्रिया तपस्या श्रुति क्षमा या परमार्थ सदाचार सभी प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारी विशेषणीभूत अर्थ सभी भाव

अथ भावकर्मप्रकरणम्

अथ भावकर्मणोर्लडादयः । भावकर्मणोः' इति तङ् । सार्वधातुके यक् ३।१।६१। धातोर्यक्प्रत्ययः स्याद्भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके परे। भावो भावना उत्पादना क्रिया । सा च धातुत्वेन सकलधातुवाच्या भावार्थकलका-

---

प्रतिशा अभिप्राय है। गुरोरयं भावः का अभिप्राय अर्थ । नानाऽर्थरत्नमालामें भावपदार्थः सत्तायां क्रियाचेष्टात्मयोनिषु, विद्वल्लीला स्वाभावेषु: भूत्यभिप्राय जन्तुषु, भाव पदका अर्थ सत्ता विद्यमानता उपस्थिति व्यवहार क्रिया चेष्टा अपनी जाति कारण विद्वानोंकी लीला प्रवचनकला भाव खोलनेका स्वभाव प्रकृति भूति ऐश्वर्य अभिप्राय जन्तु जीव विशेषता सभी भावके अर्थ है । भावः सत्ता स्वभावा- भिप्रायचेष्टात्मजन्तुषु इत्यमरः । आदि अर्थ होते हुये धात्वर्थ क्रिया ही प्रासङ्गिक भाव है । कर्म–क्रियते फलाश्रयो भवति इति कर्म क्रियाजन्य फलका आधार कर्म है । सकर्मक धातुसे कर्मणि प्रत्यय होते हैं, परन्तु भावमें या कर्ममें प्रत्यय होने पर भी शेषात्कर्तरिसे परस्मैपद, अनुपराभ्यां कृञः से भी प्राप्तका निवारक सूत्र— भावकर्मणोः भावमें या कर्ममें प्रत्यय हुये हों आत्मनेपद ही हो ।

सार्वधातुके–सार्वधातौ भवं सार्वधातुकं तस्मिन् । तिङ शित को सार्वधातुक संज्ञा होती है । सार्वधातुक (तङ्) आदि परे । धातोरेकाचः से धातो।, चिण्भाव कर्मणोः से भाव कर्म आया । यहां भाव शब्द भावना क्रिया व्यापार अर्थमें यौगिक है । योगेन निर्वृत्तः यौगिकः । प्रकृति प्रत्ययके अर्थ जोड़कर सिद्ध किये गये हों । उत्पत्तिजनक क्रिया अर्थक भू धातुः से हेतुमत्–प्रेरक अर्थमें णि । भू इ । वृद्धि आव भावि-शब्दको इवर्णान्त देखकर ऐरच् सूत्रसे भाव अर्थमें अच् । णिलोप । भाव—शब्द उत्पत्त्यर्थक होनेसे भावः भावना उत्पादनः कहा । स्त्रीलिङ्गके अधि- कारमें भावि धातुसे ण्यासश्रन्थो युच्से युवोरनाकौसे अन । टाप भावनाका यौगिक अर्थ उत्पादना है । जो धात्वर्थ क्रियासे अलग नहीं, अतः क्रिया कहा । धातुका अर्थ क्रिया ही भाव है क्योंकि फलव्यापारयोः धातुः का फलव्यापारार्थवाचको धातुरिति सिद्धान्तः यथा पचधातो। पाकानुकूलाक्रिया, तदाश्रयः कर्ता: । क्रियाजन्यं फलं पाकां, तदाश्रय कर्म ओदनं (व्यापारजन्यफलशालिकर्म) सभी सकर्मक धातुका क्रियाका आधार अलग, क्रियाजन्यफलका आधार अलग । अकर्मकमें दोनोंका एक आधार, यथा एध वृद्धौ वर्धनानुकूलव्यापारः। कृष्णः एधसे बढना फल उसकी क्रिया सा क्रिया धातुत्व=धातुमें गुण विशेषता जातिके आधार पर सभी धातुओंकी क्रिया है जो भाव अर्थमें हुये लकारसे कही जायेगी । अनन्य लभ्यों हि शब्दार्थः अत आह–भावार्थक लकारेण–भाव अर्थमें हुये लकारसे अनूद्यते अनुवाद किया जाता है भावे लकारका अर्थ भाव ही है । प्रकृति (धातु) का भाव क्रिया अर्थ है ही, जैसे- द्वौ-द्वि औ (द्विका दो अर्थ) और द्विवचन औ का भी। पुनरुक्ति दोष न हो, सुबन्तको

रेणानूद्यते। युष्मदस्मद्भ्यां समानाधिकरण्याभावात् प्रथमपुरुषः। तिङ्वाच्यभावनाया असत्त्वरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि, किन्त्वेकवचनमेव। तस्यौत्सर्गिकत्वेन संख्यानपेक्षत्वादनभिहिते कर्तरि तृतीया। त्वया

पदसंज्ञाके लिये 'औ' अनुवादक। त्रयः—त्रिके तीन संख्याका अनुवादक जस् है। मध्यम पुरुषका कर्ता त्व युष्मद्, उत्तमपुरुषका कर्ता अहं अस्मद्में प्रथमा तभी होगी जब तिङके साथ समानाधिकरण हो तभी मध्यमोत्तमपुरुषौ विहितौ। समान आधार क्या है। तिङवाच्य कारकवाची होना। तिङका अर्थ केवल भाव है। न कर्ता न कर्म। कर्ता कर्मके साथ त्वं अहका सम्बन्ध तिङर्थका नहीं। अतः कहा—समानाधिकरणके अभावसे प्रथम पुरुष हुआ। यथा आस्यते त्वया आस्यते मया तुमसे वर्तमानकालिक बैठना। यस्मिन्प्रत्ययः स उक्तः प्रधानः। भावे प्रत्ययः भावः उक्तः भावः प्रधानः, कर्ता कर्म च नहि प्रधानौ। नहि उक्तः। अनुक्ते कर्तरि तृतीया। यदि कर्मणि अर्थे लकारः त्वं वन्द्यसे—अहं वन्द्ये तदा तिङवाच्यिकर्मकारकमस्ति युष्मदस्मदोः अभेदसम्बन्धः कर्मरुपेण सम्भवः। तदा त्रयः पुरुषाः प्रथममध्यमोत्तमाः भवन्ति। उदाहरणं दीयते।

तिङ्वाच्य—भाव अर्थमें हुए तिङ्=त आतां झ आदिका वाच्य (कहने योग्य) अर्थ भावना उत्पादना क्रिया असत्व रूप है सत्वं द्रव्यं (लिङ्गसङ्ख्यान्वय योग्यं) न सत्वम् असत्वं लिङ्गसङ्ख्या जुड़नेके योग्य न हो। तिङ् वाच्या भावना क्रिया, सा असत्वरूपा शब्दशक्तिस्वभावात्। धातुके भाव-क्रिया अर्थमें सङ्ख्या नहीं, द्विवचन बहुवचन जान नहीं पड़ता, युवाभ्यां अस्माभिर्वा आस्यते। कर्तामें दो या बहुवचन संख्या क्रियामें नहीं एकवचन, द्वि, बहु० नही हुए। घञ् ल्युट् आदि प्रत्ययका अर्थ क्रियामें सत्व (लिङ्गसङ्ख्या) रहते है। जैसे पाकः पाकौ पाकाः। पाकं पाकेन अतः भाष्ये (कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते) शब्दशक्तिस्वभावात्। कृदन्त प्रत्ययकी क्रिया द्रव्यवत् लिङ्गसङ्ख्यासे जुड़कर प्रकाशित होती है। तिङर्थ क्रियामें यदि सङ्ख्या नहीं एकवचन कैसे? धात्वर्थः केवलः शुद्धः भाव इत्यभिधीयते। केवल एक या अभेद होनेसे एकवचन स्वाभाविक है (एकवचनमुत्सर्गतः करिष्यते) किन्तु यह प्रायोवाद है बहुधा होता है। उष्ट्रासिका आस्यन्ते, हतशायिकाः शय्यन्ते। बहुवचन दर्शनसे ऊंटो जैसा आसन, हतानां यादृशानि शयनानि मुर्दो जैसा शयन देवदत्तका आसन शयन है बहुवचन भी देखा गया। तस्य औत्सर्गिक स्वभावसे सङ्ख्याकी अपेक्षा है नहीं। जब जो द्वि बहुका विषय न हो, वही एकवचन ही हो। अनभिहिते—यस्मिन्नर्थे प्रत्ययः स प्रधानः भावे अर्थे लकारः भावः प्रधानः। तिङ्का अर्थ कर्ता नहीं वह अनभिहित है अप्रधाने तृतीया।

भूयते—त्वं भवसि अहं भवामि अन्ये भवन्ति इति कर्तरि प्रत्ययः। यदा सत्तार्थक भू धातोः लः कर्मणि चाभावे-भावे अर्थः लकारः भावकर्मणोः आत्मनेपदं

मया अन्यैश्च भूयते बभूवे। स्य-सिच्-सीयुट्-तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन-ग्रह-दृशां वा चिण्वदिट् च।६।४।६२। उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु परेषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च। अयमिट् चिण्वद्भावसन्नियोगशिष्टत्वात्तदभावे न। चिण्वद्भावाद् वृद्धिः। भाविता भविता। भाविष्यते भविष्यते। भूयताम् अभूयत भूयेत। भाविषीष्ट-भविषीष्ट। चिण् भावकर्मणोः।३।१।६६। च्लेश्चिण्स्याद्भावकर्मवाचिनि शब्दे परे। अभावि अभाविष्यत अभविष्यत। तिङोक्त-

---

रूपः सार्वधातुके परे यक्। एत्वे त्वम् अहम्में तृतीया (अनुक्त कर्तरि) त्वया भूयते त्वत्कर्तृकं भवनं तुमसे होना। मया भूयते मत्कर्तृकं भवनं मुझसे होना। अन्य कर्तृकं दूसरोंसे होना है। बभूवे—स बभूव युवां बभूवथुः वयं बभूविम इति तेन युवाभ्यां अस्माभिश्च बभूवे अनेककर्तृक परोक्षानद्यतनभूतकालिक भवनक्रिया। कदा बभूवे कब तुम उपस्थित थे। भू धातोः भावे लिट त-एश द्वित्व आदि।

स्य सिच्=सीयुट् तास प्रत्यय, आगम परे रहते उपदेश=आद्योच्चारण दशामें जो अच् (अ इ उ आदि) तदन्त=वह अन्तमें हो अर्थात् अजन्त धातु और हन् ग्रह दृश धातुको णिच्‌की तरह अङ्गसम्बन्धी कार्य हो भावअर्थ कर्मअर्थ खुलने पर जान पड़ने पर, ज्ञान होनेपर। स्यादीनां—स्य सिच् सीयुट् तास्‌को इट् आगम भी हो। यह इट् चिण् भावके साथ बढ़े जानेसे इट् साथमें। यत्र न चिण्भावः तत्र न इट्। एकसूत्रपठितानां सहैव प्रवृत्तिः सहैव निवृत्तिः। सन्नियोगशिष्ट—एकसम्बन्धमें अनुशासित होनेसे।

भाविता—भू धातोः अनद्यतन भविष्यकालिक भवने अर्थे भावे लुट, भावकर्मणोः त। तास डा आस लोप चिण्भाव इट आगम, उक्तसूत्रेण वृद्धिः आय। भाविता अन्यैः, यदा न चिण्तवा न वृद्धिः, किन्तु वलादिः आर्धधातुकः इट्। भविता भाविष्यते गुरुणा अचोञ्णिति वृद्धिः। दायिता दायिषीष्ट आतो युक् चिण्। तेन घानिष्यते हनके हको घ (हो हन्तेः से) शामिता। चिण्णमुलोः से वा दीर्घ। स्यसिच् सूत्रसे कृत इट्‌की असिद्धिसे (आभीयत्वेन) णेरनिटके अनिट्‌का निषेध नहीं लगता। चिण्भावके साथ हुआ इट नित्य है। वलादि इट् अनित्य है। कृताकृतप्रसङ्गोविधिर्नित्यः स भवतु। तेन भूयतां। यूयम् अभवत इति युष्माभि अभूयत। वयं भवेम अर्थे अस्माभिः भूयेत। ते भूयासुः अर्थे तैः भाविषीष्ट होने अर्थके प्रति शुभकामना आशिष् है। चिण्भाव पक्षमें अचोञ्णिति वृद्धि। न चिण् न वृद्धि।

चिण्भावकर्मणोः—च्लेः सिच्से च्लि, चिण्तेपदः से चिण् आया। च्लिके स्थान में चिण् हो भाव और कर्म अर्थवाचक त परे। अभावि उत्सवः अभूत्, उत्सवेन अभावि—भवनार्थक भू धातोः भूतकाले भावे अर्थे च लुङ् त। चिण्भावकर्मणोः इति च्लिस्थाने चिण्—इ, चिणोलुकसे तका लुक् अचोऽञ्णिति वृद्धिः आव्। अभावि उत्सवकर्तृक भूतकालिक भवनानुकूला क्रिया। चिण्से परे त शब्द क्यों कहा?

वात् कर्मणि न द्वितीया, अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्-अन्वभविषाताम्। णिलोपः, भाव्यते। भावयाञ्चक्रे भावयाम्बभूवे। भावयामासे। भाविता। चिण्वदिट आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः। पक्षे भावयिता। भविष्यते-भावयिष्यते। भाव्यताम् अभाव्यत। भाव्येत

अभाविषाताम् आतांके त का लोप न हो। अभाविष्ठाः अभाविषाथाम्। अ म् अभूव गया अभाविषि मेरी उपस्थिति थी।

अनुभूयते-अनुपूर्वक भू धातोः उपभोगानुकूलाः सुखादिः अनुभवविषयः। सकर्मकः कर्मणि लकारः। **तिङोक्तत्वात्**-तिङसे कर्म अर्थ कहा गया। उक्ते कर्मणि प्रथमा, अनुक्ते कर्तरि तृतीया। चैत्रः आनन्दमनुभवति—इति चैत्रेण आनन्दः अनुभूयते। अनुपूर्वकभूधातोः कर्म अर्थे त सार्वधातुकसंज्ञा, यक्। टित आत्मनेपदानां टेः ए। आनन्द कर्म है प्रत्ययका अर्थ होनेसे उक्त (कहा गया) प्रधान है। प्रथमा हुई। त्वं सुखमनुभवसि अहं दुःखमनुभवामि त्वया मया च सुखदुःखे अनुभूयेते। रूपरसगन्धा अनुभूयन्ते स त्वामनुभवति। तेन त्वमनुभूयसे तुम्हारी प्रतिष्ठाका अन्दाज लेता। सम्बन्धी मांम् अनुभवति। तेन अहमनुभूये। उपयोगविषयीभवामि अनुभाविता। अनुन्वभूत्। स भक्तिमनुभवति भूतकालमें उपभोग आनन्दप्राप्ति। अनुभू से कर्मणि लुङ् त चिण् आदि अट यण्। आतां पक्षमें परे चिण्भाव इट्। अन्वभावि अन्वभाविषाताम्।

णिलोप—प्रेरणा प्रवर्तना कार्यमें लगानेकी प्रवृत्ति अर्थक णिच् होने पर कर्म अर्थमें प्रत्ययकी प्रक्रिया शाब्दबोधमें भाव्यते। मैत्रः भवति चैत्रः तं प्रेरयति (त्वं भव इति) चैत्रः मैत्रं भावयति। अकर्मक धातु भी ण्यन्तमें सकर्मक होते हैं। भू धातोः भवनप्रेरण अर्थे णि वृद्धि उ-औ आव्। भावि ण्यन्तधातुः उत्पन्न होनेकी क्रियाके अनुकूल प्रेरककी क्रिया धात्वर्थवाचक भाविसे कर्म अर्थे लट् त आदेश। सार्वधातुके यक्। भाविष्यते। णेरनिटि णिलोपे (भाव्यते) मैत्रः चैत्रेण। मैत्रः पैदा करता है। कर्ममें प्रथमा कर्तामें तृतीया उक्त अनुक्त भेदसे। **भाव्यन्ते**—त्वं भवसि, पिता त्वां भावयति इति पित्रा त्वं भाव्यसे अहमपि भाव्ये। वयं उपतिष्ठामः प्राचार्यः उपस्थापयति इति तेन वयं उपस्थाप्यामहे, स बभूव तं भावयामास। तेन स भावयाञ्चक्रे। प्रथमपुरुष उत्तमपुरुष एकवचनका रूप था।

भाविता—श्वः पुत्रो भविता, चिकित्सिका पुत्रं भावयिता इति तया पुत्रः भाविता। भवनानुकूल प्रेरणानुकूल क्रियावाचक भावि धातोः कर्मणि अर्थे अनद्यतने अर्थे च लुट्। ति तास् डा आदि। भावि ता इति दशायां आर्धधातुकस्येड्वलादेः के इट्को बांधकर (स्यसिच) सूत्रसे चिण्भाव इटको आभीत्वेन (छठें अध्यायके चतुर्थ पादके समाप्तिके लगभग आभीयसंज्ञक कार्य है) उनको असिद्धकर णेरनिट् निषेध नहीं करेगा णिलोप, भाविता। अतएव उपदेशे अजन्तको चिण्वद् इट् कहा गया क्योंकि णिजन्त उपदेश नहीं है। पक्षमें वलादि इट् होने पर णेरनिटिसे णिलोप

भाविषीष्ट भावयिषीष्ट। अभावि अभाविषाताम्-अभावयिषाताम्। बुभूष्यते बुभूषाञ्चक्रे बुभूषिता बुभूषिष्यते बोभूय्यते। 'अकृत्सार्व-' इति दीर्घः, स्तूयते विष्णुः। तुष्टुवे। स्ताविता-स्तोता। स्ताविष्यते स्तोष्यते। अस्तावि अस्ताविषाताम्-अस्तोषाताम्। गुणोऽर्ति, इति गुणः, अर्यते, स्मर्यते। सस्मरे। परत्वान्नित्यत्वाच्च गुणे रपरे कृते अजन्तत्वाभावेऽप्युपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट्, आरिता-अर्ता। स्मारिता-स्मर्ता। अनिविताभिति नलोपः।

नहीं, अनिटके निषेधसे। अतः कहा पक्षे भावयिता। णिके इको गुण अय्। कार्यं भविष्यति प्रेरकः कार्यं भावयिष्यति काम करायेगा। इति तेन कृत्यं भाविष्यते पक्षमें भावयिष्यते एवं यज्ञोपवीतं भवतु पुरोहितः भावयतु, इति तेन यज्ञोपवीतं भाव्यताम्। विवाहो अभवत पिता विवाहमभावयत इति पित्रा विवाहः अभाव्यत। ण्यन्तात् कर्मणि लकार। णि होनेपर सभी धातु सकर्मक होते हैं। एवं भवेत्-भावयेत् भाव्येत। भूयात्-भाव्यात् भाविषीष्ट। अध्ययनम् अभूत् गुरुः प्रैरिरत् इति अबीभवत्। इति तेन अभावि। भवनानुकूल प्रेरणानुकूल क्रियावाचक भाविधातोः कर्मणि भूते लुङ् त च्लेः स्थाने चिण् इ, कर्मणि त परे वृद्धिः आव अभावि आताम् परे चिण्भाव इट् विकल्पसे दो रूप।

बुभूष्यते—सन्नन्तसे भावमें ल। भवितुमिच्छति बुभूषति सन्नन्तसे भावकी इच्छा अर्थमें ल-त य, सका अ (अतोलोपःसे) लुप्त। ष। तेन बुभूषिता। उससे होने की अनद्यतन भविष्यकालिक इच्छा। चिण्वत् इट्। वलादि इट्में बुभूषिष्यते एक रूप। चिण् इट अभाव पक्षमें अतो लोपः अलोप। यङन्त पुनः पुनः अतिशयेन भवति बोभूयते। बोभूय धातुसे पुनः पुनः अधिक होना। भावमें ल त य। यकि परे यङः अकारस्य अतोलोपः लोपे। दो य। यङ्लुक्में एक य। भक्तः विष्णुं स्तौति इति भक्तेन विष्णुः स्तूयते स्तु धातोः कर्मणि ल, यकि आर्धधातुकसंज्ञासे अतोदीर्घोयञिसे दीर्घ प्राप्त नहीं, तब कहा—अकृत्सार्वधातुकयोः इति दीर्घ। स्तूयेते स्तूयन्ते देवाः। रामः शिवं तुष्टाव इति रामेण शिवः **तुष्टुवे**। लिट य एश् द्वित्व आदि। स स्वः स्तोता तेन गुरवः स्तावितारः। जब चिण्भाव इट नहीं, अनिट् होनेसे भी। यजमानेन पुरोहितः स्ताविष्यते। रावणः शिवं अस्तौषीत् तेन शिवः **अस्तावि**। स्तुत्यर्थक स्तुधातोः भूते कर्मणि च अर्थे लुङ् त। चिण्भावकर्मणोः च्लेःस्थाने चिण्। वृद्धि आव् अट्। चिण्ते पदः तलोप, अस्ताविषत अस्तोषत। अस्ताविष्ठाः।

ऋगतौ धातुसे कर्मणि लकार यक् ऋ-यते। य कित् है गुणनिषेध प्राप्त था। गुणोर्तिसे गुण अर् तेन **अर्यते**। **आरे**—कर्मणि लिट् त एश अर् गुण आर ए। छात्रः सूत्रं स्मरति। तेन सूत्रं स्मर्यते। स्मरणार्थक स्मृ धातुसे कर्म अर्थमें ल ते यः गुणोर्तिसंयोगाद्योः संयोगादि धातु जानकर गुण अर्। बालको नहि स्मर्येते। किन्तु छात्राः स्मर्यन्ते। तेन कर्मणि लिट् त, एश आदि। **सस्मरे**। ननु कर्म अर्थे लुटि आदि कृते ऋ ता स्मृ ता दशामें चिण् इट् बांधकर परत्वात् नित्य (कृताकृत)प्रसङ्ग

स्रस्यते सस्रंते। इदितस्तु नन्द्यते। सम्प्रसारणम्, इज्यते। तनोतेर्यकि ।६।४।४४। आकारोऽन्तादेशो वा स्यात्। तायते तन्यते। 'ये विभाषा' जायते-जन्यते। तपोऽनुतापे च ।२।१।६५। तपश्च्लेश्चिण्न स्यात्कर्मकर्तर्यनुतापे च। अन्वतप्त पापेन। 'घुमास्था-' इतीत्वम्-दीयते, धीयते। ददे दधे।

में भी गुण प्राप्त। यदि गुण रपर पहले होगा अजन्त नहीं रहगा, चिण इट् भी नहीं होगा यह धातु अनिट् भी है। आरिता स्मारितामें इट् कैसे? तब कहा परत्वात् पर एवं नित्य होने पर भी अर गुणसे (यद्यपि) अजन्त नहीं रहा तथापि उपदेश=प्रथम उच्चारणदशामें अजन्त धातु होनेसे चिण्भाव इट निर्बाध। अर गुणे उपधा-वृद्धि. सः अर्ता तेन आरिता। एवं बालः मातरं स्मर्ता बालेन माता स्मारिता गुण होनेपर भी उपदेश दशामें अजन्त स्मृ था, चिण् इट् होगा। स गृहं संस्करोति तेन गृहः **संस्क्रियते**—बाल: स्रंसते कोष्ठात्। इति बालेन स्रस्यते वर्तमान-कालिक स्खलन। स्रंस् धातुसे भावे ल त य आदि। अनिदितां हल उपधायाः से नकारलोप। स्रस्यते। इदित् धातुका नलोप नहीं होता जैसे टुनदि समृद्धौ धातु इदित् है। भाव अर्थमें प्र० होनेपर नलोप नहीं होता कृष्णेन नन्दः नन्द्यते। धार्मिकः देवान् यज धातोः कर्मलकारे यकि वचिस्वपियजादीनांसे सम्प्रसारण। देवाः इज्यन्ते। मुकुन्दः शेते शीङ् धातोः भाव लकारे यकि शी यते यकारादि किति परे अयङ् शय्यते मुकुन्देन।

तनोतेः—तन धातुको आकार अन्तादेश हो यकि परे विकल्पसे। भृत्यः वितानं तनोति इति भृत्येन तायते, तन धातोः यकि तन यते यकरादि त परे देखकर आकार अन्तादेश, भगवान जन्यते इति भगवता जायते (ये विभाषा) से आकार अन्तादेश तपो—च्लेः सिच्से चिल चिण् (ते पदः) न रुधः से नकार अनुवृत्तिसे कर्मकर्तरिका संग्रह, तप धातुसे परे च्लिको चिण् नहीं होता। कर्मकर्ता और अनुताप पश्चाताप करने अर्थमें कर्मकर्तरि अर्थका उदाहरण कर्मकर्तृप्रक्रियासे मिलेगा। अनुताप अर्थमें कर्म लकारका प्रयोग पापं अताप्सीत् इति पापेन अन्वतप्त पाप गल रहा है क्षीण नष्ट हो रहा है। कर्ममें लकार (अनु अ तप त) च्लिको चिण्का निषेध अनुताप अर्थ होनेसे सिच्, झलो झलि सलोप पाप करता है। अनुक्ते कर्तरि तृतीया अनुपूर्वक तप धातुका पश्चात्ताप् तड़फड़ाना गलना अर्थ असङ्गत, पापस्य सूर्यादिवत् तपन् शक्तिर्नास्ति, शोकार्थः मन्यते अकर्मकत्वापत्तिः। अनुतापका शोक अर्थसे अकर्मक होगा अतः कहा उपसर्ग बलसे तप धातु अभिहननार्थक अभिपूर्वक हन् धातुका तपना लज्जित होना पछताना अतः कर्मणि लुङ कहा यदि शोक अर्थ होगा तब भावे क्रियाप्रधाने अर्थे लुङ अशोचि। यद्वा पापेन पुंसः कर्ता, पापी पुरुषसे शोक किया गया, परिणामम् असमीक्ष अविचार्य सहसा किञ्चित् अकृत्यकर्म कृत्वा पश्चा-दुःखमन्वभवत् दुःखानुभवः शोकः सः धात्वर्थस्य आभ्यन्तरे स्वीकारात् अकर्मकः शुच शोके यदि पुत्रमनुशोचति सकर्मक होगा तब अर्थमें अन्तर पड़ेगा युक्तं पुत्रं स्मृत्वा शोचति अर्थ स्मरणक्रियायां पुत्रः कर्म अस्ति, अतएव द्वितीया दीयते

आतो युक्चिण्कृतोः ।७।३।३३। आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञिति णिति कृति च, दायिता दाता । दायिषीष्ट-दासीष्ट । अदायि अदायिषाताम् 'स्थाघ्वोरिच्च' अदिषाताम् । अधायिषाताम्-अधिषाताम् । शम्यते मोहो मुकुन्देन । चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् ।६।४।९३। चिण्परे णमुल्परे च णौ मिता-मुपधाया दीर्घो वा स्यात् । शामिता-शमिता शमयिता । शामिष्यते शमिष्यते-शमयिष्यते । ण्यन्तत्वाभावे, शम्यते मुनिना । नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः ।७।३।३४। उपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञिति णिति कृति

धीयते तेन वस्त्रं, सः वस्त्रं ददाति दधाति च इति तेन दीयते धीयते दा एवं धा धातु से कर्म अर्थ प्रधानतामें ल-ते यक् दायते धायते दशायां घुमास्थापागा-सूत्रेण । ईत्वे

आतो—आकारान्त धातुसे युक्-य आगम हो चिण्परे, ञ ण इत् परे कृत्प्रत्यय परे (अचो) ञ्णितिकी अनुवृत्ति कृतमें विशेषण, दायिता स हस्तिनं दाता तेन हस्ती दायिता हाथीको देगा उससे हाथी दिया जाता है दा धातोः कर्मणि लुट् त तास आदि स्यसिच् सूत्रेण चिण्भाव इट पक्षे आतो युक्, यदा, य इ ता (दायिता) स गां दद्यात् तेन गौः दायिषीष्ट चिण्भाव इट् युक् विशेष । वस्त्रं अदासीत् इति तेन वस्त्रं (अदायि अधायि) दा धातोः कर्मणि लुङ त अट चिण्भावकर्मणाः कर्म अर्थ, त परे अस्ति, आतो युक् अदायि त चिण्ते पदः आत्मनेपद तका लुक परे चिण अदायि अधायिषाताँ जब चिण् इट नही तब स्थाघोरित्से इत, क्योंकि पक्षमें चिलको सिच् होनेसे झलादि मिल गया तभी इत्व हुआ। इको झलसे झ न आया । झलादिरेव सिच् कित् अर्थ हुआ । अदिषातां धा धातुके रूपमें भी चिण कृत क्यों कहा चूडस्य इदं चौडिः बलाकायाः अपत्यं बालाकिः बह्वादि मानकर इञ्, यहाँ आत्व न हो, ददौ चिण् नहीं । पानीयं दानीयं यहां आदन्त धातुसे युक् न हो अतः ञित णित् पढ़ा ।

चिण्णमुल—चिण परे णमुलपरे णि की प्रकृति मित्संज्ञक धातुकी उपधाको दीर्घ विकल्पसे हो, दोषो णौ से णौ, अदुपधायाः से उपधाया, मितां ह्रस्वसे मितां आया । शम धातोः मनसः शान्तिक्रिया । मोहः शाम्यति मुकुन्दः मोहं शमयति । ण्यन्त शमिसे भविष्यकालिक शमनानुकूला क्रियाके कर्ममें लुटि ति तास् डा आदि। चिण्वभाव इट (शमि इ ता) अमन्त मानकर मितां ह्रस्वः प्राप्त था (चिण्णमुलोः) वा दीर्घ णिलोप शामिता शमिता । जब न चिण इट, तब वलादि आर्धधातुक परे इट, णिके इको गुण अय् **शमयिता** । अनद्यतन भविष्यकालिक शमनानुकूल प्रेरणा-नुकूलव्यापारः एवं सामान्य भविष्यकालमें तीन रूप । रावणः शमिता रामः तं शामयिता एवं रामेण रावणः शमिष्यते । अलोपके स्थानिवत्से णिच्परे नहीं, दीर्घ नहीं होगा जब ण्यन्त नही रहेगा, तब मुनिः शाम्यति शान्त होते हैं क्रोध उतरनेसे । भाव अर्थमें लकार प्रधान होगा, तब मुनिमें तृतीया मुनिना शम्यते—मुनिमें शान्ति आ रही है । **नोदात्तोप**—मृजेर्वृद्धिसे वृद्धिः, अत उपधायाःसे उपधा अचोञ्णितिसे ञ्णिति, आतोयुक्से चिण्कृतोः की अनुवृत्ति, उपदेश अवस्थामें उदात्त

च। अशमि अदमि। 'उदात्तोपदेशस्य' इति किम्? अगामि 'मान्तस्य' किम्? अवादि। अनाचमेः' किम्? आचामि। (अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम्) चिणि 'आयादयः-' इति णिङभावे, अकामि। णिङ्णिचोरप्येवम्, अवामि। भज्यते। भञ्जेश्च चिणि ।६।४।३३। नलोपो वा स्यात्। अभाजि-अभञ्जि। लभ्यते। विभाषा चिण्णमुलोः ७।१।६९। लभेर्नुमागमो वा स्यात् अलम्भि अलाभि। इति तिङन्ते भावकर्मप्रकरणम्।

इन धातुकी उपधाको वृद्धि न हो चिणि ञिति णिति और कृति परे। अनुदात्त उपदिष्टधातु संकलित है उनसे भिन्न सभी धातु उदात्तोपदेश है। आङ पूर्वः चम धातुः आचमि, अशमि अदमि मनः, अशमीत् इति। मनसा अशमि मनसे शान्ति मिली। इन्द्रियाणि अदमिषुः दव यमी। तैः इन्द्रियाणि अदमि—दमन हुआ। उपशमनार्थक शमदभनार्थक दम धातुसे शमन या दमन क्रियाकी प्रेरणा कर्ताकि समास कालमें त (शमित दमित) चिण्भावकर्मणोः भावार्थे त परे चिणि, अत उपधायाः वृद्धिः प्राप्ता, नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्य सूत्रेण सा निषिद्धा। शमनं शमः दमनं दमः शान्त या दान्त दमनक्रिया। घञ् णिति परे शमयतीति शमकः दमयतीति दमकः शान्तकर्ता दमनकर्ता ण्वुल्। उपदेश क्यों शमि दमि ध्रिनुणि=इन। उदात्तोपदेश क्यों? अगामि वृद्धि निषेध न हो गम अनुदात्तोपदेश है स गृहं अगमत तेन गृहं अगामि। मान्त धातु क्यों? स शास्त्रमवादीत् तेन अवादि। वद धातु मान्त नहीं वृद्धि निषेध न हो। अनाचम क्यों कहा? जलमाचमति पीता या आचमन करता, तेन (आचामि)—उससे आचमन किया, वृद्धि निषेध न हो। (वा०) सूत्रे न्यूनतां दृष्ट्वा वार्तिककार प्रपूरयेत्, सूत्रे अनाचमेः पठनं न्यूनं अनाचमि कमि, वमिको छोड़कर वृद्धि निषेध हो। अर्थात् कमि वमिको भी निषेध न हो। कम् धातोः कर्मणिङ् कामि केवल कम्का चिणादि परे प्रयोग ही नहीं होता। अतः चिण्परे आयादयः आर्धधातुके वा इति णिङ्, अभावपक्षे चिण् त, णिलोप। वमति—वैत्रः, वैद्यः वमयति लुङि तेन अवामि चिण् णिलोप आदि। भजधातोः भजनविषये भञ्जेः श्नान्नलोपः से न और लोप आया। जान्तनशां से विभाषा आया, भञ्ज धातुके नकारका लोप वा हो, चिणि परे। वृक्षं अभांक्षीत् इति वृक्षः अभञ्जि। पक्षमें नलोप होनेपर उपधावृद्धि अभाजि।

विभाषा—विभिन्ना भाषा चिण् और णमुल परे लभको नुमागम विकल्पसे हो। लभेश्चसे लभेः, इदितोसे नुम् आया। विद्याम् अलभत् तेन विद्या अलम्भि—लभ धातोः समास लाभ क्रियायाः कर्मणि अर्थे लुङ् त चिण्। विभाषा चिण्णमुलोः नुमि अनुस्वारपरसवर्णे। जब न नुम् तब उपधावृद्धि (अलाभि) भूतकालिक लाभ क्रियायाः कर्म अर्थः।

अथ तिङन्ते कर्मकर्तृप्रक्रिया। अथ—पूर्व प्रकरणमें लकारसे भाव और कर्म अर्थ कहे जानेके पश्चात् उसी कर्मको कर्ता संज्ञा करके या कर्ताका आरोप

अथ कर्मकर्तृप्रकरणम्

यदा सौकर्यातिशयं द्योतयितुं कर्तृव्यापारो न विवक्ष्यते तदा कर्मैव कर्तृत्वविवक्षायां प्राक्सकर्मका अपि प्रायेणाकर्मकाः। तेभ्यो भावे कर्तरि च लकारः। कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ३।१।८७। कर्मस्थया

करके कर्मको कर्ता मानकर लकार होनेकी प्रक्रियाका प्रकरण। प्रक्रियन्ते फलानि यया सा प्रक्रिया। कर्म एव कर्ता तादृशी प्रक्रिया। कर्मशब्द कारकमात्रका उपलक्षण (स्वबोधकत्वे सति अन्यबोधकत्वम्) अपना ज्ञान करानेके साथ अन्य कारकोंका स्मारक है। अर्थात् कर्मकरण सम्प्रदान अपादान अधिकरण सभीके कर्ताका साधक प्रकरण। यदा **सौकर्यातिशयं**—शोभनं करणं सुकरः (सरलता सुगमता सुविधा) तस्य भावः सौकर्य, सरलता सुगमताकी अधिकताको द्योतयितुं प्रकाशयितुं प्रकटयितुं भाव खोजनेके लिए जब कर्तामें रहने वाली क्रिया विवक्षित न हो मुख्यकर्ताको कहनेकी अपेक्षा न हो तब कारकान्तराणि-अन्य सभी कारक कर्तृसंज्ञाका लाभ करतें हैं। यद्यपि स्वतन्त्रः कर्ता—क्रियामें स्वतन्त्र ही कर्ता होता है। उसके परतन्त्र कर्म करण आदि कारक भी वक्ताकी इच्छासे क्रियामें स्वतन्त्र मान्य होंगे। तभी कर्ता बनेंगे। **स्वव्यापारे**-अपनेमें विराजमान क्रियामें स्वतन्त्र है स्वतन्त्रः कहना ही सरलता सुगमताका सूचक। कुठारसे लकड़ी कट रही है क्या लकड़ी स्वयं कट रही है धार तेजकी सुगमता विवक्षाका विषय बनी।

तेन—स्व व्यापारः क्रियामें पूर्वं करणत्वादि—करणादिकारकके रहने पर भी जैसे असिना कुठारेण वा छिनत्ति इत्यादि। प्रयोज्य दशामें तलवार कुल्हाड़ी आदि छेदन काटने क्रियाके करण साधन होने पर भी इतना शीघ्र कह रहा है कि मानो कुठार तलवार स्वयं काटता है। असि-साधनमें छेदन क्रियाकी इच्छा हुई जो विवक्षासे छेदन क्रियाका स्वतन्त्र आधार बना। उससे कर्ताका आरोप कर कर्तामें लकार। **साधुः असिः छिनत्ति**—बहुत ठीक खस-खस् काट रहा है। करण (असि) कर्ता बना। सौकर्य सुगमता सरलता खोलनेके लिए साधु शब्द है जो क्रियामें विशेषण। कुठार इतना तेज है कि पुरुष प्रयत्न जन्य अतिशय आघातके बिना स्वयं काट रहा है। काष्ठैः तण्डुलान् पचति चैत्रः किं चैत्रेण, काष्ठानि स्वयं पचन्ति। लकड़ियां स्वयं पाकाती है। पाकाने क्रियाका साधन (सुन्दर जलनेके कारण) काष्ठमें कर्ताकी इच्छा हुई। कर्तामें लकार। स्थाल्यां द्विदलं पचति पिता। स्थाली अधिकरण कारक है। उसमें कर्ताकी इच्छा हुई लकड़ियोंका अति सूखा, धमन धौंकना फूत्कारके बिना (शीघ्र पकानेकी) सरलता स्थालीमें कल्पित होनेसे।

छिदि भिदि इत्यादि। एककर्मक धातुके कर्ताकी कल्पना-आरोपसे कर्म कर्ता होते है। तब सकर्मक भी प्रायः अकर्मक हो जाते है। जैसे व्याध वृक्षं छिनत्ति वृक्ष कर्म है। इतनी ही आसानीसे कट रहा हैकि छिनत्ति सकर्मक होते हुए भी अकर्मक है वृक्षः स्वयं छिनत्ति। कर्ममें कर्ताका आरोप् कल्पना इच्छा होनेसे द्विकर्मक है। उनमें एक कर्म कर्ता बने, दूसरा कर्म ही रहेगा, वह कर्मकर्तामें भी

क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत्स्यात् । कार्यातिदेशोऽयम् । तेन यगात्मनेपदचिण्वदिटः स्युः । कर्तुरभिहितत्वात्प्रथमा । पच्यते ओदनः । भिद्यते काष्ठम् । आपाचि अभेदि । भावे लकारे पच्यते आदनेन । भिद्यते

सकर्मक बना रहता है । इसलिए प्रायेण शब्द दिया । दो कर्म वाले धातुसे कर्म में कर्तामें भी लकार होते हैं । कर्ममें देवासुरी सुधां क्षीरसागरं मथ्नीते दो कर्म है गौड़ क्षीरसागरमें कर्ताका आरोप करके (क्षीरसागरः मथ्यते देवासुराभ्यां) ।

अमृतार्थ समुद्र मथा जाता है कर्तामें प्रत्यय । क्षीरसागरः स्वयं मथ्नाति, कर्म में कर्ताका आरोप । सुधाके लिए समुद्र स्वयं पुरुषप्रयत्नके बिना भी मथ्नाति कर्ताकी इच्छा हो और भावमें लकारका उदाहरण-पच्यते ओदनेन ओदन कर्तृकः पाकः (भात) स्वयं पकता है । स ओदनं पचति किं तेन ओदनः स्वयमेव पचति ओदनकी प्रधानता है । जब भावमें-क्रिया प्रधानतामें लकार होगा पचति तब लकारसे क्रिया उक्त, अनुक्त कर्तामें तृतीया ओदनेन एवं कुठारः काष्ठं भिनत्ति, कष्ठं स्वयमेव भिनत्ति । यदा भावे प्रत्ययः तदा भावः उक्तः, कर्ता अनुक्तः, तेन तृतीया । लकड़ीमें कूटना क्रिया हो रही है । पच धातुके दो कर्म है उनमें तण्डुल आदिको छोड़कर, एककर्मक मान्य। कर्म और भावमें लकार विधि दिखाई गयी । एक कर्मक धातुओंमें कर्मको कर्ताकी इच्छासे कर्ता में लकार हो, तब विशेषता क्या होगी ?

कर्मवत्—कर्ममें स्थित क्रियाके तुल्य-समान क्रिया वाला कर्मवत् हो जाय । अर्थात् जहां कर्म कर्ता हो उसी कर्तामें कर्मकी क्रिया झलकेगी । तुल्या क्रिया यस्य स तुल्यक्रियः कर्ता । कर्मणा तुल्यं कर्मवत् भवति सकर्मक रोकनेके लिए वत् पढ़ा । **कार्यातिदेश**—वत्घटित अतिदेश है, छ अतिदेशोंमें कार्यका अतिदेश आरोप है । तेन=कार्यके आरोपसे यक् आत्मनेपद (चिण्वदिट कार्य हुए । जो साक्षात् उपयोगी है । शास्त्रातिदेश परंपरया उपयोगी है । सार्वधातुके यक् । भावकर्मणोः आत्मनेपद, स्यसिच्सीयुट आदिसे कार्य हुए कर्ताके अभिहित-उक्त प्रधान होनेसे कर्मके कर्ता होनेकी दशामें कर्ता अर्थ ल स्थाने तिङ् । कर्तामें प्रथमा । ओंकारः ओदनं पचति, किं तेन ओदनः स्वमेव पच्यते । जो ओदन कर्म था वही कर्ता बना । पुरुष प्रयत्नके बिना भी, विवक्षासे फलका आश्रय हो रहा है । कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः सूत्रसे समान कर्ता देखकर कर्मवत् अतिदेश कर्मका आरोप किया जिसका फल पच धातुसे भावकर्मणोः से आत्मनेपद, सार्वधातुके यक् पच्यते ओदनः में प्रथमा । भिद्यते-पुरुषः कुठारेण काष्ठं भिनत्ति कुठारादिदृढाघातं पुरुषश्रमं बिना द्विधा भवति, कर्मके कर्ता आरोप समान क्रिया होने पर आत्मनेपद यक् आदि ।

अपाचि—देवदत्तः तण्डुलम् अपाक्षीत् किं दत्तेन तण्डुलः स्वमेव अपाक्षीत् स्वयं पका, समासपचन क्रियाया भावे लकारे सति अपच त कर्मणि लकारे परे णिच् उपधावृद्धि तलोप अपाचि । एवं अभेदि—काष्ठम् अभिदत् इति काष्ठेन अभेदि कर्मणि त-चिण् आदि ।

भूषावाचिनां किरादीनां सन्नन्तानां च यक्चिणौ चिण्वदिट् च नेति वाच्यम् अलङ्कुरुते कन्या । अलमकृत । अवकिरते हस्ती । अवाकीर्ष्ट अवाकरिष्ट । गिरते अगीर्ष्ट । आद्रियते आदृत । किरादिस्तुदाद्यन्तर्गणः । चिकीर्षते कटः अचिकीर्षिष्ट । तपस्तपः कर्मकस्यैव ।३।१।८८। कर्ता कर्मवत्स्यात् । तप्यते

भूषा कर्म—सन-भूषावाची किरादिवाची सनन्तधातु इनसे यक् चिण चिणवद् इट न कहें, अन्यत्र-अन्य स्थलमें आत्मनेपद कहें । यथा—कन्यामलंकरोति आभूषण वस्त्रसे सुशोभित करता है कि तेन कन्या स्वयंमेव अलकृता भूषणक्रियावती, प्रयत्न बिना इति तौकर्य भूषणार्थक होनेसे कर्मकर्तामें कुरुते तङ् हुआ, न यक् । अलं शब्द अलंकार सौन्दर्य अर्थमें उसका वाची अलंकृसे भूतकाले लुङमें आत्मनेपद हुआ, न चिण । अकृत-अलंकारमें चिण्भाव इट नहीं हुए, वार्तिक सहयोगसे । अवकिरते हस्ती । कुसुमानि हस्तिनमवकिरन्ति किं कुसुमैः हस्ती स्वयमेव अवकिरति । पुष्पाणामाच्छादनविषयो भवति । मुख्यकर्तामें ल । हाथी कर्मकर्ता होनेकी दशामें पुरुषप्रयत्नके बिना वृक्षादिसमीपं, गच्छन् पुष्पादिभिः अवकीर्णवान् आच्छादितवान् भवति । तङेव, न यक्। लुङमें अवाकीर्ष्ट लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु वा इट । किरादिका उदाहरण (गॄ निगरणे) गिरते ओदनं स्वयमेव ओदन निगलनेका विषय हो रहा है। लुङमें (अगॄ स त)ऋत इत् रपर दीर्घादि, दृङ आदरणें भी किरादि है, अतिथिमाद्रियते मुख्यकर्तामें । जब कर्मकर्ता तब आद्रियते अतिथिः स्वयमेव आदरणाश्रयो भवति । स्वभावतः यक् निषिद्ध है । श होगा स्वरमें अन्तर। अतिथि उक्त है प्रथमा अतिथिः, स्वय स्वागत पाया, बिना प्रयासके। ह्रस्वादङ्गात्से सिचलाप दुरश्च कित्से न गुणः । सन अन्त-कर्तुमिच्छति कटं चिकीर्षति, कटः स्वयमेव, चिकीर्षते स्वयमेव कर्तुमिच्छा आत्मनेपद हुआ । यक्का निषेध । यद्यपि इच्छा चेतन कर्तामें रहती है कर्मरूप कटमें नहीं, जड़तासे, कर्मकर्तामें क्रियाकी विलक्षणता नहीं दीखती कर्मस्था नहीं कर्मवत् प्राप्त नहीं निषेध नहीं, तब कहा इच्छा कर्तामें स्थित होने पर भी क्रियाकी अपेक्षा कर्मस्थक्रिया मान लें ।

तपस्तपः—तपः कर्म हो तप धातुके, कर्मको कर्ताकी इच्छामें कर्ता कर्मवत् हो । तपः को कर्मभाव (यक् आत्मनेपद) हो । तप धातुके तपः कर्म होने पर हो । कर्तरि शपसे कर्तरि, कर्मवत्कर्मणासे कर्मवत् आया । वह विधिसूत्र है । अत उपशमादि-प्राजापत्य चान्द्रायण आदि तपः तापसं तपति, तपस्या ही तपस्वीको दुःखयति कृश दुबला पतला करती है दुखः देती है, जब तापस कर्म है तब तपका दुखःजनन अर्थ । जब तापस कर्ता है तब पुण्यार्जन अर्थ, पुण्य पैदा करना, क्रिया भेदसे सकर्मकतासे कर्मवत्प्राप्त, अतः विधिसूत्रे एवकार पढ़ना व्यर्थ है वृत्तिकारके अनुयायियोंका मत । इससे भाष्यविरोध सिद्ध । भाष्यमें एव पढ़नेकी शक्तिसे नियम सूत्र है । (तपेः एव सकर्मकस्य, नान्यस्य) तपमें सरलताकी दृष्टिसे स्वतन्त्रक्रियाकी

तपस्तापसः, अर्जयतीत्यर्थः। 'तपोऽनुतापे च' इति चिण्निषेधात् सिच्, अतप्त। 'तपः कर्मकस्य' इति किम्? उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः। (सकर्मकाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः) अन्योन्यं स्पृशतः। अजा ग्रामं नयति। (दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोरिति वाच्यम्) न दुह स्नु नमां यक् चिणौ।३।१।८९। एषां कर्मकर्तरि यक्चिणौ न स्तः। दुहेरनेन यक एव

कामना हुई, तब कर्ता बना (तपः तप्यते तापसः) तपस्वी तपस्याका अर्जन उत्पादन करता है। तप धातुसे आत्मनेपद यक हुआ। जब तप धातु दुःखजनक सन्ताप अर्थ में है, तब तापसं तपः तपति दुःखयतिः मुख्यकर्ता तप है। तापस कर्म दुःखजनक क्रियावाचक तप रूप कर्तामें है तापस रूप कर्ममें नहीं अतः न कर्मवत्, न यगादिः। कर्मस्थक्रियाके तुल्य क्रियाका अभाव बाधक। तपः तापसम् अताप्सीत् कर्मवद्भावदशे (अतप त) दशामें च्लिको चिण् प्राप्त था उसके निषेधका स्मरण—तपो अनुतापे च सूत्रके चिण्निषेधसे सिच। उसका झलो झलिसे लोप अतप्त–तापसः तपः। तपस्वीने तपस्याका अर्जन उपलब्धि किया। तपः कर्मक क्यों पढ़ा? उत्तप्यमानं सुवर्णं सुवर्णकारमुत्तपति कश्चित। पिघलते हुए सोनाको देखकर कहता हैकि सुवर्णकारः सुवर्णमुत्तपति यहां तप धातुका तपाकर गलाना अर्थ, कर्म न होनेसे न कर्मवत्, न यक।

सकर्मक—धातुओंके कर्मवद्भावका निषेध कहें। जैसे अन्योन्यं स्पृशतः स्वमेव यज्ञदत्तदेवदत्तौ। यहां एक दूसरेके साथ आलिङ्गन स्पर्श क्रिया दोनों दशामें होनेसे कर्मवद्भाव क्यों नहीं होता? स्पृशका संयोगक्रिया अर्थः दोनों कर्ता है कम भी स्पर्शनक्रियाके एक होने पर भी आश्रय भेदसे भेद माना। देवदत्तकी क्रियाके प्रति यज्ञदत्त कर्म, यज्ञदत्तकी क्रियाके प्रति देवदत्त कर्म दोनों कर्ता भी है। आश्रय भेदसे तुल्य क्रिया भी। तब कहा सकर्मक धातुसे निषेध कहें। एककर्मकको कर्मवद्भाव कहा गया है जो धातु द्विकर्मक है एक ही कर्म कर्ता बनेगा, तब भी सकर्मकता रहेगी वहां कर्मकर्ताको कर्मभावका निषेध कहें। यदि कर्मवत् होता स्पृश्यते बनता। सकर्मकाणां प्रतिषेधः का उदाहरण–पालः अजां ग्रामं नयति कि तेन अजां ग्रामं स्वयं नयति प्राप्नोति। नयनक्रियाके प्रति अजा कर्म है उसके कर्ता होने पर ग्रामके साथ सकर्मक बना रहा, कर्मभावका निषेध हुआ। वस्तुतः ग्राममें क्रियाविलक्षणता न होनेसे प्राप्त नहीं। अन्योन्यं संगृहीतः। दुह पचि—सकर्मक हों तब बहुलं, इच्छानुसार कर्मभाव हो। दुह पच् धातु द्विकर्मक है। एककर्म कर्ता बनेगा। एक कर्मसे सकर्मकता। विकल्पके निषेधके लिए वार्तिक। (न दुह स्नु नम द्वन्द्व) इन धातुओंके कर्मकर्तामें यकि चिण् नहीं होते। दुह धातुसे कर्मकर्तामें यक्का ही निषेध। चिण् विकल्पसे होता ही है, दुहश्चकी कृपासे। गोपः अजां पयो दोग्धि कि गोपेन गौः दुग्धे। स्वयं दूध देती है। पयः उत्सृजति अप्रधान कर्म। गांके कर्ता होनेपर लट् ते (न दुहस्नु) सूत्रसे यक्का निषेध। त ध ह-घ-ग। भावकर्मणोः गां पयोदुग्धे ऐसा नहीं कहा गौणे कर्मणि दुह्यादेः लादयः के नियमसे।

अचः—अजन्त धातुसे परे च्लिको चिण् हो कर्मकर्ता त शब्द परे। च्लेः से

निषेधः, चिण्तु विकल्पिष्यते। शप्, लुक्, गौः पयो दुग्धे। अचः कर्मकर्तरि ।३।१।६२। अजन्ताच्च्लेश्चिण्वा स्यात् कर्मकर्तरि तशब्दे परे। अकारि-अकृत। दुहश्च ।३।१।६३। अदोहि। पक्षे क्सः 'लुग्वा-' इति पक्षे लुक्, अदुग्ध-अधुक्षत। उदुम्बरः फलं पच्यते। कुषिरञ्जोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च।३।१।९०। अनयोः कर्मकर्तरि न यक्। किन्तु श्यन्परस्मैपदं च। आत्मनेपदापवादः। कुष्यति कुष्यते वा पादः स्वयमेव। रज्यति-रज्यते वा वस्त्रम्। यग्विषये तु नास्य प्रवृत्तिः' कोषिषीष्ट रङ्क्षीष्ट। इति कर्मकर्तृप्रकरणम्।

सिच्, चिण्ते-से चिण्। दीपजनसे अन्यतरस्यां, धातोरेकाचः से अच् अनुवृत्त। **अकारि**। कर्मकरः कटमकार्षीत् किं तेन कटः स्वयमेव अकारि। चटाई स्वयं बन गयी आसान, सौकर्यं। कृ धातोः कर्मकर्तरि लुङि च्लिस्थाने चिण वृद्धि आर अट चिणो लुक, तका लोप अकारि अकारिषाताम् अकारिषत। अचः कर्मकर्तरि वा चिण्। जब न चिण, तब अकृ सत दशायां ह्रस्वादङ्गात् सिच्लोप, अकृत अकृषाताम् अकृषत अकृष्ठाः। **दुहश्च**---कर्मकर्ता अर्थमें त परे दुहसे चिण् विकल्प हो। **अदोहि**—स्वयमेव गौः पयः, दुह धातोः कर्मकर्तरि लुङि त अट, दुहश्च इति चिण गुणे। गोपः गां पयः अधुक्षत। चिणपक्षमें लघूपध गुण। जब न चिण तब शल इगुपधात्से क्स, लुग्वा दुहदिहलिहगुहसे क्सका लुक। त-ध ह-घ-ग अदुग्ध जब न लुक हको ढ-क-स-ष क्ष **अधुक्षत**।

पचका उदाहरण-उदुम्बर वृक्षफलं कालविशेषः पचति द्विकर्मकः पचिः किं कालेन वृक्षः स्वयमेव फलं पचति, कालविशेषमनपेक्ष्य फलं पक्वाश्रयं करोति। गूलरका पेड़ फलको स्वयं पकाता है कालकी अपेक्षा न होना सौकर्य है। फलप्रधान कर्मके रहते सकर्मकाणा प्रतिषेध प्राप्त था किन्तु (दुहिपच्योः) वार्तिकसे बहुलं यक्

कुषिरञ्जो—कुष निष्कर्षे रञ्ज रागे, इन धातुओंसे यक् आत्मनेपद न हो, उसके स्थानमें श्यन्परस्मैपद हो। कर्मके कर्ता होने पर जहां यकका विषय नहीं वहां श्यन भी नहीं, न यक। ऐसा न कहकर श्यन विधानका फल आर्धधातुकमें भी श्यन होगा। प्राचां शब्द विकल्प सूचक। पादं कुष्यते देवदत्तः, किं तेन पाद स्वयमेव कुष्यति पैर स्वयं निर्मल या विचित्र हो रहा है। कर्मभाव होनेपर यक् बाधकर श्यन आदि। विपक्षमें भी कुष्णाति पादं। पुरुष प्रयत्नके बिना भी निर्मल हो रहा है, पक्षमें यक् आत्मनेपद भी हुआ कुष्यते कुष्यन्ति बधूः पांवमें अलक्तक महावर लगाती हुई बधू। शप्श्यनोः से नित्य नुम्, यकि होनेपर आच्छिनद्योः से नुम। दत्तः वस्त्रं रज्जति किं तेन वस्त्रं स्वयमेव रज्जते रज्जति वा। ण्यर्थं मानकर मुख्य कर्तामें लट जब कर्मकर्ता बनः तब रज्जति इत्यादि। वस्त्र स्वयं रङ्गीन हो रहा है। जब न यक तब श्यन् आर्धधातुक यक्का विषय नहीं न श्यन्। तेन कारणेन न परस्मैपदं, रञ्ज धातुसे सीयुटि, जको कुत्व ग उसको चर क, अनुस्वार परसवर्ण। इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकरीटीकायां कर्मकर्तृप्रक्रिया पूर्णा।

अथ लकारार्थप्रकरणम्

अभिज्ञावचने लृट् ।३।२।११२। स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट् स्यात् । लङोऽपवादः । स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः । 'एवं बुध्यसे' चेतयसे' इत्यादियोगेऽपि, तेषामपि प्रकरणादिवशेन स्मृतौ वृत्तिसम्भवात् । **न यदि ।३।२।११३।** यद्योगे उक्तं न । अभिजानासि कृष्ण यद्वने अभुञ्ज्महि। **विभाषा साकाङ्क्षे ।३।२।११४।** उक्तविषये लृट् वा स्यात् । लक्ष्यलक्षणभावेन साकाङ्क्षश्चेद्धात्वर्थः । स्मरसि कृष्ण ? वने वत्स्यामस्तत्र गाश्चारयिष्यामः । वासो लक्षणं, चारणं लक्ष्यम् । पक्षे लङ् । यच्छब्दयोगेऽपि 'न

अथलकारार्थप्रक्रिया—लकारका अर्थ कर्ता कर्म संख्या काल है। किन्तु काल के विषयमें कुछ सूत्र उत्सर्ग (स्वाभाविक व्यापक) है कुछ उसके अपवाद बाधक भी साधक भी हैं सामान्य सूत्रों पर कालके विषयमें विशेष सूत्रोंके प्रभावका प्रकरण। **अभिज्ञा**—स्मृतिः सा उच्यते बोध्यते अनेन अभिज्ञावचनः तस्मिन् । याद दिलाने या स्मरण करानेवाला शब्द प्रयोग किया गया हो, समीपमें स्मारक शब्दका प्रयोग हुआ हो तब अनद्यतने भूतकाले लङके अर्थमें लृटका प्रयोग हो । भूतेका अधिकार, अनद्यतने आया, लङको बाधकर। हे कृष्ण ? गोकुले अवसाम यदा, तत्स्मरसि ? अर्थात् गोकुलमें निवास किया था याद है । अनद्यतनभूतकाल लङलकारका विषय, उसे बाधकर **अभिज्ञावचन**—स्मारक शब्द स्मरसि प्रयोग देखकर वस् धातुसे लृट स्य आदि वत्स्यामः । सम्बोधन क्रियामें विशेषण होते हैं निवासकर्म सम्बोध्य कृष्ण सम्बन्धी स्मरण । एवं बुध्यसे चेतयसे जानासि बोध होना चेतना होना ज्ञान होना शब्दका स्मरण अर्थमें प्रयोग होने पर भी लङलकारके विषयमें लृट हो, परन्तु **स्मृति** अर्थमें बुध्यसे चेतयसेका अर्थ कैसे घटेगा ? तब कहा **तेषामपि**—प्रसङ्गवश बुध चेतिधातुका भी स्मरण अर्थमें शक्ति, वृत्ति व्यवहार सम्भव । **न यदि**-में सप्तमी, यत शब्दके योग सम्बन्धमें उत्तमः अभिज्ञावचने लृट नहीं होता अनद्यतन भूतकाल (लङ)के विषयमें भविष्यकालका सूचक लकार न हो हे कृष्ण अभिजानासि स्मरण या याद है न, कि वनमें हमलोग खाये थे यत्स्मरसि ? यत् शब्दके प्रयोगसे न लृट, किन्तु लङ् (जो उत्सर्ग है)न यदि के निषेधसे ।

विभाषा—उक्तविषयये स्मारक शब्द उपपद रहते लङके विषयमें लृट विकल्प हो । लक्ष्यलक्षण ज्ञाप्यज्ञापक भावसे धातुका अर्थ आकांक्षाका विषय हो । हे कृष्ण ? पूर्वं वने अवसाम गाः अचारयामः यत्तत्स्मरसि ? यतसे स्मरण जान पड़ता है पर वाक्यमें उच्चारण नहीं, अतः विकल्प लृट वत्स्यामः । चारयिष्यामः । पूर्व वास करना लक्ष्य है गाय चराना लक्षण प्रसिद्ध है, स्मारक है । चारणं लक्षणं, चराना मुख्यविषय, वाक्यसे झटिति बुद्धि पर नहीं चढ़ता । पक्षमें लङ् । अवसाम, गाः अचारयाम । यत् शब्दके योगमें न यदि सूत्रको बाधकर विकल्पसे लृट ।

परोक्षे लिट—अक्ष्णः परं परोक्षं, आंखके ओटमें हो, प्रत्यक्ष न हो परोक्ष है।

परत्वाद्विकल्पः 'परोक्षे लिट्'। चकार। उत्तमपुरुषे चित्तविक्षेपादिना पारोक्ष्यम्। सुप्तोऽहं किल विललाप' 'बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम्' अत्यन्तापह्नवे लिड् वक्तव्य कलिङ्गेष्ववात्सीः? नाहं कलिङ्गाञ्जगाम। प्रश्ने चासन्नकाले ।३।२।११७। प्रष्टव्यः प्रश्नः। आसन्नकाले पृच्छ्यमानेर्थे लिङ्विषये लङ्लिटौ स्तः। अगच्छत्किम्? जगाम किम्? अनासन्ने तु कंसं जघान किम्। लट स्मे ।३।२।११८। लिटोऽपवादः। यजति स्म युधिष्ठिरः। अपरोक्षे च ।३।२।११९। भूतानद्यतने लट् स्यात् स्मयोगे। एवं

सामान्य अर्थं व्याख्यात है, विशेष अथका स्मरण कराते हैं। उत्तम पुरुषमं अहं पपाच, लिलेख उवाच। अहंको क्रिया सहितकर्ता प्रत्यक्ष है स्वयंको परोक्ष सम्भव नहीं, अक्षणः परे न होनेसे परोक्षे लिट कैसे? तब कहा–चित्तके विक्षेप अव्यवस्था अनवस्था, होशमें न होनेसे परोक्ष मान लें। जैसे स्वप्नमें विलाप किया, स्वापसे चित्तका विक्षेप अव्यवस्था मान लें। बहुजगद मत्ता अहं तस्य पुरस्तात् बहुजगद उन्माद पागलपन व्यासङ्ग (नशासे चित्तविक्षप) में उसके समक्ष बहुत कुछ कहा सुना, इस प्रकार उत्तम पुरुष अहं आवां वयं कर्ताके रहते परोक्षे लिटका समर्थन करें। अहं कदा जगाम इति न स्मर्यते। अत्यन्त—बहुत अधिक छिपाना हो तब लिट कहें। अपरोक्षार्थ वचन है, अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च। तीर्थयात्रां बिना यातः संस्कारमर्हति। प्रमाणसे कलिङ्गोनाम निषिद्धो देशः। तस्मिन्देशे त्वया गत्वा चिरं स्थितं, निषिद्ध देशमें तुम बहुत रहे हो (अतस्त्वं न सहवास योग्यः) इसी भावनासे प्रश्न-कलिङ्गेषु अवोत्सीः किं? क्या निषिद्ध देशमे निवास किये थे? अत्यन्त छिपावके कारण कहा नाहं कलिङ्गान् जगाम यही (परोक्षे) लिट अत्यन्त छिपाने अर्थमें है अकर्मक धातुनियोगे देश कालो भावा के कर्मसंज्ञासे पाक्षिक द्वितीया।

प्रश्ने–इस सूत्रमें भूतानद्यतन परोक्षकी अनुवृत्ति। पृच्छ्यते यः स प्रश्नः (कर्म) पूछनेका विषय अर्थमें लङ। प्रश्न–विषय विवक्षितः अतः कहा-प्रष्टुं योग्यः प्रष्टव्यः (प्रश्नविषयः)। आसन्नकालका अर्थ-पांच वर्ष तकका बीता काल आसन्न, पञ्चवर्षातीतः कालो अथवा प्रयोक्तृदृष्टिपथातिक्रान्तःअनासन्नकालः जो परोक्षकालमें अनद्यतनभूतकाल परोक्ष हो पूछनेके विषय अर्थमें वर्तमान धातुसे लिटके विषयमें लङ् लिट हो। जब क्रिया समाप्त हो, क्रियासहित कर्ता न देखा गया हो ऐसे लिटके विषयमें लङ, आगच्छत किं? वह आ गया क्या? पूछनेका विषय है परोक्ष आसन्नकाल भी है। जगाम किं? लिट भी हुआ। गया क्या? गमन क्रिया सहितकर्ता देखा नहीं, प्रश्नका विषय भी रहा। जहां अनासन्नकाल पांच वर्षके पहलेकी क्रिया सहितकर्ताको प्रयोक्ता न देखा हो, वहां लिट ही होता है। कंसको मार दिया क्या? जघान किं–प्रश्न क्यों कहा? जहां केवल अनद्यतन परोक्षकाल हो, वहां लिट ही हो। यथा जगाम चैत्रः, प्रश्नका

स्म पिता ब्रवीति। **ननौ पृष्टप्रतिवचने** ।३।२।१२०। 'अनद्यतने' 'परोक्षे' इति निवृत्तम्, भूते लट् स्यात्, अकार्षीः किम् ? ननु करोमि भोः। **नन्वोर्विभाषा** ।३।२।१२१। अकार्षीः किम् ? न करोमि नाकार्षम्। अहं नु करोमि अहं नु अकार्षम्। **पुरि लुङ् चास्मे** ।३।२।१२२। अनद्यतनग्रहणं मण्डूकप्लुत्याऽनुवर्तते। पुराशब्दयोगे भूतानद्यतने विभाषा लुङ् चाल्लट्, न तु स्मयोगे। पक्षे यथाप्राप्तम्। वसन्तीह पुरा छात्राः–अवात्सुः–अवसन्–ऊषुर्वा। 'अस्मे' किम् ? यजति स्म पुरा। 'भविष्यति' इत्यनुवर्तमाने। **यावत्पुरानिपात-**

विषय नहीं रहा ? लट स्मे==स्म अव्यय है भूतकाल अर्थका वक्ता स्मके योगमें लट् हो, लिट बाधकर परोक्षभूतकाल लिटका अर्थ==युधिष्ठिरने यज्ञ किया अर्थमें लिट होना था, उस अर्थको "स्म" पूरा कर दिया है। लिट बाधकर लट् (यजतिस्म) **अपरोक्षे**—अक्षणः परं परोक्षं (आंखसे ओझल) न परोक्षं अर्थात्प्रत्यक्ष-क्रियासहित कर्ता हो। अनद्यतन अद्यभिन्न भूतकालमें लट हो, स्मके योगमें। एवं शब्द प्रत्यक्ष अर्थ कहता है (पिता एवं ब्रवीति) उक्तवान् पिताने ऐसा कहा।

ननौ—ननुका सम्बोधन ध्यानाकर्षण अर्थ। प्रश्नसूचक शङ्कावाचक अर्थ। पृष्टस्य प्रतिवचनं पूंछे गये प्रश्नका उत्तर देना हो, भूतकालके अर्थमें लुङ्‌ बाधकर लट हो। सामान्य भूत है, अनद्यतन परोक्ष रुक गया, व्याख्यान प्रमाणसे। यहां प्रतिवचन उत्तरवचनमें लट विधान है। यथा **अकार्षीः किं**–काम कर लिया क्या। भूतकालिक प्रश्नके उत्तरमें ननुका **योग** रहने पर समाधान वाक्यमें लट। **ननु करोमि भो**–जिसका अर्थ अकार्ष है। जी हां काम कर चुका। सूत्रमें पृष्ट पूंछा हुआ क्यों पढ़ा ? स्वभावतः प्रश्नका ही उत्तर होता है तन्न, विरुद्धमपि वचनं प्रतिवचनमस्ति, वचनंमुख्यमपि प्रतिवचनमस्ति तन्निवृत्त्यर्थं पृष्टशब्दः। **नन्वोः**—न शब्द नु शब्दके योगमें लट विकल्पसे हो भूतकाल अर्थमें। जैसे भूतकालिक प्रश्न हुआ अकार्षीः किं ? काम कर लिया क्या ? इस प्रश्न पर यदि निषेध है तब (न करोमि) नहीं किया। भूतकालके विषयका समाधान पक्षमें (न अकार्षं) नहीं किया। यदि काम कर लिया नु (निश्चयार्थक) के योगमें लट। अहं नु करोमि। मैंने निश्चय कर लिया, अहं नु अकार्षं (तर्के नु स्यात्) इत्यमरः पक्षमें लुङ्।

पुरि—अनद्यतने कि==(मण्डूक प्लुति) मेढ़क उछालन्यायसे अनुवृत्ति, पुराशब्द के योग–सम्पर्कमें अनद्यतन भूतकाल हो, विकल्पसे लुङ्‌ हो लट भी। स्म न रहे तब, पक्षमें बराबर लुङ। लट न होने पर **यथाप्राप्तं** लिट लङ भी हो। पुरा छात्राः अवात्सुः पहले छात्र निवास किये, बीता काल है वसन्ति लट भी हुआ जब न लट्, लुङ् तब लङ लिट अवसन्, ऊषुः। स्म न रहे ऐसा क्यों यजतिस्म-पहले यज्ञ किया। यहां स्म बैठा है, लुङ आदि न हो। पुरा आकारान्त अव्यय सप्तमी एकवचन आलोप (पुरि) तीसरे अध्यायके द्वितीयपादके अपवादसूत्र-कालके विषयमें कहे गये। तृतीय अध्यायके तृतीयपादके अपवाद भूत विशेषसूत्र–**भविष्यति**

योर्लट् ।३।३।४। यावद् भुङ्क्ते । पुरा भुङ्क्ते । निपातयोः' किम् ? यावद्दास्यते तावद्भोक्ष्यते। करणभूतया पुरा यास्यति । **विभाषा कदाकर्ह्योः** ।३।३।५। भविष्यति लङ् वा स्यात् । कदा कर्हि वा भुङ्क्ते, भोक्ष्यते, भोक्ता वा । **वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा** ।३।३।१३१। 'वर्तमाने ये लट्' इत्यारभ्य 'उणादयो बहुलमितिप्रत्यया उक्तास्ते तथैव वर्तमानसमीपे भूते भविष्यति च वा स्युः । कदा आगतोऽसि ? अयमागच्छामि·अहमागमम् । कदा गमिष्यसि?

गम्यादयः-सूत्रसे भविष्यतिकी अनुवृत्ति, यावत् पुरा दोनों पद है। इनका सम्बन्ध रहते लट हो, लुङादि बाधकर। यावत् तावत्==साकल्ये अवधौ माने अवधारणे अर्थं अमरकोष प्रमाण। सम्पूर्ण सीमा तौल निश्चय अर्थ यावद्भुङ्क्ते निश्चितं भोक्ष्यते, यावत्के योगमें लट। पुरा शब्द भी निश्चय अर्थका द्योतक। मान परिमाण अर्थमें भी यावत् शब्द है, परन्तु निपात नहीं, न लट। यथा यावद्दास्यते जितना दोगे उतना खायेगा (यत्परिमाणं दास्यते तत्परिमाणं भोक्ष्यते) यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्। निपातनसे न लट। जहां पर पुरशब्दसे टा (पुरा) है वहां लट्। पुरा यास्यति इसका सूचक करणे तृतीयाका पुरा न हो, न लट्।

विभाषा——भविष्य अर्थमें कस्मिन्काले कदा एवं कर्हिके सम्पर्कमें लट् विकल्पसे हो पक्षमें लुट्लृटौ। अनद्यतने हिल् विकल्प। यहाँ लुट होना चाहिये अनद्यतन की अवगति ज्ञान लक्षणासे। कब खाओगे लट्, भुङ्क्ते। लुट लृट भी। यह लट् भविष्य अर्थका सूचक है। अनद्यतन भविष्यमें कर्हिके योगमें लुटा भाव्यं किन्तु भविष्ये सामान्ये लृट्।

वर्तमानकाल—समीपमें हो ऐसा भूतकाल या भविष्यकाल वर्तमानवत्= वर्तमानकालेन तुल्यं सदृशं भवतु। समीप ही सामीप्य है। स्वार्थ-समीप अर्थमें ष्यञ्। वर्तमाने लट सूत्रसे लेकर तृतीय अध्यायके द्वितीयपाद समाप्ति तक वर्तमान कालका अधिकार। इस अधिकारमें जितना जिस उपाधि अर्थ विशेषणके धातुसे वर्तमानकालमें प्रत्यय कहे गये, सब उन्हीं विशेषणोंसे धातुओंसे वर्तमानकालके भूत या भविष्यकालमें लट् विकल्पसे हो। भूत भविष्य अर्थतः लब्ध है। कदा आगतोऽसि। आये हुए व्यक्तिके प्रति प्रश्न, यह भूतकाल वर्तमानके समीपमें है। अभीअभी तुरन्त एक ही क्षण हुआ (अयम् आगच्छामि) यह अभी आ हूं। वर्तमानके समीप भूतकालमें लट्। अव्यवहितपूर्वमागतवानस्मि वर्तमानसमीपे भूते लट जो भूतकालका सूचक है। अयं शब्दः आगमनकालीनं धूलिधूसरित प्रस्वेदपरिकरबन्धं पसीनासे तर कमरमें अगौंछी बांधे ताजगीका सूचक। इदानीमागमनं सूचयितुं वर्तमानत्वके अभावमें भूते लङ् आगम। कदा गमिष्यति गमनके पहलेका प्रश्न, भविष्यकालिक प्रश्न जो वर्तमानकालके समीपमें है। एष गच्छामि अभी-अभी तुरन्त शीघ्र गमिष्यामि वर्तमानकालके समीपमें भविष्य अर्थसूचक लट्, पक्षे लृट्। सामीप्य क्यों ? कदा आगतो भवान् अस्मान्मासात् पूर्वस्मिन्मासे आगच्छम्। यथा

एष गच्छामि·गमिष्यामि वा। **आशसायां भूतवच्च** ।३।३।१३२। भविष्यति काले भूतवद्वर्तमानवच्च प्रत्यया वा स्युराशंसायाम्। देवश्चेदवर्षीत् वर्षति-वर्षिष्यति वा, धान्यमवाप्स्म वपामः वप्स्यामो वा। **क्षिप्रवचने लृट्** ।३।३।१३३। क्षिप्रपर्याये उपपदे पूर्वविषये लृट् स्यात्। वृष्टिश्चे-त्क्षिप्रमाशु त्वरितं वा यास्यति, शीघ्रं वप्स्यामः। **आशंसावचने लिङ्**

गङ्गा समीपे गङ्गात्वारोप इतिवत्।

आशंसायां—इस सूत्रमें वर्तमान समीपकी अनुवृत्ति नहीं आती, व्याख्यान प्रमाणसे। अप्राप्तको प्राप्तिकी इच्छा आशंसा (अलब्धस्य लब्धुमिच्छा) ऐसी इच्छा भविष्यविषयक सम्भव। समाप्त वस्तुमें भूतकालकी इच्छा नहीं हो सकती। भविष्य-कालमें भूतवत्=भूतकालके तुल्य वर्तमानवत्, वर्तमानकालके तुल्य प्रत्यय, लुङ लट आदि हो विकल्पसे। **आशंसा**—इष्ट प्राप्तिकी इच्छा अर्थमें। **आशंसायां किं?** गमिष्यति देवः पर्जन्यः मेघः अवर्षीत् चेद् धान्यं अवाप्स्म। बादल बरसेगा बीज बोयेंगे यहां आशंसा है बीज बोनेमें वर्षाकी आशंसा भविष्यकाल है उससे भूतकाल का आरोप अवर्षीत्, जब वर्तमानका आरोप वर्तमानवद् होगा तब देवः वर्षति चेति वपामः, भगवान बरसेंगे तब बोऊंगा लट आदि। कार्यकारण भाव छिपा है। पक्षमें सामान्य लृट। इन्द्रः वर्षिष्यति चेत वप्स्यामः। भूतवद्भावसे लुङ, वर्तमानवत्से लट वर्षति। पक्षमें लृट। अर्थ—एकभविष्यकालमें वृष्टि और बोना क्रिया दोनों आशंसाके विषय है। भूतवत्भाव पक्षमें लङ लिट क्यों नहीं होते, तब कहा **सामान्यातिदेशे**—सामान्य=व्यापक सूत्रके अर्थका अतिदेश आरोप सम्भव है तब विशेष सूत्र या लकारका आरोप-अतिदेश नहीं होता। अनद्यतन भूतमें लङि विशेष्य है, विशेषण लगा है। जिस भूतकालमें अनद्यतन परोक्षका विशेषण लगा हो लिट। विशेष सूत्र न होनेसे। अनद्यतन परोक्ष आदि विशेषणसे विमुक्त लुङ्लकार सामान्य है। **क्षिप्रवचने**-शीघ्र अर्थ या क्षिप्रका पर्याय समान शब्दके उपपद समीप में रहते पूर्वविषये—**आशसायां भूतवच्च**—सूत्रके विषयमें अपवाद होकर लृटि हो। अर्थात् भूतवत् वर्तमानवत्को बाधकर लृट हो वचनशब्द अर्थका सूचक है क्षिप्र अर्थमें अन्य शब्दके उपपद रहते भी कार्य हो। वृष्टि=यदि वर्षा होगी शीघ्र अति-शीघ्र तुरन्त आयास्यति बीजं शीघ्रं वस्यामः आशंसा—वर्षा होनेकी इच्छाके आधार पर बोना क्रिया भविष्यकाल है। सामान्य लृटके लिये सूत्र, लुङि लटको बाधकर (क्षिप्रवचने न) इतना ही सूत्र पढ़ते, पूरा अर्थ खुल जाता लृट—क्यों पढ़ा? इसलिये कि सामान्यसूत्रके अतिदेश धर्मारोपके विषयमें विशेष लुट लकार न हो। सामान्य भविष्यकालका लृट ही हो। लुटके विषयमें भी सूत्र लगे। लुटका सूचक स्वशब्द है अनद्यतन भविष्यकालका द्योतक उसके विषयमें भी लृट **वप्स्यामः**।

आशसावचने—प्राप्तस्य इच्छा आशंसा, भूते असम्भवात् भविष्यलाभः। आशंसावाचीशब्द समीपमें हो भविष्य अर्थमें धातुसे लिङ भूतवद्भावको बाधकर वर्तमानवत्को हो। (गुरुमुपेयात् चेत्) यदि गुरुके पास जाता (क्षिप्रमधीयीय शीघ्र

गुरुश्चेदुपेयादाशंसेऽधीयीय। आशंसे क्षिप्रमधीयीय। हेतुहेतुमतोर्लिङ् ।३।३।१५६। वा स्यात्। कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्।कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति। भविष्यत्येवेष्यते। नेह हन्तीति पलायते। इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ।३।३।१५७। इच्छामि भुञ्जीत भुङ्क्तां वा भवान्। एव 'कामये' 'प्रार्थये'। कामप्रवेदने

पढ़ लेता) भविष्यकाल है क्षिप्रका प्रयोग होने पर भी लृटको बाधकर परत्वात् लिङ् ही हुआ। एवं प्रार्थये अधीयीय इच्छामें वयं अधीयीमहि समझें। क्षिप्रके उपयोगमें भी परत्वात् लिङ।

हेतुहेतुमतोः—विभाषा अनुवर्तते। क्रियाओंके बीच कार्यकारणभाव हो तो वा लिङ हो। धातुसे अर्थात्—हेतुभूते फलभूते वा अर्थे वर्तमानधातोः लिङ वा। कृष्णको नमस्कार करें, सुख प्राप्त हो। (कृष्णनतिः नमनं सुखप्राप्तौ हेतुः) विकल्प लिङ, पक्षमें लृट। नस्यति सुखं यास्यति कृष्णाय नमः कहेगा सुख पायेगा परन्तु यह लिङ भविष्यकाल–में ही होगा लिङकी अनुवृत्ति होती पुनः लिङ पढ़नेके प्रमाणसे। इसलिये नेह–वर्तमानकालमें हनन अर्थक हेतु रहते न लिङ, हन्ति पलायते मारकी डरसे भगता है। जिसमें हनन हेतु है। यदि भविष्यकाल हो क्रिया असिद्ध हो तब भूतकालमें भी लृङ। यदि ऐसा हन धातुसे शतृ प्रत्यय क्यों नहीं ? प्रमाण दिये जैसे देवत्रातो गलो ग्राहः इति योगे च सद्विधिः। मिथस्तेन विभाष्यन्ते गवाक्षः संशितव्रतः।

व्याख्या—देवत्रातः संज्ञा है नुदविदोन्दत्रासे तको न नहीं होता। ग्रो यङि, अचि विभाषा। प्राणि-अङ्ग हो तब रको ल गल। यदि विषवाचक हो गरः। यहां रको ल नहीं होता, (विभाषा) ग्रहधातुसे ण प्रत्यय जलचर अर्थमें ग्राहः–यदि ज्योतिषि नक्षत्र अर्थ हो तब ण नहीं होता। ग्रहः—इति शब्दका योग-सम्बन्ध हो तब सद्विधिः-शतृशानच्का विधान नहीं होता। हन्तीतिमें भी इतिका योग है न शतृ। वातायन झरोखा खिड़की अर्थमें अवङ गवाक्षः बना। अन्यत्र गायकी आंख अवङ नहीं होता गोऽक्षः। संशितव्रतः संशितंप्रशंसितं लोकेप्रियं व्रतं यस्य स में बहुव्रीहि है शाच्छासो-इत्व विकल्प नहीं होता, अन्य अर्थ जो प्रशंसित न हो तब हो जाता नष्टः क्षीणः है (शातः शितः) ते=पूर्वेक्त नत्व लत्व ण शतृ आदि विधियां मिथः परस्परमें एकके विषयमें न विभाष्यन्ते विकल्प नहीं होती। व्यवस्थितविभाषाके आधार पर क्रियाफल उत्पन्न न हो तब नित्य लृङि। यदि अवर्षिष्यत् सस्यमुदपत्स्यत्।

इच्छार्थेषु—इच्छा अर्थमें विराजमान धातुओंका प्रयोग रहते धातुसे लिङ लोट हों, सभी लकारको बाधकर। असमानकर्ताका विषय हो। यथा इच्छामि चाहता हूं वह खाय, इच्छा कर्ता और एक नहीं है समान कर्ता (लिङ च) से कहेंगे। जब लोट हुआ भुङ्क्ताम् इच्छा अर्थमें कामना प्रार्थना आदि भी है। उनके

इति वक्तव्यम् । नेह इच्छन् करोति । लिङ् च ।३।३।१५९। समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु लिङ् । भुञ्जीय इतीच्छति । 'विधिनिमन्त्रण' इति लिङ् । विधौ-यजेत । निमन्त्रणे-इह भुञ्जीत भवान् । आमन्त्रणे-इहासीत । अधीष्टे-पुत्र-मध्यापयेद्भवान् । संप्रश्ने-किं भो वेदमधीयीय, उत तर्कम्? प्रार्थने भो भोजनं लभेय । एवं लोट् । प्रैषाऽतिसर्ग-प्राप्तकालेषु कृत्याश्च ।३।३।१६३। प्रैषो विधिः । अतिसर्गः । कामचारानुज्ञा-भवता यष्टव्यम् । भवान् यजताम् । चकारेण लोटोऽनुकर्षणं प्राप्तकालार्थम् । अर्हे कृत्यतृचश्च ।३।०।१६९।

योगमें भी हो । कामप्रवेदन-बराबर परं प्रति स्वाभिप्रायाविष्करण दूसरेसे अपने विचार कहने हों ऐसी इच्छा अर्थका वाचक धातुके उपपद रहते इसी धातुसे लिङि लोट हों, जिसका अर्थ दूसरेके प्रति अपने विचार व्यक्त करना है ।

नेह–इह न, इच्छामें इच्छा करके काम करता है यहां अपनी इच्छा अपनेमें ही रह गयी । दूसरेके प्रति अपना विचार व्यक्त नहीं, न लिङ, न लोट । लिङ् च समान-एककर्ता हो, इच्छा अर्थवाचक धातुके समीपमें पद हो तब धातुसे लिङ । **भुञ्जीय**–इति इच्छतिमें खाऊं ऐसी इच्छा करता है, दोनों क्रियाका एककर्ता अर्थ सूचक लिङ। अत्र भोक्तुरेव इषिकर्तृत्वात् समानकर्तृत्वम् । लोट निवृति सूत्रका उद्देश्य क्रियातिपत्तौ तु भविष्यति नित्यं लृङ । भूते च सूत्रका अधिकार समाप्त ।

विधि निमन्त्रण आदि सूत्र भू धातुमें विस्तृत व्याख्यात है । प्रसङ्ग वशात् यहां भी विधि आज्ञा अर्थमें लिङ् । यजेत-आप यज्ञ करें । **निमन्त्रण**—अवश्य आने अर्थका सूचक लिङ् । भुञ्जीत आप अवश्य खांय । **आमन्त्रण**=आप यहां रुकें तो ठीक । इह आसीत । **अधीष्ट**—पुत्रको प्यारपूर्वक पढ़ायें प्रेम पूर्वक व्यवहार । **सम्प्रश्न**–वेद पढ़ोगे या तर्क इस प्रश्नका भी सूचक बोधक लिङ। **अधीयीय**—प्रार्थना भोजन प्राप्त करूं एवं विधि आदि अर्थोंमें लोट भी हो ।

प्रैषाति––प्रैषः विधि प्रेरणम् आज्ञा अतिसर्ग, बन्धनमुक्त, अनुज्ञा इच्छानुसार विचार प्राप्तकाल अर्थमें लिङ हो, लोट भी । लोटके स्थानमें कृत्यसंज्ञक तव्य अनीयर आदि प्रत्यय भी हों । चकारसे लोटका लाभ संग्रह । कृत्यप्रत्यय कहे जायेंगे । सूत्रमें विधि न पढ़कर प्रैष पढ़ना शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थ है । आज्ञा प्रेरणाके विषयमें कृत्यका उदाहरण-भवता यष्टव्यं (भावे तव्य) आप यज्ञ करें लोट हो, तब यजतां आज्ञा अर्थका सूचक यजसे लोटको लाना व्यर्थ, क्यों व्यर्थ इसलिये कि प्रैष (विधिरूप) अतिसर्ग आमन्त्रण कामचार रूप अर्थमें लोट च सिद्ध है, तब कहा चकारेण-लोटका लाना प्राप्तकालार्थ है । यथा गुरूणां भोक्तव्यं गुरुके भोजनका काल प्राप्त है । कृत्यसंज्ञक तव्य हुआ । गुरुर्भुञ्जीत भोजनप्राप्तावसरं । **अर्हे**=योग्य कर्ता जान पड़े । तब धातुसे कृत्यसंज्ञक प्रत्यय तृच और लिङ भी होते हैं । त्वं कन्यां वहेः कन्याविवाहस्य योग्यः असि कन्याका अर्ह योग्य अर्थ खुल रहा है । लिङि त्वया कन्या वोढव्या वहनीया । त्वं कन्या वोढा, कन्या विवाह योग्य ।

चाल्लिङ् । त्वं कन्यां वहेः । शकि लिङ् च ।३।३।१७२। शक्तौ लिङ् स्यात्, चात्कृत्याः त्वं भारं वहेः । 'माङि लुङ्' मा कार्षीः । कथं 'मा भवतु' 'मा भविष्यति' इति ? नायं माङ, किन्तु माशब्दः । धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः ।३।४।१। धात्वर्थानां सम्बन्धे यत्र काले प्रत्यया उक्तास्ततोऽन्यत्रापि स्युः । तिङन्त-वाच्यक्रियायाः प्राधान्यात्तदनुरोधेन गुणभूतक्रियावाचिभ्यः प्रत्ययाः । वसन्

शकि—सामर्थ्यं शक्ति क्रिया योग्यता जान पड़ती हो लिङ हो, कृत्य तव्य अनीयर भी । त्वं भारवहं ढोनेकी क्रिया (सामर्थ्य सशक्त हो) अर्थमें लिङ वहेः । वोढुं शक्तः मा के योगमें लुङ हो सब लकारको बाधकर । यथा मा कार्षीः तुम मत करो । लुङ सभी कालके अर्थमें । यदि ऐसा मा भवतु मा भविष्यति में अन्य लकार कैसे ? तब कहा माङ् शब्द है किन्तु मा शब्द भी है दोनों अव्यय है ।

धातुसम्बन्धे-धात्वोः अर्थयोः सम्बन्धः द्विनिष्ठो हि लक्ष्यः अर्थः । तभी गोमानासीत् सिद्ध । दो धातुओंके अर्थमें परस्पर सम्बन्ध रहते गौण (अप्रधान) क्रियासे प्रधान क्रियाके अर्थमें लकार हो । यथा पठन् ददर्श-जब पढता था तब देखा । ददर्श परोक्ष भूतकालकी क्रिया उसी भूतकाल अर्थमें लट, शतृ-अत् पठन् बना वर्तमानकालको बाधकर, किस अर्थमें प्रत्यय हो किस आकांक्षासे काल अर्थ सूझता है। वर्तमाने लटसे लेकर सभी लकारके कालविशेष अर्थ होते हैं उन विधिसूत्रोंसे अपने-अपने कालमें लकारोंका होना प्रसिद्ध है । उनसे मिला अन्य काल अर्थ जो गौणभूत है उससे भी प्रत्यय हो । लटका वर्तमान काल अर्थ है किन्तु भूतकालमें हुआ भूत-कालका णिनि भविष्यकालमें हो जाय । वो धात्वर्थके सम्बन्धमें ही । धात्वर्थयोः न कहकर धात्वर्थानां बहुवचन पढ़ना उदाहरण अधिकताके अभिप्रायसे, धातुओंके अर्थ के सम्बन्धमें । **यत्र काले**—भूत भविष्य वर्तमान अद्यतन अनद्यतन काल जिस सूत्रसे कहे गये वे लकारार्थ है ।

अन्यत्रापि-उन अर्थों से भिन्न अर्थमें भी हो(वसन् ददर्श) जब निवास क्रिया था तब देखा था । वसन्से लट शतृ प्रत्यय, भूतकाल अर्थ सिद्ध, जो प्रसिद्ध है वर्तमान कालसे भिन्न है । यदि ऐसा वर्तमाने काले लट भी क्यों न हो ? तब कहा **तिङन्तवाच्य**—तिङ प्रत्यय अन्तमें हो उससे कही गयी क्रिया प्रधान होती है । जैसे ददर्श क्रिया प्रधान है और वसन् निवास दर्शन क्रियामें विशेषण गौण । किन्तु गुणभूत क्रियावाची वास निवास क्रियावाचक धातुसे प्रत्यय । कालान्तर=अन्य कालमें दर्शनक्रिया प्रधान है निवास क्रिया गौण । वस से भूते लट् । उषित्वा ददर्श। शाब्दबोध-अतीतवास कर्त्ता यस्य दर्शनस्य अथवा अतीतवासे कर्ता यस्य, व्यधिकरण बहुव्रीहि भूतकालिकनिवास कर्तासे दर्शन हुआ । अन्य उदाहरण-सोमेन इष्टवान् यः स सोमयाजी-भूतकाले णिनिः करणे यजः से जब भविता अनद्यतन भविष्यकाल अर्थक लुटि अन्त, प्रधान क्रियासे सम्बन्ध जुड़ा, तब णिनिका भी अनद्यतन भविष्य-काल अर्थ । **यज**—और भू दो धातुओंके सम्बन्धमें णिनिका भविष्यकाल अर्थ सोम

ददर्श । भूते लट् । अतीतवासकर्तृकं दर्शनमर्थः सोमयाज्यस्य पुत्रो भविता। सोमेन यक्ष्यमाणो यः पुत्रस्तत्कर्तृकं भवनम् । क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमो ।३।४।२। पौनः पुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोर्लोट् स्यात्तस्य च हिस्वौ स्तः । तिङामपवादः । तौ च हिस्वौ क्रमेण परस्मैपदात्मनेपदसंज्ञौ स्तस्तिङ्संज्ञौ च । तध्वमोर्विषये तु हिस्वौ वा स्तः । पुरुषैकवचनसंज्ञे तु नानयोरतिदिश्येते, हिस्वविधानसामर्थ्यात् । तेन सकलपुरुष-

---

रससे यज्ञ करने वाला जो पुत्र (तत्कर्तृकं) वह कर्ता हो ऐसी उत्पत्ति-गोमान् आसीत् भी, गौः अस्यास्ति गोमान् अस्तिक्रिया वर्तमानकालमें विधान हुआ मतुप् गौः अस्यासीत् । भूतकालकी अस्ति क्रियामें दोनों अर्थका सम्बन्ध हो तभी प्रत्यय हो । गोमान् अस्तिमें मतुप् नहीं होगा, दो धातुका प्रयोग न होनेसे । जब अर्थयोः कहते हैं वर्तमान अर्थ भूत अर्थ भेदसे दो अर्थ हुये, तब मतुप् निर्बाध हुआ । एव पश्यन् ययो वृणधातोः भूते लटि दृष्ट्वा ययौ निर्वेदयिष्यतो मनो न विद्यते । भूते लृटि विद्से निवेदनं कृतवतः भुवि कृत्यमासीत् भाविशब्दस्य भूतकाले जाते सति अतीतं भवनमर्थः । एककर्तृकमतीतं भवनम् ।

क्रियासमभि—क्रियाके समभिहार=पुनः-पुनः भृशार्थे बार-बार अतिशय बहुत अधिक अर्थ द्योत्ये=खोलने प्रकाशमें लानेके लिये धातुसे लोट हो । तस्य=लोटके स्थानमें तिङको बाधकर (हि और स्व) आदेश हो, तौ=वे दोनों हि स्व आदेश क्रम से परस्मैपद हों आत्मनेपद तिङ भी कहे जायं । परस्मैपद और तिङ मान्य । स्व आत्मनेपद तिङ मान्य । त-मध्यमपुरुष बहुवचनके (त ध्वं) के विषयमें हि और स्व विकल्पसे हो । परस्मैपद मध्यमपुरुष बहुवचन हि विकल्पसे हो आत्मनेपद ध्वंको बाधकर । स्व विकल्पसे हो । इस प्रसङ्गमें तीनवाक्य-क्रिया समभिहारे लोटि प्रथमवाक्य जिसको पौनःपुन्यं भृशार्थस्य कहा गया । धात्वर्थमें विशेषण बार-बार बहुत अधिक क्रियावाचक धातुसे लोट, सब लकारके अर्थको बाधकर । लोटो हिस्वौ—लोटके स्थानमें हि स्व हों तिङको बाधकर, अपवादः का एकवचन प्रत्येकके अभिप्रायसे दोनों दो संज्ञाके पास, इसी सूत्रसे परस्मैपद आत्मनेपद संज्ञाका विधान जो दुर्लभ अर्थ लोडादेशौ हिस्ववत् भवतः । लोट स्थाने हिस्वौ इत्यर्थः लोटकी अनुवृत्तिसे तृतीयवाक्य तिङन्तर्भूत । ननु वाय तध्वमोः एकदेश विकल्पविधि अनुप पन्न होगी तन्न, लोटके स्थानमें हि और स्व तिङको बाधकर होते हैं । तध्वमोः में स्थान षष्ठी नहीं किन्तु विषयविषयिभावसम्बन्ध षष्ठ्यर्थ है । त ध्वंके विषयमें लोट के स्थानमें हि स्व हो । पक्षमें त ध्वं भी । पुरुष=मध्यमपुरुष एकवचन। अतिदेश हि, स्वसे नहीं होता क्योंकि इमौ हिस्वौ सर्वेषां पुरुषाणां सर्वेषां च वचनमिष्येते । भाष्य कैसे सगत होगा, तब कहा हि और स्वको मध्यमपुरुष या एकवचनका आरोप नहीं होता, क्यों नहीं होता, हि और स्वके विधान सामर्थ्यसे । यदि मध्यमपुरुष एकवचनसंज्ञा होती तब युष्मत्-त्वं युवां यूयंके एकवचन रहते लोटके स्थानमें हि

वचनविषये परस्मैपदिभ्यो हि। कर्तरि, आत्मनेपदिभ्यः स्वो भावकर्मकर्तृषु। समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ।३।४।३। अनेकक्रियासमुच्चये द्योत्ये प्रागुक्तं वा स्यात् । यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ।३।४।४। आद्ये लोड्विधाने लोट्प्रकृतिभूत एव धातुरनुप्रयोज्यः। समुच्चये सामान्यवचनस्य ।३।४।५। समुच्चये लोड्विधौ सामान्यार्थकस्य धातोरनुप्रयोगः स्यात् । अनुप्रयोगाद्यथायथं लडादयस्तिबादयश्च । ततः सङ्ख्याकालयोः पुरुषविशेषार्थस्य चाभिव्यक्तिः (क्रियासमभिहारे द्वे वाच्ये) याहि याहीति याति । पुनः पुनरतिशयेन वा यातं

स्व होते। तेन—पुरुषवचनका अतिदेश आरोप न होनेसे, हि और स्व सकल पुरुष सकलवचनके विषयमें हि होता हुआ परस्मैपदी धातुसे कर्तामें ही होता है। आत्मनेपदी धातुसे कर्ता कर्म भाव तीनों अर्थमें लोट स्थाने स्व आदेश होता है।

समुच्चय—समभिहारको छोड़कर पूर्व का सभी सूत्र अनुवृत्त, क्रिया बहुवचनान्त लुप्त षष्ठी, समुच्चयमें जुड़े, चिनोतेर्भावे एरच् । समुच्चयः अनेकक्रियाओंका समुच्चय संग्रह समुदाय द्योत्य-खुलना प्रकाशमें आना हो (कारक समुदायमें नहीं लगता) प्रागुक्तं—धातुसे हुये लोटके स्थानमें लोट हि स्व-त ध्वंके विषयमें विकल्प हि स्व प्रत्यय हो। यथाविधि—पूर्वस्मिन्पूर्वसूत्रे क्रियासमभिहारे समुच्चये अन्यतरस्यां सूत्रसे लोट विधि कहा गया, उनमें पूर्वसूत्र क्रियासमभिहारे इष्ट-परामर्शका विषय अतः कहा आद्ये—विधिमनतिक्रम्य यथाविधिः—विधान किये गये का उल्लङ्घन न कर जिस प्रकृति (धातु) से लोटका विधान हो उसी प्रकृतिका अनुप्रयोग करें। अनुप्रयोग-पश्चात् योगः नतु अव्यवहितः। इसमें प्रमाण लुनीहि लुनीहि इति अयं लुनाति—भाष्य प्रमाणसे।

समुच्चये—क्रियाओंका समुदाय रहने पर धातुसे लोट्का विधान होता हो तब सामान्य व्यापक अर्थ वाले धातुका अनुप्रयोग हो। उच्यते अनेन वचः सामान्यस्य व्यापकस्य अर्थस्य वचनः कथनम्। ऐसे धातुके अनुप्रयोगसे यथायथं=जो जिसके योग्य हो उससे लट् आदि, तिप् आदि, प्रत्यय हों। ततः-अनुप्रयोग भूय= धातुसे हुये लट् आदिसे संख्या अर्थ काल-अर्थ पुरुष प्रथम मध्यम उत्तम जो विशेष अर्थ है उनकी अभिव्यक्ति प्रकाशन ज्ञान हो। हि और स्वसे संख्या कारक काल आदि अर्थ नहीं खुलते। भाष्य प्रमाण देते हैं कि हिस्वान्तमव्यक्तवदर्थकं तेन अपरिसमाप्तोऽर्थः। हिस्व अन्तमें हों पदार्थ संख्या कारक काल आदि अर्थ व्यक्त प्रकट नहीं होते। उनसे अर्थ पूरा नहीं खुलता। (वा) क्रिया के समभिहार बार-बार बहुत अधिक होवे पुनः पुनः अतिशय अर्थमें द्वित्व हो यह लोडन्तका विषय है। क्रियाका समभिहार=पुनः पुनः अतिशयेन होवे अर्थमें लोटका उदाहरण-याहि याहि इति याति। या धातुसे लोट उसके स्थानमें कर्तामें परस्मैपद हो याहिको पुनः पुनः गमन क्रियाके अधिकत्वमें क्रिया समभिहारे द्वित्व। याहि याहिका पुनः पुनः अतिशयेन जाना अर्थं।

ह्यन्तस्यार्थः। एककर्तृकं वर्तमानं यानं 'याति' इत्यस्य। इतिशब्दस्स्वभेदान्वये तात्पर्यं ग्राहयति एवं यातः यान्ति। यासि याथः याथ। यात यातेति यूयं यात। याहि याहीत्ययासीत् अयास्यद्वा। अधीष्वाधीष्वेत्यधीते। ध्वंविषये पक्षे अधीध्वमधीध्वमिति यूयमधीध्वे। समुच्चये तु सक्तून् पिब,

ह्यन्तस्य–हि याहि है। इति शब्द भाष्यमें है। समुच्चये सामान्यवचनस्य सूत्रसे क्रिया समुदायसे लोट्विधिमें सामान्य अर्थ वाले या धातुका अनुप्रयोग। उससे विकल्प पक्षमें लोट् स्थाने ति याति=एककर्तामें वर्तमानकालिक जाना क्रिया अर्थ। जाने वालेमें एक संख्या ज्ञात है अतः याति कहा। इति शब्द अभेद सम्बन्धका तात्पर्य खोलता है। जाओ जाओ कहकर जाता है। बार-बार बहुत अधिक जाना क्रियासे अभिन्न है एककर्ताकी यात्रा पुनः पुनः अतिशयेन वा यद्यानं तदात्मककर्मककर्तृकवर्तमानं यानम्। क्रियाप्रधान शाब्दबोध सिद्धान्त है सभी पुरुषवचनकालमें एकरूप। याहि याहि–इति अनुप्रयोगमें संख्याकारक काल पुरुष आदि मिलते हैं। इति शब्द अनुकरणका सूचक यातः। दो कर्तामें वर्तमान यान क्रिया याहि याहीति यान्ति। याहि याहीसि यासि याहि याहि इति यासि। क्रियाकी अनेकतामें लोट् प्रयुक्त होगा। त आत्मनेपदके विषयमें, पक्षमें याति याति इति याथ यूयं, याहि याहि इति ययौ जाओ–जाओ कहता हुआ चला गया। याहि याहि याता यास्यति जाओ-जाओ कहता हुआ कल जायेगा। याहि-याहि इति यातु बार-बार जानेको कहते हुये आप जायं। लोट मध्यमपुरुष बहुवचन त आदेशके विषयमें लोट्को (हि) होना विकल्पसे कहा गया। वा च तध्वमोः हि पक्षमें याहि-याहि इति यूयं यात। जब न (हि) आदेशः तब याति याति इति यूयं यात। जाओ जाओ कहते हुए तुम जाओ। लङ् याहि-याहि इति अचकथत् बार-बार कहता हुआ चला गया। एवं यायात् अयासीत् जाओ-जाओ कहता हुआ चला गया। एककर्तृक भूतकालिक यान क्रिया। याहि याहि इति अयास्यत्। लृटिमें यास्यति होगा। क्रम इष्ट न होनेसे। अधिपूर्वक इ धातुसे लोट् के स्थानमें आत्मनेपदसंज्ञक स्वआदेश हो, कर्तामें विधानसे। अध्ययनक्रियाके अनेक बार बहुत अधिक होनेसे जहां संख्याकाल कारकका ज्ञान खुलता नहीं, ऐसा अधीष्व अधीष्व द्वित्व हुआ। क्रियाके समभिहार में इति अधीते पढ़ो-पढ़ो बार-बार कहता हुआ पढ़ता है। पुनः पुनः अतिशयेन अध्ययनं स्वयत्नस्य अर्थः। एककर्तृकम् वर्तमानकालिकमध्ययनम्। अधीते इत्यस्य अर्थः। सामान्यक्रिया अध्ययन, उसके समुदायसे लोट् विधि है सामान्य अर्थ। अधि इ धातुसे लट् तिप आदि। अधीतेमें संख्याकाल कारक पुरुष अर्थ खुल रहा है।

ध्वम्विषये—ध्वंके विषयमें तध्वमोः के आधार पर लोट् स्थाने 'स्व' आदेश विकल्प कहा गया, पक्षमें ध्वं ही रहेगा। जहां अधीष्व अधीष्व अधीध्वे तहां अधीध्वमधीध्वमिति यूयमधीध्वे भी बनेगा। भावकर्ममें भूयस्व भयस्व इति भूयते। पच्यस्व

धानाः खादेत्यभ्यवहरति। अन्नं भुङ्क्ष्व, दाधिकमास्वादयस्व इत्यभ्यवहरते। तध्वमोस्तु पिबत खादत इत्यभ्यवहरत। भुङ्ग्ध्वम् आस्वदयध्वम् इत्यभ्यवहरध्वे। पक्षे हिस्वौ। अत्र समुच्चीयमानविशेषाणामनुप्रयोगार्थेन सामान्येनाभेदान्वयः। पक्षे सक्तून् पिबति। धानाः खादति। अन्नं भुङ्क्ते। दाधिकमास्वादयते।एतेन—

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः॥

इति व्याख्यातम्। अवस्कन्दनलवनादिरूपा भूतानद्यतनपरोक्षा एककर्तृका अस्वास्थ्यक्रियेत्यर्थात्। इह 'पुनः पुनश्चस्कन्द' इत्यादिरर्थः इति तु व्याख्यानं

पच्यस्व इति पच्यतेः समुच्चये—क्रिया समुदायमें सामान्यवचनका उदाहरण—भोक्तुमिव इति अभ्यवहरति, ऐसा कहकर खाता पीता है। पानं-द्रवद्रव्यस्य, दुग्धस्य जलस्य रसस्य वा। विना दन्तसंमर्दनं भक्षणं हलुआ पूड़ी पुआ। खादनन्तु कठिन द्रव्यस्य। चर्वणे चबाकर खाना। शुष्क या भूजा चना आदि। इन अनेक क्रियाओं में अन्तर होते हुए सामान्य व्यापक अभ्यवहरण खान पान भक्षणात्मा यथाकथञ्चित् भी मान्य। अन्न खाओ, दहीका स्वाद लो बार-बार क्रियाका अधिक होना अर्थ। इति शब्दसे सामान्य अभ्यवहरतेका प्रयोग। इस क्रियामें खान पान स्वादका संगम है। विधि आदि लोट्के विषयमें अभ्यवहरतेका अनुप्रयोग। अभ्यवहरध्वेके विषयमें अभ्यवहरध्वम्का अनुप्रयोग। पक्षमें हि स्व का भी उपयोग। खाद आस्वादय इत्यभ्यवहरते। पिब खाद इति अभ्यवहरति आदिस्थलमें संङ्गृहीत खान पान स्वाद क्रियाविशेषका सामान्यक्रियाके साथ अभेद सम्बन्ध। पक्षे-जब समुच्चयके विषयमें लोट नहीं होगा तब सामान्य वचनका अनुप्रयोग भी नहीं होगा, तब सीधा शब्द पिबति खादतिका प्रयोग।

एतेन—समुच्चयेऽन्यतरस्यां और सामान्यवचनस्य सूत्रोंके उदाहरणमें माघ कविका श्लोक—**पुरीमवस्कन्द**-आदि पढ़े गये। उसकी व्याख्यावली रावणः **नमुचिद्विषा**—इन्द्रेण सह विगृह्य विरोधं कृत्वा, पुर्याः—अमरावत्याः अवस्कन्दनं पीडनं, नन्दनवनस्य लवनं छेदनं नष्टभ्रष्टकरणं रत्नानां मोषणं, अमराङ्गनानां हरणम्। एवं प्रकारेण अहर्दिवं प्रतिदिनम् अस्वास्थ्यं=देवानां मनोदुःखं चक्रे कृतकृतवान्। इति शब्द अनेक क्रिया (विग्रह पीडन लवन मोषण हरण आदि) समुदायका, सामान्यक्रिया अस्वास्थ्यके साथ अभेद सम्बन्ध जोड़ता है। लवनादिमें आदिसे मोषण हरण भी मान्य। भूत अनद्यतनकाल की परोक्ष (एककर्तामें अस्वस्थ करनेकी) क्रिया। **इह**—इस प्रसङ्गमें पुनः बार-बार बहुत अधिक स्कन्दन छेदन मोषण हरण आदि अर्थका व्याख्यान भ्रम मूलक है क्योंकि द्वितीय सूत्रमें क्रियासमभिहारकी अनुवृत्ति नहीं आती। भाष्यमें अनुक्त है। उसका बाधक लोडन्त

भ्रममूलकमेव, द्वितीयसूत्रे 'क्रियासमभिहारे' इत्यस्याननुवृत्तेः लोडन्तस्य द्वित्वापतेश्च। 'पुरीमवस्कन्द' इत्यादि मध्यमपुरुषैकवचनमित्यपि केषाञ्चिद् भ्रम एव, 'पुरुषवचनसंज्ञे इह न' इत्युक्तत्वात्।

इति लकारार्थप्रकरणम्।

का द्वित्व होना भी है। यदि अनुवृत्ति आती लुनीहि मुषाण आदिको क्रियासमभि- हारेसे द्वित्व होने लगता। अवस्कन्दः। आदिमें मध्यमपुरुष अंशमें एकवचन अंशमें भ्रम ही है क्यों है, हि और स्व आदेशमें पुरुषवचनकालकी शक्ति कहनेकी योग्यता नहीं, ऐसा कहा गया, उस अंशमें अनुप्रयोग विधि न हो। तानि, इमानि, सूत्राणि असकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति। जायस्व म्रियस्व इति श्रुतिः। लोट स्थाने हिस्वौ भवतः। नतु अनुप्रयोगः। तत्र जननमरण क्रिययोरेव विवक्षा, संख्याकालयोः अविवक्षा, अनुप्रयोगस्य प्रयोजनं नास्ति। समुच्चये अन्यतरस्यां सूत्रमें क्रिया सम-: भिहारेकी अनुवृत्ति नहीं आती, पुनः पुनः अर्थं ज्ञान कैसे ? आच सत्यलोकात् आचार्विचेता विपरिवर्तमानः। जायस्व आदिषु पौनःपुन्यस्य शक्तिरस्ति।

इति श्रीप्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकर्यां लकारार्थप्रक्रिया।

अथकृदन्ते कृत्यप्रकरणम्

धातोः ।३।१।९१। आतृतीयसमाप्तेरधिकारोऽयम् । 'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' । कृदतिङ्' । वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ।३।१।९४। परिभाषेयम् । अस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्ययः उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात्, स्त्र्यधिकारोक्तं विना । कृत्याः ।३।१।९५। अधिकारोऽयं ण्वुलः प्राक् । कर्तरि कृत् ।३।४।

अथकृदन्तप्रक्रिया—कृत्सञ्ज्ञकः प्रत्ययः अन्ते येषान्ते कृदन्ताः तेषां साधुत्वं शक्तिग्रहः शाब्दबोधरूपं फलं प्रक्रियन्ते उत्पादयन्ते यया व्युत्पत्त्या सा प्रक्रिया। 'कृदतिङ्' सूत्रमें अतिङ् पाठसे तिङ् भिन्न (धातुसे विधान हुआ।) प्रत्यय कृत्संज्ञक हो। तिङन्त पदकी साधनिकासे तिङका बोध हुआ उससे भिन्न कृत् प्रत्ययके विषय में जिज्ञासा जागृत हुई। कः कृत् इति। करोति क्रियायां फलमुत्पादयति कृत्, कारक रूपः क्रियारूपश्च। सभी प्रत्ययार्थ कारक या क्रियारूप है। उनका साधुत्व, शक्ति ग्रह शाब्दबोधका व्युत्पादन होना व्याकरणका विषय है। उनका साधकप्रत्ययका प्रकरण कृदन्त है। तत्राऽपि पूर्वकृदन्त आज्ञा-प्रेरणाका विषय, विधि निमन्त्रण-आमन्त्रण सम्प्रश्न प्रार्थना आदि लोडर्थं लिङर्थमें होने वाले प्रत्यय कृत्सञ्ज्ञकसे शब्द साधुत्वका अध्याय पूर्वकृदन्त। फलोत्पादक साधुत्वसाधक शाब्दबोधजनक कृत्प्रत्यय किससे हो इति जिज्ञासायाम् अधिकारसूत्र (धातोः) प्रसंगके सभी प्रत्यय धातुसे हों (प्रत्ययाः अथकथ्यन्ते तृतीयाध्याय गोचराः) तृतीय अध्यायके समाप्ति तक सभी प्रत्यय धातु से हों। इससे धातुका अधिकारत्व सिद्धः। यद्यपि तृतीयाध्यायके प्रत्ययः परश्च कुषिरञ्जो प्राचां, क्विन् आदि कृदन्त प्रत्यय प्रथमपादमें कहे गये किन्तु वे प्रासंगिक थें, आधिकारिकरूपेण प्रारम्भ। **लादेशात्प्राक्** धातोरधिकारः पक्षो न युक्तः इत्याशयेनाह-आतृतीयाध्याय समाप्तिपर्यन्तमधिकारः, कृत्संज्ञा उपपदसंज्ञाके विधान सौन्दर्य वास्ते, द्वितीयधातोः अधिकार आवश्यक, यदि द्वितीयधातुका अधिकार न होता तब पूर्वधातुके अधिकारमें कृत्संज्ञा उपपदसंज्ञा भी होने लगती। अधिकार विषये संज्ञयोः विधानार्थमधिकारः। इससे न विधेय खुला, न विधि सूत्र है किन्तु स्वरित संकेतसे अधिकार सूत्र है। अनियमे नियमकारिणी अव्यवस्थायां व्यवस्थापकं परिभाषासूत्रं·वाऽसरूपो—धातुके अधिकारमें असरूपः=समानरूप न हो अपवाद (बाधक) प्रत्यय उत्सर्ग (व्यापक सूत्र) के बाधक विकल्पसे हों। यदि स्त्री अर्थ बोधक प्रत्ययका अधिकार हो तब विकल्पसे नहीं, नित्य बाधक हो। अपवाद (बाधक) से बाध्य (व्यापक सूत्र) का नित्य बाध प्राप्त था कहीं व्यापक सूत्र भी लगे इसलिये यह सूत्र—जैसे **अचो यत् ऋहलोर्ण्यत्** का बाधक है इनके विषयमें बाध्य (तव्य अनीयर) भी हों, एतदर्थं सूत्रं, यथा-भू अजन्त हैं भव्यं भवनीयं भवितव्यं भी बने। ऋदन्त कृ·कार्यं कर्तव्यं करणीयम्: हलन्त-वाच्यं वक्तव्यमित्यादौ।

परिभाषा—अनियममें नियम करनेसे। यदि अधिकारसूत्र होता, स्वरित कल्पना करनी पड़ती, गौरव होता। जहां असरूप प्रत्ययका विधान होगा वहां 'वा'

६७। कृत्यप्रत्ययः कर्तरि स्यात्। इति प्राप्ते। तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३।४।७०। एते भावकर्मणोरेव स्युः। तव्यत्तव्यानीयरः ।३।१।९६। धातोरेते प्रत्ययाः स्युः। एधितव्यम्। एधनीय त्वया। भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीवत्वं च।

की उपस्थिति (अर्थात् असरूपो वा बाधको भवति, कस्य बाधको भवति ? उत्सर्गस्य व्यापकसूत्रस्य) **अस्त्रियां** में स्त्रीशब्द स्वरसहित है अतः कहा स्त्रीप्रत्यय (स्त्रियां क्तिन् सूत्र) के अधिकारके अपवादको छोड़कर। स्त्र्यधिकारे असरूपप्रत्ययः उत्सर्गस्य नित्यं बाधकः। यथा—ण्वुल्तृचौ उत्सर्गः, व्यापकः उसका बाधक इगुपधज्ञा प्रीकिरः कः अपवाद है इसके विषयमें ण्वुल्तृचौ भी हों क-विक्षेपः, वु-विक्षेपकः, तृच विक्षेता। असरूप क्यों पढ़ा ? समानरूप प्रत्ययका बाध विकल्पसे न हो। यथा (कर्मणि अण्) उत्सर्ग है उसका बाधक आतोनुपसर्गे कः। अण और क समान रूप है, नित्य बाध हो इसलिए असरूप पढ़ा। **गोदः कम्बलदः**। क, ण अनुबन्ध कृत असरूप अमान्य है। अस्त्रियां क्यों पढ़ा ? स्त्रीके अधिकारमें विकल्प बाध न हो यथा स्त्रियां क्तिन् उत्सर्गः, अप्रत्ययात्-बाधकः। नित्यबाध करे इसलिए। यथा चिकीर्षा। व्यावक्रोशी व्याकुष्टी इत्यत्र तु कर्मव्यतिहारे णच् क्तिनः बाधको भवति। एवं स्त्रियां निषेध नहीं लगता, णचः स्त्रियांके अधिकारमें न आनेसे।

कृत्याः कृत्यसंज्ञक प्रत्ययका अधिकार चलेगा। लिङ् लोटका अर्थ ही कृत्याः का अर्थः। करणीयाः कर्तव्याः, बहुवचन पढ़नेका फल अनुक्तप्रत्ययका भी संग्रह केलिमर आदि। प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु-विधिनिमन्त्रण आदि स्वेच्छा कार्य (प्राप्तकाल) अर्थमें कृत्य प्रत्यय हो। **अर्हे**—योग्यता कुशलता निपुणता अर्थमें कृत्य तृच् दोनों हो। शकि लिङि च शक्य-सामर्थ्य (लिङर्थ आदि) अर्थमें भी सूत्र लगे। कहां तक-अधिकारकी जिज्ञासामें ण्वुल्तृचौ सूत्रसे पहले तक। **कर्तरि**—कर्ता अर्थमें कृत्प्रत्यय हो अर्थ निर्देशोऽयं करोति क्रियाजन्यफलमुत्पादयति प्रदर्शयति कृत् कारकं काल कारक क्रियाका खोलक साधुत्वप्रदर्शक कृदन्त है। सभी प्रत्यय धातुसे कर्ता अर्थमें प्राप्त है तव्यत् अनीयर आदि भी कृत्संज्ञक है। कर्तामें वे भी प्राप्त अपवाद सूत्र—**तयोरेव**-तत्शब्दसे (लः कर्मणि च भावे) सूत्रके भावकर्मका परामर्श-दाता है। कृत्यसंज्ञक, क्त, खल् कृत्य क्त खल् आदि अर्थवाचक प्रत्यय भी भाव क्रिया अर्थमें, कर्म अर्थमें ही हों कर्तामें नहीं। (एवकारः कर्तृयोग व्यवच्छेदार्थः) **तव्यत्**—तव्य अनीयर (द्वन्द्व) प्रत्यय धातुसे हो। वे कृत्यसंज्ञक या कृत्संज्ञक हों। त इत् तित्स्वरितंके लिए। र इत् उपोत्तमं रितिसे मध्योदात्तार्थं। केवल तव्य प्रत्यय आद्युदात्त वास्ते। त्वम् एधस्व एधेथाः तुम बढ़ो बढ़ते रहो एध वृद्धौ। एध धातुकी वृद्धि क्रिया (भाव) में तव्यत्, इट् एधितव्य त्वया तुमसे बढ़ना, वृद्धि होना चाहिए त्वत्कर्तृका एधनक्रिया। कर्ता अनुक्त तृतीयाका पात्र। इसी व्युत्पत्ति-भाव अर्थमें अनीयर भी हुआ **एधनीयं**-वलादि आर्धधातुक परे न होनेसे न इट्। लः कर्मणि-सूत्रसे आया हुआ भाव अर्थ (असत्वभूत) लिङ्गसङ्ख्या

चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया। (केलिमर उपसङ्ख्यानम्) पचेलिमा माषाः-पक्तव्याः। भिदेलिमाः सरलाः-भेतव्याः। कर्मणि प्रत्ययः। (वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च) वसतीति वास्तव्यः। कृत्यचः ८।४।२९। उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्याच उत्तरस्य कृत्स्थस्य नस्य णत्वं स्यात्। प्रयाणीयम्। 'अचः' किम्? प्रमग्नः। निर्विण्णस्योपसङ्ख्यानम्, निर्विण्ण।। णेर्विभाषा।८।४।३९। उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य ण्यन्ताद्विहितो यः कृत्त-

शून्य है। जब लिङ्गर्थ क्रिया असत्व है उसीके परामर्शसे तव्यत् आदि होने पर लिङ्ग संख्या कैसे जुड़े? तब कहा भाष्यका सिद्धान्त है कि भावमें प्रत्यय होनेपर जहां द्विवचन बहुवचन संभव नहीं वहां स्वाभाविक एकवचन होता है क्लीबत्वं नपुंसकलिङ्ग एकश्रुति, स्वसर्वनाम लिङ्गसर्वनाम भी होते हैं।

कर्मणिका उदाहरण (त्वं धर्मं चिनु। चिनुयाः वा) तुम धर्मको संकलित-चुन चुन-कर संग्रहीत करो इति कर्तरि प्रत्ययः, धर्म ही कर्म है। चि धातोः कर्मणि तव्य चेतव्यः चयनीयो-वा चिधातुसे तव्य गुण स्वादि। चेतव्यः। अनीयर गुण ए-अय चयनीयः धर्मः। तुमसे धर्म चुना जाय जो कर्म है। (वा) वस-धातुसे तव्यत हो कर्तामें वह णित मान्य हो वार्तिक है। वसति इति वास्तव्यः-निवासकर्ता वस धातोः तव्य, णित्से उपधावृद्धि (वा) धातुसे केलिमर-प्रत्यय कहें भाव या कर्म अर्थ में। क, र इत, एलिम शेष, सः माषान्पचति पचेत् वा। उरदको पकाये इति तेन माषाः पचेलिमाः। पच धातोः कर्म अर्थे केलिमर। अनुबन्धलोपे। पच एलिम गुण पचेलिमः पचेलिमौ पचेलिमाः पक्तुं योग्याः पक्तव्याः पकाने योग्य है ते सरलान् भिन्दन्तु भिन्देयुः इति तैः भृत्यैः सरलाः वृक्षविशेषाः भिदेलिमाः देवदारु सागौन वृक्ष काटे जांय। कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञा स्वादिकार्य। वृत्तिकारने कर्मके कर्ता दशामें वार्तिक माना, किन्तु भाष्यविरुद्ध है जो भेतव्याः विवरणसे देते हैं।

कृत्यचः—उपसर्गमें स्थित णत्वका निमित्त कारण र ष से परे अचके उत्तरमें हो तब कृत्यप्रत्ययमें स्थित नको ण हो। रषाभ्यां नो णः और उपसर्गात्की अनुवृत्ति अचः पञ्चमी असमानपदमें प्राप्त न होनेसे सूत्र पढा। अट्कुप्वाङ् व्यवायेकी भी अनुवृत्ति। त्वं प्रयाः प्रयायाः इति त्वया गंगोदकं प्रयाणीयं-प्रपूर्वक याधातोः कर्मणि अनीयर, प्रया अनीय-कृत्यचः उपसर्ग प्र में णत्वका निमित्त र, उससे परे अच अनीयरका अ। अनीयरमें स्थित नको ण, अचिसे परे न को ण क्यों कहा? प्रमग्नः मस्जू शुद्धौसे क्त। ओदितश्चसे तको न। स्कोः से सलोप, चो कुः प्रमग्न गृहः स गृहं मज्जति स्वच्छं करोति तेन गृहः प्रमग्नः।

(वा०) निर्विण्णः-निर्पूर्वकविदधातुसे क्त (रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः) तको न, पूर्व दको भी न। निर्विण्ण दशामें नको ण हो, पूर्व नको ष्टु ण। यहांका न, अचि परे नहीं, पूर्व नके व्यवधानसे। अतः कृत्यचः से णत्व प्राप्त नहीं (अतः इदं वचनं) परको ण, पूर्वको ष्टु। कृदन्तात्स्वादिकार्य। णेर्विभाषा-उपसर्गमें

तस्थस्य नस्य णो वा स्यात्। प्रयापणीयम्-प्रयापनीयम्। **हलश्चेजुपधात्** ।८।४।३१। हलादेरिजुपधात् कृन्नस्याचः परस्य णो वा स्यात्। प्रकोपणीयम् प्रकोपनीयम्। 'हलः' किम् प्रोहणीयम्। 'इजुपधात्' किम्? प्रवपणीयम्। **इजादेः सनुमः** ।८।४।३२। सनुमश्चेद्भवति तर्हि इजादेर्हलन्ताद्विहितो यः कृत्तत्स्थस्यैव। प्रेङ्खणीयम्। 'इजादेः' किम्? 'मगि सर्पणे' प्रमङ्गनीयम्। **वा निंसनिक्षनिन्दाम्** ।८। ४।३३। एषां नस्य णो वा स्यात्कृति

स्थित णत्वका निमित्त र षसे परे ण्यन्तसे विधान किया गया कृत-प्रत्ययमें स्थित नको ण विकल्प हो। (कृत्यचः) रषाभ्यां नो णः की अनुवृत्ति। अहं प्रयापयानि या प्रयापयेम् इति मया **प्रयापनीयं** (तुलसीदलं) अनीयर के नको विकल्प ण हुआ। या धातुसे णि पुक् प्रयापि-अनीयर। ण्यन्त यापि-से हुआ अनीयरके नको ण विकल्प,

हलश्च—हलन्त धातु हो इच्—इ उ-ऐऔच उपधामें हो तब कृत्प्रत्ययके नको ण हो अचिसे परे। कुप क्रोधे। ते शत्रून् कोपयन्तु क्रोधयन्तु चिढ़ायें इति तैः **प्रकोपनीयं** कुपसे णि आदि (प्रकोपि अनीयर) हलादि धातु है इच् उ या ओ उपधामें है। अचसे परे नको ण, पक्षमें नहीं। हलादि क्यों कहा? ऊह वितर्के सः ऊहतां ऊहेत वा। वह तर्क करे इति तेन **प्रोहणीयं**–प्रपूर्वक ऊह अनीयर। गुण णत्व विकल्प न हो। किन्तु कृत्यचः से नित्य णत्व। इच् उपधामें क्यों कहा? डुवप् बीज सन्ताने, त्वं बीजं वप वपेः, वा, तुम बीजको बोओ इति त्वया बीजं **प्रवपणीयं** प्रवप अनीयर, इच उपधामें नहीं न विकल्प किन्तु नित्य णत्व।

ईजादे--(णेर्विभाषा रुका) कृत्यचः हल आये। सनुमः नुम्सहित हलन्तः, इच उपधा, धातुसे परे कृत्प्रत्ययके नको ण हो, स प्रेङ्खतु इति तेन पुस्तकं **प्रेङ्खणीयं**-इखि गति अर्थमें इदितो नुम। अनीयर णत्व। कृत्यचः से णत्व होता ही तब यह सूत्र नियम करता है कि यदि सनुम धातुसे णत्व हो तो कृत्स्थस्यैव-कृदन्तप्रत्यय रहसे पर ही। तेनेह न—इवि प्रीणने। त्वं इन्व इति त्वया **प्रेन्वनं**—ल्युट-अन। यहाँ णत्व न हो इसलिये नियम है, यह ईजादि है हलन्त है तब कहा नुम ग्रहण अनुस्वार का सूचक है। अट्कुप्वाङ सूत्रमें भी नुम अनुस्वारका सूचक, जहां अनुस्वार नहीं, वहां न णत्व। प्रेन्वनंमें अनुस्वार नहीं, न णत्व। मङ्ग धातु सर्पण सरकना सर्पवत् चलना, त्वं मङ्गतु सर्पवत चलो इति त्वा **प्रमङ्गनीयं** घिसकते हुए चला जाय। इह तु—यहां तो णत्वं स्यादेव होता ही है, तेन प्रोम्भणं, उससे भरा पूरा किया जाना। उम्भ प्रपूरणे धातुसे भावमें ल्यु अन स्वाभाविक अनुस्वार रहते ही णत्व, नतु नुम्स्थानिक। त्वं जलं उम्भ उम्भेः तुम पानी भरो। (वा) **निंस**—निक्ष निंद (नाश नीरस निन्दा) अर्थमें इन धातुओंके नको ण हो। विकल्पसे, कृत्यत्ययपरे। सः निंसतु निंसेत वा इति तेन **प्रणिंसितव्यं** कृत् तव्य परे निंसके नको ण। पक्षे नहि। अहं निन्दानि निंदेयम् इति मया प्रणिन्दितव्यं पक्षे न णत्व। प्रनिन्दितव्यम्।

न भा भू—भादीप्तौ, भू सत्तायां, पूङ् पवने कम गम प्याय वेप धातुओंसे परे

परे। प्रणिसितव्यम्-प्रनिसितव्यम्। न भा-भू-पू-कमि-गमि-प्यायीवेपाम् ।८।४।३४। एभ्यः कृत्स्य णो न। प्रभानीयम्। प्रभवनीयम्। ण्यन्तभादीनामुपसङ्ख्यानम्। प्रभापनीयम्। कृत्यल्युटो बहुलम् ।३।३।११३। स्नान्त्य-

क्वचित्प्रवृत्तिः, क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद्विभाषा, क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

नेन स्नानीयं चूर्णम्। दीयतेऽस्मै दानीयोविप्रः। ऋदुपधाच्चाक्लृपि चृतेः ।४।१।११०। वृत, वृत्यम्। वृध्, वृध्यम्। क्लृपिचृत्योस्तु कल्प्यम्। अचोयत्

कृत्यप्रत्यय अनीयर आदिके नको ण न हो। तो भातां वे दोनों चमकें प्रकाशित हो इति ताभ्यां प्रभानीयं, त्वत्कर्तृका दीप्तिक्रिया। कृत्यचः से प्राप्त णत्वका निषेध। ते भवन्तु भवेयुः तैः भवनीयम्, नको णत्वका निषेध। भादिषु पूञो=ग्रहणं कर्तव्यम्। प्रमाणसे पूञ् पवने ही मान्य (त्वया पवनीयम्) तुमसे पवित्र किया जाय, अनीयरके नको णत्वका निषेध। पूङ् धातुसे णत्व होता ही है। प्रपवणीयः। सोमरस छानने निचोड़ने योग्य है, तुमसे निचोड़ा जाय। पू० अनीयर गुण, अव् ण। (वा) ण्यन्त=णिच् अन्तमें हों ऐसा भा भू पू कमि गमि आदि धातुओंसे भी कृत्प्रत्यय के नको णका निषेध कहें। त्वं प्रभापय प्रभापयेः वा तुम प्रकाश कराओ इति त्वया इति प्रभानीयं। प्रभा धातुसे णि पुक् अनीयर, णिलोप। ण्यन्तसे भिन्न धातुकी प्रकृति होनेसे निषेध प्राप्त नहीं, अतः वार्तिक पढ़ा। णत्व निषेध हुआ।

कृत्य-संज्ञक प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय बहुलं बहून् अर्थात् लाति बहुलं जिस प्रकृतिसे जिन अर्थोंमें प्रत्यय कहें गये, उनसे भिन्न अर्थमें भी प्रत्यय हों। जैसे भाव कर्म कर्तामें कृत्य प्रत्यय कहे गये, अधिकरण अर्थमें ल्युट् कहा गया उससे भिन्न करण सम्प्रदान अपादान आदि अर्थमें भी हो। स चूर्णेन तैलेन वा स्नातु इति तेन स्नानीयं तैलं। जिससे स्नान किया जाय, साधन अर्थमें स्ना धातुसे अनीयर। कृदन्त मानकर स्वादिकार्य। स्नान साधन चूर्ण पाउडर है। वस्तुका दान जिसको दिया जाय वह सम्प्रदान चतुर्थी अर्थमें दा धातुसे अनीयर स्वादिकार्य। दानीयः विप्रः। दानके उद्देश्य अर्थमें अनीयर। अचो—अजन्त धातुसे भावकर्म अर्थमें यत् हो दीङ् क्षये, दयितुं नाशयितुं योग्यं देयं कष्टम् अथवा स दीयतां दयेथा वा इति तेन देयम्—अजन्त दी धातोः कर्मं अर्थे यत्। गुणे स्वादिकार्यं देयम्। जेतु योग्यं जेयम् अथवा त्वं जय जयेः वा इति त्वया जेयं-पापं जि धातोः कर्मं (पाप) अर्थे यत् गुणादि। ऋदुपध—क्लृपूसामर्थ्ये चृतीहिंसाग्रथनयोः को त्याग कर ऋउपधक धातुसे क्यप् हो। वृतु वर्तने वर्तितुं व्यवहारं कर्तुं शक्यं वस्तु, द्रव्यं (वा) वृत्यं—व्यवहारके योग्य वस्तु समाचार। ऋ उपधक वृतधातुसे व्यवहार योग्य अर्थमें क्यप् अनुबन्धलोपे आदि। वृधु वर्धने वर्धितुं उन्नतिं कर्तुं योग्यं वृध्यं बढ़ने लायक अथवा त्वं वर्धस्व इति त्वया वृध्यं। कल्पितुं शक्यं कल्प्यं स। कल्प्तां

।३।१।९१। अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात्। चेयम् जेयम। अज्ग्रहणं शक्यमकर्तुम्। योगविभागोऽप्येवम्, तव्यदादिष्वेव यतोऽपि सुपठ। **ईद्यति** ।६।४।६५। यति परे आत ईत्स्यात्। गुणः। देयम् ग्लेयम्। **पोरदुपधात्** ।३।१।९८। पवर्गान्तादद्दुपधाद्यत्स्यात्। ण्यतोऽपवादः। शप्यम् लभ्यम्। **आङो यि** ।७।१।६५। आङः परस्य लभेर्नुम् स्याद्यादौ प्रत्यये विवक्षिते। नुमि कृतेअदुपधत्वाभावात् ण्यदेव। आलम्भ्यो गौः। **उपात् प्रशंसायाम** ।७।१।६६। उपलम्भ्यः साधुः। 'स्तुतौ' किम्? उपलब्धुं शक्यः उपलभ्यः। **शकिसहोश्च** ।३।१।९९। **शक्यम्**

इति तेन कल्यं। सामर्थ्यके लायक अर्थमें ण्यत् कर्म अर्थं। चतितुं हिंसितुं ग्रथितुं योग्यं चत्यं प्राण लेने या गांठ देने लायक है। चुत धातुसे हिंसा गांठके विषय अर्थ में ण्यत् गुण आदि।

ईद्यति--यत्प्रत्यय परे आदन्तधातुको ईत हो। आतो लोप इटि चसे आत् आया। दातुं योग्यं देयं वस्त्रं वा धातोः कर्म अर्थे अथवा भाव अर्थे यत् जिसके परे आको ईत्व आर्धधातुक परे गुण त्वत्कर्तृका दानक्रिया अथवा दानाश्रयः वस्त्रं। ग्लै हर्षक्षये। ग्लातुं योग्यं ग्लानि कर्तुमर्हम **ग्लेयं**—ग्लै धातोः ग्लानि अर्थे यत् आदेच उपदेशे आत्वे। इत्वे गुणे। ग्लानि क्रिया या वस्तु।

पोर-पवर्ग पफबभम अन्तमें हो **अदुपधात्**=अकार उपधामें हो तो तब भावकर्म अर्थमें यत्, ण्यत् बाधकर। शप्तुमर्हं शक्यं वा शप्यं—शाप देने योग्य सामर्थ्यके भीतर अथवा अहं शपें शपेयं वा इति मया शप्यं शप्यो वा दुष्टः। आक्रोशार्थक शपधातोः शापके योग्य वस्तु अर्थमें यत्। लब्धुं शक्यं अर्हं वा अथवा त्व लभस्व लभेथाः इति त्वया लभ्यं-द्रव्यमस्ति। लभ धातो लाभ वस्तु अर्थे अथवा लाभ क्रिया अर्थे यत्, त्वत्कर्तृका लाभक्रिया या लब्ध वस्तु। पोः किं? पवर्गान्त क्यों पढ़ा? पक्तुं योग्यं शक्यं वा पाक्यं फल। पकने लायक है यत् न हो। पचसे ण्यत्। पवर्गान्त नहीं। अकार उपधामें क्यों? कोपयितुं योग्यं कोप्यं क्रोधके लायक है यत् न हो।

आङो--आङसे परे लभको **नुम हो** यकारादि प्रत्यय विषये। यि में विषय सप्तमी। विवक्षित दशामें आङ्पूर्वक लभ धातोः (पूजानुकूला क्रिया) कर्मणि यत् आलब्धुं शक्यः योग्यः अथवा त्वं गाम् आलभस्व इति-त्वया गौः **आलम्भ्यः** पूजनीय। आङोऽपि नुम्। ण्यत नुम होने पर उपधामें अकार नहीं रहा, पोरदुपधात् नहीं लगा। तित्स्वरितं यतो अनावः से स्वरित आद्युदात्त स्वरमें अन्तर। **उपात्**-उपपूर्वक लभ धातुसे प्रशंसा परोपकारी अर्थमें नुम् हो, यकारादि प्रत्ययकी विवक्षामें। स्तुति प्रशंसा जान पड़ने पर उपलब्धुं शक्यः साधु अर्थमे नुम् ण्यत् उपलम्भ्यः समीपे प्राप्य नुमि कृते उपधायां नहि अकारः न यत्। स्तुति क्यों कहा? उपलब्धुं शक्यः भृत्यः शिष्ट दुष्टो वा **उपलभ्यः**-नुम नहीं, प्रशंसा न होनेसे। पोरदुपधात्से यत **शकि**-और सहसे भावकर्म अर्थमें यत हो ण्यतको बाधकर। शक्तुमर्हं शक्यं शक्तिके भीतर है सोढुं शक्यं सह्यं सहनके योग्य है।

सह्यम् । **गदमद-चर-यमश्चानुपसर्गे** ।३।१।१००। गद्यम् मद्यम् । चर्यम् । **चरेराङि चागुरौ** । आचर्यो देशः, 'आगुरौ' किम् ? आचार्यो गुरुः । यम्यम् । त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा' इत्यादि । नियमे साधुरिति । **अवद्य पण्य-वर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु** ।३।१।१०१। वदेर्नञ्युपपदे 'वदः सुपि-' इति यत्क्यपोः प्राप्तयोर्यदेव, साऽपि गर्ह्यायामेव इत्युभयार्थं निपातनम् । अवद्यं पापम् 'गर्ह्ये' किम् ? अनुद्यं गुरुनाम। पण्यागौः' व्यवहर्तव्या । शतेन

गद मद–चर ये धातु अनुपसर्गक हों क्रिया कर्म अर्थमें यत् । यदि उपसर्ग रहे ण्यत ही हो । जैसे प्रगाद्यं । गदितुं स्पष्टं वक्तुं शक्यं योग्यं वा गद्यं गद्यमें भाव खोलनेकी स्वतन्त्रता रहती है अथवा स गदतु गदेत् वा इति तेन **गद्यं**–उनसे कहने योग्य प्रवचन । गद धातोः उपसर्गरहित दशायां यत् आदि । मदितुं योग्यं हर्षके लायक या क्रिया अर्थमें यत, **मद्यं** । चरितुं खादितुं चदितुं वा शक्यं चर्यं विहार स्थानं, चर धातोः विहरणार्थे यत् आदि । अहं चरामि चरेयं वा इति मया **चर्यं**— चरणस्थानं । गम्यं वा । चर–धातु आङ्पूर्वक हो गुरु अर्थ न हो, तब यत हो जाय आचरितुं विहरणं कर्तुं योग्यः देशः **आचर्यः**-आङपूर्वक चर धातोः विहरणीय स्थान अर्थे यत् । चलनीय । गन्तव्य. । **अगुरौ** क्यों पढ़ा ? यदि गुरु अर्थ खुलता हो तब न यत किन्तु ण्यत् । आचरितुं ज्ञानं प्रापयितुम् अज्ञानं ध्वसंयितु योग्यः शक्यः शुश्रूषणीयः । ण्यन्त उपधावृद्धि । आङ्पूर्वक चर धातोः सेवाकरणानुकूलाक्रिया कर्मणि प्रत्ययः । ननु यम धातोः पोरदुपधात् सूत्रसे यत सिद्ध, यम क्यों पढ़ा ? नियमार्थः । अनुपसर्ग यम धातुसे ही यत हो उपसर्गसे न हो । यथा प्रयाम्यं प्र उपसर्गके रहते न यत, किन्तु ण्यत् ।

अवद्य—पण्य वर्यं (द्वन्द्व) तीनों शब्द गर्ह्यं निन्दा घृणा पणितव्य पण व्यवहारे स्तुतौ च अनिरोध अर्थोंमें भी निपातनसे सिद्ध हों । धातुसाधन कालानां प्राप्त्यर्थं नियमस्य च । अनुबन्धविकाराणां रूढ्यर्थं च निपातनमिति । वदः सुपि क्यप् वदसे यत् होते ही, अवद्यं क्यों पढ़ा ? तब कहा नञ् पूर्वमें रहते वद् धातुसे यत् क्यप् (स्वरे विशेषः) प्राप्त, किन्तु यत् ही हो वह भी गर्ह्य, जिसके उच्चारणसे पाप हो । उभयार्थं निपातन है । न वदितुं योग्यं शक्यं **अवद्यम्** ऐसा पाप कि उच्चारण लायक नहीं, नञ् पूर्वक वदधातोः गर्हितवति अवाच्ये अर्थे यत् स्वादिः गर्ह्यं"। निन्द्य क्यों कहा–**अनूद्यं** न वदितुं योग्यं (वद् व्यक्तायां वाचि) वदः सुपिसे क्यपि (न वद् य) कित्परे वचिस्वपि यजादीनांसे सम्प्रसारण, नलोपो नञः, तस्मान्नुडचि, अनूद्यं अनुच्चारणीयं वचनानर्हं गुरुका नामलेना पाप नहीं किन्तु पुण्यजनक नहीं, कल्याणकामीको वर्जित-अतः कहा (तद्धि न गर्ह्यं) पापजनक नहीं किन्तु उच्चारण के अनर्ह है क्यों है कारण कहे कि **आत्मनाम**=अपना नाम, गुरुका नाम अति कृपण महाकंजूस मक्खीचूसका नाम कल्याणकामना कर्ता न लें । श्रेयः कल्याणं पुण्यं

वर्या कन्या । **वह्यं करणम्** ।३।१।१०२। वहन्त्यनेनेति वह्यं शकटम् । 'करणे' किम् ? वाह्यम्-बोढव्यम् ।**अर्यः स्वामिवैश्ययोः** ।३।१।१०३। 'ऋ गतौ' अस्माद्यत् । ण्यतोऽपवादः । अर्यः स्वामिवैश्योः वा । 'अनयोः' किम्? आर्यो ब्राह्मणः, प्राप्तव्य इत्यर्थः । **उपसर्या काल्या प्रजने** ।३।१।१४०। गर्भग्रहणे प्राप्तकाला चेदित्यर्थः । उपसर्या गौः । गर्भाधानार्थं वृषभेणोपगन्तुं योग्येत्यर्थः । 'प्रजने काल्या' इति किम् ? उपसर्या काशी । प्राप्तव्येत्यर्थः ।

कामयते इति श्रेयस्कामः । ज्येष्ठ पुत्र और पत्नीका नाम न लें, इति धर्मशास्त्र पण्या–त्वं गां पणस्व पणथाः इति त्वया गौः पण्याः पणितुं व्यवहर्तुं योग्या । दुग्धार्थं सेवाकरणं व्यवहारः, क्रय विक्रयार्थो वा । पण् व्यवहारे स्तुतौ च धातुसे व्यवहार अर्थमें यत् निपातनसे । यद्यपि धातुका दो अर्थ परन्तु पण्यशब्दके प्रयोग बलसे व्यहर्तव्ये एव रूढत्वात् । व्यवहारार्थक एव गृह्यते क्रेतव्याः । यदि व्यवहार अर्थ न हो किंतु स्तुति अर्थ हों तब न यत् किन्तु ण्यत् पणितुं स्तोतुम् अर्हं योग्यम् अर्थे ण्यत् उपधावृद्धिः पाण्यम् । स्तुतियोग्य प्रशंसनीयम् । अनिरोधः—अनियमः प्रतिबन्धो नास्ति ऐसे विषयमें वृङ् संभक्तौ धातुसे अप्रतिबन्ध अर्थमें यत निपातनसे हो । यथा शतेन वर्या—कन्या सैकड़ोंसे वरण विवाह करने योग्य है । शत शब्दो अनियतपरः पुरुषशतेन परिग्रहीतुं योग्या । अनेनैव वरणीया इति नियमो नास्ति । कन्या-यत्र सदा कन्यात्वं तिष्ठति, पुरुषदर्शनेन स्त्रीत्वमायाति द्रौपदीतारामंदोदरी कुन्ती इव । सम्यक् भक्तिः सम्भक्ति अर्थमें यत् गुण टाप् । अन्या–नियमवती हो एकेन अनुरूपेण वरेण वरणीया क्यप् एतिस्तु शास्वृ-से क्यप् तुक् । नियम निश्चय से न यत् । स्त्रीलिङ्ग पुलिङ्गमें वार्या ऋत्विजः । मात्रमें वरणीय होनेसे ण्यत् (सुग्रीवो मम वर्योऽसौ) पुलिङ्गमें भी यत् इति भट्टिः ।

वह्यं—प्रापणर्थक वह धातुसे करण साधन अर्थमें निपातनसे यत् हो । ण्यत् बाधकर । वहन्ति अनेन जिस साधनसे ढोया जाय गाड़ी सगड़ी शकटं, वहधातोः प्रापणसाधाने अर्थे यत् स्वादि । वह्यं-करणं किम् साधन अर्थ क्यों पढ़ा, कर्म (ढोवे की वस्तु, अर्थमें यत् न हो, बोढुं शक्यम् अर्थे वह धातोः ण्यत् । अनुबन्धलोपे उपधावृद्धि । मया वोढव्यं धान्यं (वह तव्य) दशायां वहिके अको ओत् ह-ढ त-धःढ ढलोपः अर्यः—स्वामी वैश्य अर्थ खुलता हो ऋगतौ धातुसे यत् कहें । अतुं प्राप्तु अर्हः अर्यः यत् हुआ गुण आदि । गमनके योग्य स्वामी अर्थ, उसका वस्तुविक्रेता भी अर्थ, वस्तु प्राप्तव्य है । अनयोः किं स्वामीवैश्यसे अन्य अर्थमें यत् न हो अर्तुं गन्तुं योग्यः आर्यः ब्राह्मणः । ण्यत् वृद्धि हुये, न यत् । (उपसर्या) उपपूर्वक सृ धातुसे हो ण्यत् बाधकर निपातनसे । गर्भग्रहणे–प्राप्तकाला स्त्री पशुं व्यक्ति विवक्षित । प्रजननं प्रजनः गर्भग्रहणं भावे घञ, प्राप्तः कालो अस्या काल्या तदस्य प्राप्तम् अनुवर्तमाने कालाद्यत् चेत्का अध्याहार, गर्भधारण समय काल यदि प्राप्त हो अर्थ में उपपूर्वक सृ धातुसे य, गुण टाप् उपसर्या–गर्भ धारणाय वृषभसमीपं प्रपायितुं योग्या । प्रजने काल्या अर्थ क्यों पढ़ा ? तीर्थ प्राप्ति समयमें यत् न हो । उपसार्या

अजर्यं सङ्गतम् ।३।१।१०५। नञ्पूर्वाज्जीर्यतेः कर्तरि यत् सङ्गतं चेद्विशेष्यम् न जीर्यतीति अजर्यम्। **वदः सुपि क्यप् च** ।३।१।१०६। उत्तरसूत्रादिह 'भावे' इत्यपकृष्यते। वदेर्भावे क्यप् स्यात्, चाद्यदनुपसर्गे सुप्युपपदे। ब्रह्मोद्यम्-ब्रह्मवद्यम्। ब्रह्म वेदः तस्य वदनमित्यर्थः। **भुवो भावे** ।३।१।१०७। क्यप् स्यात्। ब्रह्मणो भावो ब्रह्मभूयम्। **हनस्त च** ।३।१।१०८ अनुपसर्गे सुप्युपपदे हन्तेर्भावे क्य-प्स्यात्तकारश्चान्तादेशः। ब्रह्मणो हननं ब्रह्महत्या। एति-

---

पहुंचने, प्राप्त करने, सेवाके योग्य सामीप्य मुक्तिके योग्य काशी। सृ से ण्यत् वृद्धि टाप्। **अजर्य**—नञ् पूर्वमें हो जॄ वयोहानौ धातुसे कर्ता अर्थमें यत् हो। सङ्गतं मैत्री संगमः मिलना संयच्छति प्राप्नोति संपूर्वक गम धातुसे कर्तामें क्त। या नपुंसके भावे क्त, मिलना या मित्रता अर्थ, विशेष्य-प्रधान न जीर्यति नाश ह्रास क्षीणता न होती हो अर्थमें (न जॄ य) गुण, नेलोप स्वादि। मित्रता क्षीण नही होती। जरितृ न भवति। अजर्यं। भट्टिप्रयोग भी प्रमाण—तेन हे राम ? तेन आर्येण=अजर्यं नाशरहितं संगतं मैत्रीं व्रतं कुरु। इस वाक्यमें भी कर्ता अर्थमें यत्।

वदः सुपि-उत्तर सूत्र भुवो भावेसे भावे खींचकर आया। वदः सुपिमें अनुपसर्ग ग्रहणं भव्य है, वद धातुसे भावे=व्यक्त वाणी बोलने अर्थमें क्यप्, यत् भी हो। बिना उपसर्गका सुबन्त उपपद-पूर्वमें रहते। ब्रह्मणः वेदस्य वदनम् उच्चारण सुबन्त ब्रह्म पूर्वमें रहते वदधातुसे भावे-स्पष्ट उच्चारणक्रिया अर्थमें क्य, अनुबन्धलोपे, किति परे वचिस्वपियजादीनांसे सम्प्रसारण वको उ, गुणे स्वादिकार्ये **ब्रह्मोद्यं**। जब यत् तब **ब्रह्मवद्यम्**—वेदका उच्चारण। किसीके मतमें भावका अपकर्षण नहीं होता किन्तु कर्म अर्थमें दोनों प्रत्यय तब ब्रह्मका प्रतिपाद्य अर्थमें उपसर्गके रहते ण्यत्, नतु यत्। अनुवाद्यम् पश्चात अनुवादं कर्तुं शक्यम् अपवक्तुं गालि दातुं शक्य अपवाद्यं। बाधके योग्य। उपसर्ग जुड़ा है ण्यत् हुआ, न यत्।

भुवो-उपपद रहते भू धातुसे भाव होना क्रिया अर्थमें क्यप्। वेदके भाव ज्ञान ब्रह्मभूयं वेदका विचार होना, भूसे भावमें क्यप् गुणनिषेध। सुपि पूर्वमें रहते ही क्यप अन्यथा यत्। भूय गुण अव **भव्यम्**, न उपपद रहा, न क्यप हुआ, न गुण निषेध। वान्तो यि अवादेश, उपसर्ग न रहे तभी क्यप्। प्रभावः **प्रभव्यम्**। प्र उपसर्ग रहते न क्यप् किन्तु घञ् यत्।

हनस्त—उपसर्ग छोड़कर सुबन्त पदपूर्वमें हो तब हन् धातुसे हनन क्रिया अर्थ में क्यपि, अन्त (न) के स्थानमें त आदेश हो। ब्राह्मणकी हिंसा ही **ब्रह्महत्या**। हन् हिंसागत्योः हिंसा क्रिया अर्थमें ब्रह्मसे क्यपि। नको त आदेश। टाप् स्त्रीलिङ्ग में लोक प्रमाण। भावे क्यों पढ़ा ? घात्यो वृषलः। हन्तुं योग्यः वध्यो वृषलः भ्रष्टः आततायी च। अनुपसर्ग क्यों पढा ? प्रघातः। हत्या (उपपद बिना) असाधु है। एति-इण गतौस्तु शास अनुशासन अर्थमें, वृञ वरणे, दृ आदरे, जुषी प्रीतिसेवनार्यो

स्तु-शास-वृ-दृ-जुषः क्यप् ।३।१।१०९। एभ्यः क्यप्स्यात् । ह्रस्वस्य पिति कृतितुक् ।६।१।७१। इत्यः स्तुत्यः । 'शास इदङ्हलोः' शिष्यः 'वृ' इति ग्रहणं न, वृङः' वृत्यः । वृङ्स्तु 'वार्याः', ऋत्विजः । आदृत्यः जुष्यः । पुनः क्यब्रुक्तिः परस्यापि ण्यतो बाधनार्था अवश्यस्तुत्यः । मृजेर्विभाषा ।३।१।१३। मृजे क्यब्वा स्यात् । पक्षे ण्यत् । मृज्यः । ऋहलोर्ण्यत् ।३।१।१२४। ऋव-

---

इन धातुओंसे कर्ममें क्यप् हो । सुपि अनुपसर्ग भाव तीनों रुक गये । इङ इक् धातु असमान्य अधिपूर्वक होनेसे ।

रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम् । अधिपूर्वक इङ धातुसे यत अध्येयंमें क्य कैसे ? केचित् (इण्वदिक वक्तव्यं) मतमें क्यप् अधीत्या (स्मर्तव्या) माता । ह्रस्वसे परे तुक् त हो, पिति पइत्-कृति प्रत्यय परे । ऐतुं गन्तुं प्राप्तुं वा योग्यः शक्यः इत्यः गत्यर्थक इधातोः कर्म अर्थ गमनविषय (देश स्थान) अर्थे क्यप्, ह्रस्व इ से परे तुक् त आदि । (इत्यः) ज्येयंमें न क्यप् किन्तु यत। इङ् गतौ दिवादिका होनेसे। स्तोतुं परगुणं गातुं योग्यं शक्यं स्तुत्यः विष्णुः प्रशंसनीय कार्य करना । प्रशंसनीयानुकूलक्रियावाचक स्तुधातुसे प्रशंसा गुणगानका विषय विष्णु आदि अर्थमें क्यप् तुक् स्वादिः । अनुशासितुं योग्यः शासनविषयः (शिष्यः) शासु अनुशिष्टौ अनुशासन क्रियावाचक शासधातो शासनविषयः शिष्य इत्यर्थे ण्यत शिष्य शब्दार्थं कृदन्त प्रातिपदिककार्य कर्ता अर्थेषु। (वा) वृसे वृञो वरणे धातु मान्य नतु वृङ सम्भक्ती इति वार्तिकार्थः वरितुं स्वीकर्तुं शक्यः वृत्य—वरः पडितो वा वरणार्थक वृधातोः कर्मणि क्यप् सर्वत्र कइत्का फल गुणनिषेध है । तुक् वरणयोग्य (वृत्यः) सम्यक्भक्ति संभक्ति पूर्ण आस्था । निष्ठा श्रद्धाके अनुकूल क्रियावाचक वृङ् धातुसे ण्यत् वृद्धि वार्या पूर्णा श्रद्धाका विषय, अवश्यभजनीया । य ऋत्विजः मन्त्रपाठकः अवश्यण्योसे वर्यमें यत् । ईडबन्धके सह साहचार्यसे आत्मनेपद मानें । आदर्तुं योग्यः आदृत्यः आङ् पूर्वक दृधातोः समादर विषय अर्थे य-त् । ज्योषितुं योग्यः शक्यः जुष्यः—जुष धातोः प्रीतिसेवाविषय अर्थे क्य आदि जुष्यः छात्रः । जब तृच् तब जोषिता । ननु वदः सुपिसे क्यपि आता ही पुनः क्यप् क्यों पढ़ा ? पुनः क्यप् इसलिए कि परस्यापि=पर शास्त्र होने पर भी ण्यत्को बांधनेके लिए पुनः क्यप् पढ़ा ? यथा अवश्य स्तोतुं परगुणं गातुं शक्यः अवश्यस्तुत्यः अवश्यलाव्यंमें ओरावश्यके का ण्य सावकाश, स्तुत्यः में क्यप्सावकाश । अवश्यस्तुत्यः में दोनों प्राप्त विप्रतिषेधे परं कार्यं के बल पर ण्य न हो, अतः पुनः क्यप् पढ़ा ।

मृजे—मृज् धातुसे विकल्प क्यप् हो पक्षमें णिच् भी । त्वया मृज्यः मार्ष्टुं योग्यः तुमसे स्वच्छ हो अथवा त्वम् मृढि । मृजसे क्यप् कित्से गुणनिषेध स्वच्छता का विषय जब कर्ममें स्वच्छता शुद्धिके लायक वस्तु अर्थमें ण्यत् । उससे परे चजोः—च और जको कुत्व हो घिति ण्यति परे, जको ग । मृजेर्वृद्धिः-मृजधातुके अवयव इक् ऋको आर वृद्धि, स्वादिकार्य मार्ग्यः-पन्था, दुष्टः मार्जनके योग्य है । निष्ठा

र्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत्स्यात् । कार्यम्, वर्ष्यम् । **चजोः कु घिण्ण्यतोः** ।७।३।५२। चस्य जस्य च कुत्वं स्याद्धिति ण्यति च प्रत्यये परे । 'मृजेर्वृद्धिः' मार्ग्यः। निष्ठायामनिटः' इति कुत्वं न । गर्ज्यम । **ओरावश्यके** ।३।१।१२५। उवर्णान्ताद्धातोर्ण्यत स्यादवश्यम्भावे द्योत्ये । लाव्यम् पाव्यम् । अवश्य-लाव्यम् ।

'लुम्पेदवश्यमः कृत्ये, तु काममनसोरपि ।
समो वा हिततयोर्मांसस्य पचि युङ्घञोः' ॥

भव्य-गेय-प्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ।३।४।६८। एते

परे अनिट्को ही कुत्व हो । गर्ज्यम् गर्जनाके योग्य नहि कुत्वं । **ऋहलोः**—ऋवर्ण धातु हलन्तधातुसे योग्य अर्थमें ण्य, उपधावृद्धि कार्यं वृष य गुण वर्ष्यं । न क्वादेः सूत्र पर वार्तिककारका विचार—(चजोः कुः) सूत्र पर निष्ठायामनिट परा (क्त क्तवतु) परे जो धातु अनिट है उसका अवयव च जको कवर्ग न हो, घिति ण्यति परे । इसका फल न क्वादे, अजिव्रज्योश्च, यजयाचरुच-सूत्रमें याच रुचको भी प्रत्याचख्यौ-चाट गये ।

ओरावश्यके—उवर्णान्तधातुसे अवश्य होना अर्थ खुल रहा हो तब ण्यत् कहें। अवश्यं लवितुं लवनं छेदनं कर्तुं योग्यं लाव्यम अवश्य लवाई कटाईके योग्य धान खेत है। अति आवश्यक अर्थ खोलनेके लिये उवर्णान्त लू धातुसे ण्य अचोञ्णिति वृद्धि आव् आदेश कृदन्तत्वात्प्रासंज्ञा स्वादिकार्यं लाव्यं । पूञ् पवने अवश्यं पवितुं पवित्रं कर्तुं स्वच्छ झाड़ने पोछने लायक अर्थमें पू धातुसे ण्य वृद्धि आव आदि। पाव्यम् । अवश्यम् पूर्वात् लूधातोः 'ओरावश्यके' इति ण्यति वृद्धौ आवादेशे सावमि रूपसिद्धिः । **लुम्पेदवश्य**—कृत्यप्रत्यय परे 'अवश्यम्' के मकारका काम और मनस् शब्दके परे 'तुम्' के मकारका, हित और तत शब्दके परे 'सम' के मकारका तथा युङ् और घञ् परक 'पच्' धातुके परे 'मांस' शब्द के अकारका लोप हो ।

भव्यगेय-प्रवचनीय इत्यादि शब्द कर्ता अर्थमें विकल्पसे कृत्यान्त (तव्य अनीयर आदि) प्रत्यय अन्तमें हो, निपातनसे, कर्ता नहीं तब (तयोरेव) सकर्मकधातुसे कर्ममें अकर्मकधातुसे भावमें प्रत्यय हो । भवति इति भव्य उत्सवः जो होता है । कर्तामें भू धातुसे अचो यत (भू य) आर्धधातुकसंज्ञा सार्वधातुकयोः गुण अव्, स्वादि। भव्यः होना है । अकर्मक भूसे जब भावमें यत्, नपुंसक तब भव्यं भवनं अनेन कर्तामें तृतीया होना है। गायति स्वरालापेन गानं करोति यः स गेयः गायकः अय साम्नां सामवेदस्य गेयः गायकः । गासे गान स्वरालापन क्रियाके आश्रय कर्तामें य, गा को ईत्व ईद्यति गी य । गुण साम्नां कृद्योगे कर्मणि षष्ठी । उक्ते कर्तरि प्रथमा । कर्ममें यत होगा गेयम् उक्ते कर्मणि प्रथमा सामा । अनुक्ते कर्तरि तृतीया अनेन इत्यादि । भव्य गेयकी तरह अन्य उदाहरण कर्ता कर्म भावमें प्रत्यय लाभ करें । प्रवक्ति इति प्रवचनीयः प्रवचनकर्ता गुरुः स्वाध्यायस्य वेदके

कृत्यान्ताः कर्तरि वा निपात्यन्ते। भवतीति भव्यः-भव्यमनेन वा। **भोज्यं भक्ष्ये ।७।३।६९।** भोग्यमन्यत्। **वचोऽशब्दसंज्ञायाम् ।७।३।६७।** वाच्यम्। शब्दाख्यायां तु वाक्यम्। **राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याऽव्यथ्याः ।३।१।११४।** एते सप्त क्यबन्ता निपात्यन्ते। राजसूयः राजसूयम्,

---

प्रवक्ता। प्रपूर्वक वच धातुसे व्याख्यान क्रियाके आधार कर्तामें अनीयर। गुरु कर्ता वेद कर्म (प्रवचनीय) व्याख्यानका आश्रय। जब कर्म परश्रवणगोचर फलका आश्रय वेदकर्ता (वेदः गुरुणा प्रवचनीयः) उप समीपे तिष्ठति इति **उपस्थानीयः** शिष्यः गुरोः पार्श्वे। उपपूर्वक स्थाधातुके समीपमें उपस्थित होना, अर्थमें विराजमान कर्तामें अनीयर। जब कर्ममें प्रत्यय हुआ तब शिष्येण गुरुः उपस्थानीयः। जायते इति जन्यः जो उत्पन्न हो युद्धः पुत्रः आदि अनेन, जन्यं जायतेऽसौ। आप्लवते असौ आप्लाव्यः ओरावश्यके आप्लावन जलमय क्रिया कर्तामें ण्य। अनेन **आप्लाव्यम्।** आपतति असौ आपात्यः अतिथिः रोगः। ऋहलोः से ण्यत् जब कर्ममें प्रत्यय अनेन आपात्यं। सत्र क्रमानुरोधसे (शकि लिङि च) जो पूर्वमें व्याख्यात है। वोढुं शक्यः होनेमें समर्थ व्यक्ति।

वच-धातुको कुत्व नहीं होता, ण्य परे। शब्दोच्चारण न हो तब वक्तुं शक्यं **वाच्यं** वस्तु (मनमें विचारमात्र) ण्यका अर्थ। यदि शब्दसंज्ञा वर्णपद वाक्य रूप होगा तब कुत्व हो जायगा। वक्तुं योग्यं वाक्यं सुप तिङ समुदायः। एक तिङ् वाक्यं साकांक्ष्यपद समुदायः। यज याच सूत्रमें प्रवच पढनेकी शक्तिसे कुत्व निषेध होता है। **भोज्यं**—भक्ष्य खाने-पीनेकी वस्तु अर्थमें ण्य परे चजोःसे कुत्वका निषेध का निषेध हुआ। भोजन माने वस्तु विवक्षित। खरविशद कठोर विस्तृत आहार नहीं। **भोज्या**-यवागू भुजसे खानेकी वस्तु अर्थमें ण्य, गुण, कुत्व निषेध। यदि भक्ष्य न हो किन्तु उपभोगकी वस्तु भवन पर्यङ्क वाहन वस्त्रादि, तब कुत्व होगा भोक्तुं योग्यमर्हं वा **भोग्यम्** उपभोगकी वस्तु पालनीयं।

राजसूय-आदि सात शब्दसे निपातनसे क्यप् हो, सूत्रमें स्वीकृत शब्दके अनुकूल प्रकृति प्रत्ययकी कल्पना निपातन है। राज्ञा सवितुं योग्यः **राजसूयः** यज्ञविशेषः। राजासे सातव्यः स्नान लेपन अभिषेकके द्वारा सिद्धः यज्ञः। राजसू से क्यप् दीर्घ अथवा रस निष्पत्यर्थं सोमलतानां कुट्टनं अभिषवः उसकी नालीसे सिद्ध यज्ञ अथवा लता स्वरूप सोमका नाम राजा। (राजानं क्रीणाति) सोमलता खरीदता है स राजा सोमः (षूञ् अभिषवे) सूयते कण्डयते कूटा जाता है। उपयोगके लिए यस्मिन्यज्ञविशेषे अधिकरणे—सोम कुट्टन क्रियाका आधार अर्थमें क्यप्। यद्यपि कर्तरि कृत्के अधिकारसे कर्तरि क्यपि उचित, अधिकरणे अर्थ कहांसे आया। निपातनसे, पढ़नेकी शक्तिसे, दीर्घ भी। कृत् या कृदन्तमें अकृत्सार्वधातुकयोः नहीं लगता क्यप् दीर्घ दोनोंका कारण (निपातनं रूढ्यर्थमपि) राजन् पूर्वक सु धातुसे आधार अर्थमें य दीर्घ स्वादि०। अर्धर्चादिगणमेंमें पढ़े होनेसे वा टच्। राजसूयम् सरति गच्छति

भिद्योद्ध्यौ नदे ।३।१।११५। भिदेरुज्झेश्च क्यप् उज्झेर्धत्वं च। भिनत्ति कूलं भिद्यः। उज्झत्युदकम् उद्ध्यः। 'नदे' किं? भेत्ता, उज्झिता। **पुष्य-सिध्यौ नक्षत्रे** ।३।१।११६। अधिकरणे क्यब्निपात्यते। पुष्यन्त्यस्मिन्नर्थाः

आकाशे इति **सूर्यः** आकाशमार्गेण सरणशीलः। सृगतौ धातुसे सरणं क्रियाका आश्रय कर्तामें क्यप् सृ-य। निपातन=सूत्रमें स्वीकृतिसे डाच् रपर, हलि च दीर्घ आदि **सूर्यः**। अथवा (सू प्रेरणे) तुदादि सुवति (कर्मणि) प्रेरयति लोकान् इति सूर्यः उदयकालमें लोग अपने कार्य नित्य नियमादिके लिए प्रेरित होते। क्यप् होने पर रुट् र भी निपातनसे।

मृषा उद्यते उच्यते इति **मृषोद्य**-झूठ कथन। मृषा पूर्वक वद् धातुसे कर्म व्यर्थ बोलनेके विषय अर्थमें नित्य क्यप्। अतः पक्षमें यत् नहीं (मृषा वद् य) दशायां किरपरे वचिस्वपियजादीनां सूत्रसे वको उ सम्प्रसारण, गुणे कृदन्त प्रा० संज्ञा स्वादि०। विशेष्य प्रधानके आधीन है। मृषोद्याः सौन्दर्यगुणाः भवन्ति। रोचते प्रीणाति रुच्यः— रुच धातुसे रुचना क्रियाके कर्तामें क्यप् फल आदि। गुप् धातुसे क्यप् हो आदि अक्षर गको क हो। संज्ञा होने पर। सुवर्ण सोना चाँदीके अतिरिक्त धनका नाम कुप्यम्। रक्षणीयं हेमरूपे-कृताकृते ताभ्यां तदन्यत्कुप्यम्। गुपसे क्यप् गको क, सभी धन कुप्यं है। सोना चांदी गोप्यं। न क्यप् अतः गुण। कृष्टे कृष्ट प्रदेशे स्वमेव पच्यन्ते फलन्ति ये ते **कृष्टपच्याः** जोते खेतमें जो स्वयं पकते हो यवाः गोधूमाः चणकाः शालयः। कालः यवान् पचति किं कालेन यवाः स्वमेव पच्यन्ते यहां कर्म यवान् कर्ता बना उसी अर्थमें क्यप पच्से जस आदि। कर्मकर्तामे क्यप्। यदि शुद्ध कर्म हो तब कृष्ट पच् ण्यत् उपधावृद्धि चजोः कुः कृष्ट पाक्याः यवाः। न व्यथते पीडितो भवति इति अव्यथ्यः यहां भी क्यप् निपातनसे। कर्तामें दुखी नहीं। **भिद्य—उद्ध्य**=नदविशेष अर्थ खुलता हो। कर्तामें क्यप् निपातन। भेदन अर्थमें तट तोड़नेका विषय महानद भीषणबाढ़का विषय अर्थमें क्यप्। भिद्यः भेदनानुकूलव्यापाराश्रयः। उज्झति जलको उछाले उलीचे फैलाये उद्ध्यः। उज्झसे क्यप् झको ध भी निपातनसे। नदे क्यों कहा? भिनत्ति इति भेत्ता मनुष्यः पशुर्वा, उज्झिता जल उलीचने वाला नद अर्थ नहीं अतः न क्यप्।

पुष्य—सिद्ध्य नक्षत्र अर्थ खुलता हो, तब निपातनसे अधिकरणमें क्यपकी कल्पना करें। पुष पुष्टौ पुष्यन्ति पुष्ट होते है धान खेती रूप अर्थ जिसमें वह नक्षत्र पुष्यः। पुष्टि अर्थवाचक पुष धातुसे धान्यादि पुष्टके आधार काल अर्थमें क्यप् स्वादिः सिद्ध्य। जिसमें मनोकामना सिद्ध हो अर्थमें क्य। नक्षत्र क्यों पढ़ा? पोषणं पोषः स्वास्थ्यम् अस्ति अस्मिन् पयः घृतं सेधः सिद्धि सफलता अस्ति अस्मिन् सेधनम् अधिकरणे ल्युट। पुष्ये तु सिद्धतिष्यौ इत्यमरः। **विपूय**—विनीय जित्य ये शब्द मुञ्ज कल्क हलि अर्थमें क्यप् अन्त निपातनसे मान्य। नी प्रापणेके साथ शप् धातु पसन्द। विशेषण पवितु पवित्रं स्वच्छं कर्तुं शक्यः। मूंज या सन् रस्सी बरारी पगहा डोरी आदि बनानेके लिए शोधन-साफके लायक है। विपूर्वक पु धातुसे मुञ्ज रस्सीका साधन अर्थमें निपातनसे क्यप्। विनीयः—विशेषेण नेतुं

पुष्यः । सिध्यन्त्यस्मिन् सिध्यः । विपूय-विनीय-जित्या मुञ्ज-कल्क-हलिषु पूङ्नीजिभ्यः क्यप् । विपूयो मुञ्जः । विनीयः कल्कः । जित्यो हलिः । विपव्यम्, विनेयं जेयम्। प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ।३।१।११८। छन्दसीति व्यक्तव्यम् । प्रतिगृह्यम् । अपरिगृह्यम्। लोके तु प्रतिग्राह्यम् । अपिग्राह्यम् । पदास्वैरिबाह्यापेक्ष्येषु च ।३।१।११९। अवगृह्यम् । प्रगृह्यं पदम् । अस्वैरी परतन्त्रः । गृह्यकाः शुकाः । ग्रामगृह्या सेना। आर्यैर्गृह्यते-आर्यगृह्यः तत्पक्षाश्रित । विभाषा कृवृषोः ।३।१।१२०। क्यप्स्यात् । कृत्यम् वृष्यम् । युग्यं च पत्रे ।३।१।१।१२१। पत्रं

प्रापयितुं विनष्टं कर्तुं शक्यः कल्कः । पिष्ट औषधिविशेषः चूर्णं दवा पाउडर कल्क है । अथवा पापं कल्कः शोधनीय, पापे अपि प्रसिद्धः । तपो न कल्को अध्ययनं न कल्कः, ताम्येव भावोपहतानि कल्कः इति भारते दर्शनात् । कल्कः पापाशये पापे दम्भे विट्किच्चो इति कोशः । जि अभिभवे दूसरेको रगड़ने अर्थमें क्यप् तुक् । जित्यः । हेंगा पाटा बलसे खीचने लायक, कृष्ट-जोते खेतको समतल करनेकी मोटी लकड़ी । अन्यत्र जहां अन्य अर्थ हो स्थलं विपव्यं खलं स्वच्छ करें, बिनेयं गंगा जलम् । जेयं मनः जीतने योग्य ।

प्रति--अपि पूर्वमें हो ग्रह धातुसे क्यप् हो, केवल छन्दसि वेदमें कहें । प्रतिग्रहीतुं शक्यं प्रतिगृह्यं=प्रतिग्रह, दान लेने लायक है । ग्रहः उपादाने लेने अर्थमें ग्रह धातुसे क्यप् वचिस्वपियजादीनांसे सम्प्रसारण रको ऋ, अपि ग्रहीतुं शक्यं अपिगृह्यं दान लेने योग्य । यह क्यप् वेदमें ही होता है । यथा मत्स्य न प्रतिगृह्यं तस्मान्नापिगृह्यं । यदि ऐसा वैदिकप्रकरणमें पढ़ते यहां क्यों ? तब कहा लोकमें ण्यत्, उपधावृद्धि होकर प्रतिग्राह्यं। कित् नहीं न गुणनिषेधः । पद-अस्वैरी वाह्या पक्ष्य इन अर्थोंमें ग्रहधातुसे क्यप । पदविषयमें सन्निकर्षं ग्रहः का अर्थ । अव ग्रहीतुम् अवगृह्यं पदं । समस्त एकार्थीभूत पदका विच्छेद अवग्रहः है । यस्य पदस्य अवग्रहः विच्छेदः क्रियते तत्पदं पाठकाले किंचत्कालमवसानं पदम् अर्थ खुल रहा है । उसका सूचक क्यप् कित्परे गुणनिषेध । एवं प्रकर्षेण यथा तथा रूपेण ग्रहीतुं शक्यं प्रगृह्यं यस्य प्रग्रहः (सन्धेः अभावः) अचोः परस्परम् अविकारः । प्रगृह्यसंज्ञा विहिता तत्प्रगृह्यमिति वृत्तिः, अवयवधर्मं समुदायमें है । प्रातिशाख्यमें पद प्रसिद्ध । स्वेन स्वेच्छया ईरितुं चलितुं भ्रमितुं शीलं स्वाभावो अस्य स्वैरी स्वतन्त्रः स्वेच्छाचारी । स्वादीरेरिण्यो वृद्धि । न स्वैरी=परतन्त्रः पिंजड़ेमें बंधा हुआ तोता । इस धातुसे पराधीन विवश अर्थमें क्यप्, कित्परे सम्प्रसारण । गृह्याः परतन्त्रीकृताः शुका अनुकम्पिताः गृह्याः गृह्यका । अनुकम्पायांकन् पालनपोषणकी कृपा कन्का अर्थ । गृहासक्ताः पक्षिमृगाश्छेकास्ते गृह्यकाश्चते इत्यमरः । ग्रामात् बहिर्भूता सेना ग्राम गृह्यका । गृहसे बाहर अर्थमें क्यप् । जो स्त्रीलि निर्देश=उच्चारणसे पुंसि-नपुंसकसे बाहर अर्थमें न क्यप् । पक्षे भवः पार्टी सम्प्रदायका जो हो वह पक्ष दिगादि यत् अर्थोंसे स्वीकारा जाय आर्यगृह्या पक्ष सम्प्रदाय आश्रम वाला ।

वाहनम् । युग्यो गौः । अत्र क्यप्कुत्वं च निपात्यते। अमावस्यदन्यतरयाम् ।३।१।१२२। अमोपपदाद्वसेरधिकरणे ण्यत् वृद्धौ सत्यां पाक्षिको ह्रस्वश्च निपात्यते। अमा सह वसतोऽस्यां चन्द्राकौं अमावास्या-अमावस्या। अग्नौ परिचाय्यो-पचाय्य समूह्याः ।३।१।१३१। अग्निधारणार्थे एते साधवः, क्रतौ कुण्डपाय्य-सञ्चाय्यौ ।३।१।१३०। कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् सोमः कुण्डपाय्यः क्रतुः, सञ्चीयतेऽसौ सञ्चाय्यः। चित्याऽग्निचित्ये च।३।१।१३२। चीयतेऽसौ चित्याऽग्निः। अग्नेश्चयनमग्निचित्या। इति कृदन्तेकृत्य प्रकरणम्।

विभाषा--कृ वृष धातुसे योग्य शक्य अर्थमें क्यप् विकल्पसे। ऋदन्तसे ण्यत्, ऋ उपधा (वृष) से नित्य क्यप् प्राप्त, विकल्पके लिये सूत्र. कर्तुं योग्यं सन्ध्यावान्दनादिः कृत्यं करने योग्य। कृसे पक्षमें क्यप् य तुक आदि। वर्षितुं योग्यं वृष्यं बढ़ने लायक। यहां भी पक्षपाती क्य। जब न क्य तब। युग्यं--युजधातु पत्रे वाहन गाड़ी घोडा बैल आदि साधन अर्थमें क्यप् हो, कुत्व भी निपातनसे। यतो अपवादः। पतन्ति भारं वहन्ति गच्छन्ति नयन्ति अनेन दाम्नीशस-सूत्रसे साधने अर्थे ष्ट्रन्, योजयितुं योग्यः युग्यो बैल जोतने लायक खींचकर ले जानेसे। युजसे य। होने लायक अर्थमें कुत्व जको ग। जब वाहन शकट गाड़ी अर्थ होगा तब नपुंसक युग्यं। यद्यपि रथ युग प्रासङ्गसे वहति अर्थमें यत् करके युग्यः बनता तथापि ण्यत् रोकनेके लिये सूत्र उपयोगी। ण्यत् होता गुण गोकर योग्यः गौः बनता।

अमावस्या—अमा (सह अर्थमें) पूर्वपद हो वस धातुसे आधार अर्थमें ण्यत्। वृद्धि होने पर पक्षमें ह्रस्व भी हो निपातनसे। अमा सह अर्थमें, चन्द्र सूर्य साथमें हों जिस तिथिमें वह **अमावस्या**—अमावससे निवासके आधार तिथि अर्थमें ण्यत्। उपधावृद्धि विकल्प ह्रस्व टाप्। पक्षे न ह्रस्व। अमावास्या। प्रसङ्गवश पुनः पढ़ा

क्रतौ—यज्ञ विशेषमें कुण्डपाय्य प्रयोग निपातनसे कल्पित (प्रकृति प्रत्ययसे सिद्ध) माने जायं (यत् हसरुकैः चमसैः भक्षयन्ति तदेवं कुण्डं) इस श्रुतिप्रमाणसे कुण्डेन पीयते सोमरसः कूड़ी भरकर पिया जाय, जिस सत्र विशेषात्मक यज्ञमें। तृतीयान्त उपपद रहते पीनेका आधार कुण्ड अर्थमें ण्यत् वृद्धि आय निपातनसे। संचीयते यज्ञसामग्री संभृयते अस्मिन्। अथवा कर्मणि यत् सञ्चाय्यः यज्ञ किसीमें होगा। क्रतु न कहते कुण्डपानं सञ्चेयं न बनते। **अग्नौ**--अग्नि अर्थ खुलता हो परिचाय्य उपचाय्य समूह्य निपातन (सूत्रमें स्वीकारसे) कल्पित हो अग्निशब्दः इष्टकारचित स्थण्डिलविशेषे बनते (इष्टकाभिरग्निं चिनोति इति श्रुतेः। इष्टका कृत चयने न अग्न्याख्य स्थण्डिलं निष्पादय। अग्नि धारण अर्थमें स्थल विशेष भट्ठा पंजाबी ईट पकनेका स्थल अर्थमें साधु माने जायं (अग्निः वैश्वानरो यन्मृदा चिनोति तस्मादग्निरुच्यते) परिचीयते इष्टका परिपक्वार्थम् आनीयते अस्मिन्स्थले परिपवंक चिसे ण्य आदिवृद्धि। एवं उपपूर्वक चिसे कर्मणि ण्य आया। सम्पूर्वक

अथ पूर्वकृदन्तप्रकरणम्

ण्वुल्तृचौ ।३।१।१३३। धातोरेतौ स्तः । कर्तरि कृत्' इति कर्त्रर्थे । 'युवोरनाकौ' कारकः कर्ता । **नन्दि-ग्रहि-पचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** ।३।१।१३४। नन्द्यादेर्ल्युर्ग्रह्यादेर्णिनिः पचादेरच् स्यात् । नन्दयतीति नन्दनः । जनमर्दयतीति जनार्दनः । लवणः। गणे निपातनाण्णत्वम् । ग्राही । स्थायी मन्त्री ।

वहसे ण्य सम्प्रसारण उ, दीर्घ निपातनसे । समूह्यं चिन्वीत पशुकामः परिचाय्यं चिन्वीत ग्रामकामः । तैत्तिरीये श्रुतौ प्रसिद्धौ । अन्य अर्थमें यत् गुण परिचेयं संबाह्य दोनो लायक है, संग्रह योग्य है । **चित्य**— अग्निचित्या शब्द अग्नि अर्थमें निपातनसे साधुः मान्य । चीयते असौ उपयोगके लिये संग्रह किया जाय वह अग्नि (अर्थ में) चयनार्थक चि धातुसे कर्मणि (चुननेकी वस्तु) अर्थमें ण्य तुक् निपातनसे नित्यः अग्निका चयन अर्थमें अग्निपूर्वकचिधातुसे ण्य । तुक टाप् लोकानुसारी लिङ्ग ।

(इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकरीटीकायां कृत्यप्रक्रिया पूर्णा ।)

अथपूर्वकृदन्तप्रकरणम्—ण्वुल् और तृच् प्रत्यय सभी धातुसे हों (कर्तरि कृत्) के अधिकारमें कर्ता अर्थ दोनों प्रत्यय हों । वर्तमानकालसे भिन्न कालमें प्रयोग न होनेसे वर्तमानकालमें ही होते हैं प्रायः पूर्वकृदन्त भर कर्ताका प्राधान्य चूंकि कर्तरि कृत पूर्वमें पढ़ा है, अतः पूर्वकृदन्त नाम पड़ा, उत्तरकृदन्त भावप्रधान है उत्तरमें भावकर्मणोः के होनेसे । प्रस्तुत धातुकी क्रियाका आधार कर्ता है, अतः अनन्त धातु, अनन्त क्रिया, अनन्त कर्ताका संकेत, भ्वादिका आकृतिगण होना अनन्तधातुका सूचक यु-अन, वु-अक आदेश तृजादिषु वर्तमानकालोपादानं कर्तव्यं, न कर्तव्यम् अन्येषां प्रत्ययाना कालमात्रे दर्शनात् चर्चापारः इति भाष्ये उक्तम् । **करोति इति कर्ता**—वर्तमानकालिक (फल उत्पादिका) क्रियाका आधार कर्ता अर्थ । उत्पत्त्यनुकूलव्यापारवाचक कृ धातुसे कर्ता=(फलजननीक्रियाका आश्रय) अर्थमें ण्वुल् । हलन्त्यं ल इत्, चुटूसे प्रत्यय आदिमें ण इत । वु शेष । उसे य्वोरनाकौसे अक आदेश । (कृ-अक) धातुसे विहित प्रत्यय आर्धधातुकसंज्ञक (यस्य फलं) सार्वधातुकार्धधातुकयोःके गुणका बाधक अचोञ्णितिसे वृद्धि आर कारक को (उत्पत्तिफलजनक क्रियांका आश्रय कर्ता अर्थसे अर्थवान् शब्द स्वरूपको) प्रासंज्ञा कृदन्तत्वात् । प्रथमाया एकवचने सु रुवि । कारकः उत्पत्त्यनुकूल व्यापाश्रय, व्युत्पत्ति एवं प्रक्रिया कर्ता उत्पत्त्यनुकूलक्रियावाचक कृसे कामकुशल अर्थमें तृच (कृ तृ) आर्धधातुकसंज्ञा, उसके परे गुण। अनङ् नान्त उपधादीर्घ सु, नलोप । कर्ता कर्तारौ कर्तारः ।

नन्दि—आदिगण, ग्रहि आदि, पच आदि गणपठित धातुओंसे क्रमशः ल्यु, णिनि, अच् प्रत्यय हों । नन्दि ग्रहि पच आदौ येषान्ते द्वन्द्वसमासमें आदि शब्दका प्रत्येकसे अन्वय । यथासङ्ख्य सम्बन्ध । नन्दि ण्यन्त है । अतः लिखा नन्दयति इति नन्दनः कृष्णः नन्दयशोदाको आनन्द देते प्रसन्न करते हैं । आनन्दसम्वर्धनानुकूल क्रियावाचक नन्दि धातोः आनन्दवर्धनस्य आधारः कर्ता अर्थ, ल्युट य्वोः नाकौ युको अन, णेर्निटि णिलोप । आनन्दवर्धन कर्ता अर्थसे अर्थवान् नन्दन शब्द स्वरूपको प्रासंज्ञा स्वादिः (नन्दनः) सुखसम्वर्धनानुकूलव्यापाराश्रयः । जनं भक्तं वा अर्दयति स्वर्गं गमयति मोक्षं प्रापयति इति **जनार्दनः** । अर्द गतौ गति-गमन

पचः । आकृतिगणः इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ।३।१।१३५। एभ्यः कः स्यात्। क्षिपः लिखः । बुधः कृशः । ज्ञः प्रियः किरः । आतश्चोपसर्गे ।३।१।१३६। कः स्यात्। 'इयाद्व्यध—' इति णस्यापवादः । सुग्लः प्रज्ञः । पाघ्राध्माधेट्दृशः शः

हेतुभये युक्) विभीषि—धातुसे विशेष भय पैदा करनेके कर्तामें ल्यु-अन णत्व, वही अर्थवान् शब्दस्वरूप है प्रासंज्ञा आदि । लुनाति इति लवणः लवन (बिनिया) कर्ता । यु-अन आदि । चूंकि नन्द्यादिगणमें पढ़ा है स्वीकृत प्रमाणसे णत्व, जिसमें ण्यन्त अण्यन्त दोनों मान्य। ग्रह उपादाने, लेने अर्थमें ग्रहिमें इक निर्देश। सूत्रमें स्वीकृतिसे न सम्प्रसारण । गृह्णाति इति ग्राही ग्रहणकर्ता उपादानाश्रयार्थक ग्रह धातुसे णिनि अनुबन्धलोप, णित्परे उपधावृद्धि इकारः नकाररक्षकः । ग्राहिन्—ग्रहणका आधारवाचक शब्दको अर्थवत् मानकर प्रासंज्ञा सु. नान्त उपधा-वृद्धि सुलोपनलोपौ ग्राही । धातो-युक्का विषय-तिष्ठति इति स्थायो जिसमें गति निवृत्त हो । स्था धातुसे कर्ता (गति निवृत्ति अर्थ) में णिनि स्वादिकार्य ।

पचादि गण आकृत्या स्वरूपं दृष्ट्वा गण्यते इति आकृतिगणः । पच पचति वर्तमानकालिक पाक क्रियाके कर्तामें पचसे अच, पाककर्ता अर्थसे अर्थवान् स्वादिकार्य।

इगुपध—इक्=इ उ ऋ लृ उपधा अन्त्य अलका पूर्व वर्ण हो तथा ज्ञा अवबोधने, प्रीञ् तर्पणे, कॄ बिक्षेपे धातुसे क हो । क इत् गुण निषेधार्थ । क्षिपति दूरं करोति क्षिपः कन्दुकस्य, गेंद फेंकनेवाला। प्रक्षेपाणार्थक क्षिपसे फेंकने वाला अर्थमें क। लशकु से क इत्का फल गुणनिषेध। प्रक्षेपण कर्तासे अर्थवान शब्द स्वरूप क्षिपकी प्रा०संज्ञा स्वादि । लिखति लिखः लिखनेवाला लेखनक्रियाश्रयः । विलेखनार्थक लिखधातोः लेखन क्रियाश्रय कर्ता अर्थ क आदि । कित्से न गुणः । बोधति बुध्यते वा बुधः । सत्यबोध ज्ञान क्रियार्थक बुध धातोः अनुभव कर्ता अर्थे क आदि । कृशति दुर्बलः भवति । कृशः । क आदि । उपधामें इकके उदाहरण सम्पन्न । जानाति इति ज्ञः–अवबोधने अर्थे ज्ञा धातोः बोधकर्तामें क, कित्से आतो लोपः आकारलोपे (ज्ञः) ज्ञानकर्ता । प्रीणाति तर्पयति प्रसन्नं करोति इति प्रियः । प्री अ इयङ् प्रेमाश्रय अर्थवान प्रासंज्ञा स्वादि । किरति इति किरः—बिखेरने वाला व्याधः कृ धातोः क-अ इर किरः । वासरूपोऽस्त्रियां सूत्रसे जब विषमप्रत्यय बाधक बने तब विकल्प, अतः ण्वुल वु-अक गुण क्षेपकः लेखकः बोधकः कर्षकः प्रापकः ज्ञायकः कारकः क्षेप्ता, बोद्धा, ज्ञाता प्रेता ।

आतश्च–उपसर्गसे जुड़ा आकारान्त धातुसे कर्ता अर्थमें क हो, श्याद्व्यधाद सूत्रके ण प्रत्ययको बाधकर, जो उपसर्ग अनुपसर्ग दोनोंके योगमें होता है । सुष्ठु ग्लायति हर्षं क्षयति इति सुग्लः (गरं ग्लानि) सु उपसर्गक ग्लासे प्रसन्नता नाश क्रियाके कर्तामें क-अ आतोलोप आकारलोप स्वादिः । ग्लानिकर्ता अर्थसे अर्थवान् । आदेच उपदेशसे आ । तब क । प्रकर्षेण जानाति प्रज्ञः-पूर्ण ज्ञाता प्र उपसर्गक ज्ञा धातोः पूर्ण ज्ञानाधारे कर्तरि क-अ आलोप आदि प्रज्ञः ।

।३।१।१३७। पिबतीति पिबः जिघ्रः। धमः धयः। पश्यः। अनुपसर्गाल्लिम्प-विन्द-धारि-पारि-वेद्युदेजि-चेति-साति-साहिभ्यश्च।३।१।१३८। शः स्यात् लिम्पः विन्दः। धारयः पारयः। वेदयः उदेजयः। चेतयः। सातयः।

पाघ्रा--पा-पाने घ्रा गन्ध ग्रहणे, ध्मा-धौंकने अर्थमें, धेट-पानें दृशिर प्रेक्षणे धातुसे कर्तामें श-अ शेष। दुग्धं पिबति **पिबः** दुग्धपानार्थक पाधातुसे पीनेवाला अर्थमें श, शप शिति परे पाको पाघ्राध्मास्था-आदि सूत्रसे पिब आदेश, पररूप **पिबः**-पानकर्ता अर्थसे अर्थवान् प्रासंज्ञा स्वादिः। जिघ्रति इति **जिघ्रः** गन्धानुकूल-व्यापारार्थक घ्रा धातोः गन्धग्रहणकर्ता अर्थे श-अ शप जिघ्रादेश पररूप **जिघ्रः**। धमति अग्निप्रवलनार्थं वायुं करोति ध्मासे श धम आदेश धौंकनेवाला। धयति, स्तनं दर्शनकर्ता अर्थमें दृशसे श शप पश्य आदेश **पश्यः** दर्शकः।

अनुपसर्गक **लिम्प**-(लिप उपदेहे) विद लाभे तुदादि धातुसे श-अ (शे मुचादीनां) नुम्, सूत्रमें नुंसहित लिम्प विन्द पढ़ा। धारि-धृञ् धारणे भृञ् अवस्थाने धातुके ण्यन्तका ग्रहण। गङ्गाधर भूधर जलधर जलचर पारि (पार कर्म-समासो) अथवा पृ पालनपूरणयोः पालन करना भरना भराना क्रिया समासकर पार होना पारयति इन धातुओंसे श प्रत्यय हो। लिम्पति शुद्धं स्वच्छं करोति अर्थे उपदेहानुकूलव्यापारवाचक लिप् धातोः अनुपसर्गाल्लिम्प-इति श, शप् परे नुम्। लीपने क्रियाका कर्ता अर्थवान् शब्दको प्रा०संज्ञा आदि। विन्दति लभते इति **विन्दः**-लाभार्थक विद् धातोः श से परे नुम (विन्द अ) लाभकर्ता। धारयति वस्त्रादि धारणं करोति अथवा मूर्तिमवस्थापयति। विग्रहे धारि धातोः धारण या स्थापना के कर्ता अर्थमें श-अ गुण-अय स्वादि० **धारयः**। धारण स्थापनकर्ता अर्थसे अर्थ-वान्। पारयति कर्म समाप्नोति, पिपर्ति धान्यादिकं **पारयः**-पारिसे श शप् गुण अय। पारकर्ता पालन पूरण कर्ता अर्थ। वेदयति इति **वेदयः**-वेदना चेतना आख्यान ज्ञानादिके अर्थानुकूलव्यापारवाचक विद धातोः उक्त क्रियायाः कर्तरि श गुण अय आदि वेदयः। ज्ञान विज्ञान चेतना क्रियाका आश्रय अर्थसे अर्थवान् उदे-जयति कम्पयति **उदेजयः**-उत्पूर्वक उद्वेगके अनुकूल कम्पन क्रियावाचक एजि ण्यन्त से श आदि, गुण अय उद्वेग कर्तासे अर्थवान् प्रासंज्ञा स्वादि। चेतयति चेतनां ज्ञानं प्रापयति **चेतयः**-चिति संज्ञाने सम्यक्ज्ञान-पूर्णचेतनानुकूलक्रियावाचक चेति ण्यन्त धातुसे श शप् गुण अय चेतयः ज्ञानाश्रयः क्रियाश्रयः कर्ता भवति। कस्याः क्रियायाः? चेतनानुकूलायाः। सातयति सुखयति ब्रह्मसुखं प्रापयति इति **सातयः**—सुख अर्थमें सूत्रमें पढ़ा प्रेरणार्थे णिच सहित (साति) धातुसे वा असरूपन्यायेन प्रत्यय (समान रूप न हो) विकल्पसे बाध होता है श व क्विपको बाधकर, गुण अय आदि **सातयः** सुखानुभवकर्ता। असमान प्रत्यय श विकल्पसे बाधा गया। पक्षमें क्विप् पूर्णलोप णिलोप भी, **सात्**-ब्रह्म परमात्मा ईश्वर सुखदाता। एष हि एवान-न्दयति इति श्रुतेः, सात परमात्मा भजनीयः प्रीत्याश्रयः एषां भक्तानां अर्थमें मतुप

सहायः। 'अनुपसर्गात्' किम् ? प्रलिपः। गवादिषु विन्देः संज्ञायाम्। गोविन्दः। अरविन्दम्। ददातिदधात्योर्विभाषा ।३।१।१३९। शः स्यात्। ददः दधः। पक्षे वक्ष्यमाणो णः। ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ।३।१।१४०। वा णः स्यात्। पक्षेऽच्। ज्वालः ज्वलः। चालः चलः। श्याद्व्यधास्रु-संस्रुतीणवसाव-हृ-लिह-श्लिष-श्वसश्च ।३।१।१४१। श्यैङ्-प्रभृतिभ्यो नित्यं णः। अवश्यायः

मादुपधायाः मको व (सात्वत्) भगवद्भजनकर्ता, तसो मत्वर्थे मतुप् अर्थमें वान्त प्रत्यय है मसंज्ञा हुई न पद, न जश, साहयति मर्षयति क्षमां करोति सहते। प्रेरणा अर्थमें णिच साहि धातुसे क्षमा सहन कराने वाला अर्थमें श अ शप पररूप गुण अय अर्थवान् जानकर स्वादिः। साहयः। सूत्रमें अनुपसर्ग क्यों पढ़ा ? प्रलिपः क हुआ श नहीं इसलिये कित्से गुणनिषेध। गो आदि पूर्वक विन्दसे श हो संज्ञामें गोविन्दः अथवा गाः उपनिषद्वाचः प्रमाणतया विन्दति लभते स्वीकरोति असौ गोविन्दः गायोंका स्वामी या वेद उपनिषद्के वचन प्रमाणकर्ता अर्थमें विन्दसे श अ शप पररूप वेदवचनप्रमाण लाभकर्ता या गोप्रापक अर्थेन अर्थवान् गोविन्दशब्दः प्रासंज्ञकः तस्य फलं स्वादिः। तथैव प्रातिपदिकार्थं चक्रे नाभिनेभ्योऽन्तराले मध्ये प्रोतानि लग्नानि काष्ठखण्डानि लौहदण्डानि वा अराणि तत्सदृशानि बलानि विन्दति लभते इति अरविन्दः कमलं पंखुड़ी खिलनेसे चक्राकार स्वरूप प्राप्त होता हो ऐसा कमल, अर पूर्वक विन्दसे श आदि। कर्मणि अण बाधकर।

ददाति—डुदाञ् दाने, धाञ् धारणपोषणयोः धातुसे श हो कर्तामें। ददाति अर्पयति इति ददः, दधाति धारयति पोषयति वा दधः—दान, धारण पोषणव्यापार वाचक दा धा से शप श्लु श्लौ द्वित्व (ददा अ) द धा अ। आतोलोप इटि च आकारलोपे ददः दानानुकूल व्यापाराश्रयः अर्पण कर्ता अर्थमें श दधः धारणानुकूल क्रियाश्रयः पोषणकर्ता प्रातिपदिकार्थः स्वादिः। पक्षमें श्याद्व्यधास्रु—सूत्रसे ण पक्षमें दा अ, धा अ। णित जानकर आतो युकि य (दाय धाय) से स्वादि दानकर्ता पोषणकर्ता प्रातिपदिकार्थ है अनुपसर्गसे ही कहें। इसलिये कि प्रदः प्रधः में श न हो, किन्तु आतश्चोपसर्गे-उपसर्ग देख आदन्त धातुसे क प्रत्यय सिद्ध।

ज्वलिति—में इति शब्दका आदि, अर्थ ज्वलः आदिर्येषां ते ज्वलितयः ते च ते कसन्ताश्च तेभ्यः, ज्वल दीप्तौ कस गतौ आदि अन्त धातुओंसे ण हो विकल्पसे अच् भी, विभाषाकी अनुवृत्ति। इगुपधेभ्यः क प्रत्यय भी। ज्वलति इति ज्वालः अग्नि लकड़ी जलता है। ज्वलसे दीप्ति जलने प्रकाश क्रियाका आश्रय कर्ता अर्थमें ण अ। उपधावृद्धि ज्वालः-ज्वलनानुकूलव्यापाराश्रयः काष्ठं वर्तिका विद्युत। जब न ण, तब अच ज्वलः ज्वाला। चलति चालः ण वृद्धि, जब अच चलः-चलने वाला अर्थ अनुपसर्गसे ही ण कहें। इसलिये कि उज्वलः में ण न हो। उत् उपसर्गसे अर्थ बदला उज्वलः सफेद श्वेत अर्थ। श्या–श्यैङ्गतौ, आत-आकारान्तधातु व्यध ताडने आदि ११ धातुओंसे नित्य ण हो कर्तामें। अनुपसर्ग रुका उत्तरसूत्रमें पाठ

प्रतिश्यायः। आत-दायः, धायः, व्याधः, स्रु आस्रावः संस्रावः। अत्यायः। अवसायः। अवहारः। लेहः। श्लेषः, श्वासः। विभाषा ग्रहः।३।१।१४३। णो वा। पक्षेऽच्। व्यवस्थितविभाषेयम्। तेन जलचरे ग्राहः। ज्योतिषि ग्रहः। गेहे कः।३।१।१४४। गेहे कर्तरि ग्रहेः कः गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम्।

से। उससे सम्बद्ध विभाषा भी निवृत्त अतः कहा नित्यं। श्यैङ-अवश्य धातुसे अदन्त जानकर ण सिद्ध था अलग पढ़ना उपसर्ग दशामें क प्रत्ययको बाधनेके लिये। आतश्चोपसर्गेसे क प्राप्त था, अवश्यं श्यायति गच्छति अवश्यायः निश्चित गन्ता। अव पूर्वक श्यै से ण, आत्व ण युक् प्रतिश्यायः—प्रतिज्ञा या बदलेकी भावनाका आश्रय। आत्व करने पर ण आदि। आदन्त धातु दा धा से ण व य दान कर्ता अर्थ में अर्थवान् स्वादि। व्यध ताडने विध्यति तीक्ष्णं प्रहरति इति व्याधः—व्याधसे ताडन कर्ता अर्थ में ण-अ। उपधावृद्धि। स्रुगतौ स्रवति गच्छति स्रावः—रिसने वाला ण प्रत्यय होने पर अचोऽञ्णिति वृद्धि आस्रावः पूरा रिस रहा। चारो तरफ संस्रावः सम्यक जलप्रपात करने वाला। ण वृद्धि आव आङपूर्वक सम्पूर्व भी।

अत्यायः-फिसलने वाला अतिपूर्वक इ गतौ धातुसे फिसलना क्रियाकर्तामें ण वृद्धि आय यण अत्यायको अर्थवान जानकर स्वादिकार्य। अवहारः-अवहरति खाता निगलता है। अवपूर्वक हृ धातुका ग्रहणक्रिया अर्थ। कर्तामें ण वृद्धि आर। लेढि इति लेहः स्वादलेनेवाला स्वादग्रहण क्रियाका आश्रय प्रत्ययका अर्थ। लिह् अ गुण आदि, लेहः चाटने वाला। श्लिष्यति इति श्लिषः चिपकने चिपकाने। आलिङ्गन क्रियाके कर्तामें ण श्लिष् अ। गुण आदि। श्वसिति श्वासग्रहणं करोति कर्तरि ण, श्वस अ, उपधावृद्धि आदि श्वासः।

विभाषा—विविधा भाषा भावभेद विकल्प ग्रहधातुसे ण हो अच् भी। व्यवस्थित विभाषा विविधा अवस्था विकल्प व्यवस्था सा सञ्जाता अस्येति व्यवस्थितः ण प्रत्यय और अच विधानमें अर्थ भेदकी व्यवस्थाका अर्थ। प्रत्ययभेदसे अर्थ भेदमें प्रमाण-गृह्णाति इति ग्राहः मकरः जलचर घड़ियाल मत्स्य तिमिङ्गिल अर्थ खोलनेके लिये ण। ग्रह अ उपधावृद्धि ग्राहः। ग्रहणानुकूलक्रियाश्रयः जलचरः, जब अच प्रत्यय होगा तब ग्रहः-ज्योतिषि सूर्यचन्द्रादौ वाच्ये अच्प्रत्ययः नवग्रह इव। भवतेश्च—भू धातुसे भी विकल्प ण कहें। जब ण वृद्धि आव भावः पदार्थः। जब अच तब भवः महादेवः शङ्करः अज इव। भाष्यमतमें भावयति प्रापयति स्व स्व कार्यं वस्तु। भू प्राप्तौ चुरादि ण्यन्त भाविसे अच, णिलोप भावशब्दः। गेहे—गृह कर्ता हो तब ग्रहसे क कहें। विभाषा ग्रहःके णको बांधकर गृह्णाति स्वीकरोति अन्नादिकमिति गृह घर परिवार कोष अन्न संग्रहालय बने, वह गृह है उपादानार्थक ग्रह धातोः क (ग्रह अ) ग्रहिज्यावयिव्यधि आदि सूत्रसे सम्प्रसारण पूर्वरूप भी। अन्नादि की स्थापना घरमें होती है ग्रहण क्रियाका कर्ता गेह ही है। यदि गेहे कर्तरि क प्रत्यय कथ्यते तर्हि गृहाः दाराः यहां क प्रत्यय कैसे ? तब कहा तात्स्थ्यात् गृहाः

शिल्पिनि ष्वुन् ।३।१।१४५। क्रियाकौशलं शिल्पं, तद्वत्कर्तरि ष्वुन्स्यात् । नृति-खनि-रञ्जिभ्य एव । नर्तकः नर्तकी । खनकः खनकी । असि अके अनेच रञ्जेर्नलोपो वाच्यः । रजकः रजकी । **गस्थकन्** ।३।१।१४६। गायते-स्थकन् स्यात् गाथकः । **ण्युट् च** ।३।१।१४७। गायनः । **ह्रुसृल्वः समभिहारे वुन्** ।३।१।१४९। समभिहारग्रहणेन साधुकारित्वं लक्ष्यते । प्रवकः, सरकः,

---

घरमें रहनेसे गृहिणी गृहमुच्यते । तस्मिन्तिष्ठति तत्स्थः तस्य भावः तात्स्थ्यं तस्मात् । दारा कलत्र भी लक्षणया गृह अर्थमें है । मञ्चाः क्रोशन्ति मञ्चशब्द लक्षणासे पुरुष अर्थ भी कहता है (पुरुषाः अपि व्यपदिश्यन्ते) गृहशब्दो वेश्मनि मुख्यः, दारेषु लाक्षणिकः उभयलिङ्गकः अर्धर्चादिः, नपुंसक रूप और पुंसि गृहाः बहुवचनं दारास्त्वपि गृहाः ।

शिल्पिनि—क्रिया कौशलं शिल्पं कलामें कुशलको शिल्पी कहते हैं जो प्रत्ययार्थः विशेषण है उपपद नहीं । अतः कहा **तद्वति**—वैसा कलाकार अर्थमें ष्वुन् प्रत्यय हो । अनुबन्धलोप वु-अक । इस सूत्रको वार्तिककार निपन्त्रित करते हैं । नियम्य सूत्र, नियामक वार्तिक **नृती** गात्रविक्षेपे, खन अवदारणे, रञ्ज रागे धातुकी क्रियाके अनुकूल कर्तामें ही सूत्र लगे । यथा नृत्यति (नर्तकः) या सा नर्तकी । गात्रविक्षेपार्थक नृतधातोः भावप्रदर्शनक्रियायाः कर्तरि वु-अक लघूपध गुणे-नर्तनानुकूल व्यापारवान् नर्तकः व्यापारवती नर्तकी नृत्यकलावाली। अवदारणार्थक खन्से खनन क्रिया कर्तामें वु-अक खननानुकूल क्रियाश्रयः खनकः षिद्गौरादि मानकर ङीष् खोदने वाली खनकी । भाष्यमें रजकः जनरजः सु वार्तिक है उसीका संग्रह (वा) **असि**—अक अन परे रञ्ज धातुके शिल्पी-कला कुशल अर्थमें वु-अक हुआ हो नकार लोप कहें । रज्यते इतिरजकः—रञ्जधातुसे वस्त्रादिरंगना चित्रकारी कला कुशल अर्थमें वु-अक परे वार्तिकसे नकार लोप **रजकः** । रागकरणक्रियाकुशलः पुंयोगे ङीष् रजकी । कैयटमतमें शिल्पी रञ्जेः ष्युन्-रजनम् ।

गस्थकन्—(गै शब्दे, गानेके अनुकूल क्रियावाचकसे थकन गानकलाकुशल कर्ता अर्थमें **गाथकः** गायनानुकूल गानकला कुशल अर्थे (गै थक) आत्व **गाथकः** । **ण्युट् च**—गा धातुसे गान क्रियाकुशलता अर्थमें ण्युट हो थकन् भी । यु-अन आय आदेश गायनः गायनाचार्यः टित्से ङीप् गायनी । गानक्रियाकुशलः । आत्व आदेश उपदेशे अशिति अन्तरङ्गत्वात् आतो युक्चिण्कृतोः पूर्वके दोनों सूत्र एक साथ न पढ़ना उत्तरमें अनुवृत्तिके लिये ।

प्रु सृ—लू धातुसे समभिहार=समन्वय कलाकुशल साधुकारित्व आदि लक्ष्य अर्थमें वुन् । मुहुर्मुहुः कार्यकरणात् अभ्यासात् । योहि यां क्रियां पुनः पुनः अनुभवति स तत्र प्रायेण कौशलं लभते तेन सकृदपि यः सुष्ठु करोति तत्र वुन् । यस्तु बहुवारं दुष्टं करोति तत्र न प्रवर्तते । कटं प्रवते आसन निर्माणकी कलाके कुशल अर्थमें प्रु

लवकः। आशिषि च ।३।१।१५०। आशीर्विषयार्थवृत्तेर्वुन् स्यात्कर्तरि। जीवतात्-जीवकः। नन्दतात्-नन्दकः। तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ।३।१।९२। कर्मण्यण् ।३।२।१। कर्मण्युपपदे धातोरण्प्रत्ययः स्यात्। उपपदसमासः। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। आतोऽनुपसर्गे कः ।३।२।३। आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात् कर्मण्युपपदे कः स्यान्नाण्। गोदः। कम्बलदः 'अनुपसर्गे' किम्। गोसन्दायः। मूलविभुजादिभ्यः क। मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः।

धातुसे वु-अक गुण अव-प्रवकः। सृ गतौ सरकः खिसकने वाला, सरकना भी गति है। लुनाति इति लवकः छेदन, कर्तन लवन कर्ता लवकः।

आशिषि—अप्राप्तस्य प्राप्ति कामना (अयम् इत्थं भूयात् इति प्रार्थनं) ऐसी कामना आशीर्वाद दाता पिता गुरुका धर्म है, प्रत्ययार्थ नहीं, कर्तामें प्रत्ययके विधान से। आशीर्वादका विषय शुभकामना अर्थमें वर्तमानधातुसे वुन हो कर्तामें तातङ् प्रत्ययका जो विषय आशीः है वही वुनर्थः। जीवतात् आशास्यमान जीवन क्रियाश्रय अर्थमें जीव धातुसे शुभकामनाका विषय जानकर वु-अक जीवकः अप्राप्त प्रार्थना विषयक कामना कर्ता अर्थसे अर्थवान् जानकर प्रासंज्ञा स्वादिकार्य जीवकः। विग्रह आशीर्वादी हैं अतः लट्का प्रयोग नहीं किन्तु लोट-तातङ् नन्दतात् समृद्धिविषयक शुभकामना इति नन्दकः कर्ता आनन्दवर्धनानुकूलव्यापाराश्रयः नन्दकः आनन्द बढ़े आशासनम् आशीः अयमित्थं भूयादिति प्रार्थनं ऐसी कामनाका विषय प्रयोक्ताका धर्म है प्रत्ययका कर्ता अर्थ इसी आशयसे नन्दकः कहा। तृतीय अध्यायका प्रथम पाद पूर्ण, द्वितीयाध्याय प्रारम्भ।

कर्मणि—कर्म पूर्वपदमें हो तब धातुसे कर्तामें अण कहे। उपपद-तत्रोपपदं सप्तमीस्थंसे समास एकार्थीभाव। कुम्भं करोति घटनिर्माता अर्थमें कुम्भम्-कर्म उपपद हो, कृ धातुसे कर्मणि अण कर्तामें हुआ। कुम्भकर्मक उत्पत्त्यनुकूलक्रियाश्रयः कर्ता, अत्र कुम्भं कृ अ। आर वृद्धि अस्वपद लौकिक विग्रहमें (कुम्भ अस कार) अलौकिक बना, सुबन्त बननेके पहले कुम्भ अस्का कार शब्दके साथ षष्ठीसमास, प्रासंज्ञा सुपो धातुप्रातिपदिकयोः कर्तृकर्मणोः कृतिसे कर्ममें षष्ठी स्वादिकार्य। कुम्भकर्मक उत्पादनकर्ता कृदन्तार्थः। यदि ऐसा तब आदित्यं पश्यति आदित्यपश्या क्यों नहीं बनता, ग्रामं गच्छति ग्रामगामः हिमवच्छ्रावः, तब कहा अनभिधानात् प्रमाण न मिलनेसे नहीं होता।

आतो—आकारान्त धातु हो, उपसर्ग न जुड़े उपपदमें कर्म हो उससे क हो अण नहीं। क इत्का फल आतो लोप इटि चसे आकारलोप। गां ददाति गोदः-गोकर्मक दानकर्ता, गोपूर्वक दा आदन्तसे क हुआ, कित्से आलोप। स्वादिकार्य गोदः। पार्ष्णि पादमूलभागः त्रायते त्रैङ पालने पार्ष्णित्रं त्रै से क, आत्व आलोप आत्वे कृते कः इति विशेषः। अनुपसर्ग क्यों? गां सम्यक् ददाति इति गोसंदायः अण, आतो युक। उपसर्ग है क नहीं हुआ। क प्रत्यय—के प्रकरणमें मूलविभुज आदि शब्दोंसे क प्रत्यय स्वीकार करें। मूलानि विभुजति

आकृतिगणोऽयम् । महीध्रः कुध्रः । सुपि स्थः ।३।२।४। 'सुपि' इति योगो विभज्यते । सुप्युपपदे आदन्तात्कः स्यात् । द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः । समस्थः विषमस्थः । अम्बाऽम्ब-गोभूमि-सव्यापद्वि-त्रि-कुशे-कुशङ्क्वङ्गु-मञ्जि-पुञ्जि-परमे-बर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः । ८।३।९७। एभ्यः स्थस्य सस्य षः स्यात् । द्विष्ठः, त्रिष्ठः । तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ३।२।५। तुन्दशोकयोः कर्मण्युपपदयोराभ्यां कः स्यात् । आलस्य-सुखाहरणयोरिति वक्तव्यम् । तुन्दपरि-

---

मूल स्थान छोड़ रहा है विमर्दयति । यद्यपि भुजो कौटिल्ये कुटिलता कूटनीतिकी क्रिया अर्थमें भुज प्रसिद्ध मर्दन त्याग अर्थ कैसे ? उपसर्ग बलसे मर्दने वृत्तिः । रथसे पहिया खुल रही है इसे आकृतिगण समझें । महीं पृथ्वी धरति धारणं करोति भारं गौरवात् इति महीध्रः—महीपूर्वक धृ धातुसे क अ यण (कित्तसे न गुणः) अण होता महीधारः हो जाता। कुः पृथ्वी तां धरति कुध्रः, गिलति गॄ निगरणे निगलने के अनुकूल क्रियावाचक गॄसे क इत्व रपर । अचि विभाषा र को ल गिलः । गिलहरो।

सुपि —सूत्र विभाग करके दो अर्थ । सुबन्त पूर्वमें रहते आकारान्त धातुसे क प्रत्यय हो । सुप प्रत्याहार है, सप्तमी बहुवचन नहीं । कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययः । कृत्रिमस्यैव ग्रहणात् द्वाभ्यां शुण्डतुण्डाभ्यां पिबति द्विपः हाथी सूंड़ के दोनों छिद्रसे पीते है । सुबन्त द्वाभ्यांके रहते पा धातुसे क, कित्तसे आलोप द्विपः सुण्डसे पानकर्ता । समे-समतले भूमौ तिष्ठति समस्थः विषमे (उच्चावचये स्थले) तिष्ठति विषमस्थः, सम या विषम सुबन्त पूर्वमें रहते गतिनिवृत्ति अर्थक स्थासे क-अ । आलोप सम या विषम स्थलमें बैठने या ठहरने वाला ।

अम्ब—आम्ब गो भूमि सव्ये अप द्वि त्रि कुशे कु शङ्कु अङ्गु मञ्जु पुञ्जि परमे बर्हिष दिवि अग्नि इन अष्टादशके (द्वन्द्व) पूर्वमें रहते स्थःके सको ष हो । स्थः शब्दका प्रत्यान्त आ इत्का अनुकरण । यहां प्रथमामें षष्ठी अर्थ, द्वयोः शब्दार्थयोः मध्ये तिष्ठति द्विष्ठः सम्बन्धः । दो में रहने वाला धर्म (द्विस्था क-अ) आलोप षत्व स्वादि । त्रिषु तिष्ठति त्रिष्ठः—सको ष । व्याकरणत्व शब्द अर्थ सम्बन्ध तीनमें रहता है । अम्बायां तिष्ठति अम्बष्ठः सतीत्वं सको ष । अम्बष्ठः गवि स्थानं गोष्टः, भूमौ तिष्ठति भूमिष्ठः स्थिरः । सव्येष्ठः बांये रहने वाला । निपातनसे या हलदन्तात्से सप्तमीका लुक् नहीं । अप्सुतिष्ठति अपष्ठः मीनः जलजन्तुः सर्वत्र क प्रत्यय होने पर स्थाके सको ष । कुछ तो इण कवर्गसे परे न होनेसे, कतिपयमें सात्पदाद्योः के निषेधसे, षत्व प्राप्त नहीं था। कुशे तिष्ठति कुशेष्ठः गणेशः, कौ पृथिव्यां तिष्ठति कुष्ठः । शङ्कौ शङ्कुष्ठः खूंटीपर लटका । अंगुष्ठः अङ्गे तिष्ठति अगूंठी मञ्जिष्ठः पुञ्जिष्टः परमेष्ठः बर्हिष्ठः दिविष्ठः, सप्तमीका अलुक् पूर्ववत् । अग्निष्ठः क प्रत्ययान्त, स्थाको षत्व क्यों कहा ? भूमिस्थितं क नहीं, ष भी नहो ।

तुन्द—और शोक पूर्वपद रहते क्रमशः परिमृज अपनुदधातुसे क प्रत्यय हो, कर्म रहते । परन्तु कित वशामें हो वार्तिक बोले आलस्य—अर्थमें सुखआहर्ता अर्थमें

मृजोऽलसः। शोकापनुदः सुखस्याहर्ता। प्रे दाज्ञः ।३।२।६। दारूपाज्जानातेश्च प्रोपसृष्टात्कर्मण्युपपदे कः स्यात्। अणोऽपवादः। सर्वप्रदः, पथिप्रज्ञः। ।३।२।७। गोसङ्ख्यः। गापोष्टक् ।३।२।८। अनुपसृष्टाभ्यामाभ्यां समि ख्यः टक्स्यात्कर्मण्युपपदे। सामगः, सामगी। पिबतेः सुराशीध्वोरिति वाच्यम्। सुरापी। शीधुपी। अन्यत्र क्षीरपा ब्राह्मणी, हरतेरनुद्यमने च ।३।२।९। अंशहरः। 'अनुद्यमने' किम्? भारहारः। शक्तिलाङ्गलाङ्कुशतोमरयष्टि-

---

क कहें। तुन्दमुदर भोजनभोगेन परिमार्ष्टि-हाथ फेरता है। आलस्यवश अर्थमें क-अ। कित्से न गुणः। तुन्दपरिमृजः अलसः महाआलसी। मृजेः-अजादौ इति पाक्षिकवृद्धिर्न। शोकं अपनुदति दूरीकरोति सुखं प्राप्नोति अर्थमें शोककर्मक अपनोदन क्रियायाः कर्ता अर्थे कः अपनुदः शोक हटाता सुख पाता है। यदि आलसी अर्थ न हो, तब अण वृद्धि तुन्दपरिमार्जः। जो संसारको असार निस्तत्व समझकर उपदेश पाकर त्याग करते हैं वे शोकापनोदः, अण गुण आदि।

प्रे दाज्ञः-पञ्चमी अर्थमें सप्तमी। दारूप धातु और जानाते-ज्ञारूपधातु, प्र उपसर्गसे कर्म उपपद रहते क प्रत्यय हो, अण बांधकर। सर्वान् प्रददाति इति सर्वप्रदः उदारदाता। सर्वकर्मक प्र उपसर्गक दाधातुसे क आलोप सर्वप्रदानकर्ता अर्थसे अर्थवानको प्रातिपदिक संज्ञा स्वादिकार्य। पन्थानं प्रकर्षेण जानाति पथप्रज्ञः मार्गवेत्ता। पथः कर्मक प्र उपसर्गक ज्ञासे मार्गवेदन कर्ता अर्थमें 'क' आलोप आदि, अनुपसर्ग कहनेसे प्र से अतिरिक्त उपसर्ग अमान्य, अतः गोसम्प्रदायः गां सम्यक्प्रददाति अर्थमें क नहीं किन्तु अण् आतो युक। समि-उपसर्ग रहते गोकर्मक ख्याधातुसे क हो। गाः सङ्ख्टे चक्षिङको ख्याञ्, ख्या प्रकथने नहीं। संपूर्वक गोसंख्यः क आलोप पूर्वरूप। गापा-धातुसे टक अ हो, उपसर्ग न हों। कर्मपूर्व रहे (मागादा ग्रहणेषु अविशेष) गै शब्दे, पा पाने सामं सामवेदं गायति स्वरेण उच्चारयति सामगः-सामवेद गान कर्ता अर्थसे अर्थवान् (गै अ) आत्व आलोप स्त्रीलिङ्ग विवक्षामें टित देखकर ङीप। सामगी-स्वर माध्यमसे गानेवाली। सामं कर्म पूर्वमें है उपसर्ग नहीं, यदि होता सामं संगीतं सम्यक् गायति अर्थे न टक, किन्तु अण् आत्व युक्, गायनः। पिबतेः—पा पाने धातुसे सुरा शीधु पूर्वमें रहे तब टक-अ हो। सुरां पिबति या सा सुरापी। शीधुं पिबति शीधुपी सुरा शीधु पूर्वक पा धातुसे टक अ। टिड्ढा ङीप्। अन्य अर्थ हो तब टक नहीं, किन्तु आतो अनुपसर्गे क टाप्। क्षीरं पिबति या क्षीरपा दुग्धपान कर्त्री। सुरां पाति रक्षति सुरापा पा रक्षणे लुक विकरण अस्वीकार किन्तु क, टाप।

हरते—अनुद्यमन-बिना प्रयासकी वस्तु अंश मिले तब हृ हरणे धातुसे अच्। कर्म पूर्वमें रहते। अंशं हरति अंशहरः स्वभावः स्वीकर्ता अपना हिस्सा लेता है। अंशपूर्वक हृसे अच् गुण अर। अनुद्यमने-बिना उद्योग परिश्रमके हरण ग्रहण अर्थ क्यों, भारं हरति भारहारः अच् न हो। बड़ी मेहनत श्रमसे बोझा ले जाता है न अच किन्तु अण् आर, भारहरण कर्ता अर्थसे अर्थवान्।

टघटीधनुषुः ग्रहेरुपसङ्ख्यानम् । शक्तिग्रहः । लाङ्गलग्रहः । वयसि च ।३।२।१०। उद्यमनार्थे सूत्रम् । कवचहरः कुमारः । आङि ताच्छील्ये ।३।२।११। पुष्पाण्याहरति तच्छीलः पुष्पाहरः । अर्हः ।३।२।१२। अर्हतेरच् स्यात्कर्मण्युपपदे । अणोऽपवादः । पूजार्हा ब्राह्मणी । स्तम्बकर्णयोः रमिजपोः ।३।२।१३। हस्तिसूचकयोरिति वक्तव्यम् । स्तम्बे रमते स्तम्बेरमो हस्ती । कर्णेजपः सूचकः । अधिकरणे शेते ।३।२।१५। खे शते खशयः । पार्श्वादिषूपसङ्ख्यानम्,

---

शक्तिलाङ्गल अंकुश तोमर यष्टि घट घटी धनुष शब्द पूर्वमें हो ग्रह उपादाने धातुसे अच्प्रत्यय कहें, शक्ति गृह्णाति शक्तिग्रहः वाली सक्षम। शक्तिपूर्वक ग्रहणकरणानुकूल क्रियाके कर्तामें अच् ऐसे अर्थवान शब्दस्वरूप शक्तिग्रहको प्रासंज्ञा स्वादिकार्य लाङ्गलं-गृह्णाति कर्तामें अच आदि अङ्कुशग्रहः यष्टिग्रहः-घटम् उपादत्ते घटग्रह, धनुर्ग्रहः । यदि सूत्र कर्म हो तब धारण अर्थमें अच कहें । सूत्रग्रहः अच हुआ सूत्रं गृह्णाति धारयति केवल लेता है धारण नहीं तब अण ही होगा । उपधावृद्धि सूत्रग्राहः । वयसि—अवस्था अर्थ खुलता हो हृ धातुसे अच् । यहां उद्यमन प्रयत्न वै धारण अर्थ । अनुद्यमन होता पूर्व सूत्रसे अच् हो जाता । कवचं वर्म शरीरत्राणं हरति उद्योमेन गृह्णाति कवचहरः कुमारः । अवस्था सूचक अर्थमें अच आदि । आङि—तस्य शीलं तच्छीलं तस्य भावः आदत स्वभाव अर्थ खुलता हो कर्म पूर्व रहते आ हृ से अच् हो । पुष्पं आहरण जिसका सहज स्वभाव हो शीलसमाधी—तन्मयता अर्थमें अर गुण पुष्प आहरणकर्ता अर्थसे अर्थवान् जान स्वादिकार्य । तत् शील क्यों कहा फलानपेक्ष एव स्वाभाविकी प्रवृत्ति अस्य, ऐसा अर्थ क्यों भारहारः फलकी कामनासे भार ढोता है स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं, न अच, किन्तु अण आदि। अर्ह-पूजायां धातुसे अच् हो कर्म उपपद रहते, अणको बांधकर । अण होता ङीप् हो जाता, अच रहा टाप हुआ, पूजाम् अर्हति पूजार्हा-स्वागतके अनुकूल क्रियावाली अर्हसे अच् टाप् ।

स्तम्ब-कर्ण शब्द पूर्वमें हो रम जपसे हस्ति सूचक, निन्दक अर्थमें ही अच हो स्तम्बे रमते दर्भादितृणनिचये रमते स्तम्बेरमः हस्ती । कर्णे जपति कर्णेजपः सूचकः पिशुनः चुगलखोर अर्थमें अच् । कानमें फुस फुस निन्दाकर्ता । हस्तिसूचक क्यों कहा ? स्तम्बेरन्ता गौः सांड़ तृण समूहमें रमणकर्ता, न अच्, किन्तु तृच । कर्णे मन्त्रः जप्ता गुरु मशको वा । न अच किन्तु तृच, इटि सप्तमीका अलुक हुआ (तत्पुरुषे कृतिबहुल) से अथवा हलदन्तात् सप्तम्याःसे अलुक ।

अधिकरणे-आधारवाचक शब्द पूर्वपद हो शीङ् स्वप्ने धातुसे अच हो । खे आकाशे शेते खशयः आकाशाधारे शयनानुकूलव्यापारवान् । खे पूर्वक शी धातुसे अ । गुण अय स्वादि । खशयः । पार्श्वः-आदिके पूर्व रहते अच कहें । पार्श्व दोनों बगलसे साने वाला पार्श्वशयः । पृष्ठेन शेते पृष्ठशयः । उदरेण शयनकर्ता ।

चर-धातुसे ट प्रत्यय हो आधार अर्थवाचक शब्द उपपद हो । कुरुषु चरति

पार्श्वाभ्यां शेते पार्श्वशयः। उदरेण शेते उदरशयः। **चरेष्टः** ।३।२।१६। अधिकरणे उपपदे। कुरुचरः। कुरुचरी। **भिक्षासेनादायेषु चरः** ३।२।१७। भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः, सेनाचरः। 'आदाय' इति ल्यबन्तम्, आदायचरः। **कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु** ।३।२।२०। एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात्। **'अतः कृकमि-कंस-कुम्भ-पात्र-कुशा-कर्णीष्वनव्ययस्य** ।८।३।४७। अत उत्तरस्याऽनव्ययविसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः स्यात्करोत्यादिषु। अयस्कारः। अयस्कामः। अयस्कंसः। अयस्कुम्भः। अयस्पात्रम्। अयः सहिता कुशा। अयस्कर्णी। अतः किम्? गीःकारः। अनव्ययस्य किं? स्वःकारः अनुत्तरपदस्थस्य किं? परमयशःकारः। इति सः। यशस्करी विद्या। श्राद्धकरः। वचनकरः। **दिवा-विभा-निशा-प्रभा-भास्करान्ताऽनन्ताऽऽदि-बहु-नान्दी-किं-लिपि-लिबि-बलि-भक्ति-कर्तृ-चित्र-क्षेत्र-सङ्ख्या-जङ्घा-बाह्व-हर्यत्तद्धनुररुष्षु** ।३।२।२१। एषु कृञष्टः स्यादहेत्वादावपि। दिवाकरः।

देशेषु विचरति अटति भ्रमति **कुरुचरः**। कौरव क्षेत्रमें भ्रमण वाली कुरुचरी। विचरणका आधार कुरुदेश उसके पूर्वमें रहते चर धातुसे विचरणकर्ता अर्थमें ट प्रत्यय। जब स्त्री धर्मकी विवक्षा हुई तब टिड्ढा-से ङीप्। **भिक्षा**-सेना आदाय पूर्वमें रहते बिना अधिकरणके चर धातुसे ट हो। चर गतिभक्षणयोः भिक्षां चरति अर्जनं करोति चरधातुः विचरण पूर्वक अर्जनार्थे वर्तते। भिक्षापूर्वक चरसे अर्जन कर्ता भिक्षुकः अर्थमें ट। भिक्षा कर्मक भ्रमणपूर्वक अर्जनाश्रयः कृदन्तार्थः। सेनां चरति प्रापयति प्रविशति वा **सेनाचरः**—ट आदि, सेनाकर्मक प्रवेशानुकूल व्यापार कर्ता अर्थ। आदाय शब्द ल्यप् अन्त है आदाय गृहीत्वा लब्धं द्रव्यं चरति भ्रमति आदाय **चरः**—आदायपूर्वक चर धातुसे वस्तुके साथ विचरण कर्ता अर्थमें ट आदि।

कृञो—हेतु कारण अनुलोम्य आराध्य पितरोंमें चित्तको लीन करना (आराध्य चित्तानुवर्तनं आनुलोम्यम्) अनुकरणके अनुकूल चलना तीनों अर्थ व्यङ्ग्य प्रकाश्य है क्योंकि प्रत्ययका कर्ता अर्थ रहे तब ट प्रत्यय हो कर्म उपपद रहते कुप्वोः क पः से प्राप्तको बाधकर अतः कृकमि कंस कुम्भ पात्र कुशा आदिसे विसर्गको स हो। जिह्वामूलीय नहीं। यथा यशः करोति **यशस्करः** में विद्या जो यश प्रतिष्ठा हेतु कारण है। यशः पूर्वक कृ धातुसे कारणभूत कर्ता (विद्या) अर्थमें ट अ, गुण यशकरी टितसे ङीप, विसर्गको जिह्वामूलीय प्राप्त, उसे बाधकर अतः कृकमि-से स। श्राद्धं करोति **श्राद्धकरः**—शीलसमाधो स्वभाव रुचि लगन तन्मयताके अनुकूल कर्ता अर्थ में ट आदि। वचनं करोति गुरु मातापितृचरणानाम् आज्ञां पालयति बड़ोंके वचनको मानता है। **वचनकरः** कृ ट गुण आदि वचनपालक क्रियाकर्ता।

दिवा—विभा निशा प्रभा भास्कर अन्त अनन्त आदि बहुनान्दी किंलिपि लिबि बलि भक्ति कर्तृ चित्र क्षेत्र संख्या जङ्घा बाहु अक्षर यत तद धनुष अरुष शतविंशति के (बीच द्वन्द्वसे सप्तमी) इनके पूर्वपद रहते कृ धातुसे ट प्रत्यय हो, हेतु तत्शील अनुलोम अर्थ न जान पड़ता हो तब भी। दिवा दिवसं करोति **दिवाकरः** आका-

विभाकरः । निशाकरः । कस्कादित्वात् सः, भास्करः । बहुकरः । एककरः, द्विकरः । कस्कादित्वात्, अहस्करः । धनुष्करः । अरुष्करः । न शब्द-श्लोक-कलह-गाथा-वैर चाटु-सूत्र-मन्त्र-पदेषु ।३।२।२३। एषु कृञष्टो न । शब्दकारः इत्यादि । स्तम्ब शकृतोरिन् ।३।२।२४। ब्रीहिवत्सयोरिति वक्तव्यम् ।

शान्त अव्यय दिवा दिन अर्थमें करने वाला दिनकरः कृसे ट अ गुण सूर्यः। अधिकरण शक्तिप्रधान वृत्तिविषये कर्म दिवा । अहनि करोति प्राणिनश्चेष्टायुक्तान् करोति सूर्य निकलते हैं प्राणी क्रियाशील होते हैं । विभां करोति विभाकरः विशेष प्रकाश कर्ता अर्थमें विभापूर्वक कृ धातुसे ट अ गुण । निशाकरोति निशाकर । भाः करोति भास्करः । कस्कादि गण मानकर विसर्गको स भास्करः । कर एव कारः कारं करोति कारकरः, आदिः करोति आदिकरः । सभीके पूर्व रहते कृ धातुसे ट गुण आदि यथायोग्य मान लें । नान्दीं करोति नान्दीकरः अन्तकरः अनन्तकरः आवि-करः बहुकरोति बहुकरः अधिक कार्यकर्ता । ट प्रत्यय गुण आदि बहुल शब्दका विपुल बहुत अधिक अर्थ, संख्या नहीं पृथक पढ़े जानेसे । नान्दीं करोति मित्राणां आनन्दवृद्धि विदधाति आनन्दवृद्धिकर्ता अर्थे ट । किंकरः भक्तः सेवा करके कुछ नहीं किया अर्थमें ट । किं कृ, अ गुण । बलिं पूजां करोति बलिकरः । बलिर्वैश्व देवकर्ता । भक्ति करोति, कर्तारं करोति स्वयं सेवक बनाने वाला । चित्रं रचयति लिपिकरः लेखनकर्ता । क्षेत्रकरः कृषकः । संख्याका उदाहरण एकं करोति एककरः एकताके अनुकूलक्रिया कर्ता अर्थमें ट द्वौ करोति द्विकर दो काम या दो भाग करने वाला । जङ्घाकरः व्यायामसे स्थूल कर्ता । बाहुं करोति भुजा मोटा बनानेवाला । अहः करोति दिनकर्ता अर्थे ट कास्कादिगण मानकर विसर्गको ष । धनुः बनाने वाला धनुष्करः । नित्यं समासे सूत्रसे सको ष । प्रत्ययका अवयव है । अतः इदु-दुपधस्य नहीं लगा । न शब्द —श्लोक कलह गाथा, वैर, चाटु सूत्र मन्त्र पद इनके पूर्वमें रहते कृसे ट प्रत्यय न हो । हेतु शील अनुलोम अर्थमें प्राप्त ट का निषेध करता है । शब्दं करोति (शब्दकारः) कोलाहलकर्ता बहुत बोलता अर्थमें कृ धातुसे कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषुसे प्राप्त टका निषेध किया तब कर्मणि अण् हुआ । (शब्द कृ अ) णित्परे वृद्धि आर । शब्दकर्ता अर्थसे अर्थवान् शब्दकारको प्रासंज्ञा स्वादिकार्य । एवं श्लोककारः कलहं करोति कलहकारः गाथा-कारः, वैरं करोति वैरंकारः शत्रुता मोल लेनेवाला । चाटुकारः चापलूस । सूत्रकारः सूत या संक्षेपकर्ता । मन्त्रकारः गुप्त विचारदाता । पदकारः।

स्तम्ब—और शकृत कर्म पूर्वमें हो कृञ् से इन प्रत्यय । न इत् इ शेष । इस सूत्रको वार्तिककारने नियन्त्रित किया । ब्रीहि–और वत्स कर्ता हों तब इन् कहें । स्तम्बं करोति, तृणनिचयं विदधाति स्तम्बकरिः ब्रीहि-धानके भूसा पुआलका टाल कर्ता । स्तम्बपूर्वक कृसे इन आदि शकृत्करोति गोबर करने वाला वत्स बछड़ा । शकृत्पूर्वक कृसे इन आदि ब्रोहि वत्स क्यों पढ़ा ? स्तम्बकारः लकड़ी का गोदाम

स्तम्बकरिः व्रीहिः। शकृत्करिर्वत्सः। **हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ** ।३।२।२५। दृतिनाथयोरुपपदयोर्हृञ इन् स्यात् पशौ कर्तरि। दृतिहरिः। नाथं नासारज्जुं हरतीति नाथहरिः। 'पशौ' किम्? दृतिहरः नाथहरः। **फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च** ।३।२।२६। फलेग्रहिः, बिभर्तीति आत्मम्भरिः चात् कुक्षिम्भरिः। चान्द्रास्तु 'आत्मोदरकुक्षिषु' इति पेठुः। 'ज्योत्स्नाकरम्भरमुदरम्भरयश्चकोराः' इति मुरारिः। **एजेः खश्** ।३।२।२८। ण्यन्तादेजेः खश् स्यात्। **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** ।६।३।६७। अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात्खिदन्ते उत्तरपदे, न त्वव्ययस्य। शित्वाच्छबादिः, जनमेजयतीति जनमेजयः। वात-शुनी-तिल-शर्धेष्वज-धेट्-तुद-जहातिभ्यः खश उपसङ्ख्यानम्। वातमजा

वाला, अन्य कर्ता-अण् आदि हुए, न इन् शकृत्कारः वृद्धि—वार्थरूपसे सभाल नहीं सका अण् हुआ। न इन्। वत्स कर्ता न होनेसे। स्तम्बकारः खलिहान लगाने वाला शकृत्कारः शूकरः, अण हुआ।

हरते—हरति और नाथ शब्द उपपद-पूर्वमें हो हृ धातुसे इन् हो पशु कर्ता हो तब। चर्मभस्त्रिका दृति—चमड़ेकी भाथी तां हरति दृतिहरिः श्वा हृ इन, अर आदि। नाथं (पशूनां नासिकायां छिद्रं नद्धं प्रोतं) रज्जुं हरति नाथहरिः पशुः, नाथकर्मकहरणानुकूल व्यापाराश्रय अर्थ इन्। पशु क्यों? दृतिहारः भाथी चुराने या ले जाने वाला मनुष्य। अण, नतु इन। नाथं हरति नाथहारश्चोरः नाक रस्सी खोलकर ले गया। **फलेग्रहि**-आत्मंभरिः इनि प्रत्यय हो फलोंका आदान गहणके अनुकूल कर्ता अर्थमें। निपातनसे एत्व। उपपदमें होनेसे पहले इन प्रत्यय भी, आत्मानं स्वस्य उदरपोषकम् अपना ही भरण पोषण करनेवाला स्वार्थी। **आत्मंभरिः**—आत्मन् भृ दशामें इम् न लोप और मुं, इन् गुण। सूत्रमें च पढ़नेसे कुक्षि उदरं बिभर्ति पूरयति अर्थमें कुक्षिभृ से इनि मुम आत्मंभरिः। कुक्षिंभरिः स्वोदरपूर्वके उदरंभरिः (पेट पूजक) शब्दका समर्थन (आत्मोदरकुक्षिषु) चान्द्रमत। मुरारीने भी उदरंभरयः प्रयोग किया। व्याघ्रवन्ध्यः फलेग्रहिः वृक्षका नाम।

एजे—ण्यन्त एजि धातुसे खश् हो, खश इत् अ शेष। कर्म उपपद रहते अरुष् द्विष अजन्त (समाहार द्वन्द्व) धातुको मुम आगम हो उत्तरपदस्य इत् हो तब। अव्ययको छोड़कर। खित्यनव्ययस्यसे खित आया, अलुकसे उत्तरपद शित रहने पर सार्वधातुक संज्ञा, कर्तरि शप अवश्य होगा। जनान् लोकान् एजयति कम्पयति जनमेजयः-सर्प आहुतिसे लोकको कंपाने वाला। एजि धातुसे खश (अ) शित शप गुण अय (जन ऐजय) अरुर्द्विषत्से मुम् स्वादिः **जनमेजयः**-जनताकी कम्पनक्रिया का आश्रय। **वात**— शुनि तिल शर्ध (द्वन्द्वसे पञ्चमी) पूर्वमें हों क्रमशः अज धेट् तुद जहाति इनसे खश हो। वातं भ्रामकं वायुमिव अजन्ति मृगाः **वातमजाः**-वातपूर्वक अज धातुसे वायुके वेग सदृश वेगवाला जीव अर्थमें खश शप् मुम्, वातमज अ कृदन्तत्वात्प्रासंज्ञा स्वादिः।

मृगाः। खित्यनव्ययस्य ।६।३।६६। खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः स्यात्। ततो मुम्। शुनिन्धयः तिलन्तुदः। शर्धञ्जहा माषाः। नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ।३।२।२९। अत्र स्तने धेटो नासिकायां ध्मश्चेति वाच्यम्। स्तनं धयतीति स्तनन्धयः धेटष्टित्त्वात्, स्तनन्धयी। नासिकन्धमः नासिकन्धयः। नाडीमुष्टयोश्च ।३।२।३०। ध्माधेटोः खश् स्यात्। यथासङ्ख्यं नेष्यते। नाडिन्धमः नाडिन्धयः। मुष्टिन्धमः मुष्टिन्धयः। उदि कूले रुजिवहोः ।३।२।१३।

खिति—ख इत् अन्तमें हो उसके परे पूर्वपदको ह्रस्व हो। तब मुम्। ह्रस्वके बाद ह्रस्वश्रुतिसे अच उपस्थित, उसीको मुम्। पहले मुम होता ह्रस्व न हो पाता, अजन्त न मिलनेसे। शुनीं धयति कुतियाको पिलाती है, शुनी शब्द उपपद रहते धे से खश शप् अयादेश मुम् अनुस्वारादि। **शुनिन्धयः**-तिलं तुदतीति तिलंतुदः। व्यथने तिल पेरने वाला व्यथनार्थक तुदसे खश्-अ। पूर्वपदको मुम्। शर्ध-अपान शब्दं जहाति त्याजयति शर्धञ्जहा माषाः। उरद अपान वायु खोलती है। माधवमते अपानद्वारे स्थितः शब्दः शर्धः (शृधु कुत्सायां, घञ) तं जहति माषा अपान शब्दं त्याजयति नतु स्वयं त्यजति। अत उक्तम् जहातिके भीतर प्रेरणा छिपी है।

नासिका—स्तन (द्वन्द्वसे सप्तमी) पूर्व रहते ध्मा धेट धातुसे खश हो। यथा संख्य अन्वय प्राप्त (वा) स्तन पूर्व धेटसे, नासिका पूर्वक धम धातुसे खश हो। वार्तिकसे व्यवस्था बनीं। स्तनं धयति पिबति **स्तन्धयः**-दूधपानकर्ता बालकः। स्तनपूर्वक धे से खश शप अनुबन्धलोप, मुम् टित् होनेसे ङीप कन्या अर्थ। **आतो**-अनुपसर्गे कः क, प्रत्यय होगा तब टाप धया कन्या। गां धयति, गोधा सम्प्रदायः। नासिकां धमति ध्वनिकरोति **नासिकन्धमः**। धमा खश, पाघ्राध्माधेट-धम आदेश, ह्रस्व मुम्। धेट धातुसे खश शप अनुबन्धलोप अय, खित मानकर नुम्, चकार से धेटका लाभ। **नाडी**—और मुष्टी शब्द कर्म हो उपपद हो तब ध्मा धेटसे खश कहें, दोनोंमें यथासंख्य गणनाक्रम इष्ट नहीं भाष्य समर्थनसे। नाडि धमति **नाडिन्धमः**—तेज नाड़ी चलनेकी क्रिया। खश मुम् धम आदेश। मुष्टि धमति **मुष्टिन्धमः**। मुक्केबाजी अत्रापि तथा। जयादित्यने वातंधमः वातन्धयः भी कहा। **घटी**—खारी खरी पूर्वमें रहते ध्मा धेट्से खश। घटीं धमति **घटिन्धमः**—घण्टी बजेगी घड़ी चलाता है। घटी पूर्वक ध्मासे खश-अ, धम+मुम्। एवं खारी पञ्चसेटक अर्थक मात्रा। खारी पूर्वक ध्माधातोः खश् आदि, ह्रस्वे **खारिन्धमः**।

उदि कूले—उत्पूर्वमें हो रुज वह धातुसे खश हो उद। कूलशब्द उपपद रहते। कूलं उद्रुजति कूलमुद्रुजः तटको तोड़नेवाला प्रवाहः। कूल इति उपपदम् उत्पूर्वक रुज धातोः खश् शप् अनुबन्धलोप। कूलमुद्वहति कूलमुद्वहः प्रवाहः किनारेको बहा ले जाय। रुजो भङ्गे-वह प्रापणे खश आदि। **वहाभ्रे**:-वहं कन्धा, अभ्र आकाश

वहिभ्यां कूले कर्मण्युपपदे खश् स्यात्। कूलमुद्रुजतीति कूलमुद्रुजः। कूलमुद्वहः। वहाभ्रे लिहः।३।२।३२। वहः स्कन्धः, तं लेढि इति वहंलिहो गौः अदादित्वाच्छपो लुक्, खशो ङित्त्वान्न गुणः। अभ्रंलिहो वायुः। परिमाणे पचः।३।२।३३। प्रस्थम्पचा स्थाली। खारिम्पचः कटाहः। मितनखे च ३।२।३४। मितम्पचा ब्राह्मणी। नखम्पचा यवागूः। पचिरत्र तापवाची। विध्वरुषोस्तुदः।३।२।३५। विधुन्तुदः। मुमि कृते संयोगान्तस्य लोपः। अरुन्तुदः। असूर्यललाटयोर्दृशितपोः।३।२।३६। 'असूर्यम्' इत्यसमर्थसमासः दृशिना

या मेघ पूर्व रहते लिह धातुसे खश हो। यथा वहं लेढि स्कन्धं जिह्वया स्वादयति वहंलिहः गौः। कन्धा चाटने वाला बैल। वह पूर्वक आस्वादनार्थक लिह धातोः स्वाद कर्तरि अर्थे खश्। मुम आदि। अदादि होनेसे शपः लुक् निश्चित। ङित् होनेसे गुणनिषेध। अभ्रं नीरदं लेढि समापयति इति अभ्रंलिहः तेजवायु आकाश के बादलको चाट जाता है खश मुम गुणनिषेध पूर्ववत्। अभ्रकर्मक आस्वादनकर्ता वायुः। परिमाणे–प्रस्थ सेटक मण, द्रोण खारी आदि परिमाण वाचक कर्म उपपद हो पच धातुसे खश कहें। प्रस्थं पचति प्रस्थंपचा–स्थाली पसेरी भर पकाने वाला हण्डा। प्रस्थ कर्मक पाचनकर्ता अर्थे खश आदि, मुम टाप। खारीं पचति खारिंपचः कटाहः (पच्चीस किलोका पाचक कड़ाहा) खारीकर्मकपचनाश्रयः। खारी पूर्वक पच धातोः खश आदि। मित नखे च-कर्मपूर्व रहते पचसे खश। मितं पचति मात्रामें या न्यून पकानेवाली पच का विक्लितिकी क्रिया अर्थ. परन्तु नखं पचतिमें नखका पाक-मुलायमपन असम्भव, तब कहा पचिस्तु तापवाची। तपाना अर्थ, विक्लिति नहीं। नखं पचति नखंपचाः हाथ सेकवे, जलाने वाली यवागू नख पूर्वक पच धातोः नखकर्मकपाकक्रियाश्रये कर्तरि अर्थे खश 'अ' शेष, मुम आदि टाप्।

विध—अरुष् इनके उपपद रहते तुद धातुसे खश। विधुं चन्द्रं तुदति व्यथयति पीडयति विधुंतुदः राहुः तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयः विधुन्तुदः। विधुपूर्वक तुद धातोः व्यथन-पीडानुकूलक्रिया कर्ता अर्थे खश आदि। अरुन्तुदंतु मर्मस्पृक् इत्यमरः। श्राणोऽस्त्रियां ईर्मंमरुः, अरं मर्मं तत्तुदति अरुन्तुदः वाणः। अरुष् पूर्वक तुद धातुसे (मर्म वेधी पीडक कर्ता) अर्थमें खश आदि। मुं ष के अन्तमें होगा, तब अरुष्का स संयोगान्तलोपका पात्र। असूर्य ललाट–ये कर्म उपपद-पूर्वमें हो दृश और तप धातुसे खश हो। असूर्यं–में असमर्थसमास। न सूर्यम् असूर्यं प्रसज्य प्रतिषेध नञ का क्रियामें अन्वयसे दृश=दर्शनका निषेध है· सूर्यका निषेध नहीं। नञ् का सूर्यके साथ समास कैसे? सूत्रमें पढ़े जानेसे असमर्थसमास स्वीकार। राजदारा गुप्ता भवति, सा सूर्यमपि न पश्यति किं पुनः परपुरुषं, तेन सत्यपि सूर्यं दर्शने दृशधातोः खश शप, मुम अनुबन्धलोप, पाघ्राध्मा दृश्यको पश्य आदेश टाप असूर्यंपश्या। ललाटं तपति सूर्यं पश्यतो ललाटस्य तापात्। ललाटपूर्वक तप धातोः ललाटकर्मक तपन क्रियाश्रयः कर्ता अर्थे खश आदि, सूर्य देखने पर ललाट तपते हैं।

नञः सम्बन्धात्। सूर्यं न पश्यन्ति इति असूर्यम्पश्या राजदाराः। ललाट-न्तपः सूर्यः। **प्रियवशे वदः खच् ।३।२।३८।** प्रियंवदः वशंवदः। **गमेः सुपि** वाच्यः। असंज्ञार्थमिदम्। मितङ्गमो हस्ती। (विहायसो विह इति वाच्यम्) खच्च डिद्वा वाच्यः। विहङ्गः-विहङ्गमः। भुजङ्गः-भुजङ्गमः। **द्विषत्पर-योस्तापेः ।२।३।३६।** खच् स्यात्। **खचि ह्रस्वः ।६।४।९४।** खच्परे णौ उपधाया ह्रस्वः स्यात्। द्विषन्तं परं वा तापयतीति द्विषन्तपः, परन्तपः।

प्रिय वश-कर्म पूर्वमें हो वद धातुसे खच हो। उत्तरसूत्रमें प्रयोजन होनेसे खच, नतु खश। प्रियं वदति मधुरं कथयति **प्रियंवदः**, वशं वदति मैं-वशमें हूं ऐसा कहे **वशंवदः** वशीभूत। प्रिय या वशपूर्वक वद धातुसे मधुर भाषणकर्ता अर्थमें खच मुम्। ऐसे अर्थवानको प्रासंज्ञा स्वादिकार्य। **गमेः** सुबन्त पूर्वपद रहते गम धातुसे खच हो। यद्यपि संज्ञायां की अनुवृत्ति करके 'गमेश्च'-वक्ष्यमाण सूत्रसे खच सिद्ध था, गमेः सुपि क्यों पढ़ा? अत आह **असंज्ञार्थं**==संज्ञा किसीका नाम न हो तब भी खच होनेके लिये। यथा मितं नपा-तुला गच्छति-चालसे चलता अर्थमें मितपूर्वक गमसे ख-अ खितिसे मुम्, अनुस्वार परसवर्ण **मितङ्गमः** हाथी मस्तीमें तोलकर चलता है अर्थमें अर्थवान् जान प्रासंज्ञा आदि। **विहायस—**शब्दः आकाशे अर्थे वर्तते उपपद=उपपदे गमेः खच्। विहायसके स्थानमें विह आदेश भी। खचको डित् भी विकल्पसे हो, बिना भसंज्ञाके टिलोपके लिये। विहायसा आकाशमार्गेणयाति **विहङ्गमः** पक्षी विहायसपूर्वक गम धातुसे खच य। विह आदेश (विह गम अ) दशायां मुम् अनुस्वार परसवर्ण, आकाशमार्गेण गमनकर्ता अर्थेन अर्थवान् स्वादिकार्य डित्पक्षमें टि (अम्) का लोप। तब विहङ्गः। भुजैः गच्छति भूजङ्गमः (सर्पः गिर-गिट्) खच मुम् आदि। जब टिलोप तब भुजङ्गः गमेः सुपि खच्।

द्विषं—और परं पूर्वक तप दाहे (तापयति) तप सन्तापे (तपति) दो ण्यन्त (तापि) धातुसे खच् हो कर्मके पूर्व रहते। द्विषं द्वेषकारिणं तापयति दुश्मनको जलाता सताता है अर्थमें द्विषं पूर्वक तापि धातुसे खच, अ। णिलोप अरुद्विषदजन्तस्य से मुम्। अनुस्वार परसवर्ण। शत्रुपीडक अर्थसे अर्थवान् स्वादिः। परं शत्रुं ताप-यति **परन्तपः** शत्रुकर्मक नाश कर्ता अर्थे परपूर्वक=तापि धातोः खच् मुम् आदि।

ननु द्विषत्परयोः सूत्रमें **प्रातिपदिक** ग्रहणे लिङ्गसहितस्य ग्रहणं परिभाषाके बल पर प्रातिपदिक द्विषत्की जगह द्विषती शब्द पूर्वमें रहते तापि धातुसे खचि होकर **द्विषतीतपः** बने। अणन्त ताप नहीं है। तब कहा शक्तिलाङ्गलाङ्कुश-सूत्रमें घटघटी दोनों पढ़नेसे लिङ्ग सहित (बोधक) परिभाषा अनित्यः जिसका फल द्विषतीं तापयति शत्रुता करनेवालीको सताता है। द्विषती पूर्व रहते तपसे खच् नहीं, किन्तु अण् ही हुआ, ताप सपत्नी कर्मक दुःखदान कर्ता कृदन्तार्थः।

वाचि-वाक् शब्द उपपद=पूर्वमें रहते संयमनार्थक यम धातोः खच् हो व्रत अर्थ

वाचि यमो व्रते ।३।२।४०। वाक्छब्दे उपपदे यमेः खच् स्यात् व्रते गम्ये । वाचयमपुरन्दरौ च ।६।३।६९। वाक्पुरोरमन्तत्वं निपात्यते । वाचंयमो मौनव्रती । 'व्रते' किम् ? अशक्त्यादिना यच्छतीति वाग्यामः । पूः सर्वयोर्दारिसहोः ।३।२।४१। पुरं दारयतीति पुरन्दरः । सर्वंसहः । बाहुलकेन लब्धमिदमित्याहुः । भगं दारयतीति भगन्दरः । सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ।३।२।४२। सर्वङ्कषः खलः । कूलङ्कषा नदी । अभ्रङ्कषो वायुः । करीषङ्कषा वात्या । मेघर्तिभयेषु कृञः ३।२।४३। मेघङ्करः । ऋतिङ्करः । भयङ्करः ।

खुलने पर (शास्त्र बोधित संकल्पविशेषः व्रत) निपातनशक्तिसे व्रतविषयता सिद्ध है । व्रतसे भिन्न स्थलमें अण् नहीं किन्तु खचि वाचं यमोव्रते पुरन्दश्च । वाचियमो व्रते-सूत्रसे मौन व्रतके अनुकूलक्रिया कर्ता अर्थमें खचि, कृदन्त प्रा०संज्ञा विभक्ति लुकि मुम् आदि **वाचयमः** (वाचं यच्छति) एवं पुरं दारयति **पुरन्दरः**-अम अन्त निपातनसे । नतु मुम् । व्रत क्यों ? कहा अशक्त्यादिना-शक्ति नहीं है फिर भी वाचं यच्छति सत्य जबान देता है । अर्थमें अण् वृद्धि कुत्व **वाग्यामः** बनेगा ।

पूः सर्वयोः--पुर शब्द, सर्व शब्द कर्म बनकर उपपद हो, तब दारि (दृ विदारणे) और सह धातुसे खच् हो संख्याक्रमसे । पुरं दारयति नगरको नष्ट भ्रष्ट कर्ता । पुर् पूर्वक ण्यन्त, दारि धातुसे ख-अ णिलोप खचि परे उपधा ह्रस्व, सुप् लुक् । अम् अन्त निपातनसे । ग्राम ध्वंसकारयिता अर्थसे अर्थवान शब्दस्वरूप पुरन्दरकी प्रा०संज्ञा आदि । सर्वं सहते सर्वं सहः सर्वपूर्वक सहन शक्तिके अनुकूल क्रियावाचक सह धातुसे खच्, सब कुछ सहनेके कर्तामें खच् अ मुम् । सर्वकष्ट सहन कर्ता अर्थसे अर्थवान् है। सूत्रमें सहि क्यों पढ़ा? बिना संज्ञाके लिए । क्योंकि संज्ञायां भृवृतृ वृजिधारि सहि-सूत्रसे सिद्ध था । काशिकाकारके मतमें भगपूर्वक दारिसे खच् हो बहुल ग्रहणसे । ऐसा कहा । भगम् गुदस्थ मार्गं दारयति पीडयति विदारयति भगन्दरः रोगः शौच मार्गको कष्ट देने वाला ।

सर्वकूल-अभ्र करीष पूर्व रहते ध्वंसार्थक कष-धातुसे खच् हो । सर्वं कषति नाशयति खलः । सर्वङ्कषा नदी । सर्वपूर्वक कष धातुसे सर्वनाश कर्ता अर्थमें ख-अ खिदन्त परे मुम्, अनुस्वार परसवर्ण । कूलं तटं कषति त्रोटयति **कूलंकषा**-बाढ़की नदी तेज धारा तट तोड़ती है । कर्तामें खच् मुम् अनुस्वार परसवर्ण तटध्वंसक नदी अर्थसे अर्थवान् शब्दस्वरूपको प्रा०संज्ञा आदि । अभ्रं मेघं तोयदं कषति छिन्न भिन्नं करोति वायुः **अभ्रङ्कषः** खच् आदि पूर्ववत् । करीषं कषति गोपुरीषं भञ्जयति वात्या बवण्डर उपड़ोर उड़ाने वाली आंधी अर्थमें करीष पूर्वक कष धातुसे खच् आदि करीषङ्कषा (प्रभञ्जन) ।

मेघ—ऋति भयपूर्वक कृधातुसे अण् हो । मेघं करोति **मेघङ्करः**=इन्द्रः आदेश से बादल प्रकटकर्ता **वात्या** ।मेघपूर्वक कृ धातुसे खच् मुम् आदि । गमनकर्ता अर्थ से अर्थवान् शब्दस्वरूप । भयंकरोति **भयङ्करः** भूत। व्याघ्रः राक्षसः । भयपूर्वक कृ

भयशब्देन तदन्तविधिः, अभयङ्करः। क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ।३।२।४४। एषु कृञोऽण् चात्खच्। क्षेमङ्करः क्षेमकारः। प्रियङ्करः प्रियकारः। मद्रङ्करः-मद्रकारः। कथं तर्हि क्षेमकरः' इति? कर्मणः शेषत्वविवक्षायां पचाद्यच्। आशिते भुवः करणभावयोः ।३।२।४५। आशितशब्दे उपपदे भवतेः खच्। आशितो भवत्यनेनाशितम्भव ओदनः। आशितस्य भवनम् आशितम्भवः। संज्ञायां भृ-तॄ-वृ-जि-धारि-सहि-तपि-दमः ।३।२।४६। विश्वं बिभर्तीति विश्व-

से खच् आदि, भय शब्दके साथ तदन्तविधि होगी विशेषण होनेसे। अभयं करोति अभयङ्करः गुरुः अधिकारी नेता च अभयपूर्वक निर्भयकर्ता अर्थ खच् आदि। क्षेम-प्रिय मद्रपूर्वक कृधातुसे अण हो खच् भी, धात्वर्थ क्रियाश्रय कर्ता अर्थ, क्षेमं कुशलं करोति, क्षेम पूर्वक कृ धातुसे कल्याणकर्ता, शान्तिविधाता अर्थमें खच् मुम् आदि क्षेमंकरः। जब अण् तब आर वृद्धि क्षेमकारः। प्रियं मनोनुकूलं करोति साधयति, जब खच आदि एवं अण् आदि तब दोनों रूप। मद्रं करोति मद्रकारः वा पढ़ते विकल्प होता ही, अण् क्यों पढ़ा हेत्वादिषु=हेतु तच्छील अनुलोम अर्थ-वाचकसे ट प्रत्यय न हो अतः अण् पढ़ा। कृञोहेतु-सूत्रसे ट-प्राप्त था। उसे बांधकर अण्। यदि ऐसा अल्पारम्भः क्षेमकरः कैसे बनेगा। क्षेमङ्करः क्षेमकारः क्यों नहीं बना। कर्म (क्षेम) का शेषत्व=सम्बन्धमात्रकी इच्छा होनेपर पचादि अच् हो जानेसे। वहां कर्म उपपद=समीपस्थ पद नहीं किन्तु संबद्ध-समासार्थमें विलीन पद है। चौरादिगण मानकर ङीष् क्षेमङ्करी भी बनेगा।

आशिते-(अश भोजने) ण्यन्तसे कर्मणि क्त (भोजन कराया) ओदनेन आतिथ्यादिः भोजितो भवति इति आशितं कृतभोजनं। वाऽसरूपन्यायसे ल्युट भी अशितम्भवनम् ऐसा शब्द पूर्व-समीपमें रहते भवने खच्-भू धातुसे आशितः (भोजन किया) जिस साधनसे वह साधन ओदन असितम्भवः आशित पूर्वक भू धातुसे खच मुम्, जब भावमें खच् होगा तब अशितस्य भवनं विग्रह होगा।

संज्ञायां—भृ तॄ वृ जि धारि सहि तपि दमि इन धातुओंसे कर्म उपपद रहते खच् हो। संज्ञा किसीका नाम होने पर, विश्वका भरण पोषणकर्ता विष्णोः संज्ञा अर्थ विश्वपूर्वक भृ धातुसे विश्व भरणकर्ता अर्थ खच् इत्यादि। विश्वम्भरः कैट-भजित्। रसा विश्वम्भरा स्थिरा इत्यमरः, प्रमाणसे पृथ्वीका नाम। जो विश्वका भरण पोषण करती है। रथेन तरति गच्छति पारं, रथपूर्वक तृधातोः रथसहयोगेन तरणकर्ता अर्थ खच् मुम् आदि। परन्तु साम अर्थ नहीं खुला तब कहा रथेन तरति केवल व्युत्पत्ति मात्र है अवयवका अर्थ स्वीकृत नहीं। व्युत्पत्तिका फल स्वर-अवग्रह में है। रथन्तरमाजभारः वशिष्ठः यहां रथंसे अवग्रह है। वृका प्रमाण-पतिं वृणोति पतिम्बरा—कन्या। पतिकर्मक वरण कर्त्री अर्थ खच् आदि। पति वृ अ। खित्का फल मुम् आगम, आर्धधातुक परे गुण टाप्। शत्रुं जयति शत्रुको जीतने वाला अर्थमें जि धातुसे ख-अ गुण अय् मुम् आदि। शत्रुकर्मक जेता अर्थसे अर्थवानकी प्रासता

म्भरा। विश्वम्भरा। रथन्तरं साम। शत्रुञ्जयो हस्ती। युगन्धरः पर्वतः। शत्रुंसहः। शत्रुन्तपः अरिन्दमः। **गमश्च** ।३।२।४७। सुतङ्गमः। **अन्तात्यन्ताध्व-दूर-पार-सर्वानन्तेषु डः** ।३।२।४८। 'संज्ञायाम्' इति निवृत्तम्। एषु गमेर्डः स्यात्। अन्तं गच्छति इति अन्तगः। इत्यादि। सर्वत्रपन्नयोरुपसङ्ख्यानम्। सर्वत्रगः। पन्नं पतितं गच्छतीति पन्नगः। उरसो लोपश्च। उरसा गच्छतीति उरगः। सुदुरोरधिकरणे। सुखेन गच्छत्यत्र सुगः। दुर्गः। अन्यत्रापि दृश्यत इति वक्तव्यम्। ग्रामगः। डे च विहायसो विहा-

---

स्वादि। युगं धारयति सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग तक पृथ्वीको धारण करनेके अनुकूल कर्ता अर्थमें धारि धातुसे खचि परे उपधा ह्रस्व, मुम आदि युगन्धर हिमालयः विन्ध्याचलश्च। युगपर्यन्त धारण कर्ता अर्थः। शत्रुं सहते साहयति वा। शत्रु पर क्षमा करता या कराता (खच्) ह्रस्व आदि कार्य पूर्ववत्। शत्रुं तपति दुश्मनको दारुणदुःख देनेवाला अर्थमें खच् आदि। अरिषु निग्रहविषये दाम्यति शाम्यति अर्थः। दमु उपशमे उपशमयति। अरि पूर्वक दम धातुसे खच् मुम् आदि। यतः शमः-चित्त व्यापारोऽरिशमः। इन्द्रिय व्यापारो परमस्तु। दमः बमनक्रिया। हरदत्त आदि मते दमधातुः अकर्मकः माधवादिमते सकर्मकः अतः अन्तर्भावित= भीतरी भागमें ण्यर्थ प्रेरणा छिपी है। दाम्यति का उपशमयति अर्थ। गमश्च—संज्ञामें गम धातुसे खच हो। सुतं गच्छति सुतङ्गमः पैदा हुए पुत्रके पास जाता है अर्थसे अर्थवान् सुतपूर्वक गम धातुसे खच् आदि। संज्ञा क्यों कहा? कुटुम्बं बिभर्ति कुटुम्बभारः अण् ही हो, न खच्।

अन्त—अत्यन्त अध्व, दूर-पार सर्व अनन्त शब्द पूर्व रहते गम धातुसे ड हो। संज्ञा रुक गया अ शेष। डित्का फल विना भसंज्ञाका टिलोप होना। अन्त तक गमनकर्ता अर्थमें अन्तङ्गम से (ड) अ, टिलोप। अत्यन्तं गच्छति अतिशीघ्र धावक बक्ता अर्थमें 'ड' प्रत्यय अत्यन्तगः अध्वगः पारगः सर्वगः। अनन्तं गच्छति अनन्तगः ड प्रत्यय टिलोप सबमें। सर्वत्र—और पन्न शब्द उपपद हो गमसे ड कहें। सर्वत्र गच्छति सर्वत्रगः वायुः नारदः सर्वदेश दिशामें गमनकर्ता अर्थमें ड टिलोप स्वादिः। पतितं जमीनमें लेटकर चलने वाला पन्नगः सर्पः। पद धातुसे क्त प्रत्यय करके बना पन्न शब्द गमनक्रियामें विशेषण। उरस्—उपपद रहते गमसे ड हो सकारलोप भी। उरसा वक्षःस्थलसे चलने वाली उरस् पूर्वक गमसे ड टिलोप आदि।

सुदुर-उपपद हो आधार अर्थमें गम धातुसे ड हो। सुगः सुखेन गमनकर्ता अर्थ ड टिलोपादिः। दुःखेन गच्छति दुर्गः, किला दुःखसे प्रवेशका आधार अधिकरणे= आधारे अर्थ डः। सुगम दुर्गम मार्ग। अन्यत्र=अन्यशब्दके उपपद रहते अन्य धातुओंसे भी डदृश्यते, सर्वत्रपन्नयोः इत्यादि विस्तारार्थ है। ग्रामं गच्छति ग्रामगः पथिकः ड आदि। डच—ड प्रत्यय परे विहायसको विह आदेश हो। पूर्व प्रसङ्ग खच् विषयक था। विहायसा नभसा गच्छति नभ मार्गसे जानेवाला अर्थमें ड, अ टिलोप

देशो वक्तव्यः। विहगः। आशिषि हनः ।३।२।४९। शत्रुं वध्याच्छत्रुहः। 'आशिषि' किम्? शत्रुघातः। दारावाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम्। दारु-शब्दे उपपदे आङ् पूर्वाद्धन्तेरण्, टकारश्चान्तादेशः। दार्वाघाटः। चारौवा। चार्वाघाटः-चार्वाघातः। अपे: क्लेशतमसोः ।३।२।५०। अपपूर्वाद्धन्तेर्डः स्यात्। अनाशीरर्थमिदम्। क्लेशापहः पुत्रः। तमोऽपहः सूर्यः। कुमारशीर्षयोर्णिनिः ।३।२।५१। कुमारघाती। शिरसः शीर्षभावो निपात्यते, शीर्षघाती।

लक्षणे जायापत्योष्टक् ।३।२।५२। हन्तेष्टक् स्याल्लक्षणवृत्ति कर्तरि।

विह आदेश विहगः पक्षी खच् होता मुन्से विहङ्गमः बनता। आशिषि-शुभ-कामना-आशीर्वादः तातङ्का विषय हो। हन् धातुसे ड कहें। शुभकामना व्यक्त होने पर शत्रु का वधके प्रति शुभकामना अर्थमें शत्रु हन्से ड डित्से टि (अन्) का लोप। शत्रु कर्मक हननकर्ता अर्थसे अर्थवान् शब्दस्वरूप शत्रुहको प्रा०संज्ञा स्वादि०। आशीर्वाद शुभकामना क्यों कहा, शत्रुं हन्ति घातयिता हिंसक, आशी नहीं, न डः, किन्तु अण् कुत्व हनस्तःसे नको त आदि। जब कर्ममें ईषत् दुःसुषुसे खल् प्रत्यय ही होगा। सुखेन दुःखेन गम्यते सुगमः दुर्गम पन्थाः।

दारौ आहन-अण् अन्त दारु शब्द पूर्वमें रहते आङ् पूर्व हन् धातुसे अण् प्रत्यय हो, तभी अन्तमें ट आदेश कहें। काष्ठं (दारु इन्धनं तु एधः) टका विधान मुख्य फल। अण् तो कर्मण्यण्से सिद्ध है। दारु काष्ठम् आहन्ति चूर्ण-चूर्ण कृन्तन्ति लकड़ीको पूर्णरूपसे नष्ट भ्रष्ट कर्ता अर्थमें दारु आहन्से अण्, ट यण् (दार्वाहन ट) णित परे उपधावृद्धि, हको घ, नको ट आदेश। समूल लकड़ी नाशक (गोधाकालका दार्वाघाटस्ते बनस्पतीनां) चारु-शब्द उपपद रहते आहनसे अण् हो, अन्तमें न स्थाने ट आदेश वा हो। चारु सुन्दरं आहन्ति कृन्तन्ति बड़ी सफाईसे काटनेके अनुकूल व्यापारकर्ता अर्थमें चारु आहनसे अण् ट आदेश, उपधावृद्धि आदि स्वच्छतासे छेदक।

अपे—अपपूर्वक हन् धातुसे ड प्रत्यय हो कष्ट मिटाने, तमसः—अंधेरा हटाने अर्थमें जो प्रत्ययका अर्थ है। आशिषि हनः से भी सिद्ध था यह सूत्र क्यों? बिना शुभकामनाके लिए यह सूत्र पढ़ा। क्लेशानि अपहन्ति कष्ट दुःखको दूर करनेवाला। क्लेश पूर्वक अपहन धातुसे दुःख दूर कर्ता अर्थ ड अ। डित्से टि (अन्) का लोपः क्लेशकर्मक दूरीकरणकर्ता कृन्दतार्थसे अर्थवान् शब्दस्वरूप क्लेशापहको प्रा०संज्ञा आदि। पुत्रकष्ट मिटाता है। तमांसि अपहन्ति तपोपहः अन्धकारविदारक सूर्य है तमः पूर्वक अपहन्से ड टिलोप आदि। तमः कर्मक विनाशकर्ता कृन्दतार्थः। कुमार-शीर्ष पूर्वपद रहते हन्से णिनि हो इन् शेष। कुमारं हन्ति कुमारघाती कुमार हन् से हनन क्रियानुकूलकर्ता अर्थमें णिनि उपधावृद्धि कुमार घातिन् कुमारहननकर्ता अर्थसे अर्थवान् शब्दस्वरूप कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्रसे प्रा०संज्ञा स्वादि कार्य। शिरांसि हन्ति विग्रहे णिनि शिरस स्थाने शीर्ष आदेश निपातनसे। शीर्षघातिन् शिर तोड़ने वाला अर्थसे अर्थवान प्रा०संज्ञा, सु, नान्त उपधादीर्घ सु नलोपो।

जायाघ्नो ना। पतिघ्नी स्त्री। अमनुष्यकर्तृके च ।३।२।५३। जायाघ्नस्तिलकालकः। पतिघ्नी पाणिरेखा। पित्तघ्न घृतम्। 'अमनुष्य' इति किम्? आखुघातः शूद्रः। अथ कथं 'बलभद्रः प्रलम्बघ्नः' 'शत्रुघ्नः' 'कृतघ्नः' इत्यादि? मूलविभुजादित्वात्सिद्धम्। 'चोरघातो नगरघातो हस्ती' इति तु बाहुलकादण। शक्तौ हस्तिकपाटयोः ।३।२।५४। हन्तेष्टक् स्याच्छक्तौ द्योत्यायाम्। मनुष्यकर्तृकार्थमिदम्। हस्तिघ्नो ना। कपाटघ्नश्चोरः। 'कवाट' इति पाठान्तरम्। पाणिघताडघौ शिल्पिनि ।३।२।५५। हन्तेष्टक्टिलोपो घत्वं

लक्षण—वाला=कर्ता अर्थ खुलता हो तब जाया पति पूर्वक हन् धातुसे टक् प्रत्यय हो। लक्षणम् अस्ति अस्मिन् लक्षणवान् तस्मिन् लक्षणवति। यथा जायां हन्ति जायाघ्नः जायाहनन सूचक लक्षणवान् ना=मनुष्यः। यस्य हस्ते पत्नीमरण सूचकं पणिरेखाविशेषादिकम् अस्ति यस्य तां हन्ति जायाघ्नः। जायापूर्वक हन् धातु से पत्नी विनाशक रेखा लक्षणवाला अर्थमें टक्। कित् परे होनेसे उपधा अकारका लोप, हो हन्तेः कुत्व हको घ, स्वादि। एवं पतिहनन सूचक लक्षणवती स्त्री पतिघ्नी पतिं हन्ति। पतिमरणसूचकं पाणिरेखादिकं लक्षणं यस्याः हस्ते शरीरे वा अस्ति सा पतिघ्नी। पतिपूर्वक हन् धातुसे पतिमरण सूचक लक्षणवती अर्थमें टक्-अ उपधालोप कुत्व टित्से ङीप्।

अमनुष्य—मनुष्य कर्ता न हो ऐसे अर्थमें वर्तमान कर्मपूर्वक हन् धातुसे टक् हो यथा जायां हन्ति तिलकालकः तिलतुल्य कालाबिन्दु (मनुष्य न हो) काला तिल है, टक आदि कार्य हुए। जब पाणिरेखा (पतिहननका) कर्ता हो। तब भी टक् आदि। अमनुष्य क्यों कहा ? आखून् मूषकान् हन्ति मारयति क्षुद्रः, मूषकहिंसकः। हन् धातुसे अण् आदि हुए, टक् नहीं मनुष्य होनेसे। यद्यपि अमनुष्य शब्द रुढ़ि शक्तिके आधार पर राक्षस पिसाच यक्ष गन्धर्व आदिको भी कहता है। तथापि लक्ष्यानुरोध प्रबल है। जब पूर्वसूत्र लक्षणसहित कर्ता अर्थमें लगेगा। तब प्रलम्बं हन्ति प्रलम्बघ्नः शत्रुं हन्ति शत्रुघ्नः। बलराम आदि मनुष्य है। टक् नहीं होगा अमनुष्य न होनेसे। तब कहा मूलविभूजादि गणमें पाठसे क प्रत्ययसे सिद्ध। चोरं हन्ति चोरघ्नः। नगरं हन्ति नाशयति नगरघ्नः हाथी। यहां क प्रत्ययसे सिद्धि। यदि ऐसा चोरघातः नगरघातः कैसे बनेगा। कर्ता हस्ती है मनुष्य नहीं। हन्ते टक् अवश्य होगा। तब कहा बाहुलकात्=कृत्यल्युटो बहुलं बहून् अर्थान् लातिकी कृपासे अण् भी होता है। वा सरूपविधिकी प्रवृत्ति नहीं।

शक्तौ—हस्ति कपाट पूर्वमें हो तो शक्ति-सामर्थ्यके भीतरका कर्म हो। तब हन्से टक्, हस्तिनं हन्तुं शक्नोति इति हस्तिघ्नः मनुष्यः, हाथी वधमें समर्थ मनुष्य कर्ता हो तब हस्ति पूर्वक हन् धातुसे टक अ। गमहनजनखनघासां-से उपधा अकार लोप। कुत्व आदि हस्तिकर्मक हननाश्रय समासार्थः। कं शिरः पाटयति प्रविशति सिर झुकाकर प्रवेश करे वह। कपाटं हन्ति भनक्ति त्रोटयति कपाटघ्नः—

च निपात्यते पाणिताडयोरुपपदयोः । पाणिघः । ताडघः । 'शिल्पिनि' किम्? पाणिघातः, ताडघातः । राजघ उपसङ्ख्यानम् । राजानं हन्ति राजघः । आढ्य-सुभग-स्थूल-पलित-नग्नाऽन्ध-प्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् ।३।२।५६। एषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु कर्मसूपपदेषु कृञः ख्युन् स्यात् । अनाढ्यमाढ्यं कुर्वन्त्यनेन आढ्यङ्करणम् । 'अच्वौ' किम् ? आढ्यीकुर्वन्त्यनेन । कर्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ।३।२।५७। आढ्यादिषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु भवतेरेतौ स्तः । अनाढ्यः आढ्यो भवतीति आढ्यम्भविष्णुः । आढ्यम्भावुकः ।

दरवाजा उखाने वाला अर्थमें कपाट हन्से टकादि । समर्थ चोर मनुष्य है । किसीके मतमें कौ पृथिव्यामटति कबाटः, अट्से पचादि अच् कु-कव आदेश इति हरदत्तः । पाणिघः ताडघः-शब्द कलाकुशल अर्थमें निपातनसे, सूत्रमें स्वीकारके कारण कल्पनासे, हिंसार्थक हन् धातुसे टक् टिलोप हको घ । पाणि ताड पूर्वमें पाणिना हन्ति प्राणिघः मल्लः, मुक्केबाजी ताडनं ताडः ताडनेन हन्ति पराजयन्ति मूर्छां प्रापयति ताडघः । मल्लविद्या युद्धकला शिल्प है । नित्य अभ्यास होनेसे । कला कौशल अर्थ न हो तब न टक् किन्तु अण् आदि । पाणिघातः-चपेटादाता । ताडघातः तटः तेज वारः से नष्ट । कोई कला हो इसलिए कला कहा । जैसे विषेण हस्तिनं हन्ति विषसाधनसे हाथीको मारता है । स्वयं मारनेमें समर्थ नहीं, यद्यपि इह शक्तिः अस्ति तथापि कर्तामें शक्ति नहीं किन्तु साधन (विष) में शक्ति है । यत्र स्वबलेन हन्तुं शक्तिरस्ति सा गृह्यते । तथैव यत्र शिल्पं नित्याभ्यासः । राजानं हन्ति राजघः राजन् पूर्वक हन्से भी टक् आदि । घ टिलोप निपातनसे । आढ्य—स सुलभ स्थूल पलित पूर्वपद हो च्वि अर्थ (अभूततद्भाव) जो नहीं था वह हो रहा है अर्थमें हो, च्वि प्रत्यय न हुआ हो । तब कृ धातुसे होने क्रियाके साधन अर्थ में ख्युन्, करणाधिकरणयोश्चके ल्युटको बांधकर । अनाढ्यं (दरिद्रीको) आढ्यं (सम्पन्न धनवान्) कुर्वन्ति अनेन, जिस साधन सुविधासे । आढ्य पूर्वक कृ धातोः ख्यु-अन् अरुर्द्विषदजन्तस्य अजन्त जानकर मुम् अनुस्वार परसवर्ण गुण णत्व । निर्धनिनं धनवान् करणसाधनम् अर्थसे अर्थवान् प्रा०संज्ञा स्वादिकार्य । असुभगं सुभगं करोति सुभङ्करण । च्वि (अभूततद्भाव) न हुआ हो ऐसा क्यों कहा ? आढ्यी कुर्वन्ति अनेन मन्त्रेण साधनेन वा यहां च्वि हुआ है, न ख्युन् ।

कर्तरि--भू धातुसे कर्तामें खिष्णुच् खुकञ् (ष्णु-उक शेष) च्वि (अभूततद्भाव विषय हो) च्वि अन्तमें न हुआ हो तब, यथा निर्धन धनी हो रहा है । आढ्यम्भविष्णुः—आढ्यपूर्वक भू धातोः धनवान् भवनानुकूल क्रियाकर्ता अर्थ खिष्णुच् अनुबन्ध लोप, गुण-अव् मुम आदि जब खुकञ् होगा उक् शेष रहेगा। अचोञ्णिति वृद्धि आव् । करणके रुकने वास्ते कर्ता पढ़ा । अच्वौ किम् ? आढ्यीभविता च्वि है । न खुकञ्, न मुम् हो ।

सत्सू-द्विषद्रुह-दुह-युज-विद-भिद-च्छिद-जिनी-राजामुपसर्गेऽपि क्विप् ।३।२।६१। एभ्यः क्विप्स्यादुपसर्गे सत्यसति च सुप्युपपदे ।

द्युसत् । उपनिषत् । अण्डसूः । प्रसूः । मित्रद्विट । प्रद्विट् । मित्रध्रुक् । प्रध्रुक् । गोधुक् । प्रधुक् । अश्वयुक् । प्रयुक् । वेदवित् । इत्यादि । **अग्रग्रामाभ्यां नयतेर्णो वाच्यः ।** अग्रणीः । ग्रामणीः । **भजो ण्विः ।३।२।६२।** सुप्युपसर्गे चोपपदे भजेर्ण्विः स्यात् । अंशभाक् । प्रभाक् । **अदोऽनन्ने ।३।२।**

सत्सु---सद् विशरण गति अर्थ, सू, अदादिका द्विष् अप्रीतौ द्रुह द्रोहे, दुह प्रपूरणे, युजिरयोगे विद ज्ञाने विचारणे सत्तायां। भिद छिद द्वैधीभावे जि जये नी प्रापणे राज दीप्तौ (द्वन्द्वसे पञ्चमी अर्थ षष्ठी) इन धातुओंसे क्विप् हो उपसर्ग रहे या न रहे, सुबन्त पूर्वमें अवश्य हो। जहां सुबन्त रहे वहां उपसर्ग ग्रहण न हो । वदः सुपि, क्यपि च सूत्र उपसर्ग रहते नहीं लगता । उस स्थितमें क्विप्के साथ क्यप् भी सम्बन्धित, तभी विद्या शब्दमें विद् धातुसे क्यप् । क्ङिति चसे गुण निषेध सफल । उपसर्ग रहते क्यप् नहीं होता । दिवि आकाशे सीदति वासं करोति । द्युसत् देवता । दिवपूर्वक निवासार्थक सद धातुसे क्विप् पूर्णलोप (दिव उ) यण् द्युसत् अन्तरिक्ष आधारमें निवासकर्ता अर्थसे अर्थवान्को प्रा०संज्ञा आदि । सको आदेशका सकार मानकर षत्व क्यों नहीं ? सात्पदाद्यो: के निषेधसे । यदि ऐसा आदितेयाः दिविषदः में निषेध क्यों नहीं, षत्व कैसे ? सुषामादिगणमें पढ़े जानेसे । पूर्वपदात् छन्दमें षत्व करता है। मनस्सु येन द्युसदां न्यधीत इति न षत्व । उप समीपे निषीदति ब्रह्मणः समीपं प्रापयति या समीपवासकर्ता । उप नि पूर्वक सदधातुसे समीप वासकर्ता अर्थमें क्विप् पूर्णलोप । सदिरप्रतेः षः । अण्डं सौति प्रसवं करोति अण्डसूः अथवा अण्डात् सौति प्रकटीभवति कुक्कुटवत्सः अण्डा देनेवाली या अण्डसे प्रकट । सू धातुसे उक्त कार्य कलाप, प्रकर्षेण सौति प्रसूः प्रसूता स्त्री । मित्राणि द्वेष्टि प्रीतिं न करोति मित्रद्विट् अतः द्विष् धातुसे क्विप् आदि मित्रद्रोहकर्ता अर्थसे अर्थवान जानकर स्वादिकार्य । प्रकर्षेण द्वेष्टि खूंखार दुश्मन प्रद्विट् । एवं मित्राणि द्रुह्यते विरोधेन शत्रुं करोति मित्रध्रुट् । वा-द्रुहमुहष्णुष्णिहां सूत्रसे विकल्प, पक्षे घ होगा । तब मित्रध्रुक् । भयानकद्रोही प्रध्रुक् । गां दोग्धि गोधुक् गोकर्मक दोहनकर्ता अर्थमें गोदुहसे क्विप् पूरा लोप । दादेर्धातोर्घः । प्रकर्षेण दोग्धि प्रधुक्, निचोड़कर दुहनेवाला क्विबर्थ । अश्वं युनक्ति अश्वयुक् घोड़ोंका संयोजनकर्ता । प्रकर्षेण युनक्ति समाधि लभते, ब्रह्मणि लीनो भवति प्रयुक् । वेदम् अनादिज्ञानराशिं वेत्ति लभते जानाति विचारयति इति वेदवित्—वेद सम्बन्धी ज्ञानकर्ता निःशेषेण सम्पूर्णरूपेण वेत्ति निवित् इत्यादि । काष्ठं भिनत्ति काष्ठभित् लकड़हारा, कुलं भिनत्ति कुलभित् । रज्जुं छिनत्ति रज्जुच्छित् रस्सी त्रोटक । शत्रुं जयति शत्रुजित् इन्द्रियजित् सभाजित् ह्रस्व जानकर तुक् । सेनां नयति सेनानीः विशेषेण राजते शोभते । सर्वत्र उन धातुओंकी क्रियाके कर्तामें क्विप् कहें ।

अग्र-ग्राम पूर्वक नी धातुके नको ण कहें । अग्रं नयति अग्रणीः हनुमान् । ग्रामं

६८। विट् स्यात् । आममत्ति आमात् । सस्यात् । 'अनन्ने' किम् ? अन्नादः । क्रव्ये च ।३।२।६९। अदेर्विट् । पूर्वेण सिद्धे वचनमण्वाधनार्थम् । क्रव्याद् आममांसभक्षक । दुहः कब् घश्च ।३।२।७०। कामदुघा । अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ।३।२।७५।मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्ययाः धातोः स्युः । नेड वशि कृति ।७।२।८। वशादेः कृत इण्न स्यात्। शृ, सुशर्मा प्रातरित्वा । विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् अनुनासिकस्य आत्स्यात् । विजायत इति विजावा । ओण्,

---

नयति उन्नतिपथं प्रापयति ग्रामणीः समानपद नहीं अप्राप्त, णत्वार्थ वचन । भजो— सुबन्त और उपसर्ग पद पूर्वमें हों भज धातुके कर्तामें ण्वि हो, अंश भजति आदत्ते अपना हिस्सा लेने वाला अर्थमें अंश भज्से ण्वि, पूर्णलोप णित्से उपधावृद्धि कुत्व घर । प्रकर्षेण भजति प्रभाक् बहुत ज्यादा, जबरीसे हड़पने वाला ण्विका अर्थ । वृद्धि आदि पूर्ववत् ।

अदो—अन्न शब्द नहीं । मांसादि हो तब अद धातुसे विट् हो । जो जनसन खनक्रमगमः से आया । आमं (ताजा मांस) अत्ति भक्षयति आमात् सिंहः आम मांस भक्षकः । आमपूर्वक, अद्धातुसे आम भक्षणक्रियानुकूल कर्ता अर्थमें विट् । पूर्णलोप दीर्घ वाऽवसाने चर्त्व । सस्यं हरितधान्यादिकं घासादिकंमत्ति खादति सस्यात्—हरी भरी खेती खानेवाला सांड़ । अन्न शब्द न हो ऐसा क्यों कहा ? अन्नं चणकादिकंमत्ति अन्नादः —अद धातुसे अण् उपधावृद्धि हो, विट् न हो इस-लिए । क्रव्ये—उपपद हो अद्से विट् कहें । पूर्वसूत्रसे सिद्ध था इस सूत्रकी विशेषता अण्को बाधना है नियम क्रव्यपूर्वक अदसे विट् ही हो, अण न हो नियमके लिए, क्रव्यं अत्ति क्रव्यात्—रक्तमांस खादकः । अदसे विट् आदि कार्य ।

दुहः—सुबन्त पूर्वपदमें रहते दुह धातुसे कप् हो, ह-व भी अन्तादेश हो कामम्-आवश्यकतानुकूलं दुग्धे कामदुघा—धेनुः कामपूर्वक दुह धातुसे इच्छानुकूल दूध देनेवाली अर्थमें कप् 'अ' शेष-हको घ आदेश टाप् कामदुघा । अन्येभ्यः—धातो-मनिन्क्वनिप्वनिपश्चके अधिकारमें यह सूत्र । छन्दसिका अधिकार समाप्त । ये प्रत्यय धातुसे हो । नेड वश=वरटसे लेकर ग ड द श तक अक्षर आदिमें हो ऐसे कृत् प्रत्ययको इट् नहीं होता । सुष्ठु शृणाति हिनस्ति सुशर्मा प्रभावशाली अधर्म नाशक । सु शृ धातुसे अधर्मनाशानुकूलक्रिया कर्ता अर्थमें मनिन् गुण (सुशर्मन्) अधर्मका सत्यविनाश कर्ता, साधु हिंसक अर्थसे अर्थवान् जानकर प्रा० संज्ञा सु, उपधादीर्घ सुलोप नलोप : प्रातः एति गच्छति प्रातरित्वा—प्रातः पूर्वक इण धातु से प्रातः घूमने वाला अर्थमें क्वनिप् इत्व सु आदि पूर्ववत् ।

विड्वनो—धातुके अनुनासिकको आत्व हो विट् वन् प्रत्यय परे । विजायते विपूर्वक जन धातुसे विशेष रूपसे प्रादुर्भाव होनेवाला अर्थमें विच, अन्येभ्योऽपि दृश्यते सूत्रसे । विट् परे अनुनासिक नकारको आ । विजावन् स्वादिकार्य सवर्ण दीर्घ विजावा । ओण् अपनयने । अवपूर्वक ओण धातुसे वनिप् आत्व सवर्णदीर्घ

अवावा। विच् रोट्, रेट्, सुगण्। क्विप् च।३।२।७६। अयमपि दृश्यते। प्रपञ्चः। उखास्रत्। पर्णध्वत्। वाहभ्रट्। अन्तः।८।४।२०। पदान्तस्यानितेर्नस्य णत्वं स्यादुपसर्गस्थानिमित्तात्परश्चेत्। हे प्राण। 'शास इत्–' इतीत्वम्। मित्राणि शास्ति मित्रशीः। आशासः क्वौ उपधाया इत्वं वाच्यम्। आशीः। इत्वोत्वे-गीः। पूः। 'मो नो धातोः' प्रतान्। प्रशान्।

अवावन् अनुनासिकको आ। रुषरिष हिंसायां रोषते रोट् रेट् हिंसक, विच पूर्णलोप। सुष्ठुगणयति सुगण–अच्छा गणितवेत्ता। सुपूर्वक गणसङ्ख्याने धातुसे विच पूरा लोप, उत्तम गणितकर्ता प्रत्ययार्थ क्विप्। अयमपि सर्वधातुभ्यः (उपपदमस्तुनवा) पूर्वपद हो या न हो सभी धातुओंसे क्विप् देखा जाता है। लोप हो या दीर्घ। इसी सूत्रका प्रपञ्च विस्तार सत्सूद्विषत् आदि सूत्र, क्विप् चका विस्तार है। उखाया। स्रंसते हण्डा बटलोहीसे उफनकर गिरनेवाला उखास्रत्–अवस्रंसने अर्थे स्रंस धातोः क्विप् सर्वलोप अनिदितां नलोप वसु स्रंसु ध्वंसु सको द उखास्रत् तण्डुलः। पर्णात् ध्वंसते पर्णध्वत् कीटः शङ्कुलाखण्डः तमालं वा पत्तीसे गिरने वाले अर्थमें क्विप् नलोप दत्व। वाहनात्=अश्वात् भ्रश्यति पतति वाहभ्रट–अश्वावधिक पतनानुकूल क्रियायाः कर्ता अर्थ ध्वंस धातोः क्विप् सर्वलोपे नलोप व्रश्चभ्रस्जसे सको ष।

अन्तः––अनितेः रषाभ्यां नो णः उपसर्गात्की अनुवृत्ति पदान्तमें (अन प्राणने) धातुके नको ण हो उपसर्गमें र ष के रहने पर जो णत्वका निमित्त है। हे प्राण? प्रकर्षेण अनिति प्राणिति दीर्घायुः भवति प्राणः तत्सम्बुद्धौ हे प्राण। प्र पूर्वात् अन प्राणने धातुसे क्विप् आदि। सम्बोधन एकवचनका हल्ङ्यादिलोप णत्व, नलोप नहीं। मित्राणि शास्ति हित अनहितका उपदेश करे। मित्रपूर्वक शास् धातोः मित्र कर्मक उपदेश कर्ता अर्थे क्वि लोप। शास इदंहलोः उपधाको इत्व (शिष) र्वोरुपधाया। दीर्घः। मित्रशीर मित्रका अनुशासन कर्ता अर्थसे अर्थवान् शब्दस्वरूपको प्रा० संज्ञा सु सुलोप। पदान्त सकारको रु रेफको विसर्ग मित्रशीः मित्रशिषौ मित्रशिषः। पदान्त नहीं न दीर्घ। आङ् पूर्वक शासु इच्छायां आत्मनेपदी धातुसे क्विप् परे इच्छार्थक शासके आको इत्व हो। आशास्ते इति आशीः=आशा करनेवाला आङ् पूर्वक इच्छार्थक शास् धातोः क्विप् आशासः क्वौ इत्वं आशिष्। जब रुत्व र्वो० से दीर्घ इत्वे। गृणाति इति गीः निगरणार्थक गृ धातुसे लीलने क्रियाके कर्ता अर्थमें क्विप् आदि, धातोः ऋको इ रपर सुलोप दीर्घ गीः गिरौ गिरः आच्छन्ति निगलने वाले। पिपर्ति पूरयति वा जनान् अन्नादीन्वा इति पूः ग्रामः। पालन पूरणार्थक पृ धातुसे पालन-पोषण क्रियाके कर्ता अर्थमें क्विप् सर्वापहारः, उदोष्ठ्यपूर्वस्य ऋको उर, पुर सु दशामें सुलोप उपधादीर्घ पूः पुरौ पुरः ग्रामरक्षक पालक होते हैं। प्रकर्षेण तनोति विस्तारयति तनु विस्तारे प्रतान्–चांदनी डेरा। प्रतनसे विस्तार कर्ता फैलनेवाला अर्थमे क्विप्, अनुनासिकस्य क्विझलोः दीर्घः स्वादिः प्रतान् प्रतानौ प्रतानः। प्रकर्षेण शाम्यति (प्रशान्) सुदर्शनं। शम धातुसे क्वि आदि अनुनासिक पूर्वको दीर्घ, धातुके मको न। प्रशान् प्रशामौ प्रशामः।

गमः क्वौ ।३।४।४०। अनुनासिकलोपः स्यात् । अङ्गगत् । गमादीनामिति वक्तव्यम् । पुरीतत् । संयत् । सुनत् । ऊङ् च गमादीनामिति वक्तव्यं लोपश्च । अग्रेगूः । अग्रेभ्रूः । स्थः क च ।३।२।७७। चात्क्विप् । शंस्थः-शंस्थाः । सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये।३।२।७८। अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिः स्यात्ताच्छील्ये द्योत्ये। उष्णभोजी । शीतभोजी । मनः ।३।२।८२। सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात् । दर्श-

---

गमः–गम धातुसे क्वि परे अनुनासिक म, का लोप हो अङ्ग नामकदेशं अङ्गगत् उड़ीसामें जानेवाला, वङ्गं गच्छति वङ्गगत् बंगालयात्री । कलिङ्गं गच्छति कलिङ्गगत् केरलयात्री सबमें गमके मका(अनुनासिक जानकर) लोप, तुक् आदि। अङ्गकर्मक संयोगानुकूल व्यापाराश्रयः । गम आदि धातुओंके क्वि परे अनुनासिक लोप कहें । पुरीतत् पुरी=हृदयाख्यो मांसखण्डविशेषः तं तनोति आच्छादयति हृदयकमलाच्छादकः मेदोविशेषः पुरीतताहि हृदयमाच्छाद्यते । तनसे क्विप् नलोप तुक् पूर्वपद को दीर्घ । नहिवृतिवृषि सूत्रसे सयमकर्ता अर्थमें क्विप् अनुनासिकलोप सुष्ठु नमति सुनत् सुनतौ सुनतः बालकाः । नमनकर्ता अर्थसे अर्थवान् **ऊङ्**–गम धातुसे ऊङ् हो उपधाके अको ऊ हो अनुनासिक लोप भी, च पढ़नेसे समुच्चयसे । अग्रे गच्छति **अग्रेगूः**–अग्रपूर्वक गममें अको ऊ, मलोप । तत्पुरुषे कृति बहुलम्से सप्तमीका अलुक् । पहले गन्ता । स्वादि० अग्रे भ्रमति अग्रेभ्रूः प्रथम भ्रमणकर्ता, भ्रमके अको ऊ । मलोप । **स्थः**—उपपद हो या न हो स्था धातुसे क प्रत्यय हो क्विप् भी सुबन्त रहते । शं सुखं तिष्ठति। **शंस्थः**—सुख अर्थमें अव्यय (शं) पूर्वक स्थासे सुख स्थिरता के अनुकूल कर्तामें क-अ । आलोप शंस्थः । जब क्विप् तब शंस्था । सुखं स्थापयति अन्तर्भावित ण्यर्थ । यद्यपि सुपिस्था, क्विप् च की कृपासे दोनों रूप प्रसिद्ध होते तथापि शमधातुसे अच् प्रत्ययको बांधनेके लिए सूत्र पढ़ा । धातु मात्रसे होनेवाला टच् प्रत्यय टको बांधता है । तथा क क्विप्को बांध लेता ।

सुपि अजातौ—जाति अर्थ न हो, सुबन्त पहले हो ऐसे धातुसे णिनि कहें । उस क्रियाके अनुकूल शील स्वभाव आदत लत पढ़ना, विवश होना अर्थ खुलता हो । पुनः सुप् पढ़ना उपसर्गेऽपि विधानार्थं (उष्ण भुनक्ति **उष्णभोजी**–भोजनकरणं शीलं स्वभावो यस्य सा विवशतानुकूल क्रिया कर्ता अर्थे णिनि, अनुबन्धलोप । उष्णं भोक्तुं शीलमस्य आर्धधातुकसंज्ञा गुण उष्णभोजिन् ग्रीष्मंभोजनशीलः अर्थेन अर्थवत् शब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्वादिकार्य-भाक् । नान्तोपधायाः दीर्घ, सुलोप नलोपौ । शीतं भोक्तुं शीलं स्वभावः अभ्यासः विवशता अस्ति अस्य **शीतभोजी**–शीत अम्पूर्वक भुजधातोः शीतभोजनशीलः कर्ता अर्थे णिनि गुण आदि, शीतभोजिन्को उक्त अर्थसे अर्थवान जानकर प्रा०संज्ञा स्वादिकार्य । अजातौ किं ? जाति भिन्न अर्थ क्यों कहा ? ब्राह्मणकर्मक आमन्त्रयिता आमन्त्रणानुकूलक्रियाश्रयः ।

मनः—मन ज्ञाने दिवादिका मान्य तनादिका मन अवबोधने नहीं, बहुलकी अनुवृत्तिसे। सुबन्तपूर्व रहते मानने अर्थमें मन धातुसे भावना-ज्ञानके अनुकूल क्रिया कर्ता अर्थमें णिनि-इन हों । दर्शनीयं मन्यते दर्शनीय है ऐसा मानने वाला । सुबन्त

नीयमानी। आत्ममाने खश्च।३।२।८३। स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यते सुपि खश् स्यात्। चाण्णिनिः। पण्डितमात्मानं मन्यत इति पण्डितम्मन्यः-पण्डित-मानी। इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च ।६।३।६८। इजन्तादेकाचोऽम् स्यात् स च स्वाद्यम्वत्खिदन्ते परे।

ओतोऽम्शसोः गाम्मन्यः। 'वाम्शसोः' स्त्रियम्मन्यः-स्त्रीम्मन्यः। नृ नरम्मन्यः। भुवम्मन्यः। श्रियमात्मानं मन्यते श्रिमन्यं कुलम्। भाष्यकार-

---

दर्शनीयके पूर्वमें रहते (मन इन्) णित परे उपधावृद्धि मानिन् स्वादिकार्य। आत्ममाने—आत्मनः स्वस्य मननं आत्ममानः तस्मिन्, एवम् आत्मा, मन् धातुका स्वयं कर्म हो अपनेको दर्शनीय या पण्डित या कलाकुशल वीर पुरुषार्थी या असमर्थ मानना हो तब उस अर्थमें वर्तमान मन धातुसे सुपि पूर्वक रहते खश हो णिनि भी च पढ़नेसे। आत्मानं पण्डितं मन्यते अपनेको बुद्धिमान विवेकी मानता है अर्थमें पण्डित पूर्वक मन धातुसे खश् अ शेष शितसे सार्वधातुकसंज्ञा शप् बाधकर श्यन् खितसे मुम अनुस्वार, स्वकर्मक पण्डितमननकर्ता अर्थसे अर्थवान् शब्दस्वरूप पण्डितमन्यः प्रासंज्ञा स्वादिकार्य। तनादि मन अवबोधने होता उ विकरण होता। जब णिनि उपधावृद्धि सु, नान्त उपधादीर्घ आदि पण्डितमानी मानिनौ मानिनः खिति-अनव्ययस्य स्त्रियाः पुंवद्के पुलिङ्गको बाधकर परत्वात् ह्रस्व होगा, काली मात्मानं मन्यते अपनेको काली माननेवाली अर्थमें मन से खशि श्यन्, खिति अनव्य-यस्य सूत्रसे पुंवद् भावको बाधकर ह्रस्व मुम अनुस्वार (कालिम्मन्याः) अनव्ययको ह्रस्व हो ऐसा क्यों कहा? दिवा मन्यते दिवामन्या दिन है ऐसा मानने वाली दिवा अव्यय है ह्रस्व न हो। वृत्तिविषये कर्मत्वं बोध्यम्।

इच एकाच-इच अन्त हो एकाच हो, उससे अम् हो वह अम स्वादिका अम माना जाय। खित्प्रत्यय अन्त शब्द परे, एकाच अम्। अम च म च एकशेष, इच एकाचो ऽ, प्रथमवाक्य, मुम्को बाधकर अ विधान। द्वितीया एकवचन इष्ट, खिदन्त उत्तरपद परे अम्प्रत्ययवत् भावका फल बोले—औतोऽम् अम परे आत्व। अम शस परे वा विकल्पसे। आत्मानं गां मन्यते अपनेको बैल मानने वाला, गो पूर्वक मनसे मनन क्रियाके कर्तामें खशि, श्यन्, सुपलुक इच एकाचो अम् (गो अम) मन्य औतो म्शसोः अम परे आत्व आदि। गामन्य-न विभक्तौके निषेधसे मकारः नहि इत, स्त्रियम् आत्मानं मन्यते स्त्रियंमन्यः, सुबन्तपूर्वक मन धातुसे खश श्यन्, सुप लुक (स्त्री अम् मन्य) वा अम्शसोःसे इयङ् विकल्प। यदि मुम् होता य में अ न रहता (अकारो न श्रूयेत) न इयङ् तब स्त्रीम्मन्यः। अमि पूर्वः पूर्वरूप। अन्य प्रयोजन नृ उदाहरणका सूचक आत्मानं नरं मन्यते स्वकर्मक नर इति मननकर्ता अर्थ खश आदि, नृसे अम् ऋतो अङि गुणः नरंमन्यः, र में अके लिये अम्। मुम होता अकारः न श्रूयेत। अन्य प्रयोजन-आत्मानं भुवं मन्यते अपनेको बहुत व्यापक मानने वाला भू व्याप्तौ। अथवा भुवं सकलाधारं सबका रक्षक मानने वाला-खश आदि (भू अम

वचनाच्छ्रीशब्दस्य ह्रस्वो मुमषोरभावश्च । भूते ।३।२।८४। अधिकारोऽयम् 'वर्तमाने लट्' इति यावत् । करणे यजः ।३।२।८५। करणे उपपदे भूतार्था-द्यजेर्णिनिः स्यात्कर्तरि। सोमेनेष्टवान् सोमयाजी। अग्निष्टोमयाजी। कर्मणि हनः ।३।२।८६। पितृव्यघाती । ब्रह्म-भ्रूण-वृत्रेषु क्विप् ।३।२।८७। एषु कर्मसूपपदेषु हन्तेर्भूते क्विप् स्यात् । ब्रह्महा भ्रूणहा वृत्रहा । 'क्विप्

मन्य) अवि श्नुधातु उवङ् । श्रियमात्मानं मन्यते लक्ष्मीका रूप अपनेको मानने वाला। मनन क्रियाके प्रति कुल कर्ता है, कुलका आरोप, श्री कर्म बना, नित्य स्त्रीलिङ्ग। श्री का लक्षणासे कुल अर्थमें वृत्ति। खश होने पर ह्रस्व होगा। यथा पृथ्वादयः शब्दाः पुंयोगात् स्त्रियां वर्तन्ते। प्रष्ठी गणिका भवति तथा स्त्रीशब्दः त्यक्तस्वलिङ्गः क्लीबः सन् कुले वर्तते। अमके बाद नपुंसक ह्रस्व, मुम् नहीं होता भाष्यकार वचनसे स्वमोर्लुक भी नहीं, अतः ह्रस्व, मुमः अभाव कहा।

भूते—अधिकार सुत्र है धातु अधिकृत है ही। भूतकाल अर्थमें विराजमान धातुसे प्रत्यय हों, वर्तमाने लट्के पहले तक। तत्र व्याख्यानमेव शरणम्। समाप्त क्रिया जिसकालमें हो भूतकाल है फलकी सिद्धि पर्यन्त क्रियायें वर्तमान कार्य (फल) सिद्ध होते ही क्रिया समाप्त मान्य। क्रिया नित्य है वर्तमानमें न रही तो भूतकाल ही उसका आधार बना। क्रिया धातुका अर्थः (विद्यमानध्वंसक्रियाश्रयः भूतकालः) ऐसे कालमें विराजमान धातुसे णिनि आदि अग्रिम प्रत्यय हो। करणे=तृतीयान्त पद पूर्वमें हो भूतकाल-समाप्तक्रियाकालमें विराजमान धातुसे भूतकालिक कर्ता अर्थमें णिनि=इन् हो। स्वरितप्रतिज्ञया णिनि एव अनुवर्तते। सोमेन=सोमलतारस विशेषेण यागं कृतवान् सोमलतारसरूपद्रव्यसे हुए यज्ञसे अपूर्वम् अदृष्टफलम् उत्पादितवान्। सोमेनपूर्वक यज धातुसे सोमसाधनसम्बन्धी यज्ञः कृतः भूतकालिक क्रियायाः कर्ता अर्थे। सोम कालिकं यज्ञं कृतवान् अर्थेन अर्थवत् शब्दस्वरूप सोमेन याजिन्को प्रासंज्ञा (दीर्घ) सुपो धातुप्रातिपदिकयोः सुपः लुक् स्वादिकार्य। सोम-याजी, एवं अग्निष्टोमाख्येन साधनेन यज्ञं कृतवान्। अग्निष्टोमः—स्तोत्रं तेन साधनेन कृतः यज्ञः लक्षणया अपूर्वं भावितवान् अग्निष्टोम पूर्वक यजधातोः णिनि उपधादीर्घ आदि पूर्ववत्।

कर्मणि—(क्रियाजन्य फलाश्रय) कर्म पूर्वमें हो हन धातुसे हिंसानुकूल क्रियाके कर्तामें इन् हो। पितृव्यं-पितुः भ्राता पितृव्यः तं हतवान् पिताके भाई चाचाका वधकर्ता, पितृव्यपूर्वक हन-इन् उपधावृद्धि। हनः त, हो हन्ते हको घ। घातिन् पितृव्यकर्मक भूतकालिक हननकर्ता अर्थसे अर्थवान शब्द स्वरूपको स्वादिकार्य, इस सूत्रमें पठा कर्मणिका अधिकार 'सहे च' सूत्र तक चलेगा। ब्रह्मभ्रूण—वृत्र ये कर्म पूर्वपद हो हन धातुसे भूतकालिक हिंसा क्रियाके कर्तामें क्विप् हो। यथा ब्रह्म हतवान् वेद ब्राह्मण ब्रह्मा कर्मक भूतकालिक हिंसा क्रियाया कर्ता अर्थे क्विपि, पूर्ण लोपे विप्रवधं कृतवान अर्थवान् शब्दस्वरूप, प्रासंज्ञा सु, नान्तोपधायाः दीर्घ। सुलोप

च' इत्येव सिद्धे नियमार्थमिदम्। ब्रह्मादिष्वेव क्विवेवेति द्विविधो नियम सु-कर्म-पाप-मन्त्र-पुण्येषु कृञः ।३।२।८६। सुकर्मादिषु च कृञः क्विप्स्यात्। सुकृत्। कर्मकृत्। पापकृत्। मन्त्रकृत्। पुण्यकृत्। सोमे सुञः ।३।२।९०। सोमसुत्। एवमुत्तरसूत्रेऽपि। अग्नौ चेः ।३।२।९१। अग्निचित्। कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ।३।२।९२। कर्मण्युपपदे कर्मण्येव कारके चिनोतेः क्विप्स्यात्, अग्न्याधारस्थलविशेषस्याख्यायाम्। श्येन इव चितः श्येनचित्। कर्मणोनि

नलोपौ। भ्रूणं जातजन्म, जीवं हतवान् विग्रहे भ्रूणहन शब्दात् जातस्य जीवस्य भूतकालिक हिंसाक्रियायाः कर्ता अर्थे क्विप इत्यादि। वृत्रं वृत्रासुरनामकं राक्षसं हतवान् वृत्रहा-हननकर्ता इन्द्रः। ब्रह्म आदिके उद्देश्यसे हन्ति, सूतके पश्चात् क्विप का निर्देश। सूत्रका प्रयोजन (क्विप च) से ही सिद्ध था, सिद्धे सति आरम्भविधिः ब्रह्मभ्रूणवृत्तेषु सूत्र नियमके लिये कल्पित होगा। उसका सूचक एव है (यत्र एव कारः ततो अन्यत्रनियमः) यह नियम भाष्यमतमें दो है। ब्रह्मादिष्वेव हन्तेः क्विपि नियमसे भूतकालके साथ वर्तमानकाल, भविष्यकालमें भी क्विप् होगा। पुरुषं हतवान् हन्ति हनिष्यति वा क्विप् पुरुषहा बनेगा। जब ब्रह्मादिष्वेव भूते क्विप कहेंगे तब (न क्विप्) पुरुषं हतवान् ही रहेगा, नहि पुरुषहा। द्वितीय नियम भ्रूण आदि उपपद रहते भूतकालमें हन धातुसे क्विप हो। अन्य प्रत्यय न हो। वृत्रं हतवान् विग्रहमें अण् नहीं हुआ। किन्तु क्विप एव। कालनियमका फल ब्राह्मणं हतवान् ब्रह्मघाती प्रयोग नहीं बनता। निष्ठासंज्ञक क्तवतु होते हैं आदि।

सुकर्म—पाप, मन्त्र पुण्य पूर्व रहते कृ धातुसे भूतकालिक क्रियाकर्ता अर्थमें क्विप्, काशिकारके मतमें यह सूत्र भी नियमार्थ है। तत्र त्रिविधो नियमः सुकर्मादिपूर्वक भूतकालिक कृसे क्विप् ही हो। कृञ एव क्विप्, भूते एव कृञ् से क्विप सुः=पुण्यं कृतवान् सुकृत्—धर्मः, सुपूर्वक कृ धातुसे भूतकालिक शोभन क्रियाकर्तामें क्विप पूर्णलोप पितिकृत परे ह्रस्व देखकर तुक 'त' स्वादि। कर्म कृतवान् कर्मकृत् कार्य कर लिया। कर्मसम्बन्धी भूतकालिक क्रियानुकुल कर्ता अर्थ क्विप्, स्वादिकार्य, पापं कृतवान् पापकृत् मन्त्रं कृतवान्, पुण्यं कृतवान्। सबमें कृसे क्विप तुक स्वादि।

सोमे-सोमपूर्वक सु धातुसे क्विप हो सोमं सुनोतिस्म सोमसुत् सोमलता निचोड़ने, कूटकर छाननेके अनुकूल समास क्रियाकर्ता अर्थमें क्विप् आदि। यहां भी चार प्रकारका नियम है। जो उत्तर सूत्रोंमें भी चलेगा। सुनोतेः सोम एव इत्यादि। **अग्नौ**—अग्नि चिनोति। कर्मपूर्व रहते भूतकाल समासचयन क्रियाकालमें विराजमान चिधातुसे क्विप् हो। अग्नि चिनोति अग्निचित् अग्निकुण्ड इष्टिकाभिः चितवान् अग्निपूर्वक चि धातुसे क्विप्, पूर्णलोप, तुक आदि। अग्नेः चिनोतेरेव नियमसे सोमं क्रीतवान् सोमक्रीः। अग्नि भृतवान् अग्निभृत् क्विप् नहीं, किन्तु अण, सोमक्रायः, अग्निभारः इत्यादि। **कर्मणि**—पूर्वपद हो अग्नि (कुण्ड) विशेष स्थल बना हो कर्मकारक रहते ही क्विप् हो। श्येन इव चिनोति श्येनचित् बाज

विक्रियः ३।२।९३। कर्मण्युपपदे विपूर्वात् क्रीणातेरिनिः स्यात्। कुत्सितग्रहणं कर्तव्यम्। सोमविक्रयी। घृतविक्रयी।

दृशेः क्वनिप् ।३।२।९४। कर्मणि भूत इत्येव। पारं दृष्टवान् पारदृश्वा। राजनि युधिकृञः ।३।२।९५। क्वनिप् स्यात्। युधिरन्तर्भावितण्यर्थः। राजानं योधितवान् राजयुध्वा। राजकृत्वा। सहे च ।३।२।९६ कर्मणि इति निवृत्तम्। सहयुध्वा। सहकृत्वा। सप्तम्यां जनेर्डः। ३।२।९७।

की तरह अग्नि कुण्ड रचा। श्येन शब्द स्वसदृश अर्थमें लाक्षणिक है यथा श्येनस्य आकृतिः अग्न्याधारस्थलं क्विप्, पूर्णलोप तुक आदि।

कर्मणि—कर्मपूर्व रहते विपूर्वक क्री धातुसे इनि हो। इस सम्बन्धमें कुत्सित—कर्म ग्रहण करें। यथा-सोमं विक्रीतवान् **सोमविक्रयी**—सोमस्य विक्रयणं कुत्सार्हं शास्त्रे प्रतिषेधात्। विक्रेतुः कुत्सामावहति विक्रयस्य निषेधात्। सोमरस विक्रयसे निन्दा जान पड़ती है, सोम कर्म है सोमविक्री-धातुसे णिनि, गुण अय, आदि। नान्त शब्द प्रथमा एकवचन। घृतं विक्रीतवान् इति **घृतविक्रयी**—घी बेचना निन्दा सोमद्रव्यं घृतं च विक्रेतारः निन्दामावहन्ति। घृतपूर्वक विक्री धातोः निन्दति क्रियायाः कर्तरि णिनि। प्रथमा एकवचन रूप।

दृशे—कर्मपूर्व रहते भूतकाल अर्थमें विराजमान दृश धातुसे क्वनिप् क प इत 'वन्' शेष। यद्यपि यह कार्य अन्येभ्योऽपि दृश्यतेसे हो जाता तथापि मनिन् आदि बाधनार्थ पढा। निष्ठा प्रत्यय होते ही है। यथा पारदृश्वा गृद्धः। समुद्रपार तक देखता है। **पार**=कर्म उपपद रहते समास दर्शन क्रियाके कर्तामें दृश धातुसे वन् आदि। पारदृश्वन्-परलोक परदेश पर स्थान तक दर्शनक्रियाकर्ता अर्थसे अर्थवान् मानकर स्वादिकार्य नान्तदीर्घ। सुलोप नलोप। विश्वंपश्यन्ति विश्वदृश्वानि तानि नयनानि येषां ते विश्वदृश्वनयना। लट्के साथ विग्रह भी युक्त।

राजनि कर्म उपपद रहे भूतकाल-समासयुद्ध क्रियाकालके कर्तामें क्वनिप् हो युध धातुमें अन्तर्भावित भीतर प्रेरणा भी छिपी है क्योंकि युध अकर्मक है प्रसङ्ग सकर्मक होना आवश्यक। राजाको लड़ा दिया, युद्ध करनेका वातावरण पैदा किया राजा कर्मक युद्ध कारयिता अर्थमें 'वन्' आदि। राजयुध्वन् प्रथमा एकवचन। राजानं कृतवान् राजकृत्वा राजा बना चुका हो, शङ्कराचार्यं कृत्वा करपात्रिः। मण्डलेश्वरं कृतवान् मण्डलेश्वरकृत्वा, कृ धातुसे क्वनिप् 'वन्' शेष। राजकृत्वन् नान्त उपधादीर्घ सुलोप नलोपौ। **सहे च**—कर्मणिकी अनुवृत्ति रुकी। सह पूर्व रहते युध, कृ धातुसे क्वनिप हो, सह योधितवान् **सहयुध्वा**—एक साथ लड़ा दिया, सह कृतवान् सहकृत्वा साथ कार्य किया। वन् प्रत्यय प्रथमा एकवचन तुक् भी।

सप्तम्या—सप्तम्यन्त शब्द पूर्वपद हो जन धातुसे भूतकालिक जननक्रियाके कर्ता अर्थमें ड हो। ड इत्का फल बिना भसंज्ञाके टिलोप। यथा-सरसि जातं **सरसिजं**—कमल कमलिनी कुमुद कुमुदिनी। सरसि (सप्तमी अन्त शब्द) पूर्वक

तत्पुरुषे कृति बहुलम् ।६।३।१४। तत्पुरुषे समासे कृदन्ते उत्तरपदे बहुलं ङेर्लुक् सरसिजम् सरोजं । **उपसर्गे च संज्ञायाम्** ।३।२।९९। 'प्रजा स्यात् सन्ततौ जने' इत्यमरः । **अनौ कर्मणि** ।३।२।१००। अनुपूर्वाज्जनेः कर्मण्युपपदे डः स्यात् । पुमांसमनुरुध्य जाता पुमनुजा । **अन्येष्वपि दृश्यते** ।३।२।१०१। अन्येष्वप्युपपदेषु जनेर्डः स्यात् । अजः द्विजः ब्राह्मणजः । अपिशब्दः सर्वोपाधिव्यभिचारार्थं । तेन धात्वन्तरादपि कारकान्तरेष्वपि क्वचित् । परितः खाता परिखा । **पञ्चम्यामजातौ** । ।३।२।९८। जातिशब्दवर्जिते पञ्चम्यन्ते उपपदे जन्नेर्डः स्यात् । संस्कारजः अदृष्टजः ।

प्रादुर्भावार्थक जनधातुसे जननक्रियाके कर्तामें ड (सरसि जब अ) डित्की शक्तिसे अनका लोप । तालाबके आधारमें प्रादुर्भूत कमल अर्थसे अर्थवान जानकर प्रासंज्ञा सु विभक्ति आदि। हलदन्तात् अथवा तत्पुरुषे कृतिसे ङिका अलुक्। लुकि तु सरोजम्।

उपसर्गे—उपसर्ग पूर्वमें हो जन धातुसे ड हो, संज्ञा किसीका नाम-समुदायोपाधिः संतति जनका नाम। **प्रजा**–प्रकर्षेण जाता पुण्यबलेन उत्पन्ना प्रउपसर्गक जनसे ड-अ अन्‌लोप टाप् ।

अनौ—अनु उपसर्ग पूर्वमें हो जनधातुसे कर्म उपपद रहते ड हो। जनधातु अकर्मक है। कर्म उपपद कैसे ? अत आह-पुमांसमनुरुध्य जननं धात्वर्थः, धातोः अनेकार्थत्वात् । पुंस पूर्वपदक अनु जन् धातुसे अनुरोध करने पर प्रादुर्भूत हुआ अर्थमें ड अ। अन् लोप टाप्, पुरुषके अनुरोध पर प्रकट हुई कृदन्तार्थः । अन्य शब्द के उपपद=पूर्वमें रहते जनधातुसे भूतकालमें पैदा हुआ अर्थ ड । यथा सप्तम्यन्तसे ड उक्त है, बिना सप्तम्यन्तके लिए सूत्र है। यथा न जातः अथवा न जायते इति अजः शुक्रशोणितसंयोगसे जन्म न हो। **अज**–अजनसे ड टिलोप स्वादिकार्यं। एवं द्विजातिः द्विजः। मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनाः इति स्मृतिः। जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः इति प्रामाणिकाः द्विजपूर्वक जनधातोः द्विवारं जन्म ग्रहणकर्ता। प्रजनात् यज्ञोपवीतधारणाच्च जातः जन्म अर्थे ड प्रत्यय इत्यादि। ब्राह्मणात् जातः उत्पन्नः ब्राह्मणजः जातिः। जनसे ड आदि पूर्ववत्। ब्राह्मणावधिक जन्म ग्रहणकर्ता कृदन्तार्थः। सूत्रमें अपि शब्द पढ़ा वह सभी उपाधि-सप्तम्यन्त पञ्चम्यन्त उपसर्ग अनु जन भूतकाल आदि प्रकृतिके विशेषण और प्रत्ययार्थके विशेषण में व्यभिचार अतिक्रम परिवर्तनके लिए। **धात्वन्तर**—अन्य धातुसे भी अन्य कारकमें भी, भूतसे भिन्न कालमें भी ड प्रत्यय होनेके लिए अपि पढ़ा। यथा परितः चारो तरफ खातः खोल बना हुआ अर्थमें परिपूर्वक खन धातुसे चतुर्दिक खात अर्थमें ड आदि। **गमेरपि** डः वक्तव्य इति भाष्ये।

पञ्चम्यां-जातिवाचक न हो पञ्चम्यन्त पूर्व रहते जन धातुसे ड कहे। भूतकर्तामें संस्कारात् द्विज उच्यते, पञ्चम्यन्त संस्कार शब्दपूर्वक जनधातुसे संस्कारके कारण जन्मवान् (यज्ञोपवीत धारण) ड प्रत्यय। संस्कार हेतुक जन्मग्रहण कृदन्तार्थः। हेतौ

क्तक्तवतू निष्ठा ।१।१।२६। एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः । **निष्ठा** ।३।२।१०२। भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र 'तयोरेव' इति भावकर्मणोः क्तः । 'कर्तरि कृत्' इति कर्तरि क्तवतुः । उकावितौ । स्नातं मया । स्तुतस्त्वया विष्णुः । विष्णुर्विश्वं कृतवान् । **अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति** ।२।४।३६। ल्यपि तादौ किति च । जग्धम् । **निष्ठायामण्यदर्थे** ।६।४।६०। ण्यदर्थो

पञ्चमी अदृष्टात् जातः अदृष्टजः पुण्यं भाग्यं जो दृष्ट न हो । भाग्य, प्रकृति स्वभाव, के कारण प्रादुर्भूत, अदृष्टपूर्वक जनधातोः पुण्यबलेन उत्पन्नः अर्थ ड-ञ (अदृष्ट जन अ) डित्की शक्तिसे भसंज्ञाबिना टि (अन्) का लोप । संयोगसे कार्य हुआ अर्थसे अर्थवान् जानकर प्रासंज्ञा स्वादिकार्य । भूतकाल भी ड प्रत्ययका अर्थ,

क्त क्तवतु—अनयोर्द्वन्द्वः क्तक्तवतु दोनों प्रत्ययका नाम निष्ठा । एकवचनसे प्रत्येककी निष्ठासंज्ञा । निष्ठा—भूतकाल अर्थमें विराजमान धातुसे क्त क्तवतु निष्ठा संज्ञा तत्र (तयोरेव) भाव और कर्म क्रियाफलाश्रय अर्थमें क्त हो जिसके विषयमें कर्तासे सामान्य सम्बन्ध नहीं है । कर्तरि कृत् सूत्रकी कृपासे कर्ता अर्थमें क्तवतु प्रत्यय हो क्योंकि कृतसंज्ञक प्रत्यय. क्त, खलर्थ प्रत्ययो का भाव और कर्ममें विधान है । लः कर्मणि सूत्रे अकर्मक धातुसे (भावे कर्तरि च) अनुवर्तते अकर्मक धातुसे भाव क्रिया अर्थमें क्त । सकर्मक धातुसे कर्ममें क्त इति व्यवस्था लभ्यते । तदनुकूल उदाहरण **स्नातं**—अहम् अस्नासिषं, कर्तरि प्रत्ययः (मैंने स्नान किया) स्नाधातु अकर्मक है । जब स्नान क्रिया अर्थमें क्त, तब भाव उक्त, उक्ते प्रथमा, स्नातम् एकवचन नपुंसकम् । अनुक्ते कर्तरि तृतीया मया । प्रत्ययार्थ=भूतकालिकस्नानक्रिया अर्थ से अर्थवान् जानकर प्रासंज्ञा सु आदि । सकर्मक स्तु धातुसे कर्ममें प्रत्ययका उदाहरण-त्वं विष्णुं अस्तोषीः इति त्वया विष्णुः स्तुतः तुमसे भगवान् स्तुत हुए । विष्णु कर्म है । उसी अर्थमें गुणगानके अनुकूलक्रियाबाचक स्तु धातुसे क्त, अनुबन्धलोप स्तुतः । यस्मिन्प्रत्ययः सः उक्तः प्रधानः तत्र प्रथमा, विष्णुः स्तुतिविषयः । कर्तामें क्तवतु विष्णु भगवानने विश्वको बनाया । जगतः रचयिता अर्थमें कृ धातोः क्तवतु (उ, क इत्) तवत् शेष **कृतवत्**–विश्वकर्मक रचनाश्रयः निर्माणक्रियाधारः कर्ता अर्थेन अर्थवत् शब्दस्वरूपको प्रातिपदिकसंज्ञा प्रथमा एकवचन सु नुम दीर्घ आदि । **कृतवान्** । अदो जग्धिरादेशः स्याल्ल्यपि तादौ किति च । इकारस्य प्रयोजनं दर्शयति-उच्चारणार्थं इति । जग्धमिति । अद्धातोः निष्ठा 'इति' क्तप्रत्यये कलोपो 'अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति' इति जग्धादेशे 'झषस्तथोः' इति तस्य धत्वे 'झरो झरि सवर्णे' इति पूर्णलोपे 'जग्ध' इति जाते कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे सौ अमि पूर्वरूपे 'जग्धम्' इति रूपम् ।

निष्ठायां—निष्ठासंज्ञक क्त तवत् परे क्षि धातुको दीर्घ हो । ण्यत्का अर्थ भाव और कर्म न हो तब । अर्थात् कर्ता अर्थमें तवत् या क्त हो । क्षिपः–क्षि धातुसे दीर्घ हो जाने पर निष्ठा (क्त क्तवतु) के तको नकार हो । क्षि क्षये, क्षि निवास

४६। दीर्घात्क्षियो निष्ठातस्य नः स्यात् । क्षीणवान् । भावकर्मणोस्तु क्षितः भावकर्मणोः ततोऽन्यत्र निष्ठायां क्षियो दीर्घः स्यात् । क्षियो दीर्घात् ।८।२। कामो मया । ऊर्णोतिर्णुवद्भावो वाच्यः । तेन एकाच्त्वान्नेट्, ऊर्णुतः नुतः वृतः । रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ।८।२।४२। रेफदकाराभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात्, निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दकारस्य च । शीर्णः । भिन्नः, छिन्नः । सयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ।८।२।४३। निष्ठातस्य नः

गत्योः दोनों स्वीकार्य । भावकर्म=क्षीणः में दीर्घ होता ही है । उससे अन्यत्र कर्ता अर्थमें क्तवतु परे भी दीर्घका संकेत । स अक्षैषीत् (क्षय हुआ, गल गया) इति तेन क्षीणः—क्षि धातुसे भावमें क्त, कर्तामें क्तवतु परे दीर्घ । तको न-ण क्षीणवत् भूतकालिकक्षयानुकूलक्रियाका आश्रय, कृदन्वात् स्वादिकार्य जब भाव या कर्ममें क्त हुआ, तब न दीर्घ। । तेन कारणेन तकारस्य नकारोऽपि न । क्षितः क्षयितः मया शंकरेण कामदेवः नष्टः मुझसे काम क्षीण हुआ । मैं निष्काम बना इति कर्मणि प्रत्ययः, भावे तु क्षितं कामेन । भाव और कर्म प्रत्ययके अर्थ है । जिसके कारण क्त परे दीर्घ नहीं। तको न भी नहीं । भावे तु क्षितं कामेन। ऊर्णोतिः–ऊर्णु धातुमें नुवत् एकाच् नु धातुके तुल्य व्यवहार करें । आरोपित एकाच्से इट निषेध समर्थ । नतः—णु स्तुतौ स्तुतः । नु धातुसे स्तुतिका विषय भूतकालिकक्रियाफलाश्रय कर्म अर्थमें क्त आदि । वृतः–वृङ् सम्भक्तौ सम्यक् भक्ति पूर्णनिष्ठाके अनुकूल क्रिया अथवा वृञ् वरणे भूतकालिक स्वीकार, विशेषभक्ति प्रेमका विषयअर्थमें वृ धातुसे क्त आदि ।

रदाभ्यां—रदमें अकार उच्चारणार्थ । र और दसे परे निष्ठासंज्ञक त, क्तवतु के तको नकार हो, तस्य-निष्ठातकारस्य इत्यर्थं । निष्ठाकी अपेक्षा पूर्वमें धातुके दको भी नकार हो। चरितम् उदितंमें तको नत्व नहीं होता इट्के व्यवधानसे । र द से परे इट है । रेफसे परे तको दका उदाहरण–शीर्णः नष्टः (छिन्नभिन्न हुआ) वृक्षः । हिंसार्थक विनाशार्थक शॄ धातुसे हिंसा या विनाशका विषय वस्तु (कर्म) अर्थमें क्त । शॄ त धातुके ॠको इत्=इकार हो, रपर दीर्घत्व शीर्णः। ननु कृतस्यापत्यं कार्तिः अत इञ्, आदिवृद्धि, निष्ठा त कृतमें है, रसे परे भी, तको न क्यों नहीं ? उत्तर दिया बहिरङ्गत्वेन-आदिवृद्धि बहिरङ्ग है बहिर्भूतानि अङ्गानि निमित्तानि यस्य तत् बहिरङ्गं, वृद्धिकी असिद्धिसे रेफ मिलेगा नहीं तको न होगा नहीं । दसे परे तको नकारका उदाहरण–अच्छैत्सीत् इति तेन वृक्षः छिन्नः–छेदन काटने अर्थमें छिद धातुसे कर्म (टुकड़ा होनेकी वस्तु) अर्थमें क्त, उसको निष्ठा संज्ञा, रदाभ्यां-सूत्रसे तको नत्व, धातुके अन्त दको भी नकार । छेदन विषय वृक्ष आदिसे अर्थवान् जानकर प्रा० संज्ञा स्वादिकार्य । एवं स वृक्षमभैत्सीत् वृक्षको काटा इति तेन वृक्षः भिन्नः भिदसे कर्म-भेदनाश्रय वस्तुमें क्त-त, द दोनोंको नत्व ।

संयोगादेः— संयुक्त अक्षर आदिमें हो आदन्त हो यण्वान् (य व र ल) हो निष्ठा नामक तको नकार हो । द्रा कुत्सायां गतौ निन्दित आचरण कुटिल चालके

स्यात्। द्राणः। ग्लानः। ल्वादिभ्यः ।८।२।४४। एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत्। लूनः। ज्या, 'ग्रहिज्या' जीनः। दुग्वोर्दीर्घश्च। 'दु गतौ' दूनः। गूनः। पूञो विनाशे। पूना यवाः, विनष्टा इत्यर्थः। पूत-मन्यत्। सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्तृकस्य। सिनो ग्रासः। 'ग्रास' इति किम्? सिता पाशेन सूकरी। कर्मकर्तृक' इति किम्? सितो ग्रासो देवदत्तेन। ओदितश्च

अनुकूल क्रिया द्रा का अर्थ। अद्रासीत् सः इति तेन द्राणः उसकी निन्दित चाल। भावमें क्त नत्व णत्व द्राणः। अहम् अग्लासिषम् इति मया ग्लानः मुझमें ग्लानि। हर्षक्षय अर्थक ग्लैसे ग्लानिक्रिया अर्थमें त। आदेच उपदेशेसे आत्व संयोगादि धातु है आदन्त यण् 'ल' को देखकर उससे परे निष्ठा तको नकार हुआ।

ल्वादिभ्यः—आदि धातु द्वाविंशति है। पूञ्को छोड़कर एकविंशति धातुः लूञादिः उनसे परे निष्ठा तको नत्व हो, सः केशमलावीत् इति नापितेन केशाः लूनः·लू धातुसे लवन छेदन कर्तन क्रियाका विषय केश धान्य आदि अर्थमें त, नत्व आदि। ज्यासे धातु सूचित, उससे क्त, क इत् कित् परे ग्रहिज्यावयिव्यधि आदि सूत्रसे सम्प्रसारण सम्प्रसारणाच्च पूर्वरूप हलि च दीर्घ अब, संयोगादि नहीं रहा पूर्वसूत्रसे तको नत्व न हो अतः ल्वादिभ्य। पढ़ा। (वा०) दु गतौ—गु पुरीषोत्सर्गे इनसे निष्ठा तको नत्व हो दीर्घ भी, दूनः। अदावीत् अग्निमिति तेन गोधूमः दूनः—दु धातुसे त नत्व, दीर्घ ल्वादिः। यदि ऐसा माघकाव्ये मृदुतया दुतयामें तको नत्व नहीं हुआ, इससे सिद्ध है कि उपताप अर्थमें अनुबन्ध सहित दु धातु अमान्य है। अनुबन्ध सहित होनेसे, जिसका मधुर पीड़ा अर्थ, अतः न नत्व। त्व अगावीः (पुरीषमत्याक्षीः) इति त्वया पुरीषः गूनः। तुमसे मलत्याग किया गया। त-न दीर्घः (वा०) पुञ्—धातुका विनाशके अनुकूल क्रिया अर्थ हो। उससे निष्ठासंज्ञक तको नकार हो, घुना सड़ा जो, घुन गये, नष्ट हुए अर्थमें पूधातुसे तको नत्व आदि। धातू-नामनेकार्थत्वात् विनाशेऽपि पूधातोः शक्तिः। यदि अन्यत्र=विनाश न होकर पवित्र हुआ अर्थ हो तब न नत्व। पूतं कुलं। सिनोतेः-बन्धने अर्थे सि धातोः समास बन्धन क्रियायाः कर्म (लड्डू पिण्ड भेली टिकिया आदि अर्थमें तको नत्व हो। कर्म एव-कर्ता ग्रासरूपं कर्म ग्रासकर्म=स एव कर्ता यस्य स ग्रासकर्मकः—ग्रास पिण्ड कवल टिकिया बांधने अर्थमें निष्ठा संज्ञक तको नकार हो, भृत्यः ग्रासम् असैषीत्। इति सिनः ग्रासः भेली पिड़िया स्वयं बंध गयीं पिण्डीक्रियमाणो ग्रासः यदा घृतदधि-शार्करादि व्यञ्जनवशात् बन्धने पिण्डीभवने अनुकूलो भवति तदा कर्म एव कर्ता। चैत्रने भेली बांधी, कि चैत्रेण ग्रासः पिण्डः स्वमेव बद्धः। सूत्रमें ग्रासको बाधना हो। तभी तको नत्व हो ऐसा क्यों कहा? सूकरी वाराही बन्धनेन पाशादिना सिता बद्धा फन्दासे बधी, पिण्डी करण नही, न नत्व। ग्रास कर्म ही कर्ता हो ऐसा क्यों? देवदत्तसे पिण्ड बधा। देवदत्त कर्ताके रहते तको न नत्व। ग्रासेन कण्ठः सितः कवल ग्राससे गला फंस गया, तब न नत्व।

।८।२।४५। भुजो, भुग्नः। 'टु ओश्वि' उच्छूनः। द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः ।६।१।२४। द्रवस्य मूर्तौ काठिन्ये स्पर्शे चार्थे श्यैङः सम्प्रसारणं स्यान्निष्ठायाम्। श्योऽस्पर्शे ।८।२।४७। श्यैङो निष्ठातस्य नः स्यादस्पर्शेऽर्थे। शीनं घृतम् अस्पर्शे किम् ? शीतं जलम्। द्रवमूर्तिस्पर्शयोः' किम ? संश्यानो वृश्चिकः। शीतात्सङ्कुचितः। प्रतेश्च ।६।१।२५। प्रतिपूर्वस्य श्यः सम्प्रसारणं स्यान्निष्ठायाम्। प्रतिशीनः। विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य ।६।१।६२। श्यः सम्प्रसारणं वा स्यात्। अभिश्यानं घृतम्-अभिशीनम्। अवश्यानः, अवशीनो वृश्चिकः।

ओदितः—ओकार इत धातुसे परे निष्ठा तको नकार हो। भुग्नः भुजो कौटिल्ये ओकार इत् भुज धातुसे कुटिल क्रिया फलका आधार कुटिलताका विषय, कर्म अर्थमें क्त कुत्व ज-ग। नत्व ओदित मानकर (धोखा खाया) गति बुद्धि अर्थक आ इत् श्वि धातुसे सूजन पीलपांव-पैरकी गतिमें वृद्धि अर्थमें क्त, कित् परे जानकर यजादीनां क्ङितिसे सम्प्रसारण, श्वीदितः इट् निषेधः, हलः दीर्घ, नत्व **उच्छूनः** पादः। द्रवमूर्तिश्च स्पर्शश्च द्रव पिघली वस्तुका मूर्तौ=कठिन होने पर जैसे-घी जम गया, कड़ा हुआ, जल जमा बर्फ हुआ ऐसी स्थितिमें श्यैङ् धातुसे स्पर्श अर्थमें भी सम्प्रसारण 'य' को इ हो पूर्वरूप। ष्यङः सम्प्रसारणसे सम्प्रसारण आया। जब स्पर्श न हो तब निष्ठा क्त क्तवतुके तको नत्व हो, हलः से दीर्घ, नत्व होनेके पहले हो दीर्घकी दृष्टिमें नत्व असिद्ध **शीनं** घनीभूतं घृतं पिघला था अब जम गया, जमना भी एक गति क्रिया है अथवा धातु अनेकार्थ है। यद्यपि घृतका भी स्पर्श है जाड़ेमें। अस्ति एव तथापि शीतस्पर्शवत्यापः जलका स्वाभाविक गुण शीत है। अतः वहां अस्पर्श=स्वाभाविक शीतस्पर्श होने पर ही तको न हो ऐसा नहीं कहेंगे। शीतं जलमें तको नत्व होने लगेगा। जल जब जमकर शीतल द्रव पानीका मूर्ति=कठिन रूप-बर्फ होनेसे सम्प्रसारण होगा। दोनों सूत्रोंमें प्रधान गुण स्वीकार है। शीताः आपः शीतं जलं, स्पर्श लक्षण जलका ही है। द्रवमूर्ति-पिघलेका कठिन स्पर्श क्यों कहा ? **संश्यानः** सम्पूर्वक श्यैङ् धातु शीतसे संकुचित होनेका विषय (बिच्छू) अर्थमें क्त। निष्ठा तको नत्व हुआ, किन्तु सम्प्रसारण नहीं। द्रव वस्तुका कठिन होकर स्पर्श न होनेसे। आदेच उपदेशेसे आत्व, संयोगादेरातोसे नत्व।

प्रतेश्च—प्रतिपूर्वक श्यैङ् धातुको सम्प्रसारण हो त तवत् परे, जो द्रव-मूर्ति नहीं, स्पर्श नहीं, उसके लिए सूत्र **प्रतिशीनः**—प्रतिगतः बदलेमें गया, प्रतिपूर्वक श्यै धातुसे त प्रतेश्च इत्यनेन सम्प्रसारणे पूर्वरूपे, अस्पर्श है तको नत्व हुआ अन्य स्थाने गमनक्रियाश्रयः। **विभाषा**—श्यैङ् धातुको सम्प्रसारण विकल्प हो द्रवमूर्ति स्पर्शयोः के विकल्प सम्प्रसारणको बांधकर, प्राप्तविभाषा, अन्यत्र अप्राप्त विभाषा। **अभिश्यानं** घृतं द्रव वस्तु मूर्ति बनी अर्थमें त, आत्व। अस्पर्श होनेसे निष्ठा तको नत्व विकल्प। सम्प्रसारण पक्षमें अभिशीनं घी जमकर ठोस बना। **अन्यत्र**=जहां द्रव मूर्ति नहीं वहां भी सम्प्रसारण-यथा **अवशीनः** बिच्छू शीतसे सिकुड़ा है द्रव-

व्यवस्थितविभाषेयम् । तेनेह न समवश्यानः ।

अञ्चोऽनपादाने ।८।२।४८। अञ्चो निष्ठातस्य नः स्यान्नत्वपादाने । **यस्य विभाषा** ।७।२।१५। यस्य क्वचिद्विभाषयेड्विहितस्ततो निष्ठाया इण्न स्यात् । 'उदितो वा' इति क्त्वायां वेट्त्वादिह नेट्-समक्नः । 'अनपादाने' किम् ? उदक्तमुदकं कूपात् । **दिवोऽविजिगीषायाम्** ।८।३।४९। दिवो निष्ठातस्य नः स्यादविजिगीषायाम् । द्यूनः । विजिगीषायां तु द्यूतम् । **निर्वाणोऽवाते** ।८।२।५०। 'अवाते' इति च्छेदः । निः पूर्वाद्वातेर्निष्ठातस्य

भूतिके बिना भी विकल्प सम्प्रसारण अनुभूत है। इस विकल्पको व्यवस्थित विभाषा कहते हैं। व्यवस्थाके अनुकूल ही सम्प्रसारण विकल्प हो विविधा अवस्था व्यवस्था सा सञ्जाता अस्याः व्यवस्थितः। **समवश्यानः** में सम्प्रसारण नहीं हुआ।

अञ्चेः-अञ्च धातुसे निष्ठासंज्ञक तको नत्व हो अपादान=अलगावका विषय होनेपर, यस्य=जिसको किसी स्थलमें विकल्पसे इट्का विधान हुआ हो। उससे परे क्त क्तवतुको इट् नहीं होता। यथा **समक्नः** सङ्गत इत्यर्थः मिल गया। अञ्चुगति पूजनयोः सम्पूर्वक अञ्च धातुसे क्त। क्वचित्=क्त्वा परे उदितो वासे विकल्प इटका विषय है। अतः वलादि आर्धधातुक इट् प्राप्तिका निषेध हुआ तको नत्व। अनिदितां नलोपः, नत्वको असिद्धकर झलि कुत्वं, कूपात् जलम् उदक्तम् उद्धृतं। यहाँ अपादान है। कूपसे जलका अलगाव उपस्थित होनेसे न नत्व। उद् पूर्वक अञ्चु धातुसे उद्धृत हुई वस्तु आदि अर्थमें क्त। व्यक्तं प्रयोग है अञ्जू व्यक्ति म्रक्षण अर्थवाला है अञ्चुका नहीं। 　　**दिवो**=विजेतुमिच्छा विजिगीषा न हो, किन्तु क्रीडा व्यवहार स्तुति आदि अर्थ हो। तब दिव धातुसे निष्ठा त तवत् के तको नत्व हो। भक्तेन द्यूनः रामः-स्तुत इत्यर्थः। दिव धातुसे स्तुतिका आश्रय कर्म अर्थमें त (दिव-त) च्छ्वोः शूडूठे वको ऊ, यण् द्यूत यहाँ विजय इच्छा नहीं, किन्तु स्तुति है। तको नकार (द्यूनः)। विजयकी इच्छा हो तब द्यूतः। विजिगीषया हि द्यूतकर्मणि अक्षाः पात्यन्ते (पाशा फेका जाता है) तत्र गम्यते विजिगीषा, इट् नहीं होता 'सनीवन्तर्ध' सूत्रसे विकल्प इट्का विषय होने पर भी यस्य विभाषा से इट निषेध हुआ।

निर्वाणो-अवाते=वायुके बिना विनाश (ज्योतिका बुझना) अथवा उपशम-शान्त होनेका विषय हो निपूर्वक वा धातुसे त तवत्के तको नत्व न हो। वायु (बुझाने या शान्तिमें) कर्ता न हो तब। यथा **निर्वाणः** निरपूर्वक 'वा' धातुका विनाश-बुझनेके अनुकूल क्रिया, उपरम विरागकी क्रिया अर्थ। ऐसा धात्वर्थक निर्वा धातुसे विनाश या शक्तिके अनुकूल क्रियाफलका आधार दीपक अग्नि मुनि वृद्ध आदि अर्थमें क्त, तको नत्व, क्योंकि अग्नि बुझनेमें मुनिके शान्त होनेमें काल, अग्नि, विराग कारण है वायु नहीं। णत्व निर्वाणः अग्निनष्टः, मुनिः उपरत। **वाते तु**-वायु कर्ता हो

नत्वं स्याद्वातश्चेत्कर्ता न। निर्वाणोऽग्निर्मुनिर्वा। वाते तु निर्वातो वातः। शुषः कः ।८।२।५१। निष्ठा त इत्येव। शुष्कः। पचो वः ।८।२।५२। पक्वः। क्षायो मः ।८।२।५३। क्षामः।

स्त्यः प्रपूर्वस्य ।६।१।२३। प्रात् स्त्यः सम्प्रसारणं स्यान्निष्ठायाम्। प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् ।८।२।५४। निष्ठातस्य मो वा स्यात्। प्रस्तीमः-प्रस्तीतः। 'प्रात' किम्? स्त्यानः। अनुपसर्गात् फुल्ल-क्षीवकृशोल्लाघाः ।८।२।५५। 'ञिफला' फुल्लः। निष्ठातस्य लत्वं निपात्यते। क्तवत्वेकदेशस्यापीदं निपातनमिष्यते। फुल्लवान्। 'अनुपसर्गात्' किम्? आदितश्च

तब न नत्व, यथा वातः दीपं निर्वातः दीपक बुझानेमें वायुकर्ता है। निर्वा धातुसे गत्यर्थाकर्मक-इत्यादि सूत्रसे कर्ता अर्थमें क्त। वायु जब कर्ता होगा तभी नत्वका निषेध। जब वायु करण साधन होगा तब नत्व हो जायेगा, यथा निर्वाणो दीपः वातेन, भावे तु निवातं निवातेन। शुषः-शुष शोषणे धातुसे परे त तवतुके तको क हो शुष्कः गोधूमः घर्मेण। गेहूं सूख गया। वायुना वस्त्रं शुष्कम्।

पच—धातुसे परे निष्ठा तको नत्व हो। पाकानुकूल क्रियावाचक पच् धातोः पकनेकी वस्तु अर्थमें क्त, तको व, पचसे परे होनेसे। पक्वः ओदनः द्विदलश्च व आदेशस्य असिद्धत्वात् कुत्वं। क्षामः-क्षै क्षये धातुसे क्षय क्षीण होनेका विषय अर्थमें क्त तको म, क्षामः क्षामवान्, आदेच उपदेशे अशितिसे आत्व क्षामः पाण्डुः। गत्यर्थाकर्मक सूत्रसे कर्तामें क्त क्षीणः अर्थः। भीतरी प्रेरणा छिपी हो तब क्षयितः।

स्त्य—प्रपूर्वक स्त्यै ष्ट्यै शब्दसङ्घातयोः धातुको सम्प्रसारण हो निष्ठा=त तवतु परे। स्फायः स्फी सूत्रसे निष्ठा, ष्टङः से सम्प्रसारण आया। प्रस्त्या स सम्प्रसारणे-इ, हलः इति दीर्घ प्रस्तीतः। प्रस्त्य=पञ्चमी प्रस्त्यै धातुसे निष्ठा तको 'म' हो प्रस्तीमः संघीभूतः, जब न मत्व प्रस्तीतः। इकट्ठे हो गये। प्रात्-क्यों कहा? स्त्यानः गतः, तको म न हो, प्र पूर्वमें न होनेसे।

अनुपसर्गात्-उपसर्गसे परे न हो तब फुल्ल क्षीवः कृशः उल्लाघ शब्द निपातनसे (सूत्रमें स्वीकार कर प्रक्रियाकी कल्पनासे) सिद्ध माने जांय। ञिफला-फल निष्पत्तौ फलकी सिद्धिके अनुकूल क्रिया अर्थ उससे निष्ठा तको 'ल' का निपातन=कल्पना, सूत्रसम्मत। फुल्लः वृक्षः-फुला फला हुआ। आदितश्चसे इट अभाव। ति चसे उत्व सफल फुल्लवान्। क्तवतु प्रत्ययके एकदेश तको ल होनेका निपातन इष्ट है। अतः फुल्लवान् तको लत्व हुआ। उपसर्ग न हो ऐसा क्यों कहा प्रफुल्तः यहां उपसर्ग है तलोप न हो, अतः अनुपसर्ग पढ़ा। ञिफला धातु-निष्पत्ति सिद्धि अर्थमें है। उससे सिद्धिका विषय। करपट्टिका ओदन आदि सिद्धि अर्थमें क्त। आ इत् होनेसे आदितश्च निष्ठा प्रत्ययको इट् नहीं होता। श्वीदितः से निष्ठायां, नेड्वशिसे नेड्की अनुवृत्ति।

तिच—चरफलोश्च आया चरगतिभक्षणयोः, फला निष्पत्तौ धातुके अकारको

।७।२।१६। आकारेतो निष्ठाया इण्न स्यात्। ति च ।७।४।८९। चफरलोरत उत् स्यात्तादौ किति। प्रफुल्तः। प्रक्षीबितः। प्रकृशितः। प्रोल्लाघितः। उत्फुल्ल-सम्फुल्लयोरुपसङ्ख्यानम्। नुद-विदोन्द-त्रा-घ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम ।८।२।५६। एभ्यो निष्ठातस्य नो वा। नुन्नः-नुत्तः। विन्नः-वित्तः वेत्तेः विदितः। विद्यतेर्विन्नः। उन्दी। श्वीदितो निष्ठायाम् ।७।२।१४। श्वयतेरीदितश्च निष्ठाया इण्न। उन्नः-उत्तः। त्राणः-त्रातः। घ्राणः-घ्रातः। ह्रीणः-ह्रीतः। न ध्या-ख्या-पॄ-मूर्च्छिमदाम् ।८।४।५७। एभ्यो निष्ठातस्य नत्वं न।

उकार हो तकारादि क्त प्रत्यय परे रहते। इससे फमें अको उ हुआ, उत्परस्यातः आया। दीर्घः इणःसे किति मण्डूकन्यायसे आया। प्रफुल्तः सिद्ध हुआ। मत्त हुआ, कृशितः दुबला हुआ, रोग रहित रहा। प्र उपसर्ग होनेसे इट अभाव तलोप नहीं हुआ। (वा) उत्फुल्ल—सम्फुल्लकी सिद्धि भी निपातनसे करें। निष्ठा तको लत्व हो उपसर्ग रहने पर भी। यद्यपि पचादि अच्से यहां भी सिद्धि होगी तथापि वार्तिक न होता, उत्फुल्तः सम्फुल्तः की सिद्धि न होती।

नुद विद—नुद प्रेरणे, विद विचारणे, उन्द क्लेदने, त्रैङ् पालने घ्रा गन्धग्रहणे, ह्री लज्जायां इन धातुओंसे परे निष्ठा तको विकल्पसे नत्व हो। ह्रसे प्राप्त नहीं अन्यको नित्य नत्व प्राप्त था विकल्पके लिए सूत्र। गुरुणा नुन्नः नुत्तः शिष्यः गुरुसे प्रेरित छात्र। प्रेरणार्थक नुदधातोः प्रेरणा विषये कर्मणि क्त, तको नत्व, दको भी। जब रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः, न नत्व तब नुत्तः प्रेरित इत्यर्थः। विद् धातु विचारणार्थक रुधादिका ही भाष्य, उन्दी धातुके साथ होनेसे। जो रुधादिका है विन्नः-विचार विषयः शुक्लः। रदाभ्यांसे नित्य नत्व प्राप्त था विकल्पसे नत्व। जब न नत्व तब वित्तः—वेत्तेस्तु विद् ज्ञाने धातु सेट् है। अनिट्में न पढ़े जानेसे विदितः ज्ञानविषयः इट् हुआ। उसके व्यवधानमें नत्व नहीं विद् सत्तायां, धातुसे नित्य नत्व होता ही है। अतः भाष्य। वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा, विद्यतेविन्न इष्यते विन्तेः विन्नश्च वित्तश्च भोगे वित्तश्च विन्दतेः। उन्दी धातुसे क्लेदन गीला होनेका विषय अर्थमें त। ई इत्से **श्वीदितो**—श्वी गति वुद्धि अर्थमें इकार इत् धातुओंसे निष्ठा क्त तवत्को इट् नहीं होता। क्त परे कित् जानकर अनिदितां हलउपधायाः से नलोप। नुदविदोन्दत्रासे विकल्प नत्व उन्नः, पक्षमें उत्तः गीला देह अर्थ। त्राणः त्रातः बालकः पालितः रक्षित हुआ। त्रा धातुसे रक्षाका विषय अर्थमें त, विकल्प नत्व आदि। एवं घ्राणः गन्धः? सुगन्धी ली गयी, क्तको नत्व आदि। **ह्रीणः** लज्जितः लज्जाका विषय बना अर्थमें त-न ण आदि।

न ध्याख्या—ध्यै चिन्तायां ख्या प्रकथने पॄ पालनपूरणयोः मुर्छा मोहसमुच्छ्राययोः मदी हर्षे इन धातुओंसे परे क्त तवतुके तको 'त' न हो। ध्यातः—शिवः भूतकालिक ध्यानविषयः स्मरण लायक। अर्थमें ध्यै त। आदेच उपदेशे आत्व

ध्यातः । ख्यातः । पूर्तः । 'राल्लोपः' मूर्त्तः । मत्तः । **वित्तो भोगप्रत्यययोः** ।४।२।५८। विन्दतेर्निष्ठान्तस्य निपातोऽयं भोग्ये प्रतीते चार्थे । वित्तं धनम् । वित्तः पुरुषः । 'अनयोः' किम् ? विन्नः। विभाषा गमहन-' इति क्वसौ वेट्त्वादिह नेट् । **भित्तं शकलम्** ।८।२।५९। 'भिन्नम्' अन्यत् । **ऋणमाधमर्ण्ये** ८।२।६०। ऋधातोः क्ते तकारस्य नत्वं निपात्यते आधमर्ण्यव्यवहारे। 'ऋतम्' अन्यत् । स्फायः स्फी निष्ठायाम् ।६।१।२२। स्फीतः । इण्निष्ठायाम् ।७।२।

ध्या त संयोगादेरातोसे तको नत्व प्राप्त था, न ध्या-सूत्रसे निषेध । **ख्यातः** प्रसिद्धः । प्रसिद्धके अनुकूल क्रियावाचक ख्या धातुसे कर्मणि । विख्यातिका विषय अर्थमें क्त । ख्यात् आदेश, पक्षमें यण् वाला है, संयोगादेरातः सूत्र से प्राप्त नत्वका निषेध । **पूर्तः**---पालन किया कर दिया । पृ धातु भूतकालिक पालन पोषणका विषय (आधार कर्म) अर्थमें क्त । श्र्युकः किति से इट् निषेध, उदोष्ठ्यपूर्वस्य उत्परपरे दीर्घ । रदाभ्यांसे प्राप्त नत्वका निषेध, पालनपूरणका भूतकालिक विषय अर्थसे अर्थवान् प्रा०संज्ञा स्वादिकार्य मूर्तः मूर्छित हुआ । ऊंचे उठा, मोह और उच्छ्रायका आधार कर्म अर्थमें भूतकाले मूर्छा धातुसे क्त, राल्लोपः रेफसे परे छका लोप, हलि चसे दीर्घ । आदितश्च न इट्, रदाभ्यांसे प्राप्त तको नत्वका निषेध । **मत्तः**-मस्त रहा मदी हर्षग्लेपनयोः धातुसे प्रसन्नता या उन्मत्तताका आधार (कर्म) अर्थमें क्त, ई इत्से न इट् । रदाभ्यांसे प्राप्त नत्वका निषेध चर् मत्तः ।

वित्तो-भुज्यते इति भोगः भोग्यम् उपयोगकी वस्तु धन जन वस्त्र सम्पत्ति और प्रतीयते इति प्रत्ययः प्रख्यातः प्रसिद्धिका विषय कर्म साधन । **विद्**—लृ लाभे धातुसे निष्ठा त तवत्के तको नत्व हो, निपातनसे भोगकी वस्तु या ज्ञानका विषय अर्थमें । वित्तं धन भोगकी वस्तु है विद्से त, नत्व निषेध वित्तः प्रसिद्धिका विषय पुरुष है । अतः विद् धातुसे ज्ञानका विषय पुरुषः, भूतकालमें क्त, नत्व निषेध, प्रतीत अर्थ होनेसे । अनयोः किं भोग प्रत्ययका विषय क्यों कहा, नत्व निषेधके लिए । **विन्नः** लब्धः चोर पकड़ा गया । लाभार्थक विद्से भूतकालिक लाभका आश्रय चोर अर्थमें त, रदाभ्यां नत्व, इट् निषेधके लिए यस्य विभाषाका स्मरण कराते हैं **विभाषा**-गमहन्से क्वसु परे विकल्प इट्का विषय है, अतः यस्य विभाषासे इट् निषेध । (भित्तं सकलखण्डे वा) टुकडा खण्ड अर्थ हो भिद् धातुसे टुकड़ा होनेकी वस्तु पूगीफल आदि अर्थमें क्तके तको नत्व न हो, निपातनसे । अतः **भित्तं** का शकलयुक्तं अर्थ । विद क्रियाकी विवक्षा हो भित्तं भिन्नं होता है । **अन्यत**=सकल अर्थ न हो तो भिन्नं विदीर्णं नष्ट भ्रष्ट हुआ ।

ऋणं—ऋ धातुसे अधमं दुःखप्रदम् ऋणम् अस्यास्ति अधमर्णः तस्य भावः **'आधमर्ण्य'** अर्थमें त हुआ हो । उसे नत्व हो, निपातनसे । अन्यदीयं द्रव्यं इयता कालेन इयत्या वृद्धया प्रदीयते इति सन्धिरूपः तस्मिन्विषये स व्यवहारः दातृगृहीत्रोः सम्बन्धी भवति । अधमर्णस्य कर्म आधमर्ण्यम् तको न-ण, **ऋणं**-ऋणदाता गृहीता का सम्बन्ध अर्थ । **अन्यत**=अन्यस्थलमें नत्व नहीं होता । ऋतं सत्य अर्थ ।

४७। निरः कुषो निष्ठायां इट् स्यात्। 'यस्य विभाषा' इति निषेधे प्राप्ते पुनर्विधिः। निष्कुषितः। वसतिक्षुधोरिट् ।७।२।५२। आभ्यां क्त्वानिष्ठयो- र्नित्यमिट् स्यात्। उषितः। क्षुधितः। अञ्चेः पूजायाम् ।७।२।५३। पूजार्था- दञ्चेः क्त्वानिष्ठयोरिट् स्यात्। अञ्चितः। गतौ तु अक्तः। लुभो विमोहने ।७।२।५४। लुभः क्त्वानिष्ठयोर्नित्यमिट् स्यान्न तु गार्ध्ये। लुभितः, गार्ध्यं तु लुब्धः। क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ।७।२।५०। इड् वा स्यात्। क्लिशितः क्लिष्टः। पूङश्च ।७।२।५१। पूङः क्त्वाः निठयोरिड्वा स्यात्। पूङः क्त्वा च ।१।२।२२। पूङः क्त्वा निष्ठा च सेट् किन्न स्यात्। पवितः-पूतः। क्त्वाग्रहणमुत्तरार्थम्।

स्फायः=स्फायी वृद्धौ धातुसे क्त या क्तवत् परे रहते, स्फायके स्थान स्फी आदेश हो। स्फीतः जलोदर या सूजनसे मोटा हुआ।

इण—निष्ठा (त तवतु) को इट् हो। निपूर्वक कुष (निष्कोषणे निष्कुषितः खोदकर निकाला गया दांत या बिल) से निरः कुषः से विकल्प इट्का विषय होने पर यस्य विभाषासे इट निषेध प्राप्त था। अतः पुनः इट् विधान किया। वसति- और क्षुध धातुसे परे त, तवतुको नित्य इट् हो। उषितः-ग्रामः जिसमें निवास किया। वस धातुसे भूतकालिक निवासस्थान अर्थमें क्त, यजादिगण मानकर सम्प्र- सारण कित्परे है। शासिवसि-सूत्रसे सको ष, क्षुधित तस्यान्नमेषाक्षुधितस्य, क्षोधनं क्षुत् बुभुक्षा-भावे क्विप्, क्षुत् सञ्जातमस्य क्षुधितः भूखा बुभुक्षितः क्षुधसे त, इट्।

अञ्चः—पूजा अर्थके अञ्चधातुसे त तवतुको इट् हो, यस्य विभाषासे निषेध प्राप्त था। अञ्च्यते असौ अञ्चितः पूजितः अञ्चधातोः पूजायाः विषयः कर्म अर्थ त, विशेषविधिसे इट्। यदि गति अर्थ होगा तब अक्तः गतः। अञ्च त अनिदितां नलोप, पूजामें इट्का निषेध होता है। लभ-धातु विमोहन व्याकुलीकरण अर्थमें है। लुभति मोह ममतामें पड़ता है। (लुभ) धातुसे क्त्वा क्त तवतुको नित्य इट् हो, व्याकुल होने अर्थमें। लुभ गार्ध्ये दिवादिका लोभ लालच अर्थक हो, तब न इट्। लुभ्यते इति लुभितः—मोह मायामें पड़ गया। यदि लोभ लालच हो तब इट् नहीं लुब्धः। लोभी लालची अभिकाङ्क्षावान्। तीषसह-लुभ क्त्वा परे विकल्प इट्का विषय है। यस्य विभाषासें निषेध प्राप्त था। अतः विशेष विधिसूत्र, लुभ-धातुसे लोभ लालच कर्ता अर्थमें मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च इति क्त भ-ब, त-ध स्वादि०। क्लिश धातुसे क्त्वा त तवतुको इट् विकल्पसे हो। क्लिश उपतापेसे बलादि आर्ध- धातुक नित्य इट् प्राप्त, विबाधन विशेषक्लेश बाधा कष्ट अर्थमें क्त्वा इट् विकल्प। उदितः इट् प्राप्त उसका निषेध, यस्य विभाषासे। **क्लिशितः**—क्लिश धातुसे रोगका विषय रोगी अर्थमें त, विकल्प इट् क्लिशितः रोगजन्य पीडाश्रयः (फलाश्रयः कर्म) जब न इट् षत्व ष्टुत्व क्लिष्टः। **पूङश्च**—पूङ् धातुसे क्त्वा निष्ठासंज्ञकको इट् विकल्प हो। श्रयुकः-पू धातुसे परे क्त्वा क्तवतु और सेट् हों, वे कित् नहीं होते? पवितः पू धातुसे पवित्र करनेका विषय कर्म अर्थमें त। पूङश्च इट्। यहां पू धातु तके कित् होने पर भी कित्का निषेध हुआ, तब गुण अव पवितः पवित्र हुआ, न इट्

'नोपधात्–' इत्यत्र हि क्त्वैव सम्बध्यते। निष्ठा शीङ्-स्विदि-मिदि-क्ष्विदि-धृषः ।१।२।१९। एभ्यः सेण्निष्ठा किन्न स्यात्। शयितः। शयितवान्। आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या। आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च ।३।४।७१। आदिकर्मणि यः क्तः स कर्तरि स्यात्। चाद्भावकर्मणोः।

विभाषा भावादिकर्मणोः ।७।२।१७। भावे आदिकर्मणि च आदितो निष्ठाया इड् वा स्यात्। प्रस्वदितश्चैत्रः प्रस्वेदितं तेन। 'ञिष्विदा' इति भ्वादिरत्र गृह्यते, ञीद्भिः साहचर्यात्। स्विद्यतेस्तु 'स्विदितः' इत्येव।

पूतः। ननु क्त्वा सेटसे कित् अभाव हो जाता तब कहा क्त्वा ग्रहण उत्तरमें अनुवृत्तिके लिए। प्रमाण देते हैं कि **नोपधात्**-सूत्रमें क्त्वाकी अनुवृत्ति होती ही है।

निष्ठा–शीङ्, श्विद, मिद आदि धातुसे इट्सहित क्तक्तवतु कित् न हो। इसका फल गुण आदि होना। न क्त्वासे सेट। न, आया। असंयोगात्से किति। **शयितः**—शीङ् धातुसे शयनका आधार या शयनक्रिया अर्थमें 'त' बलादि इट्। निष्ठा-से शीङ्के निषेधसे कित् मान्य नहीं, तब गुण अय् शयितः। जब भूतकालिक शयन क्रियाका कर्ता अर्थमें तवत् तब बलादि आर्धधातुक इट् गुण अय्। प्रथमा एकवचन शयितवान् (सो लिया) शीङ्का ङ अनुबन्ध है। उसका फल यङ् लुक्में कित्का निषेध न होना। श्तिपाऽनुबन्धेनके निषेधसे। अनुबन्ध ङित्का कार्य गुणनिषेध है। पुनः पुनः अतिशयेन शयनक्रिया अर्थमें त शेश्यत। इट् गुण निषेध। सोनेकी क्रिया बार-बार बहुत अधिक सोनेवाला तब तवत् (शेश्य इ तवत्) प्रथमा एकवचन शेश्यितवान्। अनुबन्धके कारण यङ्लुक्में कित् निषेधके अभावसे गुण नहीं। **आदिकर्मणि**–आरम्भ कर्म। दीर्घकालपर्यन्त कटादि उत्पादन क्रियाका आरम्भकाल आदिकर्म है। क्रियाका आरम्भ अर्थमें विद्यमान धातुसे निष्ठा क्त (क्तवतु) आरम्भक क्रिया बीत चुकी हो किन्तु क्रिया चल रही हो। ऐसी स्थितिमें क्त तवत् प्राप्त नहीं थे, अतः वार्तिक पढ़ा। आदिकर्मणि आरम्भक्रिया अर्थवाचक धातुसे कर्ता अर्थमें क्त हो। भाव और कर्ममें भी त हो, च पाठसे। भाष्यमें प्रकृतः कटं देवदत्तः प्रकृतवान् कटं देवदत्तः। प्रपूर्वक कृधातुका आरम्भानुकूलक्रिया।

विभाषा—भावक्रिया और आदिकर्म अर्थवाचक धातुसे आ इत् होने पर त तवतुको इट् विकल्प हो। इस सूत्रमें आदितश्चसे आत्, श्विदितः से, नेड्वशिसे न आया। प्र-शब्द आरम्भक्रियाद्योतक। ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः तेलसे चिकनाने (यन्त्रमें लगाने) पसीना छोड़नेकी क्रिया अर्थमें आ इत् श्विद् धातुसे प्रश्वेदन पसीना छोड़नेका आरम्भ आधार चैत्र अर्थमें त इट् गुण, प्रथमा एकवचन प्रश्वेदितः। कर्तामें क्त जब भावमें त होता तब चैत्रेण प्रश्वेदितं। चैत्रसे पसीना त्यागारम्भ हुआ। चैत्रकर्तृका आरभ्यमाणप्रश्वेदनक्रिया। ञित्के साथ उच्चारणसे मिदिक्ष्विदि भी भ्वादि मान्य, वह कित हो जिसका फल गुणनिषेध है।

दिवादिका गात्रप्रक्षरण अर्थक स्विद्से कित्वनिषेध नहीं होता विभाषा भावादिकर्मणोः से इट। श्विदितः श्वेद त्यागा मिदक्ष्विद दोनों भ्वादि, दिवादिके

'ञिमिदा' ञिक्ष्विदा' दिवादी भ्वादी च। प्रमेदितः प्रमेदितवान्। प्रक्ष्वेदितः। प्रक्ष्वेदितवान्। प्रधर्षितः। प्रधर्षितवान्। धर्षितं तेन। 'सेट्' किम्? प्रस्विन्नं तेन इत्यादि। **मृषस्तितिक्षायाम्।१।२।२०।** सेण्निष्ठा किन्न स्यात्। मर्षितः। मर्षितवान्। 'तितिक्षायाँ' किम् अपमृषितं वाक्यम्, अविस्पष्टमित्यर्थः। **उदुपधाद् भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ।१।२।२१।** उदुपधात् पराभावादिकर्मणोः सेण्निष्ठा वा किन्न स्यात्। द्युतितं-द्योतितम्। मुदितं-मोदितं

भी मान्य। **प्रमेदितः** मिदा स्नेहने भ्वादिका भी मान्य, स्नेहनक्रियाके प्रारम्भ कर्ता अर्थमें प्रमिद धातुसे त इट्। निष्ठाशीङ् श्विदि सूत्रसे कित् निषेधका फल गुण होना। स्नेहन क्रियाके आरम्भ कर्ता अर्थमें तवत् हो तब इट्, कित् निषेध, गुण प्रथमा एकवचन। एवं ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयोः तेलसे सिञ्चन और त्याग अर्थ का आदिकर्म आरम्भकर्ता अर्थमें क्त। प्रक्ष्विद त कित् निषेधसे गुण इट् प्रक्ष्वेदितः। **प्रधर्षितः** आतङ्कित हुआ धृष्टताकी। धृष धार्ष्ट्ये, अशिष्टव्यवहार धमकानेका विषय बना। कर्मणि प्रत्यय। प्र धृष् धातुसे अशिष्टव्यवहार प्रारम्भ कर दिया उसको विषय आतङ्कका पात्र अर्थमें क्त इट् गुण। कित्से गुण कैसे? निष्ठा शीङ् आदिसूत्रसे कित्के निषेधसे गुण निषेध नहीं हुआ। जब हड़कानेवाला धृष्टताकर्ता अर्थ हो तब तवत्, इट् गुण प्रथमा एकवचन (प्रधर्षितवान्) परस्य मर्दनानुकूल-क्रियाधारः कर्ता। देवदत्तेन प्रधर्षितं, धृष्टता। कर्म, कर्ता, भाव तीनोंका उदाहरण। क्त प्रत्यय भी कर्ता अर्थमें है। **आदिकर्मणि क्तः** कर्तरि सेट=इट् सहित क्यों कहा? प्रस्विन्नः अनिट्में, कित् न हो। इसलिए कि गुणनिषेध हो सके।

मृष–तितिक्षा क्षमा सहनशीलता अर्थमें शक्ति हो तब मृष् धातुसे इट् सहित 'क्त तवत्' को कित् न हो, ताकि गुण हो जाय। निष्ठा-शीङ्से निष्ठा, (न क्त्वा) से सेट्, असंयोगात्से कित् अनुवृत्त। **मर्षितः** मृष तितिक्षायां क्षमा किया गया, मृष धातुसे क्षमाका विषय कर्म अर्थमें क्त इट् गुण। जब क्षमा क्रियाका कर्ता अर्थ हो। मर्षितवान् क्षमा कर दिया। तितिक्षा क्षमा अर्थ खुलने पर कित्का निषेध क्यों कहा? जहां क्षमा नहीं, किन्तु अन्य अर्थ अविस्पष्ट आदि है। वहां कित् निषेध न हो। ताकि गुण निषेध हो सके। वाक्य अस्पष्ट है विशेष स्पष्ट नहीं। मृष—सूत्रमें तितिक्षा क्यों पढ़ा? व्यर्थ होकर बोला धातवः अनेकार्थकाः भवन्ति।

उदुपधात्–उकार उपधामें हो उससे परे भाव और आदिकर्मवाचक धातुसे इट् सहित क्त तवतु कित् न हो उत्-उपधासे परे भाव अर्थमें उदाहरण-द्युत दीप्तौ धातुसे द्योतन क्रिया अर्थमें त, इट् सहित निष्ठा है। कित् मान्य नहीं हुआ, तब गुण। पक्षमें नहीं द्युतितं मुदितं साधु पुरुषसे हुआ हर्ष प्रसन्नता। यहां भी कित् निषेध, पक्षमें गुण। जब कित निषेध नहीं, तब गुण निषेध। आदिकर्मका सूचक प्र, क्रिया प्रारम्भ कर दिया। प्रद्युतितः प्रद्युत धातुसे भूतकालिक क्रिया कर्ता

ना, प्रद्युतितः-प्रद्योतितः । प्रमुदितः-प्रमोदितः साधुः । 'उदुपधात्' किम्? विदितम् । 'भाव-' इत्यादि किम्? रुचितं कार्षापणम् । 'सेट्' किम्? क्रुष्टम् । शब्विकरणेभ्य एवेष्यते । नेह-गुध्यतेः गुधितम् । **निष्ठायां सेटि ।६।४।५२।** णेर्लोपः स्यात् । भावितः । भावितवान् । **दृढः स्थूलबलयोः ७।२।२०।** स्थूले बलवति च निपात्यते । **दधातेर्हि ।७।४।४२।** तादौ किति । अभिहितम् । निहितम् । **दो दद्घोः ७।४।४६।** घुसंज्ञकस्य 'दा' इत्यस्य 'दद्'

अर्थमें त । आदिकर्मणि कर्तरि क्तः साधु परोपकारी सज्जन व्यक्तिने प्रकाश किया प्रमुदित हुआ । प्र उपसर्ग हर्ष या प्रारम्भ किया अर्थमें त । कित् निषेध पक्षमें गुण । न निषेध तब, न गुण । उत् उपधा क्यों कहा? विदितमें कित् निषेध न हो। गुण निषेधके लिए । भावादिकर्म क्यों पढ़ा? रुचितं कार्षापणं सोनाप्रिय है । गत्यर्थाकर्मक-सूत्रसे कर्तामें क्त है । इट् सहित क्यों पढ़ा? क्रुष्टं इट् नहीं है कित् निषेध न हो । शप् विकरण रहने पर ही कित् निषेध हो सूत्र लगे । दिवादिका गुध परिवेष्टने धातुसे कितः निषेध न हो । गुणनिषेधके लिए यथा गुधितम् ।

निष्ठायां—क्त क्तवतुके इट् सहित परे रहते णिका लोप हो णेरनिटिसे णि, आतो लोप से लोपकी अनुवृत्ति । अनिटि अंश णिलोपका निषेध करता, अतः णिलोप सूत्र पढ़ा। **भावितः** चैत्रः देवदत्तः अभीभवत्, भावि धातुसे पैदा होवाने का कर्म उत्पत्त्याश्रय चरित्र अर्थमें क्त इट् (भावि इ त्) इट् सहित निष्ठासंज्ञक त परे णिका लोप । णेरनिटिसे णिलोप नहीं हो पाता, अनिटिके निषेधसे । भाविता पैदा कराया गया । जब दत्तः चैत्रं भावितवान् पैदा किया, भूतकालिक होना क्रियाके कर्तामें तवत् इट् णिलोप पूर्ववत् । प्रथमा एकवचन भावितवान् ।

दृढ—प्रयोग स्थूल और बल अर्थमें निपातनसे बनता है । स्थूलो मांसलः मोटापा स निर्बलोऽपि सम्भवति । बलमस्यास्ति बलः अर्शादिः अच् । बलवान् कृशोऽपि दृढः शक्तिशाली भवति । बलवान् अर्थमें निष्ठा तको ढ-निपातनसे । इट् अभाव नलोप भी दृंहित मोटा हुआ, बलवान हुआ । वृद्धि अर्थक दृह या दृंह धातु से सबल या मांसलका आश्रय कर्म अर्थमें क्त । इट अभाव (दृह त) निष्ठा संज्ञक तको ढ और हका लोप निपातनसे, सूत्रमें पढ़नेकी शक्तिसे ष्टुत्वादिकार्य दृढः । स्थूलः बलवान् अर्थः नलोप भी निपातित अन्य अर्थ हो तब निपातन कार्य नही होते दृंहितः धनसे समृद्ध हुआ । बृंहितः विद्यासे गर्वित हुआ । **दधातेः**—डुधाञ् धारणपोषणयोः धातुके स्थानमें हि आदेश हो तकारादि कित्परे । जो द्यतिस्यतिसे अनुवृत्त है । **अभिहितं**-कथितम् अभिपूर्वक धा धातुका कहनेके अनुकूल क्रिया अर्थ, उससे भूतकालिक कथन अर्थमें त । धाको हि आदेश । एवं निहितं स्थापितं, निहितस्वार्थी । निपूर्वक धा धातुका स्थापनके अनुकूल क्रिया अर्थ उससे भूतकालिक स्थापना अर्थमें त । दधातेः हि आदेशः नपुंसकः । निहितम् ।

दो=दथ-घु संज्ञक दा धातुके स्थानमें दथ आदेश हो क्त क्तवत परे । दत्तः

स्यात्तादौ किति। चर्त्वम्, दत्तः। गत्यर्थाऽकर्मक-श्लिष-शीङ्-स्थास-वस-जन-रुह-जीर्यतिभ्यश्च३ ।५।७२। एभ्यः कर्तरि क्तः स्याद्भावकर्मणोश्च। गङ्गां गतः। गङ्गां प्राप्तः। म्लानः सः। लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः। शेषमधिशयितः। द्यति-स्यति-मास्था मित्ति किति।७।४।४०। एषामिकारोऽन्तादेशः स्यात्तादौ किति। इत्त्वदद्भावयोरपवादः। दितः सितः। वैकुण्ठमधिष्ठितः। शिवमुपासितः। हरिदिनमुपोषितः। राममनुजातः। गरुडमारूढः। विश्व

दिया गया (डुदाञ दाने) दा धातुसे दानक्रियाका कर्म अर्थमें क्त दो दद्घोः दाको दथ आदेश (दथ-त) खरि च थको चर्त्। दानका विषय अर्थसे अर्थवान् प्रासंज्ञा आदि। घोः क्यों पढ़ा? दाप लवने, शोधने दैप धातुको घुसंज्ञा नहीं होती, अदाप्के निषेध से। वहां दाको दथ न हो। जैसे दातः शुद्धः देहः तान्तो वा। दत आदेश विकल्प से करते हैं अथवा दाप लवने दातः लूनः। इस प्रसङ्गमें सभी पक्ष सुखसे प्रस्तुत करते हैं। अतः कहा तान्तो वा। यह आदेश दत मानें, तब भी दत्तः बनेगा। न चैवं विदत्तं प्रयोगमें दस्ति-सूत्रसे उपसर्गके इकारको दीर्घकी आपत्ति होगी? तब कहा तकारादौ--त तवतु परे दीर्घका विधान होनेसे न दीर्घः। चिसे परे दत्तं है अथवा दान्त दद आदेश अथवा धान्त दध आदेशका पक्ष भी है।

गत्यर्था--गमनार्थक सभी धातु और अकर्मक भी और श्लिष शीङ् स्था आस्वस, जनरुह जीर्यति (दशके बीच द्वन्द्व, ल कर्मणि आया, आदिकर्मणिसे कर्तरि अनुवृत्त, उन धातुओंसे कर्तामें क्त प्रत्यय हो, भाव और कर्ममें भी। यथा गङ्गां गतः गङ्गांकर्मक गमनकर्ता। गमसे कर्ता अर्थमें त। अनुदात्तोपदेशसे अनुनासिक का लोप गङ्गां प्राप्तः देवनदी तक व्याप्त मेला। यद्यपि आप धातु व्याप्ति अर्थमें है। उपसर्ग वशात् गत्यर्थक भी माना गया। म्लानः-अकर्मक म्लै धातुसे कर्ता अर्थमें मनोमालिन्यके अनुकूल क्रियाका आधार अर्थमें त, नत्व स्वादिः। संयोगादेः आतो धातोर्यण्वतः सूत्रसे निष्ठा तको नत्व, आकारान्त यण्वान् जानकर आदेच उपदेशसे आत्व। हरिः लक्ष्मीम् आश्लिष्ट आलिङ्गितवान् आ श्लिषधातुसे आलिङ्गन कर्ता अर्थमें त। ष्टुत्व क्रियाका आश्रय हरि। संश्लेष फलाश्रय लक्ष्मी। शीङ् धातु अकर्मकमें आ जाता, अलग क्यों पढ़ा? सकर्मक उदाहरण शेषं=शेषनागके ऊपर शयितवान् सो गये। अधिशीङ् स्थासांसे शेषः कर्म। अकर्मक है कर्म कैसे निपातन हो। अधिपूर्वक शी धातुसे क्त कर्ता अर्थमें शयनक्रियाका आश्रय शेषमधिशयितः।

द्यति-दोऽवखण्डने षोऽन्तकर्मणि मा माङ् माने, मेङ् प्रणिदाने, ष्ठा गतिनिवृत्तौ यहाँ तिको श्तिप् हुआ, धातुमें विशेषणके लिए। बिना श्तिप्के श्यन सुलभ नहीं। इन धातुओंको इकार आदेश अन्तमें हो तकारादि क इत् प्रत्यय परे। अधिपूर्वक स्था धातुसे ठहरने वाला अर्थमें त। अकर्मक नहींका सूचक वैकुण्ठं, तत्र स्थितवान्। द्यतिस्यति-आदि सूत्रसे इत्व। शिवमुपासितः शिवं परिचरितवान्। शिवसेवानुकूल क्रियाकर्ता अर्थ त (उप आस त) इट् शिव सेवा किया। हरिदिनं

मनुजीर्णः । पक्षे 'प्राप्ता गङ्गा तेन' इत्यादि । **क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्य-गति-प्रत्यवसानार्थेभ्यः ३।४।७६।** एभ्योऽधिकरणे क्तः स्यात् । चाद्यथाप्राप्तम् । ध्रौव्यं स्थैर्यम् । 'मुकुन्दस्याऽऽसितमिदमिदं यातं रमापतेः ।
भुक्तमेतदनन्तस्येत्यूचुर्गोप्यो दिदृक्षवः ॥'

पक्षे आसेरकर्मकत्वात्कर्तरि भावे च । आसितो मुकुन्दः, आसितं तेन । गत्यर्थेभ्यः कर्तरि कर्मणि च-रमापतेरिदं यातः, तेनेदं यातम् । भुजेः कर्मणि

उपोसितः एकादशीका व्रत किया । उपपूर्वक वस धातुसे उपासना क्रिया कर्तामें त, वसतिक्षुधोः इट् । यजादिगण मानकर सम्प्रसारण, शासिवसि षत्व, हरिदिने न भुक्तवान् । उपान्वध्याङ् वसः सूत्रसे हरिदिन कर्म है। अकर्मक नहीं **राममनुजातः** अनुकृतवान् रामका अनुकरण किया, तदनुकूल चला । अनुजन धातुसे अनुकरण कर्ता अर्थमें क्त । **आरुढः**-उपरि आक्रान्तवान् गरुण पर चढ़ गये । आङ्पूर्वक रुह आरोहणे धातुसे आरोहण कर्ता अर्थमें त । ह्-ढ, त-ध-ढ ढलोप । **अनुजीर्णः** । जॄष-वयोहानौ अथवा व्याप्तवान् । कर्तामें त 'ॠत इत्' रपर 'हलि च' दीर्घ त-ण । पक्षे जब कर्तामें नहीं, तब कर्ममें प्रत्यय । कर्म उक्त कर्ता अनुक्त, तेन गङ्गा प्राप्ता गता। तेन ग्लानः लक्ष्मी आश्लिष्टा । शेषा शयितः शयनाश्रयः जातः । वैकुण्ठः शिवः रामः गरुणः विश्वः जितने कर्म थे उसमें प्रथमा ।

क्तोअधिकरणे—ध्रौव्य=गति प्रत्यवसान अर्थोमें विद्यमान धातुसे अधिकरणे आधार अर्थमें क्त प्रत्यय हो । चकार पढ़नेसे यथाप्राप्त=कर्ता कर्म, भाव अर्थमें भी क्त हो स्थैर्य का ठहरना स्थिर अर्थ है । उपवेशन=बैठना, शयनादि क्रियाका स्थिर होना । यथा-मुकुन्दस्य इदम् आसनम् आस्यते उपविश्यते अस्मिन्निति **आसितं**-आसनमित्यर्थ । बैठनेका आधार अर्थमें उपवेशनार्थक आसधातोः उपवेशनस्य आधारे अर्थे क्त (आस त) इट् स्वादिकार्य आसितं । रमापते=इदं यातः गमनमार्गः। यायते गम्यते अस्मिन् यातं मार्गः । या धातुसे गमनमार्ग अर्थमें त (यात) स्वादि-कार्ये, अनन्तस्य इदं भुक्तं भोजनस्थानं भुज्यते अस्मिन् आधारे भुज् धातोः भोजना-धारे अर्थे त कुत्वादिः । **भुक्त** । तीनो उदाहरण-ध्रौव्य गति प्रत्यवसान (भोजन) अर्थके हैं । तीनोंकी षष्ठी 'अधिकरणवाचिनश्च' से है । पक्षे आधार अर्थके अभाव में आस् धातुसे कर्ता अर्थमें क्त आसितः आसितवान् उपवेशनकर्ता, बैठने वाला मुकुन्दः । जब क्रिया अर्थमें क्त तब कर्तामें तृतीया मुकुन्देन **आसितं**-अस धातुके अकर्मक होनेसे कर्ता क्रियाका आधार और भाव अर्थमें भी प्रत्यय । रमापतिना इदं जातं गमनं । भुज धातुसे जब कर्ममें प्रत्यय तब भुक्तं भोजनस्थानं भक्षणार्थक भुज धातु सकर्मकसे कर्ममें क्त भावमें नहीं । लः कर्मणि सूत्रमें अदर्शनसे प्रत्यवसानार्थक भुज धातुसे कर्तामें क्त होता ही नहीं तब भुक्ताः ब्राह्मणाः कैसे बनेगा । तब कहा भुक्तं भोजनं जातं कृतम् अस्ति येषामिति मत्वर्थे अच् भुक्ताः ब्राह्मणाः ।

वर्तमान—इत्याधिकृत्य मण्डूकप्लुत्या=मेढ़क उछाल न्यायसे वर्तमाने लट्की

अनन्तेनेदं भुक्तम्। 'वर्तमाने' इत्यधिकृत्य। ञीतः क्तः ।३।२।१८७। क्ष्विण्णः। 'ञि इन्धी' इद्धः। गति-बुद्धि-पूजार्थेभ्यश्च ।१।२।१८८। मतिरिहेच्छा, बुद्धेः पृथगुपादानात्। राज्ञां मतः इष्टः। तैरिष्यमाण इत्यर्थः। बुद्धः। विदितः पूजितः। अर्चितः चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। 'शीलितो रक्षितः क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि।' इत्यादि। नपुंसके भावे क्तः ।३।३।११४। क्लीबत्वविशिष्टे भावे कालसामान्ये क्तः स्यात्। जल्पितम्। शयितम्। हसितम्। सुयजोर्ङ्वनिप् ।३।२।१०३। सुनोतेर्यजेश्च ङ्वनिप् स्यात्

अनुवृत्ति। अब चारण शानच् आदि सर्वकालतया भूतभविष्यवर्तमान सभी कालमें होते हैं। उसका अधिकार चलाकर। ञीतः–ञि इत् धातुसे वर्तमानकालिक क्रिया सूचक क्त हो भाव और कर्ममें। भूतकालिक क्त वर्तमानमें प्राप्त नहीं था। अतः सूत्र पढ़ा। आदितश्च इट् निषेध। क्ष्विद धातुसे वर्तमानकालिक क्षोदकक्षेम अर्थमें क्त। रदाभ्यां नत्व, ततः णत्व क्ष्विण्णः। इन्ध धातुसे वर्तमानकालिक प्रकाश अर्थमें त जश्त्व धत्व इद्धः। अनिदितां नलोप। श्वीदितः इति नुम् इट्। मति–बुद्धि पूजा अर्थ हो वर्तमान क्रियावाचक धातुसे क्त भाव कर्ममें हो। बुद्धिके अलग पाठसे मति का इच्छा अर्थ, राज्ञां मतः राजाओंका वर्तमानकालिक इच्छा सम्मति समर्थन अर्थमें मन धातुमें क्त नलोप इष्टा, इच्छार्थक इष धातुसे वर्तमानकालिक इच्छाका विषय अर्थमें क्त ष्टु इष्टः। तीषसहलुभरिषः से वा इटका विषय होनेके कारण यस्य विभाषासे इट् निषेध। क्तस्य च वर्तमानेसे नलोप, राजाओंसे इष्यमाण समर्थित अर्थ। राज्ञां बुद्धः राजाओंसे बोधका विषय या ज्ञात हुआ–बुध धातुसे वर्तमान कालिक बोध अर्थमें त आदि। विदितः राज्ञां पूजितः राजाओंसे पूजाका वर्तमान कालिक विषय अर्थे पूज् धातोः क्त इट् एवं अर्च धातोः क्त अर्चितः। सूत्रमें चकार अनुक्त-जो सूत्रमें नहीं कहा गया उसके संग्रहके लिए, जैसे शील समाधौ शीलितः। वर्तमानकालिक समाधियुक्तः रक्षितः—रक्ष पालने पालितः, क्षमूष सहने वर्तमान-कालिक सहनक्रियाका आधार। आक्रुष्टः क्रुश आवाहने, जुष्टः जुषी प्रीतिसेवनयोः इन सबमें वर्तमानकालिक क्रियाका परिणाम अर्थमें क्त आदि, इसीको भाष्य श्लोकमें रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि। हृष्टतुष्टौ तथाक्रान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ कथं भविष्यति इत्याहुः अमृतः पूर्ववत् स्मृतः।

नपुंसके—नपुंसकसहित भावमें अकर्मक धातुसे क्त प्रत्यय हो। काल सामान्ये–भूतभविष्य तीनों कालमें, वर्तमानकालके भीतर सूचना, अतः अकर्मकका उदाहरण। जल्पितः बोलना क्रियाका प्रयोग तीनों कालमें जल्पधातुसे तीनों काल में नपुंसकवाली क्रिया अर्थमें क्त, इट्। जल्पितं गतं भुक्तं इत्यादिमें अकर्मकी अविवक्षासे अकर्मक-गतं हंसस्य, भुक्तमोदनस्य। सम्बन्ध विवक्षामें षष्ठी। कुम्भकर्णस्य शयितं, तब शयितं शयनक्रिया मात्र अर्थ, तीनों कालमें प्रयोग योग्य। एवं हसितं सर्वेषां, सामान्य कालमें क्त इट्। सुयजोः—सुन् अभिषवे, यज देवपूजा सत्संग दान अर्थक धातुसे भूतकालिक क्रिया हो, कर्तामें ङ्वनिप् (सु वन्) तुक् त। सुत्वन्

भूते। सुत्वा सुत्वानौ। यज्वा यज्वानौ। जीर्यतेस्तृन् ।२।२।१०४। भूते इत्येव। जरन जरन्तौ। जरन्तः। वासरूपन्यायेन निष्ठाऽपि, जीर्णः, जीर्णवान्। छन्दसि लिट् ।३।२।१०५। लिटः कनज्वा ।३।२।१०६। क्वसुश्च ।३।२। १०७। इह भूतसामान्ये छन्दसि लिट्। तस्य विधीयमानौ क्वसुकानचावपि छान्दसाविति त्रिमुनिमतम्। कवयस्तु बहुलं प्रयुञ्जते। तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे' श्रेयांसि पर्वाण्यधिजग्मुषस्ते' इत्यादि। वस्वेकाजाद्घसाम् ।७।२। ६७।कृतद्विर्वचनानामेकाचामादन्तानां घसेश्च क्वसोरिट्, नान्येषाम्। एकाचः'

प्रथमा एकवचन सुत्वा। अभिषेक क्रिया कर चुका कर्ता। द्विवचने सुत्वानौ। ङित् से गुण निषेध, यज् धातुसे भूतकालिक यज्ञक्रिया कर्ता अर्थमें वन, यज्वन्-प्रथमा एकवचन यज्वा। जीर्यते जॄ वयोहानौ अवस्थाहानि अर्थक भूतकालिक क्रिया अर्थमें अतृन्। अनुबन्धलोप भूतकाल अर्थमें वर्तमान धातुसे गुण, रपर जरत उगित नुम्। सुलोप संयोगान्त तलोप। जरन् बुड्ढा क्षीण हो चुका। असमानरूप अपवाद प्रत्यय, अतृन् विकल्प हुआ। पक्षमें क्त ऋत इत् रपर, हलि च दीर्घ, निष्ठा नत्व जीर्णः अत्यन्त वृद्ध। छन्दसि तीनों कालमें, वेदमें लिट् हो उसके स्थानमें विधान हुए कानच् और क्वसु प्रत्यय भी विकल्पसे वेदमें मान्य। छन्दसि लिटिमें भूतकी अनुवृत्ति, सामान्यभूतकाल अनद्यतनपरोक्ष विवक्षित नहीं, द्वितीय सूत्र लिटः कानज्वा। में छन्दसि भूत दोनों आये। वेदमें भूतकालिक लिट् स्थानमें कानचः विकल्प हो। लिट्के सभी अर्थ (परोक्ष) मान्य। कानच्का कित् तिस्तिराणः में ऋच्छत्यृतां गुण निषेध वास्ते। पक्षे=लिट् श्रवणके लिए वा पढ़ा। लादेश विषयमें साऽसरूप विधि न लगनेके लिए भी वा है। तीसरा सूत्र 'क्वसुश्च' छन्दसि भूतकाले लिट् स्थाने क्वसु आदेशः। उत्तर सूत्रमें अनुवृत्तिके लिए अलग पढ़ा। तीनों सत्र मुनियोंके मतमें वैदिक प्रयोगमें उपयोगी है। विभाषा पूर्वाह्ना भाष्यमें पपुषः=पपिवत् रूप्यं प्रयोगसे लोकमें भी क्वसु साधुः। इस आधार पर कहा कवयस्तु निरकुशाः गतानुगतिकाः भवन्ति। क्वसुको लोकमें पढ़ते उपयोग करते हैं। बहुलं=इच्छानुसार यथा नगरोपकंठे तस्थिवास-स्था धातोः लिट् स्थाने भूतकालिक अवरोध क्रिया कर्ता अर्थ क्वसु=वस्। स्था, स्था तस्था लिट मानकर द्वित्व तस्थावस-आको इत् (तस्थिवस्) द्वितीया एकवचन असन्तस्य-से दीर्घ उगित नुम्। शहरके पास बैठे हुए। अधिजग्मुषः—अधिपूर्वक गमसे सामान्यभूतकाल अर्थमें लिट, तस्य क्वसु आदेशे द्वित्वादि अधिजगम वस्। 'गमहन जन–' से उपधा अकारलोप द्वितीया बहुवचन शस् परेः वसोः सम्प्रसारणं' वको उ, षत्व अधिजग्मुषः सभी श्रेयका अधिकार प्राप्त करते हुए।

वसु एकाच्—कृतेऽपि द्विर्वचने एकाच एव अवशिष्यन्ते तेषां। द्वित्व होने पर भी एकाच धातु, अदन्त धातु और घससे परे वसु (क्वसु)को इट, टित्से आदिमें हो। 'नेड्वशिकृति' के इट निषेधको बांधकर, क्रादिनियमसे सर्वत्र इट् प्राप्त था। इससे

आरिसान्। आत्, ददिवान्। जक्षिवान्। 'एषाम्' किम्? बभूवान्। **भाषायां सदवसश्रुवः ।३।२।१०८।** सदादिभ्यो भूतसामान्ये भाषायां लिड् वा स्यात्, तस्य च नित्यं क्वसुः। 'निषेदुषीमासनबन्धधीरः'। 'अध्यूषवस्तामभवज्जनस्य'। शुश्रुवान्। **उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ।३।२।१०९।** एते निपात्यन्ते। उपपूर्वादिणो भाषायामपि भूतमात्रे लिड् वा, तस्य नित्यं क्वसुः। इट्' उपेयिवान् (उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमग्र्याम्। उपेयुषी) उप'

कहा **नान्येषां**=अन्य धातुसे परे वसुको इट् न हो। एकाच्का प्रयोग **आदिवान्**- (अद्भक्षणे) खा गया। भूतकालिक खादनक्रियासूचक लिट्, द्वित्व हलादिशेष, अभ्यासदीर्घ सवर्णदीर्घ अद अद अअद आअद 'आद' होने पर भी एकाच् है। उससे वस् तब सूत्रसे इट् आदिवस्-स्वादिकार्य। **अररिवान्**—ऋ गतौ लिट् ऋच्छति-ऋतांस गुण करके द्वित्व आदिवस् परे द्वित्व, एकाच् देखकर इट् प्रथमा एकवचन। **आत्**—आदन्त दाञ् दाने, द्वित्व करने पर ददा वस् एकाच् नहीं रहा। अनेकाच् है। इट् आलोप ददिवस्-इत्यादि। **ददिवान्**-जक्षिवान् भोजनका भूतकाल सूचक लिट्। लिटि अन्यतरस्यां घस आदेशको द्वित्व करने पर एकाच् नहीं, अतः घस पढ़ा। वस्को इट् जघस इ वस, उपधा अकारलोप जश्चर्षः=क्ष। **एषां किम्**-इन्हीं धातुओं से परे वसुको इट् क्यों? अन्य धातु भू बभूवान्में इट् न हो इसलिये।

भाषायां—सद वस श्रु इन धातुओंसे सामान्य भूतकालिक लोकव्यवहारमें लिट् हो। विकल्पसे उसके स्थानमें नित्य क्वसु आदेश भी हो। वा का सम्बन्ध लिटिसे, क्वसुसे नहीं, पक्षमें लुङ् भी होनेके लिए। वा न होता नित्य लिट रहता, लुम् बाधा जाता, सरूप होनेसे। **निषेदुषीं** बैठी हुई देखकर (आसनबन्धधीरः) आसन लगाकर बैठते थे। सद् विशरण आदि अर्थमें निपूर्वक सद्से लिट् वस् द्वित्व सद्सद् एत्व अभ्यासलोप निषेदवस्, वसोः सम्प्रसारण पूर्वरूपं षत्वउगितश्च ङीप्। सदिर-प्रतेः पुंसि **निषेदिवान्**। अध्युषः—वस निवासे (लोगोंका निवास हुआ) अर्थमें अधिवससे लिट् वचिस्वपियजादीनांसे सम्प्रसारण (अधि उस वस) उसको द्वित्व, शेष, दीर्घ यण। अध्युस् वस् अस्—वसोः सम्प्रसारणादि। सुन लिया (शुश्रुवान्) श्रु लिट वस आदि। **उपेयिवान्**—अनाश्वान् अनूचानः शब्दकी निपातन (सूत्रमें स्वीकार प्रमाण) से सिद्धि समझें। उपपूर्वक इणगतौ धातुसे भाषायां-लोक व्यवहार में भूतकालमात्रमें लिट् विकल्प हो, क्वसु नित्य हो। द्वित्व आदि इट् इयङ् गुण उपेयिवस् प्रथमा एकवचन रूप। वलादि इट्का नेड्वशिसे निषेधः। वह इट् क्रादि नियमसे पुनः उठा। जो वसु-एकाजाद-नियमसे रुका। अतः निपातनसे इट्। अर्थात् वलादि इट सुलभ। यत उपेयुषः में इट होता यण् होने लगता। अतः अपूर्व इट्का विपातन क्यों नहीं? तब कहा उपेयुषी उगितः ङीप् वसुको सम्प्रसारण उ, व विनाशोन्मुख है, अतः इट् नहीं हुआ। अपूर्व निपातन होता यहां भी इट् होने लगता। उप् उपसर्ग आवश्यक नहीं। विशेषार्थ न होनेसे। अनाश्वान्

इत्यविवक्षितम्, ईयिवान्। समीयिवान्। नञ्पूर्वादश्नातेः क्वसुरिडभावश्च। धृतजयधृतेरनाशुषः'। अनुपूर्वाद्वचेः कर्तरि कानच्, वेदस्यानुवचनं कृतवान् अनूचानः। लटः शतृ-शानचावप्रथमा-समानाधिकरणे ।३।२।१२४। अप्रथमान्तेन सामानाधिकरण्ये सतीत्यर्थः। शबादिः पचन्तं चैत्रं पश्य। आने मुक् ।७।२।८२। अदन्तस्याङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे। पचमानं चैत्रं पश्य, 'लट्' इत्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणमधिकविधानार्थम्। तेन प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित्, सन् ब्राह्मणः। ईदासः ।७।२।८३। आसः परस्यानस्य ईत्स्यात्। 'आदेः परस्य' आसीनः।

अश्नाते--अश भोजने धातुसे (भोजन कर चुका) लिट् क्वसु द्वित्व 'अश वस्' दो हल नहीं न नुट्, नञ् समास-नलोपो नञः, तस्मान्नुट् प्रथमा एकवचन। अनाश्वान् भोजन नहीं किया। भारविका प्रयोग भी प्रमाण अनाशुषः शसि ङसि विभक्तौ। अनुपूर्वक वच् धातुसे कर्तामें कानच्, कित्से यजादिगण मानकर सम्प्रसारण पूर्वरूप दीर्घ। अनूचानः वेदस्य उच्चारणं श्रुत्वा उच्चारण कृतवान्।

यहां भी है। यथा पचन्तं चैत्रं-शतृशानच् पूर्वकालिक क्रियाका महत्व उपस्थित करते हैं। प्रधान क्रिया पश्य, सह क्रिया पच है। सह क्रियामें पच धातुसे पाकानुकूलक्रिया अपूर्णकालिकक्रिया अर्थ, शतृका आश्रय, कर्ता अर्थमें लट्। लट् का अर्थ धर्म खोलनेके लिए लट् स्थाने शतृ। लशकु-सूत्रसे श इत् उपदेशेऽजनुनासिकसे ऋ इत्। शेष अत्को सार्वधातुकसंज्ञा शित् होनेसे। कर्तरि शप् आदि पचत् चैत्रंको देखकर द्वितीयाका कर्म समान आधारमें समानविभक्ति 'पचत् अम्' उगित् नुम पचन्तं—पाकानुकूलक्रियाकर्तारं चैत्रमवलोकय।

आने--मुक् आन=शानच् कानच् परे रहते अङ्गसंज्ञक अकारको मुम् आगम हो। अङ्गका अधिकार 'अतो येयः' से आत आया। पकाते हुए चैत्रको देखो। तण्डुल शिथिलीभवनक्रियां कुर्वन्तं चैत्रं। पच् धातुसे अपूर्णकालिक पाकक्रियाके कर्तामें शानच् (श च इत्) आन शेष कर्तरि शबादि पच, आन अङ्गसंज्ञक अदन्त पचको मुम् पचमानः पाकाश्रय अर्थसे अर्थवान जानकर समान विभक्ति (अम्) आयी पचमानम्। वर्तमाने लट् से लट अनुवृत्त होता ही पुनः लट् क्यों पढ़ा? प्रथमामें भी शतृ आदि विधानके लिए। इसी आशयसे कहा अधिक विधनार्थं। तेन— इसलिए प्रथमाके साथ समान आधारमें भी समानविभक्ति हो। यथा सन् ब्राह्मणः-सु विभक्तिका समान आधार अर्थ। अस् धातुसे शतृ शप्लुक (श्नसोः) अस्के अकालोप। सत् सु नुम्, सुलोप संयोगान्तलोप सन् द्विजः।

ईदासः=उपवेशनार्थक आस धातुसे परे आनके आ को ई हो। आने मुकसे आने आया। वह ईत्व परके आदिको हो। आसीनः-आस्यते बैठता हुआ कंस। आस धातुसे उपवेशन क्रियाका परिचायक कर्ता अर्थमें शानच्। शप् लुक् (आस आन्) आदेः परस्यके बल पर ईदासः से ईत्व स्वादिः। विदे-विद

विदेः शतुर्वसुः ।७।१।३६। वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा स्यात् । विद्वान्-विद्वन् । विदुषी । **तौ सत्** ।३।२।१२७। तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः । **लृटः सद्वा** ।३।३।१४। करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य । **ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्** ।३।२।१२९। एषु द्योत्येषु कर्तरि चानश् । भोगं भुञ्जानः कवचं बिभ्राणः । शत्रुं निघ्नानः । **आक्वेस्तच्छील-तद्धर्म-तत्साधुकारिषु** ।३।२।१३४। क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु

धातुसे परे शतृ प्रत्ययके स्थानमें वसु आदेश विकल्प हो विद् ज्ञाने परस्मैपदी लुक् विकरण, धातुसे लट् स्थाने शतृको वसु (विद्वस सु) नुम् नान्त दीर्घ आदि **विद्वान्** पक्षे विद् अत् नुम् आदि **विदन्** विदन्तौ विदन्तः स्त्रीलिङ्गविवक्षायाम् उगितश्च ङीप् वसोः सम्प्रसारण पूर्वरूपं षत्व विदुषी ।

तौ सत—लटः स्थाने शतृ शानच्को सत्संज्ञा हो । **लृटः**—लृटके स्थानमें शतृ शानच् विकल्पसे हो । सत्संज्ञा होनेसे यहांका विकल्प व्यवस्थित विभाषा है । अप्रथमा समानाधिकरणका उदाहरण-करिष्यन्तं करिष्यमाणं वा चरित्रं पश्य कार्यको करते हुये चैत्रको देखो । चैत्रमें द्वितीया उसके समान द्वितीया करिष्यन्तं । कृ धातुसे लृट स्य गुण इट लृट् स्थाने सत्संज्ञक शतृप्रत्यय करिष्यत् को प्रा०संज्ञा अम् नुम् । जब शानच् करिष्यमाणं आनेमुक होगा ।

ताच्छील्य—तत्शील-उसका स्वभाव वयोवचन-अवस्थाका ज्ञान, शक्तिप्रदर्शन कर्ता अर्थमें चानश-च, श इत् 'आन' शेष । **भुञ्जानः** भोगशील भुञ्ज धातोः भोगशील विलासानुकूल स्वभावकी क्रियार्थक भुञ्ज धातुसे चानश्, शप् लुक् आदि विलासी-आदत स्वभाव अर्थ खुला । **बिभ्राणः**—भृ धातुसे युवा अवस्था सूचक कवच धारण क्रियाकर्ता अर्थे आन । शपः श्लु, श्लौ द्वित्व, बिभृ आन यण् णत्व बिभ्राणः । यौवनबलात् कवच धारणसे युवा अवस्था अर्थ खुल रहा है । **निघ्नानः** निहन्तुं शक्तः । निहन धातुसे शत्रुवध शक्तिसूचक चानश् । शप् आदि, निहन आन गमहन-उपधा अकारलोप कुत्व ।

आक्वेः—भ्राजभास धुर्विद्युतो-सूत्रके क्विप् तक कहे जाने वाले प्रत्यय सोपसर्ग को छोड़कर धातुसे तच्छील तत्स्वभाव, फलेच्छा बिना स्वभावतः प्रवर्तमान अर्थमें स धर्मो यस्य स तद्धर्मा स्वधर्मः, कर्तव्यं ज्ञात्वा प्रवर्तते धात्वर्थ क्रियाको ठीकसे करने वाला साधुकारी आदि अर्थोमें हो । **तृन्**—धातुसे तृन् प्रत्यय हो । शील स्वभाव धर्म आदत अभ्यास कर्तव्य सुन्दर निर्माण आदि अर्थमें । शीलका उदाहरण-कटान् कर्ता चटाई निर्माता । कृ धातुसे कटकरण क्रियाशीलः अर्थे तृ, आर्धधातुकसंज्ञा गुण प्रथमा एकवचन कर्ता कटान् । कृद्योगे षष्ठी क्यों नहीं? न लोकाव्यय-के निषेधसे । तद्धर्म-मुण्डयितारः श्राविष्ठायना भवन्ति ऊढां वधूं, देशविदेशमें कहीं वधूमुण्डन स्वधर्म है । अतः मुण्डयन्ति मुण्डयितारः । मुण्डि धातुसे मुण्डनं स्वधर्मं अर्थे तृन जस् । साधुकारिणि-कटं साधु करोति मनमोहक निर्माण ।

वर्तृषु बोध्याः। तृन् ।३।२।१३५। कर्ता कटान्। स्पृहि गृहि पति दयि निद्रा-तन्द्रा-श्रद्धाभ्य आलुच् ।३।२।१५८। आद्यास्त्रयश्चुरादावन्दन्ताः। स्पृहयालुः। गृहयालुः। पतयालुः दयालुः। निद्रालुः। शीङो वाच्यः शयालुः।

अलङ्कृञ्-निराकृञ्-प्रजनोत्पचोत्पतोन्मद-रुच्यपत्रप-वृतु-वृधु-सह-चर इष्णुच् ।३।२।१३६। अलङ्करिष्णुः। निराकरिष्णुः। प्रजनिष्णुः। उत्पचिष्णुः ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः ३।२।१३९। गिदयं न तु कित्। तेन स्थ ईत्वं न, ग्लास्नुः।

स्पृह—ईप्सायां, गृह ग्रहणे पत गतौ, दयि निद्रा, तन्द्रा श्रद्धा इन् सात शब्दों शील धर्म साधुकारी अर्थमें आलुच् हो। आदिके तीन धातु अदन्त स्पृहयति स्पृहा-शीलः इच्छा तृष्णा बढी हो। स्वभाव बन जाय अर्थमें आलुच्, गुणे अय् स्पृहयालुः स्वाभाविक इच्छाकर्ता। पत गतौ पतन स्वभावः अर्थे पतधातोः आलुच्, णेः अय पतयालुः गिरनेवाला। दयते दयालुः दयाशीलः कृपाकरणे साधुः, अर्थे दयि धातोः आलु, णेः अय। णिलोप बांधकर। अल्लोपकी असिद्धि (स्थानिवद्भावसे है) अतः गुण वृद्धि नहीं। गृहयति गृहयालुः ग्रहणशीलः अन्नादिग्रहणकर्ता गृहः। पतयति पतयालुः निद्राति स्वापशीलः निद्रालुः कुम्भकर्णः, निपूर्वक द्रासे शयनशील अर्थमें आलुच् निद्रालुः। यदि तत्पूर्व हो तब द्रा धातु परे तको नकार हो। तन्द्रालुः आलस्य जम्हाई। श्रत् अव्यय सद्भावना अर्थे श्रत् पूर्वक धा धातुसे आलुच श्रद्धालुः प्रेमी। शीङ्—से भी आलुच् कहे, शयनशीलः शयालुः निद्रायां कुशलः सोते रहना स्वभाव वाला-शी आलु गुण अय्। यदि ऐसा कृपालुः स्पर्द्धालुः कैसे बना ? सूत्रमें पढ़ा न होनेसे, अतः कृपां लाति ला आदाने कृपालुः श्रद्धां लाति श्रद्धालुः कृपापूर्वक ला धातुसे मृगय्-आदि सूत्रसे कु=उ करके बना।

अलङ्कृञ्—निराकृञ् प्रजन उत्पच उत्पत उन्मद रुचि अपत्रप वृतु वर्तने वृधु वृद्धौ सह मर्षणे, चरगतौ इन द्वादश धातुओंसे शील धर्म साधुकारी अर्थके कर्तामें इष्णुच्प्रत्यय हो। अलङ्करोति अलङ्करिष्णुः अलंपूर्वक कृसे पर्याप्त कार्य करनेका स्वभाव, कर्तव्य, निपुणता आदि अर्थके कर्तामें इष्णुच्। आर्धधातुक परे गुण स्वादिः। निराकरोति—निवारण करना जिनकी आदत धर्म या कुशलता हो। निरापूर्वक कृञ्से इष्णु आदि। प्रजनयति उत्पादयति तत्शील धर्म, आदि अर्थे इष्णुच्। प्रजनन कर्ता उत्पचति उत्पचनं शीलम् उत्पतति उत्पतिष्णुः सहिष्णुः। चेरतुः खरदूषणौ फलानामुत्पतिष्णव इति कालिदासः। उन्मादयति उन्मादिष्णुः उन्मत्तता जिनका शील हो। रोचयति इति रोचिष्णुः मोदकस्य। अपत्रपिष्णुः अलज्जाशीलः। वर्तते व्यवहारं करोति वर्तिष्णुः। स्वागत सत्कार स्वभाव। वर्धते इति वर्धिष्णुः वर्धनशीलः साधुः। सहते सहिष्णुः सहनशीलः। चरति इति चरिष्णुः विचरणशीलः।

ग्ला—जि स्था भू इन धातुओंसे उसका शील, उसकी आदत उसका स्वभाव अर्थमें ग्स्नुः प्रत्यय हो (छन्द रुका) इसमें ग अनुबन्ध है क नहीं, अतः घुमास्थागापासे ईत्व नहीं, ग्लायति आदतवश साधुकार्य ग्लानिका कुशल अनुकरण (ऐक्टिंग) अर्थमें

गित्त्वान्न गुणः-जिष्णुः, स्थास्नुः। चाद् भुवः, 'श्र्युकः किति' इत्यत्र गकारप्रश्लेषान्नेट्, भूष्णुः। **त्रसि-गृधि-धृषि-क्षिपेः क्नुः** ।३।२।१४०। त्रस्नुः। गृध्नुः। धृष्णुः। क्षिप्नुः। **शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्** ।३।२।१४१। 'उकार उच्चारणार्थः' इति काशिका। 'अनुबन्ध' इति भाष्यम्। तेन 'शमिनितरा शमिनीतरा' इत्यत्र 'उगितश्च' इति ह्रस्वविकल्पः। न चैवं 'शमी' 'शमिनी' इत्यादौ नुम्प्रसङ्गः, झल्ग्रहणमपकृष्य झलन्तानामेव तद्विधानात्। 'नोदात्तोपदेशस्य-' इति वृद्धिनिषेधः-शमी, तमी, दमी, श्रमी, भ्रमी, क्षमी, क्लमी। **सम्पृचा-ऽनुरुधाऽऽङ्यमा-ऽऽङ्यम-**

हर्षक्षयार्थक ग्लै धातुसे ग्स्नुः आत्व, **ग्लास्नुः** ग्लानिकरणशीलः अथवा ग्लानिके नकलमें कुशल। गित्से गुणनिषेध, क्ङिति चसे। **जिष्णुः**—जयनशीलः जि धातुसे जीतना स्वभाव कुशलता हो। तब स्नु ष-ण जिष्णुः तिष्ठति बैठा रहना शील स्वभाव। **स्थास्नुः**—आलसी प्रमादी शील अर्थ हुआ। **स्थायी**-कुशलता अर्थमें भविष्यति इति **भूष्णुः**—भू धातुसे होनहार अर्थमें स्नु (श्र्युकः कितिमें) ग छिपा है है अतः इट निषेध। दंश धातुसे छन्दमें स्नु कहें दंशनशीलः डंसना स्वभाव हो (दंश स्नु) व्रश्चभ्रस्ज श-ष, षढ़ो कः सि, ष-क, स-ष षत्व स-ष आदि। **त्रसी**-उद्वेगे, गृह लोभे, धृष् धृष्टतायां, क्षिप क्षेपे, धातुसे शील स्वभाव आदि अर्थमें स्नु हो। डरना उद्वेग करना, स्वभाव अर्थमें त्रस्से नु, त्रस्नुः भय पैदा करनेकी आदतवाला गृद्धयति लोभी स्वभाववाला अर्थमें नु गृध्नुः लोभासक्त। धृष्णुः धृष्णोति महाधृष्ट। क्षिपति क्षिप्नुः बालकः। सामान फेंकता रहता है। तच्छीलादि अर्थमें नु।

शमि—आदि धातु दिवादिमें प्रसिद्ध, उनसे तच्छील आदि अर्थमें घिनुण, अनुबन्धलोप इन् शेष। इति शब्दका आदि अर्थ, अकर्मक धातुसे ही हो, भाष्य मत। **शम**—धातुसे शमन वैराग्य, शान्ति पानेका स्वभाव अर्थमें घिनुण। शमिन् शान्त स्वभाव वाला अर्थसे अर्थवानको प्रा०संज्ञा सु आदि, प्रथमा एकवचन शमी। शमिन् शब्दसे स्त्री धर्म अर्थमें ङीप् **शमिनी** (भक्तिन) से तरप् तब टाप्। भाष्यमतमें उगितश्च सूत्रसे विकल्प ह्रस्व। काशिकामतमें न उगित्, न ह्रस्व। तसिलादिषुके पुंवत्का संज्ञापुरण्योश्चसे निषेध। शमिनीमें नुम प्रसङ्ग नहीं होगा, उगिदचां सुत्र में झल्की अनुवृत्तिसे, झलन्तसे ही नुमका विधान है। उपधावृद्धिका निषेध नोदात्त सूत्रसे। ताम्यति इति **तमी**। तमकना शील आदतवाला। दाम्यति दमनकरणशीलः। श्राम्यति **श्रमी** परिश्रमशीलः कुशलः। भ्रमति इति भ्रमी, भ्रमणशीलः। क्षमते क्षमी क्षमाशीलः। क्लाम्यति थक जाना, ढीला पड़ना उदास होना शील हो। **प्रमादी** (आलसी) प्रकर्षेण मद धातुसे मद श्रम भ्रम आदि सभी धातुओंसे घिनुण, 'इन्' शेष प्रथमा एकवचन। उत्पूर्वक मद् धातुसे इष्णुच् उन्मदिष्णुः कहा गया।

सम्पृच—अनुरुध आदि सप्तविंशति धातुसे शील धर्म साधु अर्थमें घिनुण् हो। सम्पृचति मिलित्वा व्यवहारं करोति। मेल मिलापका स्वभाव कुशल, क्रियाकर्ता

परिसृ-संसृज-परिदेवि-संज्वर-परिक्षिप-परिरट-परिवद-परिवह-परिमुह-दुष-द्विष-द्रुह-दुह-युजा-ऽऽक्रीड-विविच्-त्यज-रज-भजाऽतिचरा-ऽपचरा-ऽऽमुषा-ऽभ्याहनश्च ।३।२।१४२। घिनुण्स्यात् । सम्पर्की । अनुरोधी । आयामी । वौ कषलसकत्थस्रम्भः ।३।२।१४३। विकाषी । विलासी । विकत्थी । विस्रम्भी । अपे च लषः ।३।२।१४४। चाद्वौ । अपलाषी । विलाषी । चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ।३।२।१४८। चलनार्थाच्छब्दार्थाच्च अकर्मकाद् युच् स्यात् । चलनः । चोपनः । कम्पनः । शब्दनः । रवणः । 'अकर्मकात्'

में घिनुण (सम्पृच् इन). गुण कुत्व प्रथमा एकवचन **संपर्की** मिलनसार । अनुरुध्यते अनुरोधकरणशीलः इदं कुरु इदं मा कुरु इति शिक्षणं धर्मः तस्मिन्कुशलता च अर्थ इन आदि । अनुरोधिन् प्रथमा एकवचन । आयम्ते संयम करणशीलः कुशल अर्थ इन् उपधावृद्धि संयामिन् प्र० ए० । **आयामी** पूर्णसंयमी । यस प्रयत्ने आयस्यति आयासी प्रयत्नकरणशीलः । परिसरति चतुर्दिक भ्रमणशीलः । संसृज्यते **संसर्गी** सम्बन्धकुशलः । परिदेवति सर्वप्रकारेण दुःखदाने कुशलः, देवृ देवने शुद्ध धातु मान्य । लाक्षणिक असामान्य । **संज्वारी** संग्रहण रोगशीलः परिक्षिपति परिक्षेपी बालकः सामान फेंकते रहना जिसकी आदत । त्यागकरणशीलः **त्यागी** । रज्जति रागी, लोभाशक्ति मोहमग्न भजते सेवाकरणशीलः । **मोषी**—चौरक्रियाकरण कुशलः अभ्याघाती समक्ष लुटेरा डाकू । हिंसार्थक हन धातुसे कर्ता घिनुण्, हनस्तः नको त अत उपधायाः वृद्धिः प्रथमा एकवचन, प्रत्येक धातुके तच्छील तद्धर्म तत्साधुकारी अर्थमें प्रत्यय प्रथमा एकवचन ।

वौ कष—वि उपसर्ग कष हिंसायां, लस विश्लेषणक्रीडनयोः कथ श्लाघायां, स्रम्भु विश्वासे धातुओंसे शील धर्म कुशल अर्थके कर्तामें घिनुण् । कषति हिंसनशीलः मारने साधु अर्थ (विकष् इन्) आदि **विकाषी** प्रा०संज्ञा नान्त उपधायाः दीर्घ सुलोपनलोपौ विलसते छिपकाने या खेलनेका स्वभाव, नैपुण्य अर्थ घिनुण **विलासिन्** प्र० ए । विकत्थयति, स्वप्रशंसाशीलः तत्र निपुणः अर्थ इन आदि । **विकत्थी** विकत्थिनौ विकत्थिनः । विश्रम्भते विश्वासकरणस्वभावः । **अपे च**—अप और वि पूर्वक लष् धातुसे घिनुण् हो तच्छीलादि अर्थमें । **अपलापी** अनर्थक भाषणशीलः । प्रलापोऽनर्थकं वचः (प्रभु प्रलापः सुनिकान) प्रलपति अनर्थकं ब्रवीति इति **प्रलापी** । **चलन**—शब्दके अर्थमें विराजमान अकर्मक धातुसे युच् हो । अर्थात् चलन गति अर्थ, ध्वनि अर्थक धातुसे । जैसे चल कम्पने चुप मन्दायां गतौ कपि चलने शब्द शब्दसे रु शब्दे आदि धातु चलनशीलः कांपते रहनेकी आदत अर्थ युच् अन चलनः । वायुः चोपनः चुप धातुसे चुपकेसे चलनेकी आदत अर्थमें यु-अन गुण आदि । कम्पनः चलनशीलः । **शब्दनः**-शब्दोच्चारणशीलः अर्थ यु अन । रौति रोदन स्वभावः रवणः । रु (रु-अन) गुण अव ण । अकर्मक क्यों पढ़ा ? विद्याको पढ़नेवाला अर्थमें पठनः न बने इसलिए । अनुदात्त—इत् अकर्मक धातुसे युच् हो । वर्तनः व्यवहारशीलः वर्तायांनिपुण अर्थ अनुदात्त इत् हलादि अकर्मक वृत धातुसे

किम् ? पठिता विद्याम् । अनुदात्तेतश्च हलादेः ।३।२।१४९। अकर्मकाद्युच् स्यात् । वर्तनः । वर्धनः । 'अनुदात्तेतः' किम् ? भविता । 'हलादेः' किम् ? वसिता वस्त्रम् । निन्द-हिंस-क्लिश-खाद-विनाश-परिक्षिप-परि-रट-परिवादि व्याभाषा-ऽसूञो वुञ् ।३।२।१४६। एभ्यो वुञ्स्यात् । निन्दकः हिंसकः । देविक्रुशोश्चोपसर्गे ।३।२।१४७। आदेवकः । आक्रोशकः । 'उपसर्गे' किम् ? देवयिता । क्रोष्टा लष-पत पद-स्था-भू-वृष-हन-कम-गम-शॄभ्य उकञ् ।३।२।

पु ह्वन गुण । जिस पात्रसे वर्ताव हो वह वर्तनः । वर्धनः वर्धनशीलः बढ़नेका सहज स्वभाव । अनुदात्त इत् क्यों ? भवितामें युच् न हो । हलादि क्यों ? एधितामें यु न हो । अकर्मक क्यों ? वसितामें यु अभाव वास्ते ।

निन्द—हिंस आदि धातुसे उसका शील, उसका धर्म, उसकी कार्यकुशलता अर्थमें वुञ् हो । सूत्रे प्रथमा पञ्चमी अर्थे । सूत्रमें पाठकी शक्तिसे एकवचन पुम् । विनाशि धातुमें (ण्यन्त नाशि समझें) णिलोप निर्देश । निन्दति निन्दाकरण स्वभावः अर्थे निन्द धातु वु-अक निंदकः निन्दनशीलः । स्वभावगतदोषं हिनस्ति इति हिंसकः हिंसायां कुशलः इत्यादि । क्लेशयति क्लिश्नाति वा क्लेशकः सांसति करता है या सहता है ऐसी आदतवाला अर्थे वुञादि । खादति खादयति वा भोजनशीलः खादने दक्षः निपुणः अर्थे खाद धातुः वु० । विनाशयति नाशकरणशीलः कुशलः विनाशकः । परिक्षिपति परिक्षेपकः । परिरटति बहु-अभ्यासकरणशीलः परिराटकः-रटता है रटाता भी । परिवदति परिवादकः व्यर्थभाषकः असूयकः कण्डवादिः असूयते=न इर्ष्याकरणशीलः स्वभावः धर्मः अर्थे वु० । यद्यपि ण्वुल प्रत्यय करके वु-अक होकर प्रयोग सिद्ध थे । वुञ् क्यों पढ़ा ? यह व्यर्थीभूय ज्ञापयति तच्छीलादिषु=तत्शील तद्धर्म तत्साधुकारीके विषयमें वाऽसरूप परिभाषासे पक्षमें तृच् आदि न हो । यदि ण्वुल् आता तृच् भी होने लगता । तच्छीलादिके प्रसङ्गमें वाऽसरूप विधि नहीं लगती, यह ज्ञापन कदाचित्क प्रायिक है अतएव इष्णुच् विषये घिनुणपि भवति ।

देवि—दिवु क्रीडा चुरादि ण्यन्त और क्रुश धातुसे उपसर्ग जुड़ते वुञ् हो । उसका शील उसका धर्म साधुकारि अर्थमें दिवु पूजने चुरादिः आ देवयति इति आदेवकः बोलने पूजा आदिकी निपुणता अर्थमें वु-अक आदि । आक्रो-शति आक्रोशकः खीझना क्रोध उतारना स्वभाव अर्थे वु-अक आदि । उपसर्ग क्यों कहा, विना उपसर्गके तृच् हो, वु न हो । देवयिता देवि तृ, इट गुण अय आदि । क्रोष्टा षत्व ष्टुत्व, क्रुश तृ आक्रोशस्वभावः । स्वादिः ।

लषपत-पद आदि दशधातुसे उकञ् हो । तस्य शीलः तस्य धर्मः तस्य साधुकरण अर्थमें लाषते इति लाषुकः भोगशीलः विलासार्थक लष धातुसे उकञ् उपधावृद्धि लाषुकः, पातुकः पतनशीलः पत उकञ् उपधावृद्धि । पद्यते गमनशीलः इति पादुकः, तिष्ठति स्थायुकः आतो युक् । भावुकः अर्थग्रहणे साधुः वर्षणे साधुः

१५४। लाषुकः। पातुकः इत्यादि। जल्प-भिक्ष-कुट्ट-लुण्ट-वृङः षाकन् ।३।२। १५५। जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। सनाशंसभिक्ष उः ।३।२।१६८। चिकीर्षुः। आशंसुः। भिक्षुः। स्थेश-भास-पिस कसो वरच् ।३।२१७५। स्थावरः। ईश्वरः। भास्वरः। पेस्वरः। कस्वरः। यश्च यङः ।३।२।१७६। यातेर्यङन्ताद्वरच् स्यात्। 'अतो लोपः' तस्य 'अचः परस्मिन्–' इति स्थानिवद्भावे प्राप्ते 'न पदान्त' इति सूत्रेण यलोपं प्रति स्थानिवद्भावनिषेधाद् 'लोपो व्योः–' इति यकारलोपः। अल्लोपस्य स्थानि·

वर्षुकः, हनने साधु घातुकः हननशीलः, हिंसकः हनः त, होहन्तेः कुत्व। कामनायां कुशलः कामुकः कामी। गच्छति धमने साधुः गामुकः हिंसने साधुः गारुकः।

जल्प—जप व्यक्तायां वाचि, भिक्ष भिक्षायां लाभे अलाभे च। कुप छेदने लुण्ठ स्तेये चौरादिक है (वृ वरणे) पांच धातुसे स्वभाव धर्म कुशलता अर्थमें षाकन् हो। अनुबन्धलोप आक् शेष। जल्पति स्पष्ट प्रवचनशीलः अथवा जल्पने साधुः जल्पाकः जल्पसे षाकन् आक् आदि। भिक्षकः याचनशीलः साधुः भिक्षणं धर्मः अर्थे षाकन् आक, भिक्षाकः, कुट्टति छिद्रकरणे साधुः आक् कुट्टाकः कूटनीति कुशल, दूसरेके कर्तव्यमें छिद्र करना स्तेयार्थक लुण्ठसे आक लुण्ठाकः लुण्ठने साधुः लुटेरा, वृणोति कन्यां वराकः अथवा वृणोति वरं वराकी, वरस्वीकर्त्री कन्या। वृ आक गुण ङीप्। सन्—आश स भिक्ष धातुसे, सन् प्रत्ययान्तसे तच्छीलादि अर्थे उ प्रत्ययः। सनसे सन्नन्त मान्य। षणु दाने, षण संभक्तौ अमान्य वर्णाविगणमें विजिगीषुः शब्द पाठसे कर्तुमिच्छति चिकीर्षति तच्छीलः अर्थे चिकीर्ष धातोः उ अतो लोपः चिकीर्षुः। आशंसति इच्छाकरणस्वभावः अर्थे उ आशंसुः। आङ्‌ शसि इच्छायां, भिक्षुः भिक्षाकरणस्वभाव भिक्ष धातुसे भिक्षा मांगते रहनेकी आदत अर्थे उ भिक्षुः।

स्था ईस, ष्ठागतिनिवृत्तौ, ईश ऐश्वर्ये, भास दीप्तौ, पिसृ पेसृ, कस गतौ इनसे शीलादि अर्थे वरच्। तिष्ठति तच्छीलः स्थिर रहना स्वभाव अर्थे स्था धातोः वरच् स्थावरः पर्वतः। इट्टे ईश्वर भावके अनुकूल क्रियाकी आदत अर्थमें वरच् ईश्वरः राजा भगवान्। भासते तच्छीलः चमकते रहना स्वभाव अर्थे वरच् भास्वरः सूर्यः। पिसति पेसति तादृशः स्वभावः अर्थे वर, पेस्वरः चक्की। कसति गमनशीलः कस्वरः कसेरा। यश्च यङः, या प्रापणे के यङन्त धातुसे वरच् हो। शीलादि अर्थमें अकारलोप यायावरः पुनः पुनः प्रापणशीलः बार-बार पहुंचा रहता है। अर्थमें यायाम धातुसे वरच् पहुंचनेकी आदत अर्थमें अतोलोपः अकारलोप, हल्से परे नहीं यस्य हलः से यलोप कैसे? अतः लोपोव्योर्वलि से यलोप अकारलोपको स्थानिवत् भाव, अचः परस्मिन् सूत्रसे प्राप्त था। पदचरमावयव विधि होनेसे परनिमित्तक अच् स्थाने आदेश=अकारलोपको स्थानिवत् भाव नहीं होता। यलोपविधौ न स्थानिवत् निषेध है। तब लोपो व्योः से लोप। अकारलोपको स्थानिवत् करके आलोप

वत्वमाश्रित्य आतो लोपे प्राप्ते 'वरे लुप्तं न स्थानिवत्' यायावरः। भ्राज-भास-धुर्वि-द्युतोर्जि-पॄ-जु-ग्रावस्तुवः क्विप् ।३।२।१७७। विभ्राट्। भाः। भासौ। धूः धुरौ। विद्युत्। ऊर्क्। पूः पुरौ। दृशिग्रहणस्याप्यपकर्षाज्जवतेर्दीर्घः, जूः ग्रावस्तुत्-क्विब्वचि-प्रच्छ्यायत-स्तु-कटप्रु-जु-श्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च। वक्तीति वाक्। पृच्छतीति प्राट्। आयतं स्तौति आयतस्तूः। कटं प्रवते कटप्रूः। जूरुक्तः। श्रयति हरिं सा श्रीः। ध्यायतेः सम्प्रसारणञ्च। धीः। दाम्नी-शस-यु-युज-स्तु-तुद-सि-सिच-मिह-पत-दश-नहः करणे ।३।२।१८२। दाबादेः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे। दान्त्यनेन दात्रम्। नेत्रम्। ति-

---

प्राप्त यद्यपि तथापि (वरे लुप्तं न स्थानिवत्) वर प्रत्यय परे अकारलोप हुआ है। यायावरः बार-बार पहुंचा रहने वाला।

भ्राजभास—दीप्तौ, धुर्वि हिंसायां द्युत दीप्तौ, ऊर्ज बलप्राणनयोः, पॄ पालन पूरणयोः जु गतौ, ष्टुञ् स्तुतौ, इन धातुओंसे क्विप् हो तस्य शीलादि अर्थका कर्ता हो। विशेषेण भ्राजते तादृशः शीलः। विभ्राट् सूर्यः विभ्राजसे क्वि पूर्णलोप, व्रश्च भ्रस्ज जको ष, जश्-ड चर्। विभ्राजो कृष्णबलो भासेते प्रकाशते तादृशः शील अर्थ क्विप् पूर्णलोप। भास सकारस्य रुवि० भाः। भासं भासौ भासः। धूर्वति हिनस्ति हिंसाकरणशीलः अभ्यस्तः अर्थ क्विप्। पूर्णलोप राल्लोपः इति वलोपे र्वोः उपधायाः दीर्घे सुलोपे। ज्वरति विद्योतते दीप्तिकरणशीलः विद्युत् क्विप् आदि। ऊर्क्-बलः प्राण शक्ति स्थापनका अभ्यासी ऊर्जो ऊर्जः, पिपर्ति पालयति पुष्णाति तादृशः स्वभावः अर्थे क्विप्, उदोष्ठ्य उत्व रपरदीर्घ पूः। सूत्रमें दृशिके अपकर्षणसे जुको दीर्घ (अत्र व्याख्यानमेव शरणं) ग्रावस्तुत् पत्थरकी स्तुतिकर्ता ग्रावशब्दका धातुके साथ समास निपातन=सूत्रमें पढ़नेकी शक्तिसे हुआ तब क्विप्। पित्से तुक्। स्वादिकार्य ग्रावस्तुत्।   क्विप्-वचि प्रच्छि

आयतस्तु कटप्रु जु श्रि इनसे क्विप् हो, परे दीर्घ भी। सम्प्रसारणका निषेध। उक्त वार्तिक उणादिका सूत्र है। तच्छील आदि अर्थमें तृन प्रत्ययसे क्विप्का बाध न हो इसलिए वार्तिक पढ़ा। क्योंकि वाऽसरूपविधिः ताच्छीलिकेषु न। वक्ति प्रवचनशीलः वाक्। वचः धातोः क्विप्, उपधायाः दीर्घे। वचिस्वपि इति सम्प्रसारणस्य अभावे कुत्वे वा प्राट्। प्रश्नकरणशीलः प्रच्छसे क्विप् छ-श=जश्ड चर्। उपधा दीर्घ। आयतस्तूः विस्तृतस्तुतिकर्ता क्विप् दीर्घ आदि। चटाई निर्माता कटप्रूः क्विप् दीर्घ। (भगवच्छरणागता) श्रिञ् सेवायां क्विप् दीर्घ। श्रीः ध्यायते=ध्यै चिन्तायां धातुसे क्विप् हो। उसके परे सम्प्रसारण भी। ध्यायति इति धीः ध्यानके अनुकूल क्रिया, कर्ता ध्यैसे क्विप् सम्प्रसारण, पूर्वरूप, 'हलः' से दीर्घ धीः पुरुषः।

दाम्नी—दाप् नी शस् यु युज् स्तु तुद् सि सिच मिह पत् दश नह इन त्रयोदश धातुओंसे करण=क्रियाके साधन अर्थमें ष्ट्रन् हो। दाप लवने दान्ति लुनन्ति कृषकाः

तु-त्र-त-थ-सि-सु सर-क-सेषु च ।७।२।६। एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण्न स्यात् । शस्त्रम् । योत्रम्, योक्त्रम् । स्तोत्रम्, तोत्रम् । सेत्रम्, सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्त्रम् । दंष्ट्रा । नद्ध्री । हलसूकरयोः पुवः ।३।२।१८३। पूङ्पूञोः करणे ष्ट्रन् स्यात्, तच्चेत्करणं हलसूकरयोरवयवः । हलस्य सूकरस्य वा पोत्रम्, मुखमित्यर्थः । अर्ति लू धू सू खन-सह-चर इत्रः ।३।२।१८४। अरित्रम् । लवित्रम्, धवित्रम् । सवित्रम्, खनित्रम् । सहित्रम्, चरित्रम् । पुवः

येन साधनेन दात्रम् हसिया खुर्पी आदि, दा धातोः लवन कर्तन साधने अर्थे ष्ट्रन् अनुबन्धलोप 'त्र' शेष दात्रं लवन साधन अर्थेन अर्थवतः प्रा० संज्ञायां । नयन्ति प्रापयन्ति चलन्ति जनाः येन साधनेन नेत्रं आंख । अंदाजसे रास्ता देखकर समझकर चलते है । नीञ् प्रापणे धातुसे प्रापण साधन अर्थे त्र गुणे स्वादिः नेत्रम् ।

त्तितु त्र त थ सि सु सर क श धातुओंसे कृत्यप्रत्यय परे इनको इट् नहो। यथा शस्त्रम् । शंसति हिनस्ति अनेन, शस् धातो हिंसासाधने अर्थे ष्ट्रन् शस्त्रं खड्गः भुसुण्डिः अर्थेन अर्थवतः शस्त्रशब्दस्य प्रा०संज्ञा स्वादिकार्ये । योत्रं-यु मिश्रणे (यु धातोः) यौति, मिश्रयति, योजयति, अनेन साधनेन योत्रं (जुवाठी) योजन साधने अर्थे त्र । युनक्ति योजयति अनेन साधनेन (बैल जोड़नेका साधन) अर्थमें युज त्र । गुण कुत्व आदि योक्त्रं, स्तौति परगुणं गायति अनेन साधनेन स्तोत्रं स्तुतिः । स्तु धातुसे भगवद् गुणगान साधन अर्थे त्र आदि । तोत्त्रं कशा चाबुक छड़ी । तुदति व्यथतिवान् दुष्टान् असावधानान् वा अनेन तोत्त्रं कोड़ा । तुद धातुसे कष्ट देनेके साधन अर्थमें त्र आदि । सेत्रं बन्धन साधनं (रस्सी) फन्दा हथकड़ी पगहा । सिञ् बन्धने, बन्धन साधन रज्जु आदि अर्थमें (सि त्र) गुण आदि । सिञ्चति जलं पादपेषु वितरति अनेन सेत्रं, सिञ्चनसाधनं, मग, पात्र आदि । मिहति सिञ्चति दुष्ट जलं पातयति अनेन मेढ्रं लिङ्गं शिश्नं वा (मिह त्र) गुण, 'होढा' त-ध-ढ ढलोप पातयति समाचारं प्रापयति अनेन पत्रं—समाचार भेजनेके साधन अर्थमें त्र, पत्रं (चिट्ठी) । दंशति मूलकादिकम् अनेन साधनेन दंशधातोः ष्ट्रन् त्र, 'व्रश्चभ्रस्जेति षत्वे दंष्ट्रा काटनेका साधन दांत है । नद्ध्री नह बन्धने नह्यते बध्यते अनया चर्मरज्जुः बन्धनसाधने अर्थे त्र 'नहो' धः तथोर्धः षित् ङीप् क्तिन् । तन्तिः धागा, सक्तः । तनिगमि हेतु प्रत्यय, हस्तः औणादिक त, कुष्ठंऔणादिक थ प्रत्यय । कुक्षिः कुष धातुसे क्सिः । इक्षः इषसे क्सः, अक्षरम् अशसे सरन्, शल्कः शलेः क. वत्सः वदेः स । वत्स इत्यस्य प्रासंज्ञा स्वादिः ।

हल—और शूकरका अवयव कोई अंग साधन हो तब पूङ् या पुञ धातुसे ष्ट्रन् हो । हल या सुकरका अंग (मुख) अर्थमें । पु धातुसे साधने त्र । इट् निषेध । गुण पोत्रं । रूढ़िबलसे मुख अर्थ । अर्ति लू धू विधूनने सून खन सह-चर सक धातुओंसे साधन अर्थे इत्र प्रत्यय । अर्ति गच्छति अनेन साधनेन अरित्रंपतवार गमनसाधनं

संज्ञायाम् ।३।२।१८५। पवित्रम् । इति पूर्वकृदन्तप्रकरणम् ।

अथ उत्तरकृदन्तप्रकरणम्

उणादयो बहुलम् ।३।३।१। एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः । केचिदविहिता अप्यूह्या । संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥

मार्ग, लुनाति अनेन लवित्रं (हंसिया) लू इत्र गुण अव आदि । धुवति अनेन धवित्रं धुननेका साधन, सुवति प्रसवं कारयति, अनेन वा सवित्रं, सू इत्र, गुण अव् आदि । सहते साहयति वा अनेन सहित्रम् कोड़ा । चरति अनेन चरित्रं मार्गः सबमें धातुसे इत्र प्रत्यय है । पुवः-संज्ञा अर्थमें पू धातुसे इत्र पूङ् पूञ् दोनोंसे करणमें-पूयते आज्यं अनेन अग्निका नाम । जिससे घी पिघले अथवा जो पूयते (अग्निभवनम्) जलादिकं अनेन पवित्रम् अनामिका कनिष्ठिकाके बगलकी अंगुलि पू, धातुसे इत्र गुण करण अर्थमें शुद्धिका साधन अग्नि पावन आदि ।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकरीटीकायां पूर्वकृदन्तम् ।

अथउत्तरकृदन्तम्—अस्मिन्प्रकरणे भावः=क्रियाप्रधानप्रत्ययकी प्रधानता है साधनभूत, क्रियार्थकप्रत्ययका विशेषमहत्व है । उणादयः—इस सूत्रमें वर्तमाने (लट्) से वर्तमान, पुवः संज्ञायांसे संज्ञा, अनुवृत्त । अतः कहा एतेः=उण लुण ड। उरन् उरच् किरच् आदि प्रत्यय वर्तमानकालमें संज्ञा अर्थमें बहुलं=शब्दसिद्धिके अनुसार हों । वे शब्द शिष्टप्रयुक्त हो । बहून् अर्थान् शब्दसिद्धिप्रकारान्लाति इति बहुलम् । इस सूत्रमें धातु प्रत्यय (कृदतिङ्) की अनुवृत्ति । पाणिनि अष्टाध्यायीसे बहिर्भूत कृ वापाजि-आदि सूत्रोंसे विधान हुए को प्रत्ययसंज्ञा, कृत्संज्ञा भी हो । उणादि प्रत्यय धातुसे हों । कर्तरि कृत्से कर्ता अर्थमें हो । कृत्तद्धितसमासाश्चसे प्रातिपदिकसंज्ञा सु आदिका होना अभीष्ट । अपूर्ण उणादिका पूरक बहुलं है । संज्ञाशब्द रूढ़ हैं । वैदिक शब्दोंका बोधक भी (निगमरूढ़िभवं हि सुसाधु) वार्तिक है । भाष्यमें वैदिकाः रूढशब्दाश्च औणादिकाः, उणादयो वा न पढ़कर बहुलं क्यों पढ़ा ? अतः केचित् कुछ प्रत्ययोंका विधान नहीं मिलता । उनके संग्रहके लिए बहुल पढ़ा ? जैसे हृषसे उलच् हृषुलः कहा गया, किन्तु शङ्कुसे उलच् हो शङ्कुला भी बने, अतः बहुल पढ़ा । अथवा फिड्ड प्रत्यय कोई सूत्र नहीं करता जो ऋ धातुसे होते हैं । ऋफिड्डमें कित्की कल्पना गुणनिषेधके लिए । ऊह्याः-इसीका विस्तृत भाव भाष्य श्लोकसे—संज्ञासु-किसी भी नाम शब्दमें अनादिसंज्ञामें धातुके स्वरूपकी कल्पना, उस धातुसे प्रत्ययकी कल्पना, कार्यात्=गुण वृद्धि होना न होना कार्यके अनुकूल अनुबन्धकी कल्पना जैसे-ऋफिड्में गुणनिषेधके लिए कित्की कल्पना । शङ्कुलामें शङ्कु प्रकृति, उलच् प्रत्ययकी कल्पना, ककार अनुबन्धकी कल्पना अनुबन्धमें अनु उपसर्गकी कल्पना तभी उपसर्गस्य दीर्घः, घञि परे अमनुष्ये अर्थे ।

दाशगोघ्नौ संप्रदाने ।३।४।७३। एतौ संप्रदाने कारके निपात्येते । दाशन्ति तस्मै दाशः । गां हन्ति तस्मै गोघ्नोऽतिथिः ।

तुमुन्-ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ।३।३।१०। क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः । मान्तत्वादव्ययत्वम् । कृष्णं द्रष्टुं याति, कृष्णं दर्शको याति । **काल-समय-वेलासु तुमुन्** ।३।३।१६७। कालः समयो वेला अनेहा वा भोक्तुम् । **भावे** ।३।३।१८। सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये

दाशः और गोघ्नः शब्द सम्प्रदान कारकमें निपातनसे सिद्ध हों। उद्देश्यः चतुर्थी-अर्थः, चतुर्थी सम्प्रदाने । दाशन्ति हिंसन्ति प्राणवियोगं कुर्वन्ति यस्मै जिस व्यक्ति वस्तु धर्मके लिए वह दाशः अतिथिः । दाश धातुसे घञ्की कल्पना उद्देश्य अर्थमें। दाशः हिंसायाः उद्देश्यः । गां हन्ति गच्छति (हन हिंसागत्योः) तस्मै जिस अतिथिके (स्वागतार्थं) दुग्ध आदिके लिए गायके पास जाते हैं। गोगमीपं गमनंका उद्देश्य अतिथि सेवा आदि अर्थमें अणकी कल्पना (गो हन अ) उपधा अकारलोप, कुत्व आदि । गोघ्नः अतिथिः ।

तुमुन और ण्वुल्प्रत्यय धातुसे हो क्रियार्थकक्रियाके उपपद रहने पर । क्रिया एव अर्थं प्रयोजनं यस्याः सा क्रियार्था। तस्यां क्रियार्थायां, क्रियाके उद्देश्यसे होनेवाली क्रियावाचक धातुके उपपद-समीपमें पद हो भविष्यकाल हो । न इत्, उ उच्चा० 'तुम्' प्रत्यय भावमें मान्त होनेसे कृन्मेजन्तः सूत्रसे अव्ययसंज्ञा । अव्ययकृतो भावे प्रमाणसे, भाव अर्थमें तुमुन्, कर्ता अर्थमें ण्वुल । कृष्णं द्रष्टुं याति । कृष्ण कर्मकं भविष्यकालिकं यद्दर्शनं तत् हेतुकं यानं । कृष्ण दर्शनके उद्देश्यसे गमन क्रिया हो रही है । याति-उपपद है, समीप पद दृश धातुसे तुमुन् (दृश तुम्) रम आगम श-ष ष्टुत्व, द्रष्टुं दर्शनके उद्देश्यसे गमन क्रिया तुमुन् प्रत्ययका अर्थ द्योत्य या वाच्य । भविष्यकाल एवं कृष्णं दर्शकः याति कृष्णं द्रक्ष्यन् तदर्थं याति, कृष्णकर्मकं भविष्यकालिकं यद्दर्शनं तत् कर्तृकं दर्शनोद्देश्यकं यानं, दृश् धातुसे दर्शनके लिये भविष्य कालिक गमन क्रिया अर्थमें ण्वुल् वु-अक । क्रियार्थक क्रिया उपपदविषये भवति ।

काल समय (वेला) शब्द या अर्थ उपपद रहते धातुसे तुमुन् हो । अक्रियार्थ उपपदे प्रवृत्यर्थं । यद्यपि कालके पर्याय कतिपय शब्द है। अनेहाके उपपद रहते भी तुमुन् हो । पर्याय अर्थका बोधक काल है । अतः कहा कालः समयो वेला अनेहा वा वक्तुं । भुजसे तुम आदि । क्रियार्थक पद पासमें न होने पर भी कालार्थक पदके योगमें तुम् हुआ। इस सूत्रमें प्रैषातिसर्गकालेषुकी अनुवृत्ति आती है । जिसके फल स्वरूपभूतानि आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी पञ्चभूतोंको कालः पचति=उपचयापचय वृद्धि ह्रास रूपं विकारं प्रापयति इति वार्ता । लोक वृत्तान्तः । तेनेह न= अनुवादेन न भवति ।

भावे—सिद्ध अवस्था-कारककी स्थिति हो धातुका अर्थ बोलना हो वाच्यसे घञ् कहे । क्रिया साध्या सिद्धा भेदसे दो होती है पचति आदिमें साध्या

धातोर्घञ्स्यात, पाकः अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ।३।३।१९। कर्तृ-भिन्ने कारके घञ्स्यात् । घञि च भावकरणयोः ।६।४।२७। रञ्जेर्नलोपः स्यात् । रागः । अनयोः किम् ? रज्यत्यस्मिन् रङ्गः । निवासचिति-शरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ।३।३।४१। एषु चिनोतेर्घञ्, आदेश्च ककारः । उपसमाधानं राशीकरणं, तच्च धात्वर्थः । निकायः । चितौ-आकायमग्निं चिन्वीत । शरीरे-चीयतेऽस्मिन्नस्थ्यादिकमिति कायः । गोमय निकायः-एरच् ३।३।५६। चयः । जयः । ऋदोरप् ।३।३।५७। ऋवर्णान्तादुवर्णान्तादप्।

क्रिया जिसमें लिङ्ग संख्या अनपेक्ष है उसीको भावो भावना क्रिया धातुत्वेन सर्वधातुवाच्या तिङ्वाच्या किन्तु उसी धातुका लिङ्ग संख्याके अन्वययोग्य क्रिया प्रत्ययसे कही जाय उसे सिद्धा कहेंगे । कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते इति भाष्यं, यथा पाकः=पच् धातुसे पाकक्रिया अर्थमें घञ् (पच् अ) उपधावृद्धि कुत्व स्वादिः पाकः तण्डुला, पाकम् द्विदलं पाका यवागू, पाकौ पाकाः लिङ्गसंख्या जुड़ गये

अकर्तरि च=कर्तासे भिन्न कारकसे घञ् हो संज्ञा अर्थमें । कारके इति प्रत्ययार्थं निर्देशक है उपपद नहीं । संज्ञासे रूढ़ि शब्द इष्ट । घञि च-भाव और करण अर्थ में घञ् प्रत्यय हुआ हो रञ्ज धातुके नका लोप हो । रञ्जनं रागः रञ्जधातोः रञ्जन अर्थे घञ् । अकर्तरि च कारके संज्ञायां सूत्रेण घञ् परे नकार लोपे, उपधावृद्धि (चजोः कु० घिण्यतो) जको ग रञ्जन क्रिया अथवा रञ्जन द्रव्यम् । अनयो किं ? भाव और करण आदि अर्थमें घञ परे नलोप क्यों? इसलिये कि अधिकरणमें घञ् हो तब नलोप न हो, रङ्गः रञ्जन आधारः अधिकरणे घञ है नलोप नहीं, हुआ ।

निवास-चिति, शरीर, उपसमाधान इनके अर्थोंमें चि धातुसे घञ् हो आदिमें क हो । इकट्ठा करना राशीकरण उपसमाधान धातुका अर्थ है । अन्य=निवास चिति शरीर प्रत्ययके अर्थ कारककी उपाधि विशेषण है । अबका बाधकर अकर्तरि च कारके और भावे की अनुवृत्ति । काशी निवास मोक्षका आधार, मोक्ष अर्जनका कारण काशी निवास, निकायः निवासः निचीयते मोक्षः अस्मिन्निकायः । निचि धातुसे मोक्षका आधार काशी आदि अर्थमें घञ्, आदिको क आदेश । वृद्धि एं आय स्वादिः निकायः अव्यवधानमें चजोः कुत्व । कर्ता चिति=आकायम् आचीयते इष्टकादयः अस्मिन् आकायम्, भट्ठामें अग्निजलने तक संग्रह । धातुसे अधिकरणे घञ् आदि, चको क वृद्धि आय । द्वितीया एकवचन अग्निम् अग्निस्थान विशेष चयनेन निष्पाद्य । शरीरमें चीयते अस्मिन् हड्डीमांसमज्जा संग्रहीत हो जिसमें कायः चि घञ् क ऐ आय स्वादि। समुदाय अर्थमें गोबरका ढेर (घूर)गोमयनिकायः उपसामाधान=राशीकरण निचीयते राशिःक्रियते अस्मिन् निकायः घञ् आदि।

एरच=इवर्णान्त धातुसे अच् हो भावमें और कर्ता भिन्न कारक अर्थमें । घञ् अपवादः । चयनं चयः चीयते असो चयः चीयते अनेन अस्मै अस्मात् अस्मिन् अर्थमें अच् । चि अ गुण अय चयः चयन क्रिया । धान्य चयन साधन उद्देश्य सीमा अधि·

करः गरः । शरः यवः । लवः स्तवः पवः । घञर्थे कविधानम् प्रस्थः, विघ्नः । ड्वितः क्त्रिः ।३।३।८८। अयं भाव एव, स्वभावात् । 'क्त्रेर्मम्नित्यम् । नित्य-ग्रहणात् क्त्रिर्मब्विषयः अत एव क्त्र्यन्तेन न विग्रहः । पाकेन निवृत्तं पक्त्रि-मम् । डुवप उप्त्रिमम । ट्वितोऽथुच् ।३।३।८६। अयमपि स्वभावाद्भाव एव।

करण । जयनं जयः जीयते असौ जयः शत्रुः जीयते अनेन जयः अस्मिन् जयस्थानं जयः।

ऋदोः-ऋकारान्त उकारान्त धातुसे अप् हो । क्रियामें तथा कर्ता भिन्न कारक अर्थमें घञ् अपवादः करणं करः । कृसे उत्पत्ति जननी क्रिया अर्थमें कृ अ, अर गुण हस्तादिकार्य क्रियते फलमुत्पाद्यते कर्मणि अप करः उत्पादनविषयः । क्रियते अनेन करः हस्तः, अस्मिन् करः उत्पादनस्थानं । गृ निगरणे गरणं निगलनं गरः लीलना क्रिया गीर्यते असौ गरः भङ्गः शर्करा अनेन (गिलास) अस्मै अस्मिन् । शरणं शरः हिंसा, शीर्यते अनेन शरः वाणः शिकार, जङ्गल अस्मिन् अर्थमें । यवनं मिश्रणं यवः मिलाना क्रिया, यूयते असौ यवः अनेन मिलानेका साधन आधार उद्देश्य अवधि सभी यवः । लवनं लवः कटिया विनिया लूयते असौ लवः गोधूमः, अनेन हंसिया कटार अस्मिन् क्षेत्र । स्तवनं स्तवः स्तुति स्तूयते असौ स्तवः विष्णुः । कर्ता भिन्न कारक अर्थमें प्रत्यय । पवनं पवः पूयते असौ अनेन स्मात् अस्मिन् पवः ।

घञर्थे-घञ् प्रत्ययके अर्थमें क प्रत्ययका विधान हो । स्था स्ना पा व्यधि, हनि युध्यवां वार्तिकका अवशेष है । प्रतिष्ठन्ते धान्यानि अस्मिन् प्रस्थः-प्रस्था धातुसे तौलकर रखने अर्थमें घञ्को बांधकर क-अ, आतो लोप आकारलोपे । प्रस्नान्ति अस्मिन् प्रस्नं कुण्ड, तालाब, बावली, प्रश्नः । प्रपिबन्ति अस्यां प्रपा पौसला जल पिलानेका स्थान । आविध्यन्ति अस्मिन् आविध्नः रणक्षेत्र । विहन्ति मनांसि अस्मिन् विघ्नः । वि हन् अप् दशायां गमहनखनघसां उपधालोपः। हो हन्तेः कु-आयुध्यन्ते जनाः अनेन । ड्वितः

डु इत् यस्य तस्मात् । डु इत् धातुसे भाव क्रिया मात्र अर्थमें क्त्रि प्रत्यय हो । क इत् 'त्रि' शेष । इस सूत्रमें भावेकी अनुवृत्ति, अ कर्तरि च कारके की नहीं, स्वभाव से । क्त्रे—क्त्रि प्रत्ययान्त धातुसे मप् नित्य हो । निवृत्ति (अक्षद्यूतादिभ्यः से अनुवृत्त) सिद्ध अर्थ । निर्पूर्वक वृत धातुका फलसिद्धिके अनुकूल क्रिया अर्थ । यहां नित्य क्यों पढ़ा ? महाविभाषा प्रथमाद्वाकी निवृत्तिके लिए । नित्यं ग्रहणसे क्त्रि प्रत्यय ही मपका विषय बने । अतएव=मप्के विना क्त्रिका प्रयोग मिलता ही नहीं । पक्त्र्या निर्वृत्तं ऐसा अस्वपद विग्रह । पक जानेसे फलसिद्ध गेहूं चावल अन्य अन्न फल आदि काटने, उपयोगके लायक हो चुके अर्थमें डु इत पच् धातुसे पककर सिद्ध, फल अर्थमें त्रि मप् चोः कु, पक्त्रिमम् पककर सिद्ध फल अन्न एवं वापेन निर्वृत्तं उप्त्रिमं बोवाई कार्यसे निर्वृत्त=निपट गया, सफल रहा । अर्थमें वप् धातुसे त्रि, मप् कित् होनेसे वचिस्वपियजादीनांसे सम्प्रसारण । ट्वितः टु इत् धातुसे स्वभावतः, भाव क्रिया अर्थमें अथुच् हो । टुवेपृ कम्पने । वेप धातु कम्पन

टुवेपृ, वेपथुः। श्वयथुः। **यज-याच-यत-विच्छ-प्रच्छ-रक्षो नङ्** ।३।३।९०। यज्ञः। याच्ञा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। रक्षणः। **स्वपो नन्** ।३।३।९१। स्वप्नः। **उपसर्गे घोः किः** ।३।३।९२। प्रधिः। अन्तर्धिः। उपधीयतेऽनेनेति उपधिः। **स्त्रियां क्तिन्** ।३।३।९४। स्त्रीलिङ्गे भावादौ क्तिन् स्यात्। घञोऽ-

---

क्रिया अर्थमें अथुच् वेपथुः अभवत् भूमौ। श्वयथुः सुजन पीलपाव गतिवृद्धि अर्थमें टु इत् श्वि धातुसे वृद्धि फूलना अर्थमें अथुच् स्वादिः।

यज याच—यत् आदि धातुसे भावमें कर्ता भिन्न कारक=कर्म करण अधिकरण आदि अर्थमें नङ् प्रत्यय हो। भावे, अकर्तरि कारके च अनुवृत्त। अतएव यज्ञेन यज्ञम जन्तदेवाः। यजनं यज्ञः तेन यज्ञेन यज धातुसे देवपूजा सङ्गतिकरण दानकी क्रिया अर्थमें नङ् (यज नको श्चु ञ यज्ञः, पूजा सेवा सत्संग दान मिलकर यज्ञ। इज्यते असौ यज्ञः सोम द्रव्य। इज्यते अनेन यज्ञः होता, यजमान आचार्य। इज्यते अस्मिन्यज्ञशाला। याचनं याच्ञा मांगना याच्यते या अनेन अस्मिन्। यती प्रयत्ने यतनं यत्नः प्रयत्न कोशिश यत्यते असौ अनेन अस्मिन्। विश्नः विच्छ धातुसे नङ् च्छ्वोः अनेन छको श, प्रच्छ ज्ञीप्सायां भाव प्रश्न क्रिया। जिज्ञासा अर्थमें नङ् प्रश्नः क्रिया छको श। पृच्छ्यते असौ प्रश्नः पूछनेका विषय। अनेन अस्मिन्। ग्रहिज्यासे सम्प्रसारण क्यों नहीं? प्रश्ने चासन्नकाले सूत्रके प्रमाणसे। सम्प्रसारण होता, प्रश्ने न कहते। यदि ऐसा नङ् में ङित् क्यों पढ़ा? समाधान-विश्नमें गुणनिषेधके लिए (विङति चसे) रक्षणः रक्षसे रक्षणक्रिया अर्थमें नङ्। रक्षणकी वस्तु साधन आधार भी रक्षणः। रक्षति प्रत्यमस्मै रक्षणः।

उपसर्ग—पूर्व रहते घुसंज्ञक धा दासे क हो, भाव कर्म करणादि अर्थमें। कित् आतोलोपार्थ। माधव भी बहुलकी कृपासे कर्तामें मानते हैं। प्रधिः प्रधानं, प्रधासे कि इ आलोप। अन्तर्धिः अन्तर्ध्यानं ध्यायते असौ अनेन अस्मिन् अन्तर्ध्यानक्रिया छिपनेकी वस्तु साधन आधार। अन्तः शब्दस्याङ्किविधि-वार्तिकसे अन्तः उपसर्ग है। धासे कि आदि उपधीयते अपना धर्म अन्यत्र आरोपित किया जाय, जिस साधनसे एतेन=उप-समीपे स्वधर्ममादधाति इत्युपधिः (कर्तामें माधवमत अनादरणीय है)

स्त्रियां—स्त्रीलिङ्गमें भाव कर्म करण अपादान अवधि आधार अर्थमें सभी धातुसे क्तिन् हो। घञ्को बाधकर। कृत्यल्युटो बहुलंसे पहले तक स्त्रियांका अधिकारः। हलश्चके घञको बाधकर स्त्रीलिङ्गसहित भावादिमें क्तिन् ही हो। घञ् प्रत्यय पुंस्त्वविशिष्ट भावादिमें। स्त्रियांके अधिकारमें वाऽसरूप विधि नहीं लगती। एरच् ऋदोरप्के अच् अप्को परत्वात् बांधता है। चयः लवःमें अच् अप् सावकाश है। कृतिः हृतिः में क्तिन् सावकाश चितिः स्तुतिः में दोनों प्राप्त, इस दशामें परत्वात् क्तिन्। करणं कृतिः उत्पत्ति क्रिया रचना, क्रियते असौ कृतिः ग्रन्थः। अस्मिन् रचनायाः आधारः। चयनं चितिः चुननेकी क्रिया चीयते असौ चितिः चयनकी वस्तु, चीयते अनेन अस्मिन् वा। स्तवनं स्तुतिः स्तूयते अनेन अस्मिन् वा।

पवादः। कृतिः। चितिः। स्तुतिः। ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः। तेन नत्वम्, कीर्णिः। गीर्णिः। लूनिः धूनिः। पूनिः। संपदादिभ्यः क्विप्। संपत्, विपत्। क्तिन्नपीष्यते। संपत्तिः, विपत्तिः। ऊति-यूति-जूति-साति-हेति-कीर्तयश्च।३।३।२७। ऊतिः। यूतिः, जूतिः, सातिः। कृञः श च।३।३।१००। कृञः क्यप्स्यात्। कृत्या। 'श च' चात् क्तिन्। क्रिया, कृतिः। इच्छा

ऋल्वा—ऋकारान्त और लू आदि धातु से परे क्तिन् को निष्ठा संज्ञाकी तरह नत्व आदि कार्य हो। जो रदाभ्यां निष्ठातः से प्रकृत है। कीर्यते विक्षीर्यन्ते अन्नादिकं अनया, कॄ विक्षेपे धातुसे विखेरनेका साधन स्त्रीलिङ्ग हो। क्तिन् ऋति धातोः ऋ इत् रपर, हलि च दीर्घ, त-न-ण कीर्णिः झिकारवाली व्याधिनि। गीर्यते अनया गीर्णि लीलनेका साधन वस्तु चौंगा। गॄ से निगलनेका साधन स्त्री अर्थमें क्तिन् इर दीर्घादिः पूर्ववत्। लूयते अनया लूनिः हसिया ति आदि। ऋल्वादिभ्यः की निष्ठा संज्ञासे नत्व। धूयते अनया धूनिः धूनियांकी स्त्री, पूयते अनयाः पूनिः कन्याः, तुलसी।

संपत्—विपत् आपत् आदि गणपठित शब्दोंसे क्विप् हो क्रियामें और कर्ता भिन्न कारक अर्थमें। सम्पद्यते जनः अनया सम्पत् धनधान्य। संपूर्वक पद धातुसे सम्पन्न क्रिया या सम्पन्नताका साधन आधार विषय वस्तु अर्थमें क्विप पूर्णलोप स्वादिकार्य, वाऽवसाने चर्त्व विपद्यते लोकः अनया विपत् दुःख ग्रह बाधा विपदसे घोर संकटकी क्रियाका विषय साधन या आधार अर्थमें क्विप् आदि। आपद्यते परिवारः अनया आपत् प्रकोप तूफान भूकम्प (वा०) क्तिन् भी होता है। वार्तिक बलसे क्विप् क्तिन्को नहीं बाधता अथवा कृत्यल्युटो बहुलं बहुलकी कृपासे सिद्ध। अस्त्रियां के निषेधसे वाऽसरूपविधि नहीं लगती, अतः सम्पद्यते अनया अस्यां सम्पत्तिः सम्पन्नता या सम्पन्न होनेका विषय अर्थ। विपत्तिः विपदसे दुःख क्रिया या कष्टका विषय आफतकः साधन या आधार अर्थमें ति।

ऊतियूति-आदि शब्द निपातन-सूत्रमें पढ़ने शक्तिसे क्तिन् अन्त माने जायं। अवनं रक्षणं ऊति=अव रक्षणे धातुसे ति। ज्वर त्वरसे वको ऊठ् आत्व दोनोंके स्थानमें ऊ ऊतिः। यह कार्य स्त्रियां क्तिन्से हो जाता ऊति क्यों पढ़ा? स्वरके लिए। स्वर क्या है। उदात्तकी अनुवृत्ति, मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा—सूत्रसे उदात्त आया। आदि उदात्त प्राप्त था। अन्तोदात्त कर दिया। यवनं मिश्रणक्रिया यूतिः, जवनं गमनं यूतिः।

कृञः—योगविभाग=सूत्र अलगावसे कृ धातुसे श हो क्यप् भी (वा) श भी हो क्तिन् भी, करण क्रियते अनया कृत्या राक्षसी कृ क्य टाप्। ह्रस्वस्य च पिति कृति तुक् योगविभागकी शक्तिसे क्तिन् कृतिः, कर्म, ग्रन्थ रचना आदि खण्ड श च क्रि अ इयङ टाप् क्रिया जब भाव कर्ममें श, तब सार्वधातुके यक् रिङशयक्से रिङ्, शित् होनेसे सार्वधातुक संज्ञा अपित्सार्वधातुक, ङितका फल गुण इयङ्। इच्छा—

।३।३।१०१। इषेर्भावे शो यगभावश्च निपात्यते। इच्छा। अ प्रत्ययात् ।३।३।१०२। प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारप्रत्ययः स्यात्। चिकीर्षा। पुत्रकाम्या। गुरोश्च हलः ।३।३।१०३। गरुमतो हलन्तात्स्त्रियामकारः स्यात्। ईहा। ऊहा। षिद्भिदादिभ्योऽङ् ।३।३।१०४। षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च स्त्रियामङ्। जॄष, 'ऋदृशोऽङि गुणः' जरा। त्रपूष्, त्रपा, भिदा।

इष धातुसे भावमें श यक् न हो निपातनसे। एषणम् इच्छा-इष धातुसे इच्छा क्रिया अर्थमें श, शित्से इषु गमियमां छ हुआ। यक निषेध निपातनसे।

अ प्रत्ययात्=सभी प्रत्ययान्त धातुसे स्त्रीत्व अर्थमें अकार हो। चिकीर्षणं चिकीर्षा, सन्प्रत्ययान्त धातुसे अ प्रत्यय टाप्। आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रकाम्या काम्यच् प्रत्ययान्तसे अ टाप्। ये दोनों सूत्र भावमें कर्तारहित कारक अर्थमें भी होंगे। विषय साधन आधार अर्थमें। अप्रत्यय गुरोश्च-गुरुसंज्ञक धातुसे और हलन्त धातुसे स्त्रीलिङ्ग बोधक अकार हो। भाव आदि अर्थमें हलन्त धातुमें गुरुमान् नहीं होते। गुरुका विषय अच् ही है। अतः गुरुमात्रमें लक्षणा। ईहनं ईहा (ईच्छा) ईह से टाप् गुरुमान धातु है। ऊहनं तर्कणं युक्तिकथनम् ऊहा–ऊह धातुसे अ टाप्। विषय साधन आधार अर्थमें भी। गुरोः क्यों पढ़ा? भक्तिः भजको गुरुसंज्ञा नहीं। अप्रत्यय न हो। हलः क्यों? नीतिः। हलन्त नहीं अप्रत्यय न हो। नयनं नीयते नीतिः।

षिदभिद–ष इत् धातु और भिद आदि धातुओंसे भाव और (कर्ता बिना) कारक अर्थमें स्त्रीलिङ्ग वाचक अङ् प्रत्यय हो। जॄष धातुका बुढ़ौतीके अनुकूल क्रिया अर्थ जीर्णं जरा वृद्धा अवस्था। जॄ से क्षीण अवस्था अर्थ अङ् ऋदृशो अङ् परे गुणः टाप्=जरा। त्रप् धातुसे भी लज्जाजनक क्रिया अर्थमें अङ् टाप् त्रपा शर्म। यदि ऐसा मुखाब्जगन्धलब्धिः और प्रेक्षोपलब्धिःमें क्तिन् सके? डुलभष षिद् है। अङ् क्यों नहीं? बाहुलकबलसे। क्तिन् भी। अनर्थकास्तु—(प्रतिवर्णमनुपलब्धेः) भाष्य प्रमाणसे जीर्यते जरा शरीर, जीर्यते अनेन जरा कालाख्या, अस्मिन् आयुः। त्रप्यते असौ त्रपा तरुणी अनेन प्रमर्दनेन अशिष्टाचरणेन अस्मिन्। लज्जाका आधार (कर्ताको छोड़कर शेष) कारक अर्थोंमें अङ् अवश्य होगा। भेदनं भिदा भेदन क्रिया भिद्यते अस्यां अनया भिदासे अङ् आ। किन्तु विदारण=ऊरुत्वं विदलन निकोलना अर्थमें ही अङ्। यदि तोड़ना काटना फाड़ना अर्थमें तब भित्ति भिद क्तिन्, न अङ्। कुड्यं भिद्यते या सा भित्तिः। एवं छेदनं द्वैधीकरणं दो टुकड़ा करने अर्थमें छिदसे अ, आ छिदा दो टुकड़ा अर्थ न हो किन्तु छेद अर्थ हो तब छिद्यते इति छित्तिः छिद्रं छेदन क्रियाका विषय साधन, आधार अर्थमें भी अङ्। भिदारणे भिद, द्वैधीकरणे छिद, ज्ञाने विद, प्रेरणे अर्थे क्षिप, सम्वरणे गुध धारणे पोषणे च धा, हिंसासेचनयोः मिथ, मथ ऋगतौ हरणे अर्थे हृ, क्षये क्षि, निवासगत्यो क्षि, प्लवनतरणयोः तॄ धारणे धृ, अक्षरविन्यासे, लिख, प्रेरणे च्युद,

विदारण एवायम् । भित्तिरन्या । छिदा, मृजा । 'कृपेः सम्प्रसारणं च' कृपा । आतश्चोपसर्गे ।३।३।१०६। अङ् स्यात् । क्तिनोऽपवादः । प्रदा । उपदा । अन्तर्धा । ण्यासश्रन्थो युच् ।३।३।१०७। अकारस्यापवादः। कारणा । हारणा । रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ।३।३।१०८। प्रच्छर्दिका । प्रवाहिका । विचर्चिका । क्वचिन्न-शिरोर्त्तिः । (धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल्वक्तव्यः) आसिका ।

अवगाहने ववीड, वीज सन्ताने वप्, कृ विक्षेपे वस निवासे, मृजू शुद्धौ कृप कृपायां, भिद दिदारण है इनसे क्रिया कर्म आदि अर्थमें अङ्, ओषधि गिरि अर्थमें । गुहा गूढ़िः धारा हारा कारा तारा धारा यहां गुह ऋ हृ कृ तृ धृ इनसे अङ् हो । अङ् परे गुण । रेखा लेखा अङ् उपधागुण रको ल । धारा प्रपात झरना मृजा शुद्धि साधन आधार मृज्यते अस्यां मृज्या अङ् टाप् कृप् धातुसे कृपा करने अर्थमें अङ सम्प्रसारण भी तब टाप् ।

आतश्च—आदन्त धातुसे उपसर्ग जुड़ने पर अङ् हो । क्रिया और अकर्तरि च कारके अर्थमें क्तिन्को बांधकर । प्रदानं प्रदीयते अनया अस्यां वा प्रदा धातुसे अङ आ आतोलोपः । एवं उपदा—उपदीयते अस्याम् उपदा साङ्गता (वा०) श्रत्—और अन्तःमें उपसर्गवत् कार्य हो अङ परे । अन्तः शब्द अङ् विधिमें उपसर्ग माना जा चुका है । श्रद्धा—श्रत्पूर्वक धा धातुसे प्रेमसे दान अर्थमें अङ्, आलोप आ श्रादि । श्रत् उपसर्ग है । एवं अन्तर्धानं अन्तः धीयते अनया अस्यां वा अन्तर्धा जब उपसर्ग घोः से कि होगा धिः । ण्यास—णि-अन्त धातु आस् और श्रन्थ धातुसे स्त्रीबोधक क्रियाकर्मादि अर्थमें युच् प्रत्यय हो । ण्यन्त उदाहरण कारणा श्रमिकः भवनं करोति विशेषज्ञः श्रमिकेन भवन कारयति अस्यां दशायां कारि धातोः (उत्पत्त्यानुकूलक्रिया-वाचकात्) भावे युचि युवोरनाकौ यु-अन (कारि अन) णिलोप विशेषज्ञेन श्रमिकेन भवनस्य कारणा निर्माण, विषय साधन, आधार सभी कारणा । एवं रावणः सीतां हरति मारीचः तं प्रेरयति । तेन मारीचः सीतां हारयति । यदा भावे कर्मणि करणे अधिकरणे च ल्युट् तदा रावणेन मारीचेन सीतायाः हारणा कर्मणि षष्ठी मारीचसे सीताकी हरणक्रिया, हारि धातुसे यु-अन टाप् णिलोप हारणा । आस्यते अस्यां इति आसना बैठा जाय जिस पर आसनी । आस अन रोगा—रोग अर्थकी प्रसिद्धि रो ऐसे शब्दसे स्त्री अर्थक भाव कर्ममें ण्वुल् बहुलसे हो । क्तिन्को बांधकर रोगका नाम हो । प्रच्छर्दिका—वमनक्रिया या रोगका नाम छरछराकर उलट पड़े प्रच्छर्दयति मुहुर्मुहुः वमति अर्थे छर्द वमने धातोः वु-अक इत्व आ । प्रवाहयति मुहुर्मुहुः प्रवर्तयति या सा प्रवाहिका संग्रहणी अतिसार रोग । प्रवह वु-अक उपधावृद्धि टाप् इत्व । चर्च अध्ययने । प्रति वि उपसर्गसे रोग अर्थ (पाम पामा विचर्चिका चेचक दाग) वु-अक टाप् इत्व । कहीं ण्वुल न हो । शिरोर्ति अर्द हिंसायांसे क्तिन दको चर्त् अर्त्तिः पीडा ण्वुल नहीं । ति तु त्र से न इट् ।

इश्तिपौ धातुनिर्देशे । पचिः पचतिः । वर्णात्कारः । निर्देशे इत्येव । अकारः । ककारः । रादिफः रेफः । 'नपुंसके भावे क्तः' । ल्युट् च ।३।३।११३। हसितम् हसनम्। 'करणाधिकरणयोश्च' ल्युट् स्यात् । इध्मप्रव्रश्चनः कुठारः। गोदोहनी । पुंसिसंज्ञायां घः ।३।३।११८। छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ।६।४। ९६। द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वः स्याद्घे परे। दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन दन्तच्छदः । आकुर्वन्त्यस्मिन् आकरः । अवस्तृ्ञोर्घञ् ।३।३।१२०। अव-

धात्वर्थ--धातुका अर्थ कहना हो। धातुसे स्वार्थ-स्त्रीलिङ्गमें ण्वुल बहुधा हो। आसनं आसिका, शयनं शायिका (वु-अक टाप्, इत्व)से धातु अर्थ मात्रकी प्रतीति। इक्—और श्तिप् प्रत्यय केवल धातु स्वरूपको उपस्थित करते हैं। केवल धातु मात्रका ज्ञान। पच्से इक् पचिः, जब श्तिप् पच् ति तब श्तिसे सार्वधातुकसंज्ञा शप् पचतिसे धातुमात्रका ज्ञान (वा०) वर्ण—अक्षर अकारादिसे उच्चारणके लिए कार प्रत्यय। जैसे अकार ककार इकार उकार। न पुनस्तरेणाचं व्यञ्जनस्य उच्चारणमपि भवति। वषट्कारः सूत्र प्रमाणसे समुदायसे भी कार, एवकार। र अक्षर कहना हो इफ हो। कार प्रत्यय भी गुण। रेफः, रकार। नपुंसक लिङ्ग हो यदि भावमें क्त हुआ हो, ल्युट् भी हो। यद्यपि निष्ठा-सूत्रके पहले पढ़ा गया है प्रसङ्गवशात् यहां भी चसे क्त नपुंसके भावेका स्मरण (हसितं) हंसना क्रिया मधुरं हसनं, क्त और ल्युट् दोनोंसे हास्यमात्र झलकता है। नपुंसक भावमें क्त ल्युट दोनों सिद्ध है। सूत्र अलगावका प्रयोजन, अगले सूत्रमें ल्युट् जाय।

करण—और अधिकरण अर्थमें अच् अप्को बांधकर ल्युट् हो। कहा गया है अजब्भ्यां स्त्रीखलनाः स्त्रिया खलनौ पूर्वविप्रतिषेधेन अच् अप्। स्त्रीधर्मक प्रत्ययसे खल अन बाधे जाते हैं। पूर्वविप्रतिषेधके बल पर। परं कार्यं का इष्टं कार्यं अर्थः। यथा—इध्मं प्रवृश्चते अनेन कुठारेण प्रव्रश्चन इध्मस्य लकड़ी काटनेका साधन आरा कुल्हाड़ी। व्रश्च धातुसे छेदनका साधन अर्थमें यु-अन आदि बढ़ी। इध्मानि प्रवृश्च्यन्ते। दुह्यते अस्यां दोहनी गवां गोदुहसे दुहनेका पात्र अर्थमें यु-अन गुण ङीप्। दुग्धपात्र दोहनी खलप्रत्ययके पहले करण अधिकरण का अधिकार सभी प्रत्यय साधन आधार अर्थमें हो। पुंसि-संज्ञामें पुलिङ्गमें करण अधिकरण अर्थमें प्रायः बहुधा छ प्रत्यय हो। छादेः-दो या अधिक उपसर्ग न हो। किन्तु एक उपसर्ग हो छादि धातुको ह्रस्व हो घ परे। जो खचि ह्रस्वः से आया। णिच्की प्रकृति छादकी उपधाको दीर्घ-जो ऊदुपधायाःसे आया। दांत ढंके जांय जिससे दन्तच्छदः ओष्ठ, छादिसे ओठका नाम संज्ञा पुलिङ्ग, साधन अर्थमें घ जिसके परे ह्रस्वः स्यादिः। प्रकर्षेण छाद्यन्ते प्रच्छदः वितान डेरा छोलदारी। अद्वि-क्यों पढ़ा? समुपच्छादः दो उपसर्ग जुड़े हैं ह्रस्व न हो। आकरः-एत्य उप हारं कर्तव्यं कुर्वन्ति, जनाः यस्मिन् आकरः उत्पत्तिस्थानम्। आङ् से कोयला आदि उत्पत्तिके आधार खान अर्थमें घ आदि।

तारः कूपादिः । अवस्तारोजवनिका । हलश्च ।३।३।१२१। हलन्ताद्घञ्स्यात्। घापवादः । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः । अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरिति अपामार्गः । ईषद्दुःसुषु-कृच्छ्राऽकृच्छ्रार्थेषु खल् ।३।३।१२६। एषु दुःख-सुखार्थेषूपपदेषु खल्स्यात् । 'तयोरेव-' इति भावे कर्मणि च । कृच्छ्रे-दुष्करः कटो भवता । अकृच्छ्रे-ईषत्करः । सुकरः । आतो युच् ।३।३।१२८। खलोऽपवादः । ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः । सुपानः । आवश्यकाऽऽधम-

---

अव पूर्वक स्तृ-तृ धातुसे घञ् हो, प्रायः=संज्ञा और पुलिङ्ग अर्थमें। अवतरन्ति जलेन तृप्ताः भवन्ति अस्मिन् **अवतारः** कूप नदी झील । अव तृसे घ अ अचोञ्णिति वृद्धि । जब आच्छादनार्थक स्तृधातुसे पर्दा अर्थमें घञ् आदि अवस्तारः।

हलश्च—हलन्त धातुसे घञ् हो । संज्ञा पुलिङ्ग अर्थमें घको बाधकर । योगी-जन रमण आनन्दानुभव करें जिस आधारमें वह **रामः**–रम धातुसे रमणाधार अर्थ में घञ् अ उपधावृद्धि । रमणाश्रय अर्थेन अर्थवान्को प्रासंज्ञा स्वादिः । व्याधि (संग्रहणी अतिसार आदि रोग) अपमृज्यते दूरीक्रियते रोगः येन साधनेन तस्य नाम **अपामार्गः** अप् आ पूर्वक मृज धातुसे रोगमार्जनका साधन अर्थे घञ् वृद्धि आदि।

ईषद्दुः, सु पूर्व रहते कृ धातुसे क्रिया या कारक अर्थमें खल् हो (करण अधिकरणका अधिकार निवृत्त) कर्तरि कृतका अधिकार खुल न जाय अतः कहा **तयोरेव**=भाव और कर्म अर्थमें ही खल् हो । योग्यता बलसे । दुःका कृच्छ्रमें अन्वय दुःखेन करणं **दुष्करः** अथवा दुष्क्रियते असौ दुष्करः कठिनः । दुष् पूर्वक कृसे कठिन क्रिया या कठिन वस्तु अर्थमें खल=अ गुण । आपसे चटाई बनाना कठिन है। अकृच्छ्र=सरल सुखद अर्थमें **ईषत्करः** थोड़ेमें ही करने लायक सुकरः सुख सरलता से करणीय । कृसे ख अ, अर सुकरः न लोकाव्यय-से षष्ठी निषेधः कर्तरि तृतीया । कठिन सरल अर्थमें खल क्यों ? ईषत्कार्यम् अल्पं कार्यं कोई सुख दुःखका अनुभव नहीं, न खल, किन्तु ण्यत् । खलका ल स्वरार्थ, खित् मुमर्थ ।

आतो—ईषद् दुर सु कृच्छ्र अकृच्छ्र अर्थक शब्द पूर्वपद हो । आदन्त धातुसे भाव क्रिया कर्म-(फलाश्रय) अर्थमें युच् हो । खल बाधकर (क्तल्युटतुमुन्खलर्थेषु वाऽसरूप विधिर्नास्ति) भवता सोमः ईषत्पानः आपसे सोम रसका थोड़ा पीना । ईषत् पूर्व है पा धातुसे कर्म-सोमरस अर्थमें यु-अन दुःखेन पीयते रसः दुष्पानः दुर पा यु अन इदुदुपधस्य षः। सुखेन पीयते आम्ररसः सुपानः सुपा-यु-अन

आवश्यक और आधमर्ण्य वाचक शब्दके पूर्व रहते किसी भी धातुसे णिनि हो। अवश्यं करोति इति अवश्यङ्कारी कृसे णिनि, कर्तरि कृत्से कर्ता अर्थमें अनुबन्धलोप इन-आर कारिन् । अव्यय अवश्यंके मको अनुस्वार परसवर्ण । शतं ददाति गृहीतम् ऋणं अर्पयति शतंदायी सौ रुपया देता है उधार लिया था । अधमर्ण ऋण लेने वाला अधर्म है । शतपूर्वक दा धातोः ददाति अर्थे इन, णिस्परे आदन्त दा से यु-य दायिन प्रथमा एकवचन । सहस्रंदायिनौ, लक्षंदायिनः ।

र्ण्ययोर्णिनिः ।३।३।१७०। अवश्यंकारी शतं दायी। कृत्याश्च ।३।३।१७१। 'आवश्यकाधमर्ण्ययोः' इत्येव। अवश्यं हरिः सेव्यः। शतं देयं? क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ।३।३।१७४। धातोः क्तिच् क्तश्च स्यादाशिषि वातिर्वायुः शिवो देयादेनं शिवदत्तः। अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ।३।४।१८। प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात्। प्राचां ग्रहणं पूजार्थम्। 'अमैवाव्ययेन' इति नियमान्नोपपदसमासः। 'दो दद्घोः' अलं दत्त्वा। 'घुमास्था-' पीत्वा खलु। 'अलखल्वोः' किम्? मा कार्षीत्। 'प्रतिषेधयोः' किम्? अलंकारः। समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ।३।४।२१। समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात्। क्त्वा तु अव्ययकृतो भावे। भुक्त्वा व्रजति।

कृत्याः—तव्य अनीयर् यत् (ऋणदाता) अर्थमें कर्मणि हों भगवान अवश्य सेव्यः सेवितुं योग्यः सेवालायक है। सिव धातुसे सेवालायक अर्थमें यत्, गुण आदि दातुं योग्यं देयम्। क्तिच्क्तौ—किसी धातुसे क्तिच् और क्त प्रत्यय हो संज्ञामें, आशीर्वाद अर्थमें। जिसका सूचक लिङ् लोट, भवतात् विग्रहमें भू से आशीर्वाद है अर्थमें ति भूतिः तुम्हारा भला हो सफल हो। इट् प्राप्त, तितुत्र से निषेध।

अलं खल्वोः·निषेध अर्थमें विद्यमान अलं, खलु शब्दके पूर्वपद रहते धातुसे क्त्वा हो भाव-क्रियामात्र अर्थमें। अव्ययकृतो भावे प्रमाणसे। सूत्रमें प्राचां शब्द सन्मानार्थ है यदि विकल्पार्थ हो अलं रुदित्वा, अलं रोदनेन दो रूप सिद्ध हो। वाऽसरूपन्याय से तव्य, स्त्रियां क्तिन्से पहले तक न्यायका अधिकार। उपपदसमासमें क्त्वाको ल्यप् न हो। अतः कहा—अमैव-अम-इस अव्ययके साथ ही उपपद समास होता है, अन्यके साथ नहीं। न समास, न ल्यप्। घुसंज्ञक दाको दद आदेश हो। अलं दत्त्वा दानेन किञ्चिदपि साध्यं नास्ति। कुपात्रोऽयं मत दो कुछ लाभ नहीं। निषेधार्थक अलंके पूर्व रहते दा धातुसे त्वा, दाको दद, दको तर् अलंदत्त्वा। पीत्वा खलु, मा पिब, पाने साध्यं नास्ति मत पिओ निरर्थक हैं। निषेधार्थक खलुके योगमें पा धातु त्वा, घुमास्थागापासे ईत्व पान मत करो। अलं खलु क्यों पढ़ा? मा कार्षीत्के योगमें माके त्वा न हो। प्रतिषेध क्यों पढ़ा? आभूषण निश्चय आदि अर्थमें क्त्वा न हो, अलङ्कारः।

समानः कर्ता ययोः क्रिययोः एककर्ता हो जिन क्रियाओंका समान कर्ता अर्थ निर्धारण सूचक षष्ठी, पूर्वकालका प्रथमकालमें वर्तमान धात्वर्थमें क्त्वा हो। अव्यय कृत भावार्थक हैं भाव भी घञादिवत् सिद्ध नहीं, किन्तु साध्यः धातुलब्ध होनेसे क्त्वा का अर्थ क्रिया। अन्य क्रियामें विशेषण है धातु सम्बन्धसे, वह सम्बन्ध समानाधिकरण पूर्वोत्तर काल रूप है। उसका तात्पर्यग्राहक क्त्वा ण्वुल् इत्यादि कर्तासे सम्बद्ध। एककर्ता अनेक क्रिया हों। पूर्वकालिक भोजन क्रियामें त्वा भुक्त्वा व्रजति खाकर जाता है। पहले खाना तब जाना, पूर्वकालिकभोजनम् उत्तरकालिकं व्रजनं

द्वित्वमतन्त्रम्, स्नात्वा भुक्त्वा पीत्वा व्रजति। न क्त्वा सेट् ।१।२।१८। सेट् क्त्वा किन्न स्यात्। शयित्वा। 'सेट्' किम्? कृत्वा। 'रलो व्युपधात्–' इति वा कित्त्वम्। द्युतित्वा-द्योतित्वा। लिखित्वा-लेखित्वा। 'रलः' किम्? सेवित्वा। 'व्युपधात्' किम्? वर्तित्वा। 'हलादेः' किम्? एषित्वा। 'सेट्' किम्? भुक्त्वा। उदितो वा ।७।२।५६। उदितः परस्य क्त्व इड् वा। शमित्वा। 'अनुनासिकस्य क्वि–' इति दीर्घः शान्त्वा। द्यूत्वा-देवित्वा। 'दधातेर्हिः' हित्वा। जहातेश्च क्त्वि ।७।४।४३। हित्वा। हाङस्तु, हात्वा। समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ।७।१।३७। अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात्। तुक्, प्रकृत्य। 'अनञ्' किम्? अकृत्वा। पर्युदासाश्रयणान्नेह-

---

पूर्वकालिक क्रिया भुजसे त्वा, कुत्व चर। तब कहा द्वित्व क्यों नहीं। समानकर्तृकयो। इति द्वित्वम् अविवक्षितं वक्ताकी इच्छा नहीं, अनेक क्रियाओंके रहते पूर्वकालिक क्त्वा पूर्व स्नाति भुङ्क्ते पिबति ततः गच्छतिमें पूर्वप्रतीति हो रही है पूर्व शब्दसे उस अर्थमें क्त्वा नहीं (उक्तार्थानामप्रयोग) पूर्व भुक्त्वा ततो व्रजति यहां कर्ताका पूर्व पर भाव है, क्रियाका नहीं। अन्य भोक्ताओंसे पहले खाया, सबसे पीछे गया। आस्यते भोक्तुं, वाऽसरूपन्यायसे। पूर्वकालिक अनेक क्रियाओंका परस्पर सम्बन्ध नहीं। गुणानाञ्च परार्थत्वात् विशेषण विशेष्यके उपकारी है। न क्त्वा इट् सहित त्वो कित् नहीं, जो असंयोगाल्लिट्से प्राप्त शयित्वा वास्ते। पूर्वकालिक अर्थमें (शी वा) इट् गुण अय कित है। कित् कैसे सेट् क्त्वाके कित् निषेधसे न गुणः। सेट क्यों कहा। कृत्वा सेट् नहीं कित् निषेध न हो, गुणनिषेधके लिए। रलन्तधातु व्युपधा–उकार या इकार उपधामें हो हलादि हो, ऐसा क्त्वा और सन् विकल्पसे कित् हो। रल् प्रत्याहार (रसे हल् तक) द्युत दीप्तौ पूर्वकालिक प्रकाश क्रिया अर्थमें द्युतित्वा जब न कित् तब गुण। लिख अक्षरविन्यासे रलन्त हलादि धातु है। पूर्वकालिक लेखन क्रिया अर्थमें त्वा कित लिखित्वा जब न कित् तब गुण। वि इ उपधामें क्यों कहा? वर्तित्वा वृतु वर्तने व्यवहारक्रिया अर्थमें त्वा इकार उकार उपधामें नहीं। कित् निषेध हुआ न क्त्वा सेट्से। रलन्त क्यों कहा? सेवित्वामें कित् न हो। हलादि क्यों? अजादि कित् न हो। सेट क्यों? अनिट्को निषेध न हो। उदितो वा इट् धातुसे परे क्त्वाको इट् हो।

शमित्वा–शमु उपशमे, शम धातुसे पूर्वकालिक शान्तिवैराग्यकी क्रिया अर्थमें त्वा वा इट् शमित्वा जब न इट् अनुनासिकस्य दीर्घ अनुस्वारपरसवर्ण। दिवु उदित् दिव त्वा, विकल्प इट् देवित्वा, न इट् च्छ्वोः शूड् वको ऊ, यण् द्यूत्वा। इट् पक्षे कित्का निषेध, उपधा गुणः। धा धातुसे त्वा (दधातेः से) धा को हि हित्वा धारण कर। जब ओहाक् त्यागेसे पूर्वकालिक त्याग अर्थमें त्वा, जहातेश्च इत्व हित्वा त्यागकर पलायते। ओहाङ्-गतौ धातुसे हात्वा बनेगा। हि आदेश नहीं जहातिके निर्देशसे, गतिवाला हा जिहाति होता है। वहां भृञामित्से इत्व।

परमकृत्वा ।वा ल्यपि ।६।४।३८। अनुदात्तोपदेशानां वनतितनोत्यादीनामनु-नासिकलोपो वा स्याल्ल्यपि। व्यवस्थितविभाषेयम् । तेन मान्तानिटां वा, नान्तानिटां वनादीनां च नित्यम्। आगत्य-आगम्य । प्रणत्य-प्रणम्य । प्रहत्य। 'अदो जग्धिः' प्रजग्ध्य, न ल्यपि ।६।४।६९। ल्यपि परे घुमास्थादेरीत्वं न।

जग्ध्वा खाकर अगमत्। भक्षणार्थक अदसे भक्षण करके अर्थ क्त्वा, अदको जग्ध आदेश तको झषःसे ध झरो झरि धलोप ।

समासे—अव्यय प्र परा आदि पूर्वमें हो। नञ् समास न हो ऐसे धातुसे परे क्त्वाको ल्यप् हो। पर्युदास=नञ् भिन्न नञ्सदृश अनञ्का अर्थ। ह्रस्वस्य पितिसे तुक् प्रकर्षेण कृत्वा प्रकृत्य। प्रकृ त्वा। कुगति प्रादयः समासे नित्यः। समासेऽ-नञ् पूर्वे सूत्रसे क्त्वाको ल्यप्-य तुक् प्रकृत्य गच्छ। उत्तम काम करके जाओ। उत्तम काम करनेकी पूर्वकालिक क्रिया। नञ् समास न हो ऐसा क्यों कहा। न कृत्वा अकृत्वा गतः, बिना काम किये चला गया, ल्यप् न हो। पर्युदास क्यों? परमकृत्वा। अव्यय पूर्वपद नहीं न ल्यप्।

(वा०) ल्यप्=अनुदात्त उपदेशमें हो वन तनोति आदि धातुके अनुनासिक म न का लोप हो विकल्पसे। यह विकल्प व्यवस्थाके अनुकूल हो विविधा अवस्था व्यवस्था सा सञ्जाता अस्य व्यवस्थितः। इसका फल मान्त गम रम यमके मका वा लोप, बिना इट् दशामें नान्त अनिट् मन-हन-वन् आदिका नित्य नलोप हो। बहुवचन? बहुत प्रयोगके विचारसे, मान्त-जैसे-गम पूर्वकालिक आगमन करके अर्थमें (आगम त्वा) ल्यपि परे अनुनासिक परे मका लोप, ह्रस्व देख तुक् आगत्य पठ। जब मलोप नहीं आगम्य, एवं प्रणत्य साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करके अर्थमें प्र-नम त्वा, समास मलोप तुक जब मलोप नहीं। प्रणम्य उपविश नान्तधातुसे नित्य नलोप। विनम्य विरत्य प्रयत्य प्रयम्य प्रहत्य प्रमत्य नाशकर, मानकर नित्य नलोप। वन तनसे भी त्वा परे नित्य नलोप प्रवत्य वितत्य फैलाकर विस्तारकर तुक् भी, प्रजग्ध्य उदाहरण मनमें रखकर कहा—अद् को जग्ध आदेश हो ल्यपि परे। आदेशमें इकार उच्चारणार्थक, प्रदाय प्रधान रूपसे देकर 'दो' को दद नहीं।

न ल्यपि—ल्यपि परे घुमास्थागा पाजहातिषाम् ईत् यतिसे ईत्व न हो। यथा प्रधाय स्तन पीकर क्रीडति। प्रधे धातुसे स्तनं पीत्वा पूर्वकालिक पान क्रिया अर्थे त्वा, आदेच उपदेशे आत्व गतिसमासे कर्तृकयोः पूर्वकाले (समासे अनञ्पूर्वे) क्त्वा स्थाने ल्य प्रधाय। घुमास्था-सूत्रेण ईत्वे प्राप्ते न ल्यपि निषेधे। एवं प्रमाय माप करके या पालन करके आस्ते। प्रमाय यदि मेङ् है आत्व। प्रमाय विशेष गमन कर, गाङ् गतौ ल्यपि परे न ईत्व, प्रपाय (पा पाने) पा रक्षणे पूर्व-कालिक पान या रक्षण क्रिया अर्थमें त्वा-ल्य ईत्व न निषेध। निपीय-शब्द पीङ् पानेसे सिद्ध। प्रहाय त्यागकर या जाकर। प्रसाय-षो अन्त कर्मणि अन्तिम क्रिया करके। प्रमाय पालनकर मेङ् पालवे वा ल्यप् मीनातिमीनोतिदीङां ल्यपि

घेट, प्रमाय। प्रधाय। प्रगाय। प्रपाय। ग्रहाय। प्रसाय। आभीक्ष्ण्ये णमुल्च।३।४।२२। पौनःपुन्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल्स्यात् क्त्वा च। नित्यवीप्सयोः।८।१।४। द्वित्वम्, आभीक्ष्ण्ये तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञककृदन्तेषु च। पचति पचति। स्मारंस्मार नमति शिवं स्मृत्वास्मृत्वा। पायंपायम्। भोजं भोजम्। श्रावं-श्रावम्। अन्यथैवं कथमित्थं सुसिद्धाऽप्रयोगश्चेत् ३।४।२७। एषु कृञो णमुल्स्यात् सिद्धोऽप्रयोगोऽस्यैवंभूतश्चेत्कृञ् व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्हं इत्यर्थः। अन्यथाकारम्। एवंकारम। कथंकारम्। इत्थंकारम् भुङ्क्ते। इत्थं भुङ्क्ते इत्यर्थः। सिद्ध-' इति किम् ? शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते। यावति

आत्व। निमाय मापकर उपदाय साङ्गता देकर।

आभीक्ष्ण्ये—पुनः पुनः क्रियाका होना हो समान कर्ता हो पूर्वकालिक क्रिया पुनः पुनः हो, यही पूर्वविषय है। उस अर्थमें णमुल (उल् इत्) अम् शेष हो क्त्वा भी, यदि वाऽसरूपविधि स्वीकार करके क्त्वा कहते तब लट् आदि भी होने लगते। नित्यवीप्सयोः द्वित्व स्मारं बार-बार स्मरण चिन्तन याद करके शिवको नमति नमस्कारकीपूर्वकालिक क्रिया स्मृ चिन्तायां ध्यान स्मरण चिन्तनका आभीक्ष्ण पुनः पुनः क्रिया है, कर्ता एक है। अतः णमुल् अनुबन्धलोप 'अम्' शेष वृद्धि स्मारं, द्वित्व बार-बार ध्यान चिन्तन करके प्रणाम। जब क्त्वा तब स्मृत्वा-स्मृत्वा नमति शिवम्। पायं-पायं क्रीडति बालः। पा पाने क्रियाके पुनः पुनः होने अर्थमें पा धातुसे पीकर रक्षाकर अर्थमें णमुल् अम्। आतो युक् य, पायं द्वित्व। भोजं भुज पालन अभ्यवहारे बार-बार पोषण भोजन करके अर्थमें 'अम्' गुण, द्वित्व भोजं भोजं वर्तते। श्रु धातु से पुनः पुनः सुनकर अर्थ अम् औ आव् श्रावं-श्रावं द्वित्व सुन-सुनकर मुमुदे।

अन्यथा—एवं कथम् इत्थं शब्द पूर्व रहते कृञ् धातुसे णमुल हो सिद्धाऽप्रयोगः प्रयोगाभावोऽपि यस्य (कृञः से सिद्ध कारं शब्दके बिना भी अर्थ खुलता हो) यदि कृञ्का प्रयोग नहीं रहेगा उसका अर्थ कैसे खुलेगा ? कथं तदर्थावगतिः अथवा अर्थ अवगत न हो। उसका (कारं) प्रयोग क्यों हो। तब लिखा कि व्यर्थ है। अयोग्य निष्फल जब अर्थ विवक्षित नहीं तब कृ का प्रयोग क्यों ? समाधान णमुलप्रत्ययके के उपयोगके लिए। यथा अन्यथा कृत्वा अन्यथाकारं व्यवहरति कृसे णमुल् अम आव् द्वि अव्ययसंज्ञा। अन्य प्रकारसे आचरण करके, यह अर्थ अन्यथा शब्दसे भी खुल रहा है कारंके बिना भी सिद्ध है। एवं कृत्वा एवंकारं भुङ्क्ते। आचमन करके कथं कृत्वा भुङ्क्ते कैसी शैलीसे खाता (इत्थंकारं भुङ्क्ते) कृसे णमुल आदि। बिना सिद्ध (कार) प्रयोगके भी वही अर्थ खुलता है। यथा इत्थं कथम् एवं भुङ्क्ते। शाब्द बोधे विशेषसत्यपि फलितार्थ कथनेन णमुलन्तस्य कारमित्यस्य निष्फलत्वमुक्त अनति प्रयोजनत्वात्। सिद्धका अप्रयोग क्यों कहा ? शिरोऽन्यथा कृत्वा शिरको घुमाकर या छिपाकर खाता है। क्त्वा ही हो णमुल न हो। कृत्वाके बिना अर्थ नहीं खुलेगा। तद्भावे=भुजक्रियागत एव प्रकारो गम्यते न तु शिरसोऽन्यथा करणं अतः प्रयोगार्हः।

विन्दजीवयोः ।३।४।३०। यावद्वेदं भुङ्क्ते । यावल्लभते तावदित्यर्थः । यावज्जीवमधीते । निमूल-समूलयोः कषः ।३।४।३४। 'कर्मणि' इत्येव। कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ।३।४।४६। यस्माण्णमुलुक्तः स एवानुप्रयोक्तव्यः। निमूलकाषं कषति समूलकाषं कषति। निमूलं समूलं कषतीत्यर्थः। शुष्क-चूर्णरूक्षेषु पिषः ।३।४।३५। एषु कर्मसु पिषेर्णमुल्। शुष्कपेषं पिनष्टि। शुष्कं पिनष्टीत्यर्थः। चूर्णपेषम्। रुक्षपेषम्। समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ।३।४।६३। 'कर्मणि' इत्येव। समूलघातं हन्ति। अकृतकारं करोति। जीवग्राहं गृह्णाति। करणे हनः ।३।४।३७। पादघातं हन्ति। पादेन हन्तीत्यर्थः। स्नेहने पिषः ।३।४।३८। स्निह्यते येन तस्मिन्करणे पिषेर्णमुल्। उदपेषं

यावति—यावत शब्द पूर्वमें हो विद और जीव धातुसे णमुल् जितनी मात्रा अर्थमें। पूर्वकाल रुक गया। अयोग्य अगम्य होनेसे। लाभार्थक धातुका सूचक नुम है। यावद्वेदं जितना पाता उतना खाता है जितनी मात्रा अर्थक यावत् विद् धातु, यावत लभते अर्थमें णमुल्। यावज्जीवं यावन्तं कालं जीवति तावन्तं कालमधीते कालयोगमें यावन्तंमें द्वितीया। यावत्पूर्वक जीव धातुसे संपूर्ण जीवन अर्थमें णमुल निमूल—नियतं स्थिरं मूलमस्य निमूलं, सह मूलेन वर्तते जड़ सहित हो। कषः कष हिंसायां पुनः उखाड़कर। निमूल समूल शब्द कर्म हो, हिंसार्थक कष्से णमुल् हो। कषादिषु यथाविधि —विधानके अनुकूल णमुल्की प्रकृतिका अनुप्रयोग कहेंगे। इस प्रसङ्गमें पूर्वकालका सम्बन्ध नहीं, अयोग्य अगम्य होनेसे। निमूलकाषं—जहां तक जड़ है पूरा उखाड़कर कषति नष्ट कर। निमूलपूर्वक कष धातुसे पूरी जड़ सहित उखाड़कर एवं समूलकाषं—मूलके साथ। कषसे णमुल् उपधावृद्धि काषं।

शुष्क–चूर्ण, रुक्ष कर्म होकर पूर्वपद हो पिष धातुसे णमुल, सूखा कूटकर पीसता है। शुष्कपेषं–पिष् धातुसे सूखा पीसना अर्थ णम्, गुण पेषं, चूर्णपेषम् पाउडरको पीसता है चूर्णं पिनष्टि, रुक्षं पिनष्टि। पिष्से णम गुण आदि। नीरसको पीसता है। समूल अकृत और जीव शब्द कर्म बनकर पूर्वमें हों क्रमसे हन् कृ ग्रह धातुसे णमुल हो गणना क्रम इष्ट है। समूलघातं जड़सहित नष्ट करता है। समूल पूर्वक हन धातुसे समूलनाश अर्थमें णम उपधावृद्धि कुत्व हनः-त घातं। अकृतकारं-अकृतं अकरणीयं, करोति कृसे णम् आवृद्धि, न करने लायक अर्थमें णम। जीवग्राहं–प्राण सहित पकड़ता है। ग्रहसे णम वृद्धि आदि जीवन्तं गृह्णाति। भावे घञ् होता तो प्राण धारणं गृह्णाति अर्थ होता। अतः जीवति विग्रह। वर्तमानकालिक प्राणसहित ग्रहण करणे—साधन अर्थ हेतु अर्थक आदि पूर्वमें हो। हनसे णमुल् कहें। पादघातं पैरसे ठुकराकर पाद हन अम वृद्धि कुत्व नको त। यद्यपि हिंसार्थानाञ्चसे सिद्ध होता करणे हनः सूत्र यथाविधि अनुप्रयोग सिद्धिके लिए और उपपदमतिङ्से नित्यसमास के लिए सूत्र पढ़ा। स्नेहने स्निह्यते चिकना गीला हो जिससे ऐसे करण= गीला होनेका साधन अर्थमें पिष् धातुसे णम् हो। उदकेन—जलसे सींचकर पीसता

पिनष्टि । उदकेन पिनष्टीत्यर्थः । हस्ते वर्तिग्रहोः ।३।४।३९। हस्तार्थे करणे । हस्तवर्तं वर्तयति । करवर्तम् । हस्तेन गुलिकां करोतीत्यर्थः । हस्तग्राहं गृह्णाति । करग्राहम् पाणिग्राहम् । स्वे पुषः ३।४।४०। करण इत्येव । 'स्वे' इत्यर्थग्रहणम् । तेन स्वरूपे पर्याये विशेषे च णमुल् । स्वपोषं पुष्णाति । धन-पोषम् । गोपोषम् । समासत्तौ ।३।४।५०। तृतीयासप्तम्योर्धातोर्णमुल् स्यात् सनिकर्षे । केशग्राहं युध्यन्ते । हस्तग्राहम् । स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः ।३।४। ६१। मुखतःकृत्य गतः-मुखतःकृत्वा मुखतःकारम् । मुखतोभूय-मुखतोभूत्वा-मुखतो भावम् । इति उत्तरकृदन्तप्रकरणम्

है उदकपूर्वक पिष धातुसे णम अम हो । पेषं (वासवाहन) सूत्रसे उदकको उद आदेश, उदपेषं पानीसे पीसने लायक बनाकर पीसता है । हस्तेमें अर्थ मान्य है हस्त अर्थमें वर्तमान शब्द करणकारक पूर्वपद हो । ण्यन्तवृतु-धातु ग्रहधातुसे णमुल् कहे । हस्तवर्तं हाथसे गुलिकां गोलाकार बनाता है । हाथसे ग्रहण करता है । हस्तग्राहं ग्राहिसे णम् णिलोप । करेण गृह्णाति करग्राहं-करपूर्वक ग्राहि धातुसे णम आदि । पाणिना गृह्णाति कर पाणि हस्त अर्थः । स्वेः—अर्थग्रहण व्याख्यानसे । स्वशब्द हो या स्वका पर्याय धन आदि शब्द हो । स्वशब्दसे विशेषवाचक (अपनी वस्तु) इनके उपपद रहे णमुल् हो । स्वपोषं स्वेन पुष्णाति । यथाविधि अनुप्रयोग । स्वपूर्वक पुष धातुसे अपनेसे पोषण अर्थमें णम् आदि । धनेन पुष्णाति धनपोषणार्थं णम् । गवा पुष्णाति—गायसे सम्पन्न किया ।

समासत्तौ—तृतीयान्त सप्तम्यन्त शब्द पूर्वमें रहते किसी भी धातुसे णमुल कहें। यदि समासत्ति सन्निकर्ष, बिना व्यवधानके संयोग अर्थ खुलता हो । सन्निकर्ष अत्यन्तसंयोगः सन्निहितः युद्ध्यन्ते केशग्रहणं भवतु न वा, अत्यन्तसमीपस्य कथने तात्पर्यं युद्धातिशयवशात् योद्धारः परस्परं व्यवधानं बिना सन्मुखं उपतिष्ठन्ते केशग्राहं एक दूसरेके अत्यन्त पासमें डटकर युद्ध करते हैं यहाँ सन्निकर्ष अर्थ खुल रहा है । केशेषु या केशैः शब्द पूर्वपद है । ग्रहसे णम अम उपधावृद्धि झोंटा पकड़ कर लड़ते हैं । हस्तेन गृहीत्वा युध्यन्ते इति हस्तग्राहं हाथ भुजा पकड़कर दाव मारते हैं । हस्तग्रह अम औबि उपधावृद्धि ।

स्वाङ्गे—तस्प्रत्ययो यस्मात् तस् प्रत्यय अन्तमें हो ऐसा अपना अङ्ग मुख आदि पूर्व रहते कृ भू धातुसे त्वा और णम हो । यथासङ्ख्यं नास्ति प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय मान्य । मुखात्कृत्वा इति मुखतःकृत्य गतः । मुखसे या मुखमें करके गया । स्वाङ्ग-मख, तस अन्त मुखतः पूर्वक कृसे त्वा ल्य प् । जब समास नहीं तब ल्यप् नही तृतीया प्रभृतीनि विकल्प समास है । णमुल आवृद्धि मुखतःकारं उपदिशति, मुखे भूत्वा इति मुखतःभूय स्फोटः तिष्ठति । तस अन्त मुखतः पूर्वक भूसे त्वा ल्य । जब णम अम औवृद्धि आव आदेश भावम् । आद्यादिभ्यः से सप्तमी अर्थमें तस प्रत्यय क्यों कहा ? मुखे तस्यति क्षीणी करोति मुखत् तस्य मुखतः धातुका अत् है । इति उत्तरकृदन्तम् ।

अथ कारकप्रकरणम्

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ।२।३।४६। नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः । मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्या-

---

विभक्त्यर्थ—प्रातिपादिकसंज्ञा के अधिकारमें सभी विभक्तियोंका कारक अर्थ और सुप्रयोग समझाने का प्रकरण। सर्वप्रथम प्रथमा (सुऔजस्) का अर्थ और उपयोग **करोति क्रियायामन्वेति, कारकं क्रियाजनकं वा।** क्रिया से आधार आधेय सम्बन्ध जोड़कर फलोत्पादक कारक है। या या क्रिया सा सा फलवती। क्रियायां फलजनकं कारकम्। क्रियाकारक का सम्बन्ध पुरुष स्त्री इव है। फलका इच्छुक सारा विश्व है ऋषिगण भी फलाशी हैं। किं फलं किं विधानं च कृतं नैव तद्व्रतं किं प्राप्यते वाञ्छितं फलम्। प्रथमा का अर्थ और वाञ्छितफल सुनिये।

क्रियान्वयी कारकों—में कर्ताकारक अर्थ का प्रकाशक **सु औ जस् इति प्रथमाका** साधक सूत्र-**प्रातिपदिकार्थश्च** लिङ्गञ्च परिमाणञ्च, **वचनञ्च**(द्वन्द्व)तानि प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि, तानि एवमात्रं, तस्मिन् **प्रातिपदिकार्थ मात्रे प्रथमा।** यहां एव शब्द अवधारण दृढ़निश्चय, मर्यादा अर्थमें ही प्रयुक्त हैं। **द्वद्वान्ते-श्रूयमाणपदं प्रत्येकं सम्बध्यते।** द्वन्द्वसमास के अन्तमें, सुना गया (मात्र) शब्द प्रत्येकके साथ जुड़ता है। जुड़नेका स्वरूप **प्रातिपदिकार्थमात्रे, लिङ्गमात्रे परिमाणमात्रे**, वचनामात्रे है। (प्रातिपदिकके अर्थमें) लिंग अर्थ में परिमाण अर्थ, वचनमात्र अर्थमें प्रथमा विभक्ति हो। **वाक्यार्थबोधे पदार्थज्ञानं कारणम्** सभी शब्दो पदोंके अर्थका ज्ञान होनेपर ही सूत्रके वाक्यार्थ का पूर्ण ज्ञान होगा। अतः कहा **नियत**-व्यापकरूपसे, शब्दके साथ उपस्थिति=ज्ञान हो जिस अर्थका वही प्रातिपदिकार्थ है पारिभाषिक है। लिंग का अलग पढ़ा जाना प्रमाण है नहीं तो पञ्च प्रातिपादकार्थ में गतार्थ ही था। उसीने कहा—नियतोपस्थिकः प्रातिपदिकार्थः है। जैसे—राम शब्दमें, **राम 'रामत्व, पुलिङ्ग-पुंस्त्व मर्यादापुरुषोत्तमत्व** अर्थका नियत (व्यापक) जहां-जहां राम शब्द है वहां-वहां ये अर्थ उपस्थित है। **यस्मिन्प्रातिपदिके उच्चारिते सति यस्यार्थस्य नियमेन** (व्यापकरूपेण) **भानं (ज्ञानम्) भवति स प्रातिपदिकार्थः।** जिस शब्दके उच्चारणसे जो अर्थ सर्वत्र व्यापकरूपसे शब्द के साथ समझमें आवे वही अर्थ प्रातिपदिकार्थः। उसी अर्थ में प्रथमा हो।

शङ्का यद्यपि जाति, व्यक्ति लिंग संख्या कारक ये पांच प्रातिपदिकके अर्थ प्रसिद्ध हैं। नियतोपस्थिकः अर्थ कैसे ? यदि नियत व्यापक उक्त अर्थ ही प्रातिपदि-

धिक्ये सङ्ख्यामात्रे च प्रथमा। प्रातिपदिकार्थमात्रे—उच्चैः। नीचैः। कृष्णः।

कार्थ है तब लिंग, वचन (संख्या) ग्रहण व्यर्थ हो जायेंगे। क्योंकि वे भी प्रातिपदिकार्थमें गतार्थ है। लिंग व्यर्थ होकर नियम घोषित करता है कि जो **अर्थ सभी देशकालमें असन्दिग्ध एकरस रहकर शब्द के साथ उपस्थित रहें वही प्रातिपदिकार्थ माने जांय**। जरा भी अन्तर हो वे न माने जांय। नियतोपस्थितिकः प्रा०। जाति व्यक्ति **अर्थ नियत**=व्यापक है लिंग आदि कहीं नियत कहीं अनियत भी हैं। वे प्रातिपादिकार्थ नहीं हो सकते। अतः सूत्रमें लिंगका पढ़ा जाना उचित हुआ। तटः **तटीतटं** में लिंग नियत व्यापक नहीं अतः **(अनियतलिङ्ग में भी प्रथमा हो)** ऐसा कहेगा कि प्रातिपदिकार्थ लिंगमात्र अधिक की उपस्थिति हो वह लिंगमात्र में प्रथमा हो। सूत्र में मात्रशब्द का प्रत्येकके साथ योगः सम्बन्ध है। **प्रातिपदिकार्थमात्रे** (जाति व्यक्ति) लिंग कारक वचन मात्र में मर्यादित अर्थ कहनेके लिए **प्रथमा हो। लिङ्गमात्रे** प्रथमा। जहांएक ही शब्दमें अनेक लिंग भी हो। वहां लिंगमात्रका आधिक्य माना जायगा। **परिमाणमात्रे** संख्यामात्र अर्थमें प्रथमा हों। प्रातिपदिकार्थ=जिस अर्थका व्यापकरूपसे ज्ञान हो उस अर्थको कहनेके लिए प्रथमा हो।

शब्द तीन प्रकारके है। १--**अलिङ्ग**, २--**नियतलिङ्ग**, ३-**अनियतलिङ्ग**। **अलिङ्ग** यथा **उच्चैः**। इस अव्ययशब्दका उच्चैः (अधिकरण ऊँचा स्थान) **नीचैः** अधोऽधिकरण (नीचा स्थान) ऊँचा नीचा स्थान अर्थबोधकप्रातिपदिकार्थलिंगरहित व्यापक अव्यय है। अतः **प्रथमा**। २--**नियतलिङ्ग**। जिस शब्दमें जाति व्यक्तिके साथ लिंगनियत (व्यापक) किसी कालमें अन्तर न पड़े वह नियतलिंग है। यथा-कृष्ण शब्दमें कृष्ण-व्यक्ति, कृष्णत्व लीलापुरुषोत्तमत्व गुण, पुलिंग (पुंस्त्व) वसुदेवके पुत्र (वासुदेव) व्यक्तिवाचक शब्दमें ये अर्थ सभी देशकालमें सर्वत्र स्थायी निश्चित हैं वहीं प्रातिपदिकार्थ प्रथमा। काला गुणवाचक कृष्णशब्द अनियतलिंग है। यथा—कृष्णः सर्पः, कृष्णा शाटी, कृष्णं वस्त्रम्। यह नियतलिंग न होनेसे प्रातिपादिकार्थ का उदाहरण नहीं होगा। वासुदेव अर्थवाला कृष्णशब्द ही उदाहरण है। **कर्षति भक्तानां मनः'** इति कृष्णः (वासुदेवः)। **श्रयति पुरुषार्थ** चतुष्टयं सम्पादयति सेवते, **पुष्यति, लोकान्** इति श्रीः। (लक्ष्मी) में नित्यस्त्रीलिंग लक्ष्मीरूप अर्थका व्यापक ज्ञान है। प्रा० कार्य प्रथमा। ज्ञायते इति (बोध) ज्ञानम्। यहाँ **क्लीबत्व** नित्यनपुंसकलिंगका ज्ञान नियत (निश्चित, व्यापक) सर्वत्र ज्ञान में उपलब्ध है। उन्हीं अर्थमें निश्चितलिंग होनेसे नियत है। अतः प्रा० मानकर प्रथमा। उच्चैः नीचैः में भी प्रथमाका व्यापक अर्थ है। अव्ययादाप्सुपः से विभक्तिलुक्। **लिङ्गमात्राद्याधिक्ये**=केवल लिंगमात्र अर्थ अधिक हो वह

श्रीः। ज्ञानम्। लिङ्गमात्रे—तटः तटी तटम्। परिमाणमात्रे—द्रोणो व्रीहिः। वचनं संख्याः एकः द्वौ बहवः॥ **सम्बोधने च ।२।३।४७।** प्रथमा। हे

अनियतलिंग है अधिकशब्द देने का तात्पर्य यह है कि जाति व्यक्ति अर्थ ज्ञात होनेपर ही लिङ्ग का ज्ञान होता है। अथवा लिङ्गमात्र अर्थ कहना ही उचित था आधिक्य क्यों? तथापि प्रातिपदिकार्थज्ञानके बिना लिङ्गका ज्ञान असम्भव हैं। इसलिए आधिक्य कहा। जहां शब्दमें एकलिङ्ग, नियत, व्यापकरूपसे उपस्थित नहीं है, किन्तु अनेक लिङ्ग हों वहा लिङ्गअर्थमें प्रथमा हो। यथा—तटः तटी, तटं यहाँ तीनों लिङ्ग होनेसे एकलिंगके निश्चित न रहनेसे प्रतिपादिकार्थे प्रथमा न हो सकी। तट तटत्व जाति व्यक्तिसे अधिक, कहीं पुंलिग कहीं स्त्रीलिंग कहीं नपुंसक। अर्थवाचक प्रथमा विभक्ति अनियत लिंगोंके प्रथमार्थ लिंगग्रहण है। परिमाणमात्रे= परिमीयते तोलनं क्रीयते येन तत् परिमाणम् (जिससे तौला-नापा जाय)। द्रोणो व्रीहिः। अष्टमुष्टिर्भवेत्कुञ्चा कुञ्चाष्टौ तुआढ़कम्। अष्टाढ़को भवेद्द्रोणः खरीद्रोणचतुष्टयम्। आठ मुट्ठीका एक कुञ्चा, आठ कुञ्चाका अढ़ैया एक द्रोण, जिसका परिमाण अर्थ है। अतः द्रोणशब्दसे परिमाण अर्थमें प्रथमा। यद्यपि द्रोणशब्दमें द्रोण द्रोणत्व पुं पुंस्त्व और परिमाण ये पाँच अर्थ नियत (व्यापक) होनेसे प्रातिपदिकार्थे प्रथमा सम्भव है। (तथापि नामार्थश्च २ नामार्थौं तयोः नामार्थयोः समान विभक्तिकयोः अभेदान्वयः) दो समानविभक्तिक प्रातिपदिकोंका अभेद सम्बन्ध है। तब द्रोण और व्रीहि दोनोंमें प्रातिपदिकार्थे प्रथमा होनेसे द्रोणसे अभिन्न व्रीहि धान्य अर्थ होगा। तब नपना, तौल और व्रीहिके बीच माप्यमापक सम्बन्ध (परिच्छेद्यपरिच्छेदक द्रोणरुपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिः द्रोणरूप नपना से नपा हुआ धान्य) यह अर्थ नहीं बनेगा। परिमाण और द्रव्य एक नहीं हो सकते। अतः भेद (माप्य-मापकभाव) सम्बन्धके लिए द्रोणशब्दमें परिमाणमात्रे प्रथमा कहे। वचनं—केवल संख्या अर्थ कहनेके लिए प्रथमा विभक्ति है। परन्तु एक+सु, द्वि+औ, बहु+जस् इत्यादि प्रकृतिमें ही एक दो अनेक संख्या अर्थ उक्त है। पुनः सु औ जस् क्यों? उक्तार्थानामप्रयोगः जो अर्थ प्रकृतिसे उक्त है वहाँ प्रथमा नहीं होगी। इसलिए 'वचन' पढ़ा। न केवलाः प्रकृतिः प्रयोक्तव्याः नापि-केवलप्रत्ययः। केवल प्रकृति या प्रत्ययका प्रयोग निषिद्ध है। अतः वचनग्रहणसे विभक्तियां स्वार्थमें या अनुवादक रूपमें होंगी। अपदं न प्रयुञ्जीत। सुबन्त के बिना पद नहीं बन सकते।

सम्बोधन अर्थमें भी प्रातिपादिकसे प्रथमा हो। सम्बोध्यते अभिमुखी क्रियते व्यक्तिविशेषो येन तत्सम्बोधनम्। अपनी तरफ (सुनने या समझनेके लिए)

राम ॥ **कर्तुरीप्सिततमं कर्म ।१।४।४९।** कर्तुः क्रिययाऽऽप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् । **कर्मणि द्वितीया ।२।३।२।** अनुक्ते । हरिं भजति । अभिहिते तु

किसीका ध्यान आकृष्ट करना । उसका वाचक हे, है, अरे, अबे, धिक् मूर्ख आदि शब्द है । जो शब्द (हे राम मां पाहि । हे शब्दसे रामको) आकृष्ट करने अर्थमें हो उसीसे प्रथमा हुई जिसका अर्थ ध्यानाकर्षण है । हे राम + स् एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः सम्बुद्धि सका लोप । **इति प्रथमा ।**

अथ **द्वितीया** (अम् औट शस्का कर्म अर्थ । क्रिया से उत्पन्न फल जिसमें हो उस अर्थ का निर्णायक सूत्र । फलाश्रयः कर्म ।

कर्तुः । आप धातुका सम्बन्ध जोड़ना अर्थ है । सन् प्रत्ययका जोड़ने की इच्छा अर्थः । क्त प्रत्ययका कर्म अर्थः । तमप् का अत्यधिक अर्थः । ईप्सितम्-कर्ता में विराजमान क्रिया से उत्पन्नफल, फल के आधार के लिए (अतिशयेन ईप्सितम् ईप्सिततमम् आप्तुम् इष्टतमं) इच्छाका विषयभूत संज्ञा हो । कर्ताकी क्रियासे उत्पन्न फलको आश्रय से जोड़नेके लिए इष्टतम बहुत अभिलषित इच्छाका उद्देश्य-विषय ऐसे कारक (क्रियान्वयी) को कर्म (फलाश्रय) संज्ञा हो । जिसका क्रिया में साक्षात या परम्परया सम्बन्ध हो उसे **कारक** कहते हैं । **क्रियाजनकं कारकम्** यथा--कर्ता कर्म करणका साक्षात् अन्वय अन्यका परम्परा से **हरिं भजति** । कर्ता नारद हैं । तद्वृत्तिः (उनमें वर्तमान) **क्रिया** भजन (प्रसन्नताके अनुकूल) क्रिया उससे उत्पन्न फल **प्रीति** (प्रसन्नता रुप) फलको आधारसे आप्तुं सम्बन्धुं (सम्बन्धित करनेके लिये) इष्टतम् अति अभीष्ट इच्छाका विषय हरि है । भजनका फल प्रसन्नताका आश्रय की इच्छाका विषय कारक इति (हरि) की कर्मसंज्ञा हुई । मेरे भजनरूप क्रियासे उत्पन्न प्रीतिरूपफलका आश्रय **हरि** है । १ **कर्मणि** अनुक्ते प्रातिपदिकका अर्थ कर्म प्रत्ययसे न कहा जाय, तब कर्मसंज्ञकसे द्वितीया हो । इससे द्वितीया **हरिं भजति** । एवं ग्रामं गच्छति कृषकः । कर्तामें विद्यमान गमन क्रिया । उसका फल संयोग (पहुचना) उसका आश्रय इच्छाका विषय ग्रामको कर्मसंज्ञा **ओदनं पचति** (चावल पकाता है) पाक क्रियाजन्यफल मुलायमपनका आश्रय ओदन तण्डुल है कर्मसंज्ञा द्वितीया । **उक्त कर्म द्वितीया** है या अनुक्तः, तन्निर्णायक-वचनबोले-**यस्मिन्नर्थे विधीयन्ते, त्वादितव्यादितद्धिताः । समासो वा भवेद्यत्र स उक्तः प्रथमा ततः ।** जिस अर्थमें तद्धित कृदन्तके प्रत्यय हों, और समास हो, वहां जो अर्थ उक्त हो, उसीमें प्रथमा हो ।

अभिहिते—प्रातिपदिकका अर्थ उक्त=प्रत्ययसे कहा गया हो । ऐसे कर्मादौ=कर्मकरण सम्प्रदान आदिसे प्रथमा हो । कर्मणि प्रत्यये च प्रथमा । यथा—लक्ष्मी

कर्मादौ प्रथमैव । हरिः सेव्यते । लक्ष्म्या सेवितो हरिः । शतेन क्रीतः शत्यः अश्वः । प्राप्तानन्दश्चैत्रः । अभिधानं च प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितसमासैः । क्वचिन्निपातेनाभिधानम् । 'क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः' ।। अकथितं च ।१।४।५१। आपादानादि-

---

हरिं सेवते इति लक्ष्म्या हरिः सेव्यते । लक्ष्मीसे हरि सेवा पा रहे हैं । सेवा अर्थमें सेव धातुका (कर्म) हरि हैं । कर्म में आत्मनेपद प्रत्यय हो । कर्मका परिचायक यक् होनेसे कर्मरूप प्रातिपादिक अर्थ (व्यापक) हो गया । जाति व्यक्ति लिङ्ग आदि अर्थ प्रकाशिका प्रथमा हुई । अनुक्ते कर्मणि द्वितीया । यदि कर्म अर्थ (प्रातिपदिकार्थ) उक्त (मुख्य) नहीं होगा, वहाँ द्वितीया होगी । कर्म अर्थ अधिक होनेसे नियत उपस्थिति नहीं । लक्ष्मी (हरिं असेविष्ट), हरिकी सेवाकी । इति लक्ष्म्या हरिः सेवितः । कर्ममें क्तप्रत्यय होने से प्रातिपदिकार्थ कर्म जागृत प्रधान हुआ, उक्ते प्रथमा हुई । कर्मादौ में आदि पदसे कर्ताकर्म करण, सम्प्रदान, अपादान आदि भी लिए जाते हैं । कर्तामें प्रातिपदिकके सभी कारक अर्थका बोधक प्रत्यय हुआ हो, तब प्रथमा हो । अन्यथा अनुक्त कर्ता होनेपर कर्तृकरणयोस्तृतीया हो । लक्ष्म्या में तृतीया हुई, अनुक्त कर्ता होने से ।

अभिधानञ्चं प्रायेण—प्रायः बहुधा, विशेष करके तिङ्कृत्तद्धितसमाससे प्रतिपदिकका अर्थ कारक (कर्ता कर्म आदि) का अभिधान प्रधानता मान्य ।

तद्धित=तस्मै—प्रातिपदिकाय प्रयोगाय वा हितः तद्धितः । तस्य उदाहरण-सूचनाय शतेन क्रीतः घटः शत्यः । सौ रुपये से खरीदा गया यन्त्र वस्त्र आदि । तेन क्रीतं सूत्रेण तृतीयान्तसमर्थशतशब्दात्कर्म अर्थे यत् । (शताच्च ठन्यतौ) यहाँ तद्धित यत्प्रत्ययसे कर्म (वस्त्र आदि) अर्थ उक्त हुए । उक्ते प्रथमा शत्यः । समाससे कर्म अर्थ उक्त=कहा गया हो, वहाँ भी प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमा । प्राप्तः आनन्दो यं=जिसको । यहाँ अन्य पदार्थ कर्म है । वह समाससे उक्त कथित है । उक्ते प्रथमा प्राप्तानन्दः चैत्रः । बहुव्रीहिसमाससे कर्म अभिहित मान्य । एवं प्राप्तमुदकं यं ग्रामं स प्राप्तोदको ग्रामः, बहुब्रीहिसमाससे ग्रामं का कर्म उक्तः । उक्ते प्रथमा ग्रामः (बाढ़ का पानी पहुँच गया जिस गाँव तक) उपहृतः पशुः यस्मै बहुब्रीहिसमाससे चतुर्थी उक्त हुई, प्रथमा । पीतम्बरं यस्य समाससे षष्ठी अर्थ उक्त । इदं परिगणनं प्रायिकमस्ति । अतिरिक्त कारणसे भी कर्मका अभिधान तस्य फलं दर्शयति । क्वचित्—यस्मिन्कस्मिन्स्थले निपातेन "अधि अपि प्रति परि" इत्यादि निपात-शब्दके योग सम्बन्धसे प्रातिपदिकके अर्थका अभिधान कथन हो, तब कर्म उक्तमान्य । यथा विषवृक्षोऽपि ।

अकथितम् अविवक्षितम् । अपादान, सम्प्रदान कर्म करण, अधिकरण-

विशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ।

दुहयाच्पचदण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथमुषाम् ।
कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥

गां दोग्धि पयः । बलिं याचते वसुधाम् । तण्डुलानोदनं पचति । गर्गान्

कारकोंका विषय होनेपर उन्हें कहनेकी इच्छा न हो, किन्तु कर्म कारक कहनेकी इच्छा हो, तब कर्मसंज्ञा, कर्मणि द्वितीया । न कहिये कि बाणः हस्तं शिरसि निदधाति बाण हाथको शिरपर धरता है । यहाँ भी शिरसि शब्दमें अधिकरण सप्तमीकी अविवक्षा करके कर्मका प्रसंग हो जाय ? तब अकथित कारकको परिगणित करके नियन्त्रित करते हैं ताकि शिरसिमें द्वितीया नहीं । दुह्याच—प्रपूरणार्थक दुह—दुहने अर्थमें । माँगने अर्थमें याच् । पाकार्थक पच्, दमनार्थक दण्ड, अवरोध अर्थमें रुध, प्रच्छ, चयनार्थक चि ब्रू बोलना । अनुशासनार्थक शास् । जय, अर्थमें जि, मन्थने मथ्, स्तेये मुष प्रापणार्थक नी, हरणे हृ । विलेखने कृष, पापणे वह, इन सोलह धातुओंका जो कर्म उससे सम्बन्धित अर्थ अपादान आदि कारककी—अविवक्षा से भी कर्मसंज्ञा हो । अन्यधातुओंके कर्मसे सम्बन्धित को कर्मसंज्ञा न हो । इस गणनामें निदधाति नहीं आता । अविवक्षा नहीं होगी, शिरसि में न कर्म । अपादान आदि कारक प्राप्त हों, वहाँ अविवक्षा हो, जैसे—दुह, दण्ड, चि, जि, मुष, इन धातुओंके कर्मसे सम्बन्धित अपादान आदि कारक प्राप्त अपादान आदिभी विवक्षासे कर्म हो जाय ।

विवक्षायां पञ्चमीविभक्ति भी होगी । रुधधातुके प्रयोगमें भी अविवक्षा विवक्षा दोनों चलती हैं । ब्रू शासु धातुके कर्मसे सम्बन्धित सम्प्रदानकी दोनों इच्छा, शेष धातुओं में केवल कर्मविवक्षा ही इष्ट है कर्म ही हो । अकथितञ्च सूत्रसे हुए कर्म गौण कर्म है । गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम् । लकारादि हों । गां दोग्धि पयः । गायसे दूध दुहता है । दोहनक्रियाका मुख्य कर्म पय (दूध) है । दोहन क्रियाकी अवधि (सीमा) आरम्भ गौसे है । गोशब्दको प्राप्त अपदाने पञ्चमी की (अविक्षा) कहने की इच्छा नहीं हुई किन्तु कर्म की विवक्षा कहने की इच्छा होने पर अकथितञ्च सूत्रेण कर्मसंज्ञा द्वितीया ग्रामं यह गौण कर्म है । मुख्यकर्म वह है जो कर्ताको इप्सितम (अतिअभीष्ट) कारक हो । पञ्चमीकी इच्छासे (गोः पयोः दोग्धि) भी होगा । बलिं याचते वसुधां (राजा बलिसे भूमि माँगते हैं) याच् धातुका मुख्य कर्म मांगनेकी वस्तु वसुधा है । देने क्रिया की अवधि (आरम्भ) बलि है । बलिमें अपादानकी अविवक्षा करके उसमें कर्मकी इच्छासे कर्मसंज्ञा द्वितीया भी । इच्छापक्ष में "बलेः" पञ्चमी भी रहेगी ।

शतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीर-निधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा। अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्तीत्यादि। (अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक

तण्डुलान् ओदनं पचति चावलसे भात पकाता है। ओदन (भात) चावलके अवयवोंका शिथिलीकरण, मुलायमपनका साधक तण्डुल है। ओदन विकृति (कार्य) तण्डुल-प्रकृति (कारण) है। तण्डुलमें करणकी अविवक्षासे-कर्मसंज्ञा। इच्छापक्षमें **तण्डुलेभ्यः** भी होगा। **गर्गान् शतं** गर्गोंसे सौ मुद्रा अपराधदण्ड लेता है। मुख्यकर्म **शतं** लेनेकी अवधि गर्गकी, अपादानकी अविवक्षासे कर्मसंज्ञा। पक्षमें **गर्गेभ्यः** भी रहेगा। **व्रजं** (व्रजमें गायको **रोकता है**) व्रजे अधिकरण की अविवक्षा होनेपर कर्मसंज्ञा (द्वितीया) **माणवकं** पन्थानं पृच्छति। बालकसे या के लिये रास्ता पूछता है। अपादान अविवक्षित है माणवकं गौणकर्म हुआ। चतुर्थीविभक्ति अविवक्षित हुई कर्मसंज्ञा। **वृक्षं**-वृक्षसे फूलोंको चुनता है। फलचयन क्रियाकी अवधि वृक्ष अविवक्षितकर्म। **माणवकं धर्मं** बालकके लिए धर्म समझाते या शासन करते हैं। जिसका उद्येश्य माणवक है। चतुर्थीकी अविवक्षा। शतं **जयति** देवदत्तसे सौ रुपया जीतता है। देवदत्त (अपदानकी अविवक्षा) में कर्म। **सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति**। अमृतके लिए दूधसमुद्रको मथता है। यहाँ क्षीरनिधि गौण-कर्म है। सुधा मुख्यकर्म। क्योंकि मथधातुका मन्थनपूर्वक मक्खन (सुधा) निकालना अर्थ है। वही मुख्य कर्म। अतएव **देवासुरैरमृतमम्बुनिधिर्ममन्थे** इति भारविः। गौणकर्म मानकर कर्ममें लकार हुआ अतएव **स्थाली पचति** अग्निः पचति। वाक्य भी होते हैं। स्थाली अग्नि भी पाकक्रिया की सिद्धिमें स्वतन्त्र स्वीकृत है। देवदत्तसे सौ रुपया चुराता है। **ग्राममजाम्**—गाँवमें बकरी ले जाता है, खींचता है, हरण करता है। ग्राममें अधिकरणकी अविवक्षा। यत्र अन्यकारकं नहि कथयितुमिष्टस्तत्र **अकथितं** चेति गौणकर्म कारक **"अर्थनिबन्धना"** परिगणित धातुओंके जो अर्थ हैं, उस अर्थके वाचक अन्य धातुके कर्मसे सम्बन्धितको भी अविवक्षित कर्म कहें। जैसे—बलिसे वसुधाकी माँगता है यहाँ भिक्षधातुके योगमें बलि गौणकर्म हुआ। माणवकके साथ धर्मका भाषण प्रवचन व्याख्यान करते हैं। ब्रूधातुके बदले भाष, वच धातुके योगमें अभिधा, माणवकं गौणकर्म हुए।

अकर्मक—धातु का अर्थ (क्रिया और फल) एक आश्रय में रहें उसे अकर्मक

इतिवाच्यम्) कुरून् स्वपिति। मासमास्ते। गोदोहमास्ते। क्रोशमास्ते।
गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ ।१।४।५२।
गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मणामकर्मकाणां चाणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात्।

शत्रूनगमयत् स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।

कहते हैं। ऐसे धातु के योगे सम्बन्धे देश मण्डल राष्ट्र काल भाव क्रिया, गन्तव्य अध्वा चालू रास्ता की कर्मसंज्ञा हो। यथा कुरून् स्वपिति। कुरु देश में सोता है। स्वपिति अकर्मकधातुः, शयनस्य आधारः कुरून् (वह ईप्सित न होने से) कर्तुः सूत्रसे कर्मसंज्ञा अप्राप्त (तथा युक्तं से भी प्राप्त नहीं) अनीप्सितमपि न, अतः वार्तिक पढ़ा। देशशब्दसे ग्राम नहीं लिया जायेगा। अतः ग्रामे स्वपिति में कर्म नहीं। अत्र प्रमाणम्—अकर्मक धातुभिर्योगे देशः कालो-वार्तिकसे अधिशेते अधितिष्ठति वैकुण्ठं में कर्म-संज्ञा होती तब अधिशीङ् सूत्र व्यर्थ होता। अतः कुरून् स्वपिति में अकर्मकधातुयोगे देशवाचिनः कुरुशब्दस्य कर्मसंज्ञा-द्वितीया। कुरुषु निद्रां करोति। जनपद अर्थमें बहुवचनान्त कुरुमें अधिकरण को बाधकर कर्मता। मासमास्ते महीनो ठहरता है महीना काल अर्थ में। कालवाचिमासशब्दकी अधिकरणसंज्ञा बाधकर वार्तिकसे कर्मसंज्ञा। भाव का उदाहरण-दोहनं दोहः दुहने की क्रिया धातु का अर्थः। गवां दोहः गो दोहः श्री नारद जी को श्राप है कि गोदोहमास्ते, काल क्रिया रुप है कालं क्रियात्मकमाहुः। आधारकी अविवक्षा तिरस्कार कर कर्मका प्रचार। चालू रास्ताका निश्चित परिमाण एककोश दो कोश है। इस अभिप्रायसे कि कोशभर पूर्ण व्यापक हो। उपवेशन क्रियाके योगमें कोशकी कर्मसंज्ञा हो। धातुके अनेकार्थक होनेसे भी सिद्ध। यदि स्वप् आदि धातुका शयन आदिमें वृत्ति है व्याप्तिपर्यन्त नहीं, तब कुरुषु स्वपिति, मासे आस्ते अधिकरण रह सकता है। अतः समांसमां विजायते के स्थानमें समायां समायां विजायते भी कहा। अतः कलिंगेषु अवात्सीः, नहिं कलिंगान् जगाम। उक्तं च-कालभावाध्वदेशानां अन्तर्भूतक्रियान्तरैः। सर्वैरकमकैर्योगे कर्मत्वमुपजायते। काल क्रिया रास्ता कर्मत्वं कर्मसंज्ञाके पात्र होते है यदि अन्तर्भूतक्रियावाची अकर्मकधातुका सम्बन्ध हो।

(५४०) गतिश्च-बुद्धिश्च प्रत्यवसानञ्च गमन ज्ञान बोध भक्षण। गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि अर्थाः येषां धातुनां, गमन ज्ञान भोजन अर्थ हो जिन धातुओंका और शब्दः कर्मकारकं येषां धातूनां शब्दः कारक हो जिस धातुमें अविद्यमानं कर्म येषान्ते अकर्मकाः (-कर्म अलग न हो जिन धातुओंके) कर्मशब्दकारक अर्थमें हैं, क्रिया अर्थमें नहीं। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाश्च शब्दकर्माणश्च अकर्मकाश्च धातवः तेषां द्वन्द्वः। गत्याद्यर्थानां=गमन-ज्ञान-भक्षण अर्थवाले शब्दकर्मकाणां=शब्द हो कर्म

आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद्विधिम् ।
आसयत् सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः ॥

जिनका और अकर्मक धातुओंके भी अणौ अण्यन्तावस्थायां=णिच् प्रत्यय न हुआ
हो, अर्थात् नौगणिका कर्ता (भवति जुहोति अत्ति दीव्यति तुदति सुनोति क्रीणाति
जैसी क्रिया के कर्ता) का कोई प्रेरक न हो उस अवस्था (शुद्ध धातुवाच्या क्रिया)
का कर्ता, स णौ=वह कर्ता ण्यन्तावस्थायां प्रेरणा अर्थके णिचप्रत्यय रहे, अर्थात्
वही क्रिया ण्यन्त हो जाने पर, वह कर्ता कर्म हो जाय । एक एकका क्रमशः उदा-
हरण—शत्रून्स्वर्गम् अगमयत्'' यह गति गमन अर्थका उदाहरण—देवासुरसंग्रामे
मृताः शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन् (युद्ध में मारे गये शत्रु दिव्यलोक को गये) हरिः
तान् प्रैरिरत् भगवान उनको भेजे । मारकर प्रेरणा किए कि तुमलोग स्वर्ग जाओ ।
अगच्छन्निति शुद्धः धातुः । अण्यन्तावस्थायाः क्रिया तस्याः कर्ता शत्रवः । यदा-
गमधातोः प्रेरणाअर्थे णिच् शस्त्रघातेन स्वर्गमगमयत् हरिः तदा शत्रवः इत्यत्र
गतिबुद्धित्यादिसूत्रेण कर्मसंज्ञा शत्रून् इति । स हरिः भगवान् मम गतिः मोक्षस्य
उपायः । जो शत्रु गमनक्रियाके प्रति कर्ता हैं, वही ण्यन्त होनेपर कर्म हुए । प्रेरकः
शस्त्रघातयिता हरिः कर्ता, शत्रवः कर्म, हननक्रिया का फलाश्रय स्वर्ग, हरि प्रयोजक
(प्रेरक) कर्ता भेजनेवाले । शत्रु प्रयोज्य प्रेर्य कर्ता, भेजा जानेवाला ।

अत्र शङ्का—गमनक्रियां प्रति कर्ता शत्रुः । स्वर्गः ईप्सितः । प्रेरक हरिका इप्सिततम
शत्रुओंका स्वर्ग जाना है । कर्तुरीप्सितं सूत्रेण कर्मसंज्ञा सिद्धा, गतिबुद्धि॰ इति
सूत्रं व्यर्थं सन्नियमाय भवतु । णिजर्थे प्रेर्यः कर्ता यदि कर्मसंज्ञकः स्यात्तर्हि गत्याद्य-
र्थादीनामेव=गमन ज्ञान भक्षण-शब्दकर्मक-अकर्मक धातुओंसे ही कर्म हो, अन्यसे न
हो । तेन पाचयति देवदत्तेन । देवदत्तः पचति, मैत्रः तं प्रेरयति पाचयति देवदत्तेन अत्र
कर्मता न । यहाँ प्रेर्य कर्ताको कर्मसंज्ञा नहीं हुई, किन्तु कर्तरि तृतीया देवदत्तेन ।
भर्तृहरि ने भी कहा है गुणक्रियायां स्वातन्त्र्यात् प्रेषणे कर्मतां गतः । नियमात्कर्म-
संज्ञायाः स्वधर्मेणाभिधीयते । नवगणीक्रियाका स्वतन्त्र कर्ता प्रेरणार्थ में णिचि होने
पर कर्म हो गया । नियमात्=गतिबुद्धि सूत्रके नियमसे कर्मसंज्ञा होगी । नियमके
बाहर कर्मसंज्ञा नहीं होगी । किन्तु स्वधर्मेण=स्वं कर्ता, तस्य धर्मः तृतीया । कर्तामें
कर्तृकरणयोस्तृतीया होगी । वाक्यस्फोटार्थः स्वर्गधर्मकशत्रुगमनः तदनुकूलः हरिनिष्ठो
व्यापारः स हरिः मम मोक्षोपायः । बुद्धि ज्ञानार्थकधातुका उदाहरण-हरिः वेदार्थं
स्वान्अवेदयत् । स्वे स्वकीयाः आत्मीयाः अपने लोग वेदार्थमविदुः वेदके अर्थका ज्ञान
किए (अवेत् अवित्ताम् अविदुः) शुद्ध धातु विदका कर्ता स्वे=वहप्रेरणाक्रियाका
कर्म बना, उसकी बुद्धि—इत्यादि सूत्रसे कर्मसंज्ञा । वेदार्थज्ञानकर्मकं स्वनिष्ठं यद्वेदनं

(**नीवह्योर्न**) नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन। (**नियन्तृकर्तृकस्य**

यन्निष्ठोव्यापार: स मे हरि: गति: मोक्षोपाय: । ब्रह्मा के मानसपुत्र: सनकादिगण भगवानके आत्मीय है । वेदका अर्थ जाननेके लिए हरि प्रेरणा किए कि, वे वेदार्थ जानें । प्रयोजककर्ता हरि:, प्रयोज्य कर्म स्वान् आत्मीय । मूलधातुका कर्ता प्रेरणा अर्थमें कर्म हो जाता है । कर्ममें द्वितीया । प्रत्यवसानं भक्षणं का उदाहरण-देवा: अमृतम् आश्नन्, देवता अमृतको पी गये, गलविलाध: संयोग किये । मूल धातुका अर्थ पान, उनका कर्ता देवा: । देवताओंको अमृतपीनेके लिए हरिकी प्रेरणा अर्थमें णिच् । प्रेरको हरि: देवान् अमृतम् आशयत् । देवताओंको अमृत पिलाया । मूलधातो: कर्ता देवा: ण्यन्तदशायां गतिबुद्धि-कर्मसंज्ञा, अमृतकर्मकं देवनिष्ठं यत् अशनं भोजनं पानं तत्प्रेरक: हरिनिष्ठो व्यापार: वाक्यस्फोटार्थ: । शब्दकर्मका उदाहरण—वेदार्थ: वेदशब्दरूप: शब्दानां समुदाय: । अध्ययनक्रियाया: कर्म शब्दरूपो वेद: । विधि: ब्रह्मा वेदम् अध्यैत, ब्रह्माने शब्दरूपवेदका अध्ययन किया । भगवान् ब्रह्मा को प्रेरित किये थे । हरि: तं प्रैरिरत् इति अध्यापयत्, भगवान्ने ब्रह्मा को वेद पढ़ाया । मूल-धातु: अधि–इ तस्य कर्ता विधि: ब्रह्मा । मूलधातुकी क्रिया जब प्रेरणा अर्थमें बदल गयी, तब प्रयोज्य कर्ता विधिकी गतिबुद्धि-इतिसूत्रेण कर्मसंज्ञा, दो कर्म । वेदकर्मकं विधिनिष्ठं यत् अध्ययनं तस्य प्रेरक: हरि: मे गति:, मोक्षोपाय: । अकर्मकधातुका उदाहरण- **पृथ्वी सलिले आसीत्** पृथ्वी जलमें थी । आसु उपवेशने । अकर्मकधातुका कर्ता पृथ्वी, उसको भगवान ने जल पर ठहराया । प्रयोज्य प्रेरणाके योग्य कर्ता पृथ्वी को गतिबुद्धि-सूत्रसे कर्मसंज्ञा । वह हरि मेरे लिए गति है ।

वा० **उक्त नियमसूत्रका निषेध वार्तिक-नी और वह** धातु के अण्यन्तका कर्ता, ण्यन्त दशामें कर्म न हो, णीञ् प्रापणे, दोनोंका प्रापण पहुँचाना अर्थ:, तथापि गति अर्थभी प्रापणमें समाया है । यथा भृत्य: (नौकर) भारं नयति ले जाता है, वहति ढोता है । तं परिचारकं कश्चन प्रेरयति 'त्वं नय, तुम ले जाओ, प्रयोज्य अण्यन्तावस्था (नवगणी) का कर्ता भृत्य: को गतिबुद्धिसूत्रेण कर्मसंज्ञा प्राप्ता, वार्तिकेन तस्य निषेधे । वार्तिकका भी निषेध वार्तिक **नियन्त्रिकर्तृ०** नियन्ता पशुप्रेरक: सारथि: दण्ड: कशा । प्रयोज्यकर्ताको प्राप्त कर्मसंज्ञाका नीवह्योर्न वार्तिक से निषेध किया गया, उस निषेधका भी यदि नियन्त्रक वह धातुका हो, तब उसके कर्ताको अनिषेध: = नी वह धातुके प्रयोज्य कर्ताको कर्मका निषेध नहीं होता । नियन्ता प्राजिता यन्ता, सूत: क्षन्ता च सारथि: इत्यमर: । वहन्ति बली-वर्दा:,, यवान् । वाहयति बलीवर्दान् देवदत्त: । बलवान् बैल जो ढोते हैं, देवदत्त

वहेरनिषेधः)। वाहयति रथं वाहान्सूतः। (आदिखाद्योर्न) आदयति खादयति वा अन्नं बटुना ॥ (भक्षेरहिंसार्थस्य न)। भक्षयत्यन्नं बटुना। अहिंसार्थस्य किम्? भक्ष्यति वलीवर्दान् सस्यम् ॥ । (जल्पतिप्रभृतीनामुप-

---

बुलाता है। इस प्रमाणसे पशुप्रेरक अर्थ ही इष्टः। वहन्तीति वाहाः अश्वाः, तान् सुतः प्रेरयति। यहाँ सूतके द्वारा घोड़ों का नियन्त्रण इष्ट है, अतः प्रयोज्यकर्तुः= प्रेरितकर्ता को कर्मसंज्ञाके निषेध का निषेध किया अर्थात् कर्मसंज्ञा अभवत् वाहान् इति।

(वा०) आदिखद्योर्न, अद भक्षणे, खाद् भक्षणे, खाने अर्थमें प्रेरितकर्ताको ण्यन्तदशामें कर्मसंज्ञा न हो। वटुः अन्नमत्ति खादति वा। विद्यार्थी अन्न खाता है पिता तं प्रेरयति (तुम खाओ) पिता वटुको खिलाता है भक्षण कराता है। अण्यन्त दशाका प्रेरितकर्ता वटुको ण्यन्तदशामें भक्षणार्थक मानकर भक्षण अर्थे गतिबुद्धि-सूत्रेण कर्मसंज्ञा प्राप्ता वार्तिकेन निषिध्यते। अनुक्ते तृतीया वटुना (वा०) भक्षधातु अहिंसा = किसीकी आत्माको कष्ट न हो, तब प्रेरकसे प्रेरितकर्ताको (ण्यन्तदशामें) कर्मसंज्ञा न हो। यद्यपि भक्षधातुः चुरादिः स्वार्थे णिच् प्रेरणा-अर्थो नहि, कथं कर्मसंज्ञानिषेधः। निषेधप्रमाणेन गतिबुद्धि सूत्रे हेतुमति च यथा विवक्षितः, तथापि भक्षधातु अण्यन्त का कर्ता प्रेरणादशामें कर्मसंज्ञक न हो। णिच् बटु-अन्नं भक्षयति स्वार्थे णिच्, खादति-बेटा अन्नखाता है, पुरोहितः तं प्रेरयति, प्रेरणार्थे णिच्। अन्न खाना हिंसा नहीं, किसीकी आत्माको कष्ट न होने से। प्रेरित-कर्ता बटुको प्राप्त कर्मसंज्ञा का निषेधः। तथा तृतीया वटुना। उक्त वार्तिके अहिंसा अर्थस्य ग्रहणं किमर्थं? यतोहि यत्र हिंसा भवेत् कस्यचित् आत्मनः दुःखं स्यात्कष्टं भवेत् तत्र अण्यन्तस्य कर्ता ण्यन्तदशायां कर्म कर्म न भवेत्, एतदर्थं अहिंसार्थस्य ग्रहणम्। बलवान बैल सस्यं=हरी भरी खड़ी खेती खाता है। ऐसी खेतीमें प्राण जीव होने उनका भक्षण–हिंसा ही है। अथवा खेतवालेको कष्ट होना हिंसा है, सांड़के सस्य हरी हरी खेती खाने से। वलीवर्दाः भक्षयन्ति कश्चन दुष्टः तान् प्रेरयति। दुष्ट खड़ी खेती खानेके लिए बदलेकी भावनासे बैलोंको प्रेरित करता है। प्रेरक दुष्टसे प्रेरित वलीवर्दको कर्मसंज्ञा। अहिंसा न कहते यहाँ भी निषेध होता।

(वा०) जल्प-भाष आदि धातुओंके अणौ यः कर्ता प्रेरितः स णौ कर्म स्यात्। पुत्रः धर्मं जल्पति भाषते। बालक धर्मके विषयमें बोलता भाषण करता है। देवदत्त तं प्रेरयति, त्वं धर्मस्य उपदेशं कुरु, भाषणं कुरु। अण्यन्तकर्ता की प्रेरितदशायां यदा णिच् तदा पुत्रम्, अत्र कर्मसंज्ञा। कोई परिगणन कहते हैं। जप जल्प व्यक्तायां वाचि। पुत्रो धर्मं भाषते तं भाषयति देवदत्तः। (वा०) दृशिर प्रेक्षणे सूक्ष्म

संख्यानम्)। जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः। (दृशेश्च)। दर्शयति हरिं भक्तान्॥ (शब्दायतेर्न)। शब्दाययति देवदत्तेन॥ **हृक्रोरन्यतर स्याम्** ।१।४।५३। हृक्रोरणौ यः कर्ता स णौ वा कर्म संज्ञः स्यात्। हारयति 'कारयति' वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्। (अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्)। अभिवा-

---

निरीक्षणे समालोचना अर्थे च दृशधातोः अणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात्। यथा भक्तः हरिं पश्यति। भक्त भगवान को देखता है। गुरुः प्रेरकः तान् दर्शनार्थं प्रेरयति। यूयं दर्शनं कुरुथः, अत्रः प्रेरितः कर्ता भक्तः इति, प्रेरणादशायां 'दृशेश्च' सूत्रेण कर्मसंज्ञा। गुरु भक्तोंको भगवानका दर्शन कराते हैं।

शब्दं करोति शब्दाययति शब्दवैरकलहा०, इति क्यङ् दीर्घ। शब्दाय इत्यस्य सनाद्यन्तधातुसंज्ञा शब्दायते देवदत्तः, कोलाहल करता है।

हा च क्रा च हृक्रौ। हृञ् हरणे, कृञ् करणे धातुः। अणौ यः कर्ता-अण्यन्तावस्था नवगणी—विना णिच् दशाका कर्ता, प्रेरित होने पर प्रेरणादशामें णिच् हो तब विकल्प से कर्मसंज्ञा। यथा भृत्यः कटं हरति करोति वा। परिचारक चटाई को ले जाता या बनाता है, स्वामी तं-प्रेरयति त्वं कटं हर कुरु वा। प्रेरणार्थे णिच् हारयति चटाईको मँगवाता है या बनवाता है। प्रयोज्य कर्ता भृत्य इत्यस्य कर्मसंज्ञा, पक्षे तृतीया भृत्येन। हरण और क्रिया गतिबुद्धि सूत्रमें नहीं जाती। अप्राप्तविभाषा। अन्य अर्थमें प्राप्तविभाषा। अभ्यवहारयति सैन्धवान् सैन्धवैर्वा। विकारयति सैन्धवान् सैन्धवैर्वा। अभ्यवहरति भक्षण अर्थमें विकारयति, अकर्मक मानकर प्राप्त विभाषा (वा०) अभिपूर्वक वद धातु और दृश धातु ण्यन्त हों, आत्मनेपद हो, तब अणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात्। अणिका कर्ता णिजन्त होने पर कर्म होता है। विकल्प से। वद संदेशे, वचने च। समाचार सुनाना वदका अर्थः (अभि उपसर्गसे अर्थ बढ़गया) अभिवदति नमस्करोति देवं भक्तः। श्रद्धालु देवताको सिर झुकाते कि मैं अल्पगुणवान् हूं, आप प्रशस्त गुणवान है ऐसी क्रिया नमस्कारार्थः। गुरुः भक्तं प्रेरयति गुरुः अभिवादयते। क्रियाफलं कर्तृगामी। णिचश्च आत्मनेपद। भक्तको विकल्पसे कर्म। पक्षे तृतीया-भक्तेन। अप्राप्तविभाषा। भक्तः शिवं पश्यति पुजारी प्रेरयति, त्वं शिवदर्शनं कुरु, अणिच दशायाः कर्ता भक्तः, अभिवादिदृशोः वार्तिकेन तं कर्मसंज्ञा, पक्षे तृतीया। भक्त दर्शन करते हैं (गुरु दर्शन कराते हैं) दृशेश्च कर्मसंज्ञा नित्यप्राप्ता विकल्पः।

शीङ्स्वप्ने स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्ती, आसु उपवेशने, किन्तु अधिपूर्वाः शीङ् स्था आस विग्रहसे शाकपार्थिवादीनाञ्च उत्तरपद पूर्वाका लोप। अधिपूर्वमें हो येषां—शीङ् स्था आस धातुके आधारको कर्मसंज्ञा हो। अधिकरणसंज्ञा बाधकर।

दयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा। **अधिशीङ्स्थासां कर्म ।१।४।४६।** अधि-पूर्वाणामेषामाधारः कर्म स्यात्। अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः। **अभिनिविशश्च ।१।४।४७।** अभिनीत्येतत्संघातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्म स्यात्। अभिनिविशते सन्मार्गं। क्वचिन्न-पापेऽभिनिवेशः॥ **उपान्वध्याङ्वसः ।१।४।४८।** उपादिपूर्वस्य वसतेराधारः कर्म स्यात्। उपवसति, अनुवसति, अधिवसति,

---

अधिशेते अधिकारपूर्वक शयनक्रिया। अधितिष्ठति वैकुण्ठमें अधिकारपूर्वक रहते हैं। सोते हैं बैठते हैं। अध्यास्ते वैकुण्ठं हरिः। अधिशब्द आधारका प्रकाशक है अर्थात् वैकुण्ठे शेते तिष्ठति आस्ते वा। वैकुण्ठमें सोते हैं ठहरते हैं बैठते हैं वैकुण्ठ इति उक्त क्रियाया आधारः अधिकरणसंज्ञा प्राप्ता, तां बाधित्वा अधिशीङ्स्थानां-सूत्रेण आधारस्य वैकुण्ठस्य कर्मसंज्ञा, कर्मणि द्वितीया।

अभि निपूर्वक विश प्रवेशने धातुके आधारको कर्मसंज्ञा हो, अधिकरणको बाँधकर। पूर्वसूत्रसे आधार और कर्मकी अनुवृत्ति। 'अभिनि' इस समुदाय सहित विशधातुका ग्रहण, अभिनिविशते सन्मार्गम्। उत्तमपथपर अप्रतिहतगतिसे प्रवेश करता है या सन्मार्गपर चलनेके लिए आग्रह करना। प्रवृत्ति प्रवेशका आधार सन्मार्ग, तत्र अधिकरणसंज्ञां बाधित्वा अभिनिविश्च सूत्रेण कर्मसंज्ञा। **सन्मार्गमिति।** **सङ्घात**—समुदायके ग्रहणका फलं, जहाँ अभि न हो, वहाँ कर्म न हो। यथा-निविशते यदिशूकखिखापदे। अत्र कर्म न भवति। नन्वेवम् अभिनिपूर्वक विशधातोः आधारस्य कर्मस्वीकारे, पापे अभिनिवेशः पापमें प्रवृत्ति आग्रह अप्रतिहतगति है उसका आधार पापको कर्मसंज्ञा, द्वितीया होगी तन्न, परिक्रयणे सम्प्रदानमिति, एकं सूत्रमस्ति तस्मात् इह=अस्मिन्स्थले अन्यतरस्यां (पक्षपातिः कल्पो विकल्पः) इत्यस्य अनुवृत्ति कृत्वा, व्यवस्थानुसारिणी विभाषास्वीकारात् क्वचित् यस्मिन्कस्मिन्स्थले कर्मसंज्ञा न भवति। अनेन कारणेन पापे इत्यत्र कर्मसंज्ञा सन्मार्गमित्यत्र कदाचित् विकल्पशङ्का नोदेति, अतो व्यवस्थितविभाषा कथिता। विविधा अवस्था व्यवस्था सा सजाता अस्येति व्यवस्थितः। क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिद्प्रवृत्तिः, क्वचिद्-विभषा इति तात्पर्यम्। अन्यतरस्यां की अनुवृत्ति क्रमशः न आकर, मण्डूक प्लुत्या मेढक की तरह उछल-उछलकर आयेगा। इस प्रकारके आगमनमें प्रमाण-एषु अर्थेषु अभिनिविष्टानां समर्थ सूत्रका भाष्य प्रयोग है। जैसे—ऐषु में सप्तमी तैसे पापे में भी, विकल्पकी कृपासे।

उप (समीप) अनु (पश्चात्) अधि) में आङ ये उपादि हैं इनके पूर्व रहते वस निवासे धातुके आधारको कर्मसंज्ञा हो, सप्तमीको बाधकर। (अदादिका शप् लुक् 'वस आच्छादने' नहीं लिया जायगा) क्योंकि वृत्ति में वसतेः पढ़नेसे भ्वादिका

आवसति वा वैकुण्ठं हरिः। (अभुक्त्यर्थस्य न)। वने उपवसति।

उभसर्वतसोः कार्या, धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीया-ऽऽम्रेडितान्तेषु, ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥

उभयत कृष्णं गोपाः। सर्वतः कृष्णम्। धिक्कृष्णाभक्तम्। उपर्युपरि लोकं हरिः

शप् वाला 'वस् निवासे' मान्य है। ये उपसर्ग आधार अर्थको प्रकाशमें लाते हैं। उपवसति पासके आधारमें रहता है। अनुवसति वैकुण्ठ बननेके बाद निवास। अधिवसति आसक्तिपूर्णवैकुण्ठमें व्याप्त निवास। वैकुण्ठ इत्यत्र अधिकरणसंज्ञा सप्तमी प्राप्ता तां बाधित्वा उपान्वध्याङ्-वसधातोः आधारस्य कर्मसंज्ञा, द्वितीया च। अभुक्त्यर्थस्य = भुक्तिः भोगसामग्री रूप अर्थ साधन न हो, तब भोजननिवृत्ति-वाचकके आधारको कर्मसंज्ञा न हो। यथा वने उपवसति वनमें निवास करता है भोग सामग्री सुख आनन्द का साधन न होनेसे उस निवासके आधार वनशब्दको प्राप्त कर्मसंज्ञाका निषेध। अतो अधिकरणे सप्तमी। इतिद्वितीयाकारकविभक्तिः।

अथ उपपदविभक्तिरारभ्यते। पदं = पदस्य योग्यं मूलं कारणं प्रातिपदिकं ज्ञात्वा पदसम्बन्धे उत्पन्ना विभक्तिः उपपदविभक्ति का केवल सम्बन्ध अर्थः। उभसर्वतसोः = उभशब्द, सर्वशब्द से तस् हुआ हो, उसके प्रयोगमें उस तस् प्रत्ययान्त से प्रभावित शब्द से द्वितीया विभक्ति हो। तस्प्रत्ययान्त उभयतः सर्वतः। उभशब्दसे अयच् करके, धिक् शब्द के प्रयोगमे धिक्कार अर्थ से प्रभावित शब्द से सम्बन्ध में द्वितीया हो। प्रकृतिवत् अनुकरणं सुपो लुक्। उपर्यादिषु = उपरि अधि अधः सामीप्ये-समीप अर्थ बोलें, त्रिषु–तीनों शब्द अव्यय ही लिये जांय। उनसे सम्बन्धित प्रभावित से द्वितीया हो। आम्रेडितान्तेषु = द्विरुक्तस्य पर-माम्रेडितं, दो बार उच्चारण किये गये का पर-दूसरा भाग आम्रेडित संज्ञक हो। तदन्तेषु = कृतद्विर्वचन का आम्रेडितसंज्ञक अन्त में हो, अर्थात् उपरि उपरि, अधि अधि, अधः अधः तीनों प्रयोग के प्रभावितशब्दसे द्वितीया हो। ततः = तत्पश्चात् उपपदविभक्ति के कथित कारणों के अनन्तर अन्यत्रापि = अन्य स्थल में भी द्वितीया देखी जाती है। इन उपपदविभक्तियों के विषय में प्रत्येक का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यथा उभयतः कृष्णं गोपाः। कृष्ण के दोनों तरफ पार्श्वद्व-येऽपि उभयतः गोपगण गोपालवाल दोनों ओर हैं किसके? कृष्ण के। उभ-यतः शब्द से कृष्ण प्रभावितः। कृष्ण इत्यत्र, वार्तिकेन षष्ठ्यर्थे द्वितीया। 'आद्यादिभ्य' मानकर तस्। उभयोऽन्यत्र से अयच्। पञ्चम्यास्तसिल् सर्वतः कृष्णं (कृष्णस्य सर्वदिशासु चारो तरफ गोपाः) तस् प्रत्ययान्तसर्वतः शब्दयोगेन सम्बन्धेन प्रभावितः कृष्णशब्दः अस्ति। उभसर्वतसोः वार्तिकेन द्वितीयां

अध्यधिलोकम् । अधोऽधोलोकम् । (अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगऽपि
अभितः कृष्णम् । परितः कृष्णम् । ग्रामं समया । निकषा लंकाम् । हा कृष्णाभक्तम्

लभते । धिक् निन्दा धिक्कार उपेक्षा, अश्रद्धा अर्थ से प्रभावित शब्द कृष्णस्य- अभक्तं कृष्णाभक्तं, तस्य निन्दा धिक्कारेण प्रभावितः अभक्तो नास्तिकः वार्तिकेन द्वितीयां लभते, षष्ठ्यर्थे । केचित्प्रथमा अर्थे द्वितीया, सा निन्द्या । यदि धिक्कारके योगमें उपपदविभक्ति मान्य है तब कथं धिङ् मूर्ख, धिक् के योग में मूर्ख से द्वितीया क्यों नहीं, इसलिए कि वह सम्बोधन पद हैं, क्रिया से सम्बन्धित है । धिक् से नहीं, द्वितीया न, किन्तु सम्बोधने प्रथमा । अथवा धिक् शब्दसे मूर्ख प्रभावित नहीं, अपितु उसका निषिद्ध आचरण प्रभावितः । सीता चोरी जैसा भ्रष्ट आचरणमें अन्वय । आचरणसे निन्द्य मूर्ख रावण । सम्बोधने प्रथमार्थे द्वितीया । उपरि उपरि लोकम्=अधि अध्यसः सामीप्ये=लोक संसारके समीप उपमा अर्थ, सत्यलोकमें भगवान है । ऊपर उर्ध्व अर्थसे प्रभावित लोक, शब्द में द्वितीया, तर्हि उपरि उपरि बुद्धीनां चरन्तीश्वरबुद्धयः । बुद्धिमानके ऊपर ईश्वर की बुद्धि चलती है । उपरिके योगमें बुद्धीनां में षष्ठी कैसे द्वितीया क्यों नहीं ? यहाँ उपरिका ऊर्ध्व अर्थ है, आम्रेडित न होनेसे द्वित्व नहीं । अध्यधिलोकं लोकस्य समीपदेशे हरिः अथवा अधिका अधिकरण अर्थः । लोकमें हरि अधिअर्थसे प्रभावित है । अधोऽधः लोकस्य समीपे अधो भागे हरिः अस्ति । अधः योगे लोकमित्यत्र द्वितीया ।

श्लोकवार्तिकमें ततो अन्यत्रापि दृश्यते पढ़ा । उसका सप्रमाण उदाहरण प्रपञ्च । अभितः=दोनों तरफ, परितः=चारो तरफ, समया निकषा समीप अर्थे, हा खेदे, प्रतियोग, प्रतिउपसर्ग का सम्बन्धार्थः । इनके सम्बन्धमें या इनके प्रभावितसे द्वितीया हो । अभितः कृष्णं कृष्णके दोनों तरफ गोप हैं । परितः कृष्णं (सर्वेषु पार्श्वेषु चारो तरफ) गोपाः । परि-अभिसे तसिल्प्रत्यान्त अभितः परितः के अर्थसे प्रभावित कृष्णं में द्वितीया । ग्रामं समया निकषा आकारान्त अव्यय है । समीप अर्थ-ग्रामस्य समीपे गाँवके पास । समयासे प्रभावित ग्रामसे द्वितीया । निकषान्तिकसमयान्ति- कमध्ययोः अमरः । विलङ्घ्य लंकां निकषा हनिष्यति । लंका के पास वध करें समुद्र लाँघकर, निकषा योगे द्वितीया । हा कृष्णाभक्तं कृष्णके अभक्त (खेदकी बात है कि) वे शोचनीय हैं जो कृष्णभक्त नहीं । हा खेदसे प्रभावित अभक्त द्वितीयाभाक् । हा-विषादेषु वर्तिषु । विषाद सोच पीड़ा हा का अर्थः । प्रतिके योगमें प्रतिके प्रकाश्य अर्थके प्रभावित से द्वितीया । बुभुक्षितं=क्षुधार्तं भूख से पीड़ित को किञ्चित् न प्रतिभाति कुछ भी नहीं सूझता । यद्यपि भा दीप्तौ

ऋते कृष्णम् । बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् । अन्तराऽन्तरेण युक्ते ।२।३।४। द्वितीया । अन्तरा च मां वा हरि । अन्तरेण हरिं न सुखम् ॥ कर्मप्रवचनीयाः ।१।४।८३। इत्यधिकृत्य ॥ अनुर्लक्षणे ।१।४।८४। लक्षणे द्योत्ये अनुः कर्मप्रवच

का प्रकाश अर्थः, तथापि प्रति—इस उपसर्गके बलसे असूझ अर्थ (बलादन्यः प्रतीयते) प्रतिशब्दयोगे सम्बन्धार्थे बुभुक्षितं द्वितीया, । यतो न लक्षणं अतो न कर्मप्रवचनीयः । अन्तरा आकारान्त अव्यय है (टाप अन्तमें नहीं) अन्तरेण इति अव्ययं, नहि तृतीयान्तं दोनों का मध्य अर्थः । अन्तरा मध्ये इत्यमरः । अन्तरेण पृग्विना, ऋत् हिरुक् नाना वर्जन अर्थे । अन्तरा त्वां मां हरिः । हमारे तुम्हारे बीच भगवान् का अन्तर—भेद हैं । अन्तरा के योग से प्रभावित कारण त्वां मां में द्वितीया । अन्तरेण हरिं हरेः वर्जने भगवानके विना सुख नहीं ।

।५४६। कर्म और प्रपूर्वक वचधातु से अनीयर । कर्ता अर्थे भूतकाले च बाहुलकात् । अग्रिमसूत्रों में कर्मप्रवचनीयसंज्ञाका अधिकार चलाते हैं । भाष्यमें किमर्थं महतीसंज्ञा क्रियते टि-घु-भ सदृश छोटीसंज्ञा न कर बड़ीसंज्ञा क्यों, इससे कल्पना करते हैं कि अन्वर्थसंज्ञा विज्ञायेत=कप्रर्मवचनीय शब्दका स्फोटार्थ, व्युत्पत्यर्थ, प्रकृत्यर्थ, प्रत्ययार्थ शब्दार्थ जहाँ घटे, वहाँ कर्मप्र० संज्ञा हो' यथा–कर्म-क्रियां–प्रोक्तवन्तः प्रकाशयन्तः जो क्रियाको प्रकाशित करें, वे निपात कर्मप्रवचनीय है । किं पुनः कर्मप्रोक्तवन्तः (कौन क्रिया को कह चुके, किस क्रिया को कहें) ये सम्प्रति क्रियां नाहुः । जो उपस्थित क्रिया को कहते ही नहीं, किन्तु ये अप्रयुज्य-मानस्य क्रियामाहुः, जपमनु (निशम्य) प्रावर्षत् अत्र निशम्य=सुनकर के, योग में प्रसंग प्राप्त निशम्य का लोप होनेपर सुनना निशम्य किया अप्रयुज्यमान है प्रयोग न किये गये क्रिया को (अनु) कहता है, इसलिये जो अप्रयुज्यमान क्रिया को बोले, उस क्रियासे की गयी विशेषता सम्बन्ध को प्रकाशित करें, वे कर्मप्रव-चनीयाः है । जप–कारण, वर्षा कार्य । अतः क्रियां प्रोक्तवन्तः । क्रियाद्योतको नायं, सम्बन्धस्य न वाचकः । नापि क्रियापदापेक्षी सम्बन्धस्य तु भेदकः । इति-वाक्यपदीयम् । जपमनु प्रावर्षत् जप पूर्ण होते ही वर्षा हुई, अनुसे कोई क्रिया (जैसे अनुभूयते सुखम् अत्र) अनुका क्रिया अर्थ नहीं है । वह अनु षष्ठीकी तरह सम्बन्ध अर्थ ही नहीं कहता, जो द्वितीयासे कह उठी ।

लक्षण अर्थ प्रकाशमें लाने के लिये अनुको उक्त—कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो, लक्ष्यकी आङ्क्षा लक्ष्यलक्षण सम्बन्धका प्रकाशक अनु हो । लक्ष्ये जायते अर्थो अनेन लक्षणम् । किन्तु वह लक्षण हेतु भूतकार्यमें कारण अवश्य हो । वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् की तरह परिचायक मात्र नहीं । यदि चिह्न मात्र लेंगे, लक्षणेत्थं

नीयसंज्ञः स्यात् । गत्युपसर्गसंज्ञापवादः । **कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ।२।३।८।** जपमनु प्रावर्षत् । हेतुभूतजपोपलक्षितं वर्षणमित्यर्थः ॥ **तृतीयार्थे ।१।४।८५।** अनुरुक्तसंज्ञः । नदीमन्ववसिता सेना । नद्या सह संबद्धेत्यर्थः । **हीने ।१।४।८६।** अनुरुक्तसंज्ञः । अनु हरिं सुराः, हरेर्हीना इत्यर्थः ॥ **उपोऽधिके च ।१।४।८७।**

भूताख्यान से संज्ञा सिद्ध । इयं संज्ञा गतिसंज्ञाम् उपसर्गसंज्ञाञ्च बाधते । इस बाध्यबाधकभावसे क्रियाके सम्बन्धमें ही कर्मप्रवचनीयसंज्ञा सूचित । महासंज्ञासे **स्फोटार्थ**, अन्वर्थ प्रकृत्यर्थप्रत्ययार्थ घटे । अयमभिप्रायः क्रियां कथितवन्तः कर्मप्रवचनीयाः (केवल क्रियाही नहीं) क्रियानिरूपितं सम्बन्धं प्रकाशयति । एवं अनुप्रति के क्रियाबोधक सम्बन्धका प्रकाशक होनेसे गति-उपसर्गसंज्ञा भी प्राप्त ।

कर्मप्रवचनीय संज्ञा के युक्ते (युजिर् योगे क्तः) सम्बन्धसे प्रभावित शब्दसे **द्वितीया** हो । कदा मेघाः अवर्षन् कब बादलों ने वर्षा की ! इस प्रश्न पर उत्तर— **जपमनुप्रावर्षत्** जपपूर्ण होते ही वर्षा हुई । अनावृष्टि कालमें वर्षाके लिये जप कराया गया, वृष्टिकालका दुर्ज्ञान है । ज्ञान के लिये आधार (यथा शाखाग्रं प्रति द्विकलश्चन्द्रः । दूज का चाँद शाखा पर है । दुर्ज्ञेय चन्द्र के ज्ञानका सहारा शाखा है) उसका जप ही प्रज्ञान—मुख्यज्ञानका कारण है । जपके समय बादल वर्षा किये । वर्षा के लिये जप किया गया । वर्षाका कारण, जप लक्षण है । पूर्वकालवृत्तित्वघटितत्वं हेतुत्वं । पहले जप हुआ तब वर्षा हुई । वरुण देवताके मन्त्र जपके तुरन्त बाद, यह समाधान संगत है । यहाँ लक्षण और हेतु दोनों द्वितीयाके अर्थ अनुसे प्रकाशितज्ञानके लिए जपका ज्ञान, लक्षण जपके कारण वर्षा हुई । इन्हीं समस्त आशयोंको लेकर हेतुभूतं जपं, तेन उपलक्षितं ज्ञापितं घोषितं वर्षणम् । अनुर्लक्षणे सूत्रमें लक्षण पड़ा है हेतु नहीं, हेतुका लाभ कैसे ? हेतुकी विवक्षा से । तृतीयाका अर्थ साहित्य, सहभाव—सम्बन्ध एक साथ है । यद्यपि कर्तृकरणयोस्तृतीयासे कर्ता और करण ही तृतीया का अर्थः, परन्तु वह तृतीया क्रियान्वयी होनेसे कारकविभक्तिर्बलीयसी हो उपपदविभक्ति को बाधेगी । रामेण शरेण अनुहतो वाली, तृतीया ही हुई । कर्मप्रवचनीयसंज्ञा का फल नहीं । कर्मक्रियां प्रोक्तवन्तः अर्थ नहीं घटा, तृतीयाके अनेक अर्थ हैं, किन्तु सहयुक्ते अप्रधानेके साथमें जुड़ा साहित्य द्वितीया का अर्थः । उसका प्रकाशक अनु है । नदीम् अन्ववसिता सेना । नदीके साथ जुड़ी सटी सम्बद्ध । नदीका सेनाके साथ सहयोग सहभाव समीपसम्बन्ध है ।

हीने 'ओहाक्' त्यागे । हा धातोः निष्ठातकारस्य नत्वे ईत्वे भूतकालिक हीनता—न्यूनता कभी—निष्कर्ष अर्थ प्रकाशित होता हो (द्योत्ये) प्राग्वत् अनुः

अधिके हीने च द्योत्ये उपेत्यव्ययं प्राग्वत् । अधिके सप्तमी वक्ष्यते । हीने-उप हरिं सुराः । **लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः ।१।४।९०।** उक्तसंज्ञाः स्युः । लक्षणे वृक्षं प्रति पर्यनु वा विद्योतते विद्युत् । इत्थंभूताख्याने-भक्तो विष्णुं प्रति पर्यनु वा । भागे लक्ष्मी हरिं प्रति पर्यनु वा, हरेर्भाग इत्यर्थः ।

पर्ववत् कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो । अनु की आवश्यकता हीनता, निकृष्टता, कमीकी प्रकाश मे लाने में है । जहाँ उत्कृष्ट अच्छे, अपकृष्ट बुरे, कम छोटा अर्थ हो, वहाँ उत्कृष्टादेव---द्वितीया न तु अपकृष्टात्, शक्तिस्वभावात् । यथा अनु हरि सुराः । देवता हरिसे हीन न्यून कम है । इस कमीका प्रकाशक अनु, उससे द्योत्य द्वितीयार्थसे (उत्कृष्टो) हरिः प्रभावितः । हीने सूत्रेण कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । तस्याः सम्बन्धे द्वितीया । हरेः में षष्ठी । प्रतियोगी की अपेक्षा निकर्ष-छोटे देवता हैं । उप शब्दका अधिक अर्थः, चकारसे हीन अर्थका संग्रह । न्यून अधिक अर्थका प्रकाश उप, यह अव्यय प्राक्संज्ञं कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हो । अधिक अर्थ का प्रकाशक उप को कर्मप्रवचनीय-संज्ञाका विधान, द्वितीयाके लिए नहीं किन्तु (अधिकेऽर्थे सप्तमी वक्ष्यते) यस्मा-दधिकं के प्रसंग में कहेंगे । हीन अर्थे उप का उदाहरण-उप हरिं सुराः देवता भगवानसे कम है । लक्षण-इत्यंभूताख्यान-भाग-वीप्सा एषु अर्थेषु विषय सप्तमी । अतः विषयभूतेषु कथितं, ये अर्थ प्रकट करने, समझाने की विषयवस्तु हों, युक्त हों, तब प्रत्यादयः=प्रतिपरि अनु अवको (कर्मप्रवचनीय अप्रयुज्यमान शब्द की क्रियाके सम्बन्धको कहनेवाली) संज्ञा हो । लक्ष्यते कार्यं प्रकटीक्रियते अनेन (अर्थ प्रकाशित किया जाय जिससे लक्षणं ज्ञापकं बोधकं सूचकम् । यथा वृक्षं प्रति परि अनु वा विद्योतते विद्युत् । वृक्षाका प्रकाशमें आना द्वितीयाका अर्थ है, लक्षणं वृक्षः लक्ष्यं विद्युत् । वृक्षके आगे पीछे चारों तरफ बिजली चमकती है । लक्ष्यलक्षणसम्बन्ध द्वितीयार्थः । उसका प्रकाशक प्रति-परि-अनु । घोर अन्धकार, घटा घेरी अंधेरी रातमें बिजली चमकनेसे वृक्ष दिखाई दिए, उनसे विद्युतका विद्योतन चमकना समझमें आया, जो उत्पन्ना विनिष्टा च । वह प्रकाश्य और प्रकाशक वृक्ष भी उत्पन्न-विनष्ट इव, वृक्ष प्रकाशके तत्काल विद्युत् अभावसे अनुमानके योग्य हो गयी । वृक्ष प्रकाशित हुआ, तब विद्युत् ज्ञान हुआ । वृक्ष लक्षण, विद्युत लक्ष्य भाव प्रकाशनाय प्रति परि अनु एतेषां लक्षणेत्थं सूत्रेण कर्मप्रवचनीय० तत्सम्बन्धे द्वितीया च । इत्यंभूताख्यान=अयं प्रकारः इत्थंभूतः । कञ्चित् प्रकारं प्राप्तः सुप्सुपा समासः । आख्यायते अनेन आख्यानम् इत्थंभूतस्य आख्यानम् । इस प्रकारके विषय-विषयिभाव उपास्यउपासकभाव, भक्त और भगवानमें आख्यान प्रसिद्ध हो उसका प्रकाशक प्रति परि अनु हैं ।

वीप्सायां वृक्षं वृक्षं प्रति पर्यनु वा सिञ्चति। एषु किम् परिषिञ्चति ॥ अभिरभागे ।१।४।९१। भागवर्जे लक्षणादावभिरुक्तसंज्ञं, स्यात्। हरिमभि वर्तते। भक्तो हरिमभि। देवं देवमभिसिञ्चति। अभागे किम्? यदत्र ममाभिष्यात्तद्दीयताम् ॥

यथा भक्तो विष्णुं प्रति परि अनु। भक्त भगवानके विषयमें सब प्रकारसे तन्मयता व्याप्त (भज सेवायां, भक्तिः अस्ति अस्य) सेवा भाव भरा हो, मत्वर्थ अर्शआद्यच्। भक्तसेवा विषयसम्बन्ध का प्रकाशकरना द्वितीयार्थः। लक्षणेत्थं सूत्रेण उक्तसंज्ञा, सम्बन्धे द्वितीया। विष्णुविषयक भक्तिमान् भक्तः कञ्चित्प्रकारं विशेषभक्तिमयपुलकशरीरं, रोमाञ्चितस्वरूप को प्राप्तहोने से इत्थंभूतलक्षण घट गया। वह लक्षण विष्णुविषयकसम्बन्धको द्योतकः। भागे=हिस्सा अंश अवयव अंग लक्ष्मी भगवान की अर्धाङ्गिनी है। आधाभाग, स्वामित्व, द्वितीयार्थः। लक्ष्मीरूपस्य भागस्य हरिणा सह स्वस्वामिभावः सम्बन्धः। उक्तसंज्ञा, द्वितीया च सूत्रेण। वीप्सायां कात्स्न्र्ये। नहि सम्बन्धात्मिका (पूर्णरूपेण इच्छति वीप्सति इच्छायाः) व्याप्तिः पूर्णता प्रकृति का अर्थ। यद्यपि वह नित्यवीप्सयोः के द्विर्वचन दो बार उच्चारणसे प्रकाश्य है तथापि प्रति परि आदि क्रिया से सम्बन्धित दशामें कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, सम्बन्धे द्वितीया। प्रत्येक वृक्ष पूर्णरूपसे (कृत्स्नं वृक्षं सिञ्चति) सींचना क्रियामें प्रति की कर्मप्र०संज्ञा, उसके योगमे द्वितीया च। क्रियाके साथ स्वतः सिद्ध उपसर्गको कर्मप्रवचनीयसंज्ञा क्यों? अतः बोले अत्र–अस्मिन्प्रसंगे उपसर्गसंज्ञां बाधित्वा कर्म० संज्ञा भवति। तेन कारणेन उपसर्गसंज्ञा न। तेन कारणेन उपसर्गात्सुनोति सूत्रेण सिञ्चतेः सकारस्य षत्वमपि न। एषु किं=पूरा सूत्र क्यों पढ़ा। यदि न पढ़ते अग्निं परिसिञ्चतीत्यत्र परिइत्यस्य उपसर्गसंज्ञा अस्तु। यतोहि अत्र न लक्षणमस्ति, न इत्थंभूताख्यानं, तेन कारणेन कर्मप्रवचनीयसंज्ञा न। तेन कारणेन षत्वं भवति।

अभि अव्यय है अभागे=न भागः अंशः अभागः तस्मिन्। अंशः हिस्सा भाग अर्थ न हो, लक्षणादौ=लक्षण इत्थंभूताख्यान, वीप्सा अर्थ द्योत्ये–प्रकट हो रहा हो, तब अभि को कर्मप्रधानसंज्ञा हो, गति उपसर्गसंज्ञा को बाधकर। लक्ष्यते ज्ञायते अनेन इति लक्षणं, जिससे जना जाय। यथा जयः (विजयः) क्व ! कस्मिन्पक्षे वर्तते इति प्रश्ने; उत्तरं हरिमभिवर्तते। भगवानके पक्षमें विजय गयी। हरि लक्ष्य है जय लक्षण अर्थ प्रकाशक अभिः। अभिरभागे सूत्रेण कर्मप्रवचनीयो जातः, तस्य योगे सम्बन्धे द्वितीया अभूत्। लक्ष्यलक्षणभावो द्वितीयार्थः। अयं प्रकारः इत्थं भूताख्यानं, इस तरह की प्रसिद्धि का उदाहरण=भक्तो हरिमभि=हरिविषयकभक्तिमान् (भक्तः) भगवान की भक्तिमें

सुः पूजायाम् ।१।४।९४। सुसिक्तम् । सुस्तुतम् । अनुपसर्गत्वान्न षः । पूजायां किम् ? सुषिक्तं किं तवात्र । क्षेपोऽयम् ।। **अतिरतिक्रमणे च** ।१।४।९५। चापूजायामतिरुक्तसंज्ञः । अति देवान्कृष्णः । **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** ।२।३।५।

तन्मय । भगवतः विषये भक्तिविषयकसम्बन्धस्य प्रकाशको अभिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञकः । तेन कारणेन अभिसम्बन्धे द्वितीया हरिम् । अर्थस्तु पूर्वोक्तः । पूर्णव्यापिका सर्वांगीणसम्बन्धात्मिका वीप्सा प्रकृतिके अर्थमें पूर्ण व्याप्त । यथा देवं-देवमभिसिञ्चति (सम्पूर्ण देवताओं पर जल चढ़ाता) जल का सम्बन्ध सबके साथ समान है । अभिशब्देन एषोऽर्थः प्रकाश्यते, अभिरभागे इति सूत्रेण कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । तेन कारणेन द्वितीया । यतो न गतिसंज्ञा, न उपसर्गसंज्ञा, तेन कारणेन षत्वं न । अभागे किं सूत्रमें भाग अंशको छोड़कर अभि को संज्ञा हो, ऐसा क्यों ? इसलिए कि यदत्र=बहुनां द्रव्याणां तण्डुलवस्त्रादिषु संसृष्टं सम्मिलितं तत्र ममाभिष्यात्=मम भागः अंशः मह्यं दीयताम् । मेरा अंश मुझे दीजिए, मेरा भाग अर्थ खुल रहा है । अतः अभिष्यात् इत्यत्र अभिशब्दों नहि कर्मप्रवचनीयः, अभागे इति विरोधात् तेन कारणेन अभि-इत्यस्य उपसर्गसंज्ञा, प्रादुर्भ्यामिति षत्वम् ।

पूजा=सम्मान समादर स्वागत अर्थमें सु को कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । यथा-सुसिक्तम् अच्छी सिंचाई की । सुस्तुतं अच्छी प्रशंसा की । सन्मानपूर्ण अर्थ का प्रकाशक सु, उसकी कर्मप्रवचनींयसंज्ञा । उपसर्गसंज्ञा नहीं, तेन कारणेन उपसर्गात्सुनोति सूत्र से न षत्व । पूजायां किं सूत्रमें समादर अर्थका प्रकाशक सु हो तब कर्मप्र० हो, ऐसा क्यों ? इसलिए कि जहाँ सु निन्दा आक्षेप अर्थमें हो वहाँ उक्तसंज्ञा न हो । यथा किसी छात्रने फुलवाड़ी ठीकसे नहीं सींची, उसने कहा भी सुषिक्तं किं तवात्र । मैंने सींचा है तुम्हारी नाक भौंह क्यों सिकुड़ती है । यतः तत्र निन्दा गम्यते, अतः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा न, किन्तु उपसर्गसंज्ञा, तेन कारणेन उपसर्गात्सुनोति इतिषत्वम् ।

अतिरिति 'अति' इस अव्ययको अतिक्रमण मात्रा, बढ़चढ़कर अधिक अर्थ होने पर; च=पढ़नेसे पूजा अर्थमें, अति शब्द हो, उसको भी कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाय । दोनों अर्थका एक उदाहरण अतिदेवान् कृष्णः विश्वकल्याणके विषयमें देवताओं से भी अधिक कुसल समर्थ श्रीकृष्ण हैं । अथवा देवताओं के पूज्य हैं । पूजायाम् अतिक्रमणे च अर्थे वर्तमानस्य अतिशब्दस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तस्य योगे देवान् इत्यत्र द्वितीया । एवं अतिसिक्तम् अतिस्तुतमित्यादि । अच्छी सिचाई, अच्छी स्तुतिकी ।

कालश्च अध्वा च कालाध्वानौ । कालः=त्रिपल-पल घटी प्रहर-दिनरात्रि-सप्ताह माह वर्ष युगमन्वन्तर-कल्प आदिवाचक शब्द, अध्वा रास्ता मार्गवाचीशब्दके

इह द्वितीया स्यात् । मासं कल्याणी । मासमधीते । मासं गुडधानाः । क्रोशं कुटिला नदी । क्रोशमधीते क्रोशं गिरिः । अत्यन्तसंयोगे किम् ? मासस्य द्विरधीते । क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः । स्वतन्त्रः कर्ता ।१।४।५४। इति कर्तृसंज्ञा ।। साधकतमं

अत्यन्त संयोग में द्वितीया हो । अन्तं विराममतिक्रान्तः अत्यन्त: अखण्डः, स चासौ संयोगश्च, गुण-क्रिया द्रव्य वस्तु के साथ विना विराम, गुण क्रियावाची शब्दका काल और रास्तासे थोड़ा भी विराम विच्छेद भेद न हो । किन्तु पूर्णकाल, पूर्ण रास्ता पर संयोग सर्वावयवव्याप्तः, वह व्याप्तिकाल और मार्गके साथ ही श्रुत है । यथा मासं कल्यायणी त्रिशद्दिनात्मको मासः । पूरे तीस दिन अखण्डकीर्तन मङ्गलमय उत्सव त्रिशद्दिनमविच्छिन्नम् अवरोधं बिना कल्याणमासीत् । कालवाची मासभर =कल्याण रूपगुण पूरे तीस दिन रहने से अत्यन्त-संयोग अवच्छिन्नसम्बन्ध हैं । अतः मासमित्यत्र द्वितीया । क्रिया का निरन्तर पूर्णसम्बन्ध । मासमधीते (तीसो दिन पढ़ता ही रहता है) त्रिशाद्दिनात्मकम् अविच्छिन्नम् अध्ययनम् । अध्ययनक्रियायाः अत्यन्तसंयोगः पूर्णव्याप्तिः निरन्तरसम्बन्धसत्वे मासमित्यत्र कालाध्वनोः सूत्रेण द्वितीया । द्रव्य का निरन्तर सम्बन्ध । यथा मासं गुड़धाना-महीनो गुड़ धनिया बटती रही । मासे प्रतिदिनं निरन्तरं एकमपि दिनं विश्रामं विना गुड़धानाः-दीयन्ते । द्रव्यवाची गुड़धनियांका पूरे महीने भर निरन्तर दान । कालस्य अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । अतः परं अध्वनः मार्गस्य (रास्ते का) अत्यन्तसंयोगे=पूर्णव्याप्तियोगे द्वितीया । क्रोशं कुटिला नदी-टेढ़ी मेढ़ी नदीकी कुटिलता पूरे कोशभर व्याप्त है । अध्वनः मार्गस्य अत्यन्तसंयोगः तेन कारणेन द्वितीया । क्रोशमधीते कोशभर लगातर पढ़ता है । अध्ययन क्रियासे व्याप्त क्रोश द्वितीयाका पात्र । कोशं गिरिः यह पहाड़ पूरे कोशभर त्याप्त हैं । द्रव्य की व्याप्तिसम्बन्ध । सूत्र में अत्यन्त संयोग क्यों पढ़ा ? पूरे काममें पूरे रास्ते भरमें व्याप्त-गुण-क्रिया-द्रव्य ऐसा क्यों ? यदि वैसा न कहते मासस्य द्विःअधीते ३० दिनके महीनेमें दो बार या दो दिन पढ़ता है । यहाँ अत्यन्तसंयोग=पूरे महीने का व्याप्त अध्ययन नहीं, बीचमें धारा टूट गयी । गयी । तेन कारणेन द्वितीया न । द्विःशब्दसे क्रियाकी आवृत्ति अर्थमें सुच् द्वित्रिःचतुर्भ्यः कृत्वोऽर्थप्रयोगे काले अधिकरणे । क्रियाकी आवृत्ति का प्रयोग हो । कालवाची, आधारवाची अर्थमें षष्ठी । मासस्य शिवरात्रौ जागृयात् । यहाँ अधिकरण इष्ट है । उपपद विभक्तियां शेषत्व-सम्बधमात्रकी विवक्षामें होती हैं ।

अथ तृतीया (टाभ्यां भिस का ने से द्वारा साधन सहारा उपकारक अर्थ ।

(३) स्वतन्त्रः स्वयं तन्त्रयतीति । कर्ता किसी क्रिया (व्यापार) की फलसिद्धिमें स्वतन्त्र स्वाधीन हो, पराधीन न हो ऐसा विवक्षित वक्ताको इष्ट कारकसंज्ञक

करणम् ।१।४।४२। क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात् ॥ । कर्तृकरणयोस्तृतीया ।२।३।१ अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात् । रामेण वाणेन हतो बाली (प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्) । प्रकृत्या चारुः : प्रायेण

अर्थ कर्ता है । वह क्रिया धातुका अर्थ हो तो विवक्षाका भाव (इयं क्रिया अनेनैव साधनीया यह क्रिया इन्हीं से सिद्ध होगी यही कर्ता (गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीह्री आदि) अर्थ हो तो । (४) साधक—साधयति क्रियाफलं जनयति साक्षादुपकारं करोति साधकम् अतिशयेन साधकं साधकतमं करणं—क्रियते फलं जन्यते येन तत् । किसी भी क्रियाकी फल सिद्धिमें प्रकृष्ट (श्रेष्ठ, महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष उपकारक योगदायक की करणसंज्ञा हो । जिस साधनकी क्रियासे (बिना व्यवधानके) फल सिद्ध हो वह प्रकृष्ट है । यद्यपि सभी कारक क्रियाके उपकारक हैं । तथापि करणके अतिशय उपकारक होनेसे तमप् (अतिशय अर्थ) का प्रयोग सत्य होगा । एकसाथ एकफलका एक ही कारक उपकारक होगा । साक्षात् सहायक कारकको करणसंज्ञा हो । यथा—रामेण वाणेन हतो वाली । रामके वाणसे वलि मारा गया । वालीका हनन (हिंसा, मृत्यु, प्राणवियोग व्यापार) क्रियामें स्वतन्त्र होनेसे रामको कर्तृसंज्ञा । कर्तरि तृतीया । रामके बाणवेधनसे यद्यपि प्राणवियोग हुआ तथापि केवल रामकी हनन (व्यापार) क्रियासे ही प्राण वियोग नहीं हुआ अपितु रामसे छोड़े गये वाणकी क्रिया (व्यापार) साक्षात्कार से वाली की मृत्यु हुई । इस बधमें बाण-साक्षात् सहायक, साधकतम, प्रत्यक्ष उपकारक है । उसकी करणसंज्ञा ।

(५) कर्तृ संज्ञा और कारणसंज्ञा हुई हो (यदि वह अनुक्त–उस अर्थमें प्रत्यय न हुआ हो) तब उससे तृतीया हो । यह विभक्ति आश्रय और क्रिया दोनोंकी बोधिका है । बाणमें करणे रामसें कर्तरि तृतीया । धात्वर्थक्रियाश्रयत्वं कर्तृत्वम् उक्त कर्मणि प्रथमा । वालि उक्तकर्म है । हतः में कर्मणि क्त अतः प्रथम ।

प्रकृत्यादिभ्यः । यह आकृतिगण का वार्तिक है आकृत्या स्वरूपेण गण्यन्ते शब्दाः यत्र आकृतिआदि गणमें जितने शब्द हैं सबकी सिद्ध फल देकर समझें । तृतीयाका विधान यथायोग्य । सभी विभक्तियों को बाँधकर उपपदविभक्तिः । यथा प्रकृत्या चारुः–स्वभावसे मधुर, प्रकृतसे सुन्दर है । कर्तृ या करणसंज्ञाके अभावसे तृतीया अप्राप्त थी । वार्तिकेन तृतीया, तस्याः सम्बन्धोऽर्थः प्रकृतिसम्बन्धिचारुत्ववान् । स्वभावेन अयम् अभिरूपः मनोमोहकः, न तु अलङ्कारादिना सुन्दरः। प्रायेण याज्ञिकः बहुधा यज्ञ कराता है । प्रायः शब्द बहुलवाची आचरणसम्बन्धसे यज्ञकर्ता ज्ञाप्यज्ञापकभावसम्बन्ध । आचरणसे व्यवहारसे यज्ञ करता है ऐसा लोग जानते हैं । अत्र

याज्ञिकः। गोत्रेण गार्ग्यः समेनैति। विषमेणैति। द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। पञ्चकेन पशून्गृह्णाति। सुखेन दुःखेन वा यातीत्यादि॥ **दिवः कर्म च**।१।४।४३। दिवः साधकतमं कर्मसंज्ञं स्याच्चात्करणसंज्ञं च। अक्षैरक्षान्वा दीव्यति॥ सहयुक्तेऽ-

---

प्रायेण इत्यत्र प्रकृत्यादिभ्यः इति वार्तिकेन तृतीया सिद्धा। गोत्रेण गार्ग्यः, गर्ग-वंशी ज्ञायते, गोत्रेण इत्यत्र तृतीया। यदि गोत्रहेतुसे ज्ञाप्य बोध्य गार्ग्यत्ववान् है तब इत्थंभूतलक्षणेसे तृतीया। गोत्रेणाहं गार्ग्य इति इहापि तृतीया। समेनैति क्रिया-विशेषण समतल या विषमेन एति-विषम = ऊँचा नीचा कुटिलमार्ग पर चलता है। सम विषमशब्दात्कर्मणि द्वितीया प्राप्ता वार्तिकेन तृतीया कृता। यदि सम विषम मार्गसे चलता है, तब साधन मानकर करणतृतीया। तृतीयायाः सम्बन्धों अर्थ। समविषमाभ्यां कर्मणिद्वितीया प्राप्ता, यदा समेन एति (समतल मार्गसे चलता है) तदा करणे तृतीया। द्वयोः द्रोणयोः समाहारः द्विद्रोणं धान्यं (दो द्रोण चावल) पात्रादिगण होनेसे स्त्रीलिंग। किन्तु त्रिलोकी इव ङीप् नहीं। द्विद्रोणसम्बन्धि धान्यं दो द्रोण धान्यका माप द्विद्रोण है। तेन क्रीणाति (उससे खरीदता है) अर्थ होने पर धान्यके खरीदनेमें साधन द्विद्रोणमें कारण मानकर तृतीया। सुखेन याति मगनहो गमन करता है। दुःखेन गच्छति कष्टसे जाता हैं क्रिया विशेषण होनेसे, दुःख सुखमें द्वितीया प्राप्त, तां बाधित्वा वार्तिकेन तृतीया। इत्यादि = आदिपदेन नाम्ना सुतीक्ष्णः नामसे बहुत तीक्ष्णबुद्धिवालेका बोध होता है। यदि ऐसा है तब इत्थंभूतलक्षणसे तृतीया सिद्ध। धान्येन धनवान्में तृतीयाका अभेदअर्थ, धान्यरूप ही धनवान् है। वह्नित्वेन वह्निं जानामि। प्रभृति आदि प्राय, गोत्र, सम, विषम, द्विद्रोण पञ्चक सहस्र गण है।

दिव धातुके क्रीडा-विजयकी इच्छा, व्यवहार स्तुति मोद मद क्रान्ति गति अर्थका साधन करण, उनकी क्रियाओं में साधकतमं प्रत्यक्ष, सद्यःफलदायक कार-ककी कर्मसंज्ञा हो। चात् = च पढ़नेसे करणसंज्ञा भी हो। दो संज्ञाओंका समा-वेश विकल्पका कारण है। यथा अक्षैः अक्षान् वा (पाशासे जूआ खेलता है) दीव्यति दिवधातोः द्यूतक्रीडनेऽर्थे अक्षः (पाशा) अतिशयेन साधकमस्ति, ईदृशं कारकं दिवः कर्म च सूत्रेण कर्मसंज्ञकं आक्षान् इति। चकारेण करणसंज्ञा अक्षैः इति। कन्दुकेन कन्दुकं वा दीव्यति क्रीडति। शास्त्रार्थेन वा दीव्यति जेतुमिच्छति।

सहयुक्ते=सह (साथ) अर्थसे युक्त जुड़नेपर। दोनोंमें जो अप्रधान है उससे तृतीया हो। सूत्रमें 'सहेन' पढ़ते युक्त क्यों पढ़ा? (यथा पृथग्विनानानाभिः सूत्रमें युक्त नहीं पढा लाभ है,) इसलिए कि सह अर्थमें अन्य शब्दभी हों, उनके सम्बन्ध से प्रभावित शब्दोंके अप्रधानमें भी तृतीया हो, अतः सहार्थेन कहा। यथा

प्रधाने ।२।३।१९। सहार्थेन युक्तेऽप्रधाने तृतीया । पुत्रेण सहागतः पिता । एवं साकं-सार्धसमंयोगेऽपि । विनापि तद्योगे तृतीया । वृद्धो यूनेति निर्देशात् ॥ येनाङ्गविकारः ।२।३।२०। येनाङ्गेन विकृतेनङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततस्तृतीया । अक्ष्णा काणः, अक्षिसंबन्धिकाणत्वविशिष्ट इत्यर्थः ॥ अपवर्गे तृतीया २।३।६। अपवर्गः

पुत्रेण सह पिता आगतः पुत्रके साथ पिता भी आया । आगमन क्रियामें पिताका शब्दः=साक्षात्सम्बन्ध, पुत्रके साथमें आनेसे अर्थतः सम्बन्धः । वह अप्रधान है । अतः पुत्रेण इत्यत्र युक्ते अप्रधाने अर्थे तृतीया । यद्यपि पुत्र आगमनक्रियाका अनुक्त कर्ता है । पुत्र शब्दसे कर्तृकरणयोस्ततीया सिद्ध, अतएव महाभाष्ये पुत्रेण सह स्थूलः । पुत्रके साथ मोटा हो रहा है । यही मुख्यउदाहरण दिया । युक्त शब्दसे अर्थग्रहण का क्या फल है । सहः साकं, सार्ध समं योगेऽपि–सम्बन्धमें भी अप्रधाने तृतीया हो । मया साकं, त्वया सार्धं, तेन समम् अन्ते वासिनः अध्ययनमित्यादौ तृतीया ।

पुत्रेण आगतः पिता । शिष्येणागतः गुरुः यहाँ सह शब्द नहीं पढ़ा गया, तृतीया कैसे ? तब बोले––विनाऽपि तद्योगे = सह उपस्थित न रहे । तब भी तृतीया होगी, सह अर्थकी प्रतीतिसे । अत्र प्रमाणं वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेत् युवसंज्ञाके साथ वृद्धका एक शेष हो । यदि युवका लक्षण वृद्धमें घटता हो तब सहशब्दके बिना भी तृतीया इष्ट है ।

।५६५। येनाङ्ग = जिन अङ्ग आँख, कान, दन्त हस्त पाद आदिके विकृत= खराब खोटा विगड़ जानेसे अङ्गानि सन्ति अस्य अङ्गी । शरीरमें विकार काना लँगड़ा लूँजापन लक्ष्यते-दिखाई पड़ता हो ततः=उस विकृत अङ्गवाची शब्दसे तृतीया । येन = सर्वनामसे प्रकृतिके अर्थका अवयव ही लिया जाय । अङ्गानि यस्य सन्ति अंगः शरीरम् (आशीदि अच्) अंगस्य विकारः । नहिं अविकृतेन अंगेन अंगिनः विकारो लक्ष्यते । यथा अक्ष्ण काणः आँखसे काना कारणमस्ति अस्य काणः काणत्वगुणवान् शरीर देहधारी, अत्र येनाङ्गविकारः सूत्रेण तृतीया । सम्बन्धः तृतीयार्थः काणत्वगुण (कानापन) आँख सम्बन्धी हैं । दोनों आँख फूटनेसे अंधा । तथापि अवयव धर्मस्य शरीरे व्यवहारो निरुढः । द्वौ विप्रौ इतिवत् सूत्रे अङ्गका विकार क्यों पढ़ा ? इसलिए कि अक्षि काणमस्य (आंख कानी है इसकी) यहां कानापनसे अङ्ग आँखमें विकार लक्षित है अङ्गी=शरीरमें नहीं, वाक्ययार्थः ।

अपवर्गे = फलकी प्राप्ति ही अपवर्ग है तस्यां = वह फल प्राप्ति द्योत्यां प्रकाशित होनेवाली हो । तब कालश्च अध्वा च कालाध्वानौ,कालवाची पल-विपल दण्ड-घण्टा-प्रहर-दिन,-सप्ताह-पक्ष-मास-वर्ष आदि वाचक शब्दसे तथा अध्वा-मार्ग-कोश-किलोमीटर वाची शब्दसे अत्यन्तसंयोग पूर्णव्याप्ति, जितने कालमें क्रिया कही गयी

फलप्राप्तिः, तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया स्यात् । अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः । अपवर्गे किम् ? मासमधीतो नायातः ॥ **हेतौ ।२।३।२३।** तृतीया । दण्डेन घटः ॥ **इत्थंभूतलक्षणे ।२।३।२१।** तृतीया । जटाभिस्तापसः, जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ठ इत्यर्थः ॥ **संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि ।२।३।२२।**

हो, उतने कालतक क्रियाका फल मिल रहा हो, या प्राप्त हो चुका हो, या होनेवाला हो, तब कालवाची रास्तावाची शब्दसे तृतीया हो । क्रीयाकी फलप्राप्ति तक संयोग हो । अपवर्गः समाप्तिः (कर्मापवर्गे लौकिकाग्नयः) में अपवर्ग क्रियाकी समाप्ति अर्थ में पढ़ा गया है । प्रसङ्गमें फलप्राप्ति ही इष्ट है । कालाध्वनोः सूत्रमें द्वितीया को बाधकर अह्ना क्रोशेन अनुवाकोऽधीतः । पूरे दिनभर या पूरे कोशभरमें मन्त्रः कण्ठस्थीकृतः (याद किया) यहाँ अध्ययनक्रियासे दिनभरमें या कोशभरमें मन्त्र कण्ठकर लेना अपवर्त्न = फलप्राप्ति है । उसके रहते कालवाचिनः अहन्शब्दात् अपवर्गे तृतीया सूत्रेण तृतीया जाता । अपवर्गे किं ?=सूत्रेमें क्रियाफलकी प्राप्ति अर्थ क्यों पढ़ा ? इसलिए कि यत्र फलस्य प्राप्तिर्नास्ति तत्र तृतीया मा भवतु । मासमधीतो नायातः । महीनो पढ़ा, कण्ठ किया, याद नहीं हुआ, दाल नहीं गली । महीनों श्रम करनेपर फलप्राप्ति न होनेसे मासमें तृतीया नहीं हुई ।

इत्थं=अयं प्रकारः इत्थं, तं भूतः प्राप्तः इत्थंभूतः । इसप्रकार प्राप्त हुआ (भूप्राप्तौ चुरादिः) गत्यर्थाकर्मक सूत्रसे कर्ता अर्थमें क्त । लक्ष्यते अनेन लक्षणं ज्ञापक, सूत्रके जटा लक्षणसे तपस्वी लक्षित होना । जटा तपस्वीका सूचक है । कञ्चित्प्रकारं=किसी स्वरूपको प्राप्त होनेपर लक्षण वाचकसे तृतीया हो । यथा जटाभिस्तापसः । जटाधारणसे तपस्वी, जान पड़ना है । जटा लक्षण, तपस्वी लक्ष्य । तपः अस्यास्ति तापसः तपःसहस्राभ्यां विनीनी अण्च । जटाभिः इत्यत्र इत्थंभूतलक्षणे तृतीया । जटासे ज्ञाप्य बोध्य जानने लायक तापसत्व—तपस्वीका धर्म उससे विशिष्ट सहित लक्ष्यसम्बन्धः तृतीयायाः अर्थ । चन्दनचतुर्वेन्दिभिः पण्डितः । अध्यापनेन अध्यापक । कमण्डुलना साधुः ।

संज्ञो-सम्पूर्वक ज्ञा अवबोधने ज्ञाने च अर्थे ज्ञा धातुका अनुकरण षष्ठीका एकवचन संज्ञः । जनी प्रादुर्भाव नहीं, अकर्मक होने से । अतः संपूर्वक जानातेः=ज्ञा धातुके जानने क्रियाके कर्म अर्थ में तृतीया हो, बिकल्पसे द्वितीया को बाँधकर । पित्रा पितरं वा सम्यक् जानीते—पिताको ठीक जानता है । सम्प्रतिभ्यामनाध्याने=उत्सुकतापूर्णस्मरणे अर्थे आत्मनेपदं, संज्ञोन्यतरस्यां कर्मणि । पितरमित्यत्र तृतीया पित्रा इति । यत्र कृदन्तसम्बन्धः तत्र कर्तृकर्मणोः षष्ठी । पितुः संज्ञाता । आत्मनेपद अनाध्यान=अनुत्कण्ठा, स्मरणेपरस्मैपदम् । आध्याने-गुरुणा गुरुं वा संजानीते ।

संपूर्वस्य जानातेः कर्मणि तृतीया । पित्रा पितरं वा संजानीते ॥ **कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम्** ।१।४।३२। दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानसंज्ञः ॥ **चतुर्थी संप्रदाने** ।२।३।१३। अनुक्ते । विप्राय गां ददाति । (**क्रियया यमभिप्रैति स**

मात्रा मातरं वा संजानीते । माताको बड़ी उत्कण्ठा से याद करता है **हेतौ**=क्रिया-फलकी सिद्धिमें जो हेतु कारण साधन है उसमें तृतीया हो ।

दण्डेन घटः । घट द्रव्य है उसका हेतु (कारण) दण्ड । द्रव्यं प्रति हेतुः दण्डः। हेतौ सूत्रेण तृतीया । दण्डमे क्रिया हो या न हो । किन्तु साक्षात्क्रियान्वयी न होने करणे तृतीया न, किन्तु हेतौ । **अथ चतुर्थी** ङेभ्यां भ्यस् का (के लिए उद्देश्य) कर्म जिसके वास्ते हो । (६) दाधातुकी **कर्मणा** (फलके आश्रय-कर्मसे) यं जिसको अभिप्रैति (सम्बन्धुमिच्छति स्वीकृतसम्बन्ध जोड़ना) चाहता है उसको **सम्प्रदानसंज्ञा** हो । **सम्यक्प्रदीयते** स्वाधिकारं समाप्य समर्प्यते यस्मै (विप्राय) तत्सम्प्रदानम् । स्वस्वत्व अपना अधिकार निवृत्तिपूर्वक (त्यागकर) पर इष्टविप्र आदि का स्वीकृत अधिकार स्थापित होना **सम्प्रदान** है । इति वृत्तिकारः । यथा—धनी **विप्राय गां ददाति** । ब्राह्मणको गाय देता है । (धनी क्रियाका फल (दान) उसका आश्रय गायसे) अपना अधिकार निवृत्ति समझकर इष्टव्यक्ति (विप्र) का सम्मत अधिकार सिद्ध करता है। दानरूप फलका आश्रय (गाय) कर्म है। उस कर्मका विप्रसे स्वीकृतसम्बन्ध जोड़ना चाहता है । किसके लिए या उद्देश्यसे गोदान करता है ? विप्रके । उसीको सम्प्रदानसंज्ञा (७) चतुर्थी–सम्प्रदानसंज्ञा होनेपर चतुर्थी ङेभ्यांभ्यस् हो । जिसका उद्देश्य (के लिए) अर्थः । इत्यनेन चतुर्थी । यहाँ दानशब्द **उपलक्षण** है । **स्वं बोधयन् परानपि बोधयति** । अपना ज्ञान करता हुआ अन्यका भी ज्ञान करता है । अतः **कर्ता क्रियामात्रस्य यत्कर्म तेन सह सम्बन्धुं यं पदार्थम्** अभिप्रैति स **सम्बन्धोद्देश्यः सम्प्रदानसंज्ञकः** । किसीभी क्रियाका कर्म जिसके लिए हो उन सभीको सम्प्रदानसंज्ञा तथा **चतुर्थी** हो । इसलिए **रामः सीतयै वार्तां प्रेषयति । असुरेन्द्राय समाचरं** कथय । तुभ्यं हितम् उपदिशामि । राजकाय वस्त्रं ददाति । के लिए ही चतुर्थी का विषय है । **यह कारक चतुर्थी हुई** । अथ क्रिया चतुर्थी ।

क्रियया=क्रिया से जिसको चाहते है । वह भी सम्प्रदानसंज्ञक हो । सम्यक्प्रदीयते=पूर्णरूपसे दान करनेपर ददातिका कर्म जिसके लिए हो उस उद्देश्यको सम्प्रदानसंज्ञा कही गयी । **पत्ये शेते** पतिके लिए (उद्देश्यसे) सोती है । यहाँ दानक्रिया है नहीं, सम्प्रदानसंज्ञा कैसे ? यहाँ शयनक्रिया अकर्मक है, पतिके लिए है, अतः वार्तिककारने क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यम् । अर्थात् क्रियाके उद्देश्य

संप्रदानम्) पत्ये शेते । परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् ।१।४।४४। नियतकालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणं तस्मिन्साधकतमं कारकं संप्रदानं वा। शतेन शताय वा परिक्रीतः ॥ (तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या) मुक्तये हरिं भजति (उत्पातेन

को भी सम्प्रदानसंज्ञा हो । अतः वार्तिकमपठत् क्रियया यमभिप्रैति । पूर्वसूत्रमें कर्मके उद्देश्यको संज्ञा कही गयी है । शयनक्रियाका कर्म नहीं हैं । पतिको सम्प्रदानसंज्ञा अप्राप्त है, अतः वार्तिक पढ़ा । यद्यपि पतिमनुकूलयितुं पतिको वश में करनेके लिए सोती है । इस अर्थपर क्रियार्थोपदस्य च कर्मणि स्थानिनः सूत्रसे अनुकूलयितुंका कर्म पतिको सम्प्रदान हो सकता है चतुर्थी, पत्ये शेते इति सिद्धम् । वार्तिकं न कर्तव्यं, परन्तु भाष्यकारमते=सन्दर्शनप्रार्थनाध्यवसाये आप्यमाणत्वात् क्रियाऽपि कृत्रिमं कर्म । कर्मणा यमभिप्रैतिसूत्रेण सम्प्रदानसंज्ञा सिद्धा वार्तिकं व्यर्थम्, अन्वर्थसंज्ञापक्षे= ददातिके कर्म के उद्देश्यको ही सम्प्रदानसंज्ञा । पक्षमें क्रियया यमभिप्रैति वार्तिक करना चाहिए । यदि क्रियाके उद्देश्यसे चतुर्थी होगी, तब कटं करोति, ओदनं पचति इत्यादि स्थले क्रियाका उद्देश्य चटाई है भात है, यहाँ भी सम्प्रदानसंज्ञा सम्भव होगी, सभी कर्म क्रियाका उद्देश्य है सर्वत्र चतुर्थी हो । तब कर्मसंज्ञा व्यर्थ होकर विकल्पके लिए बाध्य करेगी तन्न, पत्येशेते जैसे—अकर्मक स्थल में सम्प्रदान-संज्ञा होनेसे उसकी शक्ति क्षीण होगी । अकर्मकस्थलमें कर्मसंज्ञा प्रबल पड़ेगी । अर्थात् अकर्मक क्रियाके उद्देश्यको ही सम्प्रदानसंज्ञा हो, सकर्मक स्थलमें कर्मसंज्ञा ही होगी । हिताय एधते, व्रताय जागर्ति इत्यादि ।

५८० परिक्रयणे निश्चित समयतक पैसाके लोभसे भृत्या=नौकरी स्वीकार कराना परिक्रयण है । उसमें साधकतमं-प्रबल कारण साधनरूपकारकको सम्प्रदान-संज्ञा हो, अन्यतरस्यां=विकल्पसे । तुभ्यमेतावद् वेतनं दीयते तत्स्वीकुर्वन् एतावन्तं कालं त्वं मम कर्मकरः सेवको भव । तुम्हे इतना वेतन मिलेगा इतने समयतक कार्य करो । द्रव्य देकर निजी अधिकार करना क्रय है । जैसे-मकान खरीदा । जब परि उपसर्ग लगेगा तब किराये पर लेना भी अर्थ होगा । निश्चित काल तक नौकर रखना । यथा शतेन शताय वा परिक्रीतः भृत्यः । परिक्रयणे=खरीदनेमें साधकतमं शतम् अस्ति । तत्र सम्प्रदानसंज्ञा चतुर्थी यदा सा न, तदा करणे तृतीया शतेन इति । चाहे सौ रुपये हो या सुवर्णपञ्चशतेन पञ्चशताय वा परिक्रीता गौः । (वा०) तादर्थ्ये—तस्मै कार्याय इदं तदर्थं, कारणम् । किसी कार्यके लिए जो साधन है (अर्थके साथ नित्यसमास तदर्थस्य भावः उस साधनके भावःसत्ता उपस्थितिः तत्वं) तादर्थ्य मे ब्राह्मणादिगण मानकर ष्यञ् । जो भाव अर्थमें हुआ है, सम्बन्ध अर्थमें होंगे । कृतद्धितसमासेभ्यः सम्बन्धाभिधानं भावप्रत्ययेन । कृत्तद्धित समाससे

ज्ञापिते च)। वाताय कपिला विद्युत् ॥ नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्यो-गाच्च ।२।३।६। एभिर्योगे चतुर्थी स्यात् । हरये नमः । प्रजाभ्य स्वति । अग्नये

भाव विशेषण अर्थमें जो प्रत्यय हैं उनका सम्बन्ध अर्थः । वह सम्बन्ध अनेक प्रकार का है। केवल कार्यकारणभाव ही नहीं, किन्तु उपकार्य उपकारक सम्बन्ध भी इष्ट है जो उपकार के योग्य है, उसीसे चतुर्थी उपकारक से नहीं । भाष्यमें यूपाय दारुः, कुण्डलाय हिरण्यम् उदाहरण । यूप=स्तम्भ यज्ञ का खम्भा, खूटा उपकार के योग्य योग्य है । उससे चतुर्थी यूपाय दारु, लकड़ी उपकारक साधन है उससे नहीं । सुवर्ण उपकारक है किन्तु उपकार्य कुण्डलसे चतुर्थी । इसी भावका भावपूर्ण उदाहरण मुक्तये हरिं भजति । मींक्षके लिए भगवानको भजता है। उपकार्य मुक्ति हैं। उपकारक भजन, जन्यजनक सम्बन्ध भी तादर्थ्यका अर्थः । मुक्तिर्जन्या । तादर्थ्ये चतुर्थी मुक्तये इति । प्राप्यप्रापकसम्बन्धभी–दयालवे दधि दीयतां, पेट बिगड़ा है उपकारक दही है, प्रापक है और दयालु उपकार्य प्राप्यसे चतुर्थी । जिससे दयालुका उपकार कल्याण है । उपकारकसे चतुर्थी न होनेसे, दारु दधि हरि आदिसे चतुर्थी नहीं हुई । यदि ऐसा तब सभी उपकार्यसे वार्तिक द्वारा चतुर्थी होगी । चतुर्थी सम्प्रदाननेसे सम्प्रदानसंज्ञा विधान व्यर्थ होगा । तन्न हरये रोचतेके लिए आवश्यक । विप्राय गां ददातिमें भी तादर्थ्य चतुर्थी नहीं मिलेगी । (वा०) उत्पातेन उत्पात कार्य है । प्राणियोंके शुभ या अशुभ सूचक आकस्मिक अनायास भूतविकार क्षोभ, प्रकृतिमें रङ्ग वदलसे (ज्ञापिते सूचिते । शुभ अशुभ सूचक अर्थमें वर्तमान शब्दसे चतुर्थी कहें । प्रकृतिका स्वाभाविक रूप बदलना ही उत्पात है । उससे शुभकी सूचना मिलती है । यथा वाताय कपिला विद्युत=भूरेरंगका आकाश तूफानी आंधी झञ्झावातकी सूचिका । वातायमें चतुर्थी, जो उत्पात प्रकृतिमें विकारसे ज्ञापित सूचित है ।

> वाताय कपिला विद्युद्, आतपायाऽतिलोहिनी ।
> पीता वर्षाय विज्ञेया, दुर्भिक्षाय सिताऽभवत् ॥

लोहिनी=लालरंगकी बिजली आतपाय तीव्र धूप घोरघामके लिये । पीली—बिजली वर्षाके लिए, सितां सफेद दुर्भिक्ष अकालकी सूचना देती है ।

उपपप पदके सम्बन्धमें होनेवाली चतुर्थी प्रस्तुत करते हैं (८) नमः नमस्कार, स्वस्ति कल्याण, स्वाहा (देवताको दान) स्वधा पितरोंको दान । अलं (सशक्त) वषट् (दान) इन अव्यय शब्दोंके योग सम्बन्धमें चतुर्थी हो । यथा—हरये नमः (हरिको नमस्कार) नमः शब्दयोगे (नमः स्वस्ति) आदि सूत्रेण चतुर्थी । प्रजाभ्यः स्वस्ति । प्रजामात्रका कल्याण हो । स्वस्तियोगे चतुर्थी । अग्नये स्वाहा अग्निको । पितृभ्यः स्वधा पितरोंको

स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः, समर्थः, शक्त इत्यादि॥ ध्रुवमपायेऽपादानम् ।१।४।२४। अपायो विश्लेषः, तस्मिन् साध्ये ध्रुवमधिभूतमादानम्। अपादाने पञ्चमी २।३।२८। ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात्पतति इत्यादि॥ जनिकर्तुः प्रकृति १।४।३०। जायमानस्य हेतुरपादानं

देता है। स्वधा योगे चतुर्थी। अलमिति सूत्रमें अलं शब्द पर्याप्त (पूर्णता) अर्थका ग्राहक है। दैत्योंकेलिए भगवान् अलं=पर्याप्त, समर्थ' पूर्ण हैं। अलंशब्द प्रभु समर्थ, शक्तका भी बोधक है। उन सभीके योगमें चतुर्थी हुई। वषट् (वेदमें प्रयुक्त) का भी दान अर्थ। इति चतुर्थी। अथ पञ्चमी ङसिभ्यां भ्यस का अवधि सीमा (जहां से क्रिया आरम्भ हो) अर्थः। (९) अपायः अपैति विश्लिष्यति। विभाग, विश्लेश अलग होने की क्रिया, तस्मिन्साध्ये=उस क्रियाके रहनेपर जो ध्रुव स्थिर निश्चित अवधिभूत, सीमा-क्रियाका अलगाव जहांसे हो, उस अवधिभूत कारकको अपादान-संज्ञा हो। अपादीयते क्रियायाः आरम्भः विभागः क्रियते यस्मात्तत् अपादानम्। विभागजनकव्यापारानाश्रयत्वे सति विभागाश्रयत्वम् अपादानत्वम्। यथा-धावतो अश्वात्पतति (भागते हुए घोड़े से गिरता है) देवदत्तका घोड़ेसे पतन गिरना, अलगाव होना है। विभाग विश्लेष, अपायजनक; विभाग क्रियाकी अवधि, सीमा, शुरूआत ध्रुव अश्व है। तस्य अपादानसंज्ञा।

(१००) अपादानसंज्ञकसे पञ्चमी हो। अश्वात्में पञ्चमी हुई। ग्रामात् आगच्छति गाँवसे आता है। आनेकी क्रिया गाँवसे शुरू हो रही हैं। विभागपूर्वक संयोगके अनुकूल क्रियाकी अवधि अलगावका आरम्भ ग्रामसे है तस्य अपादानसंज्ञा। इति पञ्चमी।

जनि०=जनन, उत्पत्तिः। जनी प्रादुर्भावे, प्रकट होना, अकर्मक दिवादिः, 'इणजादिभ्य भावे इण्। जनिबध्योश्च वृद्धिनिषेध।। जायमानस्य=जायते असौ जायमानः उसकी प्रकृति करण, हेतुको अपादानसंज्ञा हो। लटः शानच। ज्ञाजनोर्जा आनेमुक्। ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते। हिरण्यगर्भात्—ब्रह्मासे प्रजा पैदा होती है। जैसे घटकी उत्पत्तिमें कुलाल निमित्तकारण है, प्रजाकी उत्पत्तिमें कारण-हेतु-प्रकृति ब्रह्मा की अपादानसंज्ञा पञ्चमी। ब्रह्मणः षष्ठीके साथ समास नहीं होता, तृजकाभ्यांके निषेधसे। यहाँ प्रकृतिशब्द सभी हेतु—कारकका स्मारक हैं। पुत्रात्प्रमोदो जायते गोमयात् वृश्चिकाः जायन्ते, गोबरसे बिच्छू होते हैं। उपादानकरण पुत्र गोमय प्रकृति है ऐसा भाष्यकैयट मत। वृत्तिमते कोई भी कारण बुद्धिकल्पितविभाग हो तब ध्रुव-मपायेसे पञ्चमी सिद्ध। मायोपहितमीश्वरचैतन्यं गृह्यते, तदा सर्वकार्योपादानमिति

स्यात्। ब्रह्मणः प्रजा प्रजायन्ते। (ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च)। प्रासादात्प्रेक्षते। आसनात्प्रेक्षते। प्रासादमारुह्य, आसने उपविश्य प्रेक्ष्या इत्यर्थः। **विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्।२।३।२५।** गुणे हेतावस्त्रीलिंगे पञ्चमी वा स्यात्। जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः। गुणे किम्? धनेन कुलम्। अस्त्रियां किम् बुद्ध्या मुक्तः। विभाषेति योगविभागादगुणे स्त्रियां च क्वचित्, धूमादग्निमान्। नास्ति घटोऽनुपलब्धेः।

वेदान्तिनः। ल्यब् लोपे ल्यप्प्रत्यय (अपूर्णकालकी क्रिया) अन्तमें हो, लोप=अदर्शन अश्रवण अनुच्चारण अप्रयोग, विनाश हो किन्तु उसका अर्थ जान पड़े गम्यमान-प्रतीत हो, तब कर्ममें और अधिकरण अर्थमें पञ्चमी हो। ल्यप् शब्द अपने अर्थका हो। यथा—प्रासादात्प्रेक्षते आरुह्य महलपर चढ़कर देखता है। ल्यबन्त आरुह्य के लोपसे उसका कार्य प्रासादमे पञ्चमी। एवं आसनात्प्रेक्षते आसनपर उपविश्य—बैठकर देखता है। बैठनेका आधार आसनको अधिकरणसंज्ञा बाधकर पञ्चमी। क्त्वाके लोपमें भी ऐसी दशा।

विभाषा=विभिन्ना भाषा। पञ्चमी तृतीया च, हेतौ आये। जो शब्द गुण-वाची है, हेतु कारण भी है (बन्धनका) स्त्रीलिंग नहीं है, उससे पञ्चमी विकल्पसे हो। यथा जाड्यात् जाड्येन बद्धः। मूर्खताके कारण बांधा गया। जडस्य मूर्खतायाः भावः जाड्यम् अज्ञानं जड़ता के गुणवाचक होनेसे गुणवचन ब्राह्मणादिभ्यः ष्यञ्। जाड्यशब्दात् हेतुभूतात्स्त्रीलिंगरहितात् गुणवाचकात्पञ्चमी, तृतीया च। सूत्रमें गुणेति कि गुणवाचकशब्दसे पञ्चमी क्यों? इसलिए कि जहाँ द्रव्य हेतु हो, उससे पञ्चमी न हो। यथा धनेन कुलं, यह वंश धनसे प्रतिष्ठित है। धन प्रतिष्ठा का हेतु है, किन्तु द्रव्य होने से पञ्चमी नहीं हुई। सूत्रमें अस्त्रियां=स्त्रीलिंगका न होना, ऐसा क्यों? इसलिए कि गुणवाचीशब्द यदि स्त्रीलिंग हों, उससे पञ्चमी न हो जाय। यथा बुद्ध्या मुक्तः शशकः सिंहेन। खरगोश सिंहसे बुद्धिसे मुक्त हुआ। बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्। मुक्तिमें बुद्धि हेतु गुण है, स्त्रीलिंग भी है, अतो न पञ्चमी। अत्र शङ्का—धूमादग्निमान्। धूमसे अग्निवाला सिद्ध हैं। धूमात्में पञ्चमी कैसे? वह तो द्रव्य है। अतः मूलमें बोले कि—'विभाषा' अंशको योगात्=सूत्रविभागात् अलग पढ़नेसे हेतौ आवेगा। हेतु अर्थमें पञ्चमी विकल्पसे हो, इतना, ही अर्थ होगा। गुण हो द्रव्य किसी हेतुसे पञ्चमी सम्भव। धूमात्में पञ्चमी साधु। ततः गुणेस्त्रियां=इस दूसरे विभागमें विभाषा आयेगी। जाड्यात् बद्धः इत्यादि। विभाषासे ही विकल्प सिद्ध था, गुणे अस्त्रियां व्यर्थ होकर प्रमाण बने कि जो गुण नहीं, द्रव्य है, जो स्त्रीलिंग है वहाँ भी कदाचित्पञ्चमी हो। यथा—अगुणका उदाहरण धूमात्—धूमसे अग्निवाला, अग्निमानमें धूमहेतु है द्रव्य भी। ततः पञ्चमी, स्त्रीलिंगसे पञ्चमीका प्रमाण। नास्ति घटः घड़ा नहीं है क्योंकि

लब्धेः ॥ पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।२।३।३२। एभिर्योगे तृतीया स्यात् । पञ्चमीद्वितीया च । पृथग् रामेण रामाद् रामं वा । एवं विना, नाना ॥ अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ।२।३।२९। अन्य इत्यर्थग्रहणम् । इतरग्रहण प्रपञ्चार्थम् । अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् । आराद् बनात् । ऋते

दिखाई नहीं पड़ता उपलब्धिः प्राप्तिः दर्शनं, विज्ञानं तस्य अभावः अनुपलब्धिः अलाभः नञ्=तत्तपुरुष हेतु स्त्रीलिंग है पञ्चमी हुई अनुपलब्धेः । बाहुलकं प्रकृतेस्तनुः दृष्टेः वार्तिकं प्रमाणम् ।

। ६०३ । पृथक् विना नाना अलग अभाव, अनेक अर्थवाचकशब्दके योग सम्बन्धमें तृतीया हो, उसके अभावपक्षमें पञ्चमी द्वितीया भी । अपादाने पञ्चमी, षष्ठ्यतसर्थप्रयत्येन, एेनपा द्वितीया, पृथक् विना, ऐसा सूत्र पाठक्रम है । स्वरितकी प्रतिज्ञा न होनेसे षष्ठी नहीं आयेगी । पञ्चयी द्वितीया । अत्र शङ्का—सूत्रे अन्यतरस्यां किमर्थं ? यतोहि यदा तृतीया न, तदा द्वितीया एव भविष्यति, सन्निहितत्वात्, समीपमें है, पञ्चमी दूर है । षष्ठ्यतसर्थकी अनुवृत्ति नहीं । अतः पञ्चमीका संग्रह हो समुच्चयार्थम्=एकत्रीकरणार्थम् । एकस्थलमें तीनों विभक्तियोंके संग्रहके लिए अन्यतरस्यां अथवा मण्डूकप्लुतिसे संग्रहके लिए । यथा पृथग्रामेण रामसे अलग, रामप्रतियोगिक भेदवान् रामका अभाव अथवा उससे भिन्न अर्थमें पृग्शब्दसम्बन्धे उक्तसूत्रेण तृतीया रामेण, पञ्चमी रामात्, द्वितीया रामम् । इन विभक्तियोंका अर्थ भेद है । पृथग्विना नाना त्रयो भेदार्थकाः । एवं विना रामेण, नाना रामं । रामस्य वर्जने (विना) नानासुखं नास्ति । तीनोंमें, योगमें भेद अर्थवाली विभक्ति । पृथग्विनान्तरेणार्थे हिरुग्नाना च वर्जने । विना नारी निष्फला लोकयात्रा । नो लाइफ विदाउट वाइफ । नारीके विना नीरस संसार, अथवा नाना नारी निष्फला लोकयात्रा । बहुपत्नी बीहड़ संसार ।

अन्य, आरात, इतर, ऋते, दिक्शब्दं अञ्चु उत्तरपद, आच्, आहि इन आठशब्दोंके सम्बन्धमें पञ्चमी हो । युक्त आया । युज् धातुसे अन्य शब्दोंके अर्थमें दूसरे शब्द आये हों, उनके योगमें पञ्चमी साधनके लिए बोले अन्य-अर्थग्रहणमिति-भिन्ने अर्थे अम्बन्धे पञ्चमी । यदि ऐसा तर्हि इतरशब्द पढ़ना व्यर्थ है अन्यअर्थमें आने से । तब कहा इतरशब्दः प्रपञ्चार्थः । अर्थ विस्तार के लिए पढ़ा । पचि विस्तारे धातुसे पञ्च बना । पचिमें इकार इत् इदितो नुम् अनुस्वार परसवर्ण पञ्च । विस्तारके अनुकूलक्रिया प्रपञ्च, तात्पर्यग्राहक, अन्यशब्द भिन्न आदि अर्थको भी कहे । इस प्रयोजनका प्रकाशन इतरका विशेषफल (इतरस्त्वन्यनीचयोः इति अमरकोशे) नीच अर्थके ग्रहणके लिए इतरः—अस्माद् तारो मन्दो वा (इससे ऊँचा या हल्का) पञ्चमी सिद्ध । अन्य, भिन्न, इतर शब्दोंका भेदवान् अर्थमें लक्षणा । अत उपलक्षणम् । इनके

कृष्णात् । पूर्वो ग्रामात् । दिवि दृष्टः शब्दो दिक्शब्दः । तेन सम्प्रति देशकाल-वृत्तिना योगेऽपि भवति । चैत्रा त्पूर्वः फाल्गुनः । प्रक् प्रत्यग्वा ग्रामात् । आच् । दक्षिणा ग्रामात् । आहि, दक्षिणाहि ग्रामात् । अपपरी वर्जने ।१।४।८८। एतौ

योगे सम्बन्धमें पञ्चमी कृष्णात् इति । कृष्ण प्रातियोगिक भेदवान् कश्चन अन्यः भिन्नः इतरः पुरुषः । कृष्णसे अतिरिक्त कोई है । षष्ठीको बाधकर सूत्रमें पढ़े गये शब्द अवधि नियम रहते हुए भी, उनका संगोग विभाग न होनेसे अपादानकारक असम्भव था, अतः वार्तिक पढ़ा । यद्यपि घटो न पटः, घड़ा वस्त्र नहीं है भिन्न है । नञ्का भेद अर्थः, तव घटः में पञ्चमी क्यों नहीं ? निपातके (द्योतक है,) वाचक न होनेसे । आरात् वनात्=वनसे दूर या पास । आराद्दूरसमीपयोः योगे सम्बन्धे वनात् इत्यत्र पञ्चमी । दूरान्तिकार्थेभ्यः से प्राप्तषष्ठीको बाधकर । ऋते कृष्णात्=एकारान्त अव्यय वर्जन रोकने अर्थके ऋतेके सम्बन्धमें पञ्चमी । तृतीया कृष्नेन, कृष्णके बिना सुख नहीं । वयँ सुखं नास्ति । यदि ऐसा तब (क्वकर्मप्रध्वंसः फलति पुरुषाराधनमृते) शिवकी अर्चनाके बिना कर्मबन्धन नष्ट होना फल कहाँ, ऋते योगे आराधनामें पञ्चमी अदृष्ट है साधु कैसे ? आर्षः=ऋषिप्रोक्त प्रयोग होने से । अथवा ततो अन्त्रापि दृश्यतेसे द्वितीया विकल्प (ऋते द्वितीया च) चान्द्रव्याकरणका सूत्र दिक्—दिशावाची जैसे पूर्वपर दक्षिण उत्तर नीचे ऊपर आदि शब्दसम्बन्धमें पञ्चमीका उदाहरण—पूर्वो ग्रामात् । दिशावाचीशब्द पूर्व इति, अन्यतरके सहचार के व्याख्यानसे भी, भिन्न अर्थमें न देखा गया हो, वही लिया जायगा । तस्य सम्बन्धे पञ्चमी ग्रामात् । पूर्वदिशामें वर्तमान गाँवसे आता है । यदि दिशावाची शब्दके सम्बन्धसे पञ्चमी होगी तब चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः अत्र पूर्वशब्दः कालवाचकः नहि दिशावाची, तस्य योगे चैत्रात् इत्यत्र कथं पञ्चमी ? तदा अवदत् मूले दिशि=दिशाअर्थमें देखा गया शब्द ही दिक् लिया जाय । रूढ़ि शब्द होनेसे दिशा विशेषका वाचक पूर्व आदि शब्द लिए जायेंगे । ऐन्द्री—इन्द्रो देवता अस्याः नहीं ली जायेगी । दिशासे भिन्न अर्थमें जो न देखा गया हो वही लिया जानेसे ककुब् आदि बँच गये । तेन=सम्प्रति दिशा अर्थमें देखा गया पूर्व आदि शब्द (देश अर्थमें) वृत्तिना=वर्तमानशब्दके योगमें भी पञ्चमी होती हैं । अतएव चैत्रात्पूर्वः—काल समय महीना वाची चैत्र शब्दसे पञ्चमी पूर्वके योगमें । चैत्रसे पहले फाल्गुन है ग्रामके प्राक्=गाँवके पूर्व, या प्रत्यङ् पश्चिम, अत्र अवधिः ग्रामः तेन कारणेन पञ्चमी । आच् दक्षिणस्यांदिशि अदूरेभवा अर्थमें आच्प्रत्यान्त दक्षिणाशब्दसम्बन्धे ग्रामात् इत्यत्र पञ्चमी ।

अपपरि=अप और परिशब्द वर्जन निवारण रोकने अर्थमें हो, तब दोनोंको कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो । कर्मक्रियां प्रोक्तवन्तः ये ते कर्मप्रवचनीयाः का अधिकार द्विवचन । वर्जने (छोड़कर) ऐसा अर्थ क्यों कहे, इसलिए कि जहाँ अप या परिका

वर्जनार्थे कर्मप्रवचनीयसंज्ञौ स्तः ॥ आङ् मर्यादावचने।१।४।८९। आङ् मर्यादायामुक्तसंज्ञः। वचनग्रहणादभिविधावपि ॥ पञ्चम्यपाङ्परिभिः।२।३।१०। एतैः कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी। अप हरेः, परि हरेः संसारः। परिरत्र वर्जने साहचर्यात्। लक्षणादौ तु-हरिं परि। आ मुक्तेः संसारः। आ सकलाद् ब्रह्म॥

वर्जन अर्थ न हो, वहाँ उक्तसंज्ञा न हो जाय। परिषिञ्चति, सर्वतः सिञ्चति चारो तरफसे सीचता है। यहाँ परिका व्यापक चारों तरफसे अर्थः, वर्जनेऽर्थे परिकी उपसर्गसंज्ञा होनेसे उपसर्गात्सुनोति से षत्व। आङ्=शब्द मर्यादा, सीमा अवधि परिणाम मात्रा अर्थमें, उक्तसंज्ञः=कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हो। सूत्रमें वचन (उच्चारण) क्यों पढ़ा। मर्यादामें अङ्को कर्मसंज्ञा कहना पर्याप्त था। अतः वचनशब्द व्यर्थ होकर प्रभाव डालता है कि मर्यादाके साथ अभिविधि अर्थ भी लिया जाय। मर्यादा शब्दो यत्र उच्यते तन्मर्यादावचनम्। आङ् मर्यादाऽभिविध्योः मर्यादा (सीमा) अभिविधि=व्यापक अर्थमें आङ् देखा हो तब कर्मप्रवचनीयसंज्ञा

पञ्चमी—आङ् अप परि इनको कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हुई हो तब इनके प्रभावितसे पञ्चमी हो। यथा अपहरेः संसारः भगवानसे अलग, (हरिको छोड़कर) है। परिहरेः संसारः। हरिं वर्जयित्वा जनिः, जन्म भृतिः मृत्युचक्रात्मकं पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, संसरणं, अपपरिशब्दौ वर्जनेऽर्थे स्तः तस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा। अपपरि वर्जने सूत्रेण प्रभावितः हरिः शब्दः पञ्चमीपात्रम् हरेः वृक्षं परिविद्योतते। वृक्षके चारो ओर बिजली चमकती है। भक्तो हरिं परि। भक्त भगवानके चारो तरफ है। यहाँ लक्षण अर्थमें कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, द्वितीयाको परत्वात्=(अपवाद होकर भी) बाधकर पञ्चाम्याङ्परिभिः पञ्चमी क्यों नहीं तब बोले—पञ्चमी विधायकसुत्रमें परिशब्दका वर्जन अर्थ है। परेर्वर्जने वा वचनं=वार्तिकसे वर्जन अर्थमें परिशब्दसे द्वितीया भी हो। पञ्चमी विधानमें वर्जनअर्थमें अपने साथ परि भी वर्जनार्थक ही लिया जाय। जहाँ लक्षण अर्थ लेना हो, वहाँ द्वितीया ही होगी, हरिं परि—हरिसे परे संसारसे मुक्ति। मर्यादा अर्थमें अंगका उदाहरण—मुक्ति मर्यादीकृत्य—संसारका जीवन मरणबन्धनकी मर्यादा सीमा-अवधि कहाँ तक है मुक्ति—मोक्ष तक। ब्रह्मलीनता, तप मोक्षके बाद संसारबन्धन नहीं रहता अर्थका प्रकाशक आङ् इत्यस्य आङ् मर्यादावचने सूत्रेण कर्मप्रवचनीयसंज्ञा तस्य योगे पञ्चमी मुक्तेः। अभिविधि=व्यापक अर्थमें आङ्का उदाहरण आसकलात्=सम्पूर्णम् अभिव्याप्य ब्रह्म वर्तते। ब्रह्माण्डव्यापनकर्ता अर्थ प्रकाशक आ इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञां लभते, तदा तस्य योगे पञ्चमी सकलात्।

प्रतिनिधि=स्थानापन्न सदृश दूसरा व्यक्ति मुख्यस्य अभावे सति तत्सदृश उपादीयते, स्वीक्रियते प्रेष्यते, स प्रतिनिधिः।) शिष्यः गुरोः प्रतिनिधिः। पुत्रः

प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः १।४।९२। एतयोरर्थयोः प्रतिरुक्तसंज्ञः स्यात् ॥ प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ।२।३।११। अत्र कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी। प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति । तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् ॥ षष्ठी शेषे ।२।३।५०। कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिशेषः, तत्र षष्ठी । राज्ञः पुरुषः । कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षयां षष्ठ्येव । सतां गतम् । सर्पिषो जानीते ।

पितुः, दूतः देशस्य प्रतिनिधिः । प्रतिदान = दत्तस्य प्रतिनिर्यातनं दिये हुएके बदलेमें देना । वस्त्रके बदले द्रव्य देता है । पुस्तकेभ्यः पुस्तकानि ददाति । जूटके बदले गेहूँ देता है । दोनों अर्थोंका प्रकाशक प्रतिको उक्त = कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो ।

जिस व्यक्तिका जो प्रतिनिधि, स्थानापन्न, बदलेमें हो, प्रतिदान जो दिया गया हो, उससे कर्मप्रवचनीयसंज्ञक प्रतिके सम्बन्धमें पञ्चमी हो । सूत्रमें 'स्यात्' पढ़ा उससे (जिसका प्रतिनिधि, जिसका प्रतिदान हो) पञ्चमी कैसे ? यहाँ षष्ठीके अर्थमें पञ्चमी माने । यस्मात्—इस पञ्चमी उच्चारणके ज्ञापनसे षष्ठीके स्थानमें पञ्चमी । परन्तु ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र । किसीके व्यर्थ होकर ज्ञापनसे जो नियम बनता है वह सब जगह नहीं लगता । अतः कृष्णस्य प्रतिनिधिः भी साधु है। जिसका सम्बन्धी जिसका प्रतिदान हो उससे पञ्चमी प्रतिके योगमें है । प्रद्युम्नः युद्धाद्धौ कृष्णसादृश्यवान् संग्राममें कृष्णके समान प्रद्युम्न हैं, जो कृष्णके प्रतिनिधि, सदृश, स्थानापन्न कृष्णसे पञ्चमी । प्रतिशब्दस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा तस्य योगे पञ्चमी, यस्य सादृश्यो अर्थः । प्रतिशब्द समानता अर्थका प्रकाशक है, मुख्य (कृष्ण) से है । गौणसे नहीं । तिलेभ्यः=तिलके बदले माषान् = उरद देता है क्योंकि उधार लिया था । ऋणत्वेनं गृहीतान्, तस्य स्थाने तस्य मूल्यात्मना माषान्प्रत्यर्पयति, बदलेमें देता है । प्रति इत्यस्य कर्मप्रचनीयसंज्ञा, प्रतिदानभूताः तिलाः, तस्मात्पञ्चमी तिलेभ्यः इति । गोभ्यः प्रति अश्वान् ददाति अथ षष्ठी (ङस् ओस् आम्) का के की अर्थ शेषे—उक्तादन्यः शेष ।

अभीतक कारक और प्रातिपादिकार्थ उक्त हुए विभक्ति कही गयी । उस अर्थसे व्यतिरिक्तः बचा हुआ (अवशिष्ट) स्वस्वामिभाव, जन्यजनक आदि सम्बन्ध शेष, है, सभी सम्बन्धअर्थमें षष्ठीविभक्ति हो । यथा —राज्ञः पुरुषः । राजाका पुरुष स्वामिसेवकभाव सम्बन्धको कहनेके लिए राज्ञःमें षष्ठी हुई । राजस्वामिकः सेवकः पुरुषः । राजासम्बन्धी पुरुष । राजा विशेषण है जो विशेषण हो उसीका सम्बन्ध कहने वाली षष्ठी हो । कर्मादीनां=कर्म करण अधिकरण आदि कारकको सम्बन्ध-मात्रविवक्षा अर्थमें भी षष्ठी हो । यथा–सन्तः वनम् अगमन् इति सद्भिः सतांङ्गतम् । यहाँ सज्जनका गमनके साथ केवल सम्बन्ध अर्थ बोधिका षष्ठी । सर्पिषो जानीते । सर्पिषोपायेन प्रवर्तते घीके लिए घूमता है । केवल सम्बन्ध मात्रमें षष्ठी । घी सम्बन्धी ज्ञान । मातुः स्मरति माता सम्बन्धी स्मरण अर्थमें षष्ठी, स्मरण-

मातुः स्मरति । एधो दकस्योपस्कुरुते । भजे शम्भोश्चरणयोः फलानां तृप्तः । कर्तृकर्मणोः कृति ।२।३।६५। कृद्योगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी । कृष्णस्य कृतिः । जगतः कर्ता कृष्णः । गुणकर्मणि वेष्यते । नेताऽश्वस्य स्रुघ्नं स्रुघ्नस्य वा । कृति किम ?

क्रियाका कर्म होनेपर भी सम्बन्धकी विवक्षासे मातुः में षष्ठी । एधोदकस्य=लकड़ीपर जलका गुण चढ़ता है । दक (जलमें कर्मकी अविवक्षासे षष्ठी) शम्भोः शङ्कर भगवान्‌के चरणोंमें भजे सेवा करता हूँ । चरण रूप कर्मकी अविवक्षासे चरणयोः में षष्ठी । इति षष्ठी ।

कृदन्तपरे रहते या सम्बन्धमें अनुक्तकर्ता कर्म अर्थमें षष्ठी हो, कर्ताकर्ममें षष्ठी क्यों कहा ? इसलिए कि करण आदिमें षष्ठी न हो । शस्त्रेण भेत्ता । तृच्‌के योगमें तृतीयाको बाधकर षष्ठी नहीं हुई । कर्तामें षष्ठीका प्रमाण (कृष्णस्य कृतिः) । कृष्णकी रचना संसार, गीता । फलजनकक्रियावाचक कृ से भावे-क्रिया अर्थमें स्त्रियांक्तिन् स्त्रीलिंगबोधक ति । कृतिः रचना, तस्य कर्ता कृष्णः कृद्योगे सम्बन्धे कर्तरि कर्ता अर्थे षष्ठी कृष्णस्य (कृष्णसे बनी हुई सृष्टि) कृष्णकर्तृका । जब अनुक्तकर्ता, अनुक्तकर्म हो तब षष्ठी । भावमें प्रत्ययसे कर्म अनुक्त भी है । भावे रचना । कर्मणि षष्ठीमें प्रमाण — (जगतः कर्ता) कृष्णः संसारका रचयिता कृष्ण । कृ — धातुसे कृत्प्रत्यय तृच् निर्माणके अनुकूलक्रियाका आश्रय कृष्ण-कर्ता, निर्माणफलका आधार कर्म जगतः । अत्र कृत्सम्बन्धे कर्तृकर्मणोः सूत्रेण षष्ठी । अनुक्तकर्मसे षष्ठी । विश्वस्य पालकः परमात्मा, गुणकर्मणि वा इष्यते, गौण=अप्रधान कर्ममें षष्ठी विकल्पसे होती है । कुछ धातुके दो कर्म एक प्रधान कर्म है । वार्तिकसे अप्रधानकर्ममें विकल्प षष्ठीकी सूचनासे सिद्ध है कि प्रधान कर्ममें नित्यही षष्ठी । इयं वार्ता अकथितञ्च सूत्रे भाष्ये । तत्र अजां ग्रामं नयति । अजा प्रधानकर्म, गाँव गौणकर्म । नयतिकी जगह नेता कह दें तब ग्राममें विकल्प षष्ठी, अजामें नित्य, तदनुसार नेता अश्वस्य । स्रुघ्न देशमें घोड़े को ले जाने वाला । नी धातु से कर्ता अर्थ में तृच् नेता-नयनकर्ता, पहुँचाने वाला । कृद्योगे अनुक्ते अप्रधाने कर्मणि षष्ठी । स्रुघ्नस्य, पक्षे द्वितीया स्रुघ्नम् । अश्वः प्रधानकर्म नित्य षष्ठी, स्रुघ्नः गौणकर्म । कृति किं ? सूत्रमें कृदन्त परे कर्ता कर्मस्थाने षष्ठी क्यों ? कर्ताकर्मसे क्रियाका आक्षेपः । क्रियावाची धातु ही होगा, उससे दो प्रत्यय कृद्तिङ् । तिङन्तपरे न हो इसलिए कृद्ग्रहणकरें । ओदनं पचति ति (ल् स्थाने आदेश है) आदेशके योगमें न लोकाव्ययनिष्ठा-निषेध करेगा । ओदनंमें षष्ठी नहीं होगी, शतेन क्रीतः शत्यो अश्वः । सौ रुपये से खरीदा गया घोड़ा । तद्धितिसे कर्म अश्व उक्त है । षष्ठी नहीं होगी । शेषकी विवक्षामें षष्ठी होती ही है, कोई बाधा नहीं । सूत्रे कृतिग्रहणं किमर्थं ? उत्तर बोले-तद्धिते=तद्धितप्रत्ययका सम्बन्ध कृदन्तके साथ जुड़ गया हो,

तद्धिते भा भूत् । कृतपूर्वी कटम् । उभयप्राप्तौ कर्मणि ।२।३।६६। उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन्कृति तत्र कर्मण्येन षष्ठी । आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन ॥ कृत्यानां कर्तरि वा ।२।३।७१। षष्ठी । मया मम वा सेव्यो हरिः ॥ क्तस्य च वर्तमाने ।२।३।६७। वर्तमानार्थस्य क्तस्य योगे षष्ठी । 'न लोके'ति वक्ष्यमाणनिषेधस्यापवादः । राज्ञां

वहाँ षष्ठी रोकनेके लिए कृति पढ़े । यथा कृतपूर्वीकटं, कटः पूर्वं कृतो अनेन लौकिविग्रहे । कृतका पूर्व के साथ सुप्सुपासे समासे । कृतका कर्म कट, कृधातुसे कर्ममें क्त कृतः (बनायी गयो चटायी) कृतका पूर्वके साथ समास, कृतपूर्वः कृतः पूर्वः अस्ति अस्य कृतपूर्वी 'सपूर्वाच्च' इनि प्रत्यये । यहाँ तद्धित कृदन्तसे हुआ है । एकार्थीभाव हो जानेसे तद्धिप्रत्यका अर्थ अधिक हो गया । तद्धिताधिक्ये षष्ठी मामूत् ।

कर्ता कर्म दोनोंको षष्ठी प्राप्त हो वहां कृदन्त परे, कर्म में ही षष्ठी हो, कर्तामें नहीं । इससे सिद्ध है कि दोनोंकी प्राप्ति दशामें कर्तामें षष्ठीका निषेध । पूर्वसूत्रेण सिद्धे: नियमार्थं सूत्रं = कर्मण्येव षष्ठी न तु कर्तरि । कर्तामें षष्ठीनिषेधका फल है । (गवां दोहऽगोपेन) आश्चर्य है कि जो अगोपेन=गोपालन नहीं, करता, वह भी गाय दुहता है । अगोपकर्ता गायकर्म, दोहनक्रिया [अगोपमें कर्तरि षष्ठी] गवाम् अत्र कर्मणि षष्ठी प्राप्ता, कृतिपरे दोहः, कृदन्तसम्बन्धे कर्मणि षष्ठी गवाम् । अनुक्ते कर्तरि तृतीया अगोपेन । अतएव ओदनस्य पाकः ब्राह्मणानाञ्च प्रादुर्भाव इत्यत्र कर्मण्येव=कर्ममें ही षष्ठी । बहुव्रीहिसमासका फल है । एक ही कृदन्त शब्दपरे हो तभी कर्मणि षष्ठी । जहाँ भिन्नक्रिया हो, भिन्न-भिन्न कृदन्त हो वहाँ यह नियम नहीं लगता । अतएव द्विदलस्य पाकः क्षत्रियाणां प्रादुर्भाव इत्यत्र नियमो न लगति । तत्पुरुषसमासमें नियम सम्भव है ।

कृत्यानां = कृत्याः सूत्रके अधिकारमें विधान किये गये कुछ कृत्यसंज्ञकप्रत्यय जैसे ण्यत् यत् अनीयर आदिके प्रभावमें कर्ताअर्थमें विकल्प षष्ठी हो । कर्तृकर्मणोः के नित्यषष्ठीको बाधकर । यथा (मया मम) वा सेव्यः मुझसे सेवाके योग्य भगवान है । सेवृ सेवायां, सेवा अर्थक सेवधातुसे हलन्त ऋहलोर्ण्यत् । कर्मणि अर्थे । सेव्यः सेवनीयः सेवनक्रियायाः अनुक्तकर्ता अस्मद्, तत्र नित्यषष्ठी प्राप्ता । कृत्यानां कर्तरि वा पक्षे अनुक्ते कर्तरि तृतीया मया ।

क्तस्य— वर्तमानकाल अर्थमें क्त प्रत्ययके सम्बन्धमें षष्ठी हो । यद्यपि कर्तृकर्मणोः कृतिः से षष्ठी सिद्ध है यह सूत्र क्यों पढ़ा ! तब बोले 'न लोकाव्ययनिष्ठा—सूत्रसे षष्ठीनिषेधको बाधनेके लिए । यथा राज्ञां मतः राजकर्तृकवर्तमानकालिक इच्छाविषयः । मनु अवबोधने, बुध अवगमने, पूजा अर्चायां धातुसे मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च सूत्रेण मनधातोः वर्तमानकाले कर्मणि अर्थे क्त, नकारलोपे राज्ञां मतः । मतिका

मतः बुद्धः पूजितो वा ॥ अधिकरणवाचिनश्च ।२।३।६८ क्तस्य प्रयोगे षष्ठी । इदमेषां शयितम् ॥ न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ।२।३।६९। एषां योगे षष्ठी न । लादेशः कुर्वन्–कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः । उः हरिं दिदृक्षुः अलङ्करिष्णुर्वा । उक–दैत्यान् घातुको हरिः (कमेरनिषेधः) लक्ष्म्याः कामुको हरिः । अव्ययम्–

इच्छा अर्थः बुद्धिके पृथक् पढ़नेसे । राजा अनुक्त कर्ता वर्तमाने क्तप्रत्ययान्तस्य; मतः इत्यस्य योगे कर्तरि षष्ठी । (राज्ञां बुद्धः) । राजा कर्ता यस्य, राजकर्तृकः वर्तमान-कालिक ज्ञानविषयः राजासे समझा हुआ । (राज्ञा पूजितः) राजगुरुः कर्ता यस्य एतादृशवर्तमानकालिकस्य पूजनस्य आश्रयो गुरुः, राजासे वर्तमानमें पूजागया ज्ञानी । क्तप्रत्ययान्तः पूजितः (के संसर्गसे क्तस्य च वर्तमाने सूत्रेण षष्ठी । अत्र शङ्का-पूजितो यः सुरासुरैः, त्वया ज्ञातो घटः । देवता दैत्य दोनोंसे पूजा किये गये । तुमसे घड़ा ज्ञात हुआ । पूजितः और ज्ञातःके योगमें सुरासुरैः त्वया, अत्र षष्ठी कथं न भवति ! भूतकालो अर्थों अस्ति, न तु वर्तमानः । अतो न षष्ठी । मतिबुद्धिः । भूतकालमें क्तका बाध नहीं होगा ।

अधिक्रियन्ते अस्मिन्नधिकरणम् आधारः तं वक्ति अधिकरणवाची, आधारअर्थमें वर्तमानसे क्त प्रत्ययके सम्पर्कमें षष्ठी हो, यह सूत्रभी न लोकाव्यय के निषेध का बाधक है । यथा एषाम् आसितं यह इनका आसन, बैठनेका आधार है । आस्यते उपविश्यते (आसु उपवेशने बैठने अर्थमें) अस्मिन् आसितम्, आसधातोः अधिकरणे अर्थे क्त इट् (च के संसर्गमें) कर्ता अर्थे षष्ठी । एषां शयितं, । शेते अस्मिन् शीङ (स्वप्ने शयनार्थक) धातोः अधिकरणे अर्थे क्त शयितं, विस्तरा पर्यङ्क आदि योगे ऐषां कर्तरि षष्ठी ।

यह इन लोगों का तोषक क्रिया है सकर्मक धातुसे कर्ता कर्म दोनों में षष्ठी । (इदं एषां भक्तस्य भुक्तं) यह इन लोगों के भात का भोजन है । भुजधातोः प्रत्यवसा-नार्थके (भक्षण) अर्थे क्त, भुक्तः क्तस्य सम्पर्के एषां कर्तरि षष्ठी । भक्तस्य कर्मणि षष्ठी । अत्र उभयप्राप्तौ कर्मणि षष्ठी नियमस्तु न लगिष्यति, मध्येऽपवादन्या-याद् कर्तृकर्मणोः कृतिः सूत्रनियमविषयः ।

न लोक—उश्च उकश्च ऊकौ, लश्च उकौ, च=ल, उ, उक्, अव्यय, निष्ठा नहीं होती । उ उक् सवर्णदीर्घे ऊक्ा ल–ऊक आद्गुणे लोक् । लादेशाः =ल स्थाने आदेश सूचनार्थं । लट् लिट् आदि का ग्रहण लकारोंका प्रत्यक्ष प्रयोग न मिलनेसे उनके आदेशही मान्य । यथा (कुर्वन् कुर्वाणः) हरिः भगवान सृष्टि को बनाते हुए हैं । लट् के स्थानमें शतृ–कुर्वन् । वर्तमान कालिकी क्रिया । शानच् कुर्वाणः कर्मसे प्राप्त षष्ठी का न लोकाव्यय—सूत्रसे निषेध अतः द्वितीया । सृष्टिम् अनुक्त कर्म । उ का

जगत्सृष्ट्वा । निष्ठा–दैत्यान् हतवान् विष्णुः विष्णुना हता दैत्याः । खलर्थः-ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा । तृनिति प्रत्याहारः । शतृशानचाविति तृशब्दादारभ्य आ तृनो नकारात् । शानन्–सोमं पवमानः । चानश्–आत्मानं मण्डयमानः । शतृ–वेदमधीयन् । तृन्–कर्ता लोकान् । (द्विषः शतुर्वा) मुरस्य मुरं वा द्विषन् । (सर्वोऽयं

उदाहरण—हरिं दिदृक्षुः । द्रष्टुमिच्छति दिदृक्षति इति दिदृक्षुः सनाशंसभिक्ष उः । सन्नन्त से कर्ता अर्थ में उ । व्यवहारभाव से उकारान्त । हरिदर्शनकी इच्छावाला । हरिकर्मकदर्शनेच्छावान् । कृद्योगे षष्ठी प्राप्ता, न लोक—इत्यनेन निषिध्यते । अत द्वितीया हरिम् । हरिमलङ्करिष्णुः । अलङ्करणं शीलं स्वभावो अस्य [भगवान्की सजावटका स्वभाववाला] तस्य शीलेअर्थे कृधातोः इष्णुच् इत्यस्य सम्बन्धे षष्ठ्याः निषेधः, अथ च द्वितीया । उक प्रत्यय भी सूत्रके उदाहरणका सूचक । यथा दैत्यान्घातुकः=दैत्यानां हननं शीलं स्वभावो अस्य विग्रहे आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ! उसका शील, उसकी कुशलता, उसका धर्म, अर्थके अधिकार में लष-पत-पद-स्थाभूवृषहनकमगमशृभ्यः उकञ् । हनधातुसे कर्ता अर्थमें उकञ्–उपधावृद्धिः । हो हन्तेः-हस्य घः । हनस्तोऽचिण्णलोः इति नस्य त, घातुकः । हननक्रियाकुशलःके योगमें कर्तृकर्मणोः कृतिः सूत्रसे प्राप्त षष्ठीका निषेध, नलोका–सूत्रेण । अतः द्वितीया दैत्यानिति (वा०) कम धातुसे उकञ्प्रयय हुआ हो, उसके योगमें अनिषेधः=नलोकाव्य सूत्रसे षष्ठीका निषेध नहीं होता ।

यथा लक्ष्म्याः कामुकः । लक्ष्मीका लोभी भगवान् है । इच्छा अर्थे कम धातोः लष-पत-पद-उकञ् उपधावृद्धिः, कामुकः इच्छा=जिसका कर्म लक्ष्मी कृद्योगे षष्ठीका निषेध नहीं, वार्तिककी कृपासे । अव्ययके संसर्गमें षष्ठीका निषेध-यथा जगत्सृष्ट्वा हरिः आस्ते । संसारकी सृष्टि करके भगवान बैठे हैं । सृज्धातुसे समानकर्तृकयोः पूर्वकालेऽर्थे क्त्वास्त्वातोसुन्कसुनः अव्ययसंज्ञा, उसका कर्म जगतः में षष्ठी प्राप्तिका न लोकाव्यय से निषेध । हरिः सुखं कर्तुं भक्तस्य प्रभवति । भगवान भक्तका सुख बढ़ानेमें समर्थ है । तुमुन्ण्वुलौ क्रियायांक्रियार्थायां तुमुन् । कृन्मेजन्तः से अव्ययसंज्ञा कर्तुः के योगमें षष्ठीका निषेध, अतएव द्वितीया, सुखमिति । केवल कृदन्त ही ग्राह्य देवदत्त हिंसा तत्कर्मक वर्जनम् । निष्ठासंज्ञक प्रत्ययके उदाहरणका सूचकक्तक्तवतु निष्ठा क्त और क्तवतु दो प्रत्यय निष्ठासंज्ञक हैं । इनके योगमें प्राप्त षष्ठीका निषेध हो ।

विष्णुना हताः भगवानसे दैत्य मारे गये । हन धातुसे भूतकालिक प्राणवियोगका आधार अर्थमें कर्मणि क्त । हतः हतौ हताः विष्णुना । कर्तरि षष्ठीका न लोकाव्यय-सूत्रसे निषेध । अतएव तृतीया । दैत्यान्हतवान् विष्णुः । विष्णुने दैत्योंको मार डाला । भूतकाले कर्ता अर्थे हन धातोःतवत्-हतवान । कृदन्त संबंधे अनुक्त कर्म अर्थेमें

कारकषष्ठयाः प्रतिषेधः)। शेषे षष्ठी तु स्यादेव। ब्राह्मणस्य कुर्वन्। नरकस्य

सूत्रेण षष्ठी निषेधः अतो द्वितीया। खलर्थाः खल प्रत्ययके अर्थवान्से अन्य प्रत्यय उदाहरण संभव। उनके योगमे षष्ठीका निषेध, ईषत्करः। भगवानसे प्रपंचकी रचना अतिसरल है। कृधातोः ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्। कठिनता और सरलता अर्थ बोधक खलप्रत्यय अतिसरलतया क्रियते इति (करः)कर्मणि खल् अनुबन्ध लोपे। कृ अ गुणे कर के योगमें अनुक्त कर्ता हरिसे प्राप्त षष्ठीका उक्तसूत्रसे निषेध अतः तृतीया खल् अर्थ कहनेसे आतो युच् भी स्वीकार। (ईषत्पानः सोमो भवता) आपसे सोमरसका थोड़ा पान, पा धातु से अतिसरलतया या कठिनाईसे पेय अर्थमें युच्। युस्थाने अन। भवता इत्यत्र षष्ठीनिषेधः, किन्तु तृतीया। तृनां सूत्रमें पढ़े तृनशब्दसे प्रत्यय नहीं प्रत्याहार समझें। तृन् इति प्रत्याहारः। कहाँसे कहाँ तक माना जाय। "लटः शतृशानचौ" सूत्रके शतृके तृसे लेकर तृशब्दादारभ्यः-तृन् सूत्र के नकार तक तृन्प्रत्याहार हैं। इसमें शानच् भी आ जाते। शानच् लादेश है केवल तृ अप्रयुक्त। सम्बोधने च तो ससूपूङ्जोः शानन् (ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश) इङ्धार्योः, शत्रकृच्छिणि, द्विषो अमि,सुञो यज्ञसंयोगे, अर्हप्रशासायाम्, आक्वेः, तच्छील तद्धर्मतत्साधुकारिषु तृन् ये सूत्रक्रम है। शानन् उदाहरण—सोमं पवनानः सोमरसको छानता हुआ, पू धातुसे शानन्, अनुबन्धलोप, पूआन शप गुणे अवादेशे मुम्। सोममें प्राप्त षष्ठीका निषेध, क्योंकि पवनक्रियाके अनुक्तकर्म सोमसे षष्ठी प्राप्तिका निषेध, आत्मानं=अपनेको मण्डयमानः अलंकृत कराता हुआ। मडि भूषायां, अलंकारअर्थमें मण्डधातुसे ताच्छील्य वयोवचनअर्थमें चानश्। मण्डनक्रियाके अनुक्तकर्म आत्मन्से प्राप्तषष्ठीका निषेध। अतः कर्मणिद्वितीया आत्मानम्। शतृ—उदाहरण—वेदमधीयन् वेद पढ़ता हुआ।

इङ् धार्योसे शतृ कर्ता अर्थ। अधीयन् शब्दप्रयोगे अध्ययन क्रियायाः अनुक्ते कर्मणि अर्थे वेदशब्दात् षष्ठी निषेधः, अतः कर्मणि द्वितीया यहां परस्मैपद न समझें, उसकी व्यवस्था तस्थाने आत्मनेपद आदेशहोने पर है। चानश शान्नके विषयमें आत्मनेपद न मानें। तृन्--(कर्त्ता लोकान्) संसारको बनाना शील स्वभाव धर्म अर्थमें कृ धातोः तृन्। शानन् आदिकी तरह तृन् भी प्रत्याहारमें आता है। लादेशमें नहीं। लोकान्में षष्ठीका निषेध (वा०) द्विषः अप्रीतौ शत्रुताके अनुकूल क्रियावाचक द्विषधातुसे अमित्रे=दुश्मनी अर्थमें शतृप्रत्यय हुआ हो तब उसके योगमें विकल्पसे षष्ठीका निषेध हो यथा--मुरस्य मुरं वा द्विषन्-मुर नामक दैत्यसे दुश्मनी करता हुआ अर्थ। द्विषधातोः शत्रुअर्थे कर्तरि शतृप्रत्यये, तृन्के प्रत्याहारमें प्रविष्ट होनेसे नित्य निषेध प्राप्त विकल्प, प्राप्तनिषेध विकल्पे। द्विषन् योगे मुरस्य इत्यत्र षष्ठी, पक्षे द्वितीया, मुरं सर्वोऽयं, सभी निषेध कारक षष्ठी के होते हैं। यत्र

जिष्णुः । **अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ।२।३।७०।** भविष्यत्यकस्य भविष्यदाधमर्ण्यार्थेनश्च योगे षष्ठी न । सतः पालकोऽवतरति । व्रजं गामी । शतं दायी । (**निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां विभक्तीनां प्रायदर्शनम्**) किं निमित्तं वसति । केन निमित्तेन । कस्मै निमित्तायेत्यादि । एवं–किं कारणं, को हेतुः, किं प्रयोजनमित्यादि । प्रायग्रहणादसर्वनाम्नः प्रथमाद्वितीये न स्तः । ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः ज्ञानाय निमि-

---

शेषे षष्ठी तत्र न निषेधः । अनन्तरस्य विधिर्भवति प्रतिषेधो । विना व्यवधानमें उपस्थित नियमका विधान या निषेध होता है । जैसे कर्तृकर्मणोः कृतिः से होनेवाली षष्ठीका निषेध समीपस्थ नलोकाव्ययसे, कर्ता, उसी कर्ताकर्ममें शेषत्व—सम्बन्धमात्र की इच्छा होनेपर शेषषष्ठी सर्वत्र होगी, जो दूरस्थ है, निषेध नहीं पहुंचेगा । यथा ब्राह्मणस्य कुर्वन्, ब्राह्मणको बनाते हुए हरिः । कृसे लट् शतृ, उसके कर्ममें सम्बन्धमात्रकी इच्छामें षष्ठी । ब्राह्मणसम्बन्धी सृष्टिजनकक्रियावान् । षष्ठी । कर्म अर्थकी इच्छा हुयी तब द्वितीया, निषेध नहीं हुआ । (नरकस्य जिष्णुः) नरकासुरको जीतना जिसका स्वभाव, धर्मकुशलता है । जि जये । जीतने अर्थमें जिधातुसे ग्लाजिस्थश्चग्स्नुः सूत्रसे शील आदत धर्म, निपुण अर्थमें ग्स्नु षत्वे णत्वे जिष्णुः । नरकसम्बन्धी विजयवान् नरकस्य—अत्र षष्ठी निषेधो न, कर्मणः इच्छायां द्वितीया ।

अकेनोः—अक, इन्प्रत्यय भविष्य अर्थमें हो । इन् आधमर्ण्ये च । अधमर्ण=ऋण लेनेवाले अर्थ अधिकहो तब, अक और इन–के प्रभावमें षष्ठी नहीं । अकश्च इनच अकेनौ तयोः, भविष्यच्च आधमर्ण्यञ्च तयोः द्वन्द्व । यथासंख्यं नेष्यते । क्रमिकगणना इष्ट नहीं । अकसे आधमर्ण्यका सम्बन्ध नहीं । भविष्यका है ।

इसमें दोनोंका अन्वय तुमुन्ण्वुलौ वु को युवोरनाकौसे अक आवश्यक । आधमर्ण्ययोः णिनि और औणादिक इन् दोनों मान्य । यथा सतः पालको अवतरति सज्जनोंका रक्षक अवतार लेता है । सज्जनान्पालयिष्यन् हरिः प्रादुर्भवति रक्षण अर्थे पालधातोः तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायां सूत्रेण भविष्येऽर्थे ण्वुल् (अक) पालक शब्दके योगमें पालनक्रियाके अनुक्तअर्थ सतःमें सूत्रसे षष्ठी निषेधः, सतः इति द्वितीयाबहुवचने शसिरूपम् । भविष्यतिगम्यादयः भविष्य अर्थ आया । ओदनस्य पाचकः में ण्वुल है जहाँ भविष्यकाल अर्थ नहीं, वहां षष्ठीका न निषेधः । पुत्र-पौत्राणां दर्शकः, व्रजं गामी (गोशालामें जानेवाला) गम् धातुसे उणादिके गमेर्निः सूत्रसे भविष्य अर्थमें इन् । गामी–जानेवाला गोष्ठं गमिष्यति । षष्ठी निषिद्धयते । गमनक्रियाके अनुक्तकर्म ब्रजमें प्राप्तकारकषष्ठीका निषेध, अतः द्वितीया । गामीमें वृद्धिविकल्प भी शतंदायी (१०० रुपया ऋण देनेवाला) ऋणत्वेन गृहीतं शतं प्रत्यर्पयति आवश्यकाधमर्ण्ययोः अर्थें णिनिः दायिन् प्रयोगके दानक्रियाके अनुक्त कर्म

त्यायेत्यादि ॥ षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ।२।३।३०। ग्रामस्य दक्षिणतः पुरः पुरस्तात्, उपरि, उपरिष्टात् ॥ एनपा द्वितीया २।३।३१। एनपेति योगविभागात्षष्ठ्यपि ।

शतं तत्र प्राप्ता कारकषष्ठी न भवति, सूत्रेण निषेधात् । यतोहि अत्र इन् आधमर्ण्ये अर्थे ऋणदाता अर्थमें है ।

निमित्तकारण हेतु प्रयोजन अर्थ । इन पर्यायवाची शब्दका प्रयोग होनेपर भी समानाधिकरण=समानविभक्तिके लिए निमित्तके पर्यायवाची सभी शब्दोंमें सभी विभक्तियोंका प्रायः दर्शन होता है । कहीं नहीं भी होता । यथा किं (प्रथमा) निमित्तो निवासः, (रुकनेका क्या कारण है) अर्थे द्वितीया । किस करणसे, केन निमित्तेन–तृतीया । कस्मै निमित्ताय किस मतलबके लिए । कस्मात् निमित्तात् किस कारणसे, कस्य निमित्तस्य, कस्मिन्निमित्ते सप्तमी । निमित्तशब्दके प्रयोगसे सभी विभक्तियाँ सर्वनामसे प्रदर्शित हुईं । पर्याय पढ़नेका प्रयोजन फल बोले–एवं किं कारणं, न पठसि । केन कारणेन, कस्मै कारणाय, कस्मात्कारणात्, कस्य कारणस्य कस्मिन्कारणे । एवंको हेतुः कं हेतुं, केन हेतुना, कस्मात् हेतोः, कस्मिन्हेतौ । एवं किं प्रयोजनं, केन प्रयोजनेन कस्मै प्रयोजनाय इत्यादि । वार्तिकमें प्रायः क्यों पढ़ा ? इसलिए कि जहाँ सर्वनामका प्रयोग न हो वहाँ प्रथमा द्वितीया विभक्ति न हो । यही प्रायः ग्रहणका फल है । जैसे ज्ञानेन निमित्तेन-भावुकताके कारण भगवान (सेवितुं योग्यः सेव्यः) पूजनीय है । इस वार्तिकके व्यापक प्रभाव से पूर्वके दो सूत्र गतार्थ है । ज्ञानायमें चतुर्थी । ज्ञानात्, ज्ञानस्य ज्ञाने । प्रथमा द्वितीयाका न होना फल ।

षष्ठी – अतसर्थप्रत्ययके योग–सम्बन्धमें षष्ठी हो । दिक्शब्देभ्यः–सूत्रसे प्राप्त दिग्योग पञ्चमीको बांधकर । सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु स्ताति" सूत्रसे लेकर "आहि च दूरे" उत्तराच्च सूत्र तक दिशा देश काल अर्थमें वर्तमानशब्दसे स्वार्थमें प्रत्यय कहे गये । उनके बीच दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् (अतस्) प्रत्ययका अर्थ अतसर्थ है । यद्यपि अतसर्थ प्रत्ययोंमें अस्ताति प्रथम है तथापि लाघवानुरोधसे अतसर्थ ही पढ़ा । अन्यारादि–इस सूत्रके दिक् शब्दसे कही हुई पञ्चमीका बाधक है । पश्चात्स्यंस्यते भाष्य प्रयोगसे पञ्चमी भी साधुः । ग्रामस्य दक्षिणतः दिशावाची दक्षिणशब्दात्सप्तमी, पञ्चमी, प्रथमा अन्तमें ऐसे दिशा काल अर्थमें वर्तमान दक्षिणशब्दसे अतसुच् । दक्षिणतः । जिसका अर्थ दक्षिणस्यां दक्षिणस्याः दक्षिणा वा दिक् । इस प्रकार देशकालवाची शब्दकी उपस्थितिमें ग्रामस्य इत्यत्र षष्ठी, उक्त सूत्रेण जातः । पुरः ग्रामस्य, गाँवके पूर्वदिशामें, पूर्वदिशाका, पूर्वदिशा । पूर्वशब्दात् अस्तातिः (दिशादेशकाल) अर्थे पुरस्तात् पूर्वाधरावराणामसिपुरधवश्चैषमिति असि प्रत्यये । पूर्वस्थाने पुर आदेशे पुरस रु० वि० पुरः पूर्वस्याः । ग्रामस्य

दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा। एवमुत्तरेण। दूरन्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ।२।३।३४। एतैर्योगे षष्ठी पञ्चमी च दूरं, निकटं वा ग्रामस्य-ग्रामाद्वा ॥ दिवस्त-

---

पुरस्तात् अर्थः पूर्ववत्। पूर्वशब्दसे अस्तातिप्रत्यय पूर्वस्थाने पुर आदेशः। ग्रामस्य पुरः। गाँवका पूर्वदेशमें, देशका अर्थ। गाँवके पूर्वकालमें, कालका पूर्वकाल अर्थः। ग्रामस्य ऊपरि=गाँवके उर्ध्वायां दिशि, उर्ध्वायाः दिशः, उर्ध्वादिक्। ऊपर दिशामें, दिशाका उर्ध्वदिशा अर्थः। ऊपरि--ऊपरिष्टात सूत्रेण रिष्टातिलप्रत्यये। अथवा रिल्प्रत्यये। उर्ध्वस्थाने उप आदेशे रिल्। उपरि रिष्टातिल् उपरिष्टात्। उपरिदेश स्वर्गलोक, गोलोक वैकुण्ठलोक आदिमें, का उर्ध्वं देश। एवं उर्ध्वकालमें, काल।

एनपा अदूर—समीप अर्थवाचक एनप्प्रत्ययान्त शब्दके योग-सम्बन्धमें द्वितीया हो। षष्ठी अनु०, पूर्वसूत्रात्। यद्यपि षष्ठ्यतसर्थ-सूत्रसे प्राप्त षष्ठी नित्य है, द्वितीया कैसे? तब बोले-एनपा के योग=सूत्रविभाग, अलगावसे एकविभागका अर्थ होगा, एनबन्तेन योगे षष्ठी स्यात् एनप्प्रत्ययान्तके सम्बन्धमें षष्ठी हो। द्वितीया-दूसरे-भागमें एनपा आया, अर्थ होगा कि एनबन्तेन द्वितीया स्यात्, किसी भी एनप्प्रत्ययान्तके सम्बन्धमें द्वितीया एवं षष्ठी दोनों हो। दक्षिणेन=गाँवके दक्षिण भागके समीपमें। समीपका दक्षिण तरफ, एनबन्यतरस्याम् अदूरेऽर्थे एनप्। दक्षिणस्याम् अदूर इत्यर्थः। एवमुत्तरेण ग्रामं ग्रामस्य वा। गाँवके उत्तरदिशाके पासमें, का। अदूर अर्थमें एनप्, उत्तरेण-उत्तरस्याम् उत्तरदिशाके पास! देशकालमें एवं (पूर्वेण ग्रामं) ग्रामस्य (गाँवके पूर्वदिशाके पासमें) पूर्वस्यां दिशि अर्थः। दिशाशब्दसे एनप् हो तब भाष्यमें षष्ठीको असाधु कहा। कारण-एनपा द्वितीयाके बाद षष्ठ्यतसर्थ सूत्र पढ़ा। अनुवृत्ति नहीं होगी।

दूर-विप्रकृष्ट अन्तिक-समीपअर्थवाचक शब्दोंके सम्बन्धी शब्द से षष्ठी हो, अन्यतरस्यां=विकल्पसे। षष्ठीके अभावमें अपादाने अर्थे पञ्चमी (अनुवृत्तिकर्तृं) होगी। यद्यपि एनपा-द्वितीया पृथग्विना नाना की तृतीया, सन्निहित है, उनकी अनुवृत्ति नहीं होगी. व्याख्यानसे। यथा ग्रामस्य ग्रामद्वा दूरं निकटं, गाँवके दूर या पास अर्थवाचक शब्दनिकट सम्बन्धे षष्ठी ग्रामस्य, पञ्चमी ग्रामात्। यद्यपि तत्रागारं धनपत्ति गृहादुत्तरेणास्मदीये, दूराल्लक्ष्यं सुरपति धनुः चारुणा तोरणेन। उत्तरेणमें तृतीया कैसे? एनप् नहीं है। तोरणेनके साथ समानताके लिए।

दिवः, तयोः=व्यवहृपणोः अर्थ एव अर्थो यस्य तस्य तदर्थस्य। यह अर्थ तत् शब्दसे आया आया। दिवधातुका क्रीडा, विजयकी इच्छा व्यवहार स्तुति मद मोद कान्ति गति इतना अर्थः। इनमें द्यूतार्थस्य=द्यूतं अक्षक्रीडनं पाशा फेंककर खेलना अर्थ है और क्रयविक्रय विषयकसम्वादो अर्थो यस्य। खरीदने बेचनेके विषयमें लेन-देन अर्थ है, ऐसे दिवधातुके कर्ममें षष्ठी हो। शेष नहीं आया, व्याख्यानसे।

दर्थस्य ।२।३।५८। द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि षष्ठी। शतस्य दीव्यति । तदर्थस्य किम् ? ब्राह्मणं दीव्यति, स्तौतीत्यर्थः ॥ **विभाषोपसर्गे ।२।३।५९।** शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति । **आधारोऽधिकरणम् ।१।४।४५।** कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणसंज्ञः स्यात् ॥ **सप्तम्यधिकरणे च ।२।३।३६।** चाद् दूरन्तिकार्थेभ्यः । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्या-

---

यहाँ कर्ममें शेषकी विवक्षाही नहीं, शेषे षष्ठी असम्भव । अतः इस सूत्रका कृदन्तके संसर्गमें समासनिवृत्ति भी फल नहीं, इस आशयसे बोले (शतस्य दीव्यति,) जुए में सौ रुपया जीतता है । क्रय विक्रय व्यवहारमें सौ रुपयेकी लेन देन करता है । दिव धातोः कर्म शतं फल, दिवस्तदर्थस्य सूत्रेण षष्ठी, शतस्य । तदर्थस्य कि=तयोः अर्थः तदर्थः, द्यूतक्रीड़ा क्रयविक्रय व्यवहार दोनों अर्थ क्यों पढ़ा ? इसलिए कि ब्राह्मणं दीव्यति स्तौति प्रशंसा अर्थके कर्ममें षष्ठी न हो, किन्तु द्वितीया हो।

विभाषा = विविधा पक्षपालिनी भाषा विकल्प । उपसर्गे सति व्यवहृ और पण (व्यवहार अर्थवाला) दिवधातु के कर्ममें विकल्प षष्ठी हो । यथा शतस्य (शतंप्रति) दीव्यति । सौ रुपया बदलनेमें जीतता है । प्रति उपसर्गमें दिवधातुका कर्म शतमें षष्ठी विकल्प हुई शतस्य, पक्षे शतम् ।

ङि ओस् सुप् सप्तमी का अर्थ आधार में पै पर है । आधार कर्ताकर्मके माध्यमसे तन्निष्ठ उनमें (कर्ता कर्ममें) रहनेवाली क्रियाओंके आधार (कर्ता आदिका आधारभूतकारक) अधिकरणसंज्ञक हो । अधिक्रियते अस्मिन्निति अधिकरणम् । यद्यपि कर्ताकर्म क्रियाके साक्षात् आधार है तथापि उनके माध्यमसे (परम्परया) क्रियाका अन्य आधार भी है । (३) सप्तमी अधिकरणसंज्ञकसे सप्तमी हो । च=पढ़नेका फल दूर और अन्तिक अर्थमें भी सप्तमी हो । यह आधार तीन है । (१) औपश्लेषिक=उप (समीपे) श्लेषः सम्बन्धः उपश्लेषः तत्कृतम् अधिकरणम् औपश्लेषिकं, यथा=कटे आस्ते बैठना (आसन) क्रियाका आधारकर्ताका कट-चटाईके साथ संयोग (समीप) सम्बन्ध है । अतः आसन् क्रियाका परम्परया आधार, कटकी अधिकरणसंज्ञा । अधिकरणे सप्तमी । स्थाल्यां पचति । स्थाली भी तण्डुलके माध्यमसे पाकक्रियाका आधार (अधिकरणसंज्ञक) है। (२) विषयेभव-वैषयिकः । यह आधार किसी विषय अर्थका वाचक है । यथा—मोक्षे इच्छास्ति मोक्षके विषयमें इच्छा है । अस्तिक्रियाका कर्ता इच्छा है। उसके माध्यमसे इच्छाका विषय मोक्ष भी क्रियाका आधार अधिकरणसंज्ञक हुआ । सर्वस्मिन्नात्मास्ति । आत्मा सबमें हैं । यत्र सर्वावयवव्याप्तिः तदभिव्यापकम् । जो सभी अंगमें व्याप्त हो वह अभिव्यापक है । सर्वशब्दो अधिकरणसंज्ञकः अधिकरणे सप्तमी सर्वस्मिन् वनस्य दूरं या समीपं (अन्तिक) अर्थमें सप्तमी हुई । दूरेऽन्तिकेवा ।

धारस्त्रिधा। कटे आस्ते, स्थाल्यां पचति। मोक्षे इच्छास्ति। सर्वस्मिन् आत्मास्ति। वनस्य दूरेऽन्तिके वा (क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्) अधीती: व्याकरणे। (साध्वसाधुप्रयोगे च)। साधु: कृष्णो मातरि। असाधुर्मातुले। (निमित्तात्कर्मयोगे)। 'चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।

केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः'॥

क्तप्रत्यय होनेपर, इन् का विषय बना हो, ऐसी क्रियात्मा शब्दके कर्ममें सप्तमीका आचरण व्यवहार करें। विषयशब्द: प्रकृतिरूपो अर्थः 'इन' की प्रकृति हो इन्प्रत्ययान्त प्रकृति क्तप्रत्ययान्त के कर्ममें षष्ठी। यथा (अधीती व्याकरणे)। व्याकरणका अध्ययनकर्ता (भावे क्त) अधीतीशब्दात् इष्टदिभ्यश्च कर्ता अर्थे इन्। अधीती अध्यनकर्ता क्रियाका कर्म व्याकरणसे सप्तमी, द्वितीयाको बाँधकर। किमधीतवान् कर्मकी जिज्ञासा उचित है जो अनुक्त है द्वितीयाको बांधकर। मासमधीती। इत्यादि स्थलमें अकर्मक धातुके योगमें कालकर्म बहिरङ्ग होते हैं। मासं द्वितीया, न सप्तमी। व्यक्तिपक्षमें (वा०) साधु—(हितकारी परकार्य साधक) और असाधु (परहितध्वसंक) से शेषषष्ठी बाधकर सप्तमी समझें। यद्यपि साधुनिपुणाभ्यां सूत्रसे अर्चा पूजा आधार अर्थमें सप्तमी सिद्ध, साधुग्रहण अनर्चा, पूजारहितके लिये है। यत्र अर्चा न विवक्षिता किन्तु सत्यकथनमात्रमस्ति, तत्रापि सप्तमी भवति। एतदर्थं साधुग्रहणम्। कृष्णः (मातरि साधुः) हितकारी, आज्ञापालकः। शाधुशब्दप्रयोगे मातरि इत्यत्र सप्तमी। असाधुर्मातुले माताके लिए अहितकारी। मातुले इत्यत्र सप्तमी। साधुः भृत्यो: राज्ञ: राजाका सच्चा सेवक सत्य बोलना मतलव। साधुनिपुणाभ्यांमें साधु पढ़नेका फल बोले—निमित्तात्=कर्मके सम्बन्धमें हेतुवाचकशब्दसे सप्तमी हो। यदि ऐसा तब (जाड्येन बद्धः) जड़ता मूर्खता वश बाधाः गया। बन्धन क्रियामें हेतु निमित्त जाड्यसे सप्तमी हो सकती है। तब बोले निमित्तमिह फलं, नतु कारणं फलवाचक शब्दसे सप्तमी हो इष्ट साधनता ज्ञान (फल) ही प्रवृत्तिमें हेतु है। सम्बन्ध क्या होगा ? जन्यजनक आदि सम्बन्ध रोकनेके लिए योगः=सम्बन्धः संयोगः समवायश्च अयुतसिद्धयोः सम्बन्धः समवायः अवयवावयविरूपः। अन्यका सम्बन्ध संयोग है।यथा--चर्मणि द्विपिनं हन्ति, चर्मके लिए बाघकी हिंसा करता है। चर्मका बाघके साथ अवयव अवयवी, सम्बन्ध अयुतसिद्धि है। समवाय सम्बन्ध है। व्याघ्रबधका हेतु (फल) चर्म हैं। उससे सप्तमी चर्मणि। (दन्तयो) हंन्ति कुञ्जरम्। दाँतलाभके लिए हाथीकी हिंसा करते हैं। कुञ्जरदन्तका समवायसम्बन्ध। दन्त अवयव-हाथी अवयवी, बधका निमित्तफल दोनों दांत, दन्तयो: इत्यत्र सप्तमी। द्विवचने ओस्। केशेषु चमरीं हन्ति। चमरीं गायके पुच्छका बाल घने होनेसे चँवरके लिये उस गायका वध करते हैं। जिसका फल केशलाभ। उससे सप्तमी। केशेषु।

यस्य च भावेन भावलक्षणम् २।३।३७ यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततः सप्तमी। गोषु दुह्यमानासु गतः। **षष्ठी चानादरे** ।२।३।३८ अनादराधिक्ये भावलक्षणे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। रुदति-रुदतो वा प्राव्राजीत्। रुदन्तं पुत्रादिकमनादृत्य संन्यस्तवानित्यर्थः॥ **स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च** २।३।३९। एभिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। गवां गोषु वा वा स्वामी। **आयुक्तकुशलाभ्यां चासे-**

यस्य भावेन (भावका क्रिया अर्थ है) जिस उपस्थिति अनिज्ञाति (क्रियासे भावः भावलक्षणं, भावः अनिज्ञातकालिक क्रिया (दूसरी क्रियाके समयका ज्ञान न हो) उस क्रियाके ज्ञान करानेका लक्षण सूचक बोधक लक्षण क्रिया हो। कर्ता कर्ममें रहनेवाली क्रियावाचक शब्दसे लक्ष्यलक्षण अर्थ प्रकाशिका सप्तमी हो। जिस क्रियासे क्रियान्तरं-दूसरी क्रिया लक्ष्यते सूचित हो, जान पड़े, उससे सप्तमी। एक क्रिया लक्षक है। जो कर्तामें कर्मके आश्रयमें रहती है। **ब्राह्मणेषु** अधीयानेषु गतः कदा गतः, का उत्तर है। जब ब्राह्मण पढ़ रहा था तब गया। गतः में कर्तरि क्त। ब्राह्मणमें अध्ययन क्रिया लक्षक है गमनक्रिया लक्ष्य, तब सप्तमी। कर्ममें क्रियाका उदाहरण-देवदत्तः कदा गतः इति प्रश्ने गोषु दुह्यमानासु गतः, गाय दुही जा रही थी, गोषुमें लक्ष्यकत्वसम्बन्धे अर्थे सप्तमी। शेषषष्ठीको बांधकर। लक्ष्य गमनक्रिया वर्तमानगोदोहनकालिकाभिः गोभिः ज्ञाप्यगमनवान्देवदत्तः। गोदोहनक्रिया जो गायसे है, गमनक्रियाका बोधक है। गोदोहन दशायां गतिः। जब दुग्धासु कहेंगे, तब भूतकालिक गोदोहन क्रियासहित गायकी गमनक्रिया जानी जायगी। यस्य भवेन भावलक्षणं सूत्रेण लक्षकेऽर्थे सप्तमी।

षष्ठी च अनादरे–विषय सप्तमी। तिरस्कार अपमानका विषय हो, पूर्वसूत्र पूरा आया। अनादर तिरस्कार या अपमानका आधिक्य चरमसीमा हो, तब जिस क्रियासे अन्य क्रिया लक्षित हो, समझमें आये, उससे षष्ठी सप्तमी दोनों हो। यथा कदा सन्यस्तवान् कब त्यागी बना, यदा रुदति (सप्तमी) रुदतः (षष्ठी) वा प्राव्राजीत्। रोते हुए पुत्र पत्नी माता पिताका अनादरकर, त्याग किया निर्मोही सन्यासी बना। अनादर क्रिया करना धात्वर्थ है। उसका प्रकाशक षष्ठी, सप्तमी भी। रुदनक्रिया लक्षण, सन्यास लक्ष्य। अनादर अधिक है। रुदनका आश्रय आदि विषय है। ज्ञापक सन्यास, ज्ञाप्य अनादर पूर्वक गमन।

स्वामी–रक्षकः ईश्वरः प्रभुः समर्थः अधिपतिः स्वामि स्वसम्पन्न दायाद (पिता पितामहकी सम्पत्तिके अधिकारी) साक्षी गवाह, प्रमाणकर्ता प्रतिभूः झट उत्तरदाता प्रत्युत्पन्नमति, जवाबहाजिर, और प्रसूत इन सात शब्दोंके सम्बन्धमें षष्ठी सप्तमी दोनों हो, चकारके प्रभावसे। यद्यपि शेषषष्टी हो सकती है, सूत्र क्यों पढ़ा !

वायाम् २।३।४०। आभ्यां योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। आयुक्तो व्यापारितः। आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने-हरिपूजनस्य वा। आसेवायां किम्? आयुक्तो गौ शकटे, ईषद्युक्त इत्यर्थः। यतश्च निर्धारणम् ।२।३।४१। जातिगुणक्रियासंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणं यतस्ततः षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। नृणां-नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः। गवां-गोषु वा कृष्णा गौर्बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः। छात्राणां-छात्रेषु वा मैत्रः पटुः॥ पञ्चमी विभक्ते ।२।३।४२। विभागो विभक्तम्। निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एव तत्र पञ्चमी। माथुराः पाटलिपुत्रेभ्यः आढ्यतराः॥

तब मूल बोले कि षष्ठ्यामेव = षष्ठी अर्थमें ही प्राप्त हैं। पक्षमें सप्तमी भी हो इसलिए सप्तमी पढ़ा। यथा गवां गोषु वा स्वामी गायोंका अधिपति, गवां गोषु वा ईश्वरः गवां गोषु वा अधिपतिः, गवां गोषु वा दायादः पुत्रादिभिः गृहीतुं योग्यः पिता पितामह से धर्म गुण विशेषता का ज्ञान कराना निर्धारणका अर्थ है। समुदाय वाचक शब्द से षष्ठी, सप्तमी हो। यतस्ततः जिससे। जातिरूप समुदायसे अलग होनेका उदाहरण नृणां नृषु वा श्रेष्ठः मनुष्योंमें द्विज बड़े है नृ शब्द मनुष्य समुदाय अर्थमें हैं। जातिपक्ष में एकवचन न कहकर बहुवचन क्यों कहा! इसलिए कि समुदायके अवयवों में भेद की विवक्षा उद्भूत प्रकट हो। क्योंकि एकजातिकी विशेषता बतलानी है। जातिके अभिप्रायसे द्विजः एकवचन षष्ठी, सप्तमीका अवयव अवयवीभावसम्बन्ध। मनुष्य समुदायका एक अंश एकदेश एकभाग द्विज है। जो त्याग तप वेद ज्ञानसे मनुष्यों में अपनेको श्रेष्ठ सिद्ध कर अन्यकी व्यावृत्ति करते है। मनुष्योंमें ब्राह्मण की श्रेष्ठताका निर्धारण अर्थकी प्रकाशिका षष्ठी नृणां, सप्तमी नृषु। गुणसमुदायसे अलगका उदाहरण गवां गोषु = गायों में कृष्णा गाय, बहुत दूध देना गुण है। ऐसी गऊओं में बहुक्षीरत्वरूप धर्म से इतर पशुओं की व्यावृत्ति। बहुक्षीर धर्मसे निर्धारणेऽर्थे षष्ठी गवां, सप्तमी गोषु। गो समुदायका एक देश कृष्णा गायका श्रेष्ठत्व बहुत दूध देनेसे सिद्ध है। क्रियासे, क्रियासहित समुदाय से पृथक् करण (गच्छतां गच्छत्सु) चलने वालोंमें दौड़नेवाला शीघ्रधर्मा है। क्रियावानोंके समुदायके एकदेश धावन् शीघ्रगमनक्रिया अलग करती है। धावनक्रियाविशिष्ट शीघ्रता रूप विशेषता ज्ञानके लिए षष्ठी, सप्तमी दोनों समर्थ हैं। संज्ञाविशिष्ट समुदायसे पृथक्करण—छात्राणां छात्रेषु छात्र समुदायका एक सदस्य मैत्र अपने पटुत्व चातुर्य कुशलता से धर्मवान है, अन्य विशेषतापूर्ण है। संज्ञावाचक मैत्रसे अन्यका पृथक्करण। समुदायवाचक छात्र शब्द से पञ्चमीस्थाने निर्धारणे अर्थ षष्ठी-सप्तम्यौ भवतः।

पञ्चमी हो, विभक्ते = भेद रहने पर, विपूर्वक भज धातुसे भाव अर्थ में क्तिन् या क्त विभक्तिका भेद विभाजन अर्थ। अतः मूलमें कहा विभागो विभक्तं, यतश्च

साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ।२।३।४३। मातरि साधुर्निपुणो वा। अर्चायां किम् ? निपुणो राज्ञो भृत्यः। इह तत्त्वकथने तात्पर्यम् ॥ (**अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम्**)। साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति परि, अनु वा ॥ **अधिरीश्वरे ।१।४।९७।** स्वस्वामिभावसंबन्धेऽधिः कर्मप्रवचनीयः। **यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ।२।३।९।** अत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी। उप परार्धे हरे-

---

निर्धारणे अनु० । समुदायसे किसी विशेष गुणक्रिया जाति धर्मसंज्ञाविशिष्ट का अलग होना निर्धारण है। उसकी अवधि मनुष्य इत्यादि निर्धारणके योग्य द्विज का सामान्य मनुष्यत्व धर्म जातिगुणक्रियासे अभिन्न है। विशेषात्मना सबसे श्रेष्ठता का भेद भी स्थित है। इनमेंसे भेदका ही निर्धारण विभक्ति पदसे इष्ट है। जहाँ निर्धारणकी अवधिसे निर्धारण किये जाने वाले का भेद हो, अभेद सम्भव न हो, वहीं सूत्र लगे, इसलिए कहा कि जहाँ जिसका जिससे निर्धारण हो वहाँ भेद अर्थ बोलने वाली पञ्चमी हो। समुदायके एकदेशसे मतलब नहीं असम्भावनासे। (मथुरायां भवाः माथुराः,) मथुराके लोग पाटलिपुत्रकेभ्यः पटनाके लोगोंसे आढ्यतराः अतिशय धनवान् है। अतिशयेन आढ्याः पञ्चमी का अवधि अर्थ। जैसे गोत्व अश्वत्व भैंसा हाथी से अन्तर करता है वैसें ही मथुरा के लोग पटना के लोग में अभेद नहीं। निर्धारणस्य अवधिः पाटलिपुत्रकः तस्मात्पञ्चमी विभक्तेः (अलगाव) अर्थे (यह सूत्र बुद्धिकल्पित अपादानमें) गतार्थः।

साधु—परकार्यसाधकः निपुण चतुर (पुण्यकर्मणि शुभे च) कर्म और कल्याण अर्थमें निपूर्वक पुण धातुसे इगुधज्ञा लक्षण 'क'। निपुणः कुशलः इन दोनोंके योगमें सप्तमी हो। अर्चायां=पूजा का आदर स्वागत सम्मान, साधुवाद अर्थ है। अर्च पूजायां, गुरोश्च हलः अ, टाप्। न तु प्रतेः=प्रतिशब्दका प्रयोग न होने पर। यथा (मातरि साधुः) माताके लिए हितकारी कुशल सेवामें साधु और निपुणका प्रयोग रहते मातृशब्दसे प्राप्त शेषषष्ठीको बाधकर सूत्रेण सप्तमी, मातरि जिसका (माताकी सेवा या हित में) सफल अर्थ है। सूत्रमें आचार्या किं ? यदि साधु या निपुणका प्रयोग है ही, तब अर्चाके बिना भी सप्तमी सम्भव, क्योंकि वार्तिक है साध्वसाधुप्रयोगे च। असाधुके योगमें भी सप्तमी स्वीकृत है। अर्चाग्रहण क्यों ? इसलिए कि "निपुणो राज्ञो भृत्यः" राजाका सेवक चतुर है। यहाँ तत्वकथने=सत्य कहनेमें तात्पर्य है केवल प्रशंसामात्र अभीष्ट नहीं। निपुणके सम्बन्ध में भी राजन्से षष्ठी, न तु सप्तमी। साधुका फल यह है कि अर्चा पूजा अर्थमें प्रतिका प्रयोग हो, तब सप्तमी न हो। (वा०) अप्रत्यादिभि=सूत्रमें प्रतेः पढे, पर्युदास नञ् अप्रति=प्रतिशब्द न हो। आदिभिः=परि अनुका योग भी न हो, तभी सप्तमी हो, यथा साधुः कृष्णः भगवान् माताके प्रति परि, अनु, साधु संरक्षक निपुण कर्मकुशल

गुणाः, परार्धादधिका इत्यर्थः । ऐश्वर्ये तु स्वस्वामिभ्यां पर्यायेण सप्तमी । अधि भुवि रामः । अधि रामे भूः ।। इति कारकप्रकरणम् ।

शुभ माङ्गलिक है । प्रति परि अनुके निषेधसे मातरं में सप्तमी न । लक्षणेत्थं भूता, ख्यान भागवीप्सासुसे प्रति परि अनु आये, कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, द्वितीया च ।

अधि शब्दको ईश्वरे = स्वस्वामिसम्बन्धे अर्थे अधिकार किया गया कर्मप्रवचनीय-संज्ञक हो, ईश्वरत्व सम्बन्ध स्वस्वामिभावका बोधक ।

यस्मात्–जिससे अधिक हो जिसका ईश्वरवचन श्रेष्ठता हो, उससे कर्मप्रवचनीय-संज्ञाके योगमें सप्तमी हो, शेषषष्ठीको बाधकर । उपपरार्धे=अन्तिमसङ्ख्यासे भी अधिक भगवान्के गुण है । यस्माधिकं गणनीयं नास्ति तत्परार्धम् । इसकी अपेक्षा अनेक गुण । उप इत्यस्य उपोधिके च इत्यनेन कर्मप्रवचनीसंज्ञा, तद्योगे परार्धे इत्यत्र उक्तसूत्रेण सप्तमी । यस्य ईश्वरवचनं=जिसके सम्बन्धमें ईश्वर भाव हो उससे सप्तमी हो । स्वस्वामी=स्वम् आधारः भूवि, स्वामी-ईश्वरः रामः । दोनोंको पर्यायेण क्रमसे सप्तमी हो । यत्का स्वम् अर्थ, स्ववाचकसे सप्तमी हो, ईश्वरशब्दभावप्रधान है । ईश्वरत्वसे सप्तमी हो । यह दूसरा अर्थ जिसमें ईश्वरत्व हो उससे सप्तमी । इससे स्वामीवाचकसे सप्तमीका लाभ । इस भावसे मूल में कहा **ऐश्वर्ये तु**=**स्व और** स्वामीसे क्रमशः सप्तमी यथा **अधिभूवि रामः** । अधिरीश्वरे सूत्रेण अधि इत्यस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा तस्य योगे भूवि इत्यस्य उक्तसूत्रेण सप्तमीसिद्धा । सम्बन्धमें सप्तमीका अर्थ । भूवः स्वामी रामः पृथ्वीके अधिपति, यहाँ स्ववाचकसे सप्तमी । अधि रामे भूः । रामकी अपनी भूमि अधि-स्वका पर्याय सम्बन्धे अर्थे सप्तमी । रामे स्वामिवाचकात् सप्तमी ।

कृष्णो रक्षतु नो जगत्त्रयगुरुः कृष्णं नमस्याम्यहम् ।
कृष्णेनामरशत्रवो विनिहताः कृष्णाय तस्मै नमः ।
कृष्णादेवसमुत्थितं जगदिदं कृष्णस्य दासोऽस्म्यहम् ।
कृष्णे तिष्ठति सर्वमेतदखिलं हे कृष्ण रक्षस्वमाम् ।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकर्यां कारकप्रकरणम् ।

अथ समासप्रकरणम्

तत्र केवलसमासः

अथसमासाः—तत्रादौ सबसे पहले केवल संमास प्रारम्भ करते हैं समास क्या है ? समसनं बहूनां पदानां पदार्थानाञ्च मिलित्वा एकपदीभवनं समासः एकार्थीभावः। अनेक पदार्थ मिलकर एक अर्थ होना, अनेकशक्ति का एक शक्ति होना समास शब्द का अर्थ है। वे पांच हैं पांच प्रकार शैली प्रक्रिया से एकार्थ (समास) अनुभूत है। अनेक पदों में कही सामान्य अर्थ कही पहले पदका अर्थ कहीं दूसरेका कही दोनों पदका अर्थ प्रधान, कहीं अन्य अर्थ ही खुलता है। पूर्ण विवेचन क्रमशः सुनिये—पांचों समासों का लक्षण सच—वह समास जो विशेषण संज्ञा–अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व आदि नाम (संज्ञा) और उनके लक्षण (तात्पर्य) से मुक्त हो वह केवलसमास प्रथमः कहलाता है। जैसे-भूतपूर्वः इसमें किसी समास का लक्षण न घटने से यह स्वतन्त्र विशेष नाम रूप रहित समास प्रथम है।

२—प्रायः (बहुधा अक्सर) पूर्वपदार्थप्रधान = जिस समासमें पहले पदका अर्थ मुख्य (प्रधान) हो वह अव्ययीभाव समास है (पूर्वपदस्यार्थः प्रधानं यत्र) यथा–अधिहरि, उपकृष्णं समासशब्दों में अधि उप अर्थ की प्रधानता है। (अधि) का अधिकरण (हरि में) अर्थः। उप का समीप (कृष्णके पास अर्थः) प्रायः पद से सूचित हैं कि कहीं पूर्वपदका अर्थ प्रधान नहीं भी है। यथा–उन्मत्ता गंगा यस्मिन् देशे (उमड़ी हुई गंगा जिस देश में हों) वह उन्मत्तगङ्गं देश है। यहाँ अन्य पदार्थ देश अर्थ प्रधान होने पर भी अव्ययीभाव समास माना गया। इसलिए अव्ययाधिकारपठितत्वम् अव्ययत्वम्।

३–प्रायः करके उत्तरपद का अर्थ प्रधान हो जिसमें वह तत्पुरुष समास है यथा–संकुलाखण्डम् आनय। (सरौतासे किया गया टुकड़ा लाओ) यहाँ उत्तरपद (खण्ड) का अर्थ टुकड़ा ही लाया जायगा। प्रायः कहने का फल पञ्चानां तन्त्राणां समाहारः पञ्चतन्त्रं (पांच प्रकार के विचारों का समुदाय) जो अन्य पदार्थ है, वहाँ भी तत्पुरुष लक्षण माना जाय। तत्पुरुषाधिकारपठित्वं तत्पुरुषत्वम्। तत्पुरुष का ही एक भेद कर्मधारय है, कर्म (विशेषणं) धारयति (शुद्ध विशेषण धारण करे, जहाँ समान विभक्तिवाले विशेषणविशेष्यसम्बन्ध हो) वह कर्मधारय (उत्तरपदार्थप्रधान अर्थ वाला) है। यथा—नीलोघटः समानविभक्ति विशेषणविशेष्यभावसम्बन्ध, उत्तरपदार्थप्रधानलक्षण घट गया। कर्मधारयका ही एक भेद द्विगु है।

समर्थः पदविधिः ।२।१।१। पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्य ॥ प्राक्कडारात् समासः ।२।१।३। 'कडाराः कर्मधारये' इत्यत, प्राक् समास इत्यधिक्रियते । सह सुपा २।१।४। सुप् सुपा सह वा समस्यते । समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन

जो संख्यापूर्वक है । यथा–पञ्चानाम् अजानां समाहारः पञ्चाजम् । पञ्चसंख्या पूर्व में हो (अजाका विशेषण हो) द्विगु है ।

४-प्रायः बहुधा अन्यपदार्थ (उच्चारित शब्दों से) भिन्न किसी का अर्थ प्रधान हो, वह बहुव्रीहि समास है । बहु–अनेक व्रीहि विशेषण । अनेक विशेषणों का तात्पर्य एक ही अन्य अर्थ में घटे । यथा दृष्टः सागरो येन तद्दृष्टसागरम् आनय जिसने सागरको देखा हो उसे लाओ । यहाँ उच्चारितशब्द दृष्ट और सागर है । उससे भिन्न किसी व्यक्तिरूप अर्थ का प्राधान्य हुआ । प्रायः शब्द का फल द्वौच त्रयश्च (द्वित्रा) जैसे द्वन्द्व दोनों पदार्थोंमें भी बहुव्रीहि घटे । अतः बहुव्रीहेः अधिकारे पठितो बहुव्रीहिः । (५) प्रायः दोनों पदका अर्थ प्रधान हो उसे द्वन्द्वसमास कहते हैं । यथा–रामश्यामौ गुरुकुलात् आगच्छतः आगमन क्रियामें दोनों प्रधान हैं । यह समास अनेक पदवाला भी है । समाहारमें लक्षणघटे अतः प्रायः पद दिया । द्वन्द्वाधिकारपठितत्वं द्वन्द्वत्वम् । भावात्मकतात्पर्व—द्वन्द्वोऽस्मि द्विगुरहं गृहे च मे सततमव्ययीभावः तत्पुरुष ? कर्मधारय येनाहं स्याम बहुव्रीहिः । कोई व्यक्ति अपने सेवक से कहता है कि मैं द्वन्द्व-पतिपत्नी दो हूं, द्विगु—दो गाय वाला हूं और मेरे घरमें निरन्तर अव्ययीभाव कम खर्च (कम परिश्रम) स्वाभाविक है । अतः हे पुरुष यह कर्मधारय ऐसी नौकरी स्वीकार करो । जिससे मैं बहुव्रीहि बहुत धनी हो जाऊं ।

समर्थः पदविधिः पद के (उद्देश्य से) या उसकी सिद्धिके लिए जो विधि) विधान समाससंज्ञा, तद्धित, कृत, सनाद्यन्त, एकशेष, आदिसंज्ञायें (पद के सम्बन्ध में पदके उद्देश्यसे विधान किये जाने से) पदविधि कहलायी । वह विधि – परस्पर सामर्थ्य, सम्बन्ध, अन्वयशक्ति, एकार्थभाव पर आश्रित आधारित हो । अनेक पदों का समास एकपदके लिए होनेसे समास भी पदविधि कहलाया । परस्पर आकांक्षारूप सामर्थ्य व्यपेक्षा एकार्थीभाव भेद से दो हैं । उच्चारितपदों का अस्तित्व भी बनाये रहें परस्पर आकांक्षा भी हो उसे व्यपेक्षा, यथा–राज्ञः पुरुषः । राजपुरुषः । राजस्वामिकः पुरुषः सेवकस्वामिभावसम्बन्ध होनेसे राजा और पुरुषका पृथक् अस्तित्व सुरक्षित है । जहां पृथगर्थानां पदानाम् एकोपस्थितिः अलग-अलग अर्थवालों का मिलकर एकार्थ एकशक्ति एक उपस्थिति हो, एकार्थीभाव सामर्थ्य है । यथा–राजपुरुषः दोनों पद मिलकर एक अर्थ हो गये, अलग अस्तित्व नहीं ।

सुपो लुक्। परार्थाभिधानं वृत्तिः। कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः। वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः। स च लौकिकोऽलौकिकश्च द्विधा। तत्र पूर्वंभूत इति लौकिकः, पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः। भूतपूर्वः। भूतपूर्वे चरडिति निर्देशात्पूर्वनिपातः॥ (इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च)। वागर्थौ इव वागर्थाविव।

इति केवलसमासः॥

---

(५) कडारात्=कडाराः कर्मधारय इस सूत्र से पहले समास का अधिकार माना जाय, तभी समास का विधान हो। ६ सुप सुबन्तका सुपा=सुबन्तके सह साथ विकल्प से समास हो। समासत्वात्=समाससंज्ञा होने पर कृतद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपादिकसंज्ञा। सुपोधातु प्रातिपदिकयोः सूत्र से सुप का लुक् हो। परार्थस्य=एकार्थस्य समुदायार्थस्य परः भिन्न-भिन्न उच्चरित पद मिलकर एक अतिरिक्त अर्थ बोलें, वही अर्थ परार्थ है। उसका अभिधानं बोध कराने वाली को वृति कहते हैं। वार्तनं—शब्दार्थयीः व्यवहारकारणं वृत्तिः (शक्तिः) समस्यमानपदार्थापेक्षया भिन्नार्थाभिधायिका एकार्थीभावरूपा वृत्तिः, वृत्ति के ज्ञान से ही शब्द का समुचित उपयोग सम्भव है। इसलिए वृत्ति का बहुत महत्व है। यह शब्द के धर्म और शक्ति को जागृत करती है। कुशल उपयोग में सहयोग देती है। यह वृत्ति पाँच भेद में दृष्ट है। कृत, तद्धितं, समास, एकशेष सनाद्यन्तधातु। जहाँ अनेक अर्थ मिलकर परस्पर आकांक्षावशात् एक अर्थ हो उसे वृत्ति कहते हैं। कृत् यथा-(पाठकः) पठ धातु का ज्ञान या उच्चारण के अनुकुल क्रिया अर्थ है अक प्रत्यय का कर्ता, दोनों का अलग-अलग अर्थ उपस्थित है क्रिया-कारकभावसम्बन्ध भी, उनका मिलकर एक (उच्चारणकर्ता) स्पष्टवक्ता) अर्थ परार्थं है भिन्नार्थ समुदाय है। कृदन्त वृत्ति मानी गयी। तद्धित–दक्षस्य अपत्यं (दाक्षि,) इन्प्रत्ययार्थ पृथक्-२ होते हुए आकांक्षा से एक वर-कन्या की तरह एक दम्पती हो गये (प्रकृति स्त्री प्रत्यय पुरुष जन्यजनक भाव आदि) यही तद्धितवृत्ति है। एकशेष में भी अनेक अर्थवाले समान शब्द को एक शेष कहा गया। एक में अनेक का अर्थः वृत्ति है। सनाद्यन्त–पठितुमिच्छति पिपठिषति; पठन क्रिया और सन् प्रत्य का इच्छा अर्थ, मिलकर एक अर्थ की उपस्थिति। पठनकर्मक इच्छानुकूल व्यापार अर्थ की उपस्थिति ही एकार्थवृत्ति है। वृत्ति का अर्थ ज्ञान कराने वाले वाक्य ही विग्रह है। जैसेः—पठतीति पाठकः। मकरन्दस्य अपत्यमिति विग्रहें माकरन्दिः। राज्ञः पुरुषः राज्ञपुरुषः। रामश्च रामश्च रामौ। आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति। कर्तुमिच्छति चिकीर्षति इत्यादि वृत्ति–एकार्थीभाव का ज्ञान कराने वाले वाक्य का विग्रह (शरीर) है। (स च)=वह विग्रह दो प्रकार का है। (१) लौकिकः लोकेभवः प्रयोगयोग्यः लौकिकः लोक में उपयोग के योग्य हो। जैसे पठति, दक्षस्यापत्यं, राज्ञः पुरुषः, कर्तुमिच्छति, ये विग्रह लौकिक हैं। अलौकिक-

अथ अव्ययीभावप्रकरणम्

अव्ययीभावः । २ । १ । ५ अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात् । अव्ययं

वाक्य का शरीर (विग्रह) लोक में प्रयोग के अयोग्य है। जैसे—राजन् इस पुरुष सु अलौकिक है। लोक में प्रयोग के अयोग्य है। शास्त्र की सफलता के लिए मात्र है।

भूतपूर्वः—समाप्तभवन क्रिया। पूर्वं भूतः जो पहले (प्राचार्य) था यह लौकिक विग्रह वाक्य शरीर है। लोक में प्रयोग के योग्य है। पूर्वअम् भूतसु, यह अलौकिक शरीर है। पूर्वशब्द का भूतशब्द के साथ (पूर्व काल में क्रिया से सम्बन्धः) यही सामर्थ्य शक्ति है एकार्थीभाव मानकर सह सुपा सूत्र से विभाषा पक्ष में समास। कृतद्धित सूत्र से प्रा० संज्ञा उसके अवयवसुप का लुक्। भूतपूर्वचरट् इति सूत्रनिर्देश उच्चारणप्रमाण से निर्णय हुआ कि भूतशब्द का पूर्वप्रयोग होता है। एकदेश विकृतन्यायेन प्रा० संज्ञा विभक्तिकार्य भूतपूर्वः। पूर्वकालिकभवन-क्रियाश्रयः प्राचार्यः (वा०) **इवेन**=इव इस अव्यय के साथ समर्थ सुबन्त का समास हो, विभक्ति का लोप न हो। यथा (वाक् च अर्थश्च) वागर्थौ इव (शब्द अर्थ की तरह (सदृश) पार्वतीपरमेश्वर सम्पृक्त है) इति लौकिकविग्रहे। वागर्थ औ इव यह अलौकिक विग्रह। वाणी और अर्थ का इव=सादृश्य (समानता) समर्थ्य हुआ (वा) से समास। विभक्तिलोप का निषेध। आव् आदेश। **वागार्थाविव**। वाणी और अर्थ के सदृश समासार्थ हुआ। समास में एकपद, एकअर्थ, एकस्वर होना अनिवार्य है पर तीनों का मिलकर ज्ञान समासार्थ होगा जिसके ज्ञान से पुण्य होता है। अन्यथा उक्तफल नहीं होगा। समासस्वर अर्थ को प्रभावित करते हैं। परन्तु स्वरों का अर्थ से सम्बन्ध न जोड़ना बीज को खेत में न बोने के समान दुर्भाग्य की बात है। विकल्प न होने पर भी यह समास अनित्य है। उद्धाहुरिव 'वामनः' इस कालिदास के प्रयोग से व्यत्यय भी मान्य है।

इति प्राभाकर्यां केवल समासः।

अथ अव्ययीभावः—न व्येति=विकारं न प्राप्नोति; तीनों लिंग, तीनों वचन, सात कारकों, इक्कीस विभक्तियों के विकार (कार्य) का पूर्ण प्रभाव न पड़े सदा एकरूप रहे। लिङ्ग संख्या कारकसे विकृत न हो, उन्हें अव्यय कहते हैं। न अव्ययं, अनव्ययं=विकारसहितम्। अनव्ययस्य अव्ययभवनम् अव्ययीभावः। जो अव्यय नहीं है विकारों से भरे हैं अनव्यय (लिङ्गसंख्याकारक सहित) को अव्यय (विकाररहित) होना ऐसा समास अव्ययीभाव है। त्रिषु लिङ्गेषु, सर्वासु च विभक्तिषु, सदृशं समानमेकरूपं यत्तिष्ठति तदव्ययम्। तस्य प्रकरणं, प्रक्रिया, सावनिका प्रारभ्यते। इसमें पूर्वपद का अर्थ प्रायः प्रधान है। ७—अव्ययी-

विभक्तिसमीप — समृद्धिव्यृद्धयर्थाभावात्ययासंप्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानु-पूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ।२।१।६। विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन नित्यं समस्यते। प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः। प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ-हरि, ङि अधि इति स्थिते॥ **प्रथमा-निर्दिष्टं समास उपसर्जनम् ।१।२।४३।** समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनं स्यात्। **उपसर्जनं पूर्वम् ।२।२।३०।** समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम्। इत्यर्थः

तत्पुरुषः सूत्र तक अव्ययीभाव समास का अधिकार चलता है। तत्पुरुषः सूत्रके पहले, जितने कार्य होंगे वे कार्य अव्ययीभाव माने जायेंके। ८—अव्ययं कोई भी अव्ययशब्द विभभक्त्यर्थादिषु=विभक्ति अर्थमें समीप अर्थमें, समृद्धि (सम्पन्नता) व्यृद्धि वि+ऋद्धि सम्पत्ति का विनाश। अर्थका प्रादुर्भाव प्राकट्य। पश्चात् यथा आनुपूर्व्य (क्रमशः) यौगपद्य (एकसाथ) सादृश्य समानता सम्पत्ति। शाकल्य (सम्पूर्ण) इन सोलह अर्थोंमें वर्तमान=विद्यमान अव्यशब्दका सुबन्तके साथ नित्य ही समास हो। वह अव्यीभाव कहलाये। नित्यसमासका लक्षण है कि प्रयोग बहुधा अधिकतर अविग्रहः=नास्ति लौकिकालौकिकशरीरम्। जिस समासका विग्रहवाक्य न बने वह नित्यसमास है। यद्यपि यह लक्षण अस्पष्ट है और विग्रह कहनेसे ही समास के अर्थका बोध सम्भव था तब अविग्रह क्यों कहा? अतः स्पष्ट करते हैं कि प्रायेण अस्वपद=प्रायः (बाहुल्येन) करके न स्वेन पदेन विग्रहो यत्र सोऽस्वपद विग्रहः जहाँ उच्चारित या आत्मीय पदके साथ विग्रह न हो (विग्रहभिन्न से) समास भिन्नसे हो) वह अस्वपद विग्रह नित्यसमास माना जाय। विभक्तिके अर्थमें वर्तमान अव्यय नित्यसमास का उदाहरण—

अधिहरि हरौ इति लौकिक विग्रहः (हरि आधार में) इस समासार्थ में हरि ङि, अधि अलौकिक विग्रहे 'इति' के साथ लौकिकविग्रह, 'अधि' के साथ समास ही अस्वपदविग्रह है। यहाँ सप्तमी अर्थका द्योतक, आधार अर्थका प्रकाशक, अधिशब्द है। जो अव्यय जिस विभक्ति के अर्थका प्रकाशक हो, उसी विभक्त्यन्त शब्द का उसी अव्यके साथ समास समझें। हरिशब्दके साथ विभक्त ङि अर्थ में वर्तमान अव्यय 'अधि' का अव्ययं विभक्ति—सूत्र से समास प्रा० सं० विभक्तिलोप। (हरिअधि) किस शब्दका पूर्वप्रयोग हो निर्णायक सूत्र बोले—९ प्रथमा समासविधायकशास्त्र (सूत्र) में प्रथमा विभक्तिसे निर्दिष्ट (उच्चरित बोध्य) शब्दकी उपसर्जनसंज्ञा हो। प्रथमान्तपदजन्यबोधविषयो अर्थः। यथा—समाससंज्ञा-विधायक शास्त्र अव्ययं विभक्ति आदि है। उसमें प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट पद अव्यय है उस अव्यय से बोधका विषय अधि (अधिकरण) शब्द है। इसीकी उप सर्जन संज्ञा हुई, इति उपसर्जन-संज्ञायाम्।

प्राक् प्रयोगः। सुपो लुक्। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः। अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात्सुपो लुक्। अधिहरि। **अव्ययीभावश्च २।४।१८।** नपुंसकं। गाः पातीति गोपाः तस्मिन्नित्यधिगोपम्॥ **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः ।२।४।८३।** अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक्, तस्य पञ्चमीं बिना अमादेशः। कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम्॥ **तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २।४।८४।** अदन्तादव्ययीभावात् तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः। उपकृष्णेन उपकृष्णम्।

---

९१० उपसर्जन समासमें जिसको उपसर्जनसंज्ञा हुई हो, उसका पूर्वप्रयोग हो। अव्यय अधिको उपसर्जनसंज्ञा सूत्रे प्रथमा निदिष्ट होने से) पहले प्रयोग उच्चारण हुआ कृत्तद्धितसमासाश्च इति प्रा० संज्ञा सुप का लुक्, एकदेश–एक अङ्ग के विकृतम् खण्डित हो जाने पर भी, अनन्यवत् अन्य नहीं माना जाता है। छिन्ने पुच्छे श्वा गर्दभो न भवति। जैसे पूँछ के खण्डित होने पर कुत्ता गर्दभ नहीं होता। एवं 'ङि' का लुक् होने पर भी अधिहरि की प्रा०संज्ञा बनी है। ततः स्वादिकी उत्पत्ति। विकृत होनेपर भी प्रा० धर्म सही रहा। सु औ जस् इत्यादि आये। अव्ययीभाव संज्ञा होनेपर अव्ययादाप्सुपः से सुप्का लुक्। (अधिहरि) ब्रह्माण्डं, भगवान् में संसार है। अधिविद्य (विद्याओं में) प्रकाशते व्याकरणम्। १। अव्ययी जो अव्यय नहीं है किन्तु अव्यय हो गये अव्ययीभाव (समास में) हो गये हो वे नपुंसक हों। अस्वपदविग्रह और विभक्ति अर्थमें विद्यमान अव्ययका दूसरा उदाहरण–अधिगोपं गा पातीति (गायकी रक्षा करता है वह) गोपाः तस्मिन् इति लौकिकवाक्य शरीरं, सप्तमीका अर्थ कहने के लिए 'अधि' अव्ययीभावश्च इति नपुंसकसंज्ञा नपुंसकमें प्रातिपादिकके अचको ह्रस्व, प्रथमाका एकवचन सु। स्वमोर्नपुंसकात्से सुका लुक्प्राप्त ततः।२। नाव्य–अदन्त अव्ययीभावसे परे सुप्का लुक् न हो। और पंचमी विभक्तिको, छोड़कर सभी विभक्तियोंके स्थानमें अम् आदेश हो। इति लुक्न अधिगोप अम् अमिपूर्वः। अधिगोपं सर्वगुणाः तिष्ठन्ति, ह्रस्व अकारान्त अव्ययीभाव समाससे परे तृतीया और सप्तमी विभक्ति को बहुल (इच्छानुसार) अम् आदेश हो, इसलिए अधिगोपेन अधिगोपे भी संस्कृत है।

उपकृष्णं (कृष्णस्य समीपं) सत्या तिष्ठति, कृष्ण ङस उप–समीप अर्थमें वर्तमान अव्यय उपका कृष्णके साथ 'अव्ययं विभक्ति' आदिसूत्रसे समीप अर्थमें अव्यय उप का कृष्णङस् सुबन्त के साथ समास एकार्थभाव हुआ। उपशब्द समासविधायक शास्त्र (सूत्र) में प्रथमासे निर्दिष्ट होने पर उपकी उपसर्जनसंज्ञा पूर्वप्रयोग। उपकृष्ण नपुंसकसंज्ञा विभक्ति स्थानमें (अम्) आदेश, (उपकृष्णं) भक्ताः भजन्ति। उपका समीप अर्थ प्रधान तृतीया सप्तमीमें विकल्प (अम्) उपकृष्णे उपकृष्णेन गौरागच्छति। मद्रदेशवासियोंकी समृद्धि सम्पन्नता, विकास ही सुमद्र है। मद्र

बहुलग्रहणात् सुमद्रमुन्मत्तगङ्गमित्यादौ नित्यमम्भावः। मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धिर्दुर्यवनम्। मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्। हिमस्यात्ययोऽतिहिमम्। निद्रा संप्रति न युज्यतेऽतिनिद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाशः इतिहरि। विष्णोः पश्चादनुविष्णु। योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। रूपस्य योग्यमनुरूपम्। अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम्। शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति॥ अव्ययीभावे

'आम्' सु। समृद्धि अर्थमें वर्तमान अव्यय 'सु' का सुबन्त मद्र आम् के साथ समास उप०संज्ञा, पूर्वप्रयोग, सुपलुक्, एकदेश वि० सु, अव्ययीभावश्चसे नपुंसक सु अतो अम् और नपुंससुलुक् दोनोंको बाधकर (नाव्ययीभा० से) सुको अम्भाव सुमद्रं पश्यामि। मद्रासियों की समृद्धि देखता हूं। सुमद्रात् आगच्छामि। यवनों की विनष्ट ऋद्धि (सम्पत्ति) ही दुर्यवनं-मिश्रित जाति है। यवन आम् दुर। विनष्ट ऋद्धि अर्थ में वर्तमान दुर शब्द का सुबन्तेन सह समास, पूर्वप्रयोग दुर्यवनम्। यवनों या वर्णशंकर की नष्टसम्पत्ति समासार्थं। मक्खियोंका अभाव (सन्नाटा) समासार्थवाचक मक्षिका आम् निर। अभाव अर्थमें वर्तमान निर् अव्ययका सुबन्त मक्षिका-आम् के समास आदि कार्य। निर का अभाव अर्थ प्रधान है। निर्मक्षिकं स्थानं पश्यामि। बर्फ का अत्यय विनाश अधिक पिघलना ही अतिहिमं हैं। हिम ङस अति बर्फ का अधिक ह्रास या अधिक ठण्ढ। पूर्वपद के अर्थप्राधान्य का ध्यान रहे। निद्रासम्प्रति=इस समय नींद का आना न युज्यते ठीक नहीं है। निद्रासु अति। असम्प्रति (अनुचित) अर्थमें वर्तमान अति—शब्द सुबन्तके साथ समासादिकार्य, नपुंसंज्ञा, ह्रस्व (अतिनिद्रम्) हरि शब्द का प्रादुर्भाव प्रकाश अर्थ वाचक इतिका हरि ङस् के साथ समासादिः इतिहरि (हरि का प्रकाश) समासार्थं। विष्णुके बाद मैं आता हूं अनुविष्णुअहमागच्छामि। विष्णु ङस् अनु पश्चात् अर्थ में विद्यमान (अनु) का विष्णु ङस् के साथ समासादिः। यथार्थाः—यथा शब्द के चार अर्थ हैं। १—योग्यता जन्मान्तरीय प्रतिभा, स्वाभाविकशक्ति। २—वीप्सा क्रिया का कई बार होना। ३-पदार्थकी अनतिवृत्ति=उलंघन न होना। ४-सादृश्य स्वतः उदाहरणों में यथा शब्द के चारो अर्थ क्रमशः शृणु ! (रूपस्य योग्यं-रूपके अनुकूल अर्थवाचक) रूपङस् अनु। यथा-शब्दके योग्यता अर्थ में वर्तमान अनुशब्द के साथ समास हो। वरस्य अनुरूपं (रूपस्य योग्यं) कन्या। अर्थम् अर्थ प्रति। एक-एक अर्थ पर बारम्बार विचार। अनेकबार अर्थ का वाचक अव्यय (प्रति) का सुबन्त (अर्थ अम्) के साथ समासादिकार्य प्रत्यर्थम् यथाशक्ति=शक्तिमनतिक्रम्य दानं कर्तव्यं, शक्ति का अनुल्लंघन न करके, पदार्थानतिवृत्ति (पदार्थका अनुल्लंघन अर्थवाचक) यथाका सुबन्त शक्ति अम् के साथ समासादिः।४। (अव्ययीभाव) समासमें वर्तमान सहके स्थान

चाकाले ६।३।८१। सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले। हरेः सादृश्यं सहरि। काले तु-सहपूर्वाह्णम्। ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपत्सचक्रम्॥ सदृशः सख्या ससखि। क्षत्राणां संपत्तिः सक्षत्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। अग्नि-ग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि। यथाऽसादृश्ये।२।१।७। असादृश्ये एव यथाशब्दः समस्यते। नेह-यथा हरिस्तथा हरः॥ यावदवधारणे।२।१।८। यावन्तः

में 'स' आदेश हो। परन्तु सहशब्द काल अर्थ में न हो तो। हरि के सदृश= समानताको (सहरि) कहते हैं। हरिटा सह, यथा के सादृश्य अर्थ में वर्तमान सह अव्ययका सुबन्तेन सह समासादिः। अव्ययीभावे चाकालेमें सहके स्थान में 'स' आदेश। 'सहरि' पठिष्यामि। हरिके पाथ पढूंगा। (जेष्ठ बड़े के आनुपूर्वी क्रम से) इस समासार्थ में अनुज्येष्ठं ज्येष्ठता क्रमेण नियुक्तिर्भविष्यति। ज्येष्ठ अम् अनु। यौगपद्य (एककाल में) चक्र के साथ तत्क्षण। चक्र टा सह। युगपत् अर्थ में सह शब्द का चक्र टा के साथ समास, सह स्थाने स आदेशादि (सचक्रं) दुर्वासा पलायते। सखि (मित्रके) सदृश समान, (ससखि,) मित्रं वर्तते। सखि 'टा' सह। क्षत्रियों की सम्पत्ति ही सक्षत्र हैं। सम्पत्ति अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यका समासादिः सक्षत्रं पश्यामि। शाकल्य शकलस्य भावः सम्पूर्णता। तृणका भी त्याग नहीं करता है। पत्तल सहित खा जाता है। (सतृणमत्ति)। तृण अम् सह शाकल्यस्य अर्थमें वर्तमानम् अव्ययं सह का तृण अम् के साथ समासादिकार्य। अग्नि-ग्रन्थमधीते (साग्निः) पर्यन्त अर्थ में वर्तमान सह शब्द का 'अग्नि टा के साथ समासादिकार्य, अग्निग्रन्थ तक जो पढ़ता है, वह साग्नि है। अग्नि ग्रन्थ अर्थ में वर्तमान अव्यय सहका समास, प्रा० संज्ञा, पूर्वप्रयोग, सुलोप, आदिकार्य मुख्य हैं। भाष्यग्रन्थ पर्यन्त मधीते सभाष्यम्।

यथाशब्द असादृश्ये=तुल्यता समानता अर्थमें न हो, किन्तु योग्यता वीप्सा शक्तिका अनुल्लङ्घन अर्थमें वर्तमान हो, त समास एकार्थीभाव हो, यह अर्थ यथार्थ से सिद्ध था, सूत्रने नियम बनाया असादृश्ये—नसादृश्य यथा हरिः तथा हरः सदृश्य होनेसे समास नहीं हुआ।

यत्परिमाणमेषां ते यावन्तः। इयत्ता परिच्छेदकः इतना परिमाण मात्राका अवधारण ज्ञान होता हो। जितने श्लोक हैं (भागवतके) उतने भगवानके प्रमाण है। परिमाण अर्थमें यत्तदेतेभ्य वतुप्। यावत् जस् श्लोक जस् समासादिकार्य। नित्यसमासमें अस्वपदविग्रह उचित। अवधारणे किं ? मात्राका निश्चय अर्थ क्यों ! इसलिएकि यावद्दत्तं तावद्भुक्तं जितना दिया उतना खाया। कियद्दत्तं कियद्भुक्त-मिति नावधारयति, समासो मा भवतु। यावत् का श्लोक के साथ समाप्त।

श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रमाणा इति यावच्छ्लोकम् ॥ सुप्प्रतिना मात्रार्थे ।२।१।९। शाकस्य लेशः शाकप्रति ॥ विभाषा ।२।१।११। अधिकारोऽयम् ॥ अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या ।२।१।१२। अपविष्णु संसारः-अप विष्णोः । परिविष्णु-परि विष्णोः । बहिर्वनम्-बहिर्वनात् । प्राग्वनम्-प्राग्वनात् ॥ तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च । २।१।१७। एतानि निपात्यन्ते । तिष्ठन्ति गावो यस्मिन्काले स तिष्ठद्गु दोहन-

---

सुप् प्रतिना=तृतीया है, मात्रा-लेश किञ्चित्=अर्थ में वर्तमान प्रति, इस अव्ययका सुबन्तके साथ समास एकार्थीभाव हो। सूत्रमें सुपासे सुप् आता ही, पुनः सुप् क्यों पढ़ा ! वह अव्ययकी निवृत्तिके लिए प्रमाण बनेगा। इसी भावको स्पष्ट खोलनेके लिए उदाहरण शाकास्य लेशः (सागकी कुछ मात्रा अर्थ में) शाक ङस् लेश सु इति अलौकिक विग्रहे। मात्रा अर्थ में प्रतिके साथ शाक ङस् इस सुबन्तका समास एकार्थ। समासविधिसूत्रके सुप् में प्रथमा है, उसको उपसर्जनसंज्ञा, पहले प्रयोग। 'प्रतिना'में तृतीया पढ़नेसे प्रतिका पूर्वप्रयोग नहीं। सुप् न पढ़ते, दीपामन्यमहः (रातके समान दिन) दिवामान्या रात्रिः इस प्रवृत्तिके विषयमें एव-मात्र अर्थमें प्रतिका स्मरण हो, तब दिनस्य—लेशो दिनप्रति दोषायाः लेशो दोषाप्रति इत्यादि।

विभाषा अधिकार सूत्र। उत्तर भागमें समस्तसमासमें अनुवृत्तिवास्ते। विभाषा अपपरिबहि-सूत्रका विभाग है। परन्तु इस विभाषा (पक्षपातिनी भाषा या विविधा भाषा विकल्प।

अप परि बहि अञ्चू इनका पञ्चम्यन्तके साथ पूर्वपदार्थ प्रधान-समास। पूर्वपद में उत्तरपद मिल गया (दूधमें जलकी तरह) पञ्चम्याङ्परिभिः से अप परिके योगमें पञ्चमी। 'अन्यारादितर' से अञ्चु परे पञ्चमी। ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र। अपविष्णु विष्णुंवर्जयित्वा (संसरणं संसारः) भगवान्से वञ्चितका जन्म मृत्यु प्रपञ्च है। विष्णु ङस् अप-समासके विकल्पसे अस्वपदका नियम नहीं। अव्ययीभावसमासे सुपो लुक् प्रथमासे उच्चारित अपका पूर्वनिपात। समुदायसे सुप् उसका 'अव्यादासुपः से लुक्। इसी प्रकार परिविष्णु। विष्णु ङस् परि। विवेकपूर्वक समास विकल्पे, वाक्य भी। बहिर्वनम् वनसे बाहर सेना तिष्ठति। सूत्र ज्ञापनसे वहिः के योग में समास। वन ङस् बहिः समासादिः। अदन्त होनेसे लुक्को बाधकर अम्। प्राग्वनम्। वनसे पहले वनङस् प्राक् प्रकर्षेण अञ्चति समासे पूर्ववत्कार्यम्। पक्षमें वाक्यभी

तिष्ठद्गु इत्यादि गणपठित शब्दरूपका निपातन (सूत्रमें पढ़ें शब्दोंकी-कल्पना अनुमानसे सिद्ध हो, समासमान्य। तिष्ठन्ति गावः यस्मिन् काले, गायें रुकती है, वह दोहकाल। उस समय शयन उपवेशन नहीं। तिष्ठत् जस् गोजस् इति अलौकिके, सूत्रेण समासादिः। तिष्ठद्गुः दोहनकालः समासार्थं है। आयत्यः गावः यस्मिन्काले-आती है गायें जिस कालमें, (आयतीगवं) सायंकाल-शाम को चरकर आती हैं।

कालः ॥ **पारेमध्ये षष्ठ्या वा ।२।१।१८।** पारमध्यशब्दौ षष्ठ्यन्तेन सह वा समस्येते । एदन्तत्वं चानयोर्निपात्यते । पारेगङ्गम् । गङ्गापारम् मध्येगङ्गम् । गङ्गामध्यम् । महाविकल्पेन वाक्यमपि ॥ **संख्या वंश्येन ।१।२।१९।** वंशो द्विधा-विद्यया जन्मना च । तत्र भवो वंश्यः । तद्वाचिना सह संख्या समस्यते ।

पारे=पार और मध्यशब्द षष्ठ्यन्तके साथ समस्त (एकार्थीभूत) होते हैं और एदन्तत्वम्=एकारान्त निपातनसे मान्य. दोनों का साथ समास होनेपर। यद्यपि विभाषा अधिकारसे पक्षपात सिद्ध था, वा, क्यों पढ़ा ? तब बोले—पक्षमें षष्ठी-समास बांध लेता, उसे बांधनेके लिए पढ़ा । गङ्गायाः पारात्, पारेगङ्गात् आनय । गंगाजीके जल पारसे लाओ । गंगा ङस् पार ङसि इति विग्रहे पारेमध्ये सूत्रेण समासे समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो धातुप्रादिकयोः सुपः लुक् । पारका पूर्वप्रयोग । निपातनसे एत्व । पारेगङ्गं, नपुंसकह्रस्व, पुनः पञ्चमी । नाव्ययी-भावात्के निषेधसे न लुक् । आत् पारेगङ्गात् अपञ्चभ्याः-पर्युदाससे अम् भी नहीं । इसी प्रकार मध्येगङ्गात् । पक्षमें षष्ठीतत्पुरुष गङ्गामध्यात् । यहाँ विभाषाका अधि-कार होनेकी विशेषतासे वाक्य भी रहता है । प्रायः सभी समासमें विभाषाका आगमन । गङ्गायाः पारात् वाक्य भी । यत्र उत्सर्गापवादौ महाविभाषया विकल्पितौ, तत्रापवादेन मुक्ते पुनः उत्सर्गो न प्रवर्तते इति ज्ञापनाय वा ग्रहणम् । जिसका फल पूर्व कायस्यमें षष्ठी समास न होना । दक्षस्यापत्यं दाक्षिः में तस्याऽपत्यं का न लगाना, किन्तु वाक्य ही रहता है ।

संख्या—वंशः सन्तानः तत्र भवो वंश्यः । संततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ वंशो अन्वयावः संतान इत्यमरः । वंशमें दो भेद विद्यावंशः—गुरुपरम्परा, जन्मना-पुत्रादि परम्परा । यस्माद्-धर्मानानिनोति स आचार्यः तस्मै न द्रुह्येत्कदाचन । हि विद्यातस्तं जनयति तच्छ्रेष्ठं जन्मः शरीरमेषां मातापितरौ जनयतः । पढ़कर नया संकार ही नूतन जन्म है ।

पिता शरीरका जन्म देता है । इति आपस्तम्बे । तस्मिन्वंशे भवः वंश्यः । दिगादिः यत् । तद्वाचिना विद्यावंशकुलमें पैदा हो, ऐसे अर्थवाची शब्दके साथ संख्याका समास-एकार्थ हो, अव्यीभावमान्य । यथा द्वौ पाणिनिकात्यायनौ मुनि-वंश्यौ (आचार्य विद्या परम्परामें प्रादुर्भूत) लौकिक विग्रहे (मुनि शब्द विद्यावंश का सूचकः) द्वि औ मुनि औ समासादिः । अव्यात्सुपोलुक् द्विमुनि । द्वौ च मुनी इस विग्रहमें विशेषणं विशेष्येण बहुलंसे कर्मधारयको बांधकर अव्ययीभावः । व्याकरण विद्याके प्रशस्त जन्मदाता पाणिनिकात्यायन दो मुनि है । पतञ्जलि भी । अतः त्रिमुनि । त्रयोः मुनयः पाणिनिकात्यायनपतञ्जलयः । त्रिजस् मुनिजस् इति

द्वौ मुनी वंश्यौ-द्विमुनि। व्याकरणस्य त्रिमुनि। विद्यातद्वतामभेदविवक्षायां—त्रिमुनि व्याकरणम्। एकविंशतिभारद्वाजम्॥ नदीभिश्च २।१।२०। नदीभिः संख्या वा समस्यते। समाहारे चायमिष्यते। सप्तगङ्गम् द्वियमुनम्॥ अन्यपदार्थे च संज्ञायाम् २।१।२१। अन्यपदार्थे सुबन्तं नदीभिः सह नित्यं समस्यते संज्ञायाम्। विभाषाऽधिकारोऽपि वाक्येन संज्ञानवगमादिह नित्यसमासः। उन्मत्त-

---

अलौकिकविग्रहे सङ्ख्यया सह समासादिः। यदि ऐसा त्रिमुनिव्याकरणं में समानविभक्ति कैसे? मुनि तीन हैं, व्याकरण एक है। तब बोले विद्यातद्वतां=ज्ञान और ज्ञानवान्में अभेदकी इच्छा होनेपर 'त्रिमुनि', मिलकर व्याकर विद्याके प्रवर्तक। पूर्वपदार्थप्रधानसमासः। यदि अन्यपदार्थप्रधान होता, तब त्रयो मुनयो वंश्याः यस्य बहुब्रीहिसमासे। इसको बहुब्रीहि न मानकर अव्ययीभाव माना जाय इसलिए कि सभी विभक्तियोंमें रूपभेद है समानता नहीं, बहुब्रीहिभावमें अव्ययीभाव होता है। उसमें प्रमाण अभिमुखग्रहणसे दिया जा चुका है। जन्मना वंशका उदाहरण—एकविंशतिर्भद्वाजम्। एकश्चासौ विंशति, कर्मधारयको बाधकर (इक्कीस) संख्याप्रधाने अर्थे अव्ययीभावः (लिङ्गसंख्यारहित फलवाला) समासार्थः। विदादि अञ्, तस्य लुक्। समास होनेपर उपकादिभ्यः से, लुक्का अभावः। उपकादिगणमें भारद्वाजका पाठ अनुमेय है।

नदीवाचक शब्दके साथ संख्यावाचीशब्द का समास हो। (वा०) यह समास समाहार अर्थमें इष्यते अभीष्ट है पञ्चगङ्गम् पञ्चानां गङ्गानां समाहारः (पांच गंगा नदियों का समुदाय) लौकिक विग्रह। पञ्चन् आम्, गंगा आम्। नदीवाचक गंगाके साथ संख्यवाचक पञ्चन् का समास। प्रा० संज्ञा, सुलोप, प्रातिपदिकान्तस्य नलोप, नपुंसकसंज्ञा प्रातिपदिकत्वात्सु, स्वमोर्नपुंसकात् से लोप प्राप्त जिसे बाधकर नाव्ययीभावात् सुस्थाने अम् आदेश। पाँच गंगाका संगम समासार्थ। द्वयोः यमुनयोः समाहारः दो यमुना का संगम। नदीवाची यमुना का संख्यावाची द्विके साथ समास, द्वि ओस् अमुना ओस्। आपञ्चम अध्याय समाप्तिपर्यन्त अधिकार तद्धित का है।

अन्यपदार्थे=प्रयोगमें उच्चरित शब्द किसी अन्य अर्थको कहे, उस अर्थमें वर्तमान सुबन्तका नदीवाचकशब्दोंके साथ नित्यसमास हो, संज्ञाअर्थमें। सङ्ख्यया-निर्गतः, नदीभिः आगतः। उस एक अर्थको अव्यीभाव मान्य। अन्यपदार्थ न कहे तब कृष्णवीणीमें नित्यसनास कैसे? क्योंकि विभाषाधिकारे-विकल्पसमासका अधिकार है। तब बोले—विकल्पका अधिकार भले ही हो, किन्तु वाक्यसे संज्ञाका अनवगम=ज्ञान न रहनेसे यहां नित्य समास हुआ। क्योंकि सम्यक्ज्ञयते इति संज्ञा, जिसको पूर्णतासे जाना जाय। सम्पूर्वक ज्ञा से कर्ममें अङ्। उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन् इस वाक्यसे संज्ञा किसी नाम देशका ज्ञान नहीं। अतः अलौकिको अस्वपदविग्रही फलतः। वस्तुतः विभाषाऽधिकारसे यह समास विकल्प ही है। उन्मत्ता सु गङ्गासु-

गङ्गं नाम देशः। लोहितगङ्गम् ॥ **तद्धिताः** ।४।१।७६। आ पञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम् ॥ **अव्यीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** ।५।४।१०७। शरदादिभ्यष्टच स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे। शरदः समीपम्-उपशरदम्। प्रतिविपाशम्। शरद्। विपाश्। अनस् मनस्। उपानह्। दिव्। हिमवत्। अनडुह्। दिश् दृश्। विश्। चेतस्। चतुर् त्यद् तद् यद्। कियत्। 'जराया जरस् च'। उपजरसम् ॥ **अनश्च** ।५।४।१०८। अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् ॥ **नस्तद्धिते** ।६।४।१४४।

अन्यपदार्थे समासादिः। उमड़ी हुई बाढ़पूर्णगंगाका देश। लोहिता गंगा यस्मिन्देशे लालरंगका देश उनका नाम लोहितग्ङगम्, लोहिता सु गंगा सु अन्यपदार्थे अव्ययीभाव ६। **तद्धिताः** से लेकर पञ्चम अध्याय समाप्ति तक के सूत्रों से सहित सभी प्रत्ययकी तद्धितसंज्ञा हो। जिसका फल कृत्तद्धित से प्रातिपदिकसंज्ञा है। ७। **अव्ययीभाव** समासादिः। विपाशाशब्द नदीविशेष अर्थमें है। (विपाशा तु विपट् स्त्रियाम्) विपाशा, प्रतिविपाशं, लक्षणेनाभिप्रतीसे अव्ययीभावसमासादिः विपाशानदीके सामने सेना है। एवं अनः शकटं गाड़ी तं प्रति प्रत्यनसं करः प्रत्येक गाड़ी पर टैक्स। मनसः समीपम् उपमनसं ध्यानं, प्रत्युपानहं, प्रतिदिनं वर्षणम्। हिमवतः समीपं, उपहिमवदं, प्रत्यनुडुहं भोजनं प्रतिदिशं, उपविशम् उपविशमित्यादि। ये गण के समास में शरद आदि शब्दोंसे समासान्त टच्प्रत्यय हो। ट च इत् अ शेष। तद्धितसंज्ञा हो प्रा-संज्ञा, स्वादिकार्य। शरदः (ऋतु के) समीपम् (आसपास) उपशरदम्। शरद्ङस् उप इति अलौकिक विग्र हैं। समीप अर्थमें वर्तमान्-अव्यय 'उप' शरद् ङस् इस सुबन्तके साथ अव्ययविभक्ति सूत्रसे समास, उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यं नपुंसक संज्ञा,टच्प्रत्यये 'सु' स्थाने अम् आदेशे। **प्रतिविपाशं** विपाशायाः अभिमुखं (विपाशा नदी के समक्ष) इति लौकिक विग्रह अथवा विपाशं विपाश प्रति। विपास अम् प्रति इति अलौकिक विग्रहे अव्ययीभावसमास उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग, समासान्तटच्, भसंज्ञा यस्येति अकारलोप नपुंसकह्रस्वादिकार्य। जरायाः समीपमुपजरसं तिष्ठति। वृद्धावस्थाके आस-पास (वा) जरा के स्थान में जरस् आदेश हों, चकारसे समासान्त टच्भी हो। जराङस् उप। समीपार्थ में वर्तमानमव्यय उप का जरा के साथ समासादिकार्य, समासान्तटच् अकारान्त अव्ययीभाव से विभक्ति के स्थानमें अम् आदेश। ८। **अनश्च** अन् अन्त में हो ऐसे अव्ययीभाव से टच् हो। ९। 'नस्तद्धिते न अन्त में हों ऐसे भसंज्ञक टिका लोप हो, तद्धितपरे। राज्ञः समीपमुपराजं (राजा के आस-पास) राजन् ङस् उप। समीपार्थे वर्तमानसंज्ञा आदि कार्य, उपराजन् इति दशायाम् 'अनश्च' सूत्रेण टि (अन्) लोपे सु-अम् आदेश का रूप। (उपराजम्। अध्यात्मम्) आत्मनि चैतन्ये स्थिरम् (आत्मा के विषय में) आत्मनि अधि इति लौकिक विग्रह। आत्मन् ङि अधि इति अलौकिक

नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते । उपराजम् अध्यात्मम् ॥ नपुंसकादन्यतरस्याम् ।५।४।१०९। अन्नन्तं यत् क्लीवं तदन्तादव्ययीभावाट्टच् वा स्यात् । उपचर्मम्—उपचर्म ॥ झयः ।५।४।१११। झयन्तादव्ययीभावाट्टच् वा स्यात् । उपसमित्—

विग्रहे सप्तम्यर्थे वर्तमान अधिशब्दके साथ सुबन्तका समास उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग सुपका लुक् । अनश्चेति टच् । नस्तद्धिते इति टिलोपे प्रां० संज्ञा, सुविभक्ति आदि-कार्यं । शरीर में चेतन हैं । अथवा अध्यात्मं वक्तव्यम् आत्मा के विषय में बोलना चाहिए ।

झयन्त—झभघढधजबगडदखफछठथचटतकप, ये अक्षर जिनके अन्तमें हो उनसे (झयःसे) टच् प्राप्त था, नित्य टच्के लिए गणमें (पढ़े गये । प्रति परि सम् अनु) इनसे परि परे अक्षिन् शब्दसे टच् हो । शरद्गण मान्य, यस्येतिच इलोप, टच्से तद्धितान्त परे मिलने पर । यथा प्रत्यक्षम् अक्षिणी प्रति, टच् दोनों आंखके सामने अक्ष्णोः अभिमुखं लक्षणेत्थंभूतसे कर्मप्रवचनीयसंज्ञा द्वितीया । अक्षिन् औ प्रति । अलौकिकदशायां लक्षणेनाभिप्रती सूत्रसे अव्ययअर्थप्रधानसमास एकार्थीभाव हुआ । जिसके कारण शरदादिगणपठितप्रत्यक्षिन्से टच् अ । समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपोलुक् । अव्ययसंज्ञा नपुंसक, टिलोप् । प्रत्यक्ष (इन्द्रियोंके समक्ष) शब्दात् यथायोग्यं सुप्, तस्य अम्भावः । वृत्तिके विषयमें अक्षिशब्द पांच ज्ञानेन्द्रियोंका सूचक है । परोक्षं= क्रिया देखी गयी न हो, अक्ष्णः परम् आंखसे परे व्यवधानमें क्रियानर्शनका अविषय । अक्षिन् ङस् पर इति विग्रहे अव्ययीभाव समासादिः परोक्षम् । अत्र शङ्का-परशब्दः नहि अव्ययं कथं समासः, तदा मूले कथितं समासान्तविधान=अव्ययीभाव समास होने पर टच् विधान करनेकी प्रबलतासे, परका भी समासमान्य । ननु समासे कृते परक्षं भवतु ओकारः कथं ? तदा निगदितं 'परोक्षे लिट्' सूत्रमें ओकार पढ़नेकी प्रबलता निपातन सूत्रमें ओकार उच्चारण सामर्थ्यसे परके आगे ओ आदेशः । परोक्षम् ।

नपुंसकशब्द अन्नन्त हो तो, उस अव्ययीभाव से टच् (अ) विकल्प से हो । चर्मणः समीपं (चमड़े के आस-पास) इति लौकिक विग्रह । चर्मन ङस् उप इति अलौकिक विग्रहे अव्ययं विभक्ति से समास, पूर्वनिपात, सुब्लोप, उपचर्मन्—नपुंसकलिंगात् उपचर्मन्शब्दात् टच् विकल्प, टिलोप, सुप् स्थाने अम् आदिकार्य, उपचर्मम् । पक्षे नकारलोपे उपचर्म । १ । झयः=झय प्रत्याहार के अक्षर अन्त में हो ऐसे अव्ययीभाव से टच् विकल्प से हो । समिधायाः समीपं लकड़ी के आसपास । समिधाङस् उप समासादिकार्य, झयः सूत्रेण विकल्पेन टच् । सुस्थाने अमादेशे उपसमिधम् । टच्अभावपक्षे (उपसमित्) नपुंसकवद्रूप इत्यव्ययीभावाधिकारे ।

नदीपौर्णमासी आग्रहणी अन्तमें हो ऐसे अव्ययीभावसे टच् विकल्प हो । नदी-

उपसमिधम् । **नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः** ।५।४।११० वा टच् स्यात् । उपनदम् । 'यस्येति चे'ति इलोपः उपनदीत्यादि ॥ **गिरेश्च सेनकस्य** ।५।४।११२। टच् वा स्यात् । उपगिरम् । उपगिरि ॥ (**प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः**) टच् स्यात् । अक्षणोऽभिमुखं प्रत्यक्षम् । अक्ष्णः परं परोक्षम् । अतएव समासः । परोक्षे लिडिति निपातनात्परस्योकार इत्यादि ॥ इत्यव्ययीभावप्रकरणम् ॥

संज्ञा न लें, सहचारके प्रभावसे । अन्यतरस्यां और टच् आये । नद्याः समीपम् उपनदं नदीके लगभग । समीपे अर्थे उप अनेन सह अव्ययीभाव समासे नदीपौर्णमासी-टच् । भसंज्ञा यस्येति च इ-लोप उपनद शब्दात्सुप् अकारान्त होनेसे अम् ।

गिरेश्च--सेनक आचार्यके मतसे गिरिशब्द अन्तमें हों, ऐसे अव्ययीभावसे विकल्प टच् हो । यद्यपि अन्यतरस्यांके आनेसे विकल्प होता ही । अतः बोले पूजार्थम्-आचार्यका नाम प्रसिद्धिके लिये । गिरेः समीपम् (उपगिरं) मम ग्रामः । गिरि ङस् उप समसादिः । गिरेश्च टच् । भसंज्ञा इकारलोपे अदन्तात् अव्ययीभावात्सु अम् । यदा न टच् तदा उपगिरि । जो पूर्वपदार्थ प्रधान नहीं हैं उनकों अव्ययसंज्ञा का ३ प्रयोजन नपुंसक, अम्भाव अव्ययादाप्सुपरे लुक् है ।

॥ इति प्राभाकरीटीकायां अव्ययप्रकरणं परिपूर्णम् ॥

अथ तत्पुरुषाधिकारे समास :—(२) उत्तरपद का अर्थ प्रधान हो ऐसा समास तत्पुरुष है । जिसमें तत् पद् सर्वनाम (सर्वार्थवाचक) विशेषण है । पुरुषपद विशेष्य उत्तर भागमें प्रधान अर्थका बोधक है । इसके उत्तरपदार्थ प्रधान इष्टः । अतः तत्पद में सातो विभक्तियों की सम्भावना से, सातों विभक्तियों के साथ पुरुष-पदका समास होगा । तत्पदके विशेषण होनेसे विशेषणविशेष्य सम्बन्ध भी तत्पुरुष का अर्थ है । इसलिए सचासौ पुरुषः, तं पुरुष, तस्मै, तस्मात्, तस्य, तस्मिन् पुरुषः तत्पुरुषः स च पुरुषश्च तत्पुरुषः सौत्रंपुंस्त्वं । बहुव्रीहिसमास के पहले जो समास हों वे तत्पुरुष संज्ञक हों । तत्पुरुषाधिकारे पठितत्वं तत्पुरुषत्वम् ।

(३) द्विगुसमास भी तत्पुरुषसंज्ञक हो । यह दो या अनेकपद (प्रथमान्त उत्तरपद वाला समास) है । प्रथमान्त का समास विशेषणविशेष्यभावके व्याज से आगे कहेंगे । द्वितीयान्ततत्पुरुष से प्रकरण का प्रारम्भ ।

(४) द्वितीया--द्वितीयाविभक्ति हो अन्त में ऐसे पदका श्रितः (शरणं प्राप्तः) अतीतः (बीताकाल) पतित, गत, अत्यस्त (फिसला हुआ, अस्त व्यस्त) प्राप्त, आपन्न, ये शब्द प्रकृतिक प्रातिपदिक हों ऐसे सुबन्त के साथ समास हो, विकल्प से । वह समास तत्पुरुष समझा जाय । यथा कृष्णं श्रितः कृष्णस्य शरणं प्राप्तः (भगवान

अथ तत्पुरुषसमासप्रकरणम्

तत्पुरुषः ।२।१।२२। अधिकारोऽयं प्राग्बहुव्रीहेः ॥ द्विगुश्च ।२।१।२३। तत्पुरुषसंज्ञः ॥ द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ।२।१।२४। द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते । कृष्णं श्रितः-कृष्णश्रित, । इत्यादि ॥ तृतीया तत्कृतार्थेनगुणवचनेन ।२।१।३०। तृतीयान्तं तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थ कृतगुणवचनेनार्थेन च सह प्राग्वत् । शंकुलया खण्डः-शंकुलाखण्डः । धान्ये-

---

का भक्त) समासार्थवाचक कृष्णं श्रितः लौकिक विग्रह, (कृष्ण अम् श्रित सु) अलौकिक-विग्रह । द्वितीयान्तपद 'कृष्ण' का श्रित सु शब्द के साथ द्वितीया श्रितातीत सूत्रसे समास । एकपद, एकअर्थ एकशक्ति, होना समास है । उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग, जलमें वर्षाकी तरह प्रा० संज्ञा सुपोधातुप्रातिदिकयोः से सुप् लुक्, एकदेश विकृतन्यायेन, प्रा० संज्ञा, विभक्तिकार्य । कृष्णकी शरण में प्राप्त समासार्थ) इत्यादि पदसे दुःखम् अतीतः (दुःखको पार कर गया) आशातीतः कूपं पतितः (दर्दुरः) नरकं पतितः ग्रामगतः (गाँवमें गया) स्वर्गगतः, अत्यस्तः तुहिनम् । बर्फ फिसला । प्रह्लादः समुद्रात्यस्तः समुद्र में फेंका गया । त्रिशंकुः स्वर्गात्यस्तः, स्वर्ग से ढकेला हुआ । सुखं प्राप्तः, (नरः) दुखापन्नः शंकटापन्नः एवमनन्ताः शब्दाः बोधव्याः ।

तृतीयान्तपद का उसी तृतीयान्त शब्द का अर्थ (वस्तु) सरौता आदिसे कृत= किया हुआ गुणवचन = गुणवाचक टुकड़ा (खण्ड) आदि शब्दके साथ और अर्थ-शब्द का समास (एकार्थीभाव) हो । अनेकपद का एकपद एक शक्ति होना फल यथा शंकुलाखण्डः (सरौतेसे किया हुआ टुकड़ा) यहाँ पर तृतीयान्तपद (शंकुलया खण्डः इति लौ० में शंकुलया है । उसका अर्थ सरौता शंकुलारूपं तत्कृतो गुणः (उससे किया हुआ खण्डन) क्रियारूपः (टुकड़े करना) उसका वाचक खण्डपद है । तृतीयान्तप्रक्रितिकसुबन्त शंकुलाटा का खण्डसु के साथ तृतीयातत्कृतार्थेन से समास । मेघवर्षणन्यायेन उपसर्जनसंज्ञा पूर्वप्रयोग, विभक्तिसम्बन्धिकार्य शंकुलाकरणकखण्डनक्रियाश्रयः समासार्थः । धान्येन अर्थः धान्यार्थः [धान से मतलब] अर्थ्यते इष्टं साध्यते, अनेनअर्थः [प्रयोजनं] जिससे इष्ट सिद्धि हो वह अर्थ (अभीष्ट साधक) प्रयोजन है । धान्य टा अर्थसु इस विग्रहमें तृतीयान्त धान्य टा का अर्थके साथ । समासनिमित्तकस्वादिकार्य । तत्कृत सूत्रमें तृतीयान्तपद का अर्थ (सरौता) उससे कृत (खण्ड) ऐसा क्यों कहा ? अर्थात् (कर्तृकरणे कृता बहुलं) सूत्र से समास सिद्ध करता, पुनः सूत्रमेव किमर्थम् ! दोनों उदाहरण में करणे तृतीया है, सूत्र व्यर्थ होकर नियम बनाता है कि यदि गुणवचन के साथ तृतीयान्त का समास हो, तब तत्कृतेनैव=तृतीयान्त वस्तु से किया हुआ गुण-टुकड़ा होने पर ही हो ।

नार्थो-धान्यार्थः। तत्कृतेति किम् ? अक्ष्णा काणः॥ **पूर्वसदृशसमोनार्थकलह-निपुणमिश्रश्लक्ष्णैः** ।२।३१। तृतीयान्तमेतैः प्राग्वत्। मासपूर्वः। मातृ-सदृशः। पितृसमः। ऊनार्थे-माषोनं कार्षापणम्। माषविकलम्। वाक्कलहः। आचारनिपुणः। गुडमिश्रः। आचारश्लक्ष्णः॥ (**अवरस्योपसंख्यानम्**)।

इसलिए अक्ष्णा काणः। (आँख का काना) यहाँ काणत्व गुण आँखकी क्रियासे नहीं, किन्तु रोगादि अन्यकारणों से है। तत्कृत न कहते तब यहाँ भी समास हो जाता है।

(६) कर्ता और करण अर्थमें तृतीयान्तपदका कृदन्तशब्दके साथ बहुलं=इच्छा-नुसार समास हो, यथा हरिणा त्रातः—हरिकर्तृकरक्षणाश्रयः रक्षा का पात्र, हरि टा त्रात सु अलौकिक विग्रह। कर्तृकरणे कृता बहुलं सूत्रसे, कर्तरि तृतीयान्तपद (हरिणा) का (कृदन्तपद) त्रातः के सह समास समासत्वत्प्रा० सं० स्वादिकार्य। हरित्रातः भगवान् से रक्षा किया गया इति समासार्थः। नखैर्भिन्नः लौकिक वाक्य, करणका तृतीयान्तपदं नखैः नखभिस् का भिन्नसु के साथ कर्तृकरणे सूत्रसे समास प्रा० सं०, सुप् का लुक्, स्वादिकार्य नखभिन्नः। नखकरणकभेदनाश्रयः चणकः। नख से निकोला आलू। जहाँ पर निर् उपसर्ग है। नखैः निर्भिन्नः परन्तु प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य, तस्य च ग्रहणं इस परिभाषा से केवल कृदन्त तदादिभिन्न ही ग्राह्य होगा, निर्भिन्न नहीं, तब निर्भिन्न शब्द के साथ नखैः का समास कैसे हैं ? अत आह-कृद्ग्रहणे-जहाँ कृदन्त का ग्रहण हो वहाँ गतिसंज्ञक (निर्) और कारकपूर्व का भी ग्रहण हो। गतिसंज्ञक निर्के पूर्व में रहते समास, स्वादिसम्बन्धिकार्य। नख-निर्भिन्नः नख से विदारण किया हुआ (हिरण्यकश्यपुवक्षस्थलम्)।

(६) चतुर्थी=चतुर्थी अन्तमें हो तदर्थार्थ–उस शब्द का वाच्य अर्थ (यूप आदि) उसी के लिए जो वस्तु (दारु लकड़ी आदि) उसके वाचकपदके साथ और अर्थ (वस्तु) बलि, पूजा, (उपहार) हित (भलाई) सुख, रक्षित, शब्द के साथ, चतुर्थ्यन्तपद का समास (एकार्थीभाव) हो विकल्प से। यूपाय दारुः यूपः यज्ञस्तम्भ के लिए दारु (लकड़ी) यूपङे दारुसु इति अलौकिकवाक्य 'चतुर्थीतदर्थार्थः आदि सूत्रसे समास, प्रा० संज्ञा, सुप्लुक् आदि कार्य। यूपपद की यहाँ तदर्थपद में पूर्वपद उत्तरपदमें प्रकृतिविकृतिभाव ही इष्ट है। प्रकृति (समवायिकारण) विकृति (कार्य) इस प्रकारका कार्यकारणभाव होने पर समास हो। दारु समवायिकारण है यूपकार्य है। दारु प्रकृति है, उसी को काट छाँट गढ़कर यूप खम्भा बना (विकार) है। अतः समास हुआ, एवं घटाय मृत्तिका घटमृत्तिका। पटाय तन्तवः पटतन्तवः।

मासावरः ॥ अन्नेन व्यञ्जनम् ।२।१।३४। संस्कारकद्रव्यवाचकं तृतीयान्तमन्नेन सह प्राग्वत् । दध्ना उपसिक्तमोदनं दध्योदनम् । भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ।२।१

पूर्वसदृश—समान, सम–तुल्य ऊनार्थ–न्यून, कलह झगड़ा, निपुण–कुशल, मिश्र–मिलावट, श्लक्षण–चमकता हुआ तेजस्वी, इन तृतीयान्त शब्दोके साथ समर्थ सुबन्तका समास (तत्पुरुष एकार्थीभाव) हो । सम और सदृशके योगमें तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां से तृतीया, अन्यके सम्बन्धमें हेतौ तृतीया, वचन सामर्थ्यसे । यथा मासेन पूर्वः महीनाके पहले पैदा हुआ । यद्यपि पूर्व की अवधि मास है अन्य आरात् इतर ऋत्, दिक्शब्दके योगमें पञ्चमी प्राप्त है, क्योंकि दिशि दृष्टः शब्दो दिक्शब्दः किसी दिशामें देखा गया । किन्तु ज्ञापनसे तृतीया, अन्ये हेतौ तृतीया । मास टा पूर्व सु । पूर्वसदृश–सूत्रेण समासादिः । मात्रा सदृशः मातृसदृशः, माताके समान स्वभाव समासार्थ । मातृ टा सदृश सु आदिः । पित्रा समः पिताके तुल्य समासार्थः सादृश्य सम्बन्ध, पितृ टा सम सु आदिः, ऊनार्थः का उदाहरण–माषोनं कार्षापणं कौड़ी तोला मासाके अनुसार माषा नामक परिमाण मात्रा ऊन=कम । माषाया ऊनम् अवधि मासा है, ज्ञापनसे तृतीया । अर्थका ऊन न्यूनसे सम्बन्ध, पूर्वसदृश आदिसे नहीं, 'सम' सदृशके अलग पढ़नेसे । माषा टा ऊन सु । अर्थका प्रयोजन, माषेण विकलं, हीनं माषविकल एक माषा कम, तृतीया पूर्ववत् । माषाटा विकल सु । वाचा कलहः वाणीका झगड़ा । हेतु सम्बन्ध । वाच् टा कलह सु । आचारेणनिपुणः, सदाचारहेतुक नैपुण्यवान् । आचारविचारमें दृढ़ । आचार टा निपुण सु । गुडेन मिश्रः गुडमिश्रः गुडहेतुक मिश्रणक्रियावान्, गुडधाना आचारेण श्लक्ष्ण· आचारहेतुक कुशलत्ववान् चमकता हुआ । गुड सम्मिश्रा धाना अच्छीतरह मिलाया हुआ । यहाँ सम् उपसर्ग होनेसे समास कैसे ? तदन्तविधि नहीं होगी क्योंकि समास विधिमें तदन्तका निषेध है ।

अवर (पूर्व अर्थ मे) का भी ग्रहण करें । पूर्वसदृशसम–ऊन सूत्रमें अवर शब्द भी पढ़ें । यथा मासेन अवरः बसन्तः । एक माह पहले ऋतु आती है । अवरका पूर्व अर्थ है, यदि न्यून अर्थ होता तो ऊनार्थक मानकर समास होता । सप्तदशावराः सत्रमासीरन् । सत्रह यज्ञ कम किये । द्व्यजवरार्धात्=सूत्रमें अवरका न्यून अर्थ प्रसिद्ध है ।

अन्नेन—खाद्य वस्तुवाचक शब्दके साथ व्यञ्जनं–संस्कारकद्रव्यवाचकं संस्क्रियते, गुणनाम् आधानं क्रियते अनेन संस्कारः सिञ्चनद्रव्यं, दधि घृत आदिः । व्यञ्जनवाचकशब्दके साथ समास एकार्थीभाव हो, भिस्सा स्त्री भक्तमन्धो अन्नमोदनोऽस्त्रियामित्यमरः । खरं विशदं अभ्यवहार्यं भक्ष्यं खरणं कठिनभिक्षुदण्डादिः ।

।३५। गुडेन मिश्रा धानाः–गुडधानाः ॥ **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** ।२।१।३२। कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत्। हरिणा त्रातो हरित्रातः। नखभिन्नः॥ (कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्) नखनिर्भिन्नः॥ **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** ।२।१।३६। चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वाचिना- ऽर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत्। यूपाय दारु-यूपदारु। तदर्थेन प्रकृतिविकृति- भाव एवेष्यते। तेनेह न––रन्धनाय स्थाली। अश्वघासादयस्तु षष्ठीतत्पुरुषाः॥ **(अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्)**। द्विजायार्थं

विशदं विविक्तावयवं, सन्तरा आदि है। यथा दध्ना ओदनः दध्योदनः। दहीका भातके साथ सम्बन्ध नहीं, सामर्थ्य कैसे? तब बोले इहान्तर्भूत=इस प्रयोगमें छिपा हुआ उपसेक=सिञ्चनक्रियाके द्वारा दहीका भातके साथ सामर्थ्य है। दधिकरण- कसिञ्चनाश्रयः भातके अवयवोंमें दहीका घुल मिल जाना। दधि टा ओदन सु आदिः। युक्तार्थप्रत्ययाच्च सामर्थ्य (उचित अर्थके अनुभवसे) शक्तिः।

भक्ष्य खाद्यवस्तुवाचक तृतीयान्तका संस्कारकद्रव्यवाचकके साथ मिश्रण– मिलानेकी क्रिया हो चुकी हो, तब समर्थके साथ समास हो। यथा गुडेन धानाः गुड़के साथ मिला हुआ धान, खाद्यवस्तु (धानाभृष्ठयदेस्त्रियः) भूजा हुआ अन्न विभक्त अवयव है। मिश्रण क्रियाके द्वारा शक्तिसम्बन्ध एक आवश्यक। गुडकरण मिश्रणक्रियाश्रयः। गुड टा धाना सु आदिः।

अत्र शङ्का–अश्वेभ्यो घासः घोड़ेके लिए घास। धर्माय नियमो धर्मनियमः प्रकृतिविकृतिभाव न होनेसे समास कैसे? घासकी विकृति अश्व तो है नहीं, तब बोले–अश्वानां घासः अश्वघासः। षष्ठी समासः, यदि ऐसा तब रन्धनाय स्थाली यहाँ भी षष्ठी हो जाय। प्रकृतिविकृति विचार व्यर्थ, तन्न, शाब्दबोधमें सम्बन्ध और तदर्थमें अन्तरके लिए मान्य। केवल सम्बन्ध अर्थमें षष्ठी समास इष्ट। तदर्थदशामें चतुर्थीसमास रोकनेके लिए प्रकृतिविकृतिभाव आवश्यक। यहाँ तक तदर्थका व्याख्यान। अब अर्थके साथ चतुर्थ्यन्तका समास सुनिये। (५ पंक्तिका अर्थ ६४ पर) वस्त्र के लिए सूत। शंकवे दारुः शंकुदारुः (खूंटी के लिए लकड़ी) इस कार्य- कारणसम्बन्ध का फल तेनेह न–रन्धनाय स्थाली (चावल रींधने पकाने के लिए बटलोही) यहाँ स्थालीका रींधने के साथ प्रकृतिविकृतिभाव (समवायिकारणम्बन्ध) न होने से समास नहीं हुआ। द्रव्य और क्रिया में प्रकृतिविकृतिभाव नहीं होता। (वा०) अर्थेन-अर्थ शब्द के साथ चतुर्थ्यन्त का नित्यसमास हो। विशेष्य प्रधान मुख्यशब्द का लिङ्ग समस्त पद का हो। परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः इस सूत्रसे उत्तरपदका लिंगही प्राप्त था उसका बाधक यह सूत्र ही विशेष्य (प्रधान) जैसा लिंगही वैसा ही लिंग समास होने पर हो। यथा–द्विजाय अर्थः द्विजार्थः सूपः

द्विजार्थः सूपः । द्विजार्था यवागूः । द्विजार्थं पयः । भूतबलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् ।। पञ्चमी भयेन ।२।१।३७। चोराद् भयं चोरभयम् ।। स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन ।२।१।३९। पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ।६।३।२।

ब्राह्मण के लिए दाल। द्विजङे अर्थ सु। अलौकिक-विग्रह वार्तिकसे नित्यसमासादिकार्य। यहाँ सूप पुलिंग और प्रधान है उसीके अनुकूल समस्तपदका लिंग पुम् हुआ। द्विजाय अयम् इति अस्वपदविग्रह। द्विज उद्येश्यक अर्थ (वस्तु) समासार्थः। द्विजाय इयं द्विजार्था यवागू (ब्राह्मण के लिए हलुआ खीर) द्विजाय इदं द्विजार्थम्) अर्थः, जलं, दुग्धंवा इस अस्वपदविग्रह में अर्थेन नित्यसमासः। सूप, यवागू पयः के प्रधान होने से इन्हीं का लिंग समासपद में हुआ। प्रधानके अनुसार लिंग। भूतेभ्यो बलिः। (भूतभ्यस् बलि सु) चतुर्थी-बलिहितसुखरक्षितैः सह चतुर्थ्यन्तं समस्यते एकार्थीभावः। प्रा० संज्ञा सुप् लुक् विभक्तिकार्य (भूतबलिः)। भूतों प्रेतों या जीवों के लिए पूजा या उपहार, यजमानेन भूतबलिः दीयते। एवं गोभ्यो हितं गोहितं (गव्यं) घासः गौवो के लिए हितकर (गोशाला) तीनों ऋतु में भला है। गोभ्यः सुखं (गोसुखं) बनं, गौवों के लिए सुखकर वन है। गोभ्यो रक्षितं गौवों के लिए रक्खा हुआ खरी कराई, भूसा आदि।

(८) पञ्चम्यन्त शब्द का भयवाचक शब्दके साथ समास हो। चोराद्भयं, लौकिकवाक्यं, चोरङसि भय सु इति अलौकिकवाक्यं, पञ्चमीभयेन पञ्चम्यन्त चोरात् का भय के समास, समासत्वात्प्रासंज्ञा स्वादिकार्यं। चोरभयम्। चोर से (अधिक) भय समासार्थ। एवं सिंहाद्भयं सिंहभयं। राजपुरुषात्, भयं राजपुरुषभयं, दुष्टभयं कुञ्चिकाभयम्।

(९) स्तोक-अल्प, अन्तिक समीप दूर विप्रकृष्ट और कृच्छ्र (कष्ट) वाचक सुबन्त शब्दों का क्त-प्रत्ययान्त सुवन्त के साथ समास हो। ९३०। पञ्चमी बिभक्ति का स्तोक आदि शब्दों से परे लुक् न हो उत्तरपद-परे, रहते। अत्र उत्तरपदं समस्तपदम् अन्तिमे अवयवे रूढ़म्। समासमें, अन्तिमशब्द उत्तरपद है। इसका फल विभक्तिलुक् न होने पर भी एकार्थीभाव बना रहे। स्तोकान्मुक्तः स्तोक ङसि मुक्त सु स्तोकान्तिक-आदि से समास, सुप् अलुक्। तथापि थोड़े ही प्रयास से मुक्त हो गया। अन्तिकात् समीपात् आगतः पास से आया हुआ समासार्थः। समासे पञ्चम्याः अलुक्पूर्ववत्। अभ्यासात् (निकटात्) आगतः प्राप्तः। (समीपसे आया हुआ) बालकः ब्रूते। दूरात् आगतः अतः सम्बन्धी स्वागतेन भवितव्यम्। कृच्छ्रात् दुःखात् पापात् आगतः कष्ट से आया हुआ वृद्ध। अत्र सर्वत्र समासे पञ्चम्याः अलुक्। एकपद एकअर्थ एकशक्ति होना फल है। दूरादागतस्य अपत्यं दौरादागतिः। आभ्यासादागतिः, आदिवृद्धिः, अन्तोदात्त से एकपद होना अनुभूत है।

अलुगुत्तरपदे । स्तोकान्मुक्तः । अल्पान्मुक्तः । अन्तिकादागतः । अभ्याशादागतः । दूरादागतः । विप्रकृष्टादागतः । कृच्छ्रादागतः । षष्ठी ।२।२।८। सुबन्तेन प्राग्वत् । राज्ञः पुरुषः–राजपुरुषः । याजकादिभिश्च ।२।२।९ षष्ठ्यन्तं समस्यते । वक्ष्य-माणस्यापवादः । ब्राह्मणयाजकः । देवपूजकः । याजक, पूजक, परिचारक, परि-षेचक, स्नातक, अध्यापक, उत्सादक, उद्वर्तक, होतृ, पातृ, भर्तृ, रथगणक, पत्तिगणक, इति याजकादिः । (गुणात्तरेण तरलोपश्च)। तरबन्तं यद् गुणवाचि तेन समासः। सर्वेषां श्वेततरः सर्वश्वेतः। सर्वेषां महत्तरः–सर्व-

---

(१) षष्ठ्यन्तपद का सुबन्तपद के साथ समास हो। राज्ञः पुरुषः लौकिकं वाक्यं, तत्र षष्ठी सूत्रेण (राजन्ङस्) पदस्य (पुरुषसु) पदेन सह समासे (एकार्थी-भावे) दोनों पद मिलकर एकार्थ हो गये। राजसम्बन्धीपुरुषः समासार्थः राज-पुरुषः राजा का सेवकस्वामिसम्बन्ध समासत्वात् प्रा० संज्ञा सुपोधातुप्रतिपादकयोः सुप् लुक्, एकदेशविकृतन्यायेन प्रा० संज्ञा, स्वादिकार्यं। पत्युः पत्नी पतिपत्नी। द्वारपूजा।

याजकगण – में पढ़े हुये शब्दोंके साथ समर्थषष्ठ्यन्तका समास, एकार्थीभाव हो। यद्यपि किसीभी षष्ठ्यन्तका समर्थ परस्पर सम्बद्ध के साथ 'षष्ठी' सूत्रसे समास सिद्ध है यह सूत्र क्यों पढ़ा ? तब बोले कि तृजकाभ्यां कर्तरि=जहाँ तृच् और अक कर्ता अर्थमें हों, वहाँ षष्ठीका निषेध हो जाय। इस निषेध का प्रतिप्रसव विरुद्ध प्रचारक सूत्र। यथा याजयतीति याजकः यज्ञ कराने वाला, कर्तरि ण्वुल्-अक कर्मणि षष्ठी, ब्राह्मणस्य याजकः ब्राह्मणकर्मक यज्ञकारयिता। यज्ञफलका आश्रय ब्राह्मण (फलाश्रयः कर्म) ब्राह्मण ङस् याजक सु आदिः। षष्ठीसूत्रेण समासः स्यात्तदा तृजकाभ्यां कर्तरि समासनिषेधः स्यात्। पूजयति पूजकः देवानां पूजकः। देव आम् पूजक सु आदिः। राजपरिचारकः भोजनपरिवेशकः। संस्कृतवेत्ता न्याया-ध्यापकः, वनस्पत्युत्पादकः। होतृपोतृभर्तृ, भुवः भूभर्ता, भूमिपालकः, दशरथपोता।

गुणात्तरेण गुण वाचकशब्दसे तरप् हुआ हो, उससे षष्ठीसमास विकल्प से हो। तरपका लोप भी। नील-पीत-श्वेत-हरित आदि गुण उनके कम या अधिक निर्णयके लिये तरप् का अर्थ। षष्ठीसूत्र से समास सिद्ध था, वार्तिक क्यों पढ़ा ? इसलिये कि न निर्धारणे=कम या अधिक निश्चय अर्थमें षष्ठीसममासका निषेध प्राप्त था, और पूरणगुण सुहितार्थ=सूत्रसे भी निषेध प्राप्त था, उनका प्रतिप्रसव–प्रत्युत्तर–उत्तरका उत्तर, निषेधके निषेधका विधान फल है। यथा–सर्वेषां पक्षिणां श्वेतः शुभ्रः बकानां गुणः। सभी वस्तुओंमें सफेदीकी अपेक्षा बकुला सफेद (सभी बकोंमें अधिक श्वेत) गुण निर्णय अर्थमें तरप्। द्विवचनविभज्य–सूत्रसे विभाग निर्धारण अर्थ में। (सर्व आम् श्वेततर सु), इति दशायां वार्तिकेन समासे

महान् ॥ न निर्धारणे ।२।२।१०। षष्ठी न समस्यते । नृणां द्विजः श्रेष्ठः ॥ पूरण-गुण-सुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ।२।२।११। पूरणाद्यर्थैः सदादिभिश्च

तरपः लोपे आदिः । सर्वश्वेतः सबसे सफेद । सर्वमहान् ईश्वरः । अतिशयेन महान् महत्तरः, सर्वेषां महत्तरः सभी पुरुषों से श्रेष्ठ, अन्य से ईश्वरका महत्व अधिक है ।

न–गुण क्रिया जाति द्रव्य की अनेकता में एकका निर्णय श्रेष्ठतानिर्धारण, अर्थमें षष्ठी समास हो । यथा मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है, श्रेष्ठताका निर्धारण होनेपर "यतश्च निर्धारणं" से षष्ठी हुई । षष्ठी समास-प्राप्तिका न निर्धारणे से निषेध, इस निषेधमें तीन शर्त है–यतो निर्धार्यते यश्च निर्धार्यते, यश्च निर्धारणहेतुः । एतत्त्रि-तयसन्निधान एव निषेधः जिनमें से एकका निर्णय करना हो, जिसका निर्णय जिससे जो निर्णय । मनुष्योंसे ब्राह्मण की श्रेष्ठता का निर्णय हो वहीं पर निषेध होगा । अतः पुरुषाणामुत्तमः पुरुषोत्तमः में सम्बन्धे षष्ठीसमास हुआ निषेध नहीं । तीनों का सन्निधान न होने से । उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः अत्र तु कर्मधारयः ।

पूरणगुणवाचक शब्द, सुहितार्थ–तृप्ति, सत्संज्ञकअव्यय, तव्य, समानधिणरण =समानाधार समानविभक्ति, इन सबके साथ षष्ठीसमास एकार्थ नही होता । समाहार, द्वन्द्वसे तृतीया । इन सबका क्रमशः साधनिका सुनिये । तस्य पूरणे डट् सङ्ख्याकी पूर्ति अर्थमें षण्णां पूरणः, छठवीं सङ्ख्या पूरक अर्थमें डट्–थुक् । सतां षष्ठः सज्जनों में छठां । 'षष्ठी' सूत्रेण समासे प्राप्ते, पूरण अर्थ–षष्ठः, तेन सह पूरणगुण सूत्रेण समासनिषेधे । यदि ऐसा कुम्भस्य पूरणं कुम्भपूरणं यहाँ भी पूरणके साथ निषेध होगा तन्न, सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणं पादस्य पूरणं, समास होनेसे पूरणार्थक प्रत्यय ही लिया जाय शब्द नहीं । उञ्छेषु षष्ठः उञ्छात्मकः षष्ठः व्याख्यानसे । उञ्छषष्ठाङ्कित सैकतानि को भी समझें । गुणके साथ निषेध । यहाँ गुण प्रधान हो या उपसर्जन, केवल गुणवाची गुणोपसर्जनद्रव्यवाची च गृह्यते । पारि-भाषिकगुण–सत्वे निविशते—अपैति पृथग्जातिषु दृश्यते । आधेयश्चाक्रियाजश्च सो असत्वप्रकृतिर्गुणः । द्रव्यमें रहे, अलग भी हो, जातिसे भिन्न हों, आधेय हो, क्रिया न हो, द्रव्य भी न हो, ऐसा गुण लिया जाय । अदेङ्गुणः नहीं, अर्थके ग्रहणसे । पूरणगुण और सुहित तीनों के ही अर्थ मान्य, शब्द नहीं । नापि संख्या । क्रोशशत योजनशतयोः में समासके प्रमाणसे । काकस्य कार्ण्यं कृष्णस्य भावः । गुणवचन से भावमें ष्यञ् । कौवेका कालापन (गुणवाचीके साथ) षष्ठीसमासस्य पूरणगुण-सूत्रेण निषेधे, एवं ब्राह्मणस्य शुक्लाः (सफेद गुणके साथ) प्राप्ता षष्ठी न । शङ्का–ब्राह्मणशब्दका दन्तमें अन्वय हैं, शुक्ल में नहीं परस्पर सामर्थ्य नहीं, समास कैसे ? तब बोले यदा=जिस कालमें प्रकरणादिना दन्ताः (सफेद दाँत) ऐसा अर्थ ज्ञान हो

षष्ठी न समस्यते। पूरणे-सतां षष्ठः। गुणे-काकस्य कार्ष्ण्यम्। सुहितार्थास्तृप्त्यर्थाः, फलानां सुहितः। सत्-द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा। ब्राह्मणस्य कृत्वा। पूर्वोत्तरसाहचर्यात् कृदव्ययमेव गृह्यते। तेन तदुपरीत्यादि सिद्धम्। ब्राह्मणस्य कर्त-

---

(तदा इदं) यह उदाहरण बनेगा। शुक्ल ही द्रव्य (दाँत) में समर्पित होगा तब। दन्ताः संयुक्ताः सुभावहाः न तु विरलाः। घने दाँत मांगलिक है बीड़र नहीं। प्रसंगसे दन्त प्रधान होगा। दन्तवस्त्राभूषणेषु उपस्थितेषु ब्राह्मणस्य शुक्लाः अर्थ निकलेगा, सम्बद्ध अर्थ होनेसे प्राप्त समासका निषेध।

पुनः शङ्का अर्थस्य गौरवं अर्थगौरवं, बुद्धेः माद्यं बुद्धिमान्द्यमित्यादि स्थल में समासका निषेध न हो, अतः कहे कि 'अनित्योऽयं' गुणके साथ निषेध अनित्य है। सब जगह नहीं होता, किं प्रमाणं ? तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् सूत्र के उच्चारणमें संज्ञायाः प्रमाणत्वं संज्ञाप्रमाणत्वं में समासदर्शनसे। प्रमाणत्वगुण हैं उसके साथ समास निषेध नहीं देखा गया, इससे निषेध अनित्य सिद्ध है। आदिपदसे चन्दनगन्धः घटस्य रूपं घटरूपंइ त्यादिमें (तत्स्थैश्च गुणैः समासो वक्तव्यः)इस वार्तिकके प्रभावसे समास हुआ। वस्तुतः अर्थगतं गौरवं मध्यमपदलोपि समासो बोध्यः। सुहितार्थ में है। तृप्तिही साधन कारण फल है। करणकी उपेक्षाकर सम्बन्धमात्रकी इच्छामें षष्ठी सूत्रसे प्राप्त समास का निषेधः। यदि ऐसा तब फलसुहितः (फलसे तृप्ति) में समास कैसे ? तब बोले तृतीयासमास होता ही है। फलेन सुहितः करणे तृतीया। दोनों स्वरोंमें क्या अन्तर, फल भेदके लिए कहा कि स्वपेन निमेषः तृतीया समासमें (तृतीया कर्मणि सूत्रसे) पूर्वपदप्रकृतिस्वर। षष्ठी समासमें (समासस्य) सूत्रसे अन्तोदात्त, फलभेद। शतृका उपयोग द्विजस्य कुर्वन् में शतृ, कुर्वाणः में शानच्। दोनों "तौ सत्" सूत्रसे सत्संज्ञक। प्राप्तषष्ठी समासस्य निषेधे। अत्र शङ्का-द्विजस्य कुर्वन्में कर्मणिषष्ठी नहीं होगी, न लोकाव्ययके निषेधसे। द्विजस्य घटं कुर्वन् कहनेपर शेषषष्ठी होगी। अब द्विजका कुर्वन्के साथ सम्बद्धार्थ नहीं, समास नहीं, समास प्राप्त कैसे ? तब कहे कि (किङ्कर इति) द्विजं परिचरन्। विप्रकी सेवा करता हुआ, इससे कृधातुका सेवा अर्थ भी फलितः। अव्ययके साथ समासनिषेध। ब्राह्मणस्य कृत्वा—प्राप्तस्य षष्ठीसमासस्य सूत्रेण निषेधात् ब्राह्मणसम्बन्धिनी या क्रिया तां कृत्वा। सूत्रमें कृत् शब्दसे अव्यय ही लिया जाय, सभी कृत् नहीं। पूर्वोत्तर=अव्ययके पहले सत्, बादमें तव्य पढ़नेके साहचर्य=सहभावसे। तेन=इस कारण तस्याः ऊपरि तदुपरि की सिद्धि हुई। यदि सभी अव्यय लिये जाते तब उपरिके साथ समास निषेध होता। आदि पदसे यत्कृतेऽरीन् निगृह्णीमः (अदेयाः किं कृते भोगाः कुम्भकर्ण त्वया विना) इति। तव्यके योगमें समासनिषेधका प्रमाण

व्यम् । तक्षकस्य सर्पस्य ॥ **क्तेन च पूजायाम् ।२।२।१२।** मतिबुद्धीति सूत्रेण विहितो यः क्तस्तदन्तेन षष्ठी न समस्यते । राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा ॥ **अधिकरणवाचिना च ।२।२।१३।** क्तेन षष्ठी न समस्यते । इदमेषामासितं गतं भुक्तं वा ॥ **कर्मणि च ।२।२।१४।** उभयप्राप्तौ कर्मणीति या षष्ठी सा न समस्यते । आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन ॥ **तृजकाभ्यां कर्तरि ।२।२।१५।** कर्त्रर्थतृजकाभ्यां

ब्राह्मणस्य कर्तव्यं तव्यत्तव्याऽनीयरः कृत्यानां कर्तरि वा षष्ठी । अत्र समासे प्राप्ते सूत्रेणनिषेधे । जहाँ तव्यत्प्रत्यय होगा वहाँ एकस्य कर्तव्यमें समास हुआ । निषेध नहीं । दोनो कर्तव्यमें स्वरका अन्तर । तव्यत् होनेपर कृदुत्तरप्रकृतिस्वर होगा' तव्यमें नहीं । समान्यविभक्तिके साथ समास निषेधका प्रमाण-तक्षकस्य सर्पस्य । समानविभक्ति होनेसे समासका निषेध । षष्ठीसमासके निषेधपर ।

क्तेन— इस सूत्र में पूजाशब्द मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' सूत्रका स्मारक है, उससे विधान किया गया, तदन्त = वह हो अन्तमें उसके साथ षष्ठ्यन्त सुबन्तका समास एगार्थीभाव न हो, सम्बन्धित अर्थ रहे एकपद एकअर्थ, एकशक्ति न हो, राज्ञां मतः राज्ञां बुद्धः, राज्ञां पूजितः राजासे मान्य, जाना गया, पुज्यमान अर्थ मे मतिबुद्धि— सूत्रसे वर्तमाने क्त, क्तस्य च वर्तमाने षष्ठी, तत्प्राप्तस्य समासस्य क्तेन च पूजायां सूत्रेण निषेधः । यदि ऐसा तब राजपूजितः राजमतः राजबुद्धः राजासे अर्चनीय, प्रिय, ज्ञात यहाँ समास कैसे ? समाधान बोले—कि राजपूजित इत्यादिस्थलमें भूतकालिक क्तप्रत्यय है । उसके साथ तृतीयान्त राज्ञा पूजितः का समास ।

अधिकरणवाची क्त प्रत्ययान्तके साथ षष्ठीसमास एकार्थीभाव न हो । यथा इदमेषामासितं, यह इन लोगों का आसन बैठनेका आधार है । एषां शयितं सोनेका आधार, जाने खानेका आधार, "क्तो अधिकरणे च" सूत्रसे ध्रौव्यगति प्रत्यवसान अर्थवाचकशब्दसे आधार अर्थमें क्त, आसितं, अनेन निषेधे ।

कर्मणि—कर्म अर्थ की षष्ठी के साथ एकार्थीभाव न हो । क्तेन नहीं आया । षष्ठी आयी । किन्तु कर्मणि षष्ठी स्वीकृत नहीं । अपां स्रष्टामें समासनिषेध से सिद्ध होता, तब तृजकाभ्यां कर्तरिसे निषेध व्यर्थ होता । उभयप्राप्तौ कर्मणिसे जो षष्ठी, सप्तमीका उच्चारण करके हुई हो, उसके साथ समास एकार्थीभाव न हो । यथा गवां दोहः । गोपाल नहीं है उससे गाय दुहना आश्चर्य है । नियमसूत्र विधिरूपसे या निषेध रूपसे लगते हैं । गवां दोहः, उभयप्राप्तौ कर्मणि सूत्रमें कर्ममें षष्ठी, कर्त्तामें नहीं । षष्ठीसमासः प्राप्तः, तस्य कर्मणि च इति च निषेधः । यदि ऐसा शब्दानुशासनमें समास कैसे ? शब्दानामनुशासनमें कर्तृकर्मणोः की षष्ठी है उभयप्राप्तौकी नहीं, अतः समास । अशिक्षितो दोग्धा दुर्दोहा गावश्च दोग्धव्यास्तदैव निर्वहति, न त्वन्यथा । कर्ताकर्म दोनोंमें षष्ठीप्राप्त । शब्दनामनुशासनं न तु अर्थानाम् । अर्थनिवृत्तिपरक वाक्य है, कर्ताका निवारक नहीं । उभयप्राप्ति भी नहीं, नहि समासनिषेधः । अतः आचार्यस्य शब्दानुशासनं युक्तम् ।

तृच् और अक प्रत्यय कर्ता अर्थमें हुए हों, तब षष्ठीके साथ समास नहीं होता

षष्ठ्या न समासः । अपां स्रष्टा । वज्रस्य भर्ता । ओदनस्य पाचकः ॥ **कर्तरि च** ।२।२।१६। कर्तरि षष्ठ्या अकेन न समासः । भवतः शायिका ॥ **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** ।२।२।१। अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते, एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी । षष्ठीसमासापवादः । पूर्वं कायस्य--पूर्वकायः । अपरकायः

वृत्तिकारने कर्त्तामें षष्ठीका तृच् अकके साथ समासका निषेध समझा, जो अनुचितः । तृच् अकमें ही (कर्ता) विशेषण है । अपां स्रष्टा जलसृष्टिकर्ता । सृज्धातुसे कर्ता, अर्थमें तृच्; उसका कर्म अप, उसमें कर्तृकर्मणोःसे कर्मणि षष्ठी अपां, षष्ठी सूत्रेण समासे प्राप्ते, कर्तरि तृच् इति, दृष्ट्वा तृजकाभ्यामिति निषेधे । एवं बज्रस्य भर्ता बज्रका रक्षक भरण रक्षण कर्ता अर्थमें भृधातुसे तृच् । उसका कर्म (रक्षणफलका आधार) वज्रमें कर्मणि षष्ठी । अत्र षष्ठीसमासे प्राप्ते, अनेन निषेधे । एवं ओदनस्य पाचकः भात (चावल) पकानेवाला, पकाने अर्थमें पचधातुसे कर्तामें अक । पाककर्ता पाकक्रियाका फलाधार ओदनमें कर्मणि षष्ठी । समासे प्राप्ते तृजकाभ्यामिति निषेधः ।

(२) पूर्व—आगे, अपर (पीछे) अधर—नीचे, उत्तर–ऊपरी भाग ये अवयव हैं । एकदेशिना––अवयविना (एक देश शब्द अवयववाची है । पूर्वादि अवयव के साथ समास हो । पूर्वादयः—उनका एकदेशी अवयवीवाचक शब्दोंके साथ समास हो, यदि अवयवी (अंग का अवयव) समुदाय (शरीर) में (एकत्वसंख्याविशिष्ट) एकवचन अन्त में हो, षष्ठी समासको बाधकर । यदि षष्ठी समास होता विभक्ति लुक् होकर प्रथमान्तपदका षष्ठी में निर्देश से कायशब्द का पूर्वनिपात होने लगता । षष्ठीसमास का बाध होने से पूर्व, अपर, अवर, उत्तर शब्द का ही पूर्व निपात होगा । वे ही प्रथमान्तपदबोध्य है । यह एकदेशी समास है । पूर्वंकायस्य पूर्वकायः (शरीर का अग्रभाग) पूर्व अम् काय ङस् अलौकिकविग्रह पूर्वापराधरोत्तरसूत्रसे समास । पूर्वशब्दका अवयव है काम शब्द अवयवी । समासशास्त्रमें प्रथमान्तपदपूर्वशब्दका प्रथमप्रयोग हुआ । एवम् अपरं कायस्य अपरकायः । शरीरका पृष्टभाग (पीठ) अधरकायः (पैर) उत्तरकायः (शिर) । सूत्रमें एकाधिकरण ग्रहण क्यों ? एकत्वसंख्याविशिष्ट अवयी अर्थ क्यों ? इसलिए कि पूर्वश्छात्राणाम् । यहां समास न हो । क्योंकि छात्राणां शब्दमें बहुसंख्याविशिष्ट बहुवचन है । यद्यपि उत्तरपदार्थ प्रधानतत्पुरुषलक्षण, यहां नहीं घटता, तथापि तत्पुरुष के अधिकारमें पढ़ा गया लक्षण घट जायगा ।

कर्तरि=कर्ता अर्थमें, शेष—सम्बन्ध अर्थमें षष्ठीका अक प्रत्ययान्तके साथ

एकदेशिना किम् ? पूर्वं नाभेः कायस्य । एकाधिकरणे किम् ? पूर्वश्छात्राणाम् । अर्धं नपुंसकम् ।२।२।२। समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे स प्राग्वत् । अर्धं पिप्पल्याः-अर्धपिप्पली ॥ (एकविभक्तावषष्ठ्यन्तवचनम्)। इत्युपसर्जनसंज्ञाबाधाद्ध्रस्वो न । क्लीबे किम् ? ग्रामार्धः द्रव्यैक्य एव । अर्धं पिप्पलीनाम् । द्वितीयतृतीय-

---

एकार्थीभाव हो कर्त्तामें षष्ठीके साथ समासका निषेध । तृजकाभ्यासे कर्तरि आया । भवतः शायिका आपकी खटिया गद्दा है । कर्तामें षष्ठीप्राप्त समासका निषेध ।

एकदेशिना किम् एक ही आधारमें हो तभी समास हो ऐसा क्यों ? इसलिये कि पूर्वनाभेः कायस्य । शरीरके नाभिका पूर्वभाग । यहाँ पूर्वका नाभिमें अन्वय है कायमें नहीं । नाभेः यः पूर्वोभागः स कायस्य अवयवः । दिशा सम्बन्धसे पञ्चमी पूर्वभागकी अवधि नाभि है । एकदेशी शरीर नहीं । अतः नाभिके साथ समास नहीं । कायेन तु स्यादेव पूर्वकायः नाभेः, पूर्वशब्दः नित्य सापेक्ष है प्रधान भी ।

(३) अर्ध समांशवाची--समभाग, बराबर अंश, वाचक, आधा अर्थ बोधक, अर्ध शब्द जो नित्यनपुंसकलिंग हैं, उसका सुबन्तके साथ समास हो । यह भी षष्ठी-समासबाधक है पूर्ववत् । पिपल्याः अर्धं लौकिक वाक्य, अर्धं सु, पिप्पली ङस् अलौकिक वाक्य । अर्धं नपुंसकं सूत्र से समास आदिः । प्रथमान्त (अर्ध) पदका पूर्व निपात । पूर्वपदप्रधान अर्थ के अनुपसर्जन होने से (एकविभक्तौ अषष्ठ्यन्तवचनम् । गोस्त्रियोऽ ह्रस्व नहीं हुआ । अर्धपिप्पली (पीपरि का आधा) ।

क्लीबे किं, नपुंसक अर्धके साथ समास हो, ऐसा क्यों कहा ? ग्रामस्य अर्धः ग्रामार्धः, नगरस्य अर्धः नगरार्धः यहाँ अर्धशब्द पुंलिग है । षष्ठीसूत्रसे ही समास हुआ । षष्ठ्यन्तका पूर्वनिपात = द्रव्यैक्य एव—जहाँ द्रव्य आधार एक रहेगा, एकाधिकरण होगा, एकवचनमें अर्धं नपुंसकं समास करेगा, अनेकवचनके साथ समास नहीं होगा । अर्धपिप्पलीनां अनेक पीपरि अनेक द्रव्य हैं । एकपीपरि एक आधार न होनेसे । यदि समास होता, अर्धपिप्पली ऐसा होता, यह सूत्र परवल्लिङ्गके भाष्यमें खण्डित है ।

द्वितीयतृतीय—एतानि = इन सबका एकदेश अंशः अस्ति अस्य एकदेशी समुदायः । समुदायके साथ पहलेकी तरह एकार्थीभाव विकल्पसे हो । द्वितीयं भिक्षायाः विग्रहः भिक्षाका आधा, द्वितीय अम् भिक्षा सु । इति अलौकिकविग्रहे द्वितीयतृतीय= सूत्रेण समासे । प्रथमासे उच्चारणका पूर्वनिपात आदिः । परपदका लिंगस्त्री, द्वितीय-भिक्षा । एकदेशिना किं ? सूत्रमें समुदायके एक आधारके साथ समास क्यों ? द्वितीयं भिक्षायाः भिक्षुकस्य, भिक्षाका दूसरा अंश भिखमंगेकी है । भिक्षामें अवयव षष्ठी । उसके द्वितीय भागसे सम्बन्ध और द्वितीय कर्म बनकर भिक्षुकसे सम्बन्धित कर्ममें षष्ठी नहीं, न लोकाव्ययके निषेधसे । द्वितीयका भिक्षुकके साथ समास नहीं, एकदेशी

चतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् ।२।२।३। एतान्येकदेशिना सह प्राग्वद्वा । द्वितीयं भिक्षायाः-द्वितीयभिक्षा । एकदेशिना किम् ? द्वितीयं भिक्षाया भिक्षुकस्य । अन्यतरस्यांग्रहणसामर्थ्यात् पूरणगुणेति निषेधं वाधित्वा पक्षे षष्ठीसमासः । भिक्षाद्वितीयम् । प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ।२।२।४। पक्षे-द्वितीयाश्रितेति समासः । प्राप्तो जीवनं प्राप्तजीवनः । जीवनप्राप्तः । आपन्नजीवनः । जीवनापन्नः । इह सूत्रे द्वितीयया अ इति छित्वा अकारोऽपि विधीयते । तेन जीविकां प्राप्ता स्त्री प्राप्तजीविका । आपन्नजीविका ॥ कालाः परिमाणिना ।२।२।५। परिच्छेद्यवाचिना सुबन्तेन सह कालाः

न होनेसे । भिक्षुकका दो खण्ड नहीं होता । अत्र शङ्का—विभाषाके अधिकारसे विकल्प सिद्ध था अन्यतरस्यां क्यों पढ़ा ? इसलिए कि उसके पढ़नेके सामर्थ्यसे पक्षमें षष्ठी समास हो । नहीं तो षष्ठीका बाधक इस सूत्रसे समास, जिस पक्षमें नहीं करेगा, अपवादेन मुक्ते उत्सर्गो न प्रवर्तते ! उत्सर्गषष्ठी सूत्र नहीं लगेगा । यह परिभाषा पारे मध्ये सूत्रके वा०से ज्ञापित है । अत्र शङ्का-पूरणगुणसुहितार्थ—सूत्रके निषेधसे षष्ठी समास कैसे ? अन्यतरस्यां ग्रहणके सामर्थ्यसे । पक्षमें निषेधको बाधकर षष्ठीसमास भी होगा । प्रमाण—भिक्षाद्वितीयं, द्वितीय अम् भिक्षा ङस् समासादिः । षष्ठ्यन्तभिक्षाका पूर्वप्रयोग ।

प्राप्त और आपन्न । ये दोनों द्वितीयान्त समर्थके साथ समस्त-एकार्थीभूत हों । चकार द्वितीयासमासका संग्राहक है । अतः बोले-पक्षे द्वितीयाश्रितातीत-प्राप्तापन्नसे भी समास । यथा प्राप्तो जीविकां (जीवनकी सुविधा मिल गयी हो) लौकिक विग्रह । प्राप्त सु जीविका अम् अलौकिक विग्रह प्राप्तापन्ने—सूत्रेण समासादिः । पक्षमें द्वितीयाश्रितातीतसे समास । द्वितीयान्त जीविकाका पूर्वनिपात (जीविकाप्राप्तः) । वस्तुतः चकार न पढ़ें । द्वितीयाश्रिताती–सूत्रमें प्राप्त आपन्नके साथ समास विधान भी, निरवकाश ही है । निरवकाशो विधिरपवादः । अत्र शङ्का जीविकां प्राप्ता जीविकाम् आपन्ना (प्राप्तकी हुई) स्त्री विग्रहे प्राप्तापन्नेति सूत्रेण समासे आदिः । अकारान्त कैसे ? तब बोले-इह सूत्रे-इस सूत्रमें द्वितीयया-अ ऐसा छित्वा-विभाग करके समासके साथ अकार अन्तादेश भी हो। ऐसे अर्थ लाभ से तेन-प्राप्त आपन्नके आ-स्थाने अकार विधानसे, टाबन्तका भी समास ।

कालाः=पल विपलघटीप्रहरदिनमास ऋतु वर्ष आदि कालवाची शब्दोंका परिमाणिना–परिमीयते परिच्छिद्यते येन तत्परिमाणं तदस्ति अस्मिनिति परिमाणी तेन, तौलने नापनेवाला । वृत्ति में बोले परिच्छेद्यवाची सुबन्तके साथ समास-एकार्थीभाव हो । परिछेतुं योग्यः परिछेद्यः । जिसका समय समझाया जाय। बहुवचनसे सामान्यकाल । यथा मासो जातस्य अस्य (एकमहीना बीत गया) वह चैत्र (मासजातः) । षष्ठीसमास प्राप्त था जात ङस् मास सु, परिछेद्यवाची सुबन्त ङस्का कालविशेष, माससु के साथ समास आदिः ।

समस्यन्ते । मासो जातस्य यस्य स मासजातः ॥ **सप्तमी शौण्डैः ।२।१।४०।** सप्तम्यन्तं शौण्डाभिः प्राग्वत् । अक्षेषु शौण्डः–अक्षशौण्डः । द्वितीया तृतीयेत्यादियोग-विभागादन्यत्रापि द्वितीयादीनां प्रयोगवशात्समासो ज्ञेयः ॥ **दिक्संख्ये संज्ञायाम् ।२।१।५०।** विशेषणं विशेष्येण बहुलमित्येव सिद्धे संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम् । पूर्वेषु कामशमी । सप्तर्षयः । तेनेह न, उत्तरा वृक्षाः । पञ्च ब्राह्मणाः ॥ **तद्धितार्थो**

---

(४) सप्तम्यन्त—पद का शौण्डादि (धूर्त, कितव, व्याड, प्रवीण, अन्तर, पण्डित, कुशल, चपल, (निपुण) आदि के साथ समास हो। यथा—आक्षेषु शौण्डः । अक्ष सुप्, शौण्ड सु, सप्तम्यन्त अक्षसु सुबन्त है शौण्ड सु से सत्य समास । सप्तम्यन्त का पूर्वनिपात आदिः । (अक्षशौण्डः) पाशः, द्यूतक्रीडा में प्रवीण समासार्थ । द्वितीया से लेकर सप्तमीपर्यन्तका समास प्रदर्शित हुआ । परन्तु निर्दिष्ट पदों से अन्यत्र भी समास देखा गया, अतः बोले द्वितीया तृतीया सप्तमी इत्यादि का योग= सूत्र विभाग अलगाव किये जाने से अन्यत्रापि—अन्य स्थलों में भी द्वितीयान्त तृतीयान्त आदि पदों का प्रयोगवशात्—आवश्यकतावशात् समास समझना चाहिए । अर्थात् जो सूत्र का अर्थ है । उसके अतिरिक्त भी द्वितीयान्त-सप्तम्यन्त आदि का समर्थ सुबन्तके साथ समास हो । पतित आदिके बिना भी समास सम्भव है । इति व्यधिकरणतत्पुरुषः समाप्तः ।

अथ समानाधिकरणतत्पुरुषः प्रारभ्यते । ९३५ । दिक्च संख्याच दिक्संख्ये, दिशावाचक, संख्या-सुबन्त शब्दोंके साथ समर्थ सुबन्त का समास हो, यदि किसीकी संज्ञा (नाम) हो तो । पूर्वश्च इषुकामशीमी च (ग्रामविशेषस्य संज्ञा) पूर्वसु इषुकामशमी सु इत्यत्र (दिकसंख्ये) सूत्रसे समासपूर्वेषु कामशमी । पूर्वग्रामः समासे प्रासंज्ञा सुपोधातुप्रातिपादियोः से भीतरी विभक्ति का लुक् गुण । दिशावाची शब्द पूर्व के साथ समास हुआ । अब संख्याशब्द के साथ समास सुनिये । सप्तर्षयः सप्त च ते ऋषयः, वशिष्ठ आदिः । सात ऋषियोंकी संज्ञा । सप्तन्जस् ऋषिजस् समासादिकार्य भीतरी विभक्तिका लुक, नलोप, सप्त + ऋषि अर्गुणे बहुबचन जस् अस् जसि च गुणादिः । यह समामाधिकरण—समानविभक्ति वाला तत्पुरुष है । न च विशेषणं विशेषेण बहुलमिति सूत्रेण समानविभक्तिस्थले समास सिध्यतिः, दिक्संख्ये सूत्रं किमर्थं, नियम करता है कि दिशावाचक संख्यावाचक विशेषणके साथ समास हो तो संज्ञा में ही हो । इसी नियम के लिए सूत्र है । इसका फल (तेनेह न) उत्तरा वृक्षाः, पञ्चब्राह्मणाः, यहाँ दिक्संख्या पूर्वपद है, परन्तु संज्ञा अर्थ न होने से समास नहीं हुआ ।

(६) तद्धितार्थे—तद्धित प्रत्ययके अर्थके विषय में उत्तरपद परे हो और समा-हार (समुदाय) मिलावट अर्थवाच्य (बोध्य) हो तब दिशा, संख्यावाचक सुबन्त

त्तरपदसमाहारे च ।२।१।५१। तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्संख्ये प्राग्वत् । पूर्वस्यां शालायां भवः–पौर्वशालः इति समासे कृते । **(सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः)॥ दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ।४।२।२०७।** अस्माद्भवाद्यर्थे ञः स्यादसंज्ञायाम् ॥ **तद्धितेष्वचामादेः ।७।२:११७।** ञिति णिति च तद्धिते अचामादेरची वृद्धिः स्यात् । 'यस्येति च' । पौर्वशालः । पूर्वा शाला प्रिया यस्येति त्रिपदे बहुब्रीहौ कृते प्रियाशब्दे उत्तरपदे पूर्व—यास्तत्पुरुषः । तेन शालाशब्दे

का समर्थ सुबन्त के साथ साथ समास (एकार्थीभाव) हो । तद्धितार्थश्च उत्तरपदञ्च समाहारश्च एतेषां समाहारः तस्मिन् तद्धितार्थोत्तरदससमाहारे (एक सप्तमी तीनों के साथ विषयभेद से अन्वित है) यथा एकापि षष्ठी विषयभेदाद् भिद्यते । विषयसप्तमी (तद्धितार्थविषये) परसप्तमी (उत्तरपदपरे) वाच्यसप्तमी (समाहार के साथ) दिशावाची संख्यावाची का समर्थसुबन्त के साथ समास हो । क्रमशः उदाहरण––पौर्वशालः पूर्णस्यां शालायां भवः (पूर्वदिशा के घरमें होने वाला) दिशावाची से तत्र भवः (होने वाला) अर्थ में अण्––अ । पूर्वाङि शाला ङि अ इति अलौकिक विग्रह । तद्धितार्थोत्तर पद सूत्रसे, प्रा० संज्ञा सुपोधातुपादिपदिकयोः से सुप् लुक्, तद्धितका विषय होने पर ही समास हुआ । पूर्वा शाला अ, स्थिति मे (वा०) सर्वनामको वृत्तिमात्र=एकार्थीभावरूपवृत्ति (कृतद्धितसमाससनाद्यन्त, एकशेष) में पुंवद्भाव हो । प्रसंगमें समासवृत्ति है । सर्वनाम 'पूर्वं' को पुंवद्भाव होनेसे स्त्रीलिङ्गबोधकप्रत्यय टाप् हट गया । पुलिङ्गे यादृशं कार्यं तादृशं सम्भूयते पूर्वशाला स्थिति में । ७ । दिशावाचक शब्द जिसके पूर्व हो अस्मात्—उससे भवार्थ=होने वाला अर्थमें 'ञ्' प्रत्यय हो । असंज्ञायां संज्ञा अर्थ न हो तो । ञ इत् (अ) शेष ।

(८(तद्धि-ञित् णित् तद्धितप्रत्यय परे अचोंमें आदि अच्को वृद्धि हो । आदिवृद्धि । यस्येति च आलोप स्वादिकार्य, पौर्वशालः (पूर्वदिशाके घर में पैदा हुआ) ।

पूर्वा शाला प्रिया यस्य पूर्वदिशाका सदन प्रिय हो जिसे, वह व्यक्ति पूर्वशालाप्रियः । बहुब्रीहि समास करनेके बाद प्रियाशब्द परे रहते पूर्वाशालाका पूर्वयोः तत्पुरुषसमासे, तद्धितार्थोत्तरपदसूत्रेण । अत्र शङ्का–बहुब्रीहिसमास करने पर सुप्का लुक् हुआ । तब कहा कि अवान्तर=बहुब्रीहिसमासके भीतर तत्पुरुषसमापका अन्तोदात्त होना ('ला' का आ उदात्त) फल, यदि भीतरी तत्पुरुष न होता पूर्वपदप्रकृतिस्वरसे आदि उदात्त हो जाता । तद्धित और उत्तारपदका दिशाके साथ समाहारका उदाहरण क्यों नहीं दिये – तब बोले दिक्षु–दिशाके साथ समाहार समुदाय समासांर्थ होता ही नहीं, अनभिधानात्=ऐसे समासकी शास्त्रमें व्यवस्था नहीं । संख्याके साथ तद्धित विषयमें समासका प्रमाण छः माताओंका अपत्य-सन्तान (षाण्मातुरः)

आकार उदात्तः । पूर्वशालाप्रियः । दिक्षु समाहारो नास्त्यनभिधानात् ॥ (संख्या-यास्तद्धितार्थे) । षण्णां मातृणामपत्यं षाण्मातुरः । 'मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः, इति वक्ष्यमाणोऽण् । पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ अवान्तरतत्पुरुषस्य विकल्पे प्राप्ते ॥ (द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्) ॥ गोरत-द्धितलुकि ।५।४।९२। गोऽन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात्समासान्तो न तु तद्धितलुकि ।

कार्तिकेयः विग्रहे तद्धितार्थोत्तरपद-समासे कृते मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः अण् । ऋ स्थाने उत् रपर च आदिवृद्धिः ।

सङ्ख्या पूर्वः अवयवो यस्य, सङ्ख्या पहले हो और तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च सूत्रमें कहा हुआ तीन अंश तद्धितार्थ, उत्तरपद, समाहार ये तीनों समासके पूर्व में संख्या हो, तब समुदायको द्विगुसंज्ञा हो जाय । जैसे—पञ्चगवं में समाहार मानकर समास हुआ, संख्या भी पूर्वमें है द्विगुसंज्ञा हो गयी उसका फल—द्विगु अर्थ यदि समाहार हो तब, एकवचन हो जाय ।

विशेषणं-विशेष्यते अनेन, विशेषता बतलायी जाय जिससे, वह विशेषण (नीला कमल) नील गुणसे कमलकी विशेषता बतलायी गयी । वह श्वेत पीत कमलसे नील कमल जो अलग करती है । इतरस्माद् व्यावर्तकं=अन्यसे अलग करनेवाला व्यावर्त्य= जिसको अन्यसे अलग किया जाय, कमलको श्वेतपीतसे अलग किया गया वही विशेष्य विशेषितुं योग्यं विशेष्यम् भेदकं (भिनत्ति पृथक्करोति) भेत्तुं योग्यं भेद्यं का समान आधार, विभक्तिका भेद्य=विशेष्यके साथ तत्पुरुष उत्तरपदार्थप्रधान समास हो । विशेष्य या विशेषणमें एकको पढ़नेकी आकांक्षासे दूसरेका लाभ होता ही, दोनों का पढ़ना स्पष्टज्ञानके लिए । यथा–नीलोत्पलं नीलाकमल, नीलशब्द लालपीले कमलको अलग करता है । विशेषणसमर्पक उत्पल=विशेष्य । नील सु उत्पल सु । सूत्रेण समासादिः । विशेषण प्रथम समास में उच्चारित है उसको उपसर्जनसंज्ञा, पूर्व-प्रयोग । यद्यपि कमल भी नीलवस्त्र को अलग करता है वह भी विशेषण क्यों न माना जाय, जातिशब्द गुणक्रियाके सम्बन्धमें प्रधान ही रहते हैं, विशेषण नहीं होते नीलो-त्पलं, पाचकब्राह्मणः यहाँ उत्पल और ब्राह्मण प्रधान ही रहेंगे । लेकिन दोनों शब्द-गुण हों, तब नियम नहीं । खञ्जः कुब्जः (लँगड़ा कुबड़ा) कुब्जखञ्जः दोनों होगा । यही दशा दो क्रियाओंकी पाचकः पाठकः । पकानेवाला पाठकपाचकः पढ़ता भी पकाता भी है । और एकगुण हो दूसरा क्रिया, तब भी नियम नहीं । खञ्जपाचकः पाचकखञ्जः कहें । संज्ञाशब्द भी विशेषण ही रहते हैं । यथा कैलाशाद्रिः कन्दराद्रिः पहाड़, तर्कविद्या, भोजराजः अयोध्या-नगरी । सामान्यजाति है । शिंशपा पलाश विशेषजाति । यद्यपि 'वा' पढ़नेसे विकल्प सिद्ध था तथापि बहुलं पढ़नेका प्रयोजन क्वचिन्नित्यं कहीं नित्यसमास हो । जैसे कृष्णचासौ सर्पश्च कृष्णसर्पः काला साँप । क्वचिन्न, कहीं समास न हो, रामो जामदग्न्यः में ।

पञ्चगवधनः । **संख्यापूर्वो द्विगुः ।२।१।५२।** तद्धितार्थेत्यत्रोक्तः संख्यापूर्वो द्विगुः ॥ **द्विगुरेकवचनम् ।२।४।१।** द्विग्वर्थः समाहार एकवत्स्यात् ॥ **स नपुंसकम् ।२।४।१७।** समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । पञ्चानां गवां समाहारः-पञ्चगवम् ॥ **विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ।२।१।५७।** भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत् । नीलमुत्पलं-नीलोत्पलम् । बहुलग्रहणात्क्वचिन्नित्यम्-कृष्णसर्पः ।

पञ्चगवधनः पञ्च गावो धनं यस्य पांच गाय ही धनसम्पति हैं जिसके, (पञ्चन् जस् गोजस् धन सु) इति अलौकिकशरीर प्रथम (अनेकमन्यपदार्थे) इति त्रिपदबहुव्रीहिसमासे । उसके अन्तर्गत (अन्तर्वति) पञ्चन् गो इस अंशको उत्तरपदपरे (तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च) सूत्रसे समास, परन्तु अयं समासोऽनित्यः (वा०) द्वन्द्व और तत्पुरुष का नित्य समास हो उत्तरपद परे रहते । समास होनेसे सुप् लुक् । अन्तर्वति समासके पूर्वविभक्तिनिमित्तक पद मानकर नकारलोप । पञ्चगोधन इत्यवस्थायां । (९) गोशब्दान्त--तत्पुरुष से टच् (अ) हो वह समासान्त मान्य हो, अतद्धितलुकि = तद्धितप्रत्ययका लुक् न हुआ हो । प्रसङ्ग में गोशब्दान्ततत्पुरुष पञ्च है । अतः सकारान्त टच् (अ) आदेशे । पञ्चगवधनः । पूरे तीनों पदोंमें एकार्थीभाव एकपद एकशक्ति है । स्वादिकार्ये ।

। ९४० । तत्पुरुष--समानाधिकरण=समान विभक्तिवाले पदका तत्पुरुष (स चासौ पुरुषश्च विशेषणविशेष्यभाववाले समास) को कर्मधारय कहते हैं । कर्म, समानविभक्तिके विशेषेणं धारयति (१) संख्या तद्धितार्थे, उत्तरपदे, समाहारे ये तीनों प्रकारके समास संख्यापूर्वक हो तो उनकी द्विगुसंज्ञा हो । (२) द्विगुसमास का अर्थ, यदि समाहार हो वह एबवत् (एकवचन की तरह) हो जाय (३) समाहार अर्थ में द्विगु और द्वन्द्वसमासपद नपुंसक हों । पञ्चानां गवां समाहार लौकिकवाक्यमें पञ्चन्आम् गोआम् अलौकिक विग्रह, समाहार अर्थ मानकर 'तद्धितार्थोत्तर पद से समास । प्रासंज्ञा, सुपु का लुक्, पदत्वात् नकारलोप । 'गोरतद्धितलुकि' हो टच् (अ) समासान्तप्रत्यय अवादेशे, पञ्चगव दशामें द्विगुसमाससंज्ञा, समाहारे द्विगुः, एकवचनं, नपुंसकसंज्ञा सुकेअमादेश, पञ्चगवं द्रष्टव्यम् । पाँच गायोंका समुदाय समासार्थ है (४) विशेषणं = भेदकं भिनत्ति व्यावर्तयति । जो दूसरों से भेद करे, विशेषता बतलाये, वह विशेषण है । उसका विशष्येण = भेद्येन भेत्तुं व्यावर्तयितुं योग्यम् (जिसकी विशेषता बतलाई जाय) प्रधान (मुख्य) के साथ समानाधिकरण समानविभक्ति वाले हों, तब बहुलं इच्छानुसार समास हो, विशेषणपदके प्रथमान्त होनेसे पूर्वप्रयोग । भेद्यं विशेष्यमित्याहुः भेदकन्तुविशेषणम् । पदार्थों स्वार्थनिक्षेपादप्रधानं बिशेषणम् । विशेष्यं तु प्रधानं स्यात् स्वार्थस्यैव समर्पणात् ।

क्वचिन्न-रामो जामदग्न्यः ॥ (अपरस्यार्धे पश्चभावो वक्तव्यः)। अपरश्चासावर्धश्च पश्चार्धः ॥ सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ।२।१।६१। सह समस्यन्ते। सद्वैद्यः ॥ आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ।६।३।४६। महावैयाकरणः। तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः ।१।२।४२। पुंव-

---

चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति इत्युक्तम्। यथा–नीलम् उत्पलसु इति अलौकिक विग्रहे। यहाँ नीलपद विशेषण (भेदक) है। उसका विशेष्य (भेद्य) उत्पल के साथ समास, प्रा० संज्ञा, सुप् लुक्, स्वादिकार्य, नीलोत्पलम्। नीलरंगविशिष्ट कमलं समासार्थः। एकपद। बहुलग्रहणसे नित्यसमास भी होता है। कृष्णसर्पः (कालासांप) समासार्थके लिए केवल कृष्ण सु सर्प सु इति अलौकिक विग्रहे नित्यसमासे। कृष्णश्चासौ सर्पश्च यह विग्रह नही होगा। क्योंकि भेद्यभेदकभाव सम्बन्ध नहीं है। किन्तु कृष्ण सर्प जातिविशेषका नाम है। पहुलग्रहण से कहीं समास होता ही नहीं रामोजामदग्न्य (जमदग्नेः अपत्यं) जमदग्नि ऋषिके सन्तान राम (परशुराम) है। यहाँ विशेषण विशेष्यभाव होने पर भी समास नहीं हुआ।

सन्महत, परम, उत्तम उत्कृष्ट शब्दोंका गुणक्रिया अर्थक शब्दके साथ समास समान आधार रहनेपर तत्पुरुषमान्य। पूज्यमानैः=पूजा समादर की भावना भरी रहनेपर। पूर्वनिपातनफल (सन्वैद्य) योग्यतागुण; सफलचिकित्सा शास्त्रकी ओर छोर तक ज्ञान, रखना, शास्त्रान्तज्ञानवान्, यह सत्का अर्थः। वैद्यजीकी पूर्ण कुशलताका प्रतीक है। सन् सु वैद्य सु सन्महत्समासादिः। वक्ष्यमाणेन=आगे कहेजाने वाले सूत्रसे महत्के त को 'आ' हो समासमें यथा महांश्चासौ वैयाकरणश्च महत् सु वैयाकरण सु। सन्महत्सूत्रेण समासे आन्महतः महतके त को आ दीर्घ, महावैकरणः सर्वश्रेष्ठशब्दब्रह्मसाधकः।

७४२। तत्पुरुष समास समानाधिकरण आधारवाला हो, तब कर्मधारय माना जाय। समानम् एकम् अधिकरणं वाक्यं ययोः पदयोः ते समानाधिकरणे पदे अस्य स्तः अर्शादिः अच्। समानाधिकरणसंज्ञा तत्पुरुषके अधिकार में पढ़ गयी होती, तब कर्मधारय संज्ञा से उसका बोध होता। अतः यहाँ पढ़ा।

।४६। पुंवत्कर्मधारय–स्त्रियाः भाषितपुंस्कात् अनूङ्की अनुवृत्ति। सप्तमी विषयभेदसे भिन्न होती है। कर्मधारय अंशमें अधिकरण सप्तमी. जातीय देशीयसे परसप्तमी। कर्मधारयसंज्ञा होनेपर और जातीय देशीयपरे रहते भाषितः पुमान् यस्य स भाषितपुंस्कः तस्मात्=जिस स्त्रीङ्गि शब्दमें पुलिंग प्रतीत हो, उससे परे ऊङ्का अभाव हो जिसमें, तथाभूत–उस स्त्रीवाचकको पुलिङ्ग हो। अत्र प्रश्नः–कर्मधारयसंज्ञामें स्त्रियाः पुंवत्से पुलिङ्ग सिद्ध, जातीय देशीयपरे

त्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु ।६।३।४२। कर्मधारये जातीयदेशीययोश्च परतो भाषितपुंस्कात्पर ऊङभावो यस्मिंस्तथाभूतं पूर्वं पुंवत् । पूरणीप्रियादिष्वप्राप्त पुंवद्भावोऽनेन विधीयते । महानवमी । कृष्णचतुर्दशी । महाप्रिया । पूज्यमानैः किम् उत्कृष्टो गौः, पङ्कादुद्धृत इत्यर्थः ,। उपमानानि सामान्यवचनैः ।२।१।५५। घनश्यामः ॥ उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ।२।१।५६। पुरुषो

तसिलादिषु आकृत्वसुचः से पुं० सिद्ध, यह सूत्र क्यों पढ़े ? तब बोले पूरणीप्रियादिषु जहाँ सङ्ख्यापूर्ति अर्थ में प्रत्यय हो, प्रिया आदि शब्दपर हो, वहाँ पुलिङ्ग प्राप्त नहीं है। उनके लिए सूत्रसे पुलिङ्गका विधान। यथा महती चासौ नवमी च। सन्महत्परम् आदिसे समास। नवानां पूरणी नवमी, (नवीं तिथिको पूरा करने-वाली तस्य पूरणे डट्, नान्तसङ्ख्यादिसे डट्को मट्। टिड्ढाणञ् सूत्रसे ङीप्। (नवमी) शब्द पूरणप्रत्ययान्त होनेसे उसके परे स्त्रियापुंवत् प्राप्त नहीं, अतः इस सूत्रसे पुं०। जिसका फल आन्महतः सूत्रसे त को आत्व होना महानवमी। चतुर्दशाना पूरणो चौदहवीं संख्या पूर्णकरने वाली। चतुर्दशन् डट् टिलोप्। कृष्णश्चासौ चतुर्दशी च समासादिः। कर्मधारयसंज्ञा पुंवत्। महती चासौ प्रिया च महाप्रिया अभिन्नहृदया। महती सु प्रिया सु समासादिः पुं० भावे अप्रियादिषुसे पुंवत्का निषेध प्राप्त था।

। ६४५। **उपमाना** (उपमीयते समानताधर्मः प्रकटीक्रियते अनेन) वाचक-सुबन्तका उपमेय या सामान्यधर्म वाचकसुबन्तके साथ समास हो। समानस्य भावः धर्मो वा सामान्यम्। उपमानउपमेय दोनों में रहने वाला धर्म समानरूप से जहाँ हो। अतः धर्मवाचकशब्द के साथ समास हो। यथा––घन इव श्यामः (बादल की तरह सांवला) घन उपमान है, श्याम (काला) उसका सामान्य धर्म है। उससे उपमितः श्रीकृष्णः घनश्यामः घन का श्याम के साथ (घनसु श्यामसु इस विग्रह में उक्तसूत्र से समास हुआ। अन्य कार्य। (घनपदस्य इवार्थेलक्षणा)।

। ७३५। **उपमितं**—उपमातुं योग्यः उपमेय। समानता देने योग्य। उपमितमें भूतकाल न समझें। उपमेयको उपमानकी आकांक्षा, चन्द्रसदृशं मुखं मुखको चन्द्रकी आकङ्क्षा आह्लाद गुणकी समानतासे। उपमान व्याघ्र सोम हस्ति आदि अर्थ। उपमेका (व्याघ्र) उपमानके साथ समान अधिकरण, आधार समान-विभक्तिके साथ समर्थ एक अर्थवाला समास हो। समान्य—दोनोंमें रहनेवाला धर्मका प्रयास न हुसा हो तब तत्पुरुषमान्य। यद्यपि इस सूत्रका कार्य विशेषण विशेष्येण बहुलंसे सिद्ध था, तथापि विशेष्य=उपमेयका पूर्व निपात फल। उपमान उपमेयकी उपस्थितिमें उपमान विशेषण है, उसीका पूर्व प्रयोग प्राप्त था। यथा पुरुषो व्याघ्र इव बाघकी तरह पुरुष है (कैकेयी जनु बाधिनी भूखी) दोनों में समानताका सूचक।

व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्रः। सामान्याप्रयोगे किम् ? पुरुषो व्याघ्र इव शूरः॥ (शाकपार्थिवादीनामुत्तरपदलोपश्च)। शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः। देवब्राह्मणः॥ कडाराः कर्मधारये २।२।३८। कडारादयः शब्दाः कर्मधारये वा पूर्वं प्रयोज्याः। कडारजैमिनिः। जैमिनिकडारः॥ मयूरव्यंसकादयश्च

वीरता शौर्यं साधारणधर्मका प्रयोग नहीं है अतः पुरुष सु व्याघ्र सु। उपमितसे समासादिः। ना सोम इव (नर चन्द्रमाकी तरह) दोनों आह्लादधर्म दर्शनीयताका प्रकाशक शब्द प्रयुक्त नहीं, अतः (नृ सु सोम सु) समासादिः। व्याघ्र आदि आकृतिगण हैं आकृत्या स्वरूपेण गण्यते, समासः अनुमीयते अस्मिन् आकृतिगणः। इस प्रकारका प्रयोग मिलें तब समास मान लें। सामान्य=दोनोंमें रहनेवाला समानधर्मका प्रयोग न हों ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि पुरुषो व्याघ्र इव शूरः, वीरतामें बाघके समान पराक्रम दोनोंका धर्म शूरः वीरःके प्रयोगसे। राजपुरुषः सुन्दरः की तरह न हो, अतः सामान्य पढ़ा। भाष्याब्धिः क्वाति गम्भीरः भाष्यका अब्धि जलसमुद्रके साथ समास हुआ है दोनोंमें समान धर्म अतिगम्भीर प्रयोग पर ही, इस कैयट प्रयोगमें मयूरव्यंसकादि मानकर समास अथवा भाष्यमेव ब्धिः, भाष्य ही समुद्र है रूपक। घन-सदृशो अर्थः (वा०) शाकपार्थिवगण में पठित सभी पदों की सिद्धये-सिद्धि के लिए (उसके) उत्तरपद के लोप का उपसंख्यान--परिगणन करें। अर्थात् पूर्वपदमें जो उत्तरपद, उसका लोप हो। शाक का प्रेमी राजा। शकप्रियः पार्थिवः। यहां शाकप्रिय का पार्थिव [राजा] के साथ समास हुआ। पूर्वपद शाकप्रिय में उत्तरपद (प्रिय) शब्द का लोप हुआ, अन्यकार्य, शाकपार्थिवः। इसे मध्यमपदलोपी समास मानते हैं। देवस्यपूजकः देवपूजकः (देवताकी पूजा करनेवाला) सचासौ ब्राह्मणः (वही ब्राह्मण) वेदपूजक शब्दका ब्राह्मणशब्दकके साथ समास, पूर्वपद देवपूजक में उत्तरपद [पूजक] का लोप स्वादिकार्य। काडारा आदिशब्द कर्मधारय समासमें पूर्वप्रयोग किये जांय विकल्पसे। उपसर्जनं पूर्वकें नित्यको बाधकर यथा कडार श्चासौ जैमिनिश्च समासे। विकल्पेन पूर्वप्रयोगसे दो रूप।

मयूरव्यसकादिगणमें पढ़े शब्द निपात्यन्ते=समासादिकार्य मान्य है। चकार-अवधारण-कार्यनिश्चय के लिए हैं, जिसका फल परममयूरव्यंसकः आदिमें समासान्तर न हो, व्यंसकश्च मयूरश्च (धूर्तचतुर मोर) समासे, गुणवचन होनेसे व्यंसकका पूर्वप्रयोग प्राप्त था, उसे बाधनेके लिए यह सूत्र। अन्ये तु—मयूर इव व्यंसको मयूरव्यंसकः। उपमानानि सामान्यवचनैः का बाधक मानते हैं। जिसका फल 'समासस्य' सूत्रसे अन्तोदात्त। उच्चावचं, उदक्स्थाने उच्च, अवाचस्थाने अवच्। ऊँचा नीचा स्थान, उच्चावचं सैकभेदमित्यमरः। निश्चितस्थाने निश्च-प्रचितस्थाने प्रच् आदेशः (निश्चप्रचं,) पूर्णदृढनिश्चय समासादिः। नास्ति किञ्चन

।२।१।७२। एते निपात्यन्ते । मयूरो व्यंसको-मयुरव्यंसकः । व्यंसको—धूर्तः । उदक् च अवाक् च उच्चावचम् । निश्चितं च प्रचितं च–निश्चप्रचम् । नास्ति किंचन यस्य सः–अकिंचनः ॥ (आख्यातमाख्यातेन कियासातत्ये) । अश्नीत पिबतेत्येवं सततं यत्राभिधीयते सा–अश्नीतपिबता । पचतभृज्जता । खादतमोदता । नास्ति कुतो भयं यस्य सः–अकुतोभयः । अन्यो राजा–राजान्तरम् । चिदेव–चिन्मात्रम् ॥ नञः ।२।२।६। सुपा प्राग्वत् । नलोपो नञः ।६।३।७३। नञो तस्य

नहीं है कुछ जिसके पास वह अकिञ्चन । च, न, अव्यय हैं । बहुब्रीहिका बाधक, त्रिपद, तत्पुरुष । न के नकारका लोप निपातनसे । न लोपो नञ. नहीं लगेगा, कि के उत्तारपद न होनेसे । उत्तारपदसमासके अन्तिम समासमें रुढ़ है ।

गणसूत्र–आख्यातम्=आख्यायते या सा धातुः–अर्थ–क्रियाका आख्यातेन=क्रिया-के साथ समान, एकशक्ति हो । यदि क्रियाका सातत्य निरन्तर होना हो तब । तिङन्तका उत्तारपदार्थ या अन्यपदार्थ प्रधान समास हो । अश्नीत पिबत यूयं, तुम-लोग खाते रहो पीते रहो ऐसा लगातार अभिधीयते–कही जाय जिस क्रियामें उसका नाम (अश्नीतपिबता) समासे अन्यपदार्थ क्रिया है स्त्री० टाप् । वार्तिकेन एकार्थी-भावे । यूयं पचत भृज्जत, तुमलोग पकाओ भूनों, इस प्रकार निरन्तर क्रिया कही जाय वह पचतभृज्जता । क्रिया अन्य पदार्थसमास स्त्री० टाप् । यूयं खादतमोदत, एवं सततं यस्यां क्रियायां कथ्यते, सा खादतमोदता समासे, टाप् । खाना पीना मौज करना आदि क्रियाका क्रियाके साथ समास होने पर मिलकर एकक्रिया होना समासार्थः । नञ्का सुबन्तके साथ समास हो । नञ् शब्दका निषेध तद्भिन्नं तत्सदृश दो अर्थ है; इसे पर्युदास और (क्रियाके निषेध को) प्रसज्यप्रतिषेध नञ् कहते हैं । ७ । नञ् के नकार का लोप हो उत्तरपद परे । यथा न ब्राह्मणः (जो ब्राह्मण न हो) अब्राह्मणः । ब्राह्मणभिन्नः ब्राह्मणसदृशः क्षत्रियः शुद्रो वा) तम् आनय । न ब्राह्मण सु इस अलौकिकविग्रह में नञः सूत्रसे सुबन्त ब्राह्मणपदके साथ समास । सुप का लुगादिः । न लोपो नञः से लोप । ब्राह्मणभिन्न ब्राह्मणसदृशः कश्चित्पुरुषः समासार्थः । ८ । तस्मात्––लुप्त नकार हो जिस नञ् का उससे परे अजादिपद हो तो उसे नुट् आगम हो । यथा–अनश्वः, न अश्वः [घोड़ा नहीं है] किन्तु घोड़े के सदृश खच्चर आदि है । अश्वसे भिन्न अश्व के सदृश समासार्थ (न अश्व सु नञः इति समासे, नलोपो नञः से नलोप) अअश्वः दशामें, तस्मान्नुचि सूत्रसे नुट् (न) आगम अजादि प्रत्यय परे हैं । अन्यकार्य । शंका-नैकधा इत्यादि पद में 'न' पद का 'एकधा' पद के साथ सुप्सुपासे समास है । नलोप क्यों नहीं ? वहाँ (नञः) समास नहीं हैं नलोप, नुट् नहीं होंगे । अनेकधा नहीं बनेगा किन्तु सह सुपा का समास, नञ्समास नहीं माना गया, अतः नलोपादि नहीं हुए

लोप उत्तरपदे । न ब्राह्मणः-अब्राह्मणः । तस्मान्नुडचि ।६।३।७४। लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुट् । अनश्वः । नैकधेत्यादौ तु न शब्देन सह सुप्सुपेति समासः । कुगतिप्रादयः ।२।२।८। एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते । कुत्सितः पुरुषः-कुपुरुषः ॥ ऊर्यादिच्विडाचश्च ।१।४।६१। ऊर्यादयश्च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः । ऊरीकृत्य । उररीकृत्य । शुक्लीकृत्य । पटपटाकृत्य । (कारिका-

---

नैकधा । ६ । कुशब्द, गतिसंज्ञक और प्रपरा इत्यादि शब्दों का समर्थ परस्पर-सम्बन्धित सुबन्तके साथ नित्यसमास हो। यद्यपि गतिसंज्ञासे प्रादिका भी ग्रहण हो सकता था पृथक्क्यों पढ़ा ? तथापि क्रिया के योग में ही प्रादिको की गति संज्ञा का विधान है । जहाँ क्रिया से सम्बन्ध नहीं है । वहाँ प्रादिकोंकी गतिसंज्ञा नहीं होगी इसलिए अलग पढ़ा । यत्क्रियायुक्ताः प्रादयः तं प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञकाः भवन्ति । यथा–उपगतः आचार्यः उपाचार्यः । यहाँ उपशब्द गतः––गमनक्रियाके प्रति' गतिसंज्ञक है । आचार्यके प्रति नहीं । अतः प्रादि उप गतिसंज्ञक नहीं । अतः प्रादिको भी पढ़ा । कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः निन्दित, घृणित व्यक्ति । कुत्सित अर्थवाचक (कु) अव्ययशब्दका सुबन्त पुरुषके साथ नित्य समास हुआ ।

।६५०। ऊरी आदि, च्विप्रत्ययान्त डाजन्ताः—डाचप्रत्यान्तशब्द क्रियाके योगमें गतिसंज्ञक हो । ऊरीकृत्य, मनसिकृत्वा, स्वीकार हृदयंगम करके, कृत्य–क्रियापदके योगमें ऊरीशब्दकी ऊर्यादिसूत्रसे गतिसंज्ञा । कुगतिप्रादयः से समास समासेऽनुपूर्वे इति क्त्वाको ल्यप् ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् [त] आगम । स्थानिवद्भावसे क्त्वा मानकर क्त्वातोसुकसुनो से अव्ययसंज्ञा, समास लब्धविभक्ति का अव्ययादाप्सुपः से लुकि । उरीकृत्वा इत्यर्थः । अशुक्लं शुक्लं कृत्वा इति शुक्लीकृत्य । जो सफेद नहीं था उसे श्वेत कर किया (अभूततद्भावे च्विः) जो नहीं था वह हो गया । शुक्ल शब्दात् कृ भू उसके योग में च्वि, अस्यच्वौ इति अको ई । यहाँ च्विप्रत्ययान्त मानकर 'ऊर्यादि' से गतिसंज्ञा, कृत्वा के साथ समास क्त्राको ल्यप्, तुकि रूप पूर्ववत् । पटत् पटत् इति कृत्वा इति लौकिक विग्रह (पट-पट करके) अव्यक्तध्वनि का अनुकरण होने से डाच् आ, पटत् को द्वित्वे पररूपे पटपटाकृत्वा अत्रापि गतिसंज्ञा, समासादिकार्यं त्वा को ल्प् । शोभनः पुरुषः सुपुरुषः सुन्दर अर्थद्योतक सुशब्द प्रादि है । क्रियायोग 'न' होने से गतिसंज्ञा नहीं हुई । उसका समर्थ सुबन्त पुरुष के साथ कुगतिप्रादयः से समास रूपम् (वा०) प्रादयः प्रपराअपसम आदिका प्रथमान्त समर्थके साथ 'गत' आदि अर्थ में समास हो ।

कारिका शब्दको भी गतिसंज्ञा कहे, क्रियाके सम्बन्धमें । कारिकाका अर्थ क्रिया है । धातुका क्रिया अर्थमें कृ ण्वुल् । स्त्रियांक्तिन् के अधिकारमें कारिका

शब्दस्योपसंख्यानम्)। कारिका — क्रिया, कारिकाकृत्य ॥ अनुकरणं चानितिपरम् ।१।४।६२। खाट्कृत्य। अनितिपरम् किम्? खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत् ॥ आदरानादरयोः सदसती ।१।४।६३। सत्कृत्य । असत्कृत्य । भूषणेऽलम् ।१।४।६४। अलंकृत्य । भूषणे किम्? अलं कृत्वौदन गतः, पर्याप्तमित्यर्थः । अनुकरणमित्यादित्रिसूत्री स्वभावात्कृञ्विषया ॥ अन्तरपरिग्रहे ।१।४।६५। अन्तर्हत्य, मध्ये हत्वेत्यर्थः । अपरिग्रहे किम्? अन्तर्हत्वा गतः हतं परिगृह्य गत इत्यर्थः । कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते ।१।४।६६। कणेहत्य पयः पिबति । मनोहत्य ।

कृत्वा क्रिया करके । कारिका को गतिसंज्ञा । कुगतिप्रादयः समासे, ल्यपि सुपो लुक् । कारिकाशब्द न कर्ता है न श्लोक, व्याख्यान से । मर्यादा स्थितिः अर्थः ।

अनुकरणं=नकल (फोटो) को गतिसंज्ञा हो, इति परे न हो तब । यथा खाटशब्दं कृत्वा (खखारअर) अनुकरणं च, गतिसंज्ञा, समासे ल्यप खाटकृत्य । ते प्राग्धातोः संज्ञा नियमपक्षमें अनिति व्यर्थ है । अतः पूँछे अनिति परं किम्, इति परे न हो ऐसा क्यों? प्रयोगनियम पक्षमें खाडिति अनुकरणकी इति परे गतिसंज्ञा न हो अतः अनिति पढ़ा । निरष्ठिवत् थूक दिया । आदर सत्कार; अनादर तिरस्कार अर्थमें क्रमसे सत् और असत् इति गतिसंज्ञक हों । सत्कारं कृत्वा सत्कृत्य इससे सत् की गतिसंज्ञा, कुगति समास क्त्वा ल्यप् । अनादरं कृत्वा असत्कृत्य (अपमान करके) गतिसमास ल्य । भूषण—अलङ्करण अर्थमें वर्तमान् अलम् इस अव्ययकी गतिसंज्ञा हो । हार-केयूर कर्णपुष्प आदि धारणेन शरीरसंस्कारं कृत्वा अलंकृत्य गतिसंज्ञा समासादिः । अनुकरणं चानितिपरं, सूत्रसे तीन सूत्र कृञ्के सम्बन्धमें स्वभावसे होते हैं । वस्तुतः संकोचमें प्रमाण नहीं, अन्य धातुके योगमें भी लगते हैं । अलंभुक्त्वा ओदनं गतः । सूत्रमें भूषण क्यों पड़ा? इसलिए कि पर्याप्त अर्थमें अलंकों गतिसंज्ञादि न हो । अलंकृत्वा । ओदनं (भात) पर्याप्त बनाकर गया ।

अन्तः परिग्रहः— न लेने अर्थमें वर्तमान अन्तः इस अव्ययकी गतिसंज्ञा हो । अन्तः मध्ये हत्वा गतः मध्यमें सिंहको मारा, छोड़ गया । न लेने अर्थमें अन्तः शब्दकी गतिसंज्ञा, समासे । क्त्वा-ल्यप् अपरिग्रह अर्थ क्यों? जहां ग्रहण अर्थमें अन्तः शब्द हो वहाँ गतिसंज्ञा न हो । यथा अन्तर्हत्वा गतः (भीतर मारा लेकर गया) यहाँ न गतिसमास । (कणे और मनस्) दोनों श्रद्धा=अत्यन्त अभिलाषा उनका प्रतिघात=निवृत्ति—शांति अर्थमें गतिसंज्ञक हों । कणेहत्य तीव्रपिपासा जलके प्रति श्रद्धा है, पीनेपर पिपासा शान्ति प्रतिघात है । तृप्तिपर्यन्त पीता है । प्यास समाप्ति अर्थमें कणे इत्यस्य सूत्रेण गतिसंज्ञा कुगतिसमासे । क्त्वास्थाने ल्य । मनोहत्य मन-

कणेशब्दः सप्तमीप्रतिरूपको निपातोऽभिलाषातिशये वर्तते। मनःशब्दोऽप्यत्रैव। **पुरोऽव्ययम्।१।४।६७।** पुरस्कृत्य॥ **अस्तंच।१।४।६८।** अस्तमिति मान्तमव्ययं गतिसंज्ञं स्यात्॥ अस्तंगत्य॥ **अच्छ गत्यर्थवदेषु।१।४।६९।** अव्ययमित्येव। अच्छंगत्य। अच्छोद्य, अभिमुखं गत्वा उक्त्वा चेत्यर्थः। अव्ययं किम्? जल-

---

भर पीया, तृप्तिपर्यन्त। मनस् की गतिसंज्ञा, समास ल्य। समासमें कणेसे सप्तमीका लुक् क्यों नहीं? तब बोले कणेशब्द सप्तमी अर्थका बोधक निपात है। ननु श्रद्धाके प्रतीघातका ज्ञान कैसे? श्रद्धा सूचकशब्द नहीं है, जब मनका घात होगा, तब पयका पान कैसे? तब बोले अभिलाषातिशयेन–इच्छाकी अधिकताके अर्थमें कणेशब्द है, मनः शब्द भी। उसी अर्थमें इच्छानिवृत्ति संतुष्टिपर्यन्त जलपान। श्रद्धासमाप्ति तक अर्थ क्यों? जहां सूक्ष्म तण्डुलका अवयव कण है। तद्विषयं हत्वा गतः। मनोहत्वा गतः, विष या मद्यपानमें मनकी रुचिको रोककर गया। गतिसमास न हो। यहां इच्छाका रोकना अर्थ है। पूतिकर प्रतिघात अर्थ नहीं।

पुरो=पुर अव्यय गतिसंज्ञक हो। इसका फल समास और क्त्वाको ल्यप्। पुरः कृत्वा आगे करके पुरोऽव्ययं गतिसंज्ञा कुगति–समासे। क्त्वा ल्य। पुरस्कृत्य नमःपुरुषोः विसर्गस्य सः। अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं यहां स्थितके आहरणसे न गति, न फल। अव्ययक्यों पढ़ा? पुरं पुरौ पुरः कृत्वा गतः। गांव होकर गया, अव्यय नहीं गतिसमास न हो।

अस्तं यह मान्त अव्ययकी गतिसंज्ञा हो। अध्ययन अस्तङ्गत्वा तिरोधानं प्राप्य डूबकर अस्तङ्गत्य गतिसंज्ञा समासे ल्यप्। अव्यय क्यों पढ़ा? काण्डम् अस्तं कृत्वा प्रक्षिप्य, गोहरी कण्डी फेंककर। यहां अस्तम् अव्यय नहीं गतिसमास भी नहीं अच्छ इस अव्ययकी गतिसंज्ञा तब हो, जबकि गत्यर्थक और वद् धातुका प्रयोग हुआ हो। अव्ययको ही। अच्छङ्गत्वा (सुपथसे चलकर सफल है) गतिसंज्ञक कुगतिसमासे ल्य। अच्छगत्य अच्छंम् उक्त्वा। स्पष्ट बोलकर। अच्छ वद् क्त्वा गतिसंज्ञा–समासे ल्य। अच्छशब्द अभिमुख अर्थमें हैं सामने जाकर, कहकर। अव्यय क्यों पढ़ा? इलिए कि जहां अच्छ अव्यय नहीं, न गतिसंज्ञा, न निपातसंज्ञा, वहां गतिसमास न हो। जलमच्छं=निर्मल जल जा रहा है।

अदः = शब्द उपदेश अर्थमें न हो, तब गतिसंज्ञक हो, अदः कृत्वा अदःकृत्य। यह काम करके, यह कार्य किया। गतिसंज्ञादिः। गतिरन्तरः के पूर्व-पद प्रकृतिस्वरसे आदि उदात्त। यदि अमुं यन्त्रं कृत्वा अर्थ करेंगे। तब समासमें सुप लुक् होगा। यदा स्वयमेव पर्यालोचयति तदा इदम्। यदा परं प्रति उपदेशः अदः कृत्वा अदः कुरु। प्रति उदाहरणं। तिरोऽन्तर्धिः व्यवधानं छिपाव अर्थमें

मच्छं गच्छति ॥ **अदोनुऽपदेशे ।१।४।७०।** अदःकृत्य । अदःकृतम् । परं प्रत्युपदेशे प्रत्युदाहरणम्, अदःकृत्वा, अदः कुरु ॥ **तिरोऽन्तर्धौ ।१।४।७१।** तिरोभूय ॥ **विभषा कृञि ।१।४।७२। तिरसोऽन्यतरस्याम् ।८।३।४२।** सो वा स्यात्कृञ्वोः ॥ तिरःकृत्य, तिरस्कृत्य, तिरःकृत्वा ॥ **उपाजेऽन्वाजे ।१।४।७३।** एतौ कृञि वा गतिसंज्ञौ । उपाजेकृत्य, अन्वाजेकृत्य, उपाजे कृत्वा, अन्वाजे कृत्वाः, दुर्बलस्य बलमाधायेत्यर्थः ॥ **साक्षात्प्रभृतीनि च ।१।४।७४।** कृञि वा गतिसंज्ञानि स्युः ॥ **(च्व्यर्थं इति वक्तव्यम्)** । साक्षात्कृत्य, साक्षात्कृत्वा । लवणंकृत्य, लवणं कृत्वा । मान्तत्वं निपातनात् ॥ **अनत्याधान उरसिमनसी ।१।४।७५।** उरसिकृत्य,

---

तिरस्को गतिसंज्ञा हो । तिरोभूत्वा छिपकर गतिसंज्ञा समासे ल्य । विभाषा – कृञिके प्रयोगमें तिरस् इस अव्ययकी गतिसंज्ञा विकल्पसे हो । तिरः कृत्वा त्याग करके । गतिसंज्ञा पक्षमें समास ल्य । तिरसोऽन्यतरस्यां से विकल्प । यदा न गतिः, तदा सत्वं न । तिरः कृत्वा । कोई परिभव अर्थमें तिरस्कारके दर्शनसे सत्वविधिमें गति नहीं आती । **उपाजे अन्वाजे** (दुर्बलमें बल शक्ति स्थापना) इन दोनों निपातोंका कृञ्परे विकल्प गतिसंज्ञाके पक्षमें कुगति-समास, क्त्वा ल्य । उपाजेकृत्य (कमशक्तिमें पूर्ण ताकत भरकर) यदा न गतिः तदा न ल्यप्, अनेन अन्वाजे कृत्य भवति ।

साक्षात्=मिथ्या आम् अद्धा लवण उष्ण, शीत, उदक, आर्द्र प्रभृति=इत्यादि अव्यय प्रयोगोंकी भी गतिसंज्ञा हो, कृञ्परे । इस सूत्रपर वार्तिकारने कहा कि च्वि=अभूततद्भाव (जो हुआ नहीं था, अब हो गया) ऐसा अर्थ जान पड़े तब गतिसंज्ञा कहें । गतिसंज्ञाके प्रसंगमें लवणादि पाँच को मकारान्त मानें । प्रादुस् नमस् आविस्से आकृतिगण मान्य । अप्रत्यक्षं प्रत्यक्षं कृत्वा जो सामने नहीं था उसे सामने करके (साक्षात्कृत्य) । सूत्रेण गतिसंज्ञा समासे ल्य । यदा न गतिः तदा न ल्यप् । अलवणं कृत्वा (जो नमकीन नहीं था उसे नमकीन बनाकर) लवणं कृत्वा । सूत्र मान्त की गतिसंज्ञा समास । सुलोपकी शङ्का मिटानेके लिए बोले-(मान्तत्व) निपातनं गणमें पढ़े जानेके सामर्थ्य से मान्त है । अतः सुलोप नहीं । यदि च्वि (जो नहीं था, अब हुआ) अर्थमें विप्रतिषेधे परं कार्य के बलपर उर्यादिच्वि-से नित्य गतिसंज्ञा होगी, तब मान्त नहीं लवणीकृत्य । जहाँ विकल्प गतिसंज्ञा है वहाँ मान्तगणमें मान्य । इससे तीनरूप सिद्ध । विभक्ति अर्थका बोध ।

अनत्याधानं=अधिक संश्लिष्ट चिपका हुआ न हो, तब विभक्ति अर्थके बोधक छायारूप उरसि और मनसि की गतिसंज्ञा विकल्पेसे हो । उरसि कृत्वा हृदय मनमें रखकर, स्वीकार कर, अत्याधानका अभ्युपगम्य=स्वीकारकर अर्थ किया । उरसिकी सूत्रसे गतिसंज्ञा समासे ल्यप । मनसिकृत्य मनमें निश्चय करके गति–

उरसि कृत्वा, अभ्युपगम्येत्यर्थः। मनसिकृत्य, मनसि कृत्वा, निश्चित्येत्यर्थः। अत्याधानमुपश्लेषणम्, तत्र न–उरसि कृत्वा पाणिं शेते॥ **मध्ये पदे निवचने च ।१।४।७६।** एते कृञि वा गतिसंज्ञाः स्युरनत्याधाने। मध्येकृत्य, मध्ये कृत्वा। पदेकृत्य, पदे कृत्वा। निवचनेकृत्य, निवचने कृत्वा, वाचं नियम्येत्यर्थः॥ **नित्यं हस्ते पाणावुपयमने १।४।७७।** कृञि। उपयमनं विवाहः। स्वीकारमात्रमित्यन्ये॥ हस्तेकृत्य। पाणौकृत्य॥ **प्राध्वं बन्धने ।१।४।७८।** प्राध्वमित्यव्ययम्। प्राध्वंकृत्य, बन्धनेनानुकूलं कृत्वेत्यर्थः। प्रार्थनादिना त्वानुकूल्यकरणे-प्राध्वं कृत्वा॥ **जीविकोपनिषदावौपम्ये ।१।४।७९।** जीविकामिव कृत्वा, जीविकाकृत्य। औपम्ये

संज्ञादिः। अत्याधानका अर्थ अति विस्तार हो उपश्लेषणं-संयोगसम्बन्ध। वहाँ गति-संज्ञा न हो। यथा–हृदयपर हाथ रखकर सोता है। संयोग होनेसे उरसि की गतिसंज्ञा नहीं। अनत्याधान क्यों ? शिरः पदे कृत्वा नमति।

मध्ये पदे, निवचने ये तीन कृञ् परे विकल्पसे गतिसंज्ञक हो, अत्याधान न हो तब। तब दोनों पक्षमें तीनोंको एकार हो निपातनसे। मध्यंकृत्वा (बीचमें करके) गतिसंज्ञा समास ल्यप्। यदा न गतिसंज्ञा तब दोनों पक्षमें एत्व। पदंकृत्वा गति-समास ल्यप्। एत्व। वचनाभावं कृत्वा-मौन होकर वाणी रोककर बचनस्य अभावः निवचनं अर्थके अभावमें अव्ययीभाव, गतिसमास ल्यप एत्व। हस्ते और पाणौ को कृञ्परे नित्य गतिसंज्ञा हो। उपयमने (विवाह अर्थ होनेपर। कोई स्वीकारमात्र अर्थ मानते हैं) हस्तेकृत्वा=कन्यां स्वीकर्तुं पाणिं गृहीत्वा, सूत्रेण नित्यगतिसंज्ञा। एत्व निपातनसे। पाणौकृत्व पाणिं कृत्वा, गत्यादिः, औकार (निपातनसे)। उपयमन क्यों हस्तेकृत्वा सुवर्णं शेते। हाथमें सोना लेकर सोता है जो अन्यका है उसे लौटाने के लिए। **प्राध्वं**=बन्धन अर्थ में अव्यय है। उसकी गतिसंज्ञा हो। प्राध्वङ्कृत्य (बन्धनसे अनुकूल करके) गतिसंज्ञा आदिः। बन्धनसे अनुकूल अर्थमें गतिसंज्ञा क्यों ? इसलिए कि प्रार्थना सेवा दानसे अनुकूल करनेमें गतिसंज्ञादि न हो किन्तु प्राध्वं कृत्वा सेवासे अनुकूल करके !

जीविका और उपनिषद को गतिसंज्ञा हो, कृञ्के योगमें, उपमाके विषयमें। उपमैव औपम्यं। यथा जीविकामिव कृत्वा, भोजन पान भवन वस्त्र आदि जीवनका उपाय ही जीविका है। तामिव अवश्यं कृत्वा। सूत्रेण जीविका शब्दस्य गतिसंज्ञा ल्यपि। जीविकाकृत्य। उपनिषदमिव (वेदान्त भाग) की तरह रहसि ग्राह्यत्वेन कृत्वा गतिसमासे ल्यप। दोनों स्थलमें सुपः लुक्। सूत्रमें औपम्य क्यों पढ़ा ? जहाँ उपमा न हो वहाँ गत्यादि न होनेके लिए। यथा जीविकां कृत्वा–यहाँ उपमा नहीं। यहाँ तक कुगतिप्रादयः, सूत्रके गतिसंज्ञकके साथ समास विस्तार हुआ। अत्र शङ्का–प्रादि=

किम् ? जीविकां कृत्वा । प्रादिग्रहणमगत्यर्थम् । सुपुरुषः ॥ (प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया) । प्रगत आचार्य-प्राचार्यः ॥ (अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया) । अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे ॥ **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** ।१।२।४४। विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनं, न तु तस्य पूर्वनिपातः ॥ **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** ।१।२।४८। उपसर्जन यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः । अतिमालः ॥ (अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया) । अवक्रुष्टः कोकिलया-अवको-

---

प्र परा, अप, सम आदिकी गतिसंज्ञासे समास सिद्ध था, यहाँ प्रादि क्यों पढ़ा ? तब बोले-प्रादिग्रहणमगत्यर्थ-गतिसंज्ञा न हो, अतः प्रादि पढ़ा ।

आचार्यः प्राचार्यः प्रगतिशील, अनुशासन-कुशल, शिरमौर आचार्य । 'गत' अर्थ में प्र का समर्थसुबन्त आचार्य के साथ समासादिः । प्राचार्यः (प्रधानाचार्य) अत्यादयः– 'अति' आदिशब्दोंका द्वितीयया—द्वितीयान्त समर्थके साथ समास हो, क्रान्त-भ्रान्त अतिक्रमण आदि अर्थ हो तो । अतिक्रान्तो मालां (लक्षणया माली) पुष्पविक्रेता उसका भी अतिक्रमण कर (वढ़ चढ़) गया हो । इति लौकिकविग्रहमें अतिक्रान्त अर्थबोधक अतिका द्वितीयान्तसमर्थ माला अम् के साथ अत्यादयः कान्ताद्यर्थे द्वितीयया से समास, प्रथमानिर्दिष्ट (अत्यादयः) शब्दसे बोध्यविग्रह में वर्तमान अतिशब्दकी उपसर्जनसंज्ञा, उपसर्जन का पूर्वप्रयोग । समासत्वात्प्रा० संज्ञा सुपक लुक् अतिमाला स्थितिः, ततः ।

(१) एक--नियत (निश्चित) एकविभक्ति (विग्रह वाक्य में जो स्थाई विभक्ति हो) की उपसर्जनसंज्ञा हो । अपूर्वनिपाते–उसका पूर्वनिपात प्राक् प्रयोग न हो । विग्रहवाक्य में जो अनियत विभक्तिक हो उसकी अपेक्षा उस वाक्यमें स्थिरविभक्तिके पदकी उपसर्जनसंज्ञा हो । यहाँ अतिपद अनिश्चित विभक्तिक है । अतिक्रान्तम् अतिक्रान्तेन अतिक्रान्ताय आदि । प्रसंगसे परिवर्तन स्पष्ट है । माला-शब्दमें द्वितीयान्त स्थिर है उसीकी उपसर्जनसंज्ञा । यद्यपि उसका फल पूर्व प्रयोग है, तथापि उपसर्जनका निषेध होनेपर किं फल ? अत आह । २ । **गौश्च स्त्रियाश्च** गोस्त्रियौ तयोः गोस्त्रियोः उपसर्जनसंज्ञक जो गोशब्द और उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त तदन्तस्य—वह हो अन्त में जिसके ऐसे प्रातिपादिक को ह्रस्व हो । प्राति० ह्रस्व स्वादिकार्य । (अतिमालः) अतिक्रमण–अतिक्रम्य सामर्थ्य । फूलकी खेती या व्यापारमें मालीको मात कर दिया । अन्य-पदार्थमें विशेषण होना उपर्जन है ।

(व०) **अव** आदि उपसर्ग का तृतीयान्तसमर्थसुबन्तके साथ समास हो क्रुष्ट कूजित आदि अर्थमें अव के होने पर अवकुष्टः कोकिला के साथ क्रियाकारक (कूजन-क्रिया कूजनकर्ता) भाव सामर्थ्य में समास, सुपका लुक्, नियतविभक्तिककोकिला-

किल: ॥ पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या)। परिग्लानोऽध्ययनाय-पर्यध्ययन: ॥ (निरादय: क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या)। निष्क्रान्त: कौशाम्ब्या:-निष्कौशाम्बि: ॥ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् । ३।१।९२। उपपदमतिङ् ।२।१९। उपपदं समर्थेन नित्यं समस्यते । अतिङन्तश्चायं समास: । कुम्भं करोतीति कुम्भकार: अतिङ् किम् ?

शब्दकी उपसर्जनस्त्रीप्रत्यान्तका ह्रस्वे, विभक्तिकार्य, (अवकोकिल:) गृह: । कोयलसे कूजित घर । वा० परिआदि का ग्लानि आदि अर्थमें चतुर्थ्यन्त-समर्थ सुबन्तके साथ समास हो । परिग्लान: — बहुत खिन्न, मलिन, हारा, हुआ । अध्ययन पढ़ने के लिए, ग्लानि अर्थ परिशब्दका चतुर्थ्यन्त (अध्ययन ङे) के सथ ग्लानिसम्बन्ध-समर्थ समास । अध्ययनपरे ग्लानि अर्थबोधक यण् । अन्यकार्य पर्यध्ययन: छात्र: । अध्ययन से पूर्ण ग्लानि समासार्थ: । निर् आदिका क्रान्त आदि अर्थमें पञ्चम्यन्त-समर्थसुबन्तके साथ समास हो । निष्क्रान्त: निकल गया कौशम्ब्या: कौशाम्बी नगरी से । अत्र निष्क्रान्त अर्थमें वर्तमान निर् का निष्क्रम्यनिष्क्रमणभावसामर्थ्यसे पञ्च-म्यन्त कौशाम्बी के साथ समास । सुपलुक् उपसर्जनसंज्ञा, ह्रस्व, निष्कौशाम्बि:, पुरुष: । कौशाम्बीसे निकला हुआ । क्रिया योगमें गतिसमास:, अन्यत्र प्रादिसमास: (३ । तत्रोपपदं सप्तमी अर्थे तिष्ठति (विद्यते) इति सप्तमीस्थम् यहां सप्तम्य पदमें (कर्मणि अण्) सूत्र से (कर्मणि सप्तम्यन्तपद है) तत्र द्वितीयान्तपद कर्मका वाच्य अर्थके रूपमें स्थित जो कुम्भ आदि कर्मवाचक शब्द की उपपदसंज्ञा हो ।

। ४ । उपपद संज्ञक सुबन्तका समर्थके साथ नित्यसमास हो, तिङन्तके साथ समास न हो । यथाकुम्भं करोति घड़ा बनाता है इस लौकिकविग्रहमें कुम्भ अम् कृ-कर्मणि अण् अ, अचोऽञ्णिति से आर् वृद्धि: । (कुम्भ अम् कार) इत्यलौकिक विग्रह तत्रोपपद सप्तमीस्थं सूत्रसे कुम्भम् की उपपदसंज्ञा । (उपपदमतिङ्) उपपद सुबन्त कुम्भ+अम् क्रियाकारकभाव सम्बन्धसे कारशब्दके साथ नित्य समास । प्रा० संज्ञा । सुलोप, स्वादिकार्य सर्वत्र हो. (कुम्भकार:) । कुम्भकर्मककरणाश्रय: कुलाल: । घट निर्माता । विशेष:—कार शब्दके सुबन्त होने से पहले समास । क्योंकि गति-कारकोपदानां कृद्भि: सह समास वचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः । गतिकारकसंज्ञा उपपदका कृदन्तके साथ समास (सुप् उत्पत्ति के पहले) होता है । अत: वृत्ति में सुबन्त न कहकर 'सामर्थ्येन' कहा । नित्य समासमें अस्वपद विग्रह ही होता है । इसे उप-पदसमास कहते हैं । सूत्रमें अतिङ् ग्रहणं किमर्थम् ? अतिङन्तको समास क्यों ? इसलिये कि मा भवान् भूत् में तिङन्त है, समास न हो । यदि अतिङ् न कहते तब माङि लुङ् सूत्रमें माङिके सप्तम्यन्त पदमें वाच्यत्वेन विवक्षित मा को उपपदसंज्ञा होकर समास होता । तिङन्त के साथ समास निषेध से नहीं हुआ ।

माभवान् भूत् । माङि लुङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम् ॥ (**गतिकारकोपपदनां कृद्भिः सह समासवचनंप्राक्सुबुत्पत्तेः**) । व्याघ्री । कच्छपी । अश्वक्रीतीत्यादि । **अमैवाव्ययेन ।२।२।२०।** अमैव तुल्यविधानं यदुपपदं तदेवाव्ययेन सह समस्यते । स्वादुंकारम् । 'स्वादुमि णमुल्' इति णमुल् । नेह । 'कालसमयवेलासु तुमुन्' । कालः

(वा०) **गतिसंज्ञक** उपसर्गयोगे कारक, (क्रियान्वयी) और उपपदसंज्ञक, का कृद्भिः=कृदन्त पदों के साथ समास (सुप आने के पूर्व) हो । त्रयाणां क्रमशः उदाहरणं दीयते । गतिसंज्ञक–समास व्याघ्री=बाघिन व्याजिघ्राति वि विशेषरूप से आ (घूमती हुई) । चारो ओर का जिघ्रति गन्ध ग्रहण करती है । वि आङ् पूर्वक् घ्रा धातु से आतश्चोपसर्गे इति कः (अ) प्रत्यय, कित्, आलोपे, घ्र (अन्य ग्रहण] क्रियाके योगमें गतिसंज्ञा (बि–इको यण्) व्या गतिसंज्ञक व्याशब्द कृदन्त घ्र के साथ सुबुत्पत्तिके पहले समास । व्याघ्र इति जातिवाचकशब्दः, तेन जातेरस्त्रीविषयादिति ङीष् यस्येति अलोप (व्याघ्री) । बाघजाति की स्त्री । अश्वक्रीती अश्वेन=घोड़ा से क्रीता खरीदी गई स्त्री । कर्तृकरणे कृता बहुलं सूत्र से गतिकारक-परिभाषा की सहायता से सुप् उत्पत्तिके पहले करण (अश्वटा) का कृदन्त क्रीतके साथ क्रिया-कारकभाव सामर्थ्य मानकर समास हुआ । इसका फल करणपूर्वक क्रीतशब्दसे ङीष् है । यदि सुबन्त होने पर समास होता तब अदन्तत्वात् टाप् होने पर अदन्त ह्रस्व 'अ' न मिलने से ङीष् न होता । अश्वक्रीती अश्वकरणकक्रयणाश्रया स्त्री । कच्छपी कच्छं जलं पिबति । अथवा कच्छेन साधनेन पिबति (कछुई) विग्रह-कच्छ उपपदक 'पा' धातुसे सुपि स्थः सूत्रसे क (अ) प्रत्यये-कित् से अतो लोप इति अलोपे । उपपदसंज्ञा समास, शेषकार्य । जातिवाचक कच्छपशब्दसे स्त्रीलिंगबोधक ङीष् ई प्रत्यये (जलसे रक्षित) यदि परिभाषा न होती तो प्रथम टाप् होता । ङीष् न होता । यदि सुबन्त हो जाता तब स्वार्थ द्रव्यलिंगसंख्याकारक ये पांच प्रातिपदिकार्थ हैं । स्वार्थे परिपूर्ण पदम् अर्थान्तिरमाकाङ्क्षते ।

(**अमैव** के बाद तुल्य विधान आया) तुल्यार्थैः अतुलोपमाभ्यां तृतीया । अम्प्रत्ययमात्र बिधायकशास्त्र अम् होनेके साथ जिसकी उपपदसंज्ञा हुई हो उसका अव्यय के साथ समास हो । यह कार्य पूर्वसूत्रसे सिद्ध था, यह सूत्र नियम करता है कि तदेव =यस्मिन् उपपदे येन वाक्येन अम् इत्यस्य विधानं तदेव उपपदम् अव्ययेन समस्यते नान्यत्र । द्वितीय एवकार नियमसे लब्ध है, सूत्रस्थ नहीं । अर्थात् जिस सूत्रसे केवल अम्का तुल्यके साथमें विधान निश्चित हो, वही सूत्र लगे, दूसरा नहीं । यथा स्वादुङ्कारं (स्वादिष्ट बनाकर) लावणिकं भोक्तुं, स्वादुं कृत्वा विग्रहे स्वादुमि णमुल्-क्त्वा स्थाने अम् । वृद्धि । स्वादुं मान्त है निपातनसे । कृन्मेजन्तः मान्त मानकर अव्ययव्य-

समयो वेला वा भोक्तुम् । अमैवेति किम् ? अग्रे भोजं, अग्रे भुक्त्वा । विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेष्विति क्त्वाणमुलौ । अमा चान्येन च तुल्यविधानमेतत् । **तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् ।२।२।२१।** उपदंशस्तृतीयायामित्यादीन्युपपदान्यमन्तेनाव्ययेन सह वा समस्यन्ते । मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते — मूलकोपदंशम् । उपदंशस्तृतीयायामिति

संज्ञा अमैवाव्ययेन समासादि: । तदेव पदके नियमका फल बोले कालसमयवेलासुके–सप्तमीके उच्चारणसे काल-समय-वेला उपपदसंज्ञक यद्यपि है, तथापि भोक्तुं (भोजनका) काल: वेला, भुजधातुसे तुमुन्‌के तुल्यकालमें उपपदका विधान है, अम्‌के साथ नहीं । अत: सूत्रसे समास नहीं । उपपद्संज्ञा और अम्प्रत्ययका साथ विधान हो, वहीं समस्यते । अमैवमें एव क्यों पढ़ा ? केवल अम् विधायकसूत्रके साथ उपपदसंज्ञा हुई हो, ऐसा अर्थ क्यों ? इसलिए कि जो सूत्र अम् और क्त्वा दोनोंका विधान करते हैं उस अम्‌के साथ उपपदसंज्ञकका अव्ययके साथ समास न हो । यथा अग्रेभोजम् अग्रेभुक्त्वा पहले खाकर । यहाँ भुज् धातुसे विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु—सूत्रसे क्त्वाणमुल् दोनोंका विधान है । अनुबन्धलोप । अम्‌का अव्ययेन क्त्वाका तुल्य–एकसाथ विधान । उपपदसंज्ञा अग्रे प्रथम, पूर्वको हुई । परञ्च समास नहीं हुआ । केवल अम्‌के साथ उपपदसंज्ञा विधानके अभावसे, नियम विरोधसे भी । अव्यय न कहते तो कुम्भकार: में समास न होता, नियमविरोधसे । यदेव क्यों कहा ? कालो-भोक्तुं समयो भोक्तुं में समास न हो ।

तृतीया–उपदंश: तृतीया सूत्रसे मिलकर 'अनु अव अनुलोम्ये' इस सूत्र तक स्वीकृत उपपद जितने हैं वे सभी अमन्त अव्ययके साथ समस्त एकार्थवाला हो । अमाव्ययेन आया । एव नहीं आया अस्वरितत्वात् । यथा मूलकोपदंशं मुलीको दांत से काट-काटकर खाता है । भोजनकालमें उपदंशं में उपदंशस्तृतीयायांसे णमुल (अम्) मूलकेनमें तृतीया उपपद है । अमन्त अव्यय उपदंशं है । अम् और उपपदसंज्ञाका तुल्य—एकसाथ विधान प्राप्त था, इसने विकल्प: । (मूलक टा उपदशम्) तृतीया-प्रभृतीनि–सूत्रेण समासादि: । यद्यपि मूलकेनका भुङ्क्तेमें अन्वय:, उपदंशके साथ समास कैसे ? उपदशन क्रियाके प्रति आर्थिक–कर्म मूलक है, सामर्थ्य है । प्रधानक्रिया के अनुरोधसे शाब्दिक कर्म । उच्चै:कृत्वा उच्चैकारम् यहाँ अव्ययेऽयथाभिप्रेत्याख्याने कृञ: । क्त्वाणमुलौ । उच्चै: कारम् । अम्‌के साथ भी उपपदका तुल्य विधान नहीं । अमैवाव्ययेन नियमसे अप्राप्त समासका विकल्पविधान । समास पक्षमें कृदुत्तरपद प्रकृति स्वर । असमासपक्षमें फिटसूत्रसे अन्तोदात्त । उच्चै:, स्वरे भेद: । अमन्तसे समास क्यों ? पर्याप्तो भोक्तुं खानेके लिए पूर्ण है । यहाँ समास न हो । पर्याप्तिवचनेषु तुमुन् ।

णमुल्। क्त्वा च ।२।२।२२। तृतीयाप्रभृतीन्युपपदानि क्त्वान्तेन सह वा समस्यन्ते। उच्चैः कृत्य, उच्चैः कृत्वा। अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्यातपुण्याच्च रात्रेः ।५।४।८६। संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य तत्पुरुषस्य समासान्तोऽच् स्यात्। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य द्वयङ्गुलम्। निरङ्गु-

---

क्त्वा=तृतीया अर्थमें प्रथमा। टा में सुपां सुलुक् से पूर्वसवर्णदीर्घ माना। तृतीयाप्रभृतीनि=पूर्व सूत्रमें कहे गये हैं। उन उपपद संज्ञकोंका क्तान्तके साथ विकल्प समास हो। यथा उच्चैःकृत्य। सूत्रेण समासे ल्यप् आदिः। पक्षमें उच्चैःकृत्वा। इस प्रकार नीचैःकृत्य उपपद समासादिः। यद्यपि उपदशतृतीयायांसे पहले समानकर्तृकयोः से क्त्वाका पाठ है, उच्चैः कृत्वा उदाहरण कैसे? तब बोले-अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः। क्त्वाणमुलौ सूत्रका क्त्वा मान्य।

९५५। तत्पुरुषस्य=संख्या और अव्यय शब्द जिसके आदि में हो अंगुलिशब्द अन्त मे हो, ऐसे तत्पुरुषसमास के अन्तमें अच् प्रत्यय हो। यथा—द्वे अंगुली प्रमाण मात्रा (लम्बाई, चौड़ाई है) अस्य इसका (द्वि औ अंगुलि औ), अलौकिक विग्रह (तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च) इति सूत्रसे तद्धितार्थः परिमाणमें मात्रच् (द्विगोलुंगनपत्ये) इति मात्रका लोप समास-सुप् लुक्। द्वि-अंगुलि यण्। संख्यापूर्वकतत्पुरुषः अंगुलिः (तत्पुरुषस्यांगुलेः) सूत्रसे समासान्त अच् प्रत्यय अनुबन्धलोपे। यस्येति च इलोप। नपुंसकलिंगे प्रथमा एकवचन द्व्यंगुलम्। राम का हाथ कागभुशुण्डि के बीच दो अंगुल का अन्तर है। शकुन्तलायाः अंगुले निर्गतं निरङ्गुलम् अंगुलीयकम्। अंगुलीसे निकली हुई अँगूठी। अत्र (निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्याः) वार्तिकसे निर्गत अर्थं निर् अव्ययका पञ्चम्यन्त-अंगुलिशब्दके सह समास (तत्पुरुषस्यांगुलेः) इति समासान्त अच्प्रत्यय इलोप, नपुंसकविभक्तिकार्ये निरंगुलम्। अंगुलिअवधिकनिष्क्रमणाश्रयः अंगूठी समासर्थः।

।६। अहः सर्व, एकदेश संख्यात, पुण्य, इनसे परे रात्रिशब्दसे समासान्त अच् प्रत्यय हो च=संख्या, अव्यय से परे रात्रि शब्द से भी। अहर्ग्रहणम्=अहन्शब्दसे परे रात्रि शब्दसे अच्प्रत्यय केवल द्वन्दसमासमें ही क्योंकि अहन् रात्रिका तत्पुरुष-समास सम्भव ही नहीं। ७। रात्र अहन् अह ये शब्द जिनके अन्तमें हो, ऐसे द्वन्द्व और तत्पुरुषपुल्लिङ्ग ही हो। इससे पुल्लिगका विधान हुआ। अहश्च रात्रिश्च अनयोः समाहारः (दिन और रातका समुदाय) इति द्वन्द्वः। जातिरप्राणिनां सूत्रसे एकवचनभावके पश्चात् [स नपुंसकम्] से प्राप्त नपुंसकको बाधकर (रात्राह्नाहाः पुंसि) सूत्रके पुल्लिगविधान। अहः [सर्वैकदेश] सूत्र से अच्, इलोप, अहन् नको सः। हशि च उ गुणे, स्वादिः अहोरात्रः दिनरात (कार्यकर्ता)

लम् । **अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः** ।५।४।८७। एभ्यो रात्रेरच् स्यात् । चात् संख्याव्ययादेः । अहर्ग्रहणंद्वन्द्वार्थम् । **रात्राह्नाहाः पुंसि** ।२।४।२९। एते पुंस्येव । अहश्चारात्रिश्चह्रोरात्रः । सर्वरात्रः । पूर्वरात्रः । संख्यातरात्रः । **(संख्यापूर्वं रात्रं क्लीवम्)**। द्विरात्रंत्रिरात्रं । अतिक्रान्तो रात्रिम्-अतिरात्रः । **राजाहःसखिभ्यष्टच्** ।५।४।९१। एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् । परमराजः । कृष्णसखः ।। **अह्नष्टखोरेव**

सर्वा चासौ रात्रिश्च । सर्वासु रात्रिसु । सर्वशब्द का रात्रि शब्दके साथ विशेषण-सामर्थ्यसे [पूर्वकालैकसर्वजरत्] इति कर्मधारयसमास, पुंवद्कर्मधारय इस सूत्रसे पुंलिंगभाव से सर्वरात्रि अहः सर्वैकदेश से अच्प्रत्यय, यस्येति इलोप, रात्रिशब्दान्त-तत्पुरुष पुंलिंग हुआ । सर्वरात्रः (सभीरात) स्वप्नकालः । संख्याता चासौ रात्रिश्च, संख्यातरात्रः गिनी हुई रात्रि । यहाँ भी विशेषणसमास; पुंवद्भावः, अच् पुंलिंग । पूर्वरात्रः ।

(वा०) संख्या पूर्वक रात्रिशब्द नपुंसकलिंग हो । द्वयोः रात्र्योः समाहारः दो रातका समुदाय द्वि+ओस् । अत्र तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च से समाहार (समुदाय) समास, सुप्लुक् संख्या आदिका तत्पुरुषसमास होने पर रात्रिशब्द से अट् । भसंज्ञा इलोप, द्विरात्रिशब्दका पुंलिंग बाधकर वार्तिकसे नपुंसकलिंग द्विरात्रम् । तिसृणां रात्रीणां समाहारः अत्राऽपि त्रिरात्रः तद्धितार्थः समास, सुप्लुक् अच्, इलोप, नपुंसकलिङ्ग (तीन रात्रिका समुदाय) जागरणम् । षण्मासरात्रम् कुम्भकर्णस्य शयन । ८ । **राजन्** अहन् सखि शब्दान्त तत्पुरुष से टच् अ हो । परमश्चासौ राजा च परमराजः, सर्वश्रेष्ठ राजा समानाधिकरणतत्पुरुषसमास, परमराजन् से समासान्त टच् (अ) नस्तद्धिते इति टि अन् लोप, प्रथमा एकवचन रूप परमराजः परमराजौ परमराजाः । देवानां राजा देवराजः । धर्मस्य राजा धर्मराजः । उत्तमश्चासौ अहश्च उत्तमाहः उत्तम दिन सप्ताह, सात दिन कृष्णस्य सखा कृष्णसखः मित्रम् । विद्वत्सखः । सखिशब्दान्त टच् इकारलोप आदि ।

संख्यापूर्वं रात्रं क्लीवम् अतिक्रमण किया हो रात्रिका, वह अतिरात्रः । क्रान्त-अर्थमें अतिके साथ द्वितीयाका समासादिः । अव्यय मानकर अच् रात्राह्नाःसे पुं० ।

कृष्णस्य सखा अर्जुनः सुदामा । कृष्ण ङस् सखन् सु । षष्ठीसमासादिः । कृष्णसखन् सखिभ्यष्टच् टिलोपे स्वादि । **अह्नः**-ट और ख परे ही अहन्के टिका लोप हो, अन्यत्र लोप न हो । सूत्रमें टेः, लोप आये । परन्तु इसका टिलोप नस्तद्धिसे सिद्ध था । यह सूत्र नियमके लिए कि अहन्का टिलोप हो, ट ख परे ही, अन्यत्र लोप न होनेसे अकार लोप । ट प्रत्ययका उदाहरण—उत्तमञ्च तदहः अच्छा दिन । विशे-षणके साथ राजाहः से टच् । उत्तमाहन् अ-'ट' परे अह्नष्टखारेव सूत्रेण टिलोपे । रात्राह्नाः पुलिङ्गे । उत्तमाहः ।

।६।४।१४५। टिलोपः । परमाहः । अह्नोऽह्न एतेभ्यः ।५।४।८८। सर्वादिभ्योऽह्-नृशब्दस्याह्नादेशः समासान्ते परे। अह्नोऽदन्तात् ।८।४।७। अदन्तपूर्वपदस्था-न्निमित्तादह्नो नस्य णः । सर्वाह्णः पूर्वाह्‍णः ॥ न संख्यादेः समाहारे ।५।४।८९। अह्नोऽह्नादेशो न, द्व्यहः ॥ उत्तमैकाभ्यां च ।५।४।९०। अह्नोऽह्नादेशो न । उत्तमशब्दोऽन्त्यार्थ । पुण्यशब्दमाह ॥ (पुण्यसुदिनाभ्यामह्नः क्लीबतेष्टा) । पुण्याहम् । सुदिनाहम् । एकाहः ॥ अग्राख्यायामुरसः ।५।४।९३। टच् ।

अह्न-सर्व-एकदेश-संख्यात-पुण्य ये पूर्व सूत्रमें पढ़े हैं। 'च' से संख्या अव्यय भी स्वीकृत, अह्नको छोड़कर। अह्नसे परे अह्नका तत्पुरुष असम्भव होनेसे। अतः वृत्तिमें बोले — सर्वादिभ्यः सर्व विश्व आदिसे परे अह्न्शब्दके स्थानमें अह्न आदेश हो समासान्त अच् टच् आदिपरे, जो प्रकरणसे लब्ध है। अह्नो=अदन्तपूर्वपद हो उसमें स्थित रेफसे परे अहन्के स्थानमें अह्नके न को ण हो। रषाभ्यां नो णः पूरा सूत्र (ष को छोड़कर) आया। पूर्वपदात्‌भी पूर्वपदस्थात् हो गया। यदि लक्षेषु अहःषु भवः लक्षाह्नः। लाखो दिनमें होनेवाला यदि ऐसी व्युत्पत्ति हो, तब णत्वार्थ ष भी आयेगा। सर्वेषु अहःषु, सभी दिन जो हो सर्वाह्नः। पूर्वकालैकसर्वसे एकार्थीभाव। राजाहः टच् अह्नो-सूत्रेण अह्न आदेशे, सूत्रेण णत्वे रात्राह्नाःपुलिङ्गे। पूर्वेषु अहस्सु भवः कालः पूर्वाह्णः, दिनका प्रथमभाग।

न संख्यादेः समाहारः-समुदाय अर्थमें वर्तमान संख्या आदिके अहन्के स्थानमें अह्न न हो। यद्यपि तत्पुरुषसमासमें संख्यासे भिन्न समाहार होता ही नहीं, तथापि स्पष्ट ज्ञानके लिए संख्या पढ़ा। दो दिनका समुदाय द्व्यह्नः समाहारे द्विगुसमाससे राजाहः टच्। रात्राह्नाः पुंसि संख्या आदि मानकर अह्न आदेशप्राप्तः, उसका सूत्रसे निषेध। त्रयाणामह्नां समाहारः तीनदिनका संगम समाहारे द्विगुसमासे टच् पुं० निषेधपूर्ववत्। उत्तम और एकशब्दसे परे अहन्के स्थानमें अह्नके आदेश न हो, जो उत्तम शब्दसे प्राप्त नहीं है, तब बोले वह अन्त्य अर्थ में है। यथा—द्वादशाहे उदयनी-यातिरात्रः उत्तमाहः। रात्रिका अन्त्य भाग, किन्तु अहस्सर्वैक-सूत्रके अन्तमें पुण्यशब्द विवक्षितः। यदि ऐसा तब पुण्यैकाभ्यां सूत्र ही पढ़ना उचित था पुण्यमहः प्रसन्नदिन विशेषणके साथ समास टच् टिलोप। पुण्यसुदिनाभ्यां नपुंसकः, पुण्याहं सुदिनाहम्। अहः प्रशंसनीय दिन, समास टच् आदि। एकम् अहः एकाहः एकदिन, पूर्वकालैक सूत्रेण समासे। टच् टिलोपादि।

अग्राख्यायां—अग्र=प्रधान अर्थवाला उरःसे टच् 'अ' हो। घोड़ोंका उर= वक्षः, प्रधान इव=मुख्यकी तरह समासार्थमें षष्ठी समासादिः। सूत्रेण टच् स्वादि-कार्ये। केचित् अग्रे भवम् अग्र्यं मुख्यं सिरताज घोड़ा। उर जैसे प्रधान होता है, वैसे मुख्य अर्थमें लक्षणा। यही उसका बीज है। परवल्लिङ्गसे पर पदका नपुंसक-लिंग। अग्रआख्या क्यों? देवदत्तस्य उरः वक्षस्थलं देवदत्तोरः प्राधान्य नहीं, न टच्

अश्वानामुर इव—अश्वोरसम्, मुख्योऽश्व इत्यर्थ । **ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः** ।५।४।९५। ग्रामतक्षः । कौटतक्षः ॥ **अतेः शुनः** ।५।४।९६। अतिश्वो वराहः ॥ **उपमानादप्राणिषु** ।५।४।९७। अप्राणिविषयोपमानवाचिनः शुनष्टच् । आकर्षः श्वेव-आकर्षश्वः । **उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः** ।५।४।९८। चादुपमनात् । उत्तर सक्थम् । मृगसक्थम् । पूर्वसक्थम् । फलकमिव सक्थि फलकसक्थम् । **नावो द्विगोः**

ग्राम और कुटचां भवः कौटः (झोपड़ीमें रहनेवाला स्वतन्त्र) से परे तक्षन्का तत्पुरुषसमास हुआ हो, उससे टच् हो गाँवका तक्षा बढ़ई । षष्ठी समास होनेपर ग्रामतक्षशब्दात्सूत्रेण टच् टिलोपे, ग्रामतक्षः, साधारण अर्थ । ग्रामे यावन्तो जानाः सन्तिः तावतां ग्रहणं ग्रमीण इत्यर्थः । कुटीं क्रीणातिस्म । तत्र यो वसति न परकीय-भूमौ, स कौटः, स चासौ तक्षा च, ऐसा ज ; बढ़ई विशेषणसमास, सूत्रेण टच्, हो । यथा-श्वानम् अतिक्रान्तः कुत्ते से भी तेज होगा (अतिश्वः) शूकरः । अत्यादयः द्वितीयया समासे । अतेः शुनः इति टच् टिलोपे, स्वादिः ।

उपमानात् । न प्राणिनः तेषु अप्राणिषु चेतनका विषय न हो । किन्तु उप-मानवाची जिसकी समानता कही जाय, ऐसे शूनः से टच् हो । यथा आकृष्यते कुशूलादिगत धान्यमनेन आकर्षः पञ्चाङ्गुलं दारुविशेषः, पाँचा खलिहानमें पैरा खीचने चढ़ानेके लिए लकड़ीका पाँच अंगुल वाला कैसा है । श्वा इव कुत्ते की तरह कुत्ता जैसे छिनछिनाता खींचता उसी तरह पञ्जा । उपमितं व्याघ्रादिभःसे समास उपमानाद्=टच् टिलोप आकर्षश्वः धानको उलटने पलटनेका साधन । उपमान क्यों कहा ? निष्क्रान्त शुनः निश्वा निकला हुआ कुत्ता । यह उपमेय है, उपमान नहीं, न टच् ।

उत्तरमृग पूर्व और (च पढ़नेसे) उपमान-जिससे समानता कही जाय उससे परे सक्थि शब्दात् तत्पुरुषसे टच् हो उत्तारसक्थि=उत्तारभागकी पसली । पूर्वकालैक-सूत्रेण समासे । सर्वत्र टच्टिलोपौ पूर्वसक्थि । पूर्वसक्थि पहला पार्श्वभाग समासादिः पूर्ववत् । मृगस्य सक्थिः मृगकी पसली । एवं उपमानसे टच्का उदाहरण-फलकमिव सक्थिः (टुकड़े की तरह) मयूरव्यंससे समास टच् आदिः । ८०१ । नावो=नौ शब्द अन्तमें हो ऐसे द्विगु (संख्यापूर्व) से टच् हो, तद्धितप्रत्ययका लुक् न हुआ हो तब । जो मण्डूकप्लुति=मेड़कउछाल न्यायसे आया, द्विनावरूप्यः तद्धितार्थसमास । द्वि, नौ इतिदशायां नावो द्विगोःसे टच् अ । औ स्थाने आव । द्विनाव इतिदशायां हेतुमनुष्येभ्यः से रूप्यः उसका द्विगोर्लुक् । 'अनपत्ये'-सूत्रसे लुक् की शङ्का-तब बोले द्विगगोर्लुक् सूत्रमें 'अचि' का अपकर्षण=उत्तार सूत्रसे पूर्वसूत्रमें लाना, गोत्रेऽलुगचिसे अच् आया । उसका फल, हलादि परे लुक हो । पञ्चनावप्रियः पाँच नौकायें प्रिय जिसको उत्तारपदपरे द्विगु । टच् आव । द्वयोः नावोः समाहारः दो नौकाका समुदाय

।५।४।९९। द्विनावम् । त्रिनावम् । अर्धाच्च ।५।४।१००। अर्धनावम् । खार्याः प्राचाम् ।५।४।१०१। द्विगोरर्धाच्च खार्याष्टज्वा । द्विखारम्, द्विखारि । अर्धखारम्, अर्धखारि । द्वित्रिभ्यामञ्जलेः ।५।४।१०२। द्व्यञ्जलम्, द्व्यञ्जलि । ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम्।५।४।१०४।ब्रह्मान्तात्तत्पुरुषाट्टच्सुराष्ट्रब्रह्मा सुराष्ट्रब्रह्मा कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्।५।४।।१०५।कुब्रह्मः । कुब्रह्मा । महाब्रह्मः । महाब्रह्मा ।

द्विगु टच, आव्, स नपुंसक तिसृणां नावां समाहारः तीन नौकाका झुण्डे । द्विगु टच् आव् नपुंसक ।

अर्धाच्च अर्धसे परे नौ हो, ऐसे तत्पुरुषसे टच् । 'नौ'-का आधा अर्धनावम् अर्धनपुंसकम् समास । टच् आव् । परंतु परवल्लिङ्गंसे परका लिङ्ग स्त्री क्यों न हो, तब बोले लोकप्रसिद्धिसे । क्लीबत्वं=लोकात् नपुंसकत्वम् । खारीशब्दात् द्विगु हो और अर्धपूर्वक खारी ऐसे तत्पुरुषसे टच् हो । प्राचां विकल्पसे । द्वयोः खार्योः समाहारः द्विखारं, द्विगु टच्, यस्येति इलोप, स नपुंसकम् । यदा न टच् तदा नपुंसक ह्रस्वः द्विखारि, खार्याः अर्ध विग्रह पूर्ववत् समासादिः, अर्धखारम्, अर्धखारी टच् नहीं:, तब परवर्तीस्त्रीलिङ्ग एकविभक्तिसे उपसंर्जनसंज्ञा, न ह्रस्वः । अर्धखारिमें नपुंसकह्रस्व समझें । द्वित्रि से परे अञ्जलिशब्द हो ऐसे तत्पुरुषसे टच् हो । विकल्पसे द्विगुसमासमें । द्वयोः अञ्जल्योः समाहार विग्रहमें द्विगुसमासे । सूत्रेण टच् यस्येति च इलोप, नपुंसक, द्व्यञ्जलं, यदा 'न' टच् तदा नपुंसकह्रस्वे ।

ब्रह्मणो । ब्रह्मन्शब्द अन्तमें हो, ऐसे तत्पुरुषसे टच् हो, यदि समाससे जनपद भवः जानपदः भावप्रधान निर्देश अर्थ निकलता हो तब । इसलिए कहा कि समासेन जानपदत्वमाख्यायते—जनपदकी विशेषता प्रसिद्ध होती हो । सुराष्ट्रदेशमें ब्रह्मा होनेकी विशेषता प्रसिद्ध है । पुलिंग, ब्रह्माका विप्र अर्थ श्रीवेदस्तत्वं तपो ब्रह्मब्रह्माविप्रप्रजापतिः इत्यमरः । सुराष्ट्रङि ब्रह्मन्सु । सप्तमीके योग विभागसे समासे, जनपदका विशिष्ट ब्राह्मण प्रसिद्धिसे तत्पुरुषसमाससे टच् टिलोप, परपदको पुलिंग सुराष्ट्रब्रह्मः । सूत्रमें जानपद क्यों पढ़ा ? देवब्रह्मा नारद हैं, टच् न हो । **कु और महद्** शब्दसे परे तत्पुरुषमासमें ब्रह्मन्शब्दको विकल्पसे टच् हो । कुत्सितो ब्रह्मा चरित्रसे ब्राह्मण, कुगति प्रादयः से समासे । कुब्रह्मन् इति दशायां सूत्रेण टच् टिलोपे, स्वादिः । यदा न टच् तदा सु । नान्तउपधायाः दीर्घे, सलोपनलोपादिः । उक्त सूत्रमें महत्पूर्वसे विकल्प खोलकर उसकी विशेषता बोले—

प्रकारवचने जहाँ भेद सदृश कहना हो, वहाँ जातीय प्रत्यय हो । 'आन्महत्' सूत्रसे जातीयप्रत्यय परे आकार अन्तादेश । महान् इव महाजातीयः । महती शब्द शब्द स्त्रीप्रत्ययान्त होनेपर भी आत्व होता है । महती गीता महागीता । महतीचासौ नदी च महानदी । जहां समानाधिकरण नहीं वहाँ वहाँ आत्व नहीं । महतां

प्रकारवचने जातीयर्। महाप्रकारो महाजातीयः ! द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः।६।३।४७। आत्स्यात्। द्वादश। अष्टादश। अबहुव्रीह्यशीत्योः किम ? द्वित्राः। द्व्यशीतिः (प्राक्शतादिति वक्तव्यम्)। नेह—द्विशतम्। त्रेस्त्रयः।६।३।४८। त्रिशब्दस्य त्रयसादेशः स्यात्पूर्वविषये। त्रयोदश। त्रयोविंशतिः।

सेवकः महत्सेवकः। समानाधिकरण में महद्धनं यस्य स महाधनः, महत् फलं यस्याः सा महाफला लता, महद्गुणाः।

९६०। द्वि और अष्टन् शब्दको आत्व अन्तादेश हो, संख्या अर्थमें किन्तु बहुव्रीहिसमास और अशीति शब्द परे न हो तो। यथा-द्वौ च दश च द्वादशः (१२) अथवा द्व्यधिका दश (दो अधिक दश) द्वादश। द्वि औ दश सु। द्वन्द्वसमास। द्व्यधिका दश, पक्ष में अधिकपद का लोप, समास भी। (द्व्यष्टनः) संख्या अर्थमें अष्टन्का उदाहरण—अष्टौ च दशच द्वन्द्वः या अष्टाधिकः दश अष्टादश अठ्ठारह। द्वन्द्वतत्पुरुषौ एवमष्टौ च विंशतिश्च समाहारः अष्टाविंशति। आठ और बीस मिलकर अठ्ठाइस। द्व्यष्टनः सूत्रेण अष्टन्के न को आ दीर्घ। सूत्रमें बहुव्रीहि और अशीति न हो ऐसा क्यों पढ़ा ? द्वौ वा त्रयो वा विग्रह में संख्याव्यय-से डच्, बहुव्रीहिसमास है, आत्व न हो जाय। द्वौ च अशीतिः समाहारः द्व्यशीतिः स्त्रीत्वं लोकात्। द्व्यधिका अशीतिः। अशीति पढ़े जानेसे आत्वका निषेध हुआ। (वा०) प्राक्शतात्—सौ संख्या। शतं के पहले तक द्वि और अष्टन्को आत्व हो, उसके ऊपर आत्व न हो। यथा द्वौच शतं च १०२ समाहार, या द्व्यधिकं शतं दो अधिक सौ, आत्व न हो। इसी प्रकार द्वौ च सहस्रञ्च द्व्यधिकं सहस्रम् १०२ शत संख्यासे लेकर, ऊपर संख्यावाले परे हों, तब आत्व नहीं होता।

त्रि के स्थानमें त्रयस् आदेश हो पूर्वविषये—प्राक्शतादिति सौ संख्या के पहले की संख्या परे हो, बहुव्रीहि अशीति न हो। सन्धिवेला आदिगणमें त्रयोदशीशब्दके पाठसे सकारान्त त्रयस् आदेश मान्य। त्रयश्च दश च तीन और दश या त्र्यधिकाः दश १३। द्वन्द्वः, या तत्पुरुषसमासे, सुपो लुकि, त्रेस्त्रयः त्रिस्थाने त्रयस् रु-उ-गुण, त्रयोदश। एवं त्रयश्च विंशतिश्च तीन और बीस या त्र्यधिका विंशति २३ त्रयोविंशतिः त्रिस्थाने त्रयस् रु० उ० गुण। बहुव्रीहिसमासमे त्रिः आवृत्ता दश त्रिदंश। बहुव्रीही संख्यये, डच्। यहां त्रिके आगे सुच् क्रियाकी अभ्यावृत्ति=पुनः-पुनः प्रवृत्ति अर्थमें द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्। सुजन्त होनेसे समासमें सुच् सुनाई पड़ेगा, तब बोले—सुचके अर्थको बहुव्रीहिसमास कहेगा' सुच रहेगा नहीं, सुनायी पड़ेगा कैसे ! लक्षणासे। वर्तमानक्रियाकी तीन आवृत्ति, बहुव्रींहिसे उक्त—कही गयी। त्रयश्च अशीतिश्च समाहारः। स्त्री० लोकसे (या) त्र्यधिका अशीतिः ८३। यहाँ त्रिको त्रयस् नहीं हुआ। प्राक् शतात् भी कहे। त्रयश्च शतञ्च या त्र्यधिकं शतं त्रिशतम् १०३। एवं त्रिसहस्रं त्रि को त्रयस् नहीं।

विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम् ।६।३।४९। द्व्यष्टनोस्त्रेश्च प्रागुक्तं वा चत्वारिंशदादौ परे । द्विचत्वादिशत्, द्वाचत्वारिंशत् । अष्टचत्वारिंशत् । त्रिचत्वारिंशत्, त्रयश्चत्वारिंशत् । एवं पञ्चाशत्-षष्टि-सप्तति-नवतिषु । **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः। २।४।२६।** कुक्कुटमयूर्याविमे । मयूरीकुक्कुटाविमौ । अर्धपिप्पली । **(द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु न)** । पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः–पञ्चकपालः

विभाषा-द्वि अष्टन् त्रि को प्रागुक्त=पहले कहे गये आत्व और त्रयस् आदेश विकल्पसे हो । चत्वारिंशत् ४० से लेकर सभी संख्या परे रहने पर । द्वौच द्व्यधिका चत्वारिंशत्, दो अधिक ४० । विभाषा चत्वारिंशत्–सूत्रेण यदा आत्वं तदा द्वाचत्वारिंशत् । अष्टाधिका ८ अधिक ४० । अष्टन्के न को आत्व विकल्पे । अष्टा० एवं त्र्यधिकाः ३ अधिक ४० त्रिचत्वारिंशत् । विकल्पसे त्रयस् तब श्चुत्व । एवं द्विपञ्चा० द्वापञ्चा० अष्टपञ्चाशत् अष्टा० । त्रिपञ्चाशत् त्रयःपञ्चा० । द्व्यधिका षष्टिः द्विषष्टिः ६२ द्वाषष्टिः । अष्ट-अष्टाः षष्टि । त्रिषष्टिः त्रयःषष्टिः । द्वासप्तति ७२ त्रिसप्ततिः त्रयः सप्ततिः अष्टासप्ततिः अष्ट० । द्वानवतिः । त्र्यधिका त्रिनवतिः त्रयण्नवतिः अष्टानवतिः ।

। १ । **परवल**—द्वन्द्वः और तत्पुरुषसमासमें परवत्=दूसरे पदके लिंगके समानलिङ्ग हो । दो लिंगकपदके समासमें सन्देह होता है कि कौन लिंग हो (सूत्र) परपद के लिंग का समर्थन करता है । कुक्कुटश्च मयूरी च कुक्कुट सु मयूरी सु द्वन्द्व समासादिः । परन्तु कौन लिग हो परवल्लिग परपद मयूरीका स्त्रीलिंग है । द्वन्द्वसमास में भी वही स्वीकृत हुआ । कुक्कुटमयूर्यौ नृत्यतः (मुर्गा मोरिनी नाचते हैं) (इमे) शब्द स्त्रीलिंग का सांकेतिक है । मयूरीकुक्कुटौ परपद का लिंग । पुलिंग का सांकेतिक इमौ । अर्धं पिप्पल्याः अर्धपिप्पली (पीपरिका आधा) अर्थ, नपुंसकमिति 'समासः । परपद स्त्रीलिंग है, अतः तत्पुरुषमें परवल्लिग हुआ ।

(वा०) **द्विगुसमास** प्राप्त, आपन्न, अलं पूर्वक समास तथा गतिसंज्ञक प्रादिके साथ समास में परपदके समानलिग का निषेध हो । अर्थात् परका लिग न हो किन्तु अन्यपदार्थका लिग सम्मानित हो । यथा—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः (पाँच कसोरेमें पकाया गया हवनीय खीर) अर्थमें 'तद्धितार्थोत्तर से द्विगुसमासे । यहाँ परमपद कपाल नपुंसक है । उसका वार्तिकसे निषेध हुआ । किन्तु तद्धित प्रत्ययार्थ पुरोडाशके अनुरोध से पुलिग हुआ । पाञ्चकपालः (पाँचपात्रमें संस्कार किया गया हविष) । यद्यपि द्वितीयाश्रितातीत-सूत्रमें प्राप्त आपन्न शब्द पढ़े गये हैं । पुनः उक्तसूत्रसे समासविधान, द्वितीयान्त का पूर्वनिपात सिद्ध करता है । प्राप्तजीविकः । जिसे जीविका मिल गयी है । प्राप्तो जीविकां, प्राप्तसु जीविका

पुरोडाशः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः। आपन्नजीविकः। अलंकुमारिः। अतएव ज्ञापकात् समासः। निष्कौशाम्बिः। **पूर्ववदश्ववडवौ** ।२।४।२७। द्वित्वमतन्त्रम्। अश्ववडवौ। अश्ववडवान्॥ **अपथं नपुंसकम्** ।२।४।३०। तत्पुरुष इत्येव। अन्यत्र तु अपथो देशः। कृतसमासान्तग्रहणान्नेह–अपन्थाः। (अकारान्तो-

---

अम् (प्राप्तापन्न) सूत्रेण समास, सुप्लुक्, अकार अन्तादेश। अथवा उपसर्जनसंज्ञा, ह्रस्व। वहाँ तत्पुरुषसमास है। परपद जीविका है परलिंग स्त्रीलिंग प्राप्त, वार्तिक से निषेध (पुरुषका लिंग हुआ) पक्षे जीविकाप्राप्तः। आपन्नजीविका आपन्ना लब्धा जीविका। अथवा आपन्ना संकटग्रस्ता जीविका (वेतन) यस्य सः। अलंकुमार्यै कुमारीके लिए सुयोग्य वरः। अलं पर्याप्त पूर्ण कुमार यहाँ भी परपद कुमारी स्त्रीलिंगका प्रतिषेधः कुमारके अनुसार पुलिंग। यद्यपि अलं के साथ समास विधायक सूत्र नहीं है। तथापि वार्तिक में पठित अलंशब्द को परलिंगका प्रतिषेध ही समास सिद्ध करता है। यदि समास न होता तब निषेध व्यर्थ होता। अतएव ज्ञापकात् समासः कहा। वस्तुतः (पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या) से समास, उपसर्जनसंज्ञा, ह्रस्व, एवं निष्कौशाम्बिः है निरादयसे पुलिंग निषेध, अन्यपदार्थः

पूर्ववत् अश्वश्च बड़वा च। घोड़ाघोड़ीके द्वन्द्व समासमें पर लिङ्गको बाधकर पूर्वपदकालिङ्ग हो जाय। द्विवचन पढ़नेसे, बहुबचनमें अन्यविभक्तिमें सूत्र नहीं लगेगा। तब बोले द्विवचन और विभक्ति दो अविवक्षित हैं, उपलक्षण हैं। पूर्ववत् ग्रहण भी प्रमाण है अन्यथा पूर्ववत् निपातनसे सिद्ध था, किं तेन। समासार्थी पूर्वपदके लिङ्गमें है। या उत्तरपदके लिङ्गमें दोनों दशामें अश्ववड़वौ शोभनौ पुलिङ्ग भी निपातनसे अश्ववड़वान् (शशिमे)।

तत्पुरुषसमासमें अपथं – नपुंसक हो, न पन्था इति विग्रहे नञ्समासे नकारलोपे अपथिन् ऋक्पू—अ–प्रत्यये। टिलोपे, नपुंसके। अपथं परलिङ्गको बाधकर तत्पुरुषसमासमें ही नपुंसक। अयोग्यतासे द्वन्द्व नहीं आया। अन्यत्र बहुब्रीहिमें नपुंसक नहीं होता। न पन्था यस्य स अपथः देशः। जिसमें रास्ता नहीं, कृतसमासान्त उच्चारणसे तत्पुरुषमें भी नपुंसक नहीं होता। अपन्थाः, पथो विभाषा से समासान्त अप्रत्यय विकल्पसे। जब नहीं हुआ, तब अपन्थाः नपुंसक नहीं। आत्व द्वादश, अष्टाधिकाः विंशतिः अष्टौ च विंशतिश्च इति वा। यह भी समास, अष्टन् को आत्व अष्टाविंशतिः २८ द्वात्रिंशत् ३२ अष्टात्रिंशत् ३८ द्वाचत्वारिंशत् ४२ अष्टाचत्वारिंशत् द्वापञ्चाशत्, अष्टापञ्चाशत्। बहुब्रीहिसमास में द्वित्राः इत्यादिस्थल में और आशीति परे द्वि शब्द को आत्व नहीं होता द्वचशीतिः (८२)। त्रेस्त्रयः त्रिशब्दस्य त्रयः आदेशे संख्या अर्थ में। त्रयश्च दशच त्रयोदश। त्रयस् आदेशे। त्रयश्च विंशतिश्च त्रयोविंशतिः त्रयश्च त्रिंशत् च त्रयस्त्रिंशत् (३३) द्वित्रा बहुब्रीहि में त्रयस् नहीं हुआ। अशीति परे त्र्यशीतिः। यहाँ भी त्रयस् नहीं हुआ

त्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः) पञ्चमूली ॥ (आवन्तो वा) । पञ्चखट्वम्, पञ्चखट्वा ॥ (पात्राद्यन्तस्य न) । पञ्चपात्रम् । त्रिभुवनम् । चतुर्युगम् । **छाया बाहुल्ये ।२।४।२२।** छायान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात् पूर्वपदार्थबाहुल्ये । इक्षूणां छाया, इक्षुच्छायम् । **सभाराजाऽमनुष्यपूर्वा ।२।४।२३।** राजपर्यायपूर्वाऽमनुष्यपूर्वश्च समान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात् । इनसभम् । ईश्वरसभम् । अमनुष्यशब्दो रूढ्या रक्षःपिशाचादीनाह । रक्षःसभम् । पिशाचसभम् । **विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् ।२।४।२५।** एतदन्तस्तत्पुरुषः क्लीबं वा । ब्राह्मणसेनम् ।

स (समाहार द्विगु और द्वन्द्व) नपुंसक हो । तत्पद से द्विगु और द्वन्द्व समाहार इष्ट है, परपदके लिङ् को बाँधकर पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवं द्विगुसमासे स नपुंसकलिंगे, परलिंग पु० को बाधकर । (अकारान्तम् उत्तर पदं यस्य), अकार अन्तमें ऐसा उत्तरपदवाला द्विगुसमास स्त्रीलिंगमें इष्ट है, नपुंसकको बाधकर । पञ्चानां मूलानां समाहारः द्विगुसमास, स नपुंसक को बाधकर वार्तिक से स्त्री० । द्विगो से ङीप् । पञ्चमूली । पञ्चानां पूलानां समाहारः । पञ्चमूली, पञ्चमिष्टा, आबन्त = आकारान्त ही विकल्प से स्त्री । पञ्चानां खट्वानां समाहारः, द्विगुसमास नपुंसक ह्रस्व, पञ्चखट्वं, यदा स्त्री तदा पञ्चखट्वी । पञ्चानां पात्राणां समाहारः पञ्चपात्रम् । त्रयाणां भुवनानां समाहारः चतुर्णां समाहारः । इनके समाहार द्विगुके पश्चात् अकारान्त उत्तरपद मानकर स्त्री० प्राप्त था, उसका पात्राद्यन्तस्य न से निषेध । किन्तु स नपुंसके ।

छाया अन्तमें हो, ऐसा तत्पुरुष नपुंसक हो । यदि पूर्वपदका अर्थ बहुल ढेर अधिक हो । बाहुल्य क्यों ? कहा कुडचस्य छाया दीवालकी परछाई अधिक नहीं है नपुंसक न हो । ईखकी धनी छाया इच्क्षुच्छाया षष्ठी तत्पुरुषमें बहुत ईखकी अधिकतासे छायाबाहुल्ये इति नपुंसकम् ।

सभा—राजा च अमनुष्यश्च तौ पूर्वौ यस्याः सा । राजा और मनुष्येत्तर पूर्वमे हो, सभा अन्तमें हो ऐसा तत्पुरुष नपुंसक हो । राजशब्द नहीं पर्याय इष्ट है । अतः वार्तिक पढे । पर्यायका ही ग्रहण इष्ट है । यथा (इनसभम्) इनस्य राज्ञः सभा (राजदरबार) इन-का सभाके साथ समास, सूत्रसे नपुंसक । ईश्वरस्य सभा ईश्वरसभं, ब्रह्मलोकः । अमनुष्यपूर्वक सभाका विधान है, देवसभा अमनुष्यकी है । नपुंसक का निवारण कैसे ? तब बोले—रूढ़ि शक्तिसे, अमनुष्यशब्द राक्षसपिशाच देवता दैत्य असुर आदि को भी कहेगा । अतः रक्षसां सभा (रक्षःसभं) पिशाचानां सभा नपुंसक हुए । अशाला—सभाशब्द शाला और समुदाय अर्थमें है । किन्तु संघात अर्थमें सभा अन्त हो, ऐसा तत्पुरुष नपुंसक हो, शालाको छोड़कर । यथा स्त्रीणां

ब्राह्मणसेना, इत्यादि । अशाला च ।२।४।२४। संघातार्था या सभा तदन्तस्तत्पुरुषः क्लीबं स्यात् । स्त्रीसभम्, स्त्रीसंघात इत्यर्थः । अशाला किम् । **अर्धर्चाः पुंसि च** ।२।४।३१। अर्धर्चादयः पुंसि क्लीबे च स्युः । अर्धर्चः, अर्धर्चम् । एवं ध्वजतीर्थ-शरीरमण्डपीयूषदेहाङ्कुशकलशसूत्रपात्रादयः सामान्ये नपुंसकम् । मृदु पचति । प्रातः कमनीयम् ॥ इति तत्पुरुषसमासप्रकरणम् ।

सभा स्त्रीसभं, समूह अर्थमें सभा अन्तमें है । नपुंसक हुआ स्त्रीसंघात समुदाय अर्थ । अशाला क्यों ? धर्मसभा या धर्मशालामें नपुंसक न हो, सूत्रमें षष्ठी प्रथमा अर्थे । तत्पुरुष आया, तदन्तविधि । एतदन्त-सेना सुरा छाया शाला निशा ये अन्तमें हो ऐसा तत्पुरुष नपु० हो, विकल्प से । एक-एकको । ब्राह्मणानां सेना देशरक्षक लिंग, सत्ता इति प्रादिसमासः ३ । अर्धर्च आदि शब्द पुलिंग नपुंसक दोनों ही । ऋचाम् अर्धचः । मन्त्रका आधा । (ऋच् आम् अर्ध सु) अर्ध नपुंसकसे समास ऋक्पूरब्धूः से समासान्त [अ] प्रत्यये अर्धर्च इति । यहाँ ऋच्-स्त्रीलिंग परलिंग मानकर प्राप्त है । [अर्धर्चाः पुंसि च] पुंलिंगे, विभक्ति कार्य, अर्धर्चः, पक्षे नपुंसक अर्धर्चम् । इसी प्रकार अर्ध शब्द का, ध्वज, तीर्थ, मण्डप, शरीर, यूप, देह, अंकुश, पात्र, सूत्र इत्यादि के साथ समास आदि । यहाँ सामान्य में नपुंसक है । जहाँ लिंगविशेष का स्पष्ट ज्ञान न हो वह सामान्य नपुंसक है । अथवा लिंगविशेष की अविवक्षा में नपुंसक हो । यथा—मृदुपचति । हल्की आंचसे पकाता है । प्रातः कमनीयम् सबेरा रमणीय है । यहां सामान्य में नपुंसक ।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकरीटीकायां तत्पुरुषः सम्पूर्णः ।

अथ अन्यपदार्थप्रधानोबहुव्रीहिः—अथ=तत्पुरुषसमास उत्तरपदार्थ प्रधान साधनिका समाप्तिके पश्चात् बहुव्रीहिः (अधिकधान्य) शुद्धकाव्य–अनेक विशेषण-व्रीहिः सम्पत्तिः यस्य स । अनेक विशेषण हो विशेष्य [प्रधान] की सम्पत्ति है । बहवः अनेकानि व्रीहयः (लक्षणासे) विशेषणानि यस्य स बहुव्रीहिः । अन्य पदार्थ-प्रधान समास को बहुव्रीहि संज्ञा हो । किस विभक्तिके साथ हो, तब बोले । ४ । शेषः प्रथमान्तः उक्तादन्यः । द्वितीयाश्रितातीत सूत्र से लेकर सप्तमी पर्यन्त समास-विधायक सूत्र बोले गये । किन्तु प्रथमान्त का प्रथमान्तके साथ समास विधायकसूत्र तत्पुरुष में नहीं है । अतः प्रथमान्तों का समास शेष है उसी को बहुव्रीहिसंज्ञाका अधिकारः—इस सूत्रका अधिकार द्वन्द्वात्—चार्थे द्वन्द्वः के प्राक् पहले तक है ।

। ९६५ । **अनेकम्** (अनेक शब्दमें लिंग स्पष्ठ न होने से नपुंसक दिया) सामान्ये नपुंसकम् । अनेक प्रथमान्त शब्द अन्यस्य पदस्य उच्चारितपदसे अन्य किसी पद के अर्थमें वर्तमान हों वहाँ विकल्प से बहुव्रीहि समास हो । अन्य प्रधानपदार्थ होने से प्रथमान्तार्थका महत्व नहीं रहता । यथा पीतम् अम्बरं यस्य (पीला है

अथ बहुव्रीहिसमासप्रकरणम्

शेषो बहुव्रीहिः ।२।२।२३। अधिकारोऽयं प्राग्द्वन्द्वात् ।। अनेकमन्यपदार्थे ।२।२।५४। अनेक प्रथमान्तमन्यपदार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः । सप्तमी-विशेषणे बहुव्रीहौ ।२।२।३५। सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् ।। हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायम् ।६।३।९। हलन्तादन्ताच्च सप्तम्या अलुक् ।

वस्त्र जिसका) स पीताम्बरो विष्णुः अनेक प्रथमान्त पीतं और अम्बरं है। अन्य अर्थ विष्णु हैं। पीताम्बर से विष्णु का बोध है, न पीत का न अम्बर का (६) सप्त-म्यन्त विशेषण हो उसका बहुव्रीहिसमास में प्रथम प्रयोग हो। प्रथमानिर्दिष्ट समास उपसर्जनं—समास विधायक सूत्रमें जो प्रथमा से जुड़कर उच्चारित हो उसकी उप-सर्जनसंज्ञा पूर्वप्रयोग कहा गया परन्तु बहुव्रीहिसमास में अनेक प्रथमान्त उच्चारित है किसकी उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग हो। सूत्र निर्णय देता है कि जो सप्तम्यन्त हो, विशेषण हो, उसीका पूर्वप्रयोग हो। विशेषण का पूर्वप्रयोग ठीक भी है। किन्तु सप्तम्यन्तका विशेण बहुव्रीहिमें आश्चर्य है। क्योंकि अनेक प्रथमान्त अन्य पदार्थ में वर्तमान विशेषण हो यह सत्य है। सप्तम्यन्त की बहुव्रीहि में चर्चा भी नहीं। समास कैसे ? अतएव सप्तम्यन्त विशेषणका व्यर्थ होकर ज्ञापन सिद्ध है कि व्यधि-करण = भिन्नविभक्तिवाले पदोंका भी समास सत्य है। प्रथमान्तोंका ही बहुव्रीहि होगा तब सप्तम्यन्त व्यर्थ हो जायगा। पूर्वविधान करना भी व्यर्थ होकर नियम बनाता है : व्यधिकरणबहुव्रीहि का विषमविभक्तिवालों के साथ समास हो। और अनेकप्रथमान्तों का द्वितीयासे सप्तम्यंतपर्यन्त विभक्ति के साथ बहुव्रीहि हो। कर्ताकर्मकरणादि का सुबन्तेन सह समास हो। 'कण्ठेकालो यस्य' स। गले में कालालक्षण, मृत्युकारकतीक्ष्ण विष हो जिसके नीलकण्ठ महादेव। कण्ठे कालसु अलौकिक विग्रह (सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ) सूत्र प्रमाण (ज्ञापन) से व्यधिकरण= भिन्न-भिन्न विभक्तिक पदों का समास एकार्थीभाव सप्तम्यन्तस्य 'कण्ठे' का पूर्व-प्रयोग प्रा०, संज्ञा भीतरीविभक्ति का लोप प्राप्त।

७। हलदन्तात्—हलन्त या अदन्त से पर सप्तमीका लुक्न हो। इससे ए का अलुक्। अदन्त प्रातिपादिकं है। प्रथमा एकवचन कण्ठेकालः। नीलकण्ठनामकः पक्षी। एवं पद्मनाभः पद्मं कमलं नाभौ यस्य स विष्णुः (नाभि में कमल हो जिसके) शरेभ्यो जन्म यस्य स=शरजन्मा। कार्तिकेयः। ये व्यधिकरण-विषमविभक्ति के उदाहरण है। हलन्त का दृष्टान्त—शरसि जातं शरसिजम्। सप्तमीका अलुक्।

प्राप्तोदको ग्रामः प्राप्तं (पहुँच गया है) उदकं जल यं=जिस गाँव तक, वह अनेक प्रथमान्त, प्राप्त सु, उदकसु। अन्य पदार्थ द्वितीयाविभक्ति (यं) का अर्थ 'ग्राम'। कर्तृवाचक सुबन्त (अनेक प्रथमान्त) के साथ बहुव्रीहिसमास होने से

कण्ठेकालः । अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः । प्राप्तमुदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः । ऊढरथोऽनड्वान् । उपहृतपशू रुद्रः । उद्धृतौदना स्थाली । पीताम्बरो हरिः । बीरपुरुषको ग्रामः ॥ (प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः) । प्रपतितपर्णः । (नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः) ।

कृत्तद्धित समासाश्च सूत्रसे प्रातिपदिकसंज्ञा भीतरीविभक्ति का लुक् । कर्म अर्थमें समास होनेसे कर्मणि द्वितीया प्राप्त, किन्तु उक्त (समास) प्रथमा । विशेष्य (प्रधान) अन्यपदार्थ के अनुकूल लिंगवचन होते हैं । ऊढः खींचा गया रथः बैलगाड़ी येन (जिससे वह) ऊढरथः अनड्वान् (बैल) करण अर्थमें बहुव्रीहि समास उसका सूचक येनपद है, अनेक प्रथमान्त उढसु रथसु का (अन्यपदार्थ) तृतीयाविभक्ति का अर्थ (गाड़ी खींचने का साधन विद्यमान) समास, अन्यपदार्थ तृतीयार्थं का साधन पुत्र है । करण अर्थ में बहुव्रीहिः कर्मं अर्थ में बहुब्रीहिः आदि हो । किन्तु कर्मकरण आदि का समास अभिधान उक्त होनेसे उक्ते प्रथमैव न द्वितीयादिः । यहाँ समासके उक्त होने से समासपद में प्रथमा होगी । प्रत्येक समास में प्रथमा विभक्ति हुई है । उपहृतः (समीप में लाया गया) पशुः यस्मै (जिसके लिए) उपहृतपशुः रुद्रः । उन्हीं के लिए पशु लाया गया । अनेक प्रथमान्त (उपहृतसु पशुसु) का अन्यपदार्थ (चतुर्थीका अर्थ रुद्र) आदि अर्थ में विद्यमान का समासादि, यस्मै चतुर्थी के उक्त होनेसे प्रथमा । उद्धृतं निष्कासितं (निकाला गया) ओदनं, (भात) यस्याः (जिस बर्तन से स्थाली, पात्र) उद्धृतसु, ओदनसु । अन्यपदार्थ पञ्चमी का अर्थ भात काढ़नेका अवधिभूत, ध्रुव पात्र है । उद्धृतौदना स्थाली । अनेकमन्यपदार्थे समासादिः । पीतम् अम्बरं (यस्य पीले वस्त्र हैं जिसके), यस्य शब्द षष्ठीसमासार्थ का सूचक पीताम्बरो विष्णुः (पीत सु, अम्बर सु) अन्यपदार्थ षष्ठी का अर्थ विष्णुः है । उक्ते प्रथमा । वीराः पुरुषा यस्मिन् ग्रामे (पहलवान् पुरुष जिस गांव में हों) बीरसु पुरुषसु अन्यपदार्थ में समासादिकार्य अधिकरणकारक (ग्रामे) अत्र सप्तमीप्राप्तः किन्तु उक्ते अधिकरणे प्रथमा । शेषाद्विभाषा स्वार्थे कप् बीरपुरुषको देशः (वा०) ।

प्रादिभ्यः=प्रपरा इत्यादि से परे धातुज वाक्यमें (धातु से) पैदा हुआ शब्द (पतित) आदि । तदन्त=वह (धातुजशब्द) हो अन्त में उसका दूसरे पद के साथ समास हो, और पूर्वपद के उत्तर पदका लोप हो । प्रकर्षेण अल्पकालेन (बेगेन) पतितानि भूमौ सम्पृक्तानि प्रपतितानि तादृशानि पर्णानि यस्य [यस्मात्] स । ऊपर से गिरे हुए, पत्तों के समान पत्ते हैं जिसके प्रपतित जस् पर्ण जस् । यहाँ वार्तिक समासादिकार्यं पूर्वपद प्रपतितके अन्तर्गत पत धातुज पतितशब्द का विकल्पसे लोप, स्वादिः (प्रपर्णः) लोपके अभाव में प्रपतितपर्णः पतझड़ के [बसंत]

अविद्यमानः पुत्रोऽपुत्रः। स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रिया-मपूरणीप्रियादिषु।६।३।३४। उक्तपुंस्कात्पर ऊङभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचक-शब्दस्य पुंवाचकशब्दस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे, नतुपूरण्यां

वृक्षा। (वा०) नञ् से परे जो अस्त्यर्थ उपस्थित, अर्थवाचक पद [विद्यमान आदि] वह हो, अन्त में जिसके, अविद्यमान आदिके उसका अन्यपदके साथ समास हो। और पूर्वपदके अन्तर्गत, अस्ति अर्थवाचकशब्दका लोपविकल्प हो। न विद्य-मानो अविद्यमानः [जो वर्तमान न हो] तादृशः पुत्रो यस्य स। ऐसा पुत्र हो जिसके। नञ्से परे अस्ति अर्थका वाचक विद्यमान तदन्तपद अविद्यमान का पुत्रके साथ अन्यपदार्थ बोधकसमास हुआ। पूर्वपद के विद्यमानपद का लोप स्वादिः अपुत्रः। पक्षे अविद्यमानपुत्रः। रूपद्वयं। यद्यपि अनेकमन्य पदार्थ से भी समास सिद्ध है। तथापि उत्तरपदलोपविकल्प के लिए वार्तिकम्। समुदाय, सेनान्त तत्पुरुष है सूत्रसे नपु०। (ब्राह्मणसेनं) पक्षे न। प्रकृष्टं पतितं प्रपतितं तेजीसे गिरा हुआ। गतादि अर्थ प्रादिका समास। प्रपतितं पर्णं यस्मात् (गिरगयीं पत्ती जिससे) प्रपर्णः वृक्षः प्रपतितं सु पर्णं सु, समासादिः। प्रादिभ्यः वार्तिकसे पूर्वपद के धातुज उत्तर भाग 'पतित' का लोप। नञो–नञ् से परे अस्ति अस्यवाची सुबन्तोंका बहुव्रीहि (अन्यार्थ) एकार्थीभाव हो, अस्ति अर्थवाले उत्तरपद (विद्यमान) का लोप हो, यथा न विद्यमानः (नास्ति) नञ्समासे, नलोप अविद्य-मानः पुत्रो यस्य सोऽपुत्रः (सन्तानहीनः) अस्तिअर्थ में विद्यमान शब्द है। अविद्यमान सु पुत्रसु वार्तिकन समासादिः उत्तरपद विद्यमान का लोप। पुंवद्भाव का निषेध और अप्प्रत्यय, दोनों पूरणी अर्थ की प्रधानता में ही हो, अतः दोनों सूत्रों में (प्रधान पूरणी ग्रहणं कर्तव्यम्)। कल्याणीपञ्चमा- रात्रयः प्रयोग में पञ्चमी शब्द पाँचवीं रात अर्थ में है। पञ्चमी शब्द समासमें घुसा है। किन्तु उसका वाच्य अर्थ रात्रि अन्यपदार्थ ही मुख्य है प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसम्प्रत्ययः।

। ८। **स्त्रियाः** =स्त्रीलिंगके स्थानमें पुंवद पुल्लिग, हो परन्तु भाषित पुंसकात् भाषितः ज्ञानविषयीभूतः पुंस्कः पुमान् पुंस्त्वं यस्मिन् उस स्त्रीलिंगकपदमें पुल्लिगभी भाषित प्रतीत दोनों लिंगो में हो, अथवा भाषितः पुमान् यस्मिन्नर्थे स भाषितपुंस्कः तस्मात् अनूङ्, ऊङ् प्रत्यान्त न हो। उङोअभावो यस्याः इति बहुव्रीहिः। भाषित-पुंस्कमें पञ्चमीका श्रवण, (षष्ठीका श्रवण न होता) इसका कारण निपातनात्= निपातन (सूत्रमें स्वीकृति) से पञ्चमी का लुक् नहीं हुआ, और षष्ठी का लुक् हो गया। भाषितपुस्क का अर्थ देते हैं कि तुल्ये समाने प्रवृत्तिमें निमित्त कारण, विशेषण, पुंलिंग, स्त्रीलिंग दोनों दशा में एकजाति को तुल्य प्रवृत्तिनिमित्त कहते हैं। जो भाषितपुंस्क हो। ऊङ प्रत्यय का अभाव हो ऐसे स्त्रीवाचक शब्दका पुंल्लिग की तरह रूप हो। समानाधिकरण=समानविभक्तिवाला स्त्रीलिंग उत्तर

प्रियादौ च परतः। गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः। चित्रगुः। रूपवद्भार्यः। अनूङ् किं? वामोरूभार्यः। पूरण्यां-तु। अप्पूरणी माण्योः ।५।४।११६। पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत्स्त्रीलिङ्गं तदन्तात्प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप् स्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः-कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य स-स्त्रीप्रमाणः पुंवद्भाव-प्रतिषेधोऽप्प्रत्ययश्च प्रधानपूरण्यामेव। रात्रिः पूरणीवाच्या। अन्यत्र तु नद्यृतश्च

पद ही पूरणी संख्या और प्रिया आदिशब्दपरे न हो तो। पूरणी संख्याबोधक प्रत्यय तद्धित में है। चित्रगुः चित्रा विचित्रा, विविधरङ्गवती गौः यस्य। चित्रासुगोसु अलौकिक दशामें। अनेक प्रथमान्तानां समासः इति (षष्ठीविभक्त्यर्थे) अनेक मन्यपदार्थे सूत्रसे समास, एक अर्थ एकपदशक्ति सुलोप सम्बन्धिकार्य, 'चित्रागो' दशामे स्त्रियाः पुंवद्भाषित—सूत्रसे चित्रा शब्दका (भाषितपुंस्कत्वात्) पुंवद्भाव पुंलिंग, समानविभक्तिक उत्तरपद (गो) इति गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य से ह्रस्व, तत्र [एक विभक्ति चापूर्वनिपाते से उपसर्जनसंज्ञा उपसर्जन मानकर स्वादिः। **चित्रगुः** [विचित्र गाय वाला पुरुष] रूपवती सुन्दरी भार्या (पत्नी) यस्य। रूपवती सु भार्या सु। अनेकमन्यपदार्थे सूत्रसे षष्ठी विभक्तिके अर्थमें समास सुलोपादिः। भाषितपुंस्कम् ऊङ्रहितं, पूर्वपदं रूपवती है समानविभक्ति वाला उत्तरपदं भार्या है। पुंवद्भावते स्त्रीलिंगबोधक ङीप निवृत्तिः। नियतविभक्तिकभार्या की उपसर्जन संज्ञा ह्रस्व स्वादिः। रूपवद्भार्यः (सुन्दरी पत्नीवाला) सूत्रे अनङ् क्यों पढ़ा जहाँ ऊङ् के ह्रस्व न हो, यथा वामोरुभार्या यस्य (वामोरुभार्यः) सुन्दर जघनवाली स्त्रीभाव (यहाँ पुंलिंगभाव न होना) ऊङ् प्रत्यायान्त को पुंवद् न हो 'इसलिए निषेधवचन [अनूङ्] शब्द दिया। पूरण्यान्तु=पूरणी अर्थमें पुंलिंग निषेध का अन्यः तु—जहाँ पूरणी पञ्चमी आदिका वाच्य रात्रि आदि अर्थसे शून्य पदार्थ में प्रवेश न हो वहाँ 'अप्' नहीं होगा, तब क्या होगा? कप्सूत्र—

उदाहरण-नदीच ऋच्च समाहारद्वन्द्वः। सूत्रमें बहुव्रीहौ औकार पञ्चमीमें बदला। उरः प्रभृतिभ्यः से कप् आया। नदी और ऋदन्त उत्तरपद हों ऐसे बहुव्रीहिसे कप् हो, समासान्त मान्य। यथा कल्याणी पञ्चमी यस्य पक्षस्य कल्याणी सु, पञ्चमी सु, पक्षप्रधान अर्थमें बहुव्रीहि समास। व्यवहारभाव से पञ्चमी उत्तरपद नदीसंज्ञकः है अतः 'नद्यृतश्च' सूत्रेंण कप् कल्याण, पु०भाव पूरणी पंचमीका वाच्य अर्थ रात्रि नहीं है। पक्षमें लीन है, निषेध न होने से। (के=)ककार परे पूर्व अण् को ह्रस्व हो, जो दृग्प्रां से आया। ह्रस्व प्राप्त, न कपि—केऽणः सूत्रसे प्राप्त ह्रस्व न हो, इति निषेधे स्वादि, कल्याणपञ्चमीकः पक्षः। अंत्रशङ्का १५ दिन और रातका पक्ष अन्य पदार्थ पंचमी, रात्रिका प्राधान्य रुकेगा नहीं, तब बोले—अत्र **तिरोहित**—इस समासमें रात्रिका प्रवेश न होने से प्राधान्य नहीं, क्योंकि तिरोहित = छिपा हुआ

।५।३।१५३। नद्युत्तरपदादृदन्तोत्तरपदाच्च बहुव्रीहेः कप्। पुंवद्भावः। केऽणः ।७।४।१३। ह्रस्वः। इति प्राप्ते ॥ न कपि ।७।४।१२। अणो ह्रस्वो न। कल्याणपञ्चमीकः पक्षः। अत्र तिरोहितावयभेदस्य पक्षस्यान्यपदार्थतया रात्रिरप्रधानम्। बहुकर्तृकः अप्रियादिषु किम्? कल्याणप्रियः। प्रिया। मनोज्ञा कल्याणी। सुभगा दुर्भगा। भक्तिः। सचिवा स्वसा कान्ता क्षान्ता सभा चपला। दुहिता। वाला वामा। अबला तनया। (सामन्ये नपुंसकम्)। दृढंभक्तियस्य सा दृढभक्तिः। स्त्रीत्वविक्षायां तु-दृढाभक्तिः॥ तसिलादिष्वाकृत्वसुचः ।६।३।३५। तसिलादिषु कृत्वसुजन्ते स्त्रियाः पुंवत्। परिगणनं कर्तव्यम्। त्रतसौ। तरप्तमपौ। चरट्जातीयरौ। कल्पब्देशीयरौ। रुपप्पाशपौ। थाल्। तिल्-

---

अवयवका अभेद अन्यपदार्थ है, उसका अवयव रात्रि के छिप जानेसे मुख्य नहीं होगा ऋदन्त उत्तरपद कप्का प्रयोग–बहवः कर्तारो यस्य बहुतसे कार्यकर्ता वाला नेता बहुकर्तृकः बहुअस् कर्तृअस् समा०। नद्यृतश्च कप् सु, रुवि०। प्रियादिपरे पुलिङ्गके निषेधका प्रयोजन पूछते हैं–अप्रियादिषु क्यों पढ़ा? कल्याणी प्रिया यस्य शुभ लक्षण प्रेमिका हैं जिसका, (कल्याणीप्रियः) पुलि० निषेध के लिए प्रियादिगण गिनाते हैं। उनके परे पुम्वत् नहीं होता। मंगली-मनोज्ञा मनोहारिणी यस्य मंगलीमनोज्ञः। शोभनः भगः भाग्यं तेज यस्याः सा सुभगा। दुःखदं भगं नक्षत्रं यस्याः सा दुर्भगा। भज्यते सेव्यते भगवान् यया सा भक्तिः इत्यादि। कान्तामनोज्ञः स्वसाकान्तः, कान्ताक्षान्तः, क्षान्तासभः सभाचपलः, चपलादुहितः, दुहितावामः चपलाबलः। प्रियतनाया यस्य प्रियतनयः अत्र शङ्का–भक्तिको प्रियादिमें पढ़ा। दृढ़ा भक्तिर्यस्य दृढ़भक्तिः में पुलिंग निषेध क्यों नहीं, तब बोले-सामान्ये नपुंसकं, जहां लिङ्ग स्पष्ट न हो, वहां नपुंसक मान लें। सामान्यपरक दृढ़ शब्द है दृढ़ भक्तिर्यस्य अटलसेवा हो जिसकी, भक्तिशब्दके साथ नपुंसक ठहरता नहीं, लिङ्गकी अविवक्षा से वेदाः प्रमाणं की तरह। इस विषयके भाष्यमें शक्यं चानेन श्वमांसादिभिरपि क्षुत्प्रतिहन्तुं भूख कुत्ताके मांससे भी मिट सकती है। तत्र धर्मनियमः क्रियते। अतः नपुंसकम्। यदि ऐसा प्रियादिमें भक्ति का पाठ व्यर्थः, तब बोले स्त्रीत्वकी इच्छा होनेपर पु० का निषेध। दृढ़ाभक्तिः भी सिद्ध, प्रियादिमें भक्ति सफल।

तसिलादिषु=पंचम्यास्तसिल् से लेकर संख्यायाः–गणने कृत्वसुच सूत्र तक जितने प्रत्यय हैं वे अन्तमें हों, तब स्त्री० को पु० हो। उत्तरपद परे न होनेसे पुलिङ्ग प्राप्त नहीं था। स्त्रियाः पुम्वत् आया, कृत्वसुच् के पहले आङ्का अभिविधि अर्थ है आरम्भसे अन्त तक तमभिव्याप्य। सूत्रोंके अर्थसे बाहर तिल्थ्यन् शस् है। बृकतिः अजय्या बहुशः पु० नहीं होगा इष्टस्थले अप्रवृत्तिः अव्याप्तिः दोषः। देश्य और रूप्य प्रत्यय तसिलादिमें आते है, उनके परे पट्वीदेश्यः शुभ्रारूप्यःमें पु० होगा, जो नहीं होना चाहिए। अनिष्टस्थले प्रवृत्ति अतिव्याप्ति। दोनो परिहार परिगणनसे करते

ष्यनौ। एषु परेषु स्त्रियाः पुंवत्। बह्वीषु इति बहुत्र। बहुत इत्यादि। (त्वतलोर्गुणवचनस्य) शुक्लत्वम्। शुक्लता॥ (भस्याऽढे तद्धिते)। हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम्। अढे किम्? रौहिणेयः। (कुक्कुटयादीनामण्डादिषु)। तद्धिते कुक्कुटाण्डम्। मृगपदम्। मृगक्षीरम्। काकशावः। क्यङ्मानिनोश्च ।६।३।३६।

है। त्र, तस्, तरप्, तमप् चरट् जातीयपर, कल्पप् देशीयर, रूपप्, थाल् थ्यन्। बह्वीषु बहुत स्त्रियोंमें, सप्तमी अर्थमें त्रल्। बह्वीको तसिलादिषु से पु० हुआ, ङीप हटा। (बहुत्र) यदि बह्वीसे पंचमी अर्थमे तसिल्–तस्, करें। तब पुम्‌से ङीप् हटा बहुतः बह्वीभ्यः बहुत नारियों से न्यारी दर्शनीयतरा। दो में एक की विशेषता अर्थमें तरप्। अनयोः इयं अतिशयेन दर्शनीया।

त्वतलौ-त्व और तलप्रत्यय गुणोपसर्जनद्रव्यवाची को पुलिङ्ग हो। गुण होते हुए किसी द्रव्य आधारके साथ रहे तब। शुक्लाया (सफेद वस्तु का) भावः–गुण, प्रकार विशेषता जातिधर्म अर्थमें त्व प्रत्यय। शुक्लात्वम्। त्वतलोः गुणवचनस्य-सूत्रेण गुणवचन-प्रसिद्ध गुण मानकर ह्रस्व (शुक्लत्वम्), तल होनेपर ह्रस्व शुक्लता प्राचीन ने जाति संज्ञाको छोड़कर धर्म मात्रको गुण कहा।

भस्य। ढसे भिन्न तद्धितप्रत्ययपरे हो तब स्त्रियाः पु० बोलें। परिगणितमें होनेसे एकवचन। हथिनियोंके झुण्डको हास्तिकम् हस्तिनीसे अचित्तहस्तिधेनोः से समूह अर्थमें ठक् ठको इक (ढभिन्न तद्धित परे इक के पूर्व पुंभाव। नान्तमानकर आया ङीप् हटा। नस्तद्धिते टि (इन्) लोपे स्वादिः वार्तिकमें अढे=ढ परे न हो, ऐसा क्यों पढ़ा? जहाँ स्त्रीभ्यो ढक् हुआ हो, उसीके परे पुलिङ्ग न हो, जैसे रोहितसे ङीप् तको न। रोहितस्य अपत्यं रोहिणी की सन्तान।

स्त्रीभ्यो ढक्=एय यहाँ पुं० नहीं होता है यदि होता, तब ङीप् हट जाता तको न भी होता, रोहिनेयः बनता, अतः अढे, पढ़ा।

कुक्कुटी (मुर्गी) आदिका असमान अधार की विभक्ति रहते अण्डादिके साथ समास हुआ हो, तब पु० हो। यथा कुक्कुटस्य जातेः स्त्री कुक्कुटी तस्याः अण्डं, मुर्गीका अण्डा कुक्कुटाण्डं, पुं० भावसे जातिसूचक ङीष् निवृत्त। मृगस्य जाति विशिष्टा स्त्री मृगी तस्याः पदं (मृगपद) यहाँ भी पुलिङ्गसे मृगीका ई हटा। हरिणींका पांव। मृग्याः क्षीरं सिंहनीका दूध। पुं० भाव। काक्या शावः कौवीका बच्चा। पोतः पाकोऽर्भकोऽडिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः।

क्यङ् और मानिन्परे रहते उत्तरपदे पुं० भाव हो, एनी इव आचरित हरिणी या रङ्गवालीकी तरह श्वेतवर्णवत् आचरण०। एता—चित्रवर्णा। चित्रं किर्मीर कल्माषं शबलैताश्च कर्बुरे इत्यमरः। स्त्रीकी इच्छा में वर्णादनुदात्तोपधात्तो ङीप्। त को न, एनी से आचार अर्थमें क्यङ् 'एनीय' पुं० भावसे ङीप् और न दो हटे। एतय अकृत्सार्व० से दीर्घ लङादिः। एतायते श्येनी इव–बाझ स्त्रीकी तरह आचरण

पुंवत् । एनीवाचरति-एतायते । श्येनीवाचरति-श्येतायते । दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते-दर्शनीयमानिनी । न कोपधायाः ।६।३।३७। स्त्रियाः पुंवत् । पाचिकाभार्यः । रसिकाभार्यः । मद्रिकायते । मद्रिकामानिनी । (कोपधप्रतिषेधे तद्धितवुग्रहणम्) ।

करे । शुक्ल शुभ्र शुचि श्वेत विशद श्वेत पाण्डुराः इत्यमरः । सफेद अर्थ श्वेता ङीप् त को न, आचारेऽर्थे क्यङ् । सूत्रसे पुम्वत् ङीप, न निवृत्त । ननु स्त्रियाः पुंवत्से उत्तरपद परे पुं० होगा मानिनी क्यों पढ़ा ? वह प्रमाण बनेगा कि—समान अधार न हों, स्त्री० अर्थ न हो, तभी स्त्रियाः पुम्वत् हो । इसी अभिप्रायसे बोले—स्वभिन्नां-अपनेसे अलग किसी स्त्रीको दर्शनीयां मनमोहिनी माननेवाली दर्शनीयमानिनी है । दर्शनीयां पूर्व रहते मन् धातुसे णिनि, उपपदसमास, लुक् । यहाँ मानिन्शब्दपरे पु० से टाप लौटा । दर्शनीय मानिन् ऋन्नेभ्यः ङीप । जो स्त्री अपनेको दर्शनीया मानती है, उसे स्त्रीयाः से पुम्वत् होता है अतः स्वभिन्नां कहा । एक ही दर्शनीयाके मनधातुके प्रति कर्मत्व कर्तृत्व सम्भव । वस्तुतः अभेदसे मानिनीके साथ समानाधिकरण हैं । मन स्त्रीभिन्न उत्तरपदपरेका उदाहरण–आत्मानं दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते अपनेको स्त्रियोंमे दर्शनीय माननेवाला चैत्र, दर्शनीयमानी पुं० से टाप हटा । आरोपित अभेद मानकर समानता । पुं० उत्तरपद, होनेसे यहाँ हुआ जो पहलेसे प्राप्त नहीं था ।

न कोपधायाः क उपधा=अन्त्य अल्का पूर्ववर्ण 'क' हो ऐसे स्त्री० को पुलिङ्ग न हो । पचति पाचयति बा इति पाचिका सा भार्या भरणीया यस्य (भण्डारिन) पाचिकाभार्यः पकानेवालीस्त्रीवाला । पु० प्राप्त था, 'क' उपधामें होनेसे नपुं०का निषेध । पु० होता, टाप इत्व लौट जाते । रसः आह्लादसुखं अस्याः अस्ति रसिका भार्या मोहिनी, पत्नीवाला पुम् न । पुम् होता टाप चला जाता । मद्रिकायते मद्रे मद्रासे भवा यौवना कन् टाप इत्व, मद्रिका इव आचरति मद्रासिनि की तरह चाल । क्यङ् परे पुम् प्राप्ते न कोपधायाः निषेधे । मद्रिकामानिनी आत्मानं मद्रिकां मन्यते स्वयंको मद्रदेशविशेषकी मानती हैं । 'मनश्च' णिनिः कर्ता अर्थं, उपपदसमासे मानिनी परे पुम् प्राप्त तस्य निषेधः । यदि दोनों भागमें पुम् होता, टाप इत्व हटते । कोपध=क उपधाको पुम् का प्रतिषेध रोक हों, तो तद्धित ग्रहण और वुग्रहण करें । यदि ऐसा, तब सूत्र वार्तिक मिलकर नतद्धितवुकोपधायाः पढ़ देते तद्धितसम्बन्धी वुसम्बन्धी जो 'क' वह उपधामें हो ऐसी स्त्री० को न हो । यथा मद्रिकायते पाचिपुंकाभार्यः वु सम्बन्धी क । तद्धित वुक क्यों पढ़ा ? नेह यहाँ न हो पाका भार्या यस्य स, अल्प अवस्थाकी पत्नीवाला । अर्भक पृथुक् पाका वयसिसे क—अन्त निपातित । यह 'क' न तद्धितका न वु, का है । वयसि प्रथमे के ङीपको बांधकर । अजादि टाप् ।

नेह-पाकभार्यः । संज्ञापूरण्योश्च ।६।३।३८। न पुंवत् दत्ताभार्य । पञ्चमीभार्यः । वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे ।६।३।३९। वृद्धिशब्देन विहिता या वृद्धिस्तद्धेतुर्यस्तद्धितोऽरक्तविकारार्थस्तदन्ता स्त्री न पुंवत् । स्त्रौघ्नीभार्यः । रक्ते तु-काषायकन्थः । विकारे तु-हैममुद्रिकः । स्वाङ्गाच्चेतः ।६।३।४०। स्वाङ्गाद्य ईकारस्तदन्तात्स्त्री न पुंवत् । सुकेशीभार्यः स्वाङ्गतिकम् पटुभार्यः ईतः किम्? अकेश-

संज्ञा और पूरणी=पूरा करनेवाली प्रत्ययान्तके साथ समासमें स्त्रियाः पुम् न लगे । दत्ता भार्या यस्य ए दत्ताभार्यः दी हुई पत्नीवाला । अत्र न निषेधः पञ्चमी भार्या यस्य, पञ्चमी पूरणी पञ्चनां पांचवीं स्त्री पत्नी है जिसकी, प्राप्त पुम्का निषेध, पञ्चमीपाशा निन्दिता अशिष्टा याप्ये निन्दा अर्थे पाशप । पांचवीं फूहर है जिसकी । तसिलादिषु से प्राप्त पुम् का निषेध ।

वृद्धेर्निनित्तं—हेतुः । रक्तञ्च विकारश्च, समाहारद्वन्द्वः । नञ् समास । वृद्धि शब्द का उच्चारण-सूत्रसे हुई वृद्धि (आ ए औ) तद्धेतु=उसका कारण (ञित् णित् कित्) तद्धित, श अन्तमें हो, रक्त, विकार अर्थ को छोड़कर तद्धिता= तद्धितप्रत्यय अन्तवाली स्त्री० को पुम् न हो । वृद्धि शब्दसे वृद्धि होना इष्ट । स्रुघ्नो देशः, तत्र भवा स्त्री, अण् अलोप आदिवृद्धि ङीप्, स्रौघ्नी भार्या यस्य स स्रौघ्नीभार्यः स्त्री० को पुम् प्राप्तिका निषेध । रक्त-रंग अर्थमें विराजमान तद्धित हो, तब पुं० का न निषेध । काषायः गैरिक धातुः गेरुआ रंगसे रंगी हुई । तेन रक्तं रागात् । अण् यस्येति अलोप, आदिवृद्धि, अणन्तङीप् । काषायी कन्था यस्य, गेरुसे रंगी कथरी जिसकी काषायकन्था-पुम्भावसे ।

विकारे तु, विकार अर्थमें विराजमान तद्धित हो, तब पुं न हो । हैमी सोनेकी अँगूठी हो जिसकी, हेम्नो विकारः हेमन्‌से अनुदात्तादेश्च अञ् टिलोप, वृद्धिः ङीप् । हैमी मुद्रिका यस्य हैममुद्रकः । स्वङ्गात् शरीरके अंगसे ई—अन्तमें हो, ऐसा स्त्री पुलिंग न हो, यथा--सु=शोभनाः केशाः यस्याः सा, स्वङ्गाच्च ङीष् । सुकेशी भार्या यस्य स सुन्दर बाल वाली पत्नी जिसकी । सुकेशीभार्यः स्त्रियाः पुं० का निषेध । सूत्रमें स्वांग क्यों कहा ? पट्वी भार्या यस्य पटुभार्यः । चतुर स्त्रीवाला, पटुता अंग नहीं, पुं० का निषेध नहीं । उसका फल वोतोगुणवचनात् का ङीष् हटना । ईतः किम् ईकारान्त क्यों ? अविद्यमानाः केशाः यस्याः सा (अंकेशा) भार्या यस्य (चण्डुली औरत वाला) नञ्समास विद्यमान का लोप, स्वांग होने पर भी सह नञ्विद्यमान-के निषेधसे न ङीष् । ईकारान्त नहीं न निषेध किन्तु पुंवत्से टाप् निवृत्त । अमानिनी=मानिन्परे स्वांगसे पुं-का निषेध न हो । सुकेशी मन्यते सुन्दर केशवाली मानती है । मनश्च णिनिः वृद्धि, समास, सुकेश स्वांग है पुंके निषेध का निषेध वार्तिकसे । पु-हुआ ङीष् हटा ।

भार्यः। (अमानिनीति वक्तव्यम्)। सुकेशमानिनी। जातेश्च ।६।३।४१। न पुंवत्। ब्राह्मणीभार्यः। शूद्राभार्यः। संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये।।२।२।२५। संख्येयार्थया संख्ययाऽव्ययादयः समस्यन्ते स बहुव्रीहिः॥ बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् ।५।४।७३। संख्येये बहुव्रीहिस्तस्माड्डच् समासान्तः॥ दशानां समीपे ये सन्ति ते-उपदशाः। अबहुगणात् किम्? उपबहवः। उपगणाः। ति विंशतेर्डिति ।६।४।१४२। विंशतेर्भस्य टेर्लोपो डिति। आसन्नविंशाः, विंशतेरासन्न इत्यर्थः। अदूरत्रिंशाः। अधिकचत्वारिंशाः। द्वौ वा त्रयो वा-द्वित्राः। दिङ्नामान्यन्तराले २।२।२६। दिशो नामान्यन्तराले वाच्ये प्राग्वत्। दक्षिण

जातेश्च जातिवाचक शब्दसेपरे जो स्त्रीप्रत्यय टाप् ङीप् तदन्तको नहो पुं, शूद्रत्वजातिविशिष्टा स्त्री, जातिलक्षण ङीप्को बाधकर टाप्। शूद्रा भार्या यस्य, शूद्राभार्यः जातिः शूद्र-उससे परे स्त्री टाप् तदन्त शूद्रा को पु० का निषेध। ब्राह्मणत्वजातिसहिता स्त्री शार्ङ्गरवादि ङीन्--ब्राह्मणी भार्या यस्य निषेधसे ङीन् सुरक्षित। सङ्ख्यया=इस सूत्रमें केवल बहुब्रीहि आया, सुप्सुपाभी। सङ्ख्या और सङ्ख्येय गणना की वस्तु अर्थमें विराजमान एकादिका सूबन्तके साथ अव्यय आसन्न अदूर, अधिक, संख्याका एकार्थ अन्यपदार्थ हो। यहाँ संख्या स्वरूप नहीं किन्तु एक द्वि त्रि परक है जो पदार्थमान्य।

तिविंशतेः=भसंज्ञक ति का लोप हो डित्परे। तिका लोप हुआ। भ का अधिकार। अलोन्त्यस्य नहीं लगेगा, अनर्थक में निषिद्ध होने से। तिलोप सवर्णदीर्घ वाधित अतो गुणे पररुपे बहुबचने (आसन्नविंशाः) बीस के आस पास अदूरका उदाहरण त्रिंशतो अदूराः अदूरत्रिंशाः। तीसके आस-पास २९-३१ डच् टिलोप। अधिकका-चत्वारिंशतो अधिकाः, अधिकचत्वारिंशाः चालिसपास डच् टिलोप। संख्या का संख्याके साथ समास-द्वित्रा दो या तीन। वाऽर्थे बहुब्रीहिः। द्वि औ त्रिजस् समासे, डच् टिलोप, बहुबचन द्वित्राः। दोनोंमें एक अन्यपदार्थ। द्वित्राः आनीयन्तां जब दो लायेगा, तब बहुबचन कैसे? भाष्यमें, अनिश्चये बहुवचनं प्रयोक्तव्यं, कहा तथा कार्यान्वये विकल्पः शब्दात्तु नियमेन कोटिद्वयोपस्थितः तदुपस्थित्यनन्तरं अन्यतरानयनमिच्छा। पञ्चानामुपस्थितिः इत्यपि समाहितम्। अनेकमन्यपदार्थ से समास नहीं: शेषाद्विभाषासे कप्के भयसे। संख्याका सख्याके साथ अन्य उदाहरण-दो बार आवृत्त उच्चारित दस द्विदशा बीस अर्थ दो दश। सुच्का अर्थ आवृत्ति है। शब्दशक्ति स्वभावसे उस अर्थको समास बोल रहा है। अतः सुच् सुनायी नहीं देता। संख्या क्यों पढ़ा? संख्येय क्यों? अधिका विंशतिर्गवां, यहां संख्या संख्येयार्था है क्योंकि आदशतः संख्या संख्येये वर्तन्ते, न तु संख्यायाम्। विंशत्याद्याः संख्यास्तु संख्या-संख्येयोः वर्तन्ते। संख्येयमें समास, संख्यामें नहीं।

दिङ्--दिशावाची तथा नाम, संज्ञा सुवन्त हो, परस्परमें बहुव्रीहि (अन्य

स्याः पुर्वस्याश्च दिशो यदन्तरालं-दक्षिणपूर्वा ॥ तत्र तेनेदमिति सरूपे ।२।२।२७। सप्तम्यन्ते ग्रहणविषये सरूपे पदे तृतीयान्ते च प्रहणविषये इदं युद्धं प्रवृत्तमित्यर्थे समस्येते कर्मव्यतिहारे । इच् कर्मव्यतहारे ।५।४।१२७। अन्येषा मपि दृश्यते । ६।३।१३७। दीर्घः । केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं-केशाकेशि । दण्डैर्दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तं-दण्डादण्डि । मुष्टीमुष्टि ॥ तेन सहेति तुल्ययोगे ।२।२।८२। तुल्ययोगे वर्तमानं सहेत्यन्तं तृतीयान्तेन प्राग्वत् ॥ वोपसर्जनस्य ।६।३।८२।

पदार्थ, अन्तराल=दो दिशाओंका मध्य वाच्य अर्थमें) समास हो नामानि का बहुत्व अविवक्षित है। उदाहरण-दक्षिणपूर्वा (दक्षिणदिशा पूर्वदिशा का अन्तराल मध्य अग्निकोण दिशाओं का बीच होनेसे) समासादिकार्य, स्त्रीत्वं लोकात्। अन्तराल दिशाओंका ही मान्य। सर्वनामका वृत्तिमात्रमें पुंलिगहोना प्रमाणित। यद्यपि उपसर्जन में सर्वनाम धर्म नहीं रहता, तथापि भूतपूर्वगतिसे सर्वनामसे पुंसभाव स्वीकार। तत्र तेन इस सूत्रमें समास, बहुव्रीहि अधिकारसे आये। तत्रसे सप्तम्यन्तपद इष्ट है। तेन-से तृतीयान्तपद इष्ट, ग्रहणविषये, प्रहरणविषये द्विवचनान्त विशेषण मानकर अध्याहार। सरूपे समानरूप पदविशेषण। ग्रहणविषय और प्रहरण विषय में सप्तम्यन्त, तृतीयान्तका गणनाक्रम मान्य।

सूत्रमें केवल क्यों पढ़ा ? इसलिए कि मध्यमपद रहने पर अनिच् न हो। धर्मके पूर्वमें पूर्वपद होना चाहिए। इसका (परमः स्वोधर्मों यस्य) उत्तम है अपना कर्तव्य जिसका। त्रिपदबहुव्रीहि समास में अनिच् न हो। अतः केवल पढ़ा।

इच्कर्मव्यतिहारे = क्रिया की अदलाबदली में बहुब्रीहि, से इच् हो, समासान्त तद्धित मान्य। यथा केशैश्च केशैश्च परस्परं गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं (केशाकेशि) बहुब्रीहि समासे, उक्तसूत्रेण इच् पूर्वपदस्य दीर्घे। मुसलेन मुसलेन गृहीत्वा परस्परं प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृतम् इच् दीर्घे। **प्र सम** से परे जानुशब्दों को ज्ञु आदेश हो, बहुब्रीहि में। पूर्वपदवत् उत्तरपद का द्वित्व। जानुनः पञ्चमी होता, तब प्रत्ययः परश्चके अधिकारमें पञ्चमीसे ज्ञुः प्रत्यय माना जाता। आदेश होनेके तेन। सह तुल्ययोगे युगपत्कालिक क्रियासम्बन्धे=एकसाथमें क्रियावर्त्तमान हो तब सहअव्ययका तृतीयान्तके साथ अन्यार्थ समास हो। तुल्ययोग क्यों कहा ? सहैव दशभिः पुत्रैः भारं बहति गर्धभिः। यहां सहका तुल्य अर्थ नहीं क्योंकि भार-कर्मकवहनक्रिया गर्दभीमें है, पुत्रोंमें नहीं, अन्यथा वहन्ति होता। दशपुत्रोंके रहते ढोती है। पुत्र नहीं ढ़ो रहे है। सहका विद्यमान अर्थ है तुल्यक्रिया योग नहीं।

वा उपसर्जनस्य उत्तरपदके अधिकारमें सहस्य स आया। उपसर्जनम् अस्ति अस्य उपसर्जनः बहुव्रीहिः। अन्यपदार्थ समासका अवयव सहको स हो विकल्पसे। सभी समासोंका अवयव उपसर्जन ही है। तथापि सर्वावयव उपसर्जन बहुव्रीहि है। अवयव षष्ठी। बहुव्रीहि क्यों, सह योधितवान् सहयुद्ध्वा, सहकृतवान् सहकृत्वा

बहुव्रीहेरवयवस्य सहस्य सः स्याद्वा । पुत्रेण सह-सपुत्रः, सहपुत्रो वाऽऽगतः ॥ **प्रकृत्याशिषि** ।६।३।८३। सहशब्दः । स्वस्ति राज्ञे सहपुत्राय, सहामात्याय ॥ (**अगोवत्सहलेष्विति वक्तव्यम्**) । सवत्साय । सहलाय । **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्** ।५।४।११३। स्वाङ्गवाचि सक्थ्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् । दीर्घसक्थ । जलजाक्षी । स्वांगात्किम् ? दीर्घसक्थि शकटम् । स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः । अक्षणोऽदर्श-

---

यहां सह को स न हो । मुख्य उदाहरण पुत्रेण सह युगपत् आगतः (सपुत्रः) गुरुः । आगमन क्रियामें दोनोंका तुल्ययोग, तेन सहेति-समासे, वोपसर्जनस्य सह स्थाने स । तुल्ययोग प्रायः लिया जाता है, कहीं नहीं भी, विभाषा सपूर्वस्य उच्चारण से । यथा सकर्मकः विधीयमानंकर्म । सलोमकः, रोमवाला, रोमसहित सहका तुल्ययोग अर्थ नहीं, स हुआ ।

प्रकृत्या आशीर्वाद अर्थमें सह शब्दको प्रकृतिभाव=यथा स्थिति हो, स न । (स्वस्ति ह तवराज्ञे भूयात्) राजाका कल्याण हो, सहपुत्राय–पुत्रोंके सहित, अमात्याय–मन्त्रियोंके सहित, तेन सहेति तुल्योगे क्रियासम्बन्धे समासे आशीर्वाद अर्थ हैं, सहको स भाव न हो । प्रकृतिभाव हो गया, किन्तु जायमानस्य सपुत्रस्य सभ्रातृकस्य सपरिवारस्य आयुः आरोग्यता ऐश्वर्यम् अभिवृद्धिवस्तु इस वाक्यमें सहको स भाव कैसे ? भवन्तो अनुगृह्णन्तु, से प्रार्थना वाक्य है आशीर्वचन नहीं । वार्तिककार सूत्रकी अपूर्णताको पूर्ण करते हैं । अगो–गो, वत्स, हलसे परे हो तब सहका अभाव न हो । सगवे गोसहिताय राज्ञे स्वस्ति, सवत्साय बछड़े के सहित, सहलाय हल कृषि कार्य प्रजाके साथ, राजाका कल्याण हो स को प्रकृतिभाव का वार्तिक से निषेध ।

॥ ९७० ॥ **बहुव्रीहौ स्वाङ्गात्**=अपने ही अंगका वाचक सक्थि (हड्डी) अक्षि (आँख) शब्द जिसके अन्तमें हो ऐसे बहुव्रीहि से षच् (अ) हो । षित् का फल षिद्गौरादिभ्यश्चेति ङीष् । दीर्घसक्थः । दीर्घे लम्बायमाने सक्थिनी जघने यस्य (जिस पुरुषके जङ्घें लम्बे हों) दीर्घ औ (स्वांगवाचिनी (शक्थिनी औ षष्ठचर्थे बहुव्रीहिः । समासमें स्वांगवाची सक्थि शब्दसे बहुव्रीहि समास से षच्, अनुबन्धलोप, इकारलोप, स्वादिकार्य जलजाक्षी (कमलके समान आंखवाली) जलजे कमले 'इव अक्षिणी (नेत्रे) यस्याः । जलज शब्दका स्वांगवाचक अक्षिशब्द के साथ समास, षच्प्रत्यय ईलोप, षित्वात् ङीष ई । प्राणी के अंगको हो स्वांग कहेंगे । मूर्तिके अंगको नहीं । स्वङ्गात् किम् ? अक्षि, आदि स्वांगवाची क्यों कहे गये ? इसलिए कि दीर्घसक्थिः शकटी (लम्बी पहियावाली गाड़ी शकट) चेतन-प्राणी नहीं है । उसका अंग न लिये जाने से षच् नहीं हुआ । एवं स्थूलाक्षा—स्थूले अक्षिणी यस्याः मोठी आँख वाली (बाँसकी छड़ी) चेतन न होने से स्वाङ्गवाची नहीं हैं षच् नहीं हुआ । अक्षणोऽदर्शनात् से अच् प्रत्यय, टाप् । अच् षच् में टाप् ङीप् का अन्तर है । १ । द्वि और त्रिशब्द से परे मूर्धन्य मूर्धन् शब्दको समासान्त ष (अ) हो बहुव्रीहिमें । ष और षच् में चित्स्वर का अन्तर ।

नादिति वक्ष्यमाणोऽच्। द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ।५।४।११५। आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद्बहुव्रीहौ। द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः॥ अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः।५।४।११७। अप् स्यात्। अन्तर्लोमः। बहिर्लोमः। पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्य ।५।४।१३८। हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादस्य लोपः। व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्यः किम्? हस्तिन इव पादौ यस्य हस्तिपादः। कुसूलपादः। संख्यासु-

---

अन्तर। द्वौ मूर्धानौ यस्य (दो सिर हो जिसके) अनेकप्रथमान्तों का षष्ठीविभक्ति-के अर्थमें समास, नस्तद्धिते टि (अद्) लोप विभक्तिकार्य। द्विमूर्धः त्रयो मूर्धानो यस्य (तीन सिर हों जिसके) समासे षः, टिलोपे त्रिमूर्धः (त्रिशिरा)। २। अन्तर वहिर्भ्यां अन्तर और वहिष् शब्दसे परे लोमन् शब्द से 'अप्' प्रत्यय हो, बहुव्रीहि समासमें। अन्तः (गुप्तेन्द्रियपर) लोमानि (रोयें) यस्य सो अन्तर्लोमः अन्तर्लोमन्+जस्के बीच समास, 'अन्तर्बहिर्भ्याम्' अप्, (नस्तद्धिते) टिलोपे, विभक्तिकार्ये, अन्र्लोमः अन्तरङ्ग-रोमवाला। वहिः लोमानि (बाहर रोम, मूंछवाला) बहिर्लोम। समासे अप् टिलोप आदि। ३। हस्ती हाथी आदि (ऊँट वगैरह) वर्जितात् त्यागकर उपमानात् उप-मानवाची शब्दसे परे पादशब्दका लोप हो; बहुव्रीहिसमासमें। अलोन्त्यपरिभाषासे अन्त्य अल् पाद के अ का लोप हो। इस लोपको (अभावरूप होते हुए भी समासान्त मानें ताकि कप् प्रत्यय न हो। व्याघ्रः पादौ यस्य (यद्यपि बाघ किसीका पैर नहीं होता, इसलिए व्याघ्र शब्दका व्याघ्रपाद में लक्षणा) अतः व्याघ्रपादौ इव पादौ यस्य स व्याघ्रपात्। यद्यपि बाघके पैरके समान अर्थ लक्षणा से है। तथापि जैसे—बाघ चलते हैं, पैर चुट-चुट बोलते हैं। जिसका पाद चलते समय वैसा बोले वह व्याघ्र-पाद। यहाँ उपमानवाची व्याघ्रका पादके साथ समास होने पर पादशब्दान्त अकार-का लोप उक्त सूत्रसे हुआ। जश्त्व, चर्त्वं। अहस्त्यदिभ्यः किम्? हाँथी ऊँट घोड़ा आदिसे वर्जित उपमान, ऐसा अर्थ क्यों? इसलिए कि हस्तिनः पादौ इव पादौ यस्य स हस्तिपादः (हाथीके पाँवके समान पाँव है पीलपांव वाला) यहां पादके अ का लोप न हो। कुशूलपादौ इव पादौ यस्य, कुठिला की तरह पैर है जिसका यहाँ अकार लोप न हो अतः अहस्त्यादि पढ़ा। हाँथी आदिका वर्जन हुआ। (३) संख्या और सु पूर्व में हो, ऐसे पदका लोप हो, बहुव्रीहिमें, वह समासान्त समझा जाय। द्वौ पादौ यस्य (दो पैरवाला) द्विपाद मनुष्यः द्वि औ पाद औ। अनेक प्रथमान्तों का षष्ठीके अर्थमें बहुव्रीहि समास, संख्यापूर्वक पादशब्द का अन्त्य अल् अ का लोप हुआ। चर्त्व। शोभनौ सुन्दरौ पादौ–चरणौ यस्य, सुपाद औ षष्ठीविभक्त्यर्थमें बहुव्रीहिसमास संख्या सु-पूर्वस्य। सूत्रसे पादशब्दान्त अकारलोप। चत्वारः पादाः यस्य चतुष्पात्। (४) उत् और वि से परे काकुदशब्दका समासान्त लोप हो। उत्—उद्गतं काकुदं (तालु या डील) यस्य स उत्काकुत्। उन्नत डील या जीभ

पूर्वस्य ।५।४।१४०। पादशब्दस्य लोपः। द्विपात्। सुपात्। उद्विभ्यां काकुदस्य ।५।४।१४८। लोपः। उत्काकुत्। विकाकुत्। पूर्णाद्विभाषा ।५।४।१४९। पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः॥ सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयो ।८।४।१५०। सुहृन्मित्रम्। दुर्हृदमित्रः। (नेतुर्नक्षत्रे अब्वक्तव्यः)। मृगो नेता यासां रात्रीणां ता मृगनेत्रा रात्रयः॥ अज् नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् ।५।४।११८। नासिकान्ता-

---

लोढ़ने वाला बहुव्रीहि समास, काकुदके अन्त्यअका लोप। वि=विशिष्टं विनष्टं वा काकुदं यस्य। तालु, डील बड़ा हो या नष्ट हो, वह विकाकुत् है। यहाँ भी समास अलोपादिः।

।९७५। विभाषा—पूर्ण शब्दसे परे काकुदका लोप हो; विभाषा—विकल्प से। पूर्ण काकुदं यस्य (पूर्ण है तालु जिसका) पूर्ण सु तालु सु। अलौकिक विग्रह अनेक-मन्यपदार्थ से षष्ठ्यर्थं बहुव्रीहि समास। पूर्णाद्विभाषा से काकुदके अ का लोप चर्त्वं, पूर्णकाकुत् यदा न लोपः, तदा पूर्णकाकुदः (७) सुहृच्च सुहृद्दुर्हृदौ मित्रञ्च मित्रा-मित्रे तयोः। सु और दुर् से परे हृदयशब्द को हृद् आदेश निपातन से हो। क्रमशः मित्र और शत्रु अर्थ में। सुष्ठु=शोभनं हृदयं यस्य सुहृत् मित्रम्। बहुव्रीहि-समास, हृदयको हृद् आदेश (कृतज्ञ परोपकारी मित्र) दुष्ठु दूषितं क्रोधलोभादिना पूरितं हृदयं यस्य। समासे हृद् आदेशे, दुर्हृद (अमित्रः, शत्रुः)।

बहुव्रीहौ समासमें संख्येय (गणना की वस्तु) अर्थमें बहुव्रीहिसे डच्-अ हो। यह असाधारण समासान्त है, पञ्चमी अर्थ सप्तमी। अबहुगणात्=बहु और गणके साथ समास हो तब डच् न हो। ये=दशानां समीपे सन्ति ते उपदशाः छात्राः। दशन् आम् उत् संख्ययाव्यासन्न–सूत्रेण बहुव्रीहि समासे, सुपो लुक्। उपदशन्शब्दात् डच्। नस्तद्धिते टिलोपे स्वादि सूत्रमें बहुगणको डच् नहीं, ऐसा क्यों? बहूनां समीपे ये छात्राः सन्ति ते उपबहवः, गणस्य समीपे ये सन्ति ते उपगणाः। प्रश्नः बहुतोंके पासमें रहे समुदायके समीपमें रहे थे। बहुगणवतुडतिसे संख्यासंज्ञा, संख्ययाव्यया-सन्नसे समास, डच् निषेधके लिए। ननु उपगणाः डच् भवतु, न भवतु वा। एक-रूपता मिलति निषेधस्य किं फलं, स्वरमें अन्तर पड़ेगा। डच् से चितः, अन्तोदात्त होगा, (नेतुः) नक्षत्र=अर्थमें विराजमान नेतृ–तदन्त=वह अन्तमें हो ऐसे बहुव्रीहि अन्यार्थप्रधानसे अप् कहे। मृगो नेता = मृगशिरा नक्षत्र नायक हो, जिन रात्रियोंका (मृगनेत्राः)। चन्द्रः रातका नायक चन्द्रमाकी रातें। चन्द्रके सम्बन्धसे नक्षत्र भी। मृगनेतृशब्दात् वार्तिकसे अप। ऋ-यण् रेफ, टाप् मृगनेत्राः। (नासिका) अन्त बहुव्रीहि से अच् हो, नासिकाको नसः आदेश भी। संज्ञा–नाम होने पर स्थूलपूर्वमें हो तब नस् आदेश न हो।

पूर्वपदमें स्थित निमित्त = णत्वका कारण र ष, उससे परे न को ण हो, संज्ञा-नाम अर्थ रहने पर। अगः=ग के व्यवधानमें णत्व न हो। रषाभ्यां आया

बहुव्रीहेरच् नासिकाशब्दश्च नसं प्राप्नोति, न तु स्थूलापूर्वात् । **पूर्वपदात्संज्ञायामगः ।३।४।३।** पूर्वंवदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः न तु गकारव्यवधाने । द्रुरिव नासिका यस्य द्रुणसः॥ **(खुरखराभ्यां वा नस्)** । खुरणाः खरणाः । पक्षे–अजपीष्यते । खुरणसः । खरणसः ॥ **उपसर्गाच्च ।५।४।११९।** उन्नसः । **(वेर्ग्रो वक्तव्यः)** । विगता नासिकाऽस्य विग्रः ॥ **(ख्यश्च)** विख्यः । **नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् ।५।४।१२१।** अहलः,अहलिः असक्थः असक्थिः एवं दुःसुभ्याम् शक्त्योरिति पाठान्तरम् । अशक्ताः, अशक्तिः ॥ **नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ।५।४।१२२।** नञ्दुःसुभ्य

पूर्वपदस्य लक्षणासे, अट्कुप्वाङ्नुम् आया । तभी अगः सफल । खण्डपदमें णत्व नहीं होता, उसके लिए सूत्र । द्रुरिव वृक्षकी तरह ऊँची नाक है वह द्रुणसः । बहुव्रीहि समासे अच् नासिकायाः से अच्, नासिकाको नस् आदेश । द्रुनस् पूर्वपदात् से णत्व, द्रुणसः । (खुर और खर) से परे नासिकाको नस् हो विकल्पसे बहुव्रीहि और संज्ञामें । सूत्रसे ही नस् आदेश सिद्ध था, अच् की निवृत्तिवास्ते वार्तिक पढ़ा । खुरौ इव नासिके यस्य (खुरकी तरह फटी नाकवाला) समासे । वार्तिकेन नस् आदेशे । पूर्वपदात् णत्वं खुरणस् दशायां जस् अन्वसन्तस्य दीर्घ, सुलोपे, रुवि । खुरणाः । खररूपा नासिका यस्य (चिपटी नाकवाला) समास, नस्, णत्व, आदि पूर्ववत् । पक्षमें खुरनासिकः खरनासिकः होता, किन्तु अच् भी इष्ट है । अच्सहित नस् आदेशसे खुरणसः भी बना । भाष्ये इदं न । उपसर्गात् प्रादेः=प्र, परा अप आदिसे नासिका हो, ऐसे बहुव्रीहि समाससे अच् हो । नासिका-नस् आदेश भी । यह कार्य अञ्नासिकायाः सूत्रसे सिद्ध था, यह सूत्र क्यों ? असंज्ञाके लिए सूत्र है, वह तो संज्ञामें करता है । उपसर्ग आदि का बोधक है । क्योंकि क्रिया योग न होनेसे उपसर्गसंज्ञा नहीं होती । (वेः=वि) से परे नासिका को ग्र आदेश हो । विगता=नष्ट हुई नाक वाला विग्रः । वि उपसर्ग, नासिका को ग्र आदेश । ख्यश्च नासिका को ख्य भी हो । विगता नासिका विख्यः=नाककटा नञ्दुःसु से हलि या सक्थिसे समास हुआ हो तब विकल्पसे अच् हो । अविद्यमानो हलिः यस्य । नहीं है हल जोतने का साधन अहलः । इकारान्त, हलका पर्याय हलि । नञ्समास तदन्तसे अ च, यस्येति इलोप, यदा न अच् तदा अहलिः । अनुक्त समासान्तो नास्ति, नलोप । अविद्यमानं यस्य नञ् समासे, अच इलोप । असक्थः । पक्षे असक्थिः । यही अनुशासन दुरके साथ । कोई आचार्य सक्थि न पढ़कर शक्तिः, केचित्पाणिनीयाः पठन्ति, पाणिनिशिष्या वदन्ति । तन्मते न शक्तिर्यस्य अशक्तः निर्बलः । नञ् समास अच् इलोप । यदा न अच तदा अशक्तिः, सामर्थ्यहीनः ।

नित्य-प्रजा और मेधा शब्दसे नित्य असिच् हो, समासान्त तद्धितमान्य । नञ् दुः और सु के साथ समास होने पर । च इत् । इ उच्चारणार्थ ।

इत्येव । अप्रजाः । अमेधाः । दुर्मेधाः । सुमेधाः । धर्मादनिच् केवलात् ।५।४।१२४ केवलपूर्वपदाद्यो धर्मशब्दस्तदन्ताद् बहुव्रीहेरनिच् कल्याणधर्मा । केवलात् किम् ? परमः स्वो धर्मो यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ मा भूत् । परमस्वधर्मः ॥ (इच्कर्मव्यतिहारे) । केशाकेशि । मुसलामुसलि ॥ असंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः ।५।४।१२९। प्रज्ञुः । संज्ञुः ॥ ऊर्ध्वाद्विभाषा ।५।४।१३०। ऊर्ध्वज्ञुः । ऊर्ध्वजानुः । ऊधसोऽनङ् ।५।४।१३१। कुण्डोध्नी । धनुषश्च ।५।४।१३२। धनुरन्ताद्बहुव्रीहेरनङादेशः । शार्ङ्गधन्वा ।

अस् सत्य । अन्यतरस्यां नहीं आया, नित्य पढ़ने से, अस्वरितसे भी न आता नित्य अन्यत्रके लिए । (अप्रजाः) अविद्यमानाः प्रजा यस्य निःसन्तान । नञोऽस्त्यर्थानामिति समासः प्रजासे असिच् = अस् । यस्येति अकार लोपे । अप्रजस् शब्दात्सु अत्वसन्तस्य – सान्त उपधाको दीर्घ, हल्ङ्याप्सुलोपे रुवि० । यद्यपि असिच् का अकार न रहता तब भी प्रयोग बनता, तथापि भसंज्ञा न होती, अजादि न मिलने से । आलोप न होता । सुमें अप्रजाः बनता, अप्रजसौ न बनता, किन्तु अप्रजासौ होता । अतः अकार भसंज्ञार्थ पढ़ा । दुर्गता प्रजा यस्य दुष्प्रजा, दुर्दशा प्राप्त हुई प्रजावाला । प्रादिभ्यो: धातुजस्य समासे असिच् आदिः पूर्ववत् । 'इदुदुपधस्य' षत्व । शोभनाः प्रजा यस्य सुप्रजाः अच्छीप्रजावाला । असिजादिः पूर्ववत् । अविद्यमाना मेधा बुद्धिः प्रतिभा यस्य अमेधाः बुद्धिहीन । समासे असिजादिः पूर्ववत् । दुर्गता मेधा यस्य । शोभना मेधा यस्य सुमेधाः । केचित् नित्य का फल अन्यत्र=असिचिके लिए । अल्पमेधसः सिद्ध्यति ।

धर्मात् । पूर्वपद आया । केवल पूर्वपदसे परे जो धर्म तदन्तात्=वह अन्तमें हो ऐसी बहुव्रीहसे अनिच् हो । च इत् । इकार उच्चा० । मध्यमपद न होना, केवल पूर्वपद है । कल्याणः धर्मो यस्य (परोपकार करना कर्म है जिसका) कल्याणधर्मा बहुव्रीहिसमास । धर्मात् अनिच् । अन् यस्येति अलोप । नान्त उपधादीर्घ' आदिः । षष्ठी द्विवचन । प्रगते जानुनी यस्य सुदृढ़ घुटनेवाला । द्विवचनसे दो जानुशब्द दोनोंके स्थानमें ज्ञु आदेश । प्रज्ञु तगड़ा घुठनावाला । संगते जानुनी यस्य, सटे घुटनेवाला, संज्ञुः जानुनी-ज्ञुः । ऊर्ध्व से परे जानुशब्द स्थाने ज्ञु आदेश विकल्पसे बहुव्रीहि में हो । उर्ध्वे जानुनी यस्य ऊँचे है जंघे जिसके, उर्ध्वः जानुनी स्थाने यदा न ज्ञु तदा उर्ध्वजानुः, धनुषश्च इसमें (ऊधसो) अनङ् आया । धनुः शब्दान्त बहुव्रीहिसे अनङ् आदेश हो । ङित् से अन्तादेश द्वौ धनुष् यस्य, दो चाप । समासे द्विधनुष्के ष को अनङ् । ङ इत् अकार उच्चारणार्थ द्विधनुष । उ–यण् द्विजन्मा) शृंगस्य इदं शाङ्गं, तस्येदम् अण् । तद्धनुर्यस्य समासे धनुषकी सींग । अनङ् आदि पूर्ववत । यदि ऐसा तब स्वलावण्याशंसा घृतधनुषमल्लाय तृणवत् इसमें समासान्तविधि अनित्य है । आर्षः ।

वा संज्ञायाम् ।५।४।१३३। शतधन्वा । शतधनुः । जायाया निङ् ५।४।१३४। जायान्तस्य बहुव्रीहेर्निङादेशः । लोपो व्योर्वलि ।६।१।६६। युवतिर्जाया यस्य युवजानिः, गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ।५।४।१३५ उद्गन्धिः । पूतिगन्धिः । सुगन्धिः । उपमानाच्च ।५।४।१३७। पद्मस्येव गन्धोऽस्य पद्मगन्धिः । वयसि दन्तस्य दतृ ।५।४।१४१। संख्यासुपूर्वस्येत्येव । द्विदन् । चतुर्दन् । अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च ।५।४।१४५। एभ्यो दन्तस्य दतृ वा । कुड्मलाग्रदन्तः । कुड्मालाग्रदन् ।

वा-संज्ञा अर्थमें विकल्पसे अनङ् हो ! शतं धनुर्यस्य शतधन्वा (राजा का नाम स्वयन्तक कथा में) संज्ञायां वा अनङ् । शतधन्वन् स्वादिकार्यें पक्षे शतधन्वा । जाया अन्तबहुव्रीहिसे निङ् हो अन्त्य अल्के स्थनमें । लोपो=व् य् अनयो: द्वन्द्व, द्विवचने ओस् व्यो=व य का लोप हो वलि परे । युवतिः नवयौवना जाया-पत्नी वाला, वह पुरुष युवजानिः । बहुव्रीहिसमासे जायाके आको निङ् इत् । लोपो व्योः यलोपे, स्त्रियाः पुंवत्, ति हटा, नलोप । गन्धस्य-इत्=उत् पूति, सु, सुरभि इनसे परे गन्ध को इ अन्त आदेश हो, पूर्वोत्तारदृष्टि से इकार आदेश । समासान्तके अधिकार में आदेः परस्य नहीं लगता । उद्गतो गन्धो यस्य उठ रहा गन्धवाला । गन्धस्येत्सूत्रेण इ अन्तादेशे उद्गन्धि मृगः । महक न होना पूति है । पूतिर्गन्धस्य इव गन्धो यस्य पूतिगन्धिः किंशुकाः निर्गन्धाः । शोभनः गन्धो यस्य सुगन्धिः वायुः ।

उपमान शब्दके अन्त में इकार हो, बहुव्रीहि में । फलितार्थं कथन है । पद्मस्य इव — कमलके गन्ध की तरह गन्ध हो जिसका पद्मगन्धिः मिष्टः । उपमानकर्मसे गन्धके साथ समास होने पर अन्तमें इकार, पद्मसम्बन्धित गन्धसदृशे लक्षणा । सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य समासः, वयसि — अवस्था बोध होने पर संख्या और सु पूर्वमें हो दन्तस्थाने दतृ आदेश हो । द्वौ दन्तौ यस्य द्विदन्तः दो दाँत का शिशु अवस्था बालकः । दन्तको दतृ ऋ इत् । उगित्से नुम् सु-लोप' संयोगान्तलोप उसकी असिद्धिसे उपधादीर्घ नहीं । द्विदन् । चत्वारो दन्ता यस्य (चतुर्दन्) चार दाँतका वत्स बच्चा बछड़ा । अवस्थाज्ञानके लिए दन्तस्थाने दतृ आदि, कार्यं पूर्ववत् । छः दाँतकी अवस्थाका बालक षोडन् । षड् दन्ताः यस्य दतृ आदेशादिः षष् दत् षष उत्वसे दूसरे ष को ष्टुत्व, द को टवर्ग ड, स्वादि कार्यें । अग्रान्त=अग्र शब्द अन्तमें हो, शुद्ध शुभ्र वृष वराह इनसे परे दन्तस्थाने दतृ हो । च से अनुक्तसंग्रह तभी मूषिकदन् । कुड्मलानां मुकुलानां अग्राणि (खिले कमलके अग्रभागकी तरह) तानि इव दन्ताः यस्य खिल रहे हैं कमलके अग्रभाग की तरह दाँत जिनके । अग्र अन्तमें अतः दतृ आदि पक्षे न । शुद्धा=स्वच्छाः दन्ताः यस्य शुद्ध दन्, शुद्धदन्तः । शुभ्राः श्वेताः शुभदन्-दन्तः । वृषा वर्धनशीलाः दन्ताऽ यस्य वृषदन्-दन्तः । वराहः शूकर इव दन्ताः यस्य वराहदन्=दाँत । नञ्से परे अर्धशब्द हो तदन्तबहुव्रीहिसे कप् । अविद्यामानो अर्थो यस्य (समास कप्) अनर्थकं विद्यमानका लोप । अपगतो अर्थो

उर:प्रभृतिभ्य: कप् ।५।४।१५१। व्यूढोरस्क: । प्रियसर्पिष्क: । (अर्थान्नञ:) । अनर्थकम् । नञ: किम् ? अपार्थम् । इन: स्त्रियाम् :५।४।१५२। इन्नन्ताद्बहुव्रीहे: कप् । बहुदण्डिका नगरी ।। (अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति) । बहुवाग्मिका । शेषाद्विभाषा ।५।४।१५४। अनुक्तसमासान्ताद् बहुव्रीहे: कब्वा । महायशा:, महायशस्क: । अनुक्तेत्यादि किम् ? व्याघ्रपाद् । आपोऽन्यतरस्याम् ।७।४।१५। कपि ह्रस्व: । बहुमालाक:, बहुमालक:, बहुमाल: ।

अस्मात् नष्ट है अर्थ जिससे विकल्प कप् । नञ्पूर्वक है, नित्य कप् नहीं । अपार्थकं निरर्थकम् ।

उरस् प्रभृति इत्यादि से समासान्त कप् हो बहुव्रीहि में 'क' शिष्यते (सोऽपदादौ) पास, कल्प, काम्य, परे रहते विसर्ग को स हो । कस्क आदि गणपठित शब्दोंमें इण् से परे विसर्ग को 'ष' हो अन्यसे परे 'स:' । यथा व्यूढोरस्क: । व्यूढं विशालम् उरो वक्षस्थलं यस्य । अनेकप्रथमान्त व्यूढ् सु उरस् सु का षष्ठी अर्थमें बहु० समास । उर: प्रभृतिभ्य: से कप्-कप्रत्यय उरस् के सरकार को रु:) रेफको विसर्ग: । कस्कादिषु च इण् से परे विसर्ग को ष यथा-प्रियसर्पिष्क: प्रिय: सर्पि: घृतं यस्य (प्रिय हो घी जिसे) प्रियसु सर्पि:सु समास, कप् प्रत्यये, सकारको रुत्व विसर्ग, इण=इकार से परे विसर्गको मूर्धन्य ष हुआ ।

इन:-इन् अन्तमें हो बहुव्रीहिसे कप् । स्त्रीलिङ्गमें, दण्ड: अस्या अस्ति दण्डी अत इन्ठिनौ, इन् अन्त है । बहव: दण्डिनो यस्यां नगर्यां बहुतसे दण्डधारी हो जिसमें बहुदण्डिका । समासके बाद इन: कप् नलोप, टाप । बहुवाग्मिका नगरी । वाक् अस्ति अस्या: वाग्मी, वक्ता, वाचोग्मिनि: । समासे बहुवाग्मिन् । इन: स्त्रियां कप्, नकारलोप, ग इत् इन् अतद्धिता-पाठसे । च को कुत्व क, जश् ग । बहव वाग्मिन: अस्यां बहुतसे नेता वक्ता । यहाँ का इन् अनर्थक है कप् कैसे ? तब परिभाषा बोले (अन्, इन्, अस्, मन्) इनका ग्रहण अर्थवान्, अनर्थकके साथ अदन्त विधि का प्रेरक है । परिभाषा बलसे कप् होगा । तब सुपथीनगरीमें कप् क्यों नहीं, समासान्तविधिकी अनित्यता से । भाष्यमें सुपथी पढ़नेसे शेषात्—इस सूत्रसे जो समासान्त कहे गये, उनसे बचा हुआ शेष, अनुक्त समासान्तसे और शेषाद्विभाषाके अधिकारमें स्थित बहुव्रीहिसे कप् विकल्प हो । महत् यशो यस्य विग्रहे समासे । आन्महत: तकारस्य 'आ' शेषाद्विभाषा कप् 'सोऽपदादौ' विसर्ग को स महायशस्क: । यदा न कप् तदा अत्वसन्तस्य दीर्घे । अनुक्तसमासान्त क्यों पढ़ा ? व्याघ्र इव पादौ यस्य व्याघ्रपात्, पादस्य लोपो-सूत्रसे स्थानिद्वारा लोप भी समासान्त है कप् न हो । शोभन: गन्धो यस्य सुगन्धि: वायु: । न संज्ञा-में शेषाद्विभाषासे प्राप्त कप् न हो । नाम अर्थमें व्यवधानके कप् का निषेध नहीं) जैसे नद्युतश्चसे कप् । विश्वदेव: कप् का निषेध । संज्ञामें नित्यसमास है, लौकिकविग्रह चिन्त्य ।

न संज्ञायाम् ।५।४।१५५। शेषादिति प्राप्तः कब् न । विश्वे देवा अस्य-विश्वेदेवः । ईयसश्च ।५।४।१५६। ईयसन्तोत्तरपदान्न कप् । बहवः श्रेयांसोऽस्य बहुश्रेयान् । गोस्त्रियोरिति ह्रस्वे प्राप्ते । (ईयसो बहुव्रीहेर्न) । बहुश्रेयसी । बहुव्रीहेः किम् ? अतिश्रेयसिः । बन्दिते भ्रातुः ।५।४।१५७। पूजार्थभ्रात्रन्तान्न कप् । प्रशस्तो भ्राताऽस्य प्रशस्तभ्राता । सुभ्राता । वन्दिते किम् ? मूर्खभ्रातृकः । नद्यृतश्चेति कप् । (सर्वनामसंख्येययोर्बहुव्रीहौ पूर्वनिपातः) । सर्वश्वेतः । द्विशुल्कः (संख्याया

(१) शेषात्=अनुक्तसमासान्तात् जिस बहुव्रीहि में समासान्त प्रत्यय अनुक्तः-न कहा गया हो उससे कप् हो । उक्तादन्यः शेषः । शेषे भवः शौषिकः कप् । महद् यशो यस्य स महायशस्कः महायशाः, व्यापक यशवाला । षष्ठचर्थे बहुव्रीहिसमास यहाँ कोई समासान्त प्रत्यय न होने से शेष अर्थमें शेषाद्विभाषा सूत्रसे कप् विकल्प हुआ । ईयसश्च=ईयसुन्प्रत्यय अन्तमें हो ऐसे उत्तरपदसे कप् न हो । नित्य, विकल्व सभी कप् का निषेधक । बहुश्रेयान् बहुत कल्याणवाला । शैषिक कप का (ईयसन्त देखकर) निषेध । बहुतसी कल्याणीवाला बहुश्रेयसी पुरुषः । अन्यपदार्थप्रधानमें उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त श्रेयसी को गोस्त्रयोरुपसर्जनस्यसे ह्रस्व प्राप्त, तब ईयसः= ह्रस्वो न-ईयस्प्रत्ययान्त बहुव्रीहिसे परे स्त्रीप्रत्यय ह्रस्व न हो, इति निषेधे । नद्यृतश्च नित्यकप् का भी, लिङ्गविशिष्टपरिभाषासे निषेध । सूत्रमें बहुव्रीहि क्यों पढ़ा ? तत्पुरुषमें निषेध न हो । यथा श्रेयसीमतिक्रान्त अतिश्रेयसिः ह्रस्व हुआ, भगवतीसे भी भाग्यवान् ।

। ८५६ । वन्दिते (वदि अभिवादनस्तुत्योः) । प्रणाम स्तुतिके योग्य पूजित अर्थमें भ्रातृ अन्तसे कप् न हो । प्रशस्तो भ्राता यस्य अभिनन्दनीय भाई-समासे, ऋदन्त कप् का निषेध । शोभनः भ्राता यस्य सुभ्राता रामः । नद्यृतश्चसे कप् का निषेध, न पूजनात् न करपाता, तब यह सूत्र । वन्दिते-पूजित भाई अर्थं क्यों ? मूर्खः भ्राता यस्य मूर्खभ्रातृकः लण्ठ भाईवाला । कपः निषेधो न । सर्वनाम या संख्या का ही पूर्व निपात हो बहुव्रीहिमें । सर्वः श्वेतो यस्य स सर्वश्वेतो धावति । दोनों गुण-वचन हैं । विशेषण कौन विशेष्य कौन किसका पूर्व निक्षेप, तब वार्तिकसे सर्वनाम का पूर्व निवास । उपसर्जन भूतपूर्वगतिसे सर्वनाम (द्वौ शुक्लौ) तस्य दो अंग सफेद, हों । त्रयः शुक्लाः यस्य तीन अंग सफेद, किसको पूर्वप्रयोग प्राप्त था, संख्या ही पूर्वपद हो, द्वि दोनोंमें संख्यायां=संख्यावाचकोंके समासमें अल्पीयस्याः कम संख्यकका पूर्व प्रयोग । यथा द्वौ या त्रयो वा समासे द्वि (कम संख्या)का पूर्णप्रयोग, द्वन्द्वे समासमें भी कमसंख्या पूर्वमें हो । इसका बहुव्रीहि में प्रयोग कैसे ? अपि से द्वन्द्व अद्वन्द्व दोनों मान्य । द्वौ च दश च द्वादश तत्पुरुषमें शतानां विंशतिः विंशतिशतं सहस्राणां शतं, शतसहस्रं, भाष्यकैयट प्रयोग भी अल्पसंख्याके पूर्व प्रयोगमें प्रमाण । (वा) प्रियस्य बहुव्रीहिमें प्रिय का पूर्व प्रयोग गडुः प्रियो यस्य या गडूनां प्रियः दोनों का

अल्पीयस्याः)। द्वित्राः। (द्वन्द्वेऽपि)। द्वादश। (वा प्रियस्य)। गुडप्रियः। प्रियगुडः। गड्वादेः परा सप्तमी)। गडुकण्ठः। क्वचिन्न-वहेगडुः। निष्ठा ।२।२।२६। निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। कृतकृत्यः। (जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा वाच्या)। सारङ्गजग्धी। मासजाता। सुखजाता। वाऽऽहिताग्न्यादिषु ।२।२।३७। आहिताग्निः, अग्न्याहितः। आकृतिगणोऽयम्।

इति बहुव्रीहिसमासप्रकरणम्।

पक्षमें पूर्व० गड्वादयः मौंसकी गांठ दुर्मासग्रन्थिः का नाम, गडु कण्ठे यस्य गलगण्ड। किस का संज्ञा नहीं, सप्तमी का अलुक् न हो, किन्तु लुक् से। सप्तमी का पर प्रयोग कहीं नहीं। वहे गडुः कन्धे पर दुर्मांसग्रन्थिः। सप्तमीका पर प्रयोग नहीं। पद्मम् नाभौ यस्य पद्मनाभः, पूर्णो नाभौ यस्य पूर्णनाभः।

। १९० । निष्ठा प्रत्यय अन्तमें हो, उसका पूर्वप्रयोग बहुव्रीहिमें हो। युक्तः= सफलीभूतः योगः एकाग्रता ध्यानं यस्य स युक्तयोगः सिद्धयोगी। युक्तसु योगसु। षष्ठी अर्थमें समास निष्ठाप्रत्ययान्तयुक्तशब्दका पूर्वप्रयोग। यद्यपि (योगयुक्तो विशुद्धात्मा) यहाँ युक्तका पूर्वप्रयोग नहीं है। योगेन युक्तः तत्पुरुषः होने से।

। ६९ । निष्ठा प्रत्यय अन्तमें हो उसका पूर्वनिवास। अन्यपदार्थमें हो। क्त क्तवतुकी निष्ठासंज्ञा। कृत्यं कृतं येन, कार्यपूर्ण किया जिससे कृतकृत्यः। दोनों क्रिया रूप, इच्छानुसार पूर्वप्रयोग प्राप्त, निष्ठान्त का ही पूर्णप्रयोग। कृत=कृसे क्त निष्ठा है। जातिकालसुख आदि निष्ठा (क्त क्तवतु) वाले शब्द पर-पश्चात्प्रयोग हो। अनाच्छादनात्से ज्ञापित। सारङ्गः हरिणः जग्धः खादितः यया सा सारङ्गजग्धी। सिंहिनी हरिण खा गयी। अस्वाङ्गसे ङीष। हनसे क्त, निष्ठासंज्ञकः जग्धीका पर प्रयोग। यह जाति का उदाहरण। कालपूर्वका-मासो जातो यस्या मासजाता वाला, एक महीनाकाल अर्थ, निष्ठान्त जातका परप्रयोग। सुखं जातं यस्या सुखसे बीता जिसका। जातका पर प्र०। प्रायिकं-यह पर प्रयोग प्रायः होता है कही नहीं भी। कृतः कटो येन कृतकटः। चटाई जाति है, पर निष्ठाका पर प्रयोग नहीं देखा जाता। पीतमुदकं येन पीतोदकः पीया है जिसने, उदक जाति है तब भी पीत का पर निवास नहीं हुआ। ९००। वाऽऽहि=आहिताग्नि आदिमें निष्ठाका पूर्वप्रयोग हो। आहिताः आधानेन संस्कृताः अग्नयो येन आहिताग्निः। निष्ठा आहित का पूर्वनिवास विकल्पसे, पक्षमें परप्रयोग, यह गुण-आकृति देखकर मान्य। जाया च पतिश्च दम्पती। विवाहितास्त्री पुरुष। जायाशब्दको दम्भाव। जम हुआ तब जम्पति। विकल्पपक्षमें जायापती।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकरीटीकायां बहुव्रीहिः।

अथ द्वन्द्वसमासप्रकरणम्

चार्थे द्वन्द्वः ।२।२।२९। अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स द्वन्द्वः ।।
समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः तत्रेश्वरं गुरुं च भजस्वेति परस्परनिर-

अथद्वन्द्वः—द्वौ द्वौ मिलित्वा सहविवक्षावशात् एकक्रियान्वयीभवनं द्वन्द्व-समासः। दो या अनेकपद एकसाथ अन्वित होकर अपनी प्रधानता बनाये रहे। ।९८२। चार्थे=अनेकसुबन्त (च) के अर्थमें वर्तमान हो, उनका समास विकल्प से हो, वह द्वन्द्व कहलाये। च के कौन अर्थ हैं जिनमें वर्तमान सुबन्तोंका समास होता है। चार्थाः=च के चार अर्थ हैं समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग, समाहार इन चारों के अर्थ और उदाहरण दिये जा रहे हैं। समुच्चय का उदाहरणः हे भक्त ईश्वरं गुरुं च भजस्व भजनकरो। (भज, सेवायां) सेवासे ईश्वर और गुरुको प्रसन्न करो। दोनों के साथ भक्तका सेव्यसेवक सम्बन्ध सापेक्ष है। परन्तु ईश्वर का गुरुके साथ परस्पर कोई सम्बन्ध या क्रियामें सहविवक्षा नहीं है। अतः परस्पर निरपेक्षस्य आपस में एक दूसरे की कोई अपेक्षा न करके अनेकका एक में (ईश्वर गुरुका एक भजस्व क्रिया में) अन्वय समुच्चय है। बिना गुरुका भजनक्रियामें उसी क्रिया की आवृत्ति करके ईश्वर का अन्य होना निरपेक्ष है। अर्थात् ईश्वर भजस्व, गुरुञ्च भजस्व। दोनों की भजन क्रिया में भक्त स्वतन्त्र हैं। एक साथ नहीं। च का समुच्चय अर्थ है। एकस्यां क्रियायां परस्परनिरपेक्षसम्बन्ध समुच्चयः। १—अन्वाचय–दो क्रियाओं के मध्य में जहां एक की प्रधानता हो दूसरेकी प्रासंगिकता गौणत्व, अप्रधानरूप, अन्वय हो उसे अन्वाचय कहते हैं जैसे–भिक्षाम् अट् (जाकर भिक्षा मांगो) हां आते समय गाम् आनय (गायको भी लाओ)। यहाँ भिक्षाटन मुख्यकर्म है। किन्तु गायका लाना अन्यतरस्य=दूसरे क्रिया का आनुषंगिकत्वेन प्रसंगवशात्=अन्वय होना अन्वाचय है। अनयोः=समुच्चय और अन्वाचय इन दोनों अर्थोंमें असामर्थ्यात् परस्पर में एकार्थीभावरूपसामर्थ्य परस्परशक्ति न होने से समास नहीं होता। क्योंकि समसनं पृथक्-पृथक् अर्थात् पदानां मिलित्वा एकार्थीभवनं समास है। उन दोनों में वृत्ति का अभाव है। (यत्र यत्र परिनिष्ठतपदेषु वृत्तिः) तत्र समासः समुच्चयः परस्पर निरपेक्ष है। अन्वाचय प्रधान गौणभाव है।

१ - इतरेतरयोगः=एक पदार्थका इतरस्मिन्=दूसरे पदार्थके साथ यो- सम्बन्धः मिलकर सहविवक्षा साथ बोलनेकी इच्छा हो मिलितानां परस्य सापेक्षताया- मन्वयः। पदार्थोंका (आपसमें मिलकर एकधर्मावच्छिन्न=एक ही क्रियामें अन्वय इतरेतरयोग है। यथा धवश्च खदिरश्च धवखदिरौ छिन्धिः। धव और खैर को एक साथ काटो। यहाँ धव और खदिर एक दूसरेके साथ मिलकर (किन्तु यह ध

पेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः। भिक्षामट गां चानयेति अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः। अनयोरसामर्थ्यान्न समासो। धवखदिरौ छिन्धीति मिलिता नामन्वय इतरेतरयोगः। संज्ञापरिभाषमिति। समूहः समाहारः॥ राजदन्तादिषु परम् ।२।२।३१। एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात् दन्तानां राजा-राजदन्तः। (धर्मादिष्वनियमः)। अर्थधर्मौ-धर्मार्थौ। दम्पती-जम्पती-जायापती। जायाशब्दस्य दम्भावो जम्भावश्च वा निपात्यते। आकृतिगणोऽयम्। द्वन्द्वे घि ।२।२।३२। द्वन्द्वे

है, यह खदिर है) ऐसा भेद होते हुए छेदन क्रिया में एक साथ अन्वित है। यहाँ एकार्थीभाव वृत्ति है। ४--समाहारः-समाहरणं (तिरोहितावयवगतसंख्यः समूहः) समाहारः। जहाँ सभी पदार्थकी अवयवगतसंख्या क्षिप जाय या समाप्त हो किन्तु समुदाय की संख्या बनी रहे उस समूहको समाहार कहते हैं। यथा संज्ञा च परिभाषा च अनयोः समाहारः संज्ञापरिभाषम् यहां पर अवयव की संख्या छिप गयी। समुदाय संख्या उद्बुद्ध हो गयी। इतरेतर योगमें समास किये गये पदार्थ की संख्या समुदाय में आरोपित होकर द्विवचन बहुबचनका प्रयोग संभव है। परन्तु समाहारद्वन्द्व में समस्यमानपदार्थकी संख्या समुदायके संख्यामें अन्तर्भूत हुई। समाहार और द्विगुका द्वन्द्व में क्या अन्तर है यत्र विग्रहे षष्ठ्यन्त पदे (पंचानां गवां समाहार इति) तत्र समाहारः द्विगुः। यत्र विग्रहे प्रथमान्तानां पदानां संज्ञा च परिभाषा च इति प्रयोगः तत्र समाहारो द्वन्द्वः। चकारके चारो अर्थ सोदाहरण सम्पन्न हुए। यह (संख्या) लौकिक विग्रहमें श्रुत, समासमें अश्रुत हैं। अनेक पदोंका भी द्वन्द्व होता है। इसमें पूर्वप्रयोग का नियम अनियत है। पूर्वप्रयोग का नियत नियम आगे प्रस्तुत कर रहे हैं। ३। राजदन्त—आदि शब्दोंमें पूर्वप्रयोगार्ह पहले प्रयोगके योग्य शब्दका परं बादमें प्रवेश हो। यथा=दन्तानां राजा (दाँतोंका राजा) राजदन्तास्तु चत्वारो दन्तानाम् उपरि स्थिता। चौड़े चारदाँत दांतो के राजा है। दन्त आंम् राजन् सु। षष्ठी सूत्रसे समास, नलोपादिः, समासविधायकषष्ठीसूत्रमें षष्ठीपद प्रथमान्त है अतः षष्ठ्यन्त दन्तशब्द को उपसर्जनसंज्ञा पूर्व प्रयोग प्राप्त, राजदन्तादिषु सूत्रसे पूर्वप्रयोगके योग्य दन्त शब्द का परे आगे प्रयोग हुआ। इसी तरह गुरुणां राजा राजगुरुः। वैद्यानां राजा, मन्त्रीणां राजा राजमन्त्रिः अध्यापकानां श्रेष्ठः श्रेष्ठाध्यापकः। यहाँ राजा के दांत या राजाके गुरु, अर्थ का भ्रम न हो। विशेष स्मरण से द्वन्द्वसमास में ऐसा ही नियम है।

(वा०) धर्मादिषु=धर्म अर्थ काम मोक्ष और उसके सदृश शब्दोंमें किसका प्रथम प्रयोग हो, इस विषयमें अनियम=नियम नहीं है। कोई भी पूर्व में रहे। अर्थश्च धर्मश्च, अर्थ सु धर्म सु। चार्थे द्वन्द्वः। इतरेतरयोग अर्थमें वर्तमान धर्मका अर्थके साथ समास प्रा० संज्ञा, सुलोप आदि कार्य। पूर्वप्रयोगः यस्य कस्य अपि अर्थधर्मौ धर्मार्थौ एतौ द्वावपि भवतः। ४। द्वन्द्व समास में जिसको घि संज्ञा

घिसंज्ञं पूर्वं स्यात् । हरिहरौ ॥ अजाद्यदन्तम् ।२।२।३३। ईशकृष्णौ । अल्पाच्तरम् ।२।२।३४। शिवकेशवौ ॥ पिता मात्रा १।२।७०। मात्रा सहोक्तौ पिता वा माता च पिता च पितरौ मातापितरौ (ऋतुनक्षत्राणां समाक्षराणामानुपूर्व्येण) ।

हुई हो उसका प्रथम प्रयोग हो । यथा-हरिश्च हरश्च हरि सु हर सु । द्वन्द्व समास (शिषो ध्यसखि) घिसंज्ञक हरिशब्द का पूर्वप्रयोग हरिहरौ उपकुरुतः । विष्णुशिव उपकार करते हैं । क्रियाकारक सम्बन्ध, इतरेतरयोगसम्बन्ध ।

। ६८५ । अजादिश्च आदन्तश्च अनयोः समाहारः (अजाद्यादन्तम्) अच् आदि में हो, अकार अन्तमें हो, ऐसे शब्दका द्वन्द्वमें पहले प्रयोग हो । ईश्वरश्च कृष्णश्च, ईश सु कृष्ण सु इत्यलौकिक विग्रह, द्वन्द्वसमास (ईश शब्द अजादि है अदन्त भी) सभीका पूर्वप्रयोग । द्विवचन ईशकृष्णौ युद्धचतः । शिव कृष्ण वाणासुर प्रसंग में युद्ध करते हैं । ६ । अल्पाच् समासपदों में अल्प अच् पूर्वमें रहे । शिवश्च केशवश्च (शिव सु केशव सु) द्वन्द्वसमास, अल्प अच् वाले शिवपद का पूर्वप्रयोग अल्पाच्तरं से हुआ । प्रासंज्ञा (औ) शिवकेशवौ परस्परं नमतः । शिवकेशव एक दूसरे को नमस्कार करते हैं ।

(७) पिता–माता के साथ उक्तौ=कथन होने पर पितापदका एकशेष विकल्पसे हो । माता च पिता च द्वन्द्वसमास, माताके साथ पिताका उच्चारण है । पितृपद का एकशेष । माताशब्द लुप्त यः शिष्यते (जो शेष रहता है) स लुप्यसमासार्थाभिधायी भवति । वह लुप्त हुए के अर्थ को बोलता है । पितृपद माताको भी कहेगा । अतः द्विवचने पितरौ धर्मं पालयतः । यदा नैकशेषः तदा मातापितरौ । पितुर्दशगुणा माता, गौरवेणातिरिच्यते, माता पिता से दशगुना अभ्यर्हित (पूज्य) हैं । मातृ-पितृऔ आनङ् ऋते द्वन्द्वे इतिमातृ ऋकारस्त आनङ् (आ) मातापितरौ इति एकशेषद्वन्द्वः ।

ऋतुनक्षत्रोंका समाक्षराणां = समानं सदृशमक्षरं येषां, समान अक्षर ही द्वन्द्वसमासमें अनुपूर्वेण=जिस क्रमसे उच्चारण हो उसी क्रमसे प्रयोग मान्य । हेमन्तश्च शिशिरश्च तीनों ऋतुओंका क्रमिक लोकप्रसिद्ध समान अक्षरसे तथा पूर्वविराम । कृत्तिका च रोहिणी च । सम अक्षर । नक्षत्रका तथा निवास जैसा था वैसा रहे, वार्तिकमें समान अक्षर क्यों पढ़ा, विषम अक्षरमें यथा उच्चरित न रहे, किन्तु अल्प अच्का पूर्वप्रयोग हो ग्रीष्मश्च वसन्तश्च ग्रीष्मवसन्तौ गतौ । विषम अक्षर में अल्प अच् ग्रीष्मका पूर्वनिपात । लघु अक्षर का भी पूर्वनिवास हो द्वन्द्वमें । कुशाश्च काशाश्च एतेषां समाहारः (कुशकाशं), लघु एकमात्र अच्वाला कुशका पूर्वप्रयोग । अभ्यर्हित श्रेष्ठ पूजितका पूर्वनिवास । तापसश्च पर्वतश्च तापसपर्वतौ स्तः । पर्वत जड़ है तापस चैतन्य, अपेक्षासे पूज्य । तापसका पूर्वनिवास । भाष्ये मातापितरौ पढ़ा । गर्भधारणपोषाभ्यां (पितुर्माता गरीयसी

हेमन्तशिशिरवसन्ताः। कृत्तिकारोहिण्यौ। समाक्षराणां किम्? ग्रीष्मवसन्तौ। लघ्वक्षरं पूर्वम्। कुशकाशम्। (अभ्यर्हितं च) तापसपर्वतौ। (वर्णानामानुपूर्व्येण)। ब्राह्मण क्षत्रिय-विट्-शूद्राः। (भ्रातुर्ज्यायसः)। युधिष्ठिरार्जुनौ। द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ।२।४।२। एषां द्वन्द्व एकवत्। पाणिपादम्। मार्दङ्गिकपाणविकम्। रथिकाश्वारोहम्। अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम् ।२।४।५। अध्ययनेन प्रत्यासन्ना आख्या येषां तेषां द्वन्द्व एकवत्। पदकमकम्। जातिरप्राणिनाम्

'स्मृतिसे माता श्रेष्ठ) वर्णानां (ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः वर्णाः, इत्यमरः) इनका आनुपूर्व्येण=जैसे क्रमसे पढ़े हैं, उत्पन्न है उसी क्रमसे रहे। प्रजापतिः अकामयत स मुखतस्त्रिवृत्तं निरमिमीत, तैत्तिरीये। भ्रातुः भाइयोंमें ज्यायसः जेठ भाईका पूर्वनिवास हो। युधिष्ठिरश्च अर्जुनश्च कृष्णं नमतः जेष्ठ भाईका पूर्वनिवास है।

।८। द्वन्द्वश्च प्राणी चेतन तुर्य वाद्य, सेना-देशरक्षक, अङ्गवाचकका द्वन्द्व समास में एकवचनान्त समुदायवाचक हो। पाणि (हाथ) अंग वाचक पाणी च पादौ च पाणिऔ पादऔ, अनयोः समाहारः द्वन्द्व समासे, पाणि अंगवाचक (हाथ पैर का) द्वन्द्वश्च प्राणितुर्य आदि से एकवद्भाव, स नपुंसकं समाहारे नपुंसक हो। पाणिपादं बध्नाति। मृदङ्गवादनं शिल्पं एषां (मृदंग बजाना स्वाभाविक कला हो जिनके) वेणुर्वादनं शिल्पमेषान्ते (वंशी बजाना कला हो जिनको) मार्दङ्गिकाश्च वैणविकाश्च एषां समाहारे अर्थे द्वन्द्वसमासे तूर्य-वाद्य का अंग मृदंगः, वंशी है मार्दङ्गिकवैणविकम्। रथिकाश्च अश्वारोहाश्च (रथवाले और घुड़सवार ये सेना के अंग हैं) अतः द्वन्द्वसमास एकवद्भाव रथिकाश्वारोहं पश्यामि। एक क्रिया में अनन्य का नियम पूरे द्वन्द्व में माननीय है।

अध्ययनतो (तृतीया अर्थमें तस्) अध्ययन के अविप्रकृष्टप्रत्यासन्न=समीपमें आख्या कथन हो उनका द्वन्द्वमें एकवचन हो। पदानि अधीयते पदकाः। क्रमानधीयते क्रमकाः क्रमादिभ्योः वुन्। पदकानां क्रमकाणां समाहारः। वेदके पद ओर क्रम उच्चारयिताका समुदाय। पदके वाद क्रमका अध्ययन। अध्ययन के समीपमें अध्येता का आरोप (पद पढ़कर क्रम पढ़ें) यह प्रत्यासत्ति है। अध्ययनतः क्यों? पितापुत्रौ, एकवत् न हो। प्रत्यासन्न समीप क्यों? याज्ञिकनैयायिकौ। दूर है, न एकवत्।

जातिः। जातिवाचिनां=षष्ठीका व्यत्ययसे प्रथमा अप्राणि=चेतनको छोड़कर जातिवाचकोंका द्वन्द्वमें एकवचन हो। धानाश्च शष्कुल्यश्च तासां समाहारः (धान, पूड़ीका ढेर) जाति अर्थमें एकवचन, नपुंसक ह्रस्व। चतनोंका समाहार हो तब एकवत् नहीं। विट् च शूद्राश्च समासे। यह सूत्र प्राणिभिन्न प्राणिसदृश द्रव्यजातिवालोंका एकवत् गुणगतजाति, क्रियागतजातिका एकवचन नहीं। विशिष्टलिङ्ग= विपूर्वकशिष धातु का भेद डालना अर्थ। इसी धातुसे ल्युट करके बना विशेषण और ण्यत् करके बना विशेष्यको भेदकभेद्य कहते हैं। अतः भिन्नलिंग वाले नदी-

।२।४।६। प्राणिवर्ज्यजातिवाचिनां द्वन्द्व एकवत् । धानाशष्कुलि । प्राणिनां तु-विट्-शूद्राः । विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः ।२।४।७। ग्रामवर्जनदीदेशवाचिनां भिन्नलिंगानां द्वन्द्व एकवत् ।उद्धयश्च इरावती च उद्धयेरावति । गङ्गाशोणम् । कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च कुरुकुरुक्षेत्रम् । क्षुद्रजन्तवः ।२।४।८। एषां द्वन्द्व एकवत् । यूकालिक्षम् । आ नकुलात्क्षुद्रजन्तवः ॥ येषां च विरोधः शाश्वतिकः ।२।४।९। एषां प्राग्वत् । अहिनकुलम् गोव्याघ्रम् । काकोलूकमित्यादौ परत्वात् विभाषा वृक्षेऽति प्राप्तं चकारेण बाध्यते । शूद्राणामनिरवसितानाम् ।२।४।१०। अवहिष्कृतानां

वाचकोंका द्वन्द्व हो, या देशवाचकोंका द्वन्द्व समास हो, उनके समाहार समासमें एकवचन हो। देशसे प्रसिद्ध जनपद, मान्य ग्राम)नहीं, ग्रामभिन्न ग्रामसदृश समुदायका शहर नगर। विशिष्टं लिंग येषां समाहारमें ही एकवत् उक्त है। यथा उद्ध्यो नद। नदी भी अर्थ, नदी, इरावती दोनों नदी वाचक है। समासे, नदी नदसे भिन्नलिंग। अतः एकवचन, नपुंसक ह्रस्व। गंगानदी और शोण नद है भिन्नालिंग समासमें एकवत् गङ्गाशोणं कुरवश्च पुलिंग है, कुरुक्षेत्रम् नपुंसक। शमासे एकवचन। क्षुद्राश्च जन्तवश्च ऐतेषां समाहारः छोटे जीवों का समुदाय समासमें एकवचन हो जाय। क्षुद्रजन्तु का निर्णय आ–नकुलात् = नेवलेसे लेकर कीटाणु तक क्षुद्र जन्तुः अत्र स्मर्यते क्षुद्रजन्तुरनवस्थिः स्यादथवा क्षुद्र एव यः। शतं वा प्रवृतौ येषां केचिदानकुलादपि। जो एक जगह स्थिर न हो, छोटा ही, सौ स्थलमें दौड़ता रहे। सर्व साधारण उदाहरण यूकाश्च लिक्षाश्च (घने केश बाल जटाके शिर भागमें श्वेदज पसीनेसे पैदा ढील लीख जूं प्रसिद्ध है) एकवचन, नपुंसक-ह्रस्व (१३) येषां जिन प्राणियों का विरोध और शत्रुता हो, कभी भी एक साथ न रहे, ऐसा शाश्वतिक शश्वतः भावः निरन्तर पर स्वाभाविक हो, उनके परस्पर समाहार द्वन्द्वमें एकवचन हो। छाया धूप अंधेरा प्रकाश, विरोधसे एकसाथ नहीं रहते। शाश्वतिक क्यों पढ़ा ? देवासुरैरमृतमम्बुनिधिर्ममन्थे। देवता दानवं अमृतके लिए समुद्र मन्थन करनेमें एकसाथ रहे, नित्य विरोध नहीं है। सांप नेवलेका नित्य स्वाभाविक विरोध। अहयश्च अकुलाश्च एतेषां समाहारः इनका समुदाय अहिन-कुलम्। सहज विरोधके अर्थ का सूचक एकवचन। गावश्च व्याघाश्च इनका समुदाय, नित्यबैर का सूचक एकवचन। काकाश्च उलूकाश्च काकोलूकं सहज विरोधका सूचक एकवचन। यद्यपि यहाँ विभाषावृक्षमृग आदि सूत्र गोमहिषं गोम-हिषाःमें चरितार्थं। येषाञ्च विराधः सूत्र अहिनकुलमें सफल। गोव्याघ्र में दोनों प्राप्त तब परत्वात् विभाषावृक्षमृग सूत्र प्राप्त होता है उसे बांधने के लिए येषां च सूत्रमें च पढ़ा ।१४। शूद्राणां=३ जातिसे भिन्न वर्णशङ्कर शूद्रत्व जाति नहीं। क्योंकि अनिरवसितानाम्=अवहिष्कृतानां सत्पात्र (छूनेपर अशुद्ध न हो) ऐसे शूद्रोंका समाहार द्वन्द्व समासमें एकवचन हो। यैर्भुक्तं पात्रं क्षारोदक-

शूद्राणां द्वन्द्वः प्राग्वत्। तक्षायस्कारम्। पात्राद् बहिष्कृतानां तु—चण्डालमृतपाः। **गवाश्वप्रभृतीनि च ।२।४।११।** यथोच्चारितानि तथैव साधूनि। दासीदास-मित्यादि। **विभाषा बृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराध-रोत्तराणाम् ।२।४।१२।** वृक्षादीनां सप्तानां द्वन्द्वः, अश्ववडवेत्यादि द्वन्द्वत्रयं च प्राग्वद्वा। बृक्षादौ विशेषाणामेव ग्रहणम्। प्लक्षन्यग्रोधम्-प्लक्षन्यग्रोधाः। रुरुपृषतम्-रुरुपृषताः। कुशकाशम्-कुशकाशाः। व्रीहियवम्-व्रीहियवाः। दधिघृतम्-दधिघृते। गोमहिषम्, गोमहिषाः। शुकबकम्—शुकबकाः। अश्ववडवम्—अश्ववडवौ।

प्रक्षालेन संस्कारेणापि न शुद्ध्यति ते निरवसिताः चाण्डालादयः। जिनके भोजन किये पात्र भस्म जलसे धोनेपर न शुद्ध हों। यैर्यस्तु भुक्त पात्रं क्षारोदक प्रक्षालनेन शुद्धयति से अनिरवसिता सत्शूद्र। यथा तक्षाणश्च अयश्काराश्च (बढ़ई और लोहार का समुदाय) समासे सत्शूद्र अर्थप्रकाश एकवचन (तक्षायस्कारम्)। जो पात्रात्=शुद्धतासे जलग्रहणसे बहिष्कृत हैं। वहाँ एकवत् नहीं होता। चण्डालाश्च मृतपाश्च एतेषां समाहारः। जीवजीवी जंगली चर्मकार, कसाइयों का समुदाय। धर्मशास्त्र में ये निषिद्ध है।

(६१५) गावश्व इत्यादि यथोच्चारितानि जैसे पढ़े गये वैसे साधु, निपातनसे। गावश्च अश्वाश्च इनका समुदाय गवाश्वं विभाषा वृक्षमृगसे विकल्प एकवत् प्राप्त था नित्यएकवचन, अवङ्। यदा न अवङ् सर्वत्रविभाषा गोः प्रकृतिभावे गोऽश्वः। दास्यश्च दासाश्च इनका समुदाय एकवचन। पुमान् स्त्रियाःसे एकशेष नहीं, निपातन से। आदि=गावश्च अविकाश्च गाय भेड़ों का समुदाय गवाविकं गवैडकम्।

(१६) विभाषा वृक्ष, द्वन्द्व आया। एक षष्ठी विषयभेदसे भिन्न है। अवयव-षष्टी वृक्ष मृग तृण धान्य व्यञ्जन पशु शकुनि उनका अवयवके साथ द्वन्द्व। अश्व-वडव पूर्वापर अधरोत्तर तीनका द्वन्द्वमें एकवत् हो। वृक्षादौ=वृक्ष तृण धान्य पशुके विषयमें विशेष (श्रेष्ठ, मान्य) का ग्रहण। वृक्ष द्वन्द्वका उदाहरण-प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च (पलाश बरगदका समुदाय) समासे एकवत्, विकल्पसे, पक्षे प्लक्षन्य-ग्रोधाः। जातिरप्राणिनां से नित्य एकवचन प्राप्त था। मृगका द्वन्द्व—रुरवश्च पृषताश्च समाहारः एतेषां रुरुपृषतम् मृगविशेषका झुण्ड। तृणका द्वन्द्व—कुशाश्च काशाश्च एकवचन। धान्यद्वन्द्व व्रीहयश्च यवाश्च व्रीहियवं, धान जौ की ढेर। व्यञ्जनका द्वन्द्व—दधि च घृतं च अनयोः समाहारः दही घी का ढेर। विकल्प एक-वचन, पक्षमें दधिघृते, दोवचन। पशुका—गावश्च महिषाश्च गायों भैंसोंका झुण्ड, सूत्रसे एकवचन, पक्षे गोमहिषाः। पक्षीका शुकाश्च वकाश्च एतेषां समाहारः। एकबचन, पक्षे बहुवचन। अश्वाश्च पक्षे वडवाश्च घोड़ाघोड़ीका झुण्ड। एक-वद्भाव पक्षे द्विवचन। अश्ववडवौ पूर्वपदवत्पुलिंग। पूर्वश्च अवरश्च अनयोः, समा-हारः पश्चात्का समुदाय। अधरश्च अनयो, समाहारः पश्चात्का समुदाय। अधरश्च

पूर्वापरम्—पूर्वापरे। अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे। (फलसेनावनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवदिति वाच्यम्) बदराणि चामलकानि च-बदरामलकम्। नेह—बदरामलके। रथिकाश्वारोहावित्यादि। न दधिपय आदीनि ।२।४।१४। नैकवत्स्युः। दधिपयसी। इध्माबर्हिषी। निपातनाद्दीर्घः—ऋक्सामे। वाङ्मनसे। आनङ् ऋतो द्वन्द्वे ।६।३।२५। विद्यायोनिसम्बन्धवाचिनामृदन्तानां द्वन्द्व आनङ् स्यादुत्तरपदे। होतापोतारौ। माता-

---

उत्तरश्च अनयोः समाहारः। इन सभीमें सूत्रसे एकवचन, पक्षमें यथायोग्यवचन। फल सेना एकवद्भाव, प्रकरणका अन्तिम नियम वार्तिक है। (फलसेनासे लेकर तृण तक। द्वन्द्वश्च प्राणितुर्य-जितने एकवचन करनेवाले हैं उनकी बहुबचनकी प्रकृति द्वन्द्वसे एकवचन हो। बहवः बहुवचनान्ताः प्रकृतिः=कारणं यस्य बहुप्रकृतिः एक वचन द्विवनकी प्रकृति हो तब वार्तिक नहीं लगता। फलका द्वन्द्व-बदरीफलानि आमलकीफलानि विकार प्रत्ययका 'फले लुक्' परे ङीप्का लुक्। तब बदराणि च आमलकानि च इनका ढेर (बदरामलकम्) बहुबचनान्तके नाते एकवचन हुआ, जातिरप्राणिनां सूत्रके एकवचनको बाधकर। बहुप्रकृतिका फल बोले नेह-यहाँ नहीं, बदरञ्च आमलकञ्च है एकवत् नहीं। यदि बहुबचनान्तका द्वन्द्व नहीं तब नित्य एकवत् भी नहीं। रथिकश्च अश्वारोहश्च सेनाके अंग है। किन्तु जातिका प्राधान्य न होनेसे न एकवत्। प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च बहुबचनान्त नहीं, एकवत् नहीं। इत्यादि। न दधि इत्यादिकोंका समाहार द्वन्द्व नहीं होता। दधि च पयश्च अनयोः समाहारः। दूध दहीका ढेर, नपुंसक, द्विवचन दधिपयसी, जातिसे नित्य, व्यञ्जनसे प्राप्त विकल्पको बांधकर निषेध। मधुसर्पिषी सर्पिर्मधुनी न एकवत् इध्मञ्च बर्हिश्च न एकवत्, किन्तु द्विवचने इध्मामें दीर्घनिपातन। ऋक्च साम च ऋक्सामे, दोनों वेद हैं उनका समुदाय एकवचन नहीं हुआ। अचतुरविचतुर-से अच्। वाक्च मनश्च वणीमनके निमित्त एकवचनका निषेध, समासान्त अच्। इस गणमें प्रजापती शिववैष्णवी इत्यादिमें समाहार का निषेध करके इतरेतरकी व्यवस्था मान्य।

आनङ्ऋतः विद्या=गुरुपरम्परा सम्बन्धवालोंका, योनि=जन्मसे सम्बन्ध वाले ऋदन्तोंके द्वन्द्वमें ऋको आनङ् हो उत्तरपदपरे। ऋतो=विद्यायोनीसम्बन्धेभ्यः की अनुवृत्ति, ऋतकी अनुवृत्ति होती ही पुनः ऋ पढ़ना, विद्या और योनि सम्बन्धी ऋको आनङ्। (अलुक्) उत्तरपदे आया। होता च पोता च होतापोतारौ हवन कर्ता, पवनकर्ताका विद्या द्वारा यज्ञसे सम्बन्ध, समास होनेपर सूत्रेण होतृ-ऋस्थाने आनङ् ङ् इत्। अ उच्चारणाय। ङिच्च अन्त आदेश, नलोप। नकार क्यों पढ़ा रपर न हो, उत्तरपद परे पोतृ है। एवं होता च पोता नेष्टा च उद्गाता च (हवन-

पित्तरौ। पुत्रे इत्यनुवृत्तेः-पितापुत्रौ ॥ देवताद्वन्द्वे च ।६।३।२६। इहोत्तरपदे पूर्वपदस्यानङ्। मित्रावरुणौ। (वायुशब्दप्रयोगे प्रतिषेधः) अग्निवायू वाटवग्नी। ईदग्नेः सोमवरुणयोः ।६।३।२७। देवताद्वन्द्व ईत्येव। अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः ।८।३।८२। अग्नेः परेषामेषां सस्य षः समासे। अग्निष्टुत्। अग्निष्टोमः। अग्नीषोमौ। अग्नीवरुणौ। इद् वृद्धौ ६।३।२८। वृद्धिमत्युत्तरपदे अग्नेरिदादेशो देवताद्वन्द्वे। अग्नामरुतौ देवते अस्य आग्निमारुतं कर्म। अग्नीवरुणौ देवते अस्य—आग्निवारुणम्। 'देवताद्वन्द्वे चे'त्युभयपदवृद्धिः। (विष्णौ न)। अग्ना-

---

कर्ता पवनकर्ता गानकर्ता) समासे उत्तरपद उद्गाता परे नेष्टके ऋको आनङ्, अन्य को आनङ् नहीं मध्यमपद परे होने से। योनि सम्बन्धका उदाहरण माता च माता च मातापितरौ उत्तरपद पितरौ परे मातृके ऋको आनङ्। पितृपितामहौ में आनङ् नहीं, ऋदन्तके सबका अवयव न होने से। यदि ऐसा पितापुत्रौ में आनङ् कैसे ? तब बोले पुत्रेऽन्यतरस्यां सूत्रसे मेढ़क उछालन्यायसे पुत्र आया। पुत्रपरे आनङ् अर्थ निकला, आनङ् हुआ पितापुत्रौ बना। देवता का द्वन्द्वसमास हो उत्तरपद परे आनङ् हो। मित्रञ्च वरुणश्च मित्रावरुणौ देवता दोनों है समासमें आनङ् हुआ मित्रा बना। वायुशब्द पूर्वपद या उत्तरपदमें हो तब आनङ् नहीं होता। अग्निश्च वायुश्च अग्निवायू दोनों देवता हैं। वायु के सम्बन्ध में आनङ् का निषेध। ईत् — देवताओं का द्वन्द्व समास हो तब सोम और वरुण उत्तरपद परे अग्निको ईत् आदेश हो आनङ् को बांधकर। अग्नेःस्तुत्स्तोम सोमाः। षष्ठी अर्थे प्रथमा। अग्नि से परे इनके सको स हो, एकार्थीभाव में। समासेऽङ्गुलेः से समास आया। अपदान्तस्य मूर्धन्य आया। सात्पदाद्योः षत्व निषेधका बाधक। अग्निः स्तूयते यस्मिन् अग्निष्टुत्। यज्ञविशेष जिसमें अग्निकी स्तुति। समास होनेपर अग्निसे परे स को ष हुआ। अग्नीनां स्तोमः स्तुतिः संस्थाविशेषः अग्निष्टोमः। समासमें अग्निसे परे स्टोमके सको ष। अग्निश्च सोमश्च अग्नि से भी पूज्य देवताओंका द्वद्वसमास अग्निको ईत्। अग्निश्च वरुणश्च अग्नीवरुणौ ईत्वे। सूत्रमें देवताद्वन्द्व क्यों ? अग्नि न सोम किसीका नाम हो, देवता न हो, तब ईत्व न हो। अग्निसोमौ। न दीर्घ अग्निसे न षत्व है।

।६२५। इद् बृद्धिमान् उत्तरपद हो अग्निको ईत् आदेश हो। देवता द्वन्द्व अर्थमें। उच्चरणार्थ विधीयमान सवर्णको स्वीकार नहीं करता। अग्निश्च मरुतश्च अग्नामरुतौ। देवताद्वन्द्वे आनङ्, तौ देवते यस्य, सास्य देवता अण् आदिवृद्धि। आग्निमारुतं वृद्धिमान् उत्तरपद मारुत है अग्निको इत्। एवं अग्निश्च ईत्वे अग्नीवरुणौ देवके यस्य अग्नीवारुणम्। यहां देवता द्वन्द्वे का सूत्रसे दोनों पदकी वृद्धि है। अग्निश्च विष्णुश्च अग्नाविष्णू (आनङ्) तौ देवते अस्य, देवता अर्थ अण देवता द्वन्द्वे च उभयपदवृद्धिः (आग्नावैष्णवं) हविः विष्णुपरे इत्वका निषेध कर आनङ ही हुआ।

वैष्णवम्। दिवो द्यावा ।६।३।२९। देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे। द्यावाभूमी। मातरपितरावुदीचाम् ।६।३।३२। उदीचां किम् ? मातापितरौ। द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे ।५।४।१०६। चवर्गान्तद्षहान्ताच्च द्वन्द्वाट्टच् समाहारे। वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्। छत्रोपानहम्। समाहारे किम् ? प्रावृट्शरदौ। इति द्वन्द्वसमासप्रकरणम्।

देवताद्वन्द्वमें दिवसे परे आनङ् हो, उत्तरपदपरे। द्यौश्च भूमिश्च द्यावाभूमी समासे द्यौ को द्यावा आदेश। द्यौश्च क्षामा च विग्रह (क्षामा भूमि पर्यायः)। वेदे दिवको द्यावा आदेश। षष्ठ्यास्तु सुपां सुलुक् आदेशा देवता द्वन्द्वे च पूर्वोत्तर पदयोः प्रकृतिस्वरः। मातरपितरौ उत्तरदिशा वालोंके मतमें समासमें मातृशब्दको अरङ् हो, तब वह मातरपितरौ बना। जब उत्तर दिशावालों का मत नहीं रहा तब ऋत आनङ् माताच पिताच मातापितरौ।

।९। द्वन्द्वाचुदषहान्तात्—चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) और दषह ये अन्त में हो, ऐसे द्वन्द्व से टच् (अ) हो सामहार अर्थ में। वाक्च त्वक्च वाणी और त्वचा (स्पर्शग्राहक इन्द्रिय चर्म) वाचसु समाहार अर्थमें द्वन्द्वसमास। चवर्गान्त द्वन्द्वसे टच्। अकारान्त शब्द। चोः कुः से कुत्व, नपुंसकैकवचनं (वाक्त्वचं) जीर्यते वाणी स्पर्शेन्द्रिय शिथिल हो रहे हैं। त्वक् च स्रक्च तयोः समाहारः चर्म इन्द्रिय और माला पदों का समाहार द्वन्द्व, कुत्व, टच्, त्वक्स्रजं सहैव पश्यामि। शमीदृषदम्। समीच् दृषद् च समाहारः शमी लकड़ी और पत्थर इनके मिलजाने अर्थमें द्वन्द्वः। दकारान्त से टच् 'अ' समाहारे नपुं० इत्यादिः। वाक् च त्विट् च वाक्त्विषम् वाणी और चमक दोनोंका (वाच् सु त्विष् सु) समाहारे—मेल अर्थमें द्वन्द्वसमासः, षान्त होने से टच् आदिः। छत्रञ्च उपाहनौ च एषां समाहारः, द्वन्द्वसमासे टच् नपुं० एक छात्रोपाहनम् आपणे क्रीणामि। सूत्रमें एक समाहार क्यों पढ़ा ? इसलिए कि प्रावृट्शरदौ। प्रावृट् च शरच्च—वर्षा और शरद ऋतु, इस इतरेतरयोगद्वन्द्व में टच न हो। अतः नपुंसक एकवचन नहीं हुआ।

इति प्रभाकरमिश्रकृतयां प्रभाकरीटीकायां द्वन्द्वसमाप्तः।

विरुपाणामपि

समान अर्थवालोंका एकशेष कहा गया। अर्थ भेद में भी, शब्द एकरूप हो एकशेष कहा। यदि एक अर्थहो शब्द भिन्नहो। उसका भी एकशेष बोलें वक्रदण्ड और कुटिलदण्ड दोनों का एक अर्थ टेढ़ीं लकड़ी लाठी। शब्द भेद है अन्यतरः शिष्यते=कोइ एक शेष रहे अतः, या वक्रदण्डौ दोनों सत्य। अतः रूप्यते बोध्यते रूपमर्थ एकः विरूपः।

वृद्धोः। रूपतोअर्थतश्च भेदेऽपि=शब्द भेद, अर्थ भेद रहने पर भी कहां-कहां एक शेष होता हैं। यूना=युवप्रत्यान्त फक् फिञ् अन्त हो सहोक्तौ साथ बोलनेकी

अथैकशेषसमासप्रकरणम्

(विरूपाणामपि समानार्थानाम्)। वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च–वक्रदण्डौ-कुटिलदण्डौ। वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः ।१।२।६५। यूना सहोक्तो गोत्रं शिष्यते गोत्रयुवप्रत्ययमात्रकृतं चेत्तयोः कृत्स्नं वैरूप्यं स्यात्। गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च–गार्ग्यौ। वृद्धः किम्? गर्गगार्ग्यायणौ। यूना किम? गर्गगार्ग्यौ। कृत्स्नं किम्? गार्ग्यवात्स्यायनौ। स्त्रीपुंवच्च ।१।२।६६। यूना सहोक्तो वृद्धा

इच्छा हो, तो गोत्रसंज्ञक शेष रहें, युवप्रत्ययान्तका लोप हो। वृद्धका अर्थ अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रं से गोत्रसंज्ञा है। प्राचीनों ने उसी गोत्रको वृद्धकहा। अपत्यमन्तर्हितं वृद्धं, न पतन्ति पितरो येन तदपत्यं, पुत्रपौत्र प्रपौत्रादि अपत्य संतान परंपरा है। जिससे पितर प्रसन्न होते हैं उसी अपत्य के अन्तरित=भीतर प्रविष्ट पौत्रको गोत्रसंज्ञा हो। वृद्ध पूर्वाचार्य सम्मत गोत्र का पर्याय है युवा=युवसंज्ञाके साथ सहयुक्त अप्रधाने च तृतीया। जीवति सु वंश्ये युवा। वंशे भवः वंश्यः प्रपौत्र, तीसरी पीढ़ीसे परम्परा, पितामह प्रपितामहं वृद्धप्रपितामह जीवित हों, तब युवसंज्ञा। उसका फल फक् फिञ आदि गोत्र हों। यूना नहीं पढ़ा, अपत्याधिकारसे अलग अन्यत्र लौकिकगोत्र लेनेके लिये। विशेषः=वैरूप्यं शब्दभेदः तल्लक्षण=होना चाहिये। स गोत्रप्रत्ययः युवप्रत्ययश्च लक्षणं निमित्तं भेदकारणं यस्य, यदि भेदका कारण दोनों प्रत्यय ही हों यञ् फिञ् आदि, या अन्य कोई। इसलिये कहा कि गोत्रप्रत्यय युवप्रत्ययसे ही किया हुआ वैरूप्य हो। एव का अर्थ कृत्स्नं पूर्णभेद है यथा गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः गोत्र अगली पीढ़ी की परम्परा अर्थमें गर्गादिभ्यो यञ् गार्ग्यः। गर्ग वंश का पौत्र आदिगोत्रसे रूप बना। इसके विरुद्ध अर्थशब्द भेदसहित रूप गार्ग्यस्यापत्यं युवा चौथी पीढ़ीकी युवसंज्ञा होती है। यदि प्रपितामह वृद्धिप्रपितामह जीवित हो। तब उस अर्थमें यञ् से फक–आयन गार्ग्यायणः। गर्गगोत्रमें चौथी पीढ़ीसे अर्थभेद शब्दभेद प्रत्ययसे हुआ। इन दोनोंके बीच गोत्रं शिष्यते गार्ग्यौ। उसका अर्थ गर्गकुलका पौत्रप्रपौत्रौ स्तः। सूत्रसे वृद्ध क्यों पढ़ा, गोत्रके साथ सह विवक्षा हो, एक शेष रहे ऐसा क्यों? गर्गश्च गार्ग्यायणश्च यहां एक शेष न हो। दोनों में भेद, युवप्रत्यय से ही फिञ् है। यदि वृद्धको गोत्र नहीं कहेंगे, यहाँ भी एकशेष होगा। न गोत्रं, नैकशेषः। यूना किं? ठक् फिञ् प्रत्ययके भेद से वहाँ वैरूप्य क्यों कहा? गर्गश्च गार्ग्यश्च तहाँ एकशेष न हो। क्योंकि गोत्रप्रत्यय यञसे ही विरूप है। युवके साथ न होंनेसे एकशेष नहीं हुआ। कृत्स्नं=सम्पूर्णवैरूप्य ऐसा क्यों? गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। वत्सस्य-वात्स्यः गर्गादि–यञ्। वत्सस्यापत्यं युवा वात्स्यायनः, फक्। गार्ग्यश्च वात्स्यायनश्च यहाँ गोत्र युव प्रत्ययसे ही भेद नहीं, क्योंकि प्रकृतिके विरूपमें गोत्र युवमात्र कारण नहीं अतो न शेषः।

स्त्री। वृद्धो यूना आया वृद्ध स्त्री बना। यूना=युवसंज्ञक (फक् फिञ्) प्रत्य-

स्त्री शिष्यते तदर्थश्च पुंवत् । गार्ग्यी च गार्ग्यायणी च—गर्गाः ॥ **पुमान् स्त्रिया** ।१।२।६७। स्त्रिया सहोक्तौ पुमान् शिष्यते, तल्लक्षण एव विशेषश्चेत् । हंसा च हंसश्च—हंसौ ॥ **भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम्** ।१।२।६८। भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ । पुत्रश्च दुहिता च-पुत्रौ ॥ **नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्** ।१।२।६९। अक्लीबेन सहोक्तौ क्लीबं शिष्यते, तच्च वा एकवत् स्यात्तल्लक्षण एव विशेषश्चेत । शुक्लः पटः, शुक्ला शाटी, शुक्लं वस्त्रम्, तदिदं शुक्लम्–तानीमानि शुक्लानि ॥ **पिता मात्रा** ।१।२।७०। मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते । माता च पिता च–पितरौ–मातापितरौ । **श्वसुरः श्वश्र्वा** ।१।२।७१। श्वश्र्वा सहोक्तौ श्वशुरौ

यान्तके साथ बोलनेकी इच्छा हो, तब वृद्धा=गोत्रसंज्ञक स्त्रीलिंग शेष रहता है । स्त्री धर्मसे अधिक विरूप है । पूर्वसे शेष प्राप्त नहीं अतः यह सूत्र । तदर्थः=तस्य शिष्यमाणस्य-शेष बचे स्त्री गोत्रप्रत्ययान्त का पुंवत्=पुलिंग की तरह हो । उसका स्फोरक द्विवचानान्त विग्रह, गर्गस्यापत्यं गार्गी, लुक् यञश्च ङीप् । तथा गार्ग्यायणी गर्गसे यञ् उससे युवापत्य अर्थमें फक् । दोनों में वृद्धा=गोत्रवाली स्त्री शेष रही, पुलिंग हुआ । स्त्री अ अधिक होने पर भी शेष गर्गाः ।

पुमान् वृद्धो युना हटा । सरूपाणां आया, अतः स्त्रलिङ्गके साथ कहा गया पुरुष धर्म शेष रहता है । तल्लक्षण एव विशेषः=स्त्री पुरुष धर्म मात्रसे विरूप भेद हों तब पुम्का शेष । हंसी और हंसकी साथमें अन्वय हो हंस शेष रहे । स्त्री-पुरुषकृत्विरूपसे सरूपाणां नहीं लगा । माता—पालनेवाली; माता—तौलने वाला दोनोंमें एकशेष नहीं, इक्कीस विभक्तिमें सामान रूप न होने से । हंसश्च वरटाच यहां भी न एकशेषः । अन्यथा अतिप्रसङ्ग होता ।

भातृ=स्वसृ बहन, दुहतृ लड़कीके साथ कहे हुए भ्राता पुत्र शेष रहे । यहाँ न सरूप, न विरूप है पूर्वसे प्राप्त न था । अतः यह सूत्र । भ्राता और स्वसा–भाई और बहन है भ्रातरौ स्तः । स्वसाका लोप हुआ । भ्रातरौ दोनों अर्थको कहेगा । पुत्रश्च दुहिताच बेटा बेटी की इच्छामें पुत्र शेष रहा ।

नपुंसकका अनपुंसकके साथ सह इच्छामें नपुंसक शेष रहे, तत्व=वह एक-वचन विकल्पसे हो, तल्लक्षण=नपुंसक भेद विरूपमें कारण हो । शुक्लः शुक्ला शुक्लं विग्रह पटः, शाटी वस्त्रं, तीनों लिङ्गोंका सूचक (गुणेशुक्लादयः पुंसि गुण-लिङ्गास्तु तद्वति) तीनोंमें नपुंसक शेष रहा, लिङ्गके कारण विरूप भी है । तदिदं शुक्लं या जो तीनो लिङ्गके गुणका सूचक विशेष । बहुवचनमें शुक्लाः शुक्लाः शुक्लानि च बहुबचन । एवं स च सा च तच्च तत्=अयञ्च इयञ्च इमानि । तीनों लिंगके साथ इच्छामें नपुंसकका शेष । समाहार में एकशेष नहीं होता । अनपुंसक क्यों ? शुक्लञ्च २ शुक्ले एकवत् न हो । जातिपक्षे भाष्ये प्रत्याख्यातः एकशेषः । पिता माताके साथमें पिताका विकल्प एकशेष । माता और पिताके

वा शिष्यते। श्वश्रूश्च श्वशुरश्च–श्वशुरौ-श्वश्रूश्वशुरौ। त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ।१।२।७२। सर्वैः सहोक्तौ त्यदादीनि शिष्यन्ते। स च देवदत्तश्च–तौ॥ त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ यत्परं तच्छिष्यते)। स च यश्च—यौ॥ (पूर्वशेषोऽपि दृश्यते)। इति भाष्यम्। स च यश्च—तौ॥ (त्यदादितः शेषे पुंनपुंसकतो लिङ्गवचनानि)। सा च देवदत्तश्च–तौ। तच्च देवदत्ता च यज्ञदत्तश्च–तानि॥ ग्राम्यपशुसंघेष्वतरुणेषु स्त्री ।१।२।७३। एषु सहविवक्षायां स्त्री शिष्यते। गाव इमाः। ग्राम्येति किम्? रुरव इमे। पशुग्रहणं किम्? ब्रह्मणा इमे। संघेषु किम्?

सहभावमें पिता रह गये। द्विवचने पितरौ। यदा न एकशेषः तदा मातापितरौ। पितुर्दशगुणामाता गौरवेण अतिरिच्यते। माता पूजित है पूर्वनिपात, आनङ् भी।

श्वसुर=सासके साथ ससुरका विकल्पसे शेष हो। दोनो विरूप जान पड़े तब, जब एक शेष, रहा तब श्वसुरौ। पक्षमें दूसरा रूप श्वश्रूः पूर्वज पत्नीच मातृतुल्या प्रकीर्तिता। अभ्यर्हितं च पूर्वनिपात। त्यदादीनि सर्वैः=सभीके साथ कहे गये (साथ विवक्षा में) त्यत् तद् यद् इत्यादि नित्य एक शेष होते हैं। जैसे स च देवदत्तश्च तौ पठतः। त्यदादि=तत्का शेष, देवदत्त लुप्त। तौ पठतः। तद्देवदत्तौ नहीं बना। सर्वैः क्यों? केवल त्यदादिमें ही सहभाव न समझा जाय। त्यादादी-नाम्=त्यद् तद् यद् इत्यादि गणपठितके बीच सह भाव हो, तब यत्परं=जो परमें पढ़ा हो वही शेष रहे परं कार्यम्। सच यश्च वह और जो भी। सहभावमें परमें यत् शेष रहा। सा च या च विग्रहमें भी पर होनेसे यत् शेष रहा। परं कार्यका इष्टं कार्यम् अर्थ है। पूर्वके एकशेषसे अनुकूल अर्थ तो तब पूर्वशेषोऽपि=पूर्वका भी एकशेष होता है। स च यश्च पूर्वमें तद् ही शेष रहा, यत् लुप्त हुआ। इसमे प्रमाण-अहं च भवाश्च आवाम् अस्मद ही शेष रहा; भवत् लुप्त हुआ। त्यदादितः षष्ठी अर्थ तस् त्यदादिगणमें स्त्रीके शेषमें भी सहभाव शेष हो, उनमें जो पुरुष, जो नपुंसक उनके अनुकूल लिंग और प्रातिपदिक होते हैं। सा और देवदत्तके साथमें सा का मूल तद् शेष, देवदत्तका लोप। उसका पुलिंग तौ। एवं उच्च च देवदत्ता यज्ञदत्ताके साथ समास। नपुंसकलिंग। जो शेष रहा तानि।

ग्राम्यपशुसंघ–अतरुणेषु युवा तगड़े न हों, तब ग्रामे भवः ग्राम्यः देहाती और पशु समुदायके साथ स्त्री शेष होती है। पुमान् स्त्रियाः को बांधकर। गौश्च–२ पुं० स्त्री गाय साथमें इष्ट है। पुमान् स्त्रियाः को बांधकर स्त्रीगौः शेष। लोप हुए को भी कहनेके लिए जस् गावः। स्त्री शेष हो, या पुरुष, कोई भेद नहीं। बोले इमाः त्यदादितः शेष नहीं होता। गावः इमा इमे च इमाश्च इमाः, भाष्य-प्रयोगसे रुरव इमे। रुरुः कृष्णः मृगः गाँवका पशु नहीं है स्त्री शेष नहीं किन्तु पुमान्का शेष उसका अनुप्रयोग इमे। पशु क्यों पढ़ा? ब्राह्मणी च ब्राह्मणाश्च ब्राह्मणाः इमे। पशु नहीं, न स्त्रीकेष किन्तु स्त्रीके साथ पुरुषका शेष। अन्यथा

एतौ गावौ। अतरुणेषु किम्? वत्सा इमे॥ (अनेकशफेष्विति वाच्यम्)। अश्वा इमे॥

इत्येकशेषसमासप्रकरणम्।

अथ समासान्तप्रकरणम्

ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ।५।४।७४। ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः, अक्षे या धूस्तदन्तस्य न। अर्धर्चः अनृचबह्वृचावध्येतर्येव। नेह—अनृक् साम। अह्वृक् सूक्तम्। विष्णुपुरम्। विमलापं सरः॥ द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप

ब्राह्मण्यः इमाः। संघ समुदाय क्यों, एतौ गावौ स्त्री० पु० के साथ पढ़ी है। संघ नहीं स्त्रीशेष भी नहीं। बहूनां समुदायों संघः। स्त्रीशेष होता, एते अनुप्रयोग बनता। अतरुण क्यों? वत्साः इमे। वत्साश्च २ इति विग्रहे तरुण युवा है स्त्री होता इमाः अनुप्रयोग होता। शफेषु=अनेक खुर हों, तभी स्त्रीशेष कहें। एकशफ खुर घोड़ेका है वहाँ ग्राम पशु सूत्र नहीं लगता अश्वाश्च २ अश्वाः इमे। एकशफ स्त्रीशेष नहीं। इमे पुलिंग अनुप्रयोग। इति एकशेषसमासप्रकरणम्॥

अथसमासान्ताः समासस्य अन्तः समासान्तः प्रत्ययः प्रारभ्यते।

।९९०। **ऋक्च** आनक्षे अ अनक्षे। अ-अप्रत्यय हो, अनक्षे अक्ष (चक्र, धुरा) को छोड़कर। इतिक्षेदः ऐसा विभाग है। ऋगाद्यन्तस्य ऋच् (मन्त्र) विरूपाणामपि। पुरः ग्राम। अप्—जल, धुर, चक्का और पथिन् ये शब्द जिस समास के अन्तमें हों उनसे (अ) हो, वह समासका अन्त अवयव माना जाय। परन्तु अक्ष (रथ का चक्र) उसका मुख्य धुर शब्द अन्तमें न हो। क्रमशः उदाहरण–ऋचाम् अर्धः अर्धर्चः मंत्र का आधा। षष्ठी समास, अप्रत्यये, अथवा अर्धं नपुंसकमिति समास, सुलोप, गुण ऋक्पूब्ध्-सूत्रमे अप्रत्यय अर्धर्चादयः पुंसि इति नियमेन पुलिङ्ग अर्धर्च विष्णोः पूः (विष्णु भगवान् की नगरी) अत्र षष्ठी तत्पुरुषः समासादि कार्यं ऋक्पूइति 'अ' प्रत्यये। परवल्लिंगमिति नपुंसकासंभवात्। कर्णपुरम्—कानपुर। लक्ष्मणपुरम् -लखनऊ। नागपुरम्। विमलाः आपो जालानि यत्र तत् विमलापं सरः तड़ागः। निर्मलजल वाला तालाब। विमलयशः अपयशः समास समासान्त अप्रत्यये। सरः विशेषणानुसारी लिंगवचन राज्ञोधू राजधुरा (राजाओं का भार कर्तव्य पृथ्वीपालन) षष्ठीसमास, अप्रत्यय टाप्, राजधुरा। धूः स्त्री क्लीवे यानमुखम् इत्यमरः। सूत्र मे अ अनक्षे इस निषेध, अंशसे अक्षधूः में समासान्त अप्रत्यय नहीं हुआ। अक्षश्चक्रं तस्य धूः अग्रभागः। (रथ पहिए का अगलाभाग) अक्षधूः दृढधूः दृढ़ा धूः यस्य (मजबूत धुरा है जिसका रथ नाभिछिद्रम्। बहुव्रीहिसमास अप्रत्यय प्राप्त अनक्षे सेति निषेध। सख्युः पन्था इति सखिपथः मित्र का मार्ग। सामान्य सम्बन्ध। मित्रसंबंधी रास्ता। सखि ङसि पथिम् सु। षष्ठी समास, समासान्त अप्रत्ययः! भस्य टेर्लोपे विभक्तिकार्यं सखिपथः प्रशंसनीयोऽस्ति। रम्याः पन्थानो यस्य (रमणीय रास्ते वाला देश)

ईत् ।६।३।९७। द्वीपम् । अन्तरीपम् । प्रतीपम् । समीपम् । (अवर्णान्ताद्वा) । प्रेपम् प्रापम् ॥ ऊदनोर्देशे ।६।४।९८। अनूपो देशः । राजधुरा । अक्षे तु--अक्षधूः । दृढधूरक्षः । सखिपथः । रम्यपथो देशः ॥ अच् प्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्नः ।५।४। ७५। प्रतिसामम् । अनुसामम् । अवसामम् । प्रतिलोमम् । अनुलोमम् । अवलोमम् । (कृष्णोदक्पाण्डुसंख्यापूर्वाया भूमेरजिष्यते) कृष्णभूमः । उदग्भुमः । पाण्डु-

---

अनृचः=अविद्यमानाः ऋचो यस्य बह्वृचः ऋच यस्य बह्वृचः । ऋग्वेदकी शाखाका अध्ययनकर्ता अर्थ में ही, 'अ' प्रत्यय हो। इस नियमका फल नेह=यहाँ नहीं हुआ, अविद्यमानाः ऋचो यस्मिन् अनृक्साम । यहाँ ऋग्वेद अध्ययनकर्त्ता अर्थ नहीं है । ऋचि-अध्यूढं प्रजापतेर्हृदयं साम । मंत्र प्रजापतिका हृदय न हो, वह साम गायन यदि समासान्त अप्रत्यय नहीं रहेगा तब शेषद्विभाषासे कप् अनृचकः भी होगा । बह्वृचःऋचो यस्मिन् बहु-ऋक्सूक्तम् बहुत मन्त्रोंवाला देवस्तुति । द्व्यन्त=द्वि, अन्त और उपसर्ग इनसे परे कप्को ईत् यहाँ अप् कृत समासान्त=प्रत्यय अन्तमें अवश्य हो । अतः येनविधिः सूत्रमें आपस्तिष्ठन्ति स्वापस्तिष्ठन्ति प्रमाण, वहाँ अप अकारान्त है । आदेः परस्यसे आदि अ को ही ई होगा । द्वीपं द्वयोः पार्श्वयोः गता आपो यस्मिन्स्थले दो तरफसे पानी भरा हो जिसमें इससे व्याधिकरण-विषम-विभक्तिकी बहुब्रीहि सूत्रसे अप्रत्यय । द्व्यन्तसे ईत् सवर्णदीर्घ द्वीपम् । अन्तर्गता आपो यस्मिन् अन्तरीपं भीतर भरा जलका स्थान जलखाता समास 'अ' अप्के अ को ई । प्रतिकूला आपो यस्मिन्समीपं त्रिवेणी संगम । सर्वत्रसमास; अन्त 'अ' अप्के आदि अ को ई होगा ।

अवर्णान्तात्=अकारान्त उपसर्गसे परे अपस्य=अपके अ को ई विकल्प हो । प्रगताः आपो यस्मिन्प्रापं (बहुत बड़ा जल का बाँध) समासे समासान्त 'अ' । प्र अवर्णान्त है अपके अ को ई, गुण प्रेपम् । जब इत्व नहीं तब दीर्घ प्रापं, बाढ़का स्थान । परागता आपो यस्य लौटा हुआ जलवाला स्थान । यहाँ भी समास 'अ' विकल्प ईत्, गुण परेपं पक्षे दीर्घे परापम् । ऊदनोः अनु० से परे अप्के अको ऊत् हो देश अर्थमें । ईत्को बाँधकर । आदेः परस्य । अनुकूला आपो यस्मिन्देशे स अनूपः । सर्वप्रिय जलवाला, समास, 'अ' ईको बाधकर सूत्रसे ऊ, सवर्णदीर्घ । जलप्रायमनूपः स्यादित्मरः अतप्तो गोमान् गोभिः इति नावगृहणन्ति केचित् । सूत्रोंमें अपका प्रपञ्च पूर्ण । अच् प्रति अनु अव पूर्वमें, सामन् लोमन् अन्तमें हो, ऐसे समाससे अच् कहें । प्रतिगतं साम प्रतिसामं समासे प्रतिपूर्वक समान्से अच् तद्धित परे टिलोपे । अनुगतं साम अवसामं अच् टिलोप । प्रतिगतं लोम प्रतिलोमं विपरीत रोंगटे, अनुगतं लोम अनुलोमं अनुकुल अर्थ । अवगतं लोम अवलोमं कृष्णप्रतिकूल । अनुकूल आदि अर्थ समास होने पर अच् टिलोप सबमें । प्रामाणिक वचन कृष्ण काला, ऊदक् पाण्डु-सफेद और संख्या पूर्वमें हो, भूमि अन्तमें ऐसे समास से अच्

भूमः। द्विभूमः। त्रिभूमः प्रासादः॥ (**संख्याया नदीगोदावरीभ्यां च**)। पञ्च-नदम्। सप्तगोदावरम्। अजिति योगविभागदन्यत्रापि-पद्मनाभः। **अक्ष्णोऽदर्श-नात्** ।५।४।७६। अचक्षुःपर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात्। गवामक्षीव--गवाक्षः। अचतुर-

---

होंना इष्ट है। कृष्णभूमिर्यस्य कृष्णभूमः प्रासादः (काली भूमि वाली महल) समासे वचनसे अच्। टिलोप स्वादिः। ऊदीची भूमिर्यस्य उत्तरदिशांकी भूमिवाला महल। अच् टिलकोप। पाण्डुः भूमिर्यस्य पाण्डु भूमः ग्रामः। द्वे भूमः समाजः तिस्रोभूमयो यस्य त्रिभूमः प्रासादः। सभीमें समास, अच् टिलोप स्वादिकार्य समझे (वा०) संख्या का नदी और गोदावरी शब्दके साथ समास होने पर अच् होना पसन्द है। पञ्चानां नदीनां समाहारः पञ्चनंदम् एवं सप्तानां गोदावरीणां समाहारः सप्तगोदावरं पाँच नदीयों, का समुदाय, सात गोदावरीका समुदाय। नदीभिश्चसे अव्ययीभाव समास। वार्तिक से अच्। यस्येति च इलोपे। सु को अम् नाव्ययीभावात्सूत्रसे। अचिके योगविभागसे अत्यन्त भी अच् इष्ट है। पद्मं नाभौ यस्य विष्णुके नाभिमें कमल है। अच् इलोपे। यह योग विभाग भाष्यमें देखा नहीं गया अतः पृषोदरादीनि यथोपदृष्टंसे सिद्ध। जैसा उपदेश वैसा मान्य। रम्यपथः बहुव्रीहिसमासे अप्रत्यये टिलोप **अक्ष्णो** अदर्शनात्—दर्शन अर्थ में प्रसिद्ध न हो अचक्षुपर्यायात् [आंख] अर्थसे भिन्न अक्षिशब्दसे अच्प्रत्यय हो। वह समासांत माना जाय। गवाम् आक्षी इव (गाय की आँख की तरह) खिड़की, झरोखा, गौंखा, गवाक्षः। षष्ठीतत्पुरुषसमास, यहाँ अक्षशब्द के नेत्र भिन्न अक्ष सदृश अर्थसे समासान्त अच् हुआ। सुपोलुक् आदिः। गवाक्षः। वातायनं हवादार

अचतुर विचतुर वादि २५ शब्दको निपातनसे (समास) अच टिलोग आदि हो। आरम्भके तीन बहुव्रीहि में ही मान्य। तत्पुरुषमें अचत्वारः द्विचत्वारः सुचत्वारः आदि होते हैं। अविद्यमानानि=अनुपस्थित है ४ जिसके वे अचतुरः समास, विद्यमानपदका लोप। 'अचतुरः—सूत्रेण अच् आदि, निपातनसे। विगतानि चत्वारि यस्य चार वस्तु खो गयी है जिसकी' विचतुरः समासे अच् आदि। शोभ-नानि चत्वारि यस्य। समासे न पूजनात् के निषेध को बाधकर अच् आदि निपातनसे। अच्छी चार वस्तु है जिसकी। वार्तिक त्र्युपा=त्रि और उप पूर्वमें हो उससे परे चतुर शब्दसे अच् हो। त्रयो वा चत्वारो वा त्रिचतुरा ३ या ४ 'संख्या-व्यय'—बहुब्रीहि समासे डच् को बाधकर निपातनसे अच्। डच् होता टिलोपहो जाता। ४ समीपमें जो है वे उपचतुराः ३ या ५ लगभग ४ पूर्वंद्व मासादिः। ततः उसके बाद ११-द्वन्द्व ही है। यह भाष्यवचन। स्त्री च पुमांश्च द्वन्द्व समासे, बड़े सूत्रसे अच् आदि निपातनसे। अच न होता, स्त्री० बनता। धेनुश्च अनड्वांश्च गया और बैल धेन्वनडुहो। अच् होने पर द्विवचन औ। नहीं तो अनड्वाहौ बनता।

विचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः । ५ । ४ । ७७ । एते पञ्चविंशतिरजन्ता निपात्यन्ते । आद्यास्त्रयो बहुव्रीहयः । अविद्यमानानि चत्वार्यस्य—अचतुरः । विगतानि चत्वार्यस्य—विचतुरः । सुचतुरः ॥ (त्र्युपाभ्यां चतुरोऽजिष्यते) । त्रिचतुराः । चतुर्णां समीपेऽपचतुराः । तत एकादश द्वन्द्वाः—स्त्रीपुंसौ । धेन्वनडुहौ । ऋक्सामे । वाङ्मनसे । अक्षिणी च भ्रुवौ चअक्षिभ्रुवम् । दाराश्च गावश्च—दारगवम् । ऊरू च अष्ठीवन्तौ च—ऊर्वष्ठीवम् । निपातनाट्टिलोपः । पद-

---

समाहार द्वन्द्व होतो, द्वन्द्वाच्चुदषसे सिद्ध होता । ऋच्च साम च ऋक्सामे अच और टिलोप, शी गुण अच न होता ऋक्सामनी बनता । वाक्च मनश्च वाङ्मनसे अच् का फल है । नहीं तो वाङ्मनसी होता । अतिभ्रुवम् आँख और भौं, द्वन्द्व समास, अच । प्राणि का अंग एकवचनरूप । नहीं तो केक्षिभ्रु होता । दारा स्त्रियाँ और गायें हैं । दारगव, तेषां समाहारः, द्वन्द्वसे अच अव् नपुंसक । अच् न होता दारगु बनता । इतरेतर द्वन्द्वमें दारगावः सन्ति स्त्रियाँ और गायें हैं । ऊरू—सक्थिनी जंघे अष्ठीवन्तौं जानुनी घुठने । एतेषां समाहारः । सक्थि क्लीबे पुमानुरूपर्वाष्ठीवदस्त्रियां, जानु उरु पर्व अष्ठीवत् । ये सब घुठना गाँठ अर्थमें । समासे अच् टिलोपे । उर्वष्ठीवं, डित् नहीं, नान्त नहीं, टिलोप कैसे ? निपातनसे । पादौ च अष्ठीवन्ती च पाँव घुटने प्राणिके अंग एकवचन पदष्ठीवं, भसंज्ञा नहीं, पादको पद कैसे ? निपातनसे पादको पद हुआ । नक्तं मान्त अव्यय, दिवा आ अन्त अव्यय । रातका द्वन्द्व एकार्थसे अच् । यस्येति आलोप, अव्ययसंज्ञा, नपुंसक **नक्तन्दिवं** नाव्ययीभावात्से सु को अम् । **रात्रौ** च रातमें दिनमें रात और दिनका द्वन्द्व सुपो लुक् । रात्रिको मान्त निपातनसे । यस्येति आलोप अम्भाव, **रात्रिन्दिवं** कोलाहलम् । **अहन् दिवा** च प्रतिदिनम् **अहर्दिवं** कार्य, निपात से अच् आलोप । रोऽसुपि न को र, अच् आलोप अम्भाव । अहन्शब्द, और दिवा का अर्थ एक है, सह भाव नहीं है समास कैसे ? यदि एक एक दिनका भेद मानकर द्वन्द्व हो भी तब विरूपाणामपि समानार्थानाम् अर्थ एक हो रूप भेद हो, एक शेष अवश्य होगा । तब बोले **वीप्सायां = नित्याप्सयोः** से द्वित्व होने पर एक शेष को बाधकर निपातन से समास । उसका अर्थ अहन्यहनि प्रतिदिन होगा । रजोऽपि अपरित्यज्य **सरजसं** धूलि को भी न छोड़कर सम्पूर्ण शाकल्प अर्थ में रजस् के साथ अव्ययीभावे च काले सह को स, अच् अव्ययीभाव मानग । बहुव्रीहि समास में रजोभिः परागः सह सरजः कमलं तेन सहेति तुल्यं योगे समासे (वा उपसर्जनस्य सह को मह, नहीं हुआ । निश्चित है श्रेय कल्याण कर्मधारय समास से अच् निःश्रेयसम् अस्तु निश्चित कल्याण हो । तत्पुरुष से ही अचा हो, अतः बहुव्रीहि

ष्ठीवम्। निपातनात्पादशब्दस्य पद्भावः। नक्तं च दिवा च–नक्तंदिवम्। रात्रौ च दिवा च रात्रिन्दिवम्। रात्रेर्मान्तत्वं निपात्यते। अहनि च दिवा च-अहर्दिवम्। वीप्सायां द्वन्द्वो निपात्यते—अहन्यहनीत्यर्थः। सरजसमिति साकल्येऽव्ययीभावः। बहुव्रीहौ तु सरजः पङ्कजम्। निश्चितं श्रेयो—निःश्रेयसम्। तत्पुरुष एव। नेह–निःश्रेयान्पुरुषः। पुरुषस्यायुः-पुरुषायुषम्। ततो द्विगु-द्व्यायुषम्। त्र्यायुषम्। ततो द्वन्द्वः—ऋग्यजुषम्। ततस्त्रयः कर्मधारयाः–जातोक्षः॥ महोक्षः। वृद्धोक्षः॥ शुनः समीपम् उपशुनं। टिलोपाभावः सम्प्रसारणं च निपात्यते। गोष्ठे श्वा–

में निश्चितं श्रेयो यस्य निःश्रेयान्पुरुषः यहाँ अच नहीं हुआ। इयसश्च के निषेध से कप् भी नहीं। पुरुष की आयु पुरुषायुषं षष्ठी समास से अच्। ततो द्विगुः। संख्यापूर्व के समास से अच। त्रयाणां आयुषां समाहारः त्र्यायुषम् जमदग्नेः तिगुनी आयु हो तद्धितार्थोत्तर दिगुसमास अच ततो द्वन्द्वेतिमाष्यवछकम्। ऋ अज्ञयोः। समाहारः ऋग्वेद यजुर्वेदका समुदाय। अच्। ततः तीन कर्मधारय हैं। जातश्चासौ उक्षाच जातोक्षः। तगड़ा विशाल बैल। समास आन्महतः से आ, अचि, टिलोप। वृद्धोक्षः बूढ़ा बैल। वृद्धश्चासौउक्षा च, अचि टिलोप। शुनः समीपं कुत्ताके पास उपशुनं गच्छ। समीप अर्थ में अव्ययीभाव समाससे अच्, नपुंसक। शङ्कानस्तद्धिते टिलोप क्यों नहीं। श्वयुवमघोनां' सूत्र तद्धितमें सम्प्रसारण नहीं करता। तब बोले बड़ा सूत्र ही टिलोपका अभाव और सम्प्रसारण कार्य निपातन से करता है। गोष्ठेश्वा, गोशालामें कुत्ता। सप्तमीसमासमें अच्, इसी भाष्यसे सप्तमी समास टिलोप। अतद्धिते कहनेसे सम्प्रसारण नहीं। गोष्ठस्य श्वा षष्ठी-समासमें अच् नहीं होता।

ब्रह्म और हस्तिसे वचस् से अच् हो। ब्रह्मणो वर्चः ब्रह्माका तेज, अच् हुआ। हस्तिनो वर्च हाथियोंका हाथी झुण्ड। अच अन्त हुआ। पल्य और राज से परे वर्चस् से भी अच् कहे। पलं मांसं तदर्हति पल्यः मांस भोजी, तस्य वर्चः प्रभावः अजन्तः। राज्ञां वर्चः राजाओंका तेज प्रभाव। अच् अन्त।४७। **अवसम** अन्ध इनसे परे तमस् से अच् हो। अवहीनं तमः अवतमसं घोर अन्धकार। सततं तमः निरन्तर अंधेरा। सन्तमसं प्रादि समास, अच् अन्त दोनों है। अन्ध दृष्ट्युपघाते, चुरादिः। आँख ज्योति नाश के अनुकूल क्रिया अन्धयति दृष्टिं प्रतिबध्नाति अन्धं, पचादिः अच्, टिलोप अनु, अव, तप्त इनका समाहार द्वन्द्व। इनसे परे रहससे अच् हो। एकान्त अप्रकाशप्रदेशः रहः का अर्थ। अनुगतं रहः अनुरहसम् ज्ञात-शून्यस्थानाम् अवहीनं रह इति विग्रहे प्रादिसमासे अच्। अवरहसम् एकान्तका अभाव। तप्तं रहः तप्तरहसम् उष्ण एकान्त। अच्। प्रतेः सप्तमी अर्थमें स्थित द्योतक, प्रतिसे परे उरससे अच् हो उरसि इति। हृदयमें जो हो, अनेन यदुच्यते तदेव प्रत्युरसं, सप्तमी अर्थका द्योतक प्रति विभक्ति अर्थमें है। अतः अव्ययं

गोष्ठश्वः ॥ ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः ।५।४।७८। अच् । ब्रह्मवर्चसम् । हस्तिवर्चसम् । (पल्यराजभ्यां च) पल्यवर्चसम् । राजवर्चसम् ॥ अवसमन्धेभ्यस्तमसः ।१।४। ७९। अवतमसम् । सन्तमसम् । अन्धतमसम् ॥ अन्ववतप्ताद्रहसः ।५।४।८१। अनुरहसम् । अवरहसम् । तप्तरहसम् । प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् ।५।४।८२। उरसि इति--प्रत्युरसम् ॥ अनुगवमायामे ।५।४।८३। एतन्निपात्यते दीर्घत्वे । अनुगवं यानम् । 'यस्य चायाम' इति समासः ॥ उपसर्गादध्वनः ५।४।८५। प्रगतोऽध्वानं--प्राध्वो रथः ॥ न पूजनात् ।५।४।६९। पूजनार्थात्परेभ्यः समासान्ता

विभक्ति समीप वादिसे समासे, 'प्रतेरुरस' सूत्रेण अच् ।५१। अनुगवम् यह आयाम विस्तार दीर्घ अर्थ प्रकाशक अनु पूर्वमें हो, गो से अच्प्रत्यय का निपातन हो । आयामका दीर्घ अर्थ, उसका सूचक अनुगोः गायकी दीर्घताके तुल्य दीर्घयानम् अनुभवम् । यस्य चायामः सूत्रेण अव्ययीभावसमासे, अनेन अच् अवादेशे । गायकी लम्बाई के समान यानका नाम । नेह=इह न निषेधः परमश्वासौ राजा च परमराजः यहाँ टच् हुआ निषेध नहीं ।

उपसर्गसे परे अध्वन, शब्दको समासान्त अच् हो, क्रियाके योगमें । प्रादि उपसर्ग है । प्रगतो अध्वानं (मार्ग पर चला हुआ । अत्यादयः क्रांताद्यर्थे द्वितीयया । प्रगतः—दौड़ा हुआ या तेज चला हुआ । अर्थ द्योतक प्रशब्द का अध्वन के साथ समास, टिलोपादिः । प्राध्वो रथ आनीयते । ३ । नपूजनार्थात्— प्रशंसनीय अर्थ से परे समोसान्त प्रत्यय न हो (वा०) सु और अति के प्रशंसनीय-अर्थसे परे ही समासान्त प्रत्यय का निषेध है । अर्थात् सु अति से भिन्न प्रशंसार्थक शब्दों से प्रत्यय हो । शोभना राजा सुराजा प्रशंसनीयः राजा (स) सुराजन् से कुगति प्रादयः समास । 'राजाहः सखिभ्यष्टच् इति टच् प्राप्ते नपूजनात् से निषेध । पूजनीय अर्थ में सु स्वादिकार्यं । राजानमतिक्रान्तोऽतिराजा । राज तेशोभते राजा अतिशायितः राजा, अतिराजा । अत्रापि कृते समासे टज्न भवति ।

इति प्रभाकर मिश्रकृतायां प्रामाकर्या समासान्ता- ।

किमः क्षेप निन्दा कुत्सा अर्थमें किंशब्द, उससे परे जो शब्द, उससे समासान्त अच् टच् आदि नहीं होते । निन्दित भ्रष्ट अर्थमें किंराजा । निन्दा अर्थ, किं क्षेपे सामासे राजाहः से टच् का निषेध । कुत्सितः सखा किंसखा धोखेबाज मित्र । किंका क्षेप निन्दित अर्थमें समास सखिभ्यः न टच् । कुत्सितः गौः कायर गादर बैल । क्षेप अर्थमें समास समासान्त का अभाव । क्षेपे किं, निन्दा अर्थमें निषेध क्यों, प्रश्न अर्थमें किं हो तब टच् निषेध न हो । कस्य राजकिंराजा । प्रश्न अर्थमें किम् है, निन्दा में नहीं । अतः निषेध नहीं, किन्तु टच् निषेधः । एवं कस्य सभा कः सखा किंसखा । किसका मित्र कौन । कस्य गौः कः गौः किसकी गाय कौन किंगवः । समास टच् अव् ।५६। नञ्पूर्वपद हो ऐसे तत्पुरुषसे टच् आदि नहीं होंते । न राजा

न स्युः ।। सुराजा । अतिराजा । (स्वतिभ्यामेव) । नेह–परमराजः । किमः क्षेपे ।५।४।७०। कुत्सितो राजा – किंराजा । किंसखा । किंगौः । नञस्तत्पुरुषात् ।५।४।७१। अराजा । तत्पुरुषात्किम् ? अधुरं शकटम् । पथो विभाषा ।५।४।७२। अपथम् – अपन्थाः । तत्पुरुषादित्येव–अपथो देशः । इति समासान्तप्रकरणम् ।

अथालुक्समासप्रकरणम्

अलुगुत्तरपदे ।६।३।१। इत्यधिकृत्य ।। ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः ।६।३।३। ओजसाकृतमित्यादि । (अञ्जस उपसंख्यानम्) । अञ्जसाकृतम् ।।

अराजा । सखा असखा । समासमें चच् प्राप्त था, उसका निषेध हुआ । न ञके साथ तत्पुरुष होनेसे । तत्पुरुष क्यों पढ़ा ? इसलिए कि बहुव्रीहिके निषेध न हो । अविद्यमाना धूर्यस्य । नहीं है धुरा आधार जिसका ऐसा अधुरं शकटं गाड़ी यहां निषेध नहीं किन्तु 'ऋक्पूः' से अ हुआ ।

।५७। पथोः । नञपूर्वमें हो, पथिन्से अ प्रत्यय विकल्प मान्य न पन्थाः अपथं नगरं नञ् तत्पुरुष है अप्रत्यय अपथिन् व । नस्तद्धिते टिलोपे पथः नपुंसकं, पक्षमें 'अ' नहीं हुआ तब अपन्थाः तत्पुरुषसे ही विकल्प मान्य । बहुव्रीहिमें नित्य अ । अविद्यमानः पन्था यस्य समासे ऋक्पूः से अ हुआ निषेध नहीं । देशका नाम अपथम् अर्थाऽभावे अव्यीभावः अ–प्रत्ययका निषेध नहीं । पथाम्भावो वर्तते ।

अलुगुत्तर—अपूर्वविधायक न होनेसे विधिसूत्र नहीं । राजपुरुषः में अलुक् न हो । पञ्चाम्यःस्तोकादिभ्य इत्यादिके आरम्भसे भी विधि नहीं, किन्तु अधिकरः कहाँ तक, तब बोले प्रागानङ=आनङ् ऋतो द्वन्द्वे सूत्रके पहले उत्तरपदका अधिकार पादसमाप्ति तक, छठें अध्यायके तीसरे पादका पहला सूत्र । पादपर्यन्त अधिकार, भाष्यसे प्रमाणित । ओजस् सहस् सम्भस् तमस् इनके समाहार द्वन्द्वमें, इनसे परे तृतीयाका अलुक हो, उत्तरपद परे रहते । ओजसाकृत तेज ताकतसे किया । ओजो दीप्तौ बले इत्यमरः । कृत=किया हुआ इसके साथ कर्तृकरणे का समास, प्रातिपादिकसंज्ञा से सुप् लुक् प्राप्त था, ओजः सहो—सूत्रेण निषेध आदि, सहसाकृतम् एकाएक झटिति किया । अम्भसाकृतम् अलसे पूरीपूजाकी । समसावृतम् अन्धकारसे ढका हुआ । इस सबोंमें कर्तृकरणेसे बहुत समास उत्तर पदपरे कृत है । तृतीया का सूत्रसे अलुक् । यदि ऐसा तब सततनैशः तमो वृतं (निरन्तर घोर अन्धकार से ढंका) इति असाधुएव । अंजसाकृतम् बड़ी सरलता कोमलतासे किया । अञ्जस् आर्जवे वर्तते । क्षेत्रज्ञः अञ्जसा नयति । कृपासे पहुँचता है । पुंसानुजः जिसका अग्रज बड़ा भाई पुरुष हो । आत्मन् से परे तृतीयाका लुक् न हो । च से तृतीया आती है उत्तरपदपरे । इस सूत्रपर वार्तिक पढ़ा पूरण—इति पूरण अर्थवाला प्रत्यय अन्तेमें हो ऐसा उत्तरपद प्रत्ययग्रहणे तदनन्तविधि । आत्मना पंचमः स्वयं

आत्मनश्च ।६।३।६। तृतीयाया अलुक् ॥ (**पूरणे इति वक्तव्यम्**) । पूरणप्रत्ययान्ते उत्तरपदे इत्यर्थः । आत्मनापञ्चमः । **वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः** ।६।३।२। आत्मन इत्येव । आत्मनेपदम् । आत्मनेभाषा ॥ **परस्य च** ।३।३।८। परस्मैपदम् । परस्मैभाषा । **हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्** ।६।३।९। हलदन्तादिति ङेरलुक् । त्वचिसारः ॥ **गवियुधिभ्यां स्थिरः** ।८।३।९५। सस्य षः । गविष्ठिरः । युधिष्ठिरः । अरण्येतिलकः । अत्र संज्ञायामिति सप्तमीसमासः । (**हृद्द्युभ्यां च**) । हृदिस्पृक् । दिविस्पृक् । **मध्याद् गुरौ** ।६।३।११। मध्येगुरुः ॥ (**अन्ताच्च**) । अन्तेगुरुः ।

पाँचवां प्रकृत्यादिगणसे प्रथमा अर्थमें तृतीया, अथवा आत्मना कृतः पञ्चमः करणे तृतीया समासे । तृतीयाका अलुक् स्वयं पांचवां बना समासार्थ । यदि ऐसा तब जनार्दन. भगवान् स्वात्मचतुर्थः यहाँ आत्मना चतुर्थः तृतीयाका लुक् कैसे शङ्कर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध ३ व्यूह है । जनार्दनः एषां नियन्ता चतुर्थ एव । तृतीयाका लुक् कैसे ? बहुव्रीहि है आत्मा चतुर्थो यस्य स्वयं एक है । उसमें ४ भेद औपाधिक कल्पनासे । वृत्तिका अर्थ अन्य पदार्थ मान्य । **वैयाकरण** । आत्मनः आया । व्याकरणे भवा वैयाकरणी । अण् ऋगयनादिभ्यः । आख्यायते इति आख्या व्याकरणशास्त्रमें जो प्रसिद्धि ही वहाँ चतुर्थीका लुक् न हो । आत्मन् शब्दसे ही आत्मनेपद–त आतां झ आदि व्याकरणमें प्रसिद्ध है । उसका सूचक आत्मसेसे चतुर्थी का अलुक् है । उसीका दुवरा नाम आत्मनेभाषा । अतः यहाँ भी चतुर्थीका अलुक् व्याकरणमें हुई प्रसिद्धिसे पर शब्दसे चतुर्थीका लुक् न हो । परस्मैपदं=तिप्तसिझ आदिका नाम प्रसिद्ध है आख्या होनेसे । परस्मैमें समास होनेपर प्राप्त लुक्का निषेध हुआ । उसीका संज्ञान्तर परस्मैभाषा चतुर्थीका अलुक् ।

(६६) हलदन्तात् हलन्तसे और अदन्तसे सप्तमीका लुक् न हो, संज्ञा-नाम होनेपर त्वचा (चर्ममें) सार तत्व भरा हो त्वचिसारः घड़ियाल वंश, त्वक्सारः, (कर्मारः, त्वचिसारः तृणध्वजा) हलन्त त्वच् से सप्तमीका लुक् नहीं ।६८। गवि और युधि से परे स्थिरके श को ष हो । गवि तिष्ठतीति गविष्ठिरः विष्णुः त्रिदेवः । गायमें रहते है । गवि युधि सप्तमी रूप । स्थिरः में प्रथमा, षष्ठी अर्थ । सहे साडः से स आया । सस्य अपादान्तस्य मूर्धन्यः का अध्याहार । सप्तमीका अलुक् । अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो लुक् बाधते इस परिभाषासे लुक् पहले होगा । ओ आदेश होगा नहीं, हलन्त नहीं, अलुक् कैसे ! तब कहा गवि पढ़ने की ताकतसे ही अलुक् होगा, तब ओ·अवसे हलन्त । युधि तिष्ठति युधिष्ठिरः युधसे भावे क्विप्, सप्तमी एकवचन, उपपदसमाससुपोलुकि प्राप्ते हलन्तात्सप्तमी–अलुक् । सूत्रेण ष–ष्टुत्व, पाण्डवमें धर्मपुत्रका नाम । हलन्तसे अलुक् कहा । अब अजन्तसे सुनिए । अरण्येतिलका किसीका नाम है । यद्यपि तिलक शौण्डादिमें नहीं, सप्तमी समास कैसे ? तब बोले संज्ञायांसे, अदन्त सप्तमीसे अलुक् । हृद और दिक से

अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे । ६ । ३ । १२ कण्ठेकालः । उरसिलोमा । अमूर्धमस्तकात्किम् ? मूर्धशिखः । अकामे किम् ? मुखे कामोऽस्य–मुखकामः । तत्पुरुषे कृति बहुलम् ।६।३।१४। स्तम्बेरमः । कर्णेजपः । शयवासवासिष्वकालात् ।६।३।१८। वा लुक् । खेशयः खशयः । ग्रामेवासः—ग्रामवासः ग्रामेवासी–ग्रामवासी । षष्ठ्या आक्रोशे ।६।३।२१। चौरस्य कुलम् । आक्रोशे किम् ? ब्राह्मणकुलम् । (वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु)। वाचोयुक्तिः । दिशो·

सप्तमीका लुक् न हो उत्तरपदपरे । हृदयं स्पृशति हृदिस्पृक् हृदयस्पर्शी । ङीपरे पद्दन्नोंसे हृदयको हृत् आदेश, स्पृक्के साथ समास, हृद् से परे सप्तमीका अलुक् । दिवं स्पृशति स्वर्ग छूता है दिविस्पृक् सप्तमीका अलुक् । दोनों स्थलमें कर्ममें सप्तमी कैसे ? अलुक्-विधान बलसे । इति भाष्यम् । अमूर्धमस्तकात्से अलुक् नहीं, संज्ञायां कहनेसे । मध्यात । गुरुशब्द परे हो मध्यशब्दसे सप्तमीका लुक् न हो, असंज्ञार्थम् । मध्यगुरुः बीच वाले, सप्तमीका लुक् नहीं हुआ । अन्तमें सप्तमी का अलुक् हो गुरु परे ।९७१। अमूर्ध मूर्ध और मस्तक को छोड़कर स्वाङ्गवाचक से सप्तमी का लुक् न हो । अकामे=काम शब्द परे लुक् हो । संज्ञायाम् आया । अतएव हृदग्रहणमर्थवत् । कण्ठेकालः गलेमें नीलिमा-विष, कण्ठ शरीराङ्ग है । सप्तमी अलुक् हुई, शिवनाम । उरसिलोमा किसी का नाम । इस प्रमाण से विषयविभक्ति में भी बहुब्रीहिः । मूर्धमस्तक स्वाङ्ग न हो, ऐसा क्यों ? मूर्धनि शिखा मूर्धशिखः मयूरः । शरीर का अङ्ग मूर्ध हो मस्तक हो, तब सप्तमी का लुक् होता है । मस्तके शिखा यस्य (जिसकी चोटी मस्तक पर भी हों) न अलुक् । अकामें क्यों पढ़ा ? मुखमें काम इच्छा स्वाद है, मुखकामः काम परे अलुक् नहीं हुआ । तत्पुरुष समासमें सप्तमी का बहुल इच्छानुसार लुक् हो, उत्तरमें कृदन्त हो, संज्ञामें । स्तम्बे—तृणसमूहे रमते–आनन्दमनुभवति हस्ती स्तम्बेरमः । यहां रम परे अलुक् हुआ । स्तम्बकर्णयोः रमिजपोः से अच् उपपदसमास । कर्णे–श्रवणसाधने जपत्ति, परदोषम् उपांशु (फुस फुस) आविष्करोतीति कर्णेजपः । कान फुस फुसाने वाला पिशुनः चुगुलखोर । यहां भी विकल्पसे अलुक । यदा लुक् कर्णजपः । शय वास वासिन् इनके परे रहते सप्तमी का लुक् न हो । अकालात्—कालसे भिन्न हो खे-आकशे शेते खशयः अन्तरिक्षयान अपोलो, सोयूज, शय परे खे के सप्तमी का अलुक् लुक् भी । वसनं वासः ग्रामेवासः ग्रामवासः अलुक् लुक् भी । ग्रामे वसति, ग्रामवासी अलुक् लुक् भी ।

षष्ठीका उत्तर पदपरे लुक् न हो, आक्रोश निन्दा फटकार अर्थमें चौरस्य कुलं चोरोंका अंश एक अर्थ होने पर षष्ठी का अलुक् हुआ । चोरस्य एकार्थीभाव रहेगा । आक्रोश क्यों पढ़ा ? ब्राह्मणस्य कुलं ब्राह्मणकुलं सत्यता है निन्दा नहीं । उसको चोर कुल कहना निन्दा है । वाग्दिक=वाक्-दिक्-पश्यत् इनसे परे षष्ठी

दण्डः। पश्यतोहरः। (आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकामुष्यकुलिकेति च)। (देवानांप्रिय इति च मूर्खे)। अन्यत्र देवप्रियः। (शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः)। शुनःशेपः। शुनपुच्छः। शुनो लाङ्गूलः। (दिवश्च दासे)। दिवोदासः। ऋतो विद्यायोनिसंबन्धेभ्यः ।६।३।२३। होतुरन्तेवासी ॥ विभाषा स्वसृपत्योः ।६।३।२४। ऋदन्तात्षष्ठया वा अलुक् ॥ मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम् ।८।३।८५। आभ्यां परस्य स्वसुः सस्य षः समासे। मातुःष्वसा-मातुःस्वसा। पितुःष्वसा-पितुः

का लुक् न हो। युक्ति, दण्ड, हर, इनके क्रमसे परे। वाचोयुक्तिः वाणी की कला सटीक प्रयोग। समासे, एकार्थभावे षष्ठी का अलुक् युक्ति परे हैं। दिशोदण्डः दिशा का सहारा। अधिकरणकी अविवक्षासे षष्ठी। पश्यन्तमनदृत्य हरति पश्यतोहरः। अनादरे अर्थे षष्ठी। देखते हरनेवाला स्वर्णकार। षष्ठीका अलुक् आमुष्यायणः अमुष्यपुत्रिका आमुष्यकुलिका। षष्ठीका अलुक् हो निपातनसे। अमुष्यापत्यं इसकी सन्तान अर्थमें नडादि–फक्। फस्थाने आयन, आदिवृद्धिः। समुदायसे तद्धितान्त सुप् का लुक्प्राप्त था वार्तिकेन निषेध, नस्य णः। आमुष्यायणः। अमुष्यपुत्रः अमुक का बेटा। षष्ठी समासे। षष्ठीका अलुक्। अमुष्य पुत्रस्य भावः मनोज्ञादिभ्यश्चसे वुञ् अक टाप् इत्व आदिवृद्धि। आमुष्यपुत्रिका, अमुककी पुत्रसम्बन्धी गुण विशेषता। एवं–इसी प्रकार अमुष्यकुलम् अमुक का वंश। समासे अलुकि। आदि= मनुष्य कुल शब्दसे वुञ् अक् आदि पूर्ववत्। (देवानां) वार्तिक हैं। प्रिय मूर्ख अज्ञ अर्थ हो, उसका सूचक षष्ठी का अलुक्। दिव क्रीडायां, देवा मूर्खाः क्रीडायामाशक्ता तेषां प्रियोऽपि मूर्ख होगा, मूर्खा हि देवानां प्रीतिं जनयन्ति, देवपशुत्वादिति मनोरमा। ब्रह्मज्ञानरहित संसारी मूर्ख है। वे कर्म अनुष्ठान हवन दान द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते हैं ब्रह्मज्ञान में लीन को यज्ञादि अनुष्ठान अनावश्यक। अतः मूर्खा एव देवपशवः यत्रमूर्खत्वंनास्ति तत्र लुग्भवति, देवानां प्रियः धर्मात्मा। शेष पुच्छ लाङ्गूल परे रहते शुनः की षष्ठीका लुक न हो। शुनः शेप इव शेपो यस्य कुत्तेके रूपकी तरह रूप हो जिसका, गौलिङ्गचिह्नशेपशो:। शीङ् धातुसे निपातनसे प हुआ। अकारान्त भी शेष (कुत्ते की तरह शयन क्रिया, हल्की नींद वाला) षष्ठीका अलुक् मेढ्रो मेहनशेपशोः। शेफ भी है शेफाय स्वाहा। शुनः पुच्छमिव पुच्छं यस्य समासे कुत्ते की पूछ समान पूछवाला शुनोलाङ्गूलः शुनके षष्ठीका अलुक्। ये ऋषिविशेषके नाम है। दिवश्च दास परे दिवके षष्ठी का लुक् न हो। दिवोदासः राजर्षि, अलुक् हुआ।

ऋतः—विद्या गुरु परम्परा, योनि जन्मसम्बन्धमें ऋदन्त शब्दमें षष्ठीका अलुक् हो उत्तरपद परे। विद्यासम्बन्ध ऋग्वेद विहित कर्म कर्ता, होता, उसका शिष्य-शिक्षासे शासन का विषय, अन्तेवासी होतुरन्तेवासी षष्ठी का अलुक्। विद्या

स्वसा। लुक्पक्षे तु--मातृपितृभ्यां स्वसा ।८।३।८४। स्वसुः सस्य षः समासे। मातृष्वसा। पितृष्वसा। असमासे तु—मातुः स्वसा। पितुःस्वसा।

इत्यलुक्समासप्रकरणम्।

अथ समासाश्रयप्रकरणम्

घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः। ६। ३। ४३

भाषितपुंस्काद्यो ङी तदन्तस्यानेकाचो ह्रस्वः स्यात्, घरूपकल्पप्रत्यये चेलडादिषु चोत्तरपदेषु। ब्राह्मणितरा। ब्राह्मणितमा। ब्राह्मणिरूपा। ब्राह्मणिकल्पा। ब्राह्मणि-

---

सम्बन्ध मुख्य है, होतुः पुत्रः वेदविहित कर्मकर्ताका लड़का षष्ठीका अलुक्। जायते, जन्म भवति यस्यां सा योनिः जन्महेतुः। विभाषाः स्वसृ और पति परे हो, तब ऋदन्तसे परे षष्ठीका लुक् न हो। विद्या या योनिसम्बन्ध रहने पर नित्यको बाधकर विकल्प। ८३। मात पिता शब्दसे परे स्वसाके स को ष विकल्पसे हो, समास में। मातुः ष्वसा एकार्थीभाव होने पर षष्ठी का अलुक्। स्वांसाके सको-षत्व। पक्षमें दन्त ही रहा। एवं पितुःश्वासा समासे अलुक् षत्वं, जब पक्षमें लुक् हुआ, तब विशेष सूत्र।८४। मातृपितृसे स्वसाके स को ष हो समासमें। मातृश्वसा नित्य षत्व। आदेश का प्रत्यय न होनेसे अप्राप्त था षत्वविधिमें समासके आनेका फल षत्व, जब समास नहीं, तब षत्व भी नहीं, पितुः स्वसा।

अथसमासश्रय-एकार्थीभाव,एकपद एकशक्ति स्वरूद समास होनेपर जो विधियाँ ह्रस्व हत्, षत्, उद, स, ष, आदि होंगी वही समासाश्रय है। समासवृत्ति एकार्थीभाव न हो, तब नहीं होती है। प्रथम ह्रस्व विधि सूत्र। घरूप अतिशय अर्थ में तरप्त ममौ घः। रूपप्-प्रशंसा अर्थे, कल्पप्-सदृश, लगभग अर्थे। चिल वसने परिधानके अनुकूल क्रिया, पचादि अच्। ब्रुवगोत्र महत् इनके उत्तरभागमें, परे या उत्तरे पद रहने पर ङ्योकाचो=भाषितपुंस्क पुलिङ्ग, स्त्री० में एकधर्महो उससे ङीप हुआ हो, ऐसे अनेक अच्को ह्रस्व हो। ध, रूप, कल्पप्रत्यय हैं, इनके तदन्तन होनेपर या उत्तरपद हो उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति। अतिशयिता ब्राह्मणी ब्राह्मणी तरा (व्रत सदाचार त्याग आदर्शगुण की अधिकता से भरी हुई) अत्र तरप्तपपौ घः (से 'तर' को घ संज्ञा जिसके आधार पर) घरूप कल्प० सूत्रेण ईकारस्य ह्रस्वे ब्राह्मणितरा एवं अतिशयिता ब्राह्मणी ब्रह्मणितमा-त्याग तप सदाचार सम्पन्ना। तसिलादिषु से पुंवत् शङ्का न करें 'जातेश्च' के निषेध से। प्रशस्ता ब्राह्मणी प्रशसायां रूपप्। जिसके आधार पर ह्रस्व ब्राह्मणिरूपा। सदाचारेण स्वभावेन किञ्चित ब्राह्मणी ब्राह्मणिकल्पा। ईषदसमाप्ति अर्थमें कल्पप् यं निमितीकृत्य ह्रस्वो जायते ब्राह्मणी चासौ चेली च (चिल विसने) उससे अच चेलट् पचादि में टित्सें ङीप्। चेली परे ह्रस्व, वस्त्रधारण वाली! ब्राह्मणिगोत्रा ह्रस्त हुआ। ब्रह्मणिहता ब्राह्मणी इति ब्रवीति ब्रह्मणिब्रुवा। ब्रुसे अच् करने पर वच आदेश और गुणका अभाव

चेली। ब्राह्मणित्रुवा। ब्राह्मणिगोत्रेत्यादि। ब्रुञः वचाद्यचि पच्यादेशगुणयोरभावो निपात्यते। ङ्यः किम्? दत्तातरा। भाषितपुंस्कात्किम्? आमलकीतरा। कुवलीतरा॥ **नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम्** ।६।३।४४। अङ्यन्तनद्याः ङ्यन्तैकाचश्च घादिषु ह्रस्वो वा। ब्रह्मबन्धुतरा-ब्रह्मबन्धूतरा। स्त्रितरा—स्त्रीतरा॥ (**कृन्नद्या न**) लक्ष्मीतरा॥ **उगितश्च** ।६।३।४५। उगितः परा या नदी तदन्तस्य घादिषु ह्रस्वो वा स्यात्। विदुषितरा। ह्रस्वाभावपक्षे पुंवत्। विद्वत्तरा॥ **पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु** ।६।३।५२। एषूत्तरपदेषु पादस्य पद इत्यदन्तादेशः स्यात्। पादाभ्याम् अजतीति पदाजिः। पदातिः॥ (**अज्यतिभ्यां पादे च**) इतीण् प्रत्ययः। पदगः। पदोपहतः॥ **पद्यत्यतदर्थे** ।६।३।५३। पादस्य पत् स्यादतदर्थे

निपातनसें। ङ्यः=ङी अन्त क्यों? दत्तातराः-अतिशयेन दत्ता पूर्णसमर्पिता ङ्यन्त नहीं, न ह्रस्व। भाषित हो पुंलिंग ऐसा क्यों? जहाँ पुंलिंग न जान पड़े वह ह्रस्व न हो। यथा अतिशयेन आमलकी बहुत खट्टा आवला नित्य स्त्रीलिंग, पुलिंगका झलक भी नहीं) ह्रस्व भी न हो। यदि न पदान्तसूत्रके भाष्यमें बिम्बा बदरी आमलक इनमें पुलिङ्ग झलकता है नित्यस्त्री० कैसे? तब बोले कुबलीतरा अतिशयेन कुवली, वृक्ष अर्थमें नित्य स्त्रलिङ्ग है ह्रस्व न हो। कर्कन्धुर्बदरी कोली घण्टाकुवलफेनिले इति अमरः।

नद्याः शेषस्य उक्तादन्यः शेषः ङी-अन्त नदीसे ह्रस्व उक्त है उससे शेष अङ्यन्त=ङीप् अन्तमें न हो, ऐसे नदीसंज्ञकको और ङीप्वाले एकाच्को ह्रस्व हो। घादिषु=घरूप पाश कल्प इत्यादि परे, विकल्प से। ब्रह्मबन्धुतरा। वह नदीसंज्ञक अङ्यन्त है। ह्रस्व हुआ। वेद ब्राह्मणका अतिशय सहायक। भाषित पु० नहीं आया। अतिशयिता स्त्री बहुत बच्चा देने गर्भधारणयोग्यतावाली तरप् स्त्रितरा नदीसंज्ञक है ह्रस्व हुआ। कृन्नद्याः=कृदन्त प्रत्ययके कारण नदीसंज्ञा हुई हो, तब ह्रस्व नहीं होता। अतिशयिता लक्ष्मी लक्ष्मीतरा। लक्ष्य धातुसे मुट आगम ई-प्रत्यय लक्ष्मी कृदन्त है। ह्रस्वका निषेध। उगित्-उक् उ ऋलृ इत् हो उससे परे नदी संज्ञक अन्तको ह्रस्व हो, घादिषु=घ-कल्प इत्यादि परे। विदसे वसु उ, इत्, विद्वस् स्त्री-इच्छामें ङीप् षत्व। अतिशयिता विदुषी विदुषितरा ह्रस्वे। विद्योत्तमा। यदा न ह्रस्वः तदा तसिलादिषु पुंवद्भावे ङीपः निवृत्तिः। विद्वत्तरा सरस्वती। वृत्यादिषु-वृत्तिकारादिके ग्रन्थोंमें विदुषिदरा पढ़ा है। वह निर्मूल-प्रमाण नहीं है। पुंवत् अवश्य होगा। विद्वत् श्रेयस्के पुलिङ्ग न होने में प्रमाण नहीं पादस्य आजि आति ग, उपहत, इनके परे इनके उत्तरपद रहने, पाद स्थाने पद अदन्त आदेश हो। उत्तर सूत्रमें हलन्त पद है। अज गतिक्षेपणयोः। चलना फेंकना अर्थ वाचक अज। पादाभ्याम् अजति पैरोंसे चलता है पदाजिः। पादको पद्र आदेश (राही, पदयात्री) अत गतौ पादाभ्यामतति गच्छति पाँवों से चलता

यति। पादौ विध्यन्ति=पद्याः शर्कराः। विध्यत्यधनुषे'ति यत्। अतदर्थे किं? पादार्थमुदकं पाद्यम्। 'पादार्घाभ्यां चे'ति यत्॥ **उदकस्योदः संज्ञायाम्** ।३।३।५७। उत्तरपदे। उदमेघः (उत्तरपदस्य चेति वक्तव्यम्) क्षीरोदः। **पेषंवासवाहनधिषु च** ।६।३।५८। उदपेषं पिनष्टि। उदवासः उदवाहनः। उदधिर्घटः। **एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम्** ६।३।५९। उदकुम्भः, उदककुम्भः। एकेति किम्? उदकस्थाली। पूरयितव्येति किम्? उदकपर्वतः॥ **मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च** ।६।३।६०। उदमन्थः—

पद्यति——पादको पद हलन्त आदेश हो, अतदर्थे पैरके लिए न हो तब न तदर्थः अतदर्थः। यतिपरे=पादौ विध्यन्ति पद्याः पैरों से बँधा मसला कुचला जाने वाला। विध्यति अधनुषासे यत् बँधने अर्थमें। पांवमें चिपकनेवाला या गड़नेवाला शक्कर। वह पैरके लिए नहीं है। अतदर्थ है, पाद को पत शसि पद्याः अतदर्थ क्यों पढ़ा? पादार्थम् पांव धोने के लिए पाद्यं जलं, पादार्घाभ्यां च से तादर्थ्य पांवके लिये यत, पत आदेश नहीं हुआ।

उदक के स्थान में उद आदेश हो, संज्ञा—किसी का नाम हो, तब उत्तरपद परे हो। उदकपूर्णमेंघइव **उदमेघः** जल भरे बादलके समान हो वह घनश्यामः। उदक को उद हुआ। उत्तरपदमें उदक हो, उसे भी उद हो, नाम में। क्षीरमुदकस्थानीयस्य **क्षीरोदः**। उदक-जलके स्थान में दूध देता है इस अर्थमें उदकं को उद आदेश। क्षीरोदं सरः असाधु है। पेषं वासः वाहन और धि परे हो तब उदक को उद आदेश हो। उदकेन पिनष्टि जल मिलाकर पीसता है। स्नेहने पिष इति णमुल् उदक स्थाने उद आदेशे। उद पेषं पीस कर पानी बना रहा है। उदकस्य वासः, जल का स्थान। वास परे 'उद' आदेश। उदकस्य वाहनः जल ढ़ोने वाला, उद आदेश। उदकं जलं धीयते पूयंते अस्मिन् **उदधिः**। उदकको उद आदेश। यह संज्ञा नहीं है। इसका स्पष्टीकरण घट से है। समुद अर्थ। संज्ञा होता तब पूर्वसूत्रसे उदक को उद आदेश सिद्ध होता।

एकहलादौ एकवर्णमें हलधर्म है। एक क्यों पढ़ा? असंयुक्त लाभके लिए। पूरयितव्ये—पूरणार्ह यत्कुम्भादिः भरने योग्य घड़ा पात्र, संयुक्त हल न हो तब उदकको उद् आदेश हो, उदकस्य कुम्भः। जल भरा घड़ा, उद आदेश। पक्षे उदककुम्भः। एक क्यों कहा=संयुक्त अक्षर न हो, ऐसा क्यों? स्थालीसंयुक्त है। उद नहीं हुआ। भरने योग्य क्यों जल का पहाड़ भारी बर्फ है भरणीय नहीं उद भी नहीं।

मन्थ ओदन शक्तु, बिन्दु, बज्र, भार, हार, बीवध, ग्राह इनके परे उदक को उद आदेश विकल्पसे हो। भरने का पात्र न हो तब। उदकमिश्रो मन्थः जल मिलाकर मन्थन क्रिया मही भांग बूटी जलं भरणीय नहीं। उदक को उद आदेशके दो रूप, द्रवद्रव्यसम्पृक्तः संयोगमन्थः, पिघली वस्तु मिलाकर मांड़ना। उदकमिश्रः ओदनः, घृत मिश्रित भात। उद आदेश गुण। भर्जित यव, पिसा सक्तु, उदकमिश्राः

उदकमन्थः। उदौदनः--उदकौदनः॥ **इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य ।५।३।६१।** इगन्तस्याङ्यन्तस्य ह्रस्वो वा उत्तरपदे। ग्रामणीपुत्रः ग्रामणिपुत्रः। इकः किम्? रमापतिः। अङ्य इति किम्? गौरीपतिः **ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे ।६।१।१३।** ष्यङन्तस्य पूर्वपदस्य संप्रसारणं स्यात् पुत्रपत्योः परतः॥ **संप्रसारणस्य ।६।३।१३९।** दीर्घः स्यादुत्तरपदे। कौमुदगन्ध्यायाः पुत्रः कौमुदगन्धीपुत्रः कौमुदगन्धीपतिः॥ **इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु ।६।३।६५।** इष्टकादीनां तदन्तानां च चितादिषु ह्रस्वः स्यात्। इष्टकचितम्

शक्तवः उदसक्तवः, उदकसक्तवः। उदकस्य विन्दवः उदविन्दवः। उदकस्य वज्रं उदवज्रः उदकस्य भार उदकभारः, उदभारः जलका बोझा। उदकस्य हारः उदहारः उदकहारः। जल का आहरण जलकी बन्धी, उदवीवधः जल आहरणयोग्य। उभयतः शिक्या स्कन्धबाह्यः काष्ठविशेषः। उदकस्य गाहः अवगाहनं उदकगाहः ।९१। **इको ह्रस्व** इक्==इ उ ऋ ऌ अन्तमें हो ङी अन्त में हो, ऐसे शब्दको ह्रस्व हो विकल्पसे, उत्तरपद परे, गालव आचार्य के मतमें। ग्रामं नयति ग्रामणी तस्य पुत्र ग्रामणिपुत्रः में उत्तरपद रहते इगन्तको ह्रस्व।

ष्यङ् प्रत्यय है तदन्तविधि होगी। ष्यङ् प्रत्यय अन्तमें हो ऐसे पूर्वपदके 'य' को इ सम्प्रसारण हो, पुत्र या पति उत्तरमें हो। तत्पुरुष—उत्तरपदार्थ प्रधान अर्थमें। उत्तरपद पूर्वपद दोनोंका तत्पुरुषसे लाभ, अधिकारसे, आक्षेपसे भी।४। **सम्प्रसारण** को दीर्घ हो उत्तरपदपरे। 'ढ्लोपे' से दीर्घ आया। अलुगुत्तरपदेसे उत्तरपद का अधिकार। कुमुद गन्धइव गन्धो यस्य रात्रिकमलके सुगन्धके समान महक हो। यह कुमुदगन्धिः। सप्तम्युपमानपूर्वपदस्यसे बहुव्रीहि समास, उत्तरपद गन्धका लोप। उपमानाच्च से इत्व कुमुदगन्धिः तस्य अपत्यं स्त्री अर्थमें अण्। उसकी सन्तान 'अणिञोः'से अण को ष्यङ्। कुमुदगन्धि य। य परे यस्येति इलोप, आदिवृद्धि, यङश्चाप् (कौमुदगन्ध्या) तस्या पुत्रः षष्ठीसमास कुमुदगन्धवालेकी पुत्रीका पुत्र, अर्थ। कौमुदगन्ध्यापुत्र इस दशामे ष्यङ् सम्प्रसारणसे य को इ। या में आ का सम्प्रसारणाच्चसे पूर्वरूप, सम्प्रसारणस्य इकारस्य दीर्घे कौमुदगन्धीपुत्रः। हलः से दीर्घ नहीं, अङ्गका अवयव न होने से। इसी प्रकार कौमुदगन्धीपतिः। कुमुदगन्ध इव गन्धो यस्या सा तस्याः पतिः समासादिः ष्यङादि. सम्प्रसारणादि पूर्ववत्। कुमुदगन्ध वाले की पुत्री का पति।

इष्टका इषीका माला आदि तदान्तानां=वे शब्द अन्तमें हों, ऐसा शब्दपूर्वपद हों तब क्रमसे चित्त, तूल, भारि उत्तरपद परे ह्रस्व हो। व्यवहार भावसे उनका भी ग्रहण, उत्तरपदके अधिकारमें भी पदका अधिकार। पदाङ्गाधिकारे, तस्य तदन्तस्य च स्वीकार करनेसे पदका ग्रहण। ह्रस्व आया। इष्टकाभिः चित्तं इष्टोंसे चुना, जड़ा हुआ (इष्टकचितं) इष्टका पदको ह्रस्व हुआ चित्तपद परे। कर्तृकरणे कृताबे समास। पक्वाभिः इष्टकाभिः चितं (चिञ् चयने) पके इटोंसे जड़ा हुआ।

पक्वेष्टकचितम । इषीकतूलं मुञ्जेषीकतूलम् । मालभारि उत्पलमालभारि ॥ ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु ।६।३।८५। समानस्य सः । सज्योतिः । **चरणे ब्रह्मचारिणि** ।५।३।८६। ब्रह्मचारिण्युत्तरपदे समानस्य सश्चरणे समानत्वेन गम्यमाने । चरणः शाखा । ब्रह्म वेद, तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म, तच्चरतीति ब्रह्मचारी । सब्रह्मचारी इत्यादि । तीर्थे ये ।६।३।८७। यादौ प्रत्यये विवक्षिते समानस्य सः । सतीर्थ्यः एकगुरुकः ।

सपो लुक्, ह्रस्व गुण आदि । तदन्तपद । इषीकाया. तूलं इषीकतूलं इषीकका अग्रभाव कोई कहते हैं । कपासकी रूई । समास, पूर्वपदको ह्रस्व । मुञ्जा इषीका मूंज और कासका अग्रभाग, पदान्तपूर्वको ह्रस्व । मालां बिभर्ति 'सुपि-अजातौ णिनिः' (मालभारि) पत्थर बोझावाहक । भारी ट्रक । पदान्त पूर्वपद मालाको ह्रस्व ।

ज्योतिः । ये १२ शब्द उत्तरपदमें हों, तब समानको स हो । बिना छन्दके उपयोगी है । जिस मुहूर्त=सूर्यनक्षत्रमें पैदा हो, उसके अन्त तक आशौचम् । **सज्योतिः**-समानं ज्योतिर्यस्य एक प्रकाश, मुहूर्त, कार्य हो जिसका । सूत्रेण समानस्थाने स आदेश, एकं समानं जनपदं यस्य एक नगर हो जिसका समानको स । समाना रात्रिः **सरात्रिः**, समानः नाभिः सनाभिः । समानं नाम सनामा । एक ही नाम वाला । समानः गोत्रः सगोत्रः, समानं रुपं येषां सरुपाः । समानं स्थानं यस्य सस्थानः । समानः वर्णो यस्य सवर्णः । समानं वयो यस्य सवयाः, समवयस्कः, समानं वचनं यस्य सवचनः । सम्बन्धुः सर्वत्र समास समानको स भाव ।

चरणे-समानस्य और स आया । उत्तरपदका अधिकार । ब्रह्मचारी उत्तरपद परक हो तब समानको स आदेश । चरणे सप्तमीका समानस्य से योग । चरण अर्थ समान रुपसे जान पड़ता हो । चरण क्या है—तब बोले शाखा । वैदिक प्रसिद्ध प्रमाण है । ब्रह्मचारी पद क्या है स्पष्ट बोले-ब्रह्मा वेदः वेदस्तत्वं तपो ब्रह्म इत्यमरः । तदध्ययनार्थ=उस वेदके अध्ययनके लिए । तस्य वेदस्य चरणमध्ययनं ब्रत, भी । तिज्ञा संकल्प, दृढ़निश्चय भी ब्रह्म है, गौणी वृतिसे । तच्चरति अनुतिष्ठति=उस ब्रतका सफल आचरणकर्ता **सब्रह्मचारी** है । सुपि अजातौ णिनिः, समानः ब्रह्मचारी कर्मधारय समासः । सूत्रेण समानस्य स आदेशे, सब्रह्मारी समानता वेद से है । समान वेदाध्ययानार्थ ब्रताचरणकर्ता । भाष्ये तु समाने ब्रह्मणि ब्रतं चरिते अर्थे णिनिः, ब्रतका लोप निपातनसे ।१०१५। **तीर्थे** ये सप्तमीका एकवचन, तदादिविधि, तीर्थपद । उत्तरमें हो, यकारादिप्रत्यय विवक्षित हो, तब समानको स हो । न च य प्रत्ययान्त से परे तीर्थ हो, ऐसा कहे क्या दोष होगा । यप्रत्यय समास होनेके बाद ही हो, वह अन्तरङ्गसे स भाव होने पर ही होता है । और परिनिष्ठितसे तद्धित होने का नियम भी है । स होने पर एकदेशविकृतन्यायसे, या भूतपूर्वगतिसे समान तीर्थ मिलेगा । यपरक समानको स कैसे—तब बोले विवक्षिते—समाने एके तीर्थे गुरौ वसति, एक गुरुके पास जो रहे । समीप अर्थमें सप्तमी, तीर्थ गुरुका नाम ।

'समानतीर्थे वासो'ति यत्प्रत्ययः । **विभाषोदरे** ।६।३।८८। सोदर्यः । समानोदर्यः ॥ **दृग्दृशवतुषु** ।६।३।८९। सदृक् सदृशः (दृक्षे च) सदृक्षः । **इदंकिमोरीश्की** ।६।३।९०। दृग्दृशवतुषु । ईदृक् ईदृशः । कीदृक् कीदृश ॥ (दृक्षे च) । ईदृक्षः ॥ **अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु** ६।३।९९। अन्यशब्दस्य दगागमः स्यादाशीरादिषु परेषु । अन्यदाशीः अन्यदाशा । अन्यदास्था । अन्यदास्थित अन्यदुत्सुकः । अन्यदूतिः । अन्यद्रागः अषष्ठीत्यादि किम् ? अन्यस्यान्येन नाशीः अन्याशीः

समान एक का पर्याय । एकः गुरुर्यस्य एक गुरुः । तद्धितार्थ परे समाससूचक, सामान तीर्थेवासीसे यत् । सतीर्थे वसति सतीर्थ्यः ।

विभाषा यकारादिप्रत्ययविवक्षिते–वक्ताको इष्ट हो तभी उदरउद परे विकल्प से समानको स हो । समानमुदरं यस्य स **सोदर्यः** सगाभाई । समास पर समानको स, गुण, भावे यत् १७। **दृग दृश** वतु परे रहते समानको स हो समानो दृश्यते एकरुपसे दिखायी दे । एकरुप तुम भ्राता दोऊ । समानान्ययोश्च-दृश धातोः क्विन् पूर्णलोपे समानको स, दृशपरे । **सदृशः** । क्विन्परे कुत्व सदृक्, जब कञ् अ हुआ तब सदृशः । दृक्ष परे भी समान को स हो । और क्सोऽपि वाच्यः दृश से क्स, श षत्व, कत्व कष-क्षः । वतु-उत्तरार्थं बादमें बोलेंगे ।

इदं को ईश् किं को की आदेश हो दृग दृश् वतु परे । इदमिव दृश्यते ईदृक् ऐसा, त्यदादिषु दृशेः क्विन् । पूर्णलोपे । इदं सूत्रसे इदंको ईश् शित्=सर्वादेश कुत्व । यदा कञ् तदा (ईदृशः) किमिव दृश्यते (कीदृक्) कैसा किसकी तरह है, क्विन् । जब कञ् तब (कीदृशः) सूत्रसे किमः की । वतु का उपयोग इयान् उदाहरण— तद्धितमें कहेंगे । दृक्षे दृक्षपरे भी इदं **ईश्** किं को की बोले, इदमिव दृश्यते ईदृक्षः इसकी तरह दिखायी पड़ता है । क्ससे बना दृक्ष परे इदं को ईश (ईदृक्षः) किं को की, किमिव दृश्यते कीदृक्षः ।

अषष्ठी विग्रहमें षष्ठी तृतीया अर्थ न रहे, ऐसा अन्यशब्द, उसको दुक् 'द' आगम हो । आशीः आशा, आस्था, आस्थित, उत्सुक, उति, कारक राग छ इनके परे रहते । क इत् अ उच्चारण । कित् से अन्त अवयव । सभीमें कर्मधारय समास । अन्यः आशीः **अन्यदाशी** शुभाशंसा दुक् द । अन्या आशा **अन्यदाशा** दुसरी लिप्सा अन्य आस्था, दुसरी श्रद्धा । अन्य आस्थितः, बदलाभाव । अन्यः उत्सुकः, दुसरा उत्सुक, अन्या ऊतिः दुसरा मिश्रण । अन्यो रागः, भिन्न रंग, अन्यः अयं **अन्यदीयः** इन सबोंमें समासे दुक् 'द' आगमसे साधुत्वमान्य । षष्ठीतृतीया अर्थमे नहीं, ऐसा क्यो ? अन्यका अन्यसे आशीः हो, तब दुक् न हो अन्याशीः दुक् नहीं हुआ अन्याशा होगा अन्येन आस्थितः, अन्योत्सुकः इत्यादि । कारक और द परे यहां निषेध नहीं लगता, अन्यस्य कारकः षष्ठी अर्थ रहने पर भी दुक्, अन्यस्य अयम् **अन्यदीयः** । षष्ठी रहने पर ही दुक् छ प्रत्यय गहादिके आकृतगण माननेसे हुआ ।

(कारके छे च नायं निषेधः) अन्यस्य कारकोऽन्यत्कारकः ॥ अन्यस्यायमन्यदीयः ॥ अर्थे विभाषा ।६।३।१००। अन्यदर्थः=अन्यार्थः ॥ कोः कत्तत्पुरुषेऽचि ।६।३।१०१। अजादावुत्तरपदे। कुत्सितोऽश्वः कदश्वः। कदन्नम्। तत्पुरुषे किम्? कूष्ट्रो राजा ॥ (त्रौ च)। कत्त्रय। रथवदयोश्च ।६।३।१०२। कद्रथः। कद्वदः ॥ तृणे च जातौ ।६।३।१०३। कत्तृणम् ॥ का पथ्यक्षयोः ।६।३।१०४। कापथम् काक्षः ॥ ईषदर्थे ।६।३।१०५। ईषज्जलं काजलम् ॥ विभाषा पुरुषे ।६।३।१०६। कुपुरुषः कापुरुषः ॥ कवं चोष्णे ।६।३।१०७। उष्णशब्दे उत्तरपदे कवं का च वा स्यात्। कोष्णम् कवोष्णम्। कदुष्णम् ॥

अर्थपरे अन्यसे वा दुक् अन्योअर्थः **अन्यदर्थः** पक्षमें दुक नहीं अन्यार्थकः। **कु के** स्थानमें कत् आदेश हो अचपरे, उत्तरपदके आदिमें। दुष्ट हरामी घोड़ा, कुत्सितोऽश्वः अर्थमें कु को कत् आदेश, अजादि परे अ हे **कदश्वः**। कुत्सितम् अन्नं कदन्नं भ्रष्टखाद्य। कु को कत्में कुगति प्रादयः समास। सूत्रमें तत्पुरुष उत्तरपदार्थमुख्य क्यों कहा? कुत्सितः उष्ट्रो यस्य हरामी ऊंट है जिसका। वही राजते शोभते। अन्यार्थमें कत् आदेश न हो। कत्रौ च, त्रिपरे कु को कत् आदेश हो। निन्दित तीनका समुदाय **कत्रयः** अनजाद्यर्थमिदम्।

रथ और वद परे कु को कत् आदेश हो। वदति वदः बोलता। कुत्सितो वदः कद्वदः भ्रष्टवक्ता, कुगति—समास कद् आदेश। कुत्सितो, रथः कद्रथः। **तृणे** जाति अर्थ मे कु को क हो, तृणपरे, तृणजाति (कतृणं) जाति अर्थमें कु को क हो, तृण परे। तृणजाति (कतणं) जाति अर्थमें कु को कत् हुआ। अस्त्रीकुशं कुठो दर्भः पवित्रमथपतत्रिणि अमरकोशे। का पथि अक्षि परे क को का आदेश हो। कुत्सितः पन्था कापथं, भ्रष्ट रास्ता। कु को का आदेश। ऋक्पूः से अप्रत्यय। टिलोप पथःमें नपुंसक। बहुव्रीहिमें कापथः कुत्सितम् अक्षं नेत्रेन्द्रियं पीड़ित फूटी आंख। काऽक्षः। कुगति समास, अक्षपरे 'का' कादेश। दो समास अक्षके साथ तत्पुरुष, अक्षि के साथ बहुव्रीहिः। कुत्सिते अक्षिणी यस्य परे ष च, टिलोप आदिः फूटी आंख वाला।

इषत् थोड़े अर्थमें विराजमान कु को का हो। ईषद् जलं काजलं थोड़ा पानी अर्थ कहनेके लिए कु को का आदेश, नित्यसमास, अस्वपदविग्रह। ईषत्। **अजादावपि**—परपद अजादि हो, तब भी थोड़ा अर्थमें आदेश हो, यथा कुत्सितः अम्लः थोड़ा खट्टा अर्थमें अच् आदिः। अम्लपरे 'का' आदेश, कत् आदेशकी बाधकर। (३२) **विभाषा** पुरुष परे कु को 'का' हो विकल्पसे। थोड़ा खराब **कापुरुषः** पक्षमें **कुपुरुषः** दोनोंका समान अर्थ अप्राप्त विभाषा है। ननु 'कु' का ईषत् थोड़ा अर्थ है इषदर्थेसूत्रसे का आदेश प्राप्त ही है उसके ही प्रभावसे विकल्प होता, तब बोलें ईषद् अर्थमें पूर्वविप्रतिषेध-समानबलविरोधमें पहले का कार्य हो। अतः नित्य 'का' आदेश होता ही है। यह प्रमाण वृत्तिकारका हैं, भाष्यका नहीं। (कवं अशुद्ध जल अर्थमें) कु को कव आदेश है, उष्ण, पूरेका और कद् भी हो (कवोष्णम्) आंसु गरम, अपेय। कु-कव गुण। जब 'का' आदेश तब गुणे, कोष्णं, ३ रुप एक अर्थ।

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ६।३।१०६। पृषोदरप्रकाराणि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनि । पृषत उदरं पृषोदरम् तलोपः वारिवाहको बलाहकः। पूर्वपदस्यव: उत्तरपदादेश्च लत्वम् ।। भवेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात् । गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात्पृषोदरम् । **मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्** ६।३।११६। दीर्घः स्यात् अमरावती । अनजिरादीनां किम्? अजिरवती । बह्वचः किम् ? ब्रीहिमती । संज्ञायामित्येव । नेह बलयवती ।। **शरादीनां च** ।६।३।१२०। शरावती ।। **उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्** ।६।३।१२२।

पृषोदरादीनि आदिका इत्यादि अर्थ, व्यवस्था नही यथोपदिष्टं–जैसा उपदेश पढ़नेके प्रमाणसे । प्रकारः सादृश्यम् । इसगणमें लोप, आगम आदेश आदि जो सम्भव है । उनको शिष्टः तपस्वी अभ्यासी, प्रामाणिक लोगोंसे जैसा उच्चरित= उच्चारण किया गया हो तथैव—उसी प्रकारसे वे साधु मान्य । लोप आगमन आदेश आदि मानले । पाणिनि व्यकरणमें वे स्वीकृति नही है । किन्तु शिष्टके प्रमाणसे मान्य है । उपदृष्टं उपदेशः उच्चारितं तदनतिक्रम्य यथोपदृष्टं पदार्थके अनुल्लंघन, वृत्तिमें–अव्ययीभाव । प्रथमोच्चारितं तदनतिक्रम्य यथोपसाक्षात्कारवन्तो योगिनः यानि यानि शिष्टैरुपदृष्टानि, उसीप्रकार लोपआगम आदिकी कल्पना कर लें यथा(पृषद्उदरं)भारी पेट। यहां त का लोप हुआ, गुण पृषोदरं, षष्ठी समास, शिष्ट उपदेशसे लोप हुआ, किसी सूत्रसे नहीं । वारिवाहकः पानी ढोने बाला बादल । **बलाहकः** पूर्वपद वारिके व आदेश उत्तरपद वाहक के ब को ल । शिष्ट प्रमाणसे वर्णके विपर्यसे बदलनेसे सिंह बनता है । यथा हिंसि (हिंसायाम्) से अच् इदित् नुम, नश्च अनुस्वार हिंस ह का विपर्य स , सको ह हुआ, तब सिंह बना । उणादि-सूत्र शाकटायन प्रणीत है । अन्य शास्त्रसे व्युत्पत्ति ठीक नहीं । वर्णविकृते=अक्षर बदल होना, जैसे गूढ़: आत्मा यस्य इस समासमें उत्तरपद आत्माका आ विकृत हो ए बना, गुणे गूढ़ोत्मा, वर्ण विकृत हुआ । वर्णनाश पृषत्+उदरम् त का लोप-नाश हुआ । गुण पृषोदरम्, राजा पेट ।

मतौ मतुप्प्रत्ययपरे बहुत अच् को दीर्घ हो, नाम होने पर । अजिर आदिको न दीर्घ । अमराः सन्ति अस्यां अमरावतीं, इन्द्रनगरीका नाम। अमरा मत्, म को व । ङीप्, दीर्घ । किसी नदीका नाम अजिरवती, यहां दीर्घ न हो अतः निषेध पढा । बहु अच् क्यों कहा ? एक या दो अच् वाले को दीर्घ न हो । ब्रीहिः अस्ति अस्यां ब्रीहिमत (धानवाली)दो अच् है, दीर्घ नहीं हुआ । संज्ञा किसीका नाम होने पर ही दीर्घ हो । बलयवती कंकण धारण वाली बलयानि सन्ति यस्याः बलयवती अनजि-रादि—पदसंज्ञा न होनेसे दीर्घ नहीं । शरादीनां को दीर्घ हो मतुप् परे, संज्ञामें । जहां बहु अच न हो वहां के लिए । शराः सन्ति अस्यां शरावती, नदी का नाम । सेवार हो जिसमें । दीर्घ हुआ पूर्वपद को ।

उपसर्ग को दीर्घ हो बहुलम्–आवश्यकतानुसार घञ् अन्त शब्द परे मनुष्य अर्थ

परीपाकः, परिपाकः अमनुष्ये किं ? निषादः ॥ **नरे संज्ञायाम्** ।६।३।१२९। विश्वानरः । **मित्रे चर्षौ** ।६।३।१३०। विश्वामित्रः (**शुनो दन्तदंष्ट्राकर्ण-कुन्दवराहपुच्छपदेषु दीर्घो वाच्यः**) श्वादन्तः । **प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रका-र्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि** ।८।४।५। एभ्यः परस्य वनस्य नस्य णत्वम् । प्रवणम् ॥ **विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः** ८।४।६। दूर्वावणम् । दूर्वावनम् ।

नहो तब । पूर्णरूपसे पाक अर्थ में, परीपाकः, परिउपसर्ग को दीर्घ घञन्त है । मनुष्य अर्थ न हो ऐसा क्यों ? मनुष्य जातिः पुलिन्द निषादः–निसीदन्ति पापानि यस्मिन् हिंसादि पाप जिसमें सदा रहे, निवास करें । हलश्च आधार अर्थ में घञ्, यदि ऐसा तब दौवारिक और प्रतीहारमें दीर्घ कैसे ? क्योंकि वह मनुष्य है । अप्रा-माणिकः । या प्रतीहारः द्वारं तत्र दीर्घस्तत्र तिष्ठति । मनुष्य अर्थ गौण है ।

(नरे) परे पूर्व को दीर्घ हो नाम होने पर । विश्वस्य नरः संसारका मनुष्य **विश्वानरः** नर परे दीर्घ । विश्वस्य वसुराटोःसे विश्वस्य आया **मित्रपरे** विश्व को दीर्घ हो ऋषि अर्थ होने पर । विश्वस्य मित्रः विश्वामित्र ऋषि हैं मित्र परे दीर्घ । ऋषि क्यों कहा ? बालक विश्वमित्रः संसारका दुःख मिटाने वाला, न दीर्घ (वा०) (शुन)—कुत्ता श्वन् शब्दके समास होने पर दीर्घ न हो, दन्त दंष्टा कर्ण कुन्द वराह पुच्छ पदपरे । शुनो 'दन्तः कुत्तेका दांत, समासादि होनेपर दन्तपरेदोर्घ श्वादंष्टा । षष्ठी समास । वार्तिकमें दीर्घ पढ़ा है कोई ह्रस्व मानते है । श्वा इव द्रंष्ट्रा यस्य श्वादष्ट्रः कुत्तेकी तरह दांतवाला अन्यपदार्थ समास । श्वा इव कर्णौ यस्य श्वाकर्णः । श्वाकुन्दः, श्वा च वराहश्च येषाञ्चविरोधः शाश्वतिकः श्वावराहम् श्वापुच्छं श्वा-पदः कुत्तेकी पूंछ, पांव । **प्रनिरन्तः** प्र, निर् अन्तर, शर, इक्षु प्लक्षः आम्र कार्ष्यं. खदिर प्रीयूक्षा इनसे परे वनके न को ण हो । 'वनं पुरगा' से बन आया । प्रकृष्टं वनं प्रवणं विशाल जंगल । वन के न को ण हुआ । वनात् निर्गतं **निवर्ण** निरसे परे वन के न को ण' । अन्तः मध्ये वनं अन्तर्वणं, शराणां वनं शरवणं शरपत का क्षेत्र । इक्षूणां वनं गन्नेका विशाल खेत । प्लक्षवणं पाकड़ का जंगल । आमका जंगल, आम्रवणं, कार्श्यवणं, घना जंगल यहां ष से परे ण है, रेफ से परे नहीं । क्योंकि अडादिसे भिन्न व्यवधान है । खदिरवणं, खैरका जंगल पीयूक्षावण, किसमिसका वन ।

विभाषा औषधि और वनस्पति वाचक शब्दोंसे परे वनके न को ण हो पक्षपात से ओषधिका उदाहरण—दूर्वावणं दूबका जंगल **औषध्यः फलपकान्ताः अमर-कोशे** । फल पकनेके बाद जिसका अन्त हो, वे ओषधि है न को ण हुआ, पक्षमें नहीं । वनस्पतिका उदाहरण—शिरीषवणं वनस्पति है न को ण हुआ यद्यपि बिना फूलके फल लगे वही उदुम्बर गूलर आदि वनस्पति है, वानस्पत्यः फलैः पुष्पात्तैर-पुष्पाद्वनस्पतिः इस अमरकोश से । शिरीषवृक्ष फूल फलवाला है, णत्व कैसे ? 'लुपि युक्तवत्'—सूत्रके भाष्यमें शिरीषवणं का वनस्पति अर्थमें उपयोग है इससे वृक्षामात्र

शिरीषवणं शिरोषवनं (द्वयच्त्र्यज्भ्यामेव) । नेह-देवदारुवनम् (इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः) इरिकावनम् मिरिकावनम् । **वाहनमाहितात्** ८।४।८। आरोप्य यदुह्यते तद्वाचिस्थान्निमित्ताद्वाहननकारस्य णत्वम् । इक्षुवाहणम् अ हितात्किम् ? इन्द्रवाहनम् ॥ **पानं देशे** ।८।४।९। पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य पानस्य नस्य णः । क्षीरं पानं येषां ते क्षीरपाणा उशीनराः । सुरापाणाः प्राच्याः । **वा भावकरणयोः** ।८।४।१०। क्षीरपाणम् क्षीरपानम् ॥ **प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च** ।८।४।११। पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य एषु

का सूचक है । शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः शिरीषा तेषां शिरीषवणं, णत्वसे लिए वनस्पति का आरोप आवश्यक । पक्षमें णत्व नहीं । यह णत्व दो अच् से परे वनके न को होता है । चार अच् वाला देवदारुसे परे वनके न को ण नहीं हुआ । इरिकादिगणपठित शब्दोंके ओषधि मानकर प्राप्त णत्व का निषेध हो, इरिकायाः वनं औषधिका नाम है मिरकाभिः या मरिचि मुनक्काका वन णत्व निषेध हुआ । (५२) **वाहन**के न को ण हो । आहितात् उसपर लादा गया हो, आधीयते आरोप्यते यदुह्यते लादकर ढोया जाने वाल', इक्षवो हि वनगनाय परैरारोप्यन्ते नतु स्वयमेवारोढुं शक्नुवन्ति । दूसरोंसे चढ़ाये जाते है । स्वयं चढ नहीं सकते । ईखसे लदी ट्रक जैसा वाहन हो तब णत्व । इक्षूणां वाहनं णत्व करें । सूत्रमें आहित क्यों पड़ा ? जो चढ़ाया जाय स्वयं चढ़ न सके ऐसा क्यों ? इन्द्रवाहनम्, ऐरावत इन्द्रका वाहन है उसपर इन्द्र स्वयं चढते है किसीसे उठाकर लादे नहीं जाते । उस दशाका उदाहरण । इन्द्रः स्वयमेव आरोहति तदा प्रत्युदाहरणं यह सोचकर बोले—इन्द्रः स्वामी यस्य तत् इन्द्रस्वामिकं वाहनं, णत्व नहीं हुआ । वह-धातुसे साधन अर्थमें ल्युट् । तब वृद्धि कैसे ? ञित् णित्परे नहीं । अतः बोले वृद्धिरिहैव—इसी सूत्रके निपातनसे वृद्धि मान लें ।

पानं देश अर्थ खुलता हो तब पूर्वपदमें स्थित निमित्त र ष से परे पानके न को 'ण' हो । क्षीर दूध है पानं पीनेकी वस्तु जिन लोगोंकी वह उशीनरदेशका नाम क्षीरपाणाः देश अर्थमें बहुवचन, पीतिः पानं, पीयते अनेन पानं, क्षीरस्य पानं विग्रह हों, तब बोले--पीयते कर्ममें ल्युट् पाणं न को ण । (५४) । (वा) भावः क्रिया करण साधन अर्थमें पान शब्दके पूर्वपदमें र ष हो, तब नको ण विकल्पसे हो । क्षीरस्य पानं(भावे करणे वा ल्युट्) दूधका पीना- या दूध पिया जाय जिसमें, पात्र। पूर्वपद क्षीरमें र निमित्त है, अतः पानके नको ण । गिरि और नदी आदि परे नको ण विकल्पसे हो ।गिरेः नदी पहाड़ी सरिता णत्व विकल्प । चक्रमिव चौको जैसा नितम्बं यस्या सा चक्रकी तरह गोलाकार पिछला भाग हो विकल्पसे नको ण ।

प्रातिपदिकान्त—पूर्वपदमें स्थित णत्वका कारण, र ष उसीमें स्थित हो और एषु--उन्हों प्रातिपदिकान्त और विभक्तिमें विराजमान हो, ऐसे न को ण विकल्पसे हो । जिसकी प्रातिपदिक संज्ञा हो उसके अन्तमें नको ण का उदाहरण-भाषान्वपते

स्थितस्य नस्य णो वा । प्रातिपदिकान्ते–माषवापिणौ । नुमि, व्रीहिवापेण । विभक्तौं-माषवापेण । पक्षे-माषवापिनावित्यादि ॥ **कुमति च** ।८।४।१३। कवर्गवत्युत्तरपदे प्राग्वत् । हरिकामिणौ । हरिकामाणि हरिकामेण ॥ **पद-व्यवायेऽपि** ।८।४।३८। णत्वं न । माषकुम्भवापेन । (अतद्धित इति वक्तव्यम्)। आर्द्रगोमयेण । शुष्कगोमयेण ॥ **पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्** ।६।१।१५७।

मासवापी 'बहुलमाभीक्ष्ण्ये' यह जाति अर्थमें भी णिनि करता है । कृदन्त मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा, नको 'ण' माषवापिणौ विकल्प णत्व नुम् णत्व । व्रीहीन्वपन्ति व्रीहिवापाणि (ज्ञानानि जैसा नुम् आदि कार्य) कृषीवलकुलाणि, किसानवर्ग नि के न को ण हुआ । पक्षमें नहीं, कर्मणि अण् । विभक्तिमें ण का उदाहरण=माषवापसे टा को इन । उसमें विभक्तिका न है, विकल्प ण । पक्षमें णत्व नहीं हुआ । तब माषवा-पानि । माषवापेन ।

कुमति कुः कवर्गः अस्ति अस्मिन् क ख ग घ ङ वाले उत्तरपदमें प्रातिपदिका-न्तनुम्—विभक्तिनकारको नित्य ण हो । अनेक अच् उत्तरपदके लिए सूत्र=हरि कामयतः हरिकामिणौ, बार-बार भगवानको चाहने वाले । आभीक्ष्ण अर्थमें णिनि । हरिकामिन् उत्तरपद कवर्गवाला । कामिन् प्रातिपदिकका अन्त न को ण नित्य । माषान् वपन्ति कर्ममें अण, नपुंसक नपुंसकस्य झलचः नुम् । न को ण ज्ञानानिवत्-रूप । हरिं कामयति हरिकामः तेन हरिकामेण । विभक्तिके न को ण । भगवान्को चाहने वालोंसे ।

पदके व्यवाये—व्यवधानमें भी र ष से परे न को 'ण' नहीं होता । न माभूपुसे 'न' आया । माषणां कुम्भो मासकुम्भः (उरदका घड़ा) तस्य वापः उसको खेतमें बोना, षष्ठी समास, ष और न के बीच कुम्भपदका भेद होनेसे णत्व निषेध हुआ, जो कुमति च से प्राप्त था । चत्वारि अङ्गानि रथगज-अश्वपदाति रूपाणि यस्य तच्चतुरङ्गं सैन्यं तेन योगेन निमित्त र, कार्यी, न के बीच अङ्गका व्यवधान है । णत्वका निषेध हुआ । अन्तर्वर्तिनी समास के भीतरी लुग्विभक्तिको मानकर पद समझें । अतद्धिते=तद्धितप्रत्यय परे जो पद उसके व्यवधानमें यह निषेध न लगे । आर्द्रगोमयेन, गोः पुरीषं गोमयं गायका गोबर 'गोश्च पुरीषे' मल अर्थमें मयट् तद्धित है । सुप्का लुक्, आर्द्रगोमयं कर्म-धारय, गीला गोबर । यद्यपि प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणसे भीतरी सु लुक् है, विभक्ति मानकर गोशब्द पद है । तेन आर्द्रं गोमयेन तद्धितमयट्के व्यवधानमें 'र' से परे न को ण हुआ । वह पद नहीं, तथापि इस प्रसङ्ग में अट्कुप्वाङ् नुम् भी बाधक नहीं । ष से परे पदके व्यवधानमें णत्वका उदाहरण—शुष्कगोमयेण सूखे गोबरसे, गोके व्यधानमें भी न को ण ।

कारस्कर : कारं करोति उपकार करना जिनका स्वभाव हो ऐसा अर्थसूचक सुट् हो । कृञो हेतुताच्छील्ये ट=अ सुट् **कारस्करः** । अन्यत्र–जहां वृक्ष अर्थ नहीं,

एतानि ससुट्कानि निपात्यन्ते। पारस्करः। किष्किन्धा॥ (तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च)। तात्पूर्वं चर्त्वेन दकारोऽपि बोध्यः। तद्बृहतोर्दकारतकारौ लुप्येते, करपत्योस्तु सुट्। चोरदेवतयोरिति समुदायोपाधिः। तस्करः। बृहस्पतिः॥ (प्रायस्य चित्तिचित्तयोः)। प्रायश्चितिम्। प्रायश्चित्तम् वनस्पतिरित्यादि। आकृतिगणोऽयम्।

इति समासाश्रय

तद्धितप्रकरणम्

अथापत्यादिविकारान्तार्थसाधारणप्रत्ययाः

वहां सुट् भी नहीं कारकरः कुशलकार्यकर्ता। कोई कस्कादि गणमें इसको पढ़ते हैं सूत्रोंमें नहीं (७१) **पारस्करः** पारङ्करोति पार करना जिसका स्वभाव हो या जो कारण हो। हेतु तत्शील अर्थमें ट। किसीका नाम अर्थका सूचक सुट् हो। किं-कि वानरसैन्यं धत्ते किष्किन्धा आकारान्त धासे क=अ-टाप् निपातनसे। किम्को द्वित्व मलोप सुट् उ ष। एक पहाड़ का नाम है अतः सुट्। इस गणमें रूढशब्द है। कथञ्चित् व्युत्पत्ति करें। प्रकृति या प्रत्ययके अर्थ पर विचार अनिवार्य नहीं (ग०) **तद्** पारस्करादिगणका सूत्र है। तत् और बृहत् शब्दको क्रमसे कर और पति शब्द परे चोर अर्थ या देवता अर्थमें सुट् हो, तकार लोप भी। परन्तु विग्रहमें त रहेगा, त से पहले चर्त्व और दकार भी समझें। तद्का द, बृहत् का त लुप्त होते है। (वा) करपति चोर पतिको देवता अर्थमें सुट् समझें। चोर औ देवता अपने समुदाय की उपाधि सूचक है। तत् चौर्यं करोति हेतु या तत्शील अर्थमें ट। तस्करः। ति का लोप, चोर समुदाय अर्थमें सुट! बृहती वाणी तस्याः पति कुक्कुटयादि गण मानकर पुंवत्, तलोप, सुट्, स बृहस्पतिः वाणींका स्वामी वाग्देवता अर्थ सूचक सुट्। वाक् हि बृहती तस्याः पतिः इति छन्दोग्ब्राह्मणम्। (ग०) **प्रायसे** चित्ति या चित्त परे रहते सुट् हो, पापकी शुद्धि अर्थमें। यहां प्रायका पाप अर्थ, चित्तका शोधन अर्थ। प्रायस्य चित्तिः चित्तं वा विग्रहे समासे समासाश्रय सुट्। प्रायं पापं विजानीयात् चित्तं तस्य विशोधनं, शब्देन्दुशेखरमें पुलिङ्ग प्रायशब्द अकारान्त, तप उसका अर्थ है। प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते इति स्मृतिः। तपका निश्चय अर्थ में सुट् प्रायश्चित्तं। वनस्य पतिः वनस्पति वनका पालक, तत्व अर्थसूचक सुट्। पारस्कर आदि आकृतिगण है। रूप देखकर स्वरूप सुट् समझ लें। अतः शतात्पराणि परश्शतानि कार्याणि सन्ति। राजदन्तादि मानकर शत्का परनिपात। पारस्करगण मानकर सुट्। इति प्रभाकरमिश्रकृतायां समासाश्रयः।

अथतद्धिताः समास समाप्तिके वाद तद्धितप्रत्ययोंका प्रकरण प्रारम्भ करते है। ये प्रातिपदिकके अधिकार में पढे गये है। अतः प्रातिपदिकात्तद्धितोत्पत्तिः अथवा सुबन्तात्तद्धितोत्पत्तिः स्वार्थे परिपूर्णं पदमर्थान्तरमाकाङ्क्षते। प्रातिपदिक के अर्थो से परिपूर्ण हराभरा पद अन्य अर्थं अपत्य निवास भव हित आदि की कामना

समर्थानां प्रथमाद्वा ।४।१।८२। इदं पदत्रयमधिक्रियते, प्राग्दिश इति·

करता है। ध कालतनेषु से सप्तमीका अलुकभी प्रमाण हैं। यदि सुबन्त न होता तब तद्धित परे सप्तमी का अलुक् कैसे करते। प्रातिपदिकसे या सुबन्तसे तद्धित प्रत्यय होते है। शब्दार्थः—तस्मै प्रातिपदिकाय हिताःअथवा प्रयोगेभ्य हिताः प्रत्ययाः तद्धिताः। प्रयोगो के लिए उपयोगी हितैषी, दिव्य, सुन्दर, अर्थवर्धक, व्यवहार सुगम, कुशल, अल्प अक्षरसे असन्दिग्ध अधिक अर्थदायक शब्द का सुन्दरीकरण आदि गुणसंस्कारक, प्रत्यय हो। यदि अधिकारसे प्रातिपादकके लिए हितकारीप्रत्यय है। तब कभी प्रत्ययों का अर्थप्रातिपदिकार्थसे सम्बद्ध होगा। जो जाति व्यक्ति लिङ्ग संख्या कारक रूप है। प्रायः अपत्य (पुत्र) गोत्रापत्य (पौत्र) युवापत्य (प्रपौत्रादि) ये सभी अर्थ जाति अर्थके बोधकप्रातिपदिकार्थं हैं। जो जन नात्जायते या सा जातिः जन्मसे जातिका (अपत्यादि अर्थ का सम्बन्ध बोध होता है। जाति का आश्रय व्यक्ति प्रधान है। यथा-दिति का पूत्र दैत्य, जाति भी, व्यक्ति भी। अदिति का पुत्र आदित्य देवता जाति और व्यक्ति भी बोध्य है। लिङ्गबोधक भी प्रत्यय है। भाव में त्व और तल् आदि अनेक प्रत्यय है। व्यक्तिमें जितने विशेषण हैं गुण क्रिया जाति धर्म योग्यता विशेषता आदि सभी (त्व) प्रत्यय के अर्थ। त्वान्तं क्लबं तलन्तं स्त्रियाम्। यथा--अस्य ब्राह्मणत्वं जानामि। इसके ब्राह्मणत्व तपस्या वेदका ज्ञान, जाति, सन्ध्याबन्दन, पवित्रता सदाचार त्याग, तप क्षमा शम दम आदि को जानता हूं। सभी प्रत्ययोंका अर्थ किसी न किसी रूपमें प्रातिपदिकार्थसे सम्बद्ध है। प्रत्येक प्रयोगोंमें पूर्ण या आंशिक रूपसे सुलभ है। तद्धितवृत्ति परार्थं=एकार्थीभाव का अभिधानं बोधक है। प्रकृति सुबन्तका अर्थ और प्रत्ययका अर्थं मिलकर एकार्थी भाव होते हैं। पृथगर्थानाम् एकार्थोपस्थितिः एकार्थीभावः। प्रत्येक वृत्तिमें लौकिक विग्रह और अलौकिक शरीर अवश्य है। यथा—अश्वपतेरपत्यं यह लौकिक (लोक, समाजमें उपयोगके योग्य) शरीर हैं अश्वपतिङस् अलौकिकविग्रह, जिससे अणादि होते हैं।

तत्रादौ साधारणप्रत्ययाः—प्रथम प्रकरणमें साधारण व्यापक, अधिकदेशमें कार्यरत, प्रत्ययाः--प्रत्याययन्ति अपत्य, अधीत, भव, जात, हित, आगत, निवास, विकार, आदीन् अर्थान् बोधयन्ति, इति प्रत्ययाः। (४) **समर्थानां**=प्रतिपदिक या पदका अर्थ, प्रथमात्—प्रथम उच्चारित उद्देश्यभूत शब्द (तस्य तेन, आदि उसका उद्देश्य षष्ठचन्त, तृतीयान्त पदसे वा=विकल्प। पदत्रयं=तीनों पद अधिक्रियते। त्रयं में एकवचन से तीनों पदों का एकसाथ अधिकार चलना व्यङ्ग्य है। तब सूत्रमधिक्रियते==ऐसा क्यों नहीं कहा। पदत्रयमधिक्रियते ऐसा क्यों ? इसलिए कि स्वार्थिकप्रकरणोंमें केवल 'वा' का सम्बन्ध जाता है। अन्य दोनों का नहीं अतः कहा प्राग्दिश=प्राग्दिशोविभक्तिः सूत्र तक तीनों पदों का पूर्ण अधिकार हैं। तदनन्तरं स्वार्थिकप्रत्यय चलता है। इनका केवल विधिसूत्रके वाक्यार्थ बोधमें उपयोग है

यावत् ।। **प्राग्दीव्यतोऽण् ।४।१।८३।** तेन दीव्यतीत्यतः प्रागणधिक्रियते ।। **अश्वपत्यादिभ्यश्च ।४।१।८४।** एभ्योऽण् स्यात्प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु । अश्वपते-

स्वतन्त्र नहीं । यथा समर्थः पदविधिः पदके उद्देश्यसे प्रत्यय आदिका विधान वृत्ति (सामर्थ्य) परस्पर सम्बन्ध योग्यताके अधीन है । यह पदोद्देश्यकविधि कृत्तद्धित-समाससनाद्यन्तएकशेष, पांचों वृत्तियोमें हैं । प्रसङ्गमें प्रकृत्यर्थ (सुबन्तार्थ) और प्रत्ययार्थ मिलकर एकार्थीभावरूप योग्यावृत्ति है । अधिकारका फल प्रयोगके योग्य-समर्थ शब्दोंका तद्धितवृत्ति के अनुकूल विधायक सूत्रमें प्रथम उच्चारित (पद) से जिसका बोध हो उससे विकल्पसे प्रत्यय हो । यथा तस्यापत्यं तस्येदं, तस्य निवासः तस्य विकारः इत्यादिमें प्रथमात्-प्रथम उच्चारित उद्देश्यभूत तस्य शब्द सबमे है । इस षष्ठयन्तपदसे जिस शब्दका ग्रहण हो उसीसे प्रत्यय हो । उपगोः अपत्यं—षष्ठयन्तपद उपगोः से अण प्रत्यय हुआ । यह तद्धितप्रत्यय विधिसूत्रोंमें प्रथम उच्चारित उद्देश्यभूत शब्दोंसे होता है । अपत्यम् इदं, निवासः विकारः शब्दसे प्रत्यय नहीं, क्योंकि वे उद्देश्य नहीं विधेय है । सूत्रमें प्रथम उच्चारित नही । पक्षमें लौकिक विग्रह भी रहते हैं ।

प्राग्दीव्यतः=तेन दीव्यति खनति जयति जितं-सूत्रके प्राक् पहले तक अण्का अधिकार चलेगा । दीव्यति का अंश अनुकरण दीव्यत् है । उससे जुड़ा सूत्र सूचित हुआ : अतः तेन दीव्यति खनति सूत्रके पहले तक अण् का अधिकार चलेगा । इस बीच अर्थ अपत्य, समूह, निवास, निवृत्ति, रक्त' अदूरभवः विकार. जात इत्यादि अर्थ आये है । सबमें अण् पहुचेगा, बाधकसे ही बाध्य होगा । कोई दीव्यत् में शतृ कहते है । तेन देवन कर्ता अर्थ एव अवधिः । एकदेशविकृतन्यायसे भी । यह अण् किससे हो, कैसे हो ? क्यों हो ! किस अर्थमें हो, कहां हो ? बादके सूत्र-तस्यापत्यम् आदिमें सन्तान अर्थ, इदम् अर्थ, निवास भवन होना, विकार, जातः भवः पैदा हुआ आदि केवल अर्थ बोलने वाले सूत्रोमें विधेय-विधान किये जाने वाले प्रत्ययोंका उच्चारण नही है किन्तु अर्थ बोलते है । उसका वाचक या द्योतक नही कहते, उन स्थलोमें अण् शीघ्र उपस्थित होता है जो विधेय है । परन्तु कस्माद्भवति किससे हो तत्र समर्थानां प्रथमात् उपस्थित होगा कहेगा कि, अर्थ प्रतिपादनकुशल, शक्त=शक्तिसम्पन्न समर्थ उच्चारित शब्दसे तद्धित हो, समर्थानां मध्ये प्रथमोच्चरित सांकेतित शब्दात् अण् भवतु. जैसे तस्यापत्यं में तस्य प्रथम उच्चारित है, वह षष्ठयन्तका सूचक है तब समर्थ -षष्ठयन्तशब्दसे अण् अर्थ निकलेगा । जहां विधेय प्रत्यय (अत) इञ् । फक् फिञ् ठक् ठञ् यत् ण्य आदि जिन सूत्रोसे होगा, उनमें अञ् नही जायेगा । अण् उत्सर्ग है इञ् फक् फिञ् अपवाद बाधक है ।

अश्वपत्यादि अश्वपति आदि शब्दों से अण् प्रत्यय हो प्राग्दीव्यतीयेषु । तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' इस सूत्रमें पठित अर्थसे प्राक्—पहले तक (यावन्तो अपत्यादयोअर्थाः जितने अपत्य इत्यादिके अर्थ बोधक प्रत्यय पढ़ गये हैं) उनका अधिकार है । जैसे :–तस्यापत्यं तत्रजातः ततआगतः, तदधीते, तेनप्रोक्तं तस्मैहितं

रपत्यादि। आश्वपतम् गाणपतम्। दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः।४।१।८५। प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु। दितेरपत्यादि दैत्यः, अदितेरादित्यस्य वा आदित्यः।। (यणो मयो द्वे वाच्ये) मय इति पञ्चमी यण इति षष्ठीति पक्षे यस्य द्वित्वम्।। हलो यमां यमि लोपः।८।४।३४। वा स्यात्। इत्यसतिलोपे द्वित्वे च सति त्रयं रूपम्। असति लोपे द्वित्वलोपयोर्वा द्वियम्। द्वित्वाभावे

सोऽस्यनिवासः, तेननिर्वृतं तस्य समूहः, इत्यादि अर्थ प्राग्दीव्तीय कहलाते हैं। यथा आश्वानां पतिः अश्वपतिः (घोड़ों का स्वामी) उससे अपत्य सन्तान कहनेकी इच्छा हुई, तब षष्ठ्यन्त अश्वपतेः अपत्यम् (अश्वपति की सन्तान) लौकिक वाक्य 'अश्वपति ङस्' इस अलौकिक दशामें समर्थसे (अश्वपत्यादिभ्यश्च) सूत्रमें अपत्य अर्थमें जन्यजनक भावयोग्यता सम्बन्धमें अण्। तद्धितवृत्ति। अण्प्रत्यय विधायक सूत्रमें प्रथम उच्चारित उद्देश्यभूत अश्वपति शब्द है। अण्पद सन्तान आदि अर्थका बोधक है। 'कृत्तद्धितसमासाश्चेति) प्रासंज्ञा, सुपोधातु प्रादिपदिकयोः से सुपका लुक्। अनुबन्धलोप, अश्वपति अ दशामें तद्धितेष्वचामादेः सूत्रसे आदिके अको आवृद्धिः, यस्येति च' अन्त्य इका लोप स्वादिः (आश्वपतः) पुत्रः। अश्वपतीनां समूहः आश्वपतम्। आदि पदसे अन्य अनेक अर्थं भी लिए जायेंगे। अश्वपतेः निवासो देश. आश्वपतः। अश्ववतेः विकार, शुक्रशोणित मूत्रपुरीषादि, अश्वपतेरिदं गृहम् आश्वपतमित्यादि। गणानां प्रमथादीनां पतिः गणपतिः गणेशः। गणपतेः अपत्यमिति लौकिके 'गणपति ङस्' अस्मात् समर्थात् अश्वपत्यादिभ्यश्चेति सूत्रसे अपत्यादि (सन्तान) अर्थंबोधक अण्प्रत्यय, अनुबन्धलोप तद्धितेष्यचामादेः वृद्धिः पूर्ववत्। जन्यजनक भावसामर्थ्य (गणेशमें पुत्र पैदा करनेकी योग्यता) प्रत्यक्ष (पूत्र पैदा) होने पर ही यहां वृत्ति बनेगी। गाणपतः गणेशपुत्रः जन्यजनकसम्बन्धात्मक एकार्थीभावः। गणेशस्य गृहंगाणपतम् निवासः विकारः गाणपतः।

दितिः दैत्योंकी माता (अदितिः देवमाता) आदित्यः (सूर्य) और पतिशब्द जिसके उत्तरमें पद हों ऐसे षष्ठ्यन्त समर्थ सुवन्तोंसे ण्य(य) प्रत्यय हो, प्राग्दीयव्तीय अर्थमें जो समझाये गये हैं। अणोऽपवादः अश्वपत्यादिभ्यश्चका अण् प्राग्दीव्यतोऽण् का बाधक है। दितेरपत्यं (देवमाता दितिकी सन्तान) लौकिक विग्रह, दिति ङस् षष्ठयन्त पदं दिति ङस्से (सन्तान अर्थ में) जन्यजनकभावसामर्थ्य रहते सुवन्त (दिति ङस्) पदसे प्राग्दीव्यतीयके किसी अर्थ (अपत्य अर्थ) में ण्य, ण इत् य शेष हुआ, आदिवृद्धिः, ऐ। भसंज्ञा यस्येति च से इलोपे विभक्ति कार्य दैत्यः। दितिसम्बन्धीसन्तान तद्धितार्थः। एवं अदितेरपत्यम् (अदितिः देवमाता की जनयोग्यतासे प्रत्यक्षसन्तान) आदित्यः। साधनिका पूर्ववत्। आदित्यस्य अपत्यम् सूर्यकी जननयोग्यता से प्रत्यक्षसन्तान अर्थ षष्ठ्यन्त जननयोग्यतासमर्थ सुवन्त आदित्य ङस्से अपत्य आदि अर्थमें ण्य य (आदित्य य) यस्येति च भसंज्ञक यके अका लोप ततः (७) हल् वर्ण से परे यम् प्रत्याहारके अक्षरका लोप हो, यम् परे। हल्—आदित्य का त उससे

लोपे च सति एकयम् । प्राजापत्यः ॥ (देवाद्यञञौ) दैव्यम्, दैवम् ॥ (बहिषष्टिलोपो यञ्च) । बाह्यः ॥ (ईकक च) ॥ किति च ।७।२।११८। किति तद्धितेऽचामादेरचो) वृद्धिः । वाहीकः ॥ (गोरजादिप्रसङ्गे यत्) । गोरपत्यादि गव्यम् ॥ उत्सादिभ्योऽञ् ।४।१।८६। औत्सः ॥

इत्यपत्यादिविकारान्तार्थसाधारणप्रत्ययाः ॥

परे यम् य उसका लोप, यम् प्रत्ययपरे ण्यका 'य' आदित्यः(स्वादिसम्बन्धि कार्य)सूर्य की जनन योग्यतापरिचायकः पुत्रः । प्राजापत्यः—प्रजापतेः (दक्षस्य) अपत्यम् आदि पति उत्तरपद प्रजापतिसे (ण्य) पूर्ववत् । प्रजापति दक्षकी सन्तान 'सती' अन्य अर्थ भी प्रसङ्गके अनुसार ण्य आदि पूर्ववत् । (वा०) देवात्—देव शब्दसे अपत्य, जात, निवास, इत्यादि अर्थोंमें समर्थसुबन्तसे यञ् और अञ् प्रत्यय हो । इत् । यञ् और 'ण्य' में स्वरका अन्तर । देवस्य अपत्यं निवासः आदि अर्थमें यञ् अनुबन्धलोप, आदिवृद्धिः, अकारलोप, स्वादिकार्य (दैव्यम्) अञ्पक्षमें दैवम् गृहम् सन्तानादिर्वा (वा०) बहिष् शब्दसे प्राग्दीव्यतीय अपत्य आदि अर्थबोधक यञ् हो टि का लोप भी । वहिर्भवः बाह्यः । बाहर हो या पैदा हुआ हो । वहिष्शब्दोभव अर्थमें यञ् टि(इष्)का लोप वार्तिकसे । आदिवृद्धिः, बाह्यः (सन्तानादिः, प्राकारः ईकक्च) वहिष् शब्दसे भवआदि अर्थमें ईकक् प्रत्यय भी हो टिलोप भी । वाहीकः (बाहरी कार्यकर्ता) ईकक् प्रत्यय टिलोप (८) कितिच==कित क इत् तद्धित प्रत्ययपरे अचाम्==अचोंके आदि अच्को वृद्धि हो, इति आदिवृद्धिः (वा० गोरज–अच् आदिवाले प्रत्ययोंके प्रसंगमें गो शब्दसे अपत्यआदि अर्थोंमें यत् हो । अच्प्रत्याहारस्य अक्षराणि आदौ यस्य स अजादिः । गोः अपत्यं गव्यम् अथवा गवि भवं, इदं, गोविकारः गव्यः, गोः निवासः गव्यः गोङस् इस समर्थ सुबन्तसे अपत्य भव आदि अर्थमें अण् प्राप्तः, वार्तिकसे यत् गोय–तद्धितान्त प्रासंज्ञा सुपका लुक् । वान्तो यि प्रत्यये, अवादेश स्वादिकार्य गव्यम् । गोसम्बन्धिविकारः गृहं सन्तानादिः (६) उत्स) आदि शब्दोंसे अपत्य, निवास आदि अर्थबोधक अञ् (अ) प्रत्यय हो । उत्सो निर्झरः तत्रभवः, औत्सः शैवालादिः अथवा उत्सस्य उत्स नामक ऋषि की अपत्य आदि उत्स ङस् इस षष्ठ्यन्तसमर्थसे अपत्यादि अर्थमें अञ् आदिः । उस्थाने औ वृद्धिः, अन्त्य अलोप इति—वह अपत्यादि तस्यापत्यम्से लेकर विकारान्त, तस्यविकारः सूत्रपर्यन्त अर्थबोधकसाधारण (व्यापक) प्रत्यय कहे गये । इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकर्मा साधारणप्रत्ययाः ।

अथ अपत्याधिकारः । अथ=तद्धितके साधारण (व्यापक) प्रत्ययोंके संस्कार और परिचयके बाद अपत्याधिकार आरम्भ करते हैं । यद्यपि अपत्य शब्दका पुत्र अर्थ है न पतन्ति पितरो अनेन तत् अपत्यम् । पुंनाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः(जिसके कर्म पिण्ड जलदानसे पितरोंका पतन नहो या नरकसे उद्धार,रक्षा हो)तथापि अपत्यशब्द गोत्रापत्य (पौत्र) युवापत्य (प्रपौत्र) आदिका भी उपलक्षण बोधक है । युवापत्य प्रपौत्रआदिका मूल गोत्रापत्य पौत्र है । उस पौत्रका मूल अपत्य पुत्र है। उस पुत्रका

अथापत्याधिकारप्रकरणम्

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ।४।१।८७। धान्यानां भवन इत्यतः प्रागर्थेष्वाभ्यामेतौ स्तः । स्त्रैणः पौस्नः ॥ **तस्यापत्यम्** ।४।१।९२। षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः ।

भी मूल पुरुष पिता है । पितासे पुत्र, पुत्रसे पौत्र, पौत्रसे पपौत्र इत्यादि । इनमें मूल पुरुष पितासे प्रकरण प्रारम्भः । तद्धितान्त शब्द वास्तविक शब्द ब्रह्म है । उससे अनेक सृष्टिकी इष्टवृष्टि दृष्ट है । प्रकृति स्त्रीके साथ प्रत्यय पुरुष का सम्बन्ध वृत्ति बन्धन है । जितने प्रत्यय (पुरुष) है, प्रकृति (स्त्री) उतना रूप धारण करती है । देखनेमें प्रकृति एक है प्रत्यय अनेक है । पुरुष बहुत्वं सिद्धं, जितने प्रत्यय उतना हीं विचित्र नाना अर्थ नानात्मक (जीवजड़) व्यक्त है ।

स्त्रीशब्द पुंसशब्दसे क्रमशः नञ् स्नञ्प्रत्यय हो, धान्यानां भवनेक्षेत्रे इस सूत्र से प्रागर्थेषु—पहले आये हुए अर्थोमें । यथा स्त्रैणः, स्त्रियाः अपत्यं स्त्रीका लड़का (पुमान्) जननीजन्यसम्बन्धरूपसामर्थ्य रहते, षष्ठयन्तस्त्री ङस्से (स्त्रीपुंसाभ्याम्) आदिसूत्रसे नञ्, अनुबन्धलोपे स्त्री न दशामें आदिवृद्धि, णत्व विभक्तिकार्य, स्त्रैणः । एवं स्त्रीषु भवः, स्त्रीणां समूहः, स्त्रीणाम् अयं स्त्रियाः भावः स्त्रैणः । स्त्रीत्वं स्त्रियोंका समुदाय । स्त्रिया जितः स्त्रैणः स्त्रीके वशीभूतपुरुष, आदि अनेक अर्थ अवसरके अनुसार समझें सृष्टि करें, पौंस्नः, पुंसः अपत्यं (पुरुषकी सन्तान) पुंसु भवः पुरुषमें पुरुषार्थ) पुंसां समुहः पुंभिः जितः, इत्यादि । किसी एक अर्थमें पुंस् ङस् इस शब्दसे स्त्रीपुंसाभ्यां सूत्रसे स्नञ् । स्वादिष्वसर्वनामस्थाने—पदसंज्ञा, संयोगान्तस्यसे पुंसके सका लोप, आदिवृद्धिः, शेषकार्य पौंस्नः पुंसः पुत्रः पुरुष का पुत्र, पुरुषार्थ पुंस समुदाय पत्निवशीभूतः पुंसः निवासः आदि अनेकसम्बन्धसे एकार्थीभाव हो गये । (१) तस्य षष्ठयन्तानुकरणं लुप्तषष्ठीकपदम् । इसका अर्थ षष्ठयन्तात् कृतसन्धेः षष्ठयन्त हो, सन्धि की गयी हो । ऐसे सुबन्त समर्थपदसे अपत्ये सन्तान (अत्र सप्तम्यर्थे प्रथमा) अर्थमें उक्ताः—कहे गये और वक्षमाणाश्च=कहेजाने वाले प्रत्यय विकल्पसे हो । तस्य शब्द सर्वनामसे सिद्ध है । सभी षष्ठयन्तों का परामर्शक है । समर्थानांके अधिकार में है । सामर्थ्य का सन्धिकिया हुआ अर्थ है । इसी आशयसे कृतसन्धेः कहा कृतसन्धिका मुख्यफल सुउथतिस्य अपत्यं **सौत्थितिः** है परन्तु कृतसन्धि–बिना सन्धि किये सु में उ को आदिवृद्धि, होकर आव् सावुत्थितिः अनिष्ट बनेगा । जैसे अपत्यं की प्रथमा सप्तमी अर्थको कहती है । एवं तत्र जातः, तेन प्रोक्तं तस्मैहितं, ततः आगतः, तदधीते, सोऽस्य निवासः इत्यादि सबमें प्रथमा, सप्तमीके अर्थोको कहेगी । अर्थनिर्देशे सर्वत्र सप्तम्यर्थे सौत्रीप्रथमा (२) **ओः**—उकार अन्तमें हो, ऐसे समर्थसुबन्त भसंज्ञकको गुण हो, तद्धितप्रत्यय परे । उप (समीपे) गावो यस्य स उपगुः, (समीप गाय वाला) तस्य उपगोः अपत्यं पुमान् । अत्र षष्ठयन्तपद (उपगु ङस्) जन्यजनकसामर्थ्यं (सन्तानोत्पत्तिक्षमता) का सूचक तस्यापत्यं सूत्रसे अपत्य अर्थे अण् (अ) तद्धितान्त जानकर प्रासंज्ञा सुपलुक् । णित्परे आदि

ओर्गुणः ।६।४।१४६। उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते। ओरोदिति वक्तव्ये गुणोक्तिः 'संज्ञापूर्वकोविधिरनित्य' इति ज्ञापयितुम्। तेन स्वायंभूवमित्यादि सिद्धम्। उपगोरपत्यम् औपगवः। आश्वपतः दैत्यः औत्सः स्त्रैणः। पौंस्नः॥ **अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम्** ।४।१।१६२।अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात्॥ **एको गोत्रे** ।४।१।९३। गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात् उपगोर्गोत्रापत्यम् औपगवः॥ **गर्गादिभ्यो यञ्** ।४।१।१०५। गोत्रापत्ये। गर्गस्य

अच्स्थानमें वृद्धिः औपगु अ, ओर्गुणः, से गुण अवादेश एकदेशविकृतन्याय से स्वादि **औपगवः**। अश्वपतेः अपत्यं पुमान् आश्वपतः। पितापुत्रभावजननयोग्यतासामर्थ्ययुक्तषष्ठचन्तपद अश्वपति ङस्से अपत्य अर्थमें अणि पूववत्। भसंज्ञा, इलोप, विशेष है। दितेः अपत्यं (पुमान् दैत्यः, राक्षसः) स्त्री (दैत्या) मातापुत्रपालनयोग्यता सम्बन्ध। उत्सस्य अपत्यम् औत्सः, पितापुत्रभावः स्त्रियाः अपत्यं स्त्रैणः। पुंसः पुत्रः पौंस्नः। इति शुद्धापत्याधिकारः।

अथ परम्परापत्यधिकारः (३) अपत्यशब्दसे पितासे पुत्र, अनन्तरापत्य मूलपुरुष, (पिता) उसके बादका पुत्र समझें। यदि अपत्यत्वेन—वंश परम्परा (सन्तान की पीढ़ी) रूपसे विवक्षितं—वक्ताको अभीष्ट हो, जैसे पुत्र अनन्तरकी पौत्रः (तीसरी पीढ़ी) प्रपौत्रः (चौथी पीढ़ी आदि) उससे आगेकी पीढ़ीको भी अपत्य कहना इष्ट हो उसकी भी गोत्रसंज्ञा होगी। तीसरी चौथी इत्यादि आगामीको गोत्रसंज्ञा पौत्रादि शब्दसे सिद्ध है। गोत्रशब्द वंश परम्पराका बोधक है। कश्यप गोत्रवाले कश्यपकी वंशपरम्परा (गोत्र) शब्दसे प्रसिद्ध है। पूरे वंशकी होनेवाली, पूरी परम्पराको काश्यपः यही कहेंगे। सांकृत्यगोत्रः। भारद्वाजः वशिष्ठः, मार्जनी आदि गोत्र, उनकी वंशावली है। गोत्रशब्दका सीधा अर्थ, वंशपरम्परा है। मूलपुरुष पिता से उत्पन्न सन्तान अपत्य है अण् होगा। परन्तु चार छ या सैकड़ों सन्तानकी पीढ़ी कहने के लिए क्या सैकड़ों प्रत्यय होने चाहिए? प्रत्ययोंकी अनन्त परम्परा (लम्बीलाइन) पुस्तकोंमें नहीं ठहर सकती। इसका नियन्त्रक सूत्र। (४) एको गोत्र अर्थमें एक ही अपत्य प्रत्यय सभी गोत्रापत्य (सन्तान परम्परा) अर्थ कहेंगे। यथा–उपगोः अपत्यं (पुत्रः) उपगोर्गोत्रापत्यं (पौत्र) अर्थमें भी औपगवः यही होगा। उपगु-ङस् तस्यापत्यं से अण्। चौथी पीढ़ी के लिए भी उपगोर्गोत्रापत्यम् औपगवः ही कहना होगा। तीसरी या चौथी पीढ़ी कहनेके लिए औपगवस्य अपत्यम् औपगविः ऐसा प्रयोग स्वीकृत है। अणप्रत्यय ही सैकड़ोंके बोधमें पर्याप्त है। अतः नियम सूत्र पढ़ा एकोगोत्रे। चाहे जितनी पीढ़ी की सन्तान कहनी हो एक ही रूप बनेगा। औपगवः अन्य प्रत्यय इञ् आदि से बदलेंगे।

गर्ग इत्यादि गणमें पठित षष्ठचन्तसमर्थगर्गशब्दोंसे गोत्रापत्य (जिसको गोत्रसंज्ञा हुई हो) उससे यञ् (य) प्रत्यय हो। गर्गस्य गोत्रापत्यं गर्गऋषिके वंश (तीसरी पीढ़ी पौत्रसे) गोत्र मान्य है। अतः विवाह आदिमें तीन पीढ़ीके वंशकी शाखाका उच्चा-

गोत्रापत्यं-गार्ग्यः वात्स्यः ॥ **यञञोश्च** ।२।४।६४। गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक् । तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम्. गर्गाः वत्साः । **गोत्रेऽलुगचि** ।४।१।८९। अजादौ प्राग्दीव्यतीये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययस्यालुक् स्यात्। गर्गाणां छात्राः वक्ष्यमाणो वृद्धाच्छ ॥ **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** ।४।१५१।

रण होता है) षष्ठ्यन्त पौत्रपरम्परा सम्बन्ध बोधकताशक्तिसामर्थ्ययुक्तपद गर्ग-ङस् उससे गोत्रपत्य पौत्र आदिकी विवक्षामें (पौत्रप्रभृतिगोत्रं) गोत्रसंज्ञा, उसी अर्थमें अञ् । प्रासंज्ञा सुलोप (य) आदिवृद्धिः भसंज्ञा, अन्त्य अलोपे, विभक्ति गार्ग्यः । गर्ग वंशकी सन्तान तद्धितार्थः । एवं वत्सस्य गोत्रापत्यं (वत्स ऋषिके वंशकी सन्तान पौत्र आदिः । गोत्रसंज्ञा, यञ्, तद्धितेष्वचामादेः आदिवृद्धिः पूर्ववत् वात्स्यः (६) यञ् गोत्र (वंश परम्परा) अर्थमें जो यञन्तं—यञ् प्रत्ययान्त पद तदवयवी उसका अङ्गभूत (एतयोः) यञ अञ् का लुक हो । यदि यत्कृते—उन्हींका अर्थ गोत्रापत्य का बहुवचन बोलना हो, तभी लुक् होगा । स्त्रीलिङ्ग अर्थमें यञ् और अञ् का लुक् नहीं होगा । यथा—गार्ग्यः गार्ग्यौ गर्गाः गार्ग्य जस् इति बहुवचन । गोत्र प्रत्यय अर्थ में यञ् । 'यञञोश्च सूत्रसे यञ्का लुक्, पूर्वसवर्णदीर्घ रुत्वेविसर्ग । एकवचन द्विवचनमें यञ् ठहरेगा) बहुवचने लुप्त होगा । इसी प्रकार वात्स्यः, वात्स्यौ, वत्साः बहुवचनमें यञ्का लुक् ।

गोत्रे अलुक् । प्राग्दीव्यत् आया । प्रत्ययका अधिकार । अचिमें विशेषण, तदादिविधि, विषयसप्तमी । गोत्र अर्थ हो: आजादि हो, तेन दीव्यतिके पहले पढ़ा हो, वक्ताको इष्ट हो, तब प्रत्ययका लुक् नही होता । अदर्शनरुपः लुक् । विषय सप्तमीसे विवक्षित अर्थ निकला । गोत्र अर्थमें प्रत्ययका अलुक् हो । गोत्र नही तब अलुक् भी नही । यथा कुबलस्य इदं कौबलं, बदरस्य इदं बारदम् । कुबली बदरी ङीप् अन्त है । फलस्वरूप विकार अर्थमें अञ् । अनुदात्तादेश्च, फले लुक् । इदमर्थे अलुक् नहीं हुआ । गर्गाणां छात्राः गार्गीयाः गर्गजातिके विद्यार्थी गर्गस्य गोत्रपत्यं गार्ग्यः गर्गादिभ्यो यञि । गर्गवंशकी सन्तान, बहुवचनमें गर्गस्य गोत्रापत्यानि वंश के बहुसंतान यञ् उसका यञिञोश्चसे लुक् गर्गाः बना । गार्ग्यशब्दसे गोत्र प्रवर वंश परंपरा अर्थमें वृद्धाच्छः । आदि अच्में वृद्धि हो, ऐसा पद वृद्ध है । उससे छ—ईय आदेश, आजादि परे यञ्का लुक् प्राप्त था, गोत्रे अलुक् हुआ । गार्ग्य इति दशायां यस्येति च आलोपे । यकारलोपार्थसूत्र—

आपत्यस्य च अनाति (य)लोप, सूर्यतिष्यसे हलस्तद्धितस्यसे हल् आया । हलसे परे अपत्य अर्थके य का लोप हो तद्धितपरे । अनाति आ परे न हो, तब । इससे यका लुक् हुआ । निमित्त न रहनेपर कार्य—आदिवृद्धि नहीं होगी । अभीय होनेसे अलोप असिद्ध नहीं । इति यलोपे । बहुवचने गार्गीया । प्राग्दीव्यतीय अर्थमें प्रत्ययका लोप क्यों कहा ? गर्गेभ्यो हितं गर्गीयं गर्गशब्दसे हित अर्थमें छ । हित अर्थ (तेन दीव्यति

हलः परस्यापत्य यस्य लोपस्तद्धिते, नत्वाकारे। गार्गीयाः। अनाति किम्? गार्ग्यायणः। प्राग्दीव्यतीये किम्? गर्गेभ्यो हितं गर्गीयम्। अचि किम् गर्गेभ्य आगतं गर्गरूप्यम्॥ जीवति तु वंश्ये युवा ।४।१।१६३। वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यान्न तु गोत्रसंज्ञम्॥ गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ४।१।९४। यून्यपत्ये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात्

की) सीमा से बाहर है। लुक् हुआ, निषेध नहीं अजादि क्यों पढा? गर्गरुप्यं गर्गोसे आया हुआ मनुष्य मानकर रुप्यः। तेन दीव्यतिके पहले अर्थोमें रुप्य है। पर आजादि नही, यञ का लुक् हुआ, निषेध नहीं। आपत्यस्य क्यों पढा? शङ्काशेन निर्वृतं नगरं शाङ्कश्यं, वुञ् — साङ्काश्यकः काम्पिल्यकः शंकाशादिभ्यो ण्यः। यहां निर्माण अर्थ है अपत्य नहीं, लोप नहीं। तद्धित परे क्यों कहा? गार्ग्ये गार्ग्योः यहां ङि ओस परे है। अनाति क्यों पढा? गार्ग्यायणः आयन आ परे यञका लुक न हो

(७) जीवति वश्ये वंशपरम्परामे पित्रादौ पिता, पितामहप्रपितामहाः शाखोचारयोग्याः उनके जीवित रहते जो चौथी पीढ़ी पौत्रकी सन्तान प्रपौत्र आदि है। उसकी युवसंज्ञा ही हो, गोत्रसंज्ञा नहीं। भाव यह है कि अपत्य शब्द यद्यपि आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः स्त्रियान्त्वमी। आहुर्दुहितरं सर्वे अपत्यं तोकं तयोः समे इति कोषात्पुत्रपर्याय है। तथापि अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रं सूत्रमें अपत्यशब्द (न पतन्ति पितरो येन तत्) (पितर नरकमें न जांय जिसके कर्म से) यह यौगिक अर्थ ग्राह्य हैं, इसमें (अनेक) दस पूर्वान् दशापरान् आत्मनश्च पवित्रीकर्तुम् इत्यादिमें दशपीढी पूर्वको दशपीढ़ी परके तारने वाले सभी सन्तोन अपत्य हैं इस प्रकार अपत्यं त्रिविधं अनन्तरापत्य (पितासे उत्पन्न पुत्र) (गोत्रापत्य से सौ पीढ़ी तक पौत्र) युवापत्य जीवित पितामह (प्रपौत्र) इत्यादि भी अपत्यके अर्थ हैं। मूल पुरुष पिताकी तृतीय पीढीकी सन्तान पौत्रसे गोत्र (वंशावली) प्रारम्भ होती है। गोत्रापत्य अपत्यापत्य, इत्यादिकी विवक्षामें, मूलपुरुषपिताकी सन्तानसे एक या अनेक पीढ़ीकी गोत्रविवक्षामें एक ही अपत्य प्रत्यय हो। यह नियम एकोगोत्रे सूत्र खोलता है। अपत्य (सन्तान) अनन्त है, परन्तु प्रत्यय एक। एक ही पुरुषसे अष्टधा प्रकृतिः सेव्या है) इस प्रकार गर्गस्यापत्यं गार्ग्यः गर्गाः। गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः गर्गाः, युवापत्य गार्ग्यः गर्गाः तदपत्यं जिस सन्तानके पितामह जीवित है। उसकी युवासंज्ञा है गोत्रसंज्ञा नहीं। गोत्रप्रत्ययान्तसे प्रत्यय हो, गोत्र प्रत्ययार्थसे नहीं मूलप्रकृतिसे अनन्तरापत्य प्रत्ययान्त हो, या युवापत्यप्रत्ययान्त, उसीसे प्रत्यय होनेका नियम है। गोत्राधिकार-गोत्राधिकारमें विधान किया गया प्रत्यय अनन्तरापत्ये पुत्र अर्थमें नहीं होते। इस प्रकार गर्गस्य अनन्तरापत्ये पुत्र अर्थे गार्गिः गोत्रापत्य अर्थमें गार्ग्यः युवापत्य अर्थमें गार्ग्यायणः ही होता है। (८) **गोत्रात्** यूनि--युवापत्य अर्थमें गोत्र प्रत्ययान्त पौत्रादि वाचक शब्दसे ही प्रत्यय हो अस्त्रियां स्त्रीलिङ्गमे युवसंज्ञा होती ही नहीं। गोत्रप्रत्ययान्त गार्ग्यशब्दसे यञि गोत्रे—गोत्रापत्य (पौत्र) अर्थमें यञ् और

स्त्रियां तु न युवसंज्ञा ॥ **यञिञाश्च** ।४।१।१०१। गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात्फक् ॥ **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** ७।१।२। प्रत्ययादेः फस्य अयान्,ढस्य एय् छस्य ईन् जस्य ईय् घस्य इय् स्युः। गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः ॥ **अत इञ्** ।४।१।९५। अपत्येऽर्थे। दाक्षिः ॥ **बाह्वादिभ्यश्च** ।४।१।९६। बाहविः। औडुलोमिः। औडुलोमी ॥ (लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः)।

इञ् प्रत्यय हुए हों—तदन्तात् यञन्त इञन्त शब्दसे फक् (फ) जिसको आयन होने का विधायक सूत्र—

आयन प्रत्ययादीनां--प्रत्ययके आदिमें फ, ढ, ख, छ, घ, को क्रमसे आयन ऐय ईन, ईय, इय आदेश हो। फको आयन, ढको एय, ख–ईन छ–ईय घ–इय। यथा गर्गस्य युवापत्यं (प्रपौत्रः) लौकिकविग्रह (गर्गकी चतुर्थ पीढ़ीकी विवक्षामें) गोत्राद्यून्यस्त्रियां, गोत्रप्रत्ययान्तसे युवापत्य अर्थमें प्रत्यय हो, इस नियमके अनुरोधसे प्रथम गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्य शब्दसे युवापत्य अर्थमें यञिञोश्च सूत्रसे यञन्तगार्ग्य शब्दसे फक् (फ) स्थाने 'आयनेयी'=आदि सूत्रसे आयन आदेश। गार्ग्य+आयन्+अ। फ का 'अ' शेष रहा। यस्येति च से भसंज्ञक अकारलोप आदिवृद्धि, णत्व विभक्तिकार्य। गार्ग्यायणः। गर्गकी चौथी पीढीके बालकको ही युवसंज्ञा, तभी सम्भव है यदि मूलपुरुष प्रपितामह, पिता जीवित हों। यदि कोई खण्डित हों या पूरे न हों, तब युवापत्यसंज्ञा नहीं होगी, किन्तु गोत्रसंज्ञा ही होगी। जो १०० पीढ़ी तक चलती है। गार्ग्यः ही बनेगा, (गार्ग्यायणः) नहीं (दाक्षायणः) दक्षस्य युवापत्यं दक्षके चौथीं पीढ़ीका बालक प्रपौत्र कहनेकी विवक्षा हो, तब गोत्राद्यूनि नियम से दक्षस्य गोत्रापत्यं दाक्षिः। शब्द बनाकर इञ् प्रत्ययान्त दाक्षिः शब्दसे यञिञोश्चेति फक् उसको आयनेयीनियियः आयन आदेश। इकारलोप, णत्वादिकार्य, **दाक्षायणः** दक्षसम्बन्धी प्रपौत्र (१) **अत**—अदन्त षष्ठ्यन्त समर्थसे प्रत्य अर्थ हो या गोत्रापत्य अर्थ) इञ् हो। दाक्षिः दक्षस्यापत्यं पुमान् (दक्षजन्यपुत्र) लौकिक वाक्य दक्ष-ङस् इति दशामें 'अत इञ्'से अदन्त षष्ठ्यन्त दक्ष ङस् तत्र सामर्थ्येन—जनन योग्यता। सामर्थ्य रहने पर अपत्य अर्थमें इञ्। दक्ष 'इ' आदिवृद्धि अलोप एकदेशविकृतन्येन प्रासंज्ञा स्वादिः। (२) बाहु— आदिगण पठित शब्दोंसे षष्ठ्यन्त समर्थ होने पर अपत्य अर्थमें इञ् हो। अकारान्त नहीं पूर्वसूत्रसे, इञ् प्राप्त नहीं था। एकदेशविकृतन्यायेन प्रासंज्ञा स्वा०। बाहविः—बाहोः अपत्यं पुमान् व्यक्तिवाचक बाहुशब्दसे जन्यजनक सामर्थ्य रहते अपत्य अर्थमें इञ्। वर्णन्यायेन आदिवृद्धिः ओर्गुणः उको गुण, अवादेश प्रासंज्ञा स्वा०। बाहविः बाहवी बाहवयः। बाहुराजा का पुत्र। राहोरपत्यं राहविः। औडुलोमिः उडूनि नक्षत्राणि इव लोमानि यस्य स उडुलोमाः। तारों की तरह चमकनेवाले रोम हैं जिसके उसे उडुलोमा (ऋषि) कहते हैं। तस्यापत्यं पुमान्,नरसन्तान अर्थकी विवक्षामें बाह्वादिभ्यश्च इति उडुलोमन् ङस् शब्दसे इञ्। आदि उके स्थानमें औवृद्धिः। नस्तद्धिते टिलोप स्वादिः। लोम्न—

बाह्वदेरपवादः । उडुलोमाः । आकृतिगणोऽयम् ॥ अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् ।४।१।१०४। ये त्वानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे । विदस्य गोत्रं वैदो विदाः । पुत्रस्यापत्यं पौत्रः पौत्रौ । यञञोश्चेति सूत्रे प्रवराध्यायप्रसिद्धं गोत्रं, तेहेन न,-पौत्राः । एवं दौहित्रादयः । शिवादिभ्योऽण् ।४।१।११२। अपत्ये-शैवः गाङ्गः ॥ ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ।४।१।११४। ऋषिभ्यः-

लोमनशब्दसे अपत्यअर्थके बहुवचन में इञ् को बाधकर 'अ' कहें । उडुलोमाः-उडुलोम्नो अपत्यं विग्रहमें उडुलोमन् शब्दसे अपत्यअर्थमें बहुवचनमें अ, टिलोप, प्रथमा बहु० । अत्र आदिवृद्धिर्न कारणं विना आकृति=बाहु आदि शब्दोंकी आकृति के अनुकूल अक्षर मिले तो उनको भी गणमें गिन ले ।

(३) अनृषि विदादिगणपठित शब्दसे षष्ठ्यन्त समर्थ रहते गोत्रापत्य (पौत्र) अर्थमें अञ् हो । परन्तु, विदादिगण जो ऋषिवाचक नहीं है उनसे आनन्तर्य-अनन्तरस्य भावे केवल पिताजन्य अपत्य, अर्थमें अञ् हो । यथा-विदस्य गोत्रापत्यं वैदः । यहां विद नामक ऋषि हैं उनकी तीसरी पीढ़ी, पौत्र अर्थमें उक्त सूत्रसे अञ् आदिवृद्धिः अकारलोप । प्रा० सं० स्वा० वैदः वैदौ विदाः--विदस्य गोत्रापत्यानि विग्रहे विदादिभ्यः--गोत्रें अञ्, तस्य (यञञोश्च) बहुवचने लुक् जसादिः । विदऋषि परम्पराकी अनेक सन्तान । अथ अनृषि जो ऋषि नहीं है । पुत्रस्य अपत्यं (पुत्रसे उत्पन्न पुत्र अर्थमें) अञ् आदिवृद्धि, प्रा० सं० स्वा० पौत्रः । पुत्रशब्दऋषिवाचक न होनेसे गोत्र अर्थमें अञ् प्राप्त था । अनृषि कहनेसे अनन्तरापत्य (विनाव्यवधान) जनकसम्बन्धमें अञ् । उसका न लुक् (पौत्रः) यत्र गोत्रे अञ्, तत्र बहुवचने लुक् । यत्र अपत्ये अञ्, तत्र न लुक् । पुत्रस्यापत्यं । पौत्रौ । पुत्रस्य अपत्यानि पुत्राः, यहाँ अञ् प्रत्ययका बहुवचनमें लुक् गोत्रमें प्रत्यय न होनेसे अनन्तरापत्य अर्थमें प्रत्यय का लुक् नहीं होता । इसी प्रकार दुहितुरपत्य लड़की की सन्तान (नरः) दौहित्रः दौहित्र पर दुहित्राः । (४) शिवआदि गणपठित समर्थसुबन्तशब्दसे अपत्य अर्थमें अण् (अ) हो । यद्यपि गोत्रसंज्ञा सूत्रतक गोत्रका अधिकार है । यूनिलुक् सूत्रके भाष्यसे सिद्ध है, तथापि वृत्तिमें गोत्राधिकारकी निवृत्ति मान्य होनेसे सामान्य अपत्य अर्थमें प्रत्यय हो । शिवस्यापप्यं शैवः । यहां समान्य अपत्यका पुत्र शिष्य, भक्त, सेवक, आदि व्यापक अर्थग्राह्य है । शिवस्यापत्यं शैवः जन्मसे, विद्यासे भक्तिसे शिवका हो गया । ज्ञान श्रद्धासामर्थ्य युक्त शिवशब्दसे अण् आदिवृद्धिः । अन्त्य अलोपि । गङ्गायाः अपत्यं गङ्गाङस् शब्दसे अपत्य अर्थमे अण् आदिवृद्धिः आलोप । गङ्गाका सन्तान, भक्त गाङ्गः ।

ऋषि—मन्त्रद्रष्टा, अन्धक (सोमवंशी क्षत्रिय) वृष्णि-यदुवंशी और कुरुवंशी इनसे सामान्य अपत्य अर्थ अण् हो, ऋषि, वेद मन्त्र दर्शक । सर्गादिसमये वेदान् सेतिहासान्महर्षयः लेभिरे तपसा पूर्वम्, अनुज्ञाताः स्वयंभुवा । सृष्टिके आदिकालमें महर्षिगण ब्रह्मासे आज्ञा पाकर इतिहास सहित वेदोंका साक्षात्कार (लाभ) किया ।

वासिष्ठः वैश्वामित्रः। अन्धकेभ्यः श्वाफल्कः। वृष्णिभ्यः-वासुदेवः। कुरुभ्यः नाकुलः साहदेवः॥ **मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वाया** ।४।१।११५। संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य उदादेशः स्यादण्प्रत्ययश्च। द्वैमातुरः पाण्मातुरः भाद्रमातुरः॥ **स्त्रीभ्योढक्** ।४।१।१२०। स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक्। वैनतेयः॥ **कन्यायाः कनीन च** ।४।१।११६। चादञ् कानीनो व्यासः कर्णश्च॥ **राजश्वशुराद्यत्** ।४।१।१३७। (**राज्ञो जातावेव**)। **ये चाभावकर्मणोः** ।६।४।१६८। यादौ तद्धिते अन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः। राजन्यः श्वशुर्यः। जातावेवेति

यथा=वशिष्ठस्य अपत्यं वाशिष्ठो मन्त्रः, पुत्रः आदि (वशिष्ठङस्) ऋष्यधक सूत्रसे अण् अःदिवृद्धिः स्वींकार्यं। वशिष्ठ सम्बन्धी सन्तान या मन्त्रः, एवं विश्वामित्रस्य अपत्यं सम्बन्धी सन्तान भक्त शिष्य। **वैश्वामित्रः**। भरद्वाजस्य अपत्यं **भारद्वाजः**। अपत्यं कास्यपः। अन्य तीनके नाम हैं श्वफल्कस्य अपत्यम् (अन्धक वंशमें श्वफल्क की सन्तान श्वाफल्कः (अक्रूरः) अण् आदिः। वसुदेवस्यापत्यं (यदु-वंशी) वसुदेवकी सन्तान श्रीकृष्णः। अण् आदिः **वासुदेवः**। नकुलस्यापत्यं सहदेव-स्यापत्यं (कुरुवंशी) कुलके नकुल या सहदेव की सन्तानको नाकुलः, साहदेवः। अण् आदिः दोनों माद्रीके पुत्र है। (६) **मातुः** उत् संख्या, संभद्रशब्द पूर्वमें हों, मातृशब्दके ऋस्थानमें उत् आदेश अण् प्रत्यय हो, आपत्य अर्थमें। रपरे द्वयोर्मात्रोः अपत्यं नरः (दो माता का पुत्र) गणेशः। द्विमातुरङस्से मातुःसंख्या सूत्रसे संख्या-पूर्वमातृशब्दके ऋको उत्, रपरे उर् अण् आदिवृद्धिः प्रासंज्ञा स्वादिकार्य **द्वैमातुरः**। यहां तद्धितार्थ समासके बाद तद्धितप्रत्ययः षण्णां मातृणाम् अपत्यं पुमान् षाण्मातुर छ माताओं की एक सन्तान कार्तिकेय षष्मातृ+आम्से अण् आदिवृद्धिः। ऋस्थाने उर् आदेश। सम्मातुरपत्यं (शांत माताका पुत्र) अणादिः साम्मातुरः। भद्र माताकी सन्तान भाद्रमातुरः। द्वैमातुः कृपासिन्धोः षाण्डमातुराग्रजप्रभो वरदस्त्वं वरं देहि, वाञ्छितं वाञ्छितार्थद।

(७) **स्त्रीभ्यः**—स्त्रीप्रत्ययान्त समर्थशब्दसे अपत्य अर्थमें ढक्—ढ हो। विन-तायाः अपत्यं पुमान् (विनता पुत्रो गरुणः) अत्र स्त्रीप्रत्ययान्त मातापुत्रभावसमर्थ शब्द विनता ङस्से स्त्रीभ्यः ढक् ढस्थाने आयनेयी एय आदेश—किति चसे आदिवृद्धिः भसंज्ञा अन्त्यलोप स्वादिः वैनतेयः। कृष्णायाः। पुत्रः कार्ष्णेयः। विमलायाः पुत्रः वैमलेयः कन्याशब्दको अपत्य अर्थमें कनीन आदेश हो, चसे अण् भी हो। कानीनः। कन्यायाः पुत्रः, अविवाहितास्त्रीकी सन्तान सत्यवतीसे व्यास, कुन्तीसे कर्ण कानीन हैं। कन्या ङस् विग्रहसे सन्तान अर्थमें कन्याके स्थानमें कनीन आदेशादिः कानीनः (९) **राजन्** और श्वसुर शब्दसे यप्रत्यय अपत्य अर्थमें हो। (वा०) राजन्शब्दसे जाति अर्थमें ही हो अपत्य अर्थमें नहीं। इससे यत्प्रत्यय जाति अर्थका परिचायक है। **ये**—यकारातद्धित प्रत्ययपरे अनको प्रकृतिभाव (जैसा है वैसा रहे)हो नतुभाव कर्मणोः भाव और कर्म अर्थमें अन्को प्रकृतिभाव न हो। राज्ञः (जातिः) राजन्यः

किम् ? अन् ।६।४।१६७। प्रकृत्याऽणि परे । राजनः । क्षत्राद्घः ४।१।१३८। क्षत्रियः जाताविव्येव, क्षात्रिरन्यः ।। रेवत्यादिभ्यष्ठक् ।४।१।१४६। ठस्येकः ।७।३।५०। अङ्गात्परस्य ठस्येकादेशः । रैवतिकः ।। गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् ।४।१।९८। व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ।५।३।११३। व्रातवाचिभ्यश्च्फञन्तेभ्यश्च स्वार्थे ञ्यप्रत्ययः स्यात् । कौञ्जायन्यः । कौञ्जायन्यौ । बहुत्वे लुग्वक्ष्यते ।

क्षत्रियजातिः वार्तिक नियमसे जाति अर्थमें राजश्वशुराद्यत् सूत्रसे यत् । नस्तद्धिते भसंज्ञक टि अन्का लोप प्राप्त,ये वा भावकर्मणोःसे प्रकृतिभाव राजन्यः । क्षत्रियात्= स्वविवाहिता क्षत्रियजातिकी स्त्रीमें उत्पन्न सन्तानसे यत्प्रत्यः । मूर्धाभिषिक्तोराजन्यः बाहुजः क्षत्रियो विराट् इत्यमरः जातौ राजन् शब्दसे जाति अर्थमे यत् क्यों कहा ? इसलिए कि अपत्यादि अर्थमें यत्प्रत्यय न हो यथा--राज्ञो अपत्यं पुमान् (राजाओं से उत्पन्न सन्तान जाति भिन्न अपत्य अर्थसे अण् टिलोते प्राप्त (१) अण्परे अन्को प्रकृतिभाव हो । इति प्रकृतिभावे राजनः । वैश्य शूद्र जातिकी कन्यामें क्षत्रियसे उत्पन्न सन्तान राजनः हैं । श्वसुरस्यापत्यं पुमान् ससुरको लड़का अर्थमै श्वसुरशब्द से राजश्वसुरात् यत्प्रत्यये । अकारलोप, श्वसुर्यः (श्यालकः) । (२) क्षत्र शब्दसे घप्रत्यय हो । जाताविति--यह घप्रत्यय जाति अर्थमें ही हो । क्षत्रस्यजातिः क्षत्रियः। क्षत्रशब्दसे 'जाति' अर्थमें घः, घस्थाने 'आयनेयी' आदि सूत्रसे इयादेश अन्त्य अलोपे, अन्यत्र—जाति भिन्न अर्थमें क्षत्रस्यापत्यम् (अत इञ्) आदिवृद्धिः अस्य लोपे क्षात्रिः । क्षत्रनामक पुरुषकी सन्तान (३) रेवती आदि समर्थशब्दोंसे, अपत्य अर्थमें ठक् (क इत्) ठ हो (४) ठस्य—अङ्गसंज्ञक शब्दसे परे ठस्थानमें इक आदेश हो । रेवत्याः अपत्यं रेवती ङस् रेवत्यादिभ्यष्ठक् ठको ठस्येकसे इक । रेवती इक आदिवृद्धिः, यस्येतिच ईलोपे । तद्धितान्तत्वात् प्रासंज्ञा प्रथमा एकवचन रैवतिकः— रेवतीसे उत्पन्न पुत्र ।गोत्रे अर्थमें, कुञ्जादिगणमें पढ़े शब्दोंसे च्फञ् हो इको वाधकर च इत् । फ-शेष । व्रात (संकारहीन)वाची शब्दसे और च्फञ् अन्तमें हो उनसे स्वार्थ निजी, (प्रकृति) अर्थमें ञ्यप्रत्यय हो किन्तु स्त्रीलिङ्गमें नहीं । पूगाञ्ञ्यः से ञ्य आया । कपोतपाव्यः । व्रातका उदाहरण कहेंगे । अस्त्रियां पढ़नेसे कपोतान् पाचयति कपोतपाकः, तस्यापत्यं स्त्री अर्थ रहने पर ञ्य नहीं हुआ, जो स्वार्थिक में परिगणित है । कौञ्जायन्यः कुञ्जस्य गोत्रापत्यं (वंशमें उत्पन्न) विग्रहे गोत्रे कुञ्जादिभ्यः च्फञ् । अनुबन्ध लोपे, फ को आयन आदिवृद्धिः कौञ्जायनसे स्वार्थे ञ्य इति । ञइत्, यस्येति अलोप । तद्राजसंज्ञा हुई हो, तब बहुवचनमें लुक् । तद्राजस्य बहुषु=सूत्रसे लुक् कहेगे । व्राध्नायन्यः ब्रध्नस्य गोत्रापत्यं (नाती पोता आदि) च्फञ् फको आयन, ञ्य स्वादिः । स्त्रीलिङ्गमें ञ्य नहीं होता । यथा कुञ्जस्यापत्यं कौञ्जायनी, फको आयन होने पर अदन्त रहा, टाप क्यों नहीं हुआ तब बोले गोत्रत्वेन चरणैः सह गोत्रजाति मानकर ङीष हुआ । ञ्य होता योपध (य उपधा में) मानकर ङीष का अभाव हो जाता । च्फञ्प्रसंगमें गोत्र पढ़ने का क्या फल ? अनन्तरापत्य पुत्र अर्थमें अत इञ् हो, कौञ्जिः बने इसलिये ।

ब्राह्नायन्यः ॥ नडादिभ्य फक् ।४।१।९९। गोत्र इत्येव । नाडायनः । चारायणः । अनन्तरो नाडिः ॥ अश्वादिभ्यः फञ् ४।१।११०। गोत्रे अश्वायनः ॥ इतश्चानिञः ।४।१।१२२। इकारान्ताद् द्व्यचोऽपत्ये ढक् ,न त्विञन्तात् । दौलेयः नैधेयः । आत्रेयः आत्रेयौ ॥ अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च २।४।६५। एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुक् स्यात् तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम् । अत्रयः भृगवः । कुत्साः । वसिष्ठाः गोतमाः । अङ्गिरसः । शुभ्रादिभ्यश्च ।४।१।१२३। शौभ्रेयः । कल्याण्यादीनामिनङ् ४।१।१२६। एषामिनङ्

नडादिभ्यः नड आदि गणमें पढ़े, शब्दोंसे गोत्र अर्थमें ही फक् हो इञ्को बांधकर । नडस्य गोत्रापत्यं **नाडायनः** । अतः इञ्को बांधकर फक् । चरस्य गोत्रापत्यं चारायणः, चरशब्दात्फक्-आयन इञ्को बाधकर, अनन्तरापत्य (पुत्र) अर्थ हो, गोत्र न हो, तब इञ् नाडिः नडकी सन्तान ।

अश्वस्य—गोत्रापत्यं ऋषिकी सन्तान अर्थमें अश्वादिगणमें पढ़से फ=आयन इञ्को बांधकर आदिवृद्धि । गोत्र अर्थमें यहां अङ्गिरसे नहीं आया । इस गणमें बलेः गोत्राऽपत्यं बैल्यः, आनडुह्यः, आत्रेयः गोत्रप्रत्ययान्त है गोत्राद्यूनि अञ् ढक् क्रम ।

इतश्च इकारान्त हो, दो अच् ही उससे अपत्य अर्थमें ढक् । इञ् अन्त न हो तब । इसके अन्तमें टाप् ङीप् आवश्यक नहीं । दुलि निधि कोइ पुरुष है उनके बच्चे अर्थमें इकारान्त दुलि या निधि से ढ-एय आदि । दौलेयः । अत्रेः अपत्यं **आत्रेयः** इकारान्त अत्रिसे ऋषि-अण को बाधकर ढक् । इतः—इकारान्त क्यों पढ़ा ? दाक्षिः में ढक् होनेके लिए । इञ् अन्त न हो ऐसा क्यों ? दाक्षेः अपत्यं दाक्षायणः इञ् अन्त दाक्षिसे ढक् न हो । दो अच् क्यों ? उदधेः सन्तानः औदधः चन्द्रमा (सिन्धुके सन्तान) तीन अच्से ढक् न हो ।

अत्रि आदिसे हुए गोत्र प्रत्ययका लुक् हो, उस प्रत्ययमें बहुवचन भरा हो, स्त्री अर्थ न हो । अत्रेः अपत्यानि पुमांसः अत्रिगोत्रके अनेक सदस्य 'इतश्च' इकरान्त मानकर ढक् गोत्र अर्थमें हुआ था । उसका इस सूत्रसे लुक् बहुवचन (अत्रयः) एवं भृगोः कुत्सस्य वशिष्ठस्य, गौतमस्य अंगिरसश्च पत्यानि पुंमास विग्रहमे सबसे ऋष्यन्धक सूत्रसे अण् । उसका इससे लुक् । पौत्रादिमें बहुत संख्या है । भृगवः गोतमाः पौत्राः इत्यादि ।

शुभ्रादि गणपठित शब्दोंसे वंश अर्थमें ढक् जो स्त्रीप्रत्ययान्त नहीं उनके लिए सूत्र । चकार आकृतिगणका सूचक । मृकण्डका वंश मार्कण्डेयः । शुभ्र, मृकण्ड, अश्व, विमातृ, विधवा, प्रवाहण इत्यादि । पाण्डोः वंशः पाण्डवेयः की सिद्धि आकृतिगण मानकर । इस सूत्रमें आकारान्तसे इञ् भी । विधवासे क्षुद्रालक्षण ढक् । चतुष्पादसे ढक् आदि भी होंगे । शुभ्रस्यापत्यं शुभ्रढ–एयं ।

कल्याणी, सुभगा दुर्भगा बन्धकी इत्यादिके अन्त्य अल्को इनङ् आदेश भी हो, ढक् भी । इस गणमें सभी स्त्रीप्रत्यान्त है । ढक् होगा ही, इनङ का मुख्य विधान ।

स्यात्, ढक् च। काल्याणिनेयः। बान्धकिनेयः॥ **कुलटाया वा** ।४।१।१२७। इनङ्मात्रं विकल्प्यते, ढक् तु नित्यः पूर्वेणैव। कौलटेयः कौलटिनेयः। सती भिक्षुक्यत्र कुलटा॥ **चटकाया ऐरक्** ।४।१।१२८। (**चटकादिति वाच्यम्**) प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणमिति सिध्यति। चटकस्य चटकाया वा अपत्यं चाटकैरः॥ (**स्त्रियामपत्ये लुग्वक्तव्यः**)। तयोरेव अन्यपत्यं = चटका॥ **गोधाया ढ्रक्** ।४।१।१२९। गौधेरः शुभ्रादित्वाड्ढक्। गौधेयः॥ **क्षुद्राभ्यो वा** ४।१।१३१। अङ्गहीनाः शीलहीनाश्च क्षुद्राः, ताभ्यो ढ्रक्वा। पक्षे ढक्। काणेरः, काणेयः। दासेरः दासेयः॥ **पितृष्वसुश्छण्** ।४।१।१३२

कल्याण्याः अपत्यं सुमङ्गलीकी सन्तान कल्याणीसे इनङ् आदेश। ढक्-एय इके स्थान में इनङ् हुआ। आदिवृद्धि, कल्याणिनेयः। बन्धक्याः बन्ध्यास्त्रीकी सन्तान बन्धकी के इको इनङ्, ढक् आदिवृद्धि बान्धकिनेयः परस्य स्त्री (परके शुक्रको अपने शोणित में धारणवाली) षष्ठी सम्बन्धित एकार्थीभाव परस्त्रियाः (पारस्त्रैणेयः)दूसरेकी स्त्री में पैदा हुआ। अनुशतिकादिगण मानकर दोनों पदकी वृद्धि। विदादिगणमें परस्त्री परशुञ्च, पर्श आदेश पार्शवः। ब्राह्मणसे शूद्राके साथ विवाहसे हुई सन्तान।

कुलटा—कुलानि अटति घर-घर घूमनेवाली। शकन्ध्वादि पररूप। कुलटासे इनङ् हो, ढक् होने पर। कुलटाशब्दात् स्त्रीभ्यो ढक् जो नित्य सिद्ध है। केवल इनङ् विधान। टामें आको इनङ्, ढको एय, कौलटिनेयः इनङ् नहीं कौलटेयः।

चटकायाः अपत्यं चिड़िया बटेरका बच्चा अर्थसूचक ऐरक् हो। चटकस्य अपत्यं अर्थमें भी हो। इससे सिद्ध है कि स्त्रीलिङ्ग और पुंलिङ्ग दोनोंसे ऐरक् प्रत्यय होता हैं। प्रातिपदिकके अधिकारमें लिङ्ग बोधक प्रत्यय सहित का भी ग्रहण हो। इस परिभाषासे स्त्रीप्रत्यय भी होगा। चटकादैरक् इति साम्प्रदायिकः। वार्तिक-विरोधादुपेक्ष्यः। चटका या चटकसे बच्चा अर्थमें ऐरक्। अनुबन्धलोप आदिवृद्धि। चाटकैरः स्त्रीलिङ्ग, अपत्य अर्थमें दोनोंके हो, ऐरक्का लुक् हो। इसका फल, चटका नर मादा दोनोंकी बच्ची अर्थ। लुक्तद्धित लुकिसे टाप्का लुकि। जाति लक्षण ङीष को बाधकर अजादि टाप् चटका।

गोधा शब्दसे सन्तान अर्थमें ढ्रक्। गोधायाः अपत्यं गिरगिटान का बच्चा अर्थ में ढ्रक्, ढस्थाने एय आदेशे। लोपो व्योः से यलोप। किति च। आदिवृद्धि गौधेरः सापिनिका बच्चा। एकपक्षमें शुभ्रादिगण मानकर ढक् गौधेयः अर्थः पूर्ववत्।

क्षुद्रा अर्थमें रहनेवाली स्त्रीधर्मका शब्दमें आरोपकर स्त्रीलिङ्ग। अङ्गहीन—नाक कान आंख आदिसे विकलाङ्ग निःशीला होना, स्वेच्छाचारिणी इच्छागम्या, सदाचारहीना आदिको क्षुद्रा कहते है। उनसे ढ्रक्। पक्षमें ढक् हो (भाष्यमें अनियतपुंस्काः अङ्गहीना वा क्षुद्राः) कानाकी सन्तान काणसे ढ्रक्। ढ--एय, यलोप काणेरः। दास्याः अपत्यं स्वेच्छाचारिणी दासीका बच्चा ढ्रक् दासेरः, ढक् दासेयः पितृष्वस्रासे पुत्रादि अर्थमें ण हो, अण्को बाधकर। पितृष्वसुः अपत्यं (पिता

णोऽपवादः । पैतृष्वस्रीयः ॥ **ढकि लोपः** ।४।१।१३३। अत एव ज्ञापकाड्ढक् पैतृष्वसेयः । **मातृष्वसुश्च** ।४।१।१३४। पितृष्वसुर्यदुक्तं तदस्यापि स्यात् । मातृष्वस्रीयः, मातृष्वसेयः ॥ **कुलात्खः** ।४।१।१३९। कुलीनः । तदन्तादपि उत्तरसूत्रे अपूर्वपदादिति लिङ्गात् । आढ्यकुलीनः ॥ **अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ** ।४।१।१४०। कुलादित्येव । पक्षे--खः । कुल्यः, कौलेयकः, कुलीनः । **महाकुलादञ्खञौ** ।४।१।१४१। माहाकुलः, माहाकुलीनः, महाकुलीनः ॥ **दुष्कुलाड्ढक्** ।४।१।१४२। वा । पक्षे खः । दौष्कुलेयः, दुष्कुलीनः ॥ **स्वसुश्छः** ।४।१।१४३। स्वस्रीयः ॥ **भ्रातुर्व्यच्च** ।४।१।१४४। चाच्छः ।

के वहनका बच्चा फुफेरा भाई अर्थमें) पितृस्वसृ तस्यापत्यके अण्को बाधकर छ–ईय् आदेश, आदिवृद्धि । सकारात्==सकारके ऋ को यण् र आदि पैतृ ब ।

ठक् परे अन्त्य अल् ऋ का लोप हो । इसी सूत्रके ज्ञापन प्रमाणसे ढक् मान लें । अन्यथा ढक् दुर्लभ है । अन्त ऋ का लोप हुआ । मातृष्वसासे पुत्रादि अर्थमें ढ हो, । अणको बाधकर । ढक् परे अन्त ऋ का लोप भी हो । माताकी वहन मौसी मातृष्वसृसे छ–ईय यण् । पक्षे ढक् परे ऋ का लोप् ढ—एय मातृष्वसेयः मौसेरा भाई ।

षपूर्व—अल्लोपोऽनः आया–भ अधिकृत । ष पूर्वमें हो, ऐसा अन् और हन् आदिसे भसंज्ञक ह्रस्व अकारका लोप हो, अण् परे । बढईका बच्चा अर्थमें, तक्ष्णोः अपत्य अण् कहें कारि-शिल्पि कलाकार अर्थमें ण्यको बाधकर अण् । तक्षन् अ षपूर्व हन् सूत्रसे भसंज्ञक अन्के अका लोप हुआ । प्रकृतिभावको ढ़केल कर ।

कुलात कुलवंश अर्थमें ख हो । कुलस्य वंशः अच्छी परम्पराके छात्र ख=ईन आदिः कुलीनः । तदन्तात्=कुल अन्तमें हो उससे भी ख हो । यद्यपि समासप्रत्यय विधौ परिभाषासे तदन्तविधिका निषेध हैं । तथापि उत्तर (अगले) सूत्रमें अपूर्वपदात्==पढ़नेके प्रमाणसे तदन्तविधि मान्य । अन्यथा उसका निषेधक अपूर्वपद व्यर्थ होता । यथा आढ्यश्च कुलीनश्च इससे कुलका धनी होना सिद्ध नहीं होता । अतः कर्मधारय माननेपर कुले आढ़्यत्व प्रतीतिः । यही ख होनेका फल है । धनवान्वंशका विद्यार्थी अपूर्वपदात् कुलशब्दसे यत् ढकञ् ख तीनों प्रत्यय हों विकल्प से । पूर्व पदमें न रहे तब । पक्ष में ख भी होता है । कुलस्यापत्यं खानदानी परिवार कुलसे यत् अलोप (कुल्यः) ढकञ् ढ–एय आदिवृद्धि कौलेयकः ख–ईन कुलीन ।

महाकुल शब्दसे अञ् खञ् विकल्पसे हो पक्षमें ख भी । अन्यतरस्यां भी आता है । अन्यथा महाविभाषाधिकारे अपवादेन मुक्ते उत्सर्गस्य अप्रवृत्तेः से खञ् न होता । महाकुलस्यापत्य (सम्राटकी सन्तान सूर्यवंशमें) अञ् आदिवृद्धि ध खञ् ईन तब माहाकुलीनः । जब घ–इय हुआ । तब आदिवृद्धि नहीं । दुष्कुल शब्दसे ढक् हो विकल्प शब्दसे पक्षमें ख भी । दुष्टं कुलं यस्य स (दौष्कुलेयः) चरित्रभ्रष्ट वंश परम्पराके बच्चे । दुष्कुलसे ढ=एय, किति च वृद्धि । जब 'ख' तब ईन दुष्कुलीन चाण्डालः (६६) **स्वसासे** छ हो, पुत्रादि अर्थमें । स्वसृसे छ=ईय ऋ को र यण्

भ्रातृव्यः, भ्रात्रीयः ॥ **मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च** ।४।१।१६१। समुदायार्थो जातिः मानुषः, मनुष्यः ॥ (तक्ष्णोऽण उपसंख्यानम्) ॥ **षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि** ।६।४।१३५। एषामपि तद्धितेऽनोऽकारलोपः ॥ ताक्ष्णः । **तिकादिभ्यः फिञ्** ।४।१।१५४। तैकायनिः ॥ **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्** ।१।१।७३। यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिवृद्धिस्तद्वृद्धसंज्ञं स्यात् ॥ **उदीचां वृद्धादगोत्रात्** ।४।१।५७। आम्रगुप्तायनिः । प्राचां तु–आम्रगुप्तिः ॥ **प्राचामवृद्धात्फिन्बहुलम्** ४।१६०। ग्लुचुकायनिः ॥ **जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्** ।४।१।१६८। जनपदक्षत्रिययोर्वाचकादञ् अपत्ये। पाञ्चालः (क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्) पञ्चालानां राजा पाञ्चालः ॥ (पुरोरण् वक्त-

---

स्वादिः । **भ्रातृ** से वंश अर्थमें व्यत् । च पढ़नेसे 'छ' भी हो, अण् को बाधकर । भ्रातुः अपत्यं भ्रातृव्यः । भातृसे व्यत् जब छ हुआ तब ईय, ऋको 'र' यण् भ्रात्रीयः भतीजा । **तिकादिगण** में पढ़े शब्दोंसे इञ्को बांधकर फिञ् कहें । तिकस्यापत्यं **तैकायनिः** फिञ् आयन आदि ।

उदीचां उत्तरदिशाके मतमें जो वृद्धसंज्ञक हो गोत्रप्रत्यय अन्तमें न हो उस शब्दसे फिञ हो । आम्रगुप्तस्य वंशः विग्रहमें फिञ् आयन किन्तु प्राचां मते इञ् अदन्तसे । आम्रगुप्तिः । वृद्धसंज्ञक क्यों कहा ? दक्षस्यापत्यं दक्षका आदि अच् वृद्ध नहीं, फिञ् न हो । अगोत्र क्यों पढ़ा ? औपगविः गोत्र अर्थमें इञ् है, फिञ् न हो ।

प्राचीनके मतमें अवृद्धात्—जिसको वृद्धसंज्ञा न हुई हो, उससे फिञ् हो, प्रयोजनके अनुसार । ग्लुचकस्यापत्यं विग्रहमें फिन् आदि । शुरुमें अवृद्ध क्यों पढ़ा ! राजदन्ती यह वृद्धिसंज्ञक है क्योंकि अचोंके आदि अच् रा में जो वृद्ध है । बहुल पढ़नेसे । दाक्षिःमें फिञ् नहीं हुआ ।

जनपद शब्दसे जनपदनाम यस्य स वाचक शब्दः जनपदशब्दः एवं च जनपद वाचक शब्द होकर क्षत्रियवाचक शब्द हो तब षष्ठयन्त समर्थसे अपत्यअर्थमें अञ् । पञ्जाबप्रान्त या पञ्जाबी क्षत्रिय दोनों पाञ्चालः हैं । पञ्चालस्य अपत्यं विग्रहे पञ्चाल ङस्से जनपदशब्दात् सूत्रसे अपत्य अर्थमें अञ्प्रत्यय, आदिवृद्धि, अलोप पाञ्चालः । वा क्षत्रिय==जातिवाचक शब्दके समान यदि जनपद वाचकशब्द भी हो उसरे राजन्यपत्यवत्—राजा अर्थमें अपत्यके समान अर्थ हो । पाञ्चालः । अङ्गबङ्गमगधकलिङ्ग आदि शब्द देशवाची, राजावाची भी है । देशवाची अर्थमें बहुवचनान्त हैं । राजवाचीमें एकवचनान्त । यहां पञ्चालस्य राज्ञो अपत्यम् इस विग्रहमें अपत्य प्रत्यय । जहां देशवाची वहां पञ्चालानां राजा षष्ठीबहुवचनान्तमें राजाअर्थमें पञ्चालानां—देशविदेशके राजाका (राजा अर्थमें) अपत्यार्थके समानरूप । अण् आदिवृद्धिः इत्यादि । शब्दसमान होते हुए अर्थमें अन्तर—पञ्चालस्य राज्ञो अपत्यं पाञ्चालः । पंजाबी राजाका पुत्र । दूसरेमें पंजाबियोंका राजा अर्थ । रूपसमान । **(वा०) पुरोरण**—पुरुशब्दसे राजाअर्थ और अपत्य अर्थमें अण्प्रत्यय हो । पुरोः

ण्यः) पौरवः । द्व्यचमगधकलिङ्गसूरमसादण् ।४।१।१७०। द्व्यच् । आङ्गः । वाङ्गः । मागधः । (पाण्डोर्ड्यण्) पाण्ड्यः । वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ।४।१। १७१। वृद्धात्,—आम्बष्ठ्यः । इत्,-आवन्त्यः । कौसल्यः । अजादस्यापत्यम आजाद्यः । कुरुनादिभ्यो ण्यः ४।१।१७२। कौरव्यः । नैषध्यः । ते तद्राजाः ।४।१। १७४। अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः । तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् ।२।४।६२। बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् उत्कृते, बहुत्वे, न तु स्त्रियाम् पञ्चाला इत्यादि

राज्ञो अपत्यं पुरुवंशी राजाकी सन्तान पौरवः । अण् आदिवृद्धिः, ओर्गुणः, पुरूणां राजा पौरवः पुरुवंशियोंका राजा अर्थ ।

पाण्डुशब्दसे राजाअर्थमें ड्यण् य हो । डित्फलं टिलोप यद्यपि पाण्डुशब्द श्वेत और पाण्डव जनकका बोधक है तथापि देश और क्षत्रिय अर्थ ही ग्राह्य है । पाण्डोः अपत्यं पाण्ड् देशका राजा या सन्तान अर्थमें ड्ण् य टि उ का लोप पाण्ड्यः ।

दो अच् वाले शब्दसे मगध कलिंग सूरमस इनसे अण् हो, इञ्को बाधकर। जनपद शब्दसे तो अञ् होता है । दो अच अंग वंग सुह्म ये दो देश और क्षत्रिय-वाची है उनकी सन्तान अर्थमें अण् आदि । अङ्गस्यापत्यं आङ्गः वङ्गस्य वाङ्गः सुह्मस्य सौह्म उड़ीसा बंगाल आसाम तस्य==उनके राजा अर्थमें भी वही रूप अङ्गस्य राजा आङ्गः मगधस्यापत्यं या मगधानां राजा तस्य वंशः मागधः कलिङ्गानां राजा तस्य वंशः केरलके राजाकी सन्तान या केरल देशमें उत्पन्न । सौरमस देशके राजा अर्थमें अण् । वृद्धेत–वृद्धसंज्ञा हुई हो, ईत् कोशल अजादसे जनपद और क्षत्रिय राजासे अपत्य अर्थमें ञ्यङ हो । वृद्धका उदाहरण—आम्बष्ठ और सौवीर शब्द जनपद और क्षत्रिय अर्थमें हो या पुत्रादि अर्थमें । आम्बठदेशस्य राजा तस्य अपत्यं, सुवीरदेशस्य राजा और तस्य अपत्यं अर्थ ञ्यङ् । इत् अन्त आवन्त्यः अवन्ती देश और राजा अर्थमें ञ्यङ् आदि । कुन्त्याः अपत्यं कौन्त्यः कोशलस्य कौशल्यः । अजादस्य राजा सन्तान या अजादीनां राजा आजाद्यः दोनों साधु है ।

(६) कुरु और नकारादि शब्द जनपद और वहांके निवासी क्षत्रिय वाचक हों, तब राजा और अपत्य अर्थमें ण्यप्रत्य हो । कुरोः राज्ञो अपत्यं कुरुवंशी राजाका पुत्र अथवा कुरुनामक देशस्य राजा (कौरव्यः) कुरुशब्दसे अपत्ये राजनि चार्थे 'ण्य' (य) आदिवृद्धिः उको गुणे अवादेश प्रथमैकवचन । निषधस्य अपत्यं निषधके राजा का पुत्र या निषधानां देशविशेषाणां राजा (नलः) निषध शब्द नकारादि है । ण्य, आदिवृद्धिः, अन्त्यलोपादिः नैषध्यः । (७) ते–-अञादयः । अपत्य और राजा अर्थमें विधान किये गये इञ्, अजादिको तद्राज संज्ञा हो । (८) तदा बहुषु–बहुवचन अर्थकी विवक्षामें (जिसको तद्राजसंज्ञा हुई हो) ऐसे प्रत्ययका लोप हो, तदर्थकृते —वह बहुवचन तद्राज प्रत्ययके अर्थमें हो, (स्त्रीलिङ्गमें लुक् न हो) इक्ष्वाकुवंशी राजाका लड़का या राजा, परन्तु बहुवचनमें इक्ष्वाकूणां राजा (अर्थमें) इक्ष्वाकुशब्दसे 'जनपदशब्दात्' सूत्रसे अञ् बहुवचनमें अञ् प्रत्ययको 'ते तद्राजा'से तद्राजसंज्ञा, उससे परे तद्राजसंज्ञक अञ्का लुक् । बहुवचने जस् इक्ष्वाकवः जनपदका राजा । एवं पाञ्चालः पाञ्चालौ पाञ्चालाः । पञ्चालानां राजा इत्यर्थमें तद्राजसंज्ञक

कम्बोजाल्लुक् ।४।१।१७५। तद्राजस्य । कम्बोजः कम्बोजौ । (कम्बोजादिभ्य इतिवक्तव्यम्) चोलः । शकः । केरलः । यवनः ।। अणिञोर नार्षयोर् गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ।४।१।७८। ञ्यादीनामन्त्यमुत्तमं, तस्य समीपमुपोत्तमम् । गोत्रे यावणिञौ । विहितावनार्षौ तदन्तयोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्त्रियां ष्यङादेशः 'यङश्चाप्' कुमुदगन्धेर्गोत्रापत्यं स्त्री कौमुदगन्ध्या । वाराह्या । अनार्षयोः किम् ? वासिष्ठी । गुरुपोत्तमयोः किम् ? औपगवी । गोत्रे किम् ? अगिच्छत्रे जाता–अहिच्छत्री ।। इत्यपत्याधिकारप्रकरणम् ।

अञ् प्रत्ययका लुक् (जस्) विभक्ति । कम्बोज=शब्दसे तद्राजसंज्ञकका लोप हो, कम्बोज शब्द भी जनपद और क्षत्रिय वाचक है । कम्बोजानां राजा कम्बोज देशका राजा । क्षत्रियः । कम्बोज ग्राम् राजा । अर्थमें अञ्प्रत्यये तद्राजसंज्ञा लुक् (वा०) कम्बोज-आदिगणपठित शब्दोसे लुक् हो । चोलस्य राज्ञो अपत्यं चोलानां राजा अञ्, तद्राजसंज्ञा लुक् चोलः । एवं शकस्य जनपदस्य राज्ञो अपत्यं शकानां राजा (शकः) द्वयच् मगध इति अण् । केरलस्य राज्ञः पुत्रः केरलानां राजा । केरलः यवनशब्द भी देश या क्षत्रिय विशेषका वाचक है । यवनानां राजा जनपदशब्दात् अञ् लुक् अत्पय-अर्थ विभिन्न प्रत्ययोंका प्रसङ्गः पूर्ण ।

अण् इञ् अन्तमें हो अनार्ष हो । ऋषिसे न कहे गये हो, (उत्तमस्य समीपं उपोत्तमम्) तीनोंके अन्तमें या अन्तके समीपमें गोत्र अर्थमें अण् इञ् हुए हो । अन्त में हो गुण हो उपोत्तम हो, प्रातिपदिक हो, तब स्त्री अर्थमें ष्यङ् हों । प्रातिपदिक और स्त्रियांका अधिकार, स्थानषष्ठी उच्चारणसे आदेशका लाभ । अत्र शङ्का–अण् इञ् ष्यङ् आदेश कहा गया । अनेकाल होनेसे सर्वादेश क्यों नहीं, तब बोले निर्दिश्यमान उच्चार्यमाण अण् इञ्का उच्चारण है उसीको आदेश होगा सम्पूर्णको नहीं । ङिच्चसे अन्त आदेश उचित नहीं । ष्यङः सम्प्रसारणमें ङित् कृतकृत्यः, ष ङ इत् । यथा कुमुदगन्ध इव गन्धो यस्य रात्रिकमलकी तरह महक हो जिसकी बहुव्रीहि समासे । उपमानाच्च इत्वे कुमुदगन्धेः अपत्यं स्त्री अण् । यस्येति इलोप आदिवृद्धि कौमुद्गन्धिः ध में अण् का अ उत्तम है । उसके समीपमें गुरु गकार है संयोगे गुरुः कहनेसे । गुरु और उपोत्तम अणन्त प्रातिपदिक कौमुदगन्ध है । उसका अवयव अण् स्थाने ष्यङ् अनुबन्धलोपे । यङः चाप–आ कौमुदगन्ध्या रात्रिकमलके गन्धकी तरह गन्धवालेकी बच्ची । इञन्त बराहस्य अपत्यं स्त्री अत इञ् अलोप आदिवृद्धि वाराहिः । इकार उत्तमः, उसके पास में 'रा' गुरु है । इ को ष्यङ्, चाप् वाराह्या । अनार्षयोः किम् अण् इ ऋषि अर्थमें न हुए हो ऐसा क्यों ? वासिष्ठी वैश्वामित्री वशिष्ठ और विश्वामित्रकी बच्ची, ऋष्यन्धकसे अण् उसको ष्यङ् नहो । अण् इञ् क्यों कहा ? ऋतभागस्यापत्यं आर्तभागी । यहां विदादि अञ् स्थाने आदेश न हो । गुरु और उपोत्तम् क्यों पढा ? औपगवीमें उपोत्तम गुरु नहीं है । आदेश न हो गोत्रञ्च चरणैः सहसे जाति मानकर ङीष् । गोत्र क्यों पढा ? अहिच्छत्रमें पैदा हुई स्त्री (मुरादाबादी) यहां जाति अर्थमें अण् है गोत्रमें नहीं ।

(इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकर्यामपत्याधिकारः ।)

अथरक्ताद्यर्थकप्रकरणम्

तेन रक्तं रागात् ।४।२।१। कषायेण रक्तं वस्त्रं—काषायं माञ्जिष्ठम् । रागात्किम् ? देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम् ।। लाक्षारोचनाट्ठक् ।४।२।२। लाक्षिकः । रौचनिकः ।। (शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम्) । शाकलिकः कार्दमिकः ।।

अथरक्ताद्यर्थकाः—अपत्यार्थके अनन्तर रक्तः—लालरङ्गवाचक शब्द हो आदिमें, रक्तादयः-रक्त, युक्त, दृष्ट, परिवृत, संस्कृत, सास्यदेवता, समूह, तदधीते इत्यादयः अर्थाः येषान्ते (ये अर्थ है जिनके) वे प्रत्यय रक्ताद्यर्थकाः है उसका प्रकरण । इसमें तृतीयान्त (क्रियाकारकभाव) समर्थ (साधन अर्थ) से प्रत्यय आदि कार्यका महत्व विशेष है ।

तेन—करण (साधनसे) करणे तृतीया विभक्तिका साधन अर्थ है । रङ्ग चढाने क्रियाकी सिद्धिमें साधकतमं अत्यन्त उपकारक । करण रक्त, लालवर्णादि रिङ्ग कार्य **रागात्**—रज्यते अनेन रागः तस्मात् रंगनेका साधन (कारण नील, पीत, हरित, कपिश, आदि) कारणसे रंगरुप कार्यअर्थमें अण्प्रत्यय हो । अर्थात् रञ्जक द्रव्यवाचक रङ्ग आदि साधन (कषाय) शब्दसे रंगे हुए वस्त्रादि अर्थमें अण् हो । यथा-कषायेन (गेरुआ रङ्गसे) रक्तं—रंगा हुंआ वस्त्र काषायं, यहां तृतीयान्त साधन गुणगुणिभाव-समर्थं रंगवाचक कषायशब्दसे रक्तं (रंगा हुआ अर्थमें) कषाय टासे तेन रक्तं रागात् सूत्रसे अण्, प्रासंज्ञा सुपका लुक् आदिवृद्धिः । यस्येति अकारलोप स्वादिः कषायगुणसे गुणवान् वस्त्र तद्धितार्थः ।

रञ्ज, रागेका रंगसे रूप बदलनेके अनुकूल क्रिया अर्थमें करणे घञ्का साधन अर्थ है । रञ्ज अ । घञ्परे भाव और करणमें नलोप । चजोःसे कुत्व-ग । अत उपधायाः वृद्धिः रागः का रञ्जन साधन द्रव्य चूना, रामरज, गेरू गुलाबी काला पीला लाल वस्तु । तेन==सभी तृतीयाका सूचक । तेन रक्तं==तृतीयान्त वाचकसे रंगा (वर्ण बदला) हुआ, अर्थमें (रागात्का==रञ्जन द्रव्यवाचकात् रगनेकी वस्तु तृतीयान्त पढा हो उससे) अण् हो । प्राग्दीव्यति तक अधिकारः शुक्लस्य वर्णान्तरापादनमिह रञ्जेरर्थः । कषाय-गेरू धातु विषय (रगना) से रक्त (रंगा हुआ) वस्त्र सफेद रङ्गमें बदल गया, ऐसा वस्त्र काषायम् कषायशब्दात् रक्तम् अर्थे अण्, अनुबन्धलोपे,आदिवृद्धिः यस्येति अलोपे, तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञा स्वादिकार्यं । मञ्जिष्ठं रञ्जनद्रव्य मीसी आदि रंगाने का साधन तेन रक्तं (माञ्जिष्ठम्) अण आदि । भूरा रङ्ग, रागात्किं ? रंगनेका वाचक प्रत्यय क्यों—देवदत्तसे रंगा हुआ वस्त्र, देवदत्त साधन है परन्तु रञ्जन द्रव्य—रंग नहीं हैं । उनसे अण् न हो । वस्त्र का वर्णान्तर (सफेदसे लाल होनेका साधन) नहीं (लाक्षा रोचन)से ठक् हो अण् को बांधकर लाक्षया रक्तः, लाहीसे रंगा हुआ । **लाक्षिकः** मठः, मोहर, मुद्रा । लाक्षा शब्दसे ठक्, ठस्य इक, भसंज्ञा यस्येति आलोप । रौचनिकः रोचनया रक्तः गोरोचनरंगसे रंगा हुआ । कुड्य दीवाल । रोचनासे ठक् इक आलोप आदि । (वा०) **शकल** कर्दमसे भी ठक् कहें । रंगका नाम शकल—उससे ठक् आदिवृद्धि

(नील्या अन्) नील्या रक्तं नीलम् ॥ (पीतात्कन्) पीतकम् ॥ हरिद्रामहारजनाभ्यामञ्) हारिद्रम् ॥ नक्षत्रेण युक्तः कालः ४।२।३। (तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्) पुष्येण युक्तं-पौषमहः ॥ लुबविशेषे ।४।२।४। पूर्वेण विहितस्य लुप् षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते। अद्य पुष्यः ॥ दृष्टं साम ।४।२।७। तेनेत्येव। वसिष्ठेन दृष्टं=वासिष्ठं साम।

शाकालिकः। कर्दमेन रक्तः कार्दमिकः कीचड़से लथपथ लिप्त पुरुष। वृत्तिकारके मतमें आभ्यां=दोनोंसे अण् भी हों। शकलेन रक्तः शाकलः। रंगके अंशसे रंगा हुआ। कार्दमः अञ् आदि। सूत्रमें शकलकर्दम प्रक्षिप्त है। इति वृत्तिकारः। क्योंकि उनका अर्थ शकलं त्वचि खण्डे च राजवस्तुनि वल्कले इति विश्वः (वा०) नीलीसे अन् कहें, अण् बांधकर। नीली औषधि उससे रंगा हुआ। वस्त्र नीलं नील दिया हुआ कपड़ा। अन्, इ लोप। (वा०) पीतसे कन् कहें, अण् बांधकर पीतेन रक्तं पीतं। हरितालिका आदिसे रंगा हुआ वस्त्र। (वा०) हरिद्रा महारजनसे अञ् हो, अण् को बांधकर। स्वरमें अन्तर। हरिद्रया रक्तं धौतवस्त्रम्। हरिद्रासे अञ् आदि हारिद्रम् महारजनेन रक्तं रामरजसे रंगा हुआ अञ् आदि इति तेनरक्ताधिकार

(१) नक्षत्रेण=नक्षत्र अश्वनी भरणी इत्यादिसे युक्त सम्बद्ध, आधारित,। काल अर्थमें प्रथम उच्चारित नक्षत्रवाचक शब्दसे अण् हो। नक्षत्रका सम्बन्ध चन्द्रमासे विशेष हो। जैसे :--पुष्यनक्षत्रसे युक्त पूर्णमासीका चन्द्रमा जिस मास या दिनमें हो उसे पौषी पोषं कहते है। (वा०) तिष्य और पुष्य शब्दों से नक्षत्रयुक्तकाल अर्थमें अण् हुआ हो, तब 'य' का लोप कहें। नक्षत्रयुक्त काल ही प्रत्ययका अर्थ है। पुष्य नक्षत्रसे युक्त चन्द्रमासे युक्त (सम्बद्ध) दिन, पूर्णिमा अवश्य हो। आधाराधेय सामर्थ्यवान् तृतीयान्त, कारणभूत, नक्षत्रवाचक पुष्येण (शब्द से) पुष्यनक्षत्रयुक्त, चन्द्रमायुक्त काल अर्थमें नक्षत्रेण युक्तः कालः सूत्रसे अण् (ण इत्) प्रासंज्ञा सुप्लोप, पुष्य+अ आदिवृद्धिः आलोपे, वार्तिकसे यलोप, स्वादिकार्य नपुंसकलिङ्ग, प्रथमका एकवचन रूप पौषम् (अहं) पूस महीनेका दिन या पौषी पूर्णमासी (२) लुबनक्षत्रेण युक्तः काल सूत्रसे अण् आया, षष्ठ्या विपरिणमते, अत आह पूर्वेण—पूर्वसूत्रसे, विधान किये गये अण्का लोप हो। अविशेषे--कोई विशेषता अन्तर न प्रतीत हो कि षष्टिदण्डात्मकस्य--षष्टिदण्डः (साठघड़ी) आत्मा है यस्य जिसका २४ घण्टे काल का अवान्तरविशेष (दिन, रातका विशेष–भेद) न गम्यते---प्रतीत न होता हो, तब अण्का लुक् हो। दिन है कि रात यह ज्ञात नही। यथा अद्यपुष्यः पुष्यनक्षत्रयुक्त चन्द्रमा युक्तकाल अद्य है पुष्यसे अण्प्रत्यये। परन्तु उससे दिन या रात रूप काल का निश्चय न होनेसे लुबविशेषे (दिन रातके भेदकी विशेषता अन्तभेद न होनेसे) अण्का लुप्—अद्यपुष्यः आज पुष्य नक्षत्रसे युक्तकाल है। यहां काल मात्रकी प्रतीति है दिनरातकी नहीं। अद्य २४ घंटे (पूरी तारीख) १२ बजे रातसे १२ बजे रात तक काल मात्रकी प्रतीति। (३) दृष्टं--देखा गया सामवेद, 'तेन' अनुवृत्तिमें। तृतीया-

वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ।४।२।९। वाम देवेन दृष्टं सामवामदेव्यम् । परिवृतो रथः ।४।२।१०। वस्त्रैः परिवृतः वास्त्रो रथः ॥ तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः २।२।१४। शरावे उद्धृतः—शाराव ओदनः ॥ संस्कृतं भक्षाः ।४।२।१५। सप्तम्यन्तादण् स्यात्संस्कृतेऽर्थे यत्संस्कृतं भक्षाश्चेते स्युः । भ्राष्ट्रे संस्कृताः भ्राष्ट्रा यवाः ॥ शूलोखाद्यत् ।४।२।१७। अणोऽपवादः । शूले संस्कृतं शूल्यं मासम् । उख्यम् ॥

न्तात्—साधन और दर्शकदृश्यसम्बन्धसमर्थ तृतीयान्तशब्दसे दृष्ट साक्षात्कार ज्ञान प्राप्त, प्रत्यक्षविषयीभूत यदि सामवेद हो तभी अण् हो। वसिष्ठ ऋषिसे दृष्ट—प्रत्यक्ष (देखा गया) सामवेद उसको (वासिष्ठम्) कहेंगे वशिष्ठेन दृष्टं, लौकिक वाक्य तृतीयान्त दर्शकदृश्यसम्बन्ध समर्थ वसिष्ठशब्दसे अण् आदि वृद्धिः अलोप स्वादिः । मन्त्र द्रष्टा (ऋषि) वसिष्ठसे देखा गया साममन्त्र (४) **वामदेव** तृतीयान्त दर्शकदृश्यभाव समर्थ वामदेव शब्दसे दृष्टं सामवेदका मन्त्र देखा अर्थमें ड्यत् (य) प्रत्यय हो। वामदेवसे साक्षात् (देखा गया) साममन्त्र वामदेव्यं है। तृतीयान्तसमर्थ वामदेव शब्दसे (दृष्टं साम) इत्यर्थे ड्यत् या ड्य (ड इत्) होनेसे टि (अ)का लो स्वादिः। रूप एक-समान। परन्तु त इत् होनेसे तिस्वरित और उदात्तका अन्तर।

परिवृतः—चारों तरफसे घिरा हुआ (अस्मिनर्थे) इस अर्थमें तृतीयान्तसाधन परिवृत त-चढा हुआ भाव समर्थसे घिरा हुआ अर्थमें अण्। अथवा उपलक्षण द्विचक्रिका, त्रिचक्रिका तैलयानी (कार) आदिका। वस्त्रसे घिरा हुआ रथ आच्छादित या लिपटा हुआ अर्थ में, तृतीयान्त आच्छादनसमर्थ साधनभूत, वस्त्र टा से अण् (अ) आदिवृद्धिः अलोप इत्यादि वास्त्रम्। यहां तक रक्त लुप्त, दृष्ट, परिवृत्त चार अर्थमें प्रत्ययका विधान हुआ। रथो वास्त्रः। वास्त्री द्विचक्रियाका, तैलयानम्। **तत्र**—सप्तम्यन्तपदसे उद्धृतं (निकालकर रक्खा) अर्थमें अमत्र—बड़ा पात्रवाचक शब्दसे अण् हो। अमत्रेभ्यः में बहुवचनसे छोटा बड़ा अनेक पात्र। शरावो मृन्मयपात्रं। मिट्टीका पात्र कड़ाही, भगोना, चादर, आदि। शरावे उद्धत (पात्रमें निकाला हुआ) इति विग्रहे सप्तम्यन्त उत्सृज्यउत्सर्जकसमर्थ सप्तम्यन्त (शराव ङि) अस्मात् तत्रोद्धतमत्रेभ्यः सूत्रसे अण् आदिवृद्धि अलोप, आदिकार्य कटाहे उद्धृतः **काटाहः** सूपः। पात्रे उद्धता पात्रा यवागू। (७) **संस्कृत**—अत्र 'अण्' तत्र इति अनुवर्तेते। सप्तम्यन्त संस्कार्यसंस्कारकभाव समर्थशब्दसे संस्कृतं (संस्कार किया गया) अर्थमें अण् हो। परन्तु संस्कार किया पदार्थ, (भक्ष्यन्ते इति भक्षाः कर्मणि घञ्) खानेकी वस्तु हो। यथा—भ्राष्ट्रेषु भाड़में संस्कृताः भूजा गया जो चना भ्राष्ट्राः भाड़का जो के साथ भर्ग्य भर्जक (भूंजना भूंजाने वाला सम्बन्ध)सप्तम्यन्तभर्जनसमर्थ भ्राष्ट्र+सु शब्दात् पाकसंस्कारे (भुने हुए जौं) अर्थे अण् आदिवृद्धिः अलोप इत्यादि कार्य। एवं दध्ना संस्कृतं **दाधिकं**—दहीबाड़ा अग्निषु संस्कृतम् आग्नं मृत्पात्रम्। रसेषु संस्कृता रासाः [रसगोलिका] गुलाब जामुन।

शूल और उखासे पकाया हुआ अर्थमें यत् हो, अण्को बाँधकर। संस्कृतं भक्षाः

दध्नष्ठक् ।४।२।१८। दध्नि संस्कृतं—दाधिकम् ।। साऽस्मिन्पौर्णमासीति ।४।२। २१। 'इति' शब्दात् 'संज्ञायाम्' इति लभ्यते। पौषी पौर्णमासी अस्मिन्—पौषो मासः ।। साऽस्य देवता ।४।२।२२। इन्द्रो देवताऽस्येति ऐन्द्रं हविः पाशुपतम्। बार्हस्पत्यम्। त्यज्यमानद्रव्ये उद्देश्यविशेषो देवता, मन्त्रस्तुत्या च। ऐन्द्रो मन्त्रः। कस्येत् ।४।२।२५। कशब्दस्य इदादेशः स्यात्प्रत्ययसंनियोगेन। यस्येति लोपात्परत्वादादिवृद्धिः। को ब्रह्मा देवताऽस्य कायं हविः। श्रीदेवताऽस्य श्रायम् शुक्राद् घन् ।४।२।२६। शुक्रियम्। सोमाट्ट्यण् ।४।२।३०।

आता है। शूलञ्च उखाश्च अनयोः समाहारः। समास करके पञ्चमी सप्तम्यन्त हो, शूल या उखा हो, उससे संस्कार कर खानेकी वस्तु अर्थमें यत् हो। शूले छड़में लपेटकर पकाया गया मांस अर्थमें यत्। अकारलोप आदि। शूल्यं पिठरं स्थालि उखा कुण्डमित्यमरः थार परात बड़े पात्रमें पकाया हुआ अर्थ यत्। उखा-य भसंज्ञा आलोप(उख्यः)अग्नि अर्थ कैसे? भक्ष नहीं है। यदि ऐसा दिगादि मानकर भव अर्थ में यत्। सप्तम्यन्त दधिशब्दसे संस्कार किया हुआ खानेको वस्तु अर्थमें ठक्। अण् बांधकर। दहीके आधारमें दधनि-दहीमें सींचा दहींबाड़ा अर्थमें प्रत्यय। ठक् इक यस्येति इकारलोप, आदिवृद्धि दाधिकम्। संस्कारकस्तु। इह लवणादिना। दधि-तु करणमात्रं, यदि केवल संस्कार किया हुआ अर्थ रहेगा तब प्राग्वहतेष्ठक्। दध्ना संस्कृतं दाधिकमेव तृतीयान्तसे ठक्।

सास्मिन् सा पौर्णमासी अस्मिन्नर्थे इस महीना, आधार कालमें है। उसका वाचक प्रथमान्तसे अण् आदि हो। इति शब्दके उच्चारणसे सज्ञा नाम निश्चित। युक्ता पौषी पुष्य नक्षत्रसे जुड़ी हुई पूस महीनाकी पौर्णमासीं सा यस्मिन्मासे

(८) **सा**—प्रथमान्त समर्थ अस्य-सम्बन्धित, प्रथमोच्चारित देवतावाचक किसी भी समर्थ (अधिकार सम्बन्ध, युक्त) शब्दसे अस्य-सम्बन्धित अर्थमें अणादि हों। इन्द्र है देवता इस हविके (देवता भोग्य वस्तु ऐन्द्रम्। प्रथमान्त अधिकृत-अधिकारी भाव समर्थ देवता वाचक इन्द्रशब्दसे इन्द्रसम्बन्धी हविष (वस्तु) अर्थमें अण् (देवता विशिष्टदेय) इतना प्रत्ययार्थ है। आदिवृद्धिः अलोप आदिः। पाशुपतं पशुपतिः (भगवान् शंकरः) देवता अधिकृत अधिकारी हैं अस्य इस वस्तुके, वह हवि पाशुपतम्। पशुपति शब्दसमर्थ देवताविशिष्टदेय अर्थमें अण् आदिवृद्धिरित्यादि बृहस्पतिशब्दसे ण्यप्रत्यये, आदिवृद्धि, इलोप आदि।(बार्हस्पत्यम्) सूर्यो देवता अस्य इति सौर्यं भोजनम्। मङ्गलः देवता अस्य माङ्गलं दधि। गुरु देवता अस्य गौरवो ग्रन्थः। भगवान् देवता अस्य भागवतम्।

(९) **शुक्रात्**—शुक्रशब्दसे देवताअस्य अर्थमें घन् प्रत्यय हो। प्रथमान्त समर्थ शुक्र शब्दसे देवताविशिष्ट समर्थसे घन्। घको आयनेयी आदि सूत्रसे इय आदेशे अलोपे स्वा० शुक्रियं==शुक्राचार्यनिमित्तकदेय।

सोम—प्रथमान्त सोमशब्दसे (सोमः देवता अस्य अर्थमें) ट्यण् य हो। सौम्यं धृतं, सोमः चन्द्रमा सदेवता अस्य सोमाट्ट्यण्से ट्यण, आदिवृद्धिः अलोप। सौम्यं

सौम्यम् ॥ वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ।४।२।३१। वायव्यम् । ऋतव्यम् ।। रीङ् ऋतः ।७।४।२७। अकृद्यकारेऽसार्वधातुकयकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः । 'यस्येति च' । पित्र्यम् । उषस्यम् ।। द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तो-

हवि । चान्द्रं वस्त्रं दधि । सौम्या (वनस्पतिः) सोमो वनस्पतीनां राजा (१) वायु ऋतु, पितृ, उषस्, इनका प्रथमान्त समर्थशब्दसे साऽस्य देवता अर्थमें यत् य हो। वायुः देवता अस्य [वायु है देवता इस वस्तुके) प्रथमान्त सम्बन्ध समर्थ वायुशब्द से देवता अस्य (देवतासम्बन्धी देनेकीं वस्तु अर्थमें) यत् वायु य ओर्गुणः उको गुण । वान्तो यि प्रत्येअवादेश स्वा० वायव्यम् । वायुदेवता सम्बन्धो देयवस्तु । ऋतुः देवता अस्ति अस्य ऋतुः बसन्तः देवता है इसके (कामदेव) यत् गुण आदि पूर्ववत ऋतव्यम् । रीङ अकृत-कृदन्तभिन्न सार्वधातुकभिन्न यकार' और च्विप्रत्ययपरे ऋदन्त अङ्ग कोरीङ् हो । ऋको रीङ् । पित्र्यं—पितरो देवता अस्य (पितर है देवता इस हवि, पिण्ड आदि) विग्रहे सास्य देवता से प्रथमान्त सम्बन्ध सामर्थ्यवान पितृशब्दसे देवता अर्थ यत् (वायुऋतुसूत्रेण) पितृ+य यह कृद्भिन्न सार्वधातुक है, ऋदन्त अङ्गके ऋको (ऋतः से) रीङ् हुआ । यस्येति च इलोप स्वादिकार्य पित्र्यं पित्रिय पितरोके लिए देनेकी वस्तु पिण्ड उषा देवता(प्रातः कालके अभिमानी) देवता सम्बन्धीदेय अर्थमें यत् उषस्यम् अर्घ्यः प्रातःकाल अभिमानी देवता सूर्यको देय अर्घ्य पूजा । ये निपातन [सूत्रमें ग्रहण] होनेसे सिद्ध

त्यज्यमान-दानकरने वाली वस्तुका जो उद्देश्य कामनाका विषय हो या मन्त्रस्तुतिका उद्देश्य हो (वह देवता पिण्डदान तर्पणादि) पित्र्य में यत् हुआ। यदि ऐसा हविका शेषभाग ऋग्भ्यो ददाति' विप्राय गो ददाति अदिमें विप्र ऋत्विक् उद्देश्य, कामनाका विषय है । यहां देवता अर्थमें प्रत्यय क्यों नहीं होता ? देय वस्तु साध्यहो, उसका आधार देवता विप्र आदिमें प्रत्यय है । अतः देवता अर्थमे मन्त्र स्तुत्या च । जिसके लिए मन्त्र उच्चारित हो स्तुति भी ।देवता उद्देश्यक प्रयुक्त मन्त्रसे कामनाका विषय भी ।

कस्य – क शब्दके इत् आदेश हो अन्त्य अल् के स्थानमें, आगे प्रत्ययके रहने पर । साऽस्य देवतासे हुआ अण् परे हो तभी इकार हों । क का ब्रह्मा अर्थ, वह देवता हो (जिस हविके) अर्थमें अण् । क के अको इत्व (कि अ) इति दशायां यस्येति च से इकार लोप प्राप्त हुआ, उसको परत्वाद=विप्रतिषेधे परं कार्यके बलसे आदिवृद्धि पर हुई । यद्यपि इकार विधानसे लोप न होता, तथापि वस्तुस्थिति कही गयी' आय कार्य परत्वात् बाधका फल है । श्रायं श्रीः देवता अस्य लक्ष्मी जिसकी स्वामिनी है । अण् यहा इकार लोप को बांधकर आदिवृद्धि सफल, आय स्वादि । काया नु ब्रूहिप्रेषः प्रजापति के सर्वात्मा होनेसे कि सर्वनामसे भी (कस्मा अनुब्रूहि इत्येव सम्प्रेषः) इतिवद विष्णु सहस्रनाम में विश्व विष्णुः एको नैकः सवः कः किं ? यत्तत्पदमनुत्तम, पढ़ा है । अतः विश्वस्मै नमः विश्वाय नमः आदि प्रासङ्गिक हैं ।

ष्पतिगृहमेधाच्छ च ।४।२।३२। चाद्यत्। द्यावापृथिवीयम्, द्यावापृथिव्यम्। शुनासीरीयम्, शुनासीर्यम्॥ अग्नेर्ढक् ।४।२।३३। अग्नेर्ढक् स्यात् साऽस्य देवतेत्यर्थे। आग्नेयम्। महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् ।४।२।३५। माहाराजिकम्। प्रौष्ठपदिकम्॥ देवताद्वन्द्वे च ।७।३।२१। अत्र पूर्वोत्तरपदयोराद्यचो वृद्धिर्ञिति णिति किति च। आग्निमारुतम्॥ नेन्द्रस्य परस्य ।७।३।२२। सोमेन्द्रः।

ङित् अन्त्य अल् ऋ को रीङ् हुआ। यस्येति ईकारलोपे स्वादिकार्ये। त्रिरीवर्ति इत्यादिमें अङ्गकार्ये कृते पुनर्नाङ्गकार्यमिति वचनात् दीर्घ अप्राप्ते ईकारोच्चारणम् उषा देवता अस्य उषस्यं वायु ऋतु से यत्। परन्तु भसंज्ञासे पदसंज्ञाका बाध, जिसकाफल स को रुत्व आदि न होना द्यावापृथवी=आकाश भूमि शुनासीर–वायु सूर्य, मरुत्वत् (तेज वायु) अग्नि, सोम वास्तोष्पति (वस्तुओंके स्वामी) गृह बर–घर का स्वामी, इनसे छ और यत् हो, अण् और यत् उत्तर पदे, ण्य को बांध' कर। द्यावापृथवी देवता अस्य पूजनस्य। सूत्रसे छ—ईय पक्षमे यत्, दोनो स्थलोमें यस्येति च से ईकार लोप। शुनश्च सीरश्च शुनासिरी देवता (द्वन्द्व से) तो देवते शुनासीर्यम्। वेद भाष्यमें भट्टभास्कर—वायु आदित्यवान इन्द अर्थमें, शुनासीरौ देवता अस्य, विग्रहमें कार्य। इन्द्र वयं शुनासीरमस्मिन्यज्ञे हवामहे। इन्द्रअर्थमें भी प्रमाण। मरुत्ववान् देवता अस्य, वायु देवता है जिस पुजनके मरुत्वतीयं—छ ईय होने पर। यदा यत्, तदा मरुत्वत्यम्। अग्निषोमौ देवते अस्य छ अग्निषोमीयम्। यत् अग्निषोम्यम्। वस्तुनः पतिः वास्तोष्पतिः रुद्रः शिवजी, समस्त गृह स्वामी निपातनसे अलुक् षत्वभी। ब्राह्मणमन्त्रमें रूद्रः खलुवै वास्तोष्पतिः। अमर कोशमें सुरपति इन्द्र अर्थः। देवता सम्बन्धी अर्थमें छ-ईय वास्तोष्पतीयं प्रत्यम् गृहमेधो देवता अस्य अकारान्त मरुद्भ्यो गृहमेधेभ्यः प्रमाणसे छ-यत् गृहमेधीयं वेश्म भूर्वास्तुरस्त्रियाम्। अग्नि से ढक् हो, तेन दीव्यति सूत्रके पहले, सभी अर्थोमें सर्वत्र अग्निकालिभ्यां बचन प्रमाणसे।

महाराज और प्रोष्ठ पदसे देवता सम्बन्धी अर्थमें ठक् ठञ्। सास्य देवताका अधिकार। वैश्रवणः महाराजः देवता अस्य, भूमेः वस्तुनः वा ट–इक इत्यादि। प्रोष्ठपदः गौः देवता अस्य प्रोष्ठपदिकं क्षीरं, गोवासः। ञ्। देवता के द्वन्द्व समास में पूर्वपद उत्तरपद दोनोंके आदि अचको वृद्धि हो किति, णिति ञिति परे (अचो) णिति, किति च सूत्र भी। (तद्धितेषु अचामादि) हृद्भगसे पूर्वपद आया, उत्तरपदस्य च भी। अग्निश्च मतरुश्च अग्नामरुतौ देवता द्वन्द्वे से आनङ् हुआ। तो देवते अस्य आग्निमारुतम्। सास्य देवता सूत्रेण अण्। इस सूत्रसे दोनों पदके आदि अच्को वृद्धि हुई। अलौकिक विग्रहवाक्य आनङ्को बाधकर, इदवृद्धौसे इत्व हुआ नेन्द्रस्य= देवता द्वन्द्वे च सूत्रकी प्राप्ति दशामें, उत्तरपदमें इन्द्रशब्द हो तब वृद्धि न हो। सोमश्च इन्द्रश्च सोमेन्द्रौ देवते अस्य भोजनस्य सोमेन्द्रः। अण् आदिः उत्तरपदमें इन्द्र है उसे वृद्धि नहीं। सौमेन्द्रः श्यामकं चरुमिति तैत्तिरीये। परस्य क्यों कहा?

परस्य किम् ? ऐन्द्राग्नः ॥ दीर्घाच्च वरुणस्य ।७।३।२३। न वृद्धिः । ऐन्द्रावरुणम् । दीर्घात्किम् ? आग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत । पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ।४।२।३६। एते निपात्यन्ते । पितुर्भ्राता-पितृव्यः । मातुर्भ्राता-मातुलः । मातुः पिता मातामहः । पितुः पिता पितामहः । तस्य समूहः ।४।२।३७। काकानां समूहः-काकम् । बकानां समूहः बाकम् । भिक्षादिभ्योऽण् ।४।२।३८। भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम् । इह भस्याढे इति पुंवद्भावे कृते ॥ इनण्यनपत्ये ।६।४।१६४। अनपत्यार्थेऽणि इन् प्रकृत्या । तेन नस्तद्धिते

इद्राग्नि देवता अस्य ऐन्द्राग्नः चरु । यहाँ इन्द्रआदिमें है, परमें नहीं न वृद्धिनिषेध,

दीर्घसे परे वरुणको आदिवृद्धि नहीं होती । इन्द्रावरुणौ देवते अस्य विग्रहे आनङ् सहित इन्द्रावरुणसे आदिवृद्धि । दीर्घपरे वरुण है उसको न वृद्धि, दीर्घ क्यों पढ़ा ? ह्रस्वसे परे आदिवृद्धिका निषेध न हो [आग्निवारुणम्) यहां इद्वृद्धौ आग्नि को आनङ् बाधकर इत्व करने पर इत्वके दीर्घ न होनेसे उससे परे वरुणको वृद्धिका निषेध नहीं । अग्नि देवता हो गायको आलभेत-स्वीकार करें ।

स्वीकृत है अर्थ विशेष उपयोगिताकी दृष्टिसे प्रत्यय और अर्थकी कल्पना । पितुः भ्राता पृतृव्यः । पिताका भाई चाचा ताऊ, पितृशब्दसे भ्राता अर्थमें व्य प्रत्यय । मातुभ्राता [मां का भाई सगा] मातृशब्दसे डलप्रत्यय निपातनसे उल् शेष, टि । ऋकालोप मातुः पिता (माता कापिता) पितामहः बाबा दादा । मांतृशब्दसे पिता के अर्थमें डामहच आमह । टि (ऋ) लोपे, मातामहः । पितामहः । ये सभी अर्थ रक्तादिमें लाग्य है । इति देवतार्थ प्रत्ययः ।

अब समूह अर्थमें प्रत्यय प्रस्तुत करते है **तस्य** —षष्ठयन्त समर्थसे समूह समुदाय अर्थमें अण् हो । काकानां कौओके समूहः—झुण्डको काकं विशेष्य विशेषण भावसमर्थ षष्ठयन्त काक आम्से समूह अर्थ अण् आदिवृद्धिः' अन्त्य अकारलोप

भिक्षा आदि षष्ठ्यन्तसमर्थसे समुदाय अर्थमें अण् । अनेक भिक्षाका एक समुदाय । कई भिक्षाका मिला हुआ होना भिक्षाणां समूहः । भिक्षा शब्द सुबन्त समूह अर्थे अण् आदिवृद्धिः लोपादिः भैक्षम् । यहां अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ठक् प्राप्ते या, अण् । अचित—अन्नसमुदाय है । गर्भिणीनां समूहः—झुण्डको **गार्भिणम्** । गर्भिणी आम् दशामे अनुदात्तादेः अञ् प्राप्तः, तं बाधित्वा भिक्षादिभ्यो अण् आदि । गर्भिणी अण् दशामे भस्याढे ढ से भिन्न तद्धितपरक भसंज्ञकको पुंवत् हो । इति पुंवद्भावे गर्भिण अ नस्तद्धितेसे टिलोप प्राप्त है ।(६) **अनण्पत्ये**—अपत्य अर्थसे भिन्न अर्थमें अण प्रत्यय होने पर इन्को प्रकृतिभाव हो । जैसा था वैसा रहे । अपत्य अर्थसे भिन्न समूह अर्थमें हुए इन्को प्रकृतिभाव । युवतीनां समूह युवतियोंका समुदाय यूनस्तिः ति प्रत्ययान्त युवतिशब्दसे समुदाय अर्थमें अण् । पुंवद्भावे, ति निवृत्तः । युवन् अ । अन्के प्रकृति भावसे न टिलोप । आदिवृद्धिः यौवनम् । अत्र टिलोपो न, इन् अणि अनपत्ये इति प्रकृतिभावात् । सअन्त युवती झुण्डको यौवतम् अण् इलोप ।

इति टिलोपो न। युवतीनां समूहः-यौवनम् ॥ गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ् ।४।२।३९। ग्लुचुकायनीनां समूहः=ग्लौचुकायनकम्। औक्षकमित्यादि। 'आपत्यस्य चे'ति यलोपे प्राप्ते। (प्रकृत्याऽके राजन्य-मनुष्ययुवानः)। राजन्यकम्। मानुष्यकम्। (वृद्धाच्चेति वक्तव्यम्) वार्धकम्। केदाराद्यञ्च ।४।२।४०। चाद् वुञ्। कैदार्यम्, कैदारकम्। (गणिकाया यञिति वक्तव्यम्)। गाणिक्यम् ठञ् कवचिनश्च ।४।२।४१। चात्केदारादपि। कवचिनां समूहः:कावचिकम्। कैदारिकम् ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ।४।२।४३ ग्रामता। जनता। बन्धुता। तलन्तं स्त्रियाम् (**गजासहायाभ्यां वेति वक्तव्यम्**) गजता। सहायता (**अह्नः खः क्रतौ**) अहीनः क्रतुरित्यर्थः। **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** ।४।२।४७। **इसुसुक्तान्तात्कः** ।७।६।५१। इस् उस् उक् त एतदन्ता

गोत्र उक्षन्, राष्ट्र उरभ्र राजन्, राजन्य, राजपुत्र वत्स, मनुष्य अज-इनसे परे वुञ् हो समुदाय अर्थमें। इस सूत्रमें लौकिक गोत्र जो प्रवर अध्यायमें परिगणित पुत्रपौत्रादिपूर्ण सन्तान अर्थ, केवल पारिभाषिक नहीं। क्योंकि अपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकमेव गोत्रं गृह्यते न तु पारिभाषिकम्।

ग्लुचुक शब्दसे अपत्य अर्थमें फिन्। फ=आयन। ङीष् (इतो मनुष्यजातेः) लुचुकायनिः से समुदाय अर्थमें वुञ् अक आदिवृद्धि, इलोप आदि। उक्ष्णां समूहः औक्षकम्। उक्षन्-से वुञ् युवोरनाकौसे वुको अक। टि अन का लोप आदिवृद्धि। उष्ट्राणां समूहः औष्ट्रकं ऊंटोंका झुण्ड। उरभ्राः—मेषाः तेषां समूहः औरभ्रकं भेंड़ का झुण्ड। राज्ञां समूहः राजकं राजन्यकम्। यहां आपत्यस्य च सूत्रसे यलोप प्राप्त था उसका बाधक (वा०) प्रकृत्या-अक परे राजन्य, मनुष्य युवन्‌का प्रकृतिभाव हो, तब टि (अन्) का और य का लोप नहीं। एव मनुष्याणां समूहः मानुष्यकं मनुष्यसे समुदाय अर्थमें वुक-अक आदिवृद्धिः। प्रकृतिभावसे टिलोप नहीं। यूनो भावः यौनकं युवकोंका जत्था। युवन्से वु—अक आदि। मनोज्ञादि मानकर वु। प्रकृतिभावसे टिलोप नहीं (वा०) वृद्धसे भी समुदाय अर्थमें वुञ् हो। यहां वृद्ध-जीर्ण मनुष्य है वृद्धानां समूह वार्धकं बुड्ढा दल। वुञ् आदिवृद्धि।

(७) **ग्राम** जन वन्धु ये षष्ठयन्त समर्थ सुबन्त हों समुदाय अर्थमें तल्। तल्प्रत्ययान्तः स्त्रीलिङ्गः ग्रामाणां समूहः (गांवोंका समुदाय) ग्राम+आम् समुदाये अर्थे तल् टाप् ग्रामता। जनानांसमूहः **जनता**। लोगोंका समुदाय, तल् टाप्। बन्धूनां समूहः **बन्धुता**। भाइयोंकी एकता, तल टाप्। (वा०) **गज** (हाथी) सहाय (मददगार) शब्दोंसे समूहे अर्थे तल् गजानां समूहो **गजता**। सहायानां-सहयोगियों का धर्म। समूहः **सहायता** (वा०) अहन् शब्दसे समुदाय अर्थमें ख हो, यज्ञ अर्थ हो तब। अहीनः (यज्ञः) अह्नां दिनानां समूहेन साध्यः (रात दिन होने वाला यज्ञ) अहन् ख को ईन आदेश टिलोप (८) **अचित्त** चेतन शून्य वस्तु, हस्ति, धेनु-गायके षष्ठ्यन्त सकर्थसे ठक् हो। समूह अर्थमें। कइत्। (९) **इस् उस्** उक्, (उ ऋ लृ) और त अन्तमें ही उन समर्थ शब्दोंसे परे ठको क हो इकको बांधकर सक्तूनां-

त्परस्य ठस्य कः। साक्तुकम् हास्तिकम्। धैनुकम्। केशाश्वाभ्यां यञ्छा वन्यतरस्याम ।४।२।४८। पक्षे ठगणौ। कैश्यम्, कैशिकं अश्वीयम्, आश्वम् पाशादिभ्यो यः ।४।२।४९। पाश्या। तृण्या धूम्या। वन्या वात्या। खलगोरथात् ।४।२।५०। खल्या। गव्या। रथ्या ॥ इनित्रकटचचश्च ।४।२।५१। खलादिभ्यः क्रमात्स्युः। खलिनी गोत्रा। रथकट्या (खलादि

समूहः सक्तुओं का ढेर साक्तुकं हाटकम् सतुआ बाजार। चेतन रहित शक्तुशब्दसे समूह अर्थमें ठक्। ईसुसुक्तान्तात्कः ठके स्थानको क आदेश। आदिवृद्धिः, शाक्तुकं गृहं, पात्रभी हस्तिनां समूहः हाथियोंका झुण्ड हास्तिकं पश्य। विशिष्टसम्बन्ध समर्थ हस्तिन् आम् शब्दसे अचित्तहस्तिधेनोः ठक् प्रासंज्ञा सुपका लुक् ठगणों इक् (ठस्येकः) टि इन्का लोप हास्तिकं हस्तिघृहम्। धेनूनां समूहः गायोंका झुण्ड। धनुशब्दसे ठक् उगन्त मानकर ठको क, आदिवृद्धिः एकवचने। समूहार्थप्रत्ययपूर्णः।

केदारात्—केदारसे यञ् हो, वुञ् भी समुदाय अर्थमें। केदाराणां समूहः (खेत कियारी कूल समुदाय) केदारसे यञ् आदि। र के अका लोप (कैदार्यम्) जब वुञ् प्रकभी हुआ तब कैदारकम्(वा) **गणिका** अपसपराके समुदाय अर्थमें यञ् हो। वुञ् निवृत्त। यञ् पढ़नेसे गणिकानां समूहः अर्थमें यञ् आदि। यस्येति अकार लोप। (४९) **कवचिन्** और केदार शब्दसे समूह अर्थमें ठञ् हो। चकारसे केदार आया। शरीर रक्षक कवचधारियोंका समुदाय [कावचिकम्] कवचिन्से ठञ् ठस्य इक, टिलोप आदि। समुदाय अर्थमें केदारसे ही ठञ् आया।

केश और अश्वसे यञ् छ हो विकल्पसे, केशसे यञ् विकल्प, अश्वसे छ विकल्प पक्षे जब यञ् नहीं होगा, तब अचेतन मानकर ठक्। अश्वसे अण्। केशानां समूहः कैश्यम्। अत्र यञ् यदा न, तदा ठक् आदि। **कैशिकम्** अश्वानां समूहः घोड़ी का मेला। अर्थमें छ–ईय अश्वीयम् यदा न छ तदा अणादिः आश्वम्। **पाशा** तृण धूम वन वात आदिके समुदाय अर्थमें य हो समाजमें सभी स्त्रीलिङ्ग प्रसिद्ध है। पाशानां फन्दा बन्धन हथकड़ीके ढेर अर्थमें पाशसे य टाप् (पाश्या) तृणानां संग्रहः तृण्या। धूमानामाशक्तिः **धूम्या**। वनानां समूहः वन्यां। वातानां वात्या बवण्डल। **खल गो रथ** इनसे समूह अर्थमें य हो। खलानां समुदायः **खल्याः** खलसे य टाप। गवां मेला **गव्या**-गाय झुण्ड रथनां संग्रहः रथ्या पाशादिगणमें इनको इसलिये नहीं पढ़ा कि उत्तरसूत्रमें अलगसे अनुवृत्ति हो सके। **इनित्र**=कटचचप्रत्यय खल गो रथ से क्रमशः हों। यथा खलानां निर्दयानां समुदायः अर्थे इनि। नि में इ उच्चाण **खलिनः**। स्त्रीत्वं लोकात्। नान्त ङीप खलिनी दुष्टोंकी संस्था। गवां समूह गोत्रा गोशाला समूहसे स्त्री० लोकसे, टाप। रथानां रथकट्या कट इत् नहीं, (लशकु) में अतद्धिते पढ़नेसे। टाप (वा०)। खल आदि गणमें पढ़े शब्दसे इनि कहें। डाकानां समूहः डाकिनी। (डाइनका झुण्ड) अर्थे डाक् शब्दसे इन। डाकिन्

म्य इनिर्वक्तव्यः) डाकिनी । कुटुम्बिनी । आकृतिगणोऽयम् ॥ **तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः** ।४।२।५७। दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां दाण्डा । मौष्टा ॥ **घञः साऽस्यां क्रियेति ञ्यः** ।४।२।७५। घञन्तात् क्रियावाचिनः प्रथमान्तादस्यामित्यर्थे स्त्रीलिंगे ञप्रत्ययः ॥ **श्येनतिलस्य पाते ञे** ।६।३।७१। अनयोर्मुम् स्यात् ञप्रत्यये परे पातशब्दे उत्तरपदे । श्यैनंपाता मृगया । तैलंपाता स्वधा । श्येनतिलस्य किम् ? दण्डपातोऽस्यां तिथौ वर्तते दाण्डपाता तिथिः । **तदधीते तद्वेद** ।४।२।५९। **नय्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्**

नान्त ङीष् । कुटुम्बानां समुदायः कुटुम्बिनी (परिवार भरी गृहिणी) इन आदि । आकृति–स्वरूप देखकर गणमान्य ।

तदस्यां क्रीडायां प्रहरणं (जिस खेलमें साधनका प्रयोग हो वह प्रथमान्त हो, प्रहार करनेका वाचक हो ण हो । सप्तम्यन्तका अर्थ क्रीडा खेल हो । प्रह्रियते अनेन जिससे आक्रमण प्रहार किया जाय, वह आयुध अस्त्र दण्ड मुक्का प्रहरण है । यथा दण्ड है मार करनेका साधन जिस क्रीड़ा खेलमें उसका नाम [दाण्डा] क्रीड़ा (हाकी) दण्डशब्दात् तदस्यां प्रहरणं अर्थे ण-अ । आदिवृद्धि, अलोपे, टाप् । यदि अण् होता ङीप् हो जाता । मुष्टिः प्रहरणमस्यां क्रीडायां **मौष्टा** मुक्केबाजी, मुक्का प्रहार का खेल । मुष्टिसे ण वृद्धि इलोप, टाप् । प्रहरण क्यों पढ़ा ! माला भूषणमस्यां क्रीड़ा क्यों ! खङ्गः प्रहरणमस्यां-क्रीडायां तलवार युद्धकी सेना, यह खेल नहीं वास्तविक मार है ।

घञ्–सा क्रियां मृगयादिक्रियायां अर्थमें घञ् अन्तमें हो, ऐसे क्रियावाची प्रथमान्तसे सप्तम्यन्त अर्थमें स्त्रीसे ञ हो । स्त्री० विशेष्यका अध्याहार । घञ्से कृत मान्य । इससे गतिसंज्ञक प्रपरा-आदि और कारक कर्म करण आदि पूर्वमें हो वे भी मान्य । **श्येन** और तिल इन दोनोंको मुम् आगम हो ञ् परे, पात शब्द उत्तरभागमें हो । (सा अस्यां) अर्थमें अरुद्विषसे मुम् आया । उत्तरपदका अधिकार है। पतनं पातः गिरना फैलना पत्ल पतने धातुसे भावे घञन्त पात है । श्येन=बाझको फेंका जाय जिस क्रियामें या बाझ झपटे जिसमें वह मृगया **श्यैनम्पाता** श्येनपातसे (घञन्त पात परे) ञ अनुबन्धलोप । आदिवृद्धि, मुम् अनुस्वारपरसवर्ण । यद्यपि पातशब्द ही घञन्त है, तथापि कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वकी भी मान्यता है । तिलका पतन गिरना हो जिस क्रियामें उसका नाम तैलम्पाताः स्वधा, जो स्त्रीलिङ्ग है पितृ क्रियामें है, नमः स्वधायैके प्रमाणसे स्वधा कहनेसे क्रीड़ाका सम्बन्ध हटा, तिलपातसे ञ–अ, मु–म्, अनुस्वार आदि । सूत्रमें श्येनतिल क्यों पढ़ा । इसलिए कि दण्डका पतन जिस तिथिमें दण्डापाता यहां मुं न हो ।

तदधि तं द्वितीयान्तं, समर्थसुबन्तसे अधीत या वेद पढ़ना या ज्ञान करता है । अर्थमें कहे गये और कहे जाने वाले अजादि प्रत्यय हों । (१) **पदान्त** यकार और वकारसे परे अच्को वृद्धि न हो, किन्तु उनके ताभ्याम्—यकार वकारसे पूर्वौ–पहले

।७।६।६। पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्याचो न वृद्धिः। किंतु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैचावागमौ स्तः। व्याकरणमधीते वेति वा वैयाकरणः॥ क्रमादिभ्यो वुन् ।४।२।६१। क्रमकः। पदकः। शिक्षकः। मीमांसकः॥ क्रतूक्थादिसूत्रान्त ट्ठक् ।४।२।६०। क्रतुविशेषवाचिनामेवेह ग्रहणम्। तेभ्यो मुख्यार्थेभ्यो वेदितरि, तत्प्रतिपादकग्रन्थपरेभ्यस्त्वध्येतरि। आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। उक्थं सामविशेषः 'तल्लक्षणपरो ग्रन्थविशेषो लक्षणयोक्थम्, तदधीते वेद वा- औक्थिकः॥ (मुख्यार्थात्तूक्थशब्दाट्ठगणौ नेष्येते) नैयायिकः। वार्त्तिकः

क्रमसे ऐच् (ऐ औ) आगम हो, यसे पूर्व ऐ, वसे पूर्व औ हो। यथा=व्याकरणम् अधीते, वेद, वा (व्याकरणको पढ़ता उच्चारण सीखता कार्य समझता है। या जानता है) द्वितीयान्त ज्ञाताज्ञेय वर्तमानकालिक अध्ययन समर्थ सुबन्तव्याकरण अम्से तदधीते तद्वेद सूत्रसे इति अध्ययनार्थ या बोधार्थ उपयोगिता उपदेशार्थमें अण् यस्येति अलोप प्रासंज्ञा सुलोप। णित्से प्राप्त आदिवृद्धिको बाधकर नय्वाभ्याम् आदि सूत्रसे वृद्धिनिषेध, किन्तु वृद्धि स्थाने ऐच यकारसे पूर्वमें 'ऐ' हुआ स्वादिः। **वैयाकरणः** पंक्ति पढकर व्युत्पत्ति साधनिका समझाने वाला, या शब्द अर्थ सम्बन्ध निर्णयपूर्वक शाब्द बोधका उपदेशकर्ता तद्धितार्थ व्याकरण पढ़नेवाला। ग्रन्थमधीते वेद वा **ग्रान्थः** अन्य पण्डितः(३) **क्रमादि** क्रम, पद, धन, जटा, शिक्षा, आदि द्वितीयान्त समर्थ हो, अधीते वेद अर्थमें वुन् वुस्थाने अक। क्रमम् अधीते वेद वा क्रमकः वेदका पाठक्रम जानने वाला। वु को अक अन्त्य अकालोप। पदम् अधीते वेत्ति वा पदकः। पदपाठग्रन्थः पदम्। शिक्षापाठग्रन्थः शिक्षाम् अधीते वेत्ति वा। शिक्षकः। मीमांसाम् अधीते [मीमांसाशास्त्र पढ़नेवाला] मीमांसकः। रक्त अर्थ बोधक प्रत्ययसे लेकर अधीते वेदपर्यन्त अर्थ।

क्रतु उक्थादि सूत्रान्त-इनसे अधीते और वेद अर्थमें ठक् हो। सूत्रके शब्दोंको नहीं लिया जायगा। किन्तु उनके विषयमें विशेष वाचक शब्द ही मान्य। न तो उक्थादिगणसे ही आता है। ननु अक्षर पढ़नेके अनुकूलक्रिया अध्ययन है। यज्ञका अध्ययन अर्थमें अण् कैसे ? अक्षरार्थ ज्ञान नहीं है तब कहा—तेभ्यः क्रतु अर्थमें अग्निष्टोमादिमुख्य है। यज्ञ प्रतिपादकग्रन्थ अर्थमें गौण है। मुख्य अर्थवाचक शब्दसे वेत्ति बोध अर्थमें अण् आदि हो। जब ग्रन्थपरक अर्थ होगा तब अध्ययन अर्थमें भी अणादि होंगे। तत्प्रतिपादक==अग्निष्टोम आदिके बोधक ग्रन्थ। अग्निष्टोमं क्रतु वेत्ति। तत्प्रतिपादकग्रन्थमधीते। यज्ञका बोध करते हैं या उसके ग्रन्थको पढते हैं। अर्थमें द्वितीयान्त प्रकृति अग्निष्टोमसे ठ इक। किति च आदिवृद्धिः। आग्निष्टोमिकः। उक्थ शब्द सामलक्षण ग्रन्थ अर्थमें गौण है, साम अर्थमें मुख्य। गौणसे ठक् अथवा स्तोत्रविशेषः—अग्निष्टोमः स्तोत्रात्परं यत्सामधीयते। वृत्तिकारने कहा— जो सामविशेष लक्षणसे ग्रन्थ है वही लक्षणासे उक्थ। उसको अधीते वेद अर्थमें ठक आदि (औक्थिकः) (वा०) मुख्य अर्थसे सामवाची उक्थशब्दसे ठक् अण् दोनों

लौकायतिकः (सूत्रान्तात्वकल्पादेरेवेष्यते) सांग्रहसूत्रिकः । अकल्पादेः किम् ? काल्पसूत्रः । (विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम्) । वायसविद्यिकः । गौलक्षणिकः । पाराशरकल्पिकः ॥ (अङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वाद्विद्यान्तान्नेति वक्तव्यम्) आङ्गविद्यः क्षात्रविद्यः । धार्मविद्यः । त्रिविधा विद्या त्रिविद्या, तामधीते वेद वा-त्रैविद्यः ॥ इति रक्तार्थकप्रकरणम्

अथचातुरर्थिकप्रकरणम्

इष्ट नहीं है । उक्था दिगणमें पढ़े हुए शब्दोंका उदाहरण—न्यायं तर्कशास्त्रमधीते वेत्ति वा न्यायको गुरुमुखसे पढे या ठीकसे बोध करे । अर्थमें ठ इक । न्याय इक । य्वाभ्यासे य के पूर्वमें ऐच् आदि । नैयायिकः । वृत्ति==वररुचिरचनां वेत्ति अधीते वा वार्तिकः द्वितीयान्तकी प्रकृति वृत्तिसे उसी अर्थमें ठक् इक आदिवृद्धि, रपर, इलोप । लोकायतं भूगोल सामाजिकताको गुरुसे पढ़े या स्वयं ज्ञान करे अर्थमें ठक् आदि (वा०) सूत्र अन्तमें हो किन्तु कल्प आदिमें न हो । उससे ही ठक् इष्ट है । संग्रहनामक सूत्रमधीते वेत्ति वा अर्थे ठक् आदि । कल्प आदिमें न हो ऐसा क्यों ? कल्पसूत्रमधीते वेत्ति वा काल्पसूत्रः । यहां ठक् न हो, किन्तु अण् (वा०) विद्या, लक्षण, कल्प अन्तमें हो उनसे अध्ययन और बोध करने अर्थमें ठक् हो । वायस विद्यामधीते वेत्ति वा । धूर्त चपल कौवाके विषयमें अध्ययन करे, जाने वह व्यक्ति । गायका लक्षण समझे समझावे, गोलक्षणसे ठक आदि । घोड़ेके लक्षणको जो सुनें समझे । अश्व लक्षणसे ठक् आदि । पराशर कल्पको जो पढ़ता हो, समझता हो । ठक आदि । (वा०) अङ्ग क्षत्र, धर्म त्रि ये पूर्वमें हो विद्या अन्तमें हो ऐसे समाससे ठक् नहीं होता, किन्तु अण् । अङ्ग विद्य मधीते (हस्तरेखा, ललाट भुजा आदि अङ्ग लक्षणक ज्ञानको जो सुने समझे अर्थमें) प्राप्त ठक् का वार्तिकसे निषेध, किन्तु तदधीतेसे अण् । क्षात्रविद्यामधीते । क्षत्रियोंके देशरक्षण विद्याको जो पढ़े जाने, धर्मविद्याको सुने समझे, वह धार्मविद्यः । ठक् निषेध । अण्का विधान आदिसे । त्रिविधा विद्या, या तिस्रः विद्या शाक पार्थिवादि मानकर मध्यमपद 'विद्या'का लोप यदि तिस्रः विद्या त्रिविद्या कहने पर अणका द्विगोर्लुक् होगा । त्रिविद्यः बनेगा । ३ विद्याको जो (पढ़ें समझें) अर्थमें अण् आदि । त्रैविद्यः । त्रिविद्यामधीते वेद वा । इति प्रभाकरमिश्रकृतयायां रक्ताद्यर्थकाः ।

चातुरर्थका :—चतुर्णाम् अर्थानां समूहः चातुरर्थः [चारअर्थोंका समुदाय] तत्र भवाः उन अर्थोंमें होनेवाले प्रत्ययाःचातुर्थिकाः है । अथवा चतुर्णां सूत्राणामर्थाः तत्र भवाः प्रत्ययाः इस प्रकरणमें चार प्रत्यय प्रमुख है देश अर्थके बोधक भी । १--वस्तुके कारण प्रसिद्ध देशः । २–क्रिया, निर्माण, सिद्धि द्वारा, व्यक्तिके नामसे प्रसिद्धदेश । ३—स्थान वास्तव्य निवासके कारण प्रसिद्धदेश । ४—समीपसम्बन्धसे देशनगरकी प्रसिद्धि, ये चार अर्थ चातुरर्थिकनामसे प्रसिद्ध है । क्रमशः सूत्र उदाह-

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।३७। उदुम्बराः सन्त्यस्मिन्देशे औदुम्बरो देशः ॥ तेन निर्वृत्तम् ।४।२।३८। कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी । नगरी । तस्य निवासः ४।२।६६। शिबीनां निवासो देशः शैवः । अदूरभवश्च ।४।२। ७०। विदिशाया अदूरभवं वैदिशम् ॥ वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरोहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसंकाशबलपक्षकर्णसुतंगमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ।४।२।८०। एभ्यः सप्तदशभ्यः सप्तदश

रण । [३] तदस्मिन्=प्रथमान्त समर्थसे अस्मिन् सप्तम्यन्तसे अस्ति विग्रह आधार अर्थमें प्रत्यय हो, ऐसा प्रत्ययगान्त शब्द तन्नाम्नि==उसी नाम शब्दसे सम्बद्ध देश प्रसिद्ध हो । ऐसे प्रत्यय कुछ कहे गये हैं कुछ कहे जायेंगे । यथा–यदुम्बराः सन्ति अस्मिन्देशे उदुम्बरका देशके साथ आधार आधेय भाव रहते प्रथमान्तवस्तु उदुम्बर जस् । 'तदस्मिन्' सूत्रेण अण् आदिवृद्धिः अलोप औदुम्बरः [जिस देशमें गूलरका प्रसिद्ध पेड़ हो । एलाः सन्ति अस्मिन्देशे ऐलः । गोधूमाः सन्ति अस्मिन्देशे गौधूमः पाञ्चालः, तण्डुला सन्ति ताण्डुलः वङ्गः । [४] तेन==तृतीयान्त साधनभूत समर्थ कार्यकारणात्मकशब्दसे निर्वृत्तं सिद्ध निर्माण किया हुआ अर्थमें कहे गये और वक्षमाण प्रत्यय हो । सुबन्त शब्दसे ही देशका नाम हो । यथा–कुशाम्बेन निर्वृत्ता [कुशाम्बराजासे निर्माण या सिद्धकी गयी] नगरी तन्नाम्नि उसी कुशाम्बराजाके नामसे देश कौशाम्बी प्रसिद्ध है, राजाका देशके साथ कार्यकारण सम्बन्ध तृतीयान्त समर्थ कुशाम्ब शब्दसे निर्वृत्तं—निर्माण अर्थमें अण् आदिवृद्धि । स्त्रित्व बोधके ङीपि कुशाम्बराजासे बसाई नगरी । इन्द्रिया निर्वृत्तं दलम् ऐन्दिरम् । त्रिपूरेण निर्वृत्ता नगरी त्रैपुरी ।

तस्य—षष्ठयन्तसमर्थसे निवास अर्थमें उक्त, वक्षमाण प्रत्यय हो [आधार-सम्बन्ध] शिवीनां [शिवि नामक प्रसिद्ध राजाओंका] निवासदेश रहनेका स्थान, वास्तव्य, अर्थमें षष्ठ्यन्तसमर्थ शिवि+आम्से निवास अर्थसे तस्य निवासः अण् आदिवृद्धिः इलोप शैवः । शक्तीनां निवासो देश शाक्तः । सूर्यवंशीनां सौर्यवंशः । यवनानां यावनः, आष्यापत्रः अङ्गानाम् आङ्गः, वाङ्गः, कालिङ्गः । [६] अदूर पञ्चम्यन्तसमर्थ शब्दसे अदूरभव—समीप होने अर्थमें अण् आदि हों । यथा— विदिशानगरीसे अदूरभव समीपमें विद्यमान नगरं वैदिशम् । विदिशाके पासकी नगरी । वाराणस्याः अदूरभवं वाराणसेयं यमदग्निपुरं वैन्ध्याचलं । शब्दसे अदूरभव अर्थमें अण् आदिः ।

वुञ्छण् क ठच्, इल् स इनि र ञ्यञ्, ण्य, य, फक्, फिञ्, इञ्, कक् ठक् इन सत्रह प्रत्ययोंका द्वन्द्व प्रथमा बहुवचन । उच्चारण-क्रमसे-कृशाश्व ऋष्य, कुमुद, काश, तृण, प्रेक्ष, अश्मन्, सखि, संकाश बल, सुतङ्गम, प्रगदिन्, वराह, कुमुद, इनमें द्वन्द्व समास । इन्हीसे उक्तप्रत्यय क्रमसे हो । संख्या क्रममें प्रमाण=दोनों कुमुदशब्द हैं प्रगदिन्के नकारका लोप नहीं किया, इकारान्त भ्रम न हो जाय ।

क्रमात्स्युश्चातुरर्थ्याम् । अरीहणादिभ्यो वुञ्, अरीहणेन निर्वृत्तम् —आरीहणकम् । कृशाश्वादिभ्यश्छण्, कार्शाश्वीयम् । ऋश्यादिभ्यः कः, ऋश्यकम् । कुमुदादिभ्यठच्, कुमुदिकम् । काशादिभ्य इलः — काशिलः । तृणादिभ्यः सः, तृणसम् । प्रेक्षादिभ्य इनिः, प्रेक्षी । अश्मादिभ्यो रः, अश्मरः । सख्यादिभ्यो ढञ्, साखेयम् । संकाशादिभ्यो ण्यः, सांकाश्यम् । बलादिभ्यो यः बल्यम् । पक्षादिभ्यः फक्, पाक्षायणः । (पथः पन्थ च) पान्थायनः । कर्णादिभ्य फिञ्, कार्णायनिः । सुतंगमादिभ्य इञ्, सौतंगमिः । प्रगद्यादिभ्योञ्यः

वार्तिकसे सूत्रके सभी प्रकृतिप्रत्यय तद्धितार्थोंका निर्णय—अरोहरण आदि शब्दोंसे चारों अर्थोंमें वुञ् आदि प्रत्यय क्रमसे हो । अरीहरणसे निर्मित नगर अर्थमें वुक् आदि । कृशाश्व आदिगणमें पढ़े शब्दोंसे छण् हो (तदस्मिन्नस्ति) देशे तन्नाम्नि, तेन निर्वृत्तः, तस्य निवासः, अदूरभव चारो अर्थोंमें प्रथम उच्चारित विभक्ति अन्तसे यथा योग्य प्रत्यय हों । इस गणमें चेतन अचेतन दोनों है । कृशाश्वसे चारों अर्थोंमें छण । छको ईय आदि । ऋश्य आदिगणसे उन अर्थोंमें क हो । ऋश्यका निवास, बनाया हुआ, समीप और देश अर्थमें क ऋश्यकम् । कुमुद आदिगणमें पढ़े शब्दसे अर्थोंमें ठक् हों । कुमुदाः सन्ति अस्मिन् कुमुदानां निवासः, सरः, आदि कौमुदिकं ठ इक । काशगण पठित शब्दसे इल् हो । काशसे बनाई झोपड़ी । काश का निवास, काशके पास, काश जिस देशमें हो, सब काशिल । तृण आदिगणमें पढ़े शब्दसे स हो । तृणानां निवासः तृणसम् । तृणसे बनी छाया, देश, या समीप । प्रेक्षाआदि गण पढ़ेसे इनि हो । प्रेक्ष्यते इति प्रेक्षः निरीक्षकः । तेन निर्वृत्तः, प्रेक्षया निर्वृत्तः देखने वालीसे बनाया हुआ उनका निवास, उनके पास, उनके देश आदि अर्थमें इन् । आलोप प्रेक्षिन्से प्रेक्षी बना । अश्मआदिगण पढ़े शब्दसे र हो । अस्मना नृर्वृत्तः लोहेसे बनाया गया, लोह गोदाम, लोहेके पासका स्थान, खान । लोहका देश, अर्थमें र हो, नकारलोप (अस्मरः) सखी आदिगण पठितसे ठक् हो । सखीनां निवास सखियोंके ठहरनेका स्थान समीपस्थानं सखीसे बनाया हुआ मित्रका देश, आदि, अर्थमें ढ-ऐय (आदि साखेयम्) सङ्काशगणके शब्दसे ण्य हो चारोंमें । सङ्काशसे बनवाया देश, निवास समीप अर्थमें ण्य–य, आदिवृद्धि साङ्काश्यम् । बलादि गण में पढ़े शब्दसे चार अर्थमें य होता है । बल का निवास, समीप आदि अर्थमें यप्रत्यय, अलोप । पक्षादिगणमें पढ़ेसे फक् आयन । पक्षेण निर्वृतः पाक्षायणः । पक्षका निवास निकट ग्राम देश । (ग) पथ के स्थानमें पन्थ आदेश हो चार अर्थमें पथो अदूरभवः ग्रामः (पान्थायनः) पथसे फ, आयन-पन्थ आदेश । पक्षादिका गणसूत्र है । कर्णादिसे फिञ् हो कर्णस्य निवासः निकट ग्राम कार्णायनिः फको आयन आदि । सुतङ्गम आदिसे इञ् हो, निवास निकट बनाया हुआ ग्राम स्थान देश अर्थमें इञ् आदि । प्रगदिन आदिसे ण्य हो, निकट निवास आदि अर्थमें टिलोप आदि । वराह आदिसे कक् हो वराहस्य निवासः निकट वाराहकः

प्रागद्यः । वराहादिभ्यः कक्, — वाराहकः । कुमुदादिभ्यष्ठक्, कौमुदिकः
जनपदे लुप् ।४।२।८१। जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप् ॥ लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने १।२।५१। लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः । कुरवः । अङ्गाः । कलिङ्गाः ॥ वरणादिभ्यश्च ।४।२।८२। अजनपदार्थ आरम्भः। वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः। शर्कराया वा ।४।२।८३। अस्माच्चातुरर्थिकस्य वा लुप्स्यात्॥ ठक्छौ च ।४।२।८४। शर्कराया एतौ स्तः। कुमुदादौ वराहादौ च पाठसामर्थ्यात्पक्षे ठच्ककौ। वाग्रहण सामर्थ्यात्पक्षे औत्सर्गिकोऽण तस्य लुब्विकल्पः। षड् रुपाणि - शर्करा

कितसे आदिवृद्धि कुमुद आदिसे ठक् देश निवास निकट स्थान, आदि अर्थोंमें ठ-इक आदि कौमुदिकः[७] **जनपद**—नगरके नामसे उसी अर्थमें होने वाले चातुरर्थिक—तदस्मिन्, निवृत्तं, निवासः, अदूरभवः इन अर्थोंमें हुए प्रत्ययका लुप् लोप हो। [८] **लुपि**—चातुरर्थिक प्रत्ययका लोप होने पर युक्तवत्—प्रकृतिवत् जिससे प्रत्यय हुआ हो उसीके समान युक्त—प्रकृतिके तुल्य लिङ्गवचन हो। व्यक्तिवचने—जिससे परे प्रत्ययका लुप् हो उस व्यक्तिका लिङ्गवचन हो। व्यक्तिशब्द लिङ्गवाची है। पाञ्चालाः पंजाबियोंके रहनेका स्थान जनपद, महल्ला, ग्रामनगर, पाञ्चालः षष्ठ्यन्त समर्थपाञ्चाल शब्दसे निवास अर्थमें अण्। तत्र निवासः पाञ्चालोंके ठहरनेका स्थान जनपदवाची अस्ति। जनपदे लुप्—चातुरर्थीमें प्रसिद्ध अण्का लोप। लुपियुक्तवद्से लिङ्गवचन। अभिधाने यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी। इस न्यायसे लुप्तप्रत्ययकी प्रकृति अकेली ही निवासरूप अर्थको भी कहेगी। एकवचन पुलिंग। जिसमें एक जिलाधीश हों उसे जनपद कहते हैं। बहुनगर ग्राम व्याप्त मण्डलाधिकरणं स्थानम्। एवं कुरुणां निवासो जनपदः कुरुः अण आदिका लोप होनेसे? आदिवृद्धि, अन्त्य लोप नहीं होते। अंङ्गानां निवासो जनपदः। अङ्गः उड़ीसा प्रांतः। वङ्गानां निवासोदेशः जनपदः वङ्गः। उड़ीसा प्रांत। बङ्गानां निवादेशः जनपदः बङ्गः—बंगाल। कलिंगानांनिवासः कलिंगः। **केरलः**। [९] **वरण** आदि शब्दोंसे परे चातुरर्थिक प्रत्ययका लोप हो। जनपदे लुप्से लुप् आया। जनपद अर्थमें पूर्वसूत्रके लोपसे भिन्नअर्थमें लोप हो। इसलिए जनपदार्थ कहा। वरणा शहरसे अदूरभव अर्थ अण् तस्य वर्णादिभ्यश्चेति लोपे, लुपियुक्तवत् वचने प्रकृतिके समान लिंगवचन वरणाः।

शर्करा (चीनी शक्कर) से चातुरर्थिक प्रत्ययका लुप् हों विकल्पसे **ठक्छौ च** शर्करासे ठक् और छ प्रत्यय हो। कुमुदादिसे ठक् वराहादिसे कक् भी हो। गणपाठ की शक्तिसे (वा०) पढनेके सामर्थ्यसे पक्षमें औत्सर्गिक स्वभाविक अण् हो। उसका लुप् विकल्पसे। ६ रूप हुए शर्कराः सन्ति अस्मिन्देशे उसका नाम **शर्करा**। शर्कराभिः निर्वृत्तं चीनीसे बनीं मिठाई शर्कराः। अण् लुप् प्रकृतिभाव लिङ्ग वचन। अण्का लोप नहीं तब शार्करं। ठक् इक आदि हुए। शार्करिकं। छ—ईय

शार्करिकम् शार्करम् शर्करीयम् शर्करिकम्, शार्करकम् । **नद्यां मतुप्** ।४।२।८५। चातुरर्थिकः । इक्षुमती ॥ **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** ।४।२।८७। । **झयः** ।८।२।१०। मतोर्मस्य वः कुमुद्वान् नड्वान् ॥ **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** ।८।२।९। मवर्णावर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः । वेतस्वान् । **नडशादाड्ड्वलच्** ।४।२।८८। नड्वला । शाद्वलः । **शिखाया वलच्** ।४।२।८९। शिखावलम् ॥ **उत्करादिभ्यश्छः** ।४।२।९०। उत्करीयः । **नडादीनां कुक च** ४।२।९१ नडकीयम् । (कुञ्च ह्रस्वत्वं) । क्रुञ्चकीयः (तक्षन्नलोपश्च) तक्षकीयः ॥ इति चातुरर्थिकप्रकरणम् ।

हुआ शार्करीयं ठञ् इक शर्करिकं । कक् होने पर शार्करकम् । **नद्यां**—नदीसंज्ञकसे चारों अर्थोमें मतुप् हो । इक्षवः सन्ति अस्मिन् या इक्षुणा निर्मिता इक्षुमतीं भेलीं बट्टी नगरी । नदीसंज्ञक इक्षुसे अण् उसका लुप् आदि ।

कुमुद, नड वेतस् शब्दसे [अस्मिन्नस्ति देशे] अर्थमें डमतुप् [मत्] देशवाची अर्थमें हो । ङित्से टिलोप [१] **झय** प्रत्याहारके अक्षर अन्तमें हों उससे मतुप्के म को व हो । कुमुदाः सन्ति अस्मिन्देशे । [जिस देशमें] कुमुद रात्रिकमल, अधिक हो, वह कुमुद्वान् है । कुमुदशब्दसे उक्तसूत्रसे ड्मतुप् अनुबन्धलोप, डित्से टि [अ] का लोप । 'म' को झयः से [व] कृते कुमुद्वत् प्रथमा एकवचन । नडाः सन्ति अस्मिन्देशे नरकट, नकुॅल, अधिक हो । देश अर्थमें नडशब्दसे ड्मतुप् प्रक्रिया पूर्ववत् । [२] '**म**' च, 'अ' च् अनयोः समाहार 'मं' तस्मात्==मकारान्त या अकारान्त या मकार या अकार उपधामें हों उससे परे म को 'व' हो यवादि परे न हो तो । वेतसाः सन्ति अस्मिन्देशे वेत अधिक हो जिस देशमें । वेतस्‌शब्दसे ड्मतुत् **टि** [अ] लोपे, अकारोपरि होनेसे मादुपधायाश्चसे म को व । वेतस्वत् प्रथमा एकवचन वेतस्वान् । किं परिमाणम् अस्य किम्वान् । ज्ञानमस्ति अस्य ज्ञानवान् । भाग्यवान् लक्ष्मीवान् । [३] **नड और** शाद्‌शब्दसे [आधार अर्थमें] ड्वलच् वल् प्रत्यय हो । डित्फलं टिलोपः । नडाः सन्ति अस्मिन् नर्कट हों जिस देशमे वलच् **नडवलः** । हरीघास बहुदेश । शादाः हरितघासाः सन्ति यस्मिन्नदेशे । शाद्वलानि वनानि पश्यन् हरे घास वाले वनको देखते हुए **शाद्वलः** [४] शिखाशब्दसे निवृत्तं या अस्मिन् अस्ति अर्थमें शिखाशब्दात् वलच् शिखया निवृ॑तः शिखावलः ।

उत्कर आदि गणमें पढ़े शब्दसे चातुरर्थिक छ प्रत्यय हो । उत्करे देशे निवासः, उत्करेण निवृ॑त्तं तस्य निवासः अदूरभव अर्थमें छ-ईय **उत्करीयः** (८९) **नड प्लक्ष** विल्व वेणु वेत्र वेतस आदिसे छ हो, चार अर्थमें । प्रकृतिसे कुक् भी । नडाः सन्ति अस्मिन् **नडकीयं** स्थलं नडक-छ-ईय-स्वादिः । नडादिगण सूत्र है । क्रुञ्चा शब्दसे छ हो प्रकृतिको कुक् । आ को अ भी । क्रुञ्चाः अस्मिन्सन्ति क्रौञ्च पक्षी जिस देशमें हों । छ-ईय कुक् ह्रस्व क्रुञ्चकीयः । (ग०) तक्षन शब्दसे छ हो कुक्, नकार लोप भी । तक्षाणः सन्ति अस्मिन् **तक्षकीयः** तक्षन्से छ-ईय । क, न-लोप ।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकर्यां चातुरर्थिकाः प्रत्ययाः समाप्ताः ।

अथशैषिकप्रकरणम्

शेषे ।२।१।९२। अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषः तत्राणादयः स्युः । चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रुपम् । श्रावणः शब्द । औपनिषदः पुरुषः । दृषदि पिष्टाः-दार्षदाः सक्तवः । उलूखले क्षुण्णः-औलूखलो यावक । अश्वैरुह्यते-आश्वो रथ, चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम् । चतुर्दश्यां दृश्यते-चातुर्दश रक्षः ।

अथशैषिका—शेषेभवा=शेष अवशिष्ट अर्थमें प्रत्यय हों उक्तादन्यः शेष । कहे हुए चारों अर्थोंसे भिन्न अर्थः ।

तत्र समर्थः (सम्बन्ध सहित) सुबन्तसे शेष अर्थमें प्रत्यय हों । अपत्यादि=तस्यापत्यंसे लेकर रक्त, युक्त, दृष्टं, साम, परिवृत्त, संस्कृतं भक्षाः साऽस्य देवता, समूह, अधीते, वेद, अस्मिन्देशे, निर्वृतं, निवासः, अदूरभवः, ये चतुरर्थपर्यन्त अर्थ, उक्तात्=कहे गये, उनसे अन्यो यः (बचा हुआ) अर्थः (पश्यति गृहते, पिष्ट, जात, भव आदि शेष है उसी अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों । वक्ष्यमाण कहे जाने वाले प्रत्यय भी हों । भाव यह है कि जिन अर्थोंका प्रतिपादन सूत्र कर चुके हैं उससे भिन्न अर्थोंका सूत्रमें कथन, उपदेश, उच्चारण नहीं है वही अर्थ 'शेषे' सूत्रके अधिकारमें प्रत्यय मान्य हैं । वह अवशिष्ट अर्थमें प्रत्ययविधानसे विधिसूत्र है । इसका अधिकार पूरे प्रकरण तक पहुंचता है । अतः अधिकार सूत्र भी है । अर्थके अनुकूल शक्ति, सामर्थ्य, परस्पर सम्बन्ध और प्रत्ययकी कल्पना कर्तव्य है । यथा—ग्रहण अर्थमें किसी सूत्रने प्रत्ययविधान नहीं किया, अतः उसमें शेष अर्थकी कल्पना । चक्षुषा गृह्यते (नेत्रसे ग्रहण किया जाय, नेत्रेन्द्रियका ग्राह्यविषय रूप) है अतः तृतीयान्त ग्राह्यरूप ग्राहक-इन्द्रिय शक्तिसमर्थं (चक्षुष+टा) शेषे सूत्रसे ग्रहण अर्थमें अण् (अ) आदिवृद्धिः । प्रासंज्ञा, सुपोधातुप्रातिपदिकयोः लोप नपुंसकैकवचन चाक्षुषं रुपम् । आंखसे ग्रहणके योग्य चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रुपं, घ्राणेन (नाकसे) गृह्यते घ्राणो गन्धः । त्वचा (चर्मसे) गृह्यते त्वाकः स्पर्शः रसनया गृह्यते (रासनः) स्वादः । जीभसे रस लेने योग्य । श्रवणेन श्रूयते (कानसे सुना जाय) श्रावणः श्रोत्रमात्रग्राह्यः शब्दः । तृतीयान्त (ग्राह्यग्राहकसामर्थ्ययुक्त) श्रवण+टा, अण् आदिवृद्धिः प्रा संज्ञा सुलोप आदिः । मनसा अनुभूयते मानसः खेदः हर्षो वा । औपनिषदः पुरुषः उप समीपे निषीदन्ति-उपविशन्ति उपनिषदः ब्रह्मतत्ववेत्ताः, साक्षात्सम्बन्धकृतग्रन्थः, या मन्त्र, वेदका अन्तिम भाग (दर्शन) उपनिषद्भिः ब्रह्मज्ञानकुशलैः मन्त्रैः बुधैः ग्रन्थैर्वा प्रतिपादितः ज्ञानविषयः, पुरुषः, परब्रह्म आत्मा, उपनिषद्का ब्रह्मके साथ प्रतिपाद्यप्रतिपादक सम्बन्ध । तृतीयान्तसमर्थ (उपनिषद् भिस्) प्रतिपादनसमर्थ अर्थमें अण् इत्यादिः । दृषदि चक्कीमें पिष्टा पीसे गये जो भी सत्तू आटा, सीमेंन्ट, चूर्ण, मसाला, सभी दार्षदाः हैं । सप्तम्यन्तपेष्यपेषणशक्तिसमर्थ । दृषद्ङिसे पीसने अर्थमें अण् आदिः । शिलापुत्रे (शिलोटो पर) पिष्टाः (शैलपुत्राः) भांग, चटनी उपटन आदि (चार व्यक्ति-घोड़ा, बैल या मनुष्य, से) चतुर्भिः उह्यते, ढोया खींचा जाय बग्घी, पालकी, रथ आदि चातुरं शकटम् । अथवा चतुर्भि चतुश्चक्रैः उह्यते

'तस्य विकार' इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः । राष्ट्रावारपाराद् घखौ ।४।२।९३। आभ्यां घखौ स्तः । राष्ट्रे जातादि राष्ट्रियः । अवारपारीणः ॥ (अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्) अवारीणः । पारीणः । पारावारीणः । इह प्रकृतिविशेषात् घादयष्टयुट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते, तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते ॥ ग्रामाद्यखञौ ।४।२।

चार पहियोंसे जो चले, कार, ट्रक, बस आदि । त्रिभिः उह्यते+त्रम् द्वाभ्यामुह्यते 'द्वम्' इन अर्थमें अण् आदिवृद्धिः । स्वादि समझें । चतुर्दशीमें दीखने-वालेकी चतुर्दश्यां दृश्यते,चातुर्दशंरक्षः राक्षस । सप्तम्यन्त कार्यकारणभावसामर्थ्यं अण् आदिवृद्धि आदिः द्वितीयायां दृश्यते, द्वैतीयश्चन्द्रः पुर्वस्यां दृश्यते पौर्वंशुक्रः । उत्तरस्यां दृश्यते औत्तरः ध्रुवतारा । तस्य विकारः सूत्रसे प्राक्—पहले शेषाधिकारः बिना सूत्र के कहे गये अर्थोंमें प्रत्ययका अधिकारः ।

(६) राष्ट्र और अवारपार (इस पार, उस पार) इन सप्तम्यन्त समर्थ शब्दोंसे शेष अनुकूल अर्थमें क्रमसे घ और ख प्रत्यय हो । शेष शब्दसे अर्थ सिद्ध राष्ट्रे जातः, भवः राष्ट्रमें, जन्म लिया, पैदा हुआ अनुकूल अर्थ भव या जात है । सप्तम्यन्त समर्थ (अस्तित्व) राष्ट्र ङि शब्दसे "राष्ट्रावार-" सूत्रसे घप्रत्यय 'आयनेयी' सूत्रसे घस्थानमें इय् आदेश भसंज्ञा यस्येति च अन्त्य अलोप । राष्ट्रियः, अवारपारीणः- अवारपारं आदिअन्त ग्रन्थ या आरपार नदी, या इहलोक परलोक । शब्दब्रह्मज्ञानमें पूर्णनिष्णात प्राप्तः, पारङ्गतः तत्ववेत्ता । द्वितीयान्तसमर्थ अवारपारशब्दसे उक्तसूत्रसे ख उसको "आयनेयी"से ईन आदेश । अलोप णत्व स्वादिः (वा०) अवारपारशब्दात् विग्रहीतादपि==अलग-अलग रहने पर भी ख हो । विपरीतात्==अवारपारको उलट कर पारावारसे भी ख हो । अवारे जातः इसपार, इहलोक, आरम्भमें जिसकी सत्ता उपस्थित हो वह अवारीणः है । अवारशब्दसे ख-ईन, अलोप, णत्वादि । पारीणः पारे जातः उस पार पहुँचा । शास्त्रमें पारङ्गतपूर्ण, ख ईन आदिः । ये विगृहीतके उदाहरण है । अब विपरीतका उदाहरण :=पारावारे जातः उसपारसे इसपार पहुंचा (परब्रह्म परमात्मा व्यापक) वार्तिकसे विपरीत दिशामें भी ख-ईन आदिः । इह==शैषिक प्रकरणमें राष्ट्रावारपारात् घखौ सूत्रमें किसी अर्थका निर्देश न होनेसे अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति । असंकेतित अर्थ वाले प्रत्यय स्वार्थमें हों, ऐसी शंका होने पर समाधान करते हैं कि इस शैषिक प्रकरणमें प्रकृतिविशेषात्==राष्ट्र अवारपारआदि प्रकृति है उनसे घादय==घ ख इत्यादिसे लेकर टच् ट्युल् पर्यन्त कहें है तेषां-उन प्रत्ययोंके जातादयो अर्थविशेषा==जातः, भवः आदि अर्थका विशेष उच्चारण या अर्थ निर्देश, प्रत्ययके अर्थका सम्बन्ध, एक वाक्यता और समर्थ विभक्तियां, वक्ष्यन्ते कहीं जायेगी ।

(७) ग्रामात् सप्तम्यन्तसमर्थ शक्तिसम्पन्न ग्राम शब्दसे य' और खञ् प्रत्यय

६४। ग्राम्य, ग्रामीणः ।। नद्यादिभ्यो ढक् ।४।२।९७। नादेयम्। वाराणसेयम्। दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ।४।२।९८। दाक्षिणात्य· पाश्चात्यः पौरस्त्यः ! द्यु प्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ।४।२।१०१। दिव्यम्। प्राच्यम् अपाच्यम्। उदीच्यम प्रतीच्यम् ।। अव्ययात्त्यप् ।४।२।१०४। (अमेहक्वतसित्रेभ्य एव)

हो जातः या भवः अर्थमें। ख-शेष, ञ इत्फलं उदात्तः। (ग्राम्यः) ग्रामे जातः गांवमें पैदा हुआ। ग्राम शब्दसे जातादि य। अलोपे ग्राम्यः, ख स्थाने ईन अलोप। आदि वृद्धि, णत्वे ग्रामीणः। (८) नदी आदि गणपठित शब्दोसे ढक् हो। क इत्। नदी, मही, वाराणसी श्रावस्ती, कौशाम्बी, काशपरी, काशफरी, खादिरी पूर्वनगरी, पाठा, माया, साल्वा दार्वा केतकी, इति नद्यादि। नद्यां जातं भवं नादेयं (नदीमें जो हुआ शैवाल, सीपी, जलमूर्ति) सप्तम्यन्तसमर्थ नदी शब्दसे जातादि अर्थमें नद्यादिभ्यः से ढक् क इत्। ढको एय इलोपे आदिवृद्धिः। माहेयम्–मह्यां जातं भवं वा पृथिवीं पर पैदा हुआ, या होनेवाला, मही-ङि से ढक् आदि। पर्वत नदी वनस्पति जीवजन्तु माहेयं है। वाराणस्यां भवः, जातः वाराणसीशब्दसे ढ-एय इलोप बनारसमें होनेवाला दर्शनीय स्थान विश्वविद्याल, गंगा, विश्वनाथ आदि। वाराणसेयम्। मायायां जातं। मायेयम्। (९) दक्षिणा पश्चात् पुरस् इन अव्ययशब्दोंसे जात, भव आदि शैषिक अर्थोमें त्यक् हो। दक्षिणस्यां जातः दक्षिण दिशामें पैदा हुआ या होगा। वह दक्षिणात्यः–दक्षिणास्याम् (अदूरे) दक्षिणा, तत्र जातः। सप्तम्यन्तसमर्थदक्षिणा शब्दसे भवादि अर्थ शैषिक त्यक्प्रत्यय, क इत्। पाश्चात्यः–पश्चात्भवः विकसितः पीछे या पश्चिममें हुआ या होगा। त्यक् आदिवृद्धिः। पौरस्त्यः पुरोभवः अग्रे (पहले हुआ] पूर्वः पौरस्त्यः प्रथमः आद्य इत्यमरः। पुरस् शब्दसे त्यक् आदि।

दिव द्यौः स्वर्ग। प्राच् पूर्वदिशा अपाच् दक्षिण, उदक् उत्तर प्रतीच् पश्चिम इन सप्तम्यन्तसमर्थ शब्दसे भव आदि अर्थमें यत् हो दिवि भवं (स्वर्गमें हो) दिव्यम्। सप्तम्यन्त समर्थदिव शब्दसे भव आदि अर्थ यत्। प्राच्यां भवं जातं प्राच्यम्। प्राची दिशामें पैदा हुआ, पूर्वी समुद्र सूर्य, ऊषा, अपाच्यां भवम् दक्षिणमें हुआ, होनेवाला, अपाच्यम्। दक्षिणी मनुष्य, समुद्रादिः उदीच्यां दिशिभवम् उत्तरी दिशामें हुआ हिमालय आदि। प्रतीच्यां दिशि भवं प्रतीच्यं (पश्चिमी पंजाबी, राजस्थानी आदि) प्राच् अपाच् उदीच् प्रतीच्शब्दसे भवार्थे यत्। (१) अव्ययसे जात आदि अर्थमें त्यप् हो। प इत्। सूत्रकारस्य न्यूनतां साक्षेपोक्ति दृष्टां वार्तिककारः प्रपूरयेत्। अव्यय अनेक है। किनसे त्यप् हो उसका नियन्त्रकवार्तिक अमा (साथ सहयोग सलाह मन्त्रणा) इह==यहां क्व कहां त तस प्रत्ययान्त ततः अतः और त्र प्रत्ययान्त अत्र, तत्र, यत्र आदिसे भी त्यप् अमात्यः। अमया सह भवः अमात्यः सहयोग, या साथमें मन्त्रणा, समर्थ मंत्र देनेमें सहयोगी अमा अव्ययसे त्यप् स्वादिकार्यं। इह भवः इहत्यः यहां है। क्व भवः क्वत्यः, कहां है। ततःभवः ततस्त्यः। वहांसे

अमात्यः। इहत्यः। क्वत्यः ततस्त्यः। तत्रत्यः॥ (त्यब् नेर्ध्रुव इति वाच्यम्) नित्यः (निसो गते) ह्रस्वात्तादौ तद्धिते ।८।३।१०१। ह्रस्वादिणः सस्य षस्तादौ तद्धिते। निर्गतो वर्णाश्रमेभ्यो निष्टयश्चाण्डालादिः (अरण्याण्णः)। आरण्याः सुमनसः। (दूरादेत्यः) दूरेत्यः (उत्तरादाहञ्) औत्तराहः। ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम् ।४।२।१०५। एभ्यस्त्यब्वा। पक्षे वक्ष्यमाणौ ट्युट्युलौ। ऐषमस्त्यम् ऐषमस्तनम्। ह्यस्त्यम्, ह्यस्तनम्। श्वस्त्यम्, श्वस्तनम्। पक्षे शौवस्तिकं वक्ष्यते। वृद्धाच्छः ४।२।११४। शालीयः

सम्बन्धित अतोभव अतस्त्यः (इसलिए होगा) तत्र भवः जातः तत्रत्य (वहां का है) सर्वत्र इह क्व ततः शब्दसे त्यप्। क्वत्यो भवान्? वाराणसीयोऽहम्, अत्रत्याः अमात्याः विवेकिनः सन्ति। तत्रत्य वृत्तान्तम्।

त्यब्नेः==नि उपसर्गसे त्यप्रत्यय (ध्रुव स्थिर अर्थमें हो। नितरांभवः नित्यः, निउपसर्गसे ध्रुव अर्थमें वार्तिकसे त्यप्। स्थिर अविनाशी निसे निकला हुआ अर्थमें त्यप् हो; निस् त्य दशामें स पदान्त है। आदेश रूप या प्रत्ययका अवयव नहीं, आदेश प्रत्ययोंसे षत्व प्राप्त नहीं। अतः सूत्र—ह्रस्व इण्=इ उ ऋ लृ से परे स को ष हो। इण्कोः से इण, सहेः साडः से ष आया। षष्ठयन्त। अपदान्तस्य मूर्धन्यः भी। तकारादि तद्धित त्यप् परे निस्के स को ष, त को ष्टु—ट, स्वादिः निष्टयः। (चाण्डाल दुष्टः) जातिबहिष्कृतः वर्ण आश्रमसे भ्रष्ट निकाला गया (वा०) अरण्यसे ण—हो, भव अर्थमें। अरण्ये भवाः आरण्याः, सुमनसः स्त्रियः पुष्पमित्यमरः। जङ्गलके फूल। अरण्यसे अ ठय् आदि। अण् होता ङीप् हो जाता (वा०) दूरसे आगत या भव अर्थमें एत्व हो। दूरादागतः दूरे भव दूर हुआ उत्पन्नमें दूरात् इस अव्ययसे एत्य, भमात्रे टिलोपः। दूरेत्यः (वा०) उत्तरसे आया हुआ, भव अर्थमें आहञ् हो। उत्तरस्मात् आगतः उत्तरस्मिन्भवः उत्तरसे आया या उत्तर दिशामें पैदा हुआ अर्थमें आहञ्। आदिवृद्धि आ-लोप औत्तरहः। औत्तरः असाधु है।

ऐषमस् ह्यस् श्वस् इनसे त्यप् हो। विकल्पसे एक पक्षमें वक्ष्यमाण==सायं चि सूत्रसे ट्युल तुट्-त् हो, वर्ष अर्थमें। ऐषमस् इस वर्ष वर्तमान संवत्सर परुत्परारि (परसाल परियारसाल) ऐषम अव्यये पूर्व पूर्वतरे इति, तत्र भवं ऐषमस्से जात अर्थ में ट्यु-अन, तुट्-त, तन, टित्से आदि अवयव त्यप् होने पर ऐषमस्त्यम् इस वर्षमें जन्मा उत्पन्न पैदा हुआ। ह्यस् अव्यय है बीता दिन अर्थ। तत्र भवं काण्डं पिछले दिनकी घटना त्य ह्यस्त्यम्। जब ट्यु-अन तुट् तन ह्यस्तनम् श्वस अव्यय है आगामी दिन, तत्र भव, श्वः जातं कल होने वाला, ह्यो गते अनागते अह्नि श्वः अमरः। श्वस्त्यं श्वः भवं कल होगा। श्वस्से तुट् पक्षमें श्वस्से तुट् ठञ्—इक। त—तिक स्वस्तिक वके पूर्व—औ आगम शौवस्तिकं द्वारादीनां ऐच् कहेंगे।

वृद्धिः यस्य जिस समुदायके अचोंके में आदि अच् वृद्धि (आ ए औ) हो तद्वृद्धम् उस समुदायकी वृद्धसंज्ञा हो। त्यद् यद् इदम् अदस् आदिकी भी वृद्धसंज्ञा

त्यदादीनि च ।१।१।७४। वृद्धसंज्ञानि स्युः । तदीयः । (वा नामधेयस्य वृद्ध-संज्ञा) देवदत्तीयः, दैवदत्तः । भावत्कः ॥ सिति च ।१।४।१६। तद्धिते पूर्वपदं स्यात् । जश्त्वम् । भवदीयः । वृद्धादित्यनुवृत्तेः शत्रन्तादणेव । भावतः । काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ।४।२।११६। इकार उच्चारणार्थः । काशिकी-काशिका । वैदिकी, वैदिका ॥ (आपदादिपूर्वपदात्कालान्तात्) । आपदादि-राकृतिगणः । आपत्कालिकी । आपत्कालिका । धन्वयोपधाद्वुञ् ।४।२।

हो वृद्धात्==वृद्धसंज्ञक शब्दसे शेष अर्थमें छ प्रत्यय हो-शालीय :—शालायां भवः जातः । (घरमें पैदा हुआ) शाला शब्दके अचोमें आदि अच् 'आ' समुदाय वृद्धसंज्ञक है । अतः (वृद्धिर्यस्य अचामादिः) सूत्रसे शाला समुदायकी वृद्धसंज्ञा वृद्धाच्छः, छ स्थाने आयनेयी सूत्रसे ईय् आदेश, भसंज्ञा, अन्त्य आलोपादिः । एवं मालीयःमालायां जातः मणिः मालाशब्दमें आदि अच् आ है समुदायकी वृद्धसंज्ञा, भवार्थे छः,-ईय, (मालामें फूल या सुमेरु मालीयः) । तदीयः-तस्मिन्भवः (उसमें हुआ) या यस्य अयम् (उसका सम्बन्धी) तद्को वृद्धसंज्ञा, (त्यदादीनिच से) वृद्धाच्छः ईय तदीयौ उपानहौ, अस्माकमयं मदीयः, तव अयं त्वदीय, भवताम् अयं भवदीयः । अस्माकं अस्मदीयः युस्माकं युस्मदीयः एतस्यायमिति एतदीयः यस्यायं यदीयः वाराणस्यां भवः वाराणसीयः मूर्तौ (भवः) मौर्तः । गुरौ जातः गुर्वीयः छात्राण मयं छात्रीयः । (वा०) वा नामधेयस्य किसीके नाम (व्यक्तिवाचक शब्द) की वृद्धसंज्ञा विकल्पसे हो । देवदत्तस्य पुत्रः, ग्रन्थः, देवदत्तीयः । देवदत्त शब्दकी वार्तिकसे विकल्प वृद्धसंज्ञा छप्रत्ययः ईय आदेश । पक्षे अण् वृद्धिः दैवदत्तः वृद्धसंज्ञक भवत्से ठक् इसुसुक्तान्तसे ठ को क, आदिवृद्धि भावत्कः भवतो जातः आपका प्रियः त्यदादीनिसे वृद्धसंज्ञा होने पर छ को ईय । प्रा० संज्ञा जस् त को जश्त्वेन द, यहां भसंज्ञासे पदका बाध नहीं होगा । 'सिचि च' सिप्रत्यय परे पूर्वकी हो पदसंज्ञा । भवतः अयं भावतः में अण् कैसे ? भवत् त्यदादि है वृद्धसंज्ञा, छ-ईय उचित है तब कहा वृद्धात्की अनु-वृद्धि आती है शतृ अन्तमें होकर बना भवत् वृद्ध नहीं,न छ किन्तु अण् ही होता है । आदिवृद्धि भावतः भा से डवतु ।

काशी आदिगण पढे शब्दोंसे ठञ् हो । ङीप् यस्य फलं । ञिठः फलं टाप् । इकारका उच्चारण फल । ञादिञिका लोप काश्यां जातः काशिकी ठ इक्, इलोप ङीप् । जब ञि ठ-इक, तब टाप् काशिका । मणिकर्णिका । विदे भवाः वैदिकी वैदिका, ठञ् ञि०-ङीप् टाप् (ग०) आपद आदि गणपठित शब्द (जो आकृति गण है) वे पूर्वपदमें हो काल अन्तमें हो । तब ठ-इक आदिवृद्धि, ङीप् (आपत्कालिकी) दशा । संकट पूर्ण । जब ञि० तब टाप् विशेष ।

धन्व—मरुप्रदेश (जल विहीन) वाची, योपध अन्त्य अल्के पूर्वमें य हो ऐसा शब्द देशवाची वृद्ध० हो, उससे वुञ् कहे । समानौ मरुधन्वानौ आष्टकं नाम धन्व नपुंसकः । ऐरावत नामक मरुप्रदेशमें उत्पन्न अर्थमें वुञ् अक आदि । योपध

१२१। धन्वविशेषवाचिनो यकारोपधाच्च देशवाचिनो वृद्धाद् वुञ् स्यात्। ऐरावतं धन्व ऐरावतकः। सांकाश्यकाम्पिल्यशब्दौ वुञ्छणादिसूत्रेण ण्यान्तौ। सांकाश्यकः। काम्पिल्यकः॥ **नगरात्कुत्सनप्रावीण्ययोः** ।४।२। १२८। कुत्सने प्रावीण्ये च नगरशब्दाद्वुञ्स्यात्। नागरकश्चौरः, शिल्पी वा। 'कुत्सन' इति किम्? नागरा ब्राह्मणाः॥ **अरण्यान्मनुष्ये** ।४।२।१२८। वुञ् स्यात्। औपसंख्यानिकणस्यावादः। (पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वाच्यम्)। आरण्यकः पन्थाः, अध्यायः, न्यायः, विहारः, मनुष्यः, हस्ती वा॥ **गर्तोत्तरपदाच्छः** ।४।२।१३७। देश इत्येव। वृकगर्तीयम्॥ **गहादिभ्यश्च** ।४।२।१३८। गहीयः। **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च** ।४।३।१। चाच्छः। पक्षेऽण्। युवयोर्युष्माकं वाऽयं–युष्मदीयः। अस्मदीयः॥ **तस्मि-**

साङ्काश्ये काम्पिल्ये ग्रामे भवः दोनों शब्दसे वुञ् अण्। ण्य अन्त है। वु-अक

नगरसे कुत्सन निन्दा फटकार या प्रवीणस्य भावः प्रावीण्यं चतुर शिरोमणि अर्थ हो तब नगर शब्दसे वुञ्। नगरे भवः नागरक' शहरका चोर अथवा शिल्पी, कलाकार कुशल। नगरसे वु अक आदि। कुत्सा निन्दा क्यों? नागराःमें वुञ् न हो! कत्र्यादिगणमें माहिष्मती पढ़ा है। सहवाससे नगरसे ढकञ् होकर नागरेयकः बनता। चूंकि संज्ञाभूत नहीं अतः ढकञ् भी नहीं। नगरे भवाः नागराः। (५३) अरण्यसे मनुष्य अर्थमें वुञ् हो ण्यको बाधकर। इस सूत्रमें पथ्य, पन्था अध्याय न्याय–विहार–मनुष्य–हस्ति इनके अर्थमें ही वुञ् हो अरण्ये भवः आरण्यकः पन्था जंगली रास्ता। अरण्यसे वुञ् आदि (वा)। अध्याय या विहार आदि अर्थ सूचक वुञ् होगा। आरण्यकः कहनेसे यह वुञ् जंगलका रास्ता, वेदका अध्याय, तर्क जंगलका विहार जंगली मनुष्य हाथी तद्धितार्थ है।

गर्त (गड्ढा) उत्तरपद हो उससे छ। देश अर्थमें, अण् बाधकर त्रिगर्त देशका नाम-तत्र भवः उसमें हुआ अर्थमें छ-ईय आदि त्रैगर्तीयः

गहादिभ्यश्छः—गह आदि गणपठित शब्दोंसे भी छ प्रत्यय जात आदि अर्थमें **गहीयः**। गहे देशनाम्नि भवः गहनामक देशमें हुआ। गहशब्दसे छ आदिः। समे भवः समीयः विषमीयः मध्यीयः अङ्गीय वङ्गीय एकशाखीय एकवृक्षीयः एकग्रामीयः दन्ताग्रीयः उत्तरीय आदि। **युष्मद**–युष्मद और अस्मद् शब्दसे खञ् चात्=छ हो विकल्पसे, अण् भी। खको ईन, छको ईय, आयनेयी फढखछघाम् सूत्रसे होते हैं। **युष्मदीयः** युवयोः युष्माकं वा तुम दोनों या तुमलोगों की वस्तु यह है। युष्मद्ङस् आम्। उक्त सूत्रसे छ प्रत्यय ईय आदेशादि युष्मदीयः। कुत्र आवयोः अस्माकं वा गृहम्। हम दोनों, हमलोगों का घर **अस्मदीयः**। अस्मद् छ ईय। यदा युष्मदशब्दात् युष्मदस्मदोः सूत्रेण खञ, तस्य ईन ततः। **तस्मि**– खप्रत्यय और अण् परे युष्मद् और अस्मद् दोनोंके स्थानमें एतौ=युष्माक और अस्माक ये दोनों आदेश हों। युष्मद् स्थाने युष्माक आदेश, आदिवृद्धिः, अलोप णत्वं, **यौष्माकीणः**, ग्रन्थः।

ञनणि च युष्माकास्माकौ ४।३।१। युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः। खञि अणि च। यौष्माकीणः, आस्माकीनः। यौष्माकः, आस्माकः॥ तवकममकावेकवचने।४।३।३। एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः। खञि अणि च। तावकीनः, तावकः। मामकीनः, मामकः। छे तु—। प्रत्ययोत्तरपदयोश्च।७।२।६८। मपर्यन्तयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च। त्वदीयः। मदीयः त्वत्पुत्रः। मध्यान्मः।४।३।८। मध्यमः॥ असांप्रतिके।४।३।९। मध्यशब्दादप्रत्ययः सांप्रतिकेऽर्थे। उत्कर्षापकर्षहीनः 'मध्यः' वैयाकरणः। मध्यं दारु, नातिह्रस्वं नातिदीर्घमित्यर्थः। द्वीपादनुसमुद्रं यञ्

तुम्हारी पुस्तक। आवयोः=हमदोनोंकी या अस्माकं हमलोगोंकी वस्तु, आस्माकीनः अस्मद् शब्दसे खञ् अस्मद्-स्थाने स्माक आदेश खको ईन आदिवृद्धिः। यदा अण् तदा युस्माक अस्माक आदेश। आदिवृद्धिः, अलोप यौष्माकः आष्माकः तद्धितार्थः पूर्ववत्। द्विवचन बहुवचन प्रकृतिक रूपसमान हो। एकवचनमें। तवक-एकार्थवाचिनोः एकवचनार्थकप्रकृति युष्मद् या अस्मद् शब्दके स्थानमें क्रमसे तवक, ममक आदेश हों, खञ् अण् परे। तावकीनः अव अयम् (तुमसे सम्बन्धित वस्तु एक अर्थ, व्यक्तिवाचक या एकवचन प्रकृतिक युष्मद्से खञ् तवकममकावेकवचने युष्मद्स्थानसे तवक आदेश। आदिवृद्धिः। खको ईन (तावकीनः) अण् कृते तावकः (तुमसे सम्बन्धित व्यक्ति यो वस्तु ग्रन्थः) मम अयं मामकीनः पुत्रः। अस्मद शब्दसे खञ् ममक, ईन, आदेश। अण् पक्षमें भी वैसा, आदिवृद्धिः। छेतु छ प्रत्यय परे युष्मद्छ ततः प्रत्ययो के उत्तरभाग तक एकार्थवाचिनोः=एकवचनसे सम्बन्धित युष्मद् अस्मद्के स्थानमें क्रमसे त्व म आदेश हो प्रत्यय परे, उत्तरपदपरे रहते। तव अयं त्वदीयः शिष्यः। मम अयं मदीयः, (मेरेसे सम्बन्धित व्यक्ति वस्तु) युष्मद् शब्द और अस्मद् शब्दकी त्यदादीनिसे वृद्धसंज्ञा, वृद्धाच्छः। यहां एकअर्थवचन व्यक्तिवाची युष्मद् युष्म के स्थानमें त्व, अस्मद्के मपर्यन्त भाग अस्मको 'म' युस्मको 'त्व' हो। छको ईय त्वदीयः तव सम्बन्धी वस्तु। यत् किञ्चित्पुलिङ्गीयः। यदीयः मत्सम्बन्धिद्रव्यगुण क्रिया। इतिप्रत्ययपरकोदाहरणम्। अथोत्तरपदपरक उदाहरणं—समासमें तवपुत्रः त्वत्पुत्रः (तुमसे सम्बन्धित पुत्र) मम पुत्रः मत्पुत्रः (मेरी सन्तान) तत्पुरुष समास उत्तरपदपुत्रशब्दपरे युष्म, अस्म को 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च से (त्व म) आदेशे।

मध्य शब्दसे जात, भव आदि अर्थबोधक शैषिक (म) प्रत्यय हो। मध्ये भवः जातः मध्यमें हो या जन्म ले वह मध्यमः। मध्य शब्दसे भव अर्थमें म।

अ·लुप्ता प्रथमा, साम्प्रतिके=इदानी वर्तमान कालमें मध्य शब्दसे अ हो उत्कर्ष अपकर्षरहित (न छोटा, न बड़ा) मध्य है। जैसे मध्यो वैयाकरणः न विद्वान है न मूर्ख।। मध्ये भवं मध्यं दारु (मझली लकड़ी) मध्यसे अप्रत्यय, न छोटा न मोटा। सम्प्रति अव्यय है। उत्कर्ष अपकर्षहीन अर्थ। अनाम्नश्चतुरात्रोऽतिरिक्तः षड्रात्रोऽथवा एष सम्प्रति पञ्चरात्रः तैत्तिरीये दर्शनात्। न न्यूनः नाप्यधिकः किन्तु

।४।३।१०। समुद्रसमीपे यो द्वीपस्तद्विषयात् द्वीपशब्दाद्यञ् स्यात् । द्वैप्यम्, द्वैप्या ।। **कालाट्ठञ्** ४।३।११। मासिकम् । सांवत्सरिकम् । (अव्ययानां भमात्रे टिलोपः) सातंप्रातिकः । पौनःपुनिकः । कथं तर्हि 'शार्वरस्य तमसो निषिद्धये' इति कालिदासः, 'अनुदितौषसरागा' इनि भारविः, समानकालीनं प्राक्कालीनमित्यादि च ? 'अपभ्रंशा एवैये' इति प्रामाणिकाः । 'तत्र जात' इति यावत्कालाधिकारः । **श्राद्धे शरदः** ४।३।१२। ठञ् स्यात् । ऋत्वणोऽ-

---

समः । विनयादि-ठक् प्रज्ञादि-अण् (एतर्हि सम्प्रति) कोशसे इदानी अर्थमें भी । अतः साम्प्रतं साम्प्रतिकम् । **द्विपात्**-समुद्रस्य समीपम् अनुसमुद्रम् । अव्ययीभावे समीपार्थे । समुद्रके निकट द्वीपका विषय, द्वीपसे यञ् हो । द्वीपे भवं द्वैप्यं समुद समीप टापूमें जन्मा । द्वीपसे यञ् आदिवृद्धि । जब टाप् द्वैप्या, कच्छादिः, द्वीपे भवः द्वैपकः मनुष्यः वुञ् ।

कालवाची सप्तम्यन्त (परिछेद्यपरिच्छेदक भावसमर्थ) समयबोधकशब्दसे ठञ् भव आदि अर्थमें हो । विपल, पल, दण्ड होरा, प्रहर दिन रात सप्ताह पक्षमास ऋतु वर्ष युग परार्ध आदि कालवाची है । सामान्यकाल और भेदककाल दोनोंका प्रयोग व्यापककाल । काले-भवं जातं (समयमें होने वाले या हुए) **कालिकं** समये भवं ग्रीष्मवर्षावसन्तादि । अन्न, फल, सूर्य चन्द्र आदि **सामयिकम्** । सप्तम्यन्त (जन्यजनकसम्बन्धसमर्थ) कालशब्दसे भवार्थे ठञ् ठस्य इक आदेश, अलोप, आदिवृद्धिः नपुंसकैकवचन । विशेपभेदककः ठ । मासे भवं मासिकम् (वेतन रजोधर्मो) सप्तम्यन्त जन्यजनकसमर्थमासशब्दसे ठञ् इक अलोप यस्येति च तद्धितेष्वचाम् आदिवृद्धिः संवत्सरे वर्षे भवम् (एक वर्षमे होनेवाला) **साम्वत्सरिकम्** मेलापकं, वार्षिकोत्सव आदि कालवाचक सम्वत्सरशब्दसे भवार्थे ठञादिः । (वा०) अव्ययानाम् अव्ययोंको भसंज्ञामात्रमें टिलोप निश्चित । सायं प्रातर्भवः (सुबह शाम होनेवाला) सन्ध्याकालीनस्नानादिः । कालवाचक सायं प्रतर् शब्दसे कालाट्ठञ्, ठस्य इक भसंज्ञा, वार्तिकसे टि (अर्) लोप, **सायंप्रातिकः** नियमः । पुनः पुनर्भवः वार-वार होनेवाला । कालवाचक पुनः पुनर् अव्ययसे ठञ् पूर्ववत्कार्यम् **पौनःपुनिकः** नखः केशः बुभुक्षा आदि वार-वार होते हैं ।

कथ तर्हि यदि कालवाचीसे ठञ् होगा तब शार्वरस्य तमसो निषिद्धयेमें शावरिकस्य क्यों नहीं, उषसा स्थानमें औषसिका ठञ् क्यों नहीं, समानकालिक क्यों नहीं तब बोले ये सब अपभ्रंश है । यह प्रामाणिक कथन है । केचित्=अमुकः दूरतः परेद्युः की तरह अव्युत्पन्न या पृषोदरादिसे साधु मान्य । कालाट्ठञ्का अधिकार कहां तक ? बोले तत्र जातः सूत्र तक । गौणमुख्यन्याय नहीं लगता कदम्ब पुष्पके सहचारसे । कालका नाम कदम्बपुष्प, तत्र भवं कादम्बपुष्पिकम् ।

श्राद्धे-शरदसे श्राद्ध अर्थमें ठञ् हो । यद्यपि कालाट्ठञ् सम्भव था तथापि सन्धि वेलादिऋतुके अण्को वाधने वास्ते । शरदि भवं शारदिकं श्राद्धं ठञ् श्रद्धया

पवादः । शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम् ॥ **विभाषा रोगातपयोः** ।४।३।१३। शारदिकः शारदो वा रोग आतपो वा ॥ **निशाप्रदोषाभ्यां च** ।४।३।१४। ठञ् वा । नैशिकम्, नैशम् । प्रादोषिकम्, प्रादोषम् ॥ **श्वसस्तुट् च** ।४।३। १५। श्वसष्ठञ्, वा तुट् च द्वारादीनां च ।७।३।४। एषां न वृद्धिरैजागमश्च । शौवस्तिकम् ॥ **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** ।४।३।१६। सन्धिवेलायां भवं-सान्धिवेलम् । ग्रैष्मम् तैषम् । सन्धिवेला सन्ध्या । अमावास्या त्रयोदशी। चतुर्दशी पौर्णमासी । प्रतिपत् । **प्रावृष एण्यः** ।४।३।१७। प्रावृषेण्यः ॥ **वर्षाभ्यष्ठक्** ।४।३।१८। वर्षासु साधु वार्षिकं वासः ॥ **सर्वत्राण् च तलोपश्च** ।४।३।२२। हेमन्तादण तलोपश्च वेदलोकयोः । चकारात्पक्षे ऋतव्ण् । हेमन्ते

क्रियमाणं पित्र्यं कर्म; श्रद्धया दीयते यस्मिन् कर्मणि जिस क्रियामें प्रेमसे पिण्डादि दान हो । श्रद्धावान् पुरुषः आदि । यद्यपि शरद् सम्वत्सर का वाचक है । तथापि अण् बांधनेके लिए पढ़ा ।

विभाषा रोग आतप [घोर घाम] अर्थमें शरद्से ठञ् हो, अण् भी । शरद् ऋतुके रोग ज्वर तिजारी अर्थमें ठक् । शारदिकः ज्वरः प्रचण्ड धूप या शारदः रोग घर्मः । निशा और प्रदोषसे जातः भव अर्थमें ठञ् हो अण् भी । निशायां जातं नैशिकं कर्म, निशासे ठक् इक आदि । जब अण् तब नैशम्, प्रदोषे भवं प्रादोषिकं रजनी मुखं, सायं सन्ध्या कर्म नित्यक्रिया ठक् अण् आदि पूर्ववत्, कालाट्ठञ्के नित्यको बांधकर विकल्प (श्वसु) शब्दसे ठञ् हो, उसे तुट् भी हो, ट इत् उ उच्चा० । ऐषमोह्यसे त्यप टचुल् भी ।

द्वार आदि गणमे पढ़े शब्दोसे वृद्धि नहीं किन्तु ऐच्का आगम [ऐ औ हो] य, वके पूर्वमें । य व पदके अन्तमें नहीं, अतः न य्वाभ्यां नहीं लगा, तब यह सूत्र । श्वस् अव्ययसे भव अर्थमें ठञ् इक तुट्-त-इक । 'व' से पूर्व द्वारादीनां सूत्रसे ऐच—औ । शौवस्तिकम् अकारको न वृद्धि । द्वौ भवः दौवारिकः । स्वरे भवः सौवरिकः, स्वादौ भव सौवादिकः मार्दुक इत्यादि । सन्धिवेलादिगणमें पढे ऋतुनक्षत्रके शब्दोसे अण् हो, काल वर्तमान हो तब । सायं प्रातः तिथि, पशु नक्षत्र अर्थ इनसे अण् हो। छको बाधकर । कालाट्ठञ्से काल आया ठञ् बाधा गया । दिन रातकी जोड़ सन्धि है । सन्धिवेलामें हुआ कर्म सान्धिवेलम् । अण् आदिवृद्धि । ग्रीष्मे जातं ग्रैष्मकं गर्मीमें हुआ कार्य । तिष्यपुष्य नक्षत्रे भवं तैषं कर्म । तिष्यसे अण् अलोप-यलोप आदिवृद्धि । अण् पढ़ा ? पौर्णमासीसे वृद्धाच्छको बांधने वास्ते । सन्धिवेला कौन ? दिन रातकी सन्धि सन्ध्या । शुक्लकृष्णपक्षको जोड़नेवाली वेला अमावस्या पौर्णमासी है इत्यादि।

वृषि काल विशेष अर्थबोधक वर्षाऋतुवाचक प्रावृषि शब्दसे भव अर्थमें 'एण्य' प्रत्यय हो ठञ्को बाधकर । प्रावृषि । (वार्षाकाले) भवः जातः अर्थे एण्य प्रत्यये, कालाठञ्को बाधकर प्रावृषेण्यः । वर्षाकालिकजीवजन्तु ।

सायं साम, चिरं देर प्राह्णे (पूर्वाह्ण) प्रगे अपराह्ण और कालवाचक अव्यय

भवं हैमन्तं वसनम् ॥ **सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्टयुटयुलौ तुट् च ।४।३।२३** सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्टयुटयुलौ स्तः, तयोस्तुट् च। सायं भवं सायंतनम्। चिरंतनम् प्राह्णेप्रगयोरेदन्तत्वं निपात्यते। प्राह्णेतनम् प्रगेतनम्। दोषातनम् दिवातनम् (चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्यः)। चिरत्नम् परुत्नम् परारित्नम्। (अग्रादिपश्चाड्डिमच्)। अग्रिमम्। आदिमम् पश्चिमम् (अन्ताच्च) अन्तिमम् ॥ **विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् ।४।३।२४।** आभ्यां टयुटयुलौ वा स्तः, तयोस्तुट् च। पक्षे ठञ्। पूर्वाह्णेतनम्, पौर्वाह्णिकम्। अपराह्णेतनम्, आपराह्णिकम् ॥

शब्दोंसे भव, उत्पन्न, जात, (जन्म लिए) अर्थसे टयु टयुल् हों उनको तुट् [त] हो : अनुबन्धलोप होने पर 'यु' मात्र शेष। यु को 'अन' आदेश [स्वरमें भेद] लितिपरे पूर्व उदात्त आद्युदात्त। तुट्के टित् होनेसे आदिमें [त] हो। सायंचिरं शब्द द्वितीयान्त है। निपातनसे मान्तमानकर अव्यय भी है। सायंकाले भवं सायन्तनम्। पक्षिघोसलागमनम्। सन्ध्या। सायं शब्दसे कालवाचक कार्यकारण समर्थसे भव अर्थे टयु [यु] अन आदेश। तुट् त आगम विभक्तिलुकि सति 'मान्तत्वं निपात्यते। अनुस्वारपरसवर्ण नपुंसकैवचन सायंभवं, चिरंभवम् इत्यपि विग्रहः। चिरेभवः चिरंभवं चिरतनं देरतकभावी। ट्यु तुट् आदि पूर्ववत्। प्राह्णे प्रगे इन दोनों शब्दोंको एकारान्त निपातन करें। सूत्रमें उच्चारणसे निपातन मान्य है। प्राह्णेभव [प्रातःकाल जो हो] प्राह्णेतनम्। दिनके पूर्वभागमें उत्पन्न वेदाध्ययन एदन्त निपातन तुट् पूर्ववत्। प्रगेतनम् प्रातःकाले उत्पन्नः प्रगेभवः अर्थमें सप्तम्यन्त समर्थ ट्यु त एदन्त निपातन आदि। दोष। रात्रौ भवम् रातमें उत्पन्नं ट्यु त इत्यादि दोषातनम्। चक्रवाकयुगलवियोगः. उलूकदर्शनम्।

चिरं—परुत्परारि इनसे त्न प्रत्यय हो टयु आदिको बांधकर। चिरं जातं चिरत्नं, बहुत समय बीता। जात अर्थमें। त्न परुजातं परुत्नं परसाल हुआ कर्म। परारिजातं परियासाल, पूर्वस्मिन्वर्षे पूर्वतरे च वत्सरे कार्यं जातम्। [वा] अग्र आदि और पश्चसे डिमच् हो। अग्रे भवं अग्रिमं कार्यम् अग्रसे डिमच् डित्से टिलोप। आगे का कर्म। आदौ भवं आदिमं पहले हुआ कर्म। आदिसे डिमच् इलो। पश्चाज्जातं पश्चिमं पिछला कार्य। पश्चसे उक्त कार्य अव्ययानां भसञ्ज्ञया टिलोपः [वा०] अन्तसे भी डिमच् अन्ते भवं अन्तिमम्।

विभाषा पूर्वाह्ण दिनका पहला भाग, अपराह्ण इन दोनोंमें टयु टयुल दोनों को तुट् हो, ठञ् भी। पूर्वाह्णे जातं पूर्वाह्णेतनम्, अपराह्णे जातम् अपराह्णेतनम्। यहां टयुल्, यु–अन, तुट्–त अनमें मिला तन। तद्धितान्त प्रातिपादिकसंज्ञा सुपो धातुप्रातिपदिकयोःसे लुक् प्राप्त था। घकालतनेषुसे अलुक् हुआ। सप्तमी सुरक्षित। जब पूर्वाह्णः दिनका पहला भाग सोढः=सहन योग्यः इस कर्मके। एवं अपराह्णः सोढः अपराह्णेतनं पितृकर्म। यहां भी ट्युअन–त–तन आदि। पक्षमें ठ इक आदिवृद्धि आदि।

तत्र जात ।४।३।२५। सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः । स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः । औत्सः राष्ट्रियः । अवारपारीण इत्यादि ॥ **प्रावृषष्ठप्** ।४।३।२६। एण्यस्यापवादः । प्रावृषिकः ॥ **प्रायभवः** ।४।३।३६। तत्रेत्येव । स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति-स्रौघ्नः ॥ **संभूते** ।४।३।४१। स्रुघ्ने संभवति स्रौघ्नः ॥ **कोशाड्ढञ्** ।४।३।४२। कौशेयं वस्त्रम् ॥ **तत्र भवः** ।४।६।५६। स्रुघ्ने भवः—स्रौघ्नः औत्सः । राष्ट्रियः ॥ **दिगादिभ्यो यत्** ।४।३।५४। दिश्यम् वर्ग्यम् ॥ **शरीरावयवाच्च** ।४।३।५५। दन्त्यम् कण्ठ्यम् ॥ दृति·

तत्र जातः सप्तम्यन्तसमर्थ कृतसन्धिशब्दसे जात (पैदा हुआ अर्थमें) अण् आदि घादयश्च-घ आदि प्रत्यय भी हो । इसके पहले जात अर्थमें सूत्र निर्देश नही किया गया, किन्तु राष्ट्रावारपाराद्घखौ, सूत्र प्रसङ्गमें इह प्रकृतिविशेषात्के निर्देशसे भव जात अर्थ भीं हैं । सुघ्ने जातः **स्रौघ्नः** पाटलिपुत्र पटना प्रसिद्ध नगर सुघ्न है । इति पद्मचन्द्रकोषः । स्रुघ्नशब्दसे जातः अर्थमें अण् आदिवृद्धिः, अलोप, प्रथमैकवचन स्रौघ्नः शिष्यः । उत्से—झरनासे जातः (पैदा हुआ) औत्सः शैवाल घास घोंघा आदि । सप्तम्यन्त समर्थ (कार्यकारण) उत्सादिभ्यो से अञ् पूर्ववत् । राष्ट्रे जातः राष्ट्रियः राष्ट्रमें जन्मवान् । **अवारपारीण**—पूर्णपारङ्गत आदि अन्त, तत्ववेत्ता आरपारगन्ता पूर्ववत् । अर्थ निर्देशमुख्य सूत्र है ।

प्रावृष सप्तम्यन्त समर्थप्रावृषिशब्दसे जात अर्थमें ठप् ठको इक । एण्य प्रत्ययका बाधक । प्रावृषि भवः (वर्षाऋतुमें पैदा हो) ठ इक् **प्रावृषिकः** । (६) **सप्तम्यन्त** समर्थसे **प्रायभवः** बहुलतया अधिकतर प्रायः ऐसा होना अर्थमें अण् घ आदि यथा योग्य हों । अर्थ निर्देशक सूत्र है । अतः बोले तत्र इत्येव—स्रुघ्नदेशमें अधिकतर होनेवाला, सुघ्नसे अणादि प्रावृषि प्रायभवः प्रावृषिकः पुनः पुन प्रायभवः **पौनः पुनिकः** रोगः । **सम्भू**=सप्तम्यन्त समर्थसे सम्भूत उत्पन्न, सम्भावना अर्थमें अनुकूल अणादि प्रत्यय हों । स्रुघ्ने संभवति । (स्रुघ्नदेशमें जिसकी संभावना हो) उसे स्रौघ्नः, भारते संभवति **भारतीयः** । विदेशे संभवति वैदेशिकः । यहां अर्थ संकेत एको अन्य प्रत्यय (विधायकसे) अनेक भी हों । **कोशात्**—रेशमी वस्त्रं, कृमिकोत्थम् । कीडारूपकोशसे उत्पन्न । सप्तम्यन्त कार्यकरणभाव समर्थ कोश संभावना अर्थे ढञ्-एय आदेश आदिवृद्धिः (६) **तत्र**—सप्तम्यन्त आधाराधेयभाव समर्थ शब्दसे भव अर्थमें अण्, घ आदि हों । स्रुघ्नेभवः उत्स्नः अण् आदिवृद्धिः । भव और जातशब्द एकार्थक होनेसे दूसरा अर्थ व्यर्थ की (शंका न करें) यातःका उत्पन्न, भव का विद्यमान, अर्थ होनेसे दोनोंमें भेद है उत्से भवः औत्सः ।

दिग् आदिगणपठित समर्थशब्दसे भव अर्थमें यत् हो, दिशिभवं दिश्यं शुक्रः नक्षत्रं । सप्तम्यन्त समर्थ दिश शब्दसे तिगादिभ्योयत् भव अर्थमें । वर्गे भवम् (पार्टी वाला) वर्गशब्दसे यत्, अलोप, वर्ग्यम् । किसी गुटका । (१) **शरीर** का अवयव अङ्गवाचक समर्थशब्दसे भी यत् हो भवार्थे । दन्तेषु भवं दन्त्यं क्रिमि' रोगः । (पाय

कुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् ।४।३।५६। दार्तेयम् । कलशिर्घटः, तत्र भवं कालशेयम् । वास्तेयम् ।। ग्रीवाभ्योऽण्च ।४।३।५७। चात् ढञ् । ग्रैवेयम् ग्रैवम् ।। गम्भीराञ्ञ्यः ।४।३।५८। गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम् ।। अव्ययीभावाच्च ।४।३।५९। परिमुखे भवं-पारिमुख्यम् ।। (परिमुखादिभ्य एवेष्यते) नेह,

---

रिया) सप्तम्यन्त समर्थ शरीराङ्गवाचक तन्तशब्दसे यत्, यस्येतिच अलोप । कण्ठे भवं कण्ठम् (कण्ठमाला) शरीरावय होनेसे यत् ।

दृति (चर्म पात्र) शरीरका अङ्ग कुक्षि, कक्ष, कलशिः--मन्थनपात्र, कलशिमुदधिगुर्वीबल्लभालोडयन्ती इति माघः । समुद्र का गौरव मन्थन, छोटे कलशके समान । वास्तिनाभि रधोर्द्वयोः । अस्ति अहिसे ढञ् हो । दृतौ भवं दार्तेयम् । चमड़े के पात्र या भांथीमें उत्पन्न, दृतिसे भव अर्थमें अण्को बांधकर ढ–एय, दृति एय आदिवृद्धि, यस्येति अकारलोपादिः । चर्ममस्त्रिका दृतिः । कुक्षौ भवम् कौक्षेयम् काखमे पैदा कंखौरी "घूमादिभ्यश्चके" वुञको बाधकर ढ-एय आदि । कलशिः मन्थन कर नवनीत निकालनेका पात्र, तत्र भवं कालशेयम् मक्खन । ढ़-एय आदिवृद्धि इ लोप । नाभिके निचले दोनों भागको वस्ति कहते हैं । तत्र भवं वास्तेयं हानियां, वस्तिसे ढ–एय आदि । अस्ति अव्यय निपात है । तिङन्तके समान और भिन्न अर्थ सत्तायां घने च न्यासकारः और हरदत्त दोनों कहते हैं । अस्तिक्षीरा गौः दूध धारणवाली अस्तिमान् धनवान् दोनों मान्य । तत्र भवः आस्तेयः प्रतिष्ठितः अस्तित्व, व्यक्तित्ववाला । अहिः सर्पः तत्र भवः आहेयः मणिः ।

ग्रीवा धमनी संघः गलेकी धोकनी, जिसमें विवार श्वास घोष अघोष आदि होते हैं । शरीरका अवयव होनेसे यत्को बांधकर अण् । च से ढञ् भी । नाड़ी धौंकनी छिद्रके बहुत होनेसे उसकी संख्या भी उद्भूत हुई । अतः बहुवचन पढ़ा । यदि भेद तिरोहित हो, तब एकवचनसे भी अण् ढञ् होंगे । ग्रीवायां भवः ग्रैवम् कण्डमाला गलगण्ड । ग्रीवासे ढ–एत आदि । जब अण् आदि तब ग्रैवम् गलेमें पैदा हुआ । ग्रीवासु भव ग्रीवायामिति वा ।

गम्भीर शब्दसे ञ्य प्रत्यय हो । गहराईमें होनेवाला, स्थिरता अथाह अर्थमें ञ्य अनुबन्धलोप आदिवृद्धि । र=में अका यस्येति लोप । अञ होता 'प्राचां ष्फ तद्धितःसे" ष्फ होता । पञ्चजनसे भी ञ्य कहें । पञ्चजनात् जातं पाञ्चजन्यम् शंखसे उत्पन्न ध्वनि ।

अव्ययीभावसे भी ञ्य कहें, भव अर्थमें । परिमुखं भवं मुखके चारों तरफ अथवा परिशब्दके अर्थमें मुखको छोड़कर सब जगह होनेवाला लेपन पारिमुख्यं, परिमुखसे ञ्य आदि । (वा) परिमुखादिगणपढ़े शब्दोंसे ही ञ्य हो । इसलिए उपकूले भवः तटके पास हुआ उत्सव औपकूलः उप अव्यय है, तथापि ञ्य नहीं हुआ परिगणनसे । यद्यपि यह वार्तिक भाष्यमें नहीं है । तथापि दिगादिगण पाठके बाद परिमुखादिगण पाठकी शक्तिसे यहां अव्ययीभाव पद परिमुख परिहन पर्यलखन

औपकूलः ॥ **अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्** ।४।३।६०। अव्ययीभावादित्येव। वेश्मनि इति अन्तर्वेश्मम्, तत्र भवम् आन्तर्वेश्मिकम्। आन्तर्गणिकाम् (अध्यात्मा: देष्ठञिष्यते)। अध्यात्मं भवम्-आध्यात्मिकम्। **अनुशतिकादीनां च** ७।३। २०। एषामुभयपदवृद्धिर्णिति णिति किति च। आधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। ऐहलौकिकम्। परलौकिकम्। आकृतिगणोऽयम्॥ **जिह्वामूलाङ्गु-लेश्छः** ।४।३।६२। जिह्वामूलीयम् अङ्गुलीयम्॥ **वर्गान्ताच्च** ।४।३।६३। कवर्गीयम् **तत आगतः** ।४।३।७४। स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः॥ **ठगायस्थानेभ्यः**

आदि पढ़े गये हैं। उनका साहचर्य भी प्रमाण है। हरदत्तमते-परिमुखादिगणमें प्रतिशाख भी पढ़ा है। शाखृ व्याप्तौ धातु है, प्रतिशाखं भवं प्रातिशाख्यं ञ्य हुआ।

अन्तः शब्द पूर्वमें पद हो, अव्ययीभावसे ठञ्। विभक्तिके अर्थमें अव्ययीभाव। अनच्से टक्। वेश्मनि भवं घरके अन्दर जो भी वह अन्तर्वेश्मं। घरका अन्तरङ्ग-कार्य, तत्र भवम् उसमें सिद्ध सफल वस्तु अर्थमें ठ–इक आदिवृद्धि सुपो लुक् आदि। गणे इति अन्तर्गणम् तत्र भवम् आन्तर्गणिकं गणोंके बीच हुआ ठ-इक आदि। (वा०) अध्यात्मादि सप्तम्यन्तसमर्थसे भवार्थे ठञ् अध्यात्मं भवम् आध्यात्मिकं ज्ञान आत्मा होता है। अध्यात्मन् शब्दात् वार्तिकेन ठञ्, इक आदिवृद्धिः, अलोप रुपम्। आत्मनि अधि इति **अध्यात्मम**—आत्मामें जो हो (२) **अनुशतिक** आदि-गणपठितशब्दोंके **उभयपद** दोनों पदके आदिअच् की वृद्धि ही णित्कित् परे। देवमधि इति **अधिदेवं** तत्रभवम् आधिदैविकं (देवताओंसे होनेवाली शान्ति या उपद्रव) सप्तम्यन्त समर्थअधिदेव शब्दसे अध्यात्मदि ठञ्से भवार्थमें ठञ् आदिवृद्धिः प्राप्त उसे बांधकर अनुशतिकादीनाञ्चसे उभयपदवृद्धिः आधिदैव इक अलोप। भूतानि पञ्चमहा-भूतानि पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश अधि अधिभूते भवं सृष्टिः **आधिभौतिकम्** ठञ् उभयपद वृद्धिः। इह लोके भव वस्तु **ऐहलौकिकम्**। इस संसारमें उत्पन्न सुखभोग आदि। परलोके स्वर्गादिः। इहलोक परलोक शब्दसे दोनों पदकी आदिवृद्धिः। **आकृतिगण**—अनुशतिकादिगणकी आकृति दोनों पदमें आदि अच्की जहां भी मिले उसे इस गणमें मान ले। **जिह्वामूल** और अंगुल शब्द सप्तम्यन्त समर्थ—शक्तिसम्पन्न हो, तब भवअर्थमें छ हो। जिह्वामले भवं जिह्वामूल रोगः जीभकी जडमें होनेवाला सप्तम्यन्त आधारआधेय भावसमर्थ जिह्वमलशब्दसे भवार्थं प्राप्त शरीरावयवात्के यत्को बाधित्वा उक्तसूत्रसे छ–ईय अलोप जिह्वामूलीयम्। अगुल्यां भवम् अंगुलीयम् (मुद्रिका) शब्दसे छ ईय आदिः। **वर्ग** शब्द अन्तमे हो ऐसे समर्थसे छ हो। कवर्गे भव कवर्गमे जो हो वह वर्गान्तसप्तम्यन्त (आधाराधेय-समर्थ) कवर्ग शब्दसे भवार्थे वर्गान्ताच्चसे छः ईय आदेश, अलोप स्वादिकार्य **कवर्गीय** खवर्गे भवं खवर्गीयम्। हिन्दुवर्गीय शूद्रवर्गीयम्।

तत=पञ्चम्यन्तसमर्थसे आगत (आया हुआ) अर्थमें यथायोग्य अणादि, घ आदिप्रत्यय हों। स्रुघ्नादागतः **स्रौघ्नः**। नगरादागतः नागरः। वैदेशः ग्राम्यः गृहा-

।४।३।७५। शौल्कशालिकः ।। विद्यायोनिसंबन्धेभ्यो वुञ् ।४।३।७७। औपाध्यायकः। पैतामहकः ।। ऋतष्ठञ् ।४।३।७८। वुञोऽपवादः हौतृकम्। मातृकम् भ्रातृकम् ।। पितुर्यच्च ।४।३।७९। चाट्ठञ्। रीङृतः यस्येति लोपः। पित्र्यम्, पैतृकम् ।। गोत्रादङ्कवत् ।४।३।८०। विदेभ्य आगतं—बैदः। गार्गम् दाक्षम्। औपगवकम्। हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ।४।३।८१। समादागतं-समरूप्यम्। पक्षे-गहादित्वाच्छः। समीयम्। देवदत्तीयम। देवदागतः गार्हः।

ठक् आय स्थानेभ्यः। स्वामिग्राह्यो भागः आयः राजा या अधिकारीके ग्रहणयोग्य धन (आयकर) जहांसे लब्ध हो उस पञ्चम्यन्तसमर्थशब्दसे आगतअर्थमें ठक् हो। शुल्कशाला करगृहं (चुङ्गीखानासे आया धन) शौल्कशालिकः। विभाजकसम्बन्ध समर्थ शुल्कशालाशब्दसे ठ इक आदिवृद्धिः [आय]।

[७] विद्या [गुरुशिष्यभाव] योनि=रक्तसे, जन्म सम्बन्धवाचक पञ्चम्यन्तपदसे वुञ्। उपाध्यायात् आगतः [गुरुके पाससे आया] विद्यासम्बन्धवाचक पञ्चम्यन्त उपाध्याय-ङसुसे विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्। वुस्थानमें युवोरनाकौसे अक आदिवृद्धिः। पितामहादागतः पितामहके पाससे आया, योनि जन्मकृत-सम्बन्धवाचक पितामहशब्दात् आगत अर्थे वुञ्। पैतामहकः आदिवृद्धिः। पितुः आगतः पैतृकः। मातुः आगतः मातृको गुणः। गुरोः आगतः गुरुकः।

ऋतः=ऋ अन्तमें हो तब विद्यासम्बन्ध, योनिसम्बन्धसे आगत अर्थमें ठञ् हो, वुञ्को बाधकर। होतुः सकाशादागतं (हौतृकं) हवनकर्ताके पाससे आया हुआ अर्थमें ठञ् [वुञ् बाधकर] उक्=ऋसे परे ठको क। मातुः सकाशादागतः मातृकः, भ्रातुः सकाशादागतं (भ्रातृकं) धनम्। ऋ अन्त, ठ-क। पितृसे यत् हो ठञ् भी पितृसे यत्, ऋतःसे रीङ् (पित्रीयं) यस्येति इकार लोपे पित्र्यं, जब ठञ् तब इस् उस-उकसे परे ठको क आदि पैतृकम।

गोत्र प्रत्यान्तसे आगत अर्थमें अङ्कवत्-अङ्क अर्थमें जो प्रत्यय होते हों वे हों। यह अतिदेश सूत्र हैं विधि नहीं। अपत्यधिकारसे बाहर लौकिक गोत्र। विदस्य गोत्रापत्यानि अञ्, बहुवचनमें यञ्, उसका लुक्। बहुवचन सुरक्षित, संघ अङ्क लक्षण से अञ् यञ् इञ् होते है। अञन्तसे आगत अर्थमें, अण्। गोत्रे अलुक्। बैदसे आया हुआ अर्थमें द्वि-अच् लक्षणको बाधकर, गार्ग्येभ्य आगतं गार्ग, गार्ग्यसे आया अर्थमें अण् अलोपयलोपादि। दाक्षेः आगतम् दक्षसन्तानके पाससे आया हुआ अर्थे अण् इलोपादि। औपगवादागतं औपयवकं, गोत्रचरणात् वुञ्। यद्यपि इदमर्थे वुञ् दृष्टः तथापि अङ्केऽपि दृष्टअर्थे अतिदेशो भवति।

हेतु—कारणवाचके और मनुष्यवाचक शब्दसे आगत अर्थो रूप्य विकल्पसे हो। समात् [समतासे] आया हुआ। हेतुवाचक पञ्चम्यन्त समशब्दात् रूप्य-प्रत्यय। **समरूप्यं** सुखकार्य समता। कारण विषमातासे [संग्राम या घोर जंगल] से आया हुआ **विषमरूप्यं** विषमहेतु भूत कारण अनेक, विशेषता कार्य एकसे रूप्यप्रत्ययः।

दत्तरूप्यम् ।। मयट् च ।४।३।८२। सममयम् ।। प्रभवति ।४।३।८३। हिमवतः प्रभवति-हैमवती गङ्गा ।। विदूराञ्ञ्यः ४।३।८४। विदूरात्प्रभवति–वैदूर्यो मणिः । तद्गच्छति पथिदूतयोः ।४।३।८५। स्रुघ्नं गच्छति—स्रौघ्नः पन्था दूतो वा ।। अभिनिष्क्रामति द्वारम् ।४।३।८६। स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति-स्रौघ्नं कान्यकुब्ज-द्वारम् ।। अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ४।३।८७। शारीरकमधिकृत्यकृतो ग्रन्थः-शारीरकीयः । 'शारीरकं भाष्यम्' इति त्वभेदोपचारात् ।। सोऽस्य निवासः ।४।३।

पक्षमें महादिश्यश्च छ-ईय, विषमीयं विषम रास्तेसे आया हुआ । वक्रीयम् । मनुष्य-वाचक देवदत्त शब्दसे आया हुआ अर्थमें रूप्य प्रत्यय देवदत्तादागतं देवदत्तरूप्यम् । पक्षे वा' नामधेयस्य इति वृद्धिसंज्ञा वाच्या, वृद्धाच्छः ईय, देवदत्तीयम् । पक्षें शेषे सूत्रसे अण् आदिवृद्धिः दैवदत्तम् [देवदत्तके पास आया हुआ] मकरन्दादागतं मकरन्दरुप्यं माकरन्दम् [६] मयट् प्रत्ययः हेतुवाचक, मनुष्यवाचक समर्थ पञ्चम्य-न्तपदसे आगत अर्थमें हो । टइत् हेतुवाचक-समादागतं सममयं मयट्प्रत्यय मनुष्य-वाचक देवदत्तादागतं देवदत्तमयम् । ग्रामादागतं ग्राममयम् ।

प्रभवति प्रथमं प्रकाशते अवधि सीमासे प्रगट होना हिमवतः हिमालयसे प्रभवति अर्थे अणादिः **हैमवती** गङ्गा । पञ्चम्यन्त निःसार्यं निःसरण या प्रकाश्य प्रकाशसम्बन्धसमर्थ हिमवत् शब्दसे प्रभवति अर्थमें अण् अ आदिवृद्धिः । स्त्रीलिङ्ग-विवक्षामें टिड्ढाणञ् आदिसे ङीप् ई हैमवती हिमालयसे प्रकट हुई । वाराणस्याः प्रभवति वाराणसी [विद्या] मुखात् प्रभवति मौखा [गीता] शरीरात्प्रभवति शारीरी [एकादेशी] यन्त्रस्थानात् प्रभवति यन्त्र स्थानक वस्तु ।

विदूरसे प्रथमं प्रकाशते ऽर्थे ञ्य । विदूर य, ञित परे आदिवृद्धि । वैदूर्यः । अत्र शङ्का—वालवाय पहाड़से वैयदूर्य मणि प्रकाशित है । विदूर नगरमें उसकी स्वच्छता का भाव असङ्गत सा है । अतः भाष्ये वालवायो विदूरञ्च प्रकृत्यन्तरमेव, वा न वै तत्रेति चेद्ब्रूयात् जित्वरीव उपाचरेत् ।

तद्=द्वितीयान्तसमर्थशब्दसे गच्छति [उस स्थानको जाता है] अर्थे अण्, यदि गन्ता पन्था दूत समाचारवाहक हो यथा असिश्छिनत्तिमें असिः कर्ता है । इसी प्रकार पथमें कर्ताकी विवक्षा सुघ्नं गच्छति सुघ्न देशमें जाता है । चाहे रास्ता हो या दूत । गच्छति अर्थमें अणादिः स्रौघ्नः दूतः, मार्गम् । कालीकटं (कलकत्ता) गच्छति कालीकटः (ग्रैण्ड ट्रँक रोड) दिल्ली दरवाजा आदि प्रसिद्ध हैं । **अभिनिष्क्रामति** सीधे निकलना अर्थमें द्वितीयान्तसमर्थसे आण् आदि हो । निष्क्र-मणकर्ताके द्वारसे सुघ्नदेश तक सीधे रोड निकलती है । वह द्वार सौघ्नः । कान्य-कुब्जः [कन्नौज] शहरका दरवाजा । अण् आदिः । **अधि** उक्त विषय वाचक द्वितीयान्तसमर्थ (वाच्यवाचकसम्बन्ध) शब्दसे अधिकृत कृते ग्रन्थे विषयपर अधिकार पूर्वक बनाया ग्रन्थ अर्थमें अण् आदि हो। **शरीरकं** शरीरे जातम् आत्मानम् (शरीर में स्थितजीवविषयपर) अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः अधिकारपूर्वक बनाया गया ग्रन्थ विषय

८६१ स्रुघ्नो निवासोऽस्य–स्रौघ्नः । तेन प्रोक्तम् ।४।३।१०१। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम् । पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ४।३।११०। णिनिः स्यात् । पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते—पाराशरिणो भिक्षवः । शैलालिनो नटाः ।। कर्मन्दकृशाश्वादिनिः ।४।३।१११। कर्मन्देन प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते–कर्मन्दिनो भिक्षवः कृशाश्विनो नटाः । उपाज्ञते ।४।३।११५। पाणिनिना

विषय पर द्वितीयान्त वाच्यवाचकशक्तिसमर्थ शारीरकशब्दसे (वृद्धसंज्ञा) वृद्धाच्छ से अधिकृत्य कृते ग्रन्थे इत्यर्थमें छ ईय आदेश अलोप शारीरकीयः । किरातार्जुनौ अधिकृत्यकृतो ग्रन्थः किरातार्जुनीयं, व्याकरणम् अधिकृत्य व्याकरणीयः । इतिहासम्, इतिहासीयः **निवासो** वासदेशः (ठहरेका स्थान) सो अस्य हो जिसका । प्रथमान्तसमर्थसे (अस्य निवास) अर्थमें प्रत्यय हो । स्रुघ्नदेश है निवास जिसका स्रौघ्नः । स्थानवाचकप्रथमान्त समर्थ स्रुघ्नसे निवास अर्थे अणादि । इन्द्रप्रस्थः निवासोऽस्य **ऐन्द्रप्रस्थः** । जङ्गलं निवासो अस्य जांगलः । प्रसादः निवासो अस्य प्रासादः ।

तेन तृतीयान्त समर्थसे प्रोक्त [प्रवचन क्रिया] अर्थमें यथायोग्य अण् आदि हों । पाणिनिसे प्रवचन किया गया सूत्र **पाणिनीयम्** । तृतीयान्तवाच्यवाचकसमर्थ पाणिनि 'टा' प्रोक्त अर्थमें वृद्धाच्छः छ प्रत्यय ईयादेश लोप । महाशयेन प्रोक्तं महाशयीयं ज्ञानं नारदेनप्रोक्तं नारदीयं व्याख्यानम् । शुकेनप्रोक्तं **शौकं** प्रवचनं । व्यासेन व्यासीयं महाभारतं ।

पराशर्य–वेदव्यास अनन्तरापत्यं–पुत्र अर्थमें भी प्रोक्त-वंश परम्पराके व्यवहार से गर्गादिभ्यो यञ् और शिलालिसे क्रमशः भिक्षुसूत्र और नटसूत्र अर्थके प्रथम प्रकाशित अध्ययन अर्थमें णिनि हो । मण्डूकप्लुतेः—मेढ़क उछालन्यायसे णिनि ही आता है । शिलालिनसे वेदव्याससे प्रोक्त, भिक्षु, सूत्र प्रथमप्रकाशित सन्यासी त्यागवृत्ति, इच्छालाभ, विद्यावृद्धिवाला । ब्रह्माज्ञान, सर्वज्ञानसे कर्मका अनादर भिक्षुत्व है । वेदान्तान् विविधान् श्रुत्वा सन्यसेदनृणी द्विज इति मनुः । स हि आश्रमैः विनिशम्याथ समस्तैरेवमेव तु । द्रष्टव्यस्तु अथ मन्तव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः इति याज्ञवल्क्यः । व्यास प्रणीत, संन्यास, त्यागविषयक भिक्षुसूत्रको पढ़ाता है अर्थमें णिनि । उसके बाद अध्ययन अण्का लुक् । जस् विभक्तिका रूप । भिक्षुसूत्रमधीते शैलालिनः नटलोग नाटकीय विद्या पढ़ते हैं । उसके प्रथम प्रकाशक शिलालिन्से णिनि टिलोप पुनः शैलालिन्से अध्ययनकर्ता नट अर्थमें अण् उसका लुक् । बहुवचन **कर्मन्द** और कृशाश्वके (प्रोक्त अर्थमें) तृतीयान्तसे इनि हो भिक्षुसूत्र, नटसूत्रके अध्ययन कर्ता अर्थमें ही । कर्मन्द ऋषिसे पहली सार प्रकाशित् भिक्षुसूत्र (सन्यासियों के लिए उपयोगी ज्ञान) अर्थमें इनि । अन्ते इकार उच्चराणार्थः । कर्मन्दिन्से उक्ते अर्थमें अणादिः उसका लुक् । कर्मन्दिनः सन्यासिनः अज्ञानत्यागकर्तारः । कृशाश्वेन प्रथमप्रकाशितमधीयते कृशाश्विनः इन् । ततः अणः लुक् । इनके बनाये हुए नटसूत्र का अध्ययनकर्ता । सन्यस्य श्रवणमेव कुर्यात ।

उपज्ञाते पाणिनीयम् ॥ **तस्येदम्** ।४।३।१२०। उपगोरिदम् -औपगवम् ॥ (समिधामाधाने षेण्यण)सामिधेन्यो मन्त्रः । रथाद्यत् ।४।३।१२१। रथ्यं चक्रम् ॥ पत्रपूर्वादञ ४।३ १२२। अश्वरथस्येदम्-आश्वरथम् ॥ हलसीराट्ठक् ।४।३।१२४ हालिकम् । सैरिकम । गोत्रचरणाद्वुञ् ।४।३ १२६। औपगवकमें

उपज्ञाते—बिना उपदेश ज्ञाते सति, तृतीयान्तसे प्रथमज्ञात अर्थमें यथायोग्य प्रत्यय हो । पाणिनिके (बिना किसीसे पढ़े) प्रोक्त सूत्र पाणिनीय हैं, बिना उपदेशके ज्ञान हुआ अर्थमें छ-ईय आदि । पाणिनियम्

तस्य=षष्ठयन्त समर्थशब्दसे इदं [सम्बन्धित वस्तु अर्थमें] अण् आदि हो । यथा—उप समीपे गावः सन्ति अस्य उपगुः तस्य इदम् [उपगुसे सम्बन्धित वस्तु औपगवं वस्त्रं, ज्ञानं, यंत्रं] षष्ठ्यन्तसम्बन्ध समर्थ उपगुशब्दसे तस्येदम् अर्थे अण् आदिवृद्धि । ओर्गुणः । शेष अर्थमें प्रत्ययका प्रकरणपूर्ण हुआ । तद्धितप्रकरणं बहु विषमं है, तत्रापि शैषिकं महाविषम् । कहीं सूत्रमें अर्थ निर्देश है तो प्रत्यय निर्देश नहीं जैसे वृद्धाच्छः, परन्तु दोनों प्रकारके सूत्रोंकी एकवाक्यता तद्धितार्थ बोधमें कारण है । एक ही प्रत्यय अनेक अर्थमें, अनेक प्रत्यय एक अर्थमें यह विषमता [अनुगम होनेमें] कठिनाई उत्पन्न करती है । परन्तु प्रसङ्गके अनुसार निर्णय उपयोगी है ।

(वा०) **समिधा**—कर्ममें षष्ठी आधीयते अनेन आधानः मन्त्रः अर्थमें षष्ठयन्त-समिधासे षेण्यण् हो । समिधसे उक्त प्रत्यय । णित्से आदिवृद्धि । अग्नि धधकानेका मन्त्र अर्थ । षित्से ङीप् सामिधेन्यःसे ङीष् । हलस्तद्धितस्यसे यलोप सामिधेनी । रथसे सम्बन्धित वस्तु अर्थमें यत् हो । रथका सम्बन्धी चक्र अर्थमें यत्, रथाद्रथाङ्गे प्रमाणसे रथ्यं, रथका अङ्ग है । रथसीताहलेभ्यो यद्विधौ । तदन्तविधिः । परमरथ्यम् उत्तमरथ्यम् । द्वयो रथयोरङ्ग द्विरथम् । पत्र पूर्वमें हो, तब रथसे अञ् हो । पत्र वाहनपक्षयोःके प्रमाणसे सवारी अर्थमें पत्र है । पिवन्त्यनेन पात्रं ष्ट्रन् । अश्वरथ सम्बन्धी वस्तु अर्थमें अञ् आदि आश्वरथं वाहनम् । अश्वपूर्वमें है । अश्वयुक्तो रथो अश्वरथः तस्य अङ्गम् । हल, सीरसे इदम् अर्थमें ठक् हो । हलस्य इदं (फार हविलाङ्गल दण्ड) अर्थमें ठ इक आदि हालिकं । सिरस्य इदं सैरिकम् खेतका डांड़ा मेड, ठ—इक आदि ।

गोत्रप्रत्यय अन्तमें हो, और वेद शाखा अध्ययन कर्ता वाचक शब्द षष्ठी-अन्त हो, उससे इदम् अर्थमें वुञ् । प्रवर=वंशावली अध्यायमे प्रसिद्ध गोत्र मान्य । यथा उपगोर्गोत्रापत्ये अर्थे अण्—आदिसे औपगवः तस्य इद (उसकी वस्तुकर्म अर्थमें) वु-अक । वस्तुतः यह प्रवर सूत्रोंमें नहीं देखा गया है, वृत्तिग्रन्थमें ग्लौचुकायनकं पढा है । (वा) चरणसे वुञ् हो, विधान-धर्म गुण विशेषता योग्यता और सम्प्रदाय, वेदाभ्यास, शास्त्र अर्थमें । अन्यमें नहीं । कठमुनिसे प्रोक्त—प्रथम प्रकाशित शाखाको पढने वाले कठाः, तेषां धर्मं आम्नायो वा, कठके धर्म कर्म वेदाभ्यास सम्प्रदाय ही

(चरणाद्धर्माम्नाययोरिति वक्तव्यम्) काठकम् ॥ सघाङ्कलक्षणेष्वञ्यजिञाम॒ण ।४।३।१२७। (घोषग्रहणमपि कर्तव्यम्) । अल्,-वैदः सघोऽङ्को घोषो वा। वैदं लक्षणम् । यञ् - गार्गः, गार्गम् ।इञ् -दाक्षिः, दाक्षम् । परम्परा संबन्धोऽङ्कः । साक्षात् लक्षणम् ॥ इति शैषिकप्रकरणम् ।

अथ प्राग्दीव्यतीयप्रकरणम्

तस्य विकारः ।४।३।१३४। (अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः) अश्मनो

काठकम् । कठसे वु–अक आदि । सङ्घ–अङ्क लक्षण अर्थमें यञ् अञ् । इञ् अन्त शब्दसे इदं, यह वस्तु अर्थकी इच्छामें अण् हो, वुञ् ढ-को बाधकर । सूत्रमें (वा) घोष भी सङ्घाङ्कलक्षणघोषेषु ऐसा सूत्र पढें । अन्यथा तीन प्रकृति है चार प्रत्यय । गणनाक्रम असम्भव । अञ्–बिदस्य गोत्रापत्यानि अर्थमें अञ् । वैदाः तेषाम् अयं सङ्घः एकता अणादि । विद=ऋषिके वंशका घङ्गठन या अङ्क चिह्न लक्षण परिचय का निशान दाग । सङ्घः [समुदाय] अङ्कः—कलङ्काङ्कौ लाञ्छनं च, चिह्नं लक्ष्म च लक्षणमित्यमरः । घोष आभीरपल्ली स्याद्रित्यमरः विदानां लक्षणं वैदम् अञादि । यञ्का प्रमाण—गर्ग्याणां सङ्घः समुदाय, छाप, लक्षण आदि अर्थमें अण्, आपत्यस्य यलोप आदि गार्गः । गर्गगोत्रवालोंका गांव । यदि लक्षण हो तब गार्गम् । दक्षस्य वंशाः दाक्षाः, तेषां समुदायः, लक्षणं निवास, दक्षवंशका परिचय, समूह आदि अर्थमें अण्, इलोपे, दाक्षः । जब लक्षण हो तव दाक्षम् । अङ्क और लक्षणका समान अर्थ है । दोनों क्यों पढा ? भेद बोले—परम्परासे पहचान होना अंक है । जैसे सांडको तप्तमुद्रा त्रिशूलसे दागा हुआ, उसका गोद्वारा स्वामीका परिचय । जहां साक्षात्= सीधा सम्बन्ध हो वह लक्षण है । जैसे विद्या देवदत्तमे साक्षात् विराजमान लक्षण है । जैसे विदानां विद्या, वैदी विद्या यस्य वैदीविद्यः । विद वंशकी अपूर्वविद्या जानने वाला यह साक्षात् लक्षण । इति शैषिकाः प्राभाकर्याम् ।

विकारार्थकाः—शेष अर्थोमें प्रत्यय कहा गया । अब विकारादि अर्थबोधक प्रत्यय बोलेंगे । इसका अधिकार तेन दीव्यतिखनति सूत्र तक चलेगा । **तस्य**—षष्ठ्यन्तसम्बन्धसमर्थ शब्दसे विकारः कार्यम् अर्थमें अण् आदि प्रत्यय यथायोग्य हों । किसी वस्तुसे सिद्ध उपयोगीकार्य विकार है । जैसे लकड़ीका विकार शंकू (खूंटी) चौकी पीठासन मूर्ति आदि । किसी प्रकृतिकी अवस्थाभेद भी विकार है । अथवा तस्य किसी वस्तुसे सम्बन्धित उत्पन्न विशेषता, कार्य । इस सूत्रमें भीं अर्थप्रधान निर्देश है । प्रत्यय जिस सूत्रसे प्राप्त होंगे उसीसे होंगे । पूर्वसूत्र स्मरणीय है । (वा०) **अस्मन्** शब्द विकारे विकारार्थक प्रत्ययपरे टि (अन्का) लोपो वक्तव्य बोलें यद्यपि 'अन्' सूत्रके प्रकृतिभावसे टिलोप दुर्लभः । अतः टिलोपका प्रतिप्रसवक वार्तिक बोले **अस्मनोविकारः** पत्थर (पाषाण) का विकास शिलापुत्र (शील लोढ़ा) सीमेन्ट शिलाजीत मूर्ति आदि । **आस्मः** । षष्ठयन्त समवायिकारण कार्यभाव समर्थ अस्मन् ङसूसे विकार अर्थमें अण् अ आदिवृद्धिः । वार्तिकेन अस्मन्

विकारः-आश्मः भाश्मनः। मार्तिकः ॥ **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः**।४।३।१३५। चाद्विकारे। मयूरस्य विकारोऽवयवो वा-मायूरः। मौर्वम् काण्डं भस्म वा पैप्पलम्॥ **त्रपुजतुनोः षुक्**।४।३।१३८। आभ्यामण् एतयोःषुक् च। त्रापुषम् जातुषम्। **ओरञ्**।४।३।१३९। दैवदारवम्॥ **अनुदात्तादेश्च**।४।३।१४०। अञ्। कापित्थम् दाधित्थम्।॥ **पलाशादिभ्यो वा**।४।३।१४१। अञ्।

शब्दसे टि अन्का लोप स्वादिः आस्मः। पत्थरसे बनी हुई कोई भी वस्तु। भस्मनो विकारः (राखका विकार) भस्मन् शब्दसे समवायिकार्यकारणसमर्थसे अण् आदि-वृद्धिः। नस्तद्धिते इति टिलोपका (अन्) सूत्रसे निषेध (प्रकृतिभावे) **भास्मनः**। भस्मसम्बन्धी कार्य। भट्ठेकी राखसे ईट जुड़ते हैं। मृत्तिकायाः विकारः **मार्तिकः**। मिट्टीका कार्य मकान, पात्र मूर्ति आदि। पात्र धातु लोहा, सोना चांदी आदि। कार्यकारणसमर्थ मृत्तिका शब्दसे षष्ठयन्तात् विकारः इति अण् आदिवृद्धिः अलोप **मार्तिकः**। मिट्टीकी बनीं वस्तु। दुग्धस्य विकारः दौग्धं सर्पिः दधि। पिष्टान्नस्य विकारः पैष्टान्नं हलुआ, रोटी। **अवयवे**--अवयव अर्थ विकार अर्थमें प्राणिवाचक औषधिवाचक और वृक्षवाचक शब्दसे अण् आदि प्रत्यय हो। यथा मयूरको अवयव [पंख] विकार, कार्य **मायूरः**। प्राणिवाचक समवायिकारण समर्थ षष्ठयन्त शब्दसे अवयव या विकार अर्थे अण् आदिवृद्धिः अलोप मायरः। मूर्वाशब्द औषधिविशेष अर्थका वाचक है। मूर्वायाः अवयव (काण्डं) मूंगाका टुकड़ा या भस्म या मूर्वा औषधिका भस्म **मौर्वम्**। षष्ठयन्त औषधिवाचक अवयव(विकार) अर्थमें मूर्वासे अण् आदिवृद्धिः अन्त्य अलोप। पिप्पलस्य अवयवः [डाली, पल्लव] विकारः कार्य **पैप्पलम्**। वृक्षवाचकसमर्थ षष्ठयन्तं पिप्पल शब्दसे तदर्थे अण् आदिवृद्धिः, अलोप। तद्धितान्तत्वात् प्रासंज्ञा स्वादिकार्ये।

त्रपु और जतुसे अण् हो, विकार अर्थमें। और षुक्-ष भी। त्रपुणो विकारः त्रापुषं जतुनो विकार जातुषम्। किसी वृक्षका परिणाम या लाही लाक्षा उससे बनी वस्तु अर्थमें अण् आदि वृद्धि षुक् भी हुआ आदिवृद्धि। मुद्रा मोहर आदि।

(ओरञ)उवर्णान्तसे अञ् हो, प्राणि ओषधि वृक्षसे अवयव और विकार अर्थमें। अन्यसे केवल विकारमें। देवदारोः भद्रदारोः अवयवः विका[illegible] अर्थे उवर्णान्त देवदारुसे अञ् आदि। ओर्गुणः अवादेशः, सरला-सागोन लकड़ी टुकड़ा या बनी वस्तु। भद्रदारु शीशम लकड़ी या पल्ला आदिवृद्धि (पीतव्रतार्थानाम्) आदि उदात्तः।

अनुदात्त आदिमें हो तब विकार अर्थमें अञ्, अवयवमें भी दध्नि तिष्ठति दाधित्थः। पृषोदरादिसे सको त, अन्तोदात्त। दहीमें नवनीत। दधित्थस्य विकारो वा मक्खन अंशका अवयव, विकार घी भी, अर्थमें अणादि दाधित्थम्=मट्ठा। कपिषु तिष्ठति कपित्थः कमोरी मन्थनपात्रमें रहें। क्योंकि कपित्थे तु दधित्थं ग्राह्यमन्यथाः नवनीत निकालनेके लिए मन्थन विषय उसका विकार कापित्थम्। या बन्दरोंमें स्थित। अव्युत्पन्नः प्रातिपदिकस्वरः अन्त उदात्तसे आदि उदात्त सिद्ध। **पलाशादिगणमें** पढ़े शब्दोंसे अञ् हो विकार अवयव अर्थमें विकल्पसे। अनुदात्त

पालाशं खादिरम् । शम्याः ष्लञ्।४।३।१४२। शामीलं भस्म मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः।४।३।१४३ प्रकृतिमात्रान्मयड्वा स्याद्विकारावयवयोः । अश्मयम्' आश्मनम् । अभक्ष्येत्यादि किम् ? मौद्गः सूपः। कार्पासमाच्छादनम् ॥ नित्यं वृद्धशरादिभ्यः।४।३।१४४। आम्रमयम् । शरमयम्

आदि होने पर पलाश खदिर—शिंशप,-स्यन्दनानामनुदात्तादिसे नित्य प्राप्त और करीर करौंदा शिरीष विकङ्कत पलाश, यवासको प्राप्त नहीं । अतः यह सूत्र। पलाशको घृतादिसे अन्तोदात्त । खदिर=खदसे किरच्, शिशपा मध्योदात्त । स्पदि किंचिच्चलने । अनुदात्तसे युच् पलाशस्य विकारः अवयवो वा ढाख–टुकड़ा या बनी वस्तु का नाम । अञ् आदि पालाशम् । खदिरस्य विकारः अवयवो (वा०) कत्थाका टुकड़ा आदि । कारीरम् करौंदासे बनी चटनी, कॄ तृसे ईरन् या किरतेः ईरन् । नित्स्वरसे आदि उदात्त । शॄ पृ इनसे भी आदि उदात्त । कित् भी । शिरीषः आदि–उदात्तः । पालाशम् आदि ग्रामादीनांसे आदि उदात्त ।

शमीशब्द षष्ठयन्त हो अंश और विकार अर्थमें ष्लञ् । ल शेष । शम्याः विकारः शामीलं शमी लकड़ीका भस्म स्रुवा प्रणीता प्रोक्षणी । जब भस्म तब आदिवृद्धि होकर शामीलं जब स्रुवा अर्थः, षित्से ङीष् शामिली शमीकी बनी हुई । वरुण प्रघासेषु शमी मद्वयः स्रुवः प्रसिद्धाः । अवयव अर्थसे शाखा ।

मयट् वा=विकल्पसे एतयोः (विकार अवयव) अर्थोंमें मयट् हो विकल्पसे भाषामें । परन्तु भक्ष भोजनके योग्य आच्छादन ओढ़ने योग्य वस्तुका अवयव विकार अर्थ न हो। तस्य विकार और अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः इन दोनोंसे विकार अवयव अनुवृत्त । भाषा शब्दसे बोलचालकी संस्कृतभाषा नतु वेदभाषा, राजा प्रजा संस्कृत बोलते थे । प्रकृतिमात्र (विना विभक्तिका शब्द प्रातिपदिक प्रकृति है) से मयट् हों, विकल्पसे वा एतयोः विकारावयवार्थयोः अस्मनो अवयवो विकारो वा पत्थरका अंग टुकड़ा, पत्थरसे बनी वस्तु मूर्ति आदि **अस्ममयम्** । अश्मन् शब्दसे समवायसमर्थसे विकार अर्थमें मयट् प्रत्यय नलोप । पत्थरकी मूर्ति, गोलक चक्र आदि । पक्षे अण् आदिवृद्धि, आश्मनम् स्वर्णस्य विकारः स्वर्णमयम् आभूषणं । बुद्धेः विकारः बौद्ध विज्ञानम् । अभक्ष्येत्यादि किमिति अवयव और विकार अर्थको भोजन आच्छादनसे भिन्न क्यों ? इसलिए कि मुद्गायाः विकारः **मौद्गः** सूपः मूंगकी दाल । यहां मयट् न हो क्योंकि यह भक्ष्य [भोजन योग्य] है । विल्वादिभ्यो अण्, आदिवृद्धिः अलोप । कार्पासस्य विकारः (रुईकी बनी वस्तु, तोषक, तकिया कर्पासं सामान्य अण् आदिः । चणकस्य विकारः **चाणकम्** चनेकी पकौड़ी ।

नित्यं वृद्धसंज्ञक और शरादिगणपठित शब्दोंसे विकार, अवयव अर्थमें मयट् नित्य हो विकल्पका बाधकर शर, दर्भ, मूद, कुटीर कटीर कुटी, तृण सोम, विल्वज इति शरादयः । आम्रस्य विकारो अवयवो 'वा' [आमका विकार] अमचुर, अमावट अवयव, खटाई आदि आमसे विकार अर्थमें मयट् । **आम्रमयम्** मयड्वतयोः सूत्रसे

(एकाचो नित्यम्) वाङ्मयम् ॥ गोश्च पुरीषे ।४।३।१४५। गोमयं ॥ एण्या ढञ् ।४।३।१५९। ऐणेयम् ।एणस्य तु ऐणम् ॥ गोपयसोर्यत् ।४।३।१६०। गव्यम् पयस्यम् । फले लुक् ।४।३।१६३। विकारावयवप्रत्ययस्य लुक् तद्धितलुकि ६।५।७। उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य । आमलक्याः फलम् आमलकम् प्लक्षादिभ्योऽण् ।४।३।१६४। विधानसामर्थ्यान्न लुक् प्लाक्षम् । न्यग्रोधस्य च केवलस्य ।७।३।५। अस्य न वृद्धिरैजागमश्च। नैयग्रोधम् । जम्ब्वा वा ।४।३।१६५। अण् फले । जाम्बवम् । पक्षे ओरञ् तस्य लुक् । जम्बु ॥ लुप् च ।४।३।१६६। जम्बाः फलप्रत्ययस्य लुब्वा स्यात् । लुपि युक्तवत् । जम्बु

प्राप्त विकल्प मयट्का बाधक सूत्र नित्यं वृद्धशरादिभ्य है। शराणामवयवो विकारो वा सरकण्डा सरपतका टुकड़ा या कार्य शरशब्दसे विकल्प मयट्को बाधकर शरादिगणपठित होनेसे नित्यमयट् शरमयं कुटीरः आच्छादनं झोपड़ी ! षष्ठयन्त समर्थ गो शब्दसे पुरीष (गोबर) अर्थे मयट् । गोः पुरीषं गोमयम् (गायका गोबर) गोश्च पुरीषे इति मयट् । मध्यपतितन्यायेन पुरीष भी विकारार्थ स्वीकृत हुआ अन्यथा पुरीषं न विकारो नाप्यवयवः गोबर । गायका अङ्ग टुकड़ा नहीं है । विकार गायसे बना कार्य भी नहीं है ।

एणी—मृगीसे अवयव विकार अर्थमें ढञ्–ढको एय । यस्येति चसे इलोप आदि । ऐणेयं मृगी चर्म, अङ्ग, प्राणिके अञ्को बाधकर । सूत्रमें स्त्रीलिङ्ग का फल जहां पुल्लिङ्ग ऐणं—मृगका विकार है वहां प्राणि अञ् । आदिवृद्धि ऐ–मृग चर्म ।

गोः षष्ठयन्त समर्थ (गोश्च पयश्च गोपयसी तयोः गोपयसोः) गोशब्द, पयः शब्दसे अवयव विकारः अङ्ग टुकड़ा कार्य, अर्थमें यत् हो । गव्यं गोः अवयवः विकारो वा गायका अङ्ग, या कार्य गव्यम् । गोशब्दसे विकार अर्थे यत् । वान्तो यि प्रत्यये अवादेश । पयस्यम् पायसम् । दुग्धस्य विकारः कार्यं दौग्धं । दूधका कार्य खीर, दधि, मक्खन, दूधसे पैदा हुआ । पयस् शब्दात् विकारार्थे यत्, मयट् बाधनार्थ सूत्र है । फल अर्थमें विकार या अवयव प्रत्ययका लुक्-अश्रवण हो, आंवालाका फल आमलकम् । आमलकीसे फल अर्थमें मयट, उसका फले लुक् । लुक् तद्धित परे, ङीष् । का लुक् स्वादिः । फले लुक् वृक्षका फल ।

प्लक्षादिगणमें न्यग्रोध, अश्वत्थ इङ्गुदी शिग्रु कर्कन्धू इनसे विकार अवयव अर्थमें अण् हो । जिसका फले लुक् नहीं होता, अण् विधानके सामर्थ्यसे । शिग्रु कर्कन्धुसे ओरञ् प्राप्त, अन्यको अनुदात्त अञ् प्राप्तको बाधकर अण् । फल परे अण् का लुक् क्यों नहीं ? तब कहा विधानसामर्थ्यात् । प्लक्षस्य फलं प्लाक्षं, गूलरका फल है । उसका लिङ्ग नपुंसक । जिससे ह्रस्व हुआ । जम्बु फले, जम्ब्वा जम्बूः स्त्री जम्बु जाम्बवम् ।

लुप् भी हो, जम्बू शब्दसे फल अर्थमें हुए प्रत्ययका विकल्पसे लुप । शंका–लुक् से भी कार्य सिद्ध था लुप क्यों पढा ? तब कहा लुपि युक्तवत्-लुप होने पर, युक्त

फलपाकशुषामुपसंख्यानम् । व्रीहयः मुद्गाः । **पुष्पमूलेषु बहुलम्** मल्लिकायाः पुष्पं -मल्लिका । जात्याः पुष्पं जाती । विदार्या मूलं विदारी । बहुलग्रहणान्नेह पाटलानि पुष्पाणि । साल्वानि मूलानि । बहुलकात्क्वचिल्लुक् । अशोकं करवीरम् । **हरीतक्यादिभ्यश्च** ४।३।१६७। फलप्रत्यस्य लुप । हरीतक्यादीनां लिङ्गमेव प्रकृतिवत् । हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः ॥

इति प्राग्दीव्यतीतप्रकरणम्

उचित लिङ्गवचन होनेके लिये । जैसे जम्ब्वाः फलं जामुनके फल अर्थमें हुए अण्का लुप् होने पर विशेष्य—प्रधानका लिङ्ग बाधकर स्त्रीलिङ्ग एकवचन भी हुआ । जम्ब्वाः-अतः फलं जम्बूः स्त्रीलिङ्ग एकवचन रहा । (वा०) फलपाकशुष फल (पाकेन शुष्यन्ति) पकने पर सूखा जाय इति फलपाकशुषः ओषधयः । उसके वाचक शब्दसे परे फल अर्थके प्रत्ययका लुप कहें । फले लुक्को बांधकर । व्रीहि जौं गेहूं धान जिनके पकने पर फल सूख जाते हे । तस्य विकारःसे अण् । उसका वार्तिकसे लुक् । जो धानका सूखा फल तद्धितार्थः । मुद्गानां विकारः फलानि—मूंगकी दाल मुद्गः । विल्वादि मानकर हुए अण्का लुप् । जिसका गल, युक्तवद्भावसे पुलिङ्ग हुआ प्रधान फलका लिङ्ग वचन नहीं हुआ । (वा०) पुष्प और मूल जड़ अर्थ खुलता हो तब विकार और अवयव अर्थमें हुए प्रत्ययका लुप् हो । बहुलं==आवश्यकता अनुसार । मल्लिका रातरानीका पुष्प, अर्थमें अण् । उसका वार्तिकसे लुप् उचित लिङ्ग हुआ । मादीनां च-मध्य उदात्त । अनुदात्तादेश्चके अञ्का लुक्, युक्तभावसे स्त्रीलिङ्ग । अतः जातीनामक लताके फूलका नाम जातीको भी समझें । कन्दके मूल जड़का नाम, भूमिविदारी । मूल जड़ अर्थमें हुए प्रत्ययका लुक् । गौरादिगण मानकर ङीष्, अन्त उदात्त । वार्तिकमें बहुल पढ़नेसे क्वचिन्न-कहीं नहीं भी होता । यथा पाटलस्य पुष्पाणि पाटलानि पलाशके फूल । विल्वादिभ्यश्चके अण्का लुक् । साल्वानि भी समझें । शालूका मूल जड़ अर्थमे अण्का लुक् नहीं हुआ । शंका—अशोकस्य पुष्पं अशोकं, कर्वीरस्य पुष्पम् (करौदाका फूल अर्थमें) करवीरं शब्द बना पुष्पमूलेषु बहुलंसे युक्तावद्भाव हो, पुलिङ्ग भी होकर अशोकः करवीरः क्यों नहीं बनता । बहुलग्रहणसे युक्त भावके अभावसे । कहीं लुक् भी होता है । हरीतकी आदिगणमें पढ़े शब्दसे परे फल प्रत्ययका लुप हो । हरीतकी आदि वार्तिकसे लिङ्ग प्रकृतिके अनुसार हो, जिसका लिङ्ग लुप्त प्रत्यार्थ अतिदिष्ट हैं । हरीतकी (हर्रे)के फलको हरीतक्यः । फल अर्थमें हुए प्रत्यय का लुक् । द्राक्षा आदि शब्दसे नित्यं वृद्ध से प्राप्त मयटका लुप आदि । लिङ्गमेव विशेष्यवदेव ।

इति प्रभाकरमिश्र कृतायां प्रभाकर्यां विकारार्थाः ।

ठगाधिकारः ठक्का अधिकार प्रस्तुत करते हैं । प्राग्व-तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' इससूत्रतक (वहतेः प्राक् पहले ठक्प्रत्ययका अधिक्रियते==अधिकार चलता है । जितने सुत्र है सबके ठक्प्रत्ययका प्रसंगानुसार भिन्न-भिन्न अर्थ है । उसी भिन्न अर्थोंका अधिकार (प्रमुखता) कहीं जा रही है ।

अथ ठगादिप्रकरणम्

प्राग्वहतेष्ठक् ।४।४।१ तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते तदाहेति मा शब्दादिभ्यः उपसंख्यान, माशब्दः कारि इति य आह सः माशब्दिकः, आहौं प्रभूतादिभ्यः प्रभूतमाह·प्राभूतिकः पार्याप्तिकः ॥ पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिकःसौखशायनिकः अनुशतिकादिः गच्छतौ परदारादिभ्यो पारदारिकः गौरुतल्पिकः। तेन दीव्यति खनति जयति जितम्.४।४।२ अक्षैर्दीव्यति जयति जितं वा·आक्षिकः। अभ्र्या खनति आभ्रिकः। संस्कृतम्

तत् आह—इति (वह बार·बार ऐसा कहता है) इस अर्थमें माशब्द, नित्यशब्द कार्यशब्द आदिसे ठक् कहें। इति शब्द तत्के बाद पढ़ें। तदिति आह–(वाह ऐसा कहता है) अर्थमें माशब्दसे स्वागत—आदिका स्मरण। तत्से वाक्यका अर्थ लें। इतिसे वाक्यको कर्मबोधित। माशब्दं कार्षीः तुम कोलाहल मत करो, ऐसा जो कहे, इस अर्थमें मा शब्दसे ठ–इक आदि (माशब्दिकः) अथवा शब्दो मा कारि इति यो निषेधति स माशब्दिकः। जो नित्यशब्दका प्रयोग करे, नित्यः शब्दः इति य आह स नैत्यशब्दिकः। शब्द नित्य है ऐसा कहनेवाला। कार्यः शब्दः इति य आह कार्यशब्दिकः। दुर्गाजी ऐसा अनेक बार बोले दौर्गशब्दिक रामरामशब्दिकः। कृष्ण कृष्ण। कर्मवाच्य है किन्तु द्वितीया नहीं होती, प्रातिपदिक न होनेसें। न माङ्योगे। ब्रूञ् धातुका स्पष्ट बोलना अर्थ। उससे बना इति य आह समुदायसे ठक्। माशब्द आदिके भीतर पढे हुए स्वागतादिगणके शब्दकी विशेषता बोले। आहौ—आह पदके एक देशसे आहि का इकार उच्चारणार्थ है। पूर्वसे तत् आया तदित्याह (वह ऐसा बोलता है।) अर्थमें प्रभूतादिगणमें पढ़ें द्वितीयान्त शब्दसे ठक् कहें। प्रभूतमाह (बहुत है ऐसा जो कहे) अर्थमें प्रभूतसे ठ=इक आदि। पर्याप्तमाह पूर्ण है ऐसा उसका नाम (पार्याप्तिकः) ठ आदि। अलमाह आलमिकः। (वा०) पृच्छतौ-पूछता है अर्थमें द्वितीयान्त सुस्नात आदिसे ठक् कहे। सुस्नातं (ठीकसे स्नान किया) जो ऐसा पूछता है अर्थमें ठ–इक आदिवृद्धि। सौस्नास्तिकः। सुख शयनं पृच्छति सुखसे सोया ऐसा पूछने वाला। सुखशयनसे ठ–इक आदि। अनुतिकादीनांसे दोनों पदकी आदिवृद्धि। सौखभोजनिकः, आनन्दगमनिकः। (वा) गच्छति अर्थमें परदारा-दूसरेकी स्त्रीके प्रतिगमन अर्थमें द्वितीयान्तसे ठक् हो। परदारान् गच्छति (पराई नारीके पास जाता है) परदारान्से ठ-इक आदि पारदरिकः, गुरुकी स्त्रीको गुरुतल्प कहते हैं। गुरुतल्पं गच्छति अर्थमें ठ–इक आदिवृद्धि। गौरुतल्पिकः चन्द्रः। परमातरं गच्छति पारमातृकः बालकः।

तेन—तृतीयान्त कार्यकारणभाव समर्थशब्दसे दीव्यति क्रीडति, खेलना। जयति जीतना, खनति खोदना, जितं जीत लिया इन अर्थोमें ठक्प्रत्यय हो। अक्षैः दीव्यति पाशासे खेलता है, जितं, जीत लिया है—वह **आक्षिकः**। तृतीयान्त क्रीडा कीडनकभाव समर्थ अक्षशब्दसे खनति आदि अर्थमें तेन दीव्यतिसे ठ, ठस्य इक आदिवृद्धिः, अलोप आक्षिकः। परशुना खनति पारशुकः। कुद्दालेन खनति कौद्दालिकः। असिना जयति आसिकः। तलवारसे विजयते। लेखन्या जितः लैखनिकः।

।४।४।३। दध्ना संस्कृतं दाधिकं मारिचिकम् ॥ **तरति** ।४।४।५। उडुपेन तरति-औडुपिकः ॥ **गोपुच्छाट्ठञ्** ।४।४।६। गौपुच्छिकः ॥ **नौद्व्यचष्ठन्** ।४।४।७। नाविकः घटिकः ॥ **चरति** ।४।४।८। हस्तिना चरति हास्तिकः। दध्ना भक्षयति - दाधिकः। शकटेन चरति-शाकटिकः ॥ **पर्पादिभ्यष्ठन्** ।४।४। १०

तृतीयान्त संस्कार्य संस्कारक समर्थ शब्दसे संस्कृतं उत्कर्षाधानरूप संस्कार किया हुआ स्वादगुणवृद्धि अर्थ में ठक्। दहीसे संस्कार (बढा) हुआ (स्वादगुण) दध्ना संस्कृतं दाधिकं (दहीबाडा) दहीसे स्वादिष्ट की हुई कोईभी वस्तु तृतीयान्त समर्थ दधि टा से उत्कर्षाधाने (स्वादगुण) वृद्धि अर्थे ठक्, ठ--इक आदिवृद्धिः यस्येति इलोपे **मारीचिकं** मरीचिकाभिः मिर्चनामक तिक्तगुणसे संस्कृतं संस्कारित स्वादगुण वृद्धिसे बढा हुआ। मिर्चमे जो भी वस्तु संस्कृत छौंकी, मिलाकर बनी हो प्रशंसित हो, सबको **मारीचिकम्**। संस्कार्य (पकौआलु) संस्कारक (मिर्च) संस्करण क्रियासे समर्थ मरीचिका शब्दसे ठ इक आदिवृद्धिः लोपे। लवणेन संस्कृतं **लवणिकम्**। मिष्ठेन संस्कृतं मैष्ठिकं (रसगुल्ला) घृतेन संस्कृता घातिका = रोटिका, सूपः। तृतीयान्त समर्थ तरति (तरणकर्ता तैरनेवाला) अर्थे ठक्। तेन इत्येव—तृतीयान्तसमर्थसे ही हो उडुपेन तरति (छोटी नौकासे पार जाता है) तरणं पारतटगमनं। तृधातुका प्लवन (पौडना) तरण = पारगमन अर्थ है। हस्ताभ्यां तरति, प्लवते **हास्तिकः**। पादाभ्यां तरति **पादिकः**। जलयानेन तरति जालयानिकः। उडुपशब्दसे ठ इक वृद्धिः, अलोपे। औडुपिकः

गोपुच्छ से (गायका पूछ पकडकर वैतरणी नदीं पार होने में) ठ – इक आदि गौपुच्छिकः। नौ = नौका और दो अच् वाले शब्दसे तरति अर्थमें ठन् हो। तृतीयान्तसे ही। नावा तरति नाविकः। नौ से ठ – इक अवादेश, नौकासे पार कर्ता। घटेन तरति घटिकः घन्नईसे पारकर्ता। (घटमें दो अच्) से ठ – इक आदि। बाहुभ्यां तरति भुजाओंसे तैरने वाली स्त्रीं, बाहुसे ठक्, ठ इक टाप्, बाहुका।

चरति—करण तृतीयान्तशब्दसे चरति (चर गतिभक्षणयोः) गच्छति गमन करने क्रिया भक्षयति खाने अर्थमें ठक् हों। हस्तिना चरति हाथी पर चढकरचढ़नेवाला **हास्तिकः**। करण तृतीया अन्तमें। गन्तृगमनसमर्थ हस्तिन टा 'चरति' से गच्छति अर्थे ठ इक नस्तद्धिते टि (इन्)का लोपः, वृद्धिः। दध्ना दहीसे चरति भक्षयति खाता है **दाधिकः**। भक्षणक्रियाके प्रतिअधिकरण साधनतृतीयान्तभोजनविषयक साध्य-साधनसमर्थ दधिशब्दसे भक्षणकर्ता अर्थे चरति ठक्, ठ इक, वृद्धिः अन्त्य इलोप। अश्वेन चरति आश्विकः। रेलशकटेन चरति रैलशकटिकः त्रिचक्रिकया। द्विदलेन खादति द्वैदलिकः। मूलकेन खादति मौलकिक।

शाकटेन गच्छति शाकटिकः गाड़ीपर चलने वाला ठ—इक आदि) द्वैचक्रिक त्रैचक्रिकः। अश्वेन गच्छति आश्विकः। पादाभ्यां चरति पादिकः। दहीसे खाना दाधिकः ठ आदि। मधुना भक्षयति माधुकः, मारीचिकः। घृतेन खादति घार्तकः।

पर्पेण चरति-पर्पिकः। येन पीठेन पङ्गवश्चरन्ति सः पर्पः, अश्विक, रथिकः श्वगणाट्ठञ् च ।४।४।११। चात्ष्ठन्। श्वादेरिञि ।७।३।८। ऐजन। श्वाभस्त्रिः (इकारादाविति वाच्यम्) श्वगणेन चरति-श्वागणिकः' श्वागणिकी। श्वगणिकः श्वगणिकी॥ वेतनादिभ्यो जीवति ।४४।१२। वेततेन जीवति-वैतनिकः धानुष्कः हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ।४४ १५। उत्संङ्गेन हरति-औत्सङ्गिकः॥ भस्त्रादिभ्यः

पर्पादिभ्यः पर्प अश्व अश्वत्थ रथ जाल जल न्याय ब्याल। पादः पादः पत् इनके तृतीयान्तसे चरति अर्थमें ष्ठन् हो। पर्पसे चलता है अर्थमें ठ-इक (पर्पिकः) षित् होनेसे ङीष् पर्पिकी। जिस पीठ आसन गाड़ी पर पङ्गु लूंजे, लंगड़े चलें वह पर्प हैं। उससे चलने वाला। अश्वेन चरति आश्वकः, पर्प-गतौ। हलश्चसे साधन अर्थमें घञ्। पङ्गुके चलनेका साधन पर्प है। रथेन चरति रथिकः अश्वारोही रथसवार। न्यायेन चरति नैयायिकः। पादेन तरति पदिकः। पदाभ्यां चरति (पादको पद आदेश) श्वगण-कुत्ता समूहसे ठञ् हो ठक् बाधकर। तृतीयान्तसे चरति अर्थमें ष्ठन् भी हो। श्वगणेन चरति श्वागणिकः कुत्तेके झुण्डके साथ चलता है ठ आदि यथायोग्य। द्वारादिसे ऐच् प्राप्त था। उसका निषेध सूत्र। **श्वादेरिञि** श्वन्शब्द आदिमें हो ऐसे अङ्गको इञ् परे ऐच आगम न हो। अङ्गका अधिकार। न कर्मव्यतिहारेसे (न) आया। इससे निषेध हुआ। आदिवृद्धि। श्वागणिकः-श्वभस्त्रस्य कुत्तेके समानचर्म जलपात्रवालेकी सन्तान अर्थमें अत इञ् आदि। श्वदंष्ट्रस्याऽपत्यं श्वादंष्ट्रिः कुत्तेके समान दांत वालेकी सन्तान (अतइञ् आदि) द्वारादीनाञ्चसे प्राप्त ऐच्का निषेध। अत्रशङ्का-द्वारादि गणमें श्वन् पढ़ा है। श्वभस्त्र नहीं ऐच् प्राप्त नहीं, निषेध कैसे? निषेध व्यर्थ होकर ज्ञापन करेगा-श्वन्पूर्वक अङ्गका द्वारादिमें मान्यता हैं। उसका फल हुआ कि श्ववहनस्येदं शौववहनं, तदादिविधिकी कल्पनासे। द्वारपालस्य अयं द्वौवारपालःमें ऐच् हुआ। पुनः शङ्का— श्वागणिकःमें इञ् प्रत्यय हुआ नहीं, वहां ऐच्का निषेध कैसे? (वा०) इकार आदि में हो ऐसा प्रत्यय परे अर्थ कहें। ठ-को इक होने पर इकारादि मिला। निषेध हुआ। कुत्ता समुदायके साथ चलनेवाला ठञ् ङीष् श्वागणिकी। जब ष्ठन् होगा तब आदिवृद्धि नहीं होगी। ङीष् होकर स्वगणिकी-कुत्ताझुण्डवाली।

वेतन आदिगण पढ़े शब्दके तृतीयान्तसे जीवति-वेतनभोगी अर्थमें ठक् हो। वेतनमासिक पारिश्रमिक श्रीसे जीता है, ठइक आदिवृद्धि वैतनिकः। धनुषा जीवति धनुर्विद्याके बलपर जीनेवाला। उ से परे ठको क धानुष्कः इणः। वेतनादिगणमें धनुर्दण्ड पढ़ा है संङ्घात जीवति अर्थमें समुदायसे धानुर्दण्डकः। अलग दाडिकः भी

हरति हरणकर्ता अर्थमेंतृतीयान्त उत्सङ्ग उडुप उत्पित पिटक पिटाकसे ठक हो उपादत्ते=नयति (लेकर चलने अर्थमें) गोदमें लेकर चलने अर्थमें उत्सङ्गसे ठ-इक आदि० औत्सङ्गिकः उडुपेन हरति नयति नौकासे ले जाता है औडुपिकः। औत्पि-

ष्ठन् ४४।१६। भस्त्रया हरति-भस्त्रिकः। षित्वाद् भस्त्रिकी। विभाषा विवधात् ।४।४।१७ ष्ठन्। ठ्पक्षे ठक्, विवधेन-हरति विवधिकः। एकदेशविकृतत्वाद्वीवधादपि। वीवधिकः विवधवीवधशब्दौ उभयतो बद्धशिक्ये स्कन्धवाह्ये काष्ठे वर्तते॥ निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ।४।४।१९। अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम् आक्षद्यूतिकं वैरम्। संसृष्टे ।४।४२२। दध्ना संसृष्टं दाधिकम्॥ लवणाल्लुक् ।४।४।२४ लवणेन संसृष्टो लवणः सूपः॥ मुद्गादण् ४।४।२५। मौद्ग ओदनः॥

तिकः उठकर लेजाना। पिटकेन हरति पैटकिकः। भस्त्रा=माथी चर्मपात्र आदिगण पठितशब्दके तृतीयान्त से हरति अर्थे ठन्। भस्त्रया-चर्मपात्रसे जल लाने अर्थमें ष्ठन् ठ–इक भस्त्रक चर्मपात्रमें पानी ले जानेवाला। ष इत्, षिद्गौरादिभ्यः से ङीष् बी। इस गणमें शीर्षभारेण हरति शीर्षभारिकः, शिरपर भारधाहक।

विभाषा-विविधा भाषा.विकल्पसे। तृतीयान्त विवध शब्दसे हरति=लेजाता है अर्थमें ष्ठन् ठ-इक विवधिकः, बहंगीसे भार ढोनेवाला। पक्षमें ठक्–इक आदिवृद्धि वैवधिकः, दोनोमें भारढोनेकी शक्ति। एकदेश=एक अंशके विकृत–बदलनेसे अनन्यत्वात् न अन्यः अनन्यः तस्य भावः अनन्यत्वं तस्मात कुत्तेकीपूछ कट गयी एकदेशमे विकार हुआ, कुत्ता ही रहा घोड़ा नही हुआ। वीवधाच्चेति वक्तव्यम् वार्तिकके बलपर वीवधसे भी ठ– इकादि। वीवधिकी ङीप् भी। दोनो शब्द उभयतो बद्धशिक्ये= दोनों तरफ शिकहर पर भार रख कर स्कन्धवाह्ये=कन्धे पर ढोने लायक अर्थमें है। निर्वृत्ते निरपूर्वक वृतु वर्तने धातुका साधनसे सिद्ध होना अर्थ। कर्मसे सिद्धिरूपफल के आधारमें क्त, तृतीयान्त अक्षद्यूत जूआ पाशा खेल आदि वाचक शब्दोसे फल सिद्धि के आधार अर्थमें ठक्। जैसे पाशा फेंककर खेल अर्थमें अक्षद्यूत शब्दसे वैर शत्रुता दुश्मनी रुपफल जुआका परिणाम सहज है। ठ–इक आदिवृद्धि। (आक्षद्यूतिकं) वैरं, पाशा खेलने का सिद्ध फल, वैर हो गया।

संसृ–करण तृतीयान्त शब्दसे संसृष्ट संसर्गाश्रयः। संसर्गोमेलनं मिलाया हुआ। अर्थ ठ, दध्ना संसृष्ट दहीसे संस्कार सिञ्चन मेलन किया हुआ। (दाधिकं) दधिसिञ्चित वस्तु दाधिकानि (वटकानि दही बाड़ा।

लवणात् उन चूर्णोंमें यदि नमक हो तब ठक्का लुक् हो जाय। नमकसे संसष्ट मिला हुआ सूप दाल अर्थमें संसृष्टे सूत्रसे ठ-उसका (लवणात्) लुक् हुआ लवणः। मुद्गः मूंग दालके (संसृष्ट अर्थमें) तृतीयान्तसे अण् हो, न ठक्। मुद्गैः मूंगसे मिला हुआ। भात अर्थमें अण् आदिवृद्धि।

अग्र द्वितीयान्त समर्थसे उच्छति (खेती कटनेपर भूमिमें गिरे अन्नका कण-कण चुनना उञ्छः) उसके अनुकूल क्रिया कर्ता अर्थे ठक्, यथा–वदराणि बेरको उञ्छति चुन-चुनकर इकट्ठा करता है। उञ्छथ उञ्छक सम्बन्धसमर्थ बेरदशब्दे ठ–इक आदिवृद्धि, अलोप। मधूकम् (महुआ) उच्छति माधूकिकः। विज्ञानम् उञ्छति

उञ्छति ।४।४।२२। बदराण्युञ्छति वादरिकः ॥ रक्षति ।४।४।३६ समाजं रक्षति-सामाजिकः । शब्ददर्दुरं करोति ।४।४।३४। शब्दं करोति-शाब्दिकः । दार्दुरिकः । पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति ।४।४।३४ स्वरुपस्य पर्यायाणां विशेषाणां च ग्रहणम् । मत्स्यपर्यायेषु मीनस्यैव । पक्षिणो हन्ति-पाक्षिकः शाकुनिकः मायूरिकः मात्स्यिकः मैनिकः शाकुनिकः । मार्गिकः हारिणिकः ।सारङ्गिकः ॥ धर्मं चरति ।४।४।४१। धार्मिकः (अधर्माच्चेति वक्तव्यम् । आधर्मिकः ॥

वैज्ञानिकः । धनम् उञ्छति, धानिकः । वदर्याः फलानि वदराणि तानि उञ्छति अवयवशः गृह्णाति । एकैकं चिनोति ।बादरिकः । अखाद्यम् उञ्छति आखादिक ।

रक्षति—द्वितीयान्त समर्थ शब्दसे रक्षति रक्षणानुकूलक्रिया अर्थे ठक् । समाजं रक्षति सामाजिकः । रक्षा अर्थमे किसी भी शब्दसे ठक् सम्भव है । रक्ष्यरक्षक सम्बन्धसमर्थ समाजशब्दसे रक्षति अर्थमें ठ-इक आदिवृद्धिः । अन्त्य अलोप **सामाजिकः** समाजरक्षक, धर्मनेता । पशून् रक्षति **पाशुकः** । पुत्रं रक्षति पौत्रिकः शास्त्राणि रक्षति **शास्त्रिकः** । क्षेत्रं रक्षति क्षैत्रिकः । द्वितीयान्तसमर्थशब्द और दर्दुरशब्दसे करोति, उत्पत्यनुकूलव्यापारार्थे ठक् हो । शब्दं करोति । शब्द को बनाता है यहां बनाना (प्रकृतिप्रत्ययविभागपूर्वक अर्थज्ञान पुरस्सरव्युत्पत्ति) बोध करना है । प्रकृतिप्रत्ययके पृथक् अर्थ एकार्थीभाव (मिलित) अर्थ या अन्वित अर्थ कहलाता है । शब्दान्वाख्यानं व्याकरणम् । शब्दसे करोति अर्थ ठ् इक वृद्धि अलोप **शाब्दिकः** । जहां प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ पुरःसर ज्ञान हो, वहा ठक् हो केवल आवाज करना अर्थ हो तब नहीं होता । दर्दुरं करोति टर्रटें करता है मेढ़ककी आवाज । दादुर धुनि चहुदिशा सुहाई । दर्दुरशब्दसे ठ इक आदि (**दार्दुरिकः**) अथवा दर्दुनामक पात्र बनता । दर्दुरके अनेक अर्थ है । दर्दुरस्तोयदे (जलद बादल) भेके (मेढक) वाद्य, भाण्डादिभेदयोः, दर्दुरा, चण्डिकायां स्यात्, पामलभूले तु दर्दुरम् ।

पक्षि-मत्स्य और मृगके द्वितीयान्त दशासे हन्ति—प्राणवियोग क्रिया कर्ता अर्थ में ठक् हो (वा०) पक्षि मत्स्य मृगशब्दके स्वरूपका उनके पर्यायोंका और विशेष वाचक शब्दोंका भी ग्रहण हो । सरूपके भाष्यमें है । तथापि मत्स्य=मछलीका पर्याय केवल मीन ही स्वीकृत, अन्य नहीं । सूत्रमें पढ़े शब्दका उदाहरण—पक्षिणः हन्ति पंखवालोंको मारता है । अर्थमें पक्षसे ठ—इकादि (पाक्षिकः) चिड़ियामार । पर्यायमें शकुनं हन्ति (शाकुनिकः) पक्षिमारक व्याधविशेषमें । मयूरं हन्ति मायूरिकः मोर मारक ठ आदिः । क्रमसे मत्स्यं हन्ति मात्स्यिकः मछलीमारक । पर्यायमें-मीनं हन्ति मैनिकः ठ-इक आदि० । विशेषमें-शकलं हन्ति शाकलिकः । ये तीनों क्रमसे स्वरूप पर्याय और विशेषके उदाहरण । मृगं हन्ति (मार्गिकः) मृगमारक व्याध । हरिणं हन्ति हारिणिकः हरिणवधकर्ता । मृगकी विशेषजाति सारङ्ग हन्ति सारङ्गिकः । आरण्यकः चतुष्पाद—हरिण अर्थमें मृग भी है । अतः पर्याय बना ।

धर्म-द्वितीयान्त धर्मशब्दसे चरति (आचरण, व्यवहार) अर्थमें ठक् हो । धर्मं

तदस्य पण्यम् ।४।४।५१। अपुपाः पण्यमस्य आपुपिकः । **लवणाट्ठञ्** ।४।४।५२। लावणिकः ॥ **शिल्पम्** ।४।४।५५। मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य-मार्दङ्गिकः **प्रहरणम्** ।४।४।५७। असिः प्रहरणमस्य आसिकः धानुष्कः । **शक्तियष्टयोरीकक्** ।४।४।५९। शाक्तीकः याष्टीकः ॥ **अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः** ।४।४।६०। अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य सः आस्तिकः । नास्तीति मतिर्यस्य सः

चरति । धर्मका आचरण कर्ता हैं । द्वितीयान्तआचरणक्रियाकारक भाव समर्थं धर्मशब्दसे चरति अर्थ ठ इक आदिवृद्धिः अकारलोप । धर्मका नित्य आचरणकर्ता **धार्मिकः** (वा०) **अधर्म** शब्दसे भी आचरण करने अर्थमें ठक् हो । अधर्मम् आचरति आधर्मिकः । धर्मविरोधी सदाचारी आदरपूर्वक स्वीकार्य है ।

तदस्य–विक्रेतव्य पण्यं–बाजारमें बेचनेकी वस्तु । किस वस्तुकी दुकान है इस अर्थमें। अपूपाः पण्यमस्य मालपूवेकी दुकानवाला अपूपसे ठ-इक आदि० । (आपूपिकः) पार्पटिकः । यदि नमककी दुकान हो तब ठञ् । लवणं पण्यमस्ति अस्य (लावणिकः) ।

शिल्पं–तदस्य इति अनुवर्तते । प्रथमान्त समर्थ शब्दसे शिल्पकला तकनीक विशेष गुणवाला अर्थमें ठक् हो । यथा—मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मदङ्ग बजाना है कला गुण अस्य—इसका षष्ठ्यर्थे ठक् प्रथमान्त मृदङ्ग, शब्दसे ठ इक आदिवृद्धिः अलोप (मार्दङ्गिक) वेणुवादनं शिल्पं विशेषता अस्ति अस्य है जिसकी वैणुकः । दुन्दुभिवादनं शिल्पमस्य दौन्दुभिकः **शिल्पं** (कलासु कौशलम्) । किसी भी कलामें कुशलता ही शिल्प है । **प्रहरणं** प्रह्रियते (प्रहारः ताडनं क्रियते) अनेन साधनेन (जिस साधनसे दूसरे पर वार किया जाय) वह **प्रहरणम्** आयुध अस्त्र, प्रथमान्त पदसे शस्त्रवाचक प्रहरणविषयकसाध्यसाधन समर्थ शब्दसे ठक् हो । यथा–असि, (तलवार) प्रहरणमस्य । असिशब्दसे ठ इक् आदिवृद्धि आदि । धनुः प्रहरणम् अस्य (धनुष् है प्रहारका शस्त्र जिसका) धनुष्शब्दसे प्रहरणम् अर्थमें ठ ठस्थाने इसुसुक्तान्तात्कः इति क। इणः षः मूर्धन्य आदेश आदि० **धानुष्कः** । लगुडः प्रहरणमस्य **लागुडिकः** । भुशुण्डिका प्रहरणमस्य भौशुण्डिकः ।

शक्ति–और यष्टिके प्रथमान्तदशासे प्रहार कर्ता अर्थमें ईकक् हो । शक्तिः प्रहरणमस्य अर्थमें ईकक् आदिवृद्धि आदि (शाक्तीकः) मेघनादः । शक्तिप्रहरणकर्ता । यष्टिः प्रहरणमस्य छड़ी मारका विषय हो । यष्टिसे ईकक् आदिवृद्धि । (याष्टीकः) बालकः । **अस्ति** नास्ति, दिष्टसे मति बुद्धि विचार मान्यता अर्थमें ठक् हो । अस्ति नास्ति निपात शब्द है । अस्य मतिः अर्थमें ही । अस्ति परलोकं स्वर्ग, नरक, वेद, भगवान हैं ऐसी मति इच्छा बुद्धि हो जिसकी वह (आस्तिकः) अस्तिसे ठ-इक आदि०। अथवा वचनसामर्थ्यसे अस्ति नास्ति इस आख्यात=तिङन्तसे प्रत्यय । नास्तिमतिः यस्य, परलोक, भगवान नहीं है ऐसी बुद्धिवाला (नास्तिकः) नास्ति ठ-इक आदि० । (दैवं दिष्टं भागधेयमित्यमरः) भाग्य भरोसा ऐसी बुद्धि हो जिसकी (दैष्टिकः)। दिष्ट शब्दात् ठ-इकादि । भाग्य ही सब कुछ है नालम्बते दैष्टिकतामिति भावः । **शीलं** =स्वभावः यस्य किसी वस्तुके सेवनका स्वभाववाला अर्थमें प्रथमान्तसे ठक् हो ।

नास्तिकः। दिष्टमिति मतिर्यस्य स दैष्टिकः ॥ शीलम् ।४।४।६१। अपूप भक्षणं शीलमस्य आपूपिकः। छत्रादिभ्यो णः।४।४।६२ गुरोर्दोषामावरणं छत्रं, तच्छीलमस्य-छात्रः ॥ तत्र नियुक्तः ।४।४।६९। आकरे नियुक्त आकरिकः ॥ निकटे वसति ४।४।७३। नैकटिको भिक्षुः। इति ठगधिकारः।

अथ प्राग्घितीयप्रकणम्

प्राग्घिताद्यत् ।४।४।७५। 'तस्मै हितम्' इत्यतः प्राग् यदधिक्रियते ॥ तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ।४।४।७६। रथं वहति-रथ्यः युग्यः प्रासङ्ग्यः ॥

यथा अपूपाः मालपूवाखाना स्वभाव है इसका। अपूपशब्दः स्वभक्षणे लाक्षणिकः। ठ इक आदि **आपूपिकः**। गुडभक्षणं शीलं गौडिकः। तण्डुलभक्षणं शीलंताण्डुलिकः, चार्वणिकः। **शीलं**=प्रथमान्त समर्थाद्वे अस्य शीलम् स्वभाव है इत्यर्थे ठक्। अपूप (मालपूआ) भक्षणं खाना शील स्वभाव है जिसका, अपूपशब्द भक्षणअर्थमें लाक्षणिक है। अपूपशब्दसे भोजनशीलमित्यर्थे ठ–इक आदिवृद्धिः, अन्त्य अलोप आपूपिकः पूआ भक्षणकर्ता। **छात्रादिगणमें** पढ़े शब्दसें अस्य शीलं अर्थमें ण हो। गुरुके दोष पर आवरण=पर्दा डालना छत्र है। छत्रं शीलं यस्य (छात्रः) वैसा स्वभाव वाला। दोषवरणमें छत्र का अर्थ गौड है। छत्रसे ण आदिवृद्धि छात्रः।

तत्रनियुक्तः–अधिकृतः संरक्षणादौ प्रेरित रक्षाके लिए अधिकार प्राप्त अर्थमें ठक् हो सप्तम्यन्तसे। आकरे==खानमें (कोयला, सोना, चांदीकी) उत्पत्ति स्थानमें रक्षाके लिये अधिकार प्राप्त अर्थमें ठ–इक आदिवृद्धि (आकरिकः) अधिकारी रक्षक, द्वारपाल। खनिः स्त्रियामाकरः स्यादित्यमरः। खान रक्षकः पाठशालयां नियुक्तः पाठशालिकः चपरासी। भवने नियुक्तः भावनिकः दरवान।

निकटे–सप्तम्यन्त निकटशब्दसे वसतिअर्थे ठक्। निकटमें जो रहे वह **नैकटिक** भिक्षुः। सप्तम्यन्तनिकटशब्दसे वसति अर्थमें ठक्, ठस्थाने-इक आदिवृद्धिः अलोप (सन्यासी उसीके निकट आसपास रहते हैं जहां भिक्षा सुलभ हो) नैकटिको भृत्यः मित्रादिः। भिक्षुकः सन्यासी वा भिक्षार्थं निकटे बसति।

इति प्रभाकरमिश्रविरचितायां प्रभाकर्यां ठगधिकारः।

यताधिकार—इदानीं यत्प्रत्ययस्य अधिकारः अर्थसाधनिका च आरभ्यते, यदधिकार इति। **प्राक्**—पहले हितात्-तस्मै हितं सूत्रतक यत्का अधिकार चले अर्थनिर्देश–प्रकरणके सूत्रोंमें, अर्थ निर्दिष्ट है। यत्का प्राधान्य है। अन्य प्रत्यय भी होंगे। **तत्**==द्वितीयान्तसमर्थ (क्रियाकारकभाव) शब्दसे वहति==ढोना खींचना, ले जाना अर्थमें यत हो। रथयुग (बैलके कन्धेका काष्ठ) प्रासङ्गः—ये वहनक्रियाके कर्म हों। रथं वहति **रथ्यः**। रथस्य वोढा अश्व आदिः रथ खींचनेवाला। रथं वहति विग्रहे वहन क्रियाका कर्म द्वितीयान्तरथशब्दसे वहन, कर्षण, क्रिया अर्थे यत्। रथ+य भसंज्ञा यप्रत्यय परे, यस्येति चसे भसंज्ञक अका लोप रथ्यः रथ-कर्मक वहनकर्ता अनड्वान् घोटको वा (बैल) रथ्यः। युगं वहति युग्यः युगशब्दस्य

धुरो यड्ढकौ ।४।४।७७। धुर्यः, धौरेयः ॥ **हलसीराट्ठक् ।४।४।८१।** हलं वहति हालिकः सैरिकः । **विध्यत्यधनुषा ।४।४।८३।** द्वितीयान्ताद्विध्यतीत्यर्थे यत् स्यात्· न चेत्तत्र धनुः करणम् । पाद्‍यो विध्यन्ति-पद्याः शर्कराः ॥

रथाङ्गवाचकत्वात् । युगशब्द रथका अङ्ग है । रथ या हल या गाड़ी खींचते समय जो अङ्ग घोडे आदिके कन्धों पर रखकर पशुओंको जोड़ें, युग (जूआ) कहते वे । युग शब्दसे द्वितीयान्त समर्थ वहति (कर्षण खींचने) अर्थे यत्, भसंज्ञक अङ्गका अलोप **युग्यः** । युगकर्मक वहनकर्ता अश्वः । प्रासङ्गं वहति एक जूऐके साथ दूसरा जुआ या रस्सी या लगाम जोड़ें वह प्रासङ्ग है । सुशिक्षित घोडोंकी सन्नद्धताके लिए दोहरा लगाम या जूआठी । अथवा कर्षणकाले जोतने या खींचते समय वृषभकन्धे==बैलके कन्धे पर यत् काष्ठमासज्जते (जो लकड़ी संयुक्तकी जाय वह) प्रासङ्गः अथवा जोती हुई भूमिको समतल समीकरण काष्ठ==पाटा (हेंङा) प्रासङ्गः तं यो वहति स **प्रासंगिकः** वृषभः । प्रासङ्गकर्मक वहनकर्ता बैलः । रैलशकटं वहति==रैलशकटिकः तैलयान्यः तेलयानकर्मकवहनकर्ता यन्त्रम् । इष्टिकां वहति इष्टिक्यः (ट्रक) द्वितीयान्तवाह्यवाहकभावसमर्थ प्रसङ्गशब्दसे यत् आदिः । **वहन** क्रियाका कर्म हो ढोनेवाला ढोनेकी वस्तुके साथ समर्थद्वितीयान्तधुर् शब्दसे कर्षण या वहन क्रिया अर्थमें यत् ढक् प्रत्यय भी हो (धूः स्त्रीक्लीबे यानमुखमित्यमरः) **धुर**==भार, बोझा चक्र नाभिः । धुरं वहति इत्यर्थे वहति क्रियायाः कर्म वाह्यवाहकभाव-समर्थद्वितीयान्त धुरशब्दात् वहनकर्ता अर्थे धुरो यड्ढकौ सूत्रेण यत् स्वादि **धुर्यः** । अत्र (हलि च) सूत्रेण रेफस्य उपाधया उकारस्य स्थाने दीर्घः प्राप्तः, तस्य निषेधं वक्ति ।

न–इति भस्य—भसंज्ञक कुर् और छुर्की उपधाके स्थानमें दीर्घ नहीं होता इति दीर्घ निषेधे । धुर्यः भारवाहकः धुरकर्मकवहनकर्त्ता (संस्थायाः धुर्यः, राष्ट्रस्य धुर्यः । यही अर्थ धौरयः का भी है । यदा यत् न भवति तदा वहति अर्थे ढक्प्रत्यय ढ़स्थाने आयनेयी आदिसूत्रेण एय् आदेशे । धुर+एय् आदि आदिवृद्धिः **धौरेयः** । (सांड़ स्थूलवृषभ) रथके आगे इस प्रकार कोई भी कार्य कुशल अग्रणी धौरेय हो सकता है । अध्यापकधौरेय छात्रधौरेय नेतृधौरेयः । कर्मणि कुशलः छात्रश्रेष्ठः ।

हल और सीरके द्वितीयान्तसे खींचने अर्थमें ठक् हो । हलको खींचता है । ठ इक आदि हालिकः । सीरं वहति सैरिकः खेतको जोतता है । या गड़ी खींचता ठ– आदि यहां भी तदन्तविधि । द्वैहलिकः द्वैसीरिकः । त्रैहलिकः त्रैसीरिकः ।

विध्यति–द्वितीयान्तसे वेधने रौंदने मर्दने अर्थमें यत् हो । धनुषकी क्रिया न होता । धनुषोः अभावः अधनुः यस्मिंस्तत् । तत्र==वेधने धनु करणं न चेत् । **पाद्‍यो**=पैर वेधन रौंदता है, पादसे यत्, पद्यतिसे पद्भाव (पद्याः) । प्राचीनकालमें मसलकर शक्कर चीनी बनते थे । अधनुषा क्यों कहा ? मैत्रः धनुषा चोरं पैरसे विध्यति यहां भेदने धनुकरण है ।

नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसं-मितेषु ।४।४।९१। नावा तार्यं-नाव्यं जलम् । वयसा तुल्यः–वयस्यः । धर्मेण प्राप्य धर्म्यम् । विषेण वध्यः—विष्यः । मूलेन आनाम्यं मूलम् । मूलेन समः=मूल्यः। सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम् । तुलया संमितं तुल्यम् ॥ तत्र

नौवयो–इस सूत्रमें आठ शब्द हैं और आठ अर्थ भी यथा संख्याक्रमके अनुरोधसे स्व-स्व अर्थोमें होते है । नौ नौका, वयस्य अवस्था, धर्म मर्यादा विष जहर मूल धन मूल, सीता जोता हुआ । तुला तराजू । इन शब्दोंसे तृतीयान्तसमर्थ होने पर क्रमसे तार्य (तरने योग्य) तुल्य समान प्राप्य–प्राप्त करने योग्य, वध्य—मारने योग्य, आनाभ्य-सम सदृश । समित समतल किया हुआ सम्मित सन्तुलित नापा तौला अर्थोंमें यत्प्रत्यय हो । प्रथममूलशब्दका आनाभ्य अर्थके साथ सम्बन्ध है । द्वितीय मूलका समितके साथ । प्रथममूलशब्द तक द्वन्द्व, द्वितींयमूल, सीता, तुलाका का अलग द्वन्द्व अन्यथा मूलशब्दोंको एकशेषका भय होगा । नावा तार्य तरितुं शक्यं (तार्य) नौकासे पार करने योग्य जल है । कारण तृतीयान्त (तारकतार्यभाव) समर्थ नौशब्दसे तार्य पार करने योग्य जल अर्थमें उक्त सूत्रसे यत्प्रत्यय । नौका और जलका तार्यतारक सम्बन्ध समर्थ नौ+य तद्धितान्त प्रासंज्ञा स्वादिकार्य । यकारादि प्रत्ययपरे वान्तोयि प्रत्ययेसे औस्थानमें आवादेश । **नाव्यं** नौकरणकतरणविषयः तद्धितार्थः । वयसा अवस्थया तुल्यं सदृशं मित्रमेव **वयस्यः** समान उम्रवाला स्निग्धो वयस्यः सवया इत्यमरः । तृतीयान्त सादृश्यसम्बन्ध समर्थ वयस्से सदृश अर्थमें यत् आदि, अवस्था सादृश्यवाला मित्र । धर्मेण सदाचारेण प्राप्यं लब्धुं शक्यं धर्म्यं-धर्मफलम् धर्मसे लाभ, धर्मकरणके फलम् । धर्म साधनसे प्राप्यप्रापक सामर्थ्यं रहते यत्प्रत्यय । विषेण=गरलेन वध्यः (मारितुं योग्यः वधम् अर्हति) जहर देकर मारने योग्य । विषकरणक वधाश्रयः । **विष्यः** विषशब्दसे वध्यवधकसमर्थसे 'यत्' मूलेन लाभसहितेन मूलधनेन यावता द्रव्येण वैश्याः वस्त्रादिवस्तु क्रीणन्ति तद्धनं मूलधनेन आनाभ्यम् आत्मानं प्रतिशेषीकर्तव्यम् लाभसहितं धनम् आनाभ्यम् । लोके लाभसहित मूलधनमें मूलशब्द रुढ़ है । जितनी पूंजी लगी हो उससे अधिक भाग लाभ है मिलकर मूल्य भी मूलशब्दसे मूलधन लाभसमर्थ लाभसहित अर्थ यत् अलोप । मूलेन=मूलधनेन समः सदृशः—मूल अंशके बराबर जो हो वह मूल्यं सादृश्यसम्बन्ध । हल द्वारा कर्षणलेखा उच्यते । हलसे खींची रेखा सीता--लाङ्गलपद्धतिः जोत लकीर । सीतया समितं समीकरणकृतं निम्नोन्नत्तं कृतम् (ऊंचा-नीचा भाग समतल हुआ) क्षेत्रं=खेत अथवा समितं मिला हुआ । तुलया=तराजूसे समितं परिच्छिन्नं=तौला गया, **तुल्य** सदृशं, सर्वत्र यत् तोल्यतोलकभाव तराजूसे तौलीं हुई कोई भी वस्तु । योगरुढ़ोऽयं तुल्यशब्दः सदृशे अर्थे प्रयुज्यते । यत्प्रत्यय प्रकृतिके के अनुकूल अर्थ प्रस्तुत करता है ।

तत्र सप्तम्यन्त हो कुशलविषयक आधाराधेयसमर्थशब्दसे साधु कुशल प्रवीण

साधुः ।४।४।९८। सामसु साधुः सामन्यः अग्रयः । कर्मण्यः शरण्यः ॥ सभाया यः ।४।४।१०५। सभ्यः । इति प्राग्घितीयप्रकरणम् ॥

अथ आर्हीये छयदधिकारप्रकरणम्

प्राक् क्रीताच्छः ।५।१।१। तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते ॥ **उगवादिभ्यो यत्** ।५।१।२। प्राक् क्रीतादित्येव । उवर्णान्ताद्गवादिभ्यश्च यत् स्याच्छस्यापवादः (नाभि नभं च) नभ्यः अक्षः । नभ्यम् अञ्जनम् ।

योग्य, दक्षादिनोपकर्ता अर्थमें यत्प्रत्यय हो । जो कुशल हो, किन्तु उपकार न करे न यत् । अग्रे=आगे आगे साधुः, कुशलः निपुणः दक्ष । सप्तम्यन्त कुशलता समर्थ अग्रशब्दसे यत् **अग्र्यः** । अग्राधिकरणकंकौशलम् । भोजने साधुः भोज्यः । सामसु सामवेदगायकेषु साधुः दक्षः प्रशस्तः । सामन् शब्दसे प्रवीणतासमर्थ अर्थमें अन्का टिलोप प्राप्त, ये चाभवकर्मणोः से अन्को प्रकृतिभाव **सामन्यः** टिलोप नहीं । कर्मणि साधुः **कर्मण्यः** । सफलकार्यकर्ता शरणे=सरणागतस्य रक्षणे साधुः **शरण्यः** निपुणः कुशलः, साधु अर्थ यत् भसंज्ञा अलोप । पठने साधुः **पठन्यः** भोजने साधुः **भोजन्य** । लेखन्यः संचालन्य । **सप्तम्यन्तसभा**-प्रवीण विषयक आधाराधेयभाव समर्थ सभासे साधु अर्थमें यत् । सभायां साधुः **सभ्यः** सभामें कुशल, प्रवीण, (आकर्षण करनेमें) सभाशब्दात् प्रवीणे अर्थे यत् भसंज्ञा अवर्णस्य लोपे ।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकार्यां यतोऽवधिः ।

छयतोरधिकारः—यत्प्रत्ययके अनन्तर छ, और यत्प्रत्ययका अधिकार हित, अवयव आदि अर्थमें चलता है । सामान्य 'यत्' प्रत्ययकी अवधि पूरी हुई । अब सामान्यरूपसे छप्रत्ययका विशेष विधान भी है । हितअर्थका प्राधान्य है । **प्राक्** तेन क्रीतं इस सूत्रसे पहले छप्रत्ययका अधिकार चलता है । छस्थाने इय भवति । यह अधिकार सूत्र है । तेन क्रीतं सूत्रके पहले जिन सूत्रोंसे जो अर्थ उक्त है उसी अर्थबोधमें छप्रत्ययका अधिकार है । **उगवादिभ्य** उकारान्तशब्द, गो आदिशब्दोंसे हितं अर्थमें यत् हो । प्राक्क्रीतात्, तेन क्रीतं सूत्रसे पहले यह नियम है । छका बाधक यत है । अतः तेन क्रीतंके पहलेके अर्थोमें यत्प्रत्यय उकारान्त और गो-आदि शब्दोंसे होगा । छ बाधित है । उवर्णान्तका उदाहरण—शङ्कवे हितं कीलोपकारकं शङ्कव्यं=शङ्कु खूंटीके योग्य दारु (काष्ठ, लकड़ी) चतुर्थ्यन्त पशु शब्दसे उपकार्योपकारक समर्थ । (अधिकार तस्मै हितम्) सूत्रसे हित अर्थमें यत् हुआ । भसंज्ञा, ओर्गुणः, उको गुण, वान्तोयि प्रत्यये, अवादेश **शङ्कव्यम्** । खूटीके लिए हितकारक काष्ठ । एवं पशवे हितं पशव्यं पशुओंका हितकारी खाद्यवस्तु । भानवे सूर्याय हितम् **भानव्यां** हविः पुष्पं, गुरुवे हिता गुरव्या दक्षिणा । गवे हितं गायके लिए घास, खली, गोशाला हितकर है । चतुर्थ्यन्त भोग्यभोजक समर्थगोशब्दसे तस्मैहितं हितकारी अर्थमें यत्प्रत्यय वान्त अवादेश **गव्यम्** । महिष्यै हितम् महिष्यम् तृणादिः घोटकाय हितं **घोटव्यं** चणकम् (ग०) **नाभि** शब्दके स्थानमें नभ आदेश और

रथनाभावेवेदम् (शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वम्) शुन्यम् शून्यम्॥ (ऊधसोऽनङ् च) ऊधन्यः॥ **कम्बलाच्च संज्ञायाम्** ।५।१।३। यत्। कम्बल्यम् ऊर्णापलशतम्। संज्ञायां किं ? कम्बलीया ऊर्णा॥ **विभाषा हविरपूपादिभ्य** ।५।१।४। आमिक्ष्यं दधि, आमिक्षीयम्। पुरोडाश्यास्तण्डुलाः, पुरोडा-

---

यत्प्रत्यय भी हितकारी अर्थमें (सच्छिद्ररथाङ्गं नाभिः) रथके चक्रका छिद्र नाभि है। जीवकी नाभि अग्राह्य है। तदनुप्रविष्टः काष्टविशेषो अक्षः, उस छिद्रमें प्रविष्ट काष्ठ अक्ष है धुरा वह नाभिके अनुगुण है। उसका हितकारी प्रत्ययार्थ है। जहां शरीरका अङ्ग है वहां नाभिसे शरीरावयवात् यत् है। अक्षदण्डका प्रवेश भाग छिदवाचक नाभये हितं चतुर्थ्यन्त नाभिसे हितकारक अर्थं (उगवादिभ्यो) यत् नाभिके नभ आदेश अलोप तद्धितान्त प्रा॰ कार्य। उसी नाभिके लिए हितकारी नभ्यमञ्जनं रथनाभिका तेल। वह सरलतया घुमानेमें हितकारी भी है। यन्त्राय हितं तैलं (ग्लेसरीन वारलीन्) आदि। शरीरका अयवय नाभिके यत् न

रथनाभौ-एवं इदं, रथका अङ्ग छिद्र, उसमें काष्ठका प्रवेश। तैलाभ्यङ्गसे स्नेहन ही हिता है। यदि शरीरका अवयव लेंगे तब शरीरावयवाद्यत्से नाभ्यं बनेगा। नभ आदेश नहीं होगा। दूसरा गुणसूत्र=शुनः=श्वन् शब्दसे हित अर्थमें यत् हो। प्रकृतिके व को उ सम्प्रसारण हो। उसको पक्षमें दीर्घ भी। शुने हितं कुत्तेके लिए एकान्त शान्त हितकारी स्थान शून्यं श्वन्से यत्। व को उ, दीर्घ। पक्षमें नहीं, तब शुन्यं। चकार अनुक्त 'यत्' का संग्राहक हैं। अतः टिलोप नहीं। सम्प्रसारण-पररूपसे अन नहीं रहा। प्रकृतिभाव दुर्लभ। तीसरा गणसूत्र-**ऊधसः**= ऊधस शब्दसे यत् हो, अनङ् आदेश भी। ङ इत्। नकारका अकार उच्चरणार्थ। ङित् न होनेसे अन्त आदेश। ऊधसे हितः ऊधन्यः, गौः दूधके लिये भली गाय या हरीघास आदि। ऊ-धस्से यत् अनङ् अनुबन्ध लोप आदि। ये चाभावकर्मणोःसे प्रकृतिभाव। अन् का लोप नहीं। कम्बलसे यत् हो तेन क्रीतंसे पहलेके अर्थोमें। संज्ञा रूढ़ि प्रसिद्धिमें। कम्बलाय हितं भेड़का ऊन कम्बलके लिये हितकारी प्रसिद्ध है। कम्बलसे यत् आदि कम्बल्यम्। ऊनके पलशतं-अनेकभार, सौ भेड़। संज्ञा क्यों ? कम्बलीया उर्णा छ-ईय हुआ। किस लिए निश्चित नहीं, न संज्ञा, न रुढ़ि।

विभाषा हवि=हवनीय विशेष अर्थवाचक शब्दसे और अपूपादिगण पठितसे यत् हो, तेन क्रीतं पहलेके अर्थोमें। पक्षमें छभी, आमिक्षायै हितं छेना गरम दूधमें दही छोड़नेसे फटे दूधका स्थूल अंश आमिच्छा अर्थमें यत्। आकार लोप आमिक्ष्यं दधि उपकारक है। पक्षमें छ-ईय आमिक्षीयं दूध फाड़नेकी दहीं नीबू। पुरो दाश्यते दीयते पुरोडाशः पुरोडाशसे यत्। यह हवि है उसमें उपयोगी तण्डुल। छ होनेपर ईय। अपूपेभ्यो हितं मालपूयेके लिए चीनी मैदा आदि हित अर्थमें अपूपसे यत् अलोप आदि। जब छ-ईय तब अपूपीयं चूर्णम्। घी शक्कर आदि। तण्डुल, पृथक्, मुसल कर्णवेष्टक आदि गणमें अन्नविकारेभ्यश्च पढ़ा गया। अन्नके जितने

शीयाः। अपूप्यम् अपूपीयम्॥ **तस्मै हितम्** ।५।१।५। वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक्। शङ्कव्यं दारु। गव्यं हविष्यम्। **शरीरावयवाद्यत्** ।५।१।६। दन्त्यम् कण्ठ्यम्, नस्यम् नाभ्यम्॥ **अजाविभ्यां थ्यन्** ।५।१।८। अजथ्या यूथिः। अविथ्या । **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः** ।५।१।९। **आत्माध्वानौ खे** ।६।४।१६९ प्रकृत्या स्तः। आत्मने हितम् आत्मनीनम्। विश्वजनीनम्

भेद हैं अदनीय=भोजनके लिये है, उनसे यत् विकल्प हो, अतः ओदनाय हिताः ओदन्याः ओदनीयाः तण्डुलाः, सक्तव्या धानाः। चरव्याः तण्डुलाः में पूर्वविप्रतिषेधसे उगवादिभ्यो यत् ।

तस्मै—चतुर्थीकारकका अर्थ हो प्रत्ययार्थके साथ प्रकृत्यर्थ समर्थ हो, ऐसे शब्द से हितं हितकारी अर्थमें छ हो। परन्तु उगवादिभ्यो यत्—उवर्णान्त और गवादि शब्दसे यत्प्रत्यय हो। वत्सेभ्यो हितः (बछड़ोंके लिए हितकारी) विग्रहमें चतुर्थ्यन्तवत्ससे उपकार्य उपकारसम्बन्धमें हितकारी (दूध, अहीर भोजन, संरक्षक, रक्षक) अर्थमें, छ ईय आदेश भसंज्ञा, अलोप **वत्सीयो** गोधुक्। गाय दुहनेवाला, वत्स हितकारी सभी वस्तु ।

शरीरा-चतुर्थीविभक्ति अन्तमें हो शरीरका अवयव किसी अङ्गका वाचक शब्द हो, उपकार्यउपकारकसामर्थ्य हो तभी हितकारी अर्थमें यत्। दन्तेभ्यो=दांतोंके लिए हित रक्षकं **दन्त्यं** दन्तमञ्जनं दन्तधावनं। चतुर्थ्यन्त रक्ष्यरक्षक भावसमर्थ दन्तशब्दसे हितं मञ्जन अर्थमें यत् अलोप दन्त्यम्। एवं कण्ठाय हितं (गलेके लिए लाभदायक) कण्ठ्यं हार, कण्ठाय तस्मै हितं कण्ठ्यम् (कण्ठमालाकी दवा हित हैं) यत् अलोप। **नस्यम्**—नासिकायै हितं नाकके लिए हितकारी (सुंघनी) घ्रातव्य तमालचूर्णं इत्र। शरीरावयवसमर्थ चतुर्थ्यन्तनासिकाशब्दसे हितकारी अर्थे यत्। पद्दन्नेतिसे नासिकाके नस् आदेश स्वादिः।

अज-अवि शब्दसे थ्यन् हों हित अर्थमें। अजेभ्यः हिताः लिङ्ग विशिष्टपरिभाषा से अजासे भी हो। अजथ्यन् तसि आदिसे पुलिङ्ग। अकार लोप [अजथ्या] यूथिः झुण्ड हितकारी है, स्त्रीत्वं लोकात्। अविभ्यः हिताः झुण्ड भेड़ोंका हितकारी है। अविसे थ्यन् टाप्। अजश्च अविश्च द्वन्द्वः। अविशब्द घिसंज्ञक है। उसका पूर्वप्रयोग क्यों नहीं ? इसलिए कि अजादि और अदन्त अजका पूर्वनिपात प्रबल पड़ा।

आत्मन्-विश्वजन और भोगोत्तरपद मातृभोग आदि। चतुर्थ्यन्त समर्थसे ख हो हितकारी अर्थमें छको बाधकर। **आत्मन्** और अध्वन्, एतौ—ये दोनोंको खे ख परे, प्रकृतिभाव हो जैसाका तैसा रहे। आत्मने स्वस्मै हितं (अपने लिए उपयोगी वस्तु) विग्रह आत्मन् शब्दसे चतुर्थ्यन्तसमर्थसे हितम् उपयोगी-अर्थे आत्मन् विश्वजन सूत्रसे ख, उसको ईन आदेश। आत्मन्+ईन टिलोप प्राप्त, आत्माध्वानौ खे से प्रकृतिभाव, आत्मनीनं जगत् स्वार्थी। विश्वेषां जनः (सब लोगोंका आदमी) तेभ्यो हितं (विश्व कल्याणकर्ता) सर्वोपकारकत्वसमर्थ विश्वजन शब्दसे ख ईन अन्त्य विश्वजनीनं, विद्युत्सूर्यः, सन्तः, महात्मा।

(कर्मधारयादेवेष्यते) अन्यत्र—विश्वजनीयम् (पञ्चजनादुपसंख्यानम्) पञ्चजनीनम्। 'कुमति च' इति णः। मातृभोगीणः (आचार्यादणत्वं च) आचार्यभोगीनः॥ इति छयतोः पूर्णोऽवधिः॥

अथ आर्हीये ठञधिकारप्रकरणम्

प्राग्वतेष्ठञ् ।५।१।१८। तेन तुल्यमित्यतः प्राक् ठञधिक्रियते॥ आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक् ।५।१।१९। तदर्हतीत्येतदभिव्याप्य ठञधि=

विश्वजनीनं सबका हितैषी कर्मवाला, डाक्टर वैद्य सबके उपकर्ता हैं। कर्मधारयसे ही होना इष्ट है। विश्वः जनः विश्वजना, सब लोगोंका हितकारी। जब षष्ठीतत्पुरुषसे और बहुब्रीहिसे छ हो। विश्वस्य जनो विश्वजनः वेश्या वैद्यादिः। अथवा विश्वो जनो यस्य सः विश्वजनः, तस्मै हितं अर्थमें छ ही हो, छको ईय आदि। (वा०) पञ्चजनसे हित अर्थमें ख कहे। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और रथकार जाति पञ्चजन है। उनसे हित अर्थमें ख—ईन पञ्चजनीनं

मातृभोगीनः मातुर्भोगः शरीरं तस्मैहितं माताके शरीरका हितकर्ता, वस्त्रं पिता, पितृर्भोगः देहः नस्मैहितः पितृभोगीणः। खप्रत्यय ईन आदेश, अन्त्य अलोप, कुमतिसे णत्व पुत्रभोगीणः स्त्रीभोगीण।

आचार्य से परे भोगीन शब्दके न को ण नहीं होता। यद्यपि असमान पद है णत्व प्राप्त नहीं, निषेध व्यर्थ है। तन्न, मातृभोगीणः आदिमें णत्व प्रमाणित है उस आधार पर प्राप्त णत्वका निषेध आवश्यक। आचार्यभोगाय हितः, आचरणशीलः। शरीरका हितैषी अर्थमें ख—ईन णत्वका अभाव। अहिरिव भोगैः पर्येति मन्त्रमें भोगशब्द शरीरवाची। इति प्रभाकरमिश्र प्रभाकर्या छयतोः पूर्णोऽविधिः।

छयप्रत्ययके पश्चात् ठञ् अधिकारका प्रारम्भ। इस प्रकरणके विशेष प्रत्यय औ सूत्रोंका शीर्षक दिया है। प्राक् तेन तुल्यं क्रियाचेद्वतिः सूत्रसे वति प्रत्ययका विधान बोला जायगा। पहले ठ प्रत्ययका अधिकार है। उन सूत्रसे कहे गये अर्थोंमें ठ हो।

आर्हाद्—तदर्हति सूत्रके अर्हतका एक अंश अर्हः है अच्प्रत्ययान्त न समझें, तिङन्तका एकदेश षष्ठयन्त ही माने, व्याख्यानसे। तदर्हति सूत्र तक ठञ्के अधिकार चलाते है। गोपुंछ संख्या परिमाणको छोड़कर। आर्हःमें आङ्का अभिव्याप्ति अर्थ है। जहां प्रत्यय नहीं कहा गया वहां ठञ् हो, संख्या ग्रहण न करें। परिमाणसे संख्याको अलग क्यों पढ़ा। दोनोंका फल एक है। क्योंकि परिमीयते परिच्छिद्यते येन तत्परिमाणं, संख्या भी परिच्छेदक व्यावर्तक है। चार कहनेसे तीन, पांच अलग होते है। इस विषयमें प्रमाण—श्लोकवार्तिक—

ऊर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः।
आयामस्तु प्रमाणं स्यात्संख्याबाह्या तु सर्वतः॥

तुलादी=तराजू पर रखकर द्रव्यगुरुत्वं=हल्का भारीपन अलग करते हैं। समान भार उन्माद है। पलड़ा ऊपर उठाकर तौलना ऊर्ध्वमानं है। ऊर्ध्वं मीयते परिच्छि-

कारमध्ये ठञोऽपवादष्ठगधिक्रियते। गोपुच्छादीन्वर्जयित्वा॥ **असमासे निष्कादिभ्यः ५।१।२०।** आर्हादित्येतत् तेन क्रीतमिति यावदनुवर्तते, निष्कादिभ्योऽसमासे ठक् आर्हीयेष्वर्थेषु। निष्केण क्रीतमिति–नैष्किकम्। समासे तु ठञ्॥ **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः ।७।३।१७।** उत्तरपदवृद्धिर्त्रिदादौ। परमनैष्किकः॥ **शताच्च ठन्यतावशते ।५।१।२१।** शतेन क्रीतं शत्यम्, शतिकम्। अशते: किं? **संख्याया अतिशदन्तायाः कन् ।५।१।२२।** आर्हीये-

---

यते येन तत् उन्मानं, क्विन्टल किलोग्राम गुञ्जा माष निष्क सुवर्ण पलादि, परिमाण क्या है ? सर्वतः चारों तरफसे छील छालकर काष्ठका बना आयत लम्बाई चौड़ाई उंचाईका पात्र हो, खारी कुडव आदिसे धान्य नापकर अलगाये जाते हैं। वह परिमाण है। आयामका लक्षण–आयामो दैर्ध्यञ्च लम्बाई ऊंचाई नापी जाय वह प्रमाण है। गज, फुट, इञ्च, अरत्नि प्रादेश, मुष्टि हाथ विस्ता–इन तीनोंमें संख्या नहीं आती, बाहर होना सिद्ध। एकत्वद्वित्वादि–वस्त्रादि हांथसे नापे जाते है ऊंचा नीचा भाग। हास्तिनमुदकं हांथी डुबाव जल। उरुद्वयसं कमर तक पानी। इनमें एक दो अर्थस्पष्ट नहीं।

असमासे—निष्क, पण, पाद, माष, वाह, द्रोह, षष्टि ये सात निष्कादि है। इनसे असमासे=समास न हुआ हो तब ठक हो। संज्ञा रूढ नाम और शाण=कसौटी का पत्थर या सन आदिके शब्द न हो तब। आर्हीय अर्थोमें तदर्हतिसे लेकर तेन क्रीत के सत्रह सूत्रोंमें अनुवर्तते—शामिल होता है। इस गणमें दोषका परिमाण और षष्ठी संख्यावाची दोनोंसे ठञ् प्राप्त था बाधकर ठक्। अन्य पांच शब्दोंमें उन्मात तौला हुआ मानकर पूर्वसूत्रसे ठक् होता। समासमें ठक्के निषेध वास्ते पढ़ा। निष्केण क्रीतं—हार द्रव्य, बटवारासे खरीदा हुआ अर्थ ठ–इक आदिवृद्धि नैष्किकं, जब समास हो तब ठञ् ही होता है। परमनिष्कः से ठञ् इक। आदिवृद्धि प्राप्त था उसका बाधक।

परिमाण=मात्रावाचक शब्द अन्तमें हो उसके उत्तरपदके आदि अच् नि में इ को ऐ वृद्धि। आदिवृद्धिके प्रसङ्गमें उत्तरपदके अधिकारमें पढ़ा, सूत्र। प्ररमनिष्केण क्रीतः मूल्यवान् द्रव्यसे खरीदा हुआ।

शताच्च आर्हीय अर्थोमें शतसे ठन् यत् हो। न तु शतेः=सौ संख्या अर्थ न हो तब। उत्तरसूत्रसे प्राप्त कन्को बाधकर। शतेन सौ रुपयेसे खरीदी वस्तु वस्त्र वत्स (बछड़ा) अर्थमें ठ–इक शातिकं जब यत् तब शत्यम्, अशतेः किं? सौ सङ्ख्याका समुदाय अर्थमें कन् हो, ठक् न हो। सौ संख्या अर्थ खुल रहा है।

संख्यायाः—तिश्च शच्च तिशतौ तौ अन्त्ये यस्याः सा तिशदन्ता। जैसे-विंशति में ति, त्रिंशत्में शत् अन्त है। ऐसे स्थलमें कन् न हो, अन्य स्थलमें कन् हो। आर्हीय–योग्यता अर्थमें द्वन्द्व, बहुव्रीहिमें तत्पुरुष समास। पांच रूपयासे खरीदा सामान पञ्चकः। पञ्चन्से खरीदने अर्थमें कन्। बहुभिः क्रीतः बहुतधनसे खरीदी

ऽर्थे। शतं परिमाणमस्य शतकः सङ्घः, बहुकः। त्यन्तायास्तु-साप्ततिकः। शदन्तायाः-चात्वारिंशत्कः। **वतोरिड्वा** ।५।१।२२। वत्वन्तात्कन् इड् वा। तावत्कः, तावतिकः॥ **कंसाट्टिठन्** ।५।१।२५। कंसिकः (अर्धाच्चेति वक्तव्यम्) अधिकः॥ **अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्** ।५।१।२८। अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च परस्यार्हीयस्य लुक्। अध्यर्धकंसम्। संज्ञायां तु-पाञ्चकपालिकम् **तेन क्रीतम्** ।४।१।३७। टच्, गोपुच्छेन क्रीत गौपुच्छिकम्। साप्ततिकम्।

वस्तु। बहुस कन् आदि बहुकः, त्यन्ता=ति अन्त शब्द सप्तति (सप्तत्या, क्रीतः) सात पैसेसे खरीदा, तेन क्रीतं ठञ्-इक। साप्ततिकः कर्गलः। शत अन्तका उदाहरण—चत्वारिंशता क्रीतः, चालीससे खरीदा हुआ। तेन क्रीतंसे ठञ्। त से परे ठको क हुआ। कन्का निषेध भी। अर्थवान् ति मान्य। निरर्थकसे कन् ही होगा। कतिभिः क्रीतः, कातिकः कितनेसे खरीदा। वतोः **पञ्चमी**। प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणंसे तदन्तविधि। कन् प्रथमा, वतुप् प्रत्यय अन्तमें हो उससे कन् कहें विकल्पसे। तावता क्रीतः तावतिकः यत् तत् एतद्से वतुप्। आसर्वनाम्नःसे आत्व। बहुगणवतुसे संख्यासंज्ञा, कन्। वतोः **इट्**। टित् आदि अवयव तावतिकः। यदा न इट तावत्कः।

कंससे टिठन् हो आर्हीय अर्थमें। ट इत्का ङीप् फल, इकार उच्चारणाय। कंसेन क्रीतः लोहे या किलोसे खरीदा सामान अर्थमें कंससे टिठन् अनुबन्धलोप ठ-इक। ङीप्भी कंसिकी (वा०) अर्धशब्दसे भी टिठन् कहे। अर्धेन क्रीतः, आधी मुद्रासे क्रयण, ठ-इक ङीप्भी। **अध्यर्ध** शब्दः पूर्वो यस्य अध्यर्धपूर्वः समाहार द्वन्द्वसे पञ्चमी अथवा अध्यारूढमर्धं यस्मिन् तदध्यर्धः। सौत्रं पुंस्त्वं, द्विगोः पञ्चमी है न षष्ठी, अध्यर्ध पूर्व में हो या द्विगुसमास हो उससे परे आर्हीय योग्यतासूचक अर्थके प्रत्ययका लुक् हो। अध्यारूढं अर्धं आधी मात्रा अधिक (डेढ़) प्रादिभ्यो धातुजस्य समासादिः। सार्ध अर्धसहितेन परिमाणेन कंसेन क्रीतं, तद्धित अर्थपरे द्विगुसमास, संख्याया अतिसे कन् उसका इसी सूत्रसे लुप्, लोहेकी वस्तु कंस है उसके डेढ़ीभागसे खरीदा हुआ, द्वाभ्यां कसाभ्यां क्रीतं, दो कस परिमाणसे, क्रीत वस्तु। समासे, तेन क्रीतंसे ठक् उसका इस सूत्रसे लुक्। ये दोनों किसीमें रूढ़, संज्ञा नहीं है। जहां संज्ञा किसीका नाम हो वहीं लुक् नहीं होता। पञ्चकलायाः या कलापाः परिमाणमस्य, (पांच ग्राम) संख्या पूर्वशब्दसे तद्धितः तदस्य परिमाणंसे परिमाणं अर्थमें ठञ् परे तद्धितार्थ उत्तरपदसे परे द्विगुसमास। ठञ्का लुक् नहीं। किन्तु इक। संख्यासंज्ञा-सूत्रमें अध्यर्धं पूर्वका पाठ है एवं पाञ्चलोहितिकं—पञ्चलोहित्यः गुञ्जाः परिमाणमस्य विग्रहे पूर्ववत्कार्यं। भस्याढे सूत्रसे पुंभाव। लोहिनिका ङीप् और नत्व लौटा। द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं (द्विशूर्पं) द्विशौर्पिकं, ठञ्का लुक् क्यों नहीं? द्विगुका कारण आर्हीय प्रत्यय न होनेसे।

तेन करणतृतीयान्त साध्यसाधनसमर्थ शब्दसे क्रीतं खरीदा हुआ अर्थमें या क्रयणक्रियाके कर्म साध्य अर्थमें ठञ् हो। कोई भी तृतीयान्तशब्द (वस्तु सामग्री खरीदनेमें) समर्थ हो। तभी ठञ् हो। यथा—सप्तत्या सप्तरुप्यकेण (सात रुपयेसे)

ठक्, नैष्किकम् ॥ तस्येश्वरः ।५।२।४२। सर्वभूमिपृथवीभ्यामणञौ स्तः । 'अनुशतिकादीनां चेति वृद्धिः । सर्वभूमेरीश्वरः, -सार्वभौमः ॥ तदस्य परिमाणम् ।५।१।५७। प्रस्थः परिमाणमस्य-प्रास्थिको राशिः । (स्तोमे डविधिः) पञ्चदश मन्त्राः परिमाणमस्य पञ्चदशः । सोमयागेषु च्छन्दोगैः क्रि

क्रीत खरीदी वस्तु साप्ततिकम् । खिलौना, बन्दूक, मिष्ठान्न आदि । खरीदी वस्तुका साधनसात संख्या है । क्रयणक्रियाका साधन है, वस्तु साध्य है । प्रकृतिका अर्थ साधन प्रत्ययका अर्थ साध्य । तृतीयान्तसाधनसमर्थसप्तति क्रीतं (साध्य) अर्थमें तेन क्रीतंसे ठञ्प्रत्यय । ठ इक ञित्से आदिवृद्धिः, क्रयणसाधन सप्ततिके अन्त्य इका यस्येति-चसे लोप, तद्धितान्तत्वात् प्रासंज्ञा, विभक्तिकार्य, साप्ततिकं वस्त्रम् । पुस्तकं घृतं फलं वा । प्रस्थेन पंचसेटकेन (पसेरीमें) परिच्छिन्नेन, मापदण्डेन धान्येन यवादिकेन क्रीतं क्रयणं कृतं खरीदा गया शाक, आलू, बैंगन, टमाटर आदि प्रास्थिकम् । करणतृतीयान्त खरीदनेके मूल्य साधनमें समर्थ प्रस्थसे क्रीतं प्रास्थिकं (खरीदनेकी प्रकृतिका साधन, प्रत्ययका साध्य अर्थ है । विंशत्या क्रीतं वैंशतिकम् । द्वाभ्यां क्रीतं द्विकं फलम् । सहस्रेण क्रीतः साहस्रिका गौः । पञ्चाशतसहस्रेण क्रीतं पाञ्चाशत्साहस्रिकं यन्त्रम् । लक्षेण क्रीतं लाक्षिकम् जानताभारवाहनं (ट्रक) इति । सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ सर्वभूमि और पृथिवीशब्दसे यथासंख्य-क्रमसे अण् और अञ हो । इसकी अनुवृत्ति अगले सूत्रमें ।

तस्य षष्ठ्यन्तसम्बन्धसमर्थशब्दसे ईश्वर इत्यर्थमें प्रत्यय है । अनुवृत्तसर्वभूमि शब्दसे ईश्वर अर्थमें अण्, पृथ्वीशब्दसे अञ् हो । अनुशतिकादिः —गणमें तद्धित शब्दोंके उभयपद दोनोंपदोंकी आदिवृद्धिः हो, ञित् णित्, कित्परे । ये तद्धितके ही हो । सर्वभूमेः (समस्त पृथिव्याः) ईश्वरः स्वामी राजा सम्पूर्ण पृथ्वीका चक्रवर्ती सम्राट् सार्वभौमः । षष्ठ्यन्तस्वामित्वसमर्थसर्वभूमिपदसे सर्वस्वामित्व अर्थमें यस्येश्वरःसे अण् सर्वभूमि अ । अनुशतिकादीनाञ्चसे दोनों पदकी आदिवृद्धिः, इलोप, सार्वभौमः अखण्डभूमेश्वरः । पृथिव्याः ईश्वरः (पृथिवीका स्वामी राजा अर्थमें) स्वामित्वसमर्थ-पृथिवीशब्दसे ईश्वरअर्थमें अञ्, आदिवृद्धिः, इलोप पार्थिवः । दोनों प्रत्ययमें एकरूपता होने पर स्वरमें अन्तर । अञ् आदिः उदात्तः ।

तदस्य–परिमाण अर्थमें प्रथमान्तसे यथायोग्य प्रत्यय हों । सूत्रके परिमाणशब्द से जितने परिच्छेदक—भेदक धर्म है । ग्राम किलो क्विटल द्रोण आढक संख्या आदि सबकी स्वीकृति है । उत्तरसूत्रमें संख्या परिमाणका विशेषण है । परिच्छेदिका का विशेषण है । परिच्छेदिका होनेसे संख्या भी परिमाण । अतः षष्टिः जिवितं परिमाणमस्य षाष्टिकः सेवामुक्तः । साठ वर्षका हुआ या छः वर्षका बालक । सोऽस्य पढ़ा ही था, तदस्य क्यों पढ़ा ? इसलिएकि द्वे षष्टी जीवितं परिमाण मस्य द्विषाष्टिकः । त्रिषाष्टिकः, अध्यर्धसे ठञ्का लुक् न हो । प्रस्थं परिमाणम्, एक-पसेरी मापवाली राशिका नाम प्रास्थिकः, प्रस्थ ठञ इक आदिवृद्धि ।

यमाणा पृष्ठ्यादिसंज्ञिका स्तुतिः स्तोमः ॥ पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्ततिअशीतिनवतिशतम् ।५।१।५९। एते रुढ़िशब्दा निपात्यन्ते। तदर्हति ।५।१।६३। श्वेतच्छत्रमर्हति श्वैतच्छत्रिक ॥ दण्डादिभ्यो

स्तोमे-तदस्य परिमाणम् अर्थमें संख्यावाची शब्दसे ड प्रत्यय कहे। समान मन्त्रसमुदायका नाम स्तोम है इति कैयटः। मनुष्यसमुदायमें लाक्षणिक है। पञ्चदश-पन्द्रहमन्त्र परिमाण हैं जिस स्तुतिका अर्थमें पञ्चदशन्से ड-अ प्रत्यय। डित्की शक्तिसे टिलोप। पञ्चदशमन्त्रसमुदायः पञ्चदशः। सप्तदशः सत्रहमन्त्रोंका समुदाय अर्थमें आदि सप्तदश। यदि ड इत् न होता नस्तद्धितेसे टिलोप सिद्ध था डित् पढ़ना व्यर्थः है। तत्र, एकविंशतिर्मन्त्राः मन्त्रकी स्तुतिका नाम एकविंशः। एकविंशतिसे ड अ। तिविंशतेर्डितिसे टिलोप। एकविंशः। सोमयज्ञोंमें छन्दोगाः=वेदमन्त्र गायन कर्ताओंसे की गयी पृष्ठी, रथन्त, आदि मन्त्रोंके गुणोंका वर्णन जिसमें हो वह स्तुति स्तोम है वही ड प्रत्ययका अर्थ।

क्रमके अनुसार पक्ति शब्द, दससंख्याअर्थमें भी है। पंक्तिः १०, विंशतिः २०, त्रिंशत् ३०, चत्वारिंशत् ४०, पञ्चाशत् ५०, षष्टि ६०, सप्ततिः ७० अशीति ८०, नवतिः ९०, शतन् १००, एते रुढ़िशब्दाः। तदस्य परिमाणं-संख्याके परिमाण अर्थमें निपातनसे सिद्ध है। यद्यपि पङ्क्तिशब्द नानाअर्थदायक है। क्रम-सन्निवेश अर्थमें ब्राह्मणपंक्तिः। पिपीलिकापङ्क्तिः। चीटी लाइन। दससंख्या अर्थमें प्रसिद्ध है। पङ्क्तिरथो दशरथः, छन्दसो विशेषे भूमौ च पङ्क्तिः पञ्चपादाः परिमाणस्य पंक्तिश्छन्दः। पांचचरणवाला छन्द। पञ्चशब्दसे परिमाणअर्थे तिप्रत्यये, टिलोप, कुत्व, अनुस्वार परसवर्ण। विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येयसंख्ययोः तासु चावनतेः स्त्रिय इत्यमरः। विंशति, त्रिंशत् इत्यादिशब्द संख्येय गणनीयवस्तु अर्थमें और संख्या अर्थमें, सदा एकवचनान्त प्रयोग किये जाते हैं। संख्येय वस्तु अर्थमे विंशतिर्गावः। विंशतिशब्द बीस संख्यावाली वस्तु (गाय) अर्थमें प्रयुक्त है। गवां विंशतिः गायोंका बीस (संख्या प्रधान) है। वस्तुप्रधान संख्येय, संख्या प्रधान, संख्या विंशति इत्यादिशब्द दशत्से सिद्ध हैं। 'पञ्चद्शतौ वर्गे अर्थमें दशत् शब्द बना। दशन् शब्दसे प्रत्येकके साथ व्यहारचातुर्य देखिये। द्वौदशतौ परिमाण-मस्य समुदायस्य, दो दस (२०) संख्या परिमाण, मात्रा है जिस संघका द्विदशत् शब्दसे परिमाण (अर्थे शतिच्) प्रकृतिः द्विशत्स्थाने 'विन्' आदेश निपातनसे हुआ। (सूत्रमें पतितशब्दोंकी प्रयोगसिद्धिके अनुरोधसे प्रकृति प्रत्ययकी कल्पना निपातन है) विन्-शतिच्' अनुबन्धलोप नको अनुस्वार। विंशतिः संघ और संघीके भेद और अभेद सम्बन्धसे गवां विंशतिः भी सिद्ध है। एवं त्रयोदशतः परिमाणमस्य संघस्य (तीनदश) तीससंख्याका संघसे शत्प्रत्यय। त्रिदशंको त्रिन् आदेश। त्रिंशत् चत्वारो दशतः (चारदस ४०) संख्याका समुदाय, प्रकृति चत्वार् दशसे शत् चत्वारिन् आदेश, बना चत्वारिंशत्। पञ्चाशत् पञ्चदशतः (५०) को 'पञ्चा'

यत् । ५।१।६६। एभ्यो यत् । दण्डमर्हति दण्ड्यः अर्घ्यः बध्यः ॥ **तेन निर्वृत्तम्** ।।५।१।७९। अह्ना निर्वृत्तम् आह्निकम् ॥ इति ठञ्ठकोरवधिः

अथ भावकर्मार्थकप्रकरणम

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ।५।१।११५। ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवत् अधीते ।

आदेश शत्प्रत्यय । षड्दशतः परिमाणं संख्या अस्य ६० संख्याके छात्रसंघ । षष् आदेश तिप्रत्यय षष्टिः सप्ततिः सप्तदशतः परिमाणं सात दश (७०) अष्टादशत (८०) संख्याकसंघ ति प्रत्यय अशी आदेश, आशीति । नवतिशतं परिमाणं नव्बेः संख्याक समूह (ति) प्रत्यय । नव आदेश । जयतिशतं दशदशतः संख्या । दशदहां (सौ) यहां सभी प्रकृतिप्रत्यय निपातनानुरोधी हैं ।

तत्—द्वितीयान्त समर्थ कर्मवाचक क्रियाकारकसामर्थ्य द्वितीयान्तशब्दसे अर्हति लब्धुं योग्यो भवति प्राप्त करने योग्य अर्थमें अञ् आदिः । यथा-श्वेतच्छत्र सफेद छाता अर्हति पाने योग्य है । इस अर्थमें प्राप्यप्रापक समर्थ श्वेतच्छत्रशब्दसे प्राप्तिके योग्य अर्थमें ठक्-ठ इक, आदिवृद्धिः अलोप, विभक्तिसम्बन्धि कार्य । श्वैतच्छत्रिकः । सुवर्णपदकं लब्धुं योग्यो भवति सौवर्णपदिकः । चन्द्रपदकं लब्धुं योग्यः चान्द्रपादिकः । सहस्रं लब्धुं योग्यः साहस्रिकः । पुरस्कारं पौरस्कारिकश्छात्रः धनं धानिकः । विद्या लब्धुंयोग्यो भवति वैदिकः ।

दण्ड–आदि गणपठितः, कर्मणि कुशलः, प्रापकसमर्थद्वितीयान्तशब्दसें दण्डम् अर्हति योग्यो भवति दण्ड्यः दण्डनीय व्यक्ति । अपराध (प्रकृतिका) अर्थ, दण्ड फललाभके योग्य प्रत्ययका अर्थ । अर्घ्यं मूल्यं पूजाविधि वा अर्हति मूल्यके योग्य वा पूजाविधिके योग्य प्रत्ययका अर्थ । द्वितीयान्त अर्च्यअर्चक सम्बन्धसमर्थ अर्घ-शब्दात् लब्धुं योग्यअर्थमें दण्डादिभ्यो यत् अलोप अर्घ्यः । वधम् अर्हति बध्य । वधलायक नहि पुरुष अनूपा । अवध्यः । वध् शब्दसे यत् आदि । तेन-करणतृतीयान्त साधन अर्थमें तृतीया विभक्ति हो, तब कालवाचक शब्दसे निर्वृत्त—निष्पन्नं, सिद्धं (सफल हुआ) अर्थमें ठञ् हो । अह्ना दिन भर करणमें तृतीया कालवाची अहन् शब्दसे निर्वृत्त-सिद्ध अर्थमें ठञ् । प्रकृतिका काल अर्थ, प्रत्ययका सिद्ध अर्थ । अहन् शब्द निर्वृत्त अर्थे ठञ् ठस्येकः अल्लोपोनः अकारलोप, आदिवृद्धिः आदि । आह्निकं भाष्यम् । ठ और ख प्रत्ययमें नस्तद्धिते सूत्र नियन्त्रित है, अह्नष्टखोरेव इति सूत्रात् ।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकर्यां ठञोऽवधिः ।

भावकर्मार्थाः—त्व और तल् प्रत्ययके अधिकारमें भाव और कर्म अर्थमें प्रत्यय होंगे । किसी शब्दमें व्यक्ति धर्म जाति गुण क्रिया आदि विशेषतायें ही भाव और कर्म है । प्रकारी (विशेषणी) भूत धर्म ही भाव है । (फलजनक) क्रिया ही कर्म है । इनकी प्रधानताका प्रकरण आरम्भ । तुल्य क्रिया अर्थमें (वत्) प्रत्ययका विधायक सूत्र तेन उपमानवाची हो कर्तृतृतीयान्त हो, उपमेयके साथ क्रियाकी तुल्यता समानता हो तब समर्थ पदसे वत् हो । तृतीयान्तेन तुल्यं-क्रियाफलजनक

क्रिया चेत् किम् ? गुणतुल्ये मा भूत् । पुत्रेण तुल्यःस्थूलः ॥ तत्र तस्येव ।५।१।११६। मथुरायामिव मैथुरावत्स्रुघ्ने प्राकारः । चैत्रस्येव चैत्रवत् मैत्रस्य गावः ॥ तस्य भावस्त्वतलौ ।५।१।११९। प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः । गोर्भावो गोत्वं,गोता (त्वान्तं क्लीबं तलन्तंस्त्रियाम्) आच त्वात्

कर्म है तब वति,इ-इत् वत् जिसके अन्तमें हो, वह अव्यय और क्रियाविशेषण मान्य,दो व्यक्तिमें क्रियाका सादृश्य सम्भव हो, उपमानशब्दसे वत् प्रत्ययके अर्थका लाभ हो । यथा—ब्राह्मणेन==वेदज्ञानतप-सदाचारपूतेन, ब्राह्मणत्वधर्मवता तुल्यं सदृशम् अधीते अध्ययनक्रियां कुरुते । ब्राह्मणवत् । जैसी अध्ययन क्रिया ब्राह्मणमें वैसी क्रिया अन्य क्षत्रिय आदिमें हो, वे ब्राह्मणवत् हैं । ब्राह्मणलक्षणं-तपः श्रुतञ्च योनिश्च एतद् ब्राह्मणकारणम् । तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जाति ब्राह्मण एव सः । विप्रके समान पढ़ता है सदृश, अतः अध्ययन क्रियाकीं तुल्यता समानता क्षत्रिय आदिमें आरोपित, कर्तृतृतीयान्त ब्राह्मणशब्दसे तुल्य अर्थमें (तेनतुल्यं क्रिया चेद्वतिः) से इत्संज्ञक वत्प्रत्यय ब्राह्मणवत् तद्धितान्तप्रासंज्ञा सुबादि अव्ययसंज्ञा-अव्ययादाप्सुपोसे विभक्ति लुक् । क्रियाचेत् किम् ? उपमान उपमेयमें क्रिया की ही बराबरी हो ऐसा अर्थ क्यों कहा ? इसलिए कि गुणतुल्ये माभूत् गुणकी समानतामें वत् न हो । यथा पुत्रेण तुल्यः सदृशः स्थूलः=पीनः पुत्रके समान मोटा तगड़ा । यहाँ मोटाई गुण है क्रिया नहीं, वत् नहो,अतः क्रिया पढ़ा । पुत्रवत् स्थूल इति वाक्यं न भवति । अरविन्द वत् अधीते मकरन्दः । भीमवत् भुङ्क्ते भागिनेयः भीमकी तरह खाता है भोजन क्रियाकी तुल्यता । परशुरामवत् युध्यति अर्जुनः ।

तत्र-सप्तम्यन्त (अधिकरणवाचकपद) तस्य = षष्ठयन्त (सम्बन्धी वाचक) पदसे इव सादृश्य (समानता) अर्थमें वत्प्रत्ययहो यथा - मथुरायामिव, मथुरावत्, मथुरामें जैसी छहरदिवाली प्राकार (चतुर्दिक्षु आवरणम्) वैसा ही स्रुघ्न देशमें चौतरफा घेरा है । सप्तम्यन्त (सादृश्यबोधमें समर्थ) मथुरा शब्दसे इव (तुल्य) अर्थमें इ इत् 'वत्, मथुरावत् । काश्यामिव काशीवत् अयोध्यायां वैदुष्यम् । त्रिपाठीवत् शुक्ले वैदुष्यम् । शिवकुमारवत् देवस्वरूपः । शास्त्रार्थ क्रिया की तुल्यता षष्ठयन्तका उदाहरण - द्रव्यकी तुल्यता, चैत्रस्येच (चैत्रसम्बन्धी गायकी तरह) चैत्रवन्मैत्रस्य गावः । गोविषयक सादृश्यसम्बन्धसमर्थ चैत्रशब्दसे इव अर्थमें वतिप्रत्यय मकारपरे, तको परसवर्ण अनुनासिक हुआ । क्रिया अर्थके वतिप्रत्ययका बाधक, द्रव्य कीसमानतामें वतिप्रत्यय है । महाशयवत् त्रिपाठिनः शिष्याः । पतञ्जलेरिव भर्तृहरेः व्याकरणत्वम् । प्रधानमन्त्रिण इव मुख्यमन्त्रिणो अनुशासनम् ।

तस्य षष्ठयन्त - सम्बन्धसमर्थशब्दसे भाव अर्थमें त्व और तल्प्रत्यय हो । भाव क्या है ? ऐसी जिज्ञासा शान्तिके लिए लक्षणप्रस्तुत करते है । प्रकृतिजन्यबोधे=जिस सुबन्त (समर्थशब्दसे) 'त्व' या ,तल्, प्रत्यय हो वह प्रकृति है । जैसे - गोशब्दसे त्व हुआ गोत्व बना । यहां गो प्रकृति है । तज्जन्यबोधे-उस प्रकृतिसे उत्पन्न बोध (गुण

।५।१।१२०। ब्रह्मणस्त्वः, इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियते। अपवादैः सह समावेशार्थमिदम्। चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः स्त्रिया भावः-स्त्रैणं स्त्रीत्वम्' स्त्रीता। पौंस्नम्, पुंस्त्वम्, पुंस्ता। पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५।१। १२२। वा वचनमणादिसमावेशार्थम्॥ र ऋतो हलादेर्लघोः ।६।४।१६१। इष्ठेमेयस्सु। टेः।६४।१५५। लोप इष्टेमेयस्सु (पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढ

क्रिया जाति द्रव्य) जितने विशेषण हों विशेष अर्थ का ज्ञान कराये सभी गो प्रकृतिके अर्थ है। उसी अर्थ को खोलनेवाला जैसे – गोशब्दसे गुण क्रिया सास्नालङ्गूल ककुद विषाण आदि अर्थका ज्ञान गो (प्रकृति) से होता है। गोशब्दमें जो जो अर्थ विशेषता विशेषण हैं उन सभीको भाव कहते हैं। जो विशेषण भाव विद्यमानसत्ता से विशेष्य में रहते है। जैसे – जाति गुण क्रिया द्रव्यमें रहती है। गोव्यक्तिमें गोत्व जातिभीं भाव पदार्थ है। गोत्व प्रकारक गोविशेष्यकः तत्र प्रकारः विशेषणं गोत्वं, स भावप्रत्यार्थः मुख्यविशेषतानिरूपित या प्रकारताश्रयः। यथा-गोर्भावः गायमें सभी विद्यमान विशेषण ही गोत्व है। षष्ठ्यन्तविशेष्य समर्थ गोशब्दसे उसी प्रकृतिमें विशेष णीभूते विराजमान अर्थमें त्व प्रत्यय। इस प्रसंगमें प्रत्ययार्थ विशेष्य है। प्रकृत्यर्थ विशे षण है। गोशब्दसे त्व तद्धितान्तजान प्रासंज्ञा स्वदिकार्य, ब्राह्मणस्य भावः ब्राह्मणत्वम् ब्राह्मणवृत्ति तप, वेदशास्त्र का ज्ञान, सदाचार जाति आदि विशेषताये त्व का अर्थ है। वैश्यत्वं (क्रयविक्रयकर्म कुशलता) क्षत्रियत्व (संरक्षण सौर्यवीर्य पराक्रम प्रवी णता। शूद्रत्वं (सेवाकर्मकौशलम्) स्त्रीलिङ्ग कहना हो तब तल्प्रत्यय (ल इत) टाप्, गोता। गोवृत्तिधर्मः। त्वान्तं सदा नपुंसकम्। तल्प्रत्यय अन्तहो नित्यस्त्रीलिङ्ग जिसका बोधक टाप् है। देवत्वं देवता मनुष्यत्वं मनुष्यता। मनुष्यकी सारी विशेषता। भगवत्त्वं भगवत्ता। आच्। ब्राह्मणत्वः इस सूत्रपर्यन्ततक प्रथमाध्यायके प्रथमपादकी समाप्ति तक त्व और तल्का अधिकार है। अधिकार सूत्र माननेका प्रयोजन अपवादैः=भाव अर्थमें प्रत्ययके प्रकरणमें इमनिच् आदिके अपवाद प्रत्यय कहें जायेंगे। वे त्व और तल्के बाधक न बने, एतदर्थम् अधिकार सूत्रम्। आ च सूत्रमें चकार पढ़नेका फल—स्त्रीपुंसाभ्यां सूत्रसे विधान किये गये नञ् स्नञ् के साथ त्व, तल् प्रत्यय भी हों। अर्थात् जहां इमनिच् होकर प्रथिमा बने वहीं पृथुता और पृथुत्वम् भी हो। बाध्यबाधकभाव न रहे। तथा स्त्रैणं, स्त्रीत्वं स्त्रीता आदि बनें, यही च पढ़नेका फल हैं।

पृथ्वादि=पृथु आदिशब्दोंसे भावअर्थमें इमनिच्प्रत्यय विकल्पसे हो। सूत्रमें 'वा' शब्दसे अण्, त्व, तल् आदि प्रत्यय भी भाव अर्थमें हों। यही 'वा' पढ़नेका फल है। ये पुलिङ्गान्त शब्द हैं। अण्प्रत्यय है, प्रत्याहार नहीं। र-ऋतो हलादि और लघुसंज्ञक ऋको रेफ आदेश हो। इष्ठन् इमनिच् इयसुन् प्रत्ययपरे। (वा०) पृथु स्थूल, मृदु=मुलायक, भृश प्रचुर अधिक कृश दुर्बल। दृढ प्रौढ़, परिवृढ़ स्वामी, इन्हीं शब्दोंसे परे इष्ठन् आदिके रहते ऋस्थाने 'र' आदेश हो, अन्यत्र न हो यह

नामेव रत्वम्) पृथोर्भावः प्रथिमा, पार्थवम् । म्रदिमा, मार्दवम् ।। वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ।५।१।१२३। चादिमनिच् । शौक्ल्यम्, शुक्लिमा । दार्ढ्यम्, द्रढिमा ॥ गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः ष्यञ् कर्मणि च ।५।१।१२४। चाद्भावे ।

वार्तिक द्वारा नियन्त्रण है। टेः—भसंज्ञकटिका लोप हो, इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् परे। पृथोर्भावः स्थूलव्यक्तिमें विशेषणीभूत अर्थ धर्म,गजगामित्व भीमतुल्यता आदिभाव विशेषण पृथु व्यक्तिमें है ।षष्ठयन्त विशेष्यविशेषणभावसमर्थ 'पृथु अस्' शब्दसे पृथ्वादिभ्यः इमनिच् विकल्प अनुबन्धलोप । तद्धितान्त प्रातिपदिक विभक्ति लुक् । रऋतोः हलादेर्लघोः, से ऋको 'रः' । भसंज्ञकः (टि) उकारः तस्य 'टेः' सूत्रेण लोपे प्रथिमन्, तान्तशब्दसे स्वादिः प्रथिमा । यदा इमनिच् न भवति तदा इगन्ताच्च लघुपूर्वात् सूत्रेण अण्प्रत्यये आदिवृद्धौ ओर्गुणः इति उकारस्य गुणे अवादेशे स्वादिसम्बन्धिकार्ये पार्थवम् । पृथुत्वं पृथुता । एवं मृदोर्भावः म्रदिमा, मार्दवं, मृदुत्वं मृदुता।

वर्ण—सफेद, लाल, पीला, शुक्ल, रक्त, पीत, हरित, नील इत्यादि रङ्ग ही है। उनकावाचकशब्द विशेष्यत्वसमर्थ और दृढादिभ्यः=दृढ़ आदि समर्थ षष्ठयन्तसे भाव (विशेषता बोलनेवाला, सौन्दर्य, माधुर्य, आकर्षण सुहृदय) अर्थवाचकसे ष्यञ् प्रत्यय हो, चात्=सूत्रमें चकार पढ़नेसे इमनिच् भी हो। ष्यञ् प्रत्ययान्त नित्यनपुंसक है । यथा—शुक्लस्य भावः शौक्ल्य (सफेदी, श्वेत, चमक मनमोहक, सौन्दर्य गुण विशेष धवलिमा) वर्णवाचक शुक्लके षष्ठयन्तसमर्थसे शुक्ल ङस् अस्माद्भावे, प्रकृतिविशेषता अर्थे ष्यञ् प्रत्यय । ष् ञ् इत् (य) शेष। आदिवृद्धिः भसंज्ञा अलोप । तद्धितान्त प्रासंज्ञा इत्यादि कार्य शुक्ल शब्दसे भावमें इमनिच्, शुक्ल+इमन् विभक्तिनिमित्तके संज्ञाकार्य । नान्त उपधाको दीर्घ । सुलोपनलोपौ । शुक्लिमा शुक्लिमानौ शुक्लिमानः। कार्पासः ऊर्णा, वस्त्राणि । रक्तस्य भावः राक्त्यं रक्तिमा । पीतस्य भावः पैत्यं पीतिमा । हारित्यं हरितिमा । यह वर्णका उदाहरण। दृढादिका उदाहरण-दृढ़स्य भाव मजबूती तगड़ापन, लौहपुरुषत्व अटलता दार्ढ्यम् । दृढ़पुरुषमें षष्ठयन्तसमर्थदृढ़+ङस्से वर्णदृढादि सूत्रसे ष्यञ् आदिकार्य । यदा दृढ़शब्दात् इमनिच् पत्ययः, तदा दृढ़इमन् 'र ऋतोः हलादेर्लघोः' सूत्रेण ह्रस्वे, ऋस्थाने 'र' आदेशे, अलोप, द्रढिमा द्रढिमानौ द्रढिमानः-गुणवचन= गुणवाचक शब्द और ब्राह्मण आदिगण पठित शब्दोंसे षष्ठयन्त अवस्थामें विशेष्यत्व समर्थ (जिसमें विशेषता बोलनेके लिए विशेषण भरे हों, उसे विशेष्य कहते हैं।) उन शब्दोंको भाव=गुणधर्म और कर्म अर्थमें ष्यञ् प्रत्यय हो। यहां कर्म दो हैं। क्रिया रूप, कार्यरूप। स्वार्थ (शरीर) से सम्बन्धिय नैमित्यिक=शौचादिकर्म क्रियारूप है। तन्मात्रसे विधानकिया गया यज्ञ, व्रत, तप, ये कर्म कार्य है । यह अन्तर हुआ। शरीरस्य आयासमात्रसाध्यं शौचादिकर्म क्रिया। शास्त्रेण विहितो यागादिधर्म कार्यमित्यनयोर्भेदः। यथा—जडस्यभावः कर्म वा जाड्यम् । मूर्खव्यक्ति

जडस्य कर्म भावो वा जाडयं ब्राह्मण्यम् । आकृतिगणोऽयम् (चतुर्वर्णादीनां स्वार्थेउपसंख्यानम्)चातुर्वर्ण्यम् चतुराश्रम्यम् । त्रैस्वर्यम् षाड्गुण्यं सैन्यम । सान्निध्यं सामीप्यं । औपम्यमे । त्रैलोक्यमित्यादि । स्तेनाद्यन्नलोपश्च।५।१।

का अविवकपूर्णकार्यं मूर्खता जाडय है। कालीदासका जिस डाली पर बैठना उसी को काटना । गुणवाचक (मूर्खता धर्म) समर्थ जड+ङस्से भावे कर्मणि वा अर्थे गुणवचन सूत्रसे ष्यञ् आदिवृद्धिः, अलोपादिः जाडयम् । अविवेकी व्यक्तिकी शारीरिक क्रिया (निष्फल कार्य) नासमझी तद्धितार्थः। इस प्रकरणमें प्रकृति विशेष्य है प्रत्ययर्थ विशेषण। विशेषणविशेष्यभावसम्बन्धः । मूढस्य=मोहमग्नस्य, ममताग्रस्तस्य, कर्म=क्रिया, कार्य भावः, गुण, धर्म विशेषताको मौढयं कहते हैं। मूढ़ता पुत्रान्प्रति धृतराष्ट्रस्य मौढयं । हस्तिनः स्नानम् । मोहममता आदिगुणवाचक विशेष्यधर्मसमर्थ मूढङस्से कर्मणि भवे वा अर्थे ष्यञ् आदिः । सूत्रमें ष्यञ् अनुवृत्त, इमनिच् निवृत्त। सुखस्य भाव, सौख्य, दुखस्य भावः दौख्य दुख (सुखका विपरिणामी) कर्म । रसस्य भावः कर्म वा रास्यं स्वादिष्टवस्तु । दुर्गन्धस्य भावः दौर्गन्ध्यम् । सुगन्ध्यस्य भाव कर्मवा सौगन्ध्यम् । नेतुर्भावः कर्मवा नेतृत्वम् । ब्राह्मणादिका उदाहरण—ब्राह्मणस्यभाव (गुणविशेषता, धर्म) कर्म तप; श्रुति, सदाचार, त्याग आदिको ब्राह्मण्यम् । ब्राह्मणके गुण विशेषता त्याग, तपस्या, धर्म है। षष्ठयन्त विशेष्यसमर्थ ब्राह्मणशब्दसे गुणवचनब्राह्मणादिसे ष्यञ् । वृष्टिवत् अनावश्यक स्थलेऽपि आदिवृद्धिः अलोपादिः । क्षत्रियस्य भावः कर्म-वा क्षत्रियत्वं शूद्रस्य भावः कर्म-वा शौद्रयम् । ब्राह्मणादिः आकृतिगण है। जहां-जहां ष्यञ् मिले वहां ब्राह्मणादिगणके अन्तर्गत मान लें।

चतुर्वर्ण आदि शब्दके (स्वं प्रकृतिः तस्य अर्थः) स्वार्थमें ष्यञ् कहे। चत्वारो वर्णाः चारजातिके आपसमें समास—मेल, एकार्थीभाव पूर्वकालैकसर्व जरत्सुसे हुआ। चतुर्वर्णस्य भावः कर्म वा अर्थमें चतुर्वर्ण शब्दात् ष्यञ् आदिवृद्धि अलोप आदि। चातुर्वर्ण्यं (चारों वर्णों) मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः। स्वार्थमें प्रत्यय। चत्वारो आश्रमाः चातुराश्रम्यं, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ सन्यासका समास, तद्धित प्रक्रिया पूर्ववत् । चारो आश्रमोंकी विशेषता धर्म कर्म। त्रयः स्वराः त्रिस्वरः तस्य भावः कर्म वा त्रैस्वर्यम्-उदात्त अनुदात्त स्वरित तीनों स्वरोंकी विशेषता उपयोगिता या (स्वार्थे प्रत्ययः) त्रयः स्वराः एवं त्रैस्वर्यं षड्गुणाः एव षाड्गुण्यं-छ गुण जायते तिष्ठति वर्धते अपक्षीयते नश्यति—जन्म उपस्थित बढना क्षीणता नष्ट होना । सेना एव सैन्यं, सन्निधि एव सान्निध्यं समीपता। समीप एव सामीप्यं, उपमा एवं औपम्यम् । एक अर्थ त्रिलोक एवं त्रैलोक्यं, तीनों लोक आदि।

स्तेन शब्दसे यत् हो नकार लोप भी। न—अ समुदायका ग्रहण (लोपमें) यद्यपि नकारलोप कहते, अकारलोप यस्येति चसे होता, तन्न, अकारके स्थानिवद्भाव से एकारको अयादेश हो जाता। नानर्थकेऽलोन्त्य—चोरी अर्थमें स्तेन धातु

१२५। नेति संघातग्रहणम् स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम् । सख्युर्यः ।५।१।१२६। सख्यम् । कपिज्ञात्योर्ढक् ।५।१।१२७। कापेयं ज्ञातेयम् । पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ।५।१।१२८। सैनापत्यं पौरोहित्यम् । (राजाऽसे) । राजन् शब्दोऽसमासे यकं लभत इत्यर्थः । राज्ञोभावः कर्म वा राज्यम् । समासे तु ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् , । आधिराज्यम् । प्राणभृज्जाति वयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ।५।१।१

से पचादिगण मानकर अच् । स्तेनस्य चोरी कर्मकी कला विशेषता क्रिया कार्य अर्थ में यत् । न लोप आदि स्तेयम् ।

सख्यु–षष्ठयन्त सखिशब्दसे भाव और कर्म अर्थमें य प्रत्यय हो । यथा—सख्युः मित्रस्य भावः अभिप्रायः उपकारकत्वं दुःखसमये सहयोगित्वं कर्म (साथ देना) सख्यं—रामसुग्रीवयोरिव । सखि ङस् भावे कर्मणि वा अर्थे 'य' प्रत्यये अलोपे । कपिश्च ज्ञातिश्च कपिज्ञाती तयोः । कपि शब्द और ज्ञाति शब्द विशेष्य अर्थमें समर्थ हों, तब षष्ठयन्तसे भाव और कर्म अर्थमें ढक् प्रत्यय हो । अत्र पञ्चम्यर्थे षष्ठी । कपि (बन्दर)के भाव विचार, चञ्चलता गुण धर्म कर्म कापेयं है । कपेर्भावः कर्म वा कपिशब्दसे विशेषण(कपित्व) धारणसमर्थसे षष्ठयन्तसे ढक् । ढस्थाने एय् आदेश, आदिवृद्धिः । इलोप, कापेयं कर्म चाञ्चल्यम् । ज्ञातेः=भाई बन्धु जाति, विरादरींका कर्म परस्पर मेल जोल सहयोग बन्धुत्व आदि ज्ञातेयं है । षष्ठयन्त बधुत्वधारणसमर्थज्ञातिशब्दसे भावे कर्मणि अर्थमें ढक् आदिपूर्ववत्,षष्ठयन्तपत्यन्त (पतिशब्द अन्तमें हो) और पुरोहितादिगणपठितशब्दसे भाव कर्म अर्थे यक् । सेनापतेः=देशरक्षकस्य योद्धुः स्वामिनः भावः कर्म वा । देश रक्षणक्रिया षष्ठयन्त सेनापति शब्दसे पत्यन्तसूत्रसे यक् । कित्वात् किति च आदिवृद्धिः अन्त्य इकारलोपे सैनापत्यम् । पुरोहितस्य अग्रे-अग्रे धर्मोपदेशेन हितकारकस्य कर्म (द्विजमार्गप्रदर्शनं सन्ध्यावन्दनयज्ञादि) क्रियाभावः (धर्मोपदेशत्वं सदाचार) इति विग्रहे षष्ठयन्त-पुरोहितशब्दात् भावे, कर्मणि अर्थे उक्तसूत्रेण यक् आदिवृद्धि अलोप पौरोहित्यम् पुरोहितजीका धर्म (क्रियाकलाप) इस प्रकरणमें विशेषण और क्रिया अर्थ प्रधान माना गया । प्रकृत्यर्थ यद्यपि विशेष्य (प्रधान) है तथापि विशेषण प्रत्ययार्थ ही व्यवहारमें प्रधानरूपसे दीखता है ।

राजा शब्दसे उक्त अर्थमें यक् हो । उससे समास न होने पर । 'स' इति समासस्य प्राचां संज्ञा । राजाकी विशेषता गुण प्रजासेवा आदर्शक्रिया कलाप अर्थ में राजन्से यक् टिलोप । भाव कर्म है प्रकृतिभाव नहीं हुआ । राज्यं—राजाका अनुशासन, समासमें ब्राह्मणादिगण मानकर ष्यञ् अधिराजन्से राजाके अधिकारमें आदर्श क्रियाकलाप । यद्यपि गणमें राजन् पढ़ा है अधिराजन् नहीं तथापि 'असे' का निषेध प्रमाण बनाता है कि अस्त्यत्र प्रकरणे राजन्शब्देन तदन्तविधिः । कोई आकृतिगण मानकर समाधान । शाबरभाष्यमें राज्ञः कर्म राज्यं ब्राह्मणादि मानकर ष्यञ् किया । स्वरमें अन्तर । प्राणभृत्-जाति, वयोवाची । उद्गात्र आदिके षष्ठी

२९। प्राणभृज्जातिः आश्वम्, औष्ट्रम्। वयोवचनम् कौमारम्। औद्गात्रम्। औन्नेत्रं सौष्ठवम्। हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ।५।१।१३०। द्वैहायनं त्रैहायनम्। यौवनं स्थाविरम्। (श्रोत्रियस्य यलोपश्च) श्रोत्रम्। कुशलचपलनिपुणपिशुन-कुतूहलक्षेत्रज्ञा-युवादिषु ब्राह्मणादिषु च पठ्यन्ते। कौशल्यम्, कौशलमि-

न्तशब्दसे भाव कर्ममें अञ् हो। मुखनासाह सचारी वायुः प्राणः नाकसे, मुंहसे हवा का निर्गम, अन्तर्गमरूप वायुका प्राण है। प्राणधारणवाली जाति, अश्वस्य भावः कर्म वा घोड़ेका अनुशासित चाल, शानदार स्वरूप अर्थे अञ् आदि आश्वम्। उष्ट्रस्य भावः ऊंटकी भारवाहनशक्ति लम्बा होना, क्रिया कर्म औष्ट्रम प्राण-धारण है : प्राणभृत् क्यों पढ़ा ? तृणत्वं तृणतासे अञ् न हो। जाति क्यों देवदत्तत्वं देवदत्त गुणकी विशेषता क्रिया कर्म अञ् नहीं हुआ। अवस्थावाचक शब्दसे अञ्-कुमारस्य भावः कौमारम्, पांचसे दशवर्षकी अवस्थाकी विशेषता क्रिया कार्य शरीर का वर्धन अर्थमें कुमारसे अञ् आदि कौमारः। किशोरस्य भावः कर्म वा दशसे पन्द्रह वर्षकी अवस्थाकी विशेषता क्रियाकलापे अर्थे अञ् आदि कैशोरम्, । यूनः भावः यौवनं पन्द्रह-पचीस। प्रौढ़स्य भावः पच्चीस-पचास प्रौढ़ं, स्थविरस्य भावः स्थाविरं, वृद्धस्य भावः वार्धक्यम्। उद्गात्रस्य भावः कर्म वा औद्गात्रम्। उभरते हुए शरीर वालेकी प्रगति कार्य अञ् आदि। ऊंची शरीरकी विशेषता। उन्नतस्य भावः एकटक ताककी आकर्षक विशेषता। जो ऋत्विक् है उनसे होत्राभ्यः छ प्राप्त था, बाधकर अञ् सुष्टु भावः, सौष्ठवम्। क्रिया अच्छे गुण विचार दुष्टु कर्म भावः दौष्टवं दूषित भाव दुष्टविचार। यहां गुण लक्षणमानकर ष्यञ् प्राप्त। वधूसे ष्यञ् प्राप्त उसे बाधकर अञ्। वधूसे इगन्तलक्षण अण्। शेषे। त्व तल्को बाधकर अञ्, सुभगशब्द मन्त्रमें पढा गया है। महते सौभगाय सौभाग्यमस्मै दत्तात्। सर्वे विधयः छन्दसि विकल्पाः भवन्ति।

हायनान्त=हायनशब्द अन्तमें हो युवन् स्थविरके षष्ठ्यन्तदशाके भाव कर्ममें अण् हो। द्वे हायने यस्य स (द्विहायनः) तस्य भावः कर्म वा (दो वर्षके बच्चेका हाव भाव चेष्टा क्रिया कार्य अर्थमें, त्व तल्को बाधकर) अण् आदिवृद्धि द्वैहायनं, त्रीणि हायनानि यस्य स त्रिहायनः तस्य, भावः कर्म (तीन वर्षके बच्चेकी चेष्टा क्रिया) अर्थे आदि (त्रैहायनम्)। यूनः भावः कर्म वा यौवनं युवन्से अणादि। वयो-वचनलक्षण अच्को बाधकर। युवककी चेष्टा क्रिया वृद्धि कार्य। मनोज्ञादिगणपाठ से वुञ् अक आदि यौनकम्+प्रकृत्या अके राजन्यमनुष्ययुवानसे प्रकृतिभाव। अन्का लोप नहीं। स्थविरस्य भावः कर्म वा स्थाविरं स्थविरसे अण् आदि बुढ़ौतीकी शिथिलता क्षीणता। (वा०) श्रोत्रिय शब्दसे अण् हो यलोप भी। श्रोत्रियं छन्दोऽधीते जो वेद पढ़ता है अर्थमें छन्दस्से अण् छान्दसः को श्रोत्र आदेश घ-इय भी। यस्येति अकारलोप श्रोत्रियस्य भावः कर्म वा वेद पाठककी विशेषता गुण क्रिया कार्य अर्थमे अण्, अकारसहित य का लोप। यस्येति अलोपादि श्रौत्रं वेद पढनेवाले

त्यादि। इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ५।१।१३१। शुचेर्भावः कर्म वा शौचम्। मौनम्। योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ् ।५।१।१३२। रामणीयकम् आभिधानीयकम्। (सहायाद्वा) साहाय्यम्, साहायकम्। द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ।५।१।१३३। शैष्योपाध्यायिका, मानोज्ञकम्। इति भावकर्मार्थकप्रकरणम्

का कर्म आचरण आदि, कोई 'श्रोत्रियस्य यलोपश्च' ऐसा पढते है हरदत्त आदि। कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ ये युवादिगणमें और ब्रह्मादिगणमें पढ़े गये है। उसके अनुसार ष्यञ् भी होगा। कुशलस्य भावः कर्म वा अर्थे य आदि०। (कौशल्यं) चतुरता कुशलकार्य दक्षता, जब अण् तब कौशलम्। चपलस्य भावः कर्म वा चापल्यं चापलम्। निपुणस्य (नैपुण्यं नैपुणं) पिशुनस्य—चुगुलखोरका स्वभाव क्रिया कार्य (पैशुन्यं पैशुनं) कुतूहलस्य उत्सुकताका भाव परिणाम कौतूहल्यम् क्षेत्रज्ञस्य भावः स्थान खेतका मर्मज्ञ, उसकी पटुता, क्रिया कलाप क्षैत्रज्ञम्। इगन्तात् इक्=इ उ ऋ लृ अन्तमें हो लघुः पूर्वो अवयवो यस्य। कहांसे पूर्व, इक्से। लघु अक्षर पूर्वमें हो ऐसा इक् ऐसा प्रातिपदिक षष्ठी अन्तसे भाव कर्ममें अण्, गुणवचन ब्राह्मणादिको बाधकर। यथा शुचिः पवित्रता सदाचारवान्के गुणभाव विशेषता क्रियाकलाप अर्थमें शुचिसे अणादि शौचं—शुद्धता। मुनेर्भावः कर्म वा मौनं मुनिसे अण् आदि० मनन क्रिया फल आदि०। यदि ऐसा कविशब्द भी लघुपूर्व अन्त है। अण् (कावं) क्यों नहीं होता—तब कहा कविशब्द ब्राह्मणादि गणमें पढा है। उससे ष्यञ् ही होगा, कवेः कर्मकाव्यं कविकी क्रियाकलाप इगन्त क्यों कहा घटत्वं, लघुपूर्व क्यों पाण्डुत्वं। योपधात्–य उपधामें है। गुरुः दीर्घ उपोत्तम (अन्तके समीपमें हो) ऐसी षष्ठी अन्त प्रातिपादिकसे भाव कर्ममें वुञ्–अक हो। रमणीयस्य भावः कर्म वा रामणीयकम्। वु–अक आदि०। अभिधानीयस्य भावः कर्म वा प्रवचनके विषय का प्रभाव। वु–अक आदि०। य उपधामें क्यों? बिमानत्वं, गुरु समीपमें क्यों? क्षत्रियत्वं। (वा०) सहाय शब्दसे वुञ् विकल्पसे हो, पक्षमें ब्राह्मादिगण मानकर ष्यञ् हो। सूत्रसे नित्य प्राप्त था। विकल्पके लिये वार्तिक—सहायसे वु=अक आदि०। साहायकं सहायताका अवसर सहयोग। जब ष्यञ् तब साहाय्यम्।

द्वन्द्व=समास और मनोज्ञ, प्रियरूप, बहुल, अवश्य आदि गणपढ़े शब्दोंसे भाव कर्म अर्थमें वुञ् हो, षष्ठी अन्त दशासे। शिष्यश्च उपाध्यायश्च द्वन्द्वसमाससे वुञ्–अक आदिवृद्धि टाप् 'प्रत्ययस्थात्'से इत्व, शिष्य और अध्यापकके बीच गुण विशेषता आज्ञा पालन अनुशासन सम्बन्ध कार्य अर्थमें। गोपालश्च पशुपालश्च, दोनोंकी कुशलता क्रिया अर्थमें प्रत्यय। गोपालकं पशुपालकम्। मनोज्ञस्य भावः कर्म वा—मन जानने वालेका भाव कर्म अर्थमें वु—अक आदि मानोज्ञकम्। प्रियरूपस्य भावः प्रैयरूपकम्। बहुलस्य भावः कर्म वा बाहुलकम्। आवश्यकम्।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्रभाकर्यां भावकर्मार्था त्वतलोरधिकाराः।

अथपाश्चमिकप्रकरणम्

धान्यानां भवनेक्षेत्रे खञ् ।५।२।१। मुद्गानां भवनं क्षेत्रं-मौद्गीनम् । व्रीहिशाल्योढक्।४।२।२ व्रैहेयं शालेयम् । यवयवकषष्टिकाद्यत् ।५।२।३।यव्यम् यवक्यं षष्टिक्यम् । विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः ।५।२।४। यत् । पक्षे खञ् तिल्यं तैलीनं। माष्यम् माषीणम् । उम्यम्, औमीनम् । भङ्ग्यं

अथभावनाद्यर्थकाः—अथ=इस प्रकरणमें भवन=उत्पत्तिका स्थान अर्थः। आदिपदसे विकारः, अयं सञ्जातं, प्रमाण, परिमाण, अवयव, अधीते, कृतं पूर्वम्, इष्टः, आदि अर्थं शब्दसाधुत्वमें सहयोगी दिखाये जायेंगे ।

धान्यानां=मूङ्, मोती, मक्का, मटर गोधूम, गन्ना आदि प्रजा विशेष रूप उत्पत्तिसे (भवन उत्पत्तिके लिए प्रसिद्ध)खेतवाचक शब्दसे क्षेत्र अर्थमें खञ् प्रत्यय हो । भवति अस्मिन्निति भूधातुसे अधिकरण अर्थमें ल्युट यु—अन भवनम् उत्पत्ति स्थान, यथा मुद्गानां भवनं क्षेत्रम् (मूङ् उत्पादनप्रधान खेत) मौद्गीनं है । षष्ठयन्त उत्पाद्य उत्पादनसमर्थ मुद्गशब्दसे क्षेत्रमित्यर्थो (भवनशब्दका क्षेत्र अर्थ है) धान्यानां भवनेसे खञ् अनुबन्धलोप । खस्थानेमें ईन आदेश आदिवृद्धिः अलोप । चणकानां भवनं क्षेत्रं चाणकीनम् यावीनम् । कालायकीनं, तिलानां क्षेत्रं तैलीनं यवानां यावक्यं, सर्षपाणां भवनं क्षेत्रं सार्षपीणम् । औमीनम्=तीसीका खेत । षष्ठयन्त हो, और समर्थ हो । उत्पादन-समर्थ व्रीहि (धान्य) शाली (साठी) भवनं क्षेत्रं (धान उत्पत्ति प्रधान खेत अर्थको) व्रैहेयं, षष्ठयन्त उत्पादनसमर्थ व्रीहिशब्द से क्षेत्र अर्थमें ढक् । ढस्थाने एय् आदेश आदिवृद्धिः । इलोपे एवं शालीनां भवनं क्षेत्रं साठी उत्पादन खेत इत्यर्थो ढक् शालेयम् इति भवनार्थ प्रत्ययाः ।

यव यवक षष्टिक शब्दके षष्ठी अन्तसे भवने क्षेत्रे अर्थमें यत् हो खञ् बाधकर धान्यानांके आनेसे षष्ठी ही समर्थ विभक्ति है । यवके उपजाऊखेत अर्थो यत्, अलोप आदि । (यव्यं) जौका खेत । यवकानां भवनं, षष्टिकानां भवनं क्षेत्रं, साठी उपजका खेत । यत् आदि । विभाषा=तिल, भाष, उमा, भङ्गा अणुसे धान्य भूखेकी प्रसन्नता वाचक, षष्ठी अन्तसे विकल्पसे यत् हो, खञ भी । तिलानां भवनं क्षेत्र तिलका उपजाऊ खेत तिल्यं तिलआम् यत् हुआ । जब खञ्=ईन आदि तब तैलीनम् । भाषाणां उरदका उपजाऊखेत अर्थ यत् माष्यं, ख–ईन ण माषीणम् । उमाभङ्गौ धान्यविशेषौ भाष्यके प्रमाणसे धान्य मान्य । उमा स्यादतसी क्षुमा इत्यमरः । तीसी अर्थमें । उमानां भवनं क्षेत्रं तीसीका उपजाऊ खेत यत् (उम्यम्) खञ्–ईन औमीनं, भङ्गानां भाँग या चायकी पत्तीका उपजाऊ खेत यत् हुआ ख-ईन भी उक्त रूप। वेदमें व्रीहिश्च मे शालयश्च मे मासाश्च मे कल्प्यन्ताम् । अणु (खाद्य वस्तु) यत् ओर्गुणः । वान्तो यि अव् । अणव्यम् । पक्षे ख–ईन । आणवीनम्

तत्सर्व=पथिन्, अङ्ग कर्मन्, पत्र, पात्र इनके आदिमें सर्वशब्द हो, ऐसे प्रातिपदिकके द्वितीयान्तसे व्याप्नोति अर्थ में ख हो। द्वितीयासमर्थका सूचक।

भाङ्गीनम्। अणव्यम्, आणवीनम्॥ **तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ५।२।७।** सर्वादेः पथ्याद्यन्तात् द्वितीयान्तात्खः। सर्वपथान् व्याप्नोति सर्वपथीनः। सर्वाङ्गीणः सर्वकर्मीणः सर्वपत्रीणः। सर्वपात्रीणः॥ **हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्।५।२।२३।** नवनीते निपातोऽयम्॥ **तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ।५।२।२४।** पीलूनां पाकः पीलुकुणः। कर्णस्य मूलं कर्णजाहम्॥ **पक्षात्तिः।५।२।२५।** मूले इत्यनुवर्तते। पक्षस्य मूलं - पक्षतिः। तेन

तत्पञ्चमी अर्थे द्वितीया तदन्तविधिः। सर्व आदिमें हो पथ्यादि अन्तमें तब द्वितीयान्तसे ख। सर्वपथान् सभी रास्तेको घेर लिया सार्वपथीनः जनः सेना वा रक्षकः। सर्वपथिन्से ख–ईन टिलोप। सर्वे पन्थाः सर्वपथः ऋक्पूरब्धू समासान्त। अच्। सर्वाङ्गान् व्याप्नोति पूरे अङ्गमें फैला विष लेपन सर्वाङ्गीणः। सर्वाङ्गसे ख–ईन णत्व आदि। सर्वाणि कर्माणि व्याप्नोति हरफनमौला प्रत्येक कार्यमें कुशल सार्वकर्मीणः सर्वाणि पात्राणि व्याप्नोति सभी पत्तोंमें छेद किये सर्वपात्रीणः कीटः, सर्वाणि पत्राणि व्याप्नोति प्रत्येक वर्तनमें लगा हुआ घी।

अथ (सम्बन्धित) ह्योगोदोह शब्दके स्थानमें हियङ्गु आदेश हो। विकार अर्थ हो तो। खञ् प्रत्यय निपातनसे हो, संज्ञायां संज्ञा अर्थ होने पर। दुह्यते इति दोहः (जो दुहा जाय वह दूध) क्षीरं ह्यः बीता कल, गोदोह (गाय दूधका विकार) विकृतकार्य घी, दही, मक्खन। दुह धातुसे कर्मणि घञ्। एक दिन पहलेके दूधका विकार मक्खन घी (अनेक दिन पहलेका दूधका विकार ग्राह्य नहीं है) हियङ्गु ङस् शब्दसे विकारे अर्थे 'ख' खको 'ईन' आदेश उको गुण (ओर्गुणः) अवादेश। आदिवृद्धिः तद्धितान्तत्वात् विभक्तिकार्य। हैयङ्गवीनम्। अमरकोषमें यत्वं हैयङ्गवीनं स्यात् ह्योगोदोहोद्भवं घृतं। हैयङ्गवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्। निपातन सूत्र।

तस्य पाक परिणाम मूल उपक्रम (पाककी प्रारम्भिक क्रिया षष्ठी अन्त हो उससे पीलु, कर्कन्धु, शमी, करीर कुवल, वदर अश्वत्थ, खदिर आदिसे पाकः=पका हुआ अर्थमें कुणप् हो और कर्ण अक्षि, नख मुख, केश, पाद, गुल्फ, भ्रू, शृंग, दन्त, ओष्ठ, पृष्ट इन शब्दोंसे मूल अर्थमें 'जहाच्' प्रत्यय हो। तद्धित है क की इत्संज्ञा नहीं (अतद्धिते—लशकुके इत्संज्ञा विधानसे) ज इतका प्रयोजन नहीं है। पीलूनां वृक्षः या फलंका परिमाण=पका होना अर्थमें कुणप्। पीलुकुणः। पक रहा फल। कानके मूल (जड़) में स्फोट लक्षण फोड़ा अर्थमें जाहच् कर्णजाहम् (कानकी जड़में लक्षण) अक्षिणः मूलं अक्षिजाहम् मुखस्य मूलं मुखजाहम्, केशजाहं, दन्तस्य मूलं दन्तजाहं, पृष्ठस्य मूलं पृष्ठजाहम्। कर्कन्धुकुणः पक रहा बेर। शमीकुणः करीरकुणः। पक्षसे मूल जड़ अर्थमें ति प्रत्यय हो। इसमें मूलमात्र आया। पाक मूलमें समास है। उसके एकदेशमें स्वरित प्रतिज्ञाके बलसे मूल आया तस्य भी षष्ठ्यन्त पक्षसे मूल अर्थमें तिप्रत्यय पक्षतिः। पंखकी जड़ या प्रतिपदा। पक्षिणा पदमूलं च, शुक्लपक्ष या कृष्णपक्षकी मूलजड़ प्रतिपद हैं।

वित्तश्च ञ्चुप्चणपौ ।५।२।२६। यकारः प्रत्यययोरादौ लुप्तनिर्दिष्टः, तेन चस्य नेत्वम्। विद्यया वित्तो विद्याचुञ्चुः विद्याचणः ॥ **वेः शालच्छङ्कटचौ**।५।२।२८। क्रियाविशिष्टसाधनवाचकात्स्वार्थे। विस्तृतं विशालं विशङ्कटम् ॥ **संप्रोदश्चकटच्** ।५।२।२९। सङ्कटं। प्रकटम्। उत्कटं चाद्विकटम्।। (अलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यनं) अलबूनां रजः अलाबूकटं तिलकटम् ॥ (गोष्ठजादयः स्थानादिषु पशुनामभ्यः) गवां स्थानं गोगोष्ठम्। (संघाते कटच्) अवीनां संघातः अविकटः (विस्तारे पटच्) अविपटः

तेन=तृतीयान्तसे वित्त=प्रसिद्ध; प्रतीत अर्थमें चुञ्चप् और चणप् प्रत्यय हों। दोनों प्रत्ययके आदिमें चकारलोप हुआ। रूपमें निर्दिष्ट उच्चारित है। इस कारण चकी इत्संज्ञा नहीं होती। उपदेशमें आदि य है जो लुप्त है, च नहीं। वित्तो भोगः प्रत्ययो-निपातनसे तको न नहीं होता (लुप्त निर्दिष्टः) जो लोप हुए रूपमें उच्चारित है। विद्यया=तृतीयान्त विद्यासे वित्त प्रसिद्ध अर्थमें प्रत्यय विद्याचञ्चुः ज्ञानसे प्रसिद्ध। जब चणप् तब विद्याचणः नामी विद्वान।

विशब्दसे (क्रिया सहित कारक अर्थ खुलता हो) स्वार्थमें शालच् शंकटच् प्रत्यय हो। क्रिया सहित कर्ता कर्म आदि खुले, विस्तृतं विस्तार क्रियासे पूर्ण भवन, स्थान जङ्गल आदि कारक अर्थमें विसे शालजादि (विशालं)बहुल विस्तारवि शङ्कटम् भयकी क्रिया कारककी प्रतीतिः।

सम्प्र उदसे क्रियासहित कारक वाचक शब्दसे स्वार्थमें कटच् हो च पाठसे विसे भी। सङ्कः संहतं, निबिडीकृतं=सघन होनेकी क्रियासहित कारक अर्थमें कटच्। संकटम्। अत्यन्त परेशानी, भयंकर भीड़ अर्थमें प्रसे कटच् (प्रकट) प्रज्ञातं, प्रकाश होना समक्षमें आना। उत्कटम्। उन्नत अधिक उद्भूत क्रिया अर्थमें उत्से कटच्। चसे विकटं विषम क्रियाविशिष्ट अर्थ विकृति। ये रूढ़शब्द है। व्युत्पादन किसी प्रकार (वा) अलाबू-तिल उमा, भङ्ग इनके षष्ठी अन्तसे रज, चूर्ण पाउडर अर्थ होता हो तब कटच् कहें। विकार प्रत्यय बाधकर। चूर्ण रेणुः रजः अलाबू=लौकीका चूर्ण अर्थमें कटच् ओरञ अथवा मयट् प्राप्त था। तिलानां चूर्ण तिलकटम् तिल्ली का चूरा। उमानां तीसीका पाउडर उमाकटं, रज अर्थमें प्रत्यय प्रधान तद्धितार्थ (वा०) गोष्ठजादयः=पशुनामवाले शब्दसे अनेक स्थान, गोशाला आदि अर्थमें गोष्ठच् आदि प्रत्यय बोलें। उनके अर्थ स्थान आदि। संघाते कटच्से छः वार्तिक तक कहे जायेंगे पशुनामसे हो (उद्देश्य) विधेय होंगे गायोंके स्थान गोशाला अर्थमें गोसे गोष्ठच् आदि। अश्वानां स्थानम् अश्वगोष्ठम् घुड़शाला अर्थमें प्रत्यय। हस्तिगोष्ठं, शूकरगोष्ठं सूअरबाड़ा (वा०) संघात अर्थमें कटच् प्रत्यय पशुनामसे। अप्रसृतावयवःन फैला हुआ समूह समुदाय विस्तार है। अवीनां भेड़ोंका एकजुट समुदाय अविकटः अविसे कटच् भेड़ झुण्ड। हस्तिकटः उष्ट्रकटः, श्वकटः। (वा०) विस्तार अर्थमें पटच् प्रत्यय हो, पशुनामसे। अवीनां विस्तार भेड़ोंका फैलाव अर्थमें पटच

(द्वित्वेगोयुगच्) द्वावुष्ट्रौ उष्ट्रगोयुगम् (षट्त्वे षड्गवच्) अश्वषड्गवम् (स्नेहे तैलच्) तिलतैलं सर्षपतैलम ॥ अवात्कुटारच्च ।५।२।३०। चात् कटच् अवकुटारः अवकटः ॥ नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः ।५।२।३१ अवादित्येव । नतं नमनं नासिकाया नतम अवटीटम् । अवनाटम् अवभ्रटम् । तद्योगान्नासिका अवटीटा । पुरुषोऽप्यवटीटः ॥ उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारुढयोः ।५।२।३४।पर्वतस्यासन्नं स्थलम् उपत्यका ।आरुढं स्थलम् अधित्यका । कर्मणि घटोऽठच् ।४।२।६५। कर्मणि घटते इति कर्मठः ।

अविपटः दूरतक विस्तार। हस्तिपटः, उष्ट्रपटः गोपटः गोकटः। (वा०) द्वित्वे प्रकृतिका अर्थगत द्वित्व=दो संख्या हो, तब गोयुगच्। दो ऊंटोंका समुदाय प्रत्ययका अर्थ।(उष्ट्रगोयुगम्) ऊंटकी दो संख्याका समुदाय, अतः एकवचन,(वृषगोयुगं)दो बैल का समूह। स्वभावसे एकवचन, मर्कटगोयुगं, (वा०) षटत्वे छसंख्या अर्थमें षड्गवच् हो। अश्वानां षटत्वम् अश्वषड्गवम्, उष्ट्रषड्गवं, हस्ति—पशु–षड्गवम् (वा०) स्नेहे चिकनाहट अर्थमें तैलच् हो। तिलानां स्नेहः तिलतैलं (तिल्लीका) तेल अर्थे तैलच्, सर्षपाणां स्नेहः सरसोंका तेल अर्थे तैलच्। सर्षपतैलम्। इङ्गुदीतैलं, उमातैलं (तीसीतेल) अवात्=क्रियाविशिष्टकारक अर्थवाचक अवसे स्वार्थमें कुटारच् और कटच् प्रत्यय हो, अवाचीनः अधोमुखः या प्रसिद्धि अर्थमें वर्तमान अवसे कुटारच् पक्षमें कटच् भी नतानन अवकटम्।

नते=नमन अर्थमें नासिकाको 'अव' हो उससे टीटञ् नाटञ भ्रटच् प्रत्यय हो, संज्ञायां=नाम होनेपर। अवसे ही हो। णमु प्रह्वत्वे जिसका नमन अर्थ है। नाकका नत-झुका होना अर्थमें अवसे प्रत्यय अवटीटं, जब नाटञ् तब अवनाटं भ्रटच् पर भी। अर्थ एक। झुकी नाकवाला। नाकका झुकना अवटीटं है। अवटीटा नासिका कैसे ? तब कहा तद्योगात्=नमनके योगसे नासिका भी अवटीटा। उससे सम्बन्धित पुरुषभी अवटीटः तीनों लिङ्ग।

उप अधि अव्ययके गणनाक्रमसे आसन्न आरूढ़ अर्थमें त्यकन्प्रत्यय हो। आसन्न का समीप, आरूढका उचाई अर्थ। नतेः नासिकायाः से 'संज्ञायाम्' आया क्योंकि किसके समीप, किसकी ऊंचाईकी आकांक्षा पर संज्ञा–अधिकारसे पहाड़के पासकी समतल भूमि उपत्यका। उपसे त्यकन् टाप् लोकसे स्त्री०। प्रत्ययस्थात्से इत्व नहीं त्यकनश्चके निषेधसे। आरूढ़ पहाड़की ऊंचाई पर समतल भूमि अर्थमें अधिसे त्यकन् आदि। अधित्यका। सप्तमी अन्त कर्मन्से घटते कर्मकुशल अर्थों अठच् हो। घटसे कलश अर्थका भ्रम हटानेके लिए कहा—कर्मणि घटते काममें कुशल रहे, रहे, व्याप्रियते क्योंकि घटते इति घटः जो घटे कुशलता सिद्ध करे। पचादि अच् घटःका व्यस्त-कुशल अर्थ। कर्मन्से अठच्। न स्तद्धितेसे टिलोप कर्मठः। अङ्गसे परे ठको इक होता है, अत्र तथा न। ठ ठस्येकः।

तदस्य–तेभ्यः प्रथमान्तेभ्यः तारकादिभ्यः—प्रथमान्त प्रातिपदिक अर्थ विद्यमान तारकादि गणपठित शब्दसे अस्य सञ्जातम् इसका हो गया। जो पहले नहीं

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ५।३६। तारकाः संजाता अस्य तारकितंनभः पण्डितः। आकृतिगणोऽयम्॥ **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ।५।२।३७।** ऊरु प्रमाणमस्य – ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्।

प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतौ मम।
ऊर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाण तु सर्वतः।
आयामस्तु प्रमाणं स्यात् संख्या बाह्या तु सर्वतः॥ ४॥

पुरुषहस्तिभ्यामण च ।५।२।६८। पुरुषः प्रमाणमस्य- पौरुषम्, पुरुषद्वयसम्

था अब हो गया। जैसे—वृद्धि नहीं थी अब हो गयी। इस अर्थ का बोधक इतच् हो। च इत्। तारकाः (तारागण) सञ्जाताः अस्य (हो गये इसके) वह नभ आकाश तारकितं है। रातमें तारे निकल आये ऐसा आकाश। प्रथमान्त नभ, नभत्व पुंस्त्व पुंस्त्वत्व नियतप्रातिपकार्थमें विद्यमान तारकाः अस्य सञ्जातं अर्थमें इतच्। भसंज्ञा यस्येति च अलोप। पण्डा=सदसद् विवेकनी बुद्धिः (सत्य असत्य, उचित-अनुचित, उपयोगी, अनुपयोगी, अर्थ निर्णय करने वाली बुद्धिको पण्डा कहते हैं) सा सञ्जाता अस्य वह निर्णयात्मिका बुद्धि हो गयी हो जिसकी वह पण्डितः। प्रथमान्त पण्डाशब्दसे अस्य सञ्जातम् अर्थे इतच् (इति) आलोप, तद्धितादिकार्य। विवेकी, बुद्धिमान, कुशल। इसी प्रकार लज्जा सञ्जाता अस्येति लज्जितः। तृषा (प्यास) सञ्जाता अस्य इति तृषितः। पुष्पं सञ्जातं अस्याः पुष्पिताः स्त्री। फलिता (लता) पुलकं सञ्जातम् अस्य पुलकितो भक्तः रोमाञ्चितः। आकृति दृष्टवा गणो नेयः। इतच्प्रत्यय दर्शनमात्रसे तारकादिगणमें ग्रहणकर लें। प्रमाण=मात्रा, मापदण्ड इयत्ता, इसका इतना ही प्रमाण है। इस अर्थमें वर्तमान प्रथमान्त (प्रातिपदिकार्थवाचक शब्दसे द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् ये तीन प्रत्यय हों, तीनोंका मात्रा निश्चित इयत्ता अर्थ है। 'तदस्य' की अनुवृत्ति पूर्वसूत्रसे आती है। प्रमेय अर्थमें प्रमाणशब्दसे तीनों प्रत्यय हों। मात्रच् प्रत्यय परिच्छेदक मात्रमें होता है। तराजू दण्ड, कटि मात्रअर्थ है। अद्यौ द्वौ,उर्ध्वमान एव। प्रथमदो प्रत्यय उर्ध्वमान में होते हैं। प्रथमश्च, द्वितीयश्च उर्ध्वमाने मतौमम, ऊपर भाग या उठाकर जो मात्रा, प्रमाण, बोला जाय वह ऊर्ध्वमान है। यथा—उरुः प्रमाणम् अस्य। जङ्घातक जलका जमाव है। यहां उरुशब्द प्रमाण अर्थमें होकर प्रथमान्त शब्दसे द्वयसच् और दघ्नच् प्रत्यय हुए। उरुद्वयसम्। उरुदघ्नम्। कटिमात्रम् (कमर तक पानी है) प्रत्यय होकर विभक्तिकार्य हुए। पञ्चसेटकं प्रमाणम् अस्य पञ्चसेटकमात्रम्। मणमात्रम्। कियन्मानं जलं विप्र-जानुदघ्नं नराधिप। कितना-जल है विप्र! घुटने तक।

पुरुष और हस्तिसे प्रमाण अर्थमें द्वयसच् आदि हो, अण् भी। पुरुष प्रमाण है इस जलका पौरुषं जलम् एक पोरिषा। द्विपुरुषं दोपोरिषा अण् आदिवृद्धि। पक्षमें द्वयसच् हस्ती। प्रमाणमस्य हास्तिनं दो हाथी डुबाव जल अण् आदिवृद्धि। पक्षमें द्वयसच्=द्विपुरुषकम् उदकम्।

हास्तिनम्, हस्तिद्वयसम् । **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** ।५।२।३९। यत्परिमाण मस्य यावान् तावान् एतावान् ॥ **किमिदम्भ्यां वो घः** ।५।२।४०। आभ्यां वतु ब्वस्य च घः । **इदंकिमोरीश्की** ।६।३।९०। दृग्दृशवतुषु । कियान् ॥ **किमः संख्यापरिमाणे डति च** ।५।२।४१। चाद्वतुप्, वस्य च घः । का संख्या येषां ते

परिमाणोपाधिकप्रथमान्त यत् तत्, एतत् शब्दसे अस्य अर्थमें वतुप् उप् लुप्त (वत्) हो । यत्परिमाणमस्य=जितनी मात्रा हो इसका । अर्थात् जितना अर्थमें यत्शब्दसे प्रथमान्त परिमाण (अनिश्चितमात्रा) अर्थमें वतुप् वत् । यत् शब्दसे वत्प्रत्ययका अनिश्चितमात्रा तद्धितार्थः । जितना भी दें । यत्के तको (आ सर्वनाम्नः) से आकार यावत् शब्दः तद्धितान्तं मत्वा प्रा० संज्ञा पुलिङ्गः । प्रथमा एकवचन सुविभक्ति, उ इत् होनेसे उगिदचां सूत्रसे नुम् । अत्वसन्तस्य उपधादीर्घ यावान् पुरुषः तिष्ठति । तत्परिणामस्य (उतना) अनिश्चित या गर्भनिश्चित अर्थः। एतत्परिमाणम् अस्य (इतनी मात्रा है इसका) वतुप् आत्व, नुम्, दीर्घआदिः पूर्ववत् किमिदं आभ्यां=किम् शब्द और इदम् शब्दसे वतुप् प्रत्यय हो । वो घः=वतुप्के वको घ आदेश हो । इदं शब्दको ईश, किम् शब्दको की आदेश हो दृग् दृश् और वतुपरे । इदम्के स्थानमें ईश आदेश हो, श इत्का फल अनेकाल और शित् सम्पूर्णके स्थानमें होनेके लिए । किं परिमाणस्य । कितनी मात्रा है इसका ? (कितना) । अनिश्चित मात्रा और जिज्ञासा, उत्सुकता अर्थ प्रातिपदिकार्थ है । ऐसे प्रथमान्त कि शब्दसे (अनिश्चितमात्रा) समर्थसे किमिदम्भ्यां वो'घः, से वतुप अनुबन्ध (उप) का लोप (वत्) वको घ, घको इय् आदेश--इदंकिमोः इति किंस्थानेकी आदेश । की इयत् । यस्येति च ईका लोप, वर्णसम्मेलन । तद्धितान्तत्वात् प्रथमा एकवचन रूप कियान् कियन्तौ कियन्तः । कियता रुप्यकेण पुस्तकं दास्यति । इदं परिमाणम् अस्य=इतनी मात्रा है इसका (निश्चितमात्रा) प्रकृतिप्रत्ययका मिलित अर्थ है । प्रथमान्त इदं शब्दसे परिमाण अर्थ किमिदं सूत्रसे वतुप्=वत् वको घ ,घको इय आदेश । इदं स्थाने इदं किमोः—सूत्रसे इश् आदेश, वतुप् परे । शित्से सर्वादेशः । यस्येतिच इलोप ।(प्रत्ययमात्र इयत् पुलिङ्गएकवचन इयान् प्रच्छन्न निश्चित् मात्रा इयन्तौ, इयन्तः । नुम्, सलोप, संयोगान्तलोप । नान्त उपधादीर्घादिः पूर्ववत् ।

किमः शब्दसे संख्याका परिमाण परिच्छेद (भेद) अर्थमें डति=अति हो वतुप् भी । संख्याके विषयमें जो प्रश्न हो उसमें वर्तमान प्रथमासमर्थ किं से षष्ठी अर्थमें । डतिसंख्या परिमाण, क्यों पढ़ा ? क्षेपे मा भूत् । आक्षेपकी स्थितिमें डतिप्रत्यय न हो का संख्या इयं एषां दशानां इन दशों संख्या (सिंहके लिये) क्या है । अव्रतानाम् अमनुष्याणां जातिमात्रोपजीविनाम् । सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते । संख्येयके द्वारा संख्याकी कुत्सा निन्दा है । 'का अस्य संख्या' प्रश्न सम्भव । का संख्या एषां किं शब्दसे डति=अति किं कः कति कितनी संख्या (षट् संज्ञक) नित्य बहुवचनान्त षड्भ्यः परस्य जश्शसोर्लुक् । का संख्या एषां कियन्तः ।

कति कियन्तः ॥ संख्याया अवयवे तयप् ।५।२।४२। पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयं दारु ॥ द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ।५।२।४३। द्वयम्, द्वितयं त्रयम्, त्रितयम् ॥ उभादुदात्तो नित्यम् ।५।२।४४। उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात्, स चाद्युदात्तः । उभयम् । तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ५।२।४५। एकादश अधिका अस्मिन् एकादशः, (शतसहस्रयोरेवेष्यते) नेह – एकादश अधिका

किं शब्दात् वतुप् । वको घ, घको इय आदि कियान् कियन्तौ कियन्तः । इदं 'किमीःसे की' आदेश ।

संख्या अनेक संख्याका समुदाय उस समुदायमें जितने अवयव (संख्या भेद) हों तब अवयव (गिनी हुई सख्या) अर्थमें वर्तमान संख्यावाचकशब्द (प्रथमान्त प्रातिपदिकार्थवाचक) से अवयविनि अर्थे (समुदाय अर्थमें) तयप् हो । समुदाय अवयवी है, उसमें अनेक संख्या अवयव है । परन्तु अवयवी (समुदायमें कहीं अवयव भेद उद्भूत प्रकट हो संख्या साफ—साफ हो । यथा मुनित्रयं त्रयो अवयवाः यस्य (तीन अवयव हैं जिसके) यहां ३ मुनिका ज्ञान हो रहा है । वे मुनि कौन हैं संख्या उद्भुत है । कही अनुद्भूत अवयव ऐसा समुदाय यथा—उभय देवमनुष्याः इस समुदायमें निश्चित संख्या अनुद्भूत है । पञ्चअवयवाः=पांच संख्या है (इस समुदायके) उसको पञ्चतयम् । प्रथमान्त पञ्चन शब्दसे (गिनी हुई संख्या समुदाय अर्थमें संख्याके अवयव अर्थमें तयप् (पञ्चसंख्याक समुदाय) सप्त अवयवाः अस्य सप्ततयं, चत्वारः अवयवा अस्य चतुष्टयम् । द्वि और त्रिशब्दसे परे तयप्के स्थानमें अयच् आदेश विकल्पसे हो । यथा—द्वौ अवयवौ अस्य (दो अवयव संख्या है जिस समुदायका वह द्वयम् । प्रथमान्त द्विशब्दसे संख्याः अवयव अर्थमें तयप् । द्वित्रिसे परे तयप् स्थानमें अयच् हो वा । द्वि+अय । यस्येति इकार लोप, वर्णसम्मेलन द्वयम् । यदा अयच् न तदा द्वितयम् । त्रयो अवयवाः अस्य तीन अवयव संख्या है इसके वह समुदाय त्रयम् । प्रथमान्तत्रिशब्दसे तयप् उसको अयच् । यदा अयच् न भवति तदा त्रितयम् ।

उभात्=उभ शब्दसे परे तयप्के स्थानमें अयच् हो सच=वह अयच् आदि उदात्त भी हो नित्य हो । उभौ अवयवौ, अस्य दो संख्या है इसकी वह समुदाय उभयम् । प्रथमान्त उभशब्दसे अवयव संख्या भेद अर्थमें अयच् अन्त्य अलोप ।

तदस्मिन् अधिक वह संख्या इसमें अधिक है अर्थमें प्रथमान्त दशन् शब्द अन्त समाससे 'ड' प्रत्यय हो । प्रत्ययविधिमें तदन्तविधिके निषेधसे अन्त ग्रहण किया । निर्देशसे पञ्चमी अर्थमें सप्तमी । एकादश भाषा या रुपया पैसा अधिक है इससे । एकसे दूसरेकी अधिकता प्रत्ययका अर्थ । एकादशन्=दूसरे शब्दसे ड–अ । टिलोप स्वादिः । एकादशः । परन्तु (वा०) शत और सहस्रसे अधिक अर्थमें ही ड इष्ट है । एकत्रिंशं शतं एकचत्वारिंशं सहस्रम् । अस्मिन्में औपश्लेषिकाधिकरण सप्तमी है । नेह=इह न एकादश अधिक हैं । इस बीस संख्यामें । यहाँ ड नहीं हुआ अन्तग्रहण क्यों किया ? दश अधिकाः अस्मिन्शते यहां 'ड' न हो अन्त पढनेसे दशान्से ही डत

अस्यां विंशतौ । (प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः समानजातीयत्व एवेष्यते) नेह - एकादश माषा अधिका अस्मिन् सुवर्णशते ॥ शदन्तविंशतेश्च ।५।२।४६। डः स्यादुक्तेऽर्थे । त्रिंशदधिका अस्मिन् त्रिंश शतम्, विंशम ॥ तस्य पूरणे डट् ।५।२।४८। सख्याया इत्येव । एकादशानां पूरणः एकादशः ॥ नान्तादसंख्यादेर्मट् ।५।२।४६। डटो मडागमः । पञ्चानां पूरणः पञ्चमः । नान्तात्किम् ?

होगा । (वा०) प्रकृति और प्रत्ययकी एकजाति-मिलता जुलता अर्थ रहने पर ही ड होना इष्ट है । एकादशमाषा (इस सोनेके सैकड़ामें) अधिक हैं । माषा सुवर्णशत का समान जाति नहीं, न डः । शत् अन्त हो और विंशतिसे तदस्मिन् अधिकं (वह इससे अधिक है) अर्थमें ड प्रत्यय हो । त्रिंशत् संख्या अधिक है इस सैकड़ासे । अर्थमें त्रिंशत्से ड डित्से टिलोप । त्रिंश अ स्वादिः त्रिंशम्, एवं विंशमधिकंशतं बीस संख्या अधिक है इस सौ में, विंशतिः अधिकाः अस्मात् विंशतिः, अधिकाः अर्थे विंशति शब्दात् ड तिविंशतेः डितिसे टिलोप आदि विंशम् । अन्तग्रहणसे डिति । एकविंशं । एकत्रिंशं शतम् ।

तस्य—षष्ठयन्त संख्यावाचक शब्दसे पूर्ण अर्थमें डट्प्रत्यय । ड ट इत् 'अ' शिष्यते, पूर्यते अनेन इति पूरणः (पूरा किया जाय जिस साधनसे) पृ पालनपूरणयोः करणे ल्युट् । जिस संख्यासे पांचवीं छठी संख्या पूर्ण मानी जाय, वह पूरणी संख्या है । यथा—रामष्षष्ठः, राम छठें है । राम संख्येय (संख्याका बोध्य विषय) है । षष्ठः शब्द पूरणी संख्या है । अतः संख्येय प्रथमान्त शब्दसे पूरण अर्थमें डट् प्रत्यय हो । इति सूत्रार्थः । जिस संख्यावाची शब्दसे प्रत्ययका विधान हो, उसीका निवृत्ति निमित्त जाति, धर्म पञ्चत्व आदि पूरणप्रत्ययके अर्थ है । इतिनिष्कर्षः--भाव यह है कि पूरणअर्थमें, प्रत्यय संख्यावाचक एक शब्दसे नही होते । किन्तु द्वित्रिचतुरपञ्च इत्यादि संख्यावाचक शब्दसे ही डट् प्रत्यय हों । क्योंकि एक संख्याको पूरणी संख्याकी अपेक्षा नहीं होती । द्वितीयादिको अपेक्षा होती है । क्योंकि एकत्व द्वित्व आदि संख्याके बिना द्वित्व त्रित्व संख्यायें अपूर्ण विफल रहती है । डट् प्रत्ययका अवयव अर्थ है । पूरणप्रत्ययान्त एकदशानां (११ संख्याका पूरणः कार्य करनेवाला एकादशः रुद्रः (हनुमान्) षष्ठयन्त संख्यावाचक एकादशन् शब्दसे पूरणअर्थमें डट् प्रत्ययः । डट् इत् अ शेष । जहां डित् है वहां टि अन्का लोप मान्य है । वर्ण सम्मेलन आदि एकादशः । दशानां पूरणः दशः । द्वादशानां पूरण द्वादशः । बारह वांसूर्य । द्वाविंशतीनां पूरणः द्वाविंशः । पञ्चत्रिंशतां पूरणः । पञ्चत्रिंशः चतुष्पञ्चाशतां पूरणः चतुष्पञ्चाशत् । पञ्चषष्ठीनां पूरण । नान्तात् न अन्तमें हो संख्यावाचक होते हुए असंख्यादेः संख्यावाचक शब्द आदिमें न हो । ऐसे शब्दोंसे परे डट्को मट् म आगम हो । ट इत् आदि विधायक अउच्चा० केवलं 'म' शिष्यते । पञ्चनां पूरणः (पाण्डवोंमें) पांचवी संख्याको पूरण करनेवाला पञ्चमः नकुलः : षष्ठयन्त सम्बन्धित अर्थ प्रतिपादन समर्थ नकारान्त संख्यावाचक पञ्चन्शब्दसे पूरण

विंशः। असंख्यादेः किम् ? एकादशः॥ षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ।५।२।५१। डटि। षण्णां पूरणः-षष्ठः कतिथः,कतिपयशब्दस्यासख्यात्वेऽपि अतएव ज्ञपिकात् डट्। कतिपयथः। चतुर्थः (चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च) तुरीयः,

---

अर्थमे डट् (नान्तादसंख्यादेर्मट्) से डट् मट् आगम, अनुबन्धलोप 'पञ्चन्' नका प्रतिपादिकान्तलोप पञ्चमः। दशानां पूरणः। नान्तात् किं ? सूत्रमें नान्त संख्यावाचक शब्दसे डट्को मट् क्यों ? इसीलिए कि जो नान्त नहीं है। उससे परे डट्को मट् न हो। यथा—विंशतेः पूरणः=बीसवीं संख्याका पूरक। विंशः पुरुषः। षष्ठयन्त विंशतेःपूरणः इति विग्रहे तस्य पूरणे डट् प्रत्यय। ततः विंशतेः-विंशतिशब्द के भसंज्ञक तिका लोप हो डित्प्रत्यय परे। सम्भवे—भसंज्ञासे तिका लोप सम्भव, लोप विधानसामर्थ्यसे तिमात्रका लोप। विंश+अ दशायां यस्येति च अका लोपप्राप्त (असिद्धवदत्राभात्) इति तिलोपः असिद्धः। अलोपोऽपि न भवति विंशः। बीसवीं संख्या। पूर्वसूत्रमें नान्त न कहते, तब यहां भी मठ् हो जाता। असंख्यादेः किं ? मट् विधायक सूत्रमें संख्यावाचक शब्द आदिमें न हो ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि एकादशः में संख्यावाचक एक शब्द आदिमें है द्वादशः में द्वि है पञ्चदशः में पञ्च है यहां मट् न हो अतः असंख्यादि शब्द दिया। त्रिंशः चत्वारिंशः त्रयस्त्रिंशः षष् (छ संख्या) कति कितना अनिश्चित संख्या कतिपय कुछ संख्या, चतुर इन शब्दोंसे परे डट् थुक् (उक्–इत्)'थ' आगम हो यथा–षण्णां पूरण छठवीं संख्याका पूरक, षष्ठः राष्ट्रपतिः छठां, अत्र षष्ठयन्त षष् आम्शब्दसे पूरण अर्थमें प्रकृतिका छठा अर्थ है, उसका पूरक प्रत्ययका अर्थ है) डट् प्रत्यय उसको 'षट्कति'से थुक थ आगम, यदागमास्तद्गुणीभूताः जो आगम होते हैं वे आगमीके अर्थ गुण धर्ममें लीन है। तब थुक् भी आगम ही है। षष्+थ, ष्टुत्व षष्ठः। कतीनां पूरणः (कितनी संख्यका पूरक अर्थमें) कतिथः डट् थुक् पूर्ववत्। कतिपयानां पूरणः कुछ संख्याका पूरक अर्थमें डट् थुक् कतिपयथ। ननु षटकतिपयचतुरां थुक् सूत्रसे डट् को थुक् आगम है। डट् संख्यावाचकसे होता है। कतिपय शब्द संख्यावाचक नहीं है डट् कैसे ? अतः मूलमें कहा, यद्यपि कतिपयशब्द संख्यावाची नही है उसको थुकका विधान व्यर्थ हो ज्ञापन करता हैं कि कतिपयसे पूरण अर्थमें डट् हो। कतिपयथः। चतुर्णां पूरणः, चौथी संख्याका पूरक चतुर्थः शत्रुघ्नः षष्ठयन्त चतुरशब्दसे डट् थुक् आगम। छ प्रत्यय करने पर आदि अक्षर लोप होकर तुरीयः। यत्प्रत्यये तूर्यः।

चतुरसे (षष्ठी अन्तसे) पूरणी सख्या अर्थमें छ, यत् प्रत्यय हो आदि अक्षरका लोप भी। च इति संघातस्य लोपः। विशेष विधानसे डट् प्रत्यय नहीं बाधा जाता, थुक् विधान शक्तिसे। अतः चतुर्थः सिद्ध। चतुरसे पूरणअर्थसे छ–ईय। आदि अक्षर (च) का लोप तुरीयः तुर्यः चतुर्थः—चौथी संख्या, अच्सहित व्यञ्जनको अक्षर कहते हैं व्यञ्जन चका लोप। बहुपूग, गण संघ, इनके तिथुक् आगम हो, डट् परे। क इत् उ उच्चा०। कित्से अन्त्य अच्से परे। पूग संघ (झोपड़ी और

तुर्यः ॥ बहुपूगगणसंघस्य तिथुक् ।५।२।५२। डटि-बहुतिथः ॥ वतोरिथुक् ।५।२।५३। डटि, यावतिथः ॥ द्वेस्तीयः ।५।२।५४। डटोऽपवादः द्वयोः पूरणः—द्वितीयः ॥ त्रेः सम्प्रसारणं च ।५।२।५५। तृतीयः । इह 'हल' इति दीर्घो न । द्वितीयतृतीयेति निर्देशात् ॥ विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ।५।२।५६। एभ्यो डटस्तमडागमो वा स्यात् । विंशतितमः, विंशः । एकविंश-

---

समुदाय) संख्या नहीं हैं डट् कैसे ? सूत्रमें पढ़े जानेकी शक्ति (ज्ञापन) से डट् मान्य। बहूनां पूरणः बहुतिथः बहुतोंका पूरक । डट् थुक् आदि । पूगानां पूरणः पूगतिथः । संघानां संघतिथः । गणानां पूरणः गणतिथः । वतो=वतुप्प्रत्यय अन्तसे इथुक् आगम हो डट् परे । यावतां पूरणः अर्थमें यावत्से डट्, इथुक् यावतिथः । जितनी संख्या, तावतां पूरणः तावतिथः एतावतां पूरणः एतावतिथः । गोमतां गोमतिथ आदि । बहुगणवतुसे संख्या संज्ञा मानकर तस्य पूरणे डट् ।

द्वे-षष्ठ्यन्त संख्यावाचक द्विशब्दसे पूरण अर्थमें तीय प्रत्यय हो डट् प्रत्ययको बाधकर । द्वयोः पूरणः दूसरी संख्याका पूरक द्वितीयः बलरामः । षष्ठ्यन्त द्विशब्दसे पूरणे अर्थमें प्राप्त डटको बाधकर । तीय प्रत्यय द्वितीयः । त्रेः—षष्ठ्यन्त त्रिशब्दसे पूरण अर्थमें तीय प्रत्यय हो, च-प्रकृतिको सम्प्रसारण भी हो । यथा—त्रयाणां पूरणः तृतीयः (शिवचक्षुः तीसरी संख्याका पूरक षष्ठ्यन्त त्रिशब्दसे पूरण अर्थमें तीय प्रत्यय । प्रकृति (त्रि) शब्दोंमें र को सम्प्रसारण ऋ हुआ । सम्प्रसारणाच्च इति इको पूर्वरूप । अब तक सभी संख्याओंके पूरण अर्थमें होनेसे पूरणी संख्या मानी गयी । इस रूपमें दृष्टान्त भी मिलते हैं । अप्पूरणीप्रियादिषु । न पूरणीणां समुपैति संख्या । एकविंशतीनां पूरणः एकविंशः । एकविंशतितमः (इक्कीसवीं मुद्रा । त्रिंशतां पूरणः त्रिंशत्तमः । षष्ठितमः अशीतितमः । नवतितमः शततमः । (सौवाँ) विंशति—आदिशब्दोंसे परे डट् को तमट् आगम हो विकल्पसे, ट इत् । मका अ उच्चा० पंक्तिविंशतसूत्रमें स्वीकृतिविंशति आदि मान्य । लोकप्रसिद्ध एकविंशति आदि अमान्य—विप्रकर्षात् । वृत्तिकारक मतमें विंशति आदि लौकिकसंख्या स्वीकार है । एकविंशतितमः की सिद्धि वास्ते । तदन्तविधिका ग्रहणवता प्रातिपदिकेनसे निषेध होगा । विंशतेः पूरणः डट । उसको तमट् (विंशतितमः) पक्षमें डट् रहा, तिविंशतेडिति तिलोप (विंशः) । एवं एकविंशतेः पूरणः इक्कीससंख्याका पूरक । डट् तमट् एकविंशतितमः । पक्षमें केवल डट् एकविंशः ।

नित्यं । शत आदिमें हो, मास अर्धमास और संवत्सरसे परे डट्को तमट् आगम हो । सौवीं संख्याकी पूरणी संख्या अर्थमें डट्को तमट् । (शततमः) जो शतस्य में षष्ठी देखकर 'षष्ठ्यादेश्च, सूत्रसे सिद्ध होता, तब कहा एकशततमः । एक संख्या आदिमें है तमट् न हो पाता । मास, अर्धमास संवत्सर तो संख्या नहीं, डट् प्राप्त नहीं, तमट् कैसे ? तब कहा मासादेः सूत्रमें पढे जानेकी शक्तिसे, ज्ञापनसे डट् होगा मासस्य पूरणः आधे महीनेका पूरक अवयव तिथि अमावस्या या पूर्णमासी अर्धमासतमः । संवत्सरस्य पूरणः वर्षकी पूरणी बारहवां महीना है । डट् तमट्

तितमः, एकविंशः । **नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च** ।५।२।५७। **शतस्य** पूरणः--शततमः । मासादेरत एव ज्ञापकात् डट् । मासतमः ॥ **षष्टयादेश्चा-संख्यादेः** ।५।२।५८। षष्टितमः । संख्यादेस्तु 'विंशत्यादिभ्य' इति विकल्प एव । एकषष्ठः, एकषष्टितमः ॥ **मतौ छः सूक्तसाम्नोः** ।५।२।५९। मत्वर्थे छः । अच्छावाकशब्दोऽस्मिन्नस्ति–अच्छावाकीयं सूक्तम् । वारवन्तीयं साम ॥ **श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते** ।५।२।८४। श्रोत्रियः । 'वा' इत्यनुवृत्तेः—छान्दसः ॥ **श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ** ।५।२।८५। श्राद्धी, श्राद्धिकः ॥ **पूर्वादिनिः** ।५।२।

आदि । षष्टिः सप्ततिः इत्यादि । उसके आदिमें संख्या न हो) से ऐसे डट्को तमट् आगम नित्य हो, विंशत्यादिभ्यःके विकल्पको बाधकर । षष्टेः पूरणः षष्टितमः साठवीं संख्या (अवयव) के पूरक अर्थमें डट्को तमट् हो । यथा एकषष्टितमः एक-सठवीं संख्या । यदा न तमट् तदा यस्येति इलोपे एकषष्टः । **मतौ**==मतुप्प्रत्ययका विषय हो ऐसे अर्थमें लाक्षणिक (अस्य अस्मिन्) सम्बन्धित या आधार अर्थमें सूक्त या समान अर्थ खुलने पर अच्छावाक शब्दों अस्मिन्नस्ति अर्थमें आच्छावाकसे छ–ईय (अच्छावाकीयं) वह सूक्त स्तुति, मन्त्र है जिसमें आच्छावाक शब्द जुड़ा है। प्रथमान्तसे छ–ईय । अश्वं नत्वावारवन्तं मन्त्रमें वारवन्त शब्द पढा है । युक्त है, छ–ईय आदि । अस्यवामशब्दसे जुड़ा मन्त्र छ–ईय अस्यवामीयम् ।

श्रोतियम्–द्वितीयान्त छन्दस् शब्दसे अधीते पढता है अर्थमें घन् प्रत्यय । प्रकृति (छन्दस्) के स्थानमें 'श्रोत्र' आदेश निपातनसे हो । छन्दो अधीते वेद पढ़ता है अर्थमें श्रोतियम् शब्द निपातनसे सिद्ध है । यः छन्दो अधीते, वेदं पठति स श्रोत्रियः । द्वितीयान्त छन्दस् शब्दसे अधीते=पढ़ने वाला अर्थमें घन् घ । छन्दस्को श्रोत्र आदेश, श्रोत्र—घ । घस्थाने इय अकार, लोप, श्रोत्रियः (वेदपाठी) 'वा' इत्यनुवृत्तेः–इस सूत्रमें विकल्पार्थक वा अनुवर्तते । विकल्पसे घन् । निपातनके अभाव पक्षमें छन्दस् शब्दसे अधीते अर्थमें अण् आदिवृद्धिः । छान्दसः । पूर्वात् द्वितीयान्त पूर्वसे, अनेनशब्दसे कर्ता रूप अर्थ, क्रियाके विना असम्भव होने से (कृतम्) क्रियाका अध्याहार किया । पूर्वशब्द क्रिया विशेषण है । पूर्व कृतम् अनेन (पहले ही कार्यकर लिया) इसने । द्वितीयान्त क्रियाविशेषण पूर्वशब्दसे इनिप्रत्यय हुआ । भसंज्ञा अन्त्य अकारलोप (पूर्विन्) प्रथमायाः एकवचने पूर्वी । पूर्वं भुक्तम् अनेन पूर्वशब्दका वास्त-विक अर्थ (पहले ही क्रिया कर लेने वाला) पूर्वं पठितम् अनेन पूर्वी सपूर्वशब्दसे अनेन-कर्ता अर्थमें इनि प्रत्यय हो । कृतं पूर्वम् अनेन (पहले ही कार्य कर लिया इसने) कृतपूर्व शब्दसे कर्तरि अर्थे (सपूर्वाच्च) इनि प्रत्यय । अविवक्षित कर्मक कृधातुसे भाव अर्थमें क्तप्रत्यय, कृतं पूर्वम् अनेन इति विग्रहे (सहसुपा) इति समासे ततः । किं कृतमिति आकांक्षायाम् आसनादेः अध्याहारः आसन-कटं कृत-मित्यादि । एवं श्रुतं पूर्वम् अनेन श्रुतपूर्वी । भुक्त पूर्वम् अनेन भुक्तपूर्वी, गतं पूर्वम् अनेन, गतपूर्वी (ग्रामः) दृष्टं पूर्वम् अनेन दृष्टपूर्वी मानसमन्दिरम् आदि ।

इष्ट==प्रथमान्त इष्ट आदि शब्दोंसे अनेन इष्टमादिक्रियाके कर्ता अर्थमें इनि

८६। पूर्वं कृतमेनन पूर्वी ॥ सपूर्वाच्च ।५।२।८७। कृतपूर्वी ॥ इष्टादिभ्यश्च ।५।२।८८। इष्टमनेन—इष्टी अधीती ॥ अनुपद्यन्वेष्टा ।५।२।९०। अनुपदमन्वेष्टा-अनुपदी गवाम् ॥ साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम् ।५।२।९१। साक्षाद् द्रष्टा साक्षी । इति पाञ्चमिकप्रकणम् ।

अथ मत्वर्थीयप्रकरणम्

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ।५।२।९४। गावोऽस्यास्मिन्वा सन्ति-

---

प्रत्यय हो । यज् धातोः भूते भावे-क्त सम्प्रसारण षत्व इष्ट==यज्ञक्रिया इसने किया । प्रथमान्त इष्ट आदि शब्दसे यज्ञ क्रियाके कर्ता अर्थमें इनि प्रत्यय, यस्येति च अलोप । इष्टि शब्दसे प्रथमा एकवचन इष्टी । यज्ञ कर चुका है । अधीतम् अनेन अधीती जिसने पढ़ लिया है । अधीत शब्दसे कर्तरि अर्थे इन आदि ।

अनुपदी । पदस्य पश्चात् (अनुपदम्) अव्ययीभाव सप्तमीको अम् । अनुपदसे अन्वेष्टा खोज कर्ता अर्थमें इनि हो । निपातनसे । अभी-अभी गाय खोजने वाला है । अन्वेषण अर्थमें इनि आदि । हरदत्त मतमें गवामेव अन्वेषणे इनिः । हिरण्यादौ अन्वेषणेतु न भवति । साक्षात् (अव्यय है) प्रत्यक्ष द्रष्टा अर्थमें इनि हो । स्वयं कर्म न किया हो किन्तु करने वालेको देखा हो वही साक्षी । साक्षात् शब्दसे णिनि प्रत्यय । अव्योंका (भसंज्ञा मात्रमें) टिलोप होता है । साक्षात्में आत्का लोप साक्षिन्से स्वादिकार्य । इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकर्या भवनाद्यर्थाकाः ।

मत्वर्थीयाः—भवन आदि अर्थोंमें हुए प्रत्यय समाप्तिके बाद मत्वर्थे भवाः, मत्वर्थीयाः मतुप्प्रत्ययके अर्थमें होने वाले प्रत्यय मत्वर्थीय है । यथा भूम, निन्दा, प्रशंसासु, नित्ययोगेऽतिशायने । संसर्गेऽस्ति विवक्षायां, भवन्ति मतुबादय । भूमा बहुत, ढेर, अधिकांशः अर्थः (यथा—गोंमान् कहनेसे बहुत गाय वाला अर्थमें तात्पर्य हो तभी मतुप् होगा) साधारणव्यक्ति ही गोमान् हो सकता है । चक्रवर्ती नरेन्द्र लाखों गाय रखकर भी गोमान् नहीं हो सकते । निन्दा-जीभ लोढ़ने वाली ककुदावर्तिनी कन्या । निन्दामें इनि प्रत्यय । प्रशंसा-रूपवान् प्रशंसनीय रुपवाला । यहां मतुप्प्रत्यय प्रशंसा अर्थ कहता है । जो रूप प्रशंसनीय नहीं हैं उसे रूपवान् नहीं कहेंगे । सभी मूर्तवस्तु रूपवान् हैं जिस अर्थमें प्रत्यय हो महत्व उसीका है । नित्ययोग--(सदासम्बन्ध) क्षीरिणो वृक्षाः । क्षीरमस्ति अस्मिन् अस्य वा दूधसे भरे, वृक्षका दूधके साथ नित्यसम्बन्ध अर्थ प्रत्ययार्थ है । गन्धवती पृथ्वीका गन्धके साथ नित्य सं०, अतिशयाने-उदरिणी कन्या । अतिशयं लम्बायमानम् उदरं यस्याः, लम्बोदरी (तुन्दिल पेट) अतिशय अर्थ मतुबर्थं है । संसर्गः सम्बन्धः । दण्डमस्ति अस्य दण्डी (दण्डधारी) दण्डका दण्डाधारीके साथ संयोगसम्बन्ध ही प्रत्यर्थार्थ है । ये मत्वर्थं हैं । इन्हीं अर्थोंमें लच्, श, न, इलच, उरच्, व, इन्, ठन्, णिन्, ग्विन, अच् युस् आदि प्रत्ययोंको समझें ।

तदस्य=तद् शब्द प्रथमान्त है । तत् अस्य अस्ति । (वह इसका है) तद् अस्मिन् अस्ति इसमें है । अस्ति क्रियाका समानाधिकार समानवचन तिप्रत्ययके

गोमान् ।। तसौ मत्वर्थे ।१।४।१९। तान्तसान्तौ भसंज्ञौ स्तौ मत्वर्थे प्रत्यये परे । वसोः संप्रसारणम् । विदुष्मान् । गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः । शुक्लो

कर्ता अर्थसे है । उसका अन्वय जिसमें हो अर्थात् सत्ताक्रियाका कर्तृभूत प्रथमान्त समर्थसे अस्य (इसका, सम्बन्धित) अस्मिन् (इसमें) अधिकरण अर्थवाचक मतुप्प्रत्यय हो (उ प्-इत्) मत् शेष । इसी अर्थमें आने वाले सभी प्रत्यय होंगे । सूत्रमें 'इति' शब्द प्रतिपाद्यविषय विशेषबोधके लिए है । अस्ति क्रियामें अस् धातुका सत्तानुकूल व्यापार अर्थः । तिप्रत्ययका प्रथमपुरुष, एकवचन, और वर्तमानकाल तीन अर्थ हैं । किन्तु पुरुष और वचनकी छूट हैं । वर्तमानकाल अनिवार्य है । मतुप्प्रत्ययका अर्थ जब वर्तमान कालमें हो तभी प्रत्यय होगा । भूतकालमें नहीं । गावो अस्य आसन् (इसकालमें गोमान् साधु नहीं हैं) गोमान् आसीत् । ऐसा प्रयोग पहलेके वर्तमानमें था । उसीका व्यवहार इस समय सूचित है । गावः अस्य सन्ति । गायें इसके पास है वह गोमान् है । सन्ति शब्दमें तिप्का अर्थ कर्ता । अन्वित होनेसे प्रथमान्त गोपदसे अस्य अर्थमें (तदस्यास्ति) सूत्रसे मतुप् मत् (गो--मत्) शब्दः । प्रथमा एकवचन गोमान् । धनम् अस्ति अस्य धनवान् । बलवान्, बलमस्ति अस्मिन् अधिकरण अर्थमें मतुप् । गुणाः सन्ति अस्मिन् गुणवान् इत्यादि । तसौ-तान्त सान्तौ अन्त में हो यथा गरुत् । स अन्तमें हो यथा--विद्वस् ये भसंज्ञक हो, मत्वर्थ प्रत्ययपरे रहते । जिसका फल पदसंज्ञाका बाध है । पदनिमित्तककार्य न होना । गरुतौ पक्षौ (पङ्खे) स्तः अस्य । गरुत्मान् (पक्षी) पङ्खवाला । यहां सन्तिमें झिका अर्थ कर्ताका समानधिकार (अभेद सम्बन्ध) प्रथमान्त गरुत् शब्दसे अस्य सम्बन्धित अर्थ में मतुप् हुआ । गरुत्-मत् । तसौ मत्वथ, सूत्रसे तान्तमानकर भसंज्ञा हुई । जिसका फल पदसंज्ञा न होनेसे जश्त्व और प्रत्यये भाषायां नित्यंसे अनुनासिक (न) होना । गरुत्मान् । विद्वांसों अस्य सन्ति (विद्वान् जिससे सम्बन्धित हों । वह विदुष्मान् ग्रामः काशी । सत्ताक्रिया कर्तृभूत प्रथमान्त समर्थ विद्वस् शब्दसे अस्य अर्थमे मतुप् हुआ । सकारान्त होनेसे भसंज्ञा, जिसका फल वसोः सम्प्रसारणंसे सम्प्रसारण । सम्प्रसारणाच्च पूर्वमें विदुष्मान् । प्रथमा एकवचन ।

(वा०) गुण==गुणवाचक शब्दसे मतुप् प्रत्ययका लुक् हो । गुणे तद्वति च प्रसिद्धः, ये शब्दाः शुक्लादयः, ते गुणवचनाः तेभ्यः परस्य मतुपलुक् । गुणअर्थमें और गुणवान् अर्थमें प्रसिद्ध शब्द, से मतुप्का लुक् करें । वही गुणवचन भी है । जैसे—शुक्ल, पीत, हरित आदि । यही गुणवाचकका लक्षण भी है । अमरकोष ये गुणे शुक्लादय पुंसि गुणिलिङ्गस्तु तद्वति । शुक्ल हरित पीत आदिशब्दगुण अर्थमे पुलिङ्ग प्रसिद्ध हैं । तद्वति== गुणका आश्रय द्रव्यके अनुसार लिङ्ग होता हैं । यथा--वस्त्राणां शुक्लो गुणः । हसः पक्षिणां बकानाञ्च: शुक्लोगुणः शुद्ध गुण अर्थमें पुलिङ्ग शुक्लः पटः । शुक्ला शाटी । शुक्लं वस्त्रम् । विशेष प्रधान द्रव्य (लिङ्गानुसारी गुण) हुआ । अतएव रूपवान् घटः इत्यत्र लुङ् न भवति । क्योंकि शुक्लं वस्त्र की तरह रूप वस्त्र नहीं होता । गुणलक्षण==जाति, द्रव्य, क्रिया, पारतन्त्र्यं गुण

गुणोऽस्यास्ति-शुक्लः पटः । कृष्णः ॥ **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** ।५।२।९६। चूडालः, चूडावान् । प्राणिस्थात्किम् ? शिखावान्दीपः । प्राण्यङ्गादेव । नेह,—मेधावान् ॥ **सिध्मादिभ्यश्च** ।५।२।९७। लज्वा । सिध्मलः, सिध्मवान् (वातदन्तबलललाटानामूङ् च) । वातूलः दन्तूलः बलूलः ललाटूलः ॥ **वत्सांसाभ्यां कामबले** ।५।२।९८। लज्वा यथासंख्यं कामवति बलवति चार्थे ।

लक्षणम् । स्वातन्त्र्यन्तु द्रव्यलक्षणम् । परतन्त्रोहि गुणः दव्यमाश्रयते । सत्वेनिविशते अपैति पृथग्जातिषु दृश्यते । आधेयश्चाक्रियाजश्च, असत्वप्रकृतिर्गुणः । सीदन्ति गुणक्रियादयः विशेषणी भवन्ति यस्मिंस्तत् सत्वं यथा—शुक्लो गुणो ऽस्यास्ति, (सफेद रङ्ग है इसका) पट कपड़ा यहां गुणवाचक गुणगुणी दोनोंमें समान । प्रथमान्त शुक्ल शब्दसे मतुप् । उसका वार्तिकसे लुक् । तब शुद्धशुक्लशब्द (सफेद कपड़ा अर्थमें समर्थ हो गया) क्योंकि यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी भवति । पीतगुणोऽस्यास्तीति पीतं वस्त्रम । नीलं जलं, रक्त पुष्पं श्वेतः केशः । प्राणि—अस्ति क्रियाका कर्ता प्रथमान्त हो । प्राणिस्थ जीवके किसी अङ्गका वाचक आकारान्त शब्दसे मतुप्के अर्थमें लच् प्रत्यय विकल्पसे हो । चूडा (अरुणशिखा) अस्य सन्ति वे चूडालः कुक्कुटः मयूरः (मुर्गामोर) चूडा प्राणिस्थ अङ्ग हैं, आकारान्त है अस्ति क्रियाका कर्ता भी । प्रथमान्तसे लच् चूडालः । यदा 'लच्' न, तदा मतुप् चूडा-मत् मादुपधायाश्चसे मको व होकर चूडावान् (अरुनसिखा धुनिकान्) । सूत्रमें प्राणिस्थ क्यों कहा ? इसलिए कि अप्राणिस्थशिखाशब्दसे लच् न हो । शिखावान् दीपः (दीपसिखा सम युवति तन, मन जनि होसि पतङ्ग । यहां शिखा प्राणिस्थ नहीं है, लच् नहीं हुआ । प्राण्यङ्गादेव=प्राणीका मूर्तिमान् अङ्ग हो प्राणिवृत्ति (मूर्तिमदङ्गवाचकादेव) मेधा शब्द बुद्धिका पर्याय है । मेधा अस्ति अस्य मेधावान् कुशाग्रबुद्धिवाला । मेधाशब्द आकारान्त प्राणिस्थ अङ्ग होकर भी मूर्त अङ्ग न होनेसे लच् नहीं हुआ, किन्तु मतुप् के मको व मेधावान् । ग्रीवालः ग्रीवावान् ।

सिध्म—आदिगणपढ़े शब्दसे मत्वर्थ=भूम, निन्दा, नित्ययोग आदि अर्थमें लच् विकल्पसे हो । गडु, मणि विजय निष्पाव पांसु हनु पार्ष्णिः इत्यादि सिध्मादि है । लच् सिध्मलः । जब मतुप् आदि कार्य, तब सिध्मवान्, सिद्धि-सफलतावाला । गडुः अस्ति अस्य गण्डुलः—फोड़ा गलगण्डवाला । मणिलः मणिमान् । विजयः अस्ति अस्य विजयलः । विजयवान् । पांसुलः, हनुलः इत्यादि । अन्यतरस्यां-पूर्वसूत्रसे आया—लच् विकल्पके लिये नहीं, किन्तु मतुप् भीं होनेके लिये । क्यों कि अन्यतरस्याम् अव्यय है अनेकार्थक हैं । ततः लच्, मतुप् दोनों हुए । लच्के अभाव पक्ष में मतुप् ही हो, अत इन्ठनौ न हो । यह समुच्चयका भाव है अतः आकारान्तसे इन् ठन् नहीं हुए । लच् वा में, वा चके अर्थमे है। क्योंकि—व, स्यात् विकल्पोपमेययोरेवार्थेऽपि समुच्चय इत्यमर । (ग) वातदन्त-बल, ललाट, इनसे लच्, हो, प्रकृति को ऊङ् भी । आदेश सूचक ऊङ् प्रत्यय नहीं । बातः वायुरोगः (बहुत बोलना) अस्ति अस्य अर्थमें लच् हो, तमे अको ऊङ (वातूलः) झक्की । एवं दन्ताः सन्ति अस्य

वत्सलः अंसलः ।: **फेनादिलच्च** ।५।२।९९। चाल्लच् । अन्यतरस्यां ग्रहणं मतुप्समुच्चयार्थमनुवर्तते। फेनिलः, फेनलः, फेनवान्। **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** ।५।२।१००। लोमादिभ्यः शः, लोमशः, लोमवान् । रोमशः, रोमवान् । पामादिभ्यो नः,—पामनः (अङ्गात्कल्याणे) । अङ्गना (लक्ष्म्या अच्च) लक्ष्मणः (पिच्छादिभ्य इलच्) पिच्छिलः, पिच्छवान् । उरसिलः, उरस्वान् ॥ **प्रज्ञाश्रद्धाऽर्चाभ्यो णः** ।५।२।१०१। प्राज्ञो व्याक-

---

दन्तूल । बलमस्ति अस्य (बलूलः) ललाटमस्ति अस्य ललाटूलः चौड़ा मस्तकः ।

वत्स और अंस (कंधा) से परे मतुप् अर्थमें लच् हो विकल्पसे । यथाक्रमसे कामवान् बलवान् अर्थमें। कामः अस्ति अस्य कामलः बत्सः अस्ति अस्य वत्सलः स्नेहवान् लच् हुआ । वृत्तिविषये अंशशब्दौ स्नेहबलयोः वर्तते । अंसः (स्थूल स्कन्धः) अस्ति अस्य अंसलः डील, मोटा कन्धवाला बलवान् अर्थमें कमजोरमें अंसमान् दुर्बलः । फेन–आदि गणपढ़े शब्दसे इलच् हो लच् भी । अन्यतरस्यांका आना मतुप् संग्रहके लिए । फेनः अस्ति अस्मिन्फेनिलः समुद्रः । मतुप् हुआ तब फेनवान् गाज भरा जलाशय या मुख ।

लोमन आदि, पामन् आदि, पिच्छ आदि, शब्दोंसे क्रमशः शनेलचः–श, न, इ, लच् प्रत्यय मत्वर्थमें हो, विकल्पसे । लोमादिगणसे श । लोमानि अस्य सन्ति (रोये बहुत हैं, इसके) वह लोमशः पुरुषः (भल्लूकः) प्रथमान्त लोमन् शब्दसे (लोमादि) सूत्रसे मतुबर्थे शप्रत्यये प्रातिपदिकान्तनलोप लोमशः । पक्षे मतुप् लोमवान् । रोमाणि अस्य सन्ति रोमशः । पामादिगणसे न प्रत्यय हो पामः (चर्मरोगः) अस्ति अस्य (विचर्चिताबे युक्तः । खुजली या चेचक रोग जिसे हो) वह पामनः है । प्रथमान्तपामन्शब्दसे 'न' प्रत्यय । प्रकृतिके नका लोप, पक्षे पामवान् (ग०) कल्याणानि शोभनानि अङ्गानि यस्याः कल्याण विशेषण हो तव प्रथमान्त अङ्गशब्द से नप्रत्यय हो टाप् । यथा—अङ्गना (सुन्दर गङ्गवाली) (ग०) प्रथमान्त लक्ष्मी शब्दसे अकारान्त आदेश और नतप्रत्यय हो मत्वर्थमें। लक्ष्मीः अस्य अस्ति। लक्ष्मी या लक्षण जिससे सम्बन्धित हो वह (लक्ष्मणः) लक्षण या लक्ष्मीवाला । प्रथमान्त लक्ष्मी शब्दसे मतुप् अर्थमे न । ईकारको अकार आदेश णत्व । चकारात् मतुप् । लक्ष्मीवान् । पिच्छदिगणपठित शब्दसे इलच् प्रत्यय । पिच्छमस्ति अस्य पिच्छ शब्दों मयूरपक्षपर्यायः पिच्छिलः पन्थाः । कीचड़मय रास्ता । इससे पिच्छिलशब्द आर्द्र भूमि का भी वाचक है । उससे इलच् पिच्छिल :पक्षे मतुप् पिच्छवान् (मोर पङ्खवाले श्रीरामः) मोरपंख शिरसोहत नीके ।

उरः वक्षस्थलमस्ति अस्य उरसिलः । उरस्से इलच् (चौड़ी छातीवाला) मतुप् सु, नुम् आदि (उरस्वान्) । प्रज्ञा श्रद्धा अर्चा इनसे मत्वर्थ=भूम निन्दा आदि अर्थमें णप्रत्यय हो । प्राज्ञः व्याकरणका विशेष वेत्ता । गुणीभूतक्रियाके साथ कर्मत्वसम्बन्धः प्रज्ञानं प्रज्ञा–खुलाज्ञान । स्त्रियांके अधिकारमें प्रपूर्वक ज्ञाधातुसे आतश्चोपसर्गे कः

रणे । प्रज्ञा-श्राद्धः आर्चः । (वृत्तेश्च) वार्तः ॥ तपःसहस्राभ्यां विनीनी ।५।२।१०२। विनीन्योरिकारो नकारपरित्राणार्थः ॥ तपस्वी सहस्री ॥ अण् च ।५।२।१०३। तापसः साहस्रः ॥ (ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम्) ज्यौत्स्नः तामिस्रः ॥ सिकताशर्कराभ्यां च ।५।२।१०४। सैकतो घटः । शाकरः ॥ देशे लुबिलचौ च ।५।२।१०५। चादण् मतुप् च । सिकताः सन्त्यस्मिन्देशे-

---

सूत्रसे भावमें ण । टाप् प्रकर्षज्ञान तेजबुद्धि, प्रज्ञा अस्ति अस्य बुद्धि प्रतिमा वाला अर्थमें ण । यस्येति आलोप । पुनः टाप प्रज्ञा—व्याकरणकी सूक्ष्मज्ञान वाली बुद्धि कृतिके योगमें ही षष्ठी मान्य, तद्धितयोगमें अमान्य । न कहियेकि प्रजानाति इति प्रज्ञः-प्रविष्टवेत्ता, इगुपधज्ञासे क, प्रज्ञ एवं प्राज्ञः स्वार्थे अण् । यदि ऐसा कहेंगे तब स्त्रीविवक्षामें ङीप् होने लगेगा । अतः प्रज्ञा कहा—स्त्रियां टाप् होनेके लिए । यदि प्रज्ञादिभ्यश्चसे अण् होता तब ङीप् हो जाता । श्रद्धा अस्ति अस्य श्राद्धः, श्रद्धालु भक्तः श्रद्धासे ण—अ, यस्येति आलोप । अर्चाः अस्ति अस्य आर्चः पूज्यः (वा०) वृत्तेश्च मतुप् अर्थमें ण प्रत्यय । वृत्तिः अस्ति अस्य वार्तः जीविकावाला व्यावहारिक । वृत्तिसे ण आदिवृद्धि ।

तपः—और सहस्रसे क्रमशः विनि इनि प्रत्यय हों, दोनोंमें इ उच्चा० । किन्तु दोनोंके नकारकी इत्संज्ञा क्यों नहीं हलन्त है । तब कहा—नकारके परित्राण-रक्षा के लिये इकार पढ़ा । उपदेश दशाका अन्त्य हल् नकार नहीं है । उपदेशे अन्त्या भावात् न इत्संज्ञा । तपः अस्ति अस्य विग्रहे तपस्से विनि । तपस्विन् प्रा० संज्ञा सु । नान्त-उपधा दीर्घ आदि । तपस्वी-कल्याणके लिए ताप सहनशक्तिवाला । सहस्रमस्ति अस्य सहस्री इन्-अन्त स्वादिकार्ये । हजारों व्यक्ति या वस्तुवाला । अत्र शङ्का—असन्तत्वात्-तापस्में अस् देखकर अस्मायामेधा-सूत्रसे विन् होता, सहस्रको अदन्त देखकर अत इन्ठनौसे इन् हो जाता, तथापि अगले सूत्रमें विधान किये गये अण् से असन्तविन्, अदन्त इन् बाधे जाते है । अतः पुनः विन् इन् पढ़ा । सहस्रशब्दसे ठन्को भी बाधनेके लिये इन् है ।

अण् च—तपस् और सहस्रसे मत्वर्थमें अण् भी हो, यदि ऐसा होना है तब सूत्रमें (विनीन्यण) ऐसा एकसूत्र पढ़ते । योगविभागः=योगस्य सूत्रस्य विभागः विश्लेषः अलगाव किस लिये ? उत्तरार्थः अगले सूत्रमें अण्की ही अनुवृत्तिके लिये । तपः अस्ति अस्य तापसः अण् आदिवृद्धि (तप सन्तापे) सहस्रमस्ति अस्य साहस्रः हजार वाला, अणादि (वा) ज्योत्स्ना-आदिगण पढ़से भी अण् कहें । ज्योत्स्ना—चन्द्रिका अस्ति अस्य । अण् आदिवृद्धि ज्यौत्स्नः शुक्लपक्षः । चांदनीका पक्ष । तमिस्राः तमो युक्ताः रात्रयः, (घोर अन्धकार) ताः सन्ति अस्य विग्रहे ज्योत्सनादिभ्यःसे अण् आदिवृद्धि तामिस्र-कृष्णपक्षः । अंधेरी रातका अथवा नरक विशेषः तमःसमूहः तमिस्रं—तमस् निपातनसे मत्वर्थीय र । अवयव भूतानि तमांसि विद्यन्ते तानि सन्ति अस्मिन् विग्रहे रान्तादण् ङीप् तामस्री, तमिस्रा—तामसी रात्रिः । ज्यौत्स्नी चन्द्रिकयान्विता इत्यमरः ।

सिकताः, सिकतिलः, सैकतः, सिकतावान् । एवं शर्करा इत्यादि । **दन्त उन्नत उरच्** ।५।२।१०६। उन्नता दन्ता अस्य दन्तुरः ॥ **ऊषसुषिमुष्कमधो रः** ।५।२।१०७। ऊषरः सुषिरः । मुष्कोऽण्डः, मुष्करः मधुरः । (रप्रकरणे ख-मुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम्) खरः मुखरः, कुञ्जो हस्तिहनुः, कुञ्जरः ॥ (नगपांसुपाण्डुभ्यश्च) नगरः पांसुरः पाण्डुरः (कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च) कच्छुरः ॥

सिकता और शर्करासे भी मत्वर्थमें अण् कहें। सिकताः सन्ति अस्य सैकतः घटः बालूसे भरा घड़ा। सिकतासे अणादि। शर्कराः सन्ति अस्मिन्शार्करः। अथवा देशविशेष अर्थमें किसी नगर या देशके नामसे प्रसिद्ध घड़ा आदि (शार्करः) चीनी बहुल देश। अप्सुमनः समासिकता वर्षाणांबहुत्वं—इस लिङ्गानुशासनसे नित्य हुवचनान्त। देशे—देश अर्थ खुलता हो, तब पूर्वसूत्रसे विधान हुए अण्का लुप् हो। और इलच् प्रत्यय, अण् भी हों। समीपी होनेसे मतुप् भी हो। प्रत्ययोंके संग्रहके लिये समुच्चयार्थक अन्यतरस्याम् आया। रेता हो जिस देशमें उसका नाम सिकताः पूर्वसूत्रके अण्का इस सूत्रसे लुप्। स्वभावतः बहुवचन। जब सिकतासे इलच् हुआ तब यस्येति आकारलोप सिकतिलः अण् हुआ तब आदिवृद्धि होकर सैकतः। मतुप् होने पर धनवान् इव सिकतावान्। इसी तरह शर्कराः शर्करिलः शार्करः शर्करावान्। एकासिकता तैलदाने असमर्था-इस भाष्यप्रमाणसे एकवचनान्त भी मान्य। अमरकारने-स्त्री शर्करा शर्करिलः शार्करः शर्करावती। देश एवादि। देश एवमेव-समुन्नेयाः। सिकतावती दोनोंका उदाहरण।

प्रथमान्त-दन्त शब्दसे उन्नत ऊंचे दांत अर्थमें उरच् प्रत्यय हो। उन्नताः दन्ताः (ऊंचे ओठसे न छिपने वाले दांत हो जिसके) वह दन्तुरः। प्रथमान्त दन्त शब्दसे उन्नत अर्थमें उरच्। अकारलोप।

ऊष सुषि मुष्क मधु इनके बीच समाहार द्वन्द्व। सौत्रं पुम्। इनसे मतुप् अर्थ में र हो। ऊषरः स्यादूषः क्षारमृत्तिका। नमकीन मिट्टी रेहटाकी भूमि अर्थमें र—ऊषरः (ऊसरघरसें तृण नहि जामा) सुषिः बिलं छिद्रमस्ति अस्य सुषिरः छेदवाला। र प्रत्यय। मधुशब्द मधुमक्षिका निर्मित रस विशेष अर्थमें ही मान्य। अतः कहा मधु माधुर्यं, मधुः अस्ति अस्य मधुरः। मुष्कः अस्ति अस्य मुष्करः अण्डावाला या मधुका पात्र। (वा०) र-के प्रकरणमें ख, मुख और कुञ्जको भी गिनें। खं महत्कण्ठं विवरं अस्ति अस्य खरः गलेका छिद्र बड़ा हो शंखध्वनि लायक। अतः खरो गर्दभः धृष्टः निःशीलः, असभ्यवक्ता। मुख-वाचालशक्तिः अस्ति अस्य मुखरः बड़बड़ानेवाला, नेता, अग्रणी। कुञ्जमस्ति कुञ्जरः तुण्ड शुण्डवाला, (वा०) नग पांसु पाण्डुसे भी र प्रत्यय कहें। नगाः पर्वताः वक्षाः (जातिशब्द है) सन्ति अस्मिन् (नगरः) पांसुः अस्ति अस्मिन् (पांसुरः) धूलि भरा पथ। पाण्डुः अस्ति अस्य शुक्लवर्णं धवलिमा-वाला। पाण्डुर कैसे बनेगा? वह अव्युत्पन्न है रूढः। हरिणः पाण्डुरः ताण्डुः गुण-मात्रे गुणिनि च वर्तते। गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणि लिङ्गास्तु तद्वति इत्यमरः।

द्युद्रुभ्यां मः ।५।२।१०८। द्युमः द्रुमः। केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ।५।२।१०९। प्रकृतेनान्यतरस्यां ग्रहणेन मतुपि सिद्धे पुनर्ग्रहणं इनिठनोः समावेशार्थम्। केशवः, केशी, केशिक, केशवान्। (अन्येभ्योऽपि दृश्यते) मणिवो नागविशेषः। [अर्णसो लोपश्च] अर्णवः॥ गाण्डयजगात्संज्ञायाम् ।५।२।११०। ह्रस्वदीर्घयोर्यणा तन्त्रेण निर्देशः। गाण्डिवम्, गाण्डीवम्, अर्जुनस्य धनुः। अजगवं पिनाकः॥ काण्डाण्डादीरन्नीरचौ ।५।२।१११। काण्डीरः। आण्डीरः

(वा०) कच्छु शब्दसे र हो। ऊको ह्रस्व हो। शुनां रोगः चच्छुरः। रप्रत्यय और ह्रस्व आदेश (कुत्तेकी बीमारी)

द्यु द्रु इनसे अस्ति अस्य अर्थमें म हो। द्यौः अस्ति अस्य आकाश पोल है इसमें। दिवसे म, दिव उत् वको 'उ' दिनमें इको अण् द्युमः। स्वादिकार्यं घट मठ अर्थः। द्रुवृंक्षः छाया, सो अस्यास्ति (छाया जिसकी हो वह) म प्रत्यय। जनकतया द्रुमोपि वृक्षएव। पलाशो द्रु द्रुमागमाः रूढ़ शब्द है। मतुप् इष्ट नहीं, जो अर्थ है।

केशाद्—प्रथमान्त केश शब्दसे अस्ति अस्य अर्थमें व प्रत्यय विकल्पसे हो। यद्यपि समर्थानां प्रमाद्वा सूत्रके अधिकारसे विकल्प सिद्ध था (अन्यतरस्यां ग्रहणने इन्ठन्का भी समावेश हो) यह ज्ञापन किया। इसलिए चार प्रत्ययके उदाहरण यथा—केशाः सन्ति अस्य। प्रथमान्त केश शब्दसे वप्रत्यय होने पर केशवः। इन् केशी। ठन् इक केशिकः। मतुप्, मको व आदेश करके केशवान् (वा०) अन्य शब्दोंसे भी व प्रत्यय देखें। यथा—मणिः अस्ति अस्य मणिवः (मणिधरनागः) प्रथमान्त मणिशब्दसे मत्वर्थे व। (वा०) प्रथमान्त अर्णस् शब्दसे अस्ति अर्थमें व हो 'स' का लोप भी। अर्णांसि जलानि सन्ति अस्य (जिसमें अपार जल हों) वह अर्णवः समुद्रः। प्रथमान्त अर्णस् शब्दात् मत्वर्थे व प्रत्यय। अन्य सकारलोपे।

गाण्डी गाण्डि और अजगसे संज्ञा किसीका नाम होनेपर व प्रत्यय हो, ह्रस्व दीर्घ दोनोंका सूचक यण् हैं। तन्त्रेण=क्रमसे उच्चारण समझें। जैसे खयत्यात्परस्य यण् से खिति खीतीका ज्ञान रूढ़ है। मतुप् नहीं होता। गाण्डीः अस्ति अस्य झुककर निशानेकी शक्ति वास्ते अर्थे व (गाण्डिवम्)। दीर्घसे व होने पर गाण्डीवं संज्ञा है अर्जुनके धनुषकी। अजगः अस्ति अस्य (बहुत भारी है) व प्रत्यय अजगवं शिवधनुष का नाम। अधिरोहति गाण्डिवं महेषौ गाण्डीवी कनकशिलानिभं भुजाभ्यामिति।

काण्ड आण्डसे क्रमशः ईरन् इरच् हो भूभा निन्दा आदि अर्थे। काण्डमस्ति अर्थे र काण्डीरः सर्ग अध्यायका ग्रन्थ। जैसे बालकाण्ड सुन्दरकाण्ड। आण्डमस्ति अस्य आण्ड़ीरः भगवान् (रोम रोम प्रतिलागे कोटि ब्रह्माण्ड) रजस्, कृषि, आसुति परिषद् इनसे भूम निन्दा, नित्ययोगादि अर्थमे वलच् हो। रजः अस्ति अस्याः रजस्वला रजोधर्मवती मासिकवाली। रजस् शब्दसे अस्ति अस्या विवक्षामें वलच्, अनुबन्धलोप, टाप्। कृषिः अस्ति अस्य अर्थे वलच् खेती बारीवाला किसान। (कृषीवलः)। बल परे दीर्घ हुआ। असुति अस्ति अस्य अभिषेक, स्नानादि हो गया हो

रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ।५।२।११२। रजस्वला स्त्री। कृषीवलः। 'वले' इति दीर्घः। आसुतीवलः, शौण्डिकः परिषद्वलः। पर्षदिति पाठान्तरम्। पर्षद्वलम्। (अन्येभ्योऽपि दृश्यते) भ्रातृवलः। पुत्रवलः। शत्रुबलः। **दन्तशिखात्संज्ञायाम्** ।५।२।११३। दन्तावलो हस्ती। शिखावलः केकी॥ **अत इनिठनौ** ।५।२।११५। दण्डी, दण्डिकः॥ **व्रीह्यादिभ्यश्च** ।५।२।११६। व्रीही, व्रीहिकः॥ **तुन्दादिभ्य इलच्च** ।५।२।११७। मतुप् च। तुन्दिलः,

---

(आसुतीवलः)। सू—अभिषवे। आङ्सुसे क्तिन् वल परे दीर्घः, स्नान किया हुआ रुद्राभिषेक इव। परितः सीदति, शौण्डिकः (हाथी झुण्डं) अस्ति अस्य शौण्डिकः। परिषद् चारों तरफ फैली सभा। सत्सु-क्विप् सदिरप्रतेः षत्व। परिषद् अस्तिअस्य परिषद्वलः सभाध्यक्ष सभापतिः,। पर्षद ऐसा भी पाठ है। जैसे शृ दृसे 'अदि' होता है ऐसे ही पृषसे अद्, पृषद्। तत्र भवः पार्षदः। भाष्यमें पार्षदकृतिरेषा, तत्र भवतां सर्ववेद पारिषदं हीदं शास्त्रम् यह शास्त्र सभी शास्त्रोंका अध्यक्ष हैं। पर्षदेषा दशावरा इति मनुः। बलच् हुआ पर्षद्वलं (वा०) अन्य शब्दसे भी बलच् देखा जाता है। भ्राता अस्ति अस्य (भ्रातृवलः) अनोपेसे अण् आनेपर। अन्को ही वलेसे दीर्घ) यहां नहीं हुआ। पुत्रः अस्ति अस्य पुत्रवलः पुत्रवान्। शत्रुः अस्ति अस्य शत्रुवलः दुश्मन्। पुत्रवल इत्यादिमें 'वले'से दीर्घ क्यों नही ? इसलिये कि वलेः सूत्रमें संज्ञायाके आनेसे संज्ञामें ही दीर्घ करता है।

दन्त और शिखासे मत्वर्थमें वलच् हो। संज्ञायां==दन्तश्च शिखा च अनयोः समाहारसे पञ्चमी। दन्तौ स्तः अस्य दन्तावलः हाथी। दो दाँत वाला। मनुष्य अर्थमें वलच् नहीं होगा अतः हस्ती कहा। शिखा अस्ति अस्य चोटीवाला केकी— मयूर अर्थमें वलच् (शिखावलः) चोटीवाला मनुष्यसे न हो परन्तु केकी अर्थमें वलच्।

अत=ह्रस्व अकारान्तप्रथमान्त समर्थशब्दसे अस्य अस्मिन् अर्थमें इन् ठन् हों। यदा अन्यतरस्यामनुवर्तते तदा मतुबपि। दण्डो अस्यास्ति। दण्ड=दण्डधारी। अदन्त ग्राह्यग्राहकसम्बन्धसमर्थ दण्डशब्दसे अस्य (सम्बन्धित अर्थे) अत इन्ठनौसे इनि प्रत्यय, अन्त्य अलोप। दण्डिन्से दण्डी। यदा ठन् प्रत्ययः तदा ठ—इक आदेश अलोप दण्डिकः, यदा मतुप् तदा दण्डवान्। धनीं धनिकः। अर्थी अर्थिकः। शिक्षार्थी, शिक्षार्थिकः। प्रथमान्त समर्थ व्रीहि आदि शब्दोंसे भी इन् ठन् हो। अदन्त न होनेसे यह सूत्र पढ़ा। व्रीहयः सन्ति अस्य (बहुतधान हो जिसके) प्रथमान्त आधेय समर्थ भूमा अधिकतर अर्थमें 'इन्' या ठन्। भसंज्ञा अन्त्य इलोप व्रीहि शब्दसे व्रीही। ठको इक आदेश व्रीहिक।

तुन्द आदिगणमें पढ़ेसे इलच् हो, इन् ठन् मतुप् भी हो, अन्यतरस्यांके आनेसे तुन्दमस्ति तुन्दिलः। निकला पेटवाला, तुन्दसे इलच्। जब इन् सु आदि तब तुन्दी। ठ—इक तुन्दिकः, एवं उदरमस्ति अस्य उदरिलः। उदरी उदरिकः उदरवान्, पेट वाला पिचण्डिलः पिचण्डी। पीठीभरा। यवः अस्ति यवी यविलः व्रीहिलः व्रीहिवान्।

तुन्दिकः, तुन्दवान्। उदर पिचण्ड यव व्रीहि इति तुन्दादिः॥ **रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्** ।५,२।१२०। आहतं रूपमस्यास्तीति रूप्यः कार्षापणः। प्रशस्तं रूपमस्यास्तीति रूप्यो गौः। [अन्येभ्योऽपि दृश्यते]। हिम्याः पर्वताः। गुण्या ब्राह्मणाः॥ **अस्मायामेधास्रजो विनिः** ।५।२।१२१। यशस्वी, यशस्वान्। मायावी, मायावान्। व्रीह्यादिपाठात् मायी, मायिकः। स्रग्वी॥ (शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन्)। शृङ्गारकः वृन्दारकः [फलबर्हाभ्यामिनच्]। फलिनः बर्हिणः॥ (हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम्) हृदयालुः, हृदयी, हृदयिकः

रूप-शब्दसे आहतं हनन ताडन और प्रशंसा अर्थमें यप् हो। आहतं ताडनेन निष्पन्नं रूपं यस्य, रूपसे यप् (ताडनसे चोट घाव अर्थमें) घवहारूप हो या ताडन से फूटी हुयी कौड़ी कार्षापण परिमाण जिसमें रजत सुवर्णकी मुद्रिका जड़ी हो। उसमें सोनार ठोक-ठोककर (स्वर्णकार कृता हननक्रिया तथा निष्पाद्यं) रूपसे य, यस्येति अलोप (रूप्यः) घटः। कुम्भकार ताडनकर तैयार करता है। प्रशंसा अर्थे प्रशंसनीय रूप हो जिसका सुडौल बैल रूप्यः, यहां यप् का प्रशंसनीय अर्थ, प्रशस्तरूपसम्पन्न। आहत (ठोंक-२ कर तैयार किया, ऐसा) क्यों? नर-नारी रूपवान् हो वहां यप् न हो। क्योंकि उनकी सुन्दरता ताडनसे तैयार नहीं (वा०) अन्य शब्दोंसे भी यप देखा है। यथा—बहुलं हिममस्ति एषु, भूमा अर्थमें यप् (बहुत बर्फ जिस पहाड़पर हो) हिम्याः। हिमसे यप् बर्फ गिरना आहत है। प्रशंसामें प्रशस्ताः गुणाः येषु ते ब्राह्मणाः गुण्याः प्रशस्तगुणसम्पन्नाः। गुणसे यप् जस्। दृषि पढ़नेसे इनि भी मान्य। माघमें (गुण्यगुण्य इति न व्यजीगणत्) गुणी-अगुण्य इति। अस्=प्रथमान्त अस् अन्तमें हो माया, मेधा, स्रज शब्दोंसे अस्य अस्मिन् अर्थमें विनि प्रत्यय हो। अस्का उदाहरण-यशो अस्ति अस्य (कीर्ति है इसका) यशस्वी यशवाला, प्रथमान्तयशस् शब्दसे सम्बन्धित और आधार अर्थमें अस्मायामेधा—सूत्रसे विन् यशस्विन् प्रथमा एकवचन (यशस्वी) पक्षे मतुप् यशस्वत्। नुम्, दीर्घादि कार्ये यशस्वान्। यहां तसौ मत्वर्थेसे भसंज्ञा, जिसकाफल पदनिमित्तक कोई कार्य न होना। माया अस्ति अस्य (छलकपट हो जिसके) मायावी (छली, कपटी) प्रथमान्त सम्बन्धसमर्थमाया-शब्दसे 'अस्माया' सूत्रसे विन्। पक्षे मतुप् मायावान्। मेधा बुद्धिः अस्ति अस्य (धारण करनेकी शक्ति हो जिसकी। मेधावी बुद्धिमान् प्रथमान्तधारण समर्थ मेधाशब्दसे विन्। पक्षमें मतुप् मेधावान् स्रग् (माला) अस्ति अस्य स्रग्वी। प्रथमान्त धारण योग्य स्रज् शब्दसे विन्। चोः कुः कुत्वेन 'ग' पक्षे मतुप्। स्रग्वान् मतुप्के मको व कुत्वादि।

शृङ्ग और वृन्दसे आरकन् कहे। शृङ्गं मस्ति अस्य आरकन् सींगवाला। वृन्दं समूहमस्ति अस्य आरकन् वृन्दारकः (वा०) फल और बर्हिसे इनच् कहे। फलं फलानि सन्ति अस्मिन् फलिनः। फलसे ढ़ेर अर्थमें इनच् अलोप। बर्हा सन्ति अस्मिन्बर्हिणः बहुतसे पंख है जिसमें, वह मयूर। इनच् णत्व (वा०) हृदयसे आलुच् हो, अन्यतरस्यांसे इन्ठन्का लाभ। मतुप् सर्वत्र सुमुच्चायित एव। हृदय-

हृदयवान् (शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने) शीतं न सहते शीतालुः। उष्णालुः। तृप्रः पुरोडाशः, तं न सहते तृप्रालुः(तप्पर्वमरुद्भ्याम्)। पर्वतः, मरुत्तः॥ **ऊर्णाया युस्** ।५।२।१२२। ऊर्णायुः॥ **वाचो ग्मिनिः** ।५।२।१२४। वाग्मी॥ **आलजाटचौ बहुभाषिणि** ।५।२।१२५। (कुत्सित इति वक्तव्यम्) कुत्सितं बहु-भाषते वाचालः, वाचाटः। यस्तु सम्यग्बहु भाषते स वाग्मी इत्यर्थः॥

मस्ति अस्य आलुच्, हृदयालुः, भावुक सरस पुरुष। जब इन, सु आदि तब हृदयी। ठ–इक मतुप् सबका अर्थ समान। प्रत्यय भिन्नतासे भेद (वा०) शीतोष्णतृप्रेभ्य-तन्न सहते वार्तिकका अर्थ संग्रह। शीत, उष्ण, तृप्र इनके द्वितीयान्तसे न सहते=असहन अर्थमें आलुच् हो जो पूर्वसूत्रसे आया। शीतका न सहन करनेवाला अर्थमें शीतसे आलुच् शीतालुः। ठण्ढ बर्दाश्त न हो। उष्णं न सहते उष्णालुः गर्मी सहन न हो। त्रिप धातुसे रक प्रत्यय तृप्र—हवनकी खीर न तिप्रा उर्व्यंत्यांश इस मन्त्र के भाष्यमें ऐसा अर्थ है। तं न सहने=उसको देख न सके। माधव मतमें दुःखी है।

तप् प्रत्यय हो, पर्व और मरुतसे। हरदत्त वृत्तिकार 'तन्' होना कहते हैं। पर्वमस्ति अस्य अर्थे त। पर्वतः अनेकग्रन्थि, चोटी जिस पर है। मरुतः सन्ति अस्मिन् अनेक प्रकारकी वायु हो तप्। मरुतः। मरुतचले उन्चास। ऊर्णासे युस् हो भूमादि अर्थमें। ऊर्णास्ति अस्य (ऊन् हो जिसमें) अर्थे युस् भेड़की ऊन है। यस्येति चसे अकारलोप न हो अतः कहा सित्वात्–सिति चसे पदसंज्ञा जिसका फल भसंज्ञाका बाध। इस सूत्रमें वहुलं छन्दसिकी अनुवृत्ति करते है ठीक भी है। क्योंकि अहं शुभमोर्युस सूत्रमें ऊर्णा पढ़ देते, प्रयोग बन जाता अलग सूत्र पढ़ना छन्दसिकी अनुवृत्तिमें प्रमाण है।

वाच शब्दसे अस्ति अस्य (सम्बन्धित या आधार अर्थमें) ग्मिन्प्रत्यय हो। तद्धि-तपरे है। लश कवर्गकी इत्संज्ञा न होनेसे 'ग' इत् नहीं हुआ। इकार गका रक्षक है। यद्यपि वाच्के 'च' को कुत्व जश्त्वकरके 'ग' बन सकता था। तथापि दो गका श्रवण होता, द्वित्वे त्रयाणां श्रवणम्। अथवा (प्रत्यये भाषायां नित्यं से) नित्य अनु-नासिक न हो अतः 'ग' पढ़ा। वाचो अस्य सन्ति (वाणीकी शक्ति जिसमें हो) वक्ता प्रथमान्त वाच् शब्दसे सम्बन्धित अर्थमें ग्मिन् प्रत्यय हो। वाच्के चको कुत्वं जश्त्वं **वाग्मिन्**। यहां प्रत्ययका अर्थ प्रशंसा है। प्रबचनकार ही वाग्मी है। सवर्णी झरि-परे एक ग–का लोप।

आलच् आटच् प्रत्यय वाचशब्दसे हो। मत्वर्थ=बहुभाषी अर्थमें। इस सूत्रमें (वा०) कुत्सित निन्दित अर्थ भी पढ़ें, ग्मिनिको बाधकर। कुत्सितम्=अनाप सानाप, बहुत बोलना अर्थमें आलच् वाचालः अशिष्टवक्ता। जब आटच् वाचाटः अप्रिय वक्ता। यस्तु—जो व्यक्ति सम्यक् सन्तुलित मर्यादित सूझबूझसे बहुत बोलता है वह वाग्मी हैं प्रामाणिकवक्ता, नेता। अबहु–अकुत्सितं यो वदति तत्रापि वाग्मी, कुतो

स्वामिन्नैश्वर्ये ।५।१।१२६। ऐश्वर्यवाचकात् स्वशब्दान्मत्वर्थे आमिनच् । स्वामी ।। अर्शआदिभ्योऽच् ।५।२।१२७। आर्शासि अस्य विद्यन्ते-अर्शसः । आकृतिगणोऽयम् ।। वातातीसाराभ्यां कुक् च ।५।२।१२९। चादिनिः । वातकी अतीसारकी (पिशाचाच्च) पिशाचकी ।। हस्ताज्जातौ ।५।२।१३३। हस्ती । वर्णाद् ब्रह्मचारिणि ।५।२।१३४। वर्णी ।। कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ।५।२।१३८।

न भवति, भाष्ये-योहि सम्यग्बहुभासते स वाग्मी इत्येव भवति । इस प्रमाणसे सम्यग्बहुभाषी अर्थमें ही ग्मिन् होगा।

स्वामिनि—ईश्वरस्य भावः ऐश्वर्यंका वाचक स्वशब्दसे भूमा नित्ययोग आदि अर्थमें आमिनच् हो। स्वं ऐश्वर्यमस्ति अस्मिन् (ईशिता हि ईश्वरः प्रभुत्वसम्पन्नः) ईश्वरभाववाला अर्थमें आमिनच् । स्वामिन्से सु आदि । वागीश एव वाचस्पतिः वाचः स्वामी। ऐश्वर्य क्यों पढ़ा ? स्ववान् धनवान् अर्थमें आमिनच न हो ।

अर्शस्-शब्दके प्रथमान्त सम्बन्ध समर्थ विद्यमान अर्श आदि शब्दसे मत्वर्थ अच् प्रत्यय हो । यथा—अर्शांसि (पायुरोगाः) सन्ति अस्य। गुदारोग बवासीर जिसको हो, उसके वाचक शब्दसे मत्वर्थ अच् प्रत्यय अर्शसः । यह आकृतिगण है अच् प्रत्ययसे अन्दाज लें । जैसे--पापमस्ति अस्य इति पापः, पापी अर्थमें पाप शब्दको अर्शादिगण मानकर अच् । पानमिति पीतं, तदस्ति अस्य पीतो वत्सः जिसने पी लिया है ।

वात—अतिसारसे भूमा, नित्ययोग आदि अर्थमें इनि कहें । प्रकृतिको कुक् हो, क इत्, उ उच्चा० । कित्से अन्त्य अवयव । वातं वायुरोगमस्ति अस्य (वातकी) गठिया रोग । वातसे इन्, क । वातरोगवान्, अतिसारः गुदरोगः अस्ति अस्य इन् कुक् । अतिसारकी । (वा०) रोगे=रोगमात्रमें इन् और कुक् होंगे । नेह-यहां नहीं हुआ, वातः अस्ति अस्यां वातवती हवादार गुफा । यहां रोग अर्थ न होनेसे कुक् नहीं हुआ। (वा०) पिशाचसे भी इन्, कुक् कहें । पिशाचकी पिशाचवाली गुफा ।

हस्त शब्दसे नित्य योगादि अर्थमें इनि हो, समुदायसे जाति अर्थ जान पड़ने पर । हस्तः अस्तिअस्य हस्ती-हाथी जाति समुदायका अर्थ खुल रहा है । हस्तसे इन—हस्तिन् सु आदि (हस्ती) वर्णसे इन हो नित्य सम्बन्धमें । समुदायसे ब्रह्मचारी अर्थ खुले । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनोंका यथा उचितमस्तु (बसन्त आदिकालमें उपनयन ही वर्ण है) सो अस्यास्ति अर्थे इन् वर्णिन् स । नान्त उपधाको दीर्घ, सुलोपनलोपौ वर्णी--ब्रह्मचारी ।

कम् शम् शब्दसे ब भ युस् ति, तु त य ये सात प्रत्यय हो इनके बीच द्वन्द्व, प्रथमाबहुबचन । कं-जल और सुख अर्थमें हो, और शम केवल सुख अर्थमें तभी इनसे सात प्रत्यय हों । मत्वर्थमें युस् और असूका स पदसंज्ञाके लिये है, अन्यथा भसंज्ञासे पदसंज्ञा न हो पाती। तब अनुस्वारभी न हो पाता । कं-जलं सुखं अस्ति अस्य

कमित्युदकसुखयोः। शमिति सुखे। आभ्यां सप्त प्रत्ययाः स्युः। युस्यसोः सकारः पदत्वार्थः। कंवः, कंभः, कंयुः, कंतिः, कंतुः, कंतः, कंयः। एवं शवं इत्यादि॥ तुन्दिवलिवटेर्भ ।५।२।१३९। तुन्दिभः। वलिभः। वटिभः॥ अहं-शुभमोर्युस् ।५।२।१४०। अहंयुः, अहङ्कारवान्। शुभंयुः, शुभान्वितः।

इति मत्वर्थीयप्रकणम्।

अथ प्राग्दिशीयप्रकरणम

प्राग् दिशो विभक्तिः ।५।३।१। 'दिक्शब्देभ्य' इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः

कम्बः—जलाशय या सुखी। कमसे वत्प्रत्यय, भ होने पर कम्भः। कम् युः युस्। अनुस्वार परसवर्णमें यवलपरे यवला (वा) कम्से ति, मको अनुस्वार परसवर्ण कन्तिः। तु त य सभी रूपोंके एक अर्थ। कम् उदकं अस्ति अस्य। जलाशय या सुखी। एवं शं, सुखमस्ति अस्मिन् शम्बः। सुखी। भ, युस् आदि होनेपर अर्थ समान। सबका मस्त अर्थ। शंयुः यहां यवल परे यवला वा शन्तिः शन्तु शन्तःका अर्थ सुखवाला। शं सुखमस्ति अस्य शन्तः। अनुस्वारस्य विकल्पेन परसवर्णः। व और यपरे अनुनासिक व य ही हुआ करता है। बहुव्रीहिः दन्त्योष्ठ्यादिः न तु पवर्गतृतीयः।

तुन्दि वलि, वटि इनसे (अयमस्ति अस्य) अस्मिन्वा अर्थमें भ प्रत्यय हो। समाहारद्वन्द्व, पञ्चमी एकवचन। पुं, ऋषि प्रमाणसे। वृद्धा=बढ़ी हुई नाभिको तोंद कहते हैं। तुन्दिः अस्ति अस्य अर्थे भ (तुन्दिभः) तोंद वाला। माधवके मतमें (तुडि तोड़ने) अर्थमें तुण्डधातुः। वृद्धा नाभिस्तुण्डिः अस्ति अस्य तुण्डिलः, तदैव तुण्डिभः तुण्डी (वलि वटेर्भः) बलमस्ति अस्य बलिभः। (बल प्राणने) वटिः—ऐठन दिया हुआ है इसमें वटिभः वटी हुई रस्सी (वट् वेष्ठने लपेटने) अर्थमें इन्। वटिशब्द पामादिगणमें है। अतः वटिनः भी होगा। वटनं वटिः सो अस्यास्ति। अतः बलिनः भी बनेगा।

अहं और शुभं ये मकारान्त अव्यय हैं। इनसे युस् प्रत्यय (सइत्का फल) सिति च वार्तिकसे पदसंज्ञा। जिसका फलं मको अनुस्वार। अहम् अस्ति अस्य (अहं भाव हो जिसमें) अहंयुः अहंकारी, अहम् मान्त अव्ययशब्दसे अस्ति अस्य अर्थमें युस्। सित् होनेसे पूर्वकी पदसज्ञा सिति चसे पदान्तको अनुस्वारः। अहंयुः अहं-कारवान् शुभं कल्याणमस्ति अस्य भाग्यशाली शुभंयुः शुभसे युक्त। विशेषः—अस्य अस्मिन् (सम्बन्धित या आधारका) अस्ति, सन्ति वर्तमानकाल, अवश्य हो। प्रकृतिका आधेय प्रत्ययका आधार अर्थ है। या प्रकृतिका विशेषण, प्रत्ययका विशेष्य (प्रधान) अर्थ है। प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूत, तयोः, प्रत्ययार्थस्य प्राधान्यम्। इति मत्वर्थीयाः पूर्णाः।

प्राग्दिशीयाः दिक्शब्देभ्यः सूत्रसे पहलेके प्रत्यय और वक्षमाण—कहे जाने वाले (तसिल् त्रल् ह, दा, र्हिल थाल् थम्) ये विभक्तिसंज्ञक हों। क्योंकि किसी

प्रत्यया विभक्तिसंज्ञा स्युः। अथ स्वार्थिका प्रत्ययाः। **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** ।५।३।२। किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते। **पञ्चम्यास्तसिल्** ।५।३।७। पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा। **कुतिहोः** ।७।२।१०४। किमः कुस्तादौ हादौ च विभक्तौ। कुतः कस्मात्। **इदम इश्** ।५।३।३ प्राग्दिशीये। इतः। **एतदोऽन्** ।५।३।४। एतदः प्राग्दिशीये। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः। अतः इतः अमुतः यतः। ततः बहुतः। द्व्यादेस्तु

न किसी विभक्तिके स्थानमें वे होते हैं। उक्त संज्ञाका फल (न विभक्तौ तुस्मासे तवर्ग स, म, की इत्संज्ञा वारण है। विभक्तिपरे त्यदादीनामः अन्य कार्यके लिये भी हो। प्राग्दिशि भवाः प्राग्दिशीयाः। किं सर्वनाम, और बहुशब्दोसे परे विभक्तिके स्थानमें हुए प्रत्ययको विभक्तिसंज्ञाका अधिकार मिले, प्राग्दिशः सूत्र तक। किन्तु यह अधिकार अद्व्यादिभ्यः—द्वि, युष्मद्, अस्मद, भवतुको छोड़कर समझें। कि शब्द सर्वनाम होते हुए भी अद्व्यादिसे निषेध न हो, अतः पृथक् पढ़ा। यहांसे समर्थानां प्रथमात् निवृत्तः। 'वा' अनुवर्ततेऽग्रे।

पञ्चम्यन्तकिं सर्वनाम और बहुशब्दसे तसिल् प्रत्यय विकल्पसे हो। इल्इत् तस् शेषः। किं शब्दके स्थानमें कु आदेश हो तकारादि, हादौ—हकारादि विभक्ति परे रहते। कस्मात् इति **कुतः** (कहांसे) कस्मादिति निग्रहे किं ङस् इस सुबन्तसे पञ्चम्यास्तसिल् सूत्रसे ङसको तसिल् (तस्) विभक्तिसंज्ञा तद्धितान्त मानकर प्रासंज्ञा। सुपो धातुप्रातिपदिकयोःसे विभक्ति लुक्, तकारादि तस् प्रत्ययपरे कुतिहोः से किं को कु आदेश कुतः इसी प्रकार कास्यामिति (कुतः) कस्याः इति कुत भी होंगे। इस प्रकरणमें जितने प्रत्यय हैं सबको प्राग्दिशो विभक्तिसंज्ञा। पक्षमें (कस्मात्) जैसा ही रहे। **इदं**—शब्दको इश् आदेश हो। प्राग्दिशीय विभक्तिसंज्ञक प्रत्ययपरे। श इत् 'इ' शेष। शित्का फल सम्पूर्ण इदम्को आदेश होना। (इतः) यहांसे अस्मात् इति विग्रहे पञ्चम्यास्तसिल् प्रत्यय, विभक्तिसंज्ञा। इदं स्थाने इश्-इ आदेश, रुत्व विसर्ग **इतः**। एतद् अन् सर्वनाम शब्दके स्थानमे अन् आदेश हो विभक्ति प्रत्ययपरे। यह अन् अनेकाल होनेसे सम्पूर्ण एतद्के स्थानमें हुआ। एतस्मादिति **अतः**। इससे, यहांसे, इस स्थानसे अर्थ एतत्शब्दसे पञ्चम्यन्तात् तसिल्। अन् सूत्रसे एतद्स्थाने अनादेश। नका प्रातिपदिकान्तलोप। (अतः) अमुष्मात् इति **अमुतः**—(यहाँसे) सर्वनाम अदस् ङस्से पञ्चम्यास्तसिल, प्रासंज्ञा सुप् लुक् विभक्तिसंज्ञा, त्यदादीनामः से अत्व, अतोगुणे पररूप। अदसोऽसेर्दादुदो मः दसे परे अको 'उ', दस्थाने 'म' **अमुतः**। इसी प्रकार यस्मात् (जिस प्रकारसे) या स्थानसे अर्थमें **यतः**—विभक्ति संज्ञा अत्वादि। ये सभी अव्ययके अन्तर्गत मान्य है। तस्मात् इति **ततः**। बहुभ्यः इति **बहुतः**। अद्व्यादिभ्यः—इस निषेध अंशसे द्वाभ्यां शब्दसे तसिल नहीं हुआ, निषेधात्। **परि**—और अभि शब्दसे भी तसिल् हो, क्योंकि ये दोनों सर्वनाम नही है अतः पृथक् विधिः। परिशब्दसे तसिल् **परितः** (सब ओर से) भ्रमति। अभितः (दोनों ओरसे) घूमता है। तसिल् प्रत्ययको विभक्तिसंज्ञा त्यदादीनामः अत्व।

द्वाभ्यां। **पर्यभिभ्यां च** ।५।३।६। तसिल्। परितः सर्वत इत्यर्थः। अभितः, उभयत इत्यर्थः। **सप्तम्यास्त्रल्** ।५।३।१०। कुत्र यत्र। तत्र बहुत्र। **इदमो हः** ।५।३।११। त्रलोऽपवादः। इह। **किमोऽत्** ।५।३।१२। वा स्यात्। **क्वाति** ।७।२।१०५। किमः कु, कुत्रः। **इतराभ्योऽपि दृश्यते** ।५।३।१४। पञ्चमींसप्तमीतर विभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते। दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव। स भवान् ततो भवान् तत्र भवान्। तं भवन्तम् ततोभवन्तम् तत्र भव

सप्तमी अर्थमें किम् आदि सर्वनामसे त्रलप्रत्यय हो। जिसका में पं पर चिह्न आधार अर्थ है। आधारो अधिकरणम्। अधिकरणे सप्तमी। कस्मिन्देशे **कुत्र**-किसमें, कहां पर अर्थः। किं शब्दसे त्रल्। किम्-ङि-त्र। तद्धितान्त प्रा सं० कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्रेण। सुपोधातुप्रातिपदिकयोः ङेर्लुक्। त्रल्की विभक्तिसंज्ञा। कुतिहोः से तादि प्रत्ययपरे किं को 'कु' आदेश। **कुत्र** निवसन्ति भवन्तः। यस्मिन्स्थाने **यत्र** जिसमें, जहां पर) अर्थः यत् ङि त्रल्। विभक्तिसंज्ञा त्यदादीनामः अत्वे, यत्र अधीते। तस्मिन्-स्थाने **तत्र** (उस स्थानमें, वहां पर) त्रल् विभक्तिसंज्ञा अत्व पूर्ववत्। तत्र अध्यापकाः छात्राश्च सन्ति। बहुषु इति **बहुत्र** (बहुतोंमें अनेक स्थान पर) त्रल् आदि। एवं सर्वत्र, उभयत्र आदि। प्रथम तीन शब्द देशके लिए, बहुत—काल के लिए भी प्रयोक्तव्य है।

सप्तम्यन्त **इदं** शब्दसे ह प्रत्यय हो त्रलको बाधकर। अस्मिन्देशे **अत्र** (इसमें यहां पर) इदम् ङिशब्दसे त्रल्-प्राप्त उसे बाधकर इदमो हः आदेश। इदं स्थाने इश सर्वादेश **इह**। अस्मिन् एतस्मिन् स्थाने एतद्शब्दसे त्रल्। (अन्) सूत्रसे एतद्के— स्थानमें अनआदेशे **अत्र**। सप्तम्यन्त—**किम्** शब्दसे अत्प्रत्यय हो (त–इत्) का फल तित्स्वरितम्। (वा चछन्दसि) सूत्रसे 'वा' अपकृष्यते=खींचकर लाया गया(उत्तरसूत्र से आई अनुवृत्ति अकर्षक है।) इससे अत्-विधान। विकल्पपक्षे त्रल्। किं शब्दको क्व आदेश हो अत्प्र० परे। कस्मिन्देशे इति **क्व**, **कुत्र**। किस स्थानमें कहां पर। किम् ङि शब्दसे किमो 'अत्' प्रत्यय (क्वाति) सूत्रसे किं स्थाने क्व आदेश क्व+अ अतो गुणे पूर्वरूप। क्व। विकल्प पक्षे त्रल्। कुतिहोः किम् स्थाने कु आदेश **कुत्र**। कहां। पञ्चम्यन्त सप्तम्यन्त शब्दसे तसिल् आदि प्रत्यय कहे गये। अन्य विभक्त्यन्तसे भी त्रल् आदि देखे जाते हैं। प्रमाण—

इतराभ्यः==पञ्चमी और सप्तमीसे इतर अन्य विभक्त्यन्त शब्दसे भी तसिल् त्रल् आदि प्रत्ययाः दृश्यन्ते==दिखाई देते हैं। **दृशिग्रहणात्**=सूत्रमें दृश्यन्ते शब्दके ग्रहणसे यह सिद्ध हैं कि जहां भवत् आदिका योग (सम्बन्ध) रहे वहीं विभक्त्यन्त शब्दसे तसिलादि प्रत्यय हो (दिखाई देना अर्थं हो तभी) यह नियम दृशिग्रहणसे निश्चित किया गया। यथा='स' भवान् (प्रथमान्त शब्द है) भवान्का सम्बन्ध है, अतः सप्तमी पञ्चमीसे भिन्न प्रथमा विभक्त्यन्त (सः) है। जो विभक्ति भवान्में रहेगी, वही तत्से भी होगी। अतः तत्+सु शब्दसे तसिल् और त्रलप्रत्यय पूज्य अर्थ

न्तम् । एवं दीर्घायुः । देवानां प्रियः, आयुष्मान् । सर्वैकान्यकियत्तदः काले वा ।५।३।१५। सप्तम्यन्तेभ्य एभ्यः । कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् ॥ सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ।५।३।६। दादौ प्राग्शीये सर्वस्य सो वा । सर्वस्मिन् काले-सदा, सर्वदा । एकदा अन्यदा कदा यदा । तदा । काले किम् ? सर्वत्र देशे ॥ इदमोर्हिल् ।५।३।१६। सप्तम्यन्तात् । एतेतौ रथोः ।५।३।४। इदम 'एत' 'इत' एतौ स्तः रेफादौ । अस्मिन् काले एतर्हि काले किम् ? इह देशे ।: अधुना ५।३।१७। इदमो निपातोऽयम् । दानीं च ।५।३।१८। इदमो दानीं प्रत्ययः

में होंगे । स-भवान् विग्रह है । तत् शब्दसे पूज्य अर्थमें तसिल् । ततो भवान् तत्र भगवान् । तं भवन्तं विग्रह होगा (पूज्य आपको), इस अर्थमें तत्+अम् इस द्वितीयान्त शब्दसे भवत्के योग्यमें तसिल् । ततो भवन्तं त्रल् होगा । तत्रभवन्तं सिध्यति एवं आदिपदसे दीर्घायुः, देवानां प्रियः, आयुष्मान् आदि शब्दोंके सम्बन्ध में भी त्रल् तसिल हों । यथा—स दीर्घायुः । ततो दीर्घायुः, तत्र दीर्घायुः । स आयुष्मान्, ततो आयुष्मान् तत्र आयुष्मान् । तत्र आयुष्माता भवता भाव्यम् । तत्र दीर्घायुं पृच्छामि ।

सर्वैक—सप्तम्यन्त हो, कालवाचक हो, ऐसा सर्व, एक, अन्य, किम्-यद् और तद् शब्दोंसे स्वार्थमें 'दा' प्रत्यय हो । स्वं प्रकृतिः तस्य अर्थः । चूंकि प्रकृतिका काल अर्थ है, इसलिए प्रत्ययका भी काल ही अर्थ होगा । **सर्वस्य** 'स' दकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे सर्वशब्दके स्थानमें 'स' आदेश विकल्पसे हो । सर्वस्मिन् काले **सदा** (सभी समयमें) कालवाचक सप्तम्यन्त सर्वशब्दसे (सर्वैकान्य) सूत्रसे दाप्रत्यय सुपो लुक् **सर्वदा** सभी कालकी बोधकता शक्ति । प्राग्दिशीय दो प्रत्यय परे सर्वशब्द को स आदेश । सदा पक्षे सभी कालमें । एकदा—एक समयमें अन्यस्मिन्काले अन्यदा—अन्य समयमें । कालवाची एक या अन्य शब्दसे (दा) कस्मिन्काले कदा किं+ङि शब्दसे 'सर्वैकान्य' सूत्रसे दा, उसकी विभक्तिसंज्ञा, प्राग्दिशो विभक्तिः । तस्यफलं किमः क आदेशः । कदा तपः करिष्यामि । यस्मिन्काले यदा (जिस समय तस्मिन्काले तदा (उस समय) कालवाचक यत् तत् सप्तम्यन्तसे दा की विभक्तिसंज्ञा का फलं त्यदादीनामः से तको अ यदा तदा । कालेकिम् दा प्रत्यय काल अर्थकी शक्तिमें हो ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि देश अर्थमें दा न हो । सर्वस्मिन्देशे इति **सर्वत्र** । यहां त्रल् ही हुआ । **सप्तम्यन्त** कालवाचक इदम्से स्वार्थमें र्हिल् प्रत्यय हो । ल इत् । **एतेतौ**—इदं शब्दके स्थानमें एत् और इत् आदेश क्रमसे हो) रथोः—रेफादिः थकरादिः परे । रेफपरे एत्, थ परे इत्, इति विवेकः । वह प्राग्दिशीय हो । विभक्तिसंज्ञक हो । अस्मिन्काले एतर्हि इसी समय अभी अर्थमें शक्ति है । सप्तम्यन्त काल अर्थमें समर्थ इदम् शब्दसे इदमोर्हिल् सूत्रसे र्हिल् प्रत्यय । ल इत् 'एतेतोरथोः सूत्रसे रादिप्रत्ययपरे इदं स्थाने एत आदेशे । एतर्हि अर्थमें अधुना । और इदानी भी बनते हैं । जो अधिक प्रसिद्ध है । **काले-किम्**=काल अर्थमें र्हिलप्रत्यय क्यों कहा ? इसलिए कि देशवाचक या देश अर्थमें प्रत्यय न हो । **इह देशे** । देश अर्थमें विद्यमान

काले। इदानीम्। तदोदा च।५।३।१९। तदा, तदानीम्। अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्।५।३।२१। कर्हि, कदा। यर्हि, यदा। तर्हि, तदा। एतेतौ रथोः।५।३। एत इत एतौ स्तः रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये। एतस्मिन्काले एतर्हि॥ सद्यःपरुत्परार्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः।५।३।२२। एते निपात्यन्ते (द्युश्चोभयद्वक्तव्यः) उभयद्युः। प्रकारवचने थाल्।५।३।२३। प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल्। तेन प्रका

इदम् शब्दसे केवल 'ह' प्रत्यय हुआ।

अधुना सप्तमी अन्त, इदंसे काल अर्थवाचकसे स्वार्थमें अधुना प्रत्यय। इदं, सप्तम्या, काले। तीनोंकी अनुवृत्ति-अस्मिन्काले अधुना। इदं स्थाने इश्। यस्येति च से इका लोप। अधुना प्रत्यय शेष रहा। प्रामाणिक बोले—

उदितवति परस्मिन्प्रत्यये शास्त्रयोनौ, गतवति विलयं प्राकृतेऽपि प्रपञ्चे। सपदि पदमुदितं केवलः प्रत्ययो यत्, तदियदिति मिमीते कोऽधुना पण्डितोऽपि।

व्याकरण और उपनिषदकी प्रक्रिया भेदसे दो अर्थ वाला श्लोक दानी-सप्तम्यन्त कालवाचक इदंसे स्वार्थमें दानी प्रत्यय भी हो। अस्मिन्काले (इदं शब्दात्) दानीम् प्रत्यये इश आदेशे इदानीम् [१९६८] तदो सप्तमी अन्त कालवाचक तत् शब्दसे दा हो, दानीम् भी। तस्मिन्काले तदा, तत्से दा और दानी होने पर तदानीम्।

अनद्यतनकालमें विद्यमान् किम् यत् तत् सर्वनाम आदि सप्तम्यन्त शब्दसे काल अर्थमें र्हिल्प्रत्ययः, अन्यतरस्यां=विकल्पसे हो। बीती हुई रात्रिके आधे भागके पश्चात् आगामी आधी रातका समय अनद्यतनकाल है। इसकालमें अंग्रेजी ता० प्रसिद्ध है। इसी कालमें भिन्न भूतभविष्यमें र्हिल्प्रत्यय हो पक्ष दा। कस्मिन्काले कदा किस समयमें या कब जगाम। अद्यभिन्नभूतकालमें वर्तमानसप्तम्यन्त किम् शब्द से र्हिल् प्रत्यय, विभक्तिसंज्ञा जिसका फल किं स्थाने क आदेशः। संज्ञा, त्यदादीनामः अत्वे र्हि। पक्ष यर्हि यदा, तर्हि तदा। तस्मिन्काले (उस समयमें) अद्यतन भिन्न भूतकालार्थक तद् शब्दात् प्रत्ययौ भवतः तर्हि, तदा कण्ठो अभवत्।

एतद् शब्दके स्थानमें एत् और इत् आदेश हो प्राग्दिशीय (विभक्तिसंज्ञक) रेफादि थकारादि। एतदो अनुका प्रथमयोग हैं। एतस्मिन्काले—इसी समय अभी, काल अर्थमें समर्थ एतत् शब्दसे अनद्यतने र्हिल् प्रत्यय। रादिप्रत्यय परे एतद्स्थाने एत आदेश एतर्हि।

सद्यः परुत् परारि इत्यादि सूत्रमें पढ़े शब्द निपातन (कल्पित प्रकृति प्रत्यय) से सिद्ध मान्य। उभय शब्दसे द्यु भी तो। उभयद्युः दोनों दिनोंकी व्यस्तता।

इदानीम् अधुना प्रकार अर्थमें विद्यमान् किम् यत् तत् सर्वनाम आदिसे काले अर्थे थाल् प्रत्ययः। यद्यपि प्रकार शब्दका सादृश्य=समानता तुल्यता आदि अर्थ है तथापि विशेषण धर्म भाव सामान्य भेदक (विशेष धर्मको) प्रकार कहते हैं। जैसे—

रेण तथा। यथा॥ इदमस्थमुः ।४।३।२४। थालोपवादः॥ (एतदो वाच्यः) अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थन् ॥ किमश्च ।५।३।२५। केन प्रकारेण कथम्

इति प्राग्दिशीयप्रकरणम्

अथ स्वार्थिकप्रकरणम्

दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ।५।३।२७। सप्तम्याद्यन्तेभ्यो दिशि रुढेभ्यो दिग्देशकालवृत्तिभ्यः स्वार्थेऽस्ततिः॥ **पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् ।५।३।२९।** एभ्योऽस्तीत्यर्थेऽसिस्तद्योगे चैषां पुर अध् अव् इत्यादेशाः स्युः। **अस्ताति च ।५।३।४०।** पूर्वादीनां पुरादयः स्युः।

सामान्य रूपसे देवदत्तका ज्ञान है किन्तु उसकी अवस्थाके विषयमें या पढ़ाई। स्वास्थ्य शिक्षाके विषयमें जो जिज्ञासा रूप विशेष धर्म है उससे युक्त (विशिष्ट या अविछिन्न) देवदत्तके विषयमें प्रश्नः कथं देवदत्तः? शिक्षा स्वास्थ्य, दशाके विषय में किसीने पूंछा आप जैसा जानते थे वैसी ही शिक्षा दशासे युक्त देवदत्त है। इसी उत्तरका बोधक। तथा देवदत्तः। तेन प्रकारेण **तथा**। जिस प्रकारसे थे उसी तरह अब भी है। इस आशयका बोधक थाल्प्रत्यय है। प्रकार अर्थमें विद्यमान किंशब्द से थाल्—**कथा**। केन प्रकारेण। तत्शब्दसे थाल तथा (तेन प्रकारेण। विभक्तिसंज्ञा, त्यदादीनाम: अ इति विशेषः। तथैव येन प्रकारेण यथा-कथा। देवदत्तः यथा-भवता ज्ञात तथा इदानीमपि। (२) प्रकार (विशेषण) अर्थमें समर्थ **इदं** शब्दसे हो। उइत् [जो मका रक्षक है] थाल बाधा जाता है। [वा०] एतद्शब्दसे भी प्रकार अर्थमें थम् हो। अनेन एतेन प्रकारेण [इस प्रकार, विधिसे] प्रकार अर्थमें **इदम्** एतद् शब्दसे थमु=थम्, थादिप्रत्ययकी विभक्तिसंज्ञा। एतंतो रथोः सूत्रसे इदं स्थाने इत् आदेश। एतदः सूत्रेण एतद्स्थाने इत् आदेश (इत्थम्) किम्शब्दसे भी प्रकार अर्थमें थमु प्रत्यय हो तस्य विभक्तिसंज्ञा। किम्स्थाने क आदेशे **कथम्**। किस प्रकार। इति प्राग्दिशीयाः तद्धितके कुछ प्रत्ययोको विभक्तिसंज्ञाका प्रकरण समाप्त।

अथ प्रागिवीयः–इवे प्रतिकृतौ सूत्रके प्राक् पहले भवा (होने वाले) प्रत्यय प्रागिवीय है। **दिक्**-दिशा अर्थमें रुढ़ शब्द हो, सप्तमी पञ्चमी या प्रथमा अन्तमें हो, दिशा देश काल तद्धितार्थ हो तब स्वार्थ-प्रकृतिके अर्थमें अस्ताति प्रत्यय हो। इकार उच्चारणार्थ। त अन्तसे संख्यायाः विधार्थे धा सूत्र तक अनुवृत्ति। अस्तातिको छोड़कर अन्य शब्दपढ़नेसे रूढ़ अर्थ खुला, यथासंख्य नहीं होगा **पूर्व अधर** अवरसे असि प्रत्यय हों, जो लुप्त प्रथमा है क्रमसे पूर्वको पुर्, अधरको अध्, अवर को अव् आदेश हो, जिनके बीच द्वन्द्व प्रथमा, बहुवचन है अस्तातिके अर्थमें दिग्देश-काल तद्धितार्थ खुलता हो, तब असि प्रत्यय।

अस्ताति लुप्त सप्तमी। तकारान्त–सप्तमी एकवचन अस्तातिपरे पूर्व अधर अवरके स्थानमें क्रमसे पुर्, अध्, अव् आदेश हों जो अनुवृत्तिसे आये हैं। अस्तातिपरे पुरादि आदेश विधानके सूत्र आवश्यक। सप्तमी पञ्चमी प्रथमा अन्तसे प्रत्यय

पूर्वस्यां पूर्वस्याः पूर्वा वा दिक्-पुरः पुरस्तात् । अधः अधस्तात् । अवः, अवस्तात् । **विभाषाऽवरस्य** ।५।३।४१। अस्ताति अव वा स्यात् । अवस्तात्, अवरस्तात् एवं देशे काले च । दिशि रूढेभ्यः किम् ? ऐन्द्र्यां वसति । सप्तम्याद्यन्तेभ्यः किम् ? पूर्वं ग्रामं गतः । दिगादिवृत्तिभ्यः किम् ? पूर्वस्मिन् गुरौ वसति । 'अस्ताति च' इति ज्ञापकादसिरस्तातिं न बाधते ।। **दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्** ।५।३।२८। अस्तातेरपवादः । दक्षिणतः उत्तरतः ।। **विभाषा परावराभ्याम्** ।५।३।२९। परतः परस्तात् । अवरतः अवरस्तात् ।। **अञ्चेर्लुक्** ।५।३।३०। अञ्चत्यन्तादिक्शब्दादस्तातेर्लुक् स्यात् । प्राक् उदक् ।।

का उदाहरण—पूर्वस्यां पूर्वदिशामें, पूर्वदिशाका, पूर्वदिशा कहना हो, पूर्वाशब्दसे असि । पूर्वाको पुर् आदेश । पुरस् रुत्व विसर्ग पुरः । पक्षमें अस्ताति प्रत्यय और पुर् आदेश हुआ । पुरस्तात् जिसका अर्थ पहलेके देश या कालमें । पहलेकी दिशा या देश कालका । अथवा दिशादेशकाल अर्थ ही हुआ । अधः अधस्तात् । अधरस्याम् अधरस्याः अधरा वा दिक् । अधरशब्दसे असि और अस्ताति । अधरको अध् आदेश । रूपसिद्ध । दिशा देशकालके आधार अवधि प्रातिपदिकार्थमें प्रत्यय । अधः अधस्तात् । दिशा देश, कालके (पश्चात् अर्थके) अवरसे असि, अव् आदेश अवस् स–रुवि० अवः । विभाषा अवरके स्थानमें अस्ताति परे अव् आदेश विकल्पसे हो । अवस्तात् । जब अव् नहीं तब अवरस्तात्, यदि ऐसा तब पश्यामि तामितः पुरतश्च पश्चात् इति भवभूतिः । स्यात् पुरः पुरतो अग्रतः इत्यमरः, पुरतः प्रथमेऽथाग्र इति विश्वः । समानकालीन पूर्वकालीन, की तरह प्रमादवश मानिये । एवं पूर्वस्मिन् पूर्वस्मात् पूर्वो वा देशः–पुरः, पुरस्तात् पहलेके देशमें देशसे या देश अर्थ अथवा पहलेका काल, कालसे या कालमें पुरस्तात्का अर्थ। अवः का पश्चात् अर्थ, दिशा देशकाल अर्थ । दिशिशब्देभ्य क्यों पढा ? इन्द्रः देवता अस्या, ऐन्द्री–पूर्वदिशामें रहता है । यह निवास अर्थमें ऐन्द्री । पूर्वदिशा रूढ नहीं, अस्ताति न हों । सप्तमी, पञ्चमी, प्रथमा अन्त क्यों कहा ? पूर्वं ग्रामं गतः (पहले गांव गया) द्वितीय अन्त है प्रत्यय न हो, दिशादि–दिशा देश काल अर्थमें वर्तमान हो ऐसा क्यों पढ़ा ? पूर्वस्मिन् गुरौ—पूर्वकालिक अध्यापनकर्तरि । पहले पढ़ाते थे–यहां स्ताति न हो ऐसो क्यों ? दिशा देशकाल अर्थ नहीं खुलता, प्रत्यय न हो। स्ताति च सूत्रके ज्ञापनप्रमाणसे असि प्रत्यय अस्तातिको नहीं बाधेगा । यदि बाधता तो आस्ताति च सूत्र व्यर्थ होता ।

दक्षिण उत्तरशब्द दिशा देशकाल अर्थमें हो, उनसे अतसुच् कहें, अस्तातिको बाधकर । दक्षिणस्याः दक्षिणा वा दिक् देशः काल दक्षिणासे दक्षिण दिशासे का) दक्षिणदिशा अर्थमें अतस् सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंलिङ्गभावः (दक्षिणतः) उतरे उत्तरात् उत्तरा वा दिक् देशकाल अर्थमें अतसुच अतस्—उत्तरतः । **विभाषा**–विकल्पसे पर अवर, शब्दसे अतसुच्प्रत्यय हो, दिशा देशकाल अर्थमें । परे, परात्, परा वा दिक्

उपर्युपरिष्टात् ।५।३।३१। निपातावेतौ ॥ पश्चात्।५।३।३२। तथा । उत्तराधरदक्षिणादातिः ।५।३।३४। उत्तरात् अधरात् दक्षिणात् ॥ एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ।५।३।३४। उत्तरादिभ्य एनब्वा स्यादवध्यवधिमतोः सामीप्ये । पञ्चम्यन्तात्तु न, उत्तरेण । अधरेण । दक्षिणेन । पक्षे यथास्वं प्रत्ययाः ।

परतः या परदेशे, वसति । परात् आगतः । परे रमणीयं, कालसे भी अतस् हुआ । परतः बना । अवरस्मिन् ग्रामे वसति । अवरात् पाश्चात् आगच्छति । अवरकाल अतस् अवरतः, पक्षमें अस्ताति परस्तात् परकालमें से कालअर्थ । अवरस्तात उस देशकालके बादका देशकालमें निवास, आगम आदि ।

अञ्चेः==अञ्चधातु अन्तमें हो दिशा अर्थक शब्दसे परे अस्तातिका लुक् । प्राच्यां=पूर्व दिशामें, प्राच्याः=पूर्व दिशासे, पूर्व दिशा अर्थ कहना हो तब प्राची शब्दसे आधार अवधि, नामार्थसे अस्ताति प्रत्ययका लुक् हो, क्यों कि प्रकर्षेण अञ्चति सूर्यः अस्यां दिशायां प्राक्=अञ्च अन्त है । दिशावाचक शब्द है, तद्धित प्रत्यय का लुक् हुआ हो, उसके पूर्वके प्रत्ययका भी लुक् हो । लिङ्गविशिष्ट परिभाषासे अस्तातिका लुक् हुआ । पूर्वदिशा । देशकाल अर्थ, उदीच्यां उदीच्याः उदीची वा दिक् उदक् । उद् अञ्चतिसे उदीची बना उत्तरदिशामें से, आना, रमणीय । इसी तरह देशकाल भीं, उत्तरभागके खुलते हों तब भी स्तातिका लुक् । उसके परे पहलेके प्रत्ययका लुक् । **उपरि** अस्तातेः विषये=दिश। देशकाल अर्थ खुलता हो, सप्तमी पञ्चमी प्रथमान्त हो, ऊर्ध्वशब्दको उप आदेश और रिल् रिष्टातिल् प्रत्यय भी हो ऊर्ध्वे वसति, ऊर्ध्वात् आगच्छति ऊर्ध्वं रमणीयं तीनों विभक्तियोंके अन्तसे रिल् ऊर्ध्वको उपादेश । उपरि । जब रिष्टातिल् तब (उपरिष्टात्) ऊपरभागमें (के ऊपर) तद्धितार्थः पक्षमें ऊर्ध्वे वसति, प्राच्याः दिशः आगतः प्रागागतः । उत्तरादागतः, अधरादागतः (पुर अग्रगमने) आगे चलनेकी अनुकूलक्रिया ।

पश्चात्—अपरके स्थानमें पश्च आदेश हो, आति प्रत्यय भी । इ—उच्चा० । अस्तातिका विषय–दिशा देशकाल अर्थ खुलने पर अस्तातिको बाधकर अपरस्याम् अपरस्याः अपराः दिक् । पश्चात् अपरस्थाने पश्च आत्-पश्चात् । अपरस्मिन्अपरात् अपरः देश. कालः अन्यदिशामें (के) दिशा । अन्य देशमें (के) देश, अन्यकालमें, (के) काल अर्थ । **उत्तर** अधर दक्षिणसे दिशा देश काल अर्थमें आति हो । उत्तरस्यां उत्तरस्याः उत्तरा वा दिशा । उत्तरा शब्दसे आत् उत्तरात् । उत्तरस्मिन् उत्तरात् । उत्तर देशः कालश्च उत्तरदिशामें (के) दिशा । उत्तरात्का अर्थ । उत्तरका देशकाल आदि । अधरस्याम् अधरस्याः वा दिशा नीचेकी दिशामें (के) और दिशा नीचेका देश रसातल पाताल आदि । दक्षिणस्यां दक्षिणस्याः दक्षिणा दिशामें (के) दिशा अर्थमें दक्षिणासे आत् दक्षिणात् । दक्षिणका देशकाल । **एनप्** प्रत्यय हो विकल्पसे अदूरे=समीप अर्थमें पञ्चम्यन्तको छोड़कर । अपञ्चम्यां मिति प्रागसेरिति भाष्यम् । उत्तर—अधर दक्षिणसे एनप् हो अवधि अवधिमान्के समीपसम्बन्धमें । अदूरेका अर्थ

इह केचिद्दिक्शशब्दमात्रादेनपमाहुः । पूर्वेण ग्रामम् ॥ दक्षिणादाच् ।५।३।३६। अस्तातेर्विषये । दक्षिणा वसति ।' पञ्चम्याः' इत्येव । दक्षिणादागतः ॥ आहि च दूरे ।५।३।३७। चादाच् । दक्षिणाहि दक्षिणा ॥ उत्तराच्च ।५।३।३८। उत्तराहि, उत्तरा ॥ संख्याया विधार्थे धा ।५।३।४२। क्रियाप्रकारार्थे वर्तमानात् संख्याशब्दात्स्वार्थे धा स्यात् । चतुर्धा । एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् ।५।३।४४। ऐकध्यम्, एकधा ॥ द्वित्र्योश्च धमुञ् ।५।३।४५ आभ्यां धा

अवधिमान्का समीपसम्बन्ध । उत्तरे उत्तरः ग्रामः उत्तरेण । गांवके उत्तर भागके समीप में या पाससे गया, या उत्तरके समीप अर्थमें एनप् । उत्तरदेश दिशाकालके पासमें गांव । अधरस्याम् अधरा दिशा निचले भागका । अर्थमें एनप् । अधरेण लोकः नीचेका देश या काल । अदूर सीमाका समीपसम्बन्ध अर्थ । दक्षिणस्यां दक्षिणा दिशा अर्थमें एनप् । दक्षिण दिशामें समीप गांव दक्षिणदिशाके पासका स्थान । पक्षमें यथास्वं जैसा प्रत्यय प्राप्त हुआ । अतसुच्–दक्षिणतः उत्तरतः । अस–अधः अधस्तात् । आत्–उत्तरात् अधरात् दक्षिणात् । इह केचित=इस प्रसङ्गमें कोई उत्तरा अधरा दक्षिणाकी अनुवृत्ति न कर केवल दिशामात्र अर्थमे एनप् कहे हैं । उनके मतमें गांवकी पूर्वदिशा अर्थमें ग्रामसे एनप् पूर्वेण ग्रामम् । अपरेण दूसरी दिशाके पासमें गांव ।

दक्षिण—शब्दसे आच् हो अस्तातिका विषय–दिशा देशकाल अर्थ खुलने पर, इससे अदूरेका न आना सिद्ध । आच् होने पर दक्षिणा वसति, दक्षिणमें निवास । पञ्चमी अन्तसे नहीं होता, दक्षिणादागतः में आच् नहीं हुआ, पञ्चम्यन्त होनेसे । आत् दक्षिणात् । अतसुच् दक्षिणतः त्रीणि रूपाणि ।

आहि—दक्षिणा शब्दसे दूर अर्थमें आहि हो । दक्षिणस्यां दूरे भवः । दक्षिणाहि आहि प्रत्यय हुआ—दक्षिणसे दूर अर्थ । पक्षमें आच् भी दक्षिणा दक्षिणात् दक्षिणतः चत्वारि रूपाणि । **उत्तरशब्द** सेभी दूर अर्थमें आहि आच्, अतसुच्, आत् होनेसे चार रूप । उत्तरदिशामें दूर निवास उत्तरा वसति उत्तरतः । उत्तरात् निवसति । **संख्यायाः**--विधा शब्दका अर्थ इस प्रकार है जो सामान्य धर्मका भेदक है । विधा–विधौ प्रकारे च इत्यमरः । अभिधानके स्वभावसे क्रियाके विषयमें भेद-मान्य । अतः कहा क्रियाके प्रकारार्थे=भेदविभाग अर्थमें वर्तमान संख्या शब्दसे स्वार्थ प्रकृतिके अर्थमें धा हो । ओदन पिण्डभी विधा है पर मान्य नहीं । चतुष्प्रकारा भोजनक्रिया । पञ्चप्रकारा गमनक्रिया । (पञ्चधा) प्रविशति-पांच प्रकारसे खुलता है । यदि क्रियाका भेद मान्य है तब नवधा द्रव्य, बहुधा गुणाः में द्रव्य गुण है, क्रिया नहीं, धा कैसे ? वहां भी उपदिश्यते भवति, आदि अश्रुत क्रियाका अध्याहार करनेसे ।

एकात्—एकशब्दसे हुए धा प्रत्ययके स्थानमें ध्यमुञ् आदेश हो, विकल्पसे । एकप्रकारः (एकधा भुङ्क्ते) एक रीतिसे खाता है । धाके स्थानमें ध्यम् । ञित्से से आदिवृद्धि । (ऐकध्यं) यह प्रत्यय स्वतन्त्र मान्य क्यों नहीं ? अन्यतरस्य विधिर्भवति

इत्यस्य धमुञ् वा। द्वैधम्, द्विधा। त्रैधम्, त्रिधा। **एधाच्च** ।५।३।४६। द्वेधा। त्रेधा।। **याप्ये पाशप्** ।५।३।४७। कुत्सितो भिषक्-भिषक्पाशः (तीयदादीकक् स्वार्थे वा वाच्यः) द्वैतीयीकः, द्वितीयः। तार्तीयीकः, तृतीयः (न विद्यायाः) द्वितीया, तृतीया विद्येत्येव ॥ **एकादाकिनिच्चासहाये** ।५।३। ५२। चात्कन्लुकौ। एकः एकाकी एककः ॥ **भूतपूर्वे चरट्** ।५।३।५३। आढ्यो

प्रतिषेधो वा न्यायसे अधिकरणविचाले च के विषयमें ही विकल्पविधान वास्ते। परतन्त्र विधि है। ऐकध्यं भुङ्क्ते। जब अधिकरणविचाले पक्षमें लगेगा तब ऐकध्यं राशि कुरु। अनेकराशिको एक करो।

द्वि त्रिसे धाके स्थानमें धमुञ् हो विकल्पसे, षष्ठी पञ्च अर्थमें। मी, अन्यतरस्याम् आये। एकं राशिं द्वि प्रकारः द्विधा, द्वैधं कुरु। दो भाग करो, द्वि से भाग करने अर्थमें धमुञ्। अनुबन्धलोप आदिवृद्धि। पक्षमें धा ही रहा। त्रिप्रकारः तीन भाग करो। त्रिसे धा उसके स्थानमें धमुञ् (वा०) धमुञ्—अन्त शब्दसे ड का दर्शन हो। स्वं प्रकृतिः तस्य अर्थः स्वार्थःमें डके साथ दर्शन—पढ़नेसे कहीं नहीं भी होता है। पथि—रास्तेके दो भागमें बांटा हुआ तृण। (द्वैधं) धमुञ् अन्त है उससे ड प्रत्यय। ड इत्के सामर्थ्यसे टिलोप। द्वैधानि-भाष्यप्रयोगसे अव्यय। यथासंख्य निवारणाय योगविभागः।

एधाच्च—द्वित्रिसे परे धा स्थाने एधात् आदेश हो। द्वि+ऐधा। इकारलोप। द्वेधा। त्रिप्रकारः त्रेधा—तीन ढंगसे। त्रिसे परे धा एधात्, इकार लोप। पञ्चम्यास्तसिल्से लेकर एधाच्च तक विधान किये गये प्रत्ययान्त अव्ययसंज्ञक है।

याप्ये–निकृष्टप्रतिकृष्ट अर्वरेफयाप्याऽवमाःधमा इत्यमरः। अत्यन्त बुरा, बहुत खराब अधम आदि याप्यके अर्थ हैं। कुत्सित भ्रष्ट विश्वासघाती, छली अर्थमें वर्तमान शब्दसे पाशप् हो स्वार्थमें। प्रवृत्तिनिमित्त धर्म कर्तव्य गुणकी निन्दामें यह सूत्र लगता है। भ्रष्ट अधकचरा ज्ञानका भिषक् वैद्यका नाम भिषक्पाशः। नीम हकीम खतरे जान। अल्पविद्या भयङ्करी।

तीय–प्रत्ययान्तसे ईकक् हो स्वार्थमें। दृष्टं सामके भाष्यमें है। द्वितीयो भाग द्वैतीयकः। द्वितीयसे ईकक्, आदिवृद्धि। पक्षमें नहीं। तृतीयो भागः तार्तीयकः तृतीय से ईकक्। किति च आदिवृद्धि। तृतीयः भागः तवास्ति (वा०) विद्या अर्थमें वर्तमान तीय प्रत्ययान्तसे ईकक् नहीं होता। द्वितीया दूसरी विद्या। यहां निषेधसे ईकक् नहीं हुआ। एवं तृतीया विद्यात्वे वर्तते न ईकक्।

एकाद्—अकेला एकशब्दसे निजी अर्थमें आकिनिच्, च से कन् हो लुक् भी, असहायः एकः अर्थमें आकिनिच् (एकाकी) कन् (एककः) दोनों प्रत्ययका लुक् तब एकः

भूतपूर्व—पहले हो चुके हों अर्थमें वर्तमानप्रातिपदिकसे स्वार्थमें चरट् हो। आढ्यः धनवान् पहले था अब नहीं, अर्थमें चरट् (आढ्यचरः) पहलेका धनी, प्राचार्यः भूतपूर्वः, प्राचार्यचरः। मूर्खचरः कालिदासः। निश्चरः ग्रामचरः खण्डहर।

भूतपूर्वः-आढचचरः ॥ **षष्ठ्या रूप्य च** ।५।३।५४। षष्ठ्यन्ताद्भूतपूर्वेऽर्थे रूप्यः स्याच्चरट् च । कृष्णस्य भूतपूर्वो गौः-कृष्णरूप्यः, कृष्णचरः ॥ **अतिशायने तमबिष्ठनौ** ।५।३।५५। अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः । अयमेषामतिशयेनाढ्यः-आढ्यतमः । लघुतमः, लघिष्ठः ॥ **तिङश्च** ।५।३।५६। तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात् ॥ **तरप्तमपौ घः** ।१।१।२२। **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** ।५।४।११। किम एदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो

षष्ठ्या-षष्ठी अन्तशब्दसे भूतपूर्व अर्थमें रूप्य प्रत्यय हो, चरट् भी । कृष्णकी पहले की गायें । पूर्वभूतः भूतपूर्व अर्थमें रूप्य (कृष्णरूप्य) पहले गायवाला अर्थ चरट् होने पर (कृष्णचरः) । जैसे—तमप् इष्ठन् तरप् इयसुन् कल्पब्देश्य देशीयर बहुच् क, अकच् डतर डतम् आदि । अतिशीयते अधिकं भूयते यत्स तस्मिन् अतिशायने इत्यत्र कर्म ल्युट् । अतिशयः-प्रकर्षः उत्कर्षः अधिकता, श्रेष्ठता, आदिः फलितो अर्थः । अतिशय-विशिष्ट अर्थमें वर्तमान प्रथमान्तपदसे स्वार्थमें तमप् और इष्ठन् हो । स्वं प्रकृतिः तस्यः अर्थः स्वार्थः । प्रकृतिमें अर्थकी अधिकता श्रेष्ठता या विशेषण मान्य है । उसीका उद्दीपक, प्रकाशक तमप और इष्ठन् है । इन्हींके संसर्गसे अतिशय अर्थ उदीप्त होता है । बहुषु तुल्यरूपप्रकर्ष बह हो सम्भव जहां, बहुतोंमें स्थान, अर्थ, गुण, प्रमाणकृत समान प्रकर्ष श्रेष्ठता सम्भव हो उनमें (सभी श्रेष्ठोंमें) अधिकश्रेष्ठ अति-शयप्रकर्षका प्रकाशक तमप और इष्ठन् प्रत्यय है । जहां दो समान व्यक्तिमें एकका अतिशयित्व विशेषविशेषता व्यक्त करनी हो, वहां तरप् और ईयसुन् होते हैं । यथा—अयमेषाम् अतिशयेन आढ्यः । बहुत आढ्यों (धनवानों) के मध्यमें कौन सबसे श्रेष्ठ है किसी एकका प्रकर्ष (सर्वश्रेष्ठता) विवक्षित हुई, यथा-अयमपि आढ्यः २ अयम् एषाम् अतिशयेन आढ्यः यह इन सबोंमें अधिक धनी (सम्पन्न है) । इस अतिशय अर्थमें वर्तमान प्रथमान्त आढ्यशब्दसे अतिशायने अर्थे तमप् **आढ्यतमः** । धनियोंका राजा । प्रकृतिका सर्वोत्कर्ष विशिष्ट अर्थ । उसीका प्रकाशक बहुतोंमें एक की विशेषता । अयम् एषामतिशयेन लघुः (यह व्यक्ति इन लोगोंमें अधिक छोटा हल्का है) **लघुतमः** अतिशय न्यून हल्का अर्थमें वर्तमान प्रथमान्त लघुशब्दसे अति-शायने-सूत्रेण सर्वाधिकलघु अर्थे तमप् तद्धितान्त जानकर स्वादि लघुतमः । यदा इष्ठन्प्रत्ययः तदा अजादि परे । पूर्वस्य भसंज्ञा, टेः इति टिलोपः । तद्धितान्तत्वात्== विभक्तिकार्य लघिष्ठः । अयमेषाम् अतिशयेन विद्वान् विद्वत्तमः ह्रस्वतमः, दीर्घतमः, महत्तमः । अतिशयेन महान् ।

तिङन्तसे भी क्रियाकी अधिकता द्योतनके लिए तमप्प्रत्यय । यहां अधिकता-विशिष्ट क्रियाविशिष्टकर्ता या कर्ताद्वारा क्रियामें अधिककुशलता प्रत्ययका अर्थः । **ऐतौ**-तरप् और तमप्को घसंज्ञा हो । **किम्**में एकारान्त तिङ तिङन्त और अव्यय इनसे परे जो घः घसंज्ञक प्रत्ययः (तरप् और तमप्—तदन्तात् तरप् तमप् अन्तमें हो उनसे आमुप्रत्यय हो । नतुद्रव्यप्रकर्षे--किसी वस्तुका उत्कर्ष श्रेष्ठता सिद्ध होती

घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे। किन्तमाम् प्राह्णेतमाम् प्रगेतमाम्। पचतितमाम्। उच्चैस्तमाम्। द्रव्यप्रकर्षे तु,—उच्चैस्तमस्तरुः॥ **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** ।५।३।५७। द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः। पूर्वयोरपवादः अयमनयोरतिशयेन लघुः—लघुतरः, लघीयान्। उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः, पटीयांसः॥ **अजादी गुणवचनादेव**

हो--तब आम्प्रत्यय न हो। उकार उच्चा० मका (इत्संज्ञासे) रक्षकः, यह प्रत्यय भी अनेकमें एकका अतिशयित्व अधिकताका परिचाय है। किन्तमाम्==अयमेषाम् अतिशयेन किम् यह इनमें अधिक क्यों-क्यों प्रश्न करता है। यह भी, यह भी। परन्तु यह सबसे अधिक किं किं पृच्छति इति विग्रहे किम् शब्दसे अतिशयार्थक किंकिम् (प्रश्न) प्रकाशक अर्थमें तमप्प्रत्यय। किम्—तम् मको अनुस्वार, किमेत्तिङ् से तमप्प्रत्ययान्त कितमशब्दात् आम्प्रत्यये, अन्त्य अकारलोपे रूपम्। तद्धितान्तत्वात् विभक्तिः। स्वरादित्वात् अव्ययसंज्ञा। विभक्तेर्लुक्। प्राह्णेतमाम्। अयम् एषामतिशयेन प्राह्णे (यह भी मध्याह्न यह भी, यह तो अतिमध्याह्न है) एदन्त प्राह्णे शब्दसे तमप् आम्प्रत्यय। पूर्ववत् (घकालतनेषु कालनाम्नः से सप्तमीका अलुक् अयमेषामतिशयेन पचति। यह इन लोगोंमें अधिक सुन्दर, स्वादिष्ट, शीघ्र, पकाता है। पचतिशब्दसे अतिशयपाकक्रियाकुशलकर्ता अर्थमें तिङश्च सूत्रसे तमप् (आम्प्रत्यये) **पचतितामाम्**। सर्वोत्कृष्टपाठकर्ता पठतितमाम्। खादतितमाम्। शेतेतमां कुम्भकर्णः। कटतितमां मघामेघः। उच्चैस्तमाम्। अयमेषामतिशयेन उच्चैः (यह इन लोगोंमें सबसे ऊंचे पद पर है। उच्चैस्तमाम्। अव्ययसे तमप्, आम्प्रत्यय। द्रव्यप्रकर्षेतु=जहां वृक्षआदिवस्तुकी सर्वाधिक श्रेष्ठता सिद्ध करनी हो, वहां आम् नहीं होता। तमप् होता है। अयमेषामतिशयेन उच्चैः उच्चैस्तमः, सबसे ऊंचा वृक्ष उच्चैस्तर का भी वही भाव है। लघुतमा पिपीलिका। **द्विवचनञ्च**=द्विवचने च विभज्यच, उपपदञ्च, क्रमसे द्वन्द्व और कर्मधारयसमास। दो अर्थका बोधक। जिसका विभाग करना हो या समीपमें जिसका उच्चारण हुआ हो। उसको क्रमसे से द्विवचन, विभज्य, और उपपद कहते हैं। दो मध्यमें एककी अपेक्षा दूसरेका अतिशय उत्कर्ष, सर्वश्रेष्ठ, विशिष्ट अर्थमें विद्यमान धर्म हो और दो में एकका विभाग करना हो, अथवा उपपदके धर्मवाचक शब्दसे (सुबन्ततिङन्तसे) एतौ=तरप् ईयसुन्प्रत्यय हो। पूर्वयोः=पहलेके तरप् और इष्ठन्का अपवाद=बाधक है। दो में एककी श्रेष्ठता का प्रकाशक। अयमपि लघुः २ (यह भी छोटा यह भी छोटा) किन्तु अयमनयोः अतिशयेन लघुः, यह इन दोनोंमें सबसे छोटा **लघुतरः**। अतिशय विशिष्ट लघुशब्दसे वर्तमान (दोनोंमें अन्तर) भेदक धर्मवाचक प्रथमान्त लघुशब्दसे द्विवचने विभज्य इति तरप् **लघुतरः**। पक्षमें इयसुन् प्रत्यये लघु+इयस्। भसज्ञकं टेः उकारस्य-लोपे। लघीयस् शब्दसे प्रथमा एकवचन नुम् उपधादीर्घ आदिकार्य **लघीयान्**। उदीच्याः उत्तरके लोग प्राच्येभ्यः दक्षिणके लोगोंसे पटुतरः (अधिक

।५।३।५८। इष्ठन्नीयसुनौ। नेह,–पाचकतरः, पाचकतमः ।। **प्रशस्यस्य श्रः** ५।३।६०। इष्ठेयसोः परतः ।। **प्रकृत्यैकाच्** ।६।४।१६३। इष्टादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात्। श्रेष्ठः श्रेयान् ।। **ज्य च** ।५।३।६१। प्रशस्यस्य ज्यादेश इष्ठेयसोः, ज्येष्ठः। **ज्यादादीयसः** ।६।४।१६०। 'आदेः परस्य' ज्यायान्। **वृद्धस्य च** ।५।३।६२। ज्यादेशः अजाद्योः। ज्येष्ठः, ज्यायान् ।। **अन्तिकबाढयोर्नें-**

चतुर हैं) प्राच्येभ्यो अतिशयेन पटवः। यहां एककी अपेक्षा दूसरेमें अधिक उत्कर्ष व्यक्त करनेके लिए अधिक धर्मविशिष्ट वर्तमानपटुशब्दसे तरप् बहुवचने (पटुतराः) पक्षे ईयसुन् टेः उका लोपः। **पटीयान्** पटीयांसौ पटीयांसः। कुशलतरः कुशलीयांसः। यह विभज्यका उदाहरण है।

अजादि—अच् आदौ ययोः प्रत्ययोः–इष्ठन् ईयसुन् अजादि है, वे गुणवचनसे हों। तरप् तमप् रोकनेके लिए इष्ठके निर्णयार्थ 'एव' पढ़ा। इससे प्रत्यय नियम सिद्ध। ऐसा न होता, प्रकृति नियम भी बनता, तब पटुतरः पटुतमः न सिद्ध होते। गुणाः उच्यन्ते येन तत् गुणवचनं, यथा पृथुः अस्ति अस्य वा अयं अनयोः पृथुः प्रसिद्धः स्थूलः-यह इन दोनोंमें मोटा नामी अर्थमें पृथुसे इष्ठन्। उका लोप, 'रम्' आगम, नकार लोप, प्रथिष्ठ। ईयसुन् होने पर प्रथीयस्से सु आदि प्रथीयान्। गुणवाचक शब्दसे प्रत्यय हुये। नेह–यहां नहीं हुआ अतिशयेन पाचकः पाचकतरः। अयं एषाम् अतिशयेन पाचकः पाचकतमः यह इन लोगोंमें बहुत स्वादिष्ट पकाता है अर्थे तमप्। क्रियावाचक शब्द है, द्रव्यवाचक है। गुणवाचक नहीं।

प्रशस्य—शब्दके स्थानमें 'श्र' आदेश हो अजादि अतिशयार्थक इष्ठन् ईयसुन् परे। **इष्ठादिषु**—इष्ठन् आदि प्रत्ययपरे एकाच्=एक अच्वाले शब्दको **प्रकृत्या**=जैसा था वैसा रहे। टिका लोप न हो। जहां इष्ठन् होगा वहां बहुतोंमें एककी विशेषता, इयसुन् (दो में एककी विशेषता) व्यक्त करता है। यथा–श्रेष्ठः अयं श्रेष्ठः अयमपि प्रशंसनीयः अयमपि प्रशंसनीयः किन्तु अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः श्रेष्ठः सर्वाधिक प्रशंसनीय प्रशस्यशब्दसे अतिशय प्रशंसा अर्थमें इष्ठन्परे प्रशस्यको श्र आदेश टिलोप प्राप्त, प्रकृत्यैकाच इति प्रकृतिभावे। ततः गुणएकादेशे **श्रेष्ठः** अयम् अनयोः अतिशयेन प्रशंस्यः इन दोनोमें एक अधिक प्रशंसनीय है। केवल ईयसुन् प्रत्ययका परिवर्तन, शेषकार्य पूर्ववत्। श्रेयस् प्रथमा एकवचन नुमि-उपधादीर्घ आदि **श्रेयान्।**
प्रशस्य—शब्दके स्थानमें ज्य आदेश हो इष्ठन् ईयसुन् परे। अयमपि प्रशंसनीयः अयमपि किन्तु अयमेषामतिशयेन प्रशस्य=वरिष्ठः प्राथमिक अर्थ, प्रशस्य शब्दको ज्य आदेश। प्रशस्यस्थाने ज्य आदेश इष्ठन् प्रत्यये। ज्य+इष्ठन् प्रकृतिभावेन टिलोपो न। किन्तु गुण एकादेश ज्येष्ठः। यदा ईयसुन्प्रत्ययः तदा ईयस्। ज्या-शब्दसे परे ईयस्को आकार आदेश हो। क्या-पूरेको आदेश हो जाय? तब बोले (आदेः परस्य) पर (ईयस्) के आदि ईकारको आकार हो। अयमनयोः अतिशयेन प्रशस्यः **ज्यायान्।** प्रशस्यस्थाने ज्य आदेश। ईयस् इकारस्य आकारे प्रकृतिभावे, सवर्णदीर्घे प्रथमायाः एकवचने ज्यायान्। ज्यायांसौ ज्यायांसः।

दसाधौ ।५।३।६३। अजाद्योरिष्ठेयसोः। नेदिष्ठः नेदीयान्। साधिष्ठः, साधीयान् ।। **स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः** ।६।४।१५६। एषां यणादिपरं लुप्यते, पूर्वस्य च गुण इष्ठादिषु। स्थविष्ठः दविष्ठः। यविष्ठः ह्रसिष्ठः क्षेपिष्ठः क्षोदिष्ठः। एवमीयसुन्। ह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां पृथ्वादित्वात्—ह्रसिमा, क्षेपिमा, क्षोदिमा ।। **प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणांप्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राधिवृन्दाः**।६।४।१५७

ज्यात्-वृद्ध के स्थानमें ज्य आदेश हो, अजादोइष्ठन् ईयसुम् परे ही। अयम् अनयोः अतिशयेन वृद्धः (यह इन दोनोंमें बहुत ज्ञानी सयाना अनुभवी या बुड्ढा है अर्थमें) इष्ठन्। वृद्धको ज्य आदेश। गुण आदिमें ज्येष्ठः क्रममें बड़ा। ईयसुन् परे ज्य आदेश होने पर दको आ हुआ, स्वादिकार्य ज्यायान्।

अन्तिक (समीप अर्थमें) बाढ़ (स्वीकारानुकूल अर्थमें) को नेद और साध आदेश क्रमसे हो, इष्ठन् ईयसुन परे। अयम् अनयोः अतिशयेन अन्तिकः (इन दोनों से यह ज्यादा समीप है) इष्ठन्। अन्तिकको नेद आदेश, अकार लोप गुणे नेदिष्ठः। ईयसुन् नेदीयस्से सु, नुम्, दीर्घ, सुलोप, संयोगान्तलोप नेदीयान्। अयम् अनयोः अतिशयेन बाढ़ः भृशप्रतिज्ञयोर्बाढमित्यमरः। अतिवलभृशात्यर्थातिमात्रो बाढनिर्भरमिति च। बाढ़से इष्ठन्। साध आदेश साधिष्ठः। इन दोनोंमें यह ठीक है इयसुन् होने पर साधीयान्। साधीयस्से सु, नुम्, दीर्घ आदि। स्थूल-दूर युवन् ह्रस्व क्षिप्र क्षुद्र इनके परे=अन्तमें यण-यवरल्का लोप हो। यण्के पूर्व गुण हो। इष्ठन् आदि परे अल्लोपोऽनःसे लोप आया। कर्मणि घञन्त। अयम् अनयोः अतिशयेन स्थूलःसे इष्ठन्। न का लोप। स्थूलदूर—आदि सूत्रकी असिद्धिसे ओर्गुणः नहीं लगा। स्थविष्ठः दोनोंमें बहुत मोटा (अतिशयेन) दूरः शब्दसे इष्ठन्। सूत्रके रका लोप, उको गुण, जब (दविष्ठः) बहुत दूर। उन दोनोंसे अतिशयेन युवा अर्थमें युवन्से इष्ठन्। (वुन्)का लोप गुणादिः (यविष्ठः) अधिक जवान्। सूत्रमें यणादि परं न कहते, यू का भी लोप होता। अतिशयेन ह्रस्वः दोनोंमें बहुत छोटा ह्रस्वसे ईष्ठन् व का लोप। (ह्रसिष्ठः) क्षिप्रसे इष्ठन् र लोप। पुगन्त गुणः क्षेपिष्ठः शीघ्र कर्ता। अयम् अनयोः अतिशयेन क्षुद्र इन दोनोंमें यह बहुत निकृष्ट है। क्षुद्रसे प्रत्यय, र लोप, गुण (क्षोदिष्ठः) बहुत नीच। उक्तशब्दोंसे इयसुन्प्रत्यय होने पर, पूर्वकी क्रिया परमें, यण्का लोप, गुण, अव, आदि, तब स्थवीयान्—बहुत मोटा। द्रवीयान् अधिकदूर। यवीयान् तगड़ा, ह्रसीयान् क्षेपीयान् शीघ्रकारी, क्षोदीयान् क्षुद्रकर्ता। इमन्भी आया। उसका प्रयोजन बोले ह्रस्व क्षिप्र क्षुद्र ये पृथ्वादिगणमें पढ़े गये। उनसे इमन् होने पर यण्का लोप आदि कार्य होंगे। ह्रसिमाः आदि अर्थपूर्ववत्।

प्रिय-स्थिर स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वृद्ध तृप्र दीर्घ, वृन्दारक इन दश शब्दोंके स्थानमें क्रमसे प्रादयः प्र, स्थ, स्फ, वर, वहि, गर वर्षि, त्रप, द्राघि वृन्दसे दश आदेश हों। इष्ठन् इमन् ईयसुन् परे रहते (जो तुरिष्ठेमेयः से आये)। अतिशयेन

प्रियादीनां प्रादयः स्युरिष्ठादिषु । प्रेष्ठः स्फेष्ठः । वरिष्ठः बंहिष्ठः । गरिष्ठः वर्षिष्ठः त्रपिष्ठः द्राघिष्ठः वृन्दिष्ठः । एवमीयसुन् प्रेयान् प्रियोरुबहुलगुरुदीर्घाणां पृथ्वादित्वादिमनिच् प्रेमा' इत्यादि ॥ **बहोर्लोपो भू च बहोः** ।६।४।१५८। बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्याद्बहोश्च भूरादेशः । भूमा । भूयान् **इष्ठस्य । यिट् च** ।६।४।१५९। बहोः परस्य इष्ठस्य लोपो यिडागमश्च । भूयिष्ठः ॥ **विन्मतोर्लुक्** ।५।३।६५। इष्ठेयसोः परतः । अतिशयेन त्वग्वान्

प्रेयान् (प्रेष्ठः) बहुत प्यारा वत्स । प्रियसे अधिक प्यार अर्थमें इष्ठन् । पक्षमें इयसुन् प्रियको प्र आदेश गुण आदि । अकार उच्चारणसे न टिलोपः । अतिशयेन स्थेयान् (स्थेष्ठः) बहुत टिकाऊ । स्थिर अर्थकी अधिकतामें इष्ठ, इयस् । स्थिरको स्थ जो एकाच् है प्रकृतिभावसे, न टिलोप । गुणादि । अतिशयेन स्फेयान् (स्फेष्ठ) बहुत हल्का, कमजोर, गाज जैसा इष्ठ, ईयस् । स्फिरको स्फ आदि । अतिशयेन वरीयान् वरिष्ठः । उरुको वर आदेश । ईयस् होने पर सु, नुं दीर्घ, लोप आदि । विशेष= अतिशयेन बहुलं से अजादि आदेश-बहुलको बंहि आदेश । इकार उच्चाराय । बंहिष्ठः बंहीयान् बहुत अधिक । अतिशयेन गुरुः गरीयान् (गरिष्ठः ।) गुरुको इष्ठ-नादि परे 'गर' आदेश । अतिशयेन वृद्धः वर्षीयाद् वर्षिष्ठः बहुलं बुड्ढा । वृद्धको वर्षि आदेश इ-उच्चा० अतिशयेन तृप्रः त्रपीयान् त्रपिष्ठः । बहुत लज्जालु, अतिशयेन दीर्घः द्राघीयान् द्राघिष्ठः दीर्घको द्राघि आदेश (इ-उ०) बहुत लम्बा । अतिशयेन वृन्दारकः वृन्दीयान् वृन्दिष्ठः । बड़ा झुण्ड । इयसुन् इष्ठन् दोनोंके रूप । किन्तु इमन्प्रत्ययके विषयमें बोले-प्रिय, उरू, बहुल गुरु दीर्घ आदि शब्दसे पृथ्वादि मानकर इमनिच् । तब प्रेमा, वरिमा, बंहिमा, गरिमा, द्राघिमा लम्बाई ।

बहो==बहुशब्दसे परे इमनिच् और इयसुन् प्रत्ययका लोप हो । परञ्च आदेः परस्य सूत्रसे, प्रत्ययके आदि अक्षरका लोप । भूमा=बहोर्भावः बहुत्वं भूमा= बहुतायत, अधिकता अधिक अर्थवाचक बहुङस् शब्दसे भाव अर्थमें पृथ्वादिभ्यः इमनिच् प्रत्यय । बहु—इमन् बहुशब्दसे परे आदेः परस्य नियमसे आदि अक्षर इका-लोप । बहुशब्दको भू आदेशे एकवचने भूमा भूमानौ, भूमानः । यदा इयसु प्रत्ययः बहु—ईयस् अयमनयोः अतिशयेन बहु (यह इन दोनोंमें अधिक है) इति तद्धितार्थः । बहोर्लोपः इयसुन्प्रत्ययस्य आदेः अक्षरस्य इकारस्य लोपे । बहुशब्दस्य (भू) आदेशे । एकवचने भूयान् भूयांसौ भूतांसः । बहुशब्दसे परे इष्ठस्य=इष्ठन् प्रत्ययका लोप हो, यिट्=यि आगम और बहुको भू आदेश हो । पञ्चमी निर्देशसे, आदेः परस्य नियमसे, आदि अक्षर इका लोप भूयिष्ठः । बहुः (यह भी अधिक, यह भी, किन्तु यह सबसे अधिक) विग्रह बहुशब्दसे अतिशायने अर्थे इष्ठन् उक्तसूत्रसे इष्ठन्के इका लोप, यिट् भू आदेशे, भूयिष्ठः । सर्वाधिक श्रेष्ठः ।

विन्-और मतुप्प्रत्ययका लुक् हो, इष्ठन् इयसुन् परे । अतिशयेन स्रग्वी (बहुत अधिक मालावाला) (स्रजिष्ठः) स्रक् अस्ति अस्य इति स्रग्वी अतिशयेन स्रग्वी (अस्मायामेधास्रजोविनिः) इति विन् स्रग्विन्, अतिशये अर्थे इष्ठन् (विन्मतोर्लुक्)

त्वचीयान् । प्रशंसायां रूपम् ।५।३।६६। सुवन्तात्तिङन्ताच्च। प्रशस्तः पटुः पटुरूपः । पचतिरूपम् । ईषदसमाप्ती कल्पब्देश्यदेशीयरः ५।३।६७। ईषदूनः विद्वान्–विद्वत्कल्पः । विद्वद्देश्यः । विद्वद्देशीयः पचतिकल्पम् । विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ५।३।६८। स च प्रागेव न तु परतः । ईषदूनः पटुर्बहुपटुः । पटुकल्प । सुपः किम् ? यजतिकल्पम् ॥

इति विन् प्रत्ययस्य लुक् । स्रज् इष्ठन् निमित्तापाये नैमित्यकस्यापि अपायः जिसको मानकर पदसंज्ञा हुई थी वही नहीं रहा, तब न पद, कुत्वेनहुआ गकारभी नहीं रहा। अत्रेन पदत्वाभावात् न कुत्वम् । अयमेषामतिशयेन (सबसे बड़ा माली) द्वयोः अयम् अतिशयेन स्रग्वी स्रजीयान् स्रग्विन् शब्दसे (दो में एककी श्रेष्ठताका साधक) इयसुन् प्रत्यय विन्मतोर्लुक स्रजीयस् एकवचन स्रजीयानिति । एषामतिशयेन त्वग्वान (ग्राह, सुअरका मजबूत चर्म) त्वचिष्ठः । इष्ठन् प्रत्यय । त्वचीयान्में ईयसुन् परे मतुप् प्रत्ययका विनमतोर्लुक् । पदके अभावमें कुत्वका अभाव ।

प्रशसायां––सुबन्त तिङन्त और प्रातिपदिकसे रुपप्प्रत्यय हो प्रशंसा अर्थमें । प्रकृतिके अर्थकी परिपूर्णता भी प्रशंसा है । केवल स्तुति नहीं । घकालतनेषु सूत्रके प्रत्ययपरे विभक्तिका लुक् न होना, सुबन्तसे प्रत्यय होनेका प्रमाण हुआ । प्रशंसा अर्थमें वर्तमान सुबन्तसे तिङन्तसे रुपप हो, प्रशस्तः पटुः बहुत कुशल प्रशंसनीय, धन्यवाद योग्य अर्थमें रूप । पटुरूपः सराहनीय चतुर । प्रशंसनीयं पचति पाकं क्रियां करोति अच्छीपाक क्रियाकर्ता। क्रियाप्रधानमाख्यातं, सत्वप्रधानानि नामानि रूपम्–पचतिरूपं प्रशंसनीय पाकक्रिया । प्रकृति पचति या पटु है उसीकी परिपूर्णता । अतएव चौररुपोऽयं यदक्षणोरञ्जनमपि हरति । प्रशस्तः चौरः चौररूपः कुशलतस्कर । आंखका अञ्जन भी चुरानेसे नहीं चूकता । गुप्त वस्तुनोऽपि अपहरणेन चौर्यं परिपूर्यते । यद्यपि असत्व क्रिया है, तथापि एकवचनं स्वाभाविक है । अतः पचतो रूप पचन्तिरूपं भी पचतिरूपंके समान एकवचन, नपुंसक ।

इषदसमाप्ति (थोड़ा हो और समास न हो । इस आशयसे विशिष्ट अर्थमें विद्यमान प्रथमान्तशब्द सुबन्त या तिङन्त हो स्वार्थमें कल्पप् देश्य देशीयर प्रत्यय हो । इषदूनो विद्वान् थोड़ी विद्या हो, किन्तु समाप्त हो । अर्थवाचक प्रथमान्तविद्वस् सु शब्दसे स्वार्थमें कल्पप् सुलुक्,विद्वस्कल्प । वसुस्रंसु इति सको द चर् विद्वत्कल्पः विद्वत्सदृशः । नहिविद्वानित्यर्थः । इषदूनः विद्वान् विद्वस् शब्दसे देश्यप्रत्यय देशीयर् (अर्थसमान) ईषद् न्यूनम् असम्पूर्णं पचति (कम पकाता है) पूर्णपकने नहीं पाता इषद्, असमाप्त अर्थमें समर्थ तिङन्त पचतिशब्दसे कल्पप्प्रत्यय । पचतिकल्पं मूढकल्पः बुद्धिकल्पः, गच्छतिकल्पं पठतिकल्पं कम पढ़ता है । विभाषा--इषदसमाप्ति थोड़ा हो समाप्त न हो, ऐसे अर्थविशिष्ट सुबन्तसे बहुच्प्रत्यय विकल्पसे हो । पुरस्तात्–यह प्रत्यय प्रकृतिसे पहले हो, परमें न हो । प्रागेव नतु परतः । परे न हो, इषदूनः पटुः (थोड़ा कम चतुर) किन्तु चतुरता समाप्त न हो ऐसे अर्थ विशिष्टसुबन्तसे पटुशब्दके पूर्वमें बहुच्प्रत्यय बहुपटुः । चतुर बन रहा है । यहां प्रासंज्ञा अर्थवत् सूत्रसे होग

प्रागिवात्कः ।५।३।७०। इवे प्रतिकृतावित्यतः प्राक्काधिकारः ।, **अव्यय-सर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः** ।५।३।७१। कापवादः । तिङश्चेत्यनुवर्तते ॥ **कस्य च दः** ।५।३।७२। कान्ताव्ययस्य दादेशोऽकच्च ॥ **अज्ञाते** ।५।३।६६। कास्या-यमश्वः-अश्वकः । उच्चकैः नीचकैः । सर्वके पचतकि । धकित् ॥ कुत्सिते

क्योंकि यह तद्धितान्त नहीं है । अथवा तद्धितयुक्तः तद्धितः अर्थ हो तब कृत्तद्धित-समासाश्च सूत्रसे संज्ञा संभव है । यदा बहुच् न, तदा कल्पप् । पटुकल्पः बहुमूर्खः मूर्खकल्पः अविवेकी जैसा । बहुविज्ञानं विज्ञानकल्पम् । सुपः किं ? सूत्रमें सुप् ग्रहण क्यों किया । तिङ्से बहुच् तिङ्प्रत्यय न हो, किन्तु कल्पप् यजतिकल्पम् । यज्ञ का आडम्बरः । प्रगिवा-इवे प्रतिकृतौ—अग्रिमप्रकरणके प्रथम सूत्रसे पहले तक अधिकार । इवात् प्राक्प्रत्ययका अधिकार (जो स्वार्थ प्रकृतिका अर्थ है ।) अव्यय-और सर्वनामसे अकच् प्रत्यय हो और वह टेः प्राक्=टिके पहले, कप्रत्यय बाधकर । इसको तद्धितान्त न मानकर तद्धितविशिष्ट कहना उचित है । तिङश्च की अनुवृत्ति आती है तिङन्तके भी टिके पहले अकच् हो (वा०) ओकार सकार भकार आदिमें हो ऐसे सुपपरे सर्वनाम्नाष्टे=सर्वनामसंज्ञाकी टिके पहले अकच् हो । अन्यत्र=ओकार सकार भकारादि सुपपरे न हो । वहां सुबन्तको टिके पहले अकच् हो । कस्य—क अन्त अव्ययके, द अन्त आदेश हो, अकच् भी । स्वरित प्रतिज्ञा बलसे अव्यय आया । जहां अकच् होगा वहां प्रकार होगा ।

अज्ञात—अर्थसे विशिष्ट सुबन्तसे क हो । अज्ञात अर्थका निर्देश कस्यायम् अश्वः (किसका यह घोड़ा है) अज्ञातो अश्वः जिसके अधिकारीका पता न हो । उच्चकैः अश्वशब्दसे अज्ञात अर्थमें कप्रत्यये अज्ञातत्व-ऊंचाई ज्ञात न हो । अज्ञात विशिष्ट उच्चैः शब्दसे टिके पूर्व अकच् । सर्वकैः अज्ञातं नीचैः नीचकैः निचला भाग अथाह । अज्ञाताः सर्वे सर्वके । यहां अज्ञातविशिष्ट सुबन्त सर्वैः शब्दसे ऐ के पहले अव्यय सर्वनाम्नां-सर्वनाम मानकर, अकच् और क प्रत्ययके रूपमें अन्तर नहीं । सर्वके सर्वे इत्यर्थः । ओकारपरे उदाहरणम्—अज्ञातयोः आवयोः युव–ओस् । युष्मद अस्मद सर्वनामके स्थानमें युव और आव आदेश । यहां ओकार परे टि (अ) के पूर्व अव्ययसर्वनाम्नां वार्तिकसे अकच् । युवक ओस् एत्वे, अयादेशे, युवकयोः (अज्ञात तुम दोनों) आवकयोः । वार्तिक न होता तो ओकारसे पहले अकच् होकर अनिष्ट होता । सकारादि परे टिके-पूर्व अकच्का उदाहरण—युष्मकासु युष्मा—सु, वार्तिकसे सकारादि प्रत्यय परे सर्वनामके टिका अकच् हुआ । (अज्ञात तुम लोगों में अज्ञात हमलोगोंमें) भकारादि परेका उदाहरण—अज्ञातैः युष्माभिः (अज्ञात तुमसे या हमसे) अज्ञातत्वविशिष्ट अर्थमें वर्तमान युष्मद् अस्मद शब्द भकारादि भिस् प्रत्यय परे टिके पूर्व अकच् । युष्मकाभिः शब्दमें (अज्ञात तुम सबोंने) अर्थकी शक्ति है । सुबन्तके टिको अकच् होता तब उसमें शक्ति स्वीकृति नहीं होती । सुबन्त टिका उदाहरण—अज्ञातेन त्वया त्वयका । अज्ञातेन मया मयका (अज्ञात तुमने,

।५।३।७४। कुत्सितोऽश्वः-अश्वकः ॥ अल्पे ।५।३।८५। अल्पं तैलं-तैलकम्। ह्रस्वो वृक्षः-वृक्षकः॥ (अस्मिन् प्रकरणे हलादौ प्रत्यये द्वितीयादचः परस्य लोपो वा वाच्यः)। देवदत्तकः। देवकः (लोपः पूर्वपदस्य च)। दत्तकः (विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्लोपो वा वाच्यः)। सत्यभामा। भामा सत्या ॥ कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः ।५।३।८८। ह्रस्वा कुटी-कुटीरः, शमीरः। शुण्डारः ॥ कुत्वा डुपच् ।५।३।८९। ह्रस्वा कुतूः-कुतुपः। 'कुतूः कृत्तेः स्नेहपात्रं ह्रस्वा सा कुतुपः पुमान्'। कासूगोणीभ्यां ष्टरच् ।५।३।९९। आयुध-

अज्ञात हमने) त्वया मया सुबन्त है। उसके टि (आ)के पूर्व अकच् (त्वयका) मयका

कुत्सिते=कुत्सा, निन्दा, घृणा, हरामी अर्थमें। कुत्सा सञ्जाता अस्येति कुत्सितः निन्दितः घृणित कुत्साविशिष्ट अश्ववाचकसुब्बतसे स्वार्थ=कुत्सा अर्थमें क प्रत्यय हो। कुत्सितः निन्दितः अश्वः दुष्टघोड़ा निन्दाविशिष्ट सुबन्त अश्व सु शब्दसे निन्दा अर्थमें क प्रत्यय (अश्वकः)। कुत्सितः पुरुषः **पुरुषकः** अन्नकम् विद्यका।

अल्पे-अल्पत्वविशिष्टे=थोड़े अर्थमें वर्तमान शब्दसे यथायोग्य प्रत्यय हो। अल्पं तैलं तैलकमानय, कम तेल है। सर्वकम्-सभी अल्प हैं सर्वम्। उच्चैः उच्चकैः अल्पं पचति पचतकि, भी उदाहरण। अल्पं सुखं सुखकम्। अल्पं ज्ञानम्। अल्पं पठति पठतकि। खादतकि। अल्पं भाषत भाषतके। ह्रस्वत्व विशिष्टे छोटा नाटा कम अर्थमें वर्तमानशब्दसे यथायोग्य प्रत्यय हो 'अल्पे'।

अनजादौ—इस प्रसङ्गमें हलादि प्रत्यय परे लोप विकल्प बोलें। अनुकम्पितः देवदत्तः से 'क' दत्तका विकल्प लोप, हलादि प्रत्यय परे क है (वा०) लोपः=इस प्रसङ्गमें पूर्वपदका भी लोप विकल्पसे कहे। अनजादौ नहीं आता। ठच्, घन्, इलच्, क, चारोंके क्रमशः रूप-कृपापात्र देवदत्तसे ठ-इक देवका लोप (दत्तिकः) घ-इय दत्तियः। इलच् दत्तिलः। क देवदत्तकः। अजादि-हलादि दोनों प्रत्यय परे पूर्वपदका लोप प्रमाणित। अप्रत्यये तर्थदेष्टःकी व्याख्या-(वा०)विनापि=प्रत्यय परे न रहे तब भी पूर्वपद उत्तरपदका लोप विकल्पसे बोलें? देवदत्तः। जब पूर्वपदका लोप तब दत्तः। उत्तरपदलोपे सति देवः। इसीप्रकार अनुकम्पिता सत्यभामा पूर्वका लोप भामा। उत्तरपदका लोप=सत्या। विना प्रत्यय परे भी सिद्ध।

कुटी-शमी शुण्डाकी अल्पता छोटाई अर्थ बोधक र प्रत्यय हो। छोटी कुटिया अर्थ सूचक र=कुटीरः पुंलिंग हुआ। क्योंकि स्वार्थिक प्रत्यय कहीं प्रकृतिके लिङ्गका उल्लंघन करते हैं। ह्रस्वः शमी शमीरः छोटा शमीका वृक्ष। ह्रस्वा शुण्डा शुण्डारः। सूड़ तुण्ड छोटा हो। कुतू शब्दसे ह्रस्व अर्थमें डुपच् हो। अनुबन्धलोप (उप=शेष) ह्रस्वा कुतूः छोटी कुप्पी। कुतूसे डुपच् कुतू उप। डित्से टि-ऊका लोप (कुतुपः) तेलकी कुप्पी स्त्रीभाव त्यागकर पुलिङ्ग। अमरकोषप्रमाण-कुतू=तेल पात्र छोटा हो तब पुलिङ्ग, कुतुपः।

कासू और गोणीसे ह्रस्व अर्थमें ष्टरच् हो। तर शेष। आयुध=शस्त्रविशेषका

विशेषः कासू—ह्रस्वा सा कासूतरी गोणीतरी ॥ **वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे** ।५।३।९१। वत्सतरः । उक्षतरः । अश्वतरः ऋषभतरः । **किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्** ।५।३।९२। अनयोः कतरो वैष्णवः ? यतरः ततरः ॥ वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ।५।३।९३। जातिपरिप्रश्न इति

नाम । कारतूस, गोली नानार्थमालामें कासूयुद्धः कुवाच्येऽस्त्रे कहा गया । वह बोली बुद्धिकी गोली है कासूसे (ह्रस्व छोटी हो तब) ष्टरच् अनुबन्धलोप, टित् होनेसे ङीष् । (कासूतरी) छोटी हृदय विदारक गोली । ह्रस्वा गोणीसे तर । ङीप् गोणीतरी छोटी गोनरी । (वत्स-उक्षन्) अश्व, ऋषभ, इनसे तनुत्वे=न्यूनता पतला दबाव अर्थमें वर्तमानसे ष्टरच् हो । ह्रस्व हटा । प्रवृत्तिनिमित्त=गुण धर्मकी न्यूनता प्रत्ययार्थ । अन्य धर्मों की भी । प्रथम वय अवस्थाकी न्यूनता दबाव अर्थमें वत्ससे ष्टरच् । अनुबन्धलोप, (वत्सतरः) प्रथमवय का, तनुत्व–समाप्त है । दूसरी अवस्था पहुंची । पहली दब गयी, दूसरे धर्मका आक्रमण । अतः कहा द्वितीयं वयः प्राप्त । उक्षा= तरुणो वलीवर्दः तगड़ा बैल । तरुणका दबना तनुत्व, तृतीय अवस्थाके आनेसे । उक्षनसे ष्टरच् । नलोपः (प्रातिपदिकान्तस्य) उक्षतरः । अश्वतरः । अश्वायां गर्दभेन उत्पादितः गदहासे घोड़ीमें पैदा हुआ । एक जाति, धर्मकी न्यूनता, दबना, अन्य जातिका मिश्रण धर्मान्तरण है । अश्वतरः अश्वकी अपेक्षा कम धर्म तद्धितार्थ । घोड़ीमें घोड़ासे उत्पन्न जाति शुद्ध हैं किन्तु गदहेके साहचर्यसे अन्यपिता होना न्यूनता हैं । ऋषभः भारबोझा–वाहक, भार ढोनेमें मन्दशक्तिता कमजोरी, तनुत्व है । उसी अर्थमें 'तर' प्रत्यय ऋषभतरः । ये सभी अर्थ तनुः=कृशः वत्सः वत्सतरः से क्यों नहीं कहा । कृशः उक्षतरः । कमजोर घोड़ी अश्वतरी कमजोर भारवाहिका ऋषभतरी । कम ढोनेवाली, ऐसा क्यों नहीं ? तब कहा–प्रवृत्तिमें जो निमित्तकारण उसका तनुत्व कृशता मन्दशक्तिता ही प्रत्ययका अर्थः वत्सत्व, उक्षत्व, अश्वत्वः ऋषभत्वका दबना फल है । बछड़ा घोड़ी आदिका नहीं ।

किंयत्त—द्वयोरेकस्य निर्धारणे, दो व्यक्ति या वस्तुमें निर्धारण=निश्चय करना हो । निर्धार्यमाण-जिसको निश्चय करना हो उस अर्थके वाचक किं यत्तत् शब्दसे डतरच् प्रत्यय हो डच् इत् 'अतर शेष । अनयोः 'कः' वैष्णावः' इन दोनोंमें कौन वैष्णव है । इस अर्थका वाचक **कतरः** शब्द है । दो व्यक्तिमें वैष्णव धर्मीका निश्चायक किं शब्द इदं शब्द है । निश्चयकरणका वाचक किम् शब्दसे डतरच् ड इत् होनेसे भसंज्ञाके विनाभी किं के टि (इम्) का लोप । विभक्तिकार्ये **कतरः** **यतरः** अनयोर्यः (उर्ध्वपुण्ड्रधारी इन दोनोंमें जिसका तिलक खड़ा है । यत् शब्दसे डतरच् अनुबन्धलोपे, टिलोपे, **ततरः** अनयोः सः इन दोनोंमें वहीं वैष्णव है । तत् शब्दात् डतरच् आदि । **बहूनां**=बहुतों के मध्यमें किसी एकका निर्धारण (निश्चय करण) हो तब किम्, यतसे डतमच् । अनुबन्धलोप 'अतम' शेषः (जाति परिप्रश्ने) अंशका भाष्यमें खण्डन किया गया, क्योंकि सूत्र केवल जातिविषयक निर्धारणमें

प्रत्याख्यातमाकरे। कतमो भवतां कठः। यतमः। ततमः वाग्रहणमकजर्थम् ॥ एकाच्च प्राचाम् ।५।३।९४। डतरच् डतमच्च स्यात्। अनयोरेकतरो मैत्रः। एषामेकतमः। इति प्रागिवीयाः ॥

अथ स्वार्थिका

इवे प्रतिकृतौ ।५।२।९६। कन् स्यात्। अश्व इव प्रतिकृतिः—अश्वकः ॥

संकुचित सीमित नहीं है। कतमः भवतां कठः कठशाखामें आप े कौन शाखा है। बहुत कठशाखाओंमें एकका निश्चय हो रहा है। कठ जाति है क्योंकि कठशाखाके लोग भी कठ ही हैं अतः निर्धारण अर्थमें किम् शब्दसे डतमच्। डित् होनेसे टिका लोप कतमः कौन सा। जातिसे भिन्नमें भी भवतां कतमः (कौन) कर्णपुरं गमिष्यति। कतमः लौहपुरम् (लाहौर) येषां यो दक्षः यतमः। तेषां दक्षः सः ततमो गमिष्यति। वाग्रहणसे कः यः सः भी होंगे। अथवा वाग्रहणमकजर्थम् अकच्प्रत्ययके लिए भी है। येषां यः यकः इनमें जो। तेषां सः सकः। एकः शैवः। बहुतोंनें एकके निर्धारण अर्थमें जब डतमच् नहीं हुआ, तब टिके पूर्वमें अकच्। यकद्, तकद्, अत्वं, पूर्वरुपं, सत्वं यकः सकः।

एकाच्च प्राचीनके मतमें एकशब्दसे डचरच् हो डचमच् भी। इन दोनोंमें मैत्र कौन है अर्थमें एक शब्दसे डतर आदि। एकतरः। डतम् एकतमः। इनमें मैत्र कौन है महाविभाषयैव सिद्धे प्राचां ग्रहणं पूजार्थम्।

इति प्रागिवीयप्रत्ययाः पूर्णाः प्राभाकारीटीकायां प्रभाकरमिश्रकृतयाम्।

स्वार्थिका—स्वं (प्रकृतिः) तस्य अर्थः स्वार्थः। स्वार्थभवाः स्वार्थिकाः। प्रकृति के अर्थमें होने वाले प्रत्ययका प्रकरण प्रारम्भ करते हैं। **इवे**--इवका सादृश्य (समानता चन्द्रके समान मुख) जैसा ही अर्थ है। चन्द्रवन्मुखम्। इव (सदृश) अर्थमें वर्तमान प्रातिपदिकसे कन् प्रत्यय हो, प्रतिकृतौ=मति चित्र, (मृदादि निर्मिता प्रतिमा) फोटो अर्थ हो तब, जहां इव शब्द रहे वहाँ उपमान उपमेय भाव हस्तिनी उपमान। इसी प्रकार प्रतिकृत्तिः प्रतिमा, मूर्ति, चित्र, उपमेय उपमातुं योग्यः उपमा के गुणधर्ममें समानताके योग्य हो। जिसकी उपमा दी जाय, गुण धर्मकी बराबरी की जाय, वह उपमान है। वही गुण धर्म ही कन्प्रत्ययका या प्रकृतिका अर्थ है। विचित्रता यह हैं कि उपमानसे कन् प्रत्यय हो, उससे उपमेय अर्थ खुले। सत्य वस्तु के समान हीं मूर्तिमान लगे। सत्य उपमान है। उसका फोटो नकल, उपमेय प्रतिकृति है। मूर्तिको साक्षात् भगवान् मानना कन्का विशेष स्वार्थ है, यथा—अश्व-इव प्रतिकृतिः मूर्तिः, चित्रम्वा सः अश्वकः यह मूर्ति (चित्र) मानो असली घोड़ा है। उत्प्रेक्षा। उपमान-अश्व शब्दसे कन्प्रत्ययः। असली घोड़ेकी मूर्तिमान् प्रतिकृति छाया। चित्रमें सत्यताका आरोप कन् प्रत्ययका अर्थ है। कृष्ण इव प्रतिकृतिः (आकृतिः, चेहरा) कृष्णकः, कुमारी इव वर्तते कुमारिकः। शूद्रइव प्रकृतिः शूद्रकः ब्राह्मणकः, वराह इव प्रतिमा वराहकः। नेतृइव नेतृकः गुरुरिव गुरुकः। पिताइव

शाखादिभ्यो यः ।५।३।१०३। शाखेव शाख्यः । मुख्यः जघन्यः । अग्र्यः । शरण्यः ।। कुशाग्राच्छः ।५।३।१०५। कुशाग्रीया बुद्धिः ।। तत्प्रकृतवचने मयट् ।५।४।२१। प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतम्, तस्य वचनं प्रतिपादनम् । भावे अधिकरणे वा ल्युट् । आद्ये प्रकृतमन्नं अन्नमयम् । अपूपमयम् । द्वितीये=अन्नमयो

पितृकः । यहां प्रतिकृतिका प्रतिमाके साथ छाया, स्वरुप आकृति, चित्र भी ग्राह्य है । (वा०) सर्व=सभी प्रातिपदिकोंसे स्वार्थ=प्रातिपदिकार्थमें कन्प्रत्यय हो । अश्वइव अश्वकः । वानर इव वानरकः । रावणइव रावणकः । करपात्रिकः । महाशयकः शिवकुमारकः । बालशास्त्रिकः । शशिधरकः ।

शाखा—गण पठितशब्दसे यत् हो, समानतामें 'मुख्यो भवति' आदिमें उदात्त दर्शनसे यत् पढना उचित । शाखा इव टूटी हुई टहनी डालीकी तरह अर्थमें यत् यस्यति आलोप । (शाख्यः) मुखमिव मुख्यः प्रधानः मुखिया, सबका अध्यक्ष मुखसे यत् आलोप मुख्यः । जघनमिव जघन्यः=दोनों जंघोंके बीचकी तरह अर्थमें य, अकार लोप । घृणित । अग्र इव=अग्रणीके समान व्यक्ति वस्तु अर्थे यत् अग्र्यः । शरणमिव शरणमें आय हुयेके समान शरण्यः । कुशाग्रसे इव अर्थमें छ हो । सूक्ष्मता की समानतासे कुशाका अग्र भाग सूक्ष्म नोकीला अर्थमें, कुशाग्रसे छ–ईय टाप् कुशाग्रीया । कुशाग्रवत्सूक्ष्मा तेजबुद्धि ।

तत् प्रथमान्तं प्रकृत=प्राचुर्य, अधिकता, वचने=बोधन, प्रकृतवचने अधिक वस्तु, बहुत अधिक अर्थसे वर्तमान समर्थ प्रथमान्त शब्दसे स्वार्थमें (प्रकृतिके अर्थमें) मयट् प्रत्यय हो । जिससे प्रचुरता, अधिकता, बहुतायत भाव निकले । यहाँ प्रकृतका प्रस्तुत अर्थ नहीं है किन्तु अधिकताका वचन=बोध कथन अर्थ है । भाव अथवा अधिकरण अर्थमें ल्युट् प्रत्यय करके वचन शब्द बना । सूत्रका दूसरा अर्थ–प्राचुर्य अर्थमें प्रस्तुत विद्यमान अन्नादिशब्द प्रथमान्त समर्थसे अधिकरण अर्थमें मयट् प्रत्यय हों । प्रथम अर्थका उदाहरण—प्राचुर्येण बाहुल्येन प्रकटं विद्यमानम् अन्नमयम् (अन्नकी ढ़ेर) प्रथमान्त समर्थ प्रचुरतामें विद्यमान अन्नशब्दसे मयट् प्रत्यय । अन्नकी अधिकता । प्रचुराः अपूपाः (अपूपमयम्) (मालपूओंकी ढ़ेर) प्रथमान्तसमर्थ प्रचुर अर्थमें विद्यमान अपूप शब्दसे स्वार्थमें मयट् (अपूपमयम्) पूओंकी अधिकता तद्धितार्थ है ।नपुंसक । यद्यपि मयट् प्रत्यय स्वार्थिक है अपूपके अर्थमें हुआ । स्वार्थिकाः प्रत्यया प्रकृतितो लिङ्गवचनानि अनुवर्तन्ते । स्वार्थिकप्रत्यय प्रकृतिके लिङ्ग वचनका आकर्षण करते हैं इस नियमसे अपूप पुलिङ्ग है । अपूपमयको भी पुलिङ्ग होना चाहिये । तथापि स्वार्थिकाः प्रत्ययाः प्रकृतितः लिङ्गवचनानि अतिक्रमन्ते उल्लंघन करते वे, नपुंसक उचित है ।

द्वितीय अर्थका उदाहरण—अधिकरणे ल्युट् अधिकरण अर्थमें ल्युट्, आधार अर्थमें वस्तुकी प्रचुरता यथा—प्राचुर्येण (अधिक मात्रामें) प्रस्तुतानि अन्नानि अस्मिन् यज्ञे । बहुत अधिक अन्न भरा हो जिस यज्ञमें वह यज्ञ अन्नमयं है । यज्ञमें अन्नकी अधिकता तद्धितार्थ है । भाव और अधिकरण भेदसे वचनके दो अर्थ हुए ।

यज्ञः। अपूपमयं पर्व ॥ सख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्ससुच् ।५:४।१७। अभ्यावृत्तिर्जन्म, क्रियाजन्मगणनवृतेः संख्याया स्वार्थे कृत्वसुच् । पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते । संख्यायाः किम् ? भूरिवारान्भुङ्क्ते ॥ द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ।५।४।१८। कृत्वसुचोऽपवादः द्विर्भुङ्क्ते । त्रिर्भुङ्क्ते । रात्सस्य । चतुर्भुङ्क्ते ॥ एकस्य सकृच्च ।५।४।१९। सकृदादेशः चात्सुच् । सकृद् भुङ्क्ते । देवतान्तात्तादर्थ्ये यत्

प्राचुर्यार्थ विशिष्टान्नशब्दात् मयट् । पक्षे अपूनानां प्राचुर्यं यस्मिन्पर्वणि (माल पूआकी बहुलता जिस त्यौहारमें हो)। अधिकरणे ल्युट् प्राचार्यविशिष्ट अपूपशब्दसे अधिकरणे यमट् ।

संख्याका क्रिया—भोजन गमन पठन, आदिकी अभ्यावृत्ति=पुनः पुनः जन्म (जनी प्रादुर्भावे) बार-बार होना। अभि आ-उपसर्ग बलसे वृतु वर्तने धातुका अनेक बार होना अर्थ। उससे भावमें क्तिन् । अभ्यावृत्तिः क्रियाका बार-बार होना उसकी गणनामें वर्तमान संख्यावाचक शब्दसे स्वार्थमें कृत्वसुच् हो। हलन्त्यंसे च् इत्। उ-उच्चारणार्थः । तसिलादिमें गणनासे कृत्वः अर्थवाले, अव्यय मान्य। पंचकृत्वः पंचबारमुत्पन्ना भोजनक्रिया, पाच बार खाता है अर्थवाचक पञ्चन्के अर्थमें कृत्वस् । पंचन् कृत्वस् प्रातिपदिकान्तस्य नस्य लोप। सकारस्य रुत्वे उत्वे गुणे। संख्यायाः किं ? गणनामे वर्तमानसंख्या शब्द क्यों कहा ? भूरिवारान् बहुत बार खाता है। संख्या निश्चित नहीं है, प्रत्यय न हो। भूरिका बहु अर्थ। वारका क्रियापर्याप्तिकाल अर्थ। उससे अत्यन्त संयोगमें द्वितीया। बार शब्दका काल अर्थ, तब भूरिका भी काल अर्थ क्यों नहीं ? समान अधार होनेसे। बहुत बारका भोजन-क्रिया अर्थ (बहुत) अर्थात् गम्यते। वारशब्द संख्या नही है न कृत्वसुच् । अभ्यावृत्ति क्यों पढ़ा ? पञ्चपाकाः, दशपाकाः क्रियामात्रकी गणनामें न हो। पुनः पुनर्दण्डः, पुनः पुनः स्थूलः आदि दव्यगुणकी बारबार उत्पत्तिमें प्रत्यय न हो। यदि भवन क्रियाका पुनर्जन्म है ऐसा कहें तब उत्तरसूत्रके लिए क्रिया आवश्यक।

द्वित्रि-चतुर शब्दसे क्रियाके वार-बार पुनः पुनर्जन्म होने पर सुच् हो, कृत्वस् को बाधकर। च इत्। उ उच्चा-। अव्ययपूर्ववत्। दो बार खाता हैं खादन क्रिया का दो कालवाचक द्वि से सुच् । अनुबन्धलोप। स को रु-वि। द्विवंचनेऽचि, द्विः आवृत्तिः द्विः प्रयोगः द्विर्बद्धः, सिद्धा साध्या क्रियाका आवृत्तिमें प्रमाण। द्विः कर्ता पंचकृत्व कटान् कर्ता। इत्यादि गुण भूत क्रिया योगमें भी साधुत्व इष्ट। त्रिः=तीन बार भोजन किया अर्थमें सुच्, स को रुवि। चतुर्वारं चार बार खाता है अर्थमें सुच् चतुर्स्। रात्सस्यसे परे स् का लोंप। रको विसर्ग। (चतुः) इति सिद्धम्। एकस्य= एक बारकी क्रिया अर्थमें कके स्थानमें सकृत आदेश हो सुच् भी। एक बार शब्द से सुच्, एकको सकृत आदेश हुआ। सकृत् स् संयोगके अन्तमें स—का लोप हुआ। एकबार खाना है एकत्व विशिष्टा भुजिक्रिया।

देवता-अन्त शब्दसे यत् हो तादर्थ्ये-देवता शब्दके अर्थमें तस्मै अर्थः तदर्थः

।५।४।२४। तदर्थं एव तादर्थ्यम् । अतएव स्वार्थे ष्यञ् । अग्निर्देवतायै इदम्=अग्निदेवत्यम् । पितृदेवत्यम् ।। **पादार्घाभ्यां च** ।५।४।२५। पादार्थमुदकं पाद्यम् अर्घ्यम् ॥ **अतिथेर्ञ्य** ।५।४।२६। अतिथये इदम् आतिथ्यम् (नवस्य नू आदेशः त्नप्तनप्खाश्च वक्तव्याः) स्वार्थे । नूत्नम् नूतनं नवीनम् (भागरूपनामभ्यो धेयः)। भागधेयम् । रूपधेयम् । नामधेयम् (आग्नीध्रसाधारणादञ्)। आग्नीध्रम् साधारणम् ॥ **देवात्तल्** ।५।४।२७। देव एव देवता ॥ **अवेः क** ।५।४।२८। अविरेव अविकः ॥ **यावादिभ्य कन्** ।५।४।२९। याव एव यावकः । मणिकः (सर्वप्रातिपादिकेभ्यः स्वार्थे कन्) बहुतरकम् ॥ **मृदस्तिकन्** ।५।४।३९।

प्रकृतिके अर्थमें य । देवता क्या है त्याज्यमानद्रव्योद्देश्यविशेषो देवता मन्त्र स्तुत्या च, दान दिये वस्तुका उद्देश्य=स्वीकर्ता देवता है जो स्वाहा, देय वस्तु अग्निके लिए हो, उस अर्थमें देवतान्त अग्निदेवताशब्दसे यत् अग्निदेवत्यम् । पितरश्च ताः देवताश्च पितृदेवता । ताभ्यः इदं पिण्डं जलं वा अर्थे यत् पितृदेवत्यं । हविके प्रति पितर ईश्वर स्वामी । परन्तु इदं यजमानकी वस्तु है जिसके लिए देगा वही देवता । यदि पुराण प्रसिद्ध देवता देवाः मनुष्याः पितरः असुराः रक्षांसि पिशाचाः लिये जाय तब अव्याप्तिदोष होगा । पाद–अर्घसे भी तदर्थं=पैर धोने जलपिलाने अर्थमें यत् हो । पादार्थी–पादप्रक्षालनाय पानी पाद्यं है अर्थमें पादसे यत् । अर्घार्थम् उदकम् अर्घ्यं मूल्ये पूजाविधौ अर्घः इत्यमरः । पूजन जल, यत् अलोप आदि (वा०) नव-शब्दको नू आदेश हो त्नप् तनप् और ख प्रत्यय भी । अत्यन्त स्वार्थमें नया अर्थके नव शब्दसे उक्तप्रत्यय, नवको नू आश भी नूतनं, जब ख-ईन नू भाव, उ को गुण अवादेश (नवीनं) (वा०) पुराण अर्थमें वर्तमान प्र शब्दसे (न) प्रत्यय हो । च से पूर्वोक्ता=तनप् ख भी हों । पुराने अर्थमें प्र से न णत्व (प्रणम्) तनप् हुआ । प्रतनम् । ख-ईन अकार लोप नकारस्य णत्वे प्रीणम् । (वा०)–भाग-रूप, नाम शब्दसे निजी अर्थमें धेय हो । यथा—भाग एव भागधेयं, रूप एव रूपधेयं, नाम एव नामधेयं । अर्थ वही रहेगा (वा०) आग्नीध्र-और साधारण अर्थमें अण् हो । अग्नीधः शरणम् आग्नीध्रम् । ततः स्वार्थेः अञ् । व्यापक सम्बन्ध साधारण है । अञ् हुआ जिसका फल स्त्रीलिङ्गमें टिड्ढाणञ्से ङीप् । आग्नीध्री शालामें अग्निहोत्र होता है । समानं धारण अस्याः सधारणी भूमिः । पृषोदरादिसे समानकी स । जब अञ् नहीं तब टाप् आग्नीध्रीशाला, सधारणा भूमि ।

देवसे तल् हो अत्यन्त स्वार्थमें । देव ही देवता तल् टाप् । लिङ्ग लक्षण पुं–से स्त्री । अवि से—य हो स्वार्थमें । (अवयः शैलमेषार्का इत्यमरः) भेड़ा अर्थमें अविःसे क अविकः । यव–आदि गणमे पढ़े शब्दसे कन् हो । यवानां अयम् यावः ओदनादिः सक्तु अथवा अलक्तक वृक्ष । यवो अलक्ते द्रुमामयः अमरः । पेड़का लाल रोगन लाली अर्थोमें कन् यावका । मणिरेव मणिकः कन होने पर भी वही अर्थ ।

मृदसे तिकन् हो स्वार्थे । मृद् तिकाद को चर्त्व टाप् मृत्तिका । पञ्चभिः मृत्तिकाभिः क्रीतः घटः पाञ्चमृत्तिका ।

मृदेव मृतिका। **सस्नौ प्रशंसायाम्** ।५।४।४०। रूपपोऽपवादः। प्रशस्ता मृत्-मृत्सा' मृत्स्ना ।। **प्रज्ञादिभ्यश्च** ।५।४।३८। अण् स्यात्। प्रज्ञ एव प्राज्ञः। दैवतः। बान्धवः ।। **पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्** ।५।३।११२। स्वार्थे। नाना जातीया अनियतवृत्तयोऽर्थकामप्रधानाः सङ्घाःपूगाः। लौहितध्वज्यः॥ **ञ्यादयस्तद्राजाः** ५।३।११९। तद्राजस्येति लुक्। लोहितध्वजाः। व्रातेति च्फञ्, कापोतवाक्यः, कपोतपाकाः। कौञ्जायना इत्यादि। **बह्वल्पार्थाच्छस्कार**

सस्नौ—प्रशंसनीय मिट्टी अर्थमें वर्तमान मृद्से स्वार्थमें स और स्न दोनों प्रत्यय हों। प्रशंसायां रूपप्को बाधकर। प्रशंसनीय मृत्से 'स' प्रत्यये मृत्सा। जब स्न टाप् मृत्स्ना। यह नित्य सूत्र है। अगले सूत्रमें अन्यतरस्यां पढ़े जानेसे (मृन्मृत्तिका मृत्सा मृत्स्नं च मृत्तिका इत्यमरः।

प्रज्ञा आदि शब्दोंसे स्वार्थमें अण् हो, प्रकर्षेण जानाति प्रज्ञः (प्रतिभा, बुद्धि, ज्ञानवाला हो) एवं प्राज्ञः विद्वान्। प्रज्ञ शब्दसे स्वार्थे अण् आदिवृद्धिः। टिड्ढाणञ् सूत्रसे स्त्रीलिङ्गकी विवक्षामें ङीप्। यस्येति अकारलोपे (प्राज्ञी) (बिदुषी स्त्री) देवता एव दैवतः। देवताशब्दात् उक्त सूत्रेण अण् आदिवृद्धिः आलोपे। बन्धुरेव (भाई बन्धु हो) बान्धवः स्वार्थे अण्। बन्धु शब्दात् आदिवृद्धि ओर्गुणः उकारस्य गुणादिः, प्रकृतिका जो अर्थ हैं प्रत्यय सहितका भी वही अर्थ।

पूगात्=इव अर्थ एका व्याख्यानसे। नाना जातिके लोग जिनका काम व्यवहार जीविका एकढ़ङ्गका निश्चित नहीं, धर्महीन, अर्थकाम भोग प्रधान ऐसा संघ=समुदायका नाम पूग है उससे स्वार्थमें ञ्य हो। ग्रामीणवाचक शब्द पूर्वमें न रहे तब। लोहिता ध्वजा यस्य संघस्य (लोहितध्वज्यः) जिस धर्महीनसमुदायका झण्डा लाल हो। स्वार्थमें ञ्य आदि। इसमें स्वरूप अमान्य है। देवदत्तो ग्रामीणी-र्येषां ते देवदत्तकाः=समुदाय पूगवचन है, ञ्य न हो अतः अग्रामणीपूर्वात् पढ़ा।

ञ्यादय-पुगाञ्यः सूत्रसे लेकर यहां तक उक्ता=कहे गये प्रत्यय तद्राजसंज्ञक हो, जिसका फल स्त्रीलिङ्गको छोड़कर अन्यके बहुवचनमें लुक् होना। लोहिता ध्वजा यस्य लाल झण्डीवाला अर्थमें पुगात्से-ञ्य उसको तद्राजसंज्ञा। बहुवचन परे लुक् लोहितध्वज्यः। कतोतान्पचति कपोतपाकः स एव कपोतपाक्यः। तद्राजसंज्ञा, य का लुक्। कौञ्जायन्यःमें भी य का लोप। वातच्फञोः के ञ् का लुक् (व्राध्यायनाः) इत्यादि। क्षौद्रक्यः क्षुद्रकाः आयुधजीवी, यका लुक्, (वार्केण्यः) वृकाट्टेण्यणका लुक्। दामनीयो दामनयः। कौण्डोपरथोः में रोमन्थादिके छ का लुक्। पार्शवः। यौधेयः अण् अञ् का लुक् अभिजितः, विदभृतःमें यञ्का लुक्।

बहु अर्थ और अल्प अर्थमें विद्यामान कारकसे स्वार्थमें शस् प्रत्यय विकल्पसे हो। बहूनि ददाति (बहुत देता है) दान क्रियाका कर्म कारक बहूनि है। बह्वर्थकभी है। स्वार्थमें बहुशब्दसे शस् (बहुशः) अल्पं ददाति इति अल्पशः—अल्पार्थक कर्मकारक अल्प शब्दसे शस्। बहुत कम दान करता है। न्यूनं ददाति न्यूनशः।

कादन्यतरस्याम्।५।४।४२। बहूनि ददाति बहुशः। अल्पानि अल्पशः। बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम्। नेह=बहु ददात्यनिष्टेषु। अल्पं ददात्याभ्युदयिकेषु। संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम ।५।४।४३। द्वौ द्वौ ददाति-द्विशः। माषं माषं माषशः परिमाणशब्दाः वृत्तावेकार्था एव। संख्यैकवचनात्किम्? घटं घटं ददाति। वीप्सायोः किम्? द्वौ ददाति। कारकादित्येव। द्वयोर्द्वयोः

बहुअल्पसे मङ्गल अमङ्गल अर्थमें शस्, बहुशो ददाति। आभ्युदयिकेषु कर्मसु-वृद्धिवाले कर्ममें बहुत देता है। अनिष्टेषु कर्मसु अल्पं ददाति अल्पशः, उन्नतिमें अधिक दान, अवनतिमें अल्पदान मङ्गल है। उसके विपरीत दान अमङ्गल है। अनिष्टेषु बहुददाति, ह्रासमें बहुत देता है, भय आदिके कारण। उन्नति अभ्युदय कल्याण की स्थितिमें अल्पं ददाति कम देता है। शस् नहीं हुआ। स्तोकशः ददाति मङ्गलमें शस् अमङ्गलमें नहीं। विपरीत दान अमङ्गल।

संख्या हो एकवचन भी, प्रातिपदिकसे क्रिया सम्बन्धमें शस् हो विकल्पसे। वीप्सायां=अनेक बार उच्चारण परे। सङ्ख्या च वचनञ्च समाहार द्वन्द्वसे पञ्चमी। उच्यते अनेन वचनः। एक सङ्ख्या अर्थ निकालने पर। यथा द्वौ ददाति-यजमान दो दो रुपया देता है, नित्य वीप्सयोःसे द्विवंचन। द्विसे दो दो रुपया देने अर्थ में शस् (द्विशः) यहां द्विको द्वित्व नहीं होता, शस्से ही द्विवचन उक्त होनेसे। तद्धितश्चासर्वविभक्तिः-यह सूत्र शस् प्रत्ययसे लेकर डाच् तक अव्ययसंज्ञक है। एकत्वका उदाहरण-माषं माषं एक-एक भाशा सोना, ददाति देता है। परिमाण अर्थमें माष हैं उरद नहीं। शस् (माषशः) ददाति। प्रस्थं प्रस्थं ददाति एक पसेरी देता है अर्थे शस् (प्रस्थशः) अत्र शङ्का-घटं घटं ददाति घटश। क्यों नहीं बनता। एकसंख्याः सहित अर्थ खुल रहा है, अतः कहा परिमाणशब्दाः=किसी मात्रा (तोला भाषां सेर पसेरी किलो क्विटल)में वर्तमान शब्दका वृत्ती-समास आदिमें एक अर्थ वाले होते ही है। परार्थाभिधानं वृत्तिः, परः एकार्थीभाव रूपः समुदायः वृत्तिः। एक अर्थकी उपस्थिति, एकवचनका भाव है। इस प्रकार परिमाण मान्य। अतः भाषशः-एक एक माषा सोना देता है। तद्धित भी वृत्ति है। एकार्थीभाव होनेसे नियत है। प्रस्थमें भी। घटदाता कहने पर घटानां दाताकी प्रतीति है। एक-एक घट अर्थ नहीं खुलता। यह जयादित्यका मत। वामनजी उक्त नियममें प्रमाण न होनेसे जाति शब्दसे भी शस् कहते हैं। संख्या एकवचन नहीं कहते, घटं घटंसे भी शस् हो जाता। जातिशब्द एकार्थ नहीं होते। कुण्डशः ददाति। वनशः ददाति प्रमाणसे जाति शब्दसे भी प्रसङ्गात् वृत्तिमें एकार्थ होते हैं, अतः शस्। परन्तु एकैकशः पितृसंयुक्तान् एक-एक का द्वित्व होना, उसी अर्थमें शस् होना सम्भव कैसे? आर्षम् ऋषिप्रोक्तम्। हरदत्तमते एकैकशः भाष्य प्रयोगसे स्वार्थिक शस् होना समाधान। वीप्सा क्यों? द्वौ ददातिमें वीप्सा (दो बार उच्चारण] नही। क्रियान्वयी होने पर क्यों? (दो दो का स्वामी) क्रिया नहीं न शस्। प्रतियोगे—कर्मप्रवचनीयसंज्ञक

स्वामी ॥ प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ।५।४।४४। प्रतिना कर्मप्रवचनीयेन योगे या पञ्चमी विहिता तदन्तात्तसिः । प्रद्युम्नः कृष्णतः प्रति । आद्यादिभ्यस्तसेरुपसंख्यानम्) आदौ आदितः, मध्यतः । पृष्ठतः पार्श्वतः । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण स्वरतः । वर्णतः ॥ कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः ५।४।५०।(अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्) विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद्विकारशब्दात्स्वार्थे च्विर्वा स्यात्करोत्यादिभिर्योगे ॥ अस्य च्वौ ।७।४।३२। अवर्णस्य ईत् स्यात् च्वौ । अकृष्णः कृष्णः संपद्यते, तं करोति—कृष्णीकरोति । ब्रह्मीभवति ।

प्रतिके सम्बन्धमें हुई पञ्चमी अन्तसे तसि हो । प्रद्युम्न कृष्णके प्रतिनिधि स्थानापन्न है । प्रतिशब्द प्रतिनिधि प्रतिदान अर्थमें । कर्मप्रवचनीयसंज्ञक, उसके योगमें प्रतिनिधि दाने च-सूत्रसे पञ्चमी अन्त देखकर स्वार्थमें तस् हुआ । स को रुत्व विसर्ग (कृष्णतः प्रति) कृष्णस्य प्रतिनिधिः अर्थः । शिष्यः गुरुतः प्रति, पुत्रः पितुः प्रतिनिधिः पितृतः प्रति ।

(वा०) आद्यादिभ्यः = आदि, इत्यादि शब्दोंसे सभी विभक्तियोंके अर्थमें तसेः=तस् प्रत्ययका (उपसंख्यानम्) उपयोग करे । अयं तसिः सार्वविभक्तिकः 'आदिम्' इति आदितः । मध्यात् इति मध्यतः,अन्तेन इति अन्ततः । पार्श्वे इति पश्वर्त वार्तिक से तस् प्रत्यय । यह आद्यादिगण आकृतिगण है । तस् प्रत्ययान्तकी आकृति जहां दृष्ट हो, वार्तिक से तस् प्रत्यय । यथा—विद्यालयतः, दिल्लीतः, प्रदेशतः, स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह । स्वरशब्दसे तस्, वार्तिकके आकृति गणसे प्रादुर्भूत हैं । ये प्रत्ययअसार्वविभक्तिक तद्धित अव्यय है (८) कृ भू अस् धातुके क्रिया योगे सम्बन्धमें, सम्पद्यमाने कर्तरि-सिद्धि सम्पत्ति की क्रिया के कर्ता में, यस्य यो भावी जिसको जो विकार कार्य होने वाला है । न भूतः=वह कार्य हुआ नहीं । तद्भावं--वह उस वस्तुमें कार्य को सम्पद्यते सम्पन्न करे । वहा अभूततद्भाव (जो न हुआ हो किन्तु हो रहा हो) ऐसे अर्थमें, वर्तमान सम्पत्ति क्रियाका कर्तृभूत प्रातिपदिकसे स्वार्थमें च्विप्रत्यय हो विकल्पसे । कृ भू अस् धातुके सम्बन्धमें वार्तिकका अभूत (जो नहीं हुआ था) तद्भाव अर्थमें च्विप्रत्यय कहे, वार्तिकका अर्थ सूत्र से जुड़ता है । विकारात्मतां = कार्यरूपता कार्य के रूप में परिणत होने वाली प्रकृति = समवायि कारण अर्थमें वर्तमान विकार शब्द (कार्यवाचक शब्द से) कर्तामें च्वि हो । इसका सर्वापहारलोप (९) अवर्णस्य=आकारको इकार हो । च्विप्रत्ययपरे । वे लोपः-च्विके व का 'लोपो व्योर्वलि' से लोप, च इत्, इकार उच्चारणार्थक, च्विप्रत्ययान्त होनेसे अव्ययसंज्ञा हैं । कृ भू अस्का क्रमशः उदाहरण

कृष्णीकरोति अकृष्णः (जो काला नहीं था वह) कृष्णः सम्पद्यते (काला हो रहा है) यहां प्रकृतिः कृष्ण काला है वही विकारात्मा है तं करोति (उसको करता है ।) वह कृष्णीकरोति हैं । कृष्ण शब्दसे अभूततद्भावे अर्थे च्विः । कृधातुयोगो अस्ति । च्वेः सर्वापहारिलोपे 'अस्य च्वौ' इति अकारस्य ईकारे रूपम् । कृष्णलीलामें

गङ्गीस्यात् । (अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्) दोषाभूतमहः दिवाभूता रात्रिः ॥ क्यच्व्योश्च ।६।४।१५२। हलः परस्यापत्ययकारस्य लोपः क्ये च्वौ च परतः । गार्गीभवति ॥ च्वौ च ।७।४।२६। दीर्घः । शुचीभवति । पटूस्यात् ॥ अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च ५।४।५१। चात् च्विः । अरूकरोति । उन्मनी

नाटककार जो बालक कृष्ण नहीं है उसे कृष्णभावको सम्पन्न करते हैं। अभिन्न बतलाते हैं। यह सम्पूर्ण क्रिया अभूतद्भाव है वही तद्धितार्थ भी है एवं चञ्चली करोति। अदोषीकरोति। अब्रह्म, ब्रह्म सम्पद्यते तद्भवति ब्रह्मीभवति। जो ब्रह्म नहीं था वह ब्रह्म बन रहा है। भूधातुयोगे ब्रह्मन् शब्दसे अभूततद्भावे अर्थे च्विः। लुप्तविभक्त्या पदत्वं,, ततो लोप, अको ई। अगङ्गा गङ्गा सम्पद्यमाना स्यात् इति गङ्गीस्यात् गङ्गाशब्दसे अस् धातुके योगमें स्वार्थे च्विः। अनुबन्धलोपे, अस्य च्वौ आ को ई (वा०) अव्ययपदके (च्विपरे रहते) अकारको ई नहीं होता। अदोषा दोषा सम्पद्यमान अभूत् (जो रात न हो रहा वह रात हो गया) दिन रात नहीं है परन्तु घनघोर घटाके घेरेसे अंधेरा हो गया। वह दोषाभूतमहः। रात जैसा दिन। अत्र इत्वं प्राप्नोति, वार्तिकेन निषिध्यते। अदिवा दिवा सम्पद्यमानम् अभूत् (जो दिन नहीं है निर्मल आकाशकी चांदनीसे दिन जैसा हो रही रात्रि, भूधातुयोगे दिवा शब्दात् च्वि सम्पूर्णलोपे। दिवाभूतारात्रिः।

क्यच् और च्वि परे रहते हल्से परे अपत्य अर्थके य का लोप हो। हलस्तद्धितस्यसे हल्, सूर्यतिष्यसे य, और आपत्यस्यकी अनुवृत्ति आई। (गार्गीभवति) गर्गस्यापत्यं गार्ग्यः गर्गगोत्रकी सन्तान। अगार्ग्यः गार्ग्यः सम्पद्यमानो भवति। जो गर्ग गोत्रका नहीं है, वह गर्गगोत्री वन रहा है। यञन्त गार्ग्यसे च्वि, सर्वापहारिलोप। च्वि परे हलः परस्य 'य' का लोप। इत्व गार्गीभवति। च से यलोप न हो पाता। ईकारके व्यवधानसे हलस्तद्धितस्य भी नहीं लगेगा, अर्थवान् ईकारपरे विधानसे। अतः सूत्र पढ़ा। च्वि परे रहते पूर्वको दीर्घ हो, जो अकृत्सार्वधातुकयोः से आया। अशुचिः शुचिः भवति—अशुद्ध शुद्ध हो रहा है। भवतिके योगमें शुचिसे च्वि, पूर्णलोप जिसके परे पूर्व इ को दीर्घ। शुचीभवति। अपटुः पटुः संपद्यते, अकुशल, कुशल हो रहा हैं। पटुसे च्वि पूर्णलोप। उको दीर्घ पटूस्यात्।

अरुष्-मनस चक्षुष् चेतस् रहस् रजस् इन शब्दोंके अन्तके उका लोप हो, च्वि परे। जो पूर्वसूत्रसे सिद्ध था। किन्तु साथमें अन्त्यके लोपके लिए यहां भी च्वि पढ़ा। अनरुहः रुहः सम्पद्यते तत्करोति अरूकरोति। गीलाको शुष्क बनाता है रुक्षको सरस। अरुस्से च्वि। और अन्त्य सका लोप। च्वौ चसे उ को दीर्घ। उन्मनीकरोति। अनुन्मना उन्मना सम्पद्यते जो उदास नहीं था वह उदास हो रहा हैं तं करोति उसको उदास करने वाला। उन्मनस्से च्वि, सलोप, अस्य च्वौ ईत्व। उच्चक्षूकरोति। अनुच्चक्षुः उच्चक्षुः सम्पद्यते नीचे गिरी पलकको ऊपर करे। उच्चक्षुस्से च्वि अन्त्य। सलोप दीर्घ। (उच्चेतीकरोति) अनुच्चेता उच्चेता सम्पद्यते—

करोति । उच्चक्षूकरोति । विरहीकरोति। विरजीकरोति ।। विभाषा साति कात्स्न्र्ये ।५।४।५२। च्वेर्विषये सातिर्वा स्यात्साकल्ये। 'सात्पदाद्योः'। कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सपद्यते· अग्निसाद्भवति, अग्नीभवति। कात्स्न्र्ये किम् ? एकदेशेन शुक्लीभवति पटः। अभिविधौ संपदा च ।५।४।५३। संपदा कृभ्वस्ति भिश्च योगे सातिर्वा व्याप्तौ। पक्षे-कृभ्वस्तियोगे च्विः संपदा तु वाक्यमेव।

गिरे मनका मनोबल बढ़ रहा है ऐसी क्रिया करनेवाला। च्वि सलोप ईत्व। विरहीकरोति रहः निर्जनस्थानं विशिष्टं रहः विरहः। अविरहो विरहः सम्पद्यते तत्करोति चहल-पहलको शान्तिमें बदलने वाला। च्वौ अन्त्य लोप ईत्व। विरजीकरोति। अविरजाः विरजा सम्पद्यते तं करोति जो रजोगुणी नहीं था वह रजोगुणी हो रहा है ऐसी क्रिया कर्ता। कार्यंपूर्ववत्।

विभाषा—च्विप्रत्ययके विषयमें अभूततद्भाव अर्थमें वर्तमान सम्पत्ति क्रिया कर्तृभूतप्रातिपदिकसे साति प्रत्यय हो विकल्पसे। कात्स्न्र्ये=सम्पूर्ण अर्थमें कृ भू अस् के योगमें। सात्-प्रत्ययके सकार और पदाद्योः=पदके आदि सकारको षकार न हो कृत्स्नं सम्पूर्ण शस्त्रम् आयुध अग्निः सम्पद्यते अग्निरूप हो रहा है। भूधातुके योगमें अभूतवद्भाव अर्थे अग्निशब्दसे सात्प्रत्यय, च्विको बाधकर, सस्थानमें षत्व प्राप्त था साति मानकर सात्पदाद्योः से षत्वनिषेध। पदादिमें षत्वनिषेधका उदाहरण दधिसिञ्चति (दहीसे सींचता है) यहां सको आदेशप्रत्यययोः से षत्व प्राप्त तब उसे पदादिमानकर निषेध हुआ। यह प्रासङ्गिक है, प्राकरणिक नहीं। क्रुद्धोभवति च्विपरे पूर्वः अण्को दीर्घ हो। अनग्नि अग्निः सम्पद्यमानो भवति। जो अग्नि नहीं था वह आगबबूला हो रहा है। भूधातुयोगमें अभूतपूर्वे अर्थे 'च्वौ' इति दीर्घे अग्नीभवति। आग जैसा हो रहा है। क्रोधीभवति। लुब्धीभवति। मुखरीकरोति।

कृत्स्नं—सम्पूर्णं अवयववाला शस्त्र अग्निमय-जो लाल नहीं था, वह लाल सम्पन्न हो रहा है। भवतिके सम्बन्धमें अग्निसे सात् अग्निसाद्भवति। षत्व प्राप्त था, सातकि स होनेसे। सात्पदाद्योः इति निषेधे। अग्निसात्सम्पद्यते। जो ठण्डा रहा, वह गरम हो रहा है तद्भवति=अग्निसे च्वि सर्वापहार। दीर्घ महाविभाषा या प्रथमाद्वासे वा पूरे तद्धितमें आ रहा है। उससे पक्षमें वाक्य भी रहता है। साति नहीं होगा तब च्वि होनेके लिए भी विभाषा (विभाष्यते विकल्प्यते) पढ़ा। शाकल्य क्यों पढ़ा ? एक अङ्गमें विकार हो तब साति प्रत्यय न हो। कपड़ा एक अंशमें सफेद हो रहा है। पूरे अङ्गमें श्वेत विकार नहीं। न साति, किन्तु च्वि, इत्व आदि। अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते शुक्लीभवति। **अभिविधौ**—चकार कृ-भू अस् का संग्राहक। सम्पदा सम्पन्नता विकारात्मासे कृ-भू अस् के सम्बन्धमें भी साति प्रत्यय हो, विकल्पसे। व्याप्तौ=अभिविधि थोड़े अंशमें। पक्षमें कृ-भू अस्के योगमें च्वि होता है, सम्पदा योग पक्षमें जब साति नहीं, तब वाक्य ही रहे। सम्पदा=पूर्णं विकारात्माका उदाहरण—अनग्निः अग्निः सम्पद्यते अग्नि स्वरूप हो

अग्निसात्संपद्यते अग्निसाद्भवति शस्त्रम्-अग्नीभवति। जलसात्संपद्यते ,जलीभवति लवणम् ।। तदधीनवचने ।५।४।५४। सातिः कृभ्वस्तिभिः सपदा च योगे। राजसात्करोति। राजाधीनमित्यर्थः ।। देये त्रा च ।।५।४।५५ तदधीने देये त्रा स्यात्सातिश्च कृभ्वादियोगे। विप्राधीनं देयंकरोति-विप्रत्राकरोति। विप्रत्रासंपद्यते। पक्षे-विप्रसात्करोति। देये किम् ? राजसाद्भवति राष्ट्रम् ।। देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ।५।४।५६। एभ्य द्वितीयान्तेभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यश्च त्र स्यात्। देवत्रा वन्दे रमे वा। बहुलोक्तेरन्यत्रापि, बहुत्रा

रहा है लोहा लाल। अग्निसे साति, कृ-भू असके योगमें सातिप्रत्यय होनेपर अग्निसाद्भवति, अग्निसात्करोति। अग्निसात्स्यात् सम्पूर्ण अवयवमें व्यक्ति अग्निसे वस्तु लाल हो रहा है। अपङ्कः पङ्कः सम्पद्यते पङ्कसाद्भवति सूखा स्थान कीचड़ हो रहा है। पङ्कसात्करोति। पक्षमें च्वि, पूरा लोप, च्वौ चसे दीर्घ। पङ्कीभवति। अग्नीभवति शस्त्र लोहा आंख। अजलं जलं सम्पद्यते जलसाद्भवति। जल नहीं था जलमय हो रहा है। जलसात्सम्पद्यते। जलसे साति अभूततद्भाव अर्थमें जब च्वि, लोप, ईत्व तब जलीभवति लवणं, नमक जल नहीं था अब गलकर जल हो रहा है। अलवणं लवणं सम्पद्यते लवणीभवति वास्तुकम् शाकं बथुआका साग नमकीन हो रहा है।

तदधीन तत=वह साति प्रत्यय हो, अधीनवचने=कृ भू अस् और सम्पदा सम्बन्धमें। (अभूततद्भावे रुका) राजा बना रहा है। राजसात्सम्पद्यते। छोटी नगरी राजधानी हो रही है। गुरुकुलमात्सम्पद्यते जो गुरुकुल नहीं था वह गुरुकुल हो रहा है। तदधीनवचन आया। देये=जिसके अधीन देना हो उससे त्रा प्रत्यय हो, साति भी, कृ-भू असके योगमें। यथा विप्रके अधिकारमें देय वस्तु है, अर्थमें त्रा विप्रत्राकरोति ब्राह्मणके हवाले करता है। सम्पन्न अर्थमें भी त्रा। विप्रके आधीन योग्यता सम्पन्न हो रहा है। विप्रत्रासम्पद्यते। जब त्रा नहीं, तब सात् विप्रसात्करोति विप्रके अधीन करता है। देय वस्तु मर्यं क्यों ? राष्ट्र राजाके अधीन हो रहा है। यहां त्रा न हो।

देवमनुष्य पुरुष पुरु मर्त्य इन शब्दोंसे द्वितीयान्त या सप्तम्यन्तसे त्रा हो अत्यन्त स्वार्थी। यहांसे साति कृ-भू अस् प्रयोग रुक गये। यथा—देवान्वन्दे अथवा देवेषु रमे। त्रा-देवत्रा देवको नमन या देवताओंमें रमण या देव रमण, देवत्रा रमें। मनुष्यान् गच्छति मनुष्यत्रा गच्छति। मनुष्येषु मिलति मनुष्यत्रामिलति। पुरुषान् प्राप्नोति, पुरुषत्राप्राप्नोति। पुरुषेषु वसति पुरुषत्रावसति। पुरुशब्द बहुका पर्याय। पुरुषु या पुरं गच्छति वसति पुरुत्रा। मर्त्यान् मर्त्येषु वा वर्तते मर्त्यत्रा। बहुल पढ़नेसे अन्य स्थलमें भी त्रा देखा गया। जीवतो मनः बहुषु विषयेषु गच्छति। बहुनि व्यानोति जीवति मनुष्यका मन बहुत विषयोंमें फैलता है। अर्थमें त्रा बहुत्रा गच्छति। बहुतमें जाता है।

जीवतो मनः अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितो डाच् ।५।४।५७। द्व्यच्,अवरं, न्यूनं, न तु ततो न्यूनम् , अनेकाजिति यावत्। तादृशमर्थ यस्य तस्माड् डाच् कृभ्वस्तिभिर्योगे (डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्) डाचि विवक्षिते द्वित्वम् (नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्)डाच्परं यदाम्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयो र्वर्णयोः पररूपं स्यात् । इति तपयोः पः । पटपटाकरोति । अव्यक्तानु करणात्किम् ? ईषत्करोति द्व्यचवरार्धात्किम् ? श्रत्करोति । अवरेति किम् ? खरटखरटाकरोति । अनितौ किम् ? पटितिकरोति । कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्कृषौ ।५।४।५८। द्वितीयादिभ्यो डाच् कृञ एवयोगे कर्षणेऽर्थे। बहुलोक्तेरव्यक्तानुकरणादन्यस्य डाचि न द्वित्वम् । द्वितीयं तृतीयं कर्षणं करोति, द्वितीया

अव्यक्त—जिस ध्वनिसे कुछ अर्थ स्पष्ट न हो उसे अव्यक्त कहते हैं । जैसेः—नगाड़ा, पटाखा बन्दूक ध्वनि । उसका अनुकरणात्=द्व्यच् एव (दो अच् या अनेक अच् हो) अवर=न्यून हैं । (नतुततो न्यून) उससे कम (एक अच् या आधा, अनेकाच्) उसको डाच् विवक्षिते द्वे बहुलं=डाच् प्रत्ययकी इच्छामें ही विकल्पसे द्वित्व हो । अनुकरण शब्दसे कृ भू अस् के योगमें डाच् प्रत्यय हो, अनिता=इति शब्द परे न होने पर (ड् च् इत्) 'आ' शेष (वा०) डाच् प्रत्ययकी विवक्षामें द्वित्व हो बहुल करके । दो अच् हों जिसमें अवर=न्यून (ऐसा न्यून) अर्धभाग=अर्थात् उससे भी न्यून हो । अनेकाच्=सुबन्त शब्दसे डाच् हो । कृ भू असका अनुकरण नपुंसक होता है । द्वौ अचौ यस्मिन् द्व्यच्, ऐसा कमसे कम अर्धभाग (दोअच् कम न्यून हो जिससे-ऐसा अर्धभाग हो कि ऐसे समुदायसे डाच् हो । डाच्की विवक्षामें ध्वनिके अनुकरणवाचक शब्दको द्वित्व हो । यथा-पटत्-पटत् करोति इति पटपटा करोति है । ध्वनिका अनुकरण पटत् विवक्षामें द्व्यच् अनेकाच् सुबन्त समुदायसे कृ भू अस् योगमें कोई भी लकार हो तब डाच् हो । पटत्-पटत् अम् । डाच् करोति सुब्लुक् पटत्-२ आकरोति, द्विरुक्तको आम्रेडितसंज्ञा वार्तिके नियम । डाच् परे पूर्वपरयोः तपः के स्थाने आम्रेडित परे पररूप हो । ङित परे पटत्के टिका लोप । पटपटाकरोति । सु। अव्यय मानकर सुलोप । अव्यक्त अनुकरण था । इषत्करोति थोड़ा करता है व्यक्त है । द्व्यचः किं ? श्रत् एकाच् है पररूप न हो । अवर-दो अच्से अधिक न हो । खरट खरट खरटाकरोति । (अस्य नासिका) तीन अच् रहने पर रूपप् न हो ।

कृञो–द्वितीय तृतीत शम्ब, बीज इनसे डाच् हो करोतिके योगमें । कर्षणे—खेत जोतनेके विषयमें । भू अस् रोकनेके लिये कृञ् पढा । जो मद्रात्परिवापणे तक जायेगा। बहुलोक्तेः = डाचिबहुलं द्वे भवतः । में बहुल पढनेसे अव्यक्तके अनुकरणको ही द्वित्व हो, अन्यको नहीं । यथा द्वितीयं दो बार जोतना । तृतीयं कर्षणं तीसरी जोत, अर्थमें डाच द्वितोयाकरोति दूबही करता हैं । (तृतीयाकरोति) तिबहीं करता है । डाच् हुआ अनुकरण नहीं, न द्वित्व । शम्ब शब्द प्रतिकूल उलटा जोतनेमें (अनुलोमं कृष्टम्) अनुकूल जोता खेतको प्रतिलोमम् उलटा जोतने अर्थमें डाच् (शम्बाकरोति) कुन्सी करता

-करोति ' तृतीयाकरोति। शम्बाजरोति। बीजाकरोति। संख्यायाश्च गुणान्ताया: ।५।४।५९। द्विगुणाकरोति क्षेत्रम् ॥ समयाच्च यापनायाम् ।५।४।६०। कृषा-विति निवृत्तम्। समयाकरोति कालं यापयतीत्यर्थः॥ सपत्त्रनिष्पत्त्रादतिव्यथने ।५।४।६१। सपत्त्राकरोति मृगम्, सपुङ्खशरप्रवेशनेन सपत्त्रं करोतीत्यर्थः। निष्पत्राकरोति। सपुङ्खस्य शरस्याऽपरपार्श्वेन निर्गमनान्निष्पत्रं करोतीत्यर्थः। अतिव्यथनेकिम्? सपत्रं निष्पत्रं वा करोति भूतलम्। निष्कुलान्निष्कोषणे ५।४।६२। निष्कुलाकरोति दाडिमम्। निर्गतं कुलमन्तरावयवानां समूहो यस्मादिति बहुव्रीहेडच्॥ सुखप्रियादानुलोम्ये ।५।४।६३। सुखाकरोति, प्रियाकरोति गुरुम्, अनुकूलाचरणेनानन्दयतीत्यर्थः। दुःखात्प्रातिलोम्ये

है। बीजके के साथ जोतना बोना, साथमें बीजाकरोति। अथवा बीज बोनेके बाद बीज बोना। शप् होनेपर कर्षति। तुदादिका श होनेपर कृषति।

संख्यायाः—गुण शब्द अन्त हो, संख्यावाचकसे कृ के सम्बन्धमें डाच्-आ हो। कृषौ = खेत जोतने अर्थमें। अद्विगुणं द्विगुणं करोति अर्थे डाच् द्विगुणाकरोति। खेतको दूसरीवार गोड़ रहा हैं। दुगुना जोतना। त्रिगुणाकरोति—तीसरी गोड कर्षण। समय-से डाच् हो। योपनाया—कालक्षेपे समय विताने अर्थमें। कृषौ इति खेत जोत रुक गया। कृञके योगमें। कर्तव्यस्य अवसरप्राप्तिः समयः। अद्य इदं कर्तव्यमिति तस्य अतिक्रमणं यापना अर्थमें डाच् (समयाकरोति) कालक्षेपं करोति। सपत्त्र-और निष्पत्त्र शब्दसे अतिव्यथने=बाणके आरपार हो अर्थमें डाच्। व्यध ताडने। पीडा पहुचाने अर्थमें व्यध। अतिक्रम्य वेधः चुभकर पार होना अतिव्यधनम्। लक्ष्ये शराः पतन्ति अनेन पत्त्रम्। शराणां पुङ्खगतः मृगपर बाण चुभते है। शर अग्रभाग, सपत्त्राकरोति मृगको बाण चुभा है। पुङ्ख—फण सहित बाणके प्रवेशसे मृगको सपत्त्र बनाता है। अतिपीडा डाच्का अर्थ। निष्पत्राकरोति। चुभे हुए बाणको पार निकालना अतिव्यथा अर्थे डाच्। फण सहित बाणके दूसरे भागसे निकालना। अतिपीडा क्यों पढा? भूतल पर पत्ते गिरते है। अथवा झाड बुहार रहा है। बाणकी नोक जमीनमें गाड, उखाड रहा है। पीडा नहीं, न डाच्। अथवा पत्राणि पर्णानि तत्सहितं रहिततं वा करोति।

निष्कुला-शब्दसे निष्कोषणे=भीतरकी वस्तु खोलकर बाहर निकालना। अन्तर्गतावयवानां बहिः निष्कासनम् अर्थमें। दाडिमम् अनारको खोलकर भीतरी तत्वको प्रकाशित करता है। कुल शब्द भीतरीभागके समूह अर्थमें है। डाच् हुआ निष्कुलाकरोति निकोलता है भीतरीभागके गुदा या दाना जिससे। निष्कोण क्यों? दांत खोदना नहो किन्तु शत्रुका विनाश हो तो डाच् न हो। यथा निष्कुलं करोति शत्रुम्। (सुख) और प्रिय शब्दसे आनुलोम्ये अनुकूल आचरणसे आनन्द देता है अर्थे डाच्। प्रियाकरोति। प्रियसे डाच् आराध्य माता पिता गुरुका प्रिय करता है। मनके अनुकूल सुखी बनाता है दुःखसे डाच् हो। प्रातिलोम्ये=आराध्य माता पिता गुरुके चित्तको दुःखी (दुःखाकराति रक्षकः-पालकको पीडित करता है। आराध्यप्रतिकूलाचरणं प्रातिलोम्यम्।

।५।४।६४। दुःखाकरोति स्वामिनम्. पीडयतीत्यर्थः।। शूलात्पाके ।५।४।६५। शूलाकरोति मांसम्, शूलेन पचतीत्यर्थः। सत्यादशपथे ।५।४।६६। सत्याकरोति भाण्डं वणिक्, क्रेतव्यामिति तथ्यं करोतीत्यर्थः। शपथे तु-सत्यं करोति विप्रः मद्रात्परिवापणे ।५।४।६७। मद्रशब्दो मङ्गलार्थः। परिवापणं मुण्डनम्। मद्राकरोति कुमारम्, माङ्गल्यमुण्डनेन संस्करोतीत्यर्थः (भद्राच्चेति वक्तव्यम्) भद्राकरोति। अर्थः प्राग्वत्। परिवापणे किं? भद्रं करोति ॥

इति स्वार्थिकप्रकरणम् ॥इति तद्धिताः।

अथद्विरुक्तप्रकरणम्

सर्वस्य द्वे ।८।१।१। इत्यधिकृत्य ।। परेर्वर्जने।८।१।५। परेर्वर्जनेऽर्थे द्वे स्तः परिपरि वङ्गेभ्यो वृष्टो देवः। उपर्यध्यधसः सामीप्ये।८।१।७। उपर्युपरिग्रामम्, ग्रामस्योपरिष्टात्समीपे देशे इत्यर्थः। अध्यधि सुखम्, सुखस्योपरिष्टात्समी

शूल-शब्दसे डाच् हो पाकेपकाना अर्थमें। लोहकी कटिया अर्थमें शूलसे डाच् शूलाकरोति। मांस पकाता है। पाके किं, शूलकरोति कदन्नम्। खराब अन्न पेटरोग बढाता है। सत्यशब्दसे डाच् अशपथे=निश्चय न कहने अर्थमें। सत्य शब्दसे तथ्य अर्थमें। सत्यं तथ्यं ऋतंसम्यक् इत्यमरः। सत्येनोत्तभिता भूमिः। सत्सु साधुः सत्यम्। साधु अर्थे यत्, सत्यसे डाच् सत्याकरोति–रत्नादिद्रव्य जटितपात्र खरीदने के लिए अनायास सुरक्षामूल्य देना। मयैव एतद ग्राह्यम् एतावता मूल्येन इदं क्रणार्ह अतो अधिक मूल्येन नहि इति सत्यङ्कारद्रव्यप्रदानेन क्रेतुम्। अतः कहा क्रेतव्यम् निश्चित खरीदना अशपथ है। जहा शपथ झूंठ छल, बहाना, वहां न डाच्। शपथेतु=सत्यं करोति कसम शपथ करता है अवश्य खरीदूंगा, सुरक्षा मूल्य नहीं देता। मद्रसे परिवापण मुण्डन कर्म अर्थमें यत्। किसान सिर मुडवाता है। चौल कर्ममें संस्कार मङ्गल है डाच्। मद्राकरोति। (वा०) भद्रसे डाच् हो। मुण्डन दीक्षा तिलक आदिसे मनुष्य भद्र होता है। उससे डाच् भद्राकरोति। मङ्गलाकरोति। परिवापण क्यों–चौल दीक्षा तिलक आदि अर्थमें डाच क्यों। इसलिए कि किसीका कुशल मङ्गल करने अर्थमें डाच् न हो। भद्र भद्रंका क्षेम करोति अर्थं

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकर्यां स्वार्थिकाः प्रत्ययाः।

सर्वस्य–द्वे सभी शब्दोंके द्विर्वचनका अधिकार। केवल सर्वशब्द का द्वित्व नही। नित्यवीप्सयोः आदि सूत्रमें किसको किस अर्थमें क्या कार्य हो निश्चित नही। आकांक्षा जगनेसे स्वरितसंज्ञासे द्वे का अधिकार। अतः कहा इत्यधिकृत्य। द्वित्वरूपार्थमधिकृत्य

परे वर्जन त्यागकर अर्थमें वर्तमान परिको द्वित्व हो। यथा बंगालको छोड़कर सब स्थलमें इन्द्रने वर्षाकी। परिका वर्जन अर्थ द्योतक द्वित्व। **उपरि**-अधि अधस् इन को द्वित्व हो समीप अर्थ खुलने पर। समीपका अर्थ प्रत्यासत्ति-निकट सटा हुआ। यथा—देश या काल का सामीप्य गांवके उपरि=बाद का सटा स्थान अर्थमें द्वित्व हो। उपरि उपरि यण् उपर्युपरि। अधोऽधोलोकम् मृत्युलोकके निचले भागके

पकाले दुःखमित्यर्थः। अधोधो लोकं लोकस्याधस्तात्समीपे देशे इत्यर्थः॥ वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासंमतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु ।८।१।८। सुन्दर सुन्दर वृथा ते सौन्दर्यम्। समतौ-देवदेव वन्द्योऽसि । कोपे - दुर्विनीत दुर्विनीत इदानीं ज्ञास्यसि। कुत्सने-धानुष्क धानुष्क वृथा ते धनुः। भर्त्सने चोर चोर घातयिष्यामि त्वाम्। एकं बहुव्रीहिवत् ।८।१:९। द्विरुक्त एकशब्दो बहुव्रीहिवत्। तेन सुब्लोपपुंवद्भावौ। एकैकमक्षरम्। इह द्वयोरपि सुपोर्लुकि सति बहुव्रीहिव

स्थान। अभ्यधि सुखम्। यहां कालकृत समीपता—सुखका समय है शीघ्र दुखका समय आवेगा। समीप (काल) एव सामीप्यं क्यों पढ़ा ? उपरि चन्द्रमा, बहुत दूर है, समीप नहीं, न द्वित्व। उपरि शिरसि घटं धारयति। अत्र न द्वित्वम्। सामीप्यस्य अविवक्षितत्वात्।

वाक्यादे:-किसी वाक्यके आदिमें आमन्त्रित:-सम्बोधनपद आदिमें हो, उसको द्वित्व कहें। असूया-ईर्ष्या, सम्मति सद्भाव, कोप-क्रोधः, कुत्सनतिरस्कार, धिक्कार भर्त्सन (फटकार) अर्थ सुनने पर। असूया-हे सुन्दर तुम्हारी सुन्दरता मेरे सामने व्यर्थ है। तथापि असहनीय होनेसे वाक्यके आदिमें आमन्त्रित सुन्दरको द्वित्व। सम्मति—तव वन्दनं सम्मतम् हे देव ? वन्दनीय हो। आदिमें सम्बोधन देवको द्वित्व हो। क्रोधसे भरा हुआ व्यक्ति। ऐ दुर्विनीत अभी तुझे बतलाता हूं। दुष्टता का फल समझमें आयेगा। सम्बोधनको द्वित्व। कुत्सन—युद्धमें असमर्थके प्रति निन्दा का वचन। ऐ धनुषचालक तुम्हारा धनुष व्यर्थ है। चोरको कुवाक्य बोलना—कि अभी मारता हूं। चोरको द्वित्व। सर्वः प्लुतो विकल्प्यते। ननु कोप, असूया कुत्सन भर्त्सनमें गतार्थः क्योंकि असूयां विना कुत्सा न भवति तत्र, माता पिता गुरु हितैषी विना कोपके भी फटकारते हैं, बिना ईर्ष्याके निन्दा करते हैं। उस दशामे कोप असूया आवश्यक। (उक्तं च सामृतैः पाणिभिर्हन्ति, गुरवो न विषोक्षितैः) लालनाश्रयिणो दोषाः ताडनाश्रयिणो गुणाः। **एकं** द्विरुक्त—दो बार उच्चारण हुआ एकशब्द बहुव्रीहिणा तुल्यं बहुव्रीहिवत् कार्य हो। जैसे सुप्का लोप, पुंलिङ्गभाव। प्रसङ्गसे लब्ध पूर्वपदप्रकृतिस्वर भी। सुप् लोपका उदाहरण—एकैकमक्षरं परिचिनोमि-एकएक वर्ण पहचानता हूं। एकम्को द्वित्व होने पर एकम एकम् अक्षरमिति दशायां एकं बहुव्रीहिवत् सूत्रेण द्विः-उच्चरितस्य एकम् एकम् इत्यस्य बहुव्रीहिसंज्ञा। तस्याः फलं प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो धातुप्रतिपदिकयोः सुपो लुक्। एक एकम् वृद्धिरेचि वृद्धौ (एकैकम्) अत्र शङ्का इह प्रसङ्गे दोनों सुपोका लुक् होने पर भी (यत्र संघाते पूर्वोभाग पदं तस्य चेद्भवति तर्हि समासस्यैव) इति नियमेन न प्रातिपदिकसंज्ञा, न सुपो लुक्, समुदायात् कथं सुप् आयास्यति तदा अचकथत् बहुव्रीहिवद्भावात् एव। बहुव्रीहिधर्म प्रातिपदिकसंज्ञाके आरोपसे ही समुदायसे सुप् होगा। प्रातिपदिक का लुपोर्लुकि समुदायात्सुप्। दोनों स्थलमें अन्वय मध्यमणिन्यायसे। अतो न दोषः। पुंभावका उदाहरण—एकया=एक एक आहुतिसे हवन करता है। एकया

द्भावादेव प्रातिपदिकत्वात्समुदायात्सुप्। तच्च एकवचनमेव। एकैकया आहुत्या। आबाधे च ।८।१।१०। पीडायाम् द्वे स्तो बहुव्रीहिवच्च। गतगतः ॥ गतगताः। प्रकारे गुणवचनस्य ८।१।१२। सादृश्ये द्योत्ये गुणवचनस्य द्वे स्तः। तच्च कर्मधारयवत्। पटुपटवीः पटुसदृशः, ईषत्पटुरिति यावत ॥ (आनुपूर्व्ये द्वे वाच्ये) मूले मूले स्थूलः। (संभ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः)। सर्पः सर्पः बुध्यस्व बुध्यस्व, सर्पः सर्पः सर्पः बुध्यस्व बुध्यस्व

स्थाने दो बार उच्चारण एकया-एकया इति दशायां बहुव्रीहिधर्मस्य प्रातिपदिकस्य समुदाये आरोपं कृत्वा भागे-पहले भागको पुलिङ्ग होने पर समुदायसे तृतीया आई वृद्धि। एकैकया रूप बना। यह सूत्र न होता समुदायको प्रासंज्ञा न होती।

आबाधे—पीडा अर्थका प्रकाशन व्यञ्जनमें द्वित्व हो जिससे बहुव्रीहिकी तरह सुलोप आदिकार्य हो। गतगतः प्रियां विना कालः गतः, समय प्रियाके बिना निकल गया। आ समन्तात् बाधं पूर्वं सर्वाङ्गीण व्याप्त कष्टकी आह भरी वेदना स्त्रीके वियोगमें विरह व्यथासे व्याकुल व्यक्तिकी वाणी है। गतः पीडा प्रकाशक द्वित्व। बहुब्रीहिभावसे प्रातिपदिकसंज्ञा, समुदायको। तेन सुपो लुक्। समुदायसे सु आदि। गतगता प्रिया।

प्रकारे—सादृश्य अर्थ खुलता हो तब गुणवचनस्य=(गुणं वक्ति गुणवचनस्तस्य) गुणवाचक शब्दको द्वित्व हो कर्मधारय के तुल्य सुलोपादिकार्य हो, जिसका उत्तर सूत्रोंमें अधिकार है। उसका फल पूर्व भागको पुलिङ्ग होना। समासस्य—सूत्रसे अन्त उदात्त होना। यद्यपि भेद, सादृश्य दो अर्थ है। बहुभिः प्रकारैः भुङ्क्ते भिन्न भिन्न तरीकेसे खाता है। ब्राह्मणप्रकारः ब्राह्मणसदृशः। आकडारात्सूत्रके भाष्यमें गुणवचन गिनाये गये हैं। वोतो गुणवचनात् पर भी। पटुपट्वी पट्वी शब्दको कुछ कुशल अर्थमें द्वित्व हो। कर्मधारयसंज्ञासे पूर्वखण्डको पुलिङ्ग। यद्यपि बहुव्रीहिभावमें 'स्त्रियाः पुंवत्' से भी सिद्ध था तथापि कारिका आदि कोपधके लिए (पुंवत् कर्मधारयवत्) आवश्यक। जब वोतो गुणवचनात्से न ङीप् किन्तु पुलिङ्ग। पटुको द्वित्व आदि—जो सादृश्य चतुरके समान है अर्थात् कमचतुर। जातीयर भेद रूप अर्थमें सावकाश है। गुणवचन क्यों पढ़ा? अग्निः माणवकः, सिंहो माणवकः द्रव्य है न गुण। यद्यपि अग्निसिंहशब्दमें तेज और क्रूरता गुण है तथापि इसमें वे गुण गौण है। मुख्य नही, नवंनवं प्रीतिरहो करोति वीप्सामें द्वित्व। यदि प्रकारे द्विर्वचन होता, सुप् लुक हो जाता। नवनवा बनवायुभिराददे, गुणवचन मानकर पुंवत्। भीतभीत इव शीतमयूखः। अतिभीत इत्यर्थः। खिन्नः खिन्नः रिपुपदं न्यस्य। क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपयुज्यः। मन्दं मन्दं नुदति पवनः।

आनुपूर्वी—पूरे प्रयोगको द्वित्व हो। मूलेमूले स्थूलः। मूल जड़के प्रत्येक भाग की मोटाई। कर्मधारवत् नहीं आता, सुपलोप न होनेसे। (वा०) सम्भ्रमेण=भय या समादरकी शीघ्र प्रवृत्तिमें यथेष्टम्=इच्छानुसार अनेक बारका उच्चारण होना न्यायतः मान्य है। केवल अनेकधा पढ़ते तब द्वे न ठहरता, जब तक बोद्धा अर्थ न

बुध्यस्व । (कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्)। बहुलग्रहणादन्यपरयोर्न समासवत् । इतरशब्दस्य तु नित्यम् । (असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः)। अन्योन्य विप्राः नमन्ति अन्योन्यौ, अन्योन्येन कृतम्, अन्योन्यस्मै दत्तमित्यादि। (स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो·

समझें तावद्वारं प्रयोगः कर्तव्यः । भयसे व्याकुल किसीके पास सांप पहुंच रहा था देखनेवाला घबड़ाके बोला सर्प सर्प समझो समझो । यावद्वारं न बुध्यते तावद्वारं प्रयोगः करणीयः।

कर्मव्यतिहारे— क्रियाका विनिमय अदला-बदली एक दूसरेके प्रति व्यवहारका अर्थ खुलता हो तब सर्वनामसंज्ञावालेको द्वित्व=दो उच्चारण नित्य हो । दोनों पदों का बहुलम्=आवश्यकतानुसार समासकी तरह कार्य हो, बहून् अर्थात् लाति वहुलम् बहुल पढ़नेका फल बोले कि अन्य और पर शब्दोंको समानसंज्ञा न हो, उपयोग न होनेसे । इतरको द्वित्व होनेपर द्वित्व और समासवत् नित्य हो (वा०) अन्य-और पर शब्दको द्वित्व होने पर दोनों पदके समासपद न होनेसे विभक्ति का लुक् नही होगा । पूर्वपदमें स्थित सुपः=सातों विभक्तियोंके स्थानमें प्रथमाका एकवचन सु हो । यहां क्या द्वित्व प्रथमाके एकवचनका विषय है या किसीका मत है। परन्तु इसके विरुद्ध भाष्यमें सभी विभक्तियोंके स्थानमें सु होनेका उदाहरण मिलता है । यथा अन्योन्यम् ब्राह्मणगण आपसमें नमन करते हैं । संपुटीकृतकरः शिरः संयोग दण्डवत्से एक दूसरेको बड़ा, अपनेको छोटा मान रहे है । नमनका कर्म अन्यको दो उच्चारण । क्रियाके आपसी व्यवहारसे अन्यम्को समासभाव नहीं हुआ । तब विभक्ति लोपः नहीं । असमासवद्भावे=वार्तिकसे पूर्वपदके सुप्को सु, स को रु-उ-गुणे (अन्योऽन्यम्) शब्दसिद्ध । एवम् अन्योऽन्यौ-विप्रगण दो दो को प्रणाम करते हैं। अन्य दो दो मिलकर आपसी नमस्कार सत्कार अर्थमें सर्वनामको द्वित्व । अन्य औ, अन्य औ । बहुलकी कृपासे न समास हुआ, न सुप् का लुक् । तब पूर्वपदके औ को सु-रु-उ गुण अन्योऽन्यान् । शब्दमें सभी लोग सबको प्रणाम करने अर्थमें द्वित्व— अन्यान् अन्यान् बना, पूर्वपदकी विभक्ति शस्को सु-रु-उ गुण अन्योन्येन कृतम् । एक दूसरेकी सहायताकी अदला वदली क्रियाके विनिमयसे । अन्येनको द्वित्व अन्य टाप् अन्येन टाको सु-रु-उ गुण । अन्योऽन्यस्मै दत्तम । एक दूसरेको दिया ।

स्त्रीनपुंसकयोः— स्त्रीलिङ्ग नपुंसकलिङ्गमें वर्तमान अन्य, पर इतर शब्दोंको द्वित्व हो क्रियाविनिमय अर्थमें । उत्तरपदकी विभक्तिको आम् आदेश हो आवश्यकतानुसार । अन्योऽन्याम् इमे ब्राह्मण्यौ । ये दोनों ब्राह्मणी एक दूसरेका भोजन करती है । कुलसे नपुंसकलिङ्ग । ये दोनों वंश एक दूसरे कुलको खिलाते है । अन्या ब्राह्मणी अन्यां खादयति । अन्यं कुलम् अन्यं खादयति । अन्याम्को द्वित्व भोजन क्रियाके विनिमय अर्थमें । पूर्वपदकी विभक्तिको आम् विकल्पसे हुआ । अन्योऽन्याम् । स्त्रीलिङ्गमें आम् होनेपर कोई अन्तर नहीं । नपुंसकमें अन्योऽन्याम् अन्योऽन्यम् ।]

वाच्य:)। अन्योन्याम्, अन्योन्यम्, परस्परां, परस्परं, इतरेतराम्, इतरेतरं वा इमे ब्राह्मण्यौ कुले वा भोजयतः ।

दलद्वये टाबभावः क्लीबे चाद्ड्विरहः स्वमोः ।

समासे सोरलुक् चेति सिद्धं बाहुलकात्त्रयम् ॥

अन्योन्यमित्यादौ दलद्वये टाप्। 'अद्ड्तर'-इत्यद्ड् च प्राप्तः। 'अन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्'। अन्योन्याश्रयः। परस्पराक्षिसादृश्यम् अदृष्टपरस्परैरित्यादौ सोर्लुक् च प्राप्तः। सर्वं बाहुलकेन समाधेयम् ॥

इति द्विरुक्त प्रकरणम् ।

तृतीया चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तमी विभक्ति उत्तरपदमें हो उनको आम् होता है। पूर्वपदमें हो सु। स्त्रीलिङ्गका ब्राह्मण्यं, नपुंसकका कुल। आपसी भोजनमें तात्पर्य अन्योऽन्याम्। अन्योऽन्यानि। परस्परां परस्परेण। परस्परां परस्परस्मै इमे ब्राह्मण्यौ कुले भोजयतः। प्रसङ्गमें अन्याम्को द्वित्व होने पर दोनों पदमें टाप्का अभाव कहा जायगा। जब समास नहीं रहेगा पूर्वपदकी विभक्तिकों सु 'अतो रोरप्लुतात्'से उत्व, आद्गुणे। उत्तरपदकी विभक्तिको आम्। अन्योऽन्याम् बना। जब आम् नहीं तब पुलिङ्ग होनेसे टाप् हटेगा। सु होगा पुलिङ्गवत् रूप। इयं ब्राह्मणी अन्यां ब्राह्मणीं भोजयति। अन्या तु इमाम् इति विनिमयः। इदं कुलम्—अन्यकुलं भोजयति। अन्यत्कुलं विनिमयेन कुले भोजयतः। नपुंसकमें भी पूर्वपदकी विभक्तिको सु उत्तरपदको आम्। अन्योऽन्याम्। जब आम्आदेश नहीं तब पुलिङ्गभावसे अदड नहीं होगा। (अन्योऽन्यम्) पुलिङ्गवत् रूप होगा, एवं परस्परां भोजयतः। स्त्रीसे परांको द्वित्व परां—परां दोनों दलको पुलिङ्ग टाप हटा। पूर्वपदकी विभक्तिको सु, उत्तर॰पदकी विभक्तिको आम् परस्पराम्। जब आम् नहीं तब पुलिङ्ग होनेसे परस्परं नपुंसकमें भी आम् आदेशकी विशेषता। पक्षमें दूसरा रूप। इतरेतरा स्त्री॰में द्वित्व। इतराम् इतराम्। उत्तरपदकी विभक्तिको आम्। समासवत् होनेसे विभक्तिका लुक्। जब न आम-इतरेतरं खादयतः एक दूउरेको खिलाते हैं। पूर्वपदकी विभक्तिका लुक् उत्तरपदकी विभक्तिको आम्, दो रूप।

दलद्वये—द्वित्व होने पर दोनों दल (पद) से टाप् हटाता है। क्लीबे=नपुंसकलिङ्गमें सु अम्को अद्ड् आदेश नहीं होता। समासमें सुका लुक् न होना, तीन कार्य बहुलं पढ़नेसे सिद्ध।

स्त्रीलिङ्गमें अन्य, पर, इतर शब्दको कर्म=क्रियाके विनिमय अदलाबदलीमें द्वित्व होनेपर दोनों दल बाहुलकसे पुलिङ्ग होंगे, जिसका फल टाप् निवृत्ति है।

दूसरा प्रयोजन क्लीबे–नपुंसकमें अदड् का न होना बहुलका फल है। अन्योन्यं इतरेतरंमें डतरादिभ्यः अदड् प्राप्तः। उसका रुकना बहुलके अधीन।

तीसरा प्रयोजन समासमें सुका लुक् न होना। क्योंकि अन्य, परको समास नहीं होगा। द्वित्व होने पर अन्य किसीके साथ समास हो गया हो उस दशामें पूर्वखण्डके

अथस्त्रीलिंगप्रकरणम्

स्त्रियाम् ।४।१।३। अधिकारोऽयम् । समर्थानामिति यावत् ।। अजाद्यतष्टाप् ।४।१।६। अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रित्वं तत्र द्योत्ये टाप् स्यात्

सु का लुक् न हो, इसी दृष्टिसे अन्योन्यसंसक्तम् । अन्योऽन्येन संसक्तं एक दूसरेसे सटा हुआ । तृतीया समास है । अहश्च त्रियामा च समाहारद्वन्द्व । (अहस्त्रियामम्) अन्योऽन्येन संयुक्तं, दिन रात एक दूसरेसे जुड़े है । अन्योऽन्यस्य आश्रयः अन्योऽन्याश्रयः । षष्ठीसमास । अक्ष्णा सादृश्यं परस्परस्य अक्षिसदृशं, एक दूसरेकी आंखकी तुलना । न परस्परे तैः अपरस्परैः । इन स्थलोंमें समास हो चुका है । प्रातिपदिक संज्ञासे सुप्का आदेश सु-का लुक् प्राप्त था । बाहुलक इति द्विरुक्त

अथस्त्रीप्रत्ययाः— अथ—कृदन्ततद्धितसर्ग समाप्तिके बाद शब्दमें विराज मान अर्थ स्त्रीलिङ्ग, बोधक प्रत्ययोंका प्रकरण प्रारम्भ । क्योंकि कृदन्त तद्धितान्त शब्दो से स्त्रीलिङ्ग अर्थ बोधक व्यञ्जक टाप् ङीप ऊङ्. ति आदि) प्रत्यय जुडते हैं । अतः अन्य प्रकरणोंका सहारा उचित होनेसे स्त्रीप्रत्यय का श्रीगणेश प्रातिपदिकके अधिकार में उक्तप्रत्यय होंगे । प्रातिपदिक के अर्थ स्पष्ट हैं । जातिव्यक्ति लिङ्ग, संख्या कारक शब्द (समवाय) ये शब्दके वाच्य अर्थ है । इन अर्थोंमें (पु०, स्त्री नप् तीन लिङ्ग भी वाच्य हुए उनमेंसे स्त्रीलिङ्ग अर्थका बोधक, द्योतक, व्यञ्जक, प्रकाशक, सभी प्रत्यय होगे । स्त्रीलिङ्ग बद्य द्योत्य है ।अत; स्त्रीप्रत्ययाः = स्त्रियं स्त्रीधर्म (लिङ्ग प्रत्यायन्ति बोधयन्ति प्रकाशयन्ति, ये ते । रजोगुणप्रधान यह लिङ्ग प्रातिपदिक शब्दमें है स्तन केशवती नारी । अतःशब्दनिष्ठधर्म स्त्रीत्व है । यद्यपि नारीमें यह ज्ञान सुगम हैं, रजस्वला धर्मसे । किन्तु नदी, तटी, आदि जड या अमूर्त वस्तुमें रजोगुण का ज्ञान नहीं तथापि सूत्र शास्त्र, ऋषिवचन प्रमाणसे अनुमेय है । यहां प्रकृति प्रातिपदिक है, प्रत्यय स्त्रीधर्मका परिचायक प्रकाशक ङीप् टाप् आदि है अतः स्त्रियां = स्त्रीलिङ्ग बोधविवक्षायां प्रत्ययाः भवन्ति । यह अधिकार सूत्र है । पूरे प्रकरण में गतिशील है, इसका अधिकार समर्थानां प्रथमाद्वा तक चलेगा । उसके पहले सभी सूत्रमें स्त्रियां = स्त्रीलिङ्गविवक्षा अर्थ उपस्थित होगा, सभी प्रत्यय स्त्रित्वका बोध करायेगे । यद्यपि द्योतिका वाचिका वा स्युः द्वित्वादीनां विभक्तयः । यहां विभक्ति शब्द प्रत्ययमात्राका उपलक्षण हैं, सभी प्रत्यय द्योतक, व्यञ्जक, प्रकाशक, वाचक होते हैं । जिनके मतमें द्विकं प्रातिपदिकार्थः है । लिङ्गशब्द निष्ठ नहीं है । उनकेमतमें ये प्रत्यय वाचक है । द्योतकमतमे शब्दनिष्ठ है ।

प्रातिपदिकका अधिकार-अजादिश्च अच्च तयोः समाहारः अजाद्यत् तस्मात् अजाद्यतः--अजादीनां अजा — आदि गणपठित प्रातिपदिकसंज्ञक शब्द, अतः—अकारान्तप्रातिपदिकशब्द हों, उनका (वाच्यं यत्स्त्रीत्वम्) अर्थभूत स्त्रीलिङ्ग (पांचप्रातिकार्थमें लिङ्ग भी आता है) तत्र = प्रातिपदिकार्थस्त्रीलिङ्ग (द्योत्ये = प्रकाश्ये प्रकाशित करनेके लिए टाप प्रत्यय हो ट, प् इत् 'आ' शेष ।

अजादिभिः स्त्रीत्वस्य च विशेषणान्नेह-पञ्चाजी। अत्र हि समासार्थसमाहार
.निष्ठं स्त्रीत्वम्। अजा खट्वा एडका अश्वा चटका मूषिका बाला वत्सा

अजादीनाम् अकारान्तस्य च वाच्यं स्त्रीत्वमित्यर्थस्य किं फलम् अत आह अजादिभिः स्त्रीत्वस्य विशेषणात्। अजा अश्वा आदि अकारान्तशब्दसे स्त्रीलिङ्ग का प्रकाशक टाप् हो। अतः स्त्रीलिङ्गका विशेषण अजादि कहा, अस्य इदं फलं नेह—इह न, कुत्र न, पञ्चाजी=पञ्चानाम् अजानां समाहार, इति विग्रहे पञ्चन् आम्-अज आम्, अत्र तद्धितार्थोत्तरपद-द्विगुसमासादिकार्ये। सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः, (अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः) (द्विगुसमासे पञ्चाज अकारान्त-उत्तरपदे स्त्रीलिङ्गः, (द्विगोः) सूत्रेण ङीप्। पञ्चाज ई, यस्येति च अकारलोपे। समासे अजशब्दे स्त्रीत्वमस्ति टाप् कथन्न भवति इति चेन्न, अत्र अस्मिन्प्रसङ्गे निश्चयेन पञ्चाजशब्दे यः समाहारः (समुदायः एकार्थीभावः) तस्मिन्समुदाये स्त्रीलिङ्गोऽस्ति केवलम् अजशब्दे नास्ति अतिरिक्तशक्तिस्वीकारात्। अनेन कारणेन टाप् न भवति प्रातिपदिकके उदहरण-अजत्वजातिविशिष्टा स्त्री अजा(बकरी)। अज, प्रातिपदिकमें जहां अजाव्यक्ति अजत्वजाति, पुंस्त्व प्रातिपदिकके अर्थ है। और अजादिगणका प्रथमशब्द अज है उसका वाच्य स्त्री अर्थका प्रकाशक टाप् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोपे अज + आ सवर्णदीर्घे, प्रथमा एकवचने 'सु' सकारस्य अपृक्तसंज्ञा, आबन्तं मत्वा हल्ङ्याब्भ्यो लोपे रूपम् (अजा) यद्यपि सुकी उत्पत्ति ङ्याप्प्रातिपदिकात् से है, तथापि प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं, जिसकार्य में प्रातिपदिकका ग्रहण हो वहां लिङ्गबोधक प्रत्ययसहित शब्दका भी ग्रहण हो। परिभाषाबलसे टाप् अजाका ग्रहण है। अजा=बकराजातिकी स्त्री। यहां जाति लक्षण-ङीप् प्राप्त था उसे बाधकर टाप् हुआ। छागी अर्थः। एडकत्वजातिसहिता स्त्री एडका भेड़ी (जाति लक्षणङीपको बाधकर) अजाद्यतष्टाप् स्वादिः। मेढ्रोरभ्रोरणोर्णायुर्मेषवृष्णय एडके इत्यमर.। अश्वत्व जातिविशिष्ठा स्त्री (घोड़ा जातिकी स्त्री) अश्वा, तुरङ्गी, बडवा, घोड़ी। यहां भी ङीप्को बाधकर टाप्। (चटकः कलविङ्कः स्यात्) तस्य स्त्री चटका (चिड़िया जातिकी)। चुचुन्दरी, गन्धमूसी, दीर्घ देहीतु मूषिका, आखुः, मूषकत्व जातिसहिता स्त्री (चुहिया) मूषकशब्दात् प्रातिपदिकात् लिङ्गबोधने अर्थे टाप्, अनुबन्धलोपे, सवर्णदीर्घे,स्वादिकार्ये। एषु जाति लक्षणो ङीष् बाध्यते, बालावस्थां प्राप्तां स्त्री बाला ६वर्ष की, यह शब्द प्रथम वयोवाची अवस्था बोधक होनेसे 'वयसि प्रथमे' सूत्रसे ङीप् प्राप्त तं बाधित्वा बालशब्दात् अजाद्यतष्टाप् अकारान्तप्रातिपदिक का वाच्या स्त्रीलिङ्ग रूप अर्थ द्योत्येटाप् **बाला** (कन्या) वत्स अवस्थायाः स्त्री वत्सा बछड़ी (प्यारी) होड अवस्थायाः स्त्री (होडा) भिल्लजातिकी लड़की। मन्ददशायां: स्त्री मन्दा अप्रौढ़ा। बिलाता=नवयौवना, स्त्री इत्यादि अजादिगण पठितशब्द हुए। वयसि प्रथमेका ङीप् बाधा गया। अकारान्त का उदाहरणं-मेघशब्दात् मेघप्रातिपदिकका वाच्य स्त्री धर्म अर्थका व्यञ्जक टाप्

होढा मन्दा विलाता मेधा गङ्गा सर्वा इत्यादि: आकृतिगण: (सम्भस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्) सफला। भस्त्रफला इत्यादि (सदक्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्) सत्पुष्पा। प्राक्पुष्पा प्रत्यक्पुष्पा, शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः, पुंयोगे तु शूद्री। 'अमहत्पूर्वा' किम्? महाशूद्री, क्रुञ्चा। उष्णिहा। देवविशा।

मेधा=कुशाग्रबुद्धिः। गङ्गत्व_त्रिलोकपावनत्व सहिता स्त्री गङ्गा। सर्वत्रस स्त्री सर्वा सर्वशब्दात् टाप् सर्वा नामकी स्त्री। स.ी आकारान्तशब्दमें स्त्री अर्थ होता हो तो टाप् समझें।

सं·भस्त्र (भाथी) अजिन मृगचर्म, शणं (सनई) पिण्ड (गोला) इनसे परे फल शब्दको पाककर्ण०से ङीष् न हो किन्तु टाप् हो। यथा समृद्धानि फलानि यस्याः (मोटे अच्छे बढ़े हुए फल जिसके) सम्फला फल (कुष्माण्डा, कदली, कोहड़ा, तरबूज) ङीपं बाधित्वा वार्तिकेन टाप्। भस्त्रा इव फलानि यस्याः भाथी पर (चर्मप्रवेशिका) भस्त्रफला समासे पुंवद्भावे) भस्त्रफलशब्दात् 'ङीषं बाधित्वा' टाप् दीर्घादि:, यद्यपि भस्त्राशब्दो नित्यस्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्गो न भाषते स्त्रिया पुंवत् न लगिष्यति, कथं ह्रस्व? अतः कथयति ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसोः सूत्रेण ह्रस्वे। अजिन इव फलानि यस्या सा अजिनफला (कठोर छिलका) शण इव फलानि यस्या सा कोमल फल। पिण्ड इव फलानि यस्या ये औषधियोंके नाम है। (वा*) सत्-अचकाण्ड प्रान्त-शत-एक-इनसे परे पुष्पशब्दको प्राप्त: पाककर्ण०से ङीष्को बाधकर टाप् ही हो। सन्ति पुष्पाणि यस्या सा (सत्पुष्पा) लता ङीषं बाधित्वा टाप्। प्राञ्चि पुष्पाणि यस्या सा प्राक्पुष्पा। लुप्तदकार अञ्चि (प्राचीन फूल हो जिसके) प्रत्यञ्चि पुष्पाणि यस्या सा (ताजा फूलवती लता) काण्डानि पुष्पाणि यस्याः सा प्रान्ते पुष्पाणि यस्या (किनारे फूल) शतं पुष्पाणि यस्याः। एक पुष्पं यस्या सा एकपुष्पा। लता विशेषके नाम है। पाककर्ण०से प्राप्त ङीष्को बाधकर टाप् होना स्वभाव है।

(वा० शूद्रा० अजाद्यतष्टाप् का वार्तिक है। शूद्रशब्द 'जाति' अर्थमें हो, तब स्त्रीलिङ्ग अर्थ प्रकाशकटाप् (आ) जाति अर्थमें प्राप्त ङीष्को बाधकर। यदि शूद्रके पूर्व महत्शब्द हो तब जाति अर्थ रहने पर भी टाप् न हो किन्तु ङीप्। शूद्रसे विवाहिता उत्पन्ना स्त्री शूद्रा (जातिवाची) कहनेका फल। पुंयोग तु=जहां पुरुषसे सम्बन्ध है जातिसे नहीं,वहां पुंयोगादाख्यायां पुरुषसम्बन्धमात्रसे स्त्रीलिङ्गमें शूद्रस्य स्त्री शूद्री। टाप् नही, किन्तु पुंयोगात्ङीष्। अत्र पुयोग: पुरुषसम्बन्धः दाम्पत्य (पतिपत्नीभावः) एव नियम इति न, किन्तु जन्यजनकभावसम्बन्धोऽपि। स्मृतिः=वैश्याशूद्रयोस्तु राजन्यात् माहिष्योग्रौ सुतौ स्मृतौ। राजासे वैश्यामे उत्पन्न स्त्री माहिष्या। शूद्र स्त्रीमें उग्रा। अमहत्पूर्वा किं? वार्तिके महत् शब्दः पूर्वं न तिष्ठेत् तदा टाप् इति अर्थः किमर्थः महती चासौ शूद्रा च, पंवत् कर्मधारये महाशूद्री जातिपुयोगयोः समाः राजासे शूद्रामें उत्पन्न स्त्री उग्रा। उसमें ब्राह्मणसे उत्पन्न आभीरी (अहिर स्त्री आभीर। यहांशूद्रशब्द समुदितः) आभीर जाति अर्थमें है। जातेः से

ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमेति पुंयोगेऽपि । कोकिला जातावपि । 'मूलान्नञः' वा अमूला । 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' । कर्त्री दण्डिनी । उगितश्च ।४।१।६। उगिदन्तात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीप्स्यात् । भवन्ती पचन्ती दीव्यन्ती, वनो र च ४।१।७

ङीप् । अमहत्पूर्वा व्यर्थः । क्रुञ्चा—क्रौञ्चपक्षी यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् । क्रौञ्च पक्षीके जोड़ेमें से एकको मार डाला । इति रामायणे । क्रुञ्च (हलन्त) शब्दाट्टाप् । क्रुञ्चामालभेत् । उष्णिहा--ककुभ प्रयोगसे अदन्त भी ग्राह्य, उष्णिहः । हलन्तः (मन्त्रविशेषाः) क्विनः टापं लभते । (देवविशा) शकारान्तः मरुत अर्थे वर्तते । मरुतो वै देवानां दिवः गण इत्यर्थः । ये अकारान्त नहीं, टाप् अप्राप्त अतः अजादिगणमें पाठ । ये अकारान्त भी है । जेष्ठा प्रथमोत्पन्ना स्त्री अदन्तः टाप् । यदि जेष्ठस्य स्त्री इति वक्तुः इच्छा पुरुषसम्बन्धेन ङीपं बाधित्वा टाप् भवतु । अतः गणे पाठः । एवं कनिष्ठस्य स्त्री-कनिष्टा । अथवा अन्ते उत्पन्ना कनिष्ठा टाप् । मध्यमस्य स्त्री-मध्यमा । पुंयोगे ङीप् को बाधकर टाप् हो । अतः 'अपि' पढ़ा । कोकिलत्वजातिसहिता स्त्री, कोकिला जाति अर्थकं ङीषं बाधित्वा टाप् । पाककर्णसे ङीप् । प्रसङ्गका वार्तिक (मूलात्)नञसे परे मूल शब्दको ङीष बाधकर टाप हो । अविद्यमानं (नास्ति) मूलं यस्या सा (अमूला) लता । नञो अस्त्यर्थानां वाच्यो वा उत्तरपद लोपः । अस्तिअर्थक उत्तरपदके विद्यमानका लोप, टाप् । सम्भस्त्रं, सदच्काण्ड, मूलान्नञ्, पाककर्ण सूत्रपर तीनों वार्तिक पढ़े गये । अजादिगणसे ही गतार्थ है, यह अजादिः आकृतिगणः ।

उगित्—उक् उ ऋ लृ अक्षर इत् हो, ऐसे प्रत्यय अन्तमें हों उस प्रातिपदिक शब्दका वाच्य अर्थ स्त्रीलिङ्ग हो उसका बोधक ङीष् हो । ङ प् इत् 'ई' शेष । भवतः स्त्री भवन्ती (होती हुई) गच्छति । प्रकाश अर्थमें भाधातुसे डवतु=अवत्, डित् से 'आलोप' । यदि सर्वनाम भवत् है उससे ङीप् (उदित मानकर) भवती । यदा भू धातुसे शतृ=अत । भवत् शब्द भी उगित् अन्त है । उगितश्च सूत्रेण स्त्रीविवक्षायां ङीप् शप्श्यनोर्नित्यमिति नुम् (न्) भवन्ती व्रजति । एवं शतृ प्रत्ययान्त पचत् शब्दात स्त्रीविवक्षायां ङीप् नुम् पचन्ती (पकाती हुई) खादति एवं दीव्यत् शब्दात् ङीप् नुम् । दीव्यन्ती (खेलती हुई अरोदिति) आकारान्त ईकारान्तसे 'सु' का हल्ङ्यादि लोप । सर्वत्र=सभी उगित्में ङीप् का विधान । श्रेयसी कल्याणकारिणी, पटीयसी, बहुचतुरी, नेदीयसी (निकटस्था) ।

वनो र च । र लुप्त प्रथमा, अ उच्चारणार्थः, च से ङीप् । वन्नन्तात् ङ्वनिप् क्वनिप् का समानरूपग्रहण । वन् अन्तमें हो, (धीवन् सुत्वन् आदि) तदन्ताच्च=प्रातिपदिकाधिकारे विशेषणं—वनप्रत्ययान्तो अन्ते यस्य, ऐसे प्रातिपदिकसे स्त्री अर्थ-प्रकाशक ङीप् (ई) हो, अन्त्य अक्षर न-को र । यद्यपि नान्तस्थलमें ऋन्नेभ्यो ङीप् प्राप्त था, तथापि ङीप् के सम्पर्कसे (र) ही विधेय है । सामान्य=अनुबन्धलोप केवल वन् तीनोंमें साधारण है ।

वन्नन्तात्तदन्ताच्च प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीप्स्यात्, रश्चान्तादेशः । सुत्वान -मतिक्रान्ताअतिसुत्वरी । अतिधीवरी । शर्वरी । (वनो न हश इति वक्तव्यम्) अवावा ब्राह्मणी । राजयुध्वा । (बहुव्रीहौ वा) बहुधीवरी बहुधीवा पक्षे डाब्वक्ष्यते । **पादोऽन्यतरस्याम्** ।४।१।८। पाच्छब्दः कृतसमासान्तस्तद·

वन्नन्तान्तका उदाहरण—अतिसुत्वरी षुञ् अभिषवे (स्नान अर्थ सुधातोः ङ्वनिप् पित्परे ह्रस्वको तुक् (त) सुनोति स्नपयति सुत्वन्-अभिषेककर्ता तमतिक्रान्ता स्त्री समासादिकार्ये अतिसुत्वन् सु-लुक् वनो र च ङीप् ई, नस्थाने र (अतिसुत्वरी) एवं अतिधीवरी । डुधाञ्धारणपोषणयोः दधाति लोकान् धीवन् विष्णुः धारण-पोषणार्थकधा-धातोः आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च अन्येभ्योऽपि दृश्यते । भाषायां क्वनिप् धीवन् धूमास्था–'ई' । धीवानं धारकं पोषकमतिक्रान्ता स्त्री-(अत्यादयः समासादिः) अतिधीवन्शब्दात्सु लोपे, 'वनो र च' ङीप्-र अतिधीवरी । भाष्यमें चिन्तनार्थकध्यै धातुसे क्वनिव् य को सम्प्रसारण इ । हलि-च-दीर्घ शर्वरी उषा-काल । शॄ-हिंसायां शृणाति हिनस्ति लोकचिन्तां, नक्षत्राणि वा । अन्येभ्योऽपि दृश्यते । शॄधातोः वनिप् आर्धधातुक परे गुणे शर्वन्=वनो र च, ङीप् र । शर्वरी । वन् अन्तका प्रयोग सुत्वरी । धीवरी । अतिशर्वरी । वन्नन्तान्तका उदाहरण (वा०) वनो न हश्=हयवर जबगडदश्के अक्षर अन्तसे हों ऐसी धातुसे विधान·किया गया वन्, तदन्त=वन् अन्त, तदन्तान्तं=वन्नन्त अन्त, प्रातिपदिकसे ङीप् र नहो । इस निषेधसे हश् प्रत्याहारके अक्षर अन्तमें हो ऐसा धातु स्वीकृत । यथा—ओंण् अपनयने दूर होने अर्थमें ओण् धातोः वनिप् विड्वनोरनुनासिकस्यात् । णस्थाने आ, ओस्थाने अव । अवावन् (स्त्रीलिङ्ग प्रकाशनाय ब्राह्मणी शब्दः दत्तः) अत्र ङीप् र आदेशौ प्राप्तौ, वनो न हश इति निषेधे । ओण् हशन्त धातुः ङीप् री निषेधे । राजा सदृश्यरूप सु दीर्घ लोपादि, अवावा (आवावा) । वन्नान्तान्त== राजानं योधितवती (राजाको भी लड़ा दी) राजयुध्वा ब्राह्मणी । राजाकर्मकभूत-कालिक परस्परस्पर्धानुकूलव्यापारः प्रेरणाश्रया प्रेरिका । राजनि युधिकृञः क्वनिप् समासादिः । राजयुध्वन् अत्र हशन्तधातुः । वन् युध्वन्, वन्नन्तान्त राजयुध्वन्, ङीप्रादेशौ वनो न हशः इति निषेधति । (वा०) बहुव्रीहिसमासमें वनो र च सूत्रसे ङीप्, इ विकल्पसे हो । अनो बहुव्रीहेःके निषेधको बाधकर । बहवः धीवानो धारकाः पोषकाः यस्यां नगर्यां सा बहुधीवरी । बहुधीवन्शब्दाद्बहुव्रीहौ वा, वार्तिकेन विकल्पेन ङीप् र । पक्षे राजा सदृशं रूपं बहुधीवा बहुधीवानौ बहुधीवानः ।

पाद==चरण । अनयोः अन्या अन्यतरा, तस्यां अन्यतरस्यां । (कृतः समासान्तो यस्य) समासका अन्तलोप हुआ हो, ऐसा चरण वाची पादशब्दः तदन्तात्=वह पाद अन्तमें हो, ऐसे प्रातिपदिकसे ङीप् विकल्प हो । पक्षमें न हो । पाद प्रातिपदिकमें विशेषण । ऋन्नेभ्यःसे ङीप् । यथा द्वौ पादौ यस्याः (दो चरणवाली) बहुव्रीहिः सङ्ख्यासुपूर्वस्य–पादके अन्त्य-अकारस्य लोपे ङीप् भसंज्ञा । पादः पत् आदेशे द्विपत्

न्तात्प्रातिपदिकात् ङीब्वा स्यात् । द्विपदी-द्विपाद् । टाबृचि ।४।१।९। ऋचि वाच्यायां पादन्ताट्टाप् स्यात् । द्विपदा ऋक् । एकपदा । मनः ।४।१।११। मन्नन्तान्न ङीप् । सीमा सीमानौ ।। अनो बहुव्रीहेः ।४।१।१२। अन्नन्ताद् बहुव्रीहेर्न ङीप् । बहुयज्वा बहुयज्वानौ ।। डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ।४।१।१३। सूत्रद्वयोपात्ताभ्यां डाप् वा । सीमा । सीमे, सीमानौ । दामे, दामानौ ।।

ई कृतसमासान्त प्रातिपदिकं द्विपत् इति, ततः पादोन्यतरस्यां सूत्रेण ङीप् द्विपदी (दो चरणवाली ऋचा) यदा न ङीप् तदा द्विपात् स्त्री ऋक् ।

टाप् ऋचि—मन्त्र अर्थ होता हो, पाद अन्त प्रातिपदिकसे टाप्—आ हो पादोऽन्यतरस्यांके ङीप्को बांधकर । यथा द्वौ पादौ चरणौ यस्या सा विग्रहे बहुव्रीहि । द्विपद् प्रा० संज्ञा, विकल्प ङीप् प्राप्तः, तं बाधित्वा टाप् आ (द्विपदा) ऋक् (मंत्रः) एकः पादो यस्याः समासादिः । (एकपदा) सङ्ख्यासुपूर्वस्य अन्त्य अकारस्य लोपे, पादः पत् आदेशे ङीपं बाधित्वा टाप् । दोनों स्थलमें टाप् पादः पत् । भाष्य में पादशब्द समानार्थक पद पढ़कर उक्त सूत्रोका प्रत्याख्यान किया ।

मन इति प्रत्ययः, तत्र तदन्तग्रहणं मन्नन्तात्=मन् अन्तमें हो, ऐसे प्रातिपदिक से ङीप् न हो । यथा—सीमा (षिञ बन्धने) ग्रामं, प्रान्त देशं सिनाति बध्नाति सीमनं सीमितं करोति । ज्ञानकी अवधि अर्थमें औणादिकमनिन् दीर्घादिः । पृथिव्याः आकर्षणसीमा परिधिः, बन्धनकर्ता,स्त्रीलिङ्गः नान्तङीप्प्राप्ते मन इति निषेधे, राजा सदृशं रूपं, ङीप् होता तो अल्लोपोऽनः से अलोप हो जाता, सीम्नी बनता । सीमा शब्द अग्रिम डीप्से सिद्ध था मनः सूत्र क्यों ? इसलिए कि सीमानौ सीमानः डाप से न बनते किन्तु सीमे सीमाः होने लगते । अनो०से न ङीप् अनु० । अन् अन्त हो ऐसे बहुव्रीहिसे ङीप् न हो । यथा-बहवः यज्वानः यस्यां (बहुतसे यज्ञ कराने वाले हों जिस नगरीमें) बहुयज्वन् सु ऋन्नेभ्यः से नान्तलक्षणङीपि प्राप्ते, अनो बहुव्रीहेः इति निषेधे । नान्तोपधायाः दीर्घे सुलोपनलोपौ । राजासदृशं रूपम् । उपधायाः अल्लोप न हो, न संयोगात्के निषेधसे अतः अन उपधालोपिन इति न । डाप् अभाव का सूचक बहुजज्वानौ ।

डाप्-उभाभ्यां मनः और अनः दोनों सूत्रोंमें उपात्ताभ्यां=ग्रहण किये गये मन-अन्तः, अन-अन्तसे डाप् (आ) विकल्प हो । मन् अन्त उदाहरणं सीमन्-सीमितकर्ता उत्तरमध्य-भारतकी सीमा, देशसीमा पृथ्वी आकर्षणसीमा । उभाभ्यो सूत्रेण डाप् 'आ' डित्सामर्थ्यात् भसंज्ञा बिनाऽपि टि (अनो) लोपः । सीमा सु हल्ङ्यादिलोपे । यदा न डाप्, तदा मन इति ङीपः निषेधे सीमा । राजवत् । डाप् विधानका फल क्या हुआ औपरे डाप्पक्षे सीमे रमे इव । यदा न डाप् सीमानौ (राजानौ इव) सीमाः सीमानः । सीमया सीम्ना । सीमाभ्यां सीमभ्यां । मन्नन्तविषये अन्योदाहरणं दामा । ददाति दाधातोः कर्ता अर्थे मनिन् दामन् डाप् । टेः (अनो) लोप दामा । हिरण्मयं दामदक्षिणा । दाशब्दो नपुंसकः अतो दामन्पु-

अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ।४।१।२८। अन्नन्ताद् बहुव्रीहेरुपधालोपिन वा ङीप् । पक्षे डाब्निषेधौ । बहुराज्ञी, बहुराज्ञ्यौ । बहुराजे, बहुराजानौ । **प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** ।७।३।४४। प्रत्ययस्थात्ककारापूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि परे, स आप् सुप परो न चेत् । सर्विका कारिका । अतः किं ? नौका । प्रत्ययस्थात्किं ? शक्नोतीति शका । असुपःकिं ? बहु-

---

लिङ्गो नहि, किन्तु स्त्रीनपुंसकयोः निषिद्धलिङ्गशेषार्थः । औपरे डाप् दामे । यदा न डाप दामानौ-दातारौ ।

अन—अन्त हो, ऐसे बहुव्रीहिसमासके उपधाका अकारलोप हो, तब विकल्पसे ङीप् हो । पक्षमें डाप् भी, ङीप् का निषेध भी । यही अन्यतरस्यां ग्रहणका फल है । बहुराजन्शब्दात् अनुपधालोपिनोऽन्यतरस्यामिति ङीप्, उपधाअकारलोपे बहुराज्ञी । औ परे यण् बहुराज्ञ्यौ । यदा डाप् तदा बहुराजा । औ शी गुणे बहुराजे । यदा न डाप् तदा बहुराजानौ ङीपः निषेधे ।

प्रत्ययस्थात्—प्रत्ययमें स्थित हो । कात्=ककारसे पूर्वस्य-पूर्वके स्थानमें अकारस्य अकारके स्थानमें, इत्व हो आप् परे । स आप्=वह टाप सुपः परो न चेत् उससे परे सुप् न हो तब । कन् प्रत्ययके ककारके पूर्वमें ल में अ को 'इ' हुआ । गोपालिका । अश्वं पालयतीति अश्वपालकः तस्य स्त्री अश्वपालिका । पुंयोगे ङीष् प्राप्तः वार्तिकेन निषेधे । ततः टाप् इत्वं पूर्ववत् । अश्वपालिका घोड़ासेवककी स्त्री । गवां पालिका है । षष्ठी समास नहीं कर सकते, तृजकाभ्यां कर्तरि सूत्रके निषेधसे । एवं नगरपालिका, राष्ट्रपालिका, ब्रह्माण्डपालिका, अज्ञाता, सर्वा सर्विका । अज्ञात स्त्रियां है सर्विका कहेंगे । सर्वशब्दात् स्वार्थे (अव्ययसर्वनाम्नां टेः प्राक्) अकच् । (अके पहले वके बीच) सर्वकशब्दात् स्त्रीलिङ्ग विवक्षायाम् अकारान्तात टाप् सर्वकआ, दीर्घे । अकच् प्रत्ययके पूर्व अकारको इकार हुआ आप परे है । वह आप सुप्परक नहीं है । करोति या सा कारिका जो लाभके लिए काम करती है । कृधातोः कर्तरि अर्थे ण्वुल्=वु, तस्य अकआदेशे, ऋकारस्य 'आर' वृद्धिः कारकशब्दात् स्त्रीविवक्षायां टाप्, कके पूर्व अको इ, कारिका । अतः किं=सूत्रमें अकारको इकार हो ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि नौका, यहां क के पूर्वमें औ को इत्व न हो जाय । प्रत्ययस्थात् किम् ? प्रत्यय का ही ककार हो ऐसा क्यों कहा ? शक्नोति सक्षमो भवति या सा शका समर्थस्त्री । यहां शक धातुस्थः ककारः है उसके पूर्व श्र को इत्व न हो इसलिए । असुपः किम् ? आप सुपपरक न हो ऐसा क्यों ? बहवः परिव्राजकाः सन्यसिनः यस्यां नगर्यां सा बहुपरिव्राजका नगरी। इस बहुव्रीहि समासमें बहुजस् परिव्राजक जस् दशामें समाससे सुपका लुक् हुआ है । उसके पश्चात बहुपरिव्राजक शब्दसे टाप् हुआ । समास होनेके पहले जो विभक्ति थी । समास होने पर उसका लोप हुआ था उसे अन्तर्वर्तिनी विभक्ति कहते हैं, उसको प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणसे लायेंगे । तब सुप् परक मिल जायेगा । और इत्व न हो यही असुप् कहनेका फल है ।

परिव्राजका नगरी (मामकनरकयोरुपसंख्यानम्) मामिका । नरिका । (त्यक्त्यपोश्च) दाक्षिणात्यिका इहत्यिका ।। न यासयोः ।७।३।४५। यत्तदोरस्येन्न । यका। सका । यकां तकाम् (त्यकनश्च निषेधः) उपत्यका अधित्यका (आशिषि वुनश्च न) जीवका भवका (उत्तरपदलोपे न) देवदत्तिका देवका

मामक और नरक शब्दमें क से पूर्व 'अ' को इ कहें । ममायमिति मामिका यह मेरी निर्झणी । तव इयं ताविका (तुम्हारी है) युष्मदस्मदोः अन्यतरस्यां खञ्च इति अण । एकवचने तवक, ममक आदेशे । आदिवृद्धिः टाप् तावका मामका । मामकनरकयोः वार्तिकेन इत्वे । ताविका मामिका । प्रकृतिका क होनेसे पूर्वसूत्रसे इत्व प्राप्त नहीं, केवल मामक-इत्यादिना संज्ञाच्छन्दसोरेव ङीप् नियमः अतः टिड्ढाणञ् न ङीप्. नरान् जनान् काययति बोधयति (कै शब्दे, उपदेशे एचः आत्वे आतोऽनुसर्गे कः) नरका+अ आतो लोप० आकारलोपे नरक+अ समासादिः टाप् नरका । अत्र प्रत्ययस्थः क नास्ति । पूर्वसूत्रेण अप्राप्तौ वार्तिकेन इत्वं नरिका । (वा०) त्यक् और त्यप् अन्तमें हों ऐसे शब्दके प्रत्ययस्थ क से पूर्व अ को 'इ' हो । उदीचामातःस्थाने विकल्प-इत्वको बाधकर । यथा दक्षिणस्यां दिशि अदूरे अर्थे 'आच्' आ दीर्घ (दक्षिणा) असर्वविभक्तिः तद्धितः अव्ययं, दक्षिणा भवः दाक्षिणात्यः (दक्षिणी) दक्षिणापश्चात्पुरसः (भव अर्थे) त्यक् । किति च आदिवृद्धिः टाप् दाक्षिणात्या स्वार्थे कः, केऽणः ह्रस्वे टाप इत्व (दाक्षिणात्यिका) । इहत्यिका (इह भावा उत्पन्ना स्त्री) अव्ययात्त्यप् टाप्, इत्वं वार्तिकेन (इहत्यिका)

न यासयोः । यद् तद के 'अ' को इत्व न हो । या च सा च यासा तयोः यसयोः । या सा । यद् तद् सर्वनाममें अकचः प्राक् अत्वं पररूपं टाप् सुलोप (यका) तदोः सः (सका) अत्र इत्वं प्राप्त तस्य निषेधः । यकां सकाम् इत्व निषेधः । (वा०) त्यकन्नश्च । यत्र त्यकन्प्रत्ययो भवति तत्र प्रत्ययस्थात्सूत्रेण इत्वं न । यथा उपत्यका (अद्रेः पर्वतस्य आसन्ना समीपस्था समतलाभूमिः) ऊर्ध्वमधित्यका इत्यमरः । उपाधिभ्यां त्यकन् (आसन्न आरूढ़ अर्थमें) पहाड़के पासकी भूमि । उपशब्दात्त्यकन् उपत्यक-टाप् सुलोप, प्रत्ययस्थात् इत्वे प्राप्ते त्यकन्नश्च निषेधे । अधिशब्दात् आरूढ़ अर्थे (ऊपरी भाग) त्यकन् टाप् । इत्वे प्राप्ते वार्तिकेन निषेधे अधित्यका । यदि त्यिकन् पढ़ते, वार्तिक न करना पड़ता किन्तु, पञ्चभिः उपत्यकाभिः (पहाड़के पासकी भूमिसे) क्रीतः खरीदा गया ग्रामपञ्चोपत्यकामें इकार श्रवण होता । अतः त्यकन् पढा (वा०) आशिषि- आशीर्वाद अर्थमें वुन् (अक) के अ को इत्व न हो । यथा जीवतात् जीवका, भवतात् भवका । आशीर्लिङ अर्थमें जीवधातोः, भू धातोः वुन् य्वोः इति वुस्थाने अक । गुणे अवादेशे टाप् । प्रत्ययस्थात् इत्वे प्राप्ते आशिषि वुनश्च निषेधे । (वा०) उत्तरपदका लोप भी हुआ हो तव इत्व न हो । देवदत्त एव देवदत्तकः तस्य स्त्री देवदत्तिका । अत्र इत्वमस्ति । अनजादौ विभाषालोपो वक्तव्यः । दत्त शब्दस्य लोपे टाप् । देवका अत्र इत्वं न । (वा०) क्षिपकाआदि शब्दोंके प्रत्य-

(क्षिपकादीनां च) क्षिपका ध्रुवका कन्यका। चटका (तारका ज्योतिषि)। (वर्णका तान्तवे) (वर्तका शकुनौ प्राचाम्) (अष्टका पितृदेवत्ये)। (सूतिका-पुत्रिकावृन्दारकाणां वेति वक्तव्यम्) एषां वा अकारो भवतीत्यर्थः। सूतका,

---

यस्य कके पूर्व अको इत् न हो। यथा क्षिपका क्षिपति प्रेरयति आक्षेपं करोति (प्रेरणा करनेवाली)। क्षिपधातोः इगुपधसज्ञा० कः क इत्। अतो न गुणः। टाप् क्षिपा स्वार्थे: कः ह्रस्वे टाप् क्षिपका इत्व निषेधः। ध्रुवका स्थैर्य्ये अर्थे। (ध्रुवति स्थिरो भवति कूटः अविचाली) पचाद्यच् आदि:। कन्या एव कन्यका क ह्रस्व टाप् इत्वनिषेधः। चटका चट भेदने) पचादि: अच्, टाप कः ह्रस्व टाप्। आकृतिगणः। अलका इष्टका इत्वनिषेधः वार्तिकेन (वा०) ज्योतिष–प्रकाश चमक, तारा चन्द्र अर्थ होता हो तब तारका नक्षत्रम्। क के पूर्व अ को इत्व न हो। तृ प्लवनसन्तरणयोः। हवामें चलना, पानीमें तैरना अर्थवाचक 'तृ' वु अक वृद्धि, टाप (तारका) इत्व निषेधे। अक्ष्णः कनीनिका (आंखकी पुतली) नक्षत्रं ऋक्षंभं तारातारकाऽपि इति तारका ऽऽक्ष्णः कनीनिका अमरः। अन्यत्र जहाँ आंखकी ज्योति तारा नक्षत्र अर्थ न हो वहां तारिका–भाव प्रदर्शिका, पार करने वाली तरणी।

(वा०) वर्णका–तन्तु सूत्रं तेन जातं तान्तवं वस्त्रम् (सूतसे बनी वस्तु) अर्थमें वर्णका इत्वं न! तन्तूनां विकारः तान्तवं जालं प्रावरणविशेषः चंदोवा। वर्णधातुका वर्णनक्रिया विस्तार, गुणका उच्चारण अर्थः चुरादिसे ण्वुल् अक। वर्णयतीति वर्णका अन्यत्र जहां तन्तु अर्थ नहीं वहां क के पूर्व अ को इ हों। वर्णयति वर्णिका वर्णनकर्त्री, ग्रन्थनाम (वा०) वर्तका वर्तयति व्यवहारं करोति (शकुनी) पक्षी अर्थमें इत्व न हों प्राचीनका मत। उदीचान्तु उत्तरदिशावाची इत्व मानते हैं। वृत-ण्वुल अक, टाप, इत्व। को यष्टिकष्टिट्टिभको वर्तको वर्तिकादयः इत्यमरः। पक्षमें अन्य अर्थमें नित्य इत्व। मोमवर्तिका (वा०) अष्टका–अश्नन्ति ब्राह्मणः यस्यां सा–पितरश्च ताः देवताश्च पितृदेवता तदर्थं वस्तु पितृदैवत्यं (तादर्थे यत्) पितृकर्म देवता कर्ममें भोजन करनेवाली अष्टका आठदेवियां। अश भोजने इशिअशिभ्यां तकन्। अश तक शस्य ष ष्टुत्व ट, टाप् अष्टका अत्र इत्वं न। अष्टिकान्या जहां पितर देवता सम्बन्धी भोजन अर्थ न हो, वहां इत्व हो। यथा—अष्टौ अध्यायाः परिमाणं अस्याः (अष्टिका) पाणिनेः अष्टाध्यायी। अष्टशब्दात् कन् नलोपे, प्रत्ययस्थात् इत्वे (वा०) सूतका पुत्रिका वृन्दारका को क के पूर्व इत्वविकल्प हो अकार भी। मध्य अकार हो वत पुत्रिका कैसे? पुत्रशब्दात् शार्ङ्गरवादिगणपाठात् ङीन् ई पुत्री। क, केऽणः ह्रस्वे, इत्व विकल्पे पुत्रिका पुत्रका। इत्व विकल्पका भ्रम दूर करनेके लिए (वा) अ इति सवर्णदीर्घे, वा इत्व, अत्व भी। कात्पूर्वस्य=कके पूर्व अ आदेश विकल्प। न च इत्वविकल्पो भवति, तदा ह्रतेन अकारविकल्पविधानेन यदा ङीप् तदा इत्वविकल्पः। यदा अत्वविधिः तदा पुत्रका पुत्रिका च भवतः। सूतकावृन्दारका शब्दोमें कसे पूर्व अत्व विधान क्यों? अतोऽवदत् इत्वबाधनार्थं। प्रत्ययस्थात्सूत्रेण इत्वं प्राप्तं, पक्षे अकारोऽपि भवतु। यथा सूतका सुञ् धातुका प्राणियोंका गर्भविमोचन

सूतिकेत्यादि । **उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः** ।७।३।४६। यकपूर्वस्य स्त्री प्रत्ययस्यातः स्थाने योऽत् तस्य कात्पूर्वस्येद्वाऽऽपि परे । केऽण इति ह्रस्वः । आर्यका आर्यिका । चटकका चटकिका । आतः किं ? सांकाश्ये भवा–सांकाश्यिका । यकेति किम् ? अश्विका । स्त्री प्रत्ययेति किं ? शुभंयिका ॥ **अभाषितपुंस्काच्च** ।७।३।४८। एतस्माद्विहितस्यातः स्थानेऽत इद्वा । गङ्गका,

---

प्रसव होना अर्थः । अकर्मकः कर्तरि क्तः टाप् सूता (गृष्टिः) सकृत्प्रसूता । स्वार्थे कः सूताक, केऽणः ह्रस्वे, टाप सूतका (गर्भत्यागकी हुई) वार्तिकेन अत्व विधानं पक्षे इत्वं सूतिका । वृन्दं सर्वगुणसमूहमस्यास्ति (शृङ्गबृन्दारकाभ्यामारकन्) बृन्दारकः देवतावाची अमरा निर्जरा देवाः । देवा अर्थमें पुलिङ्ग । देवतारूप मुख्यअर्थमें तीनों लिङ्ग त्रिषूत्तरे वृन्दारकौ रूपिमुख्यौ, अत्रापि वार्तिकेन अ, पक्षे इत्व ।

उदीचां—प्रत्ययस्थात्सूत्र अनु० । यश्च कश्च यकौ तौ पूर्वौ यस्याः यकपूर्वायाः स्त्री लिङ्गसङ्केतः । अतिका विशेषण । अतः आकारः स्त्रीवाचकमर्थं लभते । यकपूर्वमें ऐसे स्त्रीप्रत्ययका आकार, उसको ह्रस्व अ हुआ हो ऐसे शब्दके क से पूर्व अको इ विकल्पसे हो आपि परे । उदीचां शब्दका तात्पर्य विकल्पसे (देश या व्यवस्थासे नहीं) यथा—आर्यजातिविशिष्टा स्त्री आर्या सभ्यमहिला सा एव, स्वार्थे आर्याक, केऽणः आस्थाने ह्रस्व अ–आर्यक टाप् आर्यका । उदीचामातः सूत्रेण आस्थानिक अस्थाने इत्व विकल्पे । आर्यिका । या में आ से पूर्व य है । उसके आ को ह्रस्व अ हुआ है । क के पूर्व अ को नित्य इत्व बांधकर । क पूर्व हो, ऐसे आ का उदाहरण चटका (टिट्टीभी गौरैया) एव स्वार्थे कः, ह्रस्वे, टाप चटकका नित्यमित्वं बाधित्वा उदीचामातः पक्षे इत्वम् । आतः किम् ? आके स्थानमें अ हुआ हो ऐसा क्यों ? इसलिये कि शङ्काशेन निवृतं नगर वुञ्छणकठ-शङ्काश्यादिभ्यो 'य' आदिवृद्धिः यस्येति अलोपे (संगमरमरसे बना शहर) साङ्काश्ये नगरे भवा (पाठशाला) वुञ् अक । अलोप टाप् नित्य इत्व य का अ, आके स्थानमें नहीं हुआ है विकल्प न हो अतः आतः पढ़ा । यक पूर्वमें हो ऐसा क्यों पढ़ा ? इसलिये कि अश्वजातेः स्त्री अश्वा यहां व पूर्वक आ है । स्वार्थे क, ह्रस्व टाप् (अश्वका) यहां अ आ स्थाने दीर्घ यक पूर्व नहि अस्ति । विकल्पो न, प्रत्ययस्थात्-नित्यमित्वम् स्त्रीप्रत्यये किं स्त्रीलिङ्गका आकार हो ऐसा क्यों ? (यकपूर्वायाः अत्र स्त्रीलिङ्गनिर्देशः) शुभं यति शुभंया (या प्रापणे विच्) स्वार्थे क ह्रस्वे टाप शुभयंका अत्र य इत्यत्र अ स्त्रीलिङ्गः किन्तु टापः अ नहि, धातोः आस्थाने अ अस्ति, इत्वं नित्यं, शुभंयिका (वा०) धातुके अन्तमें यक हो नित्य इत्व । यश्च कश्च यकौ । विकल्प नहीं । यथा सु—शोभनः नयो नीतिः आचरणं व्यवहारो यस्या सा सुनया (अच्छी नीतिवाली) सा एव सुनयिका, क ह्रस्वे टाप् । य धातुके अन्तमें है उससे परे अको विकल्पेन इत्व नहीं, किन्तु नित्यम् । एवं सुष्ठुपाको यस्या सा सुपाका(स्वादिष्ट भोजन पकाने वाली) सा एव सुपाकिका धात्वन्त क है नित्य इत्व ।

अभाषित—भाषा व्यवहारः संजातो अस्य, भाषितः पुमान् । अस्य (पुलिङ्ग

गङ्गिका ॥ **आदाचार्याणाम्** ।७।३।४९। पूर्वविषये। गङ्गाका ॥ **अनुपसर्जनात्** ।४।१।१४। अधिकारोऽयं यूनस्तिरित्यभिव्याप्य ॥ **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचतयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** ।४।१।१५। अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततो ङीप् । कुरुचरी। उपसर्जनत्वान्नेह-बहुकुरुचरा । नदट् नदी । देवट् देवी सौपर्णेयी, ऐन्द्री औत्सी । ऊरुद्वयसी ऊरुदघ्नी ऊरुमात्री ।

की भाषा लोकाचार हो जिसका) न भाषित- पुमान् अर्थात् शुद्ध स्त्रीलिङ्ग । उदीचामातः (स्थाने अत इत्) अनु० । विहितका अध्याहार । एतस्मात्=अभाषितपुंसकात्= शुद्ध स्त्रीलिङ्ग शब्दसे विहितस्य=विधान किया गया टाप्, आस्थाने ह्रस्व अ हुआ हो, इत्व विकल्प हो । यकके पूर्व अ न होनेसे सूत्र पढ़ा । गङ्गा एव स्वार्थे कः गङ्गाक, केऽणः ह्रस्वे शुद्धस्त्रीलिङ्ग है अभाषितपुंसकाच्च (गङ्गासे विधान किया टाप्) आ स्थाने अकारस्य इत्वे गङ्गिका ।

आत्—हो आचार्योंके मतमें, पूर्वं सूत्र है। शुद्ध स्त्रीलिङ्गसे विधान किया गया टाप्=आस्थानमें अको 'आ' विकल्प हो । यथा—=गङ्गाका शुद्ध स्त्रीलिङ्गसे विधान किया गया आके स्थाने आत् विकल्पे ।

अनुपसर्जनात्-उपसर्जनं विशेषणं, न उपसर्जनं प्रधानस्त्रीलिङ्गः । विशेष्यका अधिकार, स्वर प्रतिज्ञाबलसे । इसका अधिकार कहां तक, यूनस्तिः अभिव्याप्त= पर्यन्त (तक) व्याख्यान बलसे । अनुपसर्जनाधिकारस्य फलं=बहु युवाशाला-बहवः युवानः यस्यां शालायां अन्यपदार्थशालामें स्त्रीलिङ्ग है । युवाशालामें विशेषण । अनुपसर्जन प्रधान नहीं । युनस्तिः से ति नहो ।

टित्-अनुपसर्जन जो उपसर्जन=गौड़ विशेषण, किसीके आधीन, न हो, किन्तु प्रधान हो, ऐसे यट्टिदादि-टइत् टित्, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच, तयप्, ठक् ठञ् कञ् क्करप्, तदन्तम्—ये प्रत्येक हों अन्तमें जिसके यदन्तम्=ऐसा जो अकारान्त प्रातिपदिक उसका वाच्य स्त्रीलिङ्ग, अर्थबोधक प्रत्यय हो । टित् कृदन्त है, शेष तद्धितान्त हैं । क्रमेण उदाहरण कुरुषु चरति या सा कुरुदेशमें विचरने वाली कुरुचरी चरेष्टः (कुरुचर टित् है) टिदन्त प्रातिपदिकं कुरुचर, उसका वाच्य स्त्रीलिङ्ग, अथमें ङीप् । सुलोप आदि करुचरी । यस्येति अलोपे । नदट्धातुसे पचादि अच् होने पर अदन्तप्रातिपदिक नदसे ङीप् अलोपे नदी वर्षायाम् अव्यक्तं शब्दङ्करोति या सा । नदाद भिन्नाः देवट्, ट इत्, पचाद्यच्, अदन्तं मत्वा ङीप् देवी दीव्यति स्वपातिव्रत्येन स्त्रियः जेतुमिच्छति या सा देवी स्त्रीत्व विवक्षायां ङीप् । शोभनौ पर्णौ यस्यां सा सुपर्णा, सुन्दरपंखवाली विनता तस्या अपत्यं, स्त्रीभ्यो ढक् (एय) आदिवृद्धिः सौपर्णेयस्य जातिस्त्री सौपर्णेयी (गरुणकी बहन) ढ प्रत्यान्त सौपर्णेय प्रातिपदिकसे ङीप् अलोपे । इन्द्रो देवता अस्याः ऐन्द्री, ऋक् इन्द्र है देवता जिस ऋचाके (सास्य देवता) इति अण् आदिवृद्धिः । ऐन्द्र प्रातिपदिकात् (अणन्तं मत्वा) उक्तसूत्रेण ङीप्, ऐन्द्री, इन्द्र देवताकी दिशा पूर्वं ऋचा-मन्त्रः ।

पञ्चतयी आक्षिकी प्रास्थिकी लावणिकी यादृशी इत्वरी । नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्) स्त्रैणी । पौस्नी शाक्तीकी आढ्यङ्करणी तरुणी तलुनी । यञश्च ।४।१।६। यञन्तात्प्रातिपदिकात् ङीप् । अकारलोपे कृते

उत्सस्य=निर्झरिण्याः (झरनाका) इयम् (सेवार घास) आदि अथवा उत्स ऋषि सम्बन्धिनी ऋक् । औत्सी । उत्सादिभ्यो अञ् उत्स सम्बन्धी वस्तु अर्थमें अञ्, (औत्सः) उसमें स्त्री विवक्षा होनेपर ङीप् । अलोपे रूपम् । ऊरू प्रमाणम् अस्याः, जंघातक जलकी मात्रा जिस नदीका है वह उरुद्वयसी । उरुशब्दसे जघन तक पानी अर्थमें द्वयसच् अन्तमानकर ङीप् । इसी अर्थमें दघ्नच्, ङीप् उरुदघ्नी (छातीभर पानी वाला तौली या नदी) ये प्रत्यय अन्तमें होनेसे ङीप् अलोप । पञ्च अवयवाः यस्या सा पञ्चतयी, पांचसंख्या समुदायमें पञ्चन् शब्दात् संख्यायाः अवयवे तयप्, तयप्प्रत्ययान्त अदन्तप्रातिपदिक पञ्चतय तस्मात् स्त्रीलिङ्गः बोधक ङीप् । अक्षशब्दात् जयति अर्थे ठ इक । अदन्त आक्षिक शब्दात् वाच्यार्थ लिङ्ग बोधने ङीप्, आक्षिकी (पाशोंसे खेलने वालेकी स्त्री) आक्षिक्यौ आक्षिक्यः युवत्यः । प्रस्थेन क्रीता प्रास्थिकीं कञ्चुकी (पसेरींसे खरीदी हुई) तेन क्रीतमिति ठञ् । तदन्तप्रातिपदिक प्रास्थिकशब्दात् ङीप् । लवणं पण्यमस्ति अस्याः (नमककी दुकानवाली) लावणिकी । तदस्य पण्यं, (विक्रेता दुकान अर्थमें) ठञ् (प्रत्ययान्त) लावणिक शब्दात् ङीप् भसंज्ञायां अलोपे । यादृशी-यत्पूर्वक दृशधातोः त्यदादिषु दृशोः इति कञ् 'आ' सर्वनाम्नः इति यत् शब्दस्य आकारान्तादेशे, सवर्णदीर्घे, कञ्प्रत्ययान्तयादृश, शब्दात् ङीप् यादृशी सा (जैसी) तादृशी सा (तैसी) इत्वरी=एति गच्छति स्वेच्छाचारिणी इण्गतौ धातोः क्वरप् इ+वर ह्रस्वस्य लुक्, क्वरप्प्रत्ययान्त इत्वर शब्दात् ङीप् लोपे ।

(वा) नञ् स्नञ् ईकक, ख्युन् ये प्रत्यय अन्तमें हों और तरुण तलुन, इन प्राति० से स्त्रित्वविवक्षामें ङीप् कहे । स्त्रियाः अपत्यं स्त्री, स्त्रैणः की स्त्री अर्थमें 'स्त्री पुंसाभ्यां' सूत्रसे नञ्, आदिवृद्धिः णत्वं, स्त्रैणशब्दात् पुंयोगे (स्त्री विवक्षायां) ङीप् वार्तिकेन । एवं पुंसो अपत्यं स्त्री पौस्नी, स्नञ् प्रत्ययान्त पौस्नशब्दात् ङीप् । शक्तिः प्रहरणम् अस्याः शक्तिनामक अस्त्रका प्रहार विषय है जिसकी वह स्त्रीं । शक्तियष्ट्योः ईकक् प्रत्यये आदिवृद्धिः । शक्तिक शब्दात् ङीप् लोपे । शाक्तिकी (चण्डिका) यष्टिः प्रहरणम् अस्याः छड़ी है प्रहारका साधन इसका । यष्टिशब्दात शक्तियष्ट्योरीकक् प्रहरण अर्थे । आदिवृद्धिः अन्त्य इलोपे याष्टीकशब्दात् वार्तिकेन ङीप् अकारलोपे, (याष्टिकी)अप्सरा । अनाढ्यं (निर्धनिनम्) आढ्यं कमधनवान [illegible] बहुत धनवान् बनाने वाली (आढ्यंङ्करणी) आढ्य पूर्वक कृधातोः आढ्य, सुभग, स्थूल पलित, नग्नान्ध प्रियेषु इति करणे अर्थे ख्युन्=यु तस्य 'अन' आदेशे [illegible] गुणावादेशे (आढ्य—करण) अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् (म्) आगमे, अनुस्वारे परसवर्णे, णत्वे, वार्तिकेन ङीप्, यस्येति च अलोपे । तरुणत्ववयोविशिष्टा स्त्री तरुणी । अथवा

हलस्तद्धितस्य ।६।४।१५०। हल उत्तरस्योपधाभूततद्धितयस्य लोप ईति। गार्गी ॥ प्राचां ष्फ तद्धितः ।४।१।१७। यञन्तात्ष्फो वा ॥ षः प्रत्ययस्य ।१।३।६। प्रत्ययादिः ष इत्स्यात्। 'आयनेयीनी' इत्यायनादेशः। षित्त्वसामर्थ्यात्षि-

उन्नतौ यौवनवयोवाचिनौ। तरुणीतलुनीशब्दौ तरुण-तलुन शब्दात् वार्तिकेन ङीप् सभी स्त्रीप्रत्यय प्रायः अजादि हैं वहां भसंज्ञा और इकारलोप न भूलें। यञश्च-- यञप्रत्ययान्त शब्दका वाच्य स्त्रीलिङ्गः उसका बोधक ङीप् हो, यस्येतिच सूत्रसे अकारलोप करने पर। हल्से भी परे तद्धित प्रत्ययके उपधाभूत यका लोप हो, ईकार परे। गर्गस्य स्त्री अथवा गर्गस्य गोत्रापत्यं गर्गके वंशपरम्पराकी स्त्री अर्थमें गर्गादिभ्यो यञ्। गोत्र अर्थमें यञ् कृते, अन्त्य अलोपे, यञन्तगार्ग्य शब्दको यञश्च सूत्रसे ङीप् गार्ग्य+ई, अलोपे, हलस्तद्धितस्य हलसे परे तद्धित प्रत्ययके यकार का लोप (गार्गी) कन्या।

प्राचां—प्राचीनके मतमें यञन्तगार्ग्य शब्दसे ष्फप्रत्यय विकल्पसे हो, उसकी तद्धितसंज्ञा हो। जिसका फल तद्धितान्त मानकर प्रा० संज्ञा हो। गार्ग्य+ष्फ, षः प्रत्ययस्य इति षकारलोपे आयनेयी—सूत्रेण फस्थाने 'आयन' आदेशे णत्वे गार्ग्यायण ततः षिद्—ष इत् हो और गौर आदि गणमें पठित हो, ऐसे शब्दसे ङीष् हो (ङ् ष् इत् 'ई' शेष) ङीप् और ङीष्के रूपमें भेद नहीं। किन्तु स्वरमें पित् (अनुदात्त), ङीष् (उदात्त) होता है। ष्फ प्रत्ययके षित्का फल षिद्गौरादिभ्यश्चसे ङीष् है। गार्ग्यायणी (गर्गगोत्रकी औरत) नर्तनशीला नर्तकी (नाचने वाली) नृती गात्र विक्षेपे (शरीरसे हावभावप्रदर्शन कला) अर्थमें शिल्पिनिष्वुन्=वु, अक आदेश, नर्तकः (व्यवसायकी दृष्टिसे नृत्यकलामें कुशल) यहां भी षित् मानकर सूत्रसे ङीष्, यस्येतिच अन्त्य अलोपे, नर्तकी। गणिका (परकी स्त्री घरमें नाचे वह नर्तकी नहीं है। गौरवर्ण विशिष्टा स्त्री (गौरी) (गौराङ्गना गौरादिगणपठित गौर शब्दात् सूत्रसे ङीष्, अलोपे, गौरी। अष्टवर्षा भवेत् गौरी, नववर्षातु, रोहिणी, दशवर्षाभवेत् कन्या, अत उर्ध्वं रजस्वला। (वा०) अनः-शकटं वहति या सा गौरादिगण पठित अनडुहशब्दात् स्त्रीबोधविवक्षायां ङीष् अनडुह ई (आमनडुहस्त्रियां वा वाच्यः) इति वार्तिकेन स्त्रीप्रत्ययविवक्षायां आम्प्रत्ययो विकल्पेन वक्तव्यः। आम् होने पर यण् अनड्वाही। यदा आम्न, तदा अनडुही। गौरादिगण आकृतिगण है। ङीपकी आकृतिसे गणका ज्ञान करे।

षः आदिः (ञिटुडवः) अनु० प्रत्ययके आदि ष की इत्संज्ञा अश्रवण हो। प्रत्यय क्यों पढ़ा? षोडशकः-ष इत् न हो आदि क्यों कहा? अन्त्य ष का लोप क्यों कहा? अन्त्य ष का लोप न हो। अविषः महिषः। आयन-प्रत्ययके आदिमें फ-ढ-ख-छघ हो। उनको क्रमसे आयन एय् ईन ईय् इय् हो (द्वन्द्वः) फ-आयन, ढ-एय्, ख-ईन, छ-ईय, घ-इय्। अ उच्चारणाय। यथासङ्ख्यसम्बन्ध। ष्फको तद्धितमान्य क्यों? इसलिए कि तद्धितान्त मानकर कृत्तद्धितसमासाश्चसे प्रातिपादिकसंज्ञा हो। जिसका फल ङीष् है। यतोहि षिद्गौरादिभ्यश्च सूत्रे प्रातिपदिकस्य अधिकार

द्गौरेति ङीष्। गार्ग्यायणी गौरी नर्तकी **वयसि प्रथमे** ।४।१।२०। प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात्स्त्रियां ङीप्। कुमारी (वयस्यचरम इति वाच्यम् (वधूटी चिरण्टी ॥ **द्विगोः** ४।१।२१। अदन्तात् द्विगोर्ङीप्। त्रिलोकी। अजादित्वात् त्रिफला। त्र्यनीका सेना ॥ **अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि**

आगच्छति (यदि ष्फ प्रत्ययान्तको प्रातिपदिकसंज्ञा नहीं होगी ङीष् भी नहीं होगा) यद्यपि ष्फको स्त्रीलिङ्ग अर्थ कहने पर भी षित्करणसामर्थ्यसे षिद्गौरादिभ्यश्च' से ङीष् होगा। गार्ग्यायणी। गर्गस्य-अपत्यं स्त्रीं विग्रहे यञ् गार्ग्यशब्दात्प्राचां ष्फ तद्धित (षः प्रत्ययस्य ष) इत्। फस्थाने-आयन। भसंज्ञा' यस्येति अलोपे णत्वे प्रातिपदिकसंज्ञा षिद्गौरादिभ्यः ङीप् णत्वे रूपम्। ईति परे नास्ति, यलोपो न। अताति निषेधात, आपत्यस्य च न।

वयसि—पहली अवस्थाके वाचक अदन्तप्रातिपदिकसे वाच्य स्त्रीलिङ्ग अर्थका प्रकाशक ङीप् हो। यहां प्रथम शब्द अन्तिम वयको रोकता है। अर्थात् वार्धक्य=वृद्धावस्थामें ङीप्का विधान है। कौमारं पञ्चमाब्दान्तं, पौगण्डं दशमावधिः। कैशोरमापञ्चदशाद् यौवनं तु ततः परम्। पांच वर्ष तक कुमार दस वर्ष तक पौगण्ड, १६ तक कैशोर, उसके बाद जवानी। कौमार, यौवन वृद्धत्व-भेदात् त्रीणि-वयांसि। आयूंषिचतुर्भागैः, चत्वारि वा, यौवनमें पहली अवस्थाको वय कहते हैं। वयस्यचरमे वार्तिक बलसे वृद्धावस्थाको छोड़कर सर्वत्रैव ङीप् इष्टः। कुमारत्व वयोविशिष्टा स्त्री कुमारी (अविवाहिता लड़की) प्रथम अवस्थावाचक कुमार शब्दात् वयसि प्रथमे सूत्रेण ङीप्, भसंज्ञा अलोपे।

वयसि अचरम-चरमम् अन्तिमं वयः (अवस्था) बोधकं तद्भिन्नं अचरम् अन्तिम अवस्थाके पूर्व (मध्य अवस्था) का स्त्रीधर्म प्रकट करनेके लिए ङीप् कहें। यथा वधूट (पत्नी धर्मको धारण करनेवाली) चिरण्ट (मृगनयनी चंचला) अचरम अन्तिम वृद्धावस्थाको छोड़कर युवावस्था दोनों है। न प्रथम, न अन्तिमसे ङीप् वधूटी चिरण्टी। द्वितीय अवस्थामें प्रमाण यौवनवाचिनौ भाष्यसे।

अदन्त द्विगु—समाससे ङीप् हो। त्रयाणां लोकानां समाहारः (तीनों लोकों का समुदाय) संख्या पूर्वो द्विगुः, द्विगुसमासे आकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः। द्विगुसमासके अन्तमें अकारान्त पद हो उससे स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय इष्ट है। द्विगोः सूत्रसे अकारलोपे त्रिलोकी। अजादित्वात्=अजादिगणपठित मानकर अजाद्यतष्टाप्। त्रयाणां फलानां समाहारः (आंवला हर्रा वहेरीका मिलित चूर्ण) त्रिफला टाप्। त्रयाणाम् अनीकानां समाहारः। नभ, स्थल, जल सेनाओंका समाहारः समुदाय ही त्र्यनीका। अजादिगण मानकर टाप्। न च त्रयाणां भुवनानां समाहार त्रिभुवनं पञ्चपात्रं, चतुर्युगमित्यादावपि टाप् ङीप् स्याद् तत्र पात्राद्यन्तस्य। इति वार्तिकेन स्त्रीत्वविवक्षायाः निषेधात्।

अपरिमाण परिमाण, नपना, माप द्रोण आढ़क ग्राम, किलो क्विटल वाची शब्दसे भिन्नशब्द अन्त हो, विस्त, आचित, कम्बल्य अन्तमें हो, ऐसे द्विगुसमाससे

।४।१।२२। अपरिमाणान्ताद्विस्ताद्यन्ताच्च द्विगोर्न ङीप् तद्धितलुकि । पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा । आर्हीयष्ठक् । 'अध्यर्ध' इति लुक् । द्वौ विस्तौ पचति द्विविस्ता । द्व्याचिता । द्विकम्बल्या । परिमाणान्तात्तु द्व्याढकी ।

ङीप् न हो—यदि तद्धितप्रत्ययका लुक् हुआ तब विस्त (बिस्ता फुट) आचित (दस भरी–तोला) कम्बल्य=कम्बलका कारण ऊन । यथा पञ्चभिः अश्वैः (पांच घोड़ोंसे खरीदी गयी पञ्चाश्वा भूमिः संख्यापूर्वसे द्विगु समास तेन क्रीतं, ठक । ते अर्ह-अगोपुच्छ-संख्या-परिमाणार्थकाः । अतो मूले आर्हीयष्ठक् । अधि अर्ध पूर्व और द्विगुसे ठक्का लुक् । पञ्चाश्व इतिदशायां द्विगोः ङीष्प्राप्तः अपरिमाणान्तद्विगुको ङीप् का निषेधः किन्तु टाप् । अश्व परिमाण, माप प्रसिद्ध नहीं । विद्वविस्ता 'सुवर्ण=विस्तौहेम्नोऽक्षे' सोनेका एक (बित्ता) टुकड़ा हेम्नः सुवर्णस्य अक्षः । अक्ष किसे कहते हैं—गुञ्जा पञ्च आद्यभाषा, पांच घुंघुची का एक माषा, गुञ्जापञ्चकं भाक्षपरिमाण, षोडशकं अक्षपरिमाणं सोलह भाषाका एक अक्ष होता है । अर्थात् अशीतिगुञ्जा घुंघुची सुवर्णविषये (अक्ष) की मात्राका बोधक सुवर्णविस्त है ऐसे द्वौ विस्तौ पचति १३० तोला सोना गलाये (मशीन) द्विविस्ता द्विगुसमासः । सम्भवति अवहरति अर्थे ठक्, अध्यर्ध लुक् द्विगोः ङीप् प्राप्ते अपरिमाणविस्त० सूत्रेण निषेधे टाप् द्विविस्ता (मूषा पात्रविशेष) जो दो विस्त १६० गुञ्जा सोना द्रावयति गलाती है । यहां पच् धातु गलाने अर्थमें । द्व्याचिता । आचितो दस भाराः इत्यमरः । दस भरी सोनाको आचित कहते हैं । तुलास्त्रियां पलशतं भारः स्यात् । सौ पलको भार कहते हैं । ऐसे २० भार विंशति पुमान् (पुरुष भार बोझा होता है) द्वौ आचितौ वहति (२० भारका बोझा ढोता है) इत्यर्थे प्राग्घितीयष्ठञ् । तस्य लुक् द्विगोः प्राप्तं ङीपं निषेधति । टाप् । द्व्याचिता शकटी (सगड़ी) दस भारकी है । द्विचक्रिका । द्विकम्बल्या कम्बलस्य प्रकृतिः कारणं द्रव्यं (ऊन) ऊर्णापलशतं तदर्थं, विकृतेः प्रकृतौ (भेड़का ऊन प्रकृति हैं कम्बल विकृति हैं । इत्यर्थे 'कम्बलाच्चसंज्ञाया' सौ-पल (ऊन) अर्थे यत । द्वाभ्यां कम्बल्याभ्यां क्रीता विग्रहे तेन क्रीतं ठञ् । तस्य लुक्, द्विगोः ङीपः उक्तसूत्रेण निषेधे द्विकम्बल्या अजा । न कहिये कि तद्धित लुकि कृते (तद्धित प्रत्ययके लुक् होने पर) ङीप् न भवतु इत्येवाऽर्थोऽस्तु इतनेसे ही सभी उदाहरण ङीप्से बच जायेंगे, अपरिमाणादिग्रहणं किमर्थं ? द्वौ आढ़कौ पचति० प्रसङ्गे टञ् । लुक् ङीप् 'द्वाचढकी) अत्र निषेधो मा भवतु एकदर्थं सूत्रम् । न तद्धित लुकि कथनेन ङीप् निषेधः स्यात् । अपरिमाणात् न तद्धित लुकि कथनेन द्विविस्ता इत्यादौ ङीपः निषेधो न स्यात् । परितः सर्वतः समन्तात् मिमीते तोलनं क्रियते अनेन परिमाणं आढ़कं । गुञ्जापञ्च तु भाषः स्यात्, ते सुवर्णस्तु षोडशः । पञ्च सुवर्णाश्चत्वारः पञ्चवापि प्रकीर्तितम् । यत्रद्वयं तु प्रसृतं द्विगुणं कुडवं मतम् । चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढ़कः । इति स्मृतिः । पांच घुंघुची का एक माशा १६ माशा का एक सुवर्ण । चार या पांच सुवर्ण का एक पल दो पलका

तद्धितलुकि किं ? समाहारे पञ्चाश्वी ।। **काण्डान्तात्क्षेत्रे** ।४।१।२३। क्षेत्रे यः काण्डान्तो द्विगुस्ततो न ङीप् तद्धितलुकि । द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः— द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः । मात्रचः 'प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्' इति लुक् । क्षेत्रे किं ? द्विकाण्डो रज्जुः ।। **पुरुषात्प्रमाणेऽन्यतरस्याम्** ।४।१।२४। प्रमाणे यः पुरुषस्तदन्ताद् द्विगोर्ङीब्वा स्यात् तद्धितलुकि द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः— द्विपुरुषी, द्विपुरुषा वा परिखा ।। **ऊधसोऽनङ्** ।५।४।१३१। ऊधोऽन्तस्य

एक प्रसृत उसका दुगुना कुडव मान्य, चार कुडवका प्रस्थ (पसरी) चार प्रस्थ का आढ़क (आधा क्विटल) ।

काण्ड—द्विगोः, न-तद्धितलुकि अनु० । षोडश हस्तप्रमाणो दण्डः (बांस लाठा) काण्ड है अथवा षोडशअरत्नीं (मुष्टिवद्धहस्तः) आयामः विस्तृते दण्डः । अर्थ-क्षेत्रे= खेत नापनेके विषयमें काण्डशब्द अन्तमें हो ऐसे द्विगु समाससे ङीप् न हो, यदि तद्धित प्रत्ययका लुक् हुआ हो तो । द्वे काण्डे (३२ हाथ प्रमाण विस्तारः अस्याः भूमेः संख्यापूर्वः द्विगुसमासः । द्विकाण्डशब्द खेत परक है । इस भूमिका (३२) हाथ क्षेत्रफल है । द्विकाण्डशब्दात् प्रमाणेऽर्थे द्वयसज्-सूत्रेण विधानं कृतस्य मात्रच्प्रत्ययस्य प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यं सूत्रेण लुक् । सूत्रमें अन्तग्रहण क्यों किया ? इसलिये कि द्विकाण्डसे क्षेत्रफल अर्थमें ङीपका निषेध हो, केवल काण्ड कहने पर निषेध न हो । क्षेत्र अर्थ क्यों ? इसीलिये कि जहां भूमिका क्षेत्रफल नहीं है वहां ङीप् निषेध न हो । जैसे द्विकाण्डी वडवा द्वाभ्यां काण्डाभ्यां (बत्तीस हाथकी भूमिसे खरीदी गई घोड़ी) क्रीता । द्विकाण्डी रज्जु (बत्तीस हाथकी रस्सी) खेतका प्रमाण न होनेसे ङीप् निषेध नहीं हुआ ।

पुरुषात्—द्विगोः तद्धितलुकि ङीप् अनुवर्तन्ते । प्रमाण अर्थमें जो पुरुष तदन्तात् वह अन्तमें हो ऐसे द्विगुसमाससे ङीप् विकल्प हो । तद्धित प्रत्ययका लुक् होने पर । आयामस्तु प्रमाणं स्यात् । निश्चित मात्राको विस्तार कहते हैं । पञ्चहस्तायामः पुरुषः [पांच हाथका पुरुष] द्वौ पुरुषौ प्रमाणस्या आपः [दो पोरिषा पानी] या या परिखा, झील जलाशय घेरा, भित्तिः, दुर्गपरितः संरक्षणार्थः । यहां पुरुष [५ हाथ] २ पुरुष [१० हाथ] मात्राका वाचक है । द्विगुसमास मात्रच्, प्रमाणे नित्यं लुक्, अपरिमाणान्त० सूत्रेण नित्यं, ङीपः निषेधः । पुरुषात्प्रमाणे सूत्रेण निषेधविकल्पे, टाप् द्विपुरुषा ङीप्—द्विपुरुषी । प्रमाण अर्थ क्यों कहा ? क्या उर्ध्वमानं [तराजू] किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः, आयामस्तु प्रमाणं स्यात् इति वार्तिकं, परितः आरोहतः परिणाहतः येन मीयते । द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता गौः द्विपुरुषा । यहां क्रयण खरीदना अर्थ है प्रमाण नहीं । टाप हुआ ङीप् नहीं । पञ्चभिः पुरुषैः क्रीता पञ्चपुरुषी धर्मशाला ।

ऊधसो—बहुव्रीहौ अनु० । ऊधस् शब्द अन्तमें हो । ऐसे बहुव्रीहि समासके अन्त्यअल्को अनङ् हो स्त्रीलिङ्ग अर्थ प्रकट करना हो तब । ऊधस्तु क्लीबमापीन

बहुव्रीहेरनङ् स्त्रियाम् ।। **बहुव्रीहेरूधसो ङीप्** ।४।२५। ऊधोन्ताद्बहुव्रीहेः । कुण्डोघ्नी । स्त्रियां किम् ? कुण्डोधो धैनुकम् । **दामहायनान्ताच्च** ।४।१।२७। संख्यादेर्बहुव्रीहेर्दामान्ताद्धायनान्ताच्च ङीप् । द्विदाम्नी द्विहायनी बाला (त्रिचतुर्म्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम्) (वयोवाचकस्यैव हायनस्य ङीप् णत्वं

मित्यमरः, गायका दूध भरा बड़ा थन [स्तन] कुण्डकी तरह जान पड़े, उसे ऊधस् आपीन कहते हैं (आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात्) कुण्डमिव ऊधः स्तनं यस्याः इति विग्रहे बहुव्रीही समासे कुण्डोधस् स्त्रीत्व प्रकाशनार्थं ऊधसोऽनङ् सूत्रेंण अनङ् ङ इत् ङिच्च, सस्थाने अन । पुरुषं कुण्डोधन् इतिदशायां [डाप् उभाभ्यां विकल्पे] अन उपधा लोपिनः ङीप् विकल्पे, पक्षे ऋन्नेभ्यः ङीपः अनो बहुव्रीहेः निषेधे प्राप्ते सूत्रं— **बहुव्रीहेः**—समासमें ऊधस् अन्तमें हो उससे स्त्रीलिङ्गबोधक ङीप् हो । अल्लोपोऽनः अकारलोप सम्मेलने कुण्डोघ्नी । सूत्रे स्त्रियां किमर्थमपठत् अर्थात् ङीप् विधानमें स्त्रियांकी अनुवृत्ति क्यों ? इसलिये कि नपुंसकसे ङीप् न हो । यथा कुण्डमिव ऊधो एककुण्डा, कण्डाल, दूध हो जिस गाय समुदायका । धेनूनां समूहो धैनुकम्—अचित्त हस्तिधेनोष्ठक् ठस्य कः नपुंसकलिङ्गः । न स्त्री, न ङीप्, तब अनङ् भी नहीं ।

दाम—सङ्ख्यादेः ङीप् अनु० । संख्यावाचकशब्द आदिमें हो, बहुव्रीहिसमास, दाम या हायन अन्तमें हो, उससे ङीप् हों, स्त्री बोध अर्थमें । दाम अन्ते-जैसे द्वि दामन्=यहां डावुभाभ्यांसे डाप् । अनउपधा लोपिन इति ङीप् प्राप्ते, अनो बहुव्रीहेः निषेधे च प्राप्ते, ङीप् इति कथितम् । यत्र हायन अन्ते द्वि हायनी इत्यादौ अदन्त-टाप्प्राप्तः, अतो दामहायनान्ताच्च : यथा—द्वे दामनी यस्याः सा द्विदाम्नी [दो रस्सीवाली हरहट गाय] द्विदामन् शब्दात् ङीप् सङ्ख्यादिः बहुव्रीहिः दाम अन्त अस्ति । अनः अल्लोपे रूपम् । यदि अव्यय=उत्, प्रति अपि आदिकी अनुवृत्ति होती तो क्या दोष पड़ता ? अनुवृत्तौ किं बाधकम् । अव्ययग्रहणस्य अननुवृत्तेः--अनुवृत्ति न करणस्य इदं फलं यत्र, उत् इति अव्ययं तत्र उध्वं [उत्क्रान्त] दाम रज्जु गल-ग्रन्थी यस्याः सा उद्दामा वडवा [गलेसे रस्सी निकालली घोड़ी] उद्दामन् इति दशायां डाप् ङीप्, अन उपधा लोपिन इति ङीपि [अन् अनर्थकोऽपि] अनो बहुव्रीहे इति निषेधः प्राप्तः, तस्य इदं फलं यथा बहुराज्ञी रूपत्रयं लभते तथा अत्रापि रूपत्रयं लभताम् । हायनान्तस्य प्रयोगः द्वौ हायनौ यस्याः सा द्विहायनी बाला [दो वर्षकी लड़की] अत्र हायनान्त-ङीप् अलोपे सम्मेलने । त्रयो हायनाः यस्याः सा त्रिहायणी कन्या [तीन वर्षकी] चत्वारः हायनाः यस्याः सा चतुर्हायणी [चार वर्ष की] दामहायन्ताच्च ङीप् । परन्तु णत्वं केन सूत्रेण भवतु, यत्र समानपदं तत्रेव णत्वं निश्चितं वर्तते । अत्र त्रि-भिन्नं पदं, हायनभिन्नपदम् । अतो वार्तिकं त्रिचुरशब्दसे परे हायनशब्दके न को ण हो । परन्तु वयो वाचकस्य=अवस्था विशेषके रहते ही हायनसे ङीप् न को ण इष्ट है । इत्यनेन णत्वम् । वयसोऽन्यत्र आयुविभागसे भिन्न स्थलमें त्रिहायना शब्दसे परे हायनको ङीप् णत्व न हो । अतएव द्वौ हायनौ यस्याः

चेष्यते) त्रिहायणी चतुर्हायणी, वयसोऽन्यत्र-त्रिहायना चतुर्हायना। शाला।। अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ।४।१।३२। नान्तत्वान्ङीप्। अन्तर्वत्नी पतिवत्नी। गर्भभर्तृसंयोग एवेष्यते। अन्यत्र तु अन्तरस्त्यस्यां शालायां घटः। पतिमती पृथिवी ।। पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ४।१।३३। वसि-

---

सा। धर्मशाला के दो वर्ष वय न होनेसे न ङीप् किन्तु टाप् एवं त्रिहायना गोशाला चतुर्हायना अश्वशाला आदिः।

अन्तर्वत् और पतिवत् शब्दको स्त्रीलिङ्ग प्रकाशक नुक् [न] हो वह प्रत्यय नहीं कित्से आगम है। अन्त अवयव। मतुप् निपातन, ऋन्नेभ्यः नान्तङीप्। (अन्तर्वत्नी) गर्भिणी अर्थमें जीवद्भर्तृकायां=पतिदेवता जीवित हों तब प्रकृतिभागी=अन्तर्वत् पतिवतका निपातन [कल्पना] नुक्सहित मान्य हो। किसमें क्या निपातन है। तब बोले=तयोर्मध्ये दोनोंके बीच अन्तः=आभ्यन्तरे भीतर पेटमें अस्ति अस्यां [है इसमें गर्भ] इति विग्रहें मतुप् न प्राप्नोति कथं न प्राप्नोति। अतः कथितं मूले अन्तः शब्दस्य=अन्तः शब्दमें अधिकरण [आधार अर्थकी] शक्ति प्रधान होनेसे मतुप् नहीं होगा। वह तो अस्ति अर्थके समानाधिकरण अभेदसम्बन्ध प्रधानतामें होता है। समानाधिकरण अभेदसम्बन्धके अभावसे अप्राप्त मतुप्का निपातन [कल्पना] भी करता है। अस्ति कर्ता [कारक प्रधानता] में प्रथमान्तसे मतुप्का विधान्। यथा: गौः अस्यास्ति गोमान्। अस्ति क्रियाका प्रथमान्त गौः के साथ अभेदसम्बन्ध, अतो मतुप्।

अन्तः का अस्यां सप्तम्यन्तसे सम्बन्ध, कर्ता [कारक] से नहीं। अन्तर्मत् नू मादुपधायाश्च मस्थाने व। नान्तङीप्। अन्तर्वत्नी। पतिः अस्याः अस्ति, ति का अर्थ कर्ता, उसका पतिसे अभेदसम्बन्ध तदस्यास्ति अस्मिन्सम्बन्धे अर्थ मतुप्, मस्थाने व निपातन-सूत्रेण कल्पना। मादुपधात्परे नास्ति। वत्वमप्राप्तं निपात्यते पतिवत्नी। प्रत्युदाहरण विपरीत दृष्टान्त [गर्भिणी स्त्रीके लिये ही प्रयोग होगा] गर्भिणी नास्ति, न मतुप्। यथा अन्तः अस्ति अस्या शालायां घटः [भवनके भीतर घड़ा] विग्रह ही रहा, न मतुप्। जीवितपरिस्थितिमें वत्वकी कल्पना। यत्र पतिजीवितं निश्चितं नास्ति तत्र वत्वं न। पतिमतीपृथ्वी। अत्र मस्थाने न वत्वम्।

पत्युः—षष्ठी। नकारे अकारः उच्चारणाय। स्त्रीका अधिकार पति शब्दके अन्त्य अलको नकार आदेश हो, यज्ञके सम्बन्धमें। यज्ञफलग्राहिणी। स्वामित्व सम्बन्धसे फल भोगनेवाली हो। यथा वशिष्ठस्य पत्नी वशिष्ठकर्तृकयज्ञफलभोक्त्री अर्थं पत्युर्नो यज्ञसंयोगे इस्थाने नकारादेशे नान्तङीप्। ननु यज्ञकर्ता वशिष्ठः फल भोक्ता स एव भवतु न, तु तस्य स्त्री [स्वर्गकामःमें पुलिङ्गसे पुरुष ही अधिकारी हैं) तदा कथितं दाम्पत्योः—स्त्रीपुरुषयोः सहाधिकारात्-एकसाथ समानाधिकारः। पूर्वमीमांसामें दाम्पत्योः सहाधिकारः सिद्धान्तितः।

विभाषा। पत्युर्न अनु०। प्रातिपादिक षष्ठ्यन्त, पत्यु। का विशेषणः तदन्त विधि। पूर्वेण सहितः सपूर्वः तस्य समुदायस्य। पतिशब्द अन्तमें हो सपूर्वस्य पूर्वा-

ष्ठस्य पत्नी ॥ **विभाषा सपूर्वस्य** ।५।१।३४। पति शब्दान्तस्य नो वा। गृहपतिः, गृहपत्नी । दृढ़पत्नी दृढ़पतिः ॥ **नित्यं सपत्न्यादिषु** ।४।१।३५। सपत्नी एकपत्नी वीरपत्नी ॥ **पूतक्रतोरै च** ।४।१।३६। पूतक्रतोः स्त्री–पूतक्रतायी ॥ **वृषाकप्यग्निकुसितकुसिदानामुदात्तः** ।४।१।३७। एषामुदात्त ऐ आदेशो ङीप् च। वृषाकपेः स्त्री वृषाकपायी। अग्नायी कुसि·

यवसहितस्य प्रातिपदिकस्य अन्त्यालः स्थाने नकार आदेशः। बिना यज्ञसंयोगके अप्राप्त विभाषा। यथा पाति रक्षति पतिः, गृहस्य पतिः गृहपतिः (घरका रक्षक) पतिशब्दान्तः सपूर्वः (गृहसहितः) प्रातिपदिकमस्ति इस्थाने 'न' आदेशे। ऋन्नेभ्यो ङीप् (गृहपत्नी) दृढ़: अटल: पतिः रक्षकः पालकः यस्याः सा दृढ़पतिः दृढपत्नी : ङीप न' आदेशे, विकल्पश्च इष्टः।

नित्यं। विषय सप्तमी, सपत्नी आदिके विषयमें उसकी सिद्धिके लिये पतिशब्दके अन्त्य अल्-इको नित्य नत्व हो। पूर्वविकल्प=विभाषा सपूर्वस्यके विकल्पको बाधकर। सूत्रका आरम्भ ही नित्यमें प्रमाण होता, नित्यग्रहण सुस्पष्ट ज्ञानके लिये। ननु समानः पतिर्यस्याः सा सपत्नी (सौतन) यहां समानको स आदेश सम्भव नहीं है वोपसर्जनस्य वैकल्पिक 'स' करता है, अतः बोले समानशब्दको स आदेश भी निपातनसे (कल्पना) सपत्न्यादिगणमें समान एक, वीर भ्रातृ, पुत्र ये पढ़े गये हैं। समान—शब्दसे बहुव्रीहिः। निपातनेन नित्यं स भावः। एकः पतिर्यस्या सा एकपत्नी। एकपतिशब्दस्य अन्त्य स्थाने न आदेशे ङीप्। समानपति शब्दसे विकल्प नकारादेशको बाधकर नित्य नत्व। समानस्य स भावः। पति शब्द विवाहविधिनां स्वीकृतः स्वामी। वीरः पतिर्यस्या सा वीरपतिशब्दस्य नत्व आदेशे ङीप्।

पूतक्रतु शब्दसे स्त्री अर्थमें ङीप् हो। प्रकृति—पूतक्रतुके अन्त्य अल्कों ऐ आदेश हो। इयं (त्रयाणां सूत्राणां समाहारः) त्रिसूत्री तीनसूत्र, पुंयोग—पुरुष सम्बन्धका स्त्रीत्व कहना हो ऐ औ आदेश हो। यथा पूतक्रतायी (गौरी लक्ष्मी) जिससे क्रतवः यज्ञाः पूताः सफलाः भवन्तु। पूतक्रतुः शङ्करः विष्णुश्च। तस्य स्त्री अत्र पूतक्रतुशब्दे तकारस्य उकारस्य ऐकारे पुंयोगे ङीप। प्रमाण रूपमें यथा तु क्रतवः कहा। **वृषाकपि**—(शङ्करः विष्णुः) अग्नि कुसित कुसिद इनके अन्त्य अल् को 'ऐ' उदात्त आदेश हो। ङीप् भी। वृषाकपेः शङ्करस्य स्त्री पार्वती अर्थे वृषाकपिशब्दात् उक्तसूत्रेण अन्त्य अल् इस्थाने ऐ आदेशे ङीष् (ई) आय् आदेशे। वृषकपायी। श्रीः लक्ष्मी गौरी प्रलयङ्करी अर्थ·। अग्नेः स्त्री अग्नायी। अग्निर्मूर्धा अग्निशब्दः अन्तोदात्तः ऐकार अन्तादेशः आय्। कुसित·कुसिद-देवता नाम। प्रातिपदिकमन्तोदात्तः ङीप् ऐकारः आय्। कुसितायी देव-स्त्री। कुसित-कुसिद शब्द मध्यह्रस्व है। मध्यदीर्घ नहीं अन्यथा—लघावन्ते मध्योदात्तः स्यात्। **मनुशब्दके** अन्त्य अल् उ को औ आदेश उदात्त हो या ऐ आदेश हो। दोनोंके सन्नियोग—सम्बन्धमें ङीप् भी हो। सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः। (किञ्च मनुष्वदत) मनु शब्दः आद्युदात्तः। मनोरौ वा इति औकारे ङीप्। अवादेशे मनावी।

तायी कुसिदायी । **मनोरौ वा** ।४।१।३८। मनुशब्दस्यौकारादेशः स्यादुदात्त ऐकारश्च वा, ङींप् च । मनोः स्त्री मनावी मनायी मनुः ।। **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः** ४।१।३९। वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्ताद्वा ङीप्, तस्य नः । एनी, एता । रोहिणी, रोहिता । **षिद्गौरादिभ्यश्च** ।४।१।४१। ङीष् । नर्तकी गौरी । अनड्वाही, अनडही (पिपल्यादयश्च) आकृतिगणोऽयम् । (मत्स्यस्य ङ्याम्) यलोप, मत्सी ।। **जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादना-**

यदा एकारः तदा आय् आदेशे मनायी । यदा उभयं न, तदा ङीष् अपि न । मनु। मन् धातोः सृस्वृन्आदिना उप्रत्ययः ।

वर्णात्--चित्र विचित्र या रक्त नीलपीत आदि वर्णवाची जो अनुदात्तान्त==अनुदात्तः अन्ते यस्य (अनुदात्त हो अन्तमें जिसके) तोपधः==तकार हो उपधामें तदन्तात==वैसा शब्द अन्तमें हो अनुपसर्जनात्=उपसर्जन=विशेषण न हो ऐसे प्रातिपदिकसे विकल्पसे ङीप् हो 'त' के स्थानमें 'न' आदेश भी हो । एतत्वगुण बिशिष्टा स्त्री (चित्रं किर्मीरकल्माषं सबलैताश्च कर्बुरे) विचित्रवर्णवाची एत शब्दः अनुदात्तान्तः तणतिनितान्तानाम् आदिः उदात्तः । अन्त्य अकारो अनुदात्तः अनुपसर्जन=अविशेषण भी है, उपधामें तकार है, अतः वर्णादनुदात्त सूत्रेण ङीष्, तकारस्य नकारे, (एनी) सु तस्य हल्ङ्यादिलोपे, ङीप् । अभावपक्षे टाप् एता (चितकबरी हरिणी) रोहितत्वगुणविशिष्टा स्त्री रोहिणीं (रोहितो लोहितो रक्तः इत्यमरः) लाल रङ्गवाली रक्तवर्णवाची अनुदात्तान्त,-तोपध-, अनुपसर्जनप्रातिपदिकरोहित शब्दात् ङीष् । तकारस्य नकारे णत्वे । पक्षे रोहिता गौः ।

जानपद कुण्ड-गोण-स्थल-भाजन-नाग-काल-नील-कुश-कामुक-कबर एभ्यः एकादशभ्य=ये ग्यारह प्रातिपदिक हैं इनसे ङीप् तब हो, जब वृत्ति आदि अर्थ क्रमसे हों । जैसे—वृत्तिः जीविका, कुण्डी (अस्त्री कमण्डलुः कुण्डी इत्यमरः) अमत्र, आपवन, अकृत्रिम, श्राणा, स्थुलाः, बर्ण, अनाच्छादन, अयोविकार, मैथुनेच्छा, केशवेश, अर्थमें । यथा जनपदे भवा जानपदी वृत्तिः (जीबिका) वर्तते जीवनं अनया नगरमें) जनपदशब्दात् वृत्तिबोधने अर्थे ङीप् आदिः । अन्या (जीविका) अर्थ नही हैं तब जनपदे भवा उत्पन्ना स्त्री, अर्थे उत्सादिभ्य सूत्रेण अञ् टिड्ढाणञ् ङीप् जानपदी शहरीबाला । कुण्डी कुण्डशब्दात् अमत्रे अर्थे (पात्राऽमत्रे च भाजनं, पिठरं, स्थाली उखाकुण्डमित्यमरः) कूंड़ी, कुडव, वर्तन, अर्थमें कुण्डशब्दात् जानपद इत्यादि सूत्रेण ङींष् विधिसे स्त्रीलिङ्ग भी हैं । पिठरे तु नना कुण्डमिति विश्वः । अन्या=जो अमत्र (पात्रविशेष) नहीं है । किन्तु क्रियारूप है । वहां टाप् कुण्डा (दहनीया) क्योंकि कुडि दाहे इकार इत्संज्ञक कु धातुका जलानेकी क्रिया अर्थः । गुरोश्व हलः गुरुमान (दो मात्राकी संज्ञा) और हलन्त धातुसे अ-प्रत्य हो । भाव और कर्मके स्त्री अर्थमें टाप् कुण्डा । न कहिये कि (अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलक) इस प्रकार का मनुष्य जातिवाचक कुण्डशब्दको प्रत्युदाहरण क्यों न माना जाय । परन्तु मनुष्य

योविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु ।४।१।४२। एभ्य एकादशभ्यः क्रमाद् वृत्त्यादिष्वर्थेषु ङीष्। जानपदी वृत्तिश्चेत् । अन्या तु जानपदा। अजन्तत्वात् ङीपि आद्युदात्तः। कुण्डी अमत्रं चेत्। कुण्डाऽन्या। गोणी आवपनं चेत्। गौणाऽन्या। स्थली अकृत्रिमा चेत्। स्थलाऽन्या। भाजी श्राणा चेत्। भाजाऽन्या। 'यवागूरुष्णिका श्राणा विलेपी तरला च सा' इत्यमरः। नागी स्थूला चेत् नागाऽन्या। काली वर्णश्चेत् कालाऽन्या। नीली अनाच्छादनं चेत् नीलाऽन्या। नील्या रक्ता शाटीत्यर्थः। कुशी अयोविकारश्चेत्। कुशान्या। कामुकी मैथुनेच्छा चेत्। कामुकाऽन्या। कबरी केशानां सन्नि-

---

जातिवाची होनेसे जातिलक्षण (जातेरस्त्रीसे) ङीष् भवत्येव=होता ही हैं।

नित्य स्त्रीलिङ्गमें प्रमाणं, गोणी-गोणशब्दात् स्त्री अर्थं जानपद-सूत्रेण ङीष्। आवपन (जो बोया जाय बीज) अर्थमें ओप्यतेनिक्षिप्यते अस्मिन् क्षेत्रे आवपनम् आङ्पूर्वक वपधातोः ल्युट् ङीष्। गोणी गोड़ा (जोता) हुआ खेत जिसमें बीज बोना है। अन्या=जहां खेत अर्थ नहीं है। वहां गोणा (गोणस्य स्त्री किसीका नाम। स्थली स्थलशब्दात् अकृत्रिमा सत्यवचन अर्थमें ङीष्। सैषा (स्थली) अत्र विचिन्वता त्वां (यह वही स्थान है जहां तुम्हे ढूंढता गया) वास्तविक भूमि होनी चाहिए। कृत्रिमाका लक्षण (पुरुषपरिष्कृता भूमिः) उद्यान, कुञ्ज, खेत आदि उससे भिन्ना अकृत्रिमा। जहां बनावटी सजी भूमि हो उसको (स्थला) टाप। यजुर्वेद (स्थलयोदकं परिगृह्णन्ति पुरुषेण सस्कृताः। भज्यते सेव्यते या सा भाजी (सोवापालक) श्राणा (श्रा पाके पकानेकी भूतकालक्रिया अर्थमें) क्त निष्ठा त को न, णत्व अपक्वा (पकी न हो तब भाजा, टाप् अश्राणा अपक्वा यवागू। उष्णिका श्राणा चाय जुस आदि। नागी स्थुलाचेत् यदि मोटी नागिन हो, तब ङीष् नागी। स्थूलअर्थ न हो तब नागा।

कालः गुण अस्यास्ति काली। (शुक्लादयः पुंसि) वर्णा सन्ति अस्य (अर्श आद्यच्) टाप् काला। क्रूरसंख्याशब्दः कालः। नीलशब्द अनाच्छादनं=आवरण चादर, क्षत न हो तब ङीष् हो जाय। नीली गौः आच्छादन नहीं है। अन्या आच्छादनेऽर्थं नीला शाटी वर्णवती। नील्या रक्तपटी, नील्या ओषध्या राग विशेषं प्राप्ता नीली साड़ी आच्छादन हैं वहां टाप् रक्ता लाल वर्णकी।

कुशी अयोविकारश्चेत्=लोहेकी बनी वस्तु फरसा, कुदाल, कील, खुरपी आदि। अन्या=लोहेका विकार न हो वहां टाप, कुशा। छन्दोगसूत्रसे स्तोत्रगणनार्थं औदुम्बराः शकवः कुशाः गूलरकी छोटी खूंटीको कुशा कहते हैं। अथवा यज्ञियस्य खदिरस्य कुशाः कारयेत् प्रादेशमात्रीः। कामुकी कामयितुं संगमयितुं शीलं स्वभावो अस्याः। प्रति अगपर काम उछल रहा हो। कमधातोः उकञ् कामुकमिथुनं स्पर्शसुखमिच्छति अर्थं ङीष् कामुकी मैथुनेच्छावती। अन्या=मैथुन=संगमसुखभिन्ना वस्त्रधनाभूषण-इच्छावती। केश का सन्निवेश वालोंका शृङ्गार अर्थ हो ङीष् कबरी घुंघरालक वाली। अन्यत्र कबरा चित्रविचित्रा।

वेशश्चेत्, कबरान्या ॥ **शोणात्प्राचाम्** ।४।१।४३। शोणी, शोणा ॥ **वोतो गुणवचनात्** ।४।१।४४। उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीष् । मृद्वी, मृदुः । उतः किं? शुचिः । गुणेति किम्? आखुः (खरुसंयोगोपधान्न) खरुः, पतिंवरा कन्या ।

शोणात् प्राचीनके मतमें शोणसे भी=ङीष् हो । लोहितो रोहितो रक्तः शोण-कोकनदच्छविः इत्यमरः । लालरंग अर्थ है वर्णानां तणतिनितान्तानां–शोणशब्दः आदिः उदात्तः । अतो ङीष् नित्यं प्राप्तः विकल्पविधानम् ।

वोत वा–उत् इतिच्छेदः । उकारान्त हो, गुणवाचक हो, ऐसे शब्दसे स्त्रीलिङ्ग बोध विवक्षामें ङीष् विकल्पसे हो । मृदुत्व गुणविशिष्टा स्त्री मृद्वी (कोमलाङ्गिनी) उकारान्त कोमलतागुणरूप अर्थवाचक मृदुशब्दात् वोतो गुणवचनात् सूत्रेण ङीष् मृदु+ई, उकारस्य यण मृद्वी । यदा न ङीष तदा मृदु (मुलायम शरीर) एवं पटुत्वगुणविशिष्टा स्त्री (चतुराईसे भरी हुई) पट्वी पटु । तनुत्व=कृशता गुणविशिष्टा स्त्री तन्वी ।

भाष्ये-सत्वे निविशतेऽपैति पृथग्जातिषु दृश्यते । आधेयश्चा=क्रियाजश्च सोऽसत्वप्रकृतिर्गुणः इति गुणलक्षम् । सत्वं द्रव्यं समवायिकारणं–सत्वे निविशते=गुण सम्पूर्णद्रव्यमें समवाय (अभेद) सम्बन्धसे रहता है । सत्ता जाति अलग है क्योंकि वह द्रव्य; गुण; क्रिया तीनोंमें है । यदि ऐसा तब द्रव्यके द्रव्यत्वमें गुणका लक्षण चला जायेगा तब बोले अपैति=अपगच्छति कुछ द्रव्योंसे अलग भी होता है—जैसे–सुगन्धी, रहेगी, हटेगी भी । द्रव्यत्व सभी द्रव्यमें नित्य है अपगमन (निकलता) नहीं, गुणसे अलग भी जैसे—पीला फल नीला हो जाय । द्रव्यत्व-द्रव्यसे अलग नहीं होता । परन्तु यह लक्षण गोत्वमें जायेगा । गोद्रव्यमें जाति है वह गोत्व अश्वसे अलग है । तदाऽवदत् (पृथग्जातिषु दृश्यते) गुण अनेकद्रव्यमें देखा जाता है । पृथक-२ जातयः अनेक जातिवाले द्रव्यमें है । गोत्व केवल गौः में रहेगा, घोड़ेमें नहीं । गुण श्वेत, रक्त, श्याम अनेक जातिवाले द्रव्यमें रहते हैं । गुणलक्षण नानाजातिषु दृश्यते बादलमें दृढ़ श्यामता तृण पर भी दृष्ट है । इस प्रकार सम्पूर्ण लक्षण क्रिया में घट सकती है । क्रिया भी द्रव्यमें रहती है अलग होती है । नानाजातिवाले द्रव्य में रहती है । तब बोले आधेय–आधीयते उत्पाद्यते उत्पाद्यः जैसे—घटमें पाकजन्य रूप उत्पाद्य है । अक्रियाजः–क्रियया जायते क्रियाजः उत्पन्नः न क्रियाजोऽक्रियाजः अनुत्पाद्यः । गुणक्रियासे पैदा नहीं होता । इससे सिद्ध है कि नित्यवस्तुमें नित्य है । अनित्यमें अनित्य । परन्तु ये सभी गुणके लक्षण द्रव्यमें भी घट सकते हैं तब बोले कि असत्वप्रकृतिः==सत्वस्य द्रव्यस्य प्रकृतिः स्वभावः तस्माद्भिन्नः अतो जातिक्रिया=द्रव्य=भिन्नः सन् समवाय सम्बन्धेन (द्रव्ये) स्थिति गुणः । आकडार सूत्रभाष्ये । समास-कृदन्त-तद्धितान्त-अव्यय-सर्वनाम-जाति-सङ्ख्या-संज्ञा शब्दव्यतिरिक्ता अर्थवान् शब्दरूपको गुण मान्य । उतः किम् ? उकारान्तसे ङीष क्यों ? सुचि-में इकारान्तसे ङीष् न हो । शुक्ल-शुभ्र-सुचि-श्वेत-विषद्-श्येन-पांडुरा इत्यमरः । गुणवाची क्यों कहा ? आखुः मूषिका चूहिया द्रव्य है गुण नहीं, ङीप् न हो । मृदुपटु आदि गुण

पाण्डुः ॥ **बह्वादिभ्यश्च** ।४।१।४५ वा ङीष् । बह्वी, बहु (कृदिकारादक्तिनः) रात्री, रात्रिः (सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके) शकटी, शकटिः ॥ **पुंयोगादाख्यायाम्** ।४।१।४८। या पुमाख्या पुंयोगात्स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् । गोपस्य स्त्री-गोपी (पालकान्तान्न) गोपालिका अश्वपालिका (सूर्याद्देवतायां चाप् वाच्यः) । सूर्यस्य स्त्री देवता-सूर्या । देवतायां किं ? सूरी, कुन्ती, मानुषो-

---

सहित द्रव्यवाचक है केवल गुण नहीं। तथापि गुणवचनमहःसंज्ञाके सामर्थ्यसे मान्य। गुणसहित द्रव्य विवक्षित हैं केवल रूप आदि ही नहीं। खरुशब्द और संयोग उपधामें हो, तब वोतो गुणवचनात्से ङीप् न हो। खरुशब्दो अप्रसिद्धः अतः पतिं वृणोति पतिम्बरा कन्या (पतिलाभाय उत्सुका) उत्कण्ठालक्षणगुणसहित--द्रव्य कन्याके होनेसे खरुको ङीष् प्राप्तः। उसका निषेध। संयोग उपधामें पाण्डुः=सफेद रङ्गसे ङीष्का निषेध।

बह्वादिभ्यः—बहुआदिगणमें पठित शब्दसे ङीष् हो। यहाँ बहुशब्द वैपुल्य= अधिक अर्थ कहते हुए एकवचनान्त है यह अधिकता (एकी आधार)में विद्यमान हैं। बहुरोदनः, बहुसूपा, बहुज्ञानम्। जैसे पञ्च आदि शब्द अधिक अर्थको कहते हुए बहुवचनान्त रहते हैं, ऐसा यहाँ नहीं है। तीन संख्यासे बहुत्व स्वीकृत है। दो, एक, में असम्भव है बहुत्वगुण विशिष्टा स्त्री (बह्वी) बहुशब्दात् ङीष्, उकारस्य यण् बह्वी। पक्षे प्रकृतिभावः (बहु) जैसा था वैसा रहा। (ग) 'किद्' क्तिन् प्रत्ययके अवयवसे भिन्न हो, कृत्सम्बन्धी हो, ऐसा जो इकार, तदन्त शब्दसे ङीष् विकल्पसे हो। रतिं ददाति स्त्रीपुरुषाभ्यां या सा रात्री। जो सबको आराम दे। राधातोः रासादिभ्यस्त्रिप् (त्रि) रात्रि शब्दसे ङीष् यस्येति च इकारलोपे। रात्री। पक्षे प्रकृतिभावः रात्रिः अंगुलिः, अंगुली। धूलिः धूली, (ग) सर्वतः क्तिन्नर्थात्== क्तिन् अर्थ प्रत्ययके अवयवसे भिन्न इकारान्त प्रातिपदिकसे ङीष् हो इत्येके ऐसा किसी आचार्यका मत है। इस वार्तिकसे अव्युत्पन्न इकारान्तसे ङीष् सिद्ध है। शकटी छोटी गाडी, यह इकारान्त है क्तिन् प्रत्ययसे भिन्न है, वार्तिकसे ङीप् इलोपे। पक्षे प्रकृतिभावः। **पुंयोगात्**==पुरुषके योग सम्बन्धमें आख्यायां-प्रसिद्धायां या पुमाख्या जो शब्द पुरुषके अर्थमें प्रसिद्ध हो। पुरुषके सम्बन्धसे स्त्री अर्थ निकलता हो, ऐसे शब्दसे ङीष् प्रत्यय। यहां योगशब्दसे दाम्पत्य सम्बन्ध, जन्य-जनकभाव, आदि साधारण सम्बन्ध समझें यथा—गोपशब्दपुलिङ्गमें प्रसिद्ध है, किन्तु गोपस्य स्त्री कहने पर पतिपत्नीभाव स्पष्ट हो रहा है। वहीं गोप-शब्द स्त्रीके लिए भी प्रयुक्त है। इस दशामें गोपशब्दात् ङीष्, अलोपे गोपी। एकवचने 'सु' तस्य हल्ङ्यादि लोपे। यहां पुरुष सम्बन्ध मुख्य है। जाति नहीं, गोपसे सम्बन्ध जोड़नेवाली कोई भी स्त्री गोपी है। इसी प्रकार शूद्रस्य स्त्री शूद्री। वह चाहे जिस जातिकी हो। जन्यजनकभाव, सम्बन्ध भी ग्राह्य है। इसलिए केकय, देवक, रेवत, सम्बन्धिकन्या भी केकयी, देवकी, रेवती शब्दोंसे ङीष् हुआ। (वा०) पालक शब्द अन्तमें हो और पुंयोगे=पुरुष अर्थ कहता हो वही

यम् ॥ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ।४।१।४६। ङीष् च । इन्द्राणी (हिमारण्योर्महत्त्वे) महद्धिमं हिमानी (यवाद्दोषे) दुष्टो यवो यवानी (यवनाल्लिप्याम्) यवनानां लिपिर्यवनानी (मातुलोपाध्याययोरानुग्वा) मातुलानी, मातुली। उपाध्यायानी, उपाध्यायी (आचार्या-

---

शब्द स्त्री अर्थ भी कहे, उस सम्बन्धमें ङीष् हो। गाः पालयतीति गोपालः, स एव गोपालकः तस्य स्त्री गोपालिका (गाय पालन करने वाले की स्त्री) पालकान्त गोपालक शब्दात् पुंयोगे अर्थे ङीष् प्राप्तः, पालकान्तान्न इति वार्तिकेन निषेधे। ततः अदन्तत्वात् टाप् गोपालक आ। दीर्घ इत्व।

(वा०) सूर्य शब्द देवताजातिकी स्त्री रूप अर्थसे पुंयोग=पुरुष सम्बन्ध होने पर चाप्=आ प्रत्यय वाच्यः कहे। सूर्यस्य स्त्री देवता इत्यर्थे सूर्यशब्दात् पुंयोगे स्त्रीलिङ्ग विवक्षायां प्राप्तं पुंयोगादाख्याम् इति ङीषं बाधित्वा वार्तिकेन चाप्। सूर्य आ अकारलोपे सूर्या। देवतायां किम्? सूर्यमें देवता अर्थ क्यों कहा। इसलिए कि मनुष्य अर्थमें चाप न हो। (वा०) सूर्य और अगस्त शब्दके यकारका लोप हो छ और ङी प्रत्यय परे। सूर्यस्य स्त्री मनुष्य जातीया सूरी (कौन है) तो कुन्ती यह मानुषी है। मनुष्य जातिकी स्त्री अर्थमें विद्यमान सूर्यशब्दसे पुंयोगलक्षण ङीष्। अलोपे वार्तिकेन यकारलोपेच। छ परे आगस्तीयम्।

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड हिम, आरण्य, यव, यवन, मातुल, आचार्य, इन शब्दोंसे ङीष् हो आनुक=आन आगम भी। कित्से अन्तमें होता है। इन्द्रस्य स्त्री इन्द्रकी स्त्रीको इन्द्राणी कहते हैं इन्द्र शब्दात् पुंयोग लक्षण ङीष्। आनुक् आगमे च उक इत् (इन्द्र आन ई) सवर्णदीर्घ, णत्वे। वरुणकी स्त्री वरुणानी, भवस्य स्त्री भवानी शंकर की पत्नी। सर्व रुद्र मृड़ ये शंकर जी के नाम हैं उनकी स्त्री शर्वाणी रुद्राणी, मृडानी, इन रूपोंकी सिद्धि पुंयोगमें ङीष् आनुक् करके होगी। (वा०) हिम (बर्फ) अरण्य==जंगल शब्दसे तभी ङीप और आनुक हो जब महत्व विशालता हो। बड़ा जंगल, भारी हिम अर्थमें, थोड़ा या छोटा अर्थ हो तब नहीं। महद्हिमं हिमानी अपारबर्फ। महद् अरण्यं अरण्यानी विशालजंगल। यहां हिम और अरण्य शब्दसे महत्व अधिक अर्थमे ङीष् आनुक हुए। (वा०) यवशब्दसे दोष अर्थमें ङीष् आनुक हों। दुष्ट (घुना, सड़ा) जौ (अन्न विशेष) अर्थमें यवशब्दात् ङीष् आनुक (निर्दोष जौ यवानीं होगा। (वा०) यावनात्==यवनशब्द लिपि अर्थ में वर्तमान हो तभी ङीष् आनुक् हो। यवन (मुसलमान) की लिपि (अक्षर वर्ण) को यवनानी [उर्दू अरवीकी लिपिली जायेगी। यवनकी स्त्री नहीं। वहां यवनस्य स्त्री यवनी होगा। [वा०]मातुल=मामा, उपाध्याय, गुरु अध्यापक, इनसे आनुक् विकल्पसे हो। मातुलस्य स्त्री मातुलानी, [मामी] इस वार्तिकमें वाशब्द प्राप्ताप्राप्तविभाषा है। मातुलमें आनुक प्राप्त है। उपाध्यायमें अप्राप्त है। मातुर्भ्राता मातुलः तस्य स्त्री अर्थे मातुलशब्दात् इन्द्रवरुण इत्यादि सामान्य सूत्रेण ङीष् आनुक्

दणत्वं च)। आचार्यानी (अर्यक्षत्रियाभ्याँ वा स्वार्थं) अर्याणी अर्या। क्षत्रियाणी, क्षत्रिया। पुंयोगे तु अर्यी। क्षत्रियी **क्रीतात्करणपूर्वात्** ।४।१।५०। क्रीतान्ताददन्तात्करणादेर्ङीष्। वस्त्रक्रीती। क्वचिन्न-धनक्रीता ॥ **बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्** ।४।१।२५। क्तान्तान्ङीष्। ऊरुभिन्नी अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा

वार्तिकेन विकल्प्यते। उपेत्य अधीते अस्मात् इति उपाध्यायः तस्य स्त्री [इङश्च इति अपादाने घञ्] उपाध्यायशब्दात् आपदाने स्त्रियामुपसंख्यानम् इति 'वा'ङीष् वार्तिकेन वा आनुक् उपाध्यायानी। आनुक् अभावे उपाध्यायी। ङीष् अभावे उपाध्याया। आचार्यस्य स्त्री इति विग्रहे आचार्यशब्दात् इन्द्रवरुण आदिसूत्रेण पुंयोगेङीष् आनुगागमें अत्र णत्वे, प्राप्त [वा०] आचार्य शब्दसे ङीष् आनुक् हुआ हो तब णत्व नहीं होता। इति निषेधः। आचार्यलक्षणम् आचिनोति च शास्त्राणि आचारे स्थापयत्यपि। स्वयमाचरते स्मात् स्मदाचार्य इष्यते। यह शिष्टवचन है धर्मशास्त्रेतु—उपनीय यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्विजः सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्य प्रचक्षते। या स्त्री स्वयमेव आचार्यगुण सम्पन्ना। जो स्त्री स्वयं पढ़कर आचार्य कक्षा पास कर चुकी हो वह आचार्या है। स्यात् आचार्यापि च स्वतः इत्यमरः। [वा०] अर्य और क्षत्रिय शब्दसे स्वार्थमें ङीष् और आनुक्विकल्पसे हो। अर्याणी [वैश्य कुलकी स्त्री] वार्तिकसे ङीष् आनुक्। पक्षमें टाप आर्या। यदि पुंयोगमें ङीष् हो तब आर्यी। [अर्याणी स्वयम् अर्या स्यात्], क्षत्रिया क्षत्रियाण्यपि पूर्ववत्सिद्धिः।

क्रीतात्--क्रीत् शब्द अन्तमें हो करणपूर्वात्=करण कारक आदिमें हो। स्त्री लिङ्ग विवक्षामें ङीष् हो। वस्त्रेण क्रीता [कपड़ेसे खरीदी गयी स्त्री] [उपयोगार्थ] वस्त्रक्रीति। [कर्तृकरणे कृता बहुलं] सूत्रसे गतिकरकोपपदानां कृद्भिः सह समास वचनं प्राक्सुबुत्पत्तेः। इस परिभाषासे सुप्के पहले समास हुआ। वस्त्रक्रीत प्रातिपदिकसे क्रीतान्त अदन्त करणादिना स्त्रीत्वविवक्षा मानकर ङीष् हुआ। क्वचिन्न--बहुलग्रहणसे परिभाषा कहीं नहीं भी लगती। सुप् उत्पत्ति के बाद समास होने पर अन्तरङ्ग मानकर टाप् होगा। तब समास करने पर धनक्रीता यही बनेगा। अब आकारान्त न मिलनेसे ङीष् नहीं होगा। धनेन क्रीता धनक्रीता धनसे खरीदी गयी स्त्री।

बहुव्रीहे--क्ताद्, अत्, अनु०। बहुव्रीहि समासमें क्त अन्तमें हो, अकारान्त हो, अन्तोदात्त हो, तब स्त्रीअर्थप्रकाशक ङीष् हो। जातिवाचकशब्द पूर्वमें रहे तब ङीष् कहें। यह वार्तिकका अर्थ है। तेन=जातिवाचक शब्द पूर्वमें ही ऐसे विशेषणसे (बहु नञ सु-काल-सुख आदि पूर्व हो तब) ङीष् नहीं होता। सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायां जातिकालसुखादिभ्यः अनाच्छादनात् इत्यादौ न। उरुभिन्नी। उरूभिन्नौ असंयुक्तौ [जङ्घे सटे न हों] यस्याः बहुव्रीहेश्चान्तोदात्त इति सूत्रेण ङीष् आदिः।

।४।१।५३। पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्पोऽयम्। सुरापीती, सुरापीता॥ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ।४।१।५४। असंयोगोपधमुपसर्जनं यत्स्वाङ्गं तदन्ताद्वा ङीष्। अतिकेशी, अतिकेशा। चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। संयोगोपधात्तु सुगुल्फा॥ 'अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम् अतत्स्थं तत्र दृष्टं च तेन चेत्तत्तथा युतम्' ॥१॥ सुस्वेदा; द्रवत्वात्। सुज्ञाना;

अस्वाङ्ग—जो अपना अङ्ग न हो, पूर्वपद हो, उससे परे क्त अन्त बहुव्रीहि समाससे ङीष् विकल्प हो। पूर्वेण—बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्सूत्रसे नित्य ङीष् प्राप्त था। यह विकल्पविधानवास्ते। पुत्रहती अस्वाङ्ग विकल्पङीष् इति कैयटः। पुत्रशब्द जातिवाचक नहीं, अन्यथा पुत्रादिनीमें णिनि न होता। यदि अदनं आदः सो अस्याः अस्ति आदिनी पुत्राणामिदिनी पुत्रादिनी। जातिकाल—सुखादिभ्यः, अन्तउदात्त-विधायक सूत्र है। उसमें जातेः किं ? प्रश्नः किया कि पुत्राः जाताः। जातिलक्षणं-प्रादुर्भावविनाशाभ्यां, सत्वस्य युगपद्गुणैः। असर्वलिङ्गां बह्वर्थां तां जातिं कवयो: विदुः। सुरा मदिरा पीता पानं कृता यया सा। सुरा स्वाङ्ग नहीं है, पूर्वपद है, ङीष् सुरापीती। यदा न ङीष् तदा टाप्। जातिकाल सुखादिसे अन्तोदात्त, परनिपात।

स्वाङ्गात्-असंयोगोपधात्=न संयोगो, असंयोगः। स उपधायां यस्य तत्। संयोगसंज्ञक वर्ण उपधामें [अन्त्य अल्का पूर्व वर्ण] न हो उपसर्जनात्—अप्रधान, गौड़, विशेषण, परतन्त्र हो, और स्वाङ्गवाचक शब्द हो, तदन्तात्=वह शब्द अन्तमें हो ऐसे अदन्त प्रातिपदिकसे ङीष् विकल्प हो। यद्यपि स्वाङ्गका अपना अङ्ग अर्थ है। किन्तु परिभाषिक अर्थ सूत्रग्राह्य है। स्वाङ्गलक्षणं विलक्षणम्।

अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं, प्राणिस्थमविकारजम्। अतत्स्थं तत्र दृष्टं च। तेन चेत्तत्तथा युतम्। जो अद्रव—पिघला तरल न हो। मूर्तिमत्-रूपवान् साकार हो, प्राणीमें वर्तमान रहे, अविकारजम् किसी वस्तुका विकार न हो। इस लक्षणके अनुसार प्राणीका अवयव ही स्वाङ्ग सिद्ध है। अतत्स्थं—उसमें उत्पन्न न हो किन्तु उसमें दृष्ट हो। इस लक्षणके अनुसार केश आदि नही तट या कूड़में पड़े हों, वे वहां उत्पन्न नहीं हैं किन्तु वहां दृष्ट हैं। वह तट कूड़ा भी स्वाङ्ग है। प्राणीके समान मूर्तियोंका अङ्ग भी स्वाङ्ग है। यथा—केशान् अतिक्रान्ता अतिकेशी मूर्ति कन्या वा (इतनी काली है कि काले केशका भी अतिक्रमण कर गयी) अत्यादय' क्रान्ताद्यर्थं द्वितीययासे समास होने पर केश उपसर्जन है, प्राणीमें स्थित उत्पन्न, अद्रव, मूर्तिमान् है किसी अन्यका विकार नहीं। उपसर्जन (अन्यमें विशेषण) अङ्ग, तदन्त अदन्त प्रातिपदिक अतिकेश शब्दार्थः। उक्त सूत्रेण ङीष् विकल्पे। यदा न ङीष् तदा टाप्। अतिकेशा मूर्तिः स्वादिः चन्द्र इव मुखं यस्याः, चन्द्रमाकी तरह आह्लादक मुखवाली, चन्द्रमुखी—मुखशब्दके उपधामें संयोग नही है अन्यपदार्थं प्रधान बहुव्रीहिमें उपसर्जन भी है। प्रथम लक्षणके अनुसार स्वाङ्गवाची ऐसा मुखशब्दान्त

अमूर्तत्वात् । सुमुखा शाला; अप्राणिस्थत्वात् । सुशोफा, विकारजत्वात् । सुकेशी सुकेशा वा रथ्या, अप्राणिस्थस्यापि प्राणिनि दृष्टत्वात । सुस्तनी,

---

अदन्तप्रातिपदिक चन्द्रमुख शब्दसे ङीष् यस्येति अलोपे । यदा न ङीष् तदा टाप् चन्द्रमुखा । प्रथम उदाहरण द्वितीय लक्षणका स्पष्ट जान पड़ता है । असंयोगोपधात् किम् ? संयोगसंज्ञक उपधामें न हो ऐसा क्यों ? शोभनौ गुल्फौ यस्या सा । दर्शनीय घुठने है जिसके सुगुल्फा । [गुल्फ शब्दों घुटिका पर्यायः[तद्धि ग्रन्थिः घुटिके गुल्फौ इत्यलरः । इस निर्देशसे गुल्फशब्द स्वाङ्ग वाचक उपसर्जन होकर भी ङीष् न हो । अतः उपधामें संयोग पढ़ा ल, फ, का संयोग किन्तु टाप् । उपसर्जनात्किम् ? सूत्रमें उपसर्जन क्यों कहा ? इसलिए कि शोभना शिखा सुशिखा यहां न ङीष् । क्योंकि उपसर्जन (विशेषण) नही है । सुन्दर शिखा, ज्योति, शीङ्धातु से ख । ई का ह्रस्व शिख शब्दात् टाप् ।

स्वस्य अङ्गं स्वाङ्गं शरीरका अवयव, केश मुख इत्यादि । वह मुखे सुमुखा-शाला (भवनका सुन्दर द्वार) में भी स्वाङ्गका लक्षण घटनेसे ङीष् प्राप्तः अलक्ष्ये लक्षण गमनमतिव्याप्तिः मुख प्रधानभाग, शालाका अङ्ग होनेसे शोभनाः केशा यस्याः सा सुकेशी चमकीले काले केशवाली । रथ्या-रास्तेका कूड़ादान, यहां ङीष् नहीं होगा, केशके कूड़ेका अङ्ग न होनेसे । अतः बोले स्वाङ्गं त्रिधा—यहां पारिभाषिक (परिभाषासे निकला) स्वाङ्गका अर्थं त्रिप्रकारः त्रिधा । अद्रवं-मूर्तिमत्स्वाङ्गं, प्राणिस्थ मविकारजं (प्रथमलक्षण) न विद्यते द्रवो जलवत्, तैलवत् स्थितिः यस्य तत् अद्रवं ठोसबस्तु तरल पिघली नहीं, मूर्तिः, आकृतिः अङ्ग प्रत्यङ्ग-(सिर-पाद-मुख हस्त) आदिः अस्या अस्ति मूर्तिमत् अवयव=अङ्ग-अङ्ग समवाय (अभेद) सम्बन्धसे रहे जिसमें, वह द्रव्य आकृति मूर्तिमत् है । प्राणिनि तिष्ठति प्राणिस्थं, चेतनजीव वाले शरीरमें रहें अविकारजं—रोगादिविकारात् जातं उत्पन्नं (कूबड़ गलगण्ड जलोदर आदिः) विकारजं, न विकार्य अविकारजम् । ये चार विशेषता प्रथमलक्षण में है । एक-एकका उदारण—सु=शोभनः स्वेदः धर्मजनित=मृदुकं प्रस्रवो यस्याः सा सुस्वेदा (धूप लगनेसे पसीझता दुर्गन्धरहित पसीनावाली) शरीरसे पसीना प्राणिमें है रोगसे उत्पन्न नहीं । बूद खिसकनेकी आकृति भी है । परन्तु अद्रव नहीं, स्वाङ्ग नहीं ङीष् नही । मूर्तिमतका उदाहरण शोभनं ज्ञानं यस्या सा सुज्ञाना (तेज प्रभाव-शाली) अत्र न ङीष् । अद्रव है प्राणिस्थ है, विकारज है, किन्तु वह ज्ञान मूर्तिम-ल्लक्षण न घटनेसे स्वाङ्ग नहीं, ङीष् नहीं । प्राणिस्थ न होनेसे सुशोभनं मुखं प्रवेश-द्वार यस्याः सा अद्रव, मूर्तिमत् अविकारज है किन्तु प्राणिस्थ नहीं, न स्वाङ्ग, न ङीष् । सुमुखा शाला । विकार [रोगज] होनेसे सु अधिकः शोफः श्वयथुः [बहुत अधिक सूजन] यस्याः सा [जिसका शरीर सूजनसे भारी हो] विकारज होनेसे नस्वाङ्ग, न ङीष् । सुशोफा । अथ द्वितीयं स्वाङ्गलक्षणम् । अतस्थं तत्र दृष्टञ्च । तत् शब्द सर्वनाम, पूर्वमें प्राणि, चेतन जीवका परामर्श प्रस्तावक है । तस्मिन्

अतत्स्थं तत्र दृष्टं च तेन चेत्तत्तथा युतम्' ॥१॥ सुस्वेदा; द्रवत्वात् । सुज्ञाना; अमूर्तत्वात् । सुमुखा शाला; अप्राणिस्थत्वात् । सुशोफा, विकारजत्वात् । सुकेशी सुकेशा वा रथ्या, अप्राणिस्थस्यापि प्राणिनि दृष्टत्वात् । सुस्तनी, सुस्तना वा प्रतिमा, प्राणिवत्प्राणिसदृशे स्थितत्वात् ॥ नासिकोदरोष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च ।४।१।५५। वा ङीष् । तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका

उसमें दृष्ट हो । इस लक्षणके अनुसार केश आदि नहीं तट या कूड़ेमें पड़े हों, वे वहां उत्पन्न नहीं हैं किन्तु वहां दृष्ट हैं । वह तट कूड़ा भी स्वाङ्ग है । प्राणीके समान मूर्तियोंका अङ्ग भी स्वाङ्ग है । यथा—केशान् अतिक्रान्ता अतिकेशी मूर्ति कन्या वा (इतनी काली है कि काले केशका भी अतिक्रमण कर गयी) अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थं द्वितीययासे समास होने पर केश उपसर्जन है, प्राणीमें स्थित उत्पन्न, अद्रव, मूर्तिमान् है किसी अन्यका बिकार नहीं । उपसर्जन (अन्यमें विशेषण) अङ्ग, तदन्त अदन्त प्रातिपदिक अतिकेश शब्दार्थः । उक्त सूत्रेण ङीष् विकल्पे । यदा न ङीष् तदा टाप् । अतिकेशा मूर्तिः स्वादिः । चन्द्र इव मुखं यस्याः, चन्द्रमाकी तरह आह्लादक मुखवाली, चन्द्रमुखी–मुखशब्दके उपधामें संयोग नहीं है अन्यपदार्थं प्रधान बहुव्रीहिमें उपसर्जन भी है । प्रथम लक्षणके अनुसार स्वाङ्गवाची ऐसा मुखशब्दान्त अदन्तप्रातिपदिक चन्द्रमुख शब्दसे ङीष् यस्येति अलोपे । यदा न ङीष् तदा टाप् चन्द्रमुखा । प्रथम उदाहरण द्वितीय लक्षणका स्पष्ट जान पड़ता है । असंयोगोपधात् किम् ? संयोगसंज्ञक उपधामें न हो ऐसा क्यों ? शोभनौ गुल्फौ यस्या सा । दर्शनीय घुठने वाली सुगुल्फा । [गुल्फ शब्दों घुटिका पर्यायः] तद्धि ग्रन्थिः घुटिके गुल्फौ इत्यमरः । इस निर्देशसे गुल्फशब्द स्वाङ्ग वाचक उपसर्जन होकर भी ङीष् न हो । अतः उपधामें संयोग पड़ा ल, फ, का संयोग किन्तु टाप् । उपसर्जनात्किम् ? सूत्रमें उपसर्जन क्यों कहा ? इसलिए कि शोभना शिखा सुशिखा यहां न ङीष् । क्योंकि उपसर्जन (विशेषण) नहीं है । सुन्दर शिखा, ज्योति, शीङ्धातु से ख । ई का ह्रस्व शिख शब्दात् टाप् ।

तृतीय स्वाङ्गलक्षणं (तेन चेत्तत्तयायुतं) भाष्यमें स्वाङ्गकम् । अप्राणिनोऽपि–चेतनशरी ˙ विना स्वाङ्गमान्याः तेन=प्राणिमें स्थित चुबुक, ग्रीवा स्कन्ध, स्तन, नाभि, जघन नितम्ब गुल्फ आदि अङ्ग हों, यदि तत्=अचेतन प्रतिमा मूर्ति आदिमें झलकें, तथायुतं=मानों प्राणीमें ही विकसित है अभिन्न है, वह स्तन आदि आकृति अचेतन भीं स्वाङ्गमान्य । यथा शोभनौ स्तनौ कुचौ उष्णदुग्धपूर्णौ इव अवयवौ वक्षस्थलमणिभूतौ यस्याः सा (सुस्तनी) मूर्तिके अङ्ग चेतनमें मान्य नहीं, तथापि चेतन प्राणि (प्राण्यन्तर) में दृष्ट होनेसे पूर्वके दोनों लक्षण असफल रहे । अतः तृतीयं लक्षणं (प्राणिवत्) चेतनके समान सजग स्मृतिमें स्थिति स्वाङ्गमान्य । ङीष्, पक्षे टाप् । यह लक्षणलक्षितस्वाङ्ग ग्राह्य है । केवल अपना अङ्ग अग्राह्य (कल्याणपाणिपादा) समुदायका धर्म है अतः स्वाङ्ग नहीं । नासिका—नाक-उदर (पेट) ओष्ठ (दन्तावरण) जघनं दन्तकर्ण (कान) शृङ्ग इन शब्दोंसे विकल्प ङीष हो, किन्तु अनुवृत्त उपसर्जन दशामें ये सभी स्वाङ्ग है । तुङ्गा उन्नता नासिका घ्राणं

(पुच्छाच्च) सुपुच्छी, सुपुच्छा (कबरमणिविषशरेभ्यो नित्यम्) कबरपुच्छी (उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च) उलूकपक्षी शाला। उलूकपुच्छी सेना ।। **न क्रोडादिवह्वचः** ।४।१।५६। क्रोडादेर्बह्वश्च स्वाङ्गान्न ङीष्। कल्याणक्रोडा। आकृतिगणोऽयम्। सुजघना ।। **सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च** ।४।१।५७। न ङीष्। सकेशा अकेशा। विद्यमाननासिका ।। **नखमुखात्संज्ञायाम्** ।४।१।५८। ङीष् न।

यस्याः सा (ऊंची नाकवाली) अत्र न क्रोडादि-सूत्रेण बहुअच्लक्षण ङीषः निषेधं बाधित्वा नासिकोदरसूत्रेण विकल्पङीष् भसंज्ञा, अलोपादिकार्ये। तुङ्गनासिकी, पक्षे टाप् इत्यादिः। कुम्भ इव उदरं यस्याः सा कुम्भोदरी कुम्भोदरा लम्बोदरी। (पुच्छ) अन्तमें हो विकल्प ङीष कहें। संयोग उपधामें है। शोभनं पुच्छं यस्याः सा सुपुच्छी (चमरी गाय) कबरमणि-विष-शर (वाण) इनसे परे पुच्छ शब्द हो, तदन्त से नित्यङीष् कहें। पुच्छाच्च के विकल्पको बांधकर। चित्रविचित्र पूंछ वाली कबरपुच्छी (मोरनी) नित्यङीष्। एवं मणि इव पुच्छं यस्याः सा मणिपुच्छी वृश्चिकी विषं पुंच्छे यस्याः सा विषपुच्छी (विच्छू)। शरपुच्छी (वाणकी तरह पूंछवाली पक्षी) उपमान=दृष्टान्त परिमाणशब्दसे परे पक्ष और पुच्छ शब्द हो। तब उससे नित्यङीष्, विकल्पको बांधकर। उलूकपक्षौ इव पक्षौ पार्श्वभागौ यस्याः सा (उल्लू पंखकी तरह पंख हो वह शाला महल) उलूकपक्षी। नित्यङीष्। उलूक पुच्छमिव पुच्छं पश्चिमभागो यस्य सा। (उल्लू पूंछकी तरह पिछला भाग हो ऐसी—सेना) उलूकपक्षी विकल्पको बाधकर नित्यङीष्। उलूकपक्ष उपमान। शाला सेना उपमेय अतः नित्यङीष्। **न क्रोडादेः**=क्रोड आदि नख खुर गोखा, उखा, शिखा(बाल) शफ शुक्र इत्यादि शब्दसे और बहुचः-अनेक ऋचा स्वाङ्गवाची प्रातिपदिकसे ङीष् न हो। कल्याणी क्रोडा यस्या सा। माङ्गलिक गोद, छाती वाली। अश्वानामुरः शुभलक्षण वक्षस्थल, (ऐसी घोड़ी) क्रोडा (छाती) स्वाङ्ग, [उपसर्जन, संयोगरहित] शब्दस्तदन्त अदन्तप्रातिपदिक कल्याणक्रोड से स्वाङ्गात् ङीष् प्राप्त था, 'न क्रोडा' इति निषेध। अतष्टापि रूपम्। यह आकृतिगण है। रूप देखकर साधनिका अनुमेया। शोभने जघने यस्याः (सुडौल सुन्दर जङ्घा वाली) सुजघना। अत्र जघनशब्दः स्वाङ्गवाची उपसर्जनम्, संयोगरहित सुजघनशब्दात् ङीष् प्राप्तः। बहुअचं मत्वा निषेधे, अतष्टाप्। एवं कमले इव नयने यस्या सा(कमलनयना)पद्मा इव वदनं (मुख) यस्या सा पद्मवदना। हस्तिगमना आदि।

बहु अच्का उदाहरण-शोभनं जघनं (जङ्घयोः अन्तरालं) यस्याः सा सुजघना स्वाङ्गङोष अतः। बहु अचः से ङीष् निषेधे। सहनञ्(निषेध विद्यमान उपस्थित) ये तीनों पूर्वमें हो, तब स्वाङ्गाच्चसे प्राप्त ङीष् नहीं होता। सह केशाः यस्याः सकेशा। केश स्वाङ्ग है उसके सहित वर्तमान अर्थमें विराजमान स्त्रीलिङ्ग का प्रकाशक स्वाङ्गाच्चके ङीष्का निषेधः, सहनञ् सूत्रेण (अविद्यमानः केशो यस्याः सा अकेशा मुण्डी, बालझड़ा) ङीष् निषेधः। नासिकोदर—के विकल्पका भी बाधक है। यथा विद्यमाना नासिका यस्याः सा सनासिका।

शूर्पणखा गौरमुखा। संज्ञायां किं? ताम्रमुखी कन्या॥ वाहः ।४।१।६१। वाहन्तात् ङीष्। दित्यौही। दित्यवाट् च मे दित्यौहा च मे॥ सख्यशिश्वीति भाषायाम् ।४।१।६२। सखी। अशिश्वी। जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ।४।१।६३। जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततो ङीष्। 'आकृति-

नख् और मुख इन स्वाङ्गवाची शब्दोंसे ङीष् न हो, संज्ञा में। पूर्वपदमें स्थित निमित्तात् (कारण र ष)से परे 'न'के स्थानमें 'ण' हो संज्ञा अर्थमें। अगः=ग का व्यवधान न हो तब। शूर्पवत् नखं यस्या सा (सूपकी तरह नखवाली रावण बहन) शूर्पणखा, स्वाङ्गवाची उपसर्जन उपधामें संयोगरहित नखशब्दः। तदन्तको ङीष् प्राप्तः, नखमुखात् सूत्रेण निषेधे। अदन्त लक्षण टाप्। शूर्पनखा-समानपद न होनेसे अट्कुप्वाङ से णत्व न हो सका। तब पूर्वपद शूर्पमें स्थित णत्वका निमित्तकारण रेफसे परे 'न'को 'ण' हुआ नाम होनेसे। गौरंमुखं यस्या (गोरामुखवाली) संज्ञा। यहां मुख शब्द स्वाङ्गवाची आदि होनेसे प्राप्त ङीष्का 'नखमुखात्से निषेध तथा (टाप्) संज्ञायां किम्? ङीष् का निषेध 'संज्ञामें क्यों कहा,? इसलिए कि ताम्रं (गौरं) मुखं यस्याः सा ताम्रमुखी कन्या। यहां मुख-से ङीष् का निषेध न हो। यह संज्ञा नहीं है। अतः स्वाङ्ग लक्षण ङीष्।

वाहः-वाह अन्तमें हो, ऐसे प्रातिपदिकसे परे ङीष् हो। इस सूत्रमें ङीष् ही आता है ङीप् नहीं। दित्पूर्वपदास्सूत्रके ङीष्में स्वरित प्रतिज्ञा न होनेसे, दित्यौही (गायकी छः छः महीनेकी तीसरी अवस्था भेद वय)। प्रमाण-गर्भश्चमें वत्साश्चमें दित्यवाट् भेद इस मंत्रमें उच्चारित है। तीसरी अवस्था दित्य है। दित्यं वहति १३से १८ महीनेके बीच अवस्था प्राप्त करनेवाली। वहेश्चण्विः पूर्णलोपे उपधावृद्धिः समासः। दित्यवाहशब्दात् वाहः-सूत्रेण ङीष् वाह ऊठ वृद्धिः दित्यौही। सखि-और अशिशु शब्दसे स्त्री अर्थ प्रकाशक ङीष् निपातन हो। भाषायां-लोक व्यवहार प्रयोगमें। यदि ऐसा तब वेदमें ङीष् नहीं होता? तो नहीं इतिशब्दस्य प्रकारः सजातीयो अर्थः (लोकका सजातीयभेद है) भाषाके पश्चात् वेदमें भी ङीष् हो। यदि ऐसा तब भाषायां पढ़ना व्यर्थ है तब बोले तेन=भाषाग्रहणेन लोके सर्वत्र भवतु। वेदे क्वचित् भवति। सखिशब्दास्स्त्रीअर्थे ङीष्, अलोपे, सखी। सुत्रमें भाषा क्यों पढ़ा? सखा सप्तपदा भव अत्र ङीष् मा भवतु। न विद्यते शिशुर्यस्याः (धिसके लड़का न हो अशिशुशब्दात् ङीष् उस्थाने यण (अशिश्वी) शिशुना विना (इत्यमरः]छन्दमें क्वचित्का उदाहरण आधेनवो=गायकी प्रसन्नता, सेवा करें ङीष्।

जातेः—आतिवाचक शब्द हो, अयोपध=उपधामें (अन्त्य अल्का पूर्व वर्ण) यकार न हो, ऐसे अदन्त प्रा० से ङीष् हो [जननात् जायते या 'सा' जातिः] जन्मसे जो प्रकट हो। आकृतिग्रहणा जातिः आक्रियते व्यावर्त्यते पृथक्करोति या [लिङ्गानां च न सर्वभाक्) जो सभी लिङ्गको न धारण करे, सकृदाख्यात निर्ग्राह्या एकबार बोलनेसे, इससे सम्पूर्णका ग्रहण हो (गोत्रं च चरणैः सह) किसी चरण

ग्रहणा जातिर्लिङ्गानां च न सर्वभाक्। सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या, गोत्रं च चरणैः सह' ॥१॥ तटी। वृषली औपगवी कठी। जातेः किं ? मुण्डा। अस्त्रीविषयात्किं ? बलाका। अयोपधात्किं ? क्षत्रिया (योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः) हयी गवयी। मुकयी मनुषी मत्सी ॥ पाककर्णपर्ण-

(शाखा) के साथ गोत्रका होना भी जाति है। जातिवाचकसंज्ञा मनुष्य, पशु तट आदि। ऊपजाति ब्राह्मण क्षत्रिय आदि। अपत्यप्रत्यय औपगवी। शाखा पढ़ने वालें, जातिवाचक, आकृत्रिमात्रसे जातिवाचक संज्ञा तट, नित्य स्त्रीलिङ्ग नहीं। और उपधामें य नहीं है। स्त्रीलिङ्ग विवक्षामें जाति लक्षण ङीष् तटी वृषलीं, स्त्री, उपजाति वृषल (शूद्र) जाति। एकबार कहनेसे समस्त शूद्रका ज्ञान। जाति अर्थमें ङीष् (कठी) कठेन प्रोक्तम् अधीयाना कठगोत्रोत्पन्ना, कठ शाखाको पढ़ने वाली कठ वेदकी एक शाखा है) उससे जाति अर्थ बोधक ङीष्। चरण शाखाके साथ गोत्र होनेसे भी जाति लक्षण सिद्ध है। बह्वृची (शाखा अधीयाना स्त्री) वेद की शाखा बह्वृच् शब्दात् जाति लक्षणङीष्। सूत्र में जाति ग्रहण क्यों किया। इसलिए मुण्डा। मुण्डित हुई स्त्री। यहां ङीष् न हो जाय क्योंकि वह जाति नहीं है टाप्। अस्त्रीविषयात् किं ? नित्यस्त्रीलिङ्ग का विषय न हो, ऐसा क्यों ? बालाका (बकुला) ङीष् न हो इसलिए वह नित्य स्त्रीलिङ्ग है वहां अदन्त लक्षण टाप्। बलाका बकपंक्तिः स्यात् बलाका बिसकण्टिका, बलाका कामुकी प्रोक्ता बलाकश्च बको यतः। अयोपधात् किम् ? 'य' उपधामें न हो, ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि क्षत्रिय जातिकी स्त्री क्षत्रियामें जाति मानकर ङीष् न हो क्योंकि य उपधामें है परन्तु (वा०) योपध=उपधामें यकारके निषेधसे क्षत्रियकी तरह, हय, गवय, मुकय, मनुष्य, मत्स्य, इनको भी वर्जित न समझें। यहां ङीष् होगा ही। हयी (घोड़ी) अश्वा-घोड़ा जातिकी स्त्री। यहां निषेध नहीं, किन्तु वार्तिक सहायतासे ङीष्। गवयी। नील गाय, पशुजाति (गो के सदृश) मुकयी। यह भी पशुजातिस्त्री वार्तिकसे ङीष्। जाति अर्थमें [मनुषी]-मनुष्यजातीया स्त्री। मनुष्य शब्दात् वार्तिक बलेन ङीष्, यस्येति अलोपे हलस्तद्धितस्यसे यलोपे। मानुषी (वा०) मत्स्यशब्द के य का लोप हो ङीष् परे। मत्सी=मत्स्य शब्दात् वार्तिक बलेन ङीष् अलोपे, वार्तिकेन यलोप।

आकृति=अवयवसन्निवेशः परिचायक अङ्गसमुदाय आकृति है। गृह्यते अनेन ग्रहणं [साधने ल्युट्] व्यञ्जकं=जातिका व्यञ्जक प्रकाश बोधक आकृति हैं। जैसे-मनुष्य पशु, पक्षीके जातिका निर्णायक आकृति ही है। आकृतिर्ग्रहणं यस्याः। उपसर्जन [विशेषण-अप्रधान] होनेसे टिड्ढाण् ङीप् नहीं। अतः बोले अनुगता सर्वासु स्वव्यक्तिषु व्याप्ता तत्तद्व्यक्तिषु तत्तदाकारेण व्यङ्ग्या [रूप और आकारसे पहचानके योग्य] यथा तटी [तटं त्रिषु इत्यमरः] तीनों लिङ्गमें नित्यस्त्री नहीं। परन्तु जलके समीपस्थल ही तट है इस आकृतिरूप निवेशसे तटका ज्ञान। तटत्व जाति आकृतिसे प्रकट।

पुष्पफलमूलबालोत्तरपदाच्च ।४।१।६४। पाकाद्युत्तरपदाज्जातिवाचिन स्त्रीविषयादपि ङीष् । ओदनपाकी शङ्कुकर्णी । शालपर्णी शङ्खपुष्पी । दासीफली दर्भमूली । गोवाली । ओषधिविशेषे रूढा एते । इतो मनुष्यजातेः ।४।१।६५।

स्यात् विलुप्तसर्वकशत्वमुण्डत्व तत्र न आकृतिव्यङ्ग्या, न लिङ्गानां सर्वभाक्, न गोत्रं, न चरणान्तम् । अतो न जातिः ।

अतो द्वितीयं लक्षणं—लिङ्गानाञ्च=कर्मणि षष्ठी । सर्वाणि लिङ्गानि न भजते या सा जातिः [जो सभी लिङ्गको स्वीकार न करे] सकृत्=एकबार आख्याता एकस्यां व्यक्तौ कथिता उपदिष्टा । एकबार एकव्यक्तिमें समझायी गयी जाति, दूसरे व्यक्तिमें उपदेशके बिना भी निर्ग्राह्या=ज्ञानाय सुगमा, सभी लिङ्ग न हों वही जाति द्वितीयलक्षणके पेटमें । एक घड़ामें घटत्व समझा, अन्य घड़ोंमें सरलतासे ज्ञान । एक मनुष्यमें ज्ञात मनुष्यता सबमें ज्ञात । यथा (वृषली)-वृषलत्व सर्वलिङ्ग नहीं, नपुंसक एक व्यक्तिमें वृषलत्व-शूद्रत्व-ब्राह्मणत्व अन्तमें भी समझमें आया । सकृत् क्यों पढ़ा ? एकबार न कहते तब देवदत्तका एकबार ज्ञान करना हुआ । दूसरे देवदत्तका दूसरी बार ज्ञान करना होगा । द्वितीयलक्षणसे जन्मकालसे जो निर्णीत हो वह ब्राह्मणत्व आदि जातिः । न कहिये कि ये दोनों लक्षण औपगवी कठीमें नहीं घटेंगे । ङीष् कैसे ? क्योंकि अनुगत-संस्थान (अंगका परिचायकधर्म) नहीं । सभी लिङ्ग है, ङीष् कैसे ? अतः कथितं मूले (चरणैः सह गोत्रं जातिः) गोत्रसे अपत्य=जनन योग्यता परिचायक सन्तान जानना चाहिये । पौत्रप्रभृतिका पारिभाषिक नहीं । चरणशब्दका शाखा अध्ययनकर्ता अर्थ प्रसिद्ध है । चरणविषये अन्यं प्रमाणं-बह्वः ऋचो अध्येयाः यस्याः सा बह्वृची अनृच्वह्वृचोः अध्येतरि एवं । अच समासान्त ङीष् (पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जी बन्धनमिष्यते । अध्यापनञ्च वेदानां सावित्रीवचनं तथा) इति यमादिस्मृतिः, अत्र शङ्का-लिङ्गानाञ्च न सर्वभाक्, गोत्रञ्च चरणै सहके जाति लक्षणसे सिद्ध ब्राह्मणी उदाहरणको छोड़कर वृषली औपगवी तक क्यों धावन किये ? तदा कथितं मूले ब्राह्मणी इत्यत्र (शार्ङ्गरवादि) ङीन्से ङीष् बाधा जायगा । ब्रह्मणो अपत्यं (ब्रह्माकी सन्तान) अर्थे तस्यापत्यम् अण् (ब्राह्मोऽजातौ) टिलोपो न आदिवृद्धौ जातिलक्षणङीषं बाधित्वा ङीप् निरवकाशात् । ङीष् विधिमें जातिका प्रयोजन क्या है ? जातेः किं मुण्डा । जातिग्रहणं न स्यात् तत्रापि ङीष् ।

पाक=पाकं (पका हुआ) कर्ण-पर्णं (पत्ती) पुष्प-फल, मूल, बाल, ये शब्द उत्तरपदमें हो, ऐसा जातिवाची शब्दसे (स्त्रीविषयात्=नियत-स्त्रीलिङ्गसे भी) ङीष् हो । ओदनं पचति **ओदनपाकी** (भात पकानेवालोंकी जाति) स्त्रीलिङ्गपाक उत्तरपदसे ङीष् । शङ्कुः (कील खूटी) इव कर्णौ यस्याः सा सङ्कुकर्णी । शाल इव पर्णानि यस्याः सा) । दासीफली (मकोय छोटे-छोटे फल) गोवाली (गोमुखी) सभी नियतस्त्रीलिङ्ग जातिवाचीसे ङीष् । ये सभी ओषधि विशेषमें प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ रहित समुदाय अर्थमें रूढ़ है अतो जातिवाची ।

ङीष् । दाक्षी । ऊङुतः ।४।१।६६। ऊकारान्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ्। कुरूः ।। पङ्गोश्च ।४।१।६८। पङ्गूः। (श्वशुरस्योकाराकार-लोपश्च)। चादूङ्। पुंयोगलक्षणङीषोऽपवादः श्वश्रूः। ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९। उपमानवाचिपूर्वपदमूरूत्तरपदं यत्तस्मादूङ्। करभोरूः। संहितशफल-क्षणवामादेश्च ४।१।७० संहितोरूः सफोरुःलक्षणोरुः (सहितसहाभ्यां च, सहि-

इतः—मनुष्य हो, जातिवाचक हो, ईकारान्त हो, ऐसे प्रातिपदिक से ङीष्। जातेरस्त्री-सूत्र अदन्तसे ङीष् करता है। ईकारान्तके लिए सूत्रमिदम्। यथा दक्षस्य गोत्रापत्यं दाक्षिः। दक्षशब्दसे गोत्रापत्य अर्थमें अत इञ् 'सूत्रसे' इञ्, इकारान्त प्रातिपदिक दाक्षिसे (मनुष्य जातिकी स्त्री) अर्थमें ङीष् यस्येति इकारलोपे दाक्षी। कालीदासः कालस्यापत्यं कालिः मनुष्य जातिकी स्त्री। अर्थमें ङीष्। काली तस्याः दासः। कालिदासः ह्रस्व भी।

ऊङुत—उकारान्त हो अयोपधात् य उपधामें न हो, मनुष्य जातिवाची प्रातिपदिकसे स्त्री अर्थ बोधक ऊङ् हो। ङ् इत् (कुरुजातिकी स्त्री) कुरूशब्दः उकारान्त उपधायां यकाररहितः, मनुष्यजातिवाचकः प्रातिपदिककुरुशब्दात् ऊङ् (ऊ) सवर्णदीर्घे। अत्र प्रातिपदिकग्रहणेलिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं। ङीष्, आप, अन्त प्रातिपदिक से ही विभक्ति आती है। ङीप होनेपर परिभाषा से विभक्ति आई। अयोपधात्किम्—उपधामें य न हो, ऐसा क्यों कहा? इसलिए कि अध्वर्युः। अध्वर्यु शाखा का अध्ययन करने वाली। (यजुर्वेद ऋत्विग् अध्वर्युशब्देनोच्यते) तस्य स्त्रियां मुदाहरणं, शाखावाचकः, जातिवाचकः, अध्वर्यु से ऊङ् न हो, क्योंकि य उपधामें है पङ्गोः—ऊकारान्त पङ्गू शब्दसे ऊङ् हो स्त्री अर्थमें। पूर्वसूत्रसे ऊङ् प्राप्त नहीं क्योंकि ऊकारान्त होने पर भी जातिवाचक नहीं है। लंगड़ी स्त्री। पङ्गू शब्दात् स्त्री अर्थे ऊङ् सवर्णदीर्घे स्वादिः। (वा०) श्वशुर-शब्दसे स्त्री अर्थमें ऊङ् हो, ऊकाराकार-लोपो। श से परे 'उ'का, 'र' से परे 'अ' का लोप हो (श्वशुरस्य स्त्री) अर्थे श्वशुर शब्दात् पुंयोगे ङीषं बाधित्वा वार्तिकेन ऊङ, उकारस्य अकारस्य च लोपे श्वश्रूः (सास)। ऊरूत्तरपदात्—उरूशब्द उत्तरपद हो औपम्ये=उपमायां भवम् औपम्यं तस्मिन्। उपमानवाचीशब्द पूर्वपदमें हो ऐसे प्रातिपदिकसे स्त्री अर्थमें ऊङ् हो। करभी इव स्निग्धौ सुन्दरौ मनोहरौ, ऊरू जघने यस्याः सा। (मणिवन्धात् आक निष्ठकरस्य करभो बहिः) हाथके मणिबन्धसे कानी ऊंगलीके बीच कोमल भाग करभ है उसके समान सुन्दर, हाथीके बच्चेका सूंडकी तरह। पूर्वपद(उपमान वाचक (कोमलताधर्म) करभ, उत्तरपद उरुः से ऊङ सवर्णदीर्घ आदिः।

संहित—(सटा हुआ) शफ (खुर) लक्षण (चिह्न) वाम (सुन्दर) आदि पूर्वपद—उरु उत्तरपदसे भी स्त्री अर्थमें ऊङ् हो। अनौपम्यार्थमिति—यह सूत्र उपमा का विषय न हो उसके लिए है। पूर्वपदमें उपमान, आवश्यक न हो। संहितौ-स्थूलत्वात् संश्लिष्टौ निविडौ, ऊरू जघने यस्या सा। मोटाईसे सटे चिपके जंघे जिस स्त्रीके पूर्वपद सहित (उपमान नहीं है) उत्तरपद उरु प्रातिपदिकसे स्त्री अर्थमें ऊङ्

तोरूः सहोरूः ॥ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ।४।१।७३। शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् । शार्ङ्गरवी वैदी ब्राह्मणी (नृनरयोर्वृद्धिश्च) नारी। यङश्चाप् ।४।१।७४। यङन्ताच्चाप् । आम्बष्ठ्या । कारीषगन्ध्या (षाद्यञश्चाप् वाच्यः) पौतिमाष्या ॥ आवट्याच्च ।४।१।७५। अस्माच्चाप् । 'यञश्च' इति ङीपोऽपवादः । अवटशब्दो गर्गादिः । आवट्या ॥ यूनस्तिः ४।१।७७। युवनशब्दात्तिः । युवतिः । अनुपसर्जनादित्येव। बहवो युवानो यस्यां सा बहुयुवा । युवतीति तु यौतेः शत्रन्तात् ङीपि बोध्यम् ।

इति स्त्रीप्रत्यय प्रकरणम् ।

दीर्घादिः [सहितोरूः] शफौ खुरौ इव संश्लिष्टौ ऊरू (जघों पर खुरका आरोप) ऊङ् आदि । लक्षणौ लक्षणवन्तो उरू यस्या सा शुभलक्षणवाली । वामौ सुन्दरौ उरू यस्या सा । सर्वत्र उरूत्तरपदे सति स्त्री अर्थे ऊङ् दीर्घादिः । **शार्ङ्गरव-इत्यादि** शब्द और अञ्का अकारान्तशब्द हो किन्तु जातिवाचक, प्रातिपदिकसे ङीन् हो ङ् न इत्, ई–शेष । नित्का फल आदि उदात्त। शृङ्गरोः अपत्यं स्त्री, शृङ्गरुः जाति की स्त्री । तस्यापत्यं अण्, आदिवृद्धिः जातिवाचक शार्ङ्गरव शब्दात् ङीन् यस्येति अलोपे (विदजातिकी सन्तान) विदादि विदस्यापत्यं वैदः स्त्री इच्छामें वैदशब्दात् ङीन अलोपे । ब्राह्मणजातीया स्त्री ब्राह्मणी जातिवाचक ब्राह्मणान्ङीष् प्राप्तः तं बाधित्वा ङीन् अलोपे । (ग०स०) नृ और नर शब्दोंसे स्त्री अर्थं बोधक ङीन् हो और वृद्धि हो । नारी (नरस्य स्त्री नुः स्त्री) नर जातीया । नृ या नर शब्दात् जातिवाचकात् ङीन् ऋस्थाने आरवृद्धिः । नृ शब्दे ऋन्नेभ्यो ङीप् (नर) जातिलक्षण ङीष दोनोंका बोधक ङीन् । (युवन) शब्दसे स्त्रीलिङ्ग बोधक ति प्रत्यय हो । यौति=पत्या 'सह' आत्मानं मिश्रीकरोति (पतिसे मिलनेवाली) युवती। युवन् शब्दात्स्त्री अर्थे तिप्रत्यये, स्वादिषु इति पदसंज्ञा, नकारलोपे । लिङ्गविशिष्ट परिभाषया स्वादिकार्यम् । युवतीं शब्दः दीर्घ-ईकारान्तः रूपं सिद्धयति (शतृ=अत) प्रत्यये उगितश्चेति ङीप् **आवट्य-**शब्दसे भी चाप् (आ) हो । अवटस्य अपत्यं स्त्री यञश्च इति ङीषं बाधित्वा गर्गादिः यञ् . उक्तसूत्रेण चाप् ।

यङ्=अन्तमें हो तब स्त्री अर्थं प्रकाशक चाप्=आ । पकार हल्ङ्याब्भ्यः से सुलोपके लिए । च इत्का फल चितः से अन्तोदात्त । यङशब्द ञ्यङ् ष्यङ् दोनों प्रत्ययोंका बोधक है । यथा—अम्बष्ठस्यापत्यं (महावतकी) स्त्री वृद्धेत्कोशल इति ञ्यङ्, आदिवृद्धिः । आम्बष्ठ्यशब्दात् चाप् । करीष–गो-अश्वादिपशुपुरीषं (मलं) तस्य गन्ध इव गन्धो यस्य स करीषगन्धिः (उपमानाच्चसे गन्धको इकारान्त) करीषगन्धेर्गोत्रापत्यं स्त्री अर्थे अण् । अणिञोः इति अणः ष्यङ् इलोपे । कारीषगन्ध्या, यङश्चाप् । षात्=षकारसे परे जो यञ् तदन्तसे भी चाप् हो । शर्कराक्षस्यापत्यं स्त्री, पूतिमाषस्यापत्यं स्त्री अर्थे गर्गादिभ्यो यञ् आदिवृद्धि चाप् । पौतिमाष्या । (टीका मध्यकौमुद्याश्छात्राणामुपकारिका । प्रीत्यैभूयात् शर्वाण्यै शिवश्शन्तनोतु नः)

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकरीटीकायां स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ।

अथ वैदिकप्रकरणम्

षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा ।१।४।९। पतिशब्दो घिसंज्ञः । क्षेत्रस्य पतिना वयम् । इह 'वा' इति योगं बिभज्य 'छन्दसि' इत्यनुवर्तते । तेन सर्वे विधयश्छन्दसि वैकल्पिकाः । 'बहुलं छन्दसि' इत्यादिरस्यैव प्रपञ्चः ॥ अयस्मयादीनि च्छन्दसि ।१।४।२०। एतानि छन्दसि साधूनि । भपदसंज्ञाधिकाराद्यथायोग संज्ञाद्वय बोध्यम् । तथा च वार्तिकम् (उभयसंज्ञान्यपीति वक्तव्यम्) स सुष्टुभा स ऋक्कता गणेन । पदत्वात्कुत्वम्, भत्वाज्जश्त्वाभावः । नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु । अत्र पदत्वाज्जश्त्वं, भत्वात्कुत्वाभावः । 'ते प्राग्धातोः' ।। छन्दसि

अथ वैदिकप्रकरणम्—वेदे प्रयुक्तः शब्दो वैदिकः वैदिक शब्दोंकी साधनिका तथा शब्दशक्तिग्रह (ज्ञान) का प्रकरण । विभक्तियोंका अर्थ ज्ञान–प्रकृतिका अर्थं प्रत्ययका अर्थं, मिलित पदका अर्थज्ञान वैदिक शब्दके शाब्द(शब्द सुनते ही)बोधमें कारण है । उसका स्फुटित विकसित खिला खुला अर्थं स्फोटार्थं है वैदिक शब्दोंकी व्युत्पत्ति (शब्द अर्थ सम्बन्ध) निर्णयोंकी बोधमयी प्रक्रिया, शाब्दबोधका प्रसङ्ग । **षष्ठीयुक्तः**षष्ठी विभक्तिसे जुड़ा हुआ शब्दसे सम्बन्धित पतिशब्दकी घिसंज्ञा हो(वा) छन्दसि-वेदमें । **पतिः समास एव** नियमसे पति शब्दकी समास होनेपर ही घिसंज्ञा का नियम है । भुवः पतिः भूपतिः तस्मै भूपतयेके लिए । बिना समासके घिसंज्ञा प्राप्त नहीं, अतः सूत्र पढ़ा, वयं क्षेत्रस्य की षष्ठी खेतसे सम्बन्ध जुड़ा पतिकी घिसंज्ञा से टा को ना हुआ । **पतिनाऽसि** मया पत्या जरदष्टिर्यथासः यहां पत्या शब्द तृतीयासे जुड़ा है । षष्ठीसे जुड़े तो घिसंज्ञा न हो अतः षष्ठी पढ़ा । ग्रामस्य पत्ये गांवके स्वामीके लिए, यह वैदिक प्रयोग नहीं, न घिसंज्ञा, न गुण । **इह वा**= वैदिक प्रकरणके इस प्रसङ्गमें वा को अलग पढ़ा, योग विभाग=सूत्र अलगाव कर उसमें छन्दसिकी अनुवृत्ति करें, अर्थं होगा कि सभी विधियां वेदमें विकल्पसे हो । इसी भावको साफ खोलनेके लिए बहुलं छन्दसि पढ़ा ।

प्रपञ्च—पचि विस्तारे । **अयस्मयादि** अयस्मय आदिगणमें पढ़े शब्दमें वेदमें साधु—सुसंस्कृत मान लिये जांय, निपातन-गणसूत्रमें स्वीकृतिसे । लोकमें भसंज्ञा पदसंज्ञाको बाधती हैं । एक संज्ञाके अधिकारका नियम होनेसे । वेदमें दोनों संज्ञा का अधिकार यथायोग्यं– (प्रयोगमनतिक्रमय) पदसिद्धिके अनुकूल दोनों संज्ञायें स्वीकृत हो । वार्तिक प्रमाण=(अनन्तरस्य गतिर्भवति प्रतिषेधो वा) इस न्यायको बाधकर उभयसंज्ञा अयस्मयादीनिसे दोनों संज्ञायें हो । ऋचा तुल्यं (**ऋक्वत्**) तेन ऋक्वता (ऋच् वत् आ) दशामें पदसंज्ञाके अधिकारका फल चोः कुः से चवर्ग को कवर्ग हो पदान्तमें (ऋक्वत आ) क को पदान्त जानकर जश्ग, क्यों नहीं, झलां जशोऽन्ते नहीं लगा, भसंज्ञासे पदसंज्ञाका बाध होनेसे । अतः कहा पदसंज्ञासे कुत्व, भसंज्ञासे पद नहीं तब जश्ग भी नहीं । **वाजिनेषु** वाचाम् इनाः वाजिनाः तेषु वाणी बोलनेमें बृहस्पति ऐसे विद्वानोंमें । वाच इनेषु पदसंज्ञाका फल झलां जशोऽन्तेसे च को ज, भसंज्ञाका फल जको कुत्व ग न होना । **ते प्राक्**–वे उपसर्ग

परेऽपि ।१।४।८१। व्यवहिताश्च ।१।४।८२। हरिभ्यां याह्योक आ। आ मन्द्रै-रिन्द्र हरिभिर्याहि ।। तृतीया च होश्छन्दसि ।२।३।३। जुहोतेः कर्मणि तृतीया स्याद् द्वितीया च। यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति ।। मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् ।३।२।७१। (श्वेतवहादीनां डस्पदस्येति वक्तव्यम्) यत्र पदत्वं भावि तत्र ण्विनोऽपवादो डस् वक्तव्य इत्यर्थः। श्वेतवाः, श्वेतवाहौ, श्वेतवाहः।

धातुके पहले प्रयोग किये जांय। समीपस्थ पदके गुप्त अर्थ खोलनेवाले उपसर्ग लौकिक संस्कृत में पूर्व ही होते हैं। किन्तु छन्दसि—वेदमें धातुके (परेऽपि) पश्चात् और व्यवधान में भी। शब्दसे पूर्वमें होना सूचित। 'याहि' क्रिया है, आ उपसर्ग पहले प्राप्त था। पश्चात् हुआ अर्थ आयाहि त्वं (आ जाओ) ओकः-गृहं (साधनसे) परेऽपि हुआ। व्यवहित आमन्द्रैः—हे? इन्द्र हरिभिः घोड़ोंसे मन्दराचल तक आयाहि=पूर्ण परिक्रमा करो। आ याहिके बीच बहुत व्यवधान परभी उपसर्गसंज्ञा।

तृतीया च=हु धातुके कर्म [दान या आधार] में तृतीया हो, द्वितीया भी। द्वितीया तो होती ही है मुख्यतः तृतीया विधीयते। च शब्दसे कर्मणि द्वितीया भी रहे। यथा यवागू [हलुआ] और अग्निहोत्र दोनों [अग्नये हूयते यत्तत्] जो वस्तु अग्निमुखमें जाय (शाकला हवि खीर) जुहोति=प्रक्षेपण स्वाहा, जो अग्नि मुखमें डालना क्रियाका कर्म है। एकमें तृतीया यवाग्वा, दूसरेमें द्वितीया अग्निहोत्रं [यवाग्वभिन्नं हविः अग्नौ प्रक्षिपति] **मन्त्रे**=श्वेत पूर्वक वह् उक्थशस पुरस् पूर्वक दाशृ दाने धातुसे ण्विन् प्रत्यय हो कर्ता अर्थमें। कर्मकारक अर्थमें भी ण्विन। उक्थ-से कर्म करण साधन अर्थमें। उपपद रहते शंस धातुका नलोप भी हो, पुरस् पूर्वक दाश के द को ड, कर्ममें प्रत्यय निपातनसे हो। [वा०] **श्वेत वह्** आदिसे डस् प्रत्यय हो, ण्विको बाधकर यदि पदसंज्ञा होनी हो श्वेताः श्वेतघोटकाः एव निश्चयेन यं पुरुषं वहन्ति प्रापयन्ति स **श्वेतवाः** इन्द्रः। कर्तृ वाचीशब्द श्वेता उपपद है। तब वह-धातुसे कर्ममें पहुचाना फलके आधार अर्थमें ण्वि। यहां पदसंज्ञा कार्य सम्भव है। वार्तिकसे डस् [श्वेत वह्+अस्] डित्की शक्तिसे वहका अह्। टिलोप। व असमें मिला [श्वेतवस्] पदसंज्ञा अत्वसन्तस्य चाधातोः इति दीर्घ, परिवर्तन दीर्घ का ह्रस्वमें बदलना (मित्रा वयं) आ की जगह अ, मित्र मेरे साथी और हम सभी वीर हैं। दीर्घ ह्रस्व हुआ, स्वरका परिवर्तन कहेंगे। गवामिव श्रियसे आदि स्थलमें तुमर्थे क्सेन प्रत्ययसे नित् स्वर अनुदात्त मध्योदात्तमें बदला। कर्तृ का अर्थ कारक मात्र है। तद्वाचिनां-कर्ता कर्मः करण सम्प्रदान अपादान अधिकरण कारक अर्थ वाचक कृत-तद्धित प्रत्ययोंका परिवर्तन। तेन दीव्यति, खनति, जयति, जितंमें ठगादि भी प्रत्ययके विषय बने। इसमें कारक होनेका आग्रह नहीं कृत या तद्धित मात्रसे मतलब है। किम्से हुआ डति, यत् शब्दसे भी होता है। त्वं वेत्थ (यति ते यात वेदः विश्वे देवासो मरुतो देवो यतिष्ठन) यति का यत्परिमाणमस्य अर्थः। अन्नादाय अन्नमत्ति (अन्नादः) तस्मै अन्त कर्म है। उसके उपपद रहते अद

उक्थानि उक्थैर्वा शंसति उक्थशा यजमानः, उक्थशासौ। पुरो दाश्यते दीयते पुरोडाः अवे यजः ।३।२।७२। अवयाः, अवयाजौ, अवयाजः ॥ अवयाश्वेतवाः पुरोडाश्च ।८।२।६७। एते संबुद्धौ कृतदीर्घा निपात्यन्ते । चादुक्थशाः ॥ लिङर्थे लेट् ।३।४।७। सिब्बहुलं लेटि ।३।१।३४। इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ।३।४।९७। लेटस्तिङामितो लोपो वा स्यात् परस्मैपदेषु ॥ लेटोऽडाटौ ।३।४।९४। स्तो वा । तौ च पितौ । (सिब्बहुलं णिद्वक्तव्यः) । वृद्धिः । प्र ण आयूंषि तारिषत् सुपेशस्करति जोषिषद्धि । आ साविषदर्शसानाय । सिप इलोपस्य चाभावे ।

धातुसे कर्मणि अण प्राप्त था । उसकी जगह अच् हुआ ।

रुवि०। श्वेतवाः श्वेतवाहौ । औ जस परे मिल गया है । सफेद घोड़े जिसको पहुंचाते हों वे श्वेतवाहः । उक्थाशाः यजमान सूक्तियोंसे शंशति प्रशंसा करता है । कर्म या करण स्तुति (सुन्दर उक्ति) वचन है। शंससे णिव-बांधकर डस् नलोप भी । अतः उपधाया वृद्धिः उक्थशास् रुवि० । यजमान सुन्दर मधुर वचनोंसे स्तुति करता गुण गाता है । पुरः समक्षं अग्रे वा दास्यते दीयते समर्प्यते इति पुरोडाः—हवनकी वस्तु (अग्निदूतं पुरोधे, हव्यवाहमुपब्रुवे) पुरस् पूर्वक दाश धातुसे कर्म (दान फलके आधार) अर्थमें ण्विादि, पुरोडाः देवताके लिए अग्निको देनेकी वस्तु ।

अवेः अवपूर्वक यज् धातुसे डस् हो ण्वि बाधकर । अव यजते अवयाः अवपूर्वक यज धातुसे कर्ममें डस् हो, डितसे यजमें अजका लोप (अवयस्) सान्त उपधा दीर्घ, स को रुवि० । एक सूत्रमें पढते, योग विभाग (सूत्र अलगाव) उत्तरार्थ वास्ते । अवयाः श्वेतवाः पुरोडाः ये सम्बुद्धिमें दीर्घ माने जांय निपातनसे । सम्बुद्धिमें अत्वसन्तस्यके न लगनेसे । च पढनेसे उक्थशाः को भी सम्बुद्धिमें दीर्घ मान लें । लिङर्थे—विधि निमन्त्रणामन्त्रणा—आदि कार्यकारण भाव लिङ्के अर्थ है । उसी अर्थमें लट् लकार हो, वेदमें । सिप् हो, बहुलं सिद्धिके अनुसार । लेटि परे इतश्च लेट्के स्थानमें तिङ्के इकारका लोप हो, विकल्पसे । परस्मैपद परे लट्को अट् आट् आगम हो, दोनों पित् माने जायं । टित्से लेट्के आदिमें होंगे । सिप=स को बहुल करके णित् माना जाय वृद्धिके लिए । प्रण्-सौ बरसकी आयु पार करें । तृ प्लवन तरणयोः धातुसे आशीः आज्ञा प्रेरणा प्रार्थना प्रश्न आदि अर्थमें पार होनेके विषयमें लेट् ति । (तृ–ति) लेट् परे सिप् अनुबन्धलोप 'स' इट् आगम, इतश्च इकारलोप, तृ इ-स-त । लेटोऽडाटौ अट् षत्व (तृ इ ष त) सिब्बहुलं से स णित् हुआ, अचो ञ्णिति आर वृद्धि तारिषत् एवं जोषिषत् निश्चय वह प्रेम सेवा भाव बढ़ायें । जुषी प्रीतिसेवनयोः जुष् धातुसे प्रीति सेवाके विषयमें आज्ञा प्रेरणा उत्साह बढ़ाना सम्भावना लेट्-ति सिप, इलोप अट इट गुण (जोषिषत्) आसाविषत् अर्शसानाय रोग नाशके लिए औषधि कूटें निचोड़ें । सु भिषवे स्नपने पीडने कूटकर निचोड़नेके विषयमें आज्ञा प्रेरणा सम्भावना शुभकामना अर्थमें सु धातुसे लिङ्र्थे लेट सिप स, इतश्च इलोप (सु स त्) शप् स्थाने अट् वलादि इट । सिप्‌धो णितका फल वृद्धि

पताति दिद्यु त्। प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति। स उत्तमस्य ।३।४।९८। लेट उत्तमस्य वा लोपः। करवावः, करवाव। टेरेत्वम्। आत ऐ ।३।४।९५। लेट आकारस्य ऐ स्यात्। सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते। आतामित्याकारस्य ऐ। वैतोऽन्यत्र ।३।४।९६। लेट एकारस्य ऐं स्याद्वा। 'आत ऐ' इत्यस्य विषयं विना। पशूनामीशै। ग्रहा गृह्यान्तै। अन्यत्र किम्? सुप्रयसा मादयैते। उपसंवादाशङ्कयोश्च ।३।४।८। पणबन्धे आशङ्कायां च लेट्। अहमेव पशूनामीशै। नेज्जिह्मयान्तो नरकं पताम॥ व्यत्ययो बहुलम् ।३।१।८५। विकरणानां बहुलं व्यत्ययः स्याच्छन्दसि। आण्डा शुष्मस्य भेदति। भिनत्तीति प्राप्ते। जरसा मरते पतिः। म्रियत इति प्राप्ते। इन्द्रो वस्तेन नेषतु। नयते-

---

क्षो आव्। ष, आसाविषत्। जब न सिप् न इलोप तब तराति जोषाते सवाति बिजली गिरती है। पताति पतनकी सम्भावना या कामना अर्थमें लेट ति आट् (पत आ ति) विद्युत पतनकी सम्भावना शब्दार्थ। यह सूर्ये=सूर्य प्रिय-अनुकूल हो अग्नि भी। भू धातुसे होनेकी सम्भावना शुभकामना अर्थमें लेट् ति आट् गुण अव भवाति। प्रिय होनेकी सम्भावना। स—लट्के स्थानमें उत्तम पुरुष (वस मस) के सका लोप हो पक्षमें करवाव, वसके सका लोप हुआ पक्षमें नहीं।

टेः एत्व—टित आत्मनेपदानां टेरेसे एत्व हुआ हो आत-लेट लकारके स्थान में आ को ऐ हो, यथा सुतेभिः पुत्रोंके सफल प्रयाससे दोनों हर्षित हो मादयैते। वेदमें आको लेटके स्थानमें होनेसे 'आतां' के आ को ऐ हुआ। अन्यत्र (वैतः) आको ऐ होनेके भिन्न स्थलमें लेंटके एको ऐ हो। वा० आत् ऐ के विषयको छोड़कर पशूनाम् इशे जीवों या जानवरोंका स्वामी हो ईशेका ए=लेट स्थानी है ऐ हुआ। ग्रहगण छिपे हैं गृह्यान्तै ते ए आ ऐ हुआ, लेट स्थानिक होनेसे। अन्यत्र क्यों पढ़ा? आत ऐ का विषय न हो ऐसा क्यों कहा? सुन्दर प्रयाससे। मदी हर्षे मादयैते आत ऐ का विषय है।

उपसंवाद—बयाना वट्टा पणबन्ध व्यवहार बातचीतमें बंध जाना और आशङ्का=सन्देह अर्थमें लेट हो। अहमेव—मै ही पशुओंका स्वामी खरीददार जमानत बयाना बात व्यवहार कर्ता। इष् धातुसे लेट् उत्तमपुरुष इट् टितसे एत्व (वैतोऽन्यत्र) लेटसे ऐ व्यक्तिगति चालसे क्या नर्कमें भी नहीं गिरेगा। आशङ्का अर्थे पत धातुसे लेट मस आदि पताम सलोप, व्यत्ययोः—वि अति उपसर्ग ई धातुका बदलना परिवर्तनानुकूलव्यापार। प्रकृति प्रत्ययके बीच उपस्थित विकरण शप्, श्यन् श आदिका विकल्पसे परिवर्तन हो वेदमें। विविधः कल्पः विकल्पः अण्डात् जाताः आण्डाः अण्डेसे निकलकर सूखकर टूटे। भिदिर विदारणे भिदसे लेट ति श्नंको बाधकर शप् विकरण हुआ। भिनत्ति प्राप्त का (भेदति) शप् हो गया। पतिः-जरसा-बुढ़ौतीसे मर रहा है। श्यन्विकरण म्रियते प्राप्त था। शप (मरते) मृङ प्राणत्यागे इन्द्रो (अवः) अव रक्षणे तेन नेषतुः नाशस रक्षा करें। नी धातुसे लोंट ति, उ, सिप

र्लोट्। शप्सिपौ द्वौ विकरणौ। इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्, तरेमेत्यर्थः। तरतेर्विध्यादौ लिङ्। उः शप् सिप् चेति त्रयो विकरणाः॥

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिध्यति बाहुलकेन॥

धुरि दक्षिणायाः। दक्षिणस्यामिति प्राप्ते। चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति। तक्षन्तीति प्राप्ते। उपग्रहः-परस्मैपदात्मनेपदे। ब्रह्मचारिणमिच्छते। इच्छतीति प्राप्ते। प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यति। युध्यत इति प्राप्ते। मधोस्तृप्ता इवासते। मधुन इति प्राप्ते। नरः-पुरुषः। अधाः सा वीरैर्दशभिर्वियूयाः। वियूयादिति प्राप्ते। कालः—कालवाची प्रत्ययः। श्वोऽग्नीनाधास्यानेन। लुटो विषये लृट्। तमसो गा अदुक्षत् अधुक्षदिति प्राप्ते। मित्र वयं च सूरयः। मित्रा वयमिति प्राप्ते। स्वरव्यत्ययस्तु वक्ष्यते, कर्तृशब्दः कारकमात्रपरः, तथा च तद्वाचिनां कृत्तद्धितानां व्यत्ययः अन्नादाय। अण्विषये अच्। यङो यशब्दादारभ्य 'लिङ्याशिष्यङ्' इति ङकारेण प्रत्याहारः तेषां व्यत्ययो 'भेदति' इत्यादिरुक्त एव॥ छन्दस्युभयथा।३।४।११७। धात्वधिकारे उक्तः

शप गुण ष नेषतु। रक्षाके साथ ले जायें। इन्द्रके साथ जुड़कर वृत्रको पार करें। तृ प्लवनतरणयोः तृ धातुसे तैरनेके विषयमें विधि प्रेरणा आदि अर्थमें लिङ्, तृ मस उ शप् सिप् तीन विकरण (तृउ ष अ पास, इय, म। गुण अय तरुषेम। परिवर्तन के कितने विषय है बाहुलकसे कौन-कौन होते हैं सुप् प्रातिपदिक अर्थबोधक तिङ्-(काल कर्ता कर्म अर्थमें)उपग्रह==आत्मनेपद परस्मैपद तीनों लिङ्ग पुरुष काल हल् अच् स्वर कर्ता यङ्-शास्त्रकारोंने इनके विषयमें व्यत्यय विकार फेरबदल चाहते हैं। वह भी बाहुलक इष्टानुरोधसे। दक्षिण दिशाके आगे अर्थवाचक वाक्यसे दक्षिणस्यां-ङि विभक्ति सुप्का व्यत्यय-परिवर्तन ङसि (पञ्चमी) में हुआ दक्षिणायाः इति। यह परिवर्तन बहून् अर्थात् लाति बहुलं तस्य भावः बाहुलकं(मनोज्ञादि वुञ्) निर्देशानुसार व्यत्यय तिङ्मे बदलाव। अश्व यूपाय ये चषालं तक्षति। अश्व बन्धनार्थ स्तम्भ गढ़ रहे हैं। बहुवचन यः यौ ये के अनुसार अनेक बढ़ईकी क्रिया तक्षन्ति बहुवचन तिङ् झिके स्थानमें ति का व्यत्यय तक्षति। उपग्रह परस्मैपदको आत्मनेपद उसको परस्मैपदमें परिवर्तन शास्त्रकारों (पाणिनि आदि) को अनुभूत है। अतः इच्छति स्थाने इच्छते बदल गया। ऊर्मिः तरंगः विपरीत युद्ध करता है युध्यते। आत्मनेपद परस्मैपदमें परिवर्तन। आचार्य समर्थित हुआ।

लिङ्गका व्यत्यय मधुनः नपुंसक मधोः में बदला। मानो तृप्त हुए बैठे हैं। नरः का पुरुषः अर्थ, प्रथम पुरुष वियूयात् मध्यम पुरुष वियूयाः में बदला। यु मिश्रणे दश वीरोंसे मिलाया जाय। कर्ता प्रथमपुरुष, क्रिया मध्यम अर्थ प्रथमका ही रहेगा। [कालवाचक शब्द श्वः, ह्यः आदि रहते कालवाचक लकारमें परिवर्तन

प्रत्ययः सर्वधातुकार्धधातुकोभयसंज्ञाः स्यात् ॥ वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयः। वर्धयन्त्विति प्राप्ते आर्धधातुकत्वाण्णिलोपः। विश्रृण्विरे। सार्वधातुकत्वात् श्नः श्रृभावश्च, हुश्नुवोरिति यण् ॥ तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः ३।४।९। से,–वक्षे रायः, सेन् ता वामेषे। असे–शरदो जीवसे धाः। असेन्, नित्त्वादाद्युदात्तः। पक्षे आद्युदात्तम्। कध्यै–कध्यैन्, आहुवध्यै। शध्यै, राधसः सहमादयध्यै। शध्यैन् वायवे पिबध्यै। तवै, दातवा उ। तवेङ्, सूतवे। तवेन्, कर्तवे ॥ प्रयै रोहिष्यै

श्वः अग्निम् (आगामि कल) अग्निकी स्थापना आधान करते हुए व्यक्तिसे लुट्का अनद्यतन भविष्य अर्थमें सामान्य भविष्यकाल अर्थवाचक लृट्। इसीलिए आङ्पूर्वक धासे लृटः सद्वा सूत्रसे शानच और स्य आनेमुक आदि हुए, आधास्यमानेन तमसो मा अंधेरेमें गाय दुहा (अधुक्षत्) की जगह हल् धके बदलावसे अदुक्षत हुआ। अच्–

यङ्—पुनः अतिश्च अर्थ यङ्==य से लेकर आशिष्यङ् के ङ तक प्रत्यया है। उनका व्यत्यय भेदति इत्यादिमें कहा ही है।

छन्दसि—वेदमें धातुके अधिकारमें कहे गये प्रत्यय उभयथा==सार्वधातुक आर्धधातुक दोनोंके संज्ञक होते वे। लिङ्, सार्वधातुक भी है। अतः यासुट् को इय, बलि लोप भी होता है। तुम्हारे सुजश सुकीर्ति बढ़े वर्धयन्तु होना था आर्धधातुक संज्ञासे णिलोप हुआ, वर्धन्तु बना। विश्रृण्विरे सार्वधातुक संज्ञाका फल श्नः को श्नु होना और हुश्नुवोः सार्वधातुकेसे यण, श्न को इरेच भी।

तुमर्थे—तुमुनो अर्थः तुमर्थ अपूर्णकालकी क्रिया तुमका अर्थ है। जैसे–द्रष्टुं गच्छामः, ज्ञातुं पठामः, लब्धुं सेवामहे यद्यपि (कर्तरि कृत्) कर्ता अर्थ तुमर्थ कहता है। तथापि (अव्ययकृतो भावे) मान्त कृदन्त अव्यय है। वे भाव क्रिया अर्थमें होते हैं। तुमुनर्थमें पन्द्रह प्रत्यय है। राया धनं वक्षे वक्तुमिच्छामः, वच धातुसे तुमुन् अपूर्ण कालकी क्रिया अर्थमें से वचः से च को क, सको ष, संयोगे क्ष वक्षे। सेन (एषे) इण् गतौ धातुसे सेन प्रत्यय तुमुर्थमें, गुण षत्व एषे। एष्टुं गन्तुं अर्थः। असे असेन्में नित्स्वर आदि उदात्तका अन्तर। ञ्नित्यादिर्नित्यं शतशरद् पर्यन्त जीवसे जीवितुं वाञ्छति, जीव धातुसे असे आदि। प्रपूर्वक इ धातुसे क्से प्रत्यय षत्व गुण। प्रेषे प्रेषित अर्थः गवामिव गोसेवाकी तरह श्रियते श्रयितुं सेवां कर्तुं जठरं (पृणध्यै)पेटकी अग्निको प्रदीप्त क्रिया। पृण सुखने धातुसे सुखकी अपूर्णकालिकक्रिया अर्थमें अध्यै आदि। पक्षमें आदि उदात्त भी, नित्की कृपासे। अन्यथा मध्योदात्तः। आङ्पूर्व हुधातुका पूर्णरूपसे हवन दान अर्थ। उसकी अपूर्ण क्रिया तुमर्थमें कध्यै आदि, अनुबन्धलोप स्वरका भेद। आहु-वध्यै उवङ् आवाहन। सः मादयध्यै मदी हर्षकी प्रेरणा अर्थमें णिच् आदि धातुसे हर्ष पैदा करनेकी अपूर्ण क्रिया अर्थमें अध्यै। सार्वधातुके भावे यक् प्राप्त था। व्यत्ययसे शप् गुण अय हुआ। वायुको

अव्यथिष्यै ।३।४।१० एते निपात्यन्ते । प्रयातुं–रोढुम्, अव्यथितुमित्यर्थः ॥ दृशे विख्ये च ।३।४।११। निपातौ । द्रष्टुं, विख्यातुमित्यर्थः । कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः ।३।४।१४। धातोरेते स्युः ॥ तवै अन्वतवै, केन् अवगाहे । केन्य दिदृक्षेण्यः । त्वन् कर्त्वम् ॥ सृपितृदो कसुन् ।३।४।१७। तुमर्थे । पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । पुरा जत्रुभ्यआतृदः ॥ प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे ।६।१।११५। ऋक्पादमध्यस्थ एङ् प्रकृत्या स्यादति परे, न तु वकारयकारपरेऽति ।

पीनेकी इच्छा (पिबध्यै) पा पाने धातुसे पीना अपूर्ण अर्थमें शध्यैन् अनुबन्धलोप यक् बदलकर शप् हुआ, पाघ्राध्मासे पिब पिबध्यै, पातुं अर्थः । दातुमर्थमें दाधातुसे तुमर्थ, तवै, दातवै उ, आय शाकल्यमते यलोप दातवा उ । निश्चयेन दातुं गच्छामः । सवितुं स्नान या लता कूटना निचोड़ना पूर्वकालिक हो, सू धातुसे तवे सूतवे । कर्तुं अर्थमें कृधातुमें तवेन् । प्रयै प्रयातुं प्रपूर्वक या प्रापणे धातुसे 'कै' ऐ प्रया ऐ, आकार लोप । रोढुम् आरोहणके लिये अर्थमें रुहसे 'इष्यै' गुण रोहिष्यै । तुमुन् अर्थमें अव्यथितुं पीडा न होना, व्यथसे तुमर्थमें इष्यै । दृशे द्रष्टुं अर्थमें दृशसे के प्रत्यय, निपातनसे कित्का फल गुण निषेध । विख्यातुं प्रसिद्धः भवितुं अर्थमें विख्या से के प्रत्यय कित्का फल आतो लोपः आकार लोप, मेलने । कृत्यार्थे भाव कर्ममें कृत्य संज्ञक प्रत्यय तव्य अनीयर यत् ण्यत् आदि होते हैं, तयोरेव=कृत्य क्त खलर्थाः सूत्र प्रमाणसे । यद्यपि कर्ता भी अर्थ । वहां करण अर्थमें । स्नानीयं=स्नात्यनेन । सम्प्रदान अर्थ दीयते अस्मै आदि अर्थ, तथापि भावकर्म अर्थमें तवै अन्वतवै भाव या कर्म अर्थ (अवि प्रीणने) इदित् नुम् अन्व धातु । अवगाहे अवपूर्वक बिलोडने—बहुत थाहाना, गोता लगाना, मन्थन, भावमें केन प्रत्यय, अनुबन्ध लोप ए । द्रष्टुमिच्छति दिदृक्षति दिदृक्षते असौ दिदृक्षेण्यः सन्नन्त दिदृक्षसे केन्य, आतोलोपः, णत्व । कृ से त्वन् गुण कर्त्वं कृत्यं कार्यमर्थः । यद्यपि तुमर्थसेऽसे-सूत्रसे तवै हो जाता तथापि भावभिन्ने कर्मकारकेऽपि तवै भवतु एतदर्थं अत्र सृप्लृ=और तृदिर हिंसानादरयोः धातुसे भाव लक्षण क्रिया अर्थ वर्तमान रहते तुमर्थमें कसुन् हो । पुरा पहले क्रूर दयाहीन की गति अर्थमें विसृप् कसुन्, अस शेष विसृपस जत्रुभ्यः) आङ्पूर्वक तृद् धातुसे हिंसा अनादरकी अपूर्ण क्रिया अर्थमें कस अ॰ आत्रदः हिंसा या दुत्कार अर्थ ।

प्रकृत्या पादमध्ये इति । अन्त पादम् अव्ययीभाव समास, अन्तःका मध्य अर्थ । प्रधान आधार शक्ति । पादसे ऋग्वेदका चरण मान्य नतु श्लोकस्य । मण्डूक प्लुति=मेढ़क उछलन्यायसे छन्दसि आया । वैदिकत्व सिद्ध । ऋक्के मन्त्र पादके मध्यमें विराजमान एङ्को प्रकृतिभाव जैसाका तैसा रहना हो । एङः पदान्तादति आदि का न लगाना (सन्धि रूपं विकारं न लभते) उपप्रयन्तो—अध्वरं एङः पदान्तादतिसे अको पूर्वरूप प्राप्त था नहीं हुआ । प्रकृति भाव होनेसे यकार वकार परक

उपप्रयन्तो अध्वरम्। सुजाते अश्वसूनृते। अन्तःपादं किम्? एतास एतेऽर्चन्ति। अव्यपरे किम्? तेऽवदन॥ अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च।६।१।११६। एषु व्यपरेऽप्यति एङ् प्रकृत्या। वसुभिर्नो अव्यात्। मित्रमहो अवद्यात्। मा शिवासो अवक्रमुः। ते नो अव्रत। शतधारो अयं मणिः। ते नो अवन्तु। कुशिकासो अवस्यवः सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः।७।१।३९। ऋजवः सन्तु पन्थाः। पन्थान इति प्राप्ते। परमे व्योमन्। व्योमनीति प्राप्ते। धीती मती सुष्टुती। धीत्या मत्या सुष्टुत्येति प्राप्ते पूर्वसवर्णः। या सुरथा रथीतमोभा। यौ सुरथाविति प्राप्ते आ। नताद् ब्राह्मणम्॥ नतमिति प्राप्ते आत्। याद्देव विद्यतात्त्वा यमिति प्राप्ते। न युष्मे वाजबन्धवः, अस्मे इन्द्राबृहस्पती, युष्मासु अस्मभ्यमिति प्राप्ते शे।

अकार नहीं हैं। सुजाते अश्व में भी पूर्वरूप विकार नहीं हुआ। अन्तः पादं क्यों पढ़ा? (ऋचि) यहीं पढ़ते। एतेऽर्चन्ति यहां पूर्वरूप कैसे? प्रकृति भाव क्यों नहीं। पादमध्यमें न होकर पादके अन्तमें होनेसे। कयामती उतएताक एतेऽर्चन्ति। अव्यपरे व य परक अकार न हो ऐसा क्यो? ते अवदन् यहां व परक अ है। न निषेध।

अव्यात्--आदि शब्द अनुकरण है सुबन्तके साथ समास। इनके परे रहते वकार यकार परक भी ह्रस्व अकार हो उसका प्रकृतिभाव हो जाय, सन्धि विकार न हो (नो अव्यात्) अवरक्षरणे धातुसे यासुट् आदि रक्षणं कुर्यात् अर्थं। व्य परक व देखकर प्रकृतिभाव हुआ, न सन्धिः। अवद्य अनिद्य पञ्चमी एकवचन (अहोअवद्यात्) न सन्धिः स्वभावसे, निर्दोषसे। शिवासोऽवक्रमुः माङ्गलिक कदम। अवपूर्वक क्रम लिटि उसि, 'छन्दसि वा' वचनसे द्वित्व न होना, न पूर्वरूपं, प्रकृतिभावात् (नो अव्रत) पूर्वरूप नहीं हुआ। वृ धातुसे लुङि त अट (मन्त्रे घस) सूत्रसे च्लि लुक् वे हमलोगोंको स्वीकार किये। यह मणि सौ धारासे रिसता है शत धारोऽयम्। यहां पररूप नहीं। वे मेरी रक्षा करें नो+अवन्तु प्रकृतिभावसे न सन्धि। अवस्यु परे भी प्रकृतिभाव, अव धातुसे असुन् तब क्यच् क्याच्छन्दसिसे उ प्रत्यय।

सुपां—सुप विभक्तिके स्थानमें सु हो लुक् भी, पूर्वसवर्णदीर्घं। आ आत् या डा ड्या याच् आल आदेश हो वेदमें पन्थाः=रास्ते रिजवः=सीधे सरल हों। पन्थानः प्राप्त था बहुवचन जस् सुप् है उसको सु आदेश हुआ पन्थाः (परमेव्योमन्) सप्तमी विभक्तिका लुक् हुआ, ये कार्य व्यत्ययो बहुलंसे भी सिद्ध। धीति टा सुप् है उसका पूर्वसवर्णदीर्घं ई प्रमाणकृतः सादृश्यसूचक दीर्घं। मति—टा। धीत्या आदि प्राप्त था, यौ सुरथौ अव,विभक्तिके स्थानमें आ आदेश हुआ। नताद्—नतं प्राप्त था अम्को आत् आदेश न विभक्तौतुस्माः इत्संज्ञा निषेध। यादेव—यत् शब्दसे परे अम् को आत् यात्। युष्मासु अर्थमें सप्तमी बहुवचन सुप् स्थाने शे, युष्मद् ए। शेषें लोपः टिलोप युष्मे। अस्मासु इति अस्मे हम सबके बीच इन्द्र वृहस्पति। युष्मासु अस्मभ्यं प्राप्त था विभक्तिको शे हुआ। उससे टाके स्थानमें या हृदयसे हृदय्या हृदय से डा को या। नाभो प्राप्त था ओ के स्थानमें डा डित्से टिलोप नाभा पृथ्वीकी

उरुया, धृष्णुया । उरुणा धृष्णुनेति प्राप्ते या । नाभा पृथिव्याः । नाभाविति प्राप्ते डा । ता अनुष्ठ्योच्यावयतात् । आङो ड्या । साधुया, साध्विति प्राप्ते याच् । वसन्ता यजेत । वसन्त इति प्राप्ते आल ॥ (इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम्) । उर्विया उरुपति प्राप्ते इया । सुक्षेत्रिया । सुक्षेत्रिणेति प्राप्ते डियाच् । दृति न शुष्कं सरसी शयानम्' । सरस्यामिति प्राप्ते ई ॥ आज्जसेरसुक् ।७।१।५०। ब्राह्मणासः ॥ (तन्वादीनां छन्दसि बहुलम्) तन्वं पुषेम, तनुव पुषेम । विष्वं पश्य । विषुवं पश्य । स्वर्गो लोकः । त्र्यम्बकम् । त्रियम्बकम् । वरेण्यम् । वरेणिम । अतो भिस ऐस्' ॥ बहुलं छन्दसि ।७।१।१०। अग्निर्देवेभिः ॥ मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः ।६।४।१४१। आत्मन्शब्दस्यादेर्लोप आङि । त्मा देवेषु अपांभि ॥ (मासश्छन्दसीति वक्तव्यम्) । माद्भिः । शरद्भिः ॥ प्रसमुपोदः पादपूरणे ।८।१।६। एषां द्वे स्तः पादपूरणे । प्रप्राय-

---

नाभिमें । **अनुष्ठ्या** अनुष्ठानेन अनुक्रमेण क्रमशः गणना करके **उच्यावतात्**=पृथक करोतु । टा को ड्या । **साधुया** सु का लुक् प्राप्त बाधकर **या** वसन्तसे यज्ञ करें वसन्ते इति प्राप्त आल् **वसन्ता, इयाय** इयाच इकार प्रत्यय भी सुप्के स्थानेमें हो उरूणा दारूणा प्राप्त था । टा स्थाने इया(उरुया)यण् दार्विया,हृदयसे काष्ठसे अर्थ । सुक्षेत्रिन+टा स्थाने डियाच डित्से टि इन का लोप । सुक्षेत्र इया । सुक्षेत्रिणा प्राप्त था । **सरसी**—नदी संज्ञा ङि को आम् प्राप्त था । सुस्थाने इ सवर्णदीर्घ **सरसी**-जश् परे अदन्तसे असुप् आगम हो ब्राह्मण जस् अदन्तसे अस परे । असुप् (ब्राह्मण असु) अस-सवर्ण दीर्घ रुवि० । असुकके स को रुत्व विसर्ग । **तनु**-आदिके अन्त्य अल्को इयङ् उवङ् आदेश विकल्पसे हो । वेदमें तनु अम् उवङ् हुआ तनुवम पक्ष यण् तन्वं शरीरका पोषण करें । विषु+अम् उवङ् पक्षमें यण् सम्पूर्णको देखो धातु न होनेसे उवङ् प्राप्त नहीं था । सु अंगों जब उवङ् सुवर्गो पक्षमें यण् ससार है । त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि यस्य त्र्यम्बको रुद्र त्रि अम्बकं यण् पक्षमें इयङ् वरेणि+अम् यण् **वरेण्यं** इयङ् वरेणियम् अदन्तसे भिस्को ऐसा विकल्पसे होता है । **देवेभिः** कर्णेभिः ऐसा नहीं हुआ । मन्त्रोंमें आत्मन शब्दके आदि अकारका लोप हो त्मना में आकार लोप हुआ देवताओंमें स्वयं भी है मास शब्दको विकल्पसे मास् आदेश हो । पद्न्नो मासःसे मासैः जब मासको हलन्त हुआ तब माद्भिः । प्र सम उप उद इनको पादपूर्तिके लिए द्वित्व दो उच्चारण करें । प्र प्रायम् पादपूर्तिके लिए प्रको द्वित्व । संसमित सको द्वित्व । 'उपोप'में उपको उदुद् उत्कोको द्वित्व पादपूर्ति के लिए । षष्ठी अन्तके विसर्गको स हो पति पुत्र पृष्ठ पार पद पयस पोष परे रहते वाचः पतिः वाणीका स्वामी षष्ठी सम्बन्धी विसर्गको स **दिवः पुत्राय** दिनका **सरस्वती मनु** सर्वनाम जानकर अकच् ये यके बीच अक बैठा मिलकर यके समुदाय का अन्त उदात्त । तत्से अकच् तकत् बना । अन्त उदात्त । च इतः होनेसे । **बहुच्** प्रत्ययका उदाहरण बहुपटवः । **तद्धितस्य** वह चित् तद्धितका अन्त उदात्त क

मग्निः। संसमिद्यु-वसे। उपोप मे परामृश। किं नोदुदु हर्षसे॥ षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु।८।३।५३। विसर्गस्य सः स्यात्। वाचस्पतिं विश्वकर्माणम्। दिवस्पुत्राय सूर्याय। दिवस्पृष्ठं भन्दमानः। तमसस्पारमस्य परीवीत। इलस्पदे। दिवस्पयो दिधिषाणाः। रायस्पोषं यजमानेषु।

इति वैदिकप्रकरणम्।

अथ स्वरप्रकरणम्

धातोः ६।१।१६२। अन्त उदात्तः स्यात्॥ **अनुदात्तं पदमेकवर्जम्** ।६।१।१५८। परिभाषेयं स्वरविधिविषया। यस्मिन्पदे यस्योदात्तः स्वरितो वा विधीयते तमेकमचं वर्जयित्वा शेषं तत्पदमनुदात्तच्कं स्यात्। गोपायतं नः। अत्र 'सनाद्यन्ता धातवः, इति धातुत्वे धातुस्वरेण यकाराकार उदात्तः।

सन्तान सूर्य सम्बन्ध सूचक विसर्गको स हुआ। दिवः पृष्ठ विसर्गको स। तमसः पारम् इलः पदे दिवः पयो, रायः पोषं, सर्वत्र षष्ठीसे सम्बन्धित विसर्गको स हुआ। लौकिक शब्दोंकी साधनिकाकी अपेक्षा वैदिक शब्दोंकी साधनिकाका विशेष नियम समाप्त। इति वैदिक प्रकरणम्

अथस्वर प्रकरणम्—स्वर अर्थके (द्योतक प्रकाशक) व्यञ्जक होते हैं। धातु स्वरसे धातुका अर्थ व्यञ्जित हो। अतः **धातोः**-धातुका अन्त उदात्त हो। जो धातु के अर्थका सूचक **अनुदात्तं**-परिभाषा सूत्र है। स्वर विधानके विषयमें अनियतका नीयत करता है, संशयको निश्चय। यह अधिकार नहीं स्वरित प्रतिज्ञा न होनेसे। स्वराः अर्थं निर्णायकाः भवन्ति-धातोः-सभी धातुका अन्त्य अच उदात्त हो जो धातु अर्थका सूचक है। अनुदात्त (एकवर्ण पदम् अनुदात्त) जिस पद (सुबन्त पद या तिङन्त पद हो) में जिसको उदात्त या स्वरितका अन्तिम विधान हो तमेकं उस एक अचको छोड़कर बाकी सभी पद अनुदात्त अचवाला हो यह परिभाषा सूत्र हो, अधिकार नहीं, स्वरित संकेत न होनेसे (परितः भाषते प्रकाशते सन्देह निवर्तते यथा परिभाषा) अनियममें नियम करनेवाली असे बीजकी आवश्यकता है। तब कहा **स्वरविधि**=अर्थनिर्णयमें सन्देह हो वहां स्वर अर्थनिर्णायक होता है उसके विषयमें निर्णायक सूत्र अनुदात्त है उससे भिन्न उदात्त या स्वरित एक अर्थको छोड़कर बाकी अनुदात्त। यत् तत्का नित्य सम्बन्ध है एकशब्द विधीयमानका सूचक है। **गोपायतं** रक्षाकी क्रिया अर्थवाचक गुप धातुको धातोः अन्त उदात्त (जो रक्षण क्रियाका सूचक) तब आय प्रत्यय जिसका स्वार्थ। गुप्का ही अर्थ है उसे (अद्युदात्तश्च) आदि उदात्त पुनः सनाद्यन्त जानकर धातुसंज्ञा, पुनः धातोः सूत्रसे गोपायमे यका अ उदात्त गोपाय तीनों अक्षर उदात्त है पश्चात् हुआ स्वर सतिशिष्ट अति बलवान् (गोपाय अ थसः) शप्का अ अनुदात्त, अनुदात्तौ सुप्पितौ। जब अतो-

शिष्टमनुदात्तम् ॥ उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ।८।४।६६। इति तकाराकारः स्वरितः ॥ स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् ।१।२।३९। एकश्रुतिः स्यात् । इति नकाराकारः प्रचयः ॥ अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः ।६।१।१६१। यस्मिन्ननुदात्ते उदात्तो लुप्यते तस्योदात्त । देवीं वाचम् । अत्र ङीबुदात्तः । आद्युदात्तश्च ।३।१।३। प्रत्ययस्याद्युदात्तः स्यात् कर्तव्यम् । अनुदात्तौ सुप्पितौ ।३।१।४। पूर्वस्यापवादः । यज्ञस्य । न यो युच्छति । शप्तिपोरनुदात्तत्वे स्वरितप्रचयौ । चितः ।६।१।१६३। अन्त उदात्तः स्यात् ॥ (चितः सप्रकृतेर्बह्वकजर्थम्) । चिति प्रत्यये सति प्रकृतिप्रत्ययसमुदायस्यान्त उदात्तो वाच्य इत्यर्थः । नभन्तामन्यके समे । यके सरस्वतीमनु । तकत्सुते ॥ तद्धि-

---

गुणे पररूप तब उदात्तेन सह एकादेशः उदात्तो भवति थस् स्थाने थम् आदेशः । अतः उपदेश जानकर परत्वात् तास्यनुदात्तसे अनुदात्त उदात्तादनुदात्तस्य सूत्रसे स्वरित त का अ स्वरित हुआ । गोपाय तं जिसको शेष अनुदात्त कहेंगे ऐसे स्वरितात्=स्वरितसे अनुदात्तोंकी संधि संहिता एकार्थीभावदशामें एकश्रुति हो सभी मिलकर एकस्वर होना एकश्रुति है । संहिताके आनेसे पदकालमें भी अनुदात्त ही रहता है बहुवचन जाति अर्थमें । अतः एक दो अनेककी एकश्रुति मिलकर श्रवण होता है । एक स्वर (प्रचय) पुरोहि ँ अग्नि ईडे दो की एकश्रुति त में अ (प्रचय) एकीभूत स्वर है ।

अनुदात्तस्य—जिस अनुदात्तके परे रहते उदात्तका लोप हो वह अनुदात्त भी उदात्त ही जाय । यथा **देवींवा चं** देवता बनानेवाली वाणी पचादिगणमें देवट् पाठसे अच् हुआ देव अ चितः से अन्त उदात्त, टिड्ढाणञ्से ङीप् । पित्से ई अनुदात्त है । देव ई । ई परे वमें अ उदात्तका लोप—यस्येति चसे । जिसके कारण ङीप्का ई सूत्रसे उदात्त हुआ । प्रत्ययका आदि उदात्तका विधि सूत्र है । कर्तव्यं–त्वं कुरु सः करोतु कुर्यात् वा इति–त्वया तेन वा **कर्तव्यं** । कृ धातुसे कर्म या भावमें तव्य प्रत्यय गुण आदि । प्रत्ययका आदि उदात्त । यदि वह प्रत्यय सुप् या पित्=हों तब पूर्वसूत्रके आदि उदात्तको बांधकर अनुदात्त हो जाय । सुप् यज्ञस्य ङस्को स्य है । आदि उदात्त बाधकर अनुदात्त । पित्का उदाहरण (युच्छ प्रमादे) धातोः सूत्रसे अन्त उदात्त । उससे परे शप् का अ अनुदात्त पित होनेसे । तिप भी अनुदात्त । पित होनेसे । उदात्तसे परे अनदात्त स्वरित हुआ । जब स्वरित से परे अनुदात्त स्वरोंकी संहिता मिलित अर्थ एकार्थीभावकी कामनासे तिप् प्रचय (एक स्वर)की एकश्रुति युच्छति । जो प्रमाद नहीं करता ।

चितः च इत् प्रत्ययका अन्त उदात्त हो वह चित्प्रत्यय प्रकृतिके भीतर हो तो अकच् प्रत्यय सहित हो । अकच्में च पढ़ना प्रमाण है यथा मन्येमें अकच् हुआ मन्यके बना । प्रकृतिमें प्रविष्ट चित्प्रत्यय हो तब प्रकृति प्रत्यय । समुदायका अन्त उदात्तेन अन्यके, ये से अकच् यके अन्त उदात्त हो । अन्य सभी व्याकायगामी हो । ये

तस्य ।६।१।१६४। चितस्तद्धितस्यान्त उदात्तः। पूर्वेण सिद्धे ञित्स्वरबाधनार्थम्। कौञ्जायनाः। कितः ।६।१।१६५। कितस्तद्धितस्यान्त उदात्तः। यदाग्नेयः। तित्स्वरितम् ।६।१।१८५। क्व नूनम्॥ उपोत्तम रिति रित्प्रत्ययान्तस्योपोत्तममनुदात्तं स्यात्। यदाहवनीये॥ ञ्नित्यादिर्नित्यम् ।६।१।१९७। ञिदन्तस्य निदन्तस्य चादिरुदात्तः। यस्मिन्विश्वानि पौंस्या। पुंसः कर्मणि ब्राह्मणादित्वात्ष्यञ्। सुतेदधिष्व नश्चनः। चायतेरसुन्। चायेरन्ने ह्रस्वश्चेति चकारादसुनो नुडागमः॥ लिति ।६।१।१९३ इत्यादिप्रत्ययात्पूर्वमुदात्तं स्यात् चिकीर्षकः अत्र ईकारस्योदात्तता। इत्यादिप्रयोगमनुसृत्यान्वाख्यातव्यम्। इति स्वरप्रक्रिया। एषा वरदराजेन बालानामुपकारिका।

अकारि पाणिनीयां मध्यसिद्धान्तकौमुदी ॥१॥
कृतिर्वरदराजस्य मध्यसिद्धान्तकौमुदी।
तस्याः संख्या तु विज्ञेया खबाणकरवह्निभिः ॥२॥

इति श्रीवरदराजकृता मध्यसिद्धान्तकौमुदी समाप्ता॥

अथ लिङ्गानुशासनम्। अथ स्त्रीलिङ्गाधिकार।

लिङ्गम्। स्त्री, अधिकारसूत्रे एते॥ **ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृयातृननान्दरः** ।१। एते पञ्चैव स्त्रीलिङ्गाः॥ **अन्यूप्रत्ययान्तो धातुः** ।२। अनिप्रत्ययान्त ऊप्रत्ययान्तश्च धातुः स्त्रियां स्यात्। अवनिः। चमूः॥ मिन्यन्तः

यद्यपि चितः सूत्रसे अन्तोदात्त सिद्ध था। ञित् स्वरको बांधनेके लिए कौञ्जायना आदि उदात्त न हो। कितः कित सम्बन्धी तद्धितका अन्त उदात्त (आग्नेयः) अग्निसे ढक्-एय कित् है अन्त उदात्त। त इत् तित्प्रत्ययान्त स्वरित हो। किमः क्वादेशः क्वाति अतका त इत से तित् (क्व) स्वरित हुआ। उपोत्तमं अन्तिमस्य समीपं उपोत्तमं अन्तिम ही उत्तम है। र इत् प्रत्यय अनीयर आदि अन्तमें हो। उपोत्तम अनुदात्त होता, आहवनीये यज्ञे हवनके योग्य यज्ञ कर्ममें अनीयर। रित् अन्तिमका समीप अनुदात्त हुआ। ञ् न इत् प्रत्यय का आदि उदात्त हो पौंस्याः। पूरे विश्वमें पुरुष कर्म भरे हैं। ब्राह्मणादि मानकर ष्यञ् ञ् इत्से आदि उदात्त, आदिवृद्धि। नश्चन चाय धातुसे असुन् चाय अस् ह्रस्व नुट् (च न अस्) चनः व्यास, लिति लित्प्रत्ययके परे पूर्व उदात्त हो चिकर्षति कर्तुमिच्छति चिकीर्षकः ण्वुल वु-अक ल इत् अक है पूर्व अच् ई उदात्त हुआ कृदन्तवृत्तिका द्योतक है। सनोऽतो लोपः।

अथलिङ्गानुशानम्=लीनं अर्थं गमयति परिचाययति स्त्री पुंनप इति बोधयति तादृशम् अनुशासनं लिङ्गका अधिकार अनुशासन समाप्ति पर्यन्त है। **स्त्रीलिङ्गका अधिकार** 'ताराधारा'सूत्र तक, सामान्य अनुशासन ऋकारान्त पांच शब्द स्त्रीलिङ्ग है। मातृ दुहितृ स्वसृ यातृ ननान्दृ। अन्य ऋकारान्त प्रायः पुलिङ्गः। उणादिके प्रत्यय साधुत्वमें (व्युत्पन्न) कारण है, प्रमाणित भी। अनि—ऊ प्रत्ययान्त धातु स्त्रीलिङ्गमे है। अवनिः अवरक्षणे। आधारभूत भूमि (आधार रूपमें रक्षा करती

।३। मि, निप्रत्ययान्तः स्त्रियाम् । भूमिः । ग्लानिः ॥ क्तिन्नन्तः ।४। कृतिरित्यादि ॥ ईकारान्तश्च ।५। लक्ष्मीः ॥ ऊङाबन्तश्च ।६। कुरूः । अजा ॥ य्वन्तमेकाक्षरम ।७। स्त्रीः भूः ॥ विंशत्यादिरानवतेः ।८। इयं विंशतिः ॥ तलन्तः ।९। शुक्लता । भाःस्रुक्स्रग्दिगुष्णिगुपानहः ।१०। इयं भाः । स्थूणोर्णे नपुंसके च ।११। स्थूणा, स्थूणम् । शष्कुलिराजिकुटयशनिवर्तिभ्रुकुटित्रुटिवलिपङ्क्तयः ।१२। एतेऽपि स्त्रियां स्युः इयं शष्कुलिः ॥ अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां बहुत्वं च ।१३। अबादीनां पञ्चानां स्त्रीत्वं स्याद्बहुत्वं च । आप इमाः ॥ ताराधाराज्योत्स्नादयश्च ।१४। इयं तारा ॥ इति स्त्र्यधिकारः ॥

अथ पुंल्लिङ्गाधिकारः

पुमान् । अयमधिकारः ॥ घञबन्त ।१। पाकः । करः । भावार्थ एवेदम ॥ घाजन्तश्च ।२। विस्तरः । चयः ॥ भयलिङ्गभगपदानि नपुंसके ।३। भय-

---

है) अति— सृ-धृ-तृभ्योऽअनिः चमूः तनूः धनूः सजूः इनसे हुआ ऊ प्रत्यय स्त्री धर्म का परिचायक है । सरणि— धरणिः धमनिः तरणिः । मि नि —अन्त शब्द भूमिः धूनिः जूनिः ग्लानिः हानिः तूनिः क्तिन्-अन्त धातु स्त्री धर्मवाहक । कृतिः रचना मतिः भूतिः सम्पत्तिः विपत्तिः धृतिः । वहि श्रि श्रु ग्ला हा । ईकारान्त प्रत्यय, लक्ष्मीः, अवीः, तरीः, स्तरी, कर्त्रीसे ई प्रत्यय । इतने ही ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग, शेष प्रायः पुलिङ्ग । ऊङ् अन्त टाप् डाप् अन्त, स्त्रीधर्म परिचायक है । यथा–क्रमण्डल कुरूः अजा बाला वत्सा । ई ऊ अन्त एक अक्षरका शब्द स्त्री भूः । स्त्रीलिङ्ग, ऊके साथ ई भी प्रत्यय, यथा विंशतिः षष्टिः सप्ततिःन वतिः आदि नारी धर्मवाहक है ।

तस्य भावः त्वतलौ का तल्-प्रत्ययान्त स्त्री है, शुक्लस्यभावः शुक्लता मनुष्यता वीरस्यभावः धर्मः गुणविशेषता च वीरता सहायता । सभी स्त्रीलिङ्गके सूचक । भास स्रुक-स्रुवा-स्रक्-दिश-दिशा, उष्णिह-टोपी पगड़ी उपानह पादत्राणी । इयं भाः, इयंस्रुक् अनया उपानहा । स्थूण—ठूंठ स्तम्भ लोहेकी मूर्ति, ऊर्ण नपुंसक भी है । इयम्, ऊर्णा इदम् उर्णम् । शष्कुलिः पूड़ी, राजिः-पंक्ति रोमराजिः । कुटी—अशनि वर्ति भ्रुकुटि त्रुटि-वलि पंक्ति शब्द स्त्री धर्मकः इयं कुटी तां अशनिं, तया शष्कुल्या ।

अप–जल-सुमनस्-समा-वर्ष-सिकता ये पांच शब्द स्त्रीलिङ्गमें बहुवचनान्त है । इमाः सुमनसः, ताः सिकताः । शर्करा वर्षासु सर्वासु तारा, ज्योत्सना धारा चमक शोभा, वेग सभी स्त्रीपरिचायक, स्त्रीलिङ्गाधिकार समाप्त ।

सतोगुण प्रधानः धर्मः पुलिङ्गः । पुमान् का अधिकार हस्तकुन्ता हस्तकुन्तान्तब्राति—सूत्रतक, पुलिङ्गसूचक प्रत्ययोंका अधिकार । घञ् अप् प्रत्यय भाव (क्रिया) अर्थमें हुए हों पुलिङ्ग । पचनं पाकः पाक क्रिया । पच-से घञ् उपधावृद्धि आदि । करणं करः फल जननी क्रिया कृ से ऋदोः अप् गुण । भावमें घञन्त पुलिङ्ग हुआ । नपुंसक वाले भावमें क्त ल्युट्से घञ्का बाध है । स्त्रीलिङ्गमें क्तिन्का क्विप्से बोध होगा । भाव शेष रहा, पुम्के लिए कर्मकरण आदि अर्थमें हुए घ अच् अन्त शब्दका लिङ्ग विशेष्यके आधीन । विस्तरः बिछौना । स्तृ से घ, चयनं चयः

मित्यादि ॥ नङन्त ।४। पुंसि स्यात् । यज्ञ इत्यादि ॥ याच्ञा स्त्रियाम् ।५। पूर्वस्यापवादः ॥ क्यन्तो घुः ।६। आधिः । निधिः ॥ इषुधिः स्त्री च ।७। चात्पुंसि । इयमयं वा इषुधिः । द्यौः स्त्रियाम् ।८। क्रतुपुरुषकपोलगुल्फमेघा-भिधानानि ।९। क्रतुरध्वरः । अभ्रं नपुंसकम् ।१०। पूर्वस्यापवादः ॥ उका-रान्तः ११। अयं पुंसि स्यात् । प्रभुः । विभुः धेनुरज्जुकुहुसरयुतनुरेणुप्रियङ्गवः स्त्रियाम् ।१२। इयं धेनुः ॥ रुत्वन्त ।१३। मेरुः । सेतुः ॥ दारुकशेरुजतुवस्तुम-स्तूनि नपुंसके च ।१४। इदं दारु । दारुः ॥ सक्तुर्नपुंसके च ।१५। सक्तु, सक्तुः । अदन्त इत्यधिकृत्य । कोपधः ।१६। कोपधोऽकारान्तः पुंसि स्यात् स्तबकः । कल्कः ॥ चिबुकादीनि नपुंसके ।१७। चिबुकम् ॥ टोपधः ।१८। अदन्तः पुंसि । घटः । पटः ॥ किरीटादीनि नपुंसके च ।१९। किरीटम् । किरीटः ॥ णोपधः

चुनना क्रिया । अच् प्रत्ययान्त पु० हुए । सम्बन्धके अनुकूल लिङ्ग का निर्णय । सभी घ या अक प्रत्ययान्त शब्द पु० होते हैं । किन्तु भयलिङ्ग भग पद ये घ, अच् अन्त होकर भी नपुंसक ही है । पदं भयं लिङ्गं भगं । प्रायः नङ् प्रत्ययान्त पुलिङ्ग होते है । यज्ञः यत्नः शिश्नः विश्नः प्रश्नः किन्तु याच्ञा नङन्त स्त्रीलिङ्ग ही होता है । पूर्वके पु० को बाधकर । कि=प्रत्यय अन्त हो ऐसा घूसंज्ञक धातुसे बना शब्द पुलिङ्ग हो । आदधाति सम्पूर्णशरीरं व्याप्नोति आधिः रोगः । निधिः निःशेषं दधाति समुद्रः, कोशः, सर्वस्वं । (धा से कि) घु संज्ञा भी, पु० हुआ । इषुं वाणं दधाति इषुधिः तुणीर । स्त्री पुम् दोनों लिङ्ग । अयम् (इषुधिः) पुलिङ्ग का, इयं स्त्रीलिङ्गका सूचक । किन्तु द्यौः द्यो या दिव् स्त्रीधर्मक है ।

देव असुर––आत्मा कच-केश दन्त स्तन भुजः कण्ठः शरः पङ्कः गिरिः समुद्रः आदि पुंसि । क्रतु–यज्ञ पुरुष कपोल गुल्फ (घुटना) मेघ पुम् है । क्रतुः अध्वरः पुरुषः कपोलः गुल्फः किन्तु मेघ अर्थमें अभ्रं नपुंसक है । पूर्वके पुम्को बांधकर उकारान्त शब्द पुम् है । अयं प्रभुः समर्थः विभुः व्यापकः, स्वयम्भूः ब्रह्मा, धेनुः सभी उकारान्तोमें केवल धेनु रज्जु कुहु अमावस सरयु तनु रेणु प्रियङ्गु ये स्त्रीलिङ्ग मान्य । इयं रज्जुः इयं रेणुः सरयुः नवा सकृत्प्रसूता गौ (रु—और तुन्) प्रत्ययान्त पु० है मेरुः । रु प्रत्ययान्त, सेतुः तुन्, अयं सेतुः । दारु लकड़ी कशेरु जतु लाह वस्तु मस्तु (मठ्ठा) मलाइ ये शब्द नपुंसक होते हैं । इदं वस्तु अयं वस्तुः अयमस्तुः, इदं यतु, दोनों लिङ्ग सक्तुः पुं० नपुंसक भी नवं सक्तु ।

अदन्त—आकारान्त शब्दोंके अधिकारमें लिङ्ग निर्णय। सभी अकारान्तको पध (क में अ हो) तभी उपधामें क होगा ऐसे आकारान्त शब्द पुलिङ्ग है। कल्कः स्तवकः उपधामें क, सभी अकारान्तसे पुं०, किन्तु चिबुक=दाड़ी इत्यादि नपुंसक लिङ्ग है। आकारान्तके उपधामें ट (अदन्त) हो पुलिङ्गः। यथा घटः पटः नटः अटः किन्तु किरीट मुकुट ललाट विट वट पुट कपट कर्पट कपाट नट निकट कट कीट आदि नपुंसक हों। पुलिङ्ग भी। ण=उपधा सभी अकारात पुलिङ्ग हों।

अदन्तः पुंसि । गणः पाषाणः ॥ ऋणादीनि नपुंसके ।२१। ऋणम् ॥ कार्षापणादीनि नपुंसके च ।२२। चात्पुंसि ॥ थोपधः ।२३। अदन्तः पुंसि । रथः । यूथा ॥ नोपधः ।२४। अदन्तः पुंसि । इनः फेनः ॥ जघनादीनि नपुंसके ।२५। जघनम् । पोपधः २६। अदन्तः पुंसि । दीपः । सर्पः । पापादीनि नपुंसके च ।२७। पापम् ॥ शूर्पकुतपकुणपद्वीपविटपानि नपुंसके ।२८। चात्पुंसि ॥ भोपधः ।२९। कुम्भः । सरभः ॥ तलभं नपुंसकम् ।३९। जृम्भ नपुंसके च ।३१। मोपधः ।३२। सोमः । भीमः ॥ रुक्मादीनि नपुंसके ।३३। इदं रुक्ममित्यादि ॥ संग्रामादीनि नपुंसके च ।३४। चात् पुंसि । संग्रामः । संग्रामम् ॥ योपधः ।२५। हयः समयः ॥ किसलयादीनि नपुंसके ।।३६। गोमयादीनि नपुंसके च ।३७। रोपधः ।३८। क्षुरः । खुरः । अङ्कुरः ॥ द्वारादीनि नपुंसके ।३९। इदं द्वारम् ॥ शुक्रमदेवतायाम् ।४० देवतायां तु शुक्रः ॥ षोपधः ।४१। वृषः । वृक्षः ॥ शिरीषादीनि नपुंसके ।४२।

गणः हरिणः । किन्तु ऋण–ऋ उपधामे हो ऐसे ऋणादि गण वढ़े शब्द नपुंसक ही हों । जैसे तोरणं लवणं पर्णं । यदि कार्षापण आदि शब्द णोपध हों, वे नपुंसक और पुं० भी हों । ब्रण सुवर्ण वृषण चरण चूर्ण तृण विषाण पुलिङ्ग भी हों । थ—उपधा (अन्तिम अकारके पूर्व वर्ण थ हो) ऐसा अदन्त रथः यूथः मथः पुं० हों इसमें अपवाद नहीं दिया, तथापि प्रोथ तीर्थ आदि पु० नप् दोनों हैं । उक्थ, सिक्थ काष्ठ पृष्ठ नपुंसक है । **नोपधः**— न उपधामें हो ऐसे अदन्त इनः फेनः आदि नपुंसक हों किन्तु जघन अजिन तुषार शासन सोपान रत्न निम्न चिह्न वेतन विपिन बन कानन नपुंसक है । **प उपधक** अदन्त शब्द दीपः सर्पः आदि सभी पुलिङ्ग हों । किन्तु पाप रूप अन्तरीप समीप शिल्प तल्प पुष्प शष्य-[कोमल घास] नपुंसक । पुष्पं तल्पं शिल्पे शष्पाणि तथापि **शूर्प** कुतप श्राद्ध तमप कुणप=(सड़ा शव) द्वीप विटप दोनों लिङ्ग हैं । विटपः इदं शूर्पं । **भ उपधा** में हो ऐसे अदन्त कुम्भः सरभः आदि पुं० हे । ककुभः–दिशा, किन्तु तलभं जृम्भं-जम्महाई नपुंसक है । तथापि जृम्भ दोनों लिङ्ग । **म उपधा** अदन्त भीमः कूर्मः सोम आदि पुं० हो, किन्तु रुक्म सुवर्ण इध्म ईंधन युग्म सिध्म मुहासा गुल्म-लता झाड़ी फुंसी नपुंसक है । तथापि संग्राम दाडिम क्षेम क्षौम होम कुसुम आश्रम दोनों लिङ्ग है । इदम् आश्रमं अयम् आश्रमः संग्रामं संग्रामे संग्रामाणि । इमे कुसुमाः इमानि कुसुमानि । **य अदन्त** शब्द पुलिङ्ग हो यथा हयः समयः मुकयः गवयः, किन्तु किसलय हृदय इन्द्रिय उत्तरीय शब्द नपुंसक है । तथापि गोमय कसाय मलय अव्यय अन्वय दोनों लिङ्ग । **र-अन्त** शब्द हो पुं० खुरः क्षुरः अंकुरः पुलिङ्ग है, किन्तु द्वारं अग्रं तक्रं वक्रं क्षिप्रं क्षुद्रं नीरं तीरं भीरं गभीरं क्रूरं दूर केयूर केदार–खेत शरीर जठर वैर कूलीर कुहर यन्त्र क्षेत्र मित्र गोत्र पत्र पात्र छत्र सुत्र मूत्र चित्र शस्त्र शास्त्र आदि नपुंसक हों । किन्तु शिशिर मितिर मन्दार अन्धकार तोमर चक्र बज्र दोनों लिङ्ग । शुक्र शब्दका देव या ग्रह अर्थ न हो, तब नपुंसक हो, वीर्य अग्नि तेज अर्थमें नपुंसक

इदं शिरीषम् ॥ सोपधः ।४३। वायसः । महानसः ॥ पनसबिसबुससाहसानि नपुंसके ।४४। चमसादीदि नपुंसके च ।४५। चात्पुंसि ॥ कंसं चाप्राणिनि ।४६। कंसः ॥ 'कंसोऽस्त्रीं पानभाजनम्' । प्राणिनि तु कंस औग्रसेनिः ॥ रश्मिदिवाभिधानानि ।४७। अत इति निवृत्तम् ॥ दीधितिः स्त्रियाम् ।४८ दिनाहनी नपुंसके ।४९। दिनम् अहः ॥ मानाभिधाना ।५०। कुडवः ॥ द्रोणाढकौ नपुंसके च चात्पुंसि ॥ खारीमानिके स्त्रियाम् । इयं खारी ॥ दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वं च । इमे दाराः ॥ मरुद्गरुत्तरदृत्विजः अयं मरुत् ॥ ध्वजगजमुञ्जपुञ्जाः । एते पुंसि ॥ वशांशपुरोडाशाः । अयं वंशः । ह्रदकन्दकुन्दबुद्बुदशब्दाः अयं ह्रदः ॥ अर्धपथिमथ्यृभुक्षिस्तम्बनितम्बपूगाः । अयमधः सारथ्यतिथिकुक्षिबस्तिपाण्यञ्जलयः । पल्लवपल्वलकफरेफकटाहनिर्व्यूहमठमणितरङ्गतुरङ्गगन्धस्कन्धमृदङ्गसङ्गसमुद्रपुङ्खाः । अयं पल्लव इत्यादि ॥ ऋषिराशिदृतिग्रन्थिक्रमिध्वनिवलिकौलिमौलिरविकविकपिमुनयः । एते पुंसि स्युः । अयमृषिः ॥ हस्तकुन्तान्तव्रातवातदूतधूर्तसतचूतमुहूर्ताः । एते पुंसि । अयं हस्त इत्यादि । इति पुंल्लिङ्गाधिकारः ॥

यदि देवता अर्थ हो तब पुलिङ्ग, शुक्रः शुक्राचार्यः । **ष उपधा** अदन्त शब्द हो पुं० वृक्षः वृषः ऋक्षः आदि, किन्तु शिरीष शिजीष अम्बरीष पीयूष पुरीष कल्मष किल्विष ये शब्द नपुंसक हैं ।

स अन्त शब्द पुलिङ्ग है । पायस वायस साहस किन्तु **पनस**–कटहल, विस-कमल, बुस-भूंसा, साहस आदि नपुंसक है । **चमस** कंस रस मास कास आदि दोनों लिङ्ग । कंसः । तब दोनों लिङ्ग जब प्राणि भिन्न हों । पानं भाजनं, पान का डिब्बा अर्थमें । उग्रसेन पुत्रः कंसः प्राणी है पुलिङ्ग ही रहेगा । रश्मि दिवस दिन किरण आदि अर्थमें पुं० होते हैं । अदन्त रुका । **दीधिति** किरण अर्थमें स्त्री० । **दिन** अहन नपुंसक है दिनं, अहानि । **माप** नाप तौल अर्थक शब्द पु० है । द्रोणः–पांच किलो आढक आंधा अढैया दोनों लिङ्ग । **खारी** बीस किलो स्त्री० दारा अक्षत लाज असु=प्राण ये शब्द नित्य बहुवचनानि पुं० । **मरुत्**=वायुः गरुत्-पंख तरद ऋत्विक पुरोधा पुं०हैं,अयं गरुत्, सः ऋत्विकः **ध्वज** गज मुञ्ज पुञ्ज पुलिङ्ग है । वंश अंश पुरोडाश हविष पुं० हैं । **ह्रद**–झील कन्द **फल**-फूल विशेष बुदबुद ये शब्द पुं० । अयं कन्दः । **अर्ध**–पथिन् मथिन् ऋमुक्षिन् (इन) स्तम्भ खम्भा नितम्ब पूग-सुपाड़ी पु० है । **सारथि**––रथ हांकनेवाला अतिथि कुक्षि उदर बस्ति घृणितं-पनि पाणि अञ्जलि पुं० है । अयं सारथिः । **पल्लवः** पल्वलः छोटा गड्ढा कफ रेफ–निन्दित, शेफ-शिश्न, लिङ्ग, कटाह-कराहा निर्व्यूह (खूंटी, खुला हुआ) मठ, मणि तुरङ्ग घोड़ा मृदङ्ग समुद्र पंख–(बाणका मूल भाग) ये पुंम् है । अयं तरङ्गः मठः मणिः । **ऋषिः** राशि ढ़ेर दृति चर्मपात्र, ग्रन्थि क्रमि ध्वनि बलि कौलि मौलि मस्तक, रवि कवि कपि मुनि सभी पुलिङ्ग हैं । अयं राशिः अयं

अथ नपुंसकलिङ्गाधिकार

नपुंसकम्। अयमधिकारः। भावे ल्युडन्तः। ज्ञानम् हसनम् भावे किम्? पचनः। निष्ठा च। भावे या निष्ठा तदन्तं क्लीबं स्यात्। गीतम्॥ त्वष्यञौ तद्धितौ। शुक्लत्वम्, शौक्ल्यम्। षित्वसामर्थ्यात्पक्षे स्त्रीत्वम्। चातुर्यम्, चातुरी। कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्यः। ब्राह्मण्यम्॥ यद्य-ढग्यगञण्वुञ्छाश्च भावकर्मणि। एतदन्तानि क्लीबानि। स्तेयम्। संख्यम्। (कपिज्ञात्योर्ढक्) कापेयम् सैनापत्यम्। औष्ट्रम्। द्वैहायनम्। पितापुत्रकम्। अच्छावाकीयम्॥ अव्ययीभावः अधिहरि॥ द्वन्द्वैकत्वम्। पाणिपादम्॥ अनल्पे छाया। शरच्छायम्। इसुसन्तः। हविः सर्पिः। धनुः। अर्चिः स्त्रियां

ग्रन्थिः। हस्त कुन्त—भाला। त अन्त—रात व्रात-झुण्ड दूत धूर्त मुहूर्त चूत आम्र वृक्ष, योनि, मुहूर्त पुलिङ्ग है अयं चूतः कुन्तः व्रातः। इतिपुलिङ्गानुशासनम्।

नपुंसकम् अधिकार सूत्र। इसके अधिकारमें लिङ्ग निर्णय। **भाव** क्रिया मात्र अर्थमें ल्युट हुआ हो ऐसे शब्द नपुंसक है। भाव क्यों कहा? पच्यते अस्मिन् इति पचनः पाकपात्र, अधिकरण या कर्म अर्थमें नपुंसक न हो, किन्तु पुलिङ्ग। यद्यपि नपुंसके भावे क्त, ल्युट च, से नपुंसक होता ही तथापि स्पष्ट निर्णयके लिये सूत्र। **निष्ठा** भावमें क्त प्रत्यय हुआ हो नपुं०। निष्ठासे क्त का ही बोध। यथा गीतं-गानं गानेकी क्रिया। ज्ञानं-ज्ञानकी क्रिया। हसनं हसनेकी क्रिया, **त्व** ष्यञ् भावमें हुये हों नपुंसक हो जायं। तस्य भावः त्वतलौ किसी शब्दकी विशेषता गुण जाति धर्म अर्थको त्व कहता है। शुक्लस्य भावः शुक्लत्वं, जब गुणवचनं **ब्राह्मणा-दिभ्यः** से ष्यञ् तब आदिवृद्धि **शौक्ल्यं** (षित्से ङीष्) ब्राह्मणादिगणमें पढ़े शब्द तथा गुणवाची शब्दसे भी कर्म अर्थमें त्व, ष्यञ् हुये हों, नपुंसक हो जांय। ब्राह्मण-स्य कर्म ब्राह्मण्यं सच्चरित्रं अध्ययनम् अध्यापनम्। मूढ़स्य कर्म मौढ्यं मूढ़ता गुण है। कर्म अर्थमें प्रत्यय। **यत्**–य ढक् यक् अञ् अण् वुञ् छ ये प्रत्यय क्रिया या कर्म अर्थमें हुए हों ऐसा शब्द नपुंसक। स्तेनस्य भावः कर्म वा चोरका धर्म कर्म अर्थमें यत् स्तेयम् नलोप। सख्युः भावः घनिष्ठप्रीतिः कर्म अर्थमें सख्यु सख्यं। कपेः कर्म **कापेयं** कपिज्ञात्योर्ढक्। सेनापतेः कर्म पत्यन्त पुरोहितादिभ्यो यक् उष्ट्रस्य कर्म अर्थं अञ् आदिवृद्धि नप। हायनस्य कर्मक्रिया, हायनान्तयुवादिभ्यो अण् आदि **द्वैहायनं** दो वर्षका कर्म। पितुःपुत्रस्य च कर्म **पिता पुत्रकं** पिता च पुत्रश्च पितापुत्रौ तयो कर्म। द्वन्द्व मनोज्ञादिभ्यो वुञ् अक। अच्छा च वाक च अच्छावाचौ तयोः भावः होत्राभ्यश्छः।

अव्ययीभाव—समाससे निष्पन्न शब्द नप् हो। अधिगोपम् उपकृष्णं। **द्वन्द्व समास** एकवद्भाव हुआ हो नपुंसक हो। पाणी च पादौ च **पाणिपादं** द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसनाङ्गानां एकवत्। न अल्पम् अनल्पं अधिक छाया अर्थमें नप्। शरदः छाया (**शरच्छायं**) **इस उस** अन्त शब्द नप् हो। **अर्चि** शुचि सृपि छर्दि इनसे इसि (अर्चेरसि) हु धातुसे इस। गुण अव हविष हविषी सर्पींषि, धनुषी धनूंषि किन्तु

च। इदमियं वार्चिः॥ छदिः स्त्रियामेव॥ इयं छदिः॥ मुखनयनलोहवन-मांसरुधिरकार्मुकविवरजलहलधनान्नाभिधानानि। एषामभिधायकानि क्लीबे स्युः मुखम्। आननमित्यादि। सीरार्थौदानाः पुंसि। वक्त्रनेत्रारण्य गाण्डीवानि पुंसि च। चात् क्लीबे अटवी स्त्रियाम्। पूर्वस्य त्रिसूत्री बाधिका। लोपधः। कुशलम्। शीलादीनि पुंसि च। चात् क्लीबे। शीलम्। शतादिः शतम्। सहस्रम्। शतायुतप्रयुताः पुंसि च। लक्षा कोटिः स्त्रियाम्। इयं लक्षा सहस्रः पुंसि। मन् द्व्यच्कोऽकर्तरि। मन्प्रत्ययान्तो द्व्यच्कः पुंसि स्यात् चात् क्लीबे, न तु कर्तरि। वर्मा, वर्म। अकर्तरि किम्? ददातीति दामा। ब्रह्मन्पुंसि च। अयं ब्रह्मा। इदं ब्रह्म। सामरोमणी क्लीबे। पूर्वस्यापवादः। असन्तो द्व्यच्कः। यशः। मनः। तपः। अप्सराः स्त्रियाम् एता अप्सरसः। त्रन्नन्तः। पत्रम्। छत्त्रम्॥ यात्रामात्राभस्त्रादंष्ट्रावरत्राः स्त्रियामेव।

इति नपुंसकाधिकारः॥

अर्चिः शब्द दोनों लिङ्ग छदिः नित्य स्त्री०। मुख नयन—लोह बन मांस रुधिर कार्मुक अन्न आदि द्वादश शब्दोंके पर्यायवाची भी नपुंसक हैं। मुखं वक्त्रं आस्यं नयनं नेत्रं चक्षुः लोहं विपिन वन अरण्य पिशित तरस रक्त शोणित शरासनको दण्ड चाप बिल इन्द्र छिद्र जल उदक नीर पानीय तोय सलिल कमल वारि भुवन बन पुष्कर जीवन अङ्ग हल लांगल कर्षण। धन वसु हिरण्य वित्त असन-हल अर्थमें, सीर-शब्द धन अर्थमें हो पुलिङ्ग। वक्त्र नेत्र अरण्य गाण्डीव दोनों लिङ्ग है। अटवी शब्द नित्य स्त्री०। पूर्वके तीन सूत्रको बाधकर, लोपध, ल उपधा अन्त्य अल का पूर्व वर्ण ऐसे अकारान्त नपुंसक होते हैं जैसे कुशलं, परन्तु तरल समतल देवल वृषल ताल ताला उपल तूल आदि नित्य पुलिङ्ग है। शिलादि शब्द दोनों लिङ्ग शीलं स्वभाव पवित्र आचरण मूल मङ्गल शाल कमल मुसल तल पताल विडाल शूल मृडाल वाल बालिक आदि दोनों लिङ्ग। शत—सहस्र आदि शब्द संख्यावाचक नपुंसक है। किन्तु रात (अनन्त अर्थ) अयुत दस सहस्रवाची शब्द, अयुत==बीस हजार (पुं—नप) उभयलिङ्ग। लाक्षा लाख कोटिः करोड़ स्त्रीलिङ्ग है, किन्तु सहस्र शब्द पुलिङ्ग भी है। इयं कोटिः सा लक्षा अयं सहस्रः अस्ति [एक हजार है] मन (सर्वधातुओं मनिन्) इस सूत्रसे कर्ता अर्थ छोड़कर अन्य अर्थ भाव कर्म आदिमें अनिन् प्रत्ययान्त और दो अन्त वाला पुलिङ्ग है नपुंसक भी। कर्ता अर्थ न हो तब वर्मा। पुं वृणोति अस्मात् इति वर्मा अनेन वर्म (दोनों लिङ्ग हुये) अकर्तरि किं? कर्ता अर्थ न हो ऐसा क्यों? ददाति दामा दाता। यहां नपुंसक न हो। ब्रह्मन्शब्दभी दोनों लिङ्ग। वृहसे मनिन् पु० नप् ब्रह्म ब्रह्मन्ति ब्रह्मणी। ब्रह्माणौ ब्रह्माणः। सामन् रोमन् शब्द क्लीब-नपुंसक है पूर्वको बाधकर। असन्त=असुन् प्रत्यय अन्त हो, दो अच वाले शब्द नप् हों: यशसे असुन यशः यशांसि, मन अस, तपन तपः। अप्सरा-अस अन्त स्त्री० है त्र अन्त सर्वधातुभ्यष्ट्रन्से त्रप्रत्ययान्त नप् हों पतति

अथ स्त्रीपुंसाधिकार

स्त्रीपुंसयोः अयमधिकारः ॥ गोमणियष्टिमुष्टिपाटलिवस्तिशाल्मलित्रुटिमसिमरीचयः । इयमयं वा गौः । अपत्यार्थतद्धिते । औपगवः, औपगवी ।

इति स्त्रीपुंसाधिकारः ॥ अथ पुन्नपुंसकाधिकारः

पुन्नपुंसकयोः अधिकारोऽयम् । घृतभूतमुस्तक्ष्वेलितैरावतपुस्तकबुस्तलोहिताः । अयं घृतः इदं घृतम् । कबन्धौषधायुधान्ताः । स्पष्टम् । दण्डमण्डखण्डशवसैन्धवपार्श्वाकाशकुशकाशाङ्कुशकुलिशाः । दण्डः, दण्डम् ॥

इति पुन्नपुंसकाधिकारः ॥

अवशिष्टलिङ्गम् । अव्ययं कतियुष्मदस्मदः । ष्णान्ता संख्या ॥ शिष्टा परवत् । एकः पुरुषः । एका स्त्री । एकं कुलम् । गुणवचनम् । शुक्लः पटः । शुक्ला पटी । शुक्लं वस्त्रम् । कृत्याश्च । करणाधिकरणयोल्युंट् च । सर्वादीनि सर्वनामानि । स्पष्टार्थेयं त्रिसूत्री ।

इति श्रीवरदराजदीक्षितविरचितपाणिनीयलिङ्गानुशासनसारभूता लिङ्गानुशासनसूत्रवृत्तिः समाप्ता ॥

यत्तत्पत्र पत धातुसे ट्रन् । छत्र छाता छाया करने वाला किन्तु यात्रा मात्रा भस्त्रा दंष्ट्रा वस्त्रा स्त्री० हैं तथापि उष्ट्र मेढ़ मन्त्र वृत्र छात्र पुत्र पुलिङ्ग हैं ।

स्त्री पुंस दोनों का अधिकार । **गोमणि** यष्टि मृष्टि पाटलि (पाकड़) वृक्ष बस्ति—मूत्रालय शाल्मलि—सेमर वृक्ष, त्रुटि मसि मरीचि उभयलिङ्ग है । कण्डु (दाद, खाज) कर्कन्धु मृत्यु रेणु दोनों लिङ्ग । अपत्य अर्थमें तद्धित प्रत्यय हो, उभय लिङ्ग । **पुं नपुंसक** अधिकार घृत भूत प्रेत प्राणी मुस्त मोथा क्ष्वेलित--उबलकर गर्जना, अहिरावत बुस्त (पका मांस) लोहित (लाल) मृग उभयलिङ्ग । निदाघ अद्य अर्ध अभ्र पुच्छ कूर्च कूंची कुश दाढ़ी गठ्ठकुथ मोटा बिस्तर दृढ़, प्रस्थ दोनों लिङ्ग । कबन्ध औषध आयुध अन्त शब्द भी उभयलिङ्ग । दण्ड मण्ड खण्ड शव-मुर्दा सैन्धव काश अंकुश कुलिश दोनों लिङ्ग । अव्यय कति युष्मद् अस्मद् सभी लिङ्ग । षान्त नान्त संख्यावाची पर्वत विशेषके समान लिङ्ग होते है । एकः बालकः एका बालिका एक पुस्तकं । गुणवचन जितने शब्द है सब पराधीन—विशेष्यके आधीन लिङ्ग धारण करते हैं । कृत्य--प्रत्ययान्त करण अधिकरणवाले शब्दका लिङ्ग पराधीन है । सर्वनाम संज्ञक सभी शब्दका लिङ्ग पराधीन, प्रधानके अधीन है । लोक व्युत्पत्तिसे ही लिङ्ग का निर्णय लें । अतः भगवता भाष्यकृता कथितं यत **लिङ्गम् अशिष्यं** लोकाश्रयत्वात् । लोकमें प्रसिद्धिके आधार पर लिङ्गका निर्णय लें । अतः यौगिक शब्दोंमें लोकानुसारी व्युत्पत्ति लिङ्ग निर्णयमें प्रमाण है ।

पाणिनीयशिक्षा

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं (१) मतं यथा । शास्त्रानुपूर्व्यं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः ॥१॥ प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः । पुनर्व्य-

क्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ।।२।। त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः । प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा ।।३।। स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः । यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ।।४।। अनुस्वारो विसर्गश्च ᳲकᳲपौ चापि पराश्रितौ । दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च ।।५।। आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया । मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।।६।। मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् । प्रातःसवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम् ।।७।। कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम् । तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम् ।।८।। सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः । वर्णाञ्जनयते, तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ।।९।। स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः । इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत ।।१०।। उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः । ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ।।११।। उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ । स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ।।१२।। अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा । जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ।।१३।। ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च । जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ।।१४।। यद्यो भावप्रसंधानमुकारादि परं पदम् । स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ।।१५।। हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम् । उरस्यं तं विजानीयात्कण्ठ्यमाहुरसंयुतम् ।।१६।। कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू । स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः ।।१७।। जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः । एऐ तु कण्ठतालव्या ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ ।।१८।। अर्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य एकारैकारयोर्भवेत् । ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम् ।।१९।। संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम् । घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः ।।२०।। स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम् । तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च ।।२१।। अनुस्वारयमानां च नासिका स्थानमुच्यते । अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः ।।२२।। अलाबुवीणानिर्घोषो दन्त्यमूल्यस्वराननु । अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्नोः शषसेषु च ।।२३।। अनुस्वारे विवृत्त्यां तु विरामे चाक्षरद्वये । द्विरोष्ठ्यौ तु विगृणीयाद्यत्रौकारवकारयोः ।।२४।। व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् । भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ।।२५।। यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रं इत्यभिभाषते । एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अराँ इव खेदया ।।२६।। रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन्नो ग्रसेत्स पूर्वमक्षरम् । दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात्पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ।।२७।। हृदये चैकमात्रस्तु अर्धमात्रस्तु मूर्धनि । नासिकायां तथार्धं च रङ्गस्यैवं

द्विमात्रता ।।२८।। हृदयादुत्करे तिष्ठन् कांस्येन सम स्वरन् । मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाँ इति निदर्शनम् ।।२९।। मध्ये तु कम्पयेत्कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत् । सरङ्गं कम्पयेत्कम्पं रथ्यो वेति निदर्शनम् ।।३१।। एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः । सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ।।३१।। गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः । अनर्थज्ञोऽल्प-कण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ।।३२।। माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः । धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ।।३३।। शङ्कितं भीतमुद्‌घृष्टमव्यक्त-मनुनासिकम् । काकस्वरं शिरसिगं तथा स्थानविवर्जितम् ।।३४।। उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्‌गदितं प्रगीतम् । निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम् ।।३५।। प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन । मध्यंदिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजितसन्निभेन ।।३६।। तारं तु विद्यात्सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् । मयूरहंसान्यभृत-स्वराणां तुल्येन नादेन शिरः स्थितेन ।।३७।। अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेमस्पृष्टाः शलः स्मृताः । शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ताः निबोधानुप्रदानतः ।।३८।। अमोऽनासिका नह्रौ नादिनो हझषः स्मृताः । ईषन्नादो यणो जश्च श्वासिनस्तु खफादयः ।।३९।। ईषच्छ्वासांश्चरो विद्याद् गोर्धामैतत्प्रचक्षते । दाक्षिपुत्र-पाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवि ।।४०।। छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते । ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।४१।। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम । तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।।४२।। उदात्तमाख्याति वृषोङ्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा । उपा-न्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव ।।४३।। उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात्प्रचयं मध्यतोऽङ्गुलिम् । निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ।।४४।। अन्तोदात्तमाद्युदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् । मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नव पदशय्या ।।४५।। अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषां स्वर्बृहस्पतिरिन्द्रावृहस्पती अग्निरित्यन्तोदात्तं सोम इत्यनुदात्तं । प्रेत्युदात्तं वहत्यनुदात्तं वीर्यं नीचस्वरितम् ।।४६।। हविषां मध्योदात्तं स्वरिति स्वरितम् । बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तमिन्द्राबृहस्पति इति त्र्युदात्तम् ।।४७।। अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः । स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ।।४८।। चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं त्वेव वायसः । शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुल-स्त्वर्धमात्रकम् ।।४९।। कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम् । न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात् ।।५०।। सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नाय्यं सुव्यवस्थितम् । सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ।।५१।। मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।।५२।। अनक्षरमनायुष्यं विस्वरं व्याधि-

पीडितम् । अक्षता शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ॥५३॥ हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम् । ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति ॥५४॥ हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् । ऋग्यजुः सामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥५५॥ शङ्करः शाङ्करीं प्रादाद्दाक्षीपुत्राय धीमते । वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवी वाचमिति स्थितिः ॥५६॥ येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् । कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥५७॥ येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः । तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥५८॥ अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥५९॥ अथ शिक्षामात्मोदात्तश्च हकारं स्वराणां यथा । गीत्यचोस्पृष्टोदात्तं चाषस्तु शङ्कर एकादश ॥६०॥ त्रिनयन-मुख-निःसृतामिमां य इह पठेत् प्रयतः सदा द्विजः । स भवति धनधान्य-पशुपुत्र-कीर्तिमानतुलं च मुखं समश्नुते दिवीति ॥६१॥ इति पाणिनीयशिक्षा समाप्ता

गणपाठः ।

[कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु]—कुक्कुटी, मृगी, काकी । अण्ड, पद, शाव, भ्रङ्कुस, भृकुटी ।

[पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः]—हस्तिन्, कुद्दाल, अश्व, कशिक, करुत, कटोलक, गण्डोल, कण्डोल; कण्डोकक, अज, कपोत, जाल, गण्ड, महेला, दासी, गणिका, कुसूल ।

[उरः प्रभृतिभ्यः कप्]—उरस्, सर्पिस्, उपानह्, पुमान्, अनड्वान्, पयः नौः, लक्ष्मीः, दधि, मधु, शाली, शालि, अर्थान्नञः । इत्युरः प्रभृतयः ।

[अश्वपत्यादिभ्यश्च]—अश्वपति, स्थानपति, ज्ञानपति, शपपति, बन्धुपति, शतपति, धनपति, गणपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, धर्मपति, धन्वपति, सभापति, प्राणपति, क्षेत्रपति । इत्यश्वपत्यादिः ।

[कल्याण्यादीनामिनङ्]—कल्याणी, सुभगा, दुर्भगा, बन्धकी, अनुदृष्टि, अनुसृति, जरती, बलीवर्दी, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा, परस्त्री । इति कल्याण्यादिः ।

[भिक्षादिभ्योऽण्]—भिक्षा, गर्भिणी, क्षेत्र, करीष, अङ्गार, चर्मिन्, धर्मिन्, सहस्र, युवति, पदाति, पद्धति, अर्थवत्, दक्षिणा, भरत, विषय, श्रोत्र । इति भिक्षादिः ।

बल, चुन, नल, दल, वट, लकुल, उरल, पुस, मूल, उल, डुल, वन, कुल ।

[द्वारादीनां च]—द्वार, स्वर, स्वग्राम, स्वाध्याय, व्यल्कश, स्वस्ति, स्वर् स्फ्यकृत्, स्वादु, मृदु, श्वस्, श्वन्, स्व ।

[पलाशादिभ्यो वा]—पलाश, खादिर, शिलपा, स्यन्दन, पूलाक, करीर, शिरीष, यवास, विकङ्कत, इति पलाशादि ।

(नित्यं वृद्धशरादिभ्यः)-शर, दर्भ, मृग, कटी, तण, सोम, बल्वज, इति शरादि

[पर्पादिभ्यष्ठन्]—पर्प, अश्व, अश्वत्थ, रथ, जाल, न्यास, व्याल। पादः पञ्च—इति पर्पादिः।

[छत्रादिभ्यो णः]—छत्र, शिक्षा, प्ररोहस्थ, बुभुक्षा, चुरा, तितिक्षा, उपस्थान, कृषि, कर्मन्, विश्वधा, तपस्, सत्य, अमृत, विशिखा, विशिका, भक्षा, उदस्थान, तुरोडा, विक्षा, चुक्षा, मद्र, इति छत्रादिः।

पापात् सदैव भेतव्यं, न वक्तव्यं मृषा क्वचित्।
पालनीया गुरोराज्ञा, पूजनीयः सदाऽतिथिः॥
आलस्यं सर्वदा त्याज्यं, स्मरणीयं गुरोर्वचः॥

वाराणसी-प्रथमापरीक्षा-प्रश्नपत्राणि

लघुकौमुद्यां प्रश्नाः

सन् १९७१

१ पावकः, प्रष्ठौहः, वागीशः, नॄँःपाहि, पुना रमते, स शम्भुः—एषु केऽपि पञ्च प्रयोगाः सूत्रविशेषनिर्देशपूर्वकं साधनीयाः। १५

२ सर्वे, क्रोष्टूनाम्, मत्याम्, वारिणे, धुक्षु, त्वया, इयम्, पयांसि—एतेषां केऽपि पञ्च प्रयोगाः साध्याः। १५

३ बभूव, अगादीत्, ऐधिषत, विदाङ्करोतु, अध्यगीष्ट, अनिजत्, अजनि, ग्रहीता, अतिष्ठिपत्—एतेषु स्वेच्छया पञ्च साधयत। २०

४ चिकीर्षति, वाव्रज्यते, पुत्रीयति, रथेन सञ्चरते, उपरमति, पूज्यः, कारकः, श्रयति हरिं श्रीः, अन्यथाकरम्—एषु पञ्च साध्याः। १५

५ ग्राममजां नयति, अग्नये स्वाहा, मोक्षे इच्छाऽस्ति, अध्यात्मम्, पञ्चगवधनः, अहोरात्रः, महायशस्कः, पितरौ, गवाक्षः एतेषां षट् साध्याः। १८

६ रैवतिकः, वाराणसेयम्, शाब्दिकः, पौरोहित्यम्, अग्नीभवति, गोपी चन्द्रमुखी, युवतिः—एषु सूत्रनिर्देशपूर्वकं पञ्च प्रयोगान् संसाध्य 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्' इति सूत्रस्य सोदाहरणमर्थं लिखत। १७

सन् १९७२

१ सुद्ध्युपास्यः, कृष्णर्द्धिः, चक्रि अत्र, उत्थानम्, संस्कर्ता, शिवोऽर्च्यः, अहरहः—एषु चत्वारः प्रयोगाः सूत्रनिर्देशपूर्वकं साधनीयाः। १५

२ रामान्, सर्वेषाम्, मत्यै, दध्ना, मघोनः, उपानत्, ददन्ति—एषु कानिचित्, चत्वारि रूपाणि साधयत। १५

३ अभूवम्, अगमत्, अचीकमत, जहि, पप्रतुः, नर्तिष्यति, सुनोति, उपस्किरति, पिण्ढि, कुर्वन्ति, अचकथत्—एषु चतुर्णां साधनं कार्यम्। १४

४ जिघत्सति, बोभूयते, राजीयति, विजयते, विरमति, अलाभि, देयन्, मार्ग्याः, कुम्भकाराः, शीर्णः, चयः—एषां मध्ये पञ्चसु प्रयोगेषु विशेषसूत्रैर्विशेषकार्याणि प्रदर्शयत। १५

५ हरिं भजति, विप्राय गां ददाति, कटे आस्ते, उपशरदम्, राजपुरुषः, पौर्वशालः, चित्रगुः, पाणिपादम्—एषां मध्ये, चतुरः प्रयोगान् विशेषसूत्रनिर्देशपूर्वकं साधयत। २०

६ आश्वपतम्, दैत्यः, दाक्षिः, नड्वलः, अस्माकीनः, शरण्य कुरुचूरी, मुद्री, अतिकेशी, वैदी—एषु त्रीन् प्रयोगान् संसाध्य संहिता-संयोग-पदसंज्ञा-विधायकानि सूत्राणि लिखत।

सन् १९७३

२ क-च-ऋ-वर्णानां स्थानम् आभ्यन्तरप्रयत्नं च विलिख्य धात्रंशः, शिवेहि, किमु उक्तम्, तच्छिवः, नॄँ:पाहि, पुना रमते, सैष दाशरथी रामः—एषु केऽपि चत्वारः प्रयोगाः साधनीयाः। १५

२ रामाणाम्, विश्वपः, नृणाम्, सर्वस्यै, दध्ना, विश्ववाहः, अष्टौ, युष्मान्, धनूंषि—एषु कानिचित् चत्वारि रूपाणि साधयत। १५

३ भविता, आतीत्, आनर्च, ऐधिषीष्ट, उवोढ़, अयुः, अदुग्ध, अजनि, ग्रहीता, अजीगणत—एषु चतुरः प्रयोगान् साधयत। १५

४ भावयति, जरीगृह्यते, पिपठिषति, इदामति, उत्कुरुते, अनुकरोति, तायते, यजति स्म युधिष्ठिरः, शिष्यः, राजयुध्वा, चिकीर्षुः—एषु केषाञ्चित् चतुर्णां रूपाणि सिद्धि कुरुत। १५

५ वलिं भिक्षते वसुधाम्, अग्नये स्वाहा, स्थाल्यां पचति, भूतपूर्वः, उपकृष्णम्, घनश्यामः, अब्राह्मणः, पाणिपादम्, गवाक्षः—एषां मध्ये चतुरः प्रयोगान् विशेषसूत्रनिर्देशपूर्वकं साधयत। २०

६ आदित्यः, औडुलोमिः, वैनतेयः, कौशाम्बी, सायन्तनम्, अग्नीभवति, एनी, अतिकेशी, करभोरुः, वैदी, एषु चत्वारः प्रयोगाः साधनीयाः। २०

सन् १९८४

सूचना—अन्तिमप्रश्नत्रिके द्वावेद समाधेयौ।

२ सवर्णसंज्ञाविधायकं संहितासंज्ञाविधायकञ्च सूत्रं विलिख्य—प्रष्ठौहः, शकन्धुः, वाग्धरिः, पुंस्कोकिलः, शिवो वन्द्यः, स शम्भुः,—एषु केऽपि चत्वारः, प्रयोगाः साधु साधनीयाः। १५

२ रामाय, सर्वेषाम्, सखा कोष्टुः, तिस्रः बारिणे—एतेषु केषामपि चतुर्णां साधुत्व प्रकारः सम्यक् विदर्शनीयः। १५

॥ प्राभाकरी टीका ॥

लेखक—डा० प्रभाकरमिश्र

। नवा दिशा नवा शैली। । नवं प्रेरणं। । सत्यबोधः

(१) **वैयाकरणभूषणसारः** (सन्१९८२) (पेज ६००) मूल्य ५०/६० रु०
व्याकरणशास्त्र शब्दब्रह्मका रसास्वादन कराता है रस्यते आस्वाद्यते इति रसः अर्थः। धातुका अर्थ, लकारका अर्थ मिलकर क्रिया पदार्थ, प्रातिपदिक अर्थ, विभक्ति अर्थके साथ स्फोटात्माका व्यापक ज्ञान राता है। शब्दब्रह्मानुभूतिका अनुपम ग्रन्थ।

(२) **लघुसिद्धान्तकौमुदी** शोधित वर्धित (**द्वितीय संस्करण**) मूल्य ३० ४०/५० रु० उच्चतम अध्यापन शैली-हिन्दीमें शब्द साधनिका नया ग्रन्थ अर्थानुशाशनकेबिना शब्दानुशासनका महत्व नहीं। सुप्रयोग न हो सकने से शब्दसिद्धिके साथ अर्थ खोलनेकी शैलीका अनुपम ग्रन्थ।

(३) **सिद्धान्तकौमुदी प्र०भाग** (सन् १९८५) (पेज ४००) मूल्य ३५/५०
सूर्यको देखकर कमल खिलते हैं वैयाकरणको देखकर शब्द खिलें रुचिवर्धिनी टीका।

(४) सिद्धान्तकौमुदी **द्वि०भाग** (सन् १९८६) (पेज ४४८) मूल्य २५/४०

(५) सिद्धान्तकौमुदी तृतीय भाग (१९८७) (पेज ६०८) मूल्य २५/४०

(६) „ „ चतुर्थ भाग— यन्त्रस्थ

(७) **कारक**—(सन्१९८६) (पेज१२८) मूल्य १०/रू० मात्र
कारक और क्रियाके सम्बन्धसे फल पैदा होता है (माता पित्रादि योगवत्) इसकी सफल प्रकाशिका नवा शैली, नवा दिशा, नवं प्रेरणं, सत्यबोध

(८) **मध्यसिद्धान्तकौमुदी** प्रथम भाग संज्ञा,संधि, सुबन्त भ्वादि मूल्य १५

(९) **मध्यसिद्धान्तकौमुदी** का तृतीयभाग (कारक समास तद्धित स्त्री प्रत्यय स्वरवैदकी। मूल्य २० रू०

द्वितीय, भाग यन्त्रस्थ । मनोरमा, शेखरादि— योजनास्थ

चार खण्डमें भी— (सं० सं० वि० वाराणसी के अनुसार)

(१) **मध्यसिद्धान्त** पू०म० **प्रथम खण्ड** संज्ञासन्धि सुबन्ताव्ययान्त १० रू०

(२) " " द्वितीयखण्ड (भ्वादि कारक समास) १५ रु०

" " तृतीय चतुर्थ यन्त्रस्थ

प्रकाशक—अरविन्दमकरन्द प्रकाशन बी० ३७/४५ ए–२ विरदोपुर बंजनत्था मन्दिर के पीछे वाराणसी–२२१०१०